Published by Pt. Ramchandr Sharma at the
Sanatan Dharm Press Moradabad.

॥ श्रीहरिः ॥



महाभारत-हरिवंशपर्वकी

विषयसूची

हरिवंशमाहात्म्य

हरिवंशपर्व

हरिवंशपूर्वार्धकी विषयसूची समाप्त.

॥ श्रीहरिः ॥

हरिवंश-माहात्म्य

भाषानुवाद-सहित

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति२ अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥ अखंडमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४ ॥ जनमेजय उवाच । त्वया मे भगवन् प्रोक्तो भारतश्रवणे विधिः । श्रवणे हरिवंशस्य विशेषाद्वद मे विधिम् ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच ।

श्रीः॥ नारायणको नरोंमें उत्तम नर भगवान्को और सरस्वती देवीको प्रणाम करके इतिहास आदि ग्रंथोंकी व्याख्याका आरम्भ करे ॥ १ ॥ जिनके मुखकमलसे निकले हुए वाणीरूप अमृतको जगत् पान करता है, उन सत्यवतीके हृदयको आनन्द देने पराशरमुनिके पुत्र व्यासजीकी जय रहे ॥२॥ जिन गुरुदेवने अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हुए पुरुषके नेत्रोंको ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है उन श्रीगुरुदेवको प्रणाम है ॥३॥ जिससे चराचर जगत् व्याप्त है उस सम्पूर्ण (जगत्रूपी) मण्डलके आकार रूप तत् (तत्त्वमसि—वह ब्रह्म तू है) पदका जिन्होंने साक्षात्कार कराया है, उन श्रीगुरुदेवको प्रणाम है ॥ ४ ॥ जनमेजयने कहा, कि—हे भगवन् ! आपने मुझसे महाभारत सुननेकी विधि कही अब हे भगवन् ! आप मुझसे हरिवंशको सुननेकी विधि (विशेष-

ब्रह्मविष्णुमहेशानां हरिवंशं जगुर्वपुः । शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंशं सनातनम् ॥ ६ ॥ शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति । हरिवंशपुराणे तु श्रुते वै राजसत्तम ॥ ७ ॥ कायिकं वाचिकं पापं मनसा समुपार्जितम् । तत्सर्वं नाशतां याति तमः सूर्योदये यथा ॥ ८ ॥ अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत् फलं लभेत् । तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥ ९ ॥ स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः । जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ ॥ १० ॥ भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ११ ॥ बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते । श्रवणं

रूपसे) विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ५ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि- (ऋषि) हरिवंशको ब्रह्मा विष्णु और शिवका शरीर बतलाते हैं, हरिवंशको सनातन शब्दब्रह्ममय (वेदस्वरूप) जानना चाहिये ॥ ६ ॥ मनुष्य शब्दब्रह्म (वेदरूप हरिवंश) का पारगामी होनेपर परब्रह्मको प्राप्त होजाता है, हे राजर्षभ ! हरिवंशके सुनने पर मनुष्यका मानसिक वाचिक और कायिक पाप ऐसे नष्ट होजाता है, जैसे सूर्योदय होने पर सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ अठारह पुराणोंको सुननेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य इस हरिवंशको सुननेसे विष्णुभक्तको मिलता है ॥ ९ ॥ (इस पर्वको सुननेसे) स्त्रियोंको और पुरुषोंको वैष्णवपद (स्वर्ग) मिलता है, हे राजन् ! कलियुगमें जम्बूद्वीपनिवासी मनुष्योंमें श्रोता मिलना कठिन होजायगा जो स्त्रियें पुत्र चाहती हो उनको जिसमें विष्णुकी कीर्ति है ऐसे (हरिवंश) को सुनना चाहिये ॥ ११ ॥ हे राजन् ! (जिस) पुरुषने (पहिले जन्ममें) बालकोंकी हत्या की होती है, वह पुरुष (दूसरे जन्ममें) मृतवत्स (अर्थात् जिसकी सन्तान उत्पन्न होकर मर

हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥ १२ ॥ गुरुचन्द्राग्निसूर्याणां संमुखे मेहते च यः । बीजमुत्सृज्यते तेन त्यक्तरेता नरो भवेत्१३ योषित्पुष्पफलानां च बालानां घातिनी तथा । फलानां कर्तनकरी मातापितृवियोगिनी ॥ १४ ॥ स्राविणी परगर्भाणां तत्तत्प्रायोपयोषिणी । ईदृग्विधा भविष्यन्ति पञ्चदोषयुताः स्त्रियः१५ अपुष्पा मृतवत्साश्च काकवन्ध्या तथैव च । कन्या प्रजात्वं च तथा स्रावयुक्ता स्वपातकैः ॥ १६ ॥ तासां दोषापहारार्थं हरिवंशोऽभिगर्जति । मदीयश्रवणात् सद्यो दोषा नश्यन्ति सत्वरम् ॥ १७ ॥ नरः सुवर्णं सर्पिश्च पददानैः समन्वितम् । दशावृत्तीः शृणोत्येवं बीजसाफल्यमाप्नुयात् ॥ १८ ॥ दशावृत्तीरपु-

---

जाती है, ऐसा) होकर उत्पन्न होता है, उसको विधिविधानसे हरिवंशपर्वको सुनना चाहिये ॥ १२ ॥ जो पुरुष गुरु सूर्य और अग्निके सामने मूत्र करता है अथवा वीर्यत्याग (मैथुन) करता है वह पुरुष (अगले जन्ममें) त्यक्तरेता-निष्फलवीर्यवाला होता है । १३ ॥ रजोधर्मको (औषधि आदिसे) बन्द कर देने वाली, बालकोंकी हत्या करने वाली, फलोंको काटने वाली, माता तथा पितासे (बालकोंको) छुड़ा देनेवाली और दूसरी स्त्रियों के गर्भको गिरा देनेवाली, ये २ कर्म करनेवाली स्त्रियें अपने पापोंसे अपुष्पा रजोदर्शनरहित, मृतवत्सा, काकवन्ध्या, कन्या प्रजावाली और जिनका गर्भ गिर जाता है ऐसी पाँच दोषोंसे युक्त हों (गी)ती हैं ॥ १४॥१६॥ उनके दोषोंको दूर करनेके लिये हरिवंश गर्जना कर रहा है, कि–' मेरा पाठ श्रवण करने से शीघ्र ही दोष नष्ट होजावेंगे ॥ १७ ॥ जो मनुष्य सुवर्ण घृत और स्थानका दान देकर इस हरिवंशपर्वको दश वार सुनता है उसका वीर्य सफल होजाता है ॥ १८ ॥ अपुष्पा स्त्री दश वार, मृतवत्सा सात वार और स्रवद्गर्भा (जिसका गर्भ

ष्पार्थं मृतवत्सा तु सप्त वै । पञ्चावृत्तीः स्रवद्गर्भा काकवन्ध्या त्रयं तथा ॥ १९ ॥ कन्याप्रसूश्चैकावृत्तिं श्रुत्वा पुत्रमवाप्नुयात् । जीवितावधिकं श्राव्यं सर्वदोषोपशान्तये ॥ २० ॥ भविष्यं जन्म संप्राप्य न भवेत्तादृशी पुनः । उत्तमं सार्थपाठं च मध्यमं च निरर्थकम् ॥ २१ ॥ विनार्थं शुद्धपाठं चेदुत्तमेन समं भवेत् । नवाहमुत्तमं प्रोक्तमेकविंशाहमध्यमम् ॥ २२ ॥ निकृष्टमेकत्रिंशाहं सुखसाध्यं समाचरेत् । बहुभिर्दिवसै राजन् साध्यानां साधनं कलौ ॥२३॥ तेन पारायणं साध्यं प्रोक्तं नारायणात्मना । नवाहो गर्जति कलौ चैकविंशाहकस्तथा ॥ २४ ॥ एकत्रिंशाहिको यज्ञो

गिर जाता हो वह) पाँच वार काकवन्ध्या तीन वार तथा जिसके कन्या सन्तान उत्पन्न होती हो वह स्त्री एक वार हरिवंशको सुननेसे पुत्रको पाती है, सब दोषोंकी शान्तिके लिये, इसको अपने जीवनपर्यन्त सुनते रहना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥ कि-जिससे अगले जन्म फिर ऐसी वन्ध्या होकर उत्पन्न न होना पड़े (इस हरिवंशका) अर्थसहित अर्थात् अर्थको समझ कर पाठ करना उत्तम है और उत्तम मध्यम तथा निरर्थक (निकृष्ट) (भेदसे इसका पाठ तीन प्रकारका है) ॥ २१ ॥ यदि अर्थको न कह कर शुद्धपाठ किया जाता है, तो वह भी उत्तम पाठकी समान होजाता है, इसका नौ दिनका पाठ उत्तम कहलाता है इक्कीस दिनका पाठ मध्यम कहलाता है ॥ २२ ॥ और इकतीस दिन का पाठ निकृष्ट कहलाता है, वह सुखसे किया जासकता है, अतः उसको करना चाहिये, कलियुगमें साध्यों (साधने योग्यों) का साधन बहुत दिनोंमें होसकता है इस लिये नारायणात्मा (व्यासजी) ने यह साध्य पारायण कहा है, कलियुगमें नवाह और एकविंशाह (हरिवंशका पारायण) गर्जनाकर रहा है ॥ २३-२४ ॥ इसका एकत्रिंशाहिक (इकतीसदिनोंमें पूर्ण

वन्ध्यादोषविनाशकः । गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेण च ॥ २५ ॥ श्रवणारंभणे राजन् यथावत् कथयामि ते । अवसायान्तपर्यन्तं कार्यं मासव्रतं शुभम् ॥ २६ ॥ चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय हृष्टेन मनसा स्त्रियो।गोव्रतं नियतं कार्यं निराहारं निरूदकम्२७ सूर्यास्तकालपर्यन्तं यावद्गवामागमो भवेत् । आगतां च सवत्सां हि पूजयित्वा यथाविधि ॥ २८ ॥ यवसं पुष्कलं दत्वा यवान्नं कुरुते स्वयम् । एवं मासे चतुर्थ्यां सा शुक्लायां व्रतमाचरेत्२९ स्त्रीव्रतं कथितं राजन् पुरुषस्य तथैव च । एवं मासव्रतं कृत्वा स पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥ ३० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

होने वाला पाठरूप) यह वन्ध्यात्वके दोषको दूर कर देता है, इसको सुननेका आरम्भ करते समय)पत्नीको गोव्रत करना चाहिये और पतिको पारण करना चाहिये, हे राजन् ! मैं उसको तुम्हें यथावत् सुनाता हूँ, इस शुभ व्रतका आरम्भ कर इसको एक मास तक करना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥ स्त्री मनमें प्रसन्न होती हुई चतुर्थीके दिन प्रातःकाल उठ कर निराहार और निर्जल रह कर नियमपूर्वक सूर्यास्तके समय तक कि–जिस समय गौएँ ग्राममें आती हैं उस समय तक व्रतको करे गौके आने पर उस की और उसके बछड़ेकी शास्त्रानुसार पूजा करे॥ २७ ॥ २८ ॥ फिर उसको जौका भुस आदि देकर, अपने आप भी जौका अन्न खाय, इस प्रकार पत्नी शुक्ल पक्षकी चतुर्थीसे व्रतका आरम्भ करे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तुमसे पति और पत्नीके करने योग्य व्रतका वर्णन कर दिया, इस प्रकार एक मास तक व्रत करने पर अवश्य ही पुत्र होता है ॥ ३० ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ छ छ छ

वैशंपायन उवाच । अथ ते संप्रवक्ष्यामि नवाहश्रवणे विधिम्। सहायैर्बहुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिस्त्वयम् ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः । विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्यश्चाश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभः । एते मासाः कथारम्भे श्रोतृणां कामसूचकाः ॥ ३ ॥ सहायाश्च त एवात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये । देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुंबिभिः । देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ ५ ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् । सतां समाजो भविता नवरात्रं सुदुर्लभः ॥ ६ ॥ आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् । तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं स्मृतम्॥७॥ विशाला

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि-अब मैं तुमसे नवाहश्रवणकी विधि कहता हूँ, यह विधि प्रायः बहुतसे सहायकोंकी सहायतासे ही सिद्ध होसकती है ॥ १ ॥ पहिले ज्योतिषीको बुला यत्नपूर्वक मुहूर्त बूझ कर जितना द्रव्य विवाहमें उठ सकता है वैसे धनकी कल्पना (प्रबन्ध) करे ॥ २ ॥ भाद्रपद आश्विन कार्तिक मार्गशीर्ष शुचि और श्रावणके महीने कथा आरम्भ करने वाले मनुष्योंकी कामनाके सूचक (पूर्ण करने वाले) हैं ॥ ३ ॥ जो पुरुष उद्योगी हों उनको ही इस काममें सहायक बनाना चाहिये, और देश देशान्तरोंमें यह बात प्रसिद्ध करा देनी चाहिये ॥४॥ कि-मेरे यहाँ कथा होगी अतः कुटुम्बियोंको मेरे यहाँ पधारना चाहिये, और कीर्त्तन करनेमें उत्सुक रहने वाले देशदेशान्तरोंमें जो वैष्णव रहते हों ॥ ५ ॥ उनके पास भी इस आशयका पत्र भेजना चाहिये, यहाँ पर नौ रात तक सज्जनोंका समाज होगा, जो दुर्लभ है ॥ ६ ॥ फिर सब आगन्तुकोंके ठहरनेका प्रबन्ध करे, तीर्थ वन अथवा घरमें हरिवंशका श्रवण कहा है ॥ ७ ॥ जहाँ

वसुधा यत्र कर्तव्यं तत् कथास्थलम् । शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ ८ ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् । कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीस्तंभमण्डितः ॥ ९ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वक्‌वितानेन विराजितः । चतुर्दिक्षु ध्वजारोपैस्तोरणेन विराजितः ॥ १० ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताधः परिकल्पयेत् । तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै ॥ ११ ॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् । वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १२ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तथा । प्राङ्मुखोऽथ भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तथा १३ विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशारदः । दृष्टान्तकुशलो

पर विशाल भूमि हो तहाँ पर सभास्थल बनाना चाहिये और उस भूमिको झड़वा बुहरवा कर गोबरसे लीप कर (गेरू आदि) धातुओंसे भूषित करे ॥ ८ ॥ उस समय घरके सामानको उठा कर घरके कोनेमें रख देय और केलेके खंभोंसे भूषित करके ऊँचा मण्डप बनावे ॥ ९ ॥ उसके चँदोवेमें सब ओरसे फल और पुष्प लगाने चाहिये और चारों दिशाओंमें ध्वजा और तोरण लगावे ॥ १० ॥ ऊपर और नीचे सात २ लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको समझा कर प्रतिष्ठित करे ॥११॥ फिर उत्तरकी ओर उनके आसनोंकी कल्पना करे और वक्ताके लिये भी दिव्य आसनकी कल्पना करे ॥१२॥ श्रोता पूर्वकी ओर मुख करके बैठे और वक्ता उत्तरकी ओर मुख करके बैठे अथवा श्रोता उत्तरकी ओर मुख करके बैठे और वक्ता पूर्वकी ओर मुख करके बैठे ॥ १३ ॥ वक्ता उस विप्रको बनाना चाहिये, जो विरक्त वैष्णव वेदशास्त्रविशारद, दृष्टान्त देनेमें कुशल धीर और दयालु हो ॥ १४ ॥ क्योंकि-वेद और वेदान्तके तत्त्वोंको जानने वाले गुरु जिनको

धीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः ॥ १४ ॥ वेदवेदांततत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः । नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥१५॥ अथान्यजनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः । नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति तादृशी ॥१६। अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्तेनाः पाखंडवादिनः । धर्मशास्त्रकथोच्चारैस्त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः १७ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः । पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ १८ ॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाक् व्रताप्तये । वक्तुः श्रोतुश्चन्द्रशुद्धौ दंपत्योः शुभतारके १९ अरुणोदये विनिर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् । नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं प्रयतस्ततः ॥२०॥ सुक्षालितपाणिपादः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम् ॥ २१ ॥

उपदेश देते हैं, उन मनुष्योंके मनोरथ तत्काल ही सिद्ध होजाते हैं। १५। इसके अतिरिक्त नीतिचतुर साधारण गुरुओंसे उपदेश लेने वाले मनुष्योंको वैसी ही सिद्धि मिलती है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य बहुतसे धर्मोंमें उलझ रहे हों चोर हों और धर्मशास्त्रकी बातोंके मिषसे पाखण्डकी बातें कहते हों ऐसे पण्डितोंको त्याग देय। १७। वक्ता (कथावाचक) की सहायता करनेके लिये वक्ताकी समान पण्डित संशयोंको दूर करने वाला और मनुष्योंको समझानेमें तत्पर रहने वाला एक और पण्डित बैठाना चाहिये ॥१८॥ व्रतकी दीक्षा लेनेकेलिये वक्ताको पहिले दिनमें क्षौर बनवाना चाहिये, और वक्ता श्रोता और पति पत्नीको चन्द्रशुद्धि और नक्षत्र (शुद्धि) देखनी चाहिये। १९। अरुणोदयमें उठ कर शौच और स्नान करे फिर संक्षेपसे नित्य कर्मको करके संध्याको प्रयत्नसे करे २० फिर अपने हाथ पैरोंको भलीभाँति धोकर स्वस्तिवाचन करा कर गोमयसे लिये हुए स्थान में सर्वतोभद्र करे ॥ २१ ॥ और अपनी शक्तिके अनुसार सब

स्वीयशक्त्यनुसारेण पूजनं सर्वमाचरेत् । कथाविघ्नविनाशार्थं गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २२ ॥ सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत्ततः । निर्विघ्नेनैव सिद्ध्यर्थं देवपूजनपूर्वकम् ॥२३॥ संकल्पं कुर्यात् । अद्येहेत्यादिदेशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशर्मणो मम जन्मनि संचितमहापातकपटलनाशपूर्वकं तेन पापसंचयेन कृतसंतानबाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि संतानोत्पत्तिहेतवे तस्य सन्तानस्य शरदां शतमायुषो वृद्ध्यर्थमात्रनत्र सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीरशुद्ध्यर्थं परत्र चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकश्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पावधितल्लोकगमनतद्दासपूर्वकतत्स्वरूपावाप्तिहेतवे श्रीगद्धरिवंशपुराणश्रवणं कर्तृकतया करिष्यावहे । अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये इत्येव संकल्पः । इति कृत्वा तु संकल्पं वक्तारं वृणुयात्ततः । श्रुताध्ययनसंपन्नं पूज-

---

पूजन करे कथाके विघ्नको दूर करनेके लिये गणनाथ गणेशजीका पूजन करे, फिर निर्विघ्नतासे कार्य सिद्ध होनेके निमित्त लक्ष्मी और पुत्रसहित गोपालकी और देवताओंकी पूजा करे ॥ २२—२३ ॥ * फिर संकल्प करे (संकल्प २३ श्लोक के अनन्तर और २४ वे श्लोकके पहिले लिखा हुआ है) यजमानका होने पर "अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये" कहना चाहिये इस प्रकार संकल्प करके गुरुमुखसे विद्याको सुनने वाले और अध्ययन करने वाले वक्ताका वरण करे, फिर सुवर्णकी अँगूठी कुण्डल सफेद वस्त्र दुपट्टा पगड़ी पुष्प ताम्बूल सोलह पल सोना सुपारी और चावल लेकर शुद्धमनसे वक्ताकी शास्त्रानुसार पूजा करके (संकल्प करे) (संकल्प-अद्येहेत्यादि अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिश्चन्दनताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवंशश्रवणे वाचकत्वेनावां दम्पती त्वां वृणीवहे । फिर आचार्यके "वृतोऽस्मि" कहने पर "व्रतेन दीक्षामाप्नोति" आदि

यित्वा यथाविधि ॥ २४ ॥ सुवर्णमुद्रिकां गृह्य कुण्डले च विशेषतः । धौतवस्त्रं सोत्तरीयं सोष्णीषेण समन्वितम् ॥ २५ ॥ सुवर्णषोडशपलं पुष्पताम्बूलसंयुतम् । पूगीफलं चाक्षतान् वै गृहीत्वा शुद्धमानसः ॥ २६ ॥ (संकल्पः॥ अद्येहेत्यादि अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिश्चन्दनताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवंशश्रवणे वाचकत्वेनावां दम्पती त्वां वृणीवहे । वृतोस्मीति तेनोक्ते । व्रतेन दीक्षामाप्नोति इति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणकरमूले रक्षाबन्धनं कार्यम् । ब्राह्मणेन श्रोतृणां रक्षाबन्धनं कार्यम् ॥) चन्दनाद्युपचारैस्तु वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा । हेमालंकरणैः पूगैः फलैर्ऋतुसमुद्भवैः ॥२७॥ पुराणपूजनं प्रोक्तं विधिना षोडशेन तु । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठाः श्रवणं फलदं स्मृतम् ॥२८॥ तस्मात् सर्वः प्रयत्नेन श्रोतव्यं विधिपूर्वकम् । अथ व्यासं नमस्कुर्युर्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २९ ॥ नमस्ते भगवन् व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद । ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत ॥ ३० ॥ इति व्यासं नमस्कृत्य शुभे देशे कुशासने । उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत् प्रीत-

---

मंत्र पढ़ कर वक्ताके दाहिने पहुँचेमें रक्षासूत्र बाँधना चाहिये, ब्राह्मणके द्वारा सुनने वालोंका रक्षाबंधन कराना चाहिये) चन्दन आदि उपचारोंसे वस्त्र पुष्प तथा अक्षत, सुवर्णके गहने सुपारी और ऋतुके फल और षोडशोपचारसे पुराणका पूजन करना लिखा है,हे राजन ! ब्राह्मणोंकी पूजा कर श्रवण करना फल देने वाला कहा है ॥ २४–२८ ॥ इस लिये इसको प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये, फिर सब व्यासजीको प्रणाम करें फिर निम्नलिखित (३० वें) मंत्रका उच्चारण करे ॥ २९ ॥ हे सब शास्त्रोंके अर्थ करनेमें चतुर ब्रह्मा विष्णु और महेशमूर्ति सत्यवतीपुत्र भगवन् व्यासजी आपको प्रणाम है ॥ ३० ॥ इस प्रकार व्यासजीको प्रणाम कर प्रतिदिन शुभ देशमें कुशासन पर

मानसः ॥ ३१ ॥ बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्बलोऽपि वा । पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ ३२ ॥ नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन । यस्य वक्त्राद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ३३ ॥ गुरवः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये । तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ ३४ ॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदति । यो ददाति पुण्यवृत्तिं कोन्यस्तस्मात् परो गुरुः ॥ ३५ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शांतोऽपि जितमत्सरः साधुः कारुण्यवान् वाग्मी वदेत् पुण्यकथां सुधीः ३६ व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः । आसमाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३७ ॥ ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये

बैठ कर मनमें प्रसन्न होकर (कथा सुने)॥ ३१ ॥ पुराणको जानने वाला बालक हो, युवा हो, वृद्ध हो, दरिद्र हो, अथवा दुर्बल हो तब भी उसकी सदा पूजा करनी चाहिये और पुण्य चाहने वालोंको उसकी वन्दना भी करनी चाहिये॥३२॥ जिनके मुखसे प्राणियोंके लिये कामधेनुरूप वाणी निकलती है उन पुराण जानने वाले ब्राह्मणमें नीचबुद्धि कभी न करे ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य जन्मसे और गुणसे लोकके गुरु होते हैं उन सबका भी पुराणको जानने वाला परम गुरु होता है ॥ ३४ ॥ जीव करोड़ों योनियोंमें जन्म लेकर दुःख पाता रहता है उसको जो पुण्यवृत्ति देता है उससे अधिक दूसरा गुरु कौन होसकता है ? ॥ ३५ ॥ पुराणको जानने वाला पवित्र चतुर शमदमसम्पन्न मत्सरको जीतने वाला साधु दयालु और विद्वान् पुरुष पुण्यमयी कथाको कहे ॥ ३६ ॥ जब पुराणको बाँचने वाला ब्राह्मण व्यासगद्दी पर बैठ जाय तो कथाकी समाप्तितक किसीको नमस्कार न करे ॥ ३७ ॥ जो धूर्त हों, जो दुराचारी हों और जो (तर्क कुतर्क करके)जीतना चाहते हों उन कुटिल आचरण करने वालों

चान्ये विजिगीषवः । तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत् कथाम् ३८
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृत्ते । देशे नापूतसदने वदेत्
पुण्यकथां सुधीः ॥ ३९ ॥ सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवता-
लये । पुण्ये नदनदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ४० ॥ ईदृशा-
द्वाचकाद्राजन् श्रुत्वा फलमवाप्नुयात् । ऐहिकामुष्मिकं शर्म पुण्यं
पुत्रादिसिद्धिदम् ॥ ४१ ॥ महापापादिशमनं पुराणं हरिवंश-
कम् । योऽयं पुत्रादिसिद्ध्यर्थं हरिवंशं जितेन्द्रियैः ॥४२॥ शृणु-
यात् सर्वभावेन पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधि-
कथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच।जपाद्धि श्रवणं प्रोक्तं हरिवंशस्य सूरिभिः
पितॄन् सन्तर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १ ॥ मण्डलञ्च

के सामने कथा न कहे ३८ सुबुद्धि पुरुष जहाँ दुर्जन घिर रहे
हों, जहाँ शूद्र और मांसाहारी बैठे हों उस देशमें और जो भवन
अपवित्र हो तहाँ पुण्यकथाको न कहे ॥ ३९ ॥ किन्तु सुबुद्धि
पुरुष सज्जनोंके ग्राममें सज्जनोंसे भरे हुए क्षेत्र (तीर्थ) में देवा-
लयमें और पुण्यप्रद नद नदियोंके तट पर कथा कहे ॥ ४० ॥
हे राजन् ! ऐसे (इस प्रकार कथा) बाँचने वाले पुरुषसे कथा
सुनने पर मनुष्यका इस लोकमें तथा परलोकमें कल्याण होता
है और उसको पुत्र आदि सिद्धिको देने वाला फल मिलता
है ॥ ४१ ॥ हरिवंश पुराण बड़े बड़े पापोंको दूर करने वाला है
जितेन्द्रिय पुरुष पुत्र आदिकी प्राप्तिके निमित्त हरिवंशकी कथा
को बचवावे ॥ ४२ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि विद्वानोंने कहा, है कि—जपके
साथ हरिवंशका श्रवण करना चाहिये, (इसको सुननेसे पहिले)
पितरोंका तर्पण करके शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे ॥ १ ॥ तहाँ

प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा । कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत् पूजाविधिं क्रमात् ॥ २ ॥ प्रदक्षिणानमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ ३ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥३॥ कर्मग्राहगृहीतोऽहं मामुद्धर भवार्णवात् । श्रीमद्वै हरिवंशस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ विधिना षोडशेनैव धूपदीपसमन्विता । ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥५॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा । स्वीकृतोऽसि मया नाथ पुत्रार्थं भवसागरे ॥ ६ ॥मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया । निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥७॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् । संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥ ८ ॥ व्यासरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । एतत् कथा-

पर मण्डल बना कर विष्णु भगवान्की स्थापना करे फिर कृष्ण को लक्ष्य करके मंत्रोंसे शास्त्रानुसार क्रमशः पूजा करे प्रदक्षिणा और नमस्कार करके पूजा करनेके अनन्तर (इस प्रकार) स्तुति करे, कि–हे करुणानिधे ! संसारसागरमें डूबते हुए मुझ दीनका आप उद्धार करिये ॥३॥ हे प्रभो ! मुझे कर्मरूपी नाकेने पकड़ रक्खा है हे नाथ ! आप संसारसागरमेंसे मेरा उद्धार करिये धूप दीप आदि सहित षोडशोपचारसे प्रयत्नपूर्वक शोभासम्पन्न हरिवंशकी पूजा करनी चाहिये, फिर उसके सामने श्रीफल धर कर नमस्कार करे ॥ ४–५ ॥ फिर प्रसन्नचित्तसे उनकी स्तुति करनी चाहिये कि—हे नाथ ! मैंने पुत्रप्राप्तिके लिये भवसागरमें आपका आश्रय लिया है ॥ ६ ॥ मेरे इस मनोरथको आप निर्विघ्नरीतिसे सर्वथा सफल करिये, हे केशव ! मैं आपका दास हूँ ॥ ७ ॥ इस प्रकार दीन वचन कहनेके अनन्तर वक्ताकी पूजा करनेका आरंभ करे और पूजा करनेके अनन्तर उसको वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत करके वक्ताकी स्तुति करे ।८।

प्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥९॥ तदग्रे नियमः पश्चात् कर्तव्यः श्रेयसे मुदा । नवरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥१०॥ वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये । कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ११ ॥ सन्तानगोपालमन्त्रो महारुद्रजपस्तथा । पूजनं पार्थिवस्यैव गणनाथमनूञ्जपन् ॥ १२ ॥ ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः । नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥१३॥ लोकवित्तधनागारसर्वचिंतां व्युदस्य च । कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम् ॥ १४ ॥ दंपती शुद्धमनसौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितौ । श्रद्धैव सर्वधर्माणां मातेव हितकारिणी ॥ १५ ॥ श्रद्धैव च नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः ।

कि-हे व्यासरूप ! हे ज्ञानके ज्ञाता ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! इस हरिवंशकी कथाका प्रकाश करके मेरे अज्ञानको दूर करिये ॥९॥ फिर कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक नियम पालन करना चाहिये और उस नियमको नौरात तक यथाशक्ति धारण करना चाहिये ॥ १० ॥ फिर कथाके बीचमें विघ्न न पड़े, इस लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरण करे, वे ब्राह्मण "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर मंत्रका जप करें ॥ ११ ॥ (अथवा) वे सन्तानगोपालस्तोत्रका मन्त्र व महारुद्रका जप करें अथवा पार्थिव शिवका अथवा गणनाथका जप करें ॥ १२ ॥ फिर ब्राह्मणोंको और कीर्त्तन करने वाले दूसरे वैष्णवोंको प्रणाम करके और उनकी पूजा करके उनके आज्ञा देने पर आसन पर बैठे ॥ १३ ॥ जो पुरुष लोक धनभण्डार आदिकी सब चिन्ताओं को दूर करके शुद्ध बुद्धिसे कथामें चित्त लगाता है उसको उत्तम फल मिलता है ॥ १४ ॥ (कथा सुनते समय) दम्पतिको अपना मन शुद्ध रखना चाहिये और श्रद्धा तथा भक्ति रखनी चाहिये, क्योंकि सब धर्मोंमें श्रद्धा ही प्राणीका माताकी समान

श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी ॥ १६ ॥ मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति ज्ञानदः । श्रद्धया भजतो मन्त्रस्तवकोऽपि फलप्रदः ॥ १७ ॥ श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि वरप्रदः । अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपोव्रतम् ॥ १८ ॥ सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं वन्ध्यतरोरिव । सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः ॥ १९ ॥ परमार्थात् परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते । मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥२०॥ यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी । अतो भावमयं विश्वं पुण्यं पापं च भावतः ॥२१॥ ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन । तस्मात् सर्वात्मना राजन् श्रद्धाभक्ती समाश्रयेत् ॥ २२ ॥ आमू-

हित करने वाली है ॥ १५ ॥ श्रद्धासे ही मनुष्योंको इस लोकमें तथा परलोकमें इन दोनों लोकोंमें सिद्धि मिलती है, श्रद्धापूर्वक सेवा करने वाले पुरुषको शिला भी फल देदेती है ॥ १६ ॥ मूर्खको भी भक्तिपूर्वक पूजाकी जाती हो, तो वह ज्ञान देने वाला गुरु होजाता है, श्रद्धापूर्वक साधारण स्तोत्रके मन्त्रसे भी पूजा की जाती है तो उससे भी फल मिलता है ॥ १७ ॥ श्रद्धापूर्वक पूजा करनेसे देवता नीचको भी वर देदेते हैं, जो दान तप पूजा यज्ञ और तप अश्रद्धासे किया जाता है, वह सब वन्ध्य वृक्षके पुष्पकी समान निष्फल होजाता है सर्वत्र सन्देहमें भरा रहने वाला श्रद्धाहीन और अतिचञ्चल पुरुष परमार्थसे भ्रष्ट होजाता है और संसारसे नहीं छूटसकता, मन्त्रमें तीर्थमें ब्राह्मणमें देवतामें ज्योतिषीमें औषधिमें और गुरुमें जिसकी जैसी भावना होती है उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है अतः यह विश्व भावमय है और भावना करने वालेको ही पुण्य और पाप लगते हैं१८-२१ और जो भावहीन होता है उसका पुण्य और पाप कभी स्पर्श नहीं करते हैं इस लिये हे राजन् ! सर्वात्मभावसे श्रद्धा और

र्योदयमारभ्य सार्धं त्रिमहरार्धकम् । वाचनीया कथा सम्यग् धीरकण्ठं सुधीमता ॥ २३ ॥ कथाविरामः कर्त्तव्यो मध्यान्हे घटिकाद्वयम् । तत्कथामनुकार्यं वै कीर्तनञ्च परैस्तदा ॥२४॥एवं श्रुत्वा विधानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ २५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच । नवाहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु सत्तम । एककालाशनश्चैव अधःशायी भवेन्नरः ॥१॥ स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण यावद्ग्रन्थः समाप्यते । हरिवंशे तथा राजन् पायसं चरुभोजनम् ॥ २ ॥ पारणे पारणे यातं तथावद्भरतर्षभ । मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥३॥ हविष्यान्नेन कर्तव्यमेकवारं कथार्थिना । उपोष्य नवरात्रं वा शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा४

भक्तिका आश्रय लेय ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् पुरुष सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन प्रहर तक गम्भीर कण्ठसे कथाको भली प्रकार बाँचे २३ और मध्यान्हमें दो घड़ीके लिये कथाका विश्राम करे और कथाके अनन्तर दूसरे मनुष्योंको कीर्तन करना चाहिये२४ इस प्रकार विधिविधानसे कथाको सुननेसे सब कामनाएँ सिद्ध होजाती हैं ॥ २५ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–हे श्रेष्ठ पुरुष ! अब तुम नवाह व्रत करने वाले मनुष्योंके नियमोंको सुनो, नवाहव्रती दिनमें एक समय भोजन करे, नीचे शयन करे ॥ १ ॥ और जब तक ग्रन्थ समाप्त हो तब तक ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित रहे, और हे राजन् ! हरिवंशको सुनते समय दुग्धके चरुका भोजन करे ॥ २ ॥ हे भरतर्षभ ! पारणा करने वाले पुरुष प्रत्येक पारणाके अन्तमें ऐसा करें, मल और मूत्रका जय करनेके लिये हलका भोजन करना सुख देने वाला है ३ कथा सुनने वालेको एक वार हविष्यान्न

घृतपानं पयः पानं कृत्वा वा शृणुयात् सुखम् । फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ ५ ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् । भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ॥ ६ ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तो कथाविघ्नकरो यदि । शृणुयाद्यः शुचिस्तिष्ठन्नेकचित्ततया सदा ॥ ७ ॥ प्रातः स्नानादिकं कृत्वा पुत्रदारसमन्वितः । पुराणश्रवणं कुर्यात् कृष्णपूजनपूर्वकम् ॥ ८ ॥ पुष्पधूपफलैः सम्यङ् नैवेद्यैः श्रद्धयोद्धृतैः । गुरोः शुश्रूषणं तेन कर्तव्यं फलकांक्षिणा ॥९॥ श्रुत्वा यथेच्छया शौचं कार्यं पुण्येन वर्त्मना । सायंकाले गुरुश्रेष्ठं तोषयित्वा सबान्धवः ॥१०॥ स्वपरिग्रहसंगेन सुखं स्वपिति वै तदा । नियमादि प्रकर्तव्यं पापानां

(के साथ लघ्वाहार) करना चाहिये और शक्ति हो तो नौ रात तक उपवास करता हुआ कथाको सुने ४ अथवा घीको या दूधको पीकर सुखपूर्वक कथाको सुने अथवा फलाहार करके अथवा एक वार भोजन करके कथाको सुने ॥ ५ ॥ इनमेंसे जो सुखसे सध सकता हो उस अहारको कथा सुननेके लिये भक्षण करे, मैं तो भोजनको अच्छा समझता हूँ, क्योंकि-उस को खानेसे कथा सुनी जासकती है ॥ ६ ॥ यदि उपवाससे कथामें विघ्न पड़ता हो तो उपवासको अच्छा नहीं कहा है, जो कथाको सुने वह सदा पवित्र चित्तसे एकाग्र होकर (कथा सुनने को) बैठे ॥७॥ श्रोता अपने स्त्री पुत्रों सहित प्रातःकाल स्नान आदि करके श्रीकृष्णकी पूजा करे फिर इस पुराणको सुने ८ फल चाहने वाले मनुष्यको श्रद्धापूर्वक लाये हुए पुष्प धूप फल और नैवेद्यसे गुरुकी शुश्रूषा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ हरिवंशको सुननेके अनन्तर अपनी इच्छानुसार पुण्यमयीरीतिसे (स्नान आदि)शौच करना चाहिये, फिर सायंकालमें अपने बान्धवोंको साथमें लेकर गुरुको सन्तुष्ट करे, फिर अपने कुटुम्बियोंके साथ

विनिवर्तने ॥ ११ ॥ यथासुखं व्यवहरेन्नित्यं विष्णुपरायणः । शुचिः शुद्धमनास्तिष्ठन् पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ १२ ॥ कथा-समाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती । द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥१३॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथा-व्रती । वृंताकं च कलिंगं च दग्धमन्नं मसूरिकाम् ॥१४॥ निष्पा-वानामिषाद्यं च वर्जयेच्च कथाव्रती । पलांडुं लशुनं हिंगुं मूलकं गृंजनं तथा ॥ १५ ॥ नालिकामूलं कूष्मांडं नैवाद्याच्च कथा-व्रती । कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ १६ ॥ दंभं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती । वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्र-तिनां तथा ॥ १७ ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेच्च कथाव्रती।

सुखपूर्वक शयन करे, पापोंको दूर करनेके लिये (श्रोताको) नियम आदि करने चाहिये ॥ १०-११ ॥ विष्णुमें परायण रहने वाला मनुष्य जिसमें सुख मिले उस प्रकार वर्ताव करे, और पवित्र होकर शुद्ध मनसे पत्तल पर भोजन जीमें ॥ १२ ॥ व्रतधारी मनुष्य कथा समाप्त होने पर भोजन करे, कथाका व्रत धारण करने वाला मनुष्य द्विदल (चना आदि) मधु तेल, गरिष्ठ अन्नको और भावदूपित अन्नको अर्थात् जिसको देखकर चित्तको घिन लगे उस अन्नको और वासी अन्नको न खाय, कथाका व्रत धारण करने वाला मनुष्य वैंगन सिरस जला हुआ अन्न मसूर भँटवास और मांसमय भोजनको त्याग देय, और कथाका व्रत धारण करने वाला मनुष्य प्याज ल्हसन हींग गाजर नालिकामूल (शाकविशेष) और पेठेको न खाय और कथाव्रती मनुष्य काम क्रोध लोभ मोह मद मान मत्सर और दंभको दूर करदे, और कथाव्रतीपुरुष वेद वैष्णव ब्राह्मण गुरु-वती गोव्रती स्त्री राज्य और उदार पुरुषोंकी निन्दा करना त्याग दे, और कथाव्रती पुरुष रजस्वला स्त्री म्लेच्छकी स्त्री

रजस्वलां त्यजेन्म्लेच्छां पतितां व्रात्यकैः सह ॥ १८ ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेच्च कथाव्रती ।सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ १९ ॥ उदारं मानसं तद्वत्कुर्यादेवं कथाव्रती । श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ २० ॥ वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः । अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ २१ ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि । पुराणं ये तु संपूज्य तांबूलाद्यैरुपायनैः २२ शृण्वन्ति च कथां भक्त्या दरिद्राः स्युर्न पापिनः । कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ २३ ॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः । सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति

पतिता स्त्री व्रात्य मनुष्य ब्राह्मणद्वेषी पुरुष और वेदबाह्य पुरुषों से सम्भाषण न करे, कथाव्रती पुरुष सत्य शौच दया मौन सरलता और विनयको धारण करे और इसी प्रकार अपने मन को उदार रक्खे श्रद्धावान् भक्तिमान् अन्य कार्योंमें लालसा न रखने वाले और वाणीको नियममें रखने वाले पवित्र अव्यग्र श्रोता पुण्यभागी होते हैं और जो अधम पुरुष अभक्तिसे पुण्यमयी कथाको सुनते हैं उनको पुण्यका कुछ फल नहीं मिलता है और वे जन्म जन्मान्तरोंमें दुःख भोगते हैं और जो पुरुष ताम्बूल आदिकी भेंट चढ़ा पुराणकी पूजा कर कथाको भक्ति से सुनते हैं (वे दूसरे जन्ममें) पापी और दारिद्री नहीं होते हैं, जो मनुष्य कथाके समय दूसरे स्थान पर चले जाते हैं (पूर्वजन्मके) भोग भोगके अनन्तर उन मनुष्योंकी स्त्रियें और सम्पत्ति नष्ट होजाती हैं और जो पगड़ी पहिर कर कथा सुनते हैं वे मनुष्याधम पापी पुरुष बगले होकर उत्पन्न होते हैं और जो मनुष्य इस पवित्र कथाको सुनते समय ताम्बूलका भक्षण करते हैं उन पुरुषोंको नरकमें यमदूत उनकी विष्ठाका भक्षण

पावनीम् ॥ २४ ॥ ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः । ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥२५॥ स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिंकराः । नार्या रजस्वलायाश्च योनि-तुल्यं मुखं भवेत् ॥ २६ ॥ ये च तुंगासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दांभिकाः । अक्षयान्नरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः २७ ये च वीरासनारूढा ये च शय्यासनस्थिताः । शृण्वन्ति तत्क-थान्ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥२८॥ असंप्रणम्य शृण्वन्तो विष-वृक्षा भवन्ति ते । तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्याजगरा नराः२९ यः शृणोति कथां वक्रः समानासनमास्थितः । गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥ ये निंदन्ति पुराणज्ञान् कथां वा पापहारिणीम् । ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः सम्भवन्ति च३१ कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् । ते गर्दभाः प्रजायन्ते

कराते हैं रजस्वला स्त्रीका मुख योनिकी समान (अपवित्र) होता है (अतः कथाके समय उसका दर्शन न करना चाहिये) और जो दांभिक पुरुष ऊँचे आसन पर बैठ कर कथाको सुनते हैं, वे पुरुष अक्षय नरकोंको भोगनेके अनन्तर कौए होकर उत्पन्न होते हैं ॥ १३-२७ ॥ जो पुरुष वीरासनसे बैठ कर और खाट तथा शय्या पर बैठकर कथाको सुनाते हैं वे पुरुष अर्जुनहर्राका पेड़ बन कर उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥ जो पुरुष (कथावाचकको) प्रणाम न कर कथा सुनने लगते हैं वे पुरुष विषवृक्ष होकर उत्पन्न होते हैं और जो पुरुष लेटे २ कथाको सुनते हैं, वे पुरुष अजगर होते हैं ॥२९॥ और जो कुटिल पुरुष (वक्ताके आसनकी)समान आसन पर बैठकर कथाको सुनता है, वहपुरुष गुरुपत्नीगामीकीसमान पापकोपाकर नरकमें पड़ताहै ३० जो पुरुष पुराण बाचने वालोंकी अथवा पापहारिणी कथाकी निन्दा करते हैं वे मनुष्य सौ जन्म तक कुत्ते होते हैं ॥३१॥ जो

कृकलासास्ततः परम् ॥३२॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वंति कथां नराः। ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनशूकराः ३३ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः। कोटयब्दान्नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥३४॥ मध्ये वार्तां न कुर्वीत चेत् कुर्यान्निरयं व्रजेत्। कथायां श्रूयमाणायां न कुर्याच्छिशुलालनम् ॥ ३५ ॥ नर्मवादान् वदेन्नैव स्त्रिया संभाषणं तथा। न कर्तव्यं प्रयत्नेन कथाविच्छेदकारकम् ॥३६॥ विच्छेदेन कथायास्तु ब्रह्महत्यासमं त्वघः। प्राप्नोति मुनिशार्दूल कथाविच्छेदकः पुमान् ॥ ३७ ॥ न कुर्यात्तु कथामध्ये त्वन्यवार्ताः प्रयत्नतः। नारी वा पुरुषो वापि कुर्यान्निरयमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ इतिहासं वदाम्यत्र शृणुष्वेकं हि मानद। यं श्रुत्वा न वदेद्वार्तां कथामध्ये

पुरुष कथाके मध्यमें दुरुत्तर बात कहते हैं वे पुरुष गधे होते हैं और फिर गिरघट होते हैं ॥ ३२ ॥ और जो पुरुष पुण्यमयी कथाको कभी भी नहीं सुनते हैं वे पुरुष घोर नरकोंमें पड़ कर अन्तमें जंगली सूअर होते हैं ॥ ३३ ॥ जो पुरुष कथा कहते समय विघ्न करते हैं, वे पुरुष करोड़ों वर्षों तक नरकको भोग कर अन्तमें ग्रामके सूकर होकर उत्पन्न होते हैं॥ ३४ ॥ कथाके बीचमें बातचीत न करना चाहिये, पुरुष यदि बात चीत करता है तो नरकमें पड़ता है और कथाको सुनते समय पुरुष बालकोंका लालन न करे ॥ ३५ ॥ (कथाके समय) कथामें विघ्न डालने वाली कामकेलिकी बातें न करे और स्त्रियोंसे सम्भाषण भी न करे ३६ हे मुनिशार्दूल जो पुरुष कथामें विच्छेद (विघ्न) डालता है उसको कथामें विच्छेद डालनेसे ब्रह्महत्याकी समान पातक लगता है ३७ कथाके समय और बातोंको प्रयत्न करके न करे नारी हो चाहे पुरुष हो ऐसा करनेसे उसको नरकमें गिरना पड़ता है ॥३८॥ हे मानद ! इस विषयमें मैं आपसे एक इतिहास

कदाचन ॥ ३९ ॥ जनस्थाने पुरा कश्चिद्व्राह्मणो वेदपारगः । धर्मशास्त्रेऽतिनिपुणः सदाचारपरायणः ॥ ४० ॥ गंगास्नानं विधायादौ कृत्वा मध्यान्हिकं तथा । कृत्वा देवार्चनं चैव श्रवणे तत्परोऽभवत् ॥४१॥ तस्य भार्यातिदुष्टा च कर्कशा कलहप्रिया । असत्यालापनिपुणा परद्वेषपरायणा ॥ ४२ ॥ कृत्वा चक्रे धनस्यापि संग्रहं पापनिश्चया । दधिदुग्धं समानीय शर्करां गुडमेव च ॥ ४३ ॥ घृतं च नवनीतं च स्वयमानीय सर्वदा । एकांते भक्षणं चक्रे भर्तर्यन्नं प्रशुष्ककम् ॥ ४४ ॥ दूरग्रहा दुष्टमनाः पतिनिंदापरायणा । बहुपापप्रकर्त्री च परवेश्मोपवेशिनी ॥४५॥ सुभाषणं वदेन्नैव दुष्टाक्षेपविधायिनी । पंक्तिभेदं प्रकुर्वाणा सदा निष्ठुरभाषिणी ॥ ४६ ॥ अतिथौ च सदा वैरकारिणी धर्म-

कहता हूँ, उसको सुन कर कथाके मध्यमें कुछ बात न कहनी चाहिये ३९ एक समय जनस्थानमें धर्मशास्त्रमें निपुण सदाचारपरायण एक वेदपारगामी ब्राह्मण रहता था ॥ ४० ॥ वह विप्र पहिले गङ्गास्नान कर मध्यान्हकी क्रिया करके और देवताओंकी पूजा करके कथा सुनने लगा ॥ ४१ ॥ परन्तु उसकी भार्या अति दुष्टा थी, कर्कशा थी, कलहप्रिय थी, असत्य भाषण करने वाली थी और दूसरोंसे द्वेष करनेमें परायण रहती थी फिर उस पापमति वालीने धनका संग्रह करना आरम्भ कर दिया, यह स्त्री दूध दही शर्करा घृत और मक्खन लाकर एकान्तमें भक्षण कर लेती थी और भर्ताको रूखा अन्न दे देती थी ॥४३–४४॥ वह घरसे दूर रहती थी, उसका मन दूषित रहता था वह पतिकी निन्दा करनेमें परायण रहती थी, वह अनेक पापकर्म करती थी और दूसरोंके घरमें बैठी रहती थी ॥ ४५ ॥ वह अच्छी तरहसे तो बोलती ही नहीं थी और (दूसरों पर) दूषित आक्षेप करती रहती थी, वह पंक्तिमें भेद

नाशिनी । सज्जनोऽपि गुणी सौम्यस्तस्या भर्ता सुपूजितः ४७
यदा भर्ता पुराणस्य श्रवणार्थं हि संस्थितः । मत्यहं तत्र गत्वा
तु तस्य निन्दां चकार ह ॥ ४८ ॥ संन्यासिवत् कथं तत्र श्रवणे
व्यासवत् कृतम् । समुत्पन्ननिरुद्योग किं कर्तव्यं मया वद ४९
शिशवो मां पीडयन्ति भक्षणार्थं दिने दिने । किं तेषां च प्रक-
र्तव्यं भक्षणार्थं मया वद ॥ ५० ॥ नास्त्येवान्नं गृहे किंचिद्वस्त्रं
वाप्यथवा धनम् । किं मया च प्रकर्तव्यं कुत्र गन्तव्यमेव च ५१
कथं विलिखितं दिष्टं धात्रा पापेन मां पुरा । मूर्खश्चालससंयुक्तो
दरिद्रो निष्ठुरस्तथा ॥५२॥ स्नेहहीनः कुटुंबे च कथायाः श्रवणे
रतः । एतादृशो पतिर्मह्यं धात्रा दत्तो दुरात्मना ॥५३॥ पृथिव्यां
दुर्भगैकाहं दरिद्रगृहमागता । उदरापूर्तिमात्रं हि नान्नं मे भक्षितं

डालदेती थी और सबसे कठोर भाषण करती रहती रहती थी॥४६
और वह धर्मनाशिनी स्त्री अतिथियोंसे सदा वैर करा रहती थी,
जब उसका पूजनीय सज्जन सौम्य भर्ता पुराणको सुनने
के लिये बैठ गया, तब वह प्रतिदिन तहाँ जाकर उसकी निन्दा
करने लगी ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ कि—हे निरुद्योग ! तुम यहाँ
संन्यासीकी समान कथा सुन रहे हो और व्यासजीसे बने बैठे
हो, परन्तु हे निरुद्योग ! अब मैं क्या करूँ ॥ ४९ ॥ मुझे प्रति-
दिन बच्चे खानेके लिये पीड़ित करते रहते हैं उनके खिलानेका मैं
क्या प्रबन्ध करूँ, यह मुझे बताओ ॥ ५० ॥ मेरे घरमें न अन्न
है न कुछ कपड़ा है और न धन ही है,मैं कहाँ जाऊँ और क्या
करूँ ॥ ५१ ॥ (हाय !) पापी विधातने (पहिले) मेरे भाग्य
में क्या लिख दिया, दुरात्मा विधाताने मुझै ऐसा स्वामी दिया
है जो मूर्ख आलसी दरिद्र और निष्ठुर है और कुटुम्बसे कुछ भी
स्नेह न करके कथा सुननेके लिये बैठ गया है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥
पृथ्वीमें मैं (एक) बड़ी दुर्भाग्यवती हूँ,मुझै दरिद्रके घरमें आना

कदा ॥५४॥ सौभाग्यास्ता स्त्रियो लोके यासामुद्योगशालिनः । पतयो धनधान्यादिसमृद्धिपरिशोभिताः ॥ ५५ ॥ ते वै स्त्रीणां वाक्यकराः शिशुपालनतत्पराः । नित्यं गृहेषु तिष्ठन्ति स्त्रीणां सन्तोषकारकाः ॥ ५६ ॥ सदन्नभक्षणात् पुष्टा भार्याज्ञापरिपालकाः । व्यवसायं च भार्याणां कुर्वन्ति बुद्धिशालिनः ॥ ५७ ॥ अयं मूर्खश्च जड़धीरुपेक्षां कुरुते गृहे । अद्य तैलं गृहे नास्ति इन्धनं लवणं तथा ॥ ५८ ॥ शाकञ्च मम नास्त्येव धान्यलेशो न मद्गृहे । किं मया तु मकर्तव्यं पतिरेतादृशो मम ॥ ५९ ॥ कथायां श्रूयमाणायां पत्या सन्मार्गमूर्तिना । धान्यादौ विद्यमानेऽपि मिथ्याभाषणतत्परा ॥६०॥ कथाविघ्नं चकारासौ कर्कशा

पड़ा है, कभी मैंने पेट भर अन्न नहीं खाया ॥ ५४ ॥ संसारमें वेही स्त्रियें सौभाग्यवती हैं जिनके पति उद्योगी और धन धान्य से सम्पन्न हैं ॥ ५५ ॥ वे अपनी स्त्रियोंके कहनेको करते हैं और अपने बालबच्चोंका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं वे घरमें स्त्रियोंको सदा सन्तोष देते रहते हैं ॥ ५६ ॥ वे अच्छे २ अन्न को खानेसे पुष्ट रहते हैं और अपनी स्त्रियोंकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और वे बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियोंके लिये ही व्यवसाय करते हैं ॥ ५७ ॥ और मेरा तो यह मूर्ख जड़बुद्धि पति घरकी ओरसे बड़ा लापरवाह रहता है, आज तो मेरे घर में तेल भी नहीं है ईंधन भी नहीं है और नमक भी नहीं है ५८ और मेरे घरमें शाक (तरकारी) भी नहीं है और मेरे घरमें लेशमात्र धान्य भी नहीं है, (हायरे ! मेरा पति ऐसा है अब मैं क्या करूँ ॥ ५९ ॥ उसके घरमें धन धान्य आदि सब सामग्री विद्यमान थी तब भी वह मिथ्याभाषणमें तत्पर रहने वाली कर्कशा स्त्री सन्मार्गकी मूर्ति अपने पतिके कथा सुननेमें विघ्न डाला करती थी, समय आने पर वह दूषित मन वाली स्त्री मर

सां दिने दिने । ततः कालेन मरणं प्राप्ता सा दुष्टमानसा ।६१। यमदूतैस्तु बद्ध्वा सा नीता च यममन्दिरे । ततो यमाज्ञया तैस्तु नरके पातिता चिरम् ॥ ६२ ॥ पश्चात् सा राक्षसी जाता भैरवे जलवर्जिते । अरण्ये क्षुत्तृषायुक्ता पूर्वपापप्रभावतः ॥ ६३ ॥ तस्माद्विघ्नं न कर्तव्यं भार्यया पुरुषेण वा । श्रीहरेः सत्कथायास्तु तव सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६४ ॥ मृगालिमहिषहंसबकस्वभावा मार्जारकाकवृककङ्कजलौकतुल्याः । सच्छिद्रकुम्भजलसिंधुशिलोपमाश्च तेऽश्रावकाश्च सुचतुर्दशधा भवन्ति ॥६५॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् । अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयात् स कथामिमाम् ॥ ६६ ॥ अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका । स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ।६७।

गई ॥ ६० ॥ ६१ ॥ उस समय यमदूत उसको बंधनमें बाँधकर यमलोकको लेगए, फिर यमराजकी आज्ञासे यमदूतोंने उसको चिरकालके लिये नरकमें डाल दिया ॥ ६२ ॥ फिर वह स्त्री अपने पूर्वपापके कारण जलशून्य भयंकर वनमें प्यास और क्षुधा से पीड़ित राक्षसी होकर उत्पन्न हुई ॥६३॥ इसलिये श्रीहरिकी कथामें पतिको अथवा पत्नीको विघ्न नहीं डालना चाहिये, यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूँ ॥ ६४ ॥ अश्रावक (कथामें विघ्न करने वाले पुरुष) मृग भौंरे भैंसे हंस और बगलेकी समान स्वभाव वाले मार्जार काक भेड़िया कंक जौंक छेद वाले घड़े सिन्धु और शिलाकी समान चौदह प्रकारके होते हैं ॥ ६५ ॥ दरिद्रीको, क्षयरोगीको, निर्भागीको, पापकर्मीको, सन्तानरहितको और मोक्षाभिलाषी पुरुषको इस कथाका श्रवण करना चाहिये ॥ ६६ ॥ अपुष्पा काकवन्ध्या मृतर्भका (जिसके बच्चे मर जाते हों) और स्रवद्गर्भा स्त्रीको प्रयत्न करके यह कथा सुनवानी चाहिये ॥ ६७ ॥ प्राणी इस हरिकथाको सुन कर

सुपुत्रं लभते राजन् व्यासस्य वचनं यथा। सर्वान् कामानवाप्नोति कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधि-
:कथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशंपायन उवाच। एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत्। तद्वदुद्यापनं कार्यं भक्तिमद्भिः फलार्थिभिः ॥ १ ॥ अकिंचनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः।श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामाः वैष्णवा यतः ॥ २ ॥ एवं नवाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा। पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ३ ॥ प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् मृदंगताललसितं कीर्तनं कीर्त्यतां ततः ॥४॥ जयशब्दो नमःशब्दः शंखशब्दश्च गीयताम्। विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५ ॥ श्रवणान्ते हरेर्मूर्तिः

व्यासजीके वचनानुसार सुपुत्रको और सब कामोंको पाता है६८
चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा कि-इस प्रकार व्रतकी विधिको करके उद्यापन करे, फल चाहने वाले भक्तिमान् पुरुषोंको इसी प्रकार उद्यापन भी करना चाहिये ॥१॥ अकिञ्चन भक्तोंके लिये उद्यापनका आग्रह (बन्धन) नहीं है, वे सुननेसे ही पवित्र होजाते हैं, क्योंकि-वे निष्काम विष्णुभक्त होते हैं ॥ २ ॥ इस प्रकार इस नवाहयज्ञके समाप्त होने पर श्रोतागणोंको कथावाचककी और पुस्तककी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ फिर श्रोताओंको प्रसाद देकर तुलसीकी माला देनी चाहिये तब मृदंग और तालसे कीर्त्तन करना चाहिये ॥४॥ उस समय जय जयका शब्द और नमस्कारका शब्द करना चाहिये और शंख बजाना चाहिये और विप्रोंको तथा याचकोंको धन देना चाहिये ॥ ५ ॥ श्रवणके अन्तमें लक्ष्मीसहित श्रीहरिकी सुवर्णकी एक पलकी मूर्ति

सथीकस्य प्रदीयते । सुवर्णस्य कृता सम्यक् लक्ष्म्यंका पलमा-
नतः ॥ ६ ॥ समाप्तौ विधिवद्वस्त्रं क्षौमं दद्याच्च वाचके । विशे-
षोयं समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७ ॥ समाप्य सर्वं प्रयतः
संहिताशास्त्रकोविदः । शुभे दिने निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥८
शुक्लांबरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः । अर्चयेत्तु यथान्यायं
गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥ संहितापुस्तकं तत्र प्रयतः सुस-
माहितः । अपूपैर्भक्ष्यभोज्यैश्च कौतुकैर्विविधैः शुभैः ॥ १० ॥
हिरण्यमन्यद्द्रव्यं च दक्षिणां तत्र दापयेत् । ये श्रावयन्ति मनुजान्
पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ ११ ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं यान्ति
ते ब्रह्मणः पदे । आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥१२॥
कम्बलाजिनवासांसि मञ्चाफलकमेव च । स्वर्गलोकं समासाद्य
भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥ १३ ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु

देनी चाहिये, उस मूर्त्तिमें लक्ष्मीकी गोदमें श्रीहरि शयन करते
हों ॥ ६ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह विशेष विधि कही है, कि-
कथाकी समाप्तिमें वाचकको शास्त्रानुसार रेशमी वस्त्र देय ॥७॥
(हरिवंश) संहितामें चतुर मनुष्य नियममें रहकर सब कथाको
पूर्ण करनेके अनन्तर किसी शुभ दिनमें पवित्र हो रेशमी वस्त्र
और श्वेत वस्त्र धारण कर अलंकृत हो (पुस्तकको) शास्त्रा-
नुसार गन्ध और माल्योंसे अलग २ पूजन करके समाहित चित्त
हो गुलगुले भक्ष्य भोज्य और नाना प्रकारके शुभ कौतुकोंसे
पुस्तककी पूजा करे ॥ ८-१० ॥ फिर सुवर्णकी तथा और
द्रव्यकी दक्षिणा दिलवावे, जो मनुष्य इस पुराणकी पुण्यमयी
कथाको दूसरे मनुष्योंको सुनवाते हैं ॥ १० ॥ वे डेढ़ करोड़ वर्ष
तक ब्रह्मलोकमें रहते हैं, जो पुरुष पुराणके ज्ञाताको बैठनेके
लिये कम्बल मृगचर्म वस्त्र और फलक (चर्मविशेष) देते हैं वे
पुरुष स्वर्गलोकमें जाकर यथेष्ट भोगोंको भोग कर ब्रह्मलोक आदि

पदं यान्ति निरामयम् । पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये सौत्रं वसनं नवम् ॥ १४ ॥ भागिनो ज्ञानसंपन्नास्ते भवन्ति भवे भवे । ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ १५ ॥ पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् । हरिवंशं लिखित्वा यो वाचकाय प्रदापयेत्१६ यत्फलं भूमिदानस्य तत्फलं लभते हि सः । राजसूयेन तेनेष्टम-श्वमेधेन वै नृप ॥ १७ ॥ दत्तानि सर्वदानानि हरिवंशे श्रुते-ऽखिले । राजसूयाश्वमेधाद्या यज्ञाश्चैव युगे युगे ॥१८॥ श्रवणं हरिवंशस्य कलौ यज्ञफलप्रदम् । श्रद्धावानास्तिको दान्तो हरि-वंशं यदारभेत् ॥ १९ ॥ पातकानि प्रकंपन्ते प्रत्यूहान् जनयन्ति च । समारभ्य नयेत् पारं हरिवंशं य आदितः ॥ २० ॥ स्पर्श-नाद्दर्शनात्तस्य विष्णुर्दृष्टो भवेन्नृप । जन्मत्रयस्य निष्कर्षं पात-

में निवास करते हुए निरामय पदको प्राप्त होजाते हैं जो पुरुष पुराणके लिये नया सूत्र और नवीन वसना देते हैं वे पुरुष प्रत्येक जन्ममें ज्ञानवान् होते हैं, महापातक और उपपातकोंसे युक्त पुरुष भी पुराणके श्रवणमात्रसे परमपदको पाते हैं, जो पुरुष हरिवंश को लिखवा कर वाचकको दिलवाता है वह पुरुष भूमिदानके फलको पाता है, हे नृप ! जिसने सम्पूर्ण हरिवंश सुन लिया उसने मानो सब दान दे लिये और उसने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ भी कर लिया, और २ युगोंमें राजसूय और अश्वमेध, आदि यज्ञका फल देते हैं) ॥ ११-१८ ॥ परन्तु कलियुगमें हरिवंश ही यज्ञका फल देने वाला है, श्रद्धावान् शमदमसम्पन्न आस्तिक-पुरुष जिस समय हरिवंशका आरम्भ करता है ॥ १९ ॥ उस समय उसके पातक काँपने लगते हैं और विघ्न डालने लगते हैं, जो पुरुष हरिवंशको आदिसे पार (अन्त) तक सुन लेय हे नृप ! उसका दर्शन करनेसे और उसका स्पर्श करनेसे विष्णुका दर्शन होता है अर्थात् विष्णुके दर्शनकी समान फल मिलता है, और

कस्य क्षयो ध्रुवम् ॥ २१ ॥ फलाभिश्च समाप्तौ च हरिवंशस्य बुध्यते। भारतश्रोतुर्विज्ञेयं पूर्वं सुकृतिलक्षणम् ॥२२॥ येन संजायते बुद्धिर्हरिवंशावधारणे। सर्वाणि च पुराणानि वेदाश्च स्मृतयस्तथा ॥ २३ ॥ हरिवंशे निबद्धार्था व्यासेन च महर्षिणा। श्रुतिस्मृतिपुराणानां निंदकेभ्यः कथञ्चन ॥ २४ ॥ पापिभ्यश्च महाराज श्रावयेन्नैव वाचकः। श्रुत्वा तुष्टेन मनसा वाचकं परिपूजयेत् ॥ २५ ॥ दान्तं यशस्विनं कांतं शुचिस्पष्टाक्षरं ब्रुवन्। त्रिशुक्लमाचारपरमक्रोधनमवादिनम् ॥२६॥ ग्रामं दद्यात् सुवसितं कुण्डलोष्णीषमालिकाम्। पादुकोपानहौ छत्रं सवितानं मसूरिकाम् ॥ २७ ॥ एवं कृत्वा तु विधिवद्वाचकाय प्रदापयेत्।

उसके तीन जन्मोंके पापोंकी कसौटी होकर उसके पाप (हरिवंशकी समाप्ति होने पर) नष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ हरिवंशकी समाप्ति होनेसे प्रतीत होता है, कि इसके (पूर्वजन्मके पुण्योंका) फल (बहुत अच्छा है) महाभारतको सुनने वालेके पूर्व पुण्य समझने चाहिये, यदि हरिवंशके सुननेमें उसकी बुद्धि लग जाय, महर्षि व्यासजीने हरिवंशपर्वमें सम्पूर्ण पुराण स्मृति और वेदोंका आशय भर दिया है, हे महाराज! वाचकको चाहिये श्रुति और स्मृतिकी निन्दा करने वाले पापियोंको इसकी कथा कभी न सुनावे, श्रोता सन्तुष्ट मनसे कथाको सुन कर वाचककी पूजा करे ॥ २२--२५ ॥ फिर दाता स्पष्ट अक्षरोंको बोल कर चतुर यशस्वी मनसा वाचा और कर्मणा पवित्र आचार में परायण रहने वाले अक्रोधी और मौन रहने वाले (अधिक न बोलनेवाले) वाचकको ग्राम देय फिर गंधमें बसाया (वस्त्र) कुण्डल पगड़ी माला पादुका उपानत् (जूते) छत्र चन्दोवा मसूर इन सबको इकट्ठा करके कथावाचकको शास्त्रविधिसे दान देदेय फिर यान (सवारी) वर्ष (बरसाने वाला पदार्थ गुलाबपाश

यानं वर्षं हयगजौ क्षौमं मणिमयासनम् ॥ २८ ॥ पण्डभांडा-
ग्नितामस्य ताम्रस्यैर्वांबुजाजिनम् । सकुटुम्बं च सस्त्रीकं वाचकं
परया मुदा ॥ २९ ॥ विभूषणैरलंकृत्य परिधाप्य सुवाससी ।
कृष्णद्वैपायनं ध्यायन्नमस्कुर्वीत भावतः । वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं
हरिवंशफलेप्सुभिः ॥ ३० ॥ प्रदेया गौः शुभा चैका सवत्सा
हेमपूरिता । पलेन च पलार्धेन तदर्धेनाथवा पुनः॥३१॥ वाचकं
येन केनापि तोषयेत् सुसमाहितः । तुष्टे तु वाचके राजंस्तुष्टा स्युः
सर्वदेवताः ॥ ३२ ॥ तुष्टेषु सर्वदेवेषु कार्यं तु सफलं भवेत् ।
हरिवंशे समाप्ते तु वाचके परिपूजिते ॥३३॥ ऋणत्रयेण मुक्ताः
स्युस्ते नरा जनमेजय । मोदन्ते पितरस्तेषां लोकान् प्राप्याक्षया-
न्नृप ॥ ३४ ॥ हरिवंशस्य प्रारम्भे समाप्तौ चैव तैः सह । सर्वान्

आदि) हाथी घोड़ा रेशमी वस्त्र मणियोंसे जड़ा हुआ आसन
ताम्बेका पण्डभाण्डाग्निताम्र (पात्रविशेष)कमल मृगचर्म आदि
वाचकको देकर, श्रोता परमहर्षमें भर वाचककी स्त्री और कुटुम्ब
को तथा वाचकको दो वस्त्र पहिरा विभूषणोंसे विभूषित कर
प्रेममें भर कृष्णद्वैपायनका ध्यान धरता हुआ वाचकको नम-
स्कार करे, हरिवंशके फलको सुनने वालोंको धनका लालच न
करना चाहिये ॥ २९-३० ॥ और बछड़े सहित सुवर्णकी एक
गौ बना कर देनी चाहिये, (उसको) एक पल आधा पल अथवा
चौथाई पल (की बनवाकर) जिस प्रकार होसके वाचकको
प्रसन्न करे, हे राजन् ! वाचकके प्रसन्न होनेपर सब देवता
प्रसन्न होजाते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और सब देवताओंके प्रसन्न
होनेपर ही कार्य सफल होता है, हे जनमेजय ! हरिवंशके समाप्त
होने पर और कथावाचकके सन्तुष्ट होने पर (ऐसा करने वाले
मनुष्य देवऋण पितृऋण और ऋषिऋण इन) तीन ऋणोंसे
मुक्त होजाते हैं और हे राजन् ! उनके पितर अक्षय लोकोंको

कामानवाप्नोति विपाप्मा जायते नरः ॥३५॥ एवं कृते विधाने तु पूजां प्राप्नोति मानवः । धनमारोग्यमायुष्यं सौभाग्यं गुणः गुणगौरवम् ३६प्राप्नोति मनुजः सम्यङ् नात्र कार्या विचारणा३७

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधि-
कथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जनमेजय उवाच । प्रारम्भस्तु कथं कार्यः कथं पूजाविधिः स्मृतः । कथं विसर्जयेद्व्यासं कथं सम्यक्फलं लभेत् ॥ १ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम । वैशंपायन उवाच । शृणु राजन् यथा वन्ध्या सन्ततिं लभते ध्रुवम् ॥ २ ॥ वैशाखे माघ ऊर्जे च अन्यस्मिन् शुभमासिके । शुक्लपक्षे तिथौ पूर्णानन्दा-भद्राजयासु च ॥३॥ वारे गुरौ तथा शुक्रे चन्द्रे चन्द्रात्मजे तथा ।

पाकर आनन्द करते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हरिवंशके आरम्भमें और समाप्तिमें मनुष्य और उसके पितर सब कामनाओंको पाते हैं और वह मनुष्य निष्पाप होजाता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार विधान करनेसे मनुष्यकी पूजा होती है और वह मनुष्य धन आरोग्य आयु सौभाग्य और गुणगौरवको पाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

जनमेजयने पूछा, कि–हे मुनिसत्तम ! मनुष्य इसका किस प्रकार आरंभ करे, इसकी पूजाकी विधि कैसी कही है और श्रोता व्यासजीका विसर्जन किस प्रकार करे और (श्रोता)भली प्रकार फल कैसे प्राप्त कर सकता है, यह आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये,वैशम्पायनने कहा, कि–हे राजन् ! जिस प्रकार वंध्या स्त्रीको पुत्र अवश्य मिलता है उसको तुम यथार्थ रीतिसे सुनो ॥ १ ॥ २ ॥ बुद्धिमान् पुरुष वैशाख माघ कार्त्तिक अथवा और किसी शुभ मासमें शुक्लपक्षमें, पूर्णा (पञ्चमी दशमी और पूर्णिमा) नन्दा (प्रतिपदा,षष्ठी एकादशी) भद्रा (द्वितीयासप्तमी

नक्षत्रे श्रवणे हस्ते पुष्ये मूले पुनर्वसौ ॥४॥ वासवे तुहिनांशौ च
पौष्णे च हयतारके। सौभाग्यादिषु योगेषु करणे विष्टिवर्जिते ५
श्रोतुश्चाथापि वक्तुश्च चन्द्रे च बलशालिनि। पूर्वाह्ने चापि मध्यान्हे
प्रारंभः क्रियते बुधैः ६ आदौ लम्बोदरः पूज्यः कलशस्तु ततः परम्।
श्रीखण्डागरुकर्पूरकुंकुमामोदलेपनैः ॥७॥ पंकजैश्चंपकैरन्यैर्जाती-
पुष्पैः सुगन्धिभिः। तुलसीबिल्वधात्रीणां पत्रैरन्यैर्नवांकुरैः ८
धूपैर्दीपैश्च विविधैर्नारिकेलफलादिभिः। तांबूलैर्मुखवासैश्चाखं-
डितैः शुक्लतंडुलैः ॥ ९ ॥ चामरैर्व्यजनैश्चैव घण्टावाद्यादिभि-
स्तथा। प्रत्यहं पूजयेद्देवं यावद्ग्रन्थः समाप्यते ॥ १० ॥ लत्ता-
दिदोषरहिते वारे च शुभसंज्ञके। समर्पयेत् पुराणं तु ततः पूजां
समाचरेत् ॥११॥ प्रारम्भे च यथा पूजा तथा कार्या विसर्जने।

द्वादशी) अथवा जया (तृतीया अष्टमी त्रयोदशी) तिथिमें, गुरु शुक्र सोम अथवा बुधवारमें, श्रवण हस्त पुष्य मूल अथवा पुनर्वसु ज्येष्ठा मृगशिरा रेवती अथवा अश्विनी नक्षत्रमें, सौभाग्य आदि योगमें, विष्टि (भद्रा) वर्जित करणमें, श्रोता और वक्ताके बलवान् चन्द्रमा होने पर पूर्वान्ह अथवा मध्यान्हमें इसका आरंभ करते हैं ३-६ इसमें प्रथम गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये फिर कलश प्रतिष्ठा करनी चाहिये, फिर जब तक ग्रन्थ समाप्त हो तब तक प्रतिदिन श्रीखण्ड अगर कपूर कुंकुम आदि सुगंधित वस्तु कमल चम्पक और सुगन्धित जातिपुष्पोंसे तुलसी बिल्व और आमलेके पत्तोंसे और नये उगे हुए पत्तोंसे धूप दीप और नारियल आदिके फलोंसे ताम्बूल मुखको सुगन्धित करने वाली वस्तु और खण्डे श्वेत चावलोंसे तथा चामर व्यजन और घण्टोंके शब्दोंसे (पूजन करे)। ७-१०। लत्ता आदि दोषसे रहित शुभसंज्ञक वारमें पुराणको अर्पण करके पूजा करे ११ प्रारम्भकी समान विसर्जनमें भी चन्दन अगर कपूर कुंकुम और गन्ध आदिसे पूजा

चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमैर्गन्धकादिभिः ॥ १२ ॥ गीतवादित्रनृत्यैश्च राजन् कार्यो महोत्सवः । ततः पुराणपूजायां यथा दानं तथा शृणु ॥ १३ ॥ अष्टादशशतं दानं पुराणाय समर्पयेत् । अभावे द्वादशशतं पूजा वै जनमेजय ॥ १४ ॥ तदभावेपि राजेन्द्र षट्शतं परिकीर्तितम् । उत्तमं मध्यमं दानमधमं च प्रकीर्तितम् १५ सपत्नीकं ततो व्यासं दुकूलैरंशुकैर्नवैः । पूजयेत् सर्वभावेन स सम्यक् फलमश्नुते ॥ १६ ॥ परिधाप्यानि देयानि कुण्डलानि शुभानि च । मुकुटाद्यैरलंकृत्य केयूरांगदभूषणैः ॥१७। गावस्तु कपिला देयाः सवत्सा गर्भसंयुताः।यानमश्वादिकं राजन् दासीदासं समर्पयेत् ॥ १८ ॥ आसनं पुरुषव्याघ्र धूपदीपादिभाजनम् । शय्यातूलादिकं सर्वं सोपधानं सलड्डुकम् ।१९। स्थालीपीठादिकं राजञ्जलपात्रं तथैव च । अन्नं च बहु दातव्यं लवणं

पूजा करनी चाहिये १२ और हे राजन्।गीत और बाजोंके घोष से महोत्सव कराना चाहिये, अब पुराणपूजाके लिये कैसा दान होना चाहिये उसको सुनो। १३ पुराणके लिये अठारहसौ दान दे और हे जनमेजय !इसके अभावमें द्वादश शतकी पूजा करे१४ हे राजेन्द्र ! उसके अभावमें छः सौसे पूजा करनो लिखा है (इस प्रकार) उत्तम मध्यम और अधम दान कहा है ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त जो दुपट्टे और नवीन वस्त्र देकर सपत्नीक व्यास की पूजा करता है उसको भली प्रकार फल मिलता है ॥१६॥ हे राजेन्द्र ! व्यासासन पर बैठे हुए ब्राह्मणके लिये पहिरनेके वस्त्र, केयूर अङ्गद (बाजूबन्द) आदि आभूषणोंसे अलंकृत करके शुभ कुण्डल, और बछड़ेसहित गर्भिणी कपिला गौ देनी चाहिये और हे राजन्! घोड़ा आदि सवारी और दासीदास देने चाहिये, और हे पुरुषव्याघ्र ! आसन धूप दीप पात्र शय्या रुई भरा तकिया, लड्डू थाली चौकी, जलका पात्र,

जनमेजय ॥२०॥ घृततैलादिकं राजन् यावद्वर्षं समाप्यते । एतत् सर्वं द्विजेन्द्राय व्यासासनगताय च ॥२१॥ मनोभीष्टं वरं लब्ध्वा ततः कुर्यात् प्रदक्षिणाम् । पारणां तेन राजेन्द्र द्विजेन्द्रं रुद्रजापिनम्॥२२॥वस्त्रादिभिरलंकृत्य मुद्रिकाभिस्तथैव च। नवीनं कंबलं शुभ्रं ताम्रपात्रं तथैव च ॥ २३ ॥ द्विजं द्विजं समुद्दिश्य दातव्या दक्षिणा बहु । ततोऽभिषेकसंयुक्तं गुरुं चैव पुरोधसम् ॥ २४ ॥ वस्त्रादिभिरलंकृत्य दक्षिणाभिश्च तोषयेत् । ततोऽन्यान् ब्राह्मणान् सर्वान् दक्षिणाभिः समर्चयेत् ॥ २५ ॥ हवनं च तथा राजन् कर्तव्यं कर्म शान्तये । प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्दशांशेनैव वा पुनः ॥२६॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् । अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ २७ ॥ तन्मयत्वात् पुराणस्य परमस्यास्य तत्त्वतः ।होमाशक्तौ बुधो हेम दद्यात्तत्फलसिद्धये२८

नमक और बहुतसा अन्न घृत और तेल आदि ये सब जब तक वर्ष समाप्त हो तब तक (वाचकको देने चाहियें १७-२१ फिर पारणाके अन्तमें अभीष्ट वर पाकर प्रदक्षिणा करे हे राजेन्द्र! फिर रुद्रका मन्त्र जपने वाले द्विजेन्द्रको वस्त्र आदिसे और मुद्रिका आदिसे अलंकृत करे, फिर प्रत्येक ब्राह्मणके निमित्त नवीन कम्बल, शुभ्र ताम्रपात्र और बहुतसी दक्षिणा देनी चाहिये, फिर अपने पुरोहित गुरुका अभिषेक करके उनको वस्त्र आदि देकर और दक्षिणा देकर संतुष्ट करे, फिर और सब ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा देकर पूजा करे ॥ २२-२५ ॥ फिर हे राजन् ! कर्मकी शांतिके लिये हवन करना चाहिये अथवा प्रति श्लोकके दशांशसे पायस मधु घी और तिलसे मिले हविसे होम करे, अथवा परम सावधान होकर गायत्रीसे हवन करे ॥ २६—२७ ॥ क्योंकि-यह परम पुराण तत्त्वतः गायत्रीमय है, बुद्धिमान् पुरुष होमकी शक्ति न होने पर फलसिद्धिके लिये सुवर्णका दान

नानाछिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिक्यताख्ययोः । दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ २६ ॥ तेन स्यात् सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः । भोजयेन्मिथुनान्येव चतुर्विंशतिरादरात् ॥ ३० ॥ ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान् । तोषयेद्दक्षिणाहोमैर्धान्यै रत्नादिभिस्तथा ॥ ३१ ॥ भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत् समयाचत । वाचकं भारतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ३२ सपत्नीकं च सन्तोष्य वस्त्रालंकरणादिभिः । ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥ ३३ ॥ वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा । दद्यात् सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥३४॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च । तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्य लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ३५ ॥ संपूज्यावाहनाद्यैश्च उपचारैः

देय ॥ २८ ॥ अनेक प्रकारके दोषोंको दूर रखनेके लिये और न्यूनता तथा आधिक्य नामक दोषोंकी शान्तिके लिये (विष्णु) सहस्र नामका पाठ करे ॥२६ ॥ ऐसा करनेसे जिससे अधिक और कोई नहीं है (ऐसा मनोरथ) सफल होजाता है फिर चौवीस जोड़ोंको (स्त्री पुरुषोंको) जिमावे, ॥ ३० ॥ फिर उन श्रेष्ठ-ब्राह्मणोंको गन्ध माला आदिसे अलंकृत करके उनको दक्षिणा होम धान्य और रत्न आदि देकर सन्तुष्ट करे ब्राह्मणोंके भोजन करने पर उनसे याचना करे, हे भरतश्रेष्ठ ! भली प्रकार अलंकृत किये हुए याचकको और उनकी पत्नीको भोजन करा कर और उनको वस्त्र और अलंकार आदिसे सन्तुष्ट करे क्योंकि-ब्राह्मणोंके प्रसन्न होने पर उस श्रोता के देवता प्रसन्न होजाते हैं ॥ ३१-३३ ॥ और वाचकके संतुष्ट होने पर उसके देवता परम प्रसन्न होते हैं श्रोता व्रत पूर्ण होने की सिद्धिके लिये सुवर्णधेनुका दान करे ३४ और शक्ति हो तो तीन पलका सुवर्णका सिंह बना कर और उस पर ललित

सदक्षिणैः । वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय महात्मने ॥ ३६ ॥
आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः । एवं कृतविधानेन
सर्वपापनिवारणे ॥ ३७ ॥ फलदं स्यात् पुराणन्तु सर्वकामार्थ-
सिद्धिदम् । अनेन विधिना राजन् यः पुराणं समापयेत् ॥३८॥
तस्य स्त्री लभते गर्भं मासैकेन च भारत ।अनेन विधिना राजन्
व्यासं यस्तु समर्चयेत् ॥ ३९ ॥ पूजयेद्दानमानाभ्यां तस्य स्त्री
गर्भिणी भवेत् । यन्मया त्रिविधं प्रोक्तं भक्तिपूजादिकं पुनः४०
तत्कृत्वा लभते नारी पुत्रं भास्करतेजसम् । तथा वन्ध्या लभे-
द्गर्भं व्यासस्य वचनं यथा ॥ ४१ ॥ विप्ररत्नापहारी च सोऽन-
पत्यः प्रजायते । तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥४२॥

अक्षरोंमें लिखी हुई पुस्तक रखकर ॥ ३५ ॥ आवाहन आदि उपचारोंसे और दक्षिणाओंसे पूजा करे फिर वस्त्र भूषण और गंधोंसे पूजा कर उसको बुद्धिमान् पुरुष पूजनीय महात्मा आचार्य को देकर भवबन्धनसे मुक्त होजाता है, सब पापोंको निवारण करने वाले ऐसे विधानसे सुनने पर यह सब कामनाकी अर्थ की सिद्धिको देने वाला पुराण सिद्धिप्रद होजाता है, हे राजन्! जो पुरुष इस विधिसे इस पुराणको समाप्त करता है ३७--३८ हे भारत ! उसकी स्त्री एक मासमें गर्भ धारण करती है हे राजन्! जो इस विधिसे व्यासजीकी पूजा करता है और सदा मानसे उनका सत्कार करता है उसकी स्त्री गर्भिणी होजाती है, मैंने जो तीन प्रकारकी भक्ति और पूजा आदि कही है उसको करनेसे स्त्रीके सूर्यकी समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होता है और व्यासजीके वचनानुसार वन्ध्या स्त्रीके गर्भ रह जाता है ॥ ३९–४१ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणके रत्नोंको चुराता है, वह पुरुष निःसन्तान होकर उत्पन्न होता है उसको शुद्धिके लिये महारुद्र आदिका जप करना चाहिये ॥ ४२ ॥ राजा परीक्षितने श्रद्धा और सत्य

अथ पारीक्षितो राजा श्रद्धायुक्तेन चेतसा । भवतासत्ययुक्तेन चैकाग्रमनसा तथा ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा ते निश्चयं कृत्वा दम्भशाठ्य-विवर्जितः । श्रुत्वेमं हरिवंशं वै व्यासं संपूज्य भक्तितः ॥ ४४ ॥ दानं च बहुलं कृत्वा व्यासाशीर्गृह्य भारत । प्रसन्नवदनो भूत्वा रमते रमणीयुतः ॥ ४५ ॥ प्राग्जन्मजनिते पापे क्षीणे वै जनमेजय । ऋतावाद्ये तु सन्धत्ते गर्भं तस्य कुलांगना ॥४६॥ द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थे मासि वै पुनः । पञ्चमे वापि षष्ठे वा सप्तमे वाष्टमेऽपि वा ॥४७॥ नवमे दशमे मासि दोहदं निश्चयं भवेत् । व्यासेनोक्तमिदं पुण्यं वन्ध्यागर्भस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥ पितॄनुद्धरते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान् । हरिवंशं नरः श्रुत्वा सेतिहासं पुरातनम् ॥४९॥ इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥ अपुत्रो

से युक्त प्रकाशवान एकाग्र हृदयसे इस बातको सुन कर दंभ और शठताको त्याग कर हरिवंशको सुननेके अनन्तर व्यासजी की भक्ति पूर्वक पूजाकी ॥४३॥४४॥ हे भारत।फिर वह बहुतसा दान दे व्यासजीके आशीर्वाद को ग्रहण कर जहाँ पर रमणी थी तहाँ प्रसन्नमुख होकर रमण करने लगा ॥ ४५ ॥ (ऐसा ही दूसरोंको भी करना चाहिये) हे जनमेजय ! इस प्रकार पूर्व जन्मके पापके क्षीण होने पर उसकी स्त्री पहिले ऋतुकालमें ही गर्भको धारण करती है ॥ ४६ ॥ नहीं तो दूसरे तीसरे चौथे पाँचवें छठे सातवें आठवें नवमें अथवा दशमें महीने अवश्य ही गर्भ धारण करती है, व्यासजीने यह वंध्या स्त्रीके गर्भ धारण करनेका पुण्यमय लक्षण कहा ॥ ४७-४८ ॥ मनुष्य इस प्राचीन हरिवंशको इतिहास सहित सुन कर अपने दश पहिले और दश अगले पितरोंका उद्धार करता है ॥४९॥ हे नरर्षभ ! मैंने तुमसे सब बात कह दी इसके सुननेसे ही मनुष्य सब पापों

पुत्रमाप्नोति ह्यधनो धनमाप्नुयात् । नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत् फलं प्राप्यते नरैः ॥ ५१ ॥ तत् फलं लभते सर्वं पुराणश्रवणाद्धरेः । ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः । सकृत् पुराणश्रवणात् पूतो भवति नान्यथा ॥ ५२ ॥ इदं मया ते परिकीर्तितं महच्छ्रीकृष्णमात्म्यमपारमद्भुतम् । शृण्वन् पठन्नाशु समाप्तवान् फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥ ५३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणविधौ दानविधानकथनं नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

से मुक्त हो जाता है ॥ ५० ॥ और अपुत्र मनुष्य पुत्र पाता है, निर्धन धन पाता है, मनुष्य नरमेध और अश्वमेध यज्ञोंको करके जिस फलको पाते हैं, वह सब फल हरिके पुराणको सुननेसे मिलता है ब्रह्महत्यारा गोघाती भ्रूणहत्यारा शराबी और गुरुपत्नीगामी पुरुष इस पुराणको एक बार सुननेसे ही पवित्र हो जाता है इसमें अन्यथा नहीं हो सकता अर्थात् कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५१-५२ ॥ यह श्रीकृष्णजीका अपार और अद्भुत बड़ा भारी माहात्म्य कहा, इसको सुन कर अथवा इसके पाठ को समाप्त करने वाला मनुष्य जिस फलको शीघ्रतासे पाता है, (और उपायसे) इस लोकमें उस फलका पाना बड़ा कठिन है ५३ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥



हरिवंशमाहात्म्य समाप्त ।

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

हरिवंश-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥ द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च । यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ २ ॥ जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ॥ ३ ॥ यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति विप्राय

नारायण (नर-जीवसे उत्कृष्ट अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ) को और नरको तथा वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको और व्यासजीको प्रणाम करके जय (जिससे अविद्याको जीता जाता है ऐसे ग्रंथको) पढे ॥ १ ॥ जो पुरुष द्वैपायन ऋषिके ओष्ठ रूपी दोनेसे निकले हुए अद्भुत धर्मकी वृद्धि करनेवाले प्रारब्धके अरिष्टको दूर करनेवाले दुर्वासनानाशक और सुख देनेवाले बचते हुए महाभारतको सुनता है उसको पुष्कर तीर्थके जलमें स्नान करनेसे क्या ? अर्थात् यह पुष्करतीर्थसेभी अधिक फल देने वाला है ॥ २ ॥ जिनके मुखकमलसे निकले हुए वाणीरूप अमृतका जगत् पान करता है, उन सत्यवतीके हृदयको आनन्द देने वाले पराशर ऋषिके पुत्र व्यासजीकी जय रहे ॥ ३ ॥ जो पुरुष वेदके विद्वान् बहुश्रुत ब्राह्मणको सोनेसे मढ़े हुए सींगों वाली सौ गाँएँ देता है और जो पुरुष इसी प्रकार पुण्यमयी

वेदविदुषे च बहुश्रुताय । पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च तद्व-
त्तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥ ४ ॥ शताश्वमेधस्य
यदत्र पुण्यं चतुःसहस्रस्य शतक्रतोश्च । अनन्तपुण्यं हरिवंश-
दानात् प्रकीर्तितं व्यासमहर्षिणा च ॥५॥ यद्वाजपेयेन तु राज-
सूयाद्व दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यत् तल्लभ्यते व्यासवचः प्रमाणं
गीतं च वाल्मीकिमहर्षिणा च ॥६॥ यो हरिवंशं लेखयति यथा
विधिना महातपाः सपदि । स जयति हरिपदकमलं मधुपो हि
यथा रसेन संलुब्धः ॥७॥ पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं महर्षिमक्ष-
य्यविभूतियुक्तम् । नारायणस्यांशजमेकपुत्रं द्वैपायनं वेद महा-

भारतकी कथाको सुनता है इन दोनोंको एकसा फल मिलता
है ।४। शताश्वमेध नाम वाले और चतुःसहस्र नाम वाले (जिसमें
चारसौ अक्षय अन्नप्रद पात्र होते हैं) और शतक्रतु (इन्द्र) के
पदको प्राप्त कराने वाले कर्मका जो फल मिलता है, व्यासजीने
कहा है, कि-वही अनन्त फल हरिवंशका दान करनेसे मिलता
है ॥ ५ ॥ जो फल वाजपेय राजसूय और हस्तिदानसे मिलता
है, वही फल (इसके दानसे) मिलता है, इसमें व्यासजीका
वचन प्रमाण है और महर्षि वाल्मीकिनेभी यही बात कही है १०
जो पुरुष विधिके अनुसार शीघ्रतासे हरिवंशको लिखता है, वह
पुरुष जैसे रसलोभी भौंरा कमल पर पहुँच जाता है, इसी
प्रकार हरिपदकमल पर पहुँच जाता है ॥ ७ ॥ जिनको पिता-
महके आदि (नारायण) कहते हैं (व्यासो नारायणो हरिः)
और जिनसे पितामहके आदि (नारायण) छठे (व्यास परा-
शर, शक्ति, वसिष्ठ, ब्रह्मा, नारायण) कहाते हैं, उन अक्षय
विभूति वाले नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए एक शुक पुत्र वाले
महानिधान (वेद) के अधिष्ठानरूप अक्षय विभूति वाले व्यास
जीकी मैं उपासना करता हूँ (नीलकण्ठ—बहुतसे विद्वान

निधानम् ॥ ८ ॥ आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

"महर्षिः ऋषिर्विप्रः काव्येन" इस श्रुतिके अनुसार महर्षि शब्द से ही विष्णुका ग्रहण करते हैं, यद्वा-"अहं मनुरभवं सूर्यश्च" इस प्रकार वामदेवकी समान प्रत्यगभिन्न (सबमें वर्तमान होनेसे अभिन्न) ब्रह्मका अनुसन्धान करताहुआ अपने आत्माको ही नमस्कार करता है, श्रुतिमें भी कहा है, कि-"मह्यमेव नमो नमः" इस पक्षमें यह अर्थ होगा कि-मैं द्वैपायन व्यासजीको महानिधान ब्रह्म जानता हूँ, इस प्रकार स्वरूपानुवादसे ब्रह्मभाव दिखाया है। अथवा-द्विप नाम गजका है उसके शुण्डादण्ड आदि लक्षण ही अयन-ज्ञापक हैं जिनके ऐसे द्वैपायनकी अर्थात् गजाननकी मैं उपासना करता हूँ । अथवा द्वीपी नाम व्याघ्रका है उसके चर्मका नाम संस्कृतमें द्वैप होता है उसके अयन अर्थात् चिन्ह वाली शक्तिकी मैं उपासना करता हूँ, स्मृतिमें कहा भी है, कि-"द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा"। अथवा-(सात) द्वीपोंमें जिनका अयन (प्रकाशकस्वरूप चिन्ह) है (पाताल आदि में नहीं है) ऐसे द्वैपायन-सूर्यकी मैं उपासना करता हूँ । अथवा द्वैप (गजचर्म) जिनका अयन (ज्ञापक) है ऐसे द्वैपायन महादेवजीकी मैं उपासना करता हूँ, अथवा-द्वीप (श्वेतद्वीप) जिनका अयन (स्थान) है उन द्वैपायन-विष्णुकी मैं उपासना करता हूँ । इन सबके ईश्वर होनेके कारण इनका पितामहसे छठा होना घटता है, यथा-सत्शब्द वाच्य मायाशबल (मायायुक्त) ब्रह्मसे अव्यक्त हुआ, अव्यक्तसे महान् महान्से अहंकार और अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा और पञ्चतन्मात्राओंसे पञ्चमहाभूत और उन से चतुर्मुख ब्रह्माजीका शरीर उत्पन्न हुआ, ऐसे शास्त्रानुकूल सृष्टिक्रमके अनुसार आरोहक्रमसे ये सब पितामहसे छठे सिद्ध होते हैं, महर्षि शब्दसे यहाँ पर सर्वज्ञ अर्थ लेना चाहिये । नारा-

ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ १ ॥ असच्च

यण परब्रह्म हैं उनका जो अंश है वह मायामें पड़ने वाला चित्-प्रतिविम्ब है उससे निर्वृत होनेके कारण मायाशबल नारायणके अंशज और एक हिरण्यगर्भ नामक जिनका पुत्र है ऐसे महा-निधान सर्वकारण महत् अर्थात् परम लयस्थानको मैं उपासना करता हूँ। लिखा भी है, कि-"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्"। इस प्रकार नीलकण्ठने द्वैपायन शब्दके अनेक (अर्थ किये हैं) ॥८॥ नैमिषारण्यमें सर्वशास्त्र विशारद महामुनि धर्मात्मा कुलपति शौनक आद्य पुरुष ईशान पुरुहूत पुरुष्टुत् ऋत एकाक्षर व्यक्ता-व्यक्तस्वरूप सनातन असत् सदसत् विश्व और सदसत्से पर और चर तथा अवरके स्रष्टा पुराणपुरुष परम अव्यय मंगल्य मंगल विष्णु वरेण्य अनघ शुचि इन्द्रियोंके प्रवर्तक चराचरके गुरु हरिको प्रणाम करके सूतजीसे बूझने लगे (नीलकण्ठकृत अर्थ-नैमिषारण्यमें कुलपति(एकादशसहस्राणि योऽन्नदानादिना भरेत्। स वै कुलपतिर्नाम वेद वेदांगपारगः ॥ अर्थात् जो वेद वेदांगों का पारगामी पुरुष ग्यारह सहस्र मनुष्योंका अन्नदानसे पालन करता है वह कुलपति कहलाता) है अर्थात् योगसिद्धिसम्पन्न (इसका प्रमाण देते हैं, कि-) महामुनि ध्याननिष्ठ धर्मात्मा सर्व-शास्त्रविशारद शौनक ऋषि (इससे प्रतीत होता है, कि जिन्होंने यज्ञ किये हैं और जो योगी हैं उनको भी इस पर्वका सुनना उचित है) पृथ्वी बीज अंकुर वृक्ष और फलकी समान १ शुद्धचैतन्य २ मायाशबल ३ सूत्रात्मा ४ विराट और ५ विष्णु स्वरूप पाँच ब्रह्मपुरुषोंको नमस्कार करके सूतके पुत्र सौतिसे प्रश्न बूझने लगे। यहाँ सूत शब्दसे स्मृतिमें कहा हुआ ब्राह्मणीमें क्षत्रियसे उत्पन्न सन्तानका अर्थ न लेना चाहिये, क्योंकि-पुराणोंमें लिखा है। "अग्निकुण्डसमद्भूतः-सूतनिर्मलमानसः" अर्थात् निर्मल मन

सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम् । परावराणां स्रष्टारं पुराणं पर-

वाले सूतजी अग्निकुण्डमेंसे उत्पन्न हुए थे । यहाँ भूस्थानीय शुद्धचैतन्यका नाम आद्य पुरुष रक्खा है उनको प्रणाम करके और दूसरे मायाशबल बीजस्थानीय ईशानको प्रणाम करके श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"मायिनं तु महेश्वरम्" और तीसरे पुरुहूत पुरुष्टुत् अंकुरोपम सूत्रात्माको प्रणाम करके, श्रुतिमें कहा भी है, कि-" स हि पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैर्यज्ञे हूयते स्तूयते च अर्थात् पुरु-बहुतसे यजमान उसका यजन और पूजन करते हैं" यास्कमुनिने भी कहा है, कि-"यदेनमृग्भिः शंसति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति अर्थात् इसकी ऋग्वेदसे प्रशंसा करते हैं, यजुर्वेदसे यजन करते हैं और सामवेदसे स्तुति करते हैं" श्रुतिमें और भी लिखा है, कि-"सूत्रात्मानं प्रकृत्य तद्व यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येतस्यैव सा विसृष्टिः-अर्थात् सूत्रात्माको लक्ष्य करके जो कहा है, कि-इसका यजन कर इसका यजनकर वह इसकी ही विसृष्टि है इस प्रकार उसको सर्वदेवतामय माना है । अब यहाँ शंका होती है,कि-ये तीनों पुरुष क्या भिन्न २ हैं अथवा तीनोंका प्रथमपुरुषमें ही जलाशयमें तरंग और बुद्बुदकी समान इनकी कल्पना है?इसके उत्तरमें मूलमें कहा है,कि-"ऋतं एकाक्षरं ब्रह्म"अर्थात् ब्रह्म ऋत-सत्य-अबाधित है, एक है अर्थात् मायाके सम्पर्कसे रहित होनेसे और अक्षर अर्थात् सूत्रात्मा की समान अकार्य होनेसे जो क्षरता नहीं है, इस लिये त्रिविध परिच्छेदसे शून्य है और जो वस्तु ऐसी है वही व्यक्ताव्यक्त सूत्रेशानरूपी है, अब यह शंका न हो कि-कहीं व्यक्ताव्यक्त उसके परिणाम तो नहीं हैं, इस लिये मूलमें कहा है, कि-वह सनातन है-सर्वदा एक रूप और कूटस्थ है, रज्जुमें दण्डधाराकी समान उसमें व्यक्ताव्यक्तकी उत्पत्ति होजाती है ।

मव्ययम् ॥ २ ॥ मंगल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ३ ॥ नैमिषारण्ये कुल-

अत्र वृत्तकी समान चौथे विराटपुरुषका वर्णन करते हैं कि-जो संत् और असत्से पर है अर्थात् कार्यकारण-सूत्र और ईशान से अन्य शुद्ध ब्रह्म है वही विश्व-विराट् कहलाता है । इसीके और विशेषण कहते हैं, कि-यह असत् है, अर्थात् सत्से विलक्षण है, और सदसत् रूप होनेसे अनिर्वचनीय है, दृश्यमान (दीखने वाला) होनेसे यह सत् है, और श्रुतिमें कहा है,कि-"नेह नानास्ति किञ्चन अर्थात्ब्रह्मज्ञान होनेके अनन्तर यह कुछ नहीं है, इससे यह असत् है इस प्रकार यह अनिर्वचनीय है, क्योंकि-ऐसी (और कोई) वस्तु नहीं है जो परस्पर विरुद्ध सत् और असत्से युक्त हो, विश्वहेतु होनेसे इसी प्रकार सूत्र और ईशान भी अनिर्वचनीय हैं, क्योंकि-कार्य करणकी समसत्ताका नियम नहीं है पहिला पुरुष अनिर्वचनीय नहीं है क्योंकि-उसमें कारणत्व औपचारिक है, कहा भी है, इस द्वैतरूपी इन्द्रजालके उपादान कारण अज्ञानका आश्रय लेकर ब्रह्म कारण कहलाता है । उसको प्रणाम करके अब फलोपम पाँचवे विष्णुका वर्णन करते हैं-कि-परोंके अर्थात् सूत्रात्माओंके और अवरोंके अर्थात् विराजोंके रचयिता,जिसमें बहुतसे बीजरूपी गर्भ भरे हुए होते हैं उस वृत्तस्थ फलसे भी बहुतसे अङ्कुर और तरु होना सम्भव है, इसी प्रकार कार्योपाधिपरिच्छिन्न भी चतुर्भुज आदिसे पर सूत्र आदि का होना सम्भव है ऐसे परावरोंके, स्रष्टा, पुराण-प्राचीन काल में भी नवीन (अर्थात्)फलकी समान उत्पन्न न होने वाले इसीलिये पर अर्थात् अत्यन्त अव्यय अर्थात् अपक्षय शून्य (इससे आकाश आदिकी समान भगवन्मूर्तिका नित्यत्व सिद्ध होता है,स्मृतिमें भी लिखा है,कि-"देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमावि-

पतिः शौनकस्तु महामुनिः । सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४ ॥ शौनक उवाच । सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । भरतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥ ५ ॥ देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ६ अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः । विचित्रा च कथायोगा जन्म चाऽग्यमनुत्तमम् ॥७॥ कथितं भवता पुण्यं पुराणं श्लक्ष्णया गिरा । मनः कर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसंगितम् ॥ ८ ॥ तत्र जन्म कुरूणां वै त्वयोक्तं लौमहर्षणे ।

र्भवति सा यदा । उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥' अर्थात् वह जिस समय लोकहितार्थ प्रकट होती है,तब वह नित्यमूर्ति भी लोकमें उत्पन्न हुई कहलाती है) मङ्गल्य-आनन्द देनेवाले, मङ्गल-आनन्दरूप, विष्णु-व्यापनशील, वरेण्य,मुमुक्षुओंके वरणीय, अनघ-आगन्तुकदोष शून्य, शुचि-स्वभावशुद्ध, हृषीकेश-इन्द्रियोंके प्रवर्तक, चराचरगुरु-चराचरको हितका उपदेश देनेवाले, हरि-सब पापोंको दूरकरनेवालेको प्रणाम करके (सूतजीसे बूझा) ॥ १—४ ॥ शौनकने कहा, कि हे सूतपुत्र ! तुमने भरतवंशी राजाओंका तथा देव दानव गन्धर्व सर्प राक्षस दैत्य सिद्ध तथा गुह्यकोंका बड़ाभारी आख्यान कहा और तुमने उनके पराक्रम, धार्मिक विचार, विचित्र कथाएँ और उनका अग्र्य (गर्भवास आदि क्लेशोंसे रहित) अनुत्तम (वीर्यसम्बंधके विना केवल धर्मकी सामर्थ्यसे अग्नि आदिसे धृष्टद्युम्न आदिका) जन्म भी कहा और उनके अति अद्भुत (व्यासजीके जन्मके समय दिनमें ही अन्धकारकी रचना आदि) कर्म भी कहे ॥ ५—७ ॥आपने पुण्यप्रद पुराणका मधुर वाणीसे वर्णन किया, यह मनको और कर्णोंको सुख देनेवाला आख्यान मुझे अमृतकी समान प्रसन्न कररहा है ॥ ८ ॥ हे लोमहर्षणके पुत्र !

न तु वृष्ण्यन्धकानां च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥९॥ सौतिरुवाच।
जनमेजयेन यत् पृष्टः शिष्यो व्यासस्य धर्मवित्। तत्तेऽहं संप्रव-
क्ष्यामि वृष्णीनां वंशमादितः ॥ १० ॥ श्रुत्वेतिहासं कार्त्स्न्येन
भरतानां स भारतः। जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत् ११
जनमेजय उवाच । महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम्।
कथितं भवता पूर्वं विस्तरेण मया श्रुतम् ॥ १२ ॥ तत्र शूराः
समाख्याता बहवः पुरुषर्षभाः। नामभिः कर्मभिश्चैव वृष्ण्यंधक-
महारथाः ॥१३ ॥ तेषां कर्मावदातानि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम।
तत्र तत्र समासेन विस्तरेणैव मे प्रभो ॥ १४ ॥ न च मे तृप्ति-
रस्तीह कथ्यमाने पुरातने। एकश्चैव गतो राशिर्वृष्णयः पाण्ड-
वास्तथा ॥१५॥ भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान्। कथ-

आपने उसमें कुरुओंके जन्मका तो वर्णन किया, परन्तु वृष्णि और
अन्धकोंका वर्णन नहीं किया, अतः आपको उनका वर्णन करना
चाहिये ॥ ९ ॥ सूतपुत्रने उत्तर दिया, कि-जयमेजयने व्यास
जीके धर्मात्मा शिष्यसे जिस प्रकार बूझा था, (और उन्होंने)
वृष्णियोंके वंशका जिसप्रकार आदिसे वर्णन किया था, उसको
मैं तुमसे कहता हूँ १० भरतवंशी महाबुद्धिमान् जनमेजय भरत-
वंशियोंके पूर्ण इतिहासको सुनकर वैशंपायनजीसे कहनेलगे ११
जनमेजयने कहा, कि-आपके कहेहुए श्रुति (वेद) को बढानेवाले
नाना अर्थवाले महाभारतके आख्यानको मैंने विस्तारसे सुन
लिया ॥ १२ ॥ उनमें वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी शूरवीरों
का नाम और कर्मसे आपने वर्णन किया ॥१३॥ और हे द्विजो-
त्तम ! आपने उनके विशुद्ध कर्मोंका भी यत्र तत्र संक्षेपसे और
विस्तारसे वर्णन किया ॥ १४ ॥ परन्तु इस पुराणको सुनते २
मेरी तृप्ति नहीं होती, हे प्रभो ! वृष्णि और पाण्डव एक कुटुंब
के ही माने जाते हैं ॥ १५ ॥ और आप वंशका वर्णन करनेमें

यस्त्र कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन ॥ १६ ॥ यस्य यस्यान्वये ये ये तांस्तानिच्छामि वेदितुम् । स त्वं सर्वमशेषेण कथयस्व महामुने । तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचिन्त्येमां प्रजापतेः ॥१७॥ सौतिरुवाच । सत्कृत्य परिपृष्टस्तु स महात्मा महातपाः । विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास तां कथाम् ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु राजन् कथां दिव्यां पुण्यां पापप्रमोचनीम् । कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसंमिताम् ॥ १९ ॥ यश्चेमां धारयेद्वापि शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः । स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।

कुशल हैं, क्योंकि-आपने सब प्रत्यक्ष देखा है अतः हे तपोधन! आप वृष्णियोंके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ १६ ॥ हे महामुने ! जिस २ के वंशमें जो २ उत्पन्न हुए हों उन सबका आप मुझसे पूर्णतया वर्णन करिये और विचार करके प्रजापतिसे आरम्भ करके उनकी सृष्टिका वर्णन करिये ॥ १७ ॥ सूतपुत्रने कहा, कि-जब उन महात्मासे सत्कारपूर्वक यह बात कही तो वह महातपस्वी अनुक्रमसे विस्तारपूर्वक इस कथाको कहने लगे ॥१८॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे राजन् ! मुझसे तुम पापको दूर करने वाली पुण्यमयी सारपूरित अर्थवाली श्रुतिसम्मत दिव्य कथाको सुनो १९ जो पुरुष इसको धारण करता है अर्थात् हृदयमें पुस्तकमें अथवा घरमें स्थापन करता है, अथवा इसको सर्वदा सुनता है, वह अपने वंशको स्थापित करके स्वर्गलोकमें पूजा पाता है ॥ २० ॥ व्यक्त इदं प्रत्यय गोचर और अहं प्रत्ययगोचर (अर्थात् यह और मैं इन वस्तुओं) से भिन्न अव्यक्त अत एव कारण अर्थात् द्रष्टा और दृश्यका बीजरूप जो वह शास्त्रप्रसिद्ध नित्य (आदिअन्तरहित) सत् और असदात्मक मायाशबल (मायायुक्त) ब्रह्म है वह प्रधान पुरुष

प्रधानं पुरुषं तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरम् ॥ २१ ॥ तं वै विद्धि महाराज ब्रह्माणममितौजसम् । स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥ २२ ॥ अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे । भूतभेदाश्च भूतेभ्यः इति सर्गः सनातनः ॥ २३ ॥ विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । कीर्त्यमानं शृणु मया पूर्वेषां कीर्तिवर्धनम् २४ धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुःप्रवर्धनम् । कीर्त्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ॥२५॥ तस्मात् कल्पाय ते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः । आवृष्णिवंशाद्वक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् २६

उभयात्मक है उस कारणसे यह विश्व-स्थूल सूक्ष्म जगत्–उत्पन्न हुआ है, इसी लिये यह विश्व ईश्वरसे अभिन्न है॥ २१ ॥ उस ही अव्यक्त नाम वाले पुरुषको तुम ब्रह्मा अर्थात् महत्तत्त्वाभिमानी जानो, कार्य कारणसे भिन्न नहीं होता है अत एव उस सब भूतोंके स्रष्टाको तुम नारायणके परायण अर्थात् अधीन (तत्स्वरूप समझो)॥ २२ ॥ महान्से अहंकार उत्पन्न हुआ उससे आकाश आदि सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए और उनसे पाँच स्थूल भूत और जरायुज आदि उत्पन्न हुए, यह सनातन प्रवाहरूप-सृष्टि कही ॥ २३ ॥ अब मैं विस्तरावयवको अर्थात् नाना वंशों की शाखा प्रशाखा वाली सृष्टिको बुद्धिके अनुसार शास्त्रानुकूलरीतिसे कहता हूँ, उस पूर्वपुरुषोंकी कीर्त्तिको बढ़ाने वाले चरित्रको तुम सुनो ॥ २४ ॥ स्थिर कीर्त्ति वाले उन सब पुण्य कर्म वालोंका कीर्तन धन देने वाला, यश देने वाला, शत्रुओंको नष्ट करने वाला स्वर्ग देने वाला और आयुको बढ़ाने वाला है२५ पुण्यात्माओंका कीर्तन धन आदि देने वाला है, और तू सुनने और धारण करनेमें समर्थ है अंतः तुझ पवित्र पुरुषसे मैं वृष्णिवंशका वर्णन करनेके लिये चार प्रकारकी अनुत्तम और पवित्र भूतसृष्टिको कहता हूँ ॥ २६ ॥ सूक्ष्म भूतोंकी सृष्टि रचनेके

ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥ २७ ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।२८। हिरण्यवर्णमभवत्तदंडमुदकेशयम् । तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयंभूरिति नः श्रुतम् ॥ २९ ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम् । तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च ॥ ३० ॥ तयोः

अनन्तर नाना प्रकारकी भौतिक प्रजाओंको रचना चाहने वाले ईश्वरने पहिले आप (जल) शब्दसे उपलक्षित जरायुज आदिके उपादानभूत स्थूल पञ्चभूतोंको रचा और उनमें वीर्य अर्थात् अण्डको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यको रक्खा अर्थात् स्वयं ही उसमें प्रविष्ट होगया ॥ २७ ॥ (नारायणके नामके इस निर्वचन को श्रुतिका अवतरण देकर दृढ़ करते हैं, कि–) "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः–अर्थात् आप (जल) नार कहलाते हैं और इनको नरसूनु भी कहते हैं" और वह पहिले इसका अयन (स्थान) था अत एव वह नारायण कहलाते हैं, इस कथनसे "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत् अर्थात् वह सृष्टि रच कर उसमें स्वयं ही प्रविष्ट होगया" इस श्रुतिका भाव दिखाया है २८ वह वीर्य अण्ड होगया अर्थात् हिरण्यवर्ण चित्प्रकाशस्वरूप होगया, तात्पर्य यह है, कि–पूर्वोक्त क्रममें अव्यक्तसे ब्रह्मा नाम वाला महान् उत्पन्न हुआ, उससे अहंकार उत्पन्न हुआ उससे सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए उनसे पुष्पस्थानीय असंज्ञ स्थूल भूत उत्पन्न हुए उनमें रेतःस्थानीय चित्प्रतिबिंब पड़ा, उनका संघात अण्ड हुआ वह उदकेशय हुआ अर्थात् स्त्रीरूप सूक्ष्म भूतोंमें अवस्थित होगया, उस गर्भमें स्वयंभू ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए थे, यह हमने सुना है ॥ २९ ॥ हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) जीने उस अण्डेमें वर्ष भर तक रह कर उस अण्डेके दो टुकड़े कर दिये

शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत् प्रभुः । अप्सु पारिप्लवां पृथिवीं
दिशश्च दशधा दधे ॥ ३१ ॥ तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोध-
मथो रतिम् । ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन् ।३२।
मरीचिमत्र्यंगिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं च महातेजाः
सोऽसृजत् सप्तमानसान् ॥ ३३ ॥ सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे
निश्चयं गताः । नारायणात्मकानां वै सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ३४
ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् । सनत्कुमारं च विभुं
पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ ३५ ॥ सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्रश्च

और उन दोनों टुकड़ोंसे स्वर्ग और पृथ्वीको रच दिया ॥३०॥
प्रभु ब्रह्माजीने उन दोनों टुकड़ोंके बीचमें आकाशको रचा और
जलसे पूरित पृथ्वीको तथा दिशपाधि सूर्यको रच कर प्राची
आदि दश भेदोंसे दिशाओंको रचा (इससे प्रतीत होता है, कि
अण्डके भीतर ही दिशा आदिकी कल्पना है, अण्डके बाहर
नहीं है) ॥ ३१ ॥ फिर तहाँ पर काल मन वाणी काम क्रोध
और विषयप्रीतिको रचा फिर तद्रूप (अण्डाकार) पिण्डसृष्टि
को रचा, फिर उन्होंने प्रजापतियोंको रचनेकी इच्छासे मरीचि
अत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठ इन
सात मानस (पुत्रों) को रचा, ये सात ब्राह्मणजातिका अभि-
मान रखने वाले हैं अर्थात् गृहस्थाश्रममें परायण रहते हैं और
ये नारायणमें ही मनको लगाने वाले सनक सनन्दन सनातन
सनत्कुमार स्कन्द नारायण और रुद्र नाम वाले ब्रह्माजीसे
उत्पन्न हुएअपने सात भाइयोंका अनादर करके पुराण–वेद-
मार्गमें निरत रहते हैं अर्थात् कर्मको ही श्रेष्ठ मानते हैं ॥ ३४ ॥
फिर ब्रह्माजीने अपने रोषसे रुद्रको उत्पन्न किया और पूर्वपुरुषों
के भी पूर्वज विभु सनत्कुमार और सनन्दन आदि सात पुरुषों
को उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ ये सातों और रुद्र प्रजाकी सृष्टि

भारत । स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ॥ ३६ ॥ तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः । क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥ ३७ ॥ विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च । वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह ३८ ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये । साध्यास्तैरयजन् देवानित्येवमनुशुश्रुम ।मुखाद्देवानजनयत् पितॄंश्चेशोपि वक्षसः३९ प्रजनाच्च मनुष्यान् वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् । साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुशुश्रुम ॥ ४० ॥ उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्य-

करने लगे, हे भारत ! स्कन्द और सनातन सृष्टिकी सामर्थ्यरूप तेजको नियममें रख कर सृष्टि करते थे ॥३६॥ उन आठोंमें रुद्रके अतिरिक्त और सातोंके दिव्य (आदित्य आदि) देवता वाले, सात महावंश देवताओंसे युक्त थे उनको क्रिया करनेवाले प्रजावान् कश्यप आदि महर्षियोंने अलंकृत कर दिया ॥ ३७ ॥ (अब दो श्लोकोंसे क्रियावानोंको अग्निहोत्र हवि मन्त्र और देवता आदिकी सृष्टि कहते हैं) फिर विद्युत् अशनि मेघ सीधा इन्द्रधनुष आदि देवताओंको पर्जन्य (ओषधियों) को (यज्ञकी सिद्धि के लिये) रचा (प्रजापते रेतो देवा देवानां रेतो वर्ष वर्षस्य रेत ओषधयः-अर्थात् देवता प्रजापतिका वीर्य है, वर्षा देवताओंका-वीर्य है और ओषधियें वर्षाका वीर्य हैं, देवता और पक्षी ये दोनों आकाशमें विचरण करते हैं, इस समानतासे यहाँ (वयस्) पक्षीशब्दसे देवता अर्थ लिया है) ॥ ३८ ॥ फिर उन्होंने यज्ञ की सिद्धिके लिये ऋक् और सामवेदको प्रकट किया और हमने सुना है, उनसे साध्योंने देवताओंकी पूजाकी थी, फिर उन ईश ने मुखसे देवताओंको और वक्षस्थलसे पितरोंको उत्पन्न किया३९ उपस्थेन्द्रियसे मनुष्योंको और पश्चाद्भागसे असुरोंको रचा और हमने सुना है, कि फिर साध्य (प्राचीन) देवताओंको

स्तस्य जज्ञिरे। आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥४१॥
सृजमानाः प्रजा नैव विवर्धन्ते यदा तदा। द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो
देहमर्धेन पुरुषोभवत् ॥ ४२ ॥ अर्धेन नारी तस्यां स ससृजे
विविधाः प्रजाः ।दिवं च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठतः४३
विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट्। पुरुषं तं मनुं विद्धि
तद्वै मन्वन्तरं स्मृतम् ॥४४॥ द्वितीयमापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते।
स वैराजः प्रजा सर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः । नारायणविसर्गस्य

उत्पन्न किया ॥ ४० ॥ फिर उस (आपव-वसिष्ठ प्रजापति) के प्रजाकी सृष्टि करते समय अङ्गोंसे छोटे बड़े प्राणी उत्पन्न हुए ॥ ४१ ॥ परन्तु सृष्टि करने पर भी उनकी प्रजा की जब वृद्धि नहीं हुई तब वह अपने शरीरके दो भाग करके आधे भागसे पुरुष होगए, ॥ ४२ ॥ और आधेसे (शतरूपा नाम वाली) नारी होगए उन्होंने उसमें (शतरूपाके गो वड़वा आदि के रूपको धारण करने पर अपने आप उस २ जातिके बैल घोड़े आदिके रूपको धारण करके) नानाप्रकारकी (मैथुनी) सृष्टिको रचा,यह सब सृष्टि उन्होंने अपने तेजसे स्वर्ग और पृथ्वी में व्याप्त होकर रची थी ॥ ४३ ॥ विष्णुने (हिरण्यगर्भके द्वारा) विराज (आपवाख्यको) रचा था और उस विराट्ने पुरुषको रचा था उस पुरुषको तुम मनु समझो, वही सर्ग मन्वन्तर कहलाता है ४४ अब मन्वन्तर पदकी व्याख्या करते हैं, हिरण्यगर्भके व्यवधानवाला सर्ग आपव कहलाता है अतः वह विष्णु का पौत्र कहलाता है वह अयोनिज प्रजा प्रथम सर्ग है, उसने ही मनुके द्वारा योनिजप्रजारूपी दूसरी सृष्टिको रचा; इस कारण मनु नामक आपव (स्त्री नाम वाला) जो दूसरा अन्तर पड़ा इससे उस सर्गका नाम मन्वन्तर है विष्णुने विराटको रचा और विराटने पुरुषकी रचनाकी, यह सब नारायणकी सृष्टि कही,

प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥४५॥ आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजा-
वांञ्छ्रुतवांस्तथा । आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ४६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
आदिसर्गकथने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच । स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजा-
पतिः । लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥ १ ॥ आप-
वस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः । धर्मेणैव महाराज शत-
रूपा व्यजायत ॥ २ ॥ सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्च-
रम् । भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥ स वै
स्वायंभुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते । तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तर-
मिहोच्यते ॥ ४ ॥ वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजा-

इसमेंकी सब प्रजा अयोनिज है ॥४५॥ इस आदि सर्गको जान
कर पुरुष आयुष्मान् कीर्त्तिमान् धनवान् प्रजावान् और शास्त्र
सम्पन्न होकर मन चाही गति पाता है ४६ प्रथम अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि—इसप्रकार (अयोनिज) प्रजाकी
सृष्टि होनेके अनन्तर आपव नामक प्रजापतिने शतरूपा नाम
वाली अयोनिजा स्त्रीको (पत्नीरूपसे) प्राप्त किया ॥ १ ॥
आपवके महत्त्वयुक्त योगज पुण्यसे मनु और शतरूपा स्वर्गमें
व्याप्त होगए और शतरूपा (अनेक-रूप धारण करने वाली)
होगई (यह सामर्थ्य भी आपवकी ही थी क्योंकि—आपव ही
अपने आधे शरीरसे नारी बन गए थे) ॥२॥ वह शतरूपा एक
अयुत वर्षों तक परम दुष्कर तप करनेके अनन्तर प्रदीप्त तप
वाले अपने पति पुरुषके पास गई ॥३॥ हे तात ! उन पुरुषको
स्वायंभुव मनु कहते हैं और उनके इकहत्तर चौकड़ी युगोंको
मन्वन्तर कहते हैं ॥ ४ ॥ वैराज पुरुषसे शतरूपाने वीर नामक
पुत्रको उत्पन्न किया और वीरसे काम्याने प्रियव्रत और उत्तान-

यत । प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ॥ ५ ॥
काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः । काम्या पुत्रास्तु
चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः । प्रियव्रतं समासाद्य पतिं सा
सुषुवे सुतान् ॥ ६ ॥ उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताऽजनयत् सुतान् ॥ ७ ॥ धर्मस्य कन्या
सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता । उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य
जननी शुभा ॥८॥ ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम् ।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥ ९ ॥ ध्रुवो वर्षसह-
स्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत । तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुम-
हद्यशः ॥ १० ॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमप्रतिमं भुवि ।

पाद नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया (वायुपुराणोक्त वसिष्ठकी पुत्री वीरकी पत्नी और उदारबुद्धि प्रियव्रतकी माता काम्या और है और प्रियव्रतकी भार्या कर्दमकी पुत्री काम्या और है और उसने जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया था उनको कहते हैं, कि-) ॥५॥ प्रजापति कर्दमकी पुत्रीका काम्या नाम था हे महा-भुज ! उस काम्याके सम्राट् विराट् कुक्षि और प्रभु नामक चार पुत्र थे उसने प्रियव्रत पतिको पाकर इन पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥ ६ ॥ प्रजापति अत्रिने उत्तानपादको पुत्ररूपसे ग्रहण कर (गोदले) लिया और उत्तानपादसे सूनृताने चार पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ यह सूनृता नामसे प्रसिद्ध सुश्रोणी स्त्री धर्मकी कन्या थी और धर्मने इसको अश्वमेध यज्ञ करके उत्पन्न किया था और यह शुभा ध्रुवकी माता थी ॥८॥ प्रजापति उत्तानपाद ने सूनृतामें शान्तस्वरूप ध्रुव कीर्तिमान् शिव और अयस्पति नामक (चार) पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ हे भरतवंशी राजन ! ध्रुवने विष्णुकी प्रार्थना करते हुए तपके तीन सहस्र दिव्य वर्ष विता दिये थे ॥ १० ॥ तब प्रजा (ब्रह्मा आदि)

अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ ११ ॥ तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य सः। देवासुराणामाचार्यः श्लोकं माशुशना जगौ ॥ १२ ॥ अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम्। यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ १३ ॥ तस्माच्छ्लिष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत। श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥१४॥ रिपुं रिपुञ्जयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥ १५ ॥ अजीजनत् पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम्। प्रजापतेरात्म-

के पति ब्रह्मा (विष्णु) ने प्रसन्न होकर ध्रुवको सप्तर्षियोंके ऊपर अप्रतिम और अचल स्थान दिया था ॥११॥ उसकी इस बड़ी भारी ऋद्धि और महिमाको देखकर देवता और असुरोंके आचार्य शुक्राचार्यने इस श्लोकको गाया था (यहाँ पर शुक्रको जो देवताओंका आचार्य बताया है वह कचको लक्ष्य करके कहा है अथवा मैत्रायणिकी निम्नलिखित श्रुतिको ध्यानमें रखकर यह बात कही है, यथा—"बृहस्पतिर्हि शुक्रो भूत्वेन्द्रस्याभयायासुरेभ्यः क्षयायेमामविद्यामसृजत्—अर्थात् बृहस्पतिने शुक्ररूपसे उत्पन्न होकर इन्द्रके अभयके लिये और असुरोंके क्षयके लिये अविद्याको रचा था") ॥ १२ ॥ कि—अहो ! इसके तपका कैसा प्रभाव है, इसके श्रुत और बलको धन्य है, कि—जो सप्तर्षि भी इसको अपने ऊपर स्थापित कर रहे हैं॥ १३ ॥ उस ध्रुवसे शंभु नामवाली स्त्रीमें श्लिष्टि और भव्य नाम वाले पुत्रोंको उत्पन्न किया, श्लिष्टिसे सुच्छाया नाम वाली स्त्रीने रिपु रिपुञ्जय पुण्य वृकल और वृकतेजा नाम वाले पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया था, बृहती नाम वाली स्त्रीने रिपुसे पूर्ण तेज वाले चाक्षुष नामक पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ १४–१५ ॥ और वीरणकी पुत्री पुष्करिणीमें चाक्षुषने मनुको उत्पन्न किया

जायामरण्यस्य महात्मनः ॥ १६ ॥ मनोरजायंत दश नड्वलायां महौजसः । कन्यायामभवच्छ्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः ॥ १७ ॥ ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः । अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८॥ अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः । ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् । अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमंगिरसं गयम् ॥ १६ ॥ अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत । अपचारात्तु वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ॥ २० ॥ प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् । वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिः पृथुः ॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा ऋषयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः । करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥ २२ ॥ स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव । पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥ २३ ॥ राजसूयाभिषि-

था, और हे श्रेष्ठ ! अरण्य नामक, महात्मा प्रजापतिकी पुत्री नड्वलामें वैराज प्रजापति मनुके महापराक्रमी दश पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १६-१७ ॥ ऊरु पुरु शतद्युम्न तपस्वी सत्यवान् कवि अग्निष्टुत् अतिरात्र और सुद्युम्न ये नौ और दशवाँ अभिमन्यु ये अनड्वलाके पुत्र कहे हैं अग्निकन्याने ऊरुसे महाकान्तिवान् अङ्ग सुमनस ख्याति क्रतु अङ्गिरा और गय नामक छः पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥१८-१६॥ अङ्गसे (मृत्युकी पुत्री) सुनीथाने वेन नामक एक ही सन्तानको उत्पन्न किया था, देवद्रोह करनेसे वेन पर (मुनियोंने) बड़ा कोप किया था ॥ २० ॥ ऋषि सन्तानके लिये वेनके दक्षिण हाथको मथने लगे, मुनियों के हाथ मथने पर उसमेंसे पृथु (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ २१ उसको देखकर ऋषियोंने कहा, कि-यह सब प्रजाओंको प्रसन्न करेगा और यह महातेजस्वी महायशको पावेगा ॥ २२ ॥ वह क्षत्रपूर्वज (क्षत्रियवंशोत्पन्न) पृथु धनुष कवच और खड्गको

क्तानामाद्यः स वसुधाधिपः। तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ २४ ॥ तेनेयं गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत। प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह ॥ २५ ॥ पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः। सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥ २६ ॥ तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा। प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ॥ २७ ॥ पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालितौ। शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत ॥ २८ ॥ हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्। प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥ २९ ॥ प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः। हविर्धानान्महाराज येन संव-

धारण करके अपने तेजसे (शत्रुओंको) भस्मसा करता हुआ इस पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥२३॥ वह पृथ्वीपति राजसूयमें अभिषिक्त होने वाले नृपोंमें प्रथम था और उसको निमित्त करके निपुण सूत और मागध उत्पन्न हुए (पृथुके यज्ञमें अग्नि सें सूत और मागध उत्पन्न हुए थे) ॥ २४ ॥ हे भरतवंशी राजन्! प्रजाओंको तृप्ति देनेकी आकांक्षा वाले पृथुने पृथिवी से सस्यरूपी दूधको दुहा, उसने देवता ऋषि पितर दानव गंधर्व अप्सरा सर्प यक्ष लता और पर्वतोंको साथमें लेकर पृथिवीको दुहा था ॥ २५-२६ ॥ और पृथिवीने उनके उचित पात्रोंमें दुहने पर उन सबके योग्य उनकी इच्छानुसार दूध (उनके योग्य अन्न) दिया था, इससे उन्होंने अपने प्राणोंको धारण किया था ॥ २७ ॥ राजा पृथुके अन्तर्धि और पालित नामक दो धर्मज्ञ पुत्र उत्पन्न हुए थे अन्तर्धिसे शिखण्डिनीने हविर्धान नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ अग्निपुत्री धिषणाने हविर्धानसे प्राचीनबर्हि शुक्ल गय कृष्ण व्रज और अजिन नामक छः पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ भगवान् प्राचीनबर्हि अपने

र्धिताः प्रजाः ॥ ३० ॥ प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमे-
जय । प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणः ॥ ३१ ॥ समुद्र-
तनयायान्तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः । महतस्तपसः पारे सवर्णायां
महीपतिः ॥ ३२ ॥ सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ३३ ॥ अपृथग्धर्मचर-
णास्तेऽतप्यंत महत्तपः । दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ३४
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतस्सु महीरुहाः । अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभू-
वाथ प्रजाक्षयः ॥३५॥ नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद् द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥३६॥ तदुपश्रुत्य तपसा
युक्ताः सर्वे प्रचेतसः । मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ३७

पिता हविर्धानसे भी बड़े भारी प्रजापति हुए थे, हे महाराज ! उन्होंने प्रजाओंको बढ़ाया था ॥ ३० ॥ हे जनमेजय ! उसके (समयसे) कुशा पृथ्वीमें पूर्वकी ओर अग्रभाग करके रक्खे जाते हैं, सब पृथिवीमें ऐसा ही होता है अत एव वह भगवान् प्राचीनबर्हि कहलाते हैं ॥३१॥ उन महीपति प्रभुने बड़ाभारी तप करनेके अनन्तर समुद्रकी पुत्री सवर्णासे विवाह किया था३२ समुद्रकी पुत्री सवर्णाने प्राचीनबर्हिसे दश पुत्रोंको उत्पन्न किया था, उन सबका प्रचेता नाम था और वे सब धनुर्वेदके पारगामी थे ॥ ३३ ॥ उन समुद्रके जलमें शयन करने वालोंने एकसी रीतिके धर्मका और शीलका पालन करते हुए दश सहस्र वर्ष तक घोर तप किया था ॥ ३४ ॥ जिस समय प्रचेता तप कर रहे थे उस समय प्रजाकी कोई रक्षा नहीं करता था (यह देख कर) वृक्षोंने (आकाशको) घेर लिया, तब प्रजाका क्षय होने लगा३५ उस समय आकाश वृक्षोंसे छा रहा था, इस लिये पवन चल नहीं सका इस कारण दश सहस्र वर्ष तक प्रजा चेष्टा न कर सकी ॥ ३६ ॥ तब प्रचेताओंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे इस बातको

उन्मूलानथ तान् कृत्वा वृक्षान् वायुरशोषयत् । तानग्निरदहद्
घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥ ३८ ॥ द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छि-
ष्टेषु शाखिषु । उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ३६
कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः । वृक्षशून्या कृता पृथ्वी
शाम्येतामग्निमारुतौ ॥ ४० ॥ रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वर-
वर्णिनी । भविष्यं जानता तत्त्वं धृता गर्भेण वै मया ॥ ४१ ॥
मारिषा नाम कन्येयं वृक्षाणामिति निर्मिता । भार्या वोऽस्तु महा-

---

जान कर क्रोधमें भर कर अपने मुखसे वायु और अग्निको रच कर वाहर निकाला ॥ ३७ ॥ तव वायुने उन वृक्षोंको उखाड़ कर फेंक दिया और उनको सुखाडाला फिर अग्निने प्रचण्ड होकर उन वृक्षोंको जलाना आरम्भ कर दिया, इस प्रकार वृक्षों का क्षय होने लगा ॥ ३८ ॥ इस वृक्षक्षयको देख कर जब थोड़े से वृक्ष रह गए थे उस समय वृक्षोंके राजा सोमने प्रजापति प्रचेताओंके पास जा कर कहा कि—॥ ३६ ॥ हे प्राचीनबर्हिके समर्थ प्रचेताओं ! तुम अपने कोपको रोको, पृथिवी वृक्षसे शून्य (सी) होगई है, अत एव तुम अग्नि और पवनको शान्त करो ४० यह वरवर्णिनी वृक्षोंकी कन्या रत्नस्वरूप है, मैंने भविष्यके तत्त्वको जान कर इसको अपने गर्भमें स्थापित किया था (वायुने वृक्षोंका शोषण करते समय उनका जलीय अंश अपने कारण सूर्यमें डाल दिया था और पार्थिव सारांश जलमय सोममें डाल दिया था इस प्रकार कन्यारूप वृक्षमय वीर्य सोमके गर्भमें था, यह ठीक ही है । और 'वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति'' वृष्टि वर्ष कर चन्द्रमामें प्रवेश कर जाती है इस श्रुतिसे भी वृष्टिका औषधसार-रूपसे चन्द्रमामें प्रवेश करना उचित ही है, इस लिये चन्द्रमाका यह कहना ठीक ही है, कि-मैंने वृक्षोंकी इस कन्याको अपने गर्भ में धारणकर लिया था) ॥ ४१ ॥ वृक्षों (के वीर्य) की बनी

भागा सोमवंशविवर्धिनी ॥४२॥ युष्माकं तेजसोऽर्धेन मम चार्धेन तेजसा । अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४३ ॥ य इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै । अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजां संवर्धयिष्यति ॥४४॥ ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसा । संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ॥ ४५ ॥ मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः । दशभ्यस्तु प्रचेताभ्यो मारिषायां प्रजापतिः । दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ॥ ४६ ॥ पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्धनान् । अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः । स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत् स्त्रियः ॥४७॥ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।शिष्टाः सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः॥४८

हुई यह मारिषा नाम वाली कन्या तुम्हारी पत्नी बने और हे महाभागों ! यह सोमके वंशको बढ़ावे ॥ ४२ ॥ मेरे तपके आधे भागसे और तुम्हारे तपके आधे भागसे इसमें दक्ष प्रजापति नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ४३ ॥ वह तुम्हारे तपसे उत्पन्न हुई अग्निसे बहुतसी भस्म हुई (वृक्षोंकी तथा मनुष्य आदिकी) प्रजाको अग्निकी समान तेजस्वी बन कर फिर बढ़ावेगा ॥ ४४ ॥ तब सोमके कहनेसे प्रचेताओंने वृक्षों पर अपने कोपको शांत करके विवाह विधिसे मारिषाको पत्नीरूपसे स्वीकार किया ॥४५॥ हे भारत ! तब उन्होंने अपने मनसे मारिषामें गर्भ स्थापन किया तब सोमके तपके आधे भागसे और दश प्रचेताओं (के तपके आधे भाग) से मारिषामें महातेजस्वी प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए॥४६॥उन्होंने चर और अचर तथा दो पैर और चार पैर वाले सोमके वंशको बढ़ाने वाले पुत्रोंको उत्पन्न किया और फिर उन्होंने अपने मनसे ही स्त्रियोंको भी रचा ४७ उनमेंसे उन्होंने दश धर्मको और तेरह कश्यपको देदीं बाकी

तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥ ४९ ॥ ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसंभवाः । संकल्पाद्दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ५० जनमेजय उवाच। देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । संभवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥ ५१ ॥ अंगुष्ठाद्ब्रह्मणो जातो दक्षः प्रोक्तस्त्वयाऽनघ । वामांगुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥ ५२ ॥ कथं प्राचेतसत्वं सः पुनर्लेभे महातपाः । एतन्मे संशयं विप्र सम्यगाख्यातुमर्हसि । दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच । उत्पत्तिश्च

नक्षत्र नाम वाली कन्याएँ राजा सोमके लिये देदी । ४८ । उनमें देवता पक्षी नाग गौ दैत्य दानव गन्धर्व और अप्सरा तथा दूसरी जातियें उत्पन्न हुईं । ४९ । हे राजेन्द्र ! उस दिनके अनन्तर मैथुनी प्रजा उत्पन्न होने लगी, इससे पहिले प्राणियोंकी सृष्टि मानसिक संकल्प दर्शन और स्पर्शनसे होती थी (दश प्रचेताओंके एक औरस पुत्र कैसे होसकता है ? इस शंकाका इसमें समाधान किया है,क्योंकि-संकल्पके एक रूप होनेसे सबका एक औरस दक्ष पुत्रहोना युक्त है) ॥ ५० ॥ जनमेजयने कहा, कि आपने पहिले देव दानव गन्धर्व सर्प राक्षस और महात्मा दक्षकी उत्पत्ति कही ५१ हे अनघ ! आपने कहा था कि-ब्रह्माजीके (दाहिने) अँगूठेसे दक्ष उत्पन्न हुए थे और उनके बायें अँगूठेसे उनकी पत्नी उत्पन्न हुई थी (अर्थात् एकसे उत्पन्न हुए स्त्री पुरुषोंमें दाम्पत्य सम्बन्ध कैसे हुआ यह प्रथम शंका है) ५२ (दक्ष ब्रह्माजीके पुत्र थे) तो वह महातपा प्रचेताओंके पुत्र किस प्रकार हुए (यह दूसरी शंका है) हे विप्र ! मेरे इस सन्देहको आप भलीप्रकार दूर करिये और मेरे इस सन्देहको भी आप दूर करिये कि-दक्ष तो सोमके धेवते थे, फिर वे उनके

निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव । ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जनाः ॥ ५४ ॥ युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृप। पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ५५ ॥ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीज्जनाधिप । तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५६ ॥ इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचरम् । प्रजावानापदुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि प्रजासर्गे
दक्षोत्पत्तिकथने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जनमेजय उवाच । देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।

श्वसुर कैसे बन गए (यह तीसरी शंका है) ५३ वैशम्पायनने कहा, कि-हे पार्थिव ! पशु आदि भूतोंमें उत्पत्ति नित्य है अर्थात् स्वाभाविकी है अर्थात् सापिण्डय आदिके नियमके विना प्रजोत्पादन स्वाभाविक रीतिसे होता है, और मनुष्योंमें इस बातका निरोध नित्य है, अर्थात् तहाँ पर "असपिण्डामुद्वहेत्-असपिण्डा स्त्रीसे विवाह करे" यह नियम नित्य है । इस बातको जान कर ऋषि और विद्वान् यहाँ (देवताओंके विषयमें) मोहमें नहीं पड़ते हैं ५४. और यह दक्ष आदि राजे प्रत्येक युगमें होते हैं और फिर लीन होजाते हैं,इस लिये विद्वान् मोहमें नहीं पड़ते हैं (अर्थात् दक्ष प्रचेताओंके पुत्र दूसरे युगमें हुए हैं और ब्रह्माजीके पुत्र दूसरे युगमें हुए हैं) ५५ और हे जनाधिप ! इनमें पहिले ज्येष्ठता और कनिष्ठताका विचार नहीं था, इनके छोटे और बड़े होनेमें तप और प्रभाव (ऐश्वर्य ही) कारण माना जाता था ५६ जो पुरुष दक्षकी इस चर और अचर उत्पत्तिको जानता है वह सन्तानवान् होता है और आयु बीतने पर स्वर्गलोकमें पूजा पाता है ॥ ५७ ॥ द्वितीय अध्याय समाप्त । २ । ❀

जनमेजयने कहा,कि हे वैशम्पायन! आप मुझसे देव दानव

उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा । यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महीपते ॥ २ ॥ मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत् प्रभुः । ऋषीन् देवान् सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान् । यक्षभूतपिशाचांश्च वयः पशुसरीसृपान् ॥ ३ ॥ यदास्य तास्तु मानस्यो न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः । अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥ ४ ॥ ततः सञ्चिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः । स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥५॥ असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः । सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ॥ ६ ॥ अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पञ्च वीर्यवान् । असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥ ७ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् संविवर्द्धयिषून प्रजाः । देवर्षिः प्रिय-

गन्धर्व सर्प और राक्षसोंकी इस उत्पत्तिको विस्तारसे कहिये १ वैशम्पायनने कहा, कि-हे राजन् ! पहिले स्वयंभू ब्रह्माजीके दक्षको प्रजाको रच ऐसी आज्ञा देने पर दक्षने जिस प्रकार भूतोंको रचा था उसको आप सुनिये २ प्रभु दक्षने पहिले ऋषि देवता असुर गन्धर्व राक्षस यक्ष भूत पिशाच पशु पक्षी सर्पोंकी मानसी सृष्टि रची ३ परन्तु बुद्धिमान् भगवान् महादेजीके अपध्यान(यह न बढ़ें) करनेसे जब दक्षकी मानसी प्रजा न बढ़ी (पूर्वकल्पके दक्षके वैर के कारण महादेवजीने ऐसा किया था) ४ तब प्रजापतिने प्रजाको उत्पन्न करनेके लिये फिर विचार किया फिर मैथुनधर्मसे नाना-प्रकारकी प्रजाको रचनेकी इच्छा वाले प्रजापतिने प्रजापति वीरण की तप करने वाली महत्त्वमयी लोकधारिणी पुत्री असिक्नीके साथ विवाह किया ५-६ तब दक्षप्रजापतिने वीरणकी पुत्री असिक्नीमें पाँच सहस्र वीर्यवान् पुत्रोंको उत्पन्न किया ७ (ज्ञानाधिकारियोंसे) प्रिय सम्वाद करने वाले देवर्षि नारदजी उन महाभाग्यवानोंको

सम्वादो नारदः प्राब्रवीदिदम् । नाशाय वचनं तेषां शापायैवा-
त्मनस्तथा ॥८॥ यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत् । दक्षस्य
वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥ ९ ॥ पूर्वं स हि समुत्पन्नो
नारदः परमेष्ठिना । असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ।
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥ १० ॥ तेन दक्षस्य
पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः । निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना
च न संशयः ॥११॥ तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ।
महर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ॥१२॥ ततोऽभिसन्धि
चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना । कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवे-
दिति ॥ १३ ॥ ततो दक्षस्तु तां प्रादात् कन्यां वै परमेष्ठिने ।
स तस्यां नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषिः॥१४॥जनमेजय उवाच ।

प्रजा बढ़ानेकी इच्छा करते देख कर उनका नाश करनके लिये और अपने आप शाप पानेके लिये उनसे यह बात कहने लगे ॥८॥ ब्रह्माजीने जिस श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया था दक्षके शापके भयसे कश्यपमुनिने उन नारदको दक्षकी (स्त्रीकी बहिन) पुत्री में फिर उत्पन्न किया था ॥ ९ ॥ पहिले यह नारद ऋषि परमेष्ठी प्रजापतिसे उत्पन्न हुए थे,तदनन्तर देवर्षियोंमें श्रेष्ठ कश्यप ने वीरणकी पुत्री असिक्नीमें पितामहकी समान मुनिश्रेष्ठ नारद जीको फिर उत्पन्न (होनेके लिये प्रेरणा की थी) किया था१० उन्होंने दक्षके हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध पुत्रोंको शास्त्रीयमार्गसे देहा-भिमानसे च्युत करके नष्ट कर डाला था, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ तब अमित पराक्रमी तथा नारदजीका नाश करने को उद्यत होगए, तब ब्रह्माजीने महर्षियोंको मध्यस्थ बनाकर उनसे याचना की थी ॥ १२ ॥ तब उन्होंने विचार किया और दक्षने कहा कि तुम्हारा पुत्र मेरी कन्यामें उत्पन्न हो ॥ १३ ॥ तब दक्षने अपनी कन्या परमेष्ठी (ब्रह्माजी) को देदी, तब

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा।प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतु-
मिच्छामि तत्त्वतः ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच । दक्षस्य पुत्रा
हर्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः । समागता महावीर्या नारदस्तानु-
वाच ह ॥१६॥ बालिशा बत यूयं वे नास्या जानीथ वै भुवः ।
प्रमाणं स्रष्टुकामाः स्थ प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ।अन्तरूर्ध्वमधश्चैव
कथं सृजथ वै प्रजाः ॥ १७ ॥ ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः
सर्वतोदिशम् । प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गताः प्राचेतसात्मजाः १८
वायोरनशनं प्राप्य गतास्ते वै पराभवम् । अद्यापि न निवर्तन्ते
समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ १९ ॥ हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः

नारदजी दक्षके शापके भयसे उसमें उत्पन्न हुए थे ॥ १४ ॥
जनमेजयने कहा,कि-हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षके पुत्रोंको महर्षि
नारदने किसप्रकार नष्ट किया था, इसको मैं स्पष्टरूपसे सुनना
चाहता हूँ ॥ १५ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब दक्षके
महावीर्यवान् हर्यश्व नामक पुत्र प्रजाको बढानेकी इच्छासे आये
तब नारदजीने उनसे कहा कि-॥ १६ ॥ ।हे प्रचेताके पुत्रों !
तुम प्रजाको रचना तो चाहते हो,परन्तु हे बालिशों ! तुम पृथ्वी
के प्रमाणको तो जानते ही नहीं हो अर्थात् तुम प्रपञ्चके साधक
चिदात्माको वह ऊपर नीचे अथवा भीतर सर्वत्र यह नहीं जानते
अतः तुम्हें प्रजाकी सृष्टि करनेका अधिकार नहीं है ॥ १७ ॥
तब वे प्रचेताके पुत्र सब दिशाओंकी ओर (अलग२)मुख करके
(अन्योन्य निरपेक्ष होकर)आत्मदर्शन करनेके लिये चलेगए १८
और सूत्रात्मा वायुको समाधिके बलसे जीतकर अशन आदिसे
अतीत शुद्ध ब्रह्मको प्राप्त होकर पराभव (आत्यन्तिक कैवल्य)
प्राप्त होगए और समुद्रकी ओर जाने वाली नदियोंकी समान
अभी तक पीछेको नहीं लौटे हैं ॥ १९ ॥ प्रचेताके पुत्र प्रभु
दक्ष प्रजापतिने हर्यश्वोंके नष्ट होने पर वीरणकी पुत्रीमें सहस्र

पुनः । वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः ॥ २० ॥ विव-
र्द्धयिषवस्ते तु शवलाश्वाः प्रजास्तदा । पूर्वोक्तं वचनं तात नार-
देनैव नोदिताः ॥ २१ ॥ अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महा-
मुनिः । भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ॥ २२ ॥
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः।एकाग्राः स्वस्थ-
मनसा यथावदनुपूर्वशः ॥ २३ ॥ तेपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः
सर्वतो दिशम् । अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२४॥
नष्टेषु शवलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽवदद्वचः । नारदं नाशमेहीति
गर्भवासं वसेति च ॥ २५ ॥ तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वे-
षणे नृप । प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥ २६ ॥

पुत्रोंको फिर उत्पन्न किया ॥ २० ॥ जब वे दक्षके पुत्र शव-
लाश्व प्रजाकी वृद्धि करना चाहने लगे, तब नारदजीने पूर्वोक्त
वचन कह कर उनको भी जानेके लिये उकसाया ॥ २१ ॥
तब उन्होंने कहा, कि-महामुनि नारदजीने ठीक ही कहा है और
अपने भाइयोंके मार्गको जाननेके लिये हमें भी अवश्य प्रयत्न
करना चाहिये ॥ २२ ॥ हम पृथिवीके परिमाणको जानकर
अर्थात् जिससे प्रपञ्च होता है उस चिदात्माके ऊर्ध्व अधः और
अन्तर्यामीपनको जानकर एकाग्र और स्वस्थ मन वाले होकर
ठीक २ रीतिसे सुखपूर्वक प्रजाको रचेंगे ॥२३॥ (यह विचार
कर) वे भी उसी मार्गसे चारों दिशाओंकी ओर मुख करके
चले गए और समुद्रगामिनी नदियोंकी समान अभी तक नहीं
लौटे हैं ॥ २४ ॥ शवलाश्वोंके नष्ट होजाने पर दक्ष प्रजापतिने
क्रोधमें भर नारदजीसे कहा, कि-तुम नष्ट होजाओ और गर्भमें
वास करो ॥ २५ ॥ हे नृप ! उस दिनसे जो भाई भाईको
ढूँढनेके लिये जाता है वह नष्ट होजाता है अतः विद्वानोंको यह
न करना चाहिये ॥ २६ ॥ हमने सुना है, कि-अपने उन पुत्रों

तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः । षष्टिं भूयोऽसृजत्कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ २७ ॥ तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थे कश्यपः प्रभुः।सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः२८ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशति सोमाय चतस्रोरिष्टनेमिने ॥२९॥ द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा । द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥३०॥ अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती । संकल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भारत । धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु३१ विश्वे देवाश्च विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत । मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ३२ भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्त्तायाः मुहूर्त्तजाः ॥३३॥ लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा॥

को भी नष्ट हुआ जान कर दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्रीमें फिर साठ कन्याओंको उत्पन्न किया (क्योंकि-कन्याएँ स्त्री होनेसे उपदेशकी पात्र नहीं थी) ॥ २७ ॥ उन (मेंसे कुछ) को प्रभु कश्यपने भार्याके रूपमें ग्रहण कर लिया और हे कौरव! धर्म तथा दूसरे महर्षियोंने भी (कुछ २ को) ग्रहण कर लिया २८ दक्षने दश कन्याएँ धर्मको, तेरह कन्याएँ कश्यपको, सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुपुत्रको, दो आंगिरसको और दो विद्वान् कृशाश्वको दीं, उनके नामोंको मुझसे सुनो २९-३० हे भारत ! धर्मकी अरुन्धती वसु यामी लम्बा भानु मरुत्वती संकल्प मुहूर्ता साध्या और विश्वा नामवाली दश पत्नियें हैं, उनकी सन्तानोंको तुम मुझसे सुनो ३१ विश्वाके विश्वेदेवा पुत्र हैं, साध्याने साध्योंको उत्पन्न किया है, मरुत्वतीमें मरुत्वान् उत्पन्न हुए हैं और वसुके वसु उत्पन्न हुए हैं और हे तात ! भानुके भानु उत्पन्न हुए हैं और मुहूर्ताके मुहूर्तज (क्षण लव आदि कालके अभिमानी देवता) उत्पन्न हुए हैं ॥३२॥३३॥

पृथिवी विषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥ ३४ ॥ संकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे संकल्प एव हि। नागवीथ्याश्च जामिन्या वृषलम्बा व्यजायत ॥३५॥या राजन् सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसो ददौ। सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्तिताः ॥ ३६ ॥ ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिःपुरोगमाः । वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ३७ ॥ आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः३८ आपस्य पुत्रो वैतण्डयः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा । ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः॥ ३९ ॥ सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते । धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।

लम्बाके घोष (मन्त्राभिमानी देवता) हुआ और यामीसे नागवीथी (स्वर्गाभिमानी देवता) उत्पन्न हुई और अरुन्धतीमें (घृत पशु औषध आदि) सब पृथिवीका विषय उत्पन्न हुआ और संकल्पसे सर्वात्मा संकल्प (मानसक्रियाभिमानी देवता) उत्पन्न हुआ (यहाँ आदिसे पाँच यागदेवताओंकी तदनन्तर क्रमशः काल मन्त्र मार्ग और हविका तथा दशवें द्रव्यत्यागरूप संकल्पकी सृष्टि कही है) अजवीथीसे नागवीथीमें वृषलम्बा (कालान्तरमें फलवृष्टि करनेवाले धर्म वा ईश्वरका अवलम्बन करने वाला देवता वृषलम्बा कहलाता है) उत्पन्न हुआ३३-३५ हे राजन्! दक्षने सोमके लिये जो कन्याएँ दी थीं वे सब नक्षत्र ज्योतिषमें प्रसिद्ध हैं ॥ ३६ ॥ अब जो ज्योति आदि प्रसिद्ध देवता हैं और आठ वसु देवता विख्यात हैं मैं उनके विस्तारको कहता हूँ ॥३७॥ आप ध्रुव सोम धर अनिल प्रत्यूष और प्रभास (ये आठ वसु) वसु नामसे प्रसिद्ध हैं ॥३८॥ आपके वैतण्डभ श्रम शान्त और मुनि नामक पुत्र उत्पन्न हुए, ध्रुवके पुत्र लोकको अंकुशमें रखने वाले भगवान् काल हुए ॥३९॥ सोमके

मनोहरायाः शिशरः प्राणोथ रमणस्तथा ॥ ४० ॥ अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः । अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥ ४१ ॥ अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः । तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ ४२ ॥ अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः । स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ॥४३॥ प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम् । द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ ॥४४॥ बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी । योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ॥ ४५ ॥ प्रभासस्य च सा भार्या

पुत्र भगवान् वर्चा हुए जिन (का पूजन करने) से मनुष्य वर्चस्वी होजाता है, धरके पुत्र द्रविण और हुतहव्यवह हुए, और (धर की दूसरी) मनोहरा भार्यासे शिशिर प्राण और रमण नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४०॥ अनिलकी स्त्रीका नाम शिवा था उसके पुत्रोंका नाम मनोजव और अविज्ञात गति था, ये दो पुत्र अनिल के थे ॥ ४१ ॥ अग्निके पुत्र कुमार शरस्तम्ब पर शोभा पारहे थे उनकी पीठ पर (उनके छोटे भाई) शाख् विशाख और नैगम उत्पन्न हुए (अर्थात् अग्निके चार पुत्र थे) ॥ ४२ ॥ उन सनत्कुमार स्कन्दको अग्निने अपने एक चतुर्थांशसे उत्पन्न किया था और वह कृत्तिकाओंकी सन्तान होनेसे कार्तिकेय कहलाते हैं (छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि–'तं स्कन्द इत्याचक्षते अर्थात् उनको स्कन्द कहते हैं इस श्रुतिमें सनत्कुमारको ही स्कन्द कहा है, इससे प्रतीत होता है सनत्कुमार उनका उपनाम है)४३ प्रत्यूषके पुत्रका नाम देवल और (पुत्रीका नाम)ऋष्टि था, देवल के ये दोनों पुत्र और पुत्री क्षमावान् और तपस्वी थे ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिकी बहिन श्रेष्ठ स्त्रीका नाम ब्रह्मचारिणी था, वह योगसिद्ध थी और असक्त होकर संसारमें विचरण किया करती

वसूनामष्टमस्य च । विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः ४६
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वार्द्धकिः । भूषणानां च
सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ॥ ४७ ॥ यः सर्वासां विमानानि
देवतानां चकार ह । । मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महा-
त्मनः ॥ ४८ ॥ सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्ममे । महा-
देवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥ ४९ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्य-
स्त्वष्टा रुद्राश्च भारत । त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो
महायशाः ॥ ५० ॥ हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः । वृषा-
कपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥ ५१ ॥ मृगव्याधश्च सर्पश्च
कपाली च विशाम्पते। एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ५२
शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् । पुराणे भरतश्रेष्ठ

थी ॥ ४५ ॥ वह प्रभास नाम वाले आठवें वसुकी भार्या थी
उसमें विश्वकर्मा नामक महाभाग्यवान् प्रजापति उत्पन्न हुए ४६
वह सहस्रों शिल्पोंके रचयिता हैं और देवताओंके बढ़ई हैं और
वह शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्मा सब भूषणोंके बनाने वाले
हैं ॥ ४७ ॥ और उन्होंने, सब देवताओंके विमानोंको बनाया है
और उन महात्माके शिल्पसे मनुष्य भी अपनी आजीविका चलाते
हैं ॥४८॥ (अब कश्यप मुनिको जो तेरह कन्याएँ दीं थी उनमें
से सुरभिकी सन्तानका वर्णन करते हैं) तपसे भावित होकर
महादेवके प्रसाद (वर) से सुरभिने कश्यप मुनिसे ग्यारह रुद्रों
को उत्पन्न किया था और हे भारत! अजैकपाद अहिर्बुध्न्य
और त्वष्टा तथा रुद्र उससे उत्पन्न हुए थे, त्वष्टाके महायशस्वी
और श्रीमान् पुत्रका नाम विश्वरूप था ॥४९॥५०॥ हे राजन्!
हर बहुरूप त्र्यम्बक अपराजित वृषाकपि शंभु कपर्दी रैवत मृग-
व्याध सर्प और कपाली ये तीनों भुवनोंके ईश्वर ग्यारह रुद्र कहे
हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ और हे भरतश्रेष्ठ! पुराणोंमें इन अमित

यैर्व्याप्ताः सचराचराः ॥ ५३ ॥ लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोधमे । अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा ॥ ५४ ॥ सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा । कद्रुर्मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ ५५ ॥ पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः । तुषिता नाम तेऽन्योऽन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५६॥ उपस्थिते तियशसि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । हितार्थं सर्वसत्त्वानां समागम्य परस्परम् ॥ ५७ ॥ आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं संप्रविश्य वै । मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्न श्रेयो भविष्यति ॥ ५८ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । मारीचात् कश्यापाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया ५९ तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि । अर्यमा चैवधाता च त्वष्टा पूषा च भारत६० विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च । अंशो भगश्चाति-

---

पराक्रमी रुद्रोंकी सौ संख्या लिखी है और इनसे चराचर लोक व्याप्त होरहे हैं, हे भरतशार्दूल ! अब तुम मुझसे कश्यप (की स्त्रियों) के नाम सुनो अदिति दिति दनु अरिष्टा सुरसा खशा सुरभि विनता ताम्रा क्रोधवशा इरा और कद्रू । हे राजेन्द्र ! अब उनकी सन्तानोंको सुनो ॥ ५३–५५॥ पहिले चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नाम वाले बारह देवश्रेष्ठ थे वे मन्वन्तरके अन्तमें सब प्राणियोंका हित करनेके लिये परस्पर मिल कर कहने लगे कि–॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे देवताओं ! तुम शीघ्र आओ ! हम अदितिमें प्रवेश करके अगले (वैवस्वत) मन्वन्तरमें उत्पन्न होंगे, यह बात हमारा कल्याण करेगी ॥ ५८ ॥ वैशम्पायनमुनिने कहा, कि–चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें वे सब इस प्रकार वार्तालाप करके मरीचिपुत्र कश्यप ऋषिसे दक्षकी कन्या अदितिमें उत्पन्न होगये ॥ ५९ ॥ उसमें फिर विष्णु इन्द्र अर्यमा धाता त्वष्टा पूषा विवस्वान् सविता मित्र वरुण अंश भग ये अतितेजस्वी

तेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥६१॥ चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन् ये तुषिताः सुराः। वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः६२ सप्तविंशति याः प्रोक्ता सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः। तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसाम्६३अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश। बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥६४॥ प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कृताश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ६५ एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव ह । सर्वदेवगणास्तात

बारह आदित्य कहे हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ जो पहिले चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नाम वाले देवता थे वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य हुए थे ६२सोमकी जिन सत्ताईस सुव्रता पत्नियों का वर्णन किया है उन अमित तेज वाली स्त्रियोंकी सन्तान दीप्त तेजवाली हुई ॥६३॥ अनेक पुत्र वाले विद्वान् अरिष्ट नेमि की (विद्युत् अशनि मेघ और रोहितेन्द्रधनु) चार स्त्रियें थी और उनके सोलह पुत्र थे ६४ राजर्षि कृशाश्वके ब्रह्मर्षि सत्कृत प्रत्यङ्गिरसज श्रेष्ठ ऋचाएँ और देवप्रहरण उत्पन्न हुए,(अङ्गिराओं के प्रतीपको त्याग कर अन्यत्र जाने वाले मुनि प्रत्यंगिरा कहलाते हैं उनसे उत्पन्न हुई अर्थात् देखी हुई ऋचाएँ (मन्त्र) प्रत्यंगिरसजा कहलाती हैं, श्रुतिमें भी लिखा है, कि-"य आंगिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवशौनकोऽभवत्-अर्थात् जो आंगिरस शौनहोत्र होकर भार्गव शौनक होगए थे, अथर्ववेदमें भी शौनकीया शाखा प्रसिद्ध है उसमें शान्ति करने वाले प्रत्यङ्गिर मन्त्र प्रसिद्ध हैं) ॥ ६५ ॥ ये कामज-कामसे उत्पन्न होने वाले ("सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयं वह ईश्वर काम (कामना) करता है कि-मैं बहुतसे रूपोंमें उत्पन्न होऊँ") पृथ्वी अग्नि वायु अन्तरिक्ष स्वर्ग सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र ये वसु, वाणी हाथ पैर वायु उपस्थ ये पञ्च कर्मेन्द्रियें और पाँच ज्ञानेन्द्रिये तथा

त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥६६॥ तेषामपि च राजेन्द्र निरोधोत्पत्ति-रुच्यते ॥ ६७ ॥ यथा सूर्यस्य गगने उदयास्तमने इह । एवं देव-निकायास्ते संभवन्ति युगे युगे ॥ ६८ ॥ दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् । हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य-वान् ॥ ६९ ॥ सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः । सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः । गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥ ७० ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शत-शोऽथ सहस्रशः । असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु ७१

ग्यारहवाँ सर्वसाधारण मन ये ग्यारहरुद्र, मासोंके अधिष्ठात्री बारह आदित्य, इन्द्र-पर्जन्य और प्रजापति अर्थात् जीव ये भोक्तृ-भोग्यात्मक ईश्वरकामज) तैंतीस देवता सहस्र (चतुर्युगों) के बीतने पर अर्थात् प्रत्येक नवीन कल्पमें (एक बार ही) उत्पन्न होते हैं ।(दूसरे देवता तो ऋतुके लिंगकी समान एक कल्पमें में भी अनेक बार उत्पन्न होजाते हैं) ॥ ६६ ॥ इन कामजों की भी निरोध और उत्पत्ति (वेदमें) कही है ॥ ६७ ॥ जैसे आकाशमें सूर्य उदय होता है और अस्त होजाता है इसीप्रकार ये देवताओंके समूह प्रत्येक युगमें उत्पन्न होते हैं ६८ (आदित्यों का वर्णन करनेके अनन्तर अब दैत्योंका वर्णन करते हैं) हमने सुना है, कि कश्यप मुनिसे दितिके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, (उनमें एक) हिरण्यकशिपु और (दूसरा) वीर्यवान् हिरण्याक्ष था ॥ ६९ ॥ और (कश्यप और दितिकी) सिंहिका नाम वाली एक कन्या भी थी वह विप्रचित्तिको विवाही गई थी, उसके महा-बली पुत्र सैंहिकेय नामसे प्रसिद्ध हैं हे राजेन्द्र ! वे अपने गणों सहित दश सहस्र कहलाते हैं ॥ ७० ॥ और हे महाभुज ! उनके महाबली पुत्र और पौत्र सैंकड़ों और सहस्रों अर्थात् अनन्त हैं, अब हिरण्यकशिपुकी (सन्तान) को सुनो ॥७१॥ प्रसिद्धपरा-

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः। अनुह्रादश्च ह्रादश्च प्रह्रादश्च वीर्यवान् ॥ ७२॥ संह्रादश्च चतुर्थोऽभूत् ह्रादपुत्रो ह्रदस्तथा। संह्रादपुत्रः सुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौ स्मृतौ॥ ७३॥ अनुह्रादसुतौ ह्यायुः शिविः कालस्तथैव च। विरोचनश्च प्राह्रादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥ ७४॥ बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं नराधिप। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः ॥ ७५॥ कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः। बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥ ७६॥ पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्। पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥७७॥ बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुदपद्यत। गणास्तथा सुरा राजञ्छतसाहस्रसंमिताः ॥ ७८॥ हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः। झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥ ७९॥

क्रमी हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए,अनुह्राद ह्राद और वीर्यवान् प्रह्लाद, उनमें चौथा संह्राद था, ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ, सुन्द और निसुन्द संह्रादके पुत्र कहलाते हैं, आयु और शिवि अनुह्रादके पुत्र हुए तथा काल भी उनका पुत्र हुआ, प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलि उत्पन्न हुआ७२–७४ बलिके सौ पुत्र थे और उनमें बाण (सबसे) बड़ा था, हे नराधिप! धृतराष्ट्र सूर्य चन्द्रमा इन्द्रतापन कुम्भनाभ गर्दभाक्ष कुक्षि आदि (बलिके सौ पुत्र थे) इन सबमें अतिबली बाण बड़ा था और शिवप्रेमी था ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ पहिले कल्पमें बाणासुरने उमापति शिवको प्रसन्न करके वर माँगा था, कि- मैं आपके पास विहार करूँ ॥ ७७ ॥ बाणके लोहिती नामकी स्त्रीमें इन्द्रदमन उत्पन्न हुआ, हे राजन्! उसके लाखों असुर गण थे७८ हिरण्याक्षके झर्झर शकुनि और भूतसन्तापन महानाभ और विक्रमी कालनाभ ये पाँच विद्वान् और महाबली पुत्र हुए, (अब

महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च । अभवन्दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः । तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान् ॥ ८० ॥ द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शंकुशिरा विभुः । शंकुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा।अयोमुखः शंबरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥ ८१ ॥ मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शंकुशिरा वृकः । विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ ॥ ८२ ॥ इन्द्रजित्सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च । महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥ ८३ ॥ एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः । वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ ॥ ८४ ॥ स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः । सूक्ष्मश्चैवानिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः ॥८५॥असिलोमा च केशी च शठश्च वल्कको मदः । तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महासुरः ॥ ८६ ॥ प्रमदो मयश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान् । वैसृपः सविरूपाक्षः सुपथोथ हराहरौ ॥८७॥ हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायुश्च शम्बरः । शरभः

दनुके पुत्र पौत्रोंका वर्णन करते हैं) दनुके तीव्र पराक्रमी सैंकड़ों पुत्र (पौत्र) हुए वे तपस्वी और महावीर्यवान् थे उनमेंके मुख्य मुख्योंको सुनो ॥७९॥८०॥ द्विमूर्धा शकुनि तथा विभु शंकुशिरा शंकुकर्ण विराध[गवेष्ठी तथा दुन्दुभि अयोमुख शम्बर कपिल वामन मरीचि भगवान् इरा शंकुशिरा वृक विक्षोभण और केतु और केतुवीर्य शतह्रद इन्द्रजित् सत्यजित् वज्रनाभ महानाभ और विक्रमी कालनाभ महाबाहु एकचक्र महाबल तारक वैश्वानर पुलोमा और विद्रावण तथा महासुर स्वर्भानु वृषपर्वा और महासुर तुहुण्ड सूक्ष्म अनिचन्द्र ऊर्णनाभ और महागिरि असिलोमा केशी शठ वल्कक और मद तथा गगनमूर्धा और महाअसुर कुम्भनाभ प्रमद मय कुपथ और वीर्यवान् हयग्रीव वैसृप सविरूपाक्ष सुपथ हर और अहर हिरण्यकशिपु शतमायु और-

शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥ ८८ ॥ एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे । विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ॥ ८९ ॥ एतेषां यदपत्यन्तु तन्न शक्यं नराधिप । प्रसंख्यातुं महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥९०॥ स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम् । उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ९१ ॥ पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे । बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ९२ ॥ तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिं दानवनन्दनान् । चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः॥९३॥ मारीचिर्जनयामास महता तपसाऽन्वितः । पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ॥ ९४ ॥ अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः । कृताः पितामहेनाजौ निहताः सव्यसाचिना ॥ ९५ ॥ प्रभाया नहुषः पुत्रो सृञ्जयश्च शचीसुतः । पुरं

और शम्बर शरभ शलभ और वीर्यवान् विप्रचित्ति ये सब दनुके पुत्र कश्यप मुनिसे उत्पन्न हुए थे, ये सब दानव महबली थे और इनमें विप्रचित्ति मुख्य था ॥ ८१–८९ ॥ हे नराधिप ! हे महीपाल ! इनकी जो पुत्र पौत्र आदि अनन्त सन्ताने हैं उनकी गिनती करना अशक्य है ॥९०॥ स्वर्भानुकी कन्या प्रभा हुई और पुलोमाके तीन कन्याएँ हुईं उपदानवी और हयशिरा (तथा एक और) वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा हुई ९१ पुलोमा और कालिका ये दोनों वैश्वानरकी पुत्रियें हैं और यह मारीचिको विवाही गई थी ॥९२॥ बड़े भारी तपसे युक्त मारीचि कश्यपने उन दोनों स्त्रियोंमें दानवोंको आनन्द देनेवाले चौसठ सहस्र और चौदहसौ (६५१००) हिरण्यपुरनिवासी पुत्रोंको उत्पन्न किया था, उन हिरण्यपुरमें रहने वाले महाबली पौलोम और कालकेय नामक दानवोंको ब्रह्माजीने (वर देकर) देवताओंसे भी न मारे जासकने वाले कर दिया था, उनको सव्य-

जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी ॥ ९६ ॥ ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः । सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तदा ॥ ९७ ॥ दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः । सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ॥ ९८ ॥ व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः । वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ॥९९॥ आंजिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च । शुकः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्च वीर्यवान् ॥१००॥ राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वैं सूर्यचन्द्रविमर्दनः । मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रादपुत्रौ बभूवतुः १ मारीचः सुन्दपुत्रश्च ताटकायां व्यजायत । शिवमाणस्तथा चैव सुकल्पश्चैव वीर्यवान् ॥ २ ॥ एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविव-

---

साची अर्जुनने रणमें मारडाला था ॥ ९३-९५ ॥ प्रभाके नहुष पुत्र हुआ और शचीके सञ्जय नामक पुत्र हुआ और शर्मिष्ठाने पुरुको उत्पन्न किया और उपदानवीने दुष्यन्तको उत्पन्न किया९६ इसके अतिरिक्त बहुतसे महावीर्यवान् अतिदारुण दानव सिंहिका में विप्रचित्तिसे उत्पन्न हुए थे, फिर दैत्य दानवोंके संयोगसे बहुतसे तीव्रपराक्रमी (विप्रचित्तिके) पुत्र (पौत्र) हुए वे प्रधान तेरह महाबली सैंहिकेय नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ९७॥९८ ॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं) बलवान् व्यंश और शल्य और महाबली नभ वातापि नमुचि इल्वल तथा खसृम आंजिक नरक और कालनाभ शुक और पोतरण और वीर्यवान् वज्रनाभ ९९-१०० इनमें राहु ज्येष्ठ है और वह सूर्य और चन्द्रमाको पीड़ा देता रहता है, ह्रादके मूक और तुहुण्ड नाम वाले पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १०१ ॥ सुन्दके ताटकामें मारीच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और इन (सुन्द और ताड़का) के शिवमाण और वीर्यवान सुरकल्प भी उत्पन्न हुए थे ॥ १०२ ॥ ये सब दानवोंमें श्रेष्ठ हैं और दनुके वंशका विस्तार करने वाले हैं, इनके सैंकड़ों और

र्धनाः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ३ ॥ संह्रा-
दस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले । समुत्पन्नाः सुतपसा महान्तो
भावितात्मनः ॥४॥ तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिमत्यां निवा-
सिनाम् । तेऽप्यवध्यास्तु देवानामर्जुनेन निपातिताः ॥ ५ ॥ षट्
सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः । काकी श्येनी च
भासी च सुग्रीवी शुचि गृध्रिका ॥ ६ ॥ काकी काकानजन-
यदुलूकी प्रत्यलूककान् । श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान
गृध्रांश्च गृध्र्यपि ॥ ७ ॥ शुचिरौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु
परन्तप । अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ॥८॥
विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा । सुपर्णः पततां श्रेष्ठो
दारुणः स्वेन कर्मणा ॥ ६ ॥ सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाम-
मितौजसाम् । अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम् ११०
सहस्रों पुत्र हैं पौत्र हैं ॥ १०३ ॥ संह्राद नामक दैत्यके कुलमें
भावितात्मा उदार और अच्छे तपस्वी निवातकवच नामक पुत्र
हुए ॥ १०४ ॥ उनके तीन करोड़ पुत्र थे और मणिमती नाम
की नगरीमें रहते थे वे भी देवताओंसे अवध्य थे उनको भी
अर्जुनने मारडाला था ॥ १०५ ॥ ताम्राकी काकी श्येनी भासी
सुग्रीवी शुचि और गृध्रिका नामवाली छः महान् सत्त्व वाली
पुत्रियें थीं ॥१०६॥ काकीने काकोंको उत्पन्न किया, उलूकीने
उलूकोंको उत्पन्न किया, श्येनीने श्येनों (बाजों) को उत्पन्न
किया, भासीने भासोंको और गृध्रीने गृध्रोंको उत्पन्न किया;
और हे परन्तप ! शुचिने जलीय पक्षियोंको उत्पन्न किया
और सुग्रीवीने घोड़े ऊँट और गर्दभोंको उत्पन्न किया था, यह
यह ताम्राका वंश कहदिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ विनताके अरुण
और गरुड़ नामके दो पुत्र थे, अपने कर्मके कारण पक्षियोंमें
श्रेष्ठ गरुड़ बडे दारुण (प्रसिद्ध) हैं ॥१०६॥ सुरसाके अमित

काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः । सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरेऽनेकमस्तकाः ॥ ११ ॥ तेषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः । ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥१२॥ एलापत्रस्तथा शंखः कर्कोटकधनञ्जयौ । महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ॥ १३ ॥ कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा । शंखश्च शंखपालश्च कपिलो वामनस्तथा ॥१४॥ नहुषः शंखरोमा च मणिरित्येवमादयः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुड़ेन निपातिताः ॥ १५ ॥ चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पवनाशिनाम् । गणं क्रोधवशं विद्धि तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥ १६ ॥ स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः । गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥ १७ ॥ इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः। खशा तु यक्षरक्षांसि मुनीनप्सरसस्तथा १८

पराक्रमी अनेक शिर वाले आकाशचारी सहस्रों पुत्र थे ।११०। कद्रूके अमित पराक्रमी और अनेक मस्तक वाले सुपर्ण गरुडके वशमें रहनेवाले सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनमें शेष वासुकि तक्षक ऐरावत महापद्म कम्बल और अश्वतर ये दोनों शंख कर्कोटक धनंजय महानील महाकर्ण धृतराष्ट्र और बलाहक कुहर पुष्पदंष्ट्र दुर्मुख तथा सुमुख शंख शंखपाल कपिल वामन तथा नहुष शंखरोमा और मणि आदि प्रधान हैं, उनके पुत्र और पौत्रोंको गरुड़ने मारडाला था ॥ १११-११५ ॥ पवनका भक्षण करने वाले चौदह सहस्र सर्पोंका क्रोधवश नाम वाला एक गण है, उस गणके सब सर्प दाढ़वाले हैं ॥ ११६ ॥ स्थल और जलमें उत्पन्न होने वाले पक्षी धराकी सन्तान कहलाते हैं, इसीप्रकार सुरभिने गौ और महिषोंको उत्पन्न किया ॥ ११७ ॥ इराने वृक्ष लता वल्ली और सब प्रकारकी घासको उत्पन्न किया और खशाने यक्ष राक्षस और मुनि और अप्सराओंको उत्पन्न

अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वानमितौजसः । एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजंगमाः ॥१९॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः । एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ॥ २० ॥ वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ । जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥ २१ ॥ पूर्वं यत्र तु ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान्सप्त मानसान् । पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥२२॥ ततो विरोधे देवानां दानवानां च भारत । दितिर्विनिष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥ २३ ॥ तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया । वरेण छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः ॥ २४ ॥ पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् । स च तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं सुमहातपाः ॥ २५ ॥ दत्त्वा च वरमव्यग्रो मारीचस्ताम-

---

किया ॥ ११८ ॥ और अरिष्टाने महासत्ववाले अमित पराक्रमी गन्धर्वोंको उत्पन्न किया ये कश्यप मुनिकी स्थावर और जङ्गम सन्तान कही ॥ ११९ ॥ इनके सैंकडों और सहस्रों पुत्र तथा पौत्र हैं हे तात ! यह स्वरोचिष मन्वन्तर सर्ग कहा १२० वारुण वैवस्वत मन्वन्तरके बड़े भारी यज्ञके होते समय ब्रह्माजीको आहुति देनेके अवसर पर यह प्रजासर्ग कहा गया है ॥१२१॥ और तहाँ पर ब्रह्माजीने स्वयं ही अपने मनसे उत्पन्न हुए सात ब्रह्मर्षि पुत्रोंकी अपने पुत्ररूपसे कल्पना की थी ॥ १२२ ॥ हे भारत ! इसके उपरान्त देवता और दानवोंमें विरोध होनेसे अपने पुत्रोंके नष्ट होनेपर दितिने कश्यपको प्रसन्न किया १२३ उसके भलीप्रकार आराधना करने पर कश्यपकी आत्मा प्रसन्न होगई और उन्होंने उससे वर माँगनेको कहा, तब उसने इन्द्रका वध करनेके लिये समर्थ और अमित पराक्रमी पुत्रके लिये वर माँगा, तब उन महातपस्वीने उसके माँगे हुए वरको उसे दे दिया ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ कश्यप मुनि उसको वर देकर बिना

भापत । भविष्यति सुतस्तेऽयं यद्येनं धारयिष्यसि ॥२६॥ इन्द्रं सुतो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम् । यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥ २७ ॥ तथेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः । धारयामास गर्भन्तु शुचिः सा वसुधाधिप ॥ २८ ॥ ततोऽभ्युपगमदित्यां गर्भमाधाय कश्यपः । रोचयन्वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसम् ॥ २६ ॥ तेजः संभृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि । जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥१३०॥ तस्याश्चैवांतरमेप्सुरभवत् पाकशासनः । ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥३१॥ अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् । निद्रां च कारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥ ३२ ॥ वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तत । स पात्यमानो वज्रेण

घबड़ाये हुए उससे कहने लगे, कि-यदि तू इस [गर्भ] को धारण कर सकेगी तो तेरा पुत्र इन्द्रको मारने वाला होगा, इस गर्भको तुझे शौचमें तत्पर होकर और व्रतको धारण करके सौ वर्षतक धारण करना पडेगा ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ तब उस देवी ने अपने महातपस्वी भर्तासे "ऐसा ही करूँगी" कहा फिर हे वसुधाधिप ! उसने पवित्र होकर गर्भको धारण किया।१२८। इसप्रकार अमित पराक्रमी देवताओंके गणोंको प्रकाशित करते हुए कश्यप जी अदितिमें गर्भको धारण कराके चलने लगे ॥ १२६ ॥ वह प्रशंसित तप वाले मुनि देवताओंसे भी अवध्य दुर्धर्ष गर्भको धारण करा कर तप करनेके लिये पर्वत पर चले गए ॥ १३० ॥ (इधर) इन्द्र उसके छिद्रको ढूँढने लगा, और उस अच्युतने सौ वर्ष पूर्ण होनेसे पहिले ही उसके छिद्र (दोष) को देख लिया ॥ १३१ ॥ कि दिति पैर बिना धोये हुए शयन करनेके लिये चली गई थी, तब इन्द्रने उसकी कोखमें घुस कर उसको सुला दिया ॥ १३२ ॥ फिर वज्रपाणि इन्द्रने

गर्भस्तु रुरोद ह ॥ ३३ ॥ मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुन-
रथाब्रवीत् । सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥३४॥
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणारिकर्षणः । मरुतो नाम देवास्ते
बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ३५ ॥ यथैवोक्तं मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ।
देवा एकोनपञ्चाशत् सहाया वज्रपाणिनः ॥ ३६ ॥ तेषामेवं प्रवृ-
द्धानां भूतानां जनमेजय । रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौ-
जसम् ॥ ३७ ॥ निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतिम् ।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भारत ॥ ३८ ॥ स हरिः
पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः । पर्जन्यस्तपनो व्यक्त-
स्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥३९॥ भूतसर्गमिमं सम्यक् जानतो भर-

उसके गर्भके सात टुकड़े कर डाले, वज्रसे कटता हुआ वह गर्भ रोने लगा ॥ १३३ ॥ उस समय इन्द्रने उससे बार २ 'मा रोदीः-मत रो' कहा जब उस गर्भके सात टुकड़े होगए तब शत्रुकर्षण इन्द्रने फिर क्रोधमें भर कर उस प्रत्येक टुकड़ेके वज्रसे सात २ टुकड़े कर डाले, हे भरतर्षभ ! वे मरुत् नामक देवता हुए ३४।३५ इन्द्रने जिस प्रकार कहा था, इसी प्रकार वे मरुत् नामक देवता हुए वे उञ्चास हैं और वज्रपाणि इन्द्रकी सहायता करते हैं ३६ हे जनमेजय ! जब वे प्राणी इस प्रकार बढ़ गए तब देवताओंके श्रेष्ठ समूहको प्रकाशित करने वाले हरिने टोलियोंमें प्रजापति नियुक्त कर दिये हे भारत ! उन्होंने पृथु आदिको क्रमशः राज्य बाँट दिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वह हरि पुरुष हैं वीर हैं कृष्ण हैं जिष्णु हैं और प्रजापति हैं, मेघ हैं और सूर्य हैं और सब जगत् उनको व्यक्त रहता है ॥ ३९ ॥ हे भरतर्षभ ! इस भूतसृष्टिको भलीप्रकारसे जानने वालेको और मरुतोंके शुभ जन्मको सुनने वा पढ़ने वालेको जन्ममरणका भय नहीं रहता, फिर परलोक

र्षभ । मरुतां च शुभं जन्म शृण्वतः पठतोऽपि वा । नावृत्तिभय-मस्तीह परलोकभयं कुतः ॥ १४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मरुतोत्पत्तिकथने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच । अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः । ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा । यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥ अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम् । बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावांगिरसं पतिम् ॥ ३ ॥ भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् । आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ ४ ॥ प्रजापतीनां दक्षन्तु मरुतामथ वासवम् । दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥ ५ ॥ वैवस्वतं च पितॄणां यमं राज्येऽभ्यषेचयत् । मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां

का भय तो होगा ही कहाँसे ? ।१४०। तीसरा अध्याय समाप्त

पितामहने पहिले राजाओंके भी ऊपर राजारूपसे वेनपुत्र पृथुका अभिषेक किया, फिर क्रमसे वह राज्य देने लगे ॥ १ ॥ द्विज लता नक्षत्र ग्रह यज्ञ (के अभिमानी देवता) और तपके राज्यमें सोमका अभिषेक किया ॥२॥ जल और यक्षोंके राज्यमें विश्रवाके पुत्र वरुणका अभिषेक कर दिया, विश्वेदेवाओं पर अङ्गिरसगोत्री बृहस्पतिको राजा बना दिया ३ भृगुओंके ऊपर स्वामीरूपसे शुक्राचार्यका अभिषेक कर दिया, आदित्योंके ऊपर विष्णुको और वसुओंके ऊपर अग्निको (राजा बना दिया)४ प्रजापतियों पर दक्ष और मरुतों पर इन्द्रको और दैत्य तथा दानवोंके ऊपर अमित पराक्रमी प्रह्लादको राजा बना दिया और पितरोंके राज्य पर सूर्यपुत्र यमका अभिषेक कर दिया ॥ ५ ॥ षोड़शमातृका व्रत मन्त्र गौ यक्ष राक्षस पार्थिव पदार्थ साध्य

च तथा गवाम् ॥ ६ ॥ यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च । नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥ ७ ॥ विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत् । सर्वभूतपिशाचानां गिरीशं शूलपाणिनम् ॥ ८ ॥ शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्। गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम् । शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम् ॥ ९ ॥ गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् । नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥१०॥ वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत् । उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥ ११ ॥ मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम् । वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवादिशत् प्रभुम् ॥१२॥ सागराणां नदानां च मेघानां वर्षणस्य च । आदित्यानामधि-

और रुद्रोंके राज्यमें नारायण वृषध्वजका अभिषेक कर दिया७ और विप्रचित्तिको दानवोंके राजा बननेका आदेशपत्र देदिया, सकल भूत और पिशाचोंके ऊपर गिरीश और शूलसे व्यवहार करने वाले महादेवजीका अभिषेक कर दिया ८ शैलोंमें हिमवान्को और नदियोंमें समुद्रको स्वामी बना दिया, गन्धाश्रय द्रव्यों पर मरुतों पर (प्राणवायु पर) और अशरीरी [स्थूलशरीररहित प्रेत आदि] भूतों पर तथा शब्द और आकाश वाले [भेरी आदि तथा हमारे शरीरों] पर बलियोंमें श्रेष्ठ वायुका [अभिषेक कर दिया] ९ प्रभु चित्ररथको गंन्धर्वोंका स्वामी बना दिया, नागों पर वासुकिको और सर्पों पर तक्षकको राजा बना दिया १० और वारणों [हस्तियों] के ऊपर ऐरावतको राजा बना दिया, अश्वोंके ऊपर उच्चैःश्रवाको और पक्षियोंके ऊपर गरुड़को राजा बना दिया ११ मृग [वनचारी पशुओं] पर शार्दूल [सिंह] को और गौओंके ऊपर साँडको पति बना दिया और वनस्पतियोंपर प्रभु प्लक्ष[पिलखन] को राजा बनादिया

पतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥ १३ ॥ सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजा-
नामभ्यषेचयत् । सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम् १४
गन्धर्वाप्सरसां चैव कामदेवं तथा प्रभुम् । ऋतूनामथ मासानां
दिवसानां तथैव च ॥ १५ ॥पक्षाणां च क्षपाणां च मुहूर्ततिथि-
पर्वणाम् । कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ॥ १६ ॥
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम्। एवं विभज्य राज्यानि
क्रमेण स पितामहः ॥ १७ ॥ दिशापालानथ ततः स्थापयामास
भारत । पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः ॥ १८ ॥
दिशापालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत् । दक्षिणस्यां महा-
त्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १९ ॥ पुत्रं शंखपदं नाम राजानं

सागर नद मेघ और वर्षण और आदित्यों (की किरणों) के अधिपति पद पर पर्जन्यका अभिषेक कर दिया ॥१३॥ सकल डाढ़ वाले सर्पों पर शेषका राजारूपसे अभिषेक कर दिया और [डुंडुभ आदि निर्विष] सरीसृप सर्पों पर तक्षकको राजा बना दिया ॥ १४ ॥ गन्धर्व और अप्सराओंके ऊपर प्रभु कामदेवका अभिषेक करदिया ऋतु मास दिन पक्ष क्षपा [रात्रि] मुहूर्त तिथि पर्व कलाकाष्ठाके प्रमाण उत्तरायण और दक्षिणायनकी गति, गत्यादि परिमाण और उपराग [के अभि-मानी देवताओं पर] प्रभु सम्वत्सर [के अभिमानी देवता] का अभिषेक कर दिया इस प्रकार पितामहने क्रमपूर्वक राज्यों का विभाग करके॥ १५-१७ ॥ दिक्पालोंको स्थापित किया, उन्होंने पूर्वदिशामें वैराजप्रजापतिके पुत्र राजा सुधन्वा नामक दिक्पालका अभिषेक कर दिया और दक्षिण दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र महात्मा शंखपदका राजपद पर अभिषेक कर दिया इसी प्रकार पश्चिम दिशामें रजसके पुत्र अच्युत महात्मा केतुमानका राजाके पदपर अभिषेक करदिया, इसीप्रकार उत्तर

सोऽभ्यषेचयत् । पश्चिमायां दिशि तथा राजसः पुत्रमच्युतम् २०
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् । तथा हिरण्यरोमाणं
पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ २१ ॥ उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं
सोऽभ्यषेचयत् । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ २२॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते । राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथु-
रेभिर्नराधिपैः । वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप ॥२३॥
ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि । वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा
राज्यमथादिशत् । तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह २४
तवानुकूल्याद्राजेन्द्र यदि शुश्रूषसेऽनघ । महद्ध्येतदधिष्ठानं पुराणं
परिकीर्तितम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम् ॥२५॥
जनमेजय उवाच । विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय। यथा
महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुन्धरा ॥ २६ ॥ यथा च पितृभि-

दिशामें पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र दुर्धर्ष हिरण्यरोमाका राजपद पर अभिषेक करदिया, उन सब पुरुषों करके आज भी सातों द्वीप और पर्वतों सहित सारी पृथिवीके अनेक२ प्रदेशका धर्मानु-सार शासन होरहा है, हे नराधिप ! पहिले इन नराधिपोंने वेद की विधिसे राजसूय यज्ञमें राजाओंके भी राजापद पर पृथुका अभिषेक कर दिया था ॥ १८-२३ ॥ इसके उपरान्त चाक्षुप मन्वन्तरके अनन्तर ब्रह्माजीने वैवस्वत मनुको राज्य देदिया अब मैं उन वैवस्वत मनुके विस्तारको कहूँगा ॥ २४ ॥ यदि तू इस वृत्तान्तको अनुकूल रहकर सुनना चाहेगा तो मैं तुझसे कहूँगा मैंने तुझसे प्राचीन और बड़ाभारी अधिष्ठान कह दिया। यह धनको देनेवाला आयुको देनेवाला और शुभ है तथा शुभप्रद है ॥ २५ ॥ जनमेजयने कहा, कि—हे वैशम्पायनजी ! आप मुझसे पृथुके जन्मका विस्तार पूर्वक वर्णन करिये और हे वैश-म्पायनजी ! उन महात्माने इस पृथिवीको जिसप्रकार दुहा हो

दुग्धा यथा देवैर्यथर्षिभिः । यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥ २७ ॥ यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमैः । राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥२८॥ तेषां पात्रविशेषांश्च वैशम्पायन कीर्तय । वत्सान् क्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः २९ यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा । क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥ ३० ॥ वैशम्पायन उवाच । हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् । एकाग्रः प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय ॥ ३१ ॥ नाशुचेः क्षुद्रमनसः कुशिष्यायाव्रताय च । कीर्तनीयमिमं राजन् कृतघ्नायाहिताय वा ॥ ३२ ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन सम्मितम् । रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन्

और पितरोंने इसे जिस प्रकार दुहा हो और देवता तथा ऋषियोंने इसे जिस प्रकार दुहा हो जिस प्रकार दैत्योंने जिस प्रकार नागोंने जिसप्रकार यक्षोंने और जिस प्रकार वृक्षोंने जिस प्रकार पर्वत पिशाच गन्धर्व और द्विजोत्तमोंने तथा महासत्त्व वाले राक्षसोंने इसको दुहा हो [इसका] और पात्रविशेषोंका वर्णन करिये, वत्सोंका क्षीरविशेषोंका और दुहनेवालोंका भी क्रमशः कीर्तन करिये । २६—२९ । और पहिले महर्षियोंने जिस कारण से क्रोधमें भरकर वेनके हाथको मथ डाला था, हे तात ! उस कारणका भी आप वर्णन करिये । ३० । वैशम्पायनजीने कहा कि—हे जनमेजय ! अब मैं वेनपुत्र पृथुके वृत्तान्तको कहता हूँ उसको तू एकाग्र होकर यत्नपूर्वक सुन ३१ हे राजन् ! उस वृत्तान्तको अपवित्र और क्षुद्रमन वाले कुशिष्यसे तथा व्रत न धारण करनेवालेसे और कृतघ्नसे तथा अहितकारी पुरुषसे न कहना चाहिये ३२ यह (इतिहास) स्वर्ग देने वाला यश देने वाला आयुको बढ़ाने वाला और धर्ममय है तथा वेदकी समान है; इस रहस्यको ऋषियोंने कहा है, उसको तू यथावत् सुन ३३

यथातथम् ॥ ३३ ॥ यश्चैनं कथयेन्नित्यं पृथुर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतैः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच । आसीद्धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः
प्रभुः । अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥ १ ॥ तस्य
पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः।जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां
प्रजापतिः ॥ २ ॥ स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ।
स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥ ३ ॥ मर्यादां स्थाप-
यामास धर्मापेतां स पार्थिवः । वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिर-
तोऽभवत् ॥४॥ निःस्वाध्यायवषट्कारस्तस्मिन् राजनि शासति ।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न

जो पुरुष ब्राह्मणोंको नमस्कार करके राजा वेनके पुत्र पृथुके इस विस्तृत इतिहासको सुनता है उसको किये हुए और न किये कर्मोंका शोक नहीं करना पड़ता है ३४ चतुर्थ अध्याय समाप्त ४

वैशम्पायनजीने कहा, कि-पहिले समयमें अत्रिकी समान धर्मके रक्षक अत्रिवंशोत्पन्न अङ्ग नामक प्रजापति हुए ॥ १ ॥ उनका पुत्र वेन हुआ परन्तु वह धर्ममें अतिचतुर नहीं था, वह प्रजापति मृत्युकी पुत्री सुनीथामें उत्पन्न हुआ था ॥ २ ॥ वह कालात्मजा (मृत्यु) का आत्मज वेन नानाके दोषसे अपने धर्मको पीठ देकर कामके कारण लोभ करने लगा ॥३॥ वह धर्म-विहीन मर्यादाको स्थापित करने लगा और वेदोक्त धर्मोंका उल्लंघन करके अधर्ममें परायण होगया ॥ ४ ॥ उस राजाके शासनकालमें (सारा संसार) स्वाध्याय और वषट्कार रहित होगया, इस लिये देवताओंके उद्देश्यसे त्यागे और अग्निमें होमे हुए हविको भी देवताओंने नहीं पिया ॥५॥ जब उसका विनाश-

होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः । आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ६ ॥ अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह । मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ७ ॥ तमतिक्रान्तमर्याद-माददानमसांप्रतम् । ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ॥८॥ वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून् । अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥ निधनेऽत्र प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम् । प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयः कृतः ॥१०॥ तांस्तदा ब्रुवतः सर्वान् महर्षीनब्रवीत्तदा । वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥ ११ ॥ वेन उवाच । स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया । श्रुतवीर्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि ॥१२॥

काल उपस्थित होगया तब उस प्रजापतिने यह क्रूर प्रतिज्ञा कर ली, कि–कोई यज्ञ न करे ॥ ६ ॥ (अन्तिम समयमें उसकी यह बुद्धि होगई थी, कि–) मैं ही पूजा करने योग्य हूँ, मैं ही पूजन करने वाला हूँ और मैं ही यज्ञ हूँ, मुझ (देवतारूप) में मेरे निमित्त यज्ञ करना चाहिये और मुझ (अग्निरूप) में होम करना चाहिये ॥ ७ ॥ मरीचि आदि सब बड़े २ ऋषियोंने मर्यादाका उल्लंघन करने वाले और अनुचित मार्गको ग्रहण करनेवाले वेनसे कहा, कि–॥ ८ ॥ हम बहुत वर्षोंमें पूर्ण होने वाली दीक्षा लेते हैं, हे वेन ! अब तू अधर्म न करना, क्योंकि-यह सनातनधर्म नहीं है ॥९॥ तू इस कुलमें प्रजापति ही उत्पन्न हुआ है और तूने प्रतिज्ञाकी थी, कि–मैं प्रजाका पालन करूँगा१० जब महर्षि इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अनर्थको अपनाने वाले दुर्बुद्धि वेनने यह बात कही ॥११॥ वेन बोला, कि–(मेरे अतिरिक्त) धर्मका रचने वाला और कौन है ? और मैं किसकी बात सुनूँ ? इस पृथ्वीमें वेद वीर्य तप और सत्यमें मेरी समान और कौन है ? ॥ १२ ॥ आप अचेत होरहे हैं और मूर्ख हैं अत

प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः । संमूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मामचेतसः ॥ १३ ॥ इच्छन् दहेयं पृथिवीं सावयेयं तथा जलैः । खं भुवं चैव रुन्धेयं नात्र कार्या विचारणा॥ १४ ॥ यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः । अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ १५ ॥ निगृह्य तं महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम् । ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममंथुर्जातमन्यवः ॥१६। तस्मिंस्तु मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान् । ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुषः कृष्ण-श्चातिवभूव ह ॥ १७ ॥ स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवान् जनमेजय । तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥ १८ ॥ निषाद-वंशकर्ताऽसौ बभूव वदताम्वर । धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसम्भवान्॥१९॥ ये चान्ये विंध्यनिलयास्तुषारास्तुम्बरास्तथा । अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान् वेनसंभवान् ॥ २० ॥ ततः पुन-

एव सब भूतोंके और विशेषतः धर्मोंके उत्पत्तिस्थान मुझको नहीं पहिचानते हैं ॥१३॥ यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीको भस्म करदूँ वा जलसे स्रावित कर दूँ और पृथ्वी तथा आकाशको भी ढा दूँ, इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ १४ ॥ गर्व और मोहके वशमें हुए उस राजाको जब वे ऋषि न समझा सके तब वे क्रोधमें भर गए॥ १५ ॥ और वे महात्मा उस अकड़ते हुए महाबली राजाको पकड़ कर क्रोधमें भर उसकी दाहिनी जाँघ को मथने लगे ॥ १६ ॥ राजाकी उस जंघाके मथे जाने पर उसमेंसे बहुत ठिगना और कालाकुच्च एक पुरुष निकला॥१७॥ हे जनमेजय ! वह डर कर हाथ जोड़ कर खड़ा होगया, अत्रिने उसको विह्वल देख कर उससे कहा, कि-'निषीद-बैठ जा' ।१८। हे बोलने वालोंमें श्रेष्ठ ! वह निषादके वंशको चलाने वाला हुआ और उसने वेनके पापसे उत्पन्न होने वाले धीवरोंको रचा १९ जो विंध्यमें रहने वाले हैं, जो तुषार हैं और तुम्बर हैं और जो

महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम् । अरणीमिव संरब्धा ममं-
थुस्ते महर्षयः ॥ २१ ॥ पृथुस्तस्मात् समुत्तस्थौ कराज्जवलन-
सन्निभः । दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥२२॥
स धन्वी कवची जातः पृथुरेव महायशाः । आद्यमाजगवं नाम
धनुर्गृह्य महारवम् । शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महा-
प्रभम् ॥ २३ ॥ तस्मिन् जातेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः ।
समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिवं गतः ॥२४॥ समुत्पन्नेन कौरव्य
सत्पुत्रेण महात्मना । त्रातः स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात्तदा२५
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः । तोयानि चाभिषे-
काय सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २६ ॥ पितामहश्च भगवान् देवैरांगि-
रसैः सह । स्थावराणि च भूतानि जंगमानि तथैव च ॥ २७ ॥

अधर्मसे प्रेम करते हैं इन सबको वेनसे उत्पन्न हुआ समझ २०
तदनन्तर वे क्रोधमें भरे हुए महात्मा महर्षि वेनके दाहिने हाथ
को अरणीकी समान मथने लगे ॥ २१ ॥ उस हाथसे अग्निकी
समान कान्तिवान् पृथु उत्पन्न हुआ वह अपने शरीरसे अग्नि
की समान दमक रहा था ॥ २२ ॥ वह महायशस्वी पृथु हाथ
में धनुष और बाणको धारण किये हुए और रक्षाके लिये महा-
कान्तिवान् कवच और दिव्य बाणोंको धारण किये हुए ही
उत्पन्न हुआ था, वह हाथमें महाशब्द करने वाले प्राचीन आज-
गव नामक धनुषको धारण किये हुआ उत्पन्न हुआ था ॥२३॥
हे महाराज ! उसके उत्पन्न होने पर सब प्राणी प्रसन्न होकर
उसके पासको दौड़ आये और वेन भी स्वर्गको चला गया२४
हे पुरुषव्याघ्र कौरव ! उस महात्मा सत्पुत्रके होने पर उसकी
पुं नामक नरकसे रक्षा होगई ॥ २५ ॥ उस पृथुका अभिषेक
करनेके लिये सब समुद्र और नदियें चारों ओरसे जल और
रत्न लेकर आने लगे ॥२६॥ और भगवान् पितामह भी अङ्गि-

समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिंचन्नराधिपम् । महता राजराज्येन प्रजापालं महाद्युतिम् ॥ २८ ॥ सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः । आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।२९। पित्राऽपरंजितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः । अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥ ३० ॥ आपस्तस्तंभिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः । पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ३१ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यत्यन्नानि चिन्तया । सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥३२॥ एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे । सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥३३॥ तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः । पृथोः स्तवार्थे तौ तत्र

रसगोत्री देवताओंको साथमें लेकर तहाँ आये थे और स्थावर जंगम भूतोंने भी तहाँ आकर प्रजापालक महाकान्तिमान् वेनके पुत्र राजा पृथुका बड़े भारी राजाओंके राज्य पर अभिषेक किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ जब धर्मको जानने वालोंने महातेजस्वी और प्रतापी वेनके पुत्रका राजाओंके आदिराज्य (साम्राज्य) पद पर अभिषेक कर दिया ॥ २९ ॥ तब उसने पिताकी पीड़ित की हुई प्रजाको प्रसन्न किया, तब प्रजासे अनुराग करनेके कारण उसका राजा नाम पड़गया ॥ ३० ॥ जब यह समुद्रपर चलता था, उस समय जल स्तम्भित हो जाता था, और पर्वत इसके लिये मार्ग छोड़ देते थे, इस कारण इसकी ध्वजा (कभी) नहीं टूटती थी ॥ ३१ ॥ उसके शासनकालमें पृथ्वी विना जोते हुए ही अन्न देती थी और चिन्तवन करनेसे ही अन्न उत्पन्न होजाता था, गौएँ सब कामनाओंको पूर्ण करती थीं और प्रत्येक दोनोंमें मधु भरा रहता था ॥ ३२ ॥ इसही समय पितामहके शुभ यज्ञमें सोमको निकालनेके दिन सोमका अभिषव करते समय महाबुद्धिमान् सूत उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उस

समाहूतौ सुरर्षिभिः ॥ ३४ ॥ तावूचुर्ऋषयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः । कर्मैस्तदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥३५॥ तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ । आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥३६॥ न चास्य विद्वो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः।स्तोत्रं येनास्य कुर्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ३७ ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च भविष्ये स्तूयतामिति । यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः ॥ ३८ ॥ सत्यवाग्दानशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः । श्रीमान् जैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्ट-

---

ही महायज्ञमें बुद्धिमान् मागध उत्पन्न हुआ, देवता और ऋषियों ने पृथुकी स्तुति करनेके लिये उनको तहाँ बुलाया था ॥ ३४ ॥ सब ऋषियोंने उन दोनोंसे कहा, कि-इस पार्थिवकी स्तुति करनी चाहिये, तुम इसके कर्मोंके अनुसार इसकी स्तुति करो, यह राजा स्तुतिका पात्र है । ३५ । उस समय सूत और मागधोंने उन सब महात्माओंसे कहा, कि हम अपने कर्मोंसे देवता और ऋषियोंको प्रसन्न करते रहते हैं ॥ ३६ ॥ परन्तु इस राजाके लक्षण और यशको तो हम जानते ही नहीं, हे द्विजों! यदि हम जानते होते तो हम इस तेजस्वी राजाकी स्तुति करते ३७ तब ऋषियोंने उसके भविष्यके कर्मोंके लिये और जो कर्म उस महाबलीने पहिले (कल्पमें) किये थे उनकी स्तुति करनेके लिये उन दोनोंको नियुक्त किया (क्योंकि-प्रत्येक कल्पमें समान नाम रूप वाली एक सी ही सृष्टि होती है,लिखा भी है, कि- 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् -धाताने पूर्वकल्पकी समान चन्द्रमा और सूर्यकी कल्पना की" इसी बातको सूचित करनेके लिये यह बात कही है) । ३८ । यह सत्यप्रतिज्ञ नरेश्वर सत्य प्रतिज्ञा वाला राजा सच्ची वाणीका उच्चारण करने वाला दान देने वाला और सत्यप्रतिज्ञ है, लक्ष्मीवान् है, जय करने वाला

शासनः ॥ ३६ ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषणः । मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ ४० ॥ शमः शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृपः ततः प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय । आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥४१॥ तयोः स्तवैस्तैः सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः । अनूपदेशं सूताय मगधान् मागधाय च ॥ ४२ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाश्चाहुर्महर्षयः । वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वरः ४३ ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः । त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥ ४४ ॥ सोभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया । धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमार्दयद्बली ॥ ४५ ॥ ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही । तां पृथुर्धनुरादाय

है, क्षमाशील है पराक्रमी है और शासनकार्यको देखता रहने वाला है ३६ धर्मज्ञ कृतज्ञ दयावान् और प्रिय भाषण करने वाला है, मान्य है (दूसरोंका) मान करने वाला है, यजन करने वाला है सत्यप्रतिज्ञ है ४० शमसम्पन्न है, शान्त रहता है और यह राजा अपने व्यवहारमें लगा रहता है हे जनमेजय ! उस दिनसे लोकोंमें सूत मागध और वन्दियोंके द्वारा आशीर्वाद दिये जाते हैं ॥ ४१ ॥ प्रजाके ईश्वर पृथुने उनके उन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर सूतको अनूपदेश और मागधको मगध देश दे दिया ४२ इस बातको देख कर महर्षि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रजाओंसे कहा, कि-यह जनेश्वर (राजा) तुम्हें वृत्ति (आजीविका)देने वाला होगा ४३ हे महाराज ! महर्षियोंके ऐसा कहने पर प्रजा "तुम हमारी वृत्तिको बाँधो २" कहती हुई राजा वेन के पासको दौड़ी चली गई ४४ जब प्रजाने उसको उकसाया तब वह महाबली धनुष और बाणोंको उठा कर पृथ्वीको पीड़ित करने लगा ४५ तब तो पृथ्वी वेनके भयसे त्रस्त हो गौका रूप

द्रवन्तीमन्वधावत ॥ ४६ ॥ स लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा । प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥ ४७ ॥ ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् । महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥ ४८ ॥ अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ४९ उवाच वैन्यं नाधर्मं स्त्रीवधं कर्तुमर्हसि । कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्विना मया ॥ ५० ॥ मयि लोकाः स्थिता राजन् मयेदं धार्यते जगत् । मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिव विद्धि तत् ५१ न त्वमर्हसि मां हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि । प्रजानां पृथिवी पाल शृणु चेदं वचो मम ॥ ५२ ॥ उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः । उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा नृप५३

धारण कर भागने लगी, तब पृथु धनुष लेकर उस दौड़ती हुई के पीछे दौड़ा ४६ तब पृथ्वी वेनपुत्रके भयसे ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें गई परन्तु (उसने सर्वत्र ही) वेनपुत्र पृथुको हाथमे धनुप बाण धारण कर आगे खड़े हुए देखा ४७ जब उसको कहीं भी शरण नहीं मिली तब वह प्रज्वलित और तीक्ष्ण बाणों से अच्युत और देवताओंसे भी दुर्धर्ष महायोगी और महात्मा वेनके पुत्रकी ही शरणमें गई, और वह तीनों लोकोंकी पूजनीय पृथ्वी दोनों हाथ जोड़ कर वेनपुत्रसे कहने लगी, कि-तुम्हें स्त्री-वधरूप अधर्मका कार्य करना उचित नहीं है ४९-५० हे राजन्! सब लोक मुझमें स्थित हैं, मैं इस जगत् भरको धारण कर रही हूँ और हे पार्थिव! आप इस बातको जान रक्खें, कि-मेरा विनाश होने पर यह सब प्रजा नष्ट होजायगी ॥५१॥ हे पृथिवी-पाल! यदि तुम प्रजाओंका कल्याण करना चाहते हो तो तुम्हें मेरा वध करना उचित नहीं है, हे राजन्! तुम मेरी इस बात को सुनो ॥ ५२ ॥ सब कार्य उपायपूर्वक करनेसे सिद्ध होजाते

हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप। अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोपं महाद्युते ॥ ५४ ॥ अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि। सत्त्वेषु पृथिवीपाल न धर्मं त्यक्तुमर्हसि ५५ एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः। कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पृथुरुवाच। एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा। बहून् वै प्राणिनो लोके भवेत्तस्येह पातकम् ॥ १ ॥ सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे। तस्मिन्नास्ति हते भद्रे पातकं चोपपातकम् २ एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि। बहूनां

हैं, अतः हे नृप! तुम उस उपायका विचार करो जिससे तुम प्रजाको धारण कर सको ॥५३॥ हे नृप! तुम मेरा वध करके भी प्रजाको धारण न कर सकोगे, अतः हे महाद्युते! तुम अपने क्रोधको शान्त करो, तो मैं भी तुम्हारे अनुकूल होजाऊँगी ५४ तिर्यक्योनिके सत्त्वोंमें भी स्त्रियोंको अवध्य कहा है, अत एव हे पृथिवीपाल! तुम्हें धर्मका त्याग न करना चाहिये ॥ ५५ ॥ इस प्रकार अनेक वाक्योंको सुन कर धर्मात्मा और उदार मन वाला राजा पृथु अपने क्रोधको रोक कर वसुधासे इस प्रकार कहने लगा ॥ ५६ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ छ

पृथुने कहा, कि जो पुरुष एक व्यक्तिके लिये बहुतसे जीवों का वध करता है तो चाहें वह वध अपने लिये करता हो अथवा दूसरोंके लिये करता हो तो उसको पातक लगता है ॥१॥ और जिस अशुभ व्यक्तिके मारे जानेसे बहुतसे पुरुषोंको सुख मिलता है हे भद्रे! उसको मारनेसे न पातक लगता है और न उपपातक लगता है ॥ २ ॥ और जिस दुष्टताका वर्ताव करने वाले

भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः ३ सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुन्धरे । यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ४ त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् । आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता स्वयम् ॥ ५ ॥ सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतांम्वरे । संजीवय प्रजाः सर्वाः समर्था ह्यसि धारणे६ दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम् । नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥ ७ ॥ पृथिव्युवाच । सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः । उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ॥ ८ ॥ उपायं पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजा इमाः । वत्सं तु मम संपश्य क्षरेयं येन वत्सला ॥ ९ ॥ समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां

एक पुरुषका वध करने पर बहुतसे मनुष्योंका कल्याण होता है, वहाँ उसका वध करना पुण्य देता है ॥ ३ ॥ हे वसुन्धरे ! यदि तू जगत्का हित करने वाले मेरे वचनको नहीं सुनेगी तो मैं प्रजाके लिये तेरा वध कर डालूँगा ॥ ४ ॥ आज मैं अपने शासनसे पराङ्मुख रहने वाली तुझको मार कर अपने देहको विस्तीर्ण कर उस पर प्रजाको धारण करूँगा ॥५॥ इस कारण धर्मधारिणियोंमें श्रेष्ठ ! तू मेरे शासनको मान कर सब प्रजाको जीवित रख, क्योंकि-तू प्रजाको धारण करने (जीवित रखने) में समर्थ है ॥६ ॥ अब यदि तू मेरी पुत्री बन जायगी तो ही मैं तेरे वधके लिये उठाये हुए इस घोर आकारवाले बाणको रक्खूँगा ॥७॥ पृथ्वीने कहा, कि-हे वीर ! मैं सब बात तुम्हारे कथनानुसार करूँगी, इसमें आप कुछ सन्देह न रखिये, सब कार्य उपाय करने पर अवश्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥ अब तुम अपनी दिव्यदृष्टिसे उस उपायको देखो कि-जिस उपायसे तुम प्रजाओंको धारण कर सकोगे, अब आप मेरे लिये दिव्यदृष्टिसे वत्सकी कल्पना करिये तब मैं स्नेहसे वत्सला बन कर दुग्धको

वर । यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच । तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः । धनुः कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्धिताः ॥ ११ ॥ पृथुर्वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समन्ततः । मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद्वसुन्धरा ॥ १२ ॥ स्वभावेनाभवन् ह्यस्याः समानि विषमाणि च । चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल ॥ १३ ॥ न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले । प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत् ॥ १४ ॥ न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः । न वै सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः ॥ १५ ॥ वैवस्वतेऽन्तरे चास्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते । वैन्यात् प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ १६ ॥ यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासी-

दूँगी ९ हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! आप मुझे सर्वत्र सम (चौरस) करिये, कि-जिससे मेरा टपकता हुआ दूध सर्वत्र (व्याप्त) होजाय ॥ १० ॥ वैशंपायनजीने कहा, कि-तव वेनपुत्र पृथुने धनुषकी अनीसे सैंकड़ों और सहस्रों पर्वतोंको उठा कर (ईंटों की दीवारकी समान) उनको खड़ा कर दिया, इससे पर्वत बड़े होगए ॥ ११ ॥ इस प्रकार वेनके पुत्र राजा पृथुने पृथ्वीको (चारों ओरसे) चौरस कर दिया, पहिले मन्वन्तरोंमें तो पृथ्वी विषम (ऊँची नीची) थी ॥ १२ ॥ पहिले चाक्षुप मन्वन्तरमें इस पृथिवीके प्रदेश स्वभावतः ऊँचे नीचे थे ॥ १३ ॥ पहिले सर्गमें पृथिवीके विषम होनेके कारण नगर और ग्रामोंका विभाग नहीं हुआ था ॥ १४ ॥ उस समय न किसी प्रकारके धान्य थे, न गोरक्षा होती थी और न खेती होती थी, न सत्य और मिथ्या से मिला हुआ (वाणिज्य) होता था, न उस समय लोभ था और न मत्सर था ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस वैवस्वत मन्वन्तर में ही राजा पृथुके पुत्र वेनसे ही यह सब वस्तुएँ उत्पन्न हुई

द्विहानघ । तत्र तत्र प्रजाः सर्वाः संवासं समरोचयन् ॥ १७ ॥ आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा । कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥ १८ ॥ संकल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम् । स्वपाणौ पुरुषश्रेष्ठ दुदोह पृथिवीं ततः । सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥१९॥ तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः । ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । वत्सः सोमोऽभवत्तेषां दोग्धा चाङ्गिरसः सुतः ॥ २० ॥ बृहस्पतिर्महातेजाः पात्रं छन्दांसि भारत । क्षीरमासीदनुपमं तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥ २१ ॥ पुनर्देवगणैः सर्वैः पुरन्दरपुरोगमैः। काञ्चनं पात्रमादाय दुग्धेयं श्रूयते मही ॥ २२ ॥ वत्सस्तु मघवानासीद् दोग्धा च सविता प्रभुः । क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः ॥२३॥ पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।

हैं ॥ १६ ॥ हे अनघ ! जहाँ २ यह भूमि सम होगई प्रजा तहाँ २ रहना अच्छा समझने लगीं ॥ १७ ॥ वेनपुत्रके भूमि को दुहनेसे पहिले प्रजाओंको आहार फल और मूल बड़ी कठिनतासे मिलता था ॥ १८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! वेनके पुत्र प्रतापी पृथुने प्रभु स्वायंभुव मनुको बछड़ा बना कर पृथिवीसे सब प्रकार के धान्योंको अपने हाथमें दुहा १९ हे तात! उस दिनसे सब प्रजाएँ उस ही अन्नसे आज तक बढ़ रहीं हैं,सुना है,कि-फिर ऋषियोंने पृथिवीको दुहा था उस समय सोम उनका बछड़ा हुआ और महातेजस्वी अङ्गिराके पुत्र बृहस्पति दुहने वाले बने, और छन्द (वेद) पात्र बने, और तप और शाश्वत ब्रह्म अनुपम दुग्ध हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ हमने सुना है, कि–फिर इन्द्र आदि सब देवताओंने सुवर्णका पात्र लेकर इस पृथिवीको दुहा था ॥२२॥ इस समय इन्द्र बछड़ा बना और प्रभु सूर्य दुहने वाले बने और अमृतरूपी क्षीर निकला उससे देवता अपनी गुजर करते हैं २३

राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः ॥ २४ ॥ यमो वैवस्वतस्तेपामासीद्वत्सः प्रतापवान् । अन्तकश्चाभवद्दोग्धा कालो लोकप्रकालनः ॥२५॥ नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम् । अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम ॥ २६ ॥ तेपामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान।नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते ॥ २७ ॥ तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विपोल्वणाः । तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ॥ २८ ॥ असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिवर्हिणीम् ॥ २९ ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेपामभूत्तदा । ऋत्विक् द्विमूर्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ॥ ३० ॥ तयैते माययाद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुरा । वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेपाममितं बलम् ॥ ३१ ॥ यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुन्धरां ।

सुना है,कि-फिर अमितपराक्रमी पितरोंने चाँदीका पात्र लेकर स्वधा(पितृयन्न) को दुहा था २४ प्रतापी यम उनका वत्स वना और लोकोंको खदेड़ने वाला काल अन्तक उनका दुहने वाला था । २५ । हे नरोत्तम ! यह सुना जाता है, कि-नागोंने तक्षक को वत्स वना कर अलाबु (रामतुरई) के पात्रको लेकर विष-रूपी क्षीरको दुहा था २६ और हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! उन नाग और सर्पोंका प्रतापी धृतराष्ट्र दोग्धा (दुहने वाला) वना था२७ तीव्रविष वाले महाशरीर सर्प उससे ही वर्ताव करते हैं उसका ही आहार करते हैं उससे आचरण करते हैं और उसके ही वीर्यका आश्रय करके रहते हैं ॥ २८ ॥ यह सुना है, कि-फिर असुरोंने लोहेका पात्र लेकर शत्रुओंका नाश करने वाली माया को पृथिवीसे दुहा था २९ उस समय प्रल्हादका पुत्र विरोचन उनका वछड़ा वना था, और दानवोंका ऋत्विक् दो शिरवाला मधु नामक महाबली दैत्य दोग्धा वना था ३० अमित बुद्धि वाले

आमपात्रे महाराज पुरान्तर्धानमक्षयम् ॥ ३२ ॥ वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा। दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य यः ॥ ३३ ॥ यक्षानुजो महातेजास्त्रिशीर्षः सुमहातपाः । तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ ३४ ॥ राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । शावं कपालमादाय प्रजा भोक्तुं नरर्षभ ३५ दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत् कुरूद्वह ।वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च ॥ ३६ ॥ तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्चामरोपमाः । वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसंघास्तथैव च ॥ ३७ ॥ पद्मपत्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः । वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धान् नरर्षभ ॥३८॥ तेषां च सुरुचिस्त्वासीद् दोग्धा भरत-

मायावी असुर आज कल भी उस ही मायासे काम लेते हैं, यही उनका अमित बल है ३१ तात ! फिर सुना है, कि–यक्षोंने वसुन्धरासे कच्चे पात्रमें अक्षय अन्तर्धान (गुप्त होनेकी विद्या) को दुहा था ३२ उस समय यक्ष और राक्षसोंने वैश्रवण कुवेर को वत्स बनाया था, और मणिवरके पिता रजतनाभ उस समय दोग्धा बने थे ३३ उन यक्षोंके छोटे भाई महातपस्वी रजतनाभ के तीन शिर हैं, उस अन्तर्धान विद्यासे वे यक्ष दूसरेके शरीरमें प्रवेश करके अप्रत्यक्षरूपसे रहते हैं, इस बातको परमर्षिने कहा है ३४ फिर राक्षसोंने और पिशाचोंने मुरदेकी खोपड़ी लेकर अपनी सन्तानको तृप्त करनेके लिये हे नरर्षभ ! वसु (धन) को धारण करने वाली पृथिवीको दुहा था ३५ हे कुरूद्वह ! रजतनाभ उनका दोग्धा बना था, और सुमाली बछड़ा हुआ था, हे कौरव्य! उनका क्षीर रुधिर था ३६ देवताओंकी समान यक्ष राक्षस और पिशाच और भूतोंकी टोलियें उस क्षीरसे अपनी आजीविका चलाती हैं ३७ हे नरर्षभ ! फिर अप्सरा और गन्धर्वोंने पद्मपत्रमें चित्ररथको वत्स बना कर पवित्र गन्धोंको वसुधासे दुहा

सत्तम । गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ॥ ३९ ॥
शैलैश्च श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । औषधीर्वै मूर्तिमती
रत्नानि विविधानि च ॥ ४० ॥ वत्सस्तु मघवानासीन्मेरुर्दोग्धा
महागिरिः । पात्रन्तु शैलमेवासीत्तेन शैलाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४१ ॥
वीरुद्भिः श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । पालाशं पात्रमादाय
दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ॥४२॥ दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षो-
ऽभवत्तदा । सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा ॥४३॥
चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च । सर्वकामदुघा दोग्ध्री
सर्वसस्यप्ररोहिणी ॥ ४४ ॥ आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति
परिश्रुता । मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसाभिपरिप्लुता ॥ ४५ ॥

था ३८ हे भरतसत्तम! सूर्यकी समान तेजस्वी अतिबली महात्मा गन्धर्वराज सुरुचि उनका दोग्धा बना था ३९ हे राजन्! सुना है, कि पर्वतोंने पृथिवीसे औषधि और नानाप्रकारके मूर्त्तिमान् रत्नोंको दुहा था ४० उस समय हिमाचल पर्वत वत्स बना था और महागिरि मेरु दोग्धा बना था और शैलका ही पात्र बनाया गया था, इसीसे शैल (पर्वत) प्रतिष्ठित हैं ४१ हे राजन्! फिर सुना है, कि-जिसकी नोक तोड़ डाली गई थी और जला दी गई थी ऐसे पलाशमय पात्रको लेकर लताओंने पृथिवीको दुहा था ४२ उस समय खिले हुए सालने दुहा था और पिलखन बछड़ा बना था इस प्रकार यह पृथिवी धात्री अर्थात् माताकी समान पोषण करने वाली है और विधात्री भी है अर्थात् सबका अपनेमें उपसंहार करने वाली है ४३ और यह सकल चराचरों की प्रतिष्ठा और उत्पत्तिस्थान है, सब कामोंको देने वाली है और सब प्रकारके धान्योंको उत्पन्न करने वाली है ४४ पहिले यह समुद्र तककी सारी पृथिवी मधु और कैटभके मेदसे भर भर रही थी, अत एव ब्रह्मवादी पुरुष इसको मेदिनी देवी कहते

ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भारत । दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते । पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा ॥ ४६ ॥ सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी । एवम्प्रभावो वैन्यः स राजाऽऽसीद्राजसत्तमः ॥ ४७ ॥ नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः । ब्राह्मणैश्च महाभागै-र्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४८ ॥ पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः । पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमभीप्सुभिः ॥४९॥ आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् । योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि ॥ पृथुरेव नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥ ५० ॥ यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम् ।

है ४५ हे भारत ! फिर वेनके पुत्र पृथुके पुत्रीरूपमें अङ्गीकार करनेसे यह देवी उसकी पुत्री बन जानेके कारण पृथ्वी कहलाती है; इस पृथिवीको पृथुने शुद्ध किया था और इसके विभाग किये थे ४६ और इसको सस्योंके आकर (खान) वाली कर दिया था और इसको राजधानी और व्यावहारिक नगरों वाली बना दिया था, वह राजसत्तम राजा पृथु ऐसे प्रभाव वाला था, प्राणियोंको अवश्य ही उसकी पूजा करनी चाहिये और उसको प्रणाम करना चाहिये और वेद वेदाङ्गके पारगामी महात्मा ब्राह्मणोंको भी ऐसा ही करना चाहिये ॥ ४८ ॥ ब्रह्मयोनि (अग्निवंशज) सनातन (विष्णुरूप) पृथु प्रणाम करने योग्य है पृथिवीके स्वामित्वको चाहने वाले महाभाग पार्थिवोंको राजाओंमें प्रथम वेनपुत्र प्रतापी पृथुको प्रणाम करना चाहिये और युद्धमें जीतना चाहने वाले विक्रमी योधाओंको भी योधाओंमें अग्रणी राजा पृथुको प्रणाम करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जो योधा राजा पृथुका कीर्तन करके रणमें जाता है वह पुरुष भयङ्कर संग्रामको कुशलपूर्वक

स घोररूपान् संग्रामान् क्षेमी तरति कीर्तिमान् ॥ ५१ ॥ वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैः पुण्यवृत्तिमनुष्ठितैः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥ ५२ ॥ तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः । आदिराजो नमस्कार्यः श्रेयः परमभीप्सुभिः ॥५३॥ एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च । पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि ते ॥ ५४ ॥ य इदं शृणुयान्नित्यं पृथोश्चरितमादितः । पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदते सुचिरं भुवि ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जनमेजय उवाच । मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन। तेषां सृष्टिं विसृष्टिं च वैशम्पायन कीर्तय ॥ १ ॥ यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च । मन्वन्तरमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि

तर जाता है ॥ ५१ ॥ पुण्यमार्गका आश्रय लेने वाले धनवान् वैश्योंको भी वृत्ति (आजीविका) देनेवाले महायशस्वी पृथु को प्रणाम करना चाहिये ॥ ५२ ॥ इसी प्रकार तीनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले और परम कल्याणको चाहनेवाले पवित्र शूद्रों को भी पहिले राजा पृथुको प्रणाम करना चाहिये ॥५३॥ मैंने तुमसे इन बछड़ोंका, पात्रोंका, दुहने वालोंका और दुग्धोंका वर्णन करदिया अब मैं तुमसे और किस बातका वर्णन करूँ ५४ जो पुरुष इस पृथुचरित्रको आरम्भसे सुनता है, वह पुरुष पृथिवी पर बहुत समय तक पुत्र पौत्रोंके साथ चिरकाल तक आनन्द करता है ॥ ५५ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ

जनमेजयने कहा, कि—हे तपोधन वैशम्पायनजी ! आप मुझसे सब मन्वन्तरोंका और उनकी सृष्टि तथा विलीन होनेका वृत्तान्त कहिये १ हे ब्रह्मन् ! जितने मनु होते हैं और जितने समय तक मन्वन्तर रहता है उसको मैं तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

तत्त्वतः ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । न शक्यो विस्तरस्तात वक्तुं वर्षशतैरपि । मन्वन्तराणां कौरव्य संक्षेपं त्वेव मे शृणु ३ स्वायंभुवो मनुस्तात मनुः स्वारोचिषस्तथा । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥४॥ वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते । सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥ तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनवः स्मृताः । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ६ ॥ कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम् । ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान् देवगणांस्तथा ॥ ७ ॥ मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः । पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ ८ ॥ उत्तरस्यां दिशि तथा राजन् सप्तर्षयोऽपरे । यामा नाम तथा देवा आसन् स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ ६ ॥ आग्नीध्रश्चाग्नि-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे कुरुवंशी तात ! मन्वन्तरोंके विस्तार का तो सौ वर्षमें भी कीर्तन नहीं किया जासकता, अतः तुम संक्षेपसे मुझसे सुनो ॥ ३ ॥ हे कौरव्य तात ! स्वायंभुवमनु तथा स्वारोचिष मनु उत्तम,तामस,रैवत और चाक्षुष मनु (बीत गए हैं) और वर्तमान (सातवें) मनु वैवस्वत कहलाते हैं (अब भविष्यके मन्वन्तरोंका वर्णन करते हैं)सावर्णि मनु भौत्य मनु रौच्य मनु और चार मेरुसावर्णि मनु कहे हैं (ब्रह्मसावर्णि रुद्रसावर्णि मेरुसावर्णि और दक्षसावर्णि ये चारों मेरुपर्वत पर तप करके सिद्ध होगए हैं इसलिये ये चारों मेरुसावर्णि कहलाते हैं) हे तात ! मैंने भूत भविष्यत् और वर्तमान मनुओंका शास्त्रानुसार वर्णन कर दिया, अब मैं उनके ऋषि पुत्र और देवताओंका वर्णन करता हूँ ॥४-७॥ हे राजन् ! स्वायंभुव मन्वन्तर में मरीचि भगवान् अत्रि अङ्गिरा पुलह क्रतु पुलस्त्य वसिष्ठ ये सात ब्रह्माजीके पुत्र थे हे राजन् ! ये सप्तर्षि थे और याम नामक देवता उत्तर दिशामें, रहने थे ॥८-६॥ और स्वायम्भुव

बाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः। ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ॥१०॥ मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः। एतत्ते प्रथमं राजन् मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ११ ॥ और्वो वशिष्ठ-पुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च। प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तो निश्च्यवनस्तथा ॥ १२ ॥ एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रताः। देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेन्तरे ॥ १३ ॥ हविध्रः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मयः। प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ॥ १४ ॥ स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः। कीर्तिताः पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमाः ॥ १५ ॥ द्वितीयमेतत् कथितं तव मन्वतरं मया। इदं तृतीयं वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥ १६ ॥ वशिष्ठपुत्राः सप्तासन् वाशिष्ठा इति विश्रुताः। हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम महौजसः ॥ १७ ॥

मनुके आग्नीध्र अग्निबाहु मेधा मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य सवन और पुत्र (नाम वाले) दश महाबली पुत्र थे, हे राजन्! मैंने तुमसे यह पहिले मन्वन्तरका वर्णन कर दिया ११ हे तात! वायुने स्वारोचिष मन्वन्तरमें वसिष्ठके पुत्र और्व स्तम्ब कांश्यप प्राण बृहस्पति दत्त और निश्च्यवन ये सात महाव्रत-धारी ऋषि बतलाये हैं और तुषित नाम वाले देवता कहे हैं १२-१३ हे तात! महात्मा स्वारोचिष मनुके महावीर्यवान् और पराक्रमी हविध्र सुकृति ज्योति आप मूर्त्ति अयस्मयं प्रथित नभस्य नभ और ऊर्ज नामक पुत्र हुए थे इनका तुमसे कीर्तन कर दिया। १४। १५। हे तात! मैंने तुमसे यह दूसरे मन्वन्तरका वर्णन कर दिया, हे राजन्! अब मैं तुमसे तीसरे मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, उसको तुम सुनो ॥ १६ ॥ उत्तम नामक मन्वन्तरमें वसिष्ठजीके सात पुत्र थे वे वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध थे, वे पहिले हिरण्यगर्भके पुत्र थे और उन महाबलोंका नाम ऊर्जा था, इस प्रकार मैंने

ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ताः कीर्त्यमानान्निबोध मे । औत्तमेयान्
महाराज दशपुत्रान् मनोरमान् ॥ १८ ॥ ईष ऊर्जस्तनूजश्च
मधुर्माधव एव च । शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च १९
भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् । मन्वन्तरचतुर्थन्ते कथ-
यिष्यामि तच्छृणु ॥ २० ॥ काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जन्युर्धामा च
भारत । कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥ २१ ॥ पुराणे
कथितास्तात पुत्राः पौत्राश्च भारत । सत्या देवगणाश्चैव ताम-
सस्यान्तरे मनोः ॥ २२ ॥ पुत्रांश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनो-
र्नृप । द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलस्तपोधनः ॥ २३ ॥ तपो-
रतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परन्तपः । तामसस्य मनोरेते दश
पुत्रा महाबलाः ॥२४॥ वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चमं तदनन्तरम् ।
वेदबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥ २५ ॥ हिरण्यरोमाः

ऋषियोंको कह दिया, हे महाराज ! अब तुम उत्तम मनुके दश
मनोहर पुत्रोंको मेरे कहनेसे सुनो;ईष उर्ज तनूज मधु और माधव
शुचि शुक्र सह नभस्य और नभ ये सात उनके पुत्र थे और उस
मन्वन्तरमें भानु नामक देवता थे,इस प्रकार(यह तीसरा) मन्व-
न्तर कह दिया अब मैं तुमसे चौथे मन्वन्तरको कहता हूँ, उसको
तुम सुनो ॥ १७–२० ॥ उस तामस नामक मन्वन्तरमें काव्य
पृथु अग्नि जन्यु धामा कपीवान् और अकपीवान् नामक सात
ऋषि थे ॥ २१ ॥ हे भारत ! पुराणोंमें तामसमन्वन्तरके पुत्र
और पौत्रोंका कीर्तन है और सत्य नामक देवता बताए हैं २२
हे नृप ! अब मैं तुमसे तामस मनुके पुत्रोंका कीर्तन करता हूँ,
तामस मनुके द्युति तपस्य सुतपा तपोमूल तपोधन तपोरति
अकल्माष तत्वी धन्वी और परन्तप नामक दश महाबली पुत्र
थे ॥२३॥ इन सबका वायुने वर्णनकिया है, हे महाराज ! अब
पञ्चम मन्वन्तरका कीर्तन करते हैं, उस मन्वन्तरमें वेदबाहु यदुध्र

पर्जन्य ऊर्ध्ववाहुश्च सोमजः । सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥२६॥ देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे । परिसवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥२७॥ अथ पुत्रानिमांस्तस्य निबोध गदतो मम । धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥ २८ ॥ अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृती । रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥ २९ ॥ षष्ठन्ते संप्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप । भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुदामा विरजास्तथा ३० अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः । चाक्षुषस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमान् शृणु ॥३१॥ आद्याः प्रभूता ऋषयः पृथग्भावा दिवौकसः । लेखाश्च नाम राजेन्द्र पञ्च देवगणाः स्मृताः । ऋषेरंगिरसः पुत्रा महात्मानो महौजसः ॥ ३२ ॥ नाड्वलेया महाराज दश पुत्राश्च विश्रुताः । ऊरुप्रभृतयो राजन् षष्ठं मन्व-

---

मुनि—वेदशिरा हिरण्यरोमा पर्जन्य सोमपुत्र ऊर्ध्ववाहु औरअत्रि-पुत्र सत्यनेत्र ये सात ऋषि थे और उस मन्वन्तरमें रजोगुण-रहित देवता थे और पारिसव्य और रैभ्य नामक देवता थे२४-२७ अब तुम मुझसे उनके पुत्रोंको सुनो,धृतिमान् अव्यय युक्त तत्त्व-दर्शी निरुत्सुक अरण्य प्रकाश निर्मोह सत्यवाक् कृती ये रैवत मनुके पुत्र हैं, यह पञ्चममन्वन्तरका वर्णन कर दिया, इसके उप-रांत हे नराधिप ! अब मैं तुमसे छठे मन्वन्तरका कीर्तन करता हूँ, उस समय भृगु नभ विवस्वान् और सुधामा और विरजा अतिनामा तथा सहिष्णु ये सात महर्षि थे, हे तात ! अब तुम चाक्षुष मन्वन्तरके इन देवताओंको सुनो॥२८–३१॥आद्य प्रभूत ऋषि पृथग्भाव और लेखा नामक स्वर्गमें रहने वाले पाँच देवता थे, ये सब अङ्गिरा ऋषिके पुत्र थे, महात्मा थे और महाबल-वान् थे और नड्वलाके पुत्र थे अर्थात् इनकी माताका नाम नड्-वला था और हे राजन् ! इस मनुके ऊरु आदि दस प्रसिद्ध पुत्र

न्तरं स्मृतम् ॥ ३३ ॥ अत्रिर्वशिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महा-
नृषिः । गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ ३४ ॥ तथैव
पुत्रो भगवान् ऋचीकस्य महात्मनः । सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः
सांप्रतं दिवि ॥ ३५ ॥ साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसव-
स्तथा । आदित्या चाश्विनौ चापि देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ ॥३६॥
मनोर्वैवस्वतस्यैते वर्तन्ते सांप्रतेऽन्तरे । इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव
दश पुत्रा महात्मनः ॥ ३७ ॥ एतेषां कीर्तितानां तु महर्षीणां महौ-
जसाम् । राजपुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३८ ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिशः सप्तसप्तकाः । स्थिता लोकव्यवस्थार्थं
लोकसंरक्षणाय च ॥३९॥ मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका
गणाः । कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ४० ॥
ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानमापूरयन्त्युत । अतीता वर्तमानाश्च

हैं, हे राजन् ! इस प्रकार छठा मन्वन्तर कह दिया ॥३२-३३॥
और इस वर्तमान समयमें स्वर्गमें अत्रि भगवान् वसिष्ठ महर्षि
कश्यप गौतम भरद्वाज विश्वामित्र और सातवें महात्मा ऋचीक
के पुत्र जमदग्नि ये सात प्रसिद्ध हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ साध्य रुद्र
विश्वेदेवा मरुत् वसु आदित्य और अश्विनीकुमार ये देवता
वैवस्वत कहलाते हैं और इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरमें वर्त
मान हैं और इस महात्मा वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि दश
पुत्र हैं ॥३६॥३७॥ उपरिवार्णित अमित ओजवाले महर्षियोंके
राजपुत्र और पौत्र सब दिशाओंमें व्याप्त हैं ॥ ३८॥ सब मन्व-
न्तरोंमें उडश्वास पवन पूर्वकल्पकी समान लोकोंकी व्यवस्था
करनेके लिये और लोकोंकी रक्षा करनेके लिये स्थित रहते हैं३९
और प्रत्येक मन्वन्तरके व्यतीत होने पर अट्ठाईस पवन अपने
कर्मको (पूर्ण) करके स्वर्गमें अनामय ब्रह्मलोकको प्राप्त
होजाते हैं ॥ ४० ॥ तब दूसरे वायु तपोबलसे मन्वन्तरके

क्रमेणैतेन भारत ॥ ४१ ॥ एतान्युक्तानि कौरव्य सप्तातीतानि भारत । मन्वन्तराणि षट् चापि निबोधानागतानि मे ॥ ४२ ॥ सावर्णा मनवस्तात पञ्च तांश्च निबोध मे । एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥ ४३ ॥ परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गताः । दक्षस्यैते हि दौहित्रा प्रियायास्तनया नृपा महान्तस्तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥ ४४ ॥ रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः । भूत्यां चोत्पादितो देवयां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥ ४५ ॥ अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः । मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह तान् शृणु ॥४६॥ रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः । भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥ ४७ ॥ गौतमस्यात्मजश्चैव शारद्वान्नाम गौतमः ।

अन्तमें उनके पद पर आरूढ होकर उनके स्थानको पूर्ण कर देते हैं (इस वातसे यह सूचित किया है, कि-कर्मियोंकी भी परम्परासे मुक्ति होजाती है) वीते हुए और वर्तमान सात (तथा एक भविष्यका इस प्रकार आठ) मन्वन्तरोंका वर्णन कर दिया, अब भविष्यके छ मन्वन्तरोंको तुम मुझसे सुनो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे तात ! सावर्णि मनु पाँच है, उनमें एक वैवस्वत हैं और चार प्रजापति परमेष्ठीके पुत्र हैं और ये दक्षके धेवते हैं तथा प्रियाके पुत्र हैं और मेरुपर्वत पर वड़ा भारी तप करके ये महा ओज वाले मनु मेरुसावर्णि नामको प्राप्त होगए हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ प्रजापति रुचिके पुत्र रौच्य मनु कहलाते हैं और रुचिके पुत्र भूतिमें उत्पन्न होनेसे भौत्य मनु कहलाते हैं ॥ ४५ ॥ अब मन्वन्तर सावर्णिके जो सात अनागत (भविष्यत्) सप्तर्षि स्वर्गमें विराजमान हैं, उन (अष्टम मन्वन्तर) के ऋषियोंको तुम सुनो ॥ ४६ ॥ राम व्यास अत्रिपुत्र दीप्तिमान् भरद्वाजगोत्री महाकान्तिमान् द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और

कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च ॥ ४८ ॥ एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः । ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ४९ ॥ अभिजात्याथ तपसा मन्त्रव्याकरणै-स्तथा । ब्रह्मलोक प्रतिष्ठास्तु स्मृताः सप्तर्षयोऽमलाः ॥ ५० ॥ भूतभव्यभवज्ज्ञानंबुद्ध्वा चैव तु ये स्वयम् । तपसा वै प्रसिद्धा ये संगताः प्रविचिन्तकाः ॥ ५१ ॥ मन्त्रव्याकरणाद्यैश्च ऐश्व-र्यात् सर्वशश्च ये । एतान् भार्यान् द्विजो ज्ञात्वा नैष्ठिकानि च नाम च ॥ ५२ ॥ एष ते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः । दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः ॥ ५३ ॥ बुद्ध्या प्रत्यक्ष-धर्माणो गोत्रप्रावर्तकास्तथा । कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः ॥ ५४ ॥ प्रावर्तयन्ति ते वर्णानाश्रमांश्चैव सर्वशः । सप्त-

---

गौतमके पुत्र शरद्वान् नामक गौतम (कृपाचार्य) कौशिक गालव और कश्यपगोत्री रुरु ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ये ब्रह्माजीकी समान धन्यवाद देनेके योग्य भविष्यके सात मुनिसत्तम महात्मा सप्तर्षि कहे ४९ कहा है, कि—ये जन्म तप मन्त्र और व्याकरणसे निर्मल सात ऋषि ब्रह्मलोकमें रहते हैं ५० ये ऋषि अपने तपसे भूत भविष्य और वर्तमान कालके सब वृत्तान्तको जान कर प्रसिद्ध होगए हैं और एकत्रित होकर विचार करते रहते हैं ५१ और ये मन्त्र व्याकरण और ऐश्वर्यके कारण भी (सर्वत्र प्रसिद्ध हैं) ब्राह्मण इन भरण करने वाले ऋषियोंको और इनके नैष्ठिक नामोंको जानकर (कल्याण पाता है) ॥ ५२ ॥ ये सातों अपने सात गुणोंसे सप्तर्षि कहलाते हैं, ये दीर्घायु हैं, मन्त्रद्रष्टा हैं, ईश्वर हैं और दूरदर्शी हैं ५३ और अपनी बुद्धिसे सबको प्रत्यक्ष देखनेके धर्म वाले हैं, और गोत्रप्रवर्तक (गोत्रके चलाने वाले) हैं, ये सत्यधर्ममें परायण रहने वाले महाभाग सप्तर्षि सब सत्ययुग आदि युगोंमें सर्वत्र (ब्राह्मण आदि चारों

र्षयो महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ५५ ॥ तेषां चैवान्वयो-
त्पन्ना जायन्तीह पुनः पुनः । मन्त्रब्राह्मणकर्तारो धर्मे प्रशिथिले
तथा ॥ ५६ ॥ यस्माच्च वरदाः सप्त परेभ्य एव याचिताः ।
तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने ॥ ५७ ॥ एष सप्त-
र्षिकोद्देशो व्याख्यातस्ते मया नृप।सावर्णस्य मनोः पुत्रान्भविष्या-
ञ्छृणु सत्तम ॥ ५८ ॥ वरीयांश्चावरीयांश्च सम्मतो धृतिमान्
वसुः । चरिष्णुरप्रधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च । सावर्णस्य
मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत॥ ५९ ॥ प्रथमे मेरुसावर्णे प्रव-
क्ष्यामि मुनीञ्छृणु । मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव
च ॥ ६० ॥ ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव द्युतिमानंगिरास्तथा सवन-
श्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहन ॥ ६१ ॥ पौलहः सत्य इत्येते

वर्णोंको और (ब्रह्मचर्य आदि चारों) आश्रमोंको प्रवृत्त करते हैं । ५४ । ५५ । ये मन्त्रभाग और ब्राह्मणभागके प्रवर्तक धर्मके शिथिल होने पर जिन वंशोंमें उत्पन्न हुए होते हैं उन ही वंशों में बारम्बार प्रकट होते हैं ॥५६॥ ये सातों वर देने वाले हैं और दूसरे पुरुष इनसे याचना करते हैं अत एव इन ऋषियोंके सम्बन्धमें विचार करने पर इनका समय नहीं बताया जासकता है, न इनकी अवस्थाका परिमाण बताया जासकता है ५७ हे राजन्! मैंने तुमसे यह सप्तर्षियोंकी बात कही, अब हे सत्तम! तू सावर्णि मनुके होने वाले पुत्रोंको सुन ५८ हे भारत! वरीयान् अवरीयान् सम्मत धृतिमान् वसु चरिष्णु अधृष्णु वाज और सुमति (एक और) ये दश सावर्णि मनुके भविष्यत् पुत्र हैं ५९ अब मैं प्रथम मेरुसावर्णिके ऋषयोंको कहता हूँ, उनको तुम सुनो, पुलस्त्यवंशी-मेधातिथि कश्यपगोत्री-वसु ज्योतिष्मान्-भार्गव और द्युतिमान्-वसिष्ठपुत्र-सवन और अत्रिपुत्र-हव्यवाहन और पुलहपुत्र-सत्य ये सात मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं

मुनयो रोहितेन्तरे। देवतानां गणास्तत्र त्रय एव नराधिप ॥६२॥ दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः। मनोः पुत्रो धृष्टकेतुः पञ्चहोत्रो निराकृतिः ॥६३॥ पृथुः श्रवा भूरिधामा ऋर्चाकोष्ठहितो गयः। प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः॥ ६४ ॥ दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः। हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः। आपो मूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः॥ ६५ ॥ पौलस्त्यः प्रामतिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः। अङ्गिरा नभसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः॥ ६६ ॥ देवतानां गणौ द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृताः। मनोः सुतोत्तमौजाश्च निकुषञ्जश्च वीर्यवान् ॥ ६७ ॥ शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः। भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दश त्वेते मनोः सुताः ॥६८॥ एकादशेऽथ पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनोः। तस्य सप्त ऋषींश्चापि कीर्त्य-

और उस मन्वन्तर देवताओंके तीन गण थे ॥ ६०-६२ ॥ वे दक्षके पुत्र रोहित प्रजापतिके पुत्र हैं, धृष्टकेतु पञ्चहोत्र निराकृति पृथु श्रवा भूरिधामा ऋर्चाक कोष्ठहत गय,प्रथम सावर्णिके ये नौ महाबलवान् पुत्र हैं ॥ ६३॥६४॥ दशवें और दूसरे दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें पुलहगोत्री हविष्मान् भृगुवंशी सुकृति अत्रिगोत्री आपोमूर्त्ति और वसिष्ठ पुत्र अष्टम और पुलस्त्यवंशी प्रामति और कश्यपवंशी नभोग और अङ्गिरावंशी नभसके पुत्र सत्य ये सात परमर्षि होंगे ॥ ६६ ॥ और उस समय (दक्षिणमार्गके अभिमानी अग्नि और उत्तर मार्गके अभिमानी धूम ये) दो देवताओंके गण होंगे और मन्त्रप्रतिपाद्य देवता भी होंगे, और मनोः सुत निकुषञ्ज वीर्यवान् शतानीक निरामित्र वृषसेन जयद्रथ भूरिद्युम्न तथा सुवर्चा ये दश मनुके पुत्र होंगे ऐसा कहा है६७।६८। एकादशमन्वन्तरके और तीसरे रुद्रसावर्णि मन्वन्तरके ऋषि और देवताओंको भी मेरे कीर्तन करनेसे सुनो ॥ ६९ ॥ उस समय

मानान्निबोध मे ॥६९॥ हविष्मान् काश्यपश्चापि हविश्मान्यश्च भार्गवः । तरुणश्च तथात्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा ॥ ७० ॥ अङ्गिराश्चोदष्णिश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा । पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः ॥ ७१ ॥ ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्तेषां त्रयः स्मृताः । संवर्तकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः ॥ ७२ ॥ क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदर्शः पण्डको मनुः । सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः ॥७३॥ चतुर्थस्य तु सावर्णेर्ऋषीन् सप्त निबोध मे । द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा ॥ ७४ ॥ अङ्गिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा । तपोशनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपो रविः ॥७५॥ भार्गवः सप्तमस्तेषां विक्षेपस्तु ततो धृतिः । पञ्च देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते ॥ ७६ ॥ देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः । मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत् । मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः

कश्यपगोत्री हविष्मान् भृगुवंशी हविष्मान् अत्रिपुत्र तरुण और वसिष्ठपुत्र अनघ अङ्गिरावंशी उदधिष्णा और पुलस्त्यपुत्र निश्चर और अग्निकी समान तेजस्वी पुलह ये सात महर्षि होंगे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ उस समय ब्रह्माजीके पुत्र देवता उनके तीन गण होंगे और इन तीसरे सावर्णि मनुके संवर्तक सुशर्मा देवानीक पुरूद्वह क्षेमधन्वा दृढायु आदर्श पण्डक मनु ये नौ पुत्र कहे हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ अब तुम चतुर्थ सावर्णिके अर्थात् बारहवें मन्वन्तरके ऋषियोंको सुनो, वसिष्ठपुत्र द्युति अत्रिवंशी सुतपा तपोमूर्त्ति अङ्गिरा तपस्वी काश्यप पुलस्त्यवंशी तपोशन पुलहवंशी तपोरवि और सातवें भृगुवंशी धैर्यवान् विक्षेप सप्तर्षि होंगे, और पाँच देवता कहे हैं वे ब्रह्माजीके मानस पुत्र होंगे, देववायु अदूर देवश्रेष्ठ विदूरथ मित्रवान् मित्रदेव मित्रसेन मित्रकृत् मित्र और सुवर्चा ये बारहवें मनुके पुत्र होंगे ॥ ७५–७७ ॥ तेरहवें

सुताः ॥ ७७ ॥ त्रयोदशेऽथ पर्याये भाव्ये मन्वन्तरे मनोः। अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यो हव्यवाहनः ॥ ७८ ॥ पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सकः। निष्पकम्पस्तथात्रेयो निर्मोहः कश्यपस्तथा ॥ ७९ ॥ सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु महर्षयः। त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयम्भुवा ॥ ८० ॥ त्रयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुता। चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृतः ॥८१॥ सुनेत्रः क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढः। रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे॥ ८२ ॥ चतुर्दशेऽथ पर्याये भौत्यस्यैवान्तरं मनोः। भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिरांगिरसस्तथा ॥ ८३ ॥ युक्तश्चैव तथात्रेयो शुक्रो वासिष्ठ एव च। अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते ॥ ८४ ॥ एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात् सुखमेधते। यशश्चाप्नोति सुमहदायुश्चैव भवेत्तथा ॥ ८५ ॥ अतीतानागतानां वै महर्षीणां

भावी मन्वन्तरमें अङ्गिरावंशी धृतिवान् और पुलस्त्यवंशी हव्यप और पुलहवंशी तत्त्वदर्शी और भृगुवंशी निरुत्सुक अत्रिवंशी निष्प्रकम्प और कश्यपगोत्री निर्मोह और वसिष्ठवंशी सुतपा ये सात महर्षि होंगे और ब्रह्माजीने देवताओंके तीन गण कहे हैं ॥ ७८ ॥ ८० ॥ अब तू त्रयोदश मनु रुचिके पुत्रोंको सुन चित्रसेन विचित्र नय धर्म धृत सुनेत्र क्षत्रवृद्धि सुतपा निर्भय दृढ़ ये तेरहवें मन्वन्तरमें रौच्य नामक मनुके पुत्र होंगे ॥८१॥८२॥ चौदहवें मन्वन्तरमें भौत्य नामक मनुके भागर्व अतिबाहु अङ्गिरसगोत्री शुचि आत्रेय युक्त वसिष्ठपुत्र शुक्र पुलहवंशी अजित ये अन्तिम सप्तर्षि हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ प्रातःकाल उठ कर इनका कीर्तन करनेसे मनुष्य सुखपाता है और वह यश तथा बड़ी भारी आयुको पाता है ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य भूत और भविष्यत्के महर्षियोंका (कीर्तन करता है वह पुरुष सदा सुख पाता है)

सदा नरः। देवतानां गणाः प्रोक्ताः पञ्च वै भरतर्षभ ॥८६॥ तरङ्गभीरुर्वप्रश्च तरस्वानुग्र एव । अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥ ८७ ॥ तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः। भौत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णे कल्पस्तु पूर्यते ॥८८॥ इत्येते नामतोऽतीता मनवः कीर्तिता मया । तैरियं पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना ॥ ८९ ॥ पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या नराधिप । प्रजाभिश्चैव तपसा संहारस्तेषु नित्यशः ॥ ९० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
मन्वन्तरवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जनमेजय उवाच । मन्वन्तरस्य संख्यानं युगानां च महामते । ब्रह्मणोऽन्हः प्रमाणं च वक्तुमर्हसि मे द्विज ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । अहोरात्रं भजेत् सूर्यो मानवं लौकिकं परम् । तामुपादाय गणनां शृणु संख्यामरिन्दम ॥२॥ निमेषैः पञ्चदशभिः

हे भरतर्षभ ! उस समयके पाँच देवताओंके गण होंगे यह कहा है ॥ ८६ ॥ भौत्यमनुके तरंगभीरु वप्र तरस्वान् उग्र अभिमानी प्रवीण जिष्णु तथा संक्रन्दन तेजस्वी और सबल ये पुत्र हैं और भौत्य मनुके अधिकारके पूर्ण होने पर कल्प पूरा होजाता है८७ ये मैंने नाम लेकर मनुओंका कीर्तन किया, हे नराधिप ! वे तप करके सहस्र युग पूर्ण होने तक समुद्रतककी नगरों वाली पृथ्वी का और प्रजाका पालन करते हैं और अपनेमें संहार भी कर लेते हैं ॥८८॥९०॥ सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ

जनमेजयने कहा, कि–हे द्विज ! आप मुझसे मन्वन्तरोंके युगोंकी संख्या बताइये और हे महामते ! ब्रह्माजीके दिनका प्रमाण भी मुझे बताइये ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–सूर्य मनुष्योंके दिन और रात्रिका विभाग करता है, उस हमारी गणनाको लेकर द्विपरार्धरूप तककी पर ब्राह्मगणनाको सुनो २

काष्ठा त्रिंशन्तु ताः कला । त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशता तैर्मनीषिणः ॥ ३ ॥ अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रसूर्यगतिं नृप । विशेषेण तु सर्वेषु अहोरात्रे च नित्यशः ॥ ४ ॥ अहो रात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः । द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते ॥ ५ ॥ अब्दं द्व्ययनमुक्तन्तु अयनं त्वृतुभिस्त्रिभिः । दक्षिणं चोत्तरं चैव संख्यातत्त्वविशारदैः ॥ ६ ॥ माने मानेन यो मासः पक्षद्वयसमन्वितः । पितॄणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लपक्षस्तु शर्वरी । कृष्णपक्षे त्वहः श्राद्धं पितॄणां वर्तते नृप । ८ ॥ मानुषेण तु

पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला होती है और तीस कलाका एक मुहूर्त होता है और विद्वान् पुरुष तीस मुहूर्तको एक रात दिन कहते हैं और इन्हीमें चन्द्रमा और सूर्य अपनी गति करते हैं, सब शास्त्रोंमें दिन और रात्रिके विषयमें यही लिखा है ॥ ३-४ ॥ पन्द्रह दिन रातका नाम पक्ष कहलाता है और दो पक्षोंको मास कहते हैं और दो मासोंकी ऋतु कहलाती है ॥ ५ ॥ तीन ऋतुओंका अयन होता है और दो अयनोंका वर्ष कहा है और संख्याके तत्त्वमें विशारद पुरुषों ने उन दोनों अयनोंका नाम दक्षिणायन और उत्तरायण रक्खा है ॥ ६ ॥ इस मानसे मान करने पर जो दो पक्षों वाला मास होता है उसको कालवेत्ता पुरुष पितरोंका दिन रात कहते हैं ७ कृष्णपक्ष उनका दिन होता है और शुक्लपक्ष उनकी रात्रि होती है, अत एव हे नृप ! कृष्णपक्षरूप दिनमें पितरोंका श्राद्ध होता है (तात्पर्य यह है, कि—चन्द्रलोकमें रहने वाले पितर शुक्लपक्षमें चन्द्रमासे ढके हुए सूर्यको नहीं देखते हैं और कृष्णपक्षमें सूर्य और चन्द्रमाके अभिमुख होने पर सूर्यको देखते हैं इसी लिये शुक्लपक्षको पितरोंकी रात्रि और कृष्णपक्षको पितरोंका दिन कहा

मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः । देवानां तदहोरात्रं दिवं चैवोत्तरायणम् । दक्षिणायनं स्मृता रात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ ९ ॥ दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृतम् । अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते ॥ १० ॥ पक्षो दशगुणो मासो मासैर्द्वादशभिर्गुणैः । ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः । ऋतुत्रयेण त्वयनं तद्द्वयेनैव वत्सरः ॥११॥ चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् । तावच्छती भवेत् संध्यासंध्यांशश्च तथा नृप ॥१२॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेता स्यात् परिमाणतः । तस्याश्च त्रिशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ १३ ॥ तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् । तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥१४॥ कलिर्वर्षसहस्रञ्च संख्यातोऽत्र

है) ॥ ८ ॥ मनुष्योंके मानसे जो सम्वत्सर कहा है वह देवताओंका एक रात दिन है, तत्त्वको जाननेमें चतुर बुद्धिमानोंने उत्तरायणको देवताओंका दिन कहा है और दक्षिणायनको रात्रि कहा है ॥ ९ ॥ दश दिव्य वर्षोंका मनुका एक अहोरात्र कहा है और दश दिनका मनुका एक पक्ष कहलाता है ॥ १० ॥ दश पक्षोंका एक मास होता है और बारह गुणे मासोंकी एक ऋतु कही है और तत्त्वार्थदर्शी बुद्धिमानोंने तीन ऋतुओंका अयन कहा है और दो अयनोंका एक वत्सर कहा है ॥ ११ ॥ चार सहस्र वर्षोंका कृतयुग होता है और चार सौ वर्षोंकी उसकी सन्ध्या होती है और इतना ही उसका सन्ध्यांश होता है ॥१२॥ तीन सहस्र वर्षोंके परिमाणका त्रेता है और तीनसौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही संध्यांश होता है ॥१३॥ इसी प्रकार दो सहस्र वर्षोंका द्वापर कहा है और उसकी दो सौ वर्षकी संध्या होती है और इतना ही संध्यांश होना है ॥१४॥ और विद्वानोंने कलिको एक सहस्र वर्षका कहा है और सौ वर्ष

मनीषिभिः । तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चैव तद्विधः१५
एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता । दिव्येनानेन मानेन
युगसंख्यां निबोध मे ॥ १६ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव
चतुर्युगम् । युगं तदेकसप्तत्या गणितं नृपसत्तम ॥ १७ ॥ मन्व-
न्तरमिति प्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः । अयनं चापि तत्प्रोक्तं
द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ १८ ॥ मनुः प्रलीयते यत्र समाप्ते चायने
प्रभोः । ततोऽपरो मनुः कालमेतावन्तं भवेच्युत ॥१९॥ समती-
तेषु राजेन्द्र प्रोक्तः संवत्सरः स वै । तदेव चायुतं प्रोक्तं मुनिना
तत्त्वदर्शिना ॥२०॥ ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं कल्पश्चेति स कथ्यते।
सहस्रयुगपर्यन्ता या निशा प्रोच्यते बुधैः ॥२१॥ निमज्जत्यप्सु
यत्रोर्वी सशैलवनकानना । तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णे भरत-

की उसकी संध्या होती है और संध्यांश भी इतना ही होता है ॥ १५ ॥ यह बारह सहस्रवर्षकी युगोंकी संख्या कही इस दिव्यमानसे तुम युगसंख्याको समझ लो ॥ १६ ॥ सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग इन चारोंको चतुर्युगी कहते हैं और हे नृपसत्तम ! संख्या करनेमें चतुर पुरुषोंने इकहत्तर चौकड़ी युगोंका नाम मन्वन्तर कहा है और इसके भी दक्षिणायन और उत्तरायण ये दो अयन कहे हैं (अर्थात् वह पहिले धूमादिमार्ग से देवलोकको प्राप्त हो अपने अधिकारको भोगनेके अनन्तर उत्तरायणके मार्गसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होजाते हैं) ॥१७-१८॥ और उत्तर अयनके पूर्ण होने पर मनु (ब्रह्ममें) लीन होजाते हैं, फिर इतने ही समय तक दूसरे मनु रहते हैं ॥१९॥ हे राजेन्द्र ! तत्वदर्शी मुनिने अयुत (दश सहस्र)मनुओंका ब्रह्माजीका संवत्सर कहा है ॥ २० ॥ ब्रह्माजीका जो दिन कहा है वही कल्प कहलाता है और विद्वान् पुरुषोंने जो सहस्र युगोंकी ब्रह्माजीकी रात्रि कही है ॥ २१ ॥ उस समय पृथ्वी पर्वत और वनों सहित

सत्तम ॥ २२ ॥ ब्राह्मे दिवसपर्यन्ते कल्पो निःशेष उच्यते । युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि ते ॥२३॥ कृतत्रेतानि युक्तानि मनोरन्तरमुच्यते । चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥ २४ ॥ वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः । प्रजानां पतयो राजन् धन्यमेषां प्रकीर्तनम् ॥ २५ ॥ मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु संभवाः । न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि २६ विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भारत । मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २७ ॥ स शेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः ब्रह्मर्षिभिः सह । तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥ २८ ॥ पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते । तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥२९॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्य-

जलमें डूब जाती है हे भरतसत्तम ! उन सहस्र युगोंके पूर्ण होने पर ब्राह्म दिवसका आरम्भ होने पर उसकी समाप्ति तकका समय कल्प कहलाता है, तुझसे कृतयुग और त्रेतायुग आदि से युक्त जो इकहत्तर चौकड़िये कही उतना समय मन्वन्तर कहलाता है, तुझसे इन कीर्तिको बढ़ाने वाले चौदह मनुओंका वर्णन किया ये सब वेद पुराणमें भरे हुए हैं और ये प्रजाके स्वामी हैं इनका कीर्तन करना धन देने वाला है ॥ २५ ॥ मन्वन्तरोंके अनन्तर संहार होता है और संहारके अनन्तर फिर सृष्टि चलती है, इनके अन्तको सैंकड़ों वर्षोंमें नहीं बताया जासकता (अर्थात् ब्रह्मज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होसकती) २६ और हे भरतर्षभ ! (चौदह) मन्वन्तरोंमें भी प्रजाकी सृष्टि और संहारका (कभी२) विसर्ग (उपराम) होजाता है,ऐसा सुना है २७ और तप वेद तथा ब्रह्मचर्यसे युक्त होनेके कारण स्थूल भूतों सहित देवता और ब्रह्मर्षि उस समय भी स्थित रहते हैं ॥२८॥ सहस्र युगोंके पूर्ण होने पर कल्प पूर्ण होजाता है, उस समय

गणैर्विभो। योगं योगीश्वरं देवमजं क्षेत्रज्ञमच्युतम्। प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ ३० ॥ यः सृष्टा सर्वभूतानां कल्पांतेषु पुनः पुनः। अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ ३१ ॥ तत्र संवर्तते रात्रिः सकलैकार्णवे तदा। नारायणो दधे निद्रां ब्राह्मं वर्षसहस्रकम् ॥३२॥ तावंतमिति कालस्य रात्रिरित्यभिशब्दिता। निद्रायोगमनुप्राप्तो यस्यां शेते पितामहः ॥३३॥ सा च रात्रिरपक्रांता सहस्रयुगपर्यया। तदा प्रबुद्धो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३४ ॥ पुनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय विदधे मनः। सैव स्मृतिः पुराणे यं तद्वृत्तं तद्विचेष्टितम् ॥ ३५ ॥ देवस्थानानि तान्येव केवलं च विपर्ययः। ततो दग्धानि भूतानि सर्वाण्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६ ॥ देवर्षियक्ष-

सब प्राणी सूर्यकी किरणोंसे भस्म होजाते हैं ॥ २६ ॥ और वे (पञ्चभूत) ब्रह्मा और देवताओंसहित योगीश्वर योगरूप देव अज क्षेत्रज्ञ अच्युत सुरश्रेष्ठ प्रभु हरि नारायणमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३० ॥ जो प्रत्येक कल्पके अन्तमें वारम्वार सब भूतोंको रचते हैं, जो अप्रकट शाश्वत देव हैं यह सब जगत् उनका ही है ॥ ३१ ॥ जब सम्पूर्ण विश्व एक जलमय होजाता है तब रात्रि होती है और ब्रह्माजीके सौ वर्ष तक नारायण निद्रा लेते हैं ३२ जिस समय तक ब्रह्माजी योगनिद्रासे शयन करते हैं उतना समय रात्रि कहलाता है, वह रात्रि सहस्र युग बीतने पर पूर्ण होती है, इसके अनन्तर लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजी जाग्रत होते हैं और फिर रचनेकी इच्छासे युक्त होकर मनमें सृष्टि करने का विचार करते हैं, उस समय उनकी चेष्टा और उनकी स्मृति पूर्वकल्पकी समान ही होती है ॥ ३३–३५ ॥ और देवताओंके स्थान भी वही होते हैं परन्तु (जीवोंका) विपर्यय (लौट फेर) होता है, हे भरतसत्तम तात ! उस समय सूर्यकी किरणोंसे भस्म

गन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । जायन्ते च पुनस्तान युगे भरत-सत्तम ॥ ३७ ॥ यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मीषु रात्रिषु ॥ ३८ ॥ निष्क्रमित्वा प्रजाकारः प्रजापतिरसंशयम् । ये च वै मानुषा देवाः सर्वे चैव महर्षयः ॥३९॥ ते संगताः शुद्धसंस्थाः शश्वद्धर्मविसर्गतः । न भवंति पुनस्तान युगे भरतसत्तम ॥४०॥ तत्सर्वं क्रमयोगेन कालसंख्याविभागवित् । सहस्रयुगसंख्यानं कृत्वा दिवसमीश्वरः ॥ ४१ ॥ रात्रिं युगसहस्रांनां कृत्वा च भगवान्विभुः । संहरत्यथ भूतानि सृजते च पुनः पुनः ॥ ४२ ॥ व्यक्ताव्यक्तो महादेवो हरिर्नारा-

हुए सब प्राणी और देवता ऋषि यक्ष गन्धर्व पिशाच सर्प और राक्षस भी फिर उस युगमें उत्पन्न होजाते हैं ॥ २६ ॥ ३७ ॥ जैसे (ग्रीष्म शीत आदि) ऋतुके चिन्ह उन ऋतुओंके आने पर प्रकट होने लगते हैं, इसीप्रकार ब्रह्माजीकी रात्रियोंके बीतने पर (पूर्वकल्पकी समान) नानारूप वाले प्राणी दीखने लगते हैं ॥ ३८ ॥ प्रजाके कर्ता प्रजापति (उस समय नारायणमेंसे) निकलकर (फिर भूतोंको रचने लगते हैं) यहाँ शंका होती है, कि-(क्या वे सब प्राणियोंकी फिर सृष्टि करने लगते हैं ? इसका उत्तर यह है;कि-) जो मनुष्य देवता और सब महर्षि शश्वद्धर्म अर्थात् देहादिमें आत्मबुद्धिरूप स्वाभाविक गुणको त्याग कर शुद्ध ब्रह्ममें जाकर उसमें मिल जाते हैं, हे भरतसत्तम ! वे फिर (दूसरे) युगमें उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ३९-४० ॥ कालकी संख्याका विभाग करनेमें चतुर वह ईश्वर और भगवान् विभु क्रमानुसार सहस्र युगोंकी संख्या वाले दिनको बनाकर और सहस्र युग तककी रात्रिको बनाकर प्राणियोंको बाम्बार रचता है और बारम्बार उनका संहार करता है ॥ ४१-४२ ॥ स्थूल सूक्ष्मरूप महादेव हरि नारायण प्रभुके अंश वैवस्वत वर्तमान

यशाः प्रभुः । तस्य ते कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ ४३ ॥ विसर्गं भरतश्रेष्ठ साम्प्रतस्य महाद्युते । वृष्णिवंशप्रसंगेन कथ्यमानं पुरातनम् ॥ ४४ ॥ यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्विष्णुकुले प्रभुः । सर्वासुरविनाशाय सर्वलोकहिताय च ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच । विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिन्दम । तस्य भार्याभवत् संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ॥ १ ॥ सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भामिनी । सा वै भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मनः ॥२॥ भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी । संज्ञा नाम सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता ॥३॥ आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्थस्य तेजसा । गात्रेषु परिदग्धं वै नाति-

मन्वरकी सृष्टिको, वृष्णिवंशके प्रसङ्गवश कहता हूँ. यह प्राचीन समयसे इसी प्रकार कहा जाता है इसी वृष्णिवंशमें महात्मा और प्रभु हरि सब असुरोंका नाश करनेके लिये और सब लोकोंका हित करनेके लिये उत्पन्न हुए थे ॥ ४३-४५ ॥ अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि-हे अरिदमन ! कश्यपजीसे दक्षकी पुत्रीमें विवस्वान् उत्पन्न हुए त्वष्टाकी पुत्री देवी संज्ञा उन विवस्वान्की भार्या बनी । १ । वह भामिनी तीनों लोकोंमें सुरेणुके नामसे (भी) प्रसिद्ध थी, वह भगवान् और महात्मा मार्तण्डकी स्त्री थी ॥ २ ॥ वह बड़े भारी तपसे युक्त संज्ञा नाम वाली स्त्री रूप और यौवन वाली थी, परन्तु वह अपने भर्ताके (अति उष्ण) रूपके कारण सन्तुष्ट नहीं रहती थी ॥ ३ ॥ उस संज्ञाका रूप मण्डलमें स्थित रहने वाले सूर्यके तेजसे शरीर जलते रहनेके कारण (बिगड़ गया था, अत एव सूर्य उसको)

कांतमिहाभवत् ॥ ४ ॥ न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत । अज्ञानात् कश्यपस्तस्मान्मार्तण्ड इति चोच्यते ॥५॥ तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः । येनाभितापयामास त्रींल्लोकान् कश्यपात्मजः ॥६॥ त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः । आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥ मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः । यमश्च यमुना चैव यमजौ संबभूवतुः ॥ ८ ॥ सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ।

अच्छे नहीं लगते थे ४ (अदितिके) अज्ञानवश होनेपर कश्यपने स्नेह पूर्वक कहा था, कि-यह अण्डेमें स्थित गर्भ मरा नहीं है, इसी लिये सूर्य मार्तण्ड कहलाते हैं (तात्पर्य यह है, कि-जब सूर्य अदितिके गर्भमें थे उस समय बुध उसके पास भिक्षा माँगने को आये, परन्तु अदिति गर्भके बोझे कारण शीघ्रतासे चल कर भिक्षा न दे सकी, तब बुधने अदितिको शाप देदिया था, कि-तेरा गर्भ मृत होजाय, यह सुन कर व्याकुल होतीहुई अदिति से स्नेहके वशमें हो ,कश्यपने अपनी सामर्थ्यसे बुधके शापको दूर कर कहा था, कि-यह वास्तवमें मृत नहीं हुआ है, किन्तु अण्डेके भीतर वर्तमान है अदितिके इस मेरा अण्ड मृत होगया ऐसे विपरीत ज्ञानके कारण सूर्य मार्तण्ड कहलाते हैं) ॥ ५ ॥ (कश्यपके माहात्म्यके कारण) हे तात ! विवस्वानमें सर्वदा अधिक तेज रहता है, उसी तेजसे कश्यपपुत्र सूर्य तीनों लोकों को तपाते रहते हैं ॥६॥ हे कुरुवंशी राजन् ! तपानेवालोंमें श्रेष्ठ आदित्यने संज्ञामें दो प्रजापति और एक कन्या इसप्रकार तीन सन्तानोंको उत्पन्न किया था ॥७॥ उनमें एक श्राद्धदेव नामक विवस्वान्‌पुत्र प्रजापति मनु थे और यम तथा यमुना नामक दो सन्तान जुडुआँ उत्पन्न हुए थे ॥ ८ ॥ तदनन्तर संज्ञाने उन सूर्यको दुःखदायक रूप वाले देखकर उनके तेजको न सह

असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः ॥९॥ मयामयी तु सा संज्ञा तस्याश्छाया समुत्थिता । प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां नरेश्वर ॥१०॥ उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते । स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि ॥ ११ ॥ संज्ञोवाच । अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः । त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया ॥ १२ ॥ इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा । संभाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्१३ छायोवाच । आकचग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् । आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम् ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । समादिश्य सवर्णां तु तथेत्युक्ता च सा तया । त्वष्टुः

सकनेके कारण अपनी छायाको अपनी समान नाम और रूप वाली करके रच दिया ॥ ९ ॥ वह मायामयी संज्ञा संज्ञाकी छायासे उत्पन्न हुई थी, हे नरेश्वर ! वह छाया संज्ञाको प्रणाम कर हाथ जोड़कर संज्ञासे कहने लगी, कि–हे शुचिस्मिते ! बताइये मुझे क्या करना चाहिये हे वरवर्णिनि ! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी तुम मुझे आज्ञा दो ॥ १०-११ ॥ संज्ञाने कहा, कि–तेरा कल्याण हो ! मैं अपने पिताके घरको जारही हूँ तू मेरे इस घरमें निर्विकार होकर रहना, ये मेरे दोनों बालक पुत्र हैं और यह एक सुमध्यमा कन्या है, इनका तू ध्यान रखना और इस रहस्यको तू भगवान् सूर्यसे कभी न कहना १२-१३ छायाने कहा, कि–हे देवि ! जब तक मेरे बाल न घसीटे जायँगे और जब तक मुझे शाप न दिया जायगा तब तक मैं यह बात किसी प्रकार भी नहीं कहूँगा, हे देवि ! आप इच्छानुसार चली जाइये १४ अपने समान नाम रूपशाली छायाको आज्ञा देकर और उससे तथास्तु कहला कर वह तपस्विनी लज्जितसी होकर अपने पिता त्वष्टाके पास चली गई तहाँ उसके पिताने उसको

समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १५ ॥ पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा । भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥ १६ ॥ अगच्छद्वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिंदिता । कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥१७॥ द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिंतयन् । आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥ १८ ॥ पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः । सवर्णत्वान्मनोर्भूयः सावर्ण इति चोक्तवान् ॥ १९ ॥ मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते । द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः ॥ २० ॥ संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा । चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै ॥२१॥ मनुस्तस्याक्षमत्तु यमस्तस्या न चक्षमे । तां सरोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् । यदा संतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः ॥२२॥ तं शशाप ततः क्रोधात् सावर्णजननी नृप । चरणः

तिरस्कार करके उससे बार २ कहा, कि—तू अपने पतिके पास ही जा १५-१६ तब वह अनिन्दिता अपने रूपको बदल घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर कुरुओंमें जाकर तिनकोंको चरनेलगी १७. उस दूसरी संज्ञाको भी सूर्यने संज्ञा ही समझकर उसमें अपनी समान पुत्रको उत्पन्न किया ॥१८॥ यह अपने बड़े भाई श्राद्धदेव मनुके समान वर्णवाला था अत एव सावर्ण कहलाया था १९ और वह मनु हुए और उनका नाम सावर्ण मनु कहलाता है और उससे जो दूसरा पुत्र हुआ उसको शनैश्चर जानो २० वह (छाया के पृथ्वीमें पड़नेके कारण पृथिवीसे उत्पन्न हुई) पार्थिवी संज्ञा अपने पुत्रसे अधिक स्नेह करती थी और वैसा स्नेह दूसरी सन्तानोंसे नहीं करती थी २१ मनुने तो इस बातको सह लिया, परन्तु यमने इस बातको नहीं सहा, भावीके वशमें हो बालस्वभावके कारण रोषमें भरकर जब विवस्वान् पुत्र यम संज्ञाको डाँटने

पततामेष तवेति भृशदुःखिता ॥ २३ ॥ यमस्तु तत्पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् । भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः ॥ २४ ॥ शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा । मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥२५॥ सेयमस्मानपाहाय यवीयांसं बुभूषति । तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ।२६। बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि । यस्मात्ते पूजनीयोऽहं लंघितास्मि त्वया सुत ॥ २७ ॥ तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः । अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नांबा कुजननी भवेत् २८ शप्तोऽहमस्मिँल्लोकेश जनन्या तपतां वर । तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥ २९ ॥ विवस्वानुवाच । असंशयं पुत्र मह-

लगे २२ हे राजन् ! तब सावर्णकी माताने अति दुःखित हो कोपमें भरकर उनको शाप दिया, कि—तुम्हारा चरण गिर जाय ।२३। संज्ञाके वाक्यसे चोट पाकर और शापके भयसे उद्विग्न होकर यमने दोनों हाथ जोड़कर सब बात अपने पितासे कही ॥२४॥ और पितासे कहा, कि-मेरे इस शापको दूर कर दीजिये, माता को तो सब पुत्रोंसे स्नेहपूर्वक एकसा बर्ताव करना चाहिये २५ सो यह हम सबोंको छोड़कर सबसे छोटेसे स्नेहका बर्ताव करती है, उसके ऊपर मैंने पैर उठाया तो था परन्तु उसके शरीर पर मारा नहीं था, मैंने यह काम बालकपनसे किया हो वा मोहवश किया हो, परन्तु आपको इसकी क्षमा करना चाहिये (संज्ञाने कहा था, कि-) हे पुत्र ! मैं तेरी पूजनीय हूँ, तब भी तूने मेरा उल्लंघन किया है, इसलिये तेरा यह पैर गिर पड़ेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है परन्तु सन्तान तो कुसन्तान होसकती है, परन्तु कहीं माता कुमाता होती हैं ॥२६-२८॥ हे तपानेवालोंमें श्रेष्ठ ! माताने मुझे शाप देदिया है, परन्तु हे किरणोंके स्वामिन् ! आपकी प्रसन्नतासे मेरा चरण इस लोकमें न गिरे ॥ २९ ॥

न्भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥३०॥ न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव । कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ॥ ३१ ॥ तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्वं प्राप्स्यसे सुखम् । कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति ॥३२॥ शापस्यापरिहारेण त्वं च त्राता भविष्यसि । आदित्योऽथाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै ॥ ३३ ॥ तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेहः क्रियतेऽति पुनः पुनः । सा तत्परिहसन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते ॥३४॥ आत्मानं सुसमाधाय योगात्तथ्यमपश्यत । तां शप्तुकामो भगवान्नाशाय कुरुनन्दनः ॥३५॥ मूर्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च । सा तत्सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ।३६। विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात् । त्वष्टा तु तं यथा-

सूर्यने कहा, कि-हे पुत्र ! तुझ धर्मज्ञ और सत्यवादीको जो क्रोध चढ़ा है, इसमें भी कोई बड़ा भारी कारण होगा ॥३०॥ परन्तु मैं तेरी माताके वचनको अन्यथा नहीं कर सकता हे महाप्राज्ञ ! कृमि तेरे चरणमेंसे मांस लेकर पृथ्वीतलको चले जावेगें, तब तुझे सुख मिलेगा, इसप्रकार शापका अपरिहार करनेसे तेरी माताका कहा हुआ वचन सत्य होगा। इसके अनन्तर आदित्य ने संज्ञासे कहा, कि-तू एकसे पुत्रोंमें कमती बढ़ती स्नेह क्यों करती है सूर्यने यह बात कई बार कही, परन्तु वह हँसती ही रही और उसने-सूर्यसे कुछभी बात नहीं कही ॥ ३१-३४ ॥ तब सूर्यने अपनी आत्माको स्थिर करके योगके द्वारा सब सच्ची बात जान ली, फिर हे कुरुनन्दन ! उन्होंने शाप देनेके लिये उस को झोटा पकड़ लिया, तब अपनी (शाप और बाल पकड़ने तककी) शपथके उतर जाने पर उसने सूर्यनारायणसे सत्य बात कह दी ३५-३६ सूर्यनारायण इस बातको सुनते ही क्रोधमें भर कर त्वष्टाके पासको चल दिये, तब क्रोधमें भर कर आनेको

न्यायमर्चयित्वा विभावसुम् । निर्दग्धुकामं रोषेण सांत्वयामास वै तदा ॥३७॥त्वष्टोवाच । तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते । असहन्ती च तत् संज्ञा वने चरति शाड्वले ॥ ३८ ॥ द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुद्धचारिणीम् । नित्यं तपस्यभिरतां बडवा-रूपधारिणीम् ३९ पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम् । हस्तिहस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव । श्लाघ्यां योगबलो-पेतां योगमास्थाय गोपते ॥४०॥ अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान् मम तन्मतम् । रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कांतमरिन्दम ॥ ४१ ॥ रूपं विवस्वतश्चासीत्तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै । तेनासौ संभृतो देवो रूपेण तु विभावसुः ॥ ४२ ॥ तस्मात्त्वष्टुः स वै वाचं बहु मेने प्रजापतिः । समनुज्ञातवांश्चैवं त्वष्टारं रूपसिद्धये ॥ ४३ ॥

शाप देना चाहने वाले सूर्यनारायणकी त्वष्टाने न्यायानुसार पूजाकी ३७ फिर त्वष्टाने कहा, कि-तुम्हारा यह अतितेजस्वी रूप शोभा नहीं पाता है, इसको न सह सकनेनेके कारण संज्ञा हरीघास वाले वनमें (हरी घास) चर रही है ॥ ३८ ॥ हे गोपते ! आज आप हाथीकी सूँडसे खिचनेके कारण पद्मिनी की समान व्याकुल हुई शुद्ध आचरण करने वाली योगके बलवाली और योगसे घोड़ीका रूप धारण करनेका सदा तप करती हुई पत्तोंका आहार करती हुई दुबली दीन और जटा-धारिणी ब्रह्मचारिणी अपनी श्लाघनीय भार्याको देखेंगे।३९।४०। हे देव ! यदि मेरी बात आपको उचित प्रतीत हो तो मैं आपके रूपको मनोहर बनादूँ ॥ ४१ ॥ पहिले सूर्यका रूप तिरछी और ऊँची सब ओरसे एकसा था, उस रूपसे युक्त होनेके कारण वह देव विभावसु कहलाये थे ॥ ४२ ॥ इसलिये उन प्रजापति सूर्य नारायणने त्वष्टाकी बातको बहुत अच्छी समझा और रूपको बनानेके लिये त्वष्टाको अनुमति देदी ॥४३॥ हे भारत !

ततोऽभ्युपगमत्त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः । भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास । भारत ॥ ४४ ॥ ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहृतेन वै । कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥ ४५ ॥ मुखे निर्वर्तितं रूपं तस्य देवस्य गोपतेः । ततः प्रभृति देवस्य मुखमासीत्तु लोहितम् । मुखरागं तु यत्पूर्वं मार्तण्डस्य मुखच्युतम् ४६ आदित्या द्वादशैवेह संभूता मुखसम्भवाः । धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंशो भगस्तथा ॥ ४७ ॥ इंद्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा । ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः ॥ ४८ ॥ हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान् स्वदेहजान् । गंधैः पुष्पैरलंकारैर्भास्वता मुकुटेन च ॥ ४९ ॥ एवं संपूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह । गच्छ देव निजां भार्यां कुरूंश्च-

तब त्वष्टाने मार्तण्ड सूर्यके समीप आकर उनको सान पर चढ़ा कर उनके तेजको छीलना आरम्भ कर दिया ॥ ४४ ॥ उस समय तेजके ओछे होजानेके कारण सूर्यका रूप देखनेके लिये प्रकट होगया, उस समय वह परमरमणीय रूप शोभा पाने लगा ॥ ४५ ॥ जब किरणोंके स्वामी सूर्यके मुखका रूप बदल गया उस समयसे उन देवताका मुख रक्तवर्ण होगया और सूर्यके मुखसे जो सूर्यके मुखका राग छूटा था ॥४६॥ उससे बारह आदित्य उत्पन्न हुए, उन मुखसे उत्पन्न हुए (आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं) धाता अर्यमा मित्र वरुण अंश भग इन्द्र विवस्वान् पूषा और दशवाँ पर्जन्य तथा त्वष्टा और (बारहवें मुख छीलनेरूपी) जघन्य कर्मसे उत्पन्न अजघन्य विष्णु (ये बारह आदित्य हुए) ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ गंध पुष्प अलंकार और प्रकाशवान् मुकुटसे शोभायमान अपने शरीरसे उत्पन्न हुए आदित्योंको देख कर सूर्यनारायण हर्षित हुए ॥४९॥ इस प्रकार पूजा करके त्वष्टाने कहा कि-हे देव ! अब आप अपनी भार्या

रति सोत्तरान् ॥ ५० ॥ वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले ।
स तथा रूपमास्थाय स्वभार्यां रूपलीलया ॥ ५१ ॥ ददर्श योग-
मास्थाय स्वां भार्यां वडवां ततः । अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा
नियमेन च ॥ ५२ ॥ वडवावपुषा राजंश्चरंतीमकुतोभयाम् ।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ॥ ५३ ॥ मैथुनाय
विचेष्टन्तीं परपुंसोपशंकया । सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकायां
विवस्वतः ॥ ५४ ॥ देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥ ५५ ॥ मार्तण्ड-
स्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः । तां तु रूपेण कान्तेन दर्शया-
मास भास्करः ॥ ५६ ॥ सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय ।

के पास जाइये, वह उत्तर कुरु देशोंमें भ्रमण कर रही है ।५०। वह हरी घाससे भरे हुए वनमें घोड़ीका रूप धारण करके विचर रही है, तब सूर्यनारायणने अपनी भार्याके रूपके अनुसार घोड़ेकी समान विचरण करनेके लिये घोड़ेकासा रूप धारण कर लिया ५१ उससमय सूर्यनारायणने ध्यान धर कर देखा तो उन्होंने तेज और नियमके कारण सब भूतोंसे अधृष्य अपनी भार्याको घोड़ी का रूप धारण करके अकुतोभय हो विचरती हुई देखा, तब सूर्य-नारायण अश्वका रूप धारण करके उसके पास पहुँचे, तब वह परपुरुषकी शंकासे मैथुनके प्रतिकूल चेष्टा करने लगी तब सूर्यनारायण उसके मुखके समीप हुए, तब उसने सूर्यके वीर्य को अपनी नाक परसे गिरा दिया ॥ ५२-५४ ॥ उससे वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवता उत्पन्न हुए वे दोनों अश्विनी-कुमार नासत्य और दस्र नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५५ ॥ ये दोनों अष्टम प्रजापति मार्तण्डके पुत्र हैं, इसके अनन्तर सूर्यने उसको अपने मनोहररूपमें दर्शन दिया ॥ ५६ ॥ हे जनमेजय ! तब वह स्वामीको देख कर सन्तुष्ट होगई और यमराज तो उस (शापके)

यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥ ५७ ॥ धर्मेण रंजयामास धर्मराज इमाः प्रजाः । लेभे स कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥ ५८ ॥ पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च । मनुः प्रजापतिस्त्वासीत्सावर्णः स तपोधनः ॥ ५९ ॥भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेंतरे । मेरुपृष्ठे तपो घोरं ह्यद्यापि चरति प्रभुः ॥ ६० ॥ भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान् । नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्वर्वैद्यौ तौ बभूवतुः ॥ ६१ ॥ सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शान्तिदोऽभवत् । त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥ ६२ ॥ तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया । यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥६३॥ अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी । मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ॥ ६४ ॥ द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनो-

कर्मसे अपने मनमें बड़े पीड़ित रहते थे ॥ ५७ ॥ अत एव वह धर्मराज धर्मपूर्वक प्रजाको प्रसन्न करने लगे, इस परम कर्मके कारण उन महाकान्तिवान् धर्मराजको पितरोंका आधिपत्य और लोकपालपन मिला, और तपोधन सावर्ण प्रजापति मनु हुए५९ वे सावर्ण नाम वाले भविष्यके मन्वन्तरके समयमें मनु होंगे वह प्रभु आज कल भी मेरुपृष्ठपर तपस्या कर रहे हैं ॥ ६० ॥ और इनके भाई शनैश्चर ग्रह हुए और जो नासत्य कहे वे स्वर्गके वैद्य हुए ॥ ६१ ॥ वह सेवन करने पर घोड़ोंको शांति देते हैं । उस तेजसे त्वष्टाने विष्णुके चक्रकी कल्पनाकी ॥ ६२ ॥ उस चक्रको युद्धमें दानवोंका अन्त करनेकी इच्छासे अप्रतिहत बनाया था, उन दोनोंकी जो छोटी कन्या यमी नाम वाली थी वह नदियोंमें श्रेष्ठ लोकोंको पवित्र करने वाली जमनाजी हुईं, मनु संसारमें मनु भी कहाते हैं और सावर्णभी कहलाते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उनके दूसरे पुत्र और मनुके भ्राताका नाम शनैश्चर था और

भ्राता शनैश्वरः । ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्वलोकाभिपूजितम् ६५
य इदं जन्म देवानां शृणुयाद्वापि धारयेत् । आपद्भ्यः स विमु
च्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
वैवस्वतोत्पत्तौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच।मनोर्वैवस्वतस्यासन्पुत्रा वै नव तत्समाः ।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ॥ १ ॥ नरिष्यंश्च
तथा प्रांशुर्नाभागारिष्टसप्तमाः । करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भर-
तर्षभ ॥२॥ अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः । मित्रावरुण-
योस्तात पूर्वमेव विशाम्पते ॥ ३ ॥ अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु
भारत । तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ॥ ४ ॥ मित्रा-
वरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत् । आहुत्यां हूयमानायां देवगंध-
र्वमानुषाः ॥ ५ ॥ तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः । अहो-

---

शनैश्वरने सब लोकोंसे पूजित ग्रह संज्ञा पाई थी ६५ जो मनुष्य
देवताओंके जन्मको सुनता है अथवा इसको धारण करता है,वह
आपत्तियोंसे छूट जाता है और बड़ा भारी यश पाता है ॥६६॥
नवम अध्याय समाप्त ॥९॥ छ छ छ छ

वैशम्पायनने कहा कि–हे भरतर्षभ ! वैवस्वत मनुके उनकी
ही समान इक्ष्वाकु नाभाग धृष्णु शर्याति नरिष्यन्त प्रांशु सातवें
नाभागरिष्ट और करूष तथा पृषध्र नामक नौ पुत्र थे ॥१॥२॥
हे विशांपते ! हे भरतर्षभ ! इन नौ पुत्रोंके उत्पन्न होनेसे पहिले
प्रजापति मनुने पुत्रकी चाहनासे मित्रावरुणका यज्ञ किया था,
हे भरतसत्तम ! जब वह इष्टि हो रही थी उस समय मुनिने मित्रा-
वरुणके लिये आहुति दी उस समय आहुतिके होमे जाने पर
देवता गन्धर्व मनुष्य और तपोधन मुनि परम सन्तुष्ट हुए (और
कहने लगे, कि–) अहो ! इसके तपका वीर्य कैसा है और इसका

ऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥ ६ ॥ तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता । दिव्य संहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ॥ ७ ॥ तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह । धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ ८ ॥ इलोवाच । मित्रावरुणयोरंशे जाताऽस्मि वदताम्वर । तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हतोऽवधीत् ९ सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला । गत्वांतिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् १० अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम्। मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति ११ तां तथा वादिनीं साध्वीं मिलांधर्मपरायणाम् । मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुर्यन्निबोधतत् १२ अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च । सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ

शास्त्रज्ञान कैसा अद्भुत है ॥ ३-६ ॥ उस यज्ञमें दिव्य वस्त्रों को धारण करने वाली और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित और दिव्य कवचको पहिरे हुए इला नामकी कन्या प्रकट हुई थी, यह बात प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ दण्डधारी राजा मनुने उस इलासे कहा और कहा, कि—हे भद्रे ! तू मेरे पीछे २ आ, तव इलाने पुत्रकी कामना वाले प्रजापतिसे यह धर्ममय वाक्य कहा ॥ ८ ॥ इलाने कहा कि—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! मैं मित्रावरुणके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ अत एव मैं उनके ही पास जाती हूँ, जिससे धर्मको छोड़ देनेसे धर्म मेरा वध न करे ॥९॥ वरारोहा इला इस प्रकार मनुदेवतासे कहकर मित्रावरुणके पास जा दोनों हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगी, कि—॥ १० ॥ हे देवताओं ! मैं तुम्हारे अंशसे उत्पन्न हुई हूँ, अतः बताओ ! मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ ? मनु मुझसे कह रहे हैं कि तू हमारे पीछे आ ॥ ११ ॥ धर्मपरायण साध्वी इलाके इस प्रकार कहने पर मित्रावरुणने उससे जो कुछ कहा था उसको तुम सुनो ॥ १२ ॥ 'हे वरवर्णिनी !

स्वो वरवर्णिनि ॥ १३ ॥ आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि । मनोर्वंशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१४॥ सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने । जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः ॥ १५ ॥ निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छंती पितुरंतिकम् । बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ॥ १६ ॥ सोमपुत्राद्बुधाद्राजंस्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः । जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता ॥ १७ ॥ सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥ १८ ॥ उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमा । दिक्पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गयापुरी ॥ १९ ॥ प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिन्दम । दशधा तु दधत् क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ॥ २० ॥

हम तेरी इस नम्रता धर्म दम और सत्यसे प्रसन्न हुए हैं १३ हे महाभागे ! तू हमारी कन्या कहलावेगी और तू ही मनुका वंशधर पुत्र होगी ॥ १४ ॥ हे शोभने ! उस समय तू तीनों लोकोंमें सुद्युम्न नामसे प्रसिद्ध होगी और तू जगत्प्रिय और मनुके वंशको बढ़ाने वाली होगी ॥ १५ ॥ इस बातको सुन कर वह अपने पिता मनुके पास जारही थी, कि-बुधने उसको मैथुन करनेके लिये बुला लिया ॥ १६ ॥ सोमपुत्र बुधसे उस इलामें पुरूरवा उत्पन्न हुआ और उस पुत्रको उत्पन्न करनेके बाद इला सुद्युम्न होगई ॥ १७ ॥ और हे भारत ! सुद्युम्नके उत्कल गय और विनताश्व नामक परमधार्मिक तीन पुत्र उत्पन्न हुए १८ हे राजन्! उत्कलकी उत्कला नाम वाली नगरी है और विनताश्व की पश्चिमा और हे भरतश्रेष्ठ ! गयकी पूर्वदिशामें गया नामकी पुरी है ॥ १९ ॥ हे अरिदमन ! मनुके (पुत्रोंको उत्पन्न कर अपने अधिकारको त्याग कर) सूर्यमें प्रवेश कर जाने पर इक्ष्वाकु आदि मनुके दश पुत्रोंने पृथ्वीको दश भागोंमें विभक्त कर लिया

यूपांकिता वसुमती यस्येयं सवनाकरा । इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ २१ ॥ कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैनं गुणमवाप्तवान् । वसिष्ठवचनाच्चासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥ २२ ॥ प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरूद्वह । तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २३ ॥ सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम् । उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः । धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दंडश्चेति सुतास्त्रयः २४ यश्चकार महात्मा वै दंडकारण्यमुत्तमम् । वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् ॥२५॥ तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात् प्रमुच्यते । सुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥ २६ ॥ मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः । धृतवान् य इलेत्येव सुद्युम्नश्चेति विश्रुतः ॥ २७ ॥ नरि-

यह वन और खानों सहित यूपांकित पृथिवी जिसकी हैं उस मनु के पुत्र इक्ष्वाकुने मध्यदेश को प्राप्त किया २१ सुद्युम्न कन्याभावके कारण इस पदको नहीं पासका परन्तु वसिष्ठके वचनसे महात्मा सुद्युम्नको प्रयागका एकदेश मिल गया था ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे कुरूद्वह ! धर्मराज कुरूद्वहका जो राज्य था वह उस महायशस्वी ने राज्य पानेके बाद अपना राज्य पुरूरवाको देदिया ॥२३॥ सुद्युम्नने राज्यको पानेके बाद प्रयागमें (कुछ दिन) राज्य किया था, उत्कलके तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध धृष्टक अम्बरीष और दण्ड नाम वाले तीन पुत्र हुए थे ॥ २४ ॥महात्मा दण्डने दण्डकारण्य नाम वाले वनको बनाया था, वह लोकप्रसिद्ध वन तपस्वियोंके लिये परमोत्तम है ॥ २५ ॥ मनुष्य उसमें प्रवेश करते ही सब पापोंसे छूट जाता है, हे भारत ! हे महाराज ! स्त्री और पुरुषोंके लक्षणोंसे युक्त मनुका पुत्र सुद्युम्न ऐलको उत्पन्न करके स्वर्गको चला गया,इसने अपनी इला दशामें गर्भ को धारण किया था फिर यह सुद्युम्न नामसे प्रसिद्ध होगया

ष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत । अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥२८॥ धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह । शर्यातेर्मिथुनं चासीदानर्तो नाम विश्रुतः ॥२९॥ पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह । आनर्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युतिः ॥३०॥आनर्तविषयश्चासीत् पुरी चास्य कुशस्थली । रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥ ३१ ॥ ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्।स कन्यासहितः श्रुत्वा गांधर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ३२ ॥ मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो । आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥ ३३ ॥ कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम् । भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेव-

---

था ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे भारत ! नरिष्यन्तके पुत्र शक हुए और नाभागका पुत्र राजराजेश्वर अम्बरीष हुआ ॥ २८ ॥ धृष्णुके धार्ष्टक नाम वाले क्षत्रिय हुए, वे रणमें बड़े ढीट थे, शर्यातिके दो सन्तानें उत्पन्न हुई थीं, उसमें एक पुत्र था उसका नाम आनर्त प्रसिद्ध था ॥ २९ ॥ और उनमें एक कन्या थी, उसका नाम सुकन्या था और वह च्यवन ऋषिकी पत्नी थी, आनर्तके रेव नाम वाला महाद्युति पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ उसका राज्य आनर्त (द्वारका) देशमें था और उसकी पुरीका नाम कुशस्थली (द्वारका) था, रेवके रैवत पुत्रका नाम परमधार्मिक ककुद्मी था, वह उसके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठपुत्र था, राज्य पानेके अनन्तर वह अपनी कन्याके साथ(ब्रह्मलोकमें) गया तहाँ वह ब्रह्माजीके समीप गन्धर्वोंका गाना सुनने लगा, हे प्रभो ! गाना सुनते २ बहुतसे युग उसको एक मुहूर्तकी समान व्यतीत होगए, इसके उपरान्त वह तरुण ही बनाहुआ यादवोंसे घिरी हुई अपनी पुरीमें आया, उस समय उस पुरीमें बहुतसे दरवाजे बनगए थे और वासुदेव आदि भोज वृष्णि और अंधकवंशी उस रमणीय

पुरोगमैः ॥३४॥ ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिन्दम । कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ३५ दत्त्वा जगाम शिखरं मेरो-स्तपसि संस्थितः। रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ३६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जनमेजय उवाच । कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम । न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥ १ ॥ मेरुं गतस्य वा तस्य शार्यातेः सन्ततिः कथम् । स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतु-मिच्छामि तत्त्वतः ॥२॥ वैशम्पायन उवाच । न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ । ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ३ ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह । हृता पुण्यजनैस्तात राक्षसैः सा कुशस्थली ॥ ४ ॥ तस्य भ्रातृशतं चासीद्धार्मिकस्य

पुरीकी रक्षा करते थे।३१।३४। हे अरिंदमन ! इन सब बातोंको यथार्थ रीतिसे जानकर वह रैवत अपनी रेवती नामवाली कन्याको बलदेवजीको देकर अपने आप मेरुपर्वतके शिखर पर चलागया और तहाँ तप करने लगा और धर्मात्मा बलराम भी रेवतीके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ छ छ

जनमेयजयने कहा, कि-हे द्विजोत्तम ! बहुतसे युग बीत जाने पर भी रेवती और ककुद्मी रैवतको बुढ़ापा कैसे नहीं व्यापा ? और शर्यातिका प्रपौत्र रैवत जो मेरुपर्वत पर चला गया था,तब भी उसकी सन्तान आज तक पृथ्वी पर कैसे वर्तमान हैं ? ।२। वैशम्पायनजीने कहा कि-हे भरतर्षभ निष्पाप राजन् ! ब्रह्म-लोकमें भूख प्यास और जरा नहीं व्यापती है और ऋतुचक्र भी तहाँ अपना प्रभाव नहीं दिखाता है ॥३॥ हे तात ! जब रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोकको चला गया था, तब राक्षसोंने कुशस्थलीको

महात्मनः । तद्बध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम् ॥ ५ ॥ विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै । तेषां तु ते भयाक्रांताः क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ॥ ६ ॥ अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशांपते । येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः ॥ ७ ॥ क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः । सर्वशः पर्वतगणान प्रविष्टाः कुरुनन्दन । नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ । करूपस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥६॥ प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम् । पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥१०॥ शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः । वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ ॥११॥ क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत् सुतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् १२

नष्ट भ्रष्ट कर डाला था ॥ ४ ॥ धर्मात्मा और महात्मा रैवतके सौ भाई थे, वे अच्युत भी राक्षसोंके पीटने पर दिशाओंमेंको भाग गए ५ हे राजेन्द्र ! उन सौ भाइयोंके भाग जाने पर उनमेंके वे राक्षसोंसे भयभीत हुए क्षत्रिय जहाँ तहाँ (वस गए) ।६। और हे राजन् ! उनका वड़ाभारी वंश जिधर तिधर फैलगया, उनके वंशके ही ये धार्मिक क्षत्रिय सब दिशाओंमें शार्यात नाम से प्रसिद्ध हैं, हे कुरुनन्दन ! वे सब पर्वतोंमें भाग गए थे नाभागारिष्टके (वैश्यामें उत्पन्न होनेके कारण 'मातृजातयः पुत्रा स्युः' इस वचनके अनुसार) दो वैश्य पुत्र ब्राह्मणत्वको प्राप्त होगए अर्थात् उपशांत होगए करूपके कारूष नामक युद्धदुर्मद क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ और हमने सुना है, कि-प्रांशुके एक ही प्रजाति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और हे जनमेजय ! गुरु की गौको मारने पर पृषध्र गुरुके शापसे शूद्रत्वको प्राप्त होगया हे भरतर्षभ ! ये तुमसे वैवस्वत मनुके नौ पुत्र कह दिये ॥ १० ॥ ११ । मनुके क्षुत करने (छींकने) पर इक्ष्वाकु

तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् । प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ॥१३॥ शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः । उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते॥ १४ ॥ चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि । शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशां पते ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत् । मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः ॥१६॥ श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्ट अकृते श्राद्धकर्मणि । भक्षयित्वा शशं तात शशादो मृगयागतः ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः । इक्ष्वाकौ संस्थिते तात शशादस्तमथावसत् ॥१८॥ शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् । इन्द्रस्य वृष-

नाम वाला पुत्र हुआ था, उस इक्ष्वाकुके बहुतसी दक्षिणा देने वाले) सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे उनमें जेठा विकुक्षि विकुक्षि (विपुल कुक्षिवाला) होनेसे अयोधताको प्राप्त हुआ था अर्थात् उसके सामने कोई योधा नहीं डट सकता था, वही परमधर्मज्ञ अयोध्याका स्वामी हुआ था ॥१३॥ उसके शकुनि आदि पचास उत्तम पुत्र थे, हे महीपते ! वे उत्तरापथमें स्थित होकर रक्षा करते थे ॥ १४ ॥ और हे विशांपते ! उसके शशाद आदि अड़तालीस पुत्र दक्षिण दिशाकी रक्षा करते थे ॥ १५ ॥ महाबली इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्धके लिये अपने पुत्र शशादको आज्ञा दी, कि-तू मृगोंको मारकर श्राद्धके लिये मांस ला ॥ १६ ॥ परन्तु श्राद्ध-कर्मके (पदार्थ) लानेको आज्ञा देने पर भी श्राद्धकर्म समाप्त होनेसे पहिले शशाद शश (खरगोश) का भक्षण कर शिकार करके लौट आया ॥ १७ ॥ उस समय उसको वसिष्ठजीके (यह हवि उच्छिष्ट है ऐसे) वचनसे इक्ष्वाकुने त्यागदिया था, हे तात! इक्ष्वाकुके मरने पर शशाद तहाँ आकर राज्य करनेलगा॥ १८ शशादके ककुत्स्थ नामक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, उसने

भूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान् ॥ १९ ॥ पूर्वमाडीबके युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृतः । अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः ॥ २० ॥ विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत । आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मजः ॥ २१ ॥ जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता । श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ २२ ॥ कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः । यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २३ ॥ जनमेजय उवाच । धुन्धोर्वधमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । यदर्थं कुवलाश्वः सन् धुंधुमारत्वमागतः ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच । कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् । सर्वविद्यासु निपुणा बलवन्तो दुरासदाः ॥ २५ ॥ बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे

आडीवक नामक युद्धमें इन्द्रके वृषभ बनने पर उसके ककुद (स्कंध)पर बैठ कर असुरोंको जीता था, उस युद्धमें इन्द्रने उसका स्मरण किया था, अनेना ककुत्स्थका पुत्र हुआ और अनेनाका पृथु नामक पुत्र कहा है ।१९।२०। पृथुके विष्टराश्व नामक पुत्र हुआ,उसके आर्द्र नामक पुत्रहुआ,आर्द्रके युवनाश्वहुआ उसका पुत्र श्राव नामक पुत्र हुआ २१ उसका नाम श्रावस्तक राजा हुआ था, उसने श्रावस्ती पुरी बसाई थी, श्रावस्तके महायशस्वी बृहदश्व नामक पुत्र हुआ ।२२॥ उसका पुत्र परमधार्मिक राजा कुवलाश्व हुआ, वह धुन्धु नामक दैत्यको मारनेके कारण धुन्धुमार भी कहलाने लगा २३ जनमेजयने कहा कि-हे भगवन् ! मैं धुन्धुमारके वधको सुनना चाहता हूँ, जिसके कारण कुवलाश्व का नाम धुन्धुमार पड़ गया था । २४ । वैशम्पायन मुनिने कहा, कि-कुवलाश्वके श्रेष्ठ धनुषोंको धारण करने वाले सौ पुत्र थे, वे सब विद्याओंमें निपुण थे बली थे और दुरासद थे २५ वे सब धार्मिक थे, यज्ञ करने वाले थे और बहुतसी दक्षिणा

यज्वानो भूरिदक्षिणाः । कुवलाश्वं सुतं राज्ये वृहदश्वो न्ययोजयत् ॥ २६ ॥ पुत्रसंक्रामितश्रीर्यस्तु वनं राजा समाविशत् । तमुत्तंकोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥२७॥ उत्तंक उवाच। भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हसि । निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव ॥ २८ ॥ त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना । भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते । न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी ॥३०॥ ईदृशो न हि राजेन्द्र धर्मः क्वचन दृश्यते । प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः । रक्षितव्या प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि ॥३१॥ ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु । समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुतः । देवता-

देने वाले थे, ऐसे कुवलाश्व पुत्रको वृहदश्वने राज्य पर नियुक्त कर दिया २६ वह राजा राज्यलक्ष्मीको पुत्रके अर्पण करके जब वनमेंको जानेलगा तब उसको विप्रर्षि उत्तंक रोकने लगे२७ कि-हे पार्थिव ! आपको (हमारी) रक्षा करनी चाहिये, उसको आप पहिले करिये हे राजन् ! आप (हमारी रक्षा किये विना) निरुद्विग्न होकर तप नहीं कर सकते२८ हे राजन् ! तुझ महात्मा के रक्षा करने पर पृथ्वी निरुद्विग्न होजायगी। अत एव तुमको वनमें जाना उचित नहीं है २९ यहाँ पर रह कर प्रजापालनसे बड़ा धर्म होता है और वनमें रहनेसे ऐसा पुण्य नहीं होसकता, अत एव तुम्हारी ऐसी बुद्धि न हो ३० हे राजेन्द्र ! प्रजापालन का ऐसा धर्म तो कहीं नहीं दीखता है प्राचीन राजर्षियोंने प्रजापालनको राजाका धर्म निश्चय किया है, अत एव तुम्हें उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ मेरे आश्रमके पास (पर्वत आदि न होनेसे निम्नता और उन्नततासे रहित) सम (निर्जल) मरु और(थोड़े जलवाले) धन्वोंमें(मनुष्योंके समूहसे शून्य) उज्जानक

नामवध्यश्च महाकायो महाबलः ॥ ३२ ॥ अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् । राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नामा महासुरः । शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ३३ ॥ संवत्सरस्य पर्यन्ते स निःश्वासं प्रमुञ्चति । यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना ॥ ३४ ॥ तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् । आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥ ३५ ॥ सविस्फुलिंगं सांगारं सधूममतिदारुणम् । तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्वकाश्रमे ॥ ३६ ॥ तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया । लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे ३७ त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते । विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ ॥ ३८ ॥ यस्त्वं महासुरं रौद्रं हनिष्यसि

नामका वालुकापूर्ण समुद्र प्रसिद्ध है तहाँ पर देवताओंसे अवध्य बड़े भारी शरीर वाला महावली मधु राक्षसका पुत्र एक बड़ा भारी धुन्धु दैत्य लोकोंका विनाश करनेके लिये दारुण तपका आश्रय करके रेतेके भीतर सोरहा है ॥३२॥३३॥ जब वह वर्ष भर वीतजाने पर श्वास लेता है उस समय पर्वत वन और पृथ्वी काँप उठती है ॥३४॥ उसके श्वासकी वायुसे बड़ी भारी धूलि उड़ कर सूर्यके मार्गको छा लेती है और एक सप्ताह तक भूकंप होता रहता है ॥ ३५ ॥ (उस समय पृथ्वीमेंसे) चिनगारियें, अंगारे और अतिदारुण धूम निकलने लगता है, इस कारण हे तात ! मैं अपने आश्रममें सुखपूर्वक नहीं रहसकता ३६ तुम लोकोंका हित करनेकी इच्छासे उस बड़े भारी शरीर वाले असुरका नाश करो, उस असुरके मारे जाने पर लोक स्वस्थ होजावेंगे ।३७। हे पृथिवीपते ! एक तुमही उसका वध करनेमें समर्थ हो और हे अनघ ! ब्रह्माजीने मुझे पूर्वयुगमें वर दिया था, कि—॥ ३८ ॥ कि तू (राजा) इस महावली बड़े भारी

महाबलम् । तस्य त्वं वरदानेन तेज आप्याययिष्यसि ॥ ३६ ॥
न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाऽल्पेन शक्यते । निर्दग्धुं पृथिवीपाल
स हि वर्षशतैरपि । वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ४०
स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तंकेन महात्मना । कुवलाश्वं सुतं प्रादा-
त्तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥ ४१ ॥ बृहदश्व उवाच । भगवन्न्यस्त-
शस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुंधुमारो न
संशयः ॥ ४२ ॥ स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥ ४३ ॥ कुवलाश्वस्तु पुत्राणां
शतेन सह पार्थिवः । मायादुत्तंकसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे ४४
तमाविशत्तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः । उत्तंकस्य नियोगाद्वै
लोकस्य हितकाम्यया ॥ ४५ ॥ तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो

रौद्र दैत्यका संहार करेगा, उस वरदानके कारण तुम्हारा तेज बढ़ेगा ॥ ३६ ॥ हे पृथिवीपते ! महातेजस्वी धुन्धुको अल्प तेज वाला पुरुष सौ वर्षमें भी नहीं मार सकता उसमें ऐसा बल है, कि–देवता भी उसको कठिनतासे दबा सकते हैं ॥ ४० ॥ राजर्षि बृहदश्वने महात्मा उत्तंककी बात सुन कर धुंधुको मारनेके लिये अपने पुत्र कुवलाश्वको मुनिके लिये देदिया था ॥ ४१ ॥ बृहदश्वने कहा, कि–हे भगवन् ! मैंने तो शस्त्र त्याग दिये हैं किन्तु हे द्विजश्रेष्ठ ! यह मेरा पुत्र (आपके अर्पण है, यह) अवश्य धुन्धुमार होगा ॥ ४२ ॥ (यह कह) उन राजर्षिके अपने पुत्र को धुन्धुको मारनेकी आज्ञा दी और वह संशितव्रत अपने आप तो तप करनेको ही चले गए । ४३ । तदनन्तर कुवलाश्व अपने सौ पुत्रोंको और उत्तंकको साथमें लेकर धुन्धुका निग्रह करनेके लिये चला ४४ उस समय भगवान् विष्णु उत्तङ्क ऋषिके कहने से लोकोंका हित करनेके लिये उस राजाके शरीरमें अपने तेजस्वरूपसे प्रविष्ट होगए अर्थात् उन्होंने अपना तेज राजाको

महानभूत् । एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥४६॥ दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समन्तात् समवाकिरन् । देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्षभ ॥ ४७ ॥ स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान् । समुद्रं खानयामास वालुकार्णवमव्ययम् ॥ ४८ ॥ नारायणेन कौरव्य तेजसा प्यायितः स वै । बभूव स महातेजा भूयो बलसमन्वितः ॥ ४९ ॥ तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकांतर्हितस्तदा । धुन्धुरासादितो राजन् दिशमाश्रित्य पश्चिमाम् ॥ ५० ॥ मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव । वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥ ५१ ॥ सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलं महत् । तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा ॥ ५२ ॥ ततः स

देदिया ४५ उस दुराधर्ष राजाके प्रस्थान करने पर आकाशमेंसे गम्भीर वाणी सुनाई दी कि—"यह श्रीमान् अवध्य राजा आज धुन्धुमार होजायगा" ४६ उसीसमय देवताओंने उसके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षाकी, हे भरतर्षभ ! उस समय उन्होंने अपनी देवदुन्दुभियें बजाईं ॥ ४७ ॥ और जीतने वालोंमें श्रेष्ठ वह वीर्यवान् राजा अपने पुत्रोंके साथ तहाँ पहुँचकर वालुकासे पूर्ण समुद्रको खुदवाने लगा । ४८ । हे कौरव्य ! वह महासत्त्वो राजा नारायणके तेजसे व्याप्त होनेके कारण और भी अधिक तेजस्वी होगया ४९ हे भरतश्रेष्ठ ! उसके पुत्रोंने खोदते २ बालुकामें छिपे हुए धुन्धु दैत्यको पश्चिम दिशाको व्याप्त कर सोतेहुए देखा ५० उस समय वह क्रोधमें भर अपने मुखमेंसे अग्नि निकालकर लोकोंको लौट पौट सा करने लगा और हे भरतश्रेष्ठ ! धारा लहर और कीचड़ वाला समुद्र जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर बढ़ता है, इसी प्रकार वह (अपने शरीरसे) जलको वेगसे बहाने लगा, इस प्रकार उस राक्षसने राजाके सत्तानवें पुत्रोंको भस्म कर दिया ५२ हे कौरव्य ! इस घटनाके अनन्तर धुन्धको दबानेके

राजा कौरव्य राक्षसं तं महाबलम् । आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुनिवर्हणः ॥५३॥ तस्य वारिमयं वेगमपिबत् स नराधिपः । योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ॥ ५४ ॥ निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् । उत्तंकं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥ ५५ ॥ उत्तंकस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने । ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ॥ ५६ ॥ धर्मे रतिं च सततं स्वर्गवासं तथाऽक्षयम् पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच । तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते । चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ ॥ १ ॥ धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः । हर्यश्वस्य निकुं-

---

लिये आये हुए उस महातेजस्वी राजाने उस महाबली राक्षसको देखा ५३ फिर उस योगी राजाने योगके द्वारा जलके प्रवाहको पीलिया और जलसे अग्निको शान्त कर दिया ५४ राजाने उस महाशरीर वाले जलीय राक्षसको बलपूर्वक मार कर उत्तंक मुनि को दिखाया ५५ उस समय उत्तंकने उस महात्मा राजाको वर दिया, कि-तेरा धन अखूट रहेगा, शत्रु तेरा पराजय न कर सकेंगे, धर्म पर तेरी सदा प्रीति रहेगी तथा तुझे स्वर्गमें अक्षय वास मिलेगा, और राक्षसने तेरे जिन पुत्रोंको मार डाला है उनको स्वर्गमें अक्षय लोक मिलेंगे। ५६ । ५७ । एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ※ ※ ※

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि उसके तीन पुत्र बचे थे, उनमें बड़ा पुत्र दृढाश्व कहलाता था और दो छोटे चन्द्राश्व और कपिलाश्व कुमार बचे थे ।१ । धुन्धुमारका पुत्र दृढाश्व था उसका

भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ २ ॥ संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः । अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृप ॥३॥ तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती । विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥ ४ ॥ लेभे प्रसेनजिद्भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् । अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाऽभवत् ॥५॥ तस्याः पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो महीपतिः । मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥ ६ ॥ तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिंदोः सुताऽभवत् । साध्वी बिंदुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि७ पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य सा । तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप ॥ ८ ॥ पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम् । पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः ॥ ९ ॥ नर्म-

---

पुत्र हर्यश्व हुआ; हर्यश्वके निकुम्भ नामक पुत्र था, वह क्षत्रियधर्म में सदा तत्पर रहता था२ निकुंभके संहताश्वनामक रणविशारद पुत्र उत्पन्न हुआ, हे नृप ! संहताश्वके अकृशाश्व और कृशाश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुए ३ उसके हिमवान्‌की कन्या दृषद्वती नाम वाली भार्या थी वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थी उसके प्रसेनजित् नामवाला पुत्र भी हुआ था, इस प्रकार वह (तीन) सज्जन पुत्रोंकी माता थी ॥ ४ ॥ प्रसेनजित्‌के गौरी नाम वाली पतिव्रता भार्या थी, वह भर्ताके शाप देने पर बाहुदा नदी बन गई थी५ उसका पुत्र बड़ा उदार था उसका नाम राजा युवनाश्व था, युवनाश्वके त्रैलोक्यविजयी मान्धाता नामका पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ उसकी चैत्ररथमें उत्पन्न हुई शशबिन्दुकी पुत्री भार्या थी, उस साध्वीका बिन्दुमती नाम था और वह पृथिवीमें अनुपम रूपवती थी७ वह पतिव्रता थी उसके एक लाखन भाई थे और वह उनमें बड़ी थी, हे राजन् ! मान्धाताने उसमें धर्मज्ञ पुरुकुत्स और धार्मिक मुचुकुन्द इन दो पुत्रोंको उत्पन्न किया था, पुरुकुत्सका पुत्र त्रसदस्यु

दायामथोत्पन्नः संभूतस्तस्य चात्मजः । संभूतस्य तु दायादः
सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥ १० ॥सुधन्वनः सुतश्चासीत् त्रिधन्वा
रिपुमर्दनः । राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः ॥११॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः । पाणिग्रहणमन्त्राणां
विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ॥ १२ ॥ येन भार्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहा
परस्य वै । बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च १३
जहार कन्यां कामात् स कस्यचित् पुरवासिनः । अधर्मशंकुना
तेन राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत् ॥ १४ ॥ अपध्वंसेति बहुशो वदन्
क्रोधसमन्वितः। पितरं सोऽब्रवीत्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः१५
पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय । नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी
त्वयाऽद्य कुलपांसन ॥१६॥ इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात्

नामक राजा हुआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ उसके नर्मदा नामवाली स्त्रीसे संभूतनामक पुत्र उत्पन्न हुआ, संभूतके पुत्रका सुधन्वा राजा नाम था ॥ १० ॥ सुधन्वाके रिपुमर्दन त्रिधन्वा पुत्र हुआ, राजा त्रिधन्वाके त्रय्यारुण नामक पुत्र हुआ ११ उसका सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुआ वह दुर्मति पाणिग्रहणके ("नावेहि संभवावहै पुंसे पुत्राय वेत्त वै" इत्यादि) मन्त्रोंमें विघ्न डालने लगा १२ उसने बालकपन काम मोह हर्ष और चपलताके कारण दूसरे की विवाहित स्त्रीको छीन लिया था ॥ १३ ॥ और उसने एक पुरवासीकी कन्याको छीन लिया था.इस प्रकार अधर्मकी कीलसे विंधनेके कारण राजा त्रय्यारुणने क्रोधमें बहुत बार हे अपध्वंस! हे अपध्वंस ! (विलोमज) कह कर उसको त्याग दिया,तब उसने अपने पितासे बारम्बार कहा, कि-मैं कहाँ जाऊँ ॥१४॥१५॥ तब उसके पिताने कहा, कि-तू श्वपाकों (चाण्डालविशेषों) में रह और हे कुलपांसन ! मैं तुझ ऐसे पुत्रसे पुत्रवान् बनना नहीं चाहता ॥ १६ ॥ इस प्रकार कहने पर वह पिताके वचनानुसार

पितुः । न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १७ ॥ स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके । पित्रा त्यक्तोऽवसद्धीरः पिता तस्य वनं ययौ ॥१८॥ ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः । समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा ।१९। दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः । संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥२०॥ तस्य पत्नी गले बध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् । शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥ २१ ॥ तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः । महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भारत ॥२२॥ सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् । विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकंपार्थमेव च ॥ २३ ॥ सोऽभवद्गालवो

नगरमेंसे बाहर निकल गया, उस समय भगवान् वसिष्ठने उसको नहीं रोका ॥१७॥ धीर सत्यव्रत पिताके त्यागनेसे चाण्डालोंके घरोंके पास रहने लगा और उसका पिता अरण्यारुण (विरक्त होकर) वनको चला गया ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय उस देशमें उस (ब्राह्मणकी कन्याका हरण करनेसे) अधर्मके कारण बारह वर्ष तक इन्द्रने वर्षा नहीं बरसाई ॥ १९ ॥ उस समय महातपस्वी विश्वामित्र उस देशमें अपनी स्त्रीको न्यास (धरोहड़) रूपसे रख कर सागरानूपमें घोर तप करने लगे ॥ २० ॥ विश्वामित्रकी स्त्री कुटुम्बको पालनेके लिये अपने मध्यम पुत्रको गलेमें बाँधकर उसको सौ गौओंके बदलेमें बेचती हुई फिरने लगी ॥ २१ ॥ हे भारत ! धर्मात्मा राजपुत्रने उसको गलेमें बँध कर बिकता हुआ देख कर उस महर्षिपुत्रको छुड़ा दिया२२ फिर महाभुज सत्यव्रतने विश्वामित्रको सन्तुष्ट करनेके लिये और उनकी अनुकंपा पानेके लिये उस पुत्रका भरणपोषण किया२३ वह महातपस्वी गलेमें बाँधनेके कारण गालव नामसे प्रसिद्ध हुआ,

नाग. गलबन्धान्महातपाः । महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच । सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया । विश्वामित्रकलत्रं तद्बभार विनये स्थितः ॥ १ ॥ हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् । विश्वामित्राश्रमाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध सः ॥ २ ॥ उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् । पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे ॥ ३ ॥ अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः । याज्योपाध्यायसम्बन्धाद्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥४॥ सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वा बलात् । वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास वै

हे तात ! (इस प्रकार) उस वीरने उस कुशिकवंशीको छुड़ाया था ॥ २४ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–सत्यव्रत (विश्वामित्र आराध्य हैं, इस) भक्तिसे और (उसका कुटुम्ब अनाथ है अत एव) कृपाके कारण और (मैं वसिष्ठजीकी शिष्यताको छोड़ दूँगा ऐसी) प्रतिज्ञाके कारण विनयपूर्वक विश्वामित्रकी स्त्रीका पालन करने लगा ॥ १ ॥ वह वनमें फिरनेवाले हिरन सूअर और भैंसोंको मार कर उनका मांस विश्वामित्रके आश्रमके पासके वृक्षोंमें बाँध देता था वह पिताके वनमें जाने पर पिताकी आज्ञा से बारह वर्षकी दीक्षा लेकर चुपचाप (किसीको विदित न हो, इस प्रकार) व्रत करने लगा ॥ ३ ॥ पुरोहिताई और यजमानी के सम्बंधके कारण मुनि वसिष्ठ अयोध्याकी राष्ट्रकी और अन्तःपुरकी रक्षा करने लगे ४ सत्यव्रत भावीके बलके कारण और बालकपनके कारण वसिष्ठजीके ऊपर परम कुपित रहने लगा

तदा ॥ ५ ॥ पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं स्वमात्मजम् । न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥ ६ ॥ पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे । न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ७ ॥ जानन् धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत । सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाऽकरोत् ॥ ८ ॥ गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा । न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ९ ॥ तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः । तेन द्वादशवर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ॥ १० ॥ तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि । कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति ॥ ११ ॥ न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।

परन्तु मुनि वसिष्ठने तो उसके पिताको अपने पुत्रको राज्यसे निकालते समय कारणवश नहीं रोका था (आशय यह था कि-यह कुछ समय तक प्रायश्चित कर ले)६पाणिग्रहणके मन्त्र सातवें पदके पूर्ण होनेपर हुए माने जाते हैं(और इसने सप्तपदीसे पूर्व ही कन्याका हरण कर लिया अत एव यह बारह वर्षका प्रायश्चित करे) वशिष्ठजीके इस गूढ़ आशयको सत्यव्रत समझ न सका था ॥ ७ ॥ हे भारत ! उसने समझा, कि-वसिष्ठजी धर्मको जानते थे, तब भी इन्होंने मेरी रक्षा नहींकी यह विचार सत्यव्रत वसिष्ठजीसे मनमें क्रुद्ध रहने लगा ॥ ८ ॥ परन्तु भगवान् ! वसिष्ठजीने उसको गुणी बनानेकी बुद्धिसे ऐसा किया था, परन्तु सत्यव्रत उनके इस गूढ़ आशयको समझ न सका॥९उस(सत्यव्रत) के पिताके असन्तुष्ट होजानेके कारण उसके राज्यमें बारह वर्ष तक इन्द्रने वर्षा नहींकी थी ॥ १० ॥ यदि (सत्यव्रत) इस पृथिवीमें दुर्वह दीक्षाको धारण कर लेगा तो इसके कुलका उद्धार होजायगा ॥ ११ ॥ यह विचार कर भगवान् वसिष्ठजीने उसके पिताको नहीं रोका था, उनका विचार था, कि-(भाग-

अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः ॥ १२ ॥ स तु द्वादश-
वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद्बली । उपांशुव्रतमास्थाय महत्सत्यव्रतो
नृप ॥ १३ ॥ अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः । सर्व-
कामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः ॥ १४ ॥ तां वै क्रोधाच्च
मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधार्दितः ।दशधर्मान् गतो राजा जघान जन-
मेजय ॥ १५ ॥ तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे । क्रुद्धस्तु भगवान्
वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् ॥ १६ ॥ वसिष्ठ उवाच । पातयेयमहं
क्रूर तव शंकुमसंशयम् ।यदि ते द्वाविमौ शंकू न स्यातां वै कृतौ
पुनः ॥ १७ ॥ पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । अप्रो-

श्चित्तके अनन्तर) मैं इसके पुत्रका अभिषेक करूँगा ॥ १२ ॥
हे नृप ! बली सत्यव्रतने चुपचाप दीक्षा धारण कर बारह वर्ष
तक महाव्रतको धारण किया ॥ १३ ॥ एक समय मांसके निबड़
जाने पर उसने सब कामनाओंको पूर्ण करने वाली महात्मा
वसिष्ठजीकी दुधेर गौको देखा ॥ १४ ॥ हे जनमेजय ! राजाने
उस गौको क्रोध मोह श्रमके कारण और भूँखसे पीड़ा पानेके
कारण दशधर्मोंको प्राप्त होने पर मार डाला (वे दश धर्म इस
प्रकार हैं,—"मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्त क्रुद्धो बुभुक्षितः । त्वर-
माणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश ।")१५उस मांसको उसने
विश्वामित्रके पुत्रोंको खिलाया और अपने आप भी खाया, यह
सुन कर वसिष्ठ भी क्रोधमें भर गए क्रोधमें भरे हुए वसिष्ठजीने
राजाके पुत्रसे यह बात कही कि—॥१६॥ वसिष्ठजीने कहा,कि—
हे क्रूर ! मैं तेरे शंकु (दोष) को अवश्य ही नष्ट करदूँगा जिससे
तेरे ये दो शंकु (दोष) तेरे चाहने पर भी तुझसे न होसकेंगे१७
पिताको सन्तुष्ट न रखना, गुरुकी गौकी हत्या करना, अप्रो-
क्षित (असंस्कृत) मांसका उपयोग करना (खाना) इस प्रकार

क्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥१८॥ वैशम्पायन उवाच । एवं त्रीण्यस्य शंकूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः । त्रिशंकुरिति होवाच त्रिशंकुरिति स स्मृतः ॥ १९ ॥ विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते । स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशंकवे ॥२०॥ छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः । सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः ॥२१॥ अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके । राज्येभिषिच्य पित्र्ये तु याजयामास तं मुनिः ॥२२॥ मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः । सशरीरं तदा तं तु दिवमारोपयत् प्रभुः ॥ २३ ॥ तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा । कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ २४ ॥ स वै राजा हरिश्चंद्रस्त्रैशंकव इति स्मृतः । आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः ॥ २५ ॥ हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्य-

तेरा तीन प्रकारका दोष है ॥ १८ ॥ वैशम्पायन मुनिने कहा; कि-महातपस्वी वसिष्ठजीने इस प्रकार उसके तीन शङ्कुओं (दोषों) को देखकर त्रिशंकु कहा था, कि-तबसे वह त्रिशंकु कहलाने लगा १९ (काल दूर होने पर) विश्वामित्रजी (तहाँ) आगये और वह मुनि अपनी स्त्रीका भरण पोषण करनेके कारण त्रिशंकुको वर देने लगे ॥ २० ॥ वरके लिये कहने पर राजकुमारने वर माँगा था, उसने मुनिसे याचना की, कि-"मैं सशरीर ही स्वर्गमें जाऊँ"॥ २१ ॥ बारहवर्षकी अवृष्टिके बीत जाने पर विश्वामित्र उसको उस पिताके राज्य पर अभिषेक करके उसको यज्ञ कराने लगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर कौशिक वसिष्ठ और देवताओंकी दृष्टि के सामने ही सशरीर ही उसको स्वर्गमें चढ़ा दिया था ॥२३॥ उसकी भार्या केकयवंशकी थी उसका नाम सत्यरथा था उसने हरिश्चन्द्र नामक निष्पाप कुमारको उत्पन्न किया था ॥ २४ ॥ वह राजा हरिश्चन्द्र त्रैशंकव नामसे प्रसिद्ध था उसने राजसूय

धान् । येनेदं रोहितपुरं कारितं राजसिद्धये ॥२६॥ कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वथ प्रजाः । संसारासारतां ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत् पुरं ददौ ॥२७॥ हरितो रोहितस्याथ चंचुर्हारीत उच्यते। विजयश्च सुदेवश्च चंचुपुत्रौ बभूवतुः ॥ २८ ॥ जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः । रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविदः ॥ २९ ॥ रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान् । शकैर्यवनकांबोजैः पारदैः पल्हवैः सह ॥ ३० ॥ हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम् । नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥ ३१ ॥ सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च । और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥ ३२ ॥ आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः । जिगाय पृथिवीं हत्वा ताल-

---

नामक यज्ञ किया था और सम्राट वह कहलाता था२५हरिश्चन्द्र का रोहित नाम वाला वीर्यवान् पुत्र हुआ, उसने इस राज्यकाय की सिद्धिके लिये रोहितपुर बसाया था२६उस राजर्षिने राज्यको करके और प्रजाका पालन करनेके उपरान्त संसारकी असारताको जानकर अपना नगर ब्राह्मणोंको देदिया था२७रोहितके हरित हुआ, हरितका पुत्र चञ्चु हुआ और चञ्चुके विजय और सुदेव नामक पुत्र हुए२८उसने सब क्षत्रियोंको जीत लिया था,इस लिये वह विजय कहलाता था, इसका पुत्र रुरुक हुआ, वह धर्म और अर्थमें कुशल था२९रुरुकका पुत्र वृक हुआ, वृकसे बाहु उत्पन्न हुआ, वह राजा उस धर्मयुगमें अतिधार्मिक नहीं था इस लिये शक यवन काम्बोज पारद पल्हव हैहय और तालजंघोंने उसको उसके राज्य पर अलग कर दिया था ३० ३१ बाहुका जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह विषसे सहित हुआ उत्पन्न हुआ था इससे वह सगर कहलाता था और्वके आश्रममें जाने पर सगरने भृगुवंशी और्वसे (अस्त्रविद्या) को सीख कर तालजंघ और हैहयों

जंघान् सहैहयान् ॥ ३३ ॥ शकानां पल्हवानां च धर्मं निरसदच्युतः । क्षत्रियाणां कुरुश्रेष्ठ पारदानां स धर्मवित् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
त्रिशंकुचरितकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

जनमेजय उवाच । कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः । किमर्थं च शकानां स क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥ १ ॥ धर्मं कुलोचितं क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः । एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । बाहोर्व्यसनिनस्तात हृतं राज्यमभूत्किल । हैहयैस्तालजंघैश्च शकैः सार्धं विशाम्पते ॥३॥ यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पल्हवाः खसाः । एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥४॥ हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ । पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत् ॥५॥

को मारकर पृथ्वीको जीत लिया ॥ ३३ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उस धर्मवेत्ता परिपूर्ण शक्ति वालेने शक और पल्हव क्षत्रियोंके धर्मको भ्रष्ट कर दिया था ॥ ३४ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त १३

जनमेजयने कहा, कि–हे तपोधन ! वह राजा विषके साथ क्यों उत्पन्न हुआ था और विषके साथ उत्पन्न होने पर भी क्यों नहीं मरा था और उस अच्युत राजाने क्रोधमें भर कर महाबली शक क्षत्रियोंके कुलोचित धर्मको क्यों दूर किया था अर्थात् उनको क्षत्रियधर्मसे भ्रष्ट क्यों बना दिया था ॥१॥२॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–हे राजन् ! मृगया और द्यूत तथा परस्त्रीमें आसक्त रहनेवाले बाहुके राज्यको हैहय तालजंघ और शकोंने छीन लिया था॥३॥ यवन पारद काम्बोज पल्हव खश इन पाँचोंने भी हैहयोंके लिये पराक्रम किया था ॥४॥ राज्यके छिन जाने पर राजा बाहु वनको चला गया और उसकी पत्नी उसके पीछे २ गई, इसके अनन्तर उस राजाने दुःखी होकर

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् । सपत्न्या च गर-
स्तस्यै दत्तः पूर्वमभूत् किल ॥ ६ ॥ सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने
तामध्यरोहत । और्वस्तां भार्गवस्तात कारुण्यात् समवारयत् ७
तस्याश्रमे च तं गर्भं गरेणैव सहाच्युतम् । व्यजायत महाबाहुं
सगरं नाम पार्थिवम् ॥ ८ ॥ और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा
महात्मनः । अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ।६।
आग्नेयं तु महाघोरममरैरपि दुःसहम् । स तेनास्त्रबलेनाजौ
बलेन च समन्वितः ॥ १० ॥ हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः
पशूनिव । आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः ॥ ११ ॥
ततः शकान् सयवनान् कांबोजान् पारदांस्तथा । पल्हवांश्चैव
निःशेषान् कर्तुं व्यवसितस्तदा ॥ १२ ॥ ते वध्यमाना वीरेण

अपने प्राणोंको छोड़दिया ॥ ५ ॥ उसकी स्त्री यदुवंशकी पुत्री थी वह गर्भसे थी, तब भी वह बाहुके पीछे २ गई थी और उसको पहिले उसकी सौतने विष देदिया था ॥ ६ ॥ जब वह स्वामीकी चिता बना कर उस पर चढने लगी, उस समय भृगुवंशी और्वने दया आनेके कारण उसको रोका ॥ ७ ॥ और उनके आश्रममें ही विष-गर-सहित गर्भमेंसे सगर नामक महाभुज राजाको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ और्वने उस महात्माके जातकर्म आदि संस्कार करके उसको वेद और शास्त्र पढाये फिर उन्होंने उसको अस्त्रविद्या सिखाई ॥ ९ ॥ उन्होंने उसको देवताओंको भी असह्य महाघोर आग्नेय अस्त्र दिया था, जब वह अस्त्रके बलसे और (शारीरिक) बलसे सम्पन्न होगया तब उसने क्रोधमें भरकर रुद्र जैसे पशुओंका संहार करते हैं, तैसे हैहयों का संहार कर डाला और उस कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ पुरुषने लोकों में कीर्ति पाई थी ॥१०॥११॥ इसके अनन्तर वह शक यवन कांबोज पारद और पल्हवोंको निःशेष करने पर फैल पड़ा१२

सगरेण महात्मना । वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् १३
वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः । सगरं वारयामास
तेषां दत्त्वाऽभयं तदा ॥१४॥ सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं
निशम्य च । धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥ १५ ॥
अर्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः
सर्वं कांबोजानां तथैव च ॥ १६ ॥ पारदा मुक्तकेशाश्च पल्हवाः
श्मश्रुधारिणः । निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना १७
शका यवनकांबोजाः पारदाश्च विशांपते । कोलिसर्पाः समहिषा
दार्व्याश्चोलाः सकेरलाः ॥१८॥ सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां
निराकृतः । वसिष्ठवचनाद्राजन् सगरेण महात्मना ॥१९॥
खसांस्तुषारांश्चोलांश्च मद्रान्किष्किंधकांस्तथा । कौंतलांश्च तथा

महात्मा सगरके पीटने पर उन्होंने वसिष्ठजीकी शरणमें जाकर उनको प्रणाम किया ॥ १३ ॥ महाद्युति वसिष्ठने (शरणागतों की रक्षा करनी चाहिये ऐसी शिष्ट मर्यादाको) देखकर उनको अभयदान दिया और सगरको रोक दिया ॥ १४ ॥ सगरने अपनी प्रतिज्ञा और गुरुके वाक्यकी ओर देखकर उनके धर्मका नाश कर दिया ॥ १५ ॥ उसने शकोंके आधे शिरको मूँडकर उनको छोड़ दिया, यवनोंके सारे शिरको मूँड डाला और काम्बोजोंके भी सारे शिरको मुँडवा दिया और उस महात्माने पारदोंके शिरको मुक्तकेश कर दिया और पल्हवोंको डाढ़ीवाले बना दिया (और सबको स्वाध्याय और वषट्कार रहित कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे विशाम्पते ! शक यवन काम्बोज पारद कोलिसर्प महिष दार्व चोल और केरल ये सब क्षत्रिय थे इन सबके धर्मको वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा सगरने दूर कर दिया था ॥ १८ ॥ १९ ॥ उस धर्मविजयी राजाने अश्वमेधकी दीक्षा लेकर खस तुषार चोल मद्र किष्किन्धक कौंतल

वङ्गान् साल्वान् कौंकणकांस्तथा ॥ २० ॥ स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्। अश्वं वै मेरयामास वाजिमेधाय दीक्षितः २१ तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे । वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः । आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥२३॥ तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण स्वपंतं पुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुद्ध्यतः। दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ २५ ॥ बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः । शूरः पञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरो नृपः ॥२६॥प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरान् । अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्तिं चाप्यनिवर्तिनीम् ॥ २७ ॥ पुत्रं

वंग साल्व और कौंकणकोंको जीतकर पृथ्वीका विजय कर (अपना) घोडा छोड़ा ॥ २० ॥ २१ ॥ जब अश्व घुमाया जारहा था तब पूर्वदक्षिण (अग्निकोण) में समुद्रके किनारेकी भूमिमें किसीने घोड़ेको हरकर भूमिमें छिपा दिया ॥२२॥ उस समय राजाने अपने पुत्रोंसे उस स्थानको खुदवाया, समुद्रके खोदने पर उसके पुत्रोंने आदिपुरुष (प्रकृतिके प्रवर्तक) हरि (अविद्याके कार्यको हरने वाले) कृष्ण प्रजापति (सदानन्दरूप प्रजाके पति) पुरुषोत्तम (अन्तर्यामी) कपिलरूपी विष्णुको सोते हुए अर्थात् समाधिमें स्थित देखा ॥ २३ ॥ २४ ॥ उनके योग निद्राको त्यागने पर उनके नेत्रमेंसे निकलते हुए तेजसे वे सब (राजकुमार) भस्म होगए, केवल चार ही बाकी रहगए (उनके नाम यह हैं) बर्हिकेतु सुकेतु तथा राजा धर्मरथ और वंशको चलानेवाला शूर पञ्चजन ॥ २६ ॥ तब हरि नारायण भगवान्ने वर दिया, कि-इक्ष्वाकुका वंश अक्षय रहे और तेरी कीर्त्ति कभी नष्ट न हो ॥२७॥ और समुद्र तेरा पुत्र बन जाय

समुद्रं च विभुः स्वर्गवासं तथाऽक्षयम् । पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकांस्तस्य ये चक्षुषा हताः ॥ २८ ॥ समुद्रश्चार्घमादाय ववंदे तं महीपतिम् । सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥ २९ ॥ तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् । आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहायशाः । पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सगरोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जनमेजय उवाच । सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महात्मनः । विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे । ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ॥ २ ॥ कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी।अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि३

तथा तुझे अक्षय स्वर्गवास मिलेगा और जो पुत्र उनके नेत्रोंसे भस्म होगए थे उनको अक्षय लोक दिये ॥२८॥ (उस समय) समुद्रने अर्घ लेकर उस राजाको प्रणाम किया और राजा सगरके इस कर्मके कारण समुद्रका सागर नाम पड़ गया ॥ २९ ॥ फिर उसको अश्वमेधका घोड़ा समुद्रमेंसे मिलगया, हमने सुना है, कि-उस राजाने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे और उसके साठ सहस्र पुत्र थे ॥३०॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त

जनमेजयने कहा, कि-हे द्विज ! महात्मा सगरके साठ सहस्र पराक्रमी पुत्र कैसे उत्पन्न हुए और कौनसी विधिसे उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-सगरकी दो रानियें थीं, तपसे उनके पाप नष्ट होगए थे उनमें बड़ी विदर्भकी पुत्री थी और वह केशिनी नामसे प्रसिद्ध थी २ और उसकी छोटी रानी परम धार्मिका थी वह अरिष्ट नेमिकी पुत्री थी, वह पृथ्वीमें अनु-

और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तन्निबोध जनाधिप । षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ॥४॥ एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति । तत्रैका जगृहे पुत्राँल्लुब्धा शूरान् बहूंस्तथा ॥ ५ ॥ एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः । केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥ ६ ॥ राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः । इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ॥ ७ ॥ तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः । संबभूवुर्यथा कालं ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥८॥ घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे पिता । धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीरेव पोषणे ॥९॥ ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् । कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धनाः ॥ १० ॥ षष्टिः पुत्रसहस्राणि तथैवमभवन्नृप । गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि

पम रूपवती थी ॥ ३ ॥ हे जनाधिप ! और्वने उन दोनोंको जो वर दिया था उसको तुम सुनो,(उन्होंने कहा,कि–)एक तपस्विनी साठ सहस्र पुत्र माँगले और एक वंशधर एक पुत्रको माँगले तब उनमेंसे एक लोभिनीने शूरवीर बहुतसे पुत्रोंको माँग लिया और एकने एक वंशधर पुत्रको माँग लिया, तब मुनिने तथास्तु कह दिया, तब केशिनीने सगरसे असमंजस नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ वह पञ्चजन नामक महाबलवान् राजा हुआ, दूसरीने बीजोंसे भरीहुई एक तोम्बीको उत्पन्न किया, यह बात प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ उसमें तिलकी समान साठ सहस्र गर्भ थे वे समय आने पर उत्पन्न हुए और बढने लगे ॥ ८ ॥ पिताने उन गर्भोंको घृतसे भरे हुए कुम्भोंमें डाल दिया और उनका पोषण करनेके लिये उतनी ही धाइयोंको रख दिया॥ ९॥ तब दश महीने बीतने पर उनमेंसे सगरकी प्रीतिको बढानेवाले कुमार सुखपूर्वक समयानुसार उत्पन्न होने लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! इसप्रकार सगरके साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे

पृथिवीपते ॥११॥ तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् । एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥ १२ ॥ सुतः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्यवान् । दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वांग इति विश्रुतः ॥ १३ ॥ येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् । त्रोयऽनुसन्धिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ ॥ १४ ॥ दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः । यः स गंगां सरिच्छ्रेष्ठामवतारयत प्रभुः ॥ १५ ॥ कीर्तिमान् स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः । समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत् । तस्माद्भागीरथी गंगा कथ्यते वंशचिंतकैः ॥ १६ ॥ भागीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः । नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्मिकः ॥१७॥ अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताऽभवत् ।

और हे पृथिवीपते! वे तोम्बीके मध्यमें गर्भसे उत्पन्न हुए थे ११ जिनमें नारायणका तेज व्याप्त होरहा है ऐसे राजकुमारोंमें एक पञ्चजन नामक पुत्र राजा हुआ ॥ १२ ॥ पञ्चजनका पुत्र वीर्यवान् अंशुमान् हुआ, उसका पुत्र खट्वांग हुआ वह दिलीप नामसे (भी) प्रसिद्ध है ॥ १३ ॥ उसने स्वर्गसे यहाँ आकर मुहुर्त भरका जीवन पाकर सूक्ष्मबुद्धिसे (सत्य) ब्रह्मभावके द्वारा तीनों लोकोंको तत्त्वतः जान लिया था अर्थात् उसने मुहूर्त भरमें चित्त की एकाग्रताका सम्पादन कर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म-यह सब ब्रह्म है" यह ज्ञान प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥ दिलीपके महाराज भगीरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उस प्रभुने नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीको (स्वर्गमेंसे भूमि पर) उतारा था १५ इन्द्रकी समान पराक्रमी वह कीर्तिमान् महापुरुष गङ्गाजीको समुद्र तक लेगया और उसने गङ्गाजीको अपनी पुत्री समझा था इस लिये वंशों का विचार करने वाले गङ्गाजीको भागीरथी कहते हैं ॥ १६ ॥ भगीरथ पुत्र श्रुत प्रसिद्ध है, श्रुतका पुत्र परमधार्मिक था, उसका

अयुताजित्तु दायादः सिंधुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥ १८ ॥ अयुताजित् सुतस्त्वासीदृतपर्णो महायशाः । दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नल-सखो बली ॥ १९ ॥ ऋतपर्णसुतस्त्वासीदार्तपर्णिर्महीपतिः । सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत्॥ २० ॥ सुदासस्य सुतस्त्वासीत् सौदासो नाम पार्थिवः । ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्नामित्रसहस्तथा ॥ २१ ॥ कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः । अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्वकर्मणः ॥२२॥ अन-रण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः । अनमित्रो रघुश्चैव पार्थि-वर्षभसत्तमौ ॥२३॥ अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान्दुलिदुहोऽभवत् । दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः ॥२४॥ दीर्घबाहुर्दिली-पस्य रघुर्नाम्नाऽभवत् सुतः । अयोध्यायां महाराजो रघुश्चासी-न्महाबलः ॥ २५ ॥ अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद्दशरथोऽभवत् ।

नाम नाभाग था ॥ १७ ॥ नाभागका पुत्र अम्बरीष हुआ वह सिन्धुद्वीपका पिता था, सिन्धुद्वीपके अयुताजित् नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ अयुताजित्के ऋतपर्ण नामक महायशस्वी पुत्र हुआ, वह दिव्य द्यूतविद्याको जानता था और वह बली राजा नलका मित्र था ॥१९॥ ऋतपर्णका पुत्र राजा आर्तपर्णि हुआ, उसका पुत्र सुदास हुआ वह राजा इन्द्रका मित्र था॥२०। सुदासका पुत्र सौदास नामक राजा था, वह कल्माषपाद और अमित्रसह नामसे भी प्रसिद्ध था ॥ २१ ॥ कल्माषपादका पुत्र सर्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध था, सर्वकर्माका अनरण्य नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ अनरण्यका पुत्र निघ्न था निघ्नके अनमित्र और रघु नामक पुत्र उत्पन्न हुए वे राजाओंमें श्रेष्ठ माने जाते थे ॥ २३ ॥ अनमित्रके विद्वान् दुलिदुह नामक पुत्र हुआ, उसके दिलीप नामक पुत्र हुए, वे रामके प्रपितामह थे ॥२४॥ दिलीपके रघु नामक महाभुज पुत्र उत्पन्न हुआ, वह रघु अयोध्या

रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः ॥ २६ ॥ रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः । अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥ २७ ॥ निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु । नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥ २८ ॥ क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान् । आसीदहीनगुर्नाम देवानीकसुतः प्रभुः ॥२९॥ अहीनगोः सुदायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः । सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृपः ॥ ३० ॥ उक्थो नाम स धर्मात्माऽनलपुत्रो बभूव ह।वज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः ३१ शंखस्तस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः।पुष्पस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ३२ सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् । अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः ॥३३॥

में महाबलीमें राजा हुए थे ॥२५॥ रघुके अज नामक पुत्र हुआ अजके दशरथ हुए और दशरथसे धर्मात्मा और महायशस्वी रामचन्द्र हुए ॥ २६ ॥ रामके कुश नामसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ, कुशसे अतिथि नामक पुत्र हुआ,उसके पुत्रका नाम निषध हुआ ॥ २७ ॥ निषधके नल हुआ और नलके नभ नामक पुत्र हुआ, नभके पुण्डरीक हुआ उसका पुत्र क्षेमधन्वा कहलाता है२८ क्षेमधन्वाके देवानीक नामक प्रतापी पुत्र हुआ,देवानीकके अहीनगु नामक व्यापक पुत्र हुआ ॥ २९ ॥ अहीनगुके सुधन्वा नामक राजा हुआ, सुधन्वाके अनल नामक पुत्र हुआ, अनलके उक्थ नामक धर्मात्मा पुत्र हुआ, महात्मा उक्थके वज्र नामक पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उसके शंख नामक विद्वान् पुत्र हुआ, वह व्युषिताश्व नामसे भी प्रसिद्ध है, उसका पुत्र पुष्प हुआ, उसके अर्थसिद्धि नामक विद्वान् पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ उसके सुदर्शन पुत्र हुआ, सुदर्शनसे अग्निवर्ण हुआ अग्निवर्णके शीघ्र हुआ और शीघ्रके मरु नामक पुत्र हुआ,मरु योगको धारण कर कलापद्वीपमें

मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थितः। तस्यासीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः॥ ३४ ॥ नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ । वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ३५ ॥ इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येनेह कीर्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः॥ ३६ ॥ पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥ ३७ ॥ प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः। विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आदित्यस्य वंशानुकीर्त्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जनमेजय उवाच। कथं वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः। श्रोतुमिच्छामि विप्राग्र्य श्राद्धस्य च परं विधिम्॥ १ ॥ पितॄणामादिसर्गं च क एते पितरः स्मृताः। एवं च श्रुतमस्माभिः कथ्य-

---

रहते हैं उस शास्त्रज्ञ राजाके बृहद्बल नामक पुत्र हुआ ॥ ३४ ॥ हे भरतर्षभ ! पुराणमें दो ही नल कहे हैं, एक वीरसेनका पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न ॥ ३५ ॥ इस समय इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए मुख्य २ राजाओंका वर्णन कर दिया, ये महातेजस्वी राजे विवस्वान्के वंशमें उत्पन्न हुए हैं ३६ जो आदित्य विवस्वान् प्रजाको पुष्टि देने वाले श्राद्धदेवकी इस सृष्टिको भली प्रकार पढ़ता है वह सन्तानवान् होता है बड़ी आयु वाला होता है और रागसे छूट पापरहित हो आदित्य सूर्यकी सायुज्यताको पाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ छ

जनमेजयने कहा, कि-हे विप्रश्रेष्ठ ! विवस्वान् आदित्य श्राद्धदेव क्यों कहलाते हैं और मैं श्राद्धकी मुख्यविधिको भी सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ और पितरोंकी आदि-सृष्टिको भी सुनना चाहता हूँ, जो पितर कहलाते हैं वे कौन हैं ? यह बात हमने

मानं द्विजातिभिः ॥ २ ॥ स्वर्गस्थाः पितरो ये च देवानामपि देवताः । इति वेदविदः प्राहुरेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥ ये च तेषां गणाः प्रोक्ता यच्च तेषां बलं परम् । यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ४ ॥ प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि । एवं वेदितुमिच्छामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् ॥५॥ वैशम्पायन उवाच । हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् । यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् । प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते। अपृच्छद्धर्मराजो हि शरतल्पगतं पुरा। इममेव पुरा प्रश्नं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ७ तत्तेऽनुपूर्व्या वक्ष्यामि भीष्मेणोदाहृतं यथा । गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ८

ब्राह्मणोंसे सुनी है ॥२॥ वेदवेत्ता कहते हैं, कि-"स्वर्गमें स्थित पितर देवताओंके भी देवता हैं।" अतः मैं इस बातको जानना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ उनके जो गण कहे हैं और उनका जो परम बल है और हमारा किया हुआ श्राद्धकर्म उनको किसप्रकार प्रसन्न कर सकता है? ॥४॥ और पितर प्रसन्न होकर मनुष्योंका जिस प्रकार कल्याण करते हैं? इस प्रकार पितरोंकी सब बातोंको मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-मैं तुझसे पितरोंके उत्तम सर्गको कहता हूँ, पितर प्रसन्न होकर जिस प्रकार हमारा कल्याण करते हैं उसको और हमारा किया हुआ श्राद्ध पितरोंको किस प्रकार तृप्त करता है, इन सब बातोंको भीष्मजी के बूझने पर मार्कण्डेयजीने उनसे कहा था और तू मुझसे जिस प्रश्नको बूझ रहा है इस प्रश्नको धर्मराजने भी शरशय्यामें सोते हुए भीष्मजीसे बूझा था ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस सब बातको मैं तुझसे भीष्मजीके कथनानुसार और मार्कण्डेयके बूझनेपर सनत्कुमारने भी जिस प्रकार कहा था, उस प्रकार क्रमानुसार

युधिष्ठिर उवाच । पुष्टिकामेन धर्मज्ञ कथं पुष्टिरवाप्यते । एतद्धि श्रोतुमिच्छामि किं कुर्वाणो न शोचति ॥ ९ ॥ भीष्म उवाच । श्राद्धैः प्रीणाति हि पितॄन् सर्वकामफलैस्तु यः । तत्परः प्रयतः श्राद्धी प्रेत्य चेह च मोदते ॥ १० ॥ पितरो धर्मकामस्य प्रजा-कामस्य च प्रजाम् ।पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर ११ युधिष्ठिर उवाच । वर्तन्ते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः । प्राणिनां नियतं ह्युक्तं कर्मजं फलमुच्यते ॥ १२ ॥ श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामाः सदा नराः । अभिसन्धाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥१३॥ पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नित्यशः । तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन् ॥ १४ ॥ कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः कथं पुनः।के वा ते पितरान् ये स्म

कहता हूँ ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–पुष्टि चाहना वाला पुरुष किस प्रकार पुष्टि पासकता है, और किस कर्मको करनेसे मनुष्य को शोक नहीं करना पड़ता है ? इन बातोंको मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ९ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–जो सब कामनाओंका फल देने वाले श्राद्ध करके पितरोंको तृप्त करता है, वह पितरोंकी प्रीति को पानेमें लगा हुआ श्राद्धकर्ता इस संसारमें आनन्द करता है और मरनेके अनन्तर परलोकमें आनन्द करता है ॥ १० ॥ पितर धर्म चाहने वालेको धर्म, प्रजा चाहने वालेको प्रजा और हे युधिष्ठिर ! पुष्टि चाहने वालेको पुष्टि देते हैं ॥११॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–किन्हींके पितर स्वर्गमें रहते हैं और किन्हींके पितर नरकमें रहते हैं, क्योंकि–यह बात प्रसिद्ध है; कि–प्राणियोंको कर्मोंसे उत्पन्न होने वाला फल अवश्य भोगना पड़ता है ।१२। फलको चाहने वाले पुरुष सदा श्राद्ध करते हैं, पिता पितामह और प्रपितामहको लक्ष्य करके तीनों पिण्डोंमें किया हुआ श्राद्ध पितरोंको कैसे पहुँचता है?॥१३–१४॥ और वे (जब) नरकमें

कान् यजामो वयं पुनः ॥१५॥ देवा अपि पितॄन् स्वर्गे यजंतीति च नः श्रुतम् । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ॥ १६ ॥ स भवान् कथयत्वेतां कथाममितबुद्धिमान । यथा दत्तं पितॄणां वै तारणायेह कल्पते ॥ १७ ॥ भीष्म उवाच । अत्र ते कीर्तयिष्यामि यथा श्रुतमरिन्दम । ये च ते पितरोऽन्ये स्म यान् यजामो वयं पुनः । पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै ॥ १८ ॥ श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिंडः समुद्यतः । तं पिता मम हस्तेन भित्वा भूमिमचायत ॥ १६ ॥ हस्ताभरणपूर्णेन केयूराभरणेन च । रक्तांगुलितलेनाथ यथा दृष्टः पुरा मया ॥ २० ॥ नैष कल्पे विधिर्दृष्ट इति संचिन्त्य चाप्यहम् । कुशेष्वेव ततः पिण्डं दत्तवानविचारयन् ॥ २१ ॥ ततः पिता मे सुप्रीतो वाचा मधुरया

होते होंगे तब वे पितर फल किस प्रकार देसकते होंगे ? क्या वे पितर कोई और होते हैं ? हम इनमेंसे किसकी पूजा करें ।१५। हमने सुना है; कि–देवता स्वर्गमें भी पितरोंकी पूजा करते हैं, हे महाद्युते ! इन सब बातोंको मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥ पितरोंको जिस प्रकार देनेसे (पिण्ड) तार सकता हो उस कथाको आप कहिये, क्योंकि–आप अमितबुद्धि हैं ।१७। भीष्मजीने कहा, कि–हे अरिंदमन ! इस विषयमें मैंने जो कुछ सुना है, उसको मैं तुमसे कहता हूँ, जिन पितरोंका हम पूजन करते हैं, उनके विषयमें परलोकगत अपने पितासे मेरी बातचीत हुई थी ॥ १८ ॥ श्राद्धके दिनोंमें मैं अपने पिताको पिण्ड देने लगा, तो भूमिको फोड़कर उनका हाथ निकल आया और वह मुझसे पिण्ड माँगने लगा ॥१६॥ मैंने अपने पिताका हस्ताभरण और बाजूबन्द वाला और लाल २ अंगुलियों वाला जैसा हाथ देखा था, उनका वह हाथ वैसा ही था ॥२०॥ उस समय मैंने विचारा, कि–(बौधायन आदि कल्प)सूत्रोंमें तो मैंने ऐसी विधि

तदा । उवाच भरतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयाऽनघ॥२२॥त्वया दायाद-वानस्मि कृतार्थोऽमुत्र चेह च । सत्पुत्रेण त्वया पुत्र धर्मज्ञेन विपश्चिता ॥ २३ ॥ मया तु तव जिज्ञासा प्रयुक्तैषा दृढव्रत । व्यवस्थानं तु धर्मेषु कर्तुं लोकस्य चानघ ॥ २४ ॥ यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्।पापस्य हि तथा मूढः फलं प्राप्नोत्य-रक्षिता ॥ २५ ॥ प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेषु पार्थिवः । प्रजास्तदनुवर्तन्ते प्रमाणाचरितं सदा ॥ २६ ॥त्वया च भरत-श्रेष्ठ वेदधर्माश्च शाश्वताः । कृताः प्रमाणं प्रीतिश्च मम निर्वर्तिता-तुला ॥ २७ ॥ तस्मात्तवाहं सुप्रीतः प्रीत्या च वरमुत्तमम् । ददामि तं प्रतीच्छ त्वं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २८ ॥ न ते प्रभ-

---

कहीं नहीं देखी है यह विचार कर मैंने बिना विचारे ही पिण्डको कुशों पर ही धर दिया ॥ २१ ॥ हे निष्पाप ! भरतश्रेष्ठ ! तब मेरे पिता प्रसन्न होकर प्रेमभरी मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगे ॥ २२ ॥ कि तुझ धर्मज्ञ विद्वान् सत्पुत्रसे आज मैं पुत्रवान् हूँ, मैं यहाँ और परलोकमें तेरे कारण कृतार्थ होगया हूँ ॥ २२ ॥ हे दृढ़व्रत ! मैंने यह तेरी परीक्षा ली थी, और हे अनघ! मैंने लोकोंको धर्ममें स्थापन करनेके लिये यह सब किया था ॥ २४ ॥धर्मकी रक्षा करने वालेको जैसे धर्मका चौथाई फल मिलता है, इसी प्रकार धर्मकी रक्षा न करने वाला मूढ़ मनुष्य भी पापके चौथाई फलको भोगता है ॥ २५ ॥ राजा धर्मविषयक आचारमें जिस बातको प्रामाणिक बता देता है, राजा के बताए हुए प्रामाणिक उस आचारणका प्रजा अनुकरण करती है । २६ । हे भरतश्रेष्ठ ! तूने सनातन धर्म वेद और शास्त्रोंको प्रमाण मान लिया, इस बातसे तूने मुझे परम प्रसन्न कर लिया है ॥ २७ ॥ इस लिये मैं तेरे ऊपर परमप्रसन्न होकर तुझको श्रेष्ठ वर देना चाहता हूँ, अतः तू तीनों लोकोंमें दुर्लभ वरको

भविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि । त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य मृत्युः प्रभविता तव ॥ २६ ॥ किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम् । तद्ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३० ॥ इत्युक्तवन्तन्तमहमभिवाद्य कृताञ्जलिः । अनेन कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि सत्तम ॥ ३१ ॥ यदि त्वनुग्रहं भूयस्त्वत्तोऽर्हामि महाद्युते । प्रश्नमिच्छामि वै किंचिद्व्याहृतं भवता स्वयम् ॥ ३२ ॥ स मामुवाच धर्मात्मा ब्रूहि भीष्म यदिच्छसि । छेत्तास्मि संशयं सर्वं यन्मां पृच्छसि भारत ॥ ३३ ॥ अपृच्छं तमहं तातं तत्रान्तर्हितमेव च । गतं सुकृतिनां लोकं कौतूहलसमन्वितः ॥३४॥ भीष्म उवाच । श्रूयन्ते पितरो देवा देवानामपि देवताः । देवाश्च पित-

---

ग्रहण कर २८ जब तक तू जीवित रहना चाहेगा, तब तक तेरी मृत्यु नहीं होगी, तेरी आज्ञा पाने पर ही तेरी मृत्यु होगी २६ अब मैं तेरे कौनसे अभिलषित वरको दूँ, हे भरतश्रेष्ठ ! जो बात तेरे मनमें हो उसको तू मुझे बता ३० पिताजीके इस प्रकार कहने पर मैंने हाथ जोड़ प्रणाम कर कहा, कि-हे श्रेष्ठ ! मैं आपके प्रसन्न होनेसे ही कृतकृत्य होगया ॥३१॥ हे महाद्युते ! यदि मैं आपके अनुग्रहका (और भी) पात्र होऊँ तो मैं आपके मुखसे एक प्रश्नके उत्तरको सुनना चाहता हूँ ॥ ३२ ॥ तब उन धर्मात्माने मुझसे कहा, कि-हे भीष्म ! बता तू क्या बूझना चाहता है ? हे भारत ! तू मुझसे जो बूझेगा तेरे उस सन्देहको मैं दूर करूँगा ॥३३॥ तब मैंने तहाँ अन्तर्धान होकर खड़े हुए, पुण्यात्माओंके लोकोंमें गए हुए अपने पितासे कौतूहलमें भरकर बूझा; कि-॥ ३४ ॥ पितृदेवता देवताओंके भी देवता कहलाते हैं, देवता और पितर भिन्न २ हैं अतः हम किस की पूजा करें ? (अर्थात् "कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः" इस श्रुतिमें लिखा है, कि-कर्मसे पितृलोक मिलता है और विद्या

राऽन्ये वा कान्यजामो वयं पुनः ॥३५॥ कथं च दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणात्यथो पितॄन्। लोकान्तरगतास्तात किन्तु श्राद्धस्य वा फलम् ॥३६॥ कान् यजन्ति स्म लोका वै सदेवनरदानवाः। सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ३७ ॥ अत्र मे संशयस्तीव्रः कौतूहलमतीव च। तद्ब्रूहि मम धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भीष्मस्योवाच वै पिता ॥ ३८ ॥ शन्तनुरुवाच। संक्षेपेणैव ते वक्ष्ये यन्मां पृच्छसि भारत। पितरश्च यथोद्भूताः फलं दत्तस्य चानघ ॥ ३९ ॥ पितॄणां कारणं श्राद्धे शृणु सर्वं समाहितः। आदिदेवसुतास्तात पितरो दिवि

से देवलोक मिलता है, और ब्रह्मलोकसे नीचेके लोक पितृलोक कहलाते हैं, देवलोकपदसे ब्रह्मलोकको समझना चाहिये और दोनोंमें लेजाने वाले पितृयान और देवयान मार्ग हैं, स्वर्गलोकमें रहने वाले देवताओंके तीन लोकोंके ऊपर पितर रहते हैं और वे भी देवता माने जाते हैं। और "देवाः पितरः पितरो देवाः" इसप्रकार देवता और पितरोंका भी भेद सुननेमें आता है और जो जनक आदि राजे मर गए हैं, पितर उनसे निकृष्ट हैं, यह तीसरा सन्देह है अब हम किनका पूजन करें ॥)३५ ॥ (यदि पितर देवत्वको प्राप्त होजाते हैं तो श्राद्ध उनको तृप्त कर सकेगा, परन्तु दूसरे लोकोंमें गए हुए पितरोंको श्राद्ध कैसे तृप्त कर सकता है ? यही बात बूझते हैं) लोकान्तरमें गए हुए पितरोंको हमारा किया हुआ श्राद्ध कैसे पहुँचता है ? और श्राद्धका क्या फल है इसको विस्तारसे कहिये ॥ ३६ ॥ देव दानव और मनुष्य तथा यक्ष गंधर्व किन्नर और महासर्प किस की पूजा करते हैं ? (अर्थात् यदि पितर अधो लोकमें रहते हैं तो देवता उनको क्यों पूजते होंगे ? और यदि ऊर्ध्वलोकमें स्थित हैं तो हमसरीखे अल्पपुण्य मनुष्य तहाँ कैसे पहुँच सकते हैं ?

देवताः ॥४०॥ तान् यजन्ति स्म वै लोकाः सदेवासुरमानुषाः । सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ४१ ॥ आप्यायितास्च ते श्राद्धैः पुनराप्याययन्ति च । जगत् सदेवगन्धर्वमिति ब्रह्मानुशासनम् ॥ ४२ ॥ तान् यजस्व महाभाग श्राद्धैरग्र्यैरतन्द्रितः । ते ते श्रेयो विधास्यन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥ ४३ ॥ त्वया चाराध्यमानास्ते नामगोत्रादिकीर्तनैः । अस्मानाप्याय-

अतः दोनों प्रकारसे श्रद्धा करना व्यर्थ है ? यह प्रश्न है) ३७ इस बातका मुझे बड़ा कुतुहल और सन्देह है, हे धर्मज्ञ ! इस बातको आप मुझसे कहिये, क्योंकि-मैं आपको सर्वज्ञ मानता हूँ ॥ ३८ ॥ शन्तनुने कहा, कि-हे भारत ! जो बात तू मुझसे बूझता है, उसको मैं संक्षेपसे कहता हूँ, हे अनघ ! पितर जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और उनको देनेसे जो फल मिलता है श्राद्धमें पितरोंके कारणको सावधान होकर सुन, हे तात ! स्वर्गस्थ पितृदेवता आदिदेव ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥ ३९-४० ॥ देवता असुर मनुष्य यक्ष राक्षस गन्धर्व किन्नर और महासर्प उनकी ही पूजा करते हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीका अनुशासन है, कि-वे श्राद्धोंसे तृप्त करने पर देवता और गंधर्व सहित जगत्को तृप्त करते हैं (अर्थात् वे देवता आदिके तृप्त करने पर भू आदि लोकमें स्थित देवता गन्धर्व और मनुष्य आदिको तृप्त करते हैं तब ये योगबलसे जहाँ पितर होते हैं तहाँ उनको श्राद्धीय अन्न आदि पहुँचाते हैं और यजमानको इष्ट वस्तु देते हैं और पितरों के मुक्त होने पर स्वयं ही तृप्त होकर यजमानको त्रिवर्ग-धर्म अर्थ और काम-से तृप्त करते हैं) ॥ ४२ ॥ हे महाभाग ! तू मुख्य कल्पसूत्रोंसे उन पितरोंका यजन कर तब वे सब कामनाओंके फलको देने वाले पितर तेरा कल्याण करेंगे ॥ ४३ ॥ हे भारत ! यदि तू नाम गोत्र आदिका उच्चारण करके उनको

यिष्यन्ति स्वर्गस्थानपि भारत ॥४४ ॥ मार्कण्डेयस्तु ते शेषमे-
तत्सर्वं प्रवक्ष्यति । एष वै पितृभक्तश्च विदितात्मा च भारत४५
उपस्थितश्च श्राद्धेऽद्य ममैवानुग्रहाय वै । एनं पृच्छ महाभाग-
मित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्राद्धकल्प-
प्रसंगो नाम षोड़शोऽध्यायः॥ १६ ॥

भीष्म उवाच । ततोऽहं तस्य वचनान्मार्कण्डेयं समाहितः ।
प्रश्नं तमेवान्वपृच्छं यन्मे पृष्टः पुरा पिता ॥ १ ॥स मामुवाच
धर्मात्मा मार्कण्डेयो महातपाः।भीष्म वक्ष्यामि कात्स्नर्येन शृणुष्व
प्रयतोऽनघ ॥२॥ अहं पितृप्रसादाद्वै दीर्घायुष्ट्वमवाप्तवान् । पितृ-
भक्त्यैव लब्धं च प्राग्लोके परमं यशः ॥ ३ ॥ सोऽहं युगस्य
पर्यन्ते बहुवर्षसहस्रिके । अधिरुह्य गिरिं मेरुं तपोऽतप्यं सुदुश्च-

तृप्त करेगा तो वे इस स्वर्गमें स्थित पितरोंको तृप्त करेंगे ॥४४॥
और बाकी सब बातोंको मार्कण्डेयजी तुझसे कहेंगे, हे भारत !
ये पितृभक्त हैं और विदितात्मा हैं ॥ ४५ ॥ आज ये मेरे ऊपर
अनुग्रह करनेके लिये श्राद्धमें आए हैं, हे महाभाग ! तू इनसे
बूझ ! यह कह कर शंतनु अदृश्य होगए ॥ ४६ ॥ सोलहवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

भीष्मजीने कहा, कि-तब मैं पिताजीके वचनसे मार्कण्डेय
जीके पास गया और मैंने पहिले अपने पिताजीसे जो प्रश्न
बूझा था, वही प्रश्न उनसे बूझा १ तब धर्मात्मा महातपस्वी
मार्कण्डेय मुझसे कहने लगे, कि-हे निष्पाप भीष्म ! मैं तुझसे
सब बातें कहता हूँ तू सावधान होकर सुन २ मैंने पितृप्रसादसे
दीर्घायु पाई है और मैंने पितृभक्तिसे ही लोकमें बड़ा भारी यश
पाया है३एक समय में मेरुपर्वत पर चढ़कर अनेक सहस्र वर्षों तक
घोर तप करता रहा ४ तब मैंने एकसमय पर्वतके उत्तरकी ओर

रम् ॥ ४ ॥ ततः कदाचित् पश्यामि दिवं प्रज्वाल्य तेजसा ।
विमानं महदायान्तमुत्तरेण गिरेस्तदा ॥५॥ तस्मिन् विमाने पर्यंके
ज्वलितादित्यसन्निभत् । अपश्यत् तत्र चैवाहं शयानं दीप्ततेज-
सम् ॥ ६ ॥ अंगुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम् । सोऽहं तस्मै
नमस्कृत्य प्रणम्य शिरसा विभुम् ॥ ७ ॥ सन्निविष्टं विमानस्थं
पाद्यार्घाभ्यामपूजयम् । ह्यपृच्छं चैव दुर्धर्षं विद्याम त्वां कथं
विभो ॥८॥ तपोवीर्यात् समुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम् । दैवतं
ह्यसि देवानामिति मे वर्तते मतिः ॥ ९ ॥ स मामुवाच धर्मात्मा
स्मयमान इवानघ । न ते तपः सुचरितं येन मां नावबुध्यसे १०
क्षणेनैव प्रमाणं स बिभ्रदन्यदनुत्तमम् । रूपेण न मया कश्चिद्
दृष्टपूर्वः पुमान् क्वचित् ॥ ११ ॥ सनत्कुमार उवाच । विद्धि मां

से तेजसे आकाशको प्रकाशित करते हुए एक बड़े भारी विमान
को आते हुए देखा ५ उस विमानके पलँगमें मैंने प्रज्वलित
आदित्यकी समान दीप्त तेज वाले अग्निमें डाले हुए अग्निकी
समान अंगुष्ठमात्र पुरुषको सोते हुए देखा मैंने उनको नमस्कार
किया और उन विभुको शिरसे प्रणाम किया, फिर मैंने विमान
में स्थित पुरुषकी पाद्य और अर्घ देकर पूजा की फिर मैंने उन
दुर्धर्षसे बूझा,कि-हे विभो ! हम आपको किस प्रकार जाने ६-८
हे नारायण ! यद्यपि आपका मायामय शरीर मेरे तपके
प्रभावसे प्रकट हुआ है तथापि आप वास्तवमें कौन हैं, इसको मैं
किस प्रकार जानूँ ? मेरा विचार है, कि—आप देवताओंके भी
देवता हैं ९ तब वह धर्मात्मा मुस्करा कर कहने लगे, कि—
हे अनघ ! तुमने तप भली प्रकार नहीं किया है ? अत एव
तुम मुझे नहीं पहिचान सके १० क्षणभरमें ही उन्होंने दूसरे
उत्तम प्रमाणके (महापुरुषके लक्षणके) स्वरूपको धारण कर
लिया) ऐसे रूपवाला पुरुष मैंने पहिले कभी नहीं देखा था ११

ब्रह्मणः पुत्रं मानसं पूर्वजं विभोः । तपोवीर्यसमुत्पन्नं नारायण-
गुणात्मकम् ॥ १२ ॥ सनत्कुमार इति यः श्रुतो देवेषु वो पुरा ।
सोऽस्मि भार्गव भद्रन्ते कं कामं करवाणि ते ॥ १३ ॥ ये त्वन्ये
ब्रह्मणः पुत्रा यवीयांसस्तु ते मम । भ्रातरः सप्तदुर्धर्षास्तेषां
वंशाः प्रतिष्ठिताः ॥१४॥ क्रतुर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्योऽत्रिस्तथां-
गिराः । मरीचिस्तुस्तथा धीमान् देवगन्धर्वसेविताः । त्रींल्लोकान्
धारयन्तीमान् देवगन्धर्वपूजिताः ॥ १५ ॥ वयं तु यतिधर्माणः
संयोज्यात्मानमात्मनि।प्रजाधर्मं च कामं च व्यपहाय महामुने१६
यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम् । तस्मात् सनत्कुमा-
रेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ मद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम
दर्शनकांक्षया । एष दृष्टोऽस्मि भवता कं कामं करवाणि ते १८

सनत्कुमारने कहा कि-तुम मुझे विभु ब्रह्माजीका पूर्वज मानसपुत्र जानो, मैं उनके तपके प्रभावसे उत्पन्न हुआ हूँ और मेरा शरीर परमात्माकी मायामय है १२ प्राचीन कालसे ही देवताओंमें सनत्कुमार प्रसिद्ध हैं हे भार्गव ! मैं वही सनत्कुमार हूँ,तेरा कल्याण हो, मैं तेरी किस कामनाको पूर्ण करूँ १३ ब्रह्माजीके जो दूसरे पुत्र हैं वे मेरे छोटे भाई हैं, वे मेरे सात भाई परम दुर्धर्ष हैं उन के वंश प्रतिष्ठित हैं १४(उनके नाम ये हैं) क्रतु वासिष्ठ पुलह पुलस्त्य अत्रि अंगिरा तथा बुद्धिमान् मरीचि इन सबकी देवता और गंधर्व सेवा करते हैं, ये देवता और गंधर्वोंसे पूजित देवता तीनोंको धारण करते हैं १५ हम (सनत्कुमार सनक आदि) तो अपनी आत्माको आत्मामें लीन कर प्रजाके धर्म और कामको दूर करके यतिधर्मका पालन करते रहते हैं १६ मैं जैसे उत्पन्न हुआ हूँ वैसा ही कुमार हूँ अर्थात् बालककी समान राग द्वेष रहित हूँ अत एव तुम मुझे कुमार जानो इस लिये मेरा नाम सनत्कुमार प्रसिद्ध है १७तूने मेरा दर्शन करनेकी अभिलाषासे मेरी

इत्युक्तवन्तं तमहं प्रत्यवोचं सनातनम् । अनुज्ञातो भगवता मीयमाणेन भारत ॥ १६ ॥ ततोऽहमेनमर्थं नौ तमपृच्छं सनातनम् । पृष्टः पितृणां सर्गं च फलं श्राद्धस्य चानघ ॥२०॥ चिच्छेद संशयं भीष्म स तु देवेश्वरो मम । भगवानुवाच धर्मात्मा कथान्ते बहुवार्षिके ॥ २१ ॥ देवानसृजत ब्रह्मा मां यक्ष्यन्तीति भार्गव । तमुत्सृज्य तथाऽत्मानमयजंस्ते फलार्थिनः ॥२२॥ ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा दिवौकसः । न स्म किञ्चिद्विजानन्ति ततो लोकोऽप्यमुह्यत ॥ २३ ॥ ते भूयः प्रणताः शप्ताः प्रायाचत पितामहम् । अनुग्रहाय लोकानां ततस्तानब्रवीदिदम् ॥ २४ ॥ प्राय-

भक्तिमें भर कर तप किया था, सो मैं आगयाहूँ, बता ! अब मैं तेरी किस इच्छाको पूर्ण करूँ १८ हे भारत ! सनातनकुमार इस प्रकार कह चुके तब मैंने उनसे कहा, कि आपने मुझे प्रसन्न होकर आज्ञा फिर देदी १६ तब मैंने उनसे इस सनातन प्रश्नको बूझा, हे अनघ ! हे भीष्म ! पितरोंकी उत्पत्ति और श्राद्धके फलको बूझनेपर उन देवेश्वरने मेरे सन्देहको दूर कर दिया था बहुत कालसे आरम्भकी हुई कथाके अन्तमें उन्होंने मुझसे कहा, कि—हे विप्रर्षे ! मैं तुम्हारे साथ रमण करूँगा उस सबको तुम यथार्थरीतिसे सुनो ॥ २१ ॥ हे भार्गव ! ब्रह्माजीने अपनी पूजा करानेके विचारसे देवताओंको रचा, परन्तु वे (इन्द्रियोंको प्रसन्न करना रूप दृष्ट) फलको चाहकर आत्मा (शरीर) का पूजन करने लगे ॥ २२ ॥ तब ब्रह्माजीके शाप देने पर उन मूढोंकी संज्ञा जाती रही, और वे कुछ न जान सके तब (उनका अनुसरण करनेवाले) मनुष्य भी मोहमें पड़ गए ॥ २३ ॥ वे शाप पाने पर ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहने लगे, तब लोकों पर अनुग्रह करनेके लिये उनसे कहने लगे ॥ २४ ॥ अब तुम प्रायश्चित्त करो, क्योंकि—तुमने व्यभिचार (पूज्यपूजाव्यतिक्रम)

श्चित्तं चरध्वं वो व्यभिचारो हि वः कृतः। पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥२५॥ प्रायश्चित्तक्रियार्थन्ते पुत्रान् पप्रच्छु-रार्तवत्। तेभ्यस्ते प्रयतात्मानः शशंसुस्तनयास्तदा ॥ २६ ॥ प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनः कर्मजानि वै।शंसन्ति कुशला नित्यं च चक्षुर्भ्यामपि नित्यशः॥ २७ ॥ प्रायश्चित्तार्थतत्त्वज्ञा लब्धसंज्ञा दिवौकसः। गम्यतां पुत्रकाश्चेति पुत्रैरुक्ताश्च ते तदा ॥ २८ ॥ अभिशप्तास्तु ते देवाः पुत्रवाक्येन निन्दिताः। पितामहमुपा-गच्छन् संशयच्छेदनाय वै ॥ २९ ॥ ततस्तानब्रवीद्देवो यूयं वै ब्रह्मवादिनः। तस्माद्यदुक्तं युष्माकं तत्तथा न तदन्यथा ॥३०॥ यूयं शरीरकर्त्तारस्तेषां देवा भविष्यथ।ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः ॥३१॥ अन्योन्यं पितरो यूयं ते चैवेति न संशयः।

किया है (और अपनी पूजा की है) तुम अपने पुत्रोंसे बूझो, तब तुमको ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २५ ॥ तब वे नीचत्वको प्राप्त होनेसे आर्तकी समान पीड़ित हो अपने पुत्रोंसे प्रायश्चित्तको बूझने लगे; तब पुत्रोंने ध्यान धर उनसे कहा ॥ २६ ॥ कुशल पुरुष वाणी (स्तोत्र) मन (श्रद्धा भक्ति युक्त ध्यान) और कर्म (नमस्कार आदि)प्रायश्चित्त बताते हैं और वे नेत्रोंसे भी प्रायश्चित्त करना बताते हैं ॥ २७ ॥ हे पुत्रों ! हे देवताओं तुम प्रायश्चित्तके तत्त्वको जान जाओगे, हे पुत्रकों ! तुम जाओ जब पुत्रोंने उनसे इसप्रकार कहा अर्थात् पितरोंकी पुत्र कह कर निन्दा की २८ तब वे शप्त देवता पुत्रोंके वाक्यसे भी निन्दा पाकर ब्रह्माजीके पास अपना संशय मिटानेको पहुँचे ॥ २९ ॥ तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा, कि-तुम ब्रह्मवादी हो, इस लिये उन्होंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह ठीक है, इसमें कुछ विपरीत भाव नहीं है ॥ ३० ॥ तुम शरीरके रचने वाले उनके देवता होगे, और वे तुमको ज्ञान देने वाले तुम्हारे पितर हैं, इस

देवाश्च पितरश्चैव तद्बुद्ध्यध्वं दिवौकसः ॥ ३२ ॥ ततस्ते पुनरागम्य पुत्रानूचुर्दिवौकसः । ब्रह्मणा छिन्नसन्देहाः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥ ३३ ॥ यूयं नो पितरोऽस्माकं यैर्वयं प्रतिबोधिताः । धर्मज्ञाः कश्च वः कामः को वरो वः प्रदीयताम् ३४ यदुक्तं चैव युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा । उक्ताश्च यस्माद्युष्माभिः पुत्रका इति नो ध्रुवम् । तस्माद्भवन्तः पितरो भविष्यन्ति न संशयः ॥ ३५ ॥ यानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः क्रियाः काश्चित् करिष्यति । राक्षसा दानवा नागाः फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ।३६। श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम्।आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्धयिष्यन्ति नित्यदा ॥ ३७ ॥ श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति । समुद्रपर्वतवनं जंगमाजंगमैर्वृतम् ॥ ३८ ॥

में कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ हे देवता और पितर।तुम दोनों आपसमें एक दूसरेके पितर हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इस बातको हे स्वर्गवासी ! तुम जानलो ३२ तब वे स्वर्गलोकवासी ब्रह्माजीके सन्देहको दूर करने पर परस्पर प्रसन्न होकर पुत्रोंसे कहने लगे ॥ ३३ ॥ कि-आप हमारे पितर हैं, क्यों कि-आपने हमको ज्ञान दिया है, आप धर्मज्ञ हैं आपकी क्या इच्छा है और आपको क्या वर दिया जाय ॥३४॥ तुमने जो बात कही है,वह ठीक है तुमने हमसे " पुत्रकों- हे पुत्रों ! " कहा है, अत एव तुम पितर होओगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ राक्षस दानव और नाग तुम पितरोंको श्राद्धके द्वारा पूजन कर जिस क्रियाको करेंगे उसके फलको वे अवश्य ही पावेंगे ॥ ३६ ॥ श्राद्धोंसे आप्यायित (तृप्त) होते हुए और तुमसे भी तृप्ति पाते हुए (लौकिक) पितर (अपने अधिदेवता) सोमको तृप्त करेंगे ॥ ३७ ॥ श्राद्धोंसे आप्यापित हुआ चन्द्रमा समुद्र पर्वत वन और चराचरोंसे छायेहुए लोकोंको आप्यायित (तृप्त)

श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः । तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ॥ ३९ ॥ श्राद्धे ये च प्रदास्यन्ति त्रीन्पिण्डान्नामगोत्रतः । सर्वत्र वर्तमानास्तान्पितरः सपितामहान् । भविष्यन्ति हि सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः॥ ४० ॥ एवमाज्ञापितं पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना । इति तद्वचनं सत्यं भवत्वद्य दिवौकसः । पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम् ॥ ४१ ॥ सनत्कुमार उवाच । त एते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा । अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच । इत्युक्तोऽहं भगवता देवदेवेन भास्वता । सनत्कुमारेण पुनः पृष्टवान् देवमव्ययम् ॥ १ ॥ सन्देहममरश्रेष्ठं भगवन्तमरिन्दमम् । निबोध तन्मे गांगेय निखिलं सर्वमादितः २

करेगा ॥ ३८ ॥ जो पुरुष पुष्टि पानेकी इच्छासे श्राद्ध करेंगे पितर उनको सदा पुष्टि और सन्तान देंगे ॥ ३९ ॥ जो पुरुष सर्वत्र विद्यमान पिता पितामह और प्रपितामहोंको नाम और गोत्रका उच्चारण कर तीन पिण्ड देंगे श्राद्ध करनेसे तृप्त हुए पितर उनको सदा बढ़ावेंगे ॥ ४० ॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने ऐसी आज्ञा दी है, हे स्वर्गवासियो! वह वचन अब सत्य हो हम सब परस्परमें पुत्र और पितर हैं ॥ ४१ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि-जो देवता हैं वह पितर हैं और जो पितर हैं वह देवता हैं इस प्रकार परस्परमें देवता ही पितर हैं और पितर ही देवता हैं ४२

सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा, कि-प्रकाशवान् भगवान् देवदेवके इस प्रकार कहने पर मैंने उन अरिदमन देवश्रेष्ठ अव्यय भगवान्से अपने सारे सन्देहको फिर आरम्भसे बूझा कि-॥१-२॥पितरोंके

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिल्लोके प्रतिष्ठिताः। वर्तन्ति देवप्रवरा देवानां सोमवर्धनाः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । सप्तैते यजतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः। चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥४॥ तेषां लोकं विसर्गं च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु। प्रभावं च महत्त्वं च विस्तरेण तपोधन ॥ ५ ॥ धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयो ये परमा गणाः। तेषां नामानि लोकांश्च कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ ६ ॥ लोकाः सनातना नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः। अमूर्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः ॥७॥ विराजस्य द्विजश्रेष्ठ वैराजा इति विश्रुताः। यजन्ति तान् देवगणा विधिदृष्टेन

कितने गण हैं और वे (श्राद्धके द्वारा) सोमको बढ़ाने वाले देवश्रेष्ठ देवता किस लोकमें प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमारने कहा, कि-हे पूजन करने वालोंमें श्रेष्ठ ! स्वर्गमें रहने वाले सात पितर हैं, उनमें चार मूर्तिमान् हैं और तीन मूर्तिरहित हैं (अर्थात् सुकाल आंगिरस सुस्वधा और सोमप ये चार मूर्तिमान् हैं अर्थात् कर्मफलसे प्राप्त हुए दिव्य शरीरको धारण कर रहे हैं और वैराज अग्निष्वात्त और बर्हिषद ये तीन अमूर्त हैं, कामरूप हैं अर्थात् आकाशसे भी बड़े हैं और परमाणु के उदरमें भी प्रवेश कर सकते हैं ॥ ४ ॥ हे तपोधन ! मैं उनके लोक विसर्ग प्रभाव और महत्त्वको विस्तारपूर्वक कहता हूँ, उस को सुनो ॥५॥ जो तीन परम गण हैं वह धर्मकी मूर्तिको धारण करने वाले हैं उनके नाम और लोकोंको मैं कहता हूँ सुनो ।६। जिनमें लोक (ब्रह्म) सनातन / नित्य प्रकट रहते और भूत भविष्यत् समीप और दूर सब विषय जिनके समीप ही रहता है वे दिव्यमात्रशरीर अभौतिक विराजप्रजापतिके मानसपुत्र पितर अमूर्त हैं अर्थात् मनोमय शरीरवाले हैं ॥ ७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! विराज प्रजापतिके पुत्र होनेके कारण वे वैराज नामसे प्रसिद्ध

कमणा ॥ ८ ॥ एते वै योगविभ्रष्टा लोकान् प्राप्य सनातनान् । पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥ ते तु प्राप्य स्मृतिं भूयः सांख्ययोगमनुत्तमम् । यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्ति-दुर्लभाम् ॥ १० ॥ एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्धनाः । आप्याययन्ति ये पूर्वं सोमं योगबलेन च ॥ ११ ॥ तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः । एष वै प्रथमः सर्गः सोमपानां महात्मनाम् ॥१२॥ एतेषां मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः । पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्या मैनाक उच्यते ॥ १३ ॥

हैं, शास्त्रोक्त विधिसे देवता उनकी पूजा करते हैं ॥ ८ ॥ जो योगभ्रष्ट पुरुष निर्गुण ब्रह्मको न पाकर भी सगुणकी ही शरण लेते हैं, वे पूर्ण वैराग्यके न होनेसे सनातन प्रजापतिके लोकोंको पाकर भी सहस्रयुगके अन्त (कल्पान्त) में प्रजापतिके साथ मुक्तिको न पाकर दूसरे युगमें (प्रजापतिसे ही) ब्रह्मवादी बन कर उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ वे सिद्ध सांख्य योगकी सर्वश्रेष्ठ स्मृतिको फिर पाकर जिसमें पुनरावृत्ति (जन्ममरण होना) दुर्लभ है ऐसी योगगतिको पाते हैं ॥१०॥ हे तात ! ये योगियों के योगको बढ़ाने वाले और जिन्होंने पहिले योगबलसे सोमको तृप्त किया था वे पितर होते हैं ॥ ११ ॥ इस लिये योगियोंके लिये विशेष रूपसे श्राद्ध करना चाहिये यह सोमपा अर्थात् सोमको बढ़ाने वालोंका प्रथम सर्ग है, (उनके लिये श्राद्ध करने वाला उनके सालोक्यको पाता है) ॥ १२ ॥ (इसी प्रकार स्त्रियें भी अधिकार प्राप्त होने पर यदि श्राद्ध करती हैं तो पितृकन्याओंकी समान उत्तरोत्तर उत्तम स्थानको प्राप्त होती हुई मुक्त होजाती हैं इसी अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये सब पितरों की कन्यासन्तानका वर्णन करते हैं) इनकी मानसी कन्याका नाम मेना है, वह हिमवान्की श्रेष्ठ-पत्नी है, उसका पुत्र मैनाक

मैनाकस्य सुतः श्रीमान् क्रौंचो नाम महागिरिः । पर्वतप्रवरः पुत्रो नानारत्नसमन्वितः ॥ १४ ॥ तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् । अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम् १५ तपश्चरन्त्यः सुमहद् दुश्चरं देवदानवैः । लोकान् सन्तापयामासुस्तास्तिस्रः स्थाणुजंगमान् ॥ १६ ॥ आहारमेकपर्णेन एकपर्णा समाचरत् । पाटला पुष्पमेकं च आदधात्रेकपाटला ॥१७॥ एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यषेधयत् । उ,मा इति निषेधन्ती मातृस्नेहेन दुःखिता ॥ १८ ॥ सा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी । उमेत्येवाभवत् ख्याता त्रिषु लोकेषु सुन्दरी ॥१९॥ तथैव नाम्ना तेनेह विश्रुता योगधर्मिणी । एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत् स्थास्यति भार्गव ॥ २० ॥ तपःशरीरास्ताः सर्वास्तिस्रो

है ॥ १३ ॥ मैनाकके महागिरि श्रीमान् क्रौञ्च नामक पुत्र है, वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ (हिमवान्का) पुत्र अनेक रत्नोंसे भरा हुआ है ॥ १४ ॥ शैलराज हिमवान्ने मैनामें अपर्णा एकपर्णा और तीसरी एकपाटला इसप्रकार तीन पुत्रियोंको उत्पन्न किया १५ वे तीनों देवता और दानवोंसे भी परम दुष्कर तप कर स्थावर जंगम लोकोंको सन्तप्त करने लगी ॥ १६ ॥ एकपर्णा एकही पत्ते को खाती थी और एकपाटला पाटलाके एक हो पुष्पको खाती थी ॥ १७ ॥ और उनमेंसे एक निराहार ही रहने लगी तब मातृस्नेहके कारण दुःखित हो उसकी माताने उससे "उ मा" कह कर (निराहार रहनेका) निषेध किया (उ सम्बोधनके अर्थमें है और मा-(ऐसा) मतकर) ॥ १८ ॥ माताके इस प्रकार (उमा) कहने पर वह कठिनसे होने वाले तपको करने वाली त्रिलोकसुन्दरी देवी उमा ही प्रसिद्ध होगई ॥ १९ ॥ और वह योगधर्मका पालन करने वाली इसही नामसे प्रसिद्ध होगई हे भार्गव ! यह त्रिकुमारी जगत् स्थित रहता है ॥ २० ॥ वे

योगबलान्विताः। सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः२१ उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी। महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥ २२ ॥ असितस्यैकपर्णा तु देवलस्य महात्मनः। पत्नी दत्ता महाब्रह्मन् योगाचार्याय धीमते ॥ २३ ॥ जैगीषव्याय तु तथा विद्धि तामेकपाटलाम्। एते चापि महाभागे योगाचार्यावुपस्थिते ॥ २४ ॥ लोकाः सोमपदा नाम मरीचेर्यत्र वै सुताः। पितरो यत्र वर्तन्ते देवास्तान् भावयन्त्युत ॥ २५ ॥ अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्वे पवामितौजसः। एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ॥२६॥ आच्छोदं नाम विख्यातं सरो यस्याः समुत्थितम्। तया न दृष्टपूर्वास्ते पितरस्तु कदा-

---

तीनों तपोमय शरीर वाली है और तीनों ही योगबल वाली हैं, सब ब्रह्मवादिनी हैं और ऊर्ध्वरेता हैं ॥ २१ ॥ उन सबमें उमा बड़ी थी और वह वरवर्णिनी उनमें श्रेष्ठ भी थी वह महायोगरूप बल वाली महादेवजीको विवाही गई (इस बातसे यह बात दिखाई है, कि-ऊर्ध्वरेता पुरुषोंकी समान ऊर्ध्वरेता स्त्रियोंको पतिके विना शाश्वत लोक नहीं मिल सकते)॥२२॥ हे महाब्रह्मन्! बुद्धिमान् महात्मा योगाचार्य असित देवलको एकपर्णा पत्नीरूपमें विवाही गई थी ॥ २३ ॥ इसी प्रकार जैगीषव्यको एकपाटला विवाही गई थी, यह समझ लो ये दोनों महाभाग्यवती योगाचार्योंको विवाई गई थी ॥ २४ ॥ (अब दूसरे अग्निष्वात्त नामक गणको कहते हैं) सोमपद नाम वाले (सोमयज्ञ करनेसे मिलने वाले) लोक हैं, तहाँ पर मरीचिके पुत्र पितर रहते हैं देवता उनकी पूजा करते हैं ॥ २५ ॥ (अग्निसाध्य पिता आदिकी इष्टियोंमें ग्रहणकिये जाने वाले) ये सब अमित तेजस्वी अग्निष्वात्ता नामसे प्रसिद्ध हैं अच्छोदा नामक नदी इनकी मानसी कन्या है ॥ २६ ॥ उसमेंसे आच्छोद नाम

चन ॥२७॥ अप्यमूर्त्तानथ पितॄन् सा ददर्श शुचिस्मिता। संभूता मनसा तेषां पितॄन् स्वान्नाभिजानती ॥२८॥ व्रीड़िता तेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी। सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसुं नामांतरक्षिगम् ॥२९ अमावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम्। अद्रिकाप्सरसा युक्तं विमाने धिष्ठितं दिवि ॥ ३० ॥ सा तेन व्यभिचाररेण मनसः कामरूपिणी। पितरं प्रार्थयित्वान्यं योगभ्रष्टा पपात ह ॥ ३१ ॥ त्रीण्यपश्यद्विमानानि पतमाना दिवश्च्युता। त्रसरेणुप्रमाणानि सापश्यत्तेषु तान् पितॄन् ॥३२॥ सुसूक्ष्मानपरिव्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान्। त्रायध्वमित्युवाचार्ता पतन्ती तानवाक्शिराः ३३

वाला प्रसिद्ध सरोवर निकला है, उसने इन पितरोंको पहिले कभी नहीं देखा था २७ उस पवित्र हास्यावालीने अमूर्त पितरों को दिव्यदृष्टिसे देखा परन्तु उनको देखकर भी वह यह न जान सकी कि-(ये मेरे पिता हैं) और मैं इनके मनसे उत्पन्न हुई हूँ ॥ २८ ॥ (उनके स्वरूपका ज्ञान न होनेसे) वह वरवर्णिनी दुःखके कारण लज्जित होगई, फिर उसने चारों ओर देख कर आयुके पुत्र अमावसु नामसे प्रसिद्ध अन्तरिक्षचारी वसुको अद्रिका अप्सराके साथ विमानमें बैठे देख कर उसको अपना पिता समझ लिया ॥ २९-३० ॥ वह इच्छानुसार रूप धारण करने वाली स्त्री (इस पिताके बदलने रूप) मानसिक व्यभिचारके कारण दूसरे पिताको बना कर योगभ्रष्ट हो कर गिरने लगी॥३१॥ उस स्वर्ग से भ्रष्ट होती हुई ने गिरते २ त्रसरेणुके आकारके तीन विमानोंको देखा उसमें उनने पितरोंको देखा ॥ ३२ ॥ वे सुसूक्ष्म (होने पर भी विमान एक देशमें बैठे हुए होनेसे)अपरिव्यक्त-अप्रकट अग्निमें स्थापित किये हुए अग्नियोंकी समान दीख रहे थे, उनसे नीचेको शिर करके गिरती हुई उसने आर्त होकर रक्षा करो रक्षा करो

तैरुक्ता सा तु मा भैषीरितो व्योम्नि व्यवस्थिता । ततः प्रसादयामास तान् पितृन् दीनया गिरा ॥३४॥ ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात् । भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते ॥ ३५ ॥ यैः क्रियन्ते हि कर्माणि शरीरैर्दिवि देवतैः । तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥ ३६ ॥ सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे । तस्मात्त्वत्तपसः पुत्रि प्रेत्येदं प्राप्स्यसे फलम्॥ ३७॥इत्युक्ता-पितृभिः सा तु पितृन् प्रासादयत् स्वकान् । ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रुस्तस्याः सर्वेऽनुकम्पया ॥ ३८ ॥अवश्यभाविनं ज्ञात्वा तेऽर्थमूचुस्ततस्तु ताम् । अस्य राज्ञो वसोः कन्या त्वमपत्यं भविष्यसि ३९ उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषेषु महात्मनः । कन्या च भूत्वा लोकान् स्वान्पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान् ॥४०॥

कहा ॥३३॥ उन्होंने उससे कहा, कि-मत डर तब वह आकाश में खड़ी रहगई तब वह उन ऋषियोंको दीन वाणीमें प्रसन्न करने लगी ॥ ३४ ॥ व्यतिक्रम करनेके कारण कन्याको ऐश्वर्य-भ्रष्ट होकर गिरती हुई देख कर वे पितर कहनेलगे, कि-हे शुचि-स्मिते ! तू अपने दोषसे भ्रष्ट होकर गिर रही है ॥३५॥ देवता स्वर्गमें जिस शरीरसे जो कर्म करते हैं, उन ही शरीरोंसे देवता उन कर्मोंके फलोंको भोगते हैं ॥ ३६ ॥ कर्म (योगज-धर्म) देवत्वमें (संकल्पमात्र होनेसे) तत्काल फल देते हैं और मनुष्य शरीरमें मरने पर फल देते हैं, इसकारण हे पुत्रि ! तू मर करके इस फलको भोगेगी (अर्थात् तू मनुष्य हो जा) ३७ पितरोंके इसप्रकार कहने पर उसने अपने पितरोंको प्रसन्न किया तब उन सबोंने ध्यान धर कर उस पर कृपा की ॥३८॥ वे अवश्य होने वाली घटनाको जान कर उससे कहने लगे,कि-जब यह महात्मा वसु मनुष्योंमें उत्पन्न होगा, तब तू इस राजा की कन्या होगी कन्या होनेके अनन्तर तू अपने दुर्लभ लोकोंको

पराशरस्य दायादं त्वं पुत्रं जनयिष्यसि । स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्धा विभजिष्यति ॥४१॥ महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्तिवर्धनौ । विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं तथा चित्रांगदं शुभम् ॥४२॥ एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि । व्यतिक्रमात् पितॄणां च जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम् ॥ ४३ ॥ अस्यैव राज्ञः कन्या त्वमद्रिकायां भविष्यसि। अष्टविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ४४ एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तदा । मत्स्ययोनौ समुत्पन्ना राज्ञस्तस्य वसोः सुता ॥ ४५ ॥ वैभ्राजा नाम ते लोकाः दिवि सन्ति सुदर्शनाः । यत्र बर्हिषदो नाम पितरो दिवि विश्रुताः ॥ ४६ ॥ तान् वै देवगणाः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः । नागाः सर्पाः सुपर्णाश्च भावयन्त्यमितौजसः ॥४७॥ स ते पुत्रा

पावेगी ॥ ३९-४० ॥ तू पराशरकी सन्तान पुत्रको उत्पन्न करेगी, वह ब्रह्मर्षि एक वेदको चार भागोंमें विभक्त करेंगे ४१ (पूर्वजन्ममें) महाभिष नाम वाले और (वर्तमान जन्ममें) शन्तनु नाम वाले राजाके कीर्तिको बढ़ने वाले दो पुत्र होंगे, एक धर्मज्ञ विचित्रवीर्य तथा दूसरा शुभ चित्राङ्गद इन पुत्रोंको उत्पन्न करके तू अपने लोकोंमें फिर आजावेगी, पितरोंका व्यतिक्रम करनेके कारण तू कुत्सित जन्मको पावेगी ॥४२-४३॥ तू इस राजाकी कन्या होगी और तू अद्रिकामें उत्पन्न होगी तू अट्ठाईसवें द्वापरमें मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होगी ॥ ४४ इस प्रकार कहनेके अनन्तर वह राजा वसुकी पुत्री (बन कर) मत्स्ययोनिमें उत्पन्न हुई थी और वह दाशेयी सत्यवती कहलाती थी ॥ ४५ ॥ (अब तीसरे बर्हिषद पितरोंका वर्णन करते हैं) स्वर्गमें वैभ्राज (विभ्राज सूर्य) के सुदर्शन लोक हैं उसमें बर्हिषद नामक स्वर्ग में प्रसिद्ध पितर रहते हैं ॥ ४६ ॥ उनकी सब देवता सब यक्ष गंधर्व राक्षस नाग और अमित पराक्रमी सुपर्ण उपासना करते

महात्मानः पुलस्त्यस्य प्रजापतेः । महात्मनो महाभागास्तेजोयुक्तास्तपस्विनः ॥ ४८ ॥ एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता । योगा च योगिपत्नी च योगिमाता तथैव च ॥ ४९ ॥ भवित्री द्वापरं प्राप्य युगधर्मभृताम्वरा । पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः ॥ ५० ॥ भविष्यति युगे तस्मिन् महायोगी द्विजर्षभः । व्यासादरण्यां संभूतो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ५१ ॥ स तस्यां पितृकन्यायां पीवर्यां जनयिष्यति। कन्यां पुत्रांश्च चतुरो योगाचार्यान् महाबलान् ॥ ५२ ॥ कृष्णं गौरं प्रभुं शंभुं कृत्वीं कन्यां तथैव च । ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषीं त्वणुहस्य च ।५३। एतानुत्पाद्य धर्मात्मा योगाचार्यान् महाव्रतान् । श्रुत्वा स्वजनकाद्धर्मान् व्यासादमितबुद्धिमान् ॥ ५४ ॥ महायोगी ततो गन्ता पुनरावर्तिनीं गतिम् । यत्तत्पदमनुद्विग्नमव्ययं ब्रह्म शाश्वतम्५५

है ॥ ४७ ॥ वे तेजोयुक्त महात्मा महाभाग तपस्वी महात्मा पुलस्त्य प्रजापतिके पुत्र हैं ॥ ४८ ॥ इनकी मानसी कन्या पीवरी नामसे प्रसिद्ध है, यह धर्मधारिणी द्वापर युगमें स्वयं भी योगनी होगीऔर योगीकी पत्नी, तथा योगीकी माता भी होगी उस युगमें पराशरके कुलमें शुक नामक महातपस्वी होंगे वे द्विजश्रेष्ठ महायोगी होंगे वह व्यासजीसे अरणीमें निर्धूम अग्निकी समान उत्पन्न होंगे ॥४९-५०॥ वह इस पितृकन्या पीवरीमें कृष्ण गौर प्रभु और शंभु इन चार महाबली योगाचार्योंको और ब्रह्मदत्तकी जननी तथा अणुहकी पत्नी कृत्वी कन्याको उत्पन्न करेंगे॥ ५२ ॥ वह धर्मात्मा इन महाव्रतधारी योगाचार्योंको उत्पन्न करेंगे फिर बुद्धिमान् और महायोगी अपने पिता व्यासजीसे धर्मोंको सुनकर पुनरावर्तिनी (जिसको पाने पर फिर लौटना नहीं होता है ऐसी) गतिको प्राप्त होंगे, वह गति (पद) उद्वेग रहित अव्यय (कभी क्षीण न होने वाली) शाश्वत ब्रह्मगति है ॥५३-५५॥

अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरा मुने। कथा यत्रेयमुत्पन्ना वृष्ण्यन्धककुलान्वया ॥ ५६ ॥ सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः। निरता दिवि लोकेषु ज्योतिर्भासिषु भासुराः। सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान् भावयन्त्युत ॥५७॥ तेषां वै मानसी कन्या गौर्नाम्ना दिवि विश्रुता। तवैव वंशे सा दत्ता शुक्रस्य महिषी प्रिया। एकशृङ्गेति विख्याता साध्यानां कीर्तिवर्धिनी ॥ ५८ ॥ मरीचिगर्भास्तांल्लोकान् समाश्रित्य व्यवस्थिताः। ये त्वथांगिरसः पुत्राः साध्यैः सम्वर्धिताः पुरा ॥५९॥ तान क्षत्रियगणास्तात भावयन्ति फलार्थिनः। तेषां तु मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता ॥ ६० ॥ पत्नी सा विश्वमहतः स्नुषा वै वृद्ध-

हे मुने ! अमूर्तिमान् पितर धर्मकी मूर्तिको धारण करने वाले हैं वृष्णि और अंधक कुलोंसे सम्बन्ध रखने वाली कथा इनसे ही सम्बन्ध रखती है ॥ ५६ ॥ (इस प्रकार अमूर्तिमान् देवपूज्य तीन पितृगणोंकी कथा कह कर अब मनुष्योंके पूजनीय चार पितृगणोंमेंसे पहिले सुकाल नामक पितरोंका वर्णन करते हैं) वसिष्ठ प्रजापतिके सुकाल नामक पितर हैं, वे दमकते हुए पितर स्वर्गमें सब कामनाओंसे भरे पुरे और ज्योतिके कारण दमकते हुए लोकोंमें निवास करते हैं ॥ ५७ ॥ उनकी मानसी कन्या स्वर्गमें गौ नामसे प्रसिद्ध है (हे भीष्म !) वह तुम्हारे ही वंशमें दी गई है और वह शुक्रकी प्यारी पटरानी थी, वह साध्योंकी कीर्ति बढ़ाने वाली एकशृंगा नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥ (अब दूसरे पितृगणका वर्णन करते हैं) जिन अंगिरसके पुत्रोंको पहिले साध्योंने पढ़ाया था वे सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित रहने वाले लोकोंका आश्रय लेकर रहते हैं ॥ ५९ ॥ फल चाहने वाले क्षत्रिय पुरुष उन गणोंकी पूजा करते हैं, उनकी मानसी कन्या यशोदा नामसे प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥ वह विश्वमहत्की पत्नी है

शर्मणः । राजर्षेर्जननी चापि दिलीपस्य महात्मनः ॥६१॥ तस्य यज्ञे पुरा गीता गाथाः प्रीतैर्महर्षिभिः । तदा देवयुगे तात वाजिमेधे महामखे ॥ ६२ ॥ अग्नेर्जन्म तथा श्रुत्वा शाण्डिलस्य महात्मनः । दिलीपं यजमानं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः । सत्यवन्तं महात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ॥ ६३ ॥ सुस्वधा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः।समुत्पन्नास्तु पुलहान्महात्मानो द्विजर्षभाः६४ लोकेषु दिवि वर्तन्ते कामगेषु विहंगमाः । तांश्च वैश्यगणास्तात भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ६५ ॥ तेषां वै मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता । ययातेर्जननी ब्रह्मन् महिषी नहुषस्य च ॥ ६६ ॥ त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थन्तु निबोध मे । उत्पन्ना ये स्वधायान्ते सोमपा वै कवेः सुताः । हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान् भावयन्त्युत ॥ ६७ ॥ मानसा नाम ते लोका यत्र तिष्ठन्ति ते

और वृद्धशर्माकी पुत्रवधू है और राजर्षि महात्मा राजा दिलीपकी जननी है ॥ ६१ ॥ देवयुगमें उसके वाजिमेध नामवाले महायज्ञमें प्रसन्न हुए महर्षियोंके गाथा गाई थी, कि—॥ ६२ ॥ महात्मा अग्नि और महात्मा शाण्डिल्यके जन्मको सुनकर जिन्होंने समाहित चित्तसे सत्यवान् महात्मा दिलीपको यज्ञ करते हुए देखा है वे मनुष्यभी स्वर्गको जीत लेंगे ॥ ६३ ॥ (अब तीसरे गणको कहते हैं) कर्दम प्रजापतिके सुस्वधा नाम वाले पितर हैं जो महात्मा द्विजश्रेष्ठ पुलहसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये आकाशचारी स्वर्गमें लोकोंमें अपनी इच्छानुसार रहते हैं, फलकामुक वैश्यगण इनकी उपासना करते हैं ॥ ६५ ॥ उनकी मानसी कन्या विरजा नामसे प्रसिद्ध है, वह ययातिकी माता है और हे ब्रह्मन् ! वह नहुषकी पत्नी है ॥ ६६ ॥ यह तीन गण कह दिये, हे तात ! अब तुम चौथेको सुनो वे कविकी पुत्री स्वधामें उत्पन्न हुए हैं औ वे हिरण्यगर्भ (अग्नि) के पुत्र हैं और सोमपा

दिवि । तेषां वै मानसी कन्या नर्मदा सरिताम्वरा ॥ ६८ ॥
या भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी । पुरुकुत्सस्य या पत्नी
त्रसदस्योर्जनन्यपि ॥६९॥ तेषामथाभ्युपगमान्मनुस्तात युगे युगे ।
प्रवर्तयति श्राद्धानि नष्टे धर्मे प्रजापतिः ॥ ७० ॥ पितॄणामादि-
सर्गेण सर्वेषां द्विजसत्तम । तस्मादेनं स्वधर्मेण श्राद्धदेवं वदन्ति
वै ॥७१॥ सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् । दत्तं स्वधां
पुरोधाय श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥७२॥ सोमस्याप्यायनं कृत्वा

कहलाते हैं शूद्र उनकी उपासना करते हैं ॥ ६७ ॥ वे स्वर्गमें मानस नाम वाले लोकोंमें रहते हैं उनकी मानसी कन्या नर्मदा कहलाती है और वह नदियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥ वह दक्षिणापथकी ओर वह कर प्राणियोंको पवित्र करती है, वह पुरुकुत्स की पत्नी है और त्रसदस्युकी माता है ॥ ६९ ॥ हे तात ! मनु प्रजापति उन पितरोंको पूज्य माननेके कारण धर्मके नष्ट होने पर प्रत्येक युगमें श्राद्धोंको प्रचलित किया करते हैं ॥ ७० ॥ हे द्विजसत्तम ! (यम) सब पितरोंकी आदिमें उत्पन्न होते हैं, इस धर्मके कारण इनको श्राद्धदेव कहते हैं ये सात पितृगणोंसे प्रथम उत्पन्न होते हैं, इस लिये ये इनको श्राद्धदेव कहते हैं, तात्पर्य यह है कि-" यमः पितॄणामधिपतिः " यम पितरोंके अधिपति हैं, इस यमपितृत्वरूपसे सब श्राद्धोंके अधिपति होनेके कारण यह यम श्राद्धदेव कहलाते हैं) ॥ ७१ ॥ इन सब का चाँदीका वा चाँदीका मिला हुआ पात्र होता है 'स्वधा पितृभ्यः' कह कर किया हुआ श्राद्ध पितरोंको प्रसन्न करता है ॥ ७२ ॥ जो पुरुष सोमका आप्यायन करके वैवस्वत अग्नि का आप्यायन करता है फिर अग्निमें उदगायन करता है और अग्निके अभावमें जलमें उदगायन करके पितरोंको भक्तिपूर्वक तृप्त करता है, पितर उसको तृप्त करते हैं (अग्निमें सोमका

अग्नेर्वैवस्वतस्य च । उदगायनमप्यग्नावग्न्यभावेऽप्सु वा पुनः७३
पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम् । यच्छन्ति
पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा ॥ ७४ ॥ स्वर्गमारोग्यमेवाथ
यदन्यदपि चेप्सितम् । देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते७५
देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् । शीघ्रप्रसादा ह्यक्रोधा
लोकस्याप्यायनं परम् ।७६॥ स्थिरप्रसादाश्च सदा तान्नमस्यस्व
भार्गव । पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मद्भक्तश्च विशेषतः ॥ ७७ ॥
श्रेयस्तेऽद्य विधास्यामि प्रत्यक्षं कुरु तत् स्वयम् । दिव्यं चक्षुः
सविज्ञानं प्रदिशामि च तेऽनघ ॥ ७८ ॥ गतिमेतामप्रमत्तो मार्क-
ण्डेय निशामय । न हि योगगतिर्दिव्या पितॄणां च परा गतिः७९

अग्निका और वैवस्वत यमका आप्यायन करके अर्थात् सोमाय पितृमते स्वधा नमः, अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः, यमाय अङ्गिरसे स्वधा नमः' इस प्रकार स्वधाके साथ कह कर होम कर पितरोंको तृप्त करता है) उसे पितर (प्रसन्न होने पर) बहुत सी सन्तान और पुष्टि देते हैं तथा स्वर्ग आरोग्य तथा और भी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं, हे मुने ! पितृकार्य देवकार्यसे भी विशिष्ट (श्रेष्ठ) है ॥ ७३-७५ ॥ देवताओंमें भी जो पितर हैं वे शीघ्र ही सन्तुष्ट होजाते हैं ये तो शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं, क्रोध-रहित हैं और लोकोंको परम तृप्त रखने वाले हैं (तात्पर्य यह है, कि-देवता चिरकालमें प्रसन्न होते हैं अत एव उनकी आराधना करना कठिन है)॥ ७६ ॥ हे भार्गव !उनका प्रसाद स्थिर रहने वाला होता है, अतः तू उनको प्रणाम कर, हे विप्रर्षे ! तू पितृभक्त है और विशेषतः मेरा भक्त है ॥ ७७ ॥ हे अनघ ! मैं आज तेरा कल्याण करूँगा, हे निष्पाप ! मैं तुझे अनुभविक ज्ञानमय दिव्य चक्षु देता हूँ ॥ ७८ ॥ हे मार्कण्डेय ! अब तू श्राद्धके फलरूपमें मिलने वाली गतिको सावधान होकर देख !

स्वद्विधेनापि सिद्धेन दृश्यते मांसचक्षुषा । स एवमुक्त्वा देवेशो मामुपस्थितमग्रतः ॥ ८० ॥ चक्षुर्दत्वा सविज्ञानं देवनामपि दुर्लभम् । जगाम गतिमिष्टां वै द्वितीयोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ८१ ॥ तन्निबोध कुरुश्रेष्ठ यन्मयाऽसीन्निशामितम् । प्रसादात्तस्य देवस्य दुर्ज्ञेयं भुवि मानुषैः ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच । आसन् पूर्वयुगे तात भरद्वाजात्मजा द्विजाः । योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै ॥ १ ॥ अपभ्रंशमनुप्राप्ता योगधर्मापचारिणः । महतः सरसः पारे मानसस्य विसंज्ञिताः ॥२॥ तमेवार्थमनुध्यातो नष्टमप्स्विव मोहिताः । अप्राप्य योगन्ते सर्वे संयुक्ताः कालधर्मणा ॥ ३ ॥ ततस्ते योगविभ्रष्टा

तुम्हसा सिद्ध पुरुष भी मांसमय चक्षुसे योगियोंकी दिव्यगतिको और पितरोंकी परागतिको नहीं देख सकता, वह देवेश सामने खड़े हुए मुझसे इसप्रकार कहकर और मुझे विज्ञानसहित देवदुर्लभ नेत्रको देकर अपनी इष्टगतिसे द्वितीय अग्निकी समान दमदमाते हुए चले गए ॥७६-८१॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उन देवताकी कृपासे मैंने जो घटना देखी थी उसको तुम सुनो पृथ्वीमें उस घटनाका देखना मनुष्योंके लिये बड़ा कठिन है ॥ ८२ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा, कि-हे तात ! पूर्वयुगमें भरद्वाजके ब्राह्मण पुत्र योगधर्मका सेवन करते २ (योगविरोधी कर्मरूप) दुश्चरित करके भ्रष्ट होगए थे ॥ १ ॥ वे योगधर्मका उल्लंघन करनेके अचेतनसे हो बड़े भारी मानसरोवरके किनारे पर गिरे ॥ २ ॥ वे डूबे हुए पुरुषकी समान मोहित होरहे थे और उस योगविषयका चिन्तवन करते २ ही योगको न पाकर मर

देवेषु सुचिरोषिताः जाताः कौशिकदायादाः कुरुक्षेत्रे नरर्षभाः ४
हिंसया विहरिष्यन्तो धर्मं पितृकृतेन वै । ततस्ते पुनराजातिं भ्रष्टाः
प्राप्स्यन्ति कुत्सिताम् ॥ ५ ॥ तेषां पितृप्रसादेन पूर्वजातिकृतेन
वै । स्मृतिरुत्पत्स्यते प्राप्य तां तां जातिं जुगुप्सिताम् ॥ ६ ॥ ते
धर्मचारिणो नित्यं भविष्यन्ति समाहिताः । ब्राह्मण्यं प्रति-
लप्स्यन्ति ततो भूयः स्वकर्मणा ॥ ७ ॥ ततश्च योगं प्राप्स्यन्ति
पूर्वजातिकृतं पुनः । भूयः सिद्धिमनुप्राप्ताः स्थानं प्राप्स्यन्ति
शाश्वतम् ॥ ८ ॥ एवं धर्मे च ते बुद्धिर्भविष्यति पुनः पुनः ।
योगधर्मे च नितरां प्राप्स्यसे बुद्धिमुत्तमाम् ॥९॥ योगो हि दुर्लभो
नित्यमल्पप्रज्ञैः कदाचन । लब्ध्वापि नाशयन्त्येनं व्यसनैः कटुता-
मिताः । अधर्मेष्वेव वर्तन्ते मार्दयन्ते गुरूनपि ॥ १० ॥ याचन्ते

गए ३ तब वे योगभ्रष्ट देवताओंमें चिरकाल तक निवास करके
कुरुक्षेत्रमें कौशिकके नरश्रेष्ठ पुत्र बन कर उत्पन्न हुए (आशय
यह है कि योगभ्रष्ट पुरुष देवलोकको ही जाते हैं, उनकी और
कोई गति नहीं होती है) ॥४॥ जो पितरोंके धर्मके लिये हिंसा
करते हैं तो वे भ्रष्ट होकर कुत्सित जातिमें उत्पन्न होते हैं ।५।
परन्तु पूर्वजन्मके पितरोंकी कृपाके कारण प्रत्येक जुगुप्सित
(निन्दित) जातिमें उत्पन्न होने पर भी उनको पूर्वजन्मकी स्मृति
बनी रहती है ॥ ६ ॥ वे उस जन्ममें सावधान चित्तवाले और
धर्माचरण करनेवाले होते हैं, तदनन्तर वे अपने कर्मसे ब्राह्म-
णत्वको पाते हैं ॥ ७ ॥ उस जन्ममें वे अपने पूर्वजन्मके योगको
पाते हैं और फिर सिद्धिको पाकर शाश्वत स्थानको पाते हैं ८
इसीप्रकार तेरी भी बुद्धि वारम्वार धर्मपरायण होगी और तू
योगधर्मकी उत्तम बुद्धिको पावेगा ॥९॥ अल्पबुद्धि मनुष्योंको
योगसिद्धि मिलना दुर्लभ है उनको योगसिद्धि प्राप्त भी होजाती
है तब वह मृगया आदि व्यसनोंसे कटु बन कर उसका नाश

न त्वयाच्यानि रक्षन्ति शरणागतान् । नावमन्यन्ति कृपणान् माद्यन्ते न धनोष्मणा ॥ ११ ॥ युक्ताहारविहाराश्च युक्तचेष्टाः स्वकर्मसु । ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च न नष्टानुगवेषिणः ॥ १२ ॥ नोपभोगरता नित्यं न मांसमधुभक्षणाः । न च कामपरा नित्यं न विप्राऽसेविनस्तथा ॥ १३ ॥ नाऽनार्यसंकथासक्ता नालस्योपहतास्तथा । नात्यन्तमानसंसक्ता गोष्ठीष्वनिरतास्तथा ॥१४॥ प्राप्नुवन्ति नरा योगं योगो वै दुर्लभो भुवि । प्रशान्ताश्च जितक्रोधा मानाहंकारवर्जिताः ॥ १५ ॥ कल्याणभाजनं ये तु ते भवन्ति यतव्रताः । एवं विप्रास्तु ते तात ब्राह्मणा ह्यभवंस्तदा १६ स्मरन्ति ह्यात्मनो दोषं प्रमादकृतमेव तु । ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च

कर डालते हैं और गुरुओंसे द्रोह करने लगते हैं ॥ १० ॥ वे अयाच्य (स्त्री आदि) से याचना नहीं करते हैं और शरणागतोंकी रक्षा करते हैं और वे कृपणपुरुषोंका अपमान नहीं करते हैं तथा धनकी गर्मीसे मदमत्त नहीं होते हैं ॥११॥ उनका आहार विहार शास्त्रानुकूल होता है और वे अपने कर्मोंमें शास्त्रानुसार चेष्टा करते हैं और ध्यान तथा अध्ययनपरायण रहते हैं और नष्ट हुई वस्तुको पानेके लिये (चोर आदिको) नहीं ढूढ़ते हैं ॥ १२ ॥ वे सदा भोगमें ही लीन नहीं रहते हैं और सर्वदा मधु मांसका भी भक्षण नहीं करते हैं और सर्वदा कामपरायण भी नहीं रहते हैं और सर्वदा विप्रोंका असेवन भी नहीं करते हैं ॥ १३ ॥ वे ग्राम्यगोष्ठीमें आसक्त नहीं रहते हैं और आलस्यमें भी नहीं पड़े रहते हैं और सदा मानमें भी नहीं भरे रहते हैं और आत्ममीमांसामें सदा लगे रहते हैं १४ प्रशान्त आत्मा वाले और क्रोधको जीतने वाले मान तथा अहंकाररहित मनुष्यों को योगसिद्धि मिलती है, पृथिवीमें योगप्राप्ति अतिदुर्लभ है १५ कल्याणके पात्र मनुष्य यतव्रत होते हैं, हे तात ! वे इस प्रकार

शान्ते वर्त्मनि संस्थिताः ॥१७॥ योगधर्माद्धि धर्मज्ञ न धर्मोऽस्ति विशेषवान्। वरिष्ठः सर्वधर्माणां तमेवाचर भार्गव ॥ १८ ॥ कालस्य परिणामेन लघ्वाहारो जितेन्द्रियः। तत्परः प्रयतः श्राद्धी योगधर्ममवाप्स्यसि ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत। अष्टादशैव वर्षाणि त्वेकाहमिव मेऽभवत् ॥२०॥ उपासतस्तं देवेशं वर्षाण्यष्टादशैव मे। प्रसादात्तस्य देवस्य न ग्लानिरभवत्तदा ॥ २१ ॥ न क्षुत्पिपासे कालं वा जानामि स्म तदाऽनघ। पश्चाच्छिष्यसकाशात्तु कालः संविदितो मया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
पितृकल्पे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच। तस्मिन्नन्तर्हिते देववचनात्तस्य वै प्रभोः।

के ब्राह्मण हुए थे, ॥ १६ ॥ वह अपने प्रमाद वश हुए दोपका स्मरण करते ही रहते थे और ध्यान और अध्ययनमें परायण रह कर शान्तमार्गमें स्थित रहते थे ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ ! योगधर्मसे विशिष्ट कोई धर्म नहीं है, हे भार्गव ! वही धर्म सबसे श्रेष्ठ है, अतः तू उसका ही आचरण कर ॥ १८ ॥ तू यदि श्रद्धापूर्वक योगधर्ममें परायण रह कर हलका भोजन करताहुआ जितेन्द्रिय रहेगा तो तू कालक्रमसे योगधर्मको पावेगा ॥ १९ ॥ इतनी बात कह कर वह भगवान् तहाँ ही अन्तर्धान होगए, ये अठारह वर्ष मुझे एक दिनकी समान व्यतीत होगए ॥२०॥ और अठारह वर्ष तक उन देवकी उपासना करते रहने पर भी उन देवकी उपासना करनेके कारण मुझे कुछ भी ग्लानि नहीं मालूम हुई ॥ २१ ॥ हे अनघ ! मुझे भूँख प्यास और समय आदि कुछ न मालूम हुआ, बादको शिष्यसे मुझे समय मालूम हुआ था ॥ २२ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥ ❀

मार्कण्डेयजीने कहा, कि–उन देवके अन्तर्धान होने पर, उन

चक्षुर्दिव्यं सविज्ञानं प्रादुरासीत्तदा मम ॥ १ ॥ ततोऽहं तान-पश्यं वै ब्राह्मणान् कौशिकात्मजान् । आपगेय कुरुक्षेत्रे यानुवाच विभुर्मम ॥ २ ॥ ब्रह्मदत्तोऽभद्राजा यस्तेषां सप्तमो द्विजः । पितृवर्तीति विख्यातो नाम्ना शीलेन कर्मणा ॥ ३ ॥ शुकस्य कन्या कृत्वी तं जनयामास पार्थिवम् । अणुहात् पार्थिवश्रेष्ठात् कांपिल्ये नगरोत्तमे ॥ ४ ॥ भीष्म उवाच । यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः । तस्य वंशमहं राजन् कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥५॥ युधिष्ठिर उवाच । अणुहः कस्य वै पुत्रः कस्मिन् काले बभूव ह । राजा धर्मभृतां श्रेष्ठो यस्य पुत्रो महायशाः ।६। ब्रह्मदत्तो नरपतिः किंवीर्यः स बभूव ह । कथं च सप्तमस्तेषां स बभूव नराधिपः । न ह्यल्पवीर्याय शुको भगवाँल्लोकपूजितः । कन्यां प्रादाद्योगात्मा कृत्वीं कीर्तिमतीं प्रभुः ॥८॥ एतदिच्छा-

---

प्रभुके वचनसे मेरे दिव्य विज्ञानमय नेत्र प्रकट होगये ॥ १ ॥ हे गङ्गापुत्र ! तब मैंने सनत्कुमारजीने जिनका वर्णन किया था उन कौशिकपुत्र ब्राह्मणोंको कुरुक्षेत्रमें देखा २ उन कुशिकात्मजों में जो सातवाँ पितृवर्ती नामक द्विज था, वह अपने शील और कर्मसे (सातवें जन्ममें) ब्रह्मदत्त नामक राजा हुआ ॥ ३ ॥ कांपिल्य नामक श्रेष्ठ नगरमें उस राजाको अणुह नाम वाले श्रेष्ठ राजासे शुककी कन्या कृत्वीने उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ भीष्मजीने कहा, कि–हे राजन् ! महातपस्वी मार्कण्डेयजीके कथनानुसार मैं उस राजाके वंशका कीर्तन करता हूँ ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि जिसका पुत्र महायशस्वी (ब्रह्मदत्त) था वह धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ महायशस्वी अणुह किसका पुत्र था और वह किस समय हुआ था ॥ ६ ॥ राजा ब्रह्मदत्त कैसा पराक्रमी था और वह राजा उनमें सप्तम क्यों हुआ ॥७॥ लोकोंमें पूजित योगकी मूर्ति भगवान् शुक अपनी कीर्तिमती कृत्वी नामवाली कन्याको किसी

म्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते । ब्रह्मदत्तस्य चरितं तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ यथा च वर्तमानास्ते संसारे च द्विजातयः । मार्कण्डेयेन कथितास्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥१०॥ भीष्म उवाच । प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः । पितामहस्य मे राजन् बभूवेति मया श्रुतम् ॥११॥ ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः । ऋतज्ञः सर्वभूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥१२॥ सखाऽऽसा गालवो यस्य योगाचार्यो महायशाः । शिक्षामुत्पाद्य तपसा क्रमो येन प्रवर्तितः । कण्डरीकश्च योगात्मा तस्यैव सचिवो महान् १३ जात्यन्तरेषु सर्वेषु सखायः सर्व एव ते । सप्तजातिषु सप्तैव बभूवुरमितौजसः । यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः ॥१४॥

अल्पवीर्य मनुष्यको तो दे ही नहीं सकते थे ॥ ८ ॥ हे महाकान्तिमान् ! मैं ब्रह्मदत्तके चरित्रको सुनना चाहता हूँ, उसको आप कहिये ॥ ९ ॥ और मार्कण्डेयजीने उन द्विजातियोंके संसारमें विचरण करनेका वृत्तान्त जिसप्रकार कहा हो उसको उसी प्रकार आप मुझसे कहिये ॥ १० ॥ भीष्मजीने कहा, कि—हे राजन् ! मैंने सुना है, कि मेरे पितामह राजर्षि प्रतीपके समय ही वह राजा हुआ था ॥ ११ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ महाभाग ब्रह्मदत्त योगी था और सब भूतोंके [सत्य] तत्त्वको जाननेवाला था और सब प्राणियोंके हितमें परायण रहता था ॥१२॥ योगाचार्य महायशस्वी गालव इस (ब्रह्मदत्त) के मित्र थे उन्होंने शिक्षा [वेदांग] को उत्पन्न करके और क्रम [संहिताके पदों] को चलाया था उसके योगात्मा मन्त्रीका नाम कण्डरीक था । १३ ॥ महातपस्वी महाभाग मार्कण्डेयने जिसप्रकार कहा था उसी प्रकार ये सात सातों जातियोंमें उत्पन्न हुए थे और ये अमित ओज वाले भिन्न भिन्न जातियोंमें उत्पन्न होने पर भी परस्पर मित्रता रखते थे ॥ १४ ॥

तस्य वंशमहं राजन् कीर्तयिष्यामि तच्छृणु । ब्रह्मदत्तस्य पौराणां पौरवस्य महात्मनः ।। १५ ।। बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः । सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ।। १६ ।। तेनेदं निर्मितं पूर्वं हस्तिनापुरमुत्तमम् । हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।।१७।। अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च । अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहदिषुर्नृप । बृहद्धनुर्बृहदिषोः पुत्रस्तस्य महायशाः ।। १८ ।। बृहद्धर्मेति विख्यातो राजा परमधार्मिकः । सत्यजित्तनयस्तस्य विश्वजित्तस्य चात्मजः ।। १९ ।। पुत्रो विश्वजितश्चापि सेनजित् पृथिवीपतिः । पुत्राः सेनजितश्चासंश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।। २० ।। रुचिरः श्वेतकेतुश्च महिम्नारस्तथैव च । वत्सश्चावन्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः।२१ रुचिरस्य तु दायादः पृथुसेनो महायशाः । पृथुसेनस्य पारस्तु पारान्नीपस्तु जज्ञिवान् ।। २२ ।। नीपस्यैकशतं तात पुत्राणाम-

---

हे राजन् ! मैं नगरनिवासियोंमें महात्मा ब्रह्मदत्तके वंशको कहता हूँ उसको तुम सुनो ।।१५।। बृहत्क्षत्रका सुहोत्र नामक धार्मिक पुत्र हुआ और सुहोत्रके भी हस्ती नामक पुत्र हुआ ।। १६ ।। उसने ही इस उत्तम हस्तिनापुरको रचा है, हस्तिके भी परमधार्मिक अजमीढ़ पुरुमीढ़ और द्विमीढ़ नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए, हे नृप ! अजमीढ़से धूमिनीमें बृहदिषु उत्पन्न हुआ बृहदिषुके बृहद्धनु नामक महायशस्वी पुत्र हुआ ।।१८।। वह परमधर्मात्मा राजा बृहद्धर्मा नामसे (भी) प्रसिद्ध था, उसका पुत्र सत्यजित् हुआ, उसका तनय विश्वजित् हुआ ।।१९।। विश्वजित्के राजा सेनजित् नामक पुत्र हुआ, सेनजित्के संसारमें प्रसिद्ध चार पुत्र उत्पन्न हुए ।।२०।। राजा (सेनजित्) अवन्तीमें रहता था, उसके रुचिर श्वेतकेतु महिमार और वत्स नामक (चार) पुत्र थे ।। २१ ।। रुचिरके पृथुसेन नामक महायशस्वी

मितौजसाम् । महारथानां राजेन्द्र शूराणां बाहुशालिनाम् ।
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ॥ २३ ॥ तेषां
वंशकरो राजा नीपानां कीर्तिवर्धनः । काम्पिल्ये समरो नाम
सचेष्टसमरोऽभवत् ॥ २४ ॥ समरस्य परः पारः सदश्व इति ते
त्रयः । पुत्राः परमधर्मज्ञाः पारपुत्रः पृथुर्बभौ ॥ २५ ॥ पृथोस्तु
सुकृतो नाम सुकृतेनेह कर्मणा । जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य
चात्मजः ॥ २६ ॥ विभ्राजस्य तु पुत्रोऽभूदणुहो नाम पार्थिवः ।
बभौ शुकस्य जामाता कृत्वीभर्ता महायशाः ॥ २७ ॥ पुत्रोऽणु-
हस्य राजर्षिर्ब्रह्मदत्तोऽभवत् प्रभुः । योगात्मा तस्य तनयो विष्व-
क्सेनः परन्तपः ॥२८॥विभ्राजः पुनरायातः स्वकृतेनेह कर्मणा ।
ब्रह्मदत्तस्य पुत्रोऽन्यः सर्वसेन इति श्रुतः ॥ २९ ॥ चक्षुषी तस्य

पुत्र हुआ, पृथुसेनके पार और पारसे नीप उत्पन्न हुआ ॥२२॥ हे तात ! नीपके अमित पराक्रमी एक सौ पुत्र थे, हे राजेन्द्र ! वे सब महारथी शूर थे और भुजबलशाली थे, वे सब राजे नीप कहलाते थे ॥ २३ ॥ काम्पिल्यमें उन नीपोंके वंशको चलाने वाला कीर्तिवर्धन समर नामक राजा हुआ वह युद्धमें सदा सचेष्ट रहता था ॥ २४ ॥ समरके पर पार और सदश्व नामक तीन पुत्र हुए, ये परम धर्मज्ञ थे, पारके पृथु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ २५ पृथुके पुण्यकर्मके कारण उसके सुकृत नामक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हुआ, उसके विभ्राज नामक पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ विभ्राजके अणुह नामक पुत्र हुआ, वह महायशस्वी कृत्वीका भर्ता और शुकका जामाता बन कर शोभा पाने लगा ॥२७॥ अणुके प्रभु राजर्षि ब्रह्मदत्त नामक पुत्र हुआ और उसके योगात्मा परन्तप पुत्रका नाम विश्वक्सेन हुआ ॥ २८ ॥ विभ्राज अपने कर्मके कारण ब्रह्मदत्तका पुत्र बन कर फिर उत्पन्न हुआ था, ब्रह्म-दत्तका दूसरा पुत्र सर्वसेन नामसे प्रसिद्ध हुआ २९ हे राजन् !

निर्भिन्ने पक्षिणया पूजनीगया । सुचिरोषितया राजन् ब्रह्म दत्तस्य वेश्मनि ॥३०॥ अथास्य पुत्रस्त्वपरो ब्रह्मदत्तस्य जज्ञिवान् । विष्वक्सेन इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥३१॥ विष्वक्सेनस्य पुत्रोऽभूद्दंडसेनो महीपतिः । भल्लाटोऽस्य कुमारोऽभूद्राधेयेन हतः पुरा ॥ ३२ ॥ दण्डसेनात्मजः शूरो महात्मा कुलवर्धनः । भल्लाटपुत्रो दुर्बुद्धिरभवच्च युधिष्ठिर ॥३३॥ स तेषामभवद्राजा नीपानामन्तकृन्नृप । उग्रायुधेन यस्यार्थे सर्वे नीपा विनाशिताः । उग्रायुधो मदोत्सिक्तो मया विनिहतो युधि । दर्पान्वितो दर्परुचिः सततं चानये रतः ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिर उवाच । उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन् वंशेऽथ जज्ञिवान् । किमर्थं चैव भवता निहतस्तद्ब्रवीहि मे ॥ ३६ ॥ भीष्म उवाच । अजमीढस्य दायादो विद्वान्राजा यवीनरः । धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्य-

ब्रह्मदत्तके घरमें चिरकालसे रहने वाली पूजिनी चिड़ियाने उसके दोनों नेत्रोंको फोड़ डाला था इसके अनन्तर ब्रह्मदत्तके विश्वक्सेन (विभ्राजावतार) नामक दूसरा पुत्र हुआ, वह महाबली और महापराक्रमी प्रसिद्ध था ३१ विश्वक्सेनका दण्ड नामक पुत्र हुआ इसका भल्लाट नामक पुत्र हुआ उसको पहिले कर्ण ने युद्धमें मार डाला था ॥ ३२ ॥ दण्डसेनका पुत्र शूरवीर था महात्मा था और कुलको बढ़ानेवाला था और हे युधिष्ठिर ! भल्लाटका पुत्र तो दुर्बुद्धि निकला ३३ हे राजन् ! वह राजा नीपोंका नाश करने वाला हुआ, उसने उग्रायुधके लिये सब नीपोंको नष्ट कर डाला था ३४ उस अनीतिमें लगे रहने वाले और दर्पमें रुचि रखने वाले दर्पवान् मदोत्सिक्त उग्रायुधको मैंने युद्धमें मार डाला था ३५ युधिष्ठिरने कहा, कि—उग्रायुध किसका पुत्र था कौनसे वंशमें उत्पन्न हुआ था, और आपने उसको किस लिये मार डाला था, यह बताइये ३६ भीष्मजीने

धृतिः सुतः ॥ ३७ ॥ जज्ञे सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ।
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ॥ ३८ ॥ आसीत् सु-
धर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रजेश्वरः । सार्वभौम इति ख्यातः पृथि-
व्यामेकराड्विभुः ॥ ३९ ॥ तस्यान्ववाये महति महान् पौरव
नन्दनः । महतश्चापि पुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ॥ ४० ॥
पुत्रो रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः । सुपार्श्वतनय-
श्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ ४१ ॥ सुमतेरपि धर्मात्मा सन्न-
तिर्नाम वीर्यवान् । तस्य वै सन्नते पुत्रः कृतो नाम महाबलः ४२
शिष्यो हिरण्यनाभस्य कौशलस्य महात्मनः । चतुर्विंशतिधा
तेन स प्राच्याः सामसंहिताः ॥ ४३ ॥ स्मृतास्ते प्राच्यसामानः
कार्तयो नाम सामगाः । कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरव-
नन्दनः ॥ ४४ ॥ बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः । नीपो

कहा, कि अजमीढ़के विद्वान् पुत्रका नाम राजा यवीनर था, उसका पुत्र सत्यधृति हुआ ॥३७॥ सत्यधृतिके दृढ़नेमि नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ दृढ़नेमिके पुत्रका राजा सुधर्मा नाम था ३८ सुधर्माके सब भूमिका अधिपति प्रजाका ईश्वर पुत्र था, वह पृथिवीमें सार्वभौम नामसे प्रसिद्ध था और वह पृथिवीमें एक राजा था ३९ उसके बड़े भारी वंशमें पौरवोंको प्रसन्न करने वाला महत्का पुत्र राजा रुक्मरथ भी उत्पन्न हुआ था ४० पुत्र रुक्मरथके पुत्रका राजा सुपार्श्व नामक पुत्र हुआ, सुपार्श्वके सुमति नामक धार्मिक पुत्र हुआ ॥४१॥ सुमतिके भी धर्मात्मा सन्नति नामक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, उस सन्नतिके कृत नामक महाबली पुत्र हुआ ॥४२॥ वह कौशलदेशी महात्मा हिरण्यनाभका शिष्य था, उसने प्राचीन सामसंहिताके चौबीस विभाग किये थे ४३ वे प्राच्य साम कहलाते हैं और उन सामों का गान करने वाले कार्ति कहलाते हैं वीर पौरवनन्दन उग्रा-

नाम महातेजाः पञ्चालाधिपतिर्हतः ॥ ४५ ॥ उग्रायुधस्य दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः । क्षेम्यात् सुवीरो नृपतिः सुवीरात्तु नृपञ्जयः ॥ ४६ ॥ नृपञ्जयाद्बहुरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः । सचाप्युग्रायुधस्तात दुर्बुद्धिरभवत्तदा ॥४७॥ प्रवृद्धचक्रो बलवान्नीपांतकरणो महान् । स दर्पपूर्णो हत्वाऽऽजौ नीपानन्यांश्च पार्थिवान् ४८ पितर्युपरते मह्यं श्रावयामास किल्बिषम् । मामयात्यैः परिवृतं शयानं धरणीतले ॥ ४९ ॥ उग्रायुधस्य राजेन्द्र दूतोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् । अद्य त्वं जननीं भीष्म गन्धकालीं यशस्विनीम् । स्त्रीरत्नं मम भार्यार्थे प्रयच्छ कुरुपुङ्गव ॥ ५० ॥ एवं राज्यं च ते स्फीतं धनानि च न संशयः । प्रदास्यामि यथाकाममहं वै रत्नभाग्

युध कृतका पुत्र हुआ, उसने पराक्रम करके पञ्चालोंके स्वामी पृषत (द्रुपद) के पितामह महातेजस्वी नीपको हठात् मार डाला था ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उग्रायुधके क्षेम्य नामक महायशस्वी पुत्र हुआ, क्षेम्यके सुवीर नामक राजा हुआ, सुवीरके नृपञ्जय नामक पुत्र हुआ ४६ नृपञ्जयके बहुरथ हुआ ये पौरववंशियोंका कीर्तन कर दिया, हे तात ! वह उग्रायुध दुर्बुद्धि निकला ४७ उस बलवान्का चक्र चल रहा था, तब उसने नीपोंका नाश कर डाला था, वह नीपोंका तथा दूसरे राजाओंका युद्धमें मारकर ॥ ४८ ॥ जिस समय मेरे पिता मर गए थे, और मैं पृथ्वी पर शयन कर रहा था तथा मन्त्री मेरे चारों ओर बैठे थे तब उसने मुझसे वाहियात (कुत्सित) बात कही थी ॥ ४९ ॥ हे राजेन्द्र ! उग्रायुधके दूतने मेरे पास आकर कहा, कि—हे पुरुपुंगव भीष्म ! अब तुम स्त्रियोंमें रत्नरूप गन्धकाली नामवाली अपनी यशस्विनी माताको मेरी भार्या बनानेके लिये देदो ५० यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुमको इच्छानुसार विशाल राज्य और धन दूँगा, इसमें तुम कुछ सन्देह न रखना, क्योंकि मैं

भुवि ॥ ५१ ॥ मम प्रज्वलितं चक्रं निशम्येदं सुदुर्जयम् । शत्रवो विद्रवन्त्याजौ दर्शनादेव भारत ॥५२॥ राष्ट्रस्येच्छसि चेत्स्वस्ति प्राणानां वा कुलस्य वा । शासने मम तिष्ठस्व न हि ते शान्तिरन्यथा ॥५३॥ अधः प्रस्तारशयने शयानस्तेन चोदितः । दूतात्तदहितमेतद्धि वाक्यमग्निशिखोपमम् ॥ ५४ ॥ ततोऽहं तस्य दुर्बुद्धेर्विज्ञाय मतमच्युत । आज्ञापयं वै संग्रामे सेनाध्यक्षांश्च सर्वशः ५५ विचित्रवीर्यं बालं च मदुपाश्रयमेव च । दृष्ट्वा क्रोधपरीतात्मा युद्धायैव मनो दधे ॥ ५६ ॥ निगृहीतस्तदाहं तैः सचिवैर्मन्त्रकोविदैः। ऋत्विग्भिर्वेदकल्पैश्च सुहृद्भिश्चार्थदर्शिभिः ॥ ५७ ॥ स्निग्धैश्च शास्त्रविद्भिश्च संयुगस्य निवर्तने । कारणं चाभितश्चास्मि युक्त

पृथ्वीमें रत्नोंको भोगने वाला हूँ (अत एव तुम्हें गन्धकाली-रूप स्त्रीरत्न मेरे अर्पण करदेना चाहिये) ॥ ५१ ॥ शत्रु मेरे इस दुर्जय प्रज्वलित चक्रको देखते हैं तो युद्धमें इसका दर्शन करतेही भाग जाते हैं ॥ ५२ ॥ यदि तू अपने प्राणोंकी और राज्यकी स्वस्ति (खैरियत) चाहता है, तो मेरी आज्ञाको मान ले, नहीं तो तू चैनसे नहीं बैठ सकेगा ॥ ५३ ॥ जब मैं नीचे कुशाओं पर सो रहा था उस समय उसने दूतसे यह अग्नि की लपटकी समान बात कहलाई थी ॥ ५४ ॥ हे अच्युत ! तब मैंने उस दुर्बुद्धिके अभिप्रायको जान कर अपने सेनापतियोंको सब प्रकारसे संग्राम करनेकी आज्ञा दी ॥ ५५ ॥ और विचित्रवीर्य मेरे आश्रयसे रहता है तथा यह बालक (होनेके कारण युद्ध नहीं कर सकता इस बात) को देख कर क्रोधमें भर मैंने स्वयं ही युद्ध करनेका विचार किया ॥ ५६ ॥ उस समय सम्मति देनेमें चतुर मन्त्री वेदकी समान ऋत्विक तत्त्वदर्शी मित्र और शास्त्रवेत्ता स्नेही पुरुष मुझे युद्ध करनेसे रोकने लगे, और हे निष्पाप ! उन्होंने मुझे इसका उचित कारण भी बताया

रूपं तदाऽनघ ॥ ५८ ॥ मन्त्रिण ऊचुः । प्रवृत्तचक्रः पापोऽसौ त्वं चाशौचगतः प्रभो । न चैषः प्रथमः कल्पो युद्धं नाम कदाचन ॥ ५९ ॥ ते वयं सामपूर्वं वै दानं भेदं तथैव च । प्रयोक्ष्यामस्ततः शुद्धो दैवतान्यभिवाद्य च ॥ ६० ॥ कृतस्वस्त्ययनो विप्रैर्हुत्वाऽग्नीनर्च्य च द्विजान् । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रयास्यसि जयाय वै । अस्त्राणि न प्रयोज्यानि न प्रवेश्यश्च संगरः । आशौचे वर्तमाने तु वृद्धानामिति शासनम् ॥ ६२ ॥ सामदानादिभिः पूर्वमपि भेदेन वा ततः । तं हनिष्यसि विक्रम्य शम्बरं मघवानिव ॥ ६३ ॥ प्राज्ञानां वचनं काले वृद्धानां च विशेषतः । श्रोतव्यमिति तच्छ्रुत्वा निवृत्तोऽस्मि नराधिप ॥ ६४ ॥ ततस्तैः संभ्रमः सर्वैः प्रयुक्तः

था ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ मंत्रियोंने कहा, कि–हे प्रभो ! उसका चक्र तो चलरहा है और आपको आशौच लग रहा है अतः यह युद्ध का प्रथम कल्प कभी नहीं माना जासकता (अर्थात् उच्छृङ्खल प्रवृत्ति वालेका और शास्त्रानुसार चलने वालेका लड़ना ही मुख्य कर्तव्य नहीं है) ॥ ५९ ॥ अत एव हम उसको पहिले साम दान और भेदसे समझावेंगे, तब तक आप शुद्ध होजायँगे फिर आप देवताओंको प्रणाम करके, विप्रोंसे स्वस्तिवाचन करा कर अग्नि और देवताओंकी पूजा कर, ब्राह्मणोंकी आज्ञा होने पर विजय के लिये चलना ॥ ६० ॥ ६१ ॥ वृद्धोंका कथन है, कि–जब आशौच चल रहा हो, उस समय अस्त्रोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये और युद्धमें प्रवेश भी नहीं करना चाहिये ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर आप साम दाम भेदसे इसको वशमें करिये (ऐसे नहीं माने) तो जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको मार डाला था, इसप्रकार इसको पराक्रम करके मार डालना ॥ ६३ ॥ समय आने पर बुद्धिमानोंकी और वृद्धोंकी बातोंको विशेषरूपसे सुनना चाहिये यह विचार कर हे राजन् ! मैं रुक गया ॥ ६४ ॥ इसके उप-

शास्त्रकोविदैः । तस्मिन्काले कुरुश्रेष्ठ कर्म चारब्धमुत्तमम् ॥६५॥
स सामादिभिरेवादावुपायैः प्राज्ञचिंतितैः । अनुनीयमानो दुर्बुद्धि-
रनुनेतुं न शक्यते ॥६६॥ प्रवृत्तं तस्य तच्चक्रमधर्मनिरतस्य वै । पर-
दाराभिलापेण सद्यस्तात निवर्तितम् ॥६७॥ ततोऽहं तस्य जाने-
तन्निवृत्तं चक्रमुत्तमम् । हतं स्वकर्मणा तं तु पूर्वं सद्भिश्च निन्दि-
तम् ॥ ६८ ॥ कृतशौचः शरी चापी रथी निष्क्रम्य वै पुरात् ।
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः प्रायोधयमहं रिपुम् ॥ ६९ ॥ ततः संसर्ग-
मासाद्य बलेनास्त्रबलेन च । त्र्यहमुन्मत्तवद् युद्धं देवासुरमिवा-
भवत् ॥७०॥ स मयास्त्रप्रतापेन निर्दग्धो रणमूर्धनि । पपाताभि-
मुखः शूरस्त्यक्त्वा प्राणानरिन्दम ॥ ७१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तात
काम्पिल्ये पृष्ठतोऽभ्यपात् । हते नीपेश्वरे चैव हते चोग्रायुधे नृपे ७२

रान्त उन सब शास्त्रविशारद पुरुषोंने उस समय यह उत्तम काम
आरम्भ कर दिया ॥ ६५ ॥ जब बुद्धिमान् साम दान आदि
उपाय करके भी उस दुर्बुद्धिको नहीं समझा सके ६६ हे तात !
उस समय उसका चलता हुआ चक्र दूसरेकी स्त्रीकी कामना
करनेसे तत्क्षण ही रुक गया ॥६७॥ जब मैंने जाना कि–उसका
चक्र निवृत्त होगया है अर्थात् अब उसकी आज्ञाको मनुष्य नहीं
मानते हैं; तब मैंने उस सज्जनोंसे निन्दित पुरुषको उसके कर्मोंसे
ही मरा हुआ जाना ॥६८॥ तब मैं आशौचसे निवृत्त हो स्वस्ति-
वाचन करा कर धनुर्बाणको ले रथमें बैठ कर नगरमेंसे निकल
कर शत्रुसे युद्ध करने लगा ॥ ६९ ॥ तब भेंटा होने पर अस्त्र
बल और शारीरिक बलसे मेरा और उसका युद्ध देवासुर संग्राम
की समान तीनदिन तक होता रहा ॥ ७० ॥ हे अरिदमन !
तब वह मेरे अस्त्रके प्रतापसे रणके मुहाने पर भस्म होकर अपने
प्राणोंको त्याग कर ढह पड़ा ॥७१॥ हे राजन् ! नीपेश्वर राजा
उग्रायुधके मारे जाने पर पृषत काम्पिल्यमें आया ७२ हे राजन् !

आहिच्छत्रं स्वकं राज्यं पित्र्यं प्राप महाद्युतिः । द्रुपदस्य पिता राजन् ममवानुमते तदा ॥ ७३ ॥ ततोऽर्जुनेन तरसा निर्जित्य द्रुपदं रणे । आहिच्छत्रं सकाम्पिल्यं द्रोणायाथापवर्जितम् ॥७४॥ प्रतिगृह्य ततो द्रोण उभयं जयतां वरः । काम्पिल्यं द्रुपदायैव प्रायच्छद्विदितं तव ॥७५॥ एष ते द्रुपदस्यादौ ब्रह्मदत्तस्य चैव ह । वंशः कार्त्स्न्येन वै प्रोक्तो नीपस्योग्रायुधस्य च ॥७६॥ युधिष्ठिर उवाच । किमर्थं ब्रह्मदत्तस्य पूजनीया शकुन्तिका । अन्धं चकार गांगेय ज्येष्ठं पुत्रं पुरा विभो ॥ ७७ ॥ चिरोषिता गृहे चापि किमर्थं चैव तस्य सा। चकार विप्रियमिदन्तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ ७८ ॥ पूजनीया चकारासौ किं सख्यं तेन चैव ह । एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वमुक्त्वा यथातथम् ॥७९॥ भीष्म उवाच । शृणु सर्वं महाराज यथावृत्तमभूत् पुरा । ब्रह्मदत्तस्य भवने तन्नि-

तब महाद्युति द्रुपदके पिताने मेरी सम्मति लेकर अपने पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया ।७३। इसके उपरान्त अर्जुनने रणमें द्रुपदको बलात्कारसे जीत कर काम्पिल्य और आहिच्छत्र द्रोणके अर्पण कर दिया था ॥ ७४ ॥ तब जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणने दोनों देशोंको पाकर काम्पिल्य द्रुपदको ही लौटा दिया था, यह आपको विदित ही है ७५ यह मैंने तुमसे आदिसे अब तकका द्रुपदका ब्रह्मदत्तका और नीप उग्रायुधका सारा वंश कह दिया ७६ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे विभो भीष्म ! पहिले पूजनी नाम वाली चिड़ियाने ब्रह्मदत्तके ज्येष्ठपुत्रको अन्धा क्यों कर दिया था ॥ ७७ ॥ वह तो उस राजाके घरमें चिरकालसे रहती थी तब भी उसने उस महात्मा राजाका अप्रिय काम क्यों किया था ॥ ७८ ॥ और उस पूजिनीने उसके साथ किस बातकी मित्रताकी थी आप इस सबको यथार्थरीतिसे कह कर मेरे सारे सन्देहोंको दूर करदीजिये ७९ भीष्मजीनेने कहा, कि-हे युधि-

बोध युधिष्ठिर ॥ ८० ॥ काचिच्छकुन्तिका राजन् ब्रह्मदत्तस्य वै सखी । शितिपक्षा शोणशिराः शितिपृष्ठा शितोदरी ॥ ८१ ॥ सखी सा ब्रह्मदत्तस्य सुदृढं बद्धसौहृदा । तस्याः कुलायमभवद्गृहे तस्यं नरोत्तम ॥ ८२ ॥ सा सदाहनि निर्गत्य तस्य राज्ञो गृहोत्तमात् । चचारांभोधितीरेषु पल्वलेषु सरःसु च ॥ ८३ ॥ नदी पर्वतकुञ्जेषु वनेषूपवनेषु च । प्रफुल्लेषु च तडागेषु कल्हारेषु सुगन्धिषु ॥८४॥ कुमुदोत्पलकिञ्जल्कसुरभीकृतवायुषु । हंससारसघुष्टेषु कारण्डवरुतेषु च ॥ ८५ ॥ चरित्वा तेषु सा राजन्निशि कांपिल्यमागमत् । नृपतेर्भवनं प्राप्य ब्रह्मदत्तस्य धीमतः ॥८६॥ राज्ञा तेन सदा राजन कथायोगं चचार सा । आश्चर्याणि च दृष्टानि यानि वृत्तानि कानिचित् ॥ ८७ ॥ चरित्वा विविधान् देशान् कथयामास तानि सा । कदाचित्तस्य नृपतेर्ब्रह्मदत्तस्य

ष्ठिर महाराज ! पहिले ब्रह्मदत्तके घरमें जो बात हुई थी, उस सबको तू यथार्थरीतिसे सुन ॥ ८० ॥ हे राजन ! एक चिड़िया ब्रह्मदत्तकी सखी थी, उसके पर श्वेत थे, उसका शिर लाल था और उसकी पीठ काली थी ॥ ८१ ॥ वह ब्रह्मदत्तसे परम स्नेह रखने वाली सखी थी, हे नरोत्तम ! उसके घरमें उसका घोंसला था ॥ ८२ ॥ वह उस राजाके उत्तम घरमेंसे प्रति दिन निकल कर समुद्रके तटों पर तालावों पर और तलैयों पर घूमा करती थी ८३ वह नदी पर्वत कुञ्ज वन उपवन निर्मल जलसे खिलने वाले तड़ाग और सुगन्धित कल्हारों पर और कुमुद और कमलों की परागसे सुगंधित हुई वायुमें और हंस तथा सारसोंके शब्दोंमें और कारण्डवोंके शब्दोंमें घूम कर रात्रिमें कांपिल्यमें आजाती थी और बुद्धिमान् राजा ब्रह्मदत्तके घरमें आकर उस राजासे वह सदा कथाएँ कहा करती थी और नाना देशोंमें घूम कर जो अचरज देखती थी उनको वह उससे कहती थी, हे राजशार्दूल

कौरव ॥ ८८ ॥ पुत्रोऽभूद्राजशार्दूल सर्वसेनेति विश्रुतः । पूजनीयाऽथ सा तस्मिन् प्रासूताण्डमथापि च ॥ ८९ ॥ तस्मिन्नीडे पुरा ह्येकं तत्किल प्रास्फुटत्तदा । स्फुटितो मांसपिण्डस्तु बाहुपादास्यसंयुतः ॥९०॥ बभ्रुवक्त्रश्चक्षुहीनो बभूव पृथिवीपते । चक्षुष्मानप्यभूत् पश्चादीपत्पक्षोत्थितश्च ह ॥ ९१ ॥ अथ सा पूजनीया वै राजपुत्रस्वपुत्रयोः । तुल्यस्नेहात् प्रीतिमती दिवसे दिवसेऽभवत् ॥९२॥ आजहार सदा सायं चंच्वाऽमृतफलद्वयम् । अमृतास्वादसदृशं सर्वसेनतनूजयोः ॥९३॥ स बालो ब्रह्मदत्तस्य पूजनीयासुतश्च ह । ते फले भक्षयित्वा च पृथुकौ प्रीतमानसौ९४ अभूतां नित्यमेवेह खादेतां तौ च ते फले । तस्यां गतायामथ च पूजन्यां वै सदाहनि ॥ ९५ ॥ शिशुना चटकेनाथ धात्री तन्तु शिशुं नृप । तेन प्रक्रीडयामास ब्रह्मदत्तात्मजं सदा ॥ ९६ ॥

एक समय राजा ब्रह्मदत्तके पुत्र हुआ, वह सर्वसेन नामसे प्रसिद्ध हुआ, उस समय उस पूजिनीने भी अण्डे दिये ॥ ८४–८९ ॥ उस घोंसलेमें एक अण्डा फट गया, उसमेंसे एक मांसका पिण्ड निकला उसमें चरण और और मुख बन रहा था उसका मुख बभ्रु था और उसके नेत्र मिच रहे थे कुछ समय बाद उसके नेत्र खुल गए और उसके कुछ २ पर निकल आये९०-९१ इसके उपरान्त वह अपने पुत्र पर और राजपुत्र परतुल्यस्नेह रख प्रतिदिन एकसी प्रीति रखने लगी९२वह सदा सायंकालके समय अमृतके आस्वादकी समान दो फलोंको सर्वसेन और अपने पुत्रके लिये लाती थी ९३ उन फलोंका भक्षण करके ब्रह्मदत्तका बालक और पूजनीका पुत्र ये दोनो धीरे २ बड़े होगए और इन दोनों फलोंको खाते २ वे परम प्रसन्न होते थे दिनमें पूजनीके चले जाने पर उस चटकशिशु (चिड़ियाके बच्चे) से राजपुत्रकी धाई राजपुत्र ब्रह्मदत्तको सदा खिलाया करती

नीड़ात्तमाकृष्य तदा पूजनीया कृताच्चतः । क्रीडता राजपुत्रेण कदाचिच्चटकः स तु ॥ ९७ ॥ निगृहीतः कन्धरायां शिशुना दृढमुष्टिना । दुर्भङ्गमुष्टिना राजन्नमून् सद्यस्त्वजीजहत् ॥ ९८ ॥ तं तु पञ्चत्वमापन्नं व्यात्तास्यं बालघातिनम् । कथंचिन्मोचितं दृष्ट्वा नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ९९ ॥ धात्रीं तस्य जगर्हे तां तदाश्रुपरमो नृपः । तस्थौ शोकान्वितो राजञ्शोचंस्तं चटकं तदा १०० पूजनीयापि तत्काले गृहीत्वा तु फलद्वयम् । ब्रह्मदत्तस्य भवनमाजगाम वनेचरी ॥ १०१ ॥ अथापश्यत्तमागम्य गृहे तस्मिन्नराधिप । पंचभूतपरित्यक्तं शावन्तं स्वतनूद्भवम् ॥ २ ॥ मुमोह दृष्ट्वा तं पुत्रं पुनः संज्ञामथालभत् । लब्धसंज्ञा च सा राजन् विललाप तपस्विनी ॥ ३ ॥ पूजनीयोवाच । न तु त्वमागतां पुत्र वाशंतीं

थी । ९५ । ९६ । एक समय उस राजपुत्रने खेलते २ पूजिनीके बनाये हुए घोंसलेमेंसे उस चिड़ियाके बच्चेको खेंच लिया९७फिर उस कठिनतासे खुलने वाली मुट्ठी वाले दृढमुष्टि राजकुमारने उसको मुट्ठीमें दबोच कर अपने गलेसे लगा लिया, तब दबाव के कारण उसने तत्काल ही अपने प्राणोंको त्याग दिया ९८ राजा ब्रह्मदत्तने उसको किसी प्रकार उससे छुड़ाया,परन्तु उसको मरा हुआ, और मुख फैलाकर पड़ा हुआ और अपने पुत्रके द्वारा मारा हुआ देख कर वह दुःखी हुआ ॥ ९९ ॥ तब उसने नेत्रोंमें आँसू भर कर उस धाईकी निन्दाकी, और हे राजन् ! वह राजा उस चिड़ियाके बच्चेका खड़ा २शोक करने लगा१०० उसी समय पूजिनी भी दो फलोंको लेकर वनमें उड़ती २ ब्रह्म-के भवनमें आपहुँची १०१ उसने तहाँ आकर अपने शरीरसे उत्पन्न हुए बच्चेको पञ्चभूतोंसे त्यागा हुआ शवरूप देखा१०२ उस पुत्रको देख कर वह मूर्छित होगई,कुछ समय पीछेवह होशमें होगई, तब भान होने पर वह तपस्विनी विलाप करने लगी१०३

परिप्लोशि । कुर्वंश्चाटुसहस्राणि अव्यक्तकलया गिरा ॥ ४ ॥
व्यादितास्यः क्षुधार्तश्च पीतेनास्येन पुत्रक । शोणेन तालुना पुत्र
कथमद्य न सर्पसि ॥५॥ पक्षाभ्यां त्वां परिष्वज्य ननु वाशामि
चाप्यहम् । चीचीति कूजीति वाशन्तं त्वामद्य न शृणोम्यहम् ६
मनोरथो यस्तु मम पश्येयं पुत्रकं कदा । व्यात्तास्यं वारि याचन्तं
स्फुरत्पक्षं ममाग्रतः ॥ ७ ॥ स मे मनोरथो भग्नस्त्वयि पञ्चत्व-
मागते । विलप्यैवं बहुविधं राजानमथ साऽब्रवीत् ॥ ८ ॥ ननु
मूर्धाभिषिक्तस्त्वं धर्मं वेत्सि सनातनम् । अथ कस्मान्मम सुतं
धात्र्या घातितवानसि ॥ ९ ॥ तव पुत्रेण चाकृष्य क्षत्रियाधम
शंस मे । न च नूनं श्रुता तेऽभूदियमाङ्गिरसी श्रुतिः ११० शरणा-

पूजिनीने कहा, कि-हे पुत्र ! मैं आकर कूँ कूँ शब्द कर रही हूँ तब भी अस्फुट (तोतली) होनेसे मनोहर लगने वाली वाणीसे बातें करता हुआ तू मेरे सामने क्यों नहीं आता है ॥ १०४ ॥ हे पुत्र ! भूँखसे पीड़ा पाकर अपने लाल तालुए वाले पीले मुखको खोलता हुआ आज मेरे पास क्यों नहीं आता है १०५ मैं तुझे पंखोंसे लपेट कर रो रही हूँ तब भी मैं तुझे ची ची कू ची शब्द करता हुआ नहीं सुनती हूँ ॥ १०६ ॥ मेरे मनमें यह बात थी कि-मैं अपने सामने अपने पुत्रको मुख फैला कर जल माँगता हुआ और परोंको फटफटाता हुआ कब देखूँगी१७ तेरे मरनेसे मेरा वह मनोरथ मनमें ही रह गया इस प्रकार वह बहुतसा विलाप करके राजासे कहने लगी ॥१०८॥ हे राजन् ! तू तो मूर्धाभिषिक्त (सम्राट) राजा है और सनातनधर्मको जानने वाला है, तब भी तूने मेरे पुत्रको धाईसे और अपने पुत्र से खिचवा कर क्यों मरवा डाला इस बातका तू उत्तर दे ? क्या तूने यह आंगिरसी श्रुति नहीं सुनी है ॥ १०९-११० ॥ कि "शरणमें आये हुएकी, भूँखसे बिलबिलाते हुएकी और जिसके

गतः क्षुधार्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः। चिरोषितश्च यश्चगृहे पालयः सर्वदा भवेत् ॥ ११ ॥ अपालयन्नरो याति कुम्भीपाकमसंशयम् । कथमस्य हविर्देवा गृह्णन्ति पितरः स्वधाम् ॥ १२ ॥ एवमुक्त्वा महाराज दशधर्मगता सती शोकार्ता तस्य बालस्य चक्षुषी निर्बिभेद सा ॥१३॥ कराभ्यां राजपुत्रस्य ततस्तच्चक्षुरस्फुरत् । कृत्वा चान्धं नृपसुतमुत्पपात ततोऽम्बरम् ॥ १४ ॥ अथ राजा सुतं दृष्ट्वा पूजनीयामुवाच ह । विशोका भव कल्याणि कृतं ते भीरु शोभनम् ॥ १५ ॥गतशोका निवर्तस्व अजर्यं सख्यमस्तु ते । पुरेव वस भद्रन्ते निवर्त्तस्व रमस्व च ॥१६॥ पुत्रपीडोद्भवश्चापि न कोपः परमस्त्वयि। ममास्ति सखि भद्रन्ते कर्तव्यं च कृतं त्वया

पीछे शत्रु लग रहे हों उसकी और जो अपने घरमें चिरकालसे रह रहा हो, उसकी रक्षा सदा करनी चाहिये ॥ ११ ॥ यदि मनुष्य इनका पालन नहीं करता है, तो वह अवश्य ही कुंभीपाक नरकमें पड़ता है,ऐसे पुरुषकी हविको देवता और स्वधाको पितर कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? ॥ १२ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार कह कर शोकसे कातर होनेके कारण दश धर्मोंको प्राप्त हुई उस चिड़ियाने अपने दोनों करोंसे उस बालक राजपुत्रके दोनों नेत्रोंको फोड़ डाला, तब उसके नेत्र फूट गए, इस प्रकार उस राजपुत्रको अन्धा बनाकर वह आकाशमेंको उड़गई १३-१४ तब राजाने पुत्रको देख कर पूजनीसे कहा, कि–हे कल्याणि ! अब तू शोकरहित होजा ! हे भीरु ! तूने अच्छा किया ॥ १५ ॥ अब तेरा शोक दूर होगया होगा,अब तेरी और मेरी अविनाशी मित्रता हो, हे भद्रे ! अब तू मेरे पुरमें पहिलेकी समान ही निवास कर और रमण कर ॥ १६ ॥ हे सखि ! पुत्रको पीड़ा देनेसे भी मैं तेरे ऊपर कुछ कुपित नहीं हुआ हूँ, (क्योंकि–तू मेरी सखी है) और तूने भी अपने कर्तव्यका ही पालन किया

पूजनी उवाच । आत्मौपम्येन जानामि पुत्रस्नेहं तवाप्यहम् । न चाहं वस्तुमिच्छामि तव पुत्रमचक्षुषम् । कृत्वा वै राजशार्दूल त्वद्गृहे कृतकिल्बिषा ॥ १८ ॥ गाथाश्चाप्युशनोगीता इमाः शृणु मयेरिताः । कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम् । कुपुत्रं च कुभार्यं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥ कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः । कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि ॥ २० ॥ कुसौहृदे क्व विश्वासः कुदेशे न तु जीव्यते । कुराजनि भयं नित्यं कुपुत्रे सर्वतोऽसुखम् ॥ २१ ॥ अपकारिणि विस्रम्भं यः करोति नराधिपः । अनाथो दुर्बलो यद्वन्न चिरं स तु जीवति ॥२२॥ न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते

है ॥१७॥ पूजिनीने कहा, कि-मैं अपनी ओर देखकर समझती है कि-तुझे भी ऐसा ही अपने पुत्रके ऊपर स्नेह होगा हे राजशार्दूल ! मैंने तेरे पुत्रको नेत्ररहित कर दिया है अत एव इस अपराधको करने पर मैं तेरे घरमें रहना नहीं चाहती ॥ १८ ॥ तू मुझसे शुक्राचार्यकी गाई हुई इन गाथाओं सुन कि-"खोटे मित्र खोटे देश खोटे राजा खोटे सुहृत् खोटे पुत्र तथा खोटी भार्याको दूरसे ही त्याग देय ॥ १९ ॥ कुमित्र-खोटे पुरुष-में सुहृदपना नहीं निभ सकता, कुभार्यासे रतिसुख नहीं मिल सकता कुपुत्रसे पिण्ड मिलना कठिन है और कुराजासे सत्य (न्याय) की क्या आशा ? ॥ २० ॥ कुसौहृदमें विश्वास कहाँसे आया और कुदेशमें आजीविका चलना कठिन है; खोटे राजासे सर्वदा भय बना रहता है और कुपुत्रसे सदा दुःख ही मिलता है २१ जो पुरुष जिसका अपराध किया हो यदि उस पुरुष पर विश्वास रखता है, वह अधम पुरुष अनाथ और दुर्बल मनुष्यकी समान चिरकाल तक जीवित नहीं रह सके । ॥ २२ ॥ अविश्वस्त पुरुष पर विश्वास न करे और विश्वासी पुरुष पर भी अधिक

नाति विश्वसेत् । विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति २३
राजसेविषु विश्वासं गर्भसंकरितेषु च । यः करोति नरो मूढो न
चिरं स तु जीवति॥२४॥ अभ्युन्नतिं प्राप्य नरः प्रावारः कीटको
यथा । स हि नश्यत्यसन्देहमाहैवमुशना नृप॥२५॥ अपि मार्दव-
भावेन गात्रं संलीय बुद्धिमान । अरिं नाशयते नित्यं यथा वल्ली
महाद्रुमम् ॥ २६ ॥ मृदुरार्द्रः कृशो भूत्वा शनैः संलीयते रिपुः ।
वल्मीक इव वृक्षस्य पश्चान्मूलानि कृन्तति २७ अद्रोहसमयं कृत्वा
मुनीनामग्रतो हरिः । जघान नमुचिं पश्चादपां फेनेन पार्थिव २८
सुप्तं मत्तं प्रमत्तं वा घातयन्ति रिपुं नराः । विषेण वन्हिना वापि
शस्त्रेणाप्यथ मायया ॥ २९ ॥ न च शेषं प्रकुर्वन्ति पुनर्वैरभया-

---

विश्वास न करे क्यों कि-विश्वास करने पर जो भय उत्पन्न होता है वह जड़को भी काट डालता है ॥२३॥ जो पुरुष राज-सेवकों और संकर जातियों पर विश्वास करता है, वह मूढ़ पुरुष चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकता ॥२४॥ हे राजन् ! (ऐसे पुरुषों पर विश्वास रखने वाला पुरुष) जैसे चींटी पर निकले पर उडनेके बाद जब नीचेको गिरती है तब जैसे उसको पक्षी खाजाते हैं, तैसे ही निःसन्देह मारा जाता है. यह बात शुक्राचार्यजीने कही है ॥२५॥ बुद्धिमान् पुरुष कोमलतासे अपने शरीरको बचाये रख कर महावृक्षका नाश करने वाली वल्ली (लता) की समान शत्रुओंका नाश कर डाले ॥ २६ ॥ जैसे वल्मीक शनैः २ चिकना गीला और कृश होकर वृक्षमें लगकर उसकी जड़को काट डालता है,इसी प्रकार शत्रु शत्रुके शरीरमें घुस जाय ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इन्द्रने मुनियोंके सामने द्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा करके भी जलके फेनोंसे नमुचिको मार डाला था ॥ २८ ॥ मनुष्य सोते हुए मत्त अथवा प्रमत्त शत्रुको विष देकर जलाकर अथवा शस्त्रसे या माया करके भी मार डालते हैं२९

न्नराः । घातयन्ति समूलं हि श्रुत्वेमामुपमां नृप ॥ १३० ॥ शत्रुशेषमृणाच्छेषं शेषमग्नेश्च भूमिप । पुनर्वर्धेत संभूय तस्माच्छेषं न शेषयत् ॥३१॥हसते जल्पते वैरी एकपात्रे भुनक्ति च । एकासनं चारोहति स्मरते तच्च किल्बिषम् ॥३२॥कृत्वा सम्बन्धकं चापि विश्वसेच्छत्रुणा न हि । पुलोमानं जघानाजौ जामाता सञ्छतक्रतुः ॥ ३३ ॥ निधाय मनसा वैरं प्रियं वक्तीह यो नरः॥ उपसर्पेन्न तं प्राज्ञः कुरंग इव लुब्धकम् ॥३४॥ न चासन्ने निवस्तव्यं सवरे वर्धिते रिपौ । पातयेत्तं समूलं हि नदीरय इव द्रुपम् ॥ ३५ ॥ अमित्रादुन्नतिं प्राप्य नोन्नतोऽस्मीति विश्वसेत् । तस्मात् प्राप्योन्नतिं नश्येत् प्राकार इव कीटकः ॥ ३६ ॥

मनुष्य फिर वैर होनेके भयसे शत्रुको बाकी नहीं रखते हैं, हे नृप ! वह तो इस उपमाको सुन कर शत्रुको जड़से ही नष्ट कर डालते हैं ॥ १३० ॥ यदि शत्रुको ऋणको अथवा अग्निको (थोड़ा) सा भी बाकी रहने दिया जाय तो वह फिर इकट्ठा होकर बढ़ने लगता है, अत एव इनको बाकी न रक्खे ॥१३१॥ शत्रु हँसने पर बोलने पर और एकपात्रमें खानेपर तथा एकसे आसन पर बैठने पर भी वैरका स्मरण करता ही रहता है१३२ शत्रुसे सम्बन्ध करके भी शत्रुके ऊपर विश्वास न करे, क्योंकि-इन्द्रने जामाता बनने पर भी पुलोमाको मार डाला था।१३३। जो पुरुष मनमें वैर रखता हुआ भी प्रिय बातें करता है, बुद्धिमान् पुरुष उसपर विश्वास न करे, क्योंकि-वह तो कुरंगके पास आने वाले बहेलियेकी समान है ॥ १३४ ॥ यदि वैर रखने वाला शत्रु बढ़ रहा हो तो उसके पास न बसे, क्योंकि-जैसे नदी का वेग वृक्षको गिरा देता है, तैसे ही वह उसको जड़से उखाड़ डालता है ॥ १३५ ॥ शत्रुके साथ उन्नति पाने पर मैं उन्नत होगया हूँ, ऐसा विश्वास न करे उससे उन्नति पाने पर मनुष्य

इत्येता ह्युशनोगीता गाथा धार्या विपश्चिता । कुर्वता चात्मरक्षां वै नरेण पृथिवीपते ॥ ३७ ॥ मया संक्लिष्टं तुभ्यं प्रयुक्तमतिदारुणम् । पुत्रमन्धं प्रकुर्वन्त्या तस्मान्नो विश्वसे त्वयि ॥ ३८ ॥ एवमुक्त्वा प्रदुद्राव तदाऽऽकाशे पतंगिनी । इत्येतत्ते मयाख्यातं पुरा वृत्तमिदं नृप ॥ ३९ ॥ ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र यद्वृत्तं पूजनीयया । श्राद्धं च पृच्छसे यन्मां युधिष्ठिर महामते ॥ ४० ॥ अतस्ते वर्तयिष्येहमितिहासं पुरातनम् । गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ॥ ४१ ॥ श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य नियतं सुकृतस्य च । तन्निबोध महाराज सप्तजातिषु भारत ४२ स गालवस्य चरितं कण्डरीकस्य चैव हि। ब्रह्मदत्ततृतीयानां योगिनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि चटकाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भ्रमर कीट (परदारचींटी) की समान नष्ट होजाता है ॥ ३६ ॥ हे पृथिवीपते ! विद्वान मनुष्य आत्मरक्षा करता हुआ शुक्राचार्य की गाई हुई इन गाथाओंका स्मरण रक्खे ॥ ३६ ॥ मैंने तेरे पुत्रको अन्धा बना कर तेरा अतिदारुण अपराध किया है, अत एव मैं तेरा विश्वास नहीं करूँगी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कहकर वह पक्षिणी आकाशमेंको उड गई, हे राजेन्द्र ! ब्रह्मदत्तका पूजिनीके साथ जो सम्वाद हुआ था, वह मैंने तुमसे कह दिया और अब हे महामते युधिष्ठिर ! तुम मुझसे जिस श्राद्ध विषय को बूझते हो ॥ ३९-१४० ॥ अतः मार्कण्डेयजीके बूझने पर श्राद्धके फलको और सातों जातियोंमें पुण्यके नियत फलको गालव और कण्डरीकके चरित्रको और ब्रह्मदत्त आदि तीसरे ब्रह्मचारी योगियोंके चरित्रको लक्ष्यमें रख कर सनत्कुमारजीने जो इतिहास कहा था उस इतिहासको मैं तुमसे कहता हूँ ४१-४२

बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच। श्राद्धे प्रतिष्ठितो लोकः श्राद्धे योगः प्रवर्तते। हन्त ते वर्तयिष्यामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम् ॥ १ ॥ ब्रह्मदत्तेन यत्प्राप्तं सप्तज्ञातिषु भारत। तत एव हि धर्मस्य बुद्धिर्निर्वर्तते शनैः ॥ २ ॥ पीडयाप्यथ धर्मस्य कृते श्राद्धे पुराऽनघ। यत्प्राप्तं ब्राह्मणैः पूर्वं तन्निबोध महामते ॥ ३ ॥ ततो हतानधर्मिष्ठान् कुरुक्षेत्रे पितृव्रतम्। सनत्कुमारनिर्दिष्टानपश्यं सप्त वै द्विजान् ४ दिव्येन चक्षुषा तेन यानुवाच पुरा विभुः। वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च। खसृमः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा ॥५॥ कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गार्ग्यस्य भारत। पितर्युपरते सर्वे व्रतवन्तस्तदाऽभवन् ॥६॥ विनियोगाद्‌ गुरोस्तस्य

मार्कण्डेयजीने कहा, कि—श्राद्धमें योग समाया हुआ है, और श्राद्धमें लोक प्रतिष्ठित रहता है, मैं तुमसे श्राद्धके उत्तम फलको कहता हूँ ॥१॥ हे भारत! ब्रह्मदत्तने (भरद्वाज कौशिक व्याध मृग चक्रवाक हंस और श्रोत्रिय इन) सातके यहाँ उत्पन्न होकर (श्राद्धका) जो फल पाया था, उसको सुनकर ज्ञान मिलता है॥ २ ॥ हे महामते! धर्मको पीड़ित करके भी ब्राह्मणोंने श्राद्धके प्रतापसे जो फल पाया था उसको तुम सुनो ॥३॥ इसके उपरान्त मैंने अधर्मका वर्ताव करने वाले अत एव मारे हुएसे और कुरुक्षेत्रमें पितृव्रतका पालन करने वाले सनत्कुमारजीके बताये हुए द्विजोंको मैंने देखा ॥ ४ ॥ विभु सनत्कुमारने पहिले जिनका वर्णन किया था उनको मैंने दिव्य नेत्रसे देखा, इनके नाम और कर्म एकसे थे (वे नाम इस प्रकार हैं) वाग्दुष्ट क्रोधन हिंस्र पिशुन कवि खसृम और पितृवर्ती ॥५॥ हे भारत! कौशिक (विश्वामित्र) के ये पुत्र थे और गालवके शिष्य थे, पिताके उपरत होने पर अर्थात् शाप देकर उदासीन होजाने पर उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण किया था ॥६॥ एक समय वे सब गुरुके आज्ञा

गां दोग्ध्रीं समकालयन् । समानवत्सां कपिलां सर्वे न्यायागतां तदा ॥ ७ ॥ तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत । क्रूरा बुद्धिः समभवत्तां गां वै हिंसितुं तदा ॥ ८ ॥ तान् कविः खसृमश्चैव याचेते नेति वै तदा । न चाशक्यंत ते ताभ्यां तदा वारयितुं द्विजाः ॥ ९ ॥ पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धान्हिको द्विजः । स सर्वानब्रवीद्भ्रातॄन् कोपाद्धर्मे समाहितः ॥ १० ॥ यद्यवश्यं प्रहन्तव्या पितॄनुद्दिश्य साध्विमाम् । प्रकुर्वीमहि गां सम्यक् सर्व एव समाहिताः ॥ ११ ॥ एवमेषापि गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः । पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मोऽस्मान् भविष्यति ॥ १२ ॥ तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां ततः । पितृभ्यः कल्पयित्वैनामुपायुञ्जन्त भारत ॥ १३ ॥ उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन् । शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सोऽयं गृह्यतामिति १४

देने पर (चोरोंसे छीनी हुए अतएव) न्यायसे प्राप्त हुई सवत्सा दुधेर कपिला गौको लारहे थे ॥ ७ ॥ हे भारत ! उन्हें मार्गमें क्षुधा लगी तब मोहमें पड़ जानेके कारण उनको गौको मार डालनेकी क्रूर बुद्धि उत्पन्न हुई ॥ ८ ॥ तब कवि और खसृमने ऐसा न करनेकी उनसे प्रार्थना की, परन्तु वे उन द्विजोंको न रोक सके ९ उनमें प्रतिदिन श्राद्ध करने वाला पितृवर्ती नामक द्विज धर्म में स्थिर हो कोपमें भर कर उनसे कहने लगा, कि—॥ १० ॥ यदि इसको मारना आवश्यक ही हो तो हम सबोंको चित्तको सावधान कर इसको पितरोंके निमित्त मारडालना चाहिये ॥ ११ ऐसा करनेसे इस गौको भी अवश्य ही धर्म होगा और पितरोंका पूजन करनेके अनन्तर हमको भी अधर्म नहीं होगा ॥ १२ ॥ हे भारत ! तब उन सबोंने तथास्तु कह कर गौका प्रोक्षण किया और उसको पितरोंके निमित्त कल्पना करके खागए १३ उन सबोंने गौका भक्षण करनेके बाद गुरुसे निवेदन किया, कि-

आर्जवात् स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः । मिथ्योपचर्यते तं तु गुरुमन्यायतो द्विजाः । कालेन समयुज्यन्त सर्व एवायुषः क्षये १५ ते वै क्रूरतया हिंस्रा अनार्यत्वाद्गुरौ तथा । उग्रा हिंसाविहाराश्च सप्ताजायन्त सोदराः ॥ १६ ॥ लुब्धकस्यात्मजास्तात बलवन्तो मनस्विनः । पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण प्रोक्षयित्वा च गां तदा ॥१७॥ स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत् । जाता व्याधा दशार्णेषु सप्तधर्मविलक्षणाः ॥ १८ ॥ स्वकर्मनिरताः सर्वे लोभानृतविवर्जिताः । तावन्मात्रं प्रकुर्वन्ति यावता प्राणधारणम् ॥ १९ ॥ शेषं ध्यानपराः कालमनुध्यायन्ति कर्म तत् । नामधेयानि चाप्येषामिमान्यासन्नराधिप ॥ २० ॥ निर्वैरो निर्वृतिः शान्तो निर्मन्युः

"गौको तो सिंहने मारडाला उसके बछड़ेको आप ग्रहण कर लीजिये ॥१४॥ तब उन ब्राह्मणने कोमल स्वभाव होनेके कारण उस बछड़ेको ग्रहणकर लिया इसप्रकार उन विप्रोंने अन्याय कर अपने गुरुको ठगा था फिर आयु पूर्ण होने पर वे सब मर गए ॥ १५ ॥ वे हिंसक क्रूर होनेसे और गुरुसे अनार्यताका व्यवहार करनेसे उग्र और हिंसाविहारी सात भाई बन कर उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ हे तात ! उस समय वह बलवान् मनस्वी बहेलियेके पुत्र बन कर उत्पन्न हुए थे, उन्होंने धर्मतः पितरोंका पूजन कर गौका प्रोक्षण किया था ॥ १७ ॥ इससे दूसरे जन्म में भी उनको अपने पूर्वजन्म और पूर्वजन्मके किये हुए कर्मका स्मरण बना रहा वे दशार्ण देशमें व्याध बनकर उत्पन्नहुए और सातों ही धर्ममें चतुर हुए१८वे सब अपने कर्ममें तत्पर रहतेथे और सब लोभ और असत्यसे दूर रहते थे और वे उतना ही भोजन करते थे, जितनेसे कि-प्राण टिके रहें ॥ १९ ॥ उनके पास जो समय बचता था,उसमें वह अपने (पूर्व जन्मके) कर्मका चिन्तवन करते रहते थे, हे नराधिप ! उस जन्ममें इनके ये नाम थे ॥२०॥

कृतिरेव च । वैध्यसोमा नृवर्ती च व्याधाः परमधार्मिकाः ॥२१॥
तैरेव मुषितैस्तात हिंसाधर्मरतैः सदा । माता च पूजिता वृद्धा
पिता च परितोषितः ॥ २२ ॥ यदा माता पिता चैव संयुक्तौ
कालधर्मणा । तदा तनूंषि ते त्यक्त्वा वने प्राणानवासृजन् २३
शुभेन कर्मणा तेन जाता जातिस्मरा मृगाः । त्रासानुत्पाद्य
संविग्ना रम्ये कालञ्जरे गिरौ ॥ २४ ॥ उन्मुखो नित्यवित्रस्तः
स्तब्धकर्णो विलोचनः । पण्डितो घस्मरो नादी नामतस्तेऽभवन्

निर्वैर निवृत्ति शान्त निर्मन्यु कृति वैध्यसोमा नृवर्ती ये परमधार्मिक व्याध थे ॥२१॥ वे यद्यपि चोर थे और सर्वदा हिंसा धर्ममें ही परायण रहते थे तब भी वे अपनी वृद्धा माताका सत्कार करते थे और अपने पिताको सन्तुष्ट रखते थे ॥२२॥ जब उनके माता और पिता मर गये तब उन्होंने अपने धनुषोंको त्याग कर वनमें (अनशन आदिके द्वारा) अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ २३ ॥ वे (माता पिताकी सेवारूप) शुभ कर्म के कारण जातिस्मर (पूर्वजन्मका स्मरण रखने वाले) मृग होकर उत्पन्न हुए (और हिंसाके द्वारा) त्रास देनेसे मनोहर कालञ्जर गिरिमें सदा घबड़ाते रहते थे ॥ २४ ॥ उन्मुख नित्यवित्रस्त स्तब्धकर्ण विलोचन पण्डित घस्मर और नादी नाम वाले मृग हुए (उनमें जो वाग्दुष्ट था वह सदा दूसरों की निन्दा करनेके लिये उन्मुख रहनेसे (ऊर्ध्वमुख) उन्मुख हुआ अर्थात् वह कठिनतासे आहार कर सकता था, और क्रोधन सर्वदा दूसरोंको उद्विग्न करता रहता था अत एव वह अपने आप भी सर्वदा संत्रस्त रहने वाला नित्यसंत्रस्त नामक हुआ, और पिशुन–स्तब्धकर्ण बहिरा हुआ, हिंस्र विलोचन अर्थात् अन्धा हुआ, कवि पण्डित हुआ, और खसृम (आकाशचारी-परलोकविचारी) घसृम अर्थात् यथेष्ट आहार करने वाला

मृगाः ॥२५॥ तमेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणसम्भवम् । आसन् वनचराः क्षान्ता निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २६ ॥ ते सर्वे शुभकर्माणः सधर्माणो वनेचराः । योगधर्ममनुप्राप्ता विहरन्ति स्म तत्र ह ॥२७॥ जहुः प्राणान् मरुं साध्य लघ्वाहारास्तपस्विनः । तेषां मरुं साधयतां पदस्थानानि भारत । तथैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालञ्जरे नृप ॥ २८ ॥ कर्मणा तेन ते तात शुभेनाशुभवर्जिताः । शुभाच्छुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः ॥ २९ ॥ शुभे देशे शरद्वीपे सप्तैवासन् जलौकसः । त्यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो ब्रह्मचारिणः ॥ ३० ॥ निःस्पृहो निर्ममः क्षान्तो निर्द्वन्द्वो

हुआ और पितृवर्ती श्राद्धकर्ता होनेसे नादी अर्थात् नादसुखका भोक्ता हुआ, वह मृगोंका अति प्यारा था, यह उनकी नामानुसार संज्ञा कह दी) ॥ २५ ॥ (उस जन्ममें भी) वे उसही (योगभ्रष्टाचरण और गुरुको धोखा देनेके फल रूप) प्रयोजनको विचारते रहते थे, क्योंकि—उनको पूर्वजन्मकी जातिका स्मरण था, उस जन्ममें वे सुख दुःख शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित और परिग्रहरहित होकर वनमें घूमते थे ॥२६॥ वे सब अहिंसा आदि शुभ धर्मोंका एकसी रीतिसे पालन करते थे और योगधर्मका आश्रय कर वनमें इधर उधर घूमते फिरते थे ॥ २७ ॥ उन तपस्वियोंने लघु (हलका) भोजन करके मरु (निर्जल—जल न पीने) का साधन करके अपने प्राणोंको छोड़ दिया, हे राजन् ! जल न पीनेकी साधना करनेके समयके उनके पैरोंके चिन्ह कालञ्जर गिरिमें अब भी दिखाई देते हैं ॥ २८ ॥ हे तात ! इस शुभ कर्मके कारण वे अशुभसे छूट कर अतिशुभ चक्रवाककी योनिमें उत्पन्न हुए ॥ २९ ॥ वे सातों शुभ जलचरपक्षी होकर उत्पन्न हुए थे और वे सहचरीधर्म अर्थात् मैथुनधर्मको त्याग कर ब्रह्मचारी मुनि बन कर रहने लगे ॥ ३० ॥

निष्परिग्रहः । निर्वृतिर्निभृतश्चैव शकुना नामतः स्मृताः ॥३१॥ ते तत्र पक्षिणः सर्वे शकुना धर्मचारिणः । निराशरा जहुः प्राणांस्तपोयुक्ताः सरित्तटे ॥ ३२ ॥ अथ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः । जातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव ब्रह्मचारिणः ३३ विप्रयोनौ यतो मोहान्मिथ्योपचरितो गुरुः । तिर्यग्योनौ ततो जाताः संसारे परिबभ्रमुः ॥ ३४ ॥ यतश्च पितृवाक्यार्थः कृतः स्वार्थे व्यवस्थितैः । ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम् ॥ ३५ ॥ सुमनाः शुचिवाक् शुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शनः।सुनेत्रश्च स्वतन्त्रश्च शकुना नामतः स्मृताः ॥३६॥ पंचमः पांचिकस्तत्र सप्तजातिष्वजायत । षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद् ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः ॥ ३७ ॥ तेषां तु तपसा तेन सप्तजातिकृतेन

(उस जन्ममें) वे निस्पृह निर्मम क्षान्त निर्द्वन्द निष्परिग्रह निर्वृति और निभृत नामक पक्षी हुए ॥ ३१ ॥ उन सब पक्षियों ने धर्मात्मा रह कर नदीके किनारे निराहार रह तप करते २ अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त वह मान-सरोवर पर घूमनें वाले हंस बन कर उत्पन्न हुए, उस जन्ममें भी उनको जातिका स्मरण रहता था (इस लिये) वह सातों ब्रह्मचारी रहते थे ॥ ३३ ॥ उन्होंने ब्राह्मणयोनिमें अपने गुरुसे मिथ्या भाषण किया था अत एव वे तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होकर संसारमें चक्कराने लगे ॥३४॥ और उन्होंने स्वार्थमें तत्पर रहने पर भी पितरोंके निमित्त वाक्य बोला था इसलिये उनको गुणो-त्तर ज्ञान और जन्म मिलता चला गया ॥ ३५ ॥ उस समय वे सुमना शुचिवाक शुद्ध पञ्चम छिद्रदर्शन सुनेत्र और स्वतन्त्र नाम वाले पक्षी कहलाते थे ॥ ३६ ॥ इनमें (जो वाग्दुष्ट आदिमें) पाँचवा था वह सातों जन्मोंमें पाँचवाँ ही हुआ था और (सप्तम मनुष्य जन्ममें) पाञ्चिक (नामक राजमन्त्री) होगा छठा

वै । योगस्य चापि निर्वृत्त्या प्रतिभानाच्च शोभनात् ॥ ३८ ॥ पूर्वजातिषु यद्ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै । तथैवावस्थिता बुद्धिः संसारेष्वपि वर्ततााम् ॥ ३९ ॥ ते ब्रह्मचारिणः सर्वे विहंगा ब्रह्मवादिनः । योगधर्ममनुध्यान्तो विहरंति स्म तत्र ह ॥४०॥ तेषां तत्र विहंगानां चरतां सह चारिणाम् । नीपानामीश्वरो राजा विभ्राजः पौरवान्वयः ॥ ४१ ॥ विभ्राजमानो वपुषा प्रभावेन समन्वितः । श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्प्रविवेश ह ॥ ४२ ॥ स्वतन्त्रश्च विहंगोऽसौ स्पृहयामास तं नृपम् । दृष्ट्वा यान्तं श्रियोपेतं भवेयमहमीदृशः ॥ ४३ ॥ यद्यस्ति सुकृतं किंचित्तपो वा नियमोपि वा । खिन्नोस्मि ह्युपवासेन तपसा निष्फलेन च ।४४।

(खसृम) कण्डरीक होगा और सातवाँ (पितृवर्ती) ब्रह्मदत्त होगा ॥ ३७ ॥ उनके सातों जन्मोंमें किये हुए तपके कारण और योगके पूर्ण होनेके कारण और पूर्वजन्मके कर्मका स्मरण रहनेसे ॥ ३८ ॥ उन्होंने पूर्वजन्ममें गुरुओंके कुलोंमें निवास करके वेदका अध्ययन किया था अत एव संसारमें भ्रमण करने पर भी उनकी बुद्धि वैसी ही रही; बदली नहीं ३९ वे सब पक्षी होने पर भी ब्रह्मचारी और ब्रह्मवादी और योगधर्मका पालन करने वाले बने रहे ॥ ४० ॥ जब वे सब पक्षी वनमें एक साथ विचरते थे उस समय नीपोंका स्वामी पौरववंशी विभ्राज अपने शरीरसे दमदमाता हुआ और अपना प्रभाव दिखाता हुआ अपने अन्तःपुरको लेकर उस वनमें आया तब स्वतन्त्र नाम वाले पक्षीने उस लक्ष्मीवान् राजाको देख कर उस राजाकी स्पृहाकी और विचारने लगा, कि-यदि मेरा कुछ तप वा नियम हो तो मैं इस राजाकी समान होजाऊँ अब तो मैं उपवास और निष्फल तप करते २ खिन्न होगया हूँ।४३।४४।

इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त२१ छ छ छ छ

मार्कण्डेय उवाच । ततस्तं चक्रवाकौ द्वावूचतुः सहचारिणौ । आवां ते सचिवौ स्यावस्तव प्रियहितैषिणौ ॥ १ ॥ तथेत्युक्त्वा च तस्यासीत्तदा योगात्मिका मतिः । एवं ते समयं चक्रुः शुचिवाक्तमुवाच ह ॥ २ यस्मात्कामप्रधानस्त्वं योगधर्ममपास्य वै । एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद्वाक्यं निबोध मे ॥ ३ ॥ राजा त्वं भविता तात कांपिल्ये नात्र संशयः । भविष्यतः सखायौ च द्वाविमौ सचिवौ तव ॥ ४ ॥ शप्त्वा चाऽनभिभाष्यांस्तांश्चत्वारश्चक्रुरण्डजाः । तांस्त्रीनभीप्सतो राज्यं व्यभिचारप्रधर्षितान् ॥ ५ ॥ शप्ताः खगास्त्रयस्ते तु योगभ्रष्टा विचेतसः । तानयाचन्त चतुरस्त्रयस्ते सहचारिणः ॥ ६ ॥ तेषां प्रसादं ते चक्रुस्तथैतान् सुमनाऽब्रवीत् । सर्वेषामेव वचनात् प्रसादानुगतं वचः ॥ ७ ॥ अन्तवान् भविता शापो युष्माकं नात्र संशयः । इतश्च्युताश्च मानुष्यं

मार्कण्डेयजीने कहा, कि—उस समय उसके सहचारी दो चक्रवाकोंने उससे कहा, कि हम आपका प्रिय चाहने वाले आपके मन्त्री बनेंगे । १ । तब तथास्तु कहनेके अनन्तर उसकी योगमय बुद्धि होगई, इस प्रकार उन्होंने प्रतिज्ञाकी तब शुचिवाक्‌ने उससे कहा, कि—।२। तू योगधर्मको दूर कर कामप्रधान धर्मको पाना चाह कर ऐसा वर माँग रहा है अत एव तू मेरे वचनको सुन ३ तू निःसन्देह काम्पिल्यमें राजा होगा और ये तेरे दोनों मित्र तेरे मन्त्री होंगे ४ उन चार अण्डजोंने राज्यकी इच्छा करने वाले अत एव व्यभिचारी उन तीन पक्षियोंको शाप देकर उनसे बोलना छोड़दिया ५ जब तीन पक्षी शाप पा कर योगभ्रष्ट हो अचेतनसे होगए तब उन्होंने अपने चार सहचारी हंसोंसे प्रार्थना की ॥ ६ ॥ तब उन्होंने उनके ऊपर कृपाकी और सुमनाने सब की सम्मतिसे प्रसाद भरा वचन कहा, कि—।७। तुम्हारा शाप नाशवान् होगा, इसमें तुम कुछ सन्देह न रक्खो, तुम यहाँसे

प्राप्य योगमवाप्स्यथ ॥ ८ ॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च स्वतन्त्रोऽयं भविष्यति । पितृप्रसादो ह्यस्माभिरस्य प्राप्तः कृतेन गौ ॥ ९ ॥ गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्य उपकल्प्यताम् । अस्माकं ज्ञानसंयोगः सर्वेषां योगसाधनः ॥ १० ॥ इमं च वाक्यसंदर्भं श्लोकमेकमुदाहृतम् । पुरुषांतरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
पितृवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच । ते योगधर्मनिरताः सप्त मानसचारिणः । पद्मगर्भोऽरविंदाक्षः क्षीरगर्भः सुलोचनः ॥ १ ॥ उरुबिन्दुः सुबिदुश्च हैमगर्भस्तु सप्तमः । वाय्वंबुभक्षाः सततं शरीराण्युपशोषयन् ॥ २ ॥ राजा विभ्राजमानस्तु वपुषा तद्वनं तदा । चचारांतः-

भ्रष्ट होकर मनुष्यजातिमें उत्पन्न होकर योगज्ञानको पाओगे और यह स्वतन्त्र सब प्राणियोंके स्वरोंको जानने वाला होगा; क्योंकि-इसके उपदेशसे ही हमने पितरोंकी प्रसन्नता पाई है।८।९। (उस उपदेशका वर्णन करते हैं) कि-'धर्मपूर्वक पितरोंके निमित्त गौका प्रोक्षण करके पितरोंके अर्पण करदो' (इसीसे हमारा) ज्ञानसे संयोग होता चला आरहा है और वह सबके योगमें सहायता देरहा है ॥ १० ॥ तुमको दूसरे मनुष्यसे इस (सप्तव्याधा दशार्णेषु आदि वक्ष्यमाण वाक्यमय) श्लोकको सुन कर योग प्राप्त होजावेगा ॥ ११ ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त२२

मार्कंडेयजीने कहा कि-उन योगधर्ममें निरत रहनेवाले मानस सरोवर पर विचरण करने वाले पद्मगर्भ अरविन्दाक्ष क्षीरगर्भ सुलोचन उरुबिन्दु सुबिंदु और सातवें हैमगर्भ हंसने वायु और जलका ही भक्षण करके अपने शरीरोंको सुखा डाला१।२उस समय वह राजा अपने शरीरसे इन्द्रकी समान प्रकाश फैलाता हुआ अपनी स्त्रियोंको साथमें ले उसवनमें नंदनव-इन्द्रकी समान

पुरस्कृतो नन्दनं मघवानिव ॥ ३ ॥ स तानपश्यत् खचरान् योगधर्मात्मकान्नृप । निर्वेदाच्च तमेवार्थमनुध्यायन् पुरं ययौ ॥४॥ अणुहो नाम तस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः । अणुधर्मरतिर्नित्यमणुं सोऽध्यगमत् पदम् ॥५॥ प्रादात् कन्यां शुकस्तस्मै कृत्वीं पूजितलक्षणाम् । सत्त्वशीलगुणोपेतां योगधर्मरतां सदा ॥ ६ ॥ सा ह्युद्दिष्टा पुरा भीष्म पितृकन्या मनीषिणी । सनत्कुमारेण तदा सन्निधौ मम शोभना ॥ ७ ॥ सत्यधर्मभृतां श्रेष्ठा दुर्विज्ञेया कृतात्मभिः । योगा च योगपत्नी च योगमाता तथैव च ॥८॥ यथा ते कथितं पूर्वं पितृकल्पेषु वै मया । विभ्राजस्त्वणुहं राज्ये स्थाप-

---

फिरने लगा॥३॥हे नृप ! उस राजाने उन पक्षियोंको (एकाग्रता आदि बाह्य लक्षणोंसे) योगधर्ममें परायण समझा, तब वह(पक्षी भी योग साधन करते हैं. हाय ! मैं मनुष्य होकर भी योगको न साध सका) इसप्रकार खिन्न होकर इसी बातको सोचता हुआ अपने नगरको चला गया ॥ ४ ॥ उसका अणुह नामक [सूक्ष्म अर्थोंको पानेवाला] परम धार्मिक पुत्र हुआ, वह अणु [सूक्ष्म] धर्मसे सर्वदा प्रेम करता था, उसने अणु [सूक्ष्म] पद पाया था ॥ ५ ॥ उसको शुकने पूजनीय चिन्होंवाली सत्त्व और शीलरूप गुणोंसे सम्पन्न और सदा योगधर्मका पालन करनेवाली अपनी कन्या कृत्वी देदी ॥ ६ ॥ हे भीष्म ! पहिले सनत्कुमारने मुझसे इसको शोभना मनीषिणी पितृकन्या [पीवरी] बताया था ॥ ७ ॥ वह सत्यधर्मका पालन करने वालोंमें श्रेष्ठ थी और अकृतात्मा पुरुष उसको कठिनतासे जान सकते थे, वह स्वयं योगधर्मका पालन करती थी और योगीकी पत्नी और योगीकी माता भी थी यह बात मैंने पितृकल्पका वर्णन करते समय भी कही थी [कुछ समयके अनन्तर] नरेश्वर विभ्राज अणुह को राज्य पर स्थापित करके नागरिकोंको बुलाकर और ब्राह्मणों

यित्वा नरेश्वरः ॥ ९ ॥ आमन्त्र्य पौरान् प्रीतात्मा ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च । प्रायात्सरस्तपश्चर्तुं यत्र ते सहचारिणः ॥१०॥ स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः । त्यक्त्वा कामांस्तपस्तेपे सरसस्तस्य पार्श्वतः ॥ ११ ॥ तस्य संकल्प आसीच्च तेषा-मेकतरस्य वै । पुत्रत्वं प्राप्य योगेन युज्येयमिति भारत ॥१२॥ कृत्वाऽभिसन्धिं तपसा महता स समन्वितः । महातपाः स विभ्राजो विरराजोंशुमानिव ॥१३॥ ततो विभ्राजितं तेन वैभ्राजं नाम तद्वनम् । सरस्तच्च कुरुश्रेष्ठ वैभ्राजमिति संज्ञितम् ॥ १४ ॥ यत्र ते शकुना राजंश्चत्वारो योगधर्मिणः । योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहन्यासकृतोऽभवन् ॥ १५ ॥ कांपिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरो-गमाः । जाताः सप्त महात्मानः सर्वे विगतकल्मषाः ॥ १६ ॥

से स्वस्तिवाचन कराकर जहाँ वे सहचारी हंस रहते थे उस सरोवर पर तप करनेको चलागया ॥ ९ ॥ वह महातपस्वी उस सरोवरके तट पर पहुँच कर सब कामनाओंको त्यागकर निराहार रह वायुभक्षण कर तप करनेलगा॥११॥हे भारत ! उसने यह संकल्प किया, कि मैं इन (योगी हंसोंमेंसे) किसी एकका पुत्र बनकर उत्पन्न होऊँ,तो मैं भी योगधर्मका पालन कर सकूँगा अर्थात् योगीका पुत्र होने पर मैं भी योगी ही होजाऊँगा ॥१२॥ इस प्रकार विचार करके वह महातपस्वी विभ्राज बड़ा भारी तप करके सूर्यकी समान दिपने लगा ॥ १३ ॥ उसने (अपने तपसे) उस वनको विभ्राजित कर (दमका) दिया, इससे वह वन वैभ्राज नामसे प्रसिद्ध होगया और हे कुरुश्रेष्ठ ! वह सरोवर भी वैभ्राज नामसे प्रसिद्ध होगया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! उस सरोवर पर उन योगभ्रष्ट योगधर्मी तीन और चार पक्षियोंने अपने शरीरको त्याग दिया था ॥ १५ ॥ वे पापरहित सातों महात्मा काम्पिल्यनगरमें ब्रह्मदत्त आदि (नामसे) उत्पन्न हुए ॥१६॥ ये

ज्ञानध्यानतपःपूजावेदवेदांगपारगाः । स्मृतिमन्तोत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः ॥१७॥ स्वतन्त्रस्त्वणुहाज्जज्ञे ब्रह्मदत्तो महायशाः । यथा ह्यासीत् पक्षिभावे संकल्पः पूर्वचिन्तितः ॥ १८ ॥ छिद्रदर्शी सुनेत्रश्च तथा बाभ्रव्यवत्सयोः ।जातौ श्रोत्रियदायादौ वेदवेदांगपारगौ ॥१९॥सहायौ ब्रह्मदत्तस्य पूर्वजातिसहोषितौ । पांचालः पांचिकश्चैव कण्डरीकस्तथापरः ॥ २० ॥ पांचालो बह्वृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह । द्विवेदः कण्डरीकस्तु छन्दोगोऽध्वर्युरेव च ॥ २१ ॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञस्तु राजाऽऽसीदणुहात्मजः । पांचालकण्डरीकाभ्यां तस्य सख्यमभूत्तदा ॥ २२ ॥ ते ग्राम्यधर्माभिरताः कामस्य वशवर्तिनः । पूर्वजातिकृतेनासन् धर्मकामार्थको-

ज्ञान ध्यान तप पूजामें परायण और वेद वेदांगके पारगामी थे इनमें चार स्मृतिमान् अर्थात् इनको अपने पूर्वजन्मका स्मरण था और तीन मोहित थे ॥ १७ ॥ स्वतन्त्रने अपने पक्षिशरीरमें जिस प्रकार विचार किया था, उसी प्रकार वह अणुहके महायशस्वी ब्रह्मदत्त नामक पुत्र बन कर उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ छिद्रदर्शन और सुनेत्र बाभ्रव्य और वत्स नामक राजाके श्रोत्रिय मंत्रियोंके कुलमें वेद वेदांगके पारगामी श्रोत्रिय पुत्र बन कर उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ वे पहिले जन्ममें एक साथ रहनेके कारण ब्रह्मदत्तके सहायक बन कर उत्पन्न हुए इनमें (सब जन्मोंमें) पाँचवाँ (कवि) पाञ्चाल नामसे और (छठा खसृम) कण्डरीक नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २० ॥ इनमें पाञ्चाल ऋग्वेदी हुआ और वह आचार्यपना (पुरोहिताई) करने लगा और कण्डरीक छन्दोंको गानेवाला द्विवेद अध्वर्यु हुआ अर्थात् ऋग्वेद और यजुर्वेदको जानने वाला हुआ ॥२१॥ और अणुहका पुत्र राजा (ब्रह्मदत्त) सब प्राणियोंकी भाषाको जानता था उसकी पाञ्चाल और कण्डरीकसे मित्रता होगई ॥ २२ ॥ ये

विदाः ॥ २३ ॥ अणुहस्तु नृपश्रेष्ठो ब्रह्मदत्तमकल्मषम् । राज्येऽभिषिच्य योगात्मा परां गतिमवाप्तवान् ॥ २४ ॥ ब्रह्मदत्तस्य भार्या तु देवलस्यात्मजाऽभवत् । असितस्य हि दुर्धर्षा सन्नतिर्नाम नामतः ॥२५॥ तामेकभावसंपन्नां लेभे कन्यामनुत्तमाम् । सन्नतिं सन्नतिमतीं देवलाद्योगधर्मिणीम् ॥२६॥ पञ्चमः पांचिकस्तत्र सप्तजातिषु भारत । षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद् ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः ॥ २७ ॥ शेषा विहंगमा ये नौ काम्पिल्ये सहचारिणः । ते जाताः श्रोत्रियकुले सुदरिद्रे सहोदराः ॥२८॥ धृतिमान् सुमना विद्वांस्तत्त्वदर्शी च नामतः । वेदाध्ययनसम्पन्नाश्चत्वारश्छिद्रदर्शिनः ॥ २९ ॥ तेषां संवित्तथोत्पन्ना पूर्वजातिकृता तदा । ते

(तीनों) ग्राम्यधर्ममें मग्न रहते थे और काम (इच्छा) के वशमें चलते थे, परन्तु पूर्वजन्ममें किये हुए (श्राद्धरूप धर्मके फलसे) ये धर्म अर्थ और काममें चतुर हुए ॥ २३ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ योगात्मा अणुह निष्पाप ब्रह्मदत्तका राज्यमें अभिषेक कर परम गतिको प्राप्त होगया ॥ २४ ॥ ब्रह्मदत्तकी स्त्री असित देवलकी पुत्री थी वह सन्नति नामसे प्रसिद्ध थी ॥ २५ ॥ उस एकभाव (ब्रह्मभाव) से सम्पन्न नम्रतामयी योगधर्मिणी सन्नति नामक कन्याको ब्रह्मदत्तने देवल ऋषिसे पाया था ॥ २६ ॥ हे भारत! सब जातियोंमें पाँचवाँ उत्पन्न होने वाला उस जन्ममें पाञ्चिक हुआ, छठा कण्डरीक हुआ और सातवाँ ब्रह्मदत्त हुआ २७ बाकी सहचारी पक्षी काम्पिल्य नगरमें दरिद्र श्रोत्रियके कुलमें सगे भाई बन कर उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ वे चारों धृतिमान् सुमना विद्वान् और तत्त्वदर्शी नामसे प्रसिद्ध थे और वेदका अध्ययन करनेमें लगे रहते थे और छिद्रदर्शी थे अर्थात् महापथमें जानेके लिये अवकाशको देखते रहते थे ॥ २९ ॥ उनको पूर्वजन्मका ज्ञान इस जन्ममें भी हुआ, अत एव वे योगधर्ममें निरत

योगनिरताः सिद्धाः प्रस्थिताः सर्व एव हि ॥ ३० ॥ आमन्त्र्य पितरं तात पिता तानब्रवीत्तदा । अधर्म एष युष्माकं यन्मां त्यक्त्वा गमिष्यथ ॥ ३१ ॥ दारिद्र्यमनपाकृत्य पुत्रार्थांश्चैव पुष्कलान् । शुश्रूषामप्रयुज्यैव कथं वो गन्तुमर्हथ ॥ ३२ ॥ ते तमूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च । करिष्यामो विधानन्ते येन त्वं वर्तयिष्यसि ॥ ३३ ॥ इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सहमन्त्रिणम् । श्रावयेथाः समागम्य ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ ३४ ॥ प्रीतात्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान् । यथेप्सितांश्च सर्वार्थान् गच्छ तात यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥ एतावदुक्त्वा ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम् । योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृतिमाययुः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

रहने वाले सब पुत्र पितासे कह कर प्रस्थान करने लगे, तब पिताने उससे कहा, कि-यह तुम्हारा अधर्म है, कि तुम हमको छोड़ कर भाग रहे हो ३०-३१ तुमको अभी हमारे दारिद्र्यको दूर किये विना और पुत्रके और भी अनेक प्रयोजनोंको पूर्ण किये विना तथा हमारी सेवा किये विना जाना उचित नहीं है ॥ ३२ ॥ तब उन सब द्विजोंने अपने पितासे कहा, कि-हम ऐसा उपाय बतावेंगे जिसे आप काममें लावेंगे (तो आपके सब काम पूर्ण होजावेंगे) ॥ ३३ ॥ तुम इस महत्त्व भरे श्लोकको निष्पाप राजा ब्रह्मदत्तको और उसके मन्त्रियोंको सुनाना ३४ हे तात ! तो वह प्रसन्न होकर तुमको बहुतसे ग्राम भोग और तुम्हारी इच्छानुसार धन देगा, हे तात ! अब तुम इच्छानुसार जाओ ॥ ३५ ॥ वे इस प्रकार कह कर और उन गुरु (पिता) की पूजा करके योगधर्मका सेवन करते २ मुक्त होगए ॥ ३६ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच । ब्रह्मदत्तस्य तनयः स वैभ्राजस्त्वजायत। योगात्मा तपसा युक्तो विष्वक्सेन इति श्रुतः ॥ १ ॥ कदाचिद् ब्रह्मदत्तस्तु भार्यया सहितो वने। विजहार प्रहृष्टात्मा यथा शच्या शचीपतिः ॥ २ ॥ ततः पिपीलिकरुतं स शुश्राव नराधिपः। कामिनीं कामिनस्तस्य याचतः क्रोशतो भृशम् ॥ ३ ॥ श्रुत्वा तु याच्यमानां तां क्रुद्धां सूक्ष्मां पिपीलिकाम्। ब्रह्मदत्तो महाहासमकस्मादेव चाहसत् ॥ ४ ॥ ततः सा सन्नतिर्दीना व्रीडितेवाभवत्तदा। निराहारा बहुतिथं बभूव वरवर्णिनी ॥ ५ ॥ प्रसाद्यमाना भर्त्रा सा तमुवाच शुचिस्मिता। त्वया च हसिता राजन्नाहं जीवितुमुत्सहे ६ स तत्कारणमाचख्यौ न च सा श्रद्दधाति

मार्कण्डेयजीने कहा, कि-वह विभ्राज ब्रह्मदत्तका पुत्र बन कर उत्पन्न हुआ, वह तपस्वी योगात्मा (उस जन्ममें) विश्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥ एक समय शचीपति इन्द्रके इन्द्राणी शचीके साथ रमण करनेकी समान ब्रह्मदत्त अपनी भार्याको साथमें लेकर प्रसन्न मनसे उस वनमें रमण करने लगा॥२॥उस समय उसने कामवश होकर अपनी चीटीसे प्रार्थना करने एक चीटेके बड़े दीनता भरे स्वरको सुना ॥ ३ ॥ जब उसने सूक्ष्म चीटीको याचना करने पर क्रोध करती हुई देखा, तब ब्रह्मदत्त एक साथ बड़े जोरसे हँस पड़ा ॥ ४ ॥ उस समय सन्नति लज्जित सी होगई और उस वरवर्णिनीने दीन बन कर बहुत दिन तक भोजन करना छोड़ दिया ॥ ५ ॥ जब उसके स्वामीने उसको मनाया तब उस पवित्र हास्य वाली ने उससे कहा, कि-हे राजन्! आपने मेरी हँसीकी है, अत एव मैं जीवित रहना नहीं चाहती ॥ ६ ॥ तब राजाके कारण बताने पर भी उसने विश्वास नहीं किया और उसने कोपमें भर कर कहा, कि-मनुष्यमें ऐसी शक्ति (सब प्राणियोंके शब्दोंको

तत् । उवाच चैनं कुपिता नैष भावोऽस्ति मानुषे ॥ ७ ॥ को वै पिपीलिकरुतं मानुषो वेत्तुमर्हति । ऋते देवप्रसादाद्वा पूर्वजातिकृतेन वा ॥ ८ ॥ तपोबलेन वा राजन् विद्यया वा नराधिप । यद्येष वै प्रभावस्ते सर्वसत्त्वरुतज्ञता ॥९॥ यथाऽहमेतज्जानीयां तथा प्रत्याययस्व माम् । प्राणान् वापि परित्यक्ष्ये राजन् सत्येन ते शपे ॥ १० ॥ ॥ तत्तस्या वचनं श्रुत्वा महिष्याः परुषाक्षरम् । स राजा परमापन्नो देवश्रेष्ठमगात्ततः ॥ ११ ॥ शरण्यं सर्वभूतेशं भक्त्या नारायणं हरिम् । समाहितो निराहारः षड्रात्रेण महायशाः ॥ १२ ॥ ददर्श दर्शने राजा देवं नारायणं प्रभुम् । उवाच चैनं भगवान् सर्वभूतानुकम्पकः ॥१३॥ ब्रह्मदत्त प्रभाते त्वं कल्याणं समवाप्स्यसि । इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रै-

जाननेकी शक्ति) नहीं होसकती ॥ ७ ॥ देवताओंकी कृपाके विना अथवा पूर्वजन्ममें किये हुए तपके विना अथवा (सब प्राणियोंके शब्दको जानने वाली विद्याको पाये विना ऐसा कौन मनुष्य है जो चीटीकी बोलीको समझ सके ? यदि आपमें सब प्राणियोंकी बोलीको समझनेकी शक्ति है तो मैं जिस प्रकार इस बात पर विश्वास कर सकूँ तैसा करिये हे राजन् ! यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो हे राजन् ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहती हूँ, कि-मैं अपने प्राणोंको छोड़ दूँगी ॥ ८-१० ॥ रानी के इन कठोर वचनोंको सुनकर, वह राजा बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ गया और उसने शरणागतरक्षक सब भूतोंके स्वामी देवश्रेष्ठ नारायण हरिकी शरण ली जब उस महायशस्वी राजाको सावधान होकर निराहार रहते हुए छः दिन बीत गए ॥११-१२॥ तब उसको प्रभु नारायण देवने दर्शन दिया फिर सब प्राणियों पर दया करने वाले भगवान् उससे कहने लगे, कि-॥ १३ ॥ हे ब्रह्मदत्त ! प्रातःकाल होने पर तेरा कल्याण होगा इतनी बात

वान्तरधीयत ॥ १४ ॥ चतुर्णान्तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्मनाम् । श्लोकं सोऽधीत्य पुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत् ॥ १५ ॥ स राजानमथान्विच्छन् सहमन्त्रिणमच्युतम्। न ददर्शान्तरं किञ्चिच्छ्लोकं श्रावयितुं तदा ॥ १६ ॥ अथ राजा सरःस्नातो लब्ध्वा नारायणाद्वरम् । प्रविवेश पुरीं प्रीतो रथमारुह्य कांचनम् ॥ १७ ॥ तस्य रश्मीन् प्रत्यगृह्णात् कण्डरीको द्विजर्षभः । चामरं व्यजनं चापि बाभ्रव्यः समवाक्षिपत् ॥ १८ ॥ इदमन्तरमित्येव ततः स ब्राह्मणस्तदा । श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ ॥ १९ ॥ सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ २० ॥ तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसी-

कह कर भगवान् तहाँ ही अन्तर्धान हो गए ॥ १४ ॥ उधर जो चारों महात्मा ब्राह्मणोंका पिता था वह पुत्रोंसे श्लोकको पढ़कर कृतकृत्यसा होगया ॥ १५ ॥ और वह कुछ भी विलंब न करके उस अच्युत राजा और उसके मन्त्रियोंको श्लोक सुनानेके लिये उनको ढूँढने लगा ॥ १६ ॥ इतनेमें ही राजा भी नारायणसे वर पानेके अनन्तर सरोवरमें स्नान कर सुवर्णमय रथमें बैठकर प्रसन्न होता हुआ अपनी नगरीमें घुसा ॥ १७ ॥ उस समय उसके घोड़ोंकी लगामोंको ब्राह्मणश्रेष्ठ कण्डरीक थाम रहा था और बाभ्रव्य चमर व्यञ्जन डुला रहा था १८ इसी अवसरमें उस ब्राह्मणने उस राजा और उसके दोनों मन्त्रियोंको श्लोक सुनाये १९ कि-(उनका अर्थ यह है; कि-)जो दशार्ण देशमें व्याधे बन कर उत्पन्न हुए थे और कालंजर पर्वतपर मृग बन कर उत्पन्न हुए और शरद्वीपमें चक्रवाक हुए थे और मानसरोवरमें हंस हुए थे वे इस समय कुरुक्षेत्रमें वेदपारगामी ब्राह्मण होनेके पीछे लम्बे मार्गमें चले गए हैं अर्थात् मुक्त होगए हैं उनमेंके

द्‌थ ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा मोहमगमद्ब्रह्मदत्तो नराधिपः सचिवश्चास्य पांचाल्यः कण्डरीकश्च भारत ॥ २२ ॥ स्रस्तरश्मिप्रतोदौ तौ पतितव्यंजनावुभौ। दृष्ट्वा बभूवुरस्वस्थाः पौराश्च सुहृदस्तथा ॥ २३ ॥ मुहूर्तमेव राजा स सह ताभ्यां रथे स्थितः। प्रतिलभ्य ततः संज्ञां प्रत्यगच्छदरिंदम ॥ २४ ॥ ततस्ते तत्सरः स्मृत्वा योगन्त मुपलभ्य च। ब्राह्मणं विपुलैरर्थैर्भोगैश्च समयोजयन् ॥ २५ ॥ अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिन्दमम्। जगाम ब्रह्मदत्तोऽथ सदारो वनमेव ह ॥ २६ ॥ अथैनं सन्नतिर्धीरा देवलस्य सुता तदा। उवाच परमप्रीता योगाद्वनगतं नृपम् ॥ २७ ॥ जानन्त्या ते महाराज पिपीलिकरुतज्ञताम्

बाकी तुम तीन क्यों कष्ट पारहे हो२०-२१राजा ब्रह्मदत्त इन श्लोकों को सुन कर मोहको प्राप्त होगया और हे भारत! उसके मन्त्री पाञ्चाल्य और कण्डरीक भी विचारमें पड़गए॥ २२ ॥ उस समय नगरनिवासी और मित्र (राजाको) और जिनके हाथमें से लगामें और चाबुक छूट गया है तथा जिनके हाथसे व्यञ्जन गिर पड़ा था ऐसे उन दोनों मन्त्रियोंको देखकर खिन्न होगए२३ वह अरिंदमन राजा रथमें क्षण भर मूर्छितसा रहकर होशमें आगया और उसके मन्त्री भी होशमें आगए॥ २४ ॥ इसके उपरान्त उन तीनोंको उस सरोवरका ध्यान आगया और पूर्वजन्मके योगका भी स्मरण आगया तब उन्होंने उस ब्राह्मणको बहुतसा धन और भोगके पदार्थ दिये फिर राजा अपने राज्य पर अरिंदमन विश्वक्सेनका अभिषेक कर अपनी स्त्रीको साथमें लेकर वनको चला गया २६ योग धारण कर वनमें आने पर परम प्रसन्न होती हुई देवलकी पुत्री धीर सन्नतिने राजासे कहा॥ २७ ॥ कि हे महाराज! मैं यह जानती थी, कि आप चीटीकी बोलीको समझ सकते हैं तब भी मैंने आपको कामोंमें

चोदितः क्रोधमुद्दिश्य सक्तः कामेषु वै मया ॥ २८ ॥ इतो वयं गमिष्यामो गतिमिष्टामनुत्तमाम् । तव चान्तर्हितो योगस्ततः संस्मारितो मया ॥ २९ ॥ स राजा परमप्रीतः पत्न्याः श्रुत्वा वचस्तदा । प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ ३० ॥ कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा सांख्ययोगमनुत्तमम् । प्राप्य योगमतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन कर्मणा ॥३१॥ क्रमं प्रणीय पांचाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम् । योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाऽग्यं महातपाः ३२ एवमेतत् पुरा वृत्तं मम प्रत्यक्षमच्युत । तद्धारयस्व गांगेय श्रेयसा योक्ष्यसे ततः ॥ ३३ ॥ ये चान्ये धारयिष्यन्ति तेषां चरितमुत्त-

आसक्त देखकर क्रोधके बहानेसे आपको (आपके पूर्वजन्मके योगका स्मरण करानेके लिये) प्रेरित किया था(पुराणोंमें प्रसिद्ध है, कि-कौशिकके पुत्रोंने जिस गौका पितरोंके लिये अभ्युक्षण किया था वही गौ इस जन्ममें ब्रह्मदत्तकी पत्नी बनी थी, और उसने उपकार करनेके लिये राजाको योगका स्मरण दिलानेकी की चेष्टा की थी)॥ २८ ॥ अब हम यहाँसे अपनी चाही हुई परमगतिको पावेंगे तुम्हें योगका स्मरण नहीं रहा था, उसका मैंने आपको स्मरण दिला दिया ॥२९॥ वह राजा अपनी पत्नी की बात सुन कर परम प्रसन्न हुआ और उसने योगको पाकर उस बलसे अतिदुर्लभ गति पाई ॥ ३० धर्मात्मा कण्डरीक भी अतिश्रेष्ठ सांख्य योगको पाकर योगनिष्ठ हो उस योगरूपविशुद्ध कर्मसे शुद्ध होगया ॥३१॥ पाञ्चाल्यने क्रमको रचा और शिक्षा को उत्पन्न किया तब महातपस्वी योगाचार्यकी गतिको प्राप्त हुए और उन्होंने अच्छा यश पाया ॥ ३२ ॥ हे अच्युत ! इस प्रकार यह श्राद्धका फल मेरे सामने हुआ था तू इसको कर तो तेरा कल्याण होगा ॥ ३३ ॥ दूसरे मनुष्य भी यदि इन वाग्दुष्ट आदिके चरित्रको सुनेंगे तो वे कभी तिर्यक्योनि उत्पन्न नहीं

मम् । तिर्यग्योनिषु ते जातु न गमिष्यन्ति कर्हिचित् ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा चेदमुपाख्यानं महार्थं महतां गतिम् । योगधर्मो हृदि सदा परिवर्तति भारत ॥ ३५ ॥ स तेनैवानुबन्धेन कदाचिल्लभते शमम् । ततो योगगतिं याति शुद्धां तां भुवि दुर्लभाम् ॥ ३६ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमेतत् पुरा गीतं मार्कण्डेयेन धीमता ।

होंगे ॥ ३४ ॥ हे भारत ! श्रेष्ठ पुरुषोंको गति देने वाले इस उपाख्यानको सुनने पर योगधर्म हृदयमें भासने लगता है ॥३५॥ प्राणी उस हृदयमें स्थित योगके द्वारा कभी शान्त होजाता है तो पृथ्वीमें दुर्लभ शुद्ध योगगतिको पाता है ॥ ३६ ॥ वैशम्पायनजी ने कहा, कि-श्राद्धके फलको लक्ष्यमें कर सोम (चन्द्रमा) का आप्यायन करनेके लिये बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने यह बात कही थी (अर्थात् श्राद्धका फल और पितरोंकी तृप्ति सोमके द्वारा ही होसकती है "तदेतद्व देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति सोम देवताओंका अन्न है, देवता उसका भक्षण करते हैं" इस श्रुतिमें सोमको देवताओंका अन्न कहा है, अर्थात् देवभावको प्राप्त हुए पितर साक्षात् सोमका पान करते हैं) ॥ ३७ ॥ भगवान् सोम ही लोकोंको परम तृप्ति देने वाले हैं, वृष्णिवंशकी बात चीत चल रही है तुम प्रसङ्गवश सोमके वंशको भी सुनो(यह शंका नहीं करनी चाहिये कि-चन्द्रमा देवभूत पितरोंको ही तृप्त कर सकते हैं, भूमिस्थ पितर उनसे कैसे तृप्त होसकते हैं? अतः एव "सोमो हि-भगवान् देवलोकस्याप्यायनं परम्-भगवान् सोम ही लोकको तृप्त करने वाले हैं यह वचन व्यर्थ है; क्योंकि-सोम भूमिमें रहने वाले पितरोंको भी दिव्य औषधियों के द्वारा तृप्त करते हैं, क्योंकि-स्मृतिमें लिखा है, कि-"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते-अर्थात् अग्निमें होमी हुई आहुति सूर्यके पास पहुँचती है" इस श्रुतिके अनुसार ब्राह्म-

श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य सोमस्याप्यायनाय वै ३७ सोमो हि भगवान् देवो लोकस्याप्यायनं परम् । वृष्णिवंशप्रसंगेन तस्य वंशं निबोध मे

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच । पिता सोमस्य वै राजञ्जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः । ब्रह्मणो मानसात् पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥१॥ तथात्रिः सर्वभूतानां तस्थौ स्वतनयैर्युतः । कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव चचार सः ॥२॥ अहिंस्रः सर्वभूतेषु धर्मात्मा संशितव्रतः । काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥ ३ ॥ अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥४॥ तत्रोर्ध्वरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य च । सोमत्वं

याग्नि स्मार्ताग्नि अथवा श्रौताग्निमें पितरोंने निमित्त होमी हुई आहुति आदित्यको प्राप्त होती है और आदित्यकी सुषुम्ना नाम वाली नाड़ीसे सोमका आप्यायन होता है उससे पितर तृप्त होते हैं अत एव सबोंसे पहिले होनेके कारण आदित्य श्राद्धदेव कहलाते हैं। यह "आदित्य विवस्वान श्राद्धदेव क्यों कहलाते हैं" इसका उत्तर होगया) ॥३८॥ चौबीसवा अध्याय समाप्त २४

वैशम्पायनजीने कहा कि-प्रजाको रचना चाहने वाले ब्रह्माजीके संकल्प करने पर सोमके पिता भगवान् अत्रि उत्पन्न हुए ॥१॥ प्रजासर्गमें भगवान् अत्रि निष्ठावान थे अत एव वह और उनके पुत्र मनसा वाचा कर्मणा प्राणियोंका शुभ ही करते थे ॥ २ ॥ हमने सुना है कि-उन सब भूतोंको पीडा देनेसे दूर रहने वाले धर्मात्मा प्रशंसनीय व्रत करने वाले महाकान्तिमान् मुनिने ऊपरको भुजा कर तप काठ भीत और शिलाकी समान स्थिर होकर तीन सहस्र दिव्य वर्षोंतक अनतुत्तर नामक (अर्थात् न बोलनेका) तप किया था॥३-४॥हे भारत ! ऊर्ध्वरेता होकर

तन्नुरापेदे महासत्त्वस्य भारत ॥५॥ ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः । नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद्दिशः ।६। तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा। समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥ ७ ॥ स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः । पपात भासयंल्लोकान् शीतांशुः सर्वभावनः ॥८॥ यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः । ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुन्धराम् ॥ ९ ॥ पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः । रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया १०

तप करनेवाले नेत्रोंको न मींचनेवाले उन महाबलवान् अत्रिका शरीर सोमत्वको प्राप्त होगया (पलक न मारनेके कारण सूर्य आदि बाह्यज्योति रश्मियोंके धारण करनेसे वह उनकी समान बलवान् होगए और कीटभृंगन्यायसे ध्येयकी समान उनमें सोमका सा शुक्लभास्वररूप होगया, तपस्वीमें रजोगुण नहीं रहता है अत एव उनका रूप शान्तप्रकाशमय होगया था) ॥ ५ ॥ शुद्ध शान्तप्रकाश शुक्लभास्वररूप तेजसे रञ्जित शरीर वाले (भावितात्मा) मुनिका सोमत्व (उक्तप्रकारका तेज) ऊपर को चढ़ने लगा (वह किस प्रकार चढ़ने लगा यह दिखाते हैं) उनके नेत्रोंसे दश दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ (सोमरूप जल बहने लगा॥६उसको प्रसन्न होती हुई दश दिशा देवियोंने इकट्ठी होकर गर्भविधिसे धारण कर लिया, परन्तु वे उस को धारण न कर सकीं ॥ ७ ॥ तब (औषध आदिके द्वारा) सब लोकोंको आप्यायित करने वाला और शीतल किरणों वाला प्रभावान् गर्भ दिशाओंमेंसे सब लोकोंको प्रकाशित करता हुआ गिर पड़ा ॥८॥ जब दिशाएँ उनके गर्भको धारण न कर सकीं तब वह उनके साथ एक साथ भूमि पर गिर पड़ा।९ लोकपितामह ब्रह्माजीने सोमको गिरा हुआ देख कर अर्थात्

स हि वेदमयस्तात धर्मात्मा सत्यसंग्रहः । युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेतीह नः श्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि । तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त ये श्रुताः ॥१२॥ तथैवांगिरसस्तत्र भृगुरेवात्मजैः सह । ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुलैरथर्वांगिरसैरपि ॥१३॥ तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः । आप्यायमानं लोकांस्त्रीन् भासयामास सर्वशः ॥ १४ ॥ स तेन रथमुख्येन सागरांतां वसुन्धराम् त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ १५ ॥ तस्य यच्च्यावितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।

ताारूपसे स्थित देखकर लोकोंका हित करनेकी इच्छासे उसको रथ पर चढ़ा लिया ॥ १० ॥ हमने सुना है, कि-वह रथ वेदमय था अर्थात् उसमें काष्ठोंके स्थान पर वेद लगे हुए थे और धर्मात्मा था अर्थात् आकाशादि रूप था और सत्यसंग्रह था अर्थात् उससे ब्रह्मसाक्षात्कार किया जासकता है और उसमें (मन्त्ररूप) सहस्र घोड़े जुते हुए थे ॥ ११ ॥ अत्रिपुत्र परमात्माके गिरने पर ब्रह्माजीके प्रसिद्ध मानसिक सात पुत्र उनकी स्तुति करनेलगे (इस श्लोकमें सोमको विष्णुरूप बताया है इसीलिये याज्ञिक यज्ञमें सोमको रथके द्वारा लाकर उनका अतिथि सत्कार करनेके लिये वैष्णवी इष्टि किया करते हैं) १२ इसी प्रकार अङ्गिरागोत्री भृगु और उनके पुत्र भी यजुर्वेदकी बहुतसी ऋचाओंसे तथा अथर्वाङ्गिरस श्रुतियोंसे सोमकी स्तुति करनेलगे ॥ १३ ॥ प्रकाशवान् सोमका तेज स्तुति करने पर आप्यायित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशित करने लगा ।१४। तब उन कृति यशस्वी [ब्रह्माजीने]उस [सोमवान्] श्रेष्ठ रथमें बैठ कर समुद्र तककी पृथ्वीकी इक्कीस वार प्रदक्षिणाकी १५ उस समय (रथके वेगसे) सोमका जो तेज पृथिवी पर गिर पड़ा उस तेजमेंसे प्रकाशित होती हुई औषधियें निकलने

ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा प्रज्वलन्त्युत ॥ १६ ॥ ताभि-
र्धार्यास्त्रयो लोकाः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः । पोष्टा हि भगवान्
सोमो जगतो जगतीपते ॥ १७ ॥ स लब्धतेजा भगवान् संस्त-
वैस्तैश्च कर्मभिः । तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥ १८ ॥
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् । निधिस्तासाम-
भूद्देवः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा । ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्म-
विदाम्वरः । बीजौषधीनां विप्राणामपां च जनमेजय ॥ २० ॥
सोऽभिषिक्तो महाराज राजराज्येन राजराट् । लोकांस्त्रीन भास-
यामास स्वभासा भास्वतां वरः ॥ २१ ॥ सप्तविंशतिमिन्दोस्तु
दाक्षायिण्यो महाव्रताः । ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या

लगीं ॥१६॥ उन ओषधियोंसे (देव पितृ और भू ये)तीन लोक
और (मनुष्य पशु पक्षी तथा सर्प आदि) चार प्रकारकी प्रजा
टिकी रहती है, हे राजन् ! भगवान् सोम इस प्रकार पृथिवीका
पोषण करने वाले हैं ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! सोमने स्तुतिमय
कर्मोंसे तेजस्वी होकर सहस्र वर्षों तक तप किया ॥ १८ ॥
जो चाँदीकी समान वर्णवाली देवियें जगत्को धारण कर रही
हैं, चन्द्रदेव अपने कर्मसे उन सबके आकर (खान) प्रसिद्ध हैं
(अर्थात् चन्द्रमा चाँदीकी समान श्वेत जलोंके आकर हैं, इसी
लिये मणिके द्वारा चन्द्रमा जलको टपकाते हैं और सूर्य मणिके
द्वारा अग्निको उत्पन्न करते हैं अत एव सूर्य तेजके आकर हैं
और चन्द्रमा जलकी निधि हैं) ॥१९॥ तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओं
में श्रेष्ठ ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बीज औषध विप्र और जलोंका
राज्य देदिया ॥ २० ॥ हे महाराज ! जब चन्द्रमाका सम्राट्-
पद पर अभिषेक होगया तब वह प्रकाश करने वाले
पदार्थोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमा अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको प्रकाशित
करने लगे ॥ २१ ॥ प्रचेताओंके पुत्र दक्षने अपनी सत्ताईस

विदुः ॥ २२ ॥ स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां वरः ।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २३ ॥ होताऽस्य भग-
वानत्रिरध्वर्यु र्भगवान् भृगुः । हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्व
मेयिवान् ॥ २४ ॥ सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम् ।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ दक्षिणामददात्
सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् । तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सद-
स्येभ्यश्च भारत ॥२६॥ तं सिनिश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा
वसुः । कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥ २७ ॥
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः । विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा
भासयन् दिशः॥२८॥तस्य तत्प्राप्यदुष्प्राप्य मैश्वर्यं मुनिसत्कृतम्।

कन्याएँ चन्द्रमाको देदी थीं, (प्राणी) उनको नक्षत्र कहते हैं ॥ २२ ॥ पितरोंके स्वामियोंमें श्रेष्ठ सोमने बड़े भारी राज्य को पाकर जिसमें एक लाख गौ दी जाती हैं, ऐसे राजसूय यज्ञको किया ॥ २३ ॥ भगवान् अत्रि सोमके (यज्ञमें) होता बने और भगवान् भृगु अध्वर्यु बने और हिरण्यगर्भ (अंगिरा ऋषि) उद्गाता बने और वशिष्ठजी ब्रह्मा बने ॥ २४ ॥ सनत्कुमार आदि प्राचीन ब्रह्मर्षियोंने स्वयं भगवान् नारायण हरिको ही सदस्य (सत्रह ऋत्विजों पर देख भाल करने वाला) बनाया था ॥ २५ ॥ हे भारत ! हमने सुना है, कि उन ब्रह्मर्षियोंमें प्रधान सदस्योंको सोमने तीनों लोक दक्षिणा में देदिये थे ॥ २६ ॥ सिनी (खण्डपर्वणीमें पहिली अमावस्या) कुहू (खण्डपर्वणीमें उत्तरा अमावस्या), द्युति (खण्डपर्वणीमें पूर्वा पूर्णिमा) पुष्टि (खण्डपर्वणीमें उत्तरा पूर्णिमा) प्रभावसु कीर्ति धृति और लक्ष्मी ये नौ देवियें चन्द्रमाकी सेवा करने लगीं ॥२७॥ सब देवताओंसे पूजा पानेवाला और सब ऋषियों से पूजा पाने वाला ब्राह्मणराज चन्द्रमा [उन नौ देवियोंके

विवभ्राम मतिस्तात विनयादनयाहृता ॥ २९ ॥ बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम् । जहार तरसा सर्वानवमन्यांगिरः सुतान् ॥ ३० ॥ स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिः सह । नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आंगिरसे तदा । स संरब्धस्ततस्तस्मिन् देवाचार्यो बृहस्पतिः॥३१॥उशनास्तस्य जग्राह पार्ष्णिमांगिरसस्तदा । स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वो बृहस्पतेः ३२ तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः । पार्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याजगवन्धनुः ॥ ३३ ॥ तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना । उद्दिश्य दैत्यानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥३४॥ तत्र

साथ] अवभृथ स्नान करके दश प्रकारसे दश दिशाओंको प्रकाशित करने लगा ॥ २८ ॥ हे तात ! मुनि जिसका सत्कार करते हैं और देवता भी जिसको कठिनतासे पासकें ऐसे ऐश्वर्यको पाकर चन्द्रमाकी बुद्धि विनयसे भ्रष्ट होगई और उसको अन्यायने दबा लिया ॥२९॥ तब उसने अङ्गिराके सब पुत्रोंका तिरस्कार करके बलपूर्वक बृहस्पतिकी यशस्विनी भार्या ताराको हर लिया ॥ ३० ॥ और देवताओंके तथा देवर्षियोंके कहने पर भी उसने बृहस्पतिको उनकी स्त्री नहीं लौटाई, तब तो देवाचार्य बृहस्पति क्रोधमें भर कर (लडनेको उद्यत होगए) ।३१ ॥ (अकार्य करनेसे असुर बने हुए) चन्द्रमाकी पार्ष्णिको शुक्राचार्यने ग्रहण किया, और (अङ्गिराके शिष्य रुद्र) ने बृहस्पति जीकी पार्ष्णिको पकड लिया, क्योंकि-महातेजस्वी रुद्र बृहस्पतिके पिता अङ्गिराके शिष्य थे ॥ ३२ ॥ इस स्नेहके कारण भगवान् शिव अपने आजगव [बकरे और गौके सीगोंसे बने हुए] धनुषको ग्रहण कर बृहस्पतिके पार्ष्णिग्राह बने थे ३३ महात्मा रुद्रने दैत्योंके उद्देश्यसे ब्रह्मशिर नामक परमास्त्रको छोड़ा और उसने दैत्योंके यशको नष्ट करडाला ॥ ३४ ॥ वह संसार

तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् । देवानां दानवानां च लोक-
क्षयकरं महत् ॥३५॥ तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव भारत ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥ ३६ ॥ ततो निवार्यो-
शनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शंकरम् । ददावंगिरसे तारां स्वयमेव पिता-
महः ॥ ३७ ॥ तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा तारां प्राह बृहस्पतिः । मदी-
यायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥ ३८ ॥ अयोनावुत्सृजत्तं
सा कुमारं दस्युहन्तमम् । इषीकास्तंबमासाद्य ज्वलंतमिव पाव-
कम् ॥ ३९ ॥ जातमात्रः स भगवान् देवानामक्षिपद्वपुः । ततः
संशयमापन्ना इमामकथयन्सुराः ॥४०॥ सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य

घोर क्षय करने वाला देव दानवोंका बड़ा भारी युद्ध (ताराके लिये हुआ था इससे) तारकामय नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥३५॥ हे भारत ! उस समय जो (बृहस्पतिका पक्ष लेने वाले धर्मपरा-यण) देवता बचे और (गुरुपत्नीका हरण करने वाले चन्द्रमा का पक्ष लेनेसे जिन्होंने दोषरूपी तुष (कंचुक) को धारण कर लिया था वे)तुष नामक देवता बचेथे उन्होंने आदि देव सनातन ब्रह्माजीकी शरण ली ॥ ३६ ॥ तब ब्रह्माजीने शुक्राचार्यजीको और बड़े रुद्र शंकरको भी समझा बुझा कर युद्ध करनेसे रोका फिर उन्होंने अपने आप ताराको बृहस्पतिको दिलवा दिया ३७ उस समय ताराको गर्भवती देखकर बृहस्पतिने कहा, कि–तू मेरे स्थानमें इस गर्भको धारण करके (न रह)॥ ३८ ॥ तब उसने कुमारको अस्थानमें उत्पन्न किया अर्थात् उसने सींकोंके स्तम्बों पर उस प्रज्वलित पावककी समान दस्युहन्तम (शत्रुओं को अधिकतासे मारने वाले) कुमारको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥ उस ऐश्वर्यवान् कुमारके उत्पन्न होते ही उसके शरीरकी कान्ति से देवताओंका तेज फीका जचने लगा, तब तो देवता सन्देहमें होकर तारासे कहने लगे कि–॥ ४० ॥ "यह पुत्र चन्द्रमाका है

सोमस्याथ बृहस्पतेः । पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा साध्व-
साधु वा ॥ ४१ ॥ तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ।
तं निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ॥४२॥ यदत्र तथ्यं
तद् ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् । सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं
वरदं प्रभुम् ॥ ४३ ॥ सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्त-
मम् । ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः॥ ४४ ॥ बुध
इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः । प्रतिकूलं च गगने समभ्यु-
त्तिष्ठते बुधः ॥ ४५ ॥ उत्पादयामास ततः पुत्रं वैराजपुत्रिका ।
तस्यापत्यं महाराजो बभूवैलः पुरूरवाः ॥ ४६ ॥ उर्वश्यां जज्ञिरे
यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः । प्रसह्य धर्षितस्तत्र सोमो वै राज-
यक्ष्मणा ॥ ४७ ॥ ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः ।

अथवा बृहस्पतिका है? इस बातका तू ठीक २ बता, परन्तु देव-
ताओंके बूझने पर भी जब उसने भला बुरा कुछ उत्तर नहीं
दिया ॥ ४१ ॥ तब जो कुमार दस्युहन्तम उसको शाप देनेके
लिये तयार होगया तब ब्रह्माजीने उसको रोक कर तारासे इस
सन्देहको बूझा कि–॥ ४२ ॥ कि–हे तारे!यह किसका पुत्र है,
इस बातको तू ठीक २ बता ? तब उसने दोनों हाथ जोड़ कर
वरदेने वाले प्रभु ब्रह्माजीसे कहा, कि–॥ ४३ ॥ यह महात्मा
कुमार दस्युहन्तम चन्द्रमाका पुत्र है, तब (गर्भके) धाता (अत-
एव) प्रजापति चन्द्रमाने उसके मस्तकको सूँघ कर ॥ ४४ ॥
उस बुद्धिमान् पुत्रका बुध नाम रक्खा; यह बुध जब आकाशमें
उदय होता है, तब प्रतिकूल चेष्टा (उत्पात) करता है ॥४५॥
तदनन्तर वैराज मनुकी पुत्री इलाने बुधसे पुत्र उत्पन्न किया,
हे महाराज !वह पुत्र ऐल पुरूरवा हुआ ॥४६॥ महात्मा पुरूरवा
के उर्वशीसे सात पुत्र उत्पन्न हुए, और (उद्धतता करनेके
कारण) राजयक्ष्मा रोगने सोम हठात् घेर लिया था ॥ ४७ ॥

जगाम शरणार्थाय पितरं सोऽत्रिमेव तु ॥ ४८ ॥ तस्य तत्ताप-शमनं चकारात्रिर्महातपाः । स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वतः ॥ ४९ ॥ एवं सोमस्य ते जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्धनम् । वंशमस्य महाराज कीर्त्यमानं च मे शृणु ॥ ५० ॥ धन्यमारोग्य-मायुष्यं पुण्यं संकल्पसाधनम् । सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच । बुधस्य तु महाराज विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः । तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः । आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः ॥ २ ॥ सत्यवादी पुण्यमतिः काम्यः संवृत-

यक्ष्मा (तपे दिक)से दवने पर चन्द्रमाका मण्डल घटने लगा तब वह अपने पिता अत्रिकी शरणमें पहुँचा ॥४८॥ तब महातपस्वी अत्रिने उसके तापको दूर कर दिया तब चन्द्रमा राजयक्ष्मासे मुक्त होकर पूर्णरीतिसे प्रकाशित होने लगा ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार मैंने तुमसे कीर्तिको बढ़ाने वाला चन्द्रमाका जन्म कहा,अब आप मेरे मुखसे इस चन्द्रमाके वंशको सुनिये५० मनुष्य धन देने वाले आरोग्य देने वाले आयु बढ़ाने वाले,पुण्य और संकल्पोंको पूर्ण करने वाले इस चन्द्रजन्मको सुन कर सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥५१॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त २५

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे महाराज ! बुधका विद्वान् पुत्र पुरूरवा तेजस्वी दान देनेके स्वभाव वाला यजन करने वाला बहुतसी दक्षिणा देने वाला ब्रह्मकी बातें करने वाला और पराक्रमी था, युद्धमें शत्रु उसको कठिनतासे जीत सकते थे, वह राजा अग्निहोत्र और यज्ञोंको करने वाला था ॥ १-२ ॥

मैथुनः । अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाऽप्रतिमः सदा ॥ ३ ॥ तं ब्रह्मवादिनं क्षान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् । उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४॥तया सहावसद्राजा वर्षाणि दश पञ्च च । पंच षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भारत ॥ ५ ॥ वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे । अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥ उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरथफलद्रुमान् । गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे ॥ ७ ॥ एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च । उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८ ॥ देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते । राज्यं च कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः ॥९॥तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः । दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥ १० ॥ विश्वायुश्चैव

और वह सत्यवादी पुण्यबुद्धि, कामना करने योग्य (चाहने योग्य) और मैथुन धर्ममें तत्पर रहने वाला था और वह तीनों लोकोंमें अप्रतिम (अद्वितीय) यशस्वी था ॥३॥उर्वशी अप्सराने अपने मानको त्यागकर ब्रह्मवादी क्षमापरायण धर्मज्ञ तथा सत्यवादी राजा पुरूरवाको स्वीकृत कर लिया था ॥ ४ ॥ राजा उसके साथ दश वर्ष तक रमणीय चैत्ररथ वनमें और पाँच वर्ष तक अलकामें और छः वर्ष तक विशालामें और सात वर्ष तक श्रेष्ठ नन्दनवनमें और आठ वर्ष तक मनोरथरूपफलको देनेवाले वृक्षों वाले उत्तर कुरुदेशोंमें और दश वर्ष तक गन्धमादनके शिखरों पर और हे भारत ! उत्तरमेरुपृष्ठ पर आठ वर्ष तक रहा था ॥५-७॥ राजा इन देवताओंसे सेवित वनोंमें उर्वशीके साथ परमप्रसन्नतासे रमण करता रहा ॥ ८ ॥और उस पृथ्वीपतिने (उर्वशीके साथ) महर्षियोंसे प्रशंसित पुण्यमय प्रयाग में राज्य किया था ॥ ९ ॥ उर्वशीके स्वर्गमें बुद्धिमान् आयु अमावसु धर्मात्मा-विश्वायु श्रुतायु दृढायु च्युतायु और शतायु

धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथाऽपरः । दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशी-सुताः ॥११॥ जनमेजय उवाच । गान्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् । देवानुत्सृज्य संप्राप्ता तन्मे ब्रूहि बहुश्रुत ॥ १२॥ वैशम्पायन उवाच । ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत । ऐलं सा तु वरारोहा समयात् समुपस्थिता ॥ १३ ॥ आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह । अनग्नदर्शनं चैव सकामाया च मैथुनम् ॥ १४ ॥ द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः। घृतमात्रा तथाहारः कालमेकं तु पार्थिव ॥ १५ ॥ यद्येष समयो राजन् यावत् कालं च ते दृढः । तावत् कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः ॥ १६ ॥ तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत् । एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी ॥१७॥ वर्षाण्येको-

नायक सात पुत्र देवपुत्रोंको समान उत्पन्न हुए ॥ १०-११ ॥ जनमेजयने कहा, कि-हे बहुश्रुत ! उर्वशी देवी तो अप्सरा थी तो उसने देवताओंको त्याग कर इस मनुष्य राजाको क्यों मनोनीत (पसंद) किया था? ॥१२॥ वैशम्पायनजीने कहा कि-शापके कारण उर्वशी मनुष्यके पास आई थी, वह वरारोहा इलाके पुत्रके पास प्रतिज्ञा करा कर रही थी ॥ १३ ॥ उसने शापसे छूटनेके लिये प्रतिज्ञा (शर्त) करवाली थी कि-मैं तुमको नंगा न देखूँ और मेरे सकाम होने पर ही आप मैथुन करें ॥ १४ ॥ और मेरे पलँगके पास सदा दो मेढे बँधे रहे और हे राजन् ! मैं सर्वदा दिनमें एक वार थोड़ासा घी खाऊँगी ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब तक आप इस प्रतिज्ञाका मजबूतीके साथ पालन करते रहेंगे तब तक मैं तुम्हारे साथ रहूँगी, यह मैं प्रतिज्ञा करती हूँ ।१६। राजा उसकी सब शर्तोंका पालन करता रहा, इस प्रकार वह भाविनी पुरूरवाके यहाँ रहती रही ॥१७॥ शापके कारण राजा मैं आसक्त होकर उर्वशीको जब उनसठ वर्ष वीत गए, तब तो

नपष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिना । उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वा-
श्चिन्तयान्विताः ॥ १८ ॥ गन्धर्वा ऊचुः । चिन्तयध्वं महाभागा
यथा सा तु वरांगना । समागच्छेत् पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूष-
णम् ॥ १९ ॥ ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः । मया तु
समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा ॥ २० ॥ व्युत्क्रान्तसमयं
सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा । तदहं वेद्मयशेषेण यथा भेत्स्य-
त्यसौ नृपः ॥२१॥ ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये ।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः ॥ २२ ॥ निशायामथ
चागम्य मेषमेकं जहार सः । मातृवद्वर्तते सा तु मेषयोश्चारु-
हासिनी ॥ २३ ॥ गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी ।
राजानमब्रवीत्तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा ॥ २४ ॥ एवमुक्तो विनि-

---

गन्धर्वोंको मनुष्योंमें स्थित उर्वशीकी चिन्ता होने लगी ॥१८॥
गंधर्वोंने कहा, कि-हे महाभागो! वरांगना उर्वशी देवताओंमें फिर
किस प्रकार आवे, इसका उपाय करिये, क्योंकि-वह स्वर्गका
भूषण है॥ १९ ॥ तब विश्वावसु नामक बोलने वालोंमें श्रेष्ठ
गन्धर्वने कहा, कि-उन दोनोंने जो प्रतिज्ञा की है उसको मैंने
सुना है ॥२०। वह राजाके प्रतिज्ञा भंग करने पर उसको छोड़
देगी ? वह राजा जिस प्रकार अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ सकता है
उस उपायको मैं भली प्रकार जानता हूँ ॥ २१ ॥ मैं तुम्हारे
कामको सिद्ध करनेके लिये, अपने सहायकोंको साथमें लेकर
तहाँ जाऊँगा। वह महायश वी इस प्रकार कह कर प्रयागको
चला गया ॥ २२ ॥ और उसने रात्रिमें तहाँ पहुँच कर एक
मेढेको चुरा लिया, चारुहासिनी उर्वशी उन मेढों पर माताकी
समान स्नेह करती थी ॥ २३ ॥ यशस्विनी उर्वशीने गंधर्वोंके
आगमनको सुन कर विचारा, कि-अब मेरे शापके अन्त होनेका
समय आगया, तब उसने राजासे कहा, कि-हे राजन! ये मेरे पुत्र

श्रित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत । नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत् ॥ २५ ॥ ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः । द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम् ॥ २६ ॥ पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो। एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः २७ मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्युत । उत्पादिता सुमहती यया तद्भवनं महत् ॥ २८ ॥ प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत । नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साऽप्सरा कामरूपिणी ॥ २९ ॥ उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे । अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥ ३० ॥ चचार पृथिवीं सर्वां मार्गमाण इतस्ततः । अथापश्यत् स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ ३१ ॥

को भगा कर लिये जारहे हैं ॥ २४ ॥ यह कहने पर भी वह यह विचार कर नंगा नहीं उठा कि–यदि यह देवी मुझे नंगा देख लेगी तो प्रतिज्ञा झूँठी होजावेगी ॥ २५ ॥ इसी समय गन्धर्व दूसरे मेढ़ेको भी ले जाने लगे, दूसरे मेढ़ेके चुराने पर देवीने कहा, कि–॥ २६ ॥ हे राजन् ! अनाथा स्त्रीकी समान मेरे पुत्रको छीन लिया गया, उर्वशीके इस प्रकार कहने पर राजा नंगा ही उठ कर मेढोंके पदचिन्होंके पीछे पीछे दौड़ा, इसी समय गंधर्वोंने भी बड़ी भारी बिजली चमकाई तब उस समय वह बड़ाभारी भवन एक साथ प्रकाशित होगया, तब तो उर्वशीने राजाको नङ्गा देखा, वह कामरूपिणी अप्सरा राजाको नङ्गा देखते ही अन्तर्धान होगई २७-२८ उधर राजा भी (गन्धर्वोंके) छोड़े हुए मेढ़ोंको साथमें ले घरमें जा घुसा, कि–तो उसने तहाँ उर्वशीको नहीं देखा, तब तो वह दुःखित होकर विलाप करने लगा ॥ ३० ॥ तब वह राजा उसको खोजता हुआ पृथ्वी पर सर्वत्र फिरने लगा, कुछ समयके अनन्तर उस महाबली राजाने उस शोभना अप्सराको प्लक्षतीर्थ

सप्ततीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम् । क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पंचभिः सह शोभनाम् । तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः । सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः ॥ ३३ ॥ उर्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः । यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ॥ ३४ ॥ समाविग्नास्तु ताः सर्वाः पुनरेव नराधिप । जायेह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ॥३५॥ एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत । उर्वशी चाब्रवीदैनं सगर्भाऽहं त्वया प्रभो ॥ ३६ ॥ संवत्सरात् कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः । निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह ॥ ३७ ॥ हृष्टो जगाम राजाऽथ स्वपुरं सुमहायशाः । गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत् ॥३८॥ उषितश्च तया सार्धं एकरात्रं महा-

की हेमवती नामकी पुष्करिणीमें स्नान कर अपनी पाँच सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई देखा ॥ ३१ ॥३२॥ तब तो उसको क्रीड़ा करती हुई देख राजा दुःखित होकर विलाप करने लगा उर्वशीने राजाको समीपमें ही देखकर ॥३३॥ अपनी सखियोंसे यह कहकर राजाको दिखाया, कि यह वही पुरुषोत्तम है कि-जिसके पास मैं रही थी ॥ ३४ ॥ हे नराधिप ! उस समय वे सब (उर्वशीके पुनर्गमनकी आशंकासे) उद्विग्न होकर परस्परमें कहने लगीं कि-"जायेह मनसा तिष्ठ घोरे वचसि तिष्ठह" अर्थात् तू यहाँ ही रहकर सन्तान उत्पन्न कर और अपने घोर वचन पर दृढ़ रह और इस राजाके पास मनसे ही वर्तमान रह' उस समय उर्वशीने इलापुत्रसे कहा कि-हे प्रभो ! मैं आपके द्वारा सगर्भा हूँ (अत एव गमन करने योग्य नहीं हूँ) ३६ एक वर्षमें आपके कुमार उत्पन्न होंगे हे राजन् ! उस समय मैं एक रात्रिको आपके पास रहूँगी ॥ ३७ ॥ (तब) वह महायशस्वी राजा (अपना चित्त) देकर अपने नगरमें आगया

यशाः । उर्वश्यथाब्रवीदेनं गन्धर्वा वरदास्तव ॥ ३९ ॥ तान्
वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैनांस्त्वमेव हि । वृणीष्व समतां राजन्
गन्धर्वाणां महात्मनाम् ॥ ४० ॥ तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च
तथाऽस्त्विति । पूरयित्वाऽग्निना स्थालीं गन्धर्वाश्च तमब्रुवन् ॥ ४१ ॥
अनेनेष्ट्वा सलोकान्नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप । तानादाय कुमा-
रांस्तु नगरायोपचक्रमे ॥ ४२ ॥ निक्षिप्याग्निमरण्ये तु सपुत्रस्तु
गृहं ययौ । स त्रेताग्निं तु नापश्यदश्वत्थं तत्र दृष्टवान् ॥ ४३ ॥
शमीजातं तु तं दृष्ट्वा अश्वत्थं विस्मितस्तदा। गन्धर्वेभ्यस्तदाशंस-
दग्निनाशं ततस्तु सः ॥ ४४ ॥ श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणीं तु
समादिशत् । अश्वत्थादरणीं कृत्वा मथित्वाऽग्निं यथाविधि ।

वर्ष भर बीतने पर उर्वशी फिर राजाके पास आई॥ ३८॥ महा-
यशस्वी पुरूरवा भी उनके साथ एक रात्रि रहा था, इसके अनन्तर
उर्वशीने पुरूरवासे कहा, कि—गन्धर्व आपको वर देना चाहते
हैं ॥ ३९ ॥ अब आप वर माँग लीजिये, हे महाराज ! आप
अपने आप कह कर इन महात्मा गन्धर्वोंकी समता माँग
लीजिये ॥ ४० ॥ तब पुरूरवाने तथास्तु कह कर गन्धर्वोंसे वर
माँगा, गन्धर्वोंने थालीमें अग्नि भर कर उससे कहा, कि— ४१
हे राजन् ! इस अग्निसे यज्ञ करके तुम हमारे लोकमें आओगे,
तब वह राजा अपने पुत्रोंको लेकर नगरीकी ओर चला ॥ ४२ ॥
(मार्गमें) उसने अग्निको रख दिया और अपने पुत्रोंको लेकर
घरमें घुसा (इससे यह सूचित किया है, कि—अग्नि और पुत्रोंके
साथ घरमें न घुसना चाहिये इसके उपरान्त अग्निस्थानमें जाने
पर उसने) त्रेताग्निको तहाँ नहीं देखा, किन्तु एक अश्वत्थ
(पीपल) को तहाँ खड़े हुए देखा ॥ ४३ ॥ तब वह राजा
शमीजात (अग्निको छिपाने वाले) अश्वत्थको देख विस्मित
होगया और उसने गन्धर्वोंसे अग्निनाशका वृत्तान्त कहा ॥ ४४ ॥

मथित्वाऽग्निं त्रिधा कृत्वा अयजत् स नराधिपः ॥ ४५ ॥ इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् ॥४६॥ गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत् । एकोग्निः पूर्वमेवासीदैलस्त्रेतामकारयत्४७ एवंप्रभावो राजाऽऽसीदैलस्तु नरसत्तम । देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ॥ ४८ ॥ राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः । उत्तरे जान्हवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
ऐलोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सर्वे देवसुतोपमाः । दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥ १ ॥ विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथाऽपरः दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः । अमावसोश्च दायादो भीमो राजाऽथ नग्नजित् २ श्रीमान्

और उनसे सुनकर उसने अरणियोंका विधान किया, उसने अश्वत्थकी अरणी बना कर अरणीको मथकर अग्निको उत्पन्न किया और उस अग्निको मथ कर उसके तीन विभाग किये, उस अग्निसे उसने यजन किया था ॥ ४५ ॥ वह उस अग्निसे अनेक प्रकारके यज्ञ करके गन्धर्वोंकी सलोकताको प्राप्त होगया४६ राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंसे वर पाकर त्रेताग्निको रचा था, पहिले अग्नि एक ही थी, ऐलने उसको त्रेता बनाया था ॥ ४७ ॥ हे नरश्रेष्ठ!राजा पुरूरवा ऐसा प्रतापी था;उस महायशस्वी पृथ्वीपतिने महर्षियोंसे प्रशंसित गङ्गातटके उत्तर तट पर बसे हुए पवित्र प्रयागदेशमें राज्य किया था ॥ ४८–४९ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

वैशंम्पायनजीने कहा कि-ऐलके स्वर्गमें उर्वशीसे उत्पन्न हुए महात्मा-आयु बुद्धिमान्–अमावसु धर्मात्मा–विश्वायु श्रुतायु दृढायु च्यवनायु और शतायु ये सब पुत्र देवपुत्रोंकी समान थे,

भीमस्य दायादो राजाऽऽसीत् कांचनप्रभः। विद्वांस्तु कांचनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥ ३ ॥ सौहोत्रिरभवज्जन्हुः केशिन्या गर्भसंभवः। आजह्रे यो महत्सत्रं सर्वमेधमहामखम् ॥ ४ ॥ पतिलोभेन यं गंगा पतित्वेऽभिससार ह। नेच्छतः प्लावयामास तस्य गंगा च तत्सदः ॥ ५ ॥ स तथा प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समंततः। सौहोत्रिरब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम ॥ ६ ॥ एष ते विफलं यत्नं पिबन्नंभः करोम्यहम्। अस्य गंगेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ७ ॥ राजर्षिणा ततः पीतां गंगां दृष्ट्वा महर्षयः। उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जान्हवीम् ॥ ८ ॥ युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जन्हुरावहत्। युवनाश्वस्य शापेन गंगार्धेन विनि-

अमावसुके राजा भीम और नग्नजित् नामक पुत्र हुए थे १–२ भीमका पुत्र श्रीमान् राजा काञ्चनप्रभ हुआ, काञ्चनके भी विद्वान् और महाबली सुहोत्र नामक पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ सुहोत्रके केशिनीके गर्भसे जन्हु नामक पुत्र हुआ उसने जिसमें बड़ाभारी सदावर्त लगता है ऐसे सर्वमेध नामक महायज्ञको किया था ४ गङ्गा उसको पति बनानेके लोभसे उसके पास आई थी, परन्तु उस राजाके इच्छा न करने पर गङ्गाने उसकी सभाको जलसे भर दिया था ॥ ५ ॥ हे भरतसत्तम ! सुहोत्रपुत्र जन्हुने अपने यज्ञवाटको गङ्गाजीके द्वारा डूबते हुए देख कर क्रोधमें भर कर गङ्गासे कहा, कि—॥ ६ ॥ हे गङ्गे ! मैं तेरे इस जलको पीकर तेरे यत्नको व्यर्थ किये देता हूँ, हे गङ्गे ! तू इस अपनी करतूत के फलको शीघ्र ही देख ॥ ७ ॥ राजर्षिने गङ्गाजीको पीलिया यह देख कर महर्षियोंने महाभागा गङ्गाजीको उसकी पुत्री बनवा कर उसका जान्हवी (नाम रख दिया) ॥ ८ ॥ (तो क्या जन्हुकी भार्या बनना चाहने वाली गङ्गाजीका सङ्कल्प जन्हुकी पुत्री बनने पर व्यर्थ होगया, इसका उत्तर देते हैं कि–) जन्हुने

मये । कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जन्होर्भार्यामनिंदिताम् ॥९॥ जन्हुस्तु दयितं पुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम् । कावेर्यां जनयामास अजक-स्तस्य चात्मजः ॥ १० ॥ अजकस्य तु दायादो वलाकाश्वो मही-पतिः । वभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥११॥ कुश-पुत्रा वभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः । कुशिकः कुशनाभश्च कुशाश्वो मूर्तिमांस्तथा ॥ १२ ॥ पल्हवैः सह संवृद्धो राजा वनचरैस्तदा । कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमप्रभम् । लभेयमिति तं शक्रस्त्रासा-दभ्येत्य जज्ञिवान् ॥ १३ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे वै तं तु शक्रो ह्य-पश्यत । अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः ॥ १४ ॥ समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत् । पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः

युवनाश्वकी पुत्री कावेरीको विवाहा था, युवनाश्वसे शाप पाने पर गङ्गाजीने जन्हुकी भार्या अनिन्दित नदियोंमें श्रेष्ठ कावेरीको अपने आधे भागसे रचा था (किसी कारणसे युवनाश्वने गङ्गाजी को मानुपी होनेका शाप देदिया था, उसने भी उसकी पुत्री वन कर अपने संकल्पको सत्य कर लिया था) ॥ ९ ॥ जन्हुने कावेरीमें सुनह नामक धार्मिक पुत्रको उत्पन्न किया, उसका पुत्र अजक हुआ ॥ १० ॥ अजकका महीपति वलाकाश्व नामक पुत्र हुआ वह शिकार वहुत खेलता था, उसका पुत्र कुश हुआ ॥ ११ ॥ कुशके देवताकी समान कान्तिवाले कुशिक कुशनाभ कुशाश्व और मूर्तिमान् नामक चार पुत्र हुए ॥ १२ राजा कुशिक वनचारी पल्हवोंसे वढ़ गया था, कुशिकने इन्द्रकी समान प्रभाववाले पुत्रको पानेकी इच्छासे तप किया था, तव इन्द्र (कहीं मेरी समान कोई और न होजाय ऐसे) त्राससे स्वयंही उसके यहाँ पुत्र वन कर उत्पन्न हुआ था ॥ १३ ॥ सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर इन्द्रने राजाको देखा, सहस्राक्ष पुरन्दरने राजा को अति उग्र तप कर पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ देख कर उस

सुरोत्तमः ॥१५॥ स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम्। पौरुकुत्स्यभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ॥ १६ ॥ गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा । तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ॥ १७ ॥ तस्याः प्रीतोऽभवद्भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः । पुत्रार्थं कारयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ १८ ॥ उवाचाहूय तां भर्ता ऋचीको भार्गवस्ततः । उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव ॥ १९ ॥ तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभः । अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥ २० ॥ तवापि पुत्रं कल्याणि द्युतिमन्तं तपोनिधिम् । शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगु-

(के वीर्य) में अपने अंशको स्थापित कर दिया, इस प्रकार देवेन्द्र सुरोत्तम उसके पुत्र बने थे ॥ १४-१५ ॥ स्वयं भगवान् इन्द्र कुशिकपुत्र गाधि बन कर उत्पन्न हुए थे, उनकी स्त्री पुरुकुत्सकी पुत्री थी, उसमें गाधि उत्पन्न हुए थे ॥ १६ ॥ गाधि के सत्यवती नाम वाली महाभाग्यवती पुत्री उत्पन्न हुई थी प्रभु गाधिने उसको भृगुपुत्र ऋचीकको देदिया ॥ १७ ॥ उसके ऊपर उसके भर्ता भृगुवंशी भृगुनन्दनने प्रसन्न होकर गाधिके लिये और उसके लिये पुत्रके निमित्त चरु बनाया ॥ १८ ॥ फिर भृगुवंशी ऋचीकने उस सत्यवतीको बुलाकर कहा, कि तू इस चरुका उपयोग करना और इस (दूसरे) चरुको तेरी माताको उपयोगमें लाना चाहिये ॥ १९ ॥ उसके जो पुत्र होगा वह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ होगा दीप्तिमान् होगा लोकमें क्षत्रियोंसे अजेय होगा और बड़े २ क्षत्रियोंको दबाने वाला होगा ॥ २० ॥ और हे कल्याणि ! यह चरु तेरे भी द्युतिमान् तपोनिधि शमस्वरूप द्विज पुत्रको उत्पन्न करेगा ॥ २१ ॥ अपनी भार्यासे इस प्रकार कह कर तपस्यासे सदा प्रेम करने वाले भृगुनन्दन ऋचीक

नन्दनः । तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥२२॥ गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् । तीर्थयात्राप्रसंगेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः ॥ २३ ॥ चरुद्वयं गृहीत्वा तदृषेः सत्यवती तदा । चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ॥ २४ ॥माता त्वयत्यस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ । तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ।२५।अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा । धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम् ॥ २६ ॥ तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च । तामब्रवीद् द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ॥ २७ ॥ मात्राऽसि वंचिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना । जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्माऽतिदारुणः ॥ २८ ॥ भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः । विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् ॥ २९ ॥ एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती

वनको चले गए ॥२२॥ उसी समय राजा गाधि अपनी स्त्रीके साथ तीर्थयात्रा करते २ अपनी पुत्रीको देखनेके लिये ऋचीक ऋषिके आश्रम पर पहुँचे ॥ २३ ॥ तब सत्यवतीने दोनों चरु लाकर यत्नपूर्वक अपनी माताके सामने धर दिये ॥ २४ ॥ तब दैववश माताने चरु बदल कर पुत्रीको अपना चरु देदिया और उसने अज्ञान (अर्थात् मेरा पुत्र ऋषिकी समान होजावे) से पुत्रीके चरुका भक्षण किया २५ इसके उपरान्त सत्यवतीने क्षत्रियोंको नष्ट करने वाले गर्भको धारण कर लिया,तब उसका शरीर कान्तिके कारण घोर दीखने लगा २६ उसको देख कर ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋचीक ध्यान धर सब बातोंको जान कर अपनी वरवर्णिनी स्त्रीसे कहने लगे कि--२७ हे भद्रे ! माताने तुझे ठग लिया है,चरुमें लौटफेर होनेसे तेरा पुत्र अति दारुण क्रूरकर्म करनेवाला होगा२८और तेरा भाई तपको धन माननेवाला और ब्रह्मस्वरूप होगा मैने तपके द्वारा उसमें सारा वेद भर दिया है२९

तदा । प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् । ब्रह्मणापसदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवं तु ॥ ३० ॥ नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति । उग्रकर्मा भवेत् पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् । पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाऽब्रवीदिदम् ॥ ३१ । इच्छंल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् । शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ॥ ३२ ॥ काममेवं विधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो । यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेतद्द्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ ततः प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात्। भद्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि। त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥ ३४ ॥ ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् । तप-

---

भर्ताके इसप्रकार कहने पर महाभाग सत्यवती स्वामीको प्रसन्न करके कहने लगी, "ऐसा ब्राह्मणोंको कलंक लगाने वाला पुत्र मेरे न हो" तब मुनिने उससे कहा, कि-॥३०॥ हे भद्रे ! पिता और माताके कारण पुत्र उग्रकर्मा होजाता है मैंने तो (उग्रकर्मा) पुत्रकी कामना नहीं की थी (किन्तु तेरे प्रमादवश ही चरुका फेर होगया है) अत-एव ऐसा ही पुत्र होगा, इस प्रकार कहने पर-सत्यवतीने फिर कहा, कि—॥ ३१ ॥ हे मुने ! आप चाहें तो तीनों लोकोंको रच सकते हैं, फिर पुत्रकी तो बात ही क्या है ? आपको मुझे शमपरायण सरल पुत्र देना चाहिये ॥३२॥ और हे द्विजोत्तम ! यदि इस बातको लौटा न जासके तो भले ही आपका और मेरा पौत्र ऐसा होजाय ॥ ३३ ॥ तब उन्होंने तपोबलसे उसके ऊपर अनुग्रह किया, और कहा, कि हे भद्रे ! हे वरवर्णिनि ! मैं (पुत्रमें)और पौत्रमें कुछ भेद नहीं समझता [क्योंकि- आत्मा वै पुत्र नामासि] अतः तूने जो बात कही है, वह वैसी ही होगी ॥ ३४ ॥ तब सत्यवतीने तपमें लीन रहने वाले चतुर और शमपरायण जमदग्नि नामक भृगुवंशी पुत्रको

स्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥ ३५ ॥ भृगोश्चरुवि
पर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा । यजनाद्वैष्णवेऽथांशे जमदग्निरजा-
यत ॥ ३६ ॥ स हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा । कौशि-
कीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ३७ इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणु-
र्नाम नराधिपः । तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ३८
रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः ।आर्चीको जनयामास
जामदग्न्यं सुदारुणम् ॥३९॥ सर्वविद्यानुगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पार-
गम् । रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥४०॥ और्वस्यै-
वमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ।जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्म-
विदाम्वरः॥४१॥ मध्यमश्च शुनःशेफः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ॥ ४२ ॥ जनया-
मास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् । प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽगं

उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ रुद्र और विष्णुके चरुके विपर्यास होने
पर भी भृगुके यजन करने पर वैष्णवांश भी शमात्मक जमदग्नि-
रूपमें उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ वह पुण्यमयी सत्यधर्ममें परायण
रहने वाली सत्यवती कौशिकी नामकी नदी प्रसिद्ध होकर बह
रही है ॥ ३७ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें रेणु नामक राजा हुआ, उसके
कामली रेणुका नाम वाली पुत्री उत्पन्न हुई थी ॥ ३८ ॥
तप और विद्यासंपन्न ऋचीकपुत्र जमदग्निने उस कामली रेणुका
में अतिदारुण जामदग्न्य परशुरामको उत्पन्न किया था ।३९।
वे श्रेष्ठ सब विद्याओंको जानने वाले धनुर्वेदके पारगामी क्षत्रियों
के नाशक और प्रज्वलित अग्निकी समान थे ४० और्ववंशी
ऋचीकके सत्यवतीसे तपोबलके कारण ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ
जमदग्निनामक पुत्र हुए थे ४१ और विचले शुनःशेफ और
कनिष्ठ शुनःपुच्छ हुए थे और कुशिकनन्दन गाधिने तप
विद्या और शमसम्पन्न विश्वामित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया

सप्तर्षितां गतः ॥ ४३ ॥ विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः । जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्धनः ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रस्य तु सुता देवरातादयः स्मृताः । प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥ ४५ ॥ देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः।शालावत्या हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ॥ ४६ ॥ सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुतः ४६ मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः ॥ ४७ ॥ कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य वै सुताः । तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥ पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च । पार्थिवा देवरातश्च शालंकायनबाष्कलाः ॥ ४९ ॥ लोहिता यामदूताश्च तथा कारीषवः स्मृताः । सौश्रुताः कौशिका राजंस्तथाऽन्ये सैंधवायनाः ॥ ५० ॥ देवला रेणवश्चैव याज्ञ-

ये विश्वामित्र ब्रह्मर्षियोंकी समान होकर सप्तर्षियोंमें माने जाने लगे थे ॥ ४२-४३ ॥ वंशवर्धन धर्मात्मा विश्वामित्र भृगुवंशीके प्रसादसे कौशिकसे विश्वरथ नामसे उत्पन्न हुए थे ४४ विश्वामित्रके देवरात आदि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध पुत्र हैं उनके नामको तुम मुझसे सुनो ॥ ४५ ॥ शालावतीसे देवरथ हिरण्याक्ष और कति नामक पुत्र हुए इनके पुत्र कात्यायन कहलाते हैं और रेणु से रेणुमान् सांकृति गालव मुद्गल मधुच्छन्द जय और देवल नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए और (दृषद्वतीसे) अष्टक कच्छप और हारीत नामक विश्वामित्रके पुत्र हुए इन महात्मा कौशिकों के गोत्र प्रसिद्ध हैं ॥४६-४८॥ हे राजन् ! विश्वामित्रके पाणिन बभ्रव ध्यानजप्य पार्थिव देवरात शालंकायन बाष्कल लोहित यामदूत कारीषव सौश्रुत और सैंधवायन (गोत्र) प्रसिद्ध है ॥४९-५०॥ देवल (देवपुत्र)रेणव (रेणुके पौत्र) याज्ञवल्क्य अघमर्षण औदुम्बर अभिष्णात तारकायन और चुञ्चुल(ये छः)

वल्कयाश्चमर्षणाःऔदुम्बरा ह्यभिष्णातास्तारकायनचुञ्चुलाः५१
शालावत्या हिरण्याक्षाः सांकृत्या गालवास्तथा । बादरायणिन-
श्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः॥५२॥ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका
बहवः स्मृताःपौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च । संबंधो-
ऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रा-
त्मजानां तु शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः । भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः
स मुनिसत्तमः ॥ ५४ ॥ विश्वमित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेफोऽभवत्
किल । हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥ ५५ ॥ देवै-
र्दत्तः शुनःशेफो विश्वामित्राय वै पुनः । देवैर्दत्तः स वै यस्मा-
द्देवरातस्ततोऽभवत् ॥ ५६ ॥ देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै
सुताः । दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥ ५७ ॥ अष्ट-

---

शालावतीके पुत्र शालावत्य और हिरण्याक्ष (रेणुके पौत्र)
सांकृत्य और गालव (रेणुके पौत्र) और बादरायणिन ये विश्वा-
मित्रके (गोत्र) हैं ॥ ५१-५२ ॥ इन सांकृत्य आदिका ऋषि
और प्रवर भेदसे (इनकेसे नाम वाले) ऋषियोंमें भी विवाह
हुआ है, कौशिकगोत्री बहुतसे प्रसिद्ध हैं, इस वंशमें राजा पौरव
का और ब्रह्मर्षि वसिष्ठके साथ कौशिकका सम्बन्ध भी प्रसिद्ध
है ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेफ सबसे बड़े पुत्र कह-
लाते हैं, वह मुनिश्रेष्ठ भार्गव होने पर भी कौशिक होगए थे
(यह कल्पान्तरकी बात है) ॥ ५४ ॥ विश्वामित्रके शुनःशेफ
नाम वाले पुत्रको हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनाया गया था ५५
फिर देवताओंने शुनःशेफको फिर विश्वामित्रके अर्पण कर दिया
था,देवताओंका दिया हुआ था,इस कारण वह देवरात (देवै रातः-
दत्तः) कहलाने लगा था ॥ ५६ ॥ देवरात आदि विश्वामित्रके
सात पुत्र हैं और विश्वामित्रसे दृषद्वतीमें जो अष्टक नामक पुत्र
हुआ था, उस अष्टकका पुत्र लौहि हुआ इसप्रकार मैंने जन्हु

कस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जन्हुगणो मया । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि अमावसुवंशकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

वैशंपायन उवाच । आयोः पुत्रास्तथा पञ्च सर्वे वीरा महारथाः । स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृप ॥ १ ॥ नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम् । रंभो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ २ ॥ रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै । राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिंद्रभयावहम् ॥ ३ ॥ यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे । देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाऽब्रुवन् ॥ ४ ॥आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति । ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छामि ते वचः ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच । येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः । योत्स्यते ते जयिष्यन्ति

(का वंश)गण कह दिया,अब मैं महात्मा आयुके वंशको कहता हूँ ॥ ५७-५८ ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे राजन् ! स्वर्भानुकी पुत्री प्रभामें आयुके पाँच महावीर पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ नहुष प्रथम उत्पन्न हुआ तदनन्तर वृद्धशर्मा उत्पन्न हुआ, तदनन्तर रम्भ रजि और अनेना उत्पन्न हुए, ये त्रिलोकीमें प्रसिद्ध हैं २ रजिने पाँच सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया था, वह इन्द्रको भय उत्पन्न करने वाला क्षत्रियोंका समूह राजेय नामसे प्रसिद्ध है३ एक समय दारुण देवासुर संग्रामके उपस्थित होने पर देवता और असुरोंने पितामहसे कहा कि-॥ ४ ॥ हे भगवन् ! हम दोनोंके युद्धमें कौन जीतेगा; हे भूतेश ! आप हमसे सत्य बात कहिये-हम आपके वचनको सुनना चाहते हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-" प्रभु रजि शस्त्र पकड़ कर जिसका पक्ष ग्रहण

त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥ ६ ॥ यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः । यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥ ७ ॥ ते देवदानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजेर्जये । अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृणवाना भरतर्षभम् ॥ ८ ॥ स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत । राजा परमतेजस्वी सोमवंशप्रवर्धनः ॥ ९ ॥ ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं दैतेयदेवनाः । ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥ १० ॥ अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः । स्वार्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥ ११ ॥ रजिरुवाच । यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा शक्रपुरोगमाः । इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ १२ ॥ देवाः प्रथमतो भूय प्रत्यूचुर्हृष्ट-

---

करेगा वही तीनों लोकोंको जीत लेगा ॥ ६ ॥ जहाँ रजि होगा तहाँ धृति होगी और जहाँ धृति होगी तहाँ लक्ष्मी होगी और जहाँ पर श्री (लक्ष्मी) और धृति होगी उस पक्षकी विजय अवश्य होगी" ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीके कहने पर कि-रजि जिसका पक्ष लेगा उस पक्षकी जय होगी, यह सुन कर देवता और दानव प्रसन्न होकर अपनी २ विजय चाहते हुए भरतर्षभ रजिसे अपने २ पक्षको ग्रहण करनेको कहनेके लिये गए ॥८॥ वह सोमवंशको बढ़ाने वाला परमतेजस्वी राजा राहुका धेवता था और प्रभासे उत्पन्न हुआ था ॥ ९ ॥ वे दैत्य और दानव मनमें प्रसन्न होकर रजिसे कहने लगे कि-आप हमारी विजय के लिये श्रेष्ठ धनुषको ग्रहण करिये ॥ १० ॥ स्वार्थको जानने वाला राजा रजि अपने स्वार्थकी ओर लक्ष्य कर अपने यशको प्रकाशित करता हुआ देवता और दैत्योंसे कहने लगा ॥११॥ रजिने कहा, कि- हे शक्र आदि देवताओं ! यदि मैं सब दैत्यों को जीत कर धर्मपूर्वक इन्द्र बन सकूँ तो युद्धमें युद्ध करूँगा १२ तब तो देवता चित्तमें पहिलेसे भी अधिक हर्षित होकर कहने

मानसाः । एवं यथेष्टं नृपते कामः संपद्यतां तव ॥ १३ ॥ श्रुत्वा सुरगणानां तु वाक्यं राजा रजिस्तदा । पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥ १४ ॥ दानवा दर्पपूर्णास्तु स्वार्थमेवानुगम्य ह । प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः॥१५॥ अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे। अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा राजसत्तम ॥१६॥ स तथेति ब्रुवन्नेव दैत्यैरप्यभिचोदितः। भविष्यसींद्रो जित्वैवं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः । जघान दानवान् सर्वान् ये वध्या वज्रपाणिनः ॥ १७ ॥ स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी । निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः ॥१८॥ ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः । रजेः पुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ १९ ॥ इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र

लगे, कि-हे राजन्! आपकी यह इच्छा यथेष्टरूपसे पूर्ण होगी १३ देवताओंकी इस बातको सुन कर राजा रजिने जिस प्रकार देवताओंसे कहा था, उसी प्रकार मुख्य २ असुरोंसे बूझा।१४। उस समय दानवोंने अपने स्वार्थका अनुसरण कर अभिमानपूर्वक उस राजासे यह बात कही, कि-॥ १५ ॥ हमारा इन्द्र तो प्रल्हाद होगा, हम उसके लिऐ ही लड़ रहे हैं,-हे राजसत्तम! तुम इन (देवताओंकी) प्रतिज्ञा पर ही दृढ़ रहो अर्थात् तुम देवताओंके ही इन्द्र बनो, हमैं तुम्हारी अपेक्षा नहीं है ॥१६॥ तब राजाके दैत्योंसे तथास्तु कहने पर भी देवताओंने उससे फिर कहा, कि-जीतनेके अनन्तर आप ही इन्द्र बनेंगे,देवताओंके इस प्रकार कहने पर राजाने इन्द्रके मारने योग्य सब राक्षसोंको मार डाला ॥ १७ ॥ इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले रजिने देवताओंकी खोईहुई परमलक्ष्मी सब दानवोंको मार कर फिर लौटा ली ॥ १८ ॥ उस समय देवराज इन्द्रने देवताओंको साथ में लेकर महावीर्य रजिसे कहा कि मैं रजिका पुत्र हूँ,फिर उसने

संशयः । यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः ॥२०॥ स तु शक्रवचः श्रुत्वा वंचितस्तेन मायया । तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ । दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारात्तनया रजेः ॥ २२ ॥ पंच पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः । समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥ २३ ॥ततो बहुतिथे काले समतीते महाबलः । हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥२४॥ इन्द्र उवाच । बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे । ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितः सदा ॥ २५ ॥ ब्रह्मन् कृशोऽहं विमना हृतराज्यो हृताशनः ।हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः कृतः प्रभो२६ बृहस्पतिरुवाच । यद्येवं चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्वमेव हि ।

कहा, कि-॥ १९ ॥ हे तात ! आप हम सबोंके इन्द्र हैं, इसमें सन्देह ही क्या है ? ॥ २० ॥ इन्द्रकी बात सुन कर राजा उसकी मायामें फँस गया और उसने प्रसन्न होकर राजासे तथास्तु कह दिया ॥ २१ ॥ उस देवसमान राजाके स्वर्गमें पहुँचने पर आचारके अनुसार उसके सब पुत्र उसके दायाद्य (इन्द्रपद) को भोगने लगे (क्योंकि-पिताके धनको सब ही पुत्रोंको समानभावसे भोगना चाहिये)। २२ ॥ उसके पाँच सौ पुत्र थे वे सब इन्द्रके स्थान स्वर्गलोकको भोगने लगे ॥ २३ ॥ तब बहुतसा समय बीतजानेपर जिसका राज्य छिन गया था और जिसका भाग छीना जारहाथा ऐसा इन्द्र बृहस्पतिसे कहने लगा २४ इन्द्रने कहा, कि-हे ब्रह्मर्षि ! आप मेरा बेरकी समान ही भाग नियत कर दीजिये, हे ब्रह्मर्षे ! जिससे मैं उससे आप्यायित होकर ठहरा रह सकूँ ॥२५॥ हे ब्रह्मन् ! मैं भोजन और राज्य के न मिलनेसे दुबला होरहा हूँ, हे प्रभो ! रजिके पुत्रोंने मुझे दुर्बल और निस्तेज तथा मूढ बना दिया है२ बृहस्पतिने कहा,

नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्तव्यं ममानघ ॥२७॥ प्रयतिष्यामि देवेंद्र त्वत्प्रियार्थं न संशयः । यथाभागं च राज्यं च न चिरात् प्रतिलप्स्यसे ॥ २८ ॥ तथा तात करिष्यामि मा भूत्ते विक्लवं मनः । ततः कर्म चकारास्य तेजसो वर्धनं तदा ॥ २९ ॥ तेषां च बुद्धिसंमोहमकरोद्द्विजसत्तमः । नास्ति वादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषणं परम् ॥ ३० ॥ परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोगतम् । न हि धर्मप्रधानानां रोचते तत्कथांतरे ॥ ३१ ॥ ते तद्बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाऽल्पचेतसः । पूर्वोक्तधर्मशास्त्राणामभवन् द्वेषिणः सदा ॥ ३२ ॥ प्रवक्तुर्न्यायरहितं तन्मतं बहु मेनिरे । तेनाधर्मेण ते पापाः सर्वे एव क्षयं गताः ॥ ३३ ॥ त्रैलोक्यराज्यं शक्रस्तु प्राप्य दुष्प्रापमेव च । बृहस्पतिप्रसादद्धि परां निर्वृतिमभ्ययात्३४

कि—हे शक्र ! यदि तू पहिलेसे मुझसे यह बात कहता तो ऐसा कोई कार्य नहीं था, जो मैं तेरे लिये नहीं कर सकता था२७ हे देवेन्द्र ! मैं तेरे लिये अवश्य ही ऐसा प्रयत्न करूँगा, तब तू शीघ्र ही अपना राज्य और भाग पावेगा ॥ २८ ॥ हे तात ! तू अपने मनको मैला न कर, हे तात ! मैं ऐसा ही करूँगा तदनन्तर वह द्विजश्रेष्ठ उनकी बुद्धिको मोहमें डालने वाले और इन्द्रके तेजको बढ़ाने वाले कर्मको करने लगे, वाद मय शास्त्रकासा और कोई कर्म विद्वेष फैलाने वाला नहीं है ॥ ३० ॥ यह परम तर्कशास्त्र है और असज्जन इसको सर्वदा अपने मनमें रखते हैं और धर्मप्रधान मनुष्योंको यह अच्छा नहीं लगता है ॥ ३१ ॥ परन्तु वे मन्दबुद्धि बृहस्पतिजीके बनाये हुए इस शास्त्रको सुन कर पूर्वोक्त धर्मशास्त्रोंसे द्वेष करने लगे ३२ वक्ताके उस न्यायशून्य मतको उन्होंने बहुत माना, उस अधर्मसे वे सब पापी क्षयको प्राप्त होगए ३३इन्द्र बृहस्पतिजीके प्रसादसे त्रिलोकीके दुष्प्राप्य राज्यको पाकर परम आनन्दित हुआ ३४

ते यदा तु सुसंमूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः । ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ॥ ३५ ॥ ततो लेभे सुरैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् । हत्वा रजिसुतान सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ३६ य इदं च्यावनं स्थानात् प्रतिष्ठां च शतक्रतोः । शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
आयुर्वंशकीर्त्तनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

वैशम्पायन उवाच । रम्भोऽनपत्यस्तत्रासीद्वंशं वक्ष्याम्यनेनसः । अननेसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥ १ ॥ प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृञ्जयो नाम विश्रुतः । सृञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥ २ ॥ विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वतः सुतः । हर्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३ ॥ सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः । नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य

वे जब रागसे उन्मत्त मूढ़ विधर्मी ब्रह्मद्वेषी और निर्वीर्य होगये ३५ तब इन्द्रने काम और क्रोधमें परायण रहने वाले रजिके पुत्रोंको मार कर उत्तम देवैश्वर्य पाया था ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इन्द्रके इसस्थानसे भ्रष्ट होनेकी और उस पर फिर आरूढ़ होनेकी कथा को सुनता है वा इसको धारण करता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती है ॥ ३७ ॥ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

वैशंपायन कहते हैं, कि—उनमें रंभ निःसन्तान था अतः मैं अनेनाके वंशको कहता हूँ, अनेनाके प्रतिक्षत्र नामक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ प्रतिक्षत्रका पुत्र सृञ्जय नामसे प्रसिद्ध है, सृञ्जयके जय हुआ और जयके विजय नामक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ विजयके कृति नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र हयर्श्वत हुआ उसके सहदेव नामक प्रतापी पुत्र हुआ ३ सहदेवके धर्मात्मा नदीन नामक पुत्र हुआ, नदीनके जयत्सेन और जयत्सेन

संकृतिः ॥४॥ संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः । अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य मे शृणु ॥ ५ ॥ क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः । सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥६॥ काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः । पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च । शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तनूजस्तस्य काशकः ॥८॥ काशस्य काशयो राजन् पुत्रो दीर्घतपास्तथा । धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ॥ ६ ॥ तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः । पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् ॥१०॥ जनमेजय उवाच । कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् । एतद्वे-

---

के संकृति नामक पुत्र हुआ ॥४॥ संकृतिके भी धर्मात्मा क्षत्रधर्मा नामक महायशस्वी पुत्र हुआ, अनेनाके वंशजोंका वर्णन कर दिया अब तुम क्षत्रवृद्धके वंशजोंको सुनो ॥ ५ ॥ क्षत्रवृद्ध अर्थात् वृद्धशर्मा उपनाम वाले राजाका सुनहोत्र नामक महायशस्वी पुत्र हुआ सुनहोत्रके परमधार्मिक तीन पुत्र हुए ६ काश और शल ये दो और (तीसरा) प्रभु गृत्समद गृत्समदके शुनक नामक पुत्र हुआ उसके वंशज शौनक कहलाते हैं ॥ ७ ॥ गृत्समदकी सन्ततिमें शुनक आदि ब्राह्मण हुए थे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र पुत्र भी उत्पन्न हुए। (सुनहोत्रके मध्यम पुत्र) शलके आर्ष्टिषेण नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र काशक हुआ ॥ ८ ॥ (शुनहोत्रके प्रथम पुत्र) काशके हे राजन् ! काशि नामक पुत्र हुए और (उनमें पहिला) दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ, दीर्घतपाके धन्व हुआ वह विद्वान् फिर धन्वन्तरि कहलाने लगा था ॥ ६ ॥ वह बुद्धिमान् राजा दीर्घतपाके वृद्ध होकर तप करने पर उत्पन्न हुआ था वह धन्वन्तरि देवता फिर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ था ॥ १० ॥ जनमे-

दितुमिच्छामि तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥११॥ वैशम्पायन उवाच । धन्वन्तरेः संभवोऽयं श्रूयतां भरतर्षभ । जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुराऽमृते ॥ १२ ॥ उत्पन्नः कलशात् पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः । अभ्यासन् सिद्धिकार्ये हि विष्णुं दृष्ट्वा हि तस्थिवान् ॥ १३ ॥ अब्जस्त्वमिति होवाच तस्मादब्जस्तु सः स्मृतः । अब्जः प्रोवाच विष्णुं वै तव पुत्रोऽस्मि वै प्रभो ॥ १४ ॥ विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोकं सुरेश्वर । एवमुक्तः स दृष्ट्वा वै तथ्यं प्रोवाच तं प्रभुः ॥ १५ ॥ कृतो यज्ञविभागो हि यज्ञियैर्हि सुरैः पुरा । देवेषु विनियुक्तं हि विद्धि होत्रं महर्षिभिः १६ न शक्यमुपहोमा वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन । अर्वाग्भूतोऽसि देवानां

जयने कहा, कि—धन्वन्तरि देवता मनुष्योंमें फिर कैसे उत्पन्न हुए थे, मैं इसको जानना चाहता हूँ अतः आप यथार्थरीतिसे इनका वृत्तान्त कहिये ॥ ११ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे भरतर्षभ ! तुम धन्वन्तरिकी उत्पत्तिको सुनो, पहिले अमृतके लिये समुद्रको मथने पर वह समुद्रमेंसे निकले थे ॥ १२ ॥ वह समुद्रमेंसे सब ओरसे सुशोभित हो विष्णुका ध्यान करते हुए निकले थे और उनको देखकर खड़े होगए१३विष्णुने उनसे अब्ज (जलसे उत्पन्न हुए) कहा, इस लिये वे अब्ज कहलाते हैं, अब्जने विष्णुसे कहा, कि—हे प्रभो ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ१४ हे सुरेश्वर ! अब आप कृपा करके मेरा भाग और लोक नियत कर दीजिये इस प्रकार कहने पर उन्होंने तथ्य बात कहीकि १५ यज्ञमें भाग पाने वाले देवताओंने पहिले (यज्ञके पदार्थों) का विभाग कर लिया है महर्षियोंने देवताओंके लिये यज्ञ भागको बाँट दिया है ॥१६॥छोटे २ होम तेरे अर्पण करना अनुचित है (तब मुख्य होमका मेरे लिये विधान कर दीजिये ऐसा न कहे, इस लिये कहा, कि--) हे पुत्र ! तू देवताओंमें पीछे उत्पन्न

पुत्र त्वं तु न हीश्वरः॥१७॥द्वितीयायां तु संभूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि। अणिमादिश्च ते सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति १८ तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो। चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यै-र्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः॥ १९ ॥ अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि। अवश्यम्भावि ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना २०

हुआ है, अतः तू भाग पानेमें समर्थ नहीं होसकता परन्तु तू दूसरे जन्ममें प्रसिद्धि पावेगा और तू जब गर्भमें होगा तब ही तुझे अणिमा सिद्धि मिल जावेगी ॥ १८ ॥ हे प्रभो! तू उसी शरीरसे देवत्वको प्राप्त होगा और द्विजातिके पुरुष चरु मन्त्र व्रत और जपनेके मन्त्रोंसे तेरा यजन करेंगे (भाव यह है, कि-सीढ़ी पर चढ़नेके क्रमसे अधिकाररूपी अग्निके द्वारा ऊर्ध्वपद पर आरूढ़ होने पर पहिले भूमिमें कर्म करनेसे कृत-कृत्य दूसरा हुआ पुरुष उस पद पर आरूढ़ होता है, मन्वन्तरा-ध्यायमें भी कहा है, कि-"कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्। ततोऽन्ये तपसा युक्ता स्थानमापूरयन्त्युत-अर्थात् पुरुष कर्म करके सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं तब दूसरे तपोबल वाले पुरुष उस पदकी पूर्ति कर देते हैं") ॥ १९ ॥ तब तू आठ प्रकारके आयुर्वेदको रचेगा यह बात अवश्य होगी और इसको कमलयोनि ब्रह्माजीने पहिले (कल्पमें भी देखा था (चिकित्साके भेदसे आयुर्वेद भी आठ प्रकारका कहलाता है, उन आठ अङ्गोंका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं, कि-"काय-बालग्रहोर्ध्वांगशल्यदंष्ट्राजरावृशान्।अष्टावंगानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता-अर्थात् शारीरिकचिकित्सा बालचिकित्सा भूत-प्रेत आदिग्रहचिकित्सा ऊपरी अंग शिर नेत्र आदिकी चिकित्सा शल्यचिकित्सा अर्थात् चीर फाड़ दंष्ट्राचिकित्सा अर्थात् स्थावर जंगम विषकी चिकित्सा जराचिकित्सा अर्थात् रस आदिके द्वारा

द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः । इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः ॥ २१ ॥ द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रिः स स काशिराट् । पुत्रकामस्तपस्तेपे धिन्वन् दीर्घतपास्तदा ॥२२॥ प्रपद्ये देवतां तान्तु या मे पुत्रं प्रदास्यति । अब्जं देवं सुतार्थाय तदाऽराधितवान्नृपः ॥ २३ ॥ ततस्तुष्टः स भगवानब्जः प्रोवाच तं नृपम् । यदीच्छसि वरं ब्रूहि तत्ते दास्यामि सुव्रत ॥ २४ ॥ नृप उवाच । भगवन् यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे ख्यातिमान् भव । तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ २५ ॥ तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा । काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः ॥२६॥ आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम् ।

जरा-बुढ़ापे-को दूर करना वृषचिकित्सा अर्थात् वाजीकरण ये आठ वैद्यकके अंग हैं इनमें चिकित्सा शास्त्र भरा हुआ है) २० तू दूसरे द्वापरयुगके आने पर उत्पन्न होगा भगवान् विष्णु इस प्रकार वर देकर अन्तर्धान होगए ॥ २१ ॥ दूसरे द्वापर युगके आने पर सुनहोत्रका पुत्र काशिराज दीर्घतपा पुत्रकी कामनासे देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगा २२ [उसने अपने मनमें विचार किया था कि—] मैं उस देवताकी उपासना करूँ, जो मुझे पुत्र प्रदान कर सके फिर वह राजा पुत्र पानेके लिये अब्ज देवताकी आराधना करने लगा ॥ २३ ॥ तब भगवान् अब्ज अर्थात् धन्वन्तरि उससे प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—तू जिस वरको चाहता हो उसे माँग ले, हे सुव्रत ! उस वरको मैं तुझे दूँगा ॥ २४ ॥ राजाने कहा, कि—हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हों तो आप मेरे प्रसिद्ध पुत्र बनिये, तब धन्वन्तरि तथास्तु कह कर अन्तर्धान होगए ॥ २५ ॥ फिर देव धन्वन्तरि उसके घरमें सब रोगोंको नष्ट करने वाले काशिराज बन कर उत्पन्न हुए ॥ २६ ॥ उन्होंने भरद्वाज ऋषिसे आयु-

तपसृष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥ २७ ॥ धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः । अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥२८॥ सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः । दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपो भवत् ॥२९॥ एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप । शून्यां निवासयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ ३० ॥ शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशयः ॥३१॥ तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः । विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां सन्यवेशयत्॥ ३२ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ३३ ॥ हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभः ।भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं तेन बलीयसा ॥ ३४ ॥ जनमेजय उवाच । वाराणसीं निकुम्भस्तु किमर्थं

वेद और चिकित्साप्रक्रियाको सीख कर उसके आठ विभाग किये और शिष्योंको पढ़ाया था २७ धन्वन्तरिका पुत्र केतुमान् नामसे प्रसिद्ध है और केतुमान्का पुत्र वीर भीमरथ कहलाता है ॥ २८ ॥ भीमरथका पुत्र दिवोदास प्रजाधीश प्रसिद्ध था धर्मात्मा दिवोदास वाराणसीका स्वामी होगया था ॥ २९ ॥ दिवोदासके राज्यकालमें शून्य पड़ी हुई वाराणसीको क्षेमक नाम वाले राक्षसने बसाया था ॥ ३० ॥ महात्मा निकुंभने उसको शाप दिया था, कि-तू एक सहस्र वर्ष तक शून्य पड़ी रहेगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ३१ प्रजेश्वर दिवोदासने उस शासनकालमें अपने देशके पास गोमतीके तट पर रमणीय पुरी बसाई थी ॥३२॥ पहिले [यदुवंशी महिष्मान्के पुत्र] भद्रश्रेण्य की वाराणसी पुरी थी,भद्रश्रेण्यके सौ उत्तम धनुर्धर पुत्र थे ३३ उनको मार कर नरश्रेष्ठ बली दिवोदासने राजा भद्रश्रेण्यके राज्यको छीन लिया था ॥ ३४ ॥ जनमेजयने कहा, कि-प्रभु

शप्तवान् प्रभुः । निकुम्भः कश्च धर्मात्मा सिद्धिक्षेत्रं शशाप यः॥३५॥ वैशम्पायन उवाच । दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः । वसति स्म महातेजाः स्फीतायां तु नराधिपः ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः । देव्याः स प्रियकामस्तु न्यवसच्छ्वशुरान्तिके ॥ ३७ ॥ देवाज्ञया पार्षदा ये त्वधिरूपास्तपोधनाः । पूर्वोक्तैरुपदेशैश्च तोषयन्ति स्म पार्वतीम्॥ ३८ ॥ हृष्यते वै महादेवी मेना नैव प्रहृष्यति । जुगुप्सत्यसकृत्तां वै देवीं देवं तथैव सा ॥३९॥सपार्षदस्त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः । दरिद्रः सर्वदैवासौ शीलं तस्य न वर्तते ॥ ४० ॥ मात्रा तथोक्ता वरदा स्त्रीस्वभावाच्च चुक्रुधे । स्मितं कृत्वा च वरदा भवपार्श्वमथागमत् ॥ ४१ ॥ विवर्णवदना देवी महादेवमभाषत । नेह वत्स्या-

---

निकुम्भने वाराणसीको किस लिये शाप दिया था, और जिन्होंने सिद्धिक्षेत्र अर्थात् मोक्षक्षेत्र काशीको शाप दिया था वह निकुम्भ कौन थे ॥ ३५ ॥ वैशम्पायनजीने कहा कि महातेजस्वी राजा दिवोदास नगरीको पाकर उसमें रहने लगा ॥ ३६ ॥ इसी समय भगवान् महादेव विवाह करके पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने श्वसुरके भवनमें रहते थे [इसी समय दिवोदासने वाराणसी पाई थी]३७उस समय तपको धन माननेवाले जो योग्य पार्षद थे वे शिवकी आज्ञासे उनके पहिले दिये हुए उपदेशके अनुसार पार्वतीको सन्तुष्ट करते रहते थे॥३८॥ उससमय देवी पार्वती तो प्रसन्न रहती थी परन्तु [पार्वतीकी माता] मेना प्रसन्न नहीं रहती थी,वह तो महादेव और देवी पार्वतीकी सदा निन्दा ही करती थी, कि-॥३९॥ तेरा भर्ता और उसके अनुचर अनाचारी हैं दरिद्र हैं और उनमें शीलका तो पता ही नहीं है४०माताके इस प्रकार कहने पर वह वरदान देने वाली स्त्रीस्वभावके कारण क्रोधमें भरगई और मुस्कराती हुई शिवजी

म्यहं देव नय मां स्वं निकेतनम् ॥ ४२ ॥ तथा कर्तुं महादेवः सर्वलोकानवैक्षत । वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां कुरुनन्दन ४३ वाराणसीं महातेजाः सिद्धिक्षेत्रं महेश्वरः । दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः॥४४॥पार्श्वे तिष्ठन्तमाहूय निकुम्भमिदमब्रवीत् । गणेश्वरपुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु ॥४५॥ मृदुनैवाभ्युपायेन ह्यतिवीर्यः स पार्थिवः । ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं तदा ॥ ४६ ॥ स्वप्ने निदर्शयामास कण्डुकं नाम नापितम् । श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रचयाऽनघ ४७ मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते तथैव च । ततः स्वप्ने यथोद्दिष्टं सर्वं कारितवान्नृप ॥४८॥ पुरीद्वारे तु विज्ञाप्य राजानं च यथाविधि । पूजां तु महतीं तस्य नित्यमेव प्रयोजयत् ॥४९॥ गन्धैश्च

के पास चली गई ४१ और वह उतरे हुए मुखसे महादेवजी से कहने लगी, कि-हे देव ! मैं यहाँ रहना नहीं चाहती, आप मुझे अपने घर ले चलिये ॥ ४२ ॥ तब महादेवजीने ऐसा करने के लिये सब लोकोंकी ओर दृष्टि डाली,और हे कुरुनन्दन!उन्होंने निवास करनेके लिये सिद्धिक्षेत्र वाराणसीको मनोनीत किया फिर महातेजस्वी महेश्वरने उस नगरीमें दिवोदासको वसते देख कर ॥ ४४ ॥ अपने समीपमें खड़े हुए निकुम्भको बुला कर कहा, कि-तू गणेश्वरपुरीमें जाकर उसको खाली करवा दे ४५ तू कोमल उपायसे उसको खाली करवाना, क्योंकि-वह राजा महाबली है, तब उसने वाराणसी पुरीमें जाकर कण्डुक नाम वाले नाईको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा, कि-हे निष्पाप ! तू मेरा स्थान बना तो मैं तेरा कल्याण करूँगा ॥ ४६॥४७ ॥ तू मेरी समान प्रतिमा बना कर नगरीके बाहर स्थापित करना, हे राजन् ! तब उसने राजाकी आज्ञा लेकर नगरीके बाहर स्वप्नके कथनानुसार सब कुछ किया और प्रति दिन उसकी

धूपमाल्यैश्च मोक्षणीयैस्तथैव च । अन्नपानप्रयोगैश्च अत्यद्भुत-
मिवाभवत् ॥५० एवं संपूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः । ततो वर-
सहस्रन्तु नागराणां प्रयच्छति। पुत्रान् हिरण्यमायुश्च सर्वान् कामां-
स्तथैव च ॥ ५१ ॥ राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता ।
पुत्रार्थमागता देवी साध्वी राज्ञा प्रचोदिता ॥ ५२ ॥ पूजां तु
विपुलां कृत्वा देवी पुत्रमयाचत । पुनः पुनरथागत्य बहुशः पुत्र-
कारणात् ॥ ५३ ॥ न प्रयच्छति पुत्रं हि निकुम्भः कारणेन हि
राजा तु यदि नः कुप्येत् कार्यसिद्धिस्ततो भवेत् ॥ ५४ ॥ अथ
दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् । भूत एष महान् द्वारि
नागराणां प्रयच्छति ॥ ५५ ॥ प्रीतो वरान् वै शतशो मम किं
न प्रयच्छति । मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मे सदैव हि ।५६।

बड़ी भारी पूजा करने लगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वह गंध माल्य
धूप और छिड़कनेके पदार्थोंसे और अन्न तथा शरबत चढ़ाकर
(जब पूजा करता था) तो बड़ा अद्भुत दृश्य दिखाई देता था५०
इस प्रकार तहाँ पर उस गणेश्वरकी पूजा सदा होती रहती थी
और वह-नागरिकोंको पुत्र धन और सकल कामनाएँ आदि
सहस्रों वर देता था ॥ ५१ ॥ तहाँके राजाकी सुयशा नामसे
प्रसिद्ध पटरानी थी, वह साध्वी राजाकी प्रेरणासे पुत्रके लिये
(उस स्थान पर) आई ॥५२॥ उस देवीने पुत्रके कारण तहाँ
बार बार बड़ी भारी पूजा कर पुत्रकी याचना की ॥ ५३ ॥
परन्तु निकुंभ कारणवश उसको पुत्र होनेका वरदान नहीं देता
था (वह कारण यह था, कि-) यदि राजा मेरे ऊपर कुपित
होजायगा तो मेरा कार्य सिद्ध होजायगा ॥५४॥ इसके उपरान्त
बहुत समय पीछे राजाको क्रोध आया, कि यह महात्मा प्राणी
मेरे द्वार पर रहता है और प्रसन्न होने पर मेरे नागरिकोंको तो
सहस्रों वर देता है, फिर यह मुझे वर क्यों नहीं देता है ? मेरे

विज्ञापितो मयाऽत्यर्थं देव्या मे पुत्रकारणात् । न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नः केन हेतुना ॥५७॥ ततो नार्हति सत्कारं मत्सकाशात् विशेषतः । तस्मात्तु नाशयिष्यामि स्थानमस्य दुरात्मनः ॥५८॥ एवं स तु विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्विषी । स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः ॥ ५९ ॥ भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत् प्रभुः । यस्मादनपराधस्य त्वया स्थानं विनाशितम् । पुर्यकस्मादियं शून्या तव नूनं भविष्यति ॥ ६० ॥ ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा । शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथागमत् ॥ ६१ ॥ अकस्मात्तु पुरी सा तु विद्रुता सर्वतो दिशम् । तस्यां पुर्यां ततो देवो निर्ममे पदमात्मनः ॥ ६२ ॥ रमते तत्र वै देवो रममाणो गिरेः सुताम् । न रतिं तत्र वै देवी

मनुष्य ही इस नगरीमें इसकी पूजा करते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ परन्तु मेरी स्त्रीने पुत्रके लिये वारम्वार याचनाकी, तब भी यह कृतघ्न मुझे पुत्र क्यों नहीं देता है॥ ५७ ॥ अत एव यह मेरे यहाँ विशेष सत्कार पानेका पात्र नहीं है, अत एव मैं इस दुरात्माके स्थानको नष्ट कर डालूँगा ॥ ५८ ॥ उस पापी राजाने इसप्रकार निश्चय किया, फिर उस दुर्मतिने उस गणपतिके मठको नष्ट करवा दिया ॥ ५९ ॥ प्रभु निकुम्भने अपने मठको भग्न हुआ देख कर राजाको शाप दिया, कि-हे राजन् ! तूने मुझ निरपराधके स्थानको नष्ट कर डाला है, इस कारण तेरी पुरी अकस्मात् शून्य होजावेगी ॥ ६० ॥ तदनन्तर उसके शापसे वाराणसी उजाड़ होगई पुरीको शाप देनेके अनन्तर निकुम्भ महादेवजीके पास पहुँच गया ॥ ६१ ॥ जब वह पुरी अकस्मात् उजाड़ होगई तब महादेवजीने तहाँ अपना (मोक्षलक्ष्मीविलास पद बनाया ॥ ६२ ॥ भगवान् शिव तहाँ पर गिरिपुत्री पार्वती के साथ विहार करने लगे परन्तु गृहविस्मयके कारण

लभते गृहविस्मयात् वसाम्यत्र न पुर्यां तु देवी देवमथाब्रवीत् ६३
देव उवाच। नाहं वेश्मनि वत्स्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम्।
नाहं तत्र गमिष्यामि गच्छ देवि गृहं प्रति ॥ ६४ ॥ हसन्नुवाच
भगवान् त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः। तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन

देवी वहाँ प्रसन्न नहीं रहती थी तब देवीने देवसे कहा; कि-मैं इस पुरीमें नहीं रहूँगी (तात्पर्य-भगवान् शिव तो अपने स्वरूपके अनुकूल उस नगरमें रमण करते थे,परन्तु देवी माया-स्वरूपा थीं अपना उच्छेद (नाश) करने वाले उस क्षेत्रमें उनका चित्त नहीं लगता था, इसका कारण गृहविस्मय था, अर्थात् गृह—अविमुक्त-को देख वहाँ विस्मय होता था अर्थात् काशी-वास अनधिकारी पुरुषोंको भी (अधिकारी बना कर) उनको मुक्त कर देता है, अत एव देवीका चित्त नहीं लगता था) ॥६३॥महादेवजीने कहा,कि-मैं घरमें निवास नहीं करूँगा मेरा घर तो अविमुक्त है,हे देवि!मैं (तेरे) घरमें नहीं जाऊँगा तू घरको चली जा (तात्पर्य-मैं नित्य-मुक्त ईश्वर हूँ मैं शरीर नाम वाले घरमें बसना नहीं चाहता हूँ, क्यों कि-मेरा घर अविमुक्त है, क्यों कि-वह त्रिकालमें भी विमुक्त नहीं रहता है, क्योंकि-वह अहेय (अत्याज्य) और अनुपादेय आत्मस्वरूप है, वही प्रत्यक्-चैतन्य मेरा घर है, मैं अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहाता हूँ अतः मैं देहप्रतिष्ठ नहीं रहूँगा, तुझे संसार प्रदेशरूप गृह इष्ट हो तो तू उस देहमें निवास कर मैं तो असङ्ग हूँ, इससे यह सूचित किया है, कि—काशीका त्याग करना ही संसारका स्वीकार करना है और उसका त्याग न करना मोक्ष नामक स्वरूपमें स्थिति करना है) ॥ ६४ ॥ त्रिपुर नाशक त्र्यंबक भगवान्ने यह बात हँस कर कही थी, देवदेवने स्वयं ही यह बात कहीं थी, अत एव (वाराणसी पुरी)

नौ स्वयम् ॥ ६५ ॥ एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्त्तितम् ॥६६॥ यस्मिन् वसति नौ देवः सर्वदेवनमस्कृतः । युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥ अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः । अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते

अविमुक्त कहलाती है (तात्पर्य–जिनके श्रवण मनन और ध्यान रूप अम्बक-नेत्रकी समान ज्ञापन करने वाले हैं ऐसे शिव त्र्यम्बक कहलाते हैं, श्रुतिमें भी कहा है, कि–" आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः–अर्थात् आत्माका दर्शन श्रवण और निदिध्यासन करना चाहिये" इस प्रकार आत्मदर्शनके साधनरूप श्रवणादि तीन साधन महादेवजीमें हैं अतएव स्थूल सूक्ष्म कारणरूप तीन पुररूप शरीरोंके नाशक महादेवजीने समझा कि—यह अविद्यारूपा भी पुरतत्त्वको नहीं जानती है, अत एव वह हँसे थे, महादेवजीने कहा था, कि-मेरा घर अविमुक्त है अत एव वाराणसी क्षेत्र अविमुक्त कहलाता है) ॥ ६५ ॥ इस प्रकार वाराणसीको शाप मिला था और अविमुक्तका कीर्तन किया गया था यहाँ अप्रकृत अविमुक्तका कीर्तन करके उपरिधारणन्यायसे वाराणसीके मुख्य अविमुक्तत्वको दिखाया है, जाबालोंने भी कहा है,कि "सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठितः–वह अविमुक्त में प्रतिष्ठित रहता है" इस अविमुक्तप्रतिष्ठितत्वका आत्मामें आरोपण करके वह अविमुक्त कहाँ है, ऐसी शंका होने पर कहते हैं, कि-वह वरणा और नासामें प्रतिष्ठित रहता है अर्थात् भ्रू और नासिकाकी संधिका नाम अविमुक्त है) ६६ जिनको सब देवता प्रणाम करते हैं ऐसे धर्मात्मा महेश्वर देवीके साथ तीनों युगोंमें तहाँ निवास करते हैं ६७ कलियुगमें उन महात्माका पुर अन्तर्धान होने पर वह फिर (सत्ययुगकी आदिमें)बस जाती है,इसप्रकार वाराणसीको शाप लगा था और वह फिर बस गई थी, (तात्पर्य-

पुनः । एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता ॥ ६८ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रो वै दुर्दमो नाम विश्रुतः । दिवोदासेन बालेति घृणया स च वर्जितः ॥६९॥ हैहयस्य तु दायाद्यं कृतवान् वै महीपतिः । आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥ ७० ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता७१दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।तेन पुत्रेण बालेन महृतं तस्य वै पुनः ॥ ७२ ॥ प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ

पुर वाले पुरी महादेव पुरके अन्तर्धान होने पर आप भी उसमें अन्तर्धान होकर रहते हैं (अर्थात् देवताकी प्रतिमाका उच्छेद होने परभी देवताकी समीपता दूर नहीं होती है) यहाँ पुरीका अन्तर्धान होना कहा है, पुरीका उच्छेद नहीं कहा है,इसी प्रकार पुरपति भी अन्तर्हित होजाते हैं,जब तक कलिका संध्यांश रहता है तब तक द्वापरयुगके भी बहुतसे धर्म वर्तमान रहते हैं अत एव छत्तीस सहस्र वर्ष तक पुरी अन्तर्धान नहीं होती है, पूर्णरूपसे कलियुगकी प्रवृत्ति होने पर ही पुरी अन्तर्धान होती है, अत एव वह आज कल कलियुगके पाँच सहस्र वर्ष बीत जाने पर भी दिखाई देरही है) ॥ ६८ ॥ भद्रश्रेण्यका(सबसे अन्तिम) पुत्र दुर्दम नामसे प्रसिद्ध था, दिवोदासने उसको बालक समझ कर दया आजानेसे छोड़ दिया था ॥ ६९ ॥ उसने हैहय (दिवोदास) का पुत्र बनना स्वीकार कर लिया था इसप्रकार उसने नरपति बन कर दिवोदासके द्वारा जबर्दस्ती छीने हुए अपने पिताके राज्यको लौटा लिया था ॥ ७० ॥ हे महाराज ! वैरका अन्त करना चाहने वाले भद्रश्रेण्यके दुर्दम नाम वाले महात्मा क्षत्रिय पुत्रने (ऐसा किया था) ॥ ७१ ॥ दिवोदास से दृषद्वतीमें प्रतर्दन नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ था उस पुत्रने बाल्यावस्थामें ही अपना राज्य उससे फिर लौटा लिया था ७२

वत्सभार्गौ बभूवतुः । वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः। अलर्कं प्रति राजर्षिं लोकैर्गीतः पुरातनैः ॥७४॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्न आसीत् काशिकुलोद्वहः ॥ ७५ ॥ लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः । तस्यासीद्व सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः । शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥ ७६ ॥ रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः । सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ॥ ७७ ॥ सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः । क्षेम्यस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ॥ ७८ ॥ सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः । धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ॥ ७९ ॥ सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः । आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकु-

---

प्रतर्दनके वत्स और भार्ग नाम वाले दो पुत्र हुए वत्सका पुत्र अलर्क हुआ उसका पुत्र सन्नति हुआ ॥७३॥ काशिराज अलर्क सत्य प्रतिज्ञा करने वाला था और ब्राह्मणभक्त था, राजर्षि अलर्कके सम्बन्धमें प्राचीन मनुष्योंने कहा है,कि–७४वह काशि-कुलोद्वह राजा छियासठ सहस्र वर्ष तक तरुण बना रहा था७५ उसने लोपामुद्राके प्रसादसे परमायु पाई थी, उस रूपवान् तरुण पुरुषका राज्य बड़ी दूर तक फैल गया था (निकुंभके) शापके अन्तमें उस महाबाहुने क्षेमक राक्षसको मार कर (सहस्र वर्ष तक राक्षससे दबी रहनेके कारण अरम्य बनी हुई) वाराणसी-पुरीको रमणीय बनाकर बसाया था सन्नतिके भी सुनीथ नामक धार्मिक पुत्र हुआ ॥ ७६—७७ ॥ सुनीथके क्षेम्य नामक महा-यशस्वी पुत्र हुआ, क्षेमकके केतुमान् नामक पुत्र हुआ, उसके सुकेतु नामक पुत्र हुआ ॥ ७८ ॥ सुकेतुका पुत्र धर्मकेतु नामक हुआ, धर्मकेतुके सत्यकेतु नामक महारथ पुत्र हुआ ॥ ७९ ॥

मारस्तु तत्सुतः ॥८०॥ सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः । धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ॥ ८१ ॥ वेणुहोत्रसुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः । वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ॥ ८२ ॥ एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्रशः । इत्येते काश्यपः प्रोक्ता नहुषस्य निबोध मे ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच । उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः । नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥१॥ यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पाञ्चिको भवः । सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः

सत्यकेतुके विभु नामक प्रजेश्वर पुत्र हुआ, विभुका आनर्त पुत्र हुआ उसका पुत्र सुकुमार हुआ ॥ ८० ॥ सुकुमारके धृष्टकेतु नामक अच्छा धार्मिक पुत्र हुआ, धृष्टकेतुका वेणुहोत्र नामक प्रजाधीश पुत्र हुआ ॥ ८१ ॥ वेणुहोत्रके भर्ग नामक प्रजाधीश पुत्र हुआ (अलर्कके पिता) वत्सके वत्सभूमि नामक दूसरा पुत्र हुआ (वत्सके भाई) भार्गवके भृगुभूमि नामक पुत्र हुआ था ॥८२॥ यह (गालव) अंगिरसके पुत्र (विश्वामित्रके भार्गव होनेसे) भार्गव वंशमें उत्पन्न हुए, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यजातिके पुत्र हुए थे, उन वत्सभूमि और भृगुभूमिमें सहस्रों पुत्र हुए थे, इस प्रकार काशिवंशियोंका वर्णन कर दिया, अब तुम नहुषके वंशजोंको सुनो ॥ ८३ ॥ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—नहुषके (स्वधा नाम वाले वैश्यों के पूजनीय पितरोंकी विरजा नाम वाली कन्यामें इन्द्रकी समान तेज वाले छः महाबली पुत्र हुए थे ॥ १ ॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं) यति ययाति संयाति आयाति पाञ्चिक—भव और

पार्थिवोऽभवत् । यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम् ।२।
ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः । यतिस्तु मोक्षमास्थाय
ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥ ३ ॥ तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसु-
धामिमाम् । देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः । शर्मिष्ठा-
मासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः ॥ ४ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देव-
यानी व्यजायत । द्रुह्युं चानुं च पूरुञ्च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ५
तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम् । असंगं काञ्चनं दिव्यं
दिव्यैः परमवाजिभिः ॥ ६ ॥ युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन भार्या-
मुवाह सः । स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम् । ययाति-
र्युधि दुर्धर्षस्तथा देवान् सवासवान् ॥ ७ ॥ स रथः पौरवाणां
तु सर्वेषामभवत्तदा । यावत्तु वसुनाम्नो वै कौरवाज्जनमेजय ८

छठा सुयाति, इनमें ययाति राजा हुआ था, इनमें यति सबसे बड़ा था और ययाति उससे छोटा था ॥२॥ उसने परमधार्मिक ककुत्स्थकन्या गोसे विवाह किया था, यति तो मोक्षमार्गका आश्रय ले ब्रह्मनिष्ठ मुनि होगए थे ॥ ३ ॥ (ययातिकी दूसरी भार्याओंका वर्णन करते हैं, कि-) बाकी पाँचोंमेंसे ययातिने इस पृथ्वीको जीत कर शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वा राक्षसकी पुत्री शर्मिष्ठाको अपनी पत्नी बनाया था ॥ ४ ॥ देवयानीने यदु और तुर्वसुको उत्पन्न किया और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु और अनु तथा पूरुको उत्पन्न किया था ५ इन्द्रने प्रसन्न होकर उसको अस्खलित गति वाला सुवर्णका ढला हुआ अति कान्तिमान् दिव्य रथ दिया था, उसमें मनकी समान वेग वाले दिव्य घोड़े जुते हुए थे, उसमें बैठ कर वह अपनी स्त्रीको पर्यटन कराया करता था, युद्धमें दुर्धर्ष राजा ययातिने छः रातमें रथमें बैठ कर पृथ्वी और इन्द्रसहित देवताओंको जीत लिया था ॥६-७॥ वह रथ सब पौरवोंके पास रहा

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्र राज्ञः पारिक्षितस्य ह । जगाम स रथो नाशं शापाद्ग गार्ग्यस्य धीमतः ॥९॥ गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः । वाक्शूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥ १० ॥ स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः । पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥ ११ ॥ ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत् संविदं क्वचित् । इन्द्रोतः शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥१२॥ याजयामास चेन्द्रोतः शौनको जनमेजयम् । अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥ १३ ॥ स लोहगन्धो व्यनशत् तस्यावभृथमेत्य ह । स च दिव्यो रथो राजन् वसोश्चेदिपतेस्तदा । दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्ग बृहद्रथः ॥ १४ ॥ बृहद्रथात् क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् । ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् १५

था, हे जनमेजय ! वसु नाम वाले कौरव तक वह रथ रहा था, ८ हे राजेन्द्र ! कुरुपुत्र राजा पारीक्षितके समय वह रथ बुद्धिमान् गार्ग्यके शापसे जाता रहा था ॥ ९ ॥ उस राजा जनमेजयने वाक्शूर (कठोर वाणी बोलने वाले) गालवके बालक पुत्रको मार डाला था, इसलिये उसे ब्रह्महत्या लग गई थी ॥ १० ॥ उसको पुरवासी और ग्रामवासियोंने (जाति) बाह्य की समान त्याग दिया था, उस समय वह राजा चारों ओर टकराने लगा और उसे कहीं शान्ति नहीं मिली ॥ ११ ॥ जब उसे कहीं स्वस्थ होनेका उपाय नहीं मालूम हुआ, तब वह दुःखसे संतप्त हुआ इन्द्रोत राजा जनमेजय शौनक मुनिकी शरणमें पहुँचा १२ तब ब्राह्मणश्रेष्ठ शौनकने इन्द्रोत जनमेजयको पवित्र करनेके लिये उसको अश्वमेध यज्ञ करवाया था ॥ १३ ॥ उस यज्ञका अवभृथ स्नान होने पर उसका लोहगन्ध (जातिबाह्य होनेका पातक) दूर होगया, तदनन्तर इन्द्रने प्रसन्न होकर वह रथ वसु चेदिपतिसे लेकर बृहद्रथको देदिया था ॥ १४ ॥ वह रथ बृहद्रथसे

प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः । सप्तद्वीपां ययातिस्तु
जित्वा पृथ्वींससागराम् ॥१६॥ व्यभजत् पंचधा राजन् पुत्राणां
नाहुषस्तदा । दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान्नृपः ॥ १७ ॥
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च नाहुषः दिशि पूर्वोत्तरस्यां
वै यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ॥ १८ ॥ मध्ये पूरुं च राजानमभ्य-
षिंचत नाहुषः । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥१९॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते । प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु
वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥२०॥ धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पंचभिः पुरुष-
र्षभैः । जरावान भवद्राजाभारमावेश्य बन्धुषु । निःक्षिप्तशस्त्रः
पृथिवीं निरीक्ष्य पृथिवीपतिः ॥२१॥ प्रीतिमानभवद्राजा ययाति-
रपराजितः । एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ॥ २२ ॥

क्रमानुसार बार्हद्रथको मिलमथा, तदनन्तर कौरवनन्दन भीमसेनने जरासन्धको मार वह रथ प्रीतिके कारण वासुदेवको दे दिया था। नहुषपुत्र राजा ययातिने समुद्रतककी सप्तद्वीपा पृथ्वीको जीतकर उसको अपने पुत्रोंको पाँच भागमें बाँट कर देदिया था, नहुष-पुत्र बुद्धिमान् ययातिने दक्षिणपूर्वदिशा (अग्निकोणमें) तुर्वसुको, प्रतीचीमें द्रुह्यु और उत्तरमें अनुको तथा पूर्वोत्तर (ईशानकोण) दिशामें बड़े यदुको नियुक्त कर दिया था ॥ १५ ॥ १८ ॥ और मध्यदेशमें राजा पूरुका अभिषेक कर दिया था, वे आज कल भी सात द्वीप और नगरवाली सारी पृथिवीका प्रदेशानुसार उसी प्रकार धर्मानुसार पालन कररहे हैं, हे नृपसत्तम ! अब मैं उनकी सन्तानोंको कहता हूँ ॥ १६ ॥ २० ॥ पाँच पुरुषश्रेष्ठ पुत्रोंको धनुष और बाण समर्पण करके राजा ययाति वृद्ध होगया फिर अपने आप शस्त्रको त्याग पृथ्वीकी ओर देख कर प्रसन्न होने लगा, इस प्रकार पृथ्वीका विभाग करके अपराजित ययाति यदुसे कहने लगा, कि—।२१।२२। हे पुत्र ! तू

जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै। तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह २३ अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता। अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२४॥ जरायां बहवो दोषाः पान-भोजनकारिताः। तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे २५ सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। प्रतिगृहीतुं धर्मज्ञ पुत्र-मन्यं वृणीष्व वै ॥ २६ ॥ स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसम-न्वितः। उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥ २७ ॥ क आश्रयस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते। मामनादृत्य दुर्बुद्धे

कृत्यान्तरके द्वारा मेरे बुढ़ापेको ग्रहण कर ले; तव मैं तुझसे बुढ़ापेका आरोप करके तेरे रूपसे तरुण होकर इस पृथ्वी पर विचरण करूँगा, उससे यदुने कहा, कि—॥ २३ ॥ हे राजन्! मैंने एक ब्राह्मणको अनिर्दिष्ट भिक्षा देना स्वीकार करली है अर्थात् ब्राह्मणने (किसी वस्तुका नाम न लेकर) मुझसे भिक्षा माँगी थी मैंने उसे देना स्वीकार कर लिया था अतः इस ऋणसे छूटे विना मैं आपके बुढापेको स्वीकार नहीं कर सकता ।२४। और हे राजन्! बुढ़ापेमें पीने और खानेके बहुतसे दोष भरे हुए हैं, इस लिये हे राजन! मैं आपके बुढ़ापेको ग्रहण करना नहीं चाहता २५ हे राजन्! तुम्हारे तो मुझसे भी अधिक प्यारे और भी पुत्र हैं अतः हे धर्मज्ञ! आप बुढ़ापेको ग्रहण करनेके लिये दूसरे पुत्रसे कहिये २६ यदुकी इस वातको सुन कर वक्ताओंमें श्रेष्ठ ययाति क्रोधमें भर कर उसकी निन्दा करता हुआ कहने लगा, कि-२७ हे दुर्बुद्धे! जब मैं तेरा गुरु हूँ तो मेरा अनादर करके तू किसका आश्रय लेना चाहता है अर्थात् किसकी इच्छाको पूर्ण करना चाहता है और (पिताकी आज्ञा का उल्लंघन कर) तू कौनसे धर्मका पालन कर रहा है (यह

यदहं तव दैशिकः ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान् । अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति नराधम ॥ २९ ॥ स तुर्वसुं च द्रुह्युं चाप्यनुञ्च भरतर्षभ । एवमेवाब्रवीद्द राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥ ३० ॥ शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः । यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तम ॥ ३१ ॥ एवं शप्त्वा सुतान् सर्वान् चतुरः पुरुपूर्वजान् । तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भार्गवः ॥ ३२ ॥ तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् । जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥ ३३ ॥ स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् । ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यचरन् महीम् ॥३४॥ स मार्गमाणः कामानामन्तं भरतसत्तम । विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥३५॥ यदा

तो बता) ॥ २८ ॥ यदुसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भरेहुए राजा ययातिने यदुको शाप दिया, कि–हे मूढ़ ! हे नराधम ! तेरी प्रजा राजा नहीं होगी ॥२९॥ हे भरतर्षभ ! उस राजाने तुर्वसु द्रुह्यु और अनुसे भी इसी प्रकार कहा, परन्तु उन्होंने भी निषेध कर दिया ॥ ३० ॥ हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ ! मैंने तुमसे पहिले जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उसने बड़े क्रोधमें भर उनको भी शाप देदिया था ॥ ३१ ॥ इस प्रकार पुरुके चार बड़े भाइयोंको शाप देकर हे भारत ! राजाने यही बात पुरुसे भी कही ॥३२॥ कि–हे पुरु ! यदि तू स्वीकार करे तो मैं अपना बुढ़ापा तेरे अर्पण करके तेरे रूपसे तरुण होकर इस पृथिवी पर विचरण करना चाहता हूँ ॥ ३३ ॥ प्रतापवान् पुरुने पिताके बुढापेको ग्रहण कर लिया, फिर हे भरतसत्तम ! ययाति पुरुके रूपसे पृथ्वी पर विचरण करने लगा ॥ ३४ ॥ वह प्रभु कामनाओंके पारको खोजता हुआ विश्वाची अप्सराके साथ चैत्ररथ वनमें रमण करने लगा ॥३५॥ जब वह राजा कामना-

वितृष्णः कामानां भोगेषु स नराधिपः । तदा पूरोः सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥ ३६ ॥ तत्र गाथा महाराज शृणु गीता ययातिना । याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्वतोऽगानि कूर्मवत् ३७ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ३८ ॥यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ३९ ॥ यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेष्वपापकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ४० ॥ यदाऽन्येभ्यो न बिभ्येति यदा चास्मान्न बिभ्यति । यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥४१॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः । योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४२॥ जीर्यन्ति जीर्यतः केशा

ओंको भोगते २ वितृष्ण होगया तब उसने पुरुसे अपना बुढ़ापा लौटा लिया, ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उस समय ययातिने जो गाथाएँ गाई थीं उनको सुनो, उनको सुनकर मनुष्यको अपनी कामानाओंको कछुएके अङ्ग संकोड़नेकी समान सकोड़ लेना चाहिये ॥ ३७ ॥ भोगनेसे कामनाओंकी शांति कभी नहीं हो सकती वह हवि पड़ने पर अग्निकी समान बढती ही रहती है३८ पृथिवीमें जो सुवर्ण धान्य जौ पशु और स्त्रियें हैं, वह एक शांतिके बराबर नहीं होसकती, यह विचार कर शांति धारण करे ॥ ३९ ॥ मनुष्य जब सब प्राणियोंसे मनसा वाचा कर्मणा पापमय विचार नहीं रखता है, तब वह ब्रह्मस्वरूप होजाता है ॥ ४० ॥ जब यह दूसरोंसे नहीं डरता है और जब दूसरा इससे नहीं डरता है और जब यह न इच्छा करता है और न द्वेष करता है, तब यह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ ४१ ॥ पुरुष जिसको कठिनतासे त्याग सकते हैं और जो पुरुषके जीर्ण होने पर भी जीर्ण नहीं होती है और जो प्राणान्त करने वाला

दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः । जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥४३॥ यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्व वनम् । कालेन महता चापि चचार विपुलं तपः ॥ ४५ ॥ भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तपसोऽन्ते महातपाः । अनशन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥ ४६ ॥ तस्य वंशे महाराज पंच राजर्षिसत्तमाः । यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ४७ ॥ यदोस्तु शृणु राजर्षेर्वंशं राजर्षिसत्कृतम् । यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्विष्णुकुलोद्वहः ॥ ४८ ॥ धन्यः प्रजा-

---

रोग है उस तृष्णाको त्यागने वालेको ही सुख मिलता है ४२ बुड्ढे होते हुए मनुष्यके केश पक जाते हैं और वृद्ध होते हुए मनुष्यके दाँत भी जीर्ण होजाते हैं, परन्तु जीनेकी और धनकी आशा मनुष्यके जीर्ण होने पर जीर्ण भी नहीं होती है४३ संसार में जो कामसुख मिलता है और जो बड़ा भारी दिव्य सुख मिल सकता है ये दोनों सुख तृष्णाके क्षयके सुखकी सोलहवी कला के बराबर भी नहीं हैं ॥ ४४ । इस प्रकार कह कर वह राजर्षि अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनको चलागया और उसने बहुत समय तक बड़ा भारी तप किया था ॥ ४५ ॥ उस महातेजस्वीने भृगुतुङ्ग पर्वत पर तप कर तपके अन्तमें निराहार रह कर अपने देहको त्याग दिया था, इस कारण उसको और उसकी स्त्रीको स्वर्ग मिला था ॥ ४६ ॥ जैसे सूर्यकी किरणोंसे पृथ्वी व्याप्त रहती है, इसी प्रकार हे महाराज ! उसके वंशके पाँच राजसत्तम मनुष्योंसे पृथिवी व्याप्त होरही थी ॥३७॥ वृष्णिकुलको उठाने वाले नारायण जिस कुलमें उत्पन्न हुए हैं उस राजर्षि यदुके राजर्षियोंसे सत्कृत वंशको सुनो ।४८। हे राजन् ! मनुष्य ययातिके

थ्वानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः । ययातेश्चरितं पुण्यं पठन् शृण्वन् नराधिप ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जनमेजय उवाच । पूरोर्वंशमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैवं तुर्वसोश्च पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ वृष्णिवंश-प्रसङ्गेन स्वं वंशं पूर्वमेव तु। विस्तरेणानुपूर्व्या च तद्भवान वक्तु-मर्हति ॥२॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु पूरोर्महाराज वंशमुत्तम-पौरुषम् । विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ३ ॥ हन्त ते कीर्तयिष्यामि पूरोर्वंशमनुत्तमम् । द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च नराधिप ॥ ४ ॥ पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजाऽसी-ज्जनमेजयः । प्रचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद्द दिशम् ५ प्रचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः । राजा चाभयदो

पवित्र चरित्रको पढ़ कर वा सुन कर धन्य होजाता है तथा आयु-ष्मान् और कीर्तिमान् होजाता है४६तीसवाँ अध्याय समाप्त ३०

जनमेजयने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! मैं वृष्णिवंशके प्रसंगवश पुरुके द्रुह्युके अनुके यदुके और तुर्वसुके वंशको पृथक् २ सुनना चाहता हूँ परन्तु आप पहिले इस समय विस्तारपूर्वक क्रमशः मेरे वंशका वर्णन करिये ॥१॥२॥ वैशंपायनजीने कहा, कि-हे महा-राज ! तुम जिस वंशमें उत्पन्न हुए हो उस पुरुके उत्तम पुरुषों वाले वंशको तुम विस्तारपूर्वक क्रमशः सुनो ॥ ३ ॥ हे नरा-धिप ! अब मैं तुमसे पुरुके द्रुह्युके अनुके और तुर्वसुके परम-श्रेष्ठ कुलका वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ पुरुका पुत्र महावीर्य राजा जनमेजय हुआ, उसका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ उसने पूर्व दिशा को जीत लिया था ॥ ५ ॥ प्रचिन्वान्के प्रवीर नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र मनस्यु हुआ और मनस्युका अभयद नामक राजा

नाम मनस्योरभवत् सुता ॥ ६ ॥ तथैवानयदस्यासीत् सुधन्वा तु महीपतिः । सुधन्वनो बहुगवः शम्यातिस्तस्य चात्मजः ॥ ७ ॥ शम्यातेस्तु रहस्याती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः । रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥ ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च । कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ६ दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः। धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रिकाश्च दशस्त्रियः १० रुद्रा भद्रा च शूद्रा च मलदा मलहा तथा । खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च ।तथा गो चपलातु स्त्री रत्नकूटा च तादश ॥ ११ ॥ ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः । रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्॥१२॥स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम् । तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रकल्पिता ॥ १३ ॥स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तो वै पतमानो दिवा-

पुत्र हुआ । ६ । इसी प्रकार अनयदके सुधन्वा नामक राजा पुत्र हुआ, सुधन्वाके बहुगव हुआ, उसका पुत्र शम्याति हुआ । ७ । शम्यातिके रहस्याति हुआ उसका पुत्र रौद्राश्व हुआ, रौद्राश्वके घृताची नाम वाली अप्सरामें दश पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ ८ ॥ उनमें पहिला ऋचेयु था (बाकी) कृकणेयु कक्षेयु स्थण्डिलेयु सन्नतेयु दशार्णेयु जलेयु स्थलेयु महायशस्वी-धनेयु और वनेयु थे और उसकी दश पुत्रियें पुत्रिका धर्म वाली थीं । ६ १० । रुद्रा शूद्रा भद्रा मलदा मलहा खलदा नलदा सुरसा गो तथा चपला ये दश पुत्रियें थीं, इन्होंने उर्वशी आदि स्त्रीरत्नोंको हेच बना दिया था११प्रभावान् और कुलीन अत्रिऋषि इनके स्वामी थे, इन्होंने रुद्रामें यशस्वी सोम नाम वाले पुत्रको उत्पन्न किया था १२ जब सूर्य राहुसे पीड़ित होकर स्वर्गसे पृथ्वी पर गिरने लगा था और संसारमें अन्धकारसे छागया था,तब इन्होंने प्रभा की कल्पनाकी थी ॥ १३ ॥ सूर्य जिस समय गिर रहा था,

करः। वचनात्तस्य विप्रर्षे न पपात दिवो महीम् ॥ १४ ॥ अत्रि-श्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः। यज्ञेष्वत्रेर्धनं चैव सुरै-र्यस्य प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥ स तासु जनयामास पुत्रिकासु सनाम-कान्। दश पुत्रान् महात्मा स तपस्युग्रे रतान् सदा ॥ १६ ॥ ते तु गोत्रकरा राजन्नृषयो वेदपारगाः। स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किं त्वत्रि धनवर्जिताः ॥ १७ ॥ कक्षेयोस्तनयाश्चासन् त्रय एव महारथाः। सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च ॥ १८ ॥ सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः। कालानस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ॥१९॥ सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः। जनमेजयो महाराज पुरञ्जयसुतोऽभवत् ॥ २० ॥ जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत्सुतः। वेदेषु सपरिज्ञातः प्रति-

उससमय ऋषिने "स्वस्ति हो" कहा था तब उन विप्रर्षिके कहने पर सूर्य स्वर्गसे पृथिवी पर नहीं गिरा था ॥ १४ ॥ उन महातपस्वीने अत्रिगोत्रको सब गोत्रोंमें श्रेष्ठ बना दिया था और देवताओंने यज्ञमें अत्रिके निमित्त धन नियुक्त कर दिया था ॥ १५ ॥ उन महात्माने उन पुत्रिकाधर्मवाली स्त्रियोंमें उन के ही नाम वाले दश पुत्रोंको उत्पन्न किया था, वे सदा उग्र तप करते रहते थे ॥ १६ ॥ हे राजन्! वे गोत्रप्रवर्तक और वेद के पारगामी ऋषि स्वस्त्यात्रेय कहलाते हैं, परन्तु उनको अत्रिका धन नहीं मिला था ॥१७॥ कक्षेयुके सभानर चाक्षुष और पर-मंथु नामक तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १८ ॥ सभानर के कालानल नामक विद्वान् और राजा पुत्र हुआ और काला-नलके सृञ्जय नाम वाला धर्मज्ञ पुत्र हुआ ॥ १९ ॥ सृञ्जयका वीर पुत्र राजा पुरञ्जय हुआ और हे महाराज! पुरञ्जयके जन-मेजय नामक सुत हुआ ॥ २० ॥ राजर्षि जनमेजयके महाशाल नामक पुत्र हुआ, वह वेदोंका ज्ञाता था और उसका यश पृथ्वी

ष्ठितयशा भुवि ॥२१॥ महामना नाम सुतो महाशालस्य धार्मिकः। जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहायशाः ॥ २२ ॥ महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भारत। उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं च महाबलम् ॥२३॥ उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः। नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती २४ ॥ उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः।तपसा वै सुमहता जाता वृद्धस्य भारत२५ नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमि रजायत । नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वायाः सुव्रतोऽभवत् ॥२६॥ दृषद्वत्यास्तु संजज्ञे शिविरौशीनरो नृपः। शिबेस्तु शिवयस्तात योधेयास्तु नृगस्य ह॥२७॥ नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी । सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा शिविपुत्रान्निबोध मे ॥२८॥ शिबेश्च पुत्राश्चत्वारो वीरास्त्रैलोक्य-

में प्रतिष्ठित होगया था ॥२१॥ महाशालके महामना नाम वाला धार्मिक पुत्र हुआ, उस महायशस्वी वीरकी देवता पूजा करते थे ॥ २२ ॥ हे भारत ! महामनाने धर्मज्ञ उशीनर और महाबली तितिक्षु नाम वाले (इस प्रकार) दो पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥२३॥ उशीनरके राजर्षियोंके वंशमें उत्पन्न हुई नृगा कृमी नवा दर्वा और पाँचवीं दृषद्वती नामकी इस प्रकार पाँच पत्नियें थीं ॥ २४ ॥ हे भारत ! वृद्ध होने पर बडे भारी तपके प्रभावसे उनमें कुलको उठाने वाले पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ २५ ॥ नृगाका पुत्र नृग हुआ कृमिसे कृमि उत्पन्न हुआ नवाका पुत्र नव हुआ और दर्वाके सुव्रत नामक पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ दृषद्वती में उशीनरका पुत्र शिवि उत्पन्न हुआ शिविके देश शिवि कहलाते हैं और हे तात ! नृगके देश योधेय कहलाते हैं ॥ २७ ॥ नवका राज्य नवराष्ट्र कहलाता है, कृमिकी कृमिलापुरी प्रसिद्ध है और सुव्रतकी अम्बष्ठा पुरी प्रसिद्ध है, अब तुम शिविके पुत्रोंको सुनो ॥ २८ ॥ शिविके वृषदर्भ सुवीर मद्रक और कैकय

विश्रुताः । वृषदर्भः सुवीरश्च मद्रकः कैकयस्तथा ॥ २९ ॥ तेषां जनपदाः स्फीताः कैकया मद्रकास्तथा । वृषदर्भाःसुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजाः शृणु ॥ ३० ॥ तितिक्षोऽभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि भारत । उपद्रथो महाबाहुस्तस्य फेनः सुतोऽभवत् ।३१॥ फेनात्तु सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः । जातो मानुषयोनौ तु स राजा कांचनेषुधिः ॥ ३२ ॥ महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा । पुत्रानुत्पादयामास पंच वंशकरान् भुवि ॥ ३३ ॥ अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च । पुण्ड्रः कलिंगश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ॥ ३४ ॥ बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि । बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन भारत ॥ ३५ ॥ महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः । संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानता ॥ ३६ ॥ त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा । बले

नाम वाले त्रिलोकीमें प्रसिद्ध चार वीर पुत्र थे ॥ २९ ॥ उनके कैकय मद्रक वृषदर्भ और सुवीर नामक बड़े विस्तृत देश हैं अब तुम तितिक्षुकी प्रजाको सुनो ॥ ३० ॥ हे भारत ! पूर्वदिशामें तितिक्षुका पुत्र महारथी राजा उपद्रथ हुआ था उसका सुत फेन हुआ ॥ ३१ ॥ फेनके सुतपा हुआ सुतपाका पुत्र बलि हुआ, वह सुवर्णके तूणीर वाला. राजा बलि मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुआ था. (पूर्वजन्ममें यह बलि दैत्य था) ॥ ३२ ।वह राजा बलि महायोगी हुआ था उसने वंशप्रवर्तक पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥ ३३ ॥ पहिले अंग हुआ फिर वङ्ग सुह्य पुण्ड्र और कलिंग उत्पन्न हुए यह बालेय क्षेत्र कहलाते हैं ३४ और उसके कुलको प्रसिद्ध करने वाले ब्राह्मण बालेय नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं, हे भारत ! ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर बलिको महायोगीपन कल्पपर्यन्तकी आयु, संग्राममें अजेयता और धर्मप्रधानता त्रिलोकीको देखनेकी शक्ति, वशित्व नाम वाली सिद्धि

चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥३७॥ चतुरो नियतान् वर्णान् त्वं च स्थापयिता भुवि । इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ॥ ३८ ॥ तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिपुङ्गवाः । संभूता दीर्घतपसो सुदेष्णायां महौजसः ॥ ३९ ॥ बलिस्तानभिषिच्येह पंचपुत्रानकल्मषान् । कृतार्थः सोपि योगात्मा योगमाश्रित्य स प्रभुः ॥ ४० ॥ अधृष्यः सर्वभूतानां कालापेक्षी चरन्नपि । कालेन महता राजन् स्वं च स्थानमुपागमत् ॥ ४१ ॥ तेषां जनपदाः पंच अङ्गा वङ्गाःससुह्मकाः । कलिंगाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य मे शृणु ॥ ४२ ॥ अंगपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः । दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥ ४३ ॥ पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः । विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य

में प्रधानता और अप्रतिम बल और धर्मके सूक्ष्म तत्त्वोंका अवलोकन आदि कर दिये थे ॥ ३५ ॥ ३७ ॥ प्रभु ब्रह्माजीने जब उससे कहा, कि-तुम पृथ्वीमें चारों वर्णोंको नियममें रख कर स्थापित करोगे तब बलि परम शान्तिको प्राप्त हुआ. ३८। (बलि ऊर्ध्वरेता था इस कारण) उसके सब पुत्र क्षेत्रज थे और वे दीर्घतपा ऋषिसे सुदेष्णामें उत्पन्न हुए थे और बड़े भारी ओज वाले मुनिपुंगव थे बलि उन निष्पाप पाँच पुत्रोंका अभिषेक करके कृतार्थ होगया, फिर वह योगस्वरूप योगात्मा प्रभु योगका आश्रय लेकर सब भूतोंसे अधृष्य होकर अपने अन्तिम समयकी बाट देखता हुआ विचरण करने लगा और हे राजन् ! बहुत समयके अनन्तर अपने स्थान (सुतललोक) को चला गया ॥३९-४०। उनके अंग वङ्ग सुम्हक कलिंग और पुण्ड्रक देश प्रसिद्ध हैं अब तुम अङ्गकी सन्तानको सुनो ॥ ४२ ॥ अङ्गका पुत्र दधिवाहन राजेन्द्र हुआ, दधिवाहनका पुत्र राजा दिविरथ हुआ ॥ ४३ ॥ दिविरथका पुत्र इन्द्रकी समान पराक्रमी था उस

चित्ररथः सुतः ॥ ४४ ॥ तेन चित्ररथेनाथ तदा विष्णुपदे गिरौ। यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥ ४५ ॥ अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्। लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत् ॥ ४६ ॥ तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरंगो महायशाः। ऋष्यशृंगप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्धनः ॥ ४७ ॥ चतुरंगस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः। पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥ ४८ ॥ चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत्पुरा। पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यंगोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४९॥ ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम्। अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥ ५० ॥ हर्यंगस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः। पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥ ५१ ॥ बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः।बृहन्मनास्तु राजेन्द्र जनया-

---

विद्वान्का नाम धर्मरथ था उसका पुत्र चित्ररथ हुआ ॥ ४४ ॥ उस महात्मा चित्ररथने विष्णुपद पर्वत पर यज्ञ करके इन्द्रके साथ सोमपान किया था ॥ ४५ ॥ चित्ररथके भी दशरथ नामक पुत्र हुआ वह लोमपाद नामसे भी प्रसिद्ध था उसकी पुत्रीका नाम शान्ता था ॥४६॥ उस दशरथका पुत्र महायशस्वी चतुरङ्ग हुआ वह कुलको बढ़ाने वाला ऋष्यश्रृङ्गके प्रसादसे उत्पन्न हुआ था ॥ ४७ ॥ चतुरङ्गका पुत्र पृथुलाक्ष नामसे प्रसिद्ध है, पृथुलाक्षके चम्प नामक महायशस्वी पुत्र हुआ ॥ ४८ ॥ चम्पकी चम्पा नामकी पुरी थी, वह पहिले मालिनी नामसे प्रसिद्ध थी, और पूर्णभद्र मुनिके प्रसादसे उनके हर्यङ्ग नामक पुत्र हुआ था ॥ ४९ ॥ विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गने जलमें विचरण करने वाले इन्द्रवाहन ऐरावतको मंत्र पढ़ कर (हर्यगके यहाँ) बुलाया था ५० हर्यङ्गके भद्ररथ नामक पुत्र हुआ, भद्ररथके बृहत्कर्मा नामक प्रजापति पुत्र हुआ५१ उसके बृहद्दर्भ नामक पुत्र

मास वै सुतम् ॥ ५२ ॥ नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद् दृढरथो नृपः । आसीद् दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजय ॥५३॥ दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः । तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्धनम् । बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः॥५४ तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे । यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते ॥ ५५ ॥ जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत । ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः ॥५६॥ विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः । धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः ॥५७॥ सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै । यः कर्णं प्रतिजग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः ॥ ५८ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं कर्णं प्रति महाबलम् । कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्या-

---

हुआ उससे बृहन्मना नामक पुत्र हुआ, हे राजेन्द्र ! बृहन्मनाने जयद्रथ नाम वाले पुत्रको उत्पन्न किया था उसके दृढरथ हुआ हे जनमेजय ! उसके विश्वजित् नामक पुत्र हुआ ५२-५३ उसका पुत्र कर्ण हुआ उसका पुत्र विकर्ण हुआ उसके अंगोंके कुलको बढाने वाले सौ पुत्र थे, राजा बृहद्दर्भके बृहन्मना नाम वाला जो पुत्र था ५४ उसकी दो पत्नियें थीं वे चैद्यकी शुभ पुत्रियें थीं,एकका नाम यशोदेवी था और दूसरीका नाम सत्या था उन दोनोंके कारण वंश अलग होगया था ५५ हे राजेन्द्र ! यशोदामें जयद्रथ नामक सुत हुआ था और सत्यामें ब्राह्मणके शांति आदि और क्षत्रियके शूरता आदि उत्कृष्ट गुणवाला सुत हुआ था ५६ विजयके धृति नामक सुत हुआ उसका सुत धृतव्रत हुआ धृतव्रतके सत्यकर्मा नामक महायशस्वी सुत हुआ ५७ सत्यरथके अधिरथ सूत नामक सुत हुआ, उसने कर्णको ग्रहण किया था अत एव कर्णपुत्र सूत कहलाता है ५८ यह सब मैंने तुमसे महाबली कर्णको लक्ष्य करके कहा, कर्णके वृषसेन नामक

त्मजः स्मृतः ॥ ५९ ॥ एतेषां वंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया । सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥ ६० ॥ ऋचेयोस्तु महाराज रौद्राश्वतनयस्य ह । शृणु वंशमनुप्रोक्तं यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्व्वणि कुरुवंशानुकीर्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच । अनाधृष्यस्तु राजर्षिर्ऋचेयुश्चैकराट् स्मृतः । ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ॥१॥ तस्यां स देव्यां राजर्षिर्मतिनारो महीपतिः । मतिनारसुताश्चासंस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ २ ॥ तंसुराद्यो प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः॥ गौरी कन्या च विख्याता मांधातृजननी शुभा ॥ ३ ॥ सर्वे वेदविदस्तत्र ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः । सर्वे कृतास्त्रा बलिनः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥ पुत्रः प्रतिरथस्यासीत्कण्वः समभव-

---

सुत हुआ उसका सुत रुप कहलाता है ५९ इन सब सत्यव्रतधारी महात्मा राजा सन्तानवान् महारथी वंशजोंका मैंने वर्णन कर दिया ६० हे राजन् ! अब तुम जिसमें उत्पन्न हुए हो उस रौद्राश्वके सुत ऋचेयुके वंशको सुनो कि–॥ ६१ ॥ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि–राजर्षि ऋचेयु किसीसे भी दबने वाला नहीं था और वह एकराट् नामसे प्रसिद्ध था, तक्षककी कन्या ज्वलना ऋचेयुकी स्त्री थी १ उस देवीमें मतिनार नामक राजर्षि सुत हुआ, मतिनारके परमधार्मिक तीन सुत हुए २ उन में पहिला तंसु था (दूसरा) सुरथ और तीसरा परमधार्मिक सुबाहु था और एक गौरी नाम वाली कन्या प्रसिद्ध है वह कल्याणी मांधाताकी जननी थी ३ वे सब वेदवेत्ता सत्यभाषी ब्राह्मणभक्त अस्त्रपारगामी बली और युद्धविशारद थे ४ प्रति-

न्नृपः। मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात् काण्वायना द्विजाः ॥५॥ ईलिनी भूप यस्यासीत् कन्या वै जनमेजय। ब्रह्मवादिन्यधि स्त्री च तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥ ६ ॥ तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः। ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ॥ ७ ॥ उपदानवी सुतॉंल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान्। दुष्यन्तमथ सुष्मंतं प्रवीरमनघं तथा ॥ ८ ॥ दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान्। स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥ ९ ॥ चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः। शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः ॥ १० ॥ दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी। माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥११॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम्। रेतोधाः पुत्र उन्न-

---

रथका कण्व नामक राजा सुत हुआ उसका सुत मेधातिथि हुआ इससे द्विज काण्वायन कहलाते हैं ५ हे राजन्! हे जनमेजय! जिसकी कन्या ईलिनी थी वह राजा ईलिन ब्रह्मवादी ब्राह्मणों के समुदायमें अधिक मान्य था तंसुने उस ईलिनीको अपनी भार्या बनाया था ६ तंसुका सुरोध नामक राजर्षि सुत था वह धर्मप्रवर्तक था ब्रह्मवादी था और पराक्रमी था, उसकी भार्या का नाम उपदानवी थी ७ उपादानवीने ऐलिक (ईलिनीके सुत) के चार सुतोंको उत्पन्न किया था (उनके नाम दुष्यन्त सुष्यन्त प्रवीर और अनघ थे ८ दुष्यन्तके भरत नामक वीर्यवान् सुत हुआ, वह सर्वदमन नामसे भी प्रसिद्ध था और उस उदार मनुष्यमें एक अयुत हाथियोंका बल था ९ वह राजा भरत महात्मा दुष्यन्तसे शकुन्तलामें उत्पन्न हुआ था, उसके नामसे ही तुम भारत कहलाते हो १० राजा दुष्यन्तने आकाशवाणीसे कहा, था, कि—माता चमड़ेकी धौंकनीकी समान है सुत जिससे उत्पन्न होता है उसीका होता है ११ हे दुष्यन्त! तू सुतका

यति नरदेव यमक्षयात् ॥ १२ ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्य-
माह शकुन्तला । भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपते ॥ १३ ॥
मातृणां तात कोपेन मया ते कथितं पुरा । बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो
राजन् महामुनिः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः १४
अत्रैवोदाहरन्तीमं भरद्वाजस्य धीमतः । धर्मसंक्रमणं चापि मरु-
द्भिर्भरताय वै ॥ १५ ॥ अयाजयद्भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हि
तम् । पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ॥ १६ ॥ ततोऽथ-
वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत् । ततोऽथवितथे जाते भरतस्तु
दिवं ययौ ॥ १७ ॥ वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ।
स राजा वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै ॥ १८ ॥ सुहोत्रं
च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च । कपिलं च महात्मानं सुहोत्रस्य
सुतद्वयम् ॥१९॥ काशकश्च महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः । तथा

पालन कर और शकुन्तलाका अपमान न कर हे नरदेव ! वीर्य
धारण करने वाला सुत यमलोकमें उद्धार करता है १२ तू इस
गर्भका धारण कराने वाला है, यह बात शकुन्तलाने सत्य कही
है,हे तात ! माताओंके कोपके कारण भरतके सुतोंके नष्ट होजाने
पर अङ्गिरा गोत्री महामुनि भरद्वाजको क्रतुदेवता मरुतोंने भरत
का सुत बना दिया था ॥ १३ ॥ १४ ॥ यहाँ ही पर बुद्धिमान्
भरद्वाजका मरुतोंके द्वारा भरतके लिये किया हुआ धर्मसंक्रमण
दीखता है १५ जब माताओंने सुतको मार कर भरतके सुतजन्मको
निष्फल कर दिया था तब क्रतुदेवता मरुतोंने उन भरद्वाजको
नियुक्त कर दिया १६ तदनन्तर भरद्वाजके अथवितथ नामक सुत
हुआ अथवितथके उत्पन्न होने पर भरत स्वर्गको चला गया
था ॥ १७ ॥ भरद्वाज वितथका अभिषेक करके वनको चला
गया, उस राजा वितथने पाँचसुतोंको उत्पन्न किया था । १८ ।
(उनके नाम इस प्रकार हैं)सुहोत्र सुहोता गय गर्ग और महात्मा

गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥ २० ॥ काशश्च काशयो राजन् पुत्रो दीर्घतपास्तथा । बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः ॥ २१ ॥ धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः । अथकेतु मतः पुत्रो वीरो भीमरथो नृपः॥ २२ ॥ सुतो भीमरथस्यासीद्द दिवोदासः प्रजेश्वरः । दिवोदास इति ख्यातः सर्वरक्षोविनाशनः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप । शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः । शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ॥ २४ ॥ शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्रीति नराधिप । तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः । विषयांते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ २५ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पूर्वन्तु पुरी वाराणसी ह्यभूत् । यदुवंशप्रसूतस्य तपस्यभिरतस्य च ॥ २६ ॥ भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्वि-

कपिल, सुहोत्र काशक और महासत्त्व राजा गृत्समति नामक दो सुत हुए, गृत्समतिके ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जातिके सुत हुए थे । १९ । २० । हे राजन् !. काशने काशि देश बसाये और उसके दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ, दीर्घतपाके धन्वन्तरि नामक पुत्र हुआ ॥ २१ ॥ धन्वन्तरिका पुत्र केतुमान् नामसे प्रसिद्ध है, केतुमान्का पुत्र वीर राजा भीमरथ हुआ ॥ २२ ॥ भीमरथका दिवोदास नामक प्रजाधीश सुत हुआ, दिवोदास सब राक्षसोंको नष्ट करनेमें प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इसी समय उजाड़ पड़ी हुई वाराणसी पुरीको क्षेमक नाम वाले राक्षसने बसाया था, हे नराधिप ! उसको महात्मा बुद्धिमान् निकुंभने शाप दिया था, कि—यह सहस्र वर्ष तक उजाड़ पड़ी रहेगी, शाप होते क्षण ही प्रजाके स्वामी दिवोदासने, अपने राज्यके आगे गोमतीके तट पर अपनी रमणीय नगरी बसाई थी ॥२४—२५॥ वाराणसी पुरी पहिले तपसे प्रेम करने वाले

नाम् । हत्वा निवेशयामास दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥२७॥ दिवो-दासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दनः । प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो भार्गव एव च ॥ २८ ॥ अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्नतिमान् भुवि । हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ॥ २९ ॥ आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् । भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । दिवोदासेन बालेति घृणया परिवर्जितः ३० अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै । तेन पुत्रेषु बालेषु प्रहृतं तस्य भारत ॥३१॥ वैरस्यांतं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता । अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ ३२ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥ ३३ ॥ युवा रूपेण संपन्न आसीत् काशि-

---

यदुवंशी भद्रश्रेण्यकी थी ॥ २६ ॥ प्रजाके स्वामी दिवोदासने भद्रश्रेण्यके सौ धनुर्धर पुत्रोंको मार कर उस पर अधिकार कर लिया था (ये एक ही कल्पमें समान नाम कार्य वाले दूसरे व्यक्ति हुए हैं) ॥ २७ ॥ दिवोदासके राजा प्रतर्दन वीर पुत्र हुआ प्रतर्दनके वत्स और भार्गव नाम वाले सुत हुए ॥२८॥ राजपुत्र अलर्क पृथ्वीमें बड़ा नम्र था उस राजाने हैहयके भागको लेलिया था ॥ २९ ॥ भद्रश्रेण्यके दुर्दम नाम वाले पुत्रको दिवोदासने बालक समझ दयावश छोड़ दिया था, उस महात्माने अपने पिताके राज्यको कि-जिसको दिवोदासने बलपूर्वक छीन लिया था उसको उसने (उसका सुत बन कर) फिर लेलिया था॥३०॥ भीमरथ उपनाम वाले दिवोदासका सुत अष्टारथ उपनाम वाला प्रतर्दन हुआ हे महाराज ! उसने वैरका अन्त करनेकी इच्छासे दुर्दमके असमर्थ सुतोंसे उनका राज्य छीन लिया था (प्रतर्दन का पौत्र) काशिराज अलर्क ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ था ॥३१॥३२॥उस रूपवान् तरुणका राज्य छियासठ सहस्र वर्ष

कुलोद्वहः । लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ॥ ३४ ॥ वय
सोन्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । शून्यां निवेशयामास पुरीं
वाराणसीं नृप ॥ ३५ ॥ अलर्कस्य तु दायादः सुनीथो नाम
पार्थिवः । सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ॥३६॥
क्षेम्यस्य केतुमान् पुत्रो वर्षकेतुस्ततोऽभवत् । वर्षकेतोस्तु दायादो
विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥ ३७ ॥ आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमार-
स्ततोऽभवत् । पुत्रस्तु सुकुमारस्य सत्यकेतुर्महारथः ॥ ३८ ॥
ततोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्मिकः । वत्सस्य वत्सभूमिस्तु
भार्गभूमिस्तु भार्गवात् ॥३६॥ एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ
भार्गवे । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ ॥ ४० ॥
सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः । अजमीढो द्विमीढश्च
पुरुमीढश्च वीर्यवान् ॥ ४१ ॥ अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै

तक रहा था और वह छियासठ सहस्र वर्ष तक तरुण बना रहा था उस काशिकुलको उठाने वालेने लोपामुद्राके प्रसादसे परमायु पाई थी ॥३३॥३४॥ उस महाभुजने अपनी वृद्धावस्थामें क्षेमक राक्षसको मार कर शून्य पड़ी हुई वाराणसीको बसाया था ३५ अलर्कके सुनीथ नामक राजा पुत्र हुआ सुनीथके क्षेम्य नामक महायशस्वी सुत हुआ, क्षेम्यके केतुमान् नामक सुत हुआ उसके वर्षकेतु नामक तनय हुआ वर्षकेतुके विभु नामक प्रजाधीश सुत हुआ विभुके आनर्त नामक सुत हुआ उसके सुकुमार हुआ, सुकुमारके सत्यकेतु नामक महारथी सुत हुआ, तदनन्तर वत्सके वत्सभूमि नामक परम धार्मिक महातेजस्वी राजा हुआ और भार्गव से भृगुभूमि हुआ ॥ ३६—३६ ॥ ये अंगिरसके सुत भार्गववंशमें उत्पन्न हुए थे भरतर्षभ ! इनकी सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं ॥ ४० ॥ सुहोत्रके बृहत् नामक पुत्र हुआ, बृहत्के अजमीढ द्विमीढ और वीर्यवान् पुरुमीढ नामक

यशसान्विताः । नीलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वरांगनाः ४२
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जन्हुः प्रतापवान् । आजह्रे यो महा-
सत्रं सर्वमेधं महामखम् ॥ ४३ ॥ पतिलोभेन यं गंगा विनीता-
ऽभिससार ह । नेच्छतः प्लावयामास तस्य गंगाऽथ तत्सदः ४४
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं परन्तप । जन्हुरप्यब्रवीद्गङ्गां क्रुद्धो
भरतसत्तम ॥ ४५ ॥ एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्यापः पिबा-
म्यहम् । अस्य गंगेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ४६ ॥
ततः पीतां महात्मानो गंगां दृष्ट्वा महर्षयः । उपनिन्युर्महाभागा
दुहितृत्वाय जान्हवीम् ॥ ४७ ॥ युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं
जन्हुरावहत् । गंगाशापेन देहार्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम् ४८
जन्होस्तु दयितः पुत्रस्त्वजको नाम वीर्यवान् । अजकस्य तु

तीन पुत्र हुए ॥४१॥ अजमीढ़की नीलिनी केशनी और धूमिनी नाम वाली तीन श्रेष्ठ स्त्रियें थीं ॥ ४२ ॥ अजमीढ़के केशिनीमें जन्हु नामक प्रतापी पुत्र हुआ, उसने बड़े भारी सदावर्त वाले सर्वमेध नामक महामखको किया था ॥ ४३ ॥ गङ्गा उसको पति बनानेके लोभसे उसके पास गई थी, परन्तु जब उसने गङ्गाको अपनी पत्नी बनाना स्वीकार नहीं किया तब गङ्गाजी उसकी सभाको जलसे डुबाने लगी ॥४४॥ हे परन्तप ! हे भरतसत्तम ! यज्ञवाटको डूबते हुए देख कर जन्हुने क्रोधमें भर कर गङ्गासे कहा, कि—॥ ४५ ॥ हे गङ्गे ! मैं तेरे तीनों लोकोंमें फैले हुए जलको संक्षिप्त करके पिये लेता हूँ, हे गङ्गे ! अब तू अपने कर्मके फलको शीघ्र ही पाती है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर गङ्गाजीको पी हुई देख कर महात्माओंने गङ्गाजीको राजा जन्हुकी कन्या मनवा दिया ॥ ४७ ॥ युवनाश्व जन्हुकी कन्या कावेरीको विवाह कर लाया था, गङ्गाके शापके कारण उसका आधा देह नदीमय होगया था ॥ ४८ ॥ जन्हुके अजक नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ।

दायादो बलाकाश्वो महीपतिः ॥ ४६ ॥ बभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः । पल्हवैः सह संरुद्धो राजा वनचरैस्तदा कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः । लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्॥५१॥ स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम् । विश्वामित्रस्तु गाधेयो राजा विश्वरथस्तदा ॥ ५२ ॥ विश्वकृद्विश्वजिच्चैव तथा सत्यवती नृप । ऋचीकाज्जमदग्निस्तु सत्यवत्यामजायत ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रस्य तु सुता देवरातादयः स्मृताः । प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥ ५४ ॥ देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः । शालावत्या हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ॥५५॥ सांकृत्यो गालवो राजन् मौद्गल्यश्चेति विश्रुताः । तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ॥५६॥ पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ।

अजकके बलाकाश्व नामक पुत्र हुआ वह राजा आखेटका प्रेमी था उसका पुत्र कुशिक हुआ उस राजाको वनचारी पल्हवोंने रोक लिया था ४६ कुशिक इन्द्रकी समान पुत्र पानेकी इच्छासे तप करने लगे तब इन्द्र त्रासके कारण उनके यहाँ उत्पन्न हुए थे ५०-५१ इन्द्र गाधिके रूपमें उत्पन्न हुआ था, राजा गाधि का पुत्र विश्वामित्र हुआ वह राजा विश्वरथ नामसे प्रसिद्ध था और उनके विश्वकृत् विश्वजित् और सत्यवती नाम वाली पुत्री भी उत्पन्न हुई थी, ऋचीक ऋषिसे सत्यवतीमें जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ५२-५३ विश्वामित्रके देवरात आदि पुत्र कहे हैं, वे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं उनके नामको तुम मुझसे सुनो ५४ देवश्रवा कति (इस कतिके वंशज) कात्यायन नामसे प्रसिद्ध हैं (विश्वामित्रके) शालावतीसे हिरण्याक्ष और रेणुसे रेणुमान् नामक पुत्र हुआ था और हे राजन्! सांकृत्य गालव और मौद्गल्य भी उनके पुत्र प्रसिद्ध हैं इन महात्मा कौशिकोंके गोत्र प्रसिद्ध

पार्थिवा देवरातश्च शालंकायनसौश्रवाः ॥ ५७ ॥ लोहित्या यामदूताश्च तथा कारीषयः स्मृताः । विश्रुताः कौशिका राजंस्तथाऽन्ये सैंधवायनाः ॥ ५८ ॥ ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः । पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य ह ॥५९॥ सम्बन्धो ह्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः।विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः ॥६०॥ भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः । देवरातादयश्चान्ये विश्वामित्रस्य वै सुताः ६१ दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रादथाष्टकः । अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जन्हुगणो मया ॥ ६२ ॥ अजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां पुरुषर्षभ । अजमीढस्य नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत ॥ ६३ ॥ पुरुजातिः सुशांतेस्तु बाह्याश्वः पुरुजातितः । बाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः ॥६४॥ मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुः

हैं ५५—५६ पाणिन बभ्रव ध्यानजप्य पार्थिव देवरात शालंकायन सौश्रव (ये भी विश्वामित्रके पुत्र हैं) ५७ हे राजन् ! कौशिक लौहित्य यामदूत कारीषि और सैंधवायन नामसे प्रसिद्ध हैं ५८(इनकेसे नाम वाले परन्तु दूसरे गोत्रके) ऋषियोंमें विवाह करने वाले और भी बहुतसे कौशिक प्रसिद्ध हैं ५९ इस वंशमें ब्राह्मण और क्षत्रियका सम्बन्ध प्रसिद्ध है, विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेफ बड़ा पुत्र है ॥ ६० ॥ मुनिसत्तम भार्गव कौशिकत्वको प्राप्त होगए थे देवरात आदि विश्वामित्रके और भी पुत्र कहे हैं, ॥ ६१ ॥ विश्वामित्रके दृषद्वतीसे अष्टक नामक पुत्र हुआ था, अष्टकका पुत्र लौहि हुआ यह मैंने जन्हुके वंशज कह दिये ६२ हे भरतर्षभ ! अब तुम अजमीढके दूसरे वंशको सुनो, अजमीढके नीलिनीमें सुशान्ति नामक पुत्र हुआ था ६३ सुशांतिका पुरुजाति नामक पुत्र हुआ और पुरुजातिके बाह्याश्व नामक पुत्र हुआ बाह्याश्वके देवताकी समान पाँच सुत उत्पन्न

स्मृतः । यवीनरश्च वकांनः क्रमिलाश्वश्च पञ्चमः ॥ ६५ ॥
पंचैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः । पंचानां विद्धि पञ्चा-
लान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान् ॥ ६६ ॥ अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला
इति विश्रुताः । मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ६७
सर्व एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः । एते ह्यंगिरसः पक्षं
संश्रिताः काण्वमौद्गलाः ॥६८॥ मौद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मर्षिः
सुमहायशाः इन्द्रसेनो यतो गर्भं वध्न्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥
वध्न्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः दिवोदासश्च राजर्षि-
रहल्या च यशस्विनी ॥ ७० ॥ शरद्वतस्य दायादमहल्या सम-
सूयत । शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः ॥ ७१ ॥ पुत्रः
सत्त्वधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः । तस्य सत्यधृते रेतो दृष्ट्वाप्सर-

---

हुए थे ६४ (उनके नाम इस प्रकार हैं) मुद्गल सृञ्जय और
राजा बृहदिषु पराक्रमी यवीनर और पाँचवाँ क्रमिलाश्व ६५
यह बात प्रसिद्ध थी, ये पाँचों देशकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं इन
पाँचोंके फैले हुए जनपदोंको पाञ्चाल समझो ६६ पञ्चालदेश
का रक्षण करनेमें समर्थ होनेके कारण वे पञ्चाल कहलाने लगे
मुद्गलका सुत महायशस्वी मौद्गल्य हुआ ६७ ये सब महात्मा
क्षत्रियधर्मसे अलग थे और द्विजाति थे ये काण्व और मौद्गल
अङ्गिरस पक्षका आश्रय लिये हुए थे, मौद्गलका ज्येष्ठ सुत महा-
यशस्वी ब्रह्मर्षि इन्द्रसेन हुआ उसका पुत्र वध्न्यश्व हुआ६८-६९
वध्न्यश्वके मेनकामें दो सन्तान उत्पन्न हुई थीं एक राजर्षि दिवो-
दास और दूसरी यशास्विनी अहल्या ७० अहल्याने शरद्वान्
पुत्र महायशस्वी शतानन्द ऋषिको उत्पन्न किया था ७१ सत्य-
धृति नामक पुत्र हुआ वह धनुर्वेदका पारगामी था अप्सराको
सामने देख कर उन सत्यधृतिका वीर्य शरस्तम्ब (सैंटोंके वन)
में टपक गया उससे मिथुन सन्तान उत्पन्न हुई, राजा शन्तनु

समग्रतः ॥७२॥ अवस्कन्नं शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत । कृपया तच्च जग्राह शान्तनुर्मृगयां गतः ॥ ७३ ॥ कृपः स्मृतः स वै तस्माद्ग गौतमी च कृपी तथा । एते शारद्वताः प्रोक्ता एते ते गौतमाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य सन्ततिम् । दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृपः ॥ ७५ ॥ मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः । एते हि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः ॥ ७६ ॥ आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ।सुतः सोमजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ७७ सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः।सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम पार्थिवः॥७८॥अजमीढात् पुनर्जातः क्षीणवंशे तु सोमकः । सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ ॥ ७९ ॥ तेषां यवीयान पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः । धृष्टद्युम्नस्तु द्रुपदाद्ग धृष्टकेतुश्च

शिकार खेलनेको गया था उसने कृपा करके उनको उठा लिया ७२—७३ इस कारण पुत्र कृप कहलाये और गौमती कृपी कहलाई ये तुमसे शारद्वत और गौतम कह दिये ७४ अब मैं तुमसे दिवोदासकी सन्तानको कहता हूँ दिवोदासका पुत्र ब्रह्मर्षि मित्रयु नामक राजा हुआ ७५ उसका पुत्र मैत्रायण सोम हुआ उसके वंशज मैत्रेय कहलाते हैं,ये भार्गव क्षत्रोपेत थे और (क्षत्रिय) पक्षको लेकर रहते महात्मा सृञ्जयका पञ्चजन नामक पुत्र हुआ; पञ्चजनका राजा सोमदत्त नामक पुत्र हुआ ७७ सोमदत्तका पुत्र महायशस्वी सहदेव हुआ, सहदेवका पुत्र महीपति सोमक हुआ ॥ ७८ ॥ अजमीढवंशी सहदेवने (सौ तनय पानेके लिये अपने तनयको पशु बनाकर) उससे यज्ञ किया था तब वंशके क्षीण होने पर सोमक फिर उत्पन्न हुआ था, सोमकका तनय जन्तु हुआ उसके सौ तनय हुए ॥७९॥ उनमें छोटा पृषत् था वह प्रभु द्रुपदका पिता था, द्रुपदके धृष्टद्युम्न

तत्सुतः ॥ ८० ॥ अजमीढाः स्मृता ह्येते महात्मानस्तु सोमकाः ।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वं महात्मनः ॥ ८१ ॥ महिषी त्वज-
मीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी । तृतीया तत्र पूर्वेषां जननी पृथिवी-
पते ॥ ८२ ॥ सा तु पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यासमन्विता । ततो
वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ ८३ ॥ हुत्वाऽग्निं विधिवत्
सा तु पवित्रमितभोजना । अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप जनमेजय।
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान् ॥ ८४ ॥ ऋक्षं
संजनयामास धूम्रवर्णं सुदर्शनम् । ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः
संवरणात्तथा । यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥ ८५ ॥
तद्वैतत् स महाभागो वर्षाणि स बहून्यथ । तप्यमानो तदा शक्रो
यत्रास्य वरदो बभौ ॥ ८६ ॥ पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भि-

हुआ उसका तनय धृष्टकेतु हुआ ॥८०॥ अजमीढवंशी महात्मा सोमकोंका वर्णन करदिया, महात्मा अजमीढके वंशज सोमक कहलाते थे ॥ ८१ ॥ हे पृथिवीपते ! राजा अजमीढकी तीसरी पत्नी धूमिनी थी, वह पुत्राभिलाषिणी तेरे पूर्वजोंकी जननी थी ॥ ८२ ॥ वह देवी पुत्र पानेकी अभिलाषासे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर अयुत वर्ष तक परम दुष्कर तप करती रही, तदनन्तर वह विधिपूर्वक अग्निमें होम करके पवित्र और थोड़े भोजनका भक्षण करके हे जनमेजय ! अग्निहोत्रके कुशों पर ही सो गई तब देवी धूमिनीके पास अजमीढ़ गए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ और उसने धुमैले वर्ण वाले दर्शनीय ऋक्षको उत्पन्न किया, ऋक्षसे संवरण उत्पन्न हुआ संवरणसे कुरु उत्पन्न हुआ उसने अपनी राजधानी प्रयागसे उठा कर कुरुक्षेत्रमें बसाई थी ॥ ८५ ॥ वह कुरुक्षेत्र पुण्यमय रमणीय और पुण्यात्माओंसे बसा हुआ था, जब वह तहाँ बहुत दिनों तक रह कर तप करता रहा तब इन्द्र ने तहाँ पर कुरुको वर दिया था, उसका वंश बड़ा भारी है,

निषेवितम् । तस्यान्ववायः सुमहांस्तस्य नाम्ना स्थ कौरवाः ८७
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा । परिक्षिच्च महाबाहुः
प्रवरश्चारिमेजयः ॥ ८८ ॥ सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमां-
स्ततः । च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः ॥८९॥ च्यव-
नात् कृतयज्ञस्तु इष्ट्वा यज्ञैः स धर्मवित् । विश्रुतं जनयामास पुत्र-
मिन्द्रसमं नृपः ॥ ९० ॥ चैद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्ष-
गम् । चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त मानवान् ॥ ९१ ॥ महा-
रथो मगधराट् विश्रुतो यो बृहद्रथः । प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहु-
र्मणिवाहनम् ॥९२॥ मारुतश्च यदुश्चैव मत्स्यः काली च सत्तमः।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥ ९३ ॥ कुशाग्रस्या-
त्मजो विद्वान् वृषभो नाम वीर्यवान् । वृषभस्य तु दायादः पुष्प-

उसीके नामसे तुम कौरव कहलाते हो ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कुरुके
सुधन्वा सुधनु महाबाहु परीक्षित और उत्कृष्ट अरिमेजय नाम
वाले चार पुत्र हुए ॥ ८८ ॥ सुधन्वाका सुहोत्र नामक बुद्धिमान्
पुत्र हुआ उसका पुत्र धर्म और अर्थमें कुशल च्यवन हुआ ८९
च्यवनसे कृतयज्ञ हुआ उस धर्मात्माने यज्ञ करे उस यज्ञ करने
वालेने इन्द्रकी समान प्रसिद्ध अन्तरिक्षचारी चैद्य उपरिचर वसु
नामक पुत्रको उत्पन्न किया उस उपरिचर चैद्यसे गिरिकाने
सात मानवीसन्तानोंको उत्पन्न किया ॥ ९० ॥९१॥ (उनके
नाम इस प्रकार हैं, एक) महारथी मगधराज वह बृहद्रथ नाम
से प्रसिद्ध है (दूसरा) प्रत्यग्रह और (तीसरा) कुश इनको
मणिवाहन भी कहते हैं (चौथा) मारुत (पाँचवाँ) यदु और
मत्स्य (अर्थात् मत्सीके पाससे छठी) काली सत्यवती और
(सातवाँ) पुत्र सत्तम, बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे प्रसिद्ध
है ॥ ९२-९३ ॥ वीर्यवान् विद्वान् वृषभ कुशाग्रका पुत्र हुआ९४
वृषभका पुष्पवान् नामक धार्मिक पुत्र हुआ उसका पुत्र परा-

वान्नाम धार्मिकः । दायादस्तस्य विक्रान्तो राजा सत्यहितः स्मृतः ॥९५॥ तस्य पुत्रः स धर्मात्मा नाम्ना ऊर्जस्तु जज्ञिवान् । ऊर्जस्य संभवः पुत्रो यस्य जज्ञे स वीर्यवान् ॥ ९६ ॥ शकले द्वे स वै जातो जरया सन्धितः सुतः । जरया सन्धितो यस्माज्जरारान्धस्ततः स्मृतः ॥ ९७ ॥ सर्वक्षत्रस्य जेताऽसौ जरासन्धो महाबलः । जरासन्धस्य पुत्रो वै सहदेवः प्रतापवान् ॥ ९८ ॥ सहदेवात्मजः श्रीमानुदायुः स महायशाः । उदायुर्जनयामास पुत्रं परमधार्मिकम् ॥९९॥ श्रुतधर्मेति नामानं मगधान् योऽवसद्विभुः । परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ॥१००॥ जनमेजयस्य दायादास्त्रय एव महारथाः।श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः१ एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः । जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥ १०२ ॥ सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो

क्रमी सत्यहित कहलाता है ॥ ९५ ॥ उसका पुत्र धर्मात्मा हुआ उसका नाम ऊर्ज था ऊर्जके बृहद्रथोपनामक संभव नामका पुत्र हुआ उसके वीर्यवान् (जरासंध) उत्पन्न हुआ था ॥ ९६ ॥ वह पुत्र पहिले दो खण्डोंमें उत्पन्न हुआ था उसको जराने मिला दिया था, उसको जरा राक्षसीने मिला दिया था, इससे वह जरासंध कहलाता था ॥ ९७ ॥ उस महाबली जरासंधने सम्पूर्ण क्षत्रियोंको जीत लिया था, जरासंधका पुत्र प्रतापी सहदेव था ॥ ९८ ॥ सहदेवके महायशस्वी उदायु नामक पुत्र हुआ, उदायुने श्रुतधर्मा नाम वाले परम धार्मिक पुत्रको उत्पन्न किया वह प्रभु मगधदेशमें रहा था (कुरुके दूसरे पुत्र) परीक्षितके जनमेजय नामक धार्मिक पुत्र हुआ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ जनमेजयके श्रुतसेन उग्रसेन और भीमसेन नामक तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १०१ ॥ ये सब महाभाग्यवान् पराक्रमी और बलवान् थे,जनमेजयके सुरथ और मतिमान् नामक पुत्र हुए १०२ सुरथ

जज्ञे विदूरथः । विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥१०३॥
द्वितीयः स बभौ राजा नाम्ना तेनैव संज्ञितः । द्वावृक्षौ तव वंशे-
ऽस्मिन् द्वावेव तु परिक्षितौ ॥ ४ ॥ भीमसेनास्त्रयो राजन् द्वावेव
जनमेजयौ । ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत् सुतः ॥ ५ ॥
प्रतीपो भीमसेनस्य प्रतीपस्य तु शन्तनुः । देवापिर्बाल्हिकश्चैव
सोमदत्तो महारथः ॥ ६ ॥ शन्तनोः प्रसवस्त्वेष यत्र जातोऽसि
पार्थिव । बाल्हिकस्य तु राज्यं वै सप्तबाह्यं नरेश्वर ॥ ७ ॥

के विदूरथ नामक विद्वान् पुत्र हुआ विदूरथके ऋक्ष नामक महारथी पुत्र हुआ ॥ १०३ ॥ वह राजा (कुरुके पितामह ऋक्षसे) दूसरा था और वह उसके नामसे ही शोभा पारहा था, तेरे वंशमें दो ऋक्ष हुए हैं और दो ही परीक्षित हुए हैं ॥ १०४ ॥ तीन भीमसेन और हे राजन् ! दो जनमेजय हुए हैं, दूसरे ऋक्षके भीमसेन नामक पुत्र हुआ ५ भीमसेनके प्रतीप हुआ और प्रतीपके शन्तनु हुआ तथा देवापि बाल्हीक और सोमदत्त नामक पुत्र भी हुए हे पार्थिव ! तुम जिनमें हुए हो वह शन्तनुकी सन्ताने हैं, हे नरेश्वर बाल्हीकका राज्य सप्तबाह्य था अर्थात् सात प्रकारकी प्राप्तिसे अलग था(वह प्राप्तियें इस प्रकार हैं"ज्ञाने धर्मे बले कामे विज्ञानोपायसंग्रहे । मदर्थे भूभुजां नित्यं प्राप्तिः सप्तविधा मता-शास्त्रीयज्ञान,धर्म,काम,युक्ति कौशलआदि विज्ञान,उपायोंका संग्रह और चन्दन ताम्बूल आदि शारीरिक भोग ये राजाओंकी छः प्रकारकी प्राप्तियें मानी गई हैं,दूसरे कहते हैं कि उसका राज्य सप्त गणोंसे अर्थात् सात रत्न और सात महारत्नोंसे शून्य था।इन चौदह रत्नोंका शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन किया है,कि-"गज-वाजिरथास्त्रपुनिधिमालाम्बरद्रुमाःशक्तिः सासिर्मणिच्छत्रविमा-नानि चतुर्दश । अर्थात् हाथी घोड़े रथ अस्त्र खजाना माला वस्त्र वृक्ष शक्ति तलवार मणि छत्र विमान (अट्टालिकायें) और

वाल्हिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः । जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ८ ॥ उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः । च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्टश्चासीन्महात्मनः ॥९॥ शन्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः । शन्तनोः संप्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ११० ॥ गांगं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः । स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥ ११ ॥ काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भारत । शन्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम् ॥ १२ ॥ कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके । धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्रश्च गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम् । तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वेषामेव स प्रभुः ॥ १४ ॥ पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य

प्राण ये चौदह रत्न कहलाते हैं) ॥ १०७ ॥ बाल्हीकके सोमदत्त नामक महायशस्वी पुत्र हुआ सोमदत्तके भूरि भूरिश्रवा शल नामक पुत्र हुए ॥ १०८ ॥ मुनि देवापि देवताओंके उपाध्याय होगए थे उन्होंने यज्ञ करके महात्मा च्यवनके पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ १०९ ॥ शन्तनु कौरवोंका धुरन्धर राजा हुआ हे पार्थिव ! तुम जिसके यहाँ उत्पन्न हुए, हो, उस शन्तनुके (वंशजोंको) मैं अब कहता हूँ ॥ ११० ॥ उस प्रभुने देवव्रत नामक गांगेय पुत्र को उत्पन्न किया, वह पाण्डवोंके पितामह भीष्म नामसे प्रसिद्ध थे ॥११॥ हे भारत ! कालीने शन्तनुके प्यारे पुत्र निष्पाप धर्मात्मा विचित्रवीर्यको उत्पन्न किया था ॥ १२ ॥ मुनि कृष्णद्वैपायनने विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुरको उत्पन्न किया था १३ धृतराष्ट्रने गान्धारी में सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया था उनमें दुर्योधन श्रेष्ठ था और वह सबका स्वामी था ॥ १४ ॥ पाण्डुके पुत्र अर्जुन हुए उनके पुत्र अभिमन्यु हुए और हे जनेश्वर ! तुम्हारे पिता

चात्मजः। अभिमन्योः परिक्षित्तु पिता तव जनेश्वर ॥ १५ ॥
एष ते पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव। तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि
द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ॥ १६ ॥ सुतस्तु तुर्वसोर्वह्निर्वह्नेर्गोभानु-
रात्मजः। गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैसानुरपराजितः ॥ १७ ॥
करन्धमस्तु त्रैसानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः। अन्यस्त्वावीक्षितो
राजा मरुत्तः कथितस्तव ॥ १८ ॥ अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा
विपुलदक्षिणः। दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपतेः१६
दक्षिणार्थं स्म वै दत्ता संवर्ताय महात्मने। दुष्यन्तं पौरवं चापि
लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥ १२० ॥ एवं ययातेः शापेन जरासंक्रमणे
तदा। पौरवं तुर्वसोर्वंशः प्रविवेश नृपोत्तम ॥ २१ ॥ दुष्यन्तस्य
तु दायादः करुत्थामः प्रजेश्वरः। करुत्थामात्तथाक्रीडश्चत्वार-

परीक्षित अभिमन्युके पुत्र हुए ॥ ११५ ॥ यह तुमसे पौरव वंश कह दिया, कि—हे पार्थिव! जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो, अब मैं तुर्वसु द्रुह्यु अनु और यदुके वंशको कहता हूँ ॥ ११६ ॥ तुर्वसुके वन्हि नामक सुत हुआ वन्हिके गोभानु नामक पुत्र हुआ गोभानुका पुत्र किसीसे पराजय न पाने वाला त्रैभानु हुआ, करंधमके त्रैसानु हुआ उसका पुत्र मरुत्त हुआ मैंने तुमसे पहिले जो मरुत्तका वर्णन किया था वह मरुत्त दूसरा है और वह अवि-क्षित्का पुत्र है ॥ १८ ॥ वह राजा निःसन्तान था अर्थात् उस के कोई पुत्र सन्तान नहीं थी और उस राजाकी सम्मता नाम वाली पुत्री थी ॥ १९ ॥ उन्होंने उनको (अपने ऋत्विज) सम्वर्तको दक्षिणामें देदिया था (संवर्तने उसको दुष्यन्तके पिता सुधीर नामक पौरववंशीको देदिया था) तहाँ पर उसने पौरव-वंशी निष्पाप दुष्यन्तको (पाया) उत्पन्न किया था ॥१२०॥ इस प्रकार जरासंक्रमणके समय ययातिके शाप देनेके अनन्तर तुर्वसुका वंश पौरववंशमें लीन होगया था ॥१२१॥ दुष्यन्तका

स्तस्य चात्मजाः ॥ १२२ ॥ पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः । तेषां जनपदाः स्फीताः पांड्याश्चोलाः सकेरलाः २३ द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुः सेतुश्च पार्थिवः । अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुताम्पतिरुच्यते ॥२४॥ यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली । युद्धं सुमहदस्यासीन्मासान् परिचतुर्दश ॥ २५ ॥ अङ्गारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत । ख्यायते तस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान् ॥ २६ ॥ गान्धारविषयाश्चैव तुरङ्गा वाजिनां वराः । अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूत् घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २७ ॥ घृतात्तु दुदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः । प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्तिता ह्यानवो मया ॥ २८ ॥ यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः । विस्तरेणानुपूर्व्याच्च गदतो मे निशामय ॥ १२९ ॥

पुत्र करुस्थाम प्रजाधीश हुआ करुस्थामके आक्रीड़ हुआ उसके पाण्ड्य केरल कोल और राजा चोल इस प्रकार चार पुत्र हुए, उनके विस्तृत देश पाण्ड्य चोल और केरल हुए ॥१२२॥१२३॥ हे राजन्! द्रुह्युके बभ्रुसेतु नामक पार्थिव पुत्र हुआ उसका पुत्र अङ्गारसेतु हुआ वह मरुत्पति कहलाता है ॥१२४॥ युवनाश्वका पुत्र राजा मान्धाता उसको बड़ी कठिनतासे मार सका था, उसने चौदह मास तक घोर युद्ध किया था ॥ १२५ ॥ हे भारत! अङ्गारके गांधार नामक पुत्र हुआ उसके नामसे ही गांधार देश गान्धार कहलाता है ॥१२६॥ गान्धारदेशके घोड़े घोड़ोंमें अच्छे होते हैं, अनुके धर्म नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र घृत हुआ १२७ घृतके दुदुह नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र प्रचेता हुआ, प्रचेताके सुचेता हुआ, यह मैंने तुमसे अनुके वंशजोंका वर्णन कर दिया ॥ १२८ ॥ अब मैं उत्तम यश वाले यदुके कुलको कहता उसको तू क्रमशः और विस्तारपूर्वक सुन ॥ १२९ ॥ ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच । बभूवुस्तु यदोः पुत्राः पंच देवसुतोपमाः । सहस्रदः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोंऽञ्जिकस्तथा ॥ १ ॥ सहस्रदस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः । हैहयश्च हयश्चैव राजन् वेणुहयस्तथा ॥ २ ॥ हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्मनेत्र इति स्मृतः । धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहंजस्तस्य चात्मजः ॥ ३ ॥ साहंजनी नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता । साहंजस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः ॥ ४ ॥ माहिष्मती नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता । आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्वमेव तु । भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥ ६ ॥ दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान् । कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ ७ ॥ कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतवर्मा तथैव च । कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात्तथार्जुनः ॥ ८ ॥ यस्तु बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् । जिगाय

वैशम्पायनजीने कहा, कि-यदुके देवपुत्रोंकी समान सहस्रद पयोद क्रोष्टा नील और अञ्जिक नामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ सहस्रदके हैहय हय और वेणुहय नामक परम-धार्मिक पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ हैहयके जो पुत्र हुआ वह धर्मनेत्र कहलाता है, धर्मनेत्रके कार्त नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र सहञ्ज हुआ ॥ ३ ॥ उस राजाने साहंजनी नामकी पुरी बसाई थी, साहञ्जके महिष्मान् नामक राजा पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ उस राजा ने माहिष्मती नाम वाली पुरी बसाई थी, महिष्मान्के भद्रश्रेण्य नामक प्रतापी पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ वह राजा वाराणसीका स्वामी था यह बात पहिले ही कह दी है, भद्रश्रेण्यका पुत्र दुर्दम नामसे प्रसिद्ध था ॥ ६ ॥ दुर्दमका पुत्र वीर्यवान् और बुद्धिमान् कनक था, कनकके संसारमें प्रसिद्ध कृतवीर्य कृतौजा कृतवर्मा और चौथा कृताग्नि इस प्रकार चार पुत्र थे, कृतवीर्यके अर्जुन नामक

पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥ ९ ॥ स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् । दत्तमाराधयामास कीर्तवीर्योऽत्रिसंभवम् १० तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बाहुसहस्रन्तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥ ११ ॥ अधर्मे वर्तमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् । उग्रेण पृथिवीं जित्वा स्वधर्मेणानुरंजनम् ॥१२॥ संग्रामान् सुबहून् कृत्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः । संग्रामे वर्तमानस्य वधं चाप्यधिकाद्रणे ॥ १३ ॥ तस्य बाहुसहस्रन्तु युध्यतः किल भारत । योगाद्योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥ १४ ॥ तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना । ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥१५॥ तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ।

पुत्र हुआ ॥ ७–८ ॥ वह अपनी सहस्र भुजाओं (के बल) से सातों द्वीपोंका ईश्वर होगया था उस अकेलेने ही सूर्यकी समान कान्तिमान् रथमें बैठ कर पृथ्वीको जीत लिया था ।९। उस कृतवीर्यके पुत्र अर्जुनने एक अयुत वर्ष तक परम दुष्कर तप करके अत्रि ऋषिसे उत्पन्न हुए दत्तात्रेयकी उपासना की थी ॥ १० ॥ दत्तात्रेयजीने उसको चार अति यश देने वाले वर दिये थे, पहिले उसका माँगा हुआ सौ भुजा होनेका वरदान दिया ॥ ११ ॥ और अधर्ममें प्रवृत्त होने पर सज्जनोंके निवृत्त करनेका वर दिया, और उग्रतासे पृथ्वीको जीत कर उसका क्षत्रियधर्मानुसार रञ्जन करनेका वर दिया ॥ १२ ॥ और बहुतसे संग्रामोंको कर तथा सहस्रों शत्रुओंको मार कर संग्राम करतेहुए अपनेसे अधिक बली पुरुषसे मरण दिया १३ हे भारत! जब वह युद्ध करता था उस समय योगके द्वारा योगेश्वरकी समान मायासे उसके सहस्र भुजाएँ उत्पन्न होजातीथीं ॥ १४ ॥ उसने उग्रविधिसे सातों द्वीप और नगर वाली तथा समुद्र और पत्तनों वाली पृथ्वीको जीत लिया था ॥ १५ ॥ हे जनमेजय !

प्तशतानि विधिना राजा श्रूयन्ते जनमेजय ॥ १६ ॥ सर्वे यज्ञा
महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः सर्वे कांचनयूपाश्च सर्वे कांचन-
वेदयः ॥ १७ ॥ सर्वैर्देवैर्महाराज विमानस्थैरलंकृताः । गन्धर्वै-
रप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥१८॥ यस्य यज्ञे जगौ गाथां
गन्धर्वो नारदस्तथा । वरीदासात्मजो विद्वान् महिम्ना तस्य
विस्मितः ॥ १९ ॥ नारद उवाच । न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं
यास्यन्ति पार्थिवाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च २०
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी च शरासनी । रथी द्वीपाननु-
चरन् योगी संदृश्यते नृभिः ॥२१॥ अनष्टद्रव्यता चैव न शोको
न च विभ्रमः । प्रभावेन महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ २२ ॥

यह सुना जाता है, कि-उस राजाने सातों द्वीपोंमे शास्त्रानुसार सात सौ यज्ञ किये थे ॥१६॥ उस महाबाहुके सब यज्ञोंमें बहुत सी दक्षिणायें दीगई थीं और सब यज्ञोंमें सुवर्णके स्तंभ और वेदियें बनाई गईं थी ॥ १७ ॥ और हे महाराज ! उसके सब यज्ञ विमानोंमें बैठे हुए देवताओंसे अलंकृत रहते थे और उसके सब यज्ञ गन्धर्व और अप्सराओंसे सुशोभित रहते थे ॥ १८ ॥ उसके यज्ञमें उसकी महिमासे विस्मित होकर वरीदास गन्धर्व के विद्वान् पुत्र गन्धर्वने और नारदजीने गाथाएँ गाई थीं१९ नारदजीने कहा था, कि-राजे यज्ञ दान तप और स्वाध्यायमें कार्तवीर्य अर्जुनकी समान कभी नहीं होसकेंगे और न उसकी गतिको पासकेंगे ॥ २० ॥ मनुष्य उस योगीको (योगके कायव्यूहके कारण) सातों ही द्वीपोंमें ढाल तलवार तूणीरको धारण कर रथमें बैठ कर घूमता हुआ देखते थे ॥२१॥ उस महाराजके धर्मानुसार प्रजा रक्षण करनेके प्रभावसे उसका द्रव्य कभी निवड़ता नहीं था और उसको न कभी शोक होता था और न कभी विभ्रम होता था ॥ २२ ॥ वह राजा पिचासी

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां वै नराधिपः। स सर्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ॥ २३ ॥ स एव यज्ञपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च। स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् २४ स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा। भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव दिवाकरः ॥२५॥ स हि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः। कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत् २६ स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः। क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ॥ २७ ॥ लुण्ठिता क्रीडिता तेन फेनस्रग्दाममालिनी। चलदूर्मिसहस्रेण शंकिताऽभ्येति नर्मदा २८ तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महोदधौ।भयान्निलीना निश्चेष्टाः

वर्ष तक सब रत्नोंको भोगने वाला चक्रवर्ती सम्राट रहा था २३ वह अर्जुन योगी होनेके कारण स्वयं यज्ञपाल(यजमान) होता था और स्वयं ही क्षेत्रपाल होता था और वर्षा कर स्वयं ही पर्जन्य होजाता था अर्थात् वह योगके प्रभावसे एक शरीरसे यज्ञ करता रहता था तो दूसरे शरीरसे प्रजापालन करता रहता था २४ वह राजा प्रत्यञ्चाका आघात पड़नेसे कड़ी पड़ी हुई खाल वाले सहस्र हाथोंके कारण शरद्-ऋतुके सहस्र किरणों वाले सूर्यकी समान दिपता रहता था ॥ २५ ॥ उस महाकान्तिमान् राजाने कर्कोटक नागके पुत्र सर्पोंको जीत कर अपनी पुरीमें मनुष्योंके साथ बसा दिया था ॥ २६ ॥ उस कमलनेत्रने भुजाओंसे क्रीड़ा कर वर्षाकालके समुद्रके प्रवाहको उलटा बहा दिया था॥ २७ ॥ उसके द्वारा आलोडन की हुई और क्रीड़ाके समय रमाई हुई फेनरूपी मालाके डोरेकी माला वाली नर्मदा अपनी लहरे मारती हुई वीचियोंसे (परपुरुषके भोगनेके बाद) शंकित सी होती हुई (अपने पति समुद्रके पास) जाती थी२८जब समुद्र उसकी सहस्र भुजाओंसे क्षुब्ध होने लगा तब पातालवासी बड़े२राक्षस भयके

पातालस्था महासुराः ॥ २९ ॥ चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीन-
महातिमिम् । मारुताविद्धफेनौघमावर्तक्षोभदुःसहम् ॥ ३० ॥
प्रावर्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना । देवासुरसमाक्षिप्तः
क्षीरोदमिव मन्दरः ॥ ३१ ॥ मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पत्ति-
शंकिताः । सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥३२॥
नतानिश्चलमूर्धानो बभूवुस्ते महोरगाः । सायान्हे कदलीखण्डे
कम्पितास्तस्य वायुना ॥ ३३ ॥ स वै बध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं
पंचभिः शरैः । लंकेशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ।
निर्जित्यैनं समानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा

कारण अपने (अंगोंको) सकोड़ कर निश्चेष्ट हो होगए २९ उस राजाने नर्मदाकी बड़ी २ वीचियों (लहरों) का चूरा कर डाला और (उस राजासे घबड़ा कर) उस नदीकी तिमि(ह्वेल मछली) और मीन इधर उधर भागने लगे थे (उसके भुजाओं की) वायुमे नर्मदा नदीके झागोंके टुकड़े २ उड़ने लगे और उसमें क्षोभके कारण दुःसह भ्रमर पड़ने लगे वह राजा अपनी सहस्र भुजाओंसे नर्मदाको मन्दराचलके समुद्रको विलोड़नेकी समान विलोड़ने लगा ३०-३१ मन्दराचल-रूपी उस राजाके क्षोभसे चकित हुए निश्चल मस्तक वाले सर्प कहीं अमृत तो नहीं रहा है यह शंका कर ऊपरको मस्तक उठाते हुए निकल आये परन्तु उस राजाको देखकर अपने मस्तकको नीचेको करके [फिर जलमें घुस गए] वे सर्प उसकी भुजाओंकी वायुसे कम्पित होते हुए कदलीवनमें सायंकालके समय निकले थे । ३२ । ३३ । कार्तवीर्य अर्जुनने रावणको पाँच बाण मार कर लोहू लुहान कर दिया था इस प्रकार रावणको मूर्छित सा करनेके बाद वह उसको और उसकी सेनाको धनुषकी डोरियोंसे बाँध कर उनको बलपूर्वक अपनी माहिष्मती नगरीमें ले आया और

तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन तु । ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम् । मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुयाचितः ॥३५॥ यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः । युगांते त्वंबुदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ॥ ३६ ॥ अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् । राज्ञो बाहुसहस्रन्तु हैमं तालवनं यथा३७ तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना । स भिक्षामददाद्वीरः सप्तद्वीपान् विभावसोः ॥ ३८ ॥ पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः । जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया ॥ ३९ ॥ स तस्य पुरुषेंद्रस्य प्रभावेन महात्मनः । ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चैव वनानि च ॥४०॥ स शून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै । ददाह वनवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः ॥ ४१ ॥ यं लेभे

उनको माहिष्मती नगरीमें बाँध कर डाल दिया था ।३३।३४। पुलस्त्य मुनिने जब यह सुना कि-अर्जुनने रावणको बंधनमें डाल दिया है, तब वह अपने आप अर्जुनके पास गए और [रावणको तहाँ बंधे हुए] देखा, इसके उपरान्त पुलस्त्य मुनिके यांचना करने पर सहस्रबाहुने उस पुलस्त्यवंशी राक्षसको छोड़ दिया था३५ उसकी सहस्र भुजाओंसे धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द प्रलयके बादल और कड़कते हुए वज्रकी समान होता था ३६ भृगुवंशी परशुराम के वीर्यको धन्य है, कि-उन्होंने युद्धमें राजा अर्जुनकी सहस्र भुजाओंको तालके वनकी समान काट डाला था ३७ एक समय पिपासे चित्रभानुने उससे भिक्षा माँगी तब उस वीरने अग्निको सातों द्वीप दक्षिणामें देदिये थे ३८ तब चित्रभानु भस्म करनेकी इच्छासे उसके नगर ग्राम घोष और राज्यको भस्म करने लगे अग्नि पुरुषोंमें इन्द्रकी समान महात्मा कार्तवीर्यके प्रभावसे पर्वत और वनोंको भस्म करने लगे ४० राजा हैहयकी सहायतासे अग्निने वरुणपुत्र वसिष्ठजीके सूने पड़े हुए आश्रमको भी [वन

वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् । वसिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥ ४२ ॥ यत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुनं विभुः । यस्मान्नावर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ॥ ४३ ॥ तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति । रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥४४॥ छित्वा बाहुसहस्रन्ते प्रमथ्य तरसा बली । तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां वधिष्यति स भार्गवः॥४५॥वैशम्पायन उवाच । अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्शन । प्रभावेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ४६ ॥ रामात्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुने नृप । वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४७ ॥ तस्य पुत्रशतस्यासन् पञ्च शेषा महात्मनः । कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ॥ ४८ ॥ शूरसेनश्च शूरश्च धृष्णोक्तः

में] डरते २ भस्म कर दिया ४१ वरुणने जिस प्रकाशवान् उत्तम वसिष्ठ पुत्रको पाया था वह मुनि आपव कहलाते थे४२उन विभु वरुणपुत्र [आपव] ने क्रोधमें भरकर अर्जुनको शाप दिया कि-हे हैहय ! तूने मेरे आश्रमको भी नहीं छोड़ा ४३ इस कारण तेरे किये हुए दुष्कर जय आदि कर्मको दूसरा मनुष्य नष्ट कर डालेगा अर्थात् तेरा पराजय होगा जमदग्निपुत्र महाभुज प्रतापी परशुराम तपस्वी ब्राह्मण हैं वे बली भार्गव बलपूर्वक तेरी सहस्र भुजाओंको काट डालेंगे और तुझे मारडालेंगे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हे अरिकर्षण!जिस नरेन्द्रके यहाँ धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेके कारण अनष्टद्रव्यता रहती थी अर्थात् धन कभी निबड़ता नहीं था हे नृप!उसकी मृत्यु उन मुनिके शापसे परशुरामजीके हाथसे हुई थी, हे कौरव्य ! यह वर उसने पहिले अपने आप भी माँग लिया था ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उस महात्माके अस्त्रविद्याके पारगामी शूरवीर धर्मात्मा और यशस्वी शूरसेन शूर धृष्णोक्त कृष्ण और जयध्वज नाम वाले पाँच सुत बचे थे इनमें जयध्वज अवन्ती

कृष्ण एव च ।जयध्वजश्च नाम्नाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान्४९
कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महारथाः । जयध्वजस्य पुत्रस्तु
तालजंघो महाबलः ॥ ५० ॥ तस्य पुत्राः शतं ख्यातास्तालजंघा
इति श्रुताः । तेषां कुले महाराज हैहयानां महात्मनाम् ॥ ५१ ॥
वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावंतयः स्मृताः । तौंडिकेरा
इति ख्यातास्तालजंघास्तथैव च ॥ ५२ ॥ भरताश्च सुता जाता
बहुत्वान्नानुकीर्तिताः।वृषप्रभृतयो राजन् यादवाः पूर्णकर्मिणः५३
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः । मधोः पुत्रशतं त्वासीद्
वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥ ५४ ॥ वृषणाद् वृष्णयः सर्वे मधोस्तु
माधवाः स्मृताः । यादवा यदुना चाग्रे निरुच्यन्ते च हैहयाः५५
शूराश्च शूरवीराश्च शूरसेनास्तथाऽनघ । शूरसेन इति ख्यात-
स्तस्य देशो महात्मनः ॥ ५६ ॥ न तस्य वित्तनाशोऽस्ति नष्टं
प्रतिलभेच्च सः । कार्तवीर्यस्य यो जन्म कीर्तयेदिह नित्यशः५७

पुरीका बड़ा भारी राजा था४८ ४९ ये कार्तवीर्यके सुत बलवान् और महारथी थे,जयद्रथके तालजंघ नामक महाबली सुत हुआ, उसके सौ सुत थे वे तालजंघ नामसे प्रसिद्ध थे ५२पुण्य कर्म करनेवाले भरतवंशी वृष(पयोद) प्रभृति और भी बहुतसे यादव हुए हैं, परन्तु विस्तार भयसे उनका यहाँ वर्णन नहीं किया है ॥ ५३ ॥ वृष वंशधर हुआ उसका सुत मधु हुआ, मधुके सौ सुत हुए इनमें वृषण वंशको चलाने वाला था ॥ ५४ ॥ वृषणसे सब वृष्णि हुए हैं और मधुके वंशज माधव कहलाते हैं, यदुके कारण (उसके वंशज) यादव कहलाते हैं, हे निष्पाप! शूर शूरवीर और शूरसेन हैहय कहलाते हैं उस महात्माका देश शूरसेन कहलाता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस संसारमें जो मनुष्य कार्तवीर्यके चरित्रका नित्यमति कीर्तन करता है उसके पास कभी धनका अभाव नहीं होता है और उसको खोया

एते ययातिपुत्राणां पञ्चविंशा विशाम्पते । कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै । भूतानीव महाराज पंचस्थावरजंगमान् ॥ ५८ ॥ श्रुत्वा पंचविसर्गन्तु राजा धर्मार्थकोविदः । वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥ ५९ ॥ लभेत् पंच वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् । आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च । धारणाच्छ्रवणाच्चैव पंच वर्गस्य भारत ॥ ६० ॥ क्रोष्टोस्तु शृणु राजेन्द्र वंशमुत्तमपौरुषम् । यदोर्वंशधरस्याथ यज्वनः पुण्यकर्मणः ॥ ६१ ॥ क्रोष्टर्हि वंशं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते । यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच । गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभू-

हुआ धन भी मिल जाता है ॥५७॥ ये ययातिके पुत्रोंकी पच्चीस पीढ़ियें कह दीं, हे महाराज ! लोकोंको धारण करने वाले पञ्च महाभूतोंकी समान ये लोकवीर भी स्थावर जंगमात्मक लोकोंका पालन करते रहते थे५८धर्म और अर्थमें चतुर राजा इन पाँचके वंशको सुन कर पाँच विषयोंको वशमें करने वाला और अपने पुत्रोंको वशमें रखने वाला ईश्वर होता है ५९ हे भारत ! इन पाँच पुरुषोंके वंशके सुननेसे अथवा धारण करनेसे मनुष्य इस लोकमें आयु कीर्ति पुत्र ऐश्वर्य और भूमिरूप पाँच दुर्लभ वरोंको पाता है ॥६० ॥ हे राजेन्द्र ! अब तुम उत्तम पुरुषार्थ दिखानेवाले क्रोष्टाके वंशको सुनो, वह पुण्य कर्म करने वाला यज्ञ करने वाला और यदुका वंशधर था ६॥१॥ वृष्णिकुलको उठाने वाले विष्णु जिसके वंशमें उत्पन्न हुए हैं उस क्रोष्टाके वंशको सुन कर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ६२तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-क्रोष्टाकी गान्धारी और माद्री

वतुः । गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥ १ ॥ माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्।तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्धनः ॥२॥ माद्रयाः पुत्रस्य जज्ञाते सुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ । जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ३ ॥ श्वफल्कस्तु महाराज धर्मात्मा यत्र वर्तते । नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्ष-भयमच्युत ॥ ४ ॥ कदाचित् काशिराजस्य विभोर्भरतसत्तम । त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत् पाकशासनः॥५॥ स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम् । श्वफल्कपरिवर्ते च ववर्ष हरि-वाहनः ॥ ६ ॥ श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत । गांदिनीं नाम सा गान्तु ददौ विप्रेषु नित्यशः ॥ ७ ॥ सा मातु-रुदरस्था तु बहून् वर्षगणान् किल । निवसन्ती न वै जज्ञे गर्भ-

नाम वाली दो स्त्रियें थीं गांधारीने अनमित्र नाम वाले महाबली पुत्रको उत्पन्न किया था ॥१॥ और माद्रीने एक युधाजित् और दूसरे देवमीढुष नाम वाले पुत्रको उत्पन्न किया था, वृष्णियोंके कुलको बढ़ाने वाला उनका वंश तीन शाखाओंमें बट गया॥२॥ माद्रीके पुत्र (युधाजित) के वृष्णि और अंधक नाम वाले दो पुत्र हुए और वृष्णिके श्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुए ॥ ३ ॥ महात्मा श्वफल्क जहाँ रहता था तहाँ व्याधिका भय और अवर्षाका भय नहीं होता था ॥ ४ ॥ हे भरतसत्तम ! एक समय प्रभु काशिराजके देशमें इन्द्रने तीन वर्ष तक वर्षा नहीं बरसाई थी ॥ ५ ॥ तब उसने परमपूज्य श्वफल्कको बुला कर अपने यहाँ बसाया था, और श्वफल्कके आते क्षण ही वर्षा होने लगी थी ॥ ६ ॥ श्वफल्कसे गांदिनी नाम वाली काशि-राजकी पुत्री विवाही गई थी, वह ब्राह्मणोंको सदा गौओंका दान देती रहती थी ॥ ७ ॥ वह अपनी माताके उदरमें बहुत वर्षों तक रही थी और उत्पन्न नहीं होती थी उस गर्भमें स्थित

स्थान्तां पिताऽब्रवीत् ॥ ८ ॥ जायस्व शीघ्रं भद्रन्ते किमर्थमिह तिष्ठसि ॥ ६ ॥ प्रोवाच चैनं गर्भस्था कन्या गां च दिने दिने । यदि दद्यां ततोऽद्याहं जायिष्यामि तां पिता । तथेत्युवाच तं चास्याः पिता काममपूरयत् ॥१०॥ दाता यज्वा च धीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः ११ उपासंगस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः । अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः ॥ १२ ॥ धर्मधृग्यतिधर्मा च गृध्रमोजान्तकस्तथा । आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वरांगना ॥ १३ ॥ अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दन । प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ १४ ॥ चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ १५ ॥ अरिष्टनेमि-

---

कन्यासे उसके पिताने कहा, कि-॥ ८ ॥ हे भद्रे ! तू शीघ्र ही उत्पन्न हो तू किस लिये ठहर रही है ॥ ६ ॥ तब उस गर्भमें स्थित कन्याने कहा, कि-यदि मैं प्रतिदिन गोदान करती रहूँ अर्थात् आप मुझसे प्रतिदिन गोदान करानेका संकल्प करें तो मैं उत्पन्न होऊँ तब पिताने उससे तथास्तु कहकर उसकी कामना को पूर्ण किया था ॥ १० ॥ श्वफल्कके दान देने वाला यजन करने वाला धीर शास्त्रज्ञ अतिथियोंको प्रिय समझने वाला और बड़ी २ दक्षिणायें देने वाला अक्रूर उत्पन्न हुआ था ॥ ११ ॥ तथा उपासंग मद्गु मृदुर अरिमेजय अविक्षिप उपेक्ष शत्रुघ्न अरिमर्दन धर्मधृक् यतिधर्मा गृध्रम अजान्तक आवाह प्रतिवाह (नामक पुत्र और) वराङ्गना नाम वाली सुन्दरी (कन्या उत्पन्न हुई थी) ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे कुरुनन्दन ! अक्रूरके उग्रसेना नाम वाली सुन्दर शरीर वाली स्त्रीसे देवताकी समान कान्ति वाले प्रसेन और उपदेव उत्पन्न हुए थे॥१४॥(अक्रूरके भाई)चित्रकके पृथु विपृथु अश्वग्रीव अश्वबाहु सुपार्श्वक गवेषण अरिष्टनेमि

रश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा । सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे
स्त्रियौ ॥१६॥ अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः महिष्यां
जज्ञिरे शूराद्भोज्यायां पुरुषा दश ॥ १७ ॥ वसुदेवो महाबाहुः
पूर्वमानकदुन्दुभिः । जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन्दिवि १८
आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि । पपात पुष्पवर्षं च
शूरस्य भवने महत् ॥१९॥ मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति
समो भुवि । यस्यासीत् पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा २०
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः । अनाधृष्टिः कनवको
वत्सवानथ गृञ्जिमः ॥२१॥ श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य
वरांगनाः । पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः ॥ २२ ॥
राजाधिदेवी च तथा पंचैता वीरमातरः । पृथा दुहितरं वव्रे

अश्व सुधर्मा धर्मभृत् सुबाहु और बहुबाहु नामक पुत्र हुए थे और उनकी श्रविष्ठा और श्रवणा नामकी दो स्त्रियें थीं।१५।१६। (क्रोष्टाके तृतीय पुत्र) देवमीढुषने अश्मकीमें शूर नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, शूरने भोजकुलकी महिषीमें दश पुत्रोंको उत्पन्न किया था १७ पहिले महाभुज आनकदुन्दुभि वसुदेवउत्पन्न हुए थे उनके उत्पन्न होने पर स्वर्गमें दुन्दुभियें वजीं थीं ॥१८॥ और स्वर्गमें नगाड़ोंका बड़ा भारी शब्द हुआ था (इसीसे वसुदेवका उपनाम आनकदुन्दुभि पड़ गया था) और शूर के घरमें पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई थी॥ १९ ॥ इन पुरुषोंमें अग्रणीय वसुदेवकी कान्ति चन्द्रमाकी समान थी, उनकी समान रूपवान् सारे मनुष्यलोकमें और कोई भी नहीं था॥ २० ॥ फिर (शूरके) देवभाग देवश्रवाः अनाधृष्टि कनवक वत्सवान् गृंजिम श्याम शमीक और गण्डूष (नामक पुत्र) तथा पाँच स्त्रियोंमें श्रेष्ठ पुत्रियें हुई थीं (उनके नाम इस प्रकार हैं) पृथुकीर्ति पृथा श्रुतदेवा श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पाँचों

कुन्तिस्तां कुरुनन्दन ॥२३॥ शूरः पूज्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ। तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा पृथा २४ अन्त्यस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषवे सुतः। श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः ॥२५॥ हिरण्यकशिपुर्योसौ दैत्यराजोऽभवत् पुरा। पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः ॥२६॥ करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः। पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पांडुरावहत् ॥ २७ ॥ यस्यां स धर्मविद्राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः। भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः ॥ २८ ॥ लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः। अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठात् वृष्णिनन्दनात् ॥ २६ ॥ शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः। असंगो युयुधानस्य भूमिस्तस्याभवत् सुतः ॥ ३० ॥ भूमेर्युग-

वीर पुरुषों की माताएँ हैं, कुरुनन्दन। कुन्ति राजाने पृथाको अपनी पुत्री बनानेके लिये माँगा था २१-२३ तब शूरने उसको पूज्य और वृद्ध राजा कुन्तिभोजको देदिया था इस कारण पृथा कुन्तिभोजकी पुत्री और कुन्ती कहलाती थी ॥ २४ ॥ अन्त्य का श्रुतदेवासे जगृहु नामक पुत्र हुआ चैद्यवंशी (दमघोष)के श्रुतश्रवामें महावली शिशुपाल उत्पन्न हुआ था ॥२५॥ वह पहिले जन्ममें दैत्यराज हिरण्यकशिपु था वृद्धशर्मासे पृथुकीर्तिमें करूप देशका स्वामी महावली वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ था, कुन्तिने जिस पृथाको पुत्री बना लिया था उसका पाण्डुके साथ विवाह हुआ था ॥ २७ ॥ उसमें धर्मको जानने वाले युधिष्ठिर धर्मसे उत्पन्न हुए थे और वायुसे भीमसेन तथा इन्द्रसे धनञ्जय उत्पन्न हुए थे, वह लोकमें इक्कड़ वीर थे और इन्द्रकी समान पराक्रमी थे, कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनि उत्पन्न हुए थे २८-२६ उनसे शिनिपुत्र सत्यक हुए उनसे युयुधान उपनाम वाले सात्यकि उत्पन्न हुए युयुधानके असंग हुए उनके भूमि नामक पुत्र

न्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते । उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत् । पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ॥ ३१ ॥ अश्मक्यां प्रासवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम् । निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा व्यजायत ॥ ३२ ॥ देवश्रवाःप्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः । एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्धितः ॥३३॥ वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान् । अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम् ॥ ३४ ॥ गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान् । चारुदेष्णं सुचारुं च पञ्चालं कृतलक्षणम् ॥ ॥३५ ॥ असंग्रामेण यो वीरो नावर्तत कदाचन । रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् पुरुषर्षभ ॥ ३६ ॥ वायसानां सहस्राणि यं यान्तं

हुआ ॥ ३० ॥ भूमिके युगंधर नामक पुत्र हुआ यहाँ पर वंश समाप्त होता है,देवभागके उद्धव नामक महाभाग्यवान् पुत्र हुआ उस देवताकी समान कीर्तिवाले (पुत्र) को उद्धव कहते हैं ३१ (वसुदेवके तीसरे भाई)किसीसे न दबने वाले देवश्रवाने अश्मकी में शत्रुओंको हटाने वाले शत्रुघ्न नामक पुत्रको उत्पन्न किया था ॥३२॥किसी कारणसे त्यागनेके कारण (वह देवश्रवाका पुत्र) निषादजातिका कहलाता था हे महाराज ! वह एकलव्य नामसे प्रसिद्ध था और उसको निषादोंने बड़ा किया था ३३ प्रतापी वसुदेवने (अपने छोटे भाई) अपुत्र वत्सावान्को अपना औरस पुत्र जलसे संकल्प करके देदिया ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णने (वसुदेवके दूसरे छोटे भाई) अपुत्र गण्डूषको चारुदेष्ण सुचारु पञ्चाल और कृतलक्षण नाम वाले अपने चार पुत्र देदिये थे ॥ ३५ ॥ (अब चारुदेष्ण नामकी दो श्लोकोंमें व्याख्या करते हैं) हे पुरुषर्षभ ! वह रुक्मिणीका छोटा पुत्र महाभुजथा और वह वीर संग्रामके किये विना नहीं लौटता था ॥ ३६ ॥ उसके पीछे सैंकड़ों कौए इस इच्छासे जाते थे, कि-मार २ कर

पृष्ठतोऽन्वयुः । चारुमांसानि मोऽद्यागश्चारुदेष्णहतानि तु ३७
तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तु । वीरश्चाश्वहनश्चैव
वीरौ तावाजशृंजिनो ॥ ३८ ॥ श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको
राज्यमावहत् । जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३६॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः । वसुदेवसुतान् वीरान्
कीर्तयिष्यामि तान् शृणु ॥ ४० ॥ वृष्णेस्त्रिविधमेतत्तु बहुशाखं
महौजसम् । धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वृष्णिवंश-
कीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच । याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वरा-
ङ्गनाः । पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथाऽवरा ॥ १ ॥ वैशाखी

हमें चारु (मिष्ट) मांस देगा (चारु-मिष्ट पदार्थ-देगा इससे वह चारुदेष्ण कहलाता था) ॥ ३७ ॥ (वसुदेवके भ्राता) कनवकके तन्द्रिज और तन्द्रिपाल नामक पुत्र थे और (वसुदेवके भाई) अजशृंजिमके वीर और अश्वहन नामके पुत्र थे ॥३८॥ श्यामका पुत्र (छोटा भाई होनेसे पुत्रकों समान) शमीक हुआ उस शमीकने राज्य किया था उसने भोज होनेके कारण अर्थात् भोजवंशी एकवंशके ही राजे हैं इस प्रकार अपनी निन्दा कर उसने राजसूय (साम्राज्य) पाया था ॥ ३६ ॥ (राजसूय करनेका वृत्तान्त बताते हैं, कि-) वह शत्रुनाशक अजातशत्रु हो गया था अर्थात् युधिष्ठिरकी सहायता करने वाला मित्र होगया था अब मैं वसुदेवके वीर पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, उनको तुम सुनो ॥४०॥ मनुष्य वृष्णिके इस तीन प्रकारके बहुतसी शाखा वाले महापराक्रमी पुरुषों वाले बड़े भारी वंशको सुन कर अनर्थों में नहीं फँसता है ॥ ४१ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३४॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-वसुदेवकी जो चौदह श्रेष्ठ पत्नियें

च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पंचमी । सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ २ ॥ वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी । सुनन्तु वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥ ३ ॥ पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाऽभवत् । ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः ॥ ४ ॥ लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं शठमेव च । दुर्दमन्दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥ ५ ॥ चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश।चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन ६ वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः । रामाच्च निशठो जज्ञे

थीं उनमें रोहिणी छोटी अवरा वैशाखी सुभद्रा और पाँचवी सुनाम्नी थे पाँच पौरववंशकी थी तथा सहदेवा शांतिदेव श्रीदेवा देवरक्षिता वृकदेवी उपदेवी और सातवीं देवकी ये सात देवककी पुत्रियें थीं और सुनन्तु और वडवा नाम वाली ये दोनों उनकी परिचर्या करने वाली स्त्रियें थीं ॥१॥४॥ उसके ज्येष्ठ पुत्र बलराम सारठ शठ दुर्दम दमन श्वभ्र पिण्डारक उशीनर [ये पुत्र] और चित्रा नाम वाली कुमारी रोहिणीके ये दश सन्तानें उत्पन्न हुई थीं हे कुरुनन्दन ! वह चित्रा [दूसरे जन्ममें] सुभद्रा नामसे प्रसिद्ध हुई थी [तात्पर्य—चित्रा तक गिनने पर रोहिणीकी नौ ही सन्ताने होती हैं, फिर यहाँ दश सन्तानें कैसे होसकती हैं अतः एव कहा है, कि-चित्रा दूसरे जन्ममें सुभद्रा नामसे प्रसिद्ध हुई थी इस प्रकार दश सन्तानें उत्पन्न हुई थीं, पुराणोंमें प्रसिद्ध है, कि—चित्रा नामकी एक अप्सरा मुनिके शापसे रोहिणीके गर्भमें आई थी और उत्पन्न होते ही मर गई थी, परन्तु उसने विचारा, कि—मुझे धिक्कार है, कि—मैंने यादवोंमें उत्पन्न होकर भी भगवान्की लीला नहीं देखी, इस प्रकार अनुताप करके वह दूसरी वार सुभद्रा नाम धारण कर उत्पन्न हुई थी, इस प्रकार दश सन्तानें उत्पन्न

रेवत्यां दयितः सुतः ॥ ७ ॥ सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत । अक्रूरात् काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु । ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधमे ॥ ९ ॥ भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ । वृकदेवः सुदेवायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥ १० ॥ उपासंगवरं लेभे तनयं देवरक्षिता। अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ॥ ११ ॥ कन्या त्रिगर्तराजस्य भर्ता वै शैशिरायणः । जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देऽथ पौरुषम् ॥ १२ ॥ कृष्णायससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा । मिथ्याभिशप्तो गार्ग्यस्तु मन्युनाभिसमीरतः ॥ १३ ॥ गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ।

हुई थीं) ॥९॥ वसुदेवसे देवकीमें महायशस्वी श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे और रामसे रेवतीमें निशठ नामक प्रिय पुत्र हुआ था, अर्जुनसे सुभद्रामें रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था, अक्रूरसे काशिकन्यामें सत्यकेतु उत्पन्न हुए थे ॥ ७-८ ॥ वसुदेवकी सात महाभाग्यवती पत्नियोंमें जो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके नामोंको तुम सुनो ॥ ९ ॥ भोज और विजय ये दो शांतिदेवाके पुत्र हुए सुदेवामें वृकदेव और गद उत्पन्न हुए थे १० देवरक्षिताने उपासंगवर महात्मा अवगाह नाम वाले पुत्रको उत्पन्न किया था त्रिगर्तराजके वृकदेवी नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी, त्रिगर्तराजका भर्ता [पुरोहित] शैशिरायण था [उसके यादवपक्षी साले पुरोहितने] यह जानना चाहा था, कि यह नपुंसक तो नहीं है, परन्तु उसका वीर्य स्खलित नहीं हुआ [क्योंकि उसने व्रतको धारण कर रक्खा था अतः उसका वीर्य स्खलित नहीं हुआ था इससे उसको सालेने मिथ्या ही नपुंसक बता दिया था]बारहवर्ष बीतने पर मिथ्या दोष लगानेके कारण गार्ग्यगोत्री शैशिरायण कोपमें भर कर लोहेकी समान कान्तिमान् दीखने

गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्री वेषधारिणी ॥ १४ ॥ धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् । मानुष्या गार्ग्यभार्यायां नियोगच्छूलपाणिनः ॥ १५ ॥ स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः । वृषपूर्वार्धकायास्तमवहन् वाजिनो रणे ॥१६॥ अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेन्तःपुरे शिशुः । यवनस्य महाराज स कालयवनोऽभवत् ॥ १७ ॥ स युद्धकामी नृपतिः पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमान् । वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ॥१८॥ अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा । दूतं संप्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ १९ ॥ ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम् । समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा ।२०। कृत्वा च निश्चयं सर्वे पलायनपरायणाः । विहाय मथुरां रम्यां

लगा) ॥ १३ ॥ और वह गोपकन्याको लेकर मैथुन करनेलगा था वह स्त्री गोपस्त्रीका वेश धारण करने वाली गोपाली नामकी अप्सरा थी ॥ १४ ॥ उसने गार्ग्यके अच्युत और दुर्धर गर्भको धारण कर लिया था, उस मनुष्यका वेष धारण करने वाली गार्ग्यकी भार्यामें शिवजीकी आज्ञासे कालयवन नाम वाला महाबली राजा हुआ था उसको वृषकी समान आधे शरीर वाले घोड़े सवारी देते थे ॥१५-१६॥ राजा यवन अपुत्र था हे महाराज ! उसके अन्तःपुरमें वह शिशु पलने लगा, वह कालयवन हुआ था ॥ १७ ॥ वह राजा युद्ध करनेकी इच्छासे ब्राह्मणोंसे [लड़ने योग्य पुरुषोंको] बूझने लगा, विभु नारदजीने उसको वृष्णि और अन्धक कुलके वीर लड़नेयोग्य बताये ॥१८॥ तब वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरी पर चढ़ गया था उसने वृष्णि और अन्धकोंके भवनमें दूतको भेजा ॥१९॥ तब कालयवनके डरसे वृष्णि और अन्धकोंने महामति श्रीकृष्णके सभापतित्वमें इकट्ठे होकर सभा कर मन्त्रणाकी ॥ २० ॥

मानयन्तः पिनाकिनम् ॥ २१ ॥ कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितु-
मीप्सवः। इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः । पर्वसु
श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्रीकृष्ण-
जन्मानुकीर्तनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच । क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महा-
यशाः। वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतां वरः ॥ १ ॥
स्वाहेः पुत्रोऽभवद्राजा उपद्गुर्वदतां वरः । महाक्रतुभिरीजे यो
विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ २ ॥ सुतप्रसूतिमन्विच्छन्नुपद्गुः सोऽग्र-
मात्मजम् । जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ ३ ॥

तब वे सब निश्चय करके शिवकी मानता मानते हुए कुशस्थली
द्वारिकाको बसानेकी इच्छासे मथुरा नगरीको त्यागकर भाग
खड़े हुए, जो विद्वान् पुरुष इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्रतासे
श्रीकृष्णके इस जन्मको पर्वके समय सुनाता है उसके ऊपरका
ऋण निबट जाता है ॥२१॥२२॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३५

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि-क्रोष्टाके वृजिनीवान् नामक महा-
यशस्वी पुत्र हुआ, वृजिनीवानका पुत्र स्वाहि हुआ वह स्वाहामें
अर्थात् होम करने वालोंमें श्रेष्ठ था [जिस प्रकार कृष्ण क्रोष्टाके
वंशमें उत्पन्न हुए थे उसीप्रकार क्रोष्टाके वंशमें सत्यभामा आदि
हुई थीं, क्षत्रियोंमें एक कुलके होने पर भी सापिण्ड्यनिवृत्तिके
बाद पुरोहितके गोत्रसे यजमान क्षत्रियका भी गोत्र बदल जाता
है और इस प्रकार गोत्रभेदसे उनमें विवाह होजाते हैं] ॥ १ ॥
स्वाहाका पुत्र बोलने वालोंमें श्रेष्ठ उपद्गु हुआ उस राजाने
बहुतसी दक्षिणा वाले बड़े २ यज्ञोंसे यजन किया था ।२। वह
यह चाहता था, कि-मेरे बड़े पुत्रके बहुतसी सन्तान हो, उसके
पुत्रेष्टि आदि कर्म करने वाला चित्ररथ नामक पुत्र हुआ ॥ ३ ॥

आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः । शशबिन्दुः परं व्रतं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ ४ ॥ पृथुश्रवाः पृथुयशा राजाऽसीच्छशबिन्दुजः । शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमुत्तरम् ॥ ५ ॥ अनन्तरं सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् । उशतो यज्ञमखिलं स्वधर्मसुशतां वरः ॥ ६ ॥ शिनेयुरभवत् सूनुरुशतः शत्रुतापनः । मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥ ७ ॥ मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम् । चचार विपुलं धर्ममसर्षात् प्रेत्यभागपि ८ सुतप्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिषः । बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥ ९ ॥ निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे । धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥ १० ॥ जज्ञेऽथ रुक्मकवचात् पराजित् परवीरहा । जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः

उसके बहुतसी दक्षिणा देने वाला यज्ञ करने वाला वीर शशबिन्दु पुत्र हुआ वह राजर्षियोंके आचारका पालन करता था ४ शशबिन्दुका पुत्र महायशस्वी पृथुश्रवा हुआ, पुराण जानने वाले पुरुष पृथुश्रवाके पुत्रको उत्तर कहते हैं ॥५॥ उसका पुत्र सुयज्ञ हुआ उसका पुत्र उशत हुआ वह अपने धर्म यज्ञको चाहने वालोंमें श्रेष्ठ था, उशतके शत्रुनापन शिनेयु नामक पुत्र हुआ हे नृप ! राजर्षि मरुत्त हुआ ६-७ मरुत्तने कम्बलबर्हिष नाम वाले पुत्रको पाया था उसने मरणधर्मा होने पर भी परम धर्मका आचारण किया था ॥ ८ ॥ वह अपने पुत्र कम्बलबर्हिषके पुत्र होजाय यह चाहता था, उसका पुत्र रुक्मकवच हुआ वह सौ बालकोंमें एक बालक बचा था ॥ ९ ॥ रुक्मकवचने युद्धमें धनुष और कवचको धारण करने वाले सौ योधाओंको मार कर बड़ीभारी कीर्ति पाई थी ॥१०॥ रुक्मकवचके शत्रुओंके वीरोंका नाश करने वाला पराजित् नामक सुतहुआ, पराजित्के महावीर्यवान् पाँच पुत्र हुए थे [उनके नाम इस प्रकार हैं] रुक्मेषु पृथुरुक्म ज्यामघ

पराजितः ॥११॥ रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥ १२ ॥ रुक्मेषुर-
भवद्राजा पृथुरुक्मस्य संश्रितः । ताभ्यां प्रव्राजितो राज्याज्ज्या-
ऽमघोऽवसदाश्रमे ॥ १३ ॥ प्रशान्तश्चाप्रशान्तः स ब्राह्मणैश्चा-
वरोधितः । जिगाय रथमास्थाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥ १४ ॥
नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं मृत्तिकावतीम् । ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा
शुक्तिमत्यामुवास सः ॥ १५ ॥ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बल-
वती सती । अपुत्रोऽपि च राजा स नान्यां भार्यामविंदत १६
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः । भार्यामुवाच संत्रस्तः
स्नुषेति स नरेश्वरः ॥ १७ ॥ एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद्देवी कस्य चेयं
स्नुषेति वै । अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥ १८ ॥

पालित और हरि, पालित और हरिको पिताने विदेहदेशका पालन करनेके लिये वहाँके राजाको दे दिया था ॥१२॥ रुक्मेषु पृथुरुक्मका आश्रय लेकर राजा बन गया था और उन दोनोंके निकाल देने पर ज्यामघ आश्रममें रहने लगा था ॥ १३ ॥ वह (वृद्ध होनेसे) प्रशान्त रहता था और राजा होनेके कारण राज्य छिन जानेसे) शान्त नहीं रहता था ब्राह्मणोंने उसको तप आदिसे बढा दिया था तब उसने रथमें बैठ ध्वजा लगाकर दूसरे देशको जीत लिया था ॥ १४ ॥ उसने इकेले ही नर्मदाके किनारेकी मृत्तिकावती और ऋक्षवान् पर्वतको जीतकर शुक्ति-मती पुरीमें अपना निवासस्थान बनाया था ॥ १५ ॥ ज्यामघ की बलवती सती शैब्या नामकी भार्या थी, उस राजाने अपुत्र होने पर भी दूसरी भार्यासे विवाह नहीं किया था ॥ १६ ॥ उसने एक युद्धमें विजय होने पर एक कन्या पाई थी, उस नरे-श्वरने अपनी भार्यासे उस कन्याको स्नुषा—पुत्रवधू—बताया था ॥ १७ ॥ यह सुनकर उसकी स्त्रीने कहा, कि—ये किसकी

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपदानवी । उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः स व्यजायत । पुत्रं विदर्भं सुभगा शैव्या परिणता सती ॥ १९ ॥ राजपुत्र्यान्तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ । पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥२०॥ लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् । लोमपादात्मजो बभ्रुराहृतिस्तस्य चात्मजः ॥ २१ ॥ आहृतेः कौशिकश्चैव विद्वान् परमधार्मिकः । चेदिः पुत्रः कौशिकस्य तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ॥२२॥ भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् । धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः२३ आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च यः । दशार्हस्य सुतो व्योमा

पुत्रवधू है, तब राजश्रेष्ठ ज्यामघने प्रतिज्ञा करके कहा, कि-१८ तेरे जो पुत्र होगा, यह उपदानवी उसकी भार्या होगी, उस (उपदानवी) कन्याके उग्र तपके कारण वह (ज्यामघके पुत्र) उत्पन्न हुआ था, शैव्या वृद्ध होगई थी तब भी उस सुभगाने विदर्भ नामक पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उस राजपुत्रीमें विदर्भने शूरवीर रणविशारद क्रथ और कौशिक नाम वाले विद्वान् पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥ २० ॥ और लोमपाद नाम वाले तीसरे परम धार्मिक पुत्रको उत्पन्न किया था, लोमपादके बभ्रुनामक पुत्र हुआ उसका पुत्र आहृति हुआ आहृतिके कौशिक हुआ वह विद्वान् और परम धार्मिक था कौशिकके चेदि नामक पुत्र हुआ इससे उसके वंश के राजे चैद्य कहलाते है ॥ २२ ॥ विदर्भके भीम नामक पुत्र हुआ उसका पुत्र कुन्ति हुआ, कुन्तिके रणढीठ प्रतापी धृष्ट नामक पुत्र हुआ था, धृष्टके शूरवीर परमधार्मिक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ २३ ॥(उन तीनके नाम इसप्रकार हैं, आवन्त) दशार्ह बलवान् विषहर, दशार्हके व्योम नामक पुत्र हुआ

व्योम्नो जीमूत उच्यते ॥ २४ ॥ जीमूतपुत्रो वृकृतिस्तस्य भीम-रथः सुतः । अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ॥ २५ ॥ तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः । तस्मात् करम्भः कारंभिर्देवरातोऽभवन्नृप ॥ २६ ॥ देवक्षत्रोऽभवत्तस्य देवक्षत्रि-र्महायशाः । देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ॥२७॥ मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि । मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुत्रो मरु-वसास्तथा ॥ २८ ॥ आसीन्मरुवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः । मधुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रवत्यां कुरूद्वह ॥२९॥ ऐक्ष्वाकी चाभव-द्भार्या सत्त्वास्तस्यामजायत । सत्त्वान् सर्वगुणोपेतः सात्वतां कीर्त्तिवर्धनः ॥ ३० ॥ इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महा-

---

व्योमके जीमूत नामक तनय हुआ ॥ २४ ॥ जीमूतके वृकृति नामक पुत्र हुआ उसका सुत भीमरथ हुआ, इसके उपरान्त भीमरथके नवरथ नामक तनय हुआ था ॥ २५ ॥ उसका तनय दशरथ हुआ, उसका पुत्र शकुनि हुआ उसके करम्भ नामक पुत्र हुआ करम्भका पुत्र राजा देवरात हुआ २६ उसका पुत्र देवक्षत्र हुआ देवक्षत्रको आनन्द देनेवाला महा-यशस्वी देवक्षत्रि हुआ वह देवताओंके गर्भ (बालक) की समान था उसका नाम मधु था उसकी वाणी भी मधुर थी वह मधुओंके वंशको चलाने वाला था, मधुके वैदर्भीसे मरुवसा नामक सुत हुआ ॥ २७ ॥ २८ ॥ मरुवसाके सुतोंमें उत्तम पुरुद्वान् नामक पुत्र हुआ(राजा मरुवसाके) भद्रवती नामवाली वैदर्भीमें मधु नामक सुत हुआ था ॥ २९ ॥ (और उसकी जो) इक्ष्वाकु कुलकी स्त्री थी उसमें सत्त्वान् नामक तनय हुआ, सत्त्वान सर्वगुणसंपन्न था और सात्वतवंशियोंकी कीर्तिको बढ़ाने वाला था ॥३०॥ मनुष्य महात्मा ज्यामघकी इस सृष्टिको

त्मनः । युज्यते परया कीर्त्या प्रजावांश्च भवेन्नरः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच । सत्त्वात् सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान् । भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥१॥ अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम् । तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह ताञ्छृणु ॥२॥ भजमानस्य संजय्यौ बाह्यकाथापबाह्यका । आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः ॥ ३ ॥ कृमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः।एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ४ ॥ अयुताजित् सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दाशकः । उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे ॥ ५ ॥ यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः ॥ ६ ॥ संयुज्यात्मानमेवन्तु पर्णाशायां जलं स्पृशन् ।

जान कर परम कीर्ति पाता है और सन्तानवान् होजाता है॥३१

छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-सत्त्वतसे कौशल्याने सत्त्व वाले भजिन भजमान दिव्य राजा देवावृध महाबाहु अंधक और यदुनन्दन वृष्णि नामक सत्त्वसम्पन्न पुरुषोंको उत्पन्न किया था, उनके चार वंश चले थे उनको तुम विस्तारपूर्वक सुनो॥१॥२॥ भजमानके सृञ्जयकी पुत्री बाह्यका और अपबाह्यका नाम वाली दो स्त्रियें थीं उनसे बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ ३ ॥ भजमानके सृञ्जयकी पुत्री बाह्यकामें कृमि क्रमण धृष्ट शूर और पुरंजय नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥४॥ और भजमानके सृञ्जयकी पुत्री अपबाह्यकामें अयुताजित् सहस्राजित् शताजित् और दशक नामवाले पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ यजन करने वाले राजा देवावृधने मेरे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो इस इच्छासे घोर

सदोऽस्पृशत्तस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ७ ॥ चिन्तयाऽभिपरीता सा जगामैकाऽभिनिश्चयम् । कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥ ८ ॥ नाध्यगच्छत तां नारीं यस्यामेवं विधः सुतः । जायेत्तस्मात्स्वयं हन्त भवाम्यस्य सहव्रता ॥ ९ ॥ अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः । वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः ॥ १० ॥ तस्यामाधत्त गर्भं च तेजस्विनमुदारधीः । अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥ ११ ॥ पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् । अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ १२ ॥ गुणान् देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः । यथैवाग्रे समं दूरात् पश्याम च तथान्तिके ॥ १३ ॥ बभ्रुश्रेष्ठो

तप किया था ॥ ६ ॥ वह राजा ऐसा निश्चय करके पर्णाशा नदीके जलमें खड़ा होकर तप करता था, अपने जलमें सदा खड़े रहने वाले राजाका नदी प्रिय करना चाहने लगी॥ ७ ॥ उसे ऐसी कोई स्त्री नहीं दीखी कि—जिसमें ऐसा पुत्र उत्पन्न होसके, तब उस नदियोंमें श्रेष्ठ स्त्रीने उस राजाका कल्याण करनेके लिये एकान्तमें यह विचार किया, कि मैं ही उसकी सहचारिणी बन जाऊँ ॥ ८ ॥ ९ ॥तदनन्तर उसने कुमारी बन श्रेष्ठ रूप धारण कर राजाको वरना चाहा और राजाने उसको स्वीकार कर लिया ॥१०॥ तदनन्तर उस महाबुद्धिने उसमें गर्भ स्थापन किया,तदनन्तर उस नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधसे सर्वगुणसम्पन्न बभ्रु नामक सुतको उत्पन्न किया था, सुना है, कि—इस वंशकी प्राचीन वार्तोको गाने वाले महात्मा देवावृध गुणोंका इस प्रकार कीर्तन करते थे, कि—महात्मा देवावृध को हम दूर देशमें देखते थे तैसे ही उसको समीपमें देखते थे अर्थात् उसको योगबलके कारण अनेक रूप धारण कर सर्वत्र एक रूप में विराजमान देखते थे ।११-१३। बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है देवावृध

मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥१४॥ एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रुर्देवावृधावपि । यज्वा दानपतिर्विद्वान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥ १५ ॥ कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्वतानां महावरः । तस्यान्ववायः सुमहान् भोजा ये मार्तिकावताः ॥१६॥ अन्धकात् काश्यदुहिता चतुरो लभतात्मजान् । कुकुरं भजमानं च शमिं कम्बलबर्हिषम् १७ ॥ कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा । कपोतरोमातस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ॥१८॥ जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित्तु पुनर्वसोः । तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल ॥१९॥ आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमताम्वरौ । इमां चोदाहरंत्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम् ॥ २० ॥ श्वेतेन परिवारेण किशोरमतिमो महान् ।

देवताकी समान हैं बभ्रु और देवावृध तथा सात सहस्र छियासठ मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त होगए थे अर्थात् युद्धमें मर कर ब्रह्मलोक को चले गए थे राजा बभ्रु दानियोंका स्वामी था यजन करने वाला था विद्वान् था ब्राह्मणभक्त था और उसके आयुध दृढ़ थे वह कीर्तिमान् और महातेजस्वी था और सात्वतवंशियोंमें परम श्रेष्ठ था, उस बभ्रुका वंश बहुत बड़ा है,मार्तिकावत भोज उसकी ही सन्तानोंमें हैं, अन्धकवंशी (बभ्रु) से काश्य-दृढाश्व-की पुत्री में कुकुर भजमान शमिक और वलबर्हिष नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १४-१७ ॥ कुकुरके धृष्णु नामक पुत्र हुआ, धृष्णुके कपोतरोमा नामक पुत्र हुआ कपोतरोमाके तैत्तिरि नामक पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ तैत्तिरिके पुनर्वसु नामक पुत्र हुआ, पुनर्वसुके अभिजित् नामक पुत्र हुआ, उस अभिजित्के पुत्र और पुत्री ये दो मिथुन सन्तान उत्पन्न हुई थी ॥ १९ ॥ वे दोनों बुद्धिमान् आहुक आहुकीके नामसे प्रसिद्ध हैं, राजा आहुकके सम्बन्धमें इस गाथाको (मनुष्य) गाया करते हैं, कि-॥ २०॥ वह राजा

अशीतिचर्मणा युक्तः स नृाः प्रथमं व्रजेत् ॥ २१ ॥ नापुत्रवा-
न्नाशदतो नासहस्रशतायुषः । नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोज-
मभितो व्रजेत् ॥ २२ ॥ पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्येत्यनुमो-
दनम् । सोपासंगानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम् ॥ २३ ॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु । रूप्यकांचनकक्षाणां
सहस्राणि दशापि च ॥ २४ ॥ तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां
तथा दिशि । आभूमिपालान् भोजान् स्वानुत्तिष्ठन् किंकिणी-
किणः ॥ २५ ॥ आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ।
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः ॥२६॥ देवकश्चोग्र-

अपने श्वेत (शुद्ध) परिवारके साथ चलता था, उसके चर्म (दारुमय आसन) को अस्सी आदमी उठाते थे अथवा जिनको शीति (स्वप्न)नहीं होता है वे अशीति (देवता) उसकी ढाल थे अर्थात् वह देवरक्षित था ॥ २१ ॥ उस भोजके आगे चलने वाले (परिवारमें) ऐसा कोई नहीं था जो अपुत्र हो अथवा सैंकड़ोंकी दक्षिणा देने वाला न हो अथवा सैंकड़ों सहस्रों वर्षकी आयु वाला न हो अथवा अशुद्ध कर्म करने वाला हो और यजन करने वाला न हो ॥ २२ ॥ उत्तर दिशामें राजा भोज (आहुक) का अभिवादन करनेके लिये चाँदी और सोनेके ओहदे वाले दश सहस्र हाथी आते थे और जुआ अनुकर्ष (रथके नीचेका काष्ठ) और वरूथ (रथकी गुप्ति-परदा) वाले और मेघोंकी समान घोष करने वाले दश सहस्र रथ उसको अभिवादन करने को आते थे ॥ २३॥ २४ ॥ इतने ही रथ और हाथी उत्तर तथा और दिशाओंमें भी अभिवादन करनेके लिये आते थे, भोज-वंशी सब सामन्तोंको वंशमें करके आहुककी उपासना करते थे, राजा आहुकने उन सबके रथ तपे हुए सोनेकी घण्टियों वाले बनवा दिये थे ॥२५॥ अन्धकवंशियोंने अपनी बहिन आहुकी

सेनश्च देवपुत्रसमावुभौ । देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥ २७ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः । कुमार्यः सप्त चाप्यासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥ २८ ॥ देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता । वृकदेव्युपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी २९ नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः । न्यग्रोधश्च सुनामा च कंकः शंकुः सुभूमिपः ॥ ३० ॥ राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान् । तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा ।३१। सुतनू राष्ट्रपाली च कंका चैव वरांगना । उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ॥ ३२ ॥ कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् । आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥३३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अवन्तिवंशीको विवाह दी थी, आहुकके काशिराजकी पुत्रीमें देवक और उग्रसेन नामवाले दो पुत्र हुए थे, वे दोनों देवपुत्रोंकी समान थे, देवकके देववान् उपदेव सुदेव और देवरक्षित नाम वाले देवताकी समान चार पुत्र थे और सात कुमारियें थी उनको उसने वसुदेवके साथ विवाह कर दिया था ॥ २६ ॥ २८ ॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं) देवकी शान्तिदेवी सुदेवा देवरक्षिता वृकदेवी उपदेवी और सातवीं सुनाम्नी ॥ २९ ॥ उग्रसेनके नौ पुत्र थे उनमें कंस सबसे पहिले उत्पन्न हुआ था (उनके नाम इस प्रकार हैं) न्यग्रोध सुनामा कंक सुभूमिप—शंकु राष्ट्रपाल सुतनू अनाधृष्टि और पुष्टिमान् इनकी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कंसा कंसवती सुतनू राष्ट्रपाली और कंका नामकी पाँच बहिनें थीं, इस प्रकार कुकुरवंशमें उत्पन्न हुए उग्रसेन और उनकी सन्तानका वर्णन करदिया ॥ ३० ॥३२॥ जो मनुष्य इन अमित तेजस्वी कुकुरोंके वंशको पढ़ता है तो उसका वंश बढ़ जाता है और वह सन्तानवान होजाता है । ३३ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच । भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः । राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥ १ ॥ राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः । दत्ताऽतिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥ २ ॥ शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित् । श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ संबभूवतुः ॥ ३ ॥ शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः । स्वयंभोजः स्वयम्भोजाद्धृदीकः संबभूव ह ॥ ४ ॥ तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः । कृतवर्माऽग्रजस्तेषां शतधन्वाथ मध्यमः ॥ ५ ॥ देवर्षेर्वचनात्तस्य भिषग्वैतरणश्च यः । सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका ॥ ६ ॥ देववांश्चाभवत् पुत्रो विद्वान् कंबलबर्हिषः । असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ ॥७॥ अजातपुत्राय

वैशम्पायनजीने कहा- कि—भजमानके रथियोंमें मुख्य विदूरथ नामका सुत हुआ, विदूरथका पुत्र शूर राजाधिदेव हुआ। १ राजाधिदेवके वली दत्त अतिदत्त शोणाश्व श्वेतवाहन शमी दण्डशर्मा दण्डशत्रु शत्रुजित् नामक वीर्यवान् सुत हुए थे और इनकी श्रवणा और श्रविष्ठा नामकी दो बहिनें हुई थीं ॥२॥३॥ शमीके प्रतिक्षत्र नामक सुत हुआ, प्रतिक्षत्रके स्वयम्भोज नामक सुत हुआ और स्वयम्भोजके हृदीक नामक सुत हुआ ॥ ४ ॥ उसके सब सुत भयंकर पराक्रम करने वाले हुए थे, उनमें कृतवर्मा सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ था और शतधन्वा मध्य सुत था ॥ ५ ॥ देवर्षि च्यवनके वचनसे शतधन्वाके भिषग वैतरण सुदान्त और विदान्त नाम वाले चार सुत हुए और कामदा और कामदन्तिका नाम वाली दो पुत्रियें उत्पन्न हुई थीं ६ (मरुत्तके सुत) कम्बलबर्हिषके देववान् नामक सुत हुआ तथा वीर असमौजा और नसमौजा नामके (दो और सुत भी हुए)७ (अन्धकने) सुतहीन राजा असमौजाको सुदंष्ट्र चारुरूप और

सुतान् प्रददावसमौजसे । सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धका-
स्त्रयः ॥८॥ एते चान्ये च बहवो अन्धकाः कथितास्तव । अन्ध-
कानामिमं वंशं धारयेद्यस्तु नित्यशः ॥ ९ ॥ आत्मनो विपुलं
वंशं लभते नात्र संशयः । गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्ये
बभूवतुः ॥ १० ॥ गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ।
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ॥ ११ ॥ अनमित्रम-
मित्राणां जेतारमपराजितम् । अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ
बभूवतुः ॥ १२ ॥ प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ ।
प्रसेनो द्वारवत्यान्तु निवसन्स्यां महामणिम्॥१३॥दिव्यं स्यमन्तकं
नाम समुद्रादुपलब्धवान् । तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राण-
समोऽभवत् ॥ १४ ॥ स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः ।

कृष्ण नाम वाले तीन अन्धक सुत देदिये थे ॥ ८ ॥ ये तथा
और भी बहुतसे अन्धक तुमसे कहदिये, जो मनुष्य नित्यप्रति
अन्धकोंके इस वंशको सुनता है ॥९॥ उसका वंश अतिविस्तृत
होजाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, क्रोष्टाकी गान्धारी और
माद्री नाम वाली दो भार्यायें थीं ॥ १० ॥ गान्धारीने
अनमित्र नाम वाले महाबली सुतको उत्पन्न किया था, माद्रीने
युधाजित् नाम वाले सुतको उत्पन्न किया था, तदनन्तर देवमी-
ढुषको उत्पन्न किया था ॥ ११ ॥अपराजित अनमित्र शत्रुओंको
जीतने वाला था, अनमित्रके निघ्न नामक सुत हुआ, निघ्नके
प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वे दोनों
शत्रुओंकी सेनाको जीतने वाले थे, द्वारिकपुरीके बसाये जाते
समय प्रसेनने समुद्रमेंसे स्यमन्तक नाम वाली दिव्य मणि परम्परा
से पाई थी प्रसेनके संबंधी सत्राजित्का सूर्य प्राणोंकी समान
प्रिय मित्र था ॥ १३ ॥ १४ । वह रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् एक
समय रात्रि बीतने पर समुद्रके किनारे स्नान कर सूर्योपस्थान

अब्धिकूलमुपस्पर्द्दुमुपस्थातुं ययौ रविम् ॥ १५ ॥ तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः । अस्पृष्टमूर्तिर्भगवान् तेजोमण्डलवान् प्रभुः ॥ १६ ॥ अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः । यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषां पते ॥ १७ ॥ तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम् । को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै ॥ १८ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु भगवान् मणिरत्नं स्यमन्तकम् । स्वकंठादवमुच्यैव एकान्ते न्यस्तवान् विभुः ॥१९॥ ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा । प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम् ॥ २० ॥ तमपि प्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्रजित् । लोकानुद्भासयस्येतान् येन त्वं सततं प्रभो । तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥ २१ ॥ ततः स्यमन्तकमणिं

करनेको गया था ॥१५॥ उसके उपस्थान करते समय विवस्वान् सूर्य उसके सामने आकर खड़े होगए, उस समय तेजोमण्डल प्रभु सूर्य अस्पृष्ट मूर्ति धारण कर रहे थे ॥ १६ ॥ तब राजाने सामने खड़े हुए सूर्यनारायणसे कहा, कि-हे ज्योतिषां पते ! मैं आपको जैसे नित्यप्रति आकाशमें देखता हूँ, तैसे ही मैं आपको तेजका मण्डल धारण कर सामने देख रहा हूँ अतः मेरे पास आने पर आपकी और मेरी मित्रता होनेमें कसर ही क्या रह गई (परन्तु मैंने उसका कोई विशेष फल नहीं पाया)॥ १७।१८॥ यह सुनते ही भगवान् सूर्यने अपने कण्ठमेंसे स्यमन्तक नाम वाली मणि उतार कर एकान्तमें धरदी १९ तब राजाने सूर्य को स्पष्ट अवयवों वाला देखा और उनको देखकर प्रसन्न होकर उनसे क्षण भर बात चीतकी ॥ २० ॥ उस समय प्रस्थान करते हुए सूर्यसे सत्राजित्ने कहा, कि-हे भगवन ! आप जिससे सर्वदा इन तीनों लोकोंको प्रकाशित करते रहते हैं हे प्रभो! उस स्यमन्तक मणिको मुझे देदीजिये ॥ २१ ॥

दत्तवांस्तस्य भास्करः ।स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः२२
तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह । पुरीं विस्मापयित्वा
च राजा त्वन्तःपुरं ययौ ॥ २३ ॥ तत्प्रसेनजितं दिव्यं मणि-
रत्नं स्यमन्तकम् ।ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्२४
स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।कालवर्षी च पर्जन्यो
न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥ २५ ॥ लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणि-
रत्ने स्यमन्तके । गोविंदो न च तल्लेभे शक्तोपि न जहार सः२६
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः । स्यमन्तककृते सिंहा-
द्वधं प्राप वनेचरात् ॥ २७ ॥ अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महा-
बलः । निहत्य मणिरत्नं तदादाय बिलम विशत् । २८ ॥ ततो
वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात् । प्रार्थनां तां मणेर्बुद्ध्वा

तब भास्कर (सूर्य) ने उसको स्यमन्तक मणि देदी, तब वह महाबुद्धिमान् उसको बाँध कर नगरमें गया २२ तब तो मनुष्य यह सूर्य हैं यह सूर्य हैं कहते हुए उसके पीछे दौड़े, और राजा नगरीको विस्मित करता हुआ अन्तःपुरमें चला गया॥२३॥तदनन्तर राजा प्रसेनजित्ने वह उत्तम मणियोंमें रत्नरूप स्यमन्तक मणि प्रेमके कारण अपने भाई सत्राजित्को देदी२४वह मणि जिस वृष्णि और अन्धक कुल वालेके घरमें रहती थी उसके यहाँ वह सुवर्णकी वर्षा करती रहती थी और तहाँ पर मेघ समयपर वर्षा बरसाते थे और तहाँ व्याधिका भय नहीं होता था२५श्रीकृष्ण ने प्रसेनसे मणियोंमें रत्नकी समान दिव्य मणि स्यमन्तक लेनी चाही थी, परन्तु उसने नहीं दी श्रीकृष्ण यद्यपि समर्थ थे तब भी उन्होंने वह मणि नहीं ली थी२६ प्रसेन उससे भूषित होकर एक समय शिकार खेलने गया तहाँ उसको वनमें फिरने वाले सिंहने मारडाला २७तदनन्तर उस दौड़ते हुए सिंहको महाबली ऋक्ष-राज मार कर उस मणिरत्नको लेकर अपने भट्टेमें घुस गया।२८

सर्व एव शशंकिरे ॥ २९ ॥ स शंक्यमानो धर्मात्मा न कारी
तस्य कर्मणः । आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ॥ ३०॥
यत्र प्रसेनो मृगयामाचरत्तत्र चाप्यथ । प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषै-
राप्तकारिभिः ॥ ३१ ॥ ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्त-
मम् । अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥३२॥ साश्वं
हतं प्रसेनं तु नाविंदच्चेप्सितं मणिम् । अथ सिंहः प्रसेनस्य
शरीरस्याविदूरतः ॥ ३३ ॥ ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षस्य
सूचितः । पादैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य माधवः ॥ ३४ ॥ मह-
त्यृक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् । धात्र्या कुमारमादाय सुतं
जाम्बवतो नृप । क्रीडापयन्त्या मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ३५

उस समय सब वृष्णि और अन्धकोंने यह समझा, कि-श्रीकृष्ण
ने सत्राजित्से मणि माँगी थी अत एव उन्होंने ही उसको मार
डाला होगा २९ उन्होंने यह कार्य नहीं किया था, तब भी उन
महात्मा पर ऐसी शंका की जाती थी अतएव उन्होंने प्रतिज्ञा की,
कि-"मैं मणिको लाऊँगा" यह प्रतिज्ञा कर वह वनको चले ३०
उन्होंने विश्वासी मनुष्योंसे जहाँ प्रसेनने शिकार खेला था
तहाँ उसके पैरोंके चिन्ह होनेका पता पाया ३१ उन महामनस्वी
ने उसको खोजते २ थकनेके वाद ऋक्षवान् पर्वत और उत्तम
विन्ध्य पर्वतको देखा ३२ श्रीकृष्णने तहाँ प्रसेनको और उसके
घोड़ेको मरा हुआ पाया परन्तु उस मणिको तहाँ नहीं पाया,
परन्तु प्रसेनके शरीरसे थोडी दूर पर उन्होंने ऋक्षके द्वारा सिंह
को मारा हुआ देखा, उसके पैरोंसे प्रतीत हुआ कि-यहाँ ऋक्ष
था, तदनन्तर ऋक्ष (रीछ) के पैरोंसे माधवने रीछकी गुहा
को ढूँढना आरम्भ किया ॥३३॥३४॥ उस समय माधवने ऋक्ष
के बिलके पास पहुँचकर एक स्त्रीको यह कहते सुना, हे राजन!
धाई जाम्बवान्के कुमारको लेकर मणिसे खिलाती हुई उससे

धात्र्युवाच । सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥३६॥ सुव्यक्तीकृतशब्दस्तु तूष्णीं बिलमथाविशत् प्रविश्य चापि भगवांस्तमृक्षबिलमंजसा ३७ स्थापयित्वा बिलद्वारि यदून् लांगलिना सह । शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जांबवन्तं ददर्श ह ॥ ३८ ॥ युयुधे वासुदेवस्तु बिले जांबवता सह । बाहुभ्यामेव गोविंदो दिवसानेकविंशतिम् ॥३९॥ प्रविष्टे तु बिलं कृष्णे बलदेवपुरःसरा । पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥ ४० ॥ वासुदेवस्तु निर्जित्य जांबवन्तं महाबलम् । भेजे जांबवतीं कन्यां ऋक्षराजस्य सम्मताम् । मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ॥ ४१ ॥ अनुनीयर्क्षराजानं निर्ययौ च

कह रही थी, कि-तू मत रो ॥ ३५ ॥ धाई कहरही थी, कि-सिंहने प्रसेनको मार डाला था, सिंहको जाम्बवान्ने मार डाला, हे सुकुमार ! अब तू मत रो ! यह स्यमन्तक मणि अब तेरी ही हैं ॥ ३६ ॥ जब इस शब्दसे सब बातें स्पष्ट प्रतीत होगई तब भगवान् बिलमें चुपचाप घुसे तब भगवान्ने बलरामको तथा यादवोंको तो भट्टेके द्वार पर खड़ा कर दिया था, फिर शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले भगवान्ने गुफामें प्रवेश करके जाम्बवान् को देखा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बिलमें वसुदेवपुत्र गोविन्दने भुजाओं से ही इकीस दिन तक जाम्बवान्के साथ युद्ध किया था॥३९॥ (इधर बहुत समयके उपरान्त) श्रीकृष्णके बिलमें प्रवेश कर (न लौटनेसे) बलदेव आदिने द्वारिकामें जाकर कहा, कि-श्रीकृष्ण मारे गए ॥ ४० ॥ (उधर) भगवान् वासुदेवने महाबली जाम्बवन्तको जीत कर ऋक्षराजकी प्यारी पुत्री जाम्बवतीसे विवाह किया और अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये स्यमन्तक मणिको भी लेलिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर ऋक्षराजको समझा बुझा कर बिलमेंसे निकल आये और परमशोभासम्पन्न

तदा बलात् । द्वारकामगमत् कृष्णः श्रिया परमया युतः॥ ४२ ॥
एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः । ददौ सत्राजिते तं वै सर्वसात्वतसंसदि ॥ ४३ ॥ एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना । आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम्॥४४
सत्राजितो दश त्वासन् भार्यास्तासां शतं सुताः । ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भंगकारस्तु पूर्वजः ॥ ४५ ॥ वीरो वातपतिश्चैव उपस्वावांश्च ते त्रयः । कुमार्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता नराधिप ॥ ४६ ॥ सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता । तथा प्रस्वापिनी चैव भार्याः कृष्णाय तां ददौ ॥ ४७ ॥ सभाक्षोभंगकारिस्तु नारेयश्च नरोत्तमौ । जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ॥४८॥ माद्रीपुत्रस्य जज्ञेऽथ पृश्निः पुत्रो युधाजितः ।

होकर द्वारिकाको चले ॥ ४२ ॥ भगवान् अच्युतने इस प्रकार मणिको लाकर सब सात्वतोंकी सभामें अपनी विशुद्धता जता कर वह मणि सत्राजित्को दे दी ॥ ४३ ॥ शत्रुनाशक श्रीकृष्णने इस प्रकार मिथ्या दोष लगनेके कारण स्यमन्तक मणिको जीतकर लानेके बाद अपने आपको विशुद्ध प्रमाणित कर दिया था ॥ ४४ ॥ सत्राजित्के दश भार्यायें थीं, उनमें सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनमें तीन प्रसिद्ध थे, उनमें भंगकार पहिला था॥४५॥ दूसरा वीर वातपति था और तीसरा उपस्वावान् था, हे राजन्! उसके ये तीनों कुमार दिशाओंमें प्रसिद्ध थे (उसकीपुत्रियोंमें) सत्यभामा व्रतिनी दृढव्रता और प्रस्वापिनी तीन दिशाओंमें प्रसिद्ध थीं; उसने उनको श्रीकृष्णकी भार्या बना दिया था४६ (अब क्रोष्टाकी कनिष्ठा छोटी स्त्री माद्रीके पुत्र युधाजित्के वंशको कहते हैं) माद्रीपुत्रके सभाक्षोभंगकारि और नारेय नामक सर्वगुणसम्पन्न और रूपसंम्पत्ति वाले पुत्र उत्पन्न हुए थे, इसके उपरान्त युधाजित्के पृश्निनामक पुत्र हुआ, पृश्निके श्वफल्क

जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ४९ ॥ श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत । गांदिनीं नाम तस्याश्च सदा गाः प्रददौ पिता ॥ ५० ॥ तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानिति विश्रुतः । अक्रूरोऽथ महाभागो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ ५१ ॥ उपमद्गुस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः । गिरिक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमर्दनः ॥ ५२ ॥ धर्मभृच्चापि धर्मी च गृध्रमोजान्तकस्तथा । आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥ ५३ ॥ विश्रुता साम्बमहिषी कन्या चास्य वसुन्धरा । रूपयौवनसंपन्ना सर्वसत्त्वमनोहरा ॥ ५४ ॥ अक्रूरेणोग्रसेनायां तु सुतौ द्वौ कुरुनन्दन । सुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥५५॥ चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वसेनोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ ५६ ॥ अरिष्टनेमेरस्य सुता धर्माधर्मभृदेव च । सुबाहु-

और चित्रक नामक पुत्र हुए थे॥४९॥ श्वफल्कने काशिराजकी पुत्री गांदिनी नाम वाली स्त्री पाई थी,उसका पिता उससे प्रतिदिन गोदान कराता था ५० ॥ उससे महाभुज और शास्त्रज्ञ रूपसे प्रसिद्ध अक्रूर नामक पुत्र हुआ, वह महाभाग यजन करने वाला और बड़ी २ दक्षिणायें देने वाला था ॥ ५१ ॥ (इसके अतिरिक्त उसके) उपमद्गु मद्गु मृदुर अरिमेजय गिरिक्षिप उपेक्ष शत्रुहा अरिमर्दन धर्मभृत् धर्मी गृध्रम अजान्तक आवाह प्रतिवाह (नामक पुत्र तथा) सुन्दरी नाम वाली स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कन्या हुई थी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ वह सांब देशके राजाकी रानी प्रसिद्ध है और इसकी कन्याका नाम वसुन्धरा है, वह रूप और यौवन वाली थी और सब प्राणियोंके मनको खेंचने वाली थी५४ हे कुरुनन्दन ! अक्रूरसे उग्रसेनामें देवताकी समान कान्ति वाले सुदेव और उपदेव नाम वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ ५५ ॥ चित्रकके पृथु विपृथु अश्वसेन अश्वबाहु सुपार्श्वक और गवे-

र्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ ५७ ॥ इमां मिथ्याऽभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृताम् । वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचन ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच । यत्तत्सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमंतकम् । अदात्तद्धारयामास बभ्रुर्वै शतधन्वना ॥ १ ॥ सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिंदिताम् । अक्रूरोंतरमन्विच्छन् मणिश्चैव स्यमन्तकम् । सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः । रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥३॥ अक्रूरस्तु ततो रत्नमादाय भरतर्षभ । समयं कारयांचक्रे नावेद्योहं त्वयेत्युत४ वयमभ्युपयोत्स्यामः कृष्णेन त्वामभिद्रुतम् । ममाद्य द्वारका सर्वा

षण नामक पुत्र हुए ॥ ५६ ॥ अरिष्टनेमिके धर्माधर्मभृत् सुबाहु और बहुबाहु नामक पुत्र थे और श्रविष्ठा श्रवणा नामकी दो स्त्रियें थीं ॥ ५७ ॥ जो पुरुष श्रीकृष्णको मिथ्या ही लगे हुए इस दोषको जान लेता है उसको झूठे दोष कभी नहीं लगते हैं ॥ ५८ ॥ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि—श्रीकृष्णने सत्राजितको जो मणि लौटा कर देदी थी बभ्रु (अक्रूर) उसको शतधन्वाके द्वारा चुरवाना चाहने लगा ॥ १ ॥ अक्रूर (मणि सुवर्ण देती थी इस कारण उसको चाहता हुआ) स्यमन्तकके लिये सत्यभामा से सदा प्रार्थना करता रहता था ॥ २ ॥ एक समय महाबली शतधन्वाने रात्रिमें सत्राजित्को मार कर मणि लाकर अक्रूरको दे दी ॥ ३ ॥ हे भरतर्षभ ! उस समय अक्रूरने रत्न लेकर शतधन्वासे प्रतिज्ञा करा ली, कि—तू यह न बताना कि-मेरे (अक्रूर) के पास मणि है ४ जब श्रीकृष्ण तेरे पीछे पड़ेंगे तब हम भी तेरे

वशे निष्ठत्यसंशयम् ॥ ५ ॥ हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी । प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥ ६ ॥ सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः । भर्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाऽश्रूण्यवर्तयत्॥७॥पांडवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् । कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम् ८ ततस्त्वरितमागत्य द्वारकां मधुसूदनः । पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना । स्यमन्तकः स मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥ १० ॥ तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम् । स्यमन्तको महाबाहो ह्यस्माकं स भविष्यति ॥११॥ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः । शत-

साथमें होकर लड़ेंगे आज कल सब द्वारिका मेरे ही वशमें है, इसमें तुम कुछ सन्देह न समझो ॥ ५ ॥ सत्यभामा पिताके मारे जाने पर बड़ी दुःखी हुई और रथमें चढ़ कर हस्तिनापुर को चली गई ॥ ६ ॥ वहाँ सत्यभामाने अपने पतिके पास खड़े होकर भोजवंशी शतधन्वाकी करतूत सुनाई और उनके पास खड़ी होकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगी ।७। उस समय श्रीकृष्ण भस्म हुए पाण्डवोंकी उदकक्रिया कर चुके थे, इसके उपरान्त उन्होंने पाण्डवोंका अस्थिसञ्चयन करनेके लिये सात्यकिको छोड़ दिया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णने तुरत ही द्वारिकापुरीमें आकर अपने वड़े भाई हलधरसे यह बात कही,कि—।९। प्रसेनको सिंहने मार डाला था शतधन्वाने सत्राजितको मार डाला अब यह स्यमन्तक मणि मुझे मिलनी चाहिये हे विभो ! अब तो मैं उसका स्वामी हूँ,इसलिये अब आप शीघ्र ही रथ पर सवार हूजिये, हे महाभुज ! अब महाभुज भोजको मारनेके बाद स्यमन्तक मणि हमारी होगी ११ तदनन्तर श्रीकृष्ण और शतधन्वामें तुमुल युद्ध होने लगा, तब तो शतधन्वा सब दिशाओंमें

धन्वा ततोऽक्रूरमवैक्षत् सर्वतो दिशम् ॥१२॥ संरब्धौ तावुभौ दृष्ट्वा तत्र भोजजनार्दनौ । शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यमक्रूरो नाभ्युपद्यत ॥१३॥ अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः । योजनानां शतं साग्रं हयया प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥ विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी । भोजस्य वडवा राजन् यया कृष्णमयोधयत् ॥ १५ ॥ क्षीणां जवेन च हयामध्वनः शतयोजने । दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वानमार्दयत् ॥ १६ ॥ ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात् खेदाच्च भारत । खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥१७॥ तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा हया मया । पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ १८ ॥ पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः । मिथिलामभितो राजन्

अक्रूरको देखने लगा ॥१२॥ इस समय शतधन्वा और श्रीकृष्ण को क्रोधमें भरा देखकर अक्रूर समर्थ होने पर भी शठताके कारण उसकी सहायता करने नहीं गया १३ तब तो भयसे घबड़ाया हुआ भोज भागनेका विचार करने लगा, और वह घोड़ी पर चढ़ कर चार सौ कोसको भागा १४ जिस घोड़ी पर उसने श्रीकृष्णसे युद्ध किया था हे राजन् ! भोजकी उस घोड़ीका नाम हृदया था और वह सौ योजन चलने वाली थी १५ घोड़ी वेग से चलनेके कारण सौ योजन पहुँचनेसे पहिले ही थक गई इस बातको देखकर श्रीकृष्णने अपना रथ बढ़वाया और शतधन्वा को पीड़ित करने लगे १६ इसके उपरान्त हे भारत ! उस घोड़ी ने खेद और श्रमके कारण अपने प्राणोंको छोड़ दिया उसके प्राण आकाशमेंको उड़ गए, तदनन्तर श्रीकृष्णने बलरामसे कहा, कि—१७ हे महाभुज ! घोड़े थक गए हैं, उनका यह दोष मैंने देख लिया है अतः आप यहाँ ही ठहरिये अब मैं पैदल जाकर ही मणियोंमें रत्नरूप स्यमन्तक मणिको लाऊँगा १८

जघान परमास्त्रवित् ॥ १९ ॥ स्यमन्तकं च नाप्तश्यद्धत्वा भोजं महाबलम् । निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं रत्नं देहीति लांगली ॥ २० ॥ नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः । धिक्शब्दमसकृत् कृत्वा प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ २१ ॥ भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् । कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥ २२ ॥ प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः । सर्वकामैरुपचितैर्मैथिलेनाभिपूजितः । एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः । नानारूपान् क्रतून् सर्वानाजहार निरर्गलान् २४ दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह । स्यमन्तककृते प्राज्ञो गांदीपुत्रो महायशाः ॥ २५ ॥ अथ रत्नानि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च । षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा यज्ञेषु विनियोजयत् ॥ २६ ॥

हे राजन् ! उस समय अस्त्रविद्याके पारगामी श्रीकृष्णने मिथिला नगरीके पास पैदल पहुँचकर शतधन्वाको मार डाला ॥१९। परन्तु महाबली भोजको मारने पर भी श्रीकृष्णको स्यमन्तक मणि दिखाई नहीं दी, श्रीकृष्णके लौटने पर बलरामने उनसे कहा, कि-रत्न दीजिये २० तब श्रीकृष्णने कहा, कि-मणि तो वहाँ नहीं मिली तब तो बलरामने क्रोधमें भर कर बारम्बार धिक्कार है २ कह कर श्रीकृष्णसे कहा, कि-।२१। आप मेरे भाई हैं इस लिये मैं आपकी इस करतूतको सह रहा हूँ आपका कल्याण हो,मुझे द्वारिका वृष्णि और तुमसे भी अब कुछ काम नहीं है २२ तदनन्तर शत्रुओंका दमन करने वाले राम मिथिलापुरीमें घुसे तब सब कामनाओंसे पूर्ण मिथिलाके राजाने उनकी पूजाकी २३इसी समय बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक प्रकारके सब यज्ञोंको किया२४ महायशस्वी गांदीपुत्रने स्यमन्तकके लिये दीक्षारूपी कवचको पहिर लिया था (अर्थात् यज्ञमें दीक्षा लेने वालेको युद्ध करनेका अधिकार नहीं है) २५ उस समय उस

अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः । बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ।अथ दुर्योधनो राजा गत्वा तु मिथिलां प्रभुः । गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान ॥ २८ ॥ प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः । आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥ २९ ॥ अक्रूरस्त्वान्धकैः सार्धमपायाद्भरतर्षभ । हत्वा सत्राजितं युद्धे सहबन्धुं महाबलम् ॥ ३० ॥ ज्ञातिभेदभयात् कृष्णस्तमुपेक्षितवानथ । अपयाते तथाऽक्रूरे नावर्षत् पाकशासनः ॥ ३१ ॥ अनावृष्ट्यां यदा राज्यमभवद्बहुधा कृशम् । ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥ ३२ ॥ पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः । प्रववर्ष सहस्राक्षः कच्छे जलनिधेस्तदा ॥ ३३ ॥ कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं

धर्मात्माने साठ वर्ष तक यज्ञोंमें रत्न और द्रव्य दिये थे २६ वे बहुतसी अन्न और दक्षिणा वाले तथा बहुतसी कामनाओंको पूर्ण करने वाले सब यज्ञ अक्रूरयज्ञ कहलाते हैं २७ इसी समय प्रभु दुर्योधनने मिथिलापुरीमें जाकर बलभद्रजीसे दिव्य गदाशिक्षा पाई थी ! २८ । इसके उपरान्त वृष्णि और अन्धकवंशी महारथियोंने और महात्मा श्रीकृष्णने बलरामजीको प्रसन्न कर द्वारिकामें बुला लिया था ॥ २९ ॥ हे भरतर्षभ ! तदनन्तर अक्रूर अपने (कुटुम्बके) अन्धकोंको साथमें लेकर भाग गया था,महाबली सत्राजितको और उसके भाइयोंको मारनेके अनंतर श्रीकृष्णने जातिमें बिखेड़ा पड़नेके भयसे अक्रूरकी उपेक्षा कर दी थी, परन्तु अक्रूरके चले जाने पर इन्द्रने वर्षा करना बन्द कर दिया था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जब अनावृष्टि होनेसे राज्य (के मनुष्य) प्रायः दुर्बल होने लगे, तब कुकुर और अन्धकवंशियोंने फिर उसको प्रसन्न किया ॥ ३२ ॥ उस दानपतिके द्वारकापुरीमें फिर आते ही सहस्राक्ष इन्द्रने समुद्रके किनारे पर

शीलसम्मताम् । अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं कुरुनन्दन ॥३४॥ अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् । सभामध्यगतं प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥३५॥ यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो । तत् प्रयच्छस्व मानार्ह मयि मानार्यकं कृथाः ॥ ३६ ॥ षष्टिवर्षे गते काले यद्रोषोऽभून्ममानघ । स संरूढोऽसकृत् प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान् ॥३७॥ ततः कृष्णस्य वचनात् सर्वसात्वतसंसदि । प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥३८॥ ततस्तमार्जवप्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिन्दमः । ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ३९ स कृष्णहस्तात् संप्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम् । आबध्य गांदिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥ ४० ॥ यस्त्वेवं शृणुयान्नित्यं शुचि-

---

वर्षा करना आरम्भ कर दिया ॥ ३३ ॥ और हे कुरुनन्दन ! फिर बुद्धिमान् अक्रूरने अपनी शीलसम्पन्न बहिन कन्याका वासुदेवके साथ उनको प्रसन्न करनेके लिये विवाह कर दिया था ॥३४॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णने योगके द्वारा अक्रूरके पास मणि है यह जानकर सभामें बैठेहुए अक्रूरसे कहा कि—॥३५॥ हे विभो ! जो मणिरत्न स्यमन्तक तुम्हारे पास है, हे मानार्ह ! आप उसको देदीजिये, आप अनार्यताका वर्ताव न करिये ३६ हे अनघ ! साठ वर्ष पहिले जिस कारणसे मुझे रोष चढ़ा था, वह बहुत समय पहिलेका रोष मुझे जिस कारण चढ़ा था उस को मुझे देदीजिये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णके कहनेसे महाबुद्धिमान् अक्रूरने सब सात्वतोंकी सभामें वह मणि विना कष्ट पाये हुए ही श्रीकृष्णके अर्पण करदी ॥३८॥ तदनन्तर अरिन्दम श्रीकृष्णने सरलतासे मणि देनेवाले अक्रूरको ही वह मणि प्रसन्न होकर फिर देदी ॥ ३९ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णके हाथसे मिली हुई मणिको बाँधकर गान्दिनीपुत्र अक्रूर सूर्यकी समान शोभा पाने लगा ॥ ४० ॥ जो मनुष्य पवित्र होकर और सात्र-

भूत्वा समाहितः। सुखानां सफलानां च फलभागिह जायते ४१
आब्रह्मभुवनाच्चापि यशःख्यातिर्न संशयः। भविष्यति नृपश्रेष्ठ
सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि स्यमन्तकाख्यानं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

जनमेजय उवाच। प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः।
सतां कथयतामेव वाराह इति नः श्रुतम् ॥ १ ॥ न जाने तस्य
चरितं न विधिं नैव विस्तरम्। न कर्मगुणसन्तानं न हेतुं न
मनीषितम् ॥२॥ किमात्मको वराहः स का मूर्तिः का च देवता।

धान होकर इसको सुनता है उसको सम्पूर्ण सुखोंका फल मिलता है ॥ ४१ ॥ और नृपश्रेष्ठ! उसकी कीर्ति ब्रह्मलोक तक फैल जाती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ४२ ॥ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

जनमेजयने कहा, कि सज्जनोंके मुखसे मैंने पुराणोंकी कथा कहते समय अमित तेजस्वी विष्णुके अवतारोंमें वराह अवतारकी भी बात सुनी है (वराह शब्दका अध्यात्मिक अर्थ वर-श्रेष्ठ और अह अर्थात् यज्ञ है अर्थात् वराह शब्दका अर्थ श्रेष्ठयज्ञ है) ॥१॥ परन्तु मैं उनके चरित्रको अर्थात् सब कार्योंके जनकत्वको और (अपूर्व स्वरूपका आविष्कार करनेकी) विधिको और उनके विस्तारको अर्थात् कर्तव्यको और उनकी कर्मगुणसन्तानको अर्थात् उनके कर्मसे तृप्त होने वाले देवता आदिको अर्थात् वह किस देवताको प्रसन्न करनेके लिये तप करते हैं तथा उनके देश द्रव्य काल आदिकी प्रयोग विधिको और उनके हेतुको अर्थात् अधिकारको तथा उनके मनीषितको अर्थात् वह किस लिये त्यागात्मकस्वरूपको सम्पादन करना चाहते है, इसको मैं कुछ नहीं समझता (अतः आप मुझे यह सब बातें सम-

किमाचारः प्रभावो वा किं वा तेन पुराकृतम् ३ यज्ञार्थं समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् । महावराहचरितं कृष्णद्वैपायनेरितम् ४ यथा नारायणो ब्रह्मन् वाराहं रूपमास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः ॥५॥ विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः । श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरेः कृष्णस्य धीमतः ६ कर्मणामानुपूर्व्याच्च प्रादुर्भावाच्च ये विभोः । याचास्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तां च व्याख्यातुमर्हसि ७ कथं च भगवान् विष्णुः सुरशत्रुनिषूदनः । वसुदेवकुले धीमान् वासुदेवत्वमागतः ॥ ८ ॥ अमरैरावृतं पुण्यं

झाइये ॥ २ ॥ (इस प्रकार वराहस्वरूपके अधियज्ञस्वरूपको बूझनेके अनन्तर अब राजा जनमेजय उनके आधिदैविक स्वरूपको बूझता है कि—) उन वराहका वास्तविक स्वरूप क्या है? और उनकी मूर्ति (बाहरी आकृति) कैसी है और देवता कौन है (अर्थात् उनका अधिष्ठाता कौन है ?) और उनका कर्तव्य कौनसा है ? और उनकी सामर्थ कैसी है ? ॥ ३ ॥ मैंने कृष्ण द्वैपायनका कहा हुआ महावराहका चरित्र यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंके होड़ करने पर सुना है (परन्तु मैं उसके तत्वको नहीं जानता हूँ) ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! भगवान् नारायणने जिस प्रकार वराहरूप धारण किया था और उन अरिसूदनने जिस प्रकार अपनी डाढ (दाँत) से समुद्रोंमेंसे पृथ्वीका उद्धार किया था ॥ ५ ॥ वह मैंने पहिले सुन लिया रिपुनाशक बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णके सब कर्मोंको मैं विस्तारपूर्वक पूर्णरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस विभुके प्रादुर्भावको और आरम्भसे लेकर अन्त तकके इनके कर्मोंको और इनकी (वराहरूपके समय समुद्रमें) जो प्रकृति थी उसकी आप कृपा कर व्याख्या करिये ॥ ७ ॥ देवताओंके शत्रुओंका नाश करने वाले बुद्धिमान् भगवान् विष्णु वसुदेवके कुलमें उत्पन्न होकर

पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् । देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः ६
देवमानुषयोर्नेता यो भुवः प्रभवो विभुः । किमर्थं दिव्यमात्मानं
मानुष्ये संन्ययोजयत् ॥ १० ॥ यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणा-
मनामयम् । मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ॥ ११ ॥
गोपायनं यः कुरुते जगतः सार्वलौकिकम् । स कथं गां गतो देवो
विष्णुर्गोपत्वमागतः ॥ १२ ॥ महाभूतानि भूतात्मा यो दधार
चकार च । श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः ॥१३॥

वासुदेव क्यों कहलाए थे (अर्थात् वह कर्मबन्धनसे हीन होने पर भी उत्तम स्थानसे नीचे स्थानमें क्यों आगये थे) ॥ ८ ॥ वह देवताओंसे घिरे हुए और पुण्यात्माओंसे सेवित पवित्र देवलोकको छोड़कर इस मृत्युलोकमें आए थे ॥ ९ ॥ (यदि आप यह कहें, कि—वह अपने किसी प्रयोजनको सिद्ध करने नहीं आये थे उन्होंने तो लीला करनेके लिये ही अवतार धारण किया था यह कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि लीलामें जन्म लेना अपरिहार्य होनेसे इसका भी कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य होना चाहिये ? परन्तु परमानन्दरूपको तो कोई प्रयोजन होता ही नहीं है राजा परीक्षितने इस श्लोकमें यही आक्षेप किया है कि जो देवता और मनुष्योंके नेता हैं और जो विभु पृथिवीके उत्पत्ति स्थान हैं उन्होंने अपनी आत्माको मनुष्य शरीरमें क्यों स्थापित किया था ? ॥ १० ॥ जो इकले ही सब मनुष्योंके चक्रको निरामयरीतिसे चलाता है उन चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने मनुष्य बननेका विचार क्यों किया था ॥११॥ जो जगत्के सब मनुष्योंकी रक्षा करते हैं, वह भगवान् विष्णु पृथिवी पर आकर गोप कैसे बनगये थे ॥१२॥ जिन महात्माने महाभूतोंको धारण किया है और रचा है ऐसे श्रीगर्भको पृथिवीमें विचरण करने वाली स्त्रीने अपने गर्भमें किस प्रकार धारण किया था ॥१३॥

ग्रेन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया। स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रभवास्त्रयः ॥ १४ ॥ योऽन्तकाले जगत् पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः। लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥ १५ ॥ यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः। विषाणाग्रेण वसुधा-मुज्जहारारिसूदनः १६ यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययः।

जिन्होंने देवताओंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये तीन चरणोंसे तीनों लोकोंको जीतकर धर्म अर्थ और कामसे होनेवाले तीन मार्ग स्थापित करदिये थे [अर्थात् जगत्में धर्मका पालन करने से स्वर्ग मिलता है, अर्थसे भूलोकके काम सिद्ध होते हैं और कामसे अधोलोक मिलता है, इसप्रकार तीनोंसे तीन मार्गोंकी प्राप्ति होती है) ॥ १४ ॥ जो भगवान् प्रलयकालके समय दृश्य और अदृश्य रीतिसे सम्पूर्ण जगत्का पान करके अपने शरीर को जलमय बना सम्पूर्ण जगत्को एक जलमय ही करदेते हैं [अर्थात् जो प्रलयकालके समय पञ्चभूतात्मक जगत्को उनके कारण सहित पानकर अपने जलमय रूपसे अर्थात् अपने निर्विशेष चिन्मात्ररूपसे स्थित रहते हैं "तत्रैव सलिल एको द्रष्टा' इस श्रुतिमें सलिलको द्रष्टा माना है अतएव उन्होंने ऐसा करके लोकको जलमय ही करदिया अर्थात् सब चिन्मात्र हैं ऐसी भावनासे तन्मात्र ही अवशिष्ट रखते हैं, वह दृश्यादृश्यरूप मार्गसे ऐसा करते हैं अर्थात् दृश्य अदृश्य चिदंश जडांश चिदचिद्ग्रंथिरूप जीव-रूपमार्ग से ऐसा करते हैं, भाव यह है कि-जो अहंकारका आश्रय लेकर सबको रचते हैं उसीसे संहार करतेहुए उस मार्ग नामवाली सरणिका भी संहार करडालते हैं ॥१५॥ प्राचीन समयमें जिन पुराणात्मा अरिसूदन भगवान्ने वराहके रूपमें अपने दाँतसे पृथ्वीका उद्धार किया था ॥ १६ ॥ पहिले जिन अव्यय सुरसत्तमने इन्द्रके लिये असुरोंको जीत कर देव-

ददौ जित्वा सुरगणान् सुराणां सुरसत्तमः ॥ १७ ॥ येन सैंहं वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत् पुनः । पूर्वं दैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १८ ॥ यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः । पातालस्थोऽर्णवगतं पपौ तोयमयं हविः ॥ १९ ॥ सहस्रशिरसं ब्रह्मन् सहस्रारं सहस्रदम् । सहस्रश्चरणं देवं यमाहुर्वै युगे युगे ॥२०॥ नाभ्यारण्यां समुत्पन्नं यस्य पैतामहं गृहम् । एकार्णवजलस्थस्य नष्टे स्थावरजंगमे॥२१॥ येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये । सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः ॥ २२ ॥ गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः । निर्जितश्च मयो दैत्यस्तारकश्च महासुरः ॥ २३ ॥ उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतो-

ताओंको तीनों लोक देदिये थे ॥ १७ ॥ जिन्होंने पहिले सिंह का स्वरूप धारण कर फिर उसको दो प्रकारका कर अर्थात् नरसिंहरूप बनाकर महावीर्यवान् दैत्य हिरण्यकशिपुको मार डाला था ॥१८॥ जिन विभुने पहिले और्ववंशी सम्वर्तक अग्नि का रूप धारण करके पातालमें स्थित समुद्रके जलरूप हविको पान किया था ॥१९॥ जिन (अनिरुद्ध नाम वालेको) सब अवताररूपी बिन्दुओंके मूलभूत महासमुद्ररूपके प्रत्येक युगमें सहस्र (अनन्त) चरणों वाले सहस्र शिर वाले सहस्र अरेवाले और सहस्रोंकी दक्षिणा देनेवाले देव कहते हैं ॥ २० ॥ स्थावर जंगमात्मक जगत्के लीन होने पर जिन एक समुद्रमय जलमें स्थित पुरुषके नाभिरूप वनमें पितामहका घर (कमल) उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ जिन्होंने तारकामय संग्राममें अपने शरीरको सर्वदेवमय और सब आयुधोंसे व्याप्त बना कर दैत्योंको मार डाला था ॥ २२ ॥ और जिन्होंने गरुड़ पर बैठ कर बढ़े हुए कालनेमिको गिरा दिया था और जिन्होंने मय दैत्य और महान् असुर तारकासुरको मार डाला था २३ और जो क्षीरोद समुद्रके उत्तर

दधेः । यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥२४॥ सुरा-रणिर्गर्भमधत्त दिव्यं तपःप्रकर्षाददितिः पुराणम् । शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं गर्भावसाने निभृतं चकार ॥ २५ ॥ पदानि यो लोकमयानि कृत्वा चकार दैत्यान् सलिलेशयांस्तान् । कृत्वा च देवांस्त्रिदिवस्य देवांश्चक्रे सुरेशं त्रिदशाधिपत्ये ॥२६॥पात्राणि दक्षिणा दीक्षा चमसोलूखलानि च । गार्हपत्येन विधिना अन्वा-हार्येण कर्मणा २७ अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव कुशं स्रुवम् । प्रोक्षणीयं ध्रुवां चैव आवभृथ्यं तथैव च ॥२८॥ सुधात्रीणि च यश्चक्रे हव्यकव्यप्रदान् द्विजान् । हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे कव्या-दांस्तु पितॄनपि ॥२९॥ भोगार्थे मन्त्रविधिना यश्चक्रे यज्ञकर्मणि ।

तट परके अमृतसमुद्रके शाश्वत योगका आश्रय ले बड़े भारी अन्धकारको फैला कर शयन करते हैं२४देवताओंको (उत्पन्न करने वाली) अरणि अदितिने तपकी अधिकतासे जिन पुराण पुरुषरूपी गर्भको धारण किया था और जिन्होंने गर्भसे निक-लनेके बाद दैत्योंसे रोके हुए इन्द्रकी सब कामनाओंको पूर्ण कर दिया था २५ जिन्होंने अपने पैरोंको लोकमय करके अर्थात् एक चरणसे एक २ लोकको नाप कर दैत्योंको पातालमें भेज दिया था और देवताओंको स्वर्गमें देवता बनादिया था और सुरराज इन्द्रको देवताओंका अधिपतिपना देदिया या २६ जिन्होंने [यज्ञको] पात्र दक्षिणा दीक्षा चमस उलूखल, गार्हपत्यविधिसे और अन्वाहार्यकर्मसे आहवनीय अग्नि वेदी कुशा स्रुवा प्रोक्षणी ध्रुवा और आवभृथ्य [यज्ञान्तमें स्नानमें काम आने वाले तुष-सोम लिप्त आदि] और [ऊर्ध्व मध्य और अधोगति संज्ञा वाली] तीन सुधा बनाकर ब्राह्मणोंको हव्य कव्य प्रदान करने वाला बनादिया है और देवताओंको हव्य भक्षण करने वाले और पितरोंको कव्य भक्षण करने वाले बनाया है ॥ २७ ॥ २८ ॥

यूपान् समित्स्रुवं सोमं पवित्रान् परिधीनपि ॥ ३० ॥ यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्च सचयानलान् । सदस्यान् यजमानांश्च मेध्यादींश्च क्रतूत्तमान् ॥ ३१ ॥ विबभाज पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा । यागानुरूपान् यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमात् ॥ ३२ ॥ क्षणा लवाश्च काष्ठाश्च कालास्त्रैकाल्यमेव च । मुहूर्तास्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा ॥ ३३ ॥ ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिपु । आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम् ३४ त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः । त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोऽपायास्त्रयो गुणाः ॥३५॥त्रयो लोकाः पुरा सृष्टा

जिन्होंने [देवताओंका] भाग निकालनेके लिये मन्त्र [ब्राह्मण ग्रंथों] की विधिसे यज्ञकर्ममें यूप समिधा स्रुवा सोम पवित्र परिधियें यज्ञोपयोगी द्रव्य यज्ञ और ईंटके बने अग्निके स्थान सदस्य यजमान यज्ञोंमें उत्तम यज्ञ मेध्य पदार्थ आदिका ब्रह्मा-जीकी प्रवृत्त कीहुई विधिसे विभाग किया है और जिन्होंने लोकोंको यज्ञके अनुरूप बनानेका प्रयास किया है ॥३२–३३॥ जिन्होंने क्षण लव काष्ठा कला [प्रातः मध्यान्ह और सायङ्काल रूप] तीन काल मुहूर्त तिथि मास पक्ष वर्ष ऋतु काल योग और नित्य नैमित्तक काम्य इन] तीन [प्रमेय] रूपोंमें श्रुति स्मृति शिष्टाचाररूप तीन प्रकारका प्रमाण आयु और [स्थूल सूक्ष्म कारणरूप तीन] क्षेत्र [शरीर] वृद्धि [दो पैर चार पैर आदि] लक्षण और रूपकी सुन्दरता [रची है] ३३-३४ और जिन्होंने तीन वर्ण (शूद्रको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है अतः उसका ग्रहण नहीं किया है) (भू आदि) तीन लोक (ऋक् यजु और सामवेदरूप) तीन विद्याएँ [गार्हपत्य आदि] तीन अग्निएँ [भूत भविष्यत् और वर्तमान कालरूप) तीन काल [सात्त्विक राजस और तामसरूप] तीन कर्म (पुत्रैषणा

येनानंत्येन कर्मणा । सर्वभूतगणस्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः॥ ३६ ॥ नृणामिंद्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः । गतागताभ्यां यो नेता सर्वत्र जगदीश्वरः ।३७। यो गतिर्धर्मयुक्तामगतिः पापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्होत्रस्य रक्षिता ॥३८॥ चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः । दिगन्तरो नभोभूतो वायुरापविभावसुः ॥३९॥ चन्द्रसूर्यमयो ज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः । यत्परं

वित्तैषणा और लोकैषणारूप) तीन अपाय और (सत्व रज तम] तीन गुण रचे हैं ॥ ३५ ॥ जिस अत्यन्त कर्म करने वाले ने पहिले तीनों लोकोंको रचा है जो सब भूतोंके रचयिता हैं और सर्वभूतगुणात्मक हैं३६जो मनुष्योंके मृत्यु और जन्मके(देनेके) कारण सर्वत्र नेता हैं और जो जगदीश्वर (जीवरूपसे) इन्द्रियपूर्व योगसे इन्द्रिय जन्यविषयसम्बन्धसे रमण करता है ॥३७॥ जो धर्म करने वालोंकी गति हैं और पापकर्म करने वालेकी अगति हैं अर्थात् पापकर्मी जिनको नहीं पासकते और जो चारों वर्णोंके उत्पत्तिस्थान हैं (यह बात "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" आदि श्रुतिको लक्ष्य करके कही है) और जो (जिसमें चार ऋत्विज होम करते हैं ऐसे) चातुर्होत्रके रक्षक हैं ॥ ३८ ॥ जो (आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता और दण्डनीति रूप) चार विद्याओं के ज्ञाता हैं और जो चारों आश्रमके कर्मोंको आश्रय देने वाले हैं और जो जिसके दिशायें गभमें रहती हैं ऐसे आकाशरूप हैं और जो वायु आकाश जल और पृथ्वीरूप हैं ॥ ३९ ॥ जो चन्द्रसूर्यमय हैं अर्थात् चन्द्रसूर्यप्रधान मन हैं और जो (नेत्ररूप) ज्योति हैं और जो योगीश हैं अर्थात् निर्विकल्पक हैं वा मनके अन्तक हैं और जो (क्षणदा-रात्रि ही जिसका अन्तक हैं ऐसी चक्षुर्ज्योतिरूप) क्षणदान्तक हैं और जो पर (अन्तक शून्य) गिने जाते हैं और जो तपका आश्रय करते हैं अर्थात् जो

श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रूयते तपः ॥४०॥ यं परं प्राहुरपरं यः परः परमात्मवान्। (नारायणपरा वेदा नारायणपराः क्रियाः। नारायणपरो धर्मो नारायणपरा गतिः ॥१॥ नारायणपरं सत्यं नारायणपरं तपः। नारायणपरो मोक्षो नारायणपरायणम् ॥ २॥) आदित्यादिस्तु यो दिव्यो यश्च दैत्यान्तको विभुः ॥४१॥ युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः। सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् ॥४२॥ वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभ-

तपसे प्राप्त होते हैं (श्रुतिमें भी लिखा है, कि—"मनसैवेदमाप्तव्यम्" अर्थात् इस परमात्माको मनमें ध्यान तप) से प्राप्त किया जासकता है) ॥ ४० ॥ जिसको पर (सूत्रात्मा) और अपर(विराज) भी कहते हैं और जो परात्पर हैं अर्थात् पर सूत्रात्मासे भी पर है और जो आत्मवान् हैं अर्थात् आत्माकी समान ही मायारूपी शरीर वाले हैं (श्रुतिमें भी कहा, कि—"मायिनं तु महेश्वरम्—महेश्वरको मायावान् जाने" [वेद नारायणके आश्रयसे रहते हैं, सब क्रियाएँ नारायणके आश्रयसे होती हैं, धर्म भी नारायणके आश्रयसे रहता है और नारायणके पास पहुँचना ही परा गति है ॥ १ ॥ नारायण परम सत्यस्वरूप हैं और तप नारायण पर है और नारायणके पास पहुँचना ही मोक्ष है और नारायण ही परायण हैं ॥ २ ॥] जो विभु आकाशमें फिरने वाले आदित्यरूप हैं और जो दैत्योंका नाश करने वाले हैं ॥ ४१ ॥ जो प्रलयके समय यमराजका रूप धारण कर लेते हैं और जो लोकान्तक (यम) के भी अन्तक हैं और जो लोककी मर्यादा बाँधने वाले (मनु आदि) के भी सेतु हैं अर्थात् मनु आदिको भी मर्यादामें रखनेवाले हैं और जो पवित्र कर्मोंमें भी पवित्र हैं ४२ और जो वेदके ज्ञाताओंके जानने योग्य हैं और जो प्रभुत्व के स्वभाव वाले (मरीचि आदि) के भी प्रभु हैं और जो

त्मनाम् । सोमभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥ ४३ ॥ मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् । विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि । सर्गाणां सर्गकारश्च लोकहेतुरनुत्तमः ४४ विग्रहो विग्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः ॥ ४५ ॥ देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः । रसाद्धि शोणितं जातं शोणितान्मांसमुच्यते ॥ ४६ ॥ मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थीनि चैव हि । अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रमेव च ॥ ४७ ॥ शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा ।

सौम्य पुरुषोंमें चन्द्रमाकी समान प्रिय दर्शन देते हैं और जो अग्निकी समान तेजस्वी पुरुषोंमें अग्निस्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ और जो मनुष्योंके मनोरूप हैं और तपस्वियोंके तपोरूप हैं और नीतिवान् पुरुषोंमें नम्रतारूपसे विराजमान रहते हैं और जो तेजस्वियोंमें तेजःस्वरूप हैं और जो सृष्टियोंके रचने वाले हैं और संसारके सर्वश्रेष्ठ कारण हैं ॥ ४४ ॥ और जो शरीरवान् पुरुषोंमें शरीररूप हैं और जो गति वालोंकी गति हैं और जो आकाशमें उत्पन्न होनेवाले वायुरूप हैं तथा प्राण वायुरूप हैं और अग्निस्वरूप हैं ॥ ४५ ॥ अग्नि देवताओंका प्राण है और मधुसूदन-अग्निके प्राण हैं (वे अग्निके प्राण होकर उसके द्वारा क्या करते हैं इसका उत्तर देते हैं, कि-अग्निके द्वारा पृथक् किये हुए अन्नके साररूप) रससे शोणित-रक्त-होता है (उससे क्रमशः रेत बनकर गर्भ रहता है इसप्रकार वह अग्निके द्वारा व्यापार करते हैं) और रक्तसे मांस होता है ॥ ४६ ॥ मांससे मेदकी उत्पत्ति होती है और मेदसे अस्थियोंकी उत्पत्ति होती है, हड्डियोंसे मज्जा उत्पन्न होती है और मज्जासे वीर्यकी उत्पत्ति होती है ॥ ४७ ॥ रसमूल कर्मके द्वारा शुक्रसे गर्भ होता है, उसमें जल का प्रथम भाग (वीर्य होता है, वह श्वेत होनेसे) सौम्य होता

तत्रापां प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते । गर्भोष्मसंभवोऽग्निर्यो द्वितीयो राशिरुच्यते ॥४८॥ शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं विद्धि पावकम् । भागौ रसात्मकौ ह्येषां वीर्यं च शशिपावकौ ४६ कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् । कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम् ॥ ५० ॥ देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् । नाभिकोष्ठांतरं तत्तु तत्र देवो हुताशनः ५१ मनःप्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते । पित्तमग्निः स्मृतं ह्येतदग्नीषोमात्मकं जगत् ५२॥ एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्द्धितेऽम्बुद-

है और गर्भकी गरमीसे उत्पन्न हुआ अर्थात् जठराग्निसे उत्पन्न हुआ दूसरा भाग उसमें रहता है ॥ ४८ ॥ शुक्रको सोमस्वरूप समझना चाहिये और आर्तवको पावकस्वरूप समझे (उक्तक्रम से) ये दोनों रसके ही भाग हैं, शशि और पावक अर्थात् शुक्र और शोणित इन रस आदिके ही सार हैं ॥ ४६ ॥ (अब जगत्के अग्नीषोमात्मकपनेको सिद्ध करते हैं कि-शुक्र(वीर्य)कफ वर्गमें है और रक्त पित्तवर्गमें है, (वीर्यके आश्रयसे रहने वाले और जिसका देवता सोम है ऐसे) कफका स्थान हृदय है (वही प्रजापति देवता वाले मनका भी स्थान है) (रक्तके आश्रयसे रहने वाले और जिसका देवता अग्नि है ऐसे) पित्त का स्थान नाभि है (वही अग्नि देवता वाणीका स्थान है स्थान स्थानीका अधिष्ठेय और अधिष्ठाताका देह और देहीका व्यवहारमें कुछ भेद नहीं होता है अतएव सम्पूर्ण नाम रूपात्मक जगत् अग्नीषोमात्मक है)५०देहके मध्यमें जो हृदय है वह मनका स्थान कहलाता है और नाभिकोष्ठके भीतर (वाणीकी अधिष्ठात्री) देवता अग्नि रहती है ॥५१॥मनको प्रजापति समझना चाहिये और कफको सोम समझना चाहिये, पित्त अग्नि है, इसप्रकार जगत् अग्नीषोमात्मक है ५२ जैसे धूम ज्योति सलिल

सन्निभे । वायुः प्रवेशं संचक्रे संगतः परमात्मना ॥५३॥ ततोऽगानि विसृजति बिभर्ति परिवर्धयन् । स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्धते पुनः ॥५४॥ प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च । प्राणः स प्रथमं स्थानं वर्धयन् परिवर्तते ॥५५॥ अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वं शरीरिणः । व्यानो व्यायच्छते येन समानः सन्निवर्तयेत् । भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरात् ॥५६॥

और पवनसे मेघ बढ़ता है, इसी प्रकार गर्भ भी अन्न अग्नि जल और प्राणसे बढ़ता है अत एव अचेतन है, उसके बढ़नेपर (प्राणवायुका सहचर होनेसे जीवरूप ,वायु ईश्वरके साथ उसमें प्रवेश करता है(और उसीके साथ उत्क्रमण करता है)५३(देहमें प्रवेश करनेके अनन्तर जीव शिर आदि) अङ्गोंको रचता है और उनको पुष्ट भी करता है, वह (प्राणोपाधि जीव प्राणके पाँच प्रकारका होनेसे स्वयं भी) पाँच भागोंमें विभक्त होजाता है (श्रुतिमें भी लिखा है, कि–स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति–) (वह भेद इस प्रकार हैं) प्राण अपान समान उदान और व्यान, इनमें प्राण प्रथम स्थान (हृदय) को बढाता हुआ रहता है ॥ ५४ ॥ ५५ अपान शरीरके (जंघासे लेकर चरणतकके) पश्चिम शरीरको और उदान प्राणीके (जंघाओंसे ऊपरके) ऊर्ध्व शरीरको बढ़ाता है और व्यान व्यायाम करता है अर्थात् बलसाध्य कर्म करता है (अत एव वह शरीरकी सब सन्धियोंमें वर्तमान रहता है ,और समान संनिवर्तन करता है (वह नाभिमें रहता है और खाने पीनेको एकसा करता है अर्थात् यथास्थान पर पहुँचा देता है) इस प्रकार प्राणके कर्मोंका विभाग होनेके अनन्तर जीवको [पृथिवी आदि] भूतोंका साक्षात्कार होता है और वह साक्षात्कार इन्द्रियोंके द्वारा होता है अर्थात् इन्द्रियोंका विषय रूप आदि है उसके द्वारा उनके आश्रय

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् । तस्येन्द्रियाणि विष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे ॥ ५७ ॥ पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् । छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात् स्रावः प्रवर्तते ॥५८॥ ज्योतिश्चक्षुश्च तेजात्मा तेषां यन्ता मनः स्मृतः । ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात् प्रवर्तिताः ॥ ५९ ॥ इत्येवं पुरुषः सर्वान् सृजल्लोकान् सनातनान् । कथं लोके नैधनेऽस्मिन्नरत्वं विष्णुरागतः ॥६०॥ एष मे संशयो ब्रह्मन्नेष मे विस्मयो

द्रव्यका ग्रहण होता है ॥ ५६ ॥ (इसका कारण कहते हैं कि-) पृथिवी आदि इन्द्रिय रूपसे परिणामको प्राप्त होकर शरीरमें अपने २ नेत्रगोलक आदि स्थानोंमें प्रविष्ट होजाते हैं अतः वह अपने २ योगको करते हैं अर्थात् पार्थिव घ्राण गन्धविशिष्ट पृथिवी का ग्रहण करती है, जलीय रसना जलके गुण रसोंको ग्रहण करती है, तैजस चक्षु तेजके गुण रूपको ग्रहण करती है, वायवीय स्पर्शेन्द्रिय उसके गुण स्पर्शको ग्रहण करती है और आकाशीय श्रोत्र उसके गुण शब्दको ग्रहण करता है देहको अर्थात् इकट्ठे हुए कठिनांशको पार्थिव कहते हैं और प्राणको वायु कहते हैं, छिद्र आकाश माने जाते हैं और जलसे स्रव (गीला पदार्थ निकलना है ॥ ५८ ॥ ज्योतिः चक्षुको उत्पन्न करती है, इन सब पृथिवी आदिका तेजात्मा मन अर्थात् तेजका अंश मन नियामक है (रूप आदिके आश्रय पृथिवी आदि । ग्राम और गन्ध आदि विषय इसके वीर्यसे प्रवृत्त होते हैं अथवा नगर ग्राम आदि इसके लगने पर ही बनाये जाते हैं श्रुतिमें लिखा है कि 'तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितम्, यह सब मनमेंही प्रतिष्ठित है५९ भगवान् विष्णु इस प्रकार इन सनातन लोकोंको रचते रहते हैं, ऐसे विष्णु इस मरणशील संसारमें मनुष्य क्यों बने थे ॥६० ॥ हे ब्रह्मन ! मुझे यही सन्देह और बड़ा भारी विस्मय हो रहा

महान् । कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम् ॥ ६१ ॥ श्रुतो मे स्ववंशस्य वंशस्य पूर्वेषां चैव संभवः । श्रोतुमिच्छामि विष्णोस्तु वृष्णीनां च यथाक्रमम् ॥ ६२ ॥ आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते । विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं ममाचक्ष्व महामुने ॥ ६३ ॥ एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व सुखावहम् । प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः । कर्म चाश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् ६४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तः शार्ङ्गधन्वनि । यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः ॥ १ ॥ विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या ते मतिरुत्थिता । हन्त विष्णोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम् ॥ २ ॥ सहस्राद्यं

है, कि—गति देने वालोंको भी गति देने वाले भगवान् मनुष्य कैसे बने थे ॥ ६१ ॥ मैंने अपने वंशकी और अपने पूर्वजोंकी उत्पत्ति सुनी अब मैं विष्णुकी और वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्तिको क्रमानुसार सुनना चाहता हूँ ॥ ६२ ॥ देवता और दैत्य विष्णु को परम आश्चर्यमय बताते हैं अतः हे महामुने ! आप विष्णुकी आश्चर्यजनक उत्पत्तिको सुनाइये ॥ ६३ ॥ आप बल और वीर्यमें प्रसिद्ध अमिततेजस्वी विष्णुके इस सुख देने वाले आश्चर्यजनक आख्यानको सुनाइये और आश्चर्यस्वरूप विष्णुके कर्मोंका तत्त्व भी मुझे सुनाइये ॥ ६४ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे तात ! आपने शार्ङ्ग धनुषको धारण करने वाले श्रीकृष्णके विषयका बड़ा भारी प्रश्न कर डाला [यद्यपि इस भारको उठाना कठिन है] तब भी मैं यथाशक्ति कहता हूँ, अब तुम विष्णुकी कीर्तिको सुनो ॥१॥ प्रारब्धवश ही तुम्हारी विष्णुका प्रभाव सुननेकी ओर प्रवृत्ति हुई है, अब

सहस्रास्यं सहस्रभुजमव्ययम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्रकर-
मव्ययम् ॥ ३ ॥ सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् ।
सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥ ४ ॥ सवनं हवनं चैव
हव्यं होतारमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदीं दीक्षां चरुं
स्रुवम् ॥५॥स्रुक्सोमं शूर्पमुसलं प्रोक्षणं दक्षिणाऽयनम् । अध्वर्युं
सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥ ६ ॥ यूपं समित् कुशं दर्वीं
चमसोलूखलानि च । प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत्७
ह्रस्वान्यतिप्रमाणानि चराणि स्थावराणि च । प्रायश्चित्तानि
चार्थं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥ ८ ॥ मन्त्रं यज्ञवहं वन्हिं
भागं भागवहं च यत् । अग्रेभुजं सोमभुजं घृतार्चिषमुदायुधम् ६

तुम मेरी कही हुई विष्णुकी दिव्य लीलाको सुनो ॥२ ॥ जिनको
ब्राह्मण]सहस्र [अनन्त] नेत्रों वाला अनन्तमुखों वाला अनन्त
भुजा वाला अविनाशी अनन्त जिह्वा वाला अनन्त शिरवाला
अनन्त हाथों वाला अपरिणामी देव [कहते हैं]। ३ । ४ । [इस
प्रकार दो श्लोकोंसे विष्णुके सूक्ष्म मूर्तिरहित रूपका वर्णन करके
स्थूल मूर्तिमान रूपका वर्णन करते हैं, कि—द्विज जिनको] काल
[सवन]कर्म [हवन] होम करने योग्य द्रव्य यजमान [पहिले
कहे हुए पात्रोंके अतिरिक्त कपाल आदि] पात्र [कुशपूर्ण]
पवित्र [देश] वेदी संस्कार चरुस्थाली और स्रुवस्रक् सोम शूर्प
मुसल प्रोक्षणीपात्र अन्वाहार्य आदि हविके द्वारा भक्षण करना
अध्वर्यु उद्गाता विप्र सदस्य पत्नीशाला सभा यूप समिधा
कुशा दर्वी चमस उलूखल प्राग्वंश यज्ञभूमि होता (ऋत्विज)
चयन (ईंटों का कुण्ड) ह्रस्व (एक दिन काममें आने वाले
शकट) (वैलकी स्तंभशालाके) बड़े २ भवन चर अचर प्राय-
श्चित्त(स्वर्गआदि) अर्थ (फल)खुली भूमि कुश मंत्र यज्ञको
धारण करने वाली अग्नि भाग भागवह (गायत्री आदि छन्द,

आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं विभुम् । तस्य विष्णोः
सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥ १० ॥ प्रादुर्भावसहस्राणि
अतीतानि न संशयः । भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ११
यत् पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम् । यदर्थं भग-
वान् विष्णुः सुरेशो रिपुसूदनः देवलोकं समुत्सृज्य वसुदेवकुले-
ऽभवत् ॥ १२ ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः । वासु-
देवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्युतेः ॥१३॥ हितार्थं सुरमर्त्यानां
लोकानां प्रभवाय च ।बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः१४
प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान् दिव्यगुणैर्युतान । छान्दसीभिरु-
दाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतान् ॥ १५ ॥ शुचिः प्रयतवाग्भूत्वा

श्रुतिमें भी लिखा है कि-"छन्दांसि वै देवेभ्यो हव्यमूढ्वा श्रान्तानि-छन्द देवताओंके लिये हव्य ढोते २ थक जाते हैं) अग्रेभुज (प्रापणीय) उदायुध (उदनीय) सोमभोक्ता घृतकी लपटको यज्ञमें वेदवेता शाश्वत विभु विष्णुस्वरूपही बताते हैं,उन सुरपति श्रीवत्सके चिन्ह वाले भगवान् विष्णुके सैंकड़ों ही अव-तार हुए होंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है, और फिर भी होंगे, यह बात प्रजापतिने कही है ॥५-११॥ हे महाराज ! तुम जिस दिव्य कथाको बूझते हो और देवताओंके ईश शत्रुनाशक विष्णु देवलोकको त्याग कर वसुदेवके कुलमें जिस लिये उत्पन्न हुए थे वह सब बात और महाकांतिमान् वासुदेवके महात्म्य तथा चरित्रको भी मैं तुमसे कहता हूँ ॥१२-१३॥ सब भूतोंके आत्मा भगवान् देवता और मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये तथा लोकोंमें ऐश्वर्य बढानेके लिये उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ १४ ॥ मैं भगवानके बड़ी २ श्रुतियोंमें वर्णन किये हुए दिव्यगुण वाले पवित्र अवतारोंको-कहता हूँ ॥ १५ ॥ हे जनमेजय ! तू इस वेदोंकी समान परमपवित्र श्रीकृष्णजीके प्राचीन अवतार संबंधी

निबोध जनमेजय । इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च संमितम् १६
हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्यां कथां शृणु । यदा यदा हि
धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । धर्मसंस्थापनार्थाय तदा संभवति
प्रभुः ॥ १७ ॥ तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तमा । नित्यं
दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम् ॥ १८ ॥ द्वितीया चास्य
शयने निद्रायोगमुपाययौ । प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिंत-
कम् ॥ १९ ॥ सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यतः । पूर्णे
युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥ २० ॥ पितामहो लोकपाला-
श्चन्द्रादित्यौ हुताशनः । ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव
च ॥ २१ ॥ देवाः सप्तर्षयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशाः । वायुः

वर्णनको पवित्र होकर और वाणीको नियममें रख कर सुन १६
मैं तुमसे विष्णुकी दिव्य कथाको सुनाता हूँ उसको तुम सुनो !
हे भरतवंशिन् ! जब जब धर्ममें ग्लानि उत्पन्न होने लगती है,
तब प्रभु धर्मको स्थापित करनेके लिये उत्पन्न होते हैं) यहाँ
प्रवृत्ति प्रधान रजोमूर्तिका वर्णन किया है ॥ १७ ॥ हे महाराज !
उनकी एक श्रेष्ठ मूर्ति स्वर्गमें स्थित रह कर सदा दुष्कर तप
करती रहती है (यहाँ सात्विकी मूर्तिका वर्णन किया है) १८
(अब तामसी मूर्तिका वर्णन करते हैं) इनकी दूसरी मूर्ति
(सविकल्प समाधि वाले अध्यात्मचिन्तक प्रजाका संहार करने
के लिये निद्रायोगका आश्रय लेकर शयन करती रहती हैं १९
(उनके अंगमें लीन रहने वाले देवताओंका प्रादुर्भाव ही उनका
प्रादुर्भाव माना जाता है, यही बात इस श्लोकमें कहते हैं, कि-)
वह सहस्र युग तक सोनेके अनन्तर अपने (देवता आदि)
कार्यसे उत्पन्न होती है सहस्र युग पूर्ण होने पर देवदेव महादेव
जगत्के पति (विष्णु) ब्रह्माजी लोकपाल चन्द्रमा सूर्य अग्नि
ब्रह्मा कपिल परमेष्ठी तथा देवता सप्तर्षि महायशस्वी त्र्यम्बक

समुद्राः शैलाश्च तस्य देहं समाश्रिताः ॥ २२ ॥ सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान् प्रजाकरः । पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ २३ ॥ येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजंगमे । नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे २४ योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ दानवौ मधुकैटभौ । हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं वरम् ॥ २५ ॥ पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि । पुष्करे यत्र संभूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥ २६ ॥ एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः । पुराणे कथ्यते यत्र वेदः श्रुतिसमाहितः ॥ २७ ॥ वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः । यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः । महीं

वायु समुद्र और पर्वत जो उनके देहका आश्रय करके वर्तमान रहते हैं (वे प्रकट होजाते है) ॥ २०—२२ ॥ पुराणदेव तथा (नारायण स्वरूप) प्रज्वलित अग्निकी समान तेज वाले महानुभाव पुराणदेव सनत्कुमार और प्रजाको रचने वाले भगवान मनु (उनके आश्रयसे रहते हैं, और इस समय प्रकट हो जाते हैं) इस प्रकार प्रदीप्त अग्निकी समान तेजवाले पुराणदेवने (ब्रह्माजीसे लेकर स्तम्ब पर्यन्ताके) शरीरोंको रचा और स्थावरजंगमके नष्ट होने पर तथा देवता और असुरोंके नष्ट होने पर तथा सर्प और राक्षसोंके भी नष्ट होने पर उन प्रभावशाली ने युद्ध करनेकी अभिलाषा वाले अतिदुर्धर्ष मधु और कैटभ नाम वाले दानवोंको मार डाला था और उनको अमित (कैवल्य मोक्ष) दिया था ॥ २५ ॥ पहिले जब कमलनाभ विष्णु समुद्रके जलमें शयन कर रहे थे उस समय (उनके नाभिके) कमलमेंसे ऋषि और देवता उत्पन्न हुए थे २६ पुराणमें वेदशास्त्र विभूषित महात्माका यह प्रादुर्भाव पौष्करक नामसे प्रसिद्ध है ॥ २७ ॥ उन महात्माका वाराह नामक अवतार श्रुतिमुख है

सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ॥ २८ ॥ वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितामुखः। अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥२९॥ अहोरात्रे क्षणो दिव्यो वेदान्तश्रुतिभूषणः। आज्यनासः स्रुवातुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥ ३० ॥ धर्मसत्यमयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः। प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महाभुजः ॥३१॥ उद्गात्रन्तो होमलिंगः फलबीजमहौषधिः। वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृतः सोमशोणितः ॥३२॥ वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्। प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षा-

उस श्रुतिमें सुरश्रेष्ठ विष्णुने वाराह रूपको धारण कर पर्वत और वन सहित समुद्र पर्यन्तकी सारी पृथ्वीका उद्धार किया है) वह श्रुति इस प्रकार है''यस्य रूपं विभ्रदिमामविन्दद्गुहां प्रविष्टः शरीरस्य मध्ये') ॥ २८ ॥ वह वराह वेद रूपी चरणों वाला है, यूपरूपी दंष्ट्रा वाला है, यज्ञरूपी दाँत वाला है, चिता (वेद) रूपी मुख वाला है, अग्निरूपी जिह्वा वाला है, कुशारूपी रोम वाला है, ब्रह्मरूपी शिर वाला है और वह महातपस्वी दिन रात रूपी नेत्रों वाला है और वह दिव्य वराह वेदान्तकी श्रुतियोंसे भूषित है, वह घृतरूपी नासिका वाला है, स्रुवारूपी तुण्ड वाला है और सामगानरूपी बड़ा भारी शब्द करने वाला है वह धर्मसत्यमय है और वह श्रीमान् क्रम (पादक्रम) और विक्रमोंसे सत्कृत है और प्रायश्चित्तरूपी नख वाला है और वह पशुरूप जानु वाला है और महाभुज है, तथा यह उद्गात्र रूपी अन्त वाला है, होमरूपी लिंग वाला है तथा फल (वृषण) और बीज (वीर्य) रूपी महौषधि वाला है, अर्थात् औषधियें ही इसका वीर्य है और वायु ही इसकी अन्तरात्मा है और मन्त्र इसकी त्वचा है और निचोड़ा हुआ सोम इसका रक्त है, वेदी इसके स्कंध हैं और हवि इसकी गन्ध है और यह हव्यकव्यरूपी

भिराचितः ॥ ३३ ॥ दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् । उपकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥ ३४ ॥ नानाछन्दो गतिपथो गुह्योपनिषदासनः । छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥३५॥ महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् । एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगतां प्रभुः ॥ ३६ ॥ दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया । सहस्रशीर्षो देवादिश्चकार पृथिवीं पुनः ॥ ३७ ॥ एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना । उद्धृता पृथिवी सर्वा सागरांबुधरा पुरा ॥ ३८ ॥ वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु । यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ३९

अतिवेग वाला है, मांसरूपी शरीर वाला है और वह कान्तिमान् अनेक दीक्षाओंसे आचित है, दक्षिणारूपी हृदय वाला है और वह योगी बड़े भारी सदावर्त वाला है और स्वाध्यायको स्वीकार करना ही उसके ओष्ठका भूषण है और धर्मरक्षाके लिये वार २पराक्रम करना ही उसका भूषण है,अनेक प्रकारके छन्द ही उसके गतिमार्ग हैं और वह गुप्त उपनिषदरूपी आसनों पर विराजमान रहता है और सूर्य उसकी सहायता करता है और वह मेरुपर्वतके शिखरकी समान खड़ा हुआ है (आदिवराहकी उपासना करने वालोंको इस प्रकार वराहके अंगोंमें यज्ञके अंग समझने चाहियें) ॥ २९–३५ ॥ ऐसे सहस्र सिर वाले देवताओंमें मुख्य सहस्र शिर वाले वराहने समुद्रमें डूबी हुई और समुद्ररूप बनी हुई पर्वत और वन सहित पृथ्वीको लोकोंका हित करनेके लिये अपनी डाढ़से उद्धार कर उसको फिर स्थापित किया था ॥ ३६–३७ ॥ इस प्रकार संसारका हित चाहने वाले यज्ञ तथा वराहने सागरके जलमें डूबी हुई पृथिवीका उद्धार किया था ॥३८॥ यह वराह अवतारकी कथा कहदी अब तुम नृसिंहावतारकी कथाको सुनो, उस अवतारको

पुरा कृतयुगे राजन् सुरारिर्बलदर्पितः । दैत्यानामादिपुरुषश्चचार
तप उत्तमम् ॥ ४० ॥ दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पंच च ।
जलोपवासनिरतः स्थानमौनदृढव्रतः ॥४१॥ ततः शमदमाभ्यां
च ब्रह्मचर्येण चानघ । ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा निय-
मेन च ॥ ४२ ॥ तं वै स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागत्य भूपते ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥४३॥ आदित्यैर्वसुभिः
साध्यैमरुद्भिर्दैवतैः सह । रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः
दिशाभिर्विदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा । नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च
खेचरैश्च महाग्रहैः ॥ ४५ ॥ देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैः सप्तर्षि-
भिस्तथा । राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ॥ ४६ ॥
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैः सुरैस्तथा । ब्रह्मा ब्रह्मविदां

धारण करके सिंहने हिरण्यकशिपुको मार डाला था ॥ ३९ ॥
हे राजन् ! पहिले सत्य युगमें बलके कारण घमण्डमें भरे रहने
वाले देवताओंके शत्रु और दैत्योंके आदिपुरुषने केवल जलका
आहार कर आसन और मौनका दृढ़ व्रत धारण कर साढ़े
ग्यारह सहस्र वर्ष तक उत्तम तप किया था ॥ ४१ ॥
हे निष्पाप ! तदनन्तर उसके शम दम तप ब्रह्मचर्य और
नियमको देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न होगए ॥ ४२ ॥ तद-
नन्तर हे भूपते ! स्वयंभू भगवान् अपने हंसोंसे जुते हुए
दमकते हुए विमानमें बैठ कर वहाँ स्वयं आये ॥ ४३ ॥ उनके
साथमें आदित्य वसु साध्य मरुत् देवता रुद्र और विश्वकी सहा-
यता करने वाले यक्ष राक्षस और किन्नर तथा दिशा विदिशा
नदी समुद्र नक्षत्र मुहूर्त आकाशचारी महाग्रह तपोवृद्ध देवर्षि
सिद्ध सप्तर्षि राजर्षि पुण्यवान् गंधर्व और अप्सरायें (भी आई
थीं)। ४४-४६ ॥ चराचरके गुरु ब्रह्माजी(इनसे तथा -) सब
देवताओंसे घिरे हुए थे फिर उन ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ

श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥४७॥ प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसा ऽनेन सुव्रत । वरं वरय भद्रन्ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ४८ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच । न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन ॥ ४९ ॥ ऋषयो वा न मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह । शपेयुस्तपसा युक्ता वरमेतं वृणोम्यहम् ॥ ५० ॥न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥ ५१ ॥ पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् । यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥ ५२ ॥ भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः । सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥५३॥ अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः । धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥ ५४ ॥ एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयम्भूर्भगवांस्तदा ।

ब्रह्माजीने उस दैत्यसे यह बात कही ॥ ४७ ॥ हे सुव्रत ! मैं तुझ भक्तके तपसे प्रसन्न होगया हूँ. हे सुव्रत ! तू वरको माँग और अपनी अभिलषित इच्छाको पूर्ण कर ॥ ४८ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा, कि देवता असुर गन्धर्व यक्ष सर्प राक्षस तथा मनुष्य और पिशाच भी मुझे कभी न मार सकें ॥ ४९ ॥ और हे पितामह ! क्रोधमें भरे हुए तपस्वी ऋषि भी मुझे शाप न दे सकैं, यह वर मैं माँगता हूँ ॥५०॥ मेरा वध शस्त्र पत्थर वृक्षसे तथा गीली और सूखी वस्तुसे भी न होसके ॥ ५१ ॥ और जो मुझे और मेरी सेना भृत्य और वाहनोंको भी केवल हाथके ही प्रहारसे मार सके उससे ही मेरी मृत्यु हो ॥ ५२ ॥ मैं ही सूर्य चन्द्रमा वायु अग्नि जल आकाश नक्षत्र और दश दिशायें रहूँ ॥ ५३ ॥ और मैं काम क्रोध वरुण इन्द्र यम धन देने वाला कुबेर और किंपुरुषोंका स्वामी यक्ष रहूँ ॥ ५४ ॥ उस दैत्यराजके इस प्रकार कहने पर हे नृपसत्तम ! स्वयंभू ब्रह्माजी

उवाच दैत्यराजं तं प्रहसन्नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ ब्रह्मोवाच । एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः । सर्वान् कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाकाशमेव हि । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ ५७ ॥ ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा । वरप्रदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपस्थिताः ॥ ५८ ॥ विभुं विज्ञापयामासुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ५९ ॥ देवा ऊचुः । वरेणानेन भगवन् वधिष्यति स नोऽसुरः । ततः प्रसीद भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ ६० ॥ भगवान् सर्वभूतानां स्वयंभूरादिकृद्विभुः । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तः प्रकृतिर्ध्रुवः ॥ ६१ ॥ सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः । प्रोवाच भगवान् वाक्यं सर्वान् देवगणांस्तदा ६२ अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् । तपसोऽनेऽस्य भग-

---

उस दैत्यराजसे हँस कर बोले ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे तात ! मैं तुझको ये सब दिव्य और अद्भुत वर देता हूँ, निःसन्देह तेरी सब कामनाएँ सफल होंगी ॥ ५६ ॥ भगवान् ब्रह्माजी इस प्रकार कह कर देवर्षियोंसे सेवित अपने वैराज नाम वाले लोकमें जानेके लिये आकाशमेंको चले गए ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजी के वरदान देनेकी बात सुन कर देवता नाग गन्धर्व और मुनि पितामहके पास पहुँचे ॥ ५८ ॥ और वहाँ पहुँच इन्द्रप्रमुख देवताओंने प्रभु ब्रह्माजीसे निवेदन किया ॥ ५९ ॥ देवताओंने कहा कि—हे भगवन् ! वह असुर इस वरदानसे हमें पीड़ा देने लगेगा अतः हे भगवन् ! आप हम पर प्रसन्न होकर उसके वधका भी कोई उपाय विचारिये ॥ ६० ॥ सब भूतोंके भगवान् आदिकर्ता विभु हव्य तथा कल्पके प्रवर्तक अव्यक्त प्रकृति और ध्रुव प्रजापति ब्रह्मदेव सब लोकोंका हित करने वाले वचनको सुन कर सब देवताओंसे कहने लगे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ हे देवताओं!

वान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥ ६३ ॥ एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पंकजसंभवात् । स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६४॥ लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः। हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥ ६५ ॥ आश्रमेषु महाभागान् मुनीन् वै शंसितव्रतान् । सत्यधर्मरतान् दान्तान् पुरा धर्षितवांस्तु सः ॥ ६६ ॥ देवांस्त्रिभुवनस्थांस्तु पराजित्य महासुरः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥ ६७ ॥ यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद्दानवो भुवि । यज्ञियान् कृतवान् दैत्यान् देवांश्चैवाप्ययज्ञियान् ॥ ६८ ॥ आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा । शरण्यं शरणं विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम् ॥६९॥ वेदयज्ञमयं ब्रह्म ब्रह्मदेवं सनातनम् । भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं

इसे तपका फल तो अवश्य ही मिलेगा, इसके तपका अन्त होने पर भगवान् विष्णु इसका वध करेंगे ॥ ६३ ॥ सब देवता ब्रह्माजीकी इस बातको सुन कर प्रसन्न होते हुए अपने २ भवनोंको चले गये ॥ ६४ ॥ उधर वरदानसे दर्पमें भरा हुआ हिरण्यकशिपु भी वरके पाते ही सब प्रजाओंको उत्पीडित करने लगा ॥ ६५ ॥ उसने पहिले सत्यधर्म परायण प्रशंसित व्रत वाले महाभाग मुनियोंको आश्रममें पहुँच कर पीड़ा देना आरम्भ कर दिया ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वह महा असुर तीनों लोकोंके देवताओंका पराजय कर त्रिलोकीको अपने वशमें करके स्वर्गमें रहने लगा ॥ ६७ ॥ जब दैत्य वरके मदसे मत्त होगया तब उसने दैत्योंको यज्ञमें भाग दिलवाना आरम्भ कर दिया और देवताओंको यज्ञमें भाग देना बन्द करवा दिया ६८ तब आदित्य रुद्र विश्वेदेवा तथा मरुद्गण महाबली विष्णुकी शरण में गए ६९ और उन्होंने वेदयज्ञमय ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मणोंके देवता सनातनपुरुष भूत भव्य और भविष्यत्रूप लोकनमस्कृत शरण

लोकनमस्कृतम् । नारायणं विभुं देवाः शरण्यं शरणागताः ७०
देवा ऊचुः । त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् । त्वं हि
नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम७१त्वं हि नः परमो देवस्त्वं
हि नः परमो गुरुः । उत्फुल्लांबुजपत्राक्षः शत्रुपक्षभयंकरः । क्षयाय
दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः॥७२॥विष्णुरुवाच । भयं त्यज-
ध्वममरा ह्यभयं वो ददाम्यहम् । तत्रैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ
मा चिरम् ॥७३॥ एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् । अव-
ध्यममरेंद्राणां दानवं तं निहन्म्यहम् ॥७४॥वैशम्पायन उवाच ।
एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदशेश्वरान् । हिरण्यकशिपो
राजन्नाजगाम हरिः सभाम् ॥७५॥ नरस्य कृत्वाऽर्धतनुं सिंह-
स्यार्धतनुं प्रभुः । नारसिंहेण वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना७६

देनेवाले विभु नारायणकी शरण ली ॥ ७० ॥ देवताओंने कहा
कि–हे देवेश ! आप हमारी हिरण्यकशिपुके भयसे रक्षा करिये,
हे सुरोत्तम ! आप ही हम ब्रह्मा आदिके परमधाता हैं ॥७१॥
आप ही हमारे परम देव हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं,
आप ही खिलेहुए कमलपत्रकी समान नेत्र वाले हैं और आप
हमारे शत्रुपक्षका क्षय करने वाले हैं हे प्रभो ! आप दितिके वंश
का क्षय करनेके लिये हमें शरण दीजिये ॥ ७२ ॥ विष्णुने कहा,
कि–हे देवताओं ! तुम अब डरना छोड़ दो मैं तुम्हें अभयदान
देता हूँ, हे देवताओं ! तुम शीघ्र ही अपने स्वर्गमें पहुँच जाओगे
अब मैं देवताओंसे अवध्य वरदानसे घमण्डमें भरे हुए उस दैत्य
को और उसके गणोंको अभी मारे डालता हूँ।७३॥७४॥वैशम्पा-
यनजीने कहा, कि–वह भगवान् हरि इस प्रकार कह देवताओंको
तहाँ छोड़ कर हिरण्यकशिपुकी सभामें आपहुँचे ॥ ७५ ॥ तहाँ
वह भगवान् आधा मनुष्यका और आधा सिंहका शरीर बना
कर अपने नरसिंह शरीरमें हाथसे हाथको मसलने लगे ॥७६॥

जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः । जीमूतघनदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान् ॥ ७७ ॥ दैत्यं सोऽतिबलं दीप्तं दृप्तशार्दूलविक्रमम् । दीप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥ ७८ ॥ नृसिंह एषः कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः । यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत् ॥ ७९ ॥ बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा । विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्यः क्षोभितास्ते महासुराः ॥ ८० ॥ विप्रचित्तिः शिविः शंकुरयःशंकुस्तथैव च । अयःशिराः शंकुशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ ८१ ॥ वेगवान् केतुमानुग्रः सोमव्यग्रो महासुरः । पुष्करः पुष्कलश्चैव वेपनश्च महारथः ॥ ८२ ॥ बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः साश्वोऽश्वपतिरेव च । प्रह्लादोऽश्वशिरा कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः । अनुह्लादो हरिहरौ वराहः शंकरो रुजः ॥ ८३ ॥ शरभः

उन मेघकी समान (वर्ण वाले) और मेघकी समान गर्जना करने वाले और मेघकी समान दीप्त ओज वाले और मेघकी समान वेगवान् भगवान्ने उस बलके कारण घमण्डमें भरे हुए और दीप्तिमान् दैत्योंसे घिरे हुए शार्दूलकी समान पराक्रम करने वाले दैत्यको एक हाथसे मार डाला ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ यह तुझसे नृसिंहावतारका वर्णन कर दिया फिर दूसरा वामन अवतार हुआ है, उसमें उन्होंने दैत्योंका नाश करने वाला वामनरूप धारण किया है ॥ ७९ ॥ पहिले बलवान् बलिके यज्ञमें भगवान् विष्णुने तीन पैर धर कर किसीसे क्षुब्ध न होने वाले असुरोंको क्षुब्ध कर दिया था ॥ ८० ॥ जिस समय हृषीकेश पैर धर रहे थे उस समय विप्रचित्ति शिवि शंकु अयःशंकु अयःशिरा शंकुशिरा वीर्यवान्-हयग्रीव वेगवान् केतुमान् उग्र महाअसुर-सोमव्याग्र: पुष्कर पुष्कल महारथी-वेपन बृहत्कीर्ति महाजिह्व साश्व अश्वपति प्रह्लाद अश्वशिरा कुम्भ संह्लाद गगनप्रिय अनुह्लाद हरि हर वराह शंकर रुज शरभ-शलभ कुपन कोपन क्रथ बृहत्कीर्ति-मह

शलभश्चैव कुपनः कोपनः क्रथः । बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शंकु-
कर्णो महास्वनः ॥ ८४ ॥ दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुचापो मृदु-
प्रियः । वायुर्यविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान् ॥ ८५ ॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च । कालकः कालकेयश्च
वृत्रः क्रोधो विरोचनः ८६ गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ।
इन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः॥८७॥ असिलोमा पुलोमा
च वाक्कलः प्रमदो मदः । स्वसृमः कालवदनः करालः कौशिकः
शरः ॥ ८८ ॥ एकाक्षश्चन्द्रहा राहुः संहादः सृमरः स्वनः ।
शतघ्नी चक्रहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ ८९ ॥ महाशिला-
प्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः । अश्मयन्त्रायुधोपेता भिंडि-
पालायुधास्तथा ॥ ९० ॥ शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरा-
स्तथा । पाशमुद्गरहस्ता वै तथा मुशलपाणयः ॥ ९१ ॥ नाना-

जिह्व शंकुकर्ण महास्वन दीर्घजिह्व अर्कनयन मृदुचाप मृदुप्रिय
वायु यविष्ठ नमुचि शंम्बर विज्वर महान् चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता
क्रोधवर्धन कालक कालकेय वृत्र क्रोध विरोचन गरिष्ठ वरिष्ठ प्रलंब
और नरक ये दोनों इन्द्रतापन—वातापि बलदर्पित—केतुमान्
असिलोमा पुलोमा वाक्कल प्रमद मद स्वसृम कालवदन कराल
कौशिक शर एकाक्ष चन्द्रहा राहु संहाद सृमर स्वन नाम वाले
और हाथमें बन्दूक तथा चक्रको पकड़ने वाले और हाथमें परिघ
उठाने वाले, बड़ी शिलाके आयुध वाले और हाथमें पाश
मुद्गर ग्रहण करने वाले और हाथमें शूल धारण करने
वाले दानव तथा गोफन वाले और भिण्डिपालके आयुध वाले
तथा हाथमें शूल और मूसल लिये हुए और फरसे लिये हुए
तथा अनेक प्रकारके भयंकर आयुधोंको धारण करने वाले, अनेक
वेष वाले महावेगवान् कूर्म और मुर्गेकेसे मुख वाले तथा खरगोश
और उल्लूकेसे मुख वाले तथा गधे और ऊँटकेसे मुख वाले और

मेदिनीम् ॥ ९९ । तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे। नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ ॥ १०० ॥ परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे स्थितावुभौ । विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥ १ ॥ हत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुङ्गवान् । ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतांवरः ॥ २ ॥एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः । वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥ ३ ॥ भूयोऽभूतात्मको विष्णोः प्रादुर्भावो महा-

---

लातोंसे सब दैत्योंका मर्दन करके अपने रूपको परम भयंकर बनाकर पृथिवीको जीतलिया ॥ ९९ ॥ जब यह पृथिवीको नाप रहे थे उस समय चन्द्रमा और सूर्य उनके स्तनों केबीचमें आगए थे और जब वह आकाशको नाप रहे थे तब चन्द्रमा और सूर्य उनके नाभिमें आगए थे॥ १०० ॥और अतुल वीर्यवाले विष्णु जब परको नाप रहे थे तब सूर्य और चन्द्रमा उनके जानुदेशमें आए थें यह बात ब्राह्मण कहते हैं (चन्द्रमा और सूर्यके बढने आदिके कारण यह बातें कही हैं) ॥ १०१ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णुने सारी पृथिवीको जीतकर तथा श्रेष्ठ२ असुरोंको मारकर स्वर्ग इन्द्रके अर्पण करदिया था ॥१०२॥मैंने तुमसे यह महात्मा वामनका प्रादुर्भाव कहदिया, वेदवेत्ता विद्वान् ब्राह्मण भी इसी प्रकार विष्णुके यशका कीतन करते हैं (वेदज्ञ विद्वान् इसप्रकार प्रमाण देते हैं कि-'यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वाः-जिनके बड़ेभारी तीन कदम रखनेमें लोक समाजाते हैं')३ इसके अतिरिक्त विष्णुका एक और भी अवतार सुनाजाता है वह परमशान्तिप्रद अवतार दत्तात्रेय नामसे प्रसिद्ध है और यह अभूतात्मक है अर्थात् अद्भुत होने पर भी प्रत्यक्ष श्रुतिमूलक है, (श्रुतिमें लिखा है,कि-"यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुरः अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन्-सूर्य(आत्मा) को राहु

महरणा घोरा नानावेषा महाजवाः । कूर्मकुक्कुटवक्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ६२ ॥ खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा । भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः । आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ॥६३॥ मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथापरे । नक्रमेषाननाः शूरा गोजाविमहिषाननाः ॥६४॥ गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौंचवक्त्राश्च दानवाः । गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ॥ ६५ ॥ गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनांबराः । चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससः । उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥ ६६ ॥ किरीटिनो लंबशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः । नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥ ६७ ॥ स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा । क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥६८॥ प्रगृह्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैः प्रभुः । रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स

मगरकी समान भयंकर मुख वाले और सूअरकेसे मुखवाले और गीदड़केसे मुख वाले दानव तथा चूहे और मेंडककेसे मुख वाले और भेड़ियेकेसे भयंकर मुख वाले तथा बिल्ली और हाथीकेसे मुख वाले तथा नाके और मेंढ़ेकेसे मुख वाले तथा गौ बकरी और भैंसकेसे मुखवाले तथा गोह और सेईकेसे मुखवाले और कुररीकेसे मुखवाले दानव तथा गरुडकेसे मुखवाले खड्गकेसे मुखवाले मोरकेसे मुखवाले और हाथीके चमड़ेको ओढ़नेवाले और कृष्णमृग की चर्मको ओढनेवाले और चिथड़ोंसे ढकीहुई देहवाले और भोज वस्त्र पहरनेवाले तथा पगडी और मुकुट पहरनेवाले असुर, किरीट धारण करनेवाले, शंखकी समान ग्रीवावाले और अनेक वेश धारण करनेवाले तथा अनेक प्रकारकी मलनेकी वस्तुओंको मलनेवाले ये सब अपने२आयुध ग्रहण हृषीकेशको चारों ओरसे घेरकर खडे होगए ६१ ६८ उन प्रभुने अपने हाथके चपेटोंसे और

त्मनः । दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः ॥ ४ ॥ तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च । चातुर्वर्ण्ये तु संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ॥५॥ अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते । प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ॥ ६ ॥ सह यज्ञक्रिया-वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै । चातुर्वर्ण्यं च संकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥ ७ ॥ तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमतः । वरदेन वरोदत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥ ८ ॥ एतद्बाहुद्वयं यत्ते मृधे मम कृतेऽनघ । शतानि दशबाहूनां भविष्यन्ति न संशयः ॥ ९ ॥ पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसुधाधिप । दुर्निरीक्ष्योऽरि-

---

(माया) अन्धकार (विपर्यय) से ढकता हुआ (अर्थात्) जीवत्वमें लेआया अत्रिके पुत्र (दत्तात्रेय) इस बातको जान सके थे औरोंको यह बात प्रतीत नहीं हुई अतएव इस अवतारको ज्ञानमार्गका प्रवर्तक समझना चाहिये) ॥ १०४ ॥ उस समय वेद लुप्त होरहे थे तथा अनुष्ठान और यज्ञ लुप्तप्राय होगए थे और चारों वर्ण संकीर्ण होरहे थे तथा धर्ममें शिथिलता आगई थी अर्थात् धर्म कहीं कहीं ही दीखता था और अधर्म बढ़रहा था सत्य लुप्त होगया और झूँठकी स्थापना होरही थी, प्रजाएँ कृश होती जारहीं थीं और धर्म आकुल होरहा था अर्थात् धर्म अधर्म मिश्रित होरहा था॥१०५॥१०६॥ ऐसे समय उन महात्माने यज्ञ क्रिया और वेदको फिर प्रवृत्त किया था और उन महात्माने संकीर्ण हुए चातुर्वर्ण्यको असंकीर्ण कर दिया था ॥ १०७ ॥ वरदान देने वाले बुद्धिमान् दत्तात्रेयने हैहयवंशी बुद्धिमान् कार्तवीर्यको वर दिया था कि-१०८ हे निष्पाप ! युद्धके समय तेरी ये दो भुजाएँ मेरे वरदानसे दश सहस्र भुजाएँ होजाया करेंगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥१०९॥ हे वसुधाधिप ! तू सारी पृथ्वी का पालन करेगा तथा तू धर्मज्ञ होगा और शत्रु तेरी ओर कठि-

वृन्दानां प्रमश्रश्च गमिष्यसि ॥ १० ॥ एष ते केशवः श्रीमान्
प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः ; कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिंदम ।
भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः । यत्र बाहुसहस्रेण
विस्मितं दुर्जयं रणे । रामोऽर्जुनमनीकस्थं जघान नृपतिं प्रभुः ॥ १२
रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वाऽर्जुनं भुवि । धर्षयित्वा यथाकामं
क्रोशमानं च मेघवत् ॥ १३ ॥ कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद
भृगुनन्दनः । परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥ १४ ॥
कीर्णा क्षत्रियकोटिभिर्मेरुमन्दरभूषणा । त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी
तेन निःक्षत्रिया कृता ॥ १५ ॥ कृत्वा निःक्षत्रियां चैव भार्गवः
सुमहातपाः । सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥ १६ ॥
तस्मिन् यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः । मरीचाय ददौ प्रीतः

नतासे देख सकोगे ॥ ११० ॥ हे अरिदमन ! मैंने तुम्हारी यह
विष्णुका शोभामय अद्भुत और शुभ अवतार जैसे सुना था तैसे
सुना दिया इसके अतिरिक्त महात्मा विष्णुका परशुराम नामका
एक और अवतार हुआ था ॥ १११ ॥ उस अवतारमें रणमें
सहस्र भुजा निष्फल आनेसे विस्मित होते हुए अत एव दुर्जय
सहस्रबाहुको उसकी सेनाके बीचमें प्रभु परशुरामने मार डाला
था ११२ भृगुनन्दन रामने रथमें बैठे हुए कार्तवीर्य अर्जुनको युद्धमें
गिरा दिया और उसको उन्होंने दबाया था उस समय वह मेघके
गर्जनेकी समान डकराने लगा उस समय उसके भाइयोंके सामने
तेज फरसेसे उसकी हजार भुजाओंको काट डाला था ११३।११४
इन परशुरामजीने करोड़ों क्षत्रियोंसे भरी हुई तथा मेरुपर्वत तथा
मन्दराचलसे विभूषित पृथिवीको इक्कीस वार क्षत्रियहीन कर
दिया था ॥ ११५ ॥ पृथ्वीको क्षत्रियशून्य करनेके अनन्तर भृगु-
वंशी महातपस्वी परशुरामने अपने सब पापोंका नाश करनेके
लिये अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ११६ ॥ जिसमें बड़ाभारी दान दिया

कश्यपाय वसुन्धराम् ॥ १७ ॥ वारणांस्तुरगांश्श्रीमान् रथं च रथिनां वरः । हिरण्यमक्षयां धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामनाः । ददौ तस्मिन् महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः ॥ १८ ॥ अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः । चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनः पुनः । तिष्ठते देववद्धीमान् महेंद्रे पर्वतोत्तमे ॥१९॥ एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च । जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ १२० ॥ चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः । जज्ञे दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ॥ २१ ॥ कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः । लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ॥ २२ ॥ प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निधनाय च । धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं जज्ञे तत्र महायशाः ॥२३॥

जाता है ऐसे अश्वमेध यज्ञमें भृगुनन्दन रामने प्रसन्न होकर मरीचिपुत्र कश्यपको पृथ्वी दक्षिणामें देदी थी ॥ ११७ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ उन महायशस्वीने महायज्ञ अश्वमेधयज्ञमें हाथी तेज चलने वाले घोड़े रथ अनगिनती सुवर्ण गौ और श्रेष्ठ हाथी दक्षिणामें दिये थे ॥ ११८ ॥ देवताकी समान बुद्धिमान् भृगुनन्दन परशुराम आज कल भी लोकोंका हित करनेके लिये पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्रपर्वत पर प्रदीप्त तप कर रहे हैं । ११९ । शाश्वत और अव्यय देवताओंके ईश महात्मा (विष्णु) का यह परशुराम नामक अवतार कहा १२० चौवीसवें युगमें विश्वामित्रको आगे करके कमल की समान चौड़े नेत्र वाले विष्णु दशरथके पुत्र बन कर उत्पन्न हुए हैं १२१ वह प्रभु (उस अवतारमें) अपनेको चार भागोंमें विभक्त कर उत्पन्न हुए थे और तेजमें सूर्यकी समान कान्तिमान् वह महाभुज लोकमें रामनामसे प्रसिद्ध हुए थे ॥ १२२ ॥ वह महायशस्वी संसारको प्रसन्न करनेके लिये और राक्षसोंको मारनेके लिये और धर्मकी वृद्धि करनेके लिये उत्पन्न हुए थे२३

तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतपतेस्तनुम् । यस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ॥ २४ ॥ वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धराणि सुरैरपि । यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २५ ॥ मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ । निहतो च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ॥ २६ ॥ वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः । भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा ॥ २७ ॥ यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दशवनेऽवसत् । लक्ष्मणानुचरो रामः सर्वभूतहिते रतः ॥ २८ ॥ रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः । पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥ २९ ॥ चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघवः । जनस्थाने वसन् कार्यं

प्राणी उन मनुष्येन्द्रको सब भूतोंके स्वामी (विष्णुका अवतार) तनु बताते थे, बुद्धिमान विश्वामित्रने इनको अस्त्र दिये थे॥२४॥ देवताभी जिन अस्त्रोंको कठिनतासे धारण कर सकते थे ऐसे ऐसे अस्त्र देवताओंके शत्रुओंका वध करनेके लिये विश्वामित्रने रामचन्द्रजीको दिये थे, उन महात्माने पवित्र अन्तःकरण वाले महात्माओंके यज्ञमें विघ्न डालने वाले बलियोंमें श्रेष्ठ मारीच और सुबाहुको निराश करके मार डाला था ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ और उन्होंने राजा जनकके यहाँ यज्ञमें खेलखेलमें ही शिवजीके धनुषको तोड़ डाला था ॥ १२७ ॥ और सब प्राणियोंके हितमें परायण सब धर्मोंके तत्त्वको जानने वाले रामने लक्ष्मणके साथ चौदह वर्ष तक वनमें निवास किया था ॥ १२८ ॥ पहिले जन्म में लक्ष्मी नामकी उनकी जो योग्य भार्या थी, उस रूपिणीको उस समय उनके समीपमें रहने पर मनुष्य सीता कहते थे, वह भी उनके पीछे २ गई थी ॥ १२९ ॥ रघुवंशी रामचन्द्रने चौदह वर्ष तक वनमें तप किया था और उन्होंने दण्डकारण्यमें रहते समय देवताओंका कार्य किया था, लक्ष्मण जिनके पीछे २ चलते

त्रिदशानां चकार ह। सीतायाः पदमन्विच्छँल्लक्ष्मणानुचरो विभुः ॥ १३० ॥ विराधं च कबन्धं च राक्षसौ भीमविक्रमौ। जघान पुरुषव्याघ्रौ गन्धर्वौ शापवीक्षितौ ॥ ३१ ॥ हुताशनार्कैदुतडिद्घनाभैः प्रतप्तजांबूनदचित्रपुंखैः। महेंद्रवज्राशनितुल्यसारैः शरैः शरीरेण वियोजितौ बलात् ॥ १३२ ॥ सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः। वाली विनिहतो युद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचितः ॥ ३३ ॥ देवासुरगणानां हि यक्षगन्धर्वभोगिनाम्। अवध्यं राक्षसेन्द्रं तं रावणं युधि दुर्जयम् ॥३४॥ युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलांजनचयोपमम्। त्रैलोक्यरावणं घोरं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ ३५ ॥ दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम्। दुर्नि-

थे ऐसे रामने सीताका पता चाहनेके लिये ढूँढते २ विराध और कबंध नाम वाले राक्षसोंको मार डाला था, पहिले ये गन्धर्व थे शाप देकर इनको भयंकर पराक्रम करने वाले राक्षस बना दिया था ॥ १३० ॥ १३१ ॥ इन राक्षसोंको रामचन्द्रजीने अग्नि सूर्य चन्द्रमा बिजली और मेघकी समान आभा वाले और तपाये हुए सुवर्णकी पूँछड़ी वाले और इन्द्रके वज्रकी समान सार वाले वाण मार कर बलपूर्वक शरीरसे पृथक् कर दिया था ।१३२। उन्होंने सुग्रीवके लिये महाबली वानरेन्द्र वालीको मारकर सुग्रीव का अभिषेक कर दिया था १३३ रामने देवता असुर यक्ष गंधर्व और सर्पोंसे भी अवध्य युद्धमें दुर्जय हजारों राक्षसोंसे घिरेहुए और काले अञ्जनके ढेरकी समान (काले सुच्च) दुर्जय और दुर्धर और सिंहकी समान पराक्रम करने वाले तथा वरदानसे घमण्डमें भरे हुए और जिसकी ओरको देवता भी आँख उठा कर कठिनतासे देख सकते थे ऐसे त्रिलोकीको रुलाने वाले राक्षसेश्वर रावणको और उसके मन्त्रियोंको तथा उसकी सेना को मार डाला था, पहिले भूतपति रामने महामेघकी समान बड़े

रौद्रं सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम् ॥ ३६ ॥ जघान सचिवैः सार्धं
ससैन्यं रावणं युधि । महाभ्रघनसंकाशं महाकायं महाबलम् ३७
तमागस्कारिणं घोरं पौलस्त्यं युधि दुर्जयम् । सभ्रातृपुत्रसचिवं
ससैन्यं क्रूरनिश्चयम् ॥ ३८ ॥ रावणं निजघानाशु रामो भूत-
पतिः पुरा । मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः ॥ ३९ ॥
हतो मधुवने वीरो वरदृप्तो महासुरः । समरे युद्धशौंडेन तथा
चान्येऽपि राक्षसाः ॥ १४० ॥ एतानि कृत्वा कर्माणि रामो
धर्मभृतां वरः । दशाश्वमेधान् जारूथ्यानाजहार निरर्गलान ४१
नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाकुलं मारुतो ववौ । न वित्तहरणं त्वासी-
द्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४२ ॥ पर्यदेवन्न विधवा नानर्थाश्चा-
भवंस्तदा । सर्वमासीज्जगद्दान्तं रामे राज्यं प्रशासति ॥ ४३ ॥

भारी शरीर वाले महाबली अपराधी युद्धमें दुर्जय पुलस्त्यवंशी रावणको उसके भाइयोंको उसके पुत्रोंको और उसकी सेनाको मार डाला था, इनसबने पहिले पापका विचार किया था, मधु दानव के पुत्रका नाम लवण था वह बड़ा घमएडी था ३४।३९वरसे घमंड में भरे हुए उस बड़े भारी राक्षसको मधुवनमें रामचन्द्रने मार डाला था और समरचतुर रामने समरमें और भी बड़े २ राक्षसों को मार डाला था १४० इन कर्मोंको करनेके अनन्तर धर्मधारियों में श्रेष्ठ रामने निष्कंटक रीतिसे दश अश्वमेध यज्ञ किये थे और उनमें तिगुनी २ दक्षिणा दी थी १४१ रामचन्द्रजीके शासनकाल में अशुभ वाणियें (गालियें) सुनाई नहीं आती थी और व्या-कुल करने वाला वायु नहीं चलता था और कोई किसीके धनको भी नहीं चुराता था १४२ उनके राज्यमें विधवायें विलाप नहीं करती थी और उनके राज्यमें अनर्थ भी नहीं होते थे, रामचन्द्र जिस समय राज्य करते थे, उस समय सारी प्रजा चतुर होगई थी और पृथिवी डाँकुओंसे शून्य होगई थी १४३ उनके राज्यमें

न प्राणिनां भयं चापि जलानिलनिघातजम् । न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ४४ ॥ ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः । शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीन शुश्रूषन्त्यनहंकृताः । नार्यो नात्यचरन् भर्तॄन् भार्यां नात्यचरत् पतिः ॥ ४५ ॥ सर्व-मासीज्जगद्दान्तं निर्दस्युरभवन्मही । राम एकोऽभवद्भर्ता रामः पालयिताऽभवत् ॥४६॥ आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः । अरोगाः प्राणिनश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति ॥४७॥ देवता-नामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः । पृथिव्यां समवायोऽभू-द्रामे राज्यं प्रशासति ॥४८॥ गाथा अत्र गायन्ति ये पुराण विदो जनाः । रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः ४९

प्राणियोंको जल और घातका दुःख नहीं होता था अर्थात् उनके राज्यमें न कोई प्राणी डूबता था न कोई जलता था और न कोई फाँसी लगा कर मरता था और न वृद्ध मनुष्य अपने बालकोंका प्रेतकार्य करते थे ॥१४४॥ (उनके राज्यकालमें) क्षत्रिय ब्राह्मणों की सेवा करते थे वैश्य क्षत्रियोंके अनुकूल रहते थे और शूद्र अहंकाररहित हो तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे, भार्याएँ पतिका उल्लँघन नहीं करती थीं और पति भी स्त्रियोंके प्रतिकूल वर्ताव नहीं करते थे ॥ १४५ ॥ उनके शासनकालमें सब जगत् चतुर होगया था और पृथिवी लुटेरोंसे शून्य होगई थी, राम ही प्रजा का भरण पोषण करते थे और राम ही उसका पालन करते थे ४६ रामचन्द्रजीके राज्यकालमें मनुष्योंकी (ग्यारह) हजार वर्षोंकी आयु होती थी और पुरुषोंके हजार २ पुत्र होते थे और प्राणी नीरोग रहते थे ।१४७॥ रामचन्द्रजीके शासनकालमें पृथिवीमें सर्वत्र देवता ऋषि तथा मनुष्योंमें समागम होता रहता था१४८ रामचन्द्रजीके तत्त्वको जाननेवाले जो पुराणवेत्ता पुरुष हैं वे राम-चन्द्रजीके माहात्म्यसे भरीहुई गाथाओंको गानेरहते हैं४९कि अयो-

श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता। आजानुबाहुः सुमुखः
सिंहस्कन्धो महाभुजः ५० दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ।। ५१ ।। ऋक्साम-
यजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः । अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये
दीयतां भुज्यतामिति ।। ५२ ।। सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्य-
मानः स्वतेजसा । अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ५३
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः । हित्वाऽयोध्यां दिवं
यातो राघवः स महाबलः ।। ५४ ।। एवमेष महाबाहुरिक्ष्वाकु-
कुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभुः ।। ५५ ।।
वैशम्पायन उवाच । अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ।। ५६ ।। यत्र शाल्वं

श्यामें श्याम वर्णवाले तरुण लाल नेत्रोंवाले प्रदीप्त मुखवाले मित-
भाषी आजानबाहु सुन्दरमुख सिंहकी समान स्कंधवाले महाभुज
रामने अयोध्याके राजा बनकर ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया
था५०।५१ उन महात्माके यहाँ ऋक् यजु और सामवेदका और
धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द कभी बन्द ही नहीं होता था५२सत्त्व-
वान् और गुणवान दशरथके पुत्र राम अपने तेजसे सूर्य और
चन्द्रमासे भी अधिक दिपते थे ।५३ और उन्होंने जिनको श्रेष्ठ
श्रेष्ठ दक्षिणा देकर समाप्त किया था ऐसे एक सौ पुण्यमय यज्ञ
किये थे इसके उपरान्त बड़ी भारी सेनावाले (और प्रजा वाले
राम उसके साथ ही) राघव अयोध्याको छोड़ कर स्वर्गको चले
गये थे ।।५४।। इस प्रकार यह महाभुज इक्ष्वाकु कुलनन्दन राम
रावणको और उसके अनुचरोंको मार कर स्वर्गमें गए थे५५
वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसके अतिरिक्त माथुरकल्पमें यह सब
लोकोंका हित करने वाला महात्मा केशवका अवतार प्रसिद्ध
है ५६ इस अवतारमें वीर्यवान् विष्णुने शाल्व मैंद द्विविद कंस

च मैंदं च द्विविदं कं मेघं च । अरिष्टमृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम् । ॥ ५७ ॥ नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा । दैत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥ ५८ ॥ छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः । नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥५९॥ हृतानि च महीशानां सर्वरत्नानि तेजसा । दुराचाराश्च निहता पार्थिवाश्च महीतले ॥१६०॥ नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराऽभवत् । वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥ ६१ ॥ एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना । जनितो भारतो वंशः सत्यवत्याः सुतेन च ॥ ६२ ॥ एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः । अतीताः कथिता राजन् कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥६३॥ कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामको द्विजः ।

अरिष्ट ऋषभ केशी दैत्यदारिका पूतना कुवलयापीड हाथी चाणूर मुष्टिक (इनके अतिरिक्त दूसरे भी) मनुष्यदेहधारी दैत्योंको मार डाला था ।५७।५८। इन्होंने अद्भुत कर्म करने वाले बाणासुरके हजारहाथोंको काटडाला था और युद्धमें महाबली नरक और यवनको मारडाला था १५९ और इन्होंने अपने पराक्रमसे सब राजाओंके रत्नोंको छीनलिया था और पृथिवीके दुराचारी राजाओं का तो संहार ही करडाला था १६० अठारहवेंद्वापरमें विष्णुका यह नवम अवतार हुआ है और जातूकर्ण्यके साथ (दशवाँ) व्यास अवतार हुआ है (यहाँ अनुक्त मत्स्य और कूर्म अवतारों का भी ग्रहण करना चाहिये तभी नौ की सङ्ख्या पूर्ण होती है) ॥१६१॥ उन सत्यवतीके पुत्र महात्मा व्यासजीने एक वेदके चार विभाग किये थे और भरतवंशको चलाया था ॥ १६२ ॥ हे राजन्! महात्मा विष्णुके लोकका हित करनेके लिये जो अवतार हुए थे वे कहदिये अब मैं भविष्य अवतारोंको कहता हूँ ६३ प्रभु फिर सब भूतोंका हित करनेके लिये संभलग्राममें ब्राह्मणरूप

सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥ ६४ ॥दशमो भाव्य-
सम्पन्नो याज्ञवल्क्यपुरःसरः । क्षपयित्वा च तान् सर्वान् भावि-
नार्थेन चोदितान् । ६५ ॥ गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति
सानुगः । ततः कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके ॥ ६६ ॥
नृपेष्वथ प्रणष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः । क्षणेन निवृत्ते चैव
हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥ ६७ ॥ परस्परहृतस्वाश्च निराक्रन्दाः
सुदुःखिताः । एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसन्ध्यांशके तदा । प्रजाः

में विष्णुयशा कल्कि नामसे उत्पन्न होंगे ॥ १६४ ॥ यह दशवाँ भाव्यसम्पन्न याज्ञवल्क्यपुरःसर अवतार होगा (भव (संसार) की उत्पत्तिकी प्रशंसा करने वाले भाव्य (क्षणिकवादी बौद्धों) के साथ भी वह वाद और युद्ध करनेके लिये उतर पड़े थे अतः यह अवतार भाव्यसम्पन्न कहलाता है) उन भावि अर्थसे प्रेरितोंका विष्णुने संहार कर डाला था (अर्थात् पूर्वोक्त बात की प्रशंसा करते हुए विष्णुके ही अंशसे उत्पन्न हुए भगवान् बुद्धने कलियुगमें दम्भयज्ञकी प्रवृत्तिसे लोकका नाश न हो इस लिये यज्ञकी निन्दाका जिनको उपदेश दिया जाता था उनको विष्णुने मार डाला था कल्कि अवतार बौद्धपक्षका क्षय करनेके लिये हुआ है यह बात पहिले कहदी) ॥ ६५ ॥ तदनन्तर वह गङ्गा और यमुनाके मध्यमें समाप्त होजावेंगे (शंका-शास्त्रोंमें लिखा है, कि-कल्कि म्लेच्छोंका निग्रह करेंगे फिर उनकी अभी समाप्ति कैसे लिखी है, इसका उत्तर यह है, कि-) जब कुल व्यतीत होजायगा अर्थात् परस्परकी स्त्रियोंको छीननेसे कुल नष्ट-प्राय होजायगा राजा सेना और मन्त्री नष्ट होजावेंगे तब प्रजा नियन्तारहित होजायगी तब प्रजा क्षणभरमें परस्परका संहार करके नष्ट होजायगी ॥ ६६-६७ ॥ कलिका सन्ध्यांश आनेपर जब मनुष्य परस्परके धनको छीन लेंगे और दुःखित होकर

क्षयं प्रयास्यन्ति सार्धं कलियुगेन ह ॥ ६८ ॥ क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतयुगं पुनः । प्रपत्स्यते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा ॥ ६९ ॥ एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुणैर्युताः । प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ ७० ॥ यत्र देवापि मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने । पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ॥ ७१ ॥ एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् । कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोः प्रभोः ॥ ७२ ॥ प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् । विष्णोरतुलवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ॥ ७३ ॥ एतास्तु योगेश्वरयोगमायाः श्रुत्वा नरो मुच्यति

रोने लगेंगे उस समय प्रजा कलियुगके साथही विनष्ट हो जावेगी ॥ ६८ ॥ उस कलियुगके क्षीण होनेपर न्यायानुसार स्वभावतः फिर सत्ययुगकी प्रवृत्ति होगी इसमें लौट फेर नहीं हो सकता ॥ ६९ ॥ ब्रह्मवादी पुरुषोंने पुराणोंमें इन अवतारोंका तथा और भी बहुतसे दिव्य और देवगुणसम्पन्न अवतारोंका कीर्तन किया है ॥ १७० ॥ जिन अवतारोंका कीर्तन करनेमें देवता भी मोहमें पड़ जाते हैं और जिन अवतारोंको पुराणोंमें वेदकी श्रुतिका प्रमाण देकर सिद्ध किया है ॥७१॥ सब लोकोंके गुरु कीर्तनीय प्रभु विष्णुके उन कुछ अवतारोंका यह वर्णन संक्षेपसे करदिया ७२जो पुरुष हाथ जोड़ कर विष्णुके अवतारों को सुनता है तो अवतारोंका कीर्तन करनेसे उसके पितर प्रसन्न होजाते हैं ॥ ७३ ॥ मनुष्य इन योगेश्वरकी योगमायाओंको सुन कर भगवान्के प्रसादसे सब पापोंसे छूट जाता है और समृद्धि (धर्मफलसे मिलने वाली सम्पत्ति)और ऋद्धि (योगैश्वर्य) को तथा विपुल भोगोंको पाता है (तात्पर्य—भगवान्के ये अवतार योगमाया ही हैं, तात्त्विक नहीं है अर्थात् भगवल्लीला भी हमारे समान रागपूर्विका ही है,मन्त्र भी कहता

सर्वपापैः। ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान् प्राप्नोति सर्वं भग-
वत्प्रसादात् ॥ १७४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन उवाच । विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे । वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ॥ १ ॥ ईश्वरत्वं

है, कि—" यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न पुरा विवित्से हे इन्द्र ! हे (परमेश्वर)आपने जिन मत्स्य कूर्म आदि शरीरोंसे विचरण किया है और (वामनावतारमें)बढ़ कर महत्त्व पाया है और संसारमें अपने पृथ्वी उद्धार आदि बलके कार्योंको प्रसिद्ध किया है, यह सब आपकी माया ही है देवासुर संग्राम आदि सब माया ही हैं, क्योंकि–आजकल क्या और प्राचीन कालमें क्या आपको तो कोई (नाशनीय) शत्रु मिल ही नहीं सकता अर्थात् आप तो सबके अन्तरात्मा हैं अतः आपका कोई शत्रु हो ही नहीं सकता इस कारण पुराण स्वप्नकी समान भग-वान्के अवतार और लीलाओंका वर्णन करते हैं वास्तवमें पर-ब्रह्मका कोई शत्रु है ही नहीं)१७४इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तुम कृतयुगमें विष्णुके विश्वत्वको सुनो और हरित्वको सुनो तथा देवताओंमें श्रीकृष्णके वैकुण्ठत्व और पुरुषोंमें उनके श्रीकृष्णत्वको सुनो और हे राजन् ! तुम उनके ईश्वरत्व और उनके भावी और वर्तमान कर्मोंकी गहन गतिको सुनो (तात्पर्य-पहिले कहा, है,कि–जब धर्मकी ग्लानि होने लगती है तब भगवान् प्रकट होते हैं,वह धर्मग्लानि असुरोंका उदय होने पर होती है अतः उनका वध करनेसे विष्णुके जगद्रक्षकत्व रूपका विश्वमित्यादि श्लोकसे निरूपण करते हैं,(प्राणी

च तस्येदं गहनां कर्मणां गतिम् । संप्रत्यतीतां भाव्यां च शृणु राजन् यथातथम् ॥ २ ॥ अव्यक्तो व्यक्तलिंगस्थो यत्रैष भगवान् प्रभुः । नारायणो ह्यनंतात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ॥ ३ ॥ एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् कृते युगे । ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च

जिसका अधिक विश्वास करते हैं वह विश्व कहलाता है अर्थात् वह आश्वसनकर्ता और अभयदाता है, वह दुरित दीनता आदि दुःखोंके हारक नाशक होनेसे हरि कहलाते हैं इनके ऐसे रूपोंका वैशम्पायनजी वर्णन करते हैं तथा इनके देवताओंमें गतिप्रतिघात-कत्वके कुण्ठनत्वका वर्णन करेंगे अर्थात् वे सात्त्विकभाव सम्पन्न देवताओंका पालन करनेके लिये किसी कामको करनेसे मुख नहीं मोड़ते हैं इसका वैशम्पायनजी वर्णन करेंगे और रजोगुण तथा तमोगुणसे ग्रस्त मनुष्योंमें कृष्णत्वका वर्णन करेंगे कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः कृषि भूवाचक शब्द है और ण आनन्दवाचक शब्द है अर्थात् मनुष्योंमें केवल सत्ता-रूपसे और सांसारिक आनन्दरूपमें उनके अस्तित्वको सुनो तथा मध्यम प्राणियोंमें ईश्वरत्व(निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति) को इस प्रकारकी भूत भविष्यत् और वर्तमान कालकी भगवान्‌की नाना प्रकारकी गतिको और लीलाओंको सुनो ॥ १-२ ॥ यह भगवान् प्रभु अव्यक्त होने पर भी व्यक्तलिंग हैं अर्थात् यह नारायण मत्स्य आदि अवतारोंमें व्यक्त (प्रकट) चिन्हको धारण करते हैं, यह नारायण अनन्तात्मा प्रभव और अव्यय हैं ॥ ३ ॥ कृतयुगमें यह नारायण होकर (जगत्‌को रचनेके अनन्तर उसमें प्रवेश कर जीवत्वका अनुभव कर फिर जीवत्वके हर्ता बन कर जीवित ही मुक्त होकर) हरि नामके प्राप्त होगए थे अर्थात् सत्ययुगमें पुरुष शीघ्र ही मुक्त होजाते हैं, ब्रह्मा आदि भी इनके ही रूप हैं यही बात कहते हैं, कि-)तदनन्तर यह

धमः शुक्रो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादव-
नन्दनः । एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रदावरजोऽभवत् ५ प्रसादजं
ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रजन्म तत्।वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानव-
रक्षसाम् ॥ ६ ॥ प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः ।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुराकल्पे प्रजापतीन् ॥ ७ ॥ ते तन्वाना-
स्तनूस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् । तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा
ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ८ ॥ एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोर्नामानुकीर्त-
नम् । कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ९ ॥ वृत्ते
वृत्रवधे तात वर्तमाने कृते युगे ।आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्राम-
स्तारकामयः ॥१०॥तत्रासन् दानवा घोराः सर्वे संग्रामदर्पिताः।

यादवनन्दन विष्णु ब्रह्मा इन्द्र चन्द्र धर्म शुक्र बृहस्पति हुए थे इसके अनन्तर यह अदितिके पुत्र बन कर उत्पन्न हुए थे उस जन्ममें यह इन्द्रके छोटे भाई बने थे ॥ ४-५ ॥ देवताओंके शत्रु दैत्य दानव और राक्षसोंका संहार करनेके लिये विष्णु अदितिके यहाँ पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे, यह इनका प्रसाद था अर्थात् अदितिको उन्होंने पुत्र बनकर उत्पन्न होनेका वरदान दिया था६ इस प्रधानात्मा (मायामय शरीरवाले) ने ब्रह्माजीको रचा उस पूर्वपुरुषने पूर्वकल्पमें प्रजापतियोंको रचा था ॥७। उन्होंने कश्यप आदिके रूपसे अपने शरीरका विस्तार कर सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवंशोंको (गोत्रोंको वा शाखाओंको) रचा था,उन महात्माओं से वेद अनेक शाखाओंमें बँट गया ॥ ८ ॥ लोकोंमें कीर्तनीय आश्चर्यमय विष्णुके इस (वेदरूप) नामकीर्तनको मेरे कीर्तन कहने पर सुनो(शौनक मुनिने कहा है कि-वेदाक्षराणि यावन्ति कथितानि द्विजातिभिः। तावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न न संशयः) ॥९॥हे तात ! कृतयुगके समय जब वृत्रवध होचुका था तब त्रिलोकीमें प्रसिद्ध तारकामय संग्राम हुआ था ॥ १० ॥

घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥ ११ ॥ ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे। त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं हरिम् ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणांगारवर्षिणः। सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम्॥ १३ ॥ चंचद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा निर्ह्रादकारिणः। अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्तमारुताः॥ १४ ॥ दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुलैः। ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवांबरम् ॥१५॥ पेतुरुल्कासहस्राणि मुहुराकाशगान्यपि। न्युब्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १६ ॥ चतुर्युगान्तपर्याये लोकानां यद्भयं भवेत्। तादृशान्येव रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥१७॥ तमसा

उस समय संग्राममें दर्पमें भरे रहनेवाले दानवोंने देवता यक्ष राक्षस और सर्पोंको मारना आरम्भ कर दिया था ॥ ११ ॥ रणमें युद्ध करते २ जब उनके आयुध क्षीण होगए तब वे विमुख होकर भागने लगे और मन २ में रक्षक और शरण देने-वाले भगवान् हरिका स्मरण करनेलगे ॥१२॥ इस समय मेघ (ज्वालारहित परन्तु तप्त) अङ्गारोंको वरसाते थे वे अङ्गारे सूर्य चन्द्रमा आदि नक्षत्रोंको ढकते हुए आकाशमें दिखाई देते थे ॥ १३ ॥ चमकती हुई बिजलियोंसे विंधे हुए और भयंकर शब्द करनेवाले सात पवन आपसमें टकरा कर चलने लगे १४ जलती हुईसी उल्का और तपे हुए जलके गिरने पर घोर उत्पात होने पर आकाश जलता हुआ सा दीखने लगा १५ उस समय सैकड़ों ऐसी उल्कायें पड़ती थीं जो पृथ्वी पर गिरती थीं और फिर आकाशमेंको उड़ जातीं थीं और बहुतसे विमान नीचेको मुख करके गिरते थे और उलटे ही उड़ते थे ॥ १६ ॥ चतुर्युगान्तपर्यायमें अर्थात् अवान्तर प्रलयमें मनुष्योंको जैसे भयदायक उत्पात दीखते हैं इस उत्पातके समय भी मनुष्योंको

निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन । तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश ॥१८॥ निशेव रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता । द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ॥ १९ ॥ तान् घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामुत्क्षिप्य स प्रभुः । वपुः संदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥ २० ॥ बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् । तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥ २१ ॥ दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् । धूमान्धकारवपुषा युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ २२ ॥ चतुर्द्विगुणपीनांसं बलाकापंक्तिभूषणम् । चामीकरकराकारैरायुधैरुपशोभितम् ॥ २३ ॥ चंद्रार्ककिरणोद्यन्तं गिरिकूटं शिलोच्चयम् । नन्दकानन्दितकरं शरा-

---

इसी प्रकार दुश्चिन्ह दीखने लगे ॥१७॥ सब संसार अंधेरेके भर जानेसे प्रभाहीन प्रतीत होने लगा और कुछ नहीं सूझता था और अँधकारसे छाई हुई दश दिशाएँ मालूम ही नहीं होती थीं ॥१८॥ जैसे कालमेघोंके घिर आने पर अमावास्या की रात्रिमें कुछ नहीं दीखता है,ऐसे ही अंधकारसे सूर्यका तिरस्कार होने पर अंधकारसे भरा हुआ आकाश शोभायमान नहीं लगता था ॥१९॥ उस समय प्रभु श्रीकृष्णने अपनी दोनों भुजाओंसे अंधकारको फाड़ कर अपने दिव्य और आकाशकी समान नीले शरीरका दर्शन दिया था ॥ २० ॥ उस समय दैत्योंसे हारे हुए देवताओंने मेघ और अञ्जनकी समान आभा वाले और मेघकी समान (काले) केश वाले तथा तेज और शरीरमें कृष्ण पर्वतकी समान चमकते हुए पीताम्बरको धारण करने वाले और तपे हुए सुवर्णके भूषण पहरने वाले और धूमके अंधकारकी समान शरीरसे प्रलयकालकी अग्निकी समान प्रकट हुए और आठ पुष्ट कंधों वाले और बगलियोंकी पंक्तिकी (समान श्वेत) भूषणोंवाले और सुवर्णके बने हुए हाथोंके

शीविषधारिणम् ॥ २४ ॥ शक्तिचित्रं हलोदग्रं शंखचक्रगदा-
धरम् । विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवत्सं शार्ङ्गधन्विनम् ॥ २५ ॥
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजशोभिते । चन्द्रार्कचक्ररचिते मन्द-
राक्षधृतान्तरे ॥ २६ ॥ अनन्तरश्मिसंयुक्ते ददृशे मेरुकूबरे ।
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ॥ २७ ॥ भयेष्वभयदं
व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः । ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्य-
लोकमये रथे ॥ २८ ॥ ते कृतांजलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः ॥ २९ ॥ स तेषां ता
गिरः श्रुत्वा विष्णुर्दयितदैवतः । मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां
महामृधे । आकाशे तु स्थितो विष्णुः सोत्तमे पुरुषोत्तमः । उवाच

आकार वाले आयुधोंसे शोभित, चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों
से प्रकाशवान पर्वतकी समान अचल और मैनसिलकी समान
पीत नीवीबंधन वाले खड्गसे शोभित हाथ वाले और बाण रूपी
सर्पको धारण करनेवाले शक्तिरूपी चित्रवाले, हलसे उदग्र शंख
चक्र क्षमारूपी मूल वाले वक्षस्थल वाले श्रीवत्सके चिन्हसे चिन्हित
शार्ङ्ग धनुषधारी दिव्य भयमें अभयदान देने वाले पर्वतकी समान
अटल विष्णुको देवताओंने हरे वर्ण वाले घोड़ोंसे जुते हुए और
गरुड़की ध्वजा जिसमें फहरा रही है ऐसे और सूर्य चन्द्ररूपी
पहिये वाले मन्दराचलरूपी अक्ष (धुरे) वाले अनन्त लगामों
वाले मेरुरूप कूबर वाले तारे रूपी चित्र विचित्र कुसुम वाले और
ग्रह नक्षत्ररूपी बंधनों वाले दिव्यलोकमय रथमें बैठे हुए देखा
॥ २१-२८ ॥ उस समय इन्द्र आदि देवताओंने जय जय शब्द
किया और हाथ जोड़ कर शरण देने वाले विष्णु भगवान्की
शरण ली ॥ २९ ॥ विष्णुको देवता प्रिय थे अत एव उन्होंने
देवताओंकी उस वाणीको सुनकर अपने मनमें महायुद्धमें
दानवोंके नाश करनेका विचार किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर

देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ॥ ३१ ॥ शांतिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः। जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥३२॥ ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः। देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राप्येवामृतमुत्थितम् ॥ ३३ ॥ ततस्तमः संह्रियते विनेशुश्च वलाहकाः। प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥३४॥ सुप्रभाणि च ज्योतींषि चन्द्रं चक्रुः प्रदक्षिणम्। दीप्तिमन्ति च तेजांसि चक्रुरर्कं प्रदक्षिणम् ॥ ३५ ॥ न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापि सिन्धवः। नीरजस्का बभुर्मार्गा नाकमार्गादयस्त्रयः ॥ ३६ ॥ यथार्थमूहुः सरितो नापि चक्षुभिरेऽर्णवाः। आसंश्छुभानींद्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥ ३७ ॥ महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत। यज्ञेषु च हविः स्वादु

श्रेष्ठ आकाशमें बैठे हुए पुरुषोंमें उत्तम श्रीकृष्णने सब देवताओं से प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही कि–॥ ३१ ॥ हे देवताओं ! तुम्हारा कल्याण हो अब तुम शान्तिका उपभोग करो (घवड़ाओ मत) मैं सब दानवोंको जीतता हूँ, तुम त्रिलोकी पर अधिकार करो ॥ ३२ ॥ सत्य प्रतिज्ञा करने वाले विष्णुके वाक्यसे देवता ऐसे प्रसन्न हुए कि—मानो उनको अमृत मिल गया ॥ ३३ ॥ उस समय अन्धकार दूर होगया, मेघ विलीन होगए सुखदायक पवन बहने लगा और दशोंदिशाएँ निर्मल होगईं ॥ ३४ ॥ सुन्दर प्रभा वाले नक्षत्र चन्द्रमाकी प्रदक्षिणा करने लगे और प्रकाशवान् तेज वाले ग्रह सूर्यकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ ३५ ॥ ग्रहोंने आपसमें टकराना छोड़ दिया और नदियोंका जल निर्मल होगया तथा (देवयान पितृयान और मोक्षमार्ग नामक) देवलोकके तीनों मार्ग भी रजरहित होगये ॥ ३६ ॥ नदियें ठीक रीतिसे बहने लगीं और समुद्रोंका क्षुब्ध होना बन्द होगया और मनुष्योंकी इन्द्रियोंको अन्तरात्मा शुभकर्ममें लगाने लगी ॥३७॥

शिवमश्नाति पावकः॥ ३८ ॥प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः। प्रीत्या परमया युक्ता देवदेवस्य भूपते। विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वाऽरिनिधने गिरम्॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
आश्चर्ये द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततो भयं विष्णुमयं श्रुत्वा दैतेयदानवाः। उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय युधि दुर्जयाः॥ १ ॥ मयस्तु कांचनमयं त्रिनल्वांतरमव्ययम्। चतुश्चक्रं विक्रमन्तं सुकल्पितमहायुधम्॥ २ ॥ किंकिणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम्। खचितं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च भूषितम्॥३॥स्वच्छं रथवरोदग्रं सूपस्थानमगोपमम्। ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिभिश्च विराजितम्। दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम्॥४॥ गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णं-

---

महर्षियोंके शोक दूर होगए, उच्चस्वरसे वेदपाठ होने लगा और अग्नि भी यज्ञोंमें पवित्र और स्वादु हविका भक्षण करनेलगे ३८ हे भूपते! सत्य प्रतिज्ञा करने वाले विष्णुके शत्रुनाश करने वाले वचनको सुन कर प्राणी अपने मनमें प्रसन्न होकर परमप्रीतिसे यज्ञ आदि कर्म करनेमें प्रवृत्त होगए ॥३९॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—तदनन्तर दानवोंने सुना, कि—खास विष्णुसे ही हमारे ऊपर आपत्ति आकर पड़ेगी, तब युद्धमें दुर्जय दितिके पुत्र दानवोंने युद्धका बड़ा भारी आयोजन किया १ तदनन्तर मय दानव सूर्य जैसे मेरु पर्वत पर आरूढ़ होता है तिस प्रकार सुवर्णके बने हुए बारह हाथ लम्बे अव्यय रथ पर सवार होगया, वह रथ चार पहियों वाला था, जल अग्नि आदि विषम स्थानोंमें भी चला जाता था उसमें बड़े बड़े आयुध यथास्थान रखे हुए थे और उसमें छोटी २ घंटियें बज

वम् । हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ॥ ५ ॥ सपताकाध्वजो-
दग्रं सादित्यमिव मन्दरम् । गजेन्द्राभोजसदृशं लम्बकेसरवर्न-
सम् ॥६॥ युक्तमृक्षसहस्रेण सहस्राम्बुदनादितम् । दीप्तपाकाशगं
दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥ ७ ॥ अध्यतिष्ठद्रणाकांक्षी मेरुं दीप्त-
मिवांशुमान् । तारस्तु क्रोशविस्तारमायसं वायसध्वजम् ॥ ८ ॥
शैलोत्करसमाकीर्णं नीलाञ्जनचयोपमम् । काललोहाष्टचरणं
लोहेषायुगकूबरम् । तिमिरांगारकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ।९।
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् । आयसैः परिघैः कीर्णं
क्षेपणीयैस्तथाऽश्मभिः ॥१०॥ प्रासैः पाशैश्च विततैरयसर्वैश्च

रहीं थीं और भेड़ियेका चमड़ा मढ़ा हुआ था और उसमें सुवर्ण और रत्नोंका काम होरहा था, उसके धुरे बड़े अच्छे थे और वह बढ़िया २ रथोंमें भी श्रेष्ठ था और उसमें पशु पक्षियोंके चित्र बने हुए थे और दिव्य अस्त्रोंके भाथे रक्खे हुए थे और वह रथ मेघकी समान खड़ २ करता था और उसमें गदा और परिघ भर रहे थे इस कारण वह मूर्तिमान् समुद्रसा दीखता था उसमें सुवर्णके केयूर और वलयोंकी समान बन्धन लग रहे थे और उसमें सुवर्णका केयूर लगरहा था और उसकी ध्वजा और पताका इतनी ऊँचीं लग रही थी कि—वह सूर्य वाले मन्दराचल की समान प्रतीत होता था वह रथ हाथीकी सूँडकी समान था और भल्लूक वर्णवाले सिंहकी समान शीघ्रगामी होनेसे अतितेजस्वी लगता था, उसमें सौ रीछ जुतेहुए थे और वह सौ मेघोंकी समान गर्जता था और वह रथ आकाशमें ऊपर को चला गया था तथा वह रथ दूसरोंके रथोंको तोड़ डालने वाला था। और तार नामका असुर लोहेके बने हुए एक कोस लम्बे रथमें बैठा था उस पर कौएकी ध्वजा लग रही थी और उसमें पत्थर भरे हुए थे और वह कृष्णवर्णके अञ्जनके ढेरकी

मुद्गरैः । शोभितं आसनीयैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥ ११ ॥ उद्यन्तं द्विषतां हेतो द्वितीयमिव मन्दरम् । युक्तं खरसहस्रेण सोऽभ्यारोहद्रथोत्तमम् ॥ १२ ॥ विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः । प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥ १३ ॥ युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः । स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनम् ॥ १४ ॥ न्यग्रोधं बहुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन् महत् । वराहः प्रमुखे तस्थौ सावरोह इवाचलः ॥ १५ ॥ खरस्तु विक्षरन् दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् । स्फुरद्दन्तोष्ठवदनः संग्रामं सोऽभ्यकांक्षत ॥ १६ ॥ त्वष्टा त्वष्टादशाहयं यानमास्थाय

समान था उसमें काले लोहेके आठ पहिये लग रहे थे और उसमें लोहेकी ईषा युग और कूबर लग रहा था और वह काले कोयलेकी समान किरण वाला था और गर्जते हुए बादलकी समान था और उसमें लोहेकी जालियोंके बडे २ झरोखे बन रहे थे उस रथमें लोहेके परिघ गोफनी और पत्थर भरे हुए थे तथा उसमें प्रास पाश फैले हुए और तेल पिलाये हुए मुद्गर भर रहे थे तथा वह तोमर और फरसोंसे शोभा पारहा था और वह शत्रुओंका नाश करनेके लिये दूसरे मन्दराचलकी समान खड़ा हुआ था, और उसमें सहस्र गधे जुत रहे थे ऐसे रथश्रेष्ठ पर तार चढ़ गया २—१२ विरोचन नामक दैत्य क्रोध में भर कर सेनाके सामने हाथमें गदा ले प्रदीप्त पर्वतकी समान अचल खड़ा होगया १३ हयग्रीव नामक दानव शत्रुओंकी सेना का मर्दन करने वाले सहस्र घोडोंसे जुते हुए रथमें बैठ कर चलने लगा १४ वराह नामक असुर जटा वाले न्यग्रोध वृक्षकी समान अपने सैंकडों हाथ लम्बे धनुषको तान कर खड़ा होगया १५ खर दैत्यके तो दर्पके कारण नेत्रोंमेंसे रोषभरा जल निकलने लगा और वह दांत ओठ और मुखको कँपा कर संग्राम

दानवः । व्यूहितो दानवैर्व्यूहः परिचक्राम वीर्यवान् ॥ १७ ॥
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः । श्वेतशैलप्रतीकाशो
युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ १८ ॥ अरिष्टो बलिपुत्रस्तु वरिष्ठो-
ऽद्रिशिलायुधैः । युद्धायातिष्ठदायस्तो धराधर इवापरः ॥ १९ ॥
किशोरस्त्वतिसंहर्षात् किशोर इव चोदितः ।अभवद्दैत्यसैन्यस्य
मध्ये रविरिवोदितः ॥ २० ॥ लम्बस्तु लंबमेघाभः प्रलंबांबर-
भूषणः । दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ॥ २१ ॥
स्वर्भानुर्वक्रयोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः । हसंस्तिष्ठति दैत्यानां
प्रमुखे स महाग्रहः ॥ २२ ॥ अन्ये हयगता भान्ति नागस्कन्ध-
गताः परे । सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षगताः परे ॥ २३ ॥
केचित् खरोष्ट्रयातारः केचित्तोयदवाहनाः । नानापक्षिगताश्चान्ये

करना चाहने लगा १६ और वीर्यवान् त्वष्टा नामक दानव अठा-
रह घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठ कर दानवोंके बनाये हुए व्यूह
में घूमने लगा १७ श्वेत कुण्डलोंको पहिरने वाला विप्रचित्ति
का पुत्र श्वेत श्वेतपर्वतकी समान युद्धमें आकर डट गया ।१८
वलिका पुत्र अरिष्ट जो पर्वतके पत्थरोंसे युद्ध करनेमें श्रेष्ठ था
वह दूसरे पर्वतकी समान युद्ध करनेके लिये डट गया १९
किशोर नामक दैत्य हर्षमें भर किशोर (अश्वशावक) की
समान हर्षमें भर कर दैत्योंकी सेनाके मध्यमें उदय होते हुए
सूर्यकी समान खड़ा होगया २०लम्बे मेघकी समान लम्बनामक
दानव लम्बे वस्त्रके आभूषणको धारण करके दैत्योंके व्यूहमें
खड़ा हुआ राहुग्रस्त सूर्यसा दीखता था ॥२१॥ और स्वर्भानु
नामका राक्षस जो कुटिलता से युद्ध करने वाला था वह महा-
ग्रह राक्षसोंकी सेनाके मुहाने पर हंसता हुआ खड़ा होगया२२
इनके अतिरिक्त इन दानवोंमें बहुतसे दानव घुड़सवार
हाथीसवार सिंहसवार व्याघ्रसवार वराहसवार और रीछ पर

केचित् पवनवाहनाः ॥२४॥ पत्तगश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः । एकपादद्विपादाश्च नर्दन्तो युद्धकांक्षिणः ॥२५॥ प्रक्ष्वेडमाना बहवः स्फोटयन्तश्च ते भुजान् । हसशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥ २६ ॥ ते गदापरिघैरुग्रैर्धनुर्व्यायामशालिनः । बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः ॥२७॥ प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च तोमरांकुशपट्टिशैः । चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥ २८ ॥ गण्डशैलैश्च शलैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः । चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ॥ २९ ॥ एवं तद्दानवं सैन्यं सर्वं युद्धबलोत्कटम् । देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोत्थितम् ॥ ३० ॥ तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्नितोयांबुदशैल-

सवार होकर शोभा पारहे थे ॥ २३ ॥ कोई दानव गधे और ऊँट पर चढ़ कर जारहे थे और कोई मेघ पर चढ़ कर जारहे थे और बहुतसे बहुतसे पक्षियों पर बैठे हुए थे और बहुतसे पवनकी समान वेगसे जारहे थे ॥ २४ ॥ और बहुतसे भीषण मुख वाले तथा एक पैर दो पैर वाले दैत्य युद्ध करनेकी इच्छासे पैदल ही चल रहे थे ॥ २५ ॥ कोई कोई पुङ्गव अपनी भुजाओं पर थपेड़ा मारते हुए घमण्ड में भर कर दहाड़ने वाले सिंहकी समान दहाड़ने लगे ॥ २६ ॥ वे धनुषका व्यायाम करने वाले अपनी परिघकी समान भुजाओंसे उग्र परिघ और गदाओंको घुमा कर देवताओंको धमकाने लगे ॥ २७ ॥ वे प्रास पाश खड्ग तोमर अंकुश पट्टिश शतघ्नी धारदार मुद्गरोंसे खेलने लगे ॥ २८ ॥ और दैत्य लोग गण्डशैल शल उत्तम परिघ आयुध और चक्रोंसे अपनी सेनाको आनन्दित करने लगे ॥२९॥ जैसे मेघ उठता है इसी प्रकार वह युद्ध करनेकी सब सामग्रियोंसे उत्कट राक्षसोंकी सेना देवताओंके सामने डट गई ॥ ३० ॥ उस समय वह सहस्रों दैत्योंसे भरी हुई सेना रणका अभ्युदय

कल्पम्॥बलं रणाग्राभ्युदयाय कीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ३१
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

वैशम्पायन उवाच॥श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरस्तात विग्रहे।
सुराणां सर्वसैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु ॥ १ ॥ आदित्या
वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ।सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यंत
यथाबलम् ॥२॥पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक्। ग्रामणीः
सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम् ॥ ३ ॥ सव्ये चास्य रथः पार्श्वे
पक्षिप्रवरवेगवान्। सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥ ४ ॥
देवगन्धर्वरक्षौघैरनुयातः सहस्रशः॥दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षि-
भिरभिष्टुतः ॥५॥ वज्रविस्फूर्जितोद्धूतैर्विद्युदिंद्रायुधान्वितैः। गुप्तो
वलाहकगणैः कामगैरिव पर्वतैः ॥ ६ ॥ समारूढः स भगवान्

करनेके लिये लड़नेकी इच्छा करती हुई उन्मत्तसी दीख रही
थी ॥ ३१ ॥ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे तात ! तुमने युद्धके समयकी
दैत्यसेनाका विस्तार सुनलिया अब तुम विष्णुकी ओरके देवता-
ओंकी सेनाओंके विस्तारको सुनो ॥ १ ॥ देवताओंकी सेनामें
(बारह) आदित्य (आठ)वसु (ग्यारह) रुद्र महाबली अश्विनी
कुमार ये अपनी सेनाको लेकर डट गए ॥२॥ सब देवताओंका
नेता सहस्र नेत्रोंवाला लोकपाल इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार
होगया इन्द्रके सव्य पार्श्व में गरुड़की समान वेग से चलने
वाला सुन्दर चक्ररूपी चरणों वाला और सुवर्णके वज्रसे
शोभायमान रथ चल रहा था उसके पीछे सहस्रों दीप्तिमान् ब्रह्मर्षि
देवता राक्षस और गंधर्व चलते थे और उस रथके पीछे वज्रके
कड़कनेसे फटनेसे हुए विद्युत् और इन्द्रायुध (इन्द्रधनुष) वाले
मेघ चल रहे थे वे इच्छानुसार चलने वाले पर्वतोंसे प्रतीत होते

पर्यैति मघवा गजम् । हविर्धानेषु गायन्ति विप्राः सोममखे स्थिताः ॥ ७ ॥ स्वर्गे शक्रानुयानेषु देवतूर्यनिनादिषु । इन्द्रं समुपनृत्यन्ति शतशो ह्यप्सरोगणाः ॥ ८ ॥ केतुना वंशजातेन राजमानो यथा रविः । युक्तो हरिसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ९ स स्यन्दनवरो भाति युक्तो मातलिना तदा । कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्यैव तेजसा ॥ १० ॥ यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम् । तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ॥ ११ ॥ चतुर्भिः सागरैर्गुप्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः । शंखमुक्तांगदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥ १२ ॥ कालपाशं समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः । वायवीरितजलोद्गारैः कुर्वँल्लीलाः सहस्रशः ॥ १३ ॥ पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिरांगदः । मणिश्यामोत्तमवपुर्हार-

थे ॥ ६ ॥ सोमयज्ञोंमें हवि स्थापन करने वाले मण्डपोंमें ब्राह्मण जिसकी स्तुति करते हैं वह भगवान् इन्द्र हाथी पर चढ़ कर चल रहे थे ७ स्वर्गमें चलते समय दिव्य तूर्य बजते थे और अप्सरायें इन्द्रके चारों ओर नाचतीं थीं ॥ ८ ॥ सहस्र घोड़ोंसे जुताहुआ मन और मारुतकी समान वेगवान् केतुसे वह रथ उदय होते हुए सूर्यसा दीखता था ॥९॥ जिसके ऊपर मातलि बैठा हुआ था ऐसा वह रथ सूर्यके तेजसे घिरे हुए पूर्ण मेरुपर्वतसा दीखता था ॥ १० ॥ यमराज मरणप्रद काल दण्डको धारण कर अपने नादसे दैत्योंको भयभीत करते हुए देवताओंकी सेनाके मुहाने पर डट गये ॥ ११ ॥ चार सागरोंसे घिरा हुआ और जीव लपलपाते हुए सर्पोंसे रक्षित शंख और मुक्ताओंके बाजूबन्द वाला जलमय शरीरको धारण करने वाला वरुण कालपाशको उठा कर अपनी चन्द्रमाकी किरणोंकी समान अश्वोंसे और वायुसे फैंके जाने वाले जलके उद्गारोंसे क्रीड़ासी कर रहा था वह पाण्डुर वर्णके उड़ते हुए वस्त्रोंको पहिर रहा था और उस

भारार्पितोदरः ॥१४॥ वरुणः पाशभृन्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् । युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥ १५ ॥ यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि । मणिश्यामोत्तमवपुः कुबेरो नरवाहनः ॥ १६ ॥ युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः । राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ॥१७॥ विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः । स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः । प्रेक्षमाणः शिवसखः साक्षादिव शिवः स्वयम् १८ पूर्वं पक्षं सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणम् । वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥१९॥ चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला बलो-

के मूँगोंका मनोहर बाजूबन्द बँध रहा था मणिके कारण उसका श्याम शरीर अच्छा लगता था और वरुण उदरपरहार पड़नेसे भारीसा प्रतीत होरहा था ऐसे वरुण देवताओंकी सेनाके बीचमें युद्ध करनेके अवसरको चाहते हुए किनारेको तोड़ डालने वाले समुद्रकी समान डट गए ॥१२-१५॥ नीलमणिकी समान शरीर वाले निधियोंके स्वामी नरवाहन राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर जो शङ्ख और पद्म नामकी निधियोंके स्वामी थे वे हाथमें गदा लिये हुए दिखाई दिये उनके चारों ओर यक्ष राक्षसोंकी सेना और गुह्यकोंके गण घिर रहे थे ॥ १६—१७ ॥ पुष्पक विमानमें बैठे हुए धनद विमानमें बैठकर युद्ध करने वाले थे और वह शिवके मित्र युद्ध करने वाले नरवाहन कुबेर युद्ध करनेके लिये चारों ओर देखते समय साक्षात् शिव प्रतीत होते थे ॥ १८ ॥ उस देवसेनामें पूर्वदिशाके पक्षको सहस्राक्ष इन्द्रने सम्हाला था और यमराजने दक्षिणदिशाकी ओरसे उसको सम्हाला था और पश्चिम दिशाके पक्षकी वरुणदेवने रक्षाकी थी भी और कुबेर उत्तरदिशाकी ओर डट कर खड़े होगए ॥१९॥इस प्रकार चार बलमें उत्कट लोकपाल अपनी २ चारों दिशाओंमें देवताओंकी

त्कटाः । स्वास्तु दिव्वभ्यरत्तन् नौ तस्य देवबलस्य ह ॥ २० ॥ सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनांवरगामिना । श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥ २१ ॥ उदयास्तमयं चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना । त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥२२॥ सहस्रश्मियुक्तेन भ्राजमानः स्वतेजसा । चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥२३॥ सोमः श्वेतहयैर्भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् । हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाराद्दाल्हादयञ्जगत् ॥ २४ ॥ तमृत्तयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् । जगच्छायांकिततनुं नैशस्य तमसः त्तयम् ॥ २५ ॥ ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसनं प्रभुम् । औषधीनां परित्राणं निधानममृतस्य च ॥ २६ ॥ जगतः प्रथमं भागं सौम्यं शीतमयं रसम् । ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं

की सेनाकी रत्ता करने लगे ॥ २० ॥ सूर्य आकाशगामी सात घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठे थे, वह रथ लक्ष्मीसे दमक रहा था और उस रथकी लगामे भी दमक रहीं थीं ऐसे मेरुपर्वत तक जाने वाले रथमें बैठ कर स्वर्गमें सूर्यने वरेंटीकी समान घूमकर) अपने रथको उदय और अस्तमय बना दिया था ॥२१-२२॥ बारह आत्मा वाले दिनेश्वर सूर्य अपने सहस्र किरणों वाले तेज से दमकते हुए देवताओंमें घूमने लगे ॥ २३ ॥ शीतल किरणों वाले चन्द्रमा श्वेत घोड़ोंसे बड़ी शोभा पारहे थे और पाले तथा जलसे भरी हुई किरणोंसे जगत्‌को आनन्द दे रहे थे ॥ २४ ॥ जिनके पीछे २ नत्तत्र चलरहे थे और जिनकी किरणें शीतल हैं और जो ब्राह्मणोंके ईश्वर हैं और जिनका शरीर जगत्‌की छाया से अंकित रहता है और जो रात्रिके अंधकारका त्तय करनेवाले हैं जो आकाशके नत्तत्रोंके अधिपति हैं और जो रसोंके आश्रय हैं और जो औषधियोंके रत्तक हैं और अमृतके पात्र हैं ॥२६ ॥ और जो जगत्‌के (अग्नीषोमात्मक भागमेंसे) प्रथम (मुख्य

स्थितम् ॥ २७ ॥ यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु । सप्तस्कन्धगतो लोकांस्त्रीन् दधार चराचरान् ॥ २८ ॥ यमाहु-रग्नेर्यन्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् । सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीति-रुदीर्यते ॥२९॥ यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् । यमा-हुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम् ॥ ३० ॥ स वायुः सर्व-

अन्नात्मक) भाग हैं (अत एव) जो सौम्य (सोमरूप)हैं (तथा) शीतलतामय रस हैं ऐसे चन्द्रमाको दैत्योंने हिमका आयुध ग्रहण कर खड़े हुए देखा ॥ २७ ॥ (चन्द्रमाका जो रूप वर्णन किया है उसमें जगच्छायांकित शरीरका तात्पर्य यह है, कि चन्द्रमाकी किरणें दो भागोंमें विभक्त हैं उनसे जलमय चन्द्र-मण्डल भासता है इनमें जो अधोमुख किरणें हैं वे पृथ्वीमें आकर पृथ्वी पर स्थित महामणि आदिके तेजसे टकरा कर फिर ऊपर को उठ कर चन्द्रमण्डलमेंको जाती हैं वे पार्थिव नीलिमासे रञ्जित किरणें चन्द्रमण्डलको भी नीला ही दिखाती हैं अत एव चन्द्रमा का जगच्छायाङ्कितशरीरत्व ठीक ही है और जो दूसरी पहिले चंद्र-मण्डलमें जाकर फिर पृथ्वी पर विचरण करती हैं उनके द्वारा चन्द्रमाके भास्वर प्रकाशरूपसे निशाका अंधकार क्षीण होजाता है)जो अपने(आवह प्रवह आदि आकाशमें वर्तमान) सात स्कंधों से चराचर त्रिलोकीको धारण करता है और जो मनुष्यांमें तथा सब भूतों में (प्राण अपान आदि) पाँच रूपोंमेंरहता है २८ जिस को सबका उत्पत्ति स्थान ईश्वर और अग्नि का यन्ता कहते हैं और जिसका सात स्वरोंमें पहुँचना गायन कहलाता है २९ जिस को उत्तम भूत कहते हैं और जिस को आकाशमें अशरीरी कहते हैं और जिसको आकाशमें विचरण करने वाला कहते हैं और जिसको शीघ्र चलने वाला तथा शब्दयोनि (आकाश) से उत्पन्न कहते हैं ॥ ३० ॥ सब भूतोंकी आयु

भूतायुरुद्भूनः स्वेन तेजसा । ववौ मध्नथयन् दैत्यान् प्रतिलोमः संतोयदः ॥३१॥ मरुतो देवगन्धर्वा विद्याधरगणैः सह । चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥ सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रं रोषमयं विषम् । शरभूताः सुरेन्द्राणां चेरुर्व्यात्तमुखा दिवि ॥ ३३ ॥ पर्वतास्तु शिलाशृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः । उपतस्थुः सुरगणान् प्रहर्तु दानवं बलम् ॥ ३४ ॥यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः । कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ३५ ॥ समुद्रयोनिर्मधुहा हव्यभुक् क्रतुसत्कृतः । भूरापो व्योमभूतात्मा समः शान्तिकरोऽरिहा ॥ ३६ ॥ जगद्योनिर्जगद्बीजो जगद्गुरुरुदारधीः । सार्कमग्निमिवोद्यन्तमुग्रम्योचम-

रूप-वह वायु अपने तेजसे प्रबल हो मेघके साथ प्रतिलोम गति से बह कर राक्षसोंको व्यथित करने लगा ॥ ३१ ॥ मरुद्गण देवता गन्धर्व और विद्याधरोंके साथ बिना केंचुलीके सर्पोंकी समान चमचमाती हुई तलवारोंसे क्रीड़ा करने लगे ३२ और सर्पपति सुरेन्द्रोंके बाण बन कर अपने मुखको फैला तीव्र रोषमय विषको उगलते हुए घूमने लगे ३३ और पर्वत भी दानवोंकी सेनाको मारनेके लिये शिलाओंको और सैंकड़ों शाखाओं वाले वृक्षोंको लेकर देवताओंके पास आगए ३४ जो देवता हृषीकेश नामसे प्रसिद्ध हैं पद्मनाभ और त्रिविक्रम कहलाते हैं और जिनकी आभा अग्निकी समान हैं और जो सकल संसारके प्रभु हैं ३५ और जो समुद्रमें रहते हैं तथा जिन्होंने मधु दैत्यका नाश किया है जो हव्यका भक्षण करने वाले हैं और यज्ञोंमें जिनका सत्कार किया जाता है और जो पृथ्वी जल और आकाशके आत्मा हैं, सर्वत्र समभाव रखते हैं, शान्ति फैलाने वाले हैं और शत्रुनाशक हैं ३६ जो जगत्के योनि और जगत्के बीज हैं अर्थात् निमित्त और उपादान कारण हैं और जो महाबुद्धि जगत्के गुरु

तेजसम् ॥ ३७ ॥ अरिघ्नममरानीके चक्रं चक्रगदाधरः । सपरी-
वेषमुद्यन्तं सवितुर्मण्डलं यथा ॥ ३८ ॥ सव्येनालंब्य महतीं
सर्वासुरविनाशिनीम् । करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्॥
शेषैर्भुजैः प्रदीप्तानि भुजगारिध्वजः प्रभुः ॥ ३९ ॥ दधारायुध-
जालानि शार्ङ्गादीनि महायशाः । स कश्यपः स्वात्मभवं द्विजं
भुजगभोजनम् ॥४०॥ पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम् ।
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम् ॥ ४१ ॥ अमृतारम्भ-
निर्युक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम् । देवासुरविमर्देषु शतशो दृष्टविक्र-
मम् ॥ ४२ ॥ महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् । शिखिनं
चूडिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम् । विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवा-

है ३७ वह अपने सव्य हाथमें सकल असुरोंका नाश करनेवाली
और शत्रुको कालके अधीन करने वाली काली गदाको(लेकर)
आये थे और वह परिवेषके साथ उदय होते हुए सूर्यमण्डलको
ही पकड़ कर लाये हों इस प्रकार सूर्य और अग्निकी समान
उदय होते हुए उत्तम तेज वाले शत्रुओंका नाश करने वाले
चक्रको लेकर आये थे गरुड़की ध्वजा वाले महायशस्वी प्रभु
वाकी भुजाओंमें शार्ङ्ग आदि आयुधोंको धारण कर रहे थे,और
कश्यपपुत्र विष्णु अपनेसे उत्पन्न हुए सर्पोंका भक्षण करनेवाले
गरुड़ पर(सवार थे) ३८–४०वह गरुड़ पवनसे भी अधिक वेग
से गिरता था आकाशमें खलभली मचा देता था और उसके
मुखमें सर्प दब रहा था ४१ गरुड़ उस समय अमृत निकालनेके
समय नियुक्त किये हुए मन्दराचलकी समान ऊँचे दीख रहे थे
और उन्होंने बहुतसे देवता और असुरोंके संग्राममें अपना पराक्रम
दिखाया था ४२ जब वह अमृत लेने गए थे उस समय इन्द्रने
उनके वज्र मारा था, वह चिन्ह इस समय दीख रहा था,, वह
शिखा वाले थे और तपे हुए सुवर्णके कुण्डलोंको पहर रहे थे

चलम् ॥ ४३ ॥ स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा । भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ॥ ४४ ॥ पत्राभ्यां चारुपत्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया । युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ॥ ४५ ॥ नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलंकृतम् । केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ॥४६॥ अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे हरिः।सुवर्णं स्वेन वपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥ ४७ ॥ तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च तपोधनाः । गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम् ॥ ४८ ॥ तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरस्सरम् । वारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ४९ चन्द्रप्रभाभिर्विमलं युद्धाय समुपस्थितम् । पवनाविद्धनिर्घोषं

और विचित्र वस्त्ररूपी कवचको पहर रहे थे अत एव वह धातु वाले पर्वतकी समान दीखते थे ४३ उनका वक्षःस्थल चौडा था और उस पर मुखमें आधे निगले हुए शिर पर रत्न धारण करने वाले सर्पके रत्नकी चमक पड़ रही थी इसकारण उनका वक्षःस्थल शीतल किरण वाले चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था ॥ ४४ ॥ जैसे प्रलयकालमें इन्द्रचापोंसे घिरे हुए बादलोंसे आकाश शोभा पाता है इसी प्रकार स्वर्गमें अपने सुन्दर पर वाले पङ्खोंको फैलानेसे वह शोभा पारहे थे ४५ वह नील पीत और रक्त वर्णकी पताकाओंसे अलंकृत थे और शत्रुसे दीखते थे और ध्वजा पर लगानेके योग्य थे और वह पक्षियोंमें उत्तम गरुड़ अपने शरीरसे सुवर्णकी समान दीख रहे थे उन अरुणके छोटे भाई गरुड़ पर सवार होकर श्रीमान् हरि युद्धस्थलमें आये थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उस समय तपोधन मुनि और देवता मंत्रमयी स्तुतियोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनके पीछे २ चलने लगे ४८ उस समय कुबेरसे सुशोभित और जिसमें यमराज आगे खड़े हुए थे और जिसको वरुण हिला रहे थे और

संप्रदीप्तहुताशनम् ॥ ५० ॥ जिष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा वृतम् । बलं बलवदुद्भूतं युद्धाय समवर्तत ॥ ५१ ॥ स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति स्तुत्वा तत्राङ्गिराब्रवीत् । स्वस्त्यस्तु दैत्येभ्य इति उशना वाक्यमाददे ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्ये तारकामये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४

वैशम्पायन उवाच । ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा । सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १ ॥ दानवा दैवतैः सार्धं नाना प्रहरणोद्यताः । समीयुर्युध्यमाना वै पर्वताः पर्वतैरिव ॥ २ ॥ तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ । धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ३ ॥ ततो रथैः मजविभिर्वाह-

---

जिसमें देवराज इन्द्र विराजमान थे ॥ ४९ ॥ और जो चन्द्रमाकी चाँदनीसे निर्मल दीख रहा था और पवनके चलनेसे जिसका गुल गपाड़ा कुछ नहीं सुनाई देता था और जिसमें अग्नि जल रही थी ॥ ५० ॥ ऐसा वह जीतने वाले सहनशील कान्तिमान् श्रीकृष्णके तेजसे व्याप्त बलवान्की समान उठा हुआ देवताओंका सेनादल युद्ध करनेके लिये उठ खड़ा हुआ ॥ ५१ ॥ उस समय बृहस्पतिजीने स्तुति करके कहा, कि-देवताओंका कल्याण (स्वस्ति) हो और शुक्राचार्यने कहा, कि-दानवोंका कल्याण हो ॥ ५२ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-परस्पर जीतना चाहने वाले देवता और असुरोंकी सेनामें घोर संग्राम होने लगा १ जैसे पर्वतसे पर्वत लड़ते हैं तैसे ही दानव भी अनेक प्रकारके आयुधोंको उठा कर देवताओंसे युद्ध करते आपसमें घोलमेल होगए २ वह दर्प और विनय, धर्म और अधर्मसे मिला हुआ देवता और और दैत्योंका युद्ध अद्भुत लगने लगा ३ तदनन्तर रथोंके शीघ्रता

गैश्च प्रचोदितैः । उत्पतद्भिश्च गगनं सासिहस्तैः समन्ततः ४
विक्षिप्यमाणैर्मुशलैः संप्रेष्यद्भिश्च सायकैः।चापैर्विस्फार्यमाणैश्च
पात्यमानैश्च मुद्गरैः॥५॥तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसंकुलम् ।जग-
तस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥६॥स्वहस्तमुक्तैः परिघैः क्षिप्य-
माणैश्च पर्वतैः । दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिंद्रपुरोगमान् ते वध्य-
माना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः । विषण्णमनसो देवा जग्मु-
रार्तिं परां मृधे॥८॥तेऽस्त्रजालैः प्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्मुहुः ॥ ९ ॥ स्पन्दिताः
पाशजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः । प्रविष्टा दानवीं मायां न
शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥ १० ॥ संस्तम्भितमिवाभाति निःप्राण-

से दौड़नेसे और घोड़ोंके पीटनेसे और तलवारों सहित कट कर ऊपरको उछलते हुए हाथोंसे तथा फेंके जाते हुए मूसलोंसे तथा छोड़े जाते हुए बाणोंसे तथा खैंचे जाते हुए धनुषोंसे और गिराये जाते हुए मूसलोंसे वह देव दानवोंका घोर युद्ध जगत्के प्रलयके समयके अग्निकी समान जगत्को त्रास देने लगा ४-६ दानव अपने हाथोंमेंसे परिघ फैंक कर और पर्वतोंको मार कर समरमें इन्द्र आदि देवताओंको मारने लगे ७ जीतनेसे कान्तिमान् लगते हुए दानवोंके हाथसे युद्धमें पिटने पर देवता मनमें खिन्न होकर परम दुःखित हुए ८ दानवोंने परिघोंसे देवताओंके मस्कोंको फोड़ डाला और अस्त्र मारकर उनके हृदयको तोड़ डाला तब देवताओंके घावोंमेंसे रुधिर बहनेलगा ॥९॥ दानवोंने पाशोंसे देवताओंको घायल कर दिया और बाण मार कर उनको निश्चेष्ट कर दिया इस प्रकार दानवोंकी मायाके बशमें होने पर देवताओंमें हिलने डुलनेकी भी शक्ति नहीं रही १० जब असुरोंने देवताओंकी सेनाको निश्चेष्ट कर दिया और उनके पास आयुध भी नहीं रहे तब वह सेना मुर्देकी समान स्तंभित

सदृशाकृति । बलं सुराणामसुरैर्निःप्रयत्नायुधं कृतम् ॥ ११ ॥
मायापाशान्विकर्षंश्च भिंदन् वज्रेण ताञ्छरान् । शक्रो दैत्यबलं
घोरं विवेश बहुलोचनः ॥ १२ ॥ स दैत्यान् प्रमुखे हत्वा तदा-
नवबलं महत् । तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥ १३ ॥
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवांस्तान् दानवानपि । घोरेण तमसा-
विष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥ १४ ॥ मायापाशैर्विमुक्ताश्च यत्न-
वन्तः सुरोत्तमाः । वपूंषि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन् १५
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसः । पेतुस्ते दानवगणा-
श्छिन्नपक्षा इवाचलाः १६ तद्घनीभूतदैत्यानामन्धकारमहार्णवम् ।
प्रविष्टं बलमुत्त्रस्तं तमोभूतमिवाबभौ । तदासृजन्महामायां मयस्तां
तामसीं दहन् । युगांताग्निमिवात्युग्रां सृष्टामौर्वेण वन्हिना १८

दीखने लगी ११ उस समय अनेक नेत्रों वाला इन्द्र दानवोंके अस्त्रोंको वज्रसे तोड़ता हुआ और मायाके पाशोंको खोलता हुआ दानवोंकी भयंकर सेनामें घुस गया ॥ १२ ॥ उस समय उसने सेनाके मुहाने पर दानवोंकी बहुतसी सेनाका संहार करके तामसास्त्र छोड़ कर अँधेरा कर दिया १३ उस समय इन्द्रके तेजसे विस्तृत हुए घोर अंधकारके कारण देवता और दानव अपने २ पक्षके व्यक्तियोंको भी न पहिचान सके १४ उत्तम २ देवता यत्न करके मायामय बन्धनोंसे छुट गए और उन्होंने राक्षसोंके अंधेरेमें पड़े हुए शरीरोंका नाश करना आरंभकरदिया १५ जैसे पर कटने पर पर्वत गिर पड़ते है वैसेही अंधकारसे नीली कान्ति वाले दैत्य पिटने पर बेहोश होकर गिरने लगे १६ उस समय इकट्ठे हुए दानवोंका अंध-कार रूपी समुद्र जब पीड़ा पाकर (देवताओंकी) सेनामें घुसा तो अंधकारसा प्रतीत होने लगा १७ उस समय मय दानवने इन्द्रकी तामसी मायाका संहारकर और्व अग्निकी रची हुई प्रलयकालकी अग्निकी समान उग्र मायाको रचना आरंभ कर दिया ॥१८॥

सा ददाह तमः सर्वं मायामयविकल्पिता । दैत्याश्च दीप्तवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१९॥ मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः । भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिलेशयात् ॥ २० ॥ते दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजसः । शशंसुर्वज्रिणो देवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः ॥२१॥ सन्तप्ते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवैः । चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥ वरुण उवाच । पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्रस्तपस्तेपेऽति दारुणम्।ऊर्वो मुनिः स तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः२३तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम्। उपतस्थुर्मुनिगणा देवा ब्रह्मर्षिभिःसह २४ हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः। ऋषिं विज्ञापयामास पुरा परमतेजसम् २५ तमूचुर्ब्रह्म ऋषयो वचनं ब्रह्मसम्मितम् । ऋषिवंशेषु भगवन्

मयकी रचीहुई मायासे सारे अंधकारका नाश होगया और दानव चमकने लगे तब शीघ्र ही युद्धमें खड़े होगये ॥१९ ॥ उस समयदेवता भौर्वी मायासे भस्म होने लगे और शिशिर ऋतुके जलमें शयन करनेके लिये चन्द्रमाके समीपगए ॥ २० ॥ देवता और्वके तेजसे तेजोहीन होगए और सन्ताप पाकर शरण पानेकी इच्छासे इन्द्रसे कहने लगे ॥२१॥ जब सेना सन्तप्त होने लगी और दानव उसको भस्म करने लगे तब देवराजके उकसाने पर वरुणने कहा ॥ २२ ॥ वरुणने कहा, कि–पहिले ब्रह्माजीके पुत्र ऊर्व नामक एक मुनि थे उन तेजस्वीमें ब्रह्माजीके समान गुण थे उन्होंने अतिदारुण तप करना आरम्भ करदिया था २३ जब उनके तपसे जगत् सूर्यकी धूपसे जैसे तपता है तैसे तपने लगा तब देवता ब्रह्मर्षि और मुनि उनके पास आये ॥ २४ ॥ और दानवेश्वर हिरण्यकशिपु भी उन परमतेजस्वी ऋषिके पास गया था ॥२५॥ उस समय ब्रह्मर्षियोंने उनसे वेदसम्मत वचन कहा, कि–हे भगवन् ! ऋषिवंशोंमें आपके कुलकी जड़ कटती

छिन्नमूलमिदं कुलम् ॥ २६ ॥ एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रं यन्नानुवर्तसे । कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥ २७ ॥ बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् । एकदेहानि तिष्ठन्ति विभक्तानि विना प्रजः ॥ २८ ॥ कुलेषु छिन्नमूलेषु तेषु नो नास्ति कारणम् । भवांस्तु तपसा श्रेष्ठः प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २९ ॥ तत् प्रवर्तस्व वंशाय वर्धयात्मानमात्मना । स्वमाधत्स्वोर्जितं तेजो द्वितीयां वै तनुं कुरु ॥ ३० ॥ स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः । जगर्हे तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ यथाऽयं शाश्वतो धर्मो मुनीनां विहितः पुरा । सदार्षं सेवतां कर्म वन्यमूलफलाशिनाम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्म-

---

चली जारही है ॥ २६ ॥ आप अपने कुलमें एक ही बचे हैं, तो भी आप गोत्र चलाना (पुत्र पौत्र उत्पन्न करना) नहीं चाहते और ऊर्ध्वरेता होनेका व्रत धारण करके (तपोजन्य) क्लेशको ही भोग रहे हैं २७ हे विप्र ! बहुतसे पवित्रात्मा मुनियोंके गोत्र प्रजा न होनेसे विस्तार न पाकर एक शरीरमें ही वर्तमान रहते रहते जड़ कटजाने पर नष्ट होगए हैं, अतएव उनकी वृद्धि न होसकी, परन्तु (आप तो अपने वंशकी मूल वर्तमान हैं आपके वर्तमान रहते हुए प्रजाका उच्छेद न होना चाहिये) आप तो तपमें श्रेष्ठ हैं और आपकी कान्ति प्रजापतिकी समान है२८-२९ अतः आप अपने वंशको बढ़ानेका उद्योग करिये और अपनेसे अपने आपको बढ़ाइये आप अपने बलवान तेजका आधान करके अपने दूसरे (पुत्ररूप) शरीरकी रचना करिये ३० ऋषियोंके इसप्रकार कहने पर उन मुनिके मनमें क्षोभ हुआ और वह ऋषियोंकी निन्दा करते हुए यह कहने लगे ३१ वनके फलमूल खानेवाले और सदा आर्ष आचारका पालन करनेवाले मुनियोंका जो यह (तपोरूप) शाश्वत धर्म रचा गया है ३२ ब्राह्मण

णस्यानुवर्तिनः । ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥३३॥ द्विजानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः । अस्माकं तु वनं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥३४॥ अम्बुभक्षा वायुभक्षा दन्तोलूखलिकास्तथा । अश्मकुट्टा दशनपाः पञ्चातपतपाश्च ये ॥३५॥ एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुष्करैः । ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ते परां गतिम् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मचर्याद्ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते । एवमाहुः परे लोके ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः । ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः ॥ ३८ ॥ नास्ति योगं विना सिद्धि-

कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणके धर्मोंका पालन करनेवाले द्विजका यह ब्रह्मचर्य व्रत यदि भलीप्रकार पाला जाय तो ब्रह्माको भी विचलित करसकता है ३३ जो गृहस्थाश्रममें रहते हैं उन ब्राह्मणों की (यज्ञ कराना, पढाना और दान लेना ये) तीन मुख्य वृत्तियें हैं, परन्तु वानप्रस्थ आश्रमका पालन करनेवाले हम (कौमारव्रतपालक) वनवासियोंका तो वनमें रहना ही परम धर्म है ।३४। जो जलका पान करते हैं और जो वायुका भक्षण करते हैं और जो दाँतरूपी उलूखलोंसे (कड़ी वस्तुओंको कूटकर) खाते हैं, और जो पत्थरोंसे फोड़े हुए पदार्थोंके (रसोंको) दाँतोंसे पीजाते हैं और जो पञ्चाग्नि तप करते हैं ॥ ३५ ॥ ये सुदुष्कर व्रत कर तप करते हुए और साथमें ब्रह्मचर्यका पालन कर दुष्कर गतिको पाना चाहते हैं ॥३६॥ ब्रह्मचर्यका पालन करने से ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व आता है, यह बात ब्राह्मण और ब्रह्म को जानने वाले मनुष्य परलोकमें भी कहते हैं ॥३७॥ ब्रह्मचर्य में धैर्य रहता है, और ब्रह्मचर्यमें तप रहता है, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उनको स्वर्गमें स्थित समझना चाहिये ३८ योगके विना सिद्धि नहीं मिल सकती और सिद्धिके विना यश

नास्ति सिद्धिं विना यशः । नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात् परं तपः ॥ ३६ ॥ तन्निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चमम् । ब्रह्मचर्येण वर्तेत किमतः परमं तपः ॥ ४० ॥ अयोगे केशहरणमसंकल्पे व्रतक्रिया । अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद्दम्भसंज्ञितम् ४१ क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः । यदेयं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥ ४२ ॥ यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकममितात्मनाम् । सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ४३ मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विना । न दारयोगं बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥४४॥ यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह

नहीं मिल सकता, ब्रह्मचर्यरूपी तपसे श्रेष्ठ इस लोकमें यश दिलाने वाली और कोई वस्तु नहीं है ॥ ३६ ॥ अत एव इन्द्रियोंको तथा पृथिवी आदिपञ्चमहाभूतोंके विषयोंको वशमें रख कर ब्रह्मचर्यासे रहनेसे बढ़ कर और क्या तप होसकता है ॥ ४० ॥ यदि (संन्यासी जो कि–ध्यानभिक्षु हैं वे) योग अवश्यकर्तव्य योगरूप ध्यान) के न होने पर अपना शिर मुँडा डाले और (वानप्रस्थाश्रमी) असंकल्प करने अर्थात् (परलोक की कामना न रखने) पर यदि लोकरञ्जनके लिये ही कृच्छ्र-व्रत आदि) व्रत पाले और वेदाध्ययनरूप ब्रह्मचर्यके विना यदि ब्रह्मचर्य पाला जाय तो यह तीनों दम्भ कहलाते हैं ।४१। जब ब्रह्माजीने (सनत्कुमार आदि) मानसी प्रजाको रचा था उस समय स्त्री कहाँ थी और स्त्रीसंयोग कहा था और कामातुरता कहाँ हुई थी ? ॥ ४२ ॥ और (हे मुनियों !) यदि तुम पवित्र आत्मा वालोंमें तपकी कुछ शक्ति हो तो तुम प्रजापतिकी समान कर्म करके मानसी पुत्रोंको उत्पन्न करो ॥४३॥ तपस्वी को तो अपने मनसे बनाई हुई योनि (पुत्रोत्पत्तिका स्थान) निश्चित करनी चाहिये, तपस्वीके लिये स्त्रीग्रहण करना और

निर्भयैः । व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतिः ॥ ४५ ॥ वपुर्दीप्तांतरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम् । दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥ ४६ ॥ एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति । वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः ॥ ४७ ॥ ऊर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने । ममन्थैकेन दर्भेण पुत्रस्य प्रभवारणिम् ॥ ४८ ॥ तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली निरिंधनः । जगतो निधनाकांक्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ४९ ऊर्वस्योरुविनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः । दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् जज्ञे परमकोपनः ॥५०॥ उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं

बीजप्रदान करना नहीं कहा है, तपस्वियोंको तो व्रत करना ही लिखा है ॥ ४४ ॥ यद्यपि तुम सज्जन हो तथापि मेरा विचार है, कि-तुमने निर्भय होकर असज्जन पुरुषोंकी समान ही यह धर्म और अर्थसे शून्य बात कही है ॥४५॥ मैं संकल्पसे सिद्ध होने वाले अपने मनोमय वपु (जिसमें बीज बोया जाता है, उप्यते बीजमस्मिन्निति वपुः-योनि) को बनाकर स्त्रीसंभोग किये विना ही अपने शरीरसे प्रदीप्त अन्तरात्मा वाले पुत्रको उत्पन्न करता हूँ ॥ ४६ ॥ मेरा आत्मा इस प्रकार ही वनकी विधि (तप) से प्रजाको भस्मसा करना चाहने वाले दूसरे आत्मा (पुत्र) को उत्पन्न करेगी ४७ (इस प्रकार कह कर) तपमें भरे हुए ऊर्व मुनिने अपनी जाँघको अग्निमें डाल दिया और पुत्र उत्पन्न होनेकी अरणिरूप उस (जँघा) को एक कुशासे मथने लगे ४८ उस समय सहसा उनकी जाँघको फोड़कर जगत्‌की मृत्यु चाहने वाला निर्धूम ज्वालामाली अग्निरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ ४९ ऊर्वकी ऊरुको फोड़ कर तीनों लोकोंको भस्म करना चाहने वाला और्व नामक यमराजसा परमक्रोधी अग्नि उत्पन्न हुआ था ॥ ५० ॥ उसने उत्पन्न

द्दीप्तया गिरा । क्षुधा मे बाधते तात जगद्भक्ष्ये त्यजस्व माम् ५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश । निर्दहन्निव भूतानि
ववृधे सोन्तकोऽनलः ॥५२॥ एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वलोकपतिः
प्रभुः । आजगाम मुनिर्यत्र व्यसृजत् पुत्रमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ स
ददर्शोरुमूर्वस्य दीप्यमानं सुताग्निना । और्वकोपाग्निसंतप्तान्
लोकांश्च ऋषिभिः सह ॥ ५४ ॥ तमुवाच ततो ब्रह्मा मुनिमूर्वं
सभाजयन् । धार्यतां पुत्रजं तेजो लोकानां हितकाम्यया ॥५५॥
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये साह्यमुत्तमम् । वासं चास्य प्रदा-
स्यामि प्राशनं चामृतोपमम् । तथ्यमेतन्मम वचः शृणु त्वं वदतां
वर ॥ ५६ ॥ ऊर्व उवाच । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य
भगवन् शिशोः । मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै ॥ ५७ ॥

होते क्षण ही प्रदीप्त वाणीमें अपने पितासे कहा, कि—हे तात ! भूख मुझे पीडा देरही है, आप मुझे छोड दीजिये मैं जगत्का भक्षण करूँगा५१वह यमराजस्वरूप अग्नि प्राणियों को भस्मसा करता हुआ अपनी त्रिलोकीमें पहुँचनेवाली ज्वाला-ओंको दशों दिशाओंमें फैलाता हुआ बढ़ने लगा ५२ इसीसमय सब लोकोंके स्वामी प्रभु ब्रह्माजी मुनिने जहाँ अपने उत्तम पुत्र को छोड़ रक्खा था तहाँ पहुँचे ५३ उन्होंने पुत्रकी अग्निसे प्रदीप्त ऊर्वकी जंघाको देखा और उन्होंने और्वकी कोपाग्निसे सन्ताप पाते हुए ऋषि और लोकोंको भी देखा ५४ उस समय ब्रह्माजी ऊर्व मुनिका सत्कार करते हुए उनसे कहने लगे, कि—हे विप्र ! तुम लोकहितके लिये अपने पुत्रके तेजको रोके रहो५५ और हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! तुम मेरे इस तथ्य वचनको भी सुनो, कि—मैं तुम्हारे इस पुत्रकी बडी सहायता करूँगा, इसको रहनेके लिये स्थान भी दूँगा और अमृतकी समान भोजन दूँगा ५६ ऊर्वने कहा, कि-मैं धन्य हूँ, कि–आप मेरे पुत्रके लिये ऐसी इच्छा

प्रभावकाले संप्राप्ते कान्तिनव्ये समागमे । भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥५८॥ कुत्र चास्य निवासो वा भोजनं च किमात्मकम् । विधास्यति भवानस्य वीर्यतुल्यं महौजसः ५९ ब्रह्मोवाच । वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रास्ये भविष्यति । मम योनिर्जलं विप्र तच्च तोयमयं वपुः ॥ ६० ॥ तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्याश्रयं तु तत् । तत्रायमास्तां नियतः पिबन् वारिमयं हविः ॥ ६१ ॥ ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च सुव्रत । सहितौ विचरिष्यावो लोकानिति पुनः पुनः ॥ ६२ ॥ एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः । दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥ ६३ ॥ एवमस्त्विति सोऽप्यग्निः संवृतज्वालमण्डलः । प्रविवेशार्णवमुखं निःक्षिप्य पितरि प्रभाम् ॥ ६४ ॥ प्रतियात-

---

प्रकट कर रहे हैं ५७ हे भगवन् ! जब इसके प्रभाव (दिखाने) का अवसर आवेगा और इसकी उपस्थितिकी आवश्यकता होगी तब यह कौनसी हविसे तृप्त होकर सुख पावेगा५८ इसका निवासस्थान कहाँ होगा ? और इसको कैसा भोजन मिलेगा इसप्रकार आप इसके वीर्यके अनुरूप क्या क्या व्यवस्था करेंगे५९ब्रह्माजीने कहा, घोड़ीके समान मुखवाले समुद्रके मुखमें यह अग्नि रहेगा,हे विप्र ! जल मेरी योनि है और वह जलमय शरीरको धारण करता है ६० वही तेरे पुत्रकी हवि होगी और वहाँ ही मैं उसके लिये स्थान देता हूँ, वहाँ पर यह जलमय हविका पान करता रहे ६१ हे सुव्रत ! तदनन्तर प्रलयकाल आने पर यह और मैं इकठे होकर लोकोंमें वारम्वार घूमेंगे ६२ इस अग्निको मैंने जलका भक्षण करने वाला बना दिया, यह प्रलयके समय देवता राक्षस और असुर आदि सब भूतोंको भस्म करेगा ६३ ज्वालाओंसे घिरा हुआ वह अग्नि भी एवमस्तु कह कर अपने पितामें अपनी प्रभाको स्थापित कर समुद्रमें घुस

स्ततो ब्रह्मा ते च सर्वे महर्षयः। और्वस्याग्नेः प्रभावज्ञाः स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः ॥ ६५ ॥ हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदद्भुतमपूजयत् । ऊर्वं प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ६६ ॥ भगवन्नद्भुतमिदं निवृत्तं लोकसाक्षिकम् । तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥ ६७ ॥ अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत । भृत्य इत्यवगन्तव्यः श्लाघ्योऽस्मि यदि कर्मणा ॥ ६८ ॥ तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम् । यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात् पराजयः ॥ ६९ ॥ ऊर्व उवाच । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुर्मतः । नास्ति ते तपसाऽनेन भयमद्येह सुव्रत ॥ ७० ॥ इमां च मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् । निरिन्धनामग्निमयीं दुःस्पर्शां पावकैरपि ॥ ७१ ॥ एषा ते स्वस्य वंशस्य वंश-

गया ६४ और्व अग्निके प्रभावको जाननेके अनन्तर ब्रह्माजी चले गए और ब्रह्मर्षि भी अपने २ स्थानोंको चले गए ६५ हिरण्यकशिपु इस अद्भुत बातको देख प्रसन्न हुआ और उसने ऊर्वको साष्टंग प्रणाम कर यह बात कही ॥ ६६ ॥ कि—हे भगवन्! आपने लोकोंके सामने यह अद्भुत बात दिखाई है, हे मुनिश्रेष्ठ! आपके तपसे पितामह भी प्रसन्न होगए थे ॥ ६७ ॥ यदि आप मेरे कर्मोंको अच्छा समझते हों तो आप मुझे अपने और अपने पुत्रका किंकर समझिये ॥ ६८ ॥ इस लिये आपकी सेवामें परायण रहने वाले मेरी ओर आप दृष्टि डालिये हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मेरी हार होगी तो वह आपकी ही हार है ६९ ऊर्वने कहा, कि—मैं धन्य हूँ, कि— आप मुझे गुरु मानते हैं, हे सुव्रत! तुझे इस तपसे कुछ भय नहीं रहेगा ॥७०॥ तुम मेरे पुत्र की बनाई हुई इस मायाको ग्रहण करो, इस ईंधनशून्य अग्निको अग्नि भी कठिनतासे छू सकेंगे ॥ ७१ ॥ शत्रुओंको वशमें करते समय यह विद्या तेरे वंश वालोंके वशमें रहेगी और

गारिविनिग्रहे । रक्षिष्यत्यात्मपक्षं स परांश्च प्रहरिष्यति ॥७२॥ एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥ ७३ ॥ वरुण उवाच । सैषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा । और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥ ७४ ॥ तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः । शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा ॥ ७५ ॥ यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान् सुखी । दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः ॥ ७६ ॥ तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः । मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि और्वाग्निसंभवे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

यह विद्या अपने पक्षवालोंकी रक्षा करेगी और शत्रुपक्षका संहार करेगी ॥ ७२ ॥ तब राक्षस एवमस्तु कह कर और उन मुनियोंमें श्रेष्ठ मुनिको प्रणाम करके प्रसन्न होता हुआ स्वर्गको चला गया ॥ ७३ ॥ वरुणने कहा, कि–इस देवताओंको भी दुःसह दुरासद मायाको ऊर्व ऋषिके पुत्र और्व नामक अग्निने रचा है ॥ ७४ ॥ (ऊर्वने यह भी कहा था, कि–तेरे जीवन तक ही यह माया वीर्यवती रहेगी बादको निर्वीर्य होजायगी यही बात कहते हैं, कि—) उस हिरण्यकशिपु नामक दैत्यके मरने पर यह विद्या वीर्यरहित होगई है, जिसने इसको तेजसे रचा था, उसने ही यह शाप दिया था ॥ ७५ ॥ यदि आप इसका संहार करना चाहते हैं और आप (इन्द्र) स्वयं प्रसन्न होना चाहते हैं तो हे इन्द्र ! आप मुझे जलयोनि मेरे मित्र चन्द्रको मेरी सहायता करनेकी आज्ञा दीजिये ॥ ७६ ॥ मैं सोमके और अपने जलचर जीवोंके साथमें होने पर यदि आपकी कृपा होगी, तो इस मायाका अवश्य ही नाश कर डालूँगा ॥ ७७ ॥ ॥ ४५ ॥

वैशम्पायन उवाच। एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः। संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥ १ ॥ शक्र उवाच। गच्छ सोम सहायं त्वं कुरु पाशधरस्य वै। असुराणां विनाशाय जयाय च दिवौकसाम् ॥ २ ॥ त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः। त्वन्मयं सर्वलोकानां रसं रसविदो विदुः ॥ ३ ॥ क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरस्येव मण्डले। परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥ ४ ॥ लोकच्छायामयं लक्ष्म तवांके शशसंज्ञितम्। न विदुः सोमदेवास्त्वां ये च नक्षत्रयोगिनः ॥५॥ त्वमा-

वैशम्पायन मुनिने कहा, कि—यह सुन कर इन्द्र परमप्रसन्न हुआ और देवताओंकी वृद्धि करने वाले इन्द्रने सामने खड़े हुए शिशिररूपी आयुध वाले सोमको आज्ञा दी ॥ १ ॥ इन्द्रने कहा, कि—हे सोम ! तुम पाशधारी वरुणके साथमें जाकर इनकी सहायता करो ऐसा करनेसे असुरोंका श्रेय होगा और देवताओं की विजय होगी ॥ २ ॥ तुम्हारा वीर्य अप्रतिम है और आप ज्योतियोंके ईश्वर (सूर्य आदि) के भी ईश्वर हैं, और सब लोकोंका रस तुममें ही रहता है (श्रुतिमें लिखा है, कि–"चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते-चन्द्रमासे ही सब ज्योतियें महत्त्वको पाती हैं" तात्पर्य यह है, कि–जैसे पार्थिव काष्ठ अग्निका वर्धक है,इसी प्रकार चन्द्रमा भी अविन्धन-जलभक्षक· तेजोंके वर्धक हैं, अतः उनको सूर्यका भी ईश्वर कहा है) ॥३॥ सागरके मण्डलकी समान तुम्हारी क्षय वृद्धि सदा अव्यक्त रहती है तुम संसारमें कालको बनाते हुए सदा दिन रातोंमें घूमते रहते हो ॥ ४ ॥ तुम्हारे अंकमें लोकच्छायामय शश नामक चिन्ह है, हे सोम ! नक्षत्रोंके पीछे चलने वाले व्यक्ति और देवता भी तुम्हें वास्तविक रीतिसे नहीं जान सकते (तात्पर्य यह है, कि-जैसे दर्पणमें पड़ती हुई नयनकी किरणें लौट कर ग्रीवामें स्थित मुख

दित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः । तमश्चोत्सार्य वपुषा भासयस्यखिलं जगत् ॥ ६ ॥ श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी । अब्दकृत् कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरसोऽव्ययः ॥ ७ ॥ ओषधीशः क्रियायोनिरम्भयोनिरनुष्णभाक् । शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥८॥ त्वं कान्तिः कान्तवपुषां त्वं सोमः सोमवृत्तिनाम् । सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ९ तद्गच्छ त्वं सहानेन वरुणेन वरूथिना । शमयस्वासुरीं मायां यया दह्याम संगरे ॥ १० ॥ सोम उवाच । यन्मां वदसि युद्धार्थं देव-

को दर्पणमें बताती है, इसी प्रकार चन्द्रमण्डलको प्राप्त होकर लौटी हुई किरणें दूरत्वके दोषसे पृथिवीको अव्यक्तरूपमें चन्द्रमण्डलमें दिखाती हैं, वही चन्द्रमामें कलंक माना जाता है) तुम आदित्यपथके ऊपर ज्योतियोंके ऊपर स्थित रहते हो और आप अपने शरीरसे अंधकारको दूर कर सारे संसारके अंधकारको दूर करते हो ॥ ६ ॥ आपकी किरणें श्वेत हैं आपका शरीर हिममय है आप नक्षत्रोंके स्वामी हैं और आपके शशका चिन्ह है, आप संवत्सरके रचयिता हैं, कालयोगकी आत्मा हैं पूज्य हैं और यज्ञके रस हैं और अव्यय है ॥ ७ ॥ आप औषधियोंके स्वामी हैं और क्रियाओंकी योनि हैं और आप जलयोनि हैं और आप शीतलताका सेवन करते हैं आपकी किरणें शीतल हैं आप अमृतके पात्र हैं, चपल हैं और आपके वाहन श्वेत हैं ॥ ८ ॥ आप प्रकाशित शरीर वालोंकी कान्ति हैं और सोमजीवी देवताओंके आप सोम हैं ९ अतः अब आप वरूथी (सेना वाले) वरुणके साथ जाइये और युद्धमें हम जिस मायासे जल रहे हैं उसका आप नाश करिये ॥ १० ॥ सोमने कहा कि–हे देवराज! हे जगत्पते ! आप मुझसे युद्ध करने के लिये जो कह रहे हैं अतः लीजिये मैं दैत्यों की मायाको नष्ट

राज जगत्पते । एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥११॥ एतान्मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य त्वं हिमवेष्टितान् । विमायान्विमदां-श्चैव दानवांस्त्वं महामृधे ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो हिमकरोत्सृष्टाः सबाष्पा हिमवृष्टयः । वेष्टयन्ति स्म तान् घोरान् दैत्यान् मेघगणा इव ॥ १३ ॥ तौ पाशशुक्लांशुधरौ वरुणेन्दू-महारणे । जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशघातैश्च दानवान् ॥ १४ ॥ द्वा-वम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ । मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥ १५ ॥ ताभ्यामासावितं सैन्यं तद्दानव-मदृश्यत । जगत्सम्वर्तकाम्भोदैः प्रवृष्टैरिव संवृतम् ॥१६॥ तावुभ्र-तांशुपाशौ द्वौ शशांकवरुणौ रणे । शमयामासतुर्मायां देवौ दैतेय-निर्मिताम् ॥ १७ ॥ शीतांशुजलनिर्दग्धाः पाशैश्च प्रसिता रणे ।

करने वाले शिशिरको वरसाता हूँ ॥११॥ आप शीघ्र ही इन दैत्योंको पाले पड़नेसे शीतसे दग्ध हो मदरहित देखेंगे और इनकी माया नष्ट हो जावेगी ॥१२॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय चन्द्रमाकी छोडी हुई पालेकी फुहारोंने मेघोंकी समान दैत्यों पर वरसना आरंभ कर दिया १३ इस समय महारणमें शुक्ल किरणोंको धारण करने वाले चन्द्रमा और पाशको धारण करने वाले वरुण ये दोनों हिम गिरा कर और पाश मार कर दानवोंका संहार करने लगे१४ पाश और हिमसे युद्ध करने वाले दोजलनाथ वरुण और सोम क्षोभमें भरे हुए दो समुद्रोंकी समान रणमें जलकी वर्षा करते हुए विचरने लगे ॥ १५ ॥ उनसे डुबाई हुई दानवों की सेना प्रलयकाल में संवर्तक मेघोंसे डुबोये जाते हुए जगत् की समान दीखने लगी १६ पाश और किरणोंको उठाने वाले शशांक और वरुण नामके दोनों देवता राक्षसों की रची हुई मायाका शमन करने लगे १७ शीतल किरणों वाले चन्द्रमाके जलसे अकड़ते हुए और रणमें वरुणकी

न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥ १८ ॥ शीतांशु-
निहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमार्दिताः । हिमप्रावृत्तसर्वांगा निरूष्माण
इवाग्नयः ॥ १९ ॥तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च ।
विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ २० ॥तान् पाश-
हस्तग्रथितांश्छादितान् हिमरश्मिना । मयो ददर्श मायां वै
दानवान् दिवि दानवः ॥ २१ ॥सशिलाजालविततां गण्डशैला-
ट्टहासिनीम् । पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥ २२ ॥
सिंहव्याघ्रगजाकीर्णां नन्दतीमिव यूथपैः । ईहामृगगणाकीर्णां
पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥ २३ ॥ निर्मितां स्वेन पुत्रेण क्रौंचेन दिवि
कामगाम् । प्रसृतां पार्वतीं मायां ससृजे दानवोत्तमः ॥ २४ ॥
साश्मशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः । निजघ्ने देवसंघां-

पाशोंसे बँधे हुए दैत्य पक्षहीन पर्वतों की समान कुछ चेष्टा
न कर सके १८ शीतल किरणोंवाले (चन्द्रमा) के ताड़न करने
पर जाड़ेसे अकड़ते हुए गर्मीरहित अग्नियोंकी समान शान्त
होने लगे ॥१९॥ तब तो स्वर्गमें दैत्योंके विचित्र विमान निष्प्रभ
से होकर गिरने लगे और उछलने लगे ॥ २० ॥ जब स्वर्गमें
मय दानवने दानवोंको चन्द्रमाकी किरणोंसे और वरुणके पाशों
से बँधा हुआ देखा और अपनी मायाको भी नष्ट होते हुए
देखा ॥ २१ ॥ तब उस दानवोत्तमने अपने पुत्र क्रौंचकी रची
हुई पार्वती मायाको फैलाया, उसमेंसे शिलाओंकी बौछारे पड़ने
लगीं और वह गण्ड—शैलोंसे अट्टहास करने लगी उसमें वृक्ष
रूपी उत्कट शिखर लगे हुए थे और उसमें कन्दराओंसे पूर्ण
वन बने हुए थे२२उसमें सिंह व्याघ्र और हाथी भर रहे थे और
उसमें हाथियोंकी चिंघाड़की समान शब्द होरहा था उसमें पशु-
ओंके चित्र विचित्र चित्र वन रहे थे और उसमेंके वृक्ष आँधीसे
झँझोड़े जारहे थे २३-२४ उस समय मय दानव अड़ड़ शब्द

स्तान् दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२५॥ निशाकरी वारुणी च माये-
न्तर्दधतस्ततः । अश्मभिश्चायसघनैः किरन देवगणान् रणे २६
साश्मसंघातविषमा द्रुमपर्वतसंकटा । अभवद्घोरसंचारा पृथिवी
पर्वतैरिव॥२७॥नानाहतोश्मभिः कश्चिच्छिलाभिश्चाथ ताडितः।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत संयुगे ॥ २८ ॥ तदपभ्रष्टधनुर्णं
भग्नप्रहरणाविलम् । निःप्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम्
स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत । सहिष्णुत्वाज्जग-
त्स्वामी न चुक्रोधगदाधरः ॥ ३० ॥ कालज्ञः कालमेघाभः समी-
क्षत् कालमाहवे । देवासुरविमर्दं स द्रष्टुकामो जनार्दनः ॥ ३१ ॥

के साथ शिला और वृक्षोंको गिरा कर देवताओंकी टोलियोंको मारने लगा इससे दानवोंके चित्तमें कुछ बल आया २५ सब दानव वरुणकी और चन्द्रमाकी मायाको दवा कर पत्थर और लोहेके घन देवताओं पर बरसाने लगा२६ जैसे पर्वतोंके कारण पृथ्वी पर चलना कठिन पड़ता है इसी प्रकार पत्थरोंके ढेरसे रणभूमि विषम होगई और वृक्ष तथा पर्वतोंके कारण उस पर चलनेसे संकट पड़ने लगा २७ उस समय युद्धमें ऐसा कोई देवता नहीं दीखता था जिसके शरीर पर पत्थर न पड़े हों या बड़े २ पत्थर न पड़े हों और ऐसा भी कोई देवता नहीं दीखता था जिसके मार्गको वृक्षोंने न रोक रक्खा हो २८ उस समय केशवके अतिरिक्त देवसेनामेंसे और सबके धनुष छूट गए थे और सेनादल टूटे फूटे आयुधोंसे गदलासा होरहा था और सब सेना निश्चेष्ट सी पड़ी हुई थी२९श्रीमान् प्रभु गदाधारी श्रीकृष्ण जो जगत्के स्वामी हैं सहिष्णु होनेके कारण उन्होंने उस समय भी क्रोध नहीं किया ॥ ३० ॥ कालमेघकी समान आभा वाले समयको पहचानने वाले श्रीकृष्ण समय की बाट देखने लगे, जनार्दन श्रीकृष्ण देवता और असुरोंके संहारको देखना चाहते

ततो भगवतादिष्टौ रणे पावकमारुतौ । शमनार्थं प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया ॥ ३२ ॥ ततः प्रवृद्धावन्योन्यं प्रवृद्धौ ज्वालवाहिनौ । चोदितौ विष्णुवाक्येन तां मायां व्यपकर्षताम् ॥३३॥ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे । दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥३४॥ सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः । दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्त इव मूर्च्छितौ ॥३५॥ वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात् । चरेतुर्दानवानीके क्रीडन्तोवनलानिलौ ॥ ३६ ॥ भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च । दानवानां विमानेषु कृतकर्मणि पावके ॥ ३७ ॥ वातस्कन्धापविद्धेषु विमानेषु समन्ततः । मायाबन्धे विनिर्वृत्ते स्तूयमाने गदाधरे ॥३८॥ निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने । संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु

थे ३१ तदन्तर भगवान्ने मय दानवकी रची हुई बढ़ती हुई मायाको शान्त करनेके लिये अग्नि और पवनको आज्ञादी ३२ तदनन्तर ज्वालाको बहाने वाले वे दोनों पावक और पवन विष्णुकी आज्ञा पाकर उस मायाका संहार करने लगे ३३ उस पार्वती मायाको महायुद्धमें कोपमें भर कर बढ़ते हुए पावक और पवनने भस्म कर डाला; तब वह नष्ट होगई ॥ ३४ ॥ वायुसे मिलता हुआ अग्नि और अग्निसे मिलती हुई वायु इन दोनोंने प्रलयकालकी समान क्रोधमें भर कर दानव—सेनाको भस्म करना आरम्भ कर दिया ॥ ३५ ॥ दानवोंकी सेनामें पहिले तो आँधी चली फिर आग लग गई,इसप्रकार अग्नि और पवन दानवोंकी सेनामें क्रीड़ासी करने लगे ॥ ३६ ॥ इसप्रकार जब अग्निने अपना काम कर लिया तो दानवोंके विमान भस्म होकर गिर गए और उनकी धूल उड़ने लगी ॥ ३७ ॥ और पवनके झपाटेसे विमान टूट २कर गिरने लगे,इसप्रकार मायाके दूर होने पर गदाधर श्रीकृष्णकी प्रशंसा होने लगी ॥ ३८ ॥

साध्विति सर्वशः ॥ ३९ ॥ जये दशशताक्षस्य मयस्य च पराजये । दिक्षु सर्वासु श्रद्धासु प्रवृत्ते धर्मसंस्तरे ॥ ४० ॥ अपावृत्ते चन्द्रपथे अयनस्थे दिवाकरे । प्रकृतिस्थेषु लोकेषु नृषु चारित्रबन्धुषु ॥ ४१ ॥ अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने । यज्ञभागिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ॥ ४२ ॥ लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु । भावे तपसि शुद्धानामभावे दुष्टकर्मिणाम् देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति । त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ॥ ४४ ॥ अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे । स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु लोकेऽस्मिन्नाश्रमेषु च ॥ ४५ ॥ प्रजारक्षण-

---

जब दानवोंके प्रयत्न निष्फल होगए और त्रिलोकीका बन्धन जाता रहा और देवता प्रसन्न होकर साधु साधु कहने लगे ३९ सहस्र लोचन वाले इन्द्रकी जीत होगई और मय दानवका पराजय होगया, सब दिशाओंमें श्रद्धा और धर्म चलने लगा ४० चन्द्रमाका मार्ग साफ होगया और सूर्य अपने अयनमें स्थित होगए, मनुष्य प्रकृतिस्थ—स्वस्थ-होगए, मनुष्य सदाचारसे प्रेम करने लगे ॥ ४१ ॥ मृत्यु अपनी मर्यादामें चलने लगा, अग्निमें होम होने लगा, देवता यज्ञोंमें भाग पाने लगे और वे (पूजा करने पर) स्वर्गका मार्ग दिखाने लगे ॥ ४२ ॥ सब लोकपाल अपनी २ दिशाओंमें निर्भय होकर विचरने लगे शुद्ध पुरुषोंका तप करने पर अभ्युदय होने लगा और दुष्कर्मी पुरुषोंका कुकर्म करने पर नाश होने लगा ॥ ४३ ॥ देवताओंका दल प्रसन्न होने लगा और दानवोंका पक्ष खिन्न रहने लगा, धर्म त्रिपाद में वर्तमान रहने लगा और अधर्मका एकपाद ही बाकी रह गया ॥ ४४ ॥ मोक्षका द्वार खुलगया और सन्मार्गकी प्रवृत्ति होने लगी और लोकमें मनुष्य अपने २ आश्रम और वर्णधर्मका पालन करने लगे ४५ और राजे प्रजा पालन कर शोभा पाने

युक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु । गीयमानासु गाथासु देवसंस्तवनादिषु ॥४६॥ प्रशान्तकलुषे लोके शान्ते तपसि दारुणे। अग्निमारुतयोस्तस्मिन् वृत्ते संग्रामकर्मणि । तन्मया विमला लोकास्ताभ्यां जयकृतप्रियाः ॥ ४७ ॥ पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् । कालनेमिरिति ख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ॥ ४८ ॥ भास्कराकारमुकुटः शिंजिताभरणांगदः । मन्दराचलसंकाशो महारजतसंवृतः ॥ ४९ ॥ शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः । शतशीर्षा स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः ॥ ५० ॥ कक्षे महति संवृद्धो हिमान्त इव पावकः ॥ ५१ ॥ धूम्रकेशो हरितश्मश्रुदंष्ट्रालौष्ठपुटाननः । त्रैलोक्यान्तरविस्तारी धारयन् विपुलं वपुः ५२

लगा देवताओंके स्तोत्र गाये जाने लगे ४६ लोगोंका कलुष शान्त होगया और दारुण तप शान्त भावसे होने लगा, जब अग्नि और पवनने अपना काम करके दिखा दिया तब वे ही लोकोमें (पूजे जाने लगे) और जीतनेके कारण वे मनुष्योंके प्रिय होगए इस प्रकार संसार विमल होगया अर्थात् संसारमें शान्ति छा गई ४७ अग्नि और पवननें पूर्वदेव अर्थात राक्षसों को बड़ा दवाया है यह सुन कर कालनेमि नामसे प्रसिद्ध राक्षस प्रकट हुआ ॥४८॥ वह सूर्यकी समान आकारके मुकुटको पहिर रहा था और वह शब्द करने वाले नूपुर लगे हुए बाजूबन्दोंको पहर रहा था इस प्रकार वह मन्दराचल की समान चाँदीसे भर रहा था ॥ ४९ ॥ वह सौ आयुधोंको धारण करनेके कारण भयंकर हो रहा था उसके सहस्र भुजाऐं थीं और सौ मुख थे और वह श्रीमान् अपने सौ शिरोंसे शतशृंग पर्वतकी समान खड़ा हुआ था ॥ ५० ॥ और वह ग्रीष्म ऋतुमें फूँसमें लगे हुए पावककी समान दीख रहा था ॥ ५१ ॥ उसके केश धुमैले थे और उसकी मूँछे नीलीं थीं और उसकी डाढ़े उसके ओठोंके बाहर निकल रही थीं और

बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान् । ईरयन्मुख-
निःश्वासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकान् ॥ ५३ ॥ तिर्यगायतरक्ताक्षं
मन्दरोदग्रवर्चसम्।दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ५४
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश । सम्वर्तकाले क्षुधितं
दृप्तं मृत्युमिवोत्थितम् ॥ ५५ ॥ सुतलेनोच्छ्रितवता विपुलांगुलि-
पर्वणा । माल्याभरणपूर्णेन किंचिच्चलितवर्मणा ॥५६॥ उच्छ्रिते-
नाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता । दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्व-
मिति ब्रुवन् ॥५७॥ तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालसन्निभम् ।
वीक्षन्ति स्म सुराः सर्वे भयविक्लवलोचनाः ५८ तं स्म वीक्षन्ति
भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् । त्रिविक्रमं विक्रमंतं नारायणमिवा-

उसका बड़ा भारी शरीर त्रिलोकीमें फैल रहा था ॥ ५२ ॥ वह अपनी भुजाओंसे आकाशको तोलसा रहा था और अपने पैरों से पर्वतोंको फेंक रहा था और साँस लेकर वर्षा करने वाले मेघोंको चला रहा था ॥ ५३ ॥ उसके तिरछे नेत्रोंमें लाली छा रही थी और वह मन्दरोदग्रवर्चा (स्वर्गके इन्द्रकी समान कान्ति-मान्) था और वह रणमें आता हुआ ऐसा दीखता था मानो सब देवताओंको भस्म करना चाह रहा है ॥ ५४ ॥ वह देव-ताओंको धमकाने लगा और दशों दिशाओंको उठाये डालता था और प्रलयकालके भूंखे कालकी समान दीखता था ॥ ५५ ॥ उसकी हथेलियें उठी हुई थीं और उसकी अंगुलियोंकी गाँठें बड़ी मोटी थीं और उसका कवच मालाके गहनोंसे कुछ २ हिल रहा था ॥ ५६ ॥ वह अपने दक्षिण हाथकी अंगुलियोंको उठा कर देवताओंकी मारसे गिरे हुए दानवोंसे कहने लगा, कि-उठो! उठो !! ॥५७॥ शत्रुओंके लिये कालकी समान इस कालनेमिको समरमें आते देख कर सब देवताओंके नेत्र भयके मारे डरे हुए से होगए ॥५८॥ देवताओंने कदम रख कर आते हुए कालनेमिको

परम् ॥ ५६ ॥ सोच्छ्रयन् प्रथमं पादं मारुताघूर्णिताम्बरः । प्राक्रामदसुरो युद्धे त्रासयन् सर्वदेवताः ॥ ६० ॥ समयेनासुरेंद्रेण परिष्वक्तः क्रमन् रणे। कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मंदरः ६१ अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः । दृष्ट्वा कालमिवायान्तं कालनेमिं भयावहम् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच । दानवांश्चापि पिपीषुः कालनेमिर्महासुरः । व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥ १ ॥ त्रैलोक्यान्तर्गतं तं तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः । उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः प्राप्येवामृतमुत्तमम् ॥ २ ॥ ते भीता भयसन्त्रस्ता मयतारपुरोगमाः । तारकामयसंग्रामे सततं जयकाशिनः । रेजुरायोधनगता दानवा

कदम रखते हुए विष्णुकी समान ही समझा ॥ ५६ ॥ जिस समय उसनें पहिला कदम रक्खा उस समय उसकी धमकसे वायुसे आकाश भर गया इस प्रकार कदम रख कर वह असुर सब देवताओंको त्रास देने लगा ॥ ६० ॥ रणमें टहलते २ वह मय दानवके पास आ उससे चिपट गया उस समय वह मन्दराचलसे मिलते हुए विष्णुकी समान शोभा पाने लगा ॥ ६१ ॥ उस समय इन्द्र आदि देवता कालकी समान भय देने वाले कालनेमिको आते देख कर डरने लगे ॥ ६२ ॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ४६

वैशम्पायनजीने कहा, कि—महातेजस्वी कालनेमि नामक महाराक्षस दानवोंको पुष्ट करनेकी इच्छासे वर्षा ऋतुमें उठने वाले मेघकी समान उठा(बढ़ा)॥१॥ कालनेमिको तीनों लोकोंमें फैला हुआ देखकर वे दानवराज मानो अमृत मिल गया हो इस प्रकार परिश्रमरहित हो उठ खड़े हुए॥ २ ॥ इससमय मय तार आदिका भय और सन्त्रास दूर होगया था और वे तारकामय संग्राममें

युद्धकांक्षिणः ॥ ३ ॥ अस्त्रमभ्यस्यतां तेषां व्यूहं च परिधावताम् । प्रेक्षतां चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ॥ ४ ॥ ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः । तेऽपि सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥ ५ ॥ मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् । विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलंबावुभावपि ॥६॥ अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्ट्रौ तथैव च । स्वर्भानुश्चामरमख्यो वक्रयोधी महाबलः ॥ ७ ॥ एतेऽस्त्रविदुषः सर्वे सर्वे तपसि सुव्रताः। दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम्॥८॥ते गदाभिश्च गुर्वीभिश्चक्रैश्च सपरश्वधैः ।अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गंडशैलैश्च दंशितैः ६ पट्टिशैर्भिंदिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः । घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥ १० ॥ कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः । युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाग्रताडितैः ॥ ११ ॥ दोर्भिश्चायतपीनांसैः पाशैः प्रासैश्च मूर्च्छितैः । सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पद्भिश्च सायकैः ॥१२॥ वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च

जयकी इच्छा कर दमकने लगे और वे दानव युद्धकी आंकाक्षासे युद्धस्थलमें आ परम शोभा पाने लगे ३ वे कालनेमि दानवको देख प्रसन्न हो अस्त्रोंको उछालने लगे और व्यूहमें शैर करने लगे ४ उस समय मयके मुख्य २ सेनापति भी भय त्याग कर हर्षित होते हुए युद्ध करनेके लिये डट गए ५ श्रेष्ठ कालनेमिके पास मय तार वराह वीर्यवान् हयग्रीव विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत खर और लम्ब बलिका पुत्र अरिष्ट किशोर उष्ट्र देवताकी समान प्रसिद्ध स्वर्भानु और महाबली वक्रयोधी ये सब अस्त्रवेत्ता और तप करने वाले पुण्यवान् दानव पहुँच गए ॥ ६-८ ॥ वे सब दीप्त मन वाले और श्रेष्ठ आयुधोंको धारण करने वाले दानव हाथमें बड़ी २ गदा चक्र फरसा पहाड़की समान पत्थर घिसे हुए गण्डशैल पट्टिश भिन्दिपाल परिघ श्रेष्ठ २ आयुध कातिल

तोमरैः । विकोशैश्चासिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः १३
ते दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतोत्तमायुधाः । कालनेमिं पुरस्कृत्य तस्थुः
संग्राममूर्धनि ॥ १४ ॥ सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां शुशुभे चमूः ।
द्यौर्निमीलितनक्षत्रा सघनेवाम्बुदागमे ॥ १५ ॥ देवतानामपि चमू
रुरुचे शक्रपालिता । दीप्ता शीतोष्णतेजोभ्यां चन्द्रभास्करवर्चसा १६
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी । तोयदाविद्धवसना
ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥ १७ ॥ यमेंद्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता ।
संप्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा ॥ १८ ॥ सा समुद्रौघ-
सदृशी दिव्या देवमहाचमूः । रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्व-

और भारी बन्दूक कालकी समान मूसल गोंफनी मुद्गर धुरे यन्त्र हँडेले लेकर तथा लम्बी और मोटी २ भुजाओंसे प्रास पाश जीभ लपलपाते सर्प और बाण वज्र मारनेके चमकते हुए तोमर नङ्गी तेज तलवार और घिसनेके कारण चमकते हुए शूलोंको लेकर संग्राममें डट गए ॥६-१४॥ उस समय चमकते हुए अस्त्र शस्त्रोंको धारण करनेवाली दानवोंकी श्रेष्ठ सेना वर्षाकालमें जिन्होंने (देवरूप) नक्षत्रोंको ढक दिया हो ऐसे मेघोंवाले आकाशकी समान शोभा पाने लगी ॥ १५ ॥ इधर इन्द्रके रक्षा करने पर देवताओंकी सेना भी खिल रही थी और चन्द्रमा तथा सूर्यके शीत और उष्ण तेजसे दिप रही थी १६ उसमें मन्द २ वायु चल रहा था और उसमें नक्षत्ररूप झण्डे फहरा रहे थे और वह ग्रह तथा नक्षत्रोंसे हँस रही थी और मेघ उसके वस्त्रोंको छू २ जाते थे ॥ १७ ॥ यमराज देवराज और राजराज (कुबेर) उसकी रक्षा कर रहे थे और बुद्धिमान् वरुण भी उसकी रक्षा कर रहे थे उसमें प्रदीप्त तेज वाले अग्नि और पवन विद्यमान थे और वह सेना नारायणका भरोसा रखती थी ॥ १८ ॥ वह समुद्रके ओघ (प्रवाह) की समान

शालिनी ॥ १९ ॥ तयोश्चम्वोस्तदा तत्र बभूव स समागमः ।
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ॥ २० ॥ तद्युद्धमभ-
वद्घोरं देवदानवसंकुलम् । क्षमापराक्रममयं दर्पस्य विनयस्य च२१
निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु ताभ्यां भीमाः सुरासुराः । पूर्वापराभ्यां
संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ॥ २२ ॥ ताभ्यां बलाभ्यां
संहृष्टाचेरुस्ते देवदानवाः । वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां
यथा गजाः ॥ २३ ॥ समाजघ्नुस्ततो भेरीः शंखान् दध्मुश्च
नैकशः । स शब्दो द्यां भुवं चैव दिशश्च समपूरयत् ॥ २४ ॥
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च । दुन्दुभीनां निनदतां
दैत्यानां निर्दधुः स्वनान् ॥ २५ ॥ तेऽन्योन्यमभिसंपेतुः पात-

देवताओंकी दिव्य सेना यक्ष और गन्धर्वोंसे शोभा पारही थी१९
वह दोनों सेनाएँ प्रलयकालमें मिलते हुए पृथ्वी और आकाश
की समान (घोररूपसे) भिड़ गईं ॥ २० ॥ उस घोर युद्धमें
देवता और दानव व्याकुल होने लगे, देवता घमण्डी दानवों
पर क्षमापूर्वक प्रहार करते थे और दानव विनयी देवताओं पर
प्रहार करनेके बाद क्षमा करते थे ॥२१॥ जिसप्रकार पूर्व और
पश्चिमके समुद्रसे क्रोधमें भरे हुए बादल उठते हैं इसीप्रकार उन
देव दानवोंकी सेनामेंसे निर्भय देवता और दानव निकलने
लगे ॥ २२ ॥ जैसे फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंवाले दो पहाड़ी वनोंमें
से निकल कर हाथी फिरते हैं इसी प्रकार वे देव दानव हर्षमें
भरकर उन दोनों सेनाओंमेंसे निकल २ कर (युद्ध-) क्रीड़ा
करने लगे ॥ २३ ॥ वे दुन्दुभियों और शंखोंको लेकर बजाने
लगे, उस शब्दसे पृथ्वी आकाश तथा सब दिशाएँ भर गईं२४
(देवताओंके) प्रत्यञ्चाके घोष और धनुषके चर चर शब्दसे
तथा बजती हुई दुन्दुभियोंके शब्दसे दानवोंका शब्द दब गया२५
वे दोनों आपसमें भिड़गए और द्वन्द्व युद्ध करके एक दूसरेको

यन्तः परस्परम् । बभंजुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥२६॥
देवतास्त्वशनिर्घोराः परिघांश्चोत्तमायसान्। ससर्जुराजौ निस्त्रिं-
शान् गदा गुर्वीश्च दानवाः ॥२७॥गदानिपातैर्भग्नांगा बाणैश्च
शकलीकृताः । परिपेतुर्भृशं केचिन्न्युब्जाः केचित् ससर्जिरे २८
ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः । समीयुस्ते तु संरब्धा
रोषादन्योन्यमाहवे ॥ २९ ॥ संवर्तमानाः समरे विवर्ततस्तथा
परैः । रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदातश्च पदातिभिः ॥ ३० ॥ तेषां
रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् । बभूवाथ प्रसक्तानां
नभसीव पयोमुचाम् ॥ ३१ ॥ बभंजिरे रथान् केचित् केचित्
संमृदिता रथैः । सम्बाधमेके संप्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः ३२
अन्योन्यस्यासिसमरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः । संह्रादमाना-

---

गिराकर अपनी भुजाओंसे दूसरेकी भुजाओंको उखाड़ने लगे२६
देवता युद्धमें अशनि भयंकर परिघ और लोहेके शस्त्रोंका उप-
योग करने लगे और दानव तलवार और भारी गदायें घुमाने
लगे ॥२७॥ उस समय बहुतसोंके शरीर गदाकी चोटसे घायल
होगए और उनके बाणोंसे धुर्रे उड़गए, कोई२ धड़ामसे गिरगए
और कोई औंधे होकर गिर पड़े ॥२८॥ तदनन्तर वे सब कोपमें
भरकर रथ घोड़े और शीघ्रगामी विमानोंमें बैठकर आनेलगे२९
सन्मुख आनेवाले और भागते हुए रथियोंको और पैदलोंको
दूसरे रथी वा पैदल आकर रोक लेते थे ॥ ३० ॥ जैसे श्रावण
के बादल आकाशमें गड़गड़ाते हैं, इसीप्रकार झनझन कर
चलनेवाले रथोंका तुमुल शब्द होने लगा ॥ ३१ ॥ उनमेंसे
बहुतसे योधाओंने रथोंको तोड डाला और बहुतसे रथोंसे कुचल
गए और बहुतके रथ अडजाने पर टससे मस न हुए ॥ ३२ ॥
तलवार और ढालवाले सैनिक समरमें दर्पमें भरकर अपनी
भुजाओंसे दूसरे योधाओंको उठाकर फैंक देते थे, उस समय उनकी

भरणा.,जघ्नुस्तत्रासिचर्मिणः ॥ ३३ ॥ शस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि । चरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे ३४ तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् । देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ॥ ३५॥तद्दानवमहामेघं देवायुधतडित्प्रभम् । अन्योन्यबाणवर्षन्तं युद्धं दुर्दिनमाबभौ ॥३६॥ एतस्मिन्नंतरे क्रुद्धः कालनेमिर्महासुरः । व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥ तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः । गात्रे नगशिरप्रख्या विनिष्पेषुर्वलाहकाः ॥ ३८ ॥ क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः । साग्निनिष्पेषपवना मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ ३९ ॥

भुजाओंके गहने भी बजने लगतेथे ॥३३॥ जैसे बादल घिरकर वर्षा वरसाने लगते हैं,इसीप्रकार योधा भी शस्त्रोंसे घायल होने पर रक्त ओकने लगे ॥ ३४ ॥ इस समय उस युद्धमें अस्त्र गाँठे जाने लगे और योधाओंने गदा फेंक कर उस युद्धमें गड़बड़ी डाल दी तथा बहुतसे योधा उसमें गदा घुमाने लगे इसप्रकार वह देवदानवोंका युद्ध घोररूप धारण करने लगा । ३५ । वह दानवरूपी महामेघवाला और देवताओंके आयुधरूपी बिजलीकी चमकवाला आपसमें बाण वरसाता हुआ युद्धरूपी दुर्दिन शोभा देने लगा ३६इसी समय क्रोधमें भरा हुआ कालनेमि नामक राक्षस समुद्रके जलसे बढ़ते हुए बादलोंकी समान बढ़ने लगा ॥३७॥ जलती हुई अशनियोंको वरसानेवाले और चमकती हुई (आयुधरूप) बिजलियोंवाले (सेनादलरूप) पर्वतके शिखरकी समान मेघ कालिनेमके शरीरसे टकराते ही चूर्ण २ होजाते थे ३८ जिस समय वह क्रोधमें भरकर श्वास लेता था,उस समय उसकी भौंपर बल पडनेसे पसीना टपकने लगता था और उसके मुखमें से पवनसे मिली हुई अग्निकी लपट निकलती थी (अर्थात् वह बिजली चमकानेवाले और जल वरसानेवाले मेघसा दीखता

तिर्यगूर्ध्वं च गगने वव्रधुस्तस्य बाहवः। पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना इवोरगाः ॥ ४० ॥ सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि। दिव्यैराकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥ ४१ ॥ सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्राममूर्धनि। संध्यातपग्रस्तशिखः साक्षान्मेरुरिवाचलः ॥ ४२ ॥ ऊरुवेगप्रतिक्षिप्तैः शैलशृंगाग्रपादपैः। अपातयद्देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ॥ ४३ ॥ बाहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः। न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥४४॥ मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचिच्च विदलीकृताः। यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ॥ ४५ ॥ तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना। न शेकुर्यत्नवन्तोपि प्रतिकर्तुं विचेतसः ॥४६॥ तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितः शरबन्धनैः।

था) ३६उसकी भुजायें आकाशमें तिरछी और ऊपरको घूमने लगीं, उस समय वह पाँच मुखवाले जीभ लपलपाते हुए काले सर्पोंकी समान प्रतीत होती थीं ४० जैसे पर्वत ऊपरको उठकर आकाशको छा लेते हैं इसीप्रकार उसने नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र धनुष और परिघोंको उछालकर आकाशको छादिया ४१ पवनसे जिसका वस्त्र उड रहा था वह कालनेमि संध्याकालकी धूपसे घिरे हुए शिखरवाले मेरुपर्वतकी समान संग्रामके मुहाने पर डट रहा था ॥ ४२ ॥ वह अपनी जंघाओंसे पर्वतोंके शिखर और पेड़ोंको फैंक कर जैसे वज्रसे पर्वत ढाये जाते हैं, तिस प्रकार देवताओंको ढाने लगा ॥४३॥ युद्धमें कालनेमिके हाथसे शस्त्र और तलवारोंसे शिर और हृदयके घायल होने पर देवताओंमें हिलने डुलनेकी भी शक्ति न रही ॥ ४४ ॥ यक्ष और गन्धर्वपति तथा बड़े२सर्प कालनेमिके घूँसे खाकर और विशीर्ण होकर गिरने लगे ॥ ४५ ॥ जब समरमें कालनेमिने देवताओंको इस प्रकार पीटा तब उनका मन उदास होगया और वह समर्थ

ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह ॥४७॥ निर्जलांभोद-
सदृशो निर्जलार्णवसप्रभुः।निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो
मृधे ॥ ४८ ॥ रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कालरूपिभिः । व्यल-
पल्लोकपालेशस्त्याजितो धनदक्रियाम् ॥ ४६ ॥ यमः सर्वहर-
स्तेन दण्डप्रहरणो रणे । याम्यामवस्थां समरे नीतः स्वां दिश-
माविशत् ॥५०॥ स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषां च कर्म तत् ।
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा ॥ ५१ ॥ स नक्षत्र-
पथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शितम् । जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं
चास्य विषयं महत् ॥ ५२ ॥ चालयामास शीतांशुं स्वर्गद्वाराच्च

होने पर भी कुछ न कर सके ॥ ४६ ॥ उसने बाणोंका जाल
पूर कर सहस्राक्ष इन्द्रको घेरेमें डाल दिया, उस समय ऐरावत
पर बैठा हुआ इन्द्र चल न सका ॥ ४७ ॥ उसने वरुणके पाश
को छीन लिया उस समय वरुण निर्जल मेघकी समान होगए
और उनकी आभा भी जलरहित (श्वेत) मेघकी समान (फीकी)
पड़ गई और वह कुछ व्यापार (चेष्टा) न कर सके ॥ ४८ ॥
और जब उसने लोकपाल वरुणके कालकी समान पाश मारे
तब तो वरुण विलाप करने लगे और उन्होंने कुवेरका काम
करना छोड़ दिया ॥ ४६ ॥ और उसने रणमें सर्वहारी तथा
दण्डका प्रहार करनेवाले यमराजको भी याम्या दशामें लाडाला
था अर्थात् उसको अपने आप यमराज बन कर दण्ड दिया था
तब वह दक्षिण दिशामेंको चला गया ॥ ५० ॥ उसने इस
प्रकार सब लोकपालोंको पीट कर अपने शरीरको चार
भागोंमें विभक्त किया और अपने आप उनके काम करने लगा ५१
वह राहुके कहने पर नक्षत्रमार्गसे चन्द्रमाके पास पहुँचा और
उसकी लक्ष्मी तथा उसके पदको छीन लिया ॥ ५२ ॥ उसने
स्वर्गद्वारसे चन्द्रमा और सूर्यको ढकेल दिया और उनके

भास्करम् । सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ॥ ५३ ॥
सोऽग्निं देवमुखे दृष्ट्वा चकारात्ममुखे स्वयम् । वायुं च तरसा
जित्वा चकारात्मवशानुगम् ॥ ५४ ॥ स समुद्रात् समानीय
सर्वाश्च सरितो बलात्।चकारात्मवशे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः॥५५
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः । स्थापयामास
जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥ ५६ ॥ स स्वयंभूरिवाभाति महा-
भूतपतिर्महान् । सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः ॥ ५७ ॥
सलोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान् । पावकानिलसंघातो रराज
युधि दानवः ॥५८॥ पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवा-
व्यये । तुष्टुवुस्तं दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥ ५९ ॥

सायन और दिनकर्मको अपने आप करने लगा ॥ ५३ ॥ उसने अग्निको देवताओंके मुखमें देख कर अपने ही मुखमें धर लिया और उसने वायुको बलपूर्वक जीत कर अपने वशमें कर लिया ॥ ५४ ॥ उसने समुद्रमेंसे सब नदियोंको बुला कर बल-पूर्वक अपने वशमें कर लिया और शरीरधारिणी नदियोंको भी अपने वशमें कर लिया ॥ ५५ ॥ जो जल भूमिमें हैं और जो जल स्वर्गमें हैं उन सबको अपने वशमें करके वह सर्पोंसे पृथ्वी को धारण करा कर उसका पालन करने लगा ॥ ५६ ॥ सब लोकोंको भय देने वाला और (पञ्च) महाभूतोंका पति तथा सब लोकोंमें व्याप्त वह दैत्य स्वयंभु (ब्रह्मा) की समान शोभा पाने लगा ॥ ५७ ॥ वह दानव सब लोकपालोंका एक शरीर से ही काम करने लगा और चन्द्र सूर्य तथा ग्रहोंमें अपने शरीर से काम करने लगा और पावक तथा अनिलका संघात धारक वह असुर युद्धमें शोभा पाने लगा ॥ ५८ ॥ वह लोकोंका संहार और रचना करने वाले परमेष्ठी (ब्रह्मा) के स्थान पर प्रतिष्ठित होगया तब दैत्य पितामहकी समान उसकी स्तुति करने लगे ५९

वैशम्पायन उवाचाच ।पञ्च तं नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा। वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥ १ ॥ स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दानवेश्वरः । वैष्णवं पदमन्विच्छन् ययौ नारायणान्तिकम् ॥२॥ स ददर्श सुपर्णस्थं शंखचक्रगदाधरम् । दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥३॥ सजलांभोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् । स्वारूढं स्वर्णपत्राढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम् ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे सुस्थमवस्थितम् । दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः ॥ ५ ॥ अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां दानवर्षिणाम् । अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥ ६ ॥ अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल

वैशंपायनजी बोले कि—विपरीत (असात्विक) कर्मके कारण वेद धर्म क्षमा सत्य और नारायणके आश्रयसे रहने वाली लक्ष्मी ये पाँच उसके पास नहीं आये १ वेद आदिके न आनेसे वह दानवेश्वर क्रोधमें भर गया और वैष्णव पदको प्राप्त करनेकी इच्छासे विष्णुके पास चला २ तहाँ उसने नारायणको शंख चक्र और गदा धारण कर गरुड पर बैठे हुए देखा वह दानवों का नाश करनेके लिये शुभ गदाको घुमा रहे थे ॥ ३ ॥ उनकी कान्ति जलसे भरे हुए मेघकी समान दमक रही थी और उनका वस्त्र बिजलीकी समान चमकदार था और वह कश्यपपुत्र सुवर्णके पक्ष वाले गरुड़पक्षी पर अच्छी प्रकार चढ़े हुए थे ॥ ४ ॥ वह दैत्योंका विनाश करनेके लिये स्वस्थ चित्तसे खड़े२(विचार कर रहे) थे यह देख कर किसीसे क्षोभ न पाने वाले विष्णुके (सामने) मनमें क्षुब्ध होकर उस दानवने कहा,कि– ५ यह हमारे पहिले दानवर्षियोंका शत्रु है और यह समुद्रमें रहने वाले मधु और कैटभका भी शत्रु है ६ यह बात प्रसिद्ध है कि-दानव समरमें इसको ही नहीं मार सकते, इसने पहिले युद्धमें हमारे

कथ्यते । येन नः संयुगेष्वाद्या बहवो दानवा हताः ॥ ७ ॥ अयं स निर्घृणो युद्धेस्त्री बालनिरपत्रयः येन दानवनारीणां सीमंतोद्धरणं कृतम् ॥ ८ ॥ अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम् । अनन्तो भोगिनामप्सु स्वयम्भूश्च स्वयंभुवः ॥ ९ ॥ अयं सनाथो देवानामस्माकं विप्रिये स्थितः।अस्य क्रोधेन महता हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १० ॥ अस्य छायां समासाद्य देवा मखमुखे स्थिताः । आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ११ अयं स निधने हेतुः सर्वेषां देवविद्विषाम् । यस्य तेजः प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥ १२ ॥अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः । सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥ १३ ॥ अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते । अतिक्रान्तस्य

बहुतसे दानवोंको मार डाला है ७ यह युद्धमें निर्दय होजाता है यह अस्त्रधारी है और यह बालककी समान निर्लज्ज भी है इसने दानवोंकी स्त्रियोंके केश मुँडवा दिये थे ८ (अदितिके पुत्र) देवताओंमेंका विष्णु (वामन) यही है और यह (वसु रुद्र आदि) वैकुण्ठमें रहने वालोंका वैकुण्ठ है अर्थात् कल्पान्तमें भी इनका धाम अकुण्ठित रहता है, यह सर्पोंमें अनन्तस्वरूप है और यह ब्रह्माका भी ब्रह्मा है ॥९॥ देवता इससे सनाथ रहते हैं और यह हमारी बुराई ही करता रहता है, इसके परम क्रोध करनेपर हिरण्यकशिपु मारा गया था १० देवता इसके पक्षका आश्रय कर यज्ञके मुख (अग्नि) में महर्षियोंके होमे हुए (नित्य नैमित्तिक और काम्य इन) तीन प्रकारके आज्यको खाते हैं ११ यही सब देवद्वेषियोंको मारनेमें मुख्य है, युद्धमें हमारे कुल इसके तेजमें ही समा जाते हैं १२ यह देवताओंके लिये अपने प्राणोंका भी मोह छोड़ कर युद्ध करता है और यह सूर्यकी समान तेजस्वी चक्र शत्रुओं पर छोड़ता है १३ यह दैत्योंका कालरूप

कालस्य फलं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ १४ ॥ दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः अद्य मद्बाणनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति १५ यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामथ संयुगे । इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥ १६ ॥ क्षिप्रमेव वधिष्यामि रणे नारायणाश्रितान् । जात्यन्तरगतोऽप्येष मृधे बाधति दानवान् ॥१७॥ एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति स्मृतः । जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ । विनिवेश्य स्वके ऊरौ निहतौ दानवेश्वरौ ॥ १८ ॥ द्विधा भूतं वपुः कृत्वा सिंहार्धं नरसंस्थितम् । पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ १६ ॥ शुभं गर्भमधत्तेममादितिर्देवतारणिः । यज्ञकाले बलेर्योगं कृत्वा वामनरूप-

है, परन्तु यह शुष्क कालरूपके हाथसे (दैत्योंके वध रूप) मर्यादाका उल्लंघन करनेके फलको पावेगा अर्थात् में इसको मार डालूँगा १४ यह विष्णु प्रारब्धवश ही मेरे सामने पड़ गया है, मेरे बाणोंसे पीड़ा पाकर यह आजही मुझे प्रणाम करेगा १५ मैं दानवोंको भय देने वाले इस नारायणको मार कर आज पहिले युद्धोंमें (मारे गए) राक्षसोंको सन्तुष्ट करूँगा ॥ १६ ॥ मैं नारायणका आश्रय लेने वालोंको रणमें मार डालूँगा, यह तो (मत्स्य आदि) दूसरी जातिके रूपको धारण कर भी राक्षसों को मार डालता है ॥ १७ ॥ यह आकाशकी समान व्यापक थे तब भी इन्होंने पद्मनाभ होकर पद्मनाभ नाम पाया था, इसने जलमय समुद्रमें दानवेश्वर मधु और कैटभको अपनी जाँघ पर रखकर मारडाला था ॥ १८ ॥ और इसने अपने शरीरको आधा सिंह और आधा मनुष्य इस प्रकार दो प्रकारका करके मेरे पिता हिरण्यकशिपुको भी पहिले मार डाला था ॥ १६ ॥ देवताओंकी अरणि (उत्पत्तिस्थान) अदितिने इसके शुभ गर्भ को धारण किया था इसने बलिके यज्ञके समय अपने रूपको

ताम् । त्रींल्लोकानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥ २० ॥
भूयस्त्विदानीं समरे संप्राप्ते तारकामये । मया सह समागम्य
सह देवैर्विनंक्ष्यति ॥ २१ ॥ स एवमुक्त्वा बहुधा क्षिपन्नारा-
यणं रणे । वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२॥ क्षिप्य-
माणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः । क्षमाबलेन महता सस्मितं
वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ अल्पदर्पबलो दैत्य: स्थितः क्रोधादसद्व-
दन् । हतस्त्वमात्मनो दोषैः क्षमां योऽतीत्य भाषसे ॥ २४ ॥
अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम् । न तत्र पुरुषाः सन्ति
यत्र गर्जन्ति योषितः ॥ २५ ॥ अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां
मार्गगामिनाम् ।प्रजापतिकृतं सेतुं को भित्त्वा स्वस्तिमान् भवेत् २६

वामन बना कर तीन पैर रख कर तीनों लोकोंको नाप लिया था २० परन्तु इस समय तारकासुरसंग्राममें यह फिर आगया है,सो मेरे साथ युद्ध करते ही यह और देवता नष्ट होजावेंगे २१ इस प्रकार बहुतसी बातोंमें उसने नारायणके ऊपर आक्षेप किये फिर वह अनुचित बातें कह कर युद्ध करना चाहने लगा २२ श्रीकृष्णने असुराजके आक्षेप करने पर भी क्रोध नहीं किया और बड़े भारी क्षमाबलको धारण कर मुस्करा कर यह बात कहने लगे २३ अरे दानव ! तुझमें अभिमानका बल तो थोड़ा सा ही है और तू क्रोधमें भर कर गालियें बक रहा है अतः तू तो अपने दोषोंसे ही मरा हुआ,है क्योंकि- तू क्षमाको त्याग कर भाषण कर रहा है २४ मैं तुझे अधम मानता हूँ, तेरे इस वाग्बलको धिक्कार है, जहाँ पर स्त्रियें गर्जती हैं,वहाँ समझना चाहिये कि-कोई पुरुष होगा ही नहीं ? (अर्थात् तू मेरे सामने गर्ज रहा है, अतः तेरा नाश होगा) २५ हे दानव ! मुझे तो यह दीख रहा है, कि-तू भी पहिले दैत्योंकी गतिको पावेगा ! क्यों कि-प्रजापतिकी बाँधी हुई मर्यादाको तोड़ कर कौन कल्याण

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारकारकम् । स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं ब्रुवति तद्वाक्यं मृधे श्रीवत्सधारिणि । जहास दानवः क्रोधात् हस्तांश्चक्रे च सायुधान् ॥ २८ ॥ स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे । क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत् ।२९। दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः । उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृष्ट्वा विष्णुमथाद्रवन् ॥३०॥ स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः । न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः॥३१॥ संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः । सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥ ३२ ॥ मुमोच तूलितां घोरां संरब्धो गरुडोपरि । कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमपागतः ॥ ३३ ॥ यदा तस्य

पासकता है ? २६ मैं तुझ देवताओंका अपकार करने वालेको आज मार डालूँगा और देवताओंको उनके पदों पर प्रतिष्ठित करूँगा २७ वैशंपायनजीने कहा, कि– जब युद्धमें श्रीकृष्ण यह बात कह रहे थे तब तो वह दानव क्रोधमें भर कर हँसा और उसने अपने हाथोंमें हथियार पकड़ लिये २८ उसने क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर अपने सब आयुधोंको धारण करनेमें समर्थ सौ हाथोंको उठा कर उनके वक्षःस्थल पर मारा २९ उधर मय तार आदि दानव भी विष्णुको देखते ही अपने २ आयुधोंको लेकर दौड़ पड़े ३० परन्तु अतिबली और आयुध उठा कर आने वाले उन राक्षसोंके प्रहार करने पर भी विष्णु न काँपने वाले पर्वत की समान विचलित नहीं हुए ३१ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे हुए अमित पराक्रमी महादैत्य कालनेमिने गरुड़के पास जा पूर्ण बलके साथ अपनी गदाको उठा कर गरुड़के ऊपर प्रहार किया दानवके इस कर्मसे विष्णुको आश्चर्य हुआ ॥ ३२-३३ ॥ जिस समय वह गदा गरुड़के मस्तक पर पड़ी उस समय गरुड़का

सुपर्णस्य पतिता मूर्ध्नि सा गदा । तदाऽगमत् पद्‌भ्यां भूमिं पक्षी व्यथितविग्रहः ॥ ३४ ॥ सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः । क्रोधात् संरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ॥ ३५ ॥ व्यवर्धत च वेगेन सुपर्णेन समं प्रभुः । भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ॥ ३६ ॥ स दिशः प्रदिशश्चैव खं च गां चैव पूरयन् । ववृधे स पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ॥ ३७ ॥ तं जयाय सुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले । ऋषयः सह गन्धर्वैस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३८ ॥ स द्यां किरीटेन लिखन् साभ्रमम्बरमम्बरैः । पद्‌भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ॥ ३६ ॥ सूर्यस्य रश्मितुल्याभं सहस्रारमरक्षियम् । दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनीयं सुदर्शनम् ॥ ४० ॥ सुवर्णनेमिपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् । मेदो-

---

शरीर भिन्ना गया और वह पैरोंके बल पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३४ ॥ गरुड़को व्यथित देख कर और अपने (दूसरे शरीररूप गरुड़के) शरीरको घायल देख कर श्रीकृष्णके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगए और उन्होंने चक्र उठा लिया ॥ ३५ ॥ तब विष्णु वेगपूर्वक सुपर्णकी समान बढ़ने लगे और दशों दिशाओंमें उनकी भुजाएँ भी बढ़ने लगीं ॥ ३६ ॥ जिस समय वह दिशा विदिशा आकाश और पृथ्वीमें पूर्ण होते हुए बढ़ने लगे उस समय ऐसा प्रतीत होता था, कि—मानो वह ओजमें भर कर लोकोंको दुबारा नापना चाहते हैं ॥ ३७ ॥ देवताओंको जितानेके लिये विष्णुको आकाशमें बढ़ते देख कर ऋषि और गंधर्व उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ उस समय श्रीकृष्णके मुकुटसे स्वर्ग कुरदने लगा और उनके वस्त्रोंसे आकाश मेघवालासा दीखने लगा उन्होंने अपने चरणोंसे पृथ्वीको नाप लिया और अपनी भुजाओंसे दिशाओंको भर दिया ॥ ३६ ॥ फिर गदाधरने सूर्यकी किरणोंकी समान आभा वाले, सहस्र अरे वाले, प्रदीप्त अग्निकी समान

मज्जास्थिरुधिरैर्दिग्धं दानवसंभवैः ॥ ४१ ॥ अद्वितीयं प्रहारेषु क्षुरपर्यन्तमण्डलम् । स्रग्दाममालावितितं कामगं कामरूपिणम् ॥ ४२ स्वयं स्वयंभुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् । महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् ॥ ४३ ॥ क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः । क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महाहवे ॥ ४४ ॥ तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा । चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ॥ ४५ ॥ संमुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा । चिच्छेद बाहूँश्चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः ॥ ४६ ॥ तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निचूर्णाट्टहासिनम् । तस्य दैत्यस्य चक्रेण

घोर दर्शनीय सुदर्शन चक्रको (हाथमें उठा लिया) ॥ ४० ॥ उस चक्रकी नेमि सुवर्णकी थी नाभि वज्रकी समान दृढ़ थी और वह दानवोंके मेद मज्जा हड्डी और रुधिरसे सन रहा था ४१ वह प्रहार करनेमें अद्वितीय था और उसके मण्डल तक छुरा लगा हुआ था और वह (घुमाने पर) मालाओंकी लड़ीकी समान (बरेंटीकी समान) दीखता था और इच्छानुसार चलता था और इच्छानुसार रूप धारण करलेता था ४२ ब्रह्माजीने अपने आप ही उसको बनाया था और वह शत्रुओंको भयभीत कर देता था महर्षि उस चक्रके आस पास विराजमान रहते थे और वह युद्धमें सदा गर्वीला बन जाता था ४३ उसके फेंकनेके समय स्थावर जंगमात्मक सब लोक मोहमें पड़ जाते थे और कच्चे मांसको खाने वाले प्राणी तृप्त होते थे ४४ ऐसे अनुपम कर्म करने वाले और सूर्यकी समान कान्ति वाले चक्रको क्रोधमें भरे श्रीकृष्णने ऊपरको उठाया ४५ श्रीधरने उस चक्रसे कालनेमिकी भुजाओंको काट डाला इसप्रकार उन्होंने अपने तेजसे दानवके तेजको हर (दबा) लिया ४६ तदनन्तर श्रीकृष्णने बलपूर्वक चक्र मार कर उसके साग्निचूर्णाट्टहासी सौ मुखोंको नष्ट कर डाला (अर्थात्

ममाथ बलाद्धरिः ॥ ४७ ॥ स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः । कबन्धावस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः ॥ ४८ ॥ तं वितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम् । उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् ॥ ४९ ॥ स तस्य देहो विमुखो विशाखः खात् परिभ्रमन् । निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम् ॥ ५० ॥ तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा । साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् ॥ ५१ ॥ अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दुष्टपराक्रमाः । ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ॥ ५२ ॥ कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेऽभ्यपीडयत् । पाटयत् कस्यचिद्वक्त्रं मध्ये कांश्चिदथाग्रहीत् ॥ ५३ ॥ ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गता-

उनकी औषधियोंके कारण गोला फेंकते समय शब्द करने वाली सौ तोपोंकी समान उसके गोले फेंकने वाले मुखों को नष्ट कर डाला ४७ परन्तु वह दानव शिर और भुजाओंके कटने पर भी नहीं काँपा शाखा कटे हुए ठूँठ वृक्षकी समान कबंधमात्रसे ही युद्धमें खड़ा रहा ४८ तब तो गरुड़ जी पर फैला कर वायुकी समान वेगसे कालनेमिके पास गए और उसको अपने वक्षःस्थलकी टक्कर मार कर गिरा दिया ४९ उस समय उसका शिर और भुजारहित शरीर स्वर्गको त्याग आकाशमेंसे पृथ्वीको दहलाता हुआ गिर पड़ा ५० उस दानवके गिरने पर देवता और ऋषियोंने एकत्रित हो विष्णुकी साधु साधु कह कर पूजाकी ॥ ५१ ॥ इसके अतिरिक्त और जो दूषित पराक्रम करने वाले दैत्य थे उनको श्रीकृष्णने अपने भुजाओंसे दबा रक्खा था, अतः वह समरमें हिल डुल भी न सके॥५२॥ श्रीकृष्णने बहुतसे दैत्योंको केश पकड़ कर घसीट डाला और बहुतसे दैत्योंके गले घोट दिये और बहुतसोंके मुखोंको कुचल दिया और बहुतसे दैत्योंकी पीठ

सवः । गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ॥ ५४ ॥तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः । तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ॥ ५५ ॥ तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये । तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५६ ॥ सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वैः साप्सरोगणैः । देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ ब्रह्मोवाच । कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् । वधेनानेन दैत्यानां वयं हि परितोषिताः ॥ ५८ ॥ योऽयं हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुरः । त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ॥५९॥एष देवान् परिभवन् लोकांश्च सचराचरान् । ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ॥६०॥ तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोस्मि कर्मणा । यदयं कालतुल्याभः

पकड़ कर तोड़दी ॥५३॥ गदा चक्रसे राक्षसोंके शरीरकी धूल २ होगई, उन का सत्त्व जाता रहा और वे मर गए और उनके अंग प्रत्यंग अलग२ होकर आकाशमेंसे पृथ्वी पर गिरने लगे ॥५४॥ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण उन सब दानवोंके मारेजाने पर शक्र का प्रिय कर अपने कामको कर चुके ॥५५॥ तारकामय संग्रामके निबटने पर लोकपितामह ब्रह्मा शीघ्रही तहाँ पहुँचे ॥५६॥ तदनन्तर उन देवदेवने तथा ब्रह्मर्षि गंधर्व और अप्सराओंने विष्णु देवकी पूजा कर यह बात कही ॥५७॥ ब्रह्माजीने कहा, कि– आपने बड़ा भारी कर्म किया है आपने देवताओंका काँटा निकाल डाला है,आपने इस दानवका वध करके हमें परम सन्तुष्ट किया है ॥५८॥ हे विष्णो ! आपने जिस कालनेमि राक्षसको मार डाला है ? इसको युद्धमें एक आप ही मार सकते थे दूसरा और कोई इसको मारने वाला नहीं दीखता ५९ यह चर अचर सब लोकोंका तिरस्कार करता था और यह ऋषियोंका संहार कर मेरे सामने भी गर्जना किया करता था ॥ ६० ॥ अतः

कालनेमी निपातितः ॥ ६१ ॥ तदाऽगच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम् । ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ॥६२॥ अहं महर्षयश्चैव तत्र त्वां वदताम्वर । विधिवच्चार्चयिष्यामो गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत ॥ ६३ ॥ किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर । सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥ ६४ ॥ निर्यातयैतत् त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् । अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥ ६५ ॥ एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः । देवाञ्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥६६॥ विष्णुरुवाच । श्रूयतां त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः । श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ॥ ६७ ॥ अस्मिन्नः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः । दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि मह-

आपने जो कालकी समान आभा वाले कालनेमिको मार डाला आप के इस उग्र कर्मसे मैं परम सन्तुष्ट हुआ हूँ ॥ ६१ ॥ अतः आप उत्तम स्वर्गमें आइये, हम भी तहाँ जा रहे हैं तहाँ पर बैठ कर ब्रह्मर्षि आपकी बाट देख रहे हैं॥६२॥ हे अच्युत ! मैं और ब्रह्मर्षि तहाँ ही दिव्य वाणीसे आपकी पूजा करेंगे६३ और वर धारण करने वालोंमें श्रेष्ठ ! मैं आपको क्या वर दे सकता हूँ, क्योंकि–आप अच्छे २ देवता और दानवोंको भी वरदान देते हैं ॥ ६४ ॥ आपने इस युद्धमें त्रिलोकीको कण्टक रहित कर दिया है अतः इस त्रिलोकीके स्फीत राज्यको महात्मा शक्रको देदीजिये ॥ ६५ ॥ भगवान् ब्रह्माने अव्यय हरिसे इस प्रकार कहा तब वह इन्द्र आदिसे शुभ वाणीमें कहने लगे, कि–॥ ६६ ॥ विष्णुने कहा, कि–जितने देवता यहाँ आये हैं, वे इन्द्र आदि सब देवता मेरा वाक्य सुननेके लिये अपनी इन्द्रियों को सावधान करके मेरे वाक्यको सुनें६७इस समरमें हमने इन्द्रसे भी अधिक पराक्रमी बड़े २ बली कालनेमि आदि दानवोंको

सुराः ॥ ६८ ॥ तस्मिन् महति संक्रन्दे द्वावेव तु विनिःसृतौ । वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥६९॥ तदिष्टां भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च । याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः ॥ ७० ॥ ऋक्षैः सह यथायोगं काले चरतु चन्द्रमाः । अब्दं ऋतुमुखं सूर्यो भजतामयनैः सह ॥ ७१ ॥ आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः । हूयन्तामग्नयो विप्रैर्दृष्टेन कर्मणा ॥७२॥ देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः । श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम् ॥ ७३ ॥ वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः । त्रयो वर्णाश्च लोकांस्त्रीन् वर्धयन्त्वात्मजैर्गुणैः ॥ ७४ ॥ क्रतवः संप्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः । दक्षिणाश्चोपवर्तन्तां यथार्हं सर्वसत्रिणाम् ॥ ७५ ॥ गाश्च सूर्यो

मार डाला है ॥६८॥ इस बड़े भारी युद्धमेंसे दानवेन्द्र वैरोचन बलि और महाग्रह स्वर्भानु ये दोही बच गए हैं ॥ ६९ ॥ अब इन्द्र अभिलषित (पूर्व) दिशाका पालन करे, वरुण पश्चिम दिशाका पालन करें और यम दक्षिण दिशाका पालन करें और कुबेर उत्तर दिशाका पालन करे । ७० । चन्द्रमा यथासमय नक्षत्रोंके साथ भ्रमण करें और सूर्य ऋतु और (दक्षिण और उत्तर) अयनों पर वर्षके साथ विचरण करें । ७१ । सदस्य पूजा करके आज्यभागोंको प्रचलित करें, और ब्राह्मण वेदशास्त्रानुसार कर्म करके अग्निमें होम करें ॥ ७२ ॥ देवता बलिदानसे तृप्त हों, महर्षि स्वाध्यायसे तृप्त हों और पितर जिस प्रकार सुख उनको मिले तिस प्रकार श्राद्धसे तृप्त हों॥७३॥मार्गमें स्थित वायु चले और अग्नि (गार्हपत्य दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन) तीन रूपोंसे प्रज्वलित हो और तीनों लोक तथा तीनों वर्ण अपने गुणोंसे बढ़ें ॥७४॥ दीक्षा लेने योग्य द्विजाति यज्ञोंको करें और सब सदाचार वाले अपनी शक्तिके अनुसार

रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु । तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां शिवैः सौम्यैश्च कर्मभिः ॥७६॥ यथावदनुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवाः। त्रैलोक्यमातरः सर्वाः सागरं यान्तु निम्नगाः॥७७॥ दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः ।स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ७८ ॥ स्वगृहे सर्वलोके वः संग्रामे वा विशेषतः । विश्रम्भो हि न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः ॥७९॥ छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा । सौम्यानामृजुभावानां भवतां चार्जवा मतिः ॥ ८० ॥ अहं तु दुष्टभावानां युष्मासु सुदुरात्मनाम् । असम्यग्वर्तमानानां मोहं दास्यामि देवताः ॥ ८१ ॥ यदा च सुदुराधर्षं दानवेभ्यो भयं भवेत् । तदा समुपगम्याशु विधास्ये वस्ततोऽभयम् ॥ ८२ ॥ वैशम्पायन उवाच । एव-

---

दक्षिणा देवें ॥ ७५ ॥ अपने कल्याणमय और सौम्य कर्मोंसे सूर्य चक्षु इन्द्रियोंको तृप्त करे, सोम रसोंको पुष्ट करे और वायु प्राणियोंके प्राणोंको पुष्ट करे॥ ७६ ॥ महेन्द्रपर्वतके जलसे उत्पन्न होने वाली त्रिलोककी माताएँ नदियें समुद्रको जावें ७७ हे देवताओं ! अब तुम दानवोंका डर छोड़ दो और शान्ति पाओ।हे देवताओं।मैं अब सनातन ब्रह्मलोकको जाता हूँ,तुम्हारा कल्याण हो७८तुम दानवोंका अपने घरमें और संग्राममें तो विशेषतः कभी विश्वास न करना, क्योंकि-दानव सदा क्षुद्रताका वर्ताव करते हैं७९ये तो छिद्र (दोष)देखते ही प्रहार कर बैठते हैं इनकी (मित्रता) स्थिति पक्की नहीं है और तुम्हारा स्वभाव तो सौम्य और सरल है अतः तुम्हारी बुद्धि भी सरल ही है८० हे देवताओं।मैं तो दुष्ट स्वभाव वाले और तुमसे दुरात्मता करने वाले और अनुचित वर्ताव करने वालोंको मोहमें डाल देता हूँ ॥८१॥ और अब जब तुम पर दानवोंकी ओरसे बडी भारी आपत्ति आकर पड़ेगी तब मैं शीघ्रतासे आकर तुमको अभय-

मुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः । जगाम ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं महायशाः ।८३। एतदाश्चर्यमभवत् संग्रामे तारकामये । दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिवधो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८।

जनमेजय उवाच । ब्रह्मणा देवदेवेन सार्धं सलिलयोनिना । ब्रह्मलोकगतो ब्रह्मन् वैकुण्ठः किं चकार ह ॥१॥ किमर्थं चापि देवेन नीतः कमलयोनिना । विष्णुर्दैत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रियः ॥२॥ ब्रह्मलोके च किं स्थानं कं वा योगमुपास्त सः । कं वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः ॥ ३ ॥ कथं तस्यासतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत् । श्रियमाप्नोति विपुलां सुरासुरनरा-

---

दान दूँगा ॥ ८२ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि सत्यपराक्रमी महायशस्वी विष्णु देवताओंसे इसप्रकार कह कर ब्रह्माजीके साथ २ चले गए ॥ ८३ ॥ हे जनमेजय ! तुमने मुझसे जिस (आश्चर्य)को बूझा था सो यह विष्णु और दानवोंके तारकामय संग्राममें आश्चर्यजनक घटना घटी थी ॥ ८४ ॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

जनमेजयने कहा, कि-हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णने सलिलयोनि देवदेव ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर क्या किया था ॥१॥ देवता जिनका सत्कार करते हैं उन विष्णुको दैत्यवधका कार्य पूर्ण होनेपर देवदेव ब्रह्माजी किस लिये लिवा गए थे ॥ २ ॥ ब्रह्मलोकमें उनका स्थान कौनसा है और उन्होंने तहाँ किस योगको किया था और उन भूतभावन (प्राणियोंका कल्याण चाहनेवाले) विभु देवने तहाँ किस नियमका पालन किया था ३ विष्णुके ब्रह्मलोकमें रहने पर भी जगत् सुर नर और असुरोंकी पूजनीय विपुल लक्ष्मीको (उन विष्णुसे) कैसे पाता है ॥४॥

चिंताम् ॥ ४ ॥ कथं स्वपिति घर्मान्ते बुध्यते चाम्बुदात्यये । कथं च ब्रह्मलोकस्थो धुरं वहति लौकिकीम् ॥ ५ ॥ चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि । विस्तरेण यथातत्त्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु नारायणस्यादौ विस्तरेण प्रवृत्तयः । ब्रह्मलोकं यथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते ७ कामं तस्य गतिः सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा । यत्तु वक्ष्याम्यहं राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ८ ॥ एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रयः । एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥९॥ तस्य पारं न पश्यन्ति बहवः पारचिन्तकाः।एष पारं परं चैव लोकानां वेद माधवः ॥ १० ॥ अस्य देवांशकारस्य मार्गितव्यस्य दैवतैः ।

(विष्णु) गरमीके अन्त (आषाढ़)में किस प्रकार शयन करते हैं और मेघोंके नाश होने पर अर्थात् कार्तिकशुक्ला एकादशीके दिन किस प्रकार जागते हैं और वह ब्रह्मलोकमें रहने पर भी संसारके भारको किस प्रकार धारण करते हैं ॥ ५ ॥ हे विप्रेन्द्र ! वह भगवान् स्वर्गमें रह कर क्या २ चरित्र करते हैं,इस बातको मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ ६ वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे राजन्!नारायण ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके साथ किस प्रकार आनन्द करते हैं इसको और उनके कर्मोंको विस्तारसे सुनो ७ वह अपनी इच्छानुसार चलते हैं और उनकी सूक्ष्म गतिको देवता भी कठिनतासे समझ पाते हैं,मैं विष्णुकी गतिको कहता हूँ उस को तुम सुनो ८ यह देव तीनों लोकोंमें व्याप्त हैं और तीनों लोक इन देवमें व्याप्त हैं यह देवमय हैं और स्वर्गमें देवता विष्णुमय हैं (अर्थात् जैसे पट तन्तुओंसे व्याप्त (बना हुआ) होता है, इसी प्रकार लोक हरिके शरीरको बनाते हैं और पट जैसे केवल पृथ्वीमय है, इसी प्रकार लोक विष्णुमय हैं) ९ बहुतसे पारचिन्तक मनुष्य उनका पार नहीं पाते हैं यह माधव लोकोंसे पर हैं और लोकों

शृणु तौ यत्तदा वृत्तं ब्रह्मलोके पुरातनम् ॥ ११ ॥ स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैतामहं पदम् । ववन्दे तानृषीन् सर्वान् विष्णुरार्षेण कर्मणा ॥ १२ ॥ सोऽग्निं प्राक्सवने दृष्ट्वा हूयमानं महर्षिभिः । अवन्दत महातेजाः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ १३ ॥ स ददर्श मखेष्वाज्यैरीज्यमानं महर्षिभिः । भागं यज्ञियमश्नानं स्वदेहमपरं स्थितम् ॥ १४ ॥ अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणां ब्रह्मवर्चसाम् । परिचक्राम सोऽचिंत्यो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ १५ ॥ स ददर्शोच्छ्रितान् यूपांश्चषालाग्रविभूषितान् । मखेषु च ब्रह्मर्षिभिः शतशः कृतलक्षणान् ॥ १६ ॥ आज्यधूमं समाघ्राय शृण्वन् वेदान् द्विजेरितान् । यज्ञैरिज्यंतमात्मानं पश्यंस्तत्र चचार ह ॥ १७ ॥ ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः । अर्घोद्यतभुजाः सर्वे

की आत्माको जानते हैं १० देवता जब इनके पारको खोजने लगे तब उनकी इन्द्रियें अंधकार (मोह) में पड़ गई थीं, उस समय के ब्रह्मलोकके प्राचीन इतिहासको तुम सुनो ११ विष्णुने ब्रह्मलोकमें पितामहके स्थान पर पहुँच कर सब ऋषियोंको ऋषिप्रणीत प्रणालीसे प्रणाम किया १२ उन महातेजस्वीने महर्षियोंको प्रातःकाल अग्निमें होम करते देख कर अपने आप भी पूर्वान्हकी क्रियाकी फिर ऋषियोंको प्रणाम किया १३ उन्होंने देखा, कि मेरा दूसरा देह यज्ञोंमें ऋषियोंके द्वारा पूजा करके दिये हुए आज्यभागका भक्षण कर रहा है १४ फिर वन्दनीय ब्रह्मतेजस्वी ऋषियोंको प्रणाम करके वह प्रभु सनातन ब्रह्मलोकमें विचरण करने लगे १५ तहाँ उन्होंने ऋषियोंके द्वारा सैकड़ों प्रकारके चिन्होंने चिन्हित चषेलियोंसे विभूषित ऊचे २ यज्ञस्तम्भोंको देखा १६ और वह घृतकी गन्धको सूंघते हुए ब्राह्मणोंके उच्चारण किये हुए वेदों को सुनते हुए तथा (दूसरे शरीरमें) यज्ञोंसे अपनी पूजा होती हुई देखते हुए घूमने लगे ॥ १७ ॥ उस

पवित्रांतरपाणयः ॥ १८ ॥ देवेषु वर्तते यद्ध तद्धि सर्वं जनार्द-
नात् । यत् प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद्विद्धि मधुसूदनात् ॥१६॥अग्नीषो-
ममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः । तं सोममग्निं लोकं च वेद
विष्णुं सनातनम् ॥ २० ॥ क्षीराद्यथा दधि भवेद्दध्नः सर्पिर्भवे-
द्यथा । मथ्यमानेषु भूतेषु तथा लोको जनार्दनात्२१ यथेन्द्रियैश्च
भूतैश्च परमात्माऽभिधीयते । तथा देवैश्च वेदैश्च लोकैश्च
निहितो हरिः ॥ २२ ॥ यथा भूतेन्द्रियावाप्तिर्विहिता भुवि देहि-

समय सभा में बैठे हुए देवता और ऋषि सदस्य हाथमें पवित्री पहिर और अर्घ ले कर उनसे कहने लगे ॥ १८ ॥ देवताओंमें जो (सामर्थ) है वह सब श्रीकृष्णकी है और देवता जिन कर्मोंको करते हैं, उनको मधुसूदनकी कृपासे ही होने वाला समझना चाहिये ॥ १६ ॥ विद्वान् पुरुष संसारको अग्नीषोमात्मक जानते हैं (और आप) विद्वानोंसे यह जान चुके हैं, कि-) सनातन विष्णु ही सोम अग्नि और लोकमय हैं ॥ २० ॥ (इन्द्रिय आदि देहके मथने पर अर्थात् ध्यान-बलसे इनका प्रविलापन करने पर अन्तर्दृष्टिसे यह प्रतीत होता है, कि- जनार्दनसे ही यह लोक उत्पन्न हुआ है, क्योंकि-लोक दीखने लगता है,यहाँ पर क्षीरमेंका अन्याकृत उदाहरण कहते हैं) जैसे क्षीरमेंसे दही होजाता है और दहीमेंसे जैसे घृत निकल आता है इसी प्रकार भूत (इन्द्रियों) के मथन करने पर (यह प्रतीत होता है, कि-) यह लोक जनार्दनसे उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥ जैसे (अगोचर) परमात्मा भी (चेतनासे व्याप्त) इन्द्रिय और देहसे जाननेमें आता है, इसी प्रकार वेद और देवताओं से विष्णुका पता लगता है अर्थात् देवता और वेदके रूपमें हरि ही कृपा करते हैं ॥ २२ ॥ जैसे पृथ्वीमें प्राणियोंका इन्द्रिय और भूतोंका सम्बन्ध भूतोंके कारण दिखाई देता है, ऐसे ही

नाम् । तथा प्राणेश्वरावाप्तिर्देवानां दिवि वैष्णवी॥२३॥ सत्रिणां सत्रफलदः पवित्रं परमात्मवान् । लोकतन्त्रधरो ह्येष मन्त्रैर्मंत्र इवोच्यते ॥ २४ ॥ ऋषय ऊचुः । स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते । इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम् ॥ २५ ॥ त्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावनः । अतिथिस्त्वं हि मंत्रोक्तः संदृष्टः सततं मतः ॥२६॥ त्वयि योद्धुं गते विष्णो न प्रावर्तन्त नः क्रियाः । अवैष्णवस्य यज्ञस्य न हि कर्म विधीयते ॥ २७ ॥ सदक्षिणस्य यज्ञस्य त्वत्प्रसूतिः फलं भवेत् । अद्यात्मानमिहास्माभिरिज्यमानं निरीक्ष्यसे ॥ २८ ॥ एवमस्त्विति तान् सर्वान्

देवलोकमें देवताओंका ऐश्वर्य और प्राण सम्बन्ध विष्णुसे ही होता है ॥ २३ ॥ मन्त्र यज्ञ करनेवालोंको यज्ञका फल देनेवाले इस परमात्मवान् पवित्र लोकतन्त्रधरको मन्त्र कहते हैं (अर्थात् जैसे वाणीकी मधुरताको वाणी ही जानती है, ऐसे ही मन्त्र उनका प्रतिपादन करते हैं) ॥ २४ ॥ ऋषियोंने कहा, कि—हे पद्मनाभ ! हे महाद्युते ! हे सुरश्रेष्ठ ! इस यज्ञके अतिथि-सत्कारको आप मन्त्रपूर्वक ग्रहण करिये ॥ २५ ॥ आप इस यज्ञसे पवित्र हुए पाद्यके पात्र हैं, मन्त्रोंमें आपका ही अतिथिरूपसे वर्णन किया है और देखने पर उन्होंने आपको जान लिया है ॥ २६ ॥ हे विष्णो ! जब आप युद्ध करनेको चले गए थे तो हमारी यज्ञ आदि क्रियाएँ ठीक नहीं होती थीं क्योंकि-यज्ञकर्म विष्णुके विना नहीं चल सकता (अर्थात् तुम अन्तरात्माके न होनेसे यज्ञ करने पर भी सफल नहीं होते थे) ॥२७॥ दक्षिणा वाले यज्ञका फल भी आपसे ही मिलता है, आज आप हमारे द्वारा अपनी पूजा होती हुई देख रहे हैं ॥ २८ ॥ तब भगवान् ने एवमस्तु कहकर उन सबकी प्रशंसा की, तब ब्रह्मलोक और पितामहने समाविस्थितकी समान आनन्द पाया (तात्पर्य यह

भगवान् प्रत्यपूजयत् ।मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मलोकपितामहः२६
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि लोकवर्णनं
नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ऋषिभिः पूजितस्तैस्तु विवेश हरि-रीश्वरः । पौराणं ब्रह्मसदनं दिव्यं नारायणाश्रमम् ॥ १ ॥ स तद्विवेश हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान् । प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये॥ २ ॥ स्वेन नाम्ना परिज्ञातं स तं नारायणा-श्रमम् । प्रविशन्नेव भगवानायुधानि व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥स तत्रां-बुपतिप्रख्यं ददर्शालयमात्मनः । स्वधिष्ठितं देवगणैः शाश्वतैश्च महर्षिभिः ॥४॥ सम्वर्तकाम्बुदोपेतं नक्षत्रस्थानसंकुलम् । तिमि-

---

है, कि-पुरुष ब्रह्मलोकमें जाने पर भी विष्णुकी उपासना करते हैं, तहाँ पहुँचने पर अपनेको कृतकृत्य मान कर अभिमानवश उपासना करना बन्द नहीं कर देते हैं) ॥ २६ ॥ उनञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा. कि-ईश्वर हरि ऋषियोंके पूजा करने पर अपने दिव्य स्थान नारायणाश्रममें चले गए, पुराणोंमें वर्णित नारायणका स्थान ब्रह्मलोकमें है ॥ १ ॥ विष्णु प्रसन्न हो सदस्योंसे. बातचीत कर और पद्मयोनि आदिदेव ब्रह्माजीको अभिवादन कर अपने सदनमें चले गए ॥ २ ॥ अपने नामसे प्रसिद्ध नारायणाश्रममें घुसते ही भगवान्ने अपने सब आयुधों को धर दिया ॥ ३ ॥ तहाँ उन्होंने समुद्रकी समान (विस्तृत) अपने भवनको देखा तो उसमें देवता और शाश्वत महर्षि बैठे हुए थे ॥ ४ ॥ तहाँ पर प्रलयकालके मेघ उपस्थित थे और उस स्थानमें नक्षत्र भर रहे थे और तहाँ अन्धकार भर रहा था (अर्थात् तहाँ पर सब वस्तुएँ सुषुप्तिकी समान सूक्ष्मरूपमें विद्यमान होने पर भी अविद्यासे आवृत रहती हैं अत एव उस

रीवपरिच्छिन्नमप्रधृष्यं सुरासुरैः ॥५॥ न तत्र विषयो वायोर्नेन्दोर्न च विवस्वतः । वपुषः पद्मनाभस्य स देशस्तेजसा वृतः ॥ ६ ॥ स तत्र प्रविशन्नेव जटाभारं समुद्वहन् । सहस्रशीर्षो भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे ॥७॥ लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी। उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी ॥८॥ स शिश्ये शयने

स्थानको) देवता और असुर भी नहीं जान सकते (अर्थात् जैसे वटबीजके उदरमें सारा वट वर्तमान है परन्तु दीखता नहीं है इसी प्रकार हरिमन्दिरमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड विद्यमान होने पर भी नहीं दीखता है) ५ (फिर उसके होनेमें क्या प्रमाण है, इस शंकाका उत्तर यह है; कि-वह अनात्म ज्योतियोंसे प्रकाशित नहीं होता है आत्मज्योति ही उसको दिखा सकती है यही कहते हैं कि-) वायु चन्द्रमा और सूर्यका तेज भी वहाँ प्रकाश नहीं कर सकता, वह देश पद्मनाभके शरीरके तेजसे व्याप्त रहता है (अर्थात् जैसे निद्रावस्थामें सब सूक्ष्मरूपमें रहने पर भी नहीं भासता है, कदाचित् स्वप्नमें आत्मज्योतिसे भास जाता है, इसी स्वप्नावस्थाको लक्ष्य करके कहा है, कि-यह पद्मनाभके शरीर (आत्मा) के तेजसा भासता है) ६ वह पहिले सहस्रशीर्षा बने थे (फिर विश्वलक्षण सहस्रशीर्षात्व रूप संसारलक्षणको त्याग कर वह) जटा (स्थानीय लोकवासनाके) भारको धारण कर सोने लगे (अत एव सुषुप्तिमें भी कार्यलिंगसे वासना रहती है, यह प्रतीत होता है) ७ उस समय नयनशालिनी काली (कृष्णवर्णकी सूक्ष्मको भी ढकने वाली) लोकोंके अन्तको जानने वाली कालरूपिणी निद्रा उन महात्माकी सेवा करने लगी ८ व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ हरि एकार्णवोक्त व्रतसे समुद्रके और मेघके जलसे शीतल दिव्यशयनमें शयन करने लगे (तात्पर्य-श्रीकृष्ण एकार्णवोक्त (निर्विकल्पसमाधि

दिव्ये समुद्रांभोदशीतले । हरिरेकार्णवोक्तेन व्रतेन व्रतिनां वरः९ तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम् । उपासांचक्रिरे विष्णं देवाः सर्षिगणास्तथा ॥१०॥ तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात् समुत्थितम् । आद्यं तस्यासनं पद्मं ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम् । सहस्रपत्रं वर्णाढ्यं सुकुमारं विभूषितम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः

के लिये कहे हुए) संयमको धारण कर क्षीरसमुद्र (निर्विकल्प) और अंभोद (सविकल्प) समाधि इन दोनोंके कारण निस्ताप समाधिमें शयन करने लगे ९ देवता और ऋषि जगत्का हित करनेके लिये शयन करने वाले प्रभु विष्णुकी उपासना करने लगे (तात्पर्य-"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः-अहिंसाका पालन करने वालेसे सब प्राणी वैर करना छोड़ देते हैं" इसप्रकार योगके एक२अंगका भिन्न२फल परलोकमें मिलता हैं पूर्ण योगका फल तो जगत्का हित चाहना ही है।अध्यात्म(देवता इन्द्रिय)और ऋषि (प्राण) आत्माके समीप रहकर उसकी उपासना करने लगे, परन्तु उन्होंने अपना कार्य करना बन्द नहीं किया) १० नारायणके सोते २ ही उनकी नाभिमेंसे एक कमल उत्पन्न होगया वह ब्रह्माका सूर्यकी समान तेजस्वी आद्य आसन है (तात्पर्य-माताके नाभिदेशसे (उदरमें) एक नाल निकला हुआ है उस पर पुष्प आता है और पुष्प रेत (वीर्य) के संयोग से गर्भ होजाता है, वह गर्भ माताके खाये हुए अन्नरससे नाल के द्वारा पुष्ट होता रहता है, तदनन्तर पक्वफलन्यायकी समान वृन्तसे च्युत होजाता है, इसीप्रकार विष्णुसे उत्पन्न हुए ब्रह्मा वैष्णवी मायासे पुष्ट हो विष्णुसे च्युत होने पर अपने आपेको दूसरा मानता है यही बात इस श्लोकमें कही है) ११ वह मुनि शयन करते २ ही ब्रह्मसूत्ररूपी हाथको उठाकर सब लोकोंके कालका लौट फेर करते रहते हैं (तात्पर्य-प्रवर्तमान कालके

स्वपन्नेव महामुनिः। आवर्तयति लोकानां सर्वेषां कालमर्थ-
यम् ॥ १२ ॥ विवृत्तात्तस्य वदनान्निःश्वासपवनेरिताः । प्रजानां
पंक्तयो ह्युच्चैर्निष्पतंत्युत्पतन्ति च ॥ १३ ॥ ते सृष्टाः प्राणिनो
मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम् । चतुर्धा स्वां गतिं जग्मुः कृतां-
तोक्तेन कर्मणा ॥ १४ ॥ न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्षयो-
ऽव्ययाः । विष्णोर्निद्रामयं योगं प्रविष्टं तमसा वृतम् ॥ १५ ॥
ते तु ब्रह्मर्षयः सर्वे पितामहपुरोगमाः । न विदुस्तं क्वचित् सुप्तं

ब्रह्माके जो पूर्वजन्मका वासनारूप तन्तु (सूत्र) है वही उनका उठे हुए हाथकी समान है वह सोते हुए ही अर्थात् स्वास्थ्यसे हीन न होते हुए लोकोंके कालकृत ऊपरी और अधोभावकी आवर्तना करते रहते है, अर्थात् अयस्कान्तमणिकी समान उनके कुछ न करने पर भी लोकस्वभावसे ही सृष्टि आदि उत्पन्न होजाते हैं १२ उन (ब्रह्मा) के खुले हुए मुखमेंसे निकलती हुई श्वासोंकी पवनसे प्रजाकी पंक्ति ऊपरको उठती हैं और नीचेको गिर जाती हैं (अर्थात् ब्रह्माजीसे जैसे नारायण उत्पन्न हुए हैं, इसी प्रकार ब्रह्माजीसे और प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है) १३ ब्रह्माजीने उन पवित्र प्राणियोंको रच कर उनको (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र) इन चार वर्णोंमें कर्मभेदसे बाँट दिया है वे कृतान्तोक्तविधि-सिद्धान्तको बताने वाले वेदमें कहे कर्मोंको करके अपनी गति (परमप्राप्य ईश्वर) को पाते हैं (अर्थात् अपने २ वेदोक्त कर्मको करने वाले सब स्वधर्मनिष्ठ मुक्त होजाते हैं) ॥ १४ ॥ अन्धकारसे व्याप्त निद्रामय योगको धारण कर शयन करनेवाले विष्णुको अव्यय ब्रह्मर्षि और स्वयं ब्रह्मा भी नहीं जान सकते जब ब्रह्माजी आदि विष्णुके अविद्याशबल रूपको भी कठिनतासे जान सकते हैं तो उनके शुद्धस्वरूपको तो किस प्रकार जान सकते हैं ॥ १५ ॥ पितामह

क्वचिदासीनमासने ॥ १६ ॥ जागर्ति कोऽत्र कः शेते कश्च

आदि (जब आप किसी समय वा कालमें सोजाते हैं अर्थात व्यवहारको छोड़ देते हैं वा आसन पर बैठे होते हैं अर्थात् सृष्टि-व्यवहारको करते होते हैं तब (आपकी सृष्टिप्रवीणताके कारण) इन बातोंको नहीं समझते हैं ॥ १६ ॥ (कोई २ पुरुष विचारते हैं, कि-) इस देहमें कौन जागता है कौन शयन करता है कौन सामर्थ्य रखता है और कौन चेष्टा करता है, कौन भोग करताहै, कौन कांतिवान् है और कृष्णका भी कृष्ण (आत्मा) कौन है १७ (तात्पर्य-कोई २ पुरुष विचारते हैं, कि-इस देहमें कौन जागता है अर्थात् इन्द्रियोंसे विषयोंका अनुभव कौन करता है? यदि वह भूतयोगसे उत्पन्न होता है तो उसकी शक्ति मन्द होगी और इन की समान होगा अतः चेतन कोई और नहीं होसकता, लोकायतिकोंके मतको 'जागर्ति कोऽत्र-यहाँ कौन जागता है' इस शंका को उठा कर उत्तर देते हैं, कि-" कः शेते-जो सोता कौन है' अर्थात् सुषुप्तिमें भी भूतोंका योग तो रहता है अतः उस अवस्था में भी विषयोंका अनुभव होना चाहिये परन्तु अनुभव नहीं होता अतः आत्मा भूतोंसे अन्य है । यदि कहो, कि-आनुपात्रकरणके कारण विषयोंका अनुभव नहीं होता है तो मनको ही आत्मा मान लेना चाहिये (अर्थात् अनुकूल करणके विना अनुभव नहीं होता है तो मनको ही करण मानकर उसको ही आत्मा मानलेना चाहिये ?) ऐसी शंका उठाते हुए कहते हैं, कि-"कश्च शक्तश्च नेंगते-अर्थात् समर्थ होने पर भी ऐसा कौन है जो चेष्टा नहीं करता है वही (मन आत्मा) है ? (उत्तर)करणके विना भी कहीं अनुग्रह (अनुभव) होता है ? स्वप्नमें मन विषयोंको ग्रहण करता है अतः वह करण है यह बात बाहरी उष्णताकी समान दुस्त्याज्य है अतः वह करण है और आत्मा मनसे भी भिन्न दूसरा

शक्तश्च नेंगते । को भोगवान् को द्युतिमान् कृष्णात् कृष्णतरश्च

पदार्थ है, क्योंकि-करण होनेके कारण मन भी दूसरे करणों की समान अपनी प्रवृत्तिमें निवृत्तिमें स्वतंत्र नहीं होसकता, अत एव वह आत्मा नहीं होसकता ? वादी फिर शंका करता है, कि—उसका नियमन करने वाली (उसको प्रवृत्त करने वाली) बुद्धिको ही आत्मा मान लेना चाहिये ? इस शंकाका उत्तर देते हुए मूलमें कहा, है, कि "को भोगवान्-भोगनेवाला कौन है' अर्थात् बुद्धि तो सदा बदलती रहती है. एक कालकी बुद्धि दूसरे समयमें नहीं रहती है, यथा-मैंने बालकपनमें जिस फलका वर्णन सुना था, उसको ही मैंने यौवनमें देखा था उसी का इस समय आस्वाद लेरहा हूँ । इस प्रकार बुद्धिमें भेद होने पर भी आत्मा एक ही प्रतीत होता है अतः भोक्ता बुद्धि नहीं है और है, तथा वह बुद्धिसे भिन्न है । वादी फिर कहता है, कि— 'अहं सुखी मैं सुखी हूँ'इस अनुभवके कारण अहंकार को ही आत्मा मान लेना चाहिये ? इसका खण्डन करता हुआ सिद्धांती कहता है, कि-मैं गौरवर्ण हूँ, ऐसा अनुभव करने पर देहको आत्मा माननेकी आपत्ति आजायगी और अहंकार सुषुप्ति आदिमें नहीं दीखता, अतः वह आत्मा नहीं होसकता । वादी कहने लगा. कि-जब कुछ नहीं दीखता तो शून्यको ही आत्मा माननेमें क्या दोष है मूलमें कहा है कि-'को द्युतिमान् द्युतिमान् कौन है'अर्थात् सुषुप्तिमें आत्माके न होने पर'सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषं-मैं सुखपूर्वक सोया, मुझे कुछ भी खबर नहीं रही'इस सुषुप्तिके समयके सुखका और अज्ञानका अनुभवके बिना परामर्श नहीं होसकता और अनुभव अपने आत्माके अतिरिक्त और किसीसे नहीं होसकता अतः प्रतीत होता है, कि-शून्यका साक्षी आत्मा सद्रूप है । वादी कहता है,

कः ॥ १७ ॥ विमृशन्ति स्म तं देवा दिव्याभिरुपपत्तिभिः । न चैनं शेकुरन्वेष्टुं कर्मतो जन्मतोपि वा ॥ १८ ॥ गाथाभिस्त-त्पदिष्टाभिर्ये तस्य चरितं विदुः । पुराणास्तं पुराणेषु ऋषयः संप्रचक्षते ॥ १९ ॥ श्रूयते चास्य चरितं देवेष्वपि पुरातनम् । महापुराणात् प्रभृति परं तस्य न विद्यते । २० ॥ यच्चास्य देव-

तो फिर आत्माको साक्षी मान लेने पर एक पुरुषका अनुभव दूसरा पुरुष नहीं करसकता अतः प्रति शरीर २ में भिन्नरूप से वर्तमान क्लेश कर्म विपाक और आशयसे अपरामृष्ट पुरुष-विशेषसे और ईश्वरसे विलक्षण बन्धनमोक्षका भागी आत्मा होगा। ऐसी शंका करके कहते हैं कि--'कृष्णात् कृष्णतरश्च कः कृष्णसे कृष्णतर कौन है' अर्थात् परमतमें शब्दादि हीन होनेसे प्रधान अतिसूक्ष्म होनेसे आत्मा है परन्तु प्रधान तीन गुणोंसे मिला हुआ है अतः उस संहतकी अपेक्षा असंहत पुरुष ही आत्मा है । पातञ्जल कहते हैं, कि-ईश्वर उससे भी सूक्ष्म नहीं है श्रुति भी कहती है,कि-'नान्योतोऽस्ति द्रष्टा--उसकेअतिरिक्तऔर कोई द्रष्टा नहीं है' इस प्रकार दूसरे द्रष्टाका निषेध होनेसे साक्षी के अतिरिक्त और कोई आत्मा नहीं है । और बन्धन और मोक्ष की व्यवस्था तो तर्कमतके श्रोत्रके एक होने पर भी उपाधिके भेद की समान मानीजायगी। और क्लेश आदिका संबन्ध वास्तविक नहीं है।इस प्रकार आत्मा अनीश्वर नहीं है सब अनवद्य कृष्णसे ही होता है १७ देवता उनको श्रुतिकी युक्तियोंसे जानते हैं,परन्तु वे इनके कर्म वा जन्मका पता नहीं पासकते१८ईश्वररचित गाथाओं से जो प्राचीन ऋषि उनके चरित्रको पुराणोंमें जानते हैं वो कहते हैं (श्रुतिमें लिखा है कि अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेद इति) ॥ १९ ॥ देवताओंमें भी इनका प्राचीन चरित्र सुननेमें आता है कि-इन बड़े प्राचीन पुरुषसे अधिक और कोई

देवस्य चरितं स्वप्रभावजम् । तेनेमाः श्रुतयो व्याप्ता वैदिक्यो लौकिकाश्च याः ॥ २१ ॥ भवकाले भवत्येष लोकानां लोकभावनः । दानवानामभावाय जागर्ति मधुसूदनः ॥२२॥ यत्रैनं वीक्षितु देवा न शेकुः सुप्तमव्ययम् । ततः स्वपिति घर्मान्ते जागर्ति जलदक्षये ॥२३॥ स हि वेदाश्च यज्ञाश्च यज्ञांगानि च सर्वशः । या तु यज्ञगतिः प्रोक्ता स एव पुरुषोत्तमः ॥२४॥ तस्मिन सुप्ते न वर्तन्ते मन्त्रपूताः क्रतुक्रियाः । शरत्प्रवृत्तयज्ञोऽयं जागर्ति मधुसूदनः ॥२५॥ तदिदं वार्षिकं चक्रं कारयत्यंबुदेश्वरः । वैष्णवं कर्म कुर्वाणः सुप्ते विष्णौ पुरन्दरः ॥ २६ ॥ या ह्येषा गह्वरा माया निद्रेति जगति स्थिता । साकस्माद्द्वेषिणी घोरा काल-

---

प्राचीन नहीं है ॥ २० ॥ उन देवका अपने प्रभावका जो चरित्र है उससे वैदिक और लौकिक श्रुतियें भरी हुई हैं ॥ २१ ॥ लोकोंका कल्याण चाहने वाले श्रीकृष्ण उत्पत्तिके समय प्रकट होते हैं और मधुसूदन लोकोंका अभाव करनेके लिये जाग उठते हैं ॥ २२ ॥ इन अव्यय विष्णुको सोकर जागने पर भी जब देवता नहीं देखसके तब वे (आविर्भावकालमें भी) आषाढी-एकादशीसे कार्तिकी एकादशी तक शयन करते हैं, फिर जागते हैं ॥ २३ ॥ वे ही यज्ञ वेद और सब यज्ञांग हैं और यज्ञ करने पर मिलने वाली गति भी वही पुरुषोत्तम हैं ॥ २४ ॥ उनके सोने पर मन्त्रोंसे पवित्र होने वाली यज्ञक्रियाएँ नहीं होती हैं, यह मधुसूदन शरद् ऋतुमें यज्ञको प्रवृत्त करनेके लिये जागते हैं (श्रुतिमें लिखा है, कि-"शरदि वाजपेयेन यजेत् शरद् ऋतुमें वाजपेय यज्ञ करे)॥ २५ ॥ अत एव मेघोंका ईश्वर पुरन्दर विष्णुके शयन करने पर वर्षा ऋतुमें होने वाले वर्षारूप वैष्णव कर्मको करता है॥ २६ ॥ (विष्णुके जागनेमें यज्ञ कारण हैं, यह कह ही दिया अब निद्राके निमित्तको कहते हैं) जो राजसोंका

रात्रिर्महीचिताम् ।। २७ ।। तस्यास्तनुस्तमोद्वारा निशादिवस-नाशिनी । जीवितार्धहरा घोरा सर्वप्राणभृतां भुवि ॥ २८ ॥ नैतया कश्चिदाविष्टो जृम्भमाणो मुहुर्मुहुः । शक्तः प्रसहितुं वेगं मज्जन्निव महार्णवे ॥ २६ ॥ अन्नजा भुवि मर्त्यानां श्रमजा वा वा कथंचन । सैषा भवति लोकस्य निद्रा सर्वस्य लौकिकी ३० स्वप्नान्ते चीयते ह्येषा प्रायशो भुवि देहिनाम् । मृत्युकाले च भूतानां प्राणान्नाशयते भृशम् ॥३१॥ देवेष्वपि दधारैनां नान्यो नारायणादृते । सखी सर्वहरस्यैषा माया विष्णुशरीरजा ॥३२॥ सैषा नारायणमुखे दृष्टा कमललोचना । लोकानल्पेन कालेन

अकस्मात् संहार करने वाली घोर काल रात्रि है वह तमोमयी माया जगत्में स्थित रहती है उसके उदय होने पर विष्णु (हिंसा आदि दोषका उदय होने पर)सोजाते हैं (यही तामसी माया निशारूपसे और निद्रारूपसे सबको मोहमें डालती है, यही बात इस श्लोकमें कहते हैं) उसका शरीर अन्धकारका द्वार है और वह दिनका नाश करने वाली निशा कहलाती है और वह मनुष्योंके आधे जीवनका हरण करती रहती है २८ इसके सवार होने पर निद्रासे घिर कर जँभाई लेता हुआ कोई मनुष्य भी समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यकी समान (अशक्त होनेके कारण) इसके वेगको नहीं सह सकता ॥ २६ ॥ यह निद्रा पृथ्वीमें प्राणियोंको अन्न वा श्रमके कारण आया करती है। यह लौकिकी निद्रा जगत्में सबको आती है ॥३०॥ यह पृथ्वीमें प्राणियोंके शयन करनेके अनन्तर जाती रहती है और यह मृत्युके समय प्राणियोंके प्राणोंका नाश कर डालती है ॥३१॥ देवताओंमें भी नारायणके अतिरिक्त इसको और कोई धारण नहीं करसकता, यह विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुई माया सर्व-हर (कालकी) सखी है ॥ ३२ ॥ यह कमललोचना लोक-

ग्रसते लोकमोहिनी ॥ ३३ ॥ एवमेषा हितार्थाय लोकानां कृष्ण-
वर्त्मना । ध्रियते सेवनीया हि पत्येव च पतिव्रता ॥ ३४ ॥ स
तया निद्रयाच्छन्नस्तस्मिन्नारायणाश्रमे । शेते विभुः सदा विष्णु-
र्मोहयञ्जगदव्ययः ॥ ३५ ॥ तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महा-
त्मनः । जग्मुः कृतयुगं चैव त्रेता चैव युगोत्तमम् ॥ ३६ ॥ स
तु द्वापरपर्यन्ते ज्ञात्वा लोकान् सुदुःखितान् । प्राबुध्यत महातेजाः
स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः । जहीहि निद्रां
सहजां भुक्तपूर्वामिव स्रजम् । इमे ते ब्रह्मणा सार्धं देवा दर्शन-
काङ्क्षिणः ॥ ३८ ॥ इमे त्वां ब्रह्मविद्वांसो ब्रह्मसंस्तववादिनः ।

मोहिनी नारायणके मुखमें आने पर अल्पकालमें ही मनुष्योंका ग्रास करजाती है ॥ ३३ ॥ (खाये हुए अन्न आदिका भली प्रकार पाक होजाय और श्रम दूर होजाय) इस हितके लिये निद्राका सेवन करना चाहिये उसको (परमेश्वर) सूक्ष्ममार्गसे धारण करते हैं (अर्थात् मेरे निद्रा लेने पर मेरे उदरमें स्थित सब लोक भी विश्राम लेने लगें) और पतिव्रताकी समान पतिके साथ रहकर हित करती रहती हैं ॥ ३४ ॥ (इस प्रकार महा-निद्राके प्रसंगकी समान ईश्वरकी वर्षाकाल और प्रतिदिनकी निद्राको समझ लेना चाहिये) विभु विष्णु अपने नारायणा-श्रममें उस निद्रामें भर कर जगत्को मोहमें डालते हुए सोते रहते हैं ॥ ३५ ॥ जब उन महात्माको सोते २ युगोंमें उत्तम युग सत्ययुग बीत गया और त्रेतायुग भी बीत गया और (द्वापरके भी) सहस्रों वर्ष बीत गए ॥ ३६ ॥ तब द्वापरके अन्तमें मनुष्योंको दुःखी जान कर ऋषियोंने उनकी स्तुति की तब वे जागे ३७ ऋषियोंने कहा, कि-हे भगवन् ! आप अपनी स्वाभाविकी निद्राको भोगी हुई मालाकी समान त्याग दीजिये, ये ब्रह्मा और ऋषि आपका दर्शन करनेकी इच्छा कर रहे हैं३८

वर्धयन्ति हृषीकेश ऋषयः संशितव्रताः ॥ ३६ ॥ एतेषामात्मभूतानां भूतानां भूतभावन । शृणु विष्णो शुभा वाचो भूम्योमाग्न्यनिलांभसाम् ॥ ४० ॥ इमे त्वां सप्त मुनयः सहिता मुनिमण्डलैः । स्तुवन्ति देव दिव्याभिर्गेयाभिर्गीर्भिरंजसा ॥ ४१ ॥ उत्तिष्ठ शतपत्राक्ष पद्मनाभ महाद्युते।कारणं किंचिदुत्पन्नं देवानां कार्यगौरवात् ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच । स संक्षिप्य जलं सर्वं तिमिरौघं विदारयन् । उदतिष्ठद्धृषीकेशः श्रिया परमया ज्वलन् ॥४३॥ स ददर्श सुरान् सर्वान् समेतान् सपितामहान् । विवक्षतः प्रक्षुभितान् जगदर्थे समागतान् ॥ ४४ ॥ तानुवाच हरिर्देवो निद्राविश्रान्तलोचनः । तत्त्वदृष्टार्थया वाचा धर्महेत्वर्थ-

---

हे हृषीकेश ! ये प्रशंसित व्रतवाले वेदवेत्ता ऋषि वेदके स्तोत्रों को पढकर आपकी कीर्तिको बढा रहा है ॥३६॥ हे भूतभावन! हे विष्णो ! आप इन पृथ्वी आकाश अग्नि पवन और जलके अधिष्ठात्री देवता भूतोंकी शुभ वाणिओंको सुनिये ॥ ४० ॥ हे देव ! ये सप्तर्षि ऋषियोंको साथमें लेकर कीर्तनीय दिव्य स्तुतिके पदोंसे आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ हे पद्मनाभ ! हे महाद्युते ! हे शतपत्रपत्तीकी समान नेत्र वाले भगवन् ! आप उठिये ! देवताओंका कार्य बहुत बडा है (यह आप जानते ही हैं) उसमें कुछ कारण (विघ्न) पड रहा है ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन जीने कहा, कि—उस समय हृषीकेश जलका संक्षेप करके (अर्थात् अखण्डानन्दका संक्षेप कर अपनेको उपाधिके आवेशसे अल्प बना कर) परमशोभासे दिप सारे अन्धकारको विदीर्ण करते हुए उठ बैठे ॥४३॥तब उन्होंने मनमें घबड़ा कर जगत्का हित करनेकी बात कहनेके लिये पितामह और देवताओंको सामने खड़े देखा ॥ ४४ ॥ तब जिनके नेत्रोंने निंद्रा लेकर विश्राम कर लिया था एसे श्रीकृष्णने धर्मसे भरी हुई तत्त्व बात

युक्तया ॥४५॥ श्रीभगवानुवाच । कुतो वो विग्रहो देवाः कुतो वोऽभयमागतम् । कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि न वर्तते४६ किं न खल्वकुशलं लोके वर्तते दानवोत्थितम् । नृणामायासजननं शीघ्रमिच्छामि वेदितुम् ॥४७॥ एष ब्रह्मविदां मध्ये विहाय शयनोत्तमम् । शिवाय भवतामर्थे स्थितः किं करवाणि वः ४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि विष्णोर्योगशयनोत्थानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा विष्णुगदितं ब्रह्मा लोकपितामहः । उवाच परमं वाक्यं हितं सर्वदिवौकसाम् ॥ १ ॥ नास्ति किंचिद्भयं विष्णो सुराणामसुरान्तक । येषां भवानभयदः कर्णधारो रणे रणे ॥ २ ॥ शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदने ।

कही ॥ ४५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे देवताओं ! तुम्हारे साथ कौन लड़ पड़ा है ! तुम्हें किससे भय लग रहा है, मुझे किस देवताका क्या कार्य करना चाहिये, ऐसा कोई काम नहीं जिसको मैं न करसकूँ ॥ ४६ ॥ क्या दानवोंने जगत्में कुछ उपद्रव मचा रक्खा है ? अथवा वे मनुष्योंको कुछ आयास (कष्ट) देरहे हैं ? बताओ ! मैं शीघ्रतासे इस बातको जानना चाहता हूँ ॥ ४७ ॥ मैं ब्रह्मवेत्ताओंके सामने अपने श्रेष्ठ शयनको छोड़ कर तुम्हारा कल्याण करनेके लिये उठ खड़ा हुआ हूँ, बताओ ! मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ ॥ ४८ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

वैशंपायनजीने कहा ,कि-लोकोंके पितामह ब्रह्मा जी विष्णुके भाषणको सुन कर सब देवताओंका हित करने वाले उत्तम वाक्यको कहने लगे ॥ १ ॥ कि-हे विष्णो ! हे असुरान्तक ! आप प्रत्येक रणमें जिनको अभय देते रहते हैं उनके ऊपर कोई आपत्ति कैसे पड़ सकती है ॥ २ ॥ देवेश इन्द्रके और शत्रुओंके

धर्मे प्रयतमानानां मानवानां कुतो भयम् ॥ ३ ॥ सत्यधर्मे च निरतान् मानवान् विगतज्वरान्नाकाले धर्षिणो मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम् ॥ ४ ॥ मानवानां च पतयः पार्थिवाश्च परस्परम् । षट्भागमुपभुंजाना न भेदं कुर्वते मिथः ॥ ५ ॥ ते प्रजानां शुभकराः करदैरवगर्हिताः । सकरैर्विप्रयुक्तार्थाः कोशानापूरयन्त्युत६ स्फीताञ्जनपदान् सर्वान् पालयन्तः क्षमापराः । अतीक्ष्णदंडाश्चतुरो वर्णान् जुगुपुरंजसा ॥ ७ ॥ नोद्वेजनीया भूतानां सचिवैः साधुपूजिताः । चतुरंगबलैर्गुप्ताः षड्गुणानुपभुंजते ॥ ८ ॥ धनुर्वेदपराः सर्वे सर्वे वेदेषु निष्ठिताः । यजन्ते च यथाकालं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ ९ ॥ वेदानधीत्य दीक्षाभिर्महर्षीन् ब्रह्मचर्यया ।

नाशक आपके वर्तमान होने पर धर्ममें लगे रहने वाले मनुष्योंको किस बातका डर होसकता है ॥ ३ ॥ सत्यधर्ममें परायण रहने वाले सन्ताप रहित धार्मिक मनुष्योंको तो कुसमयमें मृत्यु भी आँख उठा कर नहीं देख सकती ॥ ४ ॥ और मनुष्योंके स्वामी राजे भी प्रजासे करमें छठा हिस्सा लेते हैं, और उन्होंने परस्पर में युद्ध करना भी त्याग दिया है ॥ ५ ॥ उन प्रजाका शुभ करने वालोंका कर देने वाले सत्कार करते हैं और वे यथोचित कर लेकर अपने कोशोंको भर लेते हैं ॥ ६ ॥ वे सब क्षमापरायण राजे अपने २ विस्तृत राज्योंका पालन कर रहे हैं और कोमल दण्ड देते हुए अपनी चातुर्वर्ण्य प्रजाकी भली प्रकार रक्षा कर रहे हैं ॥ ७ ॥ वे प्राणियोंको घबड़ाहटमें नहीं डालते हैं और मंत्री उनका भली भाँति सत्कार करते हैं और वे अपने यहाँ चतुरंगिणी सेना रखते हैं तथा वे (नीतिशास्त्र में कहे हुए संधि विग्रह यान आसन द्वैधीभाव और समाश्रय नामक) छः गुणों सेवन करते हैं ॥ ८ ॥ वे सब धनुर्वेदमें परायण रहते हैं और वे सब वेदोंका अनुष्ठान करते हैं और वे समय २ पर अनेक प्रकार

श्राद्धैश्च मेध्यैः शतशस्तर्पयन्ति पितामहान् ॥ १० ॥ नैषाम-
विदितं किंचित्त्रिविधं भुवि दृश्यते । वैदिकं लौकिकं चैव धर्म-
शास्त्रोक्तमेव च ॥ ११ ॥ ते परावरदृष्टार्था महर्षिसमतेजसः ।
भूयः कृतयुगं कर्तुमुत्सहंते नराधिपाः ॥ १२ ॥ तेषामेव प्रभा-
वेण शिवं वर्षति वासवः । यथार्थं च ववुर्वाता विरजस्का दिशो
दश ॥ १३ ॥ निरुत्पाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे ग्रहाः । चंद्र-
माश्च सनक्षत्रः सौम्यं चरति योगतः ॥ १४ ॥ अनुलोमकरः
सूर्यस्त्वयने द्वे चचार ह । हव्यैश्च विविधैस्तृप्तः शुभगन्धो हुता-
शनः ॥ १५ ॥ एवं सम्यक्प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु मखादिषु । तर्पयत्सु

की दक्षिणा देकर यज्ञ करते रहते हैं ॥ ९ ॥ वे वेद पढ़ कर तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक अनेक दीक्षाओंको ग्रहण कर महर्षियोंको तृप्त करते हैं और अनेक प्रकारके पवित्र श्राद्ध करके पितामह आदिको तृप्त करते हैं ॥ १० ॥ ये वैदिक लौकिक और धर्मशास्त्रमें कही हुई इन तीन बातोंमेंसे किसी बातसे भी अनजान नहीं हैं११ वे पर और अवर ब्रह्मको देखने वाले महर्षियोंकी समान तेजस्वी राजे फिर कृतयुग लाना चाहते हैं अर्थात् वे धर्ममें पापका लेश भी नहीं रहे इसका प्रयत्न कर रहे हैं१२उनके ऐसे प्रतापके कारण इन्द्रको कल्याण करनेवाली वर्षा वरसानी पड़ती है और पवनको भी यथार्थ रीतिसे चलना पड़ता है और दशों दिशाएँ निर्मल रहती हैं इस समय पृथ्वीमें कोई उत्पात नहीं होरहा है और आकाशमें ग्रह अपनी इच्छानुसार विचरण कर रहे हैं और चन्द्रमा भी नक्षत्रोंसहित सौम्यगतिसे विचरण कर रहा है ॥ १४ ॥ सूर्य अनुलोमगतिसे दोनों अयनोंमें विचरण कर रहा है और शुभ गन्ध वाले हुताशन नाना प्रकारके हव्योंसे तृप्त रहते हैं ॥१५॥ जब राजे इस प्रकार धर्ममें भली भाँति प्रवृत्त होरहे हैं, और यज्ञ आदिका प्रचार बढ़ रहा है तथा पृथ्वी भली प्रकार तृप्तकी जा-

महीं कृत्स्नां नृणां कालभयं कुतः ॥ १६ ॥ तेषां ज्वलितकीर्तीनामन्योन्यवशवर्तिनाम् । राज्ञां बलैर्बलवतां पीड्यते वसुधातलम् सेयं भारपरिश्रान्ता पीड्यमाना नराधिपैः । पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्नविप्लवा ॥ १८ ॥ युगांतसदृशै रूपैः शैलोच्चलितबन्धना । जलोत्पीडाकुला स्वेदं धारयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ क्षत्रियाणां वपुर्भिश्च तेजसा च बलेन च । नृणां च राष्ट्रैर्विस्तीर्णैः श्राम्यतीव वसुन्धरा ॥ २० ॥ पुरे पुरे नरपतिः कोटिसंख्यैर्बलैर्वृतः । राष्ट्रे राष्ट्रे च बहवो ग्रामाः शतसहस्रशः ॥२१॥ भूमिपानां सहस्रैश्च तेषां च बलिनां बलैः । ग्रामायुताढ्यै राष्ट्रैश्च

रही है तो मनुष्योंको कालका भय कैसे होसकता है ॥ १६ ॥ परन्तु उन आपसमें मिल कर चलने वाले और प्रज्वलित कीर्ति वाले राजाओंकी सेनासे पृथिवी दबी जारही है १७ राजाओं के भारसे थक कर पीड़ा पाती हुई पृथिवीकी, इस समय डूबने को उद्यत हुई नौकाकी समान, स्थिति होरही है ॥१८॥ पृथिवी प्रलय कालकी अग्निकी समान रूप वाले राजाओंसे पीड़ा पारही है, जैसे जलमें लोहेकी कीलोंसे रुकी हुई नाव आँधीसे भी नहीं हिलती है इसी प्रकार (पृथिवी) शैल रूपी (कीलोंसे) जलमें रुकी हुई है परन्तु उसके वे पर्वत (रूपकीलें) इस समय ढीले होरहे हैं अत एव वह जलके ऊपर आनेसे वारम्वार गीलीसी होती जारही है (अर्थात् बंधनोंके ढीले होनेसे पृथिवीरूप नौका के भीतर बारबार जल आने लगा है) ॥ १६ ॥ क्षत्रियोंके शरीर तेज और बलसे तथा मनुष्योंके फैलेहुए राज्योंसे पृथिवी थकीसी जारही है ॥ २० ॥ प्रत्येक नगरमें राजाओंके पास करोंडों फौजें हैं और प्रत्येक राष्ट्रमें सैंकड़ों और सहस्रों ग्राम होगए हैं ॥ २१ ॥ सहस्रों राजे और उन बलवानोंकी सेनाएँ लाखों ग्राम तथा राष्ट्रोंसे भूमिमें (इतनाभी) छेद नहीं रहा, कि-

भूमिर्निर्विवरा कृता ॥ २२ ॥ सेयं निरामयं कृत्वा निश्चेष्टा
कालमग्रतः । माप्ता ममालयं विष्णो भवांश्चास्याः परा गतिः २३
कर्मभूमिर्मनुष्याणां भूमिरेषा व्यथां गता । यथा न सीदेत्तत्कार्यं
जगत्येषा हि शाश्वती ॥ २४ ॥ अस्या हि पीडने दोषो महान्
स्यान्मधुसूदन । क्रियालोपश्च लोकानां पीडितं च जगद्भवेत् २५
श्राम्यते व्यक्तमेवेयं पार्थिवौघमपीडिता । सहजां या क्षमां त्यक्त्वा
चलत्वमचला गता ॥ २६ ॥ तदस्याः श्रुतवन्तः स्म तच्चापि
भवता श्रुतम् । भारावतरणार्थं हि मन्त्रयाम सह त्वया ॥२७ ॥
सत्पथे हि स्थिताः सर्वे राजानो राष्ट्रवर्धनाः । नराणां च त्रयो
वर्णा ब्राह्मणाननुयायिनः ॥ २८ ॥ सर्वं सत्यपरं वाक्यं वर्णा

वह श्वास भी ले सके) ॥ २२ ॥ यह पृथिवी निश्चेष्ट हो निरामय कालको साथमें लेकर मेरे स्थान आई थी, हे विष्णो ! अब आपही इसकी परा गति हैं । (अर्थात् प्राणियोंको तो इस समय कोई आमि (व्याधि) भी नहीं होती तो उनकी मृत्यु तो होगी ही कहाँसे अतः पृथिवी बड़ी दब रही है)२३यह संसारमें रहने वाली मनुष्योंकी शाश्वती कर्म भूमि व्यथा पाकर (मट्टी के ढेलेकी समान) विखर न जाय तैसा करना चाहिये ॥२४॥ हे मधुसूदन ! इसके पीड़ित होने पर वड़ा भारी उपद्रव होगा क्रियाएँ लुप्त होजावेंगी और जगत् उत्पीड़ित होने लगेगा २५ यह राजाओंसे पीड़ित पृथिवी थक रही है, यह स्पष्ट ही है, क्योंकि- यह अचला अपनी स्वाभाविकी क्षमाको त्याग कर चलने लगी है ॥ २६ ॥ हमने इसकी ये सब बातें सुनी थीं और आपने भी यह बातें सुनली, अतः अब हम इसका भार दूर करनेके लिये आपके साथ मंत्रणा करना चाहते हैं ॥ २७ ॥ सब राजे सन्मार्गमें रह कर अपने राज्यको बढ़ा रहे हैं और तीनों वर्ण भी ब्राह्मणोंके अनुयायी बन रहे हैं ॥ २८ ॥ सब

धर्मपरास्तथा । सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः ॥ २६ ॥
एवं जगति वर्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात् । यथा धर्मवधो न
स्यात्तथा मन्त्रः प्रवर्त्यताम् ॥ ३० ॥ सतां गतिरियं नान्याधर्म-
श्चास्याः सुसाधनम्।राज्ञां चैव वधःकार्यो धरण्या भारनिर्णये ३१
तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात् । व्रजामो मेरुशिखरं
पुरस्कृत्य वसुन्धराम् ॥३२॥ एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोक-
पितामहः । पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्युतिः ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि भारा-
वतरणे एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

वैशम्पायन उवाच । बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनांभोदनिःस्वनः ।
प्रतस्थे दुर्दिनाकारः स दुर्दिन इवाचलः ॥ १ ॥ स मुक्तामणि-

वाक्य सत्यका आश्रय लेकर ही उच्चारण किये जाते हैं और सब वर्ण धर्मपरायण हैं, सब ब्राह्मण वेदमें परायण रहते हैं और सब मनुष्य ब्राह्मणोंके अनुकूल रहते हैं ॥ २६ ॥ धर्मके कारण मनुष्य जगत्में इस प्रकारका व्यवहार कर रहे हैं, परन्तु धर्म जिस प्रकार न दबे तैसी मंत्रणा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ यही सज्जनोंकी गति है और इसका साधन यही है,कि-पृथिवी का भार (उतारनेका)निर्णय करनेके लिये राजाओंका वध होना चाहिये ॥ ३१ ॥ हम मन्त्रणा करनेके लिये पृथिवीको साथमें लेकर मेरुपर्वतके शिखर पर जाते हैं, हे महाभाग ! आप भी तहाँ चलिये ३२ विश्वकी आत्मा लोकपितामह महाकान्तिवान् ब्रह्माजी और पृथिवी इतनी बात कह कर चुप होगए ॥ ३३ ॥ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

वैशंपायनजीने कहा, कि-मेघकी समान गर्जने वाले और मेघ की समान आकार वाले अचल श्री कृष्ण बहुत अच्छा कह कर मेघकी समान चलने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णके उदर तक जटाएँ

विद्योतं सचन्द्राम्भोदवर्चसम् । स जटामण्डलं कृत्स्नं बिभ्रत्
कृष्णवपुर्हरिः ॥ २ ॥ स चास्योरसि विस्तीर्णं रोमांचोद्गत-
राजिमान । श्रीवत्सो राजते श्रीमांस्तनद्वयमुखाचितः ॥ ३ ॥
पीतेवसानो वसने लोकानां गुरुरव्ययः । हरिः सोऽभवदालक्ष्यः
ससंध्याभ्र इवाचलः ॥ ४ ॥ तं व्रजन्तं सुपर्णेन पद्मयोनिगता-
नुगम् । अनुजग्मुः सुराः सर्वे तद्गतासक्तचक्षुषः ॥ ५ ॥ नाति-
दीर्घेण कालेन संप्राप्ता रत्नपर्वतम् । ददृशुर्देवतास्तत्र तां सभां
कामरूपिणीम् ॥६॥ मेरोः शिखरविन्यस्तां संयुक्तां सूर्यवर्चसा ।
कांचनस्तम्भरचितां वज्रसंधानतोरणाम् । मनोनिर्माणचित्राढ्यां
विमानशतमालिनीम् । रत्नजालांतरवतीं कामगां रत्नभूषिताम् ८

लटक रहीं थीं और उनका शरीर मुक्ता और मणियोंसे दिप रहा था उस समय वह जिसमें चन्द्रमा खिल रहा है तैसे मेघकी समान दीखते थे ॥ २ ॥ उनके वक्षःस्थल पर खड़े हुए बालों की रेखा बन रहीं थीं उनमें जिसकी दोनों स्तनमुख पूजा कर रहे थे ऐसा श्रीवत्स शोभा देरहा था ॥३॥ लोकोंके गुरु अच्युत हरि पीले छोर वाले कपड़ेको पहिने हुए संध्याकालके बादलों से घिरे हुए पर्वतकी समान दीखते थे ॥ ४ ॥ जब वह गरुड़ पर बैठ कर चलने लगे तब ब्रह्माजी उनके पीछे२ चलने लगे और सब देवता भी उनकी ओर देखते हुए चलने लगे ॥ ५ ॥ थोड़े ही समयमें वह रत्नपर्वतके समीप पहुँच गए तहाँ पर देवताओंने इच्छानुसार रूप धारण करने वाली सभाको देखा ॥ ६ ॥ वह सभा मेरुपर्वतके शिखर पर वसी हुई थी और सूर्यके तेजसे संयुक्त थी और उसमें सुवर्णके स्तम्भ बन रहे थे और उसमें रत्नोंके तोरण बन रहे थे ॥ ७ ॥ वह अपने मनसे बनाये हुए बहुतसे चित्रोंसे सज रही थी और उसमें सैकड़ों विमानोंकी लँग्रारे खड़ी हुई थी उसमें रत्नोंके झरोखे बने हुए थे और वह इच्छानुसार

सर्वरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुकुसुमोत्कराम् । देवमायाधरां दिव्यां विहितां विश्वकर्मणा तां हृष्टमनसः सर्वे यथास्थानं यथाविधि । यथानिदेशं त्रिदशा विविशुस्ते सभां शुभाम् ॥ १० ॥ ते निषेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वासनेषु च । भद्रासनेषु पीठेषु कुथास्त्वास्तरणेषु च ॥ ११ ॥ ततः प्रभंजनो वायुर्ब्रह्मणा साधुचोदितः । मा शब्दमिति सर्वत्र प्रचक्रामाथ तां सभाम् ॥ १२ ॥ निःशब्दस्तिमिते तस्मिन् समाजे त्रिदिवौकसाम् बभाषे धरणी वाक्यं खेदात् करुणभाषिणी ॥ १३ ॥ धरण्युवाच । त्वया धार्या ह्यहं देव त्वया वै धार्यते जगत् । त्वं धारयसि भूतानि भुवनानि बिभर्षि च ॥ १४ ॥ यत्त्वया धार्यते किंचित्तेजसा च बलेन च । ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च धार्यते ॥ १५ ॥ त्वया धृतं धारयामि

विचरण करती थी और रत्नोंसे विभूषित लगती थी ८ उसमें सब प्रकारके रत्न लग रहे थे और सब ऋतुओंके पुष्प लग रहे थे और देवताओंकी मायाको धारण कर रही थी और विश्वकर्मकी बनाई हुई थी ॥ ९ ॥ उस शुभ सभामें सब देवता (ब्रह्माजीकी) आज्ञाके अनुसार मनमें प्रसन्न होते हुए बैठ गए ॥ १० ॥ वे अपने लिये (शास्त्रोंमें) वर्णन किये हुए विमान आसन भद्रासन पटले भूल और विछौनों पर बैठ गए ११ तदनन्तर ब्रह्माजीके प्रेरणा करने पर प्रभंजननामक वायु चुप रहिये कहता हुआ सभामें घूम आया १२ जब देवताओंके समाजमें सन्नाटा छागया उस समय खिन्न होकर करुणामय शब्दोंमें पृथिवी कहने लगी १३ पृथिवीने कहा कि–हे देव ! आप मुझे धारण करते रहते हैं, आप जगत्को धारण करे रहते हैं, आप भूतोंको धारण कर रहे हैं और आप भुवनोंका भी पालन कर रहे हैं १४ आप अपने तेजसे और बलसे जिस वस्तुको धारण करते हैं उसको मैं ही आपके प्रसाद

नाधृतं धारयाम्यहम् । न हि तद्विद्यते भूतं यत्त्वया नानुधार्यते १६
त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे । मम भारावतरणं जगतो
हितकाम्यया ॥ १७ ॥ तवैवं तेजसाक्रांता रसातलतलंगताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ तवैव शरणं गताम् ॥ १८ ॥ दानवैः पीड्य-
मानाऽहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः । त्वमेव शरणं नित्यमुपयास्ये
सनातनम् ॥ १९ ॥ तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मि-
नम् । शरणं यामि मनसा शतशो ह्युपलक्षये ॥ २० ॥ अहमादौ
पुराणस्य संक्षिप्ता पद्मयोनिना । मां च बध्वा कृतौ पूर्वं मृन्मयौ
द्वौ महासुरौ ॥ २१ ॥ कर्णस्रोतोद्भवौ तौ हि विष्णोरस्य महा-
त्मनः । महार्णवे प्रस्वपतः काष्ठकुड्यसमौ स्थितौ ॥ २२ ॥ तौ

से यत्न करके धारण कर सकती हूँ १५ मैं आपकी धारणकी हुई वस्तुको ही धारण कर सकती हूँ और जिसको आप नहीं धारण करते हैं उसको मैं धारण नहीं कर सकती, ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसको आपने धारण न कर रक्खा हो १६ हे देव ! आप ही प्रत्येक युगमें जगत्का हित करनेकी इच्छासे मेरा भार उतारा करते हैं १७ हे सुरश्रेष्ठ ! मैं आपके (दुष्ट राजारूप) तेजसे दब कर रसातलमेंको धँसी जारही हूँ, हे सुरश्रेष्ठ ! अब मैं आपकी शरणमें पड़ कर कहती हूँ, कि-आप मेरी रक्षा करिये १८ दुरात्मा राक्षस और दानव जब २ मुझे दुःख देते हैं, तब २ मैं आप सनातन पुरुषकी शरण लिया करती हूँ १९ मुझे तो जब तक ही डर लगता रहता है जब तक मैं आपकी मनमें शरण नहीं लेती हूँ,इस बातकी मैंने सैंकड़ों बार परीक्षा की है २० पैंसोंका प्रचार होनेसे पहिले पद्मयोनि ब्रह्माजीने मुझे भली प्रकार देखा था और मुझे बाँधकर मृन्मय मधु कैटभ नाम वाले राक्षसोंको (आपने) मार डाला था ॥२१॥ जब महात्मा विष्णु समुद्रमें सोरहे थे तब उनके कानोंके गोलकोंमेंसे

विवेश स्वयं वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः। दिवं प्रच्छादयंतौ तु वंवृधाते महासुरौ ॥ २३ ॥ वायुः प्राणौ तु तौ गृह्य ब्रह्मा पर्यमृशच्छनैः । एकं मृदुतरं मेने कठिनं वेद चापरम् ॥२४॥ नामनी तु तयोश्चक्रे स विभुः सलिलोद्भवः । मृदुस्त्वयं मधुर्नाम कठिनः कैटभोऽभवत् ॥ २५ ॥ तौ दैत्यौ कृतनामानौ चेरतुर्बलदर्पितौ । सर्वमेकार्णवं लोकं योद्धुकामौ सुदुर्जयौ ॥२६॥ तावागतौ समालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः।एकार्णवांबुनिचये तत्रैवान्तरधीयत२७ स पद्मे पद्मनाभस्य नाभिमध्यात् समुत्थिते । रोचयामास वसतिं गुह्यां ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ २८ ॥ तावुभौ जलगर्भस्थौ नारायणपितामहौ । बहून् वर्षगणानप्सु शयानौ न चकम्पतुः ॥ २९ ॥ अथ दीर्घस्य कालस्य तावुभौ मधुकैटभौ । आजग्मतुस्तमुद्देशं

उत्पन्न हुए थे और काष्ठ और दीवारकी समान अचेतन थे २२ तब ब्रह्माजीके साधुभावसे प्रेरणा करने पर (प्राण) वायुने उनमें प्रवेश किया, तब वे महाअसुर आकाशमेंको बढने लगे २३ उस समय प्राणवायु पड़े हुए उन दोनों दानवोंको ब्रह्माजीने छुआ तो उन्होंने जाना कि–इसमें एक तो परम कोमल है और दूसरा कड़ा है ॥ २४ ॥ तब जलमेंसे उत्पन्न हुए विभु ब्रह्माजीने उनके नाम रक्खे कि यह मृदु है अतः इसका नाम मधु है और जो कठिन है इसका नाम कैटभ है ॥ २५ ॥ तब बलसे घमण्डमें भरे हुए वे दुर्जय दैत्य नामकरण होने पर समुद्रमय संसारमें युद्ध करनेकी इच्छासे विचरण करने लगे ॥ २६ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजी एकार्णवरूप जलसमूहमें उन दैत्योंको आते देख कर अन्तर्धान होगए ॥ २७ ॥ उस समय चार मुख वाले ब्रह्माजीने पद्मनाभकी नाभिके मध्यमेंसे निकले हुए कमलमें गुप्त रह कर रहना अच्छा समझा ॥ २८ ॥ वे दोनों नारायण और पितामह जलके मध्यमें शयन करने पर अनेक वर्षों तक हिले भी नहीं २९

यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा तावसुरौ घोरौ महाकायौ दुरासदौ । ब्रह्मणा ताडितो विष्णुः पद्मनालेन वै तदा । उत्पपाताथ शयनात् पद्मनाभो महाद्युतिः ॥ ३१ ॥तद्युद्धमभवद्ध घोरं तयोस्तस्य च वै तदा । एकार्णवे तदा लोके त्रैलोक्ये जलतां गते ॥ ३२ ॥ तदाऽभूत्तुमुलं युद्धं वर्षसंख्यासहस्रशः । न च तावसुरौ युद्धे तदा श्रममवापतुः ॥ ३३ ॥ अथातो दीर्घकालस्य तौ दैत्यौ युद्धदुर्मदौ ।ऊचतुः प्रीतमनसौ देवं नारायणं हरिम्३४ प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ ३५ ॥ हतौ च तव पुत्रत्वं प्राप्नुयावः सुरोत्तम।यो ह्यावां युधि निर्जेता तस्यावां विहितौ सुतौ३६ स तु गृह्य मृधे दोर्भ्यां दैत्यौ तावभ्यपीडयत् । जगतुर्निधनं

बहुत समय बीतने पर मधु और कैटभ नामके दानव ब्रह्माजीके रहनेके स्थान पर आही पहुँचे ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी उन बड़े २ शरीर वाले दुरासद घोर दैत्योंको देख कर विष्णुको कमलकी नाल (हिला) मार कर उठाने लगे, तब तो महाकान्तिवान् पद्मनाभ सोते २ जाग उठे ॥ ३१ ॥ उस समय जब त्रिलोकीके जल बन जानेसे सब समुद्रमय होरहा था उस जलमें मधु तथा कैटभसे श्रीकृष्णका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२॥ परंतु सहस्रों वर्ष घोर युद्ध करने पर भी वे दैत्य श्रीकृष्णको न थका सके ३३ तब तो बहुत समय बीतने पर उन युद्ध दुर्मद दैत्योंने मनमें प्रसन्न होकर परमात्मा देवहरिसे कहा, कि ॥ ३४ ॥ हम तुम्हारे युद्ध (कौशल) से परम प्रसन्न हुए हैं, तुमसे हमारी मृत्यु होना प्रशंसाकी बात है अब तुम हमको तहाँ पर मार डालो जहाँ पर पृथ्वी जलरहित हो ॥ ३५ ॥ और हे सुरोत्तम ! हम मारे जाने पर तुम्हारे पुत्र कहलावेंगे (क्योंकि ब्रह्माजीने कह दिया है,कि-) जो हमको युद्धमें मार लेगा हम दोनों उसके ही पुत्र कहलायेंगे ३६

चापि तावुभौ मधुकैटभौ ॥३७॥तौ हतौ चाप्लुतौ तोये वपुर्भ्या-
मेकतां गतौ । मेदो मुमुचतुर्दैत्यौ मथ्यमानौ जलोर्मिभिः ॥३८॥
मेदसा तज्जलं व्याप्तं ताभ्यामन्तर्दधे ततः । नारायणश्च भग-
वानसृजत् स पुनः प्रजाः ॥३९॥ दैत्ययोर्मेदसाच्छन्ना मेदिनीति
ततः स्मृता ।। प्रभावात् पद्मनाभस्य शाश्वती जगती कृता ४५
वराहेण पुरा भूत्वा मार्कंडेयस्य पश्यतः । विषाणेनाहमेकेन तोय-
मध्यात् समुद्धृता ॥ ४१ ॥ कृताहं क्रमता भूयस्तदा युष्माक-
मग्रतः । बलेः सकाशाद्ध दैत्यस्य विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ४२ ॥
साम्प्रतं स्विद्यमानाहमेनमेव गदाधरम् । अनाथा जगतो नाथं
शरण्यं शरणं गता ॥ ४३ ॥ अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यो

तब भगवान्ने रणमें उन दोनोंको अपनी भुजाओंसे पकड़ कर
रगड़ना आरंभ कर दिया तब मधु और कैटभ नामक दोनों दैत्यों
ने अपने प्राणोंको त्याग दिया ३७ जब भगवान्ने उन दोनोंको
मार कर जलमें डाल दिया तब उन दोनोंके शरीर मिल गए
और जलकी लहरोंकी टक्करोंसे उनके शरीरमेंसे मेद निकलने
लगा ३८ जब जल उनके मेद (चरबी) से व्याप्त होगया तब
अन्तर्धान हो (सूख) गया फिर भगवान् नारायण प्रजाको रचने
लगे ३९ पृथ्वी दैत्योंके मेदसे व्याप्त होनेके कारण मेदिनी
कहलाती है (जहाँ पर भगवान्ने प्रजा रची थी) और पद्मनाभ
के प्रभावसे यह पृथ्वी शाश्वती (सदा रहने वाली) होगई४०
और आपने मार्कण्डेयजीकी दृष्टिके सामने वराहका रूप धारण
कर अपनी डाढ़से जलमेंसे मेरा उद्धार किया था ॥ ४१ ॥ और
इन प्रभाववान् विष्णुने तुम्हारे सामने भी बलि दैत्यके यहाँ
नाप कर मेरा (उद्धार) किया था ॥४२॥ इस समय भी पसीने
से तर होनेके कारण मैं अनाथ इन गदाधारी जगत्के स्वामी
और सबको शरण देनेवाले विष्णुकी ही शरणमें (फिर) आई

गुरुः स्मृतः । नक्षत्राणां गुरुः सोमो मम नारायणो गुरुः ॥४४॥ यदयं धारयाम्येका जगत् स्थावरजंगमम् । मया धृतं धारयते सर्वमेतद्गदाधरः ॥ ४५ ॥जामदग्न्येन रामेण भारावतरणेप्सया । रोषात् त्रिःसप्तकृत्वाऽहं क्षत्रियैर्विप्रयोजिता॥ ४६ ॥ साऽस्मि वेद्यां समारोप्य तर्पिता नृपशोणितैः । भार्गवेण पितुः श्राद्धे कश्यपाय निवेदिता ॥ ४७ ॥ मांसमेदोऽस्थिदुर्गन्धा दिग्धा क्षत्रियशोणितैः । रजस्वलेव युवतिः कश्यपं समुपस्थिता ॥ ४८ ॥ स मां ब्रह्मर्षिरप्याह किमुर्वि त्वमवाङ्मुखी । वीरपत्नीव्रतमिदं धारयन्ती विषीदसि ॥ ४९ ॥ साहं विज्ञापितवती कश्यपं लोकभावनम् । पतयो मे हता ब्रह्मन् भार्गवेण महात्मना ॥ ५० ॥

हूँ ॥४३॥ अग्नि सुवर्ण का गुरु कहलाता है और सूर्य किरणोंका गुरु है और चन्द्रमा नक्षत्रोंके गुरु हैं और मेरे गुरु तो नारायण ही हैं ॥४४॥ मैं अकेली ही स्थावर जंगमात्मक सारे जगत्को धारण कर रही हूँ परन्तु मेरी धारण की हुई सब वस्तुओंको (और मुझको भी) ये नारायण ही धारण कर रहे हैं ॥४५॥ जमदग्निपुत्र परशुरामने मेरा भार उतारनेकी इच्छासे क्रोधमें भर कर इक्कीस बार क्षत्रियोंसे मुझे छुड़ादिया था ॥ ४६ ॥ फिर उन्होंने राजाओंके रक्तसे मुझे तृप्त करके वेदीमें(रणस्तंभको)प्रतिष्ठित कर अपने पिताके श्राद्धमें मुझे कश्यपको दानमें दे दिया था४७ उससमय मेरे शरीरमेंसे मांस मेद और हड्डियोंकी दुर्गन्ध निकल रही थी और मैं क्षत्रियोंके रक्तसे सन रही थी, इस प्रकार मैं रजस्वला स्त्रीकी समान कश्यपके पास पहुँची ॥४८॥ तब उन्होंने मुझसे कहा कि-हे पृथ्वि।वीरपत्नीके व्रतको धारण कर अर्थात् रणमें मारे हुए वीर पुरुषकी पत्नीके व्रतको धारण कर नीचेको मुख करके तू विषाद क्यों कर रही है॥ ४९ ॥ तब मैंने संसारका भला चाहने वाले कश्यपजीसे कहा,कि-हे ब्रह्मन्!

साहं विहीना विक्रान्तैः क्षत्रियैः शस्त्रवृत्तिभिः । विधवा शून्यनगरा न धारयितुमुत्सहे ५१ ॥ तन्मह्यं दीयतां भर्ता भगवंस्त्वत्समो नृपः । रक्षेत् सग्रामनगरां यो मां सागरमालिनीम् ॥५२॥ स श्रुत्वा भगवान् वाक्यं बाढमित्यब्रवीत् प्रभुः । ततो मां मानवेन्द्राय मनवे संप्रदत्तवान् ॥ ५३ ॥ सा मनुप्रभवं दिव्यं प्राप्येक्ष्वाकुकुलं नृपम् । विपुलेनास्मि कालेन पार्थिवात् पार्थिवं गता ५४ एवं दत्तास्मि मनवे मानवेन्द्राय धीमते । भुक्ता राजसहस्रैश्च महर्षिकुलसम्मतैः ॥ ५५ ॥ बहवः क्षत्रियाः शूरा मां जित्वा दिवमाश्रिताः । ते च कालवशं प्राप्य मय्येव प्रलयं गताः ॥५६॥ मत्कृते विग्रहा लोके वृत्ता वर्तन्त एव च । क्षत्रियाणां बलवतां

महात्मा भार्गवने मेरे पतियोंको मार डाला है ॥ ५० ॥ इस कारण अब मैं पराक्रम करने वाले शस्त्रवृत्ति क्षत्रियोंसे रहित होनेसे विधवा होगई हूँ और नगर सूने पड़े हुए हैं, अतः मैं (अपना जीवन) रखना नहीं चाहती ॥ ५१ ॥ अतः हे भगवन् ! आप मुझे अपनी समान कोई राजा भर्ता दीजिये, कि जो मुझ सागरमालिनीकी ग्राम और नगरसहित रक्षा करसके तब उन प्रभुने मेरी बातको सुन कर बहुत अच्छा कहा, फिर उन भगवान्ने मुझे मानवेन्द्र मनुके अर्पण कर दिया ॥ ५३ ॥ तब मैं मनुसे उत्पन्न हुए दिव्य इक्ष्वाकुकुलके राजाके पास आगई और बहुत समयसे एक राजाके पाससे दूसरे राजाओंके पास चली आरही हूँ ॥ ५४ ॥ इसप्रकार मैं बुद्धिमान् मानवेंद्र मनुको सौंपी हुई हूँ और महर्षियोंके कुलोंमें माननीय सहस्रों राजाओंने मुझे भोगा है ॥ ५५ ॥ बहुतसे शूरवीर क्षत्रिय मुझे जीत कर स्वर्गमें चले गए हैं,वे सब कालके अधीन होकर मुझमें ही लीन होगए हैं ॥ ५६ ॥ संग्राममें पीठको पैर न धरनेवाले बलवान् क्षत्रियोंने मेरे लिये ही बहुतसे युद्ध किये थे और आज

संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥५७॥ एतत्त्वत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते। जगद्धितार्थं कुरुत राज्ञां हेतुं रणं क्षये ॥ ५८ ॥ यद्यस्ति मयि कारुण्यं भारशैथिल्यकारणात् । एकश्चक्रधरः श्रीमानभयं मे प्रयच्छतु ॥ ५९ ॥ यमहं भारसन्तप्ता संप्राप्ता शरणार्थिनी। भारो यद्यवरोप्यो मे विष्णुरेव ब्रवीतु माम् ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते श्रुत्वा पृथिवीवाक्यं सर्व एव दिवौकसः। तदर्थकृत्यं सचिन्त्य पितामहमथाब्रुवन् ॥ १ ॥ भगवन् क्रियतामस्या धरण्या भारसन्ततिः। शरीरकर्ता लोकानां त्वं हि लोकस्य चेश्वरः ॥ २ ॥ यत्कर्तव्यं महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च।

कल भी करते हैं ॥ ५७ ॥ तुम्हारे प्रचलित किये हुए दैवके अनुसार इसप्रकार प्रजाका पालन होता रहता है, अब तुम जगत्का हित करनेके लिये राजाओंका युद्धमें क्षीण करनेका कोई उपाय करो ॥ ५८ ॥ भारसे शिथिल होती हुई मुझ पर यदि करुणा आती तो एक चक्रधर श्रीमान् विष्णु ही मुझे अभय दें ॥ ५९ ॥ मैं भारसे उकता कर जिनकी शरणमें आई हूँ वह विष्णु यदि मेरा भार उतारना चाहें तो मुझसे (दया करके) कहें ॥ ६० ॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

वैशम्पायजीने कहा, कि–वे सब देवता पृथिवीके वाक्यको सुन कर पृथिवीके कार्यको सिद्ध करनेकी चिंता कर पितामहसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आप इस पृथ्वीके भारको उतारिये, आप संसारके शरीरोंका निर्माण करनेवाले हैं और आप लोकोंके ईश्वर हैं ॥२॥ इस विषयमें इन्द्र यम और वरुण को क्या करना चाहिये और कुवेरको क्या करना चाहिये ? और स्वयं नारायण ही इस विषयमें क्या २ करें (इस बातकी आज्ञा

यद्वा कार्यं धनेशेन त्वया नारायणेन च ॥ ३ ॥ यद्वा चन्द्रमसा कार्यं भास्करेणानिलेन वा । आदित्यैर्वसुभिर्वापि रुद्रैर्वा लोकभावनैः ॥ ४ ॥ अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां साध्यैर्वा त्रिदशालयैः । बृहस्पत्युशनोभ्यां वा कालेन कलिनापि वा ॥ ५ ॥ महेश्वरेण वा ब्रह्मन् विशाखेन गुहेन वा । यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारणैर्वा महोरगैः ॥ ६ ॥ पतगैः पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महोर्मिभिः । गंगामुखाभिर्दिव्याभिः सरिद्भिर्वा सुरेश्वर ॥७॥ क्षिप्रमाज्ञापय विभो कथमंशः प्रयुज्यताम् । यदि ते पार्थिवं कार्यं कार्यं पार्थिवविग्रहेः ॥ ८ ॥ कथमंशावतरणं कुर्मः सर्वे पितामह । अन्तरिक्षगता ये च पृथिव्यां पार्थिवाश्च ये ॥ ९ ॥ सदस्यानां च विप्राणां पार्थिवानां कुलेषु च । अयोनिजाश्चैव तनूः सृजामो जगतीतले ॥ १० ॥ सुरा-

---

दीजिये) ॥ ३ ॥ चन्द्रमा सूर्य पवन आदित्य वसु और संसारके हितचिंतक रुद्रोंको भी इस विषयमें क्या करना चाहिये (इसकी आज्ञा दीजिये) ॥४॥ देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार स्वर्गवासी साध्य बृहस्पति शुक्राचार्य काल और कलि महेश्वर विशाख स्कन्द यक्ष राक्षस गन्धर्व महासर्प पक्षी पर्वत बड़ी २ लहरोंवाले समुद्र और हे सुरेश्वर ! गंगा आदि दिव्य नदियों को (इस विषयमें क्या २ काम करना चाहिये)॥ ५—७ ॥ हे विभो ! यदि आप पृथिवीके विकार वाले (मनुष्य आदिके) शरीरमें पृथिवीका कार्य करना उचित समझते हों तो बताइये ! हम सब अपने २ अंशको किस २ प्रकार उत्पन्न करें ॥ ८ ॥ हे पितामह ! हम सब किस प्रकार अंशावतार धारण करें, जो देवता अन्तरिक्षमें रहते हैं और जो पृथिवीमें पार्थिवरूपमें रहते हैं वे सदस्य विप्रोंके कुलमें और राजाओंके कुलोंमें उत्पन्न हों और पृथिवीमें अयोनिज शरीरोंमें भी उत्पन्न हों ? ॥९॥१०॥ एक कार्यके लिये उद्योग करने वाले देवताओंके निश्चयको सुन

णामेककार्याणां श्रुत्वैतन्निश्चितं मतम् । देवैः परिवृतः प्राह वाक्यं लोकपितामहः ॥ ११ ॥ रोचते मे सुरश्रेष्ठा युष्माकमपि निश्चयः । सृजध्वं स्वशरीरांशांस्तेजसात्मसमान् भुवि ॥ १२ ॥ सर्व एव सुरश्रेष्ठास्तेजोभिरवरोहत । भावयन्तो भुवं देवीं लब्ध्वा त्रिभुवनाश्रियम् ॥ १३ ॥ पार्थिवे भारते वंशे पूर्वमेव विजानाता । पृथिव्यां संभ्रममिमं श्रूयतां यन्मया कृतम् ॥ १४ ॥ समुद्रेऽहं पुरा पूर्वां वेलामासाद्य पश्चिमाम् । आसे सार्धं तनूजेन कश्यपेन महात्मना ॥ १५ ॥ कथाभिः पूर्ववृत्ताभिर्लोकवेदानुगामिभिः । इति वृत्तैश्च बहुभिः पुराणप्रभवैर्गुणैः ॥ १६ ॥ कुर्वतस्तु कथास्तास्ताः समुद्रः सह गंगया । समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयद-मारुतैः ॥ १७ ॥ स वीचिविषमां कुर्वन् गतिं वेगतरंगिणीम् ।

कर देवताओंसे घिर कर बैठे हुए लोकपितामह ब्रह्माजीने कहा, कि–॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ देवताओं ! मुझे तुम्हारा निश्चय उत्तम मालूम पडता है आप अपने तेजकी समान अंशोंवाले अपने अंशोंको पृथिवीमें उत्पन्न करिये ॥ १२ । हे सब सज्जन देवताओं!तुम अपने अंशोंसे पृथिवीमें उत्पन्न होओ और (तहाँ पर) त्रिभुवनकी लक्ष्मीको पाकर पृथिवीका पालन करो ॥ १३ ॥ मैंने पृथिवीके भयका पहिलेसे ही विचार करके पृथिवीमें स्थित भरतवंशके लिये जो २ बातें सोच रक्खी हैं उनको तुम सुनो १४ पहिले मैं पूर्वदिशामें समुद्रके पश्चिम तट पर अपने पुत्र कश्यप के साथ कथाएँ कहनेको बैठ गया था ॥ १५ ॥ उस समय हम पूर्वकालमें हुई लोक और वेदका अनुगमन करने वाली गुणमयी इतिहासकी कथाओंको कहने लगे ॥ १६ ॥ जब मैं कथा कथा कह रहा था उस समय समुद्र गंगाको साथमें ले मेघ और पवन उसके साथमें शीघ्रतासे आये थे ॥ १७ ॥ समुद्र अपनी तेज तरंगिणी गतिको विषय करता हुआ जलचर जीवोंसे

यादोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा ॥ १८ ॥ शंखमुक्ता-
मलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः । युक्तश्चन्द्रमसा पूर्ण उग्रगम्भीर-
निःस्वनः ॥ १९ ॥ स मां परिभवन्नेव स्वां वेलां समतिक्रमन् ।
क्लेदयामास चपलैर्लावणैरंबुविस्रवैः ॥ २० ॥ तं च देशं व्यव-
सितः समुद्रोद्भिर्निमर्दितुम् । उक्तः संरब्धया वाचा शान्तोसीति
मया तदा ॥ २१ ॥ शान्तोसीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः ।
संहतोर्मितरंगौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन् ॥ २२ ॥ भूयश्चैव
मया शप्तः समुद्रः सह गंगया । सत्कारणां मतिं कृत्वा युष्माकं
हितकाम्यया ॥ २३ ॥ यस्मात्त्वं राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः
गच्छार्णव महीपालो राजैव त्वं भविष्यसि ॥२४॥तत्रापि सहजां

विचित्र दीखते हुए वस्त्रको पहर कर आरहा था उस समय
उसका जलचर जीवों वाला जलीय वस्त्र चित्र विचित्र रँगके
उड़ते हुए लहरियेकी समान दीख रहा था ॥ १८ ॥ उसका
शरीर शंख और मोतियोंसे निर्मल दीख रहा था और वह
मूँगोंके भूषण पहर रहा था और वह पूर्णिमाके चन्द्रमाके साथ
होनेसे उग्ररूप धारण कर गम्भीर गर्जना कर रहा था ॥१९॥
उस समय वह मेरा तिरस्कार करनेके लिये अपने किनारेको
लाँघ अपने चपल नमकीन जलोंसे मुझे भिगोने लगा ॥ २० ॥
जब समुद्र उस देशको जलसे मथने लगा तब मैंने क्रोधमें भरे
स्वरमें उससे कहा, कि-तू तो बडा शान्त है(यहाँ विरुद्धलक्षण
से उपहास किया है) ॥२१॥ मेरे शान्त होजा कहते ही समुद्र
तनु (दुर्बल)होगया और लहर तथा प्रवाहसे संहत हो राजलक्ष्मी
से दमकने लगा ॥२२॥ फिर मैंने तुम्हारा हित करनेकी इच्छासे
भार उतारनेके कारणकी बुद्धि करके समुद्र और गंगाको फिर
शाप दिया, कि-॥ २३ ॥ हे समुद्र ! तू मेरे पास राजाके वेशमें
आया था, अतः हे समुद्र ! जा तू राजा ही होगा ॥ २४ ॥

लीलां धारयन् स्वेन तेजसा । भविष्यसि नृणां भर्ता भारतानां कुलोद्वहः ॥२५॥शान्तोसीति मयोक्तस्त्वं यच्चाभि तनुतां गतः । सुतनुर्यशसा लोके शन्तनुस्त्वं भविष्यसि२६इयमप्यातापांगि गंगा सर्वांगशोभना । रूपिणी च सरिच्छ्रेष्ठा तत्र त्वामुपयास्यति २७ एवमुक्तस्तु मां क्षुब्धः सोऽभिवीक्ष्यार्णवोऽब्रवीत् । मां प्रभो देव-देवानां किमर्थं शप्तवानसि २८ ॥ अहं तव विधेयात्मा त्वत्कृत-स्त्वत्परायणः । अशपोऽसदृशैर्वाक्यैरात्मजं मां किमात्मना २९ भगवंस्त्वत्प्रसादेन वेगात् पर्वणि वर्धितः । यद्यहं चलितो ब्रह्मन् कोऽत्र दोषो ममात्मनः ॥ ३० ॥ क्षिप्ताभिः पवनैरद्भिः स्पृष्टो यद्यसि पर्वणि । अत्र मे किं नु भगवन विघ्ने शापकारणम् ३१

तहाँ भी तू अपनी स्वाभाविकी लीलाको करेगा और तू अपने तेजसे भरतवंशियोंके कुलको उठाने वाला मनुष्येश्वर होगा२५ मैंने तुझसे "शान्तोऽसि–तू बड़ा शान्त है ?" कहा है और तू भी तनु होगया है, अतः तू पतले शरीर वाला होगा और लोक में अपनी कीर्तिसे शन्तनु होगा ॥२६॥ और तहाँ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा भी सर्वाङ्गसुन्दरी और स्थूलनितम्बों वाली रूपवती रमणी बन कर तेरी सेवा करेगी ॥ २७ ॥ इसप्रकार कहने पर समुद्र क्षुब्ध होगया और मेरी ओर देख कर कहने लगा, कि-हे देवदेवोंके (रुद्र आदिके) प्रभु ! आप मुझे शाप क्यों देरहे हैं ॥ २८ ॥ मैं तो आपका आज्ञाकारी हूँ, आपका रचा हुआ और आपमें परायण रहता हूँ, फिर आपने मुझ पुत्र समानको अनुचित बातें कह कर क्यों शाप देदिया ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मैं (पूर्णिमाके) पर्वमें वेगपूर्वक बढा था(अर्थात् यह मर्यादा आपने ही बाँधी है उस मर्यादाके कारण) यदि मैं चलायमान होगया तो इसमें मेरा क्या दोष है ? ॥ ३० ॥ मैंने आपको पर्वके समय जल फैंक कर छू ही तो लिया था, हे भग-

उद्धूतैश्च महावातैः प्रवृद्धैश्च वलाहकैः । पर्वणा चेन्दुयुक्तेन त्रिभिः क्षुब्धोऽस्मि कारणैः ॥३२॥ एवं यद्यपराद्धोऽहं कारणैस्त्वत्प्रकल्पितैः । क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ३३ एवं मयि निरालम्बे शापाच्छिथिलतां गते । कारुण्यं कुरु देवेश प्रमाणं यद्यवेदयसे ॥ ३४ ॥ अस्यास्तु देवगंगाया गां गतायास्त्वदाज्ञया । मम दोषाददोषायाः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३५ ॥ तमहं श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमथाब्रुवम् । अकारणज्ञं देवानां त्रस्तं शापानलेन तम् ॥ ३६ ॥ शान्ति व्रज न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि महोदधे । शापेऽस्मिन् सरितां नाथ भविष्यं शृणु कारणम् ॥ ३७ ॥ त्वं तात भारते वंशे स्वं देहं स्वेन तेजसा ।

वन् ! इसमें शाप देनेकी क्या आवश्यकता थी॥३१॥ इस समय तूफान आरहा था,मेघ उठ रहे थे और आज पूर्णिमाका चन्द्रमा था, इन तीन कारणोंसे मैं क्षुब्ध होरहा था ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन्! आपके ही रचे हुए इन कारणोंसे मुझसे अपराध बन गया तो भी हे ब्रह्मन् ! आप मुझ पर क्षमा करिये और इस शापको दूर करिये ॥ ३३ ॥ मैं निरालम्ब हूँ और शापके कारण ढीला पड़रहा हूँ, ऐसी दशामें यदि आप (शरणागतका त्याग करने से पाप लगता है ऐसे वेदके) प्रमाणको मानते हों तो मुझ पर करुणा करिये ॥३४॥ और यह देवगङ्गा जो आपकी आज्ञासे ही पृथ्वी पर चली गई थी इसको भी मेरे ही कारणसे शाप मिला है, अतः आप इस निर्दोषके ऊपर तो अवश्य ही कृपा करिये ॥ ३५ ॥ तब मैंने देवताओंके प्रयोजनको न जाननेवाले और शापाग्निसे त्रास पाते हुए समुद्रसे मधुर वाणीमें कहा ३६ हे महोदधे ! तू शान्त हो,डर मत,मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ हे नदियोंके नाथ ! मैंने तुझे जो शाप दिया है इसमें कुछ भावी कारण है, उसको तू सुन ॥ ३७ ॥ हे नदीपति नाथ ! तू अपने इस

आधत्स्व सरितां नाथ त्यक्त्वेमां सागरीं तनुम् ॥ ३८ ॥ महो-
दधे महीपालस्तत्र राजश्रिया वृतः । पालयंश्चतुरो वर्णान् रंस्यसे
सलिलेश्वर ॥ ३९ ॥ इयं च ते सरिच्छ्रेष्ठा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
तत्कालरमणीयांगी गङ्गा परिचरिष्यति ॥ ४० ॥ अनया सह
जान्हव्या मोदमानो ममाज्ञया । इमं सलिलसंक्लेदं विस्मरिष्यसि
सागर ॥ ४१ ॥ त्वरता चैव कर्तव्यं त्वयेदं मम शासनम् ।
प्राजापत्येन विधिना गङ्गया सह सागर ॥४२॥ वसवः प्रच्युताः
स्वर्गात् प्रविष्टाश्च रसातलम् । तेषामुत्पादनार्थाय त्वं मया विनि-
योजितः ॥ ४३ ॥ अष्टौ ताञ्जान्हवी गर्भानपत्यार्थं दधात्वियम् ।
विभावसोस्तुल्यगुणान् सुराणां प्रीतिवर्धनात् ॥ ४४ ॥ उत्पाद्य
त्वं वसून् शीघ्रं कृत्वा कुरुकुलं महत् । प्रवेष्टासि तनुं त्यक्त्वा

समुद्र देहको त्याग कर, भरतवंशमें अपने तेजस्वी रूपको उत्पन्न करेगा ॥ ३८ ॥ हे जलोंके स्वामी समुद्र ! तहाँ तू राजलक्ष्मी-सम्पन्न राजा होगा और चारों वर्णोंका पालन करता हुआ रमण करेगा ॥ ३९ ॥ उस समय यह नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा उत्तम रूपको धारण कर और रमणीय अङ्गोंवाली बन कर तेरी सेवा करेगी ॥ ४० ॥ हे समुद्र ! उस समय तू मेरी आज्ञासे इस जान्हवीके साथ रमण करते २ इस जलसे भिगोने (के कारण मिले हुए शापके दुःख) को भूल जायगा ॥ ४१ ॥ तू मेरी इस आज्ञाका फुर्तीके साथ पालन करेगा, और हे समुद्र ! तू विवाह-विधिसे गंगाके साथ विवाह करेगा ॥ ४२ ॥ वसु स्वर्गसे भ्रष्ट होकर रसातलमें पहुँच गए, उनको उत्पन्न करनेके लिये मैंने तुझे नियुक्त किया है ॥ ४३ ॥ यह जान्हवी देवताओंका प्रेम सम्पादन करनेके लिये अग्निकी समान गुणवाले अर्थात् अग्निकी समान मनुष्योंका प्रिय करनेवाले वसुओंको अपनी सन्तान बनानेके लिये गर्भमें धारण करेगी ॥४४॥ हे सागर! तू शीघ्रतासे

पुनः सागर सागरीम् ॥ ४५ ॥ एवमेतन्मया पूर्वं हितार्थं वः सुरोत्तमाः भविष्यं पश्यता भारं पृथिव्यां पार्थिवात्मकम् ॥४६॥ तदेव शन्तनोर्वंशः पृथिव्यां रोपितो मया । वसवो मे च गंगायामुत्पन्नास्त्रिदिवौकसः ॥ ४७ ॥ अद्यापि भुवि गांगेयस्तत्रैव वसुरष्टमः । सप्तेमे वसवः प्राप्ताः स एकः परिलम्बते ॥ ४८ ॥ द्वितीयायां च सृष्टायां द्वितीया शन्तनोस्तनुः । विचित्रवीर्यो द्युतिमानासीद्राजा प्रतापवान् ॥४९॥ वैचित्र्यवीर्यौ द्वावेव पार्थिवौ भुवि सांप्रतम् । धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च विख्यातौ पुरुषर्षभौ ॥५०॥ तत्र पांडोः श्रिया जुष्टे द्वे भार्ये संबभूवतुः । शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोषोपमे तु ते ॥५१॥ धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यैका तुल्य-

---

वसुओंको उत्पन्न कर कुरुकुलको बढानेके अनन्तर अपने(मनुष्य) देहको त्याग समुद्रके देहमें आजावेगा ।४५ ।हे सज्जन देवताओं! इसप्रकार मैंने पहिले ही भविष्यको विचार कर पृथिवीके राजाओं के भारको उतारनेके लिये और तुम्हारा प्रिय करनेके लिये (यह करना विचार रक्खा था)॥४६॥ इस प्रकार मैंने शन्तनु के वंशको पृथिवीमें प्रतिष्ठित कर रक्खा है और स्वर्गवासी वसुओंमें जो वसु गङ्गामें उत्पन्न हुए थे ॥ ४७ ॥ उनमें आठवाँ वसु गांगेय नामसे अब भी पृथिवीमें ही रह रहा है,सात वसु तो यहाँ लौट आये हैं, परन्तु एक अभी वहाँ ही पड़ा हुआ है ४८ शन्तनुके (काली नाम वाली) दूसरी स्त्रीसे संगम करने पर विचित्रवीर्य नामक पुत्र होगा वह राजा प्रतापी और कान्तिवान् होगा (चित्रांगद पहिले ही मर जायगा अतः उसका ग्रहण नहीं किया है)॥ ४९ ॥ इस समय पृथिवीमें विचित्रवीर्यके दो ही पुत्र प्रसिद्ध होंगे, उन पुरुषश्रेष्ठोंका नाम राजा धृतराष्ट्र और राजा पाण्डु होंगे ॥ ५० ॥ इनमें पाण्डुके शोभासम्पन्न दो स्त्रियें होंगी उन शुभ स्त्रियोंका नाम कुन्ती और माद्री है वे

चारिणी । गान्धारी भुवि विख्याता भर्तुर्नित्यं व्रते स्थिता ५२
तत्र वंशा विभज्यन्तां विपन्नाः पक्ष एव च । पुत्राणां हि तयो
राज्ञोर्भविता विग्रहो महान् ॥ ५३ ॥तेषां विमर्दे दायाद्ये नृपाणां
भविता क्षयः । युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद्भयम् ॥५४॥
सबलेषु नरेन्द्रेषु शातंयत्स्वितरेतरम् । विविक्तपुरराष्ट्राग्रा क्षितिः
शैथिल्यमेष्यति ॥ ५५ ॥ द्वापरस्य युगस्यान्ते मया दृष्टं पुरा-
तनम् । क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण मानवैः सह पार्थिवाः ॥ ५६ ॥
तत्रावशिष्टान् मनुजान् सुप्तान्निशि विचेतसः । धक्ष्यते शंकर-
स्यांशः पावकेनास्त्रतेजसा ॥ ५७ ॥ अन्तकप्रतिमे तस्मिन्नवृत्ते
क्रूरकर्मणि । समाप्तमिदमाख्यास्ये तृतीयं द्वापरं युगम् ॥ ५८ ॥

देवाङ्गनाओंकी समान हैं ॥ ५१ ॥ राजा धृतराष्ट्रकी एक ही स्त्री होगी और वह उसके समान ही (अन्धी बन कर) विचरण करेगी, वह सदा पतिव्रत पालने वाली स्त्री गान्धारी नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ५२ ॥ क्षत्रियोंके बहुतसे) वंश पक्ष विपक्ष रूपमें विभक्त होकर इन दोनों राजाओंके पक्षका आश्रय करेंगे और इन दोनों राजाओंके पुत्रोंमें बडा भारी युद्ध होगा ॥५३॥ उन दोनों राजाओंके भाग पर राजाओंका नाश होजायगा और और प्रलयकालकासा बड़ा भारी भय आकर पड़ेगा ॥ ५४ ॥ जब राजे परस्परमें सेनासहित दूसरे राजाओंका संहार करडालेंगे तब राज्य और नगरोंके शून्य होजानेसे पृथिवीका भार हलका होजायगा और वह निर्बल (सेनारहित)हो जायगी ॥ ५५ ॥ मैंने यह प्राचीन बात देखी है, कि– द्वापर युगके अंतमें शस्त्रोंके द्वारा राजा और मनुष्योंका क्षय होजायगा ॥ ५६ ॥ तब बाकी बचे हुए मनुष्य जब रात्रिमें बेखबर सो रहे होंगे तब शंकरका अंश (अश्वत्थामा) अग्नि की समान तेजस्वी शस्त्रसे उनको भस्म कर डालेगा ॥ ५७ ॥ इस प्रलयकालकी समान क्रूर कर्मके

महेश्वरांशेऽपसृते ततो माहेश्वरं युगम् । तिष्यं प्रवर्तते पश्चाद्युगं दारुणदर्शनम् ॥ ५९ ॥ अधर्मप्रायपुरुषं स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम् । उत्सन्नसत्यसंयोगं वर्धितानृतसंचयम् ॥ ६० ॥ महेश्वरं कुमारं च द्वौ च देवौ समाश्रिताः । भविष्यन्ति नराः सर्वे लोके न स्थविरायुषः ॥६१॥ तदेष निर्णयः श्रेष्ठः पृथिव्यां पार्थिवान्तकः। अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत मा चिरम् ॥ ६२ ॥ धर्मस्यांशस्तु कुन्त्यां वै माद्र्यां च विनियुज्यताम् विग्रहस्य कलिर्मूलं गान्धार्यां विनियुज्यताम् ॥ ६३ ॥ एतौ पक्षौ भविष्यन्ति राजानः काल-चोदिताः । जातरागाः पृथिव्यर्थे सर्वे संग्रामलालसाः ॥६४॥ गच्छत्वियं वसुमती स्वां योनिं लोकधारणी । सृष्टोऽयं नैष्ठिको राज्ञामुपायो लोकविश्रुतः ॥ ६५ ॥ श्रुत्वा पितामहवचः

होने पर तीसरा द्वापर युग समाप्त होजायगा ॥ ५८ ॥ महेश्वर के अंश (विष्णुके अंश) श्रीकृष्णके वैकुण्ठमें पहुँचने पर जिस में दारुण दृश्य होंगे ऐसे रौद्र कलियुग आरंभ होगा ॥ ५९ ॥ उस युगमें प्रायः अधर्मी मनुष्य होंगे और धर्मका बहुत कम आचरण करेंगे और सत्यका लोप करडालेंगे और अधर्मसे धन का सञ्चय करेंगे ॥ ६० ॥ इस युगमें मनुष्य शिव और स्कन्द इन दो देवताओंका आश्रय लेंगे और इस युगमें सब मनुष्य वृद्ध नहीं होंगे ॥६१॥पृथिवीके राजाओंका अन्त करनेके लिये यह विचार बहुत अच्छा है, हे देवताओ।तुम सब अंशावतार धारण करो देर मत करो ॥६२॥ धर्मके अंशको कुन्ती और माद्रीमें नियुक्त करना चाहिये और लड़ाईकी जड़ कलिको गांधारीमें उत्पन्न करना चाहिये ॥ ६३ ॥ कालकी प्रेरणासे सब राजे इन दोनों पक्षों (मेंसे एक न एक) पक्षका आश्रय लेंगे और पृथिवीके मोहवश ये सब युद्धकी इच्छा करने लगेंगे ॥६४॥ ये लोकोंको धारण करने वाली पृथिवी अब अपने स्थानको जाय,यह लोक

सा जगाम यथागतम्।पृथिवी सहकालेन वधाय पृथिवीक्षिताम्॥६६
देवानचोदयद्ब्रह्मा निग्रहार्थे सुरद्विषाम् । नरं चैव पुराणर्षिं
शेषं च धरणीधरम् ॥ ६७ ॥ सनत्कुमारं साध्यांश्च सुरांश्चाग्नि-
पुरोगमान् । वरुणं च यमं चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा ॥ ६८ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ ।ततोंशानवनिं देवाः
सर्व एवावतारयन् ।।६९।। यथा ते कथितं पूर्वमंशावतरणं मया ।
अयोनिजा योनिजाश्च ते देवाः पृथिवीतले ।।७०।। दैत्यदानव-
हन्तारः संभूताः पुरुषेश्वराः । क्षीरिकावृक्षसंकाशा वज्रसंह-
ननास्तथा ।।७१।। नागायुतबलाः केचित् केचिदोघबलान्विताः ।
गदापरिघशक्तीनां संघाः परिघबाहवः ।।७२।। गिरिशृङ्गमहर्नारः

प्रसिद्ध राजाओंके मरणका उपाय रचा जा चुका ॥ ६५ ॥
पितामहके राजाओंके वध-सम्बन्धी वचनको सुन कर पृथ्वी
कालके साथ जैसे आई थी तैसे लौट गई ।।६६।। तव ब्रह्माजीने
देवताओंके द्वेपियोंको वशमें रखनेके लिये प्राचीन ऋषि-नर
धरणीधर-शेष सनत्कुमार साध्य अग्नि आदि देवता वरुण यम
सूर्य चन्द्रमा गन्धर्व अप्सरा रुद्र आदित्य और अश्विनीकुमार
इन सब देवताओंको प्रेरित किया तब सब देवताओंने पृथ्वीमें
अपने २ अंशोंको उत्पन्न किया ॥ ६६-६९ ॥ यह बात मैंने
तुझसे पहिले अंशावतरणमें भी कह दी है, वे देवता पृथ्वी-
तलमें योनिज और अयोनिज हुए थे ॥ ७० ॥ वे दैत्य दानवों
का संहार करने वाले राजे हुए थे. वे पिण्डखजूरके वृक्षकी
समान (पुष्ट) थे और वज्रकी समान दृढ़ अंगों वाले थे ७१
उनमें कितनेहीमें एक लाख हाथीका वल था और किन्हीमें नदी
के महाप्रवाहकी समान वल था और उनकी भुजाएँ परिघकी
समान मोटी थीं और उनके पास गदा परिघ और शक्तिको
धारण करने वाले दल रहते थे ॥ ७२ ॥ वे पर्वतके शिखरोंको

सर्वे परिघयोधिनः॥वृष्णिवंशे समुत्पन्नाः शतशोथ सहस्रशः॥७३॥
कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः ।याज्ञिकानां समृद्धानां
ब्राह्मणानां च योनिषु ॥ ७४ ॥ सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रत-
परायणाः । सर्वर्धिगुणसम्पन्ना यज्वानः पुण्यकर्मिणः ॥७५॥
आचालयेयुर्ये शैलान् क्रुद्धा भिंद्युर्महीतलम् । उत्पतेयुरथाकाशं
क्षोभयेयुर्महोदधिम् ॥ ७६ ॥ एवमादिश्य तान् ब्रह्मा भूतभव्य-
भवत्प्रभुः । नारायणे समावेश्य लोकान् शान्तिमुपागमत् ॥७७॥
भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले । प्रजानां वै हितार्थाय
प्रभुः प्राणिहितेश्वरः ॥ ७८ ॥ ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य
धीमतः । कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः ॥ ७६ ॥

(उठा कर) मारा करते थे और सब परिघसे युद्ध करने वाले थे ऐसे बहुतसे देवता) वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए थे७३और वे देवता कुरुवंश और पञ्चालवंशमें राजा बन कर उत्पन्न हुए थे और यज्ञ करने वाले समृद्ध ब्राह्मणोंके घर भी उत्पन्न हुए थे७४ वे सब अस्त्रोंको जानते थे, उनके धनुष बड़े २ थे और वे वेदव्रतमें परायण रहते थे और वे बढ़ौतरीके सब गुणोंसे सम्पन्न रहते थे पुण्य कर्म करते थे और यजन करते थे ७५ वे पर्वतोंको भी हिला डालने वाले और क्रोधमें भर कर पृथ्वीतलको भी भेद डालने वाले थे और वे आकाशमें उड़ सकते थे और समुद्रको क्षुब्ध कर सकते थे ॥ ७६ ॥ भूत भविष्यत् और वर्तमान कालके ज्ञाता प्रभु ब्रह्माजीने इस प्रकार देवताओंको आज्ञा देनेके पीछे भगवान् से कहा कि आप इनकी रक्षा करिये तदनन्तर ब्रह्माजीको शान्ति हुई ॥ ७७ ॥ अब तुम प्राणियोंका हित करनेमें समर्थ विष्णु जिस प्रकार पृथिवीतलमें उत्पन्न हुए थे उस कथाको सुनो ७८ यशोमय कर्म वाले प्रभु नारायण ययातिके वंशमें उत्पन्न हुए बुद्धिमान् वसुदेवके पूजनीय कुलमें उत्पन्न हुए थे ॥ ७६ ॥ ५२

वैशम्पायन उवाच। कृतकार्ये गते काले जगत्यां च यथा-
नयम्। अंशावतरणे वृत्ते सुराणां भारते कुले ॥ १ ॥ भागेऽव-
तीर्णे धर्मस्य शक्रस्य पवनस्य च। अश्विनोर्देवभिषजोर्भागे चै
भास्करस्य च ॥२॥ पूर्वमेवावनिगते भागे देवपुरोधसः। वसू-
नामष्टमे भागे प्रागेव धरणीं गते ॥ ३ ॥ मृत्योर्भागे क्षितिगते
कलेर्भागे तथैव च। भागे शुक्रस्य सोमस्य वरुणस्य च गां गते४
शंकरस्य गते भागे मित्रस्य धनदस्य च। गन्धर्वोरगयक्षाणां
भागांशेषु गतेषु च ॥ ५ ॥ भागेष्वेतेषु गगनादवतीर्णेषु मेदि-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब काल और पृथ्वी अपना कार्य बना कर चलेगए, तब देवताओंने भरतवंशियोंके कुलमें न्याया-नुसार अवतार लिया था ॥ १ ॥ धर्मके भागने (युधिष्ठिरके रूपमें) अवतार लिया था, और इन्द्रके भागने (अर्जुनके रूप में) अवतार लिया था और पवनका अंश (भीमसेन बन कर) उत्पन्न हुआ था और देववैद्य अश्विनीकुमारोंके अंश (नकुल और सहदेवरूपमें) उत्पन्न हुए थे और सूर्यका भाग (कर्ण बन कर) उत्पन्न हुआ था ॥ २ ॥ और देवपुरोहित बृहस्पतिका अंश तो पहिलेही (द्रोण बन कर) पृथ्वीमें उत्पन्न हो गया था और वसुओंका अष्टम भाग भी पहिले ही (भीष्म बन कर) उत्पन्न होगया था ॥ ३ ॥ मृत्यु (यम) के भागने पृथ्वीमें (विदुररूपमें) जन्म लेलिया था और कलिका भाग (दुर्योधन के रूपमें) पृथ्वीमें पहुँच गया था सोमका अंश (अभिमन्यु बन कर) उत्पन्न होगया था और शुक्रका भाग (भूरिश्रवाके रूपमें) उत्पन्न हुआ था और वरुणका भाग (पर्णाशाके पुत्र श्रुतायुधके रूपमें) उत्पन्न हुआ था ॥ ४ ॥ और शंकरका अंश (अश्व-त्थामाके रूपसे) उत्पन्न हुआ था और मित्रका भाग (कणिक बन कर) उत्पन्न हुआ था और धनदका भाग (धृतराष्ट्र बन

नीम् । तिष्ठन्नारायणस्यांशे नारदः समदृश्यत ॥ ६ ॥ ज्वलि-
ताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः । सञ्छापवृत्तं विपुलं जटा-
मण्डलमुद्वहन् । चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषितः ॥७॥
वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ॥ ८ ॥ कृष्णाजि-
नोत्तरासंगो हेमयज्ञोपवीतवान् । दण्डी कमण्डलुधरः साक्षा-
च्छक्र इवापरः ॥९॥ भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां ग्रहोपमः ।
गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता प्रथमर्त्विजाम् । महर्षिर्विग्रहरुचि-
र्विद्वान् गान्धर्वकोविदः ॥ १० ॥ वैरिकेलिकिलो विप्रो ब्राह्मः

कर) उत्पन्न हुआ था, गन्धर्व सर्प और यक्षोंके भाग (देवक, उग्रसेन और दुःशासन आदिके रूपमें उत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ जब सब देवताओंके अंशोंने इसप्रकार पृथ्वी पर अवतार धारण कर लिया, तब देवताओंके पक्षमें रहने वाले नारदजी नारायणके पास आये ॥ ६ ॥ उस समय वह प्रज्वलित अग्निकी समान (तपसे) दमक रहे थे और उनके नेत्र बालसूर्यकी समान रक्त होरहे थे और उन्होंने बाईं ओरसे लपेट देकर जटा मंडल को बाँध रक्खा था ॥७॥ और वे झरोखेमें बैठी हुई सखीकी समान अपनी महती नाम वाली वीणाको धारण कर रहे थे (महती नारदस्य स्यात्–नारदजीका वीणाका नाम महती है) ८ तथा वे कृष्ण मृगकी मृगछाला लेरहे थे और उनके (स्कन्ध पर) सुवर्णका यज्ञोपवीत शोभा देरहा था और दण्ड तथा कमण्डलुको धारण कर रहे थे और साक्षात् दूसरे देवराजकी समान दीखते थे ॥ ९ ॥ वे जगत्की गुप्त बातोंको प्रकट कर देते थे और युद्ध (करा देते थे) और (उत्पाती होनेसे धूमकेतु आदि) ग्रहोंकी समान माने जाते थे, वह चारों वेदोंका गान कर सकते थे और मुख्य २ ऋत्विजोंमें उद्गाता बनते थे१० वह शत्रुओंको युद्ध करानेकी क्रीड़ा करते थे और वह ब्राह्मण

कलिरिनापरः । देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता महामुनिः ॥११॥
स नारदोऽथ ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः । स्थितो देवसभामध्ये
संरब्धो विष्णुमब्रवीत् ॥१२॥ अंशावतरणं विष्णोर्यदिदं त्रिदशैः
कृतम् । क्षयार्थं पृथिवींद्राणां सर्वमेतदकारणम् ॥ १३ ॥ यदेतत्
पार्थिवं क्षत्रं स्थितं त्वयि यदीश्वर । नरनारायणयुक्तोयं कार्यार्थः
प्रतिभाति मे॥१४॥ न युक्तं जानता देव त्वया तत्त्वार्थदर्शिना ।
भूदैवतपृथिव्यर्थे मयोक्तुं कार्यमीदृशम् ॥१५॥ त्वं हि चक्षुष्मतां
चक्षुः श्लाघ्यः प्रभवतां प्रभुः । श्रेष्ठो योगवतां योगी गतिर्गति-
मतामपि ॥१६॥देवभागान् गनान् दृष्ट्वा किं त्वं सर्वाश्रगो विभुः।

दूसरे ब्राह्म कलिकी समान (माने जाते) थे, और वह महा-
मुनि देवता मनुष्य और गन्धर्वोंमें मुख्य वक्ता थे ११ ऐसे ब्रह्म-
लोकमें विचरण करने वाले अविनाशी नारदजीने देवताओंकी
सभामें क्रोधमें भर कर श्रीकृष्णसे कहा कि–॥१२॥ हे विष्णो !
देवताओंने राजाओंका क्षय करनेके लिये जो पृथिवीमें अवतार
लिया है, वह सब अकारण है अर्थात् कारणरूप आपके अव-
तार धारण न करनेके कारण व्यर्थ है ॥ १३ ॥ हे ईश्वर !
क्योंकि-ये पार्थिव (पृथिवीपरका) क्षत्र आपमें स्थित रहता है
अर्थात् आपके अधीन है अतः मेरा विचार है कि-नर और
नारायणके सहयोगसे ही इस कार्यकी सिद्धि होसकती है॥१४॥
हे देव ! आप तो तत्त्वदर्शी हैं जानकार हैं,परन्तु आपको ब्राह्मण
और पृथिवीके लिये ऐसा (नरनारायणहीन) काम नहीं
करना चाहिये था ॥१५॥ क्योंकि आप चक्षुष्मानोंके नेत्र हैं और
ईश्वरोंमें ऐश्वर्य हैं और आप योगियोंके लिये श्रेष्ठ योगी हैं
और आप गति वाले पुरुषोंकी गतिरूप हैं (अर्थात् आप अन्त-
र्यामीके विना यह सब निरर्थक है॥१६॥ सब देवता तो अपनेर
अंशसे पृथिवीमें उत्पन्न होचुके)हैं,यह देख कर भी आप पृथ्वीकी

वसुन्धरायाः साह्यार्थमंशं स्वं नाऽनुयुञ्जसे ॥१७॥ त्वया सनाथा देवांशास्त्वन्मयास्त्वत्परायणाः । जगत्यां संचरिष्यन्ति कार्यात् कार्यंतरं गताः ॥ १८ ॥ तदहं त्वरया विष्णो प्राप्तः सुरसभामिमाम् । तव संचोदनार्थं वै शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ १९ ॥ ये त्वया निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये । तेषां शृणु गतिं विष्णो ये गताः पृथिवीतलम् ॥ २० ॥ पुरी पृथिव्यामुदिता मथुरा नामतः श्रुता । निविष्टा यमुनातीरे स्फीता जनपदायुता ॥२१॥ मधुर्नाम महानासीद्दानवो युधि दुर्जयः । त्रासनः सर्वभूतानां बलेन महताऽन्वितः ॥ २२ ॥ तस्य तत्र महच्चासीन्महापादपसंकुलम् । घोरं मधुवनं नाम यत्रासौ न्यवसत् पुरा ॥ २३ ॥ तस्य पुत्रो महानासील्लवणो नाम दानवः । त्रासनः सर्वभूतानां

सहायता करनेके लिये अपने अंशसे उत्पन्न क्यों नहीं होते हैं १७ आपमें परायण रहने वाले देवांश आपके जाने पर सनाथ हो जावेंगे और पृथ्वी पर एक कार्य करनेके पीछे (उत्तरोत्तर) दूसरे कार्योंको करते हुए पृथिवी पर विचरण कर सकेंगे १८ मैं जो आपको उकसानेके लिये इस सुरसभामें त्वरासे आया हूँ, इसके कारणको भी तुम सुनो ॥ १९ ॥ हे विष्णो! आपने जिन राक्षसोंको तारकामय संग्राममें मार डाला था, उनमेंसे जो पृथिवी-तलमें चले गए हैं, उनकी गतिको सुनिये ॥२०॥ पहिले पृथिवीमें मथुरा नामसे प्रसिद्ध एक पुरी उदित हुई थी, वह यमुनाके तट पर बसी हुई है, वह बड़ी विस्तृत है और उसमें बहुतसे जनपद (ग्राम वा तहसील) हैं ॥२१॥ पहिले सब प्राणियोंको त्रास देने वाला मधु नामक एक असुर था, उसको युद्धमें जीतना बडा कठिन था और उसमें अपार बल भर रहा था ॥ २२ ॥ वह जहाँ रहता था, तहाँ उसका मधुवन नामक घोर वन था, उसमें बड़े २ वृक्ष लगरहे थे २३ उसके परमबली और पराक्रमी

महाबलपराक्रमः ॥२४॥स तत्र दानवः क्रीडन् वर्षपूगाननेकशः॥ स दैवतगणाँल्लोकानुद्रासयति दर्पितः ॥ २५ ॥ अयोध्यायाम-योध्यायां रामे दाशरथौ स्थिते ।राज्यं शासति धर्मज्ञे राक्षसानां भयावहे ॥ २६ ॥ स दानवो बलश्लाघी घोरं वनमुपाश्रितः । प्रेषयामास रामाय दूतं परुषवादिनम्॥२७॥ विषयासन्नभूतोस्मि तव राम रिपुश्च ह । न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम् ॥२८॥ राज्ञा राज्यव्रतस्थेन प्रजानां हितकाम्यया । जेतव्या रिपवः सर्वे स्फीतं विषयमिच्छता ॥ २९ ॥ अभिषेकार्द्रकेशेन राज्ञा रंजनकाम्यया । जेतव्यानीन्द्रियाण्यादौ तज्जयो हि ध्रुवो जयः ॥ ३० ॥ सम्यग्वर्तितुकामस्य विशेषेण महीपतेः । नया-

---

सब भूतोंको त्रास देनेवाला लवण नामक पुत्र हुआ था॥२४॥ वह दानव तहाँ बहुत वर्षों तक क्रीड़ा करता रहा, फिर वह दर्प में भर कर देवता तथा मनुष्योंको त्रस्त करने लगा॥ २५ ॥फिर उस बलश्लाघी दानवने घोर वनमें रहते समय कठोर भाषण करने वाले एक दूतको रामचन्द्रजीके पास भेजा था, उस समय दशरथपुत्र रामचन्द्र जिसमें युद्ध करनेका साहस किसीको नहीं होता था ऐसी अयोध्यामें रहते थे. वह धर्मज्ञ राक्षसोंको भयभीत कर देते थे और (धर्मपूर्वक) प्रजाका पालन करते थे ॥ २६-२७ (दूतने कहा, कि-लवणने कहा है, कि-) मैं तेरे देशके पास आगया हूँ और तेरा शत्रु हूँ, राजा लोग बलदर्पित सामन्तकी इच्छा नहीं करते हैं (अर्थात् उनको बली सामन्त अच्छा नहीं लगता) ॥ २८ ॥ व्रतमें स्थित रहने वाला राजा प्रजाका हित चाहनेकी इच्छासे और विस्तृत राज्यको पाने इच्छासे सब शत्रुओं को वशमें करे उनको जीत लेय २९अभिषेकके जलसे भीगे हुए केश वाला राजा प्रजाका रञ्जन करना चाहता हो तो पहिले इन्द्रियोंको जीते क्योंकि इनको जीतने पर विजय अवश्य होती

नामुपदेशेन नास्ति लोकसमो गुरुः ॥३१॥ व्यसनेषु जघन्यस्य धर्ममध्यस्य धीमतः। बलज्येष्ठस्य नृपतेर्नास्ति सामन्तजं भयम् ॥३२ सहजैर्बाध्यते सर्वः प्रवृद्धैरिन्द्रियारिभिः। अमित्राणां प्रियकरैर्मोहैरधृतिरीश्वरः ॥३३॥ यत्त्वया स्त्रीकृते मोहात् सगणो रावणो हतः। नैतदौपयिकं मन्ये महद्दै कर्म कुत्सितम् ॥ ३४ ॥ वनवासप्रवृत्तेन यत्त्वया व्रतशालिना। प्रहृतं राक्षसानीके नैष दृष्टः सतां विधिः ॥ ३५ ॥ सतामक्रोधजो धर्मः शुभां नयति सद्गतिम्। यत्त्वया निहतो मोहाद् दूषिताश्चाश्रमौकसः ॥ ३६ ॥ स एष

है ॥३०॥ भलीप्रकार बर्ताव करना चाहने वाले और विशेषतः राजाके लिये नीतिका उपदेश पानेके लिये लोककी समान और कोई गुरु नहीं है(अर्थात् लौकिक हित अहित लोकसे मालूम पडता है, तहाँ शास्त्रकी अपेक्षा नहीं है)३१जो मृगया आदि व्यसनोंमें जघन्य (निकृष्ट) रहता है अर्थात् व्यसनोंमें अधिक नहीं फँसता है और जो बुद्धिमान् धर्ममें मध्यम रहता है अर्थात् धर्मका मध्यमरीतिसे सेवन करता और जो राजा बलज्येष्ठ होता है अर्थात् बलके कामको अधिकतासे करता है उसको सामन्तोंका कुछ भय नहीं होता है३२सब मनुष्य स्वाभाविक इन्द्रियरूपी शत्रुओंके बढने पर बाधामें पड़ने लगते हैं और ईश्वर (राजा) शत्रुसम्बन्धी मोहमें पडकर प्रिय लगनेवाले (उपायोंसे) बाधा पाने लगता है ॥ ३३ ॥ तूने स्त्रीके कारण मोहवश हो सेनासहित रावणको मार डाला है, परन्तु मैं तेरे इस बड़े भारी कर्मको भी युक्तियुक्त न समझ कर कुत्सित ही समझता हूँ ॥३४॥ (अब कुत्सितता को कहता है) तू वनमें बस कर व्रत पाल रहा था, तब भी तूने रावणको राक्षसोंकी सेनाके मध्यमें मार डाला था,यह सज्जनोचित आचार नहीं है३५क्रोधरहित हो पालन किया धर्म ही सत्पुरुषोंको सद्गति देता है,परन्तु तूने मोहवश हो रावण

रावणो धन्यो यस्त्वया व्रतचारिणा । स्त्रीनिमित्ते हतो युद्धे ग्राम्यान् धर्मानवेक्षता ॥ ३७ ॥ यदि ते निहतः संख्ये दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः । युध्यस्वाद्य मया सार्धं मृधे यद्यसि वीर्यवान् ३८ तस्य दूतस्य तच्छ्रुत्वा भाषितं तत्त्ववादिनः । धैर्यादसंभ्रान्तवपुः सस्मितं राघवोऽब्रवीत् ॥३९॥ असदेव त्वया दूत भाषितं तस्य गौरवात् । यन्मां क्षिपसि दोषेण वेदात्मानं च सुस्थिरम् ।४०। यद्यहं सत्पथे मूढो यदि वा रावणो हतः । यदि वा मे हृता भार्या का तत्र परिदेवना ॥४१॥ न वाङ्मात्रेण दुष्यन्ति साधवः सत्पथे स्थिताः । जागर्ति च यथा देवः सदा सत्स्वितरेषु च ४२ कृतं दूतेन यत्कार्यं गच्छ त्वं दूत मा चिरम् । नात्मश्लाघिषु

को मारडाला इससे तूने आश्रमौकसोंको अर्थात् वनवासियोंको भी दूषित करदिया है (अर्थात्) तेरे व्रतके उल्लँन करनेको देखकर और व्रती पुरुष भी व्रतका उल्लँघन करनेलगेंगे अतः तू दुराचारका प्रवर्तक है) ॥ ३७ ॥ तूने दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय रावणको तो मार लिया, परन्तु यदि तू वीर्यवान् है तो आ ! आज रणमें मेरे साथ जूझ ॥ ३८ ॥ उस तत्त्व बात कहने वाले दूतके भाषणको सुन कर रामचन्द्रजीका शरीर धैर्यके कारण असंभ्रात रहा और उन्होंने मुस्कुरा कर कहा ॥ ३९ ॥ हे दूत ! जो अपने को सुस्थिर (शास्त्रानुसार वर्ताव करने वाला) मानता है उस दैत्यके गौरववश तूने मुझ पर दोष लगा आक्षेप कर असत्य भाषण किया है ॥ ४० ॥ मैं यदि सज्जनोचित मार्ग में मूढ़ होगया था अर्थात् सन्मार्गसे भ्रष्ट होगया था, और मैंने रावणको भी मार लिया था और मेरी भार्या भी यदि चुराई गई थी परन्तु तू क्यों बड़बड़ा रहा है ॥ ४१ ॥ जैसे आत्मा सज्जन और असज्जन व्यक्तियोंमें जागने (सान्निध्य में रहने) पर भी दूषित नहीं होता है तैसे सन्मार्गमें चलने वाले पुरुष (किसीकी

नीचेषु प्रहरन्तीह मद्विधाः ॥ ४३ ॥ अयं ममानुजो भ्राता शत्रुघ्नः शत्रुतापनः । तस्य दैत्यस्य दुर्बुद्धेर्मृधे प्रतिकरिष्यति ॥ ४४ ॥ एवमुक्तः स दूतस्तु ययौ सौमित्रिणा सह । अनुज्ञातो नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ॥ ४५ ॥ स शीघ्रयानः संप्राप्तस्तदा मधुवनं महत् । चक्रे निवेशं सौमित्रिर्वनान्ते युद्धलालसः ॥४६॥ ततो दूतस्य वचनात् स दैत्यः क्रोधमूर्च्छितः । पृष्ठतस्तद्वनं कृत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ ४७ ॥ तद्युद्धमभवद् घोरं सौमित्रेर्दानवस्य च । उभयोरेव बलिनोः शूरयो रणमूर्धनि ॥ ४८ ॥ तौ शरैः साधुनिशितैरन्योन्यमभिजघ्नतुः । न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥ ४९ ॥ अथ सौमित्रिणा बाणैः पीडितो दान-

बात अर्थात्) वाणीसे ही दूषित नहीं होजाते ॥ ४२ ॥ दूतका जो काम है उसको तूने पूरा कर लिया, इस लिये हे दूत ! तू अब चला जा ! देर न कर मुझसरीखे पुरुष अपनी बड़ाई करने वाले नीच पुरुषों पर प्रहार नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥ यह शत्रुतापी मेरा छोटा भाई शत्रुघ्न उस दुर्बुद्धि दैत्यको युद्धमें ठीक करदेगा ॥४४॥ रामचन्द्रजीके इस प्रकार कहने पर वह दूत सुमित्रापुत्र शत्रुघ्न के साथ चला, रघुवंशी महात्मा राजाकी आज्ञा पाने पर शत्रुघ्न फुर्तीसे चलने वाली सवारी पर शीघ्र ही मधुवन नामक बड़े भारी वनमें पहुँच गए और युद्ध करनेकी इच्छा वाले सुमित्रानन्दनने मधुवनके समीप पड़ाव डाल दिया ॥ ४५–४६ ॥ उधर दूतके वचनको सुन कर क्रोधसे मूर्छित हुआ वह दानव वनको पीछे छोड़ युद्ध करनेके लिये सामने आकर डट गया ॥ ४७ ॥ तब रणके मुहाने पर शूर वीर और बलवान् शत्रुघ्न और दानवमें घोर युद्ध चलने लगा ॥ ४८ ॥ उन्होंने खूब तेज किये हुए बाण मार कर आपसमें एक दूसरेको मारा परन्तु उन दोनोंने युद्धसे मुख नहीं मोड़ा और उन्हे न कुछ श्रम मालूम पड़ा ॥ ४९ ॥

वोत्तमः । ततः स शूलरहितः पर्यहीयत दानवः ॥ ५० ॥ स गृहीत्वांकुशं चैव देवैर्दत्तवरं रणे । कर्षणं सर्वभूतानां लवणो विरराम ह ॥ ५१ ॥ शिरोधरायां जग्राह सांकुशेन चकर्ष च । प्रवेशयितुमारब्धो लवणो राघवानुजम् ॥ ५२ ॥ स कनकत्सरु-मुद्यम्य शत्रुघ्नः खड्गमुत्तमम् । शिरश्चिच्छेद खड्गेन लवणस्य महामृधे ॥ ५३ ॥ स हत्वा दानवं संख्ये सौमित्रिर्मित्रवत्सलः । तद्वनं तस्य दैत्यस्य चिच्छेदास्त्रेण बुद्धिमान् ॥ ५४ ॥ छित्त्वा वनं तत्सौमित्रिर्निवेशं सोऽभ्यरोचयत् । भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मवित् ॥५५॥ तस्मिन्मधुवनस्थाने मथुरा नाम सा पुरी । शत्रुघ्नेन पुरा सृष्टा हत्वा तं दानवं रणे ॥५६॥ सा पुरी परमो-दारा साट्टप्राकारतोरणा । स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबल-

तदनन्तर सुमित्रानन्दन शत्रुघ्नके बाणोंसे पीड़ा पाकर दानवका शूल गिर पड़ा और वह कमजोर पड़ने लगा ॥ ५० ॥ तब लवण नामक दानव देवताओंके वरदानसे मिले हुए सब भूतोंको खींचने वाले शूलको लेकर जोरसे रेंकने लगा ५१ और उसने शत्रुघ्नके गलेको पकड़ लिया और उनको अंकुशसे खेंचने लगा फिर वह राक्षस रामचन्द्रजीके छोटे भाई शत्रुघ्नके शूल घूँसना चाहने लगा ५२ तब शत्रुघ्नने सुवर्णकी मूठ वाली आयुधोंमें श्रेष्ठ तलवारको उठा कर लवणके शिरको काट लिया ॥ ५३ ॥ दानवको युद्धमें मारनेके अनन्तर मित्रवत्सल सुमित्रानन्दन बुद्धि-मान् शत्रुघ्नने अस्त्रके द्वारा उसके वनको काट डाला ॥ ५४ ॥ सुमित्रानन्दनने वनको काटनेके अनन्तर पुरीका बसाना परम धर्म है यह जान कर वहाँ पर नगर बसानेकी इच्छाकी ॥ ५५ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नने उस दानवको रणमें मारनेके अनन्तर मधुवन के स्थानमें मथुरापुरी बनाई है ॥ ५६ ॥ वह पुरी बहुत बड़ी है उसमें चौमंजले महल हैं वह अतिविस्तृत है उसके अधीन अनेक

वाहना ॥ ५७ ॥ उद्यानवनसंपन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता । प्रांशु-प्राकारवसना परिखाकुलमेखला ॥ ५८ ॥ चलाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला । सुसंवृतद्वारवती चत्वरोद्गारहासिनी ॥५९॥ अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला । अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुना-तीरशोभिता ॥ ६० ॥ पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता । क्षेत्राणि सस्यवन्त्यस्याः काले देवश्च वर्षति ॥ ६१ ॥ नरनारी-प्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते । निविष्टविषयश्चैव शूरसेन-स्ततोऽभवत् ॥ ६२ ॥ तस्यां पुर्यां महावीर्यो राजा भोजकुलो-द्वहः । उग्रसेन इति ख्यातो महासेनपराक्रमः ॥ ६३ ॥तस्य पुत्र-

---

राष्ट्र हैं और उसमें बहुतसी फौज और सवारियें रहती हैं ५७ उसमें बाग बगीचे लगे हुए हैं उसकी सीमा बड़ी अच्छी है और वह प्रतिष्ठित पुरी है, वह ऊँचे २ महलोंके वस्त्र ओढ़ रही है और वह परिखारूपी मेखला पहर रही है ॥ ५८ ॥ वह चलते फिरते मकानोंके केयूर धारण कर रही है और वह उत्तम २ भवनोंके कुण्डलोंको धारण कर रही है, उसके द्वार भली भाँति रक्षित हैं और वह आँगनरूपी उद्गारोंसे हँसती रहती है ॥५९॥ उसमें नीरोग वीर पुरुष रहते हैं और वह हाथी घोड़े और रथों से भरी रहती है और वह यमुनाजीके तट पर अर्धचन्द्रमाकी समान (तिरछी) शोभा पारही है ॥६०॥ उसमें पुण्यके साथ व्यवहार होता है, तथा उसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है और वह रत्नोंकी राशियोंके कारण गर्वमें भरी रहती है उसके खेत अनाजसे भरे रहते हैं और तहाँ मेघ भी समयानुसार वर्षा करते रहते हैं ॥६१॥ उसमें मनुष्य और स्त्रियें परम प्रसन्नतासे रहते हैं, इससे वह पुरी खिल रही है इस प्रकार मथुरापुरीके बस जाने पर शूरसेन हुआ था ॥६२॥ और उस पुरीमें भोजकुल को उठाने वाला स्वामी कार्तिकेयकी समान पराक्रमी उग्रसेन

त्वमापन्नो योऽसौ विष्णो त्वया हतः । कालनेमिर्महादैत्यः संग्रामे तारकामये ॥ ६४ ॥ कंसो नाम विशालाक्षो भोजवंशविवर्धनः । राजा पृथिव्यां विख्यातः सिंहविस्पष्टविक्रमः ॥६५॥ राज्ञां भयंकरो घोरः शंकनीयो महीक्षिताम् । भयदः सर्वभूतानां सत्पथाद्व्युत्क्रमं गतः ॥ ६६ ॥ दारुणाभिनिवेशेन दारुणेनांतरात्मना । युक्तस्तेनैव दर्पेण प्रजानां रोमहर्षणः ॥ ६७ ॥ न राजधर्माभिरतो नात्मपक्षसुखावहः । नात्मराज्यप्रियकरश्चण्डः कलिरुचिः सदा ॥ ६८ ॥ स कंसस्तत्र संभूतस्त्वया युद्धे पराजितः । क्रव्यादो बाधते लोकानासुरेणांतरात्मना॥६९॥योऽप्यसौ हयविक्रांतो हयग्रीवश्च नामतः ।केशी नाम हयो जातः स तस्यैव

नामक महापराक्रमी राजा (राज्य करने लगा) ६३॥हे विष्णो ! उस उग्रसेनके यहाँ ही तारकामय संग्राममें आपके द्वारा मारा हुआ कालनेमि राक्षस पुत्र बन कर उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ वह कंस नामसे प्रसिद्ध है, उसके नेत्र बडे २ हैं वह सिंहके कदम रखनेकी समान स्पष्ट रीतिसे कदम २ चलता है और वह राजा भी रीतिसे प्रसिद्ध है, ॥ ६५ ॥ वह राजाओंको भयभीत कर देता है, उससे राजे सदा शंकित रहते हैं वह सब प्राणियोंको भय देता है और सन्मार्गसे हट कर उसने व्रह्मघ्नपनका आश्रय लेलिया है ॥ ६६ ॥ वह उसी दारुण प्रकृति और दारुण अन्तरात्माके कारण दर्पमें भर कर प्रजाके रोंगटे खडे कर देता है ॥ ६७ ॥ वह राजधर्ममें रत नहीं रहता है और अपने पक्ष वालोंको भी सुख नहीं देता है और अपने राष्ट्रका भी प्रिय नहीं करता है और वह चण्ड कलहसे सदा प्रेम रखता है ६८ इसप्रकार आपने जिसको युद्धमें जीत लिया था, वह कंस वहाँ उत्पन्न होगया है और वह अपने आसुरस्वभावके कारण मनुष्यों को राक्षसोंकी समान पीड़ा देरहा है ॥६९॥ और जो घोड़ेकी

जघन्यजः ॥ ७० ॥ स दुष्टो हेषितपटुः केसरी निरवग्रहः ।वृन्दावने वसत्येको नृणां मांसानि भक्षयन ॥ ७१ ॥ अरिष्टो बलिपुत्रश्च ककुद्मी वृषरूपधृक् । गवामरित्वमापन्नः कामरूपी महासुरः ॥ ७२ ॥ रिष्टो नाम दितेः पुत्रो वरिष्ठो दानवेषु यः । स कुञ्जरत्वमापन्नो दैत्यः कंसस्य वाहनः ॥ ७३ ॥ लम्बो नामेति विख्यातो योऽसौ दैत्येषु दर्पितः प्रलम्बो नाम दैत्योऽसौ वटं भाण्डीरमाश्रितः ॥ ७४ ॥ खर इत्युच्यते दैत्यो धेनुकः सोऽसुरोत्तमः । घोरं तालवनं दैत्यश्चरत्युत्सादयन् प्रजाः ॥ ७५ ॥ वराहश्च किशोरश्च दानवौ यौ महाबलौ । मल्लौ रंगगतौ तौ तु जातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ ७६ ॥ यौ तौ मयश्च तारश्च दानवौ

समान कदम रखता था और हयग्रीव नामसे प्रसिद्ध था, वह कंसके छोटे भाईकी समान केशी नामक घोड़ा बन कर उत्पन्न होगया है ॥ ७० ॥ वह हिनहिनानेमें चतुर निरर्गल दुष्ट केशी वृन्दावनमें मनुष्योंका मांस खाता फिरता है ॥ ७१ ॥ और बलिका पुत्र अरिष्ट ककुद्वाले वृषभके रूपमें रहता है, वह गौओंसे शत्रुता करता है और वह महाराक्षस अपनी इच्छानुसार रूप धारण करता रहता है ॥ ७२ ॥ और जो दितिका रिष्ट नामक पुत्र था और दानवोंमें श्रेष्ठ था, वह दैत्य हाथी बन कर उत्पन्न हुआ है और कंसकी सवारीमें रहता है ७३ और जो घमण्डी दैत्य लम्ब नामसे प्रसिद्ध था वह प्रलम्ब नामक दैत्य बन कर भाण्डीर वटका आश्रय करके रहता है ७४ जो दैत्य खर कहलाता था, वह असुरश्रेष्ठ धेनुक नामसे उत्पन्न होगया है और वह दैत्य प्राणियोंको नष्ट करता हुआ भयंकर तालवनमें फिरता रहता है ॥ ७५ ॥ और जो वाराह और किशोर नाम वाले महाबली दानव थे वे चाणूर और मुष्टिक नामसे उत्पन्न होगए हैं और अखाड़ेमें मल्लपना करते हैं ॥ ७६ ॥

दानवान्तक । प्राग्ज्योतिषे तौ भौमस्य नरकस्य पुरे रतौ ।७७।
एते दैत्या विनिहतास्त्वया विष्णो निराकृताः।मानुषं वपुरास्थाय
बाधन्ते भुवि मानवान ॥ ७८ ॥ त्वत्कथाद्वेषिणः सर्वे त्वद्भक्तान्
घ्नन्ति मानुषान् । तव प्रसादात्तेषां नो दानवानां जयो भवेत्७९
त्वत्तस्ते बिभ्यति दिवि त्वत्तो बिभ्यति सागरे ।पृथिव्यां बिभ्यति
त्वत्तो नान्यतस्तु कदाचन ॥ ८० ॥ दुर्वृत्तस्य हतस्यापि त्वया
नान्येन श्रीधर । दिवश्च्युतस्य दैत्यस्य गतिर्भवति मेदिनी ८१
व्युत्थितस्य च मेदिन्यां हतस्य नृशरीरिणः । दुर्लभं स्वर्गगमनं
त्वयि जाग्रति केशव ॥ ८२ ॥ तदागच्छ स्वयं विष्णो गच्छामः
पृथिवीतलम् । दानवानां विनाशाय विसृजात्मानमात्मना ॥८३॥

और हे दानवोंके विनाशक ! जो मय और तार नाम वाले दानव थे वे भूमिके पुत्र नरकासुरके प्राग्ज्योतिष नाम वाले नगर में रमण कर रहे हैं ॥ ७७ ॥ हे विष्णो ! तुमसे तिरस्कृत और तुम्हारे मारे हुए ये दैत्य पृथ्वीमें मनुष्योंका शरीर धारण कर मनुष्योंको पीड़ा देरहे हैं ॥ ७८ ॥ ये सब आपकी कथासे द्वेष करते हैं और आपके मनुष्य भक्तोंका नाश करते रहते हैं॥७९॥ वे राक्षस स्वर्गमें आपसे डरते हैं और समुद्रमें भी आपसे ही डरते हैं और पृथ्वीमें भी आपसे ही डर सकेंगे, और किसीसे कभी नहीं डरेंगे ॥ ८० ॥ आप सबकी अन्तरात्मारूप हैं अतः आपके मारे हुए दुर्वृत्त की गति आप ही होते हैं और हे श्रीधर! इसके अतिरिक्त अपने आप स्वर्गसे भ्रष्ट हुए दैत्यकी गति मेदिनी होती है ॥८१॥ और कोई तहाँ उस मनुष्यधारी दैत्यको मार डालता है, तो हे केशव ! आपके यमरूपसे सावधान रहने के कारण उसका स्वर्गमें पहुँचना असंभव होजाता है (अत एव महाकारुणिक आप कंस आदिको मारनेके लिये पृथिवीमें अवतार धारण करिये ॥ ८२ ॥हे विष्णो ! अतः आप पृथिवी

मूर्तयो हि तवाव्यक्ता दृश्यादृश्याः सुरोत्तमैः । तासु सृष्टास्त्वया देवाः संभविष्यन्ति भूतले ॥ ८४ ॥ तवावतरणे विष्णो कंसः स विनशिष्यति । सेत्स्यते तव कार्यार्थो यस्यार्थे भूमिरागता ८५ त्वं भारते कार्यगुरुस्त्वं चक्षुस्त्वं परायणम् । तदागच्छ हृषीकेश क्षितौ तान् जहि दानवान् ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि नारदवाक्यं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायन उवाच । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मितं मधुसूदनः । प्रत्युवाच शुभं वाक्यं वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥ १ ॥ त्रैलोकस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद । तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य

पर स्वयं ही आइये, अब हम जाते हैं, आप दानवोंका नाश करनेके लिये अपने अंशसे स्वयं उत्पन्न हूजिये ॥८३॥ आपकी मूर्तियें अव्यक्त हैं अर्थात् मनुष्य उनको स्पष्टरूपसे नहीं देख सकते और श्रेष्ठ २ देवता भी विष्णुरूपमें उनको देख सकते हैं, परन्तु वह दृश्य होने पर भी ब्रह्मभावमें अदृश्य रहती हैं, देवता आपकी रची हुई उन दृश्यमूर्तियोंमें ही उत्पन्न होंगे ॥ ८४ ॥ हे विष्णो ! आपके अवतार लेने पर कंस नष्ट होजावेगा, और जिस कामके लिये पृथिवी आई थी, वह कार्य भी सिद्ध हो जावेगा ॥ ८५ ॥ आप भारतवर्षके बड़े भारी कार्यको सँभाल सकेंगे, आप नेत्ररूप हैं, आप परायण हैं, इस लिये हे हृषीकेश ! आप पृथिवीमें आइये और दानवोंका संहार करिये ८६ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—भोग और मोक्षकी कामना करने वाले जिनका वरण करते हैं, वे ईश्वर प्रभु मधुसूदन नारदजी की बात सुन कर मुस्कुरा कर कहने लगे, कि- ॥ १ ॥ हे नारद ! तुमने मुझसे त्रिलोकीका हित करनेके लिये जो बात कही उसमें

श्रूयतामुत्तरं वचः ॥ २ ॥ विदिता देहिनो जाता मयैते भुवि
दानवाः । यां च यस्तनुमादाय दैत्यः पुष्यति विग्रहम् ॥ ३ ॥
जानामि कंसं संभूतमुग्रसेनसुतं भुवि । केशिनं चापि जानामि
दैत्यं तुरगविग्रहम् ॥ ४ ॥ नागं कुवलयापीडं मल्लौ चाणूर-
मुष्टिकौ । अरिष्टं चापि जानामि दैत्यं वृषभरूपिणम् ॥ ५ ॥
विदितो मे खरश्चैव प्रलम्बश्च महासुरः । सा च मे विदिता
विप्र पूतना दुहिता बलेः ॥ ६ ॥ कालियं चापि जानामि यमुना-
ह्रदगोचरम् । वैनतेयभयाद्यस्तु यमुनाह्रदमाविशत् ॥ ७ ॥
विदितो मे जरासन्धः स्थितो मूर्ध्नि महीक्षिताम् । प्राग्ज्योतिष-
पुरे चापि नरकं साधु तर्कये ॥ ८ ॥ मानुषे पार्थिवे लोके

मैं भली प्रकार प्रवृत्त होरहा हूँ, अब तुम उत्तर सुनो ॥ २ ॥ यह बात मुझे विदित है, कि दानवोंने पृथ्वीमें देह धारण कर लिया है और (मैं यह भी जानता हूँ, कि-) कौन २ दैत्य किस २ शरीरको धारण कर वैर बढा रहा है ॥ ३ ॥ मैं पृथिवीमें उत्पन्न हुए उग्रसेनके पुत्र कंसको जानता हूँ और मैं घोडेका शरीर धारण करने वाले केशी दैत्यको भी जानता हूँ ॥ ४ ॥ मैं कुवलयापीड़ हाथीको और चाणूर तथा मुष्टिक नाम वाले मल्लोंको और मैं वृषभका रूप धारण करने वाले अरिष्ट दैत्यको भी मैं जानता हूँ ॥ ५ ॥ मैं खर और महासुर प्रलम्ब को भी जानता हूँ और हे विप्र ! मैं बलिकी पुत्री पूतनाको भी जानता हूँ ६ और मैं यमुनाके सरोवरमें विचरण करने वाले कालिय नागको भी जानता हूँ, वह गरुड़के भयसे यमुनाजीके ह्रदमें घुस गया है ७ और मैं राजाओंके मस्तक पर विराजमान जरासंधको भी जानता हूँ और मैं प्राग्ज्योतिष पुरमें रहने वाले नरकासुरको भी जानता हूँ ८ और मनुष्यलोकमें मनुष्य बन कर उत्पन्न हुए स्वामि कार्तिकेयकी समान तेज वाले शोणितपुरवासी

मानुषत्वमुपागतम् । बाणं च शोणितपुरे गुहगतिमतेजसम् ॥९॥ दृप्तं बाहुसहस्रेण देवैरपि सुदुर्जयम् । मय्यासक्तां च जानामि भारतीं महतीं धुरम् ॥१०॥ सर्वं तच्च विजानामि यथा यास्यन्ति ते नृपाः । क्षयो भुवि मया दृष्टः शक्रलोके च सत्क्रिया । तेषां पुरुषदेहानामपरावृत्तदेहिनाम् ॥ ११ ॥संप्रवेक्ष्याम्यहं योगमात्मनश्च परस्य च । संप्राप्य पार्थिवं लोकं मानुषत्वमुपागतः ॥१२॥ कंसादींश्चापि तान् सर्वान् वधिष्यामि महासुरान् । तेन तेन विधानेन येन यः शान्तिमेष्यति ॥ १३ ॥ अनुप्रविश्य योगेन तास्ता हि गतयो मया । अमीषां हि सुरेन्द्राणां हन्तव्या रिपवो युधि१४ जगत्यर्थे कृतो योऽयमंशोत्सर्गो दिवौकसैः । सुरदेवर्षिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम ॥ १५ ॥ विनिश्चयो हि प्रागेव नारदाय कृतो

बाणासुरको भी मैं जानता हूँ ९ वह अपनी सहस्र भुजाओंके कारण घमण्डमें फूला रहता है देवता भी उसको बड़ी कठिनता से जीत सकते हैं और मैं यह भी जानता हूँ, कि-पृथ्वीका बड़ा भारी भार मेरे ही ऊपर है १० वह सब जिस प्रकार मरेंगे यह सब मैं जानता हूँ, मैंने उनका क्षय और उनके (मरने पर) उनका इन्द्रलोकमें जो सत्कार होगा (वह योगदृष्टिसे) देख लिया है वे पुरुष देहसे छूटने पर फिर देहमें नहीं आयेंगे ११ मैं मनुष्य लोकमें मनुष्य बन कर अपने आप उद्योग करूँगा तथा दूसरोंसे भी उद्योग करवाऊँगा१२ और मैं जिस २ उपायसे जो२ मारा जासकेगा, उस २ उपायसे कंस आदि बड़े २ राक्षसोंका वध करूँगा ॥ १३ ॥ मैं योगसे इनकी (अन्तर्धान आदि) गतियोंमें प्रवेश कर इनकी गतियोंको नष्ट करूँगा और देवेन्द्रके शत्रु राक्षसोंको भी युद्धमें मारूँगा ॥ १४ ॥ पृथ्वीके लिये स्वर्गमें रहने वाले देवता देवर्षि और गंधर्वोंने जो अंशावतार लिया है यह मेरी ही अनुमतिसे लिया है ॥ १५ ॥ हे नारद ! यह

मया। निवासं ननु मे ब्रह्मन् विदधातु पितामहः ॥ १६ ॥ यत्र देशे यथा जातो येन वेषेण वा वसन्। तानहं समरे हन्यां तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच। नारायणेमं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो। भुवि यस्ते जनयिता जननी च भविष्यति १८ यत्र त्वं च महाबाहो जातः कुलकरो भुवि। यादवानां महद्वंशमखिलं धारयिष्यति ॥ १९ ॥ तांश्चासुरान् समुत्पाट्य वंशं कृत्वाऽऽत्मनो महत्। स्थापयिष्यसि मर्यादां नृणां तन्मे निशामय ॥ २० ॥ पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः। जहार यज्ञिया गा वै पयोदाः सुमहामखे ॥२१॥ अदितिः सुरभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु। प्रदीयमाना गास्तास्तु नेच्छेतां

निश्चय मैंने पहिले ही कर रक्खा था अब पितामह ब्रह्माजी मेरा निवासस्थान रचें ॥ १६ ॥ मैं किस देशमें किस प्रकार उत्पन्न होऊँ और किस वेषमें रह कर राक्षसोंका समरमें संहार करूँ, इस बातको हे पितामह ! आप ठीक करिये ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी कहने लगे, कि-हे नारायण ! आप कामको सिद्ध करने वाले (मेरे विचारमें आये हुए)इस उपायको सुनिये हे विभो ! पृथ्वी में आपके जो माता पिता होंगे ॥ १८ ॥ हे महाभुज ! और तुम जिस देशमें उत्पन्न हो कर अपने वंशको चलाओगे और (जिस प्रकार) यादवोंके बड़े भारी सारे वंशको धारण करोगे ॥ १९॥ और उन असुरोंको निर्मूल कर आप (जिस प्रकार) अपने वंशको महत्वको देंगे और मनुष्योंमें मर्यादा बांधेंगे उसको मुझ से सुनिये ॥ २० ॥ हे विष्णो ! पहिले एक महायज्ञमें कश्यपजी ने महात्मा वरुणकी यज्ञिय दुधेर गौओंको ले लिया था॥२१ ॥ कश्यपजीकी अदिति और सुरभि नाम वाली दो स्त्रियें थीं, (कश्यपजी जब अपना काम कर उन गौओंको लौटानेका विचार करने लगे) तब उन स्त्रियोंने वरुणको वह गौएँ लौटाना न

वरुणस्य वै ॥ २२ ॥ ततो मां वरुणोऽभ्येत्य प्रणम्य शिरसा ततः । उवाच भगवन् गावो गुरुणा मे हृता इति ॥ २३ ॥ कृतकार्यो हि हि गास्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः॥अन्ववर्त्तत भार्ये द्वे अदितिं सुरभिं तथा ॥ २४ ॥ मम ता ह्यक्षया गावो दिव्याः कामदुहाः प्रभो।चरन्ति सागरान् सर्वान् रक्षिताः स्वेन तेजसा॥२५ कस्ता धर्षयितुं शक्तो मम गाः कश्यपादृते । अक्षयं गाः क्षरं-त्यग्र्यं पयो देवामृतोपमम् ॥ २६ ॥ प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन् गुरुर्वा यदि वेतरः । त्वया नियम्याः सर्वे वै त्वं हि नः परमा गतिः ॥ २७ ॥ यदि प्रभवतां दण्डो लोके कार्यमजानताम् । न विद्यते लोकगुरो न स्युर्वै लोकसेतवः ॥२८॥ यथा वास्तु तथा वास्तु कर्तव्ये भगवान् प्रभुः । मम गावः प्रदीयन्तां ततो गंतास्मि

चाहता ॥ २२ ॥ तब तो वरुण मेरे पास आया और मस्तक झुका मुझे प्रणाम कर कहने लगा, कि-हे भगवन्! गुरुजीने मेरी गौएँ रख छोड़ी हैं २३ गुरुजी अपना कार्य कर चुकने पर भी गौएँ लौटाना नहीं चाहते हैं वे अपनी सुरभि और अदिति इन दोनों स्त्रियोंके वशमें हो (ऐसा कर) रहे हैं२४हे प्रभो! वे मेरी दिव्य गौएँ कामनाओंको सर्वदा पूर्ण करती रहती हैं और वह अपने ही तेजसे रक्षित होकर सब समुद्रों पर फिरती रहती हैं २५मेरी गौएँ देवताओंके अमृतकी समानश्रेष्ठ दूधको अक्षय रीतिसे (सर्वदा) देती रहती हैं ऐसी मेरी गौओंको कश्यपजीके सिवाय और कौन दबा सकता है?२६ हे ब्रह्मन्! समर्थ गुरु हो अथवा कोई और हो यदि वह अनुचित वर्ताव करे तो आपको सब ठीक करना चाहिये, आप ही हमारी गति हैं २७ हे लोकगुरो! यदि समर्थ पुरुषोंको कार्यका विवेक न करने पर दण्ड न दिया जायगा तो लोकमर्यादा नष्ट होजावेगी २८ हे भगवन्! अब आपका कर्तव्य चाहे जो हो परन्तु मेरी गौएँ मुझे दिलवा दीजिये! तब

सागरम् ॥ २९ ॥ या आत्मदेवता गावो या गावः सत्वमव्य-
यम् । लोकानां त्वत्प्रवृत्तानामेकं गोब्राह्मणं स्मृतम् ॥ ३० ॥
त्रातव्याः प्रथमं गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् । गोब्राह्मण-
परित्राणे परित्रातं जगद्भवेत् ॥ ३१ ॥ इत्यंबुपतिना प्रोक्तो वरुणे-
नाहमच्युत । गवां कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजम् ॥ ३२ ॥
येनांशेन हृता गावः कश्यपेन महर्षिणा । स तेनांशेन जगतीं
गत्वा गोपत्वमेष्यति ॥ ३३ ॥ या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च
सुरारणिः । तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह यास्यतः ॥ ३४ ॥
ताभ्यां च सह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते । स तस्य कश्य-
पस्यांशस्तेजसा कश्यपोपमः ॥ ३५ ॥ वसुदेव इति ख्यातो गोषु

ही मैं समुद्रको जाऊंगा २९" गौएँ आत्मदेवतारूप हैं और गौएँ अविनाशी तत्त्व हैं और आपमें प्रवृत्त रहने वाले (अर्थात् ब्रह्म-तत्त्वज्ञोंने गौ और ब्राह्मणको एकसा कहा है ३० पहिले गौओंकी रक्षा करनी चाहिये, वे रक्षा करने पर द्विजोंकी रक्षा करती हैं, और ब्राह्मणोंकी रक्षा करने पर सब जगत् रक्षित हो सकता है ॥ ३१ ॥ हे अच्युत ! जलके स्वामी वरुणके इस प्रकार कहने पर, हे विष्णो ! गौओंके मूलतत्त्वका जानकार होनेसे मैंने कश्यपको शाप दिया कि- ॥ ३२ ॥ (कश्यपके एक अंश नन्द हैं और दूसरा अंश वसुदेव हैं यही दिखाते हैं) महर्षि कश्यपने जिस अंशसे गौओंका हरण किया है, वह उस अंशसे पृथ्वीमें उत्पन्न होकर गोप (नन्द) बनेंगे ॥ ३३ ॥ और जो उनकी सुरभि और देवजननी अदिति नामकी स्त्रियें हैं, उन दोनों स्त्रियोंको भी उनके साथ जाना पड़ेगा ॥ ३४ ॥ गोपभावमें अर्थात् गौओंके स्वामीरूपमें कश्यप उनके साथ रमण करेंगे, (अब) कश्यपका वह अंश (पृथिवीमें हैं और वह) तेजमें कश्यपकी समान ही है ॥ ३५ ॥ और वह पृथिवीमें वसुदेव

तिष्ठति भूतले। गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ॥ ३६ ॥ तत्रासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः। तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते ॥ ३७ ॥ देवकी रोहणी चैव वसुदेवस्य धीमतः। सुरभी रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत् ॥ ३८ ॥ तत्र त्वं शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षणः। वर्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा ॥ ३९ ॥ छादयित्वाऽऽत्मनात्मानं मायया योगरूपया। तत्रावतर लोकानां भवाय मधुसूदन ॥ ४० ॥ जयाशीर्वचनैस्त्वैतेर्वर्धयन्ति दिवौकसः। आत्मानमात्मना हि त्वमवतार्य महीतले ॥ ४१ ॥ देवकीं रोहिणीं चैव गर्भाभ्यां परितोषय। गोपकन्यासहस्राणि रमयंश्चर मेदिनीम् ॥ ४२ ॥ गाश्च

प्रसिद्ध है और मथुराके समीप गोवर्धन नामक पर्वत पर गौओं में रहता है ॥ ३६ ॥ और गौओंमें क्रीडा करता हुआ कंसको कर देरहा है, और कश्यपकी अदिति और सुरभि नाम वाली दोनों स्त्रियें भी उत्पन्न होगई हैं (अदिति भी यशोदा और देवकी इन दो स्वरूपोंमें उत्पन्न हुई थी ,ये बुद्धिमान् वसुदेवकी देवकी और रोहिणी नामकी दो पत्नियें हुई हैं, इनमें सुरभिका नाम रोहिणी हुआ और देवी अदिति देवकी हुई है ॥ ३८ ॥ हे महाभुज ! तहाँ आप प्रारम्भमें गोपालका चिन्ह धारण कर त्रिविक्रमावतारकी समान शिशुपनमें वढिये ॥ ३९ ॥ हे मधुसूदन ! आप अपनी योगमायासे अपनेको छिपा कर संसारका कल्याण करनेके लिये उत्पन्न हूजिये ॥ ४० ॥ ये देवता जय२ रूपी आशीर्वादात्मक वचन कह कर आपको वढावा दे रहे हैं, आप अपने आप अपनी आत्माको भूतलमें अवतीर्ण करिये ४१ और देवकी तथा रोहिणीके गर्भमें रह कर उनको सन्तुष्ट करिये और सहस्रों गोपकन्याओंके साथ क्रीड़ा करते हुए पृथिवी पर विचरिये ॥ ४२ ॥ हे विष्णो ! आप जब गौओंकी रक्षा करते

ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावतः । वनमालापरिक्षिप्तं धन्या द्रक्ष्यन्ति ते वपुः ॥ ४३ ॥ विष्णो पद्मपलाशाक्ष गोपालवसतिं गते । बाले त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेष्यति ॥ ४४ ॥ त्वद्भक्ताः पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगाः । वने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावतः ॥ ४५ ॥ मज्जतो यमुनायां च रतिं प्राप्स्यंति ते त्वयि । जीवितं वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम् ॥ ४६ ॥ यस्त्वया तात इत्युक्तः स पुत्र इति वक्ष्यति । अथवा कस्य पुत्रत्वं गच्छेथाः कश्यपादृते ॥४७॥ का च धारयितुं शक्ता त्वां विष्णो अदितिं विना । योगेनात्मसमुत्थेन गच्छ त्वं विजयाय वै । वयमप्यालयान् स्वान् स्वान् गच्छामो मधुसूदन ॥४८॥ वैशम्पायन

हुए वनमें दौड़ेंगे, उस समय जिसमें वनमालाएँ हिल २ कर लग रही होंगी आपके ऐसे शरीरका जिनको दर्शन होगा, वे धन्य हैं ॥ ४३ ॥ हे विष्णो ! हे कमलपत्रकी समान नेत्र वाले ! हे महाभुज ! जब आप बालकपनमें गोपालोंकी वस्तीमें वसेंगे उस समय लोक भी बालक होजायगा अर्थात् आपके माहात्म्यको न जान सकेगा ॥ ४४ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके चित्तके अनुकूल चलने वाले आपके भक्त जब आप वनमें गौएँ चरावेंगे और गोठोंमें दौड़े २ फिरेंगे और यमुनामें गोते लगावेंगे तब परम प्रसन्न होंगे (वसुदेव) वह आपके तात ! कहने पर आपको हे पुत्र ! कहेंगे, इससे उनका जीवन भी धन्य होजायगा, अथवा आप कश्यपके अतिरिक्त और किसके पुत्र बनना चाहते हैं ? ॥ ४५ ॥ ४७ ॥ हे विष्णो ! अदितिके अतिरिक्त ऐसी और कौन स्त्री है जो आपको धारण कर सके ? अब आप अपनेमेंसे प्रकट होने वाले योगको धारण कर विजय करनेके लिये प्रस्थान करिये, अब हे मधुसूदन ! हम भी अपने स्थानोंको जाते हैं ॥ ४८ ॥ वैशम्पायनजीने कहा,

उवाच । स देवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये । जगाम विष्णुः स्वं देशं क्षीरोदस्योत्तरां दिशम् ॥ ४६ ॥ तत्र वै पार्वती नाम गुहा मेरोः सुदुर्गमा । त्रिभिस्तस्यैव विक्रान्तैर्नित्यं पर्वसु पूजिता॥५०॥पुराणं तत्र विन्यस्य देहं हरिरुदारधीः । आत्मानं योजयामास वसुदेवगृहे प्रभुः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितामहवाक्यं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ॥ ५५ ॥

कि–तब विष्णु देवताओंको जानेकी आज्ञा देकर क्षीरसमुद्रकी उत्तरदिशाकी ओर अपने स्थानको चले गए ॥ ४६ ॥ तहाँ पर मेरुपर्वतकी पार्वती नाम वाली एक बडी दुर्गम गुफा है, तहाँ उनके तीन चरणचिन्ह हैं (इस कारण) उस गुफाकी पर्वोंमें सर्वदा पूजा होती रहती है ५० उस गुफामें अपने प्राचीन शरीर को त्याग (स्थापित) कर उदारबुद्धि प्रभु हरिने अपनी आत्मा को वसुदेवजीके घरमें नियुक्त कर दिया ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारतके हरिवंशान्तर्गत हरिवंशपर्वका मुरादाबाद-निवासी भारद्वाजगोत्र गौडवंश्यऋ०कु०प०राम-स्वरूपात्मज ऋ०कु० प० रामचन्द्रशर्माद्वारा गोविन्दसूरितनूज प० नीलकण्ठकृत संस्कृत टीकाके अनुकूल सम्पादित हिन्दी भाषानुवाद समाप्त।

—–o—–


सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद
MORADABAD.

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

हरिवंश-पर्व

विष्णु-पर्व २

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥*॥

वैशम्पायन उवाच। ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं भागांश्च त्रिदिवौकसाम्। विनाशशंसी कंसस्य नारदो मथुरां ययौ॥१॥ त्रिविष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः। प्रेषयामास कंसस्य उग्रसेनसुतस्य वै ॥ २ ॥ स दूतः कथयामास मुनेरागमनं वने। स नारदस्यागमनं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ॥ ३ ॥ निर्जगामासुरः कंसः स्वपुर्याः पद्मलोचनः। स ददर्शातिथिं श्लाघ्यं देवर्षिं वीत-

---

श्रीः। नारायण नरोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके इतिहास आदि ग्रंथोंकी व्याख्याका आरंभ करे ॥ * ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–विष्णु पृथ्वीमें आगए हैं और देवताओंने अपने अंशोंसे अवतार लेलिया है, यह जान कर नारद जी कंसको उसका नाश बतानेके लिये मथुरामें पहुँचे ॥ १ ॥ वह स्वर्गसे उतर कर मथुराके एक बगीचेमें टिक गए, तहाँसे उन्होंने उग्रसेनके पुत्र कंसके पास दूत भेजा ॥ २ ॥ उस दूतने मुनिके बगीचेमें आनेकी बात कही, कमलकी समान नेत्रों वाला कंस नारदजीके आगमनको सुन कर अपनी पुरीमेंसे फुर्तीसे कदम रखता हुआ चला और उसने अपने निष्पाप प्रशंसनीय अतिथि

कल्मषम् ॥४॥ तेजसा ज्वलनाकारं वपुषा सूर्यवर्चसम् । सोभि-
वाद्यर्पये तस्मै पूजां चक्रे यथाविधि ॥५॥ आसनं चाग्निवर्णाभं
विसृज्योपजहार सः । निषसादासने तस्मिन् स वै शक्रसखो
मुनिः ॥ ६ ॥ उवाच चोग्रसेनस्य सुतं परमकोपनम् । पूजितोहं
त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ७ ॥ गते त्वेवं मम वचः श्रूयतां
गृह्यतां त्वया । अनुसृत्य दिवो लोकानहं ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ८ ॥
गतः सूर्यसखं तात विपुलं मेरुपर्वतम् । स नन्दनवनं चैव दृष्ट्वा
चैत्ररथं वनम् ॥ ९ ॥आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु सरित्सु सह दैवतैः ।
दिव्या त्रिधारा दृष्टा मे गंगा त्रिपथगा नदी॥ १० ॥ स्मरणा-
देव सर्वेषामंहसां या विभेदिनी । उपस्पृष्टं च तीर्थेषु दिव्येषु च
यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ दृष्टं मे ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् । देव-

(नारदजी) को देखा ॥ ३ ॥ ४ ॥ वह तेजके कारण अग्निके आकार वालेसे दीख रहे थे और उनका शरीर सूर्यकी समान दमक रहा था उस समय कंसने नारदजीको प्रणाम किया और शास्त्रानुसार उनकी पूजा करने लगा ॥ ५ ॥ इसने अग्निकी समान तेजस्वी आसन रखवा कर मुनिको (बैठनेके लिये) भेंट में दिया, तब इन्द्रके मित्र नारदजी उस आसन पर बैठ गए ६ फिर उन्होंने उग्रसेनके परमक्रोधी पुत्र कंससे कहा, कि–हे वीर ! तूने शास्त्रोक्तरीतिसे मेरा पूजन किया है ॥ ७ ॥ अब हे तात!तू मेरे वचनको सुन और ग्रहण कर मैं स्वर्गके ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें विचरण कर सूर्यके मित्र मेरु नामक बड़े भारी पर्वत पर गया था, फिर मैंने नन्दन और चैत्ररथ नामक वनोंको देख कर ॥ ८ ॥ ९ ॥ देवताओंके साथमें सब नदियोंमें स्नान किया था फिर मैंने तीन मार्गोंसे चलने वाली तीन धार वाली दिव्य गंगाजीके दर्शन किये १० यह गंगाजी स्मरण करनेसे ही सबके पातकोंको दूर कर देती हैं फिर मैंने क्रमशः सब दिव्य तीर्थोंमें

गन्धर्वनिर्घोषैरप्सरोभिश्च नादितम् ॥ १२ ॥ सोऽहं कदाचिद्
देवानां समाजे मेरुमूर्द्धनि । संगृह्य वीणां संसक्तागगच्छं ब्रह्मणः
सभाम् ॥ १३ ॥ सोऽहं तत्र सितोष्णीषान्नानारत्नविभूषितान् ।
दिव्यासनगतान् देवानपश्यं सपितामहान् १४ तत्र मन्त्रयतामेव
देवतानां मया श्रुतः ।भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः१५
तत्रैषा देवकी या ते मथुरायां लघुस्वसा । योऽस्या गर्भोऽष्टमः कंसः
स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ १६ ॥ देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य
गतिश्च सः । परं रहस्यं वेदानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ १७ ॥
परश्चैवापरस्तेषां स्वयंभूश्च दिवौकसाम् । ततस्ते तन्महद्भूतं दिव्यं
च कथयाम्यहम् ॥ १८ ॥ श्लाघ्यश्च स हि ते मृत्युर्भूतपूर्वश्च तं

स्नान किया ११ तदनन्तर मैंने ब्रह्मर्षियोंकी टोलियोंसे सेवित ब्रह्माजीका भवन देखा वह देवता और गन्धर्वोंके घोषसे और अप्सराओंके घोषसे गुञ्जार रहा था १२ एक समय मैं अपनी वीणाको साथ लेकर मेरु पर्वत पर लगी हुई देवताओंके समाज वाली ब्रह्माजीकी सभामें जा पहुँचा १३ तहाँ मैंने पितामहको तथा देवताओंको स्वेत पगड़ी पहर कर अनेक प्रकारके आभूषणों से विभूषित हो दिव्य आसनों पर बैठे हुए देखा १४ तहाँ पर मैंने देवताओंको यह दारुण सलाह करते सुना, कि-वे आपके और आपके भाइयोंके मारनेका भयंकर विचार कर रहे हैं १५ मथुरामें जो तुम्हारी छोटी बहिन देवकी रहती है हे कंस ! उस के जो आठवाँ गर्भ रहेगा, उससे तुम्हारी मृत्यु होजायगी १६ वह देवताओंका सर्वस्व होगा और वह स्वर्गकी गति होगा और वह गर्भ वेदोंका परम रहस्य है, वह ही तेरी मृत्यु होगा अर्थात् तुझे मार डालेगा १७ वह देवताओंको स्वर्ग और मोक्ष देता है और वह देवताओंका ब्रह्मा (रचने वाला) है, इसी लिये मैं उसको महद्भूत (बड़ा भारी प्राणी) और दिव्य (प्राणी) कहता

स्मर । यत्नश्च क्रियतां कंस देवक्या गर्भकृन्तने ॥ १९ ॥ एषा मे त्वद्गता प्रीतिर्यदर्थं चाहमागतः ।भुज्यन्तां सर्वकामार्थाः स्वस्ति तेस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्यं विचिन्तयन् । जहासोच्चैस्ततः कंसः प्रकाशदशनश्चिरम् ॥२१॥ सस्मितं चैव प्रोवाच भृत्यानामग्रतः स्थितः । हास्यः खलु स सर्वेषु नारदो न विशारदः ॥२२॥ नाहं भीषयितुं शक्यो देवै-रपि सवासवैः । आसनस्थः शयानो वा प्रमत्तो मत्तं एव च२३ योहं दोर्भ्यामुदाराभ्यां क्षोभयेयं धरामिमाम् । कोस्ति मां मानुषे लोके यः क्षोभयितुमुत्सहेत् ॥२४॥अद्यप्रभृति भूतानामेष देवानु-वर्तिनाम् । नृपक्षिपशुसंघानां करोमि कदनं महत् ॥२५॥ आज्ञा-

हूँ १८ उससे तेरी मृत्यु होना प्रशंसा की बात है और पूर्वकाल में भी उससे ही तेरी मृत्यु हुई थी, उसका तू स्मरण कर ले परन्तु हे कंस!तू देवकीके गर्भ गिरानेका उपाय भी करता रह १९ मैं तुमसे प्रेम करता हूँ इसी लिये यह बात कहनेके लिये मैं यहाँ आया था, अब आप सब कामनाओंको भोगो आपका कल्याण हो अब मैं जाना चाहता हूँ २० नारदजीके इस प्रकार कह कर चले जाने पर कंस उनकी बातका विचार कर बहुत समय तक जोरसे हँसता रहा, उस समय उसके दाँत दीखते थे २१ फिर अपने मनुष्योंके सामने बैठे हुए कंसने मुस्करा कर कहा, कि-नारदजीकी बात पर सबको ही हँसी आती है वह चतुर नहीं है२२मैं आसन पर बैठा होऊँ सोरहा होऊँ अथवा मत्त वा प्रमत्त दशामें होऊँ तबभी इन्द्रकी सहायता लेकर भी देवता मुझे डरा नहीं सकते २३ मैं तो अपनी बड़ी २ भुजाओंसे इस पृथ्वीको भी क्षुब्ध कर सकता हूँ, फिर संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है जो मुझे क्षुब्ध करनेका साहस कर सकता हो ? २४ मैं आजसे देवताओं का पक्ष लेने वाले प्राणियोंको मनुष्योंको पक्षियोंको और पशुओं

ध्यतां हयः केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा । अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा ॥ २६ ॥ अटध्वं पृथिवीं सर्वां यथेष्टं कामरूपिणः । प्रहरध्वं च सर्वेषु येऽस्माकं पक्षदूषकाः ॥ २७ ॥ गर्भस्थानामपि गतिर्विज्ञेया चैव देहिनाम्। नारदेन हि गर्भेभ्यो भयं नः समुदाहृतम् ॥ २८ ॥ भवन्तो हि यथाकामं मोदन्तां विगतज्वराः । मां च वो नाथमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम् ॥ २९ ॥ स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः । सुश्लिष्टानपि लोकेऽस्मिन् भेदयँल्लभते रतिम् ॥ ३० ॥ कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः । घटमानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि ॥ ३१ ॥

को घोर पीड़ा दूँगा ॥ २५ ॥ इस समय केशी—अश्व प्रलम्ब धेनुक अरिष्ट वृषभ पूतना और कालियको आज्ञा देनी चाहिये कि—॥२६॥ तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सारी पृथ्वी पर विचरण करते रहो और जो हम राक्षसोंके पक्षको दूषित करते हों उन पर प्रहार करना आरम्भ करो ॥ २७ ॥ और गर्भस्थ प्राणियोंका भी पता लगाते रहो, क्योंकि—नारद जीने गर्भोंसे ही हमें भय बताया है ॥ २८ ॥ तुम मुझे स्वामी समझ कर चिन्ता करना छोड़ इच्छानुसार आनन्द करो, देवता तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते ॥२९॥ और इन ब्राह्मण नारदको तो युद्ध कराने में ही आनन्द आता है और इनका स्वभाव ही भेद डलवानेका है, यह स्नेही पुरुषोंमें भी भेद डाल कर बड़ा आनन्द पाते हैं ॥ ३० ॥ और यह चञ्चल पुरुष सदा इसकी चेष्टा करते रहते हैं, कि किस उपायसे राजाओंमें लड़ाई छिड़े (और उन उपायोंको करके यह राजाओंमें) संघर्ष करा देते हैं ॥ ३१ ॥ कंस (ऊपरी मनसे ही इस प्रकार बक झक

एवं स विलपन्नेव वाङ्मात्रेणैव केवलम् । विवेश कंसो भवनं दह्यमानेन चेतसा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारद-
गमने कंसवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच । सोऽज्ञापयत संरब्धः सचिवानात्मनो हितान् । यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने ॥ १ ॥ प्रथमादेव हन्तव्या गर्भास्ते सप्त एव हि । मूलादेव तु हन्तव्यः सोऽनर्थो यत्र संशयः ॥ २ ॥ देवकी च गृहे गुप्ता गच्छन्नैरभिरक्षिता । स्वैरं चरतु विश्रब्धा गर्भकाले तु रक्ष्यताम् ॥ ३ ॥ मासान् वै पुष्पमासादीन् गणयन्तु मम स्त्रियः । परिणामे तु गर्भस्य शेषं ज्ञास्यामहे वयम् ॥४॥ वसुदेवस्तु संरक्ष्यः स्त्रीसनाथासु भूमिषु । अप्रमत्तैर्मम हिते रात्रावहनि चैव हि । स्त्रीभिर्वर्षवरैश्चैव वक्तव्यं

कर रहा था) तदनन्तर वह अपने मनमें जलता हुआ सा अपने भवनमें घुसगया ॥ ३२ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए कंसने अपना हित चाहने वाले मन्त्रियोंसे कहा, कि-तुम सब देवकीके गर्भको नष्ट करनेके लिये उद्यत रहो ॥ १ ॥ उन सब गर्भोंको प्रथम(जन्म दिन)से ही नष्ट करना चाहिये और जिस (आठवें) गर्भमें सन्देह है उसको तो (गर्भधारण होने पर ही अर्थात्) मूलसे ही (औषधि आदिसे नष्ट) नष्ट करनेका उद्योग करना चाहिये ॥ २ ॥ और देवकी घरमें ही रहे, तथा अन्तःपुररक्षक उसकी देखभाल करते रहें और वह इच्छानुसार घूमती रहे, परन्तु गर्भके समय उसकी (रक्षा करनी चाहिये अर्थात् विशेष) देख भाल रखनी चाहिये ॥ ३ ॥ मेरी स्त्रियें पुष्पमास (रजोमास) आदि महीनोंको गिनती रहें, फिर दशममासमें बचे हुए गर्भको हम देख लेंगे ॥ ४ ॥ और मेरा हित चाहनेवाली स्त्रियें

न तु कारणम् ॥ ५ ॥ एष मानुषको यत्नो मानुषैरेव साध्यते ।
श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रतिहन्यते ॥६॥ मन्त्रग्रामैः सुविहितै-
रौषधैश्च सुयोजितैः । यत्नेन चानुकूलेन दैवमप्यनुलोम्यते ॥७॥
वैशम्पायन उवाच । एवं स यत्नवान् कंसो देवकीगर्भकृन्तने ।
भयेन मन्त्रयामास श्रुतार्थो नारदात् स वै ॥ ८ ॥ एवं श्रुत्वा
प्रयत्नं वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम् । अन्तर्धानं गतो विष्णुश्चिन्तया-
मास वीर्यवान् ॥ ९ ॥ सप्तेमान् देवकीगर्भान् भोजपुत्रो वधि-
ष्यति । अष्टमे च मया गर्भे कार्यमाधानमात्मनः ॥ १० ॥ तस्य
चिन्तयतस्त्वेवं पातालमगमन्मनः । यत्र ते गर्भशयनाः षड्गर्भा

और हिजड़े अन्तःपुरमें वसुदेवकी देख भाल करते रहें, परन्तु उसको कोई कारण न बतलावें (तात्पर्य यह है, कि वसुदेव सन्तान उत्पन्न होने पर उसको अन्यत्र न भेजदें) ॥ ५ ॥ यह मनुष्योंके करने योग्य यत्न मनुष्योंसे सिद्ध होसकता है, अब इस बातको भी सुनो, जिस प्रकार मुझ सरीखे पुरुष दैवको भी निष्फल कर डालते हैं ॥ ६ ॥ मन्त्रोंको भली भाँति जपकर और औषधियोंका अच्छी रीतिसे प्रयोग करनेसे और अपने अनुकूल यत्न करनेसे दैवको भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है ॥७॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-नारदजीसे देवताओं के प्रयोजनको सुन कर भयभीत हुए कंसने देवकीका गर्भ नष्ट करनेके लिये इस प्रकार मन्त्रणाकी थी ॥ ८ ॥ कंसके इस उत्पातरूप उद्योगको सुन कर अन्तर्धान हुए वीर्यवान् श्रीकृष्ण ने विचारा कि-॥९॥ यह भोजपुत्र कंस देवकीके सात गर्भोंको तो नष्ट ही कर डालेगा, परन्तु आठवें गर्भमें मुझे अपनी आत्माको स्थापित करना है ॥ १० ॥ विचारते २ विष्णु भगवान्का मन पातालकी ओर पहुँचा, तहाँ षड्गर्भा नामक दानव (जलरूपी) गर्भमें शयन कर रहे थे पुराणोंमें उनके नाम इस प्रकार लिखे

नाम दानवाः ॥ ११ ॥ विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृताशनोपमाः। अमरप्रतिमा युद्धे पुत्रा वै कालनेमिनः॥१२॥ते तातं तातं संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा । उपासांचक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम् ॥ १३ ॥ तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः । तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरं ददौ ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच। भो भो दानवशार्दूलास्तपसाऽहं सुतोषितः । ब्रूत वो यस्य यः कामस्तस्य तस्य करोम्यहम् ॥ १५ ॥ ते तु सर्वे समानार्था दैत्या ब्रह्माणमव्ययम् । यदि नो भगवान् प्रीतो दीयतां नो वरो वरः ॥ १६ ॥ अवध्याः स्याम भगवन् दैवतैः समहोरगैः । शापप्रहरणैश्चैव नियतैः परमर्षिभिः ॥ १७ ॥ यत्त-

हैं,कि–"नाश्वा हंसः सुविक्राथो दमनो रिपुमर्दनः । क्रोधहन्तेति विख्याताः षड्गर्भा नाम दानवाः ॥" षड्गर्भा नामक दानव नाश्वा हंस सुविक्राथ दमन रिपुमर्दन और क्रोधहन्ता नामसे प्रसिद्ध हैं) ॥ ११ ॥ उनके शरीरमें बड़ा बल था, वे दमक रहे थे और वे युद्धमें अमृत पीने वाले देवताओंकी समान अमर रहते थे और कालनेमिके पुत्र थे ॥ १२ ॥ उन्होंने पितामह हिरण्यकशिपुको छोड़ लोकपितामह ब्रह्माजीकी उपासना करना आरम्भ कर दी थी ॥ १३ ॥ वे जटामण्डलको धारण कर तीव्र तप करने लगे, तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर षड्गर्भोंको वर देना चाहने लगे ॥ १४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि–हे दानवश्रेष्ठों ! मैं तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट होगया हूँ अब तुम्हारी कौन २ सी इच्छा है उसको बताओ, तो मैं पूर्ण करूँ ॥ १५ ॥ वे दैत्य समान प्रयोजनको रख कर ब्रह्माजीसे कहने लगे, कि–हे भगवन यदि आप हम पर प्रसन्न हुए हैं तो यह श्रेष्ठ वर दीजिये कि-१६ देवता और सर्प भी हमें न मार सके और नियममें रहने वाले महर्षि भी हम पर शापका प्रहार न कर सकें १७ और हे

गन्धर्वपतिभिः सिद्धचारणमानवैः । मा भूद्वधो नो भगवन् ददासि यदि नो वरम् ॥१८॥ तानुवाच ततो ब्रह्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना । भवद्भिर्यदिदं प्रोक्तं सर्वमेतद्भ भविष्यति ॥ १९ ॥ षड्गर्भाणां वरं दत्त्वा स्वयम्भूस्त्रिदिवं गतः । ततो हिरण्यकशिपुः सरोषो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥ मामुत्सृज्य वरो यस्माद्वृतो वः पद्मसंभवात् । तस्माद्वस्त्याजितः स्नेहः शत्रुभूतांस्त्यजाम्यहम् ॥२१॥ षड्गर्भा इति योऽयं वः शब्दः पित्राभिवर्धितः । स एव वो गर्भगतान् पिता सर्वान् वधिष्यति ॥ २२ ॥ षडेव देवकीगर्भाः षड्गर्भा वै महासुराः । भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्थान् वो वधिष्यति ॥ २३ ॥ वैशम्पायन उवाच । जगामाथ ततो विष्णुः पातालं यत्र तेऽसुराः । षड्गर्भाः संयताः सन्ति जले गर्भगृहेशयाः ॥ २४ ॥ संददर्श जले गुप्तान् षड्गर्भान् गर्भसंस्थितान् ।

भगवन् ! यदि आप हमको वर देना चाहते हैं तो यह भी वर दीजिये, कि-यक्ष गंधर्व सिद्ध चारण और मनुष्योंसे भी हमारा वध न होसके १८ तब ब्रह्माजीने प्रसन्न मनसे कहा, कि-आपके कथनानुसार सब बातें होंगी १९ इस प्रकार षड्गर्भोंको वर देकर ब्रह्माजी स्वर्गको चले गए तदनन्तर हिरण्यकशिपुने क्रोध में भर कर उनसे कहा, कि २० तुमने मुझे छोड़ कर ब्रह्माजीसे वर माँगा, अतः तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह जाता रहा और तुमको मैं शत्रु समझ कर त्यागता हूँ ॥ २१ ॥ तुम्हारे पिताने तुमको षड्गर्भा शब्द कह कर बढ़ाया है, वही तुम्हारा पिता तुमको गर्भावस्थामें मार डालेगा ॥ २२ ॥ हे षड्गर्भ नामक महा असुरो! तुम छः हो देवकीके छः गर्भ होओगे और तुम्हें कंस गर्भावस्थामें ही मार डालेगा ॥ २३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तब विष्णु पातालमें पहुँचे और वहाँ पहुँचे जहाँ हिरण्यकशिपुके शापसे रुके पड़े हुए षड्गर्भा दैत्य जलरूपी गर्भमें शयन कर रहे

निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तर्हितान् स वै ॥२५॥ स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानथाविशत् । प्राणेश्वरांश्च निष्कृष्य निद्रायै प्रददौ तदा ॥ २६ ॥ तां चोवाच ततो निद्रां विष्णुः सत्यपराक्रमः । गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनांतिकम् ॥२७॥ इमान् प्राणेश्वरान् गृह्य षड्गर्भान् दानवोत्तमान् । सर्वप्राणेश्वरांश्चैव षड्गर्भान्नाम देहिनः । षड्गर्भान् देवकी गर्भे योजयस्व यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम् । कंसस्य विफले यत्ने देवक्याः सफले श्रमे ॥२९॥ प्रसादं ते करिष्यामि

थे २४ तहाँ उन्होंने कालरूपी निद्राके कारण अन्तर्हित होकर जलरूपी गर्भमें शयन करते हुए षड्गर्भोंको देखा २५ तदनन्तर विष्णु उनके शरीरोंमें प्रवेश करके उनके प्राणेश्वरोंको स्वप्नरूपसे निकाल कर योगनिद्राको देदिया (अर्थात् ब्रह्माजीके वरदानसे उनका स्थूलदेह नष्ट नहीं हुआ था उनको विष्णुकी मायासे दूसरा जन्म स्वप्नकी समान प्रतीत हुआ इसी प्रकार अपने देहसे बाहर निकले हुए पुरुषोंको देशान्तरमें स्वप्नप्रपञ्च जाग्रत्की समान सत्य ही भासता है इस कारण हमारी दृष्टिमें षड्गर्भोंका जन्म योगमायाविरचित होनेसे इन्द्रजालके बनाये हुए नगरकी समान व्यावहारिक था परन्तु षड्गर्भोंकी दृष्टिमें स्वप्नकी समान भासरहा था अतः ब्रह्माजीके वर दानमें कोई दोष नहीं आया) २६ तदनन्तर सत्यपराक्रमी विष्णुने योगनिद्रासे कहा कि-हे निद्रे ! तू मेरी आज्ञासे इन षड्गर्भ नामक दानवश्रेष्ठों के प्राणेश्वरोंको लेकर देवकीके भवनके समीप जा और इन सब प्राणोंके ईश्वर षड्गर्भ नाम प्राणियोंको छः गर्भ बना कर क्रमशः देवकीके गर्भ में डाल ॥ २७ ॥ २८ ॥ इन गर्भोंके उत्पन्न हो कर यमराजके घर पहुँचने पर जब कंसका परिश्रम निष्फल होजायगा और देवकीका श्रम सार्थक होजायगा

मत्प्रभावसमं भुवि । येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यसि ३०
सप्तमो देवकीगर्भो योंऽशः सौम्यो ममाग्रजः। स संक्रमयितव्यस्ते
सप्तमे मा स रोहिणीम् ॥ ३१ ॥ संकर्षणात्तु गर्भस्य स तु
संकर्षणो युवा । भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम शीतांशुदर्शनः ३२
पतितो देवकी गर्भः सप्तमोऽयंऽभयादिति । अष्टमे मयि गर्भस्थे
कंसो यत्नं करिष्यति ॥ ३३ ॥ या तु सानन्दगोपस्य दयिता
भुवि विश्रुता । यशोदा नाम भद्रन्ते भार्या गोपकुलोद्वहा ॥३४॥
तस्यास्त्वं नवमो गर्भः कुलेऽस्माकं भविष्यसि।नवम्यामेव संजाता
कृष्णपक्षस्य वै तिथौ ॥ ३५ ॥ अहं त्वभिजितो योगे
निशायां यौवने स्थिते । अर्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथा-
सुखम् ॥ ३६ ॥ अष्टमस्य तु मासस्य जातावावां ततः समम् ।

तब मैं तुझे ऐसा प्रसाद दूँगा. कि-पृथ्वीमें तेरा प्रभाव मेरे प्रभाव की समान होजायगा हे देवि ! तब तू सब लोकों की देवी हो जायगी ३० देवकीका जो सातवाँ गर्भ होगा वह सौम्य मेरा बड़ा भाई होगा उसको तू सातवे महीनेमें रोहिणीके गर्भमें पहुँचा देना ॥ ३१ ॥ गर्भके खैंचनेके कारण वह युवा होकर संकर्षण कहलावेगा, वह मेरा बड़ा भाई चन्द्रमाकी समान प्रियदर्शन होगा ॥ ३२ ॥ देवकीका यह सातवाँ गर्भ भयके कारण गिर गया यह समझ कर कंस अष्टम गर्भमें मेरे पहुँचने पर यत्न करेगा ३३ नन्दगोपकी जो प्रिय स्त्री पृथ्वीमें यशोदा नामसे प्रसिद्ध है वह गोप कुलको धारण करने वाली है तेरा कल्याण हो ३४ हमारे कुलमें तू उसका नवम गर्भ होगी और तू कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको ही उत्पन्न होगी (इससे सिद्ध होता है, कि-इस कन्या ने भी कुछ दिन देवकीके गर्भमें निवास किया था) ॥ ३५ ॥ और मैं अर्धरात्रिके समय जब अभिजित् नक्षत्र युवावस्थामें होगा तब सुखपूर्वक गर्भसे मुक्त होजाऊँगा ॥ ३६ ॥ हम दोनों आठवे

प्राप्स्यावो गर्भव्यत्यासं प्राप्ते कंसस्य नाशने ॥ ३७ ॥ अहं यशोदां यास्यामि त्वं देवि भज देवकीम् । आवयोर्गर्भसंयोगे कंसो गच्छतु मूढताम् ॥ ३८ ॥ ततस्त्वां गृह्य चरणे शिलायां पातयिष्यति । निरस्यमाना गगने स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ३९ मच्छवीसदृशी कृष्णे संकर्षणसमानना । बिभ्रती विपुलौ बाहू मम बाहूपमौ दिवि ॥ ४० ॥ त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम् । पात्रीं च पूर्णां मधुना पंकजं च सुनिर्मलम् ॥ ४१ ॥ नीलकौशेयसंवीता पीतेनोत्तरवाससा । शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजता ॥ ४२ ॥ दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता । चन्द्रसापत्नभूतेन मुखेन त्वं विराजिता ॥ ४३ ॥

मासमें एक साथ उत्पन्न होवेंगे और कंसका नाश करनेके लिये हम दोनों गर्भों (अति बालकों) में लौट फेर होजावेगा ३७ मैं तो यशोदाके पास चलाजाऊँगा और तू देवकीकी सेवा करना हम दोनोंके बदल जाने परकंस मूढ़ बन जायगा ३८ तब वह तेरे चरण पकड़ कर शिला पर पटकने लगेगा परन्तु तू छूटते ही उछल कर आकाशमें जाकर अपने शाश्वत स्थानको प्राप्त होजायगी ३९ उस समय तेरी छवि मेरी छविकी समान होगी और तेरा मुख संकर्षणकी समान होजायगा और तू आकाशमें मेरी समान विपुल भुजाओंको धारण करलेगी ॥ ४० ॥ उस समय तेरे हाथमें त्रिशूल होगा, और सोनेकी मूँठकी तलवार होगी और मधुसे भरा पूर्ण पात्र होगा और सुनिर्मल कमल भी होगा ४१ उस समय तू नीले रेशमी वस्त्रको पहर रही होगी और पीला दुपट्टा ओढ रही होगी और तेरा वक्षःस्थल चन्द्रमाकी किरणोंकी समान प्रकाश देनेवाले हारसे खिल रहा होगा ॥४२॥ उस समय तेरे कान दिव्य कुण्डलोंसे विभूषित होरहे होंगे और तू अपने चन्द्रमाकी सौतकी समान मुखसे खिल रही होगी ॥ ४३ ॥

मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना। भुजंगाभैर्भुजैर्भीमैर्भूषयन्ती दिशो दश ॥ ४४ ॥ ध्वजेन शिखिबर्हेण उचितेन विराजिता। अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता ॥ ४५ ॥ कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी। कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि ॥ ४६ ॥ तत्र त्वां शतदृक् शक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा। अभिषेकेण दिव्येन दैवतैस्सह योक्ष्यते ॥४७॥ तत्रैव त्वां भगिन्यर्थे ग्रहीष्यति स वासवः। कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्वं भविष्यसि ॥ ४८ ॥ स ते विंध्ये नगश्रेष्ठे स्थानं दास्यति शाश्वतम्। ततः स्थानसहस्रैस्त्वं पृथिवीं शोभयिष्यसि ॥४९॥ त्रैलोक्यचारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना। चरिष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ॥ ५० ॥ तत्र शुम्भनि-

तुम अपने शोभायमान केशबन्ध मुकुटसे और अपनी सर्पकी समान आभा वाली भयंकर भुजाओंसे दशो दिशाओंको सुशोभित करोगी ॥ ४४ ॥ और तुम मोरके परोंकी उचित ध्वजासे विराजोगी और उस समय तुम प्रकाशवान् बाजूबन्द पहर रही होगी ॥ ४५ ॥ फिर तुम मेरी आज्ञासे सहस्रों भूतोंसे घिर कर कुमारव्रतको धारण करती हुई स्वर्गमें विचरण करोगी ॥४६॥ तब तहाँ पर सहस्राक्ष इन्द्र और देवता मेरे उपदेश दिये हुए कर्मसे दिव्य अभिषेकके द्वारा तेरा पूजन करेंगे ॥ ४७ ॥ तब इन्द्र तुझे भगिनी बनानेके लिये ग्रहण करेगा और तू कुशिकके गोत्रके कारण कौशिकी कहलाने लगेगी ॥ ४८ ॥ फिर तुझे इन्द्र पर्वतश्रेष्ठ विंध्याचल पर शाश्वत स्थान देगा, तदनन्तर तू पृथ्वीमें सहस्रों मठोंमें शोभा पावेगी ॥ ४९ ॥ तू त्रिलोकीमें विचरण करेगी और पृथ्वीमें याचनाको सत्य किया करेगी, हे महाभागे! तू इच्छानुसार रूप धारण करके वर दिया करेगी ५० तहाँ पर पर्वत पर फिरने पर शुम्भ और निशुम्भ नाम वाले

शुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ ।तौ च कृत्वा मनसि मां सानुगौ नाशयिष्यसि ॥५१॥ कृत्वाऽनुयात्राभूतैस्त्वं सुरामांसबलिप्रिया । तिथौ नवम्यां पूजां त्वं प्राप्स्यसे सपशुक्रियाम् ॥ ५२ ॥ ये च त्वां मत्प्रभावज्ञा प्रणमिष्यन्ति मानवाः । तेषां न दुर्लभं किंचित् पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥ ५३ ॥ कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानां च महार्णवे । दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ॥५४॥ त्वां तु स्तोष्यन्ति ये भक्त्या स्तवेनानेन वै शुभे । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भारावतरणे निद्रासंविज्ञानो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

वैशम्पायन उवाच । आर्यास्तवं प्रवक्ष्यामि यथोक्तमृषिभिः पुरा । नारायणीं नमस्यामि देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ॥१॥ त्वं हि

दो दानव होंगे उनको और उनके सब अनुचरोंको तू मनमें मेरा स्मरण करेगी मार डालेगी॥५१॥तुझे सुरा मांस और बलि प्रिय होगा और तेरा अनुगमन करने पर प्राणी पशुक्रिया (पशुबलि) देकर नवमी तिथिमें तेरा पूजन किया करेंगे ॥५२॥ मेरे प्रभाव को जानने वाले जो मनुष्य तुझे प्रणाम करेंगे उन्हें धन पुत्र आदि कोई पदार्थ दुर्लभ न रहेगा ॥ ५३ ॥ वनमें कष्ट पाते हुए और समुद्रमें डूबते हुए और डाँकुओंके रोके हुए प्राणियोंकी तू परमगति है ॥ ५४ ॥ हे शुभे ! जो प्राणी इस स्तोत्रसे तेरी स्तुति करेंगे, उनसे मैं दूर नहीं रहूँगा और न वे मुझसे दूर रहेंगे ॥ ५५ ॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-पहिले ऋषियोंने जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार मैं तुझसे आर्यास्तवका वर्णन करता हूँ (पहिले) मैं त्रिभुवनकी ईश्वरी नारायणी देवीको नमस्कार करता हूँ १ तू ही सिद्धि (मुक्ति) है और तू ही धृति (जीवन) है और

सिद्धिर्धृतिः कीर्तिः श्रीर्विद्या सन्नतिर्मतिः। संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तथैव च ॥२॥आर्या कात्यायनी देवी कौशिकी ब्रह्मचारिणी। जननी सिद्धसेनस्य उग्रचारी महाबला ॥ ३ ॥ जया च विजया चैव पुष्टिस्तुष्टिः क्षमा दया। ज्येष्ठा यमस्य भगिनी नीलकौशेयवासिनी ॥ ४ ॥ बहुरूपा विरूपा च अनेकविधिचारणी। विरूपाक्षी विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी ५ पर्वताग्रेषु घोरेषु नदीषु च गुहासु च। वासस्तव महादेवि वनेषूपवनेषु च ॥ ६ ॥ शबरैर्बर्बरैश्चैव पुलिंदैश्च सुपूजिता। मयूरपिच्छध्वजिनी लोकान् क्रमसि सर्वशः ॥ ७ ॥ कुक्कुटैश्छागलैर्मेषैः सिंहैर्व्याघ्रैः समाकुला। घंटानिनादबहुला विंध्यवासिन्यभिश्रुता ॥८॥ त्रिशूली पट्टिशधरा सूर्यचन्द्रपताकिनी। नवमी

तू ही कीर्ति श्री विद्या सन्नति मति संध्या रात्रि प्रभा निद्रा और कालरात्रिरूप है २ तू आर्या कात्यायनी देवी ब्रह्मचारिणी कौशिकी उग्रतासे विचरण करने वाली और सिद्धसेन (स्कन्द) की जननी है ३ तू जया विजया पुष्टि तुष्टि क्षमा और दयारूप है और तू यमराजकी बड़ी बहिन है और नीला रेशमी वस्त्र धारण करती रहती हैं ४ हे देवि ! आप बहुतसे रूप धारण करने वाली, विकृत रूप धारण करने वाली और अनेक प्रकार से भ्रमण करने वाली हैं और आप विरूप नेत्रों वाली विशाल नेत्रों वाली और भक्तोंकी रक्षा करने वाली हैं ५ हे महादेवि ! पर्वतोंके भयंकर शिखरों पर नदियों (के तटों) पर गुहाओं पर और वन तथा उपवनोंमें तुम्हारे मठ हैं ६ शबर वर्बर और पुलिन्द भी तुम्हारी पूजा अच्छी तरहसे करते हैं और तुम मोरछलकी ध्वजा बना कर सब लोकोंमें क्रमशः घूमती रहती हो ॥ ७ ॥ आपके चारों ओर मुरगे बकरे मेढे सिंह और बघेरे रहते हैं और तुम्हारे पास बहुतसे घण्टोंका नाद होता रहता है

कृष्णपक्षस्य शुक्लस्यैकादशी तथा ॥ ९ ॥ भगिनी बलदेवस्य रजनी कलहप्रिया॥आवासः सर्वभूतानां निष्ठा त्वं परमा गतिः१० नन्दगोपसुता चैव देवानां विजयावहा । चीरवासास्तु वासाश्च रौद्री संध्याचरी निशा ॥ ११ ॥ प्रकीर्णकेशी मृत्युश्च सुरामांस बलिप्रिया । लक्ष्मीरलक्ष्मीरूपेण दानवानां वधाय च ॥ १२ ॥ सावित्री चपि देवानामार्या मन्त्रगणेषु च । कन्यानां ब्रह्मचर्यत्वं सौभाग्यं प्रमदासु च ॥ १३ ॥ अन्तर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चैव दक्षिणा । कर्षुकानां च सीतेति भूतानां धरिणीति च १४ सिद्धिस्त्वं यान्त्रिकाणां तु माता भूतगणस्य च । यक्षाणां प्रथमा

तुम विंध्यवासिनी नामसे प्रसिद्ध हो ॥ ८ ॥ और तुम त्रिशूल और पटेको धारण किये रहती हो और चन्द्रमा तथा सूर्य तुम्हारे झण्डे हैं कृष्णपक्षकी नवमी और शुक्लपक्षकी एकादशी (तुम्हारी तिथियें हैं)॥९॥ तुम बलदेवजीकी भगिनी हो रात्रिरूपा हो और कलहप्रिया हो और तुम सब प्राणियोंकी आश्रयरूप हो और निष्ठा परमगति मुक्तिरूप हो ॥ १० ॥ तुम नन्दगोपकी पुत्री हो और देवताओंकी विजय कराने वाली हो तुम फटे हुए वस्त्र भी पहिर लेती हो और (अच्छे) वस्त्र भी पहिर लेती हो, तुम्हरे कर्म भयंकर हैं, तुम सायंकालके समय विचरण किया करती हो और रात्रिरूपा हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे बाल बिखरे रहते हैं, तुम मृत्युरूप हो और सुरा मांस तथा बलि तुमको प्रिय है और तुम दानवोंका वध करनेके लिये लक्ष्मी होने पर भी अलक्ष्मीकरूप बनजाती हो ॥१२॥ तुम देवताओंमें ब्रह्मचर्य हो और स्त्रियोंमें सौभाग्य रूप हो ॥१३॥ तुम यज्ञोंमें अन्तर्वेदी रूप हो और ऋत्विजोंकी दक्षिणा हो और तुम किसानोंकी सीता (लांगलपद्धति) हो और प्राणियोंके लिये पृथ्वी रूप हो ॥ १४ ॥ तुम यन्त्रसे काम करने वालोंके लिये

यक्षी नागानां सुरसेति च ॥ १५ ॥ ब्रह्मवादीत्यथो दीक्षा शोभा च परमा तथा। ज्योतिषां त्वं प्रभा देवी नक्षत्राणां च रोहिणी १६ राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां संगमेषु च। पूर्णा च पूर्णिमा चन्द्रे त्वं बुद्धिरम्बिका शुचिः ॥ १७ ॥ सरस्वती च वाल्मीके स्मृति-र्द्वैपायने तथा। ऋषीणां धर्मबुद्धिस्तु देवानां मानसी तथा। सुरा देवी तु भूतेषु स्तूयसे त्वं स्वकर्मभिः ॥ १८ ॥ इन्द्रस्य चारुदृष्टि-स्त्वं सहस्रनयनेति च। तापसानां च देवी त्वमरणी चाग्निहोत्रि-णाम् ॥ १९ ॥ क्षुधा च सर्वभूतानां तृप्तिस्त्वं दैवतेषु च। स्वाहा तृप्तिर्धृतिर्मेधा वसूनां त्वं वसुमती ॥२०॥ आशा त्वं मानुषाणां च पुष्टिश्च कृतकर्मणाम्। दिशश्च विदिशश्चैव तथा ह्यग्निशिखा

सिद्धरूपहो, और प्राणियोंके लिये माताकी समान हो और तुम यक्षोंको प्रथमा यक्षी (कुवेरकी माता रूप)हो और नागोंके लिये सुरसारूप हो ॥ १५ ॥ तुम ब्रह्मवादिनी हो तथा दीक्षा और परमशोभारूप हो ज्योतियोंमें प्रभारूप हो और नक्षत्रोंमें देवी रोहिणीरूप हो ॥ १६ ॥ और तुम कचहरी तीर्थ और नदियोंके संगमोंमें पूर्ण लक्ष्मीरूपमें विराजमान रहती हो और चन्द्रमामें पूर्णिमारूपसे रहती हो, तुम अंबिकारूप हो और पवित्र बुद्धिरूप हो ॥ १७ ॥ तुम वाल्मीकि ऋषिमें सरस्वती रूपसे रहती हो और व्यासजीमें स्मृतिरूपसे रहती हो और ऋषियोंमें धर्मबुद्धि-रूपसे रहती हो और देवताओंमें मानसी (संकल्पसिद्धि) रूप से रहती हो १८और इन्द्रकी सहस्र नयनोंमें रहने वाली मनोहर दृष्टि तुम ही हो और तुम तपस्वियोंमें कान्तिरूपसे रहती हो और अग्निहोत्रियोंकी अरणिमें रहती हो ॥ १९ ॥ और तुम सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे रहती हो तथा तृप्तिरूपसे रहती हो और देवताओंमें स्वाहा तृप्ति धृति बुद्धिरूपसे रहती हो और वसुओंमें वसुमतीरूपसे रहती हो२०तथा मनुष्योंमें तुम आशारूपसे रहती

प्रभा ॥२१॥ शकुनी पूतना त्वं च रेवती च सुदारुणा । निद्रापि सर्वभूतानां मोहिनी क्षत्रिया तथा ॥ २२ ॥ विद्यानां ब्रह्मविद्या त्वं त्वमोंकारो वषट् तथा । नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणीमृषयो विदुः ॥२३॥ अरुन्धती च साध्वीनां प्रजापतिवचो यथा। यथार्थनामभिर्दिव्यैरिन्द्राणी चेति विश्रुता ॥ २४ ॥ त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत् स्थावरजंगमम्।संग्रामेषु च सर्वेषु ।अग्निप्रज्वलितेषु च । नदीतीरेषु चौरेषु कान्तारेषु भयेषु च ॥ २५ ॥ प्रवासे राजबन्धे च शत्रूणां च प्रमर्दने । प्राणात्ययेषु सर्वेषु त्वं हि रक्षा न संशयः ॥ २६ ॥ त्वयि मे हृदयं देवि त्वयि चित्तं मनस्त्वयि। रक्ष मां सर्वपापेभ्यः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ इमं यः सुस्तवं

हो और कृतकृत्य पुरुषोंमें पुष्टिरूपसे रहती हो और तुम दिशा विदिशा अग्निकी लपट और प्रभा (में भी रहती) हो ॥ २१ ॥ तुम शकुनी पूतना रेवती सुदारुणा और सब भूतोंकी मोहिनी निद्रा और क्षत्रिया हो ॥ २२ ॥ तुम विद्याओंमें ब्रह्मविद्यारूप हो तथा ओंकार और वषट्काररूप हो और ऋषि तुमको पुराणोंमें प्रसिद्ध पार्वती नामक स्त्री कहते हैं ॥ २३ ॥ और तुमको साध्वियोंमें अरुन्धतीकी समान बतलाते हैं, यह प्रजापतिका वचन है और तुम अपने यथार्थ दिव्य नामोंसे इन्द्राणी भी प्रसिद्ध हो ॥ २४ ॥ हे देवि ! स्थावरजंगमात्मक सब जगत् तुमसे व्याप्त है, सकल संग्रामोंमें अग्निकी लपटोंमें नदियोंके तटों पर चौराहों पर वनोंमें भयके अवसरों पर प्रवास करने पर राजाके द्वारा बंधनमें पड़ने पर और शत्रुओंके मर्दनके समय तथा सब प्रकारके प्राणसंकटके समय भी तुम ही हमारी रक्षा करने वाली हो ॥ २५ २६ ॥ हे देवि ! मेरा चित्त हृदय और मन तुम्हारी ओर लग रहा है हे देवि ! तुम मुझे सब पापोंसे बचाओ और तुम्हें मुझ पर कृपा करना उचित है ॥ २७ ॥ जो पुरुष प्रातःकाल

दिव्यमिति व्यासप्रकल्पितम् । यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ २८ ॥ त्रिभिर्मासैः कांक्षितं च फलं वै संप्रयच्छति । षड्भिर्मासैर्वरिष्ठन्तु वरमेकं प्रयच्छति ॥२९॥ अर्चिता तु त्रिभिर्मासैर्दिव्यं चक्षुः प्रयच्छति । संवत्सरेण सिद्धिं तु यथाकामं प्रयच्छति ॥ ३० ॥ सत्यं ब्रह्म च दिव्यं च द्वैपायनवचो यथा । नृणां बन्धं वधं घोरं पुत्रनाशं धनक्षयम् ॥ ३१ ॥ व्याधिमृत्युभयं चैव पूजिता शमयिष्यसि । भविष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी । मोहयित्वा च तं कंसमेका त्वं भोक्ष्यसे जगत् ॥३२॥ अहमप्यात्मनो वृत्तिं विधास्ये गोषु गोपवत् । स्ववृद्ध्यर्थमहं चैव करिष्ये कंसगोपताम् ॥३३॥ एवं तां स समादिश्य गतोंतर्धानमीश्वरः । सा चापि तं नमस्कृत्य तथास्त्विति च निश्चिता ३४

के समय उठ पवित्र हो मन लगा कर व्यासजीके रचे हुए इस दिव्य स्तोत्रको पढ़ता है ॥ २८ ॥ तो देवी उसको तीन मासमें वाञ्छित फल देती है और छः मास तक पाठ करते रहने पर एक श्रेष्ठ वर देती है ॥ २९ ॥ और तीन मास तक पूजा करने पर दिव्य नेत्र देती है और वर्ष भर तक पूजा करने पर मनोवाञ्छित सिद्धि देती है ॥ ३० ॥ व्यासजीके वचनानुसार यह स्तोत्र सत्य दिव्य और ब्रह्मस्वरूप है (श्रीकृष्णने कहा, कि- तू पूजा करने पर मनुष्योंके कैद वध भयंकर पुत्रनाश धनक्षय व्याधि और मृत्युके भयको भी शान्त कर देगी और हे महाभागे तू वरदान देने वाली और इच्छानुसार रूप धारण करने वाली होगी तू कंसको मोहमें डाल कर अकेली ही सब जगत्को भोगेगी ३१ ३२ और मैं भी गौओंमें गोपकी समान वर्ताव करूँगा और मैं अपनी वृद्धिके लिये कंसकी गौओंका रक्षकत्व भी करूँगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार योगमायाको समझा कर भगवान् अन्तर्धान होगए और योगमाया भी उनको प्रणाम कर तथा तथास्तु कहनेके

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः। सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच । कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा। जग्राह सप्त तान गर्भान् यथावत् समुदाहृतान ॥ १ ॥ षड्गर्भान्निःसृतान् कंसस्ताञ्जघान शिलातले। आपन्नं सप्तमं गर्भं सा निनायाथ रोहिणीम् ॥२॥ सार्धरात्रे स्थितं गर्भं पातयन्ती रजस्वला। निद्रया सहसाविष्टा पपात धरणीतले ॥ ३ ॥ सा स्वप्नमिव तं दृष्ट्वा स्वे गर्भे गर्भमादधत्। अपश्यन्ती च तं गर्भं मुहूर्तं व्यथिताऽभवत् ॥ ४ ॥ तामाह निद्रासंविग्नां नैशे तमसि रोहि-

---

अनन्तर निश्चिंत होगई ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रका सर्वदा पाठ करता है वा सर्वदा इसको सुनता रहता है वह मनुष्य निःसन्देह सर्वार्थसिद्धि पाता है ३५ तीसरा अध्याय समाप्त ३

वैशम्पायनजीने कहा, कि—गर्भकी बात चीत होजाने पर देवताकी समान देवकीने उन पहिले कहे हुए सात गर्भोंको क्रमशः धारण किया था ॥ १ ॥ छः गर्भोंके उत्पन्न होते ही उनको कंसने शिला पर मार डाला था और सातवें गर्भके रहने पर योगमाया उसको रोहिणीके पास लेगई ॥ २ ॥ आधी रात्रिमें देवकीने गर्भको गिरा दिया था फिर रजस्वला होकर निद्राके वशमें हो एक साथ भूमि पर गिर पड़ी ॥ ३ ॥ देवकीने अपने गर्भको गिरा देख कर अपने गर्भ (गोदी) में धारण कर लिया (परन्तु योगमाया जब उस गर्भको लेगई तब) उस गर्भको न देखनेसे देवकी खिन्न होगई ॥ ४ ॥ (तदनन्तर योगनिद्राने उसको आश्वासन दिया था यह दिखाते हैं)योगमायाने चन्द्रमाको प्रिय लगने वाली रोहिणीकी समान, बुद्धिमान् वसुदेवके

णीम् । रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमतः ॥ ५ ॥ कर्षणे-
नास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै । संकर्षणो नाम सुतः शुभे
तव भविष्यति ॥६॥ सा तं पुत्रमवाप्यैवं हृष्टा किंचिदवाङ्मुखी ।
विवेश रोहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा ॥ ७ ॥ तस्य गर्भस्य
मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी । यदर्थं सप्त ते गर्भाः कंसेन विनि-
पातिताः॥८॥ तं तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्तस्य मन्त्रिणः । सोऽप्यत्र
गर्भवसतौ वसत्यात्मेच्छया हरिः ॥ ९ ॥ यशोदापि समाधत्त
गर्भं तदहरेव तु । विष्णोः शरीरजां निद्रां विष्णुनिर्देशकारि-
णीम् ॥ १० ॥ गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ ।
देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा ॥ ११ ॥ यामेव रजनीं

कुलको बढाने वाली देवकीसे कहा, कि-॥ ५ ॥ हे शुभे ! तूने
जिसको अपने गर्भमें धारण कर रक्खा था उसके खेंचनेके
कारण तेरा पुत्र संकर्षण नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार
पुत्रको पानेसे वह प्रसन्न होगई और अपने मुखको कुछ नीचा
कर कान्तिमती रोहिणीकी समान रोहिणीके घरमें घुस गई ७
इधर (कंसके आदमी देवकीका सातवाँ गर्भ कहाँ गया, कब
गिर पडा था इसकी) खोज कर रहे थे इतनेमें ही जिसके
लिये कंसने सात गर्भोंको नष्ट कर डाला था उस आठवें गर्भको
देवकीने धारण करलिया८तब तो उसके मन्त्री उस गर्भकी प्रयत्न-
पूर्वक रक्षा करने लगे और भगवान् भी अपनी इच्छासे गर्भमें
रहनेलगे९उसी दिन यशोदाने भी विष्णुकी आज्ञा मानने वाली
और विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुई योगनिद्राको धारण कर
लिया १० तदनन्तर गर्भका समय पूर्ण होनेसे पहिले ही आठवें
मासमें देवकीने और यशोदाने एक ही साथ सन्तान उत्पन्न
की ११ वृष्णिकुलको उठाने वाले श्रीकृष्ण जिस रात्रिमें उत्पन्न

कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलोद्वहः। तामेव रजनीं कन्यां यशोदापि
ह्यजायत ॥ १२ ॥ नन्दगोपस्य भार्यैका वसुदेवस्य चापरा।
तुल्यकालं च गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ॥ १३ ॥ देवक्य-
जनयद्विष्णुं यशोदा तां तु दारिकाम्। मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्ते सार्ध-
रात्रे विभूषिते ॥ १४ ॥ सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणी-
धराः। जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥ १५ ॥
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशांतमभवद्रजः। ज्योतींष्यतिप्रकाशंत
जायमाने जनार्दने ॥ १६ ॥ अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम
शर्वरी। मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः। अव्यक्तः
शाश्वतः सूक्ष्मो हरिर्नारायणः प्रभुः। जायमानो हि भगवान्न-

हुए थे उसी रात्रिमें यशोदाने भी कन्याको उत्पन्न किया था१२
इनमें एक वसुदेवकी भार्या थी, और दूसरी नन्दगोपकी भार्या
थी, यह यशोदा और देवकी एक ही समय गर्भिणी हुईं
थीं ॥ १३ ॥ देवकीने अभिजित् मुहूर्तमें विष्णुको उत्पन्न किया
और यशोदाने विष्णुके मोहित करने (भेजने) पर रात्रिका
चतुर्थांश रहने पर बालिकाको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ उस
समय श्रीकृष्णके उत्पन्न होने पर सागर (हर्षमें भरकर)
हिलोरें लेने लगे और पर्वत भी (हर्षमें भर कर) झूमने लगे
और शान्त पड़ी हुईं अग्नियें भी (अपने आप) प्रज्वलित हो
उठीं। १५ । सुखदायक स्पर्श वाला वायु चलने लगा और
धूलि उड़ना बन्द होगया और श्रीकृष्णके उत्पन्न होने पर
नक्षत्र और अधिक दिपने लगे १६जिस समय श्रीकृष्ण उत्पन्न
हुए थे उस समय अभिजित नामक नक्षत्र था और जयन्ती नाम
वाली रात्रि थी और विजय नामक मुहूर्त था प्रभु अव्यक्त और
शाश्वत हरि उत्पन्न होकर अपने नयनोंसे मोहमें डालने लगे
उस समय स्वर्गमें देवदुन्दुभियें विना बजाये स्वयं ही बजने

यन्नैर्मोहयन् प्रभुः अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन् दिवि १८
आकाशात् पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वरः । गीर्भिर्मंगलयुक्ताभिः
स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥१६॥ महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहा-
प्सराः । जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत् ॥ २० ॥ इन्द्रश्च
त्रिदशैः सार्धं तुष्टाव मधुसूदनम् । वसुदेवश्च तं रात्रौ जातं पुत्र-
मधोक्षजम् ॥ २१ ॥ श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा युतं दिव्यैश्च लक्षणैः॥
उवाच वसुदेवस्तु रूपं संहर वै प्रभो ॥२२॥भीतोऽहं देव कंसस्य
तस्मादेवं ब्रवीम्यहम्।मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाऽम्बुजेक्षण२३
वैशम्पायन उवाच । वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं चाहरदच्युतः ।
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नंदगोपगृहं नय ॥ २४ ॥ वसुदेवस्तु संगृह्य
दारकं क्षिप्रमेव च । यशोदाया गृहं रात्रौ विवेश सुतवत्सलः२५

लगीं १७ १८ स्वर्गमेंसे इन्द्रने पुष्पोंकी वर्षाकी तथा महर्षि गन्धर्व और अप्सरायें उपस्थित होकर मंगलमयी स्तुतियोंसे मधुसूदनकी स्तुति करने लगीं, इसप्रकार मधुसूदनके उत्पन्न होने पर सब जगत् हर्षमें भर गया १६ २० उस समय इन्द्रभी देवताओंके साथ मधुसूदनकी स्तुति करने लगा और रात्रिमें उत्पन्न हुए अधोक्षज पुत्रकी वसुदेव भी स्तुति करने लगे २१ भगवान्को श्रीवत्स तथा और भी बहुतसे दिव्य लक्षणोंसे संयुक्त देखकर वसुदेवने कहा, कि–हे प्रभो ! आप अपने रूपको छिपा लीजिये २२ हे देव ! मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इस लिये यह बात कह रहा हूँ हे कमलकी समान नेत्रों वाले ! उसने तुम्हारे बड़े भाई मेरे पुत्रोंको मार डाला है २३ वैशम्पायनजीने कहा, कि–वसुदेवजीके वचनको सुन अपने पितासे नन्दगोपके घर पहुँचानके लिये कह कर अच्युतने अपने चतुर्भुजीरूपको छिपा लिया २४ तब पुत्रवत्सल वसुदेव रात्रिमें ही शीघ्रताके साथ बालकको लेकर यशोदाके घरमें घुस गए२५ और उन्होंने

यशोदायास्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम् । प्रगृह्य दारिकां चैव देवकी शयनेऽन्यसत् ॥ २६ ॥ परिवर्ते कृते ताभ्यां गर्भाभ्यां भयविक्लवः । वसुदेवः कृतार्थो वै निर्जगाम निवेशनात् ।२७। उग्रसेनसुतायाथ कंसायानकदुन्दुभिः । निवेदयामास तदा तां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरितः कंसो रक्षिभिः सह वेगिभिः । आजगाम गृहद्वारं वसुदेवस्य वीर्यवान ॥ २९ ॥ स तत्र त्वरितं द्वारि किंजातमिति चाब्रवीत्दीयतां शीघ्रमित्येवं वाग्भिः समभितर्जयत् ॥ ३० ॥ ततो हाहाकृताः सर्वा देवकीभवने स्त्रियः । उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥३१॥ दारिका तु प्रजातेति कंसं समभियाचती । श्रीमन्तो मे हताः सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो ॥ ३२ ॥ दारिकेयं हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे । दृष्ट्वा कंसस्तु तां कन्यामाकृष्य समुदायतः ॥३३॥

यशोदाको मालूम न हो इस प्रकार उस बालकको वहाँ सुला दिया और लड़कीको लाकर देवकीकी खाट पर लिटा दिया २६ उन दोनों बालकोंको बदलनेके उपरान्त भयसे घबड़ागये वसुदेवजी सूतिकागृहसे निकल आये २७ तदनन्तर वसुदेवजीने उग्रसेनके पुत्र कंससे निवेदन किया-कि—हे महाराज ! वरवर्णिनी कन्या उत्पन्न हुई है२८यह बात सुन कर कंस और उसके अनुचर शीघ्रतासे दौड़े और वीर्यवान् कंस वसुदेवजीके घरके द्वार पर पहुँच गया २९ वह द्वार पर पहुँच कर कहने लगा, कि—क्या उत्पन्न हुआ है ?उसको मुझे दे दो,यह कह कर गालियें बकने लगा ३० तब तो देवकीके भवनकी सब स्त्रियें हाहा कार कर उठीं और देवकीने रुँधे हुए कण्ठसे दीन होकर कहा, कि- ३१ यह पुत्री उत्पन्न हुई मैं इसकी भीख माँगती हूँ, हे विभो ! तूने मेरे सात श्रीमान् पुत्रोंको तो मार ही डाला है ३२ और यह पुत्री भी मरी हुई ही है, यदि तू समझे तो इसको देख (कर छोड़दे) ३३

इतीवैषा यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथा मतिः । सा गर्भशयने क्लिष्टा गर्भाम्बुक्लिन्नमूर्धजा ॥ ३४ ॥ कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्यां पृथिवीसमा । स चैनां गृह्य परुषः समाविध्यावधूय च ३५ उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत् । सावधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत् ॥ ३६ ॥ हित्वा गर्भतनुं सा तु सहसा मुक्तमूर्धजा । जगाम कंसमादिश्य दिव्यस्रगनुलेपना ॥ ३७ ॥ हारशोभितसर्वांगी मुकुटोज्ज्वलभूषिता । कन्यैव साऽभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता ॥ ३८ ॥ नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तनी । रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा ॥३९॥ विद्यु-

---

तब उस मूढ बुद्धिने यह कन्या तो मारी ही गई कह कर गर्भकी खाट कर शयन करती हुई और गर्भके जलसे भीगे हुए केशों वाली कन्याको खेंच लिया ३४ तदनन्तर कंसके सामने आने पर उस कठोर हृदयने उसको उठा कर घुमाना आरंभ कर दिया फिर उसने उसका तिरस्कार करके ऊपरको उठा एक साथ शिला पर पटक दिया, परन्तु शिला पर पटकने पर भी वह शिलासे न टकरा कर आकाशमेंको उड़ गई ॥ ३५॥३६ ॥ उस समय उस ने सहसा अपना गर्भका रूप छोड़ दिया उसके स्थानमें उसके केश खुल गए तथा उसके शरीरमें दिव्य चंदन और मालायें दीखने लगी तब वह कंसका तिरस्कार कर आकाशमेंको उड़ती हुई चली गई ॥ ३७ ॥ उस समय उसका सब शरीर हीरोंसे शोभा पारहा था और उज्ज्वल मुकुट शोभा देरहा था और वह सर्वदाके लिये कन्या बन गई तब उस दिव्य देवीकी देवता स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ उस समय देवी नीला और पीला वस्त्र पहर रही थीं उनके स्तन हाथीके गण्डस्थलकी समानस्थूल थे और उनका जघन रथकी समान चौड़ा था और मुख चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था और उन्होंने चतुर्भुजी रूप धारण कर

द्विरपत्रवर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा । पयोधरस्तनवती संध्येव सपयोधरा ॥ ४० ॥ सा वै निशि तमोग्रस्ते बभौ भूतगणाकुले । नृत्यती हसती चैव विपरीतेन भास्वती ॥४१॥ विहायसि गता रौद्रा पपौ पानमुत्तमम् । जहास च महाहासं कंसं च रुषिताऽब्रवीत् ॥ ४२ ॥ कंस कंसात्मनाशाय यदहं घातिता त्वया । सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिपोथिता ॥४३॥ तस्मात्तवांतकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा । पाटयित्वा करैर्देहमुष्णं पास्यामि शोणितम् ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना । खं सा देवालयं देवी सगणा विचचार ह ॥ ४५ ॥ सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसंघसुपूजिता । पुत्रवत् पाल्यमाना सा वसुदेवा-

लिया था ॥ ३९ ॥ उस समय उनके शरीरकी आभा बिजलीकी दमकनेकी समान दमक रही थी और नेत्र बालसूर्यकी समान रक्त होरहे थे और वह अपने मेघोंकी समान स्तनोंसे मेघों वाली संध्याकी समान दीख रहीं थीं ॥ ४० ॥ उस समय अंधकारसे घिरे हुए रात्रिके समय भूतोंसे घिरी हुई वह देवी नाच कर हँस कर और विपरीतभावसे प्रकाशित होकर शोभा पाने लगी ॥ ४१ ॥ वह भयंकरी देवी आकाशमें जाकर बढ़िया शर्बत को पीने लगी और वह देवी बडेजोरसे हँस क्रोधमें भरकर कहने लगी कि—॥४२॥ रे कंस ! रे कंस !! तूने अपने नाशके लिये मुझे मारा था और एक साथ उठा कर शिला पर पटक दिया था ॥ ४३ ॥ इस लिये तेरे अन्त समयमें तेरा शत्रु तुझे खींचेगा, तब मैं तुझे पटक कर अपने हाथोंसे तेरे रक्तका पान करूँगी ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कहनेके अनन्तर वह देवी यथेष्ट मार्गसे जाकर अपने अनुचरोंके साथ आकाशमें विहार करने लगी ॥ ४५ ॥ तब वह कन्या वृष्णियोंके टोलोंसे पूजा पाकर बढ़ने लगी वसुदेवजीकी आज्ञासे सब यादव उसकी पुत्रकी

झया तदा ॥ ४६ ॥ विद्धि चैनामथोत्पन्नामंशाद्देवीं प्रजापतेः । एकानंशां योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु ॥ ४७ ॥ तां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः । देववद्दिव्यवपुषा कृष्णः संरक्षितो यया ॥ ४८ ॥ तस्यां गतायां कंसस्तु तां मेने मृत्युमात्मनः । विविक्ते देवकीं चैव व्रीडितः समभाषत ॥ ४९ ॥ कंस उवाच । मृत्योः स्वसः कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हताः । अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्युरुपस्थितः ॥५०॥ नैराश्येन कृतो यत्नः स्वजने प्रहृतं मया । दैवं पुरुषकारेण न चातिक्रान्तवानहम् ५१ त्यज गर्भकृतां चिन्तां सन्तापं पुत्रजं त्यज । हेतुभूतस्त्वहं तेषां सति कालविपर्यये ॥५२॥ काल एव नृणां शत्रुः कालश्च परि-

समान पालना (पूजा) करते थे ॥ ४६ ॥ (हे जनमेजय !) इस देवीको तू प्रजापतिके अंशसे उत्पन्न हुई जान, यह अभिन्न अंश वाली (चित्कला) कन्या केशवकी रक्षा करनेके लिये उत्पन्न हुई थी ॥ ४७ ॥ जिसने देवता की समान दिव्य शरीर धारण कर श्रीकृष्णजीकी रक्षा की,थी उस देवी की सब यादव प्रसन्न मनसे पूजा करने लगे ॥ ४८ ॥ उसके चले जाने पर कंसने समझा, कि- यही मेरी मृत्यु होगी और लज्जित हो देवकीसे एकांतमें कहने लगा, कि ॥ ४९ ॥ कंसने कहा, कि-हे वहिन ! मैंने (न) मरनेके लिये यत्न करने की इच्छासे तेरे बालकोंको मार डाला था, परन्तु हे देवि ! अब प्रतीत होता है , कि मेरी मृत्यु अब किसी दूसरेसे ही होगी ५० मैंने कर्कश बन कर अपने आदमियों पर प्रहार किया,किन्तु हाय! मैं पुरुषार्थ करके प्रारब्धको न पलट सका ॥ ५१ ॥ अब तू गर्भ की चिन्ताको त्याग दे और पुत्रसंबंधी सन्तापको भी विसार दे, कालके लौटफेरसे मैं उनको मारनेका (काल-ईश्वरकी तलवार की समान) हेतु होगया ॥ ५२ ॥ काल ही मनुष्योंका शत्रु है

णामकः । कालो नयति सर्वं वै हेतुभूतस्तु मद्विधः ॥ ५३ ॥ आगमिष्यन्ति वै देवि यथा भोगमुपद्रवाः । इदं तु कष्टं यज्जन्तुः कर्ताहमिति मन्यते ॥ ५४ ॥ मा कार्षीः पुत्रजां चिन्तां विलापं शोकजं त्यज।एवं प्रायो नृणां योनिर्नास्ति कालस्य संस्थितिः५५ एष ते पादयोर्मूर्ध्ना पुत्रवत्तव देवकि । मद्गतस्त्यज्यतां रोषो जानाम्यपकृतं त्वयि ॥ ५६ ॥ इत्युक्तवन्तं तं कंसं सा देवी वाक्यमब्रवीत् । साश्रुपूर्णमुखी दीना भर्तारमुखीक्षती । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्सेति कंसं मातेव जल्पति ॥ ५७ ॥ देवक्युवाच । ममाग्रतो

काल ही परिणाम देने वाला है, काल ही सबको ले जाता है और मुझसा प्राणी तो (व्यर्थ ही) कारणमात्र बन जाता है अर्थात् यह सब कालकी ही करतूत है मेरा इसमें कुछ दोष नहीं है तात्पर्य यह है, कि-कालरूप ईश्वर भी दोषी नहीं है क्योंकि-वह कर्मानुसार फल देता है, कहा भी है, कि-"स्वकर्मैव नरं हन्ति न शस्त्ररिपुमृत्यवः । न भेतव्यं न वासभयं चोरहत्यावलम्बते" अपना कार्य ही मनुष्यको मारता है,शस्त्र वैरी और मृत्यु उसको नहीं मारते हैं) ॥५३॥ हे देवि ! उपद्रव तो कर्मानुसार आते रहते हैं, परन्तु यह बडे कष्टकी बात है,कि-जन्तु फिर भी अपने को कर्ता मानता रहता है ॥ ५४ ॥ अब तू पुत्रसम्बन्धी चिन्ता को त्याग दे और शोकपूर्वक विलाप करना छोड़दे, प्राणियोंकी यही रीति है प्राणियोंकी योनि ऐसीही है,कालका खण्डन नहीं किया जासकता५५हे देवकि!मैं तेरे चरणोंमें पुत्रकी समान मस्तक झुकाता हूँ, तू मेरे ऊपर कोप करना छोड़दे, मैं यह समझता हूँ, कि-मैंने तेरा अपराध किया है॥ ५६ ॥ इस प्रकार कहते हुए कंससे देवकीने कहा, उस समय देवकीके मुख पर आँसू बह रहे थे और वह स्वामीके मुखकी ओर देखती हुई कह रही थी ॥ ५७ ॥ देवकीने कहा था, कि-हे पुत्र ! तूने कालरूप बन

हतो गर्भा ये त्वया कालरूपिणा। कारणं त्वं न वै पुत्र कृतान्तोऽप्यत्र कारकम्॥ ५८ ॥ गर्भकृन्तनमेतन्मे सहनीयं त्वया कृतम्। पादयोः पतता मूर्ध्ना स्वं च कर्म जुगुप्सता ५९ गर्भे तु नियतो मृत्युर्बाल्येपि न निवर्तते। युवापि मृत्योर्वशगः स्थविरो मृत एव तु ६० कालभूतमिदं सर्वं हेतुभूतस्तु मद्विधः। अजाते दर्शनं नास्ति यथा वायुस्तथैव च॥६१॥जातोप्यजाततां याति विधात्रा यत्र नीयते। तद्गच्छ पुत्र मा ते भून्मद्गतं मृत्युकारणम्॥ ६२ ॥ मृत्युनापहृते पूर्वं शेषो हेतुः प्रवर्त्तते।विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वतः॥६३॥ माता पित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते।निशम्य

कर मेरे सामने ही मेरे पुत्रोंको मार डाला था, परन्तु इसमें तू ही कारण नहीं है, काल भी कारण है ॥५८॥ मैं अपना शिर तेरे चरणोंमें धर कर अपने कर्मकी निन्दा कर रहा हूँ, अतः तू गर्भवधके पापको क्षमा कर ॥५९॥ गर्भमें भी (किसी२ प्राणीकी कर्मानुसार) अवश्य ही मृत्यु होजाती है मृत्यु (नियत हो तो) वालकपनमें भी नहीं टलती है, युवा पुरुष भी मृत्युके वशमें पड़ जाता है और वृद्ध तो मर ही जाता है ॥६०॥ यह सब कालके कारणसे होता है और तुझसा प्राणी तो निमित्तमात्र होजाता है, जो पुरुष नहीं होता है, उसका दर्शन नहीं होना, वह तो वायुकी समान रहता है ॥ ६१ ॥ और उत्पन्न हुआ प्राणी भी नष्ट होजाता है, और विधाता उसको जहाँ लेजाता है, तहाँ पहुँच जाता है ॥ ६२ ॥ मृत्युके द्वारा हरने पर फिर बाकी हेतु प्रवृत्त होता है, जन्मान्तरीय कर्मके द्वारा तथा जातकर्म आदि संस्कारों के द्वारा काल सृष्टि रचता है६३और जातिगुणके अनुसार वे माता पिताके यहाँ उत्पन्न होते हैं (इन्हीं कारणोंसे वे मरगए और तूने उनको मार डाला, वास्तवमें तेरा कोई दोष नहीं है) ६४ देवकीके वचनको सुन कर कंस अपने मनमें जलना

देवकीवाक्यं स कंसस्स्वं निवेशनम् ॥६४॥ प्रविवेश स संरब्धो दह्यमानेन चेतसा। कृत्ये प्रतिहते दीनो जगाम विमना भृशम् ६५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम् । प्रजातां पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात् कान्ततराननम् ॥ १ ॥ स नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया गिरा । गच्छानया सहैव त्वं व्रजमेव यशोदया ॥ २ ॥ तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः । योजयित्वा व्रजे तात संवर्द्धय यथासुखम् ॥ ३ ॥ रौहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं व्रजे । अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम् ॥ ४ ॥ योऽहमेकस्य पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुखम् । ह्रियते हि बलात् प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतो मम ॥ ५ ॥ अस्माद्धि

हुआ अपने घरमें घुस गया, वह अपने उद्योगके विफल होने पर मनमें खिन्न होता हुआ घरमें चला गया ॥ ६५ ॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि- वसुदेवजीने (श्रीकृष्णजन्मसे) पहिले ही सुना था, कि व्रजमें रोहिणीने चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर मुख वाले पुत्रको उत्पन्न किया है ॥ १ ॥ तब उन्होंने फुर्तीके साथ शुभ वाणीमें नन्दगोपसे कहा, कि-तुम इस यशोदा को साथमें लेकर व्रजको ही जाओ ॥ २ ॥ तहाँ पर पहुँच कर तुम इन दोनों बालकोंके जातकर्म आदि संस्कार और लिखाना पढाना सुखपूर्वक कर इनको बडे करो ॥ ३ ॥ तुम व्रजमें मेरे रोहिणी स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्रकी रक्षा करोगे तो पुत्र वाले पितरोंमें मेरा भी नाम लिया जासकेगा ॥ ४ ॥ मैंने अभी तक अपने एक बालकका भी मुख नहीं देखा है, यद्यपि मैं बुद्धिमान् हूँ, तथापि मेरी बुद्धि बलपूर्वक नष्ट होरही है ॥ ५ ॥ मुझे यह

मे भयं कंसान्निर्घृणाद्वै शिशोर्वधे । तद्यथा रौहिणेयं त्वं नन्दगोप ममात्मजम् ॥ ६ ॥ गोपायसि यथा तात तत्त्वान्वेषी तथा कुरु । विघ्ना हि बहवो लोके बालानुत्त्रासयन्ति हि ॥७॥ स च पुत्रो मम ज्यायान् कनीयांश्च तवाप्ययम् । उभावपि समं नाम्ना निरीक्षस्व यथासुखम् ॥ ८ ॥ वर्द्धमानावुभावेतौ समानवयसौ यथा । शोभेतां गोव्रजे तस्मिन्नन्दगोप तथा कुरु ॥ ९ ॥ बाल्ये केलिकिलस्सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः । बाल्ये चण्डतमस्सर्वस्तत्र यत्नपरो भव ॥ १० ॥ न च वृन्दावने कार्यो गवां घोषः कथंचन । भेतव्यं तत्र वसता केशिनः पापदर्शिनः ॥ ११ ॥ सरीसृपेभ्यः कीटेभ्यश्शकुनिभ्यस्तथैव च । गोष्ठेषु गोभ्यो वत्सेभ्यो

डर लग रहा है, कि-कहीं मेरे इस बालक पुत्रको भी निर्दयी कंस न मार डाले अत एव हे नन्दगोप ! तुम अपने पुत्रकी समान इस मेरे पुत्रकी रक्षा करना ॥ ६ ॥ तू बालघातियों के मौकोंको देखता हुआ इन बालकोंकी रक्षा करना, बहुतसे विघ्नकारी प्राणी बालकोंको त्रस्त करते रहते हैं ॥७॥ वह मेरा ज्येष्ठ पुत्र है और यह तेरा छोटा पुत्र है, तुम दोनोंको नामानुसार सुखपूर्वक देखो (अर्थात् जैसे कृष्ण अतिस्नेहके कारण तुम्हारे चित्तको खेंचता है तैसे ही संकर्षण राम तुम्हारे चित्तको आनन्दित करें ! ॥ ८ ॥ हे नन्दगोप ! ये समान अवस्थावाले जिस प्रकार बढ कर गोव्रजमें शोभा पावें तैसा करो ॥ ९ ॥ बालक अवस्थामें सब इच्छानुसार क्रीड़ा करनेवाले होते हैं और सब मनुष्य बालकपनमें मोहमें पड जाते हैं और बालकपनमें (सब प्राणी) बालकको दबा सकते हैं अतः तुम सावधान रहना १० तुम वृन्दावनमें गोपोंका ग्राम कभी न बसाना, तहाँ पर रह कर तो पाप दृष्टि वाले केशीसे सर्वदा डरते रहना पड़ेगा ११ तुम इन दोनों बच्चोंकी सर्प कीड़े और पक्षियोंसे

रक्षयौ ते द्वाविमौ शिशू ॥ १२ ॥ नन्दगोप गता रात्रिश्शीघ्रयानो व्रजाशुगः । इमे त्वां व्याहरन्तीव पक्षिणस्सव्यदक्षिणम् १३
रहस्यं वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना। यानं यशोदया सार्द्धमारुरोह मुदान्वितः ॥ १४ ॥ कुमारस्स्कन्धवाह्यायां शिबिकायां समाहितः । संवेशयामास शिशुं शयनीयं महामतिः ॥ १५ ॥ जगाम च विविक्तेन शीतलानिलसर्पिणा । बहूदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना ॥१६॥ स ददर्श शुभे देशे गोवर्द्धनसमीपगे । यमुनातीरसंवद्धशीतमारुतसेवितम् ॥ १७ ॥ विरुतश्वापदं रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम् । गोभिस्तृणविलग्नाभिःस्यन्दतीभिरलङ्कृतम् १८
समप्रचारं च गवां समतीर्थजलाशयम् । वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम् ॥ १९ ॥ भासामिषादानुसृतैश्श्येनैश्चा-

तथा गोठोंमें गौओं और बछडोंसे सर्वदा रक्षा करते रहना १२ हे नन्दगोप ! रात्रि बीत गई है अत एव तुम फुर्तीसे चलने वाले वाले यानमें बैठ कर शीघ्रतासे जाओ, यह पक्षी दाईं और बाईं ओर घूम कर यही बात कह रहे हैं । १२ । महात्मा वसुदेवने जब एकान्तमें इस प्रकार कहा तब नन्द प्रसन्न हो यशोदाके साथ रथमें बैठ गए ॥ १४ । और उन्होंने कंधे पर उठाई जाने वाली पालकीमें बालकको चढ़ा दिया, फिर उन महाबुद्धिमान्‌ने उसको गद्दे पर लिटा दिया ॥ १५ ॥ तब वह यमुनाके तट पर चलने वाले अधिक जल वाले अत एव शीतल समीर बहाने वाले विस्तृत मार्ग पर चलनें लगे १६ तब उन्होंने गोवर्धनके समीप शुभ देशमें यमुनाके तट पर बसे हुए और शीतल पवनसे सेवित और विशिष्ट प्रकारका शब्द करनेवाले श्वपादोंसे मनोहर, लता वल्ली और बड़े २ पेडों वाले और तृणोंसे सने हुए मुख वाली और रंभाती हुई गौओंसे अलंकृत, गौओंके चरनेके लिये समभूमि वाले और समान तीर्थ और

मिरगृद्धनुभिः । सृगालमृगसिंहैश्च वसामेदाशिभिर्वृतम् ॥ २० ॥
शार्दूलशब्दाभिरुतं नानापक्षिसमाकुलम् । स्वादुवृक्षफलं रम्यं
पर्याप्ततृणवीरुधम् ॥ २१ ॥ गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभि-
रावृतम् । हम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिःस्वनम् ॥ २२ ॥
शकटावर्त्तविपुलं कण्टकीवाटसंकुलम् । पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्वृहद्भिः
प्रततैर्द्रुमैः ॥ २३ ॥ वत्सानां रोपितैः कीलैर्दामभिश्च विभूषि-
तम् । करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम् ॥ २४ ॥ नैम्य-
प्रचारबहुलं हृष्टपुष्टजनावृतम् । दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गार-
निस्वनम् ॥ २५ ॥ तक्रनिस्स्रावमलिनं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम् ।
मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम् ॥ २६ ॥ काकपक्षधरै-

जलाशयवाले और बैलोंके कन्धे रगडनेसे तथा सींगोंके रगडने से छिले हुए वृक्ष वाले और उनके पीछे चलने वाले बाज तथा वसा और मेदाका भक्षण करनेवाले शृगाल चीते और सिंहोंसे व्याप्त शार्दूलोंके शब्दसे अभिरुत (गूँजते हुए) अनेक प्रकारके पक्षियोंसे भरे हुए वृक्षोंके स्वादुफल वाले, काफी तृण और लताओं वाले, गोठ वाले गौओंके रंभानेसे और गोपोंकी स्त्रियोंसे रमणीय और बछड़ोंके हंभा शब्दोंसे चारों ओरसे शब्द करते हुए शकटोंके आवर्तवाले काँटोंकी बाड़वाले बड़े २ जंगली वृक्षोंसे घिरे हुए और (दीवारोंमें) बछड़ोंके बांधनेके लिये चारों ओर लगी हुई कीलों वाले, सूखे हुए अन्ने उपलों से घिरे हुए चटाई बिछे हुए मठों वाले उचित चिन्हों वाले भटों से भरे हुए, हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरे हुए इधर उधर खूटोंमें बँधी हुई बहुतसी मोटी २ रस्सियों वाले और रई चलानेकी मटकियों में होते हुए शब्द वाले, मट्ठेके बहनेसे मैले, दहीकी मलाईसे सनी हुई मट्टी वाले, मथनेके दण्डेके (घरघर) शब्द होनेसे शब्द करती (गाती हुई) गोपियोंके शब्द वाले और काकपक्ष धारण

बालैर्गोपालैः क्रीडनाकुलम् । सार्गलद्वारगोवाटमध्ये गोस्थानसंकुलम् ॥२७॥ सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम् । नीलपीताम्बराभिश्च तरुणीभिरलंकृतम् ॥ २८ ॥ वन्यपुष्पावतंसाभिर्गोपकन्याभिरावृतम् । शिरोभिर्धृतकुम्भाभिर्बद्धैरग्रस्तनाम्बरैः२९ यमुनातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम् । स तत्र प्रविशन् हृष्टो गोव्रजं गोपनादितम् ॥३०॥ प्रत्युद्गतो गोपवृद्धैस्स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव च । निवेशं रोचयामास परिवर्ते सुखाश्रये ॥३१॥ सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवसुखावहा । तत्र तं बालसूर्याभं कृष्णं गूढं न्यवेशयत् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोव्रजगमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच । तत्र तस्यासतः कालः सुमहानत्य-

करने वाले गोपाल बालकोंके अखाड़ोंसे भरे हुए और कुण्डीके द्वारवाले गोवाटके मध्यमें बने हुए गोठ वाले और घीके छौंकसे सुगंधित वायु वाले और नीले पीले वस्त्र पहिरने वाली तरुणी स्त्रियोंसे व्याप्त, और वनके पुष्पोंको धारण करने वाली तथा स्तनों पर चोली पहर कर यमुनाके तट परसे जलभर कर लाने वाली शिरपर घड़े धर कर आती हुई गोपकन्याओंसे छाये हुए गोव्रजको नन्दजीने देखा, तब वह गोपोंसे गुञ्जायमान गोव्रज में प्रसन्न होकर घुसे ॥ १७-३० ॥ उस समय वृद्ध गोप और गोपस्त्रियोंने उनका स्वागत किया, तब उन्होंने जहाँ रथ आदि घूम सकें ऐसे सुखदायक स्थानमें अपनी छावनी डालना उचित समझा ॥ ३१ ॥ तहाँ पर वसुदेवजीको सुख देने वाली रोहिणी देवीने बालसूर्यकी समान दमकने वाले गुप्त कृष्णको भी बसा लिया था ॥ ३२ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि- तहाँ पर बसने पर उन को नन्द-

वर्त्तत । गोव्रजे नन्दगोपस्य वत्सरत्वं प्रकुर्वतः ॥ १ ॥ दारकौ कृतनामानौ वद्धेते सुखं च तौ । ज्येष्ठः संकर्षणो नाम कनीयान् कृष्ण एव तु ॥ २ ॥ मेघकृष्णस्तु कृष्णोऽभूद्देहान्तरगतो हरिः । व्यवर्धत गवां मध्ये सागरस्य इवाम्बुदः ॥ ३ ॥ शकटस्य त्वधः सुप्तं कदाचित् पुत्रगृद्धिनी । यशोदा तं रामुत्सृज्य जगाम यमुनां नदीम् ॥ ४ ॥ शिशुलीलां ततः कुर्वन् सहस्तचरणौ क्षिपन् । रुरोद मधुरं कृष्णः पादावूर्ध्वं प्रसारयन् ॥५॥

गोपकी गोपता करते हुए बहुत समय बीत गया ॥ १ नामकरण संस्कार होने पर वे दोनों बालक सुखपूर्वक बड़े होने लगे उनमें बड़ेका नाम संकर्षण हुआ और छोटेका नाम कृष्ण था ॥२॥ दूसरे देहमें पहुँचे हुए हरि श्रीकृष्ण कहलाते थे, वह गौओंके बीचमें समुद्रके मेघकी समान बढने लगे ॥ ३ ॥ एक समय पुत्र की आकांक्षा करने वाली यशोदा पुत्रको गाड़ीके नीचे शयन कराकर यमुना नदीकी ओर चलीगई (श्रुतिमें लिखा है, कि- पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय" अर्थात् बडा भारी रथ दक्षिणदिशासम्बन्धी (मृत्यु देने वाला) है (शत्रुओं ने) उसको रख दिया था उसको अमृत देवताओंने चारों ओरसे घेर लिया था, इस समय वह रथ कृष्णको प्राप्त होकर उठ गया और आकाशमें पहुँच गिर कर नष्ट होगया. तब माताको संदेह हुआ, कि-मनुष्य (मेरे बालक) का कहीं क्षय तो नहीं होगया, परन्तु अपने बालकको अक्षत देख कर) रथके गिरनेसे यह बालक क्यों न नष्ट हुआ इसका कोई कारण न देखकर वह संदेहमें ही पड़ी रही परन्तु उसको यह प्रतीत नहीं हुआ, कि-यह ईश्वरका कृत्य है ॥ ४ ॥ तब कृष्ण शिशुलीला कर अपने हाथ पैरको फैंकने लगे और उन्होंने मधुर स्वरसे रोने २ अपने

स तत्रैकेन पादेन शकटं पर्यवर्तयत् । न्युब्जं पयोधराकाङ्क्षी चकार च रुरोद च ६ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा शीघ्रगामिनी । स्नाता गलत्प्रदिग्धाङ्गी बद्धवत्सेव सौरभी ॥ ७ ॥ सा ददर्श विपर्यस्तं शकटं वायुना विना । हाहेति कृत्वा त्वरिता दारकं जगृहे तदा ८ न सा बुबोध तत्त्वेन शकटं परिवर्तितम् । स्वस्ति मे दारकायेति भीता भीता च साऽभवत् ॥ ९ ॥ किं नु वक्ष्यति ते पुत्र पिता परमकोपनः । त्वय्यधः शकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते ॥ १० ॥ किं मे स्नानेन दुःस्नानं किं च मे गमने नदीम् । पर्यस्ते शकटे पुत्र यं त्वां पश्याम्यपावृतम् ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे गोभिरा-जगाम वनेचरः । काषायवाससी बिभ्रन्नन्दगोपो व्रजांतिकम् १२

चरणोंको ऊपरको उठा दिया ॥ ५ ॥ उन्होंने दूधकी इच्छासे अपने एक पैरसे ही रथको उठा कर लौट दिया और रोने लगे ६ इसी समय जिसके स्तनोंमेंसे दूध टपक रहा था ऐसी यशोदा स्नान कर शीघ्रतासे तहाँ पहुँच गई, इस समय उसकी दशा बँधे हुए बछडे वाली सुरभिकी समान थी ॥ ७ ॥ उसने बिना आँधी चले हुए रथको अस्तव्यस्त पड़े हुए देख कर हाहाकार करके शीघ्रताके साथ अपने पुत्रको उठा लिया ॥ ८ ॥ परन्तु उसको यह तत्त्व न मालूम पड़ा, कि-गाड़ी क्यों लौट गई थी, और वह मेरे बालकका कल्याण हो, कह कर प्रसन्न हुई और डर भी गई ॥ ९ ॥ (और कहने लगी, कि-) तू शकटके नीचे सोरहा था और रथ अकस्मात् टूट गया (यह सुन कर) तेरे परम क्रोधी पिता क्या कहेंगे ॥ १० ॥ मेरे स्नान करने और नदी पर जानेको धिक्कार है, क्योंकि-मैंने तुझे गाडी लौट जानेसे उससे छिपा हुआ देखा ॥ ११ ॥ इस समय कषायवस्त्र धारण करने वाले नन्दजी भी वनमेंसे गौओंके साथ २ व्रजमें लौट आये ॥ १२ ॥ उन्होंने देखा तो रथ अस्तव्यस्त पड़ा है

स ददर्श विपर्यस्तं भिन्नभाण्डघटीघटम् । अपास्तधूर्विभिन्नाक्षं शकटं चक्रमौलिनम् ॥१३॥ भीतस्त्वरितमागम्य सहसा साश्रुलोचनः । अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद्वचनं वदन् ॥ १४ ॥ पिबन्तं स्तनमालक्ष्य पुत्रं स्वस्थोऽब्रवीत् पुनः । वृषयुद्धं विनाकेन पर्यस्तं शकटं मम ॥ १५ ॥ प्रत्युवाच यशोदा तं भीता गद्गदभाषिणी । न विजानाम्यहं केन शकटं परिवर्तितम् ॥१६॥ अहं नदीं गता सौम्य चैलप्रक्षालनार्थिनी । आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि॥१७॥तयोः कथयतोरेवमब्रुवंस्तत्र दारकाः। अनेन शिशुना यानमेतत् पादेन लोडितम् ॥ १८ ॥ अस्माभिः संपतद्भिश्च दृष्टमेतद्यदृच्छया । नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ ॥ १९ ॥ प्रहृष्टश्चैव भीतश्च किमेतदिति चिंतयन्।

और उसके पहियेके टप धुरके अग्रभाग और बन्धन टूट फूट गए थे उसका धुरा चक्र और जुआ भी टूट गया था १३ यह देख कर क्या मेरा पुत्र सकुशल होगा यह बार २ सोच कर वह डर गए और उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये १४ परन्तु जब उन्होंने अपने पुत्रको दूध पीते हुए देखा तो वह स्वस्थ हुए और उन्होंने कहा, कि–बैलोंके बिना लड़े ही मेरे शकटको ,किसने तोड डाला ॥१५॥ तब डरी हुई यशोदाने उनसे गद्गद वाणीमें कहा, कि–मैं नहीं जानती, कि–इस शकटको किसने तोड डाला है १६ हे सौम्य ! मैं वस्त्र धोनेके लिये नदी पर गई थी, तहाँसे आकर मैंने देखा तो पृथ्वी पर शकट गड़बड़ पड़ा है १७ वे जब इसप्रकार बातचीत कर रहे थे तब बालक बोल उठे,कि–इस बालकने इस गाडीको तोड डाला है । १८ । उस समय हम भी गिर पड़े थे और हमने अकस्मात् इस बातको देखा था, यह बात सुन कर नन्दगोप बड़े विस्मयमें पड गया १९ और हर्षमें भरगया और यह क्या हुआ यह विचार कर डर भी गया,

न च ते श्रद्दधुर्गोपाः सर्वे मानुषबुद्धयः ॥ २० ॥ आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः। स्वे स्थाने शकटं चैव चक्रवन्धमकारयन् ॥ २१ ॥ वैशम्पायन उवाच। कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनीवेषधारिणी। धात्री कंसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता २२ पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणिभयंकरी। आजगामार्धरात्रे वै पक्षौ क्रोधाद्विधुन्वती ॥ २३ ॥ ततोऽर्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत। व्याघ्रगम्भीरनिर्घोषं व्याहरन्ती पुनः पुनः ॥ २४ ॥ निलिल्ये शकटाक्षे सा प्रस्नवोत्पीडवर्षिणी.ददौ स्तनं च कृष्णाय तस्मिन् सुप्ते जने निशि ॥ २५ ॥ तस्याः स्तनं पपौ कृष्णः प्राणैः सह विनद्य च। छिन्नस्तनी तु सहसा पपात शकुनी भुवि २६

गोप परमात्मामें मानुषबुद्धि रखते थे अर्थात् उनको भगवान् न समझ कर मनुष्य समझते थे, अत एव उन्हें इस बातका विश्वास न हुआ २० उन्होंने इस बातको एक आश्चर्यजनक घटना समझा, इससे विस्मयके कारण उनके नेत्र खिल उठे थे, फिर उन्होंने शकटको स्थान पर खडा कर उसके पहिये आदि ठीक करना आरम्भ कर दिया २१ वैशम्पायनजीने कहा, कि-कुछ समयके अनन्तर जो (बककी अनुजा होनेसे) पक्षिणी थी परन्तु मनुष्यका रूप धारण करती थी और भोजवंशी कंसकी धाई थी और पूतना नामसे प्रसिद्ध थी २२ वह पूतना नाम वाली सब प्राणियोंको भयभीत करने वाली पक्षिणी क्रोधसे अपने दोनों परोंको फटफटाती हुई आधी रात्रिके समय तहाँ आई २३ उस आधी रात्रिके समय व्याघ्रकी समान गम्भीरता से वार वार घोष करती हुई पूतना तहाँ प्रकट हुई २४ वह अपने स्तनोंसे दूध टपकाती हुई गाडीके धुरे पर बैठ गई और जब रात्रिमें मनुष्य सोगए तब उसने कृष्णके मुखमें स्तन देदिया २५ तब श्रीकृष्ण उसके स्तनको पीने लगे, उस समय वह शकुनी

तेन शब्देन वित्रस्तास्ततो बुबुधिरे भयात् । स नन्दगोपो गोपा वै यशोदा च सुविक्लवा ॥ २७ ॥ ते तामपश्यन् पतितां विसंज्ञां विपयोधराम् । पूतनां पतितां भूमौ वज्रेणेव विदारिताम् ॥ २८॥ इदं किंत्विति संत्रस्ताः कस्येदं कर्म चेत्यपि । नन्दगोपं पुरस्कृत्य गोपास्ते पर्यवारयन् ॥ २९ ॥ नाध्यगच्छंत च तदा हेतुं तत्र कदाचन । आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोऽनुययुर्गृहान्॥३०॥गतेषु तेषु

बड़ी जोरसे डकराने लगी और उसके प्राण निकलने लगे वह स्तन के कट जानेपर एक साथ भूमि पर गिर पड़ी२६उस समय उस शब्दसे वे सब भयभीत हो त्रस्त हो कर जाग गए उस समय नन्दयशोदा और सकल गोप मूढ़से बन गए थे २७ उस समय उन्होंने पूतनाको वज्रसे विदीर्णकी हुई की समान स्तनरहित हो बेभानदशामें पृथ्वीमें लोटते हुए देखा २८ उस समय यह किस का कर्म है, यह विचार कर त्रस्त होते हुए गोपोंने और नन्द-गोपने उसको घेर लिया २९ उस समय उनको पूतनावधका कुछ कारण मालूम न हुआ और वे बड़ा आश्चर्य है ! बड़ा आश्चर्य है !! यह कहते हुए अपने २ घरों को चले गए (यह बात नन्द आदिको न मालूम हुई परन्तु बालरूप गोप इस बातको जानते ही थे श्रुतिमें भी लिखा है कि—" हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्माना-ष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने । शन्नो गोभ्यः पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोत ।" अर्थात् आयुधकी समान वध करने वाली पूतनारूपी पक्षिणी हम व्रजमें स्थित व्यक्तियोंका तिरस्कार नहीं करती है,प्रत्युत जठराग्निके निमित्त शिशुकी जठराग्निको स्तनदानसे तृप्त करनेके लिये परलोकको भेजने वाले श्रीकृष्णके शरीरको प्राप्त होगई अर्थात् उसने श्रीकृष्णको पिलानेके लिये अपनी मृत्युरूप श्रीकृष्णके शरीरका स्पर्श किया था ३० जब गोप विस्मित होते हुए अपने घरोंको चले गए, तब संभ्रम

गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम् । यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छ गत-
संभ्रमः ॥ ३१ ॥ कोऽयं विधिर्न जानामि विस्मयो मे महान-
यम् । पुत्रस्य मे भयं तीव्रं भीरुत्वं समुपागतम् ॥ ३२ ॥ यशोदा
त्वब्रवीद्भीता नार्य जानामि किं त्विदम् । दारकेण सहानेन सुप्ता
शब्देन बोधिता ॥ ३३ ॥ यशोदायामजानन्त्यां नन्दगोपः स-
बांधवः । कंसाद्भयं चकारोग्रं विस्मयं च जगाम ह ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां
शकटभंगपूतनावधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच । काले गच्छति तौ सौम्यो दारकौ कृत-
नामकौ । कृष्णसंकर्षणौ चोभौ रिंगिणौ समपद्यताम् ॥ १ ॥
तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकतां गतौ । एकमूर्तिधरौ कांतौ
बालचन्द्रार्कवर्चसौ ॥२॥ एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ ।

रहित हुए नन्दगोपने यशोदासे बूझा, कि—३१ यह किस विधिसे
होगया, यह मेरी समझमें कुछ नहीं आता, मुझे बडा विस्मय
होरहा है, मेरे पुत्र पर उसको डराने वाला बडा भारी भय
आपडा था ३२ तब यशोदाने डरते २ कहा, कि—हे आर्य! मेरी
समझमें कुछ नहीं आता, कि—यह क्या होगया, मैं तो सोरही
थी और इस शब्दको सुनकर मैं और मेरा बच्चा जाग उठा३३
जब नन्दने सुना, कि—यशोदा भी इस बातको नहीं जानती,तब
तो वह कंससे बहुत डरे और उन्हें बडा विस्मय हुआ॥ ३४ ॥
छठा अध्याय समाप्त ६

वैशम्पायनजीने कहा, कि—नामकरणसंस्कार होने पर वे कृष्ण
और संकर्षण नामक बालक कुछ समयके अनन्तर घुटनोंसे
सरक २ कर चलने लगे १ वे आपसमें सर्वदा मिले रहने वाले
बालक बालकपनमें भी अभिन्न होजाते थे और वे एक शरीर
वाले दीखते थे और वे बाल चन्द्रमा और बाल सूर्यकी समान

एकत्रेपथरावेकं पुष्यणाणौ शिशुव्रतम् ॥ ३ ॥ एककार्यान्तरगतावेकदेहौ द्विधा कृतौ । एककार्यां महावीर्यावेकस्य शिशुतां गतौ ॥४॥ एकप्रमाणौ लोकानां देववृत्तान्तमानुषौ । कृत्स्नस्य जगतो गोपौ संवृत्तौ गोपदारकौ ॥ ५ ॥ अन्योन्यव्यतिषक्ताभिः क्रीडाभिरभिशोभितौ । अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ६ विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ । रेजतुः पांसुदिग्धांगौ दृप्तौ कलभकाविव ॥ ७ ॥ क्वचिद्भस्मप्रदीप्तांगौ करीषप्रोक्षितौ

दमक रहे थे २ वे अभिन्न थे और जन्मरहित थे वे एक खाट और एक आसन पर बैठते थे वे एकसा रूप धारण कर एक दूसरेको पुष्ट कर शिशुव्रतका पलन कर रहे थे ३ वे एक ही सूक्ष्म कार्यको करनेके लिये आये थे वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो एक शरीरके दो शरीर होगए हों, वे दोनों महावीर्य एकसा कार्य करनेके लिये एक (नन्द) केही शिशु बन गए थे ४ वे लोकोंको एकसे प्रमाण (आकार) वाले दीखते थे, देवताओं का वृत्तान्त (सिद्धान्त) है, कि-" पापियोंका वध करना चाहिये और यज्ञ दान आदिकी प्रवृति करनी चाहिये" इसीलिये उन दोनोंने मनुष्यका अवतार धारण किया था वे सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करने वाले थे, परन्तु (देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये) गोपोंके बालक बन गए थे ॥५॥ वे आपसमें लिपट कर क्रीड़ा करते हुए ऐसी शोभा पाते थे जैसे पूर्णिमाके दिन अस्त होतेहुए) सूर्य और (उदय होते हुए) चन्द्रमाकी किरणें आपसमें मिल रही हों ॥ ६ ॥ वे सर्पकी समान भुजा वाले दोनों (भाई) सर्वत्र सरकते थे और धूलिधूसरित होकर मत्त हस्तिशावकोंकी समान दीखते थे ॥ ७ ॥ कभी उनके शरीर भस्म लगनेसे दिपने लगते थे और कभी अन्ने उपलोंकी धूलि उनके लग जाती थी इस प्रकार वे दो अग्निपुत्र स्कन्द कुमारोंकी समान

क्वचित् । तौ तत्र पर्यधावेतां कुमाराविव पावकौ ॥८॥ क्वचिज्जानुभिरुद्धृष्टैः सर्पमाणौ विरेजतुः । क्रीडन्तौ वत्सशालासु शकृद्दिग्धांगमूर्धजौ ॥ ९ ॥ शुशुभाते श्रिया जुष्टावानन्दजननौ पितुः । जनं च विप्रकुर्वाणौ विहसन्तौ क्वचित् क्वचित् ॥१०॥ तौ तत्र कौतूहलिनौ मूर्धजव्याकुलेक्षणौ । रेजतुश्चन्द्रवदनौ दारकौ सुकुमारकौ ॥११॥ अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वव्रजविचारिणौ । नाशक्तो वारयितुं नन्दगोपः सुदुर्दमौ ॥ १२ ॥ ततो यशोदा संक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम् । आनाय्य शकटीमूले भर्त्सयन्ती पुनः पुनः ॥१३॥ दाम्ना चैवोदरे बध्वा प्रत्यबन्धदुलूखले । यदि शक्नोषि गच्छेति तमुक्त्वा कर्म साऽकरोत्१४ व्यग्रायां तु यशोदायां निर्जगाम ततोंगणात् । शिशुलीलां ततः

दौड़ने लगते थे ॥ ८ ॥ और कभी २ वे अपने घुटनोंको उठा कर सरकते थे तो वत्सशालामें उनके केशों पर गोवर पड़ जाता था, तब वे परम शोभा पाते थे ९ वे कभी २ मनुष्योंका (माखन की चोरी आदि) उपकार करके हँसने लगते थे, उस समय वे शोभासम्पन्न होकर अपने पिताको बड़ा आनन्द देते थे १०जब वे चन्द्रवदन सुकुमार बालक कुतूहलमें भर जाते थे तब बालोंसे उनके नेत्र ढक जाते थे(और वे मेघोंमें छिपे हुए चन्द्रमाकी समान) शोभा पाते थे ११ वे दोनों क्रीड़ामें अधिक आसक्त होकर सारे व्रजमें घूमते थे उस समय उन दुर्दमनीय दोनों बालकोंको नन्दगोप भी न रोक सके १२ तब तो यशोदा क्रोधमें भर गई और वह कमललोचन श्रीकृष्णको पकड़ कर वारंवार उनको डराती हुई गाड़ीके पास ले गई१३और उसने उनके उदरमें रस्सी बाँधदी उसे उलूखल (मूसल में बाँधदिया, फिर उसने कहा,कि 'यदि तुझमें शक्ति हो तो अब चला जा' यह कह कर अपना कर्म करनेको चली गई १४ जब यशोदा अपने काममें लग गई तब

कुर्वन् कृष्णो विस्मापयन् व्रजम्॥१५॥ सोंगणान्निःसृतः कृष्णः कर्षमाण उलूखलम्। यमलाभ्यां मद्दृ्ाभ्यामर्जुनाभ्यां चरन् वने। मध्यान्निश्चक्राम तयोः कर्षमाण उलूखलम् ॥ १६ ॥ तत्तस्य कर्षतो बद्धं तिर्यग्गतमुलूखलम् । लग्नं ताभ्यां समूलाभ्यामर्जु-

श्रीकृष्ण अपने आंगनमेंसे निकले और बालक्रीड़ा करके व्रजको विस्मित करने लगे १५ आँगनमेंसे निकलनेके अनन्तर उलूखल को खेंचते हुए श्रीकृष्ण वनमें प्राचीन कालके यमलार्जुन नामक वृक्षोंके पास पहुँचे और उलूखलको खेंचते २ उन दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गए ॥ १६ ॥ उलूखल खिचते खिचते तिरछा होगया था और श्रीकृष्णके खेंचने पर वह उन वृक्षोंकी जड़में लग कर उनको जड़सहित खेंचने लगा ("यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव उलूखलसुतानामवेद्विन्द्रजल्गुलः । ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ॥ इन्द्राय मधुमत्सुतम्' इति, यत्र उलूखले मन्थां मन्थानमिव मन्थानं लोकक्लेशकरं मां विबध्नते विशेषेण बध्नन्ति मातरः रश्मीनादय रश्मिभिरित्यर्थः यमितवा इव विनिगृहीतुमिव न तु वस्तुतो निगृहीतुं मातृत्वेन मयि स्निग्धत्वात् तेन उलूखलेन सुतानां पीडितानां कर्मणि षष्ठी उलूखलपीडितान् अस्मान् हे इन्द्र मोचनसमर्थ अव रक्ष पादादित्वादाद्युदात्तमाख्यानम् इदु एवमेव त्वं जल्गुलोऽसि एवं मुञ्चामीति जल्पितुं मां च गोपितुं त्रातुं लातुं आदातुं स्वाधीनं कर्तुं च समर्थोऽसि यत अतोऽव मामित्यर्थः एवं यदा सर्वान् प्रार्थयन्नपि मोचनं न लभते तदा वनस्पत्योरन्तरा गत्वा बन्धनदाम त्रोटयितुं यावद्बलं करोति तावद्वनस्पती एव उन्मूलितौ दृष्ट्वा वदति ता नः इति त्वौ नोऽस्माकं व्रजवासिनां वनस्पतिभूतौ अतिप्रसिद्धौ यमलौ अर्जुनजातीयौ भो वनस्पती अद्य इन्द्राय इन्द्रं प्रतिगन्तुं सुतं तदुन्मूलनेन आत्मानं पीडयन्तं

नाभ्यां चकर्ष च ॥१७॥ तावर्जुनौ कृष्यमाणौ तेन बालेन रंहसा। समूलविटपौ भग्नौ स तु मध्ये जहास तौ ॥ १८ ॥ निदर्शनार्थं गोपानां दिव्यं स्वबलमास्थितः। तद्दाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद्दृढम्॥ १९॥ यमुनातीरमार्गस्था गोप्यस्तं ददृशुः शिशुम्।

तदेव मधुमत् अमृतयुक्तं अतिसम्यगित्यर्थः यतः ऋण्वौ गतिमन्तौ युवां स्थावरत्वान्मुक्तौ स्थ इत्यर्थ ऋण्वेभिर्गतिमद्भिर्जङ्गमैः जनैः सोतृभिरस्मद्बन्धनकरैरुपलक्षितौ । अर्थात् मेरी माताओंने लोकको क्लेश देने वाले मुझे रस्सियें लेकर उलूखलमें रईकी समान बाँधसा दिया था,वास्तवमें वे मुझे पकड़ना नहीं चाहती थीं, क्योंकि–वे मुझसे स्नेह करती थीं फिर मैंने कहा, कि–हे छुडानेमें समर्थ ! तुम उलूखलसे पीड़ा पाते हुए मेरी रक्षा करो तुम मेरी रक्षा करो क्योंकि तुम यह कहनेमें और करनेमें समर्थ हो अतः मेरी रक्षा करिये,जब सबसे इस प्रकारकी प्रार्थना करने पर भी मैं नहीं छूटा, तब मैं दो वनस्पतियोंके बीचमें जाकर बन्धनकी रस्सी तोडनेका यत्न करने लगा, परन्तु इतनेमें ही वनस्पति टूट गए यह देख मैं कहने लगा,कि–अर्थात् हे वनस्पती ! तुम इन्द्रार्जुन रूपसे हम व्रजवासियोंकी रक्षा करने वाले थे,परन्तु अब मैंने तुमको इन्द्रके पास भेजनेके लिये अपने को पीड़ित कर अमृतयुक्त कर दिया है,अब मुझे बन्धनमें डालने वाले जंगम जनोंने तुम्हें देख लिया है)॥१७॥ बालक श्रीकृष्णके द्वारा वेगपूर्वक खेंचनेसे वे दोनों वृक्ष जड़ उखड़ कर जापड़े और उनके बीचमें (स्थित) श्रीकृष्ण अट्टहास्य करने लगे १८ तदनन्तर गोपोंको दिखानेके लिये उन्होंने अपने दिव्य बलका आश्रय लेलिया और वह रस्सी उस बालकके बलसे दृढ होगई थी १९ यमुनातटके मार्ग पर खड़ी हुई गोपियोंने तब उस बालक को देखा, तब वे द्वन्द मचाती हुई और चिल्लाती हुई यशोदाके

क्रन्दन्त्यो विस्मयन्त्यश्च यशोदां ययुरंगनाः ॥ २० ॥ तास्तु संभ्रान्तवदना यशोदामूचुरंगनाः । एह्यागच्छ यशोदे त्वं संभ्रमात् किं विलम्बसे ॥ २१ ॥ यौ तावर्जुनवृक्षौ तु व्रजे सत्योपयाचनौ । पुत्रस्योपरि तावेतौ पतितौ ते महीरुहौ ॥२२॥ दृढेन दाम्ना तत्रैव बद्धो वत्स इवोदरे । जहास वृक्षयोर्मध्ये तव पुत्रः स बालकः ॥ २३ ॥ उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मेधे मूढे पण्डितमानिनि । पुत्रमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव ॥ २४ ॥ सा भीता सहसोत्थाय हाहाकारं प्रकुर्वती । तं देशमगमत्यत्र पातितौ तावुभौ द्रुमौ ॥२५॥ सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम् । दाम्ना निबद्धमुदरे कर्षमाणमुलूखलम् ॥ २६ ॥ सा गोपी गोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा । पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम् २७

पास दौड़ गई २० उस समय उन्होंने घबड़ाते २ यशोदासे कहा, कि–अरी यशोदा ! तू शीघ्र ही आ ! संभ्रममें पड़ कर विलम्ब क्यों कर रही है ॥२१॥ अरी व्रजमें जो प्रार्थना करने पर इच्छाको सत्य कर देते थे वे देवताकी समान दोनों अर्जुन वृक्ष तेरे पुत्रके ऊपर गिर पड़े थे ॥ २२ ॥ परन्तु कमरसे दृढ रस्सीसे बछड़ेकी समान बँधा हुआ तेरा बालक पुत्र उन दोनों वृक्षोंके बीचमें हँस रहा है ॥ २३ ॥ अरी दुर्बुद्धि ! अरी मूर्खे! अरी पण्डितमानिनी ! तू शीघ्र उठ कर चल और मृत्युके मुखसे छूट कर जीवित बचे हुए अपने पुत्रको उठा कर ला ॥ २४ ॥ तब तो यशोदा हाहाकार करके एक साथ उठ खड़ी हुई और हाहाकार करती हुई तहाँको चली जहाँ वे दोनों वृक्ष गिर पड़े थे ॥ २५ ॥ तहाँ उसने देखा, कि–कमरमें बँधी हुई रस्सीसे उलूखलको खेंचता हुआ उसका छोटा बालक दोनों वृक्षोंके बीच में बैठा हुआ है ॥ २६ ॥ उस गोपीने और वृद्ध गोपने व्रजमें यह बात कह दी, तब वे सब गोपोंमें हुई इस अद्भुत बातको

जजल्पुस्ते यथाकामं गोपा वनविचारिणः । केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोषस्यायतनोपमौ ॥ २८ ॥ विना वातं विना वर्षं विद्युत्पतनं विना । विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पातितौ द्रुमौ २९ अहो बत न शोभेतां विमूलावर्जुनाविमौ । भूमौ निपततौ वृक्षौ वितोयौ जलदाविव।यदीमौ घोपरचितौ घोपकल्याणकारिणौ३० नन्दगोपप्रसन्नौ ते द्रुमावेवं गतावपि ।यच्च ते दारको मुक्तो विपुलाभ्यामपि क्षितौ ॥ ३१ ॥ औत्पातिकमिदं घोषे तृतीयं वर्तते त्विह । पूतनाया विनाशश्च द्रुमयोः शकटस्य च॥३२॥ अस्मिन् स्थाने च वासोऽयं घोषस्यास्य न युज्यते । उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम् ॥ ३३ ॥ नन्दगोपस्तु सहसा

देखनेके लिये आने लगे ॥ २७ ॥ और वे वनविहारी गोप अपनी इच्छानुसार बातें करने लगे (एकने कहा, कि-)अरे ! इन ग्रामके छत्रकी समान वृक्षोंको किसने गिरा दिया ॥ २८ ॥ अरे ! इस समय तो आँधी भी नहीं चल रही, वर्षा भी नहीं होरही थी, न कोई बिजली गिरी थी और यहाँ पर तो हाथी भी नहीं लड़ रहे थे, फिर यह कैसे गिर पड़े, इन्हें किसने गिरा दिया॥२९॥अरे!यह जड़से उखड़ कर पृथिवीमें गिरे हुए दोनों वृक्ष पृथिवीमें पडे हुए जल रहित मेघोंकी समान शोभा नहीं पाते हैं और निष्प्रभ दीख रहे हैं, (गोपोंने कहा, कि) ये वृक्ष घोप (ग्राम) का कल्याण करनेके लिये लगाए गए थे ॥ ३० ॥ परन्तु हे नन्दगोप ! ये वृक्ष इस दशामें भी तुम पर प्रसन्न हैं, क्योंकि-इन बड़े भारी वृक्षोंके गिरने पर भी तुम्हारा पुत्र बाल २ बच गया ॥ ३१ ॥ इस ग्राममें यह तीसरा उत्पात हुआ है, पूतनाका विनाश हुआ और पेड गाडी टूट गए३२अत एव इस स्थानमें गोपोंका ग्राम बसना ठीक नहीं जँचता, क्योंकि-यहाँ रहना अच्छा नहीं है, इस बातको उत्पात (बराबर बता

मुक्त्वा कृष्णमुलूखलात् । निवेश्य चांके सुचिरं मृतं पुनरिवागतम् ॥ ३४ ॥ नातृप्यत् मेक्ष्यमाणो वै कृष्णं कमललोचनम् । ततो यशोदां गर्हन् वै नन्दगोपो विवेश ह । स च गोपजनः सर्वो व्रजमेव जगाम ह ॥ ३५ ॥ स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात् । गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते ३६ एतदाश्चर्यभूतं हि बालस्यासीद्विचेष्टितम् । कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां यमलार्जुनभंगे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवं तौ बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णसंकर्षणावुभौ । तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतुः ॥१॥ नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ॥२

रहे हैं ॥३३॥ इस समय नन्दगोपने श्रीकृष्णको जल्दीसे उलूखलसे खोल लिया और गोदमें बैठा लिया, फिर वह मरकर पुनर्जीवित हुएकी समान कमललोचन श्रीकृष्णको बहुत समय तक देख कर तृप्त न हुए,फिर वह यशोदाकी निन्दा करते हुए अपने घरको चले और सब गोप भी व्रजको चले गए ३४-३५ कृष्णको दाम (रस्सी)से बाँधा गया था अत एव गोपियें गोष्ठमें उनको दामोदर नामसे पुकारती थीं ॥ ३६ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णने ग्राममें निवास करते समय,बाल्यावस्थामें यह आश्चर्यजनक कर्म किया था ॥ ३७ ॥ सप्तम अध्याय ॥ ७ ॥ ❀

वैशम्पायनजीने कहा, कि–इसप्रकार (धीरे २) श्रीकृष्ण और संकर्षणकी बाल्यावस्था पूर्ण होगई और वे व्रजमें ही सात वर्षके होगए ॥ १ ॥ वे दोनों नीले और पीले वस्त्रको धारण करते थे और पीले तथा श्वेत चन्दनको लगाते थे फिर वह काकपक्ष धारण कर बछड़ोंकी रक्षा करने लगे ॥२॥ उनका

पणवाद्यं श्रुतिसुखं वादयन्तौ वराननौ। शुशुभाते वनगतौ त्रि-
शीर्षाविव पन्नगौ ॥३॥ मयूरांगदकर्णौ तु पल्लवापीडधारिणौ।
वनमालाकुलस्कन्धौ द्रुमपोताविवोद्गतौ । अरविन्दकृतापीडौ
रज्जुयज्ञोपवीतिनौ। सशिक्यतुंबकरकौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥५॥
क्वचिद्धसंतावन्योन्यं क्रीडमानौ क्वचित् क्वचित्। पर्णशय्यासु
संसुप्तौ क्वचिन्निद्रांतरेक्षणौ ॥६॥ एवं वत्सान पालयन्तौ शोभ-
यन्तौ महावनम्। चंचूर्यन्तौ रमन्तौ स्म किशोराविव चंचलौ ७
अथ दामोदरः श्रीमान संकर्षणमुवाच ह। आर्य नाश्विन् वने
शक्यं गोपालैः सह क्रीडितुम् ॥८॥ अवगीतमिदं सर्वमावाभ्यां

मुख, परमसुन्दर थो वह वनमें पणव (तोंबीकी बनी हुई
बीन) आदिको बजा कर कानोंको सुख देते थे, और बजाते
समय तीन शिर वाले सर्पोंकी समान शोभा पाते थे ॥३॥ उस
समय वे मोरके परके कुण्डल बना उनको कानोंमें पहर कर
पत्तोंके मुकुटोंको धारण करते थे और उनका वक्षःस्थल वन
मालाओंसे ढका रहता था, इस कारण वे उगे हुए नन्हें २ पौधों
की समान दीखते थे ॥ ४ कभी वे कमलका मुकुट बना लेते थे
और रस्सीका यज्ञोपवीत धारण कर लेते थे और छींका और
तोम्बी हाथमें लेकर गोपोंकी बीन (मुरली) बजाने लगते थे ५
कभी २ वे आपसमें हँसने लगते थे और कहीं कहीं वे क्रीड़ा
करने लगते थे और कभी आँखोंमें नींद भर जानेसे पत्तोंकी शय्या
पर सोजाते थे ॥ ६ ॥ इस प्रकार वे बछड़ोंकी रक्षा करते हुए
वनकी शोभा बढ़ाते फिरते थे और चञ्चल अश्वशावकोंकी
समान वनमें बड़ी क्रीड़ा करते थे ॥ ७ ॥ कुछ समयके अनन्तर
श्रीमान् दामोदरने बलरामजीसे कहा, कि हे आर्य। अब इस
वनमें गोपोंके साथ क्रीड़ा करना अशक्य (व्यर्थ) है ॥ ८ ॥
क्यों हमने इस वनको अनेक बार देख लिया है और इस वनको

शुक्तकाननम् । मक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम् ॥ ९ ॥
घनीभूतानि यान्यासन् काननानि वनानि च । तान्याकाश-
निकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथासुखम् ॥१०॥ गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः
परिवृत्तार्गलेषु च । सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चसः ११
संनिकृष्टानि यान्यासन् काष्ठानि च तृणानि च । तानि दूराद्-
कृष्टस्तु मार्गितव्यानि भूमिषु ॥ १२ ॥ अरण्यमिदमल्पोदमल्प-
कक्षं निराश्रयम् । अन्वेषितव्यं विश्रामं दारुणं विरलद्रुमम् १३
अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रस्थितद्विजम् । संवासस्यास्य महतो
जने नोत्सादितद्रुमम् ॥१४॥ निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजन-

बहुत भोगा है गोपोंने इसके तृण काष्ठ और वृक्षोंको तोड़ मरोड़ डाला है॥ ९ ॥ यहाँ पर जो बहुतसे वन और बगीचे थे वे सब आकाशकी समान (पत्रपुष्परहित)दीखते हैं उनको देखनेसे अब सुख नहीं होता १० गोवाटों,गोलाकारबनी हुई कुण्डी (फाटक) वाले गौठोंके अक्षय वर्चस वाले वृक्ष गोठोंकी अग्निमें पड़कर समाप्त होगये हैं॥ ११ ॥ समीपमें जैसे काष्ठ और तृण थे वैसे तृणादि को कहीं दूर जाकर भूमियोंमें देखना चाहिये ॥ १२ ॥ इस वनमें जल भी कम रह गया है इसमें लताएँ कम रह गई हैं अतः इसमें आश्रय नहीं मिलता है अत एव यह प्रदेश दारुण होगया है और यहाँ पर विश्राम करनेके लिये खोजनेपर कोई विरला ही वृक्ष मिल जाता है ॥ १३ ॥ यहाँके वृक्ष अकर्मण्य होगए हैं अर्थात् न फल देतेहैं न पत्ते आदिसे विश्राम करने देते हैं अत एव यहाँ पर रहने वाले पक्षी भागगए हैं इस बड़े भारी ग्रामके मनुष्योंने यहाँके वृक्षोंको नष्ट कर डाला है ॥ १४ ॥ अत एव यह आनन्दरहित होगया और यहाँ पर (फलोंका) आस्वाद मिलना भी कठिन होगया है और यहाँ पवनका चलना भी (फल पुष्प और पत्तोंके न होनेसे) निष्फल जाता है तथा

मारुतम् । निर्विहंगमिदं शून्यं निर्व्यंजनमिवाशनम् ॥ १५ ॥
विक्रीयमाणैः काष्ठैश्च शाकैश्च वनसंभवैः । उच्छन्नसंचयतृणं-
र्घोषोऽयं नगरायते ॥१६॥ शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं
वनम् । वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परा गतिः ॥ १७ ॥
तस्मादन्यद्वनं यामः प्रत्यग्रयवसेन्धनम् । इच्छन्त्यभुक्तभुक्तानि गावो
भोक्तुं तृणानि च ॥ १८ ॥ तस्माद्वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिनो
व्रजाः । न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा । प्रशस्ता वै व्रजा
लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥१९॥ शकृन्मूत्रेषु तेष्वेव जातक्षार-
रसायनम् । न तृणं भुञ्जते गावो नापि तत्पयसे हितम् ॥२०॥
स्थलीप्रायासु रथ्यासु नवासु वनराजिषु । चरावः सहिता गोभिः

यहाँ परसे पक्षी भी भाग गए हैं, अत एव यह शून्य पड़ा हुआ
वन शाकरहित भोजनकी समान जँचता है ॥ १५ ॥ यहाँ पर
के काष्ठ और वनके शाक बेच दिये जाते हैं अत एव तृणोंके ढेर
(आदि) से रहित यह वन नगरकी समान होगया है ॥ १६ ॥
पर्वतोंकी शोभा घोष (आभीरोंके ग्रामों) से होती है और
घोषोंकी शोभा वनसे होती है और वनोंकी शोभा गौओंसे होती
है, वे गौएं ही हमारी परा गति हैं १७ इस लिये हम किसी
दूसरे जौं और ईंधे वाले ग्राममें चलें, क्योंकि–गौएं भी पहिले
न खाये हुए तृणोंको ही खाना चाहती हैं १८ इस लिये धनी
व्रजवासी नये २ तिनुकेवाले किसी ग्राममें चलें, व्रज चक्र बाँध
कर फिरने वाले हंस आदिकी समान घर द्वार और खेत रहित
अच्छे नहीं माने जाते १९ जब तृणों पर गोबर और मूत्र पड़
जाता है तो गौएं उनको खाना नहीं चाहती हैं और वह भी क्षार
होनेसे रसायन होजाती है और वह दूधके लिये भी हितकारी
नहीं होता है २० आज कल हम (तृणरहित होनेके कारण)
स्थलसी बनी हुई गलियोंमें और नई २ वनराजियोंमें गौओंके

क्षिप्रं संवाह्यतां व्रजः ॥ २१ ॥ श्रयते हि व्रजं रम्यं पर्याप्तं तृण-सञ्चरम् । नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥ २२ ॥ अझिल्लिकण्टकवनं सर्वैर्वनगुणैर्युतम् । कदम्बपादपप्रायं यमुनातीरसंश्रितम् ॥ २३ ॥ स्निग्धशीतानिलवनं सर्वर्तुनिलयं शुभम् । गोपीनां सुखसंचारं चारु चित्रवनान्तरम् ॥ २४ ॥ तत्र गोवर्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान् । भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः ॥२५॥मध्ये चास्य महाशाखो न्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः । भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे ॥ २६ ॥मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव कुर्वती । प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरिसाम्वरा ॥ २७ ॥ तत्र गोवर्धनं चैव भाण्डीरं च वनस्पतिम् ।

साथ घूमते रहते हैं, अतः शीघ्रही व्रजको यहाँसे उठाना चाहिये २१ हमने सुना है, कि-वृन्दावन नामक वन बड़ा रमणीक है उसमें घास भी बहुत है और तहाँके वृक्षोंके फल और जल बड़े मीठे होते हैं २२ उस वनमें झिल्लि (वनकी एक प्रकारकी मक्खी) और काँटे नहीं हैं और उसमें वनके सब गुण विराजमान हैं और उसमें कदम्बके पेड़ अधिक हैं तथा वह यमुनातट पर बसा हुआ है २३ वह वन स्निग्ध है और उसमें शीतल पवन चलता है और वह सब ऋतुओंका घर है और उस शुभ वनमें गोपियें भली भाँति विचरण कर सकती हैं और उसमें छोटे २ रमणीय बाग लग रहे हैं २४ तहाँसे थोड़ी दूर पर गोवर्धन नामक बड़ा भारी पर्वत है उसका शिखर बहुत ऊँचा है, इससे वह नन्दन-वनके मेरुपर्वतकी समान प्रतीत होता है ॥ २५ ॥ इसके मध्यमें बड़ी भारी शाखाओंवाला वट वृक्ष है वह योजन भर ऊँचा है उसका नाम भाण्डीर है और वह आकाशमें नील मेघकी समान शोभा देरहा है ॥२६॥जैसे नदियोंमें श्रेष्ठ नन्दन वनके पास नलिनी नदी बहती है तैसे उसके मध्यमें उसका श्रेष्ठ

कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम् ॥ २८ ॥ तत्रायं कल्प्यतां घोषस्त्यज्यतां निर्गुणं वनम् । । सन्त्रासयावो भद्रन्ते किञ्चिदुत्पाद्य कारणम् ॥ २९ ॥ एवं कथयतस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः । प्रादुर्बभूवुः शतशो रक्तमांसवसाशनाः ॥३०॥ घोराश्चिन्तयतस्य स्वतनूरुहजास्तदा । विनिष्पेतुर्भयकराः सर्वशः शतशो वृकाः ३१ निष्पतन्ति स्म बहवो ब्रजस्योत्सादनाय वै । वृकान्निष्पतितान् दृष्ट्वा गोषु वत्सेष्वथो नृषु ॥ ३२ ॥ गोपीषु च यथाकामं ब्रजे त्रासोऽभवन्महान् । ते वृकाः पञ्चबद्धाश्च दशबद्धास्तथाऽपरे ॥ ३३ ॥ त्रिंशद्विंशतिबद्धाश्च शतबद्धास्तथा परे । निश्चेरुस्तस्य गात्रेभ्यः श्रीवत्सकृतलक्षणाः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्य कृष्णवदना गोपानां भयवर्द्धनाः । भक्षयन्तश्च तेर्वे-

---

संभनसा करती हुई कालिन्दी नदी बहती है ॥ २७ ॥ तहाँ हम दोनों गोवर्धन पर्वत भाण्डीर नामक वट और कालिन्दी नामकी रमणीय नदीको देखते हुए सुखपूर्वक विचरण करेंगे ॥ २८ ॥ तहाँ अपना ग्राम बसाना चाहिये और इस स्थलको छोड़ देना चाहिये और इस निर्गुण वनको त्यागदेना चाहिये आपका कल्याण हो, अब किसी बातको उत्पन्न कर ग्रामवासियोंको डराना चाहिये २९ बुद्धिमान् वासुदेव इस प्रकार कह रहे थे, कि-उनके शरीरमेंसे रक्त मांस और वसाका भोजन करने वाले सैकड़ों (प्राणी) उत्पन्न होगए ३० वह जब यह विचार कर रहे थे उस समय उनके केशोंमेंसे भय देने वाले सैंकड़ों भेड़िये उत्पन्न होगए ३१ वे बहुतसे भेड़िये ब्रजका उत्सादन करनेके लिये उत्पन्न हुए थे वृकोंको फैलते देख कर गौ वत्स मनुष्य और गोपियोंमें बड़ा भारी त्रास फैल गया श्रीवत्सके चिन्हों वाले वृक श्रीकृष्णके शरीरमेंसे पाँच २ दश २ तीस ३ और सौ २ इकठ्ठे होकर निकलने लगे ॥ ३२-३४॥ वे काले मुखों वाले

त्सान् त्रासयद्भिश्च गोव्रजान्॥ ३५ ॥ निशि बालान् हरद्भिश्च वृकैरुत्साद्यते व्रजः। न वने शक्यते गन्तुं न गाश्च परिरक्षितुम् ॥ ३६ ॥ न वनात् किञ्चिदाहर्तुं न चावतरितुं नदीम्। त्रस्ता ह्युद्विग्नमनसो गतास्तस्मिन् वने वसन् ॥३७॥ एवं वृकैरुदीर्णैस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमः। व्रजो निस्पन्दचेष्टः स एकस्थानचरः कृतः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां वृकदर्शनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच ।एवं वृकांश्च तान् दृष्ट्वा वर्धमानान् दुरासदान्। सस्त्रीपुमान् स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत्तदा ॥ १ ॥ स्थाने नेह नः कार्यं व्रजामोऽन्यन्महद्वनम्। यच्छिवं च सुखोष्यं च गवां चैव सुखावहम् ॥ २ ॥ अद्यैव किं चिरेण स्म व्रजामः

भेड़िये श्रीकृष्णके शरीरमेंसे निकल कर गोपोंको भयभीत करने लगे वे बछड़ोंका भक्षण करके गोव्रजोंको त्रस्त करने लगे ३५ और रात्रिमें बालकोंको उठा कर लेजाने लगे, इस प्रकार व्रज पीडित होने लगा, गोपोंमें वनको जानेकी और गौओंकी रक्षा करनेकी भी शक्ति न रही ३६ उनमेंसे किसी वस्तुको लानेकी वा नदीमें तैरनेकी भी शक्ति न रही और वे त्रस्त हो मनमें घबड़ाते हुए उस वनमें बसते रहे ३७ व्याघ्रोंने व्याघ्रकी समान पराक्रम करने वाले बलवान् व्रजको इस प्रकार निस्पन्द कर दिया और व्रजवासी एक ही स्थानमें बन्द होगए ३८ अष्टम अध्याय समाप्त ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—उन दुरासद भेडियोंको बढते देख कर उस घोषके समस्त स्त्री पुरुष विचारने लगे ॥१॥ अब इस स्थानसे हमें कुछ काम नहीं है, अब तो उस दूसरे वनमें चलना चाहिये जहाँ पर सुखपूर्वक रहा जासके जो गौओंको सुख देय

सह गोधनैः । यावद्वृकैर्वधे घोरे न नः सर्वो व्रजो व्रजेत् ॥ ३ ॥ एषां धूम्रारुणाङ्गानां दंष्ट्रिणां नखदंष्ट्रिणाम् । वृकाणां कृष्णवक्त्राणां बिभीमो निशि गर्जताम् ॥ ४ ॥ मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम । वृकैर्व्यापादिता गेवं क्रन्दन्ति स्म गृहे गृहे ॥ ५ ॥ तासां रुदितशब्देन गवां हंभारवेण च । व्रजस्योत्थापनं चक्रुर्घोषवृद्धाः समागताः ॥ ६ ॥ तेषां मतमथाज्ञाय गन्तुं वृन्दावनं प्रति । व्रजस्य विनिवेशाय गवां चैव हिताय च ॥ ७ ॥ वृन्दावननिवासाय तान् ज्ञात्वा कृतनिश्चयान् । नन्दगोपो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥ ८ ॥ अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्तव्यमेव नः । शीघ्रमाज्ञाप्यतां घोषः सज्जी भवत मा चिरम् ॥ ९ ॥

और मङ्गलदाता हो ॥ २ ॥ अब अधिक देर करनेसे क्या? हम आज ही अपने २ गोधनको लेकर चलेंगे, क्योंकि-सब व्रजके मारे जानेसे पहिले ही चलना चाहिये ॥ ३ ॥ हम इन धुमैले और अरुण अङ्ग और डाढ़ वाले तथा नाखुनोंसे खींचने वाले और काले मुख वाले भेडियोंको रातमें गुर्राते सुन कर डर जाते हैं ॥ ४ ॥ और घर घरमें इस प्रकार रोते रहते हैं, कि-हाय! भेड़ियोंने मेरे पुत्रको मार डाला! हाय भेड़ियोंने मेरे भाईको मार डाला और हाय! भेड़ियेने मेरे बछड़े और मेरी गौको मार डाला! ॥ ५ ॥ अत एव हे उपस्थित वृद्ध घोषो (गोपो!) इनके रोनेके शब्द पर और गौओंके हम्भा २ करके डकरानेके शब्द पर लक्ष्य देकर व्रजको उठानेकी अनुमति दीजिये ॥ ६ ॥ अपनी प्रजाके वृन्दावनकी ओर पयान करनेके मतको जानकर और यह देख कर कि-वह गौओंका हित करनेके लिये व्रजको वृन्दावनमें जाकर वसानेका निश्चय कर चुकी हैं, बृहस्पतिकी समान (बुद्धिमान)नन्दगोपने प्रजाओंकी बातको स्वीकार कर लिया ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन्होंने कहा, कि-हमें तहाँ चलना ही है

ततोऽवघुष्यत तदा घोषे तत्प्राकृतैर्जनैः । शीघ्रं गावः प्रकल्प्यन्तां भाण्डं समभिरोप्यताम् ॥ १० ॥ वत्सयूथानि काल्यन्तां युज्यन्तां शकटानि च । वृन्दावनमितः स्थानान्निवेशाय च गम्यताम् ११ तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचनं साधु भाषितम् । उदतिष्ठद्व्रजः सर्वः शीघ्रं गमनलालसः ॥१२॥प्रयाह्युत्तिष्ठ गच्छामः किं शेषे साधु योजय । उत्तिष्ठति व्रजे तस्मिन्नासीत् कोलाहलो महान् ॥१३॥ उत्तिष्ठमानः शुशुभे शकटीशाकटस्तु सः । व्याघ्रघोषमहाघोषो घोषः सागरघोषवान् ॥१४॥ गोपीनां गर्गरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्तंभितैर्घटैः । निष्पपात व्रजात् पंक्तिस्तारापंक्तिरिवाम्बरात् १५ नीलपीतारुणैस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः । शक्रचापायते पंक्ति-

---

अत एव आजकी बात पक्की रही, अब घोषमें शीघ्र ही इस बातकी आज्ञा देनी चाहिये, कि-बहुत शीघ्र तयार होजाओ ६ तब प्रकृति मण्डलके पुरुषोंने घोषमें डौंडी पिटवा दी, कि-शीघ्र ही अपनी २ गौओंको ठीक कर लो और (छकड़ोंमें) अपने२ पात्र (भरलो) ॥ १० ॥ अब बछड़ोंको निकाल कर बाहर खड़े करो और अपने २ शकटोंको जोड़ो और यहाँसे वृन्दावनमें बसनेके लिये चलो ॥११॥नन्दगोपके उस सज्जनोचित भाषण को सुनकर शीघ्र ही चलनेको उत्कण्ठित सब व्रज उठ खड़ा हुआ और प्रस्थान करो उठो चलो अब बाकी क्या रह गया अब (छकड़ोंको) जोड़ो इस प्रकार व्रजके उठते समय बड़ा भारी कोलाहल होने लगा ॥ १३ ॥ गाडी शकटोंसे भरा हुआ वह घोष (आभीरग्राम) सागर और व्याघ्रके महाघोषकी समान घोष करता हुआ उठ खड़ा हुआ ॥१४॥ जिस समय व्रजमेंसे शिर पर गागर रखे हुए गोपियोंकी लंघार चली तो ऐसा प्रतीत होता था, कि-मानो आकाशमेंसे तारोंकी लड़ी आरही है १५ नीली पीली चोलियें पहर कर मार्गमें गमन करती हुई गोपियों

गोपीनां मार्गगामिनी ॥ १६ ॥ दामिनीदामभारैश्च केचित्
कायावलम्बिभिः । गोपा मार्गगता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः॥१७
स व्रजो व्रजता भाति शकटौघेन भास्वता । पोतैः पवननिर्भिन्नै-
र्निष्पतद्भिरिवार्णवः ॥ १८ ॥ क्षणेन तद्व्रजस्थानमीरणं समप-
द्यत । द्रव्यावयवनिर्धूतं कीर्णं वायसमण्डलैः ॥ १६ ॥ ततः
क्रमेण घोपः स प्राप्तो वृन्दावनं वनम् । निवेशं विपुलं चक्रे गवां
चैव हिताय च ॥ २० ॥ शकटावर्तपर्यन्तं चन्द्रार्धाकारसंस्थि-
तम् । मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद् द्विगुणमायतम् ॥ २१ ॥ कंट-
कीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कंटकितद्रुमैः । निखातोच्छ्रितशाखाग्रैरभि-
गुप्तं समन्ततः ॥ २२ ॥ मन्थैरारोप्यमाणैश्च मन्थवन्धानुकर्षणैः ॥
अद्भिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गर्गरीभिः समन्ततः ॥ २३ ॥ कीलैरा-

की पंक्ति इन्द्रधनुषकी समान प्रतीत होती थी ॥१६॥ रस्सीका बोझ शिर पर रख कर लेजाते हुए गोपोंकी रस्सियें नीचेको लटक रहीं थीं, इससे वह (बेल चढ़े हुए) वृक्षोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ १७ ॥ भास्वर शकटोंमें चलता हुआ व्रज, समुद्रमें वायुकी टक्करसे बढते हुए पोतोंकी समान दीखता था ॥ १८ ॥ क्षणभरमें ही वह स्थान उजाड़ होगया तहाँ पर पदार्थोंके टुकड़े पड़े हुए दीखने लगे और तहाँ काए बैठने लगे ॥१६॥ क्रमशः वह घोप वृन्दावनमें पहुँच गया और तहाँ पर अपने और गौओंके हितके लिये उसने पडाव डाल दिया ॥ २० ॥ तहाँ पर खड़े हुए शकट आधे चन्द्रमाके आकारमें खड़े हुए थे उसका मध्यभाग चार कोसका था और लम्बाई आठ कोसकी थी २१ तहाँ पर बड़ी २ कण्टकी (कण्टाई) लग रही और काँटेदार पेड लग रहे थे और खाइयोंमें लगे हुए काँटेदार वृक्षोंकी शाखाएँ उस स्थलकी चारों ओरसे रक्षा कर रहीं थीं ॥२२॥ तहाँ पर (गोप) अपनी रइयोंको लगाने लगे और रईकी

शोध्यमानैश्च दामनीपाशपाशितैः । स्तम्भनीभिर्धृ नाभिश्च शकटैः परिवर्ततैः ॥२४॥ नियोगपाशैरासक्तैर्गर्गरीस्तंभमूर्धसु । छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कंटकैस्तृणसंकटैः ॥२५॥ शाखाविटंकैर्वृक्षाणां क्रियमाणैरितस्ततः । शोध्यमानैर्गवां स्थानैः स्थाप्यमानैरुलूखलैः ॥ २६ ॥ प्राङ्मुखैः सिच्यमानैश्च संदीप्यद्भिश्च पावकैः। सवत्सचर्मास्तरणैः पर्यंकैश्चावरोपितैः ॥२७॥तोयमुत्तारयंतीभिः प्रेक्षन्तीभिश्च तद्वनम् । शाखाश्चाकर्षमाणाभिर्गोपीभिश्च समंततः ॥ २८ ॥ युवभिः स्थविरैश्चैव गोपैर्व्यग्रकरैर्भृशम् । विशसद्भिः कुठारैश्च काष्ठान्यपि तरूनपि ॥ २९ ॥ तद् व्रजस्थानमधिकं शुशुभे काननावृतम् । रम्यं वननिवेशं वै स्वादुमूलफलोदकम् ॥ ३० ॥ तास्तु कामदुघा गावः सर्वपक्षिरुतं वनम् । वृंदा-

रस्सियोंको रखने लगे ॥२३॥ और वे रस्सी बाँध कर (रईको) रोकने वाली कीलोंको गाड़ने लगे और अपनी गाड़ियोंको फिरा कर खड़ी करने लगे ॥ २४ ॥ उस समय गोप गागरमें पड़ी हुई रइयोंको बाँधनेके लिये रस्सी ढूँढ रहे थे और छींके लगा रहे थे और एडुओंसे घड़ोंको ढक रहे थे ॥ २५ ॥ और वे वृक्षों में पक्षियोंके बैठनेके लिये इधर उधर घोंसले दा उनके बैठनेके लिये लटकते हुए तिनुकोंके छींके बना रहे थे ॥ २६ ॥ वे पूर्व की ओर मुख करके जल चढ़ा रहे थे और अपनी २ अग्नियोंको प्रदीप्त कर रहे थे और वे अपने २ पलँगों पर चमड़ेके बिछौने बिछा रहे थे ॥ २७ ॥ तहाँ गोपियें जल लाते समय चारों ओर से वनको देखती हुई चली आती थीं और कहीं २ शाखाओंको पकड़ कर खेंचने लगती थीं ॥ २८ ॥ उस समय बुड्ढे और तरुण गोप अपने हाथोंको शीघ्रतासे चला कर कुठारोंसे वृक्ष और झाड़ झँकाड़ोंको काट रहे थे ॥ २९ ॥ तब वह वनसे घिरा हुआ व्रजस्थान पड़ाव पड़ने पर स्वादु मूल फल और उदक वाला

वनमनुगाता नन्दनोपमकाननम् ॥३१॥ पूर्वमेव तु कृष्णेन गवां वै हितकारिणा । शिवेन मनसा दृष्टं तद्वनं वनचारिणा ॥३२॥ पश्चिमे तु ततो रूक्षे घर्ममासे निरामये । वर्षतीवामृतं देवे तृणं तत्र व्यवर्धत ॥ ३३ ॥ न तत्र वत्साः सीदन्ति न गावो नेतरे जनाः । यत्र तिष्ठति लोकानां भवाय मधुसूदनः ॥ ३४ ॥ ताश्च गावः स घोषस्तु स च संकर्षणो युवा । कृष्णेन विहितं वासं तमध्यासंत निर्वृताः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृन्दावन-प्रवेशो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच । तौ तु वृन्दावनं प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ। चेरतुर्वत्सयूथानि चारयन्तौ सुरूपिणौ ॥ १ ॥ पूर्णस्तु घर्मसमयस्तयोस्तत्र वने सुखम् । क्रीडतोः सह गोपालैर्यमुनां चावगा-

---

होनेसे परम शोभा पाने लगा ॥ ३० ॥ वे कामधेनु गौएँ सब पक्षियोंके शब्दोंसे गुञ्जरित वृन्दावन नामक नन्दनवनकी समान वनमें आ पहुँचीं ॥ ३१ ॥ गौओंका हित करने वाले वनचारी श्रीकृष्णने अपने शुभ मनमें पहिले ही इस वनको देख रक्खा था३२जब वर्षा ऋतुका पश्चिम (अंतिम)मास आषाढ़ आया तब देवराजने इन्द्रने अमृतकी समान वर्षा की उससे घास बढ़ गई३३ संसारका कल्याण करनेके लिये श्रीकृष्ण जहाँ रहते थे तहाँ पर न वत्स दुःख पाते थे और न गौएँ दुःख पाती थीं ॥ ३४ ॥ कृष्णके सोचे हुए उस स्थानमें गौएँ घोष और युवा संकर्षण आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ३५ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा कि वे रूपवान वसुदेवजीके दोनों पुत्र वृन्दावनमें आकर बछड़ोंकी टोलियोंको चराते हुए फिरने लगे ॥ १ ॥उन दोनोंने यमुनामें स्नान करते २ और गोपालोंके साथ क्रीड़ा करते २ सारी ग्रीष्मऋतु सुखपूर्वक वृन्दावनमें

हतो: ॥ २ ॥ ततः प्रावृडनुप्राप्ता मनसः कामदीपिनी । ववर्षुर्महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः ॥ ३ ॥ बभूवादर्शनः सूर्यो भूमिश्चादर्शना तृणैः । महता मेघवातेन नवतोयानुवर्षिणा ॥ ४ ॥ संमार्जिततला भूमिर्यौवनस्थेव लक्ष्यते । नाशितं गलदैरुष्णं तोषिता वसुधा जलैः ॥५॥ नववर्षाभिसिक्तानि शक्रगोपकुलानि च । नष्टदावाग्निधूमानि वनानि प्रचकाशिरे ॥६॥ नृत्यव्यापारकालश्च मयूराणां कलापिनाम् । मदरक्ताः प्रवृत्ताश्च केकाः पटुरवास्तथा ॥ ७ ॥ नवप्रावृषि कांतानां षट्पदाहारदायिनाम् । यौवनस्थकदम्बानां नवाभ्रैर्भ्राजते वपुः ॥ ८ ॥ हासितं कुटजैर्वृक्षैः कदम्बैर्वासितं वनम् संतप्ताभास्करकरैरभितप्ता दवाग्निभिः॥ जलैर्वलाहकोत्सृष्टैरुच्छ्वसंतीव पर्वताः ॥ ९ ॥ 'महानातसमुद्धूतं

विनादी ॥२॥ तदनन्तर मनमें इच्छाओंको स्फुरित करने वाली वर्षा ऋतु आगई तब शक्रचाप (इन्द्रधनुष) से चिन्हित उदर वाले महामेघ वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर पीछे २ नये जलकी वर्षा करने वाले महामेघकी वायुसे सूर्य छिप गया और भूमि भी घाससे ढक गई ॥ ४ ॥ उस समय तल धुली हुई भूमि युवतीसी दीख रही थी, मेघोंने गरमीको मिटा दिया और जलसे पृथ्वीको तृप्त कर दिया ॥ ५ ॥ नवीन वर्षासे सिंचे हुए अत एव नष्ट हुई दावाग्निके धूम वाले वन और इन्द्रगोप (बीरबहूटी) नामक कीड़े दमकने लगे ६ उस समय चोटी वाले मयूरोंके नाचनेका समय आगया और मदसे रक्त हुए चतुरतासे शब्द करने वाले मयूर शब्द करने लगे ७नवीन वर्षा ऋतुमें दमकने वाले और भौंरोंको आहार देने वाले तरुण कदम्बोंसे बादलोंका शरीर शोभा देने लगा ८ सूर्यकी किरणोंसे झुलसे हुए और दावाग्निसे भस्म हुए वनको कुटज (कुरैआँ) के वृक्षोंने दमका दिया९और कदम्बके वृक्षोंने उस वनको महका दिया मेघोंके द्वारा

महामेघगणार्पितम् । महीमहाराजपुरैस्तुल्यमापद्यते नभः ॥१०॥
क्वचित्कदम्बहासाढ्यं शिलीध्राभरणं क्वचित् । संप्रदीप्तमिवा-
भाति फुल्लनीपद्रुमं वनम् ॥ ११ ॥ ऐन्द्रेण पयसा सिक्तं मारु-
तेन नवीकृतम् । पार्थिवं गन्धमाघ्राय लोकः क्षुभितमानसः १२
दृप्तसारंगनादेन दर्दुरव्याहृतेन च । नवैश्च शिखिविक्रुष्टैरव
कीर्णा वसुन्धरा ॥ १३ ॥ आपूर्णमहावर्ता वर्षमाप्तमहारयाः ।
हरन्त्यस्तीरजान् वृक्षान् विस्तारं यान्ति निम्नगाः ॥ १४ ॥
सन्ततासारनिर्यत्नाः क्लिन्नपत्त्रोत्तरच्छदाः । न त्यजन्ति नगा-
ग्राणि श्रान्ता इव पतत्रिणः ॥ १५ ॥ तोयगम्भीरलम्बेषु स्तनत्सु
च नदत्सु च । उदरेषु नवाभ्राणां मज्जतीव दिवाकरः ॥१६॥

बरसाये हुये जलसे पर्वत (वाष्प निकलनेके कारण) श्वास लेते
हुएसे दीखने लगे, महावातसे उड़ाया हुआ (यह पताकाओंका
वर्णन है) और महामेघ (रूप प्रासादों) को धारण करनेवाला
आकाश पृथ्वीके महाराजोंके नगरोंकी समान दीखता था १०
कहीं पर कदम्बोंके हास्योंका धनी और कहीं पर छत्राकोंको धारण
करने वाला और खिले हुए अशोकवाला वन दिपता हुआ दीख
रहा था ११ इन्द्रके जलसे सींचे हुए और जलके द्वारा नवीन
किये हुए पार्थिवगंधको सूंघकर संसारका मन क्षुब्ध होगया
अर्थात् कामातुर होने लगा १२मत्त भ्रमरोंके नादसे और मेंढकोंके
टर्रानेसे और नवीन मोरोंके गर्जनेसे वसुन्धरा भरगई ॥ १३ ॥
शीघ्रभ्रमरके आवर्त वालीं और वर्षाहोनेसे वेगवान् बनी हुई
तथा तटों परके वृक्षोंको उखाड़ने वालीं महानदियें फैलने लगीं१४
निरन्तर धारा पड़नेसे जड़ हुए पेड़ कि-जिनकी छाल भीग गई
थी वे अपनी डालोंको थके हुए पक्षियोंकी समान नहीं छोड़ते
थे ॥ १५ ॥ जलकी गंभीरताके कारण लम्बे २ बरसते हुए
और गरजते हुए मेघोंके उदरमें सूर्य गोतासा लगा जाता था१६

महीरुहैरुदरतिर्तैः स्नितोत्पीडसंकुला । अन्विष्यमार्गा वसुधा भाति शाड्वलशालिनी १७ अतः स्रोतकृष्णानां नगानां नगशालिनाम् । स्रोतोभिः परिकृन्तानि पतन्ति शिखराण्यतः ॥ १८ ॥ पतता मेघवर्षेण यथा निम्नानुसारिणा । पल्वलोत्कीर्णसक्तेन पूर्यन्ते वनराजयः ॥ १९ ॥ हस्तोच्छ्रितमुखा वन्या मेघनादानुसारिणः । भान्त्यतिवृष्ट्या मातङ्गा गां गता इव तोयदाः ।२० । प्रावृड्वृत्तिं च संदृश्य दृष्ट्वा चाम्बुधरान घनान् ।रौहिणेयो मिथः काले कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पश्य कृष्ण घनान् कृष्णान् बलाकापंक्तिभूषणान् । गगने तव गात्रस्य वर्णचोरान् समुत्थितान् ॥२२॥ तव निद्राकरः कालस्तव गात्रोपमं नभः । त्वमिवाज्ञातवसतिं चन्द्रो वसति वार्षिकीम् ॥ २३ ॥ एतन्नीलोत्पल-

उस समय पेड़ जलसे उखड़ कर जलमें लौट पौट होते हुए बहे जाते थे, तहाँ भूमि में जलके कारण मार्ग (वटिया) ढूँढनी पड़ती थी और पृथ्वी पर हरे २ नवीन तृण उगनेसे वह शोभा देरही थी १७ उस समय जलके स्रोतके कारण पर्वतोंके शिखर इस प्रकार टूट २ कर गिरने लगे मानों पहाड़ोंमें श्रेष्ठ पहाड़ोंके शिखर वज्रसे टूट कर गिर रहे हों १८ जब मेघोंमेंसे वर्षा बरसने लगी तब जल नीचेको बहने लगा और उससे वनके तालाब भर गए और वन शोभा पाने लगे १९ अतिवृष्टि होनेसे गरजते हुए मेघका अनुकरण करने वाले हाथी अपनी सूँडको उठा कर गरजना करते समय पृथ्वी पर उतरे हुए मेघोंकी समान शोभा पाते थे २० वर्षाकालके जीवनको देख कर और जलको धारण करने वाले मेघोंको देख कर रौहिणेय बलरामने कृष्णसे कहा, कि-२१ हे कृष्ण!आप बगलोंकी पंक्तिसे विभूषित काले बादलोंको देखिये,ये आपके शरीरके वर्णको चुरा कर आकाशमें पहुँच गए हैं २२ निद्रा लाने वाला काल और आकाश आपके वर्णकी

श्यामं नीलोत्पलदलप्रभम् । संप्राप्ते दुर्दिने काले दुर्दिनं भाति गौ नभः ॥ २४ ॥ पश्य कृष्ण जलोदग्रैः कृष्णैरुद्ग्रथितैर्घनैः । गोवर्धनो यथा रम्यो भाति गोवर्धनो गिरिः ॥ २५ ॥ पतितेनाम्भसा ह्येते समन्तान्मदर्पिताः । भ्राजन्ते कृष्णसारङ्गाः काननेषु मुदान्विताः ॥ २६ ॥ एतान्यम्बुप्रहृष्टानि हरितानि मृदूनि च । तृणानि शतपत्राक्ष पत्रैर्गूहन्ति मेदिनीम् ॥ २७ ॥ चरज्जलानां शैलानां वनानां जलदागमे । सस्यानां च सीगानां न लक्ष्मीर्व्यतिरिच्यते ॥२८॥ शीघ्रवातसमुद्भूताः प्रोषितोत्सुक्यकारिणः। दामोदरोदारवाः प्रागल्भ्यं यान्ति तोयदाः ॥२९॥ हरे हर्षस्वचापेन त्रिवर्णेन त्रिविक्रम । विबाणज्येन रचितं तवेदं मध्यमं पदम् ॥ ३० ॥ नभस्येवन भश्चक्षुर्न भात्ये वनभस्तले । मेघैः

समान है, चन्द्रमा तुम्हारी समान वर्षामें अज्ञातवास करता है २३ मेघोंसे छाये रहने वाले कालके आने पर बादलोंसे घिरा हुआ यह आकाश नील कमलकी समान आभा वाला दीखता है २४ देखो कृष्ण ! उदग्र जल वाले गुथे हुए काले २ मेघोंसे गोवर्धन पर्वत गौओंको बढाने वाले रमणीय पर्वतका शोभा पारहा है ॥ २५ ॥ जल पड़नेसे मदमत्त हुए ये कृष्णसारङ्ग जंगलोंमें आनन्दित होकर शोभा देरहे हैं ॥ २६ ॥ हे शतपत्र कमलकी समान नेत्रों वाले ! जलसे हर्षमें भरकर हरे और मृदु बने हुए पत्ते पृथिवीको छिपाये देते हैं ॥२७॥ वर्षा ऋतु आने पर जलको टपकाने वाले पर्वत वन और जुती हुई जमीनोंकी लक्ष्मी एकसी दीखती है ॥ २८ ॥ शीघ्र चलने वाली वायुसे उड़ते हुए और प्रवासी पुरुषोंको उत्सुक करने वाले और दामोदर श्रीकृष्णकी समान उद्दाम स्वर करने वाले मेघ प्रगल्भ बन गए हैं ॥ २९ ॥ हे हरे ! हे त्रिविक्रम ! बाण और प्रत्यञ्चारहित तीन रंग वाले इन्द्रधनुषसे आपका मध्यम पद (आकाश)

शीतातपकरो विरश्मिरिव रश्मिवान् ॥ ३१ ॥ द्यावापृथिव्योः संसर्गः सततं विततः कृतः । अव्यवच्छिन्नधारौघैः समुद्रौघसमैर्घनैः ३२ ॥ नीपार्जुनकदम्बानां पृथिव्यां चातिवृष्टिभिः । गन्धैः कोलाहला वान्ति वाता मदनदीपनाः ॥ ३३ ॥ संप्रवृत्तमहावर्षं लम्बमानमहाम्बुदम् । भात्यगाधमपर्यन्तं ससागरमिवाम्बरम् ३४ धारानिर्मलनाराचं विद्युत्कवचवर्मिणम् । शक्रचापायुधधरं युद्धसज्जमिवाम्बरम् ॥ ३५ ॥ शैलानां च वनानां च द्रुमाणां च वराननम् । प्रतिच्छन्नानि भासं ते शिखराणि घनैर्घनैः ॥३६॥ गजानीकैरिवाकीर्णं सलिलोद्गारिभिर्घनैः वर्णसारूप्यतां याति गगनं सागरस्य च ॥३७॥ समुद्रोद्धूतजनिता लोलाः शाड्वल-

---

शोभित कर दिया गया है ॥ ३० ॥ श्रावणके मासमें आकाशमेंका नभश्चक्षु (सूर्य) मेघोंके द्वारा शीतल किरणें होजानेसे किरणरहितकी समान शोभा नहीं देता है ॥ ३१ ॥ अविच्छिन्न धारा वाले समुद्रके प्रवाहकी समान ओघ वाले मेघोंने निरन्तर वर्षा बरसा कर आकाश और पृथिवीको मिलासा दिया है ३२ अतिवृष्टि होनेसे नीप कदम्ब और अर्जुनके पेडोंकी गन्ध लेकर कल २ करके बहता हुआ वायु मदनको जगाता हुआ बह रहा है ॥ ३३ ॥ बड़ी भारी वर्षा बरसाने वाले लम्बे चौड़े महामेघको धारण करने वाला आकाश अथाह और अपार समुद्रको धारण करता हुआसा दीख रहा है ॥ ३४ ॥ धारारूपी निर्मल बाणोंको बरसाता हुआ बिजलीरूपी कवचको पहरने वाला और इन्द्रधनुषके आयुधको धारण करने वाला आकाश युद्धके लिये तयार हुआ दीख रहा है ॥३५॥ आकाश शैल वन और पेडोंका श्रेष्ठ मुखसा मालूम होरहा है, घने बादलोंसे घिरे हुए पर्वतोंके शिखर शोभा पारहे हैं ॥ ३६ ॥ जलको उगलने वाले मेघोंसे घिरा हुआ आकाश हाथियोंकी फौजोंसे घिरा हुआसा

कम्पिनः । शीताः सपृषतोद्दामाः कर्कशा वान्ति मारुताः ३८
निशासु सुप्तचन्द्रासु मुक्ततोयासु तोयदैः । मग्नसूर्यस्य नभसो न विभान्ति दिशो दश ॥ ३९ ॥ चेतनं पुष्करं कोशैः सुधाध्मातैः समन्ततः।न घृणीनां न रम्याणां विवेकं यान्ति कृष्णः४०
घर्मदोषपरित्यक्तं मेघतोयविभूषितम् । पश्य वृन्दावनं कृष्णवनं चैत्ररथं यथा४१एवं प्रावृड्गुणान् सर्वान् श्रीमान् कृष्णस्य पूर्वजः। कथयन्नेव बलवान् व्रजमेव जगाम ह ४२ अन्योन्यं रमणार्थं तु कृष्णसंकर्षणावुभौ ।तत्कालज्ञातिभिः सार्धं चेरतुस्तद्वनं महत्४३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रावृड्-
वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

मालूम होरहा है, इसप्रकार आकाश समुद्रके आकार वालासा दीख रहा है । ३७॥ इस समय समुद्रके हिलोरे लेनेसे उत्पन्न हुए चंचल और नई २ घासको कँपाने वाले शीतल और बड़ी बड़ी बूँदों वाले कर्कश वायु बह रहे हैं ३८ ॥ जैसे सूर्यके छिप जाने पर दशों दिशाएँ प्रकाशित नहीं होती हैं, इसी प्रकार जिनमें चन्द्रमा छिप जाता है ऐसी मेघोंसे जल बरसाने वाली रात्रियोंके कारण दशों दिशाएँ खिलती नहीं हैं ॥३९॥ वायुसे भरी हुई धौंकनियोंकी समान मेघोंसे भराहुआ आकाश चेतनसा मलीन होरहा है,इस समय किसानोंको न दिनका भान होता है, न रातका पता चलता है ४० हे कृष्ण ! इस समय चैत्ररथकी समान गर्मीके दोषसे मुक्त मेघ और जलसे विभूषित वृन्दावन वनको देखिये ४१ श्रीकृष्णके बड़े भाई श्रीमान बलवान् राम इस प्रकार वर्षा ऋतुके सब गुणोंका वर्णन करते हुए व्रजको चले गए४२आपसमें क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण और बलराम अपने उस समयकी जाति वालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए उस महावनमें विचरण करने लगे ४३दशम अध्याय समाप्त

वैशम्पायन उवाच । कदाचित्तु तदा कृष्णो विना संकर्षणेन वै । चचार तद्वनं रम्यं कामरूपी वराननः ॥१॥ काकपक्षधरः श्रीमान् श्यामः पद्मदलेक्षणः । श्रीवत्सेनोरसा युक्तः शशांक इव लक्ष्मणा ॥ २ ॥ सांगदेनाग्रहस्तेन पंकजोद्भिन्नवर्चसा । सुकुमाराभिताम्रेण क्रान्तविक्रान्तगामिना ॥ ३ ॥ पीते प्रीतिकरे नृणां पद्मकिंजल्कसप्रभे । सूक्ष्मे वसानो वसने ससंध्य इव तोयदः ॥ ४ ॥ वत्सव्यापारयुक्ताभ्यां व्यग्राभ्यां दण्डरज्जुभिः । भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पूजिताभ्यां दिवौकसैः ५ सदृशं पुण्डरीकस्य गन्धेन कमलस्य च । रराज चास्य तद्वान्ये रुचिरौष्ठपुटं मुखम् ॥ ६ ॥ शिखाभिस्तस्य मुक्ताभी रराज

वैशम्पायनजीने कहा,कि-एक समय इच्छानुसार रूप धारण करने वाले और सुन्दर मुख वाले श्रीकृष्ण संकर्षणके विना अकेले ही उस वनमें विचरण करने लगे ॥ १ ॥ उस समय वह काकपक्षको धारण कर रहे थे और पद्मपत्रकी समान विशाल नेत्रों वाले श्रीमान् श्याम शशांक (चन्द्रमा) के लक्ष्म (मृगचिन्ह) धारण करनेकी समान अपने वक्षःस्थल पर श्रीवत्सके चिन्हको धारण कर रहे थे ॥ २ ॥ खिले हुए कमलकी समान आभा वाले बाजूबन्दयुत हाथसे और सुकुमार तथा ताम्रवर्ण वाले कदम २ चलने वाले चरणसे और मनुष्योंको प्रसन्न करने वाले पद्मके परागकी समान प्रभावाले पीले दो वस्त्रोंको धारण करने वाले श्रीकृष्ण संध्याकालीन मेघकी समान दीखते थे ३-४ श्रीकृष्ण अपनी देवपूजित सुडौल गोलाई वाली भुजाओंसे दंड और रज्जुको चलाकर बछड़ोंको हाँकते हुए शोभा पारहे थे ५ श्रीकृष्णका बाल्यावस्थाका मनोहर ओठ वाला मुख पुण्डरीककी समान था और उसमें कमलकी समान गन्ध आती थी ६ बिखरी हुई अलकों वाला श्रीकृष्णका मुखकमल भौंरोंसे घिरे

मुखपंकजम् । वृतं षट्पदपंक्तीभिर्यथा स्यात् पद्मपत्तलम् ॥७॥
तस्यार्जुनकदम्बाढ्या नीपकन्दलमालिनी । रराज माला शिरसि
नक्षत्राणां यथा दिवि ॥ ८ ॥ स तया मालया वीरः शुशुभे
कण्ठसक्तया । मेघमालाम्बुदश्यामो नभस्य इव मूर्तिमान् ॥९॥
एकेनामलपत्रेण कण्ठसूत्रावलंबिना । रराज बर्हिपत्रेण मन्द-
मारुतकम्पिना ॥ १० ॥ क्वचिद्द्गायन् क्वचित् क्रीडंश्चञ्चू-
र्यंश्च क्वचित् क्वचित् । पणवाद्यं श्रुतिसुखं वादयंश्च क्वचित्
वने ॥११॥ गोपवेणुं सुमधुरं कामात्तमपि वादयन् । प्रव्हाद-
नार्थं च गवां क्वचिद्वनगतो युवा ॥ १२ ॥ गोकुलेम्बुधरश्याम-
श्चचार द्युतिमान् प्रभुः।रेमे च तत्र रम्यासु चित्रासु वनराजिषु १३
मयूरैरवघुष्टासु मदनोद्दीपनीषु च । मेघनादप्रतिव्यूहैर्नादितासु

हुए कमलकी समान मालुम होता था ॥ ७ ॥ आकाशमें नक्षत्र
मालाकी समान श्रीकृष्णके गलेमें पड़ी हुई कदम्बके फूल और
अंकुरोंकी माला शोभा देरही थी ॥ ८ ॥ वीर श्रीकृष्ण कण्ठमें
पड़ी हुई उस मालासे मेघमालाके बादलोंसे श्याम शरीर वाले
साक्षात् भाद्रपदकी समान शोभा देरहे थे ॥ ९ ॥ उनके गलेमें
पड़े हुए डोरेमें मोरका एक पर पड़ा हुआ था और वह
मन्द २ चलते हुए पवनसे हिल रहा था ॥१०॥ श्रीकृष्ण कहीं
गाने लगते थे, कहीं क्रीडा करने लगते थे और कभी शीघ्रतासे
विचरण करने लगते थे और कहीं पर वे कानोंको सुख देने
वाले पणव आदिको बजाने लगते थे ॥ ११ ॥ और कभी वह
युवा बन कर गौओंको प्रसन्न करनेके लिये अपनी इच्छासे सुम-
धुर वेणु (मुरली) को बजाने लगते थे ॥१२॥ मेघकी समान
श्याम वर्ण वाले कान्तिमान् श्रीकृष्ण विचरने लगे रमण करने
लगे ॥ १३ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण जिनमें मेघके गर्जनको सुन
कर मयूर प्रतिध्वनि कर रहे थे उन कामको प्रदीप्त करने वाली

समन्ततः ॥ १४॥ शाड्वलच्छन्नमार्गासु शिलीन्ध्राभरणासु च। कन्दलामलपत्रासु स्रवन्तीषु नवं जलम् ॥१५॥ केसराणां नवैर्गन्धैर्मदनिःश्वसितोपमैः । अभीक्ष्णं निःश्वसन्तीषु कामिनीष्विव नित्यशः ॥ १६ ॥सेव्यमानो नवैर्वातैर्द्रुमसंघातनिःसृतैः । तासु कृष्णो मुदं लेभे सौम्यासु वनराजिषु ॥ १७ ॥ स कदाचित् वने तस्मिन् गोभिः सह परिभ्रमन । ददर्श विपुलोदग्रं शाखिनं शाखिनां वरम् । स्थितं धरण्यां मेघाभं निविड़ं दलसंचयैः । गगनोर्ध्वोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम् ॥ १८ ॥ नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगैः॥ फलैः प्रवालैश्च घनैः सेन्द्रचापघनोपमम् ॥ २० ॥ भवनाकाररचितं लतापुष्पसु...

वनराजियोंमें भ्रमण करने लगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर वह घासमे छाये हुए मार्ग वाली और केलेके फलका आभूषण धारण करने वाली और नवीन पत्तोंके पात्र वाली और नवीन जलको टपकाने वाली वनराजियोंमें विचरण करने लगे ॥ १५ ॥ तदनन्तर वह मदनके उच्छ्वासकी समान केसरकी नवीन गन्धको बहाने वाली तथा कामिनीकी समान सर्वदा उच्छ्वास छोड़ने वाली वनराजियोंमें भ्रमण करने लगे ॥ १६ ॥उन सौम्य वनराजियोंके वृक्षोंके झुरमुटोंमेंसे निकलती हुई नवीन २ गन्धोंका सेवन करते हुए श्रीकृष्ण परम आनन्दित हुए ॥ १७ ॥उन्होंने वनमें गौओंके साथ घूमते २ एक समय बड़ी २ शाखाओंवाले वृक्षोंमें श्रेष्ठ वटवृक्षको देखा ॥ १८ ॥ वह अपने घने पत्तोंसे अन्धकारसा फैलाता हुआ पृथिवीमें मूर्तिमान् मेघकी समान खड़ा था, वह गगनमें ऊपरको उठा हुआ ढांचेसे परिपूर्ण पर्वत को धारण करने वाला दीखता था ॥ १९ ॥ उस पर बहुतसे नीले वर्णवाले मयूर बैठे थे और उसमें मूंगेकी समान फल लग रहे थे इससे वह इन्द्रचाप वाले मेघकी समान दीख रहा था२०

तम् । विशालमूलावनतं पवनाम्भोदधारिणम् ॥ २१ ॥आधि-
पत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम् । कुर्वाणं शुभकर्माणं
निराव्रर्षमनातपम् ॥ २२ ॥ न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम
नामतः । दृष्ट्वा तत्र मतिं चक्रे निवासाय ततः प्रभुः ॥ २३ ॥ स
तत्र वयसा तुल्यैर्वत्सपालैः सहानघ । रेमे वै वासरं कृष्णः पुरा
स्वर्गगतो यथा ॥ २४ ॥ तं क्रीडमानं गोपालाः कृष्णं भांडीर-
वासिनम् । रमयन्ति स्म बहवो वन्यैः क्रीड़नकैस्तदा ॥ २५ ॥
अन्ये स्म परिगायन्ति गोपामुदितमानसाः । गोपालाः कृष्णमे-
वान्ये गायन्ति स्म रतिप्रियाः॥२६॥तेषां स गायतामेव वादया-
मास वीर्यवान् । पणवाद्यान्तरे वेणुं तुम्बीवीणां च तत्र ह २७
कदाचिच्चारयन्नेव गाः स गोवृषभेक्षणः । जगाम यमुनातीरं

वह विटप भवनाकार वाला था और लताके पुष्पोंसे मण्डित था,
उसकी विशाल जड़े नीचेको झुकी हुई थीं और पवन और
मेघोंको धारण कर रहा था ॥ २१ ॥ उस देशमें लगे हुए और
वृक्षों पर वह आधिपत्यसा कर रहा था उन पर वर्षा और धूप
न पड़ने देकर वह शुभ कर्म कर रहा था ॥२२॥ ऐसे पर्वतके
शिखरकी समान आभा वाले भाण्डीर नामक वटको देख कर
प्रभुने उस वृक्षके नीचे निवास करनेका विचार किया ॥२३॥
हे अनघ ! तहाँ पर श्रीकृष्णने अपने समवयस्क वत्सपालोंके
साथ दिनभर रमण किया, तहाँ उन्हें स्वर्गकी समान आनन्द
मिला २४ भाण्डीर पर वस कर क्रीडा करने वाले कृष्णको
उनके बहुतसे मित्र जंगली खिलौनोंसे खिलाने लगे ।२५। कुछ
गोप मनमें मनमें प्रसन्न होकर गाने लगे कुछ रतिप्रिय गोपाल
श्रीकृष्ण का ही गान करने लगे ॥ २६ ॥ वीर्यवान् श्रीकृष्ण
उनके गाते २ बीचमें ही पणव वेणु और तोंबीकी वीणाको
बजाने लगते थे ॥ २७ ॥ एक समय गौ और वृषभकी समान

लताऽलंकृतपादपम् ॥ २८ ॥ तरंगापाङ्गकुटिलां वारिस्पर्शमुखा-
निलाम्। तां च पद्मोत्पलवतीं ददर्श यमुनां नदीम् ॥ २९ ॥
सुतीर्थां स्वादुसलिलां ह्रदिनीं वेगगामिनीम् । तोयवातोग्रतैर्वेगै-
रवनामितपादपाम् ॥ ३० ॥ हंसकारण्डवाद्घुष्टां सारसैश्च निना-
दिताम् । अन्यमिथुनैश्चैव सेवितां मिथुनेचरैः ३१ ॥ जलजैः
प्राणिभिः कीर्णां जलजैर्भूषितां गुणैः। जलजैः कुसुमैश्चित्रां
जलजैर्हरितोदकाम् ॥ ३२ ॥ प्रसृतस्रोतचरणां पुलिनश्रोणि-
मंडलाम् । आवर्तनाभिगम्भीरां पंकरोमानुरञ्जिताम् ॥ ३३ ॥
तटच्छेदोदरां कान्तां त्रितरंगवलीधराम्। फेनमहृष्टवदनां प्रसन्नां
हंसहासिनीम् ॥ ३४ ॥ रुचिरोत्पलदन्तोष्ठीं नतभ्रूं जलजेन्न-

नेत्रों वाले श्रीकृष्ण गौओंको चराते हुए लताओंसे अलंकृत
वृक्षों वाले यमुनाजीके तट पर पहुँच गए ॥ २८ ॥ तहाँ उन्होंने
तरङ्गोंका कटाक्ष करने वाले कुटिल तटों वाली और वारिस्पर्श
रूपी मुखकी पवन वाली तथा पद्म और उत्पल (कमलविशेष)
वाली यमुना नदीको देखा ॥२९॥ उसकी पैड़ियें बड़ी अच्छी
थीं और उसका जल स्वादु था उसमें सरोवर थे और वह वेगसे
वह रही थीं और अपने प्रवाहके वेगसे वह वृक्षोंको झुका रही
थीं ॥३०॥ तहाँ पर हंस और कारण्डव शब्द कर रहे थे और
सारस निनाद कर रहे थे और जोड़से फिरने वाले चक्रवाक
आदि उसकी सेवा कर रहे थे ३१ ॥ जलमें उत्पन्न हुए मीन
आदि और जलके शीतलता आदिसे विभूषित जलके पद्म आदिसे
भूषित और जलकी सिवारसे यमुना हरी दीख रही थी ।३२।
(अब यमुना नदीका स्त्रीरूपमें वर्णन करते हैं) वहता हुआ
स्रोत उसके चरण थे और रेता उसका श्रोणिमण्डल था और
भमर उसकी गम्भीर नाभि थी और कीचड़ रूपी रोमसे वह
भरी हुई थी ३४ ॥ मनोहर कमल उसके होठ थे उसकी भौंएँ

णाम् । ह्रददीर्घललाटान्तां कान्तां शैवलमूर्धजाम् ॥ ३५ ॥ चक्र-
वाकस्तनतटीं तीरपार्श्वायताननाम् । दीर्घमीनायतभुजामापाभोग-
श्रवणायतनाम् ॥३६॥ कारण्डवाकुण्डलिनीं श्रीमत्पद्मविलोचनाम् ।
तटजाभरणोपेतां मीननिर्मलमेखलाम् ॥३७॥ वारिविस्तरकौशेयां
सारसारावनूपुराम् काशपुष्पमयं वासो वसानां हंसलक्षणाम् ३८
भीमनक्रानुलिप्ताङ्गीं कूर्मलक्षणभूषिताम् । निपानश्वापदापीडां
नृभिः पीनपयोधराम् ॥३९॥ श्वापदोच्छिष्टसलिलामाश्रमस्थान-
संकुलाम् । तां समुद्रस्य महिषीमीक्षमाणः समन्ततः ॥ ४० ॥

नम्र थीं और कमल उसके नेत्र थे और सरोवर ही उसका बड़ा भारी ललाट था और सिवार उसके केश थे ऐसी कान्ताको श्रीकृष्णने देखा ॥ ३५ ॥ चकवाक उसके स्तनतट थे नदरूपी पार्श्व उसका चौड़ा मुख था बड़े २ मीन उसकी लम्बी भुजाएं थीं और दोनों तटों पर पूर्ण रूपमें भरा हुआ जल ही उसके लम्बे नेत्र थे॥ ३६॥ वह कारण्डव (टेक चिड़िया) के कुण्डल पहर रही थी और शोभायमान कमल उसके नेत्र थे और वह तटजाके आभरण पहिर रही थी और मीनोंकी निर्मल मेखला पहर रही थी ॥ ३७ ॥ जलमें फैलने वाले सिवार उसके विपुल रेशमी वस्त्र थे और वह जलके सार (मोती आदि) के नूपुर पहर रही थी और वह काशके पुष्पके वस्त्र धारण कर रही थी और हंससी दीख रही थी ॥ ३८ ॥ भयंकर नाकोंका चन्दन उसके शरीर पर लग रहा था और वह कछुएके लक्षणोंसे भूषित थीं, निपान(पशुके जल पीनेके स्थानोंके ऊपरके) श्वापद के भूषण धारण कर रही थी और वह मनुष्यरूपी बड़े २ पयो-धरों (स्तनों) को धारण कर रही थी ॥३९॥ श्वापद उसके जलको झूँठा कर रहे थे और उसके तटों पर आश्रम स्थान बन रहे थे, श्रीकृष्ण उस समुद्रकी पटरानीको चारों ओर देखते

चचार विपुलां कृष्णो यमुनामुपशोभयन् । तां चरन स नदीं श्रेष्ठां ददर्श ह्रदमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि । गम्भीरमक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम् ॥४२॥ तोयजैः श्वापदैस्त्यक्तं शून्यं तोयचरैः खगैः । अगाधेनाम्भसा पूर्णं मेघपूर्णमिवाम्बरम् ॥४३॥ दुःखोपसर्पंतीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः । विषारणिभवस्याग्नेर्धूमेन परिवेष्टितम् ॥४४॥ अभोग्यं तत्पशूनां हि अपेयं च जलार्थिनाम् । उपभोगैः परित्यक्तं सुरैस्त्रिषवणार्थिभिः ॥ ४५ ॥ आकाशादप्यसंचार्यं खगैराकाशगोचरैः । तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ४६ ॥ समन्ताद्योजनं साग्रं देवैरपि दुरासदम् । विषानलेन घोरेण

हुए और उसको शोभित करते हुए विचरण करने लगे, उस नदी पर घूमते २ उन्होंने एक उत्तम सरोवर देखा ॥ ४० ॥ वह चार कोस चौडा था और देवता भी उसके पार कठिनतासे जा सकते थे वह बड़ा गम्भीर था उसका जल अक्षोभ्य था और वह अक्षोभ्य समुद्रकी समान दीखता था ॥ ४२ ॥ वह जलचर पक्षियोंसे और जलचर जीवोंसे भी शून्य था उसमें अगाध जल भर रहा था इससे वह मेघोंसे घिरे हुए आकाशकी समान दीख रहा था ॥ ४३ ॥ उसके तटों पर सर्पोंके बहुतसे बिल थे इससे उसके तटों पर चलना कठिन था और सर्पोंके (श्वास लेनेके) कारण उत्पन्न हुई अग्निके धूमसे घिर रहा था ॥ ४४ ॥ पशु उसको नहीं भोगते (पीते) थे और जल चाहने वाले पिलासे जीव भी उसको अपेय समझते थे और त्रिषवण करने वाले देवताओंने उसका उपभोग करना छोड दिया था ॥ ४५ ॥ उसके जलके ऊपरके आकाशमें भी आकाशचारी पक्षी नहीं विचरते थे जो तृण उसमें पड़ जाते थे वे तेजसे जलने से लगते थे ॥४६॥ वह चारों ओरसे चार कोससे कुछ अधिक

ज्वालामज्वलितद्रुमम् ॥ ४७ ॥ व्रजस्योत्तरतस्तस्य क्रोशमात्रे निरामये । तं दृष्ट्वा चिन्तयामास कृष्णो वै विपुलं ह्रदम् ॥४८॥ अगाधं द्योतमानं च कस्यायं महतो ह्रदः । अस्मिन् स कालियो नाम नीलांजनचयोपमः । उरगाधिपतिः साक्षाद्ध्रदे वसति दारुणः । उत्सृज्य सागरावासं यो मया निर्जितः पुरा ॥५०॥ भयात् पतगराजस्य सुपर्णस्योरगाशिनः । तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरंगमा ॥ ५१ ॥ भयात्तस्योरगपतेर्नायं देशो निषेव्यते । तदिदं दारुणाकारमरण्यं रूढशाद्वलम् ॥५२॥ सावरोहद्रुमं घोरं कार्णं नानालताद्रुमैः । रक्षितं सर्पराजस्य सचिवैराप्तकारिभिः ॥५३॥ वनं निर्विषयाकारं विषान्नमिव दुःस्पृशम् । तैराप्तकारिभिर्नित्यं सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ५४ ॥ शैवालनलि-

---

था, देवता भी उसमें कठिनतासे घुस सकते थे उसमें घोर विषाग्निकी ज्वालासे वृक्ष प्रज्वलित हो रहे थे ॥ ४७ ॥ व्रजके उत्तर कोस भरकी दूरी पर निरामय स्थानमें उस बड़े भारी अगाध सरोवरको प्रकाशित होते देख कर कृष्णने विचारा, कि-यह बडा भारी ह्रद किसका है, मैं समझता हूँ, कि-नीलाञ्जन के ढेरकी समान कालिय नामक नाग यहाँ बसता होगा ४८ ४९ मैंने इसको जीत कर समुद्र छुडवा दिया था, वही यह उरगाधिपति यहाँ बस रहा होगा ॥ ५० ॥ सर्पभक्षक पक्षिराज गरुडके भयसे यह यहाँ आगया प्रतीत होता है, इस सर्पने समुद्रगामिनी यमुनाजीको दूषित कर रक्खा है ॥५१॥ उस सर्पपतिके भयसे इस देशका मनुष्य सेवन नहीं करते हैं और यह घाससे भरा हुआ वन दारुण दीख रहा है ॥ ५२ ॥ इस नाना प्रकारकी लताओंसे और वेल चढे हुए वृक्षोंसे घिरे हुए वनकी सर्पराजके मन्त्री रक्षा करते हैं ॥५३॥ उसके आप्त सेवकोंसे चारों ओरसे रक्षित यह वन आकाश की समान निर्विषय (देश शून्य)

नैश्चापि वृत्तैः क्षुद्रलताकुलैः । कर्तव्यमार्गौ भ्राजेते ह्रदस्यास्य तटावुभौ ॥ ५५ ॥ तदस्य सर्पराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया । यथेयं सरिदम्भोदा भवेच्छिवजलाशया ॥ ५६ ॥ व्रजोपभोग्या च यथा नागे च दमिते मया । सर्वत्र सुखसंचारा सर्वतीर्थसुखाश्रया ॥ ५७ ॥ एतदर्थं च वासोऽयं व्रजेऽस्मिन् गोपजन्म च । अमीषामुत्पथस्थानां निग्रहार्थं दुरात्मनाम् ॥ ५८ ॥ एवं कदम्बमारुह्य तदेव शिशुलीलया । विनिपत्य ह्रदे घोरे दमयिष्यामि कालियम् ॥५९॥एवं कृते बाहुवीर्यं लोके ख्यातिं गमिष्यति६०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बालचरिते यमुनावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

होगया है और विष मिले भोजनकी समान इसका स्पर्श भी कठिनतासे किया जाता है ॥ ५४ ॥ शैवाल (सिवार) नलिन और छोटी २ लताओंसे घिरे हुए उसके दोनों तटों पर मार्ग बनाना उचित प्रतीत होता है ये दोनों तट ही इस कामके लिये प्रकाशित होरहे हैं ॥ ५५ ॥ अतः मुझे इस सर्पराजका निग्रह करना चाहिये तब यह नदी मंगलप्रद जल वाली और जल ग्रहण करने योग्य होजायगी ५६ यदि मैं इस नागका दमन कर डालूँगा तो इस नदी (कुण्ड)का व्रजके मनुष्य उपभोग कर सकेंगे और इस पर सर्वत्र सुखपूर्वक विचरण कर सकेंगे और इसके सब घाटोंकी सीढ़ियों पर सुखपूर्वक उतर सकेंगे ५७ मैं इन कुमार्गगामी दुरात्माओंका निग्रह करनेके लिये ही व्रजमें बस रहा हूँ और मैंने गोपोंमें जन्म लिया है ५८ अब मैं शिशुलीलामें इस कदम्बपर चढ़ कर इसके ऊपरसे इस भयंकर कुण्डमें कूद कर इस कालिय नागका दमन करूँगा ५९ (ऐसा करने पर मेरा भुजवीर्य संसारमें प्रसिद्ध होजायगा) ॥ ६० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ११

वैशम्पायन उवाच । सोपसृत्य नदीतीरं बद्ध्वा परिकरं दृढम् । आरोहच्चपलः कृष्णः कदम्बशिखरं मुदा ॥१॥ कृष्णः कदम्बशिखराल्लम्बमानो घनाकृतिः । ह्रदमध्येऽकरोच्छब्दं निपतन्नंबुजेक्षणः ॥ २ ॥ कृष्णेन तत्र पतता क्षुभितो यमुनाह्रदः । संप्राप्लावत वेगेन भिद्यमान इवांबुदः ॥३॥ तेन शब्देन संक्षुब्धं सर्पस्य भवनं महत् । उदतिष्ठज्जलात् सर्पो रोषपर्याकुलेक्षणः ॥ ४ ॥ स चोरगपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः । ततो रक्तान्तनयनः कालियः समदृश्यत ॥ ५ ॥ पञ्चास्यः पावकोच्छ्वासश्चलज्जिह्वोऽनलाननः । पृथुभिः पञ्चभिर्घोरैः शिरोभिः

("श्रुतिमें लिखा है कि-योऽहन्नहिमपन्यवपस्तनर्दत्य पादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रम्"-अर्थात् जिस सर्पने यमुनाके जलोंको विषैला कर दिया था उसको मार डाला (पीड़ित किया)उस पादहीन श्वास लेते हुए सर्पने इन्द्र (आत्मा) से युद्ध किया था, इस श्रुति में कालियदमनका आभास मिलता है) वैशम्पायनजीने कहा, कि-यह विचार कर चपल कृष्णने नदीके तट परसे हट कर अपने परिकर (मुट्ठी वा लँगोट) को दृढ़तासे बाँधा और प्रसन्न होते हुए कदमकी चोटीपर पहुँच गए ॥ १ ॥ फिर कमलकी समान नेत्र वाले और मेघकी समान आकार वाले श्रीकृष्ण कदमकी डाल परसे शब्द करते हुए कुण्डमें कूद पड़े ॥ २ ॥ कृष्णके कूदने पर वह यमुनाजीका कुण्ड क्षुब्ध होगया और उसने टूटते हुए मेघकी समान (आस पासकी भूमिको) भिगो दिया ॥ ३ ॥ (श्रीकृष्णके कूदनेके)बड़े भारी धड़ाकेके कारण सर्पके भवनमें खलबली मच गई और अपने नेत्रोंको रोषमें भर वह सर्प ऊपरको भी आगया ४ उस सर्पपतिके शरीरकी आभा मेघकी समान थी, क्रोधमें भरनेके कारण कालियके नेत्रोंके कोर लाल २ होगए उसके पाँच शिर थे, श्वास लेनेसे उसकी

परिवारितः ॥ ६ ॥पूरयित्वा ह्रदं सर्वं भोगेनानलवर्चसा । स्फुरन्निव च रोषेण ज्वलन्निव च तेजसा ॥ ७ ॥ क्रोधेन तज्जलं तस्य सर्वं शृतमिवाभवत् । प्रतिस्रोता च भीतेव जगाम यमुना नदी ॥ ८ ॥ तस्य क्रोधाग्निपूर्णेभ्यो वक्त्रेभ्योऽभूच्च मारुतः । दृष्ट्वा कृष्णं ह्रदगतं क्रीडन्तं शिशुलीलया ॥ ९ ॥ सधूमाः पन्नगेन्द्रस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः । सृजता तेन रोषाग्निं समीपे तीरजा द्रुमाः ॥ १० ॥ क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्तप्रतिमेन वै। तस्य पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगाः ॥ ११ ॥ वमंतः पावकं घोरं वक्त्रेभ्यो विषसंभवम् । सधूमं पन्नगेन्द्रास्ते निष्पेतुरमितौजसः ॥ १२ ॥ प्रवेशितश्च तैः सर्वैः स कृष्णो भोगबन्धनम् । निर्यत्नचरणाकारस्तथौ गिरिरिवाचलः ॥१३॥ अदशन्

जीभें लपलपा रहीं थी इस प्रकार वह मोटे २ पाँच शिरों (फनों) को धारण कर रहा था ॥ ६ ॥उसने अपने अग्निकी समान कान्तिमान् शरीरसे सारे सरोवरको भर दिया और वह रोषमें भर कर काँपने लगा तथा तेजसे प्रज्वलित होने लगा ॥ ७ ॥ उसके क्रोध करने पर सारा जल उबलनेसा लगा और यमुना नदी डर कर उलटी वहने लगीं ८ वह श्रीकृष्णको सरोवर पर बालक्रीड़ा करते देख कर अपने अग्निपूर्ण मुखोंसे फुँकारे मारने लगा ॥ ९ ॥ उस समय उस सर्पराजके मुखमेंसे लपटें निकलने लगीं जब उसने अपने रोषाग्निको उगला तो उस प्रलयकालकी अग्निकी समान रोषाग्निसे आस पासके वृक्ष क्षणभरमें भस्म होगए उसके अतिरिक्त उसके अमित पराक्रमी पुत्र स्त्री और भृत्य आदि पन्नगराज महासर्प विषकी आगको उगलते हुए निकल आये ॥ १०—१२ ॥ तदनन्तर वे सब श्रीकृष्णको लपेटने लगे उस समय वह चरणके आकारमें यत्नरहित होकर पर्वतकी समान अचल होगए ॥ १३ ॥ तदनन्तर उन सर्पोंने

दशनैस्तीक्ष्णैर्विषोत्पीडजलाविलैः। ते कृष्णं सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान् ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपालाः सर्व एव ते। क्रन्दमाना व्रजं जग्मुर्बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ गोपा ऊचुः। एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालिये ह्रदे। भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥ १६ ॥ नन्दगोपाय वै क्षिप्रं सबलाय निवेद्यताम्। एष ते कृष्यते कृष्णः सर्पेणेति महाह्रदे ॥ १७ ॥ नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वचः। आर्तः स्खलितविक्रान्तस्तं जगाम ह्रदोत्तमम् ॥ १८ ॥सबालयुवतीवृद्धः स च संकर्षणो युवा। आक्रीडं पन्नगेन्द्रस्य जलस्थं समुपागमत् ॥ १९ ॥ नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचनाः। हाहाकारं प्रकुर्वन्तस्तस्थुस्तीरे ह्रदस्य वै ॥२०॥ व्रीडिता विस्मिताश्चैव शोकार्ताश्च पुनः पुनः।केचित्तु पुत्र हाहेति हा धिगित्य-

अपने तीक्ष्ण और जलको विषसे गदली करने वाली डाढ़ोंसे श्रीकृष्णको डस लिया परन्तु वह वीर्यवान् मरे नहीं १४ उस समय सब गोपाल डर कर रुँधे हुए कण्ठसे रोते हुए व्रजको भाग चले ॥ १५ ॥ गोपोंने कहा, कि—यह कृष्ण मोहमें पड़ कर कालिय ह्रदमें कूद पड़े हैं अब इनको सर्पराज खाये जाता है अतः अब शीघ्र ही दौड़ो ॥१६॥ और नन्दगोप तथा बलरामसे कहो, कि—महासरोवरमें सर्प तुम्हारे कृष्णको खेंचरहा है ॥ १७ ॥ नन्दगोप उस वज्रपातकी समान वचनको सुनकर बड़े दुःखी हुए और उनमें सत्त्व न रहा और वे उस सरोवरकी ओर दौड़े ॥ १८ ॥ उस समय बालक युवती वृद्ध और तरुण संकर्षण यह सब पन्नगेन्द्रके क्रीड़ास्थलकी ओर दौड़े ॥ १९ ॥ नन्दगोप आदि सब गोप आँखोंमें आँसू भर हाहाकार करते हुए उस सरोवरके समीप खड़े होगए ॥ २० ॥ वे सब विस्मित और बार २ शोकार्त होकर हा पुत्र ! और हाय ! हाय ! तथा

परे पुनः ॥ २१ ॥ अपरे हा हताः स्मेति कुरुदुर्भृशदुःखिताः । स्त्रियश्चैव यशोदां तां हा हतासीति चक्रुशुः ॥२२॥ या पश्यसि प्रियं पुत्रं सर्पराजवशंगतम् ।स्पन्दितं सर्पभोगेन कृष्यमाणं यथा-मृतम् ॥२३॥ अश्मसारमयं नूनं हृदयं ते विलक्ष्यते । पुत्रं कथ-मिमं दृष्ट्वा यशोदे नावदीर्यसे ॥ २४ ॥ दुःखितं बत पश्यामो नन्दगोपं ह्रदांतिके । न्यस्य पुत्रमुखे दृष्टिं निश्चेतनमिव स्थितम् २५ यशोदामनुगच्छन्त्यः सर्पावासमिदं ह्रदम् । प्रविशामो न यास्यामो व्रजं दामोदरं विना ॥२६॥ दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा । विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः २७ विना कृष्णं न यास्यामो विवत्सा इव धेनवः । तासां विलपितं श्रुत्वा तेषां च व्रजवासिनाम् । विलापं नन्दगोपस्य यशोदा-

धिक् २ करने लगे ॥ २१ ॥ और कोई हाय ! मारे गए ! कह कर परम दुःखित हो रोने लगे और स्त्रियें यशोदासे कहने लगी कि-हाय ! तू मारी गई ॥ २२ ॥ कि-जो तू अपने प्रिय पुत्रको सर्पराजके वशमें पड़ा हुआ और धैर्यसे कुछ च्युत हुआ और मरे हुएकी समान सर्पके बंधनमें पड कर खिचड़ता हुआ देख रही है २३ हे यशोदा ! तेरा हृदय तो पत्थरका ही बना हुआ है क्या?जो पुत्रकी ऐसी दशा देख कर भी विदीर्ण नहीं होता है २४ हम इस सरोवरके तट पर नन्दगोपको पुत्रके मुखकी ओर दृष्टि कर निश्चेतनकी समान बैठ कर दुःखित होते हुए देखते हैं२५ हम तो यशोदाके पीछे २ इस सर्पके भवन इस सरोवरमें ही डूब जावेंगी और दामोदरके विना व्रजको न जावेंगी ॥ २६ ॥ अरे ! सूर्यके विना दिन क्या और चन्द्रमाके विना रात्रि (की) क्या (शोभा) और वृषके विना गौएँ क्या ? अर्थात् व्यर्थ है, इसी प्रकार कृष्णके विना व्रज व्यर्थ है ॥ २७ ॥ अरे ! हम तो कृष्णके विना बछड़ेरहित गौकी समान व्रजमें न जावेंगी,

रुदितं तथा ॥ २८ ॥ एकभावशरीरज्ञ एकदेहो द्विधा कृतः ।
संकर्षणस्तु संक्रुद्धो बभाषे कृष्णमव्ययम् ॥ २९ ॥ कृष्ण कृष्ण
महाबाहो गोपानां नन्दिवर्धन । दम्यतामेष वै क्षिप्रं सर्पराजो
विषायुधः ॥३०॥ इमे नो बांधवास्तात त्वां मत्वा मानुषं विभो ।
परिदेवन्ति करुणं सर्वे मानुषबुद्धयः ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा रौहि-
णेयस्य वाक्यं संज्ञासमीरितम् । विक्रम्यास्फोटयद्बाहुं भित्वा
तन्नागबन्धनम् ॥ ३२॥ तस्य पद्भ्यामथाक्रम्य भोगराशिं जलो-
त्थितम् । शिरः स कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनाम्य च ॥ ३३ ॥
तस्यारुरोह सहसा मध्यमं तन्महच्छिरः । सोऽस्य मूर्ध्नि स्थितः
कृष्णो ननर्त रुचिरांगदः ॥ ३४ ॥ मृद्यमानः स कृष्णेन शांत-
मूर्धा भुजंगमः । आस्यैः सरुधिरोद्गारैः कानगो वाक्यमब्रवीत् ३५

उनके विलापको सुनकर और नन्दगोपके भी विलाप और
यशोदाके रुदनको सुन कर ॥२८॥ भाव और शरीरको एकसा
जाननेवाले और एक देह (आत्मा) होने पर भी दो भागोंमें
बटेहुए संकर्षण क्रोधमें भरकर अच्युत श्रीकृष्ण से कहने लगे २९
कि-हे कृष्ण ! हे महाभुज कृष्ण !! हे गोपोंको आनन्द देनेवाले!
इस विषायुध सर्पको आप दमन करिये ३० हे तात हे विभो !
ये बांधव आपको मनुष्य मान कर दुःखित होरहे हैं ३१ रोहिणी-
पुत्रके स्मरण दिलाने वाले वाक्यको सुन कर कृष्णने नाग-
बंधनको खोल कर अपनी भुजाओं पर थपेड़ा मारना आरंभ कर
दिया ३२ तदनंतर श्रीकृष्णने उसके जलमें खड़े हुए शरीरको
दबाया और अपने हाथसे उसके शिरको दबा कर उस पर
चढ़ गए ३३ उस समय श्रीकृष्ण उसके बिचले मस्तक पर चढ़
गए थे फिर मनोहर बाजूबन्द पहरने वाले श्रीकृष्ण उसके मस्तक
पर खड़े २ नाचने लगे ३४ श्रीकृष्णके मर्दन करने पर वह
सर्प अपने शिरको शान्त करके खड़ा होगया और अपने

अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽयं संप्रदर्शितः। दमितोऽहं हतविषो वशगस्ते वरानन ॥ ३६ ॥ तदाज्ञापय किं कुर्यां सदा सापत्यबान्धवः। कस्य वा वशतां यामि जीवितं मे प्रदीयताम् ॥३७॥ पञ्चमूर्धानतं दृष्ट्वा सर्पं सर्पारिकेतनः। अक्रुद्ध एव भगवान् प्रत्युवाचोरगेश्वरम् ॥ ३८ ॥ तवास्मिन् यमुनातोये नैव स्थानं ददाम्यहम्। गच्छार्णवजलं सर्प सभार्यः सह बान्धवः॥ ३९ ॥ यश्चेह भूयो दृश्येत स्थाने वा यदि वा जले। तत्र भृत्यस्तनूजो वा क्षिप्रं वध्यः स मे भवेत् ॥ ४० ॥ शिवं चास्य जलस्यास्तु त्वं च गच्छ महार्णवम्। स्थाने त्विह भवेद्दोषस्तवान्तकरणो महान् ॥४१॥ मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धसु सागरे। गरुडः

मुखोंसे रुधिर ओकता हुआ कातर हो कहने लगा ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण ! मैंने अज्ञानतासे आपके ऊपर क्रोध किया था अब हेश्रेष्ठ मुखवाले !अब मैं कुचल गया हूँ और मेरा विषभी हत (व्यर्थ) होगया है ३६ इसलिये अब आप आज्ञा दीजिये, कि-मैं क्या करूँ और मेरी सन्तान और बांधव भी आपका क्या कार्य करैं और मैं किसके वशमे रहूँ आप मुझे जीवनदान दीजिये ३७ सर्पारिकेतन अर्थात् सर्पोंके शत्रु गरुड़की ध्वजावाले श्रीकृष्णने उस सर्पके पाँचों फनोंको नमे हुए देखा फिर भी कुछ भी क्रोध न करके उरगोंके ईश्वर कालियसे कहने लगे, कि-३८ हे सर्प ! मैं तुझे यमुनाजीके जलमें कहीं नहीं रहने दूँगा हे सर्प! अब तू अपनी भार्या और बान्धवोंको लेकर समुद्रके जलमें चला जा ३९ यदि अब तेरा कोई भृत्य वा पुत्र यमुनाके जलमें दीखेगा. तो मैं शीघ्रतासे उसे मार डालूँगा ॥ ४० ॥ अब यह जल निर्मल होजाना चाहिये और तु भी महासमुद्रको चला जा, यदि तू यहाँ पर रहेगा तो तुझे मरणकी बड़ी भारी आपत्ति उठानी पड़ेगी४१और हे सर्प ! सर्पोंके शत्रु गरुड़ भी तेरे शिर

पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥ ४२ ॥ गृह्य मूर्ध्ना तु चरणौ कृष्णस्योरगपुङ्गवः । पश्यतामेव गोपानां जगामादर्शनं ह्रदात् ४३ निर्जिते तु गते सर्पे कृष्णमुत्तीर्य धिष्ठितम् । विस्मितास्तुष्टुवुर्गोपाश्चक्रुश्चैव प्रदक्षिणम् ॥४४॥ ऊचुः सर्वे च संप्रीता नन्दगोपं वनेचराः । धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः ॥ ४५ ॥ अद्यप्रभृतिगोपानां गवां गोष्ठस्य चानघ । आपत्सु शरणं कृष्णः प्रभुश्चायतलोचनः ॥ ४६ ॥जाता शिवजला सर्वा यमुना मुनिसेविता । तीरे चास्याः सुखं गावो विचरिष्यन्ति नः सदा ४७ व्यक्तमेव वने जाता वयं यत् कृष्णमीदृशम् । महद्भूतं न जानीमश्छन्नमग्निमिव व्रजे ॥ ४८ ॥ एवं ते विस्मताः सर्वे स्तुवन्तः

पर मेरे चरणोंके चिन्ह देख कर तुझ पर प्रहार न करेंगे ४२ तब वह सर्पपुङ्गव श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें अपने शिरको झुका कर गोपोंके देखते २ क्षणभर में तालावमेंसे गायब होगया ४३ जब उस सर्पको हरा कर भगानेके बाद श्रीकृष्ण जलमेंसे बाहर निकल कर खड़े होगए तब गोप परम विस्मित हुए और वे श्रीकृष्णकी परिक्रमा करके उनकी स्तुति करने लगे ४४ फिर सब वन चारी गोपोंने अपने मनमें प्रसन्न होकर नन्दगोपसे कहा कि-आपके ऐसे पुत्र हैं ! आप धन्य हैं (ईश्वरने) आप पर परम अनुग्रह किया है ॥ ४५ ॥ आजसे विशाल नेत्र प्रभु श्रीकृष्ण ही गौओंके गोपोंके और गोठोंके आपत्तिमें पड़ने पर हमारी रक्षा करनेवाले रहे ४६ अब इस मुनियोंसे सेवित यमुना जीका जल निर्मल होगया अब इसके तट पर हमारी गौएँ सुखपूर्वक विचरण करेंगी ॥ ४७ ॥ हम वनमें उत्पन्न हुए हैं, इस लिये इन भस्ममें छिपी हुई अग्निकी समान ऐसे महात्मा श्रीकृष्णको हम व्रजमें रहनेके कारण न जान सके ४८ विस्मित हुए गोप इस प्रकार अच्युत श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए देव-

कृष्णमव्ययम् । जग्मुर्गोपगणा घोषं देवाश्चैत्ररथं यथा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि
कालियदमने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच । दमिते सर्पराजे तु कृष्णेन यमुना ह्रदे । तमेव चेरतुर्देशं सहितौ रामकेशवौ ॥ १ ॥ आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनैः सह गामिनौ । गिरिं गोवर्धनं रम्यं वसुदेवसुतावुभौ २ गोवर्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम् । ददृशाते च तौ वीरौ रम्यं तालवनं महत् ॥ ३ ॥ तौ तालपर्णप्रतते रम्ये तालवने रतौ । चेरतुः परमप्रीतौ वृषपोताविवोद्धतौ ॥ ४ ॥ स तु देशः सदा स्निग्धो लोष्ठपाषाणवर्जितः । दर्भप्रायस्थलीभूतः सुमहान् कृष्णमृत्तिकः ॥ ५ ॥ तालैस्तैर्विपुलस्कन्धैरुच्छ्रितैः श्यामपर्वभिः ।

ताओंके चैत्ररथमें प्रवेश करनेकी समान व्रजमें प्रवेश करने लगे ॥ ४६ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-श्रीकृष्णके द्वारा यमुनाजीके ह्रदमें सर्पराज कालियका दमन होने पर राम और केशव उसी स्थान पर विचरण करने लगे ॥ १ ॥ इसके अनन्तर वह वसुदेवके दोनों पुत्र अपने गोधनके साथ घूमते २ रमणीय गोवर्धन पर्वत पर आपहुँचे ॥ २ ॥ तदनन्तर उन वीरोंने गोवर्धनके उत्तरकी ओर यमुनाजीके तट पर परम रमणीय एक तालवन देखा ३ तब वे दो उद्धत बछड़ोंकी समान परम प्रसन्न होकर उस ताल के पत्तोंसे छाये हुए रमणीय तालवनमें क्रीड़ा करने लगे ॥ ४ ॥ वह स्थान चिकना था और उसमें ढ़ेले और पत्थरका नाम नहीं था और उसमें बहुत दूर तक दर्भ (कुशाएँ) ही लग रहीं थी और उस स्थानकी मट्टी काली थी ५ वह स्थान मोटे २ गुद्दे वाले और ऊपरकी उठी हुई श्याम गाँठों वाले और टहनियोंमें फल लगे हुए तालके वृत्तोंके कारण ऐसा प्रतीत होता था मानों

फलाग्रशाखिभिर्भान्ति नागहस्तैरिवोच्छ्रितैः ॥६॥ तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदतां वरः॥अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेयं वनस्थली७ स्वादून्यार्य सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च । पक्वतालानि सहितौ पातयावो लघुक्रमौ ॥ ८ ॥ यथैषामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतर्पणः । रसेनामृतकल्पेन भवितव्यं च मे मतिः ॥ ९ ॥ दामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव । पातयन् पक्वतालानि चालयामास तांस्तरून् ॥१०॥ तत्तु तालवनं नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम् । निर्माणभूतमिरिणं पुरुषादालयोपमम् ॥ ११ ॥ दारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपवान् । खरयूथेन महता वृतः समनुसेवते । स तु तालवनं घोरं गर्दभः परिरक्षति । नृपक्षिश्वापदगणांस्त्रासयानः सुदुर्मतिः ॥१३॥ तालशब्दं स तं श्रुत्वा संघुष्टं

हाथियोंकी सूडें उठ रही हों ॥ ६ ॥ उस समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ दामोदरने कहा, कि-अहा ! यह वनस्थली तो तालके पके हुए फलोंसे भर रही है ॥ ७ ॥ हे आर्य ! अब हमें फुर्ती करके इन स्वादु सुगंधित काले और रस वाले पके हुए तालके फलोंको गिराना चाहिये ॥ ८ ॥ मेरा विचार है, कि-जब इनकी गंध ही ऐसी है, कि-उसकी मधुरतासे नाक तृप्त हुई जाती है तब इनका रस तो अमृतकी समान होगा, ॥ ९ ॥ वासुदेवके वचनको सुन कर बलरामजी हँसे और वह वृक्षोंको हिला २ कर पके हुए फलोंको गिराने लगे १०मनुष्य उस तालवनकी ओर नहीं जाया करते थे उसकी ओर जाना बड़ा कठिन था और वह मनुष्यों का भक्षण करने वाले राक्षसोंके प्रदेशकी समान उजड़ा हुआ पड़ा था ॥ ११ ॥ उस वनमें धेनुक नामक दैत्य गधेका रूप धारण करके रहता था और उसके साथ बहुतसे गधे भी रहते थे, उनके साथ वह उस वनका सेवन किया करता था ॥ १२ ॥ वह दुर्मति गधा मनुष्य पक्षी और श्वापद जीवोंके त्रस्त करता

फलपातनात् । नामर्षयत् स संक्रुद्धस्तालस्वनमिव द्विपः १४ शब्दानुकारी संक्रुद्धो दर्पाविद्धसटाननः । स्तब्धाक्षो हेषितपदुः खुरैर्निर्दारयन्महीम् ॥ १५ ॥ आविद्धपुच्छो ह्रेषितो व्यात्तानन इवान्तकः । अपतन्नेव ददृशे रौहिणेयमुपस्थितम् ॥१६॥ तालानां तमधो दृष्ट्वा सध्वजाकारमव्ययम् । रौहिणेयं खरो दुष्टः सोऽदशद्दशनायुधः ॥ १७ ॥ पद्भ्यामुभाभ्यां च पुनः पश्चिमाभ्यां पराङ्मुखः । जघानोरसि दैत्येन्द्रो रौहिणेयं निरायुधम् ॥१८॥ ताभ्यामेव स जग्राह पद्भ्यान्तं दैत्यगर्दभम् । आवर्जितमुखस्कन्धं प्रेरयंस्तालमूर्धनि ॥ १९ ॥ संभग्नोरुकटिग्रीवो भग्नपृष्ठो

हुआ उस वनकी रक्षा करता रहता था ॥ १३ ॥ फलोंके गिरने से होते हुए तालके शब्दको सुन कर वह राक्षस क्रोधमें भर गया; जैसे हाथी तालके शब्दको नहीं सह सकता, तैसे ही वह भी उस शब्दको न सह सका ॥ १४ ॥ तब वह जहाँ पर शब्द-होरहा था उस ओरको क्रोधमें भर कर दौड़ा उस समय दर्पके मारे उसके केसर (गर्दन परके बाल) खड़े होरहे थे और आँखें चढ़ी हुई थीं और वह रैंक कर अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ दौड़ा जारहा था और उसकी पूँछ ऊपरको उठी हुई थी और वह मुख फाड़े हुए कालकी समान रैंकता हुआ चला उसने आते ही रोहिणीपुत्र बलदेवजीको देखा ॥ १५ ॥१६॥ दाँतोंसे प्रहार करने वाले उस दुष्ट गधेने तालोंके नीचे ध्वजाकार अच्युत रोहिणीनन्दनको खड़ा देख कर उनको दाँतोंसे काट खाया १७ फिर उस दैत्येन्द्रने आयुधरहित बलरामजीके हृदयमें पीछेको मुख करके अपनी दोनों पिछली टाँगे मारीं ॥ १८ ॥ बलदेवजी ने उस गर्दभ रूपधारी दैत्यकी उन दोनों टाँगोंको ही पकड़ लिया और उसको घुमा कर तालमें दे मारा उस समय उसका मुख और कंधा भी घूम रहा था ॥ १९ ॥ वृक्षमें लगनेही उस दैत्य

दुराकृतिः । खरस्तालफलैः सार्धं पपात धरणीतले ॥२०॥ तं गतासुं गतश्रीकं पतितं वीक्ष्य गर्दभम् । ज्ञातींस्तथा परांस्तस्य तृणराजनि सोऽक्षिपत् ॥ २१ ॥ सा भूर्गर्दभदेहैश्च फलैः पक्वैश्च पातितैः । बभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥ २२ ॥ तस्मिन् गर्दभदैत्ये तु सानुगे विनिपातिते । रम्यं तालवनं तद्धि भूयो रम्यतरं बभौ ॥ २३ ॥ विप्रमुक्तभयं शुभ्रं विविक्ताकारदर्शनम् । चरन्ति स्म सुखं गावस्तत्तालवनमुत्तमम् ॥२४॥ ततः प्रविष्टास्ते सर्वे गोपा वनविचारिणः । वीतशोका भयायासाश्चचूर्यन्ते स्म तद्वनम् ॥ २५ ॥ ततः सुखं प्रकीर्णासु गोषु नागेन्द्र-

---

की जंघा कमर गर्दन और पीठ टूट गई और उसकी आकृति बिगड़ गई और वह गधा अपने साथमें तालके फलोंको भी गिराता हुआ पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ २० ॥ उस गधेको प्राणरहित और शोभारहित हो पृथ्वीमें गिरते देख कर बलदेवजीने उसकी जातिके दूसरे गधोंको भी पेड़ पर पटक(कर मार) डाला २१ उस समय तहाँकी भूमि गधोंके गिरे हुए देहोंसे और पड़े हुए तालके फलोंसे छाने पर ऐसी प्रतीत होती थी जैसे शरद ऋतु में बादलोंसे छाया हुआ आकाश अव्यक्तरूपमें दीखता है २२ उस गर्दभ रूपधारी दैत्यके अनुचरोंसहित मारे जानेपर वह रमणीय तालवन और भी अधिक रमणीय लगने लगा ॥ २३॥ उस समय तहाँ परका भय जाता रहा और स्पष्ट रूपसे देखा जाने लगा, और उस तालवनमें गौएँ सुखपूर्वक विचरण करने लगीं ॥ २४ ॥ तदनन्तर वे सब वनविहारी गोप उस तालवन में घुस कर शोक और आयासरहित होकर बारम्बार घूमने लगे २५ तदनन्तर जब गौएँ सुखपूर्वक उस वनमें घूमने लगीं तब वे हाथीकी समान पराक्रमी दोनों बालक वृक्षोंके पत्तोंके

विक्रमौ । द्रुमपर्णासने कृत्वा तौ यथार्हं निषीदतुः ॥ २६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि धेनुक-
वधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ । तत्तालवनमुत्सृज्य भूयो भांडीरमागतौ ॥१॥ चारयंतौ विवृद्धानि गोधनानि शुभानि च । स्फीतसस्यप्ररूढानि वीक्षमाणौ वनानि च ॥ २ ॥ क्ष्वेडयन्तौ प्रगायन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपान् । नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परन्तपौ ॥ ३ ॥ नियोगपाशैरासक्तैः स्कन्धाभ्यां शुभलक्षणौ । वनमालाकुलोरस्कौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥४॥ सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरौ । महेंद्रायुधसंयुक्तौ शुक्लकृष्णाविवांबुदौ ॥५॥ कुशाग्रकुसुमानां च कर्ण-

---

आसनों पर यथोचित रीतिसे बैठ गए॥ २६ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसके अनन्तर हर्षमें भरे हुए वे दोनों वसुदेवजीके पुत्र उस तालवनमेंसे फिर भाण्डीरवट पर चले १ वे बढे हुए गोधनको चराते हुए और सस्य फैले हुए शुभ वनको देखते हुए (चलने लगे) २ वे शत्रुतापी दोनों बालक अपनी भुजाओं पर थाप लगाते हुए, गाते हुए और वृक्षों के फलोंको एकत्रित करते हुए और गौओंको और उनके बछडोंको नाम ले कर बुलाते हुए (चलने लगे) ३ जैसे वनमालाओंसे विभूषित वक्षःस्थल वाले और छोटे २ सींगों वाले ऋषभ शोभा पाते हैं, तैसे ही अपने कन्धों पर छीके डाल कर चलते हुए वे दोनों शोभा पारहे थे ४ वे अञ्जन और सुवर्णके चूर्णकी समान आभा वाले दोनों वसुदेव पुत्र एकसा वस्त्र पहरने के कारण इन्द्रधनुष वाले काले और श्वेत इसप्रकार दो मेघोंकी समान दीख रहे थे ५ वे दोनों जंगली वेष धारण करने वाले

पूरौ मनोरमौ वनमार्गेषु कुर्वाणौ वन्यवेषधरावुभौ॥६॥गोवर्धनस्यानुचरौ वनेसानुचरौ तु तौ।चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ ॥७॥ तावेवं मानुषीं दीक्षां वहन्तौ सुरपूजितौ । तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥८॥ तौ तु भाण्डीरमाश्रित्य बालक्रीडानुवर्तिनौ । प्राप्तौ परमशाखाढ्यं न्यग्रोधं शाखिनां वरम् ॥ ९ ॥ तत्र स्पन्दोलिकाभिश्च युद्धमार्गविशारदौ । अश्मभिः क्षेपणीयैश्च तौ व्यायाममकुर्वताम् ॥१०॥ युद्धमार्गैश्च विविधैर्गोपालैः सहितावुभौ । मुदितौ सिंहविक्रान्तौ यथाकामं विचेरतुः ॥११॥ तयो रमयतोरेवं तल्लिप्सुरसुरोत्तमः ।प्रलम्बोऽभ्यागमत्तत्र छिद्रा-

बालक मार्गमें कुशाके अग्रभाग पर लगे हुए पुष्पोंसे मनोहर कर्णफूल बनाते हुए चले जाते थे ६ वे अपराजित अपने अनुचरोंके साथ गोवर्धनके समीप लोकसिद्ध क्रीड़ाएँ करते हुए विचरने लगे ॥ ७ ॥ वे सुरपूजित इस प्रकार मानुषी दीक्षाको ग्रहण कर उस जातिके अनुरूप क्रीड़ा करते हुए वनमें विचरण करने लगे ८ तदनन्तर वे दोनों बालक्रीडा करते २ अनेक शाखाओं वाले वृक्षोंमें श्रेष्ठ भाण्डीर नामक वट पर आपहुँचे९ तहाँ वे युद्धमार्गविशारद स्पन्दोलिका (झूलेकी समान हाथोंको आगे फेंकने) और गोफन फेंकर तथा (मुद्गर) हिलाकर व्यायाम करने लगे१०वे सिंहकी समान पराक्रमी दोनों बालक अपने गोपालोंके साथ प्रसन्न होकर नाना प्रकारके युद्धमार्गोंका अभ्यास करने लगे ११ जब वह इसप्रकार क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय उनको पाना चाहने वाला असुरोत्तम प्रलम्ब उनके दोषको ढूढ़ता २ तहाँ आपहुँचा। श्रुतिमें लिखा है,कि-'विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य । असत्त उत्सोम गृणते नियुत्वान् मध्वो अंशु पवत इन्द्रियाय ।' अर्थात् हे सोम! तुम ब्रह्मस्वरूपके अंशकी समान अंश पृथ्वीके धारण

न्वेषी तयोस्तदा ॥१२॥ गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषितः। लोभयानः स तौ वीरौ हास्यैः क्रीडनकैस्तथा ॥ १३ ॥ सोऽवगाहत निःशंकस्तेषां मध्यममानुषः। मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ १४ ॥ प्रक्रीडिताश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा। गोपालवपुषं गोपा मन्यमानाः स्वबान्धवम् ॥१५॥ स तु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः। दृष्टिं प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये

कर्ता रामरूपधारी शेष हैं, वह आप अन्तर्यामीसे प्रबोधित होने पर दीप्त होजाते हैं अत एव वह आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये उत्कण्ठित होकर जगत्की प्राणवायु रूप सूत्रात्मा बनकर अपने स्वरूपका आपके वाक्यसे चिन्तवन करते हैं अर्थात् मैं परमेश्वरसे अनन्य हूँ और देवकार्य करनेके लिये अवतीर्ण हुआ हूँ इसप्रकारकी आलोचना करते हैं,इस लिये वे त्रलोकके स्तम्भकी समान (विष्टम्भ)हैं वह प्रलम्ब आदिको उनका वध कर अपना पराक्रम प्रकट करनेके लिये जाते हैं, उनका आयुध क्या है,ऐसी जिज्ञासा होने पर लिखा है,कि-सब क्षिति अर्थात् नाशसाधक आयुध इनके हाथमें ही रहते हैं, इस लिये उन्होंने अपनी मुट्ठीसे ही उसको मारडाला। विष्णु सर्वदेवमय हैं अत एव यहाँ पर उनकी स्तुति सोमरूपमें की है) १२ प्रलम्बने गोपालका वेष धारण कर लिया था और वह वनके पुष्पोंसे विभूषित होरहा था, उस समय वह हास्य करके और खेल करके उन दोनों वीरोंको लोभमें डालना चाहने लगा ॥ १३ ॥ वह दानवोंमें श्रेष्ठ अमानुष प्रलम्ब मनुष्य शरीर धारण कर उनके मध्यमें निःशंक होकर घुस गया ॥ १४ ॥ सब गोपोंने उस गोपालवेषधारीको अपना बंधु गोपाल मान कर उस देवशत्रुके साथ क्रीड़ाकी १५ वह प्रलम्ब गोपालवेष धारण कर कोई अवसर ढूंढना चाह रहा था, उसने बलराम और कृष्ण पर क्रूर

च दारुणाम् ॥ १६ ॥ अविषह्यं ततो मत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम् ।
रौहिणेयवधे यत्नमकरोद्दानवोत्तमः । हरिणा क्रीडितं नाम बाल-
क्रीडनकं ततः । प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन ॥१८॥
कृष्णः श्रीदामसहितः पुप्लुवे गोपसूनुना । संकर्षणस्तु प्लुतवान्
प्रलम्बेन सहानघ ॥ १६ ॥ गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैरपरैः
सह । प्रद्रुता लंघयन्तो वै तेऽन्योन्यं लघुविक्रमाः ॥ २० ॥
श्रीदाममजयत् कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः । गोपालैः कृष्ण-
पक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः ॥ २१ ॥ ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं
संहर्षात् सहसा द्रुताः । भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरराग-
मन् ॥ २२ ॥ संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः । द्रुतं
जगाम विमुखः सचन्द्र इव तोयदः ॥ २३ ॥ स भारमसहंस्तस्य

दृष्टि की१६उस दानवश्रेष्ठने श्रीकृष्णको अविषह्य मान कर बल-
रामजीको मारनेका यत्न किया१७तदनन्तर श्रीकृष्ण बालक्रीड-
नक नामक खेल खेलनेलगे,तदनंतर वे सब दो२ मिल कर दौड़
लगाने लगे१८श्रीकृष्ण गोपपुत्र सुदामाके साथ दौड़ लगाने लगे
और हे निष्पाप! प्रलम्ब संकर्षणके साथ दौड़ लगाने लगा १६
दूसरे गोपाल और २ गोपालोंके साथ दो २ का जोड़ बद कर
फुर्तीसे पराक्रम कर एक दूसरेको पीछे छोड़नेकी इच्छासे दौड़ने
लगे २० श्रीकृष्णने श्रीदामाको जीत लिया और बलरामजीने
रोहिणीपुत्र बलरामजीको जीत लिया और कृष्णके पक्षके दूसरे
गोपालोंने दूसरे गोपालोंको जीत लिया २१ तदनन्तर वे सब
जिनसे हारगए उन सबको हर्षमें भर अपने कंधेके ऊपर चढ़ा एक
मर्यादा बाँध तहाँसे भाण्डीर पर आनेका नियम कर दौड़े२२वह
दानव शीघ्रतासे संकर्षणको अपने कंधे पर धारणकर भागा उस
समय वह उलटा मुख कर भागता हुआ चन्द्रमा वाला मेघसा
भागता दीखता था२३वह महाकाय राक्षस बुद्धिमान् रोहिणीपुत्र

रौहिणेयस्य धीमतः । ववृधे सुमहाकायः शक्राक्रान्त इवाम्बुदः २४ स भाण्डीरवटप्रख्यं दग्धांजनगिरिप्रभम् । स्वं वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥२५॥ पंचस्तवकयुक्तेन मुकुटेनार्कवर्चसा । दीप्यमानाननो दैत्यः सूर्याक्रांत इवाम्बुदः ॥ २६ ॥ महाननो महाग्रीवः सुमहानन्तकोपमः । रौद्रः शकटचक्राक्षो नामयंश्चरणैर्महीम् ॥ २७ ॥ स्रग्दामलम्बाभरणः प्रलंबाम्बरभूषणः । वीरः प्रलम्बः प्रययौ लम्बतोय इवांबुदः ॥ २८ ॥ स जहाराथ वेगेन रौहिणेयं महासुरः । सागरोपप्लवगतं कृत्स्नं लोकमिवांतकः २९ ह्रियमाणः प्रलंबेन स तु संकर्षणो बभौ । उह्यमान इवाकाशे कालमेघेन चन्द्रमाः ॥ ३० ॥ स संदिग्धमिवात्मानं मेने संकर्ष-

के भारको न सह सकनेके कारण इन्द्रसे आक्रान्त हुए पर्वतकी समान फैलने लगा ॥ २४ ॥ फिर उस दानवश्रेष्ठ प्रलम्बने अपने शरीरको भाण्डीरवटकी समान और जले हुए अंजनगिरिकी समान (बढ़ाकर) दिखाया ॥ २५ ॥ उस समय उसके मुख पर पाँच कँगूरों वाला मुकुट लग रहा था उस समय सूर्यकी समान कान्ति वाले मुकुटसे प्रदीप्त मुख वाला दैत्य सूर्यसे दबे हुए बादलकी समान दीख रहा था ॥ २६ ॥ चौड़े मुख वाला लम्बी गर्दन वाला और गाड़ीके पहियेके अक्षकी समान मुख वाला प्रलम्ब चरणोंसे पृथ्वीको दबाता हुआ (चलने लगा) ॥ २७ ॥ उसके गलेमें लम्बी२मालाएँ पड़ी हुई थीं और वह लम्बे वस्त्रके आभूषणको धारण कर रहा था, इस प्रकार चलता हुआ वीर प्रलम्ब जल बरसाते हुए मेघकी समान प्रतीत होता था ॥ २८ ॥ जैसे समुद्रमें डूबते हुए लोकको प्रलयके समय यमराज लेजाते हैं इसी प्रकार वह असुर बलदेवजीको वेगपूर्वक लेजाने लगा २९ जैसे कालमेघ चन्द्रमाको उड़ाकर लेजाता है इसी प्रकार बलदेवजी भी राक्षसके उड़ कर भागने पर शोभा पाने लगे ॥ ३० ॥ उस

णस्तदा । दैत्यस्कन्धगतः श्रीमान् कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥
ह्रियेऽहं कृष्ण दैत्येन पर्वतोदग्रवर्ष्मणा । प्रदर्शयित्वा महतीं मायां
मानुषरूपिणीम् ॥३२। कथमस्य मया कार्यं शासनं दुष्टचेतसः ।
प्रलम्बस्य प्रवृद्धस्य दर्पाद् द्विगुणवर्चसः ॥ ३३ ॥तमाह सस्मितं
कृष्णः साम्ना हर्षकलेन गौ । अभिज्ञो रौहिणेयस्य वृत्तस्य च
बलस्य च ॥ ३४ ॥ अहोऽयं मानुषो भावो व्यक्तमेवानुपाल्यते ।
यस्त्वं जगन्मयं देवं गुह्याद् गुह्यतरं गतः ॥ ३५ ॥ स्मर नाराय-
णात्मानं लोकानां त्वं विपर्यये । अवगच्छात्मनात्मानं समुद्राणां
समागमे ॥ ३६ ॥ पुरातनानां देवानां ब्रह्मणः सलिलस्य च ।
आत्मवृत्तप्रभावाणां संस्मराद्यं च वै पुनः ॥ ३७ ॥ शिरः खं ते

समय संकर्षणने अपनेको सन्देहमें समझा और दानवके कंधे
पर बैठे २ उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, कि–॥ ३१ ॥ हे कृष्ण!यह
पर्वतकी समान उग्र शरीर वाला अपनी बड़ी भारी मायासे
मनुष्यका रूप धारण कर मुझे उड़ा कर लिये जाता है ॥ ३२ ॥
यह प्रलम्ब बढ़ गया है और दर्पके कारण इसका तेज भी दुगना
होरहा है अतः मैं इस दुरात्माको किस प्रकार दण्ड दूँ (यह
बताइये) ॥ ३३ ॥ तब बलरामके वृत्तान्त और बलको
जानने वाले श्रीकृष्णने मुस्कुरा कर बलरामजीसे हर्ष उपजाने
वाली बात समझाते हुआ कहा, कि–॥ ३४ ॥ अहा!यह तो
तुम मनुष्योंके सा भावको ही (स्पष्टरूपसे) दिखाने लगे, तुम
जगत्में व्याप्त (आत्म-) देवके गुह्यसे गुह्य तत्त्वको जानतेहो
और स्वयं तत्स्वरूप हो ३५ लोकोंके प्रलयके समयके अपने
नारायणरूपका तुम विचार करो और समुद्रोंके संमिलनके समय
के अपने आत्माका विचार करो अर्थात् अपने प्रलयकालीन
स्वरूपका स्मरण करो ३६ प्राचीन देवता ब्रह्मा जल और अपने
शरीरको उत्पन्न करने वाले अपने स्वरूपका स्मरण करो ३७

जलं मूर्तिः क्षमा भूर्दहनो मुखम् । वायुर्लोकायुरुच्छ्वासो मनः स्रष्टा त्वभूत्तव ३८ सहस्रास्यः सहस्राङ्गः सहस्रचरणेक्षणः।सहस्रपद्मनाभस्त्वं सहस्रांशुधरोऽरिहा ॥ ३९ ॥ यत्त्वया दर्शितं लोके तत् पश्यन्ति दिवौकसः । यत्त्वया नोक्तपूर्वं हि कस्तदन्वेष्टुमर्हति ४० यद्वेदितव्यं लोकेऽस्मिंस्तत्त्वया समुदाहृतम् । विदितं यत्तवैकस्य देवा अपि न तद्विदुः ॥ ४१ ॥ आत्मजं ते वपुर्व्योम्नि न पश्यंस्यात्मसंभवम् । यत्तु ते कृत्रिमं रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥४२॥ देवैर्न दृष्टश्चान्तस्ते तेनानन्त इति स्मृतः । त्वं हि सूक्ष्मो महानेकः सूक्ष्मैरपि दुरासदः ॥ ४३ ॥ त्वय्येव जगतः स्तम्भे शाश्वती

उस समय आकाश तुम्हारा शिर था और जल तुम्हारी मूर्ति थी और पृथ्वीकीसी क्षमता (सहनशीलता) तुममें थी और अग्नि तुम्हारा मुख था और संसारकी आयु वायु तुम्हारा उच्छ्वास था और तुम्हारा मन ही रचने वाला था ३८ उस समय तुम्हारे मुख चरण अंग और नेत्र अनन्त थे और हे अरिदमन ! तुम सैंकड़ों पद्मनाभ रूपमें विराजमान थे और तुमसहस्रों किरणोंको धारण कर रहे थे ३९ तुमने संसारमें जिस बातको दिखा दिया था उसी बातको देवता देख रहे हैं, जिस बातका तुमने (पहिले) वर्णन नहीं किया है उसका पता लगाने वाला और कोई नहीं है ४० इस संसारकी सारी जानने योग्य बातोंका तुमने उपदेश देदिया है, जिस बातको तुम एक जानते हो उसको देवता भी नहीं जानते ४१ आत्मासे उत्पन्न हुए आनेमें प्रकट तुम्हारे (आत्म) स्वरूपको (हृदय) आकाशमें (मूढ व्यक्ति) नहीं देख सकते और तुम्हारे कृत्रिम रूपकी ही देवता उपासना करते हैं ४२ देवताओंने भी तुम्हारा अन्त (पार) नहीं पाया है इस से तुम अनन्त कहलाते हो तुम केवल सूक्ष्मस्वरूप हो महत्स्वरूप हो सूक्ष्म भी आपको कठिनतासे पासकते हैं ४३ तुम जगत्के

जगती स्थिता । अचला प्राणिनां योनिर्धारयत्यखिलं जगत् ४४ चतुः सागरयोनिस्त्वं चातुर्वर्ण्यविभागवित् । चतुर्युगेशो लोकानां चातुर्होत्रफलाशनः ॥४५॥ यथाऽहमपि लोकानां तथा त्वं तच्च मे मतम् । उभावेकशरीरौ स्वो जगदर्थे द्विधाकृतौ ॥ ४६ ॥ अहं वा शाश्वतः कृष्णस्त्वं वा शेषः पुरातनः । लोकानां शाश्वतो देवस्त्वं हि शेषः सनातनः । आवयोर्देहमात्रेण द्विधेदं धार्यते जगत् ॥ ४७ ॥ अहं यः स भवानेव यस्त्वं सोऽहं सनातनः । द्वावेव विहितौ ह्यावामेकदेहौ महाबलौ॥४८॥तदास्से मूढवत्त्वं किं प्राणेन जहि दानवम्।मूर्ध्नि देवरिपुं दैत्यं वज्रकल्पेन मुष्टिना ४९ वैशम्पायन उवाच । संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेयः पुरात-

स्तंभरूप हो। यह शाश्वती पृथ्वी तुममेंही प्रतिष्ठित रहती है और यह प्राणियोंकी योनि अचल पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रही है ४४ चारों समुद्र तुम्हारे ही स्वरूप हैं और तुम चातुर्वर्ण्य (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों) का विभाग करने वाले हो और तुम चारों युगोंमें मनुष्योंके चातुर्होत्रके फलका उपभोग करने वाले हो ४५ जैसे मैं संसारके लिये हूँ, इसी प्रकार तुम भी हो, यह मेरा मत हैं,हम दोनों एक आत्मा हैं और जगत् का हित करनेके लिये दो शरीरोंमें बँट गए हैं ॥ ४६ ॥ मैं शाश्वत कृष्ण हूँ और तुम पुरातन शेष हो, तुम लोकोंके शाश्वत देव और सनातन शेष हो हम देहभेदसे इस जगत्को दो प्रकारसे धारण करते हैं ४७ जो मैं हूँ वह तुम हो और जो तुम हो मैं भी वही सनातन हूँ हम दोनों महाबली एक आत्मा हैं और दो देहोंमें विभक्त हैं ४८ इस लिये अब तुम मूढकी समान क्यों बैठे हुए हो अब तुम प्राणबल लगा कर अपनी वज्रकी समान मुष्टिका देवताओंके शत्रु दानवके मस्तक पर प्रहार करके उसको मार डालो ४९ वैशम्पायनजीने कहा, कि-जब

नम् । बलेनापूर्यत तदा त्रैलोक्यान्तरचारिणा ॥५०॥ ततः प्रलंबं दुर्वृत्तं बुबुधे स महाभुजः । मुष्टिना वज्रकल्पेन मूर्ध्नि चैनं समाहनत् ॥५१॥ तस्योत्तमांगं स्वे काये विकपालं विवेश ह । जानुभ्यां चाहतः शेते गतासुर्दानवोत्तमः ॥ ५२ ॥ जगत्यां विप्रकीर्णस्य तस्य देहो बभौ तदा। प्रलम्बस्याम्बरस्थस्य मेघस्येव विदीर्यतः ५३ तस्य भग्नोत्तमांगस्य देहात् सुस्राव शोणितम् । बहुगैरिकसंयुक्तं शैलशृङ्गादिवोदकम् ॥ ५४ ॥ तं निहत्य प्रलम्बन्तु संहृत्य बलमात्मनः । पर्यष्वजत वै कृष्णं रौहिणेयः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥ तं तु कृष्णश्च गोपाश्च दिविस्थाश्च दिवौकसः । तुष्टुवुर्निहते दैत्ये जयाशीर्भिर्महाबलम् ॥ ५६ ॥ बलेनायं हतो दैत्यो बालेना-

श्रीकृष्णने बलदेवजीको उनके प्राचीन रूपका स्मरण दिलाया तब उनमे त्रिलोकीमें वर्तमान (सारा) बल आगया ५० तदनन्तर उस महाभुजने अपनी वज्रकी समान मुट्ठी बाँध कर उस दुराचारी प्रलम्बके मस्तक पर प्रहार किया ५१ तब तो उसका शिर उसके शरीरमें ही घुस गया और उसकी खोपड़ी ही बाकी रह गई और वह राक्षस घुटनोंके बल पृथ्वीमें गिरकर मर गया जैसे आकाशमें तित्तर वित्तर पड़ा हुआ मेघ दिखाई देता है, इसी प्रकार पृथ्वीमें फैल कर पड़ा हुआ दानवोत्तम प्रलम्ब दिखाई देता था ५३ जैसे पर्वतके शिखरपरसे गेरू मिला जल बहता है तैसे ही उस टूटे हुए शिर वाले राक्षसके शरीरमेंसे रुधिर बहने लगा५४ प्रलम्बके मारनेके बाद बलदेवजीने अपने बलको घटा लिया, फिर वह रोहिणीनन्दन श्रीकृष्णसे जाकर चिपट गए ५५ दैत्यका संहार करनेके अनन्तर कृष्ण गोप और स्वर्गमें विराजमान देवता भी बलदेवजीकी स्तुति करने लगे ५६ उस समय देवताओंकी कहीं हुई आकाशवाणियें कहने लगीं कि-इस सरल कर्म योग्य बालकने बलपूर्वक इस दैत्यको

क्लिष्टकर्मणा । विवदन्त्यशरीरिण्यो वाचः सुरसमीरिताः ५७
बलदेवोत नामास्य देवैरुक्तं दिवि स्थितैः । बलं तु बलदेवस्य
तदा भुवि जना विदुः ॥ ५८ ॥ प्रलम्बे निहते दैत्ये देवैरपि
दुरासदे ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां
प्रलम्बवधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच । तयोः प्रवृत्तयोरेवं कृष्णस्य च बलस्य

मार डाला है ५७इस लिये स्वर्गमें देवताओंने इसका नाम बलदेव रक्खा है, देवताओंसे भी दुरासद प्रलम्बके मारे जाने पर पृथ्वीके मनुष्य बलदेवजीके बलको जानने लगे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त १४ .

(इस अध्यायमें और अगले अध्यायमें गोवर्धनोद्धारलीला का वर्णन है । श्रुतिमें लिखा है, कि—"आग्रावगिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं व्रजमाजिघर्ति मायिनि । शतं वा यस्य प्रचरन स्वे दमे संवर्तयन्तो विचवर्तयन्नहेति" जिसके (दम) घरमें सैंकड़ों वायुओं से अधिक संवर्तन करने वाले अर्थात् मलग करने वाले मेघ फिरते हैं । उस इन्द्रने पत्थरोंके यज्ञकी पूजाके योग्य (अर्थात् अहन्य) होने पर मायी अर्थात् मायाके द्वारा मनुष्य बने हुए श्रीकृष्णके ऊपर व्रजमें श्रेष्ठ (वरिष्ठ) वज्र वाली वृष्टि वरसाई थी, क्यों कि वह मायी ईश्वर यज्ञको विपरीत करना चाहिते थे । अर्थात् इन्द्रयागके लिये लाई हुई सामग्रियोंसे वह गिरियाग कराने लगे थे इस लिये इन्द्रने व्रज पर सात दिन घोर वर्षा वरसाई थी । यह बात पुराणोंमें प्रसिद्ध है । मंत्रमें लिखा है, कि इन्द्रके घरमें मेघ फिरते थे इसका तात्पर्य यह है, कि—"वायुर्वेन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानम्" अर्थात् श्रुतिमें कहा है, कि—वायु वा इन्द्र अन्तरिक्षस्थानीय हैं ।) वैशम्पायनजीने कहा, कि—श्रीकृष्ण और बलरामको वन

च । वने विचरतोर्मासौ व्यतीयातौ स्म वार्षिकौ ॥ १ ॥ व्रज-माजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रुवतुस्तदा । प्राप्तं शक्रमहं वीरौ गोपां-श्चोत्सवलालसान् ॥ २ ॥ कौतूहलादिदं वाक्यं कृष्णः प्रोवाच तत्र तान् । कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः ॥ ३ ॥ तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह । श्रूयतां तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते ॥ ४ ॥ देवानामीश्वरः शक्रो मेघानां चारि-सूदन । तस्य चायं मखः कृष्ण लोकनाथस्य शाश्वतः ॥ ५ ॥ तेन संचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिताः । तस्यैवाज्ञाकराः सस्यं जनयन्ति नवाम्बुभिः ॥ ६ ॥ मेघस्य पयसो दाता पुरुहूतः पुर-न्दरः । संप्रहृष्टः स भगवान प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥ ७ ॥ तेन संपादितं सस्यं वयमन्ये च मानवाः । महोत्सवं प्रयुञ्जानास्तर्पया-

में विचरते २ वर्षा ऋतुके दो महीने बीत गए ॥ १ ॥ वे दोनों वीर जब ब्रजमें लौटे तो उन्होंने सुना कि-इन्द्रोत्सवका दिन आगया है और गोप उत्सव मनानेके लिये उत्कण्ठित हैं ॥ २ ॥ उस समय कृष्णने कौतूहलमें होकर उनसे कहा, कि-यह इन्द्रो-त्सोव क्या वस्तु है, कि-जिसके कारण तुम ऐसे हर्षमें भर रहे हो ॥ ३ ॥ तब एक वृद्ध गोपने यह बात कही कि-हे तात ! इन्द्र की ध्वजाका जिस कारण पूजन किया जाता है उसको तुम सुनो ॥ ४ ॥ हे शत्रुओंको उत्पीड़ित करने वाले श्रीकृष्ण ! इन्द्र देवताओंके ईश्वर हैं और मेघोंके भी ईश्वर हैं हे कृष्ण ! ऐसे लोकनाथ इन्द्रका ही यह यज्ञ शाश्वत (सर्वदा) से होता आरहा है ॥ ५ ॥ उनके प्रेरणा करने पर उनके आयुध (वज्रों) से भूषित उनकी आज्ञामें चलने वाले मेघ नया जल वरसा कर अन्न को उत्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥ पुरुहूत इन्द्र मेघ लाने वाले और जल वरसाने वाले हैं, वह भगवान् प्रसन्न होने पर सारे जगत्को तृप्त करते हैं ॥ ७ ॥ हम तथा दूसरे मनुष्य उनके दिये हुए अन्न

मश्च देवताः ॥ ८ ॥ देवे वर्षति लोकेऽस्मिंस्ततः सस्यं प्रवर्धते । पृथिव्यां तर्पितायान्तु सामृतं लक्ष्यते जगत् ॥ ६ ॥ क्षीरवत्यस्त्वमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः । तेन संवर्धिता गावस्तृणैः पुष्टाः सपुङ्गवाः ॥ १० ॥ नासस्या नातृणा भूमिर्न क्षुधार्दितो जनः । दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ॥११॥ दुदोह सवितुर्गा वै शक्रो दिव्याः पयस्विनीः । ताः क्षरन्ति नवं क्षीरं मेध्यं मेघौघधारितम् ॥१२॥ वायवीरितं तु मेघेषु करोति निनदं महत् । जवेनावर्तितं चैव गर्जतीति जना विदुः ॥ १३ ॥ तस्य

से जीवित रहते हैं अत एव महोत्सव करके देवताओंको तृप्त करेंगे ॥ ८ ॥ देव (राज इन्द्र) के बरसने पर अन्न उत्पन्न होता है और (जलसे) पृथिवीके तृप्त होने पर सब जगत् अमृतमय (जलमय) दीखने लगता है ॥ ६ ॥ और वत्स वाली गौओं का दूध बढ़ जाता है और वे सुखमें होजाती हैं और तृण खाकर बैल और गौएँ भी पुष्ट होजाती हैं ॥ १० ॥ जिस देशमें वर्षा बरसाने वाले मेघ दीखते हैं, उस देशमें भूमि अन्नरहित और तृणरहित नहीं दीखती है और कोई मनुष्य भूखा नहीं दीखता है ॥ ११ ॥ इन्द्र सूर्यकी पय देने वाली (गौओं) किरणोंको दुहता है, वे मेघोंके धारण किये हुए पवित्र और नवीन (क्षीर) जलको बरसाती है (तात्पर्य यह है, कि हमारी प्राणसे सहायता पाने वाली जठराग्नि जैसे जलका शोषण करती है और वह जल बलसाध्य कर्म करने पर रोमकूपोंके द्वारा प्रस्वेद रूपसे निकलता है इसी प्रकार वायुकी सहायतासे सूर्य भूमि आदिमें वर्तमान जलको सोख लेता है वह इन्द्रके द्वारा बलसाध्य निरन्तर भ्रमणरूप कार्यमें प्रयुक्त होकर किरणोंके द्वारा चर्मकोशरूप मेघोंमें वमन करता है उन मेघोंको भेद कर इन्द्र वर्षा बरसाया करता है)१२वह मेघोंमेंके वायुके प्रेरणा करने पर निनाद करता है और

चैवोद्यमानस्य वायुयुक्तैर्वलाहकैः । वज्राशनिसमाः शब्दाः भवन्ति नगभेदिनः ॥ १४ ॥ तज्जलं वज्रनिष्पेषैर्विमुञ्चन्ति नगोगतैः । बहुभिः कामगैर्मेघैः शक्रो भृत्यैरिवेश्वरः॥ १५ ॥ क्वचिद्दु दुर्दिनसंकाशैः कचिच्छिन्नाभ्रसंनिभैः । कचिद्भिन्नांजनाकारैः कचिच्छीकरवर्षिभिः ॥ १६ ॥ मण्डयन्तीव देवेन्द्रो विश्वमेवं नभोघनैः । क्वचिच्छीकरमुक्ताभं कुरुते गगनं घनः ॥१७॥ एवमेतत् पयो दुग्धं गोभिः सूर्यस्य वारिदः । पर्जन्यः सर्वभूतानां भवाय भुवि वर्षति॥१८॥यस्मात् प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य तु विभाविनी। तस्मात् प्रावृषि राजानः सर्वे शक्रं मुदायुताः । महैः सुरेशमर्चंति वयमन्ये च मानवाः ॥ १९ ॥ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जब वेगसे शब्द करता है, तब मनुष्य कहते हैं, कि इन्द्र गर्जना कर रहा है १३ जब वायु वाले मेघोंको लेकर उद्यत होजाता है तब उसके पर्वतको भी फोड़ देने वाले वज्र और अशनिकी समान शब्द होने लगते हैं १४ जैसे कोई अपने भृत्योंसे काम लेता है तैसे ही वह आकाशमें विराजमान वज्रसे पिसने वाले कामचारी मेघोंसे जल वरसवाया करता है १५ इन्द्र कभी दुर्दिन की समान मेघोंको रच कर और कभी छिटके हुए मेघोंको रच कर और कभी पिसे हुए अञ्जनकी समान काले मेघोंको रच कर इसप्रकार देवेन्द्र सारे आकाशको मण्डितसा कर देते हैं और कभी गगन सीकर और मुक्ताकी समान मेघोंकी आभा बनादेते हैं १७ (इन्द्र) इस प्रकार सूर्यकी गौओं (किरणों) से पय (जल) दुहा करता है, फिर जल देने वाला पर्जन्य संसारका कल्याण करनेके लिये पृथ्वी पर वर्षा वरसाया करता है १८ हे कृष्ण ! यह वर्षा ऋतु शक्रका पूजन करनेके लिये है अत एव वर्षा ऋतु में सब राजे प्रसन्न होकर उत्सव करके इन्द्रकी पूजा किया करते हैं, यह वात हमभी करते हैं तथा दूसरे मनुष्य भी किया करते हैं १९

वैशम्पायन उवाच । गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे । प्रभावज्ञोपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ वयं वनचरा गोपाः सदा गोधनजीविनः । गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च ॥ २ ॥ कर्षुकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् । गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत्त्रैविद्यमुच्यते ॥ ३ ॥ विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम् ।सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिणी । योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम् ॥ ४ ॥ द्वावनर्थौ स लभते प्रेत्य चेह च मानवः । कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं प्रथितं वनम् ५ वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं गतिर्ध्रुवा । श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन्

वैशम्पायनजीने कहा, कि—गोपवृद्धके इन्द्रके उत्सव करनेके विचारको सुन कर दामोदर इन्द्रके प्रभावको जानते थे तब भी उन्होंने कहा कि—१ हम वनमें विचरण करने वाले गोप हैं और सदा गोधनसे अपनी आजीविका चलाते हैं अतः गौ पर्वत और वनोंकोही हमें अपना देवता समझना चाहिये २ किसानोंका कृषि जीवन है और बिक्रीकी वस्तु दूकानदारोंका जीवन है और गौएँ हमारा परम जीवन हैं यह वार्तारूप विद्याके तीन भेद हैं ३ जो जिस विद्यासे काम लेता है उसके लिये वही विद्या परमदेवतारूप है उसके लिये वही पूज्य अर्चनीय और उसका उपकार करने वाली है जो दूसरेका फल खाकर दूसरेका सत्कार करता है ४ वह मनुष्य इस लोकमें और मरनेके बाद परलोकमें भी दो अनर्थोंका भागी होता है कृषि वाली सीमा प्रशस्त होती है और सीमा वाला वन प्रशस्त होता है ५ और जिनके समीप में वन होता है ऐसे पर्वत प्रशस्त (श्रेष्ठ) होते हैं और वह हमारी निश्चित गति हैं और हमने सुना है, कि—इस वनमें पर्वत इच्छानुसार रूप धारण कर लिया करते हैं और वे अनेक रूपों

कामरूपिणः । प्रविश्य तांस्तांस्तनवो रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥६॥
भूत्वा केसरिणः सिंहा व्याघ्राश्च नखिनां वराः । वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिदः ॥ ७ ॥ यदा चैषां विकुर्वन्ति ते वनालयजीविनः । घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तान् पौरुषादेन कर्मणा ८ मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः । गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने ॥ ६ ॥ तन्मह्यं रोचते गोपा गिरियज्ञः प्रवर्त्तताम् । कर्म कृत्वा सुखस्थाने पादपेऽप्यथवा गिरौ ॥ १० ॥ तत्र हत्वा पशून् मेध्यान वितत्यायतने शुभे । सर्वघोषस्य सन्दोहः क्रियतां किं विचार्यते ॥ ११ ॥ तं शरत्कुसुमापीड़ाः परिवार्य प्रदक्षिणम् । गावो गिरिवरं सर्वास्ततो यान्तु पुनर्व्रजम् ॥१२॥

को धारण कर अपने शिखरों पर भ्रमण करते रहते हैं ६ वे केसर वाले सिंह और नाखूनधारियोंमें श्रेष्ठ व्याघ्र बन कर वनको काटने वाले प्राणियोंको त्रस्त कर अपने वनोंकी रक्षा करते रहते हैं ॥७॥ जब वनालय (भील आदि) और वनजीवी (गोप तक्ष) आदि इन वनोंमें विकार (उपद्रव) मचाते हैं तब उन दुर्वृत्त पुरुषोंको वे सिंहकी समान कर्म (मनुष्यभक्षणं) करके उनको मार डालते हैं ॥८॥ विप्र मन्त्रयज्ञमें परायण रहते हैं और कृषक सीतायज्ञमें परायण रहते हैं अर्थात् लांगलपद्धति की पूजा करते रहते हैं और गोप गिरियज्ञ हैं अत एव हमें वनमें पर्वतकी पूजा करनी चाहिये ६ हे गोपो ! इस लिये मुझे गिरियज्ञ अर्थात् पर्वतका पूजन करनेकी प्रथा चलानी चाहिये, यह पूजा हमें सुखदायक वृक्ष अथवा पर्वत पर (कर्म) पूजन करके चलानी चाहिये १० मण्डप आदि बना कर वहाँ पर उस शुभ मण्डपमें पवित्र पशुओंका बलिदान करना चाहिये, अब तुम विचार क्या कर रहे हो, सब ग्रामको इकट्ठा करो और उनसे (चन्दा) दुहो॥ ११ ॥ तब शरद् ऋतुके कुसुमके आपीड़-

प्राप्ता किलेयं हि गवां स्वादुतोयतृणा गुणैः । शरत्प्रमुदिता रम्या गतमेघजलाशया ॥ १३ ॥ प्रियकैः पुष्पितैर्गौरं श्यामवाणा-सनैः क्वचित् । कठोरतृणमाभाति निर्मयूररुतं वनम् ॥ १४ ॥ विजला विमला व्योम्नि विवलाका विविद्युतः । विवर्धन्ते जल-धरा विदन्ता इव कुञ्जराः ॥ १५ ॥पटुना मेघनादेन नवतोयानु-कर्षिणा । पर्णोत्करघनाः सर्वे प्रसादं यान्ति पादपाः ॥ १६ ॥ सितवर्णाम्बुदोष्णीषं हंसचामरवीजितम् । पूर्णचन्द्रमलच्छन्नं साभिषेकमिवाम्बरम् ॥ १७ ॥ हंसैः प्रहसितानीव समुत्कृष्टानि सारसैः । सर्वाणि तनुतां यान्ति जलानि जलदक्षये ॥ १८ ॥ चक्रवाकस्तनतटाः पुलिनश्रोणिमण्डलाः । हंसलक्षणहासिन्यः

वाली गौएँ उस पर्वतश्रेष्ठकी, प्रदक्षिणा करके व्रजको फिर लौट आवें१२ अब गौओंके लिये स्वादिष्ट जल और तृण देने वाली शरद् ऋतु आगई है, यह अपने गुणोंसे प्रसन्न और रमणीय रहती है, इसमें मेघ जलाशय (समुद्र) पर चले जाते हैं १३ इस समय वन कदम्बके पुष्पोंसे गौरवर्णका प्रतीत होता है और बाणासनोंसे अर्थात् झिण्टीपुष्पोंसे श्वेत भी प्रतीत होता है और वनके तृण कठोर होगए और मयूरोंने बोलना भी बन्द कर दिया है ॥ १४ ॥ इस समय आकाशमें जलरहित निर्मल और बलाका (अशनिरहित) और बिजलीरहित मेघ दन्तहीन हाथियोंकी समान बढते हैं ॥ १५ ॥ नवीन जललाने वाले पटुतासे होने वाले मेघनादसे पत्तोंके निकलनेसे घने हुए वृक्ष प्रसन्न होरहे हैं १६ ॥ इस समय श्वेत बादलोंकी पगडी धारण करने वाला और हंसरूपी चामरोंसे डुलाया जाता हुआ और पूर्ण चन्द्ररूपी निर्मल छत्र वाला आकाश अभिषिक्तसा प्रतीत होता है १७ इस समय शरदृतुमें हंसोंसे मुस्कराते हुए और सारसोंसे उत्कृष्ट सब जल तनुता (सुडौलपन) को

पतिं यान्ति समुद्रगाः ॥ १९ ॥ कुमुदोत्फुल्लमुदकं ताराभिश्चित्र-
मम्बरम् । समगभ्युत्स्मयन्तीव शर्वरीष्वितरेतरम् ॥ २० ॥ मत्त-
क्रौंचावघुष्टेषु गत्तमानङ्गाखण्डषु । निर्विष्टरमणीयेषु वनेषु रमते
मनः ॥ २१ ॥ पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यश्च विकचोत्पलाः ।
केदाराः सरितश्चैव सरांसि च श्रियाऽज्वलन् ॥२२॥ पंकजानि
च ताम्राणि तथान्यानि सितान्यपि । उत्पलानि च नीलानि
भेजिरे वारिजां श्रियम् ॥ २३ ॥ मदं जहुः सितापाङ्गा मन्दं
ववुर्धिरेऽनिलाः । अभवद्व्यभ्रमाकाशमभूच्च निभृतोऽर्णवः ॥२४
ऋतुपर्यायशिथिलैर्वृत्तनृत्यसमुज्झितैः । मयूराङ्गरुहैर्भूमिर्बहुनेत्रेव
लक्ष्यते ॥ २५ ॥ स्वर्णकमलिनैस्तीरैः काशपुष्पलताकुलैः । हंस-

प्राप्त होरहे हैं १८ इस समय चक्रवाकरूपी स्तन तट वाली और
पुलिनरूपी श्रोणिमण्डल वाली और हंसोंकी समान हँसनेवाली
समुद्रगामिनी नदियें अपने पति समुद्रके पास चली जारही
हैं १९ शरत्कालीन रात्रियोंमें खिले हुए कुमुदों वाला जल और
तारोंसे चित्रित आकाश यह दोनों परस्पर स्पर्धासी कर रहे
हैं २० विवाहितकी समान रमणीय धान्यमञ्जरीके पाकसे पीले
पड़े हुए (पौधों) पर बैठ कर शब्द करने वाले क्रौंचोंके घोष
करनेसे कलकल करते हुए रमणीय वनोंमें मन लग जाता है २१
इस समय बावड़ी तड़ाग और विकच कमल क्यारियें नदियें
और सरोवर लक्ष्मीसे दिप रहे हैं २२ इस समय लाल कमल
और दूसरे स्वेतकमल और नीले कमल जलसम्बन्धी शोभाको
धारण कर रहे हैं २३ इस समय मयूरोंमें मद जाता रहा है
और मन्द २ पवन चलने लगा है और आकाश बादलोंसे शून्य
होगया है और आज कल समुद्र पूर्ण रहता है ॥ २४ ॥ वर्षा
ऋतुके बदलनेसे शिथिल हुए और नृत्य समाप्त करनेके अन-
न्तर गिरे हुए मोरोंके परोंसे भूमि अनेक नेत्रों वाली मालूम पड

सारसविन्यासैर्यमुना भाति शोभना ॥ २६ ॥ कलमापाकरम्येषु
केदारेषु वनेषु च ।सस्यादा जलजादाश्च मत्ता विरुरुवुः खगाः२७
सिषिचुर्यानि जलदा जलेन जलदागमे । तानि सस्यान्यबालानि
कठिनत्वं गतानि वै ॥ २८ ॥ त्यक्त्वा मेघमयं वासः शरद्गुण-
विदीपितः । एष वै विमले व्योम्नि हृष्टो वसति चन्द्रमाः २९
क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः। वनानां द्विगुणा
लक्ष्मीः सस्यैर्गुणवती मही ॥३०॥ ज्योतींषि घनमुक्तानि पद्म-
वन्ति जयानि च । मनांसि च मनुष्याणां प्रसादमुपयान्ति वै३१
प्रज्वलन् सविता व्योम्नि निर्मुक्तो जलदैर्भृशम् । शरत्प्रज्वलितं
तेजस्तीक्ष्णरश्मिर्विशोषयन् ॥ ३२ ॥ नीराजयित्वा सैन्यानि

रही है ॥२५॥ आज कल काश पुष्प और लताओंसे घिरे हुए
तथा अपनी काँपसे मलिन तटोंके कारण और यत्र तत्र बैठे
हुए हंस और सारसोंसे यमुना बड़ी शोभायमान लग रही है२६
इस समय पकने पर रमणीय दीखते हुए वन और क्यारियोंमें
मदमत्तहुए जलमें उत्पन्न हुए पदार्थोंका भक्षण करने वाले
और सस्योंका भक्षण करने वाले पक्षी मत्त होकर मनोहर शब्द
कर रहे हैं २७ वर्षा ऋतुमें मेघोंने जिनको जलसे सींचा था वे
तरुण धान्य इस समय कठिन होगए हैं ॥ २८ ॥ यह शरद्
ऋतुके गुणोंसे विदीपित और मेघमें रहना छोड़ने वाला चन्द्रमा
निर्मल आकाशमें प्रसन्नतासे वस रहा है २९ इस समय गौएँ
दुगना दूध देने लगी हैं और वृषभ दुगने मत्त होगए हैं और
वनोंकी शोभा दुगनी होगई है और पृथिवी सस्योंसे गुणवती
होरही है ॥ ३० ॥ अब मेघोंने ज्योतियोंको भोग लिया (अतः
वे स्पष्ट दीखने लगी हैं) और जलोंमें कमल निकल आये हैं
और मनुष्योंके मन भी प्रसन्न होरहे हैं ३१ इस समय मेघोंसे
मुक्त हुआ सूर्य अपने शरद् ऋतुके कारण प्रज्वलित हुए तेजको

प्रयान्तु विजिगीषवः । अन्योन्यराष्ट्राभिमुखाः पार्थिवाः पृथिवी-क्षितः ॥ ३३ ॥ बन्धुजीवाभिताम्रासु चक्रांकवतीषु च । मनस्तिष्ठति कान्तासु चित्रासु वनराजिषु ॥ ३४ ॥ वनेषु च विराजन्ते पादपा वनशोभिनः । असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥३५॥ इषुसाह्वा निकुम्भाश्च प्रियकाः स्वर्णकास्तथा । सृमराः पंचुकाश्चैव केतक्यश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥ व्रजेषु च विशेषेण गर्गरोद्गारहासिषु शरत्प्रकाशयोषेव गोष्ठेष्वटति रूपिणी नूनं त्रिदशभूयिष्ठं मेघकालसुखोषितम् । पतत्रिकेतनं देवं बोधयन्ति दिवौकसः ॥ ३८ ॥ शरद्येव सुसस्यायां प्राप्तायां प्राव्रृषः क्षये । नीलचन्द्रार्कवर्णैश्च रचितं बहुभिर्द्विजैः ॥३९॥ फलैः मवा-

सृष्टि कर रहा है और वह रश्मियोंको तीक्ष्ण कर रसोंको सोख रहा है ३२ इस समय पृथिवीके क्षय करने वाले राजे जीतनेकी इच्छासे अपनी सेनाको नीराज (स्वतन्त्र) कर एक दूसरेके राज्यकी ओर जारहे हैं ॥ ३३ ॥ रक्त पुष्पोंसे रमणीय लगने वाली और कमल लगी हुई विचित्र और कमनीय वन-राजियोंमें चित्त आसक्त होजाता है ॥ ३४ ॥ इस समय वनको सुशोभित करने वाले खिले हुए विजैसारके और कोविदारके वृक्ष शोभा पारहे हैं ३५ इस समय वाणासन (भाथे)हाथियों के गण्डस्थल, कदमके वृक्ष, स्वर्णक सृमरजातिके मृग पञ्चक (शाकविशेष) और केतकीके वृक्ष (शोभा पारहे हैं)॥ ३६ ॥ गर्गरके उद्गारसे हँसने वाले गोष्ठोंमें तो शरद् ऋतु मानो रूप धारण कर ही विचर रही हैं ३७ इस समय देवता देवताओंकी वृद्धि करने वाले, वर्षा कालमें सुखपूर्वक शयन करने वाले और गरुडध्वज भगवानको जगाते हैं ॥ ३८ ॥ इस समय वर्षा ऋतु बीत गई है और धान्य वाली शरद ऋतु आगई है, और इस समय नीले तथा चन्द्रमा और सूर्यकी समान वर्ण वाले नाना

लैश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम् । भवनाकारविटपं लतापरममण्डि-
तम् ॥ ४० ॥ विशालमूलावनतं पन्नगाभोगमण्डितम् । अर्चयामो
गिरिं देवं गाश्चैव च विशेषतः ॥ ४१ ॥ सावतंसैर्विषाणैश्च
बर्हापीडैश्च दंशितैः । घण्टाभिश्च मलम्बाभिः पुष्पैः शारदिकै-
स्तथा ॥ ४२ ॥ शिवाय गावः पूज्यन्तां गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ।
पूज्यतां त्रिदशैः शक्रो गिरिरस्माभिरिज्यताम् ॥ ४३ ॥ कारयि-
ष्यामि गोयज्ञं बलादपि न संशयः । यद्यस्ति मयि वः प्रीतिर्यदि
वा सुहृदो ह्यहम् ॥ ४४ ॥ गावो हि पूज्याः सततं सर्वेषां नात्र
संशयः । यदि साम्ना भवेत् प्रीतिर्भवतां वै भवाय च । एत-
न्मम वचस्तथ्यं क्रियतामविचारितम् ॥ ४५ ॥ षोडशोऽध्यायः

प्रकारके पत्तियोंने और फल तथा प्रवालोंने आकाशको इन्द्रचाप वाले मेघको समान रच दिया है, इस समय वृक्षोंने भवनोंके आकारको धारण कर लिया है और वह बड़ी २ लताओंसे मण्डित होरहे हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनकी विशाल जड़ें फैल गई हैं और उनमें सर्प रहने लगे हैं (ऐसे २ पदार्थोंसे विभूषित) पर्वतकी और गौओंकी हमको पूजा करना चाहिये ॥ ४१ ॥ (इस समय) सींगोंमें भूषण लगा कर और सींगोंको मोरपत्रसे भूषित करके और लटकती हुई घण्टियोंको बाँध कर गौओंका पूजन करना चाहिये और गिरियज्ञका भी प्रचार करना चाहिये इन्द्रकी पूजा तो देवता करते रहें, हमें तो पर्वतकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मैं तुम्हारा मित्र हूँतो मैं तुमसे बलपूर्वक गोयज्ञ करवालूँगा ४४ हम सबोंके लिये तो गौएँ ही सदा पूज्य हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, यदि तुम्हें मेरे समझानेसे इस बातको करनेकी रुचि हो गई हो तो तुम अपना वैभव बढ़ानेके लिये मेरे सत्य वचनको बिना विचारे कर डालो४५सोलहवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन उवाच । दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोपु जीविनः । तद्वागमृतमश्नानाः प्रत्यूचुरविशंकया ॥ १ ॥ तवैषा बाल महती गोपानां हर्षवर्धनी । प्रीणयत्येव नः सर्वान् बुद्धि-र्वृद्धिकरी नृणाम् २ त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम् । भयेष्वभयदस्त्वन्नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत् ॥ ३ ॥ त्वत्कृते कृष्णघोषोऽयं क्षेमी मुदितगोकुलः । कृत्स्नो वसति शांतारिर्यथा स्वर्गं गतस्तथा ॥ ४ ॥ जन्मप्रभृति कर्मैतद्दुर्देवैरसुकरं भुवि । बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च विस्मिता विमनांसि नः ॥ ५ ॥ बलेन

वैशम्पायनजीने कहा, कि-गौओंसे आजीविका चलाने वाले गोप श्रीकृष्णके वचनको सुन कर प्रसन्न होगए और उनके वाणीरूप अमृतका स्वाद पाकर (इन्द्रसे) निःशंक हो कहने लगे, कि-॥ १ ॥ हे बालक ! तुम्हारी यह वाणी महत्त्वपूर्ण है और इससे गोप हर्षमें भर गए हैं, तुम्हारी इस मनुष्योंकी वृद्धि-कराने वाली बुद्धिसे हम सब परम सन्तुष्ट हो रहे हैं ॥ २ ॥ (अब इन्द्रसे भय न माननेका करण दिखाते हैं, कि) आप ही हमारी गति है और आपही हमारी रति (प्रेमस्थान) हैं, आप वेत्ता हैं और आप परायण (आश्रय) हैं, आप ही हमें भयमें से निकाल कर निर्भय कर देते हैं, अत एव आप हमारे परम मित्र हैं ॥ ३ हे कृष्ण ! तुम्हारे कारण यह घोष क्षेमपूर्वक वस रहा है और इसका गोकुल आनन्दमें रहता है और इसके शत्रु (आपके कारण) शान्त पड़ गए हैं अत एव यह स्वर्गमें पहुँच गया प्रतीत होता है ॥ ४ ॥ आपने अपने जन्मसे ही पृथ्वीमें (शकटभंग पूतनावध आदि कर्म किया है उसको तो) देवता भी सुखपूर्वक नहीं कर सकते, इस समय आपके देखने योग्य (मैं गोयज्ञ हठात् कराऊँगा) ऐसे अभिमानसे हमारे मन विस्मित होरहे हैं (अर्थात् आप आवश्यही इन्द्रपूजा छुटवा कर गोपूजा

च पराक्रमेण यशसा विक्रमेण च। उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव पुरन्दरः६प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयाऽपि च। उत्तमस्त्वं हि मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकरः ७ कान्त्या लक्ष्म्या प्रसादेन वदनेन स्मितेन च। उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव निशाकरः ॥८॥ बलेन वपुषा चैव बाल्येन चरितेन च। स्यात्ते शक्तिधरस्तुल्यो न तु कश्चन मानुषः ॥ ९ ॥ यत्त्वयाऽभिहितं वाक्यं गिरियज्ञं प्रति प्रभो। कस्तल्लंघयितुं शक्तो वेलामिव महोदधेः ॥ १० ॥ स्थितः शक्रमहस्तात श्रीमान्गिरिमहस्त्वयम्। त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतोः प्रवर्त्यताम् ॥ ११ ॥ भोजनान्युपकल्प्यन्तां पयसः पेशलानि च। कुम्भाश्च विनिवेश्यन्तामुदपानेषु शोभनाः१२ पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोणयश्च विपुलायताः। भक्ष्यं भोज्यं च

और पर्वतपूजा प्रचलित करेंगे) ॥ ५ ॥ जैसे देवताओंमें इन्द्र उत्तम है, इसी प्रकार आप श्रेष्ठ बल यश और विक्रमसे मनुष्यों में उत्तम हैं ॥ ६ ॥ आप अपने तीक्ष्ण प्रताप और पूर्ण दीप्तिके कारण देवताओंमें सूर्यकी समान मनुष्योंमें उत्तम हैं ॥ ७ ॥ जैसे कान्ति लक्ष्मी प्रसाद मुख और मुस्कुरानेमें चन्द्रमा देवताओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं, इसी प्रकार पूर्वोक्त बातोंमें मनुष्योंमें आप उत्तम हैं ८ कदाचित् स्वामि कार्तिकेय आपके बल शरीर और बाल्यचरित्रमें आपके बराबर हों, परन्तु इन बातोंमें कोई मनुष्य आपकी बराबरी नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ जैसे समुद्रके किनारे को लाँघनेका कोई साहस नहीं कर सकता, इसी प्रकार आपकी कही हुई गिरियज्ञकी बातको कौन टाल सकता है १० अब इन्द्र का उत्सव स्थगित कर दिया गया और हे तात! गौओंके और गोपोंके हितके लिये आपका बताया हुआ श्रीमान् पर्वतोत्सव मनाया जायेगा ११ अब भोजन बनाने चाहियें और दुग्धके सामान बनने चाहियें और पलेढ़ियों पर शोभन घड़े धरने चाहिये १२

पेयं च तत्सर्वमुपनीयताम् ॥ १३ ॥ भाजनानि च मांसस्य न्यस्यतामोदनस्य च । त्रिरात्रं चैव सन्दोहः सर्वघोषस्य गृह्यताम् ॥१४॥ विहन्यतां च पशवो भोज्या ये महिषादयः । प्रवर्त्यतां च यज्ञोऽयं सर्वगोपसमाकुलैः ॥१५॥ आनन्दजननो घोषो महान् मुदितगोकुलः।तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितैः १६ हंभारवैश्च वत्सानां गोपानां हर्षवर्धनः । दध्नो ह्रदो घृतावर्तः पयःकुल्यासमाकुलः ॥ १७ ॥ मांसराशिः प्रभूताढ्यः प्रकाशौदनपर्वतः । संप्रावर्तत यज्ञोऽस्य गिरिर्गोभिः समाकुलः ॥ १८ ॥ तुष्टगोपसमाकीर्णो गोपनारीमनोहरः । भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्च सहस्रशः॥१९॥अथाभिश्रुतपर्यन्ते संप्राप्ते यज्ञसंविधौ ।

और बहुत लम्बी द्रोणियोंमें भी दुग्ध भरना चाहिये और सब भक्ष्य भोज्य और पेय आदि बनाने चाहियें १३ अब मांस और भातके पात्र ठीक करो और तीन रात तक सारे घोषके दूधको रोक लो (बिकने न दो) १४ भोज्य महिष आदि पशुओंका वध करो और अब सब गोप फुर्तीसे इस यज्ञको करना आरंभ करो १५ अब इस घोषमें आनन्दोत्सव मनाना चाहिये और इस की सारी गौएँ तूर्यके बजनेके घोषसे और साँड़ोंके गरजनेसे प्रसन्न होनी चाहियें १६ और गोप बछड़ोंके हंभा २ शब्दसे प्रसन्न हों और अब दहीके सरोवर वाला और घीके भ्रमर वाला और दूधकी हँडियोंसे भरा हुआ, मांसके ढ़ेर वालो और चावलों के भातके चमकते हुए ढ़ेर वाला और गौओंसे भरा हुआ इस पर्वतका पूजन (यज्ञ) अब आरंभ होना चाहिये १७ १८ जब गोप प्रसन्नतामें भर गए और गोपस्त्रियोंसे (व्रज) मनोहर दीखने लगा और भक्ष्य पदार्थोंकी सैंकड़ों और सहस्रों राशियें लग गईं १९ तब सौम्य तिथि आने पर गोपोंने ब्राह्मणोंको साथ में लेकर पूजनकी सब सामग्रीको अग्निपर चनवा कर इस गिरि

यज्ञं गिरेस्तिथौ सौम्ये चक्रुर्गोपा द्विजैः सह ॥ २० ॥ यजनांते तदन्नं तु तत्पयो दधि चोत्तमम् । मांसं च मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते ॥ २१ ॥तर्पिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टाः संपूर्णमानसाः । उत्तस्थुः प्रीतमनसः स्वस्तिवाच्य यथासुखम् ॥२२॥ भुक्त्वा चावभृथे कृष्णः पयः पीत्वा च कामतः । संतृप्तोस्मीति दिव्येन रूपेण प्रजहास वै ॥ २३ ॥ तं गोपाः पर्वताकारं दिव्यस्रगनुलेपनम् । गिरिमूर्ध्नि स्थितं दृष्ट्वा कृष्णं जग्मुः प्रधानतः२४ भगवानपि तेनैव रूपेण च्छादितः प्रभुः । सहितैः प्रणितो गोपैर्ववन्दात्मानमात्मना ॥ २५ ॥ तमूचुर्विस्मिता गोपा देवं गिरिवरे स्थितम् । भगवंस्त्वद्वशे युक्ता दासाः किं कुर्म किंकराः २६ स उवाच ततो गोपान्गिरिप्रभवया गिरा । अद्य प्रभृति चेज्योऽहं

का पूजन किया २० पूजनके अन्तमें श्रीकृष्णने मायासे अपनेको पर्वत बना लिया और वह अन्न दुग्ध उत्तम दधि और मांसका भक्षण करने लगे २१ तदनन्तर ब्राह्मण भी तृप्त होकर अपने मनके मनोरथको पाकर अपने मनमें प्रसन्न हो स्वस्तिवाचन कर उठ खड़े हुए २२ यज्ञान्तस्नान होने पर श्रीकृष्ण सब पदार्थों का भक्षण करके और इच्छानुसार दुग्ध पीकर (पर्वतके) दिव्य रूपमें हँस कर कहने लगे, कि–मैं तृप्त होगया २३ गोपोंने उस पर्वताकार शरीरधारी दिव्य माला और चन्दनका लेप करने वाले पुरुषको पर्वतके शिखर पर विराजमान देखा और उनको वास्तवमें श्रीकृष्ण ही समझा ॥ २४ ॥ इधर (गोपरूपमें) छिपे हुए प्रभु भगवान्ने भी गोपोंके साथ उस पर्वताधिष्ठात्री देवताको प्रणाम किया, इस प्रकार उन्होंने अपनेको अपने आप प्रणाम किया ॥२५ ॥ उस समय गोप पर्वतश्रेष्ठ पर विराजमान पुरुषसे, विस्मित होकर कहने लगे हे भगवन् ! हम सब आपके वशमें हैं और आपके दास हैं, बताइये अब हम क्या करें २६

गोपु यद्यस्ति वो दया ॥२७॥ अहं वः प्रथमो देवः सर्वकामकरः शुभः। मम प्रभावाच्च गवां अयुतान्येव भोक्ष्यथ ॥२८॥ शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्तानां वने वने। रंस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिवि गतस्तथा ॥२९॥ ये चेमे प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमाः॥ एषां प्रीतः प्रयच्छामि गोपानां विपुलं धनम् ॥ ३० ॥ पर्याप्नुवन्तु क्षिप्रं मां गावो वत्ससमाकुलाः। एवं मम परा प्रीतिर्भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ ततो नीराजनार्थं हि वृन्दशो गोकुलानि तम्। परिवव्रुर्गिरिवरं सवृषाणि समन्ततः ॥ ३२ ॥ ता गावः प्रद्रुता हृष्टाः सापीडस्तबकांगदाः। सस्रगापीडशृङ्गाग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥ अनुजग्मुश्च गोपालाः कालयन्तो धनानि च। भक्तिच्छेदानुलिप्तांगा रक्तपीतसितांबराः ॥ ३४ ॥

तदनन्तर वह पर्वतमेंसे निकलती हुई वाणीमें कहने लगे कि-यदि तुम गौओं पर दया करते हो तो आजसे मेरी पूजा करना २७ मैं तुम्हारा मुख्य देवता हूँ और तुम्हारी सब कामनाओंको पूर्ण करने-वाला शुभ देव हूँ, तुम मेरे प्रभावसे लाखों गौओंको पाओगे ॥२८॥ मैं अपने भक्तोंका प्रत्येक वनमें कल्याण करता रहूँगा और तुम्हारे साथ स्वर्गस्थितकी समान क्रीडा करूँगा २९ और नन्दगोप आदि गोपोंके जो मुखिया गोप हैं, मैं प्रसन्न होकर उनको विपुल गोधन दूँगा ॥ ३० ॥ बछड़े वाली गौएँ मेरी प्रदक्षिणा करें, तब मैं निःसन्देह परम प्रसन्न होऊँगा ॥३१॥ तब बहुतसे गौओंके और बैलोंके झुण्ड गिरिवरकी प्रदक्षिणा करनेके लिये एकत्रित होगए ॥३२॥ उस समय गलेमें आभूषण वाली और टाँगोंमें बँधी हुई फूलोंके बाजूबन्द वाली और सींगोंमें लगे हुए फूलोंके आभूषण वालीं सैंकड़ों और सहस्रों गौएँ दौड़ने लगीं ॥३३॥ उस समय विभागके भेदसे (नाना वर्णोंसे) रक्त पीत और श्वेत वस्त्रोंको धारण करने वाले गोपाल अपने

मयूरचित्राङ्गदिनो भुजैः प्रहरणावृतैः। मयूरपत्रवृन्तानां केश-बन्धैः सुयोजितैः ॥ ३५ ॥ बभ्राजुरधिकं गोपाः समवाये तदाऽद्भुते। अन्ये वृषानारुरुहुर्नृत्यन्ति स्म परे मुदा ॥ ३६ ॥ गोपालास्त्वपरे गावश्च जगृहुर्वेगगामिनः। तस्मिन् पर्यायनिर्वृत्ते गवां नराजनोत्सवे ॥ ३७ ॥ अन्तर्धानं जगामाशु तेन देहेन सोऽचलः। कृष्णोपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह ॥ ३८ ॥ गिरियज्ञप्रवर्त्तनं तेनाश्चर्येण विस्मिताः गोपाः स्म बालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ३९

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गिरियज्ञ-प्रवर्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच। मखे प्रतिहते शक्रः सक्रोधस्त्रिदशेश्वरः।

अपने गोधनोंको नियममें रखते हुए उनके पीछे चलने लगे ३४ उस समय अपने मोरपत्रके बाजूबन्द वाले हाथोंमें आयुधोंको उठाते हुए मोरपत्रके मुकुटोंको धारण करने वाले एकत्रित हुए गोप उस अद्भुत समुदायमें परम शोभा पाने लगे और कुछ बैलों पर चढ गए और कुछ हर्षमें भर कर नाचने लगे ३५-३६ जब गौओंकी प्रदक्षिणा करनेका उत्सव बीत गया तब भागती हुई गौओंको गोपोंने रोक लिया ॥ ३७ ॥ उस समय शरीर धारी पर्वत अन्तर्धान होगया और श्रीकृष्ण भी व्रजमें घुस गए ॥ ३८ ॥ उस समय गिरियज्ञ प्रवृत्त करनेके आश्चर्यसे विस्मयमें पड़े हुए बाल और वृद्ध गोप श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

(इस अध्यायमें व्रजके ऊपर कुपित होकर इन्द्रके सात दिन तक बरसनेका और श्रीकृष्णके गोवर्धनको उठाकर व्रजकी रक्षा करनेका वर्णन है, श्रुतिमें लिखा है, कि—'तमस्य राजा वरुण-स्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः। दाधार दक्षमुत्तमम-हर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते" अर्थात् विष्णुके

सावर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥ १ ॥ भो बलाहक-
मातंगाः श्रूयतां मम भाषितम्। यदि वो मत्प्रियं कार्यं राजभक्ति-
पुरस्कृतम् ॥ २ ॥ एते वृन्दावनगता दामोदरपरायणाः। नन्द-
गोपादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम् ॥ ३ ॥ आजीवो यः
परस्तेषां गोपत्वं च यतः स्मृतम्। ता गावः सप्तरात्रेण पीड्यन्तां
वर्षमारुतैः ॥४॥ ऐरावतगतश्चाहं स्वयमेवांबुदारुणम्। स्रक्ष्यामि
वृष्टिं वातं च वज्राशनिसमप्रभम् ॥५॥ भवद्भिश्चण्डवर्षेण चरता

पर्वतके लिये निर्मित यज्ञका और अश्विनीकुमारोंने तो अनु-
मोदन किया, परन्तु वायुके स्रष्टा इन्द्रके यज्ञका भंग होने पर
इन्द्र कोपमें भरगया था उस समय विष्णुने उत्तम और वृष्टिका
निवारण करनेमें समर्थ और जिसकी पूजा कीगई थी उस
पर्वतको उठा लिया उससे उन्होंने व्रजके बहुतसे मित्रोंकी
रक्षा की थी) वैशम्पायनजीने कहा, कि—अपने उत्सवके न
मनाये जाने पर देवताओंका ईश्वर इन्द्र क्रोधमें भर गया और
वह साम्वर्तक नाम वाले मेघोंसे कहने लगा कि—॥ १ ॥ हे मेघ-
मातंगो ! यदि तुम राजभक्ति दिखा कर मेरा प्रिय करना चाहते
हो तो मेरे भाषणको सुनो ॥२॥ ये वृन्दावनमें रहने वाले गोप
अब दामोदरको ही सब कुछ मानते हैं और (इस समय तो)
इन्होंने मेरे उत्सवसे भी द्वेष किया है ॥३॥ अत एव जो इनकी
परम आजीविका हैं और जिनके कारण ये गोप कहलाते हैं
अब उन गौओंको तुम वर्षा बरसा कर और वायु चलाकर
सात रात तक गौओंको पीडा दो ॥ ४ ॥ और मैं भी ऐरावत
हाथी पर चढ कर दारुण जल बरसाने वाली वृष्टिको बरसाऊँगा
और वज्र तथा अशनिकी समान वायु चलाऊँगा ॥ ५ ॥ जब
तुम प्रचण्ड वर्षा करोगे और वायुके साथ साथ विचरण करोगे
तब पृथ्वीमें स्थित व्रजमें रहने वाली गाँएँ पीडित होकर अपने

मारुतेन च । हतास्ता सव्रजा गावस्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम् ६
एवमाज्ञापयामास सर्वान् जलधरान् प्रभुः । प्रत्याहते वै कृष्णेन
शासने पाकशासनः ॥ ७ ॥ ततस्ते जलदाः कृष्णा घोरनादा
भयावहाः । आकाशं छादयामासुः सर्वतः पर्वतोपमाः ॥ ८ ॥
विद्युत्संपातजननाः शक्रचापविभूषिताः । तिमिरावृतमाकाशं
चक्रुस्ते जलदास्तदा ॥ ९ ॥ गजा इवान्यसंयुक्ताः केचिन्मकर-
वर्चसः । नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवाः ॥१०॥ तेऽन्योऽन्यं
वपुषा बद्धा नागयूथायुतोपमाः । दुर्दिनं विपुलं चक्रुश्छादयन्तो
नभस्तलम् ॥ ११ ॥ नृहस्तनागहस्ताभ्यां वेणूनां चैव सर्वतः ।
धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्ववृषुस्ते बलाहकाः ॥ १२ ॥ समुद्रं मेनिरे
तं हि खमारूढं नृचक्षुषः । दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत् ।
नैवापतन् वै खगमा दुद्रुवुर्मृगजातयः । पर्वताभेषु मेघेषु खे

प्राणोंको छोड़ देंगी ॥६॥ तब प्रभु इन्द्रने श्रीकृष्णके द्वारा अपने
शासनके नष्ट होने पर इस प्रकार सब मेघोंको आज्ञा दी थी ७
तदनन्तर भयंकर नाद करने वाले और प्राणियोंको भयभीत
करने वाले पर्वताकार काले मेघोंने आकाशको चारों ओरसे छा
लिया ॥ ८ ॥ और इन्द्रधनुषसे शोभित और बिजली गिराने
वाले मेघोंने आकाशको अँधेरेसे छा दिया ॥ ९ ॥ उस समय
जैसे हाथीसे हाथी अड़ कर चलते हैं, इसी प्रकार परस्परमें मिलते
हुए मकरकी समान कान्तिमान् मेघ आकाशमें परस्पर अड़ कर
विचरण करने लगे १० सैंकड़ों नागयूथोंकी समान अपने शरीरको
एक दूसरेसे मिला कर उन मेघोंने आकाशको छाकर दुर्दिन बना
दिया ॥ ११ ॥ तब मेघ मनुष्योंके हाथ, हाथियोंकी सूँड और
वेणुओं(बासों) पर एकसी धारा बरसाने लगे ॥ १२ ॥ मनुष्यों
की आँखोंने उस भारी दुर्दिनको दुर्विगाह्य और अगाध समुद्रको
आकाशमें चढ़ा हुआ समझा ॥ १३ जब पर्वतकी समान आभा

नदन्तु समन्ततः ॥ १४ ॥ नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मेघैर्नभसि दारुणैः । अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपगभवद्वपुः ॥१५॥ मेघौघनिष्प्रभाकार-मदृश्यग्रहतारकम् । चन्द्रसूर्यांशुरहितं खं बभूवातिनिष्प्रभम् १६ वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासकृत् । आवर्णा सर्वतस्तत्र भूमिस्तोयमयी यथा ॥ १७ ॥ विनेदुर्बर्हिणस्तत्र तोककलपरुताः खगाः । विवृद्धि निम्नगा याताः स्रवगाः संस्रवं गताः ॥१८॥ गर्जितेन च मेघानां पर्जन्यनिनदेन च । तर्जितानीव कम्पन्ते तृणानि तरुभिः सह ॥ १९ ॥ प्राप्तोऽतकालो लोकानां व्यक्तमेकार्णवा मही । इति गोपगणा वाक्यं व्याहरन्ति भयार्दिताः २० तेनोत्पाताम्बुवर्षेण गावो विमहता भृशम् । हुंभारवैः क्रन्दमाना

वाले मेघ आकाशमें चारों ओर गर्जना करने लगे तब पक्षियोंने उड़ना बन्द कर दिया और पशु भाग गए ॥ १४ ॥ जब सूर्य और चन्द्रमाको छिपाने वाले (प्रलयकालीन मेघोंकी समान) दारुण मेघोंने आकाशमेंसे बड़ी भारी वर्षा की उस समय अति-वृष्टिके कारण मनुष्य विरूप होगए ॥१५॥ और मेघोंके समूहसे निष्प्रभ आकार वाले और जिसमेंके ग्रह नक्षत्र अदृश्य होगए थे और जो चन्द्र सूर्यरहित होगया था ऐसा आकाश परम निष्प्रभ होगया ॥ १६ ॥ मेघोंमेंसे बरसे हुए और अब भी निरन्तर बरसते हुए जलके कारण पृथ्वी सर्वत्र जलमयी ही दिखाई देने लगी ॥ १७ ॥ उस समय मोर भी बोलने लगे और पक्षी चहचहाने लगे नदियोंमें बाढ़ आगई और तट परके वृक्ष अहलेसे उखड़ कर धारमें वेगसे बहने लगे ॥ १८ मेघोंके गर्जनेसे और प्रलय-कालीन मेघोंके निनादसे तृण और वृक्ष धमकाये हुए मनुष्योंकी समान काँपने लगे ॥ १९ ॥ उस समय भयभीत हुए गोप कहने लगे, कि-लोकोंका अन्तकाल आगया है इस लिये ही पृथ्वी एक समुद्रकी समान होरही है २० उस उत्पातकी जल वृष्टिसे गौओं

न चेलुः स्तम्भितोपगाः ॥ २१ ॥ निष्कम्पसक्थिचरणा निष्प्रय-
त्नखुराननाः । हृष्टरोमार्द्रतनवः क्षामकुक्षिपयोधराः ॥ २२ ॥
काश्चित् प्राणान् जहुः श्रान्ता निपेतुः काश्चिदातुराः । काश्चित्
सवत्साः पतिता गावः शीकरवेजिताः ॥ २३ ॥ काश्चिदाक्रम्य
क्रोड़ेन वत्सांस्तिष्ठन्ति मातरः । विमुखाः श्रान्तसक्थ्यश्च निरा-
हारा कृशोदराः ॥२४॥ पेतुरार्ता वेपमाना गावो वर्षपराजिताः।
वत्साश्चोन्मुखका बाला दामोदरमुखाः स्थिताः । त्राहीति वद-
नैर्दीनैः कृष्णमूचुरिवार्दिताः ॥ २५ ॥ गवां तत्कदनं दृष्ट्वा दुर्दि-
नागमजं महत्।गोपांश्चासन्निनधनान् कृष्णः कोपं समादधे २६
संचिंतयित्वा संरब्धो दृष्टोपायो मयेति च । आत्मानमात्मना

को बड़ी पीड़ा पहुँची इस कारण उनमें स्तंभकी समान इधर
उधर हिलनेकी भी शक्ति न रही और वे हंभा २ करके डकराने
लगीं ॥ २१ ॥ उनकी जाँघें और चरण अकड़ गए इस लिये
उनके मुख और खुरोंमें चेष्टा होना बन्द होगई, जलमें भीगनेसे
उनके शरीरके रुएँ खड़े होगए और उनकी कोखें और थेन
खाली होगए ॥ २२ ॥ उस समय बहुतसी गौएँ थक कर मर
गईं और बहुतसी गौएँ आतुर होकर गिर पड़ीं और वर्षासे
काँप कर बहुतसी गौएँ अपने बछड़ोंसहित गिर पड़ीं ॥२३॥
बहुतसे बछड़े अपनी माताओंकी बगलमें सट कर खड़े होगए,
वे गौएँ विमुख होगईं उनकी जाँघें थक गईं, निराहार रहने
से उनके उदर पटक गए ॥ २४ ॥ तब वे वर्षासे पराजय पाई
हुईं गौएँ दुःखित होती हुईं और काँपती हुई गिर पड़ीं और
उनके बछड़े ऊपरको मुख उठा कर दामोदरकी ओरको
देखने लगे ॥ २५ ॥ दुर्दिनके कारण होने वाले गौओंके
संहारको देखकर और गोपोंको मरणोन्मुख देख कर श्रीकृष्णको
क्रोध आगया. २६ सोचते २ वह क्रोधमें भर गए और वह प्रिय-

वाक्यमिदमूचे प्रियम्वदः ॥२७॥ अद्याहमिमामुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम्। कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षत्राणाय दुर्धरम् ॥ २८ ॥ अयं धृतो मया शैलः पृथ्वीगृहनिभोपमः। त्रायते सव्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति ॥ २९ ॥ एवं संचिन्तयित्वा तु कृष्णः सत्यपराक्रमः। बाह्वोर्बलं दर्शयिष्यन् समीपं तं महीधरम् ॥ ३० ॥ दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिवापरः। स धृतः संगतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना। गृहभावं गतस्तत्र गृहाकारेण वर्चसा॥ ३१ भूमेरुत्पाट्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु। शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुर्विनिपेतुश्च पादपाः ॥ ३२ ॥ शिखरैर्घूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः। विधूतैश्चोच्छ्रितैः शृङ्गैरगमः खगमोऽभवत् ३३

मनही अपने मनमें कहने लगे, कि-मुझे उपाय सूझ गया २७ आज मैं इस दुर्धर पर्वतको वन और बगीचों सहित उठा लूँ और इसको गौओंका वर्षासे बचानेका स्थान बनाऊँगा ॥ २८ ॥ जब मैं इस पर्वतको उठा लूँगा तब यह पर्वत पृथ्वीमें बने हुए घरकी समान होजायगा और सारे व्रज और गौओंकी इसमें रक्षा होजावेगी और यह पर्वत भी मेरे वशमें होजायगा २९ इस प्रकार विचार करनेके अनन्तर सत्यपराक्रमी श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंका बल दिखानेके लिये उस पर्वतके पास (गए) ३० उस समय दूसरे पर्वतकी समान श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंसे उस पर्वतको उखाड़ लिया उस समय श्रीकृष्णके दाहिने हाथ पर रक्खा हुआ मेघोंसे घिरा हुआ वह पर्वत गृहकी समान तेजसे घर बन गया ३१ जिस समय भूमिमेंसे उस पर्वतको उखाड़ा था उस समय उसके शिखरोंमेंसे पत्थर खिसक २ कर गिरने लगे और वृक्ष भी काँपने लगे ३२ डगमगाते हुए शिखरोंके और गड़बड़ाते हुए तथा दुःखित होते हुए पेड़ोंके साथ उठाने पर वह न चलने वाला पहाड़ आकाशचारी होगया ३३ उस पहाड़के झरने मेघोंके

च्चलत्प्रस्रवणैः पार्श्वैर्मेघौघैरेकतां गतैः । विद्यमानाश्मनिचय-
श्चचाल धरणीधरः ॥ ३४ ॥ न मेघानां प्रवृष्टानां न शैलस्या-
श्मवर्षिणः । विविदुस्ते जना रूपं वायोस्तस्य च गर्जतः ॥३५॥
मेघैः सशैलसंस्थानैर्जलप्रस्रवणार्पितैः ।मिश्रीकृत इवाभाति गिरि-
रुद्दामबर्हवान् ॥ ३६ ॥ आप्लुतोऽयं गिरिः पक्षैरिति विद्याधरो-
रगाः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव वाचो मुञ्चन्ति सर्वशः ॥ ३७ ॥सहस्र-
तलविन्यस्तो मुक्तमूलः क्षितेस्तलात् । रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्च-
नाञ्जनराजतीः ॥३८॥ कानिचिच्छिथिलानीव संच्छिन्नार्धानि
कानिचित् । गिरेर्मेघगहनानि तस्य शृङ्गाणि चाभवन् ॥ ३९ ॥
गिरिणा कम्पमानेन कम्पितानां तु शाखिनाम् । पुष्पमुच्चावचं
भूमौ व्यशीर्यत समंततः ॥ ४० ॥ निःसृताः पृथुमूर्धानः स्वस्ति-

झुण्डकी समान दीखते थे उनके साथ २ जिसमें पत्थरोंका ढेर
पड़ा हुआ था वह पहाड़ डगमगाने लगा ३४ उस समय मनुष्यों
को बरसते हुए मेघोंमें और पत्थर बरसाने वाले पहाड़में और
गरजते हुए वायुके शब्दमें (कुछ भेद)न मालूम पड़ा ३५ पहाड़की
समान जल बरसाने वाले मेघोंसे मिला हुआ वह पहाड़ ऊपरको
पूंछ उठाने वाले मोरकी समान दीखता था ३६ उस समय गंधर्व
अप्सरा और विद्याधर चारों ओरसे कहने लगे, कि इस पहाड़के
पर निकल आये हैं और उन (मेघरूप)परोंसे यह उड़रहा है ३७
पृथ्वीतलपरसे उखाड़ कर हस्ततल पर रक्खा हुआ वह पर्वत
सुवर्ण अञ्जन और चाँदीकी धातुओंको बहाने लगा ॥ ३८ ॥
मेघोंके बरसाने पर उस पर्वतके बहुतसे शिखर शिथिल होगए
और बहुत से आधे २ ढह पड़े ॥ ३९ ॥ पर्वतके साथ काँपने
वाले वृक्षोंमेंसे पुष्प गिरने लगे और उनकी वर्षासे पृथ्वी छा
गई उस समय क्रोधमें भरकर स्वस्तिकार्धमण्डलसे विभूषित
(लहरिया पड़े हुए) मोटे २ शिर वाले उड़ने सर्प निकल कर

कार्धविभूषिताः। द्विजिह्वपतयः क्रुद्धाः खेचराः खे समन्ततः ४१
आर्त्तिं जग्मुः खगगणा वर्षेण च भयेन च। उत्पत्योत्पत्य गगनात्
पुनः पेतुरवाङ्मुखाः ॥ ४२ ॥ रेसुरारोपिताः सिंहाः सजला
इव तोयदाः। गर्गरा इव मथ्यन्तो नेदुः शार्दूलपुङ्गवाः ॥ ४३ ॥
विषमैश्च समीभूतैः समैश्चात्यन्तदुर्गमैः। व्यावृत्तदेहः स गिरि-
रन्य एवोपलक्ष्यते ॥ ४४ ॥ अतिवृष्टस्य तैर्मेघैस्तस्य रूपं बभूव
ह। स्तम्भितस्येव रुद्रेण त्रिपुरस्य विहायसि ॥ ४५ ॥ बाहु-
दण्डेन कृष्णस्य विधृतं सुमहत्तदा। नीलाभ्रपटलच्छन्नं तद्गिरि-
च्छत्रमाबभौ ॥ ४६ ॥ स्वप्नायमानो जलदैर्निमीलितगुहामुखः।
बाहूपधाने कृष्णस्य प्रसुप्त इव खे गिरिः ॥ ४७ ॥ निर्विहंगरुतै-
र्वृक्षैर्निर्मयूररुतैर्वनैः। निरालम्ब इवाभाति गिरिः स्वशिखिरै-

आकाशमें घूमने लगे ॥ ४१ ॥ पक्षी भी वर्षा और भयसे पीड़ित होकर बारम्बार आकाशमें उड़ने लगे और नीचेको मुख कर फिर आने लगे ॥४२॥ और सिंह क्रोधमें भर जलवाले मेघोंकी समान गरजने लगे और शार्दूल दही चलानेकी मटकीकी समान गुर्राने लगे॥ ४३ ॥ उस पर्वतके विषम स्थल उस समय सम एकसार होगए थे और सम स्थल विषम होगए इस प्रकार लौट फेर होनेसे वह पर्वत दूसरा पर्वत प्रतीत होने लगा॥ ४४ ॥ मेघोंके अधिक वर्षा वरसानेसे उस पर्वतका रूप रुद्रके द्वारा आकाशमें स्तम्भित किये हुए त्रिपुरकी समान होगया ॥४५॥ श्रीकृष्णके बाहुदण्ड पर उठा हुआ वह नीले बादलोंसे घिरा हुआ बड़ा भारी गिरिच्छत्र शोभा पाने लगा ॥ ४६ ॥ मेघों (के अन्धकारके कारण) शयन करताहुआ और (अन्धकार के कारण) बन्द होगया है गुहारूपी मुख जिसका ऐसा पर्वत आकाशमें श्रीकृष्णके भुजारूपी तकिये पर शयन करता हुआसा दीखता था ॥४७॥ पक्षियोंके चहचहानेसे शून्य पेड़ों वाले और

वृतः ॥ ४८ ॥ पर्यस्तैर्घूर्णमानैश्च प्रचलद्भिश्च सानुभिः । सज्वराणीव शैलस्य वनानि शिखराणि च ॥ ४९ ॥ उत्तमांगगतास्तस्य मेघाः पवनवाहनाः । त्वर्यमाणा महेंद्रेण तोयं मुमुचुरव्ययम् ॥ ५० ॥ स लम्बमानः कृष्णस्य भुजाग्रे सघने गिरिः । चक्रारूढ इवाभाति देशो नृपतिपीडितः ॥ ५१ ॥ समेत्य निचयस्तस्थौ गिरिं तं परिवार्य ह । पुरं पुरस्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान् ॥ ५२ ॥ निवेश्यं तं करैः शैलं तोलयित्वा च सस्मितम् । प्रोवाच गोप्ता गोपानां प्रजापतिरिव स्थितः ॥ ५३ ॥ एतद्देवैरसंभाव्यं दिव्येन विधिना मया । कृतं गिरिगृहं गोपा निर्वातं शरणं गवाम् ॥५४॥ क्षिप्रं विशन्तु यूथानि गवामिह हि शांतये ।

मयूरोंके शब्दोंसे शून्य वनों वाले शिखरों वाला पर्वत निरालम्ब (अधर) सा शोभा पारहा था ॥ ४८ ॥ अस्तव्यस्त होते हुए घूमते हुए और हिलते हुए शिखरोंके कारण उस पर्वतके शिखर और वन ऐसे प्रतीत होते थे, मानों उनको जाड़ा बुखार आरहा हो ॥ ४९ ॥ उस समय इन्द्रके आदेशसे पवनवाह मेघ फुर्तीसे उसकी चोटी पर अटूट जल बरसाने लगे ॥ ५० ॥ बादलोंसे घिरा हुआ पर्वत श्रीकृष्णके हाथ पर रखनेके समय (पत्थरोंके लुढकनेके कारण) ऐसा मालूम होता था मानों दूसरे राजाके चढाई करनेके कारण देशके मनुष्य रथ आदिमें बैठ कर भाग रहे हों ॥ ५१ ॥ जैसे विस्तृत देश पुरको घेरकर बसाहुआ होता है, इसी प्रकार मेघ भी पर्वतको घेर कर खड़े होगए ॥ ५२ ॥ उस समय प्रजापतिकी समान खड़े हुए गोपों के रक्षक श्रीकृष्णने अपने हाथ पर पर्वतको रख उसको तोला फिर वह गोपोंसे कहने लगे ॥ ५३ ॥ जो बात देवताओंके लिये भी संभव नहीं है उस बातको मैंने अपने अलौकिक प्रभावसे कर दिखाया है ? हे गोपों ! मैंने गौओंकी रक्षा करनेके लिये

निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम् । यथाश्रेष्ठं यथायूथं यथासारं यथासुखम् ॥ ५५ ॥ विभज्यतामयं देशः कृतं वर्षनिवारणम् । शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया ॥ ५६ ॥ पंचक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकं विस्तरो महान् । त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ॥५७॥ततः किलकिलाशब्दो गवां हम्भारवैः सह । गोपानां तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च वाहतः ॥ ५८ ॥ प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्यूथप्रकल्पिताः ।तस्य शैलस्य विपुलं प्रदरं गह्वरोदरम् ॥५६॥ कृष्णोपि मूले शैलस्य शैलस्तम्भ इवोच्छ्रितः । दधारैकेन हस्तेन शैलं प्रियमिवातिथिम् ॥ ६० ॥ ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च । विविशुर्वर्षभीतानि तद्गृहं

जिसमें वायु भी न जासके ऐसा गिरिगृह बना दिया है ५४अब शान्ति पानेके लिये गाएँके झुण्ड यहाँ पर शीघ्रतासे प्रवेश करें और वायुरहित स्थानमें सुखपूर्वक निवास करें, मैंने वर्षाको निवारण करने (रोकने) वाला देश बना दिया है अब तुम अपनी श्रेष्ठता यूथ और सारके अनुसार इस देशका विभाग कर सुखपूर्वक रहो, मैंने पर्वतको उखाड कर बडी चौड़ी पृथिवी बना दी है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ यह (पर्वतके नीचेका स्थान) पाँच कोस चौडा और एक कोस लम्बा है, यह स्थान तीनों लोकोंकी रक्षा कर सकता है फिर व्रजकी तो बात ही क्या है ! तब तो बाहर गोपोंका किल किल शब्द होने लगा और साथमें गौएँ भी हंभा २ शब्द करने लगीं और मेघोंका भी तुमुल नाद होने लगा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर गोपोंके द्वारा झुण्डोंमें खड़ी कीगई गौए उस पर्वतके बड़े भारी गुफारूपी उदरमें घुसने लगीं ५६ इधर कृष्णने भी पर्वतके मूलमें स्तंभकी समान ऊँचे खड़े होकर अपने एक हाथसे पर्वतको अपने प्रिय मित्रकी समान ग्रहण कर लिया ॥ ६० ॥ तब तो वर्षासे डरते हुए व्रजके गोप अस्वेप माला

गिरिनिर्मितम् ॥ ६१ ॥ अतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत्कर्म वज्रभृत् । मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान् वारयामास वै विभुः ॥६२॥ सप्तरात्रे तु निर्वृत्ते धरण्यां विगतोत्सवः । जगाम संवृतो मेघैर्वृत्रहा स्वर्गमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ निर्वृत्ते सप्तरात्रे तु निष्प्रयत्ने शतक्रतौ । गताभ्रे विमले व्योम्नि दिवि संदीप्तभास्करे ॥६४॥ गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्गतश्रमाः । स्वं च स्थानं ततो घोषः प्रत्ययौ पुनरेव सः ॥ ६५ ॥ कृष्णोऽपि तं गिरिश्रेष्ठं स्वस्थाने स्थावरात्मवान् । प्रीतो निवेशयामास शिवाय वरदो विभुः ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोवर्धनोद्धरणं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

वैशम्पायन उवाच । धृतं गोवर्धनं दृष्ट्वा परित्रातं च गोकुलम् ।

में वर्तन (पात्र) भर कर पहाड़में बनाये हुए घरमें घुसने लगे ॥ ६१ ॥ तब तो वज्रधारी इन्द्रकी प्रतिज्ञा श्रीकृष्णके उस देवताओंको परास्त करने वाले कर्मको देख कर मिथ्या होगई और उसने मेघोंको हटालिया ॥ ६२ ॥ पृथ्वीमें जिसका उत्सव मनाना छोड़दिया गया था वह इन्द्र सात रात बीत जाने पर अपने मेघोंको लेकर उत्तम स्वर्गको चला गया ॥ ६३ ॥ जब सात रात्रिएँ बीत गई और इन्द्रने प्रयत्न करना छोड़ दिया और जब आकाश बादलरहित होकर निर्मल होगया तथा सूर्य चमकने लगा ॥ ६४ ॥ तब थकनरहित हुई गौएँ उसही मार्गसे अपने स्थान पर लौटने लगीं और वह घोषभी फिर अपने स्थान पर लौट आया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर अकम्प वरद विभु श्रीकृष्ण नेभी प्रसन्न होकर उस गिरिवरको उसके स्थान पर धर दिया ॥ ६६ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

वैशंपायनजीने कहा, कि-श्रकृष्णने गोवर्धनको उठा लिया और गोकुलकी रक्षा कर ली यह देख कर इन्द्र विस्मित होगया

कृष्णस्य दर्शनं शक्रो रोचयामास विस्मितः ॥१॥ सनिर्जलां-
बुदाकारं मत्तं मदजलोक्षितम् । आरुह्यैरावतं नागमाजगाम मही-
तलम् ॥ २ ॥ स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्धनशिलातले । कृष्णम-
क्लिष्टकर्माणं पुरुहूतः पुरन्दरः ॥३॥ तं वीक्ष्य बालं महता तेजसा
दीप्तमव्ययम् । गोपवेशधरं विष्णुं प्रीतिं लेभे पुरन्दरः ॥ ४ ॥
तं साम्बुजलदश्यामं कृष्णं श्रीवत्सलक्षणम् । पर्याप्तनयनः शक्रः
सर्वैर्नेत्रैरुदैक्षत ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा चैनं श्रिया जुष्टं मर्त्यलोकेऽम-
रोपमम् । सूपविष्टं शिलापृष्ठे शक्रः सव्रीडितोऽभवत् ॥ ६ ॥
तस्योपविष्टस्य मुखं पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवः । अन्तर्धानं गतश्छायां
चकारोरगभोजनः ॥ ७ ॥ स विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्त-
तत्परम् । उपतस्थे गजं हित्वा कृष्णं बलनिषूदनः ॥ ८ ॥ स

और श्रीकृष्णका दर्शन करना चाहने लगा ॥१॥ और निर्जल मेघकी समान आकार वाले मदजलसे गीले शरीर वाले मदमत्त ऐरावत नाग पर चढ़ कर पृथ्वी पर आया २ उस समय पुरुहूत पुरन्दरने सरलतासे कर्म करने वाले श्रीकृष्णको गोवर्धनकी शिला पर बैठे हुए देखा ३ इन्द्र अच्युत विष्णुको तेजसे दीप्त गोप बालकके भेषमें बैठे देख कर प्रसन्न हुआ ४ इन्द्र अपने सब नेत्रोंसे जलभरे मेघकी समान श्याम और श्रीवत्सके चिन्हसे चिन्हित विष्णुको देख कर पर्याप्तनयन होगया अर्थात् उसके नेत्र सफल होगए ५ शोभासंपन्न श्रीकृष्णको मृत्युलोकमें देवताकी समान शिलातल पर बैठे देख कर इन्द्र लज्जित हो गया ६ सर्पोंका भक्षण करने वाले पक्षिपुङ्गव गरुड़ अन्तर्धान रह कर अपने पंखोंसे बैठे हुए श्रीकृष्णके मुख पर छाया डाल रहे थे ७ वनमें अकेले बैठे हुए लोकव्यवहार करनेमें परायण श्रीकृष्णके पास बल दैत्यका नाश करने वाला इन्द्र अपने हाथी परसे उतर कर उनके पास पहुँचा ८ उनके पास पहुँचने पर दिव्य माला

समीपगतस्तस्य दिव्यस्रगनुलेपनः । रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः ॥९॥ किरीटेनार्कतुल्येन विद्युद्द्योतकारिणा । कुण्डलाभ्यां स दिव्याभ्यां सततं शोभिताननः ॥१०॥ पञ्चस्तबकलम्बेन हारेणोरसि भूषितः । सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा । ईक्षमाणः सहस्रेण नेत्राणां कामरूपिणाम् ॥ ११ ॥ त्रिदशाज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा । अथ दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम् ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्धन । अतिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम् ॥१३॥ मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु । यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः ॥ १४ ॥ स्वायंभुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः । धृतो वेश्मवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत् ॥ १५ ॥ प्रति-

---

और दिव्य चन्दन लगाने वाला और हाथमें वज्रको धारण करने वाला और बिजलीकी समान प्रकाश फैलाने वाले सूर्यकी समान कान्तिवाले किरीटको धारण करने वाला और दिव्य कुण्डलों से सुशोभित मुख वाला देवराज प्रभु इन्द्र शोभा पाने लगा ९-१० उसका वक्षः स्थल पाँच गुच्छों वाले गलेमें लटकते हुए हारसे विभूषित हो रहा था और सहस्रदलकमलके भूषणोंको देह पर धारण कर रहा था वह कामरूपी सहस्र नेत्रोंसे श्रीकृष्णको देखने लगा ११ तदनन्तर देवताओंकी आज्ञासे अपने मेघकी समान गंभीर दिव्य और मधुर स्वरमें श्रीकृष्णसे कहने लगा १२ कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभुज ! हे अपनी जाति वालोंको आनन्द देने वाले तुमने गौओं पर प्रसन्न होकर अति दिव्य कर्म किया है १३ तुमने मेरे भेजे हुए युगान्तकी समान वर्षा करने वाले मेघोंसे भी गौओंकी रक्षा कर ली, इससे मैं प्रसन्न होगया हूँ १४ तुमने स्वायम्भुवयोगसे इस पर्वतको आकाशमें घरकी समान धारण कर लिया था, भला इस कर्मसे किसे आश्चर्य न

षिद्धे मम मद्दे गमेत्तं रुपितेन वै। अतिवृष्टिः कृता कृष्ण गवां वै सप्तरात्रिकी ॥ १६ ॥ सा त्वया प्रतिषिद्धेयं मेघवृष्टिर्दुरासदा। देवैः सदानवगणैर्दुर्निवार्या मयि स्थिते ॥ १७ ॥ अहो मे सुप्रियं कृष्ण यत्त्वं मानुषदेहवान्। समग्रं वैष्णवं तेजो विनिगूहसि रोषितः ॥ १८ ॥ साधितं देवतानां हि मन्येऽहं कार्यमव्ययम्। त्वयि मानुष्यमापन्ने युक्ते वैष्णवतेजसा ॥ १९ ॥ सेत्स्यते सर्वकार्यार्थो न किंचित् परिहास्यते। देवानां यद्भवान्नेता सर्वकार्यपुरोगमः ॥ २० ॥ एकस्त्वमसि देवानां लोकानां च सनातनः। द्वितीयं नानुपश्यामि यस्तेषां च धुरं वहेत् ॥ २१ ॥ यथा हि पुङ्गवः श्रेष्ठो ह्यग्रे धुरि नियोज्यते। एवं त्वमसि देवानां मग्नानां द्विजवाहन ॥ २२ ॥ त्वच्छरीरगतं कृष्ण जगत्प्रकरणं त्विदम्।

होगा १५ हे कृष्ण ! अपने महोत्सवके बन्द होने पर मैंने क्रोध में भर कर गौओंके ऊपर सात रात तक वर्षा वरसाई थी १६ उस दुरासद मेघवृष्टिको तुमने निष्फल कर दिया, मेरे सामने खड़े होने पर तो इसको देवता और दानव भी नहीं सह सकते १७ हे श्रीकृष्ण ! तुमने मेरा यह परम प्रिय कार्य किया कि तुमने मनुष्यका रूप धारण करनेके कारण क्रोध आने पर भी अपने समग्र वैष्णव तेजको नहीं दिखाया (इस प्रकार अपनेको छिपा लिया) १८ जब आप देवताओंके नेता हो गए हैं और उनके सब कार्योंमें अग्रणी वनजाते हैं तो मैं समझता हूँ कि-आप देवताओंके सारे कार्यको सिद्ध कर लेंगे, आप मनुष्य वन गए हैं अब आपके तेजसे सब कार्य सिद्ध होजायगा, कुछ बाकी नहीं रहेगा १९ २० तुम देवताओंमें एक हो और लोकोंमें सनातन हो, मैं ऐसा और किसीको नहीं देखता जो देवताओंके कार्यभार को उठासके २१ जैसे श्रेष्ठ बैलको ही जुएमें सबसे आगे जोता जाता है इसी प्रकार हे द्विजवाहन! तुम डूबते हुए देवताओंके कार्य

ब्रह्मणा साधु निर्दिष्टं धातुभ्य इव काञ्चनम् ॥ २३ ॥ स्वयंभू-र्भगवान् श्रेष्ठो बुद्ध्याथ वयसापि वा । न त्वाऽनुगन्तुं शक्नोति पंगुर्द्रुतगतिं यथा ॥ २४ ॥ स्थाणुभ्यो हिमवान् श्रेष्ठो ह्रदानां वरुणालयः । गरुत्मान् पक्षिणां श्रेष्ठो देवानां च तथा भवान् २५ अपामधस्ताल्लोको वै तस्योपरि महीधराः ।नगानामुपरिष्टाद्‌ भूः पृथिव्युपरि मानुषाः ॥ २६ ॥मनुष्यलोकादूर्ध्वं तु खगानां गति-रुच्यते । आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान् ॥२७॥देव-लोकः परस्तस्माद्विमानगमनो महान् । यत्राहं कृष्ण देवानामैंद्रे विनिहितः पदे ॥२८॥ स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः। तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम् ॥ २९ ॥ तस्योपरि

में सबसे पहिले (जीते जाते हो २२ यह सब जगत् आपके ही शरीरसे रचा हुआ है, जैसे धातुओंमें सुवर्ण उत्कृष्ट है, इसी प्रकार ब्रह्माजीने आपको उत्कृष्ट कहा है २३ जैसे पंगु(लँगड़ा) फुर्तीसे चलने वालेकी समान नहीं होसकता,इसी प्रकार भगवान् ब्रह्माजी भी बुद्धि वा अवस्थामें आपसे श्रेष्ठ वा आपकी समान नहीं होसकते २४ जैसे पहाड़ोंमें हिमाचल श्रेष्ठ है और सरोवरों में समुद्र श्रेष्ठ है और जैसे पक्षियोंमें गरुड़ श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार देवताओंमें आप श्रेष्ठ हैं २५ जल लोक नीचे हैं, उसके ऊपर पहाड़ हैं (जैसे समुद्रमें पड़ी हुई नावको उसमें लगी हुई और नीचेको लगी हुई कीलें रोके रहती हैं तैसे ही पृथ्वीको पहाड़ रोकरहे हैं अत एव) पहाड़ोंके ऊपर पृथिवी है और पृथिवी पर मनुष्य रहते हैं २६ मनुष्यलोकसे ऊपर आकाशचारी गमन कर सकते हैं आकाशके ऊपर सूर्य रहता है वह किरणों वाला सूर्य स्वर्ग का द्वाररूप है २७उससे आगे देवलोक है उस बड़े भारी लोकमें विमानपर बैठ कर चला जासकता है हे कृष्ण!तहाँ पर मैं देवता ओंके इन्द्र पद पर रहता हूँ २८स्वर्गसे ऊपर ब्रह्मर्षियोंसे सेवित

गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि। स हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान ॥ ३० ॥उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी। यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ॥ ३१ ॥ लोकस्त्वधोदुष्कृतिनां नागलोकस्तु दारुणः।पृथिवी कर्मशीलानां क्षेत्रं सर्वस्य कर्मणः ॥३२॥ खमस्थिराणां विषयो वायुना तुल्यवृत्तिनाम् । गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृतकर्मणाम् ३३ ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः । गवामेव तु गोलोको दुरारोहा तु सा गतिः ॥ ३४ ॥ स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः

ब्रह्मलोक है तहाँ पर महात्मा सोम और नक्षत्र जा सकते हैं२६ उसके ऊपर गोलोक है साध्य उसका पालन करते हैं, हे कृष्ण! वह सर्वगत है और वह महान लोक महाकाशमें रहता है ३० इसके भी-ऊपर आपकी तपोमयी गति है, उसको पितामहसे बूझने पर भी हम नहीं जान सके ॥३१॥ पापियोंको नागलोक रूप दारुण लोक नीचे मिलता है कर्मशीलपुरुषोंके लिये पृथिवी सब कर्मोंके वपन करनेका क्षेत्ररूप है ॥ ३२ ॥ वायुकी समान चंचल वृत्ति वाले पुरुषोंका आकाश विषय है और शमदमसम्पन्न पुण्यात्माओंकी गति स्वर्ग है ॥३३॥ ब्रह्ममय तप करने वालोंको अधिकसे अधिक ब्रह्मलोक मिलता है और गौओंको तो गोलोक मिलता है (औरोंको तप करके भी) उस गतिका मिलना दुर्लभ है ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण ! (वह गोलोक तुम्हारे साथ ही पृथिवी पर उतर आया था) उसके कष्ट पाने पर आपसे धैर्यवान् कुशल पुरुषोंने गौओंके उपद्रवोंको नष्ट कर उस (गोलोक) को धारण किया है (श्रुतिमें भी लिखा है, "तावां वास्तून्युश्मसिगमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः । अत्राह तदुरुगा यस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि" अर्थात्-आप (राम कृष्ण) के रमणीय स्थानोंमें हम जाना चाहते हैं, परन्तु

कृतात्मना । धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम् ॥ ३५ ॥ तदहं समनुप्राप्तो गवां वाक्येन चोदितः । ब्रह्मणश्च महाभाग गौरवात्तव चागतः ॥ ३६ ॥ अहं भूतपतिः कृष्ण देवराजः पुरन्दरः । अदितेर्गर्भपर्याये पूर्वजस्ते पुरा कृतः ॥ ३७ ॥ स्वतेजस्तेजसा चैव यत्ते दर्शितवानहम् । मेघरूपेण तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि मे विभो ॥ ३८ ॥ एवं क्षान्तमनाः कृष्ण स्वेन सौम्येन तेजसा । ब्रह्मणः शृणु मे वाक्यं गवां च गजविक्रम ॥ ३९ ॥ आह त्वां भगवान् ब्रह्मा गावश्चाकाशगा दिवि । कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव संरक्षणादिभिः ॥ ४० ॥ भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम्। यद्वयं पुङ्गवैः सार्धं वर्धामः सवत्सैस्तथा४१ कर्षुकान् पुंगवैर्वाह्यैर्मेध्येन हविषा सुरान् । श्रियं सकृत् महत्तेन

तहाँ जा नहीं सकते,आपके उन रमणीय स्थानोंमें बड़े २ सींगों वाली गौएँ विचरण करती हैं, आनन्द वर्षा करने वाले और महायशस्वी आपका वह गोलोक इस पृथिवीमें और भी अधिक शोभा देता है)॥३५॥ अत एव गौओंके वाक्यसे प्रेरित होकर मैं यहाँ आया हूँ और हे महाभाग!ब्रह्माजीके वाक्यसे और आपके गौरवसे भी मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण ! मैं भूतपति देवराज पुरन्दर हूँ और अदितिगर्भकी गणनामें मैं तुमसे पहिले उत्पन्न हुआ था ॥ ३७ ॥ हे विभो ! मैंने मेघरूपसे जो अपना तेज आपको दिखाया, सो आप क्षमा करिये ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब आप शान्त होजाइये हे गजविक्रम ! आप सौम्य मनसे ब्रह्माजीके गौओंके और मेरे वाक्यको सुनिये ३९ स्वर्गमें भगवान् ब्रह्माजीने और तुम्हारे रक्षण आदि कर्मोंसे सन्तुष्ट हुई आकाशस्थित गौओंने तुमसे कहा है, कि-॥४०॥ आपने गौओंकी और इस महान् गोलोककी रक्षा की है अब हम वृषभों और वत्सोंके साथ बढ़ रही हैं ४१ हम इच्छानुसार

तर्पयिष्यन्ति कामगाः ॥ ४२ ॥ तदस्माकं गुरुस्त्वं हि प्राणदश्च महाबलः । अद्य प्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो ॥४३॥ तस्मात्त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः । एभिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ॥ ४४ ॥ अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः । गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम् ॥४५॥ ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः । उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः ॥ ४६ ॥ ये चेमे वार्षिका मासाश्चत्वारो विहिता मम । एषामर्धं प्रयच्छामि शरत्कालं तु पश्चिमम् ॥ ४७ ॥ अद्य प्रभृति मासौ द्वौ ज्ञास्यन्ति मम मानवाः । वर्षार्धे च ध्वजो मह्यं ततः पूजामवाप्स्यसि । मर्माच्छु-

चलने वाली गौएँ हल खेंचने वाले वृषभोंसे कृषकोंको और पवित्र हविसे देवताओंको और एक वार दुग्धके प्रवृत्त होने पर कान्तिको बढावेंगी ॥४२॥ इस लिये महाबली आप हमारे गुरु और प्राणदाता हैं, हे प्रभो ! आजसे आप हमारे राजा और इन्द्र बनिये ॥ ४३ ॥ (इन्द्रने कहा कि-)इस लिये आप सुवर्णके कलशोंमें भरे हुए दिव्य जलसे जिसका कि मैं अपने हाथसे अभिषेक करूँगा उन पयोंसे आप अभिषेक करवाइये (श्रुतिमें लिखा है, कि-"ऋषभं मासमानानां सपत्नानां विषासहिम् । हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्")४४ मैं देवताओंका इन्द्र हूँ और आप गौओंके इन्द्र बन गए हैं, आप शाश्वत पुरुष हैं, मनुष्य पृथिवीमें गोविन्दनामसे आपकी स्तुति करेंगे ॥ ४५ ॥ गौओंने तुम्हें मेरे ऊपर ईश्वर और इन्द्र बना दिया है इसी लिये स्वर्गमें देवता आपको उपेन्द्र नामसे पुकारेंगे ॥ ४६ ॥ मेरे पास वर्षा ऋतुके चार महीने हैं उनमेंसे आधे पिछले शरत्कालको मैं आपके लिये देता हूँ ॥ ४७ ॥ आजसे मनुष्य मेरे दो महीनों (श्रावण भाद्र

प्रभवं दर्पं तदा त्यक्ष्यन्ति बर्हिणः ॥४८॥ अल्पवाचो गतमदा ये चान्ये मेघनादिनः । शान्तिं सर्वे गमिष्यन्ति मम कालविचारिणः ॥४९॥ त्रिशंकुरगस्त्याचरिताभाशां च प्रचरिष्यति । सहस्ररश्मिरादित्यस्तापयन् स्वेन तेजसा ॥५०॥ ततः शरदि युक्तायां मौनकामेषु बर्हिषु । याचमाने खगे तोयं विप्लुतेषु प्लवेषु च ५१ हंससारसपूर्णेषु नदीनां पुलिनेषु च । मत्तक्रौंचप्रणादेषु प्रमत्तवृषभेषु च ॥ ५२ ॥ गोषु चैव प्रहृष्टासु क्षरन्तीषु पयो बहु । निवृत्तेषु च मेघेषु निर्गत्य जगतो जलम् । आकाशे शस्त्रसंकाशे हंसेषु च चरत्सु च । जातपद्मेषु तोयेषु वापीषु च सरःसु च ५४

पद) को जानेगे और आधी वर्षा ऋतु बीतने पर (आश्विन शुक्ला-प्रतिपदाके दिन मेरा ध्वज (व्रतसमाप्तिका चिन्ह खड़ा किया जायगा, तदनन्तर आपकी पूजा होने लगेगी, और उस समय मोर मेरे जलसे उत्पन्न हुए मदको त्याग दिया करेंगे ४८ और जो मेघको देख कर नाद करते हैं वे सब भी मेरे समयको विचार कर अपने मदको त्याग देंगे और उनकी वाणी हल्की हो जाया करेगी ॥ ४९ ॥ और सहस्र किरणों वाले सूर्य भी अपने तेजसे तपतेहुए त्रिशंकु और अगस्त्यसे सेवित दक्षिण दिशामें भ्रमण करने लगेंगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर शरद ऋतुके समय मयूर चुप रहना अच्छा समझने लगेंगे और चातक जल की चाहना करने लगेगा और नदियोंके पूर जाते रहेंगे ५१ और नदियोंके रेते हंस और सारसोंसे भर जावेंगे और क्रौंच मत्त होकर नाद करने लगेंगे और वृषभ मस्त होजावेंगे ॥ ५२ ॥ और गौएँ प्रसन्न होकर बहुतसा दूध देने लगेंगी और मेघ जगत् में जल बरसा कर भाग जावेंगे ॥ ५३ ॥ और हंसोंके भ्रमण करनेके कारण आकाश शस्त्रकी समान (निर्मल दीखने लगेगा) और बावड़ी तथा तालाबोंके जलोंमें कमल उत्पन्न होजाया

तडागेषु च कान्तेषु तोयेषु विमलेषु च । कलमावनताग्रासु कृष्ण केदारपंक्तिषु ॥ ५५ ॥ मध्यस्थं सलिलारम्भं कुर्वन्तीषु नदीषु च । सुसस्यां च सुसीमायां मनोहर्यां मुनेरपि ॥ ५६ ॥ पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां रम्यायां वर्षसंक्षये । श्रीमत्सु पंक्तिमार्गेषु फलवत्सु तृणेषु च । इक्षुमत्सु च देशेषु प्रवृत्तेषु मखेषु च ॥ ५७ ॥ ततः प्रवत्स्र्यते पुण्या शरत् सुप्तोत्थिते त्वयि । लोकेऽस्मिन् कृष्ण निखिले यथैव त्रिदिवे तथा ॥ ५८ ॥ नरास्त्वां चैव मां चैव ध्वजाकारासु यष्टिषु । महेंद्रं चाप्युपेन्द्रं च महयन्ति महीतले ॥ ५९ ॥ ये चावयोः स्थिरे वृत्ते महेन्द्रोपेन्द्र-संज्ञिते । मानवाः प्रणमिष्यन्ति तेषां नास्त्यनयागमः ॥ ६० ॥ ततः शक्रस्तु तान् गृह्य घटान् दिव्यपयोधरान् । अभिषेकेण-

---

करेंगे ॥ ५४ ॥ जल निर्मल होनेसे तड़ाग मनोहर दीखने लगेंगे और काली क्यारियोंकी पंक्तियोंमें धान्योंके अग्रभाग लटकने लगेंगे ॥ ५५ ॥ और नदियें अपने जलको मध्यमें करना आरंभ कर देंगी और मुनियोंकी भी सीमाओंमें पृथ्वी धान्योंसे मनोहर दीखने लगेगी ॥ ५६ ॥ वर्षा ऋतुके अनन्तर अनेक राष्ट्रों वाली पृथ्वी रमणीय दीखने लगेगी और पंक्तिमार्गोंमें शोभा फल और तृण फैल जावेंगे और स्थान २ पर गन्ने दीखने लगेंगे और (वाजपेय आदि) यज्ञ होने लगेंगे ॥ ५७ स्वर्गमें आप जब शयन करनेके बाद उठते हैं तब जैसे पुण्यमयी शरद ऋतु चलने लगती है, इसी प्रकार इस सारे लोकमें भी यह ऋतु वर्तने लगेगी ॥ ५८ ॥ महीतलके मनुष्य मुझ इन्द्रकी और आप उपेन्द्र की इस प्रकार दोनोंकी ध्वजाकार यष्टियोंमें पूजा करेंगे ॥ ५९ ॥ जो हमारे महेन्द्रोपेन्द्रोत्सव नामक शाश्वत उत्सवमें हमें प्रणाम करेंगे उनको अनीतिका भय नहीं रहेगा ॥ ६० ॥ तदनन्तर योगज्ञ इन्द्र मन्दाकिनीके दिव्य जलसे भरे हुए घड़ोंको उठा कर श्रीकृष्ण

गोविन्दं योजयामास योगवित् ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्ताः सह यूथपैः । स्तनैः प्रस्नुतयुक्तैश्च सिषिचुः कृष्णमव्ययम् ॥६२॥ मेघाश्च दिव्ययुक्ताभिः सामृताभिः समन्ततः । सिषिचुस्तोयधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम् ॥ ६३ ॥ वनस्पतीनां सर्वेषां सुसूतेन्दुनिभं पयः । ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूर्याणि चाम्बरे६४ अस्तुवन् मुनयः सर्वे वाग्भिर्मन्त्रपरायणाः । एकार्णवे विविक्तं च दधार वसुधा वपुः ॥ ६५ ॥ प्रसादं सागरा जग्मुर्ववुर्वाता जगद्धिताः । मार्गस्थोऽपि बभौ भानुश्चन्द्रो नक्षत्रसंयुतः ॥ ६६ ॥ ईतयः प्रशमं जग्मुर्निर्वैरश्चना नृपाः । प्रवालपत्रशबलाः पुष्पवन्तश्च पादपाः ॥६७॥ मदं प्रसुस्रुवुर्नागा यातास्तोषं वने मृगाः ।

का अभिषेक करने लगा ॥ ६१ ॥ श्रीकृष्णको अभिषिक्त देख कर स्वर्गमें स्थित गौओंने दुग्धको टपका कर और उनके यूथपों ने (उनका दुग्ध लेकर) अव्यय श्रीकृष्णका अभिषेक किया ६२ तदनन्तर मेघोंने स्वर्गमें स्थित अमृतसे मिली हुई जलधाराओंसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया तदनन्तर (सोमने) सब वनस्पतियों के चन्द्रमाकी समान (शीतल) जलकोबरसाया इस प्रकार अव्यय श्रीकृष्णका अभिषेक होनेके अनन्तर आकाशमेंसे (देवता) पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और तूर्य (अपने आप ही) बजने लगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ और मंत्रपरायण मुनि वाणियोंसे श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे और पृथिवीने एकार्णवसे पृथक हुए अपने शरीरको धारण कर लिया अर्थात् क्षीरसमुद्रके मध्यमें विराजमान पृथिवी भी क्षीरमयी होगई, इससे सब क्षीरमय समुद्र होगया ६५ उस समय समुद्र प्रसन्न होगए और जगत्का हित करने वाला मंगलमय पवन चलने लगा और मार्गस्थित सूर्यभी दिपने लगा और चन्द्रमा नक्षत्रोंसे संयुक्त होगया ॥ ६६ ॥ (अतिवृष्टि आदि) ईतियें नष्ट होगईं और राजा वैर त्याग करनेकी मंत्रणायें करने

अलंकृता नागरुहैर्धातुभिर्भान्ति पर्वताः ॥ ६८ ॥ देवलोकसमो लोकस्तृप्तोऽमृतरसेरिव । आसीत् कृष्णाभिषेको हि दिव्यस्वर्गरसोन्वितः ॥ ६९ ॥ अभिषिक्तं तु तं गोभिः शक्रो गोविन्दमव्ययम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ७० ॥ एष ते प्रथमः कृष्ण नियोगो गोषु यः कृतः । श्रूयतामपरं कृष्ण ममागमनकारणम् ॥ ७१ ॥ क्षिप्रं प्रसाध्यतां कंसः केशी च तुरगाधमः । अरिष्टश्च मदाविष्टो राजराज्यं ततः कुरु । ७२॥ पितृष्वसरि जातस्ते ममांशोहमिव स्थितः । स ते रक्ष्यश्च मान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम् ॥ ७३ ॥ त्वया ह्यनुगृहीतः संस्तद्वृत्तानुवर्तकः । त्वद्वशे वर्तमानश्च आप्स्यते विपुलं यशः ॥ ७४ ॥ भार-

---

लगे और वृक्षों पर फल पत्र और पुष्प आने लगे ॥ ६७ ॥ हाथी मद टपकाने लगे और मृग वनमें प्रसन्न होगए और वृक्षों से अलंकृत पर्वत धातुओंसे शोभा पाने लगे ६८ जैसे अमृतरस से देवलोक तृप्त रहता है, इसी प्रकार मनुष्यलोक तृप्त रहने लगा इस प्रकार दिव्य स्वर्ग रससे श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ था ६९ गौओंके द्वारा अभिषिक्त दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करने वाले अच्युत गोविन्दसे देवदेव इन्द्रने कहा, कि–७० हे कृष्ण ! गौओंकी आज्ञा मेरे आनेका प्रथम कारण है, हे कृष्ण ! अब तुम मेरे आगमनके दूसरे कारणको सुनो ७१ आप कंस अश्वोंमें नीच–केशी और घमण्डी अरिष्टको शीघ्रतासे वध करिये और तदनन्तर राजराज्य करिये ७२ तुम्हारी बुआमें मेरा अंश उत्पन्न हुआ है वह मेरी समान ही है उस (अर्जुन) की तुम रक्षा करना और उसका मान रखना और उसको तुम अपना मित्र बना लेना ७३ यदि आप उस पर अनुग्रह करेंगे तो वह आपके चरित्रका अनुवर्तन कर आपके वशमें रह कर विपुल कीर्तिको पा सकेगा ७४ वह भरतवंशियोंके अनुरूप श्रेष्ठ धनुर्धर

तस्य च वंशस्य स वरिष्ठो धनुर्धरः । भविष्यत्यनुरूपश्च त्वद्दते न च रंस्यते ॥ ७५ ॥ भारतं त्वयि चायत्तं तस्मिंश्च पुरुषोत्तमे । उभाभ्यामपि संयोगे यास्यन्ति निधनं नृपाः ॥ ७६ ॥ प्रतिज्ञातं मया कृष्ण ऋषिमध्ये सुरेश्वर । मया पुत्रोऽर्जुनो नाम सृष्टः कुन्त्यां कुलोद्वहः ॥ ७७ ॥ सोऽस्त्राणां पारतत्त्वज्ञः श्रेष्ठश्चापविकर्षणे । तं प्रवेक्ष्यन्ति वै सर्वे राजानः शस्त्रयोधिनः ॥७८॥ अक्षौहिणीस्तु शूराणां राज्ञां संग्रामशालिनाम् । स एकः क्षत्रधर्मेण योजयिष्यति मृत्युना ॥ ७९ ॥ तस्यास्त्रचरितं मार्गे धनुषो लाघवेन च । नानुयास्यन्ति राजानो देवा वा त्वां विना प्रभो॥८० स ते बन्धुः सहायश्च संग्रामेषु भविष्यति । तस्य योगो विधातव्यस्त्वया गोविन्द मत्कृते ॥ ८१ ॥ द्रष्टव्यश्च यथाहं वै त्वया

होगा और वह आपके बिना प्रसन्न नहीं रहा करेगा ७५ तुम्हारे और उस पुरुषोत्तमके ऊपर ही भरतवंशियोंके युद्धका भार रक्खा जावेगा और तुम दोनोंके संयोगसे राजाओंका मरण हो जावेगा ७६ हे सुरेश्वर ! हे श्रीकृष्ण ! मैंने ऋषियोंके मध्यमें प्रतिज्ञा की थी, कि-मैंने कुलको उठाने वाला अर्जुन नामक पुत्र कुन्तीमें उत्पन्न किया है७७वह अस्त्रोंके परम तत्त्वको जानता है और धनुष खेंचनेमें समर्थ है सब शस्त्रयोधी राजे उसमें ही लीन हो जावेंगे ७८ और वह संग्राम करने वाले शूर राजाओंकी अक्षौहिणियोंको अकेला ही क्षत्रधर्मसे मृत्युके आधीन कर देगा ७९ उसके अस्त्र चलानेके मार्गमें देवता और राजे भी नहीं जासकेंगे और हे प्रभो ! आपके अतिरिक्त उसकी सी धनुषकी फुर्तीको भी और कोई नहीं दिखा सकेगा८०वह आपका बन्धु है और वह संग्रामोंमें आपकी सहायता पायेगा, हे गोविन्द तुम उस को मेरे कहनेसे अध्यात्मविद्याका उपदेश देना ॥ ८१ ॥ जिस प्रकार मैं अर्जुनको देखता हूँ, उसी प्रकार आप अर्जुनको

मान्यश्च नित्यशः ।ज्ञाता त्वमेव लोकानां गर्जुनस्य च नित्यशः॥८२
त्वया च नित्यं संरक्ष्य आहवेषु महत्सु सः । रक्षितस्य त्वया
तस्य न मृत्युः प्रभविष्यति ॥ ८३ ॥ अर्जुनं विद्धि मां कृष्ण मां
चैवात्मानमात्मना ।आत्मा तेऽहं यथा शश्वत्तथैव तव सोऽर्जुनः॥८४
त्वया लोकानिमान् जित्वा बलेर्हस्तात्त्रिभिः क्रमैः । देवतानां
कृतो राजा पुरा ज्येष्ठक्रमादहम् ॥ ८५ ॥त्वां च सत्यमयं ज्ञात्वा
सत्येष्टं सत्यविक्रमम्।सत्येनोपेत्य देवा वै योजयन्ति रिपुक्षये॥८६
सोऽर्जुनो नाम मे पुत्रः पितुस्ते भगिनीसुतः । इह सौहार्दमायातु
भूत्वा सहचरः पुरा॥८७तस्य ते युध्यतः कृष्ण स्वस्थानेऽपि गृहेऽपि
वा । वोढव्या पुङ्गवेनेव धूः सदा रणमूर्धनि ॥८८॥ कंसे विनि-
हते कृष्ण त्वया भाव्यर्थदर्शिना । अभितस्तन्महद्युद्धं भविष्यति

देखें और सर्वदा उसका सन्मान करे आप लोकोंके ज्ञाता हैं,
अतः आप अर्जुनका ध्यान सर्वदा रखना॥८२ आप बड़े २ युद्धोंमें
उसकी सर्वदा रक्षा करते रहना,यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो
मृत्यु उसको दबा न सकेगी॥८३हे कृष्ण!आप अर्जुनको मेरी समान
समझिये, और मुझे अपना समझिये जिस प्रकार मैं आपकी
आत्मा हूँ इसीप्रकार अर्जुनको समझिये॥८४पहिले आपने बलिके
हाथसे तीन कदमोंमें इन लोकोंको जीतकर ज्येष्ठ होनेके कारण
(वे मुझे सौंप दिये थे और मुझे) देवताओंका राजा बना
दिया था ॥८५ आपको सत्यमय सत्येष्ट सत्यविक्रम जान कर
देवता सत्यके द्वारा आपको प्राप्त होकर रिपुक्षयके कार्यमें आपको
आगे खड़ा कर देते हैं ॥ ८६ ॥ वह अर्जुन नामक मेरा पुत्र
तुम्हारे पिताकी बहिनका पुत्र है, वह तुम्हारा सहचर बन कर
तुम्हारा प्रेम संपादन करे ॥ ८७ ॥ हे कृष्ण ! वह घरमें चाहे
रणके मोर्चे पर युद्ध कर रहा हो आप पुंगवकी समान उसके
भारको सदा धारण किये रहना ॥ ८८ ॥ हे कृष्ण ! आप

महीक्षिताम् ॥ ८९ ॥ तत्र तेषां नृवीराणामतिमानुषकर्मणाम् । विजयस्यार्जुनो भोक्ता यशसा त्वं च मोदयसे ॥ ९० ॥ एतन्मे कृष्ण कार्त्स्न्येन कर्तुमर्हसि भाषितम् । यद्यहं ते सुरश्रेष्ठ सत्यं च प्रियमच्युत ॥ ९१ ॥ शक्रस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दतां गतः । प्रीतेन मनसा युक्तः प्रतिवाक्यं जगाद ह॥९२॥प्रीतोऽस्मि दर्शनादेव तव शक्र शचीपते । यत्त्वयाऽभिहितं चेदं न किंचित् परिहास्यते ॥९३॥ जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसंभवम् । जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दत्तां महात्मनः ॥ ९४ ॥ युधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिर्मितम् । भीमसेनं च जानामि वायोः संतानजं सुतम् ॥ ९५ ॥ अश्विभ्यां साधु जानामि सृष्टं पुत्रद्वयं शुभम् । नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ ॥ ९६ ॥ कानीनं

भविष्यदर्शी हैं जब आप कंसको मार डालेंगे तब चारों ओर राजाओंमें घोर युद्ध होने लगेगा ॥ ८९ ॥ तब उन अमानुषी कर्म करने वाले नरवीरोंको अर्जुन जीतेगा और आपका यश फैलेगा ॥ ९० ॥ हे अच्युत ! हे कृष्ण ! यदि आपको मैं देवता और सत्य प्रिय हो तो मेरे सारे भाषणके अनुसार कार्य करिये इन्द्रके वचनको सुनकर गोविन्दपनको प्राप्त हुए श्रीकृष्णने प्रसन्न मनसे इन्द्रको उत्तर दिया, कि—॥ ९२ ॥ हे शचीपति इन्द्र ! मैं तो तुम्हारे दर्शनसे ही प्रसन्न होगया हूँ, तुमने जो कुछ बात कही है,इसमेंसे कुछ भी बाकी नहीं रक्खा जायगा९३ मैं तुम्हारे भावको जानता हूँ और अर्जुनकी उत्पत्तिको भी जानता हूँ और मैं यह भी जानता हूँ मेरे पिताकी बहिन (बुआ) महात्मा पाण्डुको विवाही गई है ॥ ९४ ॥ और धर्मराजके द्वारा निर्मित कुमार युधिष्ठिरको भी मैं जानताहूँ और वायुके पुत्र भीमसेनको भी मैं जानता हूँ ॥९५॥ और माद्रीकी कोखमें पहुँचे हुए अश्विनीकुमारोंके रचे हुए नकुल और सह-

चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम् । पितृष्वसरि पुत्रं तं प्रसूतं सूततां गतम् ॥ ६७ ॥धार्तराष्ट्रांश्च मे सर्वे विदिता युद्धकाङ्क्षिणः । पाण्डोरुपरमं चैव शापाशनिनिपातजम् ॥ ६८ ॥ तद्गच्छ त्रिदिवं शक्र सुखाय त्रिदिवौकसाम् । नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥ ६९ ॥ अर्जुनार्थे च तान् सर्वान् पाण्डवानक्षतान् युधि । कुन्त्या निर्यातयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे ॥ १०० ॥ यच्च वक्ष्यति मां शक्र तनूजस्तव सोऽर्जुनः । भृत्यवत्तत् करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः ॥ १०१ ॥ सत्यसन्धस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम् । कृष्णस्य साक्षात् त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः ॥ १०२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोविंदाभिषेको नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

देव नामक दोनों शुभ पुत्रोंको भी जानता हूँ ॥ ६६ ॥ और कन्यामें उत्पन्न हुए सूर्यके प्रथम पुत्र (कर्ण)को भी मैं जानता हूँ, वह मेरी बुआसे उत्पन्न हुआ है और वह सूत कहलाने लगा है ॥ ६७ ॥ और मैं युद्धाभिलाषी धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको भी जानता हूँ और शाप रूपी वज्र पड़नेसे पाण्डुका मरण होगा इस बातको भी मैं जानता हूँ ॥ ६८ ॥ हे शक्र ! इस लिये तुम देवताओंको सुख देनेके लिये स्वर्गको जाओ, मेरे सामने अर्जुन का कोई शत्रु न टिक सकेगा ॥ ६९ ॥ मैं अर्जुनके कारण उस महाभारत युद्धमें सब पाण्डवोंको अक्षत रख कर युद्ध-समाप्तिके अनन्तर कुन्तीको सौंप दूँगा ॥ १०० ॥ हे शक्र ! तुम्हारा पुत्र अर्जुन मुझसे जो कुछ कहेगा उसको तुम्हारे स्नेहसे बँधा होनेके कारण अवश्य करूँगा ॥ १०१ देवताओंका ईश्वर इन्द्र प्रसन्न हुए सत्यसंध श्रीकृष्णके प्रिय भाषणको सुन कर स्वर्गको चला गया ॥ १०२ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त १९

वैशम्पायन उवाच । गते शक्रे ततः कृष्णः पूज्यमानो व्रजा-
लयैः । गोवर्धनधरः श्रीमान् विवेश व्रजमेव ह ॥ १ ॥ तस्य वृद्धाभि-
नन्दति ज्ञातयश्च सहोषिताः । धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मस्त्वद्-
वृत्तेन नयेन च ॥ २ ॥ गावो वर्षभयात्तीर्णा वयं तीर्णा महा-
भयात् । तव प्रसादाद्गोविन्द देवतुल्यपराक्रम ॥ ३ ॥ अमानु-
षाणि कर्माणि तव पश्याम गोपते । धारणेनास्य शैलस्य विद्म-
स्त्वां कृष्ण दैवतम् ॥४॥ कस्त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां च महा-
बलः । वसूनां वा किमर्थं च वसुदेवः पिता तव ५ बलं च बाल्ये
क्रीडा च जन्म चास्मासु गर्हितम् । कृष्ण दिव्या च ते चेष्टा
शंकितानि मनांसि नः ६ किमर्थं गोपवेषेण रमसेऽस्मासु गर्हि-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इन्द्रके चले जाने पर गोवर्धनधारी श्रीमान् श्रीकृष्ण गोपोंसे पूजा पाते हुए व्रजमें प्रवेश करने लगे ॥ १ ॥ उनकी जातिके वृद्ध पुरुष" आपके चरित्रसे और आपकी नीतिसे हम धन्य होगए हैं और आपने हम पर परम अनुग्रह किया है" यह कह कर श्रीकृष्णकी प्रशंसा करने लगे २ हे गोविन्द ! हे देवताओंकी समान पराक्रमी ! आपके प्रसादसे गौएँ वर्षाके भयसे मुक्त होगई और हम भी बड़े भारी भयके पार पहुँच गए ॥ ३ ॥ हे गोपते ! हम देख रहे हैं,, कि-आप के सब कर्म अमानुषिक ही होरहे हैं,हे कृष्ण।हम आपको देवता समझने लगे हैं ॥ ४ ॥ क्या तुम रुद्रोंमेंके कोई रुद्र हो ! अथवा तुम मरुद्गणोंमेंसे वा वसुओंमेंसे कोई मरुत् वा वसु हो ? तुम कौन हो ! वसुदेव तुम्हारे पिता किस प्रकार हैं ! ॥ ५ ॥ बाल्यकाल के आपके बलको देख कर प्रतीत होता है, कि-हमारे यहाँ आप का जन्म लेना हँसीकी सी बात है, हे कृष्ण ! आपकी चेष्टाएँ दिव्य हैं, उनको देख कर हमारे मन शंकित होरहे हैं ॥ ६ ॥ आप किस लिये गोपवेषसे हम लोगोंमें विचरण कर रहे हैं यह

तम् । लोकपालो यमश्चैव गास्त्वं किं परिरक्षसि ॥ ७ ॥ देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा ।अस्माकं बान्धवो जातो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥८॥ केनचिद्यदि कार्येण वससीह यदृच्छया । वयन्तवानुगाः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच । गोपानां वचनं श्रुत्वा कृष्णः पद्मदलेक्षणः । प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा ज्ञातीन् सर्वान् समागतान ॥१०॥ मन्यते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम् । तथाऽहं नायमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः ॥ ११ ॥ यदि त्ववश्यं श्रोतव्यं कालं संप्रतिपाल्यताम् ।ततो भवन्तः श्रोष्यन्ति मां च द्रक्ष्यन्ति तत्त्वतः यद्यहं भवतां श्लाघ्यो बान्धवो देवसन्नभः । परिज्ञानेन किं कार्यं यद्येषोऽनुग्रहो मम ॥ १२ ॥ एवमुक्तास्तु ते गोपा वसुदेवसुतेन

तो गर्हित दात है, आप लोकपालोंकी समान हो कर भी गौओं की रक्षा क्यों कर रहे हैं ॥ ७ ॥ आप देव हों, दानव हों, यक्ष हों वा गंधर्व हों, आप हमारे बान्धव बन कर उत्पन्न हुए हैं,अब आप जो कुछ हों वह हों. हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥ प्रतीत होता है आप किसी कार्यको करनेके लिये अपनी इच्छासे यहाँ बस रहे हैं ! हम सब आपके अनुचर हैं और आपकी शरण हैं ॥ ६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-गोपोंके वचनको सुन कर कमलदलनयन श्रीकृष्णने मुस्कुरा कर सब आये हुए जाति वालों से कहा, कि-॥ १० ॥ आप मुझे जिस प्रकार भयंकर पराक्रमी समझते हैं, इस प्रकार कह कर आप मुझे लज्जित न करिये, मैं तो आपका ही बान्धव हूँ ॥ ११ ॥ यदि आप इस बातको अवश्य ही सुनना चाहते हों तो कुछ समयकी बाट देखिये, तब आप सब सुन सकेंगे और मुझे वास्तविकरूपसे देख सकेंगे १२ यदि आप मुझे देवताकी समान प्रभाव वाला अपना श्लाघनीय बांधव मानते हैं, तो आपका यह मेरे ऊपर परम अनुग्रह है ?

नौ । बद्धमौना दिशः सर्वे भेजिरे पिहिताननाः ॥१४॥ कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम् ।शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥सकरीषांगराजासु व्रजरथ्यासु वीर्यवान् । वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत् ॥ १६ ॥ गोपालांश्च बलोदग्रान् योधयामास वीर्यवान् । वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद्विभुः ॥ १७ ॥ युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित् । कैशोरकं मानयन् वै सह ताभिर्मुमोद ह ॥१८॥ तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि । पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गां गतं शशिनं यथा ॥१९. हरितालार्द्रपीतेन स कौशेयेन वाससा ।

फिर आप मुझे जानकर क्या करेंगे ॥ १३ ॥ वसुदेवपुत्रके इस प्रकार कहने पर वे गोप मौन होगए और अपने मुखोंको बन्द कर अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण रात्रिमें चन्द्रमाके यौवन (कान्ति) को देख कर और शरत्कालीन रमणीय रात्रिको देख कर रति करना चाहने लगे ॥ १५ ॥ वीर्यवान् श्रीकृष्णने अन्ने उपलोंके चूरोंसे भरी हुई व्रजकी गलियोंमें दर्पमें भरे हुए साँडोंका युद्ध छिड़वा दिया ॥ १६ ॥ और उन वीर्यवान् भगवान्ने उत्कट बली गोपालोंकी कुश्ती करवाई और उन वीर प्रभुने वनमेंसे गौओंको ग्राहकी समान पकड़ लिया १७ और वह समयज्ञ श्रीकृष्ण युवतियोंको और गोपकन्याओंको अपने वशमेंकर, किशोरावस्थाका सम्मान करनेके लिये उनके साथ आनन्द पाने लगे (दश वर्षके बाद एकादश वर्ष आरंभ होने वाले समयका नाम किशोरावस्था है, उस अवस्थामें "प्रागुपनयनात् कामचाराद्यनुज्ञास्ति" अर्थात् उपनयनसे पहिले इच्छानुसार खेलनेकी अनुज्ञा है । इसी वाक्यका सत्कार करनेके लिये रासक्रीड़ा की गई थी) ॥ १८ ॥ रात्रिमें रमणीय गोपस्त्रियें पृथ्वीमें उतरे हुए चन्द्रमाकी समान उनके सुन्दर मुखका

वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत् ॥ २० ॥ स बद्धांगदनिर्व्यूढ़श्चित्रया वनमालया । शोभमानो हि गोविंदः शोभयामास तद्व्रजम् ॥२१॥ नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवन् । विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत्तस्य भास्वतः ॥ २२ ॥ तास्तं पयोधरोत्तुङ्गैरुरोभिः समपीडयन् । भ्रामिताक्षैश्च वदनैर्निरीक्षंते वरांगनाः२३ता वार्यमाणाः पतिभिर्भ्रातृभिर्मातृभिस्तथा । कृष्णं गोपांगना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः ॥ २४ ॥ तास्तु पंक्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम् । गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोप-

नयन चला कर पान करने लगीं ॥ १९ ॥ कल्याणप्रद गीले हरतालकी समान पीले रेशमी वस्त्र को धारण करने वाले श्रीकृष्ण उस समय और भी मनोहर प्रतीत होने लगे २० विचित्र वन मालाके बने हुए बँधे हुए बाजूबन्दसे शोभा पाते हुए श्रीकृष्ण उस व्रजको सुशोभित करने लगे ॥२१॥ गोपकन्याओंने ग्राममें श्रीकृष्णका विचित्र चरित्र देखा था अत एव वह कान्तिमान् श्रीकृष्णको दामोदर नामसे पुकारने लगीं २२ वे अपने पयोधरोंसे श्रीकृष्णको पीडित करने लगीं और वे सुन्दर अंगों वाली स्त्रियें नेत्र घुमा कर श्रीकृष्णको देखने लगीं २३ पति भाई और माताएँ उनको रोकती थीं तब भी वे रतिप्रिय गोपियें रात्रिमें श्रीकृष्णको ढूँढ़ती फिरती थीं२४ वे गोप कन्याएँ पंक्तिबद्ध (मण्डल) बाँधकर मनोरम श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ा करने लगीं,वे गोपकन्याएँ द्वन्द्व होकर श्रीकृष्णके चरित्रका गान करने लगीं और दोनों ओर श्रीकृष्ण थे (कहा है; कि- "अंगनामंगनामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरे चांगनाः । इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः" अर्थात् प्रत्येक स्त्रियोंके मध्यमें श्रीकृष्ण थे और प्रत्येक माधवके बीचमें गोपियें थीं इस प्रकार मण्डलकी रचना होने पर

कन्यकाः ॥२५॥ कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः । कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वरांगनाः ॥२६॥ वनेषु ताल-हस्ताग्रैः कूजयन्त्यस्तथापराः । चेरुर्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रज-योषितः ॥२७॥ तास्तस्य नृत्यं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम् । मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः ॥२८॥ भावनिस्यंद मधुरं गायन्त्यस्ता वरांगनाः । व्रजं गता सुखं चेरुर्दामोदरपरा-यणाः ॥ २९ ॥ करीषपांसुदिग्धांग्यस्ताः कृष्णमनुवव्रिरे । रम-

मध्यमें खड़े हुए श्रीकृष्ण वेणुको बजाने लगे श्रुतिमें भी कहा है, कि-"पद्यावस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा। ऋतस्य सद्म विचरामि विद्वान् महद्द देवानामसुरत्वमेकम्" अर्थात् अभि-सरण करने वालीं गोपियोंके प्राप्त करने योग्य कृष्णमूर्ति अनेक रूपधारिणी है, उसने बहुतसे शरीरोंको धारणकर लिया तथापि एक मध्यस्थित गोपी प्रत्येक गोपीके आगे और दोनों ओर वासुदेव हैं इस बातको दृष्टिसे देखकर यह विचारने लगीं, कि-यह मूर्ति धर्मका निवासस्थानरूप है ऐसे देवतासे वियुक्त होना असुरत्वका एक मुख्य कारण है) २५ वे तरुण गोपियें वासुदेव की लीलाका अनुकरण करने लगीं और कृष्णकी ओर टकटकी बाँधकर देखने लगीं और कृष्णकी गतिसे चलने लगीं २६ वे व्रजकी स्त्रियें वनमें अंगुलियोंको तालकी समान उठा कर एक दूसरीको पुकार कर श्रीकृष्णके चरित्रका गान करने लगीं २७ वे व्रजबालाएँ श्रीकृष्णके नृत्य गीत विलास मुसकान और दृष्टि का प्रसन्नतासे अनुकरण कर क्रीड़ा करने लगीं ॥ २८ ॥ वे दामोदरमें परायण रहने वालीं गोपियें अपने हृदयमेंके श्रीकृष्ण परके प्रेमातिशयभावको गाकर बाहर प्रकट करती हुईं व्रजमें सुखपूर्वक विचरण करने लगीं ॥ २९ ॥ जैसे हथनियें मत्त गज-राजको घेर लेंय तैसेही अन्ने उपलोंके चूरोंसे मलिन अगों वाली

पन्त्यो यथानागं संममर्द्द करेणवः ॥ ३० ॥ तमन्याभावविकचै-
र्नेत्रैः प्रहसिताननाः।पिबन्त्यतृप्तवनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः॥३१
मुखमस्याब्जसंकाशं तृषिता गोपकन्यकाः । रत्यन्तरगता रात्रौ
पिबन्ति रसलालसाः ॥ ३२ ॥ हाहेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता-
वरांगनाः । जगृहुर्निःसृतां वाणीं नाम्ना दामोदरेरिताम् ३३
तासां ग्रथितसीमन्ता रतिं नीत्वाकुलीकृताः । चारु विस्रंसिरे
केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम् ॥ ३४ ॥ एवं स कृष्णो गोपीनां
चक्रवालैरलंकृतः । शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हल्लीसक-
क्रीडनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रदोषार्धे कदाचित्तु कृष्णे रतिपरायणे।
त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत ॥ १ ॥ निर्वाणांगार-

गोपियोंने श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ ३० ॥ कृष्णमृगके समान नेत्रों वालीं गोपियें मुखको प्रसन्न करके भावके कारण खिले हुए नेत्रोंसे श्रीकृष्णका पान करने लगीं परन्तु तृप्त नहीं हुई ३१ दूसरी गोपियोंके साथ क्रीड़ामें लगीं हुई गोपियें रसकी लालसा से तृषित होकर श्रीकृष्णके कमलकी समान मुखका पान करने लगीं ॥ ३२ ॥ जब दामोदर हा हा कह कर बोल उठते थे तब गोपियें परम प्रसन्न होकर उनकी वाणीको सुनती थीं ३३ उनके केश बँधे हुए थे, परन्तु क्रीड़ा करने के कारण खुल कर उनके स्तनों पर लटक गए थे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार गोपियोंके मण्डल से अलंकृत श्रीकृष्ण शरद् ऋतुकी शुक्लपक्षकी रात्रियोंमें गोपियों के साथ आमोद करके सुखी हुए थे ॥ ३५ ॥ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—एक समय आधी रात्रिके समय श्रीकृष्ण क्रीडा कर रहे थे, इसी समय मदमें भरा हुआ अरिष्ट

मेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः। क्षुरतीक्ष्णाग्रचरणः कालः काल इवापरः ॥ २ ॥ लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः। गर्वितविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३॥ ककुदोदग्रनिर्माणः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः। शकृन्मूत्रोपलिप्ताङ्गो गवामुद्वेजनो भृशम् ४ महाकटिः स्थूलमुखो दृढजानुर्महोदरः। विषाणावलितगलितल-म्बता कण्ठचर्मणा ॥ ५ ॥ गवारोहेषु चपलस्तरुघाताङ्किता-ननः। युद्धसज्जविषाणाग्रो द्विषद्वृषभसूदनः ॥ ६ ॥ अरिष्टो नाम हि गवामरिष्टो दारुणाकृतिः। दैत्यो वृषभरूपेण गोष्ठान् विपरिधावति ॥ ७ ॥ पातयानो गवां गर्भान् दृप्तो गच्छत्यनार्त-

नामका दानव गोष्ठमें आगया ॥ १ ॥ उसकी कान्ति बुझे हुए कोयले और मेघकी समान काली थी सींग पैने थे नेत्र सूर्यकी समान दमक रहे थे, खुर छुरेकी समान तीक्ष्ण थे, इस प्रकार वह दूसरे कालकी समान दीख रहा था २ वह अपनी जिह्वा से अपने ओठोंको चाटकर बार २ शब्दके साथ उनको बन्द कर लेता था, और गर्वसे अपनी पूँछको उठा रहा था और उसका कन्धा बड़ा कठिन था ॥ ३ ॥ वह अपने उदग्र (उठे हुए दृढ) ककुदसे मार कर (वृक्ष आदिको तोड़ मार्ग) निर्माण कर लेता था और गोबर तथा मूत्रसे उसका शरीर लिप रहा था इससे गौएँ उससे परम त्रस्त रहती थीं ४ उसकी कटि (कमर) बड़ी चौड़ी थी और मुख लम्बा था जंघाएँ दृढ थीं और पेट बड़ा था जिस समय वह मुख चलाता था, उस समय उसके गलेमें लटकता हुआ कण्ठका चर्म और विषाण भी चलते थे ॥५॥ वह गौओं पर चढनेके लिये चपल हो रहा था और उसका मुख वृक्षोंके आघातसे चिन्हित हो रहा था और उसके सींग युद्ध करनेके लिये तयार थे, वह शत्रुओंके वृषभोंको नष्ट कर डालता था ६ वह गौओंमें अरिष्ट नामसे प्रसिद्ध दारुण आकार वाला अरिष्ट

वम् । जृम्भमाणश्च चपलो गृष्टीः संप्रचचार ह ॥ ८ ॥ शृङ्गप्रहरणो रौद्रः प्रहरन् गोषु दुर्मदः । गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना युद्धेन गोवृषः ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य स वृषः केशवाग्रतः । आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १० ॥ स तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः । चकार निर्वृषं गोष्ठं निर्वत्सशिशुपुङ्गवम् ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णसमीपगाः । त्रासयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १२ ॥ सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः । तालशब्देन तं कृष्णः सिंहनादैश्च मोहयन् ॥१३॥ अभ्यधावत गोविन्दो दैत्यं वृषभरूपिणम् । स कृष्णं गोवृषो दृष्ट्वा हृष्टलाङ्गूललोचनः ॥ १४ ॥

नामक वृषभरूपधारी दैत्य गोष्ठोंमें विचरण करने लगा ७ वह ऋतुकालके न होने पर भी गर्वमें भर गौओं पर चढ उनके गर्भ को गिराने लगा और वह चपल जँभाई लेकर सद्यः प्रसूता गौओं पर चढने लगा ॥ ८ ॥ सींगोंसे प्रहार करने वाला वह दुर्मद रौद्र दैत्य गोष्ठोंमें गौओं पर प्रहार करने पर भी युद्धके विना आनन्दित नहीं हुआ ॥ ९ ॥ कुछ समयके अनन्तर यमराजके वशमें पड़ा हुआ वह अपारबली वृषभ श्रीकृष्णके सामने पहुँचा ॥ १० ॥ तहाँ उस मदोत्कट दैत्यने गौओंको बलपूर्वक मारा तब गोष्ठमेंसे बैल बछड़े और बालक भाग गए ॥ ११ ॥ इसी समय कालके अधीन हुए उस दुष्टात्माने वासुदेवके पास खड़ी हुईं गौओंको खदेड़ना आरम्भ कर दिया ॥१२॥ उस समय वह असुर वज्रका कड़ाका करते हुए मेघकी समान गरजने लगा, उस समय वृषभरूपधारी दैत्यके सामने श्रीकृष्ण ताली बजाकर और सिंहनाद कर उसको मोहमें डालते हुए उसके ऊपर दौड़े श्रीकृष्णको देख कर उस वृषभरूपधारी दैत्यके नेत्र और पूँछ प्रसन्न होगई ॥१३॥१४॥

रोषितस्तालशब्देन युद्धाकांक्षी ननर्द ह । तमापतन्तं दुर्वृत्तं दृष्ट्वा वृषभरूपिणम् । तस्मात् स्थानान्न व्यचलत् कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ १५ ॥ स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृतानतः । कृष्णस्य निधनाकांक्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥ १६ ॥ तमापतन्तं प्रमुखे प्रतिजग्राह दुर्धरम् । कृष्णः कृष्णांजननिभो वृषं प्रतिवृषोपमः ॥१७॥ स संसक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः । मुमोच वक्त्रजं फेनं नस्तश्चाथ स शब्दवत् ॥१८॥ तावन्योन्यावरुद्धांगौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ । रेजतुर्मेघसमये संसक्ताविव तौ घनौ १९ तस्य दर्पबलं हत्वा कृत्वा शृङ्गान्तरे पदम् । आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥२०॥शृंगं चास्य पुनः सव्यमुत्पाट्य

और वह तालियोंके शब्दसे रोषमें भर कर युद्धकी आकांक्षा से गर्जने लगा, उस वृषभरूप धारी दुर्वृत्तको आते देख कर श्रीकृष्ण उस स्थानसे न हटे और पर्वतकी समान अचल खड़े रहे ॥ १५ ॥ वह वृषभ अपने मुखको नीचेको कर श्रीकृष्णकी कुक्षिकी ओर दृष्टि जमा उनको मारनेकी इच्छासे फुर्तीसे झपटा जैसे साँड साँडको स्वीकार करता है इसी प्रकार काले अञ्जन की समान काले वासुदेव उस झपट कर आते हुएसे बैलकी समान अड़ गए १७बैलसे अड़ने वाले महावृषभकी समान उस दैत्यसे अड़े हुए वासुदेव बैलकी समान ही अपने मुखसे फेन गिराने लगे और नाकसे शब्द करने लगे ॥ १८ ॥युद्धमें वासुदेव और वृषभ अङ्गोंके परस्पर मिलनेसे वे वर्षाकालमें मिले हुए दो मेघोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ १९ ॥ वासुदेवने उसके घमण्डको नष्ट कर उसके सींगोंके बीचमें पैर धर दिया और अरिष्टके कण्ठको भीगे हुए वस्त्रकी समान दबाने लगे, तदनन्तर उसके दाहिने सींगको उखाड़ लिया और उस सींगसे ही उसके मुख पर प्रहार करने लगे तब अधिक पिटनेसे वह मर

यमदण्डवत् । तेनैव शाहरद्धृङ्के स ममार भृशं हतः ॥ २१ ॥
स भिन्नशृङ्गो भग्नास्यो भग्नस्कन्धश्च दानवः । पपात रुधिरो-
द्गारी साम्बुधार इवाम्बुदः ॥ २२ ॥ गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृप्तं
वृषभदानवम् । साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मास्याभितुष्टुवुः२३
स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे । अरविन्दाभनयनः
पुनरेव ररास ह ॥२४॥ तेपि गोवृत्तयः सर्वे कृष्णं कमललोच-
नम् । उपासांचक्रिरे हृष्टाः सर्वे शक्रमिवामराः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृषभासुरवधो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

गया ॥ २० ॥ २१ ॥ टूटे हुए सींगों वाला और कुचले हुए मुख वाला टूटे हुए कंधों वाला रक्तको बहाता हुआ वह दानव जलकी धार वाले मेघकी समान गिर पड़ा ॥ २२ ॥ घमण्डी वृषभ दानवको श्रीकृष्णके द्वारा मरा हुआ देख कर उनके कर्म से प्राणी साधु साधु कह कर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे २३ रमणीय रात्रिमें राक्षसको मारनेके अनन्तर कमलकी समान नेत्रों की आभा वाले श्रीकृष्ण फिर रासक्रीड़ा करने लगे ॥ २४ ॥ वे सब गोपभी देवताओंके इन्द्रकी उपासना करनेकी समान कमललोचन वासुदेवकी प्रसन्न होकर उपासना करने लगे (श्रुति में कहा है, कि–" प्रनेपस्मिन् ददृशे सोमो अन्तर्गोपानेय माविरस्था कृणोति । स तिग्मशृंगं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः" भीतर रह कर रक्षा करने वाला अन्तर्यामी अर्थ प्रपञ्चमें स्थावरमें सोमादिरूसे दीखा, वह जंगमको प्रकट करने लगा वह तीखे सींगों वाले बैलसे युद्ध करना चाहने लगा, यह देखनेसे उसको भस्म कर सकता था, परन्तु उसने लीला करनेके लिये उससे द्रोह किया अर्थात् उसको मार डाला) ॥ २५ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच । कृष्णं व्रजगतं श्रुत्वा वर्धमानमिवा-नलम् । उद्वेगमगमत् कंसः शंकमानस्ततो भयम् ॥१॥ पूतनायां हतायां च कालिये च पराजिते । धेनुके प्रलयं नीते प्रलम्बे च निपातिते ॥ २ ॥ धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने । गोषु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा ॥ ३ ॥ ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे गोपेषु मुदितेषु च । दृश्यमाने विनाशे च संनिकृष्टे महाभये ४ कर्षणे वृक्षयोश्चैव शकटस्य तथैव च । अचिन्त्यं कर्म तच्छ्रुत्वा वर्धमानेषु शत्रुषु ॥ ५ ॥ प्राप्तारिष्टमिवात्मानं मेने स मथुरेश्वरः। विसंज्ञेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रतिमो बभौ ॥६॥ ततो ज्ञातीन् समा-नाय्य पितरं चोग्रशासनः । निशि स्तिमितमूकायां मथुरायां जना-धिपः ॥ ७ ॥ वसुदेवं च देवाभं कंकं चाहूय यादवम् । सत्यकं

वैशंपायनजीने कहा, कि-व्रजमें रहने वाले वासुदेवको अग्नि की समान बढ़ते हुए देख कर उनकी ओरसे शंकित हो कंस उद्विग्न होने लगा॥१॥पूतनाके मारे जाने पर,कालियके पराजित होने पर धेनुकके मरने पर और प्रलम्बके गिराने पर गोवर्धन पर्वतके उठानेसे और इन्द्रके शासनके निष्फल जानेसे और गौओंकी रक्षा करना रूप प्रशंसनीय कर्मसे,ककुद्मीके मारे जानेसे गोपोंके आनन्दित होने पर कंसको अपना भी महाभयदायक विनाश सामने दीखने लगा २-४वृक्षोंके खेंचने और गाड़ी तोड़ने के अचिन्त्य कर्मको सुन कर (कंसने समझा, कि-) शत्रु बढ़ रहे हैं ५ अतः मथुरेश्वरने समझा, कि- मेरी मृत्यु आगई है, अत एव उसकी इन्द्रियें और जीव व्याकुल होगए और वह शवकी समान होगया ६ तदनन्तर उस कठोरतासे शासन करने वाले राजाने निःशब्द होनेसे गूँगी रात्रिमें अपनी जाति वालोंको तथा अपने पिताको बुलाया ७ तदनन्तर उसने देवताकी समान आभा वाले वसुदेव और यादव कंक सत्यक दारुक और कंकका छोटा

दारुकं चैव कंकावरजमेव च ॥ ८ ॥ भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम् । भयशंखं च धर्मज्ञं पृथुं विपृथुश्रियम् ।९। बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च । भूरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च ॥१०॥ एतान् स यादवान् सर्वानाभाष्य शृणुतेति च । उग्रसेनसुतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वरः ॥ ११ ॥ भवन्तः सर्वकार्यज्ञा वेदेषु परिनिष्ठिताः । न्यायवृत्तान्तकुशलास्त्रिवर्गस्य प्रवर्तकाः ॥ १२ ॥ कर्तव्यानां च कर्तारो लोकस्य विबुधोपमाः । तस्थिवांसो महावृत्ते निष्कम्पा इव पर्वताः १३ अदम्भवृत्तयः सर्वे सर्वे गुरुकुलोषिताः । राजमन्त्रधराः सर्वे सर्वे धनुषि पारगाः १४ यशःप्रदीपा लोकानां वेदार्थानां विवक्षवः । आश्रमाणां निसर्गज्ञा वर्णानां क्रमपारगाः ॥ १५ ॥ प्रवक्तारः सुनियतां नेतारो नय-

---

भाई भोज वैतरण महाबल-विकद्रु धर्मज्ञ-भयशंख अतिशोभायमान-विपृथु दानपति बभ्रु कृतवर्मा अक्षोभ्य भूरितेजा और भूरिश्रवाको बुला कर उग्रसेनके पुत्र मथुराके स्वामी राजा कंसने उन सबको संबोधित कर उनसे कहा, कि-सुनो ८-११ आप सब कार्योंको जानने वाले हैं और वेदों का अभ्यास करनेमें लगे रहते हैं, न्यायवृत्तान्तमें कुशल हैं, धर्म अर्थ और कामके प्रवर्तक हैं १२ और कर्तव्यकर्मोंको करने वाले हैं और संसारके देवताकी समान हैं और बड़े २ कामोंमें निष्कम्प पर्वतोंकी समान डटे रहते हैं १३ और सब दम्भरहित हो धर्मका सेवन करते हैं और सबने गुरुकुलमें वास किया है और आप सब राजाको सलाह देसकते हैं और सब धनुर्वेदमें भी पारंगत हैं १४ आपका यश लोकोंमें फैला हुआ है और आप वेदोंके अर्थोंको कहने वाले हैं आप आश्रमोंके और वर्णोंके स्वाभाविक कर्मोंको जानते हैं और (वेदके) क्रममें पारंगत है १५ आप शोभन विधियोंको बताया करते हैं और आप नीति बताने वालों

दर्शिनाम् । भेत्तारः परराष्ट्राणां त्रातारः शरणार्थिनाम् ॥१६॥
एवमक्षतचारित्रैः श्रीमद्भिरुदितोदितैः । द्यौरप्यनुगृहीता स्याद्भ-
वद्भिः किं पुनर्मही ॥१७॥ ऋषीणामिव वो वृत्तं प्रभावो मरुता-
मिव । रुद्राणामिव वः क्रोधो दीप्तिरङ्गिरसामिव ॥१८॥ व्यावर्त-
मानं सुमहद्भवद्भिः ख्यातकीर्तिभिः । धृतं यदुकुलं वीरैर्भूतलं
पर्वतैरिव ॥ १९ ॥ एवं भवत्सु युक्तेषु मम चित्तानुवर्तिषु । वर्ध-
मानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः ॥ २० ॥ एष कृष्ण इति
ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे । वर्धमान इवाम्भोधिर्मूलं नः परि-
कृन्तति ॥ २१ ॥ अनमात्यस्य शून्यस्य चाराधस्य ममैव तु ।
कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे ॥ २२ ॥ उपेक्षित इव

के नेता हैं, आप शत्रुओंके राष्ट्रोंमें भेद डलवा देते हैं और शरणागतोंकी रक्षा करते रहते हैं इस प्रकार बात पड़ने पर आप श्रीमानोंके अक्षत चरित्रोंका वर्णन हुआ करता है अत एव आप से स्वर्ग भी अनुगृहीत होजायगा, पृथ्वीकी तो बात ही क्या १७ आप चरित्रमें ऋषियोंकी समान हैं और आपका प्रभाव मरुतों की समान हैं और आपका क्रोध रुद्रोंके क्रोधकी समान है और आपकी कांति अंगिराओंकी समान है१८आपसे बड़ी कीर्ति वाले वाले व्यक्तियोंने भ्रष्ट होते हुए यदुवंशको, जैसे पर्वत पृथ्वीको धारण कर रहे हैं तैसे धारण कर रक्खा है १९ आप ऐसे हैं और मेरे चित्तके अनुकूल वर्ताव करते हैं, तब भी आप मेरे ऊपर बढ़ते हुए अनर्थकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं २० व्रजमें जो वासुदेव नामसे प्रसिद्ध नन्दगोपका पुत्र है वह समुद्रकी समान बढ़ कर हमारी जड़को काट रहा है २१ मेरे मंत्री नहींके बराबर होरहे हैं और मैं हृदयशून्य हूँ और मैं दूतरूपी नेत्रोंसे रहित हूँ. इसी कारण नन्दगोपके घरमें (वसुदेवका) पुत्र रक्षा पारहा है २२ जैसे लापरवाहीसे देखी हुई व्याधि बढ़ती है और पर्वकालमें जैसे

व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः । नदन् मेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्धते ॥ २३ ॥ तस्य नाहं गतिं जाने न योगं न पराक्रमम् । नन्दगोपस्य भवने जातस्याद्भुतकर्मणः ॥२४॥ किं तद्भूतं समुद्भूतं देवापत्यं न विद्महे । अतिदैवैरमानुष्यैः कर्मभिः सोऽनुमीयते ॥२५॥ पूतना शकुनी बाल्ये शिशुनोत्तानशायिना । स्तनपानेप्सुना पीता प्राणैः सह दुरासदा ॥ २६ ॥ यमुनाया ह्रदे नागः कालियो दमितस्तथा । रसातलचरो नीतः क्षणेनादर्शनं ह्रदात् ॥ २७ ॥ नन्दगोपसुतो योगं कृत्वा स पुनरुत्थितः । धेनुकस्तालशिखरात् पातितो जीवितं विना ॥ २८ ॥ प्रलम्बं यं मृधे देवा न शेकुरतिवर्तितुम् । बालेन मुष्टिनैकेन स हतः प्राकृतो यथा॥२९॥वासवस्योत्सवं भंक्त्वा वर्षं वासवरोपजम् । निर्जित्य

समुद्र बढ़ता है और जैसे ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें मेघ गरज कर बढता है,इसी प्रकार वह दुरात्मा बढ रहा है, २३ नन्दगोपके घरमें उत्पन्न हुए उस अद्भुत कर्म करने वालेके तत्त्वको मैं नहीं समझ सका और न मेरी समझमें उसके वशीकरणका कुछ उपाय समझमें आता है. ॥ २४ ॥ वह कौनसा प्राणी है इसको हम नहीं समझ सकते, यह अपने अतिदैविक कर्मोंसे देवसन्तान प्रतीत होता है, २५ उसने बालकपनमें चित्त होकर शयनकरते २ स्तन पान करनेकी इच्छा कर दुरासद शकुनि पूतनाको उसके प्राणों सहित पीलिया है ॥ २६ ॥ और उसने यमुनाके सरोवरमें कालिय नागका भी दमन किया था और उसको रसातल में भेजदिया था और वह तालावमेंसे क्षणभरमें ही अदृश्य होगया था ॥ २७ ॥ वह नन्दगोपका पुत्र (नागपाशबन्धनको काटने रूप) योगको करके फिर उठ बैठा था और उसने ताल के शिखरसे निर्जीव धेनुकको गिरा दिया था ॥ २८ ॥ जिस प्रलम्बको देवता भी नहीं दबा सकते थे उसको उस बालकने

गोगृहार्थाथ धृतो गोवर्धनो गिरिः ॥ ३० ॥ हतस्त्वरिष्टो बलवान्निःशृंगश्च कृतो व्रजे । अबालो बाल्यमास्थाय रमते शिशुलीलया ॥ ३१ ॥ प्रबन्धः कर्मणामेवं तस्य गोव्रजवासिनः । सन्निकृष्टं भयं चैव केशिनो मम च ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ भूतपूर्वश्च मे मृत्युः स नूनं पूर्वदैहिकः । युद्धाकांक्षी च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः ॥ ३३ ॥ क्व च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्बलम् । क्व च देवप्रभावेन क्रीडितव्यं व्रजे मम ॥ ३४ ॥ अहो नीचेन वपुषा छादयित्वाऽऽत्मनो वपुः । कोऽप्येष रमते देवः श्मशानस्थ इवानलः ॥ ३५ ॥ श्रूयते हि पुरा विष्णुः सुराणां कारणांतरे ।

प्राकृत वस्तुकी समान मुट्ठी मार कर ही समाप्त कर दिया २९ उसने इन्द्रके उत्सवको बन्द कर दिया था और जब इन्द्रने कोप करके वर्षाकी तो उसने घर बनानेके लिये गोवर्धन गिरिको उठा कर उसके प्रयत्नको निष्फल कर दिया था ॥ ३० ॥ उसने व्रजमें अरिष्टके सींग उखाड कर उसको मार डाला, वह बालक नहीं है, परन्तु वह बालक बन कर शिशुलीला दिखा रहा है ३१ उस गौओंमें और व्रजमें रहने वालेकी ऐसी घटनाओंको देखकर मुझे प्रतीत होता है, कि–केशीके ऊपर और मेरे ऊपर भी भय आने वाला ही है ३२ उसने पहिले जन्ममें भी मुझे मार डाला था, अब भी वह उसी प्रकार मेरे साथ युद्ध करनेकी ही सदा आकांक्षा करता रहता है ॥ ३३ ॥ कहाँ तो अशुभ गोपपन और मृत्यु होनेसे दुर्बल मनुष्यपन और कहाँ उसका देवताओंकी समान प्रभावसे मेरे व्रजमें क्रीडा करना (इन बातोंका विचार तो करो)॥ ३४ ॥ अहो ! यह तो कोई देवता अपनेको नीच शरीरमें छिपा कर श्मशानमें स्थित अग्निकी समान क्रीडा कर रहा है ॥ ३५ ॥ मैंने यह बात सुनी है, कि-पहिले देवताओंके किसी कामसे विष्णुने वामनका रूप धारण

वामनेन तु रूपेण जहार पृथिवीमिमाम् ॥३६॥ कृत्वा केसरिणो रूपं विष्णुना प्रभविष्णुना । हतो हिरण्यकशिपुर्दानवानां पितामहः ॥ ३७ ॥ अचिंत्यरूपमास्थाय श्वेतशैलस्य मूर्धनि । भवेन च्याविता दैत्याः पुरा तत् त्रिपुरं घ्नता ॥ ३८ ॥ चालितो गुरुपुत्रेण भार्गवोऽगिरसेन वै । प्रविश्य दार्दुरीं मायामनावृष्टिं चकार ह ॥३९॥ अनन्तः शाश्वतो देवः सहस्रशिरसोऽव्ययः । वाराहं

कर इस पृथ्वीको जीत लिया था ॥३६॥ और इस प्रभाववान् विष्णुने ही सिंहका रूप धारण कर दानवोंके पितामह हिरण्यकशिपुको मार डाला था ॥ ३७ ॥ भव (रूपधारी विष्णु) ने श्वेत पर्वतकी चोटी पर अचिन्त्य रूपको धारण कर त्रिपुरका नाश कर दैत्योंको गिरा दिया था ॥३८॥ अंगिरस गोत्री गुरुपुत्रने भार्गवको चलायमान कर दिया था और दार्दुरी मायाका आश्रय लेकर अनावृष्टि कर दी थी (अर्थात् गुरु बृहस्पति-के पुत्र कचने भार्गव शुक्रको चलायमान कर दिया था अर्थात् उनका नियम था, कि-मैं मृतसंजीविनी विद्या किसीको नहीं दूँगा इस नियमसे उनको भ्रष्ट कर दिया था, उसने कैसे भ्रष्ट किया था इसका उत्तर यह है, कि-जैसे मेंडक मर कर फिर जीवित हो जाता है, इसीप्रकार कच भी वारम्वार राक्षसोंसे मारा जाकर एक वार गुरुके पेटमें घुस गया था तव गुरु (शुक्राचार्य) से विद्या सीख उनके पेटको फाड़ कर फिर निकल आया था और उसने मरे हुए गुरुको फिर जीवित कर दिया था, इस प्रकार दार्दुरी मायासे उसने सञ्जीविनी विद्या पाई थी और दानवोंकी की हुई कचहत्याको निमित्त मान कर मेघने दानवोंमें वरसना छोड दिया था, इस प्रकार दानवोंका विनाश रुद्रके द्वारा त्रिपुर की समान कचके द्वारा इस विष्णुने ही किया था)॥ ३९ ॥ इस अनन्त शाश्वत और अनन्त शिर वाले अच्युत देवने वराह

रूपमास्थाय प्रोज्जहारार्णवान्महीम् ॥ ४० ॥ अमृते निर्मिते पूर्वं विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः । सुराणामसुराणां च युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥ ४१ ॥ अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्यसमागमे । दधार मन्दरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः ॥ ४२ ॥ वपुर्वामनमास्थाय नन्दनीयं पुरा बलेः । त्रिभिः क्रमैस्तु त्रींल्लोकान् जहार त्रिदिवालयम् ॥ ४३ ॥ चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दाशरथेर्गृहे । स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत्तदा ॥ ४४ ॥ एवमेष निकृत्या वै तत्तद्रूपमुपागतः । साधयित्वाऽऽत्मनः कार्यं सुराणामर्थसिद्धये ॥ ४५ ॥ तदेष नूनं विष्णुर्वा शक्रो वा मरुतां पतिः । मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मां प्रयुक्तवान् ॥ ४६ ॥ अत्र मे शंकते बुद्धिर्वसुदेवं मति ध्रुवा । अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरतां गताः ॥ ४७ ॥ अहं

का रूप धारण कर समुद्रमेंसे पृथ्वीको निकाल लिया था ४० पहिले अमृत निकलने पर इसने स्त्रीका रूप धारण कर देवता और असुरोंमें दारुण युद्ध छिड़वा दिया था ॥ ४१ ॥ और जब अमृतके लिये देवता और दैत्य इकट्ठे हुए थे तब इस विष्णुने कच्छप बन कर मन्दराचलको धारण कर लिया था ऐसी प्रसिद्धि है ४२ पहिले इसने नन्दनीय वामन शरीर धारण कर बलिके यहाँ तीन चरणोंसे तीन लोकोंको नाप कर स्वर्गको ले लिया था ॥ ४३ ॥ और इसने ही दशरथके घरमें अपने तेज के चार भागकर राम (अंश) से रावणको नष्ट कर डाला था ॥ ४४ ॥ इस प्रकार यह छलसे प्रत्येक रूपको धारण कर देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने कामको साधा करता है ॥ ४५ ॥ इस लिये यह वास्तवमें विष्णु वा मरुत्पति इन्द्र मुझे साधनेकी इच्छासे यहाँ आगया है यही बात मुझसे नारजीने भी कही थी ॥ ४६ ॥ इस विषयमें मेरी बुद्धि वसुदेवको सन्देह से देखती है, इसकी बुद्धिसे हम तो कातर होगए हैं ॥ ४७ ॥ मैं

हि खट्वांगवने नारदेन समागतः। द्वितीयं स हि मां विप्रः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ ४८ ॥ यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंस गर्भकृते महान्। वसुदेवेन ते रात्रौ तत्कर्म विफलीकृतम् ॥४९॥ दारिका या त्वया रात्रौ शिलायां कंस पातिता। तां यशोदासुतां विद्धि कृष्णं च वसुदेवजम् ॥ ५० ॥ रात्रौ व्यावर्तितावेतौ गर्भौ तव वधाय वै। वसुदेवेन सन्धाय मित्ररूपेण शत्रुणा ॥ ५१ ॥ सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे। हत्वा शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ ॥ ५२ ॥ कृताभिषेका वरदा भूतसंघनिषेविता। अर्च्यते दस्युभिर्घोरैर्महाबलिपशुप्रिया ॥५३॥ सुरापिशितपूर्णाभ्यां कुम्भाभ्यामुपशोभिता। मयूरांगदचित्रैश्च बर्हभारैर्विभूषिता ॥ ५४ ॥ हृष्टकुक्कुटसंनादं वनं वायसनादितम्। मृग-

---

खट्वांग वनमें नारदजीसे दूसरी बार मिला था तब उन ब्राह्मणने मुझसे कहा था, कि-॥ ४८ ॥ हे कंस! तूने गर्भ नष्ट करनेका जो बड़ा भारी यत्न किया था उस तेरे कर्मको वसुदेवने रात्रिमें विफल कर दिया ॥ ४९ ॥ हे कंस! तूने रातके समय जिस बालिकाको शिला पर पटका था उसको तू यशोदाकी पुत्री जान और कृष्णको वसुदेवसे उत्पन्न हुआ समझ ॥ ५० ॥ तेरे मित्ररूप शत्रु वसुदेवने तेरा वध करनेके लिये रात्रिके समय इन बालकोंको बदल दिया था ॥ ५१ ॥ जो यशोदाकी कन्या थी वह पर्वतोंमें उत्तम विंध्याचल पर पर्वतचारी शुंभ निशुंभ नाम वाले दो दैत्योंको मार कर निवास कर रही है ॥ ५२ ॥ तहाँ उसका अभिषेक हुआ है और उस वरदान देने वालीको भूतोंके झुण्ड घेरे रहते हैं और महाबलि और उस पशुओंको प्रिय समझने वालीका दस्यु पूजन करते रहते हैं ॥५३॥ वह सुरा और मांससे परिपूर्ण कुंभोंसे शोभा पाती रहती हैं और वह मोरके बाजूबन्द और मोरछलोंसे सुशोभित रहती है ॥ ५४ ॥ उस देवीके वनमें

संघैश्च संपूर्णमविरुद्धैश्च पक्षिभिः ॥५५॥ सिंहव्याघ्रवराहाणां नादेन प्रतिनादितम्। वृक्षैर्गम्भीरनिबिडं कान्तारैः सर्वतो वृतम्॥५६॥ दिव्यभृङ्गारुचमरैरादर्शैरुपशोभितम्। देवतूर्यनिनादैश्च शतशः प्रतिनादितम् ॥ ५७ ॥ स्थानं तस्या नगे विन्ध्ये निर्मितं स्वेन तेजसा। रिपूणां त्रासजननी नित्यं तत्र मनोरमे ॥५८॥ वसते परमप्रीता दैवतैरपि पूजिता। यस्त्वयं नन्दगोपस्य कृष्ण इत्युच्यते सुतः ॥ ५९ ॥ अत्र मे नारदः प्राह सुमहत् कर्मकारणम्। द्वितीयो वसुदेवाद्धि वासुदेवो भविष्यति ॥६०॥ स हि ते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति । स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो

हर्षमें भरे हुए मुर्गे (कुकडू कूं) का शब्द करते हैं और कौए (काँय २) करते रहते हैं और तहाँ मृगोंकी टोलियें भर रही हैं और तहाँ पक्षी आपसमें विरोध न रख कर रहते हैं ॥ ५५ ॥ वह वन सिंह व्याघ्र और वराहोंके नादसे गुंजारता रहता है और वह वृक्षोंके कारण गंभीर और भयंकर दीखता है और उसके चारों ओर वन हैं ॥ ५६ ॥ तहाँ पर सुवर्णके दिव्य गडुए और चमर रक्खे रहते हैं और वह स्थान दर्पणोंसे सुशोभित है और वह देवताओंके सैंकड़ों तूर्योंके निनादसे प्रतिध्वनित होता रहता है ॥ ५७ ॥ उस देवीने तहाँ पर्वतोंमें उत्तम विंध्य-पर्वत पर अपने तेजसे ही अपना स्थान बना लिया है वह शत्रुओं को त्रास देने वाली उस मनोरम स्थानमें देवताओंसे पूजा पा परम प्रसन्न हो तहाँ निवास कर रही है और जो यह नन्दगोप का पुत्र कृष्ण कहलाता है ॥ ५८॥५९॥ इसको नारदजीने मुझे (पूतनावध आदि) बड़े २ कार्योंका कारण (करने वाला) बतलाया है, यह वसुदेवसे (बलरामकी अपेक्षा) दूसरा वासुदेव होगा (अर्थात् पहिले वसुदेवपुत्र बलराम हैं और दूसरे वसुदेवके पुत्र कृष्ण हैं) ॥ ६० ॥ वही तेरी मृत्यु होंगे और वह वासुदेव

वली। बान्धवो धर्मतो मह्यं हृदयेनान्तको रिपुः ॥ ६१ ॥ यथा हि वायसो मूर्ध्नि पक्षी यस्यावतिष्ठति। नेत्रे तुदति तस्यैव वक्त्रेणामिषगृद्धिना ॥ ६२ ॥ वसुदेवस्तथैवायं सपुत्रज्ञातिबान्धवः। छिनत्ति मम मूलानि भुंक्ते च मम पार्श्वतः ॥६३॥ भ्रूणहत्यापि सन्तार्या गोवधः स्त्रीवधोऽपि वा। न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति बान्धवस्य विशेषतः ॥ ६४ ॥ पतितानुगतं मार्गं निषेवत्यचिरेण सः। यः कृतघ्नोनुबन्धेन प्रीतिं वहति दारुणाम् ॥ ६५ ॥ नरकाभ्युषितः पन्था गन्तव्यस्तेन दारुणः। अपापे पापहृदयो यः पापमनुतिष्ठति ॥६६॥ अहं वा स्वजनः श्लाघ्यः स वा श्लाघ्यतरः सुतः। नियमैर्गुणवृत्तेन त्वया बान्धवकाम्यया ॥ ६७ ॥हस्तिनां

तेरा स्वाभाविक बांधव भी होगा, यह वही वसुदेवका पुत्र वासुदेव (कृष्ण) है, यह धर्मसे तो मेरा बान्धव है परन्तु हृदयसे यह मेरा कालरूप शत्रु है जैसे कौआ जिसके मस्तक पर बैठता है उसके ही नेत्रोंको अपनी मांस चाहने वाली चोंचसे कुरेदने लगता है ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार यह वसुदेव और इसके जाति वाले बांधव और पुत्र भी मेरे ही समीप रह कर खाते हैं और मेरी ही जड़को काटते रहते हैं ६३ भ्रूणहत्या गोवध और स्त्रीवधका भी प्रायश्चित्त है, परन्तु जो बन्धु होकर भी कृतघ्नता करे उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है ६४ कृतघ्न अपने कार्यके अनुरोधसे दारुण फल देने वाली(अपनी)प्रीतिके कार्यको करता है तो उसको शीघ्र ही पतितोंके मार्गमें चलनेका फल मिल जाता है ६५ जो दूषित चित्त वाला पुरुष निश्छल पुरुषसे छल करता है, उसको नरककेसे दारुण मार्गमें डाल देना चाहिये६६ अरे ! तू नियम गुण और चरित्रकी कामना कर अर्थात् इनकी ओर देख कर किसको मित्र बनाना चाहता है तू मुझ अपने संबंधीको श्लाघ्य समझता है अथवा तू अपने पुत्रको अच्छा समझता है (बना

कलहे घोरे वधमृच्छन्ति वीरुधः । युद्धव्युपरमे ते तु सहाश्नन्ति
महावने ॥ ६८ ॥ बान्धवानामपि तथा भेदकाले समुत्थिते ।
वध्यते योऽन्तरप्रेप्सुः स्वजनो यदि वेतरः ॥ ६९ ॥ कालस्त्वं
हि विनाशाय मया पुष्टो विजानता । वसुदेव कुलस्यास्य यद्विरो-
धयसे भृशम् ॥७०॥ अमर्षी वैरशीलश्च सदा पापमतिः शठः ।
स्थाने यदुकुलं मूढ शोचनीयं त्वया कृतम् ॥ ७१ ॥ वसुदेव वृथा
वृद्ध यन्मया त्वं पुरस्कृतः । श्वेतेन शिरसा वृद्धो नैव वर्षशती
भवेत् ॥ ७२ ॥ यस्य बुद्धिः परिणता स वै वृद्धतरो नृणाम् ।
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः॥ ७३ ॥त्वं च कर्कश -

तुझे अपना पुत्र प्रिय है, वा मैं प्रिय हूँ) ६७ जैसे हाथियोंके घोर युद्धमें लताएँ ही कुचल जाती हैं और युद्ध निवटने पर वे दोनों हाथी महावनमें साथ २ भोजन करने लगते हैं (इसी प्रकार मेरे और कृष्णके कलहमें वसुदेव आदि ही नष्ट होजावेंगे और हम दोनों अक्षत रहेंगे इसी प्रकार बान्धवोंमें भेदका समय उपस्थित होने पर जो छिद्र ढूँढता रहता है उसको मार डालना चाहिये, फिर च हे वह अपना हो वा दूसरा हो ६९ हे वसुदेव ! तुम इस कुलका बड़ा विरोध करते हो (हा !) मैंने जान बूझ कर अपना नाश करनेके लिये तुझ कालको अपने यहाँ पुष्ट किया है ७० तू अमर्षी है, वैर करना तेरा स्वभाव है और तेरी बुद्धि सदा पाप करनेमें लगी रहती है और तू छिप कर अपराध करने वाला (शठ) है हे मूढ़ ! (इसी लिये) तूने यदुकुलको शोचनीय स्थितिमें ला डाला है (यह तो तुझसे आशा ही थी) ७१ हे वृद्ध वसुदेव ! मैंने तेरा सत्कार किया अतः मेरा जन्म व्यर्थ है, कोई श्वेत केश और सौ वर्षका होनेसे ही वृद्ध नहीं होजाता है ७२ जिस की बुद्धि पक जाती है वही मनुष्योंमें वृद्ध माना जाता है, मस्तकमें झुर्रियें पड़नेसे ही कोई वृद्ध नहीं होजाता ७३

शीलश्च बुद्ध्या च न बहुश्रुतः । केवलं वयसा वृद्धो यथा शरदतोयदः ॥ ७४ ॥ किं च त्वं साधु जानीषे वसुदेव वृथामते। हते कंसे मम सुनो मथुरां पालयिष्यति ॥ ७५ ॥ छिन्नाशस्त्वं वृथा वृद्धो मिथ्या त्वेवं विचारितम् । जिजीविषुर्न सोऽस्ति यो मे तिष्ठेन्ममाग्रतः ॥ ७६ ॥ प्रहर्तुकामो विश्वस्ते यस्त्वं दुष्टेन चेतसा । तत्ते प्रतिकरिष्येऽहं पुत्रयोस्तव पश्यतः ॥ ७७ ॥ न मे वृद्धवधः कश्चिद्द्विजस्त्रीवध एव च । कृतपूर्वः करिष्ये वा विशेषेण तु बान्धवे ॥७८॥ इह त्वं जातसंवृद्धो मम पित्रा विवर्धितः। पितृष्वसुश्च मे भर्ता यदूनां प्रथमो गुरुः ॥ ७९ ॥ कुले महति विख्यातः प्रथिते चक्रवर्तिनाम् । गुर्वर्थं पूजितः सद्भिर्महद्भिर्धर्म-

तू कर्कश है,और तेरी बुद्धिसे प्रतीत होता है,कि तूने बहुतसे शास्त्र नहीं सुने हैं,तू तो शरद ऋतुके बादलोंकी समान अवस्थामें व्यर्थ ही बढ़ गया है७४हे वृथामति वसुदेव ! क्या तू यह समझता है, कि कंसके मारे जाने पर मेरा पुत्र मथुराका पालन करेगा ॥७५॥ अरे ! अब तेरी आशा नष्ट होगई, तू तो वृथा ही वृद्ध होगया है तेरा ऐस विचारना व्यर्थ है, जो मेरा सामना करता है, वह जीवित रहना नहीं चाहता ७६ तू विश्वासी पुरुष पर दूषित चित्तसे प्रहार करना चाहता है उसका तमाशा तो मैं तुझे तेरे पुत्रोंके सामने ही दिखाऊँगा ७७ मैंने कभी वृद्ध पुरुषका वा स्त्रीका वध नहीं करा है और न मैं कभी वृद्ध वा स्त्रीका वध करूँगा फिर बांधवका वध तो मैं क्या करूँगा ! ७८ तू यहाँ ही उत्पन्न हुआ है और हमारे यहाँ ही बुड्ढा होगया है और तू मेरे पिताकी बहिनका भर्ता है अतः हम तुझे यदुओंमें सबसे बड़ा मानते हैं ७९ तू चक्रवर्तियोंके प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न हुआ है,बड़े २ धर्मात्मा पुरुषोंने इसी महत्त्वके कारण तेरा पूजन किया था (यस्य मूर्धनि दृश्येत विना छत्रेण भूपतेः । पद्मानुकारिणी

बुद्धिभिः ॥ ८० ॥ किं करिष्यामहे सर्वे सत्सु वक्तव्यतां गताः॥ यदूनां यूथमुख्यस्य यस्य ते वृत्तमीदृशम् ॥ ८१ ॥ मद्वधो वा जयो वाऽथ वसुदेवस्य दुर्नयैः । सत्सु यास्यन्ति पुरुषा यदूनाम-वगुंठिताः ॥ ८२ ॥ त्वया हि मद्वधोपायं तर्कमाणेन वै मृधे । अविश्वास्यं कृतं कर्म वाच्याश्च यदवः कृताः ॥८३॥ अशाम्यं वैरमुत्पन्नं मम कृष्णस्य चोभयोः । शान्तिमेकतरे शान्ति गते यास्यन्ति यादवाः ॥ ८४ ॥ गच्छ दानपते क्षिप्रं ताविहानयितुं व्रजात् । नन्दगोपं च गोपांश्च करदान्मम शासनात् ॥ ८५ ॥ वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम् । शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैः सह समन्वितः ॥ ८६ ॥ कृष्णसंकर्षणौ चैव वसुदेवसुता-

च्छाया तमाहुश्चक्रवर्तिनम्" जिस भूपतिके मस्तक पर छत्र न लगाने पर भी पत्रकी,सीं छाया दीखती है, उसको चक्रवर्ती कहते हैं ;८०तू यदुओंके'कुल में प्रधान.है तबभी तेरी ऐसी करतून है इससे सज्जनोंमें,हमारे ऊपर आक्षेप होने लगेगा, हा हम क्या करें८१ इस वसुदेवकी दुर्नीतिसे मेरा वध हो,चाहें जय हो परन्तु इसकी करतूनसे यदुवंशियोंको सज्जनोंमें अपना.मुख ढकना पड़ेगा अर्थात् एकके कपटसे सबके सब यदुवंशी कपटी कहलावेंगे८२तूने युद्धमें मेरे वधका उपाय सोच कर अविश्वासी पुरुषकासा काम किया है और यादवोंको निन्द्य कर दिया है८३मेरा और कृष्णका शान्त न.होने वाला वैर होगया है इन दोनोंमेंसे एकके शान्त होने पर ही यदुवंशियोंको शांति मिल सकेगी ॥ ८४ ॥ अतः हे दानपते ! अक्रूर ! अब तुम उन दोनोंको, नन्दगोपको और गोपों को जो करद हैं उनको, मेरे हुक्मसे व्रजसे बुलानेके लिये शीघ्रता से प्रस्थान करो ॥ ८५ ॥ तुम नन्दगोपसे कहना, कि तुम और गोप सालाना खिराजको ले कर शीघ्र ही हमारे नगरको आओ ॥ ८६ ॥ कंस और कंसके पुरोहित और कंसके भृत्य

वुभौ । द्रष्टुमिच्छति वै कंसः सभृत्यः सपुरोहितः ॥ ८७ ॥ एतौ युद्धविदौ रंगे कालनिर्माणयोधिनौ । दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यतौ ॥ ८८ ॥ अस्माकमपि मल्लौ द्वौ राज्ञो युद्धकृतोत्सवौ । ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ ८९ द्रष्टव्यौ च मयाऽवश्यं बालौ तावमरोपमौ। पितृष्वसुः सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ ॥ ९० ॥ वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन् समीपे व्रजवासिनाम् । राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी ॥९१॥ सन्निकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम् । जनस्यामन्त्रितस्यार्थे यथा स्यात् सर्वमव्ययम् ॥९२॥ पयसः सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च । यथाकामप्रदानाय भोज्याधिश्रयणाय च ॥ ९३ ॥ अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्वं तावनय मयाज्ञया । संकर्षणं च कृष्णं च

वसुदेवके दोनों पुत्र कृष्ण और संकर्षणको भी देखना चाहते हैं ॥ ८७ ॥ मैंने सुना है, कि-यह दोनों युद्धवेत्ता हैं और रंगस्थल (अखाड़े) में समयानुसार युद्ध करनेमें कुशल हैं, दृढ़ हैं चतुर हैं और बड़ा उद्यम करने वाले हैं ॥ ८८ ॥ हमारे यहाँ भी (चाणूर और मुष्टिक नाम वाले) दो मल्ल तयार हुए हैं उनका युद्ध (कुश्ती) देखनेके लिये उत्सव मनाया जायगा उन दोनों युद्धकुशलोंकी उनके साथ कुश्ती करवाई जावेगी ॥ ८९ ॥ मैं उन व्रजवासी वनेचर अपनी पिताकी बहिनके पुत्र देवताकी समान बालकोंको अवश्य देखना चाहता हूँ ॥ ९० ॥ और व्रजमें तुम व्रजवासी गोपोंसे कहना, कि-परम सुखी राजा धनुर्यज्ञ करेंगे ९१ इस लिये वे पासके वनमें आकर सुखपूर्वक रहें, जिससे आमंत्रित व्यक्तियोंको भली प्रकार आराम पहुँच सके ॥ ९२ ॥ वे यहाँ आकर उनको इच्छानुसार घी दूध दही मट्ठा और दूधपाक बनानेके लिये दूध देनेको यहाँ आजाँय ॥ ९३ ॥ अत एव हे अक्रूर!अब तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही उनको लिवा लाओ कृष्ण

द्रष्टुं कौतूहलं हि मे ॥९४॥ तयोरागमने प्रीतिः परमा मत्कृता भवेत् । दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद्विधास्यामि यद्धितम् ॥ ९५ ॥ शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम् । नागच्छेतां यथा कालं निग्राह्यावपि तौ मम ॥ ९६ ॥ सान्त्वमेव तु बालेषु प्रथानं प्रथमो नयः । मधुरेणैव तौ मन्दौ त्वयमेशानयाशु वै ९७ अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेतां परमदुर्लभाम् । यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत ॥ ॥९८॥ तथा कर्तव्यमेतद्धि यथा तातागमिष्यतः । एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः । सागराकारमात्मानं निष्कंपमधारयत् ॥९९॥ वाक्शल्यैस्ताड्यमानस्तु कंसेनादीर्घदर्शिना । क्षमां मनसि सन्धाय नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥ १०० ॥ ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा । धिग्धिगित्यसकृत्ते वै

और संकर्षणको देखनेके लिये मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है ९४ यदि तू उनको बुला लावेगा तो तू मेरा बड़ा प्रिय कार्य करेगा, मैं उन दोनों बलशालियोंको देख कर जिसमें अपना हित समझूँगा उस कार्यको करलूँगा ९५ यदि वे मेरे भाषण और मेरे शासन को सुन कर भी न आवें तो तुम समयानुसार उनको बाँध कर ले आना ॥ ९६ ॥ पहिले बालकोंको समझाना चाहिये, यही उत्तम नीति है इसलिये तू उन्हें पहिले मधुरतासे ही लिवा कर लानेका शीघ्रतासे उद्योग करना ॥ ९७ ॥ हे सुव्रत अक्रूर! यदि वसुदेवने तुमको तोड़ न लिया हो तो तुम शीघ्रतासे मेरे इस परमप्रीतिके कामको करो ॥ ९८ ॥ हे तात ! तुम ऐसा ही काम करना जिससे वह यहाँ आ ही जाँय, वसुओंकी समान वसुदेव इस प्रकार आक्षेप करने पर अपनी आत्माको समुद्रकी समान निष्कंप किये रहे ॥ ९९ ॥ अदूरदर्शी कंसके वाणीरूप काँटोंसे विंधने पर भी वसुदेवजीने अपने मनमें क्षमा धारण कर कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ १०० ॥ उधर जिन्होंने वसुदेव पर अनेक

तम् । लोकपालो यशश्चैव गास्त्वं किं परिरक्षसि ॥ ७ ॥ देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा । अस्माकं बान्धवो जातो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥८॥ केनचिद्यदि कार्येण वसासीह यदृच्छया । वयन्तेवानुगाः सर्वे भवन्तं शरणं गताः ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच । गोपानां वचनं श्रुत्वा कृष्णः पद्मदलेक्षणः । प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा ज्ञातीन् सर्वान् समागतान् ॥१०॥ मन्यते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम् । तथाऽहं नावमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः ॥ ११ ॥ यदि त्ववश्यं श्रोतव्यं कालं संप्रतिपाल्यताम् । ततो भवन्तः श्रोष्यन्ति मां च द्रक्ष्यन्ति तत्त्वतः ॥ यद्यहं भवतां श्लाघ्यो बान्धवो देवसप्रभः । परिज्ञानेन किं कार्यं यद्येषोऽनुग्रहो मम ॥ १२ ॥ एवमुक्तास्तु ते गोपा वसुदेवसुतेन

तो गर्हित बात है, आप लोकपालोंकी समान हो कर भी गौओं की रक्षा क्यों कर रहे हैं ॥ ७ ॥ आप देव हों, दानव हों, यक्ष हों वा गंधर्व हों, आप हमारे बान्धव बन कर उत्पन्न हुए हैं, अब आप जो कुछ हों वह हों हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥ प्रतीत होता है आप किसी कार्यको करनेके लिये अपनी इच्छासे यहाँ बस रहे हैं ? हम सब आपके अनुचर हैं और आपकी शरण हैं ॥ ९ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-गोपोंके वचनको सुन कर कमलदलनयन श्रीकृष्णने मुस्कुरा कर सब आये हुए जाति वालों से कहा, कि-॥ १० ॥ आप मुझे जिस प्रकार भयंकर पराक्रमी समझते हैं, इस प्रकार कह कर आप मुझे लज्जित न करिये, मैं तो आपका ही बान्धव हूँ ॥ ११ ॥ यदि आप इस बातको अवश्य ही सुनना चाहते हों तो कुछ समयकी बाट देखिये, तब आप सब सुन सकेंगे और मुझे वास्तविकरूपसे देख सकेंगे १२ यदि आप मुझे देवताकी समान प्रभाव वाला अपना श्लाघनीय बांधव मानते हैं, तो आपका यह मेरे ऊपर परम अनुग्रह है ?

नौ । वद्धमौना दिशः सर्वे भेजिरे पिहिताननाः ॥१४॥ कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम् । शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥ सकरीषांगरथ्यासु व्रजरथ्यासु वीर्यवान् । वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत् ॥ १६ ॥ गोपालांश्च बलोदग्रान् योधयामास वीर्यवान । वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद्विभुः ॥ १७ ॥ युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित् । कैशोरकं मानयन् वै सह ताभिर्मुमोद ह ॥१८॥ तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि । पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गां गतं शशिनं यथा ॥१९॥ हरितालार्द्रपीतेन स कौशेयेन वाससा ।

फिर आप मुझे जानकर क्या करेंगे ॥ १३ ॥ वसुदेवपुत्रके इस प्रकार कहने पर वे गोप मौन होगए और अपने मुखोंको बन्द कर अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण रात्रिमें चन्द्रमाके यौवन (कान्ति) को देख कर और शरत्कालीन रमणीय रात्रिको देख कर रति करना चाहने लगे ॥ १५ ॥ वीर्यवान् श्रीकृष्णने अन्ने उपलोंके चूरोंसे भरी हुई व्रजकी गलियों में दर्पसे भरे हुए साँडोंका युद्ध छिड़वा दिया ॥ १६ ॥ और उन वीर्यवान् भगवान्ने उत्कट बली गोपालोंकी कुश्ती करवाई और उन वीर प्रभुने वनमेंसे गौओंको ग्राहकी समान पकड़ लिया १७ और वह समयज्ञ श्रीकृष्ण युवतियोंको और गोपकन्याओंको अपने वशमेंकर, किशोरावस्थाका सन्मान करनेके लिये उनके साथ आनन्द पाने लगे (दश वर्षके बाद एकादश वर्ष आरंभ होने वाले समयका नाम किशोरावस्था है, उस अवस्थामें "प्रागुपनयनात् कामचाराद्यनुज्ञास्ति" अर्थात् उपनयनसे पहिले इच्छानुसार खेलनेकी अनुज्ञा है । इसी वाक्यका सत्कार करनेके लिये रासक्रीड़ा की गई थी) ॥ १८ ॥ रात्रिमें रमणीय गोपस्त्रियें पृथ्वीमें उतरे हुए चन्द्रमाकी समान उनके सुन्दर मुखको

वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत् ॥ २० ॥ स चन्द्रांगदनिर्व्यूढ़श्चित्रया वनमालया । शोभमानो हि गोविंदः शोभयामास तद्व्रजम् ॥ २१ ॥ नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवन् । विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत्तस्य भास्वतः ॥ २२ ॥ तास्तं पयोधरोत्तुङ्गैरुरोभिः समपीडयन् । भ्रामिताक्षैश्च वदनैर्निरीक्षन्ते वरांगनाः२३ता वार्यमाणाः पतिभिर्भ्रातृभिर्मातृभिस्तथा । कृष्णं गोपांगना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः ॥ २४ ॥ तास्तु पंक्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम् । गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोप-

नयन चला कर पान करने लगी ॥ १९ ॥ कल्याणप्रद गीले हरतालकी समान पीले रेशमी वस्त्र को धारण करने वाले श्रीकृष्ण उस समय और भी मनोहर प्रतीत होने लगे २० विचित्र वन मालाके बने हुए वँधे हुए बाजूबन्दसे शोभा पाते हुए श्रीकृष्ण उस व्रजको सुशोभित करने लगे ॥२१॥ गोपकन्याओंने ग्राममें श्रीकृष्णका विचित्र चरित्र देखा था अत एव वह कान्तिमान् श्रीकृष्णको दामोदर नामसे पुकारने लगीं २२ वे अपने पयोधरोंसे श्रीकृष्णको पीडित करने लगीं और वे सुन्दर अंगों वाली स्त्रियें नेत्र घुमा कर श्रीकृष्णको देखने लगीं २३ पति भाई और माताएँ उनको रोकती थीं तब भी वे रतिप्रिय गोपियें रात्रिमें श्रीकृष्णको ढूँढ़ती फिरती थीं२४ वे गोप कन्याएँ पंक्तिबद्ध (मण्डल) बाँधकर मनोरम श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ा करने लगीं,वे गोपकन्याएँ द्वन्द्व होकर श्रीकृष्णके चरित्रका गान करने लगीं और दोनों ओर श्रीकृष्ण थे (कहा है; कि-"अंगनामंगनामन्तरे माधवो माधवं माधवं चान्तरे चांगनाः । इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः" अर्थात् प्रत्येक स्त्रियोंके मध्यमें श्रीकृष्ण थे और प्रत्येक माधवके बीचमें गोपियें थीं इस प्रकार मण्डलकी रचना होने पर

कन्यकाः ॥२५॥ कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः।
कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वराङ्गनाः ॥२६॥ वनेषु ताल-
हस्ताग्रैः कूजयन्त्यस्तथापराः। चेरुर्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रज-
योषितः ॥२७॥ तास्तस्य नृत्यं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम्।
मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः ॥२८॥ भावनिस्पंद
मधुरं गायन्त्यस्ता वराङ्गनाः। व्रजं गता सुखं चेरुर्दामोदरपरा-
यणाः ॥ २९ ॥ करीषपांसुदिग्धाङ्ग्यस्ताः कृष्णमनुवव्रिरे। रम-

मध्यमें खड़े हुए श्रीकृष्ण वेणुको बजाने लगे श्रुतिमें भी कहा है, कि-"पद्यावस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ऋतस्य सद्म विचरामि विद्वान् महद् देवानामसुरत्वमेकम्" अर्थात् अभि-सरण करने वालीं गोपियोंके प्राप्त करने योग्य कृष्णमूर्ति अनेक रूपधारिणी है, उसने बहुतसे शरीरोंको धारणकर लिया तथापि एक मध्यस्थित गोपी प्रत्येक गोपीके आगे और दोनों ओर वासुदेव हैं इस बातको दृष्टिसे देखकर यह विचारने लगीं, कि यह मूर्ति धर्मका निवासस्थानरूप है ऐसे देवतासे वियुक्त होना असुरत्वका एक मुख्य कारण है) २५ वे तरुण गोपियें वासुदेव की लीलाका अनुकरण करने लगीं और कृष्णकी ओर टकटकी बाँधकर देखने लगीं और कृष्णकी गतिसे चलने लगीं २६ वे व्रजकी स्त्रियें वनमें अंगुलियोंको तालकी समान उठा कर एक दूसरीको पुकार कर श्रीकृष्णके चरित्रका गान करने लगीं २७ वे व्रजबालाएँ श्रीकृष्णके नृत्य गीत विलास मुसकान और दृष्टि का प्रसन्नतासे अनुकरण कर क्रीड़ा करने लगीं ॥ २८ ॥ वे दामोदरमें परायण रहने वालीं गोपियें अपने हृदयमेंके श्रीकृष्ण परके प्रेमातिशयभावको गाकर बाहर प्रकट करती हुईं व्रजमें सुखपूर्वक विचरण करने लगीं ॥ २९ ॥ जैसे हथनियें मत्त गज-राजको घेर लेंय तैसेही उन्ने उपलोंके चूरोंसे मलिन अंगों वाली

यन्त्यो यथानागं संप्रमत्तं करेणवः ॥ ३० ॥ तमन्याभावविकचै-
र्नेत्रैः प्रहसिताननाः।पिबन्त्यतृप्तवनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः॥३१
मुखमस्याब्जसंकाशं तृषिता गोपकन्यकाः । रत्यन्तरगता रात्रौ
पिबन्ति रसलालसाः ॥ ३२ ॥ हाहेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता-
वरांगनाः । जगृहुर्निःसृतां वाणीं नाम्ना दामोदरेरिताम् ३३
तासां ग्रथितसीमन्ता रतिं नीत्वाकुलीकृताः । चारु विस्रंसिरे
केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम् ॥ ३४ ॥ एवं स कृष्णो गोपीनां
चक्रवालैरलंकृतः । शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ३५

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हल्लीसक-
क्रीडनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रदोषार्धे कदाचित्तु कृष्णे रतिपरायणे।
त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत ॥ १ ॥ निर्वाणांगार-

गोपियोंने श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ ३० ॥ कृष्णमृगके समान नेत्रों वाली गोपियें मुखको प्रसन्न करके भावके कारण खिले हुए नेत्रोंसे श्रीकृष्णका पान करने लगीं परन्तु तृप्त नहीं हुईं ३१ दूसरी गोपियोंके साथ क्रीड़ामें लगीं हुई गोपियें रसकी लालसा से तृषित होकर श्रीकृष्णके कमलकी समान मुखका पान करने लगीं ॥ ३२ ॥ जब दामोदर हा हा कह कर बोल उठते थे तब गोपियें परम प्रसन्न होकर उनकी वाणीको सुनती थीं३३उनके केश बँधे हुए थे, परन्तु क्रीड़ा करने के कारण खुल कर उनके स्तनों पर लटक गए थे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार गोपियोंके मण्डल से अलंकृत श्रीकृष्ण शरद् ऋतुकी शुक्लपक्षकी रात्रियोंमें गोपियों के साथ आमोद करके सुखी हुए थे ॥ ३५ ॥ बीसवां अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-एक समय आधी रात्रिके समय श्रीकृष्ण क्रीडा कर रहे थे, इसी समय मदमें भरा हुआ अरिष्ट

मेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः । क्षुरतीक्ष्णाग्रचरणः कालः काल इवापरः ॥ २ ॥ लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः । गर्वितानिद्धलांगूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३॥ ककुदोदग्रनिर्माणः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः। शकृन्मूत्रोपलिप्ताङ्गो गवामुद्वेजनो भृशम् ४ महाकटिः स्थूलमुखो दृढजानुर्महोदरः । विषाणावल्गिनगतिर्लम्बता कण्ठचर्मणा ॥ ५ ॥ गवारोहेषु चपलस्तरुघाताङ्किताननः । युद्धसज्जविषाणाग्रो द्विपद्वृषभसूदनः ॥ ६ ॥ अरिष्टो नाम हि गवामरिष्टो दारुणाकृतिः । दैत्यो वृषभरूपेण गोष्ठान् विपरिधावति ॥ ७ ॥ पातयानो गवां गर्भान् दृप्तो गच्छत्यनार्त-

---

नामका दानव गोष्ठमें आगया ॥ १ ॥ उसकी कान्ति बुझे हुए कोयले और मेघकी समान काली थी सींग पैने थे नेत्र सूर्यकी समान दमक रहे थे, खुर छुरेकी समान तीक्ष्ण थे, इस प्रकार वह दूसरे कालकी समान दीख रहा था २ वह अपनी जिह्वा से अपने ओठोंको चाटकर बार २ शब्दके साथ उनको बन्द कर लेता था, और गर्वसे अपनी पूँछको उठा रहा था और उसका कन्धा बड़ा कठिन था ॥ ३ ॥ वह अपने उदग्र (उठे हुए दृढ) ककुदसे मार कर (वृक्ष आदिको तोड़ मार्ग) निर्माण कर लेता था और गोबर तथा मूत्रसे उसका शरीर लिप रहा था इससे गौएँ उससे परम त्रस्त रहती थीं ४ उसकी कटि (कमर) बड़ी चौड़ी थी और मुख लम्बा था जंघाएँ दृढ थीं और पेट बड़ा था जिस समय वह मुख चलाता था, उस समय उसके गलेमें लटकता हुआ कण्ठका चर्म और विषाण भी चलते थे ॥५॥ वह गौओं पर चढनेके लिये चपल हो रहा था और उसका मुख वृक्षोंके आघातसे चिन्हित हो रहा था और उसके सींग युद्ध करनेके लिये तयार थे, वह शत्रुओंके वृषभोंको नष्ट कर डालता था ६ वह गौओंमें अरिष्ट नामसे प्रसिद्ध दारुण आकार वाला अरिष्ट

वम् । जृम्भमाणश्च चपलो गृष्टीः संमचचार ह ॥ ८ ॥ शृङ्ग-
प्रहरणो रौद्रः प्रहरन् गोषु दुर्मदः । गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना-
युद्धेन गोवृषः ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य स वृषः केशना-
ग्रतः । आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १० ॥ स
तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः । चकार निर्वृषं गोष्ठं
निर्वत्सशिशुपुङ्गवम् ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्ण-
समीपगाः । त्रासयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १२ ॥
सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः । तालशब्देन तं कृष्णः
सिंहनादैश्च मोहयन् ॥१३॥ अभ्यधावत गोविन्दो दैत्यं वृषभ-
रूपिणम् । स कृष्णं गोवृषो दृष्ट्वा हृष्टलांगूललोचनः ॥ १४ ॥

नामक वृषभरूपधारी दैत्य गोष्ठोंमें विचरण करने लगा ७ वह
ऋतुकालके न होने पर भी गर्वमें भर गौओं पर चढ उनके गर्भ
को गिराने लगा और वह चपल जँभाई लेकर सद्यः प्रसूता
गौओं पर चढने लगा ॥ ८ ॥ सींगोंसे प्रहार करने वाला वह
दुर्मद रौद्र दैत्य गोष्ठोंमें गौओं पर प्रहार करने पर भी युद्धके
विना आनन्दित नहीं हुआ ॥ ९ ॥ कुछ समयके अनन्तर यम-
राजके वशमें पड़ा हुआ वह अपारबली वृषभ श्रीकृष्णके सामने
पहुँचा ॥ १० ॥ तहाँ उस मदोत्कट दैत्यने गौओंको बलपूर्वक
मारा तब गोष्ठमेंसे बैल बछड़े और बालक भाग गए ॥ ११ ॥
इसी समय कालके अधीन हुए उस दुष्टात्माने वासुदेवके
पास खड़ी हुई गौओंको खदेड़ना आरम्भ कर दिया ॥१२॥
उस समय वह असुर वज्रका कड़ाका करते हुए मेघकी
समान गरजने लगा, उस समय वृषभरूपधारी दैत्यके
सामने श्रीकृष्ण ताली बजाकर और सिंहनाद कर उसको
मोहमें डालते हुए उसके ऊपर दौड़े श्रीकृष्णको देख कर उस
वृषभरूपधारी दैत्यके नेत्र और पूँछ प्रसन्न होगई ॥१३॥१४॥

रोषितस्तालशब्देन युद्धाकाङ्क्षी ननर्द ह । तमापतन्तं दुर्वृत्तं दृष्ट्वा वृषभरूपिणम् । तस्मात् स्थानान्न व्यचलत् कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ १५ ॥ स कृत्तो वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृतानन: । कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥ १६ ॥ तमापतन्तं प्रमुखे प्रतिजग्राह दुर्धरम् । कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृषं प्रतिवृषोपमः ॥१७॥ स संसक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः । मुमोच वक्त्रजं फेनं नस्तश्चाथ स शब्दवत्॥१८॥ तावन्योन्यावरुद्धाङ्गौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ ।रेजतुर्मेघसमये संसक्ताविव तो यदौ १९ तस्य दर्पबलं हत्वा कृत्वा शृङ्गान्तरे पदम् । आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥२०॥शृंगं चास्य पुनः सव्यमुत्पाट्य

और वह तालियोंके शब्दसे रोषमें भर कर युद्धकी आकांक्षा से गर्जने लगा, उस वृषभरूप धारी दुर्वृत्तको आते देख कर श्रीकृष्ण उस स्थानसे न हटे और पर्वतकी समान अचल खडे रहे ॥ १५ ॥ वह वृषभ अपने मुखको नीचेको कर श्रीकृष्णकी कुक्षिकी ओर दृष्टि जमा उनको मारनेकी इच्छासे फुर्तीसे झपटा जैसे साँड साँडको स्वीकार करता है इसी प्रकार काले अञ्जन की समान काले वासुदेव उस झपट कर आते हुएसे बैलकी समान अड़ गए १७बैलसे अडने वाले महावृषभकी समान उस दैत्यसे अड़े हुए वासुदेव बैलकी समान ही अपने मुखसे फेन गिराने लगे और नाकसे शब्द करने लगे ॥ १८ ॥युद्धमें वासुदेव और वृषभ अङ्गोंके परस्पर मिलनेसे वे वर्षाकालमें मिले हुए दो मेघोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ १९ ॥ वासुदेवने उसके घमण्डको नष्ट कर उसके सींगोंके बीचमें पैर धर दिया और अरिष्टके कण्ठको भीगे हुए वस्त्रकी समान दबाने लगे तदनन्तर उसके दाहिने सींगको उखाड़ लिया और उस सींगसे ही उसके मुख पर प्रहार करने लगे तब अधिक पिटनेसे वह मर

खुरैर्दारयते भूमिं वेगेनारुजते द्रुमान्। हेषितैः स्पर्धते वायुं प्लुतैर्लंघयते नभः ॥ १० ॥ अतिप्रवृद्धो मत्तश्च दुष्टोऽश्वो वनगोचरः। आकम्पितसटो रौद्रः कंसस्य चरितानुगः ॥ ११ ॥ ईरिणं तद्वनं सर्वं तेनैवं घोरकर्मणा। कृतं तुरगदैत्येन सर्वान् गोपान् जिघांसता ॥ १२ ॥ तेन दुष्टप्रचारेण दूषितं तद्वनं महत्। न नृभिर्गोधनैर्वापि सेव्यते वनवृत्तिभिः ॥१३॥ निःसम्पातः कृतः पन्थास्तेन तद्विषयाश्रयः। मदाच्चलितवृत्तेन नृमांसान्यश्नता भृशम्१४ नृशब्दानुसरः क्रुद्धः स कदाचिद्वनागमे। जगाम घोषसंवासं चोदितः कालधर्मणा ॥ १५ ॥ तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपाः स्त्रियश्च शिशुभिः सह। क्रन्दमाना जगन्नाथं कृष्णं नाथमुपाश्रिताः १६

मांस और हड्डियोंसे घिरा रहता था६वह खुरोंसे भूमिको विदीर्ण करता रहता था और अपने वेगसे वृक्षोंको गिरा देता था और हींस कर वायुसे स्पर्धा करता था और उछल कर आकाशमें कूद जाता था१० वह वनमें फिरने वाला दुष्ट अश्व बहुत बढ़ गया था और उसके अयाल हिलते रहते थे ऐसा भयंकर केशी कंसका अनुचर था ॥ ११ ॥ उस घोर कर्म करने वाले दैत्यने सब गोपोंको मार २ कर उस सारे वृन्दावनको उजाड़ कर दिया था ॥ १२ ॥ उस दूषित आचरण करने वालेने उस बड़े भारी वनको दूषित कर रक्खा था, इस लिये गोधनसे आजीविका चलाने वाले मनुष्य और साधारण प्राणी भी उस वनका सेवन नहीं करते थे ॥ १३ ॥ मदसे चलित वृत्ति वाले उस दानवने अधिकतर मनुष्योंके ही मांसको खाकर उस वनके आस पास जाने वाला मार्ग बन्द कर रक्खा था ॥ १४ ॥ वह मनुष्योंका शब्द सुन कर ही दौड़ आता था एक समय क्रोधमें भरा हुआ वह दानव मृत्युवश घोषकी ओर गया ॥ १५ ॥ उस को देख कर गोप और गोपस्त्रियें अपने २ बालकोंको लेकर

स तं बाहुमशक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव च । दशनैस्र्स्रुनिर्मुक्तैः सफेनं रुधिरं वमन् ॥ ३७ ॥ विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदली कृतः । अक्षिणी विकृते चक्रे विसृते मुक्तबन्धने ॥३८॥ निरस्तहनुराविष्टः शोणिताक्तविलोचनः । उत्कर्णो नष्टचेष्टस्तु स केशी चक्रवद्द्भ्रमन ॥ ३९ ॥ उत्पतन्नसकृत्पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् । खिन्नांगरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ४० केशी वक्त्रविलग्नस्तु कृष्णबाहुरशोभत । व्याभुग्न इव घर्मान्ते चन्द्रार्धकिरणैर्घनः ॥ ४१ ॥ केशी च कृष्णसंसक्तः शान्तगात्रो व्यरोचत । प्रभातावनतश्चन्द्रः श्रान्तो मेरुमिवाश्रितः ॥ ४२ ॥ तस्य कृष्णभुजोद्धूताः केशिनो दशना मुखात् । पेतुः शरदि

अमितविक्रम बलवान् श्रीकृष्णने भी उस बली राक्षसके मुखमें अपने हाथको लम्बा करके घुसेड़दिया ३६ तब वह उनकी भुजा को न खा सका और न काट सका और वह अपनी डाढ़ोंके मसूढ़ोंमेंसे निकले खूनके झाग गिराने लगा ३७ तदनन्तर उसके ओठ चिर गए और उसके गाल अलग २ होगए, उसके नेत्र फैल गए और उसके अञ्जर पंजर ढीले पड़ गए ३८ उसकी ठोड़ी फट गई थी, उसके नेत्रोंमेंसे रक्त निकलने लगा, नेत्र निकल पड़े कान उखड़ गए और वह विसंज्ञ होकर चकराने लगा ३९ उसके पैर वारवार फड़कने लगे और उसने एक वार मल मूत्रका त्याग कर दिया उसके केश और अंग खिन्नहोगए तदनन्तर उसके चरणोंमें फड़कना भी बन्द होगया ॥ ४० ॥ उस समय केशीके मुखमें लगी हुई श्रीकृष्णकी भुजा चन्द्रमाकी आधी किरणोंसे घिरे हुए वादलकी समान दीख रही थी ॥ ४१ ॥ ढीले अंग वाले और श्रीकृष्णसे सटे अङ्ग वाले केशी भी प्रभातकालमें मेरुपर्वतका आश्रय लेने वाले चन्द्रमाकी समान दीखने लगा ४२ जैसे शरद ऋतुमें वायु वादलोंको विखेर देता है तैसे

प्रथमः पापकर्मणाम् ॥ २३ ॥ गोपानां तद्वचः श्रुत्वा वदतां मधु-सूदनः । केशिना सह युद्धाय मतिं चक्रेऽरिसूदनः ॥२४॥ ततः सव्यं दक्षिणं च मण्डलं स परिभ्रमन् । पद्भ्यामुभाभ्यां स हयः क्रोधेनारुजत द्रुमान् ॥ २५ ॥ मुखे लम्बसटे चास्य स्कन्धे केश-घनावृते । वलयोऽभ्रतरंगाभाः सुस्रुवुः क्रोधजं जलम् ॥ २६ ॥ सफेनं वक्त्रजं चैव ववर्ष रजसा द्रुतम् । हिमकाले यथा व्योम्नि नीहारमिव चन्द्रमाः ॥ २७ ॥ गोविन्दमरविन्दाक्षं हेषितोद्गारशी-करैः । सफेनैर्वक्त्रनिर्गीर्णैः प्रोक्षयामास भारत ॥ २८ ॥ खुराग्र

कर्म करने वालोंमें अग्रणी है २३ मधुसूदन श्रीकृष्णने गोपोंके भाषणको सुना तब वह अरिसूदन केशीके साथ युद्ध करनेका विचार करने लगे २४ इतनेमें ही वह घोड़ा दाईं बाईं ओर चक्कर काट कर क्रोधमें भर अपने चरणोंसे वृक्षोंको तोड़ने लगा २५ उसके लम्बे अयालवाले और उनसे छाये हुए मुखमें क्रोधके कारण पड़ी हुई बादलोंकी तरंगोंकी आभाकी समान वलोंमेंसे पसीना निकलने लगा २६ जैसे शीतकालमें आकाशमेंसे चन्द्रमा कुहार बरसाता है, इसी प्रकार वह (खुरोंसे उड़ाई हुई) धूलसे मिले हुए अपने मुखके फेनोंकी वर्षा करने लगा (श्रुतिमें लिखा है, कि—"न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुपयंति ता अभि उरुगायमभयं तस्य ता अनुगावो मर्तस्य विचरन्ति यज्वनः" अर्थात् अश्वरूपी असुर गौओं पर दौड़ा, और रेणुकी बड़ी भारी वर्षा करने लगा, तब वे गौएँ (दाह छेद औषध पान आदिसे संस्कार करके त्राण करनेवाले वैद्य) संस्कृतत्रके पास गईं क्यों कि—वह मर्त्यधर्मा नंद आदिसे संबंध रखती थीं अत एव वे महाकीर्ति उन के पास गईं)२७ हे भारत ! उसने कमलकी समान नेत्रों वाले गोविन्दको हीसनेके समय निकलने वाली जलबिन्दुओंसे और मुखमेंसे निकलते हुए फेनोंमें भिगो दिया २८

धूतावसिक्तेन मधुकक्षोदपांडुना । रजसा स हयः कृष्णं चकारा-
रुणमूर्धजम् ॥ २९ ॥ प्लुतवल्गितपादस्तु तक्षमाणो धरां खुरैः।
दन्तान्निर्दशमानस्तु केशी कृष्णमुपाद्रवत् ॥३०॥ स संसक्तस्तु
कृष्णेन केशी तुरगसत्तमः । पूर्वाभ्यां चरणाभ्यां वै कृष्णं
वक्षस्यताडयत् ॥ ३१ ॥ पुनः पुनः स च बली प्राहिणोत्
पार्श्वतः खुरान् । कृष्णस्य दानवो घोरं प्रहारममितौजसः ३२
वक्त्रेण चास्य घोरेण तीक्ष्णदंष्ट्रायुधेन वै । अदशद्बाहुशिखरं
कृष्णस्य रुषितो हयः ॥ ३३ ॥ स लम्बकेसरसटः कृष्णेन सह
संगतः । रराज केशी मेघेन संसक्तः ख इवांशुमान् ॥ ३४ ॥
उरस्तस्योरसा हन्तुमियेष बलवान् हयः । वेगेन वासुदेवस्य
क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ॥ ३५ ॥तस्योत्सिक्तस्य बलवान् कृष्णो-
ऽप्यमितविक्रमः । बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे क्रुद्धः समादधत् ३६

उस दानवने अपने खुरोंसे जेठी मधु टीनकी समान रज उड़ा कर श्रीकृष्णके केशोंको अरुण कर दिया २९ तदनन्तर वह पैरोंसे कूदता हुआ और अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ तथा दाँतोंको कटकटाता हुआ श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा ३० उस तुरगसत्तम केशीने श्रीकृष्णसे मिलते ही अपने अगले दोनों चरण श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें मारे ३१ तदनन्तर वह बली दानव अमितपराक्रमी श्रीकृष्णकी पसुलियोंमें वारंवार खुर मारने लगा ३२ फिर उस कोपमें भरे हुए दैत्यने श्रीकृष्णके भुजारूपी शिखरको अपने तीक्ष्ण डाढ़ोंके आयुध वाले भयंकर मुखसे चार २ काटा ३३ लम्बी सटा और अयाल वाला वह केशी दानव श्रीकृष्णसे भिड़ते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो आकाशमें सूर्य मेघसे लड़ रहा हो ३४ उस दानवमें क्रोधके कारण दुगना पराक्रम आगया, तब वह बलवान् घोड़ा अपने वक्षःस्थलसे श्रीकृष्णके वक्षःस्थल पर प्रहार करना चाहने लगा ३५ तब तो

स तं ग्राहुमशक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव च । दशनैर्मूलनिर्मुक्तैः सफेनं रुधिरं वमन् ॥ ३७ ॥ विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदली कृतः । अक्षिणी विकृते चक्रे विसृते मुक्तबन्धने ॥३८॥ निरस्तहनुराविष्टः शोणिताक्तविलोचनः । उत्कर्णो नष्टचेष्टस्तु स केशी चक्रवद्भ्रमन् ॥ ३९ ॥ उत्पतन्नसकृत्पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् । खिन्नाङ्गरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ४० केशी वक्त्रविलग्नस्तु कृष्णबाहुरशोभत । व्याभुग्न इव घर्मान्ते चन्द्रार्धकिरणैर्घनः ॥ ४१ ॥ केशी च कृष्णसंसक्तः शान्तगात्रो व्यरोचत । प्रभातावनतश्चन्द्रः श्रान्तो मेरुमिवाश्रितः ॥ ४२ ॥ तस्य कृष्णभुजोद्धूताः केशिनो दशना मुखात् । पेतुः शरदि

अमितविक्रम बलवान् श्रीकृष्णने भी उस बली राक्षसके मुखमें अपने हाथको लम्बा करके घुसेड़दिया ३६ तब वह उनकी भुजा को न खा सका और न काट सका और वह अपनी डाढ़ोंके मसूड़ोंमेंसे निकले खूनके झाग गिराने लगा ३७ तदनन्तर उसके ओठ चिर गए और उसके गाल अलग २ होगए, उसके नेत्र फैल गए और उसके अङ्गर पंजर ढीले पड़ गए ३८ उसकी टोड़ी फट गई थी, उसके नेत्रोंमेंसे रक्त निकलने लगा, नेत्र निकल पड़े कान उखड़ गए और वह विसंज्ञ होकर चकराने लगा ३९ उसके पैर वारवार फड़कने लगे और उसने एक वार मल मूत्रका त्याग कर दिया उसके केश और अंग खिन्नहोगए तदनन्तर उसके चरणोंमें फड़कना भी वन्द होगया ॥ ४० ॥ उस समय केशीके मुखमें लगी हुई श्रीकृष्णकी भुजा चन्द्रमाकी आधी किरणोंसे घिरे हुए वादलकी समान दीख रही थी ॥ ४१ ॥ ढीले अंग वाले और श्रीकृष्णसे सटे अङ्ग वाले केशी भी प्रभात-कालमें मेरुपर्वतका आश्रय लेने वाले चन्द्रमाकी समान दीखने लगा ४२ जैसे शरद् ऋतुमें वायु वादलोंको विखेर देता है तैसे

निस्तोया: सिताभ्रावयवा इव ॥ ४३ ॥ स तु केशी भृशं श्रान्तः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । स्वभुजं स्वायतं कृत्वा पाटितो वलवत्तदा स पाटितो भुजेनाजौ कृष्णेन विवृताननः । केशी नदन् महानादं दानवो व्यथितस्तदा ॥ ४५ ॥विघूर्णमानः स्रस्तांगो मुखाद्रुधिरमुद्वहन । भृशं व्यङ्गीकृतवपुर्निकृत्तार्थ इवाचलः ॥ ४६ ॥ व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना । निपपात यथा कृत्तो नागो हि द्विदली कृतः ॥४७॥ बाहुना कृत्तदेहस्य केशिनो रूपमावभौ । पशोरिव महाघोरं निहतस्य पिनाकिना ॥ ४८ ॥ द्विपादपृष्ठपुच्छार्धे श्रवणैकाक्षिनासिके । केशिनस्तद्द्विधाभूते द्वे चार्धे रेजतुः क्षितौ ॥ ४९ ॥ केशिदन्तक्षतस्यापि कृष्णस्य शुशुभे भुजः । वृद्धः साल इवारण्ये गजेन्द्रदशनाङ्कितः ॥५०॥ तं हत्वा

ही कृष्णकी भुजासे उखड़े हुए केशीके दाँत बिखरने लगे ४३ इस प्रकार बिना क्लेश पाये कर्म करने वाले श्रीकृष्णने अपनी भुजाको मोटी करके श्रान्त हुए केशीको मार डाला था ४४ इस प्रकार श्रीकृष्णकी भुजासे उखाड़ा हुआ वह केशी दानव महानाद करता हुआ व्यथित होगया था और उसका मुख बिगड़ गया था ४५ वह चकराने लगा था, उसके अंग ढीले पड़ गए थे और वह मुखमेंसे रुधिर ओकने लगा था उसके शरीरमेंसे बहुतसे अंग निकल गए थे इस लिये वह काटे हुए आधे पर्वतकी समान प्रतीत होता था ४६ कृष्णकी भुजाके कारण जिसका मुख फैल गया था ऐसा वह दानव दो टुकड़े किये हुए नागकी समान गिर पड़ा ४७ भुजासे टुकड़े किये हुए शरीर वाले केशीका रूप पिनाकीके द्वारा मारे हुए पशुकी समान जँच रहा था ४८ दो पैर आधी पूँछ तथा एक कान नेत्र और नासिकाछिद्र वाले केशीके आधे दो खण्ड शोभायमान दीखने लगे ४९ जैसे पुराना सालका वृक्ष हाथियोंके दाँतोंसे क्षत होने पर दीखता है, इसी प्रकार

केशिनं युद्धे कल्पयित्वा च भागशः । कृष्णः पद्मपलाशाक्षो हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥ ५१ ॥ तं हतं केशिनं दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा । बभूवुर्मुदिताः सर्वे हतविघ्नहतक्लमाः ॥ ५२ ॥ दामोदरं तु श्रीमन्तं यथास्थानं यथावयः । अभ्यनन्दन् प्रियैर्वाक्यैः पूजयन्तः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥ गोपा ऊचुः । अहो तात कृतं कर्म हतोऽयं लोककण्टकः । दैत्यः क्षितिचरः कृष्ण हयरूपं समास्थितः ॥ ५४ ॥ कृतं वृन्दावनं क्षेमं सेव्यं नृमृगपक्षिणाम् । घ्नता पापमिमं तात केशिनं हयदानवम् ॥५५॥ हता नो बहवो गोपा गावो वत्सेषु वत्सलाः । नैके चान्ये जनपदा हताऽनेन दुरात्मना ॥ ५६ ॥ एष सम्वर्तकं कर्तुमुद्यतः खलु पापकृत् । नृलोकं निर्नरं कृत्वा वर्तुकामो यथासुखम् ॥५७॥ नैतस्य प्रमुखे

केशीके दाँतोंसे घायल हुआ श्रीकृष्णका हाथ भी शोभा पाने लगा ५० केशीको युद्धमें मार और उसके भाग २ कर पद्मपत्रकी समान नेत्र वाले कृष्ण वहाँ खड़े २ हँसने लगे ॥५१॥ केशीको मरा हुआ देख कर विघ्न और परिश्रमके जाते रहनेसे गोप और गोपियें परम प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ तब वे दामोदरका स्थान और अवस्थाके अनुसार प्रियवाक्योंसे पूजन कर उनका अभिनन्दन करने लगे ॥ ५३ ॥ गोपोंने कहा, कि—हे कृष्ण ! आपने बड़ा भारी कर्म किया, कि हे तात ! कि-तुमने पृथ्वीमें घोड़ेके रूपमें विचरण करने वाले इस राक्षसको मार डाला ॥ ५४ ॥ हे तात ! आपने इस अश्वरूपधारी केशी दानवको मार कर वृन्दावनको निष्कण्टक कर दिया है अब मनुष्य मृग और पक्षी इसका सेवन कर सकेंगे ॥ ५५ ॥ इसने हमारे बहुतसे गोप और वत्सवत्सला गौओंको मार डाला था और इस दुरात्माने और भी बहुतसे ग्रामोंको उजाड़ दिया है ॥ ५६ ॥ यह पापी तो मनुष्यलोकको मनुष्यरहित कर यथेच्छ विहार करनेकी इच्छासे प्रलय करनेको

स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः । अपि देवसमूहेषु किं पुनः पृथिवीतले ॥ ५८ ॥ अथाइन्तर्हितो विप्रो नारदः खगमो मुनिः। प्रीतोऽस्मि विष्णो देवेश कृष्ण कृष्णेति चाब्रवीत् ॥५९॥ नारद उवाच ।यदिदं दुष्करं कर्म कृतं केशिजिघांसया । त्वय्येव केवलं युक्तं त्रिदिवे त्र्यम्बकस्य वा ॥ ६० ॥ अहं युद्धोत्सुकस्तात त्वद्गतेनान्तरात्मना । इदं नरहयं युद्धं द्रष्टुं स्वर्गादिहागतः ६१ पूतनानिधनादीनि कर्माणि तव दृष्टवान् । अहं त्वनेन गोविन्द कर्मणा परितोषितः ॥ ६२ ॥ हयादस्मान्महेन्द्रोऽपि बिभेति बलसूदनः । कुर्वाणाच्च वपुर्घोरं केशिनो दुष्टचेतसः ॥६३॥ यत्त्वया पाटितो देहो भुजेनायतपर्वणा । एषोऽस्य मृत्युरन्ताय विहितो विश्वयोनिना ॥ ६४ ॥ यस्मात्त्वया हतः केशी तस्मान्मच्छासनं

ही तयार होगया था ॥ ५७ ॥ जो अपने प्राणोंकी रक्षा करना चाहता हो वह देवता भी उसके सामने नहीं जाता था, फिर पृथ्वीतलके मनुष्योंकी तो वात ही क्या है ? ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त अन्तर्धान हुए नारदने आकाशमें विचरण कर कहा, कि-हे विष्णो ! हे देवेश ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ ॥ ५९ ॥ नारदजीने कहा, कि-आपने केशीको मारने की इच्छासे जैसा दुष्कर कर्म किया है,ऐसा कर्म तो आप ही कर सकते हैं, वा स्वर्गमें त्र्यम्बक महादेव कर सकते हैं ॥ ६० ॥ हे तात ! मैं आपका युद्ध देखना चाहनेके लिये उत्सुक था, इसी लिये मैं मनुष्य और घोड़ेके युद्धको देखनेके लिये स्वर्गसे आया था ६१ मैंने पूतनावध आदि कर्म भी देखे थे और आपके इस कर्मसे तो मैं प्रसन्न ही होगया हूँ ६२ जब यह दूषित मन वाला केशी अपने घोर रूपको धारण कर लेता था उस समय बल दैत्यको मारने वाला इन्द्र भी इससे डरता था ६३ तुमने अपनी भुजाको लम्बी करके इसके मुखमें डाल दिया था, विश्वयोनि

शृणु ॥ केशवो नाम नाम्ना त्वं ख्यातो लोके भविष्यसि ६५
स्वस्त्यस्तु भवतो लोके साधु याम्यहमाशुगः । कृत्यशेषं च ते कार्यं शक्तस्त्वमसि मा चिरम् ॥ ६६ ॥त्वयि कार्यान्तरगते नरा इव दिवौकसः । विडम्बयन्तः क्रीडन्ति लीलां त्वद्बलमाश्रिताः अभ्यासे वर्तते कालो भारतस्याहवोदधेः । हस्तप्राप्तानि युद्धानि राज्ञां त्रिदिवगामिनाम् ॥६८॥ पन्थानः शोधिता व्योम्नि विमानारोहणोर्ध्वगाः॥अवकाशा विभज्यन्ते शक्रलोके महीक्षिताम्६९ उग्रसेनसुते शान्ते पदस्थे त्वयि केशव । अभितस्तन्महद्युद्धं भविष्यति महीक्षिताम् ॥ ७० ॥ त्वां चाप्रतिमकर्माणं संश्रयिष्यन्ति पाण्डवाः । भेदकाले नरेन्द्राणां पक्षग्राहो भविष्यसि ॥ ७१ ॥ त्वयि राजासनस्थे हि राजश्रियमनुत्तमाम्।शुभां त्यक्ष्यन्ति राजा-

ब्रह्माजीने इसकी मृत्यु इसी प्रकार रची थी ६४ तुमने केशी दैत्य को मार डाला है अब तुम मेरे शासनको सुनो, कि इसी कारण तुम संसारमें केशव नामसे प्रसिद्ध होगे ६५ आपका संसारमें कल्याण हो अब मैं शीघ्रतासे जाता हूँ अब आप अपने बचे हुए कार्यको शीघ्रतासे पूर्ण करिये ६६ आपके भूभा उतारनेके लिये अवतार लेने पर आपके बलका आश्रय लेकर देवता भी विडम्बना करते हुए मनुष्योंकी समान लीला कर रहे हैं ६७ अब महाभारतरूपी रणसागरकी समय समीप ही है अब स्वर्गमें जानेवाले राजाओंको युद्ध हस्तप्राप्तसा है ॥ ६८ ॥ अब इन्द्रलोकमें राजाओंके लिये मार्ग बनाये जारहे हैं और उनके विमानमें बैठ कर जानेके लिये आकाशमें अवकाश बनाये जारहे हैं ६९ हे केशव! जब उग्रसेनका पुत्र शान्त होजायगा और तुम रक्षक पद पर नियुक्त होजाओगे तब चारों ओर राजाओंमें बड़ा भारी युद्ध मचेगा७०उस समय आप इक्कड़ मनुष्यका पाण्डव आश्रय लेंगे और राजाओंकी गड़बड़ीके समय आप उनका पक्ष ग्रहण करेंगे

नस्त्वत्प्रभावान्न संशयः ॥ ७२ ॥एष मे कृष्ण सन्देशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति । देवतानां दिविस्थानां जगतश्च जगत्पते ७३ दृष्टं मे भवतः कर्म दृष्टश्चासि मया प्रभो । कंसे भूयः समेष्यामि-साधिते साधु याम्यहम् ॥ ७४ ॥ एवमुक्त्वा तु स तदा नारदः खं जगाम ह । नारदस्य वचः श्रुत्वा देवसंगीतयोनिनः ॥७५॥ तथेति स समाभाष्य पुनर्गोपान् समासदत् । गोपाः कृष्णं समासाद्य विविशुर्व्रजमेव ह ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि केशि वधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

जब आप राजासन पर आरूढ़ होजावेंगे तब आपके प्रभावसे दूसरे राजे अपनी शुभ और उत्कृष्ट राज्यलक्ष्मीको त्याग देंगे ७२ हे जगत्पते कृष्ण ! मेरा यह संदेश श्रुतियोंमें है अब स्वर्गस्थ देवता और जगत्में भी प्रसिद्ध होजायगा (श्रुतिमें लिखा है, कि- "अहश्च कृष्णमरर्जुनं च विवर्त्तते रजसी वेद्याभिः । वैश्वानरो जायमाने । न राजा वातिरऽऽज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥' युद्धयज्ञ श्रीकृष्णको निमित्त करके हुआ था और युद्धयज्ञ अर्जुनको निमित्त करके भी हुआ था। ये दोनों(का) यज्ञ रजोगुणी (प्राप्त करने योग्य) वेद्या संपतिके कारण हुआ था, अग्निने (खाण्डव वनमें दिये हुए रथरूपसे) अधर्मरूप दुर्गंधकारोंका नाश करने में उनको सहायता दी थी) ॥ ७३ ॥ हे प्रभो ! मैंने आपका कर्म देख लिया और आपका दर्शन भी कर लिया अब जब आप कंसको मारेंगे तब मैं फिर आऊँगा॥ ७४ ॥ इस प्रकार बातचीत करके नारदजी आकाशको चले गए और श्रीकृष्ण देवताओंके संगीतकी उत्पत्ति स्थान नारदजीसे तथास्तु कह कर गोपोंमें आमिले और श्रीकृष्णके आने पर गोप भी व्रजमें चले गए ७५-७६ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथास्तं गच्छति तदा मन्दरश्मौ दिवाकरे । सन्ध्यारक्ततले व्योम्नि शशांके पाण्डुमण्डले ॥ १ ॥ नीडस्थेषु विहंगेषु सत्सु प्रादुष्कृताग्निषु । ईषत्तमः संवृतासु दिक्षु सर्वासु सर्वशः ॥२॥ घोषवासिषु सुप्तेषु नाशन्तीषु शिवासु च । नक्तंचरेषु हृष्टेषु पिशिताशनकांक्षिषु ॥ ३ ॥ शक्रगोपाङ्गनामोदे प्रदोषेऽभ्यासतस्करे। सन्ध्यामयीमिव गुहां संप्रविष्टे दिवाकरे ॥ ४ ॥ अग्निश्रयणवेलायां प्राप्तायां गृहमेधिनाम् । वन्यैर्वैखानसैर्मन्त्रैर्हूयमाने हुताशने ॥ ५ ॥ उपावृत्तासु च गोषु दुह्यमानासु च व्रजे । असकृद्व्याहरन्तीषु बद्धवत्सासु धेनुषु ॥ ६ ॥ प्रकीर्णदामनीकेषु गावार्थवाद्यतसु च । सविनादेषु गोपेषु

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसके उपरान्त जब सूर्य अस्ताचल पर जाने लगे और उनकी किरणें मन्द होने लगीं और संध्या के समय, आकाशका तल रक्त होगया तथा चन्द्रमा पीला २ दीखने लगा ॥ १ ॥ और पक्षी अपने २ घोंसलोंमें बैठ गए, और सज्जनोंने अपने अग्निहोत्रकी अग्नियोंको प्रकट कर दिया था और सब दिशाओंमें थोड़ा २ अंधकार फैला हुआ था २ और जब घोषवासी निद्रा लेने लगे थे और गीदड़ियें बोलने लगीं थीं और मांसभक्षण करना चाहने वाले जन हर्षमें भर कर रात्रिमें विचरण करने लगे ॥ ३ ॥ आनप तप्त इन्द्र और गोपोंको अति प्रसन्न करने वाले और स्वाध्यायको निवृत्त करने वाले अंधकारके फैलने पर जब सूर्य संध्यामयी गुफामें प्रविष्ट होगया ४ और जब गृहस्थाश्रमियोंका अग्निहोत्रके लिये अग्निमें दुग्ध स्थापित करनेका समय आगया और जब वानप्रस्थ (मीनाह आदि) वनके धान्योंकी मंत्र पढ़ २ कर अग्निमें आहुति देने लगे ॥ ५ ॥ और जब व्रजमें गौओंका दुहा जाना बंद होगया तब जिनके बछड़े बँधे रहे थे वे गौएँ बारबार म्हाँ २ करने

काल्यमाने च गोधने ॥७॥ करीषेषु प्रकल्प्तेषु दीप्यमानेषु सर्वशः॥ काष्ठभारानतस्कन्धैर्गोपैरभ्यागतैस्तथा ॥ ८ ॥ किंचिदभ्युद्गतं सोमं मन्दरश्मौ विराजति । ईषद्विगाह्यमानायां रजन्यां दिवसे गते ॥९॥ प्राप्ते दिनव्युपरमे प्रवृत्ते क्षणदामुखे । भास्करे तेजसि गते सौम्ये तेजस्युपस्थिते ॥१०॥ अग्निहोत्राकुले काले सौम्येन्दौ समुपस्थिते । अग्नीषोमात्मके सन्धौ वर्तमाने जगन्मये ॥ ११ ॥ पश्चिमेनाग्निदीप्तेन पूर्वेणोत्पलवर्चसा दग्धाद्रिसदृशे व्योम्नि किंचित्तारागणाकुले ॥ १२ ॥ वयोभिर्वासमुशता बन्धुभिश्च समागमम् । शंसद्भिः स्यन्दनेनाशु प्राप्तो दानपतिर्व्रजम् ॥१३॥

लगीं ॥ ६ ॥ जब गोप गोधनको बाँधनेके लिये हाथमें लटकती हुई रस्सियें ले (गौओंको) बुलाते फिर रहे थे ॥ ७ ॥ और काष्ठके भारसे जिनके कंधे लच रहे थे ऐसे गोप जब आकर अग्ने उपलोंको इकट्ठे कर उनको सुलगाने लगे ॥ ८ ॥ उस समय चन्द्रमा कुछ उठगया था और वह मन्द २ किरणोंसे विराजमान होरहा था, दिन बीत गया था और थोड़ी २ रात्रि हुई थी ९ उस समय दिन बीत गया और रात्रिका अरंभ होरहा था, सूर्य की धूप छिप गई थी और चन्द्रमाकी चाँदनी धीरे २ फैल रही थी१०उस समय अग्निहोत्र करनेका समय आगया था और सौम्य चन्द्रमा निकल आया था और जगत्में व्याप्त अग्नीषोमात्मक संधिका समय आगया था(यहाँ अग्नीषोमको जगत्में व्याप्त कह कर उनका भोक्तभोग्यात्मकत्व दिखाया है) ॥ ११ ॥ उस समय पश्चिमकी ओरका आकाश (सूर्यास्तका समय होनेके कारण)अग्निकी समान प्रदीप्त होरहा था और पूर्वका आकाश कमलकी समान उज्ज्वल होरहा था और उस प्रज्वलित होते हुए पर्वतकी समान आकाशमें कुछ २ तारे निकल रहे थे १२ उस समय पक्षी बोल कर यह सूचना देने लगे कि-कोई संबंधी

प्रविशन्नेव पप्रच्छ सान्निध्यं केशवस्य सः । रौहिणेयस्य चाक्रूरो नन्दगोपस्य चासकृत् ॥ १४ ॥ स नन्दगोपस्य गृहं वासाय विबुधोपमः । अवतीर्य ततो यानात् प्रविवेश महाबलः ॥१५॥ हर्षपूर्णेन वक्त्रेण साश्रुनेत्रेण चैव हि । प्रविशन्नेव च द्वारि ददर्शादोहने गवाम् ॥ १६ ॥ वत्समध्ये स्थितं कृष्णं सवत्समिव गोवृषम् । स तं हर्षपरीतेन वचसा गद्गदेन वै ॥ १७ ॥ एहि केशव तातेति प्रत्याहरत धर्मवित् । उत्तानशायिनं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा त्रिगा वृतम् ॥ १८ ॥ अव्यक्तयौवनं कृष्णमक्रूरः प्रशशंस ह । अयं स पुण्डरीकाक्षः सिंहशार्दूलविक्रमः ॥ १९ ॥ सम्पूर्णजल-

---

आकर निवास करना चाहता है इतनेमें ही शीघ्रगामी रथमें बैठे हुए दानपति अक्रूर व्रजमें पहुँच गए ॥ १३ ॥ उन्होंने व्रजमें प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण बलराम और नन्दगोपके स्थान को वारम्वार बूझना आरम्भ करदिया ॥१४॥ तदनन्तर देवता की समान प्रतीत होने वाले महाबली अक्रूर अपने रथपरसे उतर कर नन्दगोपके घर ठहरनेके लिये उतर पड़े ॥ १५ ॥ जब वह नेत्रोंमें हर्षके आसूँ भर प्रसन्नमुखसे द्वारमें घुसे थे, कि-उन्होंने गौओंके दुहनेके स्थानमेंको बछड़ोंको लेकर खड़े हुए साँडकी समान ! देखा, बछड़ोंके पास खड़े हुए श्रीकृष्ण तब वह धर्मात्मा हर्षगद्गदस्वरसे "हे तात ! केशव ! आइये" कहने लगे, अक्रूरने उनको(शास्त्रोंमें)(कल्पान्तमें वटपत्र पर) चरण को उत्तान कर सोते हुए देखा था और उन्होंने(वामनावतारमें) त्रिलोकीका आक्रमण करनेमें समर्थ (बटुकरूपधारी) देखा था ॥ १६-१८ ॥ इस समय अक्रूर अवस्थाकी सन्धिमें पहुँचे हुए श्रीकृष्णकी प्रशंसा करने लगे कि-इन श्रीकृष्णके नेत्र कमलकी समान हैं और सिंह तथा शार्दूलकी समान गमन करते हैं ॥ १९ ॥ इनकी आभा जलभरे मेघकी समान दीख रही है

मेघाभः पर्वतप्रवराकृतिः । सुधृष्यश्चप्रणीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा ॥ द्विपन्निधनदक्षाभ्यां भुजाभ्यां साधुभूषितः ॥ २० ॥ मूर्तिमान् स रहस्यात्मा जगतोऽग्रस्य भाजनम् । गोपवेषधरो विष्णुरुद्‌ग्राग्रतनूरुहः ॥ २१ ॥ किरीटलाञ्छनेनापि शिरसा छत्रवर्चसा । कुण्डलोत्तमयोग्याभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषितः ॥ २२ ॥ हारार्हेण च पीनेन सुविस्तीर्णेन वक्षसा । द्वाभ्यां भुजाभ्यां वृत्ताभ्यां दीर्घाभ्यामुपशोभितः ॥ २३ ॥ स्त्रीसहस्रोपचर्येण वपुषा मन्मथाग्निना । पीते वसानो वसने सोऽयं विष्णुः सनातनः ॥ २४ ॥ धरणाश्रयभूताभ्यां चरणाभ्यामरिन्दमः । त्रैलोक्याक्रान्तिभूताभ्यां भुवि पद्भ्यां व्यवस्थितः ॥ २५ ॥ रुचिराग्रकररनास्य

और इनकी आकृति श्रेष्ठ पर्वतकी समान है और यह संग्रामोंमें अधृष्य श्रीवत्सके चिन्ह वाले वक्षःस्थल और शत्रुओंकी मृत्यु करनेमें कुशल भुजाओंसे भली प्रकार विभूषित होरहे हैं २० और यह मूर्तिमान् उपनिषन्मोक्त पुरुष हैं और प्रथम पूजा पाने के पात्र हैं और इनके केशोंके अग्रभाग श्रेष्ठ हैं अर्थात् यह भक्तों का दर्शन करते ही पुलकित होजाते हैं ॥ २१ ॥ यह छत्रकी समान कान्तिवाले किरीटको धारण करते हैं और इनके कान उत्तम कुण्डलोंको धारण करने योग्य हैं ॥२२॥ यह हार पहिरने योग्य विस्तीर्ण और पुष्ट वक्षःस्थल और दोनों गोल और मोटी भुजाओंसे शोभा पारहे हैं ॥ २३ ॥ यह मन्मथाग्नि (जिसमें कामका आधान होता है ऐसे यौवन और पौगण्डावस्थाकी सन्धिकाल) वाले सहस्रों स्त्रियोंके सेवन करनेयोग्य शरीर पर सनातन विष्णु पीले वस्त्र धारण कर रहे हैं ॥ २४ ॥ यह अरिदमन पृथ्वीके आश्रयभूत और त्रैलोकीको तापने वाले चरणोंसे अब पृथ्वीमें स्थित हैं ॥ २५ ॥ इनका दाहिना रुचिर हाथ चक्रांकितकी समान दीखरहा है और दूसरा उठा हुआ बाग

चक्रांकित इवेक्षते । द्वितीय उद्यतश्चापि गदासंयोगमिच्छति २६
अवतीर्णो भवायेह प्रथमं पदमात्मनः । शोभतेऽस्य भुवि श्रेष्ठस्त्रि-
दशानां धुरन्धरः ॥ २७ ॥ अयं भविष्ये दृष्टो वै भविष्यकुशलै-
र्नरैः । गोपालो यादवं वंशं क्षीणं विस्तारयिष्यति २८ तेजसा
यादवाश्चास्य शतशोऽथ सहस्रशः । वंशमापूरयिष्यन्ति ओघा
इव महार्णवम् ॥ २६ ॥ अस्येदं शासने सर्वं जगत् स्थास्यति
शाश्वतम् । निहतामित्रसामन्तं स्थितं कृतयुगे तथा ॥ ३० ॥
अयमास्थाय वसुधां स्थापयित्वा जगद्वशे । राज्ञां भविष्यत्युपरि
न च राजा भविष्यति ॥ ३१ ॥ नूनं त्रिभिः क्रमैर्जित्वा यथाऽनेन
प्रभुः कृतः । पुरा पुरंदरो राजा देवतानां त्रिविष्टपे ॥ ३२ ॥
तथैव वसुधां जित्वा जितपूर्वां त्रिभिः क्रमैः । स्थापयिष्यति

(हाथ) गदा पकड़ने योग्य दीखता है ॥२६॥ पृथ्वीमें संसार
का कल्याण करनेके लिये अपने चौथे पदसे यह देवताओंमें
धुरन्धर उत्पन्न होकर शोभा पारहे हैं अर्थात् यह आत्माके
विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय नामक चार पदोंकी समान उत्पत्ति
क्रमकी अपेक्षा प्रथमपाद निर्गुण ब्रह्म हैं२७पहिले भविष्य देखनेमें
कुशल पुरुषोंने भविष्य देखा था, कि-"यह गोपाल क्षीण हुए
यादववंशका उद्धार करेंगे २८ नदियोंके पूर जैसे समुद्रको पूर्ण
करते हैं तैसे इनके तेजके प्रभावसे सैंकड़ों और सहस्रों यादव,
यादववंशको पूर्ण करेंगे २६ शाश्वत और सम्पूर्ण जगत् इनके
शासनमें स्थित होजायगा, उस समय इनके शत्रु और सामन्त नष्ट
होजावेंगे और जगत् सत्ययुगकी समान होजावेगा ॥ ३० ॥ यह
वसुधातल पर रह कर सब जगत्को वशमें कर लेंगे और राजाओं
पर अधिष्ठित होंगे, परन्तु राजा न होंगे ॥ ३१ ॥ पहिले इन्होंने
ने तीन चरणोंसे जैसे स्वर्गमें देवताओंके राजा इन्द्रके, लोकोंको
नाप कर निष्पाप कर दिया था ॥३२॥ इसी प्रकार यह पहिले

राजानमुग्रसेनं न संशयः ॥ ३३ ॥ प्रसृष्टवैरगाधोऽयं प्रश्नैश्च बहुभिः श्रुतः । ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादैश्च पुराणोऽयं हि गीयते ३४ स्पृहणीयो हि लोकस्य भविष्यति च केशव । तथा ह्यस्योत्थिता बुद्धिर्मानुष्यमुपजीवितुम् ॥ ३५ ॥ अहं त्वस्याद्य वसतिं पूजयिष्ये यथाविधि विष्णुत्वं मनसा चैव पूजयिष्यामि मन्त्रवित् ३६ यच्च ज्ञातिपरिज्ञानं प्रादुर्भावश्च वै नृपु । अमानुषं वेद्मि चैनं ये चान्ये दिव्यचक्षुषः ॥ ३७ ॥ सोऽहं कृष्णेन वै रात्रौ संमंत्र्य विदितात्मना । सहानेन गमिष्यामि सव्रजो यदि मंस्यते । ३८।

अपने तीन चरणोंसे जीती हुई पृथ्वीको फिर जीत कर उस पर राजा उग्रसेनको स्थापित करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ३३ यह फैले हुए वैरका पार (अन्त) करने वाले हैं अर्थात् श्रम और कामना आदिका पारस्परिक विरोध इनको पाने पर शान्त होजाता है, अत एव (प्रश्नोपनिषद्व में छ) बहुतसे प्रश्नोंमें इनका प्रतिपादन किया है और ब्रह्मवादी ब्राह्मण इनको पुराण पुरुष कहा करते हैं ॥ ३४ ॥ यह केशव इस लोकमें स्पृहणीय होंगे और इनमें उत्पन्न हुई बुद्धि मनुष्यजीवन चलानेके लिये उपयोगी होगी ॥ ३५ ॥ मैं वेदवेत्ता हूँ अत एव इनकी पहिली वसति (निवासस्थान)की शास्त्रानुसार पूजा करूँगा और मन में इनके विष्णुत्व (व्यापकत्व) की पूजा करता रहूँगा ॥ ३६ ॥ यद्यपि मैं इनकी (वर्तमान) जातिको जानता हूँ और यह भी जानता हूँ, कि-यह मनुष्योंमें उत्पन्न हुए हैं, तब भी मैं इनको अमानुष ही मानता हूँ और दूसरे दिव्य नेत्र वाले पुरुष भी ऐसा ही समझते हैं ॥ ३७ ॥ अत एव मैं आत्मज्ञानी श्रीकृष्ण से रात्रिमें सलाह करूँगा और यह तथा व्रजवासी मान जावेंगे, तो मैं इनके साथ मथुराको चलूँगा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार बहुतसे

एवं बहुविधं कृष्णं दृष्ट्वा हेत्वर्थकारणैः । विवेश नन्दगोपस्य कृष्णेन सह संसदम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरागमनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच । स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टः सहकेशवः । गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाचामितदक्षिणः ॥ १ ॥ कृष्णं चैवाब्रवीत् प्रीत्या रौहिणेयेन संगतम् । श्वः पुरीं मथुरां तात गमिष्याम सुखाय वै ॥२॥यास्यन्ति च व्रजाः सर्वे गोपालाः सपरिग्रहाः । कंसाज्ञया समुचितं करमादाय वार्षिकम् ॥ ३ ॥ समृद्धस्तत्र कंसस्य भविष्यति धनुर्महः । तं द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनांश्च समेष्यथ ॥ ४ ॥ पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम् । दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथ ॥ ५ ॥ सततं पीड्यमानं च

वेदोक्त कारणोंसे हरिका विवेचन कर अक्रूरजी श्रीकृष्णके साथ नन्दगोपके घरमें घुसे ॥ ३६ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त २५

वैशम्पायनजीने कहा, कि—अक्रूरजी श्रीकृष्णके साथ नन्दगोपके घरमें घुसे, फिर दानपति अक्रूरने वृद्ध २ गोपोंको बुला कर उनसे कहा ॥ १ ॥ और उन्होंने बलरामके साथ बैठे हुए श्रीकृष्णसे भी कहा, कि—हे तात ! हम कल सुख पानेके लिये मथुराको चलेंगे ॥२॥ और कंसकी आज्ञानुसार सब गोपाल भी अपने कुटुम्बके साथ वार्षिक कर लेकर मथुराको चलेंगे ॥ ३ ॥ तहाँ पर कंसका अतिसमृद्ध धनुर्मख नामक उत्सव होगा, उस बड़े भारी उत्सवको तुम देखना और तहाँ अपने आदमियोंसे तुम्हारी जान पहिचान होजावेगी ॥ ४ ॥ और तुम सर्वदा दुःख भोगने वाले पुत्रोंका वध होनेसे श्रान्त और दीन अपने पिता वसुदेवसे भी मिल सकोगे ॥ ५ ॥ अशुभ बुद्धि कंस उन को सर्वदा पीड़ित करता रहता है, वृद्धावस्थाके कारण उनका

कंसेनाशुभबुद्धिना । दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखैः शिथिलतां गतम् ॥ ६ ॥ कंसस्य भयसन्त्रस्तं भवद्भ्यां च विना कृतम् । दह्यमानं दिवारात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना ॥७॥ तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुत्रैरमृदितस्तनीम् । देवकीं देवसंकाशां सीदन्तीं विहतप्रभाम् ॥ ८ ॥पुत्रशोकेन शुष्यन्तीं त्वद्दर्शनपरायणाम् । वियोगशोकसन्तप्तां विवत्सामिव सौरभीम् ॥९॥ उपप्लुतेक्षणां दीनां नित्यं मलिनवाससम्। स्वर्भानुवदनग्रस्तां शशांकस्य प्रभामिव१० त्वद्दर्शनपरां नित्यं तवागमनकांक्षिणीम् । त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्तीं वै तपस्विनीम् ॥११॥ त्वत्प्रलापेष्वकुशला त्वया बाल्ये वियोजिताम् । अरूपज्ञां तव विभो वक्त्रस्यास्येन्दुवर्चसः ॥१२॥

रक्त मांस सूख गया है और वह दुःखोंके कारण शिथिल होगए हैं ॥ ६ ॥ उन्होंने कंसके भयसे डर कर तुमको अलग करदिया था, परन्तु उनके मनमें (तुम्हारे दर्शनकी) सर्वदा उत्कण्ठा बनी रहती है और (वह तुम्हारे वियोगसे) रात दिन जलते रहते हैं ॥ ७ ॥ और हे गोविन्द ! तहाँ तुम अपनी माता देवकी को भी देखोगे, उसके स्तनोंको पुत्रोंने नहीं पकड़ा है वह देवकी देवताकी समान है परन्तु उसकी प्रभा नष्ट होगई है ॥८॥ वह पुत्रशोकके कारण सूख गई हैं और तुम्हारा दर्शन करना चाहती हैं और वह तुम्हारे वियोगके शोकसे बछड़ेसे रहित हुई गौकी समान दुःख पारही हैं ॥ ९ ॥ उनके नेत्र सर्वदा भरे रहते हैं और वह दीन रहती हैं, सर्वदा मलिन वस्त्र पहिरे रहती हैं इस लिये वह राहुके मुखमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी प्रभाकी समान प्रतीत होती हैं ॥ १० ॥ वह तुम्हारे आगमनकी बाट देखती रहती हैं और तुम्हारे शोकके कारण वह तपस्विनी दुःख पाती रहती हैं ॥ ११ ॥ तुम उनसे बालकपनमें ही अलग होगए थे, अतः वह तुम्हारे प्रलापों (तोतली बोली आदि)को नहीं जानती हैं,

यदि त्वां जनयित्वा सा देवकी तात तप्यते । अपत्यार्थोऽजनकस्तस्या वरं ह्येवानपत्यता ॥१३॥ अपुत्राणां हि नारीणां एकः शोको विधीयते । सपुत्रा त्वफले पुत्रे धिक् प्रजा तेन तप्यते १४ त्वं तु शक्रसमः पुत्रो यस्यास्त्वत्सदृशो गुणैः । परेषामप्यभयदो न सा शोचितुमर्हति ॥ १५ ॥ वृद्धौ तवाम्बपितरौ परभृत्यत्वमागतौ । भर्त्सितौ त्वत्कृते नित्यं कंसेनाशुभबुद्धिना ॥ १६ ॥ यदि ते देवकी मान्या पृथिवी चात्मधारिणी । तां शोकसलिले मग्नामुत्तारयितुमर्हसि ॥ १७ ॥तं च वृद्धं पितरं भूतं वसुदेवं सुखोचितम् । पुत्रयोगेन संयोज्य कृष्ण धर्ममवाप्स्यसि ॥ १८ ।यथा

तुम्हारा मुख चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् है परन्तु हे मनोहर तुम्हारे रूपको भी नहीं जानती ॥ १२ ॥ हे तात ! यदि देवकी तुमको उत्पन्न करके भी सन्ताप पावे तो उसके सन्तान होने का क्या फल हुआ, इससे तो अपुत्र होना ही अच्छा ॥१३॥ पुत्र-रहित नारियोंको तो एक (पुत्र न होनेका ही) शोक होता है, परन्तु पुत्रवती स्त्री यदि पुत्रके अफल होने पर सन्ताप पावे, तो सन्तानको धिक्कार है ॥ १४ ॥ परन्तु जिसके तुमसा इन्द्र की समान पुत्र हो, कि-जिसकेसे गुण और कहीं नहीं मिलते और जो दूसरोंको भी अभय देते हैं, उनकी माता देवकीका शोक करना उचित नहीं है ॥ १५ तुम्हारे माता पिता वृद्ध हो गए हैं और वह दूसरेके भृत्य बन रहे हैं और तुम्हारे कारण अशुभबुद्धि कंस उनका सर्वदा तिरस्कार करता रहता है ॥ १६ ॥ अतः पृथ्वीकी समान तुम्हारी आत्माको धारण करने वाली देवकीको यदि तुम माननीय समझते होओ तो तुम्हें उस शोकजलमें डूबती हुईका उद्धार करना चाहिये ॥ १७ ॥ और हे कृष्ण ! तुम पुत्रको प्रिय समझने वाले, सुख भोगने योग्य अपने वृद्ध पितासे यदि पुत्रभावसे मिलोगे तो तुमको धर्म होगा ॥ १८ ॥

नागः सुदुर्दान्तो दमितो यमुनाह्रदे । विमूलः स कृतः शैलो यथा
वै भूधरस्त्वया ॥१९॥ दर्पोत्सिक्तश्च बलवानरिष्टो विनिपातितः ।
परप्राणहरः केशी दुष्टात्मा विनिपातितः ॥ २० ॥ एतेनैव प्रय-
त्नेन वृद्धाबुद्धृत्य दुःखितौ । यथा धर्ममवाप्नोषि तत्कृष्ण
परिचिन्त्यताम् ॥ २१ ॥ निर्भर्त्स्यमानो यैर्दृष्टः पिता ते कंस-
संसदि । ते सर्वे चक्रुरश्रूणि नेत्रैर्दुःखान्विता भृशम् ॥२२॥ गर्भा-
वकर्तनादीनि दुःखानि सुबहून्यपि।माता ते देवकी कृष्ण कंसस्य
सहतेऽवशा ॥ २३ ॥ मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै ।
ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथा योगमुदाहृतम् ॥ २४ ॥ एवं ते कुर्वतः
कृष्ण मातापित्रोरनुग्रहम् । परित्यजेतां तौ शोकं स्याच्च धर्म-
स्तवानघ ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच । कृष्णः सुविदितार्थो

तुमने जिस प्रकार दुर्दमनीय सर्पको यमुनाह्रदमें परास्त किया था
और जिस प्रकार तुमने पर्वतको विमूल कर दिया (उठा लिया)
था ॥ १९ ॥ और जैसे तुमने दर्पमें भरे हुए बलवान् अरिष्टको
गिरा दिया था और जैसे तुमने दूसरेके प्राणोंका हरण करने
वाले दुष्टात्मा केशीको समाप्त कर दिया है ॥ १० ॥ ऐसे ही
प्रयत्नसे उन दोनों वृद्धोंको जिस प्रकार तुम दुःखसे छुड़ा कर
धर्म सम्पादन कर सको हे कृष्ण ! उसका विचार करो ॥ २१ ॥
जिन्होंने कंसको तुम्हारे पिताको डाटते हुए देखा था, वे सब
मनुष्य परम दुःखी हुए थे और उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये
थे ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी माता देवकीने परवश होनेके
कारण अपने बालकोंकी हत्या आदि बहुतसे दुःख सहे थे २३
माता पितासे उत्पन्न हुए पुत्रको शक्तिके अनुसार माता पिताका
ऋण चुकाना चाहिये । २४ ॥ हे कृष्ण ! यदि तुम ऐसा करके
माता पिता पर अनुग्रह करोगे, तो वे शोक करना छोड़ देंगे
और हे निष्पाप ! तुम्हें धर्म होगा ॥ २५ ॥ वैशम्पायनजीने

दौ समादाशितविक्रममुत्राढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवशं गतः॥२६
ते च गोपाः समागम्य नन्दगोपपुरोगमाः । अक्रूरवचनं श्रुत्वा
चेलुः कंसस्य शासनात् ॥ २७ ॥ गमनाय च ते सज्जा बभूवु
र्व्रजवासिनः । सज्जं चोपायनं कृत्वा गोपवृद्धाः प्रतस्थिरे २८
करं चानडुहःसर्पिर्महिषांश्चोपनायनान् ।यथा सारं यथा यूथमुपा-
नीय पयोघृतम् ॥ २९ ॥ तं सज्जयित्वा कंसस्य करं चोपाय-
नानि च । ते सर्वे गोपपतयो गमनायोपतस्थिरे३०अक्रूरस्य कथा-
भिश्च सह कृष्णेन जाग्रतः । रौहिणेयतृतीयस्य सा निशा
व्यत्यवर्तत ॥ ३१ ॥ ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसंकुले ।
नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसंहृते ॥३२॥ नभस्यरुणसंस्तीर्णे
पर्यस्ते ज्योतिषां गणे । प्रत्यूषपवनासारैः क्लेदिते धरणीतले३३

कहा, कि-कृष्णको तो सब बातें भली भाँति विदित थी अत एव उन्होंने अमित पराक्रमी अक्रूरसे तथास्तु कहा और वह क्रोधमें न भरे ॥ २६ ॥ परन्तु इकट्ठे हुए नन्दगोप आदि गोप अक्रूरसे कंसके वचनको सुन कर विचलित होगए ॥ २७ ॥ परन्तु वे व्रजवासी गमन करनेके लिये सन्नद्ध होने लगे और उन्होंने भेंट आदिको ठीक कर जानेकी तयारी कर ली ॥ २८ ॥ उन्होंने सालाना खिराज बैल घी भैंसे, भेंटकी वस्तुएँ दूध और घी आदिको यूथके और शक्तिके अनुसार ठीक किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार कंसके लिये भेंट आदिकी सब सामग्रियोंको ठीक कर वे सब गोपपति चलनेको उठ खड़े हुए ॥३०॥ अक्रूरके साथ बात चीत करते२श्रीकृष्ण और तीसरे बलदेवको भी वह रात जागते२ ही बीत गई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर निर्मल प्रभात होगया और पक्षी शब्द करने लगे और चन्द्रमाकी किरणोंका जाल रात्रिके साथ विलीन होगया ॥ ३२ ॥ और आकाशमें अरुण दीखने लगा और नक्षत्र अस्त होगए और प्रातःकालकी वायुके झोंकोंसे

क्षीणाकारासु तारासु सुप्तनिष्प्रतिभासु च । नैशमन्तर्दधे रूप-
मुद्गच्छति दिवाकरे ३४ ॥ शीतांशुःशान्तकिरणो निष्प्रभः समप-
द्यत । एको नाशयते रूपमेको वर्धयते वपुः ॥३५॥ गोभिः समा-
कीर्णासु व्रजनिर्याणभूमिषु । मन्थनावर्तपूर्णेषु गर्गरेषु नदत्सु
च ॥ ३६ ॥ दामभिर्दम्यगानेषु वत्सेषु तरुणेषु च । गोपैरापूर्य-
माणासु घोषरथ्यासु सर्वशः ॥ ३७ ॥ तत्रैव गुरुकं भाण्डं
शकटारोपितं बहु । त्वरिताः पृष्ठतः कृत्वा जग्मुः स्यन्दनवाहनाः
कृष्णोऽथ रौहिणेयश्च स चैवाग्निदक्षिणः। त्रयो रथगता जग्मु-
स्त्रिलोकपतयो यथा ॥ ३८ । अथाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीर-
माश्रितः । स्यन्दनं चात्र रक्षस्व यत्नं न कुरु वाजिषु४० हयेभ्यो

पृथिवी गीलीसी होगई ॥ ३३ ॥ इसी समय सूर्यके निकलने पर तारोंका प्रकाश क्षीण होगया और वह सोए हुएकी समान निष्प्रभ होगए तब रात्रिका रूप विलीन होगया ३४ और चन्द्रमाकी किरणें शान्त पड़ गईं और वह प्रभा रहित होगया एकने अपने रूपका नाश कर लिया और दूसरा अपने शरीरको बढ़ाने लगा ३५ व्रजकी निर्याणभूमियें गौओंसे भरने लगीं, और रई चलानेसे उत्पन्न हुए आवर्त (दहीके भ्रमर) से मटकियें घर घर करने लगीं ॥ ३६ ॥ और गोप रस्सियोंको लेकर नदियोंको सधाने लगे, इस प्रकार सब गलियें भर गईं ॥ ३७ ॥ तब शकटों पर बड़ा भारी सामान लादा गया फिर गोप रथोंपर सवार हो (व्रजको) पीठ पीछे कर फुर्तीसे चलने लगे ॥ ३८ ॥ इस समय कृष्ण बलराम और तीसरे अग्नि दक्षिणा देने वाले अक्रूर ये तीनों तीनों लोकोंके स्वामियोंकी समान रथ पर सवार हो चल रहे थे ॥ ३९ ॥ इतनेमें ही यमुनाके तट पर पहुँच कर अक्रूरने श्रीकृष्णसे कहा, कि तुम जरा घोड़ोंको रोक कर रथकी देख भाल करते रहो ॥४०॥ तुम घोड़ोंको जौका दाना देदेना

यवसं दत्त्वा हयभाण्डे रथे तथा। प्रमादं यत्नतास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम् ॥ ४१ ॥ यमुनाया ह्रदे ह्यस्मिन्तोष्यामि भुजगेश्वरम्। दिव्यैर्भागवतैर्मन्त्रैः सर्वलोकप्रभुर्यतः ॥ ४२ ॥ गुह्यं भागवतं देवं सर्वलोकस्य भावनम्। श्रीवत्सस्वस्तिकमूर्धानं प्रणमिष्यामि भोगिनम्। सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥ ४३ ॥ धर्मदेवस्य तस्याद्य यद्विषं प्रभविष्यति। सर्वं तदमृतप्रख्यमश्निष्याम्यमरो यथा ॥ ४४ ॥ स्वस्तिकायतनं दृष्ट्वा द्विजिह्वं श्रीविभूषितम्। समाजस्तत्र सर्पाणां शान्त्यर्थं वौ भविष्यति ॥ ४५ ॥ आस्तां मां समुदीक्षन्तौ भवन्तौ संगतावुभौ। निष्क्रान्तो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि ह्रदोत्तमात् ॥४६॥ तमाह कृष्णः संहृष्टो गच्छ धर्षिष्ठ

और घोड़ोंके आभूषण और रथकी क्षण भरतक परम यत्नसे देख भाल रखना ॥ ४१ ॥ हे तात ! तब तक मैं यमुनाजीके ह्रदमें दिव्य भागवत मन्त्रोंसे अनन्त नामक भुजगेश्वर शेषजीका पूजन कर आऊँ, क्योंकि-वह सब लोकोंके स्वामी हैं ॥ ४२ ॥ वह गुह्य हैं, भागवत देव हैं, सब लोक उनका ध्यान करते हैं, उनका मस्तिष्क स्वस्तिक चिन्हसे सुशोभित है, उनके सहस्र फन हैं और वह अनन्त नीला वस्त्र धारण करते हैं मैं ऐसे देवको प्रणाम करूँगा ॥ ४३ ॥ उनका जो विष होगा उसको मैं उन धर्मके अधिष्ठात्री देवताके प्रभावसे अमृतको जैसे देवता पान करते हैं तैसे पीजाऊँगा ॥ ४४ ॥ स्वस्तिकायतन (स्वस्तिकके निवासस्थान) उन लक्ष्मीसम्पन्न सर्पको देखकर सर्पोंका समाज तहाँ शान्ति करनेके लिये उपस्थित रहा करता है ॥ ४५ ॥ जब तक मैं सर्पोंमें उत्तम शेषजीके ह्रदमेंसे बाहर निकलूँ तब तक तुम दोनों एकत्रित होकर मेरी बाट देखते रहना ॥ ४६ ॥ तब श्रीकृष्णने अक्रूरसे कहा कहा, कि-हे धर्षिष्ठ ! तुम शीघ्रतासे जाओ, देर न करना क्योंकि-तुम्हारे बिना हमसे यहाँ बैठा न

मा चिरम् । आवां खलु न शक्तौ स्वस्त्वया हीनावुपासितुम् ४७
स हृदे यमुनायास्तु ममज्जागितदक्षिणः । रसातले स ददृशे
नागलोकमिमं यथा ॥ ४८ ॥ तस्य मध्ये सहस्रास्यं हेमतालोच्छ्रि-
तध्वजम् । लांगलासक्तहस्ताग्रं मुसलोपाश्रितोदरम् ॥ ४६ ॥
असितांबरसंवीतं पाडुरं पांडुरासनम् । कुंडलैकधरं मत्तं सुप्तमंबुज-
हेक्षणम् ॥ ५० ॥ भोगोत्करासने शुभ्रे स्वेन देहेन कल्पिते ।
स्वासीनं स्वस्तिकाभ्यां च वराहाभ्यां महीधरम् ॥ ५१ ॥ किंचित्
सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमचूलिना । जातरूपमयैः पद्मैर्मालया-
च्छन्नवक्षसम् ॥ ५२ ॥ रक्तचन्दनदिग्धांगं दीर्घबाहुमरिंदमम् ।
पद्मनाभसिताभ्राभं भाभिर्ज्वलिततेजसम् ॥ ५३ ॥ददर्श भोगिनां

जावेगा ॥ ४७ ॥ तब दानपति अक्रूरने यमुनाजीके हृदमें गोता लगाया तो उन्होंने रसातलमें नागलोकको इस (भूतल) की समान देखा ॥ ४८ ॥ उसके मध्यमें उन्होंने सहस्र मुख वाले और सुवर्णके तालकी उठी हुई ध्वजा वाले लांगल पर अँगुलियें रखे हुए और मूसल पर पेट टेकते हुए (शेषजीको देखा)४६ वे नीला वस्त्र पहर रहे थे और स्वयं पाण्डु (श्वेत) थे और पाण्डुर वर्णके आसन पर विराजमान थे, उत्तम कुण्डलोंको धारण कर रहे थे, उनके नेत्र कमलकी समान थे और वे (योगनिद्रामें) शयन कर रहे थे ॥ ५० ॥ और वह अपने देहसे कल्पित शुभ्र सर्पासन पर श्रेष्ठ स्वस्तिकोंको धारण कर विराजमान थे ॥ ५१ ॥ उनका सुवर्णकी चूलों वाला मस्तक दक्षिणकी ओर झुक रहा था और उनका वक्षःस्थल चाँदीके बने कमलोंकी मालासे ढक रहा था ॥ ५२ ॥उनका शरीर रक्त-चन्दनसे चर्चित होरहा था और उनकी भुजाएँ लम्बी थीं,और वह अरिंदमन पद्मनाभकी श्वेत आभावाले थे और किरणोंसे उनका तेज दिप रहा था ॥ ५३ ॥ ऐसे सर्पोंके स्वामी समुद्रके

नाथं स्थितमेकार्णवेश्वरम् । पूज्यमानं द्विजिह्वैर्वासुकिप्रमुखैः प्रभुम् ॥५४॥ कम्बलाश्वतरौ नागौ तौ चामरकरावुभौ । अवीजयेतां तं देवं धर्मासनगतं प्रभुम् ॥ ५५ ॥ तस्याभ्याशगतो भाति वासुकिः पन्नगेश्वरः । वृतोऽन्यैः सचिवैः सर्वैः कर्कोटकपुरःसरैः तं घटैः काञ्चनैर्दिव्यैः पंकजच्छन्नमस्तकैः । राजानं स्नापयामासुः स्नातमेकार्णवाम्बुभिः ॥ ५७ ॥ तस्योत्संगे घनश्यामं श्रीवत्साच्छादितोरसम् । पीताम्बरधरं विष्णुं मूर्ध्निष्ठं ददर्श ह ॥ ५८ ॥ अपरं चैव सोमेन तुल्यसंहननं प्रभुम् । संकर्षण-

---

एकाधिपति प्रभु अनन्तकी सर्पराज वासुकि आदि पूजा कर रहे थे, यह बात अक्रूरने देखी ॥ ५४ ॥ उस समय धर्मासन पर विराजमान शेष देवकी कम्बल और अश्वतर नाम वाले दो नाग चामर लेकर पवन कर रहे थे ॥ ५५ ॥ उनके समीप ही सर्पराज वासुकि अपने कर्कोटक आदि मन्त्रियोंसे घिर कर बैठा हुआ शोभा पारहा था ॥५६॥ समुद्रके जलसे स्नात उन राजा (शेषजी) को कमलके पात्रोंसे ढके हुए मुख वाले सुवर्णके कलशोंमें भरे हुए दिव्य जलसे सब सर्प स्नान कराने लगे ५७ (अक्रूरने)देखा, कि-उनकी गोदीमें मेघकी समान श्याम वर्ण वाले और श्रीवत्ससे आच्छादित वक्षःस्थल वाले पीताम्बरधारी विष्णु विराजमान हैं (श्रुतिमें कहा है, कि-सप्त सप्तशाकिन एकमेकाशता ददुः । यमुनायामधिश्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे निराधो अश्व्यं मृजे" यह मारुतसूक्त है अक्रूर अघमर्षणके समय भगवान्को देख कर उस (अघमर्षण) के देवता मरुतकी स्तुति करते हैं, कि-उनञ्चास हो सकने वाले शक्तिमद वायु प्रत्येकको सैंकड़ों ऐश्वर्य देते हैं, क्यों कि-इनकी अहंकार ही परमसंपत्ति है, मैंने इनके धन सूत्रान्तर्यामी रूपको यमुनाजीके मध्यमें देखा है और उसी धनको मैंने ऊपर सूर्यकी रश्मियोंमें देखा है,उनही

मिवासीनं तं दिव्यं विष्टरं विना ॥ ५६ ॥ स कृष्णं तत्र सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे तस्य संस्तम्भयामास वाक्यं कृष्णः स्वतेजसा॥६० सोऽनुभूय भुजङ्गानां तं भागवतमव्ययम् । उदतिष्ठत्पुनस्तोया-द्विस्मतोमितदक्षिणः ॥ ६१ ॥ स तौ रथस्थावासीनौ तत्रैव बल-केशवौ । निरीक्ष्यमाणावन्योन्यं ददर्शाद्भुतरूपिणौ ॥६२॥अथा-मज्जत्पुनस्तत्र तदाऽक्रूरः कुतूहलात् । इज्यते यत्र देवोऽसौ नील-वासाः सितानन: ॥ ६३ ॥ तथैवासीनमुत्संगे सहस्रास्यधरस्य वै । ददर्श कृष्णमक्रूरः पूज्यमानं तदा प्रभुम् ॥ ६४ ॥ भूयश्च सहसोत्थाय तन्मन्त्रं मनसा जपन् । रथं तेनैव मार्गेण जगामा-मितदक्षिणः । ॥६५॥ तमाह केशवो हृष्टः स्थितमक्रूरमागतम् ।

देवकी मैं अश्व वाले रथमें बैठा हुआ देखता हूँ ५८ वहाँ उन्होंने सोमकी समान शरीर वाले दूसरे प्रभु संकर्षणको श्रीकृष्णके साथ भूमि पर बैठे देखा, तब तो वह सहसा श्रीकृष्णसे बातचीत करना चाहने लगे,कि-श्रीकृष्णने अपने तेजसे उनकी वाणीको स्तंभित कर दिया ॥५६॥६०॥ अमित दक्षिणा देने वाले अक्रूर भुजंगोंमें उन अच्युत भागवतका अनुभव करके विस्मित होगए और जलमेंसे ऊपरको उठे ॥ ६१ ॥ वहाँ उसने अद्भुत रूप वाले बलराम और केशवको रथमें बैठे हुए और परस्पर देखते हुए देखा ॥ ६२ ॥ तब तो जहाँ पर नीलवस्त्रधारी श्वेत मुख वाले शेषदेवकी पूजा होरही थी (वहाँ पर जानेके लिये) कुतूहलके कारण जलमें गोता लगाया ॥६३॥ फिरउन्होंने इसी प्रकार सहस्र मुख धारण करने वाले शेषजीकी गोदीमें विराज-मान प्रभु श्रीकृष्णकी पूजा होते हुए देखा ॥ ६४ ॥ फिर वह उसी मंत्रका मनमें जप करते हुए सहसा जलमेंसे निकल आये और रथमें बैठ कर वह अमित दक्षिणा देने वाले अक्रूर मार्गमें को चल दिये ॥ ६५ ॥ जब अक्रूरजी आकर बैठ गए तब

कीदृशं नागलोकस्य वृत्तं भागवते ह्रदे ॥ ६६ ॥ चिरं च भवता कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः । मन्ये दृष्टं त्वयाऽऽश्चर्यं हृदयं ते यथाचलम् ॥ ६७ ॥ प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं भवता विना। किं भविष्यति लोकेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ६८ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं कृष्ण यद्भुवि दुर्लभम् । तदिहापि यथा सत्र पश्यामि चरामि च ॥६९॥ संगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणेह रूपिणा । अतः परतरं कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे ॥ ७० ॥ तदागच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरीं प्रभो । यावन्नास्तं व्रजत्येष तमोहर्ता दिवाकरः ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरकृत-नागलोककथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते तु युक्त्वा रथवरं सर्वे एनामितौ-

श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर उनसे बूझने लगे, नागलोकका क्या वृत्तान्त है, तुमने भागवत ह्रदमें व्याक्षेपमें बहुतसा समय बिता दिया, तुम्हारा हृदय अचल है, इससे प्रतीत होता है, कि तुमने कोई आश्चर्यजनक घटना देखी है॥६६॥६७॥ तब उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा, कि–चराचर लोकोंमें आपके अतिरिक्त और क्या आश्चर्य होसकता है ॥ ६८ ॥ हे कृष्ण ! तहाँ मैंने आश्चर्य देखा था, वैसा आश्चर्य यहाँ दीखना कठिन है, परन्तु मैंने जैसा आश्चर्य तहाँ देखा था,यहाँ भी उसको ही देख रहा हूँ६९मैं तहाँ यहाँ पर लोकोंके मूर्तिमान् आश्चर्यके साथ बैठा हूँ, हे कृष्ण ! इससे अधिक आश्चर्यको देखनेका मैं उत्साह नहीं रखता ७० इस लिये चलिये प्रभो ! जब तक अंधकार नाशक सूर्य अस्त न हो उससे पहिले ही कंसराजकी पुरीमें पहुँच जावें ॥ ७१ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त २६

वैशम्पायनजीने कहा, कि तब वे सब अमिततेजस्वी रथको

जसः । कृष्णेन सहिताः प्रायंस्तथा संकर्षणेन च ॥ १ ॥ प्रासेदुस्ते पुरीं रम्यां मथुरां कंसपालिताम् । विविशुस्ते पुरीं रम्यां काले रक्तदिवाकरे ॥ २ ॥ तौ तु स्वभवनं वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ । प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यक्रूरेणार्कवर्चसौ ॥ ३ ॥ तावाह परवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा । त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा ॥ ४ ॥ युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते । भर्त्स्यते च दिवारात्रौ नेह स्थातव्यमित्यपि ॥ ५ ॥ तत्पुत्राभ्यां हि कर्तव्यं पित्रर्थं सुखमुत्तमम् । यथा सुखमवाप्नोति तद्धि कार्यं हितान्वितम् ॥६॥ तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावागतर्कितौ । प्रेक्षन्तौ मथुरां वीर राजमार्गं च धार्मिक । तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । (अक्रूरोऽपि

जोत कर श्रीकृष्ण और बलरामको लेकर चलने लगे १ और कंसकी पालित मथुरापुरीके पास पहुँच गए और रमणीय मथुरापुरीमें सूर्यके रक्त होनेके समय घुसे २ उस समय बुद्धिमान् अक्रूर ने सूर्यकी समान कान्ति वाले उन दोनों वीर श्रीकृष्ण और संकर्षणको अपने घरमें ही उतार लिया ३ उस समय दानपति अक्रूरने श्रेष्ठ वर्ण वाले उनसे डर कर कहा कि–हे तात!इस समय तुम वसुदेवके घर जानेकी स्पृहा न करना४ तुम्हारे ही लिये इन वृद्धको वह रात दिन धमकाता रहताहै और अपमान करता रहता है अतः तुम वहाँ न ठहरना ५ अत एव तुम अपने पिताको सुख देने वाला उत्तम कार्य करना, मनुष्यको जिससे सुख पहुँचे वही हितकर कार्य होता है ६ तब श्रीकृष्णने अक्रूरसे कहा, कि-हे धार्मिक ! हे वीर ! हम अतर्कितरूपसे मथुराको और राजमार्ग को देखते हुए उस कंसके घरको जावेंगे, हे साधो ! क्या आप इसको ठीक समझते हैं ७ वैशम्पायनजीने कहा, कि–(तदनन्तर अक्रूर भी मन ही मनमें अच्युत श्रीकृष्णको प्रणाम कर मनमें

नमस्कृत्य मनसा कृष्णमव्ययम् । जगाम कंसपार्श्वं तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ७ ॥ अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्थितौ प्रेक्षकावुभौ । आलानाभ्यामिवोन्मुक्तौ कुञ्जरौ युद्धकांक्षिणौ ॥ ८ ॥ तौ तु मार्गगतं दृष्ट्वा रजकं रंगकारकम् । अयाचेतां ततस्तौ तु वासांसि रुचिराणि वै ॥ ९ ॥ रजकः स तु तौ प्राह युवां कस्य वनेचरौ। राजवासांसि यौ मौढ्याद्याचेतां निर्भयावुभौ ॥ १० ॥ अहं कंसस्य वासांसि नानादेशोद्भवानि वै । कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः ॥ ११ ॥ युवां कस्य वने जातौ मृगैः सह विवर्धितौ । जातरागाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादनं बहु ॥ १२ ॥ अहो वां जीवितं त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ । मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वासो याचितुमिच्छथः ॥ १३ ॥ तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायाल्पमेधसे । प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय सृजते वाङ्मयं विषम् ॥ १४ ॥ तलेनाश-

---

प्रसन्न होते हुए कंसके पास गए ७ तब वे दोनों वीर अक्रूरसे अनुज्ञा लेकर गजबंधनोसे छूटे हुए युद्धाभिलाषी दो हाथियोंकी समान देखते हुए चलने लगे ८ उन्होंने मार्गमें जाते हुए रंग चढ़ाने वाले एक धोबीको देख कर उससे मनोहर वस्त्र माँगे ९ रजकने उनसे कहा, कि–अरे! तुम किसके वनेचर (ढोर) हो जो मूर्खतासे निर्भय होकर राजवस्त्रोंको माँग रहे हो १० मैं तो अधिकतर नाना देशोंमें उत्पन्न कंसके ही सहस्रों वस्त्रोंको इच्छानुसार रँगसे रँगता (व धोता) रहता हूँ ११ अरे तुम किसके यहाँ उत्पन्न हुए हो. तुम तो वनमें मृगोंके साथ बढ़े हुए मलीन होते हो, तुम्हें इन बहुतसे रंगे हुए वस्त्रोंको देख कर इनके ऊपर प्रेम उत्पन्न होगया ! १२ अरे ! तुम मूर्ख हो और तुम्हारी बुद्धि गँवारोंकीसी है, तुम यहाँ आगए अतः तुम अपने जीवनको नष्ट हुआ समझो १३ यह सुन कर उस अल्पबुद्धि रजक पर श्रीकृष्ण कुपित होगए, उस मूर्खका मरणकाल समीप आगया था अत

निष्कल्पेन स तं मूर्धन्यताडयत् । स गतासुः पपातोर्व्यां रजको
व्यस्तमस्तकः ॥ १५ ॥ तं हतं परिदेवन्त्यो भार्यास्तस्य विचु-
क्रुशुः । त्वरितं मुक्तकेश्यश्च जग्मुः कंसनिवेशनम् ॥ १६ ॥
तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात् । वीथीं माल्यापणानां
तौ गन्धाघ्रातौ द्विपाविव ॥ १७ ॥ गुणको नाम तत्रासीन्माल्य-
वृत्तिः प्रियम्वदः । प्रभूतमाल्यापणवाँल्लक्ष्मीवान् प्रियदर्शनः १८
तं कृष्णः श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया । देहीत्युवाच
तत्काले मालाकारमकातरम् ॥ १९ ॥ ताभ्यां प्रीतो ददौ माल्यं
प्रभूतं माल्यजीवनः । भवतोः स्वमिदं चेति मोवाच प्रियदर्शनौ २०
प्रीतः सुमनसा कृष्णो गुणकाय वरं ददौ । श्रीस्त्वां मत्संभवा

एव वह वचनरूपी विष बरसा रहा था १४ इस लिये श्रीकृष्ण
ने अपने हाथसे उसके मस्तक पर चपेटा जमाया कि—तुरत ही
वह मर गया और उसका धड़ पृथ्वीमें गिर पड़ा १५ उसकी
भार्याएँ उस मरे हुएका विलाप कर रोने लगीं और वह अपने
केशोंको खोल शीघ्रतासे कंसके घरकी ओर चलीं १६ सुन्दर
वस्त्र धारण करनेके अनन्तर गंधको सूँघने वाले हाथियोंकी
समान वे दोनों मालाके कारण जहाँ पर दूकानोंमें माला बिकती
थी उस गलीमें पहुँचे १७ तहाँ पर एक गुणक नाम वाला माला
वेच कर आजीविका चलाने वाला रहता था वह प्रियम्वद था,
उसकी मालाओंकी बहुतसी दूकानें थीं वह श्रीसमृद्ध था और
उसको देख कर प्रेम उत्पन्न होजाता था १८ तब श्रीकृष्णने
माला लेनेके लिये मधुरवाणीमें अकातर मालाकारसे कहा कि—
"माला दो" ।१९। तब माला पर आजीविका चलाने वाले उस
मालीने प्रसन्न होकर उनको मालाएँ दीं और उन प्रियदर्शनोंसे
कहा, कि—"मैं आपका हूँ" २० तब श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर
गुणकको वर दिया, कि-हे सौम्य ! मेरे प्रसन्न करनेके कारण

सौम्य धनौघैरभिपत्स्यते ॥ २१ ॥ स लब्ध्वा वरमव्यग्रो माल्यवृत्तिरधोमुखः। कृष्णस्य पतितो मूर्ध्ना प्रतिजग्राह तं वरम् २२ यक्षाविमाविति तदा स मेने माल्यजीवकः। स भृशं भयसंविग्नो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥२३॥ वसुदेवसुतौ तौ च राजमार्गगतावुभौ। कुब्जां ददर्शतुर्भूयः सानुलेपनभाजनाम् ॥ २४ ॥ तामाह कृष्णः कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम्। नयस्वम्बुजपत्राक्षि क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ॥२५॥ सस्मिता सम्मुखी भूत्वा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम्। कृष्णं जलदगम्भीरं विद्युत्कुटिलगामिनी ॥ २६ ॥ राज्ञः स्नानगृहं यामि तद्गृहाणानुलेपनम्। स्थितास्म्यागच्छ भद्रन्ते हृदयस्थासि मे प्रिय ॥२७॥ कुतश्चागम्यते सौम्य यन्मां त्वं नावबुध्यसे। महाराजस्य दयितां नियुक्तामनुलेपनैः ॥ २८ ॥ तामु-

---

तुझे लक्ष्मीके ओघ मिलेंगे२१वरको पाने पर गुणकने अग्रग्न हो नीचेको मुख कर श्रीकृष्णको मस्तक झुका कर उस वरको ग्रहण कर लिया२२वस मालाजीवीने समझा था कि-यह यक्ष हैं फिर वह कंसके भयसे मूढ होजानेके कारण यह न सोच सका, कि अब मैं क्या उत्तर दूँ॥२३॥ इतनेमें ही मार्गमें जाते हुए उन वसुदेवके पुत्रोंने अनुलेपन (चन्दन) का पात्र लेकर जाती हुई कुब्जाको देखा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णने उससे कहा, कि—यह चन्दन किसके लिये लेजा रही है, हे कमलनेत्रे ! इसको शीघ्रतासे कह। २५। तब उस बिजलीकी समान कुटिलतासे चलने वालीने कमलकी समान नेत्रों वाले और मेघकी समान गम्भीर श्रीकृष्णसे मुस्कुरा कर कहा ॥ २६ ॥ मैं राजाके स्नानगृहको जारही हूँ आप इस चन्दनको लगाइये, आप मेरे हृदयके प्यारे हैं आइये ! मैं खडी हुई हूँ ॥ २७ ॥ "मैं महाराजकी प्रिय हूँ और चन्दन आदि लगानेके लिये नियुक्तहूँ" हे सौम्य ! तुम कहाँसे आरहे हो, जो मुझे नहीं जानते ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णने खडी होकर हँसती हुई

वांच हसन्तीं तु कृष्णः कुब्जामवस्थिताम् । आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥ २९ ॥ वयं हि देशातिथयो मल्लाः प्राप्ता वरानने । द्रष्टुं धनुर्महद्दिव्यं राष्ट्रं चैव महर्द्धिमत् ॥ ३० ॥ प्रत्युवाचाथ सा कृष्णं प्रियोऽसि मम दर्शने । राजार्हमिदमव्यग्रं तद्गृहाणानुलेपनम् । ३१ ॥ तावुभावनुलिप्तांगौ चारुगात्रौ विरेजतुः। तीर्थगौ पंकदिग्धांगौ यमुनायां यथा वृषौ ॥ ३२ ॥ तां च कुब्जां स्तनयोर्मध्ये द्व्यंगुलेनाग्रपाणिना । शनैः सम्पीडयामास कृष्णो लीलाविधानवित् ॥ ३३ ॥ सा च भग्नं स्तनं मत्वा स्वायतांगी शुचिस्मिता । जहासोच्चैः स्तनतटा ऋजुर्यष्टिलता यथा ॥ ३४ ॥ प्रणयाच्चापि कृष्णं सा बभाषे मत्तकाशिनी । क्व यास्यसि मया रुद्धः कान्त तिष्ठ गृहाण माम् ॥ ३५ ॥ तां जात-

कुब्जासे कहा, कि-"तू हम दोनोंके अनुरूप चन्दन दे ॥२९॥ हे वरानने ! हम मल्ल हैं, इस देशमें अतिथिरूपमें आये हैं, इस राज्यमें समृद्धिसम्पन्न बडा भारी दिव्य धनुष है उसको हम देखने जारहे हैं ॥ ३० ॥ तब उसने श्रीकृष्णसे कहा, कि-तुम्हारा दर्शन मुझे प्रिय लगता है,यह चन्दन राजाओंके योग्य है इसको आप अव्यग्र होकर ग्रहण करिये ॥ ३१ ॥ चन्दन लगाने पर वे चंदनचर्चित अङ्ग वाले दोनों भाई यमुनाके जलमें घुस कर कीचसे सने हुए बैलोंकी समान शोभा पाने लगे ३२ लीलाके विधानको जानने वाले श्रीकृष्णने उसकी पीठ (कूबड़) पर धीरेसे अगुलियें मारीं (तब उसका कूबड़ जाता रहा) ३३ जब उसने समझा, कि-मेरा कूबड़ बैठ गया और मेरा अङ्ग ठीक होगया तब वह स्तनरूपी तटोंवाली पवित्र हास्य करने लगी उस समय वह सीधी लकड़ी वाली लताकी समान दीखती थी ३४ उस मत्त होनेके कारण खिलने वालीने श्रीकृष्णसे प्रणयपूर्वक कहा, कि-मैंने तुमको रोक लिया है हे कान्त ! अब तुम

हासावन्योन्यं सतलाक्षेपमच्युतौ। वीक्ष्यमाणौ प्रहसितौ कुब्जायाः श्रुतिविस्तरौ ॥३६॥ कृष्णस्तु कुब्जां कामार्तां सस्मितं विससर्ज ह। ततस्तौ कुब्जया मुक्तौ प्रविष्टौ राजसंसदम् ॥३७॥ तावुभौ व्रजसम्वृद्धौ गोपवेषविभूषितौ। गूढचेष्टाननौ भूत्वा प्रविष्टौ नृपवेश्म तत् ॥ ३८ ॥ धनुःशालांगतौ तौ तु बालावपरितर्कितौ। हिमवद्वनसम्भूतौ सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ ३९ ॥ दिदृक्षन्तौ महत्तत्र धनुरायोगभूषितम्। पप्रच्छतुश्चतौ वीरावायुधागारिकं तदा ४० भोः कंसधनुषां पाल श्रूयतामावयोर्वचः। कतरत्तद्धनुः सौम्य महोऽयं यस्य वर्तते ॥ ४१ ॥ आयोगभूतं कंसस्य दर्शयस्व यदीच्छसि। स तयोर्दर्शयामास तद्धनुः स्तम्भसन्निभम् ॥ ४२ ॥

कहाँको जाते हो, मुझे ग्रहण करो ॥ ३५ ॥ तब वे दोनों हँसे और उन्होंने एक दूसरेसे हाथ मिला कर तालियें बजाईं, फिर उन दोनों अच्युत पुरुषोंने कुब्जाके गुणोंको सुन कर उसको देखा और हँस कर (चलने लगे)॥ ३६ ॥ इस प्रकार हँस कर श्रीकृष्णने कामसे मत्त हुई कुब्जाको छोड़ दिया और कुब्जासे छूटनेके अनन्तर वे राजसभामें घुसे ॥ ३७ ॥ वे दोनों व्रजमें बढे थे और गोपवेषसे विभूषित थे,वे प्रारंभमें अपनी चेष्टाओंको गुप्त रख उस राजभवनमें घुसे ॥३८॥ हिमाचलके वनमें उत्पन्न हुए सिंहोंकी समान मदोत्कट वे दोनों अतर्कित बालक धनुःशाला में घुस गए ॥ ३९ ॥ वे दोनों वीर प्रसिद्ध होनेसे विभूषित उस बड़े भारी धनुषको देखनेकी इच्छासे आयुधागारके रक्षकसे बूझने लगे, कि-॥ ४० ॥ हे कंसके धनुपरक्षक ! तुम हम दोनोंके वचनों को सुनो, कि-हे सौम्य ! जिस धनुषका यह उत्सव होरहा है, वह धनुष कहाँ है ॥ ४१ ॥ वह कंसकी प्रसिद्धिरूप है,यदि तुम को इच्छा हो तो उस धनुषको हमें दिखाओ, तब उसने उन दोनों को स्तंभकी समान (मोटा) धनुष दिखाया ॥ ४२ ॥ उसको

अनारोप्यमसम्भेद्यं देवैरपि सवासवैः । तद्गृहीत्वा तदा कृष्ण-
स्तोलयामास वीर्यवान् ॥ ४३ ॥ दोर्भ्यां कमलपत्राक्षः प्रहृष्टेना-
न्तरात्मना । तोलयित्वा यथाकामं तद्धनुर्दैत्यपूजितम् ॥ ४४ ॥
आरोपयामास तदा नामयामास चासकृत् । अनाम्यमानं कृष्णेन
प्रकर्षादुरगोपमम् ॥ ४५ ॥ द्विधाभूतमभून्मध्ये धनुरायोगभूषि-
तम् । भंक्त्वा तु तद्धनुःश्रेष्ठं कृष्णस्त्वरितविक्रमः । निश्चक्राम
महावेगः स च संकर्षणो युवा ॥ ४६ ॥ धनुषो भंगनादेन वायु-
निर्घोषकारिणा । चचालान्तःपुरं सर्वं दिशश्चैव पुपूरिरे ॥४७॥
निर्गम्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसन्निधौ । वेगेनायुधपालस्तु
गच्छन् संभ्रान्तमानसः ॥४८॥ समीपं नृपतेर्गत्वा काकोच्छ्वासो-
ऽभ्यभाषत । श्रूयतां मम विज्ञाप्यमाश्चर्यं धनुषो गृहे ॥ ४९ ॥

इन्द्रसहित देवता भी न चढ़ा सकते थे, वीर्यवान् श्रीकृष्णने उस को पकड़ कर जाँचा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर कमलपत्रकी समान नेत्रों वाले श्रीकृष्णने प्रसन्न मनसे अपनी भुजाओंके द्वारा उस दैत्यपूजित धनुषको इच्छानुसार जाँच कर उसको चढ़ा लिया और उसको वारम्वार नमाने लगे उस सिद्धिविभूषित सर्पकी समान धनुषको जब कृष्णने नमाया तब बीचमेंसे उसके दो टुकड़े होगए, उस श्रेष्ठ धनुषको तोडनेके अनन्तर श्रीकृष्ण और बड़े वेगसे चलने वाले युवा संकर्षण ये दोनों फुर्तीसे कदम रखते हुए (सभासे बाहर) चले गए ॥४४—४६॥ धनुषके टूटने पर आँधी चलनेकी समान शब्द हुआ उस समय सब अन्तःपुर विचलित होगया और सब दिशाएँ प्रतिध्वनित होगईं ४७ वे दोनों आयुधागारसे निकल कर गोपोंके पास पहुँच गए और आयुधरक्षक मनमें घवड़ाता हुआ शीघ्रतासे (राजाके पास) चला ॥ ४८ ॥ उसने राजाके पास जाकर काक (की समान चञ्चल दृष्टि कर) साँस छोड़ते हुए कहा, कि—मेरी सूचना सुनिये

निर्वृत्तेऽस्मिन् काले मखजगतः संभ्रमोपमम्। नरौ कस्यापसदृशौ शिखावितत्तमूर्धजौ ॥ ५० ॥ नीलपीताम्बरधरौ पीनश्वेतानुलेपनौ। तावन्तःपुरमज्ञातौ प्रविष्टौ कामरूपिणौ । देवपुत्रोपमौ वीरौ बालाविव हुताशनौ ॥५१॥ स्थितौ धनुर्गृहे सौम्यौ सहसा खादिवागतौ। मया दृष्टौ परिव्यक्तं रुचिराच्छादनस्रजौ ॥५२॥ तयोरेकस्तु पद्माक्षः श्यामपीताम्बरस्रजः। जग्राह तद्धनूरत्नं दुर्ग्राह्यं दैवतैरपि ॥ ५३ ॥ तच्च बालो महच्चापं बलायन्त्रमिवायसम्। आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया ॥ ५४ ॥ आकृष्यमाणं तत्तेन निर्वाणं बाहुशालिना। मुष्टिदेशे विकूजित्वा द्विधाभूतमभज्यत५५ ततः मंनलिना भूमिर्नैव भाति च भास्करः। धनुषो भंग-

---

इस समय जगत्का प्रलय करनेकी समान धनुषघरमें एक आश्चर्य हुआ है, तहाँ दो मनुष्य आये थे, उनको मैं किनकी उपमा दूँ वह किसीकी समान नहीं थे उनके बाल चोटीकी समान लम्बे थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वे नीला और पीला वस्त्र धारण कर रहे थे, वे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले दोनों अज्ञातभावसे अन्तःपुरमें घुस आये, उस समय वे दोनों देवपुत्रोंकी समान दीखते थे और वे दोनों बालक होने पर भी आकाशमेंसे सहसा आये हुए सौम्य हुताशनों (अग्नियों) की समान एकदम धनुषघरमें आगए थे, मैंने उनको भली भली भाँति देखा था, वे दोनों रुचिर वस्त्र और मालाएँ धारण कर रहे थे। ५१ । ५२ । उनमेंसे पद्मकी समान नेत्रवाले और पीली माला और वस्त्र धारण करने वाले एक श्याम बालकने देवताओंसे भी दुर्ग्राह्य धनूरत्नको उठा लिया ५३ तदनन्तर उस बालकने जैसे कोई मशीनसे उठा कर चढ़ा देय इस प्रकार उस लोहेके बड़े भारी धनुषको वेगपूर्वक चढ़ा कर लीलासे ही उसको नमा दिया ५४ जब उस बाहुशाली ने उस बाणरहित धनुषको खेंचा तब वह मुट्ठीसे पकड़नेके

नादेन भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ ५६ ॥ तदद्भुतं महद्द दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः । भयाद्भयद शत्रूणां तदिहाख्यातुमागतः । न जानामि महाराज कौ तावमितविक्रमौ ॥ ५७ ॥ एकः कैलाससंकाश एकोंजनगिरिप्रभः । स तु तच्चापरत्नं वै भंक्त्वा स्तम्भमिव द्विपः ॥ ५८ ॥ निष्पपातानिलगतिः सानुगोऽमितविक्रमः । अग-मत्तं द्विधा कृत्वा न जाने कोप्यसौ नृप ५६ ॥ श्रुत्वैव धनुषो भंगं कंसो विदितविस्तरः । विसृज्यायुधपालं नौ प्रविवेश गृहोत्त-मम् ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसधनु-
भँगो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७ ॥

स्थानमें शब्द करता हुआ दो टूक होगया ॥ ५५ ॥ उस समय भूमि काँपने लगी और सूर्यका प्रकाश होना कम होगया और धनुषके टूटनेके शब्दसे आकाश घूमनेसा लगा ॥ ५६ ॥ इस वातको देख कर मुझे बडा विस्मय हुआ और हे शत्रुओंको भय देने वाले ! मैं तो डरता २ आपसे यह कहनेके लिये यहाँ आया हूँ हे महाराज ! मैं नहीं जानता कि-वे अमित विक्रमी कौन हैं ? ॥ ५७ ॥ उनमेंसे एक कैलासकी समान (श्वेत) था और एककी आभा अञ्जनके काले पहाडकी समान थी, जैसे हाथी स्तम्भको तोड़ डालता है, इसी प्रकार उस धनूरत्नको तोडनेके अनन्तर वह अपार पराक्रमी वायुकी समान वेगसे अपने भाईके साथ भाग गया, इस प्रकार वह धनुषके दो टुकड़े कर भाग गया, हे नृप! मैं नहीं जानता कि-वह कौन है?॥५८-५६ धनुर्भंगके समाचारको सुन कर कंसको सव वृत्तान्त प्रतीत होगया और वह आयुधरक्षकको त्याग कर अपने श्रेष्ठ घरमें घुस गया ॥ ६० ॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच। स चिन्तयित्वा धनुषो भंगं भोजविवर्धनः। बभूव विमना राजाऽचिन्तयन्भृशदुःखितः ॥ १ ॥ कथं बालो विगतभीरवप्लुत्य महाबलः । प्रेक्षमाणस्तु पुरुषैर्धनुर्भङ्क्त्वा विनिर्गतः ॥ २ ॥ यस्यार्थे दारुणं कर्म कृतं लोकविगर्हितम् । पितृष्वस्रात्मजान् वीरान् षडेवाहं न्यपोथयम् ॥ ३ ॥ दैवं पुरुष-

(पूर्व अध्यायमें इस ऋचाके अनुसार वर्णन किया है, कि–"युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः" अर्थात् तुम बलपूर्वक (रजकको मारकर) वस्त्रोंको पहरोगे और तुम्हारा मान करने वाले (मालाकार कुब्जा आदि माला और अनुलेप आदि कर्मोंको) सिरजेंगे अतः वे अच्छिद्र हो जावेंगे अर्थात् कुब्जत्व नीचत्व आदि दोषोंसे हीन होजावेंगे ॥ अब इस अध्यायमें इस आधी ऋचाके अनुसार वर्णन आवेगा, कि–"अवतारितमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे' अर्थात् कंसने यादव न होने पर भी यदुओं पर प्रभुत्व करनेकी इच्छासे अनृत मल्ल आदि प्रवृत्त किये थे उन सबका उन दोनों ने तिरस्कार करदिया था, यह सब कार्य उन्होंने अपने सत्य यादवरूपसे प्रकट होकर ही किया था, पहिले वह गोपरूपसे आच्छादित रहते थे, वे दोनों मित्रावरुण थे अर्थात् राम कृष्ण सूत्रान्तर्यामी रूप थे, अब कंसका अनृतत्व (असत्यपना) हाथीवान्की कथामें प्रकट किया जाता है) वैशम्पायनजी कहते हैं, कि–भोजोंका उच्छेद करने वाला राजा कंस धनुर्भंगकी बातको सुन कर चिन्तामें पड़गया, वह बड़ा दुःखी हुआ और उदास होगया ॥ १ ॥ (वह विचारने लगा, कि–) सब पुरुष देखते रहे, तब भी यह महाबली बालक धनुषको तोड़ कर कैसे निकल गया, यह बडा निडर है ॥२॥ मैंने इसके लिये संसारमें निन्दित दारुण कर्म किया था, मैंने अपनी बुआके छः वीर पुत्रोंको

कारेण न शक्यमतिवर्तितुम् । नारदोक्तं च वचनं नूनं मामुप-
स्थितम् ॥ ४ ॥ एवं राजा विचिन्त्याथ निष्क्रम्य च गृहोत्त-
मात् । प्रेक्षागारं जगामाशु मञ्चानामवलोककः ॥ ५ ॥ स दृष्ट्वा
सर्वनिर्मुक्तं प्रेक्षागारं नृपोत्तमः । श्रेणीनां दृढनिर्युक्तं मंचवाटै-
र्निरन्तरम् ॥ ६ ॥ सोत्तमागारयुक्ताभिर्वलभीभिर्विभूषितम् ।
सर्वतः सारनिर्व्यूहं स्वायतं सुप्रतिष्ठितम् । उदग्राक्लिष्टसुश्लिष्टं
मञ्चारोहणमुत्तमम् ॥ ८ ॥ नृपासनपरिक्षिप्तं संचारपथसङ्कुलम् ।
छन्नं तद्वेदिकाभिश्च मानुषौघभरक्षमम् ॥ ९ ॥ स दृष्ट्वा भूषितं
रंगमाज्ञापयत बुद्धिमान् । श्वः सचित्राः समाल्याश्च सपता-
कास्तथैव च ॥ १० ॥ सुवासिता वपुष्मन्त उपनीतोत्तरच्छदाः ।

(इसीके लिये) मारडाला था ॥३॥ पुरुषार्थसे दैवका उल्लंघन नहीं किया जासकता, नारदजीका कहा हुआ वचन ही मेरे सामने आगया है ॥ ४ ॥ इसप्रकार विचारके अनन्तर राजा अपने श्रेष्ठ घरमेंसे निकल कर मञ्चोंको देखनेकी इच्छासे प्रेक्षा-गारमें पहुँचा ॥ ५ ॥ उस राजश्रेष्ठने प्रेक्षागार (देखनेके स्थान) में जाकर सब सामग्रीको ठीक पाया, तहाँ पर एक शिल्पसे आजीविका चलाने वालोंने दृढ़तासे मञ्चवाटोंको बनाया था ६ तहाँ पर उत्तम २ मचान बन रहे थे और वह दोनों ओर झुकी छः स्तम्भ वाली,एक स्तम्भ वाली बड़ी २ मचानोंसे विभूषित था ॥ ७ ॥ वह चारों ओरसे दृढ़ था, बहुत लंबा था, सुप्रतिष्ठित था तहाँ मञ्च पर सोपानपंक्ति ऊँची असंकुचित और सुश्लिष्ट थी ॥ ८ ॥ वह राजाओंके आसनोंसे भरा हुआ था उसमें आने जानेके बहुतसे मार्ग थे, वह मञ्चस्थान वेदिकाओंसे व्याप्त और मनुष्योंका भरण करनेमें समर्थ था॥९बुद्धिमान् कंसने रंगस्थानको विभूषित देख आज्ञा दी,कि-कलको मञ्चवाट और वलभियां तथा वीथियोंको चित्रविचित्र माला पताकाओंसे विभूषित करना चाहिये

क्रियतां मंचवाटाश्च वलभ्यो वीथयस्तथा ॥११॥ रंगवाटे करीषस्य कल्प्यन्तां राशयोऽक्षयाः । पटास्तरणशोभाश्च वलयश्चानुरूपतः ॥ १२ ॥ स्थाप्यन्तां सुनिखाताश्च पानकुम्भा यथाक्रमम् । उदभारसहाः सर्वे सकांचनघटोत्तमाः ॥१३॥ वलयश्चोपकल्प्यन्तां कषायांश्चैव कुम्भशः । प्राश्निकाश्च निमन्त्र्यन्तां श्रेण्यश्च सप्रयोगगाः ॥ १४ ॥ आज्ञा च दीयतां मल्लानां प्रेक्षकाणां तथैव च। समाजे मंचशोभाश्च कल्प्यन्तां सूपकल्पिताः॥१५ एवमाज्ञाप्य राजा स समाजविधिमुत्तमम् । समाजवाटान्निष्क्रम्य विवेश स्वं निवेशनम् ॥ १६ ॥ आह्वानं तत्र संचक्रे तस्य मल्लद्वयस्य वै । चाणूरस्याप्रमेयस्य मुष्टिकस्य तथैव च ॥१७॥ तौ तु मल्लौ महावीर्यौ बलिनौ बाहुशालिनौ । कंसस्याज्ञां पुरस्कृत्य

और उन पर पुरुषोंके चित्र वाले बिछौने बिछाने चाहियें १० और रंगवाटके मध्यमें करीषोंकी (उपलोंके चूर्णोंकी) अक्षय राशियें (मल्लोंका पसीना दूर करनेके लिये वा मंगलके लिये) लगानी चाहियें, शोभनीय दुपट्टे उढ़ा कर वल्लियें खड़ीकी जाँय और उनको भली प्रकार खोद कर स्थापित किया जाय और उन पर जल पीनेके लिये कलश रक्खे जावें वे सब (वल्लियोंकी बनी हुई पलैढ़ियें) भारको सह सकने वाली हों और सब पर सुवर्णके कलश रक्खे जावें ११-१३ तहाँ वलिकी कल्पनाकी जाय और कुंभोंमें रस भर कर रक्खा जाय और युद्धधर्मको जानने वालोंको निमंत्रण दिया जाये और वह आगेकी श्रेणीमें बैठें १४ और मल्लोंको तथा प्रेक्षकोंको भी यहाँ पर आनेकी आज्ञा दो और इस समाजमें मञ्चोंकी शोभा खूब बढ़ाओ १५ वह राजा इस प्रकार उत्तम समाज बनानेकी विधि बता कर समाजवाटसे निकल कर अपने घरको चला गया १६ तहाँ उसने अप्रमेय चाणूर और मुष्टिक इन दोनों मल्लोंको बुलाया १७ तब वे महा-

हृष्टौ विविशतुस्तदा ॥ १८ ॥ तौ समीपगतौ दृष्ट्वा मल्लौ जगति विश्रुतौ । उवाच कंसो नृपतिः सोपन्यासमिदं वचः ॥ १९ ॥ भवन्तौ मम विख्यातौ मल्लौ वीरध्वजोच्छ्रितौ । पूजितौ च यथान्यायं सत्काराहौं विशेषतः ॥ २० ॥ तन्मत्तो यदि सत्कारः स्मर्यते सुकृतानि चाकर्तव्यं मे महत्कर्म भवद्भ्यां स्वेन तेजसा २१ यावेतौ मम संवृद्धौ व्रजे गोपालकावुभौ । संकर्षणश्च कृष्णश्च बालावपि जितश्रमौ ॥२२॥ एतौ रंगगतौ युद्धे युद्ध्यमानौ वनेचरौ । निपातानन्तरं शीघ्रं हन्तव्यौ नात्र संशयः ॥२३॥ बालाविमौ सुचपलावक्रियाविति सर्वथा । नावज्ञा तत्र कर्तव्या कर्तव्यो यत्न एव हि ॥ २४ ॥ ताभ्यां युधि निरस्ताभ्यां गोपाभ्यां रंगसन्निधौ । अयात्यां च तदात्वे च श्रेयो मम भविष्यति ॥२५॥

वीर्यवान बली भुजबलशाली दोनों मल्ल कंसकी आज्ञाको शिरोधार्य कर प्रसन्न होकर तहाँ घुसे १८ उन पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध दोनों मल्लोंको आया हुआ देख कर राजा कंसने उन दोनोंसे युक्तियुक्त यह वचन कहा, कि १९ तुम दोनों मेरे प्रसिद्ध मल्ल हो और वीरध्वजा (तोरण आदि) लगा कर मैंने तुम्हें बहुत ऊँचा बना दिया है मैंने तुम्हारी यथाविधि पूजाकी है और तुम सत्कारके ही पात्र हो २० यदि तुम्हें मेरे सत्कार और मेरे किये हुए सुकृतका स्मरण हो तो तुम अपने तेजसे मेरा एक बड़ा भारी काम करो २१ मेरे व्रजमें ये दोनों गोप बालक जिनका कि-नाम कृष्ण और संकर्षण है, पले हैं ये दोनों बालक होने पर भी कभी थकते नहीं हैं २२ जब ये वनेचर रंगस्थल (अखाड़े) में आकर युद्ध करने लगे तो इनसे भिड़ते ही तुम इनको अवश्य मार डालना २३ ये दोनों बालक चपल हैं परन्तु अशिक्षित हैं, परंतु तुम इस बातकी अवज्ञा न कर यत्न अवश्य करना २४ जब वे दोनों गोप युद्धमें मारे जावेंगे तब वर्तमानकालमें और

नृपतेः स्नेहसंयुक्तैर्वचोभिर्हृष्टमानसौ । ऊचतुर्युद्धसम्पन्नौ मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ २६ ॥ यद्यावयोस्तौ सम्मुखे स्थास्येते गोपकिल्बिषौ । हतावित्येव मन्तव्यौ प्रेतरूपौ नराधिप ॥ २७ ॥ यद्यावां प्रतियोत्स्येते तावरिष्टपरिप्लुतौ । आवाभ्यां रोषयुक्ताभ्यां प्रमुखे तौ वनेचरौ ॥ २८ ॥ एवं वाग्विषमुत्सृज्य तावुभौ मल्लपुंगवौ । अनुज्ञातौ नरेन्द्रेण स्वे गृहे तौ प्रजग्मतुः । २९ ॥ महामात्रं ततः कंसो बभाषे हस्तिजीविनम् । हस्ती कुवलयापीडः समाजद्वारि तिष्ठतु ॥ ३० ॥ बलवान् मदलोलाक्षश्चपलः क्रोधनो नृप । दानोत्कटकटश्चण्डः गतिवारणरोषणः ॥ ३१ ॥ स संनोद्यितव्यस्ते तावुद्दिश्य वनौकसौ । वसुदेवसुतौ वीरौ यथा स्यातां गतायुषौ ॥ ३२ ॥ त्वया चैव गजेन्द्रेण यदि तौ गोष्ठजीविनौ ।

भविष्यकालमें भी मेरा कल्याण होगा २५ उन दोनोंका राजाके स्नेहभरे वचनोंसे हृदय प्रसन्न होरहा था अतः वह युद्धमत्त चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल कहने लगे, कि—२६ यदि वे गोपकुलकलंक हमारे सामने खड़े रहेंगे तो उन तपस्वियोंको मरा हुआही समझिये, वे प्रेत बन जावेंगे २७ यदि वह अरिष्टवश हमसे युद्ध करेंगे तो हम रोषमें भर उन जंगलियोंको मारडालेंगे २८ उन मल्लोंके इस प्रकार वाणीरूप विष उगलनेके अनन्तर राजाने उनको जानेकी अनुज्ञा दी और वे अपने घरोंको चले गए २९ तदनन्तर कंसने हाथियोंसे आजीविका चलाने वाले हाथीवान् से कहा, कि कुवलयापीड हाथी समाजके द्वार पर खड़ा रहे ३० वह बलवान् है, उसके नेत्र मदके कारण चञ्चल रहा करते हैं, और वह चपल है तथा मनुष्योंको देख कर उसको क्रोध आजाया करता है उसके गण्डस्थल मदसे भरे रहते हैं और वह चण्ड हाथी हटाते समय रोष करने लगता है ॥ ३१ ॥ तुम उन जंगलियोंको लक्ष्य करके हाथीको इस प्रकार उकसाना, कि वे

भवेतां पतितौ रंगे पश्येयमहमुत्कटौ ॥ ३३ ॥ ततस्तौ पतितौ दृष्ट्वा वसुदेवः सबान्धवः । छिन्नमूलो निरालम्बः सभार्यो विनशिष्यति ॥ ३४ ॥ ये चेमे यादवा मूर्खाः सर्वे कृष्णपरायणाः । विनशिष्यन्ति छिन्नाशा दृष्ट्वा कृष्णं निपातितम् ॥ ३५ ॥ एतौ हत्वा गजेन्द्रेण मल्लैर्वा स्वयमेव वा । पुरीं निर्यादवां कृत्वा विचरिष्याम्यहं सुखी ॥ ३६ ॥ पिता हि मे परित्यक्तो यादवानां कुलोद्वहः । शेषाश्च मे परित्यक्ता यादवाः कृष्णपक्षिणः ॥ ३७ ॥ न चाहमुग्रसेनेन जातः किल सुतार्थिना । मानुषेणाल्पवीर्येण यथा माथाह नारदः ॥ ३८ ॥ महामात्र उवाच । कथमुक्तं नारदेन राजन देवर्षिणा पुरा । आश्चर्यमेतत् कथितं त्वत्तः श्रुतमरि-

---

वसुदेवके दोनों वीर पुत्र मर ही जावें ॥ ३२ ॥ जब तुम या हाथी उन दोनों गोपमें जीवन बिताने वालोंको रंगस्थलमें गिरा दोगे तब मैं उन दोनों उत्कट वीरोंको देखूँगा ॥ ३३ ॥ उन दोनोंको गिरा हुआ देख कर वसुदेव वसुदेवकी स्त्रियें और वसुदेवके बान्धव अवलम्बरहित होकर जड़ कट जानेसे नष्ट होजावेंगे ॥३४॥ और जो मूर्ख यादव कृष्णका पक्ष लेते रहते हैं, ये सब भी कृष्णको गिरा हुआ देख कर आशा नष्ट हो जानेसे मर जावेंगे ॥ ३५ ॥ मैं हाथीके द्वारा वा मल्लोंके द्वारा अथवा अपने आप ही इन दोनोंको मार कर पुरीको यादवोंसे खाली कर सुखपूर्वक विचरण करूँगा ॥ ३६ ॥ मैंने यदुओंके कुलको सहारा देने वाले अपने पिताको त्याग दिया और मैं कृष्णका पक्ष लेने वाले यादवोंको भी त्याग दूँगा ॥ ३७ ॥ मैं सुत चाहने वाले अल्पवीर्य मनुष्य उग्रसेनसे उत्पन्न नहीं हुआ, यह बात मुझे नारदजीने बताई थी (अतः मैं उग्रसेनका सत्कार क्यों करूँ) ॥ ३८ ॥(यह सुन कर हाथीवान् बोल उठा कि-हे राजन् ! देवर्षि नारदजीने तुमसे क्या बात कही थी, हे अरि-

न्दम ॥ ३९ ॥ कथमन्येन जातस्त्वमुग्रसेनात् पितुर्विना । तव माता कथं राजन् कृतं कर्मेदृशीदृशम् ॥ ४० ॥ अन्यापि साकृता नारी न कुर्याच्च जुगुप्सितम् । विस्तरं श्रोतुमिच्छामि येनतु कौतूहलं हि मे ॥४१॥ कंस उवाच । यथा कथितवान् विप्रो महर्षिर्नारदः प्रभुः । तथाऽहं संप्रवक्ष्यामि यदि ते श्रवणे मतिः ४२ आगतः शक्रसदनात् स वै शक्रसखो मुनिः । चन्द्रांशुशुक्लवसनो जटामण्डलमुद्वहन् ॥ ४३ ॥ कृष्णाजिनोत्तरीयेण रुक्मयज्ञोपवीतवान् । दण्डी कमण्डलुधरः प्रजापतिरिवापरः ॥ ४४ ॥ गाता चतुर्णा वेदानां विद्वान् गान्धर्ववेदवित् । स नारदोऽथ देवर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ ४५ ॥ तमागतमृषिं दृष्ट्वा पूजयित्वा यथाविधि

दमन ! मैंने आपकी यह बात सुनी, परन्तु यह तो एक आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ तुम पिता उग्रसेनके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तिसे किस प्रकार उत्पन्न हुए हो और हे राजन् ! तुम्हारी माताने ऐसा कार्य कैसे कर लिया ॥ ४० ॥ ऐसे कुत्सित कर्मको तो कोई साधारण स्त्री भी नहीं कर सकती ? मुझे इस बातसे बड़ा कुतूहल होरहा है, अतः मैं इस बातको विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥४१॥ कंसने कहा, कि-यदि तू इस बातको सुनना चाहता है, तो प्रभु महर्षि नारदजीने जो बात मुझसे कही थी, उसको मैं कहता हूँ ॥ ४२ ॥ वह मुनि इन्द्रके मित्र हैं वह इन्द्रके भवनसे (एक समय) आये थे, उस समय उनके वस्त्र चन्द्रमाकी किरणोंकी समान श्वेत थे और उनके शिर पर बड़ी २ जटायें थीं ॥ ४३ ॥ वह कृष्णमृगके चर्मको दुपट्टेकी समान डाले हुए थे, और सुवर्णका यज्ञोपवीत पहर रहे थे, उनके हाथमें दण्ड कमण्डलु था, इस कारण वह दूसरे प्रजापतिकी समान प्रतीत होरहे थे ॥४४॥ वह विद्वान् चारों वेदोंका गायन किया करते हैं और गान्धर्व वेदको जानते हैं ऐसे अच्युत

विधि । पाद्यार्घ्यमासनं दत्त्वा संप्रवेश्योपविश्य ह ॥४६॥ सुखो-
पविष्टोऽथ मुनिः पृष्ट्वा च कुशलं मम । उवाच च प्रीतमना देवर्षि-
र्भावितात्मवान् ॥ ४७ ॥ नारद उवाच । पूजितोऽहं त्वया वीर
विधिदृष्टेन कर्मणा । इदमेकं मम वचः श्रूयतां प्रतिगृह्यताम् ॥४८॥
गतोऽहं देवसदनं सौवर्णं मेरुपर्वतम् । सोऽहं कदाचिद्देवानां
समाजे मेरुमूर्धनि ॥४९॥ अत्र मन्त्रयतामेतं देवतानां मया श्रुतः ।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः ॥ ५० ॥तत्र यो देवकी-
गर्भो विष्णुर्लोकनमस्कृतः । सोस्या गर्भोऽष्टमः कंसः स ते मृत्यु-
र्भविष्यति ॥ ५१ ॥ देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ ५२ ॥ यत्नश्च क्रियतां

देवर्षि नारद ब्रह्मलोकमें भी विचरण किया करते हैं ४५ मैंने
उन ऋषिको आया हुआ देख कर उनको घरमें लिया और
उनकी शास्त्रानुसार पूजा की, और उनको पाद्य अर्घ और
आसन दिया, फिर मैं भी उनके समीप बैठ गया ॥४६॥ तब
सुखपूर्वक बैठनेके अनन्तर उन मुनिने मेरा कुशल समाचार
बूझा, फिर वह पवित्र चित्त वाले देवर्षि मनमें प्रसन्न होकर
कहने लगे ॥४७॥नारदजीने कहा, कि-हे वीर ! तूने शास्त्रोक्त
विधिसे मेरा पूजन किया है, अब तू मेरी एक बात सुन और
उसको ग्रहण कर ॥ ४८ ॥ मैं देवताओंके निवासस्थान सुवर्ण-
मय मेरु पर्वत पर एक समय गया था, तहाँ पर मैंने मेरु पर्वतके
शिखर पर देवताओंकी एक सभामें देवताओंको आपके और
आपके भाईके वधके दारुण उपायकी बात चीत करते सुना था,
कि-४९-५०लोकनमस्कृत विष्णु देवकीके आठवें गर्भ होंगे और
देवकीका आठवाँ गर्भ हे कंस ! तेरा मारने वाला होगा ॥५१॥
वह देवताओंका सर्वस्व है और स्वर्गकी गति है तथा देवताओंका
परम रहस्य है, वही तेरा काल होगा ॥ ५२ ॥ हे कंस ! अब तू

कंस गर्भाणां पातनं प्रति । नावज्ञा रिपवे कार्या दुर्बले स्वजनेऽपि वा ॥ ५३ ॥न चायमुग्रसेनः स पिता तव महाबलः । द्रुमिलो नाम तेजस्वी सौभस्य पतिरूर्जितः ॥ ५४ ॥ श्रुत्वाहं तद्वचस्तस्य किंचिद्दोषसमन्वितः । भूयोऽपृच्छं कथं ब्रह्मन् द्रुमिलो नाम दानवः मम माता कथं तस्य ब्रूहि विप्र समागमः । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ॥ ५६ ॥ नारद उवाच ।हन्त ते कथयिष्यामि शृणु राजन् यथार्थतः । द्रुमिलस्य च मात्रा ते सम्वादं च समागमम् ॥ ५७ ॥सुयामुनं नाम नगं तव माता रजस्वला । प्रेक्षितुं सहिता स्त्रीभिर्गता वै सकुतूहला ॥ ५८ ॥ सा तत्र रमणीयेषु रुचिरद्रुमसानुषु । चचार नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ॥ ५९ ॥ किन्नरोद्गीतमधुराः प्रतिश्रुत्वाभिनादिताः । शृण्वन्ती काम-

गर्भ गिरानेका यत्न करना, क्योंकि-दुर्बल शत्रु यदि अपना हो तब भी उसको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये ॥ ५३ ॥ महाबली उग्रसेन तेरा पिता नहीं है, सौभका स्वामी बली और तेजस्वी द्रुमिल तेरा पिता है ॥ ५४ ॥ उनके वचनको सुन कर मेरे मनमें कुछ बुरा प्रतीत हुआ, परन्तु मैंने उनसे फिर बूझा, कि-हे ब्रह्मन् ! द्रुमिल नामक दानव मेरा पिता क्यों है ? ५५ हे विप्र ! यह बताइये ! कि-मेरी मातासे उसका समागम किस प्रकार हुआ था, हे तपोधन ! इस बातको मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ५६ ॥ नारदजीने कहा, कि-हे राजन् ! तेरी माता का और द्रुमिलका समागम और संवाद जिस प्रकार हुआ था, उसको मैं यथार्थ रीतिसे कहता हूँ ॥ ५७ ॥ एक समय तेरी माता रजस्वला हुई और कुतूहलवश स्त्रियोंको साथमें लेकर सुयामन नामक पर्वतको देखनेके लिये गई ॥ ५८ ॥ तहाँ वह रमणीय और रुचिर वृक्षोंके नीचे तथा पर्वतके शिखरों पर और कन्दराओं में विचरण करने लगी ॥ ५९ ॥ तहाँ वह कानोंको आनंद देने

जनना वाचः श्रोत्रसुखावहाः ॥६०॥ बर्हिणां चैव विरुतं खगानां च विकूजितम् । अभीक्ष्णमभिशृण्वन्ती स्त्रीधर्ममभिरोचयत् ६१ एतस्मिन्नन्तरे वायुर्वनराजिविनिःसृतः । हृद्यः कुसुमगन्धाढ्यो वत्रौ मन्मथबोधनः ॥ ६२ ॥ द्विरेफाभरणाश्चैव कदम्बा वायुघट्टिताः । मुमुचुर्गन्धमधिकं सन्ततासारमूर्च्छिताः ॥६३॥ केसराः पुष्पवर्षैश्च ववृषुर्मदबोधनाः । नीपा दीपा इवाभान्ति पुष्पकंटकधारिणः ॥६४॥ मही नवतृणच्छन्ना शक्रगोपविभूषिता । यौवनस्थेव वनिता स्वं दधारार्तवं वपुः ॥ ६५ ॥ अथ सौभपतिः श्रीमान् द्रुमिलो नाम दानवः । भविष्यद्दैवयोगेन विधात्रा तत्र नीयते ॥ ६६ ॥ कामगेन रथेनाशु तरुणादित्यवर्चसा ।

वाले कानोंमें पड़ते हुए किन्नरोंके मधुर स्वरोंको सुनती हुई विचरण करने लगी ॥ ६० ॥ मोरोंके शब्द और पक्षियोंके चिचिहानेको निरन्तर सुनते २ वह स्त्री धर्म (कामकेलि) करना चाहने लगी ॥ ६१ ॥ इसी समय फूलोंकी गंधोंसे बसा हुआ वायु मनको प्रिय लगता हुआ और कामदेवको जगाता वनराजियोंमेंसे बाहर निकलने लगा ॥ ६२ ॥ तब भौरोंके आभूषणोंको धारण करने वाले और मदके कारण मूर्छितसे रहने वाले कदम्बके वृक्ष वायुसे हिल कर और अधिक गंध देने लगे६३ और मदको उद्दीप्त करने वाले केसरके वृक्ष भी पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, पुष्प और कण्टकोंको धारण करने वाले नीप वृक्ष दीपकोंकी समान दीखने लगे ॥ ६४ ॥ उस समय पृथ्वी नई २ घाससे छा रही थी और वीरबहूटियोंसे विभूषित हो रही थी और यौवनावस्थामें ऋतुमती स्त्रीकी समान शरीरमें दिप रही थी ॥ ६५ ॥ इसी समय भावीवश विधाता सौभपति श्रीमान् द्रुमिल नामक दानवको तहाँ ले आया ॥ ६६ ॥ वह यदृच्छासे सुयामुन पर्वतको देखनेकी अभिलाष से तरुण सूर्यकी समान

यदृच्छयागतस्तत्र शुभाशुभदिदृक्षया ॥ ६७ ॥ विहायसा कामगमो मनसाप्याशुगामिना । स तं प्राप्य पर्वतेन्द्रमवतीर्य रथोत्तमात् ६८ पर्वतोपवने न्यस्य रथं पररथारुजम् ।उभौ तौ भूतसहितौ चेरतुर्नगमूर्धनि ॥ ६९ ॥ ततो बहून्यपश्येतां काननानि वनानि च । सर्वर्तुगुणसम्पन्ने नन्दनस्येव कानने ॥ ७० ॥ चेरतुर्नगशृंगेषु कन्दरेषु नदीषु च । नानाधातुपिनद्धैश्च शृंगैर्बहुभिरुच्छ्रितैः ७१ नानारत्नविचित्रेषु कांचनाञ्जनराजतान् । नानाकुसुमगन्धाढ्यान्नानासत्वगणैर्युतान् ॥७२॥ नानाद्विजगणैस्तुष्टान् नानापुष्पफलद्रुमान् । नानौषधिसमायुक्तानृषिसिद्धानुसेवितान् ॥ ७३ ॥ विद्याधरान् किंपुरुषान्सवानरराक्षसान् । सिंहान् व्याघ्रान् वरा-

---

कान्ति वाले इच्छाचारी रथमें बैठ कर तहाँ आगया ॥ ६७ ॥ वह इच्छानुसार विचरण करने वाला मनसे भी शीघ्र चलने वाले उस रथ पर बैठ कर उस पर्वतराज पर आया और तहाँ पर उस श्रेष्ठ रथसे उतर कर ॥ ६८ ॥ उसने पर्वतके उपवनके पास अपने शत्रुओंके रथोंको दबाने वाले रथको खड़ा कर दिया फिर वह और भूत पर्वतकी चोटी पर विचरण करने लगे ॥ ६९ ॥ तदनन्तर नन्दनवनकी समान सब ऋतुओंके गुणोंसे संपन्न अनेक कानन और वनोंको देखने लगे ७० तब वह पर्वतशिखर कन्दरा और नदियों पर घूमने लगे, उसके बहुतसे शिखर अनेक प्रकार की धातुओंसे भरे हुए थे ॥ ७१ ॥ तहाँ नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र दीखते हुए (शिखरोंमें) सुवर्ण अञ्जन और चांदीके अनेक प्रकारके कुसुमोंकी गंधोंसे भरे हुए, सत्त्वगुणयुक्त, अनेक प्रकारके पक्षियोंसे तुष्ट, अनेक प्रकारके पुष्प और फल वाले वृक्ष अनेक प्रकारकी औषधियों वाले ऋषि और सिद्धोंसे सेवित (शिखरोंको) विद्याधरोंको किंपुरुषोंको सिद्धोंको वानरोंको सिंहोंको व्याघ्रोंको वराहोंको महिषोंको शरभोंको खरगोशोंको

हांश्च महिषान्ऋक्षगोकर्णान् ॥७४॥ सृमरांश्चमरान्न्यंकून् मातंगान् यक्षराक्षसान्। एवं बहुविधान् पश्यंश्चचाराग्रे नगोत्तमम् । ॥ ७५ ॥ दूराद्ददर्श नृपतिर्देवीं देवसुतोपमाम् । क्रीडमानां सखीभिश्च पुष्पं चैव विचिन्वतीम् ॥७६॥ ततश्चरन्तीं सुश्रोणीं सखीभिः सह सम्वृताम् । दृष्ट्वा सौभपतिर्दूराद्विस्मयन् सूतमब्रवीत् ॥७७॥ कस्येयं मृगशावाक्षी वनान्तरविचारिणी । रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथस्य रतिर्यथा ॥ ७८ ॥ शचीव पुरुहूतस्य उताहो वा तिलोत्तमा।नारायणोरुं निर्भिद्य सम्भूता वरवर्णिनी । ऐलस्य दयिता देवी योषिद्रत्नं किमुर्वशी ॥ ७९ ॥ क्षीरार्णवे मथ्यमाने सुरासुरगणैः सह । मन्थानं मन्दरं कृत्वाऽमृतार्थमिति नः श्रुतम् ॥८०॥ ततोऽमृतात् समुत्तस्थौ देवी श्रीर्लोकभाविनी ।

सृमरोंको चमरोंको न्यंकु (बारासिंगों) को हाथियोंको यक्षोंको राक्षसोंको इस प्रकार बहुतसी वस्तुओंको देखते हुए पर्वतके शिखर पर विचरण करने लगे ७२-७५ इतनेमें ही उस नृपतिने दूरसे ही देवताकी पुत्रीकी समान देवीको अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ा करती हुई और पुष्पोंको तोड़ती हुई देखा ७६ उस सुश्रोणीको सखियोंके साथ विचरती हुई दूरसे देख कर सौभपति विस्मयमें हो अपने सूतसे कहने लगा, कि—७७ यह वनमें घूमने वाली मृगोंकी समान नेत्र वाली किसकी (पत्नी) वनके भीतर फिर रही है यह कामदेवकी पत्नी रतिकी समान रूप और उदारताके गुणोंसे सम्पन्न है ७८ यह क्या इन्द्रकी इन्द्राणी है, अथवा यह तिलोत्तमा है अथवा यह नारायणकी जंघाको फोड़ कर निकली हुई ऐल (पुरूरवा) की पत्नी वरवर्णिनी स्त्रीरत्न उर्वशी है ७९ देवता और असुरोंने अमृत पानेके लिये मन्दराचल को रई बना कर क्षीर समुद्रको मथा था ८० तब अमृतमेंसे लोकोंको प्रसन्न करने वाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई थी क्या यह

नारायणांकलुलिता किं श्रीरेषा वरांगना ॥ ८१ ॥ नीलमेघां-
तरगता द्योतयन्त्यचिरप्रभा । तथा योषिद्गणान् मध्ये स्वं प्रद्योत-
यद्वनम् ॥ ८२ ॥ अतीव सुकुमारांगी सुप्रभेन्दुनिभानना । दृष्ट्वा
रूपमनिंद्यांग्या विभ्रान्तो व्याकुलेन्द्रियः ॥८३॥ कामस्य वशमा-
पन्नो मनो विभ्रमतीव मे । भृशं कृन्तति मेंऽगानि सायकैः कुसु-
मायुधः ॥ ८४ ॥ भित्वा हृदि शरान् पंच निर्दयं हन्ति मे मनः ।
हृद्याग्निं वर्धयति आज्यसिक्त इवानलः । कथमस्य भवेत् कार्यं
शमार्थं मन्मथाग्निना ॥ ८५ ॥ केनोपायेन किं कुर्यां भजेन्मां
मत्तगामिनी । एवं बहु चिन्तयानो नोपलभ्य च दानवः ॥८६॥
सूतमाह मुहूर्तं तु तिष्ठस्व त्वमिहानघ । अहं यास्यामि तां द्रष्टुं
कस्येयमिति योषितम् ॥ ८७ ॥ प्रतीक्षमाणस्तिष्ठस्व यावदागमनं

वही नारायणकी गोदीमें लेटने वाली वरांगना लक्ष्मी है ८१
नीले मेघोंमें चमकती हुई बिजलीकी समान योषिताओंके मध्यमें
अपने रूपको वनमें प्रकाशित करती फिरती है ८२ इसके अंग
अतीव सुकुमार हैं और इसका मुख सुन्दर कान्ति वाले चन्द्रमाकी
समान है इस अनिन्दित अंग वालीके रूपको देख कर मैं भ्रान्त
होरहा हूँ मेरी इन्द्रियें व्याकुल होरही हैं ८३ मैं कामके वशमें हो
गया हूँ और मेरा मन घूम रहा है और कुसुमायुध कामदेव मेरे
अंगोंको बाण मार कर काट रहा है ८४ यह निर्दय कामदेव पाँच
बाण मार कर मेरे मनको घायल करे डालता है और मेरे हृदय
की अग्निको घी पड़े हुए अग्निकी समान बढ़ा रहा है, मैं इस
मन्मथाग्निको किस प्रकार शान्त करूँ ८५ मैं क्या उपाय करूँ ?
जिससे यह मत्तमातंगगामिनी मेरा सेवन करे इस प्रकार अनेक
विचार करने पर भी उस दानवको कुछ विचार न सूझा ८६
तदनन्तर उसने सूतसे कहा, कि-हे अनघ ! तू क्षण भर यहाँ
ठहर ! मैं यह देख आऊँ कि-यह किसकी स्त्री है ८७ जब तक

मम । श्रुत्वा तु वचनं तस्य तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥
एवमुक्त्वा दानवेन्द्रो गमनाय मनो दधे । वायुं संस्पृश्य बलवान्
ध्यानमेवान्वचिन्तयत् ॥ ८९ ॥ मुहूर्तं ध्यानमात्रेण दृष्टं ज्ञानबला-
त्ततः । उग्रसेनस्य पत्नीति ज्ञात्वा हर्षमुपागतः ॥९०॥ उग्रसेनस्य
रूपं वै कृत्वा स्वं परिवर्त्य सः । उपासर्पन्महाबाहुः प्रहसन् दान-
वेश्वरः ॥ ९१ ॥ स्मयमानश्च शनकैर्जग्राहामितवीर्यवान् । उग्र-
सेनस्य रूपेण मातरं ते ममर्दयत् ॥ ९२ ॥ सा पतिस्निग्धहृदया
तं भावेनोपसर्पती । शंकिता चाभवत् पश्चात्तस्य गौरवदर्शनात् ९३
सा तमाहोत्थिता भीता न त्वं मम पतिर्ध्रुवम् । कस्त्वं विकृता-
चारो येनास्मि मलिनीकृता ॥९४॥ एकभर्तृव्रतमिदं मम संदूषितं

मैं आऊँ तब तक तू मेरी बाट देखता हुआ बैठा रह, उसके वचनको सुन कर सूतने "तथास्तु" कहा ८८ इस प्रकार कह कर दानवेन्द्रने अपने मनमें चलनेका विचार किया और वह बलवान् जलका स्पर्श करके ध्यान करने लगा ॥ ८९ ॥ मुहूर्तभर ध्यान करनेके अनन्तर उसने ज्ञानबलसे जान लिया, कि-यह, उग्रसेनकी पत्नी है, यह समझ कर वह हर्षमें भर गया ॥ ९० ॥ तदनन्तर वह महाभुज दानवेश्वर अपने रूपको पलट उग्रसेनका रूप बना कर हँसता हुआ आगेको बढ़ा ॥ ९१ ॥ और उस उग्रसेनका रूप धारण करने वाले अमित वीर्यवान्ने धीरेसे मुस्करा कर तेरी माताको पकड़ कर उसको धर दबाया ९२ वह पतिके ऊपर हृदयसे स्नेह करती थी अत एव उसके पास चली गई थी पीछेसे उसे रतिमें (दानवका शरीर) भारी प्रतीत होनेसे शंका हुई ९३ तब तो वह डर गई और उठ कर उससे कहने लगी, कि-तू मेरा मेरा पति नहीं है, यह निश्चय है अरे दुराचरणी तू कौन है ? तूने मुझे मलिन (क्यों) कर दिया ? ॥ ९४ ॥ हे नीच ! तूने मेरे पतिका रूप धारण कर नीचकर्म करके मेरे एकभर्तृव्रतको दूषित

त्वया । पत्युर्मे रूपनाशाय नीच नीचेन कर्मणा ॥ ६५ ॥ किं मां वक्ष्यन्ति कुपिता बान्धवाः कुलपांसनीम् । जुगुप्सिता च वत्स्यामि पतिपक्षैर्निराकृता ॥ ६६ ॥ धिक्त्वामीदृशमक्षान्तं दुष्कुलं च्युतधैर्येन्द्रियम् । अविश्वास्यमनायुष्यं परदाराभिमर्शनम् ॥ ६७ ॥ स तामाह गर्जन्ती क्षिप्तः क्रोधेन दानवः । अहं वै द्रुमिलो नाम सौभस्य परिवर्जितः ॥ ६८ ॥ किमाक्षिपसि रोषेण मूढे पंडितमानिनि । मानुषं पतिमाश्रित्य नीचं मृत्युवशे स्थितम् ॥ ६९ ॥ व्यभिचारान्न दुष्यन्ति स्त्रियः स्त्रीमानगर्विते । न ह्यासां नियता बुद्धिर्मानुषीणां विशेषतः ॥ १०० ॥ श्रूयन्ते हि स्त्रियो वध्यो

कर दिया ॥ ६५ ॥ क्रोधमें भरे हुए मेरे बान्धव मुझ कुलकलंकिनीसे क्या कहेंगे ? अरे ! पतिकी ओरके मनुष्य मेरा निरादर करेंगे तब मुझे उनमें निन्दित होकर बसना पड़ेगा ६६ अरे। उच्छृङ्खल इन्द्रियोंको नष्ट करने वाले दुष्कुलीन और इन्द्रियोंको वशमें न रखने वाले तुझे धिक्कार है ! दूसरेकी स्त्रियोंसे व्यभिचार करना आयु घटाने वाला और विश्वास घटाने वाला है ॥ ६७ ॥ जब वह इस प्रकार कलह करके दानव पर आक्षेप करने लगी तब दानवने क्रोधमें भर कर कहा, कि-'अरी ! मेरा नाम द्रुमिल है, मैं सौभ देशका बलवान स्वामी हूँ ॥ ६८ ॥ अरी ! अपनेको बुद्धिमान् समझने वाली मूर्खे ! तू रोषमें भर कर मुझ पर आक्षेप क्यों कर रही है ! तेरा पति तो मृत्युके अधीन अत एव नीच मनुष्य है (फिर तू ऐसा अभिमान क्यों करती है)॥ ६९ ॥ अरी ! (अमानुषोंसे हुए) व्यभिचारसे स्त्रियें दूषित नहीं होती हैं (चित्तके चञ्चल होनेसे स्वप्नके व्यभिचारकी समान इस व्यभिचारसे भी तुझे दोष न लगेगा) अरी स्त्रीमानगर्विते ! स्त्रियों की बुद्धि निश्चल नहीं होती है और मानुषी स्त्रियोंकी बुद्धि तो अधिकतर निश्चल नहीं होती है ॥ १०० ॥ हमने सुना है, कि-

व्यभिचारव्यतिक्रमैः । प्रसूता देवसंकाशान् पुत्रान् निश्चलविक्रमान् ॥ १ ॥ अतीव हि त्वं स्त्री लोके पतिधर्मवती सती । शुद्धकेशान् विधुन्वन्ती भाषसे यद्यदिच्छसि ॥ २ ॥ कस्य त्वमिति यच्चाहं त्वयोक्तो मत्तकाशिनि । कंसस्तस्माद्रिपुध्वंसी तव पुत्रो भविष्यति ॥ ३ ॥ सा सरोषा पुनर्भूत्वा निन्दती तस्य तं वरम्। उवाच व्यथिता देवी दानवं धृष्टवादिनम् ॥४॥ धिक्ते वृत्तं सुदुर्वृत्त यः सर्वा निन्दसि स्त्रियः । सन्ति स्त्रियो नीचवृत्ताः सन्ति चैव पतिव्रताः ॥ ५ ॥ यास्त्वेकपत्यः श्रूयन्तेऽरुन्धतीप्रमुखाः स्त्रियः । धृता याभिः प्रजाः सर्वा लोकाश्चैव कुलाधम ॥ ६ ॥ यस्त्वया

बहुतसी (कुन्ती मदयन्ती आदि) स्त्रियोंने व्यभिचार करके देवताकी समान अचल पराक्रम वाले पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥ १०१ ॥ अरी ! इस लोकमें एक तू ही तो बड़ी पतिव्रता है जो हमसे शुद्धकेश पुरुषोंका तिरस्कार करती हुई जो मनमें आरहा है प्रलाप कर रही है (अर्थात् "यानि कानि च पापानि केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति" सब पाप केशोंका आश्रय करके रहते हैं इस वचनके अनुसार हम तो निर्दोष हैं तब भी तू हमें धमका कर हमारा तिरस्कार कर प्रलाप कर रही है) १०२ हे मत्तकाशिनि ! तूने मुझ से कहा, कि–तू किसका है ? इस कारण तेरे (उदरसे) शत्रुओंको नष्ट करने वाला कंस नामक पुत्र होगा" १०३ तब तेरी माता रोषमें भर कर उसके वरकी निन्दा करती हुई व्यथित होकर उस ढीठतासे भाषण करने वाले दानवसे कहने लगी, कि–१०४ अरे दुर्वृत्त ! तुझे धिक्कार है तू सकल स्त्रियों की निन्दा कर रहा है (कुन्ती आदि ने भी आपत्तिके धर्मानुसार पुरुषान्तर से संबंध किया था, कामविकारसे नहीं किया था) स्त्रियें नीच भी हैं और पतिव्रता भी हैं १०५ अरुन्धती आदि एक पति वाली स्त्रियें प्रसिद्ध हैं, हे कुलाधम ! वह सकल प्रजा और सकल

मम पुत्रो यै दत्तो वृत्तविनाशनः । न मे बहुमतस्त्वेष शृणु चापि यदुच्यते ॥ १०७ ॥ उत्पत्स्यति पुमान्नीच पतिवंशे ममाऽव्य यः । भविष्यति स ते मृत्युर्यश्च दत्तस्त्वया सुतः ॥ ८ ॥ द्रुमिलस्त्वेवमुक्तस्तु जगामाकाशमेव तु । तेनैव रथमुख्येन दिव्येनाप्रतिगामिना ॥ ९ ॥ जगाम च पुरीं दीना माता तदहरेव ते । मामेवमुक्त्वा भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ ११० ॥ दीप्यमानस्तपोवीर्यात् साक्षादग्निरिव ज्वलन् । वल्लकीं वादयानो हि सप्तस्वरविमूर्च्छिताम् ॥ ११ ॥ गायनो लक्ष्यवीथीं स जगाम ब्रह्मणोन्तिकम् । शृणुष्वेदं महामात्र निबोध वचनं मम ॥१२॥ तथ्यं चोक्तं नारदेन त्रैलोक्यज्ञेन धीमता । अहं बलेन वीर्येण मदेन विनयेन च ॥ १३ ॥ प्रभावेणैव शौर्येण तेजसा विक्रमेण च । सत्येन चैव दानेन नान्योऽस्ति सदृशः पुमान् ॥ १४ ॥ विदित्वा

लोकोंको धारण कर रही हैं १०६ अरे ! तूने मुझे आचारनाशक पुत्र दिया, मैं इसको अच्छा नहीं समझती, अब मैं तुझसे जो कुछ कहती हूँ, उसको सुन १०७ मेरे पतिके वंशमें ईश्वर उत्पन्न होंगे, हे नीच ! वह तेरी और तेरे दिये हुए मुझसे उत्पन्न हुए पुत्रकी भी मृत्यु होंगे १०८ यह कहते ही द्रुमिल तो अपने उसही इकड़ गति वाले दिव्य और मुख्य रथ पर बैठ कर आकाशमें चला गया १०९ और उसी दिन तेरी माता भी दीन होकर अपनी नगरीको चली आई। मुझसे इस प्रकार कह कर मुनिसत्तम नारदजी भी ११० अपने तपोवीर्यसे साक्षात् अग्निकी समान दिपते हुए अपनी सप्त स्वरसे मूर्छित वीणाको बजाते हुए ब्रह्मलोकके मार्गसे ब्रह्माजीके पास चले गए. हे हाथीवान ! तू मेरे इस वचनको सुन और समझ १११-११२ त्रिलोकीको जानने वाले बुद्धिमान् नारदजीने यह सब सत्य ही कहा था, क्योंकि- मैं भी मद वीर्य विनय प्रभाव शूरता तेज विक्रम सत्य और दान

सर्वमात्मगतं वचनं श्रद्दधाम्यहम् । क्षेत्रजोऽहं सुतस्तस्य उग्रसेनस्य हस्तिप ॥ १५ ॥ मातापितृभ्यां सन्त्यक्तः स्थापितः स्वेन तेजसा । उभाभ्यामपि विद्विष्टो बान्धवैश्च विशेषतः ।१६। एतानपि हनिष्यामि यादवान् कृष्णपक्षिणः । तदिमौ घातयित्वा तु हस्तिना गोपकिल्विषौ ॥ १७ ॥ तद्गच्छ गजमारुह्य साङ्कुशप्राशतोमरः । स्थिरो भव महामात्र समाजद्वारि मा चिरम् ।१८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंस-वाक्यं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच ।तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते द्वितीये समुपस्थिते । आपूर्यत महारंगः पौरैर्युद्धदिदृक्षुभिः ॥१॥ सचित्राष्टास्रचरणाः

में ऐसा हूँ, कि-मेरी समान और कोई पुरुष नहीं है ११३-११४ इस प्रकार सब प्रकारसे अपनी ओर देख कर मैं नारदजीके वचन को सत्य मानता हूँ अत एव हे हस्तिप ! मैं उग्रसेनका क्षेत्रज पुत्र हूँ ११५ माता पिताने मुझे त्याग दिया है, मैं अपने ही तेजसे यहाँ पर बैठा हुआ हूँ, माता पिता मुझसे द्वेष करते हैं और बान्धव तो मुझसे बड़ा द्वेष करते हैं ११६ अत एव मैं इन गोप-किल्विषोंको हाथीसे मरवा कर कृष्णका पक्ष लेने वाले यादवों कोभी मार डालूँगा ११७अत एव हे हाथीवान!अंकुश प्रास और तोमरोंको ले हाथी पर चढ़ कर जा और समाजके द्वार पर जाकर स्थिर हो जा देर मत करे ११८ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त २८

वैशम्पायनजीने कहा,कि-वह दिन व्यतीत होकर जब दूसरा दिन आगया तब रंगस्थल युद्ध देखना चाहने वाले नगर निवासियोंसे खचाखच भर गया ॥ १ ॥ उस (समाजघाटके मंच) चित्रकारी किये हुए थे और अठपहलू थे उनमें वेदी बिछी हुई थी और कुण्डी भी लगी हुई थी और उनमें अर्ध-

सार्गलद्वारवेदिकाः । सगवाक्षार्धचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिताः २
प्राङ्मुखैश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदामावतंसितैः । अलंकृतैर्विराजद्भिः शारदैरिव तोयदैः ॥ ३ ॥ मञ्चागारैः सुनिर्मुक्तैर्युद्धाय सुवि भूषितैः । समाजवाटः शुशुभे समेघोव इवार्णवः॥४॥ स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः पताकाभिर्निरन्तरम् । श्रेणीनां च गणानां च मञ्चा भान्त्यचलोपमाः ॥५॥अन्तःपुरचराणां च प्रेक्षागाराण्यनेकशः । रेजुः कांचनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च ॥ ६ ॥ तानि रत्नोपक्लृप्तानि ससानुप्रग्रहाणि च । रेजुर्जवनिकाक्षेपैः सपक्षा इव खे नगाः॥७॥तत्र चामरहारैश्च भूषणानां च सिञ्जितैः । वाणीनां च विचित्राणां विचित्राश्चेरुरर्चिषः ॥ ८ ॥ गणिकानां पृथक्

चन्द्राकार झरोखे बने हुए थे और उत्तम २ बिछौनोंसे वे भूषित होरहे थे ॥ २ ॥ वे पूर्वकी ओर मुख करके रक्खे गए थे और हारोंसे विभूषित होरहे थे, इस प्रकार अलंकृत होकर विराजमान (मंच) शरद ऋतुके बादलोंसे शोभा पारहे थे ॥ ३ ॥ जिन पर (मल्ल) नियुक्त कर दिये गए थे ऐसे युद्धके लिये विभूषित किये गए मंचोंसे समाजवाट मेघोंकी घटाओंसे छाये हुए समुद्रकी समान शोभा पाने लगा ॥ ४ ॥ (जिस शिल्प वालेकी जो सामग्री थी उस) अपने कर्मके द्रव्य से चिन्हित पताका युक्त श्रेणी वाले और (अनेक जाति वाले होने पर भी एक शिल्पसे आजीविका चलाने वाले) गणोंके बनाये हुए मंच तहाँ पर्वतोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ५ ॥ और अन्तःपुरमें फिरने वालोंके लिये बने हुए सुवर्णकी चित्रकारी किये हुए और रत्नोंकी कान्तिसे व्याप्त अनेक प्रेक्षागार तहाँ शोभा पारहे थे ६ रत्नोंसे जड़े हुए उनके परदे गिराये जाते उस समय वे परों वाले शिखरोंसे युक्त पर्वतोंकी समान दीखते थे ७तहाँ प्रेक्षागारोंमें चामर और हार तथा भूषणोंके सिञ्जित

मंचाः शुभैरास्तरणाम्बरैः । शोभिता वारमुख्याभिर्विमानप्रति-
मौजसः ॥ ९ ॥ तत्रासनानि ख्यातानि पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः ।
प्रकीर्णाश्च कुथाश्चित्राः सपुष्पस्तर्कृताः ॥ १० ॥ सौवर्णाः
पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिताः।फलवद्दंशपूर्णाश्च चांगेर्यः
पानयोजिताः ॥ ११ ॥अन्ये च मंचा बहवः काष्ठसंचयबन्धनाः।
रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥ उत्तमागारि-
काश्चैव सूक्ष्मजालावलोकिनः । स्त्रीणां प्रेक्षागृहा भान्ति राज-
हंसा इवाम्बरे ॥ १३ ॥ प्राङ्मुखश्चारुनिर्युक्तो मेरुशृंगसम-
प्रभः । रुक्मपत्रनिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभितः ॥ १४ ॥ प्रेक्षा-
गारः स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया । शोभितो माल्यदामभि

(झनकार) और विचित्र वाणियोंकी विचित्र कान्ति फैल रही थी ८ तहाँ गणिकाओंके लिये अलग मञ्च बनाये गए थे, उन पर शुभ गद्दे बिछाये गए थे वे विमानकी समान मञ्च मुख्य २ गणिकाओंसे सुशोभित होरहे थे ९ तहाँ पर प्रसिद्ध आसन सुवर्ण पलंग चित्र विचित्र झूलें बिछ रहीथीं और उन पर पुष्प बिखरे हुए थे १० और सुवर्णकी पलैढ़ियें लगी हुई थीं और पाँएँ भी शोभा पारही थी तहां पर जंबीरी आदिकी सिकञ्जबी और चुकिक आदि शरबत भी पीनेके लिये रक्खे हुए थे ११ तहाँ पर काठके बने हुए और भी बहुतसे मञ्च थे उन पर सहस्रों और सैंकड़ों बिछौने बिछ रहे थे १२ तहाँ पर देखनेके लिये सूक्ष्म जाली लगे हुए घरके ऊपरके उत्तमागार (छज्जे) जो स्त्रियोंके देखनेके लिये नियत थे वे आकाशमें राजहंसोंकी समान शोभा पारहे थे १३ पूर्वकी ओर मुख वाला, सुन्दरतासे बनाया हुआ और मेरुपर्वतके शिखरकी समान प्रभा वाला और सुवर्णपत्रके समान स्तंभ वाला और चित्रकारीसे शोभित कंसका प्रेक्षागार शोभा पाने लगा १४ कंसका प्रेक्षागार मालाओंकी लड़ियोंसे

निर्वासक्तलक्षणः ॥ १५ ॥ तस्मिन् नानाजनाकीर्णे जनौघप्रतिनादिते। समाजवाटे संस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे ॥ १६ ॥ राजा कुवलयापीडः समाजद्वारि कुञ्जरः। तिष्ठत्विति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपागमत् ॥ १७ ॥ स शुक्ले वाससी बिभ्रच्छुक्लच्छत्रजनचामरः। शुशुभे श्वेतमुकुटः श्वेताभ्र इव चन्द्रमाः॥ १८ ॥ तस्य सिंहासनस्थस्य सुखासीनस्य धीमतः। रूपमप्रतिमं दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिषः ॥१९॥ततः प्रविविशुर्मल्ला रङ्गमावल्गितास्तराः। तिस्रश्च भागशः कक्षाः प्राविशन्बलशालिनः ॥ २० ॥ ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च। वसुदेवसुतौ हृष्टौ रङ्गद्वारमुपस्थितौ ॥ २१ ॥ (वल्गन्तौ वस्त्रसंवीतौ सुरचन्दनभूषितौ। ऊर्ध्वापीडौ सुगापीडौ बाहुशस्त्रकृतौ यमौ। आस्फोटयन्तावन्योन्यं

पारहा था, और उसमें लक्षण बन रहे थे तब अतिशोभा पाने लगा १५ वह बहुतसे मनुष्योंसे व्याप्त और मनुष्योंके समूहसे प्रतिनादित काँपते हुए समुद्रकी समान समाजवाट जब स्तब्ध हो गया १६ "कुवलयापीड़ हाथी समजके द्वार पर ठहरे" यह आज्ञा देकर राजा प्रेक्षागारमें आगया १७ वह श्वेत वस्त्र पहिर रहा था और उस पर सफेद छत्र और चमर ढुल रहे थे तथा वह श्वेत मुकुट पहर रहा था इससे वह श्वेत बादलों वाले चन्द्रमासा प्रतीत होरहा था १८ सिंहासन पर सुखसे बैठे हुए बुद्धिमान कंसके अप्रतिम रूपको देख कर नगर निवासी जय २ कार करने लगे १९ तदनन्तर जिनके वस्त्र काँप रहे थे, ऐसे मल्लोंने रंगस्थलमें प्रवेश किया, वे बलशाली तीन कक्षाओंमें बैठ गए २० तदनन्तर तूर्यके निनादसे और थपकनेसे हर्षमें भरे हुए वसुदेव के दोनों पुत्र रंगद्वार पर आकर खड़े होगए २१ वे दोनों चलायमान वस्त्रसे ढक रहे थे और देवताओंके वन्दना करनेसे भूषित होरहे थे उनके पीड़ (कंधे) ऊँचे थे और उन पर मालाएँ पड़ी हुई

बाहू चैवार्गलोपमौ) ॥ २२ ॥ तावापतन्तौ त्वरितौ प्रतिषिद्धौ वराननौ । तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम् ॥ २३ ॥ स मत्तहस्ती दुष्टात्मा कृत्वा कुण्डलिनं करम् । चकार चोदितो यत्नं निहन्तुं बलकेशवौ ॥ २४ ॥ ततः प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै । कंसस्य तन्मतं चैव जगर्हे स दुरात्मनः ॥ २५ ॥ त्वरते खलु कंसोयं गन्तुं वैवस्वतक्षयम् । यो मामनेन नागेन धर्षयितुमिच्छति ॥ २६ ॥ सन्निकृष्टे ततो नागे गर्जमाने तथा घने । सहसोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः ॥२७॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवं कृत्वा नागस्य चाग्रतः।करं ससीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा ॥ २८ ॥विषाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः। बबाधे तं गजं कृष्णः पवनस्तोयदं यथा ॥२९॥ सहस्ताग्राद्विनिष्क्रान्तो

थीं और वे अपनी भुजाओंकी ही शस्त्र मानते थे इस लिये वे अपनी साँकलोंकी समान भुजाओंको थपका रहे थे २२ उन सुन्दर मुख वाले दोनोंको फुरतीसे आते देख उनको बारबार उकसाये जाते हुए मत्त हाथीसे रोक दिया गया २३ तब तो वह मदमत्त दुष्टात्मा हाथी अपनी सूँडको कुण्डलाकार बना कर प्रेरणा करने पर बलराम और केशवको मारनेके लिये पिल पड़ा २४ हाथी से पीड़ा पाने पर श्रीकृष्ण हँसे और दुरात्मा कंसके विचारकी निन्दा करने लगे २५ कि-यह कंस यमलोकमें जानेकी शीघ्रता कर रहा है, इसी लिये इसने मुझे हाथीसे दबवाना चाहा है २६ जब हाथी पासमें आकर मेघकी समान गरजने लगा तब गोविन्द ने एक साथ उछल कर तालियें बजाईं २७ फिर श्रीकृष्णने हाथी के सामने क्ष्वेडित और आस्फोटित करके उसके सीकर (फूँफूँ करते समय सूँडमेंसे निकलने वाली बूँदें) सहित सूँडको अपने वक्षःस्थल पर ले लिया २८ और उसके दाँतोंके बीचमें पहुँच गए और फिर चरणोंके मध्यमें आगए. इस प्रकार मेघको पीड़ित

विषाणाग्राच्च दन्तिनः । विमुक्तः पादमध्याच्च कृष्णो द्विपमपो-
थयत् ॥३०॥ सोतिकायस्तु सम्मूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन् । गजः
स्वेष्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह॥३१॥पपात भूमौ जानुभ्यां
दशनाभ्यां तुतोद च।मदं सुस्राव रोषाच्च पर्वागमे यथाघनः ३२
कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया । निधनाय मतिं
चक्रे कंसद्विष्टेन चेतसा ॥३३॥ स तस्य प्रमुखे पादं कृत्वा
कुम्भादनन्तरम् । दोर्भ्यां विषाणमुत्पाट्य तेनैव प्राहरत्तदा ३४
स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः । हन्यमानश्शकृन्मूत्रं
मुमोचार्तो ररास ह ३५॥ कृष्णजर्जरितांगस्य कुञ्जरस्यार्त्तचेतसः।
कटाभ्यामतिसुस्राव वेगवद्रुधिरं शोणितम् ॥३६॥ लाङ्गूलं चास्य

करने वाले पवनकी समान श्रीकृष्ण उस हाथीको पीड़ित करने
लगे २९ वह हाथीकी सूँडसे दाँतोंसे और पैरोंके बीचमेंसे निकल
कर हाथीको मसलने लगे ३० तब तो वह हाथी श्रीकृष्णको न
मार सकनेके कारण मूढ़ होगया अपने शरीरको ही (अपनी
सूँडसे पीट कर) मथता हुआ चिंघाड़ने लगा ३१ तदनन्तर वह
घुटनोंके बल पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके दाँत पृथ्वीमें गड़गए
और रोषमें भर वर्षा ऋतुमें बादलोंकी समान मदवर्षा करने
लगा ३२ श्रीकृष्णने उस नागसे शिशुक्रीड़ा करनेके अनन्तर
उस नागको कंसके कारण दूषितचित्त समझ कर उसको मारने
का विचार किया ३३ उन्होंने उसके गण्डस्थलके आगे उसके
मुख पर पैर रक्खा और अपनी भुजाओंसे उसके दाँतको उखाड़
कर उससे ही उसको मारने लगे ३४ वह हाथी अपने वज्रकी
समान दाँतसे पिटने पर मूत्र और पुरीष करता हुआ चिंघाड़ने
लगा ३५ कृष्णने जब हाथीके अंगोंको जर्जर कर डाला और
उसका चित्त दुःखी होगया तब उसके गण्डस्थलमेंसे बहुतसा
रक्त बहने लगा ३६ और पर्वतमें आये घुसे हुए साँपकी जैसे

वेगेन निश्चकर्ष हलायुधः।शैलपृष्ठार्द्धसंलीनं वैनतेय इवोरगम् ३७
तेनैव गजदन्तेन कृष्णो हत्वा तु दन्तिनम् । जघानैकप्रहारेण
गजारोहणमुल्बणम् ॥ ३८ ॥ सार्तनादं महत्कृत्वा विदन्तो
दन्तिनां वरः । पपात स महामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः॥ ३९ ॥
ततस्तौ तोरणांगानि गृह्य रणकर्कशौ । गजस्य पादरक्षांश्च
जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ ४० ॥ तांश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं रंगस्य
तावुभौ । नासत्यावश्विनौ स्वर्गादवतीर्णाविवेच्छया ॥ ४१ ॥
वृष्णयन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनौ । क्ष्वेडितोत्कृष्टनादेन
बाह्वोरास्फोटितेन च ॥ ४२ ॥ सिंहनादैश्च तालैश्च हर्षयामास-
तुर्जनम् । तौ दृष्ट्वा भोजराजस्तु विषसाद वृथामतिः । पौराणा-
मनुरागं च हर्षं चालक्ष्य भारत ॥ ४३ ॥ तं हत्वा पुण्डरीकाक्षो

गरुड़जी खीचें, इस प्रकार बलदेवजी भी उसकी पूँछको वेगसे खेंचने लगे ३७ श्रीकृष्णने उस हाथीके दाँतसेंही उस हाथीको पीटनेके अनन्तर उस हाथीके भयंकर नितम्बों पर एक वार प्रहार किया ३८ वह बड़े शरीर वाला हाथियोंमें श्रेष्ठ दाँतों रहित हाथी बड़ी जोरसे चिंघाड़ता हुआ वज्रसे छिन्नभिन्न किये हुए पर्वत की समान ढह पड़ा ३९ तदनन्तर उन पुरुषर्षभ दोनों भाइयोंने तोरणोंके स्तंभ आदि अंगोंको उठा कर उस हाथीके पादरक्षकों को मार डाला ४० तदनन्तर अश्विनीकुमार जैसे स्वर्गमेंसे अपनी इच्छासे उतर आवें, इस प्रकार वे दोनों उन सबको मार कर अखाड़ेके बीचमें पहुँच गए ४१ तब वृष्णि अंधक और भोज-वंश वालोंने उन वनमालाधारियोंको देखा तब वे दोनों अपनी भुजाओंको थपका कर उत्कृष्ट नाद करके और क्ष्वेडित करके अर्थात् बाँसके दण्डेको फटकार कर जनसमाजको प्रसन्न करने लगे ४२ हे भारत ! उनको देख कर और उनके ऊपर पुरवासियों की प्रीति और हर्षको देख कर वृथामति भोजराज कंस खिन्न हो

नंदन्तं दन्तिनां वरम् । अवतीर्णोर्णवाकारं समाजं सहपूर्वज ॥४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कुवलया-
पीडवधो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रविशन्तं तु वेगेन मारुता वल्गिनां वरम् । पूर्वजं पुरतः कृत्वा कृष्णं कमललोचनम् ॥ १ ॥ गजदन्तकृतोल्लेखं सुभुजं देवकीसुतम् । युद्धसम्मर्दयोगेन मदेन रुधिरेण च । वल्गमानं यथा सिंहं व्यूहमानं यथा घनम् । बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्तं वसुन्धराम् ॥३॥ औग्रसेनिः समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम् । कृष्णं भृशायस्तमुखस्सरोषं समुदैक्षत ४ भुजासक्तेन शुशुभे गजदन्तेन केशवः । चन्द्रार्धबिम्बसंसक्तो

गया ४३ उस हाथीको मारनेके अनन्तर पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण अपने भाईके साथ दहाड़ते हुए उस समुद्राकार जनसमाजमें पहुचगए ४४ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त २९

वैशम्पायनजीने कहा, कि-अपने बड़े भाईको आगे करके पवनकी समान उछलने वालोंमें श्रेष्ठ कमलदलनयन श्रीकृष्णको वेगपूर्वक घुसते हुए देखकर (कंसका मुख मलिन होगया) १ उनका शरीर हाथीके दाँतोंसे खुरचा हुआ था और वह सुभुज देवकीपुत्र युद्धमें रगड़ खानेके कारण (हाथीके) मद और रुधिरसे सन रहे थे ॥ २ ॥ इस लिये वह (कंसको मारनेके लिये) मारनेकी इच्छासे कूद रहे थे और मेघकी समान डट गए थे और अपनी भुजाओंका शब्द कर पृथ्वीको डगमगाने लगे ॥ ३ ॥ इस समय उनके हाथमें हाथीका दाँतरूपी शस्त्र उठा हुआ था, ऐसे श्रीकृष्णको देख कर उग्रसेनके पुत्र कंसका मुख उतर गया और वह क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णकी ओर देखने लगा४ अपने हाथमें विराजमान उस हाथीके दाँतके कारण श्रीकृष्ण अर्धचन्द्रके बिम्बसे सटेहुए एक शिखर वाले पर्वतकी समान

यथैकशिखरो गिरिः ॥ ५ ॥ वल्गमाने तु गोविन्दे स कृत्स्नो रङ्गसागरः । जनौघपतिनादेन पूर्यमाण इवाबभौ ॥ ६ ॥ ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कंसः परमकोपनः । चाणूरमादिशद्युद्धे कृष्णस्य सुमहाबलम् ॥७॥ अन्ध्रं मल्लं च निकृतिं मुष्टिकं च महाबलम् । बलदेवाय सक्रोधो दिदेशाद्रिचयोपमम् ॥८॥ कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु । योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै ६ स रोषेण तु चाणूरः कषायी कृतलोचनः । अभ्यावर्तत युद्धार्थमपां पूर्णो यथा घनः ॥ १० ॥ अवघुष्टे समाजे तु निःशब्दस्तिमिते जने । यादवास्सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन् ॥ ११ ॥ बाहुयुद्धमिदं रङ्गे समाश्रितकृतकातरम् । क्रियाबलसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा ॥१२॥ अद्भिश्चातिश्रमो नित्यं विनेयः काल-

शोभा पाने लगे ॥ ५ ॥ जब श्रीकृष्ण तहाँ पर कूद कर पहुँच गए तब सारा रंगमंच मनुष्योंके समूहके नादसे भर कर शोभा पाने लगा ॥६॥ तब तो क्रोधके कारण कंसके नेत्र लाल लाल होगए और उस परमक्रोधीने महाबली चाणूरको श्रीकृष्णके साथ लड़नेकी आज्ञा दी ॥ ७ ॥ फिर उसने क्रोधमें भरे २ ही अन्धे करने वाले कपटकुशल महाबली मुष्टिकको बलदेवजीके साथ लड़नेकी आज्ञा दी ॥ ८ ॥ कंसने चाणूरको पहिले ही आज्ञा दे रक्खी थी कि तू कृष्णके साथ यत्नके साथ लड़नाह अत एव रोषके कारण चाणूरके नेत्र कसैले होगए तब वह युद्ध करनेके लिये जलभरे मेघकी समान उद्यत होगया १० जब राजाके "चुप रहो" आज्ञा देने पर समाज निःस्तब्ध होगया तब तहाँ पर बैठे हुए यादवोंने कहा, कि-११ यह बाहुयुद्ध परीक्षा करके किया जाता है और निडर पुरुषोंकी जोट इसमें बदी जाती हैं और इसकी क्रियाएँ बलसे जानी जाती हैं तथा यह बिना शस्त्र के होता है ॥ १२ ॥ कालदर्शी विद्वान पुरुषोंको इसमें जलसे

दर्शिभिः । करीषेण च मल्लस्य सततं सत्क्रिया स्मृता ॥ १३ ॥ स्थितो भूमिगतेनैव यो यथा मार्गतः स्थितः । संयुज्यतश्च पयोगः प्राश्निकैः समुदाहृतः ॥ १४ ॥ बालो वा यदि वा वृद्धो मध्यो वापि कृशोऽपि वा । बलस्थो वा स्थितो रंगे ज्ञेयः कक्षान्तरेण वै बलतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविशारदैः । निपातानन्तरं किंचिन्न कर्त्तव्यं विजानता ॥ १६ ॥ तदिदं प्रस्तुतं रंगे युद्धं कृष्णान्ध्रमल्लयोः । बालः कृष्णो महानन्ध्रः कथं नः स्याद्विचारणा १७ ततः किलकिलाशब्दस्समाजे समवर्तत । मावल्गत च गोविन्दो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥अहं बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपमः । युद्धं ममानेन सह रोचते बाहुशालिना ॥ १९ ॥ युद्धव्यतिक्रमः कश्चिन्न भविष्यति मत्कृतः । नत्वहं बाहुयोधानां

मल्लोंका श्रम दूर करना चाहिये और करीषसे मल्लोंका सर्वदा सत्कार करना चाहिये ॥ १३ ॥ प्राश्निक (परीक्षक) पुरुषोंने कहा है कि-"जो जिस मार्ग (पेंच) से लड़े उससे उसी मार्गमें भूमि पर खड़े २ लड़ना चाहिये" ॥ १४ ॥ बालक वृद्ध मध्यावस्थावाले यह बलस्थ होने पर भी रंगमें अपनी कक्षासमान (समानतावाले) से लड़ें ॥ १५ ॥ विद्वान् पुरुष भुजायुद्धविशारदोंके जोड़ बद जानेके बाद बल और क्रियामें कर्तव्याकर्तव्यका विचार नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ परन्तु अभी तो रंगस्थलमें यही विषय प्रस्तुत है, कि-कि-श्रीकृष्ण बालक हैं और अन्ध्र बड़ा है अतः यह विषय विचारणीय है ॥ १७ ॥ इतनेमें ही समाजमें किल किल शब्द होने लगा और गोविन्दने छलाँग भर कर यह बात कही,कि ॥ १८ ॥ यद्यपि मैं बालक हूँ और अन्ध्र शरीरमें पर्वतकी समान है तब भी मुझे इस भुजबलशाली से युद्ध करना ही रुचता है१९और मेरी ओरसे युद्धनियमका कुछ उल्लंघन नहीं होगा, बाहुयोधाओंका जो नियम है, मैं उसको

दूषयिष्यामि सन्मतम् ॥ २० ॥ योयं करीषधर्मश्च तोयधर्मश्च रंगजः । कषायस्य च संसर्गः संगयो लोप कल्पितः॥२१॥संयमः स्थिरता शौर्यं व्यायामः सत्क्रिया बलम् । रंगे च नियता सिद्धि-रेतद्युद्धविदां मतम् ॥ २२ ॥ अवैरमेवं यदयं सवैरं कर्तुमुद्यतः । अत्र वै निग्रहः कार्यस्तोषयिष्याम्यहं जगत् ॥२३॥ करूषेषु प्रसूतोयं चाणूरो नाम नामतः । बाहुयोधी शरीरेण कर्मभिश्चारु चिन्त्यताम् ॥२४॥ एतेन बहवो मल्ला निपातानन्तरं हताः । रङ्गप्रतापकामेन मल्लमार्गश्च दूषितः ॥२५॥ शस्त्रसिद्धिस्तु योधानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम् । रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रति-

---

दूषित नहीं करूँगा ॥ २० ॥ गोवरके चूरेका मर्दन जल छिड़कना और गेरू आदि लगाना यह अखाड़ेका स्वाभाविक धर्म कहा है २१ संयम (एक दूसरेको हटाना), स्थिरता (न हटना), शूरता, व्यायाम (स्थिर होकर भी हाथ पैर चलाना), सत्क्रिया (चलाने पर भी मर्मस्थानको न छूना), और बल (सत्क्रिया होने पर भी बलकी अधिकता) से रंगमें जय नाम वाली सिद्धि मिलती है यह युद्धवेत्ताओंका मत है ॥ २२ ॥यद्यपि यह (रङ्ग धर्म) अवैर है, परन्तु यह (कंस वा चाणूर) इसको सवैर करने के लिये उद्यत होगया है, अत एव मैं इसका निग्रह (वध) करूँगा और जगत्को सन्तुष्ट करूँगा ॥ २३ ॥ यह करूष देशमें उत्पन्न हुआ है और चाणूर नामसे प्रसिद्ध है, यह भुजाओंसे युद्ध करने वाला है, तुम इसके (और मेरे) शरीर तथा कर्मोंका तो विचार करो ॥ २४ ॥ इसने बहुतसे मल्लोंको रङ्गमें प्रताप पानेकी इच्छा से निपात (गिरने) के अनन्तर भी मार कर अखाड़ेके मार्गको दूषित कर दिया है (अर्थात् गिरनेके बाद किसी पहलवानको न मारना चाहिये, इस नियमको इसने तोड़ डाला है) २५ शस्त्रसे युद्ध करने वाले योधाओंकी तो युद्धमें शस्त्रके द्वारा सिद्धि

मल्लनिपातजा ॥२६॥ रणे विजयमानस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती । हतस्यापि रणे शस्त्रैर्नाकपृष्ठं विधीयते ॥२७॥ रणे ह्युभयतस्सिद्धिर्हनयेह घ्नतोपि वा । सा हि प्राणान्तिकी यात्रा महद्भिस्साधुपूजिता ॥२८॥ अयं तु मार्गो बलतः क्रियातश्च विनिःसृतः । मृतस्य रङ्गे क स्वर्गो जयतो वा कुतो रतिः ॥२९॥ ये तु केचित् स्वदोषेण राज्ञः पण्डितमानिनः । प्रतापार्थं हता मल्ला मल्लहन्तुर्वधो हि सः ॥ ३० ॥ एवं संजल्पतामेव ताभ्यां युद्धं सुदारुणम् । उभाभ्यामभवद्घोरं वारणाभ्यां यथा वने ॥ ३१ ॥ कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सकंकटैः । सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथो-

होती है और मल्लोंकी युद्धमें जीत तो दूसरे मल्लोंको गिरा देनेसे ही होजाती है (फिर उसको न मारना चाहिये) ॥ २६ ॥ रणमें जीतने वालोंकी शाश्वती (सर्वदा रहने वाली) कीर्ति होती है और यदि वह रणमें शस्त्रोंसे मारा जाता है तो उसको स्वर्ग मिलता है ॥ २७ ॥ रणमें दोनों प्रकारसे सिद्धि मिलती है चाहें मारा जाय अथवा मार डाले, महापुरुष इस प्राणान्तिकी यात्रा की बड़ी प्रशंसा करते हैं ॥ २८ ॥ मैं तो सरल हूँ, मैं तो इससे क्रिया (पेंच) और बलमें भी कम हूँ, अत एव यह रङ्गमें मारा गया तो इसको स्वर्ग नहीं मिलेगा और यह जीत जायगा, तब भी इसको कुछ रति नहीं मिल सकती ॥ २९ ॥ इसने पण्डितमानी राजाका प्रताप बढ़ानेके लिये अपने दोषसे जिन मल्लोंको मार डाला है उनके वधका पाप इस मल्लहत्यारे चाणूरको ही लगेगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार बात चीत करते २ ही उन दोनोंमें, महावनमें हाथियोंके युद्धकी समान दारुण युद्ध होने लगा ३१ वे दोनों (कृत) पेंच दिखा कर (प्रतिकृत) पेंच काट कर और (सकंकटबाहु) भुजाओंसे आलिंगन करनेके अनन्तर रोक कर (सन्निपात) परस्पर छाती अड़ानेके अनन्तर रुक कर

न्मथनैस्तथा ॥ ३२ ॥ तावुभावपि संश्लिष्टौ यथा शैलमयौ तथा क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव वराहोद्धूतनिस्स्वनैः ॥ ३३ ॥ कीलवज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च। शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥ ३४ ॥ जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैश्शिरोभ्यां चावघट्टितैः । तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा॥३५॥ बाहुप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ।अरज्यत जनस्सर्वस्सोत्कृष्टनिनदोत्थितः३६ साधुवादांश्च मञ्चेषु घोषयन्त्यपरे जनाः । ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णप्रणिहितेक्षणः।न्यवारयत तूर्याणि कंसस्सव्येन पाणिना३७

(अवधूत) फिर एक दूसरेको धकेल कर (प्रमाथ) भूमिमें गिरा कर (उन्माथ) ऊपरको उछाल कर गिरा कर (युद्ध करने लगे) ॥ ३२ ॥ फिर मानोंशैलकी समान कठिन दोनों जने आपसमें मिल कर क्षेपण मुष्टि और वराहोद्धूत (सूअरकी समान टाँगोंके बीचमें घुस प्रतिपक्षीको दूर फैंक कर) और शब्दरहित होकर (युद्ध करने लगे) ॥ ३३ ॥ (तदनन्तर वे दोनों) कीलवज्रनिपातोंसे अर्थात् कोहनी और और घुटनोंकी मार देकर प्रसृष्टा करके अर्थात् एक दूसरेकी अंगुलियोंमें अँगुली डाल कर और शलाकानखपात करके अर्थात् एक साथ ही हँसलीमें अँगूठेके और कोखमें दूसरी अंगुलियोंको मार कर और दारुण पादोद्धूत करके अर्थात् तिरछे पैर फैंक कर शत्रुको उसके स्थान परसे चलायमान करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥ फिर जानुओंको वज्रकी समान कड़का कर और एक दूसरेके शिरमें शिर मार कर वह शस्त्ररहित युद्ध भुजबलसे होने लगा ॥ ३५ ॥ उस समाजके उत्सवके पास मनुष्योंको जब योधाओंके भुजाओं (के प्रस्वेद) की गंध आने लगी तब सब जनसमाज प्रसन्न होगया और वह बड़ी जोरसे गाज उठा ॥ ३६ ॥ उस समय मञ्चों पर बैठे हुए बहुतसे मनुष्य शाबास २ कहने लगे,उस समय कंसकी

प्रतिषिद्धेषु तूर्येषु मृदङ्गादिषु तेषु वै । खे संगतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः ॥ ३८ ॥ युध्यमाने हृषीकेशे पुण्डरीकनिभेक्षणे । स्वयमेव प्रवाद्यन्त तूर्यघोषास्तु सर्वशः ॥ ३९ ॥ अन्तर्धानगता देवा विमानैः कामरूपिभिः। चेरुर्विद्याधरैस्सार्द्धं कृष्णस्य जयकांक्षिणः ॥ ४० ॥ जयस्व कृष्ण चाणूरं दानवं मल्लरूपिणम् । इति सप्तर्षयस्सर्वे ऊचुश्चैव नभो गताः ॥ ४१ ॥ चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा देवकीसुतः । बलमादारयामास कंसस्याभावदर्शिवान् ॥ ४२ ॥ ततश्चाल वसुधा मञ्चाश्चैव जुघूर्णिरे । मुकुटाच्चापि कंसस्य पपात मणिरुत्तमः ॥४३॥ दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूरं शीर्णजीवितम् । प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि

दृष्टि कृष्णकी ओर लग रही थी और उसके मुख पर पसीना आरहा था, उसने तुरतही अपने दाहिने हाथसे बाजोंको बजानेका निषेध कर दिया ॥३७॥ जब तुरही और मृदंग आदिका बजना बंद हुआ, कि—आकाशमें एक साथ देवताओंके बाजे बजने आरंभ हो गए ॥ ३८ ॥ कमलपत्राक्ष श्रीकृष्णके युद्ध करने पर सर्वत्र तुरहियें अपने आप बजने लगीं ॥ ३९ ॥ उस समय देवता और विद्याधर अपने विमानोंमें बैठ छिपे २ आकाशमें घूमते हुए श्रीकृष्णकी विजय चाहने लगे ॥ ४० ॥ उस समय आकाश में विराजमान सप्तर्षियोंने कहा, कि—हे कृष्ण ! आप मल्लरूपी चाणूर दानवको जीतिये ॥ ४१ ॥ कंसके नाशको (समीपमेंही) देखने वाले देवकीपुत्रने बहुत समय तक चाणूरके साथ क्रीड़ा करनेके अनन्तर अपनेमें बलका समावेश किया ॥ ४२ ॥ उस समय पृथ्वी काँपने लगी मञ्च भी डगमगाने लगे तथा कंसके मुकुटमेंसे भी उत्तम मणि गिर पड़ा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण ने उसको अपने भुजाओंसे दुहरा कर दिया फिर श्रीकृष्णने उस शीर्ण जीवन वाले चाणूरके वक्षःस्थलमें घूसेलगा देकर उसकी

वक्षस्याहत्य जानुना ॥ ४४ ॥ निःसृते साश्रुरुधिरे तस्य नेत्रे सबन्धने । तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलम्बिते ॥ ४५ ॥ पपात स तु रंगस्य मध्ये निःसृतलोचनः । चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले ॥ ४६ ॥ देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुषः । सन्निरुद्धो महारंगः सशैलेनेव लक्ष्यते ॥४७॥ रौहिणेयो हते तस्मिन् चाणूरे बलदर्पिते । जग्राह मुष्टिकं रङ्गे कृष्णस्तोसलकं पुनः ॥ ४८ ॥ सन्निपाते तु तौ मल्लौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ । समेयातां रामकृष्णौ कालस्य वशवर्तिनौ ॥ ४९ ॥ निर्घाताचनतौ भूत्वा रङ्गमध्ये ववल्गतुः । कृष्णस्तोसलमुद्यम्य गिरिशृङ्गोपमं बली । भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष महीतले५० तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य बलीयसः । मुखाद्रुधिरमत्यर्थ-

खोपड़ी पर मुष्टिकमें मारीं ॥ ४४ ॥ तब तो उसके नेत्रपिण्ड अश्रु और रुधिरके साथ बाहर निकल आये, उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों डयोढ़ियोंमें सुवर्णके बने हुए गोले लटक रहे हों ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वह फटी हुई आँखों वाला चाणूर जीवनका अन्त होने पर प्राणहीन हो भूमि पर गिर पड़ा ४६ उस मरे हुए चाणूरके शरीरसे घिरा हुआ महारङ्ग पर्वतसे भरा हुआसा दीखता था ॥ ४७ ॥ बलदेवजीने बलदर्पित चाणूरके मारे जाने पर मुष्टिकको पकड़ लिया और कृष्णने दुबारा तोसलक (मल्ल) को पकड़ लिया ॥ ४८ ॥ वे कालके वशमें हुए दोनों मल्ल पहिली बार दाँव होते ही क्रोधसे मूर्च्छित होगए ४९ और प्रहारसे पीड़ा पाकर नीचे हो रङ्गमध्यमें उछल कूद करने लगे, तब तो बली श्रीकृष्णने उस पर्वतके शिखरकी समान आकार वाले तोसलकको सौ बार घुमा कर पृथ्वीमें रगड़ना आरंभ कर दिया ५० जब उस बली असुरको श्रीकृष्ण पीड़ा देने लगे तब उस मुमूर्षुके मुखमेंसे बहुतसा रुधिर निकलने

मुञ्जगाम मुमूर्च्छितः ॥ ५१ ॥ संकर्षणस्तु सुचिरं योधयित्वा महाबलः । अन्ध्रमल्लं महामल्लो मण्डलानि व्यदर्शयत् ॥ ५२ ॥ मुष्टिनैकेन तेजस्वी साशनिस्तनयित्नुना । शिरस्यभ्यहनद्वीरो वज्रेणेव महागिरिम् ॥ ५३ ॥ स निष्पातितमस्तिष्को विसृतनयनो महान् । पपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत् ॥ ५४ ॥ अन्ध्रतोशलकौ हत्वा कृष्णसंकर्षणावुभौ । क्रोधसंरक्तनयनौ रङ्गमध्ये ववल्गतुः ॥ ५५ ॥ समाजवाटो निर्मल्लः सोऽभवद्भीमदर्शनः । अन्ध्रे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते ॥५६॥ ये च संप्रेक्षका गोपा नन्दगोपपुरोगमाः । भयत्रोभितसर्वाङ्गाः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥ ५७ ॥ हर्षजं वारि नेत्राभ्यां वर्षमाणा प्रवेपती । प्रस्नवोत्पीडिता कृष्णं देवकी तमुदैक्षत ॥ ५८ ॥ कृष्णदर्शनजातेन

लगा ५१ उधर महाबली संकर्षण जो महा मल्ल थे, उन्होंने बहुत देर तक कुश्ती लड़नेके बाद अंध्र मल्लको लड़नेके मण्डल(पैंतरे) दिखाने आरम्भ कर दिये ५२ तदनन्तर जैसे पर्वत पर वज्र गिरे इस प्रकार वीर सङ्कर्षणने अपनी वज्र समान मुट्ठीका उसके शिर पर प्रहार किया ५३ तब तो उसका मस्तक लुढ़क गया और उसकी आखें निकल आई इस प्रकार वह बड़ा भारी मल्ल गिर पड़ा, तब तो बड़ा द्वन्द मचने लगा ५४ अन्ध्र और तोसलकको मारनेके अनन्तर श्रीकृष्ण और बलराम क्रोधसे नेत्रोंको लाल २ करके रङ्गके मध्यमें घूमने लगे ५५ जब महा मल्ल अन्ध्र और मुष्टिक गिर पड़े तब समाजवाट मल्लशून्य, होगया और उसका दृश्य भयंकर होगया ५६ और जो नन्दगोप आदि दर्शक गोप थे, उन सबके अंग भयके कारण सुन्न पड़ गए, इस प्रकार वे सब जहाँके तहाँ बैठे रहे ५७ इस समय अपने नेत्रोंसे हर्षके आँसू बहाती हुई तथा फुरहरी लेती हुई और दूध आनेसे पीड़ित होती हुई देवकी भी श्रीकृष्णकी ओर देख रही थी ॥५८॥ वसुदेवके नेत्र भी

वाष्पेणाकुलितेक्षणा वसुदेवो जरां त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते ५९ वारमुख्याश्च ताः सर्वाः कृष्णस्य मुखपंकजम् । पपुर्हि नेत्रभ्रमरैर्निमेषान्तरगामिभिः ॥ ६० ॥ कंसस्तात मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचरः । अमर्षदोषनिर्यासः कृष्णसन्दर्शनेरितः ॥ ६१ ॥ केशवायसधूमेन रोषनिःश्वासवायुना । दीप्तमन्तर्गतं तस्य हृदयं मानसाग्निना ॥६२॥ तस्य प्रस्फुरितोष्ठस्य स्विन्नालिकतलस्य वै । कंसवक्त्रस्य रोषेण रक्तसूर्यायते वपुः ॥ ६३ ॥ क्रोधरक्तान्मुखात्तस्य निःसृता स्वेदबिन्दवः । यथा रविकरस्पृष्टा वृक्षावश्यायबिन्दवः ॥ ६४ ॥ सोऽज्ञापयत संक्रुद्धः पुरुषान् व्यायतान् बहून् । गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येतां वनेचरौ ॥ ६५ ॥ न

श्रीकृष्णका दर्शन करके जलसे पूर्ण होगए और वह स्नेहसे तरुण पुरुषकी समान प्रतीत होने लगे ॥ ५९ ॥ और समस्त मुख्य वारांगनाएँ भी निमेषके भीतर चलने वाले अपने नेत्र रूप भ्रमरोंसे श्रीकृष्णके मुखपंकजका पान करने लगीं ॥६०॥ और हे तात ! कृष्णके देखनेसे प्रेरित कंसके मुख पर भौंओंके मध्यमें वल पडनेसे पसीनेके भीतर रोषका ज्वालाकलाप दीखनेलगा ६१ केशवके लिये लोहेकी समान कठिनतारूपी धुएँ वाली उसके मनकी क्रोधाग्निसे और शत्रुका अपकार करनेमें असमर्थतारूपी तापात्मक वायुसे दीप्त उसका मन जलने लगा ॥ ६२ ॥ उस समय कंसके ओठ फडक रहे थे और उसकी नसोंमेंसे पसीना निकल रहा था अत एव कंसके मुखके रोषके कारण उसका शरीर रक्तसूर्यकी समान दीखने लगा ॥ ६३ ॥ जैसे वृक्षोंके पत्तों पर पडी हुई ओसकी बूँदें बालसूर्यसे स्पष्ट दीखने लगती हैं इसी प्रकार उसके क्रोधके कारण रक्त हुए मुख पर पसीने की बूँदें स्पष्ट दीखने लगी ॥ ६४ ॥तदनन्तर क्रोधमें भरे कंसने बहुतसे फैले हुए मनुष्योंको आज्ञा दी, कि इन जङ्गली गोपोंको

चैनौ द्रष्टुमिच्छामि विकृतौ पापदर्शनौ । गोपानामपि मे राज्ये न कश्चित्स्थातुमर्हति ॥ ६६ ॥ नन्दगोपश्च दुर्मेधाः पापेष्वभिरतो मम । आयसैर्निगडाकारैर्लोहपाशैर्निगृह्यताम् ॥ ६७ ॥ वसुदेवश्च दुर्वृत्तो नित्यं द्वेषकरो मम । अवृद्धार्हेण दण्डेन क्षिप्रमद्यैव शास्यताम् ॥६८॥ ये चेमे प्राकृता गोपा दामोदरपरायणाः । ह्रियन्तां गाव एतेषां यच्चास्ति वसु किंचन ॥ ६९ ॥ एवमाज्ञापयानं तं कंसं परुषभाषिणम् । ददर्शोत्फुल्लनयनः कृष्णस्सत्यपराक्रमः ७० क्षिप्ते पितरि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः । ज्ञातीनां च व्यथां दृष्ट्वा विसंज्ञां चैव देवकीम् ॥ ७१ ॥ स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः । आरुरुक्षुर्महाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः ॥७२॥ रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कंसासनान्तिकम् । असज्जद्वायुनाक्षिप्तो

समाजमेंसे निकाल दो ॥ ६५ ॥ मैं इन पापदर्शन विकृताकार दोनों गोपोंको देखना नहीं चाहता, अब कोई गोप भी मेरे राज्यमें न रहे ॥ ६६ ॥ दुर्बुद्धि नन्दगोप भी मुझसे कपटका ही बर्ताव करता रहता है अत एव इसको कैद कर इसके पैरोंमें लोहेकी बेड़ियें डलवा दो । ६७ ॥ और यह दुर्वृत्त वसुदेव सदा मुझसे द्वेष करता रहता है इस लिये इसको आज ही वृद्ध पुरुषों के अयोग्य दण्ड देकर ठीक करना चाहिये ॥६८॥ और जो ये मामूली गोप दामोदरमें परायण रहते हैं.इनकी गौएँ तथा इनका जो कुछ धन हो उसको छीनलो॥६९॥सत्यपराक्रमी श्रीकृष्णने इस प्रकार कठोर भाषण कर आज्ञा देते हुए कंसकी ओर आँखें फाड़ कर देखा ॥७०॥ केशव, नन्दगोप और पिता पर आक्षेप होने पर और जातिवालोंको व्यथित और देवकीको मूर्छित देख कर क्रोधमें भर गए ॥७१॥ उस समय केशवमें सिंहकी समान पराक्रम भर गया और महाभुज कंसका नाश करनेके लिये उस पर चढ़ना चाहने लगे ॥ ७२ ॥ तदनन्तर जिस प्रकार वायुसे

यथा खस्थो घनाघनः ॥ ७३ ॥ ददृशुर्न हि तं सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम् । केवलं कंसपार्श्वस्थं ददृशुः पुरवासिनः ॥ ७४ ॥ सोपि कंसस्तथायस्तः परीतः कालधर्मणा। आकाशादिव गोविन्दं मेने तत्रागतं प्रभुम् ॥ ७५ ॥ स कृष्णेनायतं कृत्वा बाहुं परिघसन्निभम् । मूर्द्धजेषु परामृष्टः कंसो वै रङ्गसंसदि ॥७६॥ मुकुटश्चापतत्तस्य कांचनो वज्रभूषितः । शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना ॥ ७७ ॥ स ग्रहग्रस्तकेशश्च कंसो निर्यत्नतां गतः । तथैव च विसम्मूढो वैक्लव्यं समपद्यत ॥ ७८ ॥ निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निःश्वसन् । न शशाक मुखं द्रष्टुं कंसः कृष्णस्य वै तदा ॥ ७९ ॥ विकुण्डलाभ्यां कर्णाभ्यां छिन्नहारेण वक्षसा । प्रलम्बाभ्यां च बाहुभ्यां गात्रैर्विसृतभूषणैः ८०

फैंका हुआ मेघ आकाशमें जहाँ तहाँ पहुँच जाता है, इसीप्रकार श्रीकृष्ण भी अखाड़ेमेंसे कूद कर कंसके आसनके पास पहुँच गए ७३ सब पुरवासियोंने उनको रङ्गमेंसे उछलते हुए न देखा, किन्तु उन्होंने उनको कंसके समीप खड़ा हुआ ही देखा ॥७४॥ इधर कंस भी कालधर्मसे दब कर व्याकुल होगया और उसने भी प्रभु गोविन्दको आकाशसे उतरा हुआ समझा ॥ ७५ ॥ इतनेमें ही श्रीकृष्णने अपनी परिघसमान भुजाको लम्बी कर सभामें कंसको बाल पकड कर खेंच लिया ॥ ७६ ॥ और जब श्रीकृष्णने उसको हाथसे पकडा तब उसका रत्न विभूषित मुकुट गिर पडा ॥७७॥ हाथसे केश पकडनेके कारण कंस कुछ यत्न न कर सका और मूढ होकर विकल होगया ॥ ७८ ॥ केशोंके पकड़े जानेसे कंस कृष्णके मुखको न देख सका और मुमूर्षुकी समान ऊर्ध्वश्वास लेने लगा ॥७९॥ उस समय उसके कानोंमेंसे कुण्डल निकल गए और उसके वक्षःस्थलका हार छिन्न भिन्न होगया और उसकी भुजाएँ (ऊपरको न उठ कर)

भ्रंशितेनोत्तरीयेण सहसावलितानन: । चेष्टमानस्समाक्षिप्तः कंसः कार्ष्णेन तेजसा ॥ ८१ ॥ नकर्ष च महारङ्गे गञ्चान्निष्क्रम्य केशवः । केशेषु तं यत्नाद्गृह्य कंसं क्लेशार्हतां गतम् ॥ ८२ ॥ कृष्यमाणस्य कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः । समाजवाटे परिखां देहकृष्टां चकार ह ॥ ८३ ॥ समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम् । कृष्णो विसर्जयामास कंसदेहमदूरतः ॥ ८४ ॥ धरण्यां मुदितः शिश्ये तस्य देहस्सुखोचितः । क्रमेण विपरीतेन पांसुभिः परुषीकृतः ॥ ८५ ॥ तस्य तद्वदनं श्यामं सुताक्षं मुकुटं विना । न विभाति विपर्यस्तं विपलाशं यथाम्बुजम् ॥ ८६ ॥ असंग्रामहतः

लम्बी २ होगई, और उनमें बँधे हुए बाजूबन्द आदि आभूषण खुलगए ॥८०॥ उसका दुपट्टा उतर कर दुपट्टेकी लपेटें उसकी गर्दनमें पड़गई इसप्रकार श्रीकृष्णने अपने तेजसे उसको खेंचा था ॥ ८१ ॥ श्रीकृष्णने कंसको पकड़ कर गञ्च परसे खेंच लिया फिर महारङ्गमें उसे नीचे गिरा कर (उसके ऊपर स्वयं चढ़ कर) उस क्लेश देने योग्य बने हुए कंसके केशोंको बलपूर्वक पकड़ उसको खेंचने लगे ॥ ८२ ॥ जब श्रीकृष्ण महाकान्तिमान् भोज राजको खेंचने लगे, तब उसके शरीरके खचेड़नेसे समाज वाटमें परिखा (खाई) बन गई ॥ ८३ ॥इस प्रकार श्रीकृष्णने समाज-वाटमें खेला कर उस गतायुको खेंचनेके अनन्तर उसके देहको वहाँ पासमें ही छोड़ दिया ॥ ८४ ॥ उसका सुख भोगने योग्य शरीर धूलसे कड़ा हो मसल जानेके अनन्तर पृथ्वीमें पड़ा था, यह सब विपरीतक्रमसे हुआ था, अर्थात् शूर इस प्रकार विना युद्ध किये ही नहीं मरते हैं ॥ ८५ ॥ जैसे पत्ते टूटने पर कमल शोभा नहीं पाता है,इसी प्रकार उसके मिचे हुए नेत्रों वाले मुकुट रहित और (गर्दन टूटनेसे डोलते हुए) विपर्यस्त और श्याम मुखकी शोभा उड़ गई ॥ ८६ ॥ कंस बाणोंसे न बिंध कर संग्राम

कंसस्स प्राणैरपरिक्षतः । केशग्राहान्निरस्तास्तुर्वीरमार्गान्निरा-
कृतः ॥ ८७ ॥ तस्य देहे प्रकाशन्ते सहसा केशवार्पिताः ।मांस-
च्छेदघनास्सर्वे नखाग्रा जीवितच्छिदः ॥ ८८ ॥ तं हत्वा पुण्डरी-
काक्षः महर्षाद्द्विगुणप्रभः । ववन्दे वसुदेवस्य पादौ निहतकण्टकः
मातुश्च शिरसा पादौ निपीड्य यदुनन्दनः । सा सिक्तप्रस्रवो-
त्पीडैः कृष्णमानन्दनिःसृतैः ॥ ९० ॥ यादवांश्चैव तान् सर्वान्
यथास्थानं यथावयः । पप्रच्छ कुशलं कृष्णो दीप्यमानः स्व-
तेजसा ॥ ९१ ॥ बलदेवोऽपि धर्मात्मा कंसभ्रातरमूर्जितम् ।
बाहुभ्यामेव तरसा सुनामानमपोथयत् ॥९२॥ सोऽजितारी जित-

के बिना ही मारा गया था, बाल पकड़नेसे उसके प्राण निकल्न
गए थे इस लिये वह वीरमार्गसे बहिष्कृत होगया था (अर्थात्
स्वर्ग और कीर्ति वीरमार्ग है, वह उन दोनोंसे भ्रष्ट होगया था)८७
(तब भी उसकी असद्गति नहीं हुई यह दिखाते हैं, कि-) उस
के देहमें सहसा केशवके मारे हुए जीवनका उच्छेद करने वाले
मांसके लोड़ोंसे घन (श्याम) नाखूनोंके निशान दीख रहे
थे ॥ ८८ ॥ उसको मारनेके कारण जिनकी कांति दूगनी होरही
थी ऐसे श्रीकृष्णने निष्कण्टक हो हर्षके साथ वसुदेवके चरणोंमें
प्रणाम किया ॥ ८९ ॥ फिर यदुनन्दनने शिर झुका कर माताके
चरणोंमें प्रणाम किया तब हर्षके कारण उसके स्तनों दुग्ध आगया
और उस दुग्धके टपकनेसे श्रीकृष्ण न्हा गए ॥ ९० ॥ तदनन्तर
अपने तेजसे दिपते हुए श्रीकृष्णने और २ यादवोंसे सम्बंध और
अवस्थाके अनुसार कुशलसमाचार बूझा ॥ ९१ ॥ धर्मात्मा बल-
देवने भी कंसके बलवान् भाई सुनामाको भुजाओंके बलसे ही
मार डाला (यह कंसका भाई द्रुमिलसे उत्पन्न हुआ था और
कंसका मित्र होनेसे उसका भाई कहलाता था, परन्तु उग्रसेनका
पुत्र नहीं था) ॥ ९२ ॥ तदनन्तर शत्रुओंको जीतनेके अनन्तर

क्रोधौ चिरविप्रोषितौ व्रजेऽस्वपितुर्भवनं वीरौ जग्मतुर्हृष्टमानसौ ६३
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंस-
वधो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच । भर्तारं पतितं दृष्ट्वा क्षीणपुण्यमिव ग्रहम् । कंसपत्न्यो हतं कंसं समन्तात् पर्यवारयन् ॥१॥ तं महीशयने सुप्तं क्षितिनाथं गतायुषम् । भार्यास्तस्य दृष्ट्वा शोचन्ति मृग्यो मृगपतिं यथा ॥ २ ॥ हा हतास्स्म महाबाहो हताशा हतबान्धवाः । वीरपत्न्यो हते वीरे त्वयि वीरव्रतप्रिये ॥३॥ इमामवस्थां पश्यन्त्यः पश्चिमां तव नैष्ठिकीम् । कृपणं राजशार्दूल विलापम्यबान्धवाः ॥४॥ छिन्नमूलास्स्म संवृत्ताः परित्यक्तास्त्वया विभो । त्वयि पञ्चत्वमापन्ने नाथेऽस्माकं महाबले ॥५॥ के नः क्रोधपरीताङ्गी रतिसंसर्गलालसाः । लता इव विचेष्टन्ती-

---

जिनका क्रोध शान्त होगया था, ऐसे व्रजवासी बलराम और श्रीकृष्ण प्रसन्नमनसे अपने पिताके भवनको चलने लगे ॥ ६३ ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ३०

वैशम्पायनजीने कहा, कि पुण्य क्षीण होने पर गिरे हुए नक्षत्रकी समान स्वामीको गिरा हुआ देख कर कंसकी पत्नियोंने मरे हुए कंसको चारों ओरसे घेर लिया १ जैसे हिरनियें मृगपति का शोक करती हैं, इसी प्रकार पृथिवीकी शय्या पर शयन करते हुए पृथिवीनाथको गतायु देख कर उसकी भार्याएँ शोक करने लगीं २ हा ! महाबाहो!हम वीरपत्नियें वीरव्रतको प्रिय समझने वाले तुम्हारे मारे जानेसे मारी गईं, हम सहसा बांधवहीन हो गई हैं ३ हे राजशार्दूल ! आपकी इस पिछली मरणावस्थाको देख कर हम बांधवों सहित कृपणता(दीनता)से विलाप कर रही हैं ४ हे विभो ! तुम्हारे त्यागनेसे हम जड़कटी सी हो गई है, हे नाथ ! आप महाबली थे,आपके मारे जाने पर५कोपसे व्याप्त

शयनीयानि नेष्यति ॥ ६ ॥ इदं ते सदृशं सौम्य हृद्यनिश्वास-
मारुतम् । दहत्यर्को मुखं कान्तं निस्तोयमिव पंकजम् ॥ ७ ॥ इमे
ते श्रवणे शून्ये न शोभेते विकुण्डले । शिरोधरायां संलीने सततं
कुण्डलप्रिये ॥ ८ ॥ क्व ते स मुकुटो वीर सर्वरत्नविभूषितः ।
अत्यर्थं शिरसो लक्ष्मीं यो दधारार्कसप्रभाम् ॥ ९ ॥ अनेन हि
कलत्रेण तवान्तःपुरशोभिना । कथं दीनेन कर्त्तव्यं त्वयि लोका-
न्तरं गते॥१०॥ननु नाम स्त्रियस्साध्व्यः प्रियभोगेष्ववञ्चिताः ।
पतीनामपरित्याज्यास्स त्वं नस्त्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥ अहो
कालो महावीर्यो येन पर्यायकर्मणा । कालतुल्यस्सपत्नानां त्वं
क्षिप्रमपनीयसे ॥ १२ ॥ वयं दुःखेष्वनुचितास्सुखेष्वेव त्वयै-

अङ्गों वाली, परन्तु रति लालसा वाली और कोपके कारण लताकी समान काँपती हुई हमको पर्यंकों पर कौन लेजायेगा ६ हे सौम्य ! तुम्हारी हृदयस्थ श्वासवायु तुम्हारे अनुकूल ही (सौम्य) थी, हा ! अब तुम्हारे सुन्दर मुखको, सूर्य जलरहित कमलकी समान,जला रहा है७सर्वदा कुण्डलोंसे प्रिय लगने वाले तुम्हारे यह गर्दन पर पड़े हुए दोनों कान कुण्डलरहित होनेसे शोभाशून्य होरहे हैं ८ हे वीर ! सर्वरत्नोंसे विभूषित अत एव सूर्यकी समान अधिकतर दिपाने वाला,तुम्हारा वह मुकुट कहाँ गया ? ९ जो तुम्हारी स्त्रियें रनवासमें फिर कर शोभा बढ़ाती थे अब तुम्हारे परलोकको चले जानेके कारण दीन होगई हैं, अब वे क्याकरें ?१०जो साध्वी पतिके भोगके समय निष्कपट हो कर बर्ताव करती हैं उनको पति त्यागा नहीं करते हैं,तो भी तुम हमको छोड़ कर कैसे जारहे हो ? ११ अहो ! काल बड़ा बली है, अत एव वह अपने लौटफेरके कर्म करके शत्रुओंको काल समान दीखने वाले तुमको भी जल्दीसे उठा कर लिये जाता है १२ हम दुःख भोगने योग्य नहीं है और तुमने हमें लाड़से रक्खा था, हे

श्रिताः । कथं वत्स्याम विधवा नाथ कार्पण्यमाश्रिताः ॥ १३ ॥
स्त्रीणां चारित्रलुब्धानां पतिरेकः परा गतिः । त्वं हि नस्सा गति-
श्छिन्ना कृतान्तेन बलीयसा ॥१४॥ वैधव्येनाभिभूतास्स्म शोक-
सन्तप्तमानसाः । रोदितव्यहृदे मग्नाः क्व गच्छामस्त्वया विना १५
सह त्वया गतः कालस्त्वदंके क्रीडितं कृतम् । क्षणेन त्वद्विहीना
नास्स्म अनित्या हि नृणां गतिः ॥ १६ ॥ अहो बलविपीनास्स्म
विपन्ने त्वयि मानद ।एकदुष्कृतकारिण्यस्सर्वा वैधव्यलक्षणाः१७
त्वया स्वर्गमतिच्छन्दैर्लालितास्स्म रतिप्रियाः । त्वयि कामवशा-
स्सर्वाः स नस्त्यज्य क्व गच्छसि ॥१८॥ अस्माकं त्वमनाथानां
नाथो ह्यसि सुरोपम । आसां विलपमानानां कुररीणामिव प्रभो ।
प्रतिवाक्यं जगन्नाथ दातुमर्हसि मानद ॥ १९ ॥ एवमार्तकुल-

नाथ ! अब हम विधवा होकर दीनतासे कैसे रहेंगी १३ चरित्रसे
प्रेम करने वाली स्त्रियोंकी एक पति ही गति है, परन्तु बलवान्
यमराजने उस हमारी एक गति तुमको भी काट डाला १४ हम
विधवा होनेसे तिरस्कृत होरही हैं और हमारा हृदय शोकसे जला
जारहा है, हम रोनेके समुद्रमें डूब रही हैं, आपके विना हम कहाँ
जाँय १५ हमारा समय तुम्हारे साथ बीतता था, तुम्हारी गोदी
में हमने क्रीड़ा की थी, परन्तु हम अब क्षण भरमें तुमसे छूट गईं,
हा ! मनुष्योंकी गति अनित्य है १६ हे सत्कार करने वाले !
तुम्हारे विपत्तिमें पड़ने पर हमारा सब बल जाता रहा, हम सबों
ने एकसा ही पाप किया होगा, इसी लिये हम सबको विधवा-
पनका चिन्ह धारण करना पड़ा है १७ हम रतिप्रिय स्त्रियोंको
आपने स्वर्गकी समान सुख दिये थे,हम सब तुम्हारी इच्छानुसार
चलती थीं, अब तुम हमें क्यों छोड़ कर कहाँ जाते हो १८ हे
देवताकी समान ! तुम हम अनाथनियोंके नाथ हो हे प्रभो ! हम
कुररीकी समान विलाप करती हुई अपनी स्त्रियोंको तुम कुछ

अस्य शाम्यमानेषु बन्धुषु । गमनं ते महाभाग दारुणं प्रतिभाति नः ॥२०॥ नूनं कान्ततराः कान्त परलोके वरस्त्रियः । यतस्त्वं प्रस्थितो वीर विहायेमं गृहे जनम् ॥ २१ ॥ किं नु ते कारणं वीर भार्यास्वेतासु भूरिद । आर्तनादं रुदन्तीषु मन्योहान्नानबुध्यसे ॥ २२ ॥ अहो निष्करुणा यात्रा नराणामौर्ध्वदेहिकी । यत्परित्यज्य दारान्स्वान्निरपेक्षा व्रजन्ति हि ॥२३॥ अपतित्वं स्त्रियाश्श्रेयो न तु शूरः पतिः स्त्रियाः । स्वर्गस्त्रीणां प्रियाश्शूरास्तेषामपि च ताः प्रियाः ॥२४॥ अहो क्षिप्रमदृश्येन नयता त्वां रणप्रियम् । प्रहृतं नः कृतान्तेन सर्वासामन्तरात्मसु ॥२५॥ हत्वा जरासन्धबलं जित्वा यक्षांश्च संयुगे । कथं मानुषमात्रेण हतस्त्वं जगतीतले ॥ २६ ॥ इन्द्रेण सह संग्रामं कृत्वा सायकविग्रहम् ।

उत्तर तो दो।१९आपके कलत्रवर्गके बान्धवोंके शान्त होजाने पर हे महाभाग ! आपका भी चला जाना हमें बड़ा दारुण लगता है २० हे कान्त ! परलोककी श्रेष्ठ स्त्रियें तुम्हें अधिक प्रिय हैं इसे लिये तुम घरमें हमको छोड़कर प्रस्थान कर रहे हो २१ हे वीर !क्या कारण है कि-तुम अपनी भार्याओंके आर्तनाद करके रोने पर भी मोहवश कुछ नहीं समझते ॥ २२ ॥ अरे ! पुरुषों की और्ध्वदेहिकी यात्रा बड़ी निष्करुण होती है, कि-वेअपनी स्त्रियोंको त्याग कर निरपेक्ष होकर चले जाते हैं ॥ २३ ॥ स्त्रीका पतिविहीन होना अच्छा, और शूरपतिकी पत्नी होना अच्छा नहीं, क्योंकि-शूर पुरुष स्वर्गकी स्त्रियोंके प्यारे होते हैं और वे भी उनको प्यारी होती हैं ॥ २४ ॥ अहो ! अदृश्य रह शीघ्रतासे तुम रणप्रियको लेजाने वाले कालने हम सबकी अन्तरात्मा पर प्रहार किया है २५तुमने युद्धमें यक्षोंको और जरासन्धकी सेनाको भी जीत लिया था,फिर तुम पृथ्वीमें मनुष्यसे ही क्यों मारे गए २६ तुम बाणोंसे इन्द्रके साथ संग्राम

अमर्त्यैरजितो युद्धे मर्त्येनासि कथं हतः ॥ २७ ॥ त्वया सागर-
मक्षोभ्यं विक्षोभ्य शरवृष्टिभिः । रत्नसर्वस्वहरणं जित्वा पाश-
धरं कृतम् ॥ २८ ॥ त्वया पौरजनस्यार्थे मन्दं वर्षति वासवे ।
सारदैर्जलदान् जित्वा बलाद्वर्षं प्रवर्तितम् ॥ २९ ॥ प्रतापावन-
तास्तुभ्यं नव तिष्ठन्ति पार्थिवाः । प्रेषयन्तो वराहाणि रत्नान्या-
च्छादनानि च ॥ ३० ॥ तवैवं देवकल्पस्य दृष्टवीर्यस्य शत्रुभिः ।
कथं प्राणान्तकं घोरमीदृशं भयमागतम् ॥ ३१ ॥ प्राप्तास्स्मो
विधवाशब्दं त्वयि नाथे निपातिते । अप्रमत्ताः प्रमत्तेन कृतान्तेन
निराकृताः ॥३२॥यद्येवं नाथ गन्तव्यं यदि वा विस्मृता वयम् ।
वाङ्मात्रेणापि यामीति वक्तव्ये कः परिश्रमः ॥३३॥प्रसीद नाथ
भीतास्स्म पादौ ते याम मूर्द्धभिः । अलन्दूरप्रवासेन निवर्तस्व

करके अमर्त्य देवताओंसे भी अजेय रहे, परन्तु अब तुम मनुष्य
से कैसे मारे गए ॥ २७ ॥ तुमने अक्षोभ्य सागरको बाणोंकी
वर्षासे क्षुब्ध करके पाशधारी वरुणको जीत कर सब रत्न छीन
लिये थे ॥२८। जब इन्द्र मन्दवृष्टि करता था, उस समय तुमने
अपने ग्राम और नगरके लिये बाणोंसे मेघोंको जीतकर बल-
पूर्वक वर्षा करवाई थी २९सब राजे तुम्हारे प्रतापसे नम्र होकर
तुम्हें श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य रत्न और वस्त्र भेजते रहते हैं । ३० ।
शत्रुओंने जिनका पराक्रम देखा है ऐसे देवकल्प आपके ऊपर
यह घोर प्राणान्तक दुःख कैसे आपडा ॥ ३१ ॥हा ! हम अप्र-
मत्त थीं प्रमत्त कृतान्त (यमराज) ने हमारा तिरस्कार कर
डाला, आप नाथके गिर जाने पर हम विधवा कहलाने लगेंगी
हे नाथ।यदि आपको ऐसे जाना ही है और आपने हमें भुला ही
दिया तो फिर वाणीसे 'मैं जाता हूँ' इतना कहनेमें भी आप
परिश्रम समझते हैं ? ३३हे नाथ ! हम डर रही हैं हम आपके
चरणोंमें मस्तक रखती हैं आप दूर जानेका विचार स्थगित

नराधिप ॥ ३४ ॥ अहो वीर कथं शेषे निपन्नस्तृणपांसुषु ।
शयानस्य हि ते भूमौ कस्मान्नोद्विजते वपुः ॥ ३५ ॥ केनं सुप्त-
महारोयं दत्तोस्माकमतर्कितः । मदत्तं येन सर्वासु नारीष्वेवं
सुदारुणम् ॥ ३६ ॥ रुदितानुशयो नार्या जीवन्त्याः परिदेवनम् ।
किं वयं सति गन्तव्ये सह भर्त्रा रुदामहे ॥३७॥ एतस्मिन्नन्तरे
दीना कंसमाता प्रवेपती । क मे वत्सः क्व मे पुत्र इति रोरुयती
भृशम् ॥ ३८ ॥सापश्यन्निहतं पुत्रं निष्प्रभं शशिनं यथा । हृद-
येन विदीर्णेन भ्राम्यमाणा पुनः पुनः ॥ ३९ ॥ पुत्रं समभि-
वीक्षन्ती हा हतास्मीति वाशती । स्नुषाणामार्तनादेन विललाप
रुरोद च ॥४०॥ सा तस्य वदनं दीनमुत्सङ्गे पुत्रगृद्धिनी । कृत्वा
पुत्रेति कारुण्यं विललापार्तया गिरा ४१पुत्र शूरव्रते युक्त ज्ञातीनां

कर दीजिये और हे राजन् ! लौट आइये ३४ अहो वीर ! आप
तृण और धूलमें लोटकर कैसे सोरहे हैं, भूमिमें सोनेपर भी
आपका शरीर क्यों नहीं अकुलाता है ॥ ३५ ॥ अरे रे ! यह
सोते २ हम पर किसने अतर्कित महार कर डाला अरे ! इस
प्रकार सब नारियोंके साथ किसने दारुण वर्ताव किया है ३६
अरे ! जीवित रहने वाली नारीका विलाप अन्तःकरणका रोना
हुआ करता है, अरे ! हमें तो भर्ताके साथ ही जाना चाहिये था,
फिर भी हम क्यों रोर हीं हैं ॥३७॥ इतनेमें ही कंसकी माता
काँपती २ तहाँ आई और मेरा पुत्र कहाँ हैं ? मेरा वत्स कहाँ
हैं ? इस प्रकार कह कर जोरसे रोने लगी ॥ ३८ ॥ तब उसने
निष्प्रभ चन्द्रमाकी समान अपने पुत्रको मरा हुआ देखा, तद-
नन्तर वह विदीर्ण हृदयसे इधर उधर घूमने लगी३९वह पुत्रको
देख कर हाय ! मैं मारीगई क्या ? कह पुत्रवधुओंके विलापको
सुन कर और भी रोने लगी ४० उस पुत्रको चाहने वालीने
अपने पुत्रके दीन मुखको अपनी गोदीमें धर लिया और हा

नन्दिवर्द्धन । किमिदं त्वरितं वत्स प्रस्थानं कृतवानसि ॥४२॥ गन्तुप्राप्तानिविष्टते किं पुत्र नियमं विना । वत्स नैवंविधा भूमौ शेरते कृतलक्षणाः ॥ ४३ ॥ रावणेन पुरा गीतश्श्लोकोयं साधुसम्मतः । बलज्येष्ठेन लोकेषु राक्षसानां समागमे ॥ ४४ ॥ एवमूर्जितवीर्यस्य मम देवनिघातिनः । बान्धवेभ्यो भयं घोरं दुर्निवार्यं भविष्यति ॥४५॥ तथैव ज्ञातिलुब्धस्य मम पुत्रस्य धीमतः। ज्ञातिभ्यो भयमुत्पन्नं शरीरान्तकरं महत् ॥४६॥ सा पतिं भूपतिं वृद्धमुग्रसेनं विचेतसम् । उवाच रुदती वाक्यं विवत्सा हरिणी यथा ॥४७॥ एह्येहि राजञ्छुद्धात्मन्पश्य पुत्रं जनेश्वरम् । शयानं वीरशयने वज्राहतमिवाचलम् ॥४८॥ अस्य कुर्मो महाराज निर्गाण-

पुत्र ! कह कर आर्तवाणीमें विलाप करने लगी४१हे शूरव्रतका पालन करने वाले पुत्र ! हे जातिवालोंके आनन्दको बढाने वाले! हे वत्स ! तूने शीघ्रतासे प्रस्थान क्यों कर दिया ॥ ४२ ॥ हे पुत्र ! तू नियमको त्याग कर खुले हुए स्थानमें क्यों सो रहा है हे वत्स ! ऐसे कृतलक्षण पुरुष भूमिमें नहीं सोते हैं ॥ ४३ ॥ पहिले लोकोंसे बलमें बढ़े हुए रावणने राक्षसोंके समाजमें यह सत्पुरुषोंका माना हुआ श्लोक ठीक ही कहा था कि ॥ ४४ ॥ "मैं देवताओंको दबाने वाला हूँ और पराक्रमी हूँ तब भी मुझे बांधवोंसे घोर दुःख मिलेगा" ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार जाति वालोंसे प्रेम करने वाले मेरे बुद्धिमान् पुत्र पर भी जाति वालोंसे ही प्राणान्तकारी घोर दुःख भोगना पड़ा है॥४६॥ तदनन्तर उस ने अपने अचेत पड़े हुए वृद्ध पति राजा उग्रसेनसे मृगशावकरहित हरिणीकी समान विलाप करते हुए यह कहा, कि-॥ ४७ ॥ हे शुद्धात्मन राजन् ! आइये ! आइये ! और वज्रसे मारे हुए पर्वतकी समान वीरशय्या पर शयन करते हुए अपने पुत्रको देखिये ४८ हे महाराज ! अब आपको इसके घरसे निकाल कर श्मशान में

सदृशीं क्रियाम् । प्रेतत्वमुपपन्नस्य गतस्य यमसादनम् ॥४९॥ वीरभोग्यानि राज्यानि वयं चापि पराजिताः । गच्छ विज्ञाप्यतां कृष्णः कंससत्कारकारणात् ॥५०॥ मरणान्तानि वैराणि शान्ते शान्तिर्भविष्यति । प्रेतकार्याणि कार्याणि मृतः किमपराध्यते ५१ एवमुक्त्वा पतिं भोजं केशानाकृष्य दुःखिता। पुत्रस्य मुखमीक्षन्ती विललापैव सा भृशम् ॥ ५२ ॥ इमास्ते किं करिष्यन्ति भार्या राजन्सुखोषिताः।त्वां पतिं सुपतिं प्राप्य या विपन्नमनोरथाः५३ इमं ते पितरं वृद्धं कृष्णस्य वशवर्तिनम् । कथं द्रक्ष्यामि शुष्यन्तं कासारसलिलं यथा ॥ ५४ ॥ अहं ते जननी पुत्र किमर्थं नाभिभाषसे । प्रस्थितो दीर्घमध्वानं परित्यज्य प्रियं जनम् ॥ ५५ ॥

लेजानेकी क्रिया करनी चाहिये, क्यों कि-यह मर गया है और यमसदनको प्राप्त होगया है ॥ ४९ ॥ इस राज्यको अब वीर पुरुष भोगेंगे, हमारा तो पराजय होचुका अब तुम कंसका सत्कार करनेके लिये श्रीकृष्णसे कह कर आज्ञा ले आओ ॥ ५० ॥ (और कहना कि-) वैर मरण होने पर समाप्त होजाता है अत एव उसके शान्त होने पर आपको शान्त होजाना चाहिये अब यह मरा हुआ कंस आपका क्या बिगाड़ कर सकता है अतः अब आप हमें प्रेतकार्य करनेकी आज्ञा दीजिये, ॥ ५१ ॥ बालोंको खेंच कर दुःखित होती हुई वह देवी इस प्रकार अपने पतिसे कह पुत्रके मुखकी ओर देख परम विलाप करने लगी, कि-॥ ५२ ॥ हे राजन् ! ये सुखमें पली हुई भार्यायें तुमसे सुपति को पानेके अनन्तर भी मनोरथ विफल होनेसे अब क्या करेंगी५३ हाय ! तेरे वृद्ध पिता कृष्णके वशमें हो जब सूखते हुए सरोवर के जलकी समान सूखने लगेंगे, तो मैं उनकी ऐसी दशाको कैसे देखूँगी ॥ ५४ ॥ मैं तेरी माता हूँ, तब भी हे पुत्र ! तू मुझसे क्यों नहीं बोलता है? (हां ! तू बोले कैसे !) तू तो अपने प्रिय

अहो न रान्यभाग्यायाः कृतान्तेनाभिवर्तिना । आच्छिद्य मम सन्दायो नीयसे नयकोविदः ॥ ५६ ॥ दानमानगृहीतानि कृता-न्येतानि तैर्गुणैः । रुदन्ति तव भृत्यानां कुलानि कुलयूथप ५७ उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो महाबल । त्राहि दीनं जनं सर्वं पुर-मन्तः पुरं यथा ५८ रुदतीनां भृशार्तानां कंसस्त्रीणां सुविस्तरम् । जगामास्तं दिनकरः । सन्ध्यारागेण रञ्जितः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसस्त्री-विलापो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

वैशम्पायन उवाच । उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ । पुत्रशोकाभिसन्तप्तो विषपीत इव श्वसन् ॥ १ ॥ स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम् । पश्चात्तापाद्ध्यायन्तं कंसस्य निधनाविलम् ॥ २ ॥ कंसनारीविलापांश्च श्रुत्वा स करुणा-

बान्धवोंको त्याग कर लम्बे मार्गसे चला गया है ॥ ५५ ॥ अहो वीर ! मैं बड़ी मन्दभाग्य हूँ, कि-काल मेरा तिरस्कार कर तुझसे शास्त्रचतुर मुझको (भोजन) देने वालेको भी काट कर लिये जाता है ॥ ५६ ॥ हे कुलयूथप ! तूने जिनको दान देकर और जिनका सत्कार करके अपने यहाँ रक्खा था ऐसे तेरे भृत्योंके कुल ये (सामने खड़े) रोरहे हैं ५७ हे नरशार्दूल ! तू उठ और हे महाभुज ! महाबल ! इन सब दीनजनोंकी और नगरकी अन्तः पुरकी समान रक्षा कर ५८ कंसकी स्त्रियोंके आर्त होकर बड़ा भारी विलाप करते २ ही संध्याकी लालिमासे रंजित सूर्य अस्त होगया ५९ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ३१

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर पुत्रशोकसे सन्तप्त उग्रसेन विष खा लेने वालेकी समान साँस भरते हुए श्रीकृष्णके पास दुःखित होते हुए पहुँचे १ तहाँ उन्होंने श्रीकृष्णको यादवोंसे घिरा हुआ देखा, वे कंसके मारनेका पश्चात्ताप कर रहे थे २ वे कंस

न्वहून् । गर्हमाणं तथात्मानं तस्मिन् यादवसंसदि ॥ ३ ॥ अहो मयातिबाल्येन रोषाद्दोषानुवर्तिना । वैधव्यं स्त्रीसहस्राणां कंसस्यास्य वधे कृतम् ॥ ४ ॥ कारुण्यं खलु नारीषु प्राकृतस्यापि जायते । एवमार्त रुदन्तीषु मया भर्तरि पातिते ॥५॥ परिदेवितमात्रेण शोकः खलु विधीयते । कृतान्तस्यानभिज्ञानां स्त्रीणां कारुण्यसम्भवः ॥ ६ ॥ कंसस्य हि वधश्श्रेयान् प्रागेवाभिमतो मम । सतामुद्वेजनीयस्य पापेष्वभिरतस्य च ॥ ७ ॥ लोके पतितवृत्तस्य परुषस्याल्पमेधसः । अक्लिष्टं मरणं श्रेयो न विद्विष्टस्य जीवितम् ॥ ८ ॥ कंसः पापरतश्चैव साधूनामप्यसम्मतः । धिक्शब्दपतितश्चैव जीविते चास्य का दया ॥ ९ ॥ स्वर्गं तपोभृतो

की स्त्रियोंके वहुतसे करुणोत्पादक विलापोंको सुन कर यादवोंकी सभामें अपनी निन्दा कर रहे थे ३ अहो ! मैंने अति बालकपनसे रोषपूर्वक दूषितमार्गका अवलम्बन करके कंसका वध करके सहस्रों स्त्रियोंको विधवा बना दिया है ४ साधारण मनुष्यको भी नारियों पर करुणा आजाती है, मैंने इनके भर्ताको मार डाला है इस लिये यह आर्त होकर रोरही हैं ५ अब इनके रोनेसे शोक ही बढ़ता है,यमराज इन स्त्रियोंको नहीं जानते यदि यमराज इनको विलपती देख लें तो यमराजको भी दया आजाय ६ कंसका तो मारा जाना ही अच्छा था, इस बातको तो मैं पहिलेसे ही चाहता था, क्यों कि-वह सज्जनोंको उद्विग्न करता रहता था और पापकर्मोंमें परायण रहता था, ७ उसका आचरण लोकमें निन्दित था और वह अल्पबुद्धि कठोरतासे बर्ताव किया करता था, ऐसे पुरुषका विना क्लेश पाये मर जाना ही अच्छा है, विद्वेषी पुरुषका जीवित रहना अच्छा नहीं है ८ कंस पापमें संलीन रहता था और साधु पुरुष उसका सम्मान नहीं करते थे और वह धिक् शब्द कहने योग्य और पतित था, उसके जीवन पर दया क्या

वासः फलं पुण्यस्य कर्मणः। इहापि यशसा युक्तस्स्वर्गस्थैरवधार्यते ॥ १० ॥ यदि स्युर्निर्वृत्ता लोकास्स्युश्च धर्मपराः प्रजाः। नरा धर्मप्रवृत्ताश्च न राज्ञामनयस्स्पृशेत् ॥११॥ निग्रहे दुष्टवृत्तीनां कृतान्तः कुरुते फलम्। इष्टधर्मेषु लोकेषु कर्तव्यं पारलौकिकम् १२ अतीव देवा रक्षन्ति नरं धर्मपरायणम्। कर्तारस्सुलभा लोके दुष्कृतस्य हि कर्मणः। हतस्सोयं मया कंसस्साध्वेतदवगम्यताम्। मूलच्छेदः कृतस्तस्य विपरीतस्य कर्मणः ॥१४॥ तदेव सान्त्वयतां सर्वश्शोकार्तः यदुराजनः। पौराश्च पुर्याः श्रेण्यश्च सान्त्वयन्तां सर्व एव हि ॥ १५ ॥ एवं ब्रुवति गोविन्दे विवेशानतानतः। उग्रसेनो यदून्कृत्य पुत्रकिल्बिषशंकितः ॥१६॥ स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुसंसदि। बाष्पसन्दिग्धया वाचा दीनया सज्ज-

---

दिखलाना ६ पुण्यमय कर्मोंके फलसे तपोधारी स्वर्गमें जाते हैं और पुण्यात्मा पुरुष यहाँ भी यश पाता हुआ स्वर्गस्थ पुरुषकी समान रहता है १० यदि मनुष्य सन्तुष्ट रहें, प्रजा धर्मपरायण रहे और मनुष्य धर्ममें परायण रहें तो राजाओंको अनीति छू नहीं सकती ११ कृतान्त (यमराज) दुष्टवृत्तियोंका निग्रह करके फल देते हैं और धर्मको इष्ट समझने वाले पुरुषोंको परलोकमें (पुण्य) फल देते हैं १२ धर्मपरायण मनुष्यकी देवता बड़ी रक्षा करते हैं पापकर्मके करने वाले मनुष्य तो इस लोकमें मिलने सुलभ हैं ॥१३॥ मैंने कंसको मार डाला, इसको अच्छा ही समझना चाहिये, क्योंकि-मैंने इसके विपरीत कर्मकी जड़ ही काट डाली १४ अब सब शोकार्त स्त्रियोंको सान्त्वना देनी चाहिये और सब पुरवासियोंको और श्रेणी वालोंको भी ढाढस देना चाहिये १५ श्रीकृष्ण इस प्रकार बात चीत कर रहे थे, इतनेमें पुत्रके अपराधसे शंकित होते हुए उग्रसेन मस्तक झुका कर यदुओंके साथ वहाँ आये १६ तदनन्तर उसने यदुओंकी सभामें लजाती हुई

मानयं ॥ १७ ॥ पुत्रो निर्यापितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः । स्वधर्माधिगता कीर्तिर्नाग विश्राविनं भुवि॥१८॥ स्थापितं सत्सु माहात्म्यं शंकिताः रिपवः कृताः । स्थापितो यादवो वंशो गर्विताश्सुहृदः कृताः ॥१९॥ सामन्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते महाशितः । मित्राणि त्वां भजिष्यन्ति संश्रयिष्यन्ति पार्थिवाः २० प्रकृतयोऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः । सन्धिविग्रह मुख्यास्त्वां प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः ॥ २१ ॥ हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं पदातिगणसङ्कुलम् । प्रतिगृहाण कृष्णेदं कंसस्य बलमव्ययम् २२ धनं धान्यं च यत्किंचिद्रत्नान्याच्छादनानि चातीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पूरुषाः ॥२३॥ स्त्रियो हिरण्यं यानानि यदन्यद्वसु किंचन । एवं हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे २४ प्रतिष्ठितायां मेदिन्यां यदूनां शत्रुसूदन । त्वं गतिश्चागतिश्चैव

दीन और रुँधे हुए कण्ठवाली वाणीमें श्रीकृष्णसे कहा, कि–१७ तुमने क्रोधमें भर कर मेरे पुत्रको समाप्त कर दिया इस प्रकार शत्रुको यमराजकी दिशा दक्षिण दिशाकी ओर भेज दिया, यादव वंशको रोक लिया और अपने मित्रोंको गर्वीला बना दिया १८ अब सामन्त राजाओंमें तुम्हारा यश फैल गया है, अब मित्र तुम्हारा सेवन करेंगे और राजे तुम्हारा आश्रय लेंगे २० अब प्रकृति मण्डल तुम्हारे अनुकूल रहेगा और द्विजाति तुम्हारी स्तुति करेंगे और सन्धि विग्रहमें मुख्य मन्त्री भी तुमको आजसे प्रणाम करेंगे २१ हे कृष्ण ! अब आप कंसके इस हाथी घोड़े और पैदलोंसे भरपूर अव्यय सेनादलको ग्रहण करिये २२ हे कृष्ण ! अब आपके नियुक्त किये हुए पुरुष आपको धन धान्य वस्त्र आदि देंगे ॥ २३ ॥ स्त्रियें सुवर्ण सवारियें तथा और भी सब धन (सब आपका ही है) हे कृष्ण ! युद्धके कारण ऐसा ही परिपूर्ण योग पड़ गया है २४ हे यदुओंके शत्रुओंको मारनेवाले !

यदूनां यदुनन्दन ॥ २५ ॥ शृणुष्व वदतां वीर कृपणानामिदं वचः । अस्य त्वत्कोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः ॥ २६ ॥ तव प्रसादाद्गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह । तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य निपन्नस्यौर्ध्वदेहिकम् ॥२७॥ सस्नुषोहं सभार्यश्च चरिष्यामि मृगैस्सह । प्रेतसत्कारमात्रेण कृते बान्धवकर्मणि॥२८॥ आनृण्यं लौकिकं कृष्ण गताः किल भवन्ति हि । तस्याग्निं पश्चिमं कृत्वा चितिस्थाने विधानतः । तोयप्रदानमात्रेण कंसस्यानृण्यमाप्नुयाम् एतत्ते कृष्ण विज्ञाप्यं स्नेहोत्र मयि युज्यताम् । प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमां क्रियाम् ॥३०॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः । प्रत्युवाचोग्रसेनं तं सान्त्वपूर्वमिदं वचः । ३१ ।

इस प्रकार पूर्व्वोक्त प्रतिष्ठित होने पर, हे यदुनन्दन ! अब तुम ही सकल यादवोंकी गति और अगतिरूप हो २५ हे वीर ! अब तुम हम कृपणता (दीनता) से भाषण करने वालोंके इस वचन को सुनो. कि–हे गोविन्द ! हम अब आपके कोपसे भस्म हुए इस अशुभ कर्म करने वाले कंसका आपकी कृपा होने पर प्रेतकार्य करना चाहते हैं,मैं इस मरे हुए नरेन्द्रकी और्ध्वदैहिक क्रिया करके ॥ २६ ॥ २७ ॥ अपनी भार्या और पुत्रवधुओंके साथ वनमें मृगोंके साथ रहूँगा,हे कृष्ण!प्रेतका सत्कार करनेके अनन्तर बान्धव अपने लौकिक ऋणसे छूट जाते हैं, इसीलिये मैं चितास्थानमें उसकी पश्चिमाग्नि कर उसको जलदेने मात्रसे ही उससे उद्धार होजाऊँगा ॥२८॥२९॥ हे कृष्ण ! मैं इसकी तुमसे आज्ञा माँगता हूँ,आशा है आप स्नेहका बर्ताव कर इसकी तो आज्ञा देही देंगे, दीन मनुष्यको पश्चिम क्रिया करनेसे सुगति मिलती है ॥ ३० ॥ इस बातको सुन कर कृष्ण परम विस्मित हुए और उन्होंने उग्रसेनको ढाढस देते हुए यह बात कही कि–हे तात !आपका कथन समयानुसार है,हे राजशार्दूल ! आपका

कालयुक्तमिदं तात तवैतद्यत्प्रभाषितम्। सदृशं राजशार्दूल वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ ३२ ॥ यस्त्वमेवंविधो भूपं गतेर्थे दुरतिक्रमे। प्राप्स्यते नृपसत्कारं कंसः प्रेतगतोपि सन् ॥३३॥ कुले महति ते जन्म वेदान्विदितवानसि। कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा ॥ ३४ ॥ स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव। पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते ॥ ३५ ॥ श्रुतवन्तोर्थवन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः। ब्रह्मण्या नयसम्पन्ना दीनानुग्रहकारिणः लोकपालसमास्तात महेन्द्रसमविक्रमाः। क्षितिपालाः कृतान्तेन नीयन्ते नृपसत्तम ॥ ३७ ॥ धार्मिकास्सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः। क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निधनं गताः ॥ ३८ ॥ स्वयमात्मकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्। प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥ एषा ह्यन्तर्हिता माया दुर्विज्ञेया

ऐसा कहना आपके कुल और चरित्रके अनुकूल है ३२ तुम ऐसी दुर्घटनाके होने पर भी ऐसा भाषण कर रहे हो अतः कंसको मरने पर भी राजाओंकेसा सत्कार होगा ३३ तुम बड़े कुलमें उत्पन्न हुए हो, और तुम्हें वेदोंका ज्ञान है, हे तात ! फिर भी तुम प्रारब्धको लाँघा नहीं जासकता ? इस बातको क्यों नहीं समझते ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! स्थावर और चर भूतोंका पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म कालसे पकता रहता है (उसीके फलको वे पाते रहते हैं) ३५ हे नृपसत्तम ! हे तात ! शास्त्रज्ञ अर्थको जानने वाले दाता प्रियदर्शन ब्रह्मण्य नीतिसम्पन्न और दीनों पर अनुग्रह करने वाले महेन्द्रकी समान पराक्रमी लोकपालसरीखे राजाओंको भी यमराज पकड़कर लेजाता है ३६-३७ धार्मिक सब भावोंको जानने वाले सत्यधर्म परायण प्रजापालनमें तत्पर क्षत्रधर्मपरायण चतुर पुरुष भी कालके कारण मर गए हैं ३८ देखा जाता है, कि-अपना किया हुआ शुभ वा अशुभ कर्म ही समया-

सुरैरपि यथार्थं मुह्यते लोको यत्र कर्मैव कारणम् ॥ ४० ॥ कालेनाभिहतः कंसः पूर्वकर्मप्रचोदितः । न ह्यहं कारणं तत्र कालः कर्म च कारणम् ॥ ४१ ॥ सूर्यसोममयं तात कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् । कालेन निधनं गत्वा कालेनैव च जायते ॥४२॥ स कालस्सर्वभूतानां निग्रहानुग्रहे रतः । तस्मात्सर्वाणि भूतानि कालस्य वशगानि वै ॥ ४३ ॥ स्वदोषेणैव दग्धस्य सूनोस्तव नराधिप । नाहं वा कारणं तत्र कालस्तत्र च कारणम् ॥ ४४ ॥ अथवाहं भविष्यामि कारणं नात्र संशयः । परायणपरः कालः किं करि-

नुसार सब प्राणियोंको प्राप्त होना रहता है ३९ इस मनमें रहने वाली मायाको देवता भी कठिनतासे जान सकते हैं प्राणी जो मोहमें पड़ते हैं, इसमें उनका कर्म ही कारण है ४० अपने पहिले कर्मोंके अनुसार कंसको कालने मार डाला है, मैं इसमें कारण नहीं हूँ अर्थात् मैं दोषी नहीं हूँ,काल और कर्म ही कंसके वधमें कारण हैं ॥ ४१ ॥ हे तात ! सकल सूर्यमय और चन्द्रमय स्थावर जंगम पदार्थोंका समूह कालसे ही उत्पन्न होता है और कालसे ही मर जाता है ॥ ४२ ॥ वह काल सकल प्राणियोंका निग्रह (दण्ड) और अनुग्रह करनेमें लगा रहता है, इस लिये सब प्राणी कालके वशवर्ती हैं ॥ ४३ ॥ हे नराधिप ! तुम्हारा पुत्र अपने दोषसे ही भस्म होगया है, मैं इसमें कारण नहीं हूँ इसमें काल ही कारण है ॥ ४४ ॥ अथवा मैं ही इसमें कारण हूँगा, इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है, परायणपर काल भी अकारण होने से क्या कर सकता है (अर्थात् पर (कर्म) के अयन (गमन) के अधीन रहने वाला काल भी कर्मके अधीन रहता है, इस लिये यह अपने कर्मसे ही मारा गया है (कालने भी इसे नहीं मारा है) और मैं भी शस्त्रकी समान निमित्तमात्र हूँ, शास्त्रमें कहा भी है, कि-"स्वकर्मैव नरं हन्ति न शस्त्ररिपुमृत्यवः । नेभं नेभ्यं

त्यत्यकारणः॥४५॥कालस्तु बलवान्राजन्दुर्विज्ञेया हि सा गतिः।
परावरविशेषज्ञा यां यान्ति समदर्शिनः ॥ ४६ ॥ गतिः कालस्य
सा येन सर्वं कालस्य गोचरम् । ब्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयतां
वचः ॥ ४७ ॥ न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृपकांक्षितः । न
चापि राज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः ॥ ४८ ॥ किन्तु लोक-
हितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव । व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो
विनिपातितः ॥ ४९ ॥ अहं स एव गोमध्ये गोपैः सह वनेचरः।
प्रीतिमान्विचरिष्यामि कामचारी यथा गजः ॥ ५० ॥ एतावच्छ-
तशोऽप्येवं सत्येनैतद्ब्रवीमि ते।न मे कार्यं नृ त्वेन विज्ञाप्यं क्रिय-
तामिदम् ॥ ५१ ॥ भवान्राजास्तु मान्यो मे यदूनामग्रणीः प्रभुः।

न वा सभ्यं चोरहत्याऽवलम्बते" अपना कर्म ही मनुष्यको मार डालता है, शस्त्र रिपु और मृत्यु उसको नहीं मारते, चोरकी हत्या हाथी हाथीवाले और सभ्य पुरुषको नहीं लग सकती)४५ हे राजन्! काल बड़ा बली है और पर तथा अवरके विशेष (भेद) को जानने वाले समदर्शी जिसको पाते हैं उस (कालसे) पर (मोक्षरूप) गतिको जानना बड़ा कठिन है ॥ ४६ ॥ सब कालके अधीन होता चला जाता है, यही कालकी गति है, हे तात! अब मैं (कालवश) जिस वचनको कहता हूँ, उसको आप करिये ॥ ४७ ॥ मुझे राज्यसे कुछ काम नहीं है, और मैं राजा बननेकी अभिलाषा भी नहीं करता हूँ और मैंने राज्यके लोभसे कंसको नहीं मारा है ॥ ४८ ॥ किन्तु मैंने तो संसारका हित कर कीर्ति पानेके लिये इस कुलको बिगाड़ने वाले तुम्हारे पुत्रको भाई सहित मारा था ॥ ४९ ॥ मैं तो अब भी इच्छा-नुसार विचरण करने वाले हाथीकी समान गौओंके मध्यमें प्रसन्न होता हुआ गोपोंके साथ वनमें ही विचरण करना चाहता हूँ ५०और यह बात तो मैं सौ बार सत्य कहता हूँ, कि–मेरा

विजयायाभिषिच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम ॥५२॥ यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा। मया निसृष्टं राज्यं स्वं चिराय प्रतिगृह्यताम् ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच। एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नोत्तरं प्रत्यभाषत। व्रीडिताधोमुखं तं तु राजानं यदुसंसदि ५४ अभिषेकेण गोविन्दो योजयामास धर्मवित्। स बद्धमुकुटश्श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः चकार सह कृष्णेन कंसस्य निधनक्रियाम् तं सर्वे यादवा मुख्या राजानं कृष्णशासनात्। अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम् ॥ ५६ ॥ रजन्यां तु निवृत्तायां ततस्सूर्ये विराजिते। पश्चिमं कंससंस्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः ॥५७॥ शिबिकायामथारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम्। नैष्ठिकेन विधानेन

राजा बननेका विचार नहीं है और आप ही इसको चलाइये ५१ आप ही राजा बनें आप मेरे मान्य हैं, यदुओंमें अग्रणी हैं और स्वामी हैं, इस लिये हे नृपसत्तम! आप अपने राज्यमें अपना अभिषेक कराइये ॥ ५२ ॥ यदि आप मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हों, और आपको व्यथा न होती हो तो आप मेरे छोड़े हुए राज्यको चिरकालके लिये ग्रहण करिये ५३ वैशम्पायनजीने कहा, कि—यह सुन कर उग्रसेनने उत्तर नहीं दिया, तब धर्मात्मा गोविन्दने यादवोंकी सभाके मध्यमें लज्जाके कारण नीचेको मुख किये हुए उग्रसेनका (सबके सामने) अभिषेक कर दिया, मुकुट लग जाने पर महा कान्तिमान् श्रीमान् उग्रसेनने कृष्णको साथमें लेकर कंसकी मरणक्रिया की ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्ण की आज्ञासे सब मुख्य २ यादव नगरके प्रवेशमार्गमें, देवता जैसे इन्द्रके पीछे चलते हैं तिस प्रकार, राजा (की अर्थी) के पीछे २ चले ॥ ५६ ॥ रात्रि बीत कर जब फिर सूर्य निकल आया तब यदुपुङ्गवोंने कंसका अन्तिमसंस्कार किया था ॥ ५७ उन्होंने कंसके शरीरको पालकीमें पधराकर अन्त्येष्टि कर्मके अनुसार

चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम् ॥ ५८ ॥स नीतो यमुनातीरमुत्तमं नृपतेः सुतः । सत्कृतश्च यथान्यायं मेधनेन चिताग्निना ॥५९॥ तथैव भ्रातरं चास्य सुनामानं महाभुजम् । संस्कारं लम्भयामासुः सह कृष्णेन यादवाः ॥६०॥ ताभ्यां ते सलिलं चक्रुर्वृष्ण्यन्धकपुरोगमाः । अक्षयं चास्तु प्रेतेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥ ६१ ॥ हिरण्यस्य सुवर्णस्य दश कोटीस्तथा हरिः।गावो रत्नानि वासांसि ग्रामान्नगरसम्मतान् ॥ ६२ ॥ ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः । अक्षय चापि विप्रेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः॥६३॥ तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः । पुरस्कृत्योग्रसेनं ते विविशुर्मथुरां पुरीम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उग्रसेनाभिषेककंससंस्कारकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

क्रमानुसार कंसका सत्कार किया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर उस राजपुत्रको यमुनाजीके उत्तम तट पर लेगये और शास्त्रानुसार उसके शवको चितामें रख अग्नि लगा कर उसका सत्कार किया ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कंसके भाई महाभुज सुनामाका भी यादवोंने और कृष्णने अग्नि संस्कार किया ६० तदनन्तर वृष्णि और अन्धक आदिने" प्रेतोंके लिये अक्षय हो" इस बात को वारम्वार कह कर उनको जलदान दिया ॥६१॥ तदनन्तर उस नृपश्रेष्ठने और श्रीकृष्णने कंसके लिये दश करोड़ सोना गौ रत्न वस्त्र नगरकी समान ग्राम ब्राह्मणोंको दिये, तदनन्तर वे सब यादव "अक्षय हो" इस शब्दका वारम्वार उच्चारण कर उन दोनोंके लिये जलदान देकर दीनमनसे उग्रसेनको साथ में लेकर मथुरापुरीमें घुसे ॥ ६२-६४ ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच । स कृष्णस्तत्र बलवान्रौहिणेयेन सङ्गतः। मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥ १ ॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया ज्वलन् । चचार मथुरां वीरस्स रत्नाकरभूषणाम् ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ । गुरुं सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३ ॥ धनुर्वेदचिकीर्षार्थमुभौ तावभिजग्मतुः । निवेद्य गोत्रं स्वाध्यायमाचारेणाभ्यलंकृतौ ॥ ४ ॥ शुश्रूषू निरहङ्कारावुभौ रामजनार्दनौ । प्रतिजग्राह तौ काश्यो विद्याः प्रादाच्च केवलाः ॥५॥ तौ च श्रुतिधरौ वीरौ यथावत् प्रतिपद्यताम् । अहो रात्रैश्चतुष्षष्ट्या साङ्गवेदमधीयताम् ६ चतुष्पादं धनुर्वेदं शस्त्रग्रामं ससंग्रहम् । अचिरेणैव कालेन गुरुस्तावभ्यशिक्षयत् ॥ ७ ॥ अतीवामानुषीं मेधां चिन्तयित्वा तयो-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-बलवान श्रीकृष्ण रामके साथमें यादवोंसे घिरी हुई मथुरापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥१॥उनके देहमें यौवन प्रकट होने लगा था और राजश्रीसे संयुक्त होनेके कारण प्रकाशित हो वह वीर रत्नोंके खानोंके भूषणं धारण करने वाली मथुरापुरीमें विचरण करने लगे २ एक समय वे दोनों राम और कृष्ण एकत्रित होकर काश्यगोत्री अवन्तिपुरवासी सांदीपनि गुरुके पास धनुर्वेदको सीखनेकी इच्छासे गए, उन्होंने वहाँ जाकर अपने गोत्र और स्वाध्यायका वर्णन करा फिर वे आचारसे अलंकृत निरहंकार होकर उनकी सेवा करनेकी इच्छासे खडे होगए काश्यने उनको ग्रहण कर उनको विद्याएँ पढाई ॥ ३-५ ॥ वे दोनों वीर सुन कर ही उसको पूर्ण रीतिसे धारण कर लेते थे उन्होंने चौंसठ दिनमें ही अङ्गों सहित वेदोंको पढ लिया ॥ ६ ॥ गुरुजीने उन्हें थोडे ही समयमें दीक्षा संग्रह सिद्धि और प्रयोग चारों पादसहित धनुर्वेद और संग्रहसहित शस्त्रग्राम सिखा दिया ७ गुरुजीने उन दोनोंकी अति अमानुषी

गुरुः । मेने तावागतौ वीरौ देवौ चन्द्रदिवाकरौ ॥ ८ ॥ ददर्श च महात्मानावुभौ तावपि पर्वसु । पूजयन्तौ महादेवं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम् ॥९॥ गुरुं सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्योऽभ्यभाषत । गुर्वर्थं किं ददानीति रामेण सह भारत ॥ १० ॥ तयोः प्रभावं स ज्ञात्वा गुरुः प्रोवाच हृष्टवान् । पुत्रमिच्छाम्यहं दत्तं यो मृतो लवणाम्भसि ॥ ११ ॥ पुत्र एकोपि मे जातस्स चापि तिमिना हतः । प्रभासे तीर्थयात्रायां तं मे त्वं पुनरानय ॥ १२ ॥ तथेत्ये-तान्ब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमते स्थितः । गत्वा समुद्रं तेजस्वी विवे-शान्तर्जलं हरिः ॥ १३ ॥ समुद्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा दर्शयामास स्वं तदा । तमाह कृष्णः क्वासौ भोः पुत्रस्सांदीपनेरिति १४ समुद्रः प्रत्युवाचेदं दैत्यः पञ्चजनो महान् । तिमिरूपेण तं भोलं ग्रस्त

बुद्धिका विचार कर समझा, कि-ये दोनों चन्द्रदेव और सूर्य-देव आगए हैं ८ उन्होंने देखा तो वे दोनों महात्मा पर्वकालमें महादेवजीकी और व्यवस्थित विष्णुकी पूजा करते थे ॥ ९ ॥ हे भारत ! तदनन्तर कृतकृत्य हुए श्रीकृष्णने और बलरामजी ने गुरुसे कहा, कि-हम आपको क्या गुरुदक्षिणा दें ? ॥१०॥ तब उनके प्रभावको जान कर गुरुने उनसे प्रसन्न होकर कहा, कि-मेरा पुत्र खारी समुद्रमें मर गया था, उसको ही मैं चाहता हूँ ॥ ११ ॥ मेरे एक ही पुत्र था, उसको भी प्रभासतीर्थकी यात्रा करते समय तिमि (मच्छी) ने मार डाला उसीको आप फिर लाकर दीजिये ॥ १२ ॥ तब बलरामजीकी सम्मति लेकर श्रीकृष्णजीने तथास्तु कहा, फिर तेजस्वी हरिने समुद्रके जलमें प्रवेश किया ॥ १३ ॥ तब समुद्रने हाथ जोड कर अपने शरीर को दिखाया, तब श्रीकृष्णने उससे कहा, कि-सांदीपनिका पुत्र कहाँ है ? १४ तब समुद्रने उत्तर दिया, कि हे माधव ! पञ्च-जन नामक बड़े भारी राक्षसने तिमिके रूपको धारण कर उस

वानिति गाधत्र १५ उन्मथ्य सलिलादस्माद्ग्रस्तवानिति भारत । स पञ्चजनमासाद्य जघान पुरुषोत्तमः । न चाससाद तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः ॥ १६ ॥ स तु पञ्चजनं हत्वा शङ्खं लेभे जनार्दनः । यस्तु देवमनुष्येषु पाञ्चजन्य इति श्रुतः ॥ १७ ॥ ततो वैवस्वतपुरं जगाम पुरुषोत्तमः । ततो यमोऽभ्युपागम्य ववन्दे तं गदाधरम् ॥ १८ ॥ तमुवाचाथ वै कृष्णो गुरुपुत्रः प्रदीयताम् । तयोस्तत्र तदा युद्धमासीद्घोरतरं महत् १९ ततो वैवस्वतं घोरं निर्जित्य पुरुषोत्तमः । आससाद च तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः ॥ २० ॥ आनिनाय गुरोः पुत्रं चिरं नष्टं यमक्षयात् । ततस्सान्दीपनेः पुत्रः प्रभावादमितौजसः ॥ २१ ॥ दीर्घकालगतः प्रेतः पुनरासीच्छरीरवान् । तदशक्यमचिन्त्यं च दृष्ट्वा

बालकको ग्रास लिया था १५ ॥ हे भारत! उसने उसको समुद्रके जलमें खैंच कर ग्रास लिया था, उस पञ्चजनके पास जाकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने उसको मार डाला परन्तु फिर भी अच्युतको गुरुका पुत्र नहीं मिला १६ परन्तु जनार्दनने पञ्चजनको मारनेके अनन्तर एक शंख पाया था वह देवता और मनुष्योंमें पाञ्चजन्यके नामसे प्रसिद्ध होगया था ॥ १७ ॥ तब पुरुषोत्तम यमराजकी नगरीको गए तब यमराजने गदाधारी श्रीकृष्णके सामने आ, उनको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण ने उससे कहा, कि–हमारे गुरुके पुत्रको देदीजिये, तब उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर अच्युत पुरुषोत्तमने भयंकर यमराजको जीत कर उस बालक गुरुपुत्रको छीन लिया ॥ २० ॥ और चिरकालसे नष्ट हुए गुरुके पुत्रको यमराज के घरसे ले आये, तब उन अमित तेजस्वीके प्रसादसे बहुत समय से लापता मरा हुआ सान्दीपनिका पुत्र फिर शरीरधारी हो गया, इस अचिन्त्य और अद्भुत बातको देख कर सब प्राणियों

सुमहद्भुतम् ॥ २२ ॥ सर्वेषामेव भूतानां विस्मयस्समजायत । स गुरोः पुत्रमादाय पांचजन्यं च माधवः । रत्नानि च महार्हाणि पुनरायाज्जगत्प्रभुः ॥ २३ ॥ राक्षसैस्तस्य रत्नानि महार्हाणि बहूनि च । आनाय्यावेदयामास गुरवे वासवानुगः ॥ २४ ॥ गदापरिघयुद्धेषु सर्वास्त्रेषु च तावुभौ । अचिरान्मुख्यतां प्राप्तौ सर्वलोके धनुर्भृताम् ॥ २५ ॥ ततस्सान्दीपनेः पुत्रं तद्रूपवयसं तदा । प्रादात्कृष्णः प्रतीतात्मा सह रत्नैरुदारधीः ॥२६॥ चिर-नष्टेन पुत्रेण काश्यस्सान्दीपनिस्तदा । समेत्य मुमुदे राजन्पूजय-न्रामकेशवौ ॥ २७ ॥कृतास्त्रौ तावुभौ वीरौ गुरुमामन्त्र्य सुव्रतौ । आयातौ मथुरां भूयो वसुदेवसुतावुभौ ॥ २८ ॥ ततः प्रत्युद्य-युस्सर्वे यादवा यदुनन्दनौ । सबाला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः २६ श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणस्सपुरोहिताः । सबालवृद्धा सा चैव

को बड़ा आश्चर्य हुआ, जगत्के प्रभु माधव गुरुपुत्र पाञ्चजन्य शंख और रत्नोंको लेकर फिर आये थे ॥ २१–२३ ॥ वैवस्वत यमराजके राक्षसोंने उनको बहुतसे रत्न दिये थे, इन्द्रके छोटे भाईने वे सब रत्न गुरुके अर्पण कर दिये २४ वे सब धनुष-धारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंमें, सब प्रकारके गदायुद्ध परिघयुद्ध और सब प्रकारके अस्त्रोंमें शीघ्र ही सबसे बढ़ गए २५ तदनन्तर उदारबुद्धि श्रीकृष्णने उसी अवस्था और रूपका करके सांदी-पनिके पुत्रको रत्नों सहित गुरुजीके अर्पण कर दिया २६ उस समय बहुत समयसे नष्ट हुए अपने पुत्रसे मिल कर सांदीपनि प्रसन्न हुए और उन्होंने राम कृष्णकी पूजा की २७ वे सुव्रत वीर दोनों वसुदेवपुत्र अस्त्रविद्यामें पारंगत होनेके अनन्तर मथुरामें फिर आगए २८ उस समय उग्रसेनको आगे करके बालकों सहित सब यादव मनमें प्रसन्न होते हुए श्रीकृष्णकी अगवानी करनेको गए थे २६श्रेणि प्रकृतिमण्डल मन्त्री पुरोहित और बालक

पुरी समभिवर्तत ॥ ३० ॥ नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त तुष्टुवुश्च जनार्द-
नम् । रथ्याः पताकामालिन्यो भ्राजन्ते स्म समन्ततः ॥ ३१ ॥
प्रहृष्टमुदितं सर्वमन्तःपुरमशोभत । गोविन्दागमनेत्यर्थं यथैवेन्द्र-
गहे तथा ॥ ३२ ॥ मुदिताश्चाथ गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः ।
तत्रासीत्प्रथिता गाथा यादवानां प्रियंकरा ॥ ३३ ॥ गोविन्दरामौ
संप्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ । स्वे पुरे निर्भयास्सर्वे क्रीडध्वं सह
बान्धवैः ॥ ३४ ॥ न तत्र कश्चिद्दीनो वा मलिनो वा विचेतनः ।
मथुरायामभूद्राजन्गोविन्दे समुपस्थिते ॥ ३५ ॥ वयांसि साधु-
वाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः । नरनारीगणास्सर्वे भेजिरे मन-
सस्सुखम् ॥ ३६ ॥शिवाश्च वाताः प्रववुर्विरजस्का दिशो दश ।

छन्दों सहित वह पुरी उस समय उमड़ पड़ी ३० उस समय नन्दि
और तूर्य बजने लगे और मनुष्य जनार्दनकी स्तुति करने लगे
और गलियों पर स्थान २ पर झण्डियें लग गई और वह गलियें
शोभा पाने लगीं ॥ ३१ ॥ प्रसन्न होता हुआ सब अन्तःपुर
शोभा पाने लगा, इस प्रकार गोविन्दके आने पर महेन्द्रोत्सवकी
समान उत्सव होने लगा ॥ ३२ ॥ उस समय गायक पुरुष राज-
मार्गोंमें प्रसन्न होते हुए गाना गाने लगे तहाँ पर यादवोंको प्रिय
लगने वाली यादवोंकी प्रसिद्ध गाथाएँ गाई जारहीं थी ॥ ३३ ॥
(और यह भी कहा जा रहा था, कि-) संसार भरमें प्रसिद्ध
गोविन्द और बलराम नामक भाई अपनी पुरीमें आगए हैं अब
सब निर्भय होकर ..न्धवोंके साथ क्रीड़ा करो ॥ ३४ ॥ हे राजन् !
गोविन्दके मथुरामें रहते समय तहाँ पर कोई दीन मलिन वा
अनमना नहीं रहने पाता था । ३५ ।पक्षी मनोहर वाणियें बोलते
थे और हाथी घोड़े तथा बैल प्रसन्न रहते थे और सम्पूर्ण नर
नारी मनमें प्रसन्न रहते थे ॥ ३६ ॥ मंगलमय वायु बहता था
और दिशाएँ धूलिरहित रहती थी और सब मन्दिरोंमें देवता

दैवतानि च हृष्टानि सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ३७ ॥ यानि लिङ्गानि लोकस्य चासन्कृतयुगे पुरा । तानि सर्वाण्यदृश्यन्त पुरीं प्राप्ते जनार्दने ॥ ३८ ॥ ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनः । हरियुक्तेन गोविन्दो विवेश मथुरां पुरीम् ॥३६॥ विशन्तं मथुरां रम्यां तमुपेन्द्रमरिन्दमम् । अनुजग्मुर्यदुगणाश्शक्रं देवगणा इव ४० वसुदेवस्य भवनं ततस्तौ यदुनन्दनौ । प्रहृष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥४१॥ परेण तेजसोपेतौ सुरेन्द्राविव रूपिणौ । तावायुधानि विन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ॥४२॥ मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ । उद्यानेषु विचित्रेषु फलपुष्पावनामिषु ४३ चेरतुस्तु महात्मानौ यादवैः परिवारितौ । रैवतस्य समीपेषु सरित्सु विमलासु च ॥ ४४ ॥ पद्मपत्रविरूढासु कारण्डवयुतासु

प्रसन्न रहते थे ३७ पहिले सत्ययुगमें लोकमें जो चिन्ह दीखते थे, वे सब चिन्ह श्रीकृष्णके मथुरामें आने पर दीखने लगे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर पवित्र और पुण्यमय समयमें अरिमर्दन गोविन्दने घोड़ों से जुते हुए रथमें बैठ कर मथुरापुरीमें प्रवेश किया ३६ मथुरामें प्रवेश करते हुए अरिदमन उपेन्द्र (श्रीकृष्ण) के पीछे यादव ऐसे चले जैसे देवता इन्द्रके पीछे जाँय ४० जैसे चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्नमुखसे पर्वत पर चढ़ते हैं इसी प्रकार वे दोनों यदुनन्दन भी वसुदेवजीके महल पर चढ़े ४१ वे परम तेजसे दो सुरेन्द्रोंकी समान प्रतीत होने वाले राम कृष्ण अपने घरमें आयुधोंको रख कर इच्छानुसार घूमने लगे ४२ वे यदुवर दोनों वसुदेवपुत्र फल और पुष्पोंसे नमे हुए विचित्र उद्यानोंमें आमोद करने लगे ४३ वे दोनों महात्मा यादवोंके साथ २ रैवत पर्वतके समीपकी कारण्डवोंसे युक्त और कमलोंसे भरी हुई, पवित्र नदियों पर विचरण करने लगे इस प्रकार वे एकसी रचना करने वाले पवित्र मुख वाले वासुदेव और बलराम उग्रसेनके अनुगामी बन कर

च । एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ । उग्रसेनानुगौ भूत्वा कञ्चित्कालं मुमोदतुः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्ण-मथ्यागमनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच । कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः । शुश्राव निहतं कंसं दुहितृभ्यां महीपतिः ॥ १ ॥ ततो नातिचिरात्कालाज्जरासन्धः प्रतापवान् । आजगाम षडङ्गेन बलेन महता वृतः ॥ २ ॥ जिघांसुर्हि यदून्क्रुद्धः कंसस्यापचितिं स्मरन् । अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते मागधस्य सुते नृप ॥ ३ ॥ जरासन्धस्य कन्याएयौ पीनश्रोणिपयोधरे । उभे कंसस्य ते भार्ये प्रादाद्बार्हद्रथो नृपः ॥ ४ ॥ स ताभ्यां मुमुदे राजा बध्वा पितरमाहुकम् । समाश्रित्य जरासन्धमनादृत्य च यादवान् । शूरसेनेश्वरो राजा

मथुरामें कुछ समय तक आनन्दके साथ विचरण करते रहे ४४-४५ तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३३

वैशम्पायनजीने कहा, कि-एक समय राजगृह (मगध) के अधिपति राजा जरासन्धने अपनी पुत्रियोंसे कसकी मृत्युका समाचार सुना १ तब प्रतापी जरासंध बड़ी भारी षडङ्ग (रथ हाथी घोड़ा पैदल दूकान और धान्यों की दूकान वाली) सेना को साथमें ले शीघ्र ही (मथुरा पुरी पर चढ़) आया २ उसने कंस की पूजा करनेका ध्यान करके क्रोधमें यादवोंको मारनेके लिये (मथुरा पर चढ़ाई की थी) हे राजन मगधराजकी पुत्रियोंका अस्ति और प्राप्ति नाम था ३ वे जरासन्धकी कल्याणी पुत्रियें स्थूल नितम्ब और स्थूल पयोधरों वाली थी, उन दोनों को बृहद्रथके पुत्र जरासन्धने कंसको विवाह दिया था ४ तब राजा कंस अपने पिता आहुकको बाँध कर उन दोनों भर्याओंके साथ आनन्द करने लगा था, वह कंस का आश्रय ले यादवोंका

यथा ते बहुशः श्रुतः ॥ ५ ॥ ज्ञातिकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुग्रसेनहिते रतः। वसुदेवोभवन्नित्यं कंसो न ममृषे च तम् ॥६॥ रामकृष्णौ समाश्रित्य हते कंसे दुरात्मनि। उग्रसेनोभवद्राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृतः ॥ ७ ॥ दुहितृभ्यां जरासन्धः प्रियाभ्यां बलवान्नृपः। नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरां ततः ॥ ८ ॥ कृत्वा सर्वं समुद्योगं क्रोधादग्निसमो ज्वलन्। प्रतापावनता ये च जरासन्धस्य पार्थिवाः ॥ ९ ॥ मित्राणि ज्ञातयश्चैव संयुक्ताः सुहृदस्तथा। तमेवानुययुः सर्वे सैन्यैः समुदितैर्वृताः ॥ १० ॥ महेष्वासा महावीर्या जरासन्धप्रियैषिणः। कारूषो दन्तवक्रश्च चेदिराजश्च वीर्यवान् ॥ ११ ॥ कलिङ्गाधिपतिश्चैव पौण्ड्रश्च बलिनाम्वरः। सांकृतिः कैशिकश्चैव भीष्मकश्च नराधिपः ॥ १२ ॥ पुत्रश्च

अधिकतर तिरस्कार किया करता था, यह तुमने शूरसेनाधीश के विषयमें सुना ही है ५ और वसुदेव जातिवालोंकी कार्यसिद्धि के लिये उग्रसेनके हितमें परायण रहते थे, परन्तु कंस को यह बात अच्छी नहीं लगा करती थी ६ दुरात्मा कंसके मारे जाने पर राम कृष्णका आश्रय लेनेसे उग्रसेन राजा होगए थे और भोज वृष्णि तथा अन्धकवंशी उनको घेरे रहते थे ७ बली राजा जरासन्ध अपनी वीरपत्नी पुत्रियोंके प्रेरणा करने मथुरा पर चढ़ गया था ८ वह सब प्रकारका उद्योग करके अपने प्रतापसे अग्निकी समान प्रकाशित होने लगा, और जो राजे जरासन्धके प्रतापसे अवनत रहते थे तथा उसके मित्र, जाति वाले, और सुहृत् अपनी २ सेनाओंको साथमें ले आनन्दित होते हुए उसके पीछे २ चले ९-१० वे सब महाधनुर्धर, महावीर्यवान जरासन्धका प्रिय करना चाहते थे (उनके नाम इस प्रकार हैं) कारूष दन्तवक्र वीर्यवान् चेदिराज ११ कलिंगाधिपति, बलियोंमें श्रेष्ठ पौण्ड्र कैशिक और कुटिल राजा भीष्मक १२ और जो वासुदेव और

भीष्मकस्यापि रुक्मी मुख्यो धनुर्भृताम् । वासुदेवार्जुनाभ्यां यः स्पर्द्धते स महाहवे ॥ १३ ॥ वेणुदारिश्श्रुतर्वा च क्रथश्चैवांशुमानपि । अङ्गराजश्च बलवान्वङ्गानामधिपस्तथा ॥१४॥ कौशल्यः काशिराजश्च दशार्णाधिपतिस्तथा । सुखेश्वरश्च विक्रान्तो विदेहाधिपतिस्तथा ॥१५॥ मद्रराजश्च बलवान् त्रिगर्तानामथेश्वरः । शाल्वराजश्च विक्रान्तो दरदश्च महाबलः ॥ १६ ॥ यवनाधिपतिश्चैव भगदत्तश्च वीर्यवान् । सौवीरराजश्शैब्यश्च पाण्ड्यश्च बलिनाम्वरः ॥ १७ ॥ गान्धारराजस्सुबलो नग्नजिच्च महाबलः । काश्मीरराजो गोनर्दो दरदाधिपतिर्नृपः । दुर्योधनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ १८ ॥ एते चान्ये च राजानो बलवन्तो महारथाः । तमन्वयुर्जरासन्धं विद्विषन्तो जनार्दनम् १६ ते शूरसेनानाविश्य प्रभूतयवसेन्धनान् । उपुस्संरुध्य मथुरां पुरस्कृत्य बलं तदा ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोरोधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अर्जुनसे रणमें स्पर्धा किया करता था वह रथियोंमें मुख्य भीमक का पुत्र रुक्मी १३ वेणुदारि श्रुतर्वा क्रथ अंशुमान् वंगोंका स्वामी बलवान् अंगराज १४ कौशल्य, काशिराज दशार्णाधिपति सुखेश्वर विक्रान्त तथा विदेहाधिपति १५ बलवान् मद्रराज त्रिगर्तोंका राजा शाल्व राजा विक्रान्त महाबली दरद यवनाधिपति वीर्यवान् श्रीमान् भगदत्त सौवीरराज शैब्य बलियोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य १६-१७ गांधारराज-सुबल महाबली-नग्नजित् दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके महाबली पुत्र १८ ये राजे और भी बहुतसे राजे श्रीकृष्णसे द्वेष करते हुए जरासन्धके पीछे २ चले १६ वे सब बहुतसे जौ और ईंधे वाले शूरसेन देशोंमें घुसे और उन्होंने तहाँ रह कर मथुरापुरीको घेर लिया २० चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३४

वैशम्पायन उवाच । मथुरोपवने गत्वा निविष्टांस्तान्नराधिपान् । अपश्यन्वृष्णयस्सर्वे पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥१॥ ततो हृष्टमनाः कृष्णो रामं वचनमब्रवीत् । त्वरते खलु कार्यार्थो देवताना न संशयः ॥ २ ॥ यथायं संनिकृष्टो हि जरासन्धो नराधिपः । लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम् ॥ ३ ॥ एतानि शशिकल्पानि नृपाणां विजिगीषताम् । छत्राण्यार्य विराजन्ते प्रोच्छ्रितानि सितानि च ॥४॥ अहो नृपरथंदग्रा विमलाश्छत्रपंक्तयः । अभिवर्तन्ति नश्शुभ्रा यथा खे हंसपंक्तयः ॥ ५ ॥ काले खलु नृपः प्राप्तो जरासन्धो महीपतिः । आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमस्समरातिथिः ॥६॥ आर्य तिष्ठाव सहितावनुप्राप्ते महीपतौ । युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम् ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्स्वस्थस्संग्रामलालसः । जरासन्धबलं प्रेप्सुश्चकार

वैशम्पायनजीने कहा कि-मथुराके उपवनमें आकर बैठे हुए उन राजाओंको जनार्दन तथा वृष्णियोंने देखा १ उस समय कृष्णने मनमें प्रसन्न होकर बलराम से कहा, कि-अब देवताओंका कार्य शीघ्रता कर रहा है २ क्योंकि-यह राजा जरासन्ध पासमें आगया है वायुकी समान वेगवान् रथोंकी ध्वजाओंके अग्रभाग दीख रहे हैं ३ हे आर्य ! ये जीतना चाहने वाले राजाओंके उठे हुए श्वेत मुकुट चन्द्रमाकी समान प्रकाश कर रहे हैं ४ अहो ! राजाओंके बड़े २ रथोंकी निर्मल छत्र पंक्तियें आकाशमें शुभ हंसपंक्तियों की समान शोभा देरही हैं ५ महीपति जरासन्ध उचित समय पर ही आया है, यह हमारे युद्धकी कसौटी होगा, और समरका प्रथम अतिथि होगा ६ हे आर्य ! अब इस राजाके आने पर हमें एकत्रित होकर खड़े होजाना चाहिये अब युद्धके आरम्भका सामान करना चाहिये, अब पहिले सेनाकी ओर ध्यान दो ७ इस प्रकार कह कर संग्रामकी लालसा करने वाले स्वस्थ श्रीकृष्ण

बलदर्शनम् ॥ ८ ॥ वीक्षमाणश्च तान्सर्वान्नृपान्यदुवरोऽव्ययः । आत्मनैवात्मनो वाक्यमुवाच हृदि मन्त्रवित् ॥ ९ । इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः । ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १० ॥ मोक्षितान्खल्विमान्मन्ये मृत्युना नृपपुङ्गवान् । स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥ ११ ॥ स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता । एषां नृपाणां मुख्यानां बलौघैरभिपीडिता ॥ १२ ॥ मही निरन्तरा चेयं बलराष्ट्राभिसंवृता । स्वल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम् ॥ १३ ॥ भविष्यति नरेन्द्रौघैश्शतशो विनिपातितैः । वैशम्पायन उवाच । जरासन्धस्ततः क्रुद्धः प्रभुस्सर्वमहीक्षिताम् ॥ १४ ॥ नराधिपसहस्रौघैरनुयातो महाद्युतिः । ज्वायतोदग्रतुरगैस्सुयानैस्सुसमाहितैः ॥ १५ ॥

जरासन्धके बल (के पार) को पानेकी इच्छासे उसकी सेना को देखने लगे ८ यादवोंके श्रेष्ठ मन्त्रवेत्ता श्रीकृष्ण उन सब राजाओंको देख कर अपने मनमें आपने आप ही कहने लगे; कि-९ ये पृथ्वीपाल पार्थिव मार्ग (पृथ्वीके प्राणियोंके योग्य मृत्यु-मार्ग) में स्थित होगए हैं,अब ये शास्त्रमें लिखे कर्मानुसार शीघ्र ही नष्ट होजावेंगे ॥१०॥ मैं इन सब नृपपुङ्गवोंको मृत्युसे मोक्षित समझता हूँ (अर्थात् यज्ञपशुकी समान शीघ्र ही मारे जाने वाला समझता हूँ) इनके शरीर भी स्वर्गमें जानेके लिये ही अधिक प्रकाशित होरहे हैं ॥११॥ भारसे पीडित होकर पृथ्वीका स्वर्गमें जाना उचित ही था, इन मुख्य २ नृपोंकी सेनाओंके भारसे निरन्तर पीडित होती हुई ये सेना और राष्ट्रोंसे भरपूर पृथ्वी, थोड़े ही समय इन सैंकडों नरेन्द्रोंके भूमिमें गिरा देने पर निर्जन होजावेगी, वैशम्पायनजीने कहा, कि-इतनेमें ही सब राजाओंका स्वामी जरासन्ध क्रोधमें भर गया ॥१२-१४॥ उस महाकान्तिमान्के पीछे सहस्र २ राजाओंकी टोलियें चौड़े और

रथैस्सांग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित् । हेमकक्षैर्महाघण्टै-
र्वारणैर्वारिदोपमैः ॥ १६ ॥ महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणको-
विदैः । स्वारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः ॥१७॥
वाजिभिर्मेघसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्तिभिः । खड्गचर्मधरोदग्रैः
पत्तिभिर्बलिनां वरैः ॥ १८ ॥ सहस्रसंख्यासंयुक्तैरुत्पतद्भिरिवो-
रगैः । एवं चतुर्विधैस्सैन्यैः कम्पमानैरिवाम्बुदैः ॥ १९ ॥ नृपः
प्रयातो बलवान् जरासन्धो धृतव्रतः । स रथैर्मेघनिर्घोषैर्गजैश्च
मदसंयुतैः ॥ २० ॥ ह्रेषमाणैश्च तुरगैः क्ष्वेडमानैश्च पत्तिभिः ।
नादयायानो दिशस्सर्वास्तस्याः पुर्या वनानि च ॥ २१ ॥ स
राजा सागराकारस्ससैन्यः प्रत्यदृश्यत । तद्बलं पृथिवीशानां हृष्ट-

चतुर घोड़ों वाले सुसज्जित रथोंमें बैठ कर चल रहीं थीं १५
और कहीं पर संग्रामके सामानसे भरे हुए रथोंसे अलग सुवर्णकी
अम्बारी वाले बड़े २ घण्टों वाले पर्वतकी समान काया वाले
हाथियों पर श्रेष्ठ २ हाथीवान् बैठे थे और उन पर रणकोविद
पुरुषोंके द्वारा नियुक्त सवार भली प्रकार बैठे थे और वे हाथी
उछल कूद मचाते हुए चल रहे थे ॥ १६-१७ ॥ (और कहीं
पर जरासन्धके पीछे) घोड़ों पर सवार मेघोंकी समान उछलते
हुए चले जाते थे तलवार और ढाल धारण करने वाले बल-
वानोंमें श्रेष्ठ पैदल भी (जरासन्धके पीछे २ चल रहे थे) १८
इसप्रकार उछलते हुए सर्पोंकी समान चार प्रकारकी सहस्रों
सेनाएँ बादलोंकी समान मँडराती हुई जरासन्धके पीछे २ चल
रहीं थीं१९॥ धृतव्रत बली राजा जरासन्ध मेघकी समान झन-
कार करते हुए रथोंसे, मद टपकाने वाले हाथियों(की चिंघाड़ों)
से घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे और पैदलोंके बाँसोंके शब्दसे उस
पुरीके उपवन और दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ चला
आरहा था ॥ २० ॥ २१ ॥ उस समय सेनासहित जरासन्ध

शोभजनाकुलम् ॥ २२ ॥ क्ष्वेडिताऽऽस्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाम्भसा । रथैः पवनसम्पातैर्गजैश्च जलदोपमैः । तुरंगैश्च जवोदग्रैः पत्तिभिः खगमोपमैः ॥ २३ ॥ विमिश्रं सर्वतो भाति मत्तद्विपसमाकुलम् । घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा ॥ २४ ॥ सबलास्ते महीपाला जरासन्धपुरोगमाः । परिवार्य पुरीं सर्वे निवेशायोपचक्रिरे ॥ २५ ॥ बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीशिशविरस्य वै । शुक्लपर्यन्तपूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥ २६ ॥ वीतरात्रे ततः काले समुत्तस्थुर्महीक्षितः । आरोहणार्थं पुर्यास्ते समीयुर्युद्धलालसाः ॥ २७ ॥ समवायीकृतास्सर्वे यमुनामनु ते नृपाः । निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः ॥ २८ ॥ तेषां सुतुमुलः शब्दश्शुश्रुवे पृथिवीक्षि-

समुद्रकी समान आकार वाला दीखता था, जिसमेंके योधा और मनुष्य हर्षमें भर रहे थे ऐसे राजाओंका बल लकड़ियों और थपकियोंके शब्द करता हुआ मेघोंकी सेनासा दीखता था, जैसे वर्षा ऋतुमें समुद्रमें खड़ा हुआ बादल दीखता है, इसी प्रकार पवनकी समान चलने वाले रथोंसे और मेघोंकी समान हाथियों से, वेगवान् घोड़ोंसे और पक्षियोंकी समान चलने वाले पैदलोंसे मिला हुआ मदमत्त हाथियोंसे डटाहुआ सेनादल सब ओरसे शोभा पारहा था ॥ २२-२४ ॥ जरासन्ध आदि उन सब राजाओंने अपनी सेनाओंके साथ पुरीको घेरनेके अनन्तर मुहाना बाटनेका विचार किया ॥ २५ ॥ उस समय उस पड़ाव डाल कर पड़ी हुई सेनाकी शोभा शुक्लपक्षकी समाप्तिमें पूर्ण हुए समुद्रकी समान प्रतीत होरही थी ॥ २६ ॥ तदनन्तर रात्रिका समय व्यतीत होजाने पर वे राजे उठे और युद्धकी लालसासे पुरी पर चढ़ाई करनेके लिये एकत्रित होने लगे २७ वे सब नृपति यमुनाजीके तट पर एकत्रित हो युद्धके समय कुतूहलपूर्वक विचार करने लगे २८ जैसे प्रलयके समय अपनी मर्यादाको त्यागते हुए समुद्रोंका शब्द

ताम् । युगान्ते भिद्यमानानां सागराणामिव स्वनः ॥ २९ ॥ तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः । चेरुर्मा शब्द इत्येवं वदन्तो राजशासनात् ॥ ३० ॥ तस्य रूपं बलस्यासीन्निश्शब्दस्तिमितस्य वै । लीनमीनग्रहस्येव निश्शब्दस्य पयोदधेः ३१ निश्शब्दस्तिमिते तस्मिन्योगादिव महार्णवे । जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवावदं ॥३२॥ शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानि पृथिवीक्षिताम् । सर्वतो नगरी चेयं जनौघैः परिवार्यताम् ॥ ३३ ॥अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः । कार्या भूमिसमा सर्वा जलौघैश्च परिप्लुता । ऊर्ध्वं चापा निधाम्यन्तां प्रासा वै तोमरास्तथा ॥ ३४ ॥ दार्यतां चैव टंकाद्यैः खनित्रैश्च पुरी द्रुतम् । नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः ॥ ३५ ॥ अद्यप्रभृ ने

सुनाई आता है, इसी प्रकार उन राजाओंका तुमुल शब्द सुनाई आने लगा ॥ २९ ॥ उनके कञ्चुक और पगड़ी धारण करने वाले हाथोंमें बेंत लिये हुए चपरासी राजाज्ञाके अनुसार कहते फिरते थे, कि-चुप होजाओ ॥ ३० ॥ निःशब्द और स्तिमित उस सेनादलका रूप जिसके नाके और मीन चुप होकर बैठ जाँय ऐसे निःशब्द समुद्रकी समान दीख रहा था ३१ (बातचीत) वृत्तिका निरोध होने से समुद्रकी समान सेनादलके निःस्तब्ध होजाने पर जरासन्धने बृहस्पतिकी समान यह बड़ा भारी भाषण दिया कि-॥ ३२ ॥ राजाओंकी फौजें शीघ्र ही तयार होजावें और इस नगरीको मनुष्यके झुण्ड चारों ओरसे घेरलें ॥ ३३ ॥ अब गोफनी ठीक करो और मुद्गर तथा क्षेपणियोंको भी ठीक करो, सब भूमिको इकसार करो और उस पर छिड़काव करो, धनुषोंको ऊपरको उठाओ और प्रास तथा तोमरोंको भी उठा लो ॥ ३४ ॥ टंक (कुदाल) और खनित्र (फावड़ों) से पुरीको शीघ्र ही ढा दो और युद्धकी रीतिको जानने वालेभी उसके

सैन्यैर्मे पुरीरोधः प्रवर्त्यताम् । यावदेतौ रणे गोपौ वसुदेव-
सुतावुभौ ॥ ३६ ॥ संकर्षणं च कृष्णं च घातयामि शितैश्शरैः ।
आकाशमपि बाणौघैर्निस्सम्पातं यथा भवेत् ॥ ३७ ॥ मयानु-
शिष्टास्तिष्ठन्तु पुरीभूमिषु भूमिपाः । तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्र-
मारुह्य तां पुरीम् ॥ ३८ ॥ मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानस्सबाह्लिकः ।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥ ३९ ॥ द्रुमः किंपुरु-
षश्चैव पार्वतीयो ह्यनामयः । नगर्याः पश्चिमं द्वारं शीघ्रमारोध-
यन्त्विति ॥ ४० ॥ पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भस्सोमकस्तथा । रुक्मी
च भोजाधिपतिस्सूर्याक्षश्च समालवः ॥ ४१ ॥ विन्दानुविन्दा-
वावन्त्यौ दन्तवक्रश्च वीर्यवान् । छागलिः पुरमित्रश्च विराटश्च
महीपतिः ॥ ४२ ॥ कौरव्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः ।
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा ॥ ४३ ॥ उत्तरं नगर-
द्वारमेते दुर्गसहा नृपाः । आरुह्य चाभिमर्दन्तां वज्रप्रतिमगौरवाः ।

पास ही खड़े रहैं ॥ ३५ ॥ अबसे मेरे सैनिक इस नगरीको घेरलें
और जब तक मैं इन गोप वसुदेवपुत्र कृष्ण और बलरामको तेज
बाणोंसे न मार लूँ (तब तक पुरीको घेरे रहैं) मैं ऐसे बाण
बरसाऊँगा, कि-आकाश भी कीलितसा होजायगा ३६-३७
मेरी आज्ञा पा कर राजे इस पुरीकी भूमियोंके छिद्रोंमें शीघ्र ही
चढ़ाई कर इस पुरी पर खड़े रहैं ॥ ३८ ॥ नगरीके पश्चिमद्वारको
मद्र कलिङ्गाधिपति चेकितान बाल्हीक काश्मीरराज गोनर्द करूपा-
धिपति द्रुम किंपुरुष पहाड़ी अनामय घेरलें ॥ ३९ ॥ ४० ॥
पुरुवंशी वेणुदारि वैदर्भ सोमक भोजाधिपति रुक्मी मालवसहित
सूर्याक्ष अवन्तिदेशके विन्द और अनुविन्द वीर्यवान् दन्तवक्र
छागलि पुरुमित्र राजा विराट कौरव्य मालव शतधन्वा विदूरथ
भूरिश्रवा त्रिगर्त बाणासुर और पञ्चनद ये दुर्गयुद्ध करनेमें समर्थ
वज्रकी समान (चमकते) गौरव वाले राजे उत्तरकी ओरके द्वार

उलूकः कैतवश्चैव वीरश्चांशुमतस्सुतः । एकलव्यो बृहत्क्षत्रः क्षत्रधर्मा जयद्रथः ॥ ४५ ॥ उत्तमौजाश्च शल्यश्च कौरवाः कैकयास्तथा । वैदिशो वामदेवश्च सांकृतिश्च सिनीपतिः ॥ ४६ ॥ पूर्वं नगरनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः । दारयन्तो विशावन्तु वाता इव बलाहकान् ॥ ४७ ॥ अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान् । दक्षिणं नगरद्वारं पालयामस्सुदंशिताः ॥ ४८ ॥ एवमेषा पुरी क्षिप्रं समन्ताद्वेष्टिता बलैः । वज्राशनिपातविषमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥ ४९ ॥ गदिनो ये गदाभिस्ते परिघैः परिघायुधाः । अपरे विविधैश्शस्त्रैर्दारयन्तु पुरीमिमाम् ॥ ५० ॥ अद्यैव नगरी त्वेषा विषमोच्चयसंकटा । कार्या भूमिसमा सर्वा भवद्भिर्वसुधाधिपैः ॥ ५१ ॥ चतुरङ्गबलैर्व्यूह्य जरासन्धो व्यवस्थितः । भगा-

पर चढ़ कर तहाँ घमसान मचावें ॥ ४१-४४ उलूक कैतव वीर अंशुमान्का पुत्र एकलव्य बृहत्क्षत्र क्षत्रधर्मा जयद्रथ उत्तमौजा शल्य कौरव और केकय वैदिश वामदेव सिनीपति और सांकृति इनके अधीन हमारा नगरीकी पूर्वकी ओरका व्यूह रहे, ये जैसे पवन मेघोंको तित्तर बित्तर कर डालता है इसी प्रकार पुरीकी सेनाको विदीर्ण करते हुए आगेको बढ़ें ४५-४७ तथा मैं दरद और वीर्यवान् चेदिराज ये भली भाँति कवच पहिर कर नगरके दक्षिण द्वारकी ओर रक्षा करते रहें ॥ ४८ ॥ इस प्रकार चारों ओरसे शीघ्रही घिर जाने पर इस पुरीको वज्रपातकी समान भयंकरदुःख मिलना चाहिये ॥ ४९ ॥ गदाधारी पुरुष गदाओं से इस पुरीको विदीर्ण करें और हाथोंमें परिघ धारण करने वाले परिघोंसे और दूसरे अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण करने वाले अपने २ अस्त्र शस्त्रोंसे इस पुरीको विदीर्ण करें ५० आज ही आप सब राजे विषमतासे इस नगरीके संकटोंको बढ़ा कर इसकी सारी भूमिको समतल कर दें ५१ इस प्रकार राजा जरा-

भ्यागमद्रुत् क्रुद्धस्सह सर्वैर्नराधिपैः ॥ ५२ ॥प्रतिजग्मुर्दशार्हास्तं व्यूढानीकाः प्रहारिणः । तद्युद्धमभवद् घोरं तेषां देवासुरोपमम् । अल्पानां बहुभिस्सार्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥५३॥नगरान्निरसृतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ । क्षुभितं नृवरानीकं त्रस्तसम्मूढवाहनम्॥५४ रथस्थौ दंशितौ चैव चेरतुस्तत्र यादवौ । मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥ ५५ ॥ तयोः प्रयुद्ध्यतोस्संख्ये मतिरासी-न्महात्मनोः । आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥ ५६ ॥ ततः खान्निपतन्ति स्म दिव्यान्याहवसम्प्लवे । लेलिहानानि दीप्तानि महान्ति सुदृढानि च ॥ ५७ ॥ क्रव्यादैरनुयातानि मूर्ति-मन्ति बृहन्ति च । तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि वै भृशम्॥५८ दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान् । प्रभया भास-

---

सन्ध चतुरंगिणी सेनाको व्यूहरचनासे खड़ी करके क्रोधसे उन सब राजाओंके साथ यादवों पर चढ़ गया ५२ तब दशार्होंने भी अपनी सेनाको व्यूहरचनासे खड़ी कर उन पर धावा किया, उन का वह युद्ध देवासुर संग्रामकी समान हुआ थोडेसे (यादवों) का बहुतसोंके साथ युद्ध होने लगा उनके हाथी और रथ मिल मिल गए ५३ वसुदेवके दोनों पुत्रोंको नगरमेंसे निकलते देखते ही मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजाओंकी सेना और उनके वाहन मूढसे होगए ५४ वे दोनों यादव (शत्रुसेनामें) समुद्रको खलभलादेने वाले मगरोंकी समान क्रोधमें भर कर विचरण करने लगे ५५ उन दोनों महात्माओंका युद्धमें लड़ते २ अपने प्राचीन अस्त्रों का ग्रहण करनेका विचार उठा ५६ तब तो आकाशमेंसे युद्ध-स्थलमें दिव्य आयुध गिरने लगे वे बड़े २ अस्त्र जीभ लपलपा रहे थे और बड़े दृढ़ थे ५७ उनके पीछे कच्चा मांस खाने वाले प्राणी दौड़े आरहे थे वे बड़े २ मूर्तिमान् शस्त्र युद्धमें राजाओंका मांस चाटनेके लिये लालायितसे दीख रहे थे ५८ वे दिव्य माला

मानानि पतमानानि चाम्बरात् ॥ ५९ ॥ हलं सम्वर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा । धनुषां प्रवरं शार्ङ्गं गदा कौमोदकी तथा ६० चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि च । ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे ॥ ६१ ॥ जग्राह प्रथमं रामो लांगलमनिभं हलम् । सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं मृधे ॥६२॥ सौनन्दं च ततश्चोग्रमरिरानन्दहरं द्विषाम् । सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुशलोत्तमम् ॥ ६३ ॥दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम् । नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं कृष्णो जग्राह वीर्यवान् ६४ देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे । निक्षिप्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा ॥ ६५ ॥ तौ सहप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ । समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान्प्रत्ययुद्ध्यताम् ६६

और (प्रत्यञ्चाकी) रस्सीसे विभूषित ऐसे कांतिमान् थे, कि उनको आकाशसे गिरते देख कर उनकी प्रभासे पक्षी चौंक उठते थे ५९ संवर्तक नामक हल, सौनन्द नामक मूशल, धनुषोंमें श्रेष्ठ शार्ङ्ग धनुष और कौमोदकी गदा ६० ये चारों विष्णुके तेजःस्वरूप आयुध उन दोनों यादवोंके लिये महायुद्धमें (आकाशसे) उतरे थे ६१ बलरामजीने पहिले ध्वजाकी समान ऊँचे सरकते हुए सर्पेन्द्रकी समान और दिव्यमालाओंसे सुशोभित हलको ग्रहण कर लिया ६२ फिर सात्वतवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् बलरामजीने अपने दाहिने हाथमें शत्रुओंके आनन्दको नष्ट करने वाले सौनन्द नामक उत्तम मूसलको उठा लिया ॥ ६३ ॥ और वीर्यवान श्रीकृष्णने लोकोंमें दर्शनीय मेघकी समान शब्द करने वाले धनुषोंमें श्रेष्ठ शार्ङ्ग धनुषको उठा लिया ६४ और जो देवताओं से प्रशंसित अर्थ वाले कुमुदाक्ष श्रीकृष्णके हाथमें गदा थी वह कौमोदकी थी ॥ ६५ ॥ विष्णुके शरीरकी समान शरीर वाले आयुधधारी राम कृष्ण समरमें शत्रुओंसे जूझने लगे ॥ ६६ ॥

सायुधग्रहौ वीरौ तावन्योन्याश्रयावुभौ । पूर्वजानुजसंज्ञौ तौ रामगोविन्दलक्षणौ ॥ ६७ ॥ द्विषतस्तु मनिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ । विचेरतुर्यथा देवौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ६८ ॥ हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपितः । चचार समरे वीरो विद्विषामन्तको यथा ॥ ६९ ॥ विकर्षन्रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम् । चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥ ७० ॥ कुञ्जराँल्लाङ्गलाक्षिप्तान्मुशलाक्षेपताडितान् । रामो विराजत्समरे निर्मन्थ यथाचलान् ॥ ७१ ॥ ते वध्यमाना रामेण रणे क्षत्रियपुङ्गवाः । जरासन्धान्तिकं भीताः समरात् प्रतिजग्मिरे ॥ ७२ ॥ तानुवाच जरासन्धः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः । धिगेनां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम् ॥ ७३ ॥ पराङ्मुखस्य समरे विरथस्य पलायतः । भ्रूणहत्यामिवासद्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥७४॥ भीताः कस्मा-

वे आयुधधारी एक दूसरेका आश्रय लेने वाले राम और गोविंद नामक पूर्वज और अनुज वसुदेवजीके दोनों पुत्र पराक्रमी ईश्वरों की समान शत्रुओंका अपकार करते हुए सेनामें विचरण करने लगे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ बलराम कोपमें भरे हुए सर्पेन्द्रकी समान शत्रुओंके अन्तक बन हलको उठा कर समरमें विचरण करने लगे ॥ ६९ ॥ वह युद्धमें महात्मा क्षत्रियोंकी टोलियोंको खेंचने लगे और नाग तथा हाथियों पर सफल क्रोध करने लगे ॥७०॥ समरमें विराजमान राम पर्वतोंकी समान हाथियोंको हलसे पीटने लगे और मूसल फेंक कर मसलने लगे ॥ ७१ ॥ बलरामसे पिटते हुए क्षत्रियपुङ्गव समरमें भयभीत होकर जरासन्धकी शरण लेते हुए उसके पास पहुँच गए ॥ ७२ ॥ तब क्षत्रधर्ममें स्थित जरासन्धने उन कातरात्माओंसे कहा, कि-तुम्हारी क्षत्रवृत्तिको धिक्कार है ॥ ७३ ॥ विद्वान् पुरुष कहते हैं, कि-समरमेंसे लौटने वाले और रथ टूटने पर भागने वाले

न्निवर्तध्वं धिगेनां क्षत्रवृत्तिताम् । क्षिप्रं सर्वे निवर्तध्वं मम वाक्येन चोदिताः ॥ ७५ ॥ अथवा तिष्ठत रथैः प्रेक्षकास्समवस्थिताः । यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ ७६ ॥ ततस्ते क्षत्रियास्सर्वे जरासन्धेन नोदिताः । सृजन्तश्शरजालानि हृष्टा योद्धुं व्यवस्थिताः ॥७७॥ ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चाम्बुदनादिभिः । नादैश्चाम्बुदसंकाशैर्महामात्रप्रचोदितैः ॥ ७८ ॥ सतनुत्रास्सनिस्त्रिंशास्सपताकायुधध्वजाः । रथारोपितधनुष्मन्तस्सतूणीरास्सतोमराः ॥ ७९ ॥ सच्छत्रासादिनश्चैव चारुचामरवीजिताः । रणे तेधिगता रेजुस्स्यन्दनस्था महीक्षितः ॥ ८० ॥ ते युद्धरागा रथिनो व्यगाहन्त युधाम्वराः । गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥८१॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां नन्दिवर्द्धनः । सुपर्णध्वजमास्थाय कृष्णस्तु रथमुत्तमम् ॥ ८२ ॥ समभ्याज्जरासंधं

क्षत्रियको भ्रूणहत्याकी समान घोर पाप लगता है ॥ ७४ ॥ अरे ! तुम क्यों डर रहे हो ! तुम्हारे इस क्षत्रियपन पर धिक्कार है अरे!तुम मेरे वाक्यसे उकस कर तो शीघ्र ही लौट आओ७५ अथवा जब तक मैं इन गोपोंको रणमें यमराजके घर भेजूँ तब तक रथमें बैठ कर दर्शक ही बने खड़े रहो(भागो,तो मत।) ७६ तब तो जरासन्धके वाक्यसे प्रेरित होकर वे सब क्षत्रिय हर्षित होते हुए बाणोंका जाल पूरते हुए लौट आये ॥ ७७ ॥ वे कांचनकी कूबरवाले और मेघकी समान गड़गड़ाहट करनेवाले रथोंमें बैठ बड़े वेगसे मेघकी समान नाद करते हुए (लौट आये) ॥७८॥ वे रणमें रथोंमें बैठे हुए कवच तलवार पताका आयुध ध्वजा तूणीर और तोमरधारी धनुष वाले राजे सवारों के चामर करने पर शोभा पारहे थे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वे युद्ध प्रेमी योधाओंमें श्रेष्ठ रथी बड़ी २ गदा गोफनों और मुद्गरोंसे सेनाको मथने लगे ॥ ८१ ॥ इसी समय देवताओंके आनन्दको

शरैर्निर्व्याध मार्गणैः । सारथिं चास्य विव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ ८३ ॥ जघान तुरंगाश्चार्जौ यतमानस्य वीर्यवान् । तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय चित्रसेनो महारथः ॥ ८४ ॥ सेनानीः कैशिकश्चैव कृष्णं विविधतुः शरैः । त्रिभिर्विव्याध संसक्तं बलदेवं च कैशिकः ॥८५॥ बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाकरोत् । जवेनाभ्यर्दयच्चापि तानरीञ्छरवृष्टिभिः ॥ ८६ ॥ बाहुभिर्बहुधा वीरान्समन्तात्स्वर्णभूषणैः । तं चित्रसेनस्संरब्धो विव्याध नवभिश्शरैः ॥८७॥ कौशिकः पञ्चभिश्चापि जरासन्धश्च सप्तभिः । त्रिभिस्त्रिभिश्च नाराचैस्तान्विभेद जनार्दनः ॥ ८८ ॥ पंचभिः पञ्चभिश्चैव बलदेवः शितैश्शरैः । रथं चैवास्य चिच्छेद चित्रसेनस्य वीर्यवान् ॥८९॥ बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधा-

---

बढाने वाले श्रीकृष्ण गरुडकी ध्वजा वाले उचगरथमें बैठ जरासन्ध पर चढ गए और आठ बाणोंसे उसको बींध डाला और पाँच बाणोंसे उसके सारथिको घायल किया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ फिर वीर्यवान् श्रीकृष्णने चेष्टा करने वाले जरासन्धके घोड़ोंको मार डाला, जरासन्धको कष्टमें पड़ा देख कर महारथ चित्रसेन और सेनापति कैशिक कृष्णको बाणोंसे घायल करने लगे और कैशिकने युद्धमें तल्लीन बलदेवजीको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ८४ ॥ तब बलदेवजीने भल्ल नामक बाण मार कर उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये, और उन शत्रुओंको वेगपूर्वक बाणवर्षा कर दबाने लगे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ और सुवर्णके आभूषण वाली भुजाओंसे बाण मार कर वीरोंको (नष्ट करने लगे) तब तो चित्रसेनने उनके नौ बाण मारे ॥ ८७ ॥ कैशिकने पाँच बाण मारे और जरासन्धने सात बाण मारे, तब विष्णुने उन सबको तीन २ बाण मार कर घायल किया ॥ ८८ ॥ तदनन्तर बलदेवने भी पाँच २ तेज बाण मार कर उनको घायल किया;

करोत् । स छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान् ॥ ९० ॥ अभ्यधावत्सुसंरब्धो जिघांसुर्मुशलायुधम् । छिद्यन्तस्तु नाराचांश्चित्रसेनवधैषिणः । धनुश्चिच्छेद रामस्य जरासन्धो महाबलः ॥९१॥ गदया च जघानाश्वान्क्रोधात्स मगधेश्वरः । रामं चाभ्यद्रवद्वीरो जरासन्धो महाबलः ॥ ९२ ॥ आदाय मुशलं रामो जरासन्धमुपाद्रवत् । तयोस्तद्युद्धमभवत् परस्परवधैषिणोः। चित्रसेनस्तु संसक्तं दृष्ट्वा रामेण मागधम् । रथमन्यं समारुह्य जरासन्धमवारयत् ॥ ९४ ॥ ततो बलेन महता गजानीकेन चाप्यथ। उभयोरन्तरे ताभ्यां सङ्कुलं समपद्यत ॥९५॥ ततः सैन्येन महता जरासन्धोऽभिसंवृतः । रामकृष्णाग्रगान् भोजानाससाद महाबलः ॥ ९६ ॥ तत्र मत्तुगितस्येव सागरस्य महास्वनः । गादु-

फिर वीर्यवान् बलदेवजीने चित्रसेनके रथको तोड़ डाला ८९ फिर बलदेवजीने भल्ल मार कर युद्धमें उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिए, वह टूटे हुये धनुष वाला रथरहित वीर्यवान् चित्रसेन क्रोधमें भर कर गदा उठा मुसलायुध बलदेवजीको मारनेके लिये दौड़ा। ॥ ९० ॥ उसी समय चित्रसेनका बध करनेकी इच्छासे बाण छोड़ने वाले रामके धनुषको महाबली जरासंधने काट डाला ॥ ९१ ॥ फिर क्रोधमें भरे हुये मगधेश्वरने गदासे उसके घोड़ोंको मार डाला इस प्रकार वीर जरासन्धने बलरामजी पर हमला किया ॥ ९२ ॥ तब तो बलदेवजी भी मूसल लेकर जरासन्ध पर झपटे और उन परस्परका बध चाहने वालोंमें युद्ध होने लगा ॥ ९३ ॥ चित्रसेन जरासन्धको बलरामजीसे भिड़ता देख कर दूसरे रथ पर बैठ जरासन्धको रोकने लगा ॥ ९४ ॥ तब उन दोनोंका सेनासे और हस्तिसेनासे घोर युद्ध होने लगा ९५ इतनेमें ही बड़ी भारी सेनासे घिरा हुआ महाबली जरासंध रामकृष्णको अग्रभागमें रखने वाले भोजोंसे भिड़ गया ९६ उस

र्बभूव तुमुलः सेनयोरुभयोरपि ॥९७॥ वेणुभेरीमृदङ्गानां शंखानां च सहस्रशः । उभयोः सेनयो राजन् प्रादुरासीन्महास्वनः ९८ द्क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् । उत्पपात रजश्चापि खुरनेमिसमुद्धतम् ॥९९॥ समुद्यम्य महाशस्त्राः प्रगृहीतशरासनाः । अन्योन्यमभिगर्जन्तः शूरास्तत्रावतस्थिरे ॥ १०० ॥ रथिनः सादिनश्चैव पत्तयश्च सहस्रशः । गजश्चातिबलास्तत्र समुद्यातुः समन्ततः ॥ १ ॥ स सन्निपातस्तुमुलस्त्यक्त्वा प्राणान-वर्तत । वृष्णिभिः सह योधानां जरासन्धस्य दारुणः ॥ २ ॥ ततः शिनिरनाधृष्टिर्बभ्रुर्विपृथुराहुकः । बलदेवं पुरस्कृत्य सैन्य-स्यार्धेन दंशिताः ॥३॥ दक्षिणं पक्षमासेदुः शत्रुसैन्यस्य भारत । पालितं चेदिराजेन जरासन्धेन वा विभो ॥ ४ ॥ उदीच्यैश्च

समय दोनों सेनाओंमें क्षुब्ध हुए समुद्रकी समान तुमुल शब्द होने लगा ॥ ९७ ॥ हे राजन् ! उस समय दोनों सेनाओंमें सैकड़ों वेणु भेरी मृदंग और शंखोंका बड़ा शब्द हुआ ॥ ९८ ॥ उस समय बाँस फटकारनेका भुजाओंको थपकानेका और गाजनेका शब्द चारों ओर होने लगा और खुर तथा नेमिसे उड़ी हुई धूल भी उड़ गई ॥ ९९ ॥ शूर उस समय अपने शस्त्रोंको उठा कर और धनुषको ग्रहण कर एक दूसरेके सामने गर्ज २ कर खड़े होगए ॥ १०० ॥ तब रथी सवार सहस्रों पैदल और अतिबली हाथी तहाँ आने लगे ॥ १०१ ॥ तब तो जरासन्धके योधा वृष्णियोंके साथ अपने प्राणोंका मोह छोड़ कर लड़ने लगे १०२ तब तो शिनि अनाधृष्टि बभ्रु विपृथु और आहुक बलदेवजीको आगे करके आधी सेनाको घेर कर खड़े होगए । १०३ ॥ और चेदिराज और जरासन्धसे पालित शत्रुसेनाके दाहिने मुहाने पर पहुँच गए ॥ १०४ और अपने प्राणोंका मोह छोड़ महावीर उत्तर-देशी शल्य शाल्व आदिके साथ अपने प्राणोंका मोह छोड़ बाण

महावीर्यैः शल्यशाल्वादिभिर्नृपैः । सृजन्तः शरवर्षाणि समभि-
त्यक्तजीविताः ॥ ५ ॥ अवगाहः पृथुः कंकः शतद्युम्नो विदू-
रथः । हृषीकेशं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्धेन दंशिताः ॥६॥ भीष्मके-
णाभिगुप्तश्च रुक्मिणा च महात्मना । देवकेनापि राजेन्द्र तथा
मद्रेश्वरेण च ॥ ७ ॥ प्राच्यैश्च दाक्षिणात्यैश्च गुप्तवीर्यबला-
न्वितैः । तेषां च युद्धमभवत् समभित्यक्तजीवितम् । शक्त्यृष्टि-
प्रासबाणौघान् सृजतामशनिस्वनान् ॥ ८ ॥ सात्यकिश्चित्रकः
श्यामो युयुधानश्च वीर्यवान् । राजाधिदेवो मृदुरः श्वफल्कश्च
महारथः ॥९॥ सत्राजिच्च प्रसेनश्च बलेन महता वृताः । व्यूहस्य
पक्षं ते सर्वे प्रतीयुर्द्विषतां मृधे॥११०॥व्यूहस्यार्धं समासेदुर्मृदु-
रेणाभिरक्षितम् । राजभिश्चापि बहुभिर्वेणुदारिमुखैः सह १११

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे
युद्धवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

वर्षा कर युद्ध करने लगे १०५अवगाह पृथु कंक शतद्युम्न विदू-
रथ ये श्रीकृष्णको आगे कर बाकी आधी सेनाको घेर कर खड़े
होगए१०६और उनका महात्मा रुक्मी और भीष्मक देवक तथा
राजेन्द्र मद्रेश्वर पुरबिये दक्खिनी गुप्तबलवालोंके साथ जीवन
का मोह छोड़ कर युद्ध होने लगा, वे शक्ति ऋष्टि और वज्र
की समान शब्द करने वाले बाणोंको छोड़ कर युद्ध करने
लगे १०७-१०८ सात्यकि चित्रक श्याम वीर्यवान् युयुधान
राजाधिदेव मृदुर और महारथ श्वफल्क सत्राजित् और प्रसेन
ये बड़ी भारी सेनासे घिर कर व्यूहके पक्षमें हो शत्रुओंके सामने
जा युद्ध करने लगे १०९-११० ये मृदुरसे रक्षित आधा व्यूह
वेणुदारि आदि बहुतसे राजाओंसे युद्ध करने लगा १११
पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३५

शौशम्पायन उवाच । ततो युद्धानि वृष्णीनां बभूवुः सुमहां-
स्तथा । मागधस्य महापात्रैर्नृपैश्चैवानुयायिभिः ॥ १ ॥ रुक्मिणा
वासुदेवस्य भीष्मकेणाहुकस्य च । क्रथस्य वसुदेवेन कैशिकस्य
तु बभ्रुणा ॥ २ ॥ गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्रस्य शङ्कुना । तथा-
न्यैर्वृष्णिवीराणां नृपाणां च महात्मनाम् ॥ ३ ॥ युद्धमासीद्वि
सैन्यानां सैनिकैर्भरतर्षभ । अहानि पंच चैकं च षट् सप्ताष्टौ च
दारुणम् ॥ ४ ॥ गजैर्गजा हयैरश्वाः पदाताश्च पदातिभिः । रथै
रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप ॥ ५ ॥ जरासन्धस्य नृपते
रामेणासीत् समागमः । महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षणः ६
अवेक्ष्य रुक्मिणीं कृष्णो रुक्मिणं न व्यथोपयत् । ज्वलनार्कांशु-
संकाशानाशीविषविषोपमान् ॥ ७ ॥ वारयामास कृष्णो वै शरां-
स्तस्य तु शिक्षया । इत्येषां सुमहानासीद्बलौघानां परिक्षयः ८

शौशंपायनजीने कहा, कि तब तो मगध राजके अनुयायी
महाकाय राजाओंसे वृष्णियोंके बड़े २ युद्ध होने लगे १ उस
समय वासुदेवका रुक्मीके साथ, आहुकका भीष्मकके साथ, क्रथका
वसुदेवके साथ और कैशिक का बभ्रुके साथ, गदका चेदिराजके
साथ और दन्तवक्रका शंकुके साथ और हे भरतर्षभ ! दूसरे
राजाओंके दूसरे वृष्णिवीरोंके साथ युद्ध होने लगे और वह
युद्ध सत्ताईस दिन तक होते रहे २-४ हे नृप ! हाथीसवार योधा
हाथीसवारोंसे घुड़सवार घुड़सवारोंसे पैदल पैदलोंसे और रथी
योधा रथियोंसे मिल कर युद्ध करने लगे ५ हे नृपते ! जरासंधका
बलरामजीके साथ, महेन्द्रका वृत्रके साथ जैसे दारुण संग्राम
हुआ था तैसा संग्राम होने लगा ६ श्रीकृष्णने रुक्मिणीका विचार
करके रुक्मीको नहीं मारा और उसके सर्प और अग्नि और
सूर्यकी किरणकी समान बाणोंको अपनी चतुराईसे हटाने लगे,
इस प्रकार इन दोनों सेनाओंका बड़ा संहार होने लगा ८ हे

उभयोः सेनयो राजन् मांसशोणितकर्दमः । कबन्धानि समुत्तस्थुः सुबहूनि समन्ततः ॥ ६ ॥ तस्मिन् विमर्दे योधानां संख्यातीतं तराणि च । रथी रामो जरासन्धं शरैराशीविषोपमैः ॥ १० ॥ आद्रवन्नभ्ययाद्वीरस्तं च राजा समागधः । अभ्यवर्तत वेगेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥ ११ ॥ अन्योन्यं विविधैरस्त्रैर्विध्वा विध्वा विनेदतुः । तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथी ॥ १२ ॥ गदे गृहीत्वा विक्रान्तौ अन्योन्यमभिधावताम् । कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतगदावुभौ ॥ १३ ॥ ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव । व्युपारमन्त युद्धानि पश्यतां तौ महाभुजौ । संरब्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥ १४ ॥ उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ । मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्योन्य-

---

राजन् दोनों सेनाओंमें मांस और रक्तकी कीच होगई और बहुत से कबंध चारों ओरसे उठने लगे ६ (बाण मारने पर एक ही कबंध उठ सकता है) परन्तु यहाँ तो कबंधोंको देख कर गिनती करना ही कठिन था) और रथी बलराम सर्पकी समान बाण जरासन्धके मारने लगे और वीर राजा मागध भी वेगगामी रथ में बैठ कर उसको बाणोंसे आता हुआ दौड़ आया १०-११ वे दोनों परस्परको अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे बींध कर शस्त्रोंके क्षीण हो जाने पर रथरहित होगए और घोड़े और सारथी मर जाने पर वे गर्जने लगे १२ फिर वे दोनों पराक्रमी गदा ले कर एक दूसरेके ऊपर दौड़े वे दोनों गदाओं । उठा कर पृथ्वीको कँपाने लगे १३ उस समय वे दोनों महात्मा शिखरोंवाले दो पर्वतोंकी समान दीख रहे थे, उन गदायुद्धमें प्रसिद्धि पाये हुए महाभुज वीरोंको क्रोधमें भर कर लड़ते देख कर सब ओरके युद्ध होने बन्द होगए और योधा उन दोनोंके युद्धोंको देखने लगे ॥ १४ ॥ वे दोनों महाबली संसारमें (गदाके) परमाचार्य प्रसिद्ध थे, वे दोनों मद-

मयुध्यताम् ॥१५। ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सगहर्षयः। समंततश्चाप्सरसः समाजग्मुः सहस्रशः॥ १६ ॥ तद्देवयक्षगन्धर्व महर्षिभिरलंकृतम्। शुशुभेऽभ्यधिकं राजन् दिवं ज्योतिर्गणैरिव ॥ १७ ॥ अभिदुद्राव रामं तु जरासन्धो महाबलः। सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम्॥१८ ।प्रहरन्तौ ततोऽन्योन्यं गदायुद्धविशारदौ । दन्ताभ्यामिव मातंगौ नादयन्तौ दिशो दश ॥ १९ ॥ गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिःस्वनः। जरासन्धस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ २० ॥ न स्म कम्पयते रामं जरासन्धकरच्युता । गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥२१॥ रामस्य तु गदावेगं वीर्यात् स मगधेश्वरः। सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत् ॥२२॥ एवं तौ तत्र सग्रामे

मत्त हाथियोंकी समान युद्ध करने लगे १५ उस समय चारों ओरसे देवता गन्धर्व सिद्ध और महर्षि तथा सहस्रों अप्सरायें आने लगीं १६ ॥ जैसे नक्षत्रोंसे अलंकृत आकाश शोभा पाता है, इसी प्रकार देवता यक्ष गन्धर्व और महर्षियोंसे अलंकृत (युद्धस्थल) शोभा पाने लगा १७ उस समय महाबली जरासन्ध दक्षिण मण्डल करके दौड़ा और बलदेवजी बायें मंडल से जरासन्ध पर चढ़ गए १८ जैसे हाथी दाँतोंसे प्रहार कर गरजते हैं, इसी प्रकार वे दोनों गदायुद्ध विशारद एक दूसरे पर प्रहार कर दहाड़ने लगे १९ बलरामजीकी गदा गिरनेका शब्द वज्र गिरनेकी समान दारुण प्रतीत होता था और रणमें जरासन्धकी गदाका शब्द फटते हुए पहाडके शब्दकी समान होरहा था २० जैसे पवन विन्ध्याचल पर्वतको नहीं कँपासकता इसी प्रकार जरासन्धके हाथसे पड़ी हुई गदा बलदेवजीको न कँपा सकी २१ उस मगधेश्वरने वीर्यके कारण धैर्य धारण कर अपनी बड़ी भारी शिक्षाके कारण रामके गदावेगको सह लिया

विचरन्तौ महाबलौ । मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिंदम २३
व्यायच्छन्तौ चिरं कालं परिश्रान्तौ च तस्थतुः । समाश्वस्य
मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहतम् ॥ २४ ॥ एवं तौ योधमुख्यौ तु
समं युयुधतुश्चिरम् । न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः२५
अथापश्यद्गदायुद्धे विशेषं तस्य वीर्यवान् । रामः क्रुद्धो गदां
त्यक्त्वा जग्राह मुशलोत्तमम् ॥२६॥ तमुद्यन्तं तदा दृष्ट्वा मुसलं
घोरदर्शनम् । अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे ॥ २७ ॥
ततोंतरिक्षे वागासीत् सुस्वरा लोकसाक्षिणी । उवाच बलदेवं तं
समुद्यतहलायुधम् ॥ २८ ॥ न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन
मागधे । विदितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात् साधु व्युपारम । अचि-
रेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः॥२९॥ जरासन्धस्तु तच्छ्रुत्वा

और अपनी चतुराईसे उनके कई वारोंको खाली कर दिया२२
हे अरिंदमन ! वे महाबली इसप्रकार प्रकार विचित्र पैंतरे
दिखाते हुए संग्राममें विचरण करने लगे ॥ २३ ॥ वे दोनों
चिरकालतक लड़नेके बाद श्रान्त होगए और क्षण भर विश्राम
लेकर फिर परस्पर प्रहार करने लगे ॥ २४ ॥ वे दोनों मुख्य २
योधा चिरकाल तक युद्ध करते रहे तब भी उन दोनोंने
युद्धसे मुख नहीं मोड़ा ॥२५॥ तदनन्तर रामने देखा, कि-जरा-
सन्ध गदायुद्धमें कुछ अधिक बली दीख रहा है तब रामने क्रोधमें
भर कर गदाको छोड़ कर उत्तम मूसलको उठा लिया २६ युद्ध
में क्रोधमें भरे बलदेवजीको घोर दर्शन अमोघ मूसलको उठाते
देखकर २७ उस समय हलके आयुधको उठाने वाले बलदेवजी
से आकाशमेंसे सुस्वर वाली वाणीने सब लोकोंके सामने यह
बात कही कि-२८" हे राम ! यह जरासन्ध तुमसे अवध्य है,
अतः मागधके लिये तुम खेद करना छोड़दो, हमने इसकी मृत्यु
को जान लिया है इस लिये तुम अब निवृत्त हो जाओ, इस

विमनाः समपद्यत । न गजह्ने ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ॥३०॥ तौ व्युपारमतां युद्धे वृष्णयस्ते च पार्थिवाः । असत्क्रमभवद्युद्धं तेषामेवं सुदारुणम् ॥ ३१ ॥ दीर्घकालं महाराज निघ्नतामितरेतरम् । पराजिते स्वपक्रांते जरासन्धे महीपतौ ॥ ३२ ॥ अस्तं याते दिनकरे नानुसस्रुस्तदा निशि । समानीय स्वकं सैन्यं लब्धलक्ष्या महाबलाः ॥ ३३ ॥ पुरीं प्रविविशुर्हृष्टाः केशवेनाभिपालिताः । खाच्च्युतान्यायुधान्येवं तान्येवान्तर्दधुस्तदा ॥३४॥ जरासन्धोऽपि नृपतिर्विमनाः स्वपुरीं ययौ । राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययुः ॥ ३५ ॥ जरासन्धं तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम् । वृष्णयः कुरुशार्दूल राजा ह्यतिबलः स वै ॥३६॥ दश चाष्टौ च संग्रामान् जरासन्धस्य यादवाः । ददुर्न चैनं समरे

मागधको तो शीघ्र ही अपने प्राणोंको त्यागना पड़ेगा २९ इस बातको सुनते ही जरासन्धका मन उदास होगया और हलायुधने भी उसके ऊपर फिर प्रहार नहीं किया ३० तब उन दोनोंने और वृष्णिवंशी राजाओंने भी युद्ध करना छोड़ दिया था, इस प्रकार प्रशान्तभावसे उनका दारुण युद्ध हुआ था ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! जब इसप्रकार परस्परका संहार करते२ बहुत समय (दिन) बीतगये और राजा जरासन्ध पराजित होकर भाग गया तब सूर्यास्त होनेपर वे केशवसे पालित महाबली अपने लक्ष्यको सिद्ध कर अपनी२ सेनाओंको ले प्रसन्न होते हुए मथुरापुरीमें घुसे, उसी समय आकाशमेंसे गिरेहुए अस्त्र भी अन्तर्धान होगये ॥ ३२–३४ ॥ उस समय जरासन्ध भी अनमना होताहुआ अपनी पुरीको चलागया और उसके अनुयायी राजे भी अपने२ राज्योंको चले गए ॥ ३५ ॥ हे राजशार्दूल ! वृष्णियोंने जरासन्धको जीतकर भी उसको जीताहुआ नहीं माना, क्योंकि-वह अतिबली राजा था ३६ महाबली यादवोंने

हन्तुं शेकुर्महाबलाः ॥ ३७ ॥ अक्षौहिण्यश्च तस्यासन् विंशतिश्च महामते । जरासन्धस्य नृपतेस्तदर्थं याः समागताः ॥ ३८ ॥ अल्पत्वादभिभूतांस्तु वृष्णयो भरतर्षभ । बार्हद्रथेन राजेन्द्र राजभिः सहितेन वै ॥ ३९ ॥ भूयः कृत्वोद्यमं मायाच्चादवान् कृष्णपालितान् । जित्वा तु मागधं संख्ये जरासन्धं महीपतिम् । विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिसिंहा महारथाः ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासन्धापयानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच । स कृष्णस्तत्र बलवान् रौहिणेयेन सङ्गतः। मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥ १ ॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः । चचार मथुरां भीतः सवनाकरभूषणाम् ॥ २ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः ।

जरासन्धसे अठारह युद्ध किये थे तब भी वे उसको न मारसके थे ॥ ३७ ॥ हे महामते राजन् ! जरासन्धके साथ बीस अक्षौहिणी सेनाएँ आई थीं ॥ ३८ ॥ हे राजेन्द्र ! वृष्णि कम थे इसलिए बृहद्रथका पुत्र राजाओंको लेकर उन पर बार बार आक्रमण कर देता था ॥ ३९ ॥ फिर उसने उद्योग करके कृष्णपालित यादवों पर आक्रमण करा महीपति जरासन्धको जीत कर महारथी वृष्णिसिंह सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥४०॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—बलवान श्रीकृष्ण रोहिणीपुत्रके साथ यादवोंको साथ ले सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ १ ॥ और वह श्रीमान् अपने शरीरमें यौवनके चिन्ह प्रकट होने पर राजश्रीसे शोभायमान हो बाग और खानोंके आभूषण धारण करने वाली मथुरापुरीमें प्रसन्न होकर विचरण करने लगे ॥२॥ कुछ समय बाद उस राजगृहेश्वर प्रतापवान् राजा जरा-

सस्मार निहतं कंसं जरासन्धः प्रतापवान् । युद्धाय चोजितो भूयो दुहितृभ्यां महीपतिः ॥ ३ ॥ दश सप्त च संग्रामान् जरासन्धस्य यादवाः । ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महारथाः ॥ ४ ॥ ततो मागधराट् श्रीमांश्चतुरङ्गबलान्वितः । भूयोऽप्यष्टादशं कर्तुं संग्रामं स समारभत् ॥ ५ ॥ व्रीलव्यात् पुनरेवासौ राजराजो गृहेश्वरः । जरासन्धो बली श्रीमान् पाकशासनविक्रमः ॥ ६ ॥ स साधनेन महता बृहद्रथसुतो बली । कृष्णस्य वधमन्विच्छन् भूयो मां संन्यवर्तत ॥ ७ ॥ तं श्रुत्वा सहिताः सर्वे निवृत्तं मगधेश्वरम् । यादवा मन्त्रयामासुर्जरासन्धभयार्दिताः ॥ ८ ॥ ततः प्राह महातेजा विकद्रुर्नयकोविदः । कृष्णं कमलपत्राक्षमुग्रसेनस्य शृण्वतः ॥ ९ ॥ श्रूयतां तात गोविन्द कुलस्यास्य समुद्भवः । श्रुतकाममिधास्यामि प्राप्तकालमहं ततः । युक्तं चेन्मन्यसे साधो

सन्धको कंसका स्मरण होआया और अपनी पुत्रियोंके कहनेसे वह युद्धके लिये सन्नद्ध होगया,॥३॥ महारथी यादवोंने जरासन्धसे सत्रह संग्राम किये, परन्तु वह उसे मार न सके ॥ ४ ॥ तदनन्तर श्रीमान् मगधराजने चतुरङ्गिणी सेनाको लेकर फिर अठारहवां संग्राम करना आरम्भ करदिया ॥५॥ राजा राजगृहेश्वर लज्जित होरहा था, अतएव इन्द्रकी समान विक्रमी बली बृहद्रथके पुत्र राजा जरासन्धने कृष्णका वध करनेकी इच्छासे फिर बड़ाभारी सामान करके (मथुरा पर) चढ़ाई की ६-७ मगधेश्वरको फिर चढ़कर आते सुन यादवोंने जरासन्धके भयसे डरकर मन्त्रणा करना आरम्भ की ॥ ८ ॥ उस समय नीतिचतुर विकद्रुने उग्रसेन सुन सके इसप्रकार कमलदलनयन श्रीकृष्णसे कहा, कि-हे तात ! हे गोविन्द ! आप इस कुलकी उत्पत्तिको सुनिये इस समय इसका समय है अतः मैं इसको कहता हूँ, हे साधो ! यदि मेरे वचनको उचित समझो तो ग्रहण

करिष्यसि वचो मम ॥ १० ॥ यादवस्यास्य वंशस्य समुद्भव-
मशेषतः। यथा मे कथितः पूर्वं व्यासेन विदितात्मना ॥ ११ ॥
आसीद्राजा मनोर्वंशे श्रीमानिक्ष्वाकुसम्भवः। हर्यश्व इति विख्यातो
महेंद्रसमविक्रमः ॥ १२ ॥ तस्यासीद्दयिता भार्या मधोर्दैत्यस्य वै
सुता। देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शची तथा ॥ १३ ॥ सा
यौवनगुणोपेता रूपेणाप्रतिमा भुवि। मनोरथकरी राज्ञः प्राणे-
भ्योपि गरीयसी ॥ १४ ॥ दानवेन्द्र कुले जाता सुश्रोणी काम-
रूपिणी। एकपत्नीव्रतधरा खेचरा रोहिणी यथा ॥१५॥ सा
तमिक्ष्वाकुशार्दूलं कामयामास कामिनी। स कदाचिन्नरश्रेष्ठो
भ्रात्रा ज्येष्ठेन माधव॥१६॥राज्यान्निरस्तो विश्वस्तः सोऽयोध्या

कर लेना ॥ १० ॥ विदितात्मा व्यासजीने यादववंशकी उत्पत्ति
का मुझसे पूर्ण रीतिसे वर्णन किया था ॥ ११ ॥ मनुके वंशमें
इक्ष्वाकुका पुत्र श्रीमान् हर्यश्व हुआ था, वह पराक्रममें महेन्द्रकी
समान प्रसिद्ध था ॥ १२ ॥ उसकी प्रिय भार्या मधु दैत्यकी पुत्री
थी उस देवीका मधुमती नाम था और वह देवेन्द्रकी शचीकी
समान थी ॥ १३ ॥ वह यौवनके गुणोंसे युक्त थी और पृथ्वी
में अप्रतिम रूपवती थी और राजाके मनोरथके अनुसार चलनी
थी अतएव वह राजाको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी ॥१४॥
वह दानवेन्द्रके कुलमें उत्पन्न हुई कामरूपिणी सुश्रोणी आकाश-
चारिणी रोहिणीकी समान एक पत्नीव्रत धारण करने वाली
थी ॥ १५ ॥ उस कामिनीने इक्ष्वाकुशार्दूलकी इच्छा की, हे
माधव ! एक समय उस नरश्रेष्ठको उसके बड़े भाईने राज्यमेंसे
निकाल दिया तब भी ज्येष्ठ भाईके लोभी होनेपर भी वह उसमें
श्रद्धा रखता रहा और उसने अयोध्यापुरीको त्याग दिया,
तब वह अल्प परिवार वाला अपनी प्रियाके साथ वनमें रमण
करने लगा उस समय उस कमलनेत्रने (अपनी भार्यासे कुछ)

सम्परित्यजत् । स तदाऽल्पपरीवारः प्रियया सहितो वने १७
रेमे समेत्य कालज्ञः प्रोवाच कमलेक्षणः । भ्रात्रा विनिष्कृतं
राज्यात् प्रोवाच कमलेक्षणा ॥ १८ ॥ एह्यागच्छ नरश्रेष्ठ त्यज
राज्यकृतां स्पृहाम् । गच्छावः सहितौ वीर मधोर्मम पितुर्गृहम् १९
रम्यं मधुवनं नाम कामपुष्पफलद्रुमम् । सहितौ तत्र रंस्यावो
यथा दिवि गतौ तथा ॥ २० ॥ पितुर्मे दयितस्त्वं हि मातुर्मम
च पार्थिव । मत्प्रियार्थं प्रियतरो भ्रातुश्च लवणस्य नौ ॥ २१ ॥
रंस्यावस्तत्र सहितौ राज्यस्थाविव कामगौ । तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ
ह्यमरांविव नन्दने । भद्रन्ते विहरिष्यावो यथा देवपुरे तथा २२
तं त्यजाव महाराज भ्रातरं तेऽभिमानिनम् । आवयोर्द्वेषिणं
नित्यं मत्तं राज्यमदेन वै ॥ २३ ॥ धिगिमं गर्हितं वासं भृत्य-

कहा उस समय जिसके भाईने निकाल दिया था उस अपने पति से उस कमलदलनयनीने कहा, कि ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे नरश्रेष्ठ आप राज्यकी स्पृहाको त्याग कर आइये और हे वीर ! हम दोनों पिता मधुजीके घर चलें ॥१९॥ मेरे पिताके वनका नाम मधुवन है और उसमें यथेष्ट फल पुष्प और वृक्ष हैं, हम दोनों तहाँ पर स्वर्गकी समान क्रीड़ा करेंगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! तुम मेरे पिताके प्रिय हो और मेरी माता भी तुमपर स्नेह रखती है और तुम मेरा प्रिय करनेवाले हो, इसलिये मेरा भाई लवण भी तुमसे प्रेम करेगा ॥ २१ ॥ हम दोनों तहाँपर अपने राज्य की समान इच्छानुसार विचरण करेंगे, हे नरश्रेष्ठ ! जैसे देवता नन्दनवनमें और देवपुरमें विहार करते हैं, इसीप्रकार हम तहाँ विहार करेंगे, आपका कल्याण होगा ॥२२॥ हे राजन् ! हमसे द्वेष करनेवाले और राज्यमदसे मत्त अपने अभिमानी भाईको त्याग दीजिये ॥ २३ ॥ ऐसे गर्हित प्रकारसे निवास करनेको धिक्कार है और भृत्यकी समान दूसरेका आश्रय लेनेको भी

त्वं च परायणम्। गच्छावः सहितौ वीर पितुर्मे भवनान्तिकम्॥२४
तस्य सम्यक् प्रवृत्तस्य पूर्वजं भ्रातरं प्रति। कामार्तस्य नरेन्द्रस्य
पत्न्यास्तद्रुरुचे वचः ॥२५॥ ततो मधुपुरं राजा हर्यश्वः स जगाम
च। भार्यया सह कामिन्या कामी पुरुषपुङ्गवः ॥ २६ ॥ मधुना
दानवेन्द्रेण स साम्ना समुदाहृतः। स्वागतं वत्स हर्यश्व प्रीतो-
ऽस्मि तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ यदेतन्मम राज्यं वै सर्वं मधुवनं
विना। ददामि तव राजेन्द्र वासश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ २८ ॥ वने-
ऽस्मिँल्लवणश्चायं सहायस्ते भविष्यति। अमित्रनिग्रहे चैव कर्ण-
धारत्वमेष्यति ॥ २९ ॥ पालयैनं शुभं राष्ट्रं समुद्रानूपभूषितम्।
गोसमृद्धं श्रिया जुष्टमाभीरप्रायमानुषम् ॥ ३० ॥ अत्र ते वस-
तस्तात दुर्गं गिरिपुरं महत्। भविता पार्थिवावासः सुराष्ट्र

धिक्कार है, हे वीर! अब हम दोनों अपने पिताजीके भवनके पास चलें ॥ २४ ॥ पूर्वज भाईसे सम्यक् (शुद्ध) वर्ताव करने वाले अर्थात् श्वशुरका आश्रय लेनेसे भाईका वध न करना पड़ेगा यह चाहनेवाले कामातुर नरेन्द्रको पत्नीका वचन ठीक लगा ॥ २५ ॥ तब वह पुरुषपुङ्गव कामी राजा हर्यश्व अपनी स्त्रीके साथ मधुवनमें चला गया ॥२६॥ दानवेन्द्र मधुने उससे सामपूर्वक कहा हे वत्स हर्यश्व! तुम्हारा स्वागत है, मैं तुम्हारे दर्शनसे प्रसन्न होगया हूँ ॥२७॥ मैं मधुवनको छोड़कर अपना बाकी सब राज्य तुम्हारे अर्पण करता हूँ, हे राजेन्द्र! आप मेरे भवनको भी ले लीजिये ॥ २८ ॥ इस वनमें लवण आपका सहायक रहेगा और यह शत्रुओंका निग्रह करते समय तुम्हारा कर्णधार होगा ॥२९॥ तुम इस समुद्रानूपसे विभूषित गौओंकी समृद्धि वाले और अधिकतर आभीर मनुष्योंकी बस्ती वाले शुभ राष्ट्रका पालन करो३०हे तात! इस बड़े भारी गिरिदुर्गमें रहने पर यह बड़ाभारी सुराष्ट्र देश राजाओंका निवासस्थान

विषयो महान् ॥ ३१ ॥ अनूपविषयश्चैव समुद्रान्ते निरामयः । आनर्तं नाम ते राष्ट्रं भविष्यात्ययतं महत् ॥३२॥ तद्भविष्यमहं मन्ये कालयोगेन पार्थिव । अध्यास्यतां यथाकालं पार्थिवं वृत्तमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम् ।

रूप होजावेगा॥ ३१ ॥ समुद्रके पास अनूप (जलप्राय) प्रदेश में तुम्हारा निरामय राज्य होगा और तेरे बड़े चौड़े राष्ट्रका नाम आनर्त होगा ॥ ३२ ॥ हे पार्थिव ! यह सब समय आने पर होगा, मैं यह भविष्यकी बात कहता हूँ, अब तुम समयानुसार उत्तम पार्थिव चरित्रका पालन करो ३३ तुम्हारा ययाति वंश भी यादवत्वको प्राप्त होजायगा और तुम्हारा अनुवंश सोमका वंश होजायगा (अर्थात् तेरा वंश ययातिके पुत्र यदुके वंशके सम्बन्धीके वंशमें प्रविष्ट हो जायगा अत एव तेरा वंश पीछे से सोमवंशी होजायगा अर्थात् सूर्यवंशसे च्युत होजायगा । यहाँ शंका होती है कि-ययातिसे यदु,यदुसे क्रोष्टा,क्रोष्टासे देवमीढ़,देवमीढ़से शूर,शूरसे वसुदेव और वसुदेवसे कृष्ण हुए यह वंश पहिले ही कहदिया था,अब फिर सूर्यवंशी हर्यश्वसे यदु यदुसे माधव, माधवसे सत्त्वान्,सत्त्वानसे भीम भीमसे अन्धक,अन्धकसे रैवत रैवतसे ऋत, ऋतसे विश्वगर्भ उससे वसु, वसुसे वसुदेव और वसुदेवसे श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, सो छठे वसुदेवका एकादशत्व कैसे होगया, यहां यह समाधान नहीं होसकता, कि-यह कल्पभेदसे भेद है, क्योंकि-एक ग्रन्थमें पठित होनेसे यह विरोध दुःसमाधेय है । यह बात सत्य है परन्तु उसका समाधान यह है, कि-"यायातमपि वंशस्ते" इस वचनसे प्रतीत होता है, कि-एक ही यदु गृहसे दूसरे घरमें घुसनेकी समान योगबलसे सूर्यवंशमें आविर्भूत होकर सूर्यवंशको अपने पक्षमें लेआया, जैसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र वसिष्ठ किसी कारण फिर मित्रावरुणके यहाँ

अनुवंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल ॥३४॥ एष मे विभवस्तात तमेवं विषयोत्तमम् । दत्त्वा यास्यामि तपसे सागरं लवणालयम् ॥ ३५ ॥ लवणेन समायुक्तस्त्वमिमं विषयोत्तमम् । पालयस्वाखिलं तात स्वस्यं वंशस्य वृद्धये ॥ ३६ ॥ बाढमित्येव हर्यश्वः प्रतिजग्राह तत्पुरम् । स च दैत्यस्तपोवासं जगाम वरुणालयम् ॥३७॥ हर्यश्वश्च महातेजा दिव्ये गिरिवरोत्तमे । निवेशा-

भी उत्पन्न हुए और उनका वशिष्ठपन भी दूर नहीं हुआ था, इसी प्रकार एक ही यदुने लीलावश क्रमसे दो देहोंको धारण करलिया, इससे दो यदु उत्पन्न हुए थे अतएव एक यदु ही दोनों वंशोंके कर्ता हैं इसीप्रकार शूर और वसुसे उत्पन्न हुए वसुदेव एक ही हैं कृष्ण तो दोनों वंशोंके अनुगत वसुदेवसे उत्पन्न होनेके कारण वसुके भी पौत्र हैं और शूरके भी पौत्र हैं वसु और शूरके पितृभेदसे नामभेद होने पर भी स्कन्द सनत्कुमारकी समान व्यक्त्यैक्य जानना चाहिये, इसलिये पाण्डवोंकी माता पृथाका शूरोत्पन्नत्व और वसूत्पन्न भी उचित जँचता है इसीप्रकार वंशविरोधमें दूसरी जगह भी समझना चाहिये, यादवोंके देवता होनेसे एक का भी दोनोंसे एक साथ सम्बन्ध होना सम्भव है । यहाँ पर यह संग्रह है, कि—"नामरूपे असंत्यज्य यदुर्हर्यश्वतोऽभवत् स्वरूपेण वसुर्नाम शरोऽभूद्विश्वगर्भतः । यदुद्वयमभाद्वौ जातौ वंशौ-बहुविधा ततौ । द्विनाम्नि वसुदेवाय पितृतीर्थे च संगतौ) ।३४। हे तात ! ये मेरा वैभव अब तुम्हारा उत्तम देश-होगया मैं इसे तुम्हें प्रदानकर लवणालय समुद्रको तप करनेके लिये जाता हूँ ३५ हे तात ! तुम अपने वंशकी वृद्धिके लिये लवणके साथ इस सारे उत्तम देशका पालन करिये ३६ तब हर्यश्वने बहुत अच्छा कह कर उस पुरको स्वीकार करलिया और वह दैत्य भी तपके आवासस्थल वरुणालय (समुद्र) को चला गया ३७ तब

यामास पुरं वासार्थमपरोपमः ॥ ३८ ॥ आनर्तं नाम तद्राष्ट्रं सुराष्ट्रं गोधनायुतम् । अचिरेणैव कालेन समृद्धं प्रत्यपद्यत ॥ ३९ ॥ अनूपविषये चैव वेलावनविभूषितम् । विचित्रं क्षेत्रसस्याढ्यं प्राकारग्रामसङ्कुलम् ॥ ४० ॥ शशास नृपतिः स्फीतं तद्राष्ट्रं राष्ट्रवर्धनः । राजधर्मेण यशसा प्रजानां नन्दिवर्धनः ॥ ४१ ॥ तस्य सम्यक्प्रचारेण हर्यश्वस्य महात्मनः । व्यवर्धत तदक्षोभ्यं राष्ट्रं राष्ट्रगुणैर्युतम् ॥४२ स हि राजा स्थितो राज्ये राजवृत्तेन शोभितः । प्राप्तः कुलोचितां लक्ष्मीं वृत्तेन च नयेन च ॥ ४३ ॥ तस्यैव च सुवृत्तस्य पुत्रकामस्य धीमतः । मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः ॥ ४४ ॥सोऽवर्धत महातेजा यदुर्दुन्दुभिनिःस्वनः । राज-

देवताकी समान महातेजस्वी हर्यश्वने उस दिव्य उत्तम पर्वत पर अपना पुर बसाया ॥ ३८ ॥ उस सुन्दर राष्ट्रका नाम आनर्त हुआ और वह राष्ट्र थोड़े ही दिनोंमें लाखों गोधनसे समृद्ध हो गया ॥ ३९ ॥ वह अनूप (जलमय) देशमें बसा हुआ राज्य तट और वनसे विभूषित था वह विचित्र देश खेत और धान्योंसे विभूषित होगया और प्राकार तथा ग्रामोंसे व्याप्त होगया ४० उस समय वह प्रजाओंके आनन्दको बढ़ाने वाला राजा यशःपूर्वक राजधर्मसे विस्तृत राज्यका शासन करने लगा ४१ महात्मा राजा हर्यश्वके भली प्रकार प्रचार करनेसे वह राष्ट्रके गुणोंसे भरपूर हुआ अक्षोभ्य राष्ट्र बढ़ने लगा ॥ ४२ ॥ उस राजाने राजाओंके आचरण और नीतिसे शोभायमान हो कुलोचित लक्ष्मीको पालिया ॥ ४३ ॥ उस पुत्राभिलाषी सच्चरित्र राजाके यहाँ मधुमती स्त्रीसे यदु नामक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ (यहाँ "मायातयमि वंशस्ते" को स्पष्ट करते हैं कि—उसकी पुत्रकामुकताको देख कर यह यायात यदु स्वयं ही हर्यश्वका पुत्र बन कर योगबलके कारण पराये चित्तके भावको जानकर उत्पन्न

लक्षणसम्पन्नः सपत्नैर्दुरतिक्रमः ॥ ४५ ॥ यदुर्नामाभवत् पुत्रो राजलक्षणपूजितः । यथाऽस्य पूर्वजो राजा पूरुः स सुमहायशाः ॥ ४६ ॥ स एक एव तस्यासीत् पुत्रः परमशोभनः । ऊर्जितः पृथिवीभर्ता हर्यश्वस्य महात्मनः ॥ ४७ ॥ दशवर्षसहस्राणि स कृत्वा राज्यमव्ययम् । जगाम त्रिदिवं राजा धर्मेणाप्रतिमो भुवि ॥ ४८ ॥ ततो यदुरदीनात्मा प्रजाभिरभ्यषिच्यत । पितर्युपरते श्रीमान् क्रमेणार्क इवोदितः ॥ ४९ ॥ शशास चेमां वसुधां प्रशान्तभयतस्कराम् । यदुरिन्द्रप्रतीकाशो नृपो येन स्म यादवाः ॥ ५० ॥ स कदाचिन्नृपश्चक्रे जलक्रीडां महोदधौ । दारैः सह गुणोदारैः सतार इव चन्द्रमाः ॥ ५१ ॥ स तत्र सहसा निमग्नस्तितीर्षुः

होगया था) ॥ ४४ ॥ वह नगाड़ेकी समान शब्द करने वाला महायशस्वी यदु बढ़ने लगा, उसमें राजाओंकेसे सब चिन्ह वर्तमान थे और शत्रु उसको कठिनतासे जीत सकते थे ४५ यदुनाम वाला पुत्र अपने पूर्वज महायशस्वी पूरुकी समान राजलक्षणों से पूजित था ४६ महात्मा हर्यश्वके पृथिवीका स्वामी बली और परमशोभासंपन्न वह एक ही परमशोभन पुत्र था ४७ पृथ्वीमें अद्वितीय राजा हर्यश्व दश सहस्र वर्ष तक अखण्ड राज्य करके स्वर्गको चला गया ४८ तब अदीन मन वाले यदुका प्रजाओंने अभिषेक कर दिया इस प्रकार वह श्रीमान् सूर्यकी समान क्रमशः (अपने पिताके बाद दूसरे दिनके सूर्यकी समान राजाके रूपमें) उदय होगया ४९ और भय तथा चोरोंको शान्त करके इस पृथ्वीका शासन करने लगा, ऐसे यदु इन्द्रकी समान थे, उनके कारण ही हम यादव कहलाते हैं ५० चन्द्रमा जैसे नक्षत्रोंके साथ रह कर शोभा पाता है इस प्रकार एक समय उसने अपनी अति-सुन्दरकी स्त्रियोंको साथमें ले समुद्रमें जलक्रीडा की ॥ ५१ ॥ वह वीर्यवान् राजा समुद्रके जलमें तैर रहा था, कि-उसको

सागरांभसि । धूम्रवर्णेन नृपतिः सर्पराजेन वीर्यवान् ॥ ५२ ॥ सोपकृष्णात वेगेन जले सर्पपुरं महत् । मणिस्तंभगृहद्वारं मुक्ता-दामविभूषितम् ॥ ५३ ॥ कीर्णं शंखकुलैः शुभ्रैः रत्नराशिविभूषितम् । प्रवालांकुरपत्राढ्यैः पादपैरुपशोभितम् ॥ ५४ ॥ कीर्णं पन्नगनारीसंघैः समुद्रोदरवासिभिः । स्वर्णवर्णेन भास्वंतं स्वस्तिकेनेन्दुवर्चसा ॥५५॥ स तं ददर्श राजेन्द्रो विमले सागरांभसि । पन्नगेन्द्रपुरं तोये जगत्यामिव निर्मितम् ॥ ५६ ॥ स्वच्छं चैव पुरं तत्र प्रविवेश नृपो यदुः । अगाधं तोयदाकारं पूर्णं सर्पवधूगणैः ॥ ५७ ॥ तस्य दत्तं मणिमयं जलजं परमासनम् । स्वास्तीर्णं पद्मपत्रैश्च पद्मसूत्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८ ॥ तमासीनं नृपं तत्र परमे पन्नगासने । द्विजिह्वपतिरव्यग्रो धूम्रवर्णोऽभ्यभाषत ॥५६॥

धुमैले वर्णवाला सर्पराज अकस्मात् खेंचने लगा ॥ ५२ ॥ वह उसको वेगपूर्वक खेंच कर बड़े भारी सर्पपुरमें लेगया, जहाँके द्वार स्तम्भ और घर मणियोंके बने हुए थे और मोतियोंकी झालरें जहाँ शोभा देरही थीं ॥५३॥ और जहाँ सफेद शंखोंके ढेर पड़े हुए थे और वह रत्नराशियोंसे विभूषित होरहे थे, और वह फल पुष्प और अङ्कुरोंसे भरे वृक्षोंसे शोभा पारहा था ५४ और समुद्रमें रहने वाली नागस्त्रियोंसे घिर रहा था और स्वर्ण वर्ण चन्द्रकी समान कान्तिवान् स्वस्तिकसे भास रहा था ५५ उस राजेन्द्रने जलमें बसे हुए पन्नगेन्द्रपुरको पृथ्वीमें निर्मित (नगर) की समान देखा ॥ ५६ ॥ उस सर्पवधुओंसे घिरे हुए मेघकी समान आकार वाले उत्तम स्वच्छ पुरमें राजा यदुने प्रवेश किया ॥ ५७ ॥ उसके लिये मणिमय जलज श्रेष्ठ आसन बिछाया गया उसमें कमल बने हुए थे और उसके बिछौने पर पद्म बिखरे हुए थे । ५८॥ उस श्रेष्ठ पन्नगासन पर बैठे हुए राजासे अव्यग्र सर्पपति धूम्रवर्णने कहा, कि ॥ ५६ ॥ आपके पिता

पिता ते स्वर्गतिं प्राप्तः कृत्वा वंशमिमं महत् । भवन्तं तेजसा युक्तमुत्पाद्य वसुधाधिपम् ॥ ६० ॥ यादवानामयं वंशस्त्वन्नाम्ना यदुपुङ्गव । पित्रा ते मंगलार्थाय स्थापितः पार्थिवाकरः ॥ ६१ ॥ वंशे चास्मिंस्तव विभो देवानां तनयाव्ययाः । ऋषीणामुरगाणां च उत्पत्स्यंते नृयोनिजाः ॥ ६२ ॥ तन्ममेमाः सुताः पंच कुमार्यो वृत्तसम्मताः । उत्पन्ना यौवनाश्वस्य भगिन्यो नृपसत्तम ॥६३॥ प्रतीच्छेमाः स्वधर्मेण गाजान्येन कर्मणा । वरं च ते प्रदास्यामि वरार्हस्त्वं मतो मम ॥ ६४ ॥ भैमाश्च कुकुराश्चैव भोजाश्चान्धक-यादवाः । दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्यातिं यास्यन्ति सप्त ते ।६५। स तस्मै धूम्रवर्णो वै कन्याः कन्याव्रते स्थिताः । जलपूर्णेन योगेन ददाविन्द्रसमाय वै ॥६६॥ वरं चास्मै ददौ प्रीतः स वै पन्नग-

---

आपसे तेजोयुक्त नृपतिको उत्पन्न करके अपने वंशको बड़ा बना कर स्वर्गको चले गए हैं॥६०॥हे यदुपुङ्गव ! यह यादवोंका वंश तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा, इसको मङ्गल करनेके लिये तुम्हारे पिताने स्थापित किया है यह राजाओंकी खानरूप होगा ॥ ६१ ॥ हे विभो ! तुम्हारे वंशमें देवताओंके ऋषियोंके और सर्पोंके अंश मनुष्ययोनिधारी पुत्र बन कर उत्पन्न होंगे ये मेरी पाँच शीलसम्पन्न कुमारियें हैं, हे नृपसत्तम ! यह (दूसरे) युवनाश्वकी भगिनीमें उत्पन्न हुई है ॥ ६३ ॥ इनको तुम विवाहविधिसे अपने धर्मानुसार ग्रहण करो, मैं तुम्हें वर देनेका पात्र समझता हूँ अतः तुम्हें वर देता हूँ, कि-॥ ६४ ॥ तुम्हारे वंशज भैम कुकुर भोज अन्धक यादव और दशार्ह प्रसिद्ध होंगे ॥ ६५ ॥ तब उस धूम्रवर्णने अपनी कन्याव्रतमें स्थित कन्याओंको हाथमें जलका संकल्प लेकर इन्द्रकी समान राजाके अर्पण करदिया ॥ ६६ ॥ तब उस पन्नगकुलने अदीन की समान सब कन्याओंको सुनाते हुए प्रसन्न होकर यह वर

युक्तः । आनयन् कन्यकाः सर्वा यथाक्रममदीनवत् ॥ ६७ ॥ एता सुते सुताः पंच सुतास्तु मम मानद । उत्पत्स्यन्ते पितुस्तेजो मातुश्चैव समाश्रिताः ॥ ६८ ॥ अस्मत्समयबद्धाश्च सलिलाभ्यंतरेचराः । तव वंशे भविष्यन्ति पार्थिवाः कामरूपिणः ॥६९॥ स वरं कन्यकाश्चैव लब्ध्वा यदुवरस्तदा । उदतिष्ठत वेगेन सलिलाच्चन्द्रमा इव ॥७०॥ स पंचकन्यामध्यस्थो ददृशे तत्र पार्थिवः । पंचतोरणसंयुक्तो नक्षत्रेणेव चन्द्रमाः ॥ ७१ ॥ स तदन्तःपुरं सर्वं ददर्श नृपसत्तमः । वैवाहिकेन वेषेण दिव्यस्रगनुलेपनः ७२ समाश्वास्य च ताः सर्वाः स पत्नीः पावकोपमाः । जगाम स्वपुरं राजा प्रीत्या परमया युतः ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच । स तासु नागकन्यासु कालेन महता नृपः ।

दिया कि-६७ हे मानद ! मेरी इन पाँच कन्याओंमें पिता और माताके तेजसे संयुक्त पाँच पुत्र उत्पन्न होवेंगे ॥ ६८ ॥ तुम्हारे वंशके राजे हमारे वरदानके प्रभावसे जलके भीतर विचरण कर सकने वाले और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले होवेंगे ॥ ६९ ॥ वर और कन्याओंको प्राप्त करनेके अनन्तर वह यदुवर जलमेंसे चन्द्रमाकी समान निकला ॥ ७० ॥ उस समय पाँच कन्याओंके साथमें खड़ा हुआ वह राजा पाँच नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमाकी समान दीख रहा था ॥ ७१ ॥ उस समय दिव्य चन्दन मालाधारी उस नृपसत्तमने वैवाहिक वेषसे अपने सारे अन्तःपुरको देखा ॥७२॥ तदनन्तर वह अपनी अग्निकी समान सकल पत्नियोंको ढाढस देकर परम प्रसन्न होता हुआ अपनी पुरीमें चला गया ॥७३॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ३७

वैशम्पायनजीने कहा, कि-बहुत समयमें उस राजाके उन

जनयामास विक्रान्तान् पंच पुत्रान् कुलोद्वहान् ॥ १ ॥ मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च । माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम् ॥ २ ॥ एतान् पञ्चात्मजानाजा पञ्चभूतोपमान् भुवि । ईक्षमाणो नृपः प्रीतिं जगामातुलविक्रमः ॥ ३ ॥ ते समत्वगताः सर्वे स्थिताः पञ्च यथाऽद्रयः । तेजिता बलदर्पाभ्यामूचुः पितरमग्रतः ॥ ४ ॥ तात युक्ताः स्म वयसा बले महति संस्थिताः । क्षिप्रमाज्ञामभिच्छामः किं कुर्मस्तव शासनात् ॥५॥ स तान्नृपतिशार्दूलः शार्दूलानिव वेगितान् । प्रीत्या परमया प्राह सुतान् वीर्यकुतूहलात् ॥ ६ ॥ विन्ध्यर्क्षवन्तावभितो द्वे पुर्यौ पर्वताश्रये । निवेशयतु यत्नेन मुचुकुन्दः सुतो मम ॥७॥ सह्यस्य चोपरिष्टात्तु दक्षिणां दिशमाश्रितः । पद्मवर्णोपि मे पुत्रो निवेशयतु मा चिरम् ॥ ८ ॥ तत्रैव परतः कान्ते देशे चम्पकभूषिते । सारसो

नागकन्याओंमें कुलको उठानेवाले पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥१॥ अतुल विक्रमी यदु पञ्चभूतोंकी समान अपने मुचुकुन्द महाभुज पद्मवर्ण माधव सारस और राजा हरित इन पाँच पुत्रोंको देख कर प्रसन्न होने लगा ॥२॥ ३ ॥ वे पाँचों पुत्र अवस्थामें आने पर बल और दर्पसे उत्साहित होकर पाँच पर्वतोंकी समान पिताके सामने खड़े हो उनसे कहने लगे ॥ ४ ॥ हे तात ! अब हमारी अवस्था कार्य करने योग्य होगई है और हममें (आपकी (कृपासे) बडा भारी बल आगया है, अब हम शीघ्र ही आपकी आज्ञासे किसी कामको करना चाहते हैं बताइये हम आपकी आज्ञासे क्या कार्य करें उस समय इन शार्दूलकी समान वेगवान् अपने पुत्रोंके वीर्यको जाननेके कुतूहलसे उस नृपतिशार्दूल ने परम प्रीतिके साथ कहा कि-॥६॥ मेरा पुत्र मुचुकुन्द विन्ध्याचलके उत्तरकी ओर और ऋक्षवान पर्वतके दक्षिणकी ओर इस प्रकार पर्वतके आश्रयमें दो पुरियें बसावे और मेरा पुत्र

मे पुरं रम्यं निवेशयतु पुत्रकः ॥९॥ हरितोऽयं महाबाहुः सागरे हरितोदके । द्वीपं पन्नगराजस्य सुतो मे पालयिष्यति ॥ १० ॥ माधवो मे महाबाहुर्ज्येष्ठपुत्रश्च धर्मवित् । यौवराज्येन संयुक्तः स्वपुरं पालयिष्यति ॥११॥ सर्वे नृपश्रियं प्राप्ता अभिषिक्ताः सचामराः । पित्रानुशिष्टाश्चत्वारो लोकपालोपमा नृपाः ॥ १२ ॥ स्वं स्वं निवेशनं सर्वे भेजिरे नृपसत्तमाः । पुरस्थानानि रम्याणि मृगयन्तो यथाक्रमम् ॥ १३ ॥ मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्विन्ध्यमध्यमरोचयत् । स्वस्थानं नर्मदातीरे दारुणोपलसंकटे ॥ १४ ॥ स च तं शोधयामास विविक्तं च चकार ह । सेतुं चैव समं चक्रे परिखाश्चामितोदकाः ॥१५॥ स्थापयामास मार्गेषु देवतायतनान्यपि ।

पद्मवर्ण भी सबसे ऊपर दक्षिण दिशामें शीघ्र ही नगर बसावेंगे उसके आगे (सबसे पश्चिम दिशामें) मेरा पुत्र चम्पकोंसे विभूषित मनोहर सारसाणमें भी नगर बसावे ॥ ९ ॥ और यह मेरा महाभुज पुत्र हरि हरे जल वाले समुद्रमें पन्नगराज (धूम्रवर्ण) के द्वीपका पालन करेगा ॥ १० ॥ और मेरा ज्येष्ठ-पुत्र महाभुज माधव जो धर्मज्ञ है उसका युवराज पद पर अभि-षेक होगा और वह रैवत पर्वतके समीपमें वर्तमान अपने नगरका पालन करेगा ॥११॥ अब तो पिताकी आज्ञा पाने पर वे लोक-पालोंकी समान चारों पुत्र नृपलक्ष्मीसे सम्पन्न होगए उनका अभिषेक किया गया और उनपर चमर डुलाया जाने लगा १२ तब वे सब नृपसत्तम अपने २ घरको चले गए और क्रमानुसार अपने रमणीय नगरोंके लिये उद्योग करते रहे ॥१३॥ राजर्षि मुचुकुन्दने विंध्याचलके बीचका स्थान पसन्द किया, वह स्थान नर्मदा नदीके तट पर था और दारुण पत्थरोंके कारण संकट-मय था । १४ ॥ मुचुकुन्दने उसको साफ करवाया और स्वच्छ कर दिया उसने वहाँ पुल बनवाया और अपार जलसे भरी

रथ्यावीथीनृणां मार्गांश्चत्वराणि वनानि च ॥ १६ ॥ स तां पुरीं धनवतीं पुरुहूतपुरीसमाम् । नातिदीर्घेण कालेन चकार नृपसत्तमः ॥ १७ ॥ नाम चास्याः शुभं चक्रे निर्मितं स्वेन तेजसा । तस्याः पुर्या नृपश्रेष्ठो देवश्रेष्ठपराक्रमः ॥१८॥ महाश्मसंघातवती ऋक्षवन्तमुपाश्रिता । माहिष्मती नाम पुरी प्रकाशमुपयास्यति १९ उभयोर्विन्ध्ययोः पादे नगयोस्तां महापुरीम् । मध्ये निवेशयामास श्रिया परमया युताम् ॥ २० ॥ पुरिकां नाम धर्मात्मा पुरीं देवपुरीप्रभाम् । उद्यानशतसम्बाधां समृद्धापणचत्वराम् ॥ २१ ॥ ऋक्षवन्तं समभितस्तीरे तत्र निरामये । निर्मिता सा पुरी राज्ञा पुरिका नाम नामतः ॥२२॥ स ते द्वे विपुले पुर्यौ देवभोग्योपमे

खाई खुदवाई ॥ १५ ॥ और स्थान स्थान पर देवमन्दिर बनवाये और गलीकूँचे मनुष्योंके मार्ग चौक बनवाये और बाग बगीचे लगवाये ॥ १६ ॥ इस प्रकार उस नृपश्रेष्ठने थोड़े ही समयमें उस पुरीको धनसम्पन्न और इन्द्रकी नगरीकी समान प्रभा वाली बना दिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर देवताओंमें श्रेष्ठ (इन्द्र) की समान पराक्रमी उस नृपश्रेष्ठने अपने तेजसे बनाई हुई उस पुरीका शुभ नाम रक्खा १८ ॥ ऋक्षवान् पर्वतके पास यह पुरी महाश्मसंघातवती थी अर्थात् इसमें बड़े २ पत्थरोंके ढेर थे अत एव यह पुरी माहिष्मती नामसे प्रसिद्ध होगी १९ तदनन्तर उस धर्मात्माने विंध्याचल और ऋक्षवान् पर्वतकी तलैटीमें परमशोभासे सम्पन्न देवपुरीकी समान एक बड़ी भारी पुरिका नाम वाली पुरी बसाई, उसमें सैंकड़ों बगीचे लग रहे थे और उसके (बाजारके) चौक और दूकाने समृद्ध थीं ॥२०॥२१॥ इस प्रकार ऋक्षवान् पर्वतके समीपके निरामय तट पर वह पुरी राजाने पुरिका नामसे बसाई २२ तब वह राजधर्ममें स्थित धर्मात्मा राजा उन देवताओंके भोगने योग्य दोनों बड़ी भारी

शुभे पालयामास धर्मात्मा राजा धर्मे व्यवस्थितः ॥ २३ ॥ पञ्च-
वर्णोऽपि राजर्षिः सह्यपृष्ठे पुरोत्तमम् । चकार नद्या वेणायास्तीरे
तरुलताकुले ॥२४॥ विषयस्याल्पतां ज्ञात्वा सम्पूर्णं राष्ट्रमेव च ।
निवेशयामास नृपः सद्मप्रायमुत्तमम् ॥ २५ ॥ पञ्चावर्तं जनपदं
करवीरं च तत्पुरम् । निर्मितं पञ्चवर्णेन प्राजापत्येन कर्मणा २६
सारसेनापि विहितं रम्यं क्रौञ्चपुरं महत् । चम्पकाशोकबकुलं
विपुलं ताम्रमृत्तिकम् ॥ २७ ॥ वनवासीति विख्यातः स्फीतो
जनपदो महान् । पुरस्य तस्य तु श्रीमान् द्रुमैः सार्वर्तुकैर्वृतः २८
हरितोऽपि समुद्रस्य द्वीपं समभिपालयत् । रत्नसञ्चयसम्पूर्णं
नारीजनमनोहरम् ॥ २९ ॥ तस्य दाशा जले मग्ना मद्गुरा नाम
विश्रुताः । ये हरन्ति सदा शंखान् समुद्रोदरचारिणः ॥ ३० ॥
तस्यापरे दाशजनाः प्रवालाञ्जनसंभवान् । सञ्चिन्वन्ति सदा

शुभ पुरियोंका पालन करने लगा २३ राजर्षि पञ्चवर्णने भी
सह्याचलके पीछे वेणा नदीके वृक्ष और लताओंसे घिरे हुए
तट पर श्रेष्ठ नगर बसाया २४ उस राजाने पृथ्वीको थोड़ी
देख कर अपने सारे राष्ट्रको श्रेष्ठ महलके आकारमें बसा दिया
पञ्चवर्णने प्राजापत्य कर्मसे अर्थात् त्वष्टासे सम्बन्ध रखने वाले
शिल्प कर्मसे पञ्चावर्त नामक देश और करवीर नामक नगर
बसाया ॥२६॥ सारसने भी रमणीय क्रौंचपुर बसाया, उसमें
चम्पक अशोक और बकुलके वृक्ष लगवाये और ताम्बेकी
मृत्तिका (पृथ्वी पर पत्थर) जड़वाई ॥ २७ ॥ उस नगरके
सामने सब ऋतुओंके वृक्षों वाला वनवासी नामसे प्रसिद्ध
बड़ाभारी जनपद था ॥ २८ ॥ हरितने भी रत्नोंकी राशियों
से भरेहुए और स्त्रियोंसे रमणीय समुद्रद्वीपका पालन किया २९
उसके धीवर मद्गुर नामसे प्रसिद्ध थे, वे समुद्रके भीतर फिरने
वाले जलमें गोता लगाकर सदा शंख निकाला करते थे ।३०।

युक्ता जातरूपं च मौक्तिकम् ॥ ३१ ॥ जलजानि च रत्नानि निषादास्तस्य मानवाः । प्रचिन्वन्तोर्णवे युक्ता नौभिः संयानगामिनः ॥ ३२ ॥ मत्स्यमांसेन ते सर्वे वर्तन्ते स्म सदा नराः । गृह्णन्तः सर्वरत्नानि रत्नद्वीपनिवासिनः ॥ ३३ ॥ तैः संयानगतैर्द्रव्यैर्वणिजो दूरगामिनः । हरितं नर्पयन्त्येकं यथैव धनदं तथा ३४ एवमिक्ष्वाकुवंशात्तु यदुवंशो विनिःसृतः । चतुर्धा यदुपुत्रैस्तु चतुर्भिर्भिद्यते पुनः ॥ ३५ ॥ स यदुर्माधवे राज्यं विसृज्य यदुपुङ्गवे । त्रिविष्टपं गतो राजा देहं त्यक्त्वा महीतले ॥ ३६ ॥ बभूव माधवसुतः सत्त्वतो नाम वीर्यवान् । सात्त्वतवृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणे स्थितः ॥ ३७ ॥ सत्त्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत् । येन भैमाः सुसम्वृत्ताः सत्त्वतात् सात्त्वताः

उसके दूसरे धीवर मत्स्यलाञ्छन (मूँगे और मोतियों) से उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंको और चाँदीकी समान उज्ज्वल मोतियोंको लाते थे ॥ ३१ ॥ उसके निषाद मनुष्य समुद्रमें बड़ी२ नौकाओंको लगाकर उनमेंसे छोटी२ नौकाओंमेंसे उतर कर जलमें उत्पन्न होनेवाले रत्नोंको निकालकर लाते थे ३२ वे सब रत्नद्वीप निवासी मनुष्य सब प्रकारके रत्नोंको निकालते रहते थे और मछलीके मांससे आजीविका चलाते थे ३३ वे दूरगामी वणिक छोटी२ नौकाओंमें दूर जाकर कुबेरकी समान एक हरितको ही तृप्त करते रहते थे ॥ ३४ ॥ इसप्रकार इक्ष्वाकुके वंशसे यदुवंश निकला और वह यदुवंश यदुके चार पुत्रोंसे फिर चार भागमें विभक्त होगया था ॥ ३५ ॥ राजा यदु यदुपुङ्गव माधवको राज्य अर्पण कर पृथ्वीमें अपने शरीर को त्याग स्वर्गको चला गया था ३६ माधवके सत्त्वत नामक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, उस गुणसम्पन्न राजाका बर्ताव सात्त्विक था और वह राजगुणमें स्थित था ॥ ३७ ॥ सत्त्वत

स्मृताः ॥ ३८ ॥ राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन्रामे राज्यं प्रशासति । शत्रुघ्नो लवणं हत्वा चिच्छेद स मधोर्वनम् ॥ ३९ ॥ तस्मिन् मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम् । निवेशयामास विभुः सुमित्रानन्दिवर्धनः ॥ ४० ॥ पर्यये चैव रामस्य भरतस्य तथैव च । सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम् ॥ ४१ ॥ भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसम्बन्धकारणात् । स्ववशे स्थापिता पूर्वं स्वयमध्यासिता तथा ॥ ४२ ॥ ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि । अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत ॥ ४३ ॥ अन्धकस्य सुतो जज्ञे रैवतो नाम पार्थिवः । ऋक्षोपि रैवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्धनि ॥ ४४ ॥ ततो रैवत उत्पन्नः पर्वतः

पुत्र भीम नामक बड़ाभारी राजा हुआ उसके कारण उसके वंशज भैम कहलाते हैं और सत्वान्‌के कारण सात्वत कहलाते हैं ३८ जब भीम राजा राज्यपर स्थित था उस समय रामचन्द्र जीके राज्यशासन चलाते समय शत्रुघ्नने लवणको मारकर मधुके वनको काट डाला था ॥ ३९ ॥ फिर सुमित्राके आनन्द को बढ़ाने वाले विभु लक्ष्मणने उस मधुवनके स्थानमें मथुरा नामवाली यह पुरी बसाई थी ४० रामचन्द्र भरत और दोनों सुमित्रानन्दनोंके इस लोकसे प्रयाण करनेपर उस वैष्णव स्थान को ही भीमने फिर लेलिया था ४१ भीमने राज्यके सम्बन्धके कारण (अर्थात् मधुके पुत्र लवणके नष्ट होनेपर उसके येवत्ते शास्त्रानुसार उसके राज्यको पासकते हैं इस शास्त्रीय सम्बन्ध से) भीमने उस पुरीको अपने वशमें करलिया और स्वयं वहाँ रहने लगा ४२ जिस समय कुश अयोध्यामें राज्य करते थे और लव युवराज पद पर थे उस समय भीमका पुत्र अन्धक (मथुरापुरी पर) राज्य करता था ४३ अन्धकका पुत्र रैवत नामक राजा हुआ और रमणीय पर्वतशिखर पर रैवत-

सागरान्तिके । नाम्ना रैवतको नाम भूमौ भूमिधरः स्मृतः ४५
रैवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भो महायशाः । बभूव पृथिवीपालः
पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः ॥४६॥ तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु
केशव । चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाः शुभाः ॥ ४७॥
वसुर्बभ्रुः सुषेणश्च सभाक्षैव वीर्यवान् । यदुप्रवीराः प्रख्याता लोक-
पाला इवापरे ॥४८॥ तैरयं यादवो वंशः पार्थिवैर्बहुली कृतः ।
यैः सार्कं कृष्ण लोकेऽस्मिन् प्रजावन्तः प्रजेश्वराः ॥ ४९ ॥
वसोस्तु कुन्तिविषये वसुदेवः सुतो विभुः । ततः स जनयामास
सुप्रभे द्वे च दारिके ॥ ५० ॥ कुन्तीं च पाण्डोर्महिषीं देवता-
मिव भूचरीम् । भार्यां च दमघोषस्य चेदिराजस्य सुप्रभाम् ५१
एष ते स्वस्य वंशस्य प्रभवः सम्प्रकीर्तितः । श्रुतो मया पुरा

के अन्त उत्पन्न हुआ ४४ उस सागर समुद्रके पास रैवत पर्वत उत्पन्न हुआ था, वह पर्वत राजाके नामसे रैवतक कहलाया था ४५ रैवतके महा यशस्वी विश्वगर्भ नामक राजा पुत्र हुआ वह प्रभु पृथ्वीमें प्रसिद्ध राजा होगया था ॥ ४६ ॥ हे केशव ! उसकी दिव्य रूपवाली तीन स्त्रियें थीं उनमें लोकपालोंकी समान चार पुत्र उत्पन्न हुए थे ४७ वे वसु बभ्रु सुषेण और वीर्यवान्-सभा नामक चारों यदुवीर दूसरे लोकपालोंकी समान प्रसिद्ध थे ४८ उन राजाओंसे यह यादववंश अनेक भागोंमें विभक्त होगया है,हे कृष्ण ! उनके (नामोंके)साथ इस लोकमें बहुतसे सन्तानवान् राजे रहते हैं ४९ (शूर उपनाम वाले) वसुके वसुदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । फिर उसने उसकी समान कान्तिवाली दो पुत्रियोंको उत्पन्न किया, वे कुन्तीभोज के देशमें रहती थीं ५० उनमें पृथ्वीमें फिरनेवाली देवताकी समान कुन्ती पाण्डुकी रानी हुई और सुप्रभा चेदिराज दम-घोषकी पत्नी हुई थी ५१ मैंने तुमसे यह अपने वंशकी उत्पत्ति

कृष्ण कृष्णद्वैपायनान्तिकात् ॥ ५२ ॥ त्वं त्विदानीं प्रनष्टेऽस्मिन् वंशे वंशभृताम्बर । स्वयम्भूरिव सम्प्राप्तो भवायास्मज्जयाय च ॥ ५३ ॥ न तु त्वां पौरमात्रेण शक्ता गूहयितुं वयम् । देवगुह्येष्वपि भवान् सर्वज्ञः सर्वभावनः ॥ ५४ ॥ शक्तश्चापि जरासन्धं नृपं योधयितुं विभो । त्वद्बुद्धिवशगाः सर्वे वयं चोद्यमने स्थिताः ॥ ५५ ॥ जरासन्धस्तु बलवान्नृपाणां मूर्ध्नि तिष्ठति । अप्रमेयबलश्चैव वयं च कृशसाधनाः ॥५६॥ न चेयमेकाहमपि पुरी रोधं सहिष्यति । कृशभक्तेन्धनत्राणा दुर्गैरपरिवेष्टिता ॥ ५७ ॥ असंस्कृताम्बुपरिखा द्वारयन्त्रविवर्जिता । वप्रप्राकारनिचया कर्तव्या बहुविस्तरा ॥ ५८ ॥ संस्कर्तव्यायुधागारा योक्तव्या चेष्टिकाचयैः । कंसस्य बलभाग्यत्वान्नातिगुप्ता

कही, हे कृष्ण ! मैंने इसको पहिले व्यासजीसे सुना था ५२ हे वंशधारियोंमें श्रेष्ठ ! आप तो इस नष्ट होते हुए वंशके लिए और हमारा कल्याण करनेके लिये स्वयम्भू की समान आ गए हैं ५३ हम साधारण पुरवासी बताकर (जरासन्धसे) आपको नहीं छिपा सकते, इस बातको सर्वज्ञ होनेके कारण आप भी जानते हैं ५४ हे प्रभो ! आप राजा जरासन्धसे युद्ध करनेमें भी समर्थ हैं, हम सब आपकी बुद्धिके वशमें चलने वाले हैं और योधनमें स्थिर हैं ५५ जरासन्ध बलवान् है उसके पास असंख्य सेना है और हमारे साधन कृश हैं ५६ यह दुर्गोंसे न घिरी हुई पुरी भक्त ईंधन त्राणके कम होने पर एक दिनके आक्रमणको भी न सह सकेगी ५७ इसकी खाइएँ साफ नहीं कीगई हैं, और इसके द्वारों पर यन्त्र भी नहीं हैं, इसमें विस्तृत स्थानमें वप्र (सुरङ्ग) और आकार बनानेकी आवश्यकता है ५८ इसमें आयुधागार बनानेकी आवश्यकता है और इसमें ईंटोंके ढेर डालनेकी आवश्यकता है, कंस भाग्य

पुरा जनैः ॥५९॥ सद्यो निपतिते कंसे राज्येऽस्माकं नवोदगे। पुरी प्रत्यग्ररोधेव न रोधं विसहिष्यति ॥ ६० ॥ बलं सम्मर्द्द-भग्नं च कृष्यमाणं परेण ह। असंशयमिदं राष्ट्रं जनैः सह विनंक्ष्यति ॥ ६१ ॥यादवानां विरोधेन ये जिता राज्यकामुकैः। ते सर्वे द्वैधमिच्छन्ति यत्क्षमं तद्विधीयताम्॥६२॥पंचनीया भवि-ष्यामो नृपाणां नृपकारणात्। जरासन्धभयार्तानां द्रवतां राज्य-संभ्रमे ॥६३॥ आर्ता वक्ष्यन्ति नः सर्वे रुध्यमानाः पुरे जनाः। यादवानां विरोधेन विनष्टा स्मेति केशव ॥ ६४ ॥ एतन्मम मतं कृष्ण विश्रम्भात् समुपाहृतम्। त्वं तु विज्ञापितः पूर्वं न पुनः सम्प्रबोधितः ॥ ६५ ॥ त्वमस्य नेता सैन्यस्य वयं त्वच्छासने

का बलवान् था अतएव पहिले मनुष्योंने इसकी खूब रक्षा नहीं की थी ५९ कंसके मारे जानेपर हमारा राज्य शीघ्र ही प्रति-ष्ठित होगया था अब यह पुरी कर वसूल करनेके लिये खड़े हुए राजभटोंसे अवरुद्ध ग्रामकी समान इस हल्लेको सह न सकेगी ६० इसकी सेना मर्द्दन करने पर भग्न होजायगी और शत्रुओंके खेंचने पर यह राष्ट्र मनुष्यों सहित नष्ट होजावेगा ६१ राज्यकामुक पुरुषोंने यादवोंसे विरोध करनेवाले जिन(राजाओं) को जीत लिया था, वे सब द्वैध चाहते हैं; अतः जो उचित हो सो करिये ६२ हम राजे यदि राजा होनेपर भी राज्यसंभ्रमसे जरासन्धसे डरकर भागेंगे तो अपने राजापनको धोखा देंगे ६३ शत्रुओंके पीड़ा देने पर मनुष्य हमसे क्रोधमें भरकर कहेंगे, कि हम यादवोंके विरोधके कारण नष्ट होरहे हैं ६४ हे कृष्ण! मेरा यह मत है, विश्वासके साथ मैंने इसको कहदिया, आप तो इस बातको पहिलेसे ही जानते होंगे यह बात आपको मैंने नई नहीं सुझाई है ६५ आप इस सेनाके नेता हैं, और हम भी आपके शासनमें स्थित हैं और यह विरोध भी आपके कारण

स्थिताः । त्वन्मूलश्च विरोधोऽयं रक्षास्मानात्मना सह ॥९६॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रु-
वाक्यं नाम अष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच । विकद्रोस्तु वचः श्रुत्वा वसुदेवो महायशाः । परितुष्टेन मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥१॥ राजा षाड्गुण्यवक्ता वै राजा मन्त्रार्थतत्त्ववित् । स तत्त्वं च हितं चैव कृष्णोक्तं किल धीमता ॥ २ ॥ भाषिता राजधर्माश्च सत्याश्च जगतो हिताः । एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं विकद्रोश्च महात्मनः । वाक्यमुत्तममेकाग्रो बभाषे पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥ ब्रुवतो वः श्रुतं वाक्यं हेतुतः क्रमतस्तथा । न्यायतः शास्त्रतश्चैव दैवं चैवानुपश्यताम् श्रूयतामुत्तरं वाक्यं श्रुत्वा च परिगृह्यताम् । नयेन व्यवहर्तव्यं

होरहा है, अतः आप हमारी और अपनी भी रक्षा करिये ९६
अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त २८

वैशम्पायनजीने कहा, कि-विकद्रुके वचनको सुनकर महायशस्वी वसुदेवजीने प्रसन्न मनसे यह बात कही, कि-१ हे कृष्ण ! राजा षाड्गुण्यका वक्ता होता है और मन्त्रणाके प्रयोजनके तत्त्वको जानने वाला होता है, इन धर्मात्माने यही हितकारिणी तत्त्व बात कही है २ इन्होंने राजधर्म और जगत्के हितकारी सत्य वचन कहे हैं पुरुषोत्तमने पिताके और महात्मा विकद्रुके कथनको सुनकर एकाग्र हो यह उत्तम बात कही कि ३ आपसे किस निमित्त वैर हुआ है, शत्रुका पराक्रम क्या है और जिस निमित्त वैर हुआ है उसके परिहारसे अरिष्टकी शान्ति करनी चाहिये ऐसी युक्ति की और शास्त्रमें लिखा है, कि-अशक्त पुरुषको भाग जाना चाहिये, यह सब बातें सुन लीं अतः अब आप भावी कार्यक्रमका विचार करिये ४ अब तुम (मेरे) उत्तररूप वाक्यको सुनो और उसको सुनकर ग्रहण

पार्थिवेन यथाक्रमम् ॥ ५ ॥ सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च । द्वैधीभावं संश्रयं च षाड्गुण्यं चिन्तयेत् सदा ॥ ६ ॥ बलिनः सन्निकृष्टेषु न स्थेयं पण्डितेन वै । अपक्रमेत्त्रिकालज्ञः समर्थो युद्धमुद्वहेत् ॥ ७ ॥ अहं तावत्सहार्येण मुहूर्तेऽस्मिन् प्रकाशिते । जीवितार्थं गमिष्यामि शक्तिमानप्यशक्तवत् । ततः सह्याचलयुतं सहार्येणाहमव्ययम् । आत्मद्वितीयः श्रीमन्तं प्रवेक्ष्ये दक्षिणापथम् ॥ ९ ॥ करवीरपुरं चैव रम्यं क्रौंचपुरं तथा । द्रक्ष्याव-स्तत्र सहितौ गोमन्तं च नगोत्तमम् ॥१०॥ आवयोर्गमनं श्रुत्वा जितकाशी स पार्थिवः । अप्रविश्य पुरीं दर्पादनुसारं करिष्यति ॥ ११ ॥ ततः सह्यवनेष्वेव राजा यास्यति सानुगः । आवयोर्ग्रहणे चैव नृपतिः प्रयतिष्यति ॥१२॥ एषा नः श्रेयसी

करो राजाको क्रमशः नीति पूर्वक व्यवहार करना चाहिये ५ (राजा) सन्धि विग्रह यान आसन द्वैधीभाव और संश्रय इस षाड्गुण्यका सर्वदा विचार करता रहे ६ पण्डित पुरुष बलवान् पुरुषके सामने खड़ा न रहे, त्रिकालको जाननेवाला पुरुष वहांसे हट जाय और समर्थ हो तो युद्ध करे ७ मैं तो शक्तिमान् होने पर भी इस प्रकाशित मुहूर्तमें अशक्त पुरुषकी समान आर्य्य (बलदेव) के साथ अपना जीवन बचानेके लिये भाग जाऊँगा ८ तदनन्तर मैं शोभासम्पन्न सह्याचल पर्वतसे युक्त अक्षय दक्षिणापथमें आर्यके साथ जाऊँगा ॥ ९ ॥ वहाँ हम दोनों रमणीय करवीरपुरको और क्रौंचपुरको देखेंगे और पर्वतश्रेष्ठ गोमन्तको भी देखेंगे ॥१०॥ हमारे भागनेके वृत्तान्त को सुन कर जीतनेसे प्रकाशित होने वाला वह राजा पुरीमें न घुस कर दर्पसे हमारे पीछे २ दौड़ेगा ११ तब वह राजा अपने अनुचरोंके साथ सह्यवनमें घुस जावेगा और वह राजा हम दोनोंको पकड़नेका यत्न करेगा ॥ १२ ॥ यह हमारी यात्रा

यात्रा भविष्यति कुलस्य वै । पौराणामथ पुर्याश्च देशस्य च सुखावहा ॥ १३ ॥ न च शत्रोः परिभ्रष्टा राजानो विजिगीषवः । परराष्ट्रेषु मृष्यन्ति मृधे शत्रोः क्षयं विना ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वा तु तौ वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ । प्रपेदतुरसम्भ्रान्तौ दक्षिणौ दक्षिणापथम् ॥१५॥ तौ तु राष्ट्राणि शतशश्चरन्तौ कामरूपिणौ । दक्षिणां दिशमास्थाय चेरतुर्मार्गगौ सुखम् ॥ १६ ॥ सह्यपृष्ठेषु रम्येषु मोदमानावुभौ तथा । दक्षिणापथगौ वीरावध्वानं संप्रपेदतुः ॥१७॥ तौ च स्वल्पेन कालेन सह्याचलविभूषितम् । करवीरपुरं प्राप्तौ स्ववंशेन विभूषितम् ॥१८॥ तौ तत्र गत्वा वेणाया नद्यास्तीरान्तमाश्रितम् । आसेदतुः प्ररोहाढ्यं न्यग्रोधं तरुपुङ्गवम् ॥ १९ ॥ अधस्तात्तस्य वृक्षस्य मुनिं दीप्ततपोनिधम् ।

हमारे कुलका कल्याण करने वाली होगी और यह पुरवासी देश और नगरको भी सुखदेने वाली होगी ॥ १३ ॥ जीतनेकी इच्छावाले राजे शत्रुको पाकर उसके परिभ्रष्ट होने पर अर्थात् शत्रुके पञ्जेमें पड़ कर निकल जाने पर, शत्रुके राष्ट्रमें शत्रुका क्षय किये विना चैन नहीं पाते हैं ॥ १४ ॥ वे दोनों समर्थ वीर श्रीकृष्ण और संकर्षण इस प्रकार कह कर विना घबड़ाहटके दक्षिणापथमें पहुँच गए ॥ १५ ॥ वे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले दक्षिण दिशाके सैंकड़ों राष्ट्रोंको देखते हुए मार्गमें घूमने लगे ॥ १६ ॥ वे दोनों रमणीय सह्यपर्वतके शिखरों पर क्रीड़ा करते हुए दक्षिणापथमें आ मार्गमें विचरण करने लगे १७ वे थोड़े ही समयमें सह्याचलसे विभूषित और अपने वंशसे विभूषित करवीरपुरमें पहुँच गए ॥ १८ ॥ वे वहाँ पर वेणा नदीके तट पर खड़े हुए लता चढ़ानेके धनी तरुपुङ्गव न्यग्रोध वृक्षके नीचे पहुँच गए ॥ १९ ॥ उस वृक्षके नीचे उन्होंने एक तपके खजाने रूप प्रकाशवान् मुनिको देखा, उनके कन्धे पर फरसा

अंसावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम् ॥२०॥ गौरमग्निशिखा-
कारं तेजसा भास्करोपमम् । क्षत्रान्तकरमक्षोभ्यं वपुष्मन्तमिवा-
र्णवम् ॥२१॥न्यस्तसंकुचिताधानं काले हुतहुताशनम् । क्लिन्नं
त्रिषवणाम्भोभिराद्यं देवगुरुं यथा ॥२२॥ सवत्सां धेनुकां श्वेतां
होमधुक्कामदोहनाम् । क्षीरारणिं कर्षमाणं महेन्द्रगिरिगोचरम्२३
ददृशातुस्तौ हि सहितावपरिश्रान्तमव्ययम् । भार्गवं राममासीनं
मंदरस्थं यथा रविम्॥२४॥ न्यायतस्तौ तु तं दृष्ट्वा पादमूले कृतां-
जली । वसुदेवसुतौ वीरौ सविघ्नावाविव पावकौ ॥२५॥ कृष्ण-
स्तमृषिशार्दूलमुवाच वदतां वरः । श्लक्ष्णं मधुरया वाचा लोक-
वृत्तान्तकोविदः ॥ २६ ॥ भगवन् जामदग्निं त्वामवगच्छामि

रक्खा हुआ था और वह जटा तथा वल्कल धारण कर रहे
थे ॥ २० ॥ वह अग्निशिखाकी समान गौरवर्ण थे और तेजमें
सूर्यकी समान दीख रहे थे, वह क्षत्रियोंका अन्त करने वाले मूर्ति-
मान् अक्षोभ्य समुद्रकी समान दीखते थे २१ उनका (त्रेताग्नि
का) आधान सङ्कुचित हो गया था तब भी समय २ पर
अग्निको तृप्त किया करते थे और वह त्रिषवणके जलसे अभि-
षिक्त होनेसे आद्य देवगुरु (बृहस्पति) की समान दीखते थे २२
उनके पास बछड़े वाली सफेद गौ थी, वह होमके लिये दुही
जाती थी और इच्छानुसार दूध देती थी, वह अपने क्षीरकी
अरणिको खैंच रहे थे और महेन्द्राचलमें दीखा करते थे २३ उन
दोनों भाइयोंने ऐसे अव्यय अपरिश्रान्त भृगुवंशी रामको मन्दरा-
चल पर स्थित सूर्यकी समान बैठे हुए देखा ॥ २४ ॥ उस समय
उनको देख कर कुण्डमें स्थित अग्निकी समान प्रज्वलित वीर
वसुदेव-पुत्रोंने उनके चरणोंमें हाथ जोड़ कर प्रणाम किया २५
लोकव्यवहारमें चतुर और वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने उन ऋषि-
शार्दूलसे सरल और मधुर वाणीमें कहा, कि—॥ २६ ॥ हे भगवन् !

भार्गवम् । रामं मुनीनामृषभं क्षत्रियाणां कुलान्तकम् ॥ २७ ॥ त्वया सायकवेगेन क्षिप्तो भार्गव सागरः । इषुपातेन नगरं कृतं शूर्पारकं त्वया ॥ २८ ॥ धनुष्पञ्चशतायामामिषुपंचशतोच्छ्रयम् । सह्यस्य च निकुञ्जेषु स्फीतो जनपदो महान् ॥२९॥ अतिक्रम्योदधेर्वेलामपरान्ते निवेशितः । त्वया तत्कार्तवीर्यस्य सहस्रभुजकाननम् ॥३०॥ छिन्नं परशुनैकेन स्मरता निधनं पितुः । इयमद्यापि रुधिरैः क्षत्रियाणां हतद्विषाम् ॥ ३१ ॥ स्निग्धैस्त्वत्परशूत्सृष्टै रक्तपंका वसुन्धरा । रैणुकेय विजाने त्वां क्षितौ क्षितिपरोषणम् ॥ ३२ ॥ परशुमग्रहे युक्तं यथैव हरणे तथा । तदिच्छाव-स्त्वया विप्र कंचिदर्थमुपश्रुतम् ॥३३॥ उत्तरं च श्रुतार्थेन मत्युक्त-

---

भृगुवंशी जमदग्निके पुत्र क्षत्रियोंके कुलका अन्त करने वाले मुनियोंमें श्रेष्ठ परशुराम हैं, इस बातको जानता हूँ ॥ २७ ॥ हे भार्गव ! तुमने बाण मार कर अपने बाणवेगसे समुद्रको फेंक कर उस स्थानमें शूर्पारक नामक स्थान बसाया था ॥२८॥ तब आपने पचास धनुष चौड़ा और पाँच सौ बाण (बाण दो हाथ) लम्बा बड़ा भारी जनपद सह्याचलकी कुञ्जोंमें बनाया था २९ यह तुमने समुद्रके किनारेको छोड़ कर पश्चिम समुद्रके तट पर बनाया था, तुमने अपने पिताके वधका स्मरण करके कार्तवीर्य के सहस्र भुजारूपी वनको एक फरसेसे ही काट डाला था, तुम्हारे फरसेसे मारे हुए शत्रुओंके स्निग्ध रुधिरसे इस पृथ्वीमें आज भी रक्तकी कीचड़ दीख रही है, हे रेणुकेय ! मैं जानता हूँ, कि-आप पृथ्वीमें पृथ्वीका पालन करने वाले राजाओं पर रुष्ट रहते हैं ॥ ३०-३२ ॥ हम जानते हैं, कि-आप फरसेको जैसे पकड़ते हैं, वैसे ही उसको फिरा सकते हैं, हे विप्र ! इस लिये हम आपसे एक बातको सुनना चाहते हैं ॥ ३३ ॥ आप शास्त्रके प्रयोजनोंको जानने वाले हैं अतः आप उसका

मविशंकया । आवयोर्मथुरा राम यमुनातीरशोभिनी ॥ ३४ ॥ यादवौ स्वो मुनिश्रेष्ठ यदि ते श्रुतिमागतौ । वसुदेवो यदुश्रेष्ठः पिता नौ हि धृतव्रतः ॥ ३५ ॥ जन्मप्रभृति चैवावां व्रजेष्वेव नियोजितौ ।तौ स्वः कंसभयात्तत्र शंकितौ परिवर्धितौ ॥३६॥ वयं च प्रथमं प्राप्तौ मथुरायां प्रवेशितौ । तावावां व्युत्थितं हत्वा समाजे कंसमोजसा ॥ ३७ ॥ पितरं तस्य तत्रैव स्थापयित्वा जनेश्वरम् । स्वमेव कर्म चारब्धौ गवां व्यापारकारकौ ॥३८॥ अथावयोः पुरं रोद्धुं जरासन्धो व्यवस्थितः । संग्रामान् सुबहून् कृत्वा लब्धलक्षावपि स्वयम् ॥ ३९ ॥ततः स्वपुररक्षार्थं प्रजानां च धृतव्रत । अकृतार्थावनुद्योगौ कर्तव्यबलसाधनौ ॥४०॥अरथौ पत्तिनौ युद्धे निस्तनुत्रौ निरायुधौ । जरासन्धोऽग्रमभयात् पुरा

उत्तर निःशंक होकर दीजियेगा। हे परशुराम ! यमुनाजीके तट पर हमारी मथुरा नाम वाली पुरी शोभा पारही है ३४ यदि आपने सुना हो, तो हे मुनिश्रेष्ठ ! हम दोनों यादव हैं, धृतव्रत यदुश्रेष्ठ वसुदेवजी हम दोनोंके पिता हैं ॥ ३५ ॥ कंसके भयसे जन्मसे ही हमें व्रजमें रक्खा गया था और हम तहाँ शंकित रहते हुए बड़े हुए थे ॥ ३६ ॥ हम जब मथुरामें घुसे तब तहाँ पहिले प्रवेश करने पर हमने समाजमें उद्धत कंसको बलपूर्वक मार कर ॥ ३७ ॥ उसके पिताको ही तहाँ राजा बना कर गौओंको हाँकनेका काम करने वाले हमने अपना काम करना आरंभ कर दिया था ॥ ३८ ॥ इसी समय जरासन्धने हमारे नगरको घेरने का उद्योग किया था तब हमने बहुतसे संग्राम किये थे, उनमें हमें लक्ष्यप्राप्ति होगई थी अर्थात् हमारी जीत होगई थी, हे धृत-व्रत ! तब भी हम अपनी पुरीकी रक्षा करनेके लिये अपने पास सेना और साधन आदि होने पर भी उद्योग न करनेके कारण अकृतार्थ होगए अर्थात् हमने युद्ध नहीं किया ३९-४० जरासंध

द्वारेण निःसृतौ ॥४१॥ उभावावामनुप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठ तवांतिकम् । आवयोर्मन्त्रमात्रेण कर्तुमर्हसि सत्क्रियाम् ॥४२॥ श्रुत्वैतद्भार्गवो रामस्तयोर्वाक्यमनिंदितम् । रैणुकेयः प्रतिवचो धर्मसंहितमब्रवीत् । अपरान्तादहं कृष्ण संगतोहागतः प्रभो । एक एव विना शिष्यैर्युवयोर्मन्त्रकारणात् ॥४४॥ विदितो मे व्रजे वासस्तव पद्मनिभेक्षण । दानवानां वधश्चापि कंसस्यापि दुरात्मनः ॥४५॥ विग्रहं च जरासन्धे विदित्वा पुरुषोत्तम । तव सभ्रातृकस्येह संप्राप्तोऽस्मि वरानन ॥ ४६ ॥ जाने त्वां कृष्ण गोप्तारं जगतः प्रभुमव्ययम् । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमबालं बालतां गतम् ॥ ४७ ॥ न त्वयाऽविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते । तथापि भक्तिमात्रेण शृणु वक्ष्यामि ते वचः ॥४८॥ पूर्वजैस्तव गोविन्द पूर्वं पुरमिदं

के उद्योगके भयसे हम दोनों नगरमेंसे निकल पड़े इस समय न हमारे पास रथ हैं न पैदल हैं न कवच हैं और न आयुध हैं४१ हे मुनिश्रेष्ठ ! अब हम आपके पास आगए हैं, आप सलाह देकर हमारा सत्कार करिये ४२ रेणुकापुत्र भृगुवंशी परशुरामने उन के अनिन्दित वाक्यको सुन कर धर्ममय उत्तर दिया, कि ४३ हे विभो ! तुम्हे सलाह देनेके कारण ही मैं शिष्योंको भी साथ ना लेकर पश्चिमसमुद्रसे यहाँ आया हूँ ४४ हे पद्मपत्रकी समान नेत्र वाले ! मैं आपके व्रजमें रहनेकी बात जानता हूँ, दानवोंके वधकी और दुरात्मा कंसके वधकी बात भी मुझे विदित है ४५ हे वरानन ! जरासन्धके साथ तुम्हारे भाईका युद्ध होरहा है, यह सुन कर मैं यहाँ आया हूँ ४६ हे कृष्ण ! मैं आपको जगत् के रक्षक अव्यय प्रभु जानता हूँ, और यह भी जानता हूँ, कि आप देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये बालक न होने पर भी बालक बन गए हैं ४७ त्रिलोकीमें ऐसी कोई बात नहीं है जो आपको विदित नहीं हो, तथापि भक्तिवश मैं जो कुछ

कृतम् । करवीरपुरं नाम राष्ट्रं चैव निवेशितम् ॥ ४६ ॥ पुरेऽस्मिन्नृपतिः कृष्ण वासुदेवो महायशाः । शृगाल इति विख्यातो नित्यं परमकोपनः ॥ ५० ॥ नृपेण तेन गोविन्द तव वंशभवा नृपाः । यादवा निहताः सर्वे वीरद्वेषानुशायिना ॥ ५१ ॥ अहंकारपरो नित्यमजितात्माऽतिमत्सरी । राज्यैश्वर्यमदाविष्टः पुत्रेष्वपि च दारुणः ॥ ५२ ॥ तन्नेह भवतः स्थानं रोचते मे नरोत्तम । करवीरपुरे घोरे नित्यं पार्थिवभाषिते ॥ ५३ ॥ शृणुतां कथयिष्यामि यत्रोभौ शत्रुबाधनौ । जरासन्धबलोदग्रं भवन्तौ योधयिष्यतः ॥ ५४ ॥ तीर्त्वा वेणामिमां पुण्यां नदीमद्यैव बाहुभिः । विषयान्ते निवेशाय गिरिं गच्छाम दुर्गमम् ॥ ५५ ॥ रम्यं यज्ञगिरिं नाम सह्यस्य प्ररुहं गिरिम् । निवासं मांसभक्ताणां चोराणां

कहता हूँ उसको आप सुनिये ॥ ४८ ॥ हे गोविन्द ! पहिले तुम्हारे पूर्वजोंने यह करवीरपुर नामका राष्ट्र बसाया था ४६ हे कृष्ण ! पहिले यहाँ पर (दूसरे) वसुदेवका पुत्र शृगाल नामसे प्रसिद्ध था वह सदा परम कोप करता रहता था ५० वह सर्वदा वीरोंसे द्वेष करता रहता था हे गोविन्द ! उसने तुम्हारे वंशज सब राजाओंको मार डाला था ॥५१॥ वह सदा अहंकारमें भरा रहता था, अजितात्मा था, और परम मत्सर रखता था और राज्य तथा ऐश्वर्यसे मत्त होकर पुत्रोंसेभी दारुण वर्ताव किया करता था ॥ ५२ ॥ हे नरोत्तम ! अत एव इस राजाओंसे वर्जे हुए भयंकर करवीरपुरमें आपका निवास करना मुझे उचित नहीं जँचता है ॥ ५३ ॥ तुम दोनों शत्रुपीडक जहाँ पर रह कर जरासन्धके बलवान् सेनादलसे युद्ध कर सकोगे, उस स्थानको मैं कहता हूँ, तुम सुनो ॥ ५४ ॥ इस पुण्यमयी वेणानदीको आज ही भुजाओंसे तैर कर इस देशकी सीमामें दुर्गम गिरिदुर्गमें जाकर रात्रि बितावें ॥५५॥ उस सह्याचलमें

घोरकर्मणाम् ॥ ५६ ॥ नानाद्रुमलतायुक्तं चित्रं पुष्पितपादपम् । प्राप्य तत्र निशामेकां खट्वांगां नाम निम्नगाम् ॥५७॥ भद्रन्ते सन्तरिष्यामो निकषोपलभूषणाम् । गङ्गाप्रतापप्रतिमां भ्रष्टां च महतो गिरेः ॥ ५८ ॥ तस्याः प्रपातं द्रक्ष्यामस्तापसारण्यभूषणाम् । उपभुज्य विमान् कामान् गत्वा तान् धरणीधरान् ॥५९॥ द्रक्ष्यामस्तत्र तान् विप्राञ्छ्राम्यतो वै तपोधनान् । रम्यं क्रौंच पुरं नाम गमिष्यामः पुरोत्तमम् ॥ ६० ॥ वंशजस्तत्र ते राजा कृष्ण धर्मरतः सदा । महाकपिरिति ख्यातो वनवास्यजनाधिपः ॥ ६१ ॥ तमदृष्ट्वैव राजानं निवासाय गतेऽहनि । तीर्थमानडुहं नाम तत्र स्थास्यामः संगताः ॥ ६२ ॥ ततश्च्युता गमि-

उत्पन्न हुए पर्वतका नाम रमणीय वज्रगिरि है, तहाँ पर मांसका भक्षण करने वाले घोरकर्मी चोर रहते हैं ॥ ५६ ॥ वह अनेक प्रकारकी बेल वृक्षोंसे भरा हुआ है उसके वृक्ष पुष्पोंसे लदे रहते हैं तहाँ पर एक रात्रि रह कर खट्वाङ्गा नाम वाली नदीको तरेंगे, हे भद्र ! आपका कल्याण हो, वह नदी निकष और पत्थरोंके भूषण धारण कर रही है, वह महान् पर्वतसे गिरने वाली नदी प्रतापमें गङ्गाकी समान है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हम तपस्वियोंके वनसे विभूषित उसके प्रपातको देखेंगे, हम इन पर्वतों पर जाकर इन कामोंको भोग कर ॥ ५९ ॥ तहाँ पर वानप्रस्थाश्रमी तपोधन विप्रोंको देखेंगे फिर हम रमणीय क्रौंच-पुर नामक श्रेष्ठ नगरमें जावेंगे ॥ ६० ॥ हे कृष्ण ! तहाँ पर तुम्हारे वंशका ही राजा राज्य करता है, वह सदा धर्मसे प्रेम करता रहता है, वह वनमें बसनें योग्य मनुष्योंका राजा महाकपि नामसे प्रसिद्ध है ॥ ६१ ॥ दिन बीत जानेके कारण उस राजाको न देख कर हम एकत्रित होकर आनडुह नामक तीर्थमें बसेंगे ॥ ६२ ॥ तहाँसे उठ कर हम सह्य पर्वतकी गुफामें होकर

ष्यामः सह्यस्य विवरे गिरिम् । गोमन्तमिति विख्यातं नैकशृङ्ग-
विभूषितम् ॥ ६३ ॥ स्वगतैकमहाशृङ्गं दुरारोहं खगैरपि । विश्राम-
भूतं देवानां ज्योतिर्भिरभिसम्वृतम् ॥६४॥ सोपानभूतं स्वर्गस्य
गगनाद्गिरिवोच्छ्रितम् । तं विमानावतरणं गिरिं मेरुमिवापरम् ६५
तस्योत्तमे महाशृङ्गे भास्वन्तौ देवरूपिणौ । उदयास्तमये सूर्यं सोमं
च ज्योतिषां पतिम् ॥ ६६ ॥ ऊर्मिमन्तं समुद्रं च अपारद्वीप-
भूषणम् । प्रेक्ष्यमाणौ सुखं तत्र नगाग्रे विचरिष्यथः ॥६७॥
शृङ्गस्थौ तस्य शैलस्य गोमन्तस्य वनेचरौ । दुर्गयुद्धेन धावन्तौ
जरासन्धं विजेष्यथः ॥ ६८ ॥ तत्र शैलगतौ दृष्ट्वा भवन्तौ युद्ध-
दुर्मदौ । अशक्तः शैलयुद्धे वै जरासन्धो भविष्यति ॥ ६९ ॥
भवद्भ्यामपि युद्धे तु प्रवृत्ते तत्र दारुणे । आयुधैः सह संयोगं
पश्यामि न चिरादिव ॥ ७० ॥ संग्रामश्च महान् कृष्ण निर्दिष्ट-

अनेक शृङ्गोंसे विभूषित गोमन्त नामक पर्वत पर जावेंगे ॥६३॥
उसमें एक ही शिखर है,पक्षी भी उस पर कठिनतासे चढ सकते
है तहाँ देवता विश्राम लिया करते हैं और वह ज्योतियोंसे घिरा
हुआ है ॥६४॥ वह स्वर्गकी सीढीरूप है और आकाशमें पर्वत
की समान उठा हुआ है तहाँ पर विमान उतरते हैं और वह
दूसरे मेरुपर्वतकी समान है ॥ ६५ ॥ तहाँ पर तुम प्रकाशवान्
देवताओंकी समान उदय और अस्तके समय सूर्य और ज्योतियों
के स्वामी चन्द्रमाको और अपार द्वीपोंके भूषणको धारण करने
वाले लहरों वाले समुद्रको देखते हुए सुखपूर्वक विचरण
करना ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस गोमन्त पर्वतके शिखर पर खड़े
होकर तुम दुर्गयुद्धसे वनमें विचरण कर और दौड कर जरा-
सन्धको जीत सकोगे ॥६८॥ तुम युद्धदुर्मदोंको पर्वत पर देख
कर जरासन्ध पर्वत युद्ध करनेमें असमर्थ रहेगा ॥ ६९ ॥ और
तहाँ दारुण युद्ध होने पर मेरा विचार है, कि-तुम्हें शीघ्र ही

स्तत्र दैवतैः । यदूनां पार्थिवानां च मांसशोणितकर्दमः ७१ तत्र चक्रं हलं चैव गदां कौमोदकीं तथा । सौनन्दं मुशलं चैव वैष्णवान्यायुधानि च ॥ ७२ ॥ दर्शयिष्यन्ति संग्रामे यास्यन्ति च महीक्षिताम् । रुधिरं कालयुक्तानां वपुर्भिः कालसन्निभैः ७३ स चक्रमुशलो नाम संग्रामः कृष्ण विश्रुतः । दैवतैरिह निर्दिष्टः कालस्यादेशसंज्ञितः ॥ ७४ ॥ तत्र ते कृष्ण संग्रामे सुव्यक्तं वैष्णवं वपुः । द्रक्ष्यन्ति रिपवः सर्वे सुराश्च सुरभावन ॥ ७५ ॥ तां भजस्व गदां कृष्ण चक्रं च चिरविस्मृतम् । भजस्व स्वेन रूपेण सुराणां विजयाय वै ॥७६॥ बलश्चायं हलं घोरं मुशलं चारिमर्दनम् । वधाय सुरशत्रूणां भजताल्लोकभावनः ॥ ७७ ॥ एष ते प्रथमः कृष्ण संग्रामो भुवि पार्थिवैः । पृथिव्यर्थे समा-

आयुष प्राप्त होजावेंगे ७० तहाँ पर देवताओंने यादवोंका और राजाओंका बड़ाभारी संग्राम (पहिलेसे ही) रचदिया है तहाँ पर मांस और रक्तकी कीच होजावेगी ७१ तहाँ संग्राम होनेपर चक्र हल कौमोदकी गदा सौनन्द नामक मूसल और २ वैष्णव आयुध प्रकट होजावेंगे और कालधर्मसे संयुक्त राजाओंके काल की समान शरीरोंके रुधिरमें पहुँचेंगे ॥ ७२॥ ७३ ॥ हे कृष्ण ! देवताओंने कालके आज्ञापत्रकी समान चक्रमुसल नामक प्रसिद्ध संग्राम यहाँ रच दिया है ॥ ७४ ॥ हे कृष्ण ! हे सुरभावन ! उस समय आपके शत्रु और देवता आपके वैष्णव शरीरको भली भाँति देखेंगे ॥७५॥ हे कृष्ण ! आप उस गदाको धारण करिये और देवताओंकी विजयके लिये अपने स्वरूपसे उस चिरकालसे विस्मृत चक्रको भी ग्रहण करिये ॥७६॥ और यह लोकभावन बलराम देवशत्रुओंका वध करनेके लिये अरिमर्दन भयङ्कर मूसल और हलको ग्रहण करें ॥ ७७ ॥ हे कृष्ण ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये देवताओंने "तुम्हारा राजाओंके

ख्यातो भारावतरणे सुरैः ॥ ७८ ॥ आयुधावाप्तिरत्रैव वपुषो
वैष्णवस्य च । लक्ष्म्याश्च तेजसश्चैव व्यूहानां च विदारणम् ७९
अतः प्रभृति संग्रामो धरण्यां शस्त्रमूर्च्छितः । भविष्यति महान्
कृष्ण भारतं नाम शोभनम् ॥ ८० ॥ तद्गच्छ कृष्ण शैलेन्द्रं
गोमन्तं च नगोत्तमम् । जरासन्धमृधे चापि विजयस्त्वामुप-
स्थितः ॥ ८१ ॥ इदं चैवामृतप्रख्यं होमधेनोः पयोऽमृतम् ।
पीत्वागच्छत भद्रं वो मयादिष्टेन कर्मणा ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामवाक्यं
नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततु धेन्वा पयः पीत्वा बलदर्पसम-
न्वितौ । ततस्तौ रामसहितौ प्रस्थितौ यदुपुङ्गवौ ॥१॥ गोमन्तं
पर्वतं द्रष्टुं मत्तनागेन्द्रगामिनौ । जामदग्न्यप्रदिष्टेन मार्गेण वक्तारौ

साथ यह संग्राम होना पहिले ही कह रक्खा है" ॥७८॥ यहीं
पर तुम्हें आयुध मिलेंगे और वैष्णव शरीर लक्ष्मी और तेज
मिलेगा और यहीं पर तुम शत्रुसेनाओंको विदीर्ण करोगे ७९
इसके अनन्तर हे कृष्ण ! पृथ्वीमें एक और शस्त्रमूर्च्छित संग्राम
होगा, हे कृष्ण ! वह युद्ध महाभारत नामक होगा ॥ ८० ॥
हे कृष्ण ! इसलिये आप पर्वतश्रेष्ठ गोमन्त पर्वत पर जाइये,
जरासन्धके साथ युद्ध होनेपर विजय तुम्हारे ही हाथ रहेगी ८१
आप इस होमधेनुके अमृतकी समान दुग्धको पीकर जाइये, मेरे
उपदिष्ट कर्मसे आपका कल्याण होगा ॥ ८२ ॥ उन्तालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—उस गौके दुग्धको पीकर बल
और दर्प वाले बनेहुए यदुपुङ्गव परशुरामजीके साथ२ चल
दिये ॥ १ ॥ वे मदमत्त नागेन्द्रकी समान गमन करनेवाले
वक्ताओंमें श्रेष्ठ बलराम और कृष्ण परशुरामजीके बताये मार्ग

रौ ॥२॥ जामदग्न्यतृतीयास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः । शोभयन्तिस्म पन्थानं त्रिदिवं त्रिदशा इव ॥ ३ ॥ ते मार्गविधिना सर्वे ततो वै दिवसक्रमात् । गोमन्तमचलं प्राप्ता मन्दरं त्रिदशा इव ४ लतावाकविचित्रं च नानाद्रुमविभूषितम् । नानागुरुभिराक्रान्तं चित्रं चित्रैर्मनोहरैः ॥ ५ ॥ द्विरेफगणसंकीर्णं शिलासङ्कटपादपम् । मत्तबर्हिणनिर्घोषैर्नादितं मेघनादिभिः ॥ ६ ॥ गगनालम्बशिखरं जलदासक्तपादपम् । मत्तद्विपविषाणाग्रैः परिघृष्टोपलाङ्कितम् ॥ ७ ॥ कूजद्भिरण्डजगणैः समन्तात् प्रतिनादितम् । दरीप्रपातान्धुरवं संछन्नं शार्दूलपल्लवैः ॥ ८ ॥ नीलाश्मचयसंघातैर्बहुवर्णं गुणान्वितम् । धातुशिलावदिग्भागं सानुप्रस्थविभूषि-

से गोमन्त पर्वतको देखनेके लिये चढने लगे ॥२॥ जिनके साथमें तीसरे परशुराम थे ऐसे वे तीनों तीन अग्नियोंकी समान दीखते थे और त्रिदशों (देवताओं) के त्रिदिव (स्वर्ग) को सुशोभित करनेकी समान मार्गको सुशोभित कररहे थे ॥ ३ ॥ वे मार्गविधिसे क्रमशः दिन बिताते हुए मन्दराचल पर पहुँचने वाले देवताओंकी समान गोमन्त पर्वत पर पहुँच गये ॥ ४ ॥ वह पर्वत सुन्दर लताओंसे विचित्र प्रतीत होता था अनेक प्रकारके वृक्षोंसे विभूषित था, अनेक प्रकारके भारी२ पदार्थोंसे उसके शिखर भर रहे थे और वह मनोहर मयूरोंसे विचित्र दीख रहा था ॥५॥ उसमें भौंरे भर रहे थे और शिला तथा वृक्षोंके कारण वह संकटमय होरहा था और मेघकी समान शब्द करने वाले मत्त मयूरोंसे वह गुञ्जार रहा था ॥ ६ ॥ उसके शिखर आकाशमें लग रहे थे और उसके वृक्ष मेघोंसे सट रहे थे और उसके पत्थर मदमत्त हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागसे रगड़े हुए थे ७ और वह चारों ओर चहचहाते हुए पक्षियोंके शब्दसे गुञ्जार रहा था ८ और नीले पत्थरोंके ढेरके कारण वह अनेक

तम् ॥९॥ कीर्णं सुरगणैः कान्तैर्मैनाकमिव कामगम् । उच्छ्रितं सुविशालाग्रं समुत्राम्बुपरिस्रवम् ॥ १० ॥ सकाननदरीप्रस्थं श्वेताभ्रगणभूषितम् । पनसाम्रातकाश्चैवैवैरस्यन्दनचन्दनैः ॥ ११ तमालैलावनयुतं मरीचक्षुपसङ्कुलम् । पिप्पलीवल्लिसंकुलं चित्रमिङ्गुदिपादपैः ॥ १२ ॥ द्रुमैः सर्जरसानां च सर्वतः परिशोभितम् । प्रांशुशालवनैर्युक्तं बहुचित्रवनैर्युतम् ॥ १३ सर्जनिम्बार्जुनवनकरकटकीकुलसङ्कुलम् । हिन्तालैश्च तमालैश्च पुन्नागैश्चोपशोभितम् ॥१४॥ जलेषु जलजैश्छन्नं स्थलेषु स्थलजैरपि । पद्मैश्च द्रुमखण्डैश्च सर्वतः प्रतिभूषितम् ॥ १५ ॥ जम्बूजम्बूलवृन्ताढ्यं कटुकैदलभूषितम् । चम्पकाशोकबकुलं बिल्वतिंदुकशोभितम् १६

वर्णवाले मेघसा दीख रहा था उसका शरीर धातुओंके बहनेसे सज रहा था, और वह शिखरोंसे टपकते हुए झरनोंसे शोभा पारहा था ९ और रमणीय देवताओंसे घिरा हुआ था, और मैनाककी समान इच्छाचारी था और बहुत ऊँचा उठा हुआ था, और जड़से जल बहा रहा था १० उसके शिखरों पर वन और गुफायें थीं और वह श्वेत बादलोंकी घटाओंसे विभूषित रहता था और कटहल, छोटे-आम, आम बेत स्यन्दन, चन्दन तमाल और इलायचियोंके वनसे विभूषित रहता था, और मिर्च तथा क्षुपसे व्याप्त था और पीपलकी बल्लियोंसे व्याप्त था और इमलियोंके वृक्षोंसे विचित्र दीखता था ११-१२ और चारों ओर से रालके वृक्षोंसे सुशोभित था और ऊँचेर सालके वनोंसे रचित था और अनेक प्रकारके चित्रवनोंसे रचित था १३ सर्ज नीम्बू अर्जुन और वनकरटकीके कुलसे संयुक्त था और कमल तथा वृक्षोंके टुकड़ोंसे चारों ओरसे भूषित था । १५ । जम्बीरी नीबू और केतकीके वृक्ष तहाँ अधिकतर लग रहे थे कटु और कन्दलोंसे भूषित था और चम्पक अशोक बकुल और तिंदुकोंसे

कुब्जैश्च नागपुष्पैश्च समन्तादुपशोभितम् । नागयूथसमाकीर्णं मृगसंघातशोभितम् ॥ १७ ॥ सिद्धचारणरक्षोभिः सेवितमस्तरान्तरम् । गन्धर्वैश्च समायुक्तं गुह्यकैः पक्षिभिस्तथा ॥ १८ ॥ विद्याधरगणैर्नित्यमनुकीर्णशिलातलम् । सिंहशार्दूलसन्नादैः सततं प्रतिनादितम् । सेवितं वारिधाराभिश्चन्द्रपादैश्च शोभितम् स्तुतंत्रिदशगन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतम् । वनस्पतीनां दिव्यानां पुष्पैरुच्चावचैः श्रितम् ॥२०॥ शक्रवज्रप्रहाराणामनभिज्ञं कदाचन । दावाग्निभयनिर्मुक्तं महावातभयोज्झितम् ॥ २१ ॥ प्रपातप्रभवाभिश्च सरिद्भिरुपशोभितम् । काननैराननाकारैर्विशोभद्भिरिव श्रियम् ॥ २२ ॥ जलशैवलशृङ्गाग्रैरुन्मिषन्तमिव

सुशोभित था १६ कुब्ज और नागकेसरके फूलोंसे सुशोभित था, हाथियोंके झुण्डोंसे भरा हुआ था और मृगोंके झुण्डोंसे सुशोभित था १७ उसकी शिलाओं पर सिद्ध चारण और राक्षस बैठे रहते थे और तहां पर गन्धर्व गुह्यक और पक्षी रहते थे १८ उसकी शिलाओं पर गन्धर्व सदा बैठे रहते थे और वह पर्वत सिंह और शार्दूलोंकी गर्जनासे निरन्तर प्रतिध्वनित होता रहता था जलधारायें उसका सेवन कर रही थीं और वह चन्द्रमाकी किरणोंसे सुशोभित रहता था १९ देवता और गन्धर्व उसकी प्रशंसा कर रहे थे और वह अप्सराओंसे अलंकृत होरहा था और दिव्य वनस्पतियोंके ऊँचे नीचे पुष्पों से अलंकृत होरहा था २० और वह इन्द्रके वज्रके प्रहारसे अनजान था, और दावाग्निके भयसे निर्भय था और आँधीके भयसे मुक्त था २१ और प्रपातके यहां उत्पन्न होनेवाली नदियों से उपशोभित था और उसके मुखकी समान आकारवाले वन उसकी शोभाको बढारहे थे २२ और जलसिवार और शिखरों के अग्रभागसे वह लक्ष्मीसे उन्मेष करता हुआसा दीखता था

भिरा। स्थलीभिर्मृगजुष्टाभिः कान्ताभिरुपशोभितम्॥ २३॥
पार्श्वैरुत्कलशाखाभैर्धातुभिरिव विभूषितम्। पादप्रच्छन्नभूमीभिः
सपुष्पाभिः समन्ततः॥ २४॥ नखितं वनराजीभिः मणदाभिः
पर्नि यथा। सुन्दरीभिर्दरीभिश्च कन्दराभिस्तथैव च॥ २५॥
तेषु तेष्ववकाशेषु सदारमिव शोभितम्। औषधीदीप्तशिखरं
वानप्रस्थनिषेवितम्। जातरूपैर्वनोद्देशैः कृत्रिमैरिव भूषितम्२६
मूलेन सुविशालेन शिरसाप्युच्छ्रितेन च। पृथिवीमन्तरिक्षं च
गाहयन्तमिव स्थितम्॥ २७॥ तं नगं राम गोमन्तं रम्यं भूमि-
भरोत्तमम्। रुचिरं रुरुचुः सर्वे वासायामरसन्निभाः॥ २८॥
रुरुहुस्ते गिरिवरं खमूर्ध्वमिव पक्षिणः। असज्जमाना वेगेन
वैनतेयपराक्रमाः॥ २९॥ ते तु तस्योत्तरं शृङ्गमारुह्य त्रिदशा

और मृगोंसे सेवित मनोहर स्थलियोंसे शोभा पाता था २३
और पत्थरोंके कलापवाले पार्श्वोंसे सुशोभित था तथा और
पुष्पित तलैटियोंसे सुशोभित था २४ जैसे स्त्रियोंसे पति घिरा
रहता है, इसीप्रकार वह वनराजियोंसे मण्डित था और रमणीय
कन्दराओंसे सुशोभित था २५ इन सबसे स्थानस्थमें वह अपनी
स्त्रीसहितकी समान शोभा पाता था, उसके शिखर औषधियों
से प्रदीप्त रहते थे और उस पर वानप्रस्थाश्रमी रहते थे और
वह वनोद्देशोंसे कृत्रिम चाँदीसे सुशोभित प्रतीत होता था २६
वह अपनी सुविशाल जड और उठे हुए शिखरसे पृथ्वी और
अन्तरिक्षको आलोडन करता हुआसा खडा था २७ उन देव-
प्रतिम तीनों व्यक्तियोंने उस पर्वतश्रेष्ठ रमणीय गोमन्त पर्वतको
देख उसको निवास करनेके लिये स्वीकार करलिया २८ जैसे
पक्षी आकाशमें ऊपरको चढते हैं, ऐसे ही वे गोमन्त पर्वत पर
चढने लगे, वे वैनतेयकी समान पराक्रमी वेगसे किसीको न
छूतेहुए चढने लगे २९ वे उसके उत्तर शिखर पर देवताओंकी

इव । अगारं सहसा चक्रुर्मनसा निर्मितोपमम् ॥ ३० ॥ निविष्टौ यादवौ दृष्ट्वा जामदग्न्यो महामतिः । रामोऽभिमतमक्लिष्टमामन्त्र्य-मुपचक्रमे ॥३१॥ कृष्ण यास्याम्यहं तात पुरं शूर्पारकं विभो । युवयोर्नास्ति वैमुख्यं संग्रामे दानवैरपि ॥ ३२ ॥ प्राप्तवानस्मि यां प्रीतिं मार्गानुगमनादपि । सा मे कृष्णानुगृह्णाति शरीरमिद-मव्ययम् ॥३३॥ इदं गन्तव्यमुद्दिष्टं यत्रायुधसमागमः । युवयो-र्विहितो देवैः समयः सांपरायिकः ॥३४॥ देवानां मुख्य वैकुण्ठ विष्णो देवैरभिष्टुत । कृष्ण सर्वस्य लोकस्य शृणु मे नैष्ठिकं वचः ॥ ३५ ॥ यदिदं प्रस्तुतं कर्म त्वया गोविन्द लौकिकम् । मानुषाणां हितार्थाय लोके मानुषदेहिना ॥३६॥ तस्यायं प्रथमः कल्पः कालेन तु वियोजितः । जरासन्धेन वै सार्धं संग्रामे समु-

---

समान चढगए, वहाँ उन्होंने मानो नगरी ही रच लिया हो इस प्रकार सहसा भवन बना लिया ३० बुद्धिमान् परशुरामजी दोनों यादवोंको बैठे देखकर अपना अभिमत कहने लगे ३१ कि-हे तात कृष्ण ! मैं शूर्पारकपुरको जारहा हूँ, तुम दोनोंको दानव भी संग्राममें विमुख नहीं कर सकते ३२ आपके साथ मार्गमें चलनेसे मुझे जो प्रसन्नता हुई है, हे कृष्ण ! उससे मेरे इस अव्यय शरीर पर बडा अनुग्रह हुआ है ३३ जहाँ पर तुम्हें आयुध मिलेंगे वही यह परलोक हितकर कार्यमें चितानेका स्थान पहिले देवताओंने तुम्हारे लिये रचदिया है ३४ आप देवताओं में मुख्य हैं, वैकुण्ठ हैं और हे विष्णो ! देवता आपकी स्तुति करते हैं, हे कृष्ण ! सब लोकोंके तत्त्वकी बात सुनिये ३५ हे गोविन्द ! तुमने मनुष्योंका शरीर धारण कर मनुष्योंका हित करनेके लिये जो यह लौकिक कर्म आरम्भ किया है ३६ जरा-सन्धके साथ संग्राम होनेपर उसके प्रथम प्रयोगको कालने वियो-जित कर दिया है ३७ अब इस युद्धमें हे कृष्ण ! आप ही

पस्थिते ॥ ३७ ॥ तत्रायुधबलं चैव रूपं च रणकर्कशम् । स्वय-
मेवात्मना कृष्ण त्वयाऽऽत्मानं विधत्स्व ह ॥ ३८ ॥ चक्रोद्यतकरं
दृष्ट्वा त्वां गदापाणिमाहवे । चतुर्दिग्गुणपीनांसं बिभ्येदपि शत-
क्रतुः ॥ ३९ ॥ अद्य प्रभृति ते यात्रा स्वर्गोक्ता समुपस्थिता ।
पृथिव्यां पार्थिवेन्द्राणां कृतास्त्रे त्वयि मानद ॥ ४० ॥ वैनते-
यस्य चाह्वानं वाहनं ध्वजकर्मणः । कुरु शीघ्रं महाबाहो गोविन्द
वदताम्वर ४१ युद्धकामा नृपतयस्त्रिदिवाभिमुखोद्यताः । धार्त-
राष्ट्रस्य वशगास्तिष्ठंति रणवृत्तयः ४२ राज्ञां निधनदृष्टार्था वैधव्ये-
नाधिवासिता । एकवेणीधरा चेयं वसुधा त्वां प्रतीक्षते ॥४३॥
सुग्रहं कृष्ण न त्वन्नं संक्षिप्यारिविमर्दन । त्वयि मानुषमापन्ने

आयुध बल रणकर्कश रूप आदि अपनी आत्मासे अपने आप
ही बनिये (यास्कने भी कहा है, कि—"आत्मैवैषां रथो भव-
त्यात्माश्वा आत्मायुध आत्मैष वै आत्मा सर्वं देवस्य,,) ३८
आठ पुष्ट स्कन्धों वाले हाथमें गदा और चक्र घुमानेवाले आप
को देखकर साक्षात् इन्द्र भी डर जाता है (इससे परशुरामजीने
यह सूचित किया, कि—कृष्ण साक्षात् विष्णु हैं,उनका द्विभुज
रूप अविद्वद्दृश्य है और अष्टभुज रूप विद्वद्दृश्य है) ३९
यह तुम्हारी स्वर्गोक्त यात्राका समय आगया है क्योंकि—मानद !
अब राजे और तुम भी कृतास्त्र हो ४० हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महा-
भुज गोविन्द ! अब आप ध्वजकर्मके वाहन वैनतेयका आह्वान
करिये ४१ अब राजे स्वर्गकी ओर जानेके लिये अभिमुख हो
कर युद्ध करना चाह रहे हैं और रणसे आजीवन करते हुए
दुर्योधनके वशमें रहते हैं ४२ राजाओंकी मृत्युको देखने वाली
अत एव आगामी वैधव्यसे गृहीत पृथ्वी एकवेणीधरा होकर
अर्थात् अपने केशोंको न सजाकर आपकी ओर देख रही है ४३
हे अरिविमर्दन श्रीकृष्ण ! तुम मनुष्यशरीरमें आगए हो और

युद्धे च समुपस्थिते ॥ ४४ ॥ त्वरस्व कृष्ण युद्धाय दानवानां वधाय च । स्वर्गाय च नरेन्द्राणां देवतानां सुखाय च ॥ ४५ ॥ सत्कृतोऽहं त्वया कृष्ण लोकैश्च सचराचरैः । त्वया सत्कृतरूपेण येन सत्कृतवानहम् ॥ ४६ ॥ साधयामि महाबाहो भवतः कार्यसिद्धये । स्मर्तव्यश्चास्मि युद्धेषु कान्तारेषु महीक्षिताम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वा जामदग्न्यस्तु कृष्णमक्लिष्टकारणम् । जयाशिषा वर्धयित्वा जगामाभीप्सितां दिशम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तारोहणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

वैशम्पायन उवाच । जामदग्न्ये गते रामे तौ यादवकुलोद्वहौ । गोमन्तशिखरे रम्ये चेरतुः कामरूपिणौ ॥ १ ॥ वनमालाकुलो-

---

युद्ध पास आगया है, इस कारण क्षत्रसमूह संकुचित नहीं होता, किन्तु मरणके लिये उत्सुक होरहा है (क्योंकि-वह क्रूर ग्रहोंसे आक्रान्त होरहा है) ४४ हे कृष्ण ! अब आप युद्ध करनेके लिये दानवोंका वध करनेके लिये और राजाओंको स्वर्गमें भेजनेके लिये तथा देवताओंको सुखी करनेके लिये शीघ्रता करिये ४५ हे कृष्ण ! आप सत्कृत रूप हैं ऐसे आपने मेरा सत्कार किया है अतः हे कृष्ण ! आप (विश्वात्मा) के सत्कार करनेसे मानो सचराचर लोकोंने ही मेरा सत्कार कर लिया ४६ हे महाभुज ! अब मैं आपके कार्यको सिद्ध करूँगा, आप राजाओंके भयंकर युद्धोंमें मेरा स्मरण किया करना ४७ जमदग्निके पुत्र परशुराम जी बिना क्लेश पाये कर्म करने वाले श्रीकृष्णसे इस प्रकार कह कर और उनको जयकी आशीर्वादोंसे बढ़ाते हुए अपनी अभीष्ट दिशाको चले गए ४८ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ४०

वैशंपायनजीने कहा, कि- वे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले यादवकुलोद्वह राम और कृष्ण जमदग्निपुत्र परशुरामजीके

रस्कौ नीलपीताम्बरावुभौ । नीलश्वेतवपुष्मन्तौ गगनस्थाविवाम्बुदौ ॥ २ ॥ तौ शैलधातुदिग्धाङ्गौ युवानौ शिखरे स्थितौ । चेरतुस्तत्र कान्तेषु वनेषु रतिलालसौ ॥ ३ ॥ उद्यन्तं निरीक्षन्तौ शशिनं ज्योतिषां वरम् । ग्रहाणामस्तगमने चैव ग्रहाणां धरणीधरे ॥४॥ अथ संकर्षणः श्रीमान्विना कृष्णेन वीर्यवान् । चचार तस्य शिखरे नगस्य नगसन्निभः ॥ ५ ॥ प्रफुल्लस्य कदम्बस्य सुच्छाये निषसाद ह । वायुना मन्दगन्धेन वीज्यमानो सुखेन वै ॥६॥ तस्य तेनानिलाग्रेण सेव्यमानस्य तत्र वै । मद्यसंस्पर्शजो गन्धः संस्पृशन्घ्राणमागतः ॥७॥ तृष्णा चैनं विवेशाशु वारुणी-

---

चले जाने पर गोमन्तपर्वतके रमणीय शिखर पर विचरण करने लगे ॥ १ ॥ नीला और पीला वस्त्र धारण करने वाले और नीले तथा श्वेत शरीरवाले और वनमालाओंसे आच्छादित हृदय वाले वे दोनों आकाशमें स्थित बादलोंकी समान प्रतीत होरहे थे ॥ २ ॥ उनके शरीर पर्वतकी धातुओंसे रँग गए थे शिखर पर स्थित वे तरुण राम कृष्ण रतिकी लालसासे रमणीय बगीचोंमें घूमने लगे ३ वह ज्योतियोंमें और ग्रहोंमें उत्तम उदय होते हुए चन्द्रमाको निहारते हुए (विचरने लगे) और उस पर्वत पर चंद्रोदय तथा चन्द्रास्तके समय (विचरने लगे)॥४॥ एक समय पर्वतकी समान शरीर वाले वीर्यवान् बलराम श्रीकृष्णको छोड़ कर अकेले ही उस पर्वत पर विचरण कर रहे थे ॥ ५ ॥ उस समय वह फूल वाले कदम्बकी शोभन छायामें बैठ गए, उस समय मंद २ चलता हुआ मदगंध वायु उनको सुख देने लगा ॥ ६ ॥ जिस समय वह वायु उनकी सेवा करने लगा, उस समय मद्यको छूकर आनेवाला गंध उनकी नाकमें आने लगा ॥ ७ ॥ उस समय उनको वारुणीकी तृष्णा होने लगी, तब जैसे नशेबाजका मुख दूसरे दिन (नशा न मिलनेसे)

प्र भत्ता तदा । शुशोष च मुखं तस्य मत्तस्येवापरेऽहनि ॥ ८ ॥ स्मारितः स पुरावृत्तममृतप्राशनं विभुः । तृषितो मदिरान्वेषी ततस्तं तरुमैक्षत ॥ ९ ॥ तस्य प्रावृषि फुल्लस्य यदंभो जलजोज्झितम् । तत्कोटरस्थं मदिरा संजायत मनोहरा ॥ १० ॥ तां तु तृष्णाभिभूतात्मा पिबन्नार्त इवासकृत् । मोहाच्च चलिताकारः समजायत स प्रभुः ॥ ११ ॥ तस्य मत्तस्य वदनं किञ्चिच्चलितलोचनम् । घूर्णिताकारमभवच्छरत्कालेन्दुसप्रभम् १२ कदम्बकोटरे जाता नाम्ना कादम्बरीति सा । रूपिणी वारुणी तत्र देवानाममृतारणी ॥ १३ ॥ कादम्बरीमदकलं विदित्वा कृष्णपूर्वजम् । तिस्रस्त्रिदशनार्यस्तमुपतस्थुः प्रियंवदाः ॥१४॥ मदिरा रूपिणी भूत्वा कान्तिश्च शशिनः प्रिया । श्रीश्च देवी

सूखने लगता है, तैसे ही उनका मुख सूखने लगा ॥ ८ ॥ तब तो उन विभुको पहिले अमृतप्राशनका वृत्तान्त याद आगया तब तो वह तृषित होकर मदिराका अन्वेषण करनेकी इच्छासे उस वृक्षकी ओर देखने लगे ॥ ९ ॥ वर्षा ऋतुमें उस प्रफुल्ल वृक्ष पर मेघोंसे जो जल बरस कर उसकी कोटरमें इकट्ठा होगया था उसकी मनोहर मदिरा बन गई थी ॥ १० ॥ उसको तृष्णा के कारण वे आर्तकी समान बारम्बार पीने लगे, तब तो मोहवश उन प्रभुका आकार विक्षिप्त पुरुषकी समान होगया ॥११॥ मदमत्त बलरामजीका मुख, कि-जिसमेंके नेत्र कुछ २ चल रहे थे, वह घूमता हुआ मुख शरत् ऋतुके चन्द्रमाकी समान दीखने लगा ॥ १२ ॥ उस समय तहाँ कदम्बके कोटरमेंसे कादम्बरी नाम वाली मूर्तिमती वारुणी उत्पन्न होगई. वह देवताओंके अमृतकी अरणि थी ॥ १३ ॥ कृष्णके पूर्वज भाईको कदम्ब के वृक्षकी मदिराके मदसे विकल जान कर प्रियवादिनी तीन देवस्त्रियें उनके पास आईं ॥ १४ ॥ उस समय मदिरा

वरिष्ठा स्त्री स्वयमेवाम्बुजध्वजा ॥ १५ ॥ सांजलिप्रग्रहा देवी रौहिणेयमुपस्थिता । वारुण्या सहितं वाक्यमुवाच मदविक्लवम् १६ बलं जयस्व दैत्यानां बलदेव दिवीश्वर । अहं ते दयिता कान्ता वारुणी समुपस्थिता ॥ १७ ॥ त्वामेवान्तर्हितं श्रुत्वा शाश्वतं वडवामुखे । क्षीणपुण्येव वसुधां पर्येमि विमलानन ॥ १८ ॥ पुष्पचक्रानुलिप्तेषु केसरेपूषितं मया । अतिमुक्तेषु चाक्षोभ्य-पुष्पस्तवकवत्सु च ॥१९॥ अहं कदम्बगालीना मेघकाले सुख-प्रिया । तृषितं मार्गमाणा त्वां स्वेन रूपेण छादिता ॥ २० ॥ आदिप पूर्णेन योगेन यथैवामृतमन्थने । समीपं प्रेषिता पित्रा वरुणेन तवानघ ॥ २१ ॥ सा यथैवार्णवगता तथैव वडवामुखे ।

(टीका) रूप धारण करके आई थी और चन्द्रमाकी प्रिया कान्ति और स्त्रियोंमें श्रेष्ठ श्रीदेवी जो कमलध्वजा थी (ये तीनों मूर्तिमती स्त्री बन उनके पास आईं) १५ उस समय वारुणीके कारण मदविह्वल रौहिणेयके पास वह देवी हाथ जोड़ कर खड़ी होगई और उनसे कहने लगी, कि-१६ हे स्वर्गके ईश्वर बलदेवजी! आप दैत्योंकी सेनाओंको जीतिये, मैं तुम्हारी प्यारी स्त्री वारुणी तुम्हारे पास आगई हूँ १७ आप शाश्वत व्यक्तिको वड़वाग्निके समीप (पाताल) में अन्तर्धान हुआ सुन कर हे विमलानन! आपको मैं क्षीणपुण्या स्त्रीकी समान ढूँढती फिरती हूँ १८ मैंने खिले हुए पुष्पोंके समूहमें, वासन्ती लताओंमें और पुष्पोंके गुच्छोंमें निवास किया है १९ मैं सुखप्रिया आप तृषित पुरुषको ढूँढती हुई वर्षाके समय अपने रूपको छिपा कर कदम्ब में घुस गई थी २० हे अनघ! अमृतमंथनकासा पूर्णयोग होने पर अर्थात् पूर्ण अंगों वाली होने पर पिता वरुणने मुझे आपके पास भेजा है २१ जैसे समुद्रमें आप वडवामुखमें मेरा उपभोग करते थे वैसे ही मैं चाहती हूँ अवभी आप मेरा उपभोग करें,

त्वयोपभोक्तुमिच्छामि संम्मतस्त्वं हि मे गुरुः ॥ २२ ॥ न त्वाऽनन्त परित्यक्ष्ये भर्त्सिताऽपि त्वयानघ । नाहं त्वया विना लोकानुत्सहे देव सेवितुम् ॥ २३ ॥ आदिपद्मं च पद्माक्षं दिव्यं श्रवणभूषणम् । कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि बिभ्रती २४ मदिरानन्तरं कान्तिः संकर्षणमुपस्थिता । मदेनागलितश्रोणी किञ्चिदाघूर्णितेक्षणा ॥ २५ ॥ प्रोवाच प्रणयात् कान्तिर्बद्धाञ्जलिपुटा सती । जयपूर्वेण योगेन सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥ अहं चन्द्रादपि गुरुं सहस्रशिरसं प्रभुम् । स्वैर्गुणैरनुरक्ता त्वां यथैव मदिरा तथा ॥२७॥ श्रीश्च पद्मालया देवी विधेया वैष्णवोरसि । रौहिणेयोरसि शुभा मालेवामलतां गता ॥ २८ ॥ सा मालाममलां गृह्य वक्षस्योरसि दर्शिता । पद्मास्या पद्महस्ता वै

क्योंकि मैं आपको माननीय गुरु समझती हूँ २२ हे निष्पाप ! अनन्त ! तुम्हारे तिरस्कार करने पर भी मैं तुमको नहीं छोड़ूँगी, हे देव ! आपके विना लोकोंकी सेवा करनेका मुझे उत्साह नहीं होता है २३ मैं कानोंके दिव्य आभूषण आदिपद्म पद्माक्ष और समुद्रके योग्य नीले रेशमी वस्त्रोंको धारण करने पर भी (दूसरों को नहीं चाहती) २४ मदिराके अनन्तर मदके कारण हिलती हुई श्रोणि वाली और कुछ २ घूमती हुई आखों वाली कान्ति संकर्षणके पास आई २५ उस समय कान्ति प्रणयके कारण हाथ जोड़ कर मुस्कुराती हुई जय २ करके कहने लगी २६ कि-जैसे मदिरा आपसे प्रेम करती है इसी प्रकार आपके गुणोंके कारण मैं सहस्र किरणों वाले चन्द्रमासे भी अधिक आपको बड़ा समझती हूँ २७ पद्मालया वैष्णव वक्षःस्थलमें विधेय शुभा श्री भी रौहिणेयके वक्षःस्थलमें मालाकी समान निर्मल होकर चली गई २८ उस पद्महस्ता पद्ममुखीने वस्त्रभूषणादिसे सुसज्जित हो निर्मल मालाको लेकर बलदेवजीके हृदयके पास जा

संकर्षणमगाब्रवीत् ॥ २९ ॥ राम रामाभिरामस्त्वं वारुण्या समलंकृतः । कान्त्या मया च देवेश सङ्गतश्चन्द्रमा यथा ॥३०॥ इयं च सा मया मौलिः प्रोद्धृता वरुणालयात् । मूर्ध्नि शीर्ष सहस्रस्य या ते भानुरिवाबभौ ॥३१॥ जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषितम् । आदिपद्मं च पद्माक्षं दिव्यश्रवणभूषणम् ॥ ३२ ॥ कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि भावतः । हारं च पीनतरलं समुद्राभ्यन्तरोषितम् ॥ ३३ ॥ देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणीं भूषणक्रियाम् । समयस्ते महाबाहो भूषणानामलंक्रिया ॥३४॥ संगृह्य तमलंकारं ताश्च तिस्रः सुरस्त्रियः । शुशुभे बलदेवो हि शारदेन्दुसमप्रभः ॥ ३५ ॥ स समागम्य कृष्णेन जलजाम्भोदवर्चसा । मुदं परमिकां लेभे ग्रहयुक्तः शशी यथा ।३६।

उनसे कहा, कि—२९ हे स्त्रियोंको आनन्द देने वाले राम ! तुम वारुणीसे अलंकृत हो रहे हो और हे देवेश ! चन्द्रमाकी समान मुझसे और कान्तिसे भी युक्त होरहे हो ॥ ३० ॥ जो आपके सहस्र फनों पर सूर्यकी समान दमकता था उस मुकुटको मैं वरुणालयसे ले आई हूँ ॥ ३१ ॥ आप रत्नोंसे विभूषित एक कुण्डलको और कानोंके दिव्य भूषण आदिपद्म पद्माक्षको और इच्छानुसार नीले नीले रेशमी वस्त्रोंको और समुद्रके उदरमें वर्तमान मोटे और तरल हारको आदरके साथ ग्रहण करिये, हे देव ! आप अपनी इस प्राचीन अलंकरण सामग्रीको ग्रहण करिये, क्योंकि—हे महाभुज ! यह आपके भूषणोंसे अलंकृत होनेका समय है ॥ ३२—३४ ॥ उन अलंकारोंको और उन देवस्त्रियोंको ग्रहण कर बलदेवजी शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी समान प्रभासे शोभा पाने लगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर वह मेघकी समान कान्तिवाले श्रीकृष्णसे मिल कर ग्रहयुक्त चन्द्रमाकी समान परम प्रसन्न हुए ॥३६॥ वे घरकी समान तहाँ पर इस

ताभ्यासुभाभ्यां संलापे वर्तमाने गृहे यथा । वैनतेयस्ततोऽध्वान मतिचक्राम वेगतः ॥ ३७ ॥ संग्रामयुक्तस्तेजस्वी दैत्यप्रहरणांकितः । देवतानां जयश्लाघी दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ३८ ॥ सुप्तस्य शयने दिव्ये क्षीरोदे वरुणालये । विष्णोः किरीटं दैत्येन हृतं वैरोचनेन वै ॥ ३९ ॥ तदर्थं तेन संग्रामः कृतो गुर्वर्थमोजसा । किरीटार्थं समुद्रस्य मध्ये दैत्यगणैः सह ॥ ४० ॥ मोक्षयित्वा किरीटं तु वैष्णवं पततांवरः । व्यत्यक्रमत वेगेन गगनं देवतालयम् ॥ ४१ ॥ स ददर्श गुरुं शैले विष्णुं कार्यान्तरागतम् । तेन क्रोडावलम्बेन किरीटेन विराजिता ४२ स दृष्ट्वा मानुषं विष्णुं शैलराजशिरोगतम् । प्रकाशचेष्टानिर्मुक्तं निर्मौलिमिव मानुषम् ४३ अभिज्ञस्तस्य भावानां गरुत्मान् पततांवरः । चिक्षेप खङ्गतो

प्रकार बातचीत कर रहे थे उस समय गरुडजी उनके पास वेगसे आगए ॥ ३७ ॥ वे संग्रामयुक्त थे अर्थात् संग्रामके समय आया करते थे और वे तेजस्वी दैत्योंके प्रहारोंसे चिन्हित थे और वह देवताओंकी जयकी प्रशंसा करते रहते थे और दिव्य चन्दन तथा माला पहरा करते थे ॥ ३८ ॥ भगवान् विष्णु जब दिव्य क्षीरसमुद्रमें शयन कर रहे थे तब वैरोचन राक्षसने उनके किरीटको हरलिया था ॥ ३९ ॥ तब अपने गुरु (बड़े) के किरीटके लिये गरुडने समुद्रके मध्यमें राक्षसोंके साथ बलपूर्वक संग्राम किया था ४० पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड विष्णु के किरीटको छुड़ा कर देवताओंके आलय आकाशमें वेगसे उड़े ४१ उस समय उनकी गोदीमें लटकता हुआ किरीट उनको शोभा देरहा था तब उन्होंने अपने गुरु विष्णुको कार्यान्तरके कारण पर्वत पर विराजमान देखा ४२ तब उन्होंने विष्णुको मनुष्य बन शैलराजके शिखर पर बैठ कर मुकुट रहित साधारण मनुष्यकी समान (मुकुटके) प्रकाशकी चेष्टासे मुक्त देखा ४३

मौलिं विष्णोः शिरसि हृष्टवत् ४४उपेन्द्रमूर्द्धनि सा मौलिरपिनद्धा इवापतत् । शिरसः स्थाननिर्मुक्ता कृष्णं चैवान्वशोभयत् । यथैव मेरुशिखरे भानुर्मध्यन्दिने यथा ४५ वैनतेयप्रयोगेण विदित्वा मौलिमागतम् । कृष्णः प्रहृष्टवदनो रामं वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः । यथेयमावयोः शैले संग्रामे रचना कृता ॥ ४७ ॥वैरोचनेन सुप्तस्य मम मौलिर्महो-दधौ । शक्रस्य सदृशं रूपं दिव्यमास्थाय सागरात् ॥ ४८ ॥ ग्राहरूपेण योनीत आनीतोऽसौ गरुत्मता । ममाहिशयनान्मौलि हृत्वा क्षिप्तो गरुत्मता ॥ ४९ ॥ सुव्यक्तं सन्निकृष्टः स जरा-सन्धो नराधिपः । लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वात-

उस समय पक्षियोंमें श्रेष्ठ विष्णुके भावोंको जानने वाले गरुड़ने विष्णुके शिर पर प्रसन्न होकर आकाशसे मुकुट गिरा दिया ४४ इन्द्रके छोटे भाईके मस्तक पर वह मुकुट पहिरानेकी समान गिर पड़ा और शिरके स्थानमें छूट कर कृष्णको सुशोभित करने लगा उस समय श्रीकृष्ण मेरुपर्वतके शिखर पर दुपहरीमें विराजने हुए सूर्यकी समान शोभा पाने लगे४५ गरुड़जीके प्रयोगसे मुकुट को आया हुआ देख कर कृष्ण अपने मुखको प्रसन्न करके बलरामजीसे कहने लगे ४६ इस पर्वत पर जिस प्रकार हम दोनों के लिये संग्रामकी रचना हुई है, उससे प्रतीत होता है, कि- देवताओंका कार्य त्वरा कर रहा है ४७ मैं समुद्रमें सोरहा था उस समय वैरोचनने शक्रका दिव्य रूपधारण कर मेरे मुकुटको (चुरा लिया था) ४८ (फिर) ग्राहका रूप धारण कर वह उसको लिये जारहा था उसको गरुड़जी ले आए थे, इस प्रकार मेरे सर्पशय्या पर जाने पर मेरे मुकुटको छीन कर गरुड़जीने फेंका है ४९ राजा जरासंध साफ हीपासमें दीख रहा है, क्योंकि- वायुकी समान वेग वाले राजाओंके रथोंके ध्वजाके अग्रभाग

रंहसाम् ॥ ५० ॥ एतानि विजिगीषूणां शशिकल्पानि भूभृताम् । छत्राण्यार्य विराजन्ते दंशितानि सितानि च ॥ ५१ ॥ अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपंक्तयः । अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपंक्तयः ॥ ५२ ॥ अहो द्यौर्विमलाभानां शस्त्राणां विमलानना । प्रभा भास्करभामिश्रा चरन्तीव दिशो दश ५३ एतानि नूनं समरे पार्थिवैरायुधानि च । क्षिप्तानि विनशिष्यन्ति मयि सर्वाणि संयुगे ॥ ५४ ॥ काले खलु नृपः प्राप्तो जरासन्धो महीपतिः । आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः ॥५५॥ आर्य तिष्ठाव सहितौ न खल्वनागते नृपे । युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम् ॥ ५६ ॥एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्राम-लालसः । जरासन्धवधं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥ ५७ ॥वीक्ष्य-

दिखाई देरहे हैं ॥ ५० ॥ हे आर्य ! ये जीतने वाले राजाओंके सुसज्जित सित छत्र चन्द्रमाकी समान विराज रहे हैं ॥ ५१ ॥ जैसे आकाशमें हंसोंकी पंक्ति दीखती है इसी प्रकार राजाओंके उदग्र रथोंकी शुभ्र छत्रपंक्तियें हमारी ओरको आरही हैं ॥५२॥ आकाशका मुख विमल आभा वाले शस्त्रोंकी प्रभासे उज्ज्वल होरहा है और उनकी प्रभा सूर्यकी प्रभासे मिल-कर दशों दिशा-ओंमें फिरती रही है ॥ ५३ ॥ ये राजे समरमें जिन आयुधोंको मेरे ऊपर फेंकेंगे वे सब आयुध नष्ट होजावेंगे ॥ ५४ ॥ यह राजा जरासंध उचित समय पर ही आया है, यह हम दोनोंकी समरकी कसौटी होगा और समरका प्रथम अतिथि होगा ५५ हे आर्य ! हम दोनोंको इकट्ठे होकर खड़ा होना चाहिये और इस राजाके आनेसे पहिले ही युद्धका सामान ठीक करना चाहिये, पहिले सेनाकी देखभाल करना चाहिये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने स्वस्थतासे बातचीत की, फिर उन्होंने संग्रामकी लाल-सासे जरासंधका वध चाहते २ सेनाको देखा ॥ ५७ ॥ अच्युत

माणश्च तान् सर्वान्नृपान्यदुवरोऽव्ययः । आत्मानमात्मनोवाच यत्पूर्वं दिवि मन्त्रितम् ॥ ५८ ॥ इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः । ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ५९ मोक्षितान् खल्विमान् मन्ये मृत्युना नृपसत्तमान् । स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥ ६० ॥ स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता । एषां नृपतिसिंहानां बलौघैरभिपीडिता ६१ अल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम् । भविष्यति नरेन्द्रौघैराकीर्णं च नभस्तलम् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासन्धागमनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन उवाच । जरासन्धस्ततः प्राप्तो नृपः सर्वमहीक्षिताम् । नराधिपैर्बलयुतैरनुयातो महाद्युतिः ॥ १ ॥ व्यायतोदग्रतुरगैर्विस्पष्टार्थसमाहितैः । रथैः सांग्रामिकैर्युक्तैः स्वक्षगामिभिः

यदुवरने उन सब राजाओंको देख कर अपने चित्तमें स्वर्गकी मंत्रणाका विचार किया ५८ ये राजे मृत्युमार्गमें स्थित होगए हैं और शास्त्रविहित कर्मसे इनका विनाश होजावेगा ॥ ५९ ॥ मैं इन राजसत्तमोंको मृत्युसे ग्रसित समझता हूँ और इनके स्वर्गगामी शरीर भी प्रकाशित होरहे हैं ॥ ६० ॥ इन राजसिंहोंकी सेनाओंके भारसे पीड़ित होकर पृथ्वीने स्वर्गमें जाकर उचितही किया था ॥ ६१ ॥ अब थोड़ेही समयमें पृथ्वीमण्डल तो शून्य होजावेगा और नभस्तल राजाओंसे व्याप्त होजावेगा ॥ ६२ ॥ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ छ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसके उपरान्त सकल राजाओंसे घिरा हुआ महाद्युति राजा जरासंध राजाओंके बलसे घिर कर उनके पीछे पहुँच गया १ उसके साथ अश्वशास्त्रकोविदोंके सिखाये हुए घोड़े और बलवान् घोड़े थे वे संग्रामकी सामग्रीसे

क्वचित् ॥ २ ॥ हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः । महामात्रो-त्तमारूढैः कल्पितै रणवल्गितैः ॥ ३ ॥ सारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेंखमाणैः प्रवल्गितैः । वाजिभिर्वायुसंकाशैः उत्पतद्भिरिव पक्षिभिः ॥४॥ खड्गचर्मबलोदग्रैः पत्तिभिर्वल्गितैः वरैः । सहस्र-संख्यैर्निर्मुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः ॥ ५ ॥ एवं चतुर्विधैः सैन्यैः प्रचलद्भिरिवाम्बुदैः । नृपोऽभियातो बलवान् जरासन्धो धृत-व्रतः ॥ ६ ॥ स रथैर्नेमिघोषैश्च गजैश्च मदसिंजितैः । हेषद्भि-श्चापि तुरगैः क्ष्वेडितैश्च पत्तिभिः ॥७॥ सन्नादयन् दिशः सर्वाः सर्वाश्चापि गुहाशयान् । स राजा सागराकारः ससैन्यः प्रत्य-दृश्यत ॥८॥ तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् । क्ष्वेडिता-

भरे हुए रथोंमें जुत रहे थे और कहीं पर अलग २ चल रहे थे २ और उसके साथमें सुवर्णकी अंबारी वाले बड़े २ घण्टों वाले मेघोंकी समान हाथी थे, उन पर हाथीवान् बैठे हुए थे और वे रणके समयकी दहाड़ें दहाड़ रहे थे ३ और उसके साथके घोड़े घुड़सवारोंको लेकर पृथ्वीको कुरेदते हुए और हिनहिनाते हुए चल रहे थे और वे वायुकी समान घोड़े उड़ते हुए पक्षियोंकी समान चल रहे थे ४ और उसके साथमें ढाल तलवारधारी बलमें उदग्र पैदलभी चल रहे थे वे अपनी गुंजारसे आकाशको गुंजार रहे थे और वह सहस्रोंकी संख्यामें उड़ने सर्पोंकी समान चले जा रहे थे ५ इस प्रकार चलते हुए मेघोंकी समान चार प्रकारकी सेनाओंसे घिरा हुआ बलवान् राजा जरासंध चला आरहा था ६ वह नेमिका घोष करने वाले रथोंसे और मदसे चिंघाड़ते हुए हाथियोंसे और हिनहिनाते हुए घोड़ोंसे और बाँस फटकारते हुए सैनिकोंसे सब दिशाओंको और सकल गुहाशयों को गुञ्जारता हुआ समुद्राकार राजा जरासन्ध सेनाके साथ दिखाई दिया ७-८ हृष्ट योधाओंसे सङ्कुल और बाँस फटकारने

स्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ॥ ९ ॥ रथैः पवनसम्पातैर्गजैश्च जलदोपमैः । तुरगैश्च सिताभ्राभैः पत्तिभिश्चापि दंशितैः १० व्यामिश्रं तद्बलं भाति पत्तिद्विपरथाकुलम् । घर्मान्ते सागरगतं यथाऽभ्रपटलं तथा ॥ ११ ॥ सबलास्ते महीपाला जरासन्ध-पुरोगमाः । परिवार्य गिरिं सर्वे निवेशायोपचक्रमुः ॥ १२ ॥ बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीः शिबिरस्य वै । शुक्लपर्वणि पूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥१३॥ वीतरात्रे ततः काले नृपास्ते कृतकौतुकाः । आरोहणार्थं शैलस्य समेता युद्धलालसाः ।१४। समवायीकृताः सर्वे गिरिप्रस्थेषु ते नृपाः । निविष्टा मन्त्रया-मासुर्युद्धकालकुतूहलाः ॥ १५ ॥ एषां तु तुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम् । युगान्ते भिद्यमानानां सागराणां यथा स्वनः १६

और भुजा थपकानेके रव वाला वह राजाओंका सेनादल मेघ-सेनाकी समान शोभा पाने लगा ९ पवनकी समान चलने वाले रथोंसे और मेघोंकी समान हाथियोंसे श्वेत बादलोंकी आभाकी समान आभा वाले घोड़ोंसे और कवच धारण करने वाले पैदलोंसे घोलमेल, व्याकुल पैदल और घोड़े तथा रथ वाला वह सेनादल वर्षाऋतुमें समुद्रमेंसे उठते हुए बादलोंकी घटाकी समान दीख रहा था १०-११ वे जरासंध आदि राजे अपनी अपनी सेनाओंसे उस पर्वतको घेर कर तहाँ छावनी डालनेके लिये खड़े होगए १२ जैसे शुक्लपक्षकी पूर्णिमाके दिन समुद्रका रूप होता है इसी प्रकार उस सेनाके शिबिरकी शोभा होरही थी १३ तदनन्तर रात्रि बीतने पर वे राजे मांगलिक कार्य करके युद्धकरनेकी लालसासे पर्वत पर चढनेके लिये एकत्रित होने लगे १४ युद्धके समय कुतूहल होने पर वे सब गिरिप्रस्थमें इकटे हो बैठ कर मंत्रणा करने लगे १५ जैसे प्रलयकालमें उफनते हुए समुद्रोंका शब्द होता है इसी प्रकार राजाओंका तुमुल शब्द सुनाई आने

तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः । चेरुर्मा शब्द इत्येवं ब्रुवन्तो राजशासनात् ॥१७॥ तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्द-स्तिमितस्य वै । लीनमीनभुजङ्गस्य निःशब्दस्य पयोदधेः ॥१८॥ तस्मिन् स्मितनिःशब्दे योगादिव महार्णवे । जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥ १९ ॥ शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानीह महीक्षिताम् । सर्वतः पर्वतश्चायं बलौघैः परिवार्यताम् ॥ २० ॥ अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः । ऊर्ध्वं चापि मंचाक्षन्तां प्रासा वै तोमराणि च ॥२१॥ ऊर्ध्वं प्रक्षेपणार्थाय दृढानि च लघूनि च । शस्त्रपातविघातानि क्रियन्तामाशु शिल्पिभिः॥२२ शूराणां युद्ध्यमानानां प्रमत्तानां परस्परम् । यथा नरपतिः प्राह तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥ २३ ॥ दार्यतामेष टङ्कौघैः खनित्रैश्च नगोत्तमः । नृपाश्च युद्धदुर्गस्था विन्यस्यन्तामदूरतः ॥ २४ ॥

लगा १६ उन राजाओंके वृद्ध चपरासी राजाज्ञा मिलने पर वर्दी पहिन और पगड़ी बाँध हाथमें बेंत लेकर चुप रहो चुप रहो कहने लगे १७.तब तो जैसे मगर मच्छ और सर्पोंके लीन होनें पर समुद्र शान्त दीखता है इसी प्रकार वह सेना चुप होने पर शान्त दीखने लगी १८ जैसे समुद्र स्तिमित होजाता है इसी प्रकार सेनादलके निःशब्द होजाने पर जरासन्धने बृहस्पतिकी समान महत्त्वयुक्त वचन कहा, कि- १९ राजाओंकी सेनाएँ शीघ्रही उद्यत होजावें और इस पर्वतको सेनादलोंसे घेरलें ॥ २० ॥ अश्मयन्त्र क्षेपणीय और मुद्गर ठीक करो और प्रास तथा तोमरों को ऊपरको फेंको ।२१॥ शिल्पीपुरुष शस्त्रोंका पतन रोकनेके लिये ऊपरको फेंकनेकी दृढ परन्तु हलकी वस्तुएँ तयार करें २२ यह सब मत्त होकर परस्पर युद्ध करने वाले योधाओंको दिये जावें,राजा जिस प्रकार कह रहे हैं,सब फुर्तीसे वैसा ही करो२३ इस उत्तम पहाड़को कुदाल और फावड़ोंसे विदीर्ण कर डालो

अद्य प्रभृति सैन्यौघैः गिरिरोधः प्रवर्त्यताम्। यावदेतौ पातयामो वसुदेवसुतावुभौ ॥ २५ ॥ अचलोऽयं शिलायोनिः क्रियतां निश्चलाण्डजः। आकाशमपि बाणौघैर्निःसम्पातं विधीयताम् मयाऽनुसृष्टास्तिष्ठन्तु गिरिभूमिषु भूमिपाः। तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां गिरिः॥ २७ ॥ मद्रः कलिंगाधिपतिश्चेकितानश्च बाल्हिकः। काश्मीरराजो गोनर्दः करूपाधिपतिस्तथा ॥२८॥ द्रुमः किंपुरुषश्चैव पार्वतीयाश्च मालवाः। पर्वतस्यापरं पार्श्वं क्षिप्रमारोहयन्त्वमी २९पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा। रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्चैव मालवः ३० पांचालाधिपतिश्चैव द्रुपदश्च नराधिपः। विंदानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ छागलिः पुरमित्रश्च दरदश्च महीपतिः। कौशाम्ब्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः ॥ ३२ ॥ भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा। उत्तरं पर्वतोद्देशमेते

उस समय युद्धदुर्गको जानने वाले राजे भी इसके पास ही खड़े रहें २४ जब तक हम वसुदेवके इन दोनों पुत्रोंको गिरावें तब तक मेरी सेनाएँ पहाड़को घेरे खड़ी रहें २५ इस शिलाओंके उत्पादक अचलके पक्षियोंको निश्चल कर दो,और आकाशको भी बाणोंसे छाकर ऐसा करदो,इसमें उड़ा न जा सके २६मेरे आज्ञा दिये हुए राजे पहाड़की भूमियोंमें डट जाँय और स्थान २ पर शीघ्र ही पहाड पर चढ़ें२७मद्र कलिंगाधिपति चेकितान बाल्हीक काश्मीरराज गोनर्द करूपाधिपति द्रुम और पहाड़ी तथा मालवीय, ये सब पहाड़के अपर पार्श्व पर चढें ॥ २८ ॥ २९ ॥ पौरव वेणुदारि वैदर्भ सोमक भोजाधिपति रुक्मी सूर्याक्ष मालव पञ्चालाधिपति राजा द्रुपद,अवन्ति देशी विन्द अनुविंद वीर्यवान् दन्तवक्र छागलि पुरुमित्र राजा दरद कौशाम्ब्य मालव शतधन्वा विदूरथ भूरिश्रवा त्रिगर्त बाण पञ्चनद ये रत्नोंकी समान गौरव

दुर्गसहा नृपाः। आरोहन्तु विमर्दन्तो वज्रप्रतिमगौरवाः ॥३३॥ उलूकः कैतवेयश्च वीरश्चांशुमतः सुतः एकलव्यो दृढाश्वश्च क्षत्रधर्मा जयद्रथः ॥ ३४ ॥ उत्तमौजास्तथा शाल्वः कैरलेयश्च कैशिकः। वैदिशो वामदेवश्च सुकेतश्चापि वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ पूर्वपर्वतनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः। विदारयन्तो यान्तु वाता इव बलाहकान् ॥ ३६ ॥ अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान्। दक्षिणं शैलनिचयं दारयिष्याम दंशिताः ॥ ३७ ॥ एवमेष गिरिः क्षिप्रं समन्ताद्वेष्टितो बलैः। वज्रप्रपातप्रतिमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥ ३८ ॥ गदिनो वै गदाभिश्च परिघैः परिघायुधाः। अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु नगोत्तमम् ॥ ३९ ॥ एष भूमिधरोऽद्यैव विषमोच्चशिलान्वितः। कार्यो भूमिसमः सर्वो भवद्भिर्वसुधाधिपैः ॥४०॥ जरासन्धवचः श्रुत्वा पार्थिवा राज-

वाले दुर्गसह राजे पहाड़का मर्दन करते हुए उत्तरकी ओर चढ़ें उलूक कैतवेय अंशुमान्‌का पुत्र वीर एकलव्य दृढाश्व क्षत्रधर्मा जयद्रथ उत्तमौजा शाल्व कैरलेय कैशिक वैदिश वामदेव वीर्यवान् सुकेतु हमारे पर्वतका पूर्वकी ओरका व्यूह इनके अधीन रहे, जैसे वायु मेघोंको तित्तर बित्तर करते दौड़ते हैं, ऐसे ही यह राजे (शत्रुओंको) विदीर्ण करते हुए बढ़े ३४-३६ मैं दरद और वीर्यवान् चेदिराज ये सब कवचोंको धारण कर पहाड़के दक्षिण के ओरके पत्थरोंको ढावें ३७ इस प्रकार इस पहाड़को फौजोंसे चारों ओरसे घेर कर इस पर वज्रपातकी समान भयंकर भय डालना चाहिये ३८ गदाधारी पुरुष गदाओंसे परिघसे लड़ने वाले परिघोंसे और दूसरे योधा अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे इस गिरिश्रेष्ठको ढावें ३९ आप सब राजे इस ऊँची शिला वाले पहाड़को समतलभूमि वाला बना दें ४० जरासन्धके वचनको सुन कर राजशासनसे राजाओंने गोमन्तपहाड़को ऐसे घेर लिया,

शासनात्। गोमन्तं वेष्टयामासुः सागरः पृथिवीमिव ॥ ४१ ॥ उवाच राजा चेदीनां देवानां मघवानिव। किं ते युद्धेन दुर्गे ऽस्मिन् गोमन्ते च नगोत्तमे ॥ ४२ ॥ दुरारोहश्च शिखरे प्रांशुपादपकण्टके। काष्ठैस्तृणैश्च बहुभिः परिवार्य समन्ततः ४३ अद्यैव दीप्यतां क्षिप्रमलमन्येन कर्मणा। क्षत्रियाः सुकुमारा हि रणे सायकयोधिनः ॥ ४४ ॥ नियुक्ताः पर्वते दुर्गे नियोक्तुं पादयोधिनः। न नामपरिवन्धेन न चावस्कन्दकर्मणा ॥ ४५ ॥ शक्य एष गिरिस्तात देवैरप्यवमर्दितुम्। दुर्गयुद्धे क्रमः श्रेयान् रोधयुद्धेन पार्थिवाः ॥ ४६ ॥ भक्तोदकेन्धनैः क्षीणाः पात्यन्ते गिरिसंश्रिताः। वयं बहव इत्येवं न तेषु निपुणो नयः ॥ ४७ ॥ यादवौ नावगन्तव्यौ ह्यवध्येयौ रणे स्थितौ। अनिज्ञातबलावेतौ श्रूयेते देव-

जैसे समुद्रसे पृथ्वी घिरी हुई है ४१ उस समय देवताओंमें इन्द्र की समान चेदिराजने कहा, कि-इस दुर्गम पहाड़ोंमें श्रेष्ठ गोमन्त पर युद्ध करनेसे क्या लाभ है ? ४२ इसके शिखरों पर कठिनता से चढ़ा जा सकेगा और इसमें बड़े २ ऊँचे काटेदार वृक्ष हैं (मेरी समझमें तो) इसके चारों ओर बहुतसे काठ कबाड़ भर इसमें आज ही शीघ्रतासे अग्नि लगा देनी चाहिये, और दूसरे कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्षत्रिय सुकुमार हैं वे तो बाण-युद्ध कर सकते हैं ४३-४४ इनको आप पहाड़युद्धमें प्रवृत्त कर रहे हैं, इनको तो (स्थलके) दुर्ग युद्धमें पैदल लड़ाना उचित है इस पहाड़को नाममात्रके रोकनेसे या इसके ऊपर चढ़नेसे तो देवता भी इस पर्वतका मर्दन नहीं कर सकते, हे राजाओं ! दुर्ग-युद्धमें रोधयुद्धका क्रम कल्याण करता है, पहाड़का आश्रय लेकर रहने वाले पुरुषोंका भोजनकी सामग्री जल और ईंधन क्षीण होने पर ही पतन होसकता है, हम बहुत हैं (पहाड़ी थोड़े हैं) उनके संबंधमें (इस प्रकार विचारना) उत्तम नीति नहीं है ४५-४७

सम्मितौ ॥ ४८ ॥ कर्मभिस्त्वमरौ विद्मो बालावतिबलान्वितौ । दुष्कराणीह कर्माणि कृतवन्तौ यदूत्तमौ ॥ ४९ ॥ शुष्ककाष्ठै स्तृणैर्वेष्ट्य सर्वतः पर्वतो ह्ययम् । अग्निना दीपयिष्यामो दह्येतां गतचेतनौ ॥ ५० ॥ यदि चेन्निष्क्रमिष्येते दह्यमानावितोन्तिके । समेत्य पातयिष्यामस्त्यक्ष्यतो जीवितं ततः ॥ ५१ ॥ वाक्यमेतत्तु रुरुचे सबलानां महीक्षिताम् । यदुक्तं चेदिराजेन नृपाणां हितशंसिना ॥ ५२ ॥ ततः काष्ठैस्तृणैर्वंशैः शुष्कशाखैश्च पादपैः । उपादीप्यत शैलेन्द्रः सूर्यपादैरिवाम्बुदः ॥ ५३ ॥ ददुस्ते सर्वतस्तूर्णं पावकं तत्र पार्थिवाः । यथोद्देशं यथावातं शैलस्य लघुविक्रमाः ॥ ५४ ॥ स वायुदीपितोवन्हिरुत्पपात समन्ततः । स

इन रणमें वर्तमान दोनों यादवोंको तुच्छ नहीं समझना चाहिये, क्योंकि इनके बलका पता नहीं लगता, और यह देवताओंकी समान सुने जाते हैं ॥ ४८ ॥ इनके कर्मोंसे हम इनको देवता समझते हैं, ये दोनों बालक अतिबली हैं, इन यदुओंमें श्रेष्ठ पुरुषोंने इस संसारमें बड़े २ दुष्कर कर्म किये हैं ॥ ४९ ॥ सूखे काठ और तिनकोंसे इस पर्वतको चारों ओरसे घेर कर अग्निसे भस्म करना चाहिये तब वे मूर्च्छित होकर भस्म होजावेंगे ॥५०॥ यदि वह जलनेसे (डर कर) निकलेंगे तो हम एकत्रित हो उनको समीपमें ही गिरादेंगे इस प्रकार वे अपने प्राणोंको त्याग देंगे ॥ ५१ ॥ राजाओंके हितकी बात कहने वाले चेदिराजने जो बात कही, यह बात सेनाओं सहित सब राजाओंको अच्छी लगी ॥ ५२ ॥ तब तो जैसे सूर्यकी किरणें पड़ रही हों, इस प्रकार काठ, तिनके बाँस और सूखी डालों वाले वृक्षोंसे वह पर्वत जलने लगा ॥५३॥ तब तो फुर्तीसे पराक्रम करने वाले राजाओं ने स्थान और वायुके अनुसार उस पर्वतके चारों ओर शीघ्रता से आग लगा दी ॥ ५४ ॥ उस समय वायुसे प्रदीप्त हुआ

धूमज्वालमालाशिखाभिः खमिव शोभयन् ॥ ५५ ॥ सोऽनलः पवनोद्धूतः काष्ठसंचयमूलवान् । ददाह शैलं श्रीमन्तं गोमन्तं कान्तपादपम् ॥ ५६ ॥ स दह्यमानः शैलेन्द्रो मुमोच विपुलाः शिलाः । शतशः शतधा भूत्वा महोल्काकारदर्शनाः ॥ ५७ ॥ सनिर्भानुः शैलेन्द्रो भाभिर्भानुरिवाम्बुदम् । आक्षिपन्नीव विभिन्नत् समन्तादर्चिरुत्करः ॥ ५८ ॥ धातुभिः पच्यमानैश्च ज्वलद्भिश्चैव पादपैः । उद्भ्रान्तश्वापदो गौति तृष्यमान इवाद्रिराट् ॥५९॥ प्रतप्तो दह्यमानस्तु स शैलः कृष्णवर्त्मना । रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥ ६० ॥ वन्हिना चापि दीप्ताङ्गो गिरिर्नाति विराजते । धूमोन्धकारान्धतनुर्गर्जमान इवाम्बुदे ॥६१॥

अग्नि धूम और ज्वालामालाओंसे आकाशको सुशोभित करता हुआ चारों ओरसे बढ़ने लगा ॥ ५५ ॥ काठोंके ढेर रूपी जड़ वाला पवनसे फैलता हुआ अग्नि मनोहर वृक्षों वाले श्रीमान् गोमन्त पर्वतको भस्म करने लगा ॥ ५६ ॥ उस समय जलते हुए पर्वतमेंसे सैंकड़ों शिलाएँ सैकड़ों टुकड़े होकर बड़ी २ उल्काओंके आकारमें गिरने लगीं ॥ ५७ ॥ उस समय जिसमेंसे चारों ओर लपटें निकलने लगी थीं, अग्नियुक्त वह पर्वत अपनी लपटों के कारण ऐसा प्रतीत होता था, मानों सूर्यकी किरणें मेघों पर पड़ रही हों ॥ ५८ ॥ उस समय धातुओंके पकने पर और वृक्षोंके जलने पर तथा जानवरोंके उद्भ्रान्त होनेके कारण पर्वत व्यथा पाकर रोता हुआसा दिखाई देता था ५९ अग्निसे जलते २ तपने पर उस पर्वतमेंसे सुवर्ण चांदी और अञ्जन धातुओंकी धाराएँ बहने लगीं ६० वन्हिसे अपने अंगके अधिक प्रदीप्त होने पर भी, वह पर्वत अधिक सुशोभित नहीं होरहा था क्योंकि-धुएँके कारण उसका शरीर अँधारा होरहा था और वह समुद्रमें डूबता हुआ

त्रिश्लिष्टोपलसंघातः कर्कशांगारवर्षणः । गिरिर्गात्यनलोद्गारै-
रुल्कावृष्टिरिवाम्बुदः प्रतानप्रस्रवोत्क्षिप्तो धूमसम्बर्धितोदरः ।
स गिरिर्भस्मतां यातो युगान्ताग्निहतोपमः ॥ ६३ ॥ विह्वला-
स्तस्य पार्श्वेभ्यः सर्पादग्धार्धदेहिनः । श्वसन्तः पृथुमूर्धानो
निश्चेरुरशिवेक्षणाः ॥ ६४ ॥ उत्पत्योत्पत्य गगनात् पुनः
पुनश्चाङ्मुखाः ।रेसुश्चोद्विजिनाः सिंहाः शार्दूलाश्चानलाविलाः ६५
मुमुचुः पादपाश्चैव दाहनिर्यासजं जलम् ॥ ६६ । वहत्यूर्ध्वगति-
र्वातो भस्मांगारातिपिङ्गलः । धूमच्छाया च गगने दर्शिताम्भोद-
दर्शना ॥६७॥ त्यज्यमानो महासानुर्विहगैः श्वापदैरपि । गिरि-
र्वैक्लव्यमायाति प्रागल्भ्यात् कृष्णवर्त्मनः ॥६८॥स मुमोच शिलाः
शैलश्चलोदग्रशिलोच्चयः । वज्रेण पुरुहूतस्य यथा स्याद्दारित-

सा दीखता था ६१ जिसके पत्थरोंके ढेर ढीले होगए थे और जो कर्कश अँगारोंको बरसा रहा था वह पहाड़ अग्निका उद्गार निकालता हुआ वर्षाकालके मेघकी समान प्रतीत होता था ६२ जिसके झरने सूख गए थे, पेटमें धुआँ भर रहा था ऐसा वह पहाड़ प्रलयकालकी अग्निमें पड़े हुएकी समान भस्म होगया ६३ उसके पार्श्वोंमेंसे आधे जले हुए सर्प निकलने लगे, वे बड़े २ मस्तक वाले सर्प फुँकारे भरते हुए क्रूरदृष्टिसे देखने लगे ६४ घबड़ाये हुए सिंह और अग्निसे व्याकुल शार्दूल आकाशमें ऊपरको उछल कर नीचेको मुख कर गिरते हुए आर्तनाद करनेलगे ६५ वृक्ष भी दाहके कारण निर्यासके जलको छोड़ने लगे ६६ आकाशमें ऊपरको उड़ता हुआ वायु भस्म और अँगारोंसे पीला होकर बहने लगा, और आकाशमें प्रगटहुई बादलकी समान धूमकी छाया दीखने लगी ६७ अग्निके बढ़ने पर जब पहाड़के शिखरोंको पक्षी और पशु छोड़ने लगे तब तो पहाड़ विकल हो उठा ६८ इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण होनेकी समान वह ऊँची २ शिलाओं

स्तथा ॥ ६९ ॥ आदीप्य तं तु शैलेन्द्रं क्षत्रिया व्यूढदंशिताः । अर्धक्रोशमपक्रान्ताः पावकेनाभितापिताः ॥ ७० ॥ दह्यमाने नगश्रेष्ठे सीदमाने महाद्रुमे । धूमभारैरनालक्ष्ये मूले शिथिलतां गते ७१ सरोषं हि तदा रामो वचनं केशिसूदनम् । उवाच पद्मपत्राक्षं स साक्षान्मधुसूदनम् ॥ ७२ ॥ दह्यतेऽयं गिरिस्तात सशृङ्गशिखर-द्रुमः । आवयोः कृष्णवैरेण बलिभिर्वसुधाधिपैः ॥ ७३ ॥ पश्य कृष्णानलोष्णानां सधूमानां समन्ततः । वनानां विरसन्तीव नगाभ्याशे द्विजोत्तमाः ॥ ७४ ॥ अयं यथावयोरर्थे गोमन्तस्तात दह्यते । अयशस्यमिदं लोके कौलीनं च भविष्यति ७५ तदस्या-नृण्यहेतोर्हि नगस्य नगसन्निभ । क्षत्रियान्निर्दहिष्यामो दोर्भ्यामेव युधां वरः ॥ ७६ ॥ एते ते क्षत्रियाः सर्वे गिरिमादीप्य

वाला पहाड़ शिलाएँ गिराने लगा ६९ उस शैलेन्द्रको जलानेके बाद वज्रकवचधारी खड़े हुए क्षत्रिय अग्निसे तपनेके कारण आधे कोस दूरको हट गए ७० जब वह उत्तम पहाड़ जलने लगा और उसके बड़े वृक्ष कष्ट पाने लगे और धुएँके कारण उसका दीखना बन्द होगया और उसकी जड़ें ढीली होने लगीं ७१ तब बलरामने रोषमें भर कर केशीदैत्यका नाश करने वाले पद्मनेत्र मधुसूदन श्रीकृष्णसे कहा कि-७२ हे कृष्ण! हमारे वैरके कारण ये बली राजे इस पहाडको कंगूरे शिखर और वृक्षों सहित भस्म करे डालते हैं ७३ हे कृष्ण! देखो! अग्निसे गरम हुए धुएँ वाले वनोंमेंसे चारों ओरसे निकल कर पक्षी इस पहाड़के पास रोते फिरते हैं ७४ हे तात! यह गोमन्त पहाड़ हम दोनोंके कारण ही जल रहा है, इससे हमारी अपकीर्ति होगी और लोकापवाद होगा ७५ हे नगोपम! हे योधाओंमें श्रेष्ठ! इस पहाड़से उऋण होनेके लिये हम अपनी भुजाओंसे ही इन क्षत्रियोंको मार डालेंगे ७६ ये सब क्षत्रिय पर्वतको जला कर यथास्थान कवच

दर्शिताः। रथिनस्तान दृश्यन्ते यथा देशं युयुत्सवः ॥७७॥ एव-मुक्त्वा गिरेः शृङ्गान्मेरुशृङ्गादिवोडुराट्। निपपात बलः श्रीमान् वनमालाधरो युवा ॥ ७८ ॥ कादम्बरीमदक्षीबो नीलवासाः सितराननः। स शारदेन्दुसंकाशो वनमालाचितोदरः ॥ ७९ ॥ कान्तैककुण्डलधरश्चारुमौलिरवाङ्मुखः निपपात नरेन्द्राणां मध्ये केशवपूर्वजः ॥ ८० ॥ अवप्लुते ततो रामे कृष्णः कृष्णाम्बुदोपमः। गोमन्तशिखराच्छ्रीमानाप्लुतोऽमितविक्रमः ॥८१॥ ततस्तं पीडयामास पद्भ्यां गिरिवरं हरिः। स पीडितो गिरिस्तेन निर्ममज्ज समन्ततः ॥८२॥ जलाकुलोपलस्तत्र प्रस्रुतो द्विरदो यथा। स तेन वारिणा वन्हिस्तत्क्षणात् प्रशमं ययौ ॥ ८३ ॥ कल्पान्ते

पहिर रथोंमें तयार खड़े हैं अतः युद्धाभिलाषी प्रतीत होते हैं ७७ इसप्रकार कहनेके अनन्तर वनमालाधारी तरुण श्रीमान् बलराम जैसे मेरु पहाड़से चंद्रमा उछलता है, इसी प्रकार उस पहाड़से उछल कर कूदे ॥ ७८ ॥ उस समय वह कादम्बरीके मदसे मत्त होरहे थे, नीला वस्त्र पहिर रहे थे उनका मुख श्वेत था और उनका उदर वनमालाओंसे छारहा था अत एव वह शरद ऋतु के चन्द्रमाकी समान प्रतीत होते थे ॥ ७९ ॥ वह रमणीय एक कुण्डलको धारण कर रहे थे, उनका मुकुट सुन्दर था और उनका मुख नीचेको था ऐसे केशवके बड़े भाई राजाओंके बीच में कूद पड़े ८० बलरामके कूदने पर काले मेघकी समान आभा वाले अमितविक्रमी श्रीमान् बलराम गोमन्तके शिखरसे कूद पड़े ॥८१॥ तब उस गिरिश्रेष्ठको श्रीकृष्णने अपने चरणोंसे दबाया, उनके दबाने पर पहाड़ चारों ओरसे पानीसे न्हा गया ॥८२॥ उस समय मदसे न्हाते हुए हाथीकी समान वह जलसे भीगते हुए पत्थरों वाला पहाड न्हा गया, उस जलसे उस पर्वतकी वन्हि उसी समय शांत होगई ॥ ८३ ॥ उस समय

वारिधाराभिर्मेघजालैरिवांशुमान् । सिंहारसितनिर्घोषः पीतवासा घनाकृतिः ॥ ८४ ॥ किरीटमूर्धा सौम्यास्यः पुण्डरीकनिभेक्षणः । श्रीवत्सवक्षाः सुमुखः सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ८५ ॥ नागादनन्तरं कृष्णः प्लुतो वै वीर्यवांस्ततः । ताभ्यामेव प्लुताभ्यां च चरणैः पीडितो गिरिः ॥ ८६ ॥ मुमोच सलिलोत्पीडांस्तीव्रपावकशान्तये । सलिलोत्पीडनं दृष्ट्वा पार्थिवा भयमाविशन् ।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तदाहो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

वैशम्पायन उवाच । तौ नगादाप्लुतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ । क्षुब्धं नरवरानीकं सर्वं सम्मूढवाहनम् ॥ १ ॥ बाहुप्रहरणौ तौ तु चेरतुस्तत्र यादवौ । मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥२॥ ताभ्यां मृधे प्रविष्टाभ्यां यादवाभ्यां प्रतिस्त्वभूत् ।

वह पर्वत कल्पान्तमें मेघोंकी वारिधाराओंसे छिपते हुए सूर्यकी समान शोभा पाने लगा, उस समय सिंहकी महाध्वनिकी समान घोष करने वाले पीतवस्त्रधारी मेघाकार मस्तक पर किरीटधारी सौम्यमुख पुण्डरीककी समान नेत्र वाले श्रीवत्सके चिन्हसे चिन्हित सुंदर मुख वाले और इन्द्रकी समान कान्ति वाले महाकान्तिवान् वीर्यवान् श्रीकृष्ण बलरामके बाद ही कूद पड़े, उन दोनोंके कूदते समय उनके चरणोंसे पीडित हुआ महान् पर्वत तीव्र पावकको शान्त करनेके लिये सलिल बरसाने लगा, जलको निकलते देख कर राजा भयभीत होने लगे ॥८४-८७॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ४२

वैशम्पायनजीने कहा, कि-उन दोनों वसुदेवके पुत्रोंको पर्वतसे कूदते देख राजाओंकी सेना और उनके वाहन मूढसे होगए ॥ १ ॥ वे दोनों यादव क्रोधमें भर कर समुद्रको क्षुब्ध करने वाले दो मगरोंकी समान अपनी भुजाओंसे ही तहाँ प्रहार

आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥ ३ ॥ ततोम्बरतलाद्भूयः पतन्ति स्म महात्मनोः । मध्ये राजसहस्रस्य समरं प्रतिकांक्षिणोः ॥ ४ ॥ यानि तौ माथुरे युद्धे प्राप्तान्याहवशोभिनोः । तान्यम्बरात् पतन्ति स्म दिव्यान्याहवसंप्लवे ॥ ५ ॥ लेलिहानानि दिव्यानि दीप्ताग्निसदृशानि तौ । निक्षिप्य यानि तत्रैव तानि प्राप्तौ स्म यादवौ ॥ ६ ॥ क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च । तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि सर्वशः ॥ ७ ॥ दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान् । प्रभया भासमानानि दर्शितानि दिशो दश ॥८॥ हलं सम्वर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा । चक्रं सुदर्शनं नाम गदा कौमोदकी तथा ॥ ९ ॥

करने लगे ॥ २ ॥ उन दोनों यादवोंके युद्धमें प्रवेश करने पर अपने प्राचीन आयुधोंको ग्रहण करनेका विचार उठा ॥ ३ ॥ तब तो समरकी आकांक्षा करने वाले उन दोनों महात्माओंके लिये आकाशमेंसे सहस्रों राजाओंके मध्यमें (आयुध) गिरे ४ युद्धमें शोभा पाने उन दोनोंके लिये जो आयुध माथुरयुद्धमें आकाशसे आये थे, वेही आयुध इस समय युद्धविप्लवमें फिर आकाशसे गिरे ॥५॥ उन्होंने माथुर–युद्धमें जिन दीप्त अग्निकी समान लपलपाते मुख वाले दिव्य आयुधोंको (आकाशमें) फेंक दिया था वे ही आयुध इस समय उन यादवोंको फिर मिल गए ॥ ६ ॥ उन आयुधोंके पीछे कच्चा मांस खाने वाले प्राणी आरहे थे वे बड़े२ मूर्तिमान् आयुध युद्धमें राजाओंके मांसको खानेके लिये तृषितसे प्रतीत होते थे ॥ ७ ॥ वे दिव्य माला और चन्दनको धारण करने वाले अपनी प्रभासे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए आकाशचारी पक्षियोंको भयभीत कर रहे थे ॥ ८ ॥ सम्वर्त नामक हल, सौनन्द नामक मूसल, सुदर्शन नामक चक्र और कौमोदकी नामकी गदा ये

अत्रावर्यतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि वै । ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे ॥ १० ॥ जग्राह प्रथमं रामो लाङ्गलमतिमं रणे । सर्पेन्द्रमिव सर्वेन्द्रं दिव्यमालाकुलं हलम् ॥११॥ सव्येन सत्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम् । सौनन्दं नाम बलवान्निरानन्दकरं द्विषाम् ॥ १२ ॥ दर्शनीयं च लोकेषु चक्रमादित्यवर्चसम् । नाम्ना सुदर्शनं नाम प्रीतो जग्राह केशवः ॥ १३ ॥ दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम् । नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं प्रीतो जग्राह वीर्यवान् ॥ १४ ॥ देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे । निषिक्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा ॥१५॥ तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ । समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान्प्रत्ययुद्ध्यताम् ॥१६॥ सायुधग्रहौ वीरौ तावन्योन्य-

विष्णुके आयुधरूप चार तेज-उन दोनों यादवोंके लिये महायुद्ध में अवतीर्ण हुए थे ॥ ९ ॥ १० ॥ उनमेंसे बलरामने प्रथम दिव्य मालाओंसे आच्छादित सरकते हुए सर्पेन्द्रकी समान हल को उठा लिया ॥ ११ ॥ तदनन्तर सात्वतोंमें श्रेष्ठ बली बलरामजी ने अपने दाहिने हाथमें शत्रुओंको निरानन्द करने वाला सौनंद नामक उत्तम मूसल उठा लिया १२ फिर केशवने भी प्रसन्न हो कर लोकोंमें दर्शनीय आदित्यकी समान चमकते हुए सुदर्शन नाम वाले चक्रको उठा लिया ॥ १३ फिर उन वीर्यवान्ने प्रसन्न होकर लोकोंमें दर्शनीय मेघकी समान शब्द करने वाले शार्ङ्गधनुष नामसे प्रसिद्ध धनुषको उठा लिया ॥ १४ जिनके अर्थको देवता कहते हैं ऐसे कुमुदकी समान नेत्रों वाले भगवान्के दूसरे हाथमें कौमोदकी नाम वाली गदा दीखने लगी ॥ १५ ॥ वे विष्णुतनु (ब्रह्मा) की समान (कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम् समर्थ) आयुधधारी वीर राम और गोविन्द युद्धमें शत्रुओंसे युद्ध करने लगे १६ वे दोनों परस्पर एक आत्मा दो शरीर प्रतीत होते थे ऐसे राम

मयावुभौ । पूर्वजानुजसंज्ञौ तु रामगोविन्दलक्षणौ ॥ १७ ॥ समरे प्रतिरूपौ तौ विष्णुरेको द्विधा कृतः । द्विषतस्तु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ ॥ १८ ॥ हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपनम् । चचार समरे वीरो द्विषतामन्तकोपमः ॥ १९ ॥ विकर्षन्रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम् । चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥ २० ॥ कुञ्जराल्लाँगलोत्क्षिप्तान् मुसलाक्षेपताडितान् । रामोऽभिरामः समरे निर्ममन्थाचलोपमः ॥ २१ ॥ ते बध्यमाना रामेण समरे क्षत्रियर्षभाः । जरासन्धान्तिकं भीता विरथाः प्रतिजग्मिरे ॥ २२ ॥ तानुवाच जरासन्धः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः । धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम् ॥ २३ ॥ पराक्रांतस्य समरे विरथस्य पलायतः । भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥ पत्तिनो भुवि चैकस्य गोपस्याल्पबलीयसः ।

और गोविन्द नाम वाले दोनों वीर आयुध और ढाल लेकर (रणमें विचर रहे थे) ॥ १७ ॥ वे समरमें एकसे रूप वाले दीखते थे और एक विष्णु दो भागोंमें विभक्त होगए थे और पराक्रमी ईश्वरकी समान शत्रुओंसे बदला ले रहे थे ॥ १८ ॥ वीर बलराम क्रोध सर्पराजकी समान हलको उठा कर शत्रुओंके लिये यमराजकी समान बन कर समरमें विचरण करने लगे १९ वे महात्मा क्षत्रियोंके रथोंको खेंचते हुए अपने रोषको हाथी और घोड़ों पर सफल करने लगे ॥ २० ॥ अचलकी समान अभिराम राममूसलके घुमानेसे ताड़ित हाथियोंको लांगलसे फेंक कर समर में मथने लगे ॥ २१ ॥ वे क्षत्रियर्षभ रणमें बलरामजीसे पिटने पर विरथ होकर भयभीत होते हुए जरासंधके पास पहुँचे २२ उनसे क्षत्रधर्ममें स्थित जरासंधने कहा, कि-तुम कातरात्माओंकी इस क्षत्रवृत्तिको धिक्कार है ॥ २३ ॥ जो समरमें पराक्रम कर विरथ होकर भागने लगता है विद्वान् कहते हैं, कि-उसको असह्य

भीताः किं विनिवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम् ॥२५॥ क्षिप्रं समभि-
वर्तध्वं मम वाक्येन नोदिताः। यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि
यमक्षयम् ॥ २६ ॥ ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे जरासन्धेन नोदिताः।
क्षिपन्तः शरजालानि हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥ २७ ॥ ते हयैः
काञ्चनापीडै रथैश्चेन्दुसमप्रभैः। नागैश्चाम्भोदसंकाशैर्महामात्र-
प्रणोदितैः ॥२८॥ सतनुत्राणनिस्त्रिंशाः। सायुधाभरणाम्बराः।
स्वारोपितधनुष्मन्तः सतूणीराः ससायकाः ॥ २९ ॥ सच्छत्रो-
च्छ्रितिनः सर्वे चारुचामरवीजिताः। रणावनिगता रेजुः स्यन्द-
नस्था महीक्षितः ॥ ३० ॥ तौ युद्धरङ्गापतितौ विधावन्तौ महा-
भुजौ। वसुदेवसुतौ वीरौ युयुत्सू प्रत्यदृश्यताम् ॥ ३१ ॥ तद्युद्ध-
मभवत्तत्र तयोस्तेषां तु संयुगे। सायकोत्सर्गबहुलं गदानिर्घात-

भ्रूणहत्याकी समान पातक लगता है २४ अरे! तुम थोड़े बल
वाले एक पैदल गोपसे डर गए, तुम्हारे ऐसे क्षत्रियपनको
धिक्कार है २५ अरे तुम मेरे वचनसे प्रेरित होकर शीघ्रही लौट
जाओ तो मैं इन गोपोंको रणमें मार डालूँगा २६ तब तो वे क्षत्रिय
जरासंधके प्रेरणा करने पर प्रसन्न होकर बाणवर्षा करते हुए
लड़नेको उद्यत होगए ॥ २७ ॥ वे सुवर्णकी झूल वाले घोड़ोंपर,
चन्द्रमाकी कान्तिकी समान कान्ति वाले रथों पर और हाथी-
वानोंसे हाँके जाते हुए मेघोंकी समान हाथियोंपर २८ (सवार
हो) कवच पहिर तलवार, आयुध भूषण वस्त्र तूणीर सायक
और धनुष ॥ २९ ॥ (सुशोभित हो चल रहे थे) ये सब ऊँचे
ऊँचे, छत्र लगा रहे थे, और सब पर सुन्दर चमर डुलाये जारहे
थे ऐसे राजे रणमें रथमें बैठेहुए शोभा पाने लगे ३० युद्धरँगमें
आये हुए वे दोनों महाभुज वसुदेवपुत्र भी रणमें युद्ध करना
चाहते हुए दीखने लगे ३१ तब दोनोंकी और उन सबकी मुठ-
भेड़ होने पर दारुण युद्ध होने लगा, उसमें बहुतसे बाण

दारुणम् ॥ ३२ ॥ ततः शरसहस्राणि प्रतीच्छन्तौ रणैषिणौ । तस्थतुर्गोधमुख्यौ तावभिवृष्टौ यथाचलौ ॥ ३३ ॥ गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः । अर्द्यमानौ महेष्वासौ यादवौ न चकम्पतुः ॥ ३४ ॥ ततः कृष्णोऽम्बुदाकारः शंखचक्रगदाधरः । व्यवर्धत महातेजा वातयुक्त इवानलः ॥३५॥ स चक्रेणार्कतुल्येन दीप्यमानेन तेजसा । चिच्छेद समरे वीरो नृगजाश्वमहारथान् ३६ गदानिपातनिहता लांगलेन च कर्षिताः । न शेकुस्ते रणे स्थातुं पार्थिवा नष्टचेतसः ॥ ३७ ॥ चक्रक्षुरनिकृत्तानि विचित्राणि महीक्षिताम् । रथयूथानि भग्नानि न शेकुश्चलितुं रणे ॥ ३८ ॥ मुशलाग्रेरभग्नाश्च कुञ्जराः षष्टिहायनाः । घना इव घनापाये भग्नदन्ता विचुक्रुशुः ॥ ३९ ॥ चक्रानलज्वालहताः सादिनः स-

छूटते थे और वह युद्ध गदाओंके प्रहारसे दारुणरीतिसे होने लगा ॥ ३२ ॥ जैसे वर्षा होने पर पर्वत वर्षाको ग्रहण करते हैं, इसी प्रकार वे प्रसिद्ध मुख्य योधा सैंकड़ों और सहस्रों बाणों को सहते तहाँ रणकी इच्छा से खड़े रहे ॥ ३३ ॥ बड़ी २ गदा क्षेपणीय और मुद्गरोंसे पीड़ित करने पर भी वे दोनों काँपे नहीं ३४ इसी समय मेघकी समान आकार वाले शंख चक्र गदाधारी श्रीकृष्ण वायु वाले अग्निकी समान बढ़ने लगे ३५ वीर श्रीकृष्णने समरमें सूर्यकी समान दीप्त तेज वाले चक्रको लेकर हाथी घोड़े मनुष्य और बड़े २ रथोंको काटना आरंभ कर दिया ३६ गदाके पड़नेसे पिटे हुए और लांगलसे खेंचे हुए राजे मूर्छितसे हो रणमें खड़े न रह सके ३७ चक्रकी धारसे काटे हुए राजाओंमें विचित्र भग्न रथोंमें रणमें चलनेकी शक्ति नहीं रही ३८ जैसे शरद् ऋतुमें मेघ गड़गड़ाते हैं, इसी प्रकार साठ वर्षके हस्ती भी मूसलके आघातसे भग्न होकर रोने लगे ३९ चक्रकी अनल ज्वालासे मारे हुए पैदल और सवार

पदातयः । पेतुः परासवस्तत्र यथा चक्राहतास्तथा ॥ ४० ॥ चक्र-लाङ्गलनिर्दग्धं तत्सैन्यं विदलीकृतम् । युगान्तोपहतप्रख्यं सर्वं पतितमावभौ ॥ ४१ ॥ आक्रीडभूमिं दिव्यानामायुधानां वपु-ष्मताम् । वीक्षणेवानां नृपास्ते तु द्रष्टुमप्यबलीयसः ॥ ४२ ॥ केचिद्रथाः समृदिताः केचिन्निहतपार्थिवाः । भग्नैकचक्रास्त्वपरे विकीर्णा धरणीतले ॥ ४३ ॥ तस्मिन्विशसने घोरे चक्रलाङ्गल-सम्प्लवे । दारुणानि प्रवृत्तानि रक्षांस्यौत्पातिकानि च ॥४४॥ आर्तानां कूजमानानां पाटितानां च वेणुवत् । अन्तो न शक्यते-ऽन्वेष्टुं नृनागरथवाजिनाम् ॥ ४५ ॥ आपातितनरेन्द्राणां रुधि-रार्द्रारणक्षितिः । योषेव चन्दनार्द्राङ्गी भैरवा प्रतिभाति मे ४६ नरकेशास्थिमज्जान्त्रैः शातितानां च दन्तिनाम् । रुधिरौघप्लव-स्तत्र छादयामास मेदिनीम् ॥ ४७ ॥ तस्मिन्महाभीषणके नर-

(रथके) पहियेसे मारे हुएकी समान प्राणरहित होकर गिरने लगे ४० चक्र और लांगलसे भस्म हुआ वह दलरहित किया हुआ सेनादल गिरा हुआ ऐसा शोभा पाता था, मानो प्रलय-कालसे नष्ट होगया हो ४१ वे राजे शरीरधारी दिव्य आयुधों की क्रीड़ाभूमिकी ओर देख भी न सके ४२ तहाँ बहुतसे रथ मसल गए, किन्हींके राजे मारे गए और बहुतसे रथ एक पहिये के टूटनेसे पृथ्वीमें पड़े हुए थे ४३ चक्र और लांगलसे विप्लव मचाने वाले उस घोर युद्धमें राक्षसी भयंकर उत्पात होने लगे ४४ आर्त, चीखते और वेणुकी समान फटते हुए मनुष्य हाथी रथ और घोड़ोंका पार नहीं मिलता था ४५ गिरे हुए राजाओंके रुधिरसे आर्द्र हुई रणभूमि चन्दनसे गीले अंग वाली स्त्रीकी समान भैरवा प्रतीत होती है ४६ मनुष्योंके केश अस्थि मज्जा और आँतड़ियोंसे तथा कटे हुए हाथियोंके रुधिरके ओघने पृथ्वीको छादिया ४७ उस महाभीषण नर और वाहनोंको क्षीण

वाहनसंक्षये । शिवानामशिवैः शब्दैर्नादिते घोरदर्शने ॥ ४८ ॥
आर्तस्तनितसन्नादे रुधिराम्बुह्रदाकुले । अन्तकाक्रान्तसदृशे
नागदेहैः समावृते ॥ ४९ ॥ अपारतैर्बाहुभिर्योधैस्तुरगैश्च विदा-
रितैः । कंकैश्च वलगृध्रैश्च नादितैः प्रतिनादिते ॥ ५० ॥ निपाते
पृथिवीशानां मृत्युसाधारणे रणे । कृष्णः शत्रुवधं कर्तुं चचारां-
तकदर्शनः ॥५१॥ युगान्तार्कप्रभं चक्रं कालीं चैवायसीं गदाम् ।
गृह्य सैन्यावनिगतो बभाषे केशवो नृपान् ॥५२॥ किं न युद्ध्यत
नो शूरा हस्त्यश्वरथसंयुताः । क्विदं गम्यते शूराः कृतास्त्रा
दृढनिश्चयाः ॥५३॥ अहं सपूर्वजः संख्ये पदातिप्रमुखे स्थितः ।
अदृष्टदोषेण रणे भवन्तो येन पालिताः । स इदानीं जरासन्धः

करने वाले युद्धमें जब गीदड़िये अपने अशिव शब्दोंको करके
उसको भयंकर दृश्य वाला करने लगीं ४८ और आर्त पुरुष जब
डकराने लगे तब तहाँ रुधिर रूपी जलके बहुतसे सरोवर बन गए
और वह रणस्थल हाथियोंके शरीरसे पट जानेके कारण यम-
राजसे आक्रान्त स्थलकी समान दीखने लगा ४९ तहाँ पर हाथ
उखड़े हुए योधा पड़े थे, और विदारे हुए घोड़े पड़े थे और वह
कंकबल और गृध्रोंकी चीखोंसे प्रतिनादित होरहा था ५० तहाँ
पर राजा मर २ कर गिर रहे थे और उस रणमें मृत्यु एक
साधारण सी बात होरही थी, उसमें यमराजकी समान दीखने
वाले कृष्ण शत्रुओंका वध करनेको घूम रहे थे ५१ केशवने सेना-
भूमिमें खड़े हो प्रलयकालके सूर्यकी समान चक्रको और लोहेकी
काली गदाको उठा कर राजाओंसे कहा, कि-५२ अरे शूरों !
तुम हाथी घोड़े वाले होने पर भी क्यों नहीं लड़ते हो ? तुम
भागे क्यों जाते हो, तुम अस्त्रविद्याके पारगामी और दृढ निश्चय
वाले हो ५३ मैं और मेरे बड़े भाई तो प्रारब्धके दोषसे रणमें
पैदल ही खड़े हैं और वही प्रारब्ध तुम्हारा पालन कर रहा है,

किमर्थं नाभिवर्तते ॥ ५४ ॥ एवमुक्ते तु नृपतिर्दरदो नाम वीर्य-
वान्। रामं हलाग्रोऽग्रभुजं प्रत्ययात् सैन्यमध्यगम् ॥ ५५ ॥
वभाषे स तु ताम्राक्षमुक्षाणमिव सेचनी। एह्येहि राम युद्धस्व
मया सार्धमरिन्दम् ॥ ५६ ॥ तयोर्युद्धमभूत्ताभ्यां रामस्य दर-
दस्य च। मृधे लोकवरिष्ठाभ्यां कुञ्जराभ्यामिवौजसा ॥ ५७ ॥
योजयित्वा ततः स्कन्धे रामो दरदमाहवे। हलेन बलिना श्रेष्ठे
मुशलेनावपोथयत् ॥ ५८ ॥ स्वकायगतमूर्धा स मुसले नाव-
पोथितः। पपात दरदो भूमौ दारिताग्र इवाचलः ॥ ५९ ॥
रामेण निहते तस्मिन् दरदे राजसत्तमे। जरासन्धस्य राज्ञस्तु
रामेणासीत् समागमः ॥ ६० ॥ महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो लोम-
हर्षणः। गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावतः ॥ ६१ ॥

राजा जरासन्ध इस समय हमारे सामने क्यों नहीं आता है ५४ इस प्रकार कहने पर दरद नामक वीर्यवान् राजा सेनाके बीच में खड़े हुए और हाथमें उग्रहलको धारण करने वाले बलरामके पास पहुँचा ५५ जैसे कृषक ताम्र वर्णके नेत्र वाले (मत्त एवं मदमत्त होनेके कारण अपनी आज्ञा न मानने वाले) वृषभसे कहे इसी प्रकार उसने बलरामसे कहा, कि-हे राम! आ! आ! हे अरिदमन! तू मेरे साथ युद्ध कर ५६ तब तो जैसे संसारमें श्रेष्ठ दो हाथी युद्धमें बलपूर्वक लड़ें ऐसे बलरामका और दरद का युद्ध होने लगा ५७ तब रामने युद्धमें अपने बलवान् हल उसके कंधे पर रख मूसलसे उसको कूट डाला ५८ जिसका शिर अपने शरीरमें ही घुस गया था, ऐसी मूसलसे मसला हुआ दरद भूमिमें टुकड़े किये हुए आधे पर्वतकी समान गिर पड़ा ॥ ५९ ॥ जब रामने राजसत्तम दरदको मार डाला तब तो राजा जरासंधका और रामका युद्ध होने लगा ६० जैसे महेन्द्र का वृत्रासुरके साथ युद्ध हुआ तिसी प्रकार उनका दारुण

कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतमहागदौ । ददृशाते महात्मानौ गिरीशशिखराविव ॥ ६२ ॥ न्युपारमन्त युद्धानि प्रेक्ष्य तौ पुरुषर्षभौ । संरब्धाविव धावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥ ६३ ॥ तावुभौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ । मत्ताविव महानागावन्योन्यं समधावताम् ॥ ६४ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । यक्षाश्चाप्सरसश्चैव समाजग्मुः सहस्रशः ६५ तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम् । शुशुभेऽभ्यधिकं राजन्नभोज्यैः तिर्गणैरिव ॥ ६६ ॥ अभिदुद्राव रामं च जरासन्धो नराधिपः । सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥ ६७ ॥ तावन्योन्यं निजघ्नाते गदायुद्धविशारदौ । दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥ ६८ ॥ गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽश-

लोमहर्षण युद्ध होने लगा, वे दोनों पराक्रमी पुरुष गदाको ग्रहण कर परस्पर एक दूसरे पर दौड़ने लगे ॥ ६१ ॥ वे दोनों महात्मा हाथमें बड़ी भारी गदाओंको उठा कर पृथ्वीको कँपाते हुए शिखर वाले दो पर्वतोंकी समान दीखते थे ६२ उन दोनों पुरुषोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंको देख और युद्ध होने बंद होगए और वे गदायुद्धमें प्रसिद्ध पुरुष क्रोधमें भर कर दौड़ने लगे ६३ वे दोनों महाबली संसारमें (गदाके) परमाचार्य प्रसिद्ध थे वे दोनों मदमत्त हाथी की समान एक दूसरे पर दौड़ने लगे ६४ तब तो वहाँ सहस्रों देवता गंधर्व सिद्ध परमर्षि यक्ष और अप्सरायें आईं ६५ हे राजन् ! जैसे नक्षत्रोंसे व्याप्त आकाश शोभा पाता है तैसे ही देवता यक्ष गंधर्व और महर्षियोंसे अलकृत आकाश शोभा पाने लगा ६६ राजा जरासंध सव्य मण्डल बाँध कर बलराम पर दौड़ा और बलदेवजी दक्षिण मण्डल बाँध कर जरासन्ध पर झपटे ६७ वे गदायुद्ध विशारद दोनों मदमत्त हाथियोंके अपने दाँतोंसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करनेकी समान एक दूसरे पर

निर्निःस्वनः। जरासन्धस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ६९ ॥
न स्म कम्पयते रामं जरासन्धकरच्युता। गदा गदाभृतां श्रेष्ठं
विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ७० ॥ रामस्य तु गदावेगं राजा स
मगधेश्वरः। सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोथयत् ॥७१॥
ततोन्तरिक्षे वागासीत् सुस्वरा लोकसाक्षिणी। न त्वया राम
वध्योऽयमलं खेदेन मानद॥७२॥ विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात्
साधु व्युपारम। अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः७३
जरासन्धस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत। न प्राहरत्तस्मै पुन-
रेव हलायुधः ॥ ७४ ॥ दीर्घकालं महाराज निजघ्नुरितरेतरम्।
पराजिते त्वक्रान्ते जरासन्धे महीपतौ । विविक्तमभवत् सैन्यं
परावृत्तमहारथम् ॥ ७५ ॥ ते नृपाश्चोदितैर्नागैः स्यन्दनैस्तुरगैः

प्रहार करने लगे ६८-इस समय रामके गदानिपातका स्वर अशनिकी समान सुनाई आता था और जरासन्धकी गदाका शब्द फटते हुए पर्वतकी समान सुनाई आता था ६९ जैसे विंध्याचलको वायु नहीं हिला सकता ऐसे ही गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीको जरासन्धके हाथसे छूटी हुई गदा न कँपा सकी ७० राजा जरासन्धने रामके गदावेगको बड़े भारी धैर्य और शिक्षा से रोक लिया और सह लिया ७१ इसी समय लोकसाक्षिणी स्पष्ट अक्षरों वाली आकाशवाणी हुई, कि-हे राम ! यह तुमसे नही मारा जायगा, हे मानद ! तुम खेद करना छोड़ दो ७२ हमने इसकी मृत्यु रच ली, इस लिये अब आपका हट जाना ही उचित है, यह मागध थोड़े ही समयमें अपने प्राणोंको छोड़ देगा ७३ इस बातको सुन कर जरासन्धका मन खिन्न होगया, और बलदेवजीने भी उस पर फिर प्रहार नहीं किया ७४ हे महाराज !, बहुत समय तक उन्होंने एक दूसरे पर प्रहार किया, जब राजा जरासन्ध पराजित होकर भाग गया, तब सेना शून्य

स्तथा। दुद्रुवुर्भीतमनसो व्याघ्राघ्राता मृगा इव ॥ ७६ ॥ तन्नरेन्द्रैः परित्यक्तं भग्नदर्पैर्महारथैः। घोरं क्रव्यादबहुलं रौद्रमायोधनं बभौ ॥ ७७ ॥ द्रवत्सु रथमुख्येषु चेदिराजो महाद्युतिः। स्मृत्वा यादवसम्बन्धं कृष्णमेवान्ववर्तत ॥ ७८ ॥ वृतः कारूषसैन्येन चेदिसैन्येन चानघ। सम्बन्धकामो गोविन्दमिदमाह स चेदिराट् ॥ ७९ ॥अहं पितृष्वसुर्भर्ता तव यादवनन्दन। सबलस्त्वामुपावृत्तस्त्वं हि मे दयितः प्रभो ॥ ८० ॥ उक्तश्चैष मया राजा जरासन्धोऽल्पचेतनः। कृष्णाद्विरम दुर्बुद्धे विग्रहाद्रणकर्मणि तदेषोऽद्य मया त्यक्तो मम वाक्यस्य दूषकः। भग्नो युद्धे जरासन्धो भयाद्द्रवति सानुगः ॥८२॥ निर्वैरो नैष संयाति स्वपुरं

होगई, उसमेंके महारथी भाग गए ७५ वे राजे व्याघ्रोंसे सूँघे हुए मृगोंकी समान भयभीत होकर हाथी घोड़े और रथोंको हाँक कर भाग गए ७६ तहाँ पर महारथी राजाओंका दर्प चूर्ण हो गया और वे नरेंद्र उस स्थानको त्याग कर भाग गए तब तहाँ पर बहुतसे कच्चे मांसका भक्षण करने वाले प्राणी आगए और वह युद्धस्थल भयंकर दीखने लगा ७७ जब मुख्य २ रथी भाग रहे थे, उस समय महाकान्तिवान् चेदिराजने यादवोंके संबंध का स्मरण करके कृष्णका पक्ष ग्रहण कर लिया ७८ हे निष्पाप! कारूषकी सेना और चेदिसेनासे घिरे हुए चेदिराजने गोविन्दसे संबंध रखनेकी इच्छासे यह वचन कहा, कि-॥ ७९ ॥ हे यादवनन्दन! मैं तुम्हारे पिताकी बहिनका पति हूँ, तुम मुझे प्रिय लगते हो, अतः मैं सेनासहित तुम्हारे पक्षमें होना चाहता हूँ ॥ ८० मैंने इस अल्पबुद्धि राजा जरासन्धसे कहा था, कि-हे दुर्बुद्धे! तू कृष्णसे युद्धस्थलमें संग्राम करना बन्द कर ८१ अतः अब मैं इस अपनी बात न मानने वाले जरासन्धको त्यागता हूँ, यह जरासन्ध युद्धमें हार कर भयसे अपने अनुचरोंको साथ

पृथिवीपतिः । त्वय्येव भूयोऽपरं दर्शयिष्यति किल्बिषम् ८३ तदिमां सन्त्यजाशु त्वं महीं हतनराकुलाम् । क्रव्यादगणसंकीर्णां सेवितव्याममानुषैः ॥ ८४ ॥ करवीरपुरं कृष्ण गच्छाम सबलानुगाः । शृगालं वासुदेवं तं द्रष्टुमस्तत्र पार्थिवम् ॥८५॥ इमौ रथवरोदग्रौ युवयोः कारितौ मया । योजितौ शीघ्रतुरगैः स्वक्षचक्राक्षकूबरौ ॥ ८६ ॥ शीघ्रमारुह्य गच्छन्तौ बलदेवसहायवान् । त्वरामः करवीरस्थं द्रष्टुं तं वसुधाधिपम् ॥ ८७ ॥ वैशम्पायन उवाच । पितृष्वसृपतेर्वाक्यं श्रुत्वा चेदिपतेस्तदा । वाक्यं हृष्टमनाः कृष्णो जगाद जगतो गुरुः ॥ ८८ ॥ अहो सुवृद्धाभिरतां देशकालोचितां त्वया । वाग्धर्मप्रतिरूपेण संसिक्तौ वचनाम्बुना ८९

में ले भागा जारहा है ॥ ८२ ॥ परन्तु यह राजा अब वैरका विचार छोड़ कर नहीं जारहा है, यह तो फिर भी तुमसे पेश आवेगा ॥ ८३ ॥ इस लिये आप मारे हुए मनुष्योंसे आकुल और कच्चा मांस खाने वाले प्राणियोंसे भरी हुई होनेके कारण मनुष्योंके रहनेके अयोग्य इस भूमिको शीघ्र ही छोड़ दीजिये ८४ हे कृष्ण ! अब हम अपनी सेना और अनुचरोंको साथ लेकर करवीरपुर चलें (तो अच्छा है) वहाँ पर हम राजा वासुदेव शृगालको देखेंगे ॥ ८५ ॥ मैंने आपके लिये ये दो बड़े भारी श्रेष्ठ रथ ठीक कर दिये हैं, इनमें मैंने फुर्तीसे चलने वाले घोड़े जुतवा दिये हैं, इन रथोंके अंग पहिये और अक्ष तथा कूबर अच्छे हैं ॥ ८६ ॥ आप और बलदेवजी शीघ्र ही रथ पर सवार हूजिये और करवीरपुरमें स्थित उस राजाको देखनेको हम सबोंको त्वरा करनी चाहिये ८७ वैशम्पायनजीने कहा, कि—अपनी बुआके स्वामी चेदिराजके वचनको सुन कर श्रीकृष्णका मन प्रसन्न होगया, फिर उन जगद्गुरुने कहा, कि—८८ आपने अपने 'वचनरूपी जलकी वर्षा करके युद्धमें लगे हुए हम दोनों

देशकालविशिष्टस्य हितस्य मधुरस्य च । वाक्यस्य दुर्लभो लोके वक्तारश्चेदिसत्तम ॥ ६० ॥ चेदिनाथ सनाथौ स्वः सम्वृत्तौ तव दर्शनात् । नावयोः किंचिदप्राप्यं ययोस्त्वं बन्धुरीदृशः ॥ ६१ ॥ जरासन्धस्य निधनं ये चान्ये तत्सम नृपाः । पर्याप्तौ त्वत्सनाथौ स्वः कर्तुं चेदिकुलोद्वह ॥ ६२ ॥ यदूनां प्रथमो बन्धुस्त्वं हि सर्वमहीक्षिताम् । अतः प्रभृति संग्रामान् द्रक्ष्यसे चेदसत्तम ॥ ६३ ॥ चक्रमौशलमित्येवं संग्रामं रणवृत्तयः । कथयिष्यन्ति लोकेऽस्मिन् ये धरिष्यन्ति पार्थिवाः ॥ ६४ ॥ राज्ञां पराजयं युद्धे गोमन्तेऽचलसत्तमे । श्रवणाद्धारणाद्वापि स्वर्गलोकं व्रजन्ति हि ६५ तद्गच्छाम महाराज करवीरं पुरोत्तमम् । त्वयोद्दिष्टेन मार्गेण चेदिराज शिवाय वै ॥ ६६ ॥ ते स्यन्दनगताः सर्वे पवनो-

---

को देश कालके अनुसार उपदेश देकर हमारे साथ बांधवोचित काम किया है ८६ क्योंकि-चेदिसत्तम ! देशकालके योग्य हित और मधुर वचन कहने वाले वक्ता इस लोकमें मिलने दुर्लभ हैं ६० हे चेदिनाथ ! आपका दर्शन कर हम सनाथ हो गए हैं, आप जैसे पुरुषके बंधु होने पर इस संसारकी कौनसी वस्तु हमें नहीं मिल सकती ६१ हे चेदिकुलको उठाने वाले ! आपसे सनाथ होने पर हम जरासन्ध तथा अन्य राजाओंका भी वध कर सकेंगे ६२ तुम सब राजाओंमें यादवोंके मुख्य बंधु माने जावोगे हे चेदिसत्तम ! आजसे आप संग्राम देखा करियेइ३ जो राजे इस युद्धमें जीवित रह गए हैं वे रणजीवी राजे इस संग्रामको चक्रमौसल नामक संग्राम कहेंगे ६४ अचलश्रेष्ठ गोमन्त-पर्वत पर राजाओंके पराजयको सुनने वा धारण करनेसे (पुरुष) स्वर्गलोकको जावेंगे ६५ हे चेदिराज ! अब हम आप की आज्ञानुसार आपके बताये मार्गसे कल्याण पानेके लिये नगर-श्रेष्ठ करवीरपुरको जावेंगे ६६ तब वे सब मूर्तिमान् तीन

स्यातिभिर्हयैः । भेजिरे दीर्घमध्वानं मूर्तिमन्त इवाग्नयः ॥६७॥ ते त्रिरात्रोषिताः प्राप्ताः करवीरं पुरोत्तमम् । शिवाय च शिवे देशे निविष्टास्त्रिदशोपमाः ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि करवीरपुराभिगमनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच । तानागतान् विदित्वाऽथ शृगालो युद्धदुर्मदः । पुरस्य शरणं गत्वा निर्जगामेंद्रविक्रमः ॥ १ ॥ रथेनादित्यवर्णेन भास्वता रणगामिना । आयुधप्रतिपूर्णेन नेमिनिर्घोषहासिना ॥ २ ॥ मन्दराचलकल्पेन चित्राभरणभूषिणा । अक्षय्यसायकैस्तूणैः पूर्णेनार्णवघोषिणा ॥ ३ ॥ हयैरश्वैनाशुगमिना सक्तेन शिखरेष्वपि । हेमकूबरगर्भेण दृढाक्षेणाभिशोभिना ४

अग्नियोंके समान रथोंमें बैठ गए और पवनकी समान चलने वाले घोड़ोंके कारण बड़े भारी मार्गको लाँघने लगे ६७ वे तीन रात पड़ाव करनेके अनन्तर नगरोंमें श्रेष्ठ करवीरपुरमें पहुँच गए और कल्याण पानेके लिये देवताकी समान उस मंगलमय देश में घुसे ६८ तैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ४३

वैशम्पायनजीने कहा, कि- युद्धदुर्मद राजा शृगालने उनको आया हुआ सुन कर समझा, कि- ये मेरे नगरको दबाना चाहते हैं, (यह समझकर) वह इन्द्रकी समान पराक्रमी राजा नगरमेंसे निकला ॥ १ ॥ उसके रथका वर्ण आदित्यकी समान (तेजस्वी) था और रणमें चला करता था, आयुधोंसे भरा हुआ था, मेघके गर्जनेकी समान शब्द करता था २ मन्दराचल की समान चित्र और आभूषणोंसे भूषित था, अक्षय भाथे और बाणोंसे पूर्ण था और समुद्रकी समान शब्द कर रहा था ।३। उसमें फुर्तीसे चलने वाले घोड़े जुते हुए थे, और वह शिखरको छूलेते थे उस पर सुवर्णकूबर लग रहा था, उसके अक्ष दृढ़

सुबन्धुरेण दीप्तेन पतत्त्रिवरगामिना । खगतेनेव शक्रस्य हर्यश्वेन रथाद्रिणा ॥ ५ ॥ सावित्रे निगमे पूर्णे यं ददौ सविता स्वयम् । आदित्यरश्मिभिरिव रश्मिभिर्यो निगृह्यते ॥ ६ ॥ तेन स्यन्दनमुख्येन द्विषत्स्यन्दनघातिना । स शृगालोऽभ्ययात् कृष्णं शलभः पावकं यथा ॥७॥ चापपाणिः सुतीक्ष्णेषुः कवची हेममालिकः । सितप्रावरणोष्णीषः पावकाकारलोचनः ॥ ८ ॥ मुहुर्मुहुर्ज्याचपलं विक्षिपन्दुःसहं धनुः । निर्गमनोषजं वायुं सानलज्वालमण्डलम् ॥ ९ ॥ भाभिर्भूषणपंक्तीनां दीप्तो मेरुरिवाचलः । रथस्थ इव शैलेन्द्रः शृगालः प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ तस्यास्फितशब्देन रथनेमिस्वनेन च । गुरुत्वेन च नाम्यन्ती चचालोर्वी

थे और वह परम शोभा पारहा था ॥ ४ ॥ उसका बंधुर अच्छा था और वह गरुड़की समान चलता था और वह आकाशमें स्थित इन्द्रके रथरूपी पर्वतकी समान दीखता था ॥ ५ ॥ सावित्र निगम पूर्ण होने पर सूर्यने उसको अपने आप दिया था, सूर्यकी किरणोंकी समान उसको किरणोंसे ही पहिचाना जाता था ॥६॥ ऐसे शत्रुओंके रथोंको नष्ट करने वाले मुख्य रथ पर बैठ कर शृगाल श्रीकृष्णके ऊपर, भुनगेके अग्निके पास जानेकी समान, चढ़ आया ॥ ७ ॥ उसके हाथमें धनुष था, उसके बाण तीक्ष्ण थे, वह कवच पहर रहा था और सुवर्णकी माला पहर रहा था, उसका दुपट्टा और पगड़ी सफेद थी, और उसके नेत्र अग्निकी समान हो रहे थे ॥ ८ ॥ वह अपने चपल प्रत्यञ्चा वाले दुःसह धनुषको वारवार घुमा रहा था, और उसके मुखमेंसे अग्निकी ज्वालाकी समान रोषवायु निकल रही थी ॥ ९ ॥ भूषणोंकी प्रभाओंसे वह मेरुपर्वतकी समान दिप रहा था, इस प्रकार वह राजा शृगाल पर्वतकी समान रथमें बैठा हुआ था ॥ १० ॥ उसके गर्जनेकी और रथकी नेमिके शब्दसे और भारीपनके

भयातुरा ॥११॥ तमापतन्तं श्रीमन्तं मूर्तिमन्तमिवाचलम् । शृगालं लोकपालाभं दृष्ट्वा कृष्णो न विव्यथे ॥१२॥ शृगालश्चापि संरब्धः स्यन्दनेनाशुगामिना । समीपे वासुदेवस्य युयुत्सुः प्रत्यदृश्यत १३ वासुदेवं स्थितं दृष्ट्वा शृगालो युद्धलालसः । अभिदुद्राव वेगेन मेघराशिरिवाचलम् ॥ १४ ॥ वासुदेवः स्मितं कृत्वा मतियुद्धाय तस्थिवान् । तद्युद्धमभवत्ताभ्यां समरे घोरदर्शनम् । उभाभ्यामिव मत्ताभ्यां कुञ्जराभ्यां यथा वने ॥ १५ ॥ शृगालस्त्वब्रवीत् कृष्णं समरे समुपस्थितम् । युद्धरागेण तेजस्वी मोहाच्चलितगौरवः १६ गोमन्ते युद्धमार्गेण यत्त्वया कृष्ण चेष्टितम् । अनायकानां मूर्खाणां नृपाणां दुर्बले बले ॥ १७ ॥ स मे सुनिदितः कृष्ण क्षत्रियाणां पराजयः । कृपणानामसत्त्वानामयुद्धानां रणोत्सवे ॥ १८ ॥

कारणसे नमती हुई पृथ्वी भयके कारण हिलने लगी ॥११॥ मूर्तिमान् पर्वतकी समान और लोकपालकी समान आभा वाले श्रीमान् शृगालको देख कर भी श्रीकृष्ण नहीं काँपे ॥ १२ ॥ इतनेमें फुर्तीसे चलने वाले रथमें बैठ क्रोधमें भरा शृगाल भी वासुदेवके सामने रणाभिलाषीसा दीखने लगा १३ जैसे मेघों की घटा पर्वत पर झपटती है इसी प्रकार वासुदेवको देख कर युद्धाभिलाषी शृगाल दौड़ा १४ तब तो वासुदेव भी मुस्करा कर युद्ध करनेको खड़े होगए, तब तो उन दोनोंका समरमें भयंकर दीखने वाला युद्ध होने लगा, वह ऐसे दीखता था मानों दो मदमत्त हाथी वनमें युद्ध कर रहे हों १५ उस समय युद्धरागसे तेजस्वी मोहवश गौरवसे चलितहुए शृगालने रणमें खड़े हुए श्रीकृष्णसे कहा, कि १६ हे कृष्ण ! तुमने गोमन्त पर्वतमें नायक रहित मूर्ख राजाओंके दुर्बल बलमें जो युद्ध किया था १७ यह बात मुझे भली भाँति विदित है और रणोत्सवमें सत्व-रहित कृपण क्षत्रियोंके पराजयकी बात भी मुझे भली भाँति विदित है १८

तिष्ठेदानीं यथा कामं स्थितोऽहं पार्थिवे पदे । क यास्यसि मया रुद्धो रणेष्वपरिनिष्ठितः ॥ १६ ॥ न चाहमेकं सबलो युक्तस्त्वां योद्धुमाहवे । अहमेकस्त्वमप्येको द्वौ युद्धाय रणे स्थितौ॥२०॥ किं जनेन निरस्तेन त्वं वाऽहं च रणे स्थितः। धर्मयुद्धेन निधनं व्रजत्वेकतरो रणे ॥ २१ ॥ लोकेऽस्मिन् वासुदेवोऽहं भविष्यामि हते त्वयि । हते मयि त्वमप्येको वासुदेवो भविष्यसि ॥ २२ ॥ शृगालस्य वचः श्रुत्वा वासुदेवः क्षमापरः । ईर्ष्यन्तं प्रहरस्वेति तमुक्त्वा चक्रमाददे ॥ २३ ॥ ततः सायकजालानि शृगालः क्रोधमूर्च्छितः । विससर्ज कृष्णे घोराणि युद्धाय लघुविक्रमः २४ शस्त्राणि यानि चान्यानि मुशलाद्यानि संयुगे । पातयामास गोविन्दे स शृगालः प्रतापवान्॥२५॥ शृगालप्रहितैरस्त्रैः पावकज्वालमालिभिः । निर्दयाभिहतः कृष्णः स्थितो गिरिरिवाचलः

अब तुम इच्छानुसार खड़े रहो, मैं राजाके स्थानमें खड़ा हूँ, अरे मूर्ख ! मेरे रोकने पर तू कहाँ जासकेगा १६ सेनासहित मैं तुझ अकेलेसे लड़ना उचित नहीं समझता, अतः मैं भी अकेला और तुम भी अकेले इस प्रकार हम दोनों ही रणमें युद्ध करें २० मनुष्योंको कष्ट देनेसे क्या लाभ ? हम तुम दोनों रणमें खड़े हुए हैं, तुम और मैं दोनों रणमें खड़े हुए हैं अतः हम दोनोंमेंसे एक आदमी धर्मयुद्धसे रणमें मारा जाय २१ लोकमें तुम्हारे मारे जाने पर मैं एक वासुदेव रह जाऊँगा, अथवा मेरे जाने पर तुम एक वासुदेव रह जाओगे २२ शृगालके वचनको सुन कर क्षमापरायण वासुदेवने उस ईर्ष्या करने वालेसे "प्रहार करिये" कह कर अपना चक्र उठा लिया २३ तब तो क्रोधसे मूर्छित फुर्तीसे पराक्रम करने वाले राजा शृगालने श्रीकृष्ण पर भयंकर बाणजाल छोड़े २४ फिर उस प्रतापी शृगालने और भी मूसल आदि शस्त्र समरमें गोविन्द पर छोड़े २५ शृगालके फेंके हुए

सोऽस्त्रप्रहाराभिहतः किंचिद्रोषसमन्वितः । चक्रमुद्यम्य गोविंदः शृगालस्य परिक्षिपन् ॥२७॥ तं रथस्थं प्रमाणस्थं शृगालं युद्ध-दुर्मदम् । जघान समरे चक्रं जातदर्पं महाबलम् ॥ २८ ॥ ततः सुदर्शनं चक्रं पुनरायाद्गुरोः करे । चक्रेणोरसि निर्भिन्नः स गतासुर्गतोत्सवः । पपात क्षतजस्रावी शृगालोऽद्रिरिवाहतः २९ निशम्य तं निपतितं वज्रपातादिवाचलम् । तस्य सैन्यान्यपग-युर्निपनासि हते नृपे ॥३०। केचित् प्रविश्य नगरं करुणाभि-हता भृशम् । रुरुदुर्दुःखसन्तप्ता भर्तृशोकाभिपीडिताः ॥ ३१ ॥ केचित्तत्रैव शोचन्तः स्मरन्तः सुकृतानि च । पतितं भूपतिं भूमौ न त्यजन्ति स्म दुःखिताः ॥ ३२ ॥ ततो मेघनिनादेन स्वरेणा-

---

अस्त्रोंकी ज्वालामाला वाले शस्त्रोंसे निर्दयतापूर्वक मार खाने पर भी श्रीकृष्ण पर्वतकी समान अटल खड़े रहे २६ अस्त्रका प्रहार होने पर श्रीकृष्णको कुछ क्रोध आया और उन्होंने चक्र को उठा कर शृगाल पर फेंका २७तब उस चक्रने घमण्डी महा-बली युद्धदुर्मद और चक्रके भयसे न भागते हुए रथमें बैठे शृगालको समरमें मार डाला २८ तब सुदर्शन चक्र फिर श्रीकृष्ण के हाथमें आगया, चक्रसे उसका हृदय फट गया, उसके प्राण निकल गए और उसकी शोभा जाती रही और वह खून बहाता हुआ टूटते हुए पहाड़की समान ढह पड़ा. २९ उसकी सेनाएँ उसको वज्रपातसे पर्वतकी समान गिरा हुआ देख कर राजाके मारे जानेसे उदास हो भाग गईं ३०. उस समय कोई पुरुष बड़े भारी शोकसे दब कर नगरमें घुस स्वामीके शोकसे पीड़ित हो दुःखसे संतप्त हो डीख फोड़ कर रोने लगे ३१ कोई वहाँ पर खड़े २ ही शोक करते हुए,उसके पुण्यमय कर्मोंका स्मरण करने लगे और बन दुःखित पुरुषोंने पृथ्वीमें पड़े हुए भूपतिको न छोड़ा ३२ तदनन्तर कमलपत्रकी समान नेत्रों वाले अरिदमन

रिविमर्दनः । कृष्णः कमलपत्राक्षो जनानामभयं ददौ ॥ ३३ ॥
चक्रोचितेन हस्तेन राजतांगुलिपर्वणा । न भेतव्यं न भेतव्यमिति
तानभ्यभाषत ॥ ३४ ॥ नास्य पापस्य दोषेण निराबाधकरं
जनम् । घातयिष्यामि समरे नेदं शूरव्रतं मतम् ॥ ३५ ॥ अश्रु-
पूर्णमुखा दीनाः क्रन्दमाना भृशं तदा । पतितो वै भृगालाख्यो
भ्रष्टः सन् दीनमानसः ॥ ३६ ॥ ते स्म पश्यन्ति पतितं धरण्यां
धरणीपतिम् । चक्रनिर्दारितोरस्कं भिन्नशृङ्गमिवाचलम् ॥३७॥
विलपंति स्म ते सर्वे सचिवाः सगजा भृशम् । साश्रुपातेक्षणा
दीनाः शोकस्य वशमागताः ॥ ३८ ॥ तेषां रुदितशब्देन पौराणां
विस्वरैः स्वरैः । महिष्यस्तस्य निष्पेतुः सपुत्रा रुदितानमाः ३६
तास्तं निपतितं दृष्ट्वा श्लाघ्यं भूमिपतिं पतिम् । स्तनानारुज्य

श्रीकृष्णने मेघकी समान गम्भीर स्वरमें मनुष्योंको आश्वासन देते हुए कहा, कि-३३ उन्होंने अपने शोभायमान अंगुलिपर्व वाले चक्र (धारण करने) योग्य हाथ (को उठा कर) उनसे कहा, कि-तुम डरो मत ! डरो मत ! ३४ तुम्हारे मुख आँसुओं से भर रहे हैं, और तुम दीन होकर बहुत रोरहे हो, और यह शृगाल भी मनमें खिन्न हो गिर पड़ा है अतः मैं इस पापात्मा के दोषसे तुम बाधा न देने वाले मनुष्योंको समरमें न मारूँगा, क्योंकि-यह शूर पुरुषोंका व्रत नहीं माना जाता ३५-३६ टूटे हुए शिखर वाले पर्वतकी समान चक्रसे विदारित छाती वाले धरिणीपतिको उन्होंने देखा ३७ उस समय सब गजा और मंत्री शोकके वशमेंहो नेत्रोंमेंसे आँसू बहाते हुए बिलाप करने लगे ३८ उनके रोनेके शब्दसे और नगर निवासियोंके विस्वर स्वरोंको सुन कर उसकी रानियें और उसके पुत्र रोयने मुखसे निकल पड़े ॥ ३६ ॥ वे उस भूमिपति अपने प्रशंसनीय पतिको गिरा हुआ देख कर परम दुःखित हो अपनी छातीको हाथोंसे कूट

करजैर्भृशार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ४० ॥ उरांस्युरसिजांश्चैव शिरो-
जान्याकुलान्यपि । निर्दयं ताडयन्त्यस्ता विस्वरं रुरुदुः स्त्रियः॥४१
तस्योरसि सुदुःखार्ता मृदिताः क्लिन्नलोचनाः । पेतुरूर्ध्वभुजाः
सर्वाश्छिन्नमूला लता इव ॥ ४२ ॥ तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि
नेत्राणि नृपयोषिताम् । वारिविप्रहतानीव पंकजानि चकाशिरे
ताः पतिं पतितं भूमौ रुदन्त्यो हृदि ताडिताः । लालप्यमानाः
करुणं योषितः पर्यदेवयन् ॥ ४४ ॥ पुत्रं चास्य पुरस्कृत्य बालं
प्रस्रुतलोचनम् । शक्रदेवं पितुः पार्श्वे द्विगुणं रुरुदुः स्त्रियः ४५
अयं ते वीरविक्रान्त बालः पुत्रो न पण्डितः । त्वद्विहीनः कथ-
मयं पदे स्थास्यति पैतृके ॥ ४६ ॥ कथमेकपदे त्यक्त्वा गतो-
ऽस्यन्तः पुरं परम् । अतृप्तास्त्वत्र सौख्यानां किं कुर्मो विधवा वयम्

कर विलाप करने लगीं ॥ ४० ॥ वे स्त्रियें निर्दयतासे अपनी छाती
में स्तन और केशोंको पीड़ित करती हुईं उकरा कर रोने
लगीं ॥ ४१ ॥ उसके वक्षःस्थल पर वे दुःखसे आर्त हुई कुम्ह-
लाई हुईं और भीगे हुए नेत्रों वाली स्त्रियें ऊपरको भुजा कर
जड़ कटी लताकी समान गिर पड़ीं ॥ ४२ ॥ उन राजस्त्रियोंके
बाष्पजलसे पूर्ण नेत्र जलसे मारे हुए कमलोंकी समान दीखने
लगे ॥ ४३ ॥ वे स्त्रियें अपने पृथ्वीमें पड़े हुए पति को रो हृदय
में पीड़ित हो करुणाजनक रीतिसे विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥
तदनन्तर उसका बालक पुत्र आया उसके नेत्रोंमेंसे आँसू निकल
रहे थे उस शक्रदेवको उसके पास खड़ा कर वे स्त्रियें दुगनी
रोने लगीं ॥ ४५ ॥ कि—हे वीर विक्रान्त ! तुम्हारा यह पुत्र
बालक है, चतुर नहीं है, तुमसे रहित होकर यह अपने पैतृक
पद पर कैसे बैठेगा ॥ ४६ ॥ तुम एक पदमें हमको त्याग कर
दूसरे अन्तपुरमें क्यों चले गए, तुम्हारे सुखसे हम तृप्त नहीं हुई
है. हाय ! हम विधवायें अब क्या करें ! ॥ ४७ ॥ उसकी रम-

तस्य पद्मावती नाम महिषी प्रमदोत्तमा । रुदती पुत्रमादाय वासुदेवमुपस्थिता॥४८॥यस्त्वया पातितो वीर रणप्रोक्तेन कर्मणा । तस्य प्रेतगतस्यायं पुत्रस्त्वां शरणं गतः ॥ ४९ ॥ यदि त्वां प्रणमेतासौ कुर्याद्वा शासनं तव । नायमेकप्रहारेण जनस्तप्येत दारुणम् ॥ ५० ॥ यदि कुर्यादयं मूढस्त्वयि बान्धवकं विधिम् । नैवं परीतः कृपणः सेवेत धरणीतलम् ॥ ५१ ॥ अयमस्य विपन्नस्य बांधवस्य तवानघ । सन्ततीं रक्षतां वीर पुत्रः पुत्र इवात्मजः ॥५२॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा महिष्या यदुनन्दनः । मृदुपूर्वमिदं वाक्यमुवाच वदताम्वरः ॥ ५३ ॥ राजपत्नि गतो रोषः सहानेन दुरात्मना । प्रकृतिस्था वयं जाता देवि सैषोऽस्मि बांधवः रोषो मे विगतः साध्वि तव वाक्यैरकल्मषैः । योयं पुत्रः शृगा-

णियोंमें श्रेष्ठ पद्मावती नाम वाली पटरानी पुत्रको लेकर रोती हुई वासुदेवके पास पहुँची ॥ ४८ ॥ (और कहा, कि-) हे वीर ! तुमने रणके कहे हुए कर्मोंसे जिसको मार डाला है, उस मरे हुएका यह पुत्र तुम्हारी शरणमें आया है ॥ ४९ ॥ हे कृष्ण ! यह आपको प्रणाम करे वा आपकी आज्ञा माने तो आप एक साथ ऐसा दारुण प्रहार न करें, जिससे प्रजा कष्ट पावे, ५० हे कृष्ण ! यह मूढ़ यदि आपसे बान्धवोंकी विधि वर्ते, तो ऐसे दीन मनुष्यको आपको धरणीतलका सेवन न कराना चाहिये ५१ हे निष्पाप ! आप विपत्तिमें पड़े हुए अपने बांधवकी पुत्रसन्तति की हे वीर ! पुत्रकी समान रक्षा करिये ॥ ५२ ॥ उस पटरानी के वाक्य को सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ यदुनन्दनने मृदुतापूर्वक यह वचन कहा, कि- ॥ ५३ ॥ हे राजपत्नि ! मेरा रोष तो उस दुरात्माके साथ ही चला गया, हे देवी ! अब मैं प्रकृतिस्थ होगया हूँ और मैं तुम्हारा वही बांधव हूँ ५४ हे साध्वि ! तुम्हारे निष्पाप वचनोंसे मेरा रोष दूर होगया, अब तुम शृगालके पुत्र

त्वस्य ममाप्येष न संशयः ॥ ५५ ॥ अभयं चाभिषेकं च ददा-
म्यस्मै सुखाय वै । आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ५६
पितृपैतामहे राज्ये तव पुत्रोऽभिषिच्यताम् । ततः प्रकृतयः सर्वाः
पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ॥ ५७ ॥ अभिषेकार्थमाजग्मुर्यतो वै राम-
केशवौ । ततः सिंहासनस्थं तु राजपुत्रं जनार्दनः ॥५८॥ अभि-
षेकेण दिव्येन योजयामास वीर्यवान् । अभिषिच्य शृगालस्य
करवीरपुरे सुतम् । कृष्णस्तदहरेवाशु प्रस्थानमभ्यरोचयत् ५९
रथेन हयियुक्तेन तेन युद्धार्जितेन वै । केशवः प्रस्थितोऽध्वानं
वृत्रहा त्रिदिवं यथा ॥ ६० ॥ शक्रदेवोऽपि धर्मात्मा सह मात्रा
परन्तप । सबालवृद्धयुवतीमुख्याः प्रकृतयस्तथा ॥ ६१ ॥शिबि-
कायामथारोप्य शृगालं युद्धदुर्मदम् । संहता दूरमार्गेण पश्चिमा-
भिमुखा ययुः ॥ ६२ ॥ नैधनस्य विधानेन चक्रुस्ते तस्य सत्-

को भी मेरा पुत्र समझो ५५ मैं इसको सुख देनेके लिये इसको
अभय देता हूँ और इसका अभिषेक करूँगा अब तुम प्रजा पुरो-
हित और मंत्रियोंको बुलवाओ ५६ और इस अपने पुत्रका बाप
दादेके राज्यपर अभिषेक करो, तदनन्तर सब प्रजा पुरोहित
मंत्री ५७ अभिषेक करनेके लिये जहाँ पर राम कृष्ण थे तहाँ
आपहुँचे, तदनन्तर वीर्यवान् जनार्दनने सिंहासन पर बैठे हुए
राजपुत्रका दिव्य अभिषेक किया, करवीरपुरमें शक्रदेवका
अभिषेक करके श्रीकृष्णने उसी दिन प्रयाण करनेका विचार
किया ५८-५९ जैसे वृत्रासुरका नाशक इन्द्र स्वर्गको जाता है
इसी प्रकार केशव भी उस युद्धमें पाये हुए (सुर्यदत्त) घोड़ोंसे
जुते रथमें बैठ कर चले ६० हे परन्तप ! तदनन्तर धर्मात्मा शक्र-
देव भी अपनी माता बालक वृद्ध युवती और प्रधान २ प्रजाके
आदमियोंको ले ६१ युद्धदुर्मद शृगालको पालकीमें चढ़ा इकट्ठे
हो दूरके मार्गमें पश्चिमाभिमुख होकर चले ६२ तदनन्तर उन्होंने

क्रियाम् । सत्कारं कारयामासुः पितुर्णां पारलौकिकम् ॥ ६३ ॥
उद्दिश्योद्दिश्य राजानं श्राद्धं कृत्वा सहस्रशः । ततस्ते सलिलं
दत्त्वा नामगोत्रादिकीर्तनैः ॥६४॥पितर्युपरते घोरे शोकसंविग्न-
मानसाः । कृत्वोदकं तदा राजा प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शृगालवधो
नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन उवाच । तौ तु स्वल्पेन कालेन दमघोषेण
संगतौ । अथाऽध्वविधिना तौ तु पञ्चरात्रोषितौ पथि ॥१ दम-
घोषेण संगम्य एकरात्रोषिताविव । जग्मतुः सहितौ वीरौ मुदा
परमया युतौ । नगरीं मथुरां प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ २ ॥
ततः प्रत्युद्गताः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ । सबला हृष्टमनस
उग्रसेनपुरोगमाः ॥ ३ ॥ श्रेणयः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणश्च यथो-
चिताः । सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत ॥ ४ ॥

मरणविधिसे उसका सत्कार किया, उसका पितृसंबंधी पारलौ-
किक सत्कार किया, ६३ तदनन्तर उन्होंके राजाके निमित्त
सहस्रों श्राद्ध किये, और नाम गोत्र आदिका कीर्तन करके उस
का तर्पण किया ६४ अपने पराक्रमी पिताके मारे जाने पर शोक-
व्याकुलचित्त वह राजा उदकक्रिया करके अपने श्रेष्ठ नगरमें
घुसा ६५ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ४४

वैशंपायनजीने कहा, कि- तदनन्तर वे दोनों दमघोषके साथ
थोड़े ही समयमें अध्वविधिसे मार्गमें पाँच रातका पड़ाव करके
मथुरा पहुँचे, परंतु उन परम प्रसन्न पुरुषोंको वे पाँच रात्रियें
दमघोषसे एक रात्रिकी समान ही प्रतीत हुई थी १-२ तदनन्तर
उग्रसेन आदि सब यादव सेना सहित अपने मनमें प्रसन्न होकर
उन यदुनन्दनोंका सत्कार करनेके लिये आये ॥ ३ ॥ श्रेणि
प्रकृतिमण्डल मंत्री बालक वृद्ध आदि सब पुरी तहाँ पर आगई ४

नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त स्तूयेतां पुरुषर्षभौ । रथ्या पताकामालिन्यो भासन्ति स्म समन्ततः ॥ ५ ॥ हृष्टा प्रमुदिता सर्वा पुरी परमशोभिता । भ्रात्रोस्तयोरागमने यथेन्द्रस्य महे तथा ॥ ६ ॥ मुदितास्तत्र गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः । स्तवाशीर्बहुला गाथा यादवानां प्रियंकराः ॥ ७ ॥ गोविन्दरामौ सम्प्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ । स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं यादवाः सुखम् ८ न तत्र कश्चिद्दीनो वा मलिनो वा विचेतनः । मथुरायामभूत् कश्चिद्रामकृष्णसमागमे ॥ ९ ॥ वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोगजद्विपाः । नरनारीगणाश्चैव भेजिरे मानसं सुखम् ॥ १० ॥ शिवाश्च प्रववुर्वाता विरजस्का दिशो दश । दैवतान्यपि सर्वाणि हृष्यन्त्यायतनेष्वथ ॥ ११ ॥ यानि लिङ्गानि लोकस्य तुष्टानीह कृते युगे । तानि सर्वाण्यदृश्यन्त तयोरागमने तदा ॥१२॥ ततः

उस समय नन्दितूर्य बजने लगे, और उन पुरुषर्षभोंकी स्तुति होने लगी गलियोंमें झंडी लगा दी गई और ये चारों ओरसे प्रकाशित होने लगीं ॥ ५ ॥ इस प्रकार उन दोनों भाइयोंके आने पर इन्द्रोत्सवकी समान वह पुरी परम प्रसन्न हुई ॥ ६ ॥ उस समय गायक राजमार्गोंमें प्रसन्न होकर यादवोंको प्रिय लगने वाली आशीर्वादात्मक बहुतसी गाथाएँ गाने लगे ॥ ७ ॥ (वे कहने लगे, कि-) संसार प्रसिद्ध गोविन्द और राम नामक भाई आगए हैं अब सब यादव अपने नगरमें निर्भय होकर सुखपूर्वक क्रीड़ा करो ८ राम कृष्णके मथुरामें आने पर तहाँ पर कोई मलिन वा विचेतन नहीं दीखता था ९ उस समय पक्षी मनोहर वाणी बोलने लगे हाथी घोड़े और गौएँ प्रसन्न होगईं और नर नारियोंके मनमें बड़ा सुख हुआ १० उस समय सुखदायक पवन चलने लगा और दशों दिशाएँ रजोरहित होगईं और सब देवता देवमंदिरोंमें प्रसन्न होने लगे ११ सत्ययुगमें जो

काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनौ। हरियुक्तेन तौ वीरौ प्रविष्टौ मथुरां पुरीम् ॥ १३ ॥ प्रविशन्तं पुरीं रम्यां गोविन्दं राममेव च। अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव ॥१४॥ वसुदेवस्य भवनं पितुस्तौ यदुनन्दनौ। प्रहृष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवानलम् ॥१५॥ तत्रायुधानि संन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ। मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ ॥१६॥ एवं तावेकनिर्वाणौ मथुरायां शुभाननौ। उग्रसेनानुगौ भूत्वा कञ्चित् कालं मुमोदतुः

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णयोर्मथुरायां प्रत्यागमनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

वैशम्पायन उवाच। कस्यचित्त्वथ कालस्य स्मृत्वा गोपेषु सौहृदम्। जगामैको व्रजं रामः कृष्णस्यानुमते स्थितः ॥ १ ॥ स गतस्तत्र रम्याणि ददर्श विपुलानि वै। भुक्तपूर्वाण्यरण्यानि

चिन्ह संसारमें दीखते थे वे सब चिन्ह राम कृष्णके आने पर प्रकट होगए १२ तदनन्तर कल्याणकारक पुण्यमय समयमें वे दोनों अरिदमन वीर घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ कर मथुरापुरीमें घुसे १३ रमणीयपुरीमें प्रवेश करने वाले राम और गोविन्दके पीछे यादव ऐसे चले जैसे देवता इन्द्रके पीछे जाते हैं १४ वे दोनों यदुनन्दन अपने पिताके घरमें प्रसन्न होकर, चन्द्र और सूर्यके पहाड़ पर चढ़नेकी समान, चढ़ गए १५ तहाँ पर आयुध रख कर वे स्वैरचारी यदुवर दोनों वसुदेवपुत्र प्रसन्न हुए १६ इस प्रकार वे एकसा निर्वाण करने वाले शुभमुख राम कृष्ण उग्रसेनके अनुकूल रह कर कुछ समय तक सुखपूर्वक तहाँ रहते रहे १७ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ४५

वैशम्पायनजीने कहा, कि-कुछ समय बीतने पर गोपोंकी मित्रताका स्मरण करके बलरामजी श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर अकेले ही मथुरापुरीको चले ॥ १ ॥ तहाँ पहुँचने पर उन्होंने

सरांसि सुरभीणि च ॥ २ ॥ स प्रविष्टस्तु वेगेन तं व्रजं कृष्ण-पूर्वजः । वन्येन रमणीयेन वेषेणालंकृतः प्रभुः ॥३॥ स तानथा-पत प्रीत्या यथापूर्वमरिन्दमः । गोपांस्तेनैव विधिना यथान्यायं यथावयः ॥ ४ ॥ तथैव प्राह तान् सर्वांस्तथैव परिहर्षयन । तथैव सह गोपीभिर्योजयन् मधुराः कथाः ॥ ५ ॥ तमूचुः स्थविरा गोपाः प्रियं मधुरभाषणम् । रामं रमयतां श्रेष्ठं प्रवासात् पुनरा-गतम् ॥६॥ स्वागतं ते महाबाहो यदूनां कुलनन्दन । अद्य स्म निर्वृतास्तात यत्त्वां पश्यामहे वयम् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चैव वयं वीर यत्त्वं पुनरिहागतः । विख्यातस्त्रिषु लोकेषु रामः शत्रुभयंकरः॥८ वर्धनीया वयं वीर त्वया यादवनन्दन । अथवा प्राणिनस्तात रमन्ते जन्मभूमिषु ॥ ९ ॥ त्रिदशानां वयं मान्या- स्तवचागमला-

---

पहिले भोगे हुए बहुतसे वन सरोवर और गौओंको देखा २ वनके रमणीय वेषसे अलंकृत प्रभु बलरामजी वेगपूर्वक उस व्रजमें घुसे ॥ ३ ॥ फिर उन अरिंदमनने अवस्था और न्यायके अनुसार गोपोंसे उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक वार्तालाप किया ॥४॥ उन्होंने उनके साथ उसी प्रकार उनको हर्षित करते हुए उनसे वार्तालाप किया, और उसी प्रकार गोपियोंसे भी मधुर कथाएँ कहीं ५ रमण कराने वालोंमें श्रेष्ठ मधुरभाषी प्रवाससे फिर आये हुए प्रिय बलरामसे वृद्ध गोपोंने कहा, कि-६ हे यदुओंके कुलको आनन्ददेने वाले ! हे महाभुज ! आपका स्वागत है, हे तात ! हम आपको देख रहे हैं अतः हम आज परम सुखी हुए हैं ७ हे वीर ! आप यहाँ पर फिर आगए, अतः हम प्रसन्न होरहे हैं,ये शत्रुओंको भय देने वाले राम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं ८ हे यादवनन्दन ! आप हमको बढ़ाता देते रहैं, अथवा हे तात ! प्राणी जन्मभूमिमें रमण करते हैं९ हे विमला-नन ! हम आपके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, अब हमने

नन । ये स्म दृष्टास्त्वया तात कांक्षमाणा तवागमम् ॥ १० ॥
दिष्ट्या ते निहता मल्लाः कंसश्च विनिपातितः । उग्रसेनोऽभि-
षिक्तश्च माहात्म्येन जनेन वै ॥ ११ ॥ समुद्रे च श्रुतोऽस्माभि-
स्तिमिना सह विग्रहः । गोमन्ते च श्रुतोऽस्माभिः क्षत्रियैः सह
विग्रहः ॥ १२ ॥ दरदस्य वधश्चैव जरासन्धे च या मतिः ।
तच्चायुधावतरणं श्रुतं नः परमाहवे ॥ १३ ॥ वधश्चैव शृगालस्य
करवीरपुरोत्तमे । तत्सुतस्याभिषेकश्च नागराणां च सान्त्वनम् १४
मथुरायां प्रवेशश्च कीर्तनीयः सुरोत्तमैः । प्रतिष्ठिता च वसुधा
पार्थिवाश्च वशीकृताः ॥ १५ ॥ तव चागमनं दृष्ट्वा सभाग्याः
स्म यथा पुरा । तेन स्म परितुष्टा वै हर्षिताश्च सबान्धवाः १६
प्रत्युवाच ततो रामः सर्वास्तानभितः स्थितान् । यादवेष्वपि
सर्वेषु भवन्तो मम बान्धवाः ॥ १७ ॥ इहावयोर्गतं बाल्यमिह

आपको देख लिया, अतः हम देवताओंके भी मान्य होगए१०
तुमने मल्लोंको मार डाला और कंसको भी मार डाला, यह बड़े
भाग्यकी बात है,महात्मा मनुष्य होनेके कारण आपने उग्रसेनका
राज्य पर अभिषेक भी कर दिया है ११ हमने आपका समुद्रमें
तिमि(पञ्चजन)के साथका युद्ध सुना है और गोमन्तपर्वतमें आप
का क्षत्रियोंके साथका युद्ध भी सुना है॥१२॥ दरदका वध और
जरासन्धविषयक बुद्धि और महायुद्धमें आयुधोंका उतरना भी
हमने सुना है ॥ १३ ॥ नगरश्रेष्ठ करवीरपुरमें शृगालका वध
भी हमने सुना है,उसके पुत्रका अभिषेक और नागरिकोंके सांत्वन
की बात भी हमने सुनी है ॥ १४ ॥ देवताओंके कीर्तन करने
योग्य आपका मथुराका प्रवेश (हमने सुना है) आपने पृथ्वी
को प्रतिष्ठित कर दिया और राजाओंको वशमें कर लिया है १५
आपके आगमनको सुन कर हम पहिलेकी समान भाग्यवान् हो
गए हैं ॥ १६ तब तो चारों ओर खड़े हुए उन सबसे बलरामजी

चैवावयो रतम् । भवद्भिर्वर्धितावेव यास्यामो विक्रियां कथम् १८
गृहेषु भवतां भुक्तं गावश्च परिरक्षिताः । अस्माकं बान्धवाः सर्वे
भवन्तो बद्धसौहृदाः ॥ १९ ॥ब्रुवत्येवं यथातत्त्वं गोपमध्ये हला-
युधे । संहृष्टवदना भूयो बभूवुर्व्रजयोषितः ॥ २० ॥ ततो वना-
न्तरगतो रेमे रामो महाबलः । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते रामाय विदि-
तात्मने ॥ २१ ॥ गोपालैर्देशकालज्ञैरुपानीयत वारुणी । सोऽपि-
बत् पाण्डुराभ्राभस्तत् कालं ज्ञातिभिर्वृतः ॥२२॥ वनान्तरगतो
रामः पानं मदसमीरणम् । उपनिन्युस्ततस्तस्मै वन्यानि विवि-
धानि च ॥ २३ ॥ प्रत्यग्ररमणीयानि पुष्पाणि च फलानि च ।
सेव्यांश्च विविधान् गन्धान् भक्ष्यांश्च हृदयंगमान् ॥ २४ ॥ सद्यो
हृतानि पद्मानि विकचन्त्युत्पलानि च । शिरसा चारुकेशेन किंचि-

ने कहा, कि—सब यादवोंमें आप हमारे (विशेष) बांधव हैं १७ हमारी बाल्यावस्था यहीं पर बीती थी, और यहीं हमने क्रीड़ा की थी, आपने ही हमें बढ़ाया था अतः हम आपसे विकार कैसे लासकते हैं ॥ १८ ॥ हमने आपके घरोंमें खाया है और गौओं की रक्षा की है आप सब हमारे दृढसौहृद वाले बांधव हैं १९ गोपोंके मध्यमें हलायुध बलरामजी इस प्रकार कह रहे थे, तब तो व्रजस्त्रियोंके मुख फिर खिल उठे ॥ २० ॥ तदनन्तर महाबली बलरामजी वनमें जाकर रमण करने लगे, देश और कालको जानने वाले गोपाल बहुत समयके अनन्तर आये हुए रामके लिये वारुणी ले आये तब श्वेत बादलोंकी समान आभा वाले जाति भाइयोंसे घिरे हुए बलरामने वारुणी पी ॥ २१—२३ ॥ जब वनमें पहुँचे हुए रामने नशीली गंध वाली वारुणीको पीलिया, तदनन्तर वे अनेक प्रकारकी वनकी विविध प्रकारकी वस्तुएँ, रमणीय पुष्प फल, बहुतसी सुगंधित सेवनीय वस्तुएँ और हृदयको प्रिय लगने वाले तुरन्तके तोड़े

दावृतमौलिना । श्रवणैकावलम्बेन कुण्डलेन विराजता ॥ २५ ॥ चन्दनार्द्रेण पीतेन वनमालावलम्बिना । विभ्राजुरसा रामः कैलासेनेव मन्दरः २६ नीले वसानो वसने प्रत्यग्रजलदप्रभे । रराज वपुषा शुभ्रस्तिमिरौघे यथा शशी २७ लांगलेनावसिक्तेन भुजगाभोगवर्तिना । तथा भुजाग्रश्लिष्टेन मुसलेन च भास्वता २८ स मत्तो बलिनां श्रेष्ठो रराजाघूर्णिताननः । शैशिरेषु त्रियामासु यथा स्वेदालसः शशी ॥ २९ ॥ रामस्तु यमुनामाह स्नातुमिच्छे महानदि । एहि मामभिगच्छ त्वं रूपिणी सागरङ्गमे ॥ ३० ॥ संकर्षणस्य मत्तोक्तां भारतीं परिभूय सा । नाभ्यवर्तत तं देशं स्त्रीस्वभावेन मोहिता ॥ ३१ ॥ ततश्चुक्रोध बलवान्रामो मद-

---

हुए कमल उत्पल आदि ले आये मुकुटसे कुछ ढके हुए सुन्दर केश वाले कानमें लटकते हुए पीतचन्दनसे गीले मुखसे और वनमालासे सुशोभित वक्षःस्थलसे बलराम कैलाससे शोभा पाने वाले मन्दराचलकी समान शोभा पाने लगे ॥ २४—२६ ॥ जल बरसानेको उद्यत मेघकी समान नीले वस्त्रोंको धारण करने वाले शुभ शरीरके कारण बलरामजी अन्धकारके ओघमें बिराजमान चन्द्रमाकी समान दीखते थे ॥ २७ ॥ उनकी सर्पकी समान भुजामें लांगल था और भुजाके अग्रभागमें प्रकाशवान् मूसल बिराज रहा था ॥ २८ ॥ जैसे शरद् ऋतुकी तीन प्रहर (चन्द्रमाको रखने) वाली रात्रियोंमें स्वेद (ओस) से अलस दीखता हुआ चन्द्रमा दीखता है, इसी प्रकार जिनके नेत्र घूम रहे थे वह बलवानोंमें श्रेष्ठ मदमत्त बलरामजी शोभा पाने लगे २९ तदनन्तर बलरामजीने यमुनाजीसे कहा, कि हे महानदि! मैं स्नान करना चाहता हूँ अतः हे समुद्रगामिनि! तू रूपिणी बन कर आ (और मेरे स्नान करनेके अनन्तर) मेरी सेवा कर परन्तु यमुना स्त्री स्वभावसे मोहमें पड़ गई और यह वाणी मत्त पुरुषने कही है

समीरितः । चकार सहलं हस्ते कर्षणाधोमुखं बली ॥ ३२ ॥
तस्यामुपरि मेदिन्यां पेतुस्ताम्ररसस्रजः । मुमुचुः पुष्पकोशैश्च
वासरेणवरुणं जलम् ॥ ३३ ॥ स हलेन नताग्रेण कूले गृह्य महा-
नदीम् । चकर्ष यमुनां रामो व्युत्थितां वनितामिव ॥ ३४ ॥ सा
विह्वलजलस्रोता ह्रदप्रस्थितसंभ्रया । व्यावर्तत नदी भीता हल-
मार्गानुसारिणी ॥ ३५ ॥ लांगलादिष्टवर्त्मा सा वेगगा चक्र-
गामिनी । संकर्षणभयत्रस्ता योषेवाकुलतां गता ॥ ३६ ॥ पुलि-
नश्रोणिबिम्बोष्ठी मृदितैस्तोयताडितैः । फेनमेखलसूत्रैश्च छिन्नैरम्बु-
द्गामिनी ॥३७॥ तरङ्गविषमापीडा चक्रवाकोन्मुखस्तनी । वेग-

यह समझ उनकी वाणीकी उपेक्षा कर उनके पास न गई ३१
तब तो मदसे प्रेरित बलराम क्रोधमें भर गए और उन बली
पुरुषने अपने हलका मुख खेंचनेके लिये नीचेको कर लिया ३२
जब बलदेवजी यमुनाजीको खेंचने लगे देवताओंकी मालाओंके
साथ बिन्दुएँ पृथ्वी पर पड़ने लगीं और पुष्पोंके कोशोंसे
सुगन्धित परागसे अरुण (मदिरारूपी) जल पड़ने लगा ॥३३॥
तब बलरामजी अपने हलके अग्रभागको झुकाकर उस नदीके
तटपर रख यमुनाको व्युत्थित स्त्रीकी समान खेंचने लगे ॥३४॥
उस समय उसके स्रोत विह्वल होगए और उसके तालावोंके किनारे
ढीले होने लगे और वह नदी भयभीत होकर हलके मार्गका
अनुसरण कर लौटने लगी ३५ लांगलसे उसका मार्ग बन रहा
था और वह वेगसे भँवरोंके साथ बह रही थी, और वह संकर्षण
के भयसे स्त्रीकी समान व्याकुल होगई ॥ ३६ ॥ उसके तट
उसकी श्रोणी थीं, उसके ओठ रक्तपद्मरहलकी समान थे, और
वह समुद्रकी ओर बह रही थी, और वह जलसे ताड़ित फेनरूपी
मेखलाओंसे छिन्न भिन्नसी होरही थी, ३७ वह तरंगरूपी त्रिषम
आपीड़को धारण कर रही थी, और उन्मुख चक्रवाकरूपी स्तनों

गम्भीरवक्राङ्गी अस्तमीनविभूषणा ॥ ३८ ॥ सितहंसेक्षणापाङ्गी काशक्षौमोज्झिताम्बरा । तीरजोद्धूतकेशान्ता जलस्खलित गामिनी ॥ ३९ ॥ लाङ्गलोल्लिखितापाङ्गी क्षुभिता सागरङ्गमा । मत्तेव कुटिला नारी राजमार्गेण गच्छती ॥ ४० ॥ कृष्यते भाति-वेगेन स्रोतस्खलितगामिनी । उन्मार्गा नीतमार्गा सा येन वृन्दा-वनं वनम् ॥ ४१ ॥ वृन्दावनस्य मध्येन सा नीता यमुना नदी । रोरूयमाणेव खगैरन्विता तोयवासिभिः ॥४२॥ सा यदा समति-क्रान्ता नदी वृन्दावनं वनम् । तदा स्त्रीरूपिणी भूत्वा यमुना राममब्रवीत् ॥४३॥ प्रसीद नाथ भीतास्मि प्रतिलोमेन कर्मणा ।

को धारण कर रही थी, वेगगंभीररूप वह सुखरूप अंगको धारण कर रही थी, और वह अस्तमीनरूप भूषणोंको धारण कर रही थी श्वेत हंसरूपी नेत्रोंके चञ्चल कटाक्षोंको धारण कर रही थी, और काशरूपी रेशमी वस्त्रोंको धारण कर रही थी उसके तट पर उत्पन्न होने वाले उड़ते हुए केशोंको धारण कर रही थी और वह जलरूपी स्खलितगतिको धारण कर रही थी, और वह जलरूपी स्खलित गतिसे चल रही थी ॥ ३९ ॥ उसका अपाङ्ग लांगलसे छिल रहा था, और वह सागरगामिनी क्षुब्ध होरही थी, और राजमार्गसे जाती हुई कुटिल स्त्रीकी समान प्रतीत होरही थी । ४० । वह स्खलितगामिनी अतिवेगसे खिंच रही थी और उन्मार्गसे वृन्दावन वनकी ओर खचेड़ी जा रही थी ॥ ४१ ॥ जिस समय यमुना नदीको वृन्दावनके बीचमें खचेड़ा गया, उस समय वह जलचर पक्षियोंके शब्दोंके कारण रोती हुई सी प्रतीत होती थी ॥ ४२ ॥ जब वह नदी वृन्दावनमें पहुँची तब वह स्त्री का रूप धारण करके बलरामजीसे कहने लगी, कि—॥ ४३ ॥ हे नाथ ! आप प्रसन्न हूजिये ! आपके इस प्रतिलोम करने वाले अर्थात् उलटे

विपरीतमिदं रूपं तोयं च मम जायते ॥ ४४ ॥ असत्यहं नदीमध्ये रौहिणेय त्वया कृता । सुप्रसन्नमना नित्यं भव त्वं सुरसत्तम ॥४५॥ कर्षणेन महाबाहो त्वन्मार्गव्यभिचारिणी । प्राप्तां मां सागरे पूर्वं सपत्न्यो वेगगर्विताः ॥४६॥ फेनहासैर्हसिष्यन्ति तोयव्यावृत्तगामिनीम् । प्रसादं कुरु मे वीर याचे त्वां कृष्णपूर्वज कर्षणायुध कृष्टास्मि रोषोऽयं विनिवर्त्यताम् । मूर्ध्ना गच्छामि चरणौ तवैषा लांगलायुध ॥ ४८ ॥ मार्गमादिष्टमिच्छामि क्व गच्छामि महाभुज । वैशम्पायन उवाच प्रणतावनतां दृष्ट्वा यमुनां लांगलायुधः । पत्नीं नार्णवबधूं मदक्लान्त इदं वचः ॥४९॥ लांगलादिष्टमार्गा त्वमिमं प्रियदर्शने । देशमम्बुप्रदानेन सावयस्वाखिलं शुभे ॥५०॥ एष ते सुभ्रु सन्देशः कथितः सागरङ्गमे ।

बहाने वाले कर्मसे मैं डर रही हूँ, मेरा रूप और जल इस समय विपरीत हो रहा है ॥ ४४ ॥ हे रौहिणेय ! तुमने मुझे नदियों में असती कर दिया हे सुरसत्तम। अब आप अपने मनको प्रसन्न करिये ४५ हे महाभुज ! आपके खेंचनेसे मेरे मार्गमें व्यभिचार हो गया है,मैं उलटी चली हूँ अतः मेरी सपत्नियें समुद्रमें पहिले पहुँच कर फेनोंसे हँसकर मेरा हास्य करेंगी, अब हे बलदेवजी! आप मेरे ऊपर कृपा करिये,मैं आपसे प्रार्थना कर रहीहूँ४६-४७ हे खेंचनेके आयुध वाले ! आपने मुझे बहुत खेंचा अब आप अपने रोषको दूर करिये हे लांगलायुध ! अब मैं आपके चरणों में मस्तक नमाती हूँ ४८ अब मैं आपके मार्ग बतानेकी प्रतीक्षा कर रही हूँ, बताइये मैं कहा जाऊँ, वैशम्पायनजीने कहा, कि यमुनाको प्रणयसे नम्र हुई देख कर मदमत्त लांगलायुध बलरामजीने समुद्रपत्नी यमुनासे कहा कि-॥ ४९ ॥ हे शुभे ! हे प्रियदर्शने ! तू मेरे लांगलसे बताये मार्गसे मेरे बताये देशमें जाकर उस सारे देशको जलसे डुबा दे ॥ ५० ॥ हे सागर-

शान्तिं व्रज महाभागे गम्यतां च यथासुखम् ॥ ५१ ॥ यावत् स्थास्यति लोकोऽयं तावत् स्थास्यतु मे यशः । यमुनाकर्षणं दृष्ट्वा सर्वे ते व्रजवासिनः ॥ ५२ ॥ साधु साध्विति रामाय प्रणामं चक्रिरे तदा । ता विसृज्य महाभागा तांश्च सर्वान् व्रजौकसः ५३ ततः सचिन्त्य मनसा रामः प्रहरतां वरः । पुनः प्रतिजगामाशु मथुरां रोहिणीसुतः ॥ ५४ ॥ स गत्वा मथुरां रामो भवने मधुसूदनम् । परिवर्तमानं ददृशे पृथिव्यां सारमव्ययम् ॥५५॥ तथैवाध्वन्यवेषेण सोपसृष्टो जनार्दनम् । प्रत्यग्रवनमालेन वक्षसाऽभिविराजिता ॥ ५६ ॥ स दृष्ट्वा तूर्णमायान्तं रामं लांगलधारिणम् । सहसोत्थाय गोविन्दो ददावासनमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ उपविष्टं तदा रामं पप्रच्छ कुशलं व्रजे । बान्धवेषु च सर्वेषु गोषु चैव जनार्दनः ॥५८॥ प्रत्युवाच ततो रामो भ्रातरं साधुभाषि-

---

श्रमे । यह तुमसे मैंने संदेश कह दिया, हे महाभागे ! हे सुभ्रू ! अब तू शान्त होजा और इच्छानुसार चली जाना ॥ ५१ ॥ जब तक यह संसार रहे तब तक मेरा यश रहे, सब व्रजवासी यमुनाजीके कर्षणको देखकर साधु २ कह कर बलरामको प्रणाम करने लगे तदनन्तर उन महाभाग गोपोंको और गोपियोंको तहाँ ही छोड़, प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ राम अपने मनमें विचार कर फिर शीघ्रतासे मथुरापुरीको चले गए ॥ ५२-५४ ॥ बलरामजीने मथुरामें भवनमें जाकर देखा तो साररूप अच्युत मधुसूदन पृथ्वीमें टहल रहे हैं ५५ उस समय वनमालासे विराजमान वक्षः स्थल वाले बलदेव भी पथिकके वेषमें ही तहाँ पहुँच गए ५६ लांगलधारी बलरामजीको शीघ्रतासे आते देख गोविन्द ने शीघ्रतासे उठ कर उन्हें श्रेष्ठ आसन दिया ५७ तदनन्तर जनार्दनने रामसे व्रजके बान्धव और सकल गौओंकी कुशल बूझी ।५८। तदनन्तर मनोहर भाषण करने वालेअपने भ्राता से

णम् । सर्वत्र कुशलं कृष्ण येषां कुशलमिच्छसि ॥ ५९ ॥ तत-स्तयोर्विचित्राश्च पौराणाश्चाभवन कथाः । वसुदेवाग्रतः पुण्या रामकेशवयोस्तदा ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि यमुनाकर्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता लोकमावृत्तिका नराः । चक्रायुधगृहं स र्गे लोकपालगृहोपमम् १ तेष्वाख्यायिकशंसीषु लोकमावृत्तिकेष्विह । कृतसंज्ञा यदुश्रेष्ठाः समेताः कृष्णसंसदि २ समागतेषु सर्वेषु यदुमुख्येषु संसदि । मावृत्तिका नराः प्राहुः पार्थिवात्ययिकं वचः ॥ ३ ॥ जनार्दन नरेन्द्राणां पार्थिवानां समागमः । भविष्यति क्षितीशानां समूहानित्यनेकशः ॥ ४ ॥ त्वरितास्तत्र गच्छन्ति नानाजनपुरेश्वराः । कुण्डिने पुण्डरी-काक्ष भोजपुत्रस्य शासनात् ॥५॥ प्रकाशं स्म कथास्तत्र श्रूयन्ते

बलरामने कहा, कि-हे कृष्ण ! आप जिनकी कुशल चाहते हैं, उनकी सर्वत्र कुशल है ॥५९॥ तदनन्तर राम और केशव वसु-देवजीके सामने प्राचीन और विचित्र कथाएँ कहने लगे ॥६०॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसी समय लोकपालोंके गृहकी समान चक्रायुध नामक घरमें सब खबर देने वाले मनुष्य (दूत) आगए । १ । उन विरोधको कहने वाले दूतोंके आने पर इंगित के अनुसार सब यादवश्रेष्ठ सभामें इकट्ठे होगए ॥ २ ॥ जब सभामें सब मुख्य २ यादव आगए उस समय दूतोंने राजाओं का नाश कराने वाला वचन कहा ॥ ३ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! कुण्डनपुरमें भोजपुत्रके शासनसे अनेक देशोंके राजे तहाँ फुर्तीसे जारहे हैं, हे जनार्दन ! तहां पर बहुतसे राजाओंका समागम होगा और तहाँ झुण्डके झुण्ड राजे आवेंगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ प्रकट

मनुजेरिताः । रुक्मिणी किल नामास्ति रुक्मिणः प्रथमा स्वसाऽ६ भाव्री स्वयं वरस्तत्र तस्याः किल जनार्दन । इत्यर्थमेते सबला गच्छन्ति मनुजाधिपाः ॥७॥ तस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्यास्तृतीयेऽहनि यादव । रुक्मभूषणभूषितया भविष्यति स्वयम्वरः ॥ ८ ॥ राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम् । द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र शिबिराणि महात्मनाम् ॥९॥ सिंहशार्दूलदृप्तानां मत्तद्विरदगामिनाम् । सदा युद्धप्रियाणां हि परस्परमर्षिणाम् ॥१०॥ जयाय शीघ्रं सहिता बलौघेन समन्विताः । निरुद्धाः पृथिवीपालाः किमेकांतचरा वयम् । निरुत्साहा भविष्यामो गच्छामो यदुनन्दनम् ११ श्रुत्वैतत् केशवो वाक्यं हृदि शल्यमिवार्पितम् । निर्जगाम यदु-

रूपसे मनुष्य इस कथाको तहाँ कहते फिरते हैं, कि—तहाँ रुक्मिणी नाम वाली रुक्मीकी एक बड़ी बहिन है ॥ ६ ॥ हे जनार्दन ! तहाँ उसका स्वयंवर होने वाला है इसी लिये ये राजे अपनी सेनाओंसहित तहाँ जा रहे हैं ॥ ७ ॥ हे यादव ! तहाँ पर सुवर्ण के आभूषणोंसे विभूषित त्रिलोक सुन्दरी रुक्मिणीका तीसरे दिन स्वयंवर होने वाला है ॥ ८ ॥ तहाँ पर आये हुए हाथी घोड़े और रथों पर सवारी करने वाले महात्मा राजाओंके सैकड़ों शिविरोंको (हम) देखेंगे ६ (और तहाँ पर)सिंह और शार्दूल की समान घमण्डी और मदमत्त हाथीकी समान चलने वाले सर्वदा युद्धको ही प्रिय समझने वाले और परस्पर अमर्ष रखने वाले (राजाओंके शिविरोंको हम देखेंगे) ॥ १० ॥ ये राजे अपनी २ सेनाओंको लेकर (रुक्मिणीको पानेकी इच्छासे दूसरे राजाओंको)जीतनेके लिये इकट्ठे हो रहे हैं फिर हम क्यों एकान्तचारी (भीलोंकी समान) निरुत्साह होवे और यदुनन्दनके पास जावें, (और उनको लेकर तहाँ जावें, यह विचार कर आपके पास आये हैं) ॥ ११ ॥ केशवने इस बात

श्रेष्ठो यदूनां सहितो बलैः ॥ १२ ॥ यादवास्ते बलोदग्राः सर्वे संग्रामलालसाः । निर्ययुः स्यन्दनवरैर्गर्विता स्त्रिदशा इव ॥ १३ ॥ बलाग्रेण नियुक्तेन हरिरीशानसम्मतः । चक्रोद्यतकरः कृष्णो गदापाणिर्व्यरोचत ॥ १४ ॥ यादवाश्चापरे तत्र वासुदेवानुगा- यिनः । रथैरादित्यसंकाशैः किङ्किणीप्रतिनादितैः ॥ १५ ॥ उग्र- सेनं तु गोविन्दः प्राह निश्चितदर्शनः । तिष्ठ त्वं नृपशार्दूल भ्रात्रा मे सहितोऽनघ ॥ १६ ॥ क्षत्रिया विकृतिप्रज्ञा शास्त्र- निश्चितदर्शनाः । पुरीं शून्यामिमां वीर जघन्येनाभिपालयन् १७ अस्माकं शङ्किताः सर्वे जरासन्धवशानुगाः । मोदन्ते सुखि- नस्तत्र देवलोके यथाऽमराः ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य

को सुना तो वह वाक्य उनके हृदयमें काँटासा लग गया और वे यादवश्रेष्ठ यादवोंके सेनादलको साथमें लेकर चले ॥ १२ ॥ गर्वसे भरे हुए देवताओंकी समान संग्रामकी लालसा वाले अति- बली यादव रथोंमें बैठ कर चले ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके आगे सेना चल रही थी उस समय हाथमें चक्र और आयुधोंको धारण करने वाले कृष्ण ईशान (शिव) की समान प्रतीत होते थे १४ वासुदेवके अनुयायी दूसरे यादव भी घण्टियोंसे झनकारते हुए सूर्यकी समान प्रकाशवान् रथोंमें (बैठ कर चले) ॥ १५ ॥ उस समय निश्चित बात कहने वाले गोविन्दने उग्रसेनसे कहा, कि- हे निष्पाप राजशार्दूल!आप मेरे भाईके साथ यहाँ ही रहिये १६ क्षत्रिय कपटसे वृद्धि पाया करते हैं और वे राजनीतिको जानने वाले होते हैं,अतः आप इस शून्य पुरीकी कपटसे रक्षा करें जरा- संधके वशमें रहने वाले उसके अनुयायी सब राजे हमसे शंकित रहते हैं अब वह वहाँ देवलोकमें स्थित देवताओंकी समान सुख भोग रहे हैं १८ वैशम्पायनजीने कहा, कि-महायशस्वी भोजराजने श्रीकृष्णके इस वचनको सुनकर श्रीकृष्णके स्नेहवश यह त्रिकूट

तद्वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः। कृष्णस्नेहेन विकृतं बभाषे वचनामृतम् ॥१९॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन। श्रूयतां यदहं त्वद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २० ॥ त्वया विहीनाः सर्वे स्म न शक्ताः सुखमासितुम्। पुरेऽस्मिन् विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः ॥ २१ ॥ त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः। बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद२२ विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि। तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ ॥ २३ ॥ तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः। यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वा तु तौ कृष्णो जगामाशु रथेन तौ। भीष्मकस्य गृहं प्राप्तो लोहितायति भास्करे ॥ २५ ॥ प्राप्ते राजसमाजे तु शिबिराकीर्णभूतले। रङ्गं सुविपुलं दृष्ट्वा राजसीं

वचनामृत कहा कि ॥१९॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभुज! हे यादवोंके आनन्दको बढ़ानेवाले! हे रिपुसूदन! इस समय मैं जो बात कहता हूँ उसको आप सुनिये २० आपके चले जाने पर आपसे रहित होकर हम पतिहीन स्त्रियोंकी समान यहाँ पुर में सुखपूर्वक नहीं रह सकेंगे २१ हे मानद तात! आपसे हम सनाथ हैं, आपके भुजबलके आश्रयमें रहते हुए इन्द्र सहित राजाओंसे भी हमें कुछ डर नहीं लगता २२ हे यादवश्रेष्ठ! आप जहाँ २ पर विजय करनेके लिये जायँ, हे यादवश्रेष्ठ! तहाँ २ आप हमारे साथ चलिये ॥२३॥ उस राजाके वचनको सुन कर देवकी-पुत्र मुस्कुराये और कहा कि-जैसी आपकी इच्छा है उसी प्रकार मैं निःसन्देह होकर करूँगा २४ वैशम्पायनजीने कहा, कि इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण शीघ्रगामी रथ पर सवार होकर चले और जब सूर्य रक्त होगया उस समय भीष्मकके घर पहुँच गए ॥ २५ ॥ तहाँ पृथ्वी शिविरोंसे ढक

तनुमाविशत् ॥२६॥ त्रासनार्थं भूपानां प्रकाशार्थं पुरातनम् ।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयं महाबलम् ॥ २७ ॥ ततश्चिन्तित-
मात्रस्तु विदित्वा विनतात्मजः । सुखलक्ष्यं वपुः कृत्वा निलिल्ये
केशवान्तिके ॥ २८ ॥ तस्य पक्षनिपातेन पवनोद्भ्रान्तकारिणा ।
कम्पितो मनुजाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि ॥२९॥गरुडाभि-
हताः सर्वे यचेष्टन्त यथोरगाः । तान् सन्निपतितान् दृष्ट्वा कृष्णो
गिरिरिवाचलः ॥ ३० ॥ स राजा पक्षपातेन मेने पतगसत्तमम् ।
ददर्श गरुडं प्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥३१॥ पक्षेण तेन पृथिवीं
चालयन्तं मुहुर्मुहुः । पृष्ठासक्तैः महारत्नैर्लेलिहन्तमिवोरगैः ३२
तैष्णवं हस्तसंश्लेषं मान्यमानमवाङ्मुखम् । चरणाभ्यां प्रकम्पेनं

रही थी ऐसे राजसमाजमें जाकर बड़े भारी संग्रामको
देख कर श्रीकृष्णने राजसी वेष धारण कर लिया ॥ २६ ॥
उस समय श्रीकृष्णने राजाओंको डरानेके लिये और अपने
प्राचीन वृत्तान्तको प्रकाशित करनेके लिये मनमें महाबली विनता-
नन्दनका स्मरण किया २७ विनतानन्दन गरुड़जी श्रीकृष्णके
विचारते ही अपने शरीरको सुखसे लक्ष्यमें आने वाला बना
कर केशवके समीपमें चले २८ पवनमें भी गड़बड़ी डालने
वाले उनके पंखोंके निपातसे सब काँप गए और मनुष्य अधो-
मुख होकर नीचेको गिर पड़े २९ तब वे सब गरुड़से दबाये
हुए सर्पोंकी समान चेष्टा करने लगे, उनको गिरा हुआ देख
कर कृष्ण पर्वतकी समान अटल खड़े रहे ३० उस राजाने दिव्य
चंदन और मालाधारी गरुड़को आये हुए देख कर पक्षपातसे
उस पक्षिश्रेष्ठका सत्कार किया ३१ वह अपने पंखसे पृथ्वीको
बारबार डगमगा रहे थे, उनकी पीठ पर जीभ लपलपाते सर्पों
की समान आयुध रक्खे हुए थे ३२ विष्णु उन पर हाथ फेर
रहे थे, और उनका सत्कार कर रहे थे, उस समय गरुड़का मुख

पाण्डुरं भोगिनां वरम् ॥ ३३ ॥ हेमपत्रैरुपाचितं धातुमन्तमिवा-
चलम् । अमृतारम्भहर्तारं द्विजिह्वेन्द्रविनाशनम् ॥ ३४ ॥ त्रासनं
दैत्यसंघानां वाहनं ध्वजलक्षणम् । तं दृष्ट्वा सध्वजं प्राप्तं सचिवं
सांपरायिकम् ॥ ३५ ॥ धृतिमन्तं गरुत्मन्तं जगाद मधुसूदनः ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टः स्थितं देवमिवापरम् ॥ ३६ ॥ तुल्यसामर्थ्यया
वाचा गरुत्मन्तमिव स्थितम् । श्रीकृष्ण उवाच । स्वागतं खेचर-
श्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन । विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय ३७
व्रज पत्ररथश्रेष्ठ कैशिकस्य निवेशनम् । वयं तत्रैव गत्वाऽद्य
प्रतीक्षामः स्वयम्वरम् ॥ ३८ ॥ राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्व-
रथगामिनाम् । द्रक्ष्याम शतशस्तत्र समेतानां महात्मनाम् ३९

नीचेको था, और वह अपने चरणोंसे श्वेत वर्णके श्रेष्ठ सर्पको कुरेद रहे थे ३३ धातु वाले पर्वतकी समान उनके पंखोंमें सुवर्ण पुर रहा था उन्होंने आरम्भमें अमृत छीना था, और वे सर्पोंका नाश करते रहते थे ३४ वे सब दैत्योंके झुण्डोंको पीड़ा देते थे, (विष्णुके) वाहन थे और उनका चिन्ह ध्वजामें रक्खा जाता था आपत्तिमें हित करने वाले बुद्धिकी सहायता देने वाले धैर्य-धारी गरुड़जीको ध्वजाके साथ आये हुए देख कर मधुसूदन उन से वार्तालाप करने लगे और उनको दूसरे देवताकी समान देख कर परम प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उस समय उन्होंने अपनी शक्तिके अनुकूल वाणीसे खड़े हुए गरुड़जीसे कहा श्रीकृष्णने कहा, कि-हे देवताओंकी सेनाके शत्रुओंका मर्दन करने वाले ! हे आकाशचारी पक्षियोंमें श्रेष्ठ ! आपका स्वागत है ! हे विनताहृदयनन्दन ! हे केशवप्रिय ! आप का स्वागत है ॥ ३७ ॥ हे पक्षीरूप रथोंमें श्रेष्ठ ! आप कैशिक के अर्थात् भीष्मकके पिताके घरमें चलिये, हम आज तहाँ पहुँच कर स्वयंवरकी प्रतीक्षा करेंगे ॥ ३८ ॥ तहाँ पर हाथी रथ और

एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैनतेयं महाबलम् । जगामाथ पुरीं कृष्णः कैशिकस्य महात्मनः ॥ ४० ॥ वैनतेयसखः श्रीमान् यादवैश्च महारथैः । विदर्भनगरीं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ॥ ४१ ॥ हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे निवासायोपचक्रमुः । सर्वे शस्त्रायुधधरा राजानो बलशालिनः ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नेव काले तु राजा नयविशारदः । कैशिकस्तत उत्थाय प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥४३॥ अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा स राजा कैशिकः स्वयम् । सत्कृत्य विधिवत् कृष्णं स्वपुरं संप्रवेशयत् ॥ ४४ ॥ पूर्वमेव तु कृष्णाय कारितं दिव्यमन्दिरम् । विवेश सबलः श्रीमान् कैलासं शंकरो यथा । खाद्यपानादिरत्नौघैरर्चितो वासवानुजः ॥४५॥

घोड़ों पर सवारी करने वाले सहस्रों राजाओं को एकत्रित हुए देखोगे ॥ ३९ ॥ महाभुज श्रीकृष्ण महाबली गरुड़जीसे इस प्रकार कह कर महात्मा कैशिकके (पुर) घरकी ओर बढ़े ४० उनके साथ महारथी यादव थे और उनके मित्र गरुड़जी थे, देवकीनन्दन श्रीकृष्णके विदर्भपुरीमें पहुँचने पर (उनके साथके) शस्त्र और आयुधधारी सब राजे प्रसन्न होगए और प्रसन्न होते हुए अपने २ बसनेकी युक्ति करने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वैशम्पायनजीने कहा कि—नीतिशास्त्रविशारद राजा कैशिक परम प्रसन्न हुआ और वह प्रसन्नमनसे उठ कर तहाँ आया ४३ और उसने अपने आप श्रीकृष्णको अर्घ आचमन आदि दिया इस प्रकार उनका सत्कार करके उसने उनका नगरमें प्रवेश कराया ४४ उसने श्रीकृष्णके लिये पहिलेसे ही दिव्य मंदिर बना रक्खा था शंकर जैसे कैलासमें घुसते हैं, उसी प्रकार उस भवन में बलसहित श्रीकृष्ण जी घुस गए, तहाँ पर इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णका खाद्य सामग्री पेय सामग्री और रत्न देकर सत्कार किया गया ॥ ४५ ॥ इस प्रकार (कैशिकके) स्नेहपूर्ण चित्तसे

सुखेन उषितः कृष्णस्तस्य राज्ञो निवेशने । पूजितो बहुमानेन स्नेहपूर्णेन चेतसा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते कृष्णमागतं दृष्ट्वा वैनतेयसहाच्युतम् । बभूवुश्चिंतयाविष्टाः सर्वे नृपतिसत्तमाः ॥ १ ॥ ते समेत्य सभां राजन्राजानो भीमविक्रमाः । मन्त्राय मन्त्रकुशला नीतिशास्त्रार्थवित्तमाः ॥२॥ भीष्मकस्य सभां गत्वा रम्यां हेमपरिष्कृताम् । सिंहासनेषु चित्रेषु विचित्रास्तरणेषु च । निषेदुस्ते नृपवरा देवा देवसभामिव ॥ ३ ॥ तेषां मध्ये महाबाहुर्जरासन्धो महाबलः । बभाषे स महातेजा देवान् देवेश्वरो यथा ॥ ४ ॥ जरासन्ध उवाच । श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा भीष्मकश्च महामतिः । कथ्यमानं

अति आदरपूर्वक पूजा पाते हुए श्रीकृष्ण उस राजाके घरमें परम सुखसे रहे ॥ ४६ ॥ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥

वैशंपायनजीने कहा, कि- इधर सब राजे गरुड़ और अच्युत श्रीकृष्णको आये हुए देख कर चिन्तित होने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! उन भयंकर पराक्रमी नीति शास्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ और सलाह करनेमें प्रवीण राजाओंने मंत्रणा करनेके लिये सभा को (करनेका विचार किया) ॥ २ ॥ फिर जैसे देवता देवसभा में बैठते हैं; तिसी प्रकार वे राजे भीष्मककी सुवर्णके काम वाली रमणीय सभामें जाकर विचित्र गद्दियों वाले विचित्र आसनों पर बैठ गए ॥ ३ ॥ जैसे शिव देवताओंसे भाषण करते हैं, इसी प्रकार उस समय महातेजस्वी महाबली महाभुज जरासंध राजाओंके बीचमें भाषण देने लगा ॥ ४ ॥ जरासंधने कहा था, कि- हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ उदार राजाओं ! और महाबुद्धिमान् भीष्मक जी ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जिस बातको कहता हूँ उसको

गया बुद्ध्या वचनं वदतांम्वरः ।५॥ योऽसौ कृष्ण इति ख्यातो वसुदेवसुतो बली । वैनतेयसहायेन सम्प्राप्तः कुण्डिनं त्विह ६ कन्याहेतोर्महातेजा यादवैरभिसम्वृतः । अवश्यं कुरुत यत्नं कन्या वाप्तिर्यथा भवेत् ॥७॥ यदत्र कारणं कार्यं सुनयोपेतमृद्धिमत् । कुरुध्वं नृपशार्दूला विनिश्चित्य बलाबलम् ॥ ८ ॥ यदा च तौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ । वैनतेयं विना तस्मिन्गोमन्ते पर्वतोत्तमे । यत्कृतं सुमहद्धोरं भवद्भिर्विदितं हि तत् ॥ ९ । वृष्णिभिर्यादवैश्चैव भोजान्धकमहारथैः । समेत्य युद्ध्यमानस्य कीदृशो विग्रहो भवेत् ॥१०॥ कन्यार्थे यतताऽनेन गरुडस्थेन विष्णुना । कः स्थास्यति रणे तस्मिन्नपि शक्रः सुरैः सह ॥ ११ ॥ यदा चास्मै नापि सुता कदाचित् सम्प्रदीयते । ततो ह्ययं बलादेनां नेतुं शक्तः सुरैः सह ॥ १२ ॥पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी

आप सुनिये वसुदेवके बलवान् पुत्र जो श्रीकृष्ण नामसे प्रसिद्ध हैं वह गरुडजीके साथमें कुण्डिनपुरमें आ गए हैं ६ वह महातेजस्वी पुरुष कन्या लेनेके लिये ही यादवोंको अपने साथ लाये होंगे ७ अब हे राजाओं! तुम अपने बलाबलका विचार करके ऐसा कार्य करो जो नीतियुक्त हो और जिससे (अपनी) वृद्धि हो ८ इन बली वसुदेव पुत्रोंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्त पर्वत पर गरुड़जीके न होने पर भी जैसा घमसान मचाया था, वह आपको विदित ही है ॥ ९ ॥ अब जब ये महारथी वृष्णि यादव भोज और अंधकवंशके महारथियोंके साथ मिल कर युद्ध करेंगे, तो न जाने कैसा युद्ध होगा ॥ १० ॥ जब यह विष्णु गरुड़ पर सवार हो कन्याके लिये यत्न करेंगे तब इनके सामने युद्धमें कौन खड़ा होगा, उस समय तो देवताओंको साथ ले इन्द्र भी इनके सामने खड़ा न होसकेगा ॥ ११ ॥ यदि इन्हें कन्या न दी जावेगी तो ये देवताओंको साथ ले बलपूर्वक इस कन्याको लेजानेमें समर्थ हैं १२

त्विषम् । पातालतलसम्मग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १३ ॥
वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना । हिरण्याक्षश्च दैत्येंद्रो
वराहेण निपातितः ॥ १४ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपरा-
क्रमः । अवध्योऽमरदैत्यानामृषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥ १५ ॥ यक्ष
राक्षसनागानां नाकाशे नावनिस्थले । न चाभ्यन्तरराश्यन्होर्न
शुष्केणार्द्रकेण च ॥ १६ ॥ अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रस्त्व-
पराजितः । नारसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा ॥ १७ ॥
वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली । अदित्या गर्भसंभूतो
बलिं वध्वा सुरोत्तमम् ॥ १८ ॥ सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतः
पातालसंश्रयः । कार्तवीर्यो महावीर्यः सहस्रभुजविग्रहः ॥१९॥
दत्तात्रेयप्रसादेन मत्तो राज्यमदेन च । जामदग्न्यो महातेजा रेणु-

सुना है, कि-पृथ्वी पहिले एक समुद्ररूप घोर (जल) के होने पर पातालमें डूबी जारही थी, उस समय जगत्के आदि-कारण इन प्रभावशाली विष्णुने वराहका रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया था, और इन वराहने दैत्यराज हिरण्याक्षको मार डाला था १३-१४ एक महाबली पराक्रमी हिरण्यकशिपु दैत्य था उसको ऋषि गंधर्व किन्नर यक्ष राक्षस और देवता भी नहीं मार सकते थे, तथा वह आकाश पृथ्वी भीतर बाहर रात्रि और दिनमें भी नहीं मारा जासकता था, और उसका सूखी और गीली वस्तुसे भी वध नहीं किया जा सकता था १५-१६ ऐसा वह अपराजित दैत्येन्द्र तीनों लोकोंसे अवध्य था उसको विष्णुने नरसिंहका रूप धारण कर मार डाला था ॥ १७ ॥ यह बलवान् अदितिके गर्भसे कश्यपके वामन नामक पुत्र हुए थे उस समय इन्होंने असुरश्रेष्ठ बलिको सत्य-रज्जुमय पाशोंसे बाँध कर पातालमें भेज दिया था, राजा कार्तवीर्य महाबली था उसके शरीरमें सहस्र भुजाएँ थीं, ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह राज्यके मदसे

कागर्भसम्भवः ॥ २० ॥ त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः । परशुना वज्रकल्पेन सप्तद्वीपेश्वरो नृपः । विष्णुना निहतो भूयश्छशरूपेण हैहयः ॥ २१ इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा । त्रिलोकविजयं वीरं रावणं संन्यपातयत् ॥ २२ ॥ पुरा कृतयुगे विष्णुः संग्रामे तारकामये । षोडशार्धभुजो भूत्वा गरुडस्थो हि वीर्यवान् ॥ २३ ॥ निजघानासुरान् युद्धे वरदानेन गर्वितान् । कालनेमिश्च दैतेयो देवानां च भयप्रदः ॥ २४॥ सहस्रकिरणाभेन चक्रेण निहतो युधि । महायोगबलेनाजौ विश्वरूपेण विष्णुना ॥ २५ ॥ अनेन प्राप्तकालास्ते निहता बहवोऽसुराः । वने वनचरा दैत्या महाबलपराक्रमाः ॥ २६ ॥ निहता बालभावेन प्रलम्बारिष्टधेनुकाः । शकुनिं केशिनं चैव यमलार्जुन-

और दत्तात्रेयके प्रसादसे मग्न होरहा था, उस समय त्रेता और द्वापरकी संधिमें विष्णु रेणुकाके गर्भसे जमदग्निके महातेजस्वी पुत्र बन कर उत्पन्न हुए उन शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विष्णुने इस प्रकार छद्मरूपसे सातों द्वीपोंके ईश्वर उस हैहयवंशी सहस्रभुज को अपने वज्रकी समान फरसेसे मार डाला था ॥ २० ॥ २१ ॥ और इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए दशरथ पुत्र (विष्णुके अवतार) रामने त्रिलोकविजयी रावणको गिरादिया था२२पहिले यह वीर्यवान् विष्णु सत्ययुगमें तारकामय संग्राममें अष्टभुजी मूर्ति धारण कर गरुड़ पर सवार हुए थे२३उस समय इन्होंने युद्धमें गर्वीले बने हुए असुरोंको युद्धमें मार डाला था; और इन्होंने देवताओंको भयभीत करने वाले कालनेमि दैत्यको सहस्र किरणोंवाले सूर्यकी समान आभावाले चक्रसे युद्धमें मार डाला था, इन विश्वरूप विष्णुने युद्धमें महायोगके बलसे जिनका समय समीप आगया था ऐसे बहुतसे महापराक्रमी वनेचर दैत्योंको युद्धमें मार डाला था२६इन्होंने बालभावसे प्रलम्ब अरिष्ट धेनुक पूतना केशी और

कानपि ॥ २७ ॥ नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा । कंसं च बलिनां श्रेष्ठं सगणं देवकीसुतः । निहतद्गोपवेषेण क्रीडमानो हि केशवः । एवमादीनि दिव्यानि छद्मरूपाणि चक्रिणा ॥२९॥ कृतानि तत्र तत्रैव मायया प्रभविष्णुना । तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि भवतां हितकाम्यया ॥ ३० ॥ तं मन्ये केशवं विष्णुं सुराद्यम-सुरान्तकम् । नारायणं जगद्योनिं पुराणं पुरुषं ध्रुवम् ॥ ३१ ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् । अदृश्यं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥३२॥ अनादिमध्यनिधनं क्षरमक्षरशाश्व-तम् । स्वयम्भुवमजं स्थाणुमजेयं सचराचरैः ॥ ३३ ॥ त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं त्रिदशेशारिनाशनम् । इति मे निश्चिता बुद्धिर्जातोऽयं मथुरामधि ॥ ३४ ॥ कुले महति वै राज्ञां विपुले चक्रवर्तिनाम् ।

यमलार्जुनको मार डाला था २७ और इन देवकीपुत्रने कुवलया-पीड़ हाथी चाणूर मुष्टिक और बलियोंमें श्रेष्ठ कंसको भी उस के अनुचरोंसहित मार डाला था २८ इन सबको केशवने गोप का वेष धारण करके मार डाला था इस प्रकार इन प्रभावशाली चक्रवान् पुरुषने अपनी मायासे जहाँ तहाँ कपटके रूप धारण किये हैं, इस लिये मैं आपके हितकी इच्छासे आपसे कहता हूँ, कि—॥२९॥३०॥ अत एव मैं केशवको विष्णु,देवताओंके आदि, असुरोंके लिये यमराज,नारायण, जगत्के उत्पत्तिस्थान, पुराण-पुरुष, अच्युत, सब भूतोंके स्रष्टा, व्यक्त अव्यक्तरूप, सनातन, सब लोकोंसे अदृश्य, सब लोकोंसे नमस्कृत, आदि मध्य और अंतरहित, क्षर और अक्षररूप शाश्वत, स्वयम्भू, अज, स्थाणु और चराचरोंसे अजेय, त्रिविक्रम, तीनों लोकोंके ईश, और देवताओंके ईश्वर इन्द्रके शत्रुओंको नष्ट करने वाले समझता हूँ मेरा यह दृढ़ विचार है, कि—वही यह चक्रवर्ती राजाओंके बड़े भारी कुलमें उत्पन्न हुए हैं क्योंकि—जैसे गरुड़जी क्या किसी

कथमन्यस्य मर्त्यस्य गरुडो वाहनं भवेत् ॥ ३५ ॥ विशेषेण तु कन्यार्थे विक्रमस्थे जनार्दने । कः स्थास्यति पुमानत्र गरुडस्याग्रतो बली ॥ ३६ ॥ स्वयम्वरकृतेनासौ विष्णुः स्वयमिहागतः । विष्णोरागमने चैव महान् दोषः प्रकीर्तितः ॥ ३७ ॥ भवद्भिरनुचिन्त्येदं क्रियतां यदनन्तरम् । वैशम्पायन उवाच । एवं विब्रुवमाणं तं मगधानां जनेश्वरम् ॥३८॥ सुनीथोऽथ महाप्राज्ञो वचनं चेदमब्रवीत् । सुनीथ उवाच । सम्यगाह महाबाहुर्मगधाधिपतिर्नृपः ॥३९॥ समक्षं नरदेवानां यथावृत्तं महाहवे । गोमन्ते रामकृष्णाभ्यां कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ ४० ॥ गजाश्वरथसम्बाधा पत्तिध्वजसमाकुला । निर्दग्धा महती सेना चक्रलाङ्गलवह्निना ४१ तेनायं मागधः श्रीमाननागतमचिन्तयत् । वृत्ते राजसेनायामनु-

---

मनुष्यके वाहन बन सकते हैं ॥ ३१-३५ ॥ जब श्रीकृष्ण कन्याके लिये पराक्रम करने लगेंगे उस समय कौनसा बलवान् पुरुष गरुड़के सामने खड़ा रह सकेगा?॥ ३६ ॥ स्वयंवरके कारण विष्णु अपने आप यहाँ आगए हैं और विष्णुका आगमन बड़ा भारी दोष माना जाता है ॥ ३८ ॥ इन सब बातोंको विचार कर आप जिस कार्यको करना चाहें करें । वैशंपायनजीने कहा, कि-मगधदेशके मनुष्योंके राजा जरासंध इस प्रकार कह रहे थे, इतनेमें ही महाबुद्धिमान् सुनीथ यह बात कहने लगा,सुनीथने कहा,कि-महाभुज मगधाधिपने ठीक बात कही है, गोमन्तपर्वतमें रामकृष्णने सब नरदेवोंके सामने युद्धमें जो दुष्कर कर्म किया था, उसका वृत्तान्त (आपको विदित है) ॥ ३८—४० ॥ उस समय हाथी घोड़े और रथोंसे भरी हुई और पैदल तथा ध्वजाओंसे व्याप्त बड़ी भारी सेना चक्र और लांगलकी आगसे भस्म होगई थी ४१ इसी लिये इन मगधराजने भविष्यकी बात सोची है, यह सब बातें राजसेनामें हुईं पहिली

स्मृत्य सुदारुणम् ॥ ४२ ॥ पदात्योर्युध्यतोस्तत्र बलकेशवयो
र्युधि । दुर्निवार्यतरो घोरो ह्यभवद्वाहिनीक्षयः ॥ ४३ ॥ विदितं
वः सुपर्णस्य स्वागतस्य नृपोत्तमाः । पक्षवेगानिलोद्धूता बभ्रमु-
र्गगनेचराः ॥ ४४ ॥ समुद्राः क्षुभिताः सर्वे चचालाद्रिर्मही
मुहुः । वयं सर्वे सुसन्त्रस्ताः किमुत्पातेऽतिविह्वलाः ॥ ४५ ॥
यदा संनह्य युयुधे आरूढः केशवः खगम् । कथमस्मद्विधः शक्तः
प्रतिस्थातुं रणाजिरे । ४६ ॥ राज्ञां स्वयम्वरो नाम सुमहान्
हर्षवर्धनः । कृतो नरवरैर्धर्मयशोधर्मस्य वै विधिः ॥ ४७ ॥ इदं
तु कुण्डिनगरमासाद्य मनुजेश्वराः । पुनरेवेष्यते क्षिप्रं महा-
पुरुषविग्रहम् ॥४८॥ यदि सा वरयेदन्यं राज्ञां मध्ये नृपात्मजा ।
कृष्णस्य भुजयोर्वीर्यं कः पुमान् प्रसहिष्यति ॥ ४९ ॥ विज्ञापित-

---

दारुण घटनाको स्मरण कर कह रहे हैं ४२ तहाँ पर जब केशव और बलराम पैदल होकर युद्ध कर रहे थे उस समय सेनाका भयंकर क्षय होने लगा और वह कठिनतासे भी नहीं रुका ४३ हे राजाओं ! तुम्हें सुपर्णके आनेकी बात विदित ही है; कि- उनके पंखोंकी वायुसे घबड़ा कर आकाशचारी प्राणी घूम गए थे ४४ समुद्र क्षुब्ध होने लगे थे, और पर्वत तथा पृथिवी बारबार काँपने लगी थी और हम भी सब "यह क्या उत्पात हुआ" कह कर बड़े घबड़ा गए थे ४५ अब यह केशव ऐसे पक्षी पर चढ़ कर युद्ध करेंगे उस समय हम सरीखा पुरुष रणांगणमें कैसे खड़ा रह सकेगा ४६ पहिले श्रेष्ठ मनुष्योंने धर्म और यश की विधिरूप राजाओंके हर्षको बढ़ाने वाले स्वयंवरको रक्खा है ४७ परन्तु हे राजाओं ! अब यह (कृष्ण) कुण्डिन नगरमें आ कर फिर शीघ्र ।से युद्ध कराना चाह रहे हैं ४८ इस समय राजाकी पुत्री यदि श्रीकृष्णको छोड़ कर और किसी राजाका वरण कर लेगी तो श्रीकृष्णकी भुजाओंके वीर्यको कौन सहेगा ४९ यह

मिदं दोषं स्वयम्वरमहोत्सवम् । तदर्थमागतः कृष्णो वयं चैव नराधिपाः ॥ ५० ॥ कृष्णस्यागमनं चैव नृपाणामतिगर्हितम् । कन्याहेतोर्नरेन्द्राणां यथा वदति मागधः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणी-स्वयम्वरे सुनीथवाक्येऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

वैशम्पायन उवाच । इत्येवमुक्ते वचने सुनीथेन महात्मना । करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रोऽभ्यभाषत ॥१॥ दन्तवक्त्र उवाच । यदुक्तं मागधेनात्र सुनीथेन नराधिपाः । युक्तपूर्वमहं मन्ये यदस्माकं वचो हितम् ॥ २ ॥ न च विद्वेषणेनाहं न चाहंकारवादिना । न चात्मविजिगीषुत्वाद्दूषयामि वचोऽमृतम् ॥३॥ वाक्यार्णवमहागाधं नीतिशास्त्रार्थबृंहितम् । क एष निखिलं वक्तुं शक्तो वै राजसंसदि ॥ ४ ॥ किं त्वनुस्मरणार्थेऽहं यद् ब्रवीमि शृणुध्व मे । आगतो वासुदेवेति किमाश्चर्यं नराधिपाः ५

स्वयम्वरके महोत्सवका बड़ा भारी दोष आपको बता दिया, हम राजे और श्रीकृष्ण भी इस स्वयम्वरके लिये ही आये हैं ५० मगधराजके कथनानुसार कन्याके निमित्त कृष्णका और राजाओं का आना अतिकठिन बात है ५१ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ४८

वैशंपायनजीने कहा, कि—महात्मा सुनीथके यह वचन कह चुकने पर करूषदेशके स्वामी वीर राजा दन्तवक्त्रने भाषण दिया १ दन्तवक्त्रने कहा, कि—हे राजाओं ! मगधराजने और सुनीथने हमारा हित करने वाला युक्तियुक्त वचन कहा है, ऐसा मेरा मत है ॥ २ ॥ मैं द्वेषवश वा अहंकारवश वा आत्मविजिगीषु होनेके कारण इस वचनामृतका विरोध नहीं करता हूँ ॥ ३ ॥ वाक्यसमुद्रसे महा अगाध और नीतिशास्त्रसे बसे हुए ऐसे पूर्ण वाक्यको राजसभामें और कौन कह सकता है ? ॥४॥ किन्तु मैं स्मरण दिलानेके लिये एक बात कहता हूँ, उसको आप सुनिये

यथाऽगता वयं सर्वे कृष्णोऽपीह तथाऽऽगतः। किमत्र दोषो गौणयो वा कन्याहेतोः समागताः ॥ ६ ॥ यदस्माभिः समेत्यैक्यात् कृतं गोमन्तरोधनम्। तत्र युद्धकृतं दोषं कथं नो वक्तुमर्हथ ॥ ७ ॥ वनवासे स्थितौ वीरौ कंसस्यामोहहेतुना। देवर्षिवचनाद्राजन् वृन्दावनतटे स्थितौ ॥८॥ तावाहूय वधार्थेन उभौ रामजनार्दनौ। नागेनोद्दीपितौ वीरौ हत्वा नागं विवेशतुः ॥ ९ ॥ ततः स्ववीर्यमाश्रित्य निहतो रङ्गसागरे। गतासुरिव चासीनो मथुरेशः सहानुगः ॥ १० ॥ किमत्र विहितो दोषो येनास्माभिर्वयोधिकैः। उपरोधपरा राजन् वयं सर्वे समागताः ॥११॥ सेनातिवलमालोक्य वित्रस्तौ रामकेशवौ। पुरं बलं समुत्सृज्य गोमन्ते च गतावुभौ

कि-हे राजाओं! यहाँ पर वासुदेव आगए, तो इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है? ॥ ५ ॥ जैसे हम सब आये हैं, वैसे ही कृष्ण भी यहाँ आये हैं, सब कन्याके लियेही आये हैं अतः इसमें गुण वा दोष क्या है? ॥ ६ ॥ हम सबने ही गोमन्त पर्वत पर इकट्ठे होकर घेरा डाला था, यदि उस युद्धमें गड़बड़ी पड़ गई तो उसमें आप (कौनसा मुख मुख लेकर) बोलते हैं ॥ ८ ॥ देवर्षि नारदके वचनसे कंस मोहमें पड़ गया था अत एव उसने वृन्दावनके तट पर रहने वाले इन दोनों जंगली राम और कृष्णको इनका वध करनेके लिये बुला लिया था, जब कुवलयापीड़ने इनको क्रुद्ध कर दिया तब ये दोनों वीर उसको मार रंगस्थलमें घुस गए थे ९ तदनन्तर इन दोनोंने अपने वीर्यके बलसे मरे हुएकी समान (असावधान) बैठे हुए मथुरेशको अनुचरोंसहित रंगस्थलमें मार डाला था १० हे राजन्! हम सब (गोमन्तमें) घेरा डालने वाले राजे उनसे अवस्थामें अधिक राजाओंने यहाँ आकर अपराध ही क्या किया है ११ (उस समय) हमारी सेना को अतिबली देख कर राम और केशव भयभीत होगए थे तब

तत्रापि गतमस्माभिर्हतुं समरयोधिभिः । अप्राप्तयौवनाभ्यां च पदातिभ्यां रणाजिरे ॥ १३ ॥ रथाश्वनरनागेन नास्माभिर्विग्रहः कृतः । कृत्वोपरोधं शैलस्य क्षत्रधर्मेण दीपितः ॥ १४ ॥ दावाग्निमुखमाविश्य दुर्विनीततपस्विनौ । विनीत इति मन्यामः सर्वे क्षत्रियपुङ्गवाः । प्रतियुद्धे कृते त्वेवं दूषयाम जनार्दनम् ॥ १५ ॥ यत्र यत्र प्रयास्यामो वयं तत्र भवेत्कलिः । प्रीत्यर्थं प्रयतिष्यामो कृष्णेन सह भूमिपाः ॥ १६ ॥ इदं कुण्डिनपुरं कृष्णो नागतः कलिहेतुना । कन्यानिमित्तागमने कस्य युद्धं प्रयच्छति ॥ १७ ॥

ही तो वे अपनी सेना और नगरीको छोड़ कर गोमन्तपर्वतमें भाग गए १२ हम समरयोधा पुरुष तहाँ भी उनको मारने गए थे, परन्तु उस समय वसुदेवके दोनों पुत्र तरुण नहीं थे, बालक थे और रणमें पैदल खड़े थे, अत एव उन्हीने हाथी घोड़े और पैदलों वाले हम क्षत्रियोंके साथ युद्ध नहीं किया, तब हमने क्षत्रियधर्मानुसार घेरा डाल कर पर्वतको जला दिया था १३-१४ (तब तो तुमने बड़ा अधर्म किया, इस शंकाको टालनेके लिये दन्तवक्रने कहा, कि–तपस्वियोंका दावाग्निसे जल जाना अच्छा है, अत एव हमने) इन दुर्विनीततपस्वियोंका दावाग्निके मुखमें झोंक दिया था, (इनमें जो दुर्विनीततर है अर्थात् बड़ा खोटा है उसको) सब क्षत्रियपुंगव (इस प्रकार मार कर)विनीत बनाना चाहते थे, परन्तु अब जनार्दनसे युद्ध करना जनार्दनको दूषित करना है (अर्थात् हम उसको उस युद्धमें ठीक कर चुके हैं, परन्तु) ॥ १५ ॥ हम जहाँ २ जावेंगे तहाँ यह उत्पात इसी प्रकार खड़ा होता रहेगा अतः हे राजाओं! अब कृष्णके साथ प्रेम (सन्धि करनेका प्रयत्न करना चाहिये १६ श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरमें युद्ध करनेके लिये नहीं आये हैं कन्याके लिये आने पर वह किसीसे युद्ध क्यों करेंगे ? १७ (पहिले वैरका स्मरण

मर्त्येऽस्मिन् पुरुषेन्द्रोऽसौ न कश्चित् प्राकृतो नरः । देवलोकेषु देवेषु प्रवरः पुरुषोत्तमः ॥१८॥ देवानामपि कर्तासौ लोकानां च विशेषतः । न चैव बालिशा बुद्धिर्न चेर्ष्या नापि मत्सरः ॥१९॥ न स्तब्धो न कृशो नार्तः प्रणतार्तिहरः सदा । एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानापि दैवतम् ॥२०॥ आगतो गरुडेनेह छद्मप्राकाश्यहेतुना । नानास्त्रसहितो याति कृष्णः शत्रुविनाशने ॥२१॥ इमां यात्रां विजानीध्वं प्रीत्यर्थं ह्यागतो हरिः । सहितो यादवेन्द्रैश्च भोजवृष्ण्यन्धकैरिह ॥ २२ ॥ अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा आतिथ्यं च नराधिपाः । करिष्याम वयं सर्वे केशवाय महात्मने ॥२३॥ एवं सन्धानतः कृत्वा कृष्णेन सहिता वयम् । वसामो विगतोद्वेगा

कर शायद वह युद्ध करने लगें, इस शंकाको दूर करनेके लिये कहते हैं, कि-) इस मृत्युलोकमें श्रीकृष्ण पुरुषेन्द्र हैं, कोई साधारण आदमी नहीं हैं, यह पुरुषोत्तम देवलोकमें देवताओंमें भी श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ यह देवता और विशेषतः लोकोंके भी आदिकर्ता हैं, अत एव इनमें क्षुद्रबुद्धि ईर्षा (अक्षमा) और देखजलनापन नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ यह जड़ वा दुर्बल नहीं हैं, यह तो नमने वाले पुरुषोंके दुःखको दूर करनेके लिये सर्वदा उद्यत रहते हैं, यह विष्णु भगवान् देवताओंके भी देवता हैं ॥ २० ॥ अपने अप्रकट रूपको प्रकट करनेके लिये ही भगवान् यहाँ पर गरुड़के साथ आये हैं, क्योंकि-शत्रुओंका विनाश करनेके समय तो यह अनेक अस्त्रोंको साथमें लिये विना नहीं आते हैं २१ यादवेन्द्रोंको और भोज तथा वृष्णिवंशके महारथियोंको साथमें लेकर श्रीकृष्ण यहाँ पर आये,इस समयकी इनकी यात्राको प्रीतिमयी यात्रा समझना चाहिये ॥ २२ ॥ हे राजाओं ! महात्मा केशवके लिये अर्घ आचमन आदि देकर इनका अतिथिसत्कार करना चाहिये ॥ २३ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णसे हम संधि कर

निर्भया विगतज्वराः ॥ २४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दन्तवक्रस्य धीमतः । शाल्वः प्रवदतां श्रेष्ठस्तानुवाच नराधिपान् ॥ २५ ॥ शाल्व उवाच । किं भयेनास्य नः सर्वे न्यस्तशस्त्रा भवामहे । सन्धानकरणाद्धेतोः कृष्णस्य भयशंकिताः ॥ २६ ॥ परस्तवेन किं कार्यं विनिंद्य बलमात्मनः । नैष धर्मो नरेन्द्राणां क्षात्रे धर्मे च तिष्ठताम् ॥ २७ ॥ महत्सु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्धनाः । तेषां कापुरुषा बुद्धिः कथं भवितुमर्हति ॥२८॥ अहं जानामि वै कृष्णमादिदेवं सनातनम् । प्रभुं सर्वामरेन्द्राणां नारायणपरायणम् ॥ २९ ॥ श्रीकुण्ठमजयं लोके चराचरगुरुं हरिम् । सम्भूतं देवकीगर्भे विष्णुं लोकनमस्कृतम् ॥ ३० ॥ कंसराजवधार्थाय भारावतरणाय च । अस्माकं च विनाशाय लोकसंरक्षणाय च ३१

लें तो हम उद्वेग भय और ज्वर (चिंता) रहित होकर रह सकेंगे ॥ २४ ॥ बुद्धिमान् दन्तवक्रके इस वचनको सुन कर वक्ताओंमें श्रेष्ठ शाल्वने उन सब राजाओंसे कहा, कि ॥ २५ ॥ शाल्वने कहा, कि क्या हम सब श्रीकृष्णके भयसे शंकित होकर संधि करनेके लिये अपने शस्त्रोंको रख दें ? ॥ २६ ॥ अपनी शक्तिकी निन्दा कर पराई स्तुति करनेसे क्या कार्य (लाभ) ? क्षत्रियधर्मका पालन करने वाले राजाओंका यह धर्म नहीं है २७ अहो ! आप कुलको बढ़ाने वाले पुरुष बड़े २ राजाओंके वंशमें उत्पन्न हुए हैं, आपमें ऐसी कापुरुषोचित बुद्धि कहाँसे आगई २८ मैं कृष्णको जानता हूँ, वह आदिदेव हैं, सनातन हैं, सब देवताओंके स्वामी हैं और नारायण हैं परायण हैं वैकुण्ठरूप हैं, लोकमें अजय हैं, चराचरके गुरु हैं, हरि हैं, देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए विष्णु हैं, संसार उनको प्रणाम करता है ।२९।३०। वह (पृथ्वी का) भार उतारनेके लिये, कंसराजका वध करनेके लिये, हमारा नाश करनेके लिये और संसारकी रक्षा करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं

अंशावतरणे कृत्स्नं जाने विष्णोर्विचेष्टितम् । संग्राममतुलं कृत्वा विष्णुना सह भूमिपाः ॥ ३२ ॥ चक्रानलविनिर्दग्धा यास्यामो यमसादनम् । तत्त्वं जानामि राजेन्द्राः कालेनायुःक्षयो भवेत् ३३ नाकाले म्रियते कश्चित् प्राप्ते काले न जीवति । एवं विनिश्चयं कृत्वा न कुर्यात् कस्यचिद्भयम् ॥३४॥ स एव भगवान् विष्णुरालोक्य तपसः क्षयम् । निहन्ता दितिजेन्द्राणां यथा कालेन योगवित् ॥ ३५ ॥ बलिं वैरोचनिं चैव बद्ध्वाऽवध्यं महाबलम् । कृतवान् देवदेवेशः पातालतलवासिनम् ॥ ३६ ॥ एवमादीनि वै विष्णोश्चेष्टानि च नराधिपाः । तस्मादयुक्तं भवतां विग्रहार्थं विचारणम् ॥ ३७ ॥ न च संग्रामहेतोर्हि कृष्णस्यागमनं त्विह । यस्य वा कस्य वा कन्या वरयिष्यति तस्य सा । किमत्र विग्रहो

अंशावतार लेनेके विष्णुके सारे विचेष्टितों (कारणों) को मैं जानता हूँ; हे राजाओं ! हम विष्णुके साथ अतुल संग्राम करके, चक्रकी अग्निसे भस्म होकर यमसदनको चले जावेंगे, हे राजेन्द्रों ! इन सब तत्त्वोंको मैं जानता हूँ (परन्तु) काल आने पर ही आयुका विनाश होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ बिना समय आये कोई भी नहीं मरता और समय आने पर कोई बच भी नहीं सकता, इस बातका निश्चय करके किसीका भय न करे ३४ यह भगवान् विष्णु दितिपुत्रोंके तपके क्षयको देख कर समयानुसार उनको मार डालते हैं, क्योंकि—यह योगको जानने वाले हैं ॥ ३५ ॥ इन देवेशने विरोचनके पुत्र अवध्य बलिको बाँध कर पातालमें निकाल दिया था ॥ ३६ ॥ हे राजाओं ! इस प्रकार विष्णुके अनेक प्रकारके कर्म हैं इस लिये आप लोगोंको युद्धकी चिंता करना अनुचित है ॥ ३७ ॥ यहाँ पर श्रीकृष्णका आना संग्राम करनेके लिये नहीं हुआ है, किसीकी कन्या जिसको वर लेती है, वह उसकी ही हो जाती है,

राज्ञां प्रीतिर्भवति नौ ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं कथयमानानां नृपाणां बुद्धिशालिनाम् । न किंचिदब्रवीद्राजा भीष्मकः पुत्रकारणात्॥३९॥ महावीर्यमदोत्सिक्तं भार्गवास्त्राभिरक्षितम् । रणप्रचण्डातिरथं विचिन्त्य मनसा सुतम् ॥ ४० ॥ भीष्मक उवाच । कृष्णं न सहते नित्यं पुत्रो मे बलदर्पितः । नित्याभिमानी च रणे न बिभेति च कस्यचित् ॥४१॥ कृष्णस्य भुजवीर्येण ह्रियते नात्र संशयः । भविष्यति ततो युद्धं महापुरुषविग्रहम् ॥ ४२ ॥ द्वेषी चैवाभिमानी च कुतो जीवति मे सुतः । जीवितं नात्र पश्यामि मम पुत्रस्य केशवात् ॥ ४३ ॥ कन्याहेतोः सुतं ज्येष्ठं पितृणां नन्दिवर्धनम् । कारयिष्ये कथं युद्धं पुत्रेण सह केशवम् ॥ ४४ ॥ स च नारायणो देवो वर इष्टस्तु रुक्मवान् ।

इसमें राजाओंके लड़नेकी कौन बात है इससे तो वे प्रसन्न ही होते हैं ॥ ३८ ॥ वैशंपायनजीने कहा, कि-बुद्धिमान् राजे इस प्रकार बात चीत कर रहे थे, परन्तु उस समय भीष्मक ने बड़ेभारी बल वीर्य वाले, भार्गव (परशुराम) के अस्त्रोंसे रक्षितरणमें प्रचण्ड अतिरथी अ.ने पुत्रकी (बात) का मनमें विचार कर अपने पुत्रके कारण कुछ नहीं कहा ॥ ३९ ॥४० ॥ उस समय भीष्मकने (अपने मनमें) कहा कि—मेरा घमण्डी पुत्र कृष्णको नहीं सहता है, वह सर्वदा अभिमान में भरा रहता है और रणमें किसीसे नहीं डरा करता है ४१ इस (कन्याको) कृष्ण अपनी भुजाओंके वीर्यसे अवश्य ही छीन लेंगे, उस समय बड़े २ पुरुषोंका संहार करने वाला युद्ध होगा ॥ ४२ ॥ उस समय मेरा द्वेषी और अभिमानी पुत्र कैसे जीवित बच सकेगा, मैं देखता हूँ, कि-केशवसे मेरे पुत्रका जीवन नहीं बचेगा ॥४३॥ (हा !) मैं पितरोंके आनन्दको बढ़ाने वाले अपने ज्येष्ठपुत्रको कन्याके लिये केशवसे कैसे लड़ाऊँगा ४४

मूढभावो मदोन्मत्तः संग्रामेष्वनिवर्तकः । नियतं भस्मसाद्याति तूलराशिर्यथाऽनलात् ॥ ४५ ॥ करवीरेश्वरः शूरः शृगालश्चित्र-योधिना । क्षणेन भस्मसान्नीतः केशवेन बलीयसा ॥ ४६ ॥ वृन्दावने वसन् श्रीमान् केशवो बलिना वरः । उद्धृत्यैकेन हस्तेन सप्ताहं धृतवान् गिरिम् ॥४७॥ दुष्करं कर्म संस्मृत्य मनः सीदति मे भृशम् ॥४८॥ नगेन्द्रे सहसागम्य दैवतैः सह वृत्रहा । अभिषिच्याब्रवीत् कृष्णमुपेन्द्रेति शचीपतिः ॥ ४९ ॥ यथा वै दमितो नागः कालियो यमुनाह्रदे।विषाग्निज्वालितो घोरः कालांतकसमप्रभः ॥ ५० ॥ केशी चापि महावीर्यो दानवो हयविग्रहः। निहतो वासुदेवेन देवैरपि दुरासदः ॥ ५१ ॥ सान्दीपनिसुत-

वह तो नारायण देव हैं, और मेरा पुत्र अभिलषित वर पानेके कारण मूढ़ होरहा है, वह मदोन्मत्त है और संग्राममेंसे नहीं लौटा करता है अत एव जैसे रुई अग्निसे भस्म होजाती है तैसे वह भस्म ही हो जायगा ॥ ४५ ॥ इन विचित्र युद्ध करने वाले बलवान् केशवने करवीरपुरके राजा शृगालको क्षण भरमें भस्म कर डाला था ॥ ४६ ॥ बलवानोंमें श्रेष्ठ इन श्रीमान् केशवने वृन्दावनमें निवास करते समय एक हाथसे अचलको उखाड़ कर सात रात तक उसको (अपने एक हाथ पर) रक्खा था ४७ उनके ऐसे दुष्कर कर्मका स्मरण कर मेरा मन बड़ा घबड़ाता है ॥ ४७ ॥सहसा वृत्रासुरनाशक देवराज इन्द्रने और देवताओं ने पर्वत पर आकर इनका अभिषेक कर दिया था, फिर शचीपति इन्द्रने इनसे उपेन्द्र (इन्द्रके छोटे भाई) कहा था ४९ इन्होंने यमुनाजीके तालावमें विषकी अग्निसे प्रज्वलित काल और यम-राजकी समान प्रभा वाले भयंकर कालिय नागका दमन किया था ५० और इन वासुदेवने देवताओंसे भी दुरासद घोड़ेका शरीरधारण करने वाले महावीर्यवान् केशी दैत्यको भी मार

श्चैव चिरनष्टो हि सागरे । दैत्यं पञ्चजनं हत्वा आनीतो यम-
मन्दिरात् ॥ ५२ ॥ गोमन्ते सुमहद्युद्धं बहुभिर्वेष्टिताबुभौ । कृत्वा
वित्रासजननं नागाश्वरथसंक्षयम् ॥ ५३ ॥ गजेन गजवृन्दानि
रथेन रथयोधिनः । सादिनश्चाश्वयोधेन नरेण च पदातिनः ।
जघ्नतुस्तौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ ॥५४॥ न देवासुरगन्धर्वा
न यक्षोरगराक्षसाः । न नागा न च दैत्येन्द्रा न पिशाचा न
गुह्यकाः ॥५५॥ कृतवन्तस्तथा घोरं गजाश्वरथसंक्षयम् । तमनु-
स्मृत्य संग्रामं भृशं सीदति मे मनः ॥ ५६ ॥ न मया श्रुतपूर्वो
वा दृष्टपूर्वः कुतोऽपि वा । तादृशो भुवि मर्त्योऽन्यो वासुदेवात्
सुरोत्तमात् ॥ ५७ ॥ सम्यगाह महाबाहुर्दन्तवक्रो महीपतिः ।

डाला था ५१ और इन्होंने बहुत समय हुआ समुद्रमें डूबे हुए
सान्दीपनिके पुत्रको भी पञ्चजनदानवको मार कर यमराजके
यहाँसे लाकर (अपने गुरु सांदीपनिको) दिया था ५२ इन
दोनोंने बहुतसे (राजाओंसे) घिरे होने पर भी गोमन्तपर्वतमें
हाथी घोड़े और रथोंका संहार कर (मनुष्योंको) डराने वाला
बड़ा भारी युद्ध किया था ५३ उस युद्धमें इन दोनों वसुदेवके
बलवान् पुत्रोंने हाथीसे हाथियोंके झुण्डोंको मारा था, और रथ
उठा कर रथमें बैठ कर लड़ने वाले राजाओंको मारा था, और
सवारोंको घुड़सवारसे मारा था, और पैदलोंको मनुष्यको उठा
उससे मारा था ५४ हाथी घोड़े और रथोंका ऐसा संहार तो न
राक्षस कर सकते हैं,न देवता कर सकते हैं न गन्धर्व कर सकते
हैं, और न यक्ष कर सकते हैं और न सर्प कर सकते हैं और
नाग पिशाच तथा दानव भी ऐसा संहार नहीं कर सकते, उस
संग्रामका स्मरण आने पर मेरा मन बड़ा व्यथित होता है ५५-५६
देवताओंमें श्रेष्ठ वासुदेवकी समान पृथ्वीमें मैंने कोई मनुष्य सुना
भी नहीं फिर देखता तो कहाँ ? ५७ महाभुज राजा दन्तवक्त्रने

सान्त्वयित्वा महावीर्यं सम्विशस्याम यत्नतः ॥ ५८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इति संचिन्त्य मनसा बलाबलविनिश्चयम् । गमनाय मतिं चक्रे प्रसादयितुमच्युतम् ॥ ५९ ॥ चिन्तयानो नरेन्द्रस्तु बहुभिर्नयशालिभिः । सूतमागधवन्दिभ्यो बोधितः स्तुतिमङ्गलैः ॥६०॥ प्रभातायां रजन्यां तु कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः । उपविष्टा नृपाः सर्वे स्वेषु विश्रामवेश्मसु ॥ ६१ ॥ ये विसृष्टास्तु राजानो विदर्भायां नराधिपैः । तैरागम्य स्वभूपेषु रहो गत्वा निवेदितम् ॥ ६२ ॥ श्रुत्वा कृष्णाभिषेकं तु केचिद्धृष्टा नराधिपाः । केचिद्दीनतरा भीता उदासीनास्तथापरे ॥ ६३ ॥ त्रिधा प्रभिन्ना सा सेना नरनागाश्वमालिनी । महार्णव इव क्षुब्धा अभिषेकेण चालिता ॥ ६४ ॥ नृपाणां भेदमालोक्य भीष्मको

यह बात ठीक ही कही, कि महाभुज श्रीकृष्णको समझा कर अपना कर्तव्य पालन कर लें ५८ वैशम्पायनजीने कहा, कि राजा भीष्मकने इस प्रकार मनमें अपने बलाबलका विचार कर श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये उनके पास जानेका विचार किया ५९ राजा भीष्मक इस प्रकार चिन्ता कर रहा था, इतनेमें ही नीतिशास्त्रको जानने वाले बहुतसे सूत मागध और बन्दीगनों ने मंगल और स्तुतिके वचनोंसे उसको जगाना आरंभ कर दिया ६० तदनन्तर जब रात्रि बीत कर प्रभात होगया, तब सब राजे पूर्वान्हकी क्रिया करके अपने २ विश्रामभवनोंमें बैठ गए ६१ राजाओंने विदर्भ नगरीमें जिन राजाओंको छोड़ रक्खा था उन्होंने आन कर अपने राजाओंसे यह सब बातें कहदीं ६२ श्रीकृष्णके अभिषेक (सत्कार) की बात सुन कर किन्हीं राजाओंको हर्ष हुआ कुछ बड़े दीन होगए और कुछ उदासीन रहे ६३ इस प्रकार वह हाथी मनुष्य और घोड़ोंकी माला वाली राजमण्डली अभिषेकसे समुद्रकी समान क्षुब्ध होकर तीन भागों

राजसत्तमः । व्यतिक्रममचिन्त्यं च कृतं नृपतिना स्वयम् ॥६५॥
विचिन्त्य मनसा राजन् दह्यमानेन चेतसा । जगाम नरदेवानां
समाजे प्रतिबोधितुम् ॥ ६६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दूताः सम्प्राप्ताः
क्रथकैशिकौ । लेखमुद्धृत्य शिरसा विनिश्चुस्ते नृपार्णवम् ।६७।
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयं-
वरे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

जनमेजय उवाच । हत्वा कंसं महावीर्यं देवैरपि दुरासदम् ।
नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये नोपविष्टो नृपासने ॥ १ ॥ कन्यार्थे
चागतः कृष्णस्तत्रापि न कृतातिथिः । अपमानमतुलं प्राप्य क्षांत-
वान् केन हेतुना ॥ २ ॥ विनतायाः सुतश्चैव महाबलपराक्रमः ।
स चापि क्षमया युक्तः कारणं किमपेक्षितः । एतदाख्याहि भग-
वान् परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । विदर्भ-

में बँट गई ६४ राजसत्तम राजा भीष्मक अपने किये इस अचिन्त्य व्यतिक्रमसे राजाओंमें भेद पड़ा देख कर अपने मनमें जलता हुआ राजसमाजमें राजाओंके समझानेके लिये पहुँचा इसी समय (इन्द्रके) दूत क्रथ कैशिकके पास पहुँच गए और (इन्द्रके) लेख आज्ञापत्रको देकर राजसमाजमें चले गए ६५-६७
उनञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ४९

जनमेजयने कहा, कि-श्रीकृष्णने देवताओंसे भी दुरासद कंसको मार डाला था, तब भी उन्होंने अपना अभिषेक नहीं करवाया और सिंहासन पर भी अपने आप नहीं बैठे ॥ १ ॥ ऐसे कृष्ण इस समय कन्याके लिये आये थे परन्तु उनका अतिथि-सत्कार नहीं हुआ ऐसा अतुलित अपमान होने पर भी उन्होंने क्षमा क्यों धारण कर रक्खी थी ॥ २ ॥ और विनताके पुत्र भी तो महाबली और पराक्रमी थे वे भी क्षमा धारण करके किस बातकी प्रतीक्षा कर रहे थे, इन सब बातोंका आप वर्णन

नगरीं प्राप्ते वैनतेये सहाच्युते । मनसा चिन्तयामास वासुदेवाय कौशिकः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाश्चर्यं हि नः सर्वान्राजन्यान् प्रवदाम्यहम् । वसुदेवसुते दृष्टे ध्रुवं पापक्षयो भवेत ॥५॥ विशुद्धभावः कृष्णस्य आवयोर्दृष्टतत्त्वतः । अतः पात्रतरः कोऽन्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते६ कृष्णात् कमलपत्राक्षाद्देवदेवाज्जनार्दनात् । तस्यावां किं प्रदास्याव आतिथ्यकरणे नृप ॥ ७॥ पात्रमासाद्य वै राजन् यथा धर्मो न लुप्यते । एवमन्योऽन्यसंचिन्त्य भ्रातरौ क्रथकैशिकौ ।८। स्वं राज्यं दातुकामौ तु जग्मतुः केशवान्तिकम् । देवमासाद्य तौ वीरौ विदर्भनगराधिपौ ॥ ९ ॥ ऊचतुस्तौ महाभागौ प्रणम्य

करिये मुझे बड़ा कुतूहल होरहा है ॥ ३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-(क्रथ और कैशिकके ऊपर कृपालु होनेके कारण उन्हों ने क्षमा धारण कर रक्खी थी) जब श्रीकृष्ण गरुड़जीके साथ विदर्भनगरीमें आए उस समय कैशिकने वासुदेवके संबन्धमें अपने मनमें विचार किया कि-॥४॥हे राजन् ! मैं कृष्णके आश्चर्यरूप अभिषेकको देखनेके लिये राजाओंसे कहूँगा. कि-वसुदेवके पुत्र के देखने पर हमारे पापका अवश्य ही क्षय होजायगा ॥ ५ ॥ हमने श्रीकृष्णका तत्त्व देखा है उनके देखने पर उनका विशुद्ध भाव सब राजाओंमें होजायगा, अतः कमलपत्रकी समान नेत्रों वाले देवदेव जनार्दनसे अधिक तीनों लोकोंमें और कौन पात्र हो सकता है अतः इनका अतिथिसत्कार करनेके लिये क्या वस्तु अर्पण करना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ क्योंकि-ऐसा करना चाहिये, जिससे पात्रके आने पर हमारा धर्म लुप्त न हो, वे दोनों भ्राता क्रथ और कैशिक इस प्रकार आपसमें विचार करके अपने राज्यको देनेकी इच्छासे श्रीकृष्णके पास चले, विदर्भनगरके स्वामी वे दोनों महाभाग वीर पुरुष श्रीकृष्णके पास पहुँचकर भगवानको शिरसे प्रणाम कर कहने लगे, कि-आज आपके

शिरसा हरिम् । अद्यावां सफलं जन्म अद्यावां सफलं यशः । अद्यावां पितरस्तृप्ता देवे चावां गृहागते ॥ १० ॥ चामरं व्यजनं छत्रं ध्वज सिंहासनं बलम् । स्फीतकोशा पुरी चेयमावाभ्यां सुहिता तव ॥ ११ ॥ उपेन्द्रस्त्वं महाबाहो देवेन्द्रेणाभिषिक्त-वान् । आवामिह हि राज्ये त्वामभिषिक्तं ददामि ते ॥ १२ ॥ आवयोर्यत् कृतं कार्यं बहुभिः पार्थिवैरपि । न शक्यतेऽन्यथा कर्तुं जरासन्धेन वा स्वयम् ॥१३॥ शत्रुस्ते मागधो राजा जरासन्धो महाद्युतिः । कथान्ते ब्रुवते नित्यं नृपाणामभयप्रदः १४ सिंहासनमनर्हश्चास्यं पुरं चास्य न विद्यते ॥ कथं राजसमाजेऽस्मिन्नास्यते देवकीसुतः ॥१५॥ कृष्णोऽपि सुमहावीर्यो अभि-मानी महाद्युतिः । न चागमिष्यते ह्यस्मिन् कन्यार्थं च स्वयंवरे १६ पार्थिवेषूपविष्टेषु स्वेषु सिंहासनेषु वै । कथमास्यति नीचेषु आस-

---

हमारे घर आनेपर हमारा जन्म और यश सफल होगया और हमारे पितर तृप्त होगए ॥ ८-१० ॥ अब हम अपना चामर पंखा छत्र ध्वजा सिंहासन सेना धनसम्पन्न पुरी यह सब आप की सेवामें अर्पण करते हैं ॥ ११ ॥ हे महाभुज । आप उपेन्द्र हैं, देवेन्द्रने आपका अभिषेक किया था, अब हम अपने राज्य पर आपका अभिषेक कर आपको अपना राज्य देते हैं ॥१२॥ बहुत से राजा अथवा जरासंध भी हम जिस कार्यको करेंगे उस को न लौट सकेंगे ॥ १३ ॥ मगधराज तुम्हारा शत्रु है और वह महाकान्तिवान् जरासंध राजाओंको अभय देता हुआ बातचीत में कह बैठता है, कि—॥१४॥ श्रीकृष्ण सिंहासन पर बैठनेके पात्र नहीं हैं, क्योंकि इनके पास कोई नगर नहीं है अत एव यह देवकी-पुत्र राजसमाजमें कैसे बैठ सकते हैं ॥ १५ ॥ और महावीर्य-वान् कृष्ण भी तो अभिमानी हैं इस लिये वह कन्याके कारण स्वयंम्बरमें नहीं आवेंगे ॥ १६ ॥ क्योंकि—वह महाकान्तिवान्

नेषु महाद्युतिः ॥१७॥ इति संचिन्त्यमानस्तु श्रुत्वाऽसौ भीष्मको नृपः । आवयोः सह सम्मन्त्र्य विग्रहोपशमार्थिना ॥१८॥ तव विश्रामहेतोर्हि कारितेदं गृहोत्तमम् । देवानामादिदेवोऽसि सर्वलोकनमस्कृतः ॥१९॥ मानुष्ये नरलोकेऽस्मिन् राजेन्द्रत्वं समाचर । सम जे मनुजेन्द्राणां माभूदासनसंकटम् ॥ २० ॥ विदर्भनगरे चैषां राजेन्द्रत्वं विचेष्टय । आस्यतामासने शुभ्रे श्वःप्रभाते महाद्युते ॥ २१ ॥ अधिवासय चात्मानं विधिदृष्टेन कर्मणा । यथागमिष्यन्ति नृपाः करिष्ये देवशासनात् ॥ २२ ॥ एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठं प्रणिपत्य कृताञ्जली । प्रेषयामासतुर्वीरौ रक्तमध्ये नृपैर्वृते ॥२३॥ एवं दूतस्य वचनं यथोक्तं वज्रपाणिना । लिखित्वा

पुरुष, जब सब राजे अपने २ सिंहासनों पर बैठे होंगे तब नीचे आसनों पर कैसे बैठेंगे" ॥ १७ ॥ इस बातको सुन कर राजा भीष्मकने विचार किया और उसने विग्रहको शान्त करनेके लिये हमारे साथ मंत्रणा करके यह उत्तम भवन आपके विश्राम करनेके लिये बनवा दिया है आप देवताओंके आदि देव हैं, सब लोक आपको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ अतः आप मनुष्य लोकमें राजत्व क्या) राजेन्द्रत्वको धारण करिये, ऐसा होने पर मनुष्येन्द्रोंके समाजमें आसनके विषयमें विवाद नहीं उठेगा २० इस लिये आप विदर्भनगरमें रह कर जरासन्ध आदिके राजेन्द्रत्व को विचलित करिये, इस लिये आज आप (राज्याभिषेकके पूर्वाङ्ग) संस्कारको शास्त्रानुसार करिये, फिर हे महाद्युते ! आप कल प्रातःकाल शुभ्र सिंहासन पर बैठना तब देवशासन से अर्थात् पहिले अध्यायमें कहे इन्द्रके संदेशके अनुसार (आप के अभिषेकके समय) राजे यहाँ आवें उसी प्रकारका यत्न मैं करूँगा ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस प्रकार देवश्रेष्ठ श्रीकृष्णसे कह उन को प्रणाम करनेके अनन्तर उन दोनों वीरोंने इन्द्रके उस शास

सुमहातेजाः कैशिकः प्राह शासनम् ॥ २४ ॥ कैशिक उवाच ।
विदितं वो नृपाः सर्वे वैनतेयसहाच्युतः । आगतोऽतिथिरूपेण
विदर्भनगरीं हरिः ॥२५॥ पात्रमालोक्य पात्रोऽयमिति संचिन्त्य
भूपतिः । प्रददौ वासुदेवाय स्वं राज्यं धर्महेतुना ॥२६॥ इदमा-
सनमास्त्वेति भ्रात्रा मे चोदिते ततः । वागुक्ता चाशरीरेण
केनापि व्योमचारिणा ॥ २७ ॥ देवदूत उवाच । न युक्तमासनं
दातुं त्वयासीनं नराधिप । इदमस्यासनं दिव्यं सर्वरत्नविभूषि-
तम् । जाम्बूनदमयं शुभ्रं रचितं विश्वकर्मणा । प्रेषितं देवराजेन
सिंहलक्षणलक्षितम् ॥ २८ ॥ अत्रोपविष्टं देवेशं चराचरनम-
स्कृतम् । अभिषिचन्तु राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवैः सह ॥ ३० ॥

नादेशको राजाओंसे व्याप्त रंगस्थलमें भेज दिया २३ इन्द्रके कहे हुए इन्द्रके दूतके वचनको अपने आप पत्र पर लिख कर महातेजस्वी कैशिकने उस शासनादेशको पढ़ना आरम्भ किया २४ कैशिकने कहा, कि-हे राजाओं ! यह तो आपको विदित ही है. कि-भगवान् श्रीकृष्ण और गरुड़ विदर्भ नगरीमें अतिथिके रूपमें आये हैं २५ राजाने इनको पात्र समझ कर धर्मके कारण अपना राज्य वासुदेवके अर्पण कर दिया है २६ जब मेरे भाईने उनसे कहा था, कि-आप इस आसन पर विराजिये, उस समय किसी आकाशचारीकी आकाशवाणी हुई ॥२७॥ देवदूतने कहा था कि-हे नराधिप ! तुमको अपना बैठा हुआ आसन इनको देना उचित नहीं है, इनके लिये तो इस दिव्य आसनको दो, यह आसन सकल रत्नोंसे विभूषित है, सुवर्णका बना हुआ है, उज्ज्वल है, विश्वकर्माका बनाया हुआ और सिंहोंके लक्षणोंसे लक्षित है, ऐसे इस सिंहासनको देवराजने भेजा है २८-२९ चर और अचर जीवोंसे नमस्कृत इस सिंहासन पर बैठे हुए इन राजेन्द्रका आप बहुतसे राजाओंको साथ लेकर अभिषेक

आगताः कुण्डिननगरे कन्याहेतोर्नराधिपाः । नागमिष्यति यः कश्चित् सोऽस्य वध्यो भविष्यति ॥ ३१ ॥ इमे चैवाष्टकलशा निधीनामंशसम्भवाः । अन्नया राजराजस्य धनेशस्य महात्मनः दिव्याः कांचनरत्नाढ्या दिव्याभरणयोनयः । राजेन्द्रस्याभिषेकार्थमागच्छन्ति नृपैर्वृताः ॥ ३३ ॥ एष शक्रस्य सन्देशः कथितो वो नराधिपाः । लेखेनाहूय तान् सर्वानभिषिंचन्तु केशवम् ॥ ३४ ॥ कैशिक उवाच । इति संनोद्य खस्थोऽसौ देवदूतो गतो दिवम् । दत्त्वासनं च कृष्णाय बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ३५ ॥ तेनाहं नोदयिष्यामि भवद्भिर्ये समागताः । दुर्निवार्यतरं घोरं शक्रस्य स्वयमीरितम् ॥ ३६ ॥ युष्माभिर्दर्शने युक्तमद्भुतं भुवि दुर्लभम् । कलशैरभिषिंचन्तं स्वयमेव नभस्तलात् ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा-

करिये ३० कुंडिननगरमें कन्याके लिये आये हुए सब राजे अभिषेकमें आवें, जो राजा यहाँ पर नहीं आवेगा, वह इनके हाथसे मारा जावेगा ३१ ये राजराज महात्मा कुवेरके निधियों के अंशसे उत्पन्न हुए आठ कलश हैं ३२ ये दिव्य हैं और सुवर्ण रत्नोंसे भरे हुए हैं और इनके आसन भी दिव्य हैं, यह राजेन्द्रके अभिषेकके लिये राजाओंके साथ २ आरहे हैं ३३ हे राजाओं ! यह इन्द्रका संदेशा तुमसे कह दिया, अब इस लेख के अनुसार सब राजाओंको बुला कर आप केशवका अभिषेक करिये ३४ कैशिकने कहा, कि–आकाशमें स्थित देवदूत इस प्रकार कह कर और श्रीकृष्णके लिये बालसूर्यकी समान कान्ति वाले आसनको देकर स्वर्गको चला गया ३५ इस कारण मैं आप आये हुए राजाओंसे शक्रके अपने आप कहे हुए इस दुर्निवार्य कड़े शासनादेशको कहता हूँ ३६ इनके ऊपर आकाश से अपने आप कलशोंसे अभिषेक होगा पृथ्वीमें ऐसा दृश्य दुर्लभ है ३७ इस आश्चर्यको देख कर तुम्हारा पापक्षय अवश्य

ऽश्चर्यं हि नः सर्वो ध्रुवं पापक्षयो भवेत् । स्नापनार्थं च कृष्णाय देवदेवाय विष्णवे ॥ ३८ ॥ आगच्छध्वं नृपश्रेष्ठा न भयं कर्तुमर्हथ । आवयोः कृतसन्धानो युष्मदर्थे जनार्दनः ॥ ३९ ॥ सर्वेषां मनुजेन्द्राणामभयं कुरुते हरिः । विशुद्धभावः कृष्णस्तु आवयोर्दृष्टतत्त्वनः ॥ ४० ॥ मागधस्य विशेषेण न वैरं हृदि दृश्यते । यदत्र कारणं कार्यं तद्भवद्भिर्विचिन्त्यताम् ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवं संचिन्तयामासुर्नृपाः शापभयार्दिताः । भूयः शुश्रुवु राजेन्द्राः केशवाय महात्मने ॥ ४२ ॥ मेघगम्भीरनादेन स्वरेणापूरयन्नभः । वायुना ह्यशरीरेण देवराजस्य शासनात् ॥ ४३ ॥ चित्राङ्गद उवाच । त्रैलोक्याधिपतिः शक्रः प्रजापालनहेतुना । आज्ञापयति युष्माकं नृपाणां हितकाम्यया ॥ ४४ ॥ न युक्तं

होजावेगा, हे श्रेष्ठ राजाओं ! अब तुम देवदेव कृष्णरूप विष्णु को स्नान करानेके लिये चलो, इस समय तुम डरो मत, क्यों कि-तुम्हारे लिये हमने श्रीकृष्णको समझा कर सन्धि कर ली है ३८-३९ भगवान्ने सब राजाओंको अभय (वचन) देदिया है, कृष्णका भाव विशुद्ध है, हम दोनोंने उनका तत्त्व देख लिया है ४० इस समय मागधराजके चित्तमें भी श्रीकृष्णकी ओरसे विशेष वैर प्रतीत नहीं होता है, अतः अब आप जिस कार्यको करना उचित समझते हों उसका विचार करिये ४१ वैशम्पायन ने कहा, कि-तब तो राजा शापके भयसे पीड़ित होकर चिंता करने लगे, कि-महात्मा केशवके विषयमें देवराजके शासनसे फिर आकाशवाणी हुई उन राजेन्द्रोंने सुना कि-मेघकी समान गंभीर शब्दसे आकाशको पूर्ण करती हुई आकाशवाणी होरही है ४२-४३ (आकाशवाणीमें) चित्राङ्गदने कहा, कि त्रिलोकी का राजा इन्द्र प्रजापालनके निमित्त और तुम्हारा हित करनेके लिये तुम राजाओंको आज्ञा देता है, कि-४४ तुम कृष्णके साथ

वसतान्योन्यं कृष्णेन सह वैरिणा । वसध्वं प्रीतिमुत्पाद्य स्वराष्ट्रेषु नृपोत्तमाः ॥ ४५ ॥ प्रणतार्तिहरः कृष्णः प्रतिसेनान्तकोऽनलः । अनेन सह सम्प्रीत्या मोदध्वं विगतज्वराः ॥४६॥ मानुषाणां नृपा देवा नृपाणां देवताः सुराः । सुराणां देवता शक्रः शक्रस्यापि जनार्दनः ॥ ४७ ॥ एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम् । जातोऽयं मानुषे लोके नररूपेण केशवः ॥४८ अजेयः सर्वलोकेषु देवदानवमानवैः । कार्तिकेयसहायस्य अपि शूलभृतः स्वयम् ॥ ४९ ॥ तस्मै देवाधिदेवाय केशवाय महात्मने । अभिषेकं तु सुरैः सार्धं किमिच्छेयमतः परम् ॥ ५० ॥ न चाधिकारो देवानां राजेन्द्रस्याभिषेचने । तेनाहं नाभिषिंचामि सर्वलोकनमस्कृतम् । नृपाणामधिकारोऽयं राजेन्द्रस्य निवेशने ५१ गत्वा यूयं विदर्भायां क्रथकैशिकयोः सह । संचिन्त्य विधि

वैरभाव रख कर (पृथिवीमें) निवास करो, यह उचित नहीं है, हे राजाओं ! तुम श्रीकृष्णसे प्रीति कर अपने २ राज्योंमें रहो ४५ श्रीकृष्ण नमने वालोंके दुःखोंको हर लेते हैं और जो इनके ऊपर सेना चढ़ा लाता है, उसके लिये ये अग्नि और यमराजकी समान होजाते हैं तुम इनके साथ प्रीति सम्पादन कर चिन्तारहित होकर आनन्द करो ॥४६॥ राजा मनुष्योंके देवता हैं, इन्द्र सुरोंका देवता है और जनार्दन इन्द्रके भी देवता हैं और यह देवताओंके भी देवता प्रभु विष्णु नररूपसे मनुष्यलोकमें उत्पन्न हुए हैं ४८ शिवजी कार्तिकेय और तीनों लोकोंके देवता दानव और मनुष्य भी इनको नहीं जीत सकते ॥ ४९ ॥ इन देवाधिदेव महात्मा केशवके अभिषेक करनेसे अधिक और किस वस्तुकी इच्छा होसकती है ५० राजेन्द्रको अभिषेक करनेका देवताओंको अधिकार नहीं है, इसी लिये मैं सब लोकोंसे प्रणाम पानेयोग्य पुरुषका स्वयं अभिषेक नहीं करता हूँ राजेन्द्रके अभिषेक करनेका

हृष्टेन कुरुध्वं नृपसत्तमाः ॥ ५२ ॥ प्रीतिसन्धानकालोऽयमिति
संचिन्त्य वासवः । बोधनार्थं विसृष्टोऽहं युष्माकं मनुजेश्वराः॥५३
विदर्भनगरे कृष्णः श्रावितोऽस्याधिवासनम् । राजेन्द्रत्वाभि-
षेकार्थं राजानौ क्रथकैशिकौ । ताभ्यां सह नृपश्रेष्ठाः कृत्वा सु-
महदुत्सवम् ॥ ५४ ॥ अभिषेकेण सत्कृत्य प्रतिगृह्यास्य दक्षि
णाम् । आगमिष्यथ संहृष्टाः पुनरेव स्वयम्वरम् ॥ ५५ ॥ जरा-
सन्धः सुनीथश्च रुक्मी चैव महारथः । शाल्वः सौभपतिश्चैव
चत्वारो राजसत्तमाः ॥ ५६ ॥ रङ्गस्याशून्यहेतोर्हि तिष्ठन्तु इह
पार्थिवाः । वैशम्पायन उवाच । एवमाज्ञां सुरेशस्य श्रुत्वा
चित्रांगदेरिताम् । गमनाय मतिं चक्रुः सर्व एव नृपोत्तमाः ॥५७
अनुज्ञाता नरेन्द्रेण जरासन्धेन धीमता । भीष्मकं पुरतः कृत्वा

अधिकार राजाओंको ही है ॥ ५१ ॥ आप क्रथ और कैशिक
के साथ विदर्भनगरीमें जाकर शास्त्रानुसार कर्म (अभिषेक)
करिये, हे राजाओं ! यह प्रीति संपादन करनेका समय है, यह
विचार कर उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है५३ विदर्भनगरमें
श्रीकृष्णके अधिवासन(राज्याभिषेकसे पहिले होनेवाला)संस्कार
घोषित कर दिया गया है अतः हे नृपश्रेष्ठों ! तुम क्रथ और
कैशिकके साथ इनका अभिषेक करनेके लिये जाओ और बड़ा
भारी उत्सव करके उनका अभिषेकसे सत्कार करके और उनकी
प्रदक्षिणा करके फिर प्रसन्न होते हुए स्वयम्वरमें चले आना५५
रंगस्थल शून्य न रहे इसलिये जरासंध सुनीथ महारथी रुक्मी
और सौभपति शाल्व ये चार श्रेष्ठ राजे यहीं पर बैठे रहे, वैशं-
पायनजीने कहा, कि– इस प्रकार चित्रांगदकी कही हुई सुरेश
की आज्ञाको सुन कर सब राजाओंने चलनेका विचार
किया ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर राजा जरासंधके अनुमति देने
पर सब राजे भीष्मकको आगे करके अपनी २ सेनाओंको लेकर

प्रयाताः स्वबलौघ ताः ॥ ५८ ॥ भीष्मकश्च महाबाहुः स्वबलेन समन्वितः । जगाम पार्थिवैः सार्धं दह्यमानेन चेतसा ॥ ५९ ॥ यत्र कृष्णो महाबाहुः कैशिकस्य निवेशने । दूरादेव प्रकाशन्ती पताकाध्वजमालिनी ॥ ६० ॥ शुभा देवसभा रम्या स्नानहेतो-रिहागता । दिव्यरत्नप्रभाकीर्णा दिव्यध्वजसमाकुला ॥ ६१ ॥ दिव्याम्बरपताकाढ्या दिव्याभरणभूषिता । दिव्यस्रग्दामकलिला दिव्यगन्धाधिवासिता ॥६२॥ विमानयानैः श्रीमद्भिः समन्तात् परिवारिता । दिव्याप्सरोगणाश्चैव विद्याधरगणास्तथा ।६३। गन्धर्वा मुनयश्चैव किंनराश्च समन्ततः । उपगायन्ति देवेशमंब-रान्तरमाश्रिताः॥ ६४ ॥ स्तुवन्ति मुनयश्चैव सिद्धाश्च परमर्षयः । देवदुन्दुभयश्चैव स्वयमेवानदन् दिवि ॥ ६५ ॥ पञ्चयोनिसमु-

---

चले ॥ ५८ ॥ उस समय महाबाहु भीष्मक भी अपनी सेनाको साथ ले मनमें जलतासा हुआ राजाओंके साथ चला५९भीष्मक जहाँ पर कैशिकके भवनमें श्रीकृष्ण विराजमान थे तहाँ पर पहुँचे तहाँ पर स्नानके निमित्त देवताओंकी शुभ सभा एकत्रित हुई थी,वह पताका ध्वजाओंकी माला वाली सभा दूरसे ही प्रका-शित होरही थी, उसमें दिव्य रत्नोंकी प्रभा फैल रही थी और दिव्य ध्वजाएँ फहरा रहीं थी, और वह दिव्य आभरणोंसे विभूषित होरही थी, और तहाँ बहुतसे हार शोभा देरहे थे और यह सभा दिव्य गंधसे महक रही थी और शोभायमान विमानों से चारों ओरसे छारही थी इस प्रकार खड़े आकाशमें स्थित दिव्य अप्सरायें विद्याधर गंधर्व मुनि और किन्नर तहाँ गान कर रहे थे ॥ ६०-६४ ॥ उस समय महर्षि मुनि और सिद्ध स्तुति कर रहे थें और आकाशमें देवदुन्दुभियें अपने आप बज रही थीं॥ ६५ ॥ और देवता आकाशमें खड़े होकर मंदार पारि-जातक सन्तान कल्पवृक्ष और हरिचन्दन नाम वाले पाँच वृक्षोंसे

स्थानि गन्धचूर्णान्यनेकशः । समन्तात् पात्यमानानि चाकाश-
स्थैर्दिवौकसैः ॥६६॥ स्वयमागत्य देवेन्द्रो देवैः सह शचीपतिः ।
विमानवरमारुह्य सप्रकाशः स्थितोऽम्बरे ॥ ६७ ॥ अष्टौ ये लोक-
पालास्ते स्वासु दिक्षु समास्थिताः । उपगायन्ति नृत्यन्ति स्तु-
वन्ति च समन्ततः ॥ ६ ॥ श्रुत्वा सुतुमुलं नादं सर्व एव नरा-
धिपाः । विस्मयोत्फुल्लनयना विविशुस्ते सभां शुभाम् ॥ ६९॥
कौशिकश्च महाबाहुरुपगम्य नराधिपान् । प्रवेशयामास बली प्रति-
पूज्य यथाविधि ॥ ७० ॥ निवेदिते सुरश्रेष्ठे पार्थिवानां समागमे ।
निर्जगाम हरिः श्रीमान् सर्वमङ्गलपूजितः ॥७१॥ ततोऽम्बरस्थास्ते
दिव्याः कलशाश्चैलकण्ठिनः । सहकारसमायुक्ता ववर्षुर्जलदा
इव ॥ ७२ ॥ दिव्यकाञ्चनरत्नौघैर्दिव्यपुष्पसमन्वितैः । गन्धचूर्ण-
विमिश्रैश्च राजेन्द्रस्याभिषेचने ॥ ७३ ॥ यथोक्तविधिपूर्वेण अभि-

उत्पन्न हुए गन्धके अनेक चूर्णोंको बरसा रहे थे ॥ ६६ ॥ और
तहाँ पर देवताओंको साथमें लेकर शचीपति इन्द्र भी विमानमें
बैठ कर आये थे आकाशमें उनका प्रकाश फैल रहा था ६७
और आठों लोकपाल भी तहाँ अपनी २ दिशाओंमें खड़े हुए गा
रहे थे स्तुति कर रहे थे और चारों ओर नाच रहे थे ॥ ६८ ॥
उस तुमुल नादको सुन कर सब राजाओंके नेत्र विस्मयके कारण
खिल उठे और वह उस शुभ सभामें घुसे ॥ ६९ ॥ उस समय
महाभुज बलवान् कौशिक उनका शास्त्रानुसार सत्कार कर उन
सब राजाओंको राजसभामें प्रवेश कराता जाता था ॥ ७० ॥
जब श्रीकृष्णसे यह निवेदन किया, कि-सब राजसमाज आगया
है, तब सम्पूर्ण मंगलोंसे सुपूजित श्रीमान् कृष्ण बाहर निकले ७१
उस समय आकाशमें स्थित आम और अँगोछे वाले दिव्य
कलशोंमेंसे मेघोंकी समान जल बरसने लगा ॥ ७२ ॥ इस
प्रकार (उन कलशोंने) दिव्य सुवर्ण रत्न और दिव्य पुष्प और

षिच्य जनार्दनम् । दर्शयित्वा नरेन्द्राणां दिव्यैराभरणैः शुभैः ७४
दिव्याम्बरविचित्रैश्च दिव्यगन्धानुलेपनैः । सत्कृत्य विधिवद्राज्ञ उपविष्टो जनार्दनः ॥ ७५ ॥ शुभे देवसभे रम्ये स्नानहेतोरिहागते । उपास्यमानो यदुभिर्विदर्भैश्च नराधिपैः ॥ ७६ ॥
वैनतेयश्च बलवान् कामरूपी नराकृतिः दक्षिणं पार्श्वमाश्रित्य आसनस्थो महाबलः ॥ ७७ ॥ क्रथकैशिकौ च वीरौ तौ वामपार्श्वे तथाऽऽसने । उपविष्टौ महात्मानौ देवस्यानुमते नृपौ ७८
तथैव वामपार्श्वे तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः । सात्यकिप्रमुखा वीरा उपविष्टा महाबलाः ॥७९॥ भास्करप्रतिमे दिव्ये दिव्यास्तरणविस्तृते । सुखोपविष्टं श्रीमन्तं देवैरिव शचीपतिम् ॥ ८० ॥

सुगंधित चूर्णसे मिले पदार्थ बरसा कर राजेन्द्रके अभिषेकके समय भगवान्‌का शास्त्रोक्त अभिषेक करके उन्होंने श्रीकृष्णको अलंकृत किया था, तदनन्तर भगवान् विष्णु आये हुए राजाओं का दिव्य आभरण शुभ और दिव्य वस्त्र और दिव्य गंध तथा चन्दनोंसे शास्त्रानुसार सत्कार करके बैठ गए ॥ ७३-७५ ॥ शुभ्र और रमणीय देवसभामें अभिषेकके लिये श्रीकृष्णके आने पर यादव और विदर्भराजे उनकी उपासना करने लगे ॥ ७६ ॥ उस समय इच्छानुसार रूप धारण करने वाले महाबली गरुड़जी मनुष्यका रूप धारण करके श्रीकृष्णके दाहिनी ओर आसन पर बैठ गए ॥ ७७ ॥ और वीरवर महात्मा क्रथ और कैशिक भगवान्‌की अनुमतिसे उनके बाईं ओर आसन पर बैठ गए ७८ इसी प्रकार महाबली वीर महारथी सात्यकि आदि वृष्णिवंश के और अन्धकवंशके महारथी उनके बाईं ओर बैठ गए ॥७९॥ भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य बिछावन वाले सुवर्णकी समान दिव्य सिंहासन पर सुखपूर्वक बैठे थे, उस समय जैसे देवता इन्द्रको बताते जाते हैं, इसी प्रकार मंत्री (राजाओंको) बताते जाते थे,

सचिवैः श्राविताः सर्वे प्रविष्टास्ते नराधिपाः । यथार्हेण च संपूज्य राजानः सर्वं एव ते ॥ ८१ ॥ सुखोपविष्टास्ते तेषु आसनेषु नराधिपाः । कैशिकस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थवित्तमः ॥ ८२ ॥ पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदताम्वरः । कैशिक उवाच । अविज्ञाता नृपाः सर्वे मानुषोऽयमिति प्रभो ॥८३॥ भवन्तमुपकृद्धानां देव त्वं क्षन्तुमर्हसि । श्रीकृष्ण उवाच । न मे रोषो भवसति एकाहमपि कैशिक ॥८४॥ विशेषेण नरेन्द्राणां क्षत्रधर्मे व्यवस्थिते । योद्धव्यमिति धर्मेण अधर्मो तु पराङ्मुखे ॥ ८५ ॥ तेषां कि हेतुना कोपः कर्तव्यस्त्ववनीश्वराः । यद्गतं तदतिक्रान्तं ये मृतास्ते दिवं गताः ॥ ८६ ॥ एष धर्मो नृलोकेऽस्मिन् जायन्ते च म्रियन्ति

इस प्रकार मंत्रियोंके बतानेपर सब राजे वहाँ पर घुसे, वे राजे उचित रीतिसे श्रीकृष्णका सत्कार करके अपने २ आसनों पर सुखपूर्वक बैठ गए, तदनन्तर वक्ताओंमें श्रेष्ठ और सब शास्त्रों को जानने वाले बुद्धिमान कैशिकने श्रीकृष्णकी यथोचित पूजा कर कहा । कैशिकने कहा, कि–हे प्रभो ! ये सब राजे ज्ञानहीन हैं इस लिये ये आपको मनुष्य समझते थे ॥ ८०—८३ ॥ हे देव ! आपका अपराध करने वाले इन राजाओं पर आप क्षमा करिये श्रीकृष्णने कहा, कि–हे कैशिक ! मेरा क्रोध तो एक दिन भी नहीं रहता है ॥ ८४ ॥ और राजाओं पर तो मैं विशेषतः क्रोध नहीं कर सकता क्योंकि–वह क्षत्रियधर्मका पालन करते रहते हैं, युद्ध करना उनका धर्म है और पराङ्मुख होना अधर्म है ॥ ८५ ॥ अतः अवनीश्वरों ! उनके ऊपर क्रोध किस कारण किया जाय, अब जो बीत गया वह बीत गया और जो मर गए वे स्वर्गमें चले गए ॥ ८६ ॥ मनुष्य उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, यह तो इस मनुष्यलोकका धर्मही है, इस लिये जो राजे मर गए आपको उनका शोक नहीं करना चाहिये,

च । तस्मादशोच्यं भवतां मृतार्थे च नराधिपाः । क्षन्तव्यं रोचतेऽस्माकं वीतवैरा भवन्तु ते ॥ ८७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा नरेन्द्रांस्तानाश्वास्य मधुसूदनः । कैशिकस्य मुखं वीक्ष्य विरराम महाद्युतिः ॥ ८८ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मको नयकोविदः । पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

भीष्मक उवाच । पुत्रो मे बालभावेन न भगिनीं दातुमिच्छति। स्वयंवरे नरेन्द्राणां न चाहं दातुमुत्सहे ॥ १ ॥ अतीव बालभावत्वाद्दातुमिच्छेन्मतिर्मम । एकमेका समालोक्य वरयिष्यति मे मतिः अतः प्रसादयिष्ये त्वां पुत्रदुर्नयहेतुना । प्रसादं कुरु देवेश क्षन्तुमर्हसि मे प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । बालभावेन पुत्रेण

अब तो हमैं क्षमा करना ही अच्छा लगता है अब सब राजाओं को वैर छोड़ देना चाहिये ॥ ८७ ॥ वैशंपायनजीने कहा, कि-महाद्युतिमधुसूदन राजाओंसे इस प्रकार कह कर और उनको आश्वासन देकर कैशिकका मुख देख चुप हो गए ॥ ८८ ॥ इसी समय नीतिशास्त्रचतुर वक्ताओंमें श्रेष्ठ भीष्मकने श्रीकृष्ण की यथोचित पूजा करके एक भाषण दिया ॥ ८९ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥　　छ　　॥

भीष्मकने कहा, कि-मेरा पुत्र बालस्वभाववश अपनी बहिन आपको नहीं देना चाहता और राजाओंके स्वयंवरमें मैं भी आपको कन्या देना ठीक नहीं समझता, क्योंकि-मेरा विचार है, कि-स्वयंवर में कन्या देना बड़ा बालकपन है एकका एकको वरना ही मुझे युक्तियुक्त प्रतीत होता है ॥ १ ॥ २ ॥ अब मैं पुत्रकी दुर्नीतिके कारण आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ, हे देवेश ! अब आप क्षमा करिये हे प्रभो ! अब आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण

चालितं नृपमण्डलम् । यदा भवति वै प्रौढः कीदृशोऽविनयो भवेत् ॥ ४ ॥ सूर्येन्दुसदृशांल्लोकांस्तपसोपार्जितश्रियः । लोकेऽस्मिन्नरदेवानां महाकुलसमुद्भवान् ॥५॥ एकस्यापि नृपस्याग्रे मोहाद्यो वितथं वदेत् । न स तिष्ठति लोकेऽस्मिन्निर्दहेद्यमदण्डविह्नना६ एष धर्मो नरेन्द्राणामिति ते विदितं प्रभो । लोकधर्मं पुरस्कृत्य पुरा गीतं स्वयम्भुवा ॥ ७ ॥ कथं तव सुतस्तेषामग्रतो मनुजेश्वर । वक्तुमर्हति राजेन्द्र वितथं राजसंसदि ॥ ८ ॥ तादृशं रङ्गमतुलं कारयंस्तनयस्तव । कथं त्वया न विज्ञात इति मे संशयो महान् ॥ ९ ॥ आगतानां नरेन्द्राणामनलार्केन्दुवर्चसाम् । यथार्हेण तु संपूज्य आतिथ्यं कृतवानसि ॥१०॥ रथाश्वनरनागानां

ने कहा, कि–तुम्हारे पुत्रने बालकपनसे राजमण्डलीको विचलित कर दिया है, परन्तु उसने प्रौढ होने पर भी यह अविनय कैसे किया (अब तो समझ बूझ कर कार्य करना चाहिये था) ४ महाकुलमें उत्पन्न होनेसे विश्वजित् आदिसे मिलने वाले तपसे उपार्जित लक्ष्मी वाले सूर्य और चन्द्रमाकी समान आभा वाले लोकोंको (झूठ बोलने वाला) यमदण्डकी अग्निसे भस्म कर डालता है ॥ ५ ॥ जो पुरुष एक राजाके सामने भी मोहवश झूँठ बोलता है वह इस लोकमें भी नहीं रह सकता क्योंकि–यमदण्डकी अग्निसे और लोकोंके साथ उसका यह लोक भी भस्म होजाता है अतः वह इस लोकमें भी नहीं रह सकता ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीने पहिले धर्मको आगे करके राजाओंके इस धर्मको पहिले कहा था ७ हे मनुजेश्वर ! उन सबके सामने तुम्हारा पुत्र राजसभामें झूठी बात कैसे कहेगा ८ आपके पुत्रने ऐसा बड़ा भारी राजसमाज जोड़ लिया, फिर भी यह बात पहिलेसे आपसे छिपी कैसे रही, इस बातका मुझे बड़ा संदेह है ९ आपने आये हुए अग्नि सूर्य और चन्द्रमाकी समान कान्ति वाले राजाओंका

विमर्दमतुलं तथा। कथं न ज्ञातवान्राजंस्तव पुत्रस्य चेष्टितम् ११
विषादो न भवेदत्र चतुरंगबलागमे। कथं न ज्ञायते राजन्निति
मे बुद्धिसंशयः ॥ १२ ॥ ममागमनमेवेह प्रायेण न हितं तव।
अतो न कृतमातिथ्यमपात्राय नरेश्वर ॥ १३ ॥ पात्रेभ्यो दीयतां
कन्या मामपास्य नरेश्वर। ममागमनदोषेण कथं कन्यां न
दास्यसे ॥ १४ ॥ कन्याविघ्नं च कुर्वाणो नरके परिपच्यते।
इति धर्मविदैर्गीतं मन्वादिभिर्नरोत्तमैः ॥१५॥अनेनार्थेन प्रविष्टोऽहं
रंगमध्ये विशांपते। विदित्वा न कृतातिथ्यं नरदेव तवालयम्१६
ह्रियाभिभूतो राजेन्द्र पार्थिवोऽहं नराधिप। विदर्भनगरे राजन्

यथोचित सत्कार किया है (अतः यह सब पुत्रका अपराध है ऐसा तुम्हारा कहना झूठ ही है)१०हे राजन् ! तुम्हारे अपने पुत्रकी चेष्टासे हाथी घोड़े रथ और मनुष्योंका अतुलित संहार होजायगा, इस बातको तुमने क्यों नहीं समझा ११ यहाँ पर चतुरङ्गिणी सेनाके आने पर विषाद फैल जावेगा इस बातको आपने क्यों नहीं समझा, इसका हमें बड़ा भारी संदेह है १२ हे नरेश्वर!मेरा यहाँ आना ही तुम्हारे लिये अहितकर होगा इसी लिये हे राजन् ! तुमने मुझ अपात्रका अतिथिसत्कार नहीं किया है ॥ १३ ॥ हे नरेश्वर!तुम मुझे दूर करके पात्रोंको कन्या दो, मेरे आगमनके दोषसे तुम अपनी कन्याको दूसरोंको क्यों न दोगे १४ मनु आदि धर्मवेत्ताओंने कहा है, कि-कन्याके कार्यमें विघ्न डालने वाला नरकमें पड़ा करता है, १५ इसी लिये हे राजन् ! मैं रंगस्थलमें नहीं गया था, हे नरदेव ! मैंने इसी बात को जान कर तुम्हारे घर आकर तुम्हारा अतिथिसत्कार ग्रहण नहीं किय था १६ हे राजन् ! मैंने अपनी सेनाको विदर्भ-नगरमें ठहरा दिया है, इस लिये हे राजन्! मैं राजा होकर भी लज्जित होरहा हूँ(अर्थात् मैं यहाँ विश्राम न कर आपके यहाँ ठहरता

बलनिग्रहहेतुना ॥ १७ ॥ भवद्भ्यां कृतमातिथ्यं कैशिकस्तु प्रियातिथिः । उषितौ स्व यथा स्वर्गे पुरा गरुडकेशवौ ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमेनं ब्रुवाणन्तं कृष्णं वाग्वज्रनोदितम् । श्लक्ष्णवाचाम्बुनाऽऽसिच्य शमितोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १९ ॥ भीष्मक उवाच । प्रसीद देवलोकेश पाहि मां लोकशासन । अज्ञानतमसाविष्टं ज्ञानचक्षुप्रदो भव ॥ २० ॥ मानुष्ये मांसचक्षुष्ट्वादसम्यग्विदिता वयम् । न प्रसिद्ध्यन्ति कर्माणि क्रियतामविचारणात् ॥ २१ ॥ भवन्तं शरणं प्राप्य देवानामपि दैवतम् । सम्यग्भवतु मे दृष्टिः संप्रयान्तु च मे क्रियाः ॥ २२ ॥ अनिष्पन्नानामपि क्रिया नयोपेता विचक्षणाः । फलदा हि प्रकुर्वन्ति महा-

---

तो आपसे पूजा न पानेका अपमान मुझे न सहना पड़ता) १७ फिर भी हमारा अतिथिसत्कार तो हो ही गया, क्योंकि--कैशिक अतिथियों को प्रिय समझता है, (इसके घरमें) हम स्वर्गमें गरुड़ और विष्णुके रहनेकी समान (सुखपूर्वक) रहे हैं १८ वैशंपायनजीने कहा, कि भीष्मकने अग्निकी समान प्रज्वलित वाग्वज्रसे प्रेरित कृष्णको इस प्रकार कहते देख कर उनको मीठी वाणीसे सींच कर शान्त कर दिया ॥ १९ ॥ भीष्मकने कहा, कि- हे देवलोकेश प्रसन्न हूजिये, हे लोकशासन ! मेरी रक्षा करिये, मुझ अज्ञानरूपी अंधकारसे घिरे हुए को ज्ञानरूपी नेत्र के देने वाले बनिये ॥ २० ॥ हम मनुष्य हैं, इसी लिये मांसकी चक्षु होने के कारण हम कुछ का कुछ देखते हैं, अतः हमारे किये हुए कर्म भी ठीक २ सिद्ध नहीं होते हैं, क्योंकि-वे अविचारमय होते हैं ॥ २१ ॥ आप देवताओंके भी देवता हैं आप से पुरुषकी शरणमें आकर मेरी दृष्टि तत्त्ववस्तुको देखने वाली होजाय और मेरी क्रियाएँ भी पूर्ण होजाँय (ऐसा आशीर्वाद दीजिये)२२ विचक्षण पुरुष अनिष्पन्न क्रियाको भी महासेना

सेनापतिर्यथा ॥२३॥भवन्तं शरणं प्राप्य नातिबाधति मे भयम् । यन्मया चिन्तितं कार्यं तद्भवाञ्छ्रोतुमर्हसि ॥ २४ ॥ न दातुमिच्छेत् कन्यां वै पार्थिवेभ्यः स्वयम्वरे । प्रसादं कुरु देवेश न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । वचनेन किमुक्तेन त्वया राजन् महामते । स्वकन्यां दास्यसे नेति कोऽत्र नेता तवानघ ॥ २६ ॥ मां देहीति न चाख्येयं ददस्वेति न मे वचः । रुक्मिण्या दिव्यमूर्तित्वं संबन्धे कारणं मम ॥२७॥ मेरुकूटे पुरा देवैः कृतमंशावतारणम् । तदा निसृष्टा सा पूर्वं गच्छ त्वं पतिना सह ॥ २८ ॥ मानुष्ये कुण्डिनगरे भीष्मकस्यांगनोदरे । जायस्व विपुलश्रोणि मत्यवेद्य च वासवम् ॥ २९ ॥ तेनाहं वः भव-

---

पतिकी समान फल देने वाली कर देते हैं २३ आपकी शरणमें आने पर अब मुझे अधिक भय नहीं लगता है, अब मैंने जिस बातको सोच रक्खा है उसको आप सुनिये २४ मैं अपनी कन्या का स्वयंवरमें दान करना नहीं चाहता, हे देवेश ! आप दया करिये, कोप न करिये २५ श्रीकृष्णने कहा, कि–हे महामते राजन् ! आपसे बहुतसी बाते करनेसे क्या लाभ, आप अपनी कन्या नहीं देंगे,परन्तु उसके लिये हे अनघ ! आपका कोई नेता नहीं बन सकता अर्थात् आपको कौन रोक सकता है ? २६ मैं आपसे यह भी नहीं कहता, कि–"आप मुझे अपनी कन्या न दीजिये और मैं यह भी नहीं कहता, कि–आप अपनी कन्या मुझे दीजिये" रुक्मिणी दिव्य मूर्तिवाली है, इस कारण ही उस का मेरे साथ संबन्ध होगा (इसी लिये मैं क्षमा धारण किये हुए बैठा हूँ) ॥ २७ ॥ पहिले मेरुकूटमें देवताओंने अंशावतार लेनेका निश्चय किया था उस समय (लक्ष्मीसे) कहा गया था, कि–हे विपुलश्रोणि ! तू इन्द्रके ऊपर कृपा करके अपने पति (विष्णु) के साथ मनुष्यका शरीर धारण कर और कुण्डिननगर

च्यामि राजन्नकृतकं वचः । श्रुत्वा स्वयं विनिश्चित्य यद्युक्तं तत्करिष्यति ॥ ३० ॥ रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृतमानुषी । श्रीरेषा ब्रह्मवाक्येन जाता केनापि हेतुना ॥ ३१ ॥ न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयम्वरविधिक्षमा । एका त्वेकाय दातव्या इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३२ ॥ न च तां शक्यसे राजंल्लक्ष्मीं दातुं स्वयम्वरे । सदृशं वरमालोक्य दातुमर्हसि धर्मतः ॥ ३३ ॥ अतोर्थं वैनतेयोऽयं विघ्नकारणहेतुना । आगतः कुण्डिनगरे देवराजेन चोदितः ॥ ३४ ॥ अहं चैवागतो राज्ञां द्रष्टुकामो महोत्सवम् । तां च कन्यां वरारोहां पद्मेन रहितां श्रियम् ॥ ३५ ॥ क्षन्तव्यमिति यत्प्रोक्तं त्वया राजन्ममाग्रतः । युक्तिपूर्वमहं मन्ये

में भीष्मककी स्त्रीके उदरसे उत्पन्न हो । २८ । २९ । हे राजन् ! इसी लिये मैं तुमसे यह बात कहता हूँ वह भी इस बातको सुन कर जो उचित समझेगी उसको करेगी ॥ ३० ॥ हे राजन् ! तुम्हारी रुक्मिणी नाम वाली कन्या साधारण मानुषी नहीं है यह लक्ष्मी है और किसी कारणवश मनुष्योंमें उत्पन्न होगई है ३१ उसके लिये राजाओंका स्वयंवर करना उचित नहीं है, वह तो एक एकको ही देदेनी चाहिये, यही उचित धर्म है ३२ तुम उस लक्ष्मीको स्वयंवरमें किसीको न देसकोगे, तुम्हें तो उसको उस के अनुरूप वर देख कर उसको देदेना चाहिये ३३ इसी लिये देवराजके प्रेरणा करने पर यह गरुड़जी (स्वयंवरमें) विघ्न करनेके लिये कुण्डिन नगरमें आगए हैं ॥ ३४ ॥ और मैं भी राजाओंके महोत्सवको देखनेकी इच्छासे और पद्मरहित लक्ष्मीकी समान उस वरारोहा कन्याको देखनेकी इच्छासे यहाँ आगया हूँ ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! तुमने मेरे सामने जो बातें कही हैं, उस की मुझे क्षमा करना चाहिये, क्योंकि—हे राजन् ! आपने जो बातें कहीं वे चित्तमें दुर्भाव रख कर नहीं कहीं हैं, किन्तु युक्ति

कलुषाय न पार्थिव ॥ ३६ ॥ पूर्वमेव मयाख्यातं येनास्मि विषये तव । आगतः सौम्यरूपेण तेनैव क्षान्तवान् विभो ॥ ३७ ॥ क्षान्तेषु गुणबाहुल्यं दोषापहरणं क्षमा । कथमस्मद्विधे राजन् कलुषो वसते हृदि ॥ ३८ ॥ कुलजे सत्त्वसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि । भवादृशे कथं राजन् कलुषो भुवि वर्तते ॥ ३९ ॥ क्षान्तोऽयमिति मन्तव्यं मम सेनासहागतम् । न चाहं सेनया सार्धं यास्यामि रिपुवाहिनीम् ॥४०॥ अक्षान्तश्चारिसेनायां यास्यामि द्विजवाहने । स्थितः सोमार्कसंकाशान्यायुधानिकरैर्वृतः ॥ ४१॥ मान्योऽस्माकं त्वया राजन् वयसा च पिता समः । पालयस्व पुरीं सम्यक् क्षत्रेषु पितृवद्वस ॥ ४२ ॥ कलुषो नाम राजेन्द्र

करनेके लिये कही हैं ॥ ३६ ॥ हे विभो ! मैं तुम्हारे नगरमें सौम्यरूपसे जिस कारणसे आया हूँ, यह सब मैंने तुमसे पहिले ही कह दिया, अब इसी प्रकार मैं तुम्हें क्षमा कर देता हूँ ॥ ३७ ॥ क्षान्त पुरुषोंमें बहुतसे गुण होते हैं और दोषोंके अपहरण करने का नाम क्षमा है, हे राजन्! फिर हम सरीखे पुरुषोंके हृदयमें कलुषता कैसे रह सकती है३८हे राजन् ! सत्कुलमें उत्पन्न हुए सत्त्वसंपन्न धर्मज्ञ और सत्यवादी आप सरीखे पुरुषोंके हृदयमें भी कलुषता कैसे रह सकती है ॥ ३९ ॥ मैं सेनाके साथमें आया हूँ, अतः मुझे क्षान्त समझना चाहिये, क्योंकि-मैं शत्रुओंकी सेनामें अपनी सेनाको लेकर नहीं घुसता हूँ ॥ ४० ॥ जिस समय मैं अक्षान्त होता हूँ, उस समय मैं शत्रुसेनामें गरुड़ पर सवार हो जाया करता हूँ, उस समय चन्द्रमा और सूर्यकी समान प्रकाश फैलाने वाले आयुध मेरे पास होते हैं ॥ ४१ ॥ हम अपने पिता सत्कार करते हैं, और वे अवस्थामें आपकी समान हैं, इसी लिये आप अपनी पुरीका भली भाँति पालन करिये और क्षत्रियोंमें पिता बन कर रहिये ॥ ४२ ॥ हे राजेन्द्र ! कलुष तो कापुरुषोंमें

वसेत् कापुरुषेषु वै । शूरेषु शुद्धभावेषु कलुषो वसते कथम् ४३
जानीध्वमेषा मे वृत्तिः पुत्रेषु पितृवद्गम् । इमावपि च राजानौ
विदर्भनगराधिपौ ॥ ४४ ॥ आतिथ्यकरणेऽस्माकं स्वराज्यं दत्त-
वानुभौ । तेन दानफलेनास्य दशपूर्वा दिवं गताः ॥ ४५ ॥
भविष्याश्चैव राजानः पुत्रपौत्रा दशावराः । तेपि तत्रैव यास्यन्ति
देवलोकं नराधिपाः ॥ ४६ ॥ अनयोः सुचिरं कालं भुक्त्वा
राज्यमकण्टकम् । मदाभिलापं मोक्षस्य यास्येते निर्वृतिं सुखम् ४७
नरेन्द्राश्च महाभागा येऽभिषेचितुमागताः । कालेन तेपि यास्यन्ति
देवलोकं त्रिविष्टपम् ॥ ४८ ॥ स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि वैन-
तेयसहायवान् । नगरीं मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम् ४९
वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु राजानं भीष्मकं यदुनन्दनः ।
राज्ञश्चैवमुपामन्त्र्य वैदर्भाभ्यां विशेषतः । सभान्निष्क्रम्य देवेशो

रहता है, शुद्धभाव वाले शूर पुरुषोंमें कलुष कहाँसे आया ४३
इस प्रकार मैं निष्कलुष व्यवहार करता हूँ, इसको आप समझ
लें, हम तो पुत्रोंसे पिताकी समान वर्ताव करते हैं और ये विदर्भ
नगरके राजे भी ऐसा ही वर्ताव करते हैं ४४ इन दोनोंने अतिथि-
सत्कार करनेके लिये अपना राज्य भी हमारे अर्पण कर दिया है,
इस दानके फलसे इनके दश पूर्वपुरुष स्वर्गमें पहुँच गए हैं ४५ और
इनके वंशमें दश पीढ़ी तक इनके पुत्र पौत्र जो राजे होंगे वे भी
स्वर्गमें जावेंगे ॥ ४६ ॥ यह दोनों बहुत समय तक अकण्टक
राज्य भोगनेके अनन्तर जब छूटना चाहेंगे तब इनकी मुक्ति हो
जावेगी ॥ ४७ ॥ और जो महाभाग राजे मेरा अभिषेक करने
आये थे, वे सब भी समय आने पर स्वर्गको जावेंगे ॥ ४८ ॥
अब आपका कल्याण हो, मैं अब गरुड़को साथमें ले भोजराज
से पालित रमणीय मथुरापुरीको जाता हूँ ४९ वैशम्पायनजीने
कहा, कि—यदुनन्दन राजा भीष्मकसे इस प्रकार कह कर वह

जगाम रथमन्तिकम् ॥ ५० ॥ ततः प्रहृष्टो राजर्षिर्भीष्मकः किल-
केशवम् । ते सर्वे च महीपाला विषण्णवदनाभवन् ५१ आद्यं
स्वायंभुवं रूपं सुरासुरनमस्कृतम् । सहस्रपात् सहस्राक्षं सहस्र-
भुजविग्रहम् ५२ सहस्रशिरसं देवं सहस्रमुकुटोज्वलम् । दिव्या-
माल्यांवरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ५३ दिव्याभरणसंयुक्तं दिव्या-
नेकोद्यतायुधम् । कृष्णं रक्तारविंदाक्षं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम् ५४
दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । वाङ्मनःकाय-
संयुक्तं स्तोतुमारब्धवांस्तदा ॥ ५५ ॥ भीष्मक उवाच । देवदेव
नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय वै । शाश्वतायादिदेवाय नारायण-
परायण ॥५६॥ स्वयम्भुवे च विश्वाय स्थाणवे वेधसे हि च ।
पद्मनाभाय जटिने दण्डिने जटिलाय च ॥ ५७ ॥ हंसप्रभाय

राजा और विशेषतः वैदर्भोंके साथ सभासे निकल कर रथके
पासको चले ५०उस समय सब राजाओंके मुख उदास होगए
और राजा भीष्मकका मुख प्रसन्न होगया तब उन्होंने आद्य
स्वायंभुवरूप देवता और असुरोंसे नमस्कृत सहस्र चरणों वाले
और अनन्त भुजाओंसे आवृत शरीर वाले अनन्त शिर वाले
और अनन्त मुकुटोंसे उज्ज्वल दिव्य माला और अम्बर (वस्त्र)
धारी और गंधको लगाने वाले दिव्य आभरणोंसे युक्त अनेक
दिव्य आयुधोंको उठाने वाले रक्त कमलकी समान और सूर्य
तथा अग्निकी समान नेत्रों वाले राजेन्द्र श्रीकृष्णको देख
कर उनके चरणोंमें झुक कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम
किया और वाणी मन तथा शरीरसे उनकी स्तुति करने
लगा ॥ ५१-५५ ॥ भीष्मकने कहा, कि उत्पत्ति और मरण-
रहित शाश्वत और आदिदेव देवदेव आपके लिये प्रणाम है,
हे नारायणपरायण ! आपको प्रणाम है ॥ ५६ ॥ स्वयंभु विश्व-
स्वरूप स्थाणु वेधा पद्मनाभ जटाधारी दण्डी जटिल हंसकी

हंसाय चक्ररूपाय वै नमः । वैकुण्ठाय नमस्तस्मै अजाय पर-
मात्मने ॥ ५८ ॥ सदसद्भावयुक्ताय पुराणपुरुषाय च । पुरुषो-
त्तमाय युक्ताय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥ वरदो भव मे
नित्यं त्वद्भक्ताय सुरोत्तम । लोकनाथोऽसि नाथस्त्वं विष्णुस्त्वं
विदितात्मनाम् ॥ ६० ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं स्तुत्वा महा-
देवं नृपाणामग्रतो नृपः । महार्हमणिमुक्ताभिर्वज्रैर्वैदूर्यहासिनम् ॥ ६१
शातकुम्भस्य निचयं कृष्णाय प्रददौ नृपः । पुनश्चक्रे नमस्कारं
वैनतेये महाबले ॥ ६२ ॥ भीष्मक उवाच । नमस्तस्मै खगेन्द्राय
नमो मारुतरंहसे । कामरूपाय दिव्याय काश्यपाय च ते नमः
वैशम्पायन उवाच । इति संक्षेपतः स्तुत्वा सत्कृत्य वरभूषणैः ।
ततो विसर्जयामास कृष्णं कमललोचनम् ॥ ६४ ॥ अनुजग्मु-

समान प्रभा वाले हंसस्वरूप चक्र स्वरूप वैकुण्ठ और अजय
आप परमात्माके लिये प्रणाम है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ सत् और
असद्भावसे युक्त पुराणपुरुष पुरुषोत्तम और निर्गुणात्मक
आपको प्रणाम है ॥ ५९ ॥ हे सुरोत्तम ! मुझ अपने भक्तको
आप सदा वर देते रहिये, हे नाथ ! आप लोकोंके नाथ हैं और
आप विदितात्माओंके लिये विष्णु हैं ॥ ६० ॥ वैशम्पायनजीने
कहा, कि-राजाने इस प्रकार राजाओंके सामने महादेवकी
स्तुति करके बहुमूल्य मणिमुक्ताओंसे वज्र (रत्न) और वैदूर्य-
मणिकी समान हँसने वाले सुवर्णका ढेर श्रीकृष्णको अर्पण
किया, तदनन्तर उसने महाबलवान् गरुड़जीको नमस्कार किया
भीष्मकने कहा, कि-मन और वायुकी समान वेगवाले खगेन्द्रके
लिये प्रणाम है, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले दिव्य
कश्यपपुत्रके लिये प्रणाम है ॥ ६३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा,
कि-इस प्रकार भीष्मकने संक्षेपसे स्तुति करके और श्रेष्ठ
आभूषणोंसे कमलदललोचन श्रीकृष्णका अलंकृत करके भेज

नृपाश्चैव प्रस्थितं वासवानुजम् । प्रतिगृह्य च सत्कारं नृपानामन्त्र्य वीर्यवान् ॥ ६५ ॥जगाम मथुरां कृष्णो द्योतयानो दिशो दश । वैनतेयं पुरस्कृत्य सौम्यरूपं खगोत्तमम् ॥ ६६ ॥ महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः । भेरीपटहनादेन शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ६७ ॥ बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च । सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ॥ ६८ ॥ तुमुलः सुमहानासीन्महामेघरवोपमः । गते कृष्णे महावीर्ये आदाय वरमासनम् सभामादाय देवाश्च प्रययुस्त्रिदशालयम् । महता चतुरङ्गेण बलेन परिवारिताः ॥ ७० ॥ क्रोशमात्रमुपव्रज्य अनुज्ञाते जनार्दने । प्रययुस्ते नृपाः सर्वे पुनरेव स्वयम्वरम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णाभिषेको नाम एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दिया ॥६४॥ उस समय जाते हुए श्रीकृष्णके पीछे राजे चले, तदनन्तर श्रीकृष्ण उस सत्कारको ग्रहण करके और राजाओंसे बात चीत करके दशों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए मथुराको चले, उस समय उनके आगे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ सौम्यरूपमें चले जारहे थे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ उस समय उनके चारों ओर बहुतसे रथ चलरहे थे और भेरी पटह शङ्ख और दुन्दुभियें बज रहीं थीं ॥ ६७ ॥ नाग (हाथी) चिंघाड रहे थे घोड़े हिन हिना रहे थे, शूरवीर सिंहनाद कर रहे थे ॥६८। उस समय महामेघके गरजनेकी समान तुमुल शब्द होने लगा महावीर्यवान् श्रीकृष्णजीके चले जाने पर देवता सभा और श्रेष्ठ आसनको लेकर स्वर्गको चले गए, इधर सब राजे भी अपनी बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेनाको ले श्रीकृष्णके साथ २ चल रहे थे एक कोस आने पर श्रीकृष्णने उनको लौटनेकी आज्ञा दी, तब वे सब राजे स्वयम्वरमें लौट आये ॥ ६९–७१ ॥ ॥ ५१ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रयाते वसुदेवपुत्रे नराधिपा भूषण-भूषितांगाः । सभां समाजग्मु सुरेन्द्रकल्पाः प्रबोधनार्थं गमनो-त्सन्नास्ते ॥ १ ॥ सभागतान् सोमरविप्रकाशान् सुखोपविष्टान् रुचिरासनेषु । समीक्ष्य राजा सुनयार्थवादी जगाद वाक्यं नर-राजसिंहः ॥ २ ॥ स्वयम्वरकृतं दोषं विदित्वा वो नराधिपाः । क्षन्तव्यो मम वृद्धस्य दुर्दग्धस्य फलोदयम् ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमाभाष्य तान् सर्वान् सत्कृत्य च यथाविधि । ततो विसर्जयामास नृपांस्तान् मध्यदेशजान् ॥ ४ ॥ पूर्वपश्चिमजांश्चैव उत्तरापथिकानपि । तेपि सर्वे महेष्वासाः प्रहृष्टमनसो नराः ।५। यथार्हेण च सम्पूज्य जग्मुस्ते नरपुङ्गवाः । जरासन्धः सुनीथश्च

वैशम्पायनजीने कहाकि—वसुदेवजीके पुत्रके प्रयाण करने पर भूषणोंसे भूषित अंग वाले और गमनमें उत्सन्न मनाने वाले इन्द्रकी समान राजे इस सब बातको कहनेके लिये भीष्मककी सभामें पहुँचे १ उस समय नीतिशास्त्रकी बातें करने वाले नर-राजसिंह भीष्मकने सभामें रुचिर आसनों पर बैठे हुए सोम और सूर्यकी समान प्रकाशवान् राजाओंको देख कर भाषण दिया २ (स्वयंवरमें कृष्णविरोधनामक द्वेष विश्वका क्षय कर डालेगा यह समझ कर स्वयंवरके लिये बुलाये हुए राजाओंको भीष्मकने समझाते हुए कहा कि—) हे राजाओं ! स्वयंवरकृतदोष को विचार कर आप मुझ दुर्दग्ध पुरुषके फलोदयको क्षमा करिये ३ वैशम्पायनजीने कहा, कि—इस प्रकार उन सब राजाओंसे भाषण करके और उन सबका शास्त्रानुसार सत्कार करके मध्यदेशके राजाओंको भेज दिया ४ और पूर्व और पश्चिम में उत्पन्न हुए राजाओंको उत्तरापथिकके राजाओंको भी विदा कर दिया, वे भी सब महाधनुर्धर मनुष्य यथायोग्य (भीष्मककी) पूजा करके मनमें प्रसन्न होते हुए चले गए उस समय जरासन्ध

दन्तवक्रश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥ शाल्वः सौभपतिश्चैव महाकूर्मश्च पार्थिवः । क्रथकैशिकमुख्याश्च नृपाः प्रवरवंशजाः ॥ ७ ॥ वेणुदारिश्च राजर्षिः काश्मीराधिपतिस्तथा । एते चान्ये च बहवो दक्षिणापथिका नृपाः ॥ ८ ॥ श्रोतुकामा रहो वाक्यं स्थिता वै भीष्मकान्तिके । तान् वै समीक्ष्य राजेन्द्रः स राजा भीष्मको बली ॥९॥ स्नेहपूर्णेन मनसा स्थितांस्तानवनीश्वरान् । त्रिवर्गसहितं श्लक्ष्णं षड्गुणालंकृतं शुभम् ॥ १० ॥ उवाच नयसंपन्नं स्निग्धगम्भीरया गिरा । भीष्मक उवाच । भवतामवनीशानां समालोक्य नयान्वितम् ॥ ११ ॥ वचनं व्याहृतं श्रुत्वा कृतवान् कार्यमीदृशम् । क्षन्तव्यं भवतां सद्भिर्वयं नित्यापराधिनः ॥१२॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा तु राजा स भीष्मको नयकोविदः । उवाच सुतमुद्दिश्य वचनं राजसंसदि ॥१३॥ भीष्मक उवाच । पुत्रस्य चेष्टामालोक्य त्रासाकुलितलोचनः । मन्ये बाला-

---

सुनीथ वीर्यवान्–दन्तवक्र सौभपति–शाल्व राजा–महाकूर्म क्रथ कैशिक ये श्रेष्ठ वंशोंमें उत्पन्न हुए राजे, राजर्षि वेणुदारि काश्मीरराज ये तथा और भी बहुतसे दक्षिणापथके राजे एकान्तमें बातें सुननेके लिये भीष्मकजीके पास बैठे रहे, बलवान् राजा भीष्मक उन अवनीश्वरोंको देख कर स्नेहपूर्ण चित्तसे षड्गुणोंसे अलंकृत त्रिवर्ग (धर्म अर्थ और कामसहित) नयसंपन्न शुभ वचन स्निग्ध गंभीर वाणीमें कहने लगे, भीष्मकने कहा, कि–आप राजाओं के नीतियुक्त कृष्णस्तुतिरूप वचनको सुन कर मैं ऐसा कार्य कर रहा हूँ आप सज्जन हैं और हम सर्वदा अपराधी हैं, अतः आप हमें क्षमा करें ॥ ५–१२ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–फिर नीतिशास्त्रचतुर राजा भीष्मकने पुत्रको लक्ष्य कर राजसभामें भाषण दिया ॥ १३ ॥ भीष्मकने कहा, कि–पुत्रकी चेष्टाको देख मेरे नेत्र त्रासले व्याकुल होरहे हैं, मैं इन सब राजाओंको बालक

निर्मांल्लोकान् स एष पुरुषः परः ॥ १४ ॥ कीर्तिं कीर्तिमतां श्रेष्ठो यशश्च यशभाग्बली । स्थापिता भुवि मर्त्येस्मिन् स्वबाहुबलमूर्जितम् ॥ १५ ॥ धन्या खलु महाभागा देवकी योषितां वरा । पुत्रं त्रिभुवनश्रेष्ठं कृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ १६ ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् । नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपंकजम् ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं लालप्यमानं तु राजानं राजसंसदि । उवाच श्लक्ष्णया वाचा शाल्वराजो महाद्युतिः ॥१८॥ शाल्व उवाच । अलं खेदेन राजेन्द्र सुताय रिपुमर्दिने । क्षत्रियस्य रणे राजन् ध्रुवं जयपराजयौ ॥ १९ ॥ नियता गति मर्त्यानामेष धर्मः सनातनः । बलकेशवयोरन्यस्तृतीयः कः पुमानिह ॥ २० ॥ रणे योधयितुं शक्तस्तव पुत्रं

समझता हूँ और भगवान् कृष्णको परम पुरुष समझता हूँ १४ वह कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ बलवान् यशस्वी श्रीकृष्ण अपनी कीर्तिको यशको और अपने बलवान् भुजबलको इस मृत्युलोकमें स्थापित करेंगे ॥ १५ ॥ स्त्रियोंमें श्रेष्ठ देवकी अवश्य ही बड़ी भाग्यवती है, क्योंकि—वह त्रिभुवनमें श्रेष्ठकृष्णको अपने गर्भमें धारण कर अब उन कमलपत्रकी समान नेत्रों वाले लक्ष्मीके पुञ्ज देवताओं से अर्चित श्रीकृष्णके मुखकमलको अपने स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे देखा करती है ॥ १६-१७ ॥ वैशम्पायनजीने कहा. कि—उस समय महाकान्तिवान् शाल्वराजने राजसभामें इस प्रकार लल्लो चप्पो करते हुए राजासे कहा ॥ १८ ॥ शाल्वने कहा, कि हे राजेन्द्र ! तुम अपने शत्रुदमन पुत्रके कारण खेद क्यों करते हो, क्योंकि—हे राजन् ! रणमें क्षत्रियकी हार जीत तो निश्चित है ॥ १९ ॥ यह (मरना) तो मनुष्यकी नियत गति है और यह प्राचीन कालका धर्म है, तुम्हारे महाबली पुत्रसे बलराम और केशवके अतिरिक्त और तीसरा कौन पुरुष लड़ सकता है वह महाभुज

महाधनुम् । रथातिरथवृन्दानामेक एव रणाजिरे ॥२१॥ रिपून् बाधयितुं शक्तो धनुर्गृह्य महाभुजः । भार्गवास्त्रं महारौद्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ २२ ॥ सृजतो बाहुवीर्येण कः पुमान् प्रसहिष्यति । अयं तु पुरुषः कृष्णो ह्यनादिनिधनोऽव्ययः ॥ २३ ॥ तं विजेता नृलोकेऽस्मिन्नापि शूलधरः स्वयम् । तव पुत्रो महाराज सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ २४ ॥ विदित्वा देवमीशानं न योधयति केशवम् । अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृप २५ स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह । तप्त्वा सुदारुणं घोरं तपः परमदुश्चरम् ॥ २६ ॥ रुद्रमाराधयामास द्वादशाब्दानयोशनः । पुत्रकामेन मुनिना तोष्य रुद्रात् सुतं वृणोत् ॥ २७ ॥ माथुराणामवध्योऽयं भवेदिति च शंकरात् । एवमस्त्विति रुद्रोपि प्रददौ मुनये सुतम् ॥ २८ ॥ एवं गार्ग्यस्य तनयः श्रीमान् रुद्र-

---

धनुपधारण कर रणांगणमें अकेला ही रथी और अतिरथियोंके समूहको पीड़ित कर सकता है, जब वह देवताओंसे भी दुरासद महारौद्र भार्गवास्त्रको अपनी भुजाओंके वीर्यसे छोड़ेगा उस समय इसको कौन सहेगा, यह श्रीकृष्ण तो उत्पत्ति और मरण-रहित हैं और अच्युत हैं ॥ २०-२३ ॥ इस मनुष्यलोकमें साक्षात् शूलधारी शिव भी उनको नहीं जीत सकते, और हे राजन्! तुम्हारा पुत्र सकल शास्त्रोंके तत्त्वको जानने वाला है ॥ २४ ॥ परन्तु वह इस समय कृष्णको ईशान देवस्वरूप जान कर युद्ध न करे-हे राजन्! परन्तु यवनाधिपति आज उसको रणमें जीतेगा ॥ २५ ॥ वह कालयवन केशवका भी अवध्य है, एक मुनिने पुत्रकी इच्छासे दारुण घोर परम तप करते हुए बारह वर्ष तक लोहेका भक्षण कर रुद्रकी आराधनाकी थी और रुद्रको प्रसन्न कर पुत्र माँगा था ॥ २६ ॥ २७ ॥ और उन्होंने रुद्रसे कहा था, कि-यह पुत्र माथुरोंका अवध्य हो तब रुद्रने भी एवमस्तु

वरोद्भवः । माथुराणामवध्योऽयं मथुरायां विशेषतः ॥ २९ ॥
कृष्णोऽपि बलवानेष माथुरे जातवानयम् । स जेष्यति रणे
कृष्णं मथुरायां समागतः ॥ ३० ॥ मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा
वाचं मयेरिताम् । तत्र दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति ॥ ३१ ॥
वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः ।
कुर्म इत्यब्रुवन् हृष्टा जरासन्धं महाबलम् ॥ ३२ ॥ स तेषां वचनं
श्रुत्वा जरासन्धो महीपतिः । बभूव विमना राजन् ब्रह्मणो
वचनं स्मरन् ॥ ३३ ॥ जरासन्ध उवाच । मां समाश्रित्य पूर्व-
स्मिन्नृपा नृपभयार्दिताः । प्राप्नुवन्तु हृतं राज्यं सभृत्यबलवाह-
नम् ॥ ३४ ॥ इहाहं चोद्यते भूपैः परसंश्रयहेतुना । कन्येव स्व-
पतिद्वेषादन्यं रतिपरायणा ॥ ३५ ॥ अहो सुबलवद्दैवमशक्यं

कह कर मुनिको पुत्र दिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार यह गार्ग्यपुत्र श्रीमान् कालयवन रुद्रके वरसे उत्पन्न हुए हैं, यह मथुरावासियों के लिये अवध्य हैं, और मथुरामें तो यह मारे ही नहीं जा सकते ॥ २९ ॥ यह कृष्ण भी मथुरामें उत्पन्न हुए हैं अत एव कालयवन मथुरामें आकर श्रीकृष्णको जीत लेंगे ॥ ३० ॥ हे राजाओं ! यदि आप मेरी बातको युक्त (ठीक) समझते होओ तो यवनेन्द्रपुरको दूत भेजो ॥ ३१ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—वे सब राजे सौभपतिके वाक्यको सुन कर महाबली जरासन्धसे प्रसन्न होकर कहने लगे, कि—हम इस कार्यको करेंगे ॥ ३२ ॥ राजा जरासन्ध उनकी बातको सुन ब्रह्माजीके वचनका स्मरण कर अनमना होगया ॥ ३३ ॥ जरासन्धने कहा कि-हे राजन् और (कृष्ण)के भयसे डरे हुए राजाओं ! पहिले तुम मेरा आश्रय लेकर अपने खोये हुए राज्यको भृत्य और वाहनोंसहित पालेते थे ॥ ३४ ॥ अब जैसे रतिपरायणा स्त्री अपने पतिसे द्वेष कर जारका आश्रय लेती है—इसी प्रकार

विनिवर्तितुम् । यदहं कृष्णभीतोऽन्यं संश्रयामि बलाधिकम् ३६
नूनं योगविहीनोहं कारयिष्ये पराश्रयम् । श्रेयो हि मरणं मह्यं
न चान्यं संश्रये नृपाः ॥३७॥ कृष्णो वा बलदेवो वा यो वासौ
वा नराधिपाः । हन्तारं प्रतियोत्स्यामि यथा ब्रह्मप्रचोदितः ३८
एषा मे निश्चिता बुद्धिरेतत् सत्पुरुषव्रतम् । अतोऽन्यथा न शक्तोऽहं
कर्तुं परसमाश्रयम् ॥३९॥ भवतां साधुवृत्तानामाबाधं न करोति
सः । तेन दूतं प्रदास्यामि नृपाणां रक्षणाय वै ॥ ४० ॥व्योम-
मार्गेण यातव्यं यथा कृष्णो न बाधते । गच्छन्तमनुचिन्त्यैव प्रेष-
यध्वं नृपोत्तमाः ॥ ४१ ॥ अयं सौभपतिः श्रीमाननलार्केन्दु-
विक्रमः । रथेनादित्यवर्णेन प्रयाति स्वपुरं बली ॥४२॥ यव-
नेन्द्रो यथाऽभ्येति नरेन्द्राणां समागमम् । वचनं च तथाऽस्माभि-

---

राजे मुझे दूसरेका आश्रय लेनेको कह रहे हैं ॥ ३५ ॥ अहा !
प्रारब्धको लौटना अशक्य है, इसी कारण मैं कृष्णसे डरकर
बलमें अधिक दूसरे राजाका आश्रय लेना चाहता हूँ ॥ ३६ ॥
हाय ! मैं उपायरहित होकर दूसरेका आश्रय लूँगा ? इससे
मेरा मर जाना अच्छा है,हे राजाओं ! मैं दूसरेका आश्रय नहीं
लूँगा३७ब्रह्माजीके वाक्यानुसार कृष्ण हो बलदेव हो अथवा और
जो कोई मुझे मारेगा उस शत्रुके सामने मैं युद्ध करूँगा३८यह मेरा
निश्चित विचार है,यही सत्पुरुषोंका व्रत है,इसके विपरीत दूसरेका
आश्रय लेना मेरी शक्ति (प्रकृतिके) के विरुद्ध है ॥ ३९ ॥
परन्तु आपसे सद्गुणी पुरुषोंको श्रीकृष्ण पीडा न देय इस
लिये मैं राजाओंकी रक्षा करनेके लिये दूत देता हूँ ॥ ४० ॥
हे राजाओं ! आकाशमार्गसे जानेपर कृष्ण उसको पीड़ा नहीं
देंगे यह विचार कर दूत आकाशमार्गसे जायगा ॥४१॥ अग्नि
और सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान विक्रम वाले बलवान् सौभपति
आदित्यवर्णके रथमें बैठकर अपने नगरको जाया करते हैं ४२

दूत्ये नः कृष्णविग्रहे ॥ ४३ ॥ वैशम्पायन उवाच । पुनरेवा-
ब्रवीद्राजा सौभस्य पतिमूर्जितम् । गच्छ सर्वनरेन्द्राणां साह्याय्यं
कुरु मानद ॥ ४४ ॥ यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजे-
ष्यति । यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥
एवं सन्दिश्य सर्वांस्तान् भीष्मकं पूज्य धर्मतः । प्रययौ स्वपुरं
राजा स्वेन सैन्येन सम्वृतः ॥४६॥ शाल्वोपि नृपतिश्रेष्ठस्ताभ्यां
सम्पूज्य धर्मतः । जगामाकाशमार्गेण रथेनानिलरंहसा ॥ ४७ ॥
तेपि सर्वे महीपाला दक्षिणापथवासिनः । अनुव्रज्य जरासन्धं
गताः स्वनगरं प्रति ॥ ४८ ॥ भीष्मकः सह पुत्रेण तावुभौ
चिन्त्य दुर्नयम् । स्वे गृहे न्यवसद्दीनः कृष्णमेवानुचिन्तयन् ४९

अब कृष्णके साथ हमारे विरोध होनेको और राजाओंके समा-
गमको हमारे दूत बन कर यह कहें, और इस प्रकारसे बातचीत
करें जिस प्रकार यवनेन्द्र यहाँ आजाय ॥ ४३ । वैशम्पायनजी
ने कहा, कि-तदनन्तर राजा जरासन्धने सौभनगरके बलवान्
स्वामी शाल्वसे कहा, कि-हे मानद ! आप जाइये और सकल
राजाओंकी सहायता करिये ॥ ४४ ॥ यवनेन्द्र जिस प्रकार
आजाय और जिस प्रकार कृष्णको जीत लेय और जिसप्रकार
हम भी सन्तुष्ट हो जाँय तैसी नीति चलना ॥४५॥ राजा जरा-
सन्ध इस प्रकार सब राजाओंसे बात चीत कर और भीष्मक
का धर्मानुसार सत्कार करके अपनी सेनाको साथमें ले अपने
नगरको चला गया ॥ ४६ ॥ नृपतिश्रेष्ठ शाल्व भी उनकी धर्म-
पूर्वक पूजा करके पवनगामी रथमें बैठ आकाशमार्गसे चला ४७
और दक्षिणापथमें रहने वाले वे सब राजे भी जरासन्धके पीछे
जाकर अपने नगरको चले गए ॥ ४८ ॥ भीष्मक और उस
का पुत्र उन दोनों क्रथ कैशिकोंका और भीष्मक अपने पुत्रकी
दुर्नीतिका भी विचार कर अपने घरमें सुखपूर्वक नहीं रह

विदिता रुक्मिणी साध्वी स्वयम्वरनिवर्तनम् । कृष्णस्यागमना द्धेतोर्नृपाणां दोषदर्शनम् ॥ ५० ॥ गत्वा तु सा सखीमध्ये उवाच व्रीडिताननो । न चान्येषां नरेन्द्राणां पत्नी भवितुमुत्सहे । कृष्णात् कमलपत्राक्षात् सत्यमेतद्वचो मम ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरो नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः । ५२ ॥

वैशम्पायन उवाच । यवनानां बलोदग्रः स कालयवनो नृपः । बभूव राजा धर्मेण रक्षिता पुरवासिनाम् ॥ १ ॥ त्रिवर्गविदितः प्राज्ञः षड्गुणानुपजीवकः । सप्तव्यसनसम्मूढो गुणेष्वभिरतः सदा ॥२॥ श्रुतिमान् धर्मशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः । सांग्रामिकविधिज्ञश्च दुर्गलाभानुसारणः ॥ ३ ॥ शूरोऽप्रतिवलश्चैव मन्त्रिप्रवरसेवकः । सुखासीनः सभां रम्यां सचिवैः परि-

---

सका ४९ साध्वीरुक्मिणीने भी सुना कृष्णके आगमनके कारण स्वयंवर हट गया है और राजाओंमें भी गड़बड़ी पड़ गई है ५० उस समय उसने अपने लजीले मुखसे सखियोंके बीचमें कहा कि मैं कमलपत्राक्ष श्रीकृष्णके अतिरिक्त और राजाओंकी पत्नी बनना नहीं चाहती यह मेरा वचन सत्य है ५१ बावनवाँ अध्याय समाप्त ५२

वैशम्पायनजीने कहा, कि—यवनोंमें बलवान् राजा कालयवन धर्मपूर्वक अपने पुरवासियोंकी रक्षा करता था १ वह धर्म अर्थ और काम मोक्षको जानने वाला था और छः गुणोंसे अपना आजीवन चलाता था, सात व्यसनोंसे मूढ़ (अनजान) रहता था और गुणोंसे सदा प्रेम करता रहता था २ श्रुति जानने वाला धर्मशील सत्यवादी जितेन्द्रिय था और संग्रामकी विधिको जानने वाला था, और जिस प्रकार दुर्ग मिले उस प्रकार अनुसरण (धावा) किया करता था ३ शूर था, उसके सामने किसीका

वारितः ॥ ४ ॥ उपास्यमानो यवनैरात्मविद्भिर्विपश्चितैः । विवि-
धाश्च कथा दिव्याः कथ्यमानाः परस्परम् ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नेव
काले तु दिव्यगन्धवहोऽनिलः । ववौ मदनाबोधं चकार सुख-
शीतलः ॥ ६ ॥ किंस्विदित्येकमनसः सभायां ये समागताः ।
उत्फुल्लनयनाः सर्वे राजा चैवावलोक्य सः ॥ ७ ॥ अपश्यन्त
रथं दिव्यमायान्तं भास्करोपमम् । शातकुम्भमयैः शुभ्रै रथांगै-
रुपशोभितम् ॥ ८ ॥ दिव्यरत्नप्रभाकीर्णं दिव्यध्वजपताकिनम् ।
वाहितं दिव्यतुरगैर्मनोमारुतरंहसैः ॥ ९ ॥ चन्द्रभास्करबिम्बानि
कृत्वा जाम्बूनदेन तम् । रचितं वै विश्वकृता नागाग्रनरभूषितम्
रिपूणां त्रासजननं मित्राणां हर्षवर्धनम् । दक्षिणादिशमायान्तं

वल काम नहीं देता था और श्रेष्ठ २ मंत्री उसकी सेवा किया
करते थे ऐसा राजा शाल्व अपने मंत्रियोंसे घिरा हुआ सभामें
सुखपूर्वक बैठा था ४ उस समय आत्मवेत्ता विद्वान् यवन पर-
स्पर अनेक प्रकारकी दिव्य कथाएँ कह कर उसकी उपासना
कर रहे थे ५ इसी समय दिव्य सुगंध वाला पवन चलने लगा
और वह सुखशीतल वायु मदनको जगाता हुआ बहने लगा ६
तब तो सभामें आये हुए सज्जन एकचित्त होकर विचारने लगे,
कि-यह क्या है फिर राजा और सब सज्जनोंके नेत्र भी उस
को देख कर खिल उठे ७ उन्होंने देखा, कि-सूर्यकी समान
तेजस्वी दिव्य रथ आरहा है उसके रथांग सुवर्णसे मढ़े हुए होने
के कारण शोभा पारहे थे ८ वह दिव्य रत्नोंकी प्रभासे छा रहा
था और उसमें दिव्य ध्वजाएँ और पताकायें लग रहीं थीं और
उसको मन और वायुकी समान वेग वाले दिव्य घोड़े खेंच
रहे थे ९ विश्वकर्माने उसमें सुवर्णके चन्द्रमा और सूर्यके बिम्ब
बना दिये थे और वह श्रेष्ठ व्याघ्रचर्मसे विभूषित था १० वह
शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करता था और मित्रोंके हर्षको

रथं पररथारुजम् ॥ ११ ॥ तत्रोपविष्टं श्रीमन्तं सौभस्य पति-
मूर्जितम् । दृष्ट्वा परमसंहृष्टश्चार्घं पाद्येति चासकृत् ॥१२॥ उवाच
यवनेन्द्रस्य मन्त्री मन्त्रविदाम्वरः । तत्रोत्थाय महाबाहुः स्वयमेव
नृपासनात् ॥ १३ ॥ प्रत्युद्गम्यार्घ्यमादाय रथावतरणे स्थितः ।
शाल्वोपि च महातेजा दृष्ट्वा राजानमागतम् ॥ १४ ॥ मुदा पर-
मया युक्तं शक्रप्रतिमतेजसम् । अवतीर्य सुविश्रब्ध एक एव रथो-
त्तमात् ॥ १५ ॥ विवेश परमं प्रीतो मित्रदर्शनलालसः । दृष्ट्वा-
ऽर्घमुद्यतं राजा शाल्वो राजर्षिसत्तमः ॥ १६ ॥उवाच श्लक्ष्णया
वाचा नार्घार्होऽस्मि महाद्युते । दूतोहं मनुजेन्द्राणां सकाशाद्भवतो-
न्तिकम् ॥ १७ ॥ प्रेषितो बहुभिः सार्धं जरासन्धेन धीमता । तेन
मन्ये महाराज नार्घार्होऽस्मीति राजसु ॥१८॥ कालयवन उवाच ।

बढ़ाता था दक्षिणदिशाकी ओरसे आरहा था और वह रथ शत्रुओंके रथोंको तोड़ डालता था ॥ ११ ॥ मंत्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ यवनेन्द्रके मंत्रीने उसमें श्रीमान् बलवान् सौभपतिको देख कर बड़ा हर्ष प्रकट किया और बारंबार अर्घ और पाद्यके लिये कहने लगा, उस समय महाभुज राजा स्वयं ही सिंहासन परसे उठा ॥ १२ ॥ १३ ॥ और उठ कर अर्घ ले रथसे उतरनेके स्थान पर आकर खड़ा होगया, तब तो महातेजस्वी शाल्व भी परम प्रसन्न होते हुए और इन्द्रकी समान तेजस्वी राजाको देख कर विश्वस्त होकर अपने श्रेष्ठ रथ परसे उतर पड़ा ॥ १४ ॥ १५ ॥ और मित्रके दर्शनकी लालसासे परम प्रसन्न होता हुआ उसके पास गया, राजर्षिसत्तम शाल्वने अर्घको तयार देख कर मधुर वाणीसें कहा, कि-हे महाद्युते ! मैं अर्घके योग्य नहीं हूँ, क्योंकि-मैं इस समय राजाओंका दूत हूँ, बुद्धिमान् जरासन्धने और बहुतसे राजाओंने मुझे आपके पास भेजा है, इस लिये हे महाराज ! (इस समय) मैं राजाओंके बीचमें अपनेको अर्घका पात्र

जानाम्यहं महाबाहो दौत्येन त्वामिहागतम् । साहित्ये नरदेवानां प्रेषितो मागधेन वै ॥ १९ ॥ तेन त्वामर्चये राजन् विशेषेण महामते । अर्घपाद्यादिसत्कारैरासनेन यथाविधि ॥ २० ॥ भवत्यभ्यर्चिते राज्ञां सर्वेषामर्चितं भवेत् । आस्यतामासने शुभ्रे मया सार्धं जनेश्वर ॥ २१ ॥ वैशम्पायन उवाच । सहरतालिंगनं कृत्वा पृष्ट्वा च कुशलामयम् । सुखोपविष्टौ सहितौ शुभे सिंहासने स्थितौ ॥ २२ ॥ कालयवन उवाच । यद्बाहुबलमाश्रित्य वयं सर्वे नराधिपाः । वसामो विगतोद्वेगा देवा इव शचीपतम् ॥ किमसाध्यं भवेदस्य येनासि प्रेषितो मयि । वद सत्यं वचस्तस्य किमाज्ञापयति प्रभुः । करिष्ये वचनं तस्य अपि कर्म सुदुष्करम् २४

नहीं समझता ॥ १७-१८ ॥ कालयवनने कहा, कि—हे महाभुज ! मैं जानता हूँ, कि—यहाँ आप दूत बन कर आये हैं और मगधराजने आपको सहायता करनेके लिये यहाँ भेजा है ॥ १९ ॥ हे महाबुद्धिमान् राजन् ! इस लिये मैं शास्त्रानुसार अर्घ पाद्य और आसन देकर आपकी और भी अधिक पूजा करूँगा २० क्योंकि आपकी पूजा करने पर सब राजाओंकी पूजा होजावेगी, इस लिये हे जनेश्वर ! आप मेरे साथ शुभ्र आसन पर विराजमान हूजिये ॥ २१ ॥ वैशम्पायनजीने कहा कि—तब उन्होंने हाथ मिलाये और कुशलसमाचार बूझा फिर वे दोनों सुखपूर्वक शुभ सिंहासन पर बैठ गए ॥ २२ ॥ कालयवनने कहा, कि—जैसे देवता इन्द्रके भुजबलका आश्रय ले कर उद्वेगरहित होकर निवास करते हैं, ऐसे ही हम सब राजे भी जिनके भुजबलका आश्रय लेकर उद्वेगरहित रहते हैं ॥ २३ ॥ उनके लिये क्या असाध्य होसकता है ऐसे राजाने आपको मेरे पास भेजा है अब तुम सत्य २ बता दो, हमारे प्रभुने क्या आज्ञा दी है, मैं उनकी आज्ञानुसार दुष्कर कामोंको भी करूँगा ॥ २४ ॥ शाल्वने कहा,

शाल्व उवाच । यथा वदति राजेन्द्र मगधाधिपतिस्तव । तथाऽहं संप्रवक्ष्यामि श्रूयतां यवनाधिप ॥ २५ ॥ जरासन्ध उवाच । जातोऽयं जगतां बाधी कृष्णः परमदुर्जयः । विदित्वा तस्य दुर्वृत्तमहं हन्तुं समुद्यतः ॥ २६ ॥ पार्थिवैर्बहुभिः सार्धं समग्रबलवाहनैः । उपरुध्य महासैन्यैर्गोमन्तमचलोत्तमम् ॥२७॥ चेदिराजस्य वचनं महार्थं श्रुतवानहम् । यदा तयोर्विनाशाय हुताशनमयोजयम् ॥ २८ ॥ ज्वालाशतसहस्राढ्यं युगान्ताग्निसमप्रभम् । दृष्ट्वा रामो गिरिः कूटादाप्लुतो हेमतालधृक् ॥ २९ ॥ विनिपात्य महासेनां मध्ये सागरसन्निभाम् । आजघान दुराधर्षो नराश्वरथदन्तिनाम् ॥ ३० ॥ सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं विकृष्याकृष्य लांगलम् । नरनागाश्ववृन्दानि मुशलेन व्यपोथयत् ॥ ३१ ॥

कि—हे राजेन्द्र ! मगधराजने तुमसे जो बात कही है, हे यवनाधिप ! उसको मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥ २५ ॥ जरासन्धने कहा है, कि-कृष्ण परमदुर्जय है और जगत्को पीड़ित कर रहा है उसके इस दुर्वृत्तको जान कर मैं उसे मारनेके लिये तयार होगया था ॥ २६ ॥ उस समय मैंने बहुतसे राजाओंको साथ लिया उनके साथमें उनकी पूरी २ सेना और वाहन थे उस समय मैंने गोमन्त नामक श्रेष्ठ पर्वतको बड़ी सेनाओंसे घेर लिया ॥ २७ ॥ उस समय चेदिराजके तत्त्वमय वचनको सुन कर मैंने उनको विनष्ट करनेके लिये (पर्वतमें) अग्नि लगा दी ॥ २८ ॥ उस समय बलराम अग्निको सहस्रों ज्वालाओंसे प्रलयकालकी अग्निकी समान बढ़ता हुआ देख कर सुवर्णके तालको ग्रहण कर उस पर्वत परसे सागरकी समान बड़ीभारी सेनाके मध्यमें कूद पड़े, फिर वह दुर्धर्ष राम सरकते हुए सर्पेन्द्रकी समान अपने लांगलको उठा कर हाथी रथ और घोड़े तथा मनुष्योंको मारने लगे और मनुष्य हाथी और घोड़ोंकी भाँगोंको मूसलसे कुचलने

गजेन गजमास्फाल्य रथेन रथयोधिनम्। हयेन च हयारोहं पदातेन पदातिनम्॥ ३२॥ समरे स महातेजा नृपार्कशतसङ्कुले। विचरन् विविधान् मार्गान्निदाघे भास्करो यथा॥ ३३॥ रामादनन्तरं कृष्णः प्रगृह्यार्कसमप्रभम्। चक्रं चक्रभृतां श्रेष्ठः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा॥३४॥ प्रविचाल्यं महावीर्यः पादवेगेन तं गिरिम्। शत्रुसैन्ये.पपातोच्चैर्यदुवीरः प्रतापवान्॥ ३५॥ प्रनृत्यन्निव शैलेन्द्रस्तोयधाराभिषेचितः। घूर्णमानो विवेशोर्वीं विनिर्वाप्य हुताशनम्॥ ३६॥ आदीप्यमानशिखरादवप्लुत्य जनार्दनः। जघान वाहिनीं राजंश्चक्रव्यग्रेण पाणिना।। विक्षिप्य विपुलं चक्रं गदापातादनन्तरम्। नरनागाश्ववृन्दानि मुशलेन व्यचूर्णयत्॥ ३८॥ क्रोधानिलसमुद्धूतचक्रलांगलवन्हिना। निर्दग्धा

लगे॥ २९-३१॥ वह हाथीसे हाथीको मारने लगे और रथसे रथयोधाको मारने लगे, घोड़ेसे घुड़सवारको मारने लगे और पैदलसे पैदलको मारने लगे॥ ३२॥ जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य विचरण करते हैं तैसे ही वह सैंकड़ों राजारूपी सूर्योंसे व्याप्त समरमें अनेक प्रकारके पैंतरे दिखाते हुए विचरण करने लगे ३३ बलरामके अनन्तर चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने भी अपने सूर्यकी समान प्रभा वाले चक्रको उठा लिया फिर जैसे सिंह क्षुद्रमृगको दवाता है इसी प्रकार उन महावीर्यवान्ने अपने पादके वेगसे उस पर्वतको कँपा डाला, तदनन्तर वे प्रतापी यदुवीर शत्रुसेना के बीचमें कूद पड़े॥ ३४॥ ३५॥ उस समय उस नाचते से हुए शैलेन्द्रने जलकी धाराओंसे स्नान किया और वह चकराता हुआ पर्वत अग्निको बुझा कर पृथ्वीमें (कुछ) घुस गया ३६ जनार्दनने जलते हुए शिखरसे कूद कर हे राजन्! अपने चक्रसे व्यग्र हाथसे सेनाका संहार किया॥ ३७॥ फिर चक्रको फैंक गदा मारनेके अनन्तर हाथी मनुष्य और घोड़ोंके झुण्डोंको

महती सेना नरेन्द्रार्काभिपालिता ॥ ३९ ॥ नरनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् । रथानीकं पदाताभ्यां क्षणेन विदली कृतम् सेनां प्रभग्नामालोक्य चक्रानलभयार्दिताम् । महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः॥ ४१ ॥ तत्राहं युद्ध्यमानस्तु भ्राताऽस्य बलवान् बली । स्थितो ममाग्रतः शूरो गदापाणिर्हलायुधः ॥४२॥ द्वादशाक्षौहिणीर्हत्वा प्रभिन्न इव केसरी । हलं सौनन्दमुत्सृज्य गदया मामताडयत् ॥ ४३ ॥ वज्रपातनिभं वेगं पातयित्वा ममोपरि । भूयः प्रहर्तुकामो मां वैशाखेनास्थितो महीम् ॥ ४४ ॥ वैशाखं स्थानमास्थाय गुहः क्रौंचं यथा पुरा । तथा मां दीर्घनेत्राभ्यामीक्षते निर्दहन्निव ॥४५॥ तादृक् रूपं समालोक्य बल-

---

मूसलसे पीटने लगे ॥ ३८ ॥ राजारूपी सूर्योंसे पालित वह बड़ी भारी सेना क्रोधरूपी वायुसे, बढ़ी हुई चक्रलांगलरूपी अग्निसे भस्म होगई ॥ ३९ ॥ उन दोनों पैदलोंने हाथी घोड़े और मनुष्यों से घचापच पैदल और ध्वजाओंसे छाया हुआ बड़ा भारी सेनादल जरा देरमें साफ कर दिया४०चक्रानलकी अग्निसे भयभीत होकर जब सेनामें भगी पड़ गई तब मैं बड़ीभारी रथसेनासे घिर कर युद्ध करने लगा उस समय इसका बड़ाभाई शूरवीर बलवान् हलायुध मेरे सामने हाथमें गदा लेकर खड़ा होगया ४१ तदनन्तर उसने मदमत्त केसरीकी समान बारह अक्षौहिणियोंको मारकर सौनन्द नामक मूसलको छोड़दिया और मुझे गदासे पीटने लगा ॥ ४२ ॥ उसने वज्रपातकी समान वेगसे मुझ पर गदाका प्रहार किया, फिर वह उस कार्तिकेयकी गदासे मुझ पर दुबारा प्रहार करनेकी इच्छासे पृथ्वी पर खडा होगया ४४ और जैसे गुह (स्वामि कार्तिकेय) नेक्रौंचके मर्मस्थान पर गदा मारना चाही थी इसी प्रकार वह आँखे फाड़ कर मुझे जलाता हुआसा देखने लगा॥ ४५ ॥ रणाङ्गणमें बलदेवजीको इस

देवं रणाजिरे। जीवितार्थी नृलोकेऽस्मिन् कः पुमान् स्थातु-
मर्हति ॥४६॥ गृहीत्वा स गदां भीमां कालदण्डामिवोद्यताम्।
कुलांकुशेन निर्धूतां स्थित एवाग्रतो मम ॥ ४७ ॥ ततो जलद-
गम्भीरस्वरेणापूरयन्नभः। वागुवाचाशरीरेण स्वयं लोकपिता-
महः ॥ ४८ ॥ महर्तव्यो न राजायमवध्योऽयं तवानघ। कल्पि-
तोऽस्य वधोऽन्यस्माद्विरमस्व हलायुध ॥ ४९ ॥ श्रुत्वाऽहं तेन
वाक्येन चिन्ताविष्टो निवर्तितः। सर्वप्राणहरं घोरं ब्रह्मणा स्वय-
मीरितम् ॥ ५० ॥ तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया।
श्रुत्वा त्वमेव राजेन्द्र कर्तुमर्हसि तद्वचः ॥ ५१ ॥ तपसोग्रेण
महता पुत्रार्थी तोष्य शंकरम्। प्राप्तवान्नरदेव त्वामवध्यं माथुरै-
र्जनैः ॥ ५२ ॥ महामुनिश्चायसचूर्णमश्नन्नुपस्थितो द्वादशवार्षिकं

प्रकार खड़ा देख कर मनुष्यलोकमें जीवन चाहने वाला कौन
पुरुष उनके सामने खड़ा रह सकता है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर वह
कालदण्डकी समान उद्यत गदाको पृथ्वीमें लीन होने वाले
हलरूपी अङ्कुशसे घुमा कर सामने खड़े ही रहे ॥ ४७ ॥ उस
समय स्वयं ब्रह्माजीने आकाशवाणीमें अपने मेघकी समान
गम्भीर स्वरसे आकाशको भरते हुए कहा, कि–४८ हे अनघ!
तुम इस राजा पर प्रहार न करना, क्योंकि–यह तुमसे अवध्य
है, इसका वध दूसरेसे रचदिया गया है, अतः हे हलायुध! अब
तुम युद्ध करना छोड़ दो ॥ ४९ ॥ उस वाक्यको सुन कर मुझे
बड़ी चिन्ता हुई और सब प्राणियोंका हरण करने वाले स्वयं
ब्रह्माजीके कहे हुए उस वाक्यको सुन कर मैं हट गया ॥५०॥
इसलिये मैं राजाओंका हित करनेकी इच्छासे कुछ कहता हूँ,
हे राजेन्द्र! उस वाक्यको सुन कर आप उस बातको करें ५१
पुत्रार्थी मुनिने बड़े भारी तपसे शंकर भगवान्को प्रसन्न कर
माथुरोंसे अवध्य आपसे पुत्रको पाया है ॥ ५२ ॥ उन महा-

व्रतम् । सुरासुरैः संस्तुतपादपंकजः स लब्धवानीप्सितकाम-
सम्पदम् । ततो बलाद्गार्ग्यमुनेर्महात्मनो वरप्रभावाच्च कलेन्दु-
मौलिनः । भवन्तमासाद्य जनार्दनो हिमं विलीयते भास्कररश्मिना
यथा ॥५४॥ यतः स्वराज्ञां वचनप्रचोदितो व्रजस्व यात्रां विज-
याय केशवम् । प्रविश्य राष्ट्रं मथुरां च सेनया निहत्य कृष्णं
प्रथयन् स्वकं यशः ॥ ५५ ॥ मथुरां वासुदेवञ्च बलदेवञ्च स-
बांधवम् । तौ विजेष्यसि संग्रामे गत्वा तां मथुरां पुरीम् ॥५६॥
शाल्व उवाच । इत्येवं नरपतिभास्करप्रगीतं वाक्यन्ते कथितमिदं
हितं नृपाणाम् । सत्सर्वं सह सचिवैर्विमृश्य बुद्ध्या यद्युक्तं कुरु
मनुजेन्द्र चात्मनिष्ठम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते हरिवंशे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३ ॥

मुनिने लोहेका चूर्ण खाकर बारह वर्षतक व्रत धारण किया था तब जिनके चरणोंकी देवता और असुर भी पूजा करते हैं, उन मुनिने अपने इष्ट वरको पाया था ॥ ५३ ॥ गार्ग्यमुनिके तपके प्रभावसे और कलासहित चन्द्रमाको धारण करने वाले शिवजी के वरके प्रभावसे युक्त आपसे भेंट होने पर श्रीकृष्ण ऐसे विलीन होजावेंगे जैसे सूर्यके सामने बरफ गल जाता है ५४ अपने राजाओंके वचनसे प्रेरित होकर आप केशवको जीतनेके लिये यात्रा करिये. मथुरामें और उसके राष्ट्रमें घुस कर कृष्ण को मार कर अपने यशको फैलाइये ॥५५॥ आप मथुरापुरीमें जाकर मथुरापुरीको श्रीकृष्णको और बलदेवको उनकी सेनासहित जीतलेंगे ॥ ५६ ॥ शाल्वने कहा, कि-हे राजेन्द्र ! राजाओंके भास्करका कहा हुआ राजाओंका हितकारी यह वचन तुमसे कह दिया हे मनुजेन्द्र ! इस बातका तुम अपने मन्त्रियोंसे विचार करो और बुद्धिपूर्वक विचार करके जो उचित हो उस कार्यको करो ॥ ५७ ॥ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवं कथयमानं तं शाल्वराजं नृपाज्ञया । उवाच परमप्रीतो यवनाधिपतिर्नृपः ॥ १ ॥ कालयवन उवाच । धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मि सफलं जीवितं मम । कृष्णनिग्रहहेतोर्यन्नियुक्तो बहुभिर्नृपैः ॥२॥ दुर्जयस्त्रिषु लोकेषु सुरासुरगणैरपि । तस्य निग्रहहेतोर्मामवधार्य जयाशिषम् ॥ ३ ॥ प्रहृष्टै राजसिंहैस्तैरवधार्यो जयो मम । तेषां वाचाम्बुवर्षेण विजयो मे भविष्यति ॥४॥ करिष्ये वचनं तेषां नृपसत्तमचोदितः । पराजयोपि राजेन्द्र जयेन सदृशो मम ॥ ५ ॥ अद्यैव तिथिनक्षत्रं मुहूर्तं करणं शुभम् । यास्यामि मथुरां राजन् विजेतुं केशवं रणे वैशम्पायन उवाच । एवमाभाष्य राजानं सौभस्य पतिमूर्जितम् । सत्कृत्य च यथान्यायं महार्हमणिभूषणैः॥७॥ ब्राह्मणेभ्यो

वैशम्पायनजीने कहा, कि–राजाज्ञासे शाल्व इस प्रकार कह रहा था उससे यवनोंके राजाने परम प्रसन्न होकर यह बात कही, १ कालयवनने कहा, कि–बहुतसे राजाओंने मुझे कृष्णका निग्रह करनेके लिये नियुक्त किया है, इस लिये मैं धन्य हूँ और मेरा जीवन सफल होगया है २ जिस पुरुषको तीनों लोकोंके देवता तथा असुर भी कठिनतासे जीत सकते हैं उसका निग्रह करनेके लिये मुझे हेतु मान कर मुझे जयके आशीर्वादमय वचनों से बढ़ाना चाहिये ३ सब राजसिंह प्रसन्न होकर मेरी जय मनावें, उनकी वाणीरूप जल–वर्षासे मेरी विजय होजायगी ४ मैं इन नृपसत्तमोंके वचनोंसे प्रेरित होकर इनके वचनको करूँगा हे राजेन्द्र! इस समय मेरा पराजय भी विजयकी ही समान है ५ आजकी तिथि नक्षत्र और करण परम शुभ हैं, अतः हे राजन्! मैं आज ही श्रीकृष्णको रणमें जीतनेके लिये मथुरापुरीको जाऊँगा ६ वैशम्पायनजीने कहा, कि–राजा कालयवनने सौभदेशके बलवान् स्वामीसे इस प्रकार संभाषण करके बहुमूल्य मणि

ददौ वित्तं सिद्धादेशाय वै नृपः । पुरोहिताय राजेन्द्र प्रददौ बहुशो धनम् ॥ हुत्वाग्निं विधिवद्राजा कृतकौतुकमङ्गलः । प्रस्थानं कृतवान् सम्यग्जेतुकामो जनार्दनम् ॥ ९ ॥ शाल्वोऽपि भरतश्रेष्ठ कृतार्थो हृष्टमानसः । यवनेन्द्रं परिष्वज्य जगाम स्वपुरं नृपः १०

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवाक्यं नाम चतुर्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

जनमेजय उवाच । विदर्भनगरायाते शक्रतुल्यपराक्रमे । किमर्थं गरुडो नीतः किं च कर्म चकार सः ॥ १ ॥ न चारुरोह भगवान् वैनतेयं महाबलम् । एतन्मे संशयं ब्रह्मन् ब्रूहि तत्त्वं महामुने ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । शृणु राजन् सुपर्णेन कृतं कर्मातिमानुषम् । विदर्भनगरीं गत्वा वैनतेयो महाद्युतिः ॥ ३ ॥

आदिसे उसका सत्कार किया हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उस राजाने ब्राह्मणोंको धन दिया और अवितथ (सत्य) आशीर्वाद देने वाले पुरोहितको भी बहुतसा धन दिया ॥ ७–८ ॥ तदनन्तर अग्निमें होम करके और मंगलमय कार्योंको करके राजाने श्रीकृष्णको जीतनेकी इच्छासे प्रयाण किया ॥ ९ ॥ हे भरत-श्रेष्ठ ! तब राजा शाल्व भी यवनेन्द्रसे आलिंगन कर कृतार्थ होने से अपने मनमें प्रसन्न होता हुआ अपने नगरको चला गया १० चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

जनमेजयने कहा, कि-शक्रकी समान पराक्रमी श्रीकृष्णजी मथुरापुरीसे चले गए, परन्तु उन्होंने गरुड़को किस लिये बुलाया था और गरुड़ने क्या कर्म किया था ॥ १ ॥ भगवान् तो महा-बली गरुड़ पर सवार भी नहीं हुए थे, हे महामुने ! इस बातका मुझे बड़ा सन्देह है, अतः आप इसका तत्त्व बता दीजिये २ वैशम्पायनजीने कहा, कि–हे राजन् ! सुनिये ! सुपर्ण (गरुड़) ने अति अमानुषी कर्म किया था, महाकान्तिवान् सुपर्ण विदर्भनगरी

असंप्राप्ते च नगरीं मथुरां मधुसूदने । मनसा चिन्तयामास वैनतेयो महाद्युतिः ॥ ४ ॥ यदुक्तं देवदेवेन नृपाणामग्रतोऽच्युता । यास्यामि मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम् ॥ ५ ॥ इति तद्वचनस्यान्ते गमिष्येति विचिन्तयन् । कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् प्रणिपत्याब्रवीदिदम् ॥ ६ ॥ गरुड उवाच । देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम् । रैवतं च गिरिं रम्यं नन्दनमतिमं वनम् ॥ ७ रुक्मिणोद्वासितां रम्यां शैलोदधितटाश्रयाम् । वृक्षगुल्मलताकीर्णां पुष्परेणुविभूषिताम् ॥ ८ ॥ गजेन्द्रभुजगाकीर्णां ऋक्षवानरसेविताम् । वराहमहिषाक्रान्तां मृगयूथैरनेकशः ॥९॥ तां समन्ततः समालोक्य वासार्थं ते क्षमाक्षमम् । यदि स्याद्भवतो रम्या प्रशस्ता नगरीति च । कण्टकोद्धरणं कृत्वा आगमिष्ये

में चले गए थे ॥ ३ ॥ जब तक श्रीकृष्ण मथुरापुरीको न गए थे उससे पहिले ही महाकान्तिवान् गरुड़ने अपने मनमें विचारा, कि-॥ ४ ॥ देवदेवने इस समय राजाओंके सामने कहा है कि-मैं भोजराजसे पालित मथुरापुरीको जाऊँगा ॥ ५ ॥ अब इस बातचीतके अन्तमें यह चले ही जावेंगे, यह विचार कर श्रीमान् गरुड़ हाथ जोड़ प्रणाम करके यह कहने लगे ॥ ६ ॥ गरुड़ने कहा, कि-हे देव ! मैं रैवतपर्वतकी कुशस्थली नामकी नगरीको रैवतपर्वतको और नन्दनवनकी समान रमणीय रैवतवनको जाता हूँ ७ उस नगरीमें रुक्मीने रहना छोड़ दिया है वह रमणीय पुरी पर्वत और समुद्रके तट पर है,तहाँ पर अब बहुतसे वृक्ष गुल्म और लता होगई हैं और वह पुष्पोंकी परागोंसे विभूषित है ॥ ८ ॥ अब तहाँ बहुतसे सूअर भैंसे और मृगोंके झुण्ड विचरते रहते हैं ९ मैं आपका निवासस्थान बनानेके लिये चारों ओर देखूँगा आप मेरे अपराधको क्षमा करिये, यदि वह नगरी आपके लिये रमणीय और प्रशस्त होगी तो मैं वहाँके काँटे आदिको उखाड़

तथान्तिकम् ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं विज्ञाप्य देवेशं प्रणिपत्य जनार्दनम् । जगाम पतगेन्द्रोपि पश्चिमाभिमुखो बली कृष्णोपि यदुभिः सार्धं विवेश मथुरां पुरीम् । स्वैरिणश्च उग्रसेनश्च नागराश्चैव सर्वशः । प्रत्युद्गम्यार्चयन् कृष्णं प्रहृष्टजनसंकुलम् ॥१२॥ जनमेजय उवाच । श्रुत्वाऽभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिर्वसुधाधिपैः । किं चकार महाबाहुरुग्रसेनो महीपतिः ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवोत्तमैः । इन्द्रेण कृतसन्धानं दूतं चित्रांगदं कृतम् ॥ १४ ॥ एकैकं नृपतेर्भागं शतसाहस्रसम्मितम् । राजेन्द्रे त्वर्बुदं दत्तं मानवेषु च गौ दश ॥ १५ ॥ ये तत्र समनुप्राप्ता न रिक्तास्ते गृहं गताः ।

कर आपके पास आजाऊँगा १० वैशम्पायनजीने कहा, कि-इस प्रकार देवेश जनार्दनको जता कर और उनको प्रणाम कर बलवान् पक्षिराज पश्चिमकी ओर मुख करके चल दिये ११ इधर श्रीकृष्णभी यादवोंको साथ ले मथुरापुरीमें घुसे उस समय नर्तकी, सब नगरके मनुष्य और उग्रसेन श्रीकृष्णकी अगवानी करने आये और उनकी पूजा की, उस समय तहाँ मनुष्य प्रसन्न (दीखते) थे १२ जनमेजयने कहा, कि-महाभुज राजा उग्रसेनने जब यह सुना कि-बहुतसे राजाओंने श्रीकृष्णका राजेन्द्रपद पर अभिषेक कर दिया है, तब उन्होंने क्या किया था १३ वैशम्पायनजीने कहा, कि-इन्द्रने चित्रांगदको दूत बना श्रीकृष्णकी राजाओंसे संधि करवा दी है और बहुतसे राजाओंने श्रीकृष्णका राजेन्द्रपद पर अभिषेक कर दिया है" यह सुन कर १४ (उग्रसेनने), प्रत्येक (माण्डलिक) नृपतिको एक २ लाखका द्रव्य दिया था और राजेन्द्र अर्थात् माण्डलिकेशको अर्बुद २ धन दिया था और प्रत्येक मनुष्यको भी दश २ सहस्र दिया था १५ तहाँ पर जो मनुष्य आये थे वे खाली हाथ घरको नहीं गए थे,

शंखो यादवरूपेण प्रददौ हरिनिन्तितम् ॥ १६ ॥ एवं निधिपतिः श्रीमान् दैवतैरनुमोदितः । इति श्रुत्वात्मिकजनाँल्लोकप्रावृत्तिकान्नराद् ॥१७॥ चकार महतीं पूजां देवतायतनेष्वपि । वसुदेवस्य भवने तोरणोभयपार्श्वतः ॥ १८ ॥ नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः । पताकाध्वजमालाढ्यां कारयामास वै नृपः ॥ १९ ॥ कंसराजस्य च सभां विचित्राम्बरसुप्रभाम् । पताकाविविधाकारा दापयामास भोजराट् ॥२०॥ तोरणं गोपुरं चैव सुधापंकानुलेपनम् । कारयामास राजेन्द्रो राजेन्द्रस्यासनालयम् ॥ २१ ॥ नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः । पताकावनमालाढ्याः पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥ २२ ॥ राजमार्गेषु राजेन्द्र चन्दनोदकसेचितम् । वस्त्राभरणकं राजा दापयामास

उस समय शंखनिधि यादवका रूप धारण कर श्रीकृष्णके विचारे हुए धनको देरही थी १६ संसारकी खबर देने वाले अपने निजी मनुष्यसे सुन कर देवताओंने श्रीमान् निधिपतिको यह आज्ञा दी थी १७ (उग्रसेनने) देवालयोंमें बड़ी भारी पूजा कराई और वसुदेवके भवनमें दोनों ओर तोरण लगवा दिये ८ चारों ओर नटोंके नाच गान करवाये, और राजा उग्रसेनने कंसराज की सभाको पताका ध्वजा माला और वस्त्रोंसे सजा कर उसकी छविको मनोहर बना दिया था, तहाँ तोरण और गोपुर (गवाक्षों) पर सुधापंक लगा हुआ था, उनमें भी भोजराजने अनेक प्रकारकी ध्वजाएँ लगा रक्खी थीं, इस प्रकार राजेन्द्र उग्रसेनने राजेन्द्र (श्रीकृष्ण) का आसनालय सजवाया था १८-२१ तहाँ पर स्थान २ पर नटोंके नृत्य और गाने होने लगे, बाजे बजने लगे, सब ओर वनमाला और ध्वजाओंसे सुशोभित घड़े रख दिये गए ॥२२॥ और हे राजेन्द्र ! राजमार्गोंमें चन्दनसे मिला हुआ जल छिड़का गया और राजा उग्रसेनने भूतलमें

भूतले ॥ २३ ॥ धूपं पार्श्वोभये चैव चन्दनागुरुगुग्गुलैः । गुडं सर्जरसं चैव दह्यमानं ततस्ततः॥ २४॥वृद्धस्त्रीजनसंघैश्च गायद्भिः स्तुतिमंगलम् । अर्घं कृत्वा प्रतीक्षन्ते स्वेषु स्थानेषु योषितः २५ एवं कृत्वा पुरानन्दमुग्रसेनो नराधिपः । वसुदेवगृहं गत्वा प्रियाख्यानं निवेद्य च ॥ २६ ॥ रामेण सह सम्मन्त्र्य निर्गतो रथमन्तिकम् । तस्मिन्नेवान्तरे राजञ्छंखध्वनिरभून्महान् ॥ २७ ॥ पांचजन्यस्य निनदं श्रुत्वा मधुरवासिनः । स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च सूतमागधबन्दिनः ॥ २८ ॥ विनिर्ययुर्महासेना रामं कृत्वाऽग्रतो नृप । अर्घं पाद्यं पुरस्कृत्य उग्रसेनेन धीमता ॥ २९ ॥दृष्टिपन्थानमासाद्य उग्रसेनो महीपतिः । अवतीर्य रथाच्छुभ्रात् पादमार्गेण चाग्रतः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऽऽसीनं रथे रम्ये दिव्यरत्नविभूषितम् ।

वस्त्र और आभरण बिछवा दिये ॥ २३ ॥ चन्दन अगुरु और गूगलकी धूप दोनों ओर करवा दी और स्थान २ पर गुड़ और राल सुलगवा दी ॥ २४ ॥ उस समय स्त्रियें स्तुतिमंगल गाती हुई वृद्धा स्त्रियोंके झुण्डोंको आगे करके अर्घ लेकर अपने स्थानमें खड़ी हुई प्रतीक्षा कर रहीं थीं ॥ २५ ॥ राजा उग्रसेन इस प्रकार अपने नगरको आनन्दित करके वसुदेवजीके घर गए और उनसे (यह) प्रिय बात कही ॥ २६ ॥ फिर बलरामजी से मंत्रणा करके वह रथके पास चले; हे राजन् ! इसी समय बड़ी भारी शंखध्वनि होने लगी ॥ २७ ॥ बड़ी भारी सेना तथा बलरामको आगेकर मथुरावासी स्त्री बालक वृद्ध सूत मागध और वन्दी पाञ्चजन्य शंखके शब्दको सुनकर निकल पड़े, और बुद्धिमान् उग्रसेन भी अर्घ और पाद्यको लेकर चले ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजा उग्रसेन दृष्टिमार्गमें आकर अपने शुभ्र रथमेंसे उतर पड़े और पैदल ही आगे चले ॥ ३० ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय राजा उग्रसेनने कठिनतासे दीखने योग्य

अंगेष्वाभरणं चैव दिव्यरत्नप्रभायुतम् ॥ ३१ ॥ वनमालोरसः दिव्यं तपन्तमिव भास्करम् । चामरं व्यजनं छत्रं खगेन्द्रध्वज-मुच्छ्रितम् ॥ ३२ ॥ राजलक्षणसंपूर्णमासन्नार्कमिवोज्ज्वलम् । श्रियाऽभिभूतं देवेशं दुर्निरीक्ष्यतरं हरिम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्र हर्षगद्गदया गिरा । वभाषे पुण्डरीकाक्षं रामं बलनिषू-दनम् ॥ ३४ ॥ रथेन न मया गन्तुं युक्तपूर्वेति चिन्त्य वै । अव-तीर्णो महाभाग गच्छ त्वं स्यन्दनेन च ॥ ३५ ॥ विष्णुना व्रज-रूपेण गत्वेमां मथुरां पुरीम् । अप्रकाशितात्मानं देवेन्द्रत्वं नृपार्णवे ॥ ३६ ॥ तमहं स्तोतुमिच्छामि सर्वभावेन केशवम् । मत्युवाच महातेजा राजानं कृष्णपूर्वजः ॥ ३७ ॥ न युक्तं नृपते

हरिको रम्य रथमें दिव्य रत्नोंसे विभूषित होकर बैठा हुआ देखा और उनके अंगोंमें दिव्य रत्नोंकी समान प्रभावाले आभू-षण (शोभा देरहे थे) वक्षःस्थल पर वनमाला पड़ी हुई थी इस लिये वह तपते हुए दिव्य सूर्यकी समान दीख रहे थे उन पर चमर व्यञ्जन और छत्र डुल रहा था और गरुड़ की ऊँची ध्वजा लग रही थी, उनमें पूर्ण राजलक्षण दीख रहे थे और वह समीपमें खड़े हुए सूर्यकी समान उज्ज्वल दीखते थे लक्ष्मीसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे देवेशको देखकर राजा उग्रसेनने हर्षसे गदगद वाणीमें शत्रुसेनानाशक पुण्डरीकाक्ष बलरामसे कहा, कि—॥ ३१—३४ ॥ हे महाभाग ! मुझे रथ पर चढ़ कर जाना उचित नहीं है, यह विचार कर मैं रथपरसे उतर आया हूँ अतः आप रथ पर चढ़ कर चलिये ॥ ३५ ॥ राजसमुद्रमें अपने देवे-न्द्रत्वको प्रकाशित कर व्रजरूपी विष्णु जब मथुरामें आवेंगे ३६ तब मैं उन केशवकी सब प्रकारसे स्तुति करना चाहता हूँ उस समय महातेजस्वी कृष्णके पूर्वज बलरामजीने कहा, कि—॥ ३७ ॥ हे नृपते ! इस समय गमन करते हुए देवसत्तम विष्णुकी तुम

स्तोतुं अजन्तं देवसत्तमम् । विना स्तोत्रेण सन्तुष्टस्तव राजन् जनार्दनः ॥ ३८ ॥ तुष्टस्य स्तुतिना किं ते दर्शनेन तव स्तुतिः । राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य आगतस्तव वेश्मनि ॥ ३९ ॥ न त्वया स्तुतवानाजन्दिव्यैः स्तोत्रैरमानुषैः । एवमाब्रुवमाणौ तौ सम्प्राप्तौ केशवान्तिकम् ॥ ४० ॥ अर्घोद्यतभुजं दृष्ट्वा स्थापयित्वा रथोत्तमम् । उवाच वक्तां श्रेष्ठ उग्रसेनं नराधिपम् ॥ ४१ ॥ यन्मया त्वाभिषिक्तस्त्वं मथुरेशो भवत्विति । न युक्तमन्यथा कर्तुं मथुराधिपते स्वयम् ॥ ४२ ॥ अर्घ्यमाचमनीयं च पाद्यं चास्मै निवेदितम् । न दातुमर्हसे राजन्नेष मे मनसः प्रियः ॥ ४३ ॥ तवाभिप्रायं विज्ञाय ब्रवीमि नृपते वचः । त्वमेव माथुरो राजा नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ४४ ॥ स्थानभागं च नृपते दास्यामि तव दक्षिणाम् ।

को (मार्गमें) स्तुति न करनी चाहिये क्योंकि-हे राजन् ! जनार्दन ! तुम्हारे स्तोत्र न करने पर भी प्रसन्न हैं ॥ ३८ ॥ जब वह प्रसन्न हैं, तब उनकी स्तुति करनेसे क्या लाभ ? तुम उनको देख लो यही उनकी स्तुति होगई समझो, यह इस समय राजेन्द्रत्वको पाकर तुम्हारे घरमें आरहे हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन ! तुम इनकी अमानुषिक दिव्य स्तोत्रोंसे स्तुति न करना, वे दोनों इस प्रकार संभाषण करते २ श्रीकृष्णके पास पहुँच गए ४० श्रेष्ठ वक्ता श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनको हाथमें अर्घ लिये खड़े देख कर अपने रथको खड़ा कर उनसे कहा, कि-॥ ४१ ॥ मैंने आपको मथुरेश बना कर आपका अभिषेक कर दिया है; हे मथुराधिपते ! मैं उसका उल्लंघन करूँ यह उचित नहीं है ॥ ४२ ॥ मैंने अर्घ आचमनीय और पाद्य आपके ही अर्पण कर दिया है, हे राजन् ! उसको आप दें यह उचित नहीं है और यह बात मेरे मनको भी अच्छी नहीं लगती है ॥ ४३ ॥ हे नृपते ! यह सब बात मैं आपके अभिप्रायको जान कर कर रहा हूँ; आप ही

यथा नृपाणां सर्वेषां तथा ते स्थापितोऽग्रतः ॥ ४५ ॥ शतसाह-
स्रिको भागो वस्त्राभरणवर्जितः । आरुहस्व रथं शुभ्रं चामी-
करविभूषितम् ॥४६॥ चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजश्च मनुजेश्वर ।
दिव्याभरणसंयुक्तं मुकुटं भास्करप्रभम् ॥४७॥ धारयस्व महाभाग
पालयस्व पुरीमिमाम् । पुत्रपौत्रैः प्रमुदितो मथुरां परिपालय ४८
जित्वाऽरिगणसंघांश्च भोजवंशं विवर्धय । देवदेवायानन्ताय
शौरिणे वज्रपाणिना ॥ ४९ ॥ प्रेषितं देवराजेन दिव्याभरण-
मम्बरम् । माथुराणां च सर्वेषां भागा दीनारका दश ॥ ५० ॥
सूतमागधवन्दीनामेकैकस्य सहस्रिकम् । वृद्धस्त्रीजनसंघानां गणि-
कानां शतं शतम् ॥ ५१ ॥ नृपेण सह तिष्ठन्ति विकटुप्रमुखाश्च

मथुराके राजा हैं,अतः आप विपरीत बर्ताव न करिये ॥ ४४ ॥
हे नृपते ! मैं आपको स्थानभागरूपदक्षिणा अर्थात् क्षुद्र राजाके
देने योग्य राज्यधनांश भी दूँगा, सब राजाओंकी समान मैं भी
उसे आपके पास उपस्थित करूँगा ॥ ४५ ॥ वस्त्र और आभूषणों
से अलग एक लाख(काञ्चनमय)भाग,आपके लिये मैंने रख दिया
है, अब आप चामीकरसे विभूषित अपने शुभ रथ पर सवार
हूजिये, हे मनुजेश्वर ! आप चामर व्यजन छत्र और सूर्यकी
समान प्रभावान् दिव्य आभरणोंसे युक्त मुक्त मुकुटको धारण
करिये, हे महाभाग ! अब आप इस पुरीका पालन करिये और
पुत्र तथा पौत्रोंके साथ प्रमुदित होते हुए मथुराका पालन
करिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ शत्रुसमूहको जीत कर भोजवंशकी वृद्धि
करिये,वज्रपाणि इन्द्रने शूरके वंशज देवदेव अनन्तके लिये दिव्य
आभरणरूप वस्त्र भेजा है सब माथुरोंका दश २ दीनार (एक
दीनार सुवर्णके सहस्र सिक्कोंका होता है) का भाग सूत मागध
और वन्दियोंमेंसे एक एक का सहस्र २ का भाग वृद्ध और
स्त्रियोंका सौ सौका भाग और जो राजाके समीप रहते हैं उन

ये। दशसाहस्त्रिको भागस्तेषां धात्रा प्रकल्पितः ॥ ५२ ॥ वैशंपायन उवाच। एवं संपूज्य राजानं माथुराणां चमूमुखे। कृत्वा सुमहदानंदां मथुरां मधुसूदनः॥५३॥ दिव्याभरणमाल्यैश्च दिव्यांबरविलेपनैः। दीप्यमानः समंताच्च देवा इव त्रिविष्टपे॥ ५४ ॥ भेरीपटहनादेन शंखदुंदुभिनिःस्वनैः। बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च ॥ ५५ ॥ सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च। तुमुलः सुमहानासीन्मेघनाद इवाम्बरे॥ ५६ ॥ बन्दिभिः स्तूयमानं च नमश्चक्रुरपि प्रजाः। दत्त्वा दानमनन्तं च न ययौ विस्मयं हरिः ॥५७॥ स्वभावोन्नतभावत्वाद्दृष्टपूर्वात्ततोधिकम्। अनहंकारभावाच्च विस्मयं न जगाम ह ॥ ५८ ॥ दीप्यमानं

विकद्रु आदिका दश २ सहस्रका भाग इन्द्रने बना दिया है ४९-५२ वैशम्पायनजीने कहा, कि-मधुसूदनने माथुरोंकी सेनाके मुहाने पर इस प्रकार राजा उग्रसेनकी पूजा करके मथुराको आनन्दमयी बना कर मथुरामें प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ जैसे देवता स्वर्गमें शोभा पाते है, इसी प्रकार दिव्य आभरण माल्य और दिव्य वस्त्र विलेपनोंसे श्रीकृष्ण शोभा पारहे थे ॥ ५४ ॥ जैसे आकाश में बादल गड़गड़ाता है, तैसे ही भेरी और पटहके नादसे और शंख तथा दुन्दुभिके नादसे हाथियोंके चिंघाड़नेसे और घोड़ोंके हींसनेसे शूरवीरोंके सिंहनादसे और रथकी नेमिके शब्दसे आकाशमें बड़ा भारी नाद होने लगा ।५५।५६। जिस समय बन्दी श्रीकृष्णकी पूजा कर रहे थे उस समय प्रजाओंने उन्हें प्रणाम किया, श्रीकृष्ण अनन्त दान देकर भी विस्मित न हुए ५७ उनका स्वभाव उच्च था और यह सब बात उन्होंने पहिले ही (योगदृष्टिसे) देख ली थी और इससे भी अधिक उनमें अनहंकार भाव था इस लिये उन्होंने विस्मय नहीं किया ॥ ५८॥ अपने शरीरसे प्रदीप्त सूर्यकी समान प्रभा वाले श्रीकृष्णको मथुरा

स्ववपुषा आयान्तं भास्करप्रभम् । दृष्ट्वा मथुरवासिन्यो नमश्चक्रुः पदे पदे ॥५९॥ एष नारायणश्श्रीमान्क्षीरार्णवनिकेतनः । नागपर्यङ्कमुत्सृज्य प्राप्तोऽयं मथुरां पुरीम् ॥ ६० ॥ बध्वा बलिं महावीर्यं दुर्जयं त्रिदशैरपि । शक्राय प्रददौ राज्यं त्रैलोक्यं वज्रपाणये ॥६१॥ हत्वा दैत्यगणान् सर्वान् कंसं च बलिनाम्वरम् । भोजराजाय मथुरां दत्त्वा केशिनिषूदनः ॥ ६२ ॥ नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये न चासीनो नृपासने । राजेन्द्रत्वं च सम्प्राप्य मथुरामाविशत् ततः ॥ ६३ ॥ एवमन्योन्यसंजल्पं श्रुत्वा पुरनिवासिनाम् । वन्दिमागधसूतानामिदमूचुर्गणाधिपाः ॥ ६४ ॥ किं वा शक्यामहे वक्तुं गुणानां ते गुणोदधे । मानुषेणैकजिह्वेन प्रभावोत्साहसम्भवान् ॥ ६५ ॥ सहस्रभोगी नागेन्द्रः कदाचिद्व देव बुद्धिमान् । द्विसाहस्रेण जिह्वेन वासुकिः कथयिष्यति ॥ ६६ ॥

में आते देख कर मथुरावासिनियोंने उन्हें पद २ में प्रणाम किया५९ (उन्होंने अपने मनमें कहा, कि–) यह क्षीर समुद्रमें रहने वाले साक्षात् श्रीमान् नारायण अपनी नागशय्याको छोड़ कर मथुरा पुरीमें आगए हैं ॥ ६० ॥ इन्होंने देवताओंसे भी दुर्जय महावीर्यवान् बलिको बाँध कर वज्रपाणि इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य देदिया था६१ सब दैत्योंको तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ कंसको मारने के बाद इन केशिनिषूदनने भोजराजको मथुरापुरी देदी थी ६२ इन्होंने राज्य पर अपना अभिषेक नहीं कराया था और यह अपने राज।सिंहासन पर भी नहीं बैठे थे, अब ये राजेन्द्रत्वको पाकर मथुरापुरीमें आये हैं ॥ ६३ ॥ पुरवासियोंके इस निजी वार्तालापको सुन कर वन्दी मागध और सूतोंके टोलोंके स्वामी इस प्रकार कहने लगे ॥ ६४ ॥ हे गुणोदधे ! आपके गुणोंके प्रभाव और उत्साहसे उत्पन्न हुए आपकेगुणोंको हम अपनी एक मानुषी जिह्वासे क्या कह सकते हैं ॥ ६५ ॥ हे देव ! बुद्धि

किं त्वद्भुतमिदं लोके मानवेन्द्रेषु भूतले । न भूतं न भविष्यञ्च शक्रादासनमागतम् ॥ ६७ ॥ सभावतरणं चैव कलशैरागतं स्वयम् । न श्रुतं न च दृष्टं वा तेन मन्यामहेऽद्भुतम् ॥ ६८ ॥ धन्या देवी महाभागा देवकी योषितां वरा । भवन्तं त्रिदशश्रेष्ठं धृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ ६९ ॥ कृष्णं पद्मपलाशाक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् । नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्ष्यते मुखपंकजम् ७० इति सञ्जल्पमानानां शृण्वन्तौ पृथगीरितम् । उग्रसेनं पुरस्कृत्य भ्रातरौ रामकेशवौ ॥ ७१ ॥ प्राकारद्वारि सम्प्राप्तावर्चयामास वै तदा । अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पाद्यं पाद्येति चाब्रवीत् ॥ ७२ ॥ उग्रसेनस्ततो धीमान् केशवस्य रथाग्रतः । प्रणम्य शिरसा कृष्णं

मान् नागेन्द्र शेष अपनी दो सहस्र जिह्वाओंसे आपके गुणोंको शायद कह सके ॥ ६६ ॥ परन्तु भूतलमें यह तो अद्भुत बात हुई है, कि-"मानवेन्द्रोंके बीचमें इन्द्रने आसन भेजा।" ऐसी बात तो न कभी हुई है और न कभी होगी ॥ ६७ ॥ सभा (आसन) का उतरना और कलशोंका स्वयं (अभिषेक करनेके लिये) आना तो हमने न कभी देखा है और न कभी सुना है, इस लिये इस बातको हम अद्भुत मानते हैं ॥ ६८ ॥ स्त्रियोंमें श्रेष्ठ महाभागा देवी देवकी धन्य है क्योंकि-उसने देवताओंमें श्रेष्ठ केशवको अपने गर्भमें धारण किया था ॥ ६९ ॥ अब वह लक्ष्मी के पुञ्जस्वरूप देवताओंसे अर्चित कमलपत्रकी समान नेत्रों वाले श्रीकृष्णके मुखकमलको अपने स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे देख रही है ७० इस प्रकार बातचीत करने वाले मनुष्योंके भाषणको सुनते हुए राम और कृष्ण नामक दोनों भाई उग्रसेनको आगे करके जब प्राकारके द्वार पर पहुँच गए तब उग्रसेनने उनकी पूजाकी और अर्घ्य तथा आचमन देकर बारंबार पाद्य २ कहने लगे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर बुद्धिमान् उग्रसेन केशवके सामने

गजमारुह्य वीर्यवान् । घनवत्तोयधारेण ववर्ष कनकाम्बुभिः ७३
घनौघैर्वर्षमाणस्तु सम्प्राप्तः पितृवेश्मनि । मथुराधिपतिः श्रीमानु-
वाच मधुसूदनम् ॥७४॥ राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य युक्तं मे नृपवेश्मनि ।
स्थापितुं देवराजेन दत्तं सिंहासनं प्रभो ॥ ७५ ॥ नेष्यामि मथु-
रेशस्य सभां भुजबलार्जिताम् । प्रसादमिष्ये भगवन्न कोपं कर्तु-
मर्हसि ॥ ७६ ॥ देवकी वसुदेवश्च रोहिणी च विशाम्पते । न
किंचित् कारणे शक्ता हर्षक्लमविमोहिता ॥७७॥ कंसमाता ततो
राजन्नर्चयामास केशवम् । नानादिग्देशजानीतं कंसेनोपार्जितं
धनम् ॥ ७८ ॥ देशकालं समालोच्य पादयुग्मे न्यवेदयत् । उग्र-
सेनं समाहूय उवाच श्लक्ष्णया गिरा ॥ ७९ ॥श्रीकृष्ण उवाच ।

खड़े हुए और श्रीकृष्णको शिरसे प्रणाम कर वीर्यवान् उग्रसेन हाथी पर सवार होगए और जिस प्रकार बादल जलकी धारा बरसाता है इसी प्रकार सुवर्ण जल बरसाने लगे ॥ ७३ ॥ इस प्रकार जिनके ऊपर धनकी बौछार होरही थी ऐसे श्रीकृष्ण अपने पिताके घर पहुँच गये उस समय श्रीमान् उग्रसेनने मधु-सूदन श्रीकृष्णसे कहा, कि ॥ ७४ ॥ हे प्रभो ! राजेन्द्रत्वको को पानेके बाद देवराजका दिया हुआ सिंहासन आप मेरे राज-घरमें रखें यही उचित है ॥ ७५ । मैं उसे भुजबलसे इकट्ठी की मथुरेशकी अर्थात् आपकी सभामें लेजाऊँगा, हे भगवन् ! आप प्रसन्न हूजिये और कोप न करिये ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! देवकी वसुदेव और रोहिणी हर्षक्लमसे विमोहित होकर कुछ भी काम नहीं करसकती थी ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! उस समय कंसकी माता ने श्रीकृष्णकी पूजा करनेका विचार किया, उसने कंसका इकट्ठा किया हुआ अनेक देशोंसे लाया हुआ धन समयको देख कर श्रीकृष्णके चरणोंमें निवेदन कर दिया, उस समय श्रीकृष्णने उग्रसेनको बुला कर मधुर वाणीमें कहा ॥ ७८ ॥ ७९ ॥श्रीकृष्ण

न चाहं मथुराकांक्षी न मया वित्तकांक्षया । घातितस्तव पुत्रोऽयं कालेन निधनं गतः ॥ ८० ॥ यजस्व विविधान् यज्ञान् ददस्व विपुलं धनम् । जयस्व रिपुसैन्यानि मम बाहुबलाश्रयात् ॥८१॥ त्यजस्व मनसस्तापं कंसनाशोद्भवं भयम् । नयस्व वित्तनिचयं मया दत्तं पुनस्तव ॥ ८२ ॥ इति आश्वास्य राजानं कृष्णस्तु हलिना सह । प्रविवेश ततः श्रीमान् मातापित्रोस्तथान्तिकम् ८३ आनन्दपरिपूर्णाभ्यां हृदयाभ्यां महाबलौ । पितृमात्रोस्तु पादान् वै नमश्चक्रतुरानतौ ॥ ८४ ॥ तस्मिन् मुहूर्ते नगरी मथुरा तु बभूव सा । स्वर्गलोकं परित्यज्यावतीर्णेवामरावती ॥ ८५ ॥ वसुदेवस्य भवनं समीक्ष्य पुरवासिनः । मनसा चिन्तयामासुर्देव-लोकं न भूतलम् ॥ ८६ ॥ विसृज्य मथुरेशन्तु महिषीसहितं तदा । भवनं वसुदेवस्य प्रविश्य बलकेशवौ ॥ ८७ ॥ न्यस्त-

ने कहा, कि-मैं मथुरापुरीको लेना नहीं चाहता था न मैंने धन की आकांक्षासे ही आपके पुत्रको मारा था तुम्हारा पुत्र तो काल के कारण ही मर गया था ॥ ८० ॥ अब आप मेरे भुजबलका आश्रय लेकर अनेक प्रकारके यज्ञ करिये, बहुतसा धनदान करिये, और शत्रुसेनाको जीतिये ॥ ८१ ॥ कंसके मनसे उत्पन्न हुए भयको और तापको दूर करिये इस धनके समूहको लेजाइये मैंने आपको फिर देदिया ॥ ८२ ॥ श्रीकृष्ण और बलरामने इस प्रकार उग्रसेनको धीरज दिया फिर श्रीमान् श्रीकृष्ण बलदेवजीको साथ लेकर अपनी माता और पिताके पास गये ॥ ८३ ॥ उस समय उन महाबलवानोंने आनन्दपूर्ण हृदयसे अपने माता पिता के चरणोंमें झुक कर प्रणाम किया उस समय मथुरापुरी स्वर्ग-लोकको त्यागकर उतरी हुई अमरावतीसी प्रतीत होती थी, पुर-वासियोंने वसुदेवके भवनको देख कर अपने मनमें उसको भूतल न समझकर देवलोक समझा, उग्रसेनको और उनकी रानीको विदा

शस्त्रावुभौ वीरौ स्वगृहे स्वैरचारिणौ । ततः कृताह्निकौ भूत्वा सुखासीनौ कथान्तरे ॥ ८८ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु महोत्पातो बभूव ह । बभ्रमुश्च घनाकाशे चेलुश्च भुवि पर्वताः ॥८६॥ समुद्राः क्षुभिताः सर्वे विभ्रान्तो भोगिनाम्वरः । कम्पिता यादवाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि ॥ ६० ॥ तौ तान्निपतितान् दृष्ट्वा रामकृष्णौ तु निश्चलौ । महता पत्रवातेन विज्ञातौ पतगोत्तमम् ६१ ददर्श समनुप्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् । प्रणम्य शिरसा ताभ्यां सौम्यरूपी कृतासनः ॥ ६२ ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं सचिवं सांपरायिकम् । धृतिमन्तं गरुत्मन्तमुवाच बलिसूदनः ॥ ६३ ॥ स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन । विनताहृदयानन्द स्वागतं

करके बलराम और केशव वसुदेवजीके भवनमे घुसे थे ॥८७॥ तहाँ अपने घरमें उन दोनों वीरोंने अपने अस्त्रोंको धर दिया और इच्छानुसार विचरण करने लगे तदनन्तर अपना आन्हिक कर्म करके सुखपूर्वक बैठ कर बात चीत करनेलगे ॥८८॥ इसी समय बड़ा भारी उत्पात होने लगा आकाशमें बादल मँडराने लगे और पृथ्वी पर पर्वत काँपने लगे ॥ ८६ ॥ सब समुद्र क्षुब्ध होगये सर्पोंमें शेषजी भी भ्रान्तसे होगये सब यादव काँपने लगे और नीचेको मुख करके पृथ्वीमें गिर पड़े६० वे दोनों उनको गिरे हुए देखकर भी निश्चल रहे उन्होंने बड़े भारी पङ्खोंकी वायुसे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडजीको आता हुआ समझा ।६१॥ इतनेमें ही उन्होंने दिव्यमाला और चन्दनके लेप करने वाले गरुडजीको आए हुए देखा उस समय गरुड़जीने उन दोनोंको शिर झुका कर प्रणाम किया और सौम्यरूप धारण करके बैठ गये अपने बुद्धिसहायक मन्त्री धैर्यधारी गरुडजीको आया हुआ देख कर राजा बलिको कष्ट देने वाले श्रीकृष्णने कहा, कि-६३ हे देवताओंके शत्रुओंकी सेनाका मर्दन करने वाले पक्षिश्रेष्ठ

केशवप्रिय ॥ ६४ ॥ तमुवाच ततः कृष्णः स्थितं देवमिवापरम् । तुल्यसामर्थ्यया वाचा आसीनं विनतात्मजम् ॥६५॥ श्रीकृष्ण उवाच । यास्यामः पतगश्रेष्ठ भोजस्यान्तःपुरं महत् । तत्र गत्वा सुखासीना मन्त्रयामो मनोनुगम् ॥ ६६ ॥ वैशम्पायन उवाच । प्रविष्टौ तौ महावीर्यौ बलदेवजनार्दनौ । वैनतेयतृतीयौ च गुह्यं मन्त्रमथाब्रुवन् ॥ ६७ ॥ अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम् । कृतः सैन्यक्षयश्चापि महानिति नराधिपैः ॥६८॥ बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि । न शक्यामः क्षयं कर्तुं जरासन्धस्य वाहिनीम् ॥ ६९ ॥ अतोर्थं वैनतेय त्वां ब्रवीमि मथुरां पुरीम् । न सतोरावयोः श्रेयो न भवेदिति मे मतिः १००

गरुड़जी ! आपका स्वागत है, हे विनताके हृदयको आनन्द देने वाले केशवप्रिय ! आपका स्वागत है ॥ ६४ ॥ उस समय दूसरे देवताकी समान बैठे हुए विनतानन्दन गरुडजीसे श्रीकृष्ण जीने अपनी सामर्थ्यके अनुकूल वाणीमें उनसे बात चीत की६५ श्रीकृष्णने कहा, कि–हे पक्षिश्रेष्ठ ! हम भोजराजके अन्तःपुरमें चलते हैं तहाँ जा सुखपूर्वक बैठ कर अपने मनके अनुकूल बातें करेंगे ॥ ६६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–उस समय महावीर्यवान् बलदेव और जनार्दन तहाँ पर गये और तीसरे गरुड़ जी भी तहाँ पर गए और गुप्त बात चीत करने लगे कि–६७ इस (जरासन्ध और कालयवन) को हमारा अवध्य बनादिया गया है, और शत्रुकी सेना भी बडी है और बहुतसी सेनाका हमने संहार भी कर दिया है और दूसरे राजाओंसे भी करवाया है ॥ ६८ ॥ जरासन्धके पास बहुतसी सेना है जरासन्ध की सेनाका हम सैंकड़ों वर्षोंमें भी क्षय नहीं कर सकते ६९ हे वैनतय ! इस लिये मैं तुमसे कहता हूँ, कि–हम दोनोंके मथुरापुरीमें रहने पर हमारा कल्याण नहीं होसकता यह मेरा (पक्का)

गरुड उवाच । देवदेवं नमस्कृत्य गतोऽहं भवतोन्तिकात् । वासार्थमीक्षितुं भूमिं तत्र देव कुशस्थलीम् ॥१॥ गत्वाऽहं खे समास्थाय समन्तादवलोक्य ताम् । दृष्टाऽहं विबुधश्रेष्ठ पुरीं लक्षणपूजिताम् ॥२॥ सागरानूपविपुलां प्रागुदकसवशीतलाम् । सर्वतोदधिमध्यस्थामभेद्यां त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥ सर्वरत्नाकरवतीं सर्वकामफलद्रुमाम् । सर्वर्तुकुसुमाकीर्णां सर्वतः सुमनोहराम् ॥ ४ ॥ सर्वाश्रमाधिवासां च सर्वकामगुणैर्युताम् । नरनारीसमाकीर्णां नित्यामोदविवर्धनीम् ॥५॥ प्राकारपरिखोपेतां गोपुराट्टालमालिनीम् । विचित्रचत्वरपथां विपुलद्वारतोरणाम् ॥ ६ ॥ यन्त्रार्गलविचित्राढ्यां हेमप्राकारशोभिताम् । नरनागाश्वकलिलां रथसैन्य-

---

विचार है १०० गरुड़जीने कहा, कि—हे देव ! मैं आप देवदेवको प्रणाम करके आपके वसने योग्य भूमिको देखनेके लिये कुशस्थली को गया था १०१ तहाँ मैंने आकाशमें स्थित होकर उस पुरीको चारों ओरसे देखा तो हे विबुधश्रेष्ठ ! मैंने उस पुरीको सब लक्षणोंसे पूजित देखा १०२ तहाँ पर समुद्रके बहुतसे अनूप (जलप्राय देश) थे और पहिले जल आनेसे वह शीतल होरही थी, और चारों ओरसे समुद्रके बीचमें स्थित थी उसको देवता भी कठिनतासे भेद सकते हैं १०३ तहाँ पर सब रत्नोंकी खानें हैं और सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले फल देने वाले वृक्ष हैं तहाँ सब ऋतुओंके पुष्प आते रहते हैं और वह चारों ओरसे मनोहर हैं १०४ तहाँ पर सब आश्रमोंके मनुष्य रह सकते हैं और तहाँ पर सबके सब इष्टगुण मिलते हैं तहाँ पर रहनेसे सदा आनन्द बढ़ता रह सकता है और बहुतसे मनुष्य और स्त्रियें भी समा सकती हैं १०५ उसमें प्राकार तथा परिखा हैं और झरोखे तथा बुर्ज हैं, विचित्र चौराहे हैं और उसके द्वार तथा तोरण भी बड़े २ हैं १०६ उसमें बड़े २ यंत्र और जंजीरे हैं और वह सुवर्ण

समाकुलाम् ॥ ७ ॥ नानादिग्देशमाकीर्णां दिव्यपुष्पफलद्रुमाम् । पताकाध्वजमालाढ्यां महाभवनशालिनीम् ॥८॥ भीषिणीं रिपु-संघानां मित्राणां हर्षवर्धनीम् । मनुजेन्द्राधिवासेभ्यो विशिष्टां नगरोत्तमाम् ।९॥ रैवतं च गिरिश्रेष्ठं कुरु देव सुरालयम् । नंदन-प्रतिमं दिव्यं पुरद्वारस्य भूषणम् ॥ ११० ॥ कारयस्वाधिवासं च तत्र गत्वा सुरोत्तम । कुमारीणां प्रचारश्च सुरमणो भविष्यति नाम्ना द्वारवती ज्ञेया त्रिषु लोकेषु विश्रुता । भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती ॥ १२ ॥ यदि स्यात् सम्वृतां भूमिं प्रदास्यति महोदधिः । यथेष्टविविधं कर्म विश्वकर्मा करिष्यति१३ मणिमुक्ताप्रवालाभिर्वज्रवैडूर्यसप्रभैः । दिव्यैरभिप्राययुतैर्दिव्य-रत्नैस्त्रिलोकजैः ॥ १४ ॥ दिव्यस्तम्भशताकीर्णान् स्वर्गे देव-

---

के परकोटोंसे सुशोभित है १०७ उसमें अनेक देश और दिशाओं में उत्पन्न हुए पदार्थ हैं तथा उसमें दिव्य पुष्प फल और वृक्ष हैं, उसमें पताका और ध्वजा हैं और बड़े २ भवन हैं १०८ वह शत्रुसंघको भयभीत करती रहती है और मित्रोंके हर्षको बढाती रहती है, और वह राजाओंके निवासभवनोंमें उत्तम, नगररूप है १०९ नन्दनवनकी समान दिव्य पुरद्वारके भूषणरूप रैवतपर्वतको आप देवालय बनाइये ११० हे सुरोत्तम ! आप तहाँ जाकर अपना निवास-स्थान बनाइये, तहाँ पर कुमारियें भी सुखपूर्वक रमणीयतासे विचरण कर सकेंगी ॥ १११ ॥ उस तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध पुरीका नाम द्वारिका होगा और वह पुरी इन्द्रकी अमरावती नगरीकी समान रमणीय होजावेगी ११२ यदि समुद्र उस ढकी हुई भूमिको देदेगा, तो विश्वकर्मा उसमें यथेष्ट कर्म करेंगे ॥ ११३ ॥ हे प्रभो ! आप रत्न और वैदूर्य मणिकी समान आभा वाले मणि मुक्ता और मूँगोंसे दिव्य अभि-प्राययुक्त तीनों लोकोंमें उत्पन्न हुए दिव्य रत्नोंसे सहस्रों दिव्य

सभोपमान् । जाम्बूनदमयान्छुभ्रान् सर्वरत्नविभूषितान् ॥११५॥
दिव्यध्वजपताकाढ्यान् देवगन्धर्वपालितान् । चन्द्रसूर्यप्रती-
काशान् प्रासादान् कारय प्रभो ॥ ११६ ॥ वैशम्पायन उवाच ।
एवं कृत्वा तु संकल्पं वैनतेयोऽथ केशवम् । प्रणम्य शिरसा
ताभ्यां निषसाद कृतासनः ॥ ११७ ॥ कृष्णोऽपि रामसहितो
विचिन्त्य हितमीरितम् । प्रकाशं कर्तुकामौ तौ विसृज्य विन-
तात्मजम् ॥ ११८ ॥ सत्कृत्य विधिवद्राजन् महार्हवरभूषणैः ।
मोदेते सुखिनौ तत्र सुरलोके यथाऽमरौ ॥ ११९ ॥ तस्य तद्वचनं
श्रुत्वा भोजराजो महायशाः । कृष्णं स्नेहेन विस्रब्धं बभाषे वच-
नामृतम् ॥ १२० ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन ।
श्रूयतां वचनं त्वद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ १२१ ॥ त्वया विहीनाः

स्तंभोंसे व्याप्त, स्वर्गकी देवसभाकी समान उपमा वाले सुवर्णके शुभ्र सब रत्नोंसे विभूषित, दिव्य ध्वजा और पताका वाले, देवता और गंधर्वोंसे रक्षित चन्द्रमा और सूर्यकी समान भवनोंको बनवाइये ॥ ११४—११६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि–विनतानन्दन गरुड़जी केशवसे इस प्रकार बातचीत करके उन दोनोंको शिर झुका प्रणाम कर बैठ गए ॥ ११७ ॥ श्रीकृष्णने और बलरामने अपने हितकी बात सुन कर उसको प्रकाशित करनेकी इच्छासे बहुमूल्य आभूषणोंसे विनतानन्दनका भलीभाँति सत्कार करके उनको विदा कर दिया और अपने आप सुरलोकमें घूमने वाले देवताओंकी समान तहाँ सुखपूर्वक विचरण करने लगे महायशस्वी भोजराजने गरुड़जीके वचनको सुन कर स्नेहविश्रब्ध श्रीकृष्णसे यह वचनामृत कहा, कि–॥ १२० ॥ हे यादवोंके आनन्दको बढ़ाने वाले महाभुज कृष्ण ! हे रिपुसूदन कृष्ण ! मैं जो बात आपसे कहता हूँ, उसको आप सुनिये ॥ १२१ ॥ यह नगर हो वा दूसरा नगर हो हम आपके बिना पतिहीन

सर्वे स्म न शक्ताः सुखमासितुम् । पुरेऽस्मिन् विषयान्ते वा पति-
हीना इव स्त्रियः ॥ २२ ॥ त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबल-
माश्रिताः । बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद ॥ २३ ॥
विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि । तत्र त्वं सहितोऽस्माभि-
र्गच्छेथा यादवर्षभ ॥ २४ ॥ तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं
देवकीसुतः । यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् ॥१२५॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि मन्त्रोदाहरणे
रुक्मिणीस्वयम्वरे राजेन्द्राभिषेचनसमाप्तिर्नाम
पञ्चपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

वैशम्पायन उवाच । कस्यचित्त्वथ कालस्य सभ्यांस्तान्
यदुसंसदि । अभाषे पुण्डरीकाक्षो हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १ ॥
यादवानामियं भूमिर्मथुरा राष्ट्रमालिनी । वयं चैवेह सम्भूता व्रजे
च परिवर्धिताः ॥२॥ तदिदानीं गतं दुःखं शत्रवश्च पराजिताः ।

स्त्रियोंकी समान सुखपूर्वक नहीं रह सकेंगे ॥ १२२ ॥ हे नाथ !
हम आपसे सनाथ हैं और हे मानद ! आपके भुजबलका आश्रय
पाते रहने पर हम इन्द्रसहित देवताओंसे भी नहीं डर सकते १२३
हे यादवश्रेष्ठ ! हे यादवर्षभ ! आप जहाँ २ चलें तहाँ २ पर
विजय करनेके लिये आप हमें भी लेचलिये ॥ १२४ ॥ उस
राजाके वचनको सुन कर देवकीपुत्रने मुस्कुरा कर कहा, कि—
आज मैं आपकी इच्छानुसार ही सब काम करूँगा ॥ १२५ ॥
पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-एक समय यादवोंकी सभामें पुण्डरी-
काक्ष श्रीकृष्णने उनसे हेतुयुक्त उत्तम वचन कहा, कि—॥ १ ॥
यह राष्ट्रमालिनी मथुरा यादवोंकी भूमि है, हम भी यहाँ ही उत्पन्न
हुए हैं और व्रजमें बड़े हुए हैं ॥ २ ॥ इस समय हमारा दुःख
दूर होगया, शत्रुओंको भी हमने हरा दिया है, राजाओंसे हमने

नृपेषु जनितं वैरं जरासन्धेन विग्रहः ॥ ३ ॥ वाहनानि च नः सन्ति पादातं चाप्यनन्तकम् । रत्नानि च विचित्राणि मित्राणि च बहूनि च ॥ ४ ॥इयं च माथुरी भूमिरल्पा गम्या परस्य तु। वृद्धिश्चैव पराऽस्माकं बलतो मित्रतस्तथा ॥ ५ ॥ कुमारकोट्यो याश्चेमाः पदातीनां गणाश्च ये । एषामपीह वसतां सम्मर्दमुपलक्षये ॥ ६ ॥ अत्र नो रोचते मह्यं निवासो यदुपुङ्गवाः । पुरीं निवेशयिष्यामि मम तत्क्षन्तुमर्हथ ॥७॥ एतद्यदनुरूपं वो ममाभिप्रायजं वचः । भवाय भवतां काले यदुक्तं यदुसंसदि ॥ ८ ॥ तमूचुर्यादवाः सर्वे हृष्टेन मनसा तदा । साध्यतां यदभिप्रेतं जनस्यास्य भवाय यं ॥ ९ ॥ ततः सम्मन्त्रयामासुर्वृष्णयो मन्त्रमुत्तमम् । अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम् ॥१०॥

वैर कर लिया है और जरासंधसे युद्ध भी ठान लिया है ॥ ३ ॥ अब हमारे पास वाहन हैं, और अनन्त पैदल भी हैं, बहुतसे विचित्र रत्न है और अब हमारे बहुतसे मित्र भी होगए हैं ४ परन्तु यह मथुरापुरीकी भूमि थोड़ी है और शत्रु इस पर आक्रमण कर सकते हैं, और हमारे मित्र तथा सेनादलकी वृद्धि इस समय बहुत अधिक होरही है५इन करोड़ों कुमार और पैदलोंके बसाने पर ही यहाँ बड़ी भारी घिचपिच रहती है ॥ ६ ॥ (इस लिये) हे यदुपुङ्गवों ! अब मुझे यहाँका रहना अच्छा नहीं जँचता अतः मैं (दूसरी) पुरी बसाना चाहता हूँ, इस मेरे (अपराधको) आप क्षमा करें ॥ ७ ॥ मैंने यादवोंकी सभामें आपका कल्याण करनेके लिये जो अपना अभिप्राय प्रकट किया है, इसको आप क्या उचित मानते हैं ॥ ८ ॥ तब सब यादवोंने प्रसन्न मनसे कहा, कि-आप इस जनसमूहका कल्याण करनेके लिये जिस उपायको उचित समझें, करिये ९ उस समय वृष्णि उत्तम सलाह करने लगे, कि-इसको हमसे अवध्य बना दिया गया है और

कृतः सैन्यक्षयश्चापि महानिह नराधिपैः । बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि । न शक्ष्यामो ह्यनस्तेषामपयाने भवन्मतिम् ११ तस्मिंश्चैवान्तरे राजा स कालयवनस्तदा । सैन्येन तद्विधेनैव मथुरामभ्युपागमत् ॥ १२ ॥ ततो जरासन्धबलं दुर्निवार्यमभूत्तदा । ते कालयवनं चैव श्रुत्वेदं प्रतिपेदिरे ॥ १३ ॥ केशवः पुनरेवाह यादवान् सत्यसङ्गरः । अद्यैव दिवसः पुण्यो निर्याम: स्वबलानुगाः ॥१४॥ ततो निश्चक्रमुः सर्वे यादवाः कृष्णशासनात् । ओघा इव समुद्रस्य बलौघप्रतिनादिताः ॥ १५ ॥ संगृह्य ते कलत्राणि वसुदेवपुरोगमाः । सुसन्नद्धैर्गजैर्मत्तै रथैरश्वैश्च दंशितैः ॥ १६ ॥ आहत्य दुन्दुभीन सर्वे स्वजनज्ञातिबांधवाः ।

शत्रुकी सेना भी बहुत बड़ी है १० यहाँ पर राजाओंने सेनाका बड़ा भारी क्षय भी कर डाला है, तब भी सेनाएँ बहुत हैं, हम उनका सैंकड़ों वर्षमें भी संहार नहीं कर सकते, अतः अब यहाँ से भागनेका विचार करना चाहिये ११ इसी समय राजा जरासन्ध भी कालयवनको तथा वैसे ही सेनाको साथमें लेकर मथुरापुरी पर चढ़ आया १२ उस समय जरासन्धका सेनादल बड़ा दुर्निवार्य हो रहा था, (कालयवन माथुरोंका अवध्य है) यह सुन कर उन्होंने कालयवनकी शरण ली थी १३ उस समय सत्यप्रतिज्ञ यादवोंने केशवसे फिर कहा, कि-आज पवित्र दिन है, इस लिये आज ही अपनी सेना और अनुगामिओंको लेकर चलना चाहिये । १४ ॥ उस समय श्रीकृष्णजीकी आज्ञा होने पर सब यादव अपनी सेनाओंके नादसे समुद्रके प्रवाहकी समान नाद करते हुए तहाँसे चल पड़े ॥ १५ ॥ वसुदेव आदि उस समय अपनी स्त्रियोंको ले तयार किये हुए मदमत्त हाथी रथ और घोड़ों पर सवार होकर चले ॥ १६ ॥ (इस प्रकार) सब यादव अपने सब जाति बान्धवोंको साथ

निर्ययुर्यादवाः सर्वे मथुरामपहाय वै ॥१७॥ स्यन्दनैः काञ्चनापीडैर्मत्तैश्च वरवारणैः । सूतैः प्लुतैश्च तुरगैः कशापार्ष्णिप्रणोदितैः ॥१८॥ स्वानि स्वानि बलाग्राणि शोभयन्तः प्रकर्षिणः । प्रत्यङ्मुखा ययुर्हृष्टा वृष्णयो भरतर्षभ ॥ १६ ॥ ततो मुख्यतराः सर्वे यादवा रणकोविदाः । अनीकाग्राणि कर्षन्तो वासुदेवपुरोगमाः ॥ २० ॥ ते स्म नानालताचित्रं नालिकेरवनावृतम् । कीर्णं नागवल्लैः क्रान्तं केतकीखण्डमण्डितम् ॥ २१ ॥ तालपुन्नागवकुलद्राक्षावनघनं क्वचित् । अनूपं सिन्धुराजस्य प्रपेतुर्यदुपुङ्गवाः ॥ २२ ॥ ते तत्र रमणीयेषु विषयेषु सुखप्रियाः । मुमुदुर्यादवाः सर्वे देवाः स्वर्गगता इव ॥२३॥ पुरवास्तु विचिन्वन् सः कृष्णस्तु परवीरहा । ददर्श विपुलं देशं सागरेणोप-

---

लो दुन्दुभियें बजा कर मथुराको छोड कर चल दिये ॥ १७ ॥ हे भरतर्षभ ! वृष्णिवंशी प्रसन्न होकर पूर्वदिशाकी ओर मुख करके काञ्चनके आपीड़ वाले रथों पर और मदमत्त श्रेष्ठ हाथियों पर सवार हो चल दिये उस समय सूत (उनकी आज्ञा पाते ही) कूद कर (रथों पर सवार होगए थे) और घोड़े भी चाबुक फटकारनेसे कूदते हुए चलने लगे थे, इस प्रकार वे अपनी २ सेनाके अग्रभागोंको लेजाते हुए शोभा पारहे थे ॥१८॥१६॥ तदनन्तर रणचतुर वासुदेव आदि मुख्य २ यादव अपनी सेनाके अग्रभागको खेंचते हुए नाना लताओंसे चित्र विचित्र नारिकेल के वनसे युक्त, गुरसकरी युक्त और केतकी (केवड़े) के वृक्षोंसे मण्डित, ताल जायफल वकुल और द्राक्षावन वाले सिन्धुराज के अनूप देशमें पहुँच गए ॥ २०-२२ ॥ जिसप्रकार स्वर्गमें पहुँचने पर देवता आनन्द करते हैं इसी प्रकार सुखप्रिय यादव तहाँ रमणीय विषयोंमें आनन्द करने लगे२३शत्रुओंके वीरोंका नाश करने वाले श्रीकृष्णने नगरके (योग्य) स्थानका विचार

शोभितम् ॥ २४ ॥ वाहनानां हितं चैव सिकताताम्रमृत्तिकम् । पुरलक्षणसम्पन्नं कृतास्पदमिव श्रिया ॥ २५ ॥ सागरानिलसम्वीतं सागराम्बुनिषेवितम् । विषयं सिन्धुराजस्य शोभितं पुरलक्षणैः ॥२६॥ तत्र रैवतको नाम पर्वतो नातिदूरतः । मंदरोदारशिखरः सर्वतोऽभिविराजते ॥ २७ ॥ तत्रैकलव्यसम्वासो द्रोणेनाध्युषितश्चिरम् । प्रभूतपुरुषोपेतः सर्वरत्नसमाकुलः ।२८। विहारभूमिस्तत्रैव तस्य राज्ञः सुनिर्मिता । नाम्ना द्वारवती नाम स्वायताष्टापदोपमा॥२९॥केशवेन मतिस्तत्र पुर्यर्थं विनिवेशिता। निवेशं तत्र सैन्यानां रोचयन्ति स्म यादवाः ॥ ३० ॥ ते रक्तसूर्यदिवसे तत्र यादवपुङ्गवाः । सेनापालांश्च संचक्रुः स्कन्धावार-

करते २ समुद्रसे शोभित बड़े भारी देशको देखा ॥ २४ ॥ वह वाहनोंका हित करने वाला था, तहाँ पर ताँबेकी रंगकी रेती वाली पृथ्वी थी और वह अपनी लक्ष्मीसे नगरकी शोभासंपन्न दीखता था ॥ २५ ॥ तहाँ पर समुद्रीय वायु भर रही थी और समुद्रका जल उसकी सेवा कर रहा था, ऐसा वह सिन्धुराजका विषय नगरके लक्षणोंसे युक्त था ॥ २६ ॥ तहाँसे थोड़ी दूर पर मन्दराचलका बड़ा भारी शिखर रैवत नामक पर्वत चारों ओरसे शोभा देरहा था ॥२७॥ तहाँ एकलव्यका निवासस्थान था और द्रोणाचार्य भी चिरकाल तक तहाँ रहे थे, तहाँ पर बहुतसे पुरुष रहते थे और अनेक प्रकारके रत्न भरे हुए थे२८ उस राजाकी तहाँ विहारभूमि बनी हुई थी, और वह नगरी अठपहलू (शारिकाफल) की समान थी और द्वारवती नाम वाली थी ॥ २९ ॥ तहाँ पर केशवने अपनी पुरी बसानेका विचार किया,तहाँ पर यादवोंने निवास करना अच्छा समझा३० तदनन्तर यादवपुङ्गवोंने जिस समय सूर्य रक्त होरहा था उस समय दिनमें सेनापतियोंको स्कंधावारनिवेशग बनानेकी आज्ञा

निवेशनम् ॥ ३१ ॥ भुनाग तत्र न्यवसत् केशवः सह यादवैः । देशे पुरनिवेशाय स यदुप्रवरो विभुः ॥ ३२ ॥ तस्यास्तु विधिवन्नामवास्तूनि च गदाग्रजः । निर्ममे पुरुषश्रेष्ठो मनसा यादवोत्तमः ॥३३॥ एवं द्वारवतीं चैव पुरीं प्राप्य सबान्धवाः । सुखिनो न्यवसन्राजन् स्वर्गे देवगणा इव ॥ ३४ ॥ कृष्णोपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनिषूदनः । जरासन्धभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारवती-
प्रयाणं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

जनमेजय उवाच । भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महात्मनः ॥ चरितं वासुदेवस्य यदुश्रेष्ठस्य धीमतः ॥ १ ॥ किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदनः । मध्यदेशस्य ककुदं धाम लक्ष्म्याश्च केवलम् ॥ २ ॥ शृंगं पृथिव्याः स्वालक्ष्यं प्रभूतधनधान्यवत् । आर्याढ्यजलभूयिष्ठमधिष्ठानवरोत्तमम् ॥ ३ ॥ अयुद्धेनैव दाशा-

दी ३१ यदुप्रवर विभु श्रीकृष्ण उस देशमें नगर बसानेकी इच्छा के कारण तहाँ यादवोंके साथ २ खड़े रहे ३२ उस पुरीका नाम और तहाँके घरोंको यादवोत्तम पुरुषश्रेष्ठ गदाग्रजने अपने मनमें ही विचार लिया ३३ हे राजन ! इस प्रकार यादवोंने अपने बांधवों सहित द्वारवतीपुरीमें आकर स्वर्गमें देवताओंकी समान सुखपूर्वक निवास किया ३४ केशिका नाश करने वाले श्रीकृष्ण कालयवनको जान कर जरासंधके भयसे (इस प्रकार) द्वारवती पुरीमें आगए थे ३५ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ५६

जनमेजयने कहा, कि हे भगवन् ! मैं महात्मा बुद्धिमान् यदुश्रेष्ठ वासुदेवके चरित्रको विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ १ श्रीकृष्णने मथुरापुरीको क्यों छोड़ दिया था वह स्थान तो मथुरापुरीका ककुदरूप है और लक्ष्मीका स्थानरूप है २ पृथ्वीका शिखररूप है, भली प्रकार लक्ष्यमें आजाता है और बहुतसे धन

हेस्त्यक्तवान् द्विजसत्तम । स कालयवनश्चापि कृष्णे किं प्रत्यपद्यत ॥ ४ ॥ द्वारकां च समासाद्य वारिदुर्गां जनार्दनः । किं चकार महाबाहुर्महायोगी महातपाः ॥५॥ किं वीर्यः कालयवनः केन जातश्च वीर्यवान् । यमसह्यं समालक्ष्य व्यपयातो जनार्दनः ६ वैशम्पायन उवाच । वृष्णीनामन्धकानां च गुरुर्गार्ग्यो महामनाः । ब्रह्मचारी पुरा भूत्वा न स्म दारान् स विन्दति ॥ ७ ॥ तथा हि वर्तमानं तमूर्ध्वरेतसमव्ययम् । श्यालोऽभिशस्तवान् गार्ग्यमपुमानिति राजनि ॥ ८ ॥ सोऽभिशस्तस्तदा राजन्नगरे स्वजितञ्जये । अलिप्संस्तु स्त्रियं चैव तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ९ ॥ ततो द्वादशवर्षाणि सोयऽश्चूर्णमभक्षयत् । आराधयन्महादेवमचिन्त्यं शूलपाणिनम् ॥१०॥ रुद्रस्तस्मै वरं प्रादात् समर्थं युधि

धान्यसे संपन्न है आर्यपुरुष और जलसे विभूषित है और श्रेष्ठ स्थान है ३ हे द्विजसत्तम ! दाशार्हने उसको निष्कारण ही क्यों छोड़ दिया था और उस कालयवनने भी श्रीकृष्णका क्या किया था ॥ ४ ॥ महाबाहु महायोगी और महातपस्वी जनार्दनने जलके दुर्ग वाली द्वारिकापुरीमें आकर क्या किया था ॥ ५ ॥ कालयवनका कैसा वीर्य था और वह वीर्यवान् किससे उत्पन्न हुआ था, कि-जिसको असह्य मान कर जनार्दन भाग गए थे ॥ ६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-गार्ग्य मुनि वृष्णिवंशी और अंधकवंशी राजाओंके गुरु हैं, ये महामनस्वी पहिले ब्रह्मचारी रहते थे और (विद्यमान) स्त्रियोंके पास भी नहीं जाते थे ॥ ७ ॥ वह ऐसा वर्ताव करते थे उन अच्युत ऊर्ध्वरेतासे राजसभामें श्यालने अपुमान् (हीजड़ा) कहा था ८ उन मुनि पर जीतनेमें न आने वाले नगरमें इस प्रकार आक्षेप किया था परन्तु तब भी उन्होंने स्त्रीकी इच्छा न कर दारुण तप किया ॥ ९ ॥ उन्होंने बारह वर्ष तक लोहेका चूर्ण भक्षण करते हुए अचिन्त्य शूल-

निग्रहे। वृष्णीनामन्धकानां च सर्वतेजोमयं सुतम् ॥ ११ ॥ ततः शुश्राव तं राजा यवनाधिपतिर्वरम्। पुत्रप्रसवजं दैवादपुत्रः पुत्रकामिनः ॥ १२ ॥ स नृपस्तमुपानाय्य सान्त्वयित्वा द्विजोत्तमम्। तं घोषमध्ये यवनो गोपस्त्रीषु समासृजत् ॥ १३ ॥ गोपाली त्वप्सरा तत्र गोपस्त्रीवेषधारिणी। धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् ॥ १४ ॥ मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः। स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः ॥ १५ ॥ अपुत्रस्याथ राज्ञस्तु ववृधेन्तः पुरे शिशुः। तस्मिन्नुपरते राजन् स कालयवनो नृपः ॥ १६ ॥ युद्धाभिकामो नृपतिः पर्यपृच्छद्द्विजोत्तमान्। वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदेन निवेदितम् ॥ १७ ॥

पाणि भगवान् महादेवकी उपासना की थी ॥ १० ॥ तब रुद्रने उनको वर दिया, कि—तुम्हारा पुत्र युद्धमें वृष्णि और अंधकोंका निग्रह करनेमें समर्थ होगा और वह सर्वतेजोमय होगा ॥ ११ ॥ इस पुत्रनिमित्तक वरको राजा यवनाधिपतिने सुना, प्रारब्धवश वह अपुत्र था और पुत्रकी अभिलाषा करता रहता था ॥ १२ ॥ इस लिये वह राजा उनको समझा बुझा कर अपने घर ले आया फिर उस यवनने उनको घोषके मध्यमें गोपस्त्रियोंमें छोड़ दिया ॥ १३ ॥ तहाँ पर एक गोपालीनामकी अप्सरा गोपस्त्रीका वेश धारण करके रहती थी, उसने गार्ग्यके दुर्धर और अच्युतगर्भको धारण कर लिया था ॥ १४ ॥ इस प्रकार शूलपाणि महादेवके वचनसे गार्ग्यकी मानुषी भार्यामें महाबली शूरवीर कालयवन उत्पन्न हुआ था ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस पुत्ररहित राजाके अन्तःपुरमें वह बालक बड़ा होने लगा और हे राजन्! उसके मरने पर कालयवन राजा होगया ॥ १६ ॥ उस राजाने युद्धकी इच्छासे ब्राह्मणोंसे बूझना आरम्भ किया तब नारदजीने उसे वृष्णि और अन्धकोंका वंश बतला दिया १७

ज्ञात्वा तु वरदानं तन्नारदान्मधुसूदनः । उपैक्षत तेजस्वी वर्धंतं यवनेश्वरम् ॥१८॥ समृद्धो हि यदा राजा यवनानां महाबलः । तत एनं नृपा म्लेच्छाः संश्रित्यानुययुस्तदा ॥१९॥ शकास्तुषारा दरदाः पारदाः शृङ्गलाः खसाः । पल्हवाः शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा ॥ २० ॥ स तैः परिवृतो राजा दस्युभिः शलभैरिव । नानावेषायुधैर्भीमैर्मथुरामभ्यवर्तत ॥ २१ ॥ गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैरर्बुदैरपि । पृथिवीं कम्पयामास सैन्येन महता तदा ॥ २२ ॥ रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः । मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन ससृजे नदीम् ॥२३॥ अश्वोष्ट्रशकृतां राशेर्निःसृतेति जनाधिप । ततोऽश्वशकृदित्येव नाम नद्या बभूव ह२४ तत्सैन्यं महादायद्दं श्रुत्वा वृष्ण्यन्धकाग्रणीः । वासुदेवः समा-

---

तेजस्वी मधुसूदन श्रीकृष्णने नारदजीसे इस वरदानको सुन कर भी उसे बढ़ते हुए यवनेश्वरकी उपेक्षाकी थी जब यवनोंका राजा महाबली कालयवन समृद्ध होगया तब म्लेच्छ राजे उसका आश्रय लेकर उसके अनुकूल चलने लगे॥ १८ ॥ १९ ॥ शक, तुषार, दरद, पारद, शृङ्गल, खश, पल्हव और भी सैंकड़ों हिमाचलमें उत्पन्न हुए म्लेच्छ (उसके आधीन रहने लगे) ॥ २० ॥ अनेक प्रकारका वेष और आयुध धारण करने वाले टीड़ियोंकी समान उन डाँकुओंसे घिरा हुआ वह राजा मथुरापुरी पर चढ़ आया २१ उस समय उसने बड़ीभारी सेनासे और लाखों अर्बों हाथी, घोड़े, गधे और ऊँटोंसे पृथ्वीको कँपा डाला था॥ २२ ॥ उस राजाने धूलसे सूर्यके मार्गको ढक दिया था और सेनाओंके मल मूत्रकी नदी बना दी थी २३ हे राजन् ! वह नदी हाथी और और ऊँटोंकी मलकी राशिसे निकली थी इस लिये उस नदीका नाम अश्वशकृत् पड़ा था २४ वृष्णि और अन्धक वंशियोंके चौधरी श्रीकृष्णने उस बड़ीभारी सेनाको आती हुई सुन कर

नाय्य वृष्णीनिदमुवाच ह ॥ २५ ॥ इदं समुत्थितं घोरं वृष्ण्य-न्धकभयं महत् । अवध्यश्चापि नः शत्रुर्वरदानात् पिनाकिनः २६ सामादयोऽभ्युपायाश्च निहितास्तेऽस्य सर्वशः । मत्तो मदबलाभ्यां तु युद्धमेव चिकीर्षति ॥ २७ ॥ एतावानिह वासश्च कथितो नारदेन मे । एतावति च वक्तव्यं सामैव परमं मतम् ॥ २८ ॥ जरासन्धश्च नो राजा नित्यमेव न मृष्यते । तथाऽन्ये पृथिवीपाला वृष्णिचक्रप्रतापिताः ॥ २९ ॥ केचित् कंसवधाच्चापि विरक्तास्तद्गता नृपाः । समाश्रित्य जरासन्धमस्मानिच्छन्ति बाधितुम् ३० बहवो ज्ञातयश्चैव यदूनां निहता नृपैः । विवर्धितुं न शक्याम पुरेऽस्मिन्निति केशवः ॥ ३१ ॥ अपयाने मतिं कृत्वा दूतं तस्मै ससर्ज ह । ततः कुम्भे महासर्पं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥ ३२ ॥ घोरमाशीविषं कृष्णं कृष्णः प्राक्षेपयत्तदा । ततस्तं मुद्रयित्वा तु

वृष्णियोंको बुलाकर यह बात कही, कि- २५ यह बड़ाभारी भय हमारे ऊपर आरहा है और शिवजीके वरदानसे यह शत्रु भी हमसे अवध्य है २६ हमने इससे साम आदि सब उपाय चला लिये परन्तु यह मद बलसे मत्त होनेके कारण युद्ध ही करना चाहता है २७ नारदजीने हमें यहाँका इतना ही रहना बता दिया है ऐसा होने पर भी समझाना ही श्रेष्ठ बात मानी जाती है २८ परन्तु राजा जरासन्ध हमें देख नहीं सकता और वृष्णियोंके चक्रसे तप्त हुए दूसरे राजे भी हमें नहीं देख सकते ॥ २९ ॥ कुछ राजे कंसके वधसे विरक्त होकर उसके पास पहुँच गए हैं और वे जरासन्धका आश्रय लेकर हमें पीड़ा देना चाहते हैं ३० राजाओंने हमारी जातवाले बहुतसे यादवोंको मारडाला है, तदनन्तर श्रीकृष्णने विचारा, कि हम इस नगरमें रहकर बढ़ नहीं सकते ॥३१॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने भागनेका विचार करके भी उसके पास एक दूत भेजा पहले उन्होंने घड़ेमें एक बड़ेभारी

स्वेन दूतेन हारयत् ॥ ३३ ॥ निदर्शनार्थं गोविन्दो भीषयामास तं नृपम् । स दूतः कालयवने दर्शयामास तं घटम् ॥३४॥ कालसर्पोपमः कृष्ण इत्युक्त्वा भरतर्षभ । तत्कालयवनो बुद्ध्वा त्रासनं यादवैः कृतम् ॥ ३५ ॥ पिपीलिकानां चण्डानां पूरयामास तं घटम् । स सर्पो बहुभिस्तीक्ष्णैः सर्वतस्तैः पिपीलिकैः ॥ ३६ ॥ भक्ष्यमाणः किलाङ्गेषु भस्मीभूतोऽभवत्तदा । तं मुद्रयित्वा तु घटं तथैव यवनाधिपः । प्रेषयामास कृष्णाय बाहुल्यमुपवर्णयन् ३७ वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा योगं विहतमात्मनः । उत्सृज्य मथुरामाशु द्वारकामभिजग्मिवान् ॥३८॥ वैरस्यान्तं विधित्सुस्तु वासुदेवो महायशाः । निवेश्य द्वारकां राजन् वृष्णीनाश्वास्य चैव ह ॥३९॥

सर्पको डाला वह पिसे हुए अञ्जनकी समान काला था उसका विष बड़ा तीक्ष्ण था उस सर्पको घड़ेमें डालकर श्रीकृष्णने बन्दकर और अपने दूतके हाथ कालयवनके पास भेजदिया३३ गोविन्दने उदाहरण देकर उस राजाको डराना चाहा था हे भरतर्षभ ! दूतने श्रीकृष्ण काल सर्पकी समान हैं यह कह कर वह घड़ा कालयवनको दिखलाया, तब कालयवनने समझा कि यादव मुझे डराना चाहते हैं ॥३४॥३५॥ अतः उसने प्रचण्ड चींटियोंको लेकर उस घड़ेमें भरदिया उन तीक्ष्ण चींटियोंने उस सर्पको चारों ओरसे काटना आरम्भ कर दिया तब तो उसके अङ्गमें बड़ी भारी पीड़ा होने लगी और वह भस्म होगया अर्थात् मरगया तदनन्तर यवनराजने उस घड़ेको वैसे ही मूँद दिया और हम बहुत हैं यह दिखानेके लिये श्रीकृष्णके पास भेज दिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जब वासुदेवने देखा मेरा योग नष्ट होगया तब जल्दीसे ही मथुराको छोड़ कर द्वारकाको चले ३८ महायशस्वी वासुदेवने वैरका अन्त करनेकी इच्छासे हे राजन्! द्वारकाको बसाकर वृष्णियोंको भी आश्वासन दिया ॥ ३९ ॥

पदातिः पुरुषव्याघ्रो बाहुप्रहरणस्तदा । आजगाम महायोगी मथुरां मधुसूदनः ॥ ४० ॥ तं दृष्ट्वा निर्गतो हृष्टः स कालयवनो रुषा । प्रेक्षापूर्वं च कृष्णोपि निश्चक्राम महाबलः ॥४१॥ अथान्वगच्छद्गोविन्दं जिघृक्षुर्यवनेश्वरः । न चैनमशकद्राजा गृहीतुं योगधर्मिणम् ॥ ४२ ॥ मांधातुस्तु सुतो राजा मुचुकुन्दो महायशाः । पुरा देवासुरे युद्धे कृतकर्मा महाबलः ॥ ४३ ॥ वरेण छन्दितो देवैर्निद्रामेव गृहीतवान् । श्रान्तस्य तस्य वागेवं तदा प्रादुरभूत् किल ॥ ४४ ॥ प्रसुप्तं बोधयेद्यो मां तं दहेयमहं सुराः । चक्षुषा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः ॥ ४५ ॥ एवमस्त्विति तं शक्र उवाच त्रिदशैः सह । स सुरैरभ्यनुज्ञातो लोकं मानुषमागमत्४६ स पर्वतगुहां कांचित् प्रविश्य श्रमकर्शितः । सुष्वाप कालमेतं वै

इसके उपरान्त भुजाओंसे प्रहार करने वाले पुरुषव्याघ्र महायोगी मधुसूदन पैदल ही मथुरापुरीको चले आए ॥ ४० ॥ उनको देखकर कालयवन प्रसन्न हुआ और क्रोधमें भरकर चला तदनन्तर महाबली श्रीकृष्ण भी उसको देखते हुए भागे तब तो यवनराज श्रीकृष्णको पकड़नेके लिये उनके पीछे२भागा परन्तु श्रीकृष्ण योगधर्मको जानने वाले थे इसलिये राजा कालयवन उनको न पकड़ सका ॥४२॥ पहले मान्धाताका पुत्र राजा मुचुकुन्द महायशस्वी था उस महाबलीने देवासुर युद्धमें काम किया था ॥ ४३ ॥ देवताओंने उससे वर माँगनेको कहा, तब उसने निद्राका वर माँगा जब वह श्रान्त होगया तब उसकी वाणीमेंसे यह निकला ॥ ४४ ॥ हे देवताओं ! जो मुझे सोते सोते जगादेय उसे मैं क्रोधमें भरी हुई आँखोंसे भस्म कर डालूँ इस प्रकार उसने बारम्बार कहा ॥ ४५ ॥ तब इन्द्रने और देवताओंने उससे 'एवमस्तु' कहा था तब देवताओंकी आज्ञा लेकर वह मनुष्यलोकको चला आया॥४६॥और पर्वतकी किसी

यावत् कृष्णस्य दर्शनम् ॥ ४७ ॥ तत् सर्वं वासुदेवाय नारदेन निवेदितम् । वरदानं च देवेभ्यस्तेजस्तस्य च भूपतेः ॥ ४८ ॥ कृष्णोऽनुगम्यमानश्च तेन म्लेच्छेन शत्रुणा । तां गुहां मुचुकुन्दस्य प्रविवेश विनीतवत् ॥ ४९ ॥ शिरस्थाने तु राजर्षेर्मुकुन्दस्य केशवः । सन्दर्शनपथं त्यक्त्वा तस्थौ बुद्धिमतां वरः॥५०॥ अनुप्रविश्य यवनो ददर्श पृथिवीपतिम् । स तं सुप्तं कृतान्ताभमाससाद सुदुर्मतिः ॥ ५१ ॥ वासुदेवं तु तं मत्वा घट्टयामास पार्थिवम् । पादेनात्मविनाशाय शलभः पावकं यथा ॥ ५२ ॥ मुचुकुन्दस्तु राजर्षिः पादस्पर्शप्रबोधितः । निद्राच्छेदेन चुक्रोध पादस्पर्शेन तेन च ॥ ५३ ॥ संस्मृत्य स वरं शक्रादवैक्षत तमग्रतः । स दृष्टमात्रः क्रोधेन संप्रजज्वाल सर्वशः ॥ ५४ ॥ ददाह

गुफा पर पहुँचा और श्रमसे कर्षित होनेके कारण श्रीकृष्णका दर्शन होने तक गुफामें सोतारहा ४७ यह सब बात नारदजीने श्रीकृष्णसे कह दी थी और देवताओंका वरदान तथा उस राजा का तेज भी वर्णन कर दिया था ४८ वह म्लेच्छ शत्रु श्रीकृष्ण के पीछे भाग रहा था उस समय श्रीकृष्ण विनीतकी समान मुचुकुन्दकी गुफामें घुस गए ४९ तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण दृष्टिमें न आसकें इस प्रकार राजर्षि मुचुकुन्दकी शिरकी ओर खड़े होगए ५० तदनन्तर यवनराज भी वहाँ घुसा और उसने उस राजाको देखा और वह दुर्मति यमराजकी समान आभा वाले उस सोते हुए राजाके पास पहुँच गया ५१ फिर जैसे भुनगा अग्निके ऊपरको दौड़ता है तैसे ही उसने राजाको श्रीकृष्ण समझ कर अपने विनाशके लिये उसके लात मारी ५२ राजर्षि मुचुकुन्द लात लगनेसे जग गया और निद्रा भङ्ग होनेसे तथा लात लगनेसे कोपमें भर गया ५३ उस समय उसने इन्द्रके वरका स्मरण करके सामने ।। देखा राजा मुचुकुन्दके क्रोधसे देखते ही

पावकस्तं तु शुष्कं वृक्षमिवाशनिः । क्षणेन कालयवनं नेत्रतेजो विनिर्गतः ॥ ५५ ॥ तं वासुदेवः श्रीमन्तं चिरसुप्तं नराधिपम् । कृतकार्योऽब्रवीद्धीमानिदं वचनमुत्तमम् ॥५६॥ राजंश्चिरप्रसुप्तोसि कथितो नारदेन मे । कृतं मे सुमहत् कार्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ वासुदेवमुपालक्ष्य राजा ह्रस्वं प्रमाणतः । परिवृत्तं युगं मेने कालेन महता तदा ॥५८॥ उवाच राजा गोविंदं को भवान् किमिहागतः । कश्च कालः प्रसुप्तस्य यदि जानासि कथ्यताम् ॥ ५९ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । सोमवंशोद्भवो राजा ययातिर्नाम नाहुषः । तस्य पुत्रो यदुर्ज्येष्ठश्चत्वारोऽन्ये यवीयसः ६० यदुवंशात् समुत्पन्नं वसुदेवात्मजं विभो । वासुदेवं विजानीहि नृपते त्वमिहागतम् ॥ ६१ ॥ त्रेतायुगे प्रसुप्तोसि विदितो मेऽसि

कालयवन चारों ओरसे जलने लगा ५४ जैसे सूखे हुए वृक्षको वज्र भस्म करदेता है इसी प्रकार नेत्रतेजरूपी अग्निने निकल कर कालयवनको क्षण भरमें ही भस्म कर दिया ५५ तदनन्तर बुद्धिमान् श्रीकृष्ण कृतकार्य होकर उस चिरकालसे सोने वाले श्रीमान् राजासे यह उत्तम वचन कहा, कि-५६ कि हे राजन् नारदजीने मुझसे कहा था, कि-आप बहुत समयसे सो रहे हैं आपने मेरा बड़ाभारी कार्य किया आपका कल्याण हो अब मैं जाता हूँ ५७ राजा मुचुकुन्दने श्रीकृष्णको छोटे कदका देखा इस समय उसने समझा, कि-बहुत समय बीत गया और युग बदल गया है ५८ उस समय राजाने गोविन्दसे कहा, कि-आप कौन हैं और यहाँ क्यों आगए हैं अब यह कौन समय चल रहा है क्योंकि-मैं सोरहा था, यदि आप इस बातको जानते हों तो बताइये ५९ श्रीकृष्णने कहा, कि-नहुषका पुत्र राजा ययाति सोम वंशमें उत्पन्न हुआ था यदु उसके बड़े पुत्र थे उसके और भी छोटे २ चार पुत्र थे ६० हे इन्द्रपते ! हे विभो ! आप मुझ

नारदात् । इदं कलियुगं विद्धि किमन्यत् करवाणि ते ॥ ६२ ॥ मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवदत्तवरो नृप । अवध्यो यो मया संख्ये भवेद्वर्षशतैरपि ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तः स तु कृष्णेन निर्जगाम गुहामुखात् । अन्वीयमानः कृष्णेन कृतकार्येण धीमता ॥६४॥ ततो ददर्श पृथिवीमावृतां ह्रस्वकैर्नरैः । स्वल्पोत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमैः । परेणाधिष्ठितं चैव राज्यं केवलमात्मनः ॥ ६५ ॥ प्रीत्या विसृज्य गोविन्दं प्रविवेश महावनम् । हिमवन्तमगाद्राजा तपसे धृतमानसः ॥ ६६ ॥ ततः स तत्र आस्थाय विनिर्मुच्य कलेवरम् । आरुरोह दिवं राजा कर्मभिः स्वैर्जिताशुभैः ॥६७॥ वासुदेवोपि धर्मात्मा उपायेन महामनाः ।

आप हुएको यदुवंशमें उत्पन्न हुआ वसुदेवपुत्र वासुदेव जानिये ६१ आप त्रेतायुगमें सोए थे यह बात मुझसे नारदजीने कही थी इस युगको आप कलियुग जानिये,बतलाइये मैं आपका और क्या कार्य करूँ ६२ आपने मेरे शत्रुको भस्म कर दिया,उसको देवताओंने वर दिया था अतः मैं सैंकड़ों वर्षोंमें भी इसको युद्धमें नहीं मार सकता था ६३ वैशम्पायनजीने कहा, कि-श्रीकृष्णके इस प्रकार कहने पर वह गुफासे निकला और जिनका कार्य हो गया था ऐसे श्रीकृष्ण भी उसके पीछे २ चले ६४ तदनन्तर उसने देखा, कि-पृथ्वीमें बहुत छोटे २ मनुष्य हैं उनका उत्साह भी अल्प है बल वीर्य तथा पराक्रम भी थोड़ा ही है और उसने देखा, कि-उसके राज्य पर दूसरा आदमी बैठा है इस प्रकार उसने केवल अपने राज्यको ही देखा ॥ ६५ ॥ तब उसने गोविन्दको विदा कर दिया और महावनमेंको जाने लगा इस प्रकार अपने मनमें धैर्य धारण करने वाला वह राजा तप करने के लिये हिमाचल पर्वतको चला गया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उसने तप करके अपने शरीरको छोड़ दिया और अशुभ कर्मको जीतने

घातयित्वाऽऽत्मनः शत्रुं तत्सैन्यं प्रत्यपद्यत ॥ ६८ ॥ प्रभूतरथ-हस्त्यश्ववर्मशस्त्रायुधध्वजम् । आदायोपययौ धीमान् ससैन्यं निहतेश्वरम् ॥ ६९ ॥ निवेदयामास ततो नराधिपे तदुग्रसेने प्रतिपूर्णमानसः । जनार्दनो द्वारवतीं च तां पुरीमशोभयच्चैव धनेन भूरिणा ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवधो नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रभाते विमले भास्करे उदिते तदा । कृतजप्यो हृषीकेशो वनान्ते निषसाद ह ॥ १ ॥ परिचक्राम तं देशं दुर्गस्थानदिदृक्षया । उपतस्थुः कुलश्रेष्ठा यादवा यदुनन्दनम् ॥ २ ॥ रोहिण्यामहनि श्रेष्ठे स्वस्तिवाच्य द्विजोत्तमान् । पुण्याहघोषैर्विपुलैर्दुर्गस्यारब्धवान् क्रियाम् ॥ ३ ॥ ततः

वाले अपने पूर्व कर्मोंके कारण वह राजा स्वर्गमें चढ़ गया ६७ इस प्रकार उदार मनवाले धर्मात्मा वासुदेव उपायके द्वारा अपने शत्रुको नष्ट करके बहुतसे रथ, हाथी, घोड़े, कवच, शस्त्र, आयुध और ध्वजावाली सेनामें पहुँच गए, और वह बुद्धिमान् जिसका स्वामी मारा गया था ऐसी उस सेनाको लेकर चल दिये ६८-६९ तदनन्तर पूर्ण मनवाले जनार्दनने यह सब बात राजा उग्रसेनसे निवेदन की और उस द्वारकापुरीको बड़े भारी धनसे सुशोभित किया ॥ ७० ॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर जब विमल प्रभात होकर सूर्य उदय होगया तब श्रीकृष्ण जप करके उस वनके पास बैठे १ फिर दुर्गस्थानको देखनेकी इच्छासे उस देशमें घूमने लगे उस समय यदुनन्दन श्रीकृष्णके पास कुलमें उच्च यादव आगये २ तब श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर रोहिणी नक्षत्र में पवित्र दिन बड़े भारी पुण्याह घोषोंके साथ दुर्गकी क्रिया का

पंकजपत्राक्षो यादवान् केशिसूदनः । प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो देवान् वृत्ररिपुर्यथा ॥ ४ ॥ कल्पितेयं मया भूमिः पश्यध्वं देवसद्मवत् । नाम चास्याः कृतं पुर्याः ख्यातिं यदुपयास्यति ॥५॥ इयं द्वारवती नाम पृथिव्यां निर्मिता मया । भविष्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती ॥ ६ ॥ तान्येवास्याः करिष्ये चिन्हान्यायतनानि च । चत्वरान्राजमार्गांश्च समान्यन्तःपुराणि च ॥ ७ ॥ देवा इवात्र मोदन्तु भवन्तो विगतज्वराः । बाधमाना रिपूनुग्रानुग्रसेनपुरोगमाः ॥ ८ ॥ गृह्यन्तां वेशमवास्तूनि कल्प्यन्तां त्रिकचत्वराः । मीयन्तां राजमार्गाश्च प्रासादस्य च या गतिः ॥९॥ प्रेष्यन्तां शिल्पमुख्यानां युक्तानां वेशमकर्मसु । नियुज्यन्तां च

आरम्भ किया ॥ ३ ॥ वृत्रासुरका शत्रु इन्द्र जैसे देवताओंसे संभाषण करता है इसी प्रकार वक्ताओंमें श्रेष्ठ केशिनिपूदन कमलके पत्तेकी समान नेत्र वाले श्रीकृष्णने यादवोंसे बातचीत की कि-॥ ४ ॥ मैंने देवभवनकी समान इस भूमिको ठीक कर लिया है इसको तुम देखो और इस पुरीका जो नाम प्रसिद्ध होगा वह भी मैंने विचार लिया है, यह मेरी पृथ्वीमें बनाई हुई द्वारवती नाम वाली पुरी इन्द्रकी अमरावतीकी समान रमणीय होजावेगी ॥६॥ इस लिये ही मैं इसमें ऐसे ही चिन्ह और स्थान बनवाऊँगा और चौक राजमार्ग और समान अन्तःपुरोंको बनवाऊँगा ॥ ७ ॥ उग्रसेन आदि आप लोग अपने शत्रुओंको पीड़ा देते हुए इस पुरीमें देवताओंकी समान निश्चिन्त होकर आनन्द मनावें । ८ ॥अब आप घर बनानेकी वस्तुएँ लेलें और जिसमें तीन वा चार तरफको दोनों ओर दूकानें चली जाएँ ऐसे ऐसे राजमार्ग बनाने चाहियें और महल बनाने चाहिये ९ और भवन बनाने वाले मुख्य २ शिल्पियोंके पास उनको बुलानेके लिये आदमियोंको भेजो और देश विदेशोंमें प्रेषण कर्म करने वाले

देशेषु प्रेष्यकर्मकरा जनाः ॥ १० ॥ एवमुक्ते तु यदवो गृहसंग्रह-
तत्पराः । यथानिवेशं संहृष्टाश्चक्रुर्वास्तुपरिग्रहम् ॥ ११ ॥ सूत्र-
हस्तास्ततो मानं चक्रुर्यादवसत्तमाः । पुण्येऽहनि महाराज द्विजाती-
नभिपूज्य च ॥ १२ ॥ वास्तुदैवतकर्माणि विधिना कारयन्ति
च । स्थपतीनथ गोविन्दस्तत्रोवाच महामतिः ॥ १३ ॥ अस्म-
दर्थे सुविहितं क्रियतामत्र मन्दिरम् । विविक्तचत्वरपथं सुनि-
विष्टेष्टदैवतम् ॥ १४ ॥ ते तथेति महाबाहुमुक्त्वा स्थपतयस्तदा ।
दुर्गकर्माणि संस्कारानुपकल्प्य यथाविधि ॥ १५ ॥ यथान्यायं
निर्ममिरे दुर्गाण्यायतनानि च । स्थानानि निदधुश्चात्र ब्रह्मा-
दीनां यथाक्रमम् ॥ १६ ॥ अपामग्नेः सुरेशस्य दृपदोलूखलस्य
च । चातुर्दैवानि चत्वारि द्वाराणि निदधुश्च ते ॥१७॥ शुद्धाक्ष-

मनुष्योंको अर्थात् एलचियोंको नियुक्त कर दो ॥ १० ॥ इस प्रकार कहने पर यादवोंने घरकी वस्तुओंका संग्रह करना आरंभ कर दिया और प्रसन्न होकर स्थान २ पर घर बनानेके लिये संग्रह करने लगे ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! इस प्रकार पुण्यदिनमें द्विजातियोंका पूजन करके श्रेष्ठ २ यादवोंने अपने हाथ में सूत्र लेकर नापना आरम्भ कर दिया, ॥ १२ ॥ वे वास्तु-दैवत कर्मको विधि विधानसे कराने लगे; उस समय महाबुद्धि-मान् श्रीकृष्णने वास्तु कर्मको जानने वाले सूत्रधारोंसे कहा, कि—॥ १३ ॥ हमारे लिये यहाँ पर बड़ा अच्छा भवन बनाओ उसका मार्ग बहुत खुलासा हो और उसमें इष्ट देवताकी मूर्तिको स्थापित करो ॥ १४ ॥ तब उन सूत्रधारोंने उन महाभुजसे तथास्तु कहा, फिर—दुर्ग कर्मके संस्कारोंको यथाविधि ठीक करके १५ शास्त्रानुसार दुर्ग भवन और स्थानोंको बनाने लगे और वहाँ पर उन्होंने ब्रह्माजी आदिके स्थानभी क्रमानुसार बनाये जल, अग्नि, सुरेश पत्थर और उलूखलके भी स्थान बनाये,

मैंद्रं भल्लाटं पुष्पदंतं तथैव च । तेषु वेश्मसु युक्तेषु यादवेषु महात्मसु ॥ १८॥ पुर्याः क्षिप्रं निवेशार्थं चिन्तयामास माधवः । तस्य दैवात्स्थिता बुद्धिर्विमला क्षिप्रकारिणी॥ १९ ॥ पुर्याः प्रिय करी सा वै यदूनामभिवर्धिनी । शिल्पिमुख्यस्तु देवानां प्रजापतिसुतः प्रभो ॥ २० ॥ विश्वकर्मास्व सामर्थ्यात् पुरीं संस्थापयिष्यति । मनसा समनुध्याय तस्यागमनकारणात् । त्रिदशाभिमुखः कृष्णो विविक्ते समपद्यत ॥ २१ ॥ तस्मिन्नेव ततः काले शिल्पाचार्यो महामतिः । विश्वकर्मा सुरश्रेष्ठः कृष्णस्य प्रमुखे स्थितः ॥ २२ ॥ विश्वकर्मोवाच । शक्रेण प्रेषितः क्षिप्रं तव विष्णो धृतव्रत । किंकरः समनुप्राप्तः शाधि मां किंकरोमि ते २३ यथाऽसौ देवदेवो मे शंकरश्च यथाऽव्ययः । तथा त्वं देवमान्यो

और (शुद्धान्त आदि) चारदेवताओंके चार दरवाजे बनाए १७ (उनके नाम इस प्रकार हैं) शुद्धान्त, ऐन्द्र, भल्लाट और पुष्पदन्त जब महात्मा यादव इन भवनों (को बनाने)में भली प्रकार लग गए ॥ १८ ॥ उस समय माधवने पुरीको शीघ्रतासे बनाने के लिये विचार किया, तब उनकी शीघ्रता करने वाली विमल बुद्धि दैवसे प्रकट हुई ॥१९॥वह पुरीका प्रिय करने वाली और यादवोंको बढाने वाली थी कि–देवताओंके शिल्पियोंमें मुख्य प्रजापतिके पुत्र प्रभु विश्वकर्मा अपनी सामर्थ्यसे इस पुरीको बना सकेंगे इसलिये उन्होंने अपने मनमें उनको बुलानेका विचार किया इस प्रकार श्रीकृष्ण एकान्तमें देवताओंकी ओर अभिमुख हुए ॥२०॥२१॥ उसी समय महाबुद्धिमान देवताओं में श्रेष्ठ शिल्पाचार्य विश्वकर्मा श्रीकृष्णके सामने आकर खड़े होगये ॥ २२ ॥ विश्वकर्माने कहा, कि–हे विष्णो ! हे धृतव्रत! मुझे इन्द्रने शीघ्रतासे भेजा है, मैं आपका किंकर आपके पास आगया हूँ आप मुझे आज्ञा दीजिये, बताइए मैं आपका क्या

मे विशेषो नास्ति वः प्रभो ॥ २४ ॥ त्रैलोक्यज्ञापिकां वाच-
मुत्सृजस्व महाभुज । एषोऽस्मि परिदृष्टार्थः किं करोमि प्रशाधि
माम् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा विनीतं वचनं केशवो विश्वकर्मणः । प्रत्यु-
वाच यदुश्रेष्ठः कंसारिरतुलं वचः ॥ २६ ॥ श्रुतार्थो देवगुह्यस्य
भवान् यत्र वयं स्थिताः । अवश्यं त्विह कर्तव्यं सदनं मे सुरो-
त्तम ॥२७॥तदियं पूः प्रकाशार्थं निवेश्या मयि सुव्रत । मत्प्रभा-
वानुरूपैश्च गृहैश्चेयं समन्ततः ॥ २८ ॥ उत्तमा च पृथिव्यां वै
यथा स्वर्गेऽमरावती । तथेयं हि त्वया कार्या शक्तो ह्यसि महा-
मते ॥२९॥ मम स्थानमिदं कार्यं यथा वै त्रिदिवे तथा । मर्त्याः
पश्यन्तु मे लक्ष्मीं पुर्यां यदुकुलस्य च ॥ ३० ॥ एवमुक्तस्ततः

काम करूँ ॥२३॥जैसे मैं देवदेव शंकरको तथा अव्यय ब्रह्माजी
को मान्य समझता हूँ इसी प्रकार हे देव ! मैं आपको भी मान्य
समझता हूँ और हे प्रभो ! मैं आप सबमें कुछ भेद नहीं
समझता ॥ २४ ॥ हे महाभुज ! आप अपनी त्रिलोकीको जताने
वाली वाणीका उच्चारण करिये सब कामको करने वाला मैं
आपके पास खड़ा हूँ आज्ञा दीजिये मैं क्या करूँ ॥ २५ ॥
कंसके शत्रु यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने विश्वकर्माके विनीत वचन
को सुनकर अनुपम वचन कहा, कि-॥ २६ ॥ आपने देवताओं
की गुप्त बात सुनी है हे सुरोत्तम!जहां पर हम और आप खड़े
हुए हैं तहाँ पर मेरा एक मकान अवश्य बनाइये ॥ २७ ॥
हे सुव्रत ! मेरा प्रकाश करनेके लिये मेरे प्रभावके अनुकूल चारों
ओर घर बनाकर इस पुरीको बनाइये यह नगरी पृथिवीमें ऐसी
उत्तम हो जैसी कि-स्वर्गमें अमरावती है हे महामते!आप जितना
काम करसकते हो उतना काम करके इस पुरीको बनाइये २९
मेरे इस स्थानको स्वर्गके स्थानकी समान बनाइये जिससे कि
मनुष्य यदुकुलकी और इस पुरीकी और मेरी शोभा को देखें,जब

प्राह विश्वकर्मा मतीश्वरः । कृष्णमक्लिष्टकर्माणं देवामित्रविना-
शनम् ॥ ३१ ॥ सर्वमेतत् करिष्यामि यत्त्वयाऽभिहितं प्रभो ।
पुरी त्वियं जनस्यास्य न पर्याप्ता भविष्यति ॥ ३२ ॥ भविष्यति
च विस्तीर्णा वृद्धिरस्याः सुशोभना । चत्वारः सागरा ह्यस्यां
विचरिष्यन्ति रूपिणः ॥३३॥ यदीच्छेत् सागरः किंचिदुत्स्रष्टु-
मपि तोयराट् । ततः स्वायतलक्षणा पुरी स्यात् पुरुषोत्तम ३४
एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रागेव कृतनिश्चयः । सागरं सरितां नाथ-
मुवाच वदतां वरः ॥३५॥ समुद्र दश च द्वे च योजनानि जला-
शये । प्रतिसंह्रियमात्मानं यद्यस्ति मयि मान्यता ॥ ३६ ॥ अव-
काशे त्वया दत्ते पुरीयं मामकं बलम् । पर्याप्तविषया रम्या
समग्रं विसहिष्यति ॥ ३७ ॥ ततः कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा नद-

इसप्रकार कहा तब बुद्धिमानोंके स्वामी विश्वकर्माने सरलतासे कर्म करने वाले देवशत्रुविनाशक श्रीकृष्णसे कहा, कि–३०-३१ हे प्रभो ! आपने जो कुछ कहा, उसीके अनुसार मैं सब कुछ करनेको तयार हूँ परन्तु यह नगरी इन मनुष्योंके लिये काफी नहीं होगी यह बहुत विस्तीर्ण होगी इसकी वढ़ोतरी शोभन होगी इस में चारों समुद्र रूप धारण करके विचरें ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि जलके राजा समुद्र कुछ स्थान छोड़नेकी इच्छा करें तो हे पुरुषो-त्तम ! यह पुरी लम्बी चौड़ी बनाई जासकती है ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णने तो इस बातका पहिले ही निश्चय कर लिया था अब विश्वकर्माके इस प्रकार कहने पर वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने नद नदियोंके स्वामी समुद्रसे कहा, कि–३५ हे समुद्र ! यदि तुम मुझे कुछ मान्य समझते हो तो तुम अपने जलाशयमेंसे अड़तालीस कोसकी जगह मुझे छोड़ दो ॥ ३६ ॥ आपके अवकाश देने पर यह पुरी मेरे समग्र सेनादलको सह लेगी और पर्याप्त होगी तथा रमणीय होगी ॥ ३७ तदनन्तर श्रीकृष्णके वचनको सुन कर

नदीपतिः । स मारुतेन योगेन उत्ससर्ज जलाशयम् ॥ ३८ ॥ विश्वकर्मा ततः प्रीतः पुर्याः संलक्ष्य वास्तु तत् । गोविन्दे चैव सन्मानं कृतवान् सागरस्तदा ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मा ततः कृष्ण-मुवाच यदुनन्दनम् । अद्य प्रभृति गोविन्द सर्वे समधिरोहत ४० मनसा निर्मिता चेयं मया पूः प्रवरा विभो । अचिरेणैव कालेन गृहसम्बाधशालिनी ॥ ४१ ॥ भविष्यति पुरी रम्या सुद्वारा प्राग्र्यतोरणा । चयाट्टालककेयूरा पृथिव्यां ककुदोपमा ॥ ४२ ॥ अन्तःपुरं च कृष्णस्य परिचर्याक्षयं महत् । चकार तस्यां पुर्यां वै देशे त्रिदशपूजिते ॥ ४३ ॥ ततः सा निर्मिता कान्ता पुरी द्वारवती तदा । मानसेन प्रयत्नेन वैष्णवी विश्वकर्मणा॥ ४४ ॥ विधानविहितद्वारा प्राकारवरशोभिता । परिखाचयसंगुप्ता साट्ट-

---

नद और नदियोंके स्वामी समुद्रने मारुतयोगसे जलाशयको छोड़ दिया ॥ ३८ ॥ नव नगरके बनानेकी जगहको देख कर विश्वकर्मा प्रसन्न हुए जब समुद्रने गोविंदका सत्कार किया ३९ तब विश्वकर्माने यदुनन्दन श्रीकृष्णसे कहा, कि–हे गोविन्द ! आजसे आप सब इसमें रहिये ॥ ४० ॥ हे विभो ! मैंने इस श्रेष्ठ पुरीको अपने मनमें रच लिया है थोड़े ही समयमें यह रमणीय पुरी बस जावेगी इसमें बहुतसे घर होंगे इसके द्वार बड़े अच्छे होंगे इसकी वंदनमालिकाभी श्रेष्ठ होगी इसमें ऊँची २ अट्टा-लिकाएं केयूर–रूप होंगीं और यह पृथिवीमें ककुदकी समान मानी जावेगी ४१ ४२ तदनन्तर विश्वकर्माने श्रीकृष्णका अन्तः-पुर बनाया उसमें बड़ाभारी स्नानघरभी बनाया उस देवताओं से पूजित देशकी पुरीमें (इस प्रकार सब) बनाया ४३ इस प्रकार विश्वकर्माने मानस प्रयत्नसे रमणीय द्वारावती वैष्णवी-पुरी बनाई ४४ उसके द्वार शास्त्रानुसार बनाये और वह श्रेष्ठ २ परकोटोंसे शोभा पाने लगी बहुतसी खाइयें उसकी रक्षा कर

प्राकारतोरणा ॥४५॥ कान्तनारीनरगणा वणिग्भिरुपशोभिता । नानापण्यगणाकीर्णा खेचरीव च गां गता ॥ ४६ ॥ प्रपावापी-प्रसन्नोदा उद्यानैरुपशोभिता । समन्ततः संवृताङ्गी वनितेवायतेक्षणा ॥ ४७ ॥ समृद्धचत्वरवती वेश्मोत्तमघनाचिता । रथ्याकोटिसहस्राढ्या शुभ्रराजपथोत्तरा ॥ ४८ ॥ भूषयन्ती समुद्रं सा स्वर्गमिन्द्रपुरी यथा । पृथिव्यां सर्वरत्नानामेकानिचयशालिनी ॥ ४९ ॥ सुराणामपि सुक्षेत्रा सामन्तक्षोभकारिणी । अप्रकाशं तदाऽऽकाशं प्रासादैरुपकुर्वती ॥५०॥ पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां जनौघप्रतिनादिता । प्रोघैश्च वारिराजस्य शिशिरीकृतमारुता५१

ने लगी बहुतसे ऊँचे परकोटे और तोरण उसमें लग गए ४५ उसमें बहुतसे मनोहर नरनारी रहने लगे और वह पुरी वनियों से शोभा पाने लगी और वह अनेक प्रकारकी दूकानोंसे छा गई इस प्रकार वह पृथिवीमें आई हुई आकाशचारिणीसी मालूम पड़ती थी ॥ ४६ ॥ उसकी बावड़ी और पौओंमें निर्मल जल रहता था और चारों ओर बगीचे खिल रहे थे इस प्रकार चारों ओरसे ढकी हुई वह पुरी विशाल नेत्रों वाली रमणीकी समान मालूम पड़ती थी ॥ ४७ ॥ उसके चौक बड़े समृद्धिशाली थे उसके उत्तम २ महलों पर बादल छाये रहते थे उसमें करोड़ों गलियें थीं और उसका राजपथ आगेको शुभ्र होता हुआ चला गया था ॥ ४८ ॥ जैसे इंद्रपुरी स्वर्गको सुशोभित करती है इसी प्रकार वह समुद्रको सुशोभित कर रही थी इस प्रकार वह समृद्धिमती नगरी पृथिवीके सब रत्नोंमें एक रत्न प्रतीत होती थी ४९ तहाँ पर देवताओंके पवित्र मन्दिर थे वह साँमतोंको क्षुब्ध करने वाली थी और अपने भवनोंसे आकाशको प्रकाशरहित बना रही थी ॥ ५० ॥ अनेक राष्ट्रों वाली पृथिवीमें वह (नगरी) मनुष्योंके शब्दसे प्रतिध्वनित रहने लगी और वारिराज समुद्रकी

अनूपोपवनैः कान्तैः कान्त्या जनमनोहरा । सतारका द्यौरिव सा द्वारका ह्यत्यराजत ॥ ५२ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन सम्वृता । हिरण्यप्रतिवर्णैश्च गृहैर्गम्भीरनिःस्वनैः ॥ ५३ ॥ शुभ्र-मेघप्रतीकाशैर्द्वारैः सौधैश्च शोभिता । क्वचित्क्वचिदुदग्राग्रैरपा-वृतमहापथा ॥ ५४ ॥ तामावसत्पुरीं कृष्णः सर्वे यादवनन्दनाः । अभिमतजनाकीर्णां सोमः स्वमिव भासयन् ॥५५॥ विश्वकर्मा च तां कृत्वा पुरीं शक्रपुरीमिव । जगाम त्रिदिवं देवो गोविन्दे-नाभिपूजितः ॥ ५६ ॥ भूयश्च बुद्धिरभवत् कृष्णस्य विदिता-त्मनः । जनानिमान्धनौघैश्च तर्पयेयमहं यदि ॥ ५७ ॥ स वैश्रवणसंस्पृष्टं निधीनामुत्तमं निधिम् । शंखमाह्वयतोपेन्द्रो निशि

लहरोंसे तहाँकी पवन शिशिर ऋतुकीसी रहती थी ॥ ५१ ॥ अनूपके मनोहर बगीचोंकी कान्तिसे वह नगरी मनुष्योंके चित्त को हरने लगी इस प्रकार वह द्वारकापुरी नक्षत्रों वाले आकाश की समान शोभा पाने लगी ॥ ५२ ॥ सुवर्णका बना हुआ पर-कोटा तहाँ सूर्यके वर्णकी समान दमक रहा था, उससे वह नगरी घिरी हुई थी, गम्भीर ध्वनि करने वाले सुवर्णकी समान घर तहाँ बन रहे थे ॥ ५३ ॥ शुभ्र मेघकी समान द्वारोंसे और भवनों से वह पुरी शोभा पारही थी, कहीं २ पर उस नगरीकी ऊँची २ अट्टालिकाओंकी आभासे महापथ ढका रहता था ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार चन्द्रमा आकाशको शोभा देता है, इसी प्रकार श्रीकृष्ण और सब यादव भी उस इष्ट मनुष्योंसे घिरी हुई द्वारकापुरीमें रहते थे ॥ ५५ ॥ विश्वकर्माने उस पुरीको इस प्रकार इन्द्रकी पुरीकी समान बना दिया, तदनन्तर गोविन्दने उनकी पूजा की और वह स्वर्गको चले गए ॥ ५६ ॥ विदितात्मा श्रीकृष्णको फिर यह विचार उठा, कि—मैं इन मनुष्योंको धनसे तृप्त करूँ ५७ तदनन्तर प्रभु उपेन्द्रने रात्रिके समय अपने भवनमें कुबेरके पास

स्ते भवने प्रभुः ॥ ५८ ॥ स शंखः केशवाह्वानं ज्ञात्वा हि निधि-
राट् स्वयम् । आजगाम समीपं वै तस्य द्वारवतीपतेः ॥ ५६ ॥
स शंखः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयादवनिं गतः । कृष्णं विज्ञापयामास यथा वैश्रवणं तथा ॥ ६० ॥ भगवन् किं मया कार्यं सुराणां वित्तरक्षिणा । नियोजय महाबाहो यत्कार्यं यदुनन्दन ६१ तमुवाच हृषीकेशः शंखं गुह्यकमुत्तमम् । जनाः कृशधना येस्मिस्तान्धनेनाभिपूरय ॥ ६२ ॥ नेच्छाम्यनशितं द्रष्टुं कृशं मलिनमेव च । देहीति चैव याचन्तं नगर्यां निर्धनं नरम् ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच । गृहीत्वा शासनं मूर्ध्ना निधिराट् केशवस्य ह । निधीनाज्ञापयामास द्वारवत्यां गृहे गृहे ॥६४॥ धनौघैरभिवर्षध्वं चक्रुः सर्वं तथा च ते । नाधनो विद्यते तत्र क्षीणभाग्योपि वा नरः ॥ ६५ ॥ कृशो वा मलिनो वापि द्वारवत्यां

रहने वाले निधियोंमें उत्तम शंखनिधिको बुलाया । ५८ ॥ निधिराज शंख श्रीकृष्णके आह्वानको जान कर द्वारकापुरीके पास अपने आप ही चला आया ॥ ५६ ॥ और उस शंखनिधिने हाथ जोड़ कर विनय-पूर्वक पृथ्वीमें प्रणाम किया और कुबेरकी समान श्रीकृष्णसे आज्ञा देनेको कहने लगा ॥ ६० ॥ हे भगवन् ! मैं देवताओंके धनका रक्षक हूँ मुझे क्या करना चाहिये, हे महाभुज यदुनन्दन ! उसकी मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ६१ ॥ तब हृषीकेशने उस उत्तम शंखसे कहा, कि-यहाँ पर जिनके पास धन कम है, उनको आप धनसे पूर्ण करिये ॥ ६२ ॥ क्योंकि मैं इस पुरीमें ऐसे किसी मनुष्यको नहीं देखना चाहता जो भूखा दुबला अथवा दे दो कहने वाला निर्धन हो ॥ ६३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-निधिराजने केशवके शासनको अपने मस्तक पर ग्रहण कर निधियोंको आज्ञा दी, कि-तुम द्वारकाके प्रत्येक घरमें धनकी बौछार करो, तब उन निधियोंने ऐसा ही किया, इस लिये वह

कथञ्चन । द्वारवत्यां पुरि पुरा केशवस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥ चकार वायोराह्वानं भूयश्च पुरुषोत्तमः । तत्रस्थ एव भगवान् यादवानां प्रियंकरः ॥ ६७ ॥ प्राणयोनिस्तु भूतानामुपतस्थे गदाधरम् । एकमासीनमेकान्ते देवगुह्यधरं प्रभुम् ॥ ६८ ॥ किं मया देव कर्तव्यं सर्वगेनाशुगामिना । यथैव दूतो देवानां तथैवास्मि तवानघ ॥६९॥ तमुवाच ततः कृष्णो रहस्यं पुरुषो हरिः । मारुतं जगतः प्राणं रूपिणं समुपस्थितम् ॥ ७० ॥ गच्छ मारुत देवेशमनुमान्य सहामरैः । सभां सुधर्मामादाय देवेभ्यस्त्वमिहानय ॥७१॥ यादवा धार्मिका ह्येते विक्रान्ताश्च सहस्रशः । तस्यां विशेयुरेते वै न तु या कृत्रिमा भवेत् ॥ ७२ ॥ या ह्यक्षया सभा रम्या कामगा कामरूपिणी । सा यदून्धारयेत् सर्वान् यथैव

पर कोई निर्धन वा क्षीणभाग्य पुरुष न रहा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ महात्मा केशवकी द्वारकापुरीमें कोई कृश वा मलिन पुरुष न रहा ॥ ६६ ॥ यादवोंका प्रिय करने वाले पुरुषोत्तम भगवान्ने वहाँ पर बैठे २ फिर वायुको आह्वान करनेका विचार किया ६७ तब देवताओंके गुह्य वार्तालापको धारण करने वाले एकान्तमें बैठे हुए प्रभु गदाधरके पास भूतोंके प्राणोंकी योनि वायुदेव आ गए ६८ (उन्होंने कहा, कि-) हे देव ! मैं शीघ्रतासे चलने वाला हूँ और सबमें जासकता हूँ बताइये, मैं क्या करूँ, हे अनघ ! मैं जैसे देवताओंका दूत हूँ, तैसे ही आपका भी दूत हूँ ६९ तब पुरुषहरिने जगत्के प्राणरूप रूप धारण कर उपस्थित हुए वायु से एकान्तमें कहा, कि-७० हे मारुत ! तू जा और इन्द्र तथा देवताओंको प्रसन्न कर देवताओंसे सुधर्मा नामकी सभा लेकर यहाँ आ जा ७१ ये सहस्रों पराक्रमी और धार्मिक यादव उस सभामें प्रवेश करें परन्तु वह सभा बनावटी न होनी चाहिये ७२ जो सभा अक्षय रमणीय इच्छानुसार विचरण करने वाली और

मिदशास्तथा ॥७३॥ संगृह्य वचनं तस्य कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः । वायुरात्मोपमतिर्जगाम त्रिदिवालयम् ॥ ७४ ॥ सोऽनुमान्य सुरान् सर्वान् कृष्णवाक्यं निवेद्य च सभां सुधर्मामादाय पुनरायान्महीतलम् ॥७५॥ सुधर्माय सुधर्मां तां कृष्णायाक्लिष्टकारिणे । देवो देवसभां दत्त्वा वायुरन्तरधीयत ॥ ७६ ॥ द्वारवत्यास्तु सा मध्ये केशवेन निवेशिता । सुधर्मा यदुमुख्यानां देवानां त्रिदिवे यथा ॥ ७७ ॥ एवं दिव्यैश्च भोगैश्च जलजैश्चाव्ययो हरिः । द्रव्यैरलंकरोति स्म पुरीं स्वां प्रमदामिव ॥ ७८ ॥ मर्यादाश्चैव संचक्रे श्रेणीश्च प्रकृतीस्तथा । बलाध्यक्षांश्च युक्तांश्च प्रकृतीशांस्तथैव च ॥७९॥ उग्रसेनं नरपतिं काश्यं चापि पुरोहितम् । सेनापतिमनाधृष्टिं विकद्रुं मन्त्रिपुङ्गवम् ॥ ८० ॥यादवानां कुल-

---

इच्छानुसार रूप धारण करने वाली हो वह सभा देवताओंकी समान यादवोंको धारण करे ७३ सरलतासे कर्म करने वाले श्रीकृष्णके वचनको ग्रहण करके आत्माकी समान गति वाले वायुदेव स्वर्गको चले गए ७४ उन्होंने श्रीकृष्णका वाक्य सुन कर सब देवताओंको मनालिया और सुधर्मा नामकी सभाको लेकर फिर पृथ्वीतलमें आगए ७५ और सरलतासे कर्म करने वाले तथा श्रेष्ठ धर्म वाले श्रीकृष्णको सुधर्मा नामकी देवसभा देकर वायुदेव अन्तर्धान होगए ७६ श्रीकृष्णने द्वारकाके बीचमें उस सुधर्मा नामकी सभाको मुख्य २ यादवोंके लिये स्वर्गमें जैसे देवताओंके लिये यह सभा थी तिसी प्रकार, स्थापित कर दिया ७७इस प्रकार श्रीकृष्णने उस पुरीको दिव्य भोगोंसे रत्नों से और द्रव्योंसे अपनी स्त्रीकी समान सजा दिया७८ मर्यादा, श्रेणी और प्रकृतिमंडल सेनापति तथा योग्य २ प्रकृतीशको राजा उग्रसेन पुरोहित काश्य सेनापति अनाधृष्टि मन्त्रिप्रवर विकद्रु और यादवोंके कुलको बढ़ाने वाले दश वृद्ध पुरुषोंको एक साथ

करान्रथविरान्दश तत्र वै । मतिमान् स्थापयामास सर्वकार्येष्वनन्तरान् ॥ ८१ ॥ रथेष्वतिरथो यन्ता दारुकः केशवस्य वै । योधमुख्यश्च योधानां प्रवरस्सात्यकिः कृतः ॥ ८२ ॥ विधानमेवं कृत्वाथ कृष्णः पुर्यामनिन्दितः । मुमुदे यदुभिस्सार्द्धं लोकस्रष्टा महीतले ॥ ८३ ॥ रेवतस्याथ कन्यां च रेवतीं शीलसंमताम् । प्राप्तवान् बलदेवस्तु कृष्णस्यानुमते तदा ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारावती निर्माणं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नेव काले तु जरासन्धः प्रतापवान् । नृपानुद्योजयामास चेदिराजप्रियेप्सया ॥ १ ॥ सुताया भीष्मकस्याथ रुक्मिण्या रुक्मभूषणः । शिशुपालस्य नृपतेर्विवाहो भविता किल ॥ २ ॥ दन्तवक्त्रस्य तनयं सुवक्त्रममितौजसम् । सहस्राक्षसमं युद्धे मायाशतविशारदम् ॥ ३ ॥ पौण्ड्रस्य वासु-

---

सम्मति देने वाले बना कर बुद्धिमान् श्रीकृष्णने स्थापित कर दिया ७९—८१ रथोंमें अतिरथी दारुक केशवका सारथी बना, और श्रीकृष्णने योधाओंमें मुख्य सात्यकिको योधाओंमें श्रेष्ठ बनाया ८२ लोकोंके रचने वाले अनिन्दित श्रीकृष्ण अपनी पुरीमें इस प्रकारका विधान करके यादवोंके साथ पृथ्वीतलमें आनन्द करने लगे ८३ तदनन्तर श्रीकृष्णजीकी सम्मतिसे बलदेवजीने रेवत की शील संपन्न कन्या रेवतीसे विवाह किया ८४ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ५८

वैशम्पायनजीने कहा, कि—इसी समय प्रतापी जरासन्धने चेदिराजका प्रिय करनेकी इच्छासे अर्थात् दमघोषके प्रिय पुत्र शिशुपालके विवाह करनेकी इच्छासे राजाओंको तयार किया १ कि—भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीका राजा शिशुपालके साथ सुवर्ण के आभूषणोंसे विवाह होगा ॥ २ ॥ दन्तवक्रके पुत्र सैंकड़ों

देवस्य तथा पुत्रं महाबलम् । सुदेवं वीर्यसम्पन्नं पृथगक्षौहिणीपतिम् ॥ ४ ॥ एकलव्यस्य पुत्रं च वीर्यवन्तं महाबलम् । पुत्रं च पाण्ड्यराजस्य कलिङ्गाधिपतिं तथा ॥ ५ ॥ कृताप्रियं च कृष्णेन वेणुदारिं नराधिपम् । अंशुमन्तं तथा क्राथं श्रुतधर्माणमेव च ॥६॥ निवृत्तशत्रुं कालिङ्गं गान्धाराधिपतिं तथा । प्रसह्य च महावीर्यं कौशाम्ब्यधिपमेव च ॥ ७ ॥ भगदत्तो महासेनश्शलश्शाल्वो महाबलः । भूरिश्रवा महासेनः कुन्तिवीर्यश्च वीर्यवान् । स्वयम्वरार्थं सम्प्राप्ता भोजराजनिवेशने ॥ ८ ॥ जनमेजय उवाच । कस्मिन्देशे नृपो जज्ञे रुक्मी वेदविदां वरः । कस्यान्ववाये द्युतिमान् सम्भूतो द्विजसत्तम ॥९॥ वैशम्पायन उवाच । राजर्षेर्यादवस्यासीद्विदर्भो नाम वै सुतः । विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे विदर्भायां न्यवेशयत् ॥ १० ॥ क्रथकैशिकमुख्यास्तु पुत्रा-

---

माया करनेमें चतुर युद्धमें इन्द्रकी समान अमित पराक्रमी सुदेवको और अक्षौहिणी सेनाके स्वामी पौण्ड्र वासुदेवके महाबली पुत्र वीर्यवान् सुदेवको एकलव्यके वीर्यवान् पुत्र महाबलको और पाण्ड्यराजके पुत्रको तथा कलिङ्गराजको तथा श्रीकृष्णने जिसका अप्रिय किया था उस राजा वेणुदारिको अंशुमान्को क्राथको तथा श्रुतधर्माको और जिसने शत्रुओंको कील दिया था ऐसे कालिंगको और गान्धारदेशके स्वामीको और महाबलवान् कौशाम्बीके राजाको जोर डालकर (बुलवाया) ॥३-७॥ और भोजराजके घरमें भगदत्त महासेन शल महाबली शाल्व बड़ीभारी सेनावाले भूरिश्रवा और वीर्यवान् कुन्तिवीर्य यह सब स्वयम्बरके लिये आगए ॥ ८ ॥ जनमेजयने कहा, कि-हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कान्तिवान् राजा रुक्मी किस देशमें और किस वंशमें उत्पन्न हुआ था ॥ ९ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, राजर्षि यादवके विदर्भ नामक पुत्र था उसने विंध्याचल

स्नस्य महाबलाः । बभूवुर्वीर्यसम्पन्नाः पृथग्वंशकरा नृपाः ११
तस्यान्ववाये भीमस्य जज्ञिरे वृष्णयो नृपाः । क्रथस्य त्वंशुमान्
वंशे भीष्मकः कैशिकस्य तु ॥१२॥ हिरण्यरोमेत्याहुर्यं दाक्षिणा-
त्यैश्वरं नृपाः । अगस्त्यगुप्तामाशां यः कुण्डिनस्थोन्वशान्नृपः१३
रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च विशाम्पते । रुक्मी चास्त्राणि
दिव्यानि द्रुमात्माप महाबलः ॥ १४ ॥ जामदग्न्यात्तथा रामा-
द्ब्राह्मपस्त्रमवाप्तवान् । भास्पर्द्धत स कृष्णेन नित्यमद्भुतकर्मणा१५
रुक्मिणी त्वभवद्राजन् रूपेणासदृशी भुवि । चकमे वासुदेवस्तां
श्रवादेव महाद्युतिः ॥१६॥ स तया चाभिलषितश्रवादेव जना-
र्दनः । तेजोवीर्यबलोपेतस्स मे भर्ता भवेदिति ॥ १७ ॥ तां ददौ

के दाहिनी ओर विदर्भ नगरीको बसाया था ॥ १० ॥ उसके क्रथ कैशिक आदि महाबली पुत्र उत्पन्न हुए उन वीर्यवान् राजाओंने अपने वंश अलग २ चलाए ॥ ११ ॥ राजा भीमके वंशमें वृष्णिवंशी राजे उत्पन्न हुए हैं क्रथके वंशमें अंशुमान् हुआ और कैशिकके भीष्मक हुआ ॥ १२ ॥ राजा उस दाक्षिणात्य देशके स्वामीको हिरण्यरोमा भी कहते हैं, वह राजा कुण्डिनपुरसे ही अगस्त्यजीसे रक्षित दक्षिण दिशाका शासन करता है ॥ १३ ॥ उसके रुक्मि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है और हे राजन् ! रुक्मिणी नामकी पुत्री भी उत्पन्न हुई है, महाबली रुक्मीने द्रुमसे दिव्य अस्त्र सीख लिये हैं॥१४॥ और जमदग्नि पुत्र परशुरामजीसे ब्रह्मास्त्र भी प्राप्त करलिया है अब वह अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्णसे स्पर्धा करता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! रुक्मिणी पृथ्वीमें अनुपम रूपवती है महाकान्तिमान् वासुदेव इस बातको सुन कर ही उसको अभिलाषा करने लगे थे ॥ १६ ॥ और वह भी सुननेसे ही जनार्दन श्रीकृष्णकी अभिलाषा करने लगी है, (और वह चाहती है, कि-)तेज वीर्य

न च कृष्णाय द्वेषाद्रुक्मी महाबलः । कंसस्य वधसन्तापात् कृष्णायामिततेजसे । याचमानाय कंसस्य द्वेष्योयमिति चिन्तयन् १८ चैद्यस्यार्थे सुनीथस्य जरासन्धस्तु भूमिपः । वरयामास तां राजा भीष्मकं भीमविक्रमम् ॥ १९ ॥ चेदिराजस्य तु वसोरासीत्पुत्रो बृहद्रथः । मगधेषु पुरा येन निर्मितोसौ गिरिव्रजः ॥२०॥तस्यान्ववाये जज्ञेसौ जरासन्धो महाबलः । वसोरेव तदा वंशे दमघोषोपि चेदिराट् ॥ २१ ॥ दमघोषस्य पुत्रास्तु पञ्च भीमपराक्रमाः । भगिन्यां वसुदेवस्य श्रुतश्रवसि जज्ञिरे ॥२२॥शिशुपालो दशग्रीवो रैभ्योयोपदिशो बली । सर्वास्त्रकुशला वीरा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥ २३ ॥ ज्ञातेस्समानवंशस्य सुनीथः प्रददौ

और बलवाले श्रीकृष्ण ही मेरे स्वामी हों ॥ १७ ॥परन्तु महाबली रुक्मी अमित तेजस्वी श्रीकृष्णको द्वेषवश रुक्मिणी नहीं देना चाहता था उसे कंसके वधका बड़ा भारी सन्ताप है इस लिये जब श्रीकृष्णने उस कन्याकी याचनाकी थी तब उसने विचारा, कि-यह तो कंसके शत्रु हैं १८ उधर राजा जरासन्धने चैद्यवंशी सुनीथके पुत्रके लिये भयंकर पराक्रमी राजा भीष्मकसे उस कन्याकी याचना की ॥ १९ ॥ चैदिराज वसुका पुत्र राजा बृहद्रथ हुआ उन्होंने मगध देशमें गिरिव्रज बसायो था ॥ २० ॥ उसीके वंशमें यह महाबली जरासन्ध उत्पन्न हुआ है और वसुके ही वंश में यह चेदिराज दमघोष भी उत्पन्न हुआ है २१ वसुदेवकी बहिन श्रुतश्रवामें दमघोषसे भयङ्कर पराक्रमी पाँच पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ २२ ॥ शिशुपाल, दशग्रीव, योपदिश और बली यह महाबलवान् वीर्यवान् तथा सब अस्त्रोंमें कुशल शूरवीर हैं ॥ २३ ॥ सुनीथने अपने समान वंश और जाति वाले पुत्र (शिशुपाल) को देदिया था अर्थात् जरासंधसे यह कर शिशुपालको देदिया था, कि-यह आपका सहकारी होगा इसलिये

सुतम् । जरासन्धस्तु सुतवद्दर्शनं जुगोप च ॥ २४ ॥ जरासन्धं पुरस्कृत्य वृष्णिशत्रुं महाबलम् । कृतान्यागांसि चैद्येन वृष्णीनां चाप्रियैषिणा ॥ २५ ॥ जामाता ह्यभवत्तस्य कंसस्तस्मिन् हते युधि । कृष्णार्थे वैरमभवज्जरासन्धस्य वृष्णिभिः २६ भीष्मकं वरयामास सुनीथार्थे च रुक्मिणीम् । तां ददौ भीष्मकश्चापि शिशुपालाय वीर्यवान् ॥ २७ ॥ ततश्चैद्यमुपादाय जरासन्धो नराधिपः । ययौ विदर्भान् सहितो दन्तवक्रेण धीमता २८ अनुज्ञातश्च पौंड्रेण वासुदेवेन धीमता । अङ्गवङ्गकलिंगानामीश्वरः स महाबलः ॥ २९ ॥ प्रत्युद्ययौ तान् रुक्मी प्रत्युद्गम्य नराधिपान् । वरयापूजयोपेतांस्तानिनाय पुरीं प्रति ॥ ३० ॥ पितृष्वसुः प्रियार्थं च रामकृष्णावुभावपि । ययतुर्वृष्णयश्चान्ये रथै-

---

जरासन्ध उसको पुत्रकी समान देखता था, और उसकी रक्षा करता था ॥ २४ ॥ वृष्णिवंशियोंके शत्रु महाबली जरासंधके कारण चेदिराज वृष्णिवंशियोंका अप्रिय करना चाहता था और उनको दुःख देना चाहता था ॥ २५ ॥ कंस जरासंधका जामाता था जब कंस युद्धमें मारा गया तब कृष्णके कारण जरासन्धने वृष्णिवंशियोंसे वैर बाँध लिया ॥ २६ ॥ और सुनीथके पुत्र शिशुपालके लिये भीष्मकसे रुक्मिणीको माँगा। वीर्यवान् भीष्मकने शिशुपालके लिये अपनी कन्या देना स्वीकार भी करलिया तदनन्तर राजा जरासन्ध चेदिराज शिशुपालको लेकर विदर्भ नगरीको चला और उसके पीछे २ दन्तवक्र भी चला ॥ २८ ॥ वह महाबली अङ्ग वङ्ग और कलिङ्ग देशोंका ईश्वर था और बुद्धिमान् पौण्ड्र वासुदेवने उससे इस बातके लिये कहा था ॥ २९ ॥ रुक्मी उन राजाओंका सत्कार करनेके लिये उनके सामने गया और उन श्रेष्ठ पूजा पाने योग्य पुरुषोंको अपनी पुरीमें लेआया ॥ ३० ॥ इधर बलराम और

स्तत्र बलान्विताः ॥ ३१ ॥ क्रथकैशिकभर्ता तान् प्रतिगृह्य यथाविधि । पूजयामास पूजार्हान् बहिश्चैव न्यवेशयत् ॥३२॥ श्वो भाविनि विवाहे च रुक्मिणी निर्गता बहिः । चतुर्युजा रथेनेन्द्र्या देवतायतने शुभे ॥ ३३ ॥ इन्द्राणीमर्चयिष्यन्ती कृतकौतुकमङ्गला । दीप्यमानेन वपुषा बलेन महता वृता ॥३४॥ तां ददर्श तदा कृष्णो लक्ष्मीं साक्षादिव स्थिताम् । रूपेणाग्र्येण सम्पन्नां देवतायतनान्तिके ॥ ३५ ॥ वह्नेरिव शिखां दीप्तां मायां भूमिगतामिव । पृथिवीमिव गम्भीरामुत्थितां पृथिवीतलात् ॥ ३६ ॥ मरीचिमिव सोमस्य सौम्यां स्त्रीविग्रहां भुवि । श्रीमिवाग्र्यां विना पद्मं भविष्यां श्रीसहायिनीम् । कृष्णेन मनसा दृष्टां दुर्निरी-

---

श्रीकृष्ण यह दोनों भी अपनी बुआका प्रिय करनेके लिये वहाँको चले और दूसरे वृष्णिवंशी महारथीभी सेनाको लेकर वहाँको चले ॥ ३१ ॥ क्रथ और कैशिकोंके स्वामीने उन सबको उचित रीतिसे लेलिया उन पूजा योग्य पुरुषोंकी पूजाकी और उनको बाहर ही ठहरा दिया ॥ ३२ ॥ रुक्मिणीका विवाह कलको होनेवाला था इस लिये रुक्मिणी ज्येष्ठा नक्षत्र में चार घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठ पवित्र देवालयमें जानेके लिये बाहर निकली ॥ ३३ ॥ वहाँ वह इन्द्राणीकी पूजा करनेवाली थी उसके कौतुक और मंगल सब होगए थे उसका शरीर प्रदीप्त होरहा था और वह बड़ी भारी सेनासे घिरी हुई थी ॥ ३४ ॥ उससमय श्रीकृष्णने देवालयके पास खड़ी हुई परमरूपवती रुक्मिणीको साक्षात् लक्ष्मीकी समान खड़ी हुई देखा ॥३५॥ उस अग्निकी प्रदीप्त शिखाकी समान भूमिमें आई हुई मायाकी समान पृथ्वीतलमेंसे निकली हुई गम्भीर पृथ्वीकी समान और पृथ्वी पर स्त्रीका स्वरूप धारण करके आई चन्द्रमाकी किरण समान पद्मरहित परमशोभाकी समान भविष्यमें लक्ष्मीकी सहा-

दर्शा सुरैरपि ॥ ३७ ॥ श्यामावदाता सा ह्यासीत् पृथुचार्वायतेक्षणा । ताम्रौष्ठनयनापाङ्गी पीनोरुजघनस्तनी ॥ ३८ ॥ बृहती चारुसर्वांगी तन्वी शशिसितानना । ताम्रतुङ्गनखी सुभ्रूर्नीलकुञ्चितमूर्धजा ॥ ३९ ॥ अत्यर्थं रूपतः कान्ता पीनश्रोणिपयोधरा । तीक्ष्णशुक्लैः समैर्दन्तैः प्रभास्वद्भिरलंकृता ॥ ४० ॥ अनन्या प्रमदा लोके रूपेण यशसा श्रिया । रुक्मिणी रूपिणी देवी पांडुरक्षौमवासिनी ॥ ४१ ॥ तां दृष्ट्वा ववृधे कामः कृष्णस्य प्रियदर्शनाम् । हविषेवानलस्यार्चिर्मनस्तस्यां समादधत् ॥४२॥ रामेण सह निश्चित्य केशवस्तु महाबलः । तत्प्रमाथेऽकरोद्बुद्धिं

यिका होनेवाली कृष्णके मनमें दीखनेवाली देवताओंसेभी कठिन से देखने योग्य (रुक्मिणीको श्रीकृष्णने देखा) ॥ ३६-३७ ॥ वह श्यामा थी उसके दाँत श्वेत थे उसके नेत्र विशाल और सुन्दर थे ओठ अपांग और नेत्र ताँबेकी समान थे और जंघा जघन तथा स्तन स्थूल थे ॥ ३८ ॥ उसके सब अङ्ग मनोहर थे वह तन्वी थी और उसका मुख चन्द्रमाकी समान श्वेत था उसके नख ऊँचे और ताँबेके रंगके थे उसकी भौंहें सुन्दर थीं और उसके केश काले घुँघराले थे ॥ ३९ ॥ वह रूपके कारण अतिमनोहर मालूम पड़ती थी उसकी श्रोणि और पयोधर स्थूल थे और वह तीखे सफेद एकसे प्रकाशित रहनेवाले दाँतोंसे अलंकृत थे ॥ ४० ॥ वह अपने रूप, यश और लक्ष्मीसे संसारमें अनुपम स्त्री थी रूपवती रुक्मिणी देवी पाण्डुर वर्णके रेशमी वस्त्रको धारण कररही थी ॥ ४१ ॥ जैसे घी डालनेसे अग्नि की लपट बढ़ने लगती है इसीप्रकार उस प्रियदर्शनाको देखकर श्रीकृष्णका काम बढ़ने लगा और उन्होंने अपना मन उसीमें लगादिया ४२ महाबलवान् केशवने बलरामजीके साथ निश्चय करके वृष्णिवंशियोंसे निवेदन करके रुक्मिणीके हरनेका

वृष्णिभिः प्रणिधाय च ॥ ४३ ॥ कृते तु देवताकार्ये निष्क्रामंतीं सुरालयात् । उन्मथ्य सहसा कृष्णः स्वं निनाय रथोत्तमम् ॥४४ वृक्षमुत्पाट्य रामोपि जघानापततः परान् । समनह्यंत दाशार्हा-स्तदाज्ञयाथ सर्वशः ॥ ४५ ॥ ते रथैर्विविधाकारैः समुच्छ्रित-महाध्वजैः । वाजिभिर्वारणैश्चैव परिवव्रुर्हलायुधम् ४६ आदाय रुक्मिणीं कृष्णो जगामाशु पुरीं प्रति । रामे भारं समासज्य युयुधाने च वीर्यवान् ॥ ४७ ॥ अक्रूरे विपृथौ चैव गदे च कृत-वर्मणि । चक्रदेवे सुदेवे च सारणे च महाबले ॥ ४८ ॥ निर्वृत्त-शत्रौ विक्रान्ते भंगकारे विदूरथे । उग्रसेनात्मजे कंके शतद्युम्ने च केशवः ॥४९॥ राजाधिदेवे मृदुरे प्रसेने चित्रके तथा । अति-दान्ते बृहद्दुर्गे श्वफल्के सत्यके पृथौ ॥ ५० ॥ वृष्ण्यन्धकेषु

विचार किया ॥ ४३ ॥ जब वह देवपूजाका कार्य करके मन्दिरमेंसे बाहरको निकल रही थी उस समय श्रीकृष्णने एक साथ उसको उठा कर अपने श्रेष्ठ रथ पर बैठा लिया ॥ ४४ ॥ उस समय बलरामने भी आक्रमण करने वाले शत्रुओंको वृक्ष उठा कर मारा उस समय बलरामजीके आज्ञा देने पर दाशार्ह भी सब ओरसे तयार होगए ॥ ४५ ॥ वे अनेक प्रकारके आकार वाले उठी हुई महाध्वजा वाले रथों पर बैठ कर और हाथी तथा घोड़ों पर बैठ कर बलदेवजीके चारों ओर खड़े होगए ॥ ४६ ॥ वीर्यवान् केशव बलरामजीके ऊपर भारको छोड़ रुक्मिणी को लेकर शीघ्रतासे द्वारकाको चले गए ॥ ४७ ॥ तथा अक्रूर, विपृथु गद, कृतवर्मा, चक्रदेव, सुदेव, महाबली सारण, शत्रुओं में आनन्द माननेवाले विक्रमी भंगकार, विदूरथ, उग्रसेनके पुत्र कंक, शतद्युम्न, राजाधिदेव मृदुर, प्रसेन, चित्रक, अतिचतुर बृहद्दुर्ग, श्वफल्क, सत्यक, पृथु और भी मुख्य २ वृष्णि तथा अन्धकवंशियों पर बड़े भारी भारको रख कर मधुदैत्यका नाश

चान्येषु मुख्येषु मधुसूदनः । गुरुणासज्य तं भारं ययौ द्वारवतीं
गति ॥ ५१ ॥ दन्तवक्रो जरासन्धः शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
सन्नद्धा निर्ययुः क्रुद्धा जिघांसन्तो जनार्दनम् ॥ ५२ ॥ अङ्ग-
वंगकलिंगैश्च सार्धं पौंड्रश्च वीर्यवान । निर्ययौ चेदिराजस्तु
भ्रातृभिः स महारथैः ॥ ५३ ॥ तान् प्रत्यगृह्णन् संरब्धा वृष्णि-
वीरा महारथाः । संकर्षणं पुरस्कृत्य वासवं मरुतो यथा ॥५४॥
आपतन्तं हि वेगेन जरासन्धं महाबलम् । षड्भिर्विव्याध नारा-
चैर्युयुधानो महामृधे ॥ ५५ ॥ अक्रूरो दन्तवक्रं तु विव्याध
नवभिः शरैः । तं प्रत्यविध्यत् कारूषो बाणैर्दशभिराशुगैः ५६
विपृथुः शिशुपालं तु शरैर्विव्याध सप्तभिः । अष्टभिः प्रत्यविद्ध्यत्तं
शिशुपालः प्रतापवान् ॥५७॥ गवेषणस्तु चैद्यन्तु षड्भिर्विव्याध
मार्गणैः । अतिदान्तस्तथाष्टाभिर्बृहद्दुर्गश्च पंचभिः ॥ ५८ ॥

करनेवाले श्रीकृष्ण द्वारकापुरीको चले गए ४८–५१ उस समय
दन्तवक्र जरासंध वीर्यवान् शिशुपाल क्रोधमें भर कर जनार्दनको
मारनेकी इच्छासे तयार होकर निकल पड़े। चेदिराज भी अपने
महाबली भाइयोंको साथ लेकर और वीर्यवान पौंड्र भी अङ्ग
वङ्ग और कलिङ्ग वालोंको साथमें लेकर निकल पड़ा ॥ ५३ ॥
जैसे देवता इन्द्रको आगे कर लेते हैं इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए
महारथी वृष्णिवीरोंने भी बलदेवजीको आगे करके उनका
सामना किया ॥ ५४ ॥ महाबली राजा जरासन्ध वेगसे दौड़ा
आरहा था सात्यकिने महायुद्धमें उसको छः बाणोंसे घायल
किया ॥ ५५ ॥ अक्रूरने दन्तवक्रको नौ बाणोंसे घायल किया
कारूष देशी दन्तवक्रने उसको तेज जाने वाले दशबाणोंसे फिर
घायल किया ॥ ५६ ॥ विपृथुने शिशुपालके सात बाण मारे तो
प्रतापी शिशुपालने भी उसके आठ बाण मारे ॥ ५७ ॥ चेदिराज
के गवेषणने छः अतिदान्तने आठ और बृहद्दुर्गने पाँच बाण

मतिविव्याध तांश्चैव पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः । जघानाश्वांश्च चतुरश्चतुर्भिर्विपृथोः शरैः ॥ ५९ ॥ बृहद्दुर्गस्य भल्लेन शिरश्चिच्छेद चारिहा । गवेषणस्य सूतं तु गाहिणोद्यमसादनम् ६० हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा विपृथुस्तु महाबलः । आरुरोह रथं शीघ्रं बृहद्दुर्गस्य वीर्यवान् ॥ ६१ ॥ विपृथोः सारथिश्चापि गवेषणरथं द्रुतम् । आरुह्य जवनानश्वान्नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६२ ॥ ते क्रुद्धाः शरवर्षेण सुनीथं समवाकिरन् नृत्यन्तं रथमार्गेषु चापहस्ताः कलापिनः ॥ ६३ ॥ चक्रदेवो दन्तवक्रं विभेदोरसि पत्रिणा । पड्रथं पञ्चभिश्चैव विव्याध युधि मार्गणैः ॥६४॥ ताभ्यां स विद्धो दशभिर्बाणैर्मर्मातिगैः शितैः । ततो बली चक्रदेवं विभेद दशभिः शरैः ॥ ६५ ॥ पञ्चभिश्चापि विव्याध

मारे ॥ ५८ ॥ तब चेदिराजने उनमेंसे प्रत्येकके पाँच २ बाण मारे और चार बाण छोड़ कर विपृथुके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ५९ ॥ और शत्रुनाशी शिशुपालने बृहद्दुर्गके भल्ल मार कर उसके शिरको काट डाला और गवेषणके सूतको यमसदन को भेज दिया ॥ ६० ॥ उस समय महाबली वीर्यवान् विपृथु मरे हुए घोड़ों वाले रथको त्याग कर शीघ्रतासे बृहद्दुर्गके रथ पर सवार होगया ॥ ६१ ॥ विपृथुका सारथी भी शीघ्रतासे गवेषण के रथके ऊपर चढ़ गया और वेगवान् घोड़ोंको हाँकने लगा ६२ तदनन्तर हाथमें बाण और धनुषको धारण करने वाले क्रोधमें भरे हुए योधाओंने रथके मार्गोंमें नाचते हुए सुनीथको बाणोंकी वर्षा बरसा कर घेर लिया ॥ ६३ ॥ चक्रदेवने दन्तवक्रके हृदय को बाण मार कर घायल कर डाला और युद्धमें पड्रथको पाँच बाण मार कर घायल किया ६४ तब उन दोनोंने उसको मर्मभेदी दश दश बाण मारकर घायल किया तदनन्तर बलीने चक्रदेवके नौ बाण मारे ६५ और दूरसे ही पाँच बाण मार कर

सोपि दूराद्विदूरथम् । विदूरथोपि तं षड्भिर्विव्याधाशगो शितैः शरैः ॥६६॥ त्रिंशता प्रत्यविध्यत्तं बली बाणैर्महाबलम् । कृतवर्मा बिभेदाशौ राजपुत्रं त्रिभिः शरैः ॥ ६७ ॥ न्यहनत् सारथिं चास्य ध्वजं चिच्छेद सोच्छ्रितम् । प्रतिविव्याध तं क्रुद्धः पौंड्रः षड्भिः शिलीमुखैः ॥ ६८ ॥ धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य भल्लेन कृतवर्मणः । निवृत्तशत्रुः कालिंगं बिभेद निशितैः शरैः । तोमरेणांसदेशे तं निर्बिभेद कलिंगराट् ॥६९॥ गजेनासाद्य कंकस्तु गजमंगस्य वीर्यवान् । तोमरेण बिभेदांगं बिभेदांगश्च तं शरैः७० चित्रकश्च श्वफल्कश्च सत्यकश्च महारथः । कलिंगस्य तथानीकं नाराचैर्बिभिदुः शितैः ॥ ७१ ॥ तं विसृष्टद्रुमेणाजौ वंगराजस्य कुञ्जरम् । जघान रामः संक्रुद्धो वंगराजं च संयुगे ७२

विदूरथको घायल कर डाला विदूरथने भी युद्धमें दश तेज बाणोंसे उसको घायल किया ६६ तदनन्तर बलवान् शिशुपालने उस महाबलीके तीस बाण मारे उस समय कृतवर्माने राजपुत्र (पौण्ड्रक वासुदेव पुत्र) को तीन बाणोंसे भेद डाला ६७ उसके सारथीको भी मार डाला और उसकी उठी हुई ध्वजाको भी काट डाला तब तो पौण्ड्रने क्रोधमें भर कर कृतवर्माके छः बाण मारे ६८ और भल्ल मार कर कृतवर्माके धनुषको भी काट डाला, निवृत्तशत्रुने कलिङ्गराजको तेज बाणोंसे छेद डाला तब कलिङ्गराजने तोमर मार कर उसके कन्धेको तोड़ डाला वीर्यवान् कंक हाथी पर बैठ कर अङ्गराजके हाथीके पास पहुँचा और अङ्गराजको तोमरसे पीटा तब अङ्गराजने भी उसके बाण मारे ७० तब तो चित्रक श्वफल्क और महारथी सत्यकने कलिङ्गराजके और उसकी सेनाके सैंकडों बाण मारे ७१ तदनन्तर जिसको द्रुमने छोड़ दिया था, ऐसे वङ्गराजके हाथीको और वङ्गराजको भी बलरामजीने क्रोधमें भर कर युद्धमें मार डाला ७२ उसको

तं हत्वा रथमारुह्य धनुरादाय वीर्यवान्। संकर्षणो जघानोग्रै-
र्नाराचैः कैशिकान् बहून्७३षड्भिर्निहत्य कारूषान् महेष्वासान्
स वीर्यवान्। शतं जघान संक्रुद्धो मागधानां महाबले ॥७४॥
निहत्य तान् महाबाहुर्जरासन्धं ततोऽभ्ययात्। तमापतन्तं
विव्याध नाराचैर्मागधस्त्रिभिः ॥ ७५ ॥ तं बिभेदाष्टभिः क्रुद्धो
नाराचैर्विविधायुधः। चिच्छेद चास्य भल्लेन ध्वजं हेमपरिष्कृ-
तम् ॥ ७६ ॥ तद्व युद्धमभवद्व घोरं तेषां देवासुरोपम्। सृजतां
शरवर्षाणि निघ्नतामितरेतरम् ॥ ७७ ॥ गजैर्गजा हि संक्रुद्धा
सन्निपेतुः सहस्रशः। रथै रथाश्च संरब्धाः सादिनश्चापि
सादिभिः ॥ ७८ ॥ पदातयः पदातींश्च शक्तिचर्मासिपाणयः
छिन्दन्तश्चोत्तमांगानि विचेरुर्युधि ते पृथक् ॥७८॥असीनां पात्य-

मारनेके बाद वीर्यवान् संकर्षण धनुषको लेकर रथ पर चढ़
गये और बाणोंसे बहुतसे कैशिकोंको मार डाला ७३ उन वीर्य-
वान् बलदेवजीने छः बाणोंसे महाधनुर्धर कारूषोंको मारा फिर
उन्होंने क्रोधमें भर कर बड़ी भारी सेनाके बीचमें सौ मागधों
को मार डाला ७४ उनको मारनेके बाद महाबली बलरामजी
जरासन्धके पास पहुँचे तब आते हुए बलदेवजीके तीन बाण
मारे ७५ तब तो मूसलका आयुध धारण करने वाले बलदेवजी
ने क्रोधमें भर कर आठ बाणोंसे उसे घायल किया और भल्ल
मार कर उसकी सुवर्णके कामवाली ध्वजाको काट डाला ७६
जब वे इस प्रकार परस्परमें बाणोंकी वर्षा बरसा रहे थे उस समय
उन दोनोंका युद्ध देवासुरके भयंकर युद्धकी समान प्रतीत होता
था ७७उसमें क्रोधमें भरे हुए सैंकड़ों हाथी हाथियोंसे लड़ रहे थे
रथसवार रथसवारोंसे लड़ रहे थे और क्रोधमें भरे हुए सवार
सवारोंसे लड़ रहे थे ७८ और शक्ति तलवार तथा ढाल लेने
वाले पैदलोंसे लड़ रहे थे, इस प्रकार युद्धमें शिरोंको काटते हुए

मानानां कवचेषु महास्वनः । शराणां पततां शब्दः पक्षिणामिव शुश्रुवे ॥ ८० ॥ भेरीशंखमृदङ्गानां वेणूनां च मृधे ध्वनिम् । जुगूह घोषः शस्त्राणां ज्याघोषश्च महात्मनाम् ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

वैशम्पायन उवाच । कृष्णेन ह्रियमाणां तां रुक्मी श्रुत्वा तु रुक्मिणीम् । प्रतिज्ञामकरोत् क्रुद्धः समक्षं भीष्मकस्य ह ॥ १ ॥ रुक्म्युवाच । अहत्वा युधि गोविन्दमनानीय च रुक्मिणीम् । कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ २ ॥ आस्थाय स रथं वीरः समुदग्रायुधध्वजम् । जवेन प्रययौ क्रुद्धो बलेन महता वृतः ॥ ३ ॥ तमन्वयुर्नृपाश्चैव दक्षिणापथवर्तिनः । क्राथोऽंशुमान् श्रुतर्वा च वेणुदारिश्च वीर्यवान् ॥४॥ भीष्मकस्य

वह पृथक् २ घूम रहे थे ७९ कवचों पर गिराई जाती हुई तलवारों और पड़ते हुए बाणोंका बड़ा भारी शब्द पक्षियोंके शब्द की समान सुनाई आता था ८० भेरी शंख मृदङ्ग और वेणुओं की ध्वनिको युद्धमें महात्माओंके शस्त्र और प्रत्यञ्चाओंके घोष ने दबा दिया ८१ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ५९

वैशम्पायनजीने कहा, कि–जब रुक्मीने सुना कि–श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीका हरण कर लिया है तब उसने क्रोधमें भर कर भीष्मकके सामने प्रतिज्ञा की ॥ १ ॥ रुक्मीने कहा, कि–मैं युद्ध में श्रीकृष्णको बिना मारे हुए और रुक्मिणीको लौटाए बिना कुण्डिननगरमें नहीं घुसूँगा यह बात मैं सत्य कहता हूँ ॥२॥ तदनन्तर वह वीर क्रोधमें भर बड़ी भारी सेनाको साथ ले आयुध और ध्वजाओंसे भरे हुए रथमें बैठ कर बड़े वेगसे चला ॥ ३ ॥ उसके पीछे २ दक्षिणापथमें रहनेवाले क्राथ, अंशुमान् श्रुतर्वा और वेणुदारि यह उसके पीछे २ चले ॥ ४ ॥

सुतारश्चान्ये रथेन रथिनां वराः । क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥५॥ ते गत्वा दूरमध्वानं सरितं नर्मदामनु । गोविंदं ददृशुः क्रुद्धाः सहैव प्रियया स्थितम् ॥ ६ ॥ अवस्थाप्य च तत्सैन्यं रुक्मी मदबलान्वितः । चिकीर्षुर्द्वैरथं युद्धमभ्ययान्मधुसूदनम् ॥ ७ ॥ स विव्याध चतुःषष्ट्या गोविन्दं निशितैः शरैः । तं प्रत्यविध्यत् सप्तत्या बाणैर्युधि जनार्दनः ॥ ८ ॥ यतमानस्य चिच्छेद ध्वजं चास्य महाबलः । जहार च शिरः कायात् सारथेस्तस्य वीर्यवान ॥ ९ ॥ तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय परिवव्रुर्जनार्दनम् । दाक्षिणात्या जिघांसन्तो राजानः सर्व एव हि ॥१०॥ तमंशुमान् महाबाहुर्विव्याध दशभिः शरैः । श्रुतर्वा पञ्चभिः क्रुद्धो वेणुदारिश्च सप्तभिः ॥ ११ ॥ ततोंशुमन्तं गोविन्दो बिभेदोरसि वीर्य-

---

रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मकके दूसरे महारथी पुत्र और क्रथ कैशिकों में मुख्य सब महारथी भी उसके पीछे २ चले ॥ ५ ॥ उन्होंने बहुत दूर जाकर नर्मदाजीके किनारे पर अपनी प्रियाके साथ स्थित हुए गोविन्दको देखा तब वे क्रोधमें भर गए ॥ ६ ॥ तदनन्तर मद बलसे युक्त रुक्मी अपनी सेनाको तहाँ ही खड़ा कर द्वैरथ युद्ध करनेकी इच्छासे श्रीकृष्णके पास पहुँचा ॥ ७ ॥ और उसने गोविन्दके साठ तेज बाण मारे तब युद्धमें जनार्दनने भी उसके सत्तर बाण मारे तदनन्तर महाबली श्रीकृष्णने उसकी ध्वजाको काट डाला फिर वीर्यवान् श्रीकृष्णने उसके सारथीके शिरको उसके धड़से अलग करदिया ९उसको कष्टमें पड़ा हुआ देखकर सब दाक्षिणात्य राजाओंने श्रीकृष्णको मारनेकी इच्छासे उनको घेरलिया ॥ १० ॥ महाभुज अंशुमानने श्रीकृष्णको दश बाणोंसे घायल करदिया और श्रुतर्वाने उनके पाँच बाण मारे और क्रोधमें भरे हुए वेणुदारिने उनके सात बाण मारे ॥११॥ तदनन्तर वीर्यवान् गोविन्दने अंशुमानके हृदयको तोड़ दिया

वान् । निषसाद रथोपस्थे व्यथितः स नराधिपः ॥१२॥ श्रुतर्वणो जघानाश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः । वेणुदारेर्ध्वजं छित्वा भुजं विव्याध दक्षिणम् ॥ १३ ॥ तथैव च श्रुतर्वाणं शरैर्विव्याध पञ्चभिः । शिश्रिये स ध्वजं श्रान्तो न्यषीदच्च व्यथान्वितः १४ मुञ्चन्तः शरवर्षाणि वासुदेवं ततोऽभ्ययुः । क्रथकैशिकमुख्याश्च सर्व एव महारथाः ॥ १५ ॥ बाणैर्बाणांश्च चिच्छेद तेषां युधि जनार्दनः । जघान चैषां संरब्धः पतगानश्च ताञ्छरान् ॥१६॥ पुनरन्यांश्चतुःषष्ट्या जघान निशितैः शरैः । क्रुद्धानपि ततो वीरानाद्रवत् स महाबलः ॥ १७ ॥ विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा रुक्मी क्रोधवशं गतः । पञ्चभिर्निशितैर्बाणैर्विव्याधोरसि केशवम् ।१८। सारथिं चास्य विव्याध सायकैर्निशितैस्त्रिभिः । आजघान शरेणास्य ध्वजं च नतपर्वणा ॥ १९ ॥ केशवस्त्वरितं दृष्ट्वा क्रुद्धो

तब वह राजा व्यथित होकर रथकी बैठक पर ही बैठ गया १२ श्रुतर्वाने चार बाण मारकर वेणुदारिके चारों घोड़ोंको मार डाला और उसकी ध्वजाको काटकर उसकी दाहिनी भुजाको घायल करदिया १३ इसी प्रकार श्रुतर्वाको भी घायल करदिया तब वह शान्त हो तथा व्यथित हो ध्वजाके ऊपर गिरपड़ा १४ तदनन्तर क्रथ कैशिकोंमें मुख्य सब महारथियोंने बाण बरसाते २ श्रीकृष्णके ऊपर चढ़ाई करदी । १५ । युद्धमें जनार्दन अपने बाणोंसे अनेक बाणोंको काटने लगे और क्रोधमें भरकर उन गिरते हुए बाणोंका चूरा करनेलगे फिर उन्होंने दूसरोंको चौंसठ बाणोंसे मारा,क्रोधमें भरे हुए वीरोंको आता हुआ देख कर वह महाबली उनके ऊपर चढ़गया ॥ १७ ॥ रुक्मीने जब अपनी सेनाको भागते हुए देखा तब वह क्रोधमें भरगया और उसने पाँच तेज बाण कृष्णके वक्षःस्थलमें मारे ॥ १८ ॥ और उनके सारथीके भी तीन तेज बाण मारे और नमी हुई गाँठ

विव्याध मार्गणैः । धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य यतमानस्य रुक्मिणः
अथान्यद्धनुरादाय रुक्मी कृष्णजिघांसया । प्रादुश्चकार चान्यानि
दिव्यान्यस्त्राणि वीर्यवान् ॥ २१ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तस्य
कृष्णो महाबलः । पुनश्चिच्छेद तच्चापं रथेषां च त्रिभिः शरैः २२
सच्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च । उत्पपात रथाद्वीरो
गरुत्मानिव वीर्यवान् ॥ २३ ॥ तस्याभिपततः खड्गं चिच्छेद
युधि केशवः । नाराचैश्च त्रिभिः क्रुद्धो बिभेदैनमथोरसि ।२४।
स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् । विसंज्ञो मूर्च्छितो राजा
वज्रेणेव महासुरः ॥ २५ ॥ तांश्च राज्ञः शरैः सर्वान् पुनर्विव्याध
माधवः । रुक्मिणं पतितं दृष्ट्वा व्यद्रवन्त नराधिपाः ॥ २६ ॥

वाला बाण मारकर उनकी ध्वजाको छिन्न भिन्न करदिया १६ केशवने फुर्तीसे इस बातको देखा और क्रोधमें भरकर उसको घायल करदिया फिर चेष्टा करनेवाले रुक्मीके धनुषको भी काट डाला तदनन्तर वीर्यवान् रुक्मीने कृष्णको मारनेकी इच्छासे दूसरा धनुष उठा लिया और भिन्न २ दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ तब तो महाबली कृष्णने अपने अस्त्रोंको हटाकर उसके धनुषको फिर काट डाला और रथकी ईषाको भी तीन बाणोंसे काट डाला २२ तदनन्तर जिसका धनुष टूट गया है और जिसका रथ नष्ट होगया था ऐसा वीर्यवान् वीर रुक्मी ढाल तलवार लेकर गरुड़जीकी समान रथ परसे कूद पड़ा जब वह आरहा था तब ही केशवने युद्धमें उसके खड्गको काट डाला और क्रोधमें भर उसकी छातीमें तीन बाण मारे तब तो वह मूर्छित और संज्ञारहित हुआ महाभुज राजा वज्रसे मारे हुए महा असुरकी समान पृथिवीको दहलाता हुआ गिर पड़ा ॥ २३–२५ ॥ फिर माधवने उन सब राजाओंको बाण मारकर घायल करना आरम्भ करदिया रुक्मीको गिरा

विचेष्टमानं तं भूमौ भ्रातरं वीच्य रुक्मिणी । पादयोर्न्यपतद्विष्णो-
र्भ्रातुर्जीवितकाङ्क्षिणी ॥ २७ ॥ तामुत्थाप्य परिष्वज्य सांत्वया-
मास केशवः । अभयं रुक्मिणे दत्त्वा प्रययौ स्वपुरीं ततः ।२८।
वृष्णयोऽपि जरासन्धं भंक्त्वा तांश्चैव पार्थिवान् । प्रययुर्द्वारकां
हृष्टाः पुरस्कृत्य हलायुधम् ॥ २९ ॥ प्रयाते पुण्डरीकाक्षे श्रुतर्वा-
भ्येत्य संगरे । रुक्मिणं रथमारोप्य प्रययौ स्वां पुरीं प्रति ३०
अनानीय स्वसारं तु रुक्मी मानमदान्वितः । हीनप्रतिज्ञो नैच्छत्
स प्रवेष्टुं कुण्डिनं पुरम् ॥३१॥ विदर्भेषु निवासार्थं निर्ममेऽन्यत्
पुरं महत् । तद्भोजकटमित्येव बभूव भुवि विश्रुतम् ॥ ३२ ॥
तत्रौजसा महातेजा दक्षिणां दिशमन्वशात् । भीष्मकः कुण्डिने
चैव राजोवास महाभुजः ॥ ३३ ॥ द्वारकां चापि संप्राप्ते रामे

हुआ देख कर सब राजे भागने लगे ॥ २६ ॥ रुक्मिणी अपने भाईको पृथिवीमें तड़फड़ाता हुआ देखकर अपने भाईके जीवन की आकांक्षासे विष्णुके चरणोंमें गिर पड़ी ॥ २७ ॥ तब श्रीकृष्णने उसको उठाकर आलिङ्गन कर सान्त्वना दी और उसको अभयदान देकर अपनी पुरीको चले गए ॥२८॥ उधर विष्णु भी जरासन्धको और उन राजाओंकेको भगा कर और बलरामजीको आगे कर प्रसन्न होते हुए द्वारकाको चले २९ जब पुण्डरीकाक्ष चले गए तब श्रुतर्वा संग्राममें आया और रुक्मीको रथमें बैठा कर अपनी पुरीकी ओर चला ॥ ३० ॥ मान और मदसे युक्त रुक्मी अपनी बहिनको लौटाकर नहीं लासका था इस लिये उसने अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण न कर सकनेके कारण कुण्डिनपुरमें घुसना नहीं चाहा ॥ ३१ ॥ और उसने विदर्भदेशमें एक दूसरा नगर बसा लिया वह नगर पृथ्वीमें भोजकट नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३२ ॥ उस महाबल-वान्‌ने वहाँ परसे ही अपने बलसे दक्षिण दिशाका शासन

वृष्णिवलान्विते । रुक्मिण्याः केशवः पाणिं जग्राह विधिवत् प्रभुः ॥ ३४ ॥ ततः सह तया रेमे प्रियया प्रीयमाणया । सीतयेव पुरा रामः पौलोम्येव पुरन्दरः ॥ ३५ ॥ सा हि तस्याभवज्ज्येष्ठा पत्नी कृष्णस्य भामिनी । पतिव्रता गुणोपेता रूपशीलगुणान्विता ॥३६॥ तस्यामुत्पादयामास पुत्रान् दश महारथान् । चारुदेष्णं सुदेष्णं च प्रद्युम्नं च महाबलम् ।३७। सुषेणं चारुगुप्तं च चारुबाहुं च वीर्यवान् । चारुविन्दं सुचारुं च भद्रचारुं तथैव च ॥ ३८ ॥ चारुं च बलिनां श्रेष्ठं सुतां चारुमतीं तथा । धर्मार्थकुशलास्ते तु कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ३९ ॥ महिषी सप्त कल्याणीस्ततोऽन्या मधुसूदनः । उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेताः कुलोद्भवाः ॥ ४० ॥ कालिंदीं मित्रविंदां च सत्यां नाग्नजितीमपि ।

किया और महाभुज राजा भीष्मक कुण्डिनपुरमें ही रहा ।३३। जब बलरामजी वृष्णियोंकी सेनाको लेकर मथुरामें पहुँच गए तब प्रभु केशवने रुक्मिणीके साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर अपनी प्रसन्न होने वाली प्रियाके साथ वह इस प्रकार रमण करने लगे जिस प्रकार पहले रामने सीताके साथ विहार किया था और जैसे इन्द्र इन्द्राणीके साथ विहार करते हैं ॥ ३५ ॥ पतिव्रताके गुणोंसे युक्त रूप शील और गुणवाली वह भामिनी ही श्रीकृष्णकी पटरानी हुई ३६ उसमें वीर्यवान् श्रीकृष्णने चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महाबली प्रद्युम्न सुषेण, चारुगुप्त, चारुबाहु, चारुविन्द, सुचारु, भद्रचारु तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु नामक दश महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया और चारुमती नाम वाली श्रेष्ठ पुत्रीको भी उत्पन्न किया वे सब धर्म और अर्थमें कुशल थे अस्त्रविद्यामें पारंगत थे और युद्धमें दुर्मद थे ३७-३९ महाभुज श्रीकृष्णने खानदानमें उत्पन्न हुई गुणयुक्त और भी सात कल्याणी स्त्रियोंको अपनी पटरानी

स तां जाम्बवतश्चापि रोहिणीं कामरूपिणीम् ॥४१॥ मद्रराज-
सुतां चापि सुशीलां शुभलोचनाम् । सात्राजितीं सत्यभामां
लक्ष्मणां चारुहासिनीम् ॥४२॥ शैब्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणा-
प्सरसोपमाम् । स्त्रीसहस्राणि चान्यानि षोडशातुलविक्रमः ।
उपयेमे हृषीकेशः सर्वा भेजे स ताः समम् ॥४३॥ परार्घ्यवस्त्रा-
भरणाः कामैः सर्वैः सुखोचिताः । जज्ञिरे तासु पुत्राश्च तस्य
वीराः सहस्रशः ॥ ४४ ॥ शास्त्रार्थकुशलाः सर्वे बलवन्तो महा-

बनाया था ॥४०॥ (उनके नाम इसप्रकार हैं) कालिन्दी, (यह सूर्यकी पुत्री यमुना उनकी पहली पटरानी थी) मित्रनन्दा, (यह राजाधिदेवीमें आवन्त्यसे उत्पन्न हुई दूसरी पटरानी थी) नग्नजितकी पुत्री सत्या, (यह अयोध्याके राजा नग्नजितकी पुत्री तीसरी पटरानी थी) जाम्बवानकी पुत्री (चौथी जाम्ब-वती पटरानी थी) इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली रोहिणी, (कैकेयसे श्रुतकीर्तिमें उत्पन्न हुई पाँचवीं पटरानी थी इसका भद्रा नाम भी था) ॥ ४१ ॥ शुभनेत्रोंवाली सुशीला मद्रराजकी पुत्री लक्ष्मणा, (छठी पटरानी थी) सुन्दर हास्य करने वाली सत्राजितकी पुत्री सत्यभामा, (सातवीं पटरानी थी) ४२ और रूपमें अप्सराकी समान शैब्यराजकी सूक्ष्मांगी पुत्री (गान्धारी नाम वाली आठवीं पटरानी थी, यह आठ पटरानियें हैं रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी थी इसलिये उसकी गिन्ती नहींहै) अमित पराक्रमी श्रीकृष्णने और भी सोलह सहस्र स्त्रियोंसे विवाह किया था और उनका एक साथ ही सेवन करते थे (अर्थात् एक समय ही योगेश्वर होनेके कारण भिन्न २ मूर्ति धारण करनेके कारण सबका एक साथ ही सेवन करते थे अलग २ नहीं) ४३ उन स्त्रियोंमें बहुमूल्य आभूषणोंको धारण करने वाले सब कामना और सुखके योग्य सहस्रों वीर पुत्र उत्पन्न हुए थे ४४ वे सब

रथाः। यज्वानः पुण्यकर्माणो महाभागा महाबलाः ॥ ४५ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीहरणं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥ ६० ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः काले व्यतीते तु रुक्मी महति वीर्यवान्। दुहितुः कारयामास स्वयम्वरमरिन्दम ॥ १ ॥ तत्राहूता हि राजानो राजपुत्राश्च रुक्मिणा। समाजग्मुर्महावीर्या नानादिग्भ्यः श्रियान्विताः ॥२॥ तत्राजगाम प्रद्युम्नः कुमारैरपरैर्वृतः। सा हि तं चकमे कन्या स च तां शुभलोचनाम् ॥ ३ ॥ शुभांगी नाम वैदर्भी कान्तिद्युतिसमन्विता। पृथिव्यामभवत् ख्याता रुक्मिणस्तनया तदा ॥ ४ ॥ उपविष्टेषु सर्वेषु पार्थिवेषु महात्मसु। वैदर्भी वरयामास प्रद्युम्नमरिसूदनम् ॥ ५ ॥ स हि सर्वास्त्रकुशलः सिंहसंहननो युवा। रूपेणाप्रतिमो लोके केश-

---

शास्त्रके अर्थोंमें कुशल थे सब बलवान् थे और महारथी थे यज्ञ करने वाले पुण्य कर्म करने वाले महाबलवान् और महाभाग्यवान् थे ४५ साठवाँ अध्याय समाप्त ६०

वैशम्पायनजीने कहा, कि हे अरिदमन ! तदनन्तर बहुतसा समय बीतने पर वीर्यवान् रुक्मीने अपनी पुत्रीका स्वयम्वर किया १ तब रुक्मीने बहुतसे राजपुत्र और राजाओंको बुलाया तब शोभासम्पन्न महावीर्य पुरुष अनेक दिशाओंसे आए २ तहाँ पर प्रद्युम्न भी दूसरे कुमारोंके साथ आया था उस कन्याने उसकी अभिलाषाकी और वह भी उस शुभलोचना कन्याको चाहने लगा ॥ ३ ॥ उस कान्ति और द्युतिसे युक्त वैदर्भीका नाम शुभाङ्गी था वह रुक्मीकी पुत्री उस समय पृथ्वीमें प्रसिद्ध होगई थी ॥ ४ ॥ जब सब महात्मा राजा बैठे थे उस समय वैदर्भीने शत्रुओंको दबानेवाले प्रद्युम्नको वरलिया ॥ ५ ॥ वह केशवके पुत्र भी संसारमें अनुपम रूप वाले थे सब अस्त्रोंमें कुशल थे

वस्यात्मजोऽभवत् ॥६॥ यथोक्तगुणोपेता राजपुत्री च साऽभवत् । नारायणी चन्द्रसेना जातकामा च तं प्रति ॥ ७ ॥ वृत्ते स्वयंवरे जग्मू राजानः स्वपुराणि ते । उपादाय च वैदर्भीं प्रद्युम्नो द्वारकां ययौ ॥८॥ रेमे सह तया वीरो दमयन्त्या नलो यथा । स तस्यां जनयामास देवगर्भोपमं सुतम् ॥ ९ ॥ अनिरुद्धमिति ख्यातं कर्मणाऽप्रतिमं भुवि । धनुर्वेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे च पारगम् अभवत् स यदा राजन्ननिरुद्धो वयोन्वितः । तदाऽस्य रुक्मिणः पौत्रीं श्रीमतीं रुक्मसन्निभाम् । पत्न्यर्थं वरयामास नाम्ना रुक्मवतीति सा ॥ ११ ॥ अनिरुद्धं गुणैर्दातुं कृतबुद्धिर्नृपस्ततः । प्रीत्या हि रौक्मिणेयस्य रुक्मिण्याश्चाप्यनुग्रहात् ॥ १२ ॥ विस्पर्धन्नपि कृष्णेन वैरं त्यज्य महायशाः । ददामीत्यब्रवीद्राजा

उनके अङ्ग सिंहकी समान अति दृढ़ थे और तरुण थे ॥ ६ ॥ वह राजपुत्री अवस्था और गुणसे युक्त थी लक्ष्मीस्वरूपा और चन्द्रमाकी चांदनीकी समान थी और प्रद्युम्नसे स्नेह करने लगी थी ॥ ७ ॥ स्वयम्वरके बीत जाने पर राजा लोग अपने २ नगरों को चले गए और प्रद्युम्न भी वैदर्भीको लेकर द्वारकाको चला गया ॥ ८ ॥ और वह वीर उस स्त्रीके साथ, नलने जैसे दमयन्तीके साथ रमण किया था तिस प्रकार, रमण करने लगा, उसमें उसने देवताओंके बालककी समान पुत्रको उत्पन्न किया ९ वह अनिरुद्ध नामसे प्रसिद्ध हुआ पृथ्वीमें उसके कर्म अपरिमित थे वह धनुर्वेद वेद और नीतिशास्त्रमें पारंगत होगया ॥ १० ॥ हे राजन् ! जब अनिरुद्ध अवस्थामें आगया तब उसने रुक्मीकी पौत्री सुवर्णकी समान शोभा वाली रुक्मवती नाम वाली कन्याको अपनी पत्नी बनाना चाहा ॥ ११ ॥ उस समय राजा रुक्मीने अनिरुद्धके गुणोंके कारण प्रद्युम्नकी प्रीतिके कारण और रुक्मिणीके आग्रहके कारण (अपनी कन्या) देनेका विचार

प्रीतिमान् जनमेजय ॥१३॥ केशवः सह रुक्मिण्या पुत्रैः संकर्षणेन च । अन्यैश्च वृष्णिभिः सार्धं विदर्भान् सबलो ययौ १४ संयुक्ता ज्ञातयश्चैव रुक्मिणः सुहृदश्च ये । आहूता रुक्मिणा तेपि तत्राजग्मुर्नराधिपाः ॥ १५ । शुभे तिथौ महाराज नक्षत्रे चाग्निपूजिते । विवाहः सोऽनिरुद्धस्य बभूव परमोत्सवः ॥१६॥ पाणौ गृहीते वैदर्भ्यास्त्वनिरुद्धेन तत्र वै । वैदर्भयादवानां च बभूव परमोत्सवः ॥ १७ ॥ रेमिरे वृष्णयस्तत्र पूज्यमाना यथाऽमराः । अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः ॥१८॥ अक्षः श्रुतर्वा चाणूरः क्राथश्चैवांशुमानपि । जयत्सेनः कलिङ्गानामधिपश्च महाबलः ॥ १९ ॥ पाण्ड्यश्च नृपतिः श्रीमानृषीकाधिपतिस्तथा । एते संगम्य राजानो दाक्षिणात्या महर्धयः ॥ २० ॥

कर लिया ॥ १२ ॥ हे जनमेजय ! वह महायशस्वी श्रीकृष्णसे स्पर्धा किया करता था तब भी उसने प्रसन्न होकर मैं दूँगा यह वचन कहा ॥ ।१३ ॥ केशव रुक्मिणीको अपने पुत्रोंको बलदेवजीको दूसरे वृष्णियोंको और अपनी सेनाको साथमें लेकर विदर्भ देशोंको चले ॥ १४ ॥ उधर रुक्मीने भी अपनी जाति वालोंको और मित्रोंको बुलाया रुक्मीके बुलाने पर वे राजे भी तहाँ पर आगए ॥१५॥ तब हे महाराज ! शुभतिथि और प्रशस्त नक्षत्रमें अनिरुद्धके विवाहका बड़ा भारी उत्सव हुआ ॥ १६ ॥ जब अनुरुद्धिने वैदर्भीके हाथको पकड़ा तब वैदर्भोमें और यादवोंमें बड़ा भारी आनन्द मनाया गया ॥ १७ ॥ तहाँ पर वृष्णिवंशी पूजा पाकर देवताओंकी समान आनन्द करने लगे, इसके अनन्तर अश्मकोंके राजा महाबुद्धि वेणुदारि, अक्ष, श्रुतर्वा, चाणूर, क्राथ, अंशुमान्, कलिङ्गोंके राजा महाबली जयत्सेन, श्रीमान् पाण्ड्यराज और ऋषीकराज इन सब समृद्धिमान् दक्षिणापथके राजाओंने सलाह की ॥१८-२०॥ और एकान्तमें

अभिगम्याब्रुवन् सर्वे रुक्मिणं रहसि प्रभुम् । भवनाक्षेषु कुशलो वयं चापि रिरंसवः । प्रियद्यूतश्च रामोऽसावक्षेष्वनिपुणोऽपि च २१ ते भवन्तं पुरस्कृत्य जेतुमिच्छाम तं वयम् । इत्युक्तो रोचयामास रुक्मी द्यूतं महारथः ॥ २२ ॥ ते शुभां काननस्तम्भां कुसुमैर्भूषिताजिराम् । सभाणां विविशुर्हृष्टाः सिक्तां चन्दनवारिणा २३ तां प्रविश्य ततः सर्वे शुभ्रस्रगनुलेपनाः । सौवर्णेष्वासनेष्वासांचक्रिरे विजिगीषवः ॥२४॥ आहूतो बलदेवस्तु कितवैरक्षकोविदैः । बाढमित्यब्रवीद्धृष्टः सह दीव्याम पश्यताम् ॥ २५ ॥ निकृत्या विजिगीषन्तो दाक्षिणात्या नराधिपाः । मणिमुक्ताः सुवर्णं च तत्रानिन्युः सहस्रशः ॥२६॥ ततः प्रावर्तत द्यूतं तेषां रतिविनाशनम् । कलहस्यास्पदं घोरं दुर्मतीनां क्षयावहम् ॥२७॥

जाकर इन सबने प्रभु रुक्मीसे कहा, कि—आप फाँसोंमें चतुर हैं और हम भी खेलना चाहते हैं, बलरामजीको जुआ अच्छा तो लगता है परन्तु यह फाँसे फेंकनेमें चतुर नहीं हैं ॥ २१ ॥ इस लिये हम आपको आगे करके उनको जीतना चाहते हैं, इसप्रकार कहने पर महारथी रुक्मीने जुआ खेलना स्वीकार करलिया २२ तदनन्तर वे सब सुवर्णके स्तम्भों वाली शुभ सभामें प्रसन्न हो कर घुसे उसका आँगन फूलोंसे भूषित होरहा था और तहाँपर चन्दन मिला जल छिड़का हुआ था ॥ २३ ॥ वे जीतनेकी इच्छा वाले राजे श्वेत माला और श्वेत चन्दन लगा कर उस सभामें जा सुवर्णके सिंहासनोंमें बैठ गये ॥ २४ ॥ तब फाँसे फेंकनेमें चतुर जुआरियोंने बलदेवजीको बुलाया, तब उन्होंने 'तथास्तु" कहा,और कहा कि-हम सब एक साथ खेलेंगे,अब दाँव लगे २५ तब कपटसे जीतना चाहने वाले दक्षिणी राजे तहाँ पर सहस्रों मणि मोती और सुवर्ण ले आए ॥ २६ ॥ तब उनमें प्रेमको नष्ट करने वाला कलहका घर दुर्बुद्धियोंको नाशकी ओर घसीटने

निष्काणां च सहस्राणि सुवर्णस्य दशाददितः ॥ रुक्मिणां सह सम्पाते बलदेवो ग्लहं ददौ ॥ २८ ॥ तं जिगाय ततो रुक्मी यतमानं महाबलम् । तावदेवापरं भूयो बलदेवं जिगाय सः २९ अप्रकुब्जनीयमानस्तु रुक्मिणा केशवाग्रजः । सुवर्णकोटीर्जग्राह ग्लहं तस्य महात्मनः ॥ ३० ॥ जितमित्येव हृष्टोऽथ तमाहूतिरभाषत । श्लाघमानश्च चिक्षेप प्रहसन् मुशलायुधम् ॥ ३१ ॥ अविद्यो दुर्बलः श्रीमान् हिरण्यममितं मया । अजेयो बलदेवोयमक्षज्ञ्यूते पराजितः ॥ ३२ ॥ कलिंगराजस्तच्छ्रुत्वा प्रजहास भृशं तदा । दन्तान् सन्दर्शयन् हृष्टस्तत्राक्रुद्ध्यद्धलायुधः ॥३३॥ रुक्मिणस्तद्वचः श्रुत्वा पराजयनिमित्तजम् । निगृह्यमाणस्तीक्ष्णाभिर्वाग्भिर्भीष्मकसूनुना ॥३४॥ रोषमाहारयामास जितरोषोपि

वाला भयंकर जुआ होने लगा ॥ २७ ॥ उस समय रुक्मीके साथ बलदेवजीका जुआ हुआ तब बलदेवजीने दश सहस्र निष्क सुवर्णका दाँव लगाया ॥२८॥ महाबली बलदेवजीने फाँसे फेंके कि-रुक्मीने उन्हें जीत लिया इतना ही धन रुक्मीने बलदेवजीसे फिर जीत लिया ॥ २९ ॥ जब रुक्मी बलदेवजीको बारम्बार जीतने लगा तब उस महात्माके लिये उन्होंने दश करोड़ सुवर्णका दाँव लगाया ॥ ३० ॥ परन्तु कुटिलतासे खेलने वाले रुक्मीने प्रसन्न होकर कहा लो यह भी जीत लिया, जब उसकी प्रशंसा होने लगी तब उसने हँस कर बलरामजीके ऊपर आक्षेप किया, कि-॥ ३१ ॥ यह श्रीमान् बलदेवजी इस विद्याको नहीं जानते यह तो दुर्बल हैं यह बलदेवजी अजेय हैं किन्तु मैंने इन को जुएमें हरा दिया है ॥३२॥ इस बातको सुनकर कलिङ्गराज अपने दाँतोंको दिखाता हुआ बड़ी जोरसे हँसा तब तो बलदेव जी क्रोधमें भर गये ॥ ३३ ॥ पराजयके कारण रुक्मीके इस वचनको सुन कर और भीष्मकके पुत्रकी तीक्ष्ण वाणियोंको

धर्मवित् । संक्रुद्धो धर्षणां प्राप्य रौहिणेयो महाबलः ॥ ३५ ॥ धैर्यान्मनः सन्निधाय ततो वचनमब्रवीत् । दशकोटिसहस्राणि ग्लह एको गृहाण वै ॥ ३६ ॥ एनं संगृह्य वृत्तान्त पातयाक्षा-न्नराधिप । कृष्णान्ताँल्लोहितान्तांश्च देशेऽस्मिन्स्थण्डिलाकुले ३७ इत्येवमाह्वयामास रुक्मिणं रोहिणीसुतः । अनुक्त्वा वचनं किंचि-द्बाढमित्यब्रवीत् पुनः ॥ ३८ ॥ अक्षान् रुक्मी ततो हृष्टः पातया-मास पार्थिवः । चातुरक्षे तु निर्वृत्ते निर्जितः स नराधिपः ३९ बलदेवेन धर्मेण नेत्युवाच ततो बलम् । धैर्यान्मनः समाधाय स

सुन कर ॥ ३४ ॥ रोषको जीतने वाले भी धर्मात्मा बलदेवजी ने क्रोध किया रोहिणीनन्दन महाबली बलदेवजी आक्षेप होने पर क्रोधमें भर गए ३५ तब भी उन्होंने अपने मनमें धीरज धर यह बात कही, कि-यह दश करोड़ हजारका मेरा एक दाँव और रहा ३६ हे राजन् ! तुम इस दाँवको ग्रहण करो और इस धूल उड़ाने वाले समयमें काले फाँसोंको और लाल फाँसोंको फेंको ३७ इस प्रकार रोहिणीपुत्रने रुक्मीसे कहा तब रुक्मीने और कुछ न कह कर बहुत अच्छा फिर कहा ३८ तब राजा रुक्मीने प्रसन्न होकर फाँसे फेंके और चारके अंक वाले फाँसेके गिरने पर वह राजा हार गया (दोनोंके धनको दश भागमें बाँटने पर यदि वादी एकके अंक वाले फाँसेको गिरा देता है तो उस धनमेंसे धनके एक अंशको लेलेता है दोके अंक वाले फाँसेको गिराने पर पहले धनके साथ उस धनमेंसे तीन अंशों को लेलेता है और तीनके अंक वाले फाँसेके गिराने पर पहले तीन अंशोंके साथ छः अंशोंको भी लेलेता है और चारका अंक वाले फाँसेको गिराने पर पहले छः अंशोंके साथ दश अंशोंको हर लेता है इस प्रकार जुएको जानने वालोंकी मर्यादाके अनुसार बलदेवजीने सब धनको जीत लिया) ३९ जब बलदेवजीने धर्म-

न किंचिदुवाच ह ॥ ४० ॥ बलदेवं ततो रुक्मी मया जितमिति स्मयन् । बलदेवस्तु तच्छ्रुत्वा जिह्मं वाक्यं नराधिप ॥ ४१ ॥ भूयः क्रोधसमाविष्टो नोत्तरं व्याजहार ह । ततो गम्भीरनिर्घोषा वागुवाचाशरीरिणी ॥४२॥ बलदेवस्य तं क्रोधं वर्धयन्ती महात्मनः । सत्यमाह बलः श्रीमान् धर्मेणैष पराजितः ॥ ४३ ॥ अनुक्त्वा वचनं किंचित् प्राप्तो भवति कर्मणा । मनसा समनुज्ञातं तत् स्यादित्यवगम्यताम् ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तथ्यमन्तरिक्षात् सुभाषितम् । संकर्षणस्तथोत्थाय सौवर्णेनोरुणा बली४५ रुक्मिण्या भ्रातरं ज्येष्ठं निजघान महीतले । विवादे कुपितो रामः क्षेप्तारं किल रुक्मिणम् । जघानाष्टापदेनैव प्रमथ्य यदु-

पूर्वक इस बातको कहा तब उसने कहा, कि—नहीं यह बात नहीं है बलदेवजीने इस पर भी अपने मनमें धैर्य रख कर कुछ भी नहीं कहा ४० मैंने बलदेवजीको जीत लिया यह कह कर रुक्मी मुस्कुराने लगा, हे राजन् ! उस कुटिल वाक्यको सुन कर बलदेव जी फिर क्रोधमें भर गए परन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं इसी समय गम्भीर शब्द करने वाली आकाशवाणी हुई ४१-४२ उस आकाशवाणीने बलदेवजीके क्रोधको बढ़ा दिया (आकाशवाणी ने कहा था कि-) श्रीमान् बलदेवजीने सत्य ही कहा था कि-मैंने इस राजा रुक्मीको धर्मपूर्वक जीत लिया है ४३ बलरामजीने कुछ नहीं कहा है यह राजे अपने मनमें कपट रखते हैं किंतु अपनी वाणीसे कपटका वर्ताव प्रकट नहीं करते हैं इस बातको तुम स्पष्ट समझ लो ४४ इस प्रकार अन्तरिक्षसे सत्य वचनको सुन कर बलदेवजी उठे और उन बलवानने सुवर्णके अठपहलू बड़े भारी अस्त्रसे रुक्मिणीके बड़े भाईको पृथ्वीतलमें (गिरा कर) मार डाला बलरामजी विवाद होने पर क्रोधमें भर गये थे तब यदुनन्दनने आक्षेप करने वाले रुक्मीको अष्टापदसे धुँगल कर मार

नन्दनः ॥ ४६ ॥ ततोपसृत्य संक्रुद्धः कलिंगाधिपतेरपि । दन्तान्
बभञ्ज संरम्भादुन्ननाद च सिंहवत् ॥ ४७ ॥ खड्गमुद्यम्य तान्
सर्वांस्त्रासयामास पार्थिवान् । स्तम्भं सभायाः सौवर्णमुत्पाट्य
बलिनाम्वरः ॥ ४८ ॥ गजेन्द्र इव संस्तम्भं कर्षन् संकर्षण-
स्ततः । निर्जगाम सभाद्वारान्त्रासयामास कैशिकान् ॥ ४९ ॥
रुक्मिणं निकृतिप्रज्ञं स हत्वा यादवर्षभः । वित्रास्य विद्विषः
सर्वान् सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५० ॥ जगाम शिबिरं रामः स्वय-
मेव जनावृतः । न्यवेदयत् स कृष्णाय तत्र सर्वं यथाऽभवत् ५१
नोवाच स तदा कृष्णः किंचिद्रामं महाद्युतिः । निगृह्य च तदा-
त्मानं कृच्छ्रादश्रूण्यवर्तयत् ॥ ५२ ॥ न हतो वासुदेवेन यः पूर्वं
परवीरहा । ज्येष्ठो भ्राताथ रुक्मिण्या रुक्मिणीस्नेहकारणात् ५३

डाला था ४५-४६ इसके अनन्तर वह क्रोधमें भर कर उठे और कलिङ्गराजके दाँतोंको तोड़ डाला और क्रोधमें भर कर सिंहकी समान दहाड़ने लगे ४७ और अपनी तलवारको उठा कर सब राजाओंको त्रास देने लगे तदनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजी ने उस सभाके खम्भेको उखाड़ लिया ४८ तदनन्तर बलरामजी उस स्तम्भको सिंहकी समान खेंचते हुए सभासे निकल आए और कैशिकोंको डराने लगे ४९ यादवोंमें श्रेष्ठ बलरामजी कपटबुद्धि रुक्मीको मार कर छोटे २ मृगोंको डराने वाले सिंह की समान अपने शत्रुओंको डराते हुए अपने आदमियोंसे घिरे हुए अपने शिबिरमें पहुँच गये तहाँ जाकर उन्होंने जिस प्रकार जो २ बात हुई थी वह कहकर सब सुनादी ।५०।५१। उस समय महाकान्तिमान् श्रीकृष्णने बलरामजीसे कुछ भी नहीं कहा और अपनी आत्माको कठिनतासे रोककर आँसू बहाने लगे ॥ ५२ ॥ रुक्मिणीके स्नेहके कारण शत्रुओंके वीरोंका नाश करने वाले रुक्मिणीके जिस बड़े भाईको श्रीकृष्णने नहीं मारा

स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले । अष्टापदेन बलवान् राजा वज्रधरोपमः ॥५४॥ तस्मिन्हते महावीर्ये नृपतौ भीष्मकात्मजे । द्रुमभार्गवतुल्ये वै द्रुमभार्गवशिक्षिते ॥ ५५ ॥ कृतौ च युद्धकुशले नित्ययाजिनि पातिते । वृष्ण्यन्धकाश्चैव सर्वे विमनसोऽभवन्॥५६ वैशम्पायन उवाच । रुक्मिणी च महाभागा विलपन्त्यार्तया गिरा । विलपन्तीं तथा दृष्ट्वा सान्त्वयामास केशवः ॥ ५७ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रुक्मिणो निधनं यथा । वैरस्य च समुत्थानं वृष्णिभिर्भरतर्षभ ॥ ५८ ॥ वृष्णयोऽपि महाराज धनान्यादाय सर्वशः । रामकृष्णौ समाश्रित्य ययुर्द्वारकां प्रति ॥५९॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

राजोवाच । भूय एव तु विप्रर्षे बलदेवस्य धीमतः । माहात्म्यं

था वह इन्द्रकी समान बलवान् राजा द्यूतमण्डलमें बलरामजीके हाथसे मारे हुए अष्टापदसे मारा गया ॥ ५४ ॥ उस महावीर भीष्मकपुत्र द्रुम और परशुरामजीकी समान द्रुम और परशुरामजीसे शिक्षा पाये हुए युद्धकुशल चतुर सर्वदा यज्ञ करनेवाले राजा रुक्मीके मारे जाने पर सब वृष्णि और अन्धक अनमने होगए ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—उस समय महाभागा रुक्मिणी आर्तवाणीमें विलाप करने लगी उसको विलाप करती हुई देख कर केशवने उसको ढाढ़स दिया ५७ हे भरतर्षभ ! यह तुमसे वृष्णियोंके साथ वैर उठनेका और रुक्मीके मरणका सब वृत्तान्त कह दिया५८ हे महाराज ! तब वृष्णि भी चारों ओरसे धन लेकर रामकृष्णका आश्रय ले द्वारकापुरीको चले गए ५९ इकसठवाँ अध्याय समाप्त॥ ६१ ॥

राजाने कहा, कि—हे विप्रर्षे ! मैं पृथ्वीको धारण करने वाले शेष (के अवतार) बुद्धिमान् बलदेवजीके महात्म्यको फिर

श्रोतुमिच्छामि शेषस्य धरणीभृतः ॥ १ ॥ अतीव बलदेवं तं तेजोराशिमनिर्जितम् । कथयन्ति महात्मानं ये पुराणविदो जनाः तस्य कर्माण्यहं विप्र श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । अनन्तं यं विदु-र्नागमादिदेवं जनेश्वरम् ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । पुराणे नागराजोऽसौ पठ्यते धरणीधरः । शेषस्तेजोनिधिः श्रीमानकम्प्यः पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ योगाचार्यो महावीर्यो देवगन्त्रमुखो बली । जरासन्धं गदायुद्धे जितवान् यो न चावधीत् ॥ ५ ॥ बहवश्चैव राजानः प्रथिताः पृथिवीतले । अन्वयुर्मागधं सर्वे ते चापि विजिता रणे ॥ ६ ॥ नागायुतबलप्राणो भीमो भीमपराक्रमः । असकृद्बलदेवेन बाहुयुद्धे पराजितः ॥ ७ ॥ दुर्योधनस्य कन्यां तु हरमाणो न्यगृह्यत । साम्बो जाम्बवतीपुत्रो नगरे नागसाह्वये राजभिः सर्वतो रुद्धो हरमाणो बलात् किल । तदुपश्रुत्य संक्रुद्ध

सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ जो पुराणको जानने वाले मनुष्य हैं वे महात्मा बलदेवजीको किसीके जीतनेमें न आये हुए तेजोराशि-रूप कहते हैं ॥ २ ॥ जिनको पुरुष अनन्त नाग आदिदेव कहते हैं उन जनेश्वरके कर्मोंको मैं सुनना चाहता हूँ ३ वैशम्पायनजी ने कहा, कि—यह बलदेवजी पुराणमें नागराज धरणीधर शेष तेजोनिधि श्रीमान् अकम्प्य और पुरुषोत्तम पढ़े जाते हैं और योगाचार्य महावीर्य देवगंत्रमुख और बली (पढ़े जाते हैं), इन्हों ने गदायुद्धमें जरासन्धको जीत कर भी उसको नहीं मारा था ५ पृथ्वीतलके बहुतसे प्रसिद्ध राजे जो रणमें मागधके पीछे २ आये थे वे भी सब (इनसे) हार गए थे ॥६॥ जरासन्धमें एक लाख हाथियोंका बल था उस भयंकर और भयंकर पराक्रम करने वाले जरासन्धको बलदेवजी बाहुयुद्धमें अनेक बार हराया ॥ ७ ॥ जाम्बवतीका पुत्र साम्ब हस्तिनापुरमें दुर्योधनकी कन्याका हरण कर रहा था तब सब राजाओंने उसको चारों ओरसे रोक लिया

आजगाम महाबलः ॥ ९ ॥ रामस्तस्य तु मोक्षार्थमागतो नालभच्च तम् । ततश्चुक्रोध बलवानद्भुतं चाकरोन्महत् ॥ १० ॥ अनिवार्यमभेद्यं च दिव्यमप्रतिमं बले । लांगलास्त्रं समुद्यम्य ब्रह्ममन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ ११ ॥ प्राकारवप्रे विन्यस्य पुरस्य च महाद्युतिः । प्रक्षेप्तुमैच्छद्गंगायां नगरं कौरवस्य तत् ॥ १२ ॥ तद्विघूर्णितमालक्ष्य पुरं दुर्योधनो नृपः साम्बं निर्यातयामास सभार्यं तस्य धीमतः ॥ १३ ॥ ददौ शिष्यं तदात्मानं रामस्य सुमहात्मनः । गदायुद्धे कुरुपतिं शिष्यं जग्राह तं च सः ॥१४॥ ततः प्रभृति राजेन्द्र पुरमेतद्विघूर्णितम् । आवर्जितमिवाभाति गंगामभिमुखं नृप ॥ १५ ॥ इदमत्यद्भुतं कर्म रामस्य कथितं भुवि । भाण्डीरे कथितं राजन् यत् कृतं शौरिणा पुरा ॥ १६ ॥ प्रलंबं

था इस बातको सुन कर महाबली बलदेवजी तहाँ गए ९ बलरामजी उसको छुड़ानेके लिये गए थे, परन्तु वह उसको न छुड़ा सके, तब तो वह बलवान् क्रोधमें भर गए और उन्होंने अद्भुत कार्य किया ॥ १० ॥ उन्होंने अनिवार्य और किसीसे टूटनेमें न आने वाले बलमें सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित अपने दिव्य लाङ्गलास्त्रको उठा कर उसको नगरके परकोटेकी दीवार पर रक्खा इसके उपरान्त महाबली बलदेवजीने उस कौरवनगरको गङ्गाजीमें फेंकना चाहा ॥ ११ ॥ १२ ॥ अपने नगरको खिंचता हुआ देख कर राजा दुर्योधनने साम्ब और उसकी भार्याको छोड़ दिया और उनको बुद्धिमान् बलदेवजीके पास लेगया १३ और अपने आप महात्मा बलरामका शिष्य बनना चाहने लगा, बलदेवजीने भी उस कुरुपतिको गदायुद्धमें अपना शिष्य बना लिया ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! उसी दिनसे यह खिंचा हुआ नगर गङ्गाजीकी ओर झुका हुआ दीखता है ॥ १५ ॥ बलरामजीका पृथ्वीमें किया हुआ यह अद्भुत कर्म तुमसे कह

मुष्टिनैकेन यज्जघान हलायुधः । धेनुकं तु महावीर्यं चिक्षेप नग-
मूर्धनि । स गतायुः पपातोर्व्यां दैत्यो गर्दभरूपधृक् ॥ १७ ॥
लवणजलगमा महानदी द्रुतजलवेगतरंगमालिनी । नगराभिमुखं
यदा कृता हलविधृता यमुना यमस्वसा ॥१८॥ बलदेवस्य माहा-
त्म्यमेतत्ते कथितं मया । अनन्तस्याप्रमेयस्य शेषस्य धरणीभृतः
इति पुरुषवरस्य लांगलेर्बहुविधमुत्तममन्यदेव च । यदकथित-
मिहाद्य कर्म ते तदुपलभस्व पुराणविस्तरात् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेव-
माहात्म्यं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

जनमेजय उवाच । प्रत्येत्य द्वारकां विष्णुर्हते रुक्मिणि वीर्य-
वान् । अकरोद्यन्महाबाहुस्तन्मे वद महामुने ॥ १ ॥ वैशम्पायन

दिया इससे पहले बलरामजीने जो कर्म किया था, वह भाण्डीर
की कथा तुम्हें पहले ही सुनादी थी, कि—॥ १६ ॥ बलदेवजीने
एक मुक्का मार कर ही प्रलंब राक्षसको मार डाला था और
वीर्यवान् धेनुकको पर्वतके शिखर पर पटक दिया था तब वह
गर्दभका रूप धारण करने वाला दैत्य मर कर पृथिवीमें गिर
पड़ा था ॥ १७ ॥ नमकीन जल वाले समुद्रकी ओर जानेवाली
वेगसे बहने वाले जलके तरङ्गोंकी माला वाली यमकी छोटी
बहिन यमुना नदीको इन्होंने अपना हल डाल कर नगरकी ओर
खेंच लिया था ॥ १८ ॥ पृथिवीको धारण करने वाले अनन्त
अप्रमेय शेषजीके अवतार बलदेवजीका यह माहात्म्य मैंने तुमसे
कह दिया ॥ १९ ॥ लांगलका आयुध धारण करने वाले पुरुष-
श्रेष्ठ बलदेवजीका यह अनेक प्रकारका उत्तम चरित्र तथा मैंने
जो तुमसे नहीं कहा है उनके उस कर्मको भी तुम पुराणोंसे
विस्तारपूर्वक जान सकोगे २० बासठवाँ अध्याय समाप्त ६२

जनमेजयने कहा, कि—हे महामुने ! रुक्मीके मारे जाने पर

उवाच । स तैः परिवृतः श्रीमान् पुरीं यादवनन्दनः । द्वारकां भगवान् विष्णुः प्रत्यवैक्षत वीर्यवान् ॥ २ ॥ प्रत्यपद्यन रत्नानि विविधानि वसूनि च । यथार्हं पुण्डरीकाक्षो नैर्ऋतान् प्रत्यवारयत् ॥३॥ तत्र विघ्नं चरन्ति स्म दैतेयाः सह दानवैः । तांञ्जघान महाबाहुर्वरदृप्तान् महासुरान् ॥ ४ ॥ विघ्नं चास्याकरोत्तत्र नरको नाम दानवः । त्रासनः सर्वदेवानां देवराजरिपुर्महान् ५ स वणौ मूर्तिलिंगस्थः सर्वदेवाधिबाधिता । देवनानामृषीणां च प्रतीपमकरोत्तदा ॥६॥ त्वष्टुर्दुहितरं भौमः कशेरुगमत्तदा। गजरूपेण जग्राह रुचिराङ्गीं चतुर्दशीम् ॥ ७ ॥ प्रमथ्य तां वरारोहां

महाभुज वीर्यवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें आकर जो कर्म किया हो उसका वर्णन करिये ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—यादवनन्दन श्रीमान् भगवान् विष्णुने यादवोंके साथ द्वारकामें पहुँचने के अनन्तर उसका चारों ओरसे निरीक्षण किया ॥ २ ॥ पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णने उचित रीतिसे धन और अनेक प्रकारके रत्न पाये थे उनकी राक्षसोंसे रक्षा कर अपने घरमें लाकर स्थापित कर दिया ॥ ३ ॥ दितिके पुत्र दानवोंको साथमें लेकर बड़ा उपद्रव मचाते थे, महाभुज श्रीकृष्णने उन वरके कारण अभिमान में भरे हुए बड़े २ राक्षसोंको मार डाला ॥ ४ ॥ एक नरक नामक दानव था उसने श्रीकृष्णके कार्यमें विघ्न डाला वह सब देवताओंको डराया करता था और देवराजका बड़ा भारी शत्रु था ॥ ५ ॥ वह सब देवताओंको पीड़ा दिया करता था और मूर्तिलिंगस्थ था अर्थात् दृश्यज्ञापक मूर्तिलिंगमें स्थित था और उस समय वह देवता और ऋषियोंको पीड़ित करने लगा ६ वह कशेरु (स्थान)को गया तहाँ जाकर उसने त्वष्टाकी-पुत्री (गर्भ; कौमार; पौगण्ड, सन्धि; यौवन आदि दशासे ऊपर पन्द्रहसे पहली अर्थात्) चौदह वर्षकी सुन्दर अङ्गों वाली कन्याको हाथी

नरको वाक्यमब्रवीत् । नष्टशोकभयो मोहात् प्राग्ज्योतिषपति-स्तदा ॥८॥ यानि देवमनुष्येषु रत्नानि विविधानि च । बिभर्ति च मही कृत्स्ना सागरेषु च यद्वसु ॥ ९ ॥ अद्य प्रभृति तानीह सहिताः सर्वनैर्ऋताः । ममैवोपाहरिष्यन्ति दैत्याश्च सह दानवैः एवमुत्तमरत्नानि वस्त्राणि विविधानि च । स जहार तदा भौम-स्तच्च नाधिचकार सः ॥ ११ ॥ गन्धर्वाणां च याः कन्या जहार नरको बली । याश्च देवमनुष्याणां सप्त चाप्सरसां गणाः॥१२॥ चतुर्दश सहस्राणि एकविंशच्छतानि च । एकवेणिधराः सर्वाः सतीमार्गमनुव्रताः ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । तासां पुरवरं भौमो कारयन् मणिपर्वतम् । अलकायामदीनात्मा मुरोः स्वविषयं प्रति ॥ १४ ॥ ताश्च प्राग्ज्योतिषपतिं मुरोश्चैव दशात्मजाः ।

का रूप धर कर पकड़ लिया ॥७॥उस नरकासुरका शोक और भय नष्ट होगया था ऐसे उस प्राग्ज्योतिषदेशके स्वामीने मोह में भर कर उस वरारोहा कन्यासे बलपूर्वक कहा, कि-॥ ८ ॥ देवता और मनुष्योंके पास अनेक प्रकारके जितने रत्न हैं और पृथिवीमें जितने रत्न हैं और समुद्रोंमें जितना धन है ॥ ९ ॥ उस सब धनको आज राक्षस दैत्य और दानवोंको लेकर मेरे पास ले आवेंगे ॥ १० ॥ इस प्रकार कहनेके बाद उस भौमासुर ने अनेक प्रकारके वस्त्र और रत्नोंको भर लिया परन्तु तब भी उनका भोग नहीं किया गया ॥ ११ ॥ और बलवान् नरकने गन्धर्वोंकी मनुष्योंकी और सात अप्सराओंके गणमेंसे जिन कन्याओंको हर लिया था ये सब एकवेणिधरा थीं अर्थात् कुमारियें थीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि- अदीन आत्मावाले भौमासुरने मुरु नामक दानवके देशके पास अलका-पुरीमें उन स्त्रियोंके लिये मणियोंके ढेर वाला श्रेष्ठ नगर बसा दिया ॥ १४ ॥ वे स्त्रियें और मुख्य २ राक्षस उस नगरीकी

नैर्ऋताश्च यथा मुखस्थाः पालयन्त उपासते । स एष तमसः पारे वरदत्तो महासुरः ॥१५॥ न चासुरगणैः सर्वैः सहितैः कर्म तत् पुरा । कृतपूर्वं तदा घोरं यदकार्षीन्महासुरः ॥१६॥ अदितिं धर्षयामास कुण्डलार्थे महासुरः । यं मही सुषुवे देवी यस्य प्राग्ज्योतिषं पुरम् ॥ १७ ॥ द्वारपालाश्च चत्वारस्तस्यासन् युद्धदुर्मदाः । हयग्रीवो निसुन्दश्च वीरः पञ्चनदस्तथा ॥१८॥ मुरुः पुत्रसहस्रैश्च वरदत्तोऽसुरो महान् । आदेवयानमावृत्य पन्थानं समुपस्थितः । वित्रासनः सुकृतिनां विरूपै राक्षसैः सह ॥१९॥ तद्वधार्थं महाबाहुः शंखचक्रगदासिभृत् । जातो वृष्णिषु देवक्यां वसुदेवाज्जनार्दनः ॥२०॥तस्याथ पुरुषेन्द्रस्य लोकप्रथिततेजसः । निवासो द्वारका देवैरुपायादुपपादिता ॥ २१ ॥ अतीव हि पुरी

रक्षा करते हुए उसकी उपासना करते थे इस प्रकार वह अभिमानी दानव नीले वर्णवाले समुद्रके पार रहता था ॥ १५ ॥ उस बड़े भारी असुरने जिस घोर कर्मको किया था उस कर्मको असुरोंके सब गण भी पहले न कर सके थे ॥ १६ ॥ उस महाराक्षसने कुण्डलोंके लिये अदितिको दबाया था पृथिवी देवीने जिसको उत्पन्न किया था और प्राग्ज्योतिषपुर जिसका नगर है उसके हयग्रीव निसुन्द, वीर और पंचनद नाम वाले युद्धदुर्मद चार द्वारपाल थे ॥१७॥१८॥ मुरु दैत्य भी बड़ा भारी राक्षस था उसको देवताओंने वर दिया था वह पुण्यात्माओंको कष्ट देने वाला अपने कुरूप सहस्र राक्षस पुत्रोंको साथमें लेकर देवयानके मार्गको घेरकर खडा होगया था१९उसका वध करनेके लिये ही शङ्ख चक्र और गदाको धारण करने वाले महाभुज जनार्दन श्रीकृष्ण वसुदेवसे देवकीमें वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए थे २०लोकमें प्रसिद्ध तेजवाले उन पुरुषेन्द्रके निवासके लिये द्वारकाको देवताओं ने उपायसे रखा था ॥२१॥ द्वारकापुरी इन्द्रके भवनसे भी अति

रम्या द्वारकावासवत्तयात् । महार्णवपरिक्षिप्ता पञ्च पर्वत-
शोभिता ॥ २२ ॥ तस्यां देवपुराभायां सभा कांचनतोरणा ।
सा दाशार्हीति विख्याता योजनायामविस्तृता ॥ २३ ॥ तत्र
वृष्ण्यन्धकाः सर्वे रामकृष्णपुरोगमाः । लोकयात्रामिमां कृत्स्नां
परिरक्षन्त आसते॥ २४ ॥ तत्रासीनेषु सर्वेषु कदाचिद्भरतर्षभ ।
दिव्यगन्धो ववौ वायुः पुष्पवर्षं पपात ह ॥ २५ ॥ ततः किल
किलाशब्दः प्रभाजालाभिसंवृतः । मुहूर्तमन्तरिक्षेऽभूत्ततो भूमौ
प्रतिष्ठितः ॥२६॥मध्ये तु तेजसस्तस्य पाण्डुरङ्गमास्थितः । वृतो
देवगणैः सर्वैर्वासवः समदृश्यत ॥ २७ ॥ रामकृष्णौ च राजा
स वृष्ण्यन्धकगणैः सह । प्रत्युद्ययुर्महात्मानं पूजयन्तः सुरेश्वरम्
सोऽवतीर्य गजात्तूर्णं परिष्वज्य जनार्दनम् । सस्वजे बलदेवं च

रमणीय थी समुद्रकी लहरें उस पर टक्कर मारती थीं तथा वह पाँच पर्वतोंसे शोभित थी ॥२२॥ देवनगरकी समान उस पुरीमें सुवर्णके तोरणों वाली चार कोसमें फैली हुई सभा थी वह दाशार्ही नामसे प्रसिद्ध थी ॥ २३ ॥ तहाँ पर सब वृष्णिवंशी अन्धकवंशी रामकृष्ण आदि अपनी सारी लोकयात्राकी रक्षा करते हुए तहाँ रहते थे ॥ २४ ॥ हे भरतर्षभ ! एक समय तहाँ पर सब बैठे हुए थे इतनेमें ही दिव्य गन्धवाला वायु बहने लगा और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ २५ ॥ तदनन्तर प्रभाके जालसे घिरा हुआ किलकिल शब्द अन्तरिक्षमें होने लगा और क्षणभरमें ही भूमिमें प्रतिष्ठित होगया ॥ २६ ॥उस तेजके बीचमें सम्पूर्ण देवताओंसे घिरा हुआ और श्वेत वर्णके हाथी पर बैठा हुआ इन्द्र दिखाई दिया तब बलराम और श्रीकृष्ण राजा उग्रसेन तथा वृष्णि और अन्धक यह सब महात्मा इन्द्रकी पूजा करते हुए उसके पास गए तब तो इन्द्र शीघ्रतासे हाथी पर से उतर पड़ा और उसने श्रीकृष्णको आलिंगन किया तथा

तं च राजानमाहुकम् ॥ २९ ॥ वृष्णीनन्यान् सस्वजे च यथा-कालं यथा वयः । पूजितो रामकृष्णाभ्यामाविवेश स तां सभाम् तत्रासीनोऽभ्यलंकृत्वा सभांताममरेश्वरः । अर्घादिसमुदाचारं प्रत्यगृह्णाद्यथा विधि ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच । अथोवाच महातेजा वासवो वासवानुजम् । सान्त्वपूर्वं करेणास्य संस्पृशन् वदनं शुभम् ॥ ३२ ॥ देवकीनन्दनवचः शृणु मे मधुसूदन । येन त्वाऽभिगतोस्म्यद्य कार्येणामित्रकर्शन ॥ ३३ ॥ नैर्ऋतो नरको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः । अदित्याः कुण्डले मोहाज्जहार दितिनन्दनः ॥ ३४ ॥ देवानां विप्रिये नित्यमृषीणां च स वर्तते । तं च देवान्तरं मेत्य जहि त्वं पापपूरुषम् ॥ ३५ ॥ अयं त्वां गरुडस्तत्र प्रापयिष्यति कामगः । कामवीर्योऽतितेजस्वी वैनतेयो-

---

देवजीको आलिंगन किया और राजा उग्रसेनको भी आलिंगन किया ॥ २७-२९ ॥ उन्होंने अवस्था और समयके अनुसार वृष्णियोंको भी आलिंगन किया तदनन्तर राम कृष्णसे पूजा पाकर वह उस सभामें बैठ गया ॥ ३० ॥ वहाँ पर बैठे हुए देवेश ने उस सभाको अलंकृत कर अर्घ आदिको शास्त्रानुसार ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ वैशम्पानजीने कहा, कि-तदनन्तर महातेजस्वी इन्द्रने इन्द्रके अनुजके ऊपर सान्त्वनाके साथ अपने शुभ हाथको फेरते हुए कहा, कि-॥ ३२ ॥ हे अमित्रकर्षण देवकीनन्दन मधुसूदन ! मैं जिस कार्यके लिये आपके पास आया हूँ, उस मेरे वचनको सुनिये ॥ ३३ ॥ एक नरक नामका असुर है उस दितिनन्दनने ब्रह्माजीके वरसे अभिमानमें भर मोहवश अदितिके कुण्डलोंको हर लिया है ॥ ३४ ॥ वह सदा देवता तथा ऋषियोंका अप्रिय करता रहता है आप उस देवविघ्नको देख कर उस पापात्माको मारिये ॥ ३५ ॥ यह इच्छानुसार विचरण करने वाले गरुड़जी आपको वहाँ लेजावेंगे, यह अतितेजस्वी हैं,

न्तरिक्षगः ॥३६॥ अवध्यः सर्वभूतानां भौमः स नरकोऽसुरः । निषूदयित्वा तं पापं क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥३७॥ इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो देवराजेन केशवः । प्रतिजज्ञे महाबाहुर्नरकस्य निबर्हणम् ॥ ततः सहैव शक्रेण शङ्खचक्रगदासिभृत् । प्रतस्थे गरुडेनाथ सत्यभामासहायवान् ॥ ३९ ॥ क्रमेण स तु क्रान्तवान् स मरुतां सह वासवः । पश्यतां यदुसिंहानामूर्ध्वमाचक्रमे बली ॥ ४० ॥ ऐरावतगतः शक्रो गरुडस्थो जनार्दनः । विदूरत्वान् गतौ भातौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ४१ ॥ अन्तरिक्षे च गन्धर्वैरप्सरोभिश्च केशवः । स्तूयमानोऽथ शक्रश्च क्रमेणान्तरधीयत ॥ ४२ ॥ समाधायेति कर्तव्यं वासवो विबुधाधिपः । स्वमेव भवनं यायात् कृष्णः प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ ४३ ॥ पक्षानिलहतो वायुः प्रतिलोमं ववौ

इनमें इच्छानुसार वीर्य आजाता है और यह दितिनानन्दन अन्तरिक्षचारी है ॥३६॥ भूमिका पुत्र वह नरकासुर सब प्राणियोंसे अवध्य है, आप उस पापीको मार कर शीघ्र ही आइये ॥३७॥ देवराज इन्द्रने पुण्डरीकाक्ष केशवसे इस प्रकार कहा, तब महाभुज श्रीकृष्णने नरकासुरको मारनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ३८ ॥ उस समय शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले श्रीकृष्ण सत्यभामा और इन्द्रको साथमें लेकर चले ॥ ३९ ॥ बलवान् श्रीकृष्ण यदुसिंहोंके देखते २ इन्द्रके साथ क्रमशः वायुके सात परदों पर चढ़ गए ॥ ४० ॥ हस्तिराज (ऐरावत) पर बैठे हुए इन्द्र और गरुड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण दूर होनेके कारण सूर्य और चन्द्रमाकी समान शोभा पाने लगे ॥ ४१ ॥ अन्तरिक्षमें पहुँचने पर गंधर्व और अप्सराएँ केशव और इन्द्रकी स्तुति करने लगीं इस प्रकार वह क्रमशः अन्तर्धान होगए ॥ ४२ ॥ देवताओंका स्वामी इन्द्र श्रीकृष्णको कर्तव्यकर्म बता कर अपने भवनको चला गया और श्रीकृष्ण प्राग्ज्योतिष नगरको चले

तदा । ततो भीमरवा मेघा बभ्रमुर्गगनेचराः ॥ ४४ ॥ क्षणेन स-
मनुप्राप्तो द्विजेनाकाशगेन वै । दूरादेव च तान् दृष्ट्वा प्रययौ यत्र
ते स्थिताः ॥४५॥अपश्यद्द्वारि तत्रस्थां हस्त्यश्वरथवाहिनीम् ।
क्षुरान्तान्मौरवान् पाशान्षट्सहस्रान् ददर्श ह॥४६॥ वैशम्पायन
उवाच । गरुडस्योपरि श्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः । बिभ्रन्नीलाम्बु-
दाकारं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥४७॥वनमालाकुलोरस्कः श्रीवत्सां-
कितभूषणः । किरीटमूर्धा सूर्याभः सविद्युदिव चन्द्रमाः ॥४८॥
ज्यां विकूजन्महाशब्दः श्रूयतेऽशनिनिःस्वनः । ज्ञात्वा च दानवः
सर्वं स्वयं विष्णुरिहागतः ॥ ४९ ॥क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो मुरुः

गए ॥ ४३ ॥ उनके पक्षसे पीड़ित हुआ वायु उस समय प्रति-
लोमगतिसे चलने लगा. और आकाशमें भयंकर ध्वनि करने
वाले मेघ आकाशमें फिरने लगे ॥ ४४ ॥ श्रीकृष्ण क्षणभरमें
ही उस आकाशचारी पक्षीके कारण तहाँ पहुँच गए और दूरसे
उन (मुरुके सैनिकों) को देखा और वे जहाँ खड़े थे तहाँ पहुँच
गए ॥ ४५ ॥ तहाँ पर उन्होंने द्वार पर ही हाथी घोड़े और
रथोंकी सेनाको देखा और मुरुदैत्यके बनाये हुए क्षुरकी समान
अनिभूद्य (अतिदृढ़ अवयवसंयोग वाले पाषाण आदिमें भी
घुस कर काटने योग्य) पाशोंको (धारण करने वाले) छः
सहस्र सैनिकोंको देखा ४६ वैशम्पायनजीने कहा, कि-गरुड़
पर बैठे हुए शंखचक्रगदाधारी, नीले मेघकी समान आकार
वाले, पीले वस्त्र वाले, चार भुजा वाले, वनमालाओंसे व्याप्त
वक्षःस्थल वाले श्रीवत्सके चिन्हसे भूषित, मस्तक पर मुकुट धारण
करने वाले, सूर्यकी समान आभा वाले अत एव बिजली वाले
चन्द्रमाकी समान दीखते हुए श्रीमान् श्रीकृष्ण जब अपनी प्रत्यश्चा
खेंचने लगे तब अग्निकी समान बड़ाभारी शब्द सुनाई दिया
तब दानवने जाना, कि विष्णु अपने आप ही यहाँ आगए

कालान्तकोपमः । अभ्यधावत वेगेन शक्तिं गृह्य महासुरः ॥५०॥ चिक्षेप सुमहाशक्तिं वज्रकाञ्चनभूषिताम् । तामापतन्तीं शक्तिं तु महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ५१ ॥ समाधत्त शरं चैकं रुक्मपुङ्खं जनार्दनः । द्विधाच्छिनत् क्षुरमेण वासुदेवः स वीर्यवान् ॥५२॥ शक्तिं चिच्छेद तत्रासौ विद्युत्पुञ्ज इव ज्वलन् । पुनश्च क्रोध-रक्ताक्षो मुरुर्गृह्य महागदाम् ॥ ५३ ॥ इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण विकृष्ट इव निःस्वनः । आकर्णमुक्तं चिक्षेप अर्धचन्द्रं सुरोत्तमः ॥५४॥ मध्यदेशे तु चिच्छेद गदां तां रुक्मभूषिताम् । पुनश्चिच्छेद भल्लेन दानवस्य शिरो रणे ॥५५॥संछिद्य पाशान् सर्वांस्तान मुरुं हत्वा सबान्धवम् । सोग्रयानूक्षोगणान् हत्वा नरकस्य महाबलान ५६ शिलासङ्घानतिक्रम्य भगवान् देवकीसुतः । अपश्यद्दानवं सैन्यं

हैं ॥ ४७-४९ ॥ उस समय कालकी समान मुरु दैत्यके नेत्र क्रोधके कारण दुगने लाल होगए और वह बड़ा भारी असुर शक्तिको उठा कर वेगसे दौड़ा ॥ ५० ॥और रत्न तथा सुवर्ण से भूषित उस महाशक्तिको वेगसे फेंका, बडी भारी मदीप्त उल्काकी समान उस महाशक्तिको आते देख कर जनार्दनने सुवर्ण की पूँछड़ी वाले एक बाणको चढ़ाया, वीर्यवान् वासुदेवने उस क्षुरप्र नामक बाणसे उस शक्तिके दो टुकड़े कर दिये॥५१।५२। उस बिजलीके पुञ्जकी समान जलते हुए बाणने उस शक्तिको काट दिया, तब तो क्रोधसे लाल लाल नेत्र वाले मुरु दानवने गदा उठा ली ॥ ५३ ॥ इतनेमें ही जैसे इन्द्रके वज्रको फेंकने पर शब्द होता है इसी प्रकार सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णके कान तक खैंच कर छोड़े हुए बाणका शब्द हुआ ॥ ५४ ॥ उस समय देवकी-पुत्रने सब पाशोंको काट डाला और बान्धवोंसहित मुरुको भी मार डाला इस प्रकार उन्होंने नरकके महाबली अग्ररक्षकोंको मार कर शिलाके ढेरोंके लाँघनेके अनन्तर महाबली निसुन्द

निसुन्दं च महावलम् ॥ ५७ ॥ हयग्रीवं च दितिजं तथाऽन्यां-श्चित्रयोधिनः । रोधयामास तन्मार्गं स्वसैन्येन महावलः ॥५८॥ निसुन्दो वलिनां श्रेष्ठो रथमारुह्य सत्वरम् । जग्राह कार्मुकं दिव्यं हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ ५९ ॥ विव्याध दशभिर्बाणैर्निसुन्दो मधु-सूदनम् । केशवश्चापि सप्तत्या विव्याध निशितैः शरैः ॥ ६० ॥ अप्राप्तांश्चान्तरिक्षे तान् शरांश्चिच्छेद माधवः । ते सर्वे सैनिकाः कृष्णं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ६१ ॥ शरजालेन महता छाद्य-मानः सुरोत्तमः । दृष्ट्वा तान् दानवान् सर्वान् सक्रोधो मधुसूदनः ततो दिव्येन चास्त्रेण पार्जन्येन जनार्दनः । महता शरवर्षेण वारयामास तद्बलम् ॥ ६३ ॥ पंच पंचशरैस्तेषु एकैकेन च तान् वहून् । पार्जन्यस्य प्रभावेण सर्वान् मर्मस्वताडयत् ॥६४॥ दुद्ध-

---

दितिपुत्र हयग्रीव और दानवसेना तथा दूसरे भी चित्रयोधी योधाओंको देखा उस समय महावली (निसुन्द) ने अपनी सेनासे उनके मार्गको रोक लिया ॥ ५५—५८॥ उस समय वलवानोंमें श्रेष्ठ निसुन्द सुवर्णकी पीठ वाले दुरासद दिव्य धनुष को ग्रहण कर शीघ्रतासे श्रेष्ठ रथ पर चढ़ गया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर निसुन्द मधुसूदनको दश बाणोंसे घायल करना चाहने लगा तब केशवने भी उसके सत्तर तेज बाण मारे ॥ ६० ॥और उसके जो बाण अभी तक उनके पास नहीं पहुँचे उनको माधवने आकाशमें ही काट डाला इसी समय सब सैनिकोंने कृष्णको चारों तरफसे घेर लिया ॥ ६१ ॥ देवताओंमें उत्तम श्रीकृष्ण पर जब बाणोंका बड़ा भारी जाल छागया उस समय मधुसूदन दैत्योंकी ओर देख क्रोधमें भर गए ६२ तदनन्तर जनार्दन दिव्य पार्जन्यास्त्रसे बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उस सेनाको हटाने लगे ६३ उनमेंसे पाँच व्यक्तियोंके तो उन्होंने पाँच २ बाण मारे और बहुतसोंके एक २ बाण मारा इस प्रकार पार्जन्य अस्त्र

दुर्भयसन्त्रस्ता भग्नास्ते दानवा रणे । स्वसैन्यं विद्रुतं दृष्ट्वा निश्चक्राम पुनर्मृधे ॥ ६५ ॥ विसृजञ्छरवर्षाणि छादयामास केशवम् । न विभाति रणे सूर्यो नापि व्योम दिशो दश ॥६६॥ शरैः संछादयामास निसुन्दो गरुडध्वजम् । सावित्रं नाम दिव्यास्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥ ६७ ॥ तेन बाणेन तान् बाणांश्चिच्छेद समरे हरिः । बाणैर्बाणांश्च संच्छिद्य तस्य कृष्णो महाबलः ६८ छत्रमेकेन बाणेन रथेषां च त्रिभिः शरैः । पुनश्चिच्छेद तानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः शरैः ॥६९॥ सारथिं पंचभिर्बाणैर्ध्वजमेकेन चिच्छिदे । शरैकेन वपुः कृष्णः सुतीक्ष्णेन शितेन वै ॥ ७० ॥ शिरश्चिच्छेद भल्लेन निसुन्दस्य सुरोत्तमः । यः सहस्रं समास्त्वेकः सर्वान् देवानयोधयत् ॥ ७१ ॥ निसुन्दं पतितं दृष्ट्वा हय-

---

के प्रभावसे सबके मर्मस्थानोंको ताड़ित किया ६४ उस समय दानव भयसे घबड़ा छिन्न भिन्न होकर भागने लगे, अपनी सेना को भागती हुई देख कर (निसुन्द) युद्ध करनेके लिये फिर निकल आया ६५ उस समय उसने बाणोंकी बौछार करके श्रीकृष्णको ढक दिया तब आकाशमें सूर्य दश दिशा और आकाश (आदि कुछ भी) नहीं दीखता था ६६ जब निसुन्द ने गरुड़ध्वज श्रीकृष्णको बाणोंसे छादिया तब पुरुषोत्तमने सावित्र नाम वाले दिव्य अस्त्रको ग्रहण किया ६७ हरिने समर में उस बाणसे उन बाणोंको काट डाला इस प्रकार महाबली श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटनेके अनन्तर ६८ एक बाणसे उसके छत्रको तीन बाणोंसे उसके रथकी ईषाको और चार बाण मार कर उसके चारों घोड़ोंको भी काट डाला ६९ तदनन्तर श्रीकृष्णने पाँच बाणोंसे उसके सारथी को एक बाणसे उसकी ध्वजाको तथा एक तीखे बाणसे उसके शरीरको भी काट डाला ७० तदनन्तर देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण

ग्रीवः प्रतापवान् । शिलां प्रगृह्य महतीं तोलयामास दानवः ७२
आविध्य सहसामुंचच्छिलां शैलसमां प्रभुः । गृहीत्वा दिव्य-
पार्जन्यमस्त्रस्त्रविदां वरः ॥ ७३ ॥ दिव्यास्त्रेण शिलां विष्णुः
सप्तधा कृततेजसा । तद्विदार्य महच्चाश्म पातयामास भूतले ७४
ततस्तैः शार्ङ्गनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः । यथा देवासुरं युद्ध-
मभवद्भरतर्षभ । नानाप्रहरणाकीर्णं तथा घोरमवर्तत ॥ ७५ ॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैर्नानावर्णैर्महाशरैः । गरुडस्थो महाबाहुर्नि-
जघान महासुरान् ॥ ७६ ॥ महालांगलनिर्भिन्नाः शंखशक्ति-
निपातिताः । विनेशुर्दानवाः सर्वे समासाद्य जनार्दनम् ७७केचि-
च्चक्राग्निनिर्दग्धा दानवाः पेतुरम्बरात् । संनिकर्षगताः केचिद्ध-

---

ने सहस्र वर्षों तक सब देवताओंसे युद्ध करने वाले निसुन्दके मस्तकको भल्ल नामक बाण मार कर काट डाला ७१ हयग्रीव नामक प्रतापी दानव निसुन्दको गिरा हुआ देख कर बड़ीभारी शिलाको उठा कर जाँचने लगा ७२ और उस शिलाको घुमा कर एक साथ श्रीकृष्णके ऊपर फैंका उस समय अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रभु श्रीकृष्णने पार्जन्य नामक दिव्य अस्त्रको ग्रहण किया ७३ अपने तेजको सात भागोंमें विभक्त करने वाले उस अस्त्रसे उस शिलाको विदीर्ण करके उस बड़े भारी पत्थरको पृथ्वीमें फेंक दिया ७४ तदनन्तर शार्ङ्ग धनुषमेंसे छूटते हुए अनेक वर्णके बड़े भारी बाणोंसे यह युद्ध अनेक प्रकारके आयुधों से घिरे हुए भयंकर देवासुर युद्धकी समान भयंकर रीतिसे होने लगा ७५ तदनन्तर गरुड़ पर बैठे हुए महाभुज श्रीकृष्ण शार्ङ्ग धनुषमेंसे अनेक वर्ण वाले बड़े २ अस्त्रोंको छोड़ कर बड़े २ राक्षसोंका संहार करने लगे ७६ लांगलसे बहुत ही फटे हुए देह वाले शंखशक्तिरूप महानादसे गिराए हुए दानव जनार्दन को पास हो कर नष्ट होगए ७७ कोई २ दानव चक्रकी अग्निसे

गतासुविकृताननाः ॥ ७८ ॥ असृजञ्छरवर्षाणि वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः । विकृतांगासुराः सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः ॥ ७९ ॥ शोणिताक्ताः स्म दृश्यन्ते पुष्पिता इव किंशुकाः । व्यद्रवन्त सुवित्रस्ता भग्नास्त्राश्चित्रयोधिनः ॥ ८० ॥ पुनश्च क्रोधरक्ताक्षो वायुवेगेन दानवः । दशव्यामोच्छ्रितं वृक्षं समारुह्य वनस्पतिम् ॥८१॥ वृक्षमुत्पाट्य वेगेन प्रतिगृह्याभ्यधावत । चिक्षेप सुमहावृक्षं शिक्षया सुघनाकृतिः ॥ ८२ ॥ वृक्षवेगानिलोद्धूतः शुश्रुवे सुमहास्वनः । ततः शरसहस्रेण यतमानो जनार्दनः ८३ नैकधा तं प्रचिच्छेद चित्रभानुनिभाकृतिम् । पुनश्चैकेन बाणेन हयग्रीवस्य चोरसि ॥ ८४ ॥ विव्याध स्तनयोर्मध्ये सायको

भस्म होकर आकाशमेंसे नीचे गिरने लगे और कोई दानव श्रीकृष्णके पास पहुँच प्राण निकलजानेके कारण मुख बिगाड़ते हुए गिर पड़े ॥ ७८ ॥ कृष्णके बाणोंसे पीड़ित होनेके कारण जिनके अङ्ग बिगड़गए थे ऐसे असुर वर्षा बरसाने वाले मेघोंकी समान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७९ ॥ विचित्र युद्ध करने वाले असुर अस्त्रोंके टूट जानेसे घबड़ाकर भागने लगे उस समय रक्तसे न्हाते हुए असुर खिले हुए टेसूके वृक्षोंकी समान मालूम पडते थे ॥८०॥ तदनन्तर क्रोधसे लाल लाल नेत्र वाले दानवने दश हाथ ऊँचे वृक्षको वायुवेगसे उखाड़ लिया ॥८१॥ तदनन्तर बड़े भारी मेघकी समान आकृतिवाला वह दानव वृक्षको उखाड़ कर उसको लेकर दौड़ा और चतुरता से उस बड़े भारी वृक्षको फेंक दिया ॥ ८२ ॥ उस समय वृक्षके वेगसे उत्पन्न हुए वायुके झपाटेका बड़ाभारी शब्द सुनाई आया तदनन्तर जनार्दनने सहस्रों बाणोंसे यत्न कर अग्निकी समान आकृतिवाले उस वृक्षके टुकड़े करडाले इसके उपरान्त उन्होंने अग्निकी समान एक बाण हयग्रीवके वक्षःस्थलमें स्तनोंके

ज्वलनप्रभः । विवेश सोऽतिवेगेन हृदं भित्वा विनिर्गतः ॥८५॥ तं जघान महाघोरं हयग्रीवं महाबलम् । अपारतेजा दुर्धर्षः स गौ यादवनन्दनः ॥ ८६ ॥ मध्ये लोहितगंगस्य भगवान् देवकीसुतः । औदकायां विरूपाक्षं पाप्मानं पुरुषोत्तमः ॥ ८७ ॥ अष्टौ शतसहस्राणि दानवानां परन्तप । निहत्य पुरुषव्याघ्रः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥८८॥ हत्वा पञ्चनदं नाम नरकस्य महासुरम् । ततः प्राग्ज्योतिषं नाम दीप्यमानमिव श्रिया ॥ ८९ ॥ पुरमासादयामास युद्धं तत्राभवन्महत् । ततः प्रध्मापयच्छंखं पांचजन्यं महाबलः ॥ ९० ॥ शुश्रुवे सुमहाञ्शब्दः सम्वर्तनिनदो यथा । श्रूयते त्रिषु लोकेषु भीमगम्भीरनिःस्वनः । तं श्रुत्वा नरकश्चासीत्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥९१॥ लोहचक्राष्टसंयुक्तं त्रिनल्वगतिमं

बीचमें मारा वह बाण बड़े भारी वेगसे उसके हृदयको फोड़ कर निकलगया ॥ ८३ ८५ ॥ अपार तेजस्वी भगवान देवकीसुत दुर्धर्ष यादवनन्दनने इस प्रकार उस महाबली महाघोर पापी कुरूप नेत्रों वाले हयग्रीव दानवको लोहितगङ्ग नाम वाले समुद्रके प्रदेशविशेषके मध्यमें विराजमान जलकी खाई वाली पुरीमें मार डाला ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ हे परन्तप ! पुरुषव्याघ्र श्रीकृष्ण आठ लाख दानवोंको मार कर प्राग्ज्योतिषपुरकी ओर दौड़े ८८ नरकासुरके पञ्चनद नामक बड़े भारी राक्षसको मार कर वह अपनी कान्तिसे प्रकाशमान् प्राग्ज्योतिषपुरमें घुसे तहाँ पर बड़ा भारी युद्ध हुआ तदनन्तर महाबली श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य नामक शङ्खको बजाया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ गम्भीर शब्द करने वाला उस शंखका बड़ा भारी शब्द प्रलयकालके मेघोंकी समान तीनों लोक में सुनाई दिया उसको सुन कर नरकासुरके नेत्र क्रोधसे लाल २ होगए ॥ ९१ ॥ उसके रथमें लोहेके आठ पहिये लग रहे थे उस का रथ तीन नल्वका था उसमें रत्नोंके और सुवर्णके चित्र बन

रथम् । रत्नकाञ्चनचित्राढ्यं वेदिकाभोगविस्तरम् ॥९२॥ वज्र-
ध्वजेन महता काञ्चनेन विराजितम् । हेमदण्डपताकाढ्यं वैडूर्य-
मणिकूबरम् ॥९३॥ युक्तमश्वसहस्रेण रथं पररथारुजम् । लोह-
जालैश्च संछन्नं चित्रभक्तिविराजितम् ॥९४॥ रथमध्यगतो वीरः
ससन्ध्य इव भास्करः । नानाप्रहरणाकीर्णं रथं हेमपरिष्कृतम् ॥९५
वज्रं रथोरश्छदमिन्दुवर्णं व्यानद्धमुक्तानलतुल्यतेजाः । किरीट-
मूर्धार्कहुताशनाभः कर्णौ तथा कुण्डलयोर्ज्वलन्तौ ॥९६॥ धूम्र-
वर्णा महाकाया रक्ताक्षा विकृताननाः । नानाकवचिनः सर्वे दैत्य-
दानवराक्षसाः ॥ ९७ ॥ खड्गचर्मधराः केचित् केचित्तूणधनु-
र्भृतः । शक्तिहस्तास्तथा केचिच्छूलहस्तास्तथापरे ॥९८॥ गज-

रहे थे उसमें बैठनेकी जगह बहुत बड़ी थी ॥ ९२ ॥ सुवर्णकी
बनी हुई बड़ी भारी वज्रध्वजासे वह सुशोभित होरहा था सुवर्ण
के दंडे वाली पताकाएँ उसमें लगरहीं थीं उसका कूबर वैडूर्य-
मणियोंका बना हुआ था ॥ ९३ ॥ उसमें हजार घोड़े जुत रहे
थे और वह रथ दूसरोंके रथोंको तोड़ने वाला था लोहेकी
जालियोंसे ढ़का हुआ था चित्र विचित्र सेवनीय पदार्थोंसे शोभा
पा रहा था ॥ ९४ ॥ ऐसे अनेक प्रकारके आयुधोंसे व्याप्त सुवर्ण
के बनाए हुए रथके बीचमें बैठा हुआ वह वीर संध्याकालके
सूर्यकी समान प्रतीत होता था ॥ ९५ ॥ चन्द्रमाकी समान कान्ति
वाले वज्रसे वह रथके आगेके भागको ढ़क रहा था उसके मस्तक
पर किरीट लग रहा था इससे उसकी कान्ति सूर्य और अग्नि
की समान प्रतीत होती थी उसके कानमें प्रकाशवान् कुण्डल पड़े
हुए थे और वह बढ़ा कर छोड़े हुए अग्निकी समान तेजस्वी
प्रतीत होता था ॥९६॥ उसके साथमें प्रहार करने वाले और भी
सब योधा तयार होकर निकले, उनका वर्ण धुएँकी समान था
शरीर बहुत बड़ा था आखें लाल लाल होरहीं थीं मुख बिगड़े

वाजिरथौघैश्च कालयन्तश्च मेदिनीम् । निर्ययुर्नगरात् सर्वे सुसन्नद्धाः प्रहारिणः ॥ ९९ ॥ ततो दैत्यगणैः सार्धं नरकः कालसन्निभः । भेरीशङ्खमृदङ्गानां पणवानां सहस्रशः ॥ १०० ॥ वाद्यमानानि शुश्राव जीमूतनिनदोपमः । यतः कृष्णस्ततो गत्वा सर्वे ते विकृताननाः ॥ १ ॥ परिवार्य गरुत्मन्तं सर्वेऽयुद्ध्यत संगताः । महता छादयामासुः शरवर्षेण सैनिकाः ॥ २ ॥ शक्तिशूलगदाप्रासांस्तोमरान् सायकान् बहून् । आकाशं छादयामासुर्विमुञ्चन्तः सहस्रशः ॥ ३ ॥ कृष्णः कृष्णाम्बुदाकारः शार्ङ्गं गृह्य धनुस्ततः । विस्फार्य समुद्यच्चापं धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४ ॥ व्यसृजच्छरवर्षाणि दानवानां जनार्दनः । शरवर्षेण तत्सैन्यं

हुए थे और वे सब दैत्य दानव तथा राक्षस अनेक प्रकारके कवचोंको धारण कर रहे थे कोई ढाल तलवार ग्रहण कर रहे थे किन्हींके पास गदा थे और धनुष थे किन्हींके हाथमें शक्तियें थीं और किन्हींके हाथमें शूल थे वे हाथी घोड़े और रथकी लंघारों से पृथ्वीको कँपाते हुए चल रहे थे ॥ ९७-९९ ॥ मेघके गर्जने की समान और कालकी समान नरकासुर दैत्योंसे घिर रहा था उसने सहस्रों भेरी शङ्ख मृदङ्ग और पणवोंको बजाए जाते हुए सुना वे सब टेढ़े वेढ़े मुख वाले दानव जहाँ श्रीकृष्ण थे तहाँ पहुँच गए ॥ १०० ॥ १०१ ॥ सबने इकट्ठे होकर गरुड़जीको घेर लिया और युद्ध करने लगे तदनन्तर उन सैनिकोंने बड़ी भारी बाणवर्षा कर उनको ढकना चाहा ॥ १०२ ॥ सहस्रों शक्ति, शूल, गदा, प्रास, तोमर तथा बहुतसे बाणोंको छोड़ने वाले राक्षसोंने आकाशको भर दिया ॥ १०३ ॥ तदनन्तर काले मेघकी समान आकार वाले श्रीकृष्णने मेघकी समान शब्द करने वाले अपने बड़े भारी शार्ङ्ग नामक धनुषको उठा कर ताना १०४ फिर जनार्दनने दानवोंके ऊपर बाणोंकी बौछार छोड़ी बाणोंकी

त्यद्रवत्तु महाहवात् ॥ ५ ॥ तत्रयुद्धमभवद्घोरं घोररूपेण रक्षसा ।
भग्नव्यूहाश्च ते सर्वे कृष्णबाणप्रपीडिताः ॥ ६ ॥ केचिच्छिन्न-
भुजाश्चैव छिन्नग्रीवाशिराननाः । केचिच्चक्रद्विधाच्छिन्नाः
केचिद्बाणार्दितोरसः ॥ ७ ॥ केचिद्द्विधाकृताः शक्त्या गजाश्व-
रथवाहनाः । केचित् कौमोदकीभिन्नाः केचिच्चक्रविदारिताः ८
एवं विमथिता सर्वा नराश्वरथवाहिनी । तत्रासीन्नरकेणास्य
युद्धं परमदारुणम् ॥ ९ ॥ यत् समासेन वक्ष्यामि तन्मे निगदतः
शृणु । त्रासनः सुरसंघानां नरकः पुरुषोत्तमम् ॥ ११० ॥ योधया-
मास तेजस्वी मधुवन्मधुसूदनम् । क्रोधरक्तांतनयो नरको घन-
सन्निभः ॥ ११ ॥ जग्राह कार्मुकं वीरः शक्रचापमिवोच्छ्रितम् ।
तथार्ककिरणप्रख्यं बाणं जग्राह केशवः ॥ १२ ॥ दिव्येनास्त्रेण

वर्षा होनेसे वह सेना महासंग्राममेंसे भागने लगी ॥ १०५ ॥
इस प्रकार उस भयंकर रूप वाले राक्षससे श्रीकृष्णका घोर युद्ध
हुआ और कृष्णके बाणोंसे पीड़ित होनेके कारण उन सबके
व्यूह टूट गये १०६ किन्हींकी भुजाएँ कट गई किन्हींके मस्तक
शिर अथवा मुख छिन्न भिन्न होगए कोई चक्रसे दो टूक होगए
और बहुतसोंके हृदयमें बाणोंके कारण पीड़ा होने लगी १०७
बहुतसे हाथी घोड़े और रथों पर सवारी करने वाले शक्तिसे दो
टूक होगए कोई कौमोदकी नामकी गदासे विदीर्ण होगए और
कोई चक्रसे कट गए १०८ इस प्रकार मनुष्य हाथी घोड़े आदि
की सब सेना कुचल गई प्राग्ज्योतिषपुरमें नरकके साथ श्रीकृष्ण
का परम दारुण युद्ध हुआ था १०९ मैं उस बातको संक्षेपसे
कहता हूँ उसको तुम सुनो देवताओंके संघको भयभीत करने
वाला मेघकी समान (काला) नरकासुर क्रोधसे अपने नेत्रके
कोओंको लाल करके पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे मधुदैत्यकी समान युद्ध
करने लगा १११ वीर केशवने इन्द्रकी समान उठे हुए धनुषको

समरे पूरयामास तं रथम् । उत्तमास्त्रं महापातं मुमोच नरको बली ॥१३॥ वज्रविस्फूर्जिताकारमागान्तं वीक्ष्य केशवः । चिच्छेदास्त्रं महाभागश्चक्रेण मधुसूदनः ॥ १४ ॥ व्यहनत् सरथं चास्य शरैकेण जनार्दनः । सरथं सध्वजं साश्वं जघान दशभिः शरैः । तनुत्रं चैव चिच्छेद शरेण मधुसूदनः । ततो विमुक्तकवचः सर्पस्येव तनुर्यथा ॥१६॥ हताश्वो विरथो वीरो वितनुत्रश्च दानवः । जग्राह विमलज्वालं लोहभारार्पितं दृढम् ॥१७॥ आविध्य सहसा मुक्तं शूलमिन्द्राशनिप्रभम् । तदापतत् स संप्रेक्ष्य शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥१८॥द्विधा छिन्नं क्षुरप्रेण कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । तद्युद्ध-

---

और सूर्यकी किरणकी समान तेज बाणको उठा लिया ११२ और उस दिव्य अस्त्रसे समरमें उसके रथको भर दिया तदनन्तर बलवान् नरकासुरने बड़े वेगसे गिरने वाले श्रेष्ठ अस्त्र को छोड़ा११३मधुदैत्यका नाश करने वाले महाभाग श्रीकृष्णने कड़कते हुए वज्रकी समान आकार वाले अस्त्रको आते हुए देख कर अपने चक्रसे उसको काट डाला ११४ तदनन्तर जनार्दनने एक बाण मार कर उस रथको तोड़ डाला और दश बाण मार कर ध्वजा और घोड़ोंको भी तोड़ डाला ११५ फिर मधुसूदन ने एक बाण मार कर उसके कवचको भी काट डाला कवच टूट जानेके कारण उसका शरीर (कैंचली रहित) सर्पके शरीरकी समान मालूम होता था ११६ जिसके घोड़े मर गए थे और रथ टूट गया था और जिसका कवच भी टूट गया था उस वीर दानवने विमल आभा वाले लोहेके भार वाले वज्रकी समान प्रभाव वाले दृढ़ शूलको उठा लिया और उसको घुमा कर साथ फेंका उस सुवर्ण मढ़े हुए शूलको आता हुआ देख कर १७-१८ अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्णने क्षुरप्र नामक बाणसे उसके

मभवद्‌ घोरं घोररूपेण रक्षसा ॥१९॥ शस्त्रपातमहाघातं नरकेण महात्मना । मुहूर्तं योधयामास नरकं मधुसूदनः॥१२०॥अथोग्र-चक्रश्चक्रेण प्रदीप्तेनाकरोद्‌ द्विधा । चक्रद्विधाकृतं तस्य शरीरमप-तद्भुवि ॥ २१ ॥ विभक्तं कुलिशेनेव गिरेः शृङ्गं द्विधा कृतम् । कृष्णमासाद्य देवेशं जगामास्तमिवांशुमान ॥२२॥ चक्रोत्कृत्तनि-गात्रोऽसौ दानवः पतितो रणे । वज्रप्रहारनिर्भिन्नं यथा गैरिक-पर्वतम् ॥ २३ ॥ भूमिस्तु पतितं पुत्रं निरीक्ष्यादाय कुण्डले । उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत् ॥२४॥ दत्तस्त्वयैव गोविंद त्वयैव विनिपातितः । यथेच्छसि तथाक्रीड बालः क्रीडनकैरिव२५

दो टुकड़े कर डाले महात्मा नरक राक्षससे शस्त्र गिरने पर बड़ाभारी संहार करने वाला वह युद्ध भयंकर रीतिसे हुआ था इस प्रकार मधुसूदनने नरकासुरसे मुहूर्त भरतक युद्ध किया १२० तदनन्तर उग्र चक्रको धारण करने वाले श्रीकृष्णने अपने प्रदीप्त चक्रसे उसके दो टुकड़े कर दिये तब तो वज्रसे विदीर्ण होकर दो टूक हुए पर्वतके शिखरकी समान चक्रसे दो टुकड़ोंमें बटा हुआ उसका शरीर पृथिवीमें गिर पड़ा, देवेश श्रीकृष्णको पाकर वह राक्षस सूर्यकी समान अस्त होगया॥२१॥२२॥ चक्रसे कटे हुए शरीरवाला वह दानव वज्रके प्रहारसे विदीर्ण हुए मेरुके पर्वतकी समान भूमिमें गिर पड़ा१२३ उस समय भूमि अपने पुत्रको गिरा हुआ देख कर कुण्डलोंको लेकर आई और गोविन्दसे यह बात कहने लगी ॥,१२४॥ हे गोविन्द ! इसको आपने ही दिया था और इस समय आपने ही इसको मार डाला बालक जैसे खिलौनेसे क्रीड़ा किया करता है इसी प्रकार आप इच्छानुसार क्रीड़ा करिये ॥ १२५ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण रत्न और अन्तः पुरोंको (राक्षस) तहाँ ले आए (उस समय पृथ्वीने कहा

उपानिन्युस्ततस्तानि रत्नान्यन्तःपुराणि च । इमे ते कुण्डले देव प्रजास्तस्यानुपालय ॥ १२६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नरकवधे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

वैशम्पायन उवाच । निहत्य नरकं भौमं वासवोपमविक्रमम् । वासवावरजो विष्णुर्ददर्श नरकालयम् ॥ १ ॥ अथार्थगृहमासाद्य नरकस्य जनार्दनः । ददर्श धनमक्षय्यं रत्नानि विविधानि च २ मणिमुक्ताप्रवालानि वैडूर्यस्य च संचयान् । मसारगल्वकूटानि तथा वज्रस्य संचयान् ॥ ३ ॥ जाम्बूनदमयान्यस्य शातकुम्भमयानि च । प्रदीप्तज्वलनाभानि शीतरश्मिनिभानि च ॥ ४ ॥ शयनानि महार्हाणि तथा सिंहासनानि च । हिरण्मयदण्डरुचिरं शीतरश्मिसमप्रभम् । ददर्श तन्महच्छत्रं वर्षमाणमिवाम्बुदम् । जातरूपस्य शुभ्रस्य धाराः शतसहस्रशः ॥६॥ वरुणादाहृतं पूर्वं

कि-) हे देव ! यह वे कुण्डल हैं अब आप इसकी प्रजाकी रक्षा करिये ॥ १२६ ॥ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इन्द्रके छोटे भाई विष्णुने इन्द्रकी समान पराक्रमी भूमिपुत्र नरकासुरको मारनेके पीछे नरकके स्थानको देखा ॥ १ ॥ जनार्दन श्रीकृष्णने धनके लिये नरकासुरके घर जाकर अक्षय, धन और अनेक प्रकारके रत्न देखे २ मणि, मोती मूँगे, वैडूर्यमणियोंके ढेर, मरकतमणि, चन्द्रकान्तमणि, हीरे और रत्नोंके ढेर (देखे) ॥ ३ ॥ नरकासुरके पलंग और बहुमूल्य सिंहासन, सुवर्ण, शातकुम्भ (सुवर्णविशेष) के थे वे जलते हुए अग्निकी आभाकी समान और चन्द्रमाकी समान भी थे और चन्द्रमाकी समान कान्तिवाला सुवर्णका मनोहर दण्डा भी श्रीकृष्णने तहाँ देखा ॥ ४ ॥ ५ ॥ और सुवर्णकी सैंकड़ों और सहस्रों शुभ्र धाराओंको मेघकी समान

नरकेणेति नः श्रुतम् । यावद्रत्नं गृहे दृष्टं नरकस्य धनं बहु ७
नैव राज्ञः कुबेरस्य न शक्रस्य यमस्य च । रत्नमन्निचयस्ताहृ-
ग्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ॥ ८ ॥ हते भौमे निसुन्दे च हयग्रीवे च
दानवे । उपानिन्युस्ततस्तानि रत्नान्यन्तःपुराणि च ॥ ९ ॥
दानवा हतशिष्टा ये कोशसंचयरक्षिणः । केशवाय महार्हाणि
यान्यर्हति जनार्दनः ॥ १० ॥ दैत्या ऊचुः ।'इमानि मणिरत्नानि
विविधानि बहूनि च । भीमरूपाश्च मातङ्गाः प्रवालविकृतांकुशाः
हेमसूत्रा महाकक्षाश्चापतोमरशालिनः । रुचिराभिः पताकाभिः
शबला रुचिरांकुशाः ॥ १२ ॥ ते च विंशतिसाहस्रा द्विस्तावत्यः
करेणवः । अष्टादशसहस्राणि देशजाश्चोत्तमा हयाः ॥ १३ ॥

बरसाते हुए बड़े भारी छत्रको (श्रीकृष्णने) देखा ॥ ६ ॥ हमने सुना है, कि–नरकासुर उसको वरुणके घरमेंसे पहिले ले आया था नरकासुरके घरमें जितने रत्न और धन श्रीकृष्णने देखा उतना धन न राजा राजा कुबेरके यहाँ है न इन्द्रके यहाँ और है न यमराजके यहाँ है जितना रत्नोंका सञ्चय तहाँ पर देखा था इतना न कहीं पहले देखा था न सुना था ॥ ७ ॥ ८ ॥ भौमासुरके निसुन्दके और हयग्रीव दानवके मारे जाने पर जो दानव मरनेसे बच गए थे वे कोषके सञ्चय की रक्षा करने वाले दानव जनार्दन श्रीकृष्ण जिन बहुमूल्य वस्तुओंके योग्य थे उन रत्नोंको और कन्यारत्नोंको श्रीकृष्ण के पास ले आए ।९।१०. दैत्योंने कहा, कि–यह अनेक प्रकारके बहुतसे मणि रत्न भयंकर रूपवाले हाथी मोतियोंके विकार वाले अंकुश सुवर्णकी जाली वाले हौदे कि–जिनके ऊपर चाप और तोमर चढ़ रहे हैं रुचिर पताकाओंसे अलंकृत कर्बुर, रुचिर, अंकुश, ऐसे बीस सहस्र हाथी और चालीस सहस्र हथनियें देश देशोंमें उत्पन्न हुए अठारह हजार उत्तम घोड़े और हे जनार्दन !

गोषु चापि भवेत् कामो यावत्तव जनार्दन । तावतीः प्रापयिष्यामो वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ १४ ॥ आविकानि च सूक्ष्माणि शयनान्यासनानि च । कामव्याहारिणश्चैव पक्षिणः प्रियदर्शनाः १५ चन्दनागरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्यपि । वसु यत्त्रिषु लोकेषु धर्मेणाधिगतं तव ॥ १६ ॥ प्रापयिष्याम तत्सर्वं वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् । देवगन्धर्वरत्नानि पन्नगानां च यद्वसु । तानि सर्वाणि सन्तीह नरकस्य निवेशने ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तत् सर्वं च हृषीकेशः परिगृह्य परीक्ष्य च । सर्वमाहारयामास दानवैर्द्वारकां पुरीम् ॥ १८ ॥ ततस्तद्वारुणं छत्रं स्वयमुत्क्षिप्य माधवः । हिरण्यवर्षं वर्षन्तमारुरोह विहङ्गमम् ॥ १९ ॥ गरुडं पतगश्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवाम्बुदम् । ततोऽभ्ययाद्गिरिश्रेष्ठमभितो मणिपर्वतम् २० तत्र पुण्या ववुर्वाता ह्यभवंश्चामलाः प्रभाः । मणीनां हेमवर्णा-

---

जितनी गौओंकी भी आपकी इच्छा हो उतनी गौएँ भी हम वृष्णि और अन्धकोंके घरमें पहुँचादें ॥ ११—१४ ॥ उनके सूक्ष्म आसन और बिस्तर और इच्छानुसार बोलने वाले प्रियदर्शन पक्षी चन्दन अगर और कालीयक नामक काष्ठ और तीनों लोकके जिस धनको आपने धर्मपूर्वक प्राप्त कर लिया है उन सब को हम वृष्णि और अन्धकोंके घरमें पहुँचा देंगे, देवता और गंधर्वोंके जो रत्न हैं और जो सर्पोंका धन है वह सब नरकके घरमें विद्यमान है ॥ १५—१७ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि— तदनन्तर श्रीकृष्णने उन सबको ग्रहण कर तथा देख कर सबको दानवोंसे द्वारकापुरीमें लिवा लाये ॥ १८ ॥ तदनन्तर माधवने सुवर्णकी वर्षा बरसाने वाला वरुणदेवताका छत्र अपने आप लगा लिया और गरुड़ पर सवार होगए ॥ १९ ॥ मूर्तिमान् मेघकी समान पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ पर सवार होकर श्रीकृष्ण पर्वतश्रेष्ठ मणिपर्वत पर चले ॥ २० ॥ तहाँ पुण्यमय वायु बह रहा थी

नामभिभूय दिवाकरम् ॥ २१ ॥ तत्र वैडूर्यरत्नानि ददर्श मधुसूदनः । सतोरणपताकानि द्वाराणि शिखराणि च ॥ २२ ॥ विद्युद्ग्रथितमेघाभः मणिपर्वतः । हेमचित्रवितानैश्च प्रासादैरुपशोभितः ॥ २३ ॥ तत्र ता वरहेमाभा ददर्श मधुसूदनः । गन्धर्वसुरमुख्यानां प्रिया दुहितरस्तथा ॥ २४ ॥ ददर्श पृथुलश्रोणीः संरुद्धा गिरिकन्दरे । नरकेण समानीता रक्ष्यमाणाः समन्ततः ॥ २५ ॥ त्रिविष्टपसमे देशे तिष्ठन्तीरपराजिताः । निर्विशन्त्यो यथा देव्यः सुखिन्यः कामवर्जिताः ॥ २६ ॥ परिवव्रुर्महाबाहुमेकवेणिधराः स्त्रियः । सर्वाः कषायवासिन्यः सर्वाश्च नियतेन्द्रियाः ॥२७॥ व्रतोपवासतन्वंग्यः कांक्षन्त्यः कृष्णदर्शनम् । समेत्य यदुसिंहस्य सर्वाश्चक्रुः स्त्रियोऽञ्जलीन् ॥२८॥

और सुवर्णके वर्ण वाली मणियोंकी अमल प्रभा सूर्यका अभिभव करके प्रकाशित होरहीं थीं ॥ २१ ॥ वहाँ पर मधुसूदनने वैदूर्य मणि और रत्नोंको देखा तथा तोरण पताका वाले द्वार और शिखरोंको देखा ॥ २२ ॥ सुवर्णके विचित्र वितानोंसे और महलोंसे सुशोभित मणिपर्वत विजलीसे गुँथे हुए मेघकी समान आभा (दिखा कर) शोभा पारहा था ॥ २३ ॥ मधुसूदनने वहाँ पर सुवर्णकी समान आभा वाली गन्धर्व और मुख्य २ देवताओंकी प्रिय पुत्रियोंको देखा ॥ २४ ॥ उन्होंने देखा, कि-वह पृथुलश्रोणि कन्याएँ पर्वतकी गुफामें बन्द थीं नरकासुर उनको ले आया था और चारों ओरसे उनकी रक्षा होरही थी २५ वे अपराजित कन्याएँ स्वर्गकी समान देशमें देवियोंकी समान सुखपूर्वक रहती थीं, परन्तु कामवर्जित थीं ॥ २६ ॥ उन काषाय वस्त्र धारण करने वाली जितेन्द्रिय एकवेणिधरा कन्याओंने महाभुज श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णके दर्शनकी आकांक्षासे व्रत तथा उपवास करनेके कारण उनके शरीर कृश

नरकं निहतं ज्ञात्वा मुरं चैव महासुरम् । हयग्रीवं निसुन्दं च ताः कृष्णं पर्यवारयन् ॥२९॥ ये चासां रक्षिणो वृद्धा दानवा यदुनन्दनम् । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणिपेतुर्वयोधिकाः ॥ ३० ॥ तासां परमनारीणामृषभाक्षं निरीक्ष्यताम् । सर्वासामेव संकल्पः पतित्वेनाभवत्ततः ॥ ३१ ॥ तस्य चन्द्रोपमं वक्त्रं निरीक्ष्य मुदितेन्द्रियाः । संप्रहृष्टा महाबाहुमिदं वचनमब्रुवन् ॥३२॥ सत्यं वहन् पुरा वायुरिहास्मान् वाक्यमब्रवीत् । सर्वभूतमतिज्ञश्च देवर्षिरपि नारदः ॥ ३३ ॥ विष्णुर्नारायणो देवः शङ्खचक्रगदासिभृत् । स भौमं नरकं हत्वा भर्ता च भविता स वः ॥ ३४ ॥ सुप्रियं बत पश्यामश्चिरश्रुतमरिन्दमम् । दर्शनेन कृतार्था हि वयमद्य महा-

होरहे थे उन सब स्त्रियोंने यदुसिंहके पास जाकर हाथ जोड़े २८ उन स्त्रियोंने नरकासुर महासुर मुर हयग्रीव तथा निसुन्दको मारा हुआ जान कर श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ २९ ॥ और इन की रक्षा करने वाले अवस्थामें अधिक वृद्ध दानव भी श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़ कर उनको प्रणाम करने लगे ॥ ३० ॥ जब उन सब श्रेष्ठ स्त्रियोंने वृषभकी समान नेत्रों वाले श्रीकृष्ण को देखा, तब उन सब स्त्रियोंके मनमें श्रीकृष्णको ही अपना पति बनानेका विचार उठा ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णके चन्द्रमाकी समान मुखको देख कर उनकी इन्द्रियें प्रसन्न होगईं तब उन्होंने प्रसन्न होकर महाभुज श्रीकृष्णसे यह बात कही, कि—। ३२ ॥ पहिले यहाँ पर चलते हुए वायुने और सब प्राणियोंकी गतिको जानने वाले देवर्षि नारदजीने भी हमसे सत्य वचन ही कहा था, कि-३३ शंख चक्र और गदा तथा तलवारको धारण करने वाले नारायण देव विष्णु भौमासुरको मारनेके अनन्तर तुम्हारे स्वामी होंगे ३४ हमने जिनका वर्णन चिरकाल हुए सुना था, उन अरिंदमनको हम अब देख रही हैं, यह बड़ी प्रिय बात है आप महात्मा हैं

त्मनः ॥ ३५ ॥ ततस्ताः सान्त्वयामास प्रमदा वासवानुजः । सर्वाः कमलपत्राक्षीर्दृष्ट्वा चोवाच माधवः ॥ ३६ ॥ यथार्हतः पूजयित्वा समाभाष्य च केशवः । यानैः किङ्करसंयुक्तैरुवाह मधुसूदनः ॥ ३७ ॥ किङ्कराणां सहस्राणि रक्षसां वातरंहसाम् । शिबिकां वहतां तत्र निर्घोषः सुमहानभूत् ॥ ३८ ॥ तस्य पर्वतराजस्य शृङ्गं यत्परमार्चितम् । विमलार्केन्दुसंकाशं मणिकाञ्चनतोरणम् ॥३९॥ सपक्षिगणमातङ्गं समृगव्यालपादपम् । शाखामृगगणाकीर्णं सुप्रस्तरशिलातलम् ॥ ४० ॥ न्यंकुभिश्च वराहैश्च रुरुभिश्च निषेवितम् । सप्रपातं महासानुं विचित्रशिखरद्रुमम् ४१ अत्यद्भुतमचिन्त्यं च मृगवृन्दविलोडितम् । जीवंजीवकसंघैश्च बर्हिभिश्च निनादितम् ॥ ४२ ॥ तदप्यतिबलो विष्णुर्दोर्भ्या-

---

आपका दर्शन पानेसे हम कृतार्थ होगई हैं ॥ ३५ ॥ तदनन्तर इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने उन सब कमलनयनी कन्याओंकी ओर देख कर उनको ढाढस दिया और उनसे संभाषण किया ३६ केशव उचित रीतिसे उनका सत्कार कर उनसे संभाषण करनेके अनन्तर उनको किंकरोंसे उठाई जाने वाली पालकियों पर ले चले ॥ ३७ ॥ जिस समय वायुवेगी सहस्र राक्षस किंकरोंने उस शिविकाको उठाया उस समय बड़ा भारी शब्द हुआ ३८ उस पर्वतराजका शिखर परमपूजनीय था, निर्मल सूर्य और चन्द्रमाकी समान था उस पर मणि और सुवर्णके तोरण लग रहे थे ॥ ३९ ॥ उसमें पक्षी और हस्ती रहते थे और उसके वृक्षोंमें सर्प तथा मृग रहते थे और बन्दर तहाँ छा रहे थे और तहाँ शिलाओंका फर्शसा लग रहा था ॥ ४० ॥ बारहसिंगे, सूअर और रुरुमृग उसका सेवन करते थे, तहाँ प्रपात था, उसका सानु बड़ा था और उसके कँगूरे तथा वृक्ष विचित्र थे ४१ वह अति अद्भुत और अचिन्त्य था, मृगोंके झुण्ड तहाँ फिर रहे

मुत्पाट्य भास्वरम् । आरोपयामास बली गरुडे पक्षिणाम्वरे ४३ मणिपर्वतशृङ्गं च सभार्यं च जनार्दनम् । उवाह लीलया पक्षी गरुडः पततां वरः ॥ ४४ ॥ सपक्षबलविक्षेपैर्हिमाद्रिशिखरोपमम् । दिक्षु सर्वासु संह्लादं जनयामास पक्षिराट् ॥ ४५ ॥ आरुजन् पर्वताग्राणि पादपांश्च समुत्क्षिपन् । संजहार महाभ्राणि विजहार च कानिचित् ॥ ४६ ॥ विषयं समतिक्रम्य देवयोश्चन्द्रसूर्ययोः । ययौ वातजवः पक्षी जनार्दनवशे स्थितः ॥ ४७ ॥ स मेरुगिरिमासाद्य देवगन्धर्वसेवितम् । देवसद्मानि सर्वाणि ददर्श मधुसूदनः ॥ ४८ ॥ विश्वेषां मरुतां चैव साध्यानां च नराधिप । भ्राजमानान्यतिक्रामदश्विनोश्च परन्तप ॥ ४९ ॥ प्राप्य पुण्यतमाँल्लोकान् देवलोकमरिन्दम । शक्रसद्म समासाद्य प्रविवेश

थे, चकोर और मयूरोंसे वह गुंजार रहा था ॥ ४२ ॥ अतिबली बलवान् विष्णुने उस कान्तिवान् शिखरको भी अपनी दोनों भुजाओंसे उखाड़ कर पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ पर धर दिया ॥ ४३ ॥ पक्षियोंमें श्रेष्ठ पक्षी गरुड़ मणिपर्वतके शिखर तथा भार्यासहित जनार्दनको खेल २ में ही उड़ा कर लेजाने लगे ॥ ४४ ॥ उस समय उन पक्षिराजने हिमाचलके शिखरोंकी समान अपने बलवान् पक्षोंकी झपटसे दिशाओंमें सन्नाटासा उत्पन्न कर दिया ४५ जनार्दनके वशमें स्थित वायुवेगी गरुड़ पर्वतोंके अग्रभागको तोड़ते हुए वृक्षोंको उखाड़ते हुए,बड़े२बादलोंको लाते हुए और किन्हीं२ से विहार करते हुए चन्द्रमा और सूर्यके विषयको लाँघ गए ४७ मधुसूदनने देवता और गन्धर्वोंसे सेवित मेरुपर्वत पर पहुँच कर सम्पूर्ण देवभवनोंको देखा ॥४८॥ हे परन्तप ! वह विश्वेदेवता मरुत् देवता साध्यदेवता और अश्विनीकुमारोंके प्रकाशवान् (लोकों) का अतिक्रमण कर गए ॥४९॥ हे अरिदमन ! वह परमपवित्र लोकोंमें होते हुए देवलोकमें पहुँचे और तहाँ जाकर

जनार्दनः ॥ ५० ॥ अवतीर्य स तार्च्यात्तु ददर्श विबुधाधिपम् ।
प्रीतश्चैवाभ्यनन्दत्तं देवराजः शतक्रतुः ॥ ५१ ॥ प्रादाय कुण्डले
दिव्ये ववन्दे तं तदाच्युतः । सभार्यो विबुधश्रेष्ठं नरश्रेष्ठो जना-
र्दनः ॥ ५२ ॥ अर्चितो देवराजेन रत्नैश्च प्रतिपूजितः । सत्य-
भामा च पौलोम्या यथावदभिनन्दिता ॥ ५३ ॥ वासवो वासु-
देवश्च जग्मतुः सहितौ तदा । अदित्या भवनं दिव्यं देवमातुर्मह-
र्धिमत् ॥ ५४ ॥ तत्रादितिमुपास्यन्तीमप्सरोभिः समन्ततः ।
ददर्शाते महाभागौ महाभागां तपोन्विताम् ॥ ५५ ॥ अर्चिते
कुण्डले दिव्ये प्रादाददितिनन्दनः । ववन्दे तां शचीभर्ता मातरं
स्वां पुरन्दरः ॥ ५६ ॥जनार्दनं पुरस्कृत्य कर्म चैव शशंस तत् ।
अदितिस्तौ सुतौ प्रीत्या परिष्वज्याभिनन्द्य च॥५७॥ आशीर्भि-

जनार्दन इन्द्रभवनमें घुस गए ॥ ५० ॥ तदनन्तर उन्होंने गरुडसे
उतर कर देवराज इन्द्रके दर्शन किये, उस समय देवराज शत-
क्रतुने प्रसन्न होकर उनको अभिनन्दन दिया उन दिव्य कुंडलों
को देकर नरश्रेष्ठ अच्युत जनार्दनने और उनकी स्त्रीने देवताओं
में श्रेष्ठ इन्द्रको प्रणाम किया ॥ ५२ ॥ उस समय देवराजने
उनकी पूजाकी और भेंटमें रत्न दिये,उधर इन्द्राणीने भी सत्य-
भामाका उचित सत्कार किया ॥५३॥ उस समय वासुदेव और
वासव (इन्द्र) देवताओंकी माता अदितिके महासमृद्ध भवनको
साथ २ चले ॥ ५४ ॥ तहाँ पर उन महाभागोंने महाभागा
तपस्विनी अदितिको देखा, अप्सरायें उनके चारों ओर खड़ी
होकर उनकी उपासना कर रहीं थीं ॥५५॥ उस समय शचीके
स्वामी अदितिनन्दन पुरन्दरने अपनी माताको पूजनीय दिव्य
कुण्डल देकर प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ और जनार्दनको आगे
करके वह सब कर्म सुना दिया, तब अदितिने उन दोनों पुत्रोंको
प्रीतिसे आलिंगन कर अभिनन्दन दिया ॥ ५७ ॥ और अनु-

रनुकूलाभिरुग्राभ्यपदत्तदा । पौलोमी सत्यभामा च प्रीत्या परमया युते ॥ ५८ ॥ अगृह्णीतां वराहीया देव्यास्ते चरणौ शुभौ । ते चाप्यभ्यवदत् प्रेम्णा देवमाता यशस्विनी ॥ ५९ ॥ यथावद्-ब्रवीच्चैव जनार्दनमिदं वचः । अधृष्यः सर्वभूतानामवध्यश्च भविष्यसि ॥६०॥ यथैव देवराजोऽयमजितो लोकपूजितः । अव-त्वियं वरारोहा नित्यं च प्रियदर्शना ॥६१॥सर्वलोकेषु विख्याता दिव्यगन्धा मनोरमा । सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां सुभगा स्थिर-यौवना ॥६२॥जरां न यास्यति वधूर्यावत्त्वं कृष्ण मानुषः । एव-मभ्यर्चितः कृष्णो देवमात्रा महाबलः ॥६३॥ देवराजाभ्यनुज्ञातो रत्नैश्च प्रतिपूजितः । वैनतेयं समारुह्य सहितः सत्यभामया ६४ देवाक्रीडं परिक्रामन् पूज्यमानं सुरर्षिभिः । स ददर्श महाबाहु-

---

कूल आशीर्वाद देकर दोनोंसे सम्भाषण किया, और इन्द्राणी तथा सत्यभामाने भी परमप्रसन्नतासे उस वरके योग्य देवीके शुभ चरणोंको ग्रहण किया, यशस्विनी देवमाताने उनको भी प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ और जनार्दनसे यह वचन कहा, कि-तुम सब भूतोंसे अधृष्य और अवध्य रहोगे६० जैसे यह देवराज अजित हैं और देवता इनकी पूजा करते हैं, इसी प्रकार यह वरारोहा सर्वदा प्रियदर्शना होगी ६१ सब लोकोंमें प्रसिद्ध हो जावेगी और इस मनोरमाकी गन्ध दिव्य होगी और यह स्त्रियोंमें उत्तम सत्यभामा सुभगा और स्थिर-यौवना होगी ६२ और हे कृष्ण ! जब तक तुम मनुष्य रहोगे तब तक यह बहू बुढिया नहीं होगी, महाबली श्रीकृष्ण इस प्रकार देवमातासे सत्कार पाकर ॥६३॥ तथा देवराजसे रत्न ग्रहण कर अनुज्ञा ले सत्यभामाको साथमें ले गरुड़ पर सवार हो देवताओंकी आक्रीडभूमि (क्रीडस्थल) में घूमने लगे, तहाँ पर महाभुज श्रीकृष्णने इन्द्रके क्रीड़ास्थलमें देवताओंसे

शक्रीडे केशवस्य ह ॥ ६५ ॥ दिव्यगन्धार्चितं देवैः पारिजातं महाद्रुमम् । नित्यपुष्पधरं दिव्यं पुण्यगन्धमनुत्तमम् ॥६६॥ यमासाद्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् । संरक्ष्यमाणं देवैस्तं प्रसह्यामितविक्रमः ॥६७॥ उत्पाट्यारोपयामास विष्णुस्तं गरुडोपरि । सोऽपश्यत सत्यभामा च दिव्यमप्सरसां गणम् ॥ ६८ ॥ पृष्ठतः सत्यभामा च दिव्या योषा च वीक्षिताम् । ययाचतो द्वारवतीं वायुजुष्टेन वै पथा ॥ ६९ ॥ श्रुत्वा तं देवराजस्तु कर्म कृष्णस्य तत्तदा । अनुमेने महाबाहुः कृतकर्मेति चाब्रवीत् ॥७०॥ स पूज्यमानस्त्रिदशैः सप्तर्षिगणसंस्तुतः । प्रतस्थे द्वारकां कृष्णो देवलोकादरिन्दम ॥७१॥ सोऽभिपत्य महाबाहुर्दीर्घमध्वानमल्पवत् । पूजितो देवराजेन ददृशे यादवीं पुरीम् ॥ ७२ ॥ तथा कर्म

पूजित सर्वदा पुष्पोंको धारण करने वाले दिव्य और पवित्र गंध वाले पारिजात नामक महावृक्षको देखा ॥ ६४-६६ ॥ उस वृक्षके पास पहुँचने पर सब प्राणियोंको अपने पूर्व जन्मका स्मरण आजाता है, देवता उसकी रक्षा कर रहे थे, अमित पराक्रमी विष्णुने उसको उखाड़ कर गरुड़ पर धर लिया तदनन्तर सत्यभामाने और श्रीकृष्णने अप्सराओंके दिव्य गणोंको देखा ६७-६८ उन्होंने भी पीठकी ओरसे दिव्य स्त्री सत्यभामा को देखा, तदनन्तर (श्रीकृष्ण) वायुसेवित मार्गसे द्वारकापुरी को चले ६९ महाभुज देवराजने भी श्रीकृष्णके उस कर्मका अनुमोदन किया और उन्होंने कहा, कि-यह कर्म तो (श्रीकृष्ण ने) कर ही लिया (अब क्या) ७० हे अरिदमन ! तदनन्तर देवताओंसे पूजा पाते हुए और सप्तर्षियोंसे स्तुति किये जाते हुए श्रीकृष्णने देवलोकसे द्वारकाको प्रस्थान किया ७१ देवराजकी पूजा करनेसे उन महाभुजको बहुत दूरका मार्ग भी थोड़ी दूरका प्रतीत हुआ हुआ और उन्होंने मार्गका अतिक्रमण कर

महत् कृत्वा भगवान् वासवानुजः। उपायाद् द्वारकां कृष्णः श्रीमान् गरुडवाहनः ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे द्वारकाप्रवेशं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

जनमेजय उवाच। प्रादुर्भावे मुनिश्रेष्ठ माथुरे चरितं शुभम्। शृण्वन्नैवाधिगच्छामि तृप्तिं कृष्णस्य धीमतः ॥ १ ॥ द्वारकायां निवसतः कृतदारस्य षड्गुणम्। चरितं ब्रूहि कृष्णस्य सर्वं हि विदितं तव ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच। जनमेजय कृष्णस्य कृतदारस्य भारत। निबोध चरितं चित्रं तस्यैव सदृशं प्रभो।

यादवी पुरीको देखा ७२ इन्द्रके छोटे भाई गरुड़वाहन श्रीमान् भगवान् कृष्ण इस प्रकार बड़ाभारी कर्म करके द्वारकापुरीमें आगए ७३ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ६४

जनमेजयने कहा, कि-हे श्रेष्ठ मुनि! बुद्धिमान् श्रीकृष्णने मथुरामें उत्पन्न होकर जो शुभचरित्र किया था उसको सुनते सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ आपको श्रीकृष्णका सब चरित्र विदित है इस लिये आप श्रीकृष्णने द्वारकामें बसकर जो षड्गुण युक्त चरित्र किया हो उसका वर्णन करिये.षड्गुणोंका वर्णन शास्त्रमें इसप्रकार कहा है कि-"सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः। अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधुज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥-वायुपुराण"अर्थात् विभुको जानने वाले पुरुष सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि कालका ज्ञान, स्वतन्त्रता, सर्वदा शक्तिका लोप न होना और अनन्तशक्ति इन छः अंगों को व्यापक महेश्वरके गुण बतलाते हैं) ॥ २ ॥ वैशम्पायन जीने कहा, कि-हे भरतवंशी जनमेजय राजन्! स्त्रियोंको स्वीकार करनेवाले भगवान् विष्णुके उन्हींके समान विचित्र चरित्र को सुनिये महातपस्वी प्रतापी वासुदेवका जब विवाह होगया

गमिदारो महातेजा वासुदेवः प्रतापवान् । रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप ॥ ४ ॥ उपवासान्ततानं हि रुक्मिण्या-प्रतिपूजयन् । तर्पयिष्यन् स्वयं विप्रान् जगाम मधुसूदनः ॥५॥ कुमाराः प्रययुस्तत्र पुत्रा भ्रातर एव च । प्रेषिता वासुदेवेन नारदस्याभ्यनुज्ञया ॥६॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि जग्मुरेव च धीमतः । ऋद्ध्या परमया राजन् विष्णोरेवानुरूपया ।७ ततस्तत्र द्विजातीनां कामान् प्रादादधोक्षजः । अर्थिनां धर्मनित्यानां वन्दिनामिष्टवादिनाम् ॥ ८ ॥ कल्याणनामगोत्राणां महतां पुण्यकर्मणाम् । यौनैः श्रौतैश्च मौखैश्च शुद्धानां कुरुनन्दन ॥ ९ ॥ तर्पयित्वा द्विजान् कामैरिष्टैरिष्टः सतां गतिः । ज्ञातीन् सन्तर्पयामास यथार्हं भक्तवत्सलः ॥ १० ॥ उपवासावसानेऽथ भगवान् सवि-

हे राजन्! तब वह रुक्मिणी देवीको साथ लेकर रैवतक पर्वतको चले रुक्मिणीके व्रतसमाप्तिका सत्कार करनेके लिये भगवान् मधुसूदन अपने आप ही ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके लिये चले ३-४ नारदजीकी आज्ञासे श्रीकृष्णके भेजने पर वहाँसे पुत्र और भाई तथा कुमार यह सब चले ॥ ६ ॥ हे राजन्! उस समय बुद्धिमान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियें भी चलीं उनकी परम संपत्ति भी श्रीकृष्णके अनुकूल ही थी ॥७॥ हे कुरुनन्दन! उस समय श्रीकृष्णने याचना करनेवाले, सर्वदा धर्मका पालन करनेवाले, वन्दी, प्रियभाषण करनेवाले कल्याणमय नाम तथा गोत्रों वाले, बड़ा भारी पुण्य कर्म करनेवाले तथा योनि सम्बन्धोंके कारण, पढ़नेके सम्बन्धके कारण तथा यज्ञसंबन्धी कर्मके कारण पवित्र ब्राह्मणोंको इच्छानुसार पदार्थ दिये ॥ ८-९ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंको इच्छानुसार पदार्थोंसे पवित्र करके सज्जनोंकी अभिलषित गतिरूप भक्तवत्सल (भगवान) ने अपने जाति वालोंको भी उचित रीतिसे तृप्त किया १० उपवासके अन्तमें भगवान्

शेषतः । बहु मेने प्रियां भार्यां रुक्मिणीं भीष्मकात्मजाम् ॥११॥
वसतस्तस्य कृष्णस्य सदारस्यामितौजसः सहासीनस्य रुक्मि-
ण्या नारदोऽभ्यायगौ मुनिः ॥१२॥ आगतं चाप्रमेयात्मा मुनि-
मिन्द्रानुजस्तदा । शास्त्रदृष्टेन विधिना अर्चयामास केशवः ॥१३॥
सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतमः सताम् । पारिजाततरोः पुष्पं
ददौ कृष्णाय भारत ॥ १४ ॥ तद्वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्याः
प्रददौ हरिः । पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत्
प्रतिगृह्य तु तत्पुष्पं कामारण्यनिन्दिता । शिरस्यमलपत्राक्षी
ददौ कृष्णेंगितानुगा ॥१६॥ त्रैलोक्यरूपसर्वस्वं नारायणमनो-
हरा । शुशुभे देवपुष्पेण द्विगुणं भैष्मकी तदा१७॥ नारदस्तथो-

ने भीष्मककी पुत्री अपनी प्यारी भार्या रुक्मिणीका विशेष मान किया था ११ अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण इसप्रकार अपनी स्त्रियों के साथ वहां निवास करते थे, एक समय श्रीकृष्ण रुक्मिणीके साथ बैठे हुए थे, कि-इतनेमें ही वहाँ श्रीकृष्ण आगए ॥१२॥ अप्रमेय आत्मा वाले इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने (अपने यहाँ) आए हुए नारदमुनिकी शास्त्रोक्त रीतिसे पूजा की ॥ १३ ॥ हे भारत ! सज्जनोंके परमपूज्य नारदजीकी जब इस प्रकार श्रीकृष्णने पूजाकी तब नारदजीने श्रीकृष्णको कल्पवृक्षका एक पुष्प दिया ॥ १४ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ ! उस समय भोजराजकी पुत्री श्रीकृष्णके पास ही बैठी थी इस लिये श्रीकृष्णने यह वृक्ष-राजका पुष्प रुक्मिणीको देदिया ॥ १५ ॥ कृष्णके इशारेके अनुसार चलनेवाली कमलके समान नेत्रों वाली निन्दारहित कामदेवकी माताने वह पुष्प लेकर अपने शिरमें लगालिया १६ उस फूलमें त्रिलोकीका सारा रूप भर रहा था इस लिये नारा-यणको मनोहर लगने वाली राजा भीष्मककी पुत्री उस समय उस देवपुष्पके कारण दुगनी खिल उठी ॥ १७॥ उस समय ब्रह्माजी

वाच मुनिर्ब्रह्मसुतस्तदा । तवैवोपगिकं पुष्पमेकं देवि पतिव्रते१८
अलंकृतं पुष्पमेतत् संसर्गात्तव सर्वथा । अत्यर्हा च मता मे त्वमेतत्
पुष्पाद्ध धृतव्रते ॥ १६ ॥कल्याणगुणसम्पन्ने सततं भर्तृवत्सले ।
अम्लानमेतत् सततं पुष्पं भवति कामिनि ॥ २० ॥ सम्वत्सरपरं
कालं कालज्ञे गुणसम्मते । ईप्सितानपि गन्धांश्च ददाति वदतां
वरे ॥ २१ ॥ शीतोष्णे चेप्सिते देवि पुष्पमेतत् प्रयच्छति । स्रव-
त्यपि रसान् देवि मनसा काङ्क्षितान् वरान् ॥ २२ ॥ सेव्यमानं
च सौभाग्यं ददाति वरवर्णिनि । स्रवत्यपि तथा गन्धानीप्सि-
तान् प्रीतिवर्धनान् ॥ २३ ॥ यानि यानि च पुष्पाणि त्वं देव्य-
भिलषिष्यसि । कुसुमं वृक्षराजस्य तानि तानि प्रदास्यति ।२४।
एतदेव भगाधानं धर्मिष्ठे पुत्रदं तथा । मतिं च नाशुभे भक्तो धार्य-
माणं सदा शुभे ॥ २५ ॥ यद्यदिच्छसि वर्णं च तत्सर्वं धारयि-

के पुत्र नारदमुनिने उससे इस प्रकार कहा, कि-यह पुष्प बस
एक ही है और हे पतिव्रते देवि ! यह तुम्हारे ही योग्य है १८
यह पुष्प तुम्हारे संसर्गसे अलंकृत होगया, हे व्रतधारिणी ! तुम
ने इस पुष्पको धारण कर मेरा बड़ा सत्कार किया है ॥ १६ ॥
हे सर्वदा स्वामीको प्रिय लगने वाली ! कल्याण गुण सम्पन्न
कामिनी ! यह पुष्प कभी नहीं कुम्हलाता है२०हे कालको जानने
वाली ! हे गुणवती ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ स्त्री ! यह पुष्प साल
भर तक अभिलषित गन्धोंको भी देता रहता है २१ हे देवि !
यह इच्छित रसोंको बहाता है और मनोभिलषित वरोंको देता
है २२ और हे वरवर्णिनी ! सेवा करने पर यह पुष्प सौभाग्य
को देता है, और प्रीतिको बढ़ाने वाली चाही हुई सुगन्धियोंको
भी चलाता है २३ हे देवि ! तुमको जिन २ पुष्पोंकी इच्छा होगी
यह वृक्षराजका पुष्प तुमको वही २ पुष्प देगा २४ हे धर्मिष्ठे !
यह ऐश्वर्य देने वाला और पुत्र देने वाला पुष्प है और हे शुभे!

ष्यति। स्वल्पं वा यदि वा स्थूलं छन्दतस्ते भविष्यति ॥ २६ ॥ अनिष्टगन्धहरणं तत्समं गन्धवर्धनम् । प्रदीपकर्म रात्रौ च करोति कमलेक्षणे ॥ २७ ॥ सन्तानकस्रजोमालापुष्पवस्त्रादि चाच्युतम् । पुष्पमण्डपमुख्यानि चिन्तितेन प्रदास्यति ॥ २८ ॥ बुभुक्षा वा पिपासा वा ग्लानिर्वाप्यथवा जरा । देववद्धारयन्त्यास्ते स्वच्छन्देन भविष्यति ॥ २९ ॥ अनुगीतानि गीतानि दास्यत्यपि च चिन्तिते । सुवादित्रान् समधुरांस्तथैव तव संमतान् ॥ ३० ॥ पूर्णे सम्वत्सरे देवि पुष्पमेतत्तवान्तिकात् । निर्वर्त्स्यते तरुवरं समयेन प्रयास्यति ॥ ३१ ॥ कृतिरेषा हि भद्रन्ते पारिजातस्य सुप्रभे । निसर्गतः सर्गकृता सत्कारार्थे सुरद्विषाम् ॥ ३२ ॥ उमा

इस पुष्पको धारण करने पर कभी अशुभ बुद्धि नहीं होती है २५ तुम जिस वर्णको चाहोगी यह उन सब वर्णोंका होजावेगा और यह तुम्हारी इच्छानुसार छोटा वा मोटा होजाया करेगा २६ यह दुर्गन्धियोंको हरने वाला है और इसी प्रकार सुगन्धियोंको बढ़ाने वाला है और हे कमलनेत्रे ! यह पुष्प रात्रिमें दीपकका काम दिया करता है २७ और यह पुष्प चाहने पर सन्तान हार माला पुष्प वस्त्र आदि अच्युत वस्तु तथा पुष्प मण्डप आदि मुख्य २ वस्तुओंको भी देदेगा २८ जब तक तुम इसको धारण किये रहोगी, तब तक भूंख प्यास ग्लानि अथवा बुढ़ापा यह देवताओंकी समान तुम्हारी इच्छाके वशमें रहेंगे २९ और विचारने पर यह पुष्प तुम्हारे अनुकूल मधुर बाजे पर गीत और गाने भी सुनाया करेगा ३० हे देवि! जब सालभर पूरा होजायगा तब समय पूर्ण होने यह पुष्प तुम्हारे पाससे वृक्षोंमें श्रेष्ठ कल्पवृक्ष पर चला जायगा ३१ हे सुप्रभे! यह इस कल्पवृक्षका स्वभाव है तुम्हारा कल्याण हो ब्रह्माजीने देवताओंका सत्कार करनेके लिये ? इसका ऐसा स्वभाव बना दिया है ३२ हे सुप्रभे ! हिमा-

देववरस्येष्टा हिमालयसुता सती । धारयन्तीश्वरी नित्यं पुष्पाण्येतानि सुप्रभे ॥३३॥ अदितिश्च सपौलोमी महेन्द्रसुरतारणी । सावित्री देवमाता च श्रीश्च सर्वगुणोचिता ॥ ३४ ॥ देवपत्न्यस्तथैवान्या देवाश्च वसुदेवताः । सम्वत्सरपरः कालः सर्वेषां न तु संशयः ॥ ३५ ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये त्वं खलु वर्तसे । अद्येष्टां वासुदेवस्य वेद्मि त्वां भोजनन्दिनि ॥ ३६ ॥ सपत्न्यस्ते गुणोपेते सर्वाः सर्वेश्वरप्रिये । अवमानावसेकेन त्वया सिक्ताद्य भामिनि ॥३७॥ प्रकाशमद्य सौभाग्यमनिवार्यं यशश्च ते । मन्दारकुसुमं दत्तं यत्ते मधुनिघातिना ॥ ३८ ॥ अद्य सात्राजिती देवी ज्ञास्यते वरवर्णिनी । सौभाग्याढ्यं सदा वेत्ति यात्मानं सुभगं सती ॥ ३९ ॥ साम्बमाता च गान्धारी भार्याश्चान्या महात्मनः ।

लयकी पुत्री देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवकी प्यारी ईश्वरी उमादेवी इन पुष्पोंको सर्वदा धारण किये रहती हैं ३३ अदिति महेन्द्रके सुरतकी उत्पादिका इन्द्राणी देवमाता सावित्री और सब गुणोंके योग्य लक्ष्मी ३४ देवपत्नियें तथा दूसरे देवता और वसुदेवता इस पुष्पको अधिकसे अधिक साल भर तक ही धारण करसकती हैं ३५ हे भोजनन्दिनि ! तुम सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रहती हो यह तो ठीक है परन्तु मैं जान रहा हूँ कि आज तुम वसुदेवकी प्यारी होरही हो ॥ ३६ ॥ हे सर्वेश्वरप्रिये ! हे भामिनि ! हे गुणोपेते ! तुमने अपनी सब सौतों पर अपमान छिड़क दिया ॥ ३७ ॥ मधुसूदनने तुमको मन्दारका पुष्प दे दिया. इससे तुम्हारे सौभाग्यका आज प्रकाश होरहा है और तुम्हारा यश दुर्निवार्य होरहा है ॥ ३८ ॥ जो अपनेको सौभाग्यवती और सुभगा समझती है, वह वरवर्णिनी सत्राजित्की पुत्री आज (तुम्हारे सौभाग्यको) जानेंगी ३९ साम्बकी माता और गांधारी तथा इन महात्माकी और भी भार्याएँ आज अपने सौभाग्यको

सौभाग्यार्थोन्नताकाङ्क्षामद्य मोक्ष्यन्ति निःस्पृहाः ॥४०॥ सौभाग्यैकरथो जैत्रस्तव देव्यद्य निःसृतः। मनोरथरथानां यः सहस्रैरपि दुर्जयः ॥४१॥ अद्याहमवगच्छामि सर्वथा सर्वशोभने। आत्मा द्वितीयः कृष्णस्य भोजे त्वमिति भामिनि ॥ ४२ ॥ त्रैलोक्यरत्नसर्वस्वमददाद्यत्तवाच्युतः। जीवितातिशयस्तेन त्वया प्राप्तो हरिप्रिये ॥ ४३ ॥ नारदेनैवमुक्तं तु तथ्यं वाक्यं नराधिप। तत्रस्थाः शुश्रुवुः प्रेष्याः प्रेषिताः सत्यभामया ॥ ४४ ॥ देवीनां च तथाऽन्यासां पत्नीनां च विशाम्पते। दृष्ट्वा ताः स विशेषं च नारदेनाभ्युदाहृतम् ॥ ४५ ॥ तच्च श्रुत्वा मुनिखिलं प्रेष्याभिः स्त्रीस्वभावतः। प्रकाशीकृतमेवासीद्विष्णोरन्तःपुरे तदा ॥४६॥ कर्णाकर्णि ततो देव्यः कौलीनमिति संघशः। मन्त्रयांचक्रिरे हृष्टा

बढ़ानेकी आकांक्षाको त्याग देंगी और निस्पृह हो जावेंगी ४० हे देवि ! आज तुम्हारा सौभाग्यरूपी रथ निकल आया है इसको सैकड़ों मनोरथरूपी रथ भी कठिनतासे जीत सकते हैं ४१ हे भोजकन्ये ! हे भामिनि ! हे सब प्रकारसे सर्वशोभने ! आज मैं तुमको कृष्णकी दूसरी आत्मा समझता हूँ ४२ अच्युतने तुमको त्रिलोकीके रत्नोंका सर्वस्व ही दे दिया, इससे हे हरिप्रिये ! मैं समझता हूँ कि तुमने जीवनसे भी अधिक वस्तु पा ली ४३ हे नरेन्द्र ! नारदजीके कहे हुए इस सत्य वचनको सत्यभामाकी भेजी हुई तहाँ पर खड़ी हुई दूतियोंने सुना ॥४४॥ हे राजन् ! तहाँ पर भगवान्की और भी दूसरी देवी पत्नियोंकी दूतियोंको खड़े देख कर नारदने इस बातको और भी अधिक कहा था ४५ अपनी दासियोंके मुखसे इस सब बातको सुनकर विष्णुके अन्तःपुरमें इस बातका चकरचा फैल गया ॥४६॥ कृष्णकी पत्नियें प्रसन्न होकर रुक्मिणीके गुणके उदयकी और अपनी कुलीनता (अर्थात् हमारा कुल निन्दित है यह समझ कर ही श्रीकृष्णने

रुक्मिण्यातिशुणोदयम् ॥ ४७ ॥ अर्हेति पुत्रमातेति ज्येष्ठेति च समागताः । प्रायेण मवदन्ति स्म हृष्टा दामोदरस्त्रियः ॥ ४८ ॥ ममृषे न सपत्न्यास्तु तत्सौभाग्यगुणोदयम् । सत्यभामा प्रिया नित्यं विष्णोरतुलतेजसः ॥ ४९ ॥ रूपयौवनसम्पन्ना स्वसौभाग्येन गर्विता । अभिमानवती देवी श्रुत्वैवेर्ष्यावशं गता ॥५०॥ समुत्सृजन्ती वसनं सकुङ्कुमं शुचिस्मिता शुक्लतमैकमंशुकम् । जग्राह रोषाकुलितेन चेतसा वन्हेस्तदा श्रीरिव वर्धितेन्धना ५१ दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्धता ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव । क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्तं विवेश तारेव घनं सतोयम् ॥ ५२ ॥ बध्वा ललाटे हिमचन्द्रशुक्लं दुकूलपट्टं प्रियरोपचिन्हम् । पर्यन्तदेशं सर-

हमें पुष्प नहीं दिया होगा, इस बातकी) कानाफूँसी करने लगीं तहाँ पर आई हुई दामोदरकी अधिकतर स्त्रियें प्रसन्न होकर यह कहने लगीं, कि-वह बड़ी हैं, योग्य हैं और वह पुत्रकी माता भी हैं ॥४८। परन्तु अतुलतेजस्वी विष्णुकी प्यारी भार्या सत्यभामासे सौतकी यह गुणवृद्धि सहन न हुई ॥ ४९ ॥ रूप और यौवनसे सम्पन्न, अपने सौभाग्यसे गर्वित रहने वाली अभिमानवती देवी सत्यभामा इस बातको सुनते ही डाह करने लगी५० उस समय उस शुचिस्मताने अपने कुंकुम वाले वस्त्रको त्याग दिया और चित्तमें रोष भर जानेके कारण उसकी लक्ष्मी ईंधनसे बढे हुए अग्निकी समान होगई और उसने एक श्वेत वस्त्र धारण कर लिया । ५१ । ईर्ष्यासे उत्पन्न हुई अग्निसे वारम्बार जलती हुई वह क्षीण प्रभा वाली मालूम होती थी, वह क्रोधमें भरी हुई रमणी कोपभवनमें इस प्रकार जा पड़ी, जिस प्रकार तारा जलवाले मेघमें प्रवेश करता है ॥ ५२ ॥ उस ने प्रियतमके साथ रोष करनेका चिन्हस्वरूप पाले और चन्द्रमा की समान श्वेत वस्त्र अपने मस्तक पर बाँध लिया और अपने

सेन देवी विलिप्य सा लोहितचन्दनेन ॥५३॥ संस्मृत्य संस्मृत्य शिरः सरोषं प्रकम्पमाना समुपोपविष्टा । दीर्घोपधाने शयनेऽपनीय विभूषणान्येव निबद्धवेणी ॥ ५४ ॥अकारणार्थेन विकृष्यमाणा प्रेष्याजनस्याभिजनान्विंतापि । विचूर्णयामास कुशेशयं सा निःश्वस्य निःश्वस्य नखैर्नतभ्रूः ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

वैशम्पायन उवाच । उपविष्टं मुनिं ज्ञात्वा रुक्मिण्या सह केशवः । निश्चक्रामाप्रमेयात्मा व्यपदेशेन सर्ववित् ॥ १ ॥ जगाम त्वरितश्चैव सत्यभामागृहं महत् । रम्यरैवतकोद्देशैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २ ॥ अभिमानवतीमिष्टां प्राणैरपि गरीयसीम् । जानन् सात्राजितीं विष्णुर्विवेश शनकैरिव ॥ ३ ॥ रुषितामिव

ललाट पर रस वाला लाल चन्दन लगा लिया५३वह तहाँ बैठीर बारबार उस बातका स्मरण करके अपने मस्तकको कोपके साथ घुमाने लगी. उसने अपने पासके बड़े २ तकिये तथा गहनोंको दूर फैंक दिया और अपनी चोटीको बाँध लिया ॥ ५४ ॥ उस की दासियोंमेंसे उसकी जो प्रियदासियें थी, वह जब उसको (यह बातें) अकारण (है कह कर उसको) उठाने लगीं तब वह अपनी भौंहोंको नवा कर वार वर साँस ले अपने मुखकमल को नाखूनोंसे बकोटने लगी ॥ ५५ ॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ६५

वैशम्पायनजीने कहा,कि-रुक्मिणीके पास नारदजी बैठे ही हैं यह जानकर अप्रमेय आत्मा वाले,केशव सब बातको जानने वाले थे तब भी किसी बहानेसे तहाँसे उठे ॥ १ ॥ और रमणीय रैवतपर्वतपर विश्वकर्माके बनाए हुए सत्यभामाके बड़े भारी घरकी ओर शीघ्रतासे चले ॥ २ ॥ विष्णु सत्यभामाको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी समझते थे इस लिये उन्होंने धीरे २

तां देवीं स्नेहात् संकल्पयन्निव । भीतभीतः स शनकैर्विवेश मधु-सूदनः ॥४॥ सेवकं द्वारदेशे तु तिष्ठेत्युक्त्वा निवेश ह । नारद-स्योपचारार्थं प्रद्युम्नं विनियुज्य सः ॥ ५ ॥ स ददर्श प्रियां दूरात् क्रोधागारगतां तदा । प्रेष्यामिव स्थितां कोपान्निःश्वसंतीं मुहु-र्मुहुः ॥ ६ ॥ करजाग्रावलीढं तु पंकजं मुखपंकजे । संश्लेष-यित्वा निःश्वस्य विहसन्तीं पुनः पुनः ॥ ७ ॥ किञ्चिदाकुलि-ताग्रेण चरणेन वसुन्धराम् । कृत्वा पृष्ठेऽथ वदनं विहरन्तीं पुनः पुनः ॥ ८ ॥ करपद्मे पुनः सव्ये मुखपद्मं निवेश्य च । वनितां चारुसर्वाङ्गीं ध्यायन्तीं कमलेक्षणाम् ॥ ९ ॥ सरसं चन्दनं गृह्य प्रेष्याहस्तादनिन्दिताम् । मन्दादगित्वा हृदयं क्षिपन्तीं निर्दयं

वहाँ पर प्रवेश किया ॥ ३ ॥ उन्होंने स्नेहवश अपने मनमें संक-ल्प किया, कि वह रुष्ट हो रही होगी इस लिये मधुसूदन भय-भीतकी समान धीरे २ वहाँको चले ॥ ४ ॥ उन्होंने नारदजी की सेवा करनेके लिये प्रद्युम्नको नियुक्त करदिया और सेवक को दरवाजे पर खड़ा रहनेके लिये कहकर धीरे २ चले ॥५॥ उन्होंने दूरसे ही देखा तो उनकी प्रिया कोपभवनमें पड़ी हुई थी और वहाँ दासीकी समान पड़ी २ कोपसे वारम्वार आहें भर रही थी ॥ ६ ॥ और अपने मुखकमलमें उंगलियोंसे पकड़े हुए कमलको लगाकर वारम्वार सांस लेकर हँस रही थी (अर्थात् सपत्नी मुझसे भी अधिक सौभाग्यवती है यह विचार कर आश्चर्य कर रही थी) ॥ ७ ॥ और कुछ २ हिलते हुए चरणके अग्रभागसे पृथ्वीको कुरेदनेके कारण अपने मुखको टेढ़ा करके वह वरम्वार कुछ गुनगुना रही थी ॥ ८ ॥ और वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कमलोंकी समान नेत्रों वाली स्त्री अपने दाहिने हस्तकमलपर अपने मुखकमलको धरे हुए थी ॥ ९ ॥ वह अनिन्दिता दासीके हाथसे सरस चन्दनको ग्रहण कर अपने

पुनः ॥१०॥ पुनरुत्थाय शयनात् पतन्तीं च पुनः पुनः । तास्ताश्चेष्टाः प्रियायाश्च तथाऽन्या ददृशे हरिः ॥ ११ ॥ अवगुण्ठ्य यदा वक्त्रमुपधाने न्यवेशयत् । इदमन्तरमित्येवं तदा गत्वा जनार्दनः ॥ १२ ॥ प्रेष्याजनं स संज्ञाय अनाख्येयोऽस्मि संज्ञया । सशंकितप्रचारश्च त्वरितोऽन्वगमत् स ताम् ॥ १३ ॥ गृहीत्वा व्यजनं चैव स्थित्वा स परिपार्श्वतः । शनैरिवासृजद्वातं जहास शनकैरिव ॥ १४ ॥ स पारिजातपुष्पस्य संसर्गादनुवासितः । बभार भगवान् गन्धं दिव्यं मानुषदुर्लभम् ॥ १५ ॥ अत्यद्भुतं सुगन्धं च जिघ्रित्वा विस्मयान्विता । अपावृत्यमुखं सत्या किमेतदिति चाब्रवीत् ॥ १६ ॥ सोत्थिता पृष्ठतो देवमपश्यन्ती शुचिस्मिता । पर्यपृच्छदथो प्रेष्या गन्धस्य प्रभवं तदा ॥ १७ ॥

हृदयको प्रसन्न करने लगी फिर उसने उस चन्दनको निर्दयता से फेंक दिया (इस बातसे उसकी भ्रान्तता स्पष्ट प्रकट हो रही है) ॥ १० ॥ वह अपने पलंगसे उठकर बारम्बार गिर पड़ती थी इस प्रकार श्रीकृष्णने अपनी प्रियाकी इन चेष्टाओंको तथा और भी चेष्टाओंको देखा ॥ ११ ॥ जब वह अपने मुख को वस्त्रसे ढक कर तकिये पर डालने लगी इसी समय श्रीकृष्णने वहाँ पहुँच कर दासियोंसे इशारेसे कहा, कि-तुम मुझे मत बतलाना और डरते २ चलकर शीघ्रतासे उसके पास पहुँच गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ और पङ्खेको लेकर उसके पास खड़े हो धीरे धीरे हवा कर धीरे से हँसे ॥ १४ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पके संसर्गके कारण बसे हुए भगवान् मनुष्यों को दुर्लभ दिव्य गन्धको धारण कर रहे थे ॥१५॥ उस अद्भुत सुगन्धको सूँघ कर सत्यभामाने विस्मित होकर अपने मुखको उघाड़ दिया और कहने लगी, कि-यह क्या है ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण उसकी पीठकी ओर खड़े हुए थे इस लिये उस उठी हुई पवित्र हास्य वाली स्त्रीने

ताः पृष्टास्त्वनभाषन्त्यो जानुभ्यां धरणीं गताः । अधोमुख्यस्त-
तस्तस्थुः कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ १८ ॥ तदपूर्वमदृष्टैव गन्धं
मुञ्चति मेदिनी । कथमेकतरस्तस्या गन्धोऽयमिति तत् खलु १६
किं स्विदं स्यादिति च सा विवेक्षन्ती समन्ततः । ददर्श केशवं
देवी सहसा लोकभावनम् ॥२०॥ मुह्यन्ती च तदोवाच सहसा-
स्राविलेक्षणा । अवतिक्तेव रोषेण बभूव प्रणयान्विता ॥ २१ ॥
सा प्रस्फुरितचार्वोष्ठी निःश्वस्याधोमुखी तदा । मुहूर्तमसितापांगी
तस्थावन्यमुखी शुभा ॥ २२ ॥ निबध्य भ्रुकुटिं वामां सव्यग्वि-
क्षिप्य लोचने । निवेश्य वदनं हस्ते शोभसीत्यब्रवीद्धरिः ॥२३॥

श्रीकृष्णको नहीं देखा और अपनी दासियोंसे सुगन्धके आनेका कारण बूझा ॥ १७ ॥ दासियोंने बूझने पर भी कुछ नहीं कहा और पृथ्वी पर घुटने टेक नीचेको मुख करके हाथ जोड़ स्थित होगईं ॥ १८ ॥ इस अपूर्व बातको देख कर अर्थात् सुगन्ध आनेके किसी कारणको न देख कर उसने समझा, कि—पृथ्वीमें से ही गन्ध निकल रही है फिर उसने विचारा, कि—पृथिवीमेंसे ऐसी श्रेष्ठ सुगन्धि कैसे निकल रही है ॥ १६ ॥ और उसने यह क्या बात है इस बातको जाननेके लिये बारम्बार देखा इतनेमें ही उस देवीको लोकभावन श्रीकृष्ण सहसा दीख गए ॥ २० ॥ उस समय उसके नेत्रोंमें आँसू भर आए और उसने सहसा मोह में भर कर कुछ भाषण किया तथा वह प्रणयवती स्त्री रोषके कारण बड़ी तीखी बन गई ॥ २१ ॥ उस समय उसके सुन्दर ओठ फड़कने लगे और उसने नीचेको मुख करके सांस खींचा फिर उस गौर वर्णके अंगों वाली शुभ स्त्रीने मुहूर्त भरमें ही अपने मुखको दूसरी ओर कर लिया ॥ २२ ॥ उस समय श्रीकृष्णने अपने मुख पर हाथ रख कर बाईं भौंको मटका कर नेत्रोंसे चारों ओर देख कर उससे कहा, कि—तुम बड़ी अच्छी

स्त्वगाः सुस्राव नेत्राभ्यां वारि प्रणयकोपजम् । कुशेशयपलाशाभ्यामवश्यायजलं यथा ॥ २४ ॥ समुत्पत्य जलं तत्र पतितं वदनांबुजात् । प्रतिजग्राह पद्माक्षः कराभ्यामतिसत्वरः ॥२५॥ अथोरसि पतत्तोयं श्रीवत्सांकोम्बुजेक्षणः । प्रियानयनजं देवः परिमृज्येदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ स्रवत्यसितपत्राक्षि किमर्थं तव भामिनि । तोयं सुन्दरि नेत्राभ्यां पुष्कराभ्यामिवोदकम् ॥ २७ ॥ प्रभाते पूर्णचन्द्रस्य मध्यान्हे पंकजस्य च । बिभर्ति तव किं वक्त्रं वपुस्तव मनोहरे ॥ २८ ॥ किमर्थं कौंकुमं वासो महारजतमेव च । नानुगृह्णासि सुश्रोणि शुक्लं वासोनुगृह्यते ॥ २९ ॥ वासस्येते तवाभीष्टे महारजतकौंकुमे । देवाभिगमनादूर्ध्वं शुक्लं नेष्टं हि तत् स्त्रियाः ॥ ३० ॥ किं चानाभरणं गात्रं सुगात्रि तव कथ्यताम् ।

मालूम पड़ती हो ॥ २३ ॥ जैसे कनेरके और ढाकके पत्रसे ओस का जल गिरता है इसी प्रकार उसके नेत्रोंमेंसे प्रेममय कोपसे भरा हुआ जल बहने लगा ॥२४ ।उसके मुखकमलसे गिरते हुए जलको कमलकी समान नेत्र वाले श्रीकृष्णने शीघ्रतासे जाकर अपने हाथों पर लेलिया ॥ २५ ॥ श्रीवत्सके चिन्ह वाले कमलनेत्र श्रीकृष्णने प्रियाके नेत्रोंसे उत्पन्न हुए उस गिरते हुए जल को अपने वक्षःस्थलमें मल कर यह कहा, कि—२६ हे श्वेत कमल के समान भामिनी ! हे सुन्दरी ! जैसे कमलोंमेंसे जल झड़ता है इसी प्रकार तुम्हारे नेत्रोंमेंसे आँसू क्यों बह रहे हैं ॥ २७ ॥ हे मनोहरे ! तुम्हारा मुख प्रभातकालके पूर्ण चन्द्रमाकी और मध्यान्हकालके कमलकी शोभाको क्यों धारण कर रहा है २८ हे सुश्रोणि ! तुमने पीला और लाल वस्त्र और कुसुम्ही वस्त्र किस लिये त्याग दिया है और श्वेत वस्त्र क्यों धारण किया है ॥ २९ ॥ कुसुम्ही और लाल पीले वस्त्रोंको तुम सर्वदा अच्छा समझती थी स्त्रीके लिये श्वेत वस्त्र तो देवपूजाके समय ही

चित्रकस्थानमाक्रान्तं कस्मादश्रुतरङ्गिणि ॥ ३१ ॥ श्वेतेन तव पादेन वाससा प्रियदर्शने । ललाटं सेव्यते कस्माच्चन्दनेन सुगन्धिना ३२ सरसेनायतापाङ्गि कान्तेन हृदयप्रिये । ममोपमर्दकेनापि कारणेनाननस्य च । करोषि मम वास्तव्यर्थं मनो ग्लापयसि प्रिये ॥ ३३ ॥ प्रसृतश्चंदनरसः कपोलगामी तव । पत्रलेखासपत्नत्वं प्राप्तो नातिविराजते ॥ ३४ ॥ रत्नैश्चाभरणैर्मुक्ता तव ग्रीवा न शोभते । ग्रहनक्षत्ररहिता द्यौरिवाभ्यक्तशारदी ॥ ३५ ॥ पूर्णचन्द्रसपत्नेन स्मेरेणाबहुभाषिणा । किमु नो भाषसे मात्र मुखेनोत्पलगन्धिना ३६ अर्धाक्षणापि हि तावन्मां किमर्थं न निरीक्षसे । मुञ्चस्येव मनिःश्वासं तोयमञ्जनदुर्दिनम् ॥ ३७ ॥ अलमिन्दीवरश्यामे रुदितेन

उचित है ३० हे सुन्दर अंगोंवाली! यह तो बताओ तुम्हारे शरीर पर गहने क्यों नहीं हैं और इस समय हे धूसरवर्णकी कान्तिवाली! तुम्हारे चित्रकस्थान (कपोल आंसुओंसे) क्यों व्याप्त होरहे हैं ३१ हे प्रियदर्शने! तुम अपने पैरों पर श्वेत वस्त्र क्यों डालरही हो और हे आयतापाङ्गी! तुमने अपने मस्तक पर सुगन्धित सरस चन्दन क्यों लगा रखा है और हे प्रिये! तुम्हारे मुखकी कान्ति फीकी क्यों पड़ रही है इससे मेरा मन बड़ा उदास हो रहा है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और यह सरस चन्दन बह कर तुम्हारे कपोलोंसे भेग कर रहा है यह पत्रलेखा की सौत बनकर अच्छा नहीं मालूम पड़ता ॥ ३४ ॥ रत्न और गहनोंसे रहित तुम्हारी गर्दन ग्रह और नक्षत्रोंसे रहित वर्षाऋतुके आकाशकी समान शोभा नहीं देती ॥ ३५ ॥ कमलकीसी गन्ध देने वाले चन्द्रमासे सौतिया डाह रखनेवाले बड़ी २ बातें करने वाले अपने खिले हुए मुखसे आज तुम मुझसे क्यों नहीं बोलती ३६ तू श्वास खेंचकर सुरमे से मैले हुए आँसुओंको तो बहा रही है किन्तु मेरी ओर आधी आँखसे भी क्यों नहीं देखती, हे इन्दीवरश्यामे! हे मनस्विनी!

मनस्विनि । जलमञ्जनकृष्णार्थं मा मोक्षीराननद्विषम् ॥ ३८ ॥
त्वदीयोऽहं यदा देवि ख्यातो जगति किंकरः । नाज्ञापयसि किं
मां त्वं पुरेव वरवर्णिनि ॥ ३९ ॥ किमकार्षमहं देवि विप्रियं तव
भामिनि । येनातिमात्रमात्मानमायासयसि सुन्दरि ॥ ४० ॥ मनसा
कर्मणा वाचा न त्वामतिचराम्यहम् । सर्वथा सर्वचार्वङ्गि सत्य-
मेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४१ ॥ बहुमानोपमान्यासु स्त्रीषु सर्वासु
शोभने । स्नेहश्च बहुमानश्च त्वामृतेऽन्यासु नास्ति मे ॥ ४२ ॥
नैव त्वां मदनो जह्यान्मृतेऽपि मयि मामकः । इति मे निश्चितं विद्धि
चेतः सुरसुतोपमे ॥ ४३ ॥ क्षमाद्यश्च मेदिन्यां शब्दाद्याश्चाम्बरे ।

अब तुम रोना छोड़ दो और मुखसे द्वेष करने वाले अञ्जनके जलसे काले जलको न छोड़ो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे देवी ! जब मैं तुम्हारा जगत्में प्रसिद्ध किंकर विद्यमान हूँ तब भी हे वर-वर्णिनी ! तुम पहलेकी समान मुझे आज्ञा क्यों नहीं देतीं ३९ हे देवि ! हे भामिनि ! हे सुन्दरी ! मैंने तुम्हारा क्या अप्रिय कार्य किया है जिससे कि-तुम अपनी आत्माको बड़ा ही कष्ट देरही हो ॥ ४० ॥ मैं मन वाणी और कर्मसे भी तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करता हूँ हे सर्वसुन्दराङ्गी ! यह बात मैं सर्वदा सत्य ही कहता हूँ ॥ ४१ ॥ हे बड़ा भारी मान करने पर माननेमें आने वाली सब स्त्रियोंसे अधिक शोभने ! मैं तुमसे अधिक और किसीसे इतना स्नेह नहीं करता हूँ तथा और किसीका इतना मान भी नहीं करता हूँ ४२ हे देवताओं की पुत्रियोंकी समान भामिनी ! मेरे मनमें यह पक्का विचार है, कि-मेरे मरने पर भी मुझसे सम्बन्ध रखने वाला मदन (प्रेम) तुमको नहीं छोड़ेगा ४२ जैसे पृथिवीमें क्षमा आदि गुण और आकाशमें शब्द आदि निश्चल होकर रहते हैं हे कमलकोषके आभाकी समान आभावाली स्त्री ! इसी प्रकार मेरा प्रेम भी

गुणाः । ध्रुवं पंकजगर्भाभे त्वयि स्नेहस्तथा मम ॥ ४४ ॥ रुचि-
रग्नौ यथा दिव्या प्रभा चैव दिवाकरे । कान्तिश्च शाश्वती चन्द्रे
स्नेहस्त्वयि तथा मम ॥ ४५ ॥ एवंवादिनमात्मेष्टं सत्यभामा
जनार्दनम् । शनैरुवाच नेत्राभ्यां प्रमृज्य सुभगा जलम् ॥ ४६ ॥
मदीयस्त्वं प्रियो ह्यासीन्मम नित्यं मनः प्रभो । अद्य साधारणं
स्नेहं त्वयि तावद्गतास्म्यहम् ॥ ४७ ॥ नाज्ञासिषमहं पूर्वमनित्यं
कालपर्ययम् । अद्य लोकगतिं कृत्स्नामवगच्छामि न ध्रुवम् ॥४८॥
अमृताया द्वितीयोऽपि जन्मौहि मम सर्वथा । किमत्र बहुनोक्तेन
हृदयं वेद्मि तेऽच्युत ॥ ४९ ॥ वाङ्मात्रमेव पश्यामि माधुर्यं
संप्रयुज्यसे । मयि स्नेहश्च कृतकस्तथान्यत्र न कृत्रिमः ॥ ५० ॥
ऋजुस्वभावां भक्तां च सर्वथा पुरुषोत्तम । अवजानासि जानन्

तुममें अटल है ४४ जैसे अग्निमें कान्ति और सूर्यमें दिव्यप्रभा और चन्द्रमामें शाश्वती चाँदनी रहती है इसी प्रकार मैं तुमसे प्रेम करता हूँ ४५ इस प्रकार अपने अनुकूल बोलते हुए जनार्दन श्रीकृष्णसे सुभगा सत्यभामाने अपने नेत्रोंका जल पूंछ कर धीरे २ कहा, कि-४६ हे प्रभो ! मेरे मनमें तो सर्वदा यही बात समाई रहती थी, कि-आप मेरे प्रिय हैं परन्तु आज मैं साधारण स्नेहकी पात्र होगई हूँ ४७ मैं यह पहले नहीं जानती थी कि-यह सब अनित्य है और समय बदलता रहता है किन्तु आज मैं सारे संसारको अनित्य ही जानती हूँ ४८ मैं अभी नहीं मरी थी तब भी मेरे लिये तुम दूसरे होगए इसी प्रकार मैं भी दूसरी हो गई हूँ मैंने समझ लिया है, कि-सर्वथा अब मेरा (दूसरा ही) जन्म होगया है हे अच्युत ! बहुत बात कहनेसे अब क्या है मैं आपको खूब पहचानती हूँ ४९ मैं देखती हूँ, कि-अब तुम वाणी से ही मधुरता दिखाते हो तुम मुझसे बनावटी स्नेह रखते हो और दूसरियोंसे बनावटी स्नेह नहीं करते हो ५० हे पुरुषोत्तम !

मां कैतवीं वृत्तिमास्थितः ॥ ५१ ॥ एतावत् खलु पर्याप्तं दृष्टं द्रष्टव्यमव्ययम् । श्रुतं चाप्यथ यच्छ्राव्यं दृष्टः स्नेहफलोदयः ५२ यदि त्वहमनुग्राह्या मामनुज्ञातुमर्हसि । तपस्येव परं कृत्वा निश्चयं पुरुषोत्तम ॥५३॥ भर्तुश्छन्देन नारीणां तपो वा व्रतकानि च । निष्फलं खलु यद्भर्तुरच्छन्देन क्रियेत हि ॥ ५४ ॥ इतीदमुक्त्वा पुनरेव शोभना मुमोच तोयं नयनोद्भवं सती । अहाय पीतं हरिवाससः शुभा पटान्तमाधाय मुखे शुचिस्मिता ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

वैशम्पायन उवाच । नारायणः सत्यभामां पुनरेवैष भारत । प्रोवाच प्रणयात् क्रुद्धामभिमानवतीं सतीम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच । दहन्तीव ममाङ्गानि शोकः कमललोचने । किन्नु तत् कारणं

तुम कपटकी वृत्ति धारण कर मुझ सरलस्वभावाका सर्वदा अपनी भक्त जानकर भी तिरस्कार कर रहे हो ५१ बस सुनना और आपका कभी नष्ट न होने वाला देखना और दीखना हो चुका क्योंकि-आपके स्नेहके फलका उदय देख लिया ५२ हे पुरुषोत्तम ! यदि आप मुझे कृपा की पात्री समझते हैं तो मुझे बड़ाभारी तप करनेकी ही आज्ञा दीजिये ॥५३॥ क्यों कि-स्वामीकी इच्छाके विना स्त्रियोंका किया हुआ तप वा व्रत सब निष्फल हो जाता है, इस लिये स्त्रियोंको स्वामीकी इच्छानुसार ही तप आदि करना चाहिये ५४ वह पवित्र हास्यवाली शोभना स्त्री इस प्रकार कह कर श्रीकृष्णके वस्त्रके छोरसे अपने मुखको ढक कर अपने नेत्रोंसे फिर आँसू बहाने लगी ५५ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ६६

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! नारायणने प्रणयके कारण कोपमें भर कर अभिमान करती हुई सत्यभामा

येन त्वमेवमतिविह्वला ॥ २ ॥ शापितासि मम प्राणैराचक्ष्वा-
नत्ययो यदि । श्रोतव्यं यदि भक्तेन भर्त्रा सर्वाङ्गशोभने ॥ ३ ॥
ततः प्रोवाच भर्तारं सत्या सत्यव्रते स्थितम् । बाष्पगद्गदया
वाचा तथैवाधोमुखी स्थिता ॥ ४ ॥ त्वयैव स्थापितं पूर्वं सौ-
भाग्यं मम मानद । जगत्यमलपत्राक्ष यत् ख्यातं केशिनाशन ५
शिरो वहामि चेष्टत्वात्त्वाहं देव गर्विता । सर्वसीमन्तिनीमध्ये
स्पृहणीयास्मि सर्वथा ॥ ६ ॥ साहमद्यावहास्यास्मि सपत्नीनां
जनस्य च । इति प्रेष्यागिराख्यातं श्रुत्वा तथ्यं ततस्ततः ॥७॥
यत् पारिजातकुसुमं दत्तवान्नारदस्तव । तत्क्लिष्टजने दत्तं
त्वयाऽहं परिवर्जिता ॥ ८ ॥ रत्नातिशयदानेन यस्याप-

से फिर इस प्रकार कहा था ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-
हे कमललोचने ! जिस कारणसे तू बड़ी व्याकुल होरही है वह
क्या कारण है इस बातका शोक मुझे जलाए डालता है ॥ २ ॥
सर्वाङ्गशोभने ! यदि तू अपने भक्त अपने स्वामीको उस बातके
सुननेका पात्र समझती हो यदि तू मेरा विनाश नहीं चाहती हो
तो मैं तुझे अपने प्राणोंकी शपथ दिलाकर तुझसे बूझता हूँ ३
तदनन्तर उसी प्रकार नीचेको मुखकर खड़ी हुई सत्यभामाने
रुँधी हुई वाणीमें सत्यव्रतमें स्थित अपने पतिसे कहा, कि-४
हे मानको देनेवाले निर्मल पत्रकी समान नेत्रोंवाले केशिनाशन
श्रीकृष्ण!जगत्में जो मेरा सौभाग्य प्रसिद्ध है उसको आपने ही
स्थापित किया है ५ हे देव ! आपसे गर्वित होनेके कारण मैंने
अपने शिरको उठाकर इस बातको प्रसिद्ध कररखा है, कि-सब
सीमन्तिनियोंके बीचमें मैं स्पृहणीय हूँ॥६॥अब दासियोंके सत्य
वचनको सुनकर अब मैं सौतोंमें और मनुष्योंमें हास्यकी पात्र
होजाऊँगी ॥ ७ ॥ नारदजीने आपको जो कल्पवृक्षका पुष्प
दिया था उसको आपने अपने प्रियजनको देदिया और मुझको

भ्यधिकः किल । स्नेहश्च बहुमानश्च प्रकाशं गमितस्त्वया ॥ ९ ॥ तामस्तौषीत् समक्षन्ते प्रियां स किल नारदः । तमश्रौषीश्च हृष्टस्त्वं प्रियायाः संस्तवं किल ॥ १० ॥ स्तोतव्यो यदि तावत् स नारदेन तवाग्रतः । दुर्भगोऽयं जनस्तत्र किमर्थमनुशब्दितः ।११। प्रणयस्य रसं दत्त्वा पश्चात्तापः प्रभो यदि । अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व तपः कर्तुं प्रसीद मे ॥ १२ ॥ स्वप्नेनापि न दृष्टाऽहं अदृष्यां पुष्करेक्षण । यदन्यदेव निर्वृत्तगश्रौपं पश्यतस्तव ॥ १३ ॥ कामं कामोस्तु तस्यैव मुनेरतुलतेजसः । अत्र मन्युस्तु मे देव सांनिध्यं तव तत्र यत्॥१४॥ मानार्थं जीव्यते लोके सद्भिरित्युक्तवानसि ।

छोड दिया ॥ ८ ॥ आपने श्रेष्ठ रत्नका दान करके रुक्मिणीकी ओर स्नेह और अपना मान प्रकट करदिया है ॥९॥ नारदजी ने भी आपकी उस प्रियाकी आपके सामने ही स्तुति की थी और आपने भी प्रसन्न होकर उस अपनी प्रियाके स्तोत्रको सुना था ॥१०॥ वह आपके सामने नारदजीसे स्तुति पानेका पात्र है परन्तु नारदजीने मुझ दुर्भाग्यका नाम उसके पीछे क्यों लिखा था हे प्रभो!यदि आपको प्रणयका रस देकर पश्चात्ताप होता हो तो तब आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे तप करनेकी आज्ञा दीजिये १२ हे पुष्करेक्षण ! मैं तो स्वप्नमें भी ऐसा कभी नहीं विचारती थी, कि-आपका प्रेम कहीं और होगा परन्तु आपके देखते हुए ही जो वात मैंने सुनी थी उससे तो कुछ औरका और ही दीख रहा है १३ अतुलतेजस्वी मुनिकी जो रुक्मिणीकी स्तुति करनेकी इच्छा थी वह चाहे कुछ थी परन्तु हे देव ! मुझे तो इस वातका वड़ा क्रोध है, कि यह वात आपके सामने हुई (अर्थात् आपको वह स्तुति नहीं सुननी चाहिये थी) १४ आपने कहा है, कि-सज्जनोंको इस लोकमें मानके लिये जीवित रहना चाहिये अव इस प्रकारका वर्ताव होने पर मानरहित होकर मैं

तदेवं सति नेच्छामि जीवितुं मानवर्जिता ॥ १५ ॥ मयाभव-
यतो रक्षा भयमद्य ततो मम । सर्वतो रक्षते यो मां स मां नाद्या-
भिरक्षति ॥ १६ ॥ हा गतिं कां गमिष्यामि त्यक्ता देव त्वया
विभो । कुमुद्वतीगतां नूनं गतिं यास्याम्यसंगता ॥ १७ ॥ किम-
कार्षमहं मोहादीश्वराणां प्रियाप्रियम् । प्रिया भूत्वाऽप्रिया भूता
यद्यहं तव मानद ॥१८॥ वसन्तकुसुमैश्चित्रं सदा रैवतकं गिरिम् ।
प्रिया भूत्वाऽप्रिया भूता कथं द्रक्ष्याम्यहं पुनः ॥ १९ ॥ परपुष्ट-
स्वनोन्मिश्रं पुष्पगन्धवहं शुचिम् । कथं नामानिलं द्वेष्या सेवेयं
दुर्भगा सती ॥२०॥ जलक्रीडां तवाङ्कस्था देव कृत्वा महोदधौ ।

जीवित रहना नहीं चाहती ॥ १५ ॥ जिस ओरसे मेरी रक्षा होती थी उस ओरसे अब मेरे ऊपर भय पड़ने लगा है जो मेरी सब ओरसे रक्षा करते थे उन्होंने अब मेरी रक्षा करना छोड़ दिया है ॥ १६ ॥ हे देव ! हे विभो ! आपके त्यागने पर न जाने मेरी अब क्या गति होगी आपके विना मेरी गति कुमुद्वतीसी ही होगी (अर्थात् जैसे कुमुदनी चन्द्रमाकी किरणोंके पड़नेसे जैसे खिल उठती है और किरणोंका स्पर्श न होने पर जैसे वन्द होजाती है इस प्रकार मैं भी मुरझा जाऊँगी अथवा अजकी भार्या कुमुदवतीकी समान ही मेरी गति होगी अर्थात् मैं अपने स्वामीके सामने ही मरजाऊँगी) ॥ १७ ॥ मैंने मोहवश ऐश्वर्यशाली देवताओंका क्या प्रिय और अप्रिय किया था जिस से कि—हे मानद ! मैं आपकी प्रिया होकर भी अब अप्रिया हो गई हूँ ॥ १८ ॥ प्रिय होकर अप्रिय होनेके बाद मैं वसन्तऋतु के कुसुमोंसे विचित्र रैवतगिरिको फिर किस प्रकार देख सकूंगी ॥ १९ ॥ मैं दुर्भगा आपकी द्वेष्या होकर कोकिलाओंके स्वरसे मिले हुए पुष्पोंकी गन्धको वढ़ाने वाले पवित्र वायुका सेवन कैसे कर सकूँगी ॥ २० ॥ हे देव ! मैंने आपकी गोदीमें

कथं दौर्भाग्यमापन्ना पश्येयमपि सागरम् ॥ २१ ॥ सात्राजिति प्रिया नान्या त्वत्तो मेऽस्तीति विद्धि माम्। यदाऽवोचः क्व तद्यातमथवा कः स्मरिष्यति ॥ २२ ॥ यदद्राक्षीद्धि मां श्वश्रूर्बहुमानेन नन्दिनी। अवज्ञातां त्वया राज्ञी नूनं दौर्भाग्यकर्शिताम् २३ किं नु गूढेन मे प्रेम्णा सुस्निग्धेनापि मानद। यत् समानां जनैर्देवो मां न पश्यति नित्यदा ॥ २४ ॥ नाहं त्वां कितवं धूर्तमज्ञासिषमरिन्दम। अद्य ज्ञातोसि तत्पक्षचञ्चलो जनवंचकः२५ स्वरवर्णेङ्गिताकारान्निगूढो देव यत्नतः। चौर ज्ञातोसि तत्पक्ष-

समुद्रमें जलक्रीड़ा की है अब दुर्भागिनी होनेके कारण मैं उस समुद्रको भी कैसे देखूँगी ॥ २१ ॥ आपने मुझसे कहा, था, कि–हे सात्राजिति ! तुझसे अधिक मुझे और कोई प्रिय नहीं है तू मुझे ऐसा समझने वाला जान वह तुम्हारा वचन अब कहाँ गया ? अथवा (मेरे मरने पर) मुझे स्मरण ही कौन करेगा २२ मेरी नन्दिनी सासने पहले मुझे बड़े आदरकी दृष्टिसे देखा था अब वह रानी आपसे अपमान पानेके कारण मुझे दुर्भाग्यवश दुबली हुई देखेंगी ॥ २३ ॥ हे मानद ! गुप्त रीतिसे मेरे स्निग्ध प्रेम करनेसे भी क्या लाभ है?क्योंकि आप मुझे सर्वदा सबकी समान भी नहीं देखते ॥ २४ ॥ हे अरिंदमन ! मैं आपको नहीं जानती थी, कि–आप कपटी और धूर्त हैं आज आपने उसका पक्ष लेकर अपनी चञ्चलता दिखलाई इस लिये मैंने समझा कि–आप मनुष्योंको ठगा करते हैं ॥ २५ ॥ हे देव ! आप स्वर वर्ण चेष्टा और आकारसे गुप्त रहते थे परन्तु हे चोर ! मैंने जान लिया, कि–आप उसका पक्ष लेनेवाले वाणी मात्रके ही मधुर और शठ हैं (उपरोक्त दोनों श्लोकोंका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है, कि–हे अरिंदमन ! अर्थात् संसार रूपी शत्रुके नाशक ! इससे पहले मैंने आपको धूर्त इत्यादिरूप आपके

वाङ्मात्रमधुरः शठः ॥ २६ ॥ एवमीर्ष्यावशं याप्तां देवीं सात्राजितीं हरिः । अभिमानवतीं देवः सान्त्वपूर्वमथाब्रवीत् ॥२७॥ मैवं पद्मपलाशाक्षि प्राणेश्वरि वद प्रिये । किमत्र बहुनोक्तेन त्व-

सार्वात्म्यको "ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मेमे कि तवा उत" इत्यादि आगमसे भी नहीं जाना था परन्तु आज मैंने जान लिया, कि-आप जन्मादिहीनत्व पक्षमें चञ्चल हैं मेरी सपत्नी मायाके पक्षमें ही आप चञ्चल हैं अर्थात् मायाविशिष्ट चिद्रूप आपका मायांशसे ही चाञ्चल्य और वञ्चकत्व है चिदंशमें आप निर्विकार हैं, छब्बीसवें श्लोकका तात्पर्य यह है, कि मुझ वाणी और मनके अगोचरको भी तूने किसप्रकार जान लिया तो इसका उत्तर यह है, कि-हे देव ! आप स्वर वर्ण इङ्गित और आकार आदि लिङ्गोंसे अतिगूढ़ रहते थे तो भी मैंने आप शठ और उदासीन हैं यह बात जान ली है । भाव यह है, कि वागादिकी उद्बोधकतासे मैं आपको संधान विशिष्टरूपसे प्रत्यगात्मारूपमें नित्य जानती थी परन्तु आप साक्षीकी समान असंग हैं यह बात मैंने अब ही जानी है इस प्रकार चोरकी समान प्रच्छन्न होनेसे यहाँ पर चोर सम्बोधन दिया है और मायाके पक्षमें ब्रह्मासे लेकर लौकिक विषयों तकके ऐश्वर्यमें आप रमण कररहे हैं इस बातका आप वाणी मात्रसे ही आप मधुर भाषण करते हैं वास्तवमें अकर्त्ता होनेसे आपमें माधुरी है ही नहीं आप अभोक्ता होनेसे शठ अर्थात् उदासीन हैं । विश्वकोशमें लिखा है कि-शठ शब्द मध्यस्थ पुरुष धूर्त और धतूरेका भी वाचक है "शठो मध्यस्थपुरुषे धूर्तधत्तूरयोरपि") ॥ २६ ॥ इस प्रकार ईर्षाके वशमें हुई अभिमानवती देवी सत्यभामासे श्रीकृष्णने समझाते हुए यह बात कही, कि-॥ २७ ॥ हे प्राणेश्वरी प्रिये ! तू ऐसा मत कह हे कमलके पत्तेकी समान नेत्रवाली ! अब बहुत

दीयमत्रगच्छ माम् ॥ २८ ॥ तत्पारिजातकुसुमं तस्या देवि ममाग्रतः । नारदो मत्प्रियं कुर्वन् मुनिरक्लिष्टकर्मकृत् ॥२९॥ दाक्षिण्यादनुरोधाच्च दत्तवान् नात्र संशयः । प्रसीदैकापराधं मे मर्षयस्व शुचिस्मिते ॥ ३० ॥ पारिजातकपुष्पाणि यदीच्छस्यतिकोपने । तदादातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३१ ॥ स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम् । गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत् कालं त्वमिच्छसि ॥ ३२ ॥ एवमुक्ता तु हरिणा प्रोवाच हरिवल्लभा । यद्येवं सद्रुमः शक्यस्त्विहानयितुमच्युत ३३ मन्युरेष प्रसृष्टो हि भवेद्बहुगुणं मम । सीमन्तिनीनां सर्वासामधिका स्यामधोक्षज ॥ ३४ ॥ तथास्तु प्रथमः कल्प इति तां मधुसूदनः । प्रोवाचाप्रतिमो देवो जगतः प्रभवाप्ययः ॥ ३५ ॥

बातोंसे क्या लाभ है तू मुझे अपना ही जान ॥२८॥ हे देवि ! मेरे और उसके सामने सरलतासे कर्म करने वाले नारदमुनिने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे वह कल्पवृक्षका पुष्प (दिया था) २९ मैंने चतुरतासे और अनुरोधवश उसको वह पुष्प देदिया इसमें कोई सन्देह नहीं परन्तु हे शुचिस्मिते ! तू मेरे एक अपराधको तो क्षमा करदे और अब प्रसन्न होजा ॥ ३० ॥ हे बड़ा भारी कोप करने वाली ! यदि तू कल्पवृक्षके पुष्पोंको चाहती है तो हे सुश्रोणि ! मैं सत्य कहता हूँ कि–मैं तुझे लाकर दे दूँगा ॥३१॥ तू जब तक चाहेगी तब तकके लिये ही मैं वृक्षराज कल्पवृक्षको स्वर्गसे लाकर तेरे घरमें स्थापित करदूँगा ३२ श्रीकृष्णके इस प्रकार कहने पर विष्णुकी प्रियाने कहा, कि हे अच्युत! यदि वह वृक्ष यहाँ पर आसकता है तो मैं इस क्रोधको त्यागती हूँ और मेरा बड़ा उपकार होगा, और हे अधोक्षज ! मैं सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हो जाऊँगी।३३।३४। जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके स्थान अद्वितीय देवता मधुसूदनने इसको ढाढ़स देनेका यह सहज उपाय

तथेत्युक्तेति कृष्णेन तुतोष समितिंजय । सत्यभामा सतामिष्टा कंसनाशनवल्लभा ॥ ३६ ॥ ततः स्नातो जगन्नाथः सर्वेशः सर्वभावनः । चकारावश्यकं सर्वं सर्वकामप्रदः सताम् ॥ ३७ ॥ दध्यौ च नारदं देवः स्नातो देवमुनिर्नृप । अभ्याजगाम स्नानांते मुनिश्रेष्ठो महोदधौ ॥३८॥ तमागतं नरपते सतां गतिरधोक्षजः । सत्यया सह धर्मात्मा यथाविधिरपूजयत् ॥ ३९ ॥ पादौ प्रक्षालयांचक्रे मुनेः सात्राजिती स्वयम् । जलं देवः स्वयं कृष्णो भृङ्गारेणददौ तदा ॥ ४० ॥ अथोपकल्पयामास सुखासीनाय केशवः । परमान्नं स मुनये प्रयतात्मा जगद्गुरुः॥४१॥ तल्लोककर्त्रा सत्कृत्य दत्तं मुनिरुदारधीः । बुभुजे वदतां श्रेष्ठः श्रद्धया परया युतः ॥४२॥ उपस्पृश्य ततस्तृप्तः प्रददौ चाशिषः प्रभोः ।

है यह समझकर उन्होंने "तथास्तु" कह दिया ३५ हे समितिञ्जय ! श्रीकृष्णके "तथास्तु" कहने पर सज्जनोंकी इष्ट कंसके नाशक श्रीकृष्णकी प्यारी सत्यभामा सन्तुष्ट होगई ॥ ३६ ॥ तदनन्तर सज्जनोंके सब मनोरथोंको पूर्ण करने वाले सर्वपूजित सबके स्वामी जगन्नाथने स्नान करके सब आवश्यक कर्म किये ३७ और हे राजन्! स्नान करनेके अनन्तर नारदजीका ध्यान किया तब स्नान करनेके अनन्तर मुनियोंमें श्रेष्ठ देवर्षि नारदजी समुद्र के पास आगए ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! सज्जनोंकी गति धर्मात्मा श्रीकृष्णने उन आए हुए मुनिका सत्यभामाको साथमें लेकर शास्त्रानुसार सत्कार किया ॥ ३९ ॥ उस समय सत्यभामाने मुनिके चरणोंको स्वयं ही धुलाया और श्रीकृष्णने अपने आप ही सुवर्णकी झारीसे उन पर जल दिया॥ ४० ॥ तदनन्तर अपने आत्माको वशमें रखने वाले जगद्गुरु केशवने सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिके लिये श्रेष्ठ भोजन तयार कराया ॥ ४१ ॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाबुद्धि नारदमुनिने लोकको रचने वाले श्रीकृष्णके सत्कार-

ताश्च गीतेन मनसा प्रतिजग्राह केशवः ॥४३॥ ततः सात्राजितीं देवीं प्रणतां नारदोऽब्रवीत् । प्रसार्य दक्षिणं हस्तं सजलं जलजेक्षणाम् ॥ ४४ ॥ यथेदानीं तथैव त्वं भव देवि पतिव्रता । सविशेषं च सुभगा भव मत्तपसो बलात् ॥४५॥ इत्युक्ता मुनिमुख्येन सत्यभामा हरिप्रिया । उत्तस्थौ महता युक्ता हर्षेण तु नराधिप ॥४६॥ स कृष्णोऽप्यभ्यनुज्ञां तु लब्ध्वा मुनिवरात्तदा । बुभुजे विघसं धीमानप्रमेयपराक्रमः ।४७॥ ततस्त्वावश्यकं कृत्वा सत्यभामापि भारत । अनुज्ञया तदा भर्तुर्विवेशान्तर्गृहं मुदा ४८ ततो विनिर्गतो देवी कृष्णस्यैवाभ्यनुज्ञया । स्थिता पार्श्वे च कृष्णस्य नमस्कृत्वा महात्मने । ततो मुहूर्तमासित्वा नारदः कृष्ण-

---

पूर्वक दिये हुए अन्नका परमश्रद्धासे भोजन किया ॥ ४२ ॥ और फिर आचमन करनेके बाद तृप्त हो प्रभु श्रीकृष्णको आशीर्वाद दिये श्रीकृष्णने उन आशीर्वादोंको प्रसन्न मनसे ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर कमलके समान नेत्रोंवाली प्रणाम करती हुई देवी सत्यभामासे नारदजीने अपना दाहिना हाथ उठाकर कहा, कि—॥ ४४ ॥ हे देवी ! तू इस समय जैसी पतिव्रता है मेरे तपके बलसे तू इससे भी अधिक सौभाग्यवती और पतिव्रता हो ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! मुनियोंमें मुख्य नारदजीके इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्णकी प्यारी सत्यभामा बड़े भारी हर्षमें भरकर उठ खड़ी हुई ॥ ४६ ॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदजीसे आज्ञा लेकर अप्रमेय पराक्रमी बुद्धिमान् श्रीकृष्णने विघसका अर्थात् देवता और ब्राह्मणसे शेष अन्नका भोजन किया ॥ ४७ ॥ हे भारत ! तदनन्तर आवश्यक कार्य करनेके उपरान्त स्वामीकी आज्ञा पाने पर सत्यभामा भी प्रसन्न होकर रनवासमें चली गई ॥ ४८ ॥ तदनन्तर फिर श्रीकृष्णकी आज्ञा होने पर वह देवी तहाँसे निकल कर महात्मा श्रीकृष्णको प्रणाम कर

मब्रवीत् । आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शक्रलोकमधोक्षज ॥ ५० ॥ तत्राद्यं देवमीशानं नमस्कृत्य महेश्वरम् । गायन्ति देवगन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५१ ॥ मासि मास्युचितं ह्येतन्महेन्द्रसदने प्रभो । पूजार्थं देवदेवस्य गान्धर्वं नृत्यमेव च ॥ ५२ ॥ अन्तर्हितो देवदेवः सोमः स प्रवरो विभुः । पश्यत्सनपर्षत्कृत्येन कृतं भक्त्याद्रिघातिना ॥ ५३ ॥ निमन्त्रितोहं पूर्वेद्युः पुष्पं दत्तं महाद्युते । पारिजातस्य भद्रन्ते तरुराज्ञो महात्मनः ॥५४॥ यदेतदाहृतं स्वर्गात्त्वदर्थं तु मया विभो । देवोपभोग्यमेतद्धि तरुराजसमुद्भवम् ॥ ५५ ॥ इष्टः स वृक्षः सततं शच्याः पुष्करलोचन । सौभाग्यमावहत्येव पूज्यमानोऽपि नित्यशः ॥ ५६ ॥ पुण्यं कर्तुं तदा सृष्टः पारिजातो महाद्रुमः । अदित्या धर्मनित्येन कश्यपेन

श्रीकृष्णके पासमें खड़ी होगई ॥ ४९ ॥ तदनन्तर नारदजीने मुहूर्त भर ठहर कर श्रीकृष्णसे कहा, कि हे अधोक्षज ! मैं आपसे बूझता हूँ, कि क्या मैं अब इन्द्रलोकको चला जाऊँ ५० तहाँ पर आदिदेव ईशान महेश्वरको प्रणाम करके देवता, गन्धर्व तथा अप्सराएँ गान गाया करती हैं ॥ ५१ ॥ हे प्रभो ! इन्द्रके भवनमें प्रतिमास देवदेव शंकरकी पूजा करनेके लिये इसी प्रकार प्रतिमास गाना और नाच हुआ करता है ॥ ५२ ॥ पर्वतविनाशक देवताओंमें मुख्य इन्द्रको उस समय अन्तर्धान रहने वाले महादेव, उमा और प्रमथ नामक गणोंके दर्शन होते हैं ॥ ५३ ॥ हे महाकान्तिवान् ! उन्होंने मुझे अगले दिन निमन्त्रित कर वृक्षराज महात्मा पारिजातका पुष्प दिया था ॥ ५४ ॥ हे विभो ! मैं उस पुष्पको स्वर्गसे आपके लिये ले आया था, यह वृक्षराजका पुष्प देवताओंके भोगने योग्य है ॥ ५५ ॥ हे कमलनेत्र ! इन्द्राणी उस वृक्षको सर्वदा चाहा करती हैं और वह वृक्ष पूजा करने पर सर्वदा सौभाग्य बढ़ाता रहता है ॥ ५६ ॥ धर्मनित्य महात्मा

महात्मना ॥५७॥ पुराऽदित्या महातेजास्तोषितः किल कश्यपः । वरेण च्छन्दयामास मारीचस्तपसो निधिः ॥ ५८ ॥ सोऽब्रवीच सुभगा येन भवेयं मुनिसत्तम । स्वलंकृता कामतश्च सर्वैरेव विभूषणैः ॥ ५९ ॥ ईप्सितं गीतनृत्यं च भवेन्मम तपोधन । कुमारी नित्यदा चैव भवेयं तपसो निधे ॥ ६० ॥ विरजा शोकरहिता भवेयमिति नित्यदा । पतिभक्तिमती चैव धर्मशीला तथैव च ६१ पारिजातं ततोऽस्राक्षीददित्याः प्रियकाम्यया । सर्वकामप्रदैः पुष्पैरावृतं नित्यगन्धकैः ॥ ६२ ॥ त्रिशाखं सर्वदा दृश्यं सर्वभूतमनोहरम् । सर्वपुष्पाणि दृश्यन्ते तस्मिन्नेव महाद्रुमे ॥ ६३ ॥ ईदृशान्यपि पुष्पाणि बिभर्त्येकापि रूपिणी । बहुरूपाणि चाप्यन्या पद्मानि च ततोपरा ॥ ६४ ॥मन्दारमदपि वृक्षाच्च सारमुद्

कश्यप और अदितिने पुण्यक व्रतके समय इस पारिजात नामक महावृक्षकी रचना की थी॥ ५७ ॥ एक समय तपके निधि मरीचिपुत्र महातेजस्वी कश्यपने अदितिके तपसे प्रसन्न होकर उसको वर देना चाहा ५८ तब उस सुभगाने कहा, कि-हे मुनिसत्तम ! मैं जिससे सब विभूषण और कामनाओंसे अलंकृत रहूँ ५९ और हे तपोधन ! जिससे मुझे अभीष्ट गाना और नाचना मिल सकें, और हे तपोधन ! जिससे मैं सर्वदा कुमारी रहूँ ६० (और जिससे मैं) सर्वदा रजोगुणरहित और शोकरहित रहूँ और सर्वदा धर्मशील और पतिमें भक्ति वाली रहूँ (उस वर या पदार्थ को मुझे दीजिये) ६१ उस समय कश्यपजीने अदितिका प्रिय करनेकी इच्छासे सर्वदा सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले और सर्वदा गन्ध देने वाले पुष्पोंसे व्याप्त पारिजात नामक वृक्षकी कल्पनाकी ६२ उसकी तीन शाखायें हैं, वह सब प्राणियोंके मन को हरता रहता है और उस महावृक्षमें सब प्रकारके पुष्प दिखाई देते हैं ६३ वह एक रूपिणी (अदिति) तथा और (देवियें) भी

धृतम् कश्यपः । तस्मादेष तरुश्रेष्ठः सर्वेषां श्रेष्ठतां गतः ॥ ६५ ॥ ततस्तत्र निबध्याथ कश्यपं प्रददौ शुभे । अदितिर्मम पुण्यार्थं सौभाग्यार्थं तथैव च ॥ ६६ ॥ अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च तथा मम । पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान् ६७ निष्क्रयेण मया मुक्तः कश्यपस्तु तपोधनः । इन्द्रो दत्तस्तथेन्द्राण्या सौभाग्यार्थं ततो मम ॥ ६८ ॥ सोमश्चाप्यथ रोहिण्या ऋद्ध्या च धनदस्तथा । एवं सौभाग्यदो वृक्षः पारिजातो न संशयः ६९ पारिजातो विष्णुपद्याः पारिजातेति शब्दितः । मन्दारपुष्पैर्युक्तो मन्दारस्तेन कथ्यते ॥ ७० ॥ कोऽयमं दारुरित्याहुरजानन्तो यतो

ऐसे पुष्पोंको तथा दूसरे प्रकारके भी पुष्पोंको धारण करती हैं ६४ कश्यपने मन्दारवृक्षका भी सार लेकर इस वृक्षको बनाया है, इस लिये यह श्रेष्ठ वृक्ष सबोंमें श्रेष्ठ होगया है ६५ तदनन्तर अदितिने कश्यपको साथ बाँध कर सौभाग्यके लिये पुण्यक व्रत में वह (वृक्ष) मुझे दे दिया ॥ ६६ ॥ अदितिने आत्मवान् कश्यपजीके कण्ठमें पुष्पोंका हार डाल पुण्यके लिये उनको मेरे अर्पण कर दिया ॥ ६७ ॥ तदनन्तर तपोधन कश्यपको मैंने मूल्य लेकर छोड़ दिया. तदनन्तर इन्द्राणीने भी अपने सौभाग्यके लिये इसी प्रकार मुझे इन्द्रका दान दिया था ६८ इसी प्रकार रोहिणीने चन्द्रमाका और ऋद्धिने कुबेरका दान दिया था इस प्रकार यह पारिजातवृक्ष सौभाग्य देने वाला है, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ६९ ॥ यह वृक्ष विष्णुपदी (गंगा) के परि (ऊपर) जात (उत्पन्न) हुआ था, इस लिये यह पारिजात कहलाता है और मन्दारके पुष्पोंसे युक्त होनेके कारण मन्दार कहलाता (मानने योग्य और वियोग होने पर दारण करने वाले पुष्प मन्दार कहलाते हैं)७० इस वृक्षको न जाननेके कारण मनुष्य कहते थे कि यह कौन दारु अर्थात् वृक्ष है इस

जनाः । कोविदार इति ख्यातस्ततः स सुमहानरुः॥७१॥ मन्दारः कोविदारश्च पारिजातश्च नामभिः । स वृक्षो ज्ञायते दिव्यो यस्यैतत् कुसुमोत्तमम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो जिगमिषुं तत्र नारदं मुनिसत्तमम् । प्रोवाच भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥ १ ॥ महर्षे धर्मतत्त्वज्ञ स्वर्गं गत्वा त्वयाऽनघ । दृष्ट्वा सदस्यान् देवस्य त्रिपुरघ्नस्य धीमतः ॥ २ ॥ अनाज्ञया मद्वचनाद्विज्ञाप्यः पाकशासनः । संभावयित्वा भ्रातृत्वं पौराणं वेत्सि यन्मुने ॥ ३ ॥ यमस्राक्षीन्मुनिश्रेष्ठो भगवान् कश्यपस्तरुम् । पारिजातं पुराऽदित्याः सुखार्थं धर्मसत्तमः ॥ ४ ॥ स पुण्यमतिसौभाग्यं ददाति तरुसत्तमः । तत्र दत्तं पुरादानं व्रतेन तरुमुत्तमम् ॥५॥ देवीभिर्धर्मनित्याभि-

---

लिये यह महावृक्ष कोविदार नामसे प्रसिद्ध है७१जिसतरुका यह उत्तम पुष्प है वह तरु मन्दार कोविदार और पारिजात नामसे पहिचाना जाता है ॥७२॥ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय अप्रमेय पराक्रमी भगवान् विष्णुने जानेकी इच्छा करने वाले मुनियोंमें श्रेष्ठ नारद जीसे कहा, कि-॥ १ ॥ हे अनघ धर्मतत्त्वज्ञ महर्षे ! आप स्वर्गमें जाकर बुद्धिमान् शिवजीके सदस्योंको देखनेके अनन्तर ॥ २ ॥ जिसप्रकार मेरी आज्ञा प्रकट न हो उस प्रकार इन्द्रको समझा बुझाकर और हे मुनि ! आप जिस प्राचीन भ्रातृभावको जानते हैं उसको समझाकर इन्द्रसे कहना ॥ ३ ॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ धर्मसत्तम भगवान् कश्यपने जिस पारिजाततरुको अदितिको सुख देनेके लिये पहले रचा था ॥ ४ ॥ वह तरु दान करने पर पुण्य और सौभाग्यको देता है, हे देवताओंमें

धर्मार्थमग्रोत्तम । दत्तं श्रुत्वाऽभिकाङ्क्षन्ति दातुं पत्न्यो मम प्रभो ॥६
पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च । आनाय्यन्द्र द्वारवतीं
पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ७ ॥ दत्तो दाने पुनः स्वर्गं नकं त्वं नेतु-
मर्हसि । स वाच्य एवं भगवान बलभिद्गवंस्त्वया ॥ ८ ॥ तथा
तथा प्रयत्नश्च कार्योऽस्मिन् मुनिसत्तम । यथा तरुवरं दद्यात्
पारिजातं सुरेश्वरः ॥ ९ ॥ तत्र दूतगुणं तावत् पश्यामस्ते तपो-
धन । सम्भाव्या सर्वकृत्यानां सम्पद्धि त्वयि मे मता ॥ १० ॥
एवं नारायणेनोक्तो नारदो भगवानृषिः । प्रहस्योवाच केशि-
घ्नमिदं वाक्यं तपोधनः ॥ ११ ॥ बाढमेवं प्रवक्ष्यामि यदुमुख्य
सुरेश्वर । न तु दास्यति देवेन्द्रः पारिजातं कथञ्चन ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ तुम्हारा दिया हुआ वह तरु धर्मनित्य देवियोंके व्रत करने पर तुम्हारे पास फिर आगया है हे प्रभो ! इस बातको सुनकर मेरी पत्नियें भी उस तरुका दान करना चाहती हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस लिये श्रीकृष्ण उस श्रेष्ठ तरु पारिजातको पुण्य दान धर्म और प्रीतिके लिये द्वारकामें बुलाना चाहते हैं ७ मेरे दान करने पर आप उस तरुको फिर स्वर्गमें लेजाना हे भगवन् ! आप बलदैत्यका नाश करने वाले इन्द्रसे इस प्रकार कहना ॥ ८ ॥ हे मुनिसत्तम! आप इस प्रकारका प्रयत्न करना जिस प्रकार सुरे-श्वर उस वृक्षश्रेष्ठ पारिजातको देदेय ९ हे तपोधन हम! आपमें दूत के सब गुणोंको देखते हैं मेरा विचार है, कि-आपमें सब काम को सिद्ध करने वाली सम्पत्ति विद्यमान है १० नारायणके इस प्रकार कहने पर तपोधन ऋषिनारदजीने केशीका नाश करने वाले श्रीकृष्णसे हँसकर यह बात कही, कि-११ हे यादवोंमें मुख्य ! हे सुरेश्वर ! मैं आपकी आज्ञानुसार ही ऐसा कहूँगा परन्तु देवेन्द्र पारिजात तरुको कभी नहीं देगा देवता और दानवोंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ मन्दराचल पर्वतको पहले समुद्रमें डाल

मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं दानवैस्त्रिदशैस्तथा । निक्षिप्य तोयधौ पूर्वं पारिजातः समाहृतः ॥१३॥ मन्दरात् पर्वतश्रेष्ठान्नगेतुं प्रेषितः पुरा । पारिजातं हरेणापि लोककर्त्रा जनार्दन ॥ १४ ॥ स्वयं विज्ञापितो गत्वा ततः शक्रेण शंकरः । आक्रीडद्रुम उद्याने शच्याः स्यादिति याचितः ॥ १५ ॥ तथास्त्विति वरो दत्तो महादेवेन चानघ । न च नीतः पारिजातो मन्दरं चित्रकन्दरम् ॥ १६ ॥ क्रीडावृक्षः स शच्येति व्यपदेशेन मोक्षितः । महेन्द्रेण महाबाहो पारिजातस्ततः पुरा ॥ १७ ॥ प्रियार्थमुमयाऽस्राक्षीत् पारिजात-वनं हरः । गव्यूतिशतविस्तीर्णं मन्दरस्यैव कन्दरम् ॥ १८ ॥ न तत्र सूर्यभाः कृष्ण प्रविशन्तो नगोत्तमे । न च चन्द्रप्रभाः शीता नैव कृष्ण सदागतिः ॥१९॥ शीतोष्णे छन्दतस्तत्र शैल-पुत्र्या भवन्ति हि । स्वयंप्रभं वनं तद्धि महादेवस्य तेजसा ॥२०॥

कर पारिजात तरु पाया था ॥ १२ ॥१३॥ हे जनार्दन ! लोक-कर्त्ता महेश्वरने भी पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल परसे पारिजात तरु लानेके लिये भेजा था उस समय इन्द्रने शिवजीके पास अपने आप जाकर कहा था, कि—यह हमारे बागमें इन्द्राणीका क्रीडा-तरु अतः है, मैं याचना करता हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे अनघ ! उस समय महादेवजीने " तथास्तु " कह कर वरदान दिया था और विचित्र कन्दरा वाले मन्दराचल पर पारिजात नहीं लेगए थे॥१६॥ हे महाबाहो ! इस प्रकार महेन्द्रने यह इन्द्राणीके खेलनेका तरु है इस बहानेसे पारिजात तरुको छुडा लिया था१७ उस समय शिवजीने अपनी प्रिया उमाका प्रिय करनेके लिये मन्दराचलकी कन्दरामें दो सौ कोस चौडा पारिजातका वन बना दिया था १८ हे कृष्ण ! उस उत्तम पर्वतमें सूर्यकी कान्ति तथा चन्द्रमाकी शीतल कान्ति और सर्वदा चलने वाला वायुभी नहीं घुस सकता १९ वहाँ पर शैलपुत्रीकी इच्छानुसार ही गर्मी

वर्जयित्वा महादेवं सगणं यदुनन्दन । मां चान्यस्तद्वनं दिव्यं न गमाति कथञ्चन ॥२१॥ स्रवन्ति तत्र वार्ष्णेय पारिजाताः समं-ततः । सर्वरत्नानि मुख्यानि मनसा काङ्क्षितानि वै ॥ २२ ॥ गणास्तान्युपभुञ्जन्ति प्रवराणां महात्मनाम् । आज्ञया देवदेवस्य लोकनाथस्य केशव ॥ २३ ॥ पारिजातादृहुगुणं फलं तेषां तथा वनम् । अभिमानं प्रभाश्चैव गुणा भूरिगुणास्तथा ॥ २४ ॥ मूर्तिमन्तश्च ते वृक्षाः सोमं देवं वृषभध्वजम् । उपतिष्ठन्ति सततं गणैः सह केशव ॥ २५ ॥ रौद्रेण तेजसा दुष्टा दुःखैर्हीनाः सुखा-न्विताः । तरवो मन्दरे ते हि दयिताः शैलकन्यया ॥२६॥ प्रवि-वेशान्धको नाम घोरस्तत्र महाबलः दैतेयो वरदानेन दर्पितः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥ स हतो देवदेवेन हरेणामित्रघातिना । अवध्यः सर्वभूतानां वृत्राद्दशगुणं बली ॥ २८ ॥ एवं दुःखं न ते

सर्दी होती है महादेवजीके तेजसे वह वन स्वयंप्रभ है २० हे यदु-नन्दन ! महादेवजीको उमाको और उनके गणोंको तथा मुझको छोड़ कर उस दिव्य वनमें और कोई किसी प्रकार नहीं घुस सकता २१ हे वार्ष्णेय ! तहाँ पर चारों ओरके पारिजात मन में चाहे हुए मुख्य २ रत्नोंको बरसाते रहते हैं २२ हे केशव ! लोकनाथ देव देव शंकरकी आज्ञासे महात्मा प्रमथ नामक गण उन का उपभोग करते हैं २३ उनका वह वन पारिजातसे भी अधिक गुण वाला है उनमें बहुतसे गुण हैं और उनकी प्रभा तथा अभि-मान भी बहुत है २४ हे केशव ! मूर्तिमान् वृक्ष प्रमथ नामक गणोंको साथमें लेकर उमाकी और वृषभध्वजकी उपासना करते हैं २५ शिवजीके तेजसे सेवित दुःखोंसे हीन वे सुखमय शैल-कन्याके प्रिय वृक्ष मन्दराचल पर हैं २६ उस समय पापी विचार करने वाले वरदानसे दर्पित महाबली घोर राक्षस अंधकने उस वनमें प्रवेश किया २७ उस वृत्रासुरसे दश गुणे बलवान् सब

देव पारिजातं प्रदास्यति। पुष्कराक्ष सहस्राक्षः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥ सततं सहितो देव्या शच्या स हि वरद्रुमः। सर्वकामप्रदः कृष्ण तथेन्द्राय महौजसे ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच। मुने तत्प्रुच्यते साधु महादेवेन धीमता। यच्छचीकारणं कृत्वा न नीतः स तरुः पुरा ॥ ३१ ॥ स ज्येष्ठः सर्वभूतानां लोककृत् प्रभवोऽव्ययः। पारावर्यस्य सदृशं कृतवानिति मे मतिः ॥३२॥ अहं यवीयान् देवस्य सर्वथा बलघातिनः। लालनीयश्च भगवन् जयन्त इव सत्तम ॥३३॥ सर्वथा भगवांस्तावदुपायैर्बहुविस्तरैः। करोतु यत्नमीत्यर्थं शक्तो ह्यसि तपोधन ॥३४॥ मया मुने प्रतिज्ञातं पुण्यार्थं सत्यभामया। स्वर्गादिहानयिष्यामि पारिजातमिति प्रभो ॥ ३५ ॥ मया तदनृतं कर्तुं कथं शक्यं तपोधन।

भूतोंसे अवध्य राक्षसको शत्रुघातक देवदेव महादेवने मार डाला हे पुष्कराक्ष ! इस कारण वह पारिजात वृक्ष कठिनतासे ही मिल सकता है, मैं आपसे सत्य कहता हूँ, कि—सहस्राक्ष (इन्द्र) आपको पारिजात नहीं देगा ॥ २९ ॥ वह श्रेष्ठ वृक्ष देवी इन्द्राणी तथा महापराक्रमी इन्द्रका भी हित करने वाला और उनको सब कामनाएँ देने वाला है ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे मुने ! महादेवजी इन्द्राणीके कारण कल्पवृक्षको न लेगए यह उन महात्माने ठीक ही किया था ॥ ३१ ॥ वह अच्युत लोकके कर्ता सब भूतोंके उत्पत्तिस्थान और सबसे बड़े हैं अतएव मेरा विचार है, कि—उन्होंने यह लोकमर्यादाके अनुसार ही काम किया था -३२ हे भगवन् ! परन्तु मैं बलदैत्यका नाश करने वाले इन्द्रका छोटा हूँ और हे श्रेष्ठ पुरुष ! उनको मेरी सर्वदा जयन्तकी समान लालना करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ हे तपोधन ! पहले आप बहुत से उपायोंसे प्रीति बने रहनेका ही काम करना क्यों कि—आप समर्थ हैं ॥ ३४ ॥ हे प्रभो ! मैंने सत्यभामासे प्रतिज्ञाकी है, कि-

नानृतं हि वचो विप्र प्रोक्तं पूर्वं मयाऽनघ ॥ ३६ ॥ मयि भग्न-
प्रतिज्ञे वै लोकानां विप्लवो भवेत् । यन्मया हि मुनिश्रेष्ठ लोक-
धर्मा गुणान्विताः । परिवार्याः स्थिता सर्वे स कथं ह्यनृतं वदेत् ३७
न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा नचासुरा नैव च यक्षपन्नगाः ।
मम प्रतिज्ञामपहन्तुमुद्यता मुने समर्थाः खलु भद्रमस्तु ते ॥३८॥
स पारिजातं यदि न प्रदास्यति प्रयाच्यमानो भवताऽमरेश्वरः ।
ततः शचीव्यामृदितानुलेपने गदां निपोक्ष्यामि पुरन्दरोरसि ३९
इति प्रवाच्यो यदि सामपूर्वकं मयाच्यमानो न ददं मयच्छति ।
सुनिश्चयं मद्गमनाय सर्वथा त्वयाऽपि कार्यः खलु तत्र निश्चयः ४०
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे
नारदकृष्णभाषणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

मैं पुण्यक व्रतके लिये स्वर्गसे पारिजातको यहाँ ले आऊँगा ३५
हे तपोधन ! मैं उस बातको झूँठी कैसे करसकता हूँ क्यों, कि
हे निष्पाप विप्र ! मैंने पहले कभी झूँठी बात नहीं कही है ३६
मेरे भङ्गप्रतिज्ञ होने पर अर्थात् झूँठी प्रतिज्ञा करने पर लोकोंमें
विप्लव फैल जायगा अर्थात् सब मनुष्य झूठ बोलने लगेंगे क्यों,
कि–कार्य कारणके अनुसार हुआ करता है हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरे
कारण ही संसारके धर्म गुणयुक्त रहते हैं मुझे लोकोंको स्थिति
में रखना चाहिये ऐसा मनुष्य फिर झूठ कैसे बोल सकता है ३७
देवता गंधर्व, राक्षस, असुर यक्ष और पन्नग भी मेरी प्रतिज्ञाको
नष्ट करनेके लिये उद्यत होकर समर्थ नहीं होसकते हे मुने ! आप
का कल्याण हो ॥ ३८ ॥ आपके माँगने पर भी यदि देवताओं
का ईश्वर इन्द्र पारिजात नहीं देगा तो मैं इन्द्राणीके कारण अस्त
व्यस्त चन्दन वाले इन्द्रके वक्षःस्थलमें अपनी गदा मारूँगा ३९
यदि वह समझाने पर भी वृक्षको न देवे तो आप इस प्रकार
कहना और मेरा वहां आनेका पक्का विचार प्रकट करदेना ४०

वैशम्पायन उवाच । नारदोऽथ मुनिर्गत्वा महेन्द्रसदनं प्रति । तां रात्रिमवसत्तत्र ददर्श च महोत्सवम् ॥ १ ॥ तत्रादित्या महात्मानो वसवश्च सुरोत्तमाः । राजर्षयश्च विद्वांसः स्वर्गताः कर्मभिः शुभैः ॥ २ ॥ नागा यक्षाश्च सिद्धाश्च चारणाश्च तपोधनाः । ब्रह्मर्षयश्च शतशो देवर्षिमनवस्तथा ॥ ३ ॥ सुपर्णाश्च महात्मानो मरुतश्च महाबलाः । दिवौकसां निकायाश्च शतशोऽन्ये समागताः ४ उपर्युपरि सर्वेषां सोमदेवो महेश्वरः । तस्थावमितविक्रान्तः स्वैर्गणैः परिवारितः ॥ ५ ॥ देवर्षिभिर्मुनिश्रेष्ठैः संवृतः सर्वभावनः । कल्पान्तरसहस्रेषु क्षयो येषां न विद्यते ॥६॥ यानर्चयन्ति सततं देवा देवेश्वरोपमाः । आत्मज्ञानावलेपान्धा ये च धर्मपथि स्थिताः ॥७॥ रुद्राश्च काश्यपा देवमध्युपासन्त भारत । स्कन्दश्च भगवानग्निर्गंगा च सरितां वरा ॥ ८ ॥ अर्चिष्मांस्तु-

---

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर नारदजी इन्द्रके भवन की ओर चले गए और तहाँ रात भर रह कर उन्होंने महोत्सव को देखा ॥ १ ॥ तहाँ पर महात्मा आदित्य देवताओंमें श्रेष्ठ वसु अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे स्वर्गमें आए हुए विद्वान् राजर्षि नाग यक्ष सिद्ध चारण तपोधन ब्रह्मर्षि सैंकड़ों देवर्षि मनु महात्मा सुपर्ण महाबली मरुत और भी सैंकड़ों स्वर्गमें रहने वाले गणियोंके टोले आए थे ॥ २ ४ ॥ उन सबके ऊपर महेश्वर उमादेवीके साथ वर्तमान थे उन अमित पराक्रमी सब लोकोंके पूजनीय महादेवजीके साथ गण श्रेष्ठ २ मुनि और देवर्षि भी थे उनका सहस्रों कल्पोंमें भी नाश नहीं होता है ॥ ५-६ ॥ उनकी आत्मज्ञानसे गर्वरहित धर्ममार्गमें स्थित देवताओंकी समान उपमा वाले देवता सर्वदा पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ रुद्र काश्यप तथा हे भरतवंशी राजन् ! भगवान् स्कन्द, अग्नि, नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी, अर्चिष्मान्, तुम्बुरु वक्ताओंमें श्रेष्ठ भारि (नायक गंधर्व) ये महादेवजी

म्बुरुश्चैव भारिश्च वदताम्वरः । नेतारो देवदेवानामेतें हि तप-
सान्विताः ॥ ९ ॥ एताननुविधीयन्ते सर्वदेवगणा नृप । धर्म-
नित्यास्तपोनित्याः सतां मार्गमुपाश्रिताः ॥१०॥ये त्विमे मानुषा
देवा अर्चयन्ति शुभार्थिनः । तानर्चयन्ति ह्यमरास्तथा राजञ्छु-
भार्थिनः ॥ ११ ॥ पितृकृत्येषु देवानां संन्यासं ये त्वनुष्ठिताः ।
स्वाध्यायवन्तः कौरव्य सदा नियमचारिणः ॥ १२ ॥ गन्धर्वा-
धिपतिः श्रीमांस्तत्र चित्ररथो नृप । सपुत्रो वादयामास देव-
वाद्यानि हृष्टवत् ॥१३॥ ऊर्णायुश्चित्रसेनश्च हाहाहूहूस्तथैव च ।
डुम्वरस्तुम्बुरुश्चैव जगुरन्ये च षड्गुणान् ॥ १४ ॥ उर्वशी
विप्रचित्तिश्च हेमारम्भा च भारत । हेमदन्ता घृताची च सह-
जन्या तथैव च ॥ १५ ॥ जुजोष भगवान् देवस्तदुपस्थानमात्म-

की उपासना करते हैं हे भारत ! ये तपोयुक्त प्राणी देवदेवोंके
भी नेता हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे राजन ! सर्वदा धर्म कर्म और तप
करने वाले सज्जनोंके मार्गमें स्थित सब देवताओंके गण इनका
ही अनुसरण करते हैं ॥ १० ॥ जो शुभाभिलाषी पुरुष इन
देवताओंकी पूजा करते हैं हे राजन् ! उनकी देवता तथा शुभा-
भिलाषी दूसरे पुरुष उपासना करते हैं ॥ ११ ॥ हे कौरव्य !
जो पितृकृत्यका देवताओंका संन्यासका स्वाध्यायका और
सर्वदा नियमोंका अनुष्ठान करते हैं (वेभी इनकीपूजा करते हैं)१२
हे राजन् ! उस समय गन्धर्वोंके राजा श्रीमान् चित्ररथने अपने
पुत्रको साथमें लेकर प्रसन्नतासे देवताओंके बाजोंको बजाया १३
ऊर्णायु चित्रसेन हाहा तथा हूहू डुम्बर तथा तुम्बुरु यह
तथा और भी गन्धर्व (वक्रिम, स्निग्ध, मधुर, लास्य, विभक्त
और अवबद्ध नामक)छः गुणोंको गानेलगे ॥१४॥ तथा उर्वशी
विप्रचित्ती हेमरम्भा हेमदन्ता घृताची और सहजन्याने भी हे
भारत ! (इसीप्रकार गाना गाया) ॥ १५ ॥ आत्मवान् भग-

वान् । वृत्तेन तुष्टः शक्रस्य जगाम जगतो गतिः ॥ १६ ॥ गते भूतपतौ सर्वे नृपा जग्मुर्यथागतम् । महेंद्रेणार्चिता देवाः स्वानेव निलयान् गताः ॥१७॥ ततः सर्वेषु यातेषु सुखासीनं पुरन्दरम् । सदस्यैः स्वैः सहासीनं नारदोऽभिययौ मुनिः ॥ १८ ॥ तमिंद्रः पूजयामास समुत्थाय तपोधनम् । दिदेश कुशगर्भं च पीठमात्मासनोपमम् ॥ १६ ॥ नारदोऽथ महातेजा महेन्द्रमिदमब्रवीत् । दूतोऽहममरश्रेष्ठ विष्णोरतुलतेजसः ॥ २० ॥ किंचित् कार्यं पुरस्कृत्य प्रेषितोऽस्मि महात्मना । आनर्तादार्तिहरणं तस्यैवानघतेजसः ॥ २१ ॥ प्रीतिवाक्यानि हृद्यानि प्रयुज्य मुनये तदा । ततः प्रहृष्टो भगवानब्रवीत् पाकशासनः ॥ २२ ॥ किमाह पुरुषश्रेष्ठः शीघ्रमाचक्ष्व मे मुने । चिरस्य खलु कृष्णेन संस्मृतोऽस्मि

वान् महादेवजीने उस नृत्यादिरूप परिचर्याको प्रीतिपूर्वक ग्रहण किया तदनन्तर जगत्की गति इन्द्रके सत्कारसे तुष्ट हुए महादेवजी तहाँ से चले गए ॥ १६ ॥ भूतपति महादेवजीके चलेजाने पर राजे अपने २ स्थानोंको चलेगए और इन्द्रके सत्कार करने पर देवता भी अपने २ स्थानोंको चले गए ॥ १७ ॥ तदनन्तर जब सबके चलेजाने पर इन्द्र अपने सदस्योंसे घिरकर बैठा तब नारदमुनि उसके पास गए ॥ १८ ॥ उस समय इन्द्रने उठकर तपोनिधि नारदका सत्कार किया और भीतर कुशा भरा हुआ अपने आसनकी समान एक आसन उनको दिया ॥ १६ ॥ उस समय महातेजस्वी नारदजीने इन्द्रसे इसप्रकार कहा, कि—हे अमरश्रेष्ठ ! मैं अतुल तेजस्वी विष्णुका दूत हूँ ॥ २० ॥ उन निष्पाप तेजवाले महात्माकी व्यथाको दूर करनेवाले एक कार्यके कारण उन महात्माने मुझे द्वारकापुरीसे भेजा है ॥ २१ ॥ उस समय पाकशासन इन्द्रने मुनिसे मनोहर प्रीतिमय वाक्य कहकर प्रसन्न होते हुए यह बात कही, कि—॥ २२ ॥ हे मुने ! पुरुष

महात्मना ॥ २३ ॥ नारद उवाच । महेन्द्रेन्द्रानुजं द्रष्टुं गतोऽहं भ्रातरं तव । कथंचिद्द्वारकां तत्र काश्यपानां यशस्करम् २४ तन्तु रैवतकेऽद्राक्षं तदासीनमरिंदमम् । रुक्मिण्या सहितं वीरं स्तुवन्तं वृषभध्वजम् ॥ २५ ॥ पारिजाततरोः पुष्पं तस्य दत्तं मयाऽनघ । विस्मापनार्थं देवेश पत्नीनामुरुतेजसः ॥ २६ ॥ तद्दृष्ट्वा तस्य पत्न्यस्तु विस्मयं परमं ययुः । बहुकामप्रदं पुष्पं वृक्षराजसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ गुणास्तस्या मया ख्यातास्तस्य पुष्पस्य मानद । सृष्टिश्च पारिजातस्य कश्यपेन महात्मना ॥ २८ ॥ अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च यथा मम । पुष्पदाम्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान् ॥२९॥ त्वं च दत्तो यथा शच्या

श्रेष्ठ श्रीकृष्णने क्या कहा है उसे शीघ्र बतलाइये महात्मा श्रीकृष्णने मुझे बहुत दिनके पीछे याद किया है ॥२३॥ नारदजीने कहा, कि-हे महेन्द्र ! मैं काश्यपोंके यशको बढ़ाने वाले इन्द्रके अनुज तुम्हारे भाईको देखनेके लिये किसी कारणवश द्वारकाको गया था ॥ २४ ॥ तहाँ मैंने रैवतक पर्वत पर रुक्मिणीके साथ बैठे हुए श्रीकृष्णको देखा वह वीर वृषभध्वज शंकरकी उपासना कर रहे थे ॥ २५ ॥ हे अनघदेवेश ! उन अति तेजस्वी श्रीकृष्णकी पत्नियोंको विस्मित करनेके लिये मैंने उनको पारिजात वृक्षका पुष्प दिया था ॥ २६ ॥ वृक्षराजसे उत्पन्न हुए अनेक कामनाओंको देनेवाले उस पुष्पको देखकर उनकी पत्नियें बड़ी विस्मित हुईं ॥ २७ ॥ हे मानद ! मैंने उनसे इस पुष्पके गुण वर्णन किये और महात्मा कश्यपके द्वारा इस पारिजातकी सृष्टि भी कही ॥२८॥ जिस प्रकार अदितिने पुण्यक व्रतमें आत्मवान् कश्यपको गलेमें पुष्पोंका हार डालकर पुण्यक व्रतमें मुझको देदिया था २९ हे सुरेश्वर जिस प्रकार इन्द्राणीने तुमको दिया था और जिस प्रकार दूसरे देवताओंको दिया

देवाश्चान्ये सुरेश्वर । निष्क्रयश्च यथा दत्तः कश्यपाद्यैर्महर्षिभिः तच्छ्रुत्वा तस्य पत्न्येका सत्यभामेति विश्रुता । पुण्यकार्थं मनश्चक्रे दयिता ते यवीयसः ॥३१॥ तया चाभ्यर्थितो भर्ता देवदेव्या गणेश्वरः । प्रतिजज्ञे स धर्मार्थं यवीयांस्तव मानद ॥३२॥ ततो मामुक्तवान् वीरो विष्णुर्बलवतां वरः । यथावत् सुरमुख्येश ब्रुवतः शृणु भावतः ॥ ३३ ॥ लालनीयो यवीयांस्तु प्रणिपत्याऽच्युतोऽब्रवीत् । आनयेयं सुरश्रेष्ठ पारिजातं वरं द्रुमम् ॥ ३४ ॥ मनोरथोऽस्तु सफलो वध्वास्तेऽसुरसूदन । धर्मकृत्ये विशेषेण वध्वास्ते सुरसत्तम । ३५ ॥ अयं दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर । पश्यन्त्वमरकल्याणं मत्प्रभावाच्च मानवाः ॥३६॥

था और कश्यप आदि महर्षियोंने जिस प्रकार मूल्य दिया था (यह सब बात मैंने उनसे कही) ॥ ३० ॥ उसको सुनकर तुम्हारे छोटे भाई श्रीकृष्णकी सत्यभामा नामसे प्रसिद्ध एक प्यारी स्त्रीने पुण्यक व्रत करनेका मनमें विचार किया ॥३१॥ हे मानद ! उस देवदेवीने गणोंके ईश्वर अपने स्वामीसे (इस वृक्षकी) याचनाकी तब धर्म कार्य करनेके लिये तुम्हारे छोटे भाईने इस बातकी प्रतिज्ञा करली ॥३२॥ उस समय बलवानोंमें श्रेष्ठ वीर विष्णुने मुझसे जो बात कही थी हे ईश ! हे सुरमुख्य! उसको तुम ध्यान देकर मेरे कहनेसे सुनो ॥ ३३ ॥ अच्युतने प्रणाम करके कहा है,कि हे सुरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ अत एव तुम्हें मुझे लाड़ लड़ाना चाहिये और वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात वृक्षको भेजदेना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे असुरसूदन ! हे सुरसत्तम ! तुम्हारे छोटे भाईकी वधूका मनोरथ सफल होना चाहिये और विशेषकर धर्मकृत्यमें तो उसका मनोरथ सफल ही होना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे लोकगणेश्वर ! यह तरु कल्याण देने वाला है इसबातको लोकोंने देखलिया अब मेरे प्रभावसे देव-

वैशम्पायन उवाच । वासुदेववचः श्रुत्वा महेन्द्रः कुलनन्दन । नारदं वदतां श्रेष्ठमिदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥३७॥ भजासनं द्विज-श्रेष्ठ युक्तमुक्तं त्वया द्विज । सन्देशं प्रतिदास्यामि विष्णोरतुल-तेजसः ॥ ३८ ॥ आसीने नारदे शक्रो लब्धवानुज्ञोऽथ नार-दात् । स्वमासनं ततो भेजे तस्यैव सदृशं प्रभो ॥ ३९ ॥ उप-विष्टः सुरपतिरथोवाच तपोधनम् । निरीक्ष्य स्वबलं वीर्यं हर्षदं वृत्रनाशनः ॥ ४० ॥शक्र उवाच । महर्षे कुशलं पृष्ट्वा वक्तव्यस्ते जनार्दनः । वचनान्मम धर्मज्ञ सर्वभूतसुखावहः ॥४१॥ मदनन्तर-मीशस्त्वं जगतो नात्र संशयः । त्वदीयः पारिजातश्च रत्नान्य-न्यानि चाच्युत४२त्वं तु भारावतरणं कर्तुं देवमहीं गतः । मानुष्यं

ताओंका कल्याण करनेवाले इस वृक्षको मनुष्योंको भी देखने दीजिये ॥ ३६ ॥ वैशम्पायनजीने कहा कि–कुलनन्दन इन्द्रने वासुदेवके वचनको सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजीसे यह वचन कहा कि–॥ ३७ ॥ हे श्रेष्ठ द्विज ! आप आसन पर बैठिये हे ब्राह्मण ! आपने ठीक बात कही अब मैं अतुल तेजस्वी विष्णु को सन्देशा दूँगा ॥ ३८ ॥ हे प्रभो ! नारदजीके बैठ जानेपर नारदजीकी आज्ञानुसार इन्द्रभी उनके ही समान अपने आसन पर बैठ गया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर बैठे हुए वृत्रासुरका नाश करनेवाले देवराज इन्द्रने हर्षको बढ़ानेवाले अपने वीर्य और बलको देखकर तपोनिधि नारदजीसे कहा ॥ ४० ॥ इन्द्रने कहा, कि–हे धर्मज्ञ महर्षे ! सब प्राणियोंके सुखको बढ़ाने वाले जनार्दनसे कुशल प्रश्न बूझ कर तुम मेरे कहनेसे उनसे कहना; कि–॥ ४१ ॥ मेरे बाद आप ही इस जगत्के स्वामी हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है हे अच्युत ! यह पारिजात तथा दूसरे रत्न भी आपके ही हैं ॥ ४२ ॥ हे देव ! आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये पृथिवी पर गए हैं और अपना कार्य सिद्ध करने

सर्ववृत्तानां स्थितः कार्यस्य सिद्धये ॥ ४३ ॥ त्वयि तीर्णप्रतिज्ञे हि पुनः प्राप्ते त्रिविष्टपम् । पूरयिष्यामि वध्वास्ते इष्टान् कामानधोक्षज ॥४४॥ स्वर्गीयानि च रत्नानि न नेतव्यानि केशव । स्वल्पार्थे मानुषं लोकमिति पूर्वकृता स्थिताः ॥ ४५ ॥ उत्क्रम्य हि स्थितिं दैवीं प्रवर्तामि महाबल । यद्यहं किं मवक्ष्यन्ति प्रजापतिगणाः प्रभो ॥ ४६ ॥ ब्रह्मणा सह पुत्रेण सपौत्रेण महात्मना । नियमाः सर्वकृत्यानां स्थापिता जगतो ध्रुवाः ॥ ४७ ॥ प्रजापतिकृतं मार्गमपास्य व्रजतो मम । श्रुत्वा प्रजापतिर्धीमाञ्छापमप्युत्सृजेत् प्रभुः ॥४८॥ अस्माभिर्भिद्यमानं हि मर्यादासेतुबन्धनम् । भेत्स्यन्त्यशंकिता दैत्या दैत्यपक्षास्तथापरे ॥४९॥ स्त्रीनिमित्तमितो नीते पारिजाते द्रुमेश्वरे । स्वर्गौकसो भविष्यन्ति विमनस्काश्च मानद ॥ ५० ॥ उपभोगा मनुष्याणां विहिता ये

के लिये सब कामोंमें मनुष्योंकेसा ही वर्ताव कर रहे हैं ॥ ४३ ॥ जब आप अपनी प्रतिज्ञामें उत्तीर्ण हो कर स्वर्गमें फिर आजायेंगे तब हे अधोक्षज ! मैं तुम्हारी स्त्रीके चाहे हुए कामोंको पूर्ण करूँगा ॥ ४४ ॥ हे केशव ! स्वर्गीय रत्नोंको जरा २ से स्वार्थ के लिये मनुष्यलोकमें नहीं लेजाना चाहिये ऐसी पहले कालमें मर्यादा बाँधी गई है ॥ ४५ ॥ हे नारद ! यदि मैं इस दैवीनियमका उल्लंघन करने लगूँगा तो हे प्रभो ! प्रजापतियोंके गण मुझसे क्या कहेंगे ४६ महात्मा ब्रह्माजीने और उनके पुत्र और पौत्रोंने जगत्के सब कामोंके लिये निश्चित नियम स्थापित कर दिये हैं४७यदि मैं प्रजापतिके रचे हुए मार्गका उल्लंघन करके चलूँगा तो इस बातको सुनकर प्रभु प्रजापति शायद मुझे शाप देदें यदि हम मर्यादाके पुलको तोड़ने लगेंगे तो दैत्य और उन का पक्ष लेने वाले भी निःशंक होकर मर्यादाको तोड़ने लगेंगे ४९ और हे मानद ! स्त्रीके कारण वृक्षराज पारिजातको लेजाने

स्वयंभुवा । तैस्तु तुष्यतु मे भ्राता संपश्यन् कालपर्ययन् ॥५१॥ इहापि तात त्रिदिवे मम यः स्यात् परिग्रहः । त्रिदिवस्थोऽपि तं कृष्णः सर्वं भोक्तुमिहार्हति ॥ ५२ ॥ हृष्टो ह्यामिषभोज्यानामभिमानाज्जनार्दनः । ततो धर्मं समुत्सृज्य पापमेवानुवर्तते ॥५३॥ स्त्रीवश्यता ख्याप्यमाना कृष्णस्य हि महात्मनः । जगत्ययशसा योगं जनयेदिति मे मतिः ॥ ५४ ॥ मानुष्यं मानुषे प्राप्तो यदेतन्मधुसूदनः । कुर्यान्निर्बन्धनीयं यद् भ्रात्रा,ज्येष्ठेन नारद ॥५५॥ स्वर्ग्यरत्नविलोपेन धर्षणा स्यान्ममानघ । ज्ञातितो धर्षणा चैव विशेषेणैव गर्हिता ॥५६॥ धर्ममर्थं च कामं च क्रमेण मधुसूदनः । सेवत्वेष सतां धर्मान् स्थापितान् पद्मयोनिना ॥ ५७ ॥ महीतलं

पर स्वर्गवासी भी अनगने होजायगे ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने मनुष्यों के लिये जो उपभोग रचे हैं कालके लौट फेरको देख कर मेरे भाई उनसे ही सन्तुष्ट रहें ५१ हे तात ! स्वर्गमें रहने पर भी श्रीकृष्ण उस सबको भोग सकते हैं ५२ जनार्दन मांसके भोजनों से हृष्ट होगए हैं अत एव वह धर्मको छोड़ कर अधर्मका पक्ष लेने लगे हैं (आपस्तम्बने लिखा है, कि-"हृष्टो दृप्यति दृप्तो धर्ममतिक्रामति-अर्थात् हर्षमें भरा हुआ मनुष्य उद्धत होजाता है और उद्धत मनुष्य धर्मको लांघने लगता है") ५३ मेरा विचार है, कि महात्मा श्रीकृष्ण स्त्रीके वशमें रहते हैं जब यह बात जगत्में प्रसिद्ध होजायगी तो उनका अपयश होने लगेगा ५४ हे नारद ! यह मधुसूदन यदि मनुष्यलोक में मनुष्य बनकर यदि मुझ बड़े भाईको मजबूर करेंगे ५५ तो हे निष्पाप ! स्वर्गके रत्नका लोप करनेसे मेरा अपमान होगा और जाति वालोंसे अपमान पाना अतिनिन्दित है ५६ मधुसूदनको धर्म अर्थ और कामका क्रमपूर्वक सेवन करना चाहिये और ब्रह्माजीके स्थापित किये हुए सज्जनोंके धर्मका पालन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ यदि मैं और

पारिजातमर्पयिष्याम्यहं यदि । पौलोमीमादितः कृत्वा को नु मां बहु मंस्यते ॥५८॥ पारिजातं महीपृष्ठे दृष्ट्वा पृष्ट्वा च मानुषाः । स्वर्गार्थं नोद्यमिष्यन्ति दृष्ट्वा स्वर्गफलं क्षितौ ॥ ५९ ॥ पारिजात-गुणान् मर्त्या जुषन्ति यदि नारद । देवतानां मनुष्याणां न विशेषो भविष्यति ॥ ६० ॥ तत्र यत् क्रियते कर्म इह तद्भुज्यते नरैः । स्वर्गार्थं न यतिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः ॥ ६१ ॥ सर्वरत्नवरः स्वर्गे पारिजातस्तपोधन । तुल्यं देवसमैर्मर्त्यैः सर्वदैव जगद्भवेत् ॥ ६२ ॥ यज्ञैर्मर्त्या न यक्ष्यन्ति लब्धस्वर्गफला भुवि । न पूर्तानि प्रदास्यन्ति तुल्यत्वममरैर्गताः॥६३॥ यज्ञैर्जप्यान्हिकैश्चैव नित्यमाप्याययन्ति नः । मानुषाः स्वर्गमिच्छन्तः श्रद्धधानास्तपोधनाः ॥ ६४ ॥ तत्सर्वं न करिष्यन्ति पारिजातगुणा-

इन्द्राणी पृथ्वीमें पारिजातको भेजदेंगे तब मेरा अधिक मान कौन करेगा ॥ ५८ ॥ मनुष्य पृथ्वीतलपर पारिजात तरुको देखकर और छूकर पृथ्वीमें ही स्वर्गके फलको देखलेंगे ॥ ५९ ॥ हे नारद ! यदि मनुष्य पारिजातके गुणोंका सेवन करने लगेंगे तो फिर देवताओंमें और मनुष्योंमें भेदही क्या रहेगा ॥ ६० ॥ मनुष्यलोकमें जो कर्म किया जाता है मनुष्य उसको इस लोकमें भोगा करते हैं वे पारिजातके गुणसे युक्त होकर स्वर्गके लिये उद्योग नहीं करेंगे ६१ हे तपोधन ! पारिजात स्वर्गमें सब रत्नों में श्रेष्ठ माना जाता है (इसके चले जाने पर) सब जगत् देवताओंकी समान मनुष्योंसे व्याप्त रहेगा ६२ जब मनुष्योंको स्वर्गका फल भूमिमें मिल जावेगा, तब मनुष्य यज्ञोंसे पूजन नहीं करेंगे और देवताओंकी समान होकर पूर्त भी नहीं करेंगे ६३ हे तपोधन ! मनुष्य स्वर्गको चाहते हुए सर्वदा श्रद्धापूर्वक यज्ञोंसे जपोंसे हमें तृप्त करते रहते हैं ६४ पारिजातके गुणसे युक्त होने पर वे इन सब बातोंको करना छोड़ देंगे, तब कल्पतरुसे रहित

न्विताः । निस्तेजसो भविष्याम ते गतास्तद्विहीनताम् ॥६५॥ इतः सुवृष्ट्या सस्यैस्ते जीवन्ति पुरुषा भुवि । आप्यायन्तस्तेऽप्यस्मान् दानैर्यज्ञैस्तथैव च ॥ ६६ ॥ न बुभुक्षा पिपासा वा बाधते यदि मानुषान् । रोगो जरा वा मृत्युर्वा धर्मज्ञ रतिरेव च ॥ ६७ ॥ दौर्गन्ध्यं वा सुघोरा वा ईतयः कर्मसम्भवाः । किमुद्योगं करिष्यन्ति पारिजातगुणान्विताः ॥ ६८ ॥ सर्वथा नयनं तत्र पारिजातस्य न क्षमम् । इति वाच्यस्त्वया विप्र विष्णुरक्लिष्टकर्मकृत् ॥६९॥ यथा यथा च मे भ्राता तुष्यत्येतद्विचारयन् । तथा तथा त्वया कार्यं कार्यं मत्प्रीतिमिच्छता ॥ ७० ॥ हाराश्च मणयश्चैव चन्दनान्यगुरूणि च । वस्त्राणि च विचित्राणि वध्वास्त्वं द्वारकां नय ॥ ७१ ॥ योग्यानि यानि मर्त्यानां यावदिच्छति केशवः । न स्वर्गपरिमोषं तु कर्तुमर्हति सांप्रतम् ॥७२॥ ददामि

होनेके कारण हम निस्तेज होजावेंगे ६५ अब तो मनुष्य पृथ्वी में दान तथा यज्ञसे हमको तृप्त करते हुए (हमारे) सुवृष्टि करने पर धान्योंसे जीवित रहते हैं ६६ पारिजातके गुणसे मनुष्योंको भूख प्यास रोग जरा मृत्यु वा रति दुर्गन्धि तथा कर्मवश हुई भयंकर ईतियें जब पीड़ा नहीं देंगी तो वे उद्योग क्यों करेंगे६७-६८ सरलतासे कर्म करनेवाले विष्णुसे आप कहना, कि–तहाँ पर पारिजातका लेजाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है ६९ जिस २ प्रकारसे मेरे भाई सन्तुष्ट होसकें उस २ प्रकारसे विचार कर आप उनसे बातचीत करें और इन बातोंको मेरी प्रीतिसम्पादन करनेके लिये करें७०आप (श्रीकृष्णकी) वधूके लिये हार,मणि, चन्दन अगर और विचित्र वस्त्र द्वारकाको लेजाइये७१मनुष्योंके योग्य जिन वस्तुओंकी केशवको इच्छा हो (उनको) लेजाइये परन्तु इस समय श्रीकृष्णको स्वर्गकी चोरी करना उचित नहीं है ॥७२॥ मैं यथेप्सित रत्न और बहुतसे विचित्र आभूषण भी

रत्नानि यथेप्सितान्यहं बहूनि चित्राणि विभूषणानि । न पारिजातं च कथञ्चन द्रुमं मुने प्रदास्यामि दिवौकसां प्रियम् ॥७३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्यं नामैकोनसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

वैशम्पायन उवाच । देवराजवचः श्रुत्वा नारदः कुरुनन्दन । प्रोवाच वाक्यं वाक्यज्ञो धर्मात्मा धर्मवित्तमः ॥ १ ॥ अवश्यमेव वक्तव्यं हितं बलनिषूदन । मया तव महाबाहो बहु मानोऽस्ति मे त्वयि ॥ २ ॥ उक्तो मया वासुदेवो जानता भवतो मतम् । न दत्तः पारिजातोऽयं हरस्यापि त्वया पुरा ॥३॥ हेतवश्च मया तस्य दर्शितास्ते समासतः । न चावगतवान् देवः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥ उपेन्द्रोहं महेन्द्रेण लालनीयः सदेति माम् । उवाच पुण्डरीकाक्षो दत्तमुत्तरमेव च ॥५॥ पुनः पुनर्मया चास्य हेतवो

दे सकता हूँ, परन्तु हे मुने ! मैं स्वर्गवासियोंके प्यारे पारिजात के तरुको कभी नहीं दूँगा ७३ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ६९

वैशंपायनजीने कहा, कि–हे कुरुनन्दन ! धर्म जानने वालोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा वाक्यवेत्ता नारदजीने देवराजके वचनको सुनकर कहा, कि–१ हे बल दैत्यका नाश करने वाले ! मुझे आपके हितकी बात अवश्य कहनी चाहिये, क्योंकि हे महाभुज ! मैं आपका परम मान करता हूँ २ आपने पहिले महादेवजीको भी पारिजाततरु नहीं दिया था, इससे मैंने आपके अभिप्रायको जानकर वासुदेवसे (सब कुछ)कह दिया था ३ आपके बताये हुए कारण भी मैंने उन्हें संक्षेपमें सुनाये थे, परन्तु मैं सत्य-कहता हूँ, कि–उन देवने इन बातोंको कुछ नहीं समझा ४ उस समय मुझे पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णने उत्तर दिया, कि–मैं उपेन्द्र हूँ, अतः इन्द्रको सर्वदा मेरा लालन करना चाहिये ।५। हे देव ! मैंने उनको बारबार कारण दिखाये परन्तु हे वृत्र-

देव दर्शिताः । ततो न बुद्धिर्व्यावृत्ता वृत्रनाशन तस्य वै ॥ ६ ॥
अपि चाप्युक्तवान् देवो वाक्यान्ते मधुसूदनः । मत्याह पुरुषश्रेष्ठः
सरोषमिव वासव ॥७॥ न देवगन्धर्वगणा न राक्षसा न चासुरा
नैव च पन्नगोत्तमाः । मम प्रतिज्ञामुपहन्तुमुद्यता मुने समर्थाः
खलु भद्रमस्तु ते ॥ ८ ॥ स पारिजातं यदि न प्रदास्यति प्रदा-
च्यमानो भवता पुरन्दरः । ततः शचीव्यामृदितानुलेपने गदां
विमोक्ष्यामि पुरन्दरोरसि ॥ ९ ॥ उपेन्द्रस्य महेन्द्रायं भ्रातुस्ते
निश्चयः परः । यदत्र मन्यसे न्यायं संप्रधार्य कुरुष्व तत् ॥१०॥
तत्त्वं हितं च देवेश श्रूयतां वदतो मम । नयनं पारिजातस्य
द्वारकां मम रोचते ॥ ११ ॥ नारदेनैवमुक्तस्तु प्रत्युवाच बलदेह-
भित् । रोषाविष्टः सहस्राक्षोऽब्रवीदेतन्नराधिप ॥ १२ ॥ अना-
गसि मयि ज्येष्ठे सोदरे यदि केशवः । एवं प्रवृत्तः किं शक्यं

नाशन ! उनका निश्चय न बदला ॥ ६ ॥ हे वासव ! पुरुषश्रेष्ठ
मधुसूदन देवने बातचीत करनेके अनन्तर क्रोधपूर्वक कहा था,
कि–हे मुने! देवता गन्धर्व राक्षस असुर और श्रेष्ठ सर्प भी मेरी
प्रतिज्ञाको नहीं तोड सकते ॥ ८ ॥ यदि आपके माँगने पर भी
इन्द्र आपको पारिजात न देय तो मैं इन्द्राणीके कारण अस्त-
व्यस्त चन्दन वाले इन्द्रके वक्षःस्थलमें गदाका प्रहार करूँगा,९
हे महेन्द्र ! आपके उपेन्द्र भाईका यह पक्का निश्चय है, अब
आप जिस बातको उचित समझें उसे करें ॥ १० ॥ हे देवेश !
आप मेरी हितकारिणी तत्त्व बातको सुनिये, कि–मुझे पारि-
जातका द्वारकामें ले जाना ही अच्छा प्रतीत होता है ॥ ११ ॥
हे नराधिप !नारदजीके इस प्रकार कहने पर बल दैत्यके देहको
विदीर्ण करने वाले सहस्राक्षने क्रोधमें भर कर यह कहा,कि-१२
हे तपोधन ! केशव मुझ निरपराध ज्येष्ठ भ्रातासे भी ऐसा
व्यवहार करनेको उद्यत होगया, अतः अब मेरा क्या कर्तव्य

कर्तुमद्य तपोधन ॥ १३ ॥ बहूनि प्रतिलोमानि पुरा स कृतवान् मयि । कृष्णो नारद सोढानि भ्रातेति स्म मया सदा ॥ १४ ॥ खाण्डवे चार्जुनरथं पुरा वाहयता सता । मदीया वारिता मेघाः शमयन्तोऽग्निमुद्धतम् ॥ १५ ॥ गोवर्धनं धारयता विप्रियं च कृतं मम । तथा वृत्रवधे प्राप्ते साहाय्यार्थं वृतो मया ॥१६॥ समोऽहमिति सर्वेषां भूतानामिति चोक्तवान् । स्वबाहुबलमाश्रित्य वृत्रश्च निहतो मया ॥ १७ ॥ देवासुरेषु प्राप्तेषु सङ्ग्रामेषु च नारद । युद्धयत्यात्मेच्छया कृष्णो मुनेः सुविदितं तव ॥ १८ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन तस्माद्दिष्टचो प्रवर्तताम् । ज्ञातिभेदो न नः कार्यः साक्षी त्वं मम नारद ॥१६॥ ममोरसि गदां मोक्तुमुद्यतो यदि केशवः । अनुशब्दाद्य पौलोमीं गुणः क इह दृश्यते ॥२०॥

है ॥ १३ ॥ उसने मेरे विरुद्ध पहिले भी बहुतसे कार्य किये हैं, तब भी हे नारदजी ! मैंने यह भाई है यह समझ उन सब अपराधोंको सह लिया था ॥ १४ ॥ पहिले इसने खाण्डववनमें अर्जुनका रथ हाँक कर, उद्धत अग्निको शान्त करने वाले मेरे मेघोंको लौटा दिया था ॥१५॥ और इसने गोवर्धनको धारण करके भी मेरा अपकार किया था, और जब मैंने वृत्रासुरके वधके अवसर इससे सहायता माँगी थी ॥ १६ ॥ तब इसने कहा था, कि--मेरे लिये तो सब प्राणी एकसे हैं उस समय मैंने अपने भुजबलका आश्रय लेकर वृत्रासुरको मार डाला था १७ हे मुनि नारद ! इन्होंने देवासुर संग्रामके समय अपनी इच्छानुसार ही युद्ध किया था, यह बात आपको विदित ही है १८ अब बहुत बातें करनेसे क्या लाभ है ? अब प्रारब्धके ऊपर ही चलना चाहिये, हे नारद ! मैं जातिमें भेद नहीं पडने देना चाहता, इस बातके तो आप साक्षी हैं ही ॥ १६ ॥ केशव इन्द्राणीका नाम लेकर मेरे हृदयमें गदाका प्रहार करनेको उद्यत

उद्वासगतो धीमान् पिता नः कश्यपः प्रभुः । अदित्या सह मे मात्रा तयोर्वाक्यमिदं भवेत् ॥२१॥ अजितात्मा मम भ्राता रजसा तमसा वृतः । कामेन च स्त्रियो वाक्यादेव मामुक्तवान् गुरुम् २२ सर्वथा विप्र धिक् राज्यं धिक्क्रियाः स यथा तथा । यत्राधिक्षिप्तवान् विष्णुरेवं मां स्त्रीजितो द्विज ॥२३॥ न दृष्टं कश्यपकुले व्यपदेश्यं महामुने । नैव दक्षकुलं दृष्टं मातुर्मे यत्र सम्भवः ।२४। न ज्येष्ठता न राजत्वं देवानां मयिमानितम् । कामरागाभिभूतेन कृष्णेन खलु नारद ॥ २५ ॥ पुत्रदारसहस्रैर्हि भ्राताऽनघ विशिष्यते । सद्वृत्तो ज्ञानसंपन्न इति ब्रह्मापुराऽब्रवीत् ॥२६॥ नास्ति भ्रातृसमो बन्धुराहार्य इतरो जनः । इति मामब्रवीन्माता

होगया, तब उसमें अब कौनसा गुण दीखता है ॥२०॥ हमारे पिता बुद्धिमान् कश्यपजीने मेरी माताके साथ मेरे घर पर आकर यह बात कहेंगे, कि-॥२१॥ (मेरा) तेरा भाई अजितात्मा है, रजोगुण और तमोगुणसे व्याप्त है अत एव उसने मुझ (तुझ) गुरुसे स्त्रीके कारण कामवश ऐसी बात कही है२२ हे विप्र ! राज्यको सर्वथा धिक्कार है, और क्रियाओंको भी धिक्कार है,क्योंकि-हे द्विज ! उनके ही कारण स्त्रीजित् विष्णुने मुझ पर इस प्रकार आक्षेप किया है ॥२३॥ हे महामुने ! आज तक कश्यपकुलमें कोई अंगुली उठानेका काम नहीं हुआ है और जिस दक्षके कुलमेंसे मेरी माताकी उत्पत्ति हुई है, उस दक्षकुलमें भी ऐसा कोई प्राणी नहीं हुआ है ॥ २४ ॥ हे नारद ! काम और रागसे तिरस्कृत कृष्णने बड़प्पनका और देवताओंके राजा होनेका भी कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ २५ ॥ हे निष्पाप ! सदाचरणी ज्ञानसम्पन्न भाई सहस्रों पुत्र और स्त्रियोंसे श्रेष्ठ है यह बात ब्रह्माजीने पहिले कही है ॥ २६ ॥ भाईके समान कोई बन्धु नहीं है दूसरे मनुष्य तो खानेके लिये होते हैं अथवा

पिता चैव प्रजापतिः॥२७॥सोदरे तु विशेषन्तु पिता मे कश्यपो-
ऽब्रवीत् । दृप्ता मया निरुद्ध्यन्ते दानवाः पापनिश्चयाः ॥ २८ ॥
काममेतन्न वक्तव्यं स्वयमात्मस्तवान्वितम् । प्राप्तस्त्ववसरो विप्र
यदिहाद्योच्यते मया ॥ २९ ॥ धनुर्ज्यायां मुनिश्रेष्ठ छिन्नायां हि
पुरानघ । धन्विभिरमराणां च वरदान्महामुने ॥३०॥ उत्कृत्त-
शिरसो विष्णोः पुरा देहो धृतो मया । सन्धितं च शिरो यत्ना-
च्छिन्नं रौद्रेण तेजसा ॥ ३१ ॥ अहं विशिष्टो देवानामित्युक्त्वा
पुनरच्युतः । धनुरारोप्य दर्पेण स्थितो नारद केशवः ॥ ३२ ॥
किं मां पिता वा माता वा वक्ष्यतीति मया मुने । स्नेहेन च
स्थितं विष्णोः शरीरं मुनिसत्तम ॥ ३३ ॥ ऐन्द्रं वैष्णवमस्यैव

उनको बनाना पड़ता है इस प्रकार मेरी माता और पिता प्रजा-
पतिने कहा है ॥ २७ ॥ मेरे पिता कश्यपजीने सहोदर भाईको
और भी विशेष बताया है पापी विचार रखने वाले दानव ही
घमण्डी होकर मुझसे विरोध किया करते हैं ॥ २८ ॥
अपनी स्तुतिकी यह बात मुझे कहनी न चाहिये थी यह ठीक
है परन्तु आज अवसर आने पर मुझे यह बात कहनी
पड़ती है ॥ २९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! हे महामुने ! हे निष्पाप ! जब
धनुषधारी महादेवजीने (बाण मारा था) तब विष्णुका शिर
अर्थात् यज्ञपुरुषका शिर धनुषकी डोरीके टूटनेके साथ ही
(कटगया था) उस समय देवताओंके वरदानसे अर्थात् कहनेसे
मैं कटे हुए शिर वाले विष्णुके देहको रोके रहा था और मैंने
रुद्रके तेजसे कटे हुए विष्णु शिरको यत्नपूर्वक जोड़ दिया था
(इसका विशेष इतिहास शतपथमें देखना चाहिये) ।३०॥३१॥
परन्तु हे नारद ! उसी समय केशव दर्पमें भर अपने धनुषको
तानकर यह कहने लगे, कि- मैं देवताओंमें श्रेष्ठ हूँ ॥ ३२ ॥
हे मुनिसत्तम ! उस समय मेरे माता पिता मुझसे क्या कहेंगे इस

मुने भागमहं ददौ । यवीयांसमहं प्रेम्णा कृष्णं पश्यामि नारद संग्रामेषु प्रहर्तव्यं तेन पूर्वं तपोधन । राजा किलाहं समरे प्रहराम्यग्रतो ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ प्रादुर्भावेषु सर्वेषु स्वशरीरमिवानघ । यतो रक्ष्यामि धर्मज्ञ केशवं भक्तिमाश्रितम् ॥ ३६ ॥ इदं भंक्त्वा मदीयं च भवनं विष्णुना कृतम् । उपर्युपरि लोकानामधिकं भुवनं मुने ॥ ३७ ॥ अवमानः स च मया पृष्ठतः क्रियते मुने । लालनीयो मया बाल इत्येवं भ्रातृगौरवात् ॥ ३८ ॥ बालोऽयं मम पुत्रेति यवीयानिति नारद । पित्रा मात्रा च गोविन्दो मानी च परिभाषितः ॥३९॥ इष्टस्तत्र जनानां च केशवः सुविशेषतः । वयं द्वेष्या न सन्देहस्तत्र स्नेहोऽतिरिच्यते ॥ ४० ॥सर्वेषां बल-

विचारके कारण और स्नेहके कारण ही श्रीकृष्णका शरीर बन रहा था ३३ हे मुने ! मैंने अपने ऐन्द्र भागको वैष्णव बना कर इनको देदिया था अर्थात् श्रावण और भाद्रपद महीने मैंने इन को देदिये थे इस प्रकार हे नारद ! मैं इन छोटे भाई कृष्णको प्रेमकी दृष्टिसे देखता था ॥ ३४ ॥ हे तपोधन ! मुझे संग्राममें प्रहार करना चाहिये मैं राजा हूँ इस लिये संग्राममें मैं आगे बढ़ कर प्रहार करता हूँ ॥ ३५ ॥ हे निष्पाप ! केशव मेरी भक्ति करते थे इस लिये हे धर्मज्ञ ! मैं इनकी प्रत्येक अवतारोंमें अपने शरीरकी समान ही रक्षा करता था ॥ ३६ ॥ हे मुने ! मेरे इस भवनको भङ्ग कर विष्णुने अपना भुवन सब लोकोंसे ऊपर बनाया है ॥ ३७ ॥ हे मुने ! इस अपमानको भी" यह मेरा बालक है अतः मुझे इसका लालन करना चाहिये, इस भाई चोरसे" मैंने सहलिया था ॥३८॥ हे नारद ! मेरे माता पिताने कहा था,कि-"यह तेरा पुत्र-सा है और तेरा छोटा भाई है और यह मानी है" ॥ ३९ ॥ केशव तो मनुष्योंके प्यारे हैं और हम (क्या) विशेष द्वेष्य हैं ? परन्तु क्या करूँ मेरा उससे स्नेह

वाञ्छूरः पात्रं मानयिता तथा । केशवेत्येव च ध्यानं यत्तद्वि-
तथतां गतम् ॥४१॥ गच्छ नारद वक्तव्यः केशवो वचनान्मम ।
आहूतो न निवर्तेयं समरं प्रति शत्रुभिः ॥ ४२ ॥ यदीच्छसि
तदा गच्छ सह्यं ते यत्त्वमिच्छसि । प्रहरस्व च पूर्वं त्वं भार्याजित
यथेच्छसि ॥ ४३ ॥ रथांगेनाथ शार्ङ्गेण गदया नन्दकेन च ।
प्रहरारुह्य गरुडं दृढो भूत्वा जनार्दन ॥४४॥ प्रहृते प्रहरिष्यामि
यथाशक्त्या च केशव । अहो धिग्यदि मां स्नेहो विवशं न करि-
ष्यति ॥४५॥ यावन्न संग्रामगतो जितोऽहं चक्रपाणिना । पारि-
जातं न दास्यामि तावद्वो मुनिसत्तम ॥ ४६ ॥ मां समाह्वयते
ज्येष्ठं यवीयान् स तपोधन । अहं तं मर्षयिष्यामि किमर्थं स्त्रीजितं
हरिम् ॥ ४७ ॥ अद्यैव गच्छ भगवन् द्वारकां कृष्णपालिताम् ।

अधिक था ॥ ४० ॥ मेरा आज यह ध्यान झूँठा होगया, कि-
केशव सर्वज्ञ बलवान् शूर पात्र और मान करने वाला है ४१
हे नारद ! अब आप जाइये और मेरे कहनेसे श्रीकृष्णसे कहना,
कि-मैं शत्रुओंके आह्वान करने पर समरसे नहीं हटा करता
हूँ ४२ तेरी जब इच्छा हो तब आजाना तू जिस बातको चाह
रहा है वह तेरे योग्य ही है हे स्त्रीके जीते हुए ! तू अपनी इच्छा-
नुसार पहले प्रहार कर ॥ ४३ ॥ हे जनार्दन ! तू गरुड़के ऊपर
चढ़ दृढ़ होकर चक्र शार्ङ्ग धनुष गदा अथवा नन्दकका मेरे ऊपर
प्रहार कर ॥ ४४ ॥ अहो ! स्नेहको धिक्कार है यदि उस समय
स्नेह मुझे विवश नहीं करेगा तो मैं तेरे प्रहार करने पर तेरे ऊपर
यथाशक्ति प्रहार करूँगा ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तम ! जबतक चक्र-
पाणि मुझे संग्राममें न जीत लेगा तब तक तो मैं पारिजातको
नहीं दूँगा ॥ ४६ ॥ हे तपोधन ! जब वह छोटा होकरभी मुझ
बड़ेका आह्वान करता है तब मैं स्त्रीके जीतनेमें आए हुए कृष्ण
को क्यों सहूँ ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! आप कृष्णसे पालित द्वारका

विवादे संस्थितः सोऽज्ञ इति वाच्यस्त्वयाऽच्युतः ॥४८॥ पलाश-पत्रार्धमपि त्वया जितो न पारिजातस्य तव प्रदास्यति । इति प्रवाच्यो मधुसूदनस्त्वया वचो मदीयं स्मरता तपोधन ॥ ४९ ॥ पुनः प्रवाच्यो भगवंस्त्वयाऽच्युतो मम प्रियार्थं खलु निर्विशंकितम् । न मायया हर्तुमिहार्हसि द्रुमं सुयुद्धमेवास्तु धिगस्तु जिह्मताम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे इन्द्रवाक्यं नाम सप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

वैशम्पायन उवाच । महेन्द्रवचनं श्रुत्वा नारदो वदताम्वरः । विविक्ते देवराजानमिदं वचनमब्रवीत्॥१॥कामं प्रियाणि राजानो वक्तव्या नात्र संशयः । प्राप्तकालं तु वक्तव्यं हितमप्रियमप्युत २ अनियुक्तपुरोभागो न स्यादिति वदन्ति हि । सुश्लोका गति-

को आज ही जाइये और उस विवाद करने वाले मूर्ख कृष्णसे यह सब बात कह दीजिये ४८हे तपोधन!आप मेरे वचनका स्मरण कर मधुसूदनसे कहना,कि–जब तक तुम इन्द्रको नहीं जीत लोगे तब तक वह तुमको पारिजातके पत्रका आधा टुकड़ा भी नहीं देगा ४९ तदनन्तर आप मेरा प्रिय करनेके लिये निःशंक होकर अच्युतसे कहदेना, कि–तुम कपट करके इस वृक्षको न लेजाना हमारा तुम्हारा युद्ध ही होना चाहिये, कुटिलताको तो धिक्कार है ५० सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ७०

वैशम्पायनजीने कहा. कि वक्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजीने इन्द्रके वचनको सुनकर एकान्तमें देवराज इन्द्रसे यह बात कही, कि १ राजाओंसे प्रिय बात ही कहनी चाहिये इस बातमें कुछ सन्देह नहीं है फिर भी अवसर आने पर हितकी अप्रिय बात भी कहनी चाहिये २ किसीके बिना बूझे हुए उसके सामने पड़कर कोई बात नहीं कहनी चाहिये, इस बातको अच्छे २ मनुष्य कहते हैं

तत्त्वज्ञो नयविज्ञानकोविदः ॥ ३ ॥ कार्याकार्ये समुत्पन्ने परिपृच्छ ते मां भवान् । यतस्ततः प्रवक्ष्यामि गृह्यतां यदि रोचते ४ अनुक्तेनापि सुहृदा वक्तव्यं जानता हितम् । न्याय्यं च प्राप्तकालं च पराभवमनिच्छता ॥ ५ ॥ वक्तव्यं सर्वथा सद्भिरप्रियं चापि यद्धितम् । आनृण्यमेतत् स्नेहस्य सद्भिरेवाहृतं पुरा ॥ ६ ॥ अनृते धर्मभग्ने च न शुश्रूषति चाप्रिये । न प्रियं न हितं वाच्यं सद्भिरेवेति निन्दिताः ॥७॥ सर्वथा देव वक्तव्यं श्रूयतां शृण्वतां वर । श्रुत्वा च कुरु सर्वज्ञ मम श्रेयस्करं वचः ॥८॥ अन्योन्यभेदो भ्रातॄणां सुहृदां वा बलान्तक । भवत्यानन्दकृद्देव.द्विषतां नात्र संशयः । हितानुबन्धसहितं कार्यं ज्ञेयं सुरेश्वर । विपरीतं च तद्बुद्ध्वा नित्यं बुद्धिमताम्वर ॥ १० ॥ यत् स्यात्तापकरं पश्चा-

---

फिर भी नीति और विज्ञानमें चतुर गतिके तत्त्वको जानने वाले आपने मुझसे कार्य और अकार्यके सम्बन्धसे बूझा है, अतः मैं कहता हूँ यदि आपको वह बात अच्छी लगे तो उसको ग्रहण कर लीजिये ३-४ मित्र यदि हितकारी बातको जानता हो तो मित्रके न बूझने पर भी अपने मित्रके पराभवको न चाह कर समयोचित उचित बात कहे ५ हितकारी बात अप्रिय हो तब भी सज्जन उसको भली प्रकार कहे, सज्जनोंने कहा है, कि इस प्रकार मनुष्य स्नेहसे अनृण होजाता है ६ झूठ बोलने वाले धर्मभ्रष्ट सेवा न करने वाले और अप्रिय पुरुषसे हित और प्रिय बात नहीं कहनी चाहिये क्योंकि सज्जनोंने इनकी निन्दाकी है ७ हे सुनने वालोंमें श्रेष्ठ ! मुझे सर्वदा यह बात कहनी चाहिये और इस बातका सुनिये हे सर्वज्ञ ! मेरे कल्याणकारी वचनको सुनकर आप वैसा ही करिये हे बलदैत्यका नाश करने वाले ! मित्रोंका अथवा भाईयोंका आपसी भेद शत्रुओंके आनन्दको बढ़ाता है८-९हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुरेश्वर ! अपने हितकी बातको और

दारब्धं कार्यमीदृशम् । आरभेन्नैव तद्विद्वानेष बुद्धिमतां नयः ११
विपाकमस्य कार्यस्य नानुपश्यामि शोभनम् । यदत्र कारणं देव
निबोध विबुधाधिप ॥ १२ ॥ य एको विश्वमध्यास्ते प्रधानं
जगतो हरिः । प्रकृत्यायं परं सर्वे क्षेत्रज्ञं वै विदुर्बुधाः ॥ १३ ॥
तस्याव्यक्तस्य यो व्यक्तो भागः सर्वभवोद्भवः । तस्यात्मा परमो
देवो विष्णुः सर्वस्य धीमतः ॥ १४ ॥ प्रकृत्याः प्रथमो भाग
उमादेवी यशस्विनी । व्यक्तः सर्वमयो विश्वः स्त्रीसंज्ञो लोक-
भावनः ॥ १५ ॥ रुक्मिण्याद्याः स्त्रियस्तस्या व्यक्तत्वे प्रथमो

अहितकी बातको सर्वदा समझ कर ही काम करना चाहिये १० जो कार्य ऐसा हो, कि-जिसका आरम्भ करने पर पीछेसे पश्चात्ताप करना पड़े उसको विद्वान् पुरुष आरम्भ ही न करें यह बुद्धिमानोंका विचार है ११ हे देव ! मुझे इस कार्यका फल अच्छा नहीं मालूम पड़ता हे देवराज ! इसके कारणको भी आप सुनिये १२जो विश्व पर अर्थात् कार्य पर और प्रधान पर अर्थात् कारण पर(जैसे रथपर रथवान्)अधिष्ठित रहता है और जिस प्रकृति अर्थात् मायासे परको सब जन क्षेत्रज्ञ अर्थात् कारण स्थूल सूक्ष्म देहरूप क्षेत्रको जाने वाला कहते हैं १३ उस सबके उत्पत्ति-स्थान अव्यक्तका अर्थात् अव्याकृतका जो व्यक्त भाव है अर्थात् जो कार्य हिरण्यगर्भ आदि है यह उस सबके आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी चेतयिता हैं और चेतना वाले जन्तुमात्रके भी यह परम-देव विष्णु चेतयिता अथवा बीज हैं१४। यह रुद्रसे भी अभिन्न हैं इस बातको दिखाते हैं, कि- यशस्विनी उमा देवी प्रकृतिका प्रथम व्यक्त भाग हैं अर्थात् चित् शक्तिका मुख्य दृश्यमात्राकार मुख्य अंश हैं सर्वमय हैं विश्वस्त्रीसञ्ज्ञ हैं अर्थात् सारी भोग्य-वस्तुरूप हैं अत एव लोकभावन हैं अर्थात् वह भाग चेतनका तृप्त करने वाला है१५रु क्मणी आदि स्त्रियें भी उस प्रकृतिके व्यक्त

गुणः । अव्ययः प्रकृतिर्देवी गुणी देवो महेश्वरः ॥ १६ ॥ न विशेषोऽस्य रुद्रस्य विष्णोश्चामरसत्तम । गुणिनश्चाव्ययः शास्ता सदा च प्रथमोगुणः ॥१७॥ नारायणो महातेजाः सर्वकृल्लोकभावनः । भोक्ता महेश्वरो देवः कर्ता विष्णुरधोक्षजः ॥ १८ ॥ ब्रह्मा देवगणाश्चान्ये पश्चात् सृष्टा महात्मना । महादेवेन देवेश प्रजापतिगणांस्तथा ॥१९॥ एवं पुराणपुरुषो विष्णुर्देवेषु पठ्यते अचिंत्यश्चाप्रमेयश्च गुणेभ्यश्च परस्तथा ॥२०॥ अदित्या तपसा विष्णुर्महात्माऽऽराधितः पुरा । वरेण च्छन्दिता तेन परितुष्टेन चादितिः ॥ २१ ॥ तयोक्तस्त्वत्समं पुत्रमिच्छामीति सुरोत्तम ।

मुख्य अंश हैं देवी (उमा वा रुक्मिणी) अव्यय प्रकृति हैं और उनसे उपहित गुणी (रुद्र वा विष्णु) महेश्वर हैं ॥ १६ ॥ हे अमरसत्तम ! गुणी अर्थात् मायावी रुद्रमें और विष्णुमें कुछ भेद नहीं है उस गुणीका भी जो शास्ता है वह अव्यय है अर्थात् अध्यस्त होनेसे पहले अपरिणामी है अत एव अगुण है १७ नारायण है सबको रचने वाला है, लोकपूज्य है महातेजस्वी है अत एव उस महात्माने भोक्ता रुद्र कर्ता अधोक्षज विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंको रचा है और हे देवेश ! उन महादेवने प्रजापतिके गुणोंको भी रचा है (इस बातसे यह प्रमाणित होता होता है,कि–नारायणकी चार मूर्त्तियें हैं एक २ गुणकी उपाधि वाली ब्रह्मा विष्णु और रुद्रकी मूर्ति हैं और दूसरी सब गुणोंकी उपाधि वाली मूर्ति है उसने ही भोक्ता रुद्र कर्ता विष्णु और बुद्ध्यभिमानी ब्रह्मा और इन्द्रियाभिमानी देवताओंको रचा है)१९ इसप्रकार पुराण पुरुष विष्णु देवताओंमें अचिन्त्य अप्रमेय और गुणोंसे पर कहलाते हैं ॥ २० ॥ पहले अदितिने तप करके महात्मा विष्णुकी आराधना की थी उस समय विष्णुने सन्तुष्ट होकर अदितिको वर देनेका अनुग्रह किया था॥२१॥तब उसने

प्रणिपत्य च विज्ञाय नारायणमधोक्षजम् ॥ २२ ॥तेनोक्तं भुवने नास्ति मत्समः पुरुषोऽपरः । अंशेन तु भविष्यामि पुत्रः खल्व-हमेव ते ॥ २३ ॥ स जातः सर्वकृद्देवो भ्राता तव सुरेश्वर । नारायणो महातेजा यमुपेन्द्रं प्रचक्षते ॥ २४ ॥ इच्छन्नेव हरि-र्देवकाश्यपत्वमुपागतः । तैस्तैर्भावैर्विकुरुते भूतभव्यभवाप्ययः॥२५ प्रादुर्भावं गतो देवो जगतो हितकाम्यया । माथुरं जगतो नाथः कर्ता हर्ता च केशवः ॥२६॥ यथा पललपिंडः स्याद्व्याप्तः स्नेहेन मानद । तथा जगदिदं व्याप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ ब्रह्मण्यदेवः सर्वात्मा तैस्तैर्भावैर्विकुर्वति । जगत्यतिगुणो देवो

कहा था, कि हे सुरोत्तम ! मैं आपके समान ही पुत्रको चाहती हूँ उसने यह बात अधोक्षज नारायणसे प्रणाम करके कही थी (अर्थात् यह तुम्हारे भाई हैं तब भी कोई साधारण वस्तु नहीं है क्योंकि-इनमें अकर्मजनित देवभाव है और तू तो कर्म देव होनेसे उनसे निकृष्ट हैं) ॥ २२ ॥ उस समय उन्होंने कहा था, कि-इस भुवनमें मेरी समान कोई भी नहीं है इसलिये मैं ही अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र बनकर उत्पन्न होऊँगा ॥ २३ ॥ हे सुरेश्वर!सबके रचने वाले वह महातेजस्वी नारायणदेव कि-जिनको उपेन्द्र कहते हैं वह तुम्हारे भाई बनकर उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ भूत और भविष्यत्के उत्पत्ति और प्रलयके स्थान अर्थात् सब जगत्के उपादान कारण हरि अपनी इच्छासे कश्यपके पुत्र बन गए हैं और भिन्न २ धर्मोंसे विकारको प्राप्त होते हैं (वास्तवमें गुणातीत हैं) ॥ २५ ॥ वही जगत्के नाथ और जगत्के कर्ता हर्ता. जगत्का हित करनेकी इच्छासे मथुरामें केशव नामसे प्रकट हुए हैं ॥ २६ ॥ हे मानद ! जैसे मांसपिंड स्नेहसे अर्थात् चिकनाईसे व्याप्त होता है इसीप्रकार यह सारा संसार प्रभावशाली विष्णुसे व्याप्त है ॥ २७ ॥ वह सर्वात्मा

वैकुण्ठः सर्वभावनः ॥ ७८ ॥ अतः समस्तदेवानां पूज्य एव च केशवः । पद्मनाभश्च भगवान् प्रजासर्गकरो विभुः ॥ ७६ ॥ अनन्तो धारणार्थं च बिभर्ति च महद्यशः । यज्ञ इत्यपि सद्भिश्च कथ्यते वेदवादिभिः ॥ ३० ॥ श्वेतः कृतयुगे देवो रक्तस्त्रेतायुगे तथा । द्वापरे च तथा पीतः कृष्णः कलियुगे विभुः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मण्यदेव उन २ भावोंसे जगत्में विकारको प्राप्त होते हैं वास्तव में वह सर्वपूजित वैकुंठदेव अगुण ही हैं (अर्थात् वह सर्वात्मा व्यष्टि (अलग अलग) समष्टि (समूहाकार) देह इन्द्रिय आदि आकारवाला होकर विकृत;होजाता है अर्थात् मैं सर्वज्ञ हूँ अथवा दुःखी हूँ ऐसे अभिमान वाला होजाता है वास्तवमें वह गुणातीत है) ॥ २८ ॥ इस लिये केशव सब देवताओंके पूज्य हैं भगवान् पद्मनाभ हैं और प्रजाकी रचना करने वाले व्यापक हैं ॥ २६ ॥ शेष भी पृथ्वीको धारण कर अतियशस्वी होरहे हैं (वह बल देव हुए हैं) वेदवादी सज्जन (श्रीकृष्णको) यज्ञ भी कहते हैं ॥ ३० ॥ यह विभुदेव कलियुगमें श्वेत होते हैं त्रेतायुगमें रक्त होते हैं द्वापरयुगमें पीत होते हैं और कलियुगमें कृष्ण होते हैं (श्रुतिमें लिखा है, कि- 'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्" अर्थात् जो अविद्यारूपी निद्रामें सोता रहता है उस मूढ़ पुरुष कलिपर अनुग्रह करनेके लिये ईश्वर कृष्ण अवतारको धारण करते हैं यत्किञ्चित्श्रेयवाला द्वापर अर्धप्रबुद्ध होता है उस समय ईश्वर पीत अर्थात् सुवर्णकी समान मनोहर होते हैं थोड़ी भक्तिसे ही भक्तकी ओर उन्मुख होजाते हैं,कल्याणके लिये यत्न करनेवाला त्रेता कहलाता है उसपर अनुग्रह करनेके लिये वह माताकी समान रक्त अर्थात् स्नेह करनेवाले होते हैं और जो युधिष्ठिर आदिकी समान अत्यन्त भक्त होता है उस कुशल पुरुषके प्रति

अवधीत् स हिरण्याक्षं दिव्यरूपधरो हरिः । दंष्ट्राग्रेण तु निमज्जन्तीमेष देवो वसुन्धराम् ॥ ३२ ॥ वाराहं वपुराश्रित्य जगतो हितकाम्यया । जघ्ने हिरण्यकशिपुं नारसिंहवपुर्हरिः ॥ ३३ ॥ जिगाय जगतीं चैव विष्णुर्वामनरूपधृक् । ववन्ध च बलिं देवः श्रीमान् पन्नगबन्धनैः ॥ ३४ ॥ देवदानवसम्भूतामाक्रामयदपि श्रियम् । स्वयमनन्तः पुरा विष्णुरुदारोऽमितविक्रमः ॥ ३५ ॥ सावशेषं तपो यस्य तन्निहन्ते जनार्दनः । अलीकेष्वपि वर्त्तन्तं व्रतमेतन्महात्मनः ॥ ३६ ॥ जघ्ने च दानवान् मुख्यान् देवानां ये च शत्रवः । तव प्रियार्थं गोविन्दो धर्मनित्यः सतां गतिः ३७ रामत्वमपि चावाप्य जघ्ने रावणमात्मवान् । भूत्वा कामगुणा-

---

वह शुक्ल होते हैं अर्थात् अपने शुद्धरूपको ही प्रकाशित कर-देते हैं) ॥ ३१ ॥ इन दिव्यरूप धारण करने वाले हरिने हिरण्याक्षको मारडाला था और इन देवने जगत्‌का हित करनेकी इच्छासे वराहका शरीर धारण कर जलमें डूबती हुई पृथ्वीका उद्धार किया था और इन हरिने नरसिंहका शरीर धारण करके हिरण्यकशिपुको मारडाला था ३२–३३ और इन श्रीमान् विष्णुदेवने वामनका रूप धारण कर पृथ्वीको जीत लिया था और सर्पबन्धनोंसे बलिको बाँध लिया था ॥३४॥ इन अमित-विक्रमी अनन्त और उदार विष्णुने देवदानवोंकी साधारण लक्ष्मीको भी तुम्हारे स्थापित करदिया था ॥ ३५ ॥ यह जनार्दन, जिनका कुछ तप बाकी रहजाता है और जो मायामें लिपटे रहते हैं उनको मार डालते हैं यह इन महात्माका व्रत है३६धर्म-नित्य सज्जनों की गति गोविन्दने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये देवताओंके शत्रु मुख्य २ दानवोंको भी मारडाला है ॥ ३७ ॥ इन आत्मवानने रामावतारमें रावणको मारडाला था और अवतारोंमें यथेष्ट शौर्यादि गुणोंवाले राक्षसोंको इस प्रकार

श्चैव जघान द्विरदं हरिः ॥ ३८ ॥ हिताय जगतोऽद्यापि लोके वसति मानुषे । उपेंद्रो जगतां नाथः सर्वभूतोत्तमोत्तमः ॥३९॥ जटी कृष्णाजिनी दण्डी दृष्टपूर्वो मया हरिः । दैतेयेषु चरन् देवस्तृणेष्वग्निरिवोद्धतः ॥ ४० ॥ अद्राक्षमपि गोविंदं दानवैर्व्याप्तं जगत् । कुर्वाणं दानवैर्हीनं जगतो हितकाम्यया ॥४१॥ अवश्यं पारिजातं ते नयिष्यति जनार्दनः । द्वारकाममरश्रेष्ठ नानृतं च ब्रवीम्यहम् ॥ ४२ ॥ भ्रातृस्नेहाभिभूतस्त्वं न कृष्णे प्रहरिष्यसि । नातिकृष्णस्त्वयि ज्येष्ठे प्रहरिष्यति वासव ॥४३॥ नैव चेच्छ्रोष्यति प्रोक्तं मया देव कथंचन । पृच्छ त्वं नयधर्मज्ञान् ये हितास्तव मन्त्रिणः ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच । नारदेनैवमुक्तस्तु महेन्द्रो जनमेजय । इदमुत्तरमीशोऽथ प्रत्युवाच जगद्

मारडाला था जैसे सिंह हस्तीको मारडालता है ॥ ३८ ॥ सब श्रेष्ठ भूतोंसे भी उत्तम जगत्के नाथ यह उपेन्द्र आज कल भी जगत्का हित करनेके लिये मनुष्यलोकमें निवास कररहे हैं ३९ जिस प्रकार तिनकोंमें अग्नि उद्धत होकर विचरण करता है, इसीप्रकार जटा कृष्णमृगका चर्म और दण्ड धारण करनेवाले नारायणको मैंने दैत्योंमें घूमते हुए देखा है ॥ ४० ॥ मैंने देखा है, कि—जगत्का हित करने की इच्छासे इन्होंने दानवोंसे व्याप्त सारे जगत्को दानवोंसे रहित करदिया था ॥ ४१ ॥ हे अमरश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण द्वारकामें पारिजातको अवश्य ही लेजायँगे इस बातको मैं असत्य नहीं कहता हूँ ॥ ४२ ॥ हे वासव ! भ्रातृस्नेहके वशमें होकर तुम कृष्णके ऊपर प्रहार न कर सकोगे और श्रीकृष्णभी तुम बड़े भाई हो इसकारण तुमपर प्रहार न करसकेंगे ॥ ४३ ॥ हे देव ! आप मेरी बातको यदि किसी प्रकार भी नहीं सुनें तो आप अपने नीति धर्मको जाननेवाले हितकारी मन्त्रियोंसे बूझिये ॥४४॥ वैशम्पायनजीने

गुरुम् ॥ ४५ ॥ एवं विधप्रभावं त्वं कृष्णं वदसि यद्द्विज । एवमेतत् सुबहुशः श्रुतं खलु मया मुने ॥ ४६ ॥ अतश्चैवंविधः कृष्णस्ततोऽहं तस्य नै तरुम् । न मदास्यामि दातव्यं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ४७ ॥ महाप्रभावो नाल्पार्थे रुष्येदिति विचिंतयन् । व्यवस्थितोऽहं भद्रन्ते मुने सर्वगुणादिति ॥ ४८ ॥ महाप्रभावाः सततं भवन्ति हि सहिष्णवः । श्रोतारश्चैव सततं वृद्धानां ज्ञानचक्षुषाम् ॥ ४९ ॥ महात्मा कारणेनाल्पकृष्णो धर्मभृताम्वरः । भ्रात्रा ज्येष्ठेन सर्वज्ञो विरोधं गन्तुमर्हति ॥५०॥ यथैव मम मातुः स वरं प्रादादधोक्षजः । तथैव तस्याः पुत्राणां ज्येष्ठानां सोढुमर्हति ॥ ५१ ॥ यथैवोपेन्द्रतां यातः स्वगमिच्छन् जनार्दनः ।

कहा, कि-हे जनमेजय ! जब नारदजीने इन्द्रसे इसप्रकार कहा तब उस ईशाने जगद्गुरुके विषयमें इसप्रकार प्रत्युत्तर दिया, कि-॥ ४५ ॥ हे द्विज । आपने श्रीकृष्णके ऐसे प्रभावका वर्णन किया परन्तु हे मुने ! मैंने इस बातको बहुत बार सुना है ४६ श्रीकृष्ण ऐसे हैं इसकारण ही मैं उन्हें तरु नहीं दूँगा सज्जनोंके धर्मका स्मरण करके इस तरुको देदेना चाहिये तब भी महाप्रभावशाली पुरुष थोड़ीसी बातके लिये रुष्ट नहीं होते हैं यह विचारकर मैं उन्हें तरु नहीं दूँगा हे मुने ! आपका कल्याण हो मैं तो सब प्रकारसे अब तयार हूँ ॥ ४७-४८ ॥ महाप्रभावशाली पुरुष सर्वदा सहिष्णु हुआ करते हैं और वे ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले वृद्धोंके वाक्योंको भी सर्वदा सुनते रहते हैं ४९ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ महात्मा कृष्ण थोड़ीसी बातके लिये क्या अपने भाईसे विरोध करेंगे ? ॥५०॥ उन अधोक्षजने जिसप्रकार अपनी माताको वरदान दिया है इसी प्रकार उनको उसके ज्येष्ठ पुत्रोंके ऊपर भी क्षमा करना चाहिये ॥ ५१ ॥ जनार्दन जिस प्रकार अपने आप ही उपेन्द्रताको प्राप्त होगए हैं इसीप्रकार

तथैव भ्रातुरिंद्रस्य मन्मानं कर्तुमर्हति ॥५२॥ ज्यैष्ठ्यमेतेन देवेन नारब्धं किं पुरानने । अथेदानीमपीच्छेत् स ज्येष्ठोऽस्तु मधुसूदनः सुनिश्चितं बलरिपुमीक्ष्य नारदो विसर्जितस्त्रिदशवरेण धर्मभृत् । ययौ पुरीं यदुवृषभाभिरक्षितां कुशस्थलीं धृतिमतिमांस्तपोधनः ५४ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे नारदस्य स्वर्गात् पुनरागमनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ७१

वैशम्पायन उवाच । अथैत्य द्वारकां रम्यां नारदो मुनिसत्तमः ददर्श पुरुषश्रेष्ठं नारायणमरिंदमम् ॥ १ ॥ स्ववेश्मनि सुखासीनं सहितं सत्यभामया । विराजमानं वपुषा सर्वतेजोतिगामिना ॥ २ ॥ तमेवार्थं महात्मानं चिन्तयंतं दृढव्रतम् । केवलं योजयंतं च वाक्यमात्रेण भामिनीम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वैव नारदं देवः

उनको अपने भाई इन्द्रका भी सत्कार करना उचित है ॥५२॥ इन्होंने क्या प्राचीन कालमें अर्थात् वामनावतारमें मेरी ज्येष्ठता स्वीकार नहीं की थी अब वह मधुसूदन क्या ज्येष्ठ बनना चाहते हैं ॥ ५२ ॥ इसप्रकार नारदजीने बलदैत्यके नाशक इन्द्रकी बातको भलीप्रकार सुनलिया तब देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रोंने धर्मात्मा नारदजीको तहांसे विदा करदिया तब वह बुद्धिमान् तपोधन नारदजी यादवोंमें वृषभकी समान श्रीकृष्ण से रक्षित कुशस्थली नामकी पुरीकी ओर चले ५४ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-इसके उरान्त मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदजी ने रमणीय द्वारकामें पहुँच कर अरिंदमन पुरुषश्रेष्ठ नारायणके दर्शन किये ॥ १ ॥ वह अपने भवनमें सत्यभामाके साथ सुखपूर्वक बैठे हुए थे और सब तेजोंका अतिक्रमण करने वाले अपने शरीरकी कान्तिसे खिल रहे थे ॥ २ ॥ वह दृढ़व्रत महात्मा उसी बातका विचार कर रहे थे और वाणीमात्रसे ही सत्यभामा

प्रत्युत्थाय अधोक्षजः । पूजयामास च तथा विधिदृष्टेन कर्मणा ४
सुखोपविष्टं विश्रांतं महस्य मधुसूदनः । वृत्तांतं परिपप्रच्छ पारि-
जाततरुं प्रति ॥ ५ ॥ अथाचष्ट मुनिः सर्वं विस्तरेण तपोधनः ।
इन्द्रानुजायेन्द्रवाक्यं निखिलं जनमेजय ॥ ६ ॥ श्रुत्वा कृष्णस्तु
तत् सर्वं नारदं वाक्यमब्रवीत् । अमरावतीं पुरीं यास्ये श्वोऽहं
धर्मभृतां वर ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा नारदेनैव सहितः सागरं ययौ ।
सन्दिदेश ततस्तत्र विविक्तो नारदं हरिः ॥ ८ ॥ महेन्द्रभवनं
गत्वा अद्य ब्रूहि तपोधन । अभिवाद्य महात्मानं मद्वाक्यममरो-
त्तमम् ॥ ९ ॥ न युद्धे प्रमुखे शक्र स्थातुमर्हसि मे प्रभो । पारि-
जातस्य नयने निश्चितं त्वमवे हि माम् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु
कृष्णेन नारदस्त्रिदिवं गतः । आचचक्षेऽथ कृष्णोक्तं देवेन्द्रस्या-

को समझा रहे थे ॥ ३ ॥ नारदजीको देखते ही श्रीकृष्ण उठ
खड़े हुए और उन्होंने शास्त्रोक्त रीतिसे उनकी पूजाकी ॥ ४ ॥
जब नारदजी विश्राम लेकर सुखपूर्वक बैठे हुए थे उस समय
मधुसूदनने उनसे पारिजात वृक्षका वृत्तान्त पूछा ५ हे जनमेजय !
उस समय तपोधन मुनिने इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णसे इन्द्रकी
सारी बात विस्तारपूर्वक कहदी ॥ ६ ॥ कृष्णने सब बात सुन
कर नारदजीसे यह बात कही, कि हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! मैं कल
अमरावती पुरीको जाऊँगा ॥ ७ ॥ नारदजीसे इस प्रकार बात
चीत कर वह नारदजीको साथमें लेकर समुद्रकी ओर चले तहाँ
पर उन्होंने एकान्तमें नारदजीको यह सन्देशा दिया, कि-८
हे तपोधन ! आज आप इन्द्रके भवनमें जाकर देवताओंमें श्रेष्ठ
महात्मा इन्द्रको प्रणाम कर मेरा वचन कहना, कि-९ हे शक्र !
हे प्रभो ! तुम्हें मेरे सामने युद्धमें खड़ा न होना चाहिये मेरा विचार
पारिजातको लेजानेका है इस बातको आप ठीक ही समझिये १०
श्रीकृष्णके इस प्रकार कहने पर नारदजी स्वर्गको चले गए और

मितौजसः ॥ ११ ॥ ततो बृहस्पतेः शक्रः शशंस बलनाशनः । श्रुत्वा बृहस्पतिर्देवमुवाच कुरुनन्दन ॥ १२ ॥ अहो धिग्ब्रह्मसदनं मयि याते शतक्रतो । दुर्नीतमिदमारब्धमत्र भेदो हि दारुणः ॥ १३ ॥ अनाख्यात्वा कथं नाम भवता भुवनेश्वर । ममैतत् कृत्यमारब्धं देव केनापि हेतुना ॥ १४ ॥ अथवा भवितव्येन कर्मजेन प्रयुज्यते । जगद्वृत्रघ्न विविधं न शक्यमनिवर्तितुम् ॥ १५ ॥ सहसैव तु कार्याणामारंभो न प्रशस्यते । तदेतत् सहसारब्धं कार्यं दास्यति लाघवम् ॥ १६ ॥ बृहस्पतिं महात्मानं महेन्द्रस्त्वब्रवीद्वचः । एवंगतेऽद्य यत्कार्यं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ १७ ॥ तमुवाचाथ धर्मात्मा गतानागततत्त्ववित् । अधो-

---

उन्होंने अमितपराक्रमी देवेन्द्रसे श्रीकृष्णकी कही हुई बात कही ११ हे कुरुनन्दन ! उस समय बलदैत्यका नाशकरनेवाले इन्द्रने बृहस्पतिजीसे यह सब बातें कहीं इन्द्रके वचनको सुनकर बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा, कि-॥१२॥ हे शतक्रतो ! मेरे ब्रह्मलोकको जाने पर आपने यह क्या कर लिया यह बात तो धिक्कारने योग्य है तुमने तो यह दुर्नीत काम आरम्भ करदिया इसमें तो दारुण भेद पड़जावेगा ॥१३॥ हे भुवनेश्वर देव ! आपने मुझसे विना बूझे हुए ही इस कामको क्यों आरम्भ करदिया ॥ १४ ॥ अथवा यह सब जगत् भवितव्य कर्मके अनुसार ही चला करता है, हे वृत्रासुरका नाश करनेवाले ! जगत्में अनेक प्रकारकी घटनाएँ होती, हैं उसको कोई रोक नहीं सकता ॥१५॥ कामोंका सहसा आरंभ करना अच्छा नहीं माना जाता आपने इस कामको सहसा आरम्भ करदिया है अतः यह काम आपको हलका बनादेगा १६ उस समय महेन्द्रने महात्मा बृहस्पतिसे यह बात कही कि-इस समय क्या करना चाहिये, यह आप बताइये उस समय भूत और भविष्यके तत्त्वको जाननेवाले उदार बुद्धि धर्मात्मा बृहस्पतिजीने

प्रत्युत्थाय अधोक्षजः। पूजयामास च तथा विधिदृष्टेन कर्मणा ४ सुखोपविष्टं विश्रान्तं महस्य मधुसूदनः। वृत्तान्तं परिपप्रच्छ पारिजाततरुं प्रति ॥ ५ ॥अथाचष्ट मुनिः सर्वं विस्तरेण तपोधनः। इन्द्रानुजायेन्द्रवाक्यं निखिलं जनमेजय ॥ ६ ॥ श्रुत्वा कृष्णस्तु तत् सर्वं नारदं वाक्यमब्रवीत्। अमरावतीं पुरीं यास्ये श्वोऽहं धर्मभृतां वर ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा नारदेनैव सहितः सागरं ययौ। सन्दिदेश ततस्तत्र विविक्तो नारदं हरिः ॥ ८ ॥ महेन्द्रभवनं गत्वा अद्य ब्रूहि तपोधन। अभिवाद्य महात्मानं मद्वाक्यममरोत्तमम् ॥ ९ ॥ न युद्धे प्रमुखे शक्र स्थातुमर्हसि मे प्रभो। पारिजातस्य नयने निश्चितं त्वमवेहि माम् ॥ १० ॥ एवमुक्तस्तु कृष्णेन नारदस्त्रिदिवं गतः। आचचक्षेऽथ कृष्णोक्तं देवेन्द्रस्या-

---

को समभा रहे थे ॥ ३ ॥ नारदजीको देखते ही श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए और उन्होंने शास्त्रोक्त रीतिसे उनकी पूजा की ॥ ४ ॥ जब नारदजी विश्राम लेकर सुखपूर्वक बैठे हुए थे उस समय मधुसूदनने उनसे पारिजात वृक्षका वृत्तान्त पूछा ५ हे जनमेजय ! उस समय तपोधन मुनिने इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णसे इन्द्रकी सारी बात विस्तारपूर्वक कहदी ॥ ६ ॥ कृष्णने सब बात सुन कर नारदजीसे यह बात कही, कि हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! मैं कल अमरावती पुरीको जाऊँगा ॥ ७ ॥ नारदजीसे इस प्रकार बात चीत कर वह नारदजीको साथमें लेकर समुद्रकी ओर चले तहाँ पर उन्होंने एकान्तमें नारदजीको यह सन्देशा दिया, कि–८ हे तपोधन ! आज आप इन्द्रके भवनमें जाकर देवताओंमें श्रेष्ठ महात्मा इन्द्रको प्रणाम कर मेरा वचन कहना, कि–९ हे शक्र ! हे प्रभो ! तुम्हें मेरे सामने युद्धमें खड़ा न होना चाहिये मेरा विचार पारिजातको लेजानेका है इस बातको आप ठीक ही समझिये १० श्रीकृष्णके इस प्रकार कहने पर नारदजी स्वर्गको चले गए और

मितौजसः ॥ ११ ॥ ततो बृहस्पतेः शक्रः शशंस बलनाशनः ।
श्रुत्वा बृहस्पतिर्देवमुवाच कुरुनन्दन ॥ १२ ॥ अहो धिग्ब्रह्म-
सदनं मयि याते शतक्रतो । दुर्नीतमिदमारब्धमत्र भेदो हि
दारुणः ॥ १३ ॥ अनाख्यात्वा कथं नाम भवता भुवनेश्वर ।
ममैतत् कृत्यमारब्धं देव केनापि हेतुना ॥ १४ ॥ अथवा भवि-
तव्येन कर्मजेन प्रयुज्यते । जगद्वृत्रघ्न विविधं न शक्यमनिव-
र्तितुम् ॥ १५ ॥ सहसैव तु कार्याणामारंभो न प्रशस्यते । तदे-
तत् सहसारब्धं कार्यं दास्यति लाघवम् ॥ १६ ॥ बृहस्पतिं
महात्मानं महेन्द्रस्त्वब्रवीद्वचः । एवंगतेऽद्य यत्कार्यं तद्भवान् वक्तु-
मर्हति ॥ १७ ॥ तमुवाचाथ धर्मात्मा गतानागततत्त्ववित् । अधो-

उन्होंने अमितपराक्रमी देवेन्द्रसे श्रीकृष्णकी कही हुई बात कही ११ हे कुरुनन्दन ! उस समय बलदैत्यका नाशकरनेवाले इन्द्रने बृहस्पतिजीसे यह सब बातें कहीं इन्द्रके वचनको सुनकर बृहस्पति ने इन्द्रसे कहा, कि-॥१२॥ हे शतक्रतो ! मेरे ब्रह्मलोकको जाने पर आपने यह क्या कर लिया यह बात तो धिक्कारने योग्य है तुमने तो यह दुर्नीत काम आरम्भ करदिया इसमें तो दारुण भेद पड़जावेगा ॥१३॥ हे भुवनेश्वर देव ! आपने मुझसे बिना बूझे हुए ही इस कामको क्यों आरम्भ करदिया ॥ १४ ॥ अथवा यह सब जगत् भवितव्य कर्मके अनुसार ही चला करता है, हे वृत्रासुरका नाश करनेवाले ! जगत्में अनेक प्रकारकी घटनाएँ होती हैं उसको कोई रोक नहीं सकता ॥१५॥ कामोंका सहसा आरंभ करना अच्छा नहीं माना जाता आपने इस कामको सहसा आरम्भ करदिया है अतः यह काम आपको हलका बनादेगा १६ उस समय महेन्द्रने महात्मा बृहस्पतिसे यह बात कही कि-इस समय क्या करना चाहिये, यह आप बताइये उस समय भूत और भविष्यके तत्त्वको जाननेवाले उदार बुद्धि धर्मात्मा बृहस्पतिजीने

मुखश्चिंतयित्वा बृहस्पतिरुदारधीः ॥ १८ ॥ अतस्त्वं सह पुत्रेण योधयस्व जनार्दनम् । तथा शक्र करिष्यामि यथान्याय्यं भविष्यति ॥ १९ ॥ बृहस्पतिस्त्वेवमुक्त्वा क्षीरोदं सागरं गतः । आचष्ट मुनये सर्वं कश्यपाय महात्मने ॥२०॥ तच्छ्रुत्वा कश्यपः क्रुद्धो बृहस्पतिमभाषत । अवश्यं भाव्यमेतद्धोः सर्वथा नात्र संशयः ॥ २१ ॥ इच्छतः सदृशीं भार्यां महर्षेर्देवशर्मणः । अपध्यानकृतो दोषः पतत्येष शतक्रतौ ॥ २२ ॥ अस्य दोषस्य शांत्यर्थमारब्धश्च मुने मया । उदवासः सदोषश्च प्राप्त एव सुदारुणः ॥ २३ ॥ तद्गमिष्यामि मध्येऽस्य सहादित्या तपोधन । उभौ तौ वारयिष्यामि दैवं सम्वदते यदि ॥ २४ ॥ बृहस्पतिस्तु

नीचेको मुख करके चिन्ता करनेके बाद उत्तर दिया, कि- १८ हे शक्र ! अब तू अपने पुत्रको साथमें लेकर श्रीकृष्णसे युद्धकर जो बात उचित होगी तैसा मैं करलूँगा ॥ १९ ॥ इसप्रकार कह कर बृहस्पतिजी क्षीर समुद्रको चलेगए और महात्मा कश्यपसे यह सब बात कही ॥ २० ॥ इसबातको सुनकर कश्यपने क्रुद्ध होकर बृहस्पतिसे कहा, कि-यह ऐसा ही होनेवाला था इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ महर्षि देवशर्माकी उनकेही समान (शुद्ध) भार्या थी उसको इन्द्रने चाहा था उन मुनिके अपध्यान का दोष इन्द्रके ऊपर पड़रहा है (अर्थात् इन्द्रने गौतम गोत्री देवशर्माकी अहल्या नामवाली स्त्रीकी अन्यायसे इच्छा की थी तब उन मुनिने इन्द्रको शाप दिया था, कि-तू मनुष्यको कुछ नहीं समझता है इस लिये तेरे ऊपर मनुष्यसेही बड़ाभारी भय पड़ेगा)॥ २२ ॥ हे मुने ! इस दोषकी शान्तिके लिये मैंने जलमें रहनेका व्रत आरम्भ किया था फिर भी वह दारुण शाप फलने ही लगा २३ हे तपोधन ! अब मैं अदितिको साथ लेकर तहाँ मध्यस्थ बननेके लिये जाताहूँ यदि प्रारब्ध कहेगा अर्थात् प्रारब्ध

धर्मात्मा मारीचमिदमब्रवीत् । प्राप्तकालं त्वया तत्र भवितव्यं तपोधन ॥२५॥ तथेति कश्यपश्चोक्त्वा संप्रस्थाप्य बृहस्पतिम् । जगामार्चयितुं देवं रुद्रं भूतगणेश्वरम् ॥२६॥ तत्र सौम्यं महात्मानमानर्च्य वृषभध्वजम् । वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहितः प्रभुः ॥२७॥ तुष्टाव च तमीशानं मारीचः कश्यपस्तदा । वेदोक्तैः स्वकृतैश्चैव स्तवैः स्तुत्यं जगद्गुरुम् ॥ २८ ॥ कश्यप उवाच । उरुक्रमं विश्वकर्माणमीशं जगत्स्रष्टारं धर्मदृश्यं वरेशम् । तं सर्वं

अनुकूल होगा तो मैं उन दोनोंको शान्त करसकूँगा२४उससमय धर्मात्मा बृहस्पतिने कश्यपजीसे यह बात कही,कि-हे तपोधन ! समय आनेपर आप तहाँ(अवश्य)हों२५तब कश्यपने'तथास्तु'कह करके बृहस्पतिजीको विदा करदिया और अपने आप भूतगणोंके ईश्वर भगवान् रुद्रकी पूजा करनेके लियेचले२६तहाँ(कैलास)पर जाकर वर चाहने वाले बुद्धिमान् प्रभु कश्यपने अदितिके साथ वृषभध्वज महात्मा शंकरकी और उमाकी पूजाकी२७वे मरीचिपुत्र कश्यप वेदमें कहे हुए और अपने बनाए हुए स्तोत्रोंसे जगद्गुरु शंकरकी स्तुति करने लगे२८कश्यपने कहा,कि-मैं उरुक्रम विश्वकर्मा ईश जगत्के रचनेवाले धर्मसे दीखने वाले श्रेष्ठ पुरुषोंके स्वामी सर्वात्मक धृतिधारियोंके अधिष्ठानरूप आप दिव्य विश्वेश्वरको प्रणाम करता हूँ (उरुक्रमका यह अर्थ है जिनका पैर रखना त्रिलोकीको भी नाप सकता है इतना बड़ा होता है ऐसे भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ परन्तु वामनावतार में विष्णुने ऐसा किया था रुद्रने ऐसा नहीं किया था इस शंकाका उत्तर यह है, कि-विष्णु और शिवमें अभेद है वे बिम्ब और प्रतिबिम्बरूप है शास्त्रमें लिखा है कि-" एकस्यैव विश्वेश्वरस्य सर्वाणीमानि नामानि ।" अर्थात् यह सब नाम एक विश्वेश्वरके ही हैं । वह धृतिमद्धाम है इसका विशेष विवरण इस प्रकार है, कि-"धृत्या

त्वां धृतिमद्धाम दिव्यं विश्वेश्वरं भगवंतं नमस्ये ॥ २६ ॥ यो देवानामधिपः पापहर्ता नं तं विश्वं येन जगन्मयत्वात् । आपो गर्भं यस्य शुभा धरित्र्यो विश्वेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ३० ॥ शालावृकान्यो यतिरूपो निजघ्ने दत्तानिन्द्रेण प्रणुद्रो हितानाम् विरूपाक्षं सुदर्शनं पुण्ययोनिं विश्वेश्वरं शरणं यामि मूर्ध्ना ३१ भुंक्ते य एको विभुर्जगतो विशामग्र्यं धाम्ना धाम सुकृतित्वान्न

यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः । योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।" ऐसी सात्विक बुद्धिको धारण करने वालों के धाम अर्थात् स्वप्रकाश चैतन्यरूप अधिष्ठानात्मक शिवको मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ २६ ॥ जो देवताओंके स्वामी हैं पापोंके हर्ता हैं जगन्मय होनेके कारण विश्वकी प्रत्येकमूर्तिमें विराजमान शिवको मैं प्रणाम करता हूँ (" आपः पुरुषवचसो भवन्ति-आप अर्थात् जल पुरुषवाचक हैं इसलिये उनका कार्य आप अर्थात् शरीर है) वह आप शरीर जिनके प्रतिबिम्ब चैतन्यरूप गर्भको अर्थात् जीवको धारण करते हैं उन विश्वेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ३० ॥ जो इन्द्रके प्रेरित भेड़ियोंको यतिका रूप धारण कर अर्थात् जितेन्द्रिय होकर मारडालते हैं और जो (शम दम आदि-रूप) हितकारी मित्रोंको प्रेरित करने वाले हैं उन विरूपाक्ष सुदर्शन पुण्ययोनि विश्वेश्वरको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ (श्रुतिमें लिखाहै; कि-"अरुन्मुखान्यतीन् शालावृकेभ्यः प्रायच्छम् ।" अर्थात् वेदान्त विचारहीन अजितेन्द्रिय पुरुषको यतिका रूप धारण करनेवाला इन्द्र इन्द्रियरूपी भेडियोंसे उसका भक्षण करा-देता है उनको यतिरूप बनकर अर्थात् शिवरूप बनकर जिते-न्द्रियमारलाडता है) ३१ जो एक जगत्के स्वामी हैं और अग्रविश्वका अर्थात् विशुद्ध पुरुषका साधन करता है और अथवा सूक्ष्म विश्वका संहार करता हैं और (चक्षु सूर्यादि)

धृष्यः । पुष्यात् स मां महसा शाश्वतेन सोमपानां मरीचिपानां वरिष्ठः ॥३२॥ अथर्वाणं सुशिरसं भूतयोनिं कृतिनं वीरं दानवानां च बाधम् । यज्ञे हुतिं यज्ञियं संस्कृतं वै विश्वेश्वरं शरणं यामि देवम् ॥ ३३ ॥ जगज्जालं विततं यत्र विश्वं विश्वात्मानं प्रीतिदं शरणं गतानाम् । य ऊर्ध्वगं रथमास्थाय याति विश्वेश्वरः सुमना मेऽस्तु नित्यम् ॥ ३४ ॥ अन्तश्चरं रोचनं चारुशाखं महाबलं धर्मनेतारमीड्यम् । सहस्रनेत्रं शतवर्त्मानमुग्रं महादेवं विश्वसृजं नमस्ये ॥ ३५ ॥ शुचिं योगं शंसनं शांतपापं शर्वं शम्भुं शंकरं भूतनाथम् । धुरंधरं गोपतिं चन्द्रचिह्नं हृषीकाणामयनं यामि

तेजोंका धाम है अर्थात् मक्त शान्त है और सुकृत होनेसे अधृष्य अर्थात् ब्रह्म होनेसे अभयरूप है वह सोमपों (कर्मठों) में और मरीचिपोंका (चन्द्रमाकी किरणोंका पान मात्र करके रहने वाले) महामुनियोंमें श्रेष्ठ है अर्थात् ब्रह्मलोक आदि स्थानोंको देने वाले हैं वह मुझे अपने शाश्वत तेजसे पुष्ट करें ॥ ३२ ॥ मैं अथर्ववेदप्रतिपाद्य (पञ्चकोपरूप) शिरवाले जगत्के कारण पुण्यात्मा वीर और दानवोंके बाधक यज्ञमें आहुति पाने वाले संस्कृत हविरूप विश्वेश्वर महादेवकी शरण लेता हूँ ॥ ३३ ॥ जिस (अधिष्ठान) में जगत्रूपी जाल फैला हुआ है वह विश्वस्वरूप विश्वात्मा शरणमें आनेवालोंको प्रीति देनेवाले और ऊर्ध्वगामी रथपर बैठालने वाले विश्वेश्वर मेरे लिये सदा सुख देने वाले हों ॥३४॥ अन्तःकरणमें फिरने वाले रोचन(चिन्मय) (वेदरूपी) रमणीय शाखा वाले महाबली धर्मके नेता पूजनीय सहस्र नेत्रोंवाले सैंकड़ों प्रकारके कर्ममार्गसे फल देनेवाले उग्र विश्वस्रष्टा महादेवजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ शुचि (असंग) योग (योगसे जाननेमें आने वाले) शंसन (वेदोंसे प्रशंसित) नष्टपाप शर्व (सबका संहार करने वाले) शम्भु

मूर्द्धनं ॥ ३६॥ आशुः शिशानं वृषभं रोरुवाणं कृतं धर्मं वितथं चाशुशेपम् । वसुन्धरं समबुद्धीकं समं त्वां धृतव्रतं शूलधरं प्रपद्ये ३७ अनन्तवीर्यं धृतकर्माणमाद्यं यज्ञाशेषं यजतां चाभियाज्यम् । हविर्भुजं भुवनानां सदैवं ज्येष्ठं द्विजं धर्मभृतां प्रपद्ये ॥ ३८ ॥ परं गुणेभ्यः पृश्निगर्भस्वरूपं यशः शृंगं व्यूहनं कान्तरूपम् । शुद्धात्मानं पुरुषं सत्यधामं संमोहनं दुष्कृतिनां नमस्ये ॥ ३९ ॥ युक्तोंकारं स्वशिरसं चारुकर्म दृढव्रतं दृढधन्वानमाजम् । शूरं

(सुखके हेतु) शंकर (सुख करने वाले) भूतोंके स्वामी (जगत्के बोझको धारण करने वाले) इन्द्रियोंके स्वामी चन्द्रमाको मुकुटमें धारण करने वाले और काल आदिक हिंसकोंके आश्रय महादेवजीको मैं मस्तकसे प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ शीघ्र फल देने वाले (रागादिदोषोंको) घिसने वाले (शमादि गुणोंके) बरसाने वाले (प्रातः सवन आदि क्रमसे) गर्जना करनेवाले, कृत अनुष्ठित, धर्म-यज्ञादिरूप पहले रचे हुए पुण्यके फलको शीघ्र ही भुगवा कर नष्ट करने वाले इसी लिये निष्फलप्राय वसु कर्मज पुण्य धारण करने वाले सत्वशुद्धिपूर्वक उपासनीय सम-बुद्धिकी अवधिरूप अर्थात् सर्वस्वरूप व्रत धारण करने वाले शूलधारी महादेवजीकी मैं शरण लेता हूँ ॥३७॥ अनन्तवीर्य धृतकर्म आद्य यज्ञाशेष-पुरुषार्थरूप पूजा करनेवालोंके लिये पूजनीय भवनोंकी हविके भोक्ता सर्वदा ज्येष्ठ धर्मधारियोंके बीच में शिवकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ३८ ॥ गुणोंसे पर-इन्द्रियादिकों से पर विष्णुस्वरूप यशःशृङ्ग जगत्को रमणीयतासे व्यूहित करने वाले मनोहर रूपवाले शुद्धात्मा पुरुष सत्यधाम (अबाधित चैतन्यस्वरूप) दुष्कर्मियोंको मोहमें डालनेवाले शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ योगियोंके लिये ओंकार अर्थात् सर्वप्रपञ्चरूप, ओंकारके शिरकी अर्धमात्रारूप, सुन्दर कर्म वाले

वेत्तारं धनुषोऽस्त्रातिरेकं पतिं पशूनां शमनं नमस्ये ॥४०॥ एको रातिश्चैव भूतं भविष्यं सर्वातिथिर्यो हि जुषत्यरिघ्नः। अरिंतुदोऽनुत्तमः सम्विभागी विभाजको मां भगवान् पातु देवः ॥४१॥ य एको याति जगतां विश्वमीशो य एकोदान्मरुतां प्राणमग्र्यम्। येनानृशंस्याच्छाश्वतं सामजुष्टं स मां जुष्यात् सुकृतिश्रेयसेऽद्य४२ ब्रह्मासृजद्यो भुवनोत्तमोत्तमं तृप्तो विद्वान् ब्राह्मणः षाड्गुणस्य। सृष्ट्वा रसं व्याहृतिस्थं समग्रं सपायादिह बहुरूपो विहांगैः ४३ व्यंजनोजिनोथ विद्वान् समग्रः स्पृशिः शम्भु प्राणदः कृत्ति-

दृढव्रतधारी दृढधनुषधारी कोपणक्रियारूप, शूर, धनुषके वेत्ता सब अस्त्रोंसे अधिक (अज्ञानी जीवरूप) पशुओंके संहारक शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ एक अर्थात् अद्वितीय, राति-मित्र भूत और भविष्यरूप और जो कामादि शत्रुओंके नाश करनेवाले सर्वातिथि अर्थात् अग्निस्वरूपसे (हविका) भक्षण करते हैं, अरिन्तुद (रक्षोघ्न) हैं विभागका सेवन करते हैं और विभाजक हैं वह देव मेरी रक्षा करें॥४१॥ जो जगत्का ईश एक होने पर भी विश्वमें (जलमें चन्द्रमाकी समान) प्रवेश करता है और जो मरुतोंको श्रेष्ठ प्राण देता है अर्थात् प्राणोंका भी प्राण है जिसने दयालु होनेके कारण सामके साथ शाश्वती मित्रताकी है वह महादेव आज पुण्यात्माओंका कल्याण करनेके लिये मुझसे प्रीति करें ॥४२॥ ब्रह्माने भुवनों में उत्तम सत्यलोकको रचा है क्योंकि-वह ब्राह्मण और ब्रह्म-वेत्ता हैं और वह विद्वान् ऐश्वर्य ज्ञान यश श्री वैराग्य और धर्मसे तृप्त हैं अर्थात् पूर्ण हैं पूर्ण होनेसे ही उन्होंने व्याहृतिस्वरूपको उसके अर्थभूत सारे प्रपञ्चको रचकर फिर उसमें ही प्रवेश किया था (ऐसे ब्रह्मस्वरूप आप ही हैं) आप अपने (सर्वज्ञता आदि) अङ्गोंसे अनेक रूपोंको धारण करते हैं ॥ ४३ ॥ आप व्यञ्जन

वासाः । रसो ध्रुवः पवमानस्य भर्ता सपत्नीशः शंकरः सारधाता ॥ ४४ ॥ त्र्यम्बकं पुष्टिदं वो ब्रुवाणं धर्मं विप्राणां वरदं यज्वनां च । वरात् वरं रणजेतारमीशं देवं देवानां शरणं यामि रुद्रम् ॥४५॥ आस्यं देवानामंतकं दुष्कृतीनां त्रिवृत् सोमं वृत्रहं कर्मसाक्ष्यम् । भूतायनं भूतपतिं गुणज्ञं गुणाकारं शरणं यामि रुद्रम् ॥ ४६ ॥ अनुदृश्यतं यज्ञकर्तारमन्तं मध्यं चाद्यं यज्ञकृतां साम्यरूपम् । वेदव्रतेषु बहुधा गीतमीशमपि त्रिविष्टपं शरणं यामि रुद्रम् ॥ ४७ ॥ महाजिनं व्रतिनं मेखलालं सुतोपगं क्रोध-

---

हैं अर्थात् अतीन्द्रिय इन्द्रिय आदि विषयोंके जानने वाले हैं, अजन अर्थात् अजन्मा है विद्वान हैं समग्र अर्थात् दृष्टि दृश्य और आत्मा हैं, स्पृशि-विषयोंका स्पर्श करने वाले, शम्भु-उसके स्पर्श शब्दके भोक्ता, प्राणद-जीवन देनेवाले कृत्तिवासा, चर्मको धारण करने वाले, ध्रुवरस-परमानन्दस्वरूप पवमानके अर्थात् वायुके भर्ता-प्राणपति, सपत्नीश पत्नी और स्वामीके साथ, शंकर-उसके फलको देने वाले और बोधसे उत्पन्न होने वाले हैं ॥ ४४ ॥ त्रिनेत्र (ब्राह्मणोंको) पुष्टि देने वाले धर्मवक्ता, यज्ञ करने वाले और विप्रोंको वरदान देनेवाले, परमश्रेष्ठ, रणमें जीतने वाले, ईश और देवदेव रुद्रकी मैं शरण लेता हूँ देवताओंके (अग्निस्वरूप) मुख, पापियोंके यमराज, त्रिवृत् (स्तोम वाले) सोम (योगरूप संसाररूपी) वृत्रका नाश करने वाले, कर्मके साक्षी, भूतोंके (लय) स्थान, भूतोंके स्वामी, गुणोंको जानने वाले और गुणस्वरूप विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ ४६ अनुदृश्य यज्ञकर्ता यज्ञ करने वालोंमें आदि मध्य और अन्त (स्वरूप) प्रकृति स्वरूप, वेदोक्त व्रतोंमें अनेक देवतारूपसे गाए हुए, स्वर्गव्यापी नियन्ता शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ४७ हस्तीका चर्म धारण करने वाले, व्रतधारी, मेखलासे अलंकृत

धन्वं विपापम् । भूतं क्षेत्रज्ञं गुणिनं वा कपर्दिनं नतोऽस्मीशं वन्दनं वन्दनानाम् ॥४८॥ देवं देवानां पावनं पावनानां कृतिं कृतीनां महतो महान्तम् । शतात्मानं संस्तुतं गोपतीनां पतिं देवं शरणं यामि रुद्रम् ॥ ४९ ॥ अन्तश्चरं पुरुषं गुह्यसंज्ञं प्रभास्वन्तं प्रणवं विप्रदीपम् । हेतुं परं परमस्याक्षरस्य शुभं देवं गुणिनं सन्नतोऽस्मि ॥ ५० ॥ प्रसूतिरुभयोर्न प्रसूतश्च सूक्ष्मः पृथग्भूतेभ्यो न पृथक्चैकभूतः । स्वयं भूतः पातु मां सर्वसादः प्रदः स्वादः

अल्प आयास (परिश्रम) से ही प्रसन्न होने वाले, कोषके स्वामी, पापरहित, भूत (नित्यसिद्ध) अत एव क्षेत्रज्ञ (देह इन्द्रिय अहंकार आदिके प्रकाशक, गुणी, कपर्दी और वन्दनीयों के भी वन्दनीय शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४८ ॥ देवताओं के देव, पवित्रोंको भी पवित्र करने वाले, कृति अर्थात् यज्ञोंके भी यज्ञ-पूजनीयोंके भी पूज्य, बड़ोंसे भी बड़े, अनन्त मूर्तिवाले, इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंसे संस्तुत और इन्द्रियोंके स्वामी रुद्रदेव की मैं शरण लेता हूँ ४९ अन्तःकरणमें फिरने वाले पुरुष, गुप्त चिन्हवाले, स्वप्रकाश, ओंकार त्रिप्रदीप (ज्योति भी सूर्य आदि ज्योतिको भीतरसे चक्षु आदिके द्वारा भासित करती है ऐसे विगतप्रदीप होनेके कारण, विप्रदीप), जीव नामवाले प्रतिबिम्बके बिम्बभूतहेतु गुणवान् शुभदेवको मैं प्रणाम करता हूँ ५० दोनों अर्थात् जगत् और जीवके उत्पत्तिस्थान और कारणातीत होनेसे उत्पत्तिस्थान रहित इसी लिये सूक्ष्म (दुर्ग्राह्य) भूतोंसे पृथक्, और भूतोंसे पृथक् न होकर उनके अधिष्ठानभूत एक (सर्वजगत्के अधिकारण होनेसे), स्वयंभूत, सर्वसाद (जिस में सबके सब लीन होजाते हैं प्रद-श्रेष्ठ वस्तुओंको देने वाले, स्वाद-रुचि (आम्र आदिकोंमें माधुर्यरूपसे यह ही वर्तमान रहते हैं) सम्मद-हर्ष, और रत्न अर्थात् रमणीय शिव मेरी रक्षा

सम्मदः पातु रक्षम् ॥५१॥ आसन्नः सन्नतरः साधनानां श्रद्धावतां श्राद्धवृत्तिप्रणेता । पतिर्गणानां महतां सत्कृतीनां पायान्मेपः पूरणः षड्गुणानाम् ॥५२॥ अन्तर्बहिर्व्याधिजिनानां निहन्ता स्वयं कर्ता भूतभावी विकुर्वन् । धृतायुधः सुकृतिनामुत्तमौजाः प्रणुद्यान्मे वृजिनं देवदेवः ॥ ५३ ॥ येनोद्धृतास्त्रैः पुरमायिनो वै दग्धा घोरेण वितथीताः शरेण । महत् कुर्वन्तो वृजिनं देवतानां ज्यायांनीशः पातु विश्वोदधाता ॥५४॥ भागीयसां भागमतोन्तं मिच्छन् मखो दाक्षो येन कृतोन्यथावत् । विद्वान् यज्ञस्यादिर-

---

करें ॥ ५१ ॥ अन्तर्यामी होनेके कारण आसन्न अर्थात् निकट रहनेवाले, साधन वालोंके लिये अतिनिकट अर्थात् अनावृत, और श्रद्धावालोंको श्रद्धासे ग्रहणकी जाने वाले महावाक्यवृत्ति अहं ब्रह्मास्मिके ज्ञानको देनेवाले परम पुण्यात्मा गणोंके स्वामी और (सर्वज्ञत्वादि) छः गुणोंके पूर्ण करने वाले यह शिव मेरी रक्षा करें ॥ ५२ ॥ भीतरी बाहरी आधिव्याधियोंके वा काम क्लेश आदिके नाशक स्वयंकर्ता अर्थात् निमित्तकारणरूप, भूतरूपसे परिणमन पानेके स्वभाव वाले अर्थात् उपादान कारणरूप, क्रोधादिकका आविष्कार करने वाले, आयुधोंको धारण करने वाले उत्तम तेजस्वी देवदेव पुण्यात्माओंके और मेरे पापोंको नष्ट करें ॥ ५३ ॥ देवताओंका बड़ाभारी अपराध करनेवाले पुरमें बैठ कर माया करने वाले राक्षसोंको अस्त्रोंके द्वारा जिन घोर शिवजीने जलाया है और शस्त्रके द्वारा नगरके भस्म होने से शस्त्र पूतन होनेके कारण जिन्होंने राक्षसोंका मरणविफल कर दिया है वह सबसे बड़े ईश सारे जगतके अर्थात् सब कारणोंमें प्रधान कारणोंके धारक शिव मेरी रक्षा करें ॥ ५४ ॥ जिन्होंने अधिकभाग चाहनेवाले, देवताओंके भाग को लुप्त करना चाहा था, और दक्षप्रजापतिका यज्ञ छिन्न होने पर जिनकी शरणमें

र्थातः सदेवः पायादीशो मां दक्षयज्ञान्तहेतुः ॥ ५५ ॥ अन्यो भन्यः संस्कृतश्चोत्तमश्च जगत् सृष्ट्वा योऽस्ति सर्वातिगुह्यः । स मां मुखप्रमुखे पातु नित्यं विचिन्वानः प्रथमः षड्गुणानाम् ॥ ५६ ॥ गुणत्रकाल्यं यस्य देवस्य नित्यं सत्वोद्रेको यस्य भावात् प्रसूतः । गोप्ता गोप्तृणां सन्नदो दुष्कृतीनामाद्यो विश्वस्य बाधमानस्य क्रुद्धः ॥ ५७ ॥ धाम्नो यस्य हरिरग्रोऽथ विश्वो ब्रह्मा पुत्रैः सहितश्च द्विजाश्च । पराभूता भवने यस्य सोऽगो जुषस्त्वेषः श्रेयसे

आगा था वह यज्ञके आदि और अन्त तथा दक्षके यज्ञका अन्त करनेवाले ईश मेरी रक्षा करें ५५ जो जगत्की रक्षा करके उसका भक्षण करजाते हैं, अति गुह्य ब्रह्मरूपी ईश्वरसे अन्य हैं, (पालन कर्ता विष्णुस्वरूप) भन्य है शम आदि संस्कार होने के कारण उत्तम हैं और जिसमें मुखसे उत्पन्न होने वाले (इन्द्र और अग्नि जिसमें मुख्य हैं ऐसे यज्ञमें अपने अभेदसे सर्वत्र ईश्वरको देखने वाले ऐश्वर्य आदि षड्गुणोंके मुख्य आश्रय मेरी (और मेरी सन्तानकी रक्षा करें) ५६ जिस देवमें गुणत्रिकालपना सर्वदा रहता है-अर्थात् जिनमें कार्यकी उत्पत्ति स्थिति और संहारका समय नित्य रहता है अर्थात् जिनमें प्रवाह-नित्यतासे उत्पत्ति आदि होती रहती है(इससे शिवका ब्रह्मकर्म सूचित किया है) और जिनमें सत्वोद्रेक अर्थात् सत्वाधिक्य है और वह सत्वोद्रेक जिन विष्णुरूपके स्वरूपसे प्रकट हुआ है उन इन्द्रियोंके रक्षक (सत्वमय होनेसे कृष्ण इन्द्रियोंके रक्षक हैं, और कालरुद्ररूपसे) पापियोंको नाश देने वाले हैं, विश्वके आद्य अर्थात् माता पिताकी समान पालक हैं और पीड़ितोंको क्रुद्ध होकर नष्ट कर डालते हैं ५७ जिसके तेजोजालके विष्णु अग्र अर्थात् सूक्ष्मरूप हैं, और विश्व अर्थात् विराट ब्रह्मा हिरण्य-गर्भ अपने सनकादिक पुत्रोंके साथ और मरीचि आदि ऋषियों

साधु गोप्ता ॥ ५८ ।यस्माद्भूतानां भूतिरन्ते च गच्छन्ति भूतिर्भूति-
र्यश्च गुहाश्रुतिश्च । गुहाभिभूतस्य पुरुषेश्वरस्य महात्मनः संमृड-
वेद्यस्य तस्य ॥५६॥ यल्लिङ्गाङ्क त्र्यम्बकः सर्वगीशो भगलिङ्गाङ्क
यद्युमा सर्वधात्री । नान्यतृतीयं जगतीहास्ति किञ्चिन्महादेवात्
सर्वसर्वेश्वरोऽसौ ॥ ६० ॥ इति संस्तूयमानस्तु भगवान् वृषभ-
ध्वजः । दर्शयामास धर्मात्मा कश्यपं धर्मवृत्तरम् ॥६१॥ उवाच
चैनं देवेशः प्रसन्नेनान्तरात्मना । येन संस्तौषि कार्येण त्वं तज्जाने
प्रजापते ॥ ६२ ॥ इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ देवौ प्रकृतिमेष्यतः ।
पारिजातं तु धर्मात्मा नयिष्यति जनार्दनः ॥ ६३ ॥ अप या ।

साथ जिसके भवनमें प्रवेश नहीं करसकते हैं वह सज्जनोंके
रक्षक उमासहित महादेवजी मेरा कल्याण करनेके लिये मुझ
पर प्रसन्न हों ५८ जिनसे आकाश आदि भूतोंकी उत्पत्ति होती
है और जिनमें आकाश आदि भूत लीन होजाते हैं और जिनमें
आकाश आदि स्थित रहते हैं और एक शिवको ही जानना
चाहने वाले पुरुष पर जो धृति आदिरूप अनुग्रह करते हैं और
जिस गुहामें रहने वाले पुरुषेश्वरकी कृपासे गुप्त वस्तुका श्रवण
होता है ॥५६॥ त्र्यम्बक सबके ईश शिव लिङ्गाङ्कित हैं और
सबकी धारण करने वाली उमा भगलिङ्गाङ्कित हैं और इस
जगत्में तीसरे लिङ्ग वाला और कोई नहीं है इस लिये महादेव
सबोंके ईश्वर हैं ।६०। इसप्रकार भगवान् वृषभध्वजकी स्तुति
करने पर उन्होंने धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा कश्यपको अपना
दर्शन दिया ६१ उस समय देवेश शिवने प्रसन्न मनसे उनसे
कहा, कि—हे प्रजापते कश्यप ! तुम जिस कारण मेरी स्तुति
कररहे हो उस बातको मैं जानता हूँ ।६२। महात्मा इन्द्र और
उपेन्द्र प्रकृतिको प्राप्त होजावेंगे परन्तु जनार्दन पारिजात वृक्षको
लेजावेंगे ६३ देवशर्मा नामक मुनिने इन्द्रका अपध्यान किया

महेन्द्रो हि मुनिना देवशर्मणा । अस्याक्रान्तत् पुरा भार्या तपो दीप्तस्य कश्यप ॥ ६४ ॥ गम्यतां तत्र धर्मज्ञ दाक्षायिण्या सह त्वया । अदित्या शक्र-सदनं श्रेयस्ते पुत्रयोर्ध्रुवम् ॥ ६५ ॥ इति हरवचनं निशम्य विद्वान् कमलभवात्मजसूनुरप्रमेयः । त्रिदशगणगुरुं प्रणम्य रुद्रं मुदितमना सुमनौकसं जगाम ६६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कश्यपकृतरुद्रस्तोत्रं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ विष्णुर्महातेजा मुहूर्ताभ्युदिते रवौ । मृगयाव्यपदेशेन ययौ रैवतकं गिरिम् ॥ १ ॥ आरोप्यैकरथे देवः सात्यकिं नरपुङ्गवम् । प्रद्युम्नमनुगच्छेति प्रोक्त्वा कुरुकुलोद्वह ॥ २ ॥ रैवतं च गिरिं देवो गत्वा दारुकमब्रवीत् । मदीयं रथमेनं त्वं प्रहायेहैव दारुक ॥३॥ प्रतिपालय मां सौम्य दिनार्धं

था हे कश्यप ! इसने पहिले तपोदीप्त कश्यपकी भार्याको चाहा था ६४ हे धर्मज्ञ ! अब तुम दाक्षायणी अदितिको साथ लेकर शक्रभवनको जाइये तहाँ जाने पर आपके पुत्रोंका कल्याण अवश्य होगा ॥६५॥ ब्रह्माजीके पुत्र प्रसन्न मन वाले अप्रमेय कश्यपजी शिवजीके वचनको सुनकर उन देवताओंके गणोंके स्वामीको प्रणाम कर देवताओंके स्थानको चले गए ॥ ६६ ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि तदनन्तर महातेजस्वी विष्णु सूर्यके उदित होने पर शिकारके बहानेसे रैवतक पर्वतको चले १ उन्होंने नरपुङ्गव सात्यकिको भी एक तरफ बैठाल लिया था और प्रद्युम्नसे भी अपने पीछे २ चलनेके लिये कहा था ॥ २ ॥ उन देवने रैवतगिरिपर पहुँच कर दारुकसे कहा, कि—हे दारुक ! तुम मेरे रथको यहाँ छोड़े रहो और हे सौम्य ! आधे दिन तक मेरी बाट देखता हुआ घोड़ोंको रोके रह हे सूतसत्तम ! मैं

वारयन् हरीन् । रथेनैव प्रवेक्ष्यामि द्वारकां सूतसत्तम ॥४॥ इति सन्दिश्य भगवानारुरोह जयोद्यतः । तार्क्ष्यं स सात्यकी धीमान-प्रमेयपराक्रमः ॥ ५ ॥ पृथग्रथेन कौरव्य प्रद्युम्नः शत्रुसूदनः । आकाशगामिना राजन् पृष्ठतः कृष्णमन्वयात् ॥ ६ ॥ निमेषान्तरमात्रेण नन्दनं काननं हरिः । देवोद्यानं ययौ धीमान् पारिजातजिहीर्षया ॥७॥ ददर्श तत्र भगवान् देवयोधान् दुरासदान् । नानायुधधरान् वीरान्नन्दनस्थानधोक्षजः ॥ ८ ॥ तेषां सम्पश्यतामेव पारिजातं महाबलः । उत्पाट्यारोपयामास परिजातं सतां गतिः ॥ ९ ॥ गरुडं पक्षिराजानमयत्नेनैव भारत । उपस्थितो विग्रहवान् पारिजातः स केशवम् ॥ १० ॥ सान्त्वितो वासुदेवेन पारिजातश्च भारत । उक्तश्च वृक्ष मा भैस्त्वं केशवेन महात्मना ॥ ११ ॥ तं प्रस्थितं नगं दृष्ट्वा पारिजातमधोक्षजः ।

रथमें बैठ कर ही द्वारकामें घुसूंगा ४ इस प्रकार संदेशा देनेके उपरान्त जय करनेको उद्यत हुए भगवान् गरुड़जी पर चढ़ गए और उन अप्रमेय पराक्रमीने सात्यकिको भी अपने रथ पर चढ़ा लिया ॥ ५ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! तदनन्तर शत्रुसूदन प्रद्युम्न भी एक आकाशगामी रथमें बैठकर श्रीकृष्णके पीछे २ चला ६ थोड़े ही समयमें बुद्धिमान् हरि पारिजातको हरनेकी इच्छासे देवताओंके उद्यान नन्दन वनमें पहुँच गए ॥ ७ ॥ तहाँ पर अधोक्षज भगवानने नन्दनवनमें अनेक प्रकारका आयुध धारण करनेवाले दुरासद देवयोधाओंको खड़े हुए देखा ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सज्जनोंकी गति महाबली श्रीकृष्णने उनके सामने ही पारिजातको उखाड़ कर पक्षिराज गरुड़ पर अनायास ही धर दिया उस समय पारिजात वृक्ष शरीर धारण कर श्रीकृष्णके सामने आगया ॥ ९–१० ॥ हे भारतवंशी राजन् ! तब वसुदेवपुत्र महात्मा केशवने पारिजात

अमरावतीं पुरीं श्रेष्ठां ततश्चक्रे प्रदक्षिणाम् । १२ ॥ ते तु नन्दन-गोप्तारः पारिजातो द्रुमोत्तमः । ह्रियतेति महेन्द्राय गत्वा नृप शशंसिरे ॥ १३ ॥ अथैरावतमारुह्य निर्ययौ पाकशासनः । जयन्तेन रथस्थेन पृष्ठतोऽनुगतः प्रभुः ॥ १४ ॥ पूर्वमभ्यागतं द्वारं केशवं शत्रुनाशनम् । दृष्ट्वोवाच महत्तं भोः किमिदं मधुसूदन ॥ १५ ॥ प्रणम्य गरुडस्थोऽथ केशवः शक्रमब्रवीत् । वध्वास्ते पुण्यकार्याय नीयतेऽयं वरद्रुमः ॥ १६ ॥ तमुवाच ततः शक्रो मामेवं पुष्करेक्षण । अयोधयित्वा न तरुर्नेयितव्यस्त्वयाऽच्युत ॥ १७ ॥ प्रहरस्व महाबाहो प्रथमं मयि केशव । प्रतिज्ञा सफला तेस्तु मुक्त्वा कौमोदकीं मयि ॥ १८ ॥ ततः कृष्णः शरैस्तीक्ष्णैर्देवराजगजोत्तमम् । बिभेदाशनिसंकाशैः प्रहसन्निव भारत ॥१९॥

को ढाढ़स देते हुए कहा, कि हे वृक्ष ! तू डर मत ११ श्रीकृष्ण पारिजातको जातेहुए देखकर श्रेष्ठ नगरी अमरावतीकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ १२ ॥ उधर नन्दनवनकी रक्षा करने वाले रक्षकोंने जाकर महेन्द्रसे कहा, कि-वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात छीना जारहा है ॥१३॥ तब तो प्रभु पाकशासन ऐरावत पर बैठकर चला और उसके पीछे जयन्त भी रथ पर बैठकर चला ।१४। श्रीकृष्ण द्वारसे न निकले थे उससे पहले ही इन्द्रने शत्रुनाशन केशवसे कहा, कि-हे मधुसूदन ! तुम यह क्या काम कररहे हो ? १५ उस समय गरुड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्णने इन्द्रसे कहा, कि यह वृक्षश्रेष्ठ आपकी वधूके पुण्यकव्रतके लिये जारहा है१६ उस समय शक्रने कहा, कि हे कमलनेत्र ! तुम ऐसा मत करो हे अच्युत ! तुम्हें युद्ध किये बिना इस वृक्षको लेजाना उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे महाभुज केशव ! तुम पहले मेरे ऊपर प्रहार करो और कौमोदकीको छोड़ो अब आपकी प्रतिज्ञा सफल होनी चाहिये १८ हे भरतवंशी राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण मुस्कराकर

विव्याध गरुडं वज्री दिव्यैः शरवरैस्तथा । बाणांश्चिच्छेद सहसा
केशवस्य तरस्विनः ॥ २० ॥ यान् यान् मुमोच देवेन्द्रस्तांस्तां-
श्चिच्छेद माधवः । माधवेन प्रयुक्तांश्च चिच्छेद बलवृत्रहा ॥ २१ ॥
महेन्द्रस्य च शब्देन धनुषः कुरुनन्दन । शार्ङ्गस्य च निनादेन
मुमुहुः स्वर्गवासिनः ॥ २२ ॥ तयोर्वर्तति संग्रामे गरुडस्थो महा-
बलः । पारिजातं जयन्तोऽथ हर्तुमभ्युद्यतो बली ॥ २३ ॥ प्रद्युम्न-
मथ कंसघ्नो वारयेति तदाऽब्रवीत् । ततस्तं वारयामास रौक्मि-
णेयः प्रतापवान् ॥ २४ ॥ जयन्तो जयतां श्रेष्ठो रौक्मिणेय-
मथेषुभिः । सर्वगात्रेषु विहसन्नाजघान रथे स्थितः ॥ २५ ॥
रथस्थ एव रथिनं काणस्तु कमलेक्षणः । ऐन्द्रिमभ्यर्दयामास
बाणैराशीविषोपमैः ॥ २६ ॥ स सन्निपातस्तुमुलो बभूव कुरु-

देवराजके श्रेष्ठ हाथीको वज्रकी समान तीक्ष्ण बाणोंसे बींधने
लगे १९ इसीप्रकार वज्रधारी इन्द्र भी दिव्य श्रेष्ठ बाणोंसे गरुड़
जीको घायल करने लगा और फुर्तीसे केशवके बाणोंको भी
सहसा काटने लगा २० देवराज इन्द्र जिन २ बाणोंको छोड़ता
था उन २ बाणोंको माधव काट डालते थे और बल और वृत्रा-
सुरका संहार करने वाला इन्द्र भी माधवके छोड़े हुए बाणोंको
काटने लगा २१ हे कुरुनन्दन।इन्द्रके धनुषके शब्दसे और शार्ङ्ग
धनुषके शब्दसे स्वर्गवासी सुन्न होने लगे २२ जब उन दोनों
का संग्राम चल रहा था उस समय महाबली जयन्त गरुड़के
पास जा पारिजातको छीनना चाहने लगा ॥ २३ ॥ उस समय
कंसके नाशक श्रीकृष्णने प्रद्युम्नसे कहा, कि-इसको हटाओ
उस समय प्रतापी रुक्मिणीपुत्र जयन्तको हटाने लगा ॥ २४ ॥
तदनन्तर,जीतने वालोंमें श्रेष्ठ रथमें बैठे हुए जयन्तने मुस्कराकर
प्रद्युम्नके सारे शरीरमें बाण मारे २५ रथमें बैठा हुआ कमलकी
समान नेत्रों वाला प्रद्युम्न रथमें बैठे हुए जयन्तको सर्पोंकी

नन्दन । जयन्तस्य च वीरस्य रौक्मिणेयस्य चोभयोः ॥ २७ ॥ कृतप्रतिकृतं युद्धं चक्रतुस्तौ महाबलौ । महेन्द्रोपेन्द्रतनयौ जगत्यस्त्रभृतां वरौ ॥२८॥ देवाश्च मुनयश्चैव ददृशुर्विस्मयान्विताः । तं संग्रामं महाघोरं सिद्धाश्चैव सचारणाः ॥ २९ ॥ ततस्तु प्रवरो नाम देवदूतो महाबलः । पारिजातं पुनर्हर्तुमियेष कुरुनन्दन ॥३०॥सखा स देवराजस्य महास्त्रविदरिंदम । अवध्यो वरदानेन ब्रह्मणः कुरुनन्दन ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणस्तपसा सिद्धो जम्बुद्वीपाद्दिवं गतः । स्वशक्त्या नृप संगातः सखित्वं बलघातिना ॥३२॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कृष्णः सात्यकिमब्रवीत् । अत्रस्थ एव प्रवरं शरैर्वारय सात्यके ॥ ३३ ॥ न त्वया निर्दयं बाणा मोक्तव्याः सात्यके त्वया । अस्य ब्राह्मणचापल्यं सोढव्यं

समान बाणोंसे पीड़ा देने लगा २६ हे कुरुनन्दन ! वीर जयन्त का और रुक्मिणीपुत्रका वह युद्ध तुमुल रीतिसे हुआ ॥ २७ ॥ जगत्में अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महेन्द्र और उपेन्द्रके वे दोनों महाबली पुत्र युद्धमें एक दूसरेके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करनेलगे २८ उस महाघोर संग्रामको सिद्ध चारण देवता और मुनि विस्मित होकर देखने लगे २९ हे कुरुनन्दन ! इसी समय प्रवर नामक महाबली देवदूत पारिजातको फिर छीननेका प्रयत्न करने लगा ॥३०॥ हे कुरुनन्दन ! वह देवराजका मित्र था अरिदमन था और बड़े २ शस्त्रोंको जानने वाला था और ब्रह्माजीके वरदानके कारण अवध्य था ॥३१॥ वह ब्राह्मण तपःसिद्ध था और हे राजन् ! बलघाती इन्द्रकी मित्रताके कारण जम्बू द्वीपसे स्वर्गमें अपनी शक्तिसे ही आगया था ३२ श्रीकृष्णने उसको आता हुआ देखकर सात्यकिसे कहा, कि-हे सात्यके ! तू यहाँ ही खड़ा रह कर उस प्रवरको बाणोंसे रोक दे ३३ हे सात्यके! तुम इसके ऊपर निर्दय होकर बाण न छोडना इस ब्राह्मणकी

खलु सर्वथा ॥३४॥ ततः पष्ठ्या रथेचूर्णां गरुडस्थं द्विजस्तदा । आजघान महाबाहो सात्यकिं प्रवरो भृशम् ॥ ३५ ॥ शिनेर्नप्ता धनुस्तस्य क्षिपतः सायकान् नृप । चिच्छेद पुरुषव्याघ्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३६ । ब्राह्मणो नाभिहन्तव्यस्तिष्ठ तिष्ठस्व वर्त्मनि अवध्या यादवानां हि स्वापराधेऽपि हि द्विजाः ॥ ३७ ॥ प्रवरस्तु प्रहस्यैनमुवाच कुरुनन्दन । अलं क्षान्त्या नृणां शूर युध्यस्व सर्वात्मना रणे । ३८ ॥ जामदग्न्यस्य रामस्य शिष्योऽहमपि यादव । नामतः प्रवरो नाम सखा शक्रस्य धीमतः ॥ ३९ ॥ न देवा योद्धुमिच्छन्ति ह्यन्यतो मधुसूदनात् । आनृण्यं सौहृदस्याहमधिगन्तास्मि माधव ॥४०। ततस्तयोस्तदा रौद्रः संग्रामो ववृधे नृप । अस्त्रैर्दिव्यैर्नरव्याघ्र शैनेयद्विजमुख्ययोः ॥ ४१ ॥ यौश्च

चपलताको तो सर्वदा सहना ही चाहिये ।३४। तदनन्तर प्रवर ब्राह्मणने गरुड़ पर बैठे हुए सात्यकिके साठ रथकी ईषा मारी ३५ हे राजन्! उस समय पुरुषव्याघ्र शिनिके पोतेने धनुष घुमाते हुए प्रवरके बाणोंको काट कर यह वचन कहा, कि ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणको मारना नहीं चाहिये आप अपने मार्ग पर ही स्थित रहिये क्योंकि ब्राह्मण अपराध करने पर भी ब्राह्मणोंसे अवध्य रहते हैं ३७ हे कुरुनन्दन! उस समय प्रवरने हँसकर कहा, कि–मनुष्योंके ऊपर क्षमा करना छोडकर अब तुम सब प्रकारसे युद्ध करो ॥ ३८ ॥ हे यादव! मैं भी जमदग्नि पुत्र परशुरामजी का शिष्य हूँ मेरा नाम प्रवर है और मैं बुद्धिमान् इन्द्रका मित्र हूँ ॥ ३९ ॥ देवता मधुसूदनसे अतिरिक्त दूसरेसे युद्ध करना नहीं चाहते और हे माधव! मैं भी आप मित्रतासे उऋण हो जाऊँगा ॥ ४० ॥ हे राजन्! हे नरव्याघ्र! तदनन्तर शिनिपुत्र और द्विजमुख्यमें दिव्य अस्त्रोंसे भयंकर संग्राम होने लगा ४१ उस समय उन महात्माओंके संग्राम चलने पर पृथिवी तथा आकाश

चाल तदा राजन् व्यपतंश्च सहस्रशः। तस्मिन् वर्तति संग्रामे तेषामतिमहात्मनाम् ॥ ४२ ॥ नातिशिष्ये रणे कार्ष्णिरैन्द्रिमस्त्र-भृतांवरम्। ऐन्द्रिः कार्ष्णिं महात्मानं मायिनं शूरसत्तमम् ४३ हन्त गृह्ण पतीच्छेति तावुभौ योधसत्तमौ। युयुधाते नरश्रेष्ठ पर-स्परमवैषिणौ ॥४४॥ अथ शार्ङ्गायुधसुतं शचीपुत्रः प्रतापवान्। त्रिभाष्याभ्यहनद्राजन् दिव्येनास्त्रेण सत्वरः ॥ ४५ ॥ सोऽस्त्रं तदभिदीप्यन्तमापतन्तं शितैः शरैः। ततस्तम्भे बाणजालेन तद-द्भुतमिवाभवत् ॥ ४६ ॥ ततस्तद्दीप्यमानं तु पपात रणमूर्धनि। रौक्मिणेयस्य कौरव्य घोरं दानवमर्दनम् ॥ ४७ ॥ तेनास्त्रेण रथो दग्धः प्रद्युम्नस्य महात्मनः। नादहत्सत्सुघोरं तं रौक्मिणेयं नराधिप ॥ ४८ ॥ दहत्यग्निर्न खल्वग्निरुद्धतोऽपि विशाम्पते।

पर्वत काँपने लगे ॥ ४२ ॥ कृष्णपुत्र प्रद्युम्न अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ इन्द्रपुत्रसे न बढ़ सका और इन्द्रपुत्र भी कृष्णपुत्र महात्मा शूर-सत्तम मायावान् प्रद्युम्नसे न बढ़ सका ॥ ४३ ॥ हे नरश्रेष्ठ! वे श्रेष्ठ योधा मारो पकड़ो और ले जाओ कह कर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! तदनन्तर प्रतापी शचीपुत्रने शार्ङ्ग धनुष रूप आयुधको धारण करने वाले श्रीकृष्णके पुत्रसे भाषण कर उसके फुर्तीसे दिव्य अस्त्र मारा ॥४५॥ तब प्रद्युम्नने उस आते हुए प्रदीप्त अस्त्रको तेज बाणोंका जाल बाँधकर स्तंभित कर दिया, यह घटना अद्भुत सी हुई ॥ ४६ ॥ हे कौरव्य! तब दानवोंका मर्दन करने वाला दिपता हुआ भयंकर अस्त्र रुक्मिणी-पुत्रके सामने झन्नाता हुआ गिर पड़ा ॥ ४७ ॥ उस अस्त्रसे महात्मा प्रद्युम्नका रथ भस्म होगया परन्तु हे राजन्! वह भयं-कर पराक्रमी प्रद्युम्नको भस्म न करसका ॥ ४८ ॥ हे राजन्! क्योंकि—बढ़ा हुआ अग्नि भी अग्निको नहीं जलासकता उस समय महाभुज रुक्मिणीपुत्र उस भस्म होते हुए रथमेंसे कूद

दुर्गमादथ महाबाहू रौक्मिणेयः पराक्रमी ॥४९॥ अथ नारायण-
सुतो विरथो रथिनां वरः । स्थितो धनुष्पाणिराकाशे जयन्तमिद-
मब्रवीत् ॥५०॥ महेन्द्रपुत्र दिव्यं त्वं मदस्त्रं मुक्तवानसि । नाह-
मीदृशरूपाणां शक्यो हन्तुं शतैरपि ॥५१॥ यथा त्वं कुरु विज्ञाणी
यत्नं मेऽस्त्रप्रदर्शय । नास्ति मेऽनिशं क्वापि संग्रामेऽमरनन्दन ५२
आसीन्मे साध्वसं दृष्ट्वा रथस्थं त्वां धृतायुधम् । विरथोऽपि हि
नेदानीं युद्धे दृष्टबलो भवान् ॥ ५३ ॥ मनसा स्पर्शितो सौम्य पारि-
जातस्त्वया ततः । शक्यं न खलु हस्ताभ्यां स्प्रष्टुमेष त्वया
क्वचित् ॥ ५४ ॥ रथो मायामयो दग्धस्त्वया यो ह्यस्त्रतेजसा ।
ईदृशानां सहस्राणि स्रष्टुं शक्तोऽस्मि मायया ॥ ५५ ॥ एवमुक्तो
जयन्तश्च मुमोचास्त्रं महाबलः । तपसोपचितं तेन स्वयमेवातिते-
तेजसा ॥५६॥ तत्प्रद्युम्नो महावेगं शरजालैरवारयत् । पश्चार्ध-

पड़ा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर रथहीन हुआ रथियोंमें श्रेष्ठ धनुषधारी
आकाशमें खड़ा हुआ नारायणपुत्र जयन्तसे कहने लगा ५०
हे महेन्द्रपुत्र ! तूने दिव्य अस्त्रका प्रयोग किया परन्तु मैं ऐसे
सैंकड़ों अस्त्रोंसे भी नहीं मारा जासकता ॥ ५१ ॥ तू अपनी विद्या-
प्रकाशित करनेका यत्न कर और मुझे बल दिखा हे अमरनन्दन !
तू मुझसे संग्राममें बढ़ नहीं सकेगा पहले तुझे रथपर बैठा हुआ
और आयुध धारण करता हुआ देख कर मुझे कुछ डर लगा
था परन्तु मैं अब तेरे बलसे नहीं डरता क्योंकि-युद्धमें मैंने तेरा
बल देखलिया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अब तू इस पारिजात वृक्षको
मनमें ही स्मरण करसकेगा परन्तु तू इसे हाथोंसे नहीं छूसकेगा ५४
तूने अपने अस्त्रके तेजसे मेरे मायामय रथको भस्म कर दिया
परन्तु मैं माया करके ऐसे सहस्रों रथ रच सकता हूँ ॥ ५५ ॥
इस बातको सुनकर महाबली जयन्तने अति उग्र तपसे पाया हुआ
एक बाण छोड़ा ॥ ५६ ॥ उस समय प्रद्युम्नने उस महावेगवान्

स्त्राणि दिव्यानि मुमुचे चापराणि सः ॥ ५७ ॥ दिक्षु सर्वासु रुरुधुः तान्यस्त्राण्यथ भारत । रौक्मिणेयं महात्मानमन्तरिक्षे च पञ्चगम् ॥ ५८ ॥ महोल्कासदृशान् बाणानस्त्राण्यमरसत्तमः । मुमोच यानि घोराणि प्रद्युम्नं प्रति सर्वतः ॥५९॥तानि सर्वाणि बाणौघैः कार्ष्णिरस्त्राण्यवारयत् । जयन्तं चापरैर्बाणैर्बिभेदाथ निशितैस्तदा॥६०॥ततो नादः समुत्सृष्टो ह्यमरैः पुण्यकर्मभिः । दृष्ट्वा स्थैर्यं च शैघ्र्यं च प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥६१॥प्रवरस्यापि बाणेन शितेन शिनिपुङ्गवः । चिच्छेदेष्वासनं वीरो हस्तावापं च भारत ॥ ६२ ॥ ततोऽन्यत् स तु जग्राह महत्तद्धनुरुत्तमम् । महेन्द्रदत्तं प्रवरो महाशनिसमस्वनम् ॥६३॥ स तेन वीरो महता

बाणको बाणोंका जाल पूरकर रोक दिया तब जयन्तने और भी चार दिव्य अस्त्र छोड़े ॥ ५७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उन अस्त्रोंने सब दिशाओंको और अन्तरिक्षमें पाँचते महात्म प्रद्युम्न को भी रोक लिया ॥ ५८ ॥ अमरसत्तम जयन्तने बड़ी भारी उल्काकी समान बाणोंको तथा और भी भयंकर बाणोंको प्रद्युम्न के ऊपर चारों ओरसे बरसाया ॥ ५९ ॥ कृष्णपुत्रने उन सब बाणोंको बाणोंका अहला चलाकर पीछेको हटा दिया और दूसरे तेज बाणोंसे जयन्तको भी घायल कर डाला ॥ ६० ॥ उस समय महात्मा प्रद्युम्नकी शीघ्रता और स्थिरताको देखकर पुण्य-कर्म करने वाले देवता भी गर्जना कर उठे ॥ ६१ ॥ हे भरत-वंशी राजन्! इसी समय शिनिपुङ्गव वीर सात्यकिने भी तेजबाण मार कर प्रवरके धनुष और उसके पकड़नेकी जगहको काट डाला ॥ ६२ ॥ उस समय प्रवरने बड़े भारी वज्रकी समान शब्द करने वाले इन्द्रके दिये हुए दूसरे बड़े भारी धनुषको उठा लिया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर वह वीर श्रेष्ठ आसमा उस बड़े भारी धनुषसे सूर्यकी किरणोंकी समान कान्ति वाले अनेक प्रकारके

धनुषा विगतक्लमः । शरान् मुमोच निशितानर्करश्मिनिभांस्तदा
चकर्त च धनुश्चित्रं शैनेयस्यामितौजसः । विव्याध सर्वगात्रेषु
बाणैरपि च सात्यकिम् ॥ ६५ ॥ धनुरादाय शैनेयस्ततोऽन्य-
त्कुरुनन्दन । दृढं भारसहं धीमान् विव्याध मदरं रणे ॥ ६६ ॥
उच्चकर्ततुरन्योन्यं वर्मणी तौ शितैः शरैः । गात्रेभ्यश्चैव
मांसानि मर्मभिद्भिः शरोत्तमैः ॥ ६७ ॥ अथाष्टधारबाणेन पुन-
श्छित्वासनं द्विजः । चिच्छेद मदरो वीरस्त्रिभिश्चैनमताडयत् ६८
अन्यद्दित्वासनं तं तु ग्रहीतुमनसं द्विजः । गदया ताडयामास
लघ्वया लघुहस्तवान् ॥ ६९ ॥ सोऽसिं चर्म च जग्राह सात्यकिः
प्रहसन्निव । न जग्राह धनुर्धीमान् गदयाभिहतो भृशम् । ततः
शरशतान्येव मुमोच मदरस्तदा ॥ ७० ॥ निहस्तमिव विज्ञाय
सात्यकिं यदुनन्दनम् । प्रद्युम्नस्य ददौ खड्गं निर्मलाकाशसन्नि-

अस्त्रोंको छोड़ने लगा ॥ ६४ ॥ उसने अमित पराक्रमी सात्यकि
के विचित्र धनुषको काट डाला और बाण मारकर सात्यकिके
सारे शरीरको भी घायल कर डाला हे कुरुनन्दन ! तदनन्तर
शिनिपुत्रने दूसरा भारको सहने वाला दृढ़ धनुष लेकर मदरको
बाणोंसे घायल कर डाला ॥ ६५ उन दोनोंने तेज बाणोंसे एक
दूसरेके कवचोंको काट डाला और मर्मभेदी बाणोंसे उद्योग कर
के शरीरके मांसको भी काटने लगे ॥ ६७ ॥ इसी समय वीर
मदरने आठ धारवाले बाणसे सात्यकिके धनुषको फिर काटडाला
और सात्यकिको भी तीन बाणोंसे ताडित किया ॥ ६८ ॥
तदनन्तर फुर्तीले हाथ वाले ब्राह्मण मदरने मनमें दूसरा धनुष
लेनेका विचार करनेवाले सात्यकिके गदा मारी ॥ ६९ ॥ तदन-
न्तर गदासे बहुत ही पिटे हुए बुद्धिमान् सात्यकिने धनुषको ग्रहण
करके मुस्कुराकर ढाल और तलवार उठाली उस समय मदरने
यदुनन्दन सात्यकिको विकल हस्तवाला जानकर सैंकड़ों बाण

भम् ॥७१॥ तस्य चिच्छेद भल्लेन निस्त्रिंशं प्रवरस्तदा। ससरु देशे पातयच्च प्रवरः प्रहसन्निव ॥ ७२ ॥ अथप्रमत्त तथा चर्म शितैर्नाराचैरजिह्मगैः। आजघान च शक्त्यैनं हृदि विप्रो ननाद च ॥७३॥ तं विक्लवमिव ज्ञात्वा पारिजातजिहीर्षया। तार्क्ष्याभ्याशे रथेनैव स तस्थौ प्रवरस्तदा ॥ ७४ ॥ तं पक्षपुटवेगेन चिक्षेप गरुडस्तदा। गव्यूतिमेकां सरथः स पपात मुमोह च ७५ तं जयन्तो नियत्याथ पतितं ब्राह्मणं नृप। समाश्वास्य रथं शीघ्रं समारोपितवांस्तदा ॥ ७६ ॥ शैनेयमपि मुह्यन्तं पतन्तं च मुहुर्मुहुः। आश्वासयानः प्रद्युम्नः पितृव्यं परिषस्वजे॥७७॥ तं हि पस्पर्श हस्तेन सव्येन मधुसूदनः। विरुजः स्पर्शमात्रेण

मारे (सात्यकिकी ढाल तलवार कटगई) तब प्रद्युम्नने सात्यकिको निर्मल आकाशकी समान एक खड्ग दिया ॥ ७० ॥ ७१ ॥ प्रवरने मुट्ठीसे पकड़नेके स्थानसे भल्ल नामक बाण मार कर उस तलवारको काट कर गिरा दिया फिर हँसने लगा ७२ तदनन्तर उस ब्राह्मणने सरलतासे तेज चलने वाले बाण मार कर सात्यकिकी ढालको वींध डाला और उसकी छातीमें शक्ति मार कर दहाड़ने लगा ॥ ७३ ॥ उसको घबड़ाया हुआ जान कर ब्राह्मण प्रवर पारिजातको लेनेकी इच्छासे गरुड़जी के पास ही अपने रथमें खड़ा होगया ॥ ७४ ॥ तब गरुड़जीने अपने दोनों पंखोंके वेगसे उसको रथ सहित उठाकर दो कोस दूर फैंक दिया उस समय वह गिर पड़ा और मूर्छित होगया ॥ ७५ ॥ उस समय जयन्तने उस गिरे हुए ब्राह्मणको यह सब प्रारब्धसे हुआ है इस प्रकार ढाढस देकर फिर रथ पर चढ़ा दिया ॥ ७६ ॥ इसी समय वारम्बार गिरते हुए और मूर्छित हुए चचा सात्यकिको भी प्रद्युम्नने ढाढ़स दे कर आलिंगन किया ॥ ७७ ॥ मधुसूदनने भी अपना दाहिना

सात्यकिः समपद्यत ॥७८॥ प्रद्युम्नो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु शिनि-
पुङ्गवः । तस्थतुः पारिजातस्य युद्धश्रौण्डतरावुभौ ॥७९॥ जयन्तः
प्रवरश्चैव रथेनैकेन भारत । सम्पतन्तौ महेन्द्रेण प्रहस्योक्तौ
महात्मना ॥ ८० ॥ नासन्नमभिगन्तव्यं गरुडस्य कथञ्चन ।
बलवानेष पततां राजा च विनतासुतः ॥८१॥ दक्षिणे चैव सव्ये
च पार्श्वे मम धृतायुधौ । उभौ स्थितौ युद्ध्यमानं मामेव हि प-
श्यतम् ८२ ॥ एवमुक्तौ स्थितौ वीरौ ततः शक्रस्य पार्श्वयोः ।
ददृशाते युद्ध्यमानौ देवराजजनार्दनौ ॥ ८३ ॥ अथेन्द्रो गरुडं
बाणैर्महाशनिसमस्वनैः । विव्याध सर्वगात्रेषु महास्त्रपूर्वैस्तथा॥८४
स तान् बाणानगणयन् वैनतेयः पुनःपुनः । संसाराभिमुखो
वीरः शक्रनागमरिंदमः ॥ ८५ ॥ उभौ तौ सहसा राजन् बलिनौ

हाथ सात्यकिके ऊपर फेरा। श्रीकृष्णके स्पर्शमात्रसे ही सात्यकि
की पीड़ा जाती रही ॥ ७८ ॥ इसके अनन्तर पारिजातके दाहिनी
ओर प्रद्युम्न और बाईं ओर शिनिपुङ्गव सात्यकि खड़े होगए वे
दोनों युद्धचतुर थे ॥ ७९ ॥ हे भारत ! इसी समय एक ही रथ
पर बैठकर आते हुए जयन्त और प्रवरसे महात्मा इन्द्रने हँसकर
कहा, कि-॥ ८० ॥ गरुड़के पास कभी नहीं जाना चाहिये क्यों
कि यह विनतानन्दन बलवान् हैं और पक्षियोंके राजा हैं ८१
तुम दोनों आयुधोंको धारण न कर मेरे बाईं और दाईं ओर
ही खड़े रहो और खड़े होकर मुझे युद्ध करते हुएको ही देखते
रहो ॥ ८२ ॥ इस प्रकार कहने पर वे दोनों वीर इन्द्रके दोनों
ओर खड़े हो गए और युद्ध करते हुए देवराज तथा जनार्दन
को ही देखते रहे ॥ ८३ ॥ तदनन्तर इन्द्रने गरुड़जीके सारे
शरीरमें बड़े भारी वज्रकी समान शब्द करने वाले श्रेष्ठ २
अस्त्र मारे ॥ ८४ ॥ परन्तु अरिदमन प्रतापी वीर गरुड़जी उन
बाणोंको कुछ न गिनकर इन्द्रके हाथीकी ओर बढ़ते ही चले गए

गजपक्षिणौ । पृथुद्धौ वीर्यसम्पन्नौ महाप्राणौ दुरासदौ ॥८६॥ रदनैः पन्नगरिपुं करेण शिरसा तदा । ऐरावतो गजपतिराजघान नदंस्तथा ॥ ८७ ॥ तथा नखांकुशैस्तीक्ष्णैर्वैनतेयो बलोत्कटः । तथा पक्षनिपातैश्च शक्रनागं जघान ह ॥ ८८ ॥ मुहूर्तं सुमहानासीत् सम्पातो गजपक्षिणोः । विस्मापनीयो जगतः प्रेक्षितॄणां भयावहः ॥ ८९ ॥ मूर्ध्न्यथैरावतं तार्क्ष्यस्ताडयामास भारत । नखांकुशकरालेन चरणेन महाबलः ॥ ९० ॥ संप्रहारादितस्तस्मो निपपात त्रिविष्टपात् । पारियात्रे गिरिश्रेष्ठे द्वीपेऽस्मिन् जनमेजय ॥ ९१ ॥ पतन्तमपि तं शक्रो न मुमोच महाबलः । कारुण्यादथ सौहार्दात् पूर्वाभ्युपगमादपि ॥९२॥ कृष्णोऽप्यन्वगमच्चैनं पृथुलः पृथवोऽव्ययः । पारिजातवतां श्रीमान् गरुडेन

हे राजन् ! इसके उपरान्त वह वीर्य सम्पन्न महाप्राण दुरासद बलवान् हाथी और पक्षी सहसा लड़ने लगे ॥८६॥ हस्तिराज ऐरावत अपने दाँत सूँड़ तथा मस्तकसे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी पर प्रहार कर चिंघाड़ने लगा ८७ इसीप्रकार बलमें उत्कट गरुड़जी भी तीक्ष्ण नाखूनरूपी अंकुशोंसे और परोंका प्रहार कर इन्द्रके हाथीको मारने लगे ॥ ८८ ॥ मुहूर्त भर तक जगत्‌को विस्मित करनेवाली और देखनेवालोंको भयभीत करनेवाली हाथी और पक्षीकी बड़ी भारी झपट हुई८९हे भरतवंशी राजन्‌।इसके उपरान्त महाबली गरुड़ने ऐरावत हाथीके मस्तक पर अपने नखरूपी कराल अँकुश वाले चरणका प्रहार किया ॥ ९० ॥ हे जनमेजय।तब तो प्रहारसे तप्त होकर वह श्रेष्ठ हाथी स्वर्गमेंसे इस द्वीपमें श्रेष्ठ पर्वत पारियात्र पर गिर पड़ा ॥ ९१ ॥ करुणाके कारण और पहिली मित्रताके कारण महाबली इन्द्रने उसके गिरने पर भी उसको न छोड़ा ॥ ९२ ॥ परिजात वृक्षवाले गरुड़ जीके साथ ही अव्यय (और जगत्‌के) उत्पत्तिस्थान महाबली

महाबलः ९३ स तस्थौ पर्वतश्रेष्ठे पारियात्रे तु वृत्रहा। ऐरावतो
समाश्वस्ते संग्रामो ववृधे पुनः ९४ शरैराशीविषप्रख्यै रत्नयुक्तैः
सुतेजितैः। अन्योन्यं कुरुशार्दूल शक्रकेशवयोर्महान् ॥ ९५ ॥
ततो वज्रायुधो वज्रमशनिं च पुनः पुनः। मुमोच गरुडे राजन्नै-
रावतरिपौ नृप ॥ ९६ ॥ वज्राशनिप्रहारांस्तान् सेहे शक्रस्य पक्षि-
राट। अवध्यो बलिनां श्रेष्ठो निसर्गेण ततो बलात् ॥ ९७ ॥
मुमोच पत्रमेकैकं मानयन्नशनिं सदा। वज्रं च देवराजेन भ्रातुः
कश्यपसंभवः ॥ ९८ ॥ आक्रम्यमाणस्तार्क्ष्येण न्यमज्जन्नृपते
गिरिः। विवेश धरणीं राजञ्छीर्यमाणः समंततः ॥ ९९ ॥
चुकूज बहुमानेन कृष्णस्य स तु पर्वतः। तं चाद्राक्षीत्तनः कृष्णः
किंचिच्छेषमधोक्षजः ॥ १०० ॥ तं मुक्त्वा गरुडेनाथ तस्थौ देवो

बुद्धिमान् श्रीकृष्ण भी उसके पीछे पीछे चले ॥ ९३ ॥ वृत्रासुर
का नाशक इन्द्र पर्वतश्रेष्ठ पारिजात पर खड़ा होगया ऐरावतके
विश्राम लेनेके उपरान्त हे कुरुशार्दूल। इन्द्र और केशवमें रत्न-
जड़ित सर्पकी समान तीखे बाणोंसे फिर संग्राम होने लगा ९५
हे राजन्! वज्रका आयुध धारण करनेवाले इन्द्रने ऐरावतके
शत्रु गरुड़ पर वज्र और अशनीका बारम्बार प्रहार किया ९६
बलवानोंमें श्रेष्ठ अवध्य पक्षिराज गरुड़ने अपने स्वाभाविक बल
से इन्द्रके वज्र और उल्काओंकी समान प्रहारोंको सहलिया ९७
कश्यपसे उत्पन्न हुए गरुड़जीने अपने भाई देवराजका तथा वज्र
और अशनिका मान रखते हुये अपना एक २ पर गिरदिया९८
हे राजन्! वह पर्वत गरुड़जीसे दब कर चारों ओरको बिखरता
हुआ पृथ्वीमें घुसने लगा ॥ ९९ ॥ कृष्णके बड़े भारी बोझसे
वह पर्वत शब्द करने लगा तब श्रीकृष्णने उसकी ओर ध्यान
दिया अधोक्षज श्रीकृष्ण उसको थोड़ासा बाकी रहा हुआ देख
कर उसको छोड़कर गरुड़के द्वारा आकाशमें पहुँच गये फिर

विहायसि । प्रद्युम्नञ्च तदोवाच सर्वकृल्लोकभावनः ॥ १ ॥ इतो द्वारवतीं गत्वा रथमानय मा चिरम् । सदारुकं महाबाहो मत्तेजोबलमाश्रितः ॥ २ ॥ वक्तव्यो बलभद्रश्च राजा च कुकुराधिपः । श्वो जित्वेन्द्रं त्वागमिष्ये द्वारकामिति मानद ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वा तु धर्मात्मा प्रद्युम्नः पितरं विभुः । गत्वा यथोक्तमुक्त्वा च यादवेन्द्रबलावुभौ ॥ ४ ॥ नाडिकान्तरमात्रेण पुनस्तं देशमाययौ । दारुकेण समायुक्तं रथमास्थाय भारत ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णेन्द्रयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

वैशम्पायन उवाच । तमारुह्य रथं कृष्णः पारियात्रं गिरिं ययौ । यत्रैरावतमास्थाय स्थितः सुरपतिः प्रभुः ॥ १ ॥ पारियात्रो गिरिश्रेष्ठो दृष्ट्वायांतं जनार्दनम् । शाणपादसमो भूत्वा प्रविवेश

सबके रचने वाले लोकपूजित कृष्णने प्रद्युम्नसे कहा, कि १०१ हे महाभुज ! तू मेरे तेज और बलके ऊपर रहता है, अब तू द्वारकापुरीको जाकर रथ और दारुकको शीघ्रही बुलाला १०२ हे मानद ! बलदेवसे और कुकुरोंके स्वामी राजा उग्रसेनसे तू यह कहना कि—मैं (कृष्ण) इन्द्रको जीत कर कल द्वारकाको आऊँगा ११३ तब धर्मात्मा विभु प्रद्युम्न अपने पितासे बहुत अच्छा कहकर द्वारका पुरीमें जा उन दोनों बलीयादवेन्द्रोंसे श्रीकृष्णने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार कह कर घड़ीभरमें ही दारुकसे युक्त रथमें बैठ कर फिर वहां आगया॥१०४॥१०५॥ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ७३

वैशम्पायनजीने कहा कि—उस रथपर बैठकर श्रीकृष्ण ऐरावत हाथी पर बैठे हुए इन्द्रके पास पारियात्र पर्वत पर चले ॥ १ ॥ पर्वतश्रेष्ठ पारियात्र श्रीकृष्णको आता हुआ देख शाणपादकी समान होकर अर्थात् उड़दोंके ढेरकी समान शिथिल

दंसुन्धराम् ॥२॥ प्रियार्थं वासुदेवस्य प्रभावज्ञो महात्मनः । तस्य प्रीतो हृषीकेशः पर्वतस्य जनाधिप ॥ ३ ॥ ततः प्रयान्तं युद्धार्थमच्युतं कुरुनन्दन । सपारिजातो गरुडः पृष्ठतोऽनुययौ तदा ४ प्रद्युम्नः सात्यकिश्चापि गरुडस्थौ महाबलौ । गतावुभौ रक्षणार्थं पारिजातमरिंदमौ ॥ ५ ॥ ततस्त्वस्तंगतः सूर्यः प्रवृत्ता रजनी नृप । उपस्थितं पुनर्युद्धं शक्रकेशवयोरिह ॥ ६ ॥ सुप्रहाराहतं दृष्ट्वा विष्णुरैरावतं गजम् । नातिकल्पं महातेजा देवराजानमब्रवीत् ॥ ७ ॥ गरुडाभिहतः पूर्वं नातिकल्पो गजोत्तमः । ऐरावतो महाबाहो रात्रिश्च समुपोह्यते ॥ ८ ॥ श्वः प्रभाते यथाकामं प्रवर्तस्व यथेच्छसि । एवमस्त्विति कृष्णं तु देवराजोऽब्रवीत्प्रभुः ९ उवास पुष्कराभ्याशे देवराजः पुरन्दरः । व्रजं गिरिमयं कृत्वा

होकर भूमिमें फैल गया ॥२॥ महात्मा केशवके प्रभावको जानने वाले उस पर्वतने वासुदेवका प्रिय करनेके लिए ऐसा किया था, हे जनाधिप ! तब श्रीकृष्ण उस पर प्रसन्न होगए ॥ ३ ॥ हे कुरुनन्दन ! उस समय युद्धके लिए प्रयाण करनेवाले श्रीकृष्ण के पीछे २ पारियात्रको लेकर गरुड़जी भी चले ॥ ४ ॥ और गरुड़ पर बैठे हुए महाबली अरिदमन सात्यकि और प्रद्युम्न भी पारिजातकी रक्षा करनेके लिये चले ॥ ५ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर सूर्य अस्त होकर रात्रि आरम्भ होनेके उपरान्त श्रीकृष्ण तथा इन्द्रमें फिर युद्ध आरम्भ होगया ॥ ६ ॥ महातेजस्वी विष्णु ने ऐरावत हाथीको प्रहारसे आहत होनेके कारण कुछ असमर्थ देख कर देवराजसे कहा, कि–॥ ७ ॥ हे महाभुज ! गरुड़जी पहिले आहत होचुके हैं और हस्तिश्रेष्ठ ऐरावत भी कुछ असमर्थ होचुके हैं तथा इस समय रात्रि भी बढ़ रही है ॥ ८ ॥ इस लिये कल प्रातःकाल आप जो चाहें सो करिये । इस समय युद्ध बन्द करिये तब प्रभु देवराजने श्रीकृष्णसे एवमस्तु कहा ॥ ९ ॥

धर्मात्मा नृपसत्तम ॥१०॥ ब्रह्मा ततो जगामाथ कश्यपश्च महानृषिः । अदितिश्चैव सर्वे च देवा मुनय एव च ॥११॥ साध्या विश्वे च कौरव्य नासत्यावश्विनौ तथा । आदित्याश्चैव रुद्राश्च वसवश्च जनेश्वर ॥१२॥ नारायणश्च पुत्रेण सत्यकेन च भारत । सहोवास गिरौ रम्ये पारियात्रे महद्व्रत् ॥ १३ ॥ यत्र शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समभवन्नृप । वरं प्रादात्ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः ॥१४॥ शाणपाद इति ख्यातो भविष्यसि महागिरे । पुण्येनार्धेन तुल्यो हि पुण्यो हिमवतः शुभः ॥ १५ ॥ एवमेव च भूयिष्ठो भव पर्वतसत्तम । मेरुणा स्पर्धमानो हि बहुचित्रमृगैर्युतः । रमे त्वां पश्यमानोऽहं बहुचित्रनगायुतम् ॥ १६ ॥ तथा दत्त्वा वरं तस्य पर्वतस्य तु केशवः । दध्यौ गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठां

हे नृपसत्तम ! उस समय देवराज धर्मात्मा पुरन्दर पर्वतवृन्दमय आवरण बनाकर पुष्करके समीपमें टिक गया १० हे भारत ! उसी समय वहाँ पर ब्रह्माजी महर्षि कश्यप, अदिति, सब देवता मुनि, साध्य विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार, आदित्य, रुद्र और वसु आगए ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे भरतवंशी राजन ! इसी समय श्रीकृष्ण भी प्रसन्न मनसे अपने पुत्र और सात्यकिके साथ रमणीय पारियात्र पर्वत पर विराजमान थे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णकी भक्तिके कारण वह पर्वत उड़दोंके ढ़ेर की समान होगया था इस लिये महाकान्तिवान् श्रीकृष्णने उस पर्वतको वरदान दिया; कि-॥ १४ ॥ हे महागिरे ! तू शाणपाद नामसे प्रसिद्ध होगा और तू शुभ पर्वत हिमवान्से आधा पुण्यात्मा होगा ॥ १५ ॥ हे पर्वतसत्तम ! तू मेरुपर्वतसे स्पर्धा कर फिर वैसा ही बड़ा हो जा, मैं तुझे अनेक प्रकारके विचित्र मृगोंसे और बहुतसे विचित्र वृक्षोंसे अलंकृत देख कर आनन्दित हूँगा ॥ १६ ॥ केशव उस पर्वतको वर देकर और वृषभध्वज

नमस्कृत्वा वृषभध्वजम् ॥ १७ ॥ अथाययौ विष्णुपदी स्मृता कृष्णेन भारत । संपूज्य तां ततः कृष्णः कृत्वा स्नानमधोक्षजः॥१८ उदकं च गुहायाथ बिल्वं च हरिरव्ययः । देवमावाहयामास रुद्रं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ १९ ॥ ततः प्राप्तो महादेवः सोमः सपवरो विभुः । तस्थावुपरि बिल्वस्य तथा गङ्गोदकस्य च ॥ २० ॥ तं पारिजातकुसुमैरर्चयामास केशवः । तुष्टाव वाग्भिरीशेशं सर्व-कर्तारमीश्वरम् ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । रुद्रो देवस्त्वं रुद्-

---

शंकरको प्रणाम कर नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजीका ध्यान करने लगे १७हे भरतवंशी ! श्रीकृष्णके स्मरण करने पर गंगा तहाँ पर आई अधोक्षज श्रीकृष्णने उनकी पूजा कर उनमें स्नान किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर अच्युत हरिने जल और गुहाका बिल्व चढ़ा कर सर्वेश्वर रुद्रका आवाहन किया ॥ १९ ॥ तब तो प्रभु महादेवजी अपने गणोंको तथा उमादेवीको साथमें ले कर तहाँ आगए और गंगोदक तथा बिल्वके ऊपर विराजमान होगए ॥ २० ॥ केशवने (ब्रह्मा आदि) ईशोंके भी ईश सर्व-कर्ता शिवजीकी परिजातके कुसुमोंसे पूजा कर उनकी वाणियोंसे स्तुति की ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णने कहा; कि-हे देव ! आप रोनेसे और रुलानेसे और रोते रहनेसे रुद्र कहलाते हैं और रुलानेके कारण देवताओंसे श्रेष्ठ कहलाते हैं भक्तोंके लिये भक्त, वत्सलोंके लिये वत्सल कीर्तिसे सेवित मैं आपकी शरण लेता हूँ (तात्पर्य है क्रीड़ापर ! तुम ही रुद्र हो श्रुतिमें लिखा है, कि-"सोरोदीत् यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्-वह रोता है और रोना उन रुद्रका रुद्रपना है" जीव शोकास्पद है एते हरिं सर्वं रोदयन्ति तस्माद्द रुद्राः और आप प्रकारान्तरसे रुलानेवाले होनेसे भयंकर है "भीषास्माद्द वातः पवते" इत्यादि शास्त्रप्रसिद्ध महेश्वर तुम ही हो 'नान्योतोस्ति द्रष्टा' इस श्रुतिके अनुसार आपके

नाद्रावणाच्च रोरूयमाणो द्रावणाच्चाति देवः । भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां कीर्त्या जुष्टं त्वां प्रपद्ये शरण्यम् ॥ २२ ॥ ग्राम्यारण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशूनां ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्ता । नान्यस्त्वत्तः परमो देवदेव जगत्पतिः सुरवीरारिहन्ता २३ यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ।

अतिरिक्त और कोई चेतन नहीं है, इस प्रकार रुद्रपदके समुदायार्थको कह कर अब अवयवार्थको कहते हैं, कि रुद्राद्रावणाच्च रुदन करनेसे अर्थात् मायापंजरके द्वारा जीवरूपी पक्षीका निरोध करनेसे "इमे त्विंद्रि रोदसी मायया एहिकाये" यहाँ पर धकार के स्थानमें दकारका निपातन देखनेसे और "तस्मिंश्चान्योन्यमायया सन्निरुद्धः" इस श्रुतिसे भी रुणद्धीति रुद्रः अर्थात् रोकने वाला रुद्र कहलाता है, रावण होनेसे अर्थात् मायाकी हिंसा करनेसे आप संसार देनेवाले और मोक्ष देनेवाले होनेसे रुद्र कहलाते हैं, श्रुतिमें लिखा है तस्याभिज्ञानाद्व योजनात् तत्त्वभावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥—उसका ध्यान करनेसे तत्त्वज्ञान करने पर अन्तमें तत्त्वज्ञानसे निवृत्ति होजाती है ।" अब दूसरे प्रकारसे शिवके नामका निर्वचन करते हैं अर्थात् जो रोरूयमाण होने अर्थात् शब्दसे प्रतिपाद्यमान होनेसे जाननेमें आने ही रावण अर्थात् रुलाने वाला होनेसे रुद्र कहलाता है अथवा वाणीका अवलम्बन करने वाले महाप्रपञ्चके रावण अर्थात् लवणोदककी समान प्रविलापन होनेसे रुद्र कहलाते हैं ऐसे स्वप्रकाश शिवकी मैं शरण लेता हूँ) २२ आप ग्राम्यारण्य पशुओंके अर्थात् भोगसत्तासे विरक्त जीवोंके स्वामी हैं आप सर्वकर्ता और पशुपति नामसे प्रसिद्ध हैं हे देवदेव ! और कोई आपसे श्रेष्ठ जगत्पति और वीर देवताओंके शत्रुओंका नाश करने वाला कोई नहीं है २३ सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वको जानने वाले सज्जन विद्वान्

तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्रहुरीशं सन्तो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः ॥ २४ ॥ भूतं यस्माज्जगदत्यन्तधीर त्वत्तोऽव्यक्तादक्षराद्क्षरेश । तस्मात्त्वामाहुर्भव इत्येव भूतं सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम् ॥ २५ ॥ यस्मात्जितैरभिषिक्तोसि सर्वैर्देवासुरैः सर्वभूतैश्च देव । महेश्वरं विश्वकर्माणमाहुस्त्वां वै सर्वे तेन देवातिदेवम् २६ पूज्यो देवैः पूज्यसे नित्यदा वै शश्वद्ध्येयः कांक्षिभिर्वरदामोघवीर्यः । तस्माद्विष्ण्वामो भगवान् देवदेवः सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥ २७ ॥ भूमित्रयाणां देव यस्मात् प्रतिष्ठां पुनर्लोकानां भावनामेवकीर्तिः । त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम नवाममेव त्रिदशेश

आपको इसी लिये ईश्वर कहते हैं, कि-आप बड़े २ ईश्वरोंके भी स्वामी आद्य और प्रीति तथा प्राणका दान करनेवाले हैं २४ हे अक्षरेश ! अर्थात् हे जीवोंके ईश ! अव्यक्त अर्थात् जीवकी समान अप्रसिद्ध आप अक्षरसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है और आपमें ही लीन होजाता है इस लिये ही आप सब ईश्वरोंके भी कारण और उदारव्यक्तिको भव कहते हैं २५ आपने जीते हुए सब देवता असुर और भूतोंसे अभिषेक कराया था इस लिये ही आपको देवाधिदेव विश्वकर्मा और महेश्वर कहते हैं(बात यह है श्रीकृष्णने शिवसे अपनी अभिन्नता दिखानेके लिये अपने ही राज्याभिषेकका वर्णन किया है) २६ आप पूज्य हैं देवता-सर्वदा आपकी ही पूजा करते हैं इच्छा रखने वाले पुरुषोंको आपको सर्वदा ध्यान रखना चाहिये और हे वरद ! आपका वीर्य अमोघ है इसी लिये आप भगवान् देवदेव।सज्जनोंके इष्ट और सब भूतोंकी आपनेमें भावना करनेके स्वभाव वाले प्रसिद्ध हैं२७हे देव।आप भूमिआदि तीनोंके अर्थात् भूमि अन्तरिक्ष स्वर्ग अथवा प्राण अपान व्यान अथवा अग्नि वायु सूर्य अथवा भूत भविष्यत् वर्तमान आदिके प्रतिष्ठा अर्थात् लयस्थान हैं और

नाथ ॥ २८ ॥ शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेयस्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण । सर्वव्यापित्वाच्छंकरत्वाच्च सद्भिः । शब्दस्येशानः श्रीकरार्काग्र्यतेजाः ॥२९॥ संसक्तानां नित्यदा यत् करोषि शर्मं भ्रातृव्यान्यद्यनैषीः समस्तान् । तस्माद्देवः शंकरोऽस्य प्रमेयः सद्भिर्धर्मज्ञैः कथ्यसे सर्वनाथः ॥ ३० ॥ दत्तः प्रहारः कुलिशेन पूर्वं तवेशान सुरराज्ञातिवीर्य । कण्ठे नील्यं तेन ते यत् प्रवृत्तं तस्मात् ख्यातस्त्वं नीलकण्ठेऽतिकल्पः ॥३१॥ यल्लिगांकं

लोकोंके उत्पत्ति कारण हैं इस लिये हे अप्रमेय ! हे देवताओंके ईशोंके स्वामी! आपका प्रथम नाम त्र्यम्बक है २८ आप शत्रुओंके शर्व अर्थात् संहारक हैं और शासन करने पर शत्रुओंसे अप्रमेय अर्थात् अक्षेप्य हैं और फिर ईश्वर स्वरूपसे अर्थात् राजादिभावसे शासन करनेके कारण, सर्वव्यापी होनेके कारण अर्थात् भीतर बाहर व्यापक होनेके कारण और सज्जनोंका कल्याण करनेके कारण शब्दके ईशान अर्थात् सब शब्दोंके प्रमेयत्वरूपसे अवच्छेदक हैं श्रीकर हैं अर्थात् 'ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्" और "एषास्य परमा संपत्" इन दोनों श्रुतियोंसे श्रीशब्दवाच्य पर और अपर दोनों विद्याओंके करने वाले हैं और सूर्यसे भी अधिक तेजके प्रकाशक हैं २९ आप अपने भक्त देवताओंको सुख देने वाले हैं और आप उनके सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करते हैं इसी लिये आपको धर्मज्ञ सज्जन शंकर अप्रमेय और सर्वनाथ कहते हैं ॥३०॥ हे ईशान ! हे अतिवीर्य ! पहले देवताओंके स्वामीने आपके कुलिश मारा था आपने उसकी नीलिमाको अपने कंठमें धारण कर रखा है आपने अतिसमर्थ होने पर भी ऐसा किया था (अर्थात् आप उस नीलमाको दूर करसकते थे तब भी आपने वज्र और चक्र का अपमान न हो इस कारण और प्रहार करने वालेका यश

यच्च लोके भगांकं सर्वं सोमत्वं स्थावरं जङ्गमं च । प्राहुर्विप्रा-
स्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञास्तथाध्येयामंबिकां लोकधात्रीम् ॥३२॥
वेदैर्गीता सा हि तत्त्वं प्रसूता यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चातिरूपः॥
नात्यद्भुतं त्वत्समं देवभूतं भूतं भव्यं भव देवाथ नास्ति ।३३।
अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।
त्वत्तः सर्वं देवदेव प्रसूता एवं सर्वेशः कारणात्मा त्वमीड्यः ३४
इति संस्तूयमानस्तु भगवान् गोवृषध्वजः । प्रसार्य दक्षिणं हस्तं
नारायणमथाब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मनीषितानामर्थानां प्राप्तिस्ते सुर-
सत्तम । पारिजातं च हर्तासि मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥ ३६ ॥

फैले इस कारण अपने कण्ठमें नीलिमा धारण ही कर रखी ऐसे महाकारुणिक आप मेरी भी रक्षा करिये) ३१ संसारमें जो लिंगांकित पदार्थ हैं और जो भगांकित पदार्थ हैं वे स्थावर जंगम रूप सब पदार्थ उमासहित आप ही हैं इसी लिये तत्त्वको जानने वाले ब्राह्मण आपको गुणवान् और पाठ करने योग्य और लोकोंकी माता अम्बिकारूप (गुणत्रयरूपा प्रकृति) कहते हैं ३२ उनका वेदोंने (अजामेकां लोहितकृष्णरूपाम् इत्यादि) श्रुतिओंसे गान किया है और मायातत्त्वको अर्थात् महान्‌को उत्पन्न किया है आप दीक्षितोंके लिये यज्ञस्वरूप और योगियोंके लिये अतिरूप हैं हे देव ! आपकी समान अद्भुत देव न कोई है न कोई हुआ है और न कोई होगा ॥ ३३ ॥ मैं कपिल अनन्त ब्रह्मा और ब्रह्माजीके अतिवीर अर्थात् आभ्यन्तरिक शत्रुओंको जीतनेवाले सनक आदि पुत्र हे देव ! यह सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार आप सर्वेश कारणात्मा और पूजनीय हैं ३४ इस प्रकार स्तुति करने पर ध्वजामें बड़ेभारी वृषभको धारण करने वाले भगवान् शिव अपने दाहिने हाथको फैला कर नारायणसे कहने लगे, कि–३५ हे सुरसत्तम ! आपको आपके मन

यथा मैनाकमाश्रित्य तपस्त्वमकरोः प्रभो । तथा मम वरं कृष्ण संस्मृत्य स्थैर्यमाप्नुहि ॥ ३७ ॥ अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा । भवितासीत्यवोचं यत्तत्तथा न तदन्यथा ॥ ३८ ॥ यश्च स्तवेन मां भक्त्या स्तोष्यतेऽमरसत्तम । त्वया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभाक् सम्भविष्यति । समरे च जयं विष्णो प्राप्य पूजां तथोत्तमाम् ॥ ३९ ॥ विल्वोदकेश्वरो नाम भविताऽहमिहानघ । देवेश्वर त्वयाऽस्थापि देव सिद्धोपयाचनः ॥४०॥ इहस्थोपोषितो विद्वान् भक्तिमान् मम केशव । त्रिरात्रमीप्सिताँल्लोकान् गमिष्यति जनार्दन ॥ ४१ ॥ अविंध्या नाम देशेऽस्मिन् गंगा चैव भविष्यति । गंगास्नानसमं स्नानं मन्त्रतो भविता तथा ॥४२॥

चाहे पदार्थ मिलेंगे और आप पारिजातको छीनकर लेजाएँगे अतः आप अपने मनमें कष्ट न पाइये ३६ हे प्रभो ! आपने जिस प्रकार मैनाकपर्वतका आश्रय लेकर तपश्चर्याकी थी उसी प्रकार हे कृष्ण ! आप मेरे वरका स्मरण करके धैर्य धरिये ३७ तुम अवध्य और अजेय हो और मुझसे भी शूर हो (यह बात बाणासुर युद्धमें प्रकट होगी) मैंने जो बात कह दी है वह उसी प्रकार होगी उसमें कुछ भेद नहीं होगा ३८ हे अमरसत्तम विष्णो ! हे धर्मज्ञ ! जो पुरुष आपके बनाए हुए इस स्तोत्रसे मेरी भक्तिपूर्वक स्तुति करेगा उसकी समरमें उत्तम पूजा होगी और जीत होगी और वह धर्मभागी होगा ॥ ३९ ॥ हे निष्पाप ! मैं यहाँ पर विल्वोदकेश्वर नामसे रहूँगा क्योंकि - हे देवेश्वर देव ! तुमने मेरी यहाँ पर स्थापना करके अपनी प्रार्थना सफल कर ली है ॥ ४० ॥ हे जनार्दन केशव ! यहाँ पर तीन रात उपवास करके रहने वाला अभिलाषित लोकोंको पावेगा ॥ ४१ ॥ और इस देशमें गंगाका नाम अविन्ध्या होगा और गंगाके स्मरण करनेके मंत्रका स्मरण कर स्नान करनेसे यहां पर गंगास्नानकी

षट्पुरं नाम नगरं दानवानां जनार्दन । अत्रान्तर्धरणीदेशे पराक्रम्य महाबलाः ॥ ४३ ॥ एते दैत्या दुरात्मानो जगतो देव-संकटाः । छन्ना वसन्ति गोविन्द सानावस्य महागिरेः ॥ ४४ ॥ अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणोऽनघ । मानुषान्तरितस्त्वस्मात्त्व-मेतान् जहि केशव ॥४५॥ एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत । परिष्वज्य महात्मानं वासुदेवं जनाधिप ॥ ४६ ॥ ततो याते महादेवे प्रभातायां नराधिप । तस्यां निशायां गोविंद स्तुत्य पर्वत-मब्रवीत् ॥४७॥त्वदधः पर्वतश्रेष्ठ निवसन्ति महासुराः । अवध्या देवदेवानां वरेण ब्रह्मणः पुरा ॥४८॥ निर्गमिष्यन्ति तेनैव मया रुद्धा महाबलाः । द्वारे निरुद्धे तत्रैव विनंक्ष्यन्ति ममाज्ञया ४६ त्वयि सन्निहितश्चाहं भविष्यामि महागिरे । अधिष्ठाय महा-

समान फल मिलेगा ॥ ४२ ॥ हे जनार्दन ! यहाँ पर पृथिवीके भीतर दानवोंका षट्पुरनामक नगर है, वे महाबली यहां पर पराक्रम करके रहते हैं ॥ ४३ ॥ यह दैत्य दुरात्मा हैं और जगत् तथा देवताओंके लिये कंटक हैं, हे गोविंद ! वे इस पर्वतके शिखर पर छिपे हुये रहते हैं ॥ ४४ ॥ हे निष्पाप ! वे ब्रह्माजी के वरदानके कारण देवताओंसे अवध्य हैं, हे केशव ! आप मनुष्यशरीरसे प्रच्छन्न हैं अत एव इनका संहार करिये ॥४५॥ हे राजन् ! महात्मा वासुदेवसे इसप्रकार कह कर और उनका आलिंगन करके महादेवजी अन्तर्धान हो गए ४६ हे राजन् ! महादेवजीके चले जाने पर और रात्रि बीतकर प्रभात होने पर गोविंदने स्तुति करके पर्वतसे कहा; कि -॥४७॥ हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम्हारे नीचे बड़े भारी राक्षस निवास करते हैं, ब्रह्माजीने पहिले उनको वरदान देदिया था, इस लिये वह देवदेवोंसे भी अवध्य हैं ॥४८ ॥ यह महाबली राक्षस मेरे रोकने पर उस मार्गसे निकल जावेंगे और मेरी आज्ञासे द्वारके रुकने पर तहाँ नष्ट

घोरान् निवत्स्यामि च पर्वत ॥ ५० ॥ आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूपं दृष्ट्वा पर्वतसत्तम । गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्स्यति शाश्वतम् ५१ त्वत्तोऽश्मभिश्च प्रतिमां कारयित्वा हि भक्तितः । शुश्रूषयन्ति ये नित्यं मम यास्यन्ति ते गतिम् ॥ ५२ ॥ इति तं पर्वतं कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान् । तदा प्रभृति देवेशस्तत्र सन्निहितोऽच्युतः ५३ पाषाणः प्रतिमां तात कारयित्वा च कौरव । शुश्रूषन्ति कृतात्मानो विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे कृष्णकृतशिवस्तुतिर्नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो रथवरं कृष्णः समारुह्य महामनाः । बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य ययौ नृपः ॥ १ ॥ महेन्द्रमाह्वयामास रथस्थो मधुसूदनः । सत्कृतं पुष्कराभ्याशे सर्वैर्देवगणैः सह ॥ २ ॥ ततः शक्रो जगन्तोऽथ हरिभिर्युक्तमुत्तमम् । आरु-

---

होजावेंगे ॥ ४९ ॥ हे महागिरे ! मैं महाघोर राक्षसोंका संहार कर तुम्हारे पासही निवास करूँगा ॥ ५० ॥ हे पर्वतसत्तम ! जो पुरुष इस पर्वतके शिखर पर चढ़कर मेरे शाश्वत रूपको देखेगा उसको सहस्र गोदानका फल मिलेगा ॥५१॥ जो पुरुष तुम्हारे पाषाणोंसे मेरी प्रतिमा बनाकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करेंगे, वे मेरी गतिको प्राप्त होंगे ॥ ५२ ॥ वर देनेवाले कृष्णने इस प्रकार उस पर्वत पर अनुग्रह किया था, अच्युत श्रीकृष्ण उस दिनसे तहां पर सन्निहित रहते हैं ॥ ५३ ॥ विष्णुलोककी इच्छा रखने वाले पुण्यात्मा पुरुष तहां पाषाणोंसे प्रतिमा बना उनकी सेवा करते हैं ॥५४॥ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे राजन्! तदनन्तर उदार मन वाले श्रीकृष्ण बिल्वोदकेश्वरदेवको प्रणाम करके श्रेष्ठ रथपर बैठ कर चले ॥ १ ॥ और पुष्करके समीपमें देवताओंसे सत्कार पाते

रोह रथं देवः सर्वकामप्रदः सताम् ॥ ३ ॥ ततो रथस्थयोर्युद्ध-मभवत् कुरुनन्दन । देवयोर्दैवयोगेन पारिजातकृते तदा ॥ ४ ॥ ततोऽहनद्रणे विष्णुर्बाणैः शत्रुबलार्दनः । सैन्यानि देवराजस्य बाणजालैरजिह्मगैः ॥ ५ ॥ उपेन्द्रं न महेंद्रोथ नैव विष्णुः सुरेश्वरम् । ताडयामासतुर्वीरौ शस्त्रैः शक्तावपि प्रभो ॥६॥ एकैक-मश्वं दशभिर्महेन्द्रस्य जनार्दनः । विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैरस्त्र-युक्तैर्जनेश्वर । शैब्याद्यानपि देवेन्द्रः शरैरमरसत्तमः । छादया-मास राजेन्द्र घोरैरस्त्राभिमन्त्रितैः ॥ ८ ॥ स च बाणसहस्रैश्च कृष्णो गजमवाकिरत् । गरुडं च महातेजा बलभिद्धरिवाहनः ॥९ भूयिष्ठाभ्यां रथाभ्यां तौ तदहः शत्रुदारुणौ । युयुधाते महात्मानौ

हुए महेंद्रको रथमें बैठे हुए श्रीकृष्णने बुलाया ॥ २ ॥ तदनन्तर सज्जनोंकी सब कामनाओंको पूर्ण करने वाले देवराज इन्द्र और जयन्त घोडोंसे जुते हुए उत्तम रथपर सवार होगए ॥ ३ ॥ हे कुरुनन्दन ! उस समय प्रारब्धयोगसे प्रारब्धके कारण रथमें बैठे हुए देवताओंमें युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥ उस समय शत्रुओं की सेनाओंका मर्दन करने वाले श्रीकृष्णने रणमें देवराजकी सेनाओंको सूधेजाने वाले बाणजालोंसे मारना आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! वे दोनों वीर समर्थ थे तब भी उपेन्द्रने महेन्द्रको और विष्णुने इन्द्रको बाणोंसे ताड़ित नहीं किया ६ हे जनेश्वर ! जनार्दनने महेन्द्रके एक २ घोड़ेको अस्त्र लगे हुए तेज जाने वाले दस २ बाण मारे ७ हे राजेन्द्र ! देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रने भी शैब्यआदि घोडोंको अभिमंत्रण किये हुवे भयंकर अस्त्रों से छादिया ८ श्रीकृष्णने सहस्रों बाणोंसे हाथीको छा दिया और बलदैत्यका नाश करनेवाले महातेजस्वी हरिवाहन इन्द्रने भी गरुड़को बाणोंसे पाटदिया ९ शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले वे दोनों महात्मा नारायण और देवताओंके राजा इन्द्र बड़े

नारायणसुराधिपौ ॥ १० ॥ चकम्पे वसुधा कृत्स्ना नौर्जलस्थेव भारत । दिशां दाहेन दिग्देशाः सम्वृताश्च समन्ततः ॥ ११ ॥ चेलुर्गिरिवराश्चैव पेतुश्च शतशो द्रुमाः । पेतुश्च धरणीपृष्ठे मर्त्या धर्मगुणान्विताः ॥ १२ ॥ निर्घाता शतशश्चान्ये पेतुस्तत्र नराधिप । ऊहुश्च सरितः सर्वाः प्रतिस्रोता विशाम्पते ॥१३॥ विष्वग्वाता ववुश्चैव पेतुरुल्काश्च निष्प्रभाः । मुहुर्मुहुर्भूतसंघा रथनादेन मोहिताः ॥१४॥ मजज्वाल जले चैव वन्हिर्जनपदेश्वर । युयुधुश्च ग्रहैः सार्धं ग्रहा नभसि सर्वतः॥ १५ ॥ ज्योतींषि शतशः पेतुः स्वर्गाच्च धरणीतलम् । दिशां गजाः मकुपिता नागाश्च धरणीतले ॥ १६ ॥ गर्दभारुणसंस्थानैश्छिन्नाभ्रैश्चावृतं नभः । विनदद्भिर्महारावानूनशोणितवर्षिभिः ॥ १७ ॥ न भूर्न द्यौर्न

बड़े रथोंमें बैठ कर युद्ध कर रहे थे १० हे भारत ! उस समय जलमें पड़ी नौकाकी समान सारी पृथिवी कांपने लगी और दिशाओंमें चारों ओर आग लगने लगी ॥ ११ ॥ पर्वत कांपने लगे, सैंकड़ों वृक्ष गिर पड़े, धर्मात्मा पुरुष पृथिवी पर गिरने लगे १२ हे राजन् ! तहाँ पर सैंकड़ों उल्काएँ गिरने लगीं तथा हे राजन् ! सब नदियें अपने प्रवाहको उलटा बहाने लगीं १३ चारों ओरसे वायु चलने लगी प्रभारहित उल्काएँ गिरने लगीं और रथोंके नादसे मोहित होकर प्राणी वार २ सुन्न होने लगे ॥ १४ ॥ हे देशोंके स्वामी ! जलमें भी अग्नि जल उठी और आकाशमें भी चारों ओर ग्रह ग्रहोंके साथ लड़ने लगे १५ स्वर्गमेंसे टूटकर सैंकड़ों तारे पृथिवीमें गिरने लगे दिग्गज कुपित होगए और पृथिवीतलके हाथी भी कोपमें भर गए ॥ १६ ॥ गधेकी समान धूसर वर्णवाले और और लाल वर्णके मेघोंके टुकड़ोंसे आकाश छागया वे बड़ाभारी शब्द करने लगे और राक्षसोंके द्वारा रक्त वरसाने लगे ॥ १७ ॥ उस समय उन दोनों

गगनं नरेन्द्र वृषभाभवन् । स्वस्थानि सुरवीरौ तु दृष्ट्वा युद्धगतौ तदा ॥१८॥ जेपुर्मुनिगणा मन्त्रान् जगतां हितकाम्यया । ब्राह्मणाश्च महात्मानो ह्युतिष्ठंस्तेषु सत्वराः ॥ १९ ॥ ततो ब्रह्मा महातेजाः कश्यपं वाक्यमब्रवीत् । गच्छ वध्वा सहादित्या पुत्रौ वारय सुव्रत ॥२०॥ स तथेति तदा देवमुक्त्वा पद्मभवं मुनिः । जगाम रथमास्थाय तस्थौ नरवरान्तिके ॥ २१ ॥ स्थितं तु कश्यपं दृष्ट्वा सहादित्या तदान्तरा । उभौ रथाभ्यां धरणीमवतीर्णौ महाबलौ ॥२२॥ न्यस्तशस्त्रौ च तौ वीरौ ववन्दतुररिंदमौ पितरौ धर्मतत्त्वज्ञौ सर्वभूतहिते रतौ ॥ २३ ॥ उभौ गृहीत्वा हस्ताभ्यामदितिस्त्वब्रवीद्वचः । असोदराविवैतं किमन्योन्यं हन्तुमिच्छथः स्वल्पमर्थं पुरस्कृत्य प्रवृत्तमतिदारुणम् । सदृशं नेति पश्यामि

श्रेष्ठ देवताओंको युद्धमें पहुँचा हुआ देखकर भूमि, स्वर्ग, आकाश तथा हे राजन् ! वृषभ भी स्वस्थ न रह सके ॥ १८ ॥ जगत् का हित करनेकी इच्छासे मुनि मंत्रोंका जप करने लगे और महात्मा ब्राह्मण भी त्वराके साथ उनके साथ ही जप करनेको बैठ गये ॥ १९ ॥ उस समय महातेजस्वी ब्रह्माजीने कश्यपजीसे कहा; कि-हे सुव्रत ! आप वहू अदितिको साथ ले जाकर दोनों पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोक दीजिये २० उस समय कश्यपमुनि पद्मसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीसे तथास्तु कहकर रथमें बैठ पुरुषश्रेष्ठके पास चले २१ महाबली श्रीकृष्ण और इंद्र कश्यप और अदितिको खड़ा हुआ देख कर रथमेंसे पृथिवी पर उतर आये २२ सब भूतोंके हितमें तत्पर उन धर्म तत्त्वज्ञ अरिंदमन वीरोंने शस्त्रोंको रख दिया ॥ २३ ॥ अदितिने उन दोनोंको हाथोंसे पकड़ कर कहा, कि तुम दोनों सौतेले भाईकी समान एक दूसरेको क्यों मारना चाहते हो ॥ २४ ॥ थोड़ीसी ही बात के लिये तुम दोनोंमें दारुण संग्राम होने लगा परन्तु मैं इस बात

सर्वथा मम पुत्रयोः ॥ २५ ॥ श्रोतव्यं यदि मातुश्च पितुश्चैव प्रजापतेः । न्यस्तशस्त्रौ स्थितौ भूत्वा कुरुतं वचनं मम ॥ २६ ॥ तथेत्युक्त्वा च तौ देवौ स्नातुकामौ महाबलौ । गंगां जग्मतुरेवाथ प्रजल्पन्तौ परस्परम् ॥ २७ ॥ शक्र उवाच । त्वं प्रभुर्लोककृत् कृत्स्नराज्येहं स्थापितस्त्वया । स्थापयित्वा कथं नाम पुनर्मामवमन्यसे ॥ २८ ॥ भ्रातृत्वमुपगम्यैव ज्येष्ठत्वं चाप्यपोह्य च । कथं कमलपत्राक्ष निर्वाणं कर्तुमिच्छसि ॥ २९ ॥ स्नातौ तु जान्हवीतोये पुनरभ्यागतौ नृप । यत्रादितिः कश्यपश्च महात्मानौ दृढव्रतौ ॥ ३० ॥ प्रियसंगमनं नाम तं देशं मुनयोऽवदन् । यत्र तौ संगतौ चोभौ पितृभ्यां कमलेक्षणौ ॥ ३१ ॥ ततः शक्रस्य कौरव्य दत्त्वा वाभयं तदा । यत्र देवगणाः सर्वे समेता धर्म-

को अपने पुत्रोंके अनुकूल किसी प्रकार भी नहीं समझी २५ यदि तुम अपनी माता और पिता प्रजापतिके वचनको सुनने योग्य समझते हो तो तुम शस्त्रोंको त्याग कर मेरे वचनको मानो २६ तब वे दोनों महाबली देव "तथास्तु" कहनेके उपरान्त परस्पर बातचीत करते हुए स्नान करनेके लिये गंगाजीको चले गए २७ इन्द्रने कहा, कि हे प्रभो ! आप सब लोकोंको रचने वाले हैं आपने ही मुझे सारे राज्य पर स्थापित किया है आप मुझे स्थापित करके फिर मेरा अपमान क्यों कर रहे हैं २८ हे कमलपत्राक्ष ! तुम भाई होकर भी ज्येष्ठताका कुछ भी ख्याल न कर सब बातोंकी समाप्ति क्यों करना चाहते हो २९ हे राजन् ! वे दोनों दृढ़व्रत महात्मा गंगाजीमें स्नान करनेके अनन्तर अदिति और कश्यपके पास पहुँच गए ३० वे दोनों कमलनेत्र जहाँ पर अपने माता पितासे मिले थे उस देशको मुनि प्रियसङ्गमन नामक देश कहते हैं ३१ हे कौरव्य ! जहाँ पर सब धर्मचारी देवता इकट्ठे होरहे थे तहाँ पर श्रीकृष्णने इन्द्रको अभयदान दिया ३२

चारिणः ॥ ३२ ॥ ततो ययुर्विमानैस्तु देवाः सर्वे त्रिविष्टपम् । श्रद्धया परमया युक्तास्तेषामेवानुरूपया ॥ ३३ ॥ कश्यपश्चादितिश्चैव तथा शक्रजनार्दनौ । विमानमेकमारुह्य गता राजंस्त्रिविष्टपम् ॥ ३४ ॥ ते शक्रसदनं प्राप्ता रम्यं सर्वगुणान्वितम् । ऊषुरेकत्र कौरव्य मुदिता धर्मचारिणः ॥ ३५ ॥ शची तु कश्यपं पत्न्या सहितं धर्मवत्सला । उपाचरन् महात्मानं सर्वभूतहिते रतम् ॥ ३६ ॥ ततस्तस्यां प्रभातायां रजन्यामब्रवीद्धरिम् । अदितिर्धर्मतत्त्वज्ञा सर्वभूतं हितं वचः ॥ ३७ ॥ उपेन्द्र द्वारकां गच्छ पारिजातं नयस्व च । वध्वा संप्रापयस्वेश पुण्यकं हृदये स्थितम् ३८ पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरुः । नंदने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्यः स्थाने यथोचिते ॥ ३९ ॥ एवमस्त्विति कृष्णेन देवमाता यश-

---

तदनन्तर सब देवता अपने अनुकूल परम शोभासे सम्पन्न हो विमानोंमें बैठ कर स्वर्गको चले गए हे राजन् ! उस समय कश्यप अदिति इन्द्र और जनार्दन एक ही विमान पर बैठकर स्वर्गको चले ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे कौरव्य ! सब गुणोंसे युक्त रमणीय इन्द्रभवनमें पहुँचनेके उपरान्त वे धर्मात्मा प्रसन्न होकर एक स्थान पर बैठे ३५ धर्मवत्सला इन्द्राणी सब भूतोंके हितमें तत्पर महात्मा कश्यप और उनकी स्त्रीकी सेवा करने लगी ३६ धर्मके तत्त्वको जानने वाली अदितिने रात बीत कर प्रातः काल होने पर श्रीकृष्णसे सब प्राणियोंका कल्याण करने वाला वाक्य कहा, कि–३७ हे उपेंद्र ! अब तुम पारिजातको लेकर द्वारकाको जाओ और हे ईश ! वधूके हृदयमें स्थित पुण्यक व्रतके उत्सवको करो ३८ जब सत्यभामा पुण्यकव्रत कर चुके तब हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम इस परिजातको नन्दनवनमें यथोचित स्थान पर ही स्थापित कर देना ३९ महात्मा नारदजीने जिसको धर्मके गुणोंसे युक्त बताया था उस यशस्विनी देवमातासे श्रीकृष्णने कहा, कि–

स्विनी । उक्ता धर्मगुणैर्युक्ता नारदेन महात्मना ॥ ४० ॥
ततोऽभिवाद्य पितरं मातरं च जनार्दनः । महेन्द्रं सह शच्याऽथ
गतस्थे द्वारकां प्रति ॥ ४१ ॥ ददौ कृष्णाय पौलोमी नियोगान्
कुरुनन्दन । सर्वासामेव कृष्णस्य भार्याणां धर्मचारिणी ॥ ४२ ॥
दिव्यानां सर्वरत्नानां वाससां च मनस्विनी । नानारागविर-
क्तानां सदैवारजसामपि ॥ ४३ ॥ भार्याणां च सहस्राणि यानि
षोडश माधवे । प्रतिगृह्य महातेजाः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥४४॥
सम्पूज्यमानो द्युतिमान् खेचरैः पुण्यकर्मभिः । स सात्यकिः स-
पुत्रश्च प्राप्तो रैवतकं गिरिम् ॥४५॥स तत्र स्थापयित्वा च पारि-
जातं वरद्रुमम् । सत्यकं प्रेषयामास द्वारकां द्वारशालिनीम् ४६
श्रीकृष्ण उवाच । पारिजातमिहानीतं महेन्द्रसदनान्मया । निवे-

बहुत अच्छा ४० तदनन्तर श्रीकृष्ण अपने माता पिताको और इन्द्राणी सहित इन्द्रको प्रणाम करके द्वारकाको चलने लगे ४१ हे कुरुनन्दन ! उस समय धर्मचारिणी इन्द्राणीने कृष्णकी सब स्त्रियोंके लिये कृष्णको विद्रिगें (प्रेमपूर्वक दिये जाने वाले पदार्थ) दिये ॥ ४२ ॥ उस मनस्विनीने दिव्य रत्न और कभी मलिन न होने वाले अनेक रङ्गोंसे रँगे हुए वस्त्र भी दिये ४३ इस प्रकार उसने माधवकी सोलह सहस्र रानियोंके लिए (प्रेम दिखानेके लिये वस्तुएँ दी) महातेजस्वी श्रीकृष्ण उनको ग्रहण कर द्वारकापुरीको चले ४४ आकाशचारी पुण्यात्मा व्यक्तियोंसे सत्कार पाते हुए कान्तिवान् श्रीकृष्ण और सात्यकि तथा प्रद्युम्न रैवतकपर्वत पहुँच गए ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्ण वहाँ पर श्रेष्ठ वृक्ष पारिजातको रख कर द्वार वाली द्वारकाको सात्यकिको भेजने लगे ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णने कहा कि—हे भीमवंशमें उत्पन्न होने वाले यादवोंको बढ़ाने वाले महाभुज सात्यके ! तुम भीमवंशियों से निवेदन करो, कि—मैं महेन्द्रके भवनसे यहाँ पर पारिजातको ले

इय महाबाहो भैमानां भैमवर्धन ॥ ४७ ॥ अद्य द्वारवतीं चैव पारिजातमहं द्रुमम् । प्रवेशयिष्ये नगरे शोभाः प्रक्रियतां शुभाः इत्युक्तः सत्यको गत्वा तथोक्त्वा पुनरागतः । कुमारैर्नागरैः सार्धं साम्बप्रभृतिभिः प्रभो ॥४९॥ ततोऽग्रतः पारिजातमारोप्य गरुडे तदा । प्रद्युम्नो द्वारकां रम्यां विवेश रथिनां वरः ॥५०॥ शैब्यादिहययुक्तेन रथेनानुययौ हरिः । तस्याथ रथमुख्येन सत्यकः साम्ब एव च ॥ ५१ ॥ ये त्वन्ये नृप वार्ष्णेया यानैर्बहुविधै-स्तथा । ययुः प्रहृष्टास्तत्कर्म पूजयन्तो महात्मनः ॥५२॥ सत्यका-द्विस्तरं श्रुत्वा यादवा नागरास्तथा । विस्मयं परमं जग्मुरप्रमेयस्य कर्मणा ॥५३॥ तं दिव्यकुसुमं वृक्षं दृष्ट्वानर्तनिवासिनः । राजन्न तत्प्रहृष्टाः पश्यमाना महोदयम् ॥ ५४ ॥ तमद्भुतमचिन्त्यं च मत्तकेलिकलाण्डजम् । वृक्षोत्तमं पश्यतां वो वृद्धानामगमज्जरा॥५५

आया हूँ ॥ ४७ ॥ आज मैं महावृक्ष पारिजातको द्वारकामें प्रवेश कराऊँगा इस लिये नगरमें शुभ शोभा फैलानी चाहिये ॥४८॥ हे प्रभो ! इस बातको सुनकर सात्यकि उस बातको नगरमें कह कर साम्ब आदि कुमारोंके और नागरिकोंके साथ आगए ४९ तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न आगे २ गरुड़ पर परिजातको रख कर रमणीय द्वारकामें घुसे ॥ ५० ॥ श्रीकृष्ण सात्यकि और प्रद्युम्नको साथमें लेकर शैब्य आदि घोड़ोंसे जुते हुए श्रेष्ठ रथमें बैठ कर चले ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! दूसरे वृष्णिवंशी पुरुष भी प्रसन्न होकर उन महात्माके इस कर्मकी प्रशंसा करते हुए चले ॥५२॥ सात्यकिसे अप्रमेय श्रीकृष्णके कर्मको विस्तार पूर्वक सुन कर यादव और नगरनिवासी परम विस्मित हुए ॥ ५३ ॥ आनर्त (द्वारका) में रहने वाले पुरुष उस दिव्य पुष्पों वाले वृक्षको देखकर फूले न समाते थे ॥ ५४ ॥ उस अचिन्त्य, मद से क्रीड़ा करने वाले पक्षियोंसे युक्त उत्तम वृक्षको देख कर वृद्धों

ये त्वन्धचक्षुषः सर्वे तेऽभवन् दिव्यचक्षुषः। विरोगा रोगिणश्चासन् घ्रात्वा गन्धं वनस्पतेः ॥ ५६ ॥ लपन्तः कोकिलांश्छ्वेतांश्छ्रुत्वानर्तनिवासिनः। बभूवुर्हृष्टमनसो ववन्दुश्च जनार्दनम् नानाविधानि तूर्याणि गेयानि मधुराणि च। शुश्रुवुस्तस्य वृक्षस्य नातिदूरं गता नराः ॥ ५८ ॥ यो यं संकल्पयामास गन्धं हृद्यं नरस्तथा। स तदैव तमाजघ्रे पारिजातसमुद्भवम् ॥ ५९ ॥ ततः प्रविश्य रम्यां तु द्वारकां यदुनंदनः। वसुदेवं महात्मानं ददृशे देवकीं तथा ॥ ६० ॥ कुकुराधिपतिं चैव बलं भ्रातरमेव च। वृद्धाश्च यादवानां ये मानार्हानमरोपमान् ॥ ६१ ॥ विसृज्य तान् वै भगवाननादिनिधनोऽच्युतः। सम्पूज्य च यथान्यायं स्वमेव भवनं गतः ॥ ६२ ॥ स सत्यभामयावासं विवेश मधुसूदनः। पारिजातं तरुश्रेष्ठं प्रहाय गदपूर्वजः ॥ ६३ ॥ सा देवी पूजया-

---

का बुढ़ापा दूर होगया ॥ ५५ ॥ उस वनस्पतिकी गंधको सूँघ कर अंधोंकी आखें दिव्य होगईं और रोगी पुरुष रोग रहित होगए ॥ ५६ ॥ आनर्तनिवासी श्वेत कोयलोंको आलाप करती हुईं सुन कर मनमें प्रसन्न होने लगे और श्रीकृष्णकी वन्दना करने लगे ॥ ५७ ॥ उस वृक्षसे थोड़ी दूर पर खड़े हुए मनुष्य अनेक प्रकारके तूर्य और मधुर गीतोंको सुनने लगे ॥ ५८ ॥ मनुष्योंने अपने मनमें जिस २ हृदयप्रिय गंधका स्मरण किया उन मनुष्योंको परिजातसे वही २ गंध सुँघाई देने लगी ॥५९॥ यदुनन्दन श्रीकृष्णने द्वारकामें प्रवेश करनेके अनन्तर महात्मा वसुदेव देवकी कुकुराधिपति उग्रसेन भाई बलदेव, देवताओंकी समान सत्कारके पात्र वृद्ध यादवोंको देखा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ आदि अन्तरहित भगवान् अच्युत उनका यथायोग्य सत्कार कर उनका विसर्जन करनेके अनन्तर अपने भवनको चले ॥ ६२ ॥ गदके बड़े भाई श्रीकृष्ण श्रेष्ठ वृक्ष पारिजातको लेकर सत्यभामा

गास प्रहृष्टा वासवानुजम् । प्रतिजग्राह तं चापि पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ६४ ॥ मनीषितेन स तरुरल्पो भवति भारत । महांश्च वासुदेवस्य तदद्भुतमभून्महत् ॥ ६५ ॥ कदाचिद्ध द्वारकां सर्वां प्रच्छादयति भारत । कदाचिद्धस्तधार्यस्तु भवत्यंगुष्ठसन्निभः ६६ ननन्द सत्या कौरव्य देवी प्राप्य मनोरथम् । पुण्यकार्थं तु सम्भारान् सम्भर्तुमुपचक्रमे ॥ ६७ ॥ यानि द्रव्याणि कौरव्य जम्बूद्वीपे तु कानिचित् । योग्यानि तानि कृष्णेन सम्भृतानि महात्मना ॥ ६८ ॥ मुनिं तदा संस्मृतवान् स नारदं जनार्दनः सर्वगुणोचितं वशी । प्रतिग्रहार्थं व्रतकस्य सत्यया यथोपदिष्टस्य पुरन्दरानुजः ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातानयनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

के भवनमें घुसे ॥ ६३ ॥ उस समय उस देवीने प्रसन्न होकर वासव (इन्द्र) के भाई श्रीकृष्णकी पूजा की, और महाद्रुम पारिजातको ग्रहण कर लिया ॥ ६४ ॥ हे भारत ! वह वृक्ष श्रीकृष्ण की इच्छानुसार कभी छोटा होजाता था, कभी बड़ा होजाता था, यह अद्भुत बात होती थी ॥ ६५ ॥ हे भारत ! कभी वह सारी द्वारकाको छा लेता था और कभी हाथमें धारण करने योग्य अँगूठेकी समान होजाता था ॥ ६६ ॥ हे कौरव्य ! देवी सत्यभामा अपने मनोरथको पूर्ण हुआ देख कर पुण्यक व्रतके लिये सामग्रियें जोड़ने लगी ॥ ६७ ॥ जम्बूद्वीपमें जितने उचित द्रव्य थे महात्मा कृष्णने उन सबको एकत्रित करलिया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर इन्द्रके छोटे भाई जितेन्द्रिय श्रीकृष्णने सत्यभामाके कथनानुसार पुण्यक व्रतमें प्रतिग्रह करनेके लिये सर्वगुणोचित नारदमुनिका स्मरण किया ॥ ६९ ॥ पिचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ७५

वैशम्पायन उवाच । अथ कृष्णस्य कौरव्य ध्यातमात्रस्तपोधनः । आजगाम मुनिश्रेष्ठो नारदो वदताम्वरः ॥ १ ॥ संपूजयित्वा विधिवद्वासुदेवो विशाम्पते । प्रतिग्रहार्थं विधिवच्छ्रीमान् भक्त्या न्यमन्त्रयत् ॥ २ ॥ ततः काले च सम्प्राप्ते स्नातं देवो महामुनिम् । सम्पूज्य माल्यैर्गन्धैश्च भोजयामास भारत ॥३॥ सार्वकामिकमन्नाद्यं सर्वभूतकृदन्वयः । सत्यया प्रियया सार्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४ ॥ पुष्पदामावसज्यार्थं कण्ठे कृष्णस्य भाविनी । ववन्ध कृष्णं सुभगा पारिजाते वनस्पतौ ॥ ५ ॥ अद्भिर्ददौ नारदाय ततोऽनुज्ञाप्य केशवम् । देवी धेनुसहस्रं च कांचनस्य च पर्वतम् ॥६॥ हिरण्यरूप्यगिर्भं च मणिरत्नगर्भस्यं च । तिलमिश्रस्य च तथा धान्यैरन्यैर्युतस्य च ॥ ७ ॥ प्रतिगृह्य

वैशम्पायनजीने कहा, कि—वक्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिसत्तम तपोधन नारदजी श्रीकृष्णके ध्यान करते ही तहाँ आगये १ हे राजन् ! श्रीमान् श्रीकृष्णने उनका शास्त्रोक्त रीतिसे पूजन कर उनको भक्तिपूर्वक दान देनेके लिये निमन्त्रण दिया ॥ २ ॥ तदनन्तर जब दानका समय आनेपर महामुनि स्नान करके तहाँ आगए, उस समय, हे भारत ! श्रीकृष्णने उनका माला चन्दन आदि से सत्कार कर उनको भोजन कराया ३ सब भूतोंको रचनेवाले श्रीकृष्णने और उनकी प्यारी भार्या सत्यभामाने प्रसन्न मनसे सबके चाहने योग्य अन्न उनको जिमाया ४ तदनन्तर सद्भाववाली सौभाग्यवती सत्यभामाने श्रीकृष्णके कण्ठमें पुष्पोंसे गुंथी हुई डोरी डालकर श्रीकृष्णको परिजातक नामवाले वनस्पतिसे बाँध दिया ॥ ५ ॥ तदनन्तर सत्यभामाने श्रीकृष्णसे सम्मति लेनेके अनन्तर श्रीकृष्णका जलके द्वारा नारदजीको दान देदिया और साथमें सहस्र गौएँ सुवर्णका ढेर मणि और रत्नोंके समान प्रभावाले चाँदी सोने तिल तथा और भी धान्यों का ढेर

तु तत् सर्वं नारदो मुनिसत्तमः। स संप्रहृष्टो भुक्त्वाऽथ भूयः केशवमब्रवीत् ॥८॥ भो केशव मदीयस्त्वमद्भिर्दत्तोसि सत्यया। स त्वं मामनुगच्छस्व कुरु यद्ब्रवीम्यहम् ॥ ९ ॥ प्रयमः पन्न इत्येवमब्रवीन्मधुसूदनः। अजन्तमनुवव्राज नारदं च जनार्दनः१० परिहासं बहुविधं कृत्वा मुनिवरस्तदा। तिष्ठस्व गच्छामीत्युक्त्वा परिहासविचक्षणः ॥ ११ ॥ अपनीय ततः कण्ठात् पुष्पदामेन-ब्रवीत्। कपिलां गां सवत्सां भो निष्क्रयार्थं प्रयच्छ मे ॥१२॥ कृष्णाजिनं तिलैः पूर्णं प्रयच्छ च सकांचनम्। एषोऽत्र निष्क्रयः कृष्ण विहितो वृषकेतुना ॥ १३ ॥ तथेत्युक्त्वा हृषीकेशस्तथा चक्रे जनाधिप। स उवाच मुनिश्रेष्ठं हसित्वा मधुसूदनः ॥१४॥

दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनन्तर मुनिसत्तम नारदजीने उन सब वस्तुओंको ग्रहण कर प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णसे कहा; कि-८ हे केशव! अब तुम मेरे होगए, सत्यभामाने तुम्हें मुझे जलका संकल्प कर दान दे दिया है इसलिये आप अब मेरे पीछे २ आइये और मैं जो कुछ कहूँ उसको करिये ॥ ९ ॥ तब जनार्दन मधुसूदन चलने हुए नारदजीके पीछे २ चलकर कहने लगे, कि-यह तो (सेवकोंका) मुख्य कर्तव्य है ॥ १० ॥ हास्य-करनेमें चतुर नारदजीने (खडाँऊ उठाकर लाओ इत्यादि आज्ञा देकर) अनेक प्रकारका परिहास किया तदनन्तर मुनिवर नारदजीने कहा कि तुम यहाँ खड़े रहो अब मैं जाता हूँ ॥११॥ तदनन्तर उन्होंने श्रीकृष्णके कण्ठमेंसे डोरी निकाल कर कहा, कि-आप मुझे अपनी मूल्यस्वरूप बछड़े सहित एक गौ दीजिये ॥ १२ ॥ और काले तिलोंसे भरा हुआ एक सुवर्णका पात्र भी मुझे दो, हे कृष्ण! शंकरने यहाँ पर यही मूल्य बनाया है ॥ १३ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णने तथास्तु कहकर ऐसा ही किया फिर उन्होंने मुनिवर नारदजीसे हँसकर कहा, कि-॥१४॥ हे धर्मज्ञ नारदजी!

वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते नारद काङ्क्षितः । तत्ते दातास्मि धर्मज्ञ परा प्रीतिर्हि मे त्वयि ॥ १५ ॥ नारद उवाच । नित्यमेवास्तु मे प्रीतो भवान् विष्णो सनातन । त्वत्प्रसादात्तु सालोक्यं व्रजेयं ते महामते ॥ १६ ॥ अयोनिजो भवेयं ते नारायण सतां गते । भवेयं ब्राह्मणश्चैव पुनर्जात्यन्तरेष्वपि ॥ १७ ॥ एवमस्त्विति तं देवो विष्णुः प्रोवाच भारत । तुतोष च ततो धीमान् नारदो मुनिसत्तमः ॥ १८ ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि विष्णोरतुलतेजसः । निमन्त्रितानि कौरव्य सत्यया हरिकान्तया ॥ १९ ॥ तासां ददौ सन्नियोगमेकैकं हरिवल्लभा । शच्या यो वासुदेवस्य पुरा दत्तो नराधिप॥२०॥ पारिजातो वसंहात्र ततः प्रवर्तते तदा । आज्ञया वासुदेवस्य नारदेन महात्मना ॥ २१ ॥ निमन्त्रिता गणाः सर्वे

आप वर माँग लीजिए, जो आपकी इच्छा होगी वह दूँगा, क्यों कि-हे धर्मज्ञ ! मैं आपके ऊपर परम प्रसन्न हू ॥ १५ ॥ नारदजीने कहा, कि-हे सनातन विष्णो ! आप मेरे ऊपर सर्वदा प्रसन्न रहें और हे महामते ! आपकी प्रसन्नतासे मुझे आपका ही लोक मिलना चाहिये ॥ १६ ॥ हे सज्जनोंकी गति नारायण ! मैं अयोनिज होऊँ और दूसरे जन्मोंमें भी ब्राह्मण बनकर ही उत्पन्न होऊँ ॥ १७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय भगवान् विष्णुने एवमस्तु कहा, तब तो मुनियोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् नारदजी प्रसन्न होगए ॥ १८ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! हरिकी प्रिया सत्यभामाने अतुल तेजस्वी विष्णुकी सोलह सहस्र स्त्रियोंको भी निमन्त्रण देकर बुलवा लिया ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इन्द्राणीने वासुदेवको जो पहिले भेंटकी वस्तुएं दी थीं, उन सबको हरिवल्लभाने प्रत्येकको बाँट दिया ॥ २० ॥ तहाँ पर पारिजातने अपना गुण दिखाना आरम्भ कर दिया वासुदेवकी आज्ञासे महात्मा नारदने (सब मित्रोंको भी बुलालिया) ॥ २१ ॥ हे कुरु-

केशवेन महात्मना। विभूतिं पारिजातस्य ददृशुः कुरुनन्दन २२ पाण्डवांश्चानयामास सहैव पृथया हरिः। द्रौपद्या च महातेजा-स्तथैव च सुभद्रया ॥ २३ ॥ श्रुतश्रवां च ससुतां भीष्मकं ससुतं तदा। अन्यानपि च कौरव्य मित्रसम्बन्धिबान्धवान् ॥ २४ ॥ रेमे च सह पार्थेन फाल्गुनेन जनार्दनः। सान्तःपुरो महातेजाः परमर्द्ध्या वसन्नृप ॥ २५ ॥ सम्वत्सरे ततो याते केशिहाऽमर-सत्तमः। पारिजातं पुनः स्वर्गमानयत् सर्वभावनः ॥२६॥ तत्रा-दितिं कश्यपं च दृष्ट्वा स्वजननीं प्रभुः। शक्रेण सहितो श्रीमान-प्रमेयपराक्रमः ॥ २७ ॥ तमुवाचादितिर्माता प्रणतं मधुसूदनम्। सौभ्रात्रमस्तु वामेवं नित्यं चामरसत्तम ॥ २८ ॥ मनोरथं मम त्वं च पूरयस्व जनार्दन। तथेत्येवाब्रवीत् कृष्णस्ततो मामरमातम-

---

नन्दन ! केशवके द्वारा निमन्त्रित सब मित्र और सम्बन्धी भी पारिजातकी विभूतिको देखने लगे ॥ २२ ॥ हे कौरव्य ! महा-तेजस्वी श्रीकृष्णने पृथा द्रौपदी और सुभद्राके साथ पाण्डवोंको भी बुलवा लिया श्रुतश्रवाको उनकी पुत्रीको भीष्मकको उनके पुत्रको तथा और भी मित्र सम्बन्धी बान्धवोंको भी बुलवा लिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! महातेजस्वी जनार्दन और उन का रनवास बड़े ठाठके साथ तहाँ रहता था उधर श्रीकृष्ण पृथा पुत्र अर्जुनके साथ आनन्दमें रहते थे २५ इस प्रकार जब साल भर बीत गया तब सबका कल्याण चाहने वाले देवताओंमें श्रेष्ठ तथा केशी दैत्यका नाश करने वाले श्रीकृष्ण पारिजातको फिर स्वर्ग लेगए २६ अप्रमेय पराक्रमी और बुद्धिमान् श्रीकृष्णने तथा इन्द्रने कश्यपके तथा अपनी माता अदितिके दर्शन किये २७ उस समय प्रणाम करते हुए मधुसूदन श्रीकृष्णसे माता अदितिने कहा, कि–हे अमरसत्तम ! तुममें सर्वदा ऐसा ही भाईचारा बना रहे २८ हे जनार्दन ! तुम मेरे इस मनोरथको पूर्ण करो, तदन-

वान् ॥२९। आमन्त्रयित्वा पितरौ देवराजानमब्रवीत्। वासुदेवो महातेजाः कालप्राप्तमिदं वचः।।३०॥ महादेवेन देवेश संदिष्टोऽस्मि महात्मना। अन्तर्भूमितलेऽवध्यानसुरान्प्रति मानद ॥३१॥ तदितो दशरात्रेण हन्ताहमसुरोत्तमान्। तत्रोपविष्टान् स्थातव्यं भवता महात्मना ॥३२॥ जयन्तेन च वीरेण दानवानां जिघांसया। एकोऽत्र मानुषो देवो देवपुत्रस्तथाऽपरः ॥३३॥ अवध्याः किल ते देवैर्ब्रह्मणो वरदर्पिताः। अस्माभिः किल हन्तव्या मानुषत्वमुपागते ॥ ३४ ॥ तथेति कृष्णं स हरिः प्रीतरूपस्तथाऽब्रवीत्। सस्वजाते ततो देवावन्योन्यं जनमेजय ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे स्वर्गे पारिजातस्थापनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

न्तर आत्मवान् श्रीकृष्णने अपनी मातासे तथास्तु कहा २९ तदनन्तर महातेजस्वी श्रीकृष्णने अपने माता पितासे बात चीत करके देवराज इन्द्रसे समयोचित बचन कहा, कि—॥ ३० ॥ हे मानद देवेश! महात्मा महादेवने मुझसे भूमिके भीतर रहने वाले अवध्य असुरोंके सम्बन्धमें बातचीत की है ॥ ३१ ॥ इस लिये मैं तहाँ पर बैठे हुए बड़े २ असुरोंको दश रात्रिके भीतर ही मार डालूँगा,आप श्रेष्ठ महात्मा हैं,इस लिये आप भी तहाँ पर बैठिये३२और दानवोंको मारनेकी इच्छासे वीर जयन्त भी तहाँ उपस्थित रहे तहाँ पर एक मनुष्यशरीरधारी देव और दूसरा देव पुत्र रहना चाहिये ३३ वे ब्रह्माजीके वरदानके कारण घमण्डमें भर रहे हैं और देवताओंसे अवध्य हैं अब मनुष्यका अवतार ग्रहण करने पर हमें उनको अवश्य मार डालना चाहिये ॥ ३४ ॥ तब तो इन्द्रने श्रीकृष्णसे ऐसा ही हो कहा हे जनमेजय! फिर उन दोनों देवताओंने फिर परस्पर आलिंगन किया ॥ ३५ ॥ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥

जनमेजय उवाच । पुण्यकानां समोत्पत्तिं कथयस्व द्विजोत्तम । द्वैपायनप्रसादेन सर्वं हि विदितं तव ॥१॥ वैशम्पायन उवाच । उमया पुण्यकविधिर्नरेन्द्रोत्पादितः पुरा । शृणु येन विधानेन लोके धर्मभृतां वर ॥ २ ॥ स्वर्गान्नीते पारिजाते कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । ययौ द्वारवतीं धीमान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ देवासुरे नृपश्रेष्ठ संग्रामे समुपस्थिते । षट्पुरस्य वधे घोरे महादेवाज्ञयाऽनघ ॥ ४ ॥ कृष्णेन सहितं विप्रं नारदं धर्मवित्तमम् । आसीनं परिपप्रच्छ रुक्मिणी भैष्मकी नृप ॥ ५ ॥ तत्र जाम्बवती देवी सत्यभामा च भामिनी । गान्धारराजपुत्री च योगयुक्ता नराधिप ॥६॥ देव्यश्च नृप कृष्णस्य बह्व्योऽन्या वै समागताः । कुलशीलगुणोपेता धर्मशीलाः पतिव्रताः ॥७॥ रुक्मिण्युवाच । मुने धर्मभृतां श्रेष्ठ धर्मज्ञानभृतां वर । उत्पत्तिं पुण्यकानां

जनमेजयने कहा, कि-हे द्विजोत्तम ! आप मुझसे पुण्यक व्रतों की उत्पत्तिको कहिये, क्योंकि-आपको वेदव्यासजीके प्रसादसे सब बातें विदित हैं १ वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ नरेन्द्र ! जिस प्रकारसे उमाने पुण्यकविधिको उत्पादित किया था उसको सुनिये ॥ २ ॥ जब श्रीकृष्ण स्वर्गसे पारिजात को लेगए उस समय मुनिसत्तम बुद्धिमान् नारदजी द्वारकापुरीको चले ॥ ३ ॥ हे निष्पाप श्रेष्ठ राजन् ! जब महादेवजीकी आज्ञा से षट्पुरवधका समय आने पर महाघोर देवासुर संग्राम आलगा (उस समय नारदजी आए थे)॥ ४ ॥ हे राजन् ! उस समय श्रीकृष्णके साथ बैठे हुए धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ नारदजीसे भीष्मकपुत्री रुक्मिणी बूझने लगी ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस समय तहाँ जाम्बवती देवी भामिनी सत्यभामा, योगिनी गान्धारराजपुत्री इनके अतिरिक्त कुल शीलवती और भी कृष्णकी बहुतसी पतिव्रता रानियें तहाँ आई हुई थीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीने बूझाः-

त्वं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ८ ॥ विधिं च फलयोगं च दानकालं तथैव च । कौतूहलं नस्तत्सिद्धिं वदस्व वदतां वर ॥९॥ नारद-उवाच। शृणु वैदर्भि धर्मज्ञे सपत्नीभिः सहानघे । पुण्यकानां विधिः प्रोक्तो यथा देवि पुरा मया ॥ १० ॥ चचारोमाव्रतं देवी पुण्यकानां शुचिव्रता । व्रतावसानेऽथ तया सख्यो देवि निमंत्रिता अदित्याद्याः सुताः सर्वा दक्षस्याक्लिष्टकर्मणः । पौलोमी च शची देवी खयाता लोके पतिव्रता ॥ १२ ॥ रोहिणी च महा-भागा सोमस्य दयिता सती । फाल्गुनी च तथा पूर्वा रेवती च त्रिशाम्पते॥१३॥ तथा शतभिषा चैव मघा च कुरुनन्दन । एता-भिर्हि महादेवी पूर्वमाराधिता सती ॥ १४ ॥गंगा सरस्वती चैव वेणी गोदा च निम्नगा । तथा वैतरणी चैव गण्डकी या च

कि-हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ और हे धर्मका ज्ञान रखने वालोंमें उत्तम ! आप पुण्यककी उत्पत्तिको पूर्णरीतिसे कहिये ॥ ८ ॥ इसकी विधिको और इसके फलको तथा इसके दानके समयको भी बताइये हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! इसका हमें कौतूहल होरहा है, अतः हमसे इसकी सिद्धिका वर्णन करिये ९ नारदजीने कहा, कि-हे धर्मज्ञ वैदर्भि ! हे निष्पापे ! मैंने इस पुण्यककी विधिको जिस प्रकार कहा था, उसको अब तुम और तुम्हारी सौतें भी फिर सुनें पवित्र व्रत वाली उमादेवीने पुण्यक व्रत किया था हे देवि ! उन्होंने व्रतके अन्तमें अपनी सखियोंको निमंत्रित किया था ११ अम्बिकाने अपना व्रत समाप्त होने पर सरलतासे कर्म करनेवाले दक्षकी सब पुत्री, और लोकोंमें पतिव्रतारूपसे प्रसिद्ध पुलोमा की पुत्री इन्द्राणी और हे राजन् ! चन्द्रमाकी प्रियपत्नी महाभागा रोहणी फाल्गुनी तथा पूर्वा, रेवती, हे कुरुनन्दन ! शतभिषा मघा गंगा सरस्वती वेणा गोदा नदी वैतरणी गण्डकी तथा हे भारत ! और भी रमणीय नदियें लोपामुद्रा और जगत्का कल्याण करने

भारत ॥ १५ ॥ अन्याश्च सरितो रम्या लोपामुद्रा च भारत । सत्यश्चान्या जगद्देवि धारयन्ति हि ताः शुभाः ॥ १६ ॥ शुभाश्च गिरिनन्दिन्यो वन्हिकन्याश्च सुव्रताः । स्वाहा वन्हिप्रिया देवी सावित्री च यशस्विनी ॥ १७ ॥ ऋद्धिः कुबेरकान्ता च जले च महिषी तथा । भार्या पितृपतेश्चैव वसुपत्न्यस्तथा च या १८ ह्रीः श्रीर्धृतिस्तथा कीर्तिराशा मेधा च सुव्रताः । प्रीतिर्मतिश्च ख्यातिश्च सन्नीतिश्च तपोधनाः ॥ १९ ॥ देव्यः सत्यस्तथैवान्याः सर्वभूतहिते रताः । तासां व्रताचराने च पूजां चक्रेम्बिका तदा ॥ २० ॥ तिलरत्नमयं दत्वा पर्वतं सर्वधान्यवत् । वासोभिर्भूषणैर्मुख्यैर्नानारागैः सुमध्यमे ॥ २१ ॥ प्रतिगृह्य तु तां पूजां दत्तां देव्यां तपोधनाः । उपविष्टाः कथाश्चित्राः कुर्वन्त्यो भर्तृदेवताः ॥ २२ ॥ पुण्यकार्थं कथास्तासामासन् देवी शशंस याः । विधिं च पुण्यकस्याथ सतीनां भर्तृदेवते ॥ २३ ॥ तासां मतेन साध्वीनां सर्वासां सोमनन्दिनी । पर्यपृच्छदुमां देवीं

वालीं और भी देवियें, शुभ गिरिनन्दिनियें सुव्रत वन्हिकन्याएँ, अग्निकी प्यारी स्वाहा, यशस्विनी देवी सावित्री, जलकी रानी कुबेरप्रिया-ऋद्धि, पितृपति यमराजकी भार्या और वसुपत्नियें ह्री, श्री,धृति कीर्ति आशा मेधा सुव्रता-प्रीति मति ख्याति और तपोधन सन्नीति और सब भूतोंके हितमें परायण सती देवियों की कि-जिन्होंने पहिले अम्बिकाका सत्कार किया था, उनकी पूजाकी ॥ १२-२० ॥ हे सुमध्यमे ! (उन्होंने) अनेक प्रकारके रंगोंसे रँगे हुए वस्त्र, मुख्य २ भूषण और तिल तथा रत्नोंके पर्वत दिये थे ॥ २१ ॥ वह स्वामीको देवता मानने वालीं तपोधन स्त्रियें उस पूजाको ग्रहण कर बैठी २ विचित्र कथाएँ कहने लगीं ॥ २२ ॥ हे स्वामीको देवता माननी वाली ! उन देवियों को पुण्यकव्रतकी विधिमें संदेह था, अत एव वह पुण्यकव्रतकी

पुण्यकानां विधिं वरा ॥ २४ ॥ उमा तासां प्रियार्थं तु पुण्यकान्यब्रवीत्तदा । समक्षं मम वैदर्भि सर्वभूतहिते रता ॥ २५ ॥ ममैव च मया दत्तः स तदा रत्नपर्वतः । प्रतिगृह्य मया चैव कृतो ब्राह्मणसाच्छुभे ॥ २६ ॥ उमा त्वरुन्धतीं साध्वीमामंत्र्य यदभाषत । शृणु कल्याणि वक्ष्यामि सर्वाभिः सहिता शुभे २७ पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं यथावदनुपूर्वशः । यथा चैव मया दृष्टस्तत एष विधिः शुभे ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पुण्यकविधिकथनं नाम सप्तसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

उमोवाच । सर्वज्ञाऽहं यदा भर्तुः प्रसादेन शुचिस्मिते । तदा पुरा ममादिष्टो दृष्टः पुण्यविधिः शुभः ॥ १ ॥ सनातनः पुण्यविधिरिति बुद्ध्याऽवगम्यताम् । महादेवप्रसादेन मया दृष्टस्तव-

---

बातें करने लगीं ॥ २३ ॥ उन सब साध्वियोंके विचारके अनुसार अरुन्धती उमासे पुण्यकव्रतकी बात बूझने लगी । २४ । हे वैदर्भि ! तब सब भूतोंके हितमें परायण रहने वाली उमाने मेरे सामने पुण्यकका वर्णन किया था ॥ २५ ॥ हे शुभे ! वह रत्नपर्वत मेरे अर्पण किया गया था, और मैंने उसे ब्राह्मणोंके अर्पण कर दिया था ॥ २६ ॥ हे शुभे ! उस समय उमाने अरुन्धतीको आमन्त्रित कर जो बात कही थी, उसको हे कल्याणि ! तुम और सब स्त्रियोंके साथ उसको सुनो ॥ २७ ॥ हे शुभे ! जिस प्रकार मैंने इस विधिको देखा है उसी प्रकार मैं पुण्यककी विधिको क्रमपूर्वक कहता हूँ ॥ २८ ॥ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥

पार्वतीने कहा, कि-हे शुचिस्मिते ! मैं स्वामीकी प्रसन्नताके कारण सर्वज्ञ हूँ इसीलिये मुझे स्वामीकी पहले आदेश दी हुई पुण्यकविधि याद है ॥ १ ॥ यह पुण्यकविधि सनातन है

रुन्धती ॥ २ ॥ पुण्यकानि च सर्वाणि चीर्णवत्यस्म्यनिन्दिते ।
अनुज्ञया भगवतो भर्तुः शर्वस्य धीमतः ॥३॥ सतीत्वं धर्मचरणं
यस्यानित्यमखण्डितम् । पुण्यकानां विधिस्तस्या पुराणैः परि-
कीर्तितः ॥ ४ ॥ दानोपवासपुण्यानि सुकृतान्यप्यरुन्धती ।
निष्फलान्यसतीनां हि पुण्यकानि तथा शुभे ॥ ५ ॥ या वञ्च-
यन्ति भर्तारं योनिदुष्टाश्च याः स्त्रियः । योनिदोषात् पुण्यफलं
नाशनन्ति निरयङ्गमाः ॥ ६ ॥ साध्व्यो जगद्धारयन्ति सुशीलाः
पतिदेवताः । अनन्या धर्मनित्याश्च सतीपन्थानमाश्रिताः ॥ ७ ॥
अवाग्दुष्टाः शौचयुक्ता धृतिमत्यः शुभव्रताः । सततं साधुवा-
दिन्यो धारयन्ति जगत् खलु ॥ ८ ॥ व्याधितः पतितो वापि

हे अरुन्धती ! मैंने इसको महादेवजी प्रसादसे जाना है ॥ २ ॥
हे अनिन्दिते ! मैंने अपने स्वामी भगवान् शिवकी अनुज्ञासे सब
प्रकारके पुण्यकव्रत किये हैं ॥३॥ जिसका सतीत्व और धर्मा-
चरण सर्वदा अखण्डित रहता था उसीसे ही प्राचीन पुरुष
पुण्यकविधिका वर्णन किया करते थे ॥४॥ हे शुभे अरुन्धती !
असती स्त्रियोंके दान उपवास पुण्य और पुण्यकव्रत भी निष्फल
जाते हैं ॥ ५ ॥ जो स्त्रियें अपने स्वामीको ठगा करती हैं और
जो स्त्रियें योनिदुष्ट होती हैं वे स्त्रियें योनिदूषित होनेसे पुण्यके
फलको नहीं पाती हैं और नरकमें गिरती हैं ॥६॥ सतीमार्गका
आश्रय लेनेवाली सर्वदा धर्मका आचरण करनेवाली पतिके
अतिरिक्त दूसरेका ध्यान न करनेवाली और पतिको देवता
माननेवाली सुशील साध्वी स्त्रियें जगत्को धारण कररही हैं७
दूषित वाणीका उच्चारण न करनेवाली पवित्रता रखनेवाली शुभ
व्रतोंका पालन करनेवाली धैर्यधारिणी और सज्जनतासे भाषण
करनेवाली स्त्रियें इस जगत्को सर्वदा धारण किये रहती हैं ॥८॥
अपना स्वामी रोगी पतित अथवा दीन होतो भी स्त्री अपने

दीनो वापि कथंचन । न त्यक्तव्यः स्त्रिया भर्ता धर्म एष सनातनः ॥ ९ ॥ अकार्यकारिणं वापि पतितं वापि निर्गुणम् । स्त्री पतिं तारयत्येव तथाऽऽत्मानं शुभानने ॥ १० ॥ योनिदुष्टस्त्रियो नास्ति प्रायश्चित्तं हतैव सा । वाग्दुष्टे विहितं सद्भिः प्रायश्चित्तं पुरातने ॥ ११ ॥ भर्तुश्छन्देन कर्तव्यं व्रतकं सर्वदा स्त्रिया । उपवासोपि वा सत्ये कांक्षन्त्या सुकृतां गतिम् ॥ १२ ॥ कल्पांतरसहस्रेषु न स्त्री सा लभते गतिम् । तिर्यग्योनिसहस्रेषु पच्यते योनिविप्लवात् ॥ १३ ॥ यदि सा नाम मानुष्यं स्त्री लभेदसती सती । चण्डालयोनौ दुर्मेधा जायते कुक्कुराशना ॥ १४ ॥ भर्ता देवः सदा स्त्रीणां सद्भिर्दृष्टस्तपोधने । यस्या हि तुष्यते भर्ता सा सती धर्मचारिणी ॥ १५ ॥ कौतुहलहतानां तु स्त्रीणां लोको

स्वामीको न त्यागे यह सनातन धर्म है ॥ ९ ॥ हे शुभानने ! स्त्री अकार्य करनेवाले पतित और निर्गुण पतिको तथा अपनी आत्माको भी तारदेती है १० योनि दूषित होनेवाली स्त्रीका तो प्रायश्चित्त है ही नहीं वह तो नष्ट ही होजाती है प्राचीनकालके विद्वान् पुरुषोंने दूषित भाषण करनेवाली स्त्रीका तो प्रायश्चित्त कहा है ॥ ११ ॥ हे अरुन्धती ! सज्जनोंकी गतिको चाहनेवाली स्त्री सर्वदा स्वामीकी इच्छासे ही व्रत उपवास आदि करे १२ दूषित योनिवाली स्त्री सहस्रों कल्पोंमें भी सुगतिको नहीं पाती हैं योनिविप्लवके कारण वह सहस्रों पक्षियोंकी योनिमें सन्ताप पाती रहती है ॥ १३ ॥ यदि वह असती स्त्री किसी प्रकार मनुष्य जन्म पाजाती है तो भी वह दुर्बुद्धि स्त्री चाण्डाल योनिमें ही उत्पन्न होती है और वहाँ उसे कुत्तोंका भक्षण करना पड़ता है १४ हे तपोधने ! सज्जनपुरुष सर्वदा स्वामीको ही स्त्रियोंका देवता मानते हैं जिसका स्वामी सन्तुष्ट होता है वह स्त्री धर्मचारिणी और सती होती हैं ॥ १५ ॥ कौतुहल वश नष्ट हुई

न शोभनाः । भर्तर्येव मनो यासां सद्भावेन व्यवस्थितम् ॥१६॥ कर्मणा मनसा वाचा पतिं नातिचरन्ति याः । तासां पुण्यफलं सौम्ये पुण्यकैः समुदाहृतम् ॥ १७ ॥ पुण्यकानां विधिं कृत्स्नं स्वर्लोकगतिशोभने । निबोध सह सर्वाभिर्दृष्टो यस्तपसा मया । स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत् सती । उपवासार्थमथवा व्रतकार्थं धृतव्रते ॥ १९ ॥ श्वशुराभ्यां च चरणौ सततं सज्जनस्य च । गृह्यायौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा ॥२०॥ गोशृङ्गं दक्षिणं सिच्य प्रतिगृह्णीत तज्जलम् । ततो भर्तुः सती दद्यात् स्नातस्य प्रयतस्य च २१ आत्मनोऽपि निषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम् । त्रैलोक्यसर्वतीर्थेषु स्नानमेतदुदाहृतम् ॥ २२ ॥ उपवासेषु कर्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च स्नानमेतद्धि सामान्यं स्त्रीणां

स्त्रियोंको शोभामय लोक नहीं मिलते हैं जिनका मन सद्भाव पूर्वक स्वामीमें ही लगा रहता है ॥ १६ ॥जो स्त्रियें मन वाणी और कर्मसे पतिकी बातका उल्लंघन नहीं करती हैं हे सौम्ये ! कहा है, कि-पुण्यकव्रतोंके द्वारा उन्हें पुण्यका फल मिलता है ॥ १७ ॥ हे स्वर्गलोकको शोभा देनेवाली ! मैंने तपसे पुण्यकों की जो विधि देखी है उस सारी विधिको आप और सब स्त्रियें पूर्णरीतिसे सुनो ॥१८॥ हे व्रत धारण करनेवाली ! सती स्त्री प्रातःकाल उठकर स्नान करे फिर उपवास वा व्रत करनेके लिये पतिसे निवेदन करे सज्जन पुरुषके और सास श्वसुरोंके चरणों को प्रणाम करे और अक्षत तथा कुशाओंसे भरा हुआ गूलड़का पात्र लेकर ॥ १९॥२० ॥ गौके दाहिने सींगपर जल डाले और उस जलको ग्रहण करे फिर नियमपूर्वक रहनेवाले और न्हाये हुए अपने पतिको वह जलदेय २१ और उस जलको अपने शिरपर छिडके ऐसा स्नान त्रिलोकीके सारे तीर्थोंमें स्नान करना कहलाता है २२ उपवास और व्रतोंमें इसीप्रकार स्नान करना

पुंसां च भाविनि ॥ २३ ॥ अरुंधति मया दृष्टं तपसा हर-तेजसा अशल्यविद्धं शयनमासनं च तथा विधम् ॥ २४ ॥ स्वयं प्रक्षालनं चापि पादयोरनुशब्दितम् । अश्रुप्रपातो रोषश्च कल-हश्च कृतः सति । उपवासाद्व्रताद्वापि सद्यो भ्रश्यंति हि स्त्रियः । शुक्लमेव सदा वासः प्रशस्तं चन्द्रसंभवे । अन्तर्वासोपरं चैव उपवासे व्रते तथा ॥ २६ ॥ पादुकार्थं तृणैः कार्यं सर्वदा व्रतके सति । उपवासेव्रतेचाऽपि च विधिरेष एवं प्रवर्तितः ॥२७॥ अंजनं रोचनं चापि गन्धान् सुमनसस्तथा । व्रतके चोपवासे च नित्य-मेव विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ दंतकाष्ठं शिरोस्नानमुद्वर्तनमथापि वा । विवर्जितं मृदा सर्वं शौचार्थं तु विधीयते ॥ २९ ॥ बिल्वामृत-फलैर्नित्यं श्रीफलैश्च समाचरेत । प्रक्षालनं वै शिरसः सदाऽमृन्मि-

---

चाहिये हे भाविनी ! स्त्री और पुरुषोंके लिये यह स्नानकी विधि एकसी ही है २३ हे अरुन्धती! मैं ने शिवजीके तपसे और तेजसे देखा है, कि-स्त्रियें इस व्रतमें काँटो रहित आसन और खाटपर शयन करे २४ अपने आप स्वामीके चरणोंको धोवे हे सती! जो स्त्रियें क्रोधके वशमें होकर आंसू गिराती हैं और कलह करती हैं उन स्त्रियोंका उपवास और व्रत तत्काल ही नष्ट होजाता है २५ हे चन्द्रसंभवे ! इस व्रतमें सर्वदा श्वेत वस्त्र पहिरना ही अच्छा माना गया है और इस व्रतमें एक वस्त्र भीतर भी पहिरना चाहिये ॥२६॥ तथा इस व्रतमें सर्वदा तिनकोंकी पादुकाएँ पहि-रनी चाहिये इसप्रकार इसकी विधि चलाई गई है ॥ २७ ॥ इस व्रतको और उपवासको करते समय सुरमा रोचन सुगन्धित वस्तुएँ फूल सर्वदा त्यागे ॥२८॥ इस व्रतमें दतौन शिरसे स्नान करना और उबटना वर्जित है तथा सब शौच मट्टीसे ही किया जाता है ॥ २९ ॥ सर्वदा पके हुए बिल्वके फलसे और बिल्वफलसे और हर्रोंसे मिले हुए तथा मिट्टी न मिले हुए जलसे सर्वदा

श्रितैर्जलैः ॥ ३० ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनं सौम्ये नैव तावत् प्रशस्यते ।
ना पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता ॥ ३१ ॥ गोयान-
मुष्ट्रयानं च खरयानं च वर्जितम् । नग्नस्नानं च सततं व्रते
चाप्युपवासके ॥ ३२ ॥ नदीजलं प्रस्रवजं प्रशस्तं सोमनन्दिनि ।
शुभे तडागे वाप्यादौ विस्तीर्णे जलजायुते ॥३३॥ गत्वा स्नानं
प्रशस्तं तु सदैव खलु सर्वथा । अलाभे त्ववरुद्धा स्त्री घटस्नानं
समाचरेत् ॥ ३४ ॥ नवैश्च कुंभैः स्नातव्यं विधिरेष पुरातनः ।
स्नानं च कार्यं शिरसा तपःफलमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

उमोवाच । विधिनैतेन कृत्स्नेन स्त्री सदाभर्तृदेवता । चरेत्
संवत्सरं दांता षण्मासान्मासमेव च १स्त्रियो ह्यावाहयेत् साध्वी-

---

शिरको धोवे ॥ ३० ॥ जब तक व्रत होता है तब तक इस व्रत
में शिर धोना अच्छा नहीं समझा जाता और चरणोंमें तथा
शरीर पर तेल भी न मलना चाहिये ॥ ३१ ॥ बैल पर चढ़ना
ऊँट और गधे पर चढ़ना तथा नंगा होकर स्नान करना व्रत
और उपवासमें सदा वर्जित है ३२ हे सोमनन्दिनी ! इस व्रतमें
नदीका जल और झरनोंका जल अच्छा माना गया है कमलों
से युक्त विस्तीर्ण जलाशयमें और बावड़ीमें जाकर स्नान करना
सर्वदा अच्छा है यदि स्त्रीको पूर्वोक्त जलाशय न मिल सकें तो
घरमें रुकी हुई स्त्री घड़ेसे स्नान करें नवीन घड़ोंसे स्नान करना
चाहिये यह प्राचीन विधि है और स्नान शिरसे करनेपर तपका
फल मिलता है ॥ ३५ ॥ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥

उमाने कहा, कि- स्वामीको देवता मानने वाली चतुर स्त्री
इस पूर्ण विधिसे वर्षभर तक या छः महीने तक व्यवहार करे १
और समाहित चित्त होकर ग्यारह साध्वी स्त्रियोंको बुलावें मैंने

रेकादश समाधिना । स्वयं चैव विधिर्दृष्टः व्रतकानां यतः शुभः२ अद्भिर्दद्यात् सतीः सर्वा या मूलव्रतिनी भवेत् । तासां तु निष्क्रयो देयः कालदेश नुकूलतः ॥ ३ ॥ ततो मासांतशुक्लस्य तिथौ च नवमी तथा ॥ आराधयित्वा कर्तव्यं व्रतकस्यापवर्जनम् ॥४॥ उपवासमहोरात्रं व्रतकं चापि निश्चितम् । आदौ चांते च कुर्वीत व्रतकस्यापि सिद्धये ॥५॥ क्षुरकर्म ततो भर्तुरात्मानश्चैव कारयेत् । उत्सादनं च स्नानं च तस्मिन्नहनि संस्मृतम् ॥ ६ ॥ ततो विवाहवत् स्नानं विहितं पुण्यके शुभे । मण्डनं चैव विहितं माल्यधारणमेव च ॥ ७ ॥ कुम्भैस्तु स्नाप्यमानेयं साध्वी मंत्र-

---

इस पुण्यककी शुभ विधिको मैंने अपने आप देखा है २ व्रत करनेवाली मुख्य स्त्री (पहिले उनके स्वामियोंसे उन ग्यारह स्त्रियोंको खरीदकर आचार्यको)जलसे संकल्प करके दान देदेय फिर उनका समय और देशके अनुसार मूल्य देदेय (इस प्रकार आचार्यसे खरीद कर उनको उनके स्वामियोंके अर्पण करदेय) ३ तदनन्तर मासके अन्तिम पक्ष शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें आराधना करके व्रतको समाप्त करे४ और इस व्रतकी सिद्धिके लिये आदि और अन्तमें एक दिन उपवास करे यह निश्चत बात है ५ तदनन्तर उस दिन अपना और अपने स्वामीका क्षौर कर्म करवावे (इस क्षौर कर्ममें स्त्रियोंको अपने नाखून ही कटवाने चाहिये शिर नहीं मुँडवावे क्योंकि स्मृतिमें लिखा है, कि-"सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् । एवमेव हि नारीणां वपनं सर्वदा स्मृतम् ॥" अर्थात् सब केशोंको, छोड़ कर स्त्रियोंके केश दो अंगुल ही कटवावे इस प्रकार उन स्त्रियोंका मुण्डन करना लिखा है स्त्री ऐसा मुण्डन कर्म वा क्षुरकर्म करवावे) और उसी दिन स्नान और उत्सादन करे ॥ ६ ॥ तदनन्तर इस शुभ पुण्यक व्रतमें विवाहकी समान स्नान करना अलंकृत

मुदीरयेत् । भर्तुः पादौ नमस्कृत्य मनसा वाऽथवा गिरा॥ ८ ॥ आपो देव्य ऋषीणां हि विश्वधात्र्यो दिव्या मर्दन्त्यो याः शंकरा धर्मधात्र्यः । हिरण्यवर्णाः पावका शिवतमेन रसेन श्रेयसो मां जुषंतु ॥ ९ ॥ अपामेष स्मृतो मंत्रः सर्वत्रान्यत्र मे शृणु । मंत्रा पुराणविहिताः स्त्रीणां सर्वांगशोभने ॥ १० ॥ शुभान्यमा गुणिनी युक्तधर्मा भर्त्रा साकं मम दास्यावरेण । मा कर्मणा मनसा वापि वाचा भर्तुर्भवेयं रुषतीं स्यां वशंगा ॥ ११ ॥ सपत्नीनामधि नित्यं भवेयं सपुत्रा स्यां सुभगा चारुरूपा । संपन्नहस्ता गुणवादिनी च सर्वात्मना स्यामदरिद्रा भवेयम् १२

होना और चन्दन आदिका धारण करना कहा है ॥ ७ ॥ तदनन्तर साध्वी स्त्री मनसे अथवा वाणीसे स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करके घड़ोंसे स्नान करती हुई इस मन्त्रको पढ़े ८ (वह मन्त्र ऊपर मूलमें लिखा है उसका अर्थ इस प्रकार है) जल ऋषियों के उत्पादक हैं (क्योंकि श्रुतिमें लिखा है, कि–"यासु जातः कश्यपः–जिनमें कश्यप उत्पन्न हुए हैं") स्वर्गमें उत्पन्न हुए हैं विश्वके पोषक हैं (यज्ञमें) मदमें भरजाने वाले हैं सुख देनेवाले हैं क्योंकि–धर्मके पोषक हैं निर्मल हैं अग्निस्वरूप हैं वे अपने कल्याणकारी रससे मुझे प्रसन्न करें ९ जलोंका यह मन्त्र सर्वत्र कहा है; हे सर्वांगशोभने ! अब स्त्रियोंके पुराणविहित मन्त्रोंको सुन १० मैं खर्च करने वाली न होऊँ गुणवती होऊँ स्वामीके साथ धर्मचारिणी होऊँ और नीच कर्ममें भी दासीकी समान कर्म करनेवाली होऊँ मैं क्रोधके वशमें होकर अपने स्वामीसे मन वाणी और कर्मसे भी क्रोध न करूँ ११ मैं अपनी सौतोंके ऊपर रहूँ पुत्रवती सौभाग्यवती और मनोहर रूपवाली रहूँ मेरा हाथ सर्वदा सम्पन्न रहे अर्थात् अन्न आदिका दान करनेमें खुला रहे मैं गुणमय भाषण करने वाली होकर सब

पतिश्च मे स्यात् सुमुखो मत्प्रतीक्षो नित्यं मद्भक्तः स्यान्मन्गति-
र्मद्गतिश्च । प्रीतिश्च नौ स्याच्चक्रवाकानुरूपा मनो विरागो न
भवेत् साधुवत् स्यात् ॥१३॥ लोकान् साध्वीनामुत्तमानां व्रजेयं
याभिः सर्वं धार्यते विश्वरूपम् । उभे कुले याः पावयंति पितु-
र्भर्तुश्च पतिभक्त्योर्जितश्च ॥ १४ ॥ भूमिर्वायुर्जलमाकाशमग्नि-
रतः क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्यो महांश्च । अहङ्कारश्च मम साक्ष्ये नियुक्ताः
स्मरेयुः निश्चयं च व्रतं च ॥ १५ ॥ यैरारब्धो देहिनां भौति-
कोऽयं विधिः सत्वाद्यैर्भूतयुक्तैः सबीजैः । संस्वेते मे साक्षिणः
सर्वसंस्था व्रते चास्मिन्निश्चये चापि नित्यम् ॥ १६ ॥ चन्द्रा-
दित्यौ पुण्यसाक्षी यमश्च दिशः सर्वा दश चात्मा च मेऽयम् ।

प्रकारकी दरिद्रतासे मुक्त रहूँ १२ मेरे स्वामी सुन्दर मुखवाले मेरी प्रतीक्षा करनेवाले सर्वदा मेरे भक्त मेरी बुद्धिके अनुसार काम करनेवाले और मेरी गति हों और हम दोनों में चकवी चकवेकीसी प्रीति रहे हम दोनोंके मनमें कभी विराग उत्पन्न न हो और हमारा मन सर्वदा साधुकी समान रहे ।१३। जो सारे संसारको धारण किये रहती हैं जो स्वामीके और पिताके इसप्रकार दोनों कुलोंको पवित्र करती हैं और जो पति-भक्तिसे बलवान् रहतीं हैं ऐसी उत्तम साध्वी स्त्रियोंके लोकोंमें मैं जाऊँ ॥ १४ ॥ भूमि, वायु, जल, आकाश अग्नि (इनके अभिमानी देवता) जीव प्रकृति और महत्तत्त्व तथा अहंकार यह मेरा निरीक्षण करनेके लिये नियुक्त हुए व्यक्ति मेरे निश्चय और व्रतको स्मरण करते रहें ।१५। भूतयुक्त अर्थात् जरायुज आदि सम्बन्धवाले प्राणीको कर्ममें प्रवृत्त करनेवाले सत्त्वादिके अभि-मानी देवता प्राणियोंके भौतिक शरीरका आरम्भ करते हैं वे सबमें स्थित देवता इस व्रतमें और मेरे विचारमें सर्वदा साक्षी रहें१६इस व्रतमें और मेरे सर्वदाके विचारमें सबमें स्थित चन्द्रमा

सर्वेते वै सत्रिणः । सर्वसंस्था व्रते चास्मिन्निश्चये चापि नित्ये १७
मन्त्रैरेतैः पुराणोक्तैः सर्वद्रव्याभिमंत्रणम् । व्रतचर्यात् प्रभृति वै पुराणे समुदाहृतम् ॥ १८ ॥ स्नात्वाऽथ वाससी दद्याद्भर्तुः कर्त्य स्वयं शुभे । अथात्मकर्तितं न स्याच्छुभे विघ्नेन केनचित् १९
वासोऽन्यदेव दद्याच्च श्वेतं युग्मं नवं शुचि । स्वकर्तितं च सूत्रं वाससा तेन मिश्रयेत् ॥ २० ॥ ततो द्विजं शुचिं दान्तं ज्ञानविज्ञानकोविदम् । भोजयेच्च यथाशक्त्या सह भर्त्रा सुमध्यमे २१
ब्राह्मणस्यापि दातव्यं वासो युग्मं महातपे । शय्यासनं गृहं धान्यं दासं दासीं तथैव च ॥ २२ ॥अलंकारः शक्तितश्च रत्नपर्वत एव च । सर्वधान्यसमुन्मिश्रस्तिलैश्च सविशेषतः ॥ २३ ॥
वासोभिश्च प्रतिच्छन्नो नानावर्णैररुन्धति । हस्त्यश्वावयवश्चैव देया गौरेव च ध्रुवम् ॥ २४ ॥ लवणप्रतिमां दद्यान्नवनीतस्य

सूर्य पुण्योंका साक्षी यम सम्पूर्ण दशों दिशाएँ और यह मेरा मन साक्षी रहे ॥१७॥ पुराणमें लिखा है, व्रतका आरम्भ कर प्रतिदिन इस पुराणोक्त मन्त्रोंसे सब द्रव्योंको अभिमन्त्रण करती रहे १८ हे शुभे ! तदनन्तर भर्ताका क्षौर आदि अपने आप करा कर स्नान करके उनको दो वस्त्र देय हे शुभे ! किसी विघ्नके कारण अपना क्षौर न करासके ॥ १९ ॥ तो एक और नया पवित्र श्वेत वस्त्र देय और उस वस्त्रसे अपने काटे हुए सूत्रसे उस वस्त्रको मिलावे ॥ २० ॥ हे सुमध्यमे ! तदनन्तर अपने स्वामीके साथ ज्ञान विज्ञानमें चतुर पवित्र ब्राह्मणको शक्तिके अनुसार जिमावे २१ हे महातपे ! ब्राह्मणको भी दो वस्त्र शय्या आसन घर और दास दासी देने चाहिये २२ और शक्तिके अनुसार अलंकार सब धान्योंसे और विशेषकर तिलोंसे मिला हुआ रत्नोंका ढेर भी (देय) २३ (वैभव होने पर) अनेक वर्णोंकी झूलोंसे ढका हुआ हाथी घोड़ोंका समूह देना चाहिये

चापराम् । गुडस्य मधुनश्चैव सुवर्णस्य च शोभनाम् ॥ २५ ॥ तथैव सर्वगन्धानां रसानां पृथगेव च । तथा सुमनसां दद्याद्रूप्यस्योदुम्बरस्य च ॥ २६ ॥ फलानां चैव सर्वेषां वाससामपि नन्दिनि । चित्रप्रतिकृतिं चैव काष्ठस्य प्रतिमां तथा॥२७॥शिलां प्रतिकृतिं चैव दध्नोऽथ पयसस्तथा । सर्पिषा दूर्वया चैव या चान्यापण्यभीप्सिति २८कालदेशानुरूपं च देयं विभवतः सति । अल्पं वा बहुलं वापि भर्तुश्छन्देन सर्वदा २९ तिलपात्रं प्रदातव्यं न देयं न तु शोभने । गौस्त्ववश्यं प्रदातव्या कपिला कांस्यमेव च३०कृष्णाजिनं च सुभगे सतिलं वाससान्वितम् । आदर्शश्चैव कूर्चश्च तथाऽजिनमनिन्दिते ॥ ३१ ॥ एतद्दत्वा सर्वकामानाप्नोति वरवर्णिनि । पुरोधिका पुत्रवती सुभगा रूपभागिनी ॥ ३२ ॥ मृष्टहस्ता धनाढ्या च स्त्री भवत्यमलेक्षणा । इच्छया लभते चैव

(अन्यथा) हे अरुन्धती ! गौ तो अवश्य देनी चाहिये २४ नमक और मक्खन गुड़ सुवर्ण और शहदसे (उमा महेश्वरकी) प्रतिमा बनाकर देय २५ और सब प्रकारके चन्दन रस पुष्प चाँदी और गूलड़से भी महादेव और पार्वतीकी प्रतिमा बनाकर देय २६ सब फल वस्त्र काष्ठसे प्रतिमा बनाकर और चित्र भी देय २७ शिला दही दूध घी दूब तथा और जिस वस्तुसे भी चाहे उससे प्रतिमा बनाकर देय २८ और स्वामीकी आज्ञा लेकर वैभवानुसार हे सती ! देशकालके अनुरूप (धन) देना चाहिये २९ तिलपात्रका दान देय हे शोभने ! स्वामीकी इच्छाके विना कुछ न देय,कपिला गौ और काँसीका पात्र अवश्य देय३० हे सुभगेसती ! कृष्णमृगका चर्म तिल और वस्त्र दर्पण मोर्छल तथा चर्म भी देना चाहिये ३१ हे वरवर्णिनी ! इन वस्तुओंको देनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वह स्त्री अग्रगण्य पुत्रवती सौभाग्यवती और रूपवती होती है ३२ उस निर्मल नेत्रों-

कन्या रूपगुणोचिताः ॥ ३३ ॥ भवंति सुभगास्नार्यस्तथैव च पुरोगिकाः । पुत्रवत्यो धनाढ्याश्च शीलवत्यश्च नित्यदा ३४ अरुंधतीकृतं ह्येतत्प्रथमं गतः । उमाव्रतमितिख्यातं ख्याति गत्र महीतले ॥ ३५ ॥ एतद्देवोत्तमं स्त्रीणां व्रतं महात्समाचरेत् । सर्वकामानवाप्नोति दृष्टमेतदनिंदिते ॥ ३६ ॥ एतच्छंकरो ह्येव देवदेवो वृषध्वजः । पुराऽभिषिक्तवान् सौम्ये प्रियार्थं मम सर्वकृत् ॥ ३७ ॥ व्रतस्यावसानेऽथ देयं भोज्यं च नित्यदा । स्त्रीणां कामाः प्रदेयाश्च सदृशाः कालदेशयोः ३८ एकैकस्य प्रदातव्यं व्रतकं वरवर्णिनि । छंदतो ब्राह्मणानां तु देयमन्नं सदक्षिणम् ॥ ३९ ॥ पायसं तत्र दातव्यं व्रतकेनान्यदिष्यते । नात्र प्राणिवधः कार्यः पुराणे नियता श्रुतिः॥ ४० ॥

वाली स्त्रीका हाथ साफ रहता है और वह धनाढ्य होती है और इच्छानुसार रूपगुणयुक्त कन्याओंको पाती है ॥ ३३ ॥ ऐसी स्त्रियें सौभाग्यवती सदाचरणवाली सुखिया पुत्रवती धनवती और सर्वदा शीलसम्पन्न होती हैं ॥ ३४ ॥ हे अरुन्धती ! इस व्रतको पहले मैंने ही किया है इस लिये यह व्रत पृथ्वीमें उमाव्रत नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ३५ ॥ यह स्त्रियोंके लिये उत्तम व्रत है इस लिये इसको करना चाहिये हे अनिन्दिते ! इसको करनेसे सब कामनाएँ मिलती हैं ॥ ३६ ॥ हे सौम्ये ! देवदेव वृषभध्वजने इस व्रतको रचा है उन्होंने मेरा प्रिय करनेके लिये इस व्रतसे अभिषेक किया था ॥ ३७ ॥ इस व्रतके अन्तमें भोग्य पदार्थ सर्वदा देने चाहियें और स्त्रियोंको देशकालके अनुसार उनकी सब इष्ट वस्तुएँ देनी चाहियें ॥ ३८ ॥ हे वरवर्णिनी ! व्रतकी सामग्री प्रत्येकको विभाग करके देनी चाहिये और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार दक्षिणा और अन्न देना चाहिये ३९ इस व्रतमें दूध देना चाहिये दूसरी वस्तु न देनी चाहिये इस व्रतमें

अथ द्वितीयं वक्ष्यामि व्रतं सोमसमुद्भवे । महादेवप्रसादेन दृष्ट-वत्यस्मि यच्छुभे ॥ ४१ ॥ सर्वाः पुत्रफला नार्यः सद्भिरेतदुदाहृतम् । तस्मादनिच्छती दद्यात् सपुत्रकरकान् शुभे ॥ ४२ ॥ ज्येष्ठाषाढौ शुभौ मासौ पुरोक्तं विधिमाचरेत् । अथवा ज्येष्ठमेवैकमाषाढं वा समाचरेत् ॥ ४३ ॥ ततो मासद्वये पूर्णे मासे वा वरवर्णिनि । सपुत्रकरकान्दद्य द्व फाणितप्रतिपूरितान् ॥ ४४ ॥ सर्पिषः पयसश्चैव दध्नोऽथ मधुनोऽनघे । जलस्य च तथा दद्यात् पूरयित्वा शशिप्रभे ॥ ४५ ॥ एकस्मै ज्ञानवृद्धाय सुव्रताय जितात्मने । सपुत्रकरकान् दद्याद्यावन्तो मनसः प्रियाः ॥ ४६ ॥ इच्छेत स्त्री दुहितरं स्त्रीणां कामकरं ततः । किंचिद्द्र द्रव्यं सुताकामात् सुतां प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ४७ ॥ गौर्वाथ कांचनं वापि

प्राणियोंका वध नहीं करना चाहिये यह पुराणकी निश्चित श्रुति है ४० हे अरुन्धती ! मैंने महादेवजीके प्रसादसे जिस दूसरे व्रत को देखा है उसको मैं तुमसे कहती हूँ ४१ सज्जनोंने कहा, है कि-सब स्त्रियों पुत्ररूपी फलको चाहा करती हैं हे शुभे ! पुत्रों को चाहने वाली स्त्री सपुत्र करकोंका अर्थात् करुओंका दान करे ४२ और शुभमास ज्येष्ठ तथा आषाढ़में पहले कही हुई विधि को करे या ज्येष्ठ वा आषाढ़ मासमें ही करे४३ हे वरवर्णिनी ! फिर दो मास पूर्ण होने पर शर्बतसे भरे हुए करुओंका दान देय ४४ अथवा हे चन्द्रमाकी समान कान्ति वाली ! निष्पाप अरुन्धती घी दूध दही शहद अथवा जलसे भरे हुए करुए देय ४५ अथवा एक जितात्मा सुन्दर व्रत धारण करने वाले ज्ञानवृद्ध पुरुषको मनमें जितने चाहें उतने करुए देय ४६ जो स्त्री पुत्रीकी इच्छा करती हो वह स्त्री इच्छाको पूर्ण करने वाले कुछ द्रव्यका दान देनेसे पुत्रीको अवश्य ही उत्पन्न करती है ॥४७॥ हे पवित्र हास्य वाली! गौ सुवर्ण दक्षिणा और ब्राह्मणके ओढ़नेके लिए

दक्षिणाश्चैव शस्यते। विप्रस्याच्छादनं देयमवश्यं तु शुचिस्मिते।
यज्ञोपवीतं व्रतके दद्यान्नारी शुचिव्रता। सपुत्रकरकाणां तु विधि-
रुक्तो विपश्चिता ॥४९॥ अपत्याख्यानयोगेन ब्राह्मणेभ्यः शुचि-
व्रता। सम्वत्सरं सुसम्पूर्णं व्रतधर्मानुपालिनी ॥५०॥ करका-
नपि दद्यात् च पूर्णे सम्वत्सरे शुभे। अनुज्ञया सदा भर्तुः सत्य-
वादिन्यरुन्धति ५१सुवर्णसूत्रं विप्राय कौमुद्यां दातुमर्हति। यज्ञो-
पवीतं विप्रस्य व्रतं संस्थाप्य कामिकम् ॥५२॥ यज्ञोपवीतं करकं
दक्षिणां च स्वशक्तितः। प्रयच्छती सती स्त्रीभ्यः सर्वान् कामान्
समश्नुते ॥५३॥ नवं न भक्षयेत् किंचिन्नारीधान्यमथो फलम्।
पुष्पाणि नोपयुञ्जीत यावद्देवं समाचरेत् ॥ ५४ ॥ एकभक्तेन
धर्मज्ञे पुण्यकं कर्तुमर्हति। ब्राह्मणाय तथा देयं भर्तुश्च तदन-

---

वस्त्र अवश्य देना चाहिये ॥ ४८ ॥ पवित्र व्रत वाली स्त्री इस
व्रतमें यज्ञोपवीतका दान करे, विद्वान् पुरुष इसमें करुओंके दान
करनेकी विधि बतलाते हैं ॥ ४९ ॥ व्रतधर्मका पालन करने वाली
स्त्री साल भर तक (पुत्रकी कामना हो तो पुरुषनामी पुष्य आदि
नक्षत्रके योगमें और पुत्रीकी कामना वाली स्त्रीनामी रोहणी
आदि नक्षत्रके योगमें इस प्रकार) अपत्याख्यानयोगसे करुओं
का दान देय ॥ ५० ॥ हे सत्यवादिनि अरुन्धती ! वर्ष भरपूर्ण
होने पर स्वामीकी आज्ञा लेकर करुओंका दान देय ॥ ५१ ॥ इस
कामिकव्रतको कार्तिकी पूर्णिमाके दिन समाप्त करके ब्राह्मणको
सुवर्णके सूत्रों वाला यज्ञोपवीत देना उचित है ॥५२॥ जो सती
स्त्री अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञोपवीत करुए और दक्षिणा देती
है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ५३ स्त्री जिस समय तक
इस व्रतको करे तब तक किसी नवीन (द्विदल) अन्न वा फलका
भक्षण न करे ॥ ५४ ॥ हे धर्मज्ञे ! पुण्यक व्रत एक समय भोजन
करके करना चाहिये इसी प्रकार ब्राह्मण और स्वामीको भोजन

न्तरम् ॥ ५५ ॥ एवं सम्वत्सरं कृत्वा सुभगा रूपशालिनी । भवत्यविधवा चैव स्त्री धनस्य तथेश्वरी ॥ ५६ ॥ वार्ताकांनि न खादेद्या स्त्री पूर्णं परिवत्सरम् । न सा पुत्रविनाशं हि पश्यतीत्यवगम्यताम् ॥ ५७ ॥ शशकं मृगमांसं वा नित्यमेव विवर्जयेत् । नाप्नोति मरणं नारी प्राप्नोति पतिदेवताम् ॥ ५८ ॥ अलाबुं वर्जयेन्नारी तथैवोत्पादिकामपि । अलाबुं कांचनीं दद्याद्या भर्तुः सुखमिच्छती ॥ ५९ ॥ पूर्णे सम्वत्सरे दद्यादेकैकं शाकमादृता । सदक्षिणं पुत्रवती भवत्येका पुरोधिका ॥ ६० ॥ स्वयं प्रक्षालयाना स्त्री स्वपादावेवमादितः । प्रतिष्ठां लभते नित्यमुद्वेगं नाधिगच्छति ॥ ६१ ॥ दिवा या सूर्यपूतेन वर्तयेत् स्त्री पतिव्रता । एकं सम्वत्सरं पूर्णं रात्रावन्नं विवर्जयेद् ॥ ६२ ॥

देना चाहिये ॥ ५५ ॥ इस प्रकार वर्षभर तक बर्ताव करने के अनन्तर स्त्री सौभाग्यवती रूपवती अविधवा और धनकी ईश्वरी होती है ॥५६॥ जो स्त्री वर्ष भर तक बैंगन नहीं खाती है; वह स्त्री पुत्रका विनाश नहीं देखती है, यह समझ रखना चाहिये ॥५७॥ खरगोश और मृगके मांसको सर्वथा त्याग देय ऐसा करने वाली स्त्री अल्पायु नहीं होती है और पतिव्रता रहती है ॥ ५८ ॥ स्त्री अलाबु (रामतुरई) और उत्पादिका (पोई) को त्याग देय और भर्ताका सुख चाहने वाली स्त्री सुवर्णकी रामतुरई देय ॥५९॥ जो स्त्री वर्ष भर पूर्ण होने पर आदरपूर्वक दक्षिणा और एक २ शाक देती है वह पुत्रवती और अग्रणीया होती है ॥६०॥ जो स्त्री प्रारंभसे ही अपने चरणों को अपने आप ही धोती है, वह स्त्री प्रतिष्ठा पाती है और कभी उद्विग्न नहीं होती है ॥ ६१ ॥ जो पतिव्रता स्त्री सूर्यसे पवित्र हुए दिनमें भोजन करती है और एक भर्ष भर तक रात्रिमें अन्न खाना छोड़ देती है ॥ ६२ ॥ हे वरवर्णिनि ! वह जीवित पुत्रों

सजीवपुत्रा सुभगा भवत्यमरवर्णिनि । अधितिष्ठन्ति सर्वाश्च सपत्न्यो नात्र संशयः ॥ ६३ ॥ पूर्णे सम्वत्सरे दद्यात् सौवर्णं सूर्यमुत्तमम् । ब्राह्मणायाभिरूपाय दरिद्राय यशस्विने ॥ ६४ ॥ फलानि वाऽथ पुष्पाणि भक्ष्याण्यपि च सुव्रता । दद्यादनस्तमितके चरितव्रतका तथा ॥ ६५ ॥ या तथाऽस्तमिते सूर्ये भुंक्ते स्त्री नियता सती । चन्द्रनक्षत्रपूतानि भोज्यानि वरवर्णिनी ६६ सा दद्यात् कांचनं चन्द्रं नक्षत्राणि ग्रहानपि । अभिरूपाय विप्राय वासश्च लवणान्वितम् ॥ ६७ ॥ चन्द्रशीतलगात्री सा भवत्यमरवर्णिनि । सुभगा दर्शनीया च पुत्रवत्यपि भामिनी ॥ ६८ ॥ पौर्णमास्यां तु सततं मासे सोमोद्गमेऽङ्गना । अर्घं दद्यात् सुमनसां साक्षतं सकुशं तथा ॥ ६९ ॥ पावकं च बलिं दद्याद्दध्ना च सह संयुतम् । एवं या कुरुते नित्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥७०॥

वाली और सौभाग्यवती होती हैं और सब सौतोंके ऊपर अधिष्ठित रहती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ सालभर पूर्ण होने पर दरिद्री यशस्वी योग्य ब्राह्मणको सुवर्णका एक उत्तम सूर्य बना कर देय ॥ ६४ ॥ व्रत करने वाली स्त्री सूर्यास्त होने से पहिले फल पुष्प और भक्ष्य पदार्थोंको देय ॥ ६५ ॥ (दूसरे व्रतका वर्णन) हे वरवर्णिनि ! जो नियम पालन करने वाली स्त्री सूर्यास्त होने पर चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे पवित्र भोजन करती है ॥ ६६ ॥ वह स्त्री योग्य ब्राह्मणको सुवर्णके चन्द्रमा नक्षत्र और घर बना कर देय और नमक भी देय ॥ ६७ ॥ हे अमरवर्णिनि ! तो वह स्त्री चन्द्रमाके समान शीतल शरीर वाली सौभाग्यवती दर्शनीया और पुत्रवती होती है ६८ स्त्री पूर्णिमा के दिन चन्द्रमाका उदय होने पर पुष्प अक्षत और कुशाओंका अर्घ देय ॥ ६९ ॥ और अग्निको दधि मिला हुआ बलि देय जो स्त्री ऐसा करती है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ७०

अदृष्ट्वा या तु नाश्नाति सूर्यं नारी पतिव्रता । दुर्दिने वाऽथवा ऽप्यभ्रे सेष्टान् कामानवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ काञ्चनं शक्तितो दद्यात् सा विप्राय मनस्विनी । सुभगा दर्शनीया च भवत्यमरवर्णिनी ७२

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकथनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

भगवत्युवाच । निर्वेष्टव्यं शरीरं यैर्व्रतकैः पुण्यकैरपि । अरुन्धतिं प्रवक्ष्यामि सहैनाभिर्वरेण तु ॥ १ ॥ कृष्णाष्टमीं या क्षिपति इणाद्वा मूलफलाशिनी । ब्राह्मणायैकमशनं स्वं दत्वा भर्तृदेवता २ शुक्लवस्त्रा शुभाचारा गुरुदैवतपूजका । एवं सम्वत्सरं कृत्वा ततो दद्याद्द्विजातये ॥ ३ ॥ गोवालरज्जुसुकृतं चामरं च ध्वजं तथा । दक्षिणापूर्णमिष्टान्नं शक्त्या वापि शुचिव्रते ॥४॥ ऊर्मि-

जो पतिव्रता स्त्री मेघोंसे घिरे हुए दिनमें सूर्यका दर्शन किये विना भोजन नहीं करती है उसको इष्ट वस्तुएँ मिलती हैं ।७१। हे वरवर्णिनी ! ऐसी मनस्विनी स्त्री ब्राह्मणको शक्तिके अनुसार सुवर्ण देय तो वह सौभाग्यवती और दर्शनीय होती है ७२ उनासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥

भगवतीने कहा, कि–हे अरुन्धति ! जिन व्रतोंसे और पुण्यों से इस शरीरको परमसुख पानेका पात्र बनाया जासकता है उन को मैं इन (तिथियों) के साथ और इस श्रेष्ठ (धर्मानुष्ठान) के साथ कहती हूँ ॥ १ ॥ जो स्वामीको देवता माननेवाली स्त्री कृष्ण पक्षकी अष्टमीके दिन फल और मूलका भक्षण कर उपवास करती है और अपना एक समयका भोजन ब्राह्मणको देदेती है ॥ २ ॥ शुक्ल वस्त्र धारण करती है, शुभ आचारोंका पालन करती है और गुरु तथा देवताओंकी पूजा करती है और इस प्रकार वर्ष भर तक व्यवहार करके ब्राह्मणको गोवालकी रज्जुसे भली प्रकार बनाया हुआ चामर चमर ध्वजदण्ड और

न्तस्वरालग्नाः श्रोणिदेशावलम्बिनः। तस्या भवन्ति केशास्तु भक्तिमत्या हि भर्तरि ॥ ५ ॥ शिरो निर्णेक्तुकामा तु गोमयेन शिरः सती। प्रक्षालयेन्मलं धात्र्या बिल्वेन श्रीफलेन च ॥६॥ गोमूत्रं च सदा प्राश्येच्छिरः स्नानं च मिश्रयेत्। कृष्णां चतुर्दशीं त्वेतत् कर्तव्यं वरवर्णिनि ॥ ७ ॥ भवत्यविधवा चैव सुभगा विज्वरा तथा। शिरोरोगैर्नैव चास्याः शरीरमभितप्यते दर्शनीयं ललाटं या काङ्क्षति स्त्री शुचिस्मिते। तिथिं प्रतिपदं नित्यं सा क्षिपेदेकभोजना ॥ ९ ॥ पयसा च तथाऽश्नीयाद्यावत् सम्वत्सरो गतः। ब्राह्मणाय ततो दद्यात् पटं रूप्यमयं शुभम् १० ललाटं रूपसम्पन्नमाप्नोति स्त्री सुमध्यमा। सततं स्त्री द्वितीयायां

दक्षिणा तथा शक्तिके अनुसार इष्ट अन्न देती है ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस स्वामीमें भक्ति रखने वाली स्त्रीके केश अति कुटिल अग्रभाग वाले घुँघराले और नितम्बों तक लटकने वाले होते हैं ॥ ५ ॥ सती स्त्रीको शिर धोनेकी इच्छा हो तो गोबर आमले और श्रीफल तथा बिल्वफलसे शिरको धोवे ॥ ६ ॥ सदा गोमूत्रका प्राशन करे और उसे स्नान (के जल) में भी मिलावे, हे वरवर्णिनि ! इस प्रकारका व्यवहार कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन करे ॥ ७ ॥ ऐसा करने वाली स्त्री विधवा नहीं होती है सौभाग्यवती और ज्वररहित होती है और उसका शरीर शिरके रोगोंसे सन्तप्त नहीं हुआ करता है ॥ ८ ॥ हे शुचिस्मिते ! जो स्त्री अपने ललाटको दर्शनीय बनाना चाहती हो वह प्रतिपदामें एक समय भोजन कर व्रत पाले ॥ ९ ॥ और जब तक साल भर पूर्ण हो तब तक वह रमणी दुग्धका भोजन करे, अन्तमें ब्राह्मणको चाँदीका बना हुआ पट (शिरोभूषण) देय ॥१०॥ ऐसी स्त्रीका ललाट (अगले जन्ममें) रूपवान् होता है और उसकी कमर अच्छी होती है, स्त्री सदा दूसरी स्त्रियोंसे

भ्रुवोरिच्छेत् सुरूपताम् ॥ ११ ॥ अनन्तरोपवासेन शाकभक्ता-
शना सती । ततः सम्वत्सरे पूर्णे ब्राह्मणं स्वस्ति वाचयेत् ॥१२॥
फलैः परिणतैः सौम्यैर्माषाणां दक्षिणान्वितैः । लवणेन च भद्रन्ते
घृतपात्रेण चानघे ॥ १३ ॥ आत्मनः शोभनौ कर्णाविच्छती स्त्री
सुमध्यमा । नक्षत्रे श्रवणे प्राप्ते भुवं भुञ्जीत यावकम् ॥ १४ ॥
ततः सम्वत्सरे पूर्णे कर्णौ दद्याद्धिरण्मयौ । घृते प्रक्षिप्य विप्राय
पयसा सहिते शुभे ॥ १५ ॥ नासामिच्छेल्ललाटांतामव्यग्रां
व्याधिवर्जिताम् । तिलगुल्मं सदा सिञ्चेद्यावत्पुष्पेद्धि रक्षितः १६
अनन्तरोपवासेन सेक्तव्यः सलिलैः सदा । तस्मादवाप्य पुष्पाणि
घृते प्रक्षिप्य दापयेत् ॥ १७ ॥ स्वक्षी भवेयमिति या स्त्री कान्त-
स्यमृतोद्भवे । अनन्तरं गौ भुञ्जाना पयसाऽथ घृतेन वा ॥ १८ ॥

अपनी भौं सुन्दर होनेकी इच्छा करे ११ (और ऐसी स्त्री) हे निष्पापे ! एक दिन बीचमें छोड़ कर शाक और भातका आहार करे फिर साल भर पूर्ण होने पर वह स्त्री ब्राह्मणसे सुन्दर पके हुए फल, सुवर्णके मासेकी दक्षिणा और लवण तथा घृतपात्रके द्वारा स्वास्तिवाचन करावे ॥१२॥१३॥ जो सुमध्यमा स्त्री अपने कानोंको अच्छा बनानी चाहती हो वह स्त्री श्रवण नक्षत्र आने पर यावक अर्थात् जौंके पदार्थोंका भोजन करे १४ हे शुभे ! तदनन्तर वर्ष भर पूर्ण होने पर वह स्त्री सुवर्णके कान बना उनको घीमें डाल ब्राह्मणोंको देय और साथमें दूध भी दे १५ जो चाहें कि-मेरी नाक ललाट पर्यन्त हो व्याधि रहित हो और तिरछी न हो वह स्त्री जब तक तिलका पौधा पुष्ट न हो तब तक उसको जल दिया करे १६ एक दिन बीच में छोड़ कर उपवास करती हुई उसको जलसे सर्वदा सींचे फिर उस परसे पुष्प उतार कर उन पुष्पोंको घीमें डालकर दानदे १७ हे चन्द्रमासे उत्पन्न हुई कामिनी ! जो स्त्री सुनेत्रा होना चाहे

ततः सम्वत्सरे पूर्णे पद्मपत्राणि पण्डिता । तथैवोत्पलपत्राणि न्यसेत् क्षीरे शुचिस्मिते ॥१९॥ पल्लवानानि विप्राय ततो दद्यात् सती सति । कृष्णसारसमानाक्षी तद्दत्वा भवति स्म हो ॥२०॥ इच्छेदोष्ठौ चारुरूपौ या स्त्री धर्मगुणान्विता । सा मृन्मयेन तु पिबेदुदकं वत्सरं सती ॥ २१ ॥ अयाचितेन भुञ्जीत नवम्यां धर्मभागिनी । ततः सम्वत्सरे पूर्णे विद्रुमं दातुमर्हति ॥२२॥ तेन बिंबफलाभोष्ठी स्त्री भवत्येव शोभने । सुभगाऽथ वपुःपुत्रधनाढ्या गोमती तथा ॥ २३ ॥ या चारुरूपानिच्छेत दन्तानमरवर्णिनि । शुक्लाष्टम्यां न साऽश्नीयाद्भक्तद्वयमनिन्दिनः ॥ २४ ॥ ततः सम्वत्सरे पूर्णे दद्याद्रौप्यमयान् सती । दन्तान् प्रक्षिप्य धर्मज्ञे पयस्यतिगुणोदिते ॥ २५ ॥ तेन सा जातिपुण्याभान्

वह स्त्री एक एक दिन छोड़ कर घृत मिले हुए पदार्थोंका भोजन करे १८ इस प्रकार वर्षभर पूर्ण होने पर वह पण्डिता स्त्री कमल के पत्तोंको दुग्धमें डाले हे पवित्र हास्यवाली सती ! फिर उन दूध में भीगे हुए पत्तोंको ब्राह्मणके अर्पण कर इस प्रकार दान करनेसे उस स्त्रीके नेत्र कृष्णसार (मृग) के समान हो जाते हैं २० जो धर्मवती स्त्री अपने ओठोंको सुन्दर बनाना चाहे वह सती स्त्री सालभर तक मट्टीके पात्रमें जल पिये २१ और वह स्त्री दशमीके दिन बिना मांगे हुए मिला हुआ अन्न खावे, और जब वर्षभर पूरा होजाय तब मूँगेका दान करे २२ ऐसा करनेसे स्त्री बिम्ब-फलके समान ओष्ठवाली पुत्रवती धनवती और गौओं वाली होती है हे अमरवर्णिनि ! जो स्त्री यह चाहेकि मेरे दाँत सुन्दर वर्ण वाले हों वह अनिन्दित स्त्री शुक्ल पक्षकी अष्टमीके दिन दोनों समय भातका भोजन न करे २३–२४ इस प्रकार साल भर पूर्णहोने पर हे धर्मज्ञे ! वह सती स्त्री अति गाढ़े दूधमें चाँदी के दाँत डाल कर उनका दान करदे २५ हे निष्पापे ! इस पुण्य

दन्तान् प्राप्नोति सा सती । सौभाग्यमपि चाप्नोति सपुत्रत्वं तथाऽनघे ॥ २६ ॥ सर्वमेव मुखं कान्तमिच्छेद्या रुचिरानने । सा पूर्णमास्यां स्नात्वा तु प्राप्य चन्द्रोदये शुभे ॥२७॥ यावकं पयसा सिद्धं दत्त्वा विप्राय भाविनी । ततः सम्वत्सरे पूर्णे चन्द्ररूप्यमयं शुभम् ॥ २८ ॥ पद्मे फुल्ले तु विन्यस्य ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् । पूर्णचन्द्रमुखी तेन दानेन स्त्री शुभा भवेत् २९ स्तनाविच्छति या नारी तृणराजफलोपमौ । अयाचितं दशम्यां सा नित्यमश्नीत वाग्यता ॥ ३० ॥ संवत्सरे ततः पूर्णे द्वे बिल्वे काञ्चने शुभे । सदक्षिणे ब्राह्मणाय प्रयच्छति धृतात्मने ॥ ३१ ॥ सौभाग्यं परमाप्नोति बहुपुत्रांस्तथैव च । सदोन्नतौ स्तनौ या स्त्री बिभर्त्यमरवर्णिनि॥ ३२ ॥ शातोदरत्वमिच्छन्ती क्षिपेदेकात-

के फलसे सती स्त्रीके दाँत चमेलीके पुष्पकी समान आभावाले हो जाते हैं और वह स्त्री सौभाग्यवती पुत्रवती होतीहै२६हे सुन्दर मुखवाली स्त्री!जो स्त्री अपने सारे मुखको रमणीय बनाना चाहे वह स्त्री पूर्णिमाके दिन स्नान करे और चन्द्रमाका उदय होने पर दूधमें बनीहुई जौकी लहप्सी ब्राह्मणको दे जब सालभर पूर्ण हो जाय तब चाँदीका शुभ चन्द्रमा बनाकर उसको खिले हुए कमलमें रखकर स्वस्ति वाचन करावे ऐसे दानसे वह शुभ स्त्री अगले जन्ममें पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख वाली होती है २७-२९ जो स्त्री अपने स्तनोंको ताड़के फलोंकी समान बनाना चाहती हो, वह स्त्री वाणीको नियममें रख कर दशमीके दिन बिना माँगे मिले हुए अन्नका भोजन करे ॥ ३० ॥ इस प्रकार वर्ष भर पूर्ण होने पर सुवर्णके दो शुभ बिल्वफल बनवा कर आत्माको वशमें रखने वाले ब्राह्मणको देय और साथमें दक्षिणा भी देय ।३१। हे देवताओंकी समान वर्ण वाली स्त्री!ऐसी स्त्री परम सौभाग्यको सर्वदा उन्नत रहने वाले स्तनोंको और बहुतसे पुत्रोंको पाती

भोजनी । पंचम्यां तत्र भोक्तव्यमन्नं तोयेन निम्नदा ॥ ३३ ॥
ततः सम्वत्सरे पूर्णे दद्याज्जातिलतां शुभे । फुल्लां सदक्षिणां
धन्ये ब्राह्मणाय धृतात्मने ॥३४॥ इच्छन्ति या नारी रूप-
युक्तौ सुमध्यमे । द्वादश्यां सा क्षिपत्येवं शाकैः सर्वैरनिन्दितैः ३५
सम्वत्सरे ततः प्राप्ते रौक्मे पद्मे ददातु सा । ब्राह्मणायाभि-
रूपाय तथा पद्मद्वयं शुभम् ॥ ३६ ॥ श्रेणीं विशालामिच्छेत्
स्त्री क्षिपत्येव सुव्रते । त्रयोदशीमेकभक्तमश्नात्वेवमयाचितम् ३७
ततः सम्वत्सरे पूर्णे लवणं सम्प्रयच्छतु । प्रजापतिमुखाकारं
कृत्वा तत्र वरानने ॥ ३८ ॥ काञ्चनं चैव दातव्यं तदाकारस्य
सर्वदा । अञ्जनेन च धर्मज्ञा शनकैरवचूर्णयेत् ॥ ३९ ॥ रत्नानि
चैव पूर्णानि वासो रक्तं च दापयेत् । तेन श्रोणीमभिमतां स्त्री

है ॥ ३२ ॥ जो स्त्री अपने उदरको पतला चाहती हो वह स्त्री
एकान्तमें भोजन करे और पंचमीके दिन सर्वदा जलसे अन्नका
भक्षण करे ॥ ३३ ॥ तदनन्तर हे धन्यवादके योग्य शुभ स्त्री !
वर्ष भर पूर्ण होने पर धृतात्मा ब्राह्मणको फूली हुई जाति
(चमेली) की लता और दक्षिणा देय ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे !
जो स्त्री रूपवान् हाथोंको चाहती हो वह द्वादशीके दिन सब
अनिंदित शाकोंको ही खावे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वर्ष भर पूर्ण
होने पर वह स्त्री योग्य ब्राह्मणको सुवर्णके दो कमल और
(सादे) दो शुभ कमल देय ॥३६॥ हे सुव्रते ! जो स्त्री अपनी
श्रोणियोंको विशाल बनाना चाहे, वह रमणी त्रयोदशीके दिन
एक समय बिना माँगे मिला हुआ भोजन करे ॥ ३७ ॥ हे वरा-
नने ! फिर वर्ष भर पूर्ण होने पर लवणको प्रजापतिके (ब्रह्मा)
के मुखके आकार वाला बना कर दान देय ॥ ३८ ॥ और इसी
प्रकारकी सुवर्णकी मूर्ति बना कर देय और धर्मज्ञ स्त्री अञ्जन
से धीरे २ चूर्ण करे ॥ ३९ ॥ पूर्ण रत्न और रक्त वस्त्र देय है

सौम्ये प्रतिपद्यते ॥ ४० ॥ मधुरां वाचमिच्छन्ती वर्जयेल्लवणं सती । सम्वत्सरं वा मासं वा प्रयच्छेल्लवणं ततः ॥ ४१ ॥ सदक्षिणं ब्राह्मणाय परं माधुर्यमिच्छती । शुकवाग्गाच्छतगुणं भवत्यमरवर्णिनि ॥ ४२ ॥ गूढगुल्फशिरौ पादाविच्छन्त्या सोमनन्दिनि । षष्ठ्यां षष्ठ्यां वरारोहे भोक्तव्यं सलिलौदनम् ॥४३॥ अग्निर्वा ब्राह्मणो वापि न स्पृष्टव्यः पदा सदा । यदा पदाऽस्पृशेत्तं च वन्देत तपसान्विते ॥४४॥ पादेन चैव पादौ तु प्रक्षालयितुमर्हति । एतैर्निरपत्रतैर्युक्ता धर्मज्ञा पतिदेवता ॥ ४५ ॥ कूर्मौ रूप्यमयौ दद्याद्ब्राह्मणाय पतिव्रते । तौ वराय ब्राह्मणाय स्थापयित्वा धूनेऽनघे ॥ ४६ ॥ पद्मे च चाधो मुखे कृत्वा दद्याद्द्विपाय नन्दिनि । रक्तैर्द्रव्यैर्मिश्रयित्वा काञ्चनेनाभ्यलंकृतौ ॥ ४७ ॥

सौम्ये ! ऐसा करनेसे स्त्री अभिमत श्रेणीको पाती है ४० सती स्त्री मधुर वाणीकी इच्छा करे तो एक वर्ष वा एक मास तकके लिए लवणको त्याग देय फिर लवण देय ४१हे अमरवर्णिनि ! परम मधुरता चाहने वाली स्त्री ब्राह्मणको लवण सहित दक्षिणा देय तो उसकी वाणी तोतेसे सौगुणी (मीठी) होजाती है ४२ हे सोमनन्दिनि ! हे वरारोहे ! अपने पैरोंकी एड़ियोंके शिरको ढका हुआ चाहने वाली स्त्री प्रत्येक षष्ठीके दिन जल और भातका ही भक्षण करे ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण और अग्निका पैरसे कभी स्पर्श न करना चाहिये, हे तपोयुक्ते ! यदि उनसे पैर छू जाय तो उनको प्रणाम करे ॥४४॥ अपने पैरोंसे ही अपने पैरों को धोवे, पतिको देवता मानने वाली और सर्वदा ऐसे व्रत (नियमों) का पालन करने वाली स्त्री ॥ ४५ ॥ हे निष्पापे ! हे पतिव्रते ! चाँदीके कछुए बनवा कर उनको श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान कर देय ॥ ४६ ॥ और हे नन्दिनि ! कमलोंका मुख नीचे को करके उनके साथमें लाल द्रव्य मिलावे और उनको सुवर्णसे

सर्वमेव तु या गात्रमिच्छत्यतिमनोहरम् । त्रिरात्रं पुष्पकाले सा करोतु पतिदेवता ॥ ४८ ॥ कौमुदीमथवा षष्ठ्यां माघ्यां चाश्वयुजे तथा । मातरं पितरं चैव मन्यतेऽतिथिदैवतम् ॥ ४९ ॥ घृतं च नित्यं विप्रेभ्यो ददातु लवणं तथा । समार्जनं गृहे चैव करोतु पतिदेवता ॥ ५० ॥ उपलेपनं च धर्मज्ञे बलिकर्म च मानिनि । वाग्दुष्टा चैव मा शुभ्रे भवत्वात्मार्थरक्षिता ॥ ५१ ॥ पर्णशनात् च सा कश्चिदपि शाकं यशस्विनी । बलिं सृजत्वसत्यं च परित्यजतु भामिनि ॥ ५२ ॥　　छ　　छ　　छ　　छ

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे व्रतकविधानेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

उमोवाच । बान्धवान् सगुणानिच्छेदेकभक्तेन नित्यदा । सप्तमीं सप्तमीं नित्यं क्षपेत् स्त्री पतिदेवता ॥ १ ॥ ततः संवत्सरे

अलंकृत करके ब्राह्मणको देदेय ॥ ४७ ॥ जो अपने सारे शरीर को अतिमनोहर बनाना चाहती हो वह पतिको देवता मानने वाली स्त्री पुष्पकाल (रजोदर्शन) के समय तीन दिन तक (ऐसा) करे ॥ ४८ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाके दिन माघ अथवा आश्विनकी षष्ठीके दिन माता पिता अतिथि और देवताका सत्कार करे ॥ ४९ ॥ और वह पतिदेवता ब्राह्मणोंको सर्वदा घी और नमक देय और घरको साफ करे ॥ ५० ॥ हे शुभे ! हे मानिनि ! वह पतिव्रता स्त्री अपने लिए उपलेपन और बलि-कर्म न करे तथा खोटी वाणीका भी उच्चारण न करे ॥ ५१ ॥ वह यशस्विनी स्त्री किसी शाकका भक्षण करे बलि देय और असत्य बोलना छोड़ देय ५२ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

उमाने कहा, कि-जो स्त्री अपने बान्धवोंको गुणवान् बनाना चाहे वह भी पतिको देवता मानकर प्रत्येक सप्तमीके दिन एक समय भोजन करके अपने शरीरको क्षीण करे ॥१॥ इसप्रकार

पूर्णे वृत्तं दद्याद्धिरण्मयम् । सदक्षिणं ब्राह्मणाय शुभबन्धुमती भवेत् ॥ २ ॥ करञ्जे दीपकं दद्यात् सदा या प्रमदा वरे । पूर्णे सम्वत्सरे दद्यात् सौवर्णं दीपकं ततः ॥ ३ ॥ रुच्या सा स्त्री भवेद्भर्तुरिष्टा पुत्रवती तथा । सपत्नीनामधि तथा दीपवज्ज्वलते शुभे ॥ ४ ॥ या शेषभोजनी नित्यं नैव च स्यादरुन्तुदा । न च स्याद्व्यशना सौम्ये नित्यं च पतिदेवता ॥ ५ ॥ शौचान्विता च सततं नच रूक्षाभिभाषिणी । श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्यं शुश्रूषाभिरता सती ॥ ६ ॥ किं तस्या व्रतकैः कार्यं किं वा स्यादुपवासकैः । या भर्तृदेवता नित्यं सत्यधर्मगुणान्विता ॥ ७ ॥ विधवा स्त्री तु या हि स्यात् दैवयोगात् सती सति । तस्याः वक्ष्यामि यो धर्मः पुराणोक्तः सुमध्यमे ॥८॥ पतिं संकल्पयित्वा सा चित्रस्थं वाऽथ

सालभर पूर्ण होनेपर सुवर्णका वृत्त देय और उसके साथमें ब्राह्मणको दक्षिणा देय तो अच्छे बन्धुवाली होती है ॥२॥ जो स्त्री श्रेष्ठ करञ्जके वृक्षपर सर्वदा दीपक धरती है वह सालभर पूर्ण होने सुवर्णका दीपक देय ॥ ३ ॥ हे शुभे ! वह स्त्री अपनी कान्तिसे स्वामीकी प्यारी और पुत्रवती होती है सौतोंके ऊपर अधिष्ठित रहती है और दीपककी समान प्रज्वलित रहती है ४ जो स्त्री पतिसे बचे हुए अन्नका ही सर्वदा भोजन करती है और किसीके मर्मस्थानको पीडित नहीं करती है तथा बुधके दिन दो बार भोजन नहीं करती है और सर्वदा पतिको देवता मानती है सर्वदा पवित्र रहती है और रूखा भाषण नहीं करती हैं और सर्वदा सास श्वसुरकी सेवामें नियुक्त रहती है ॥६॥ ऐसी स्वामीको देवता माननेवाली सत्य धर्म और गुणोंसे युक्त स्त्रीको व्रत और उपवाससे क्या काम ? ॥ ७ ॥ हे सुमध्यमे सती ! जो स्त्री सती होने पर भी प्रारब्धवश विधवा होजाय तो उसके लिये पुराणोंमें कहे हुए जो धर्म कहे हैं उनको कहता हूँ ८

मृन्मयम् । तस्य पूजां सदा कुर्यात् सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ६ ॥ तत एवाभ्यनुज्ञाता नित्यं याचेत सुव्रता । व्रतके चोपवासे च भोजने च विशेषतः॥१०॥भर्तृलोकान् व्रजत्येव न चेदुच्चारते पतिम् । शाण्डिलीसूर्यवद्भाति सततं पतिदेवता ॥ ११ ॥ अद्य प्रभृति सर्वेषां देवानां चैव योषितः । द्रक्ष्यन्ति पुण्यकविधिं पुराणो यः सनातनः ॥ १२ ॥ मुनिश्च नारदः कृत्स्नं पौराणं ज्ञास्यते विधिम् । उपवासस्य धर्मात्मा व्रतकानां तथैव च १३ अदितिस्तपसेन्द्राणी त्वं च सोमसुते वरे । प्रवर्तने पुण्यकानां व्रतकानां च सर्वदा१४कीर्तनीयाः सतीनां हि भविष्यथ गुणान्विताः । उपवासव्रतविधिं यथावदिह कृत्स्नशः ॥१५॥ प्रादुर्भावेषु सर्वेषु भार्या विष्णोर्महात्मनः । ज्ञास्यन्ति पुण्यकविधिं नित्यमेव सनातनम् ॥ १६ ॥ सविशेषं च धर्माणां स्त्री धर्मेषु प्रशस्यते । पति-

वह स्त्री सज्जनोंके धर्मका स्मरण करके अपने पतिकी मट्टीकी प्रतिमा बनाकर या चित्रमें प्रतिमा बनाकर उसकी सर्वदा पूजा करें ॥६॥ तदनन्तर वह सुव्रता स्त्री व्रत उपवास और भोजनमें उससे ही याचना करे ॥१०॥ जो अपने पतिका उल्लंघन नहीं करती है वह स्त्री पतिके लोकोंको पाती है तथा सर्वदा पतिको देवता माननेवाली स्त्री शाण्डिलीकी समान सूर्यसी प्रकाशित रहती है ।।११॥ इस पुराणोक्त सनातन पुण्यकविधिको आजसे सब देवताओंकी सब स्त्रियें देखेंगी अर्थात् करेंगी ॥ १२ ॥ धर्मात्मा नारदमुनि इस प्राचीन उपवासकी विधिको और सब व्रतोंकी विधिको भी जान जावेंगे ॥ १३ ॥ जब इस पुण्यक व्रतका अनुष्ठान होगा तब हे सोमपुत्री ! तब तब अदिति इन्द्राणी और तुम गुणवतीका सतियोंमें नाम लिया जाया करेगा महात्मा विष्णुकी भार्याएँ उनके प्रत्येक अवतारमें इस सनातनपुण्यक विधिको और उपवासव्रतकी विधिको पूर्ण

भक्तिरदुष्टत्वमवाग्दुष्टत्वमेव च ॥ १७ ॥ नारद उवाच । एव-
मुक्तास्तु ताः साध्व्यो महादेव्या तपोधनाः । जग्मुर्हृष्टा महादेवीं
प्रणिपत्य हरिप्रियाम् ॥ १८ ॥ अदितिर्व्रतकं चक्रे शृणु यद्धर्म-
चारिणी । उमाव्रतविधिः सर्वः पूर्वोद्दिष्टस्तया कृतः ॥ १९ ॥
पारिजाते निबध्याथ मम दत्तस्तु कश्यपः । अदितिव्रतकं नाम
तद्दत्तं सत्यभामया ॥ २० ॥ तदेव व्रतकं दत्तं सावित्र्या धर्म-
नित्यया । तैरेव युक्तैः संयुक्तमिदं त्वभ्यधिकं कृतम् ॥ २१ ॥
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते स्थाने स्थाने तथैव च । पूजनं वा नम-
स्कारो जपश्च द्विगुणः स्मृतः ॥ २२ ॥ सावित्री व्रतकं कृत्वा
तथादित्या व्रतं सती । भर्तृकुलं पितृकुलं आत्मानं चैव तार-
येत् ॥ २३ ॥ इन्द्राणी व्रतकं चक्रे तदेवोमं यथा विधिः । रक्त-

रीतिसे जाना करेंगी ॥ १४-१६ ॥ स्त्रीधर्मोंमें पतिकी भक्ति, दुष्ट न होना और खोटी वाणीका न बोलना विशेष प्रशंसाके योग्य माना जाता है १७ नारदजीने कहा, कि- उन तपोधन साध्वी महादेवियोंसे जब इसप्रकार कहा तब वे देवियें शिवजीकी प्रिया महादेवीको प्रणाम कर प्रसन्न होती हुई चली गई १८ तब धर्मचारिणी अदितिने उस व्रतको किया था उसने जिस प्रकार उपदेश पाया था उसी प्रकार उमाव्रतकी सब विधिकी थी १९ उसने कश्यपजीको पारिजातसे बाँधकर मुझे देदिया उसी अदितिव्रतको इस सत्यभामाने (दिया) किया है २० धर्मनित्य सावित्रीने भी इसी व्रतको किया था उसने इन सब साधनोंके साथ इसव्रतको और भी अधिकरीतिसे किया २१ सन्ध्याको समय आने पर स्थान २ पर पूजन और नमस्कार करना चाहिये और इसमें दुगना जप करना कहा है ॥ २२ ॥ सती स्त्री सावित्रीके और अदितिके व्रतको कर स्वामीके और पिताके कुलको और अपने आपेको भी तार देती है ॥ २३ ॥

मभ्यधिकं वासो भोजनं चैव सामिषम् ॥ २४ ॥ चतुर्थे दिवसे चापि पुण्यकार्थं विधिं पुनः । अहोरात्रोपवासश्च देयं कुम्भशतं तथा ॥ २५ ॥ गंगया व्रतकं दत्तं तदेवोमं यशस्करि । स्नानमभ्यधिकं तत्र गत्यूषे स्यान्मनोजले ॥ २६ ॥ अस्मिन् वा जले माघशुक्लपक्षे हरिप्रिये । एतद्गंगाव्रतं नाम सर्वकामप्रदं स्मृतम् । सप्त सप्त च सप्ताथ कुलानि हरिवल्लभे स्त्री तारयति धर्मज्ञा गङ्गाव्रतकचारिणी ॥ २८ ॥ देयं कुम्भसहस्रं तु गङ्गाया व्रतके शुभे । तारणं पारणं चैव तद्व्रतं सार्वकामिकम् ॥ २९ ॥ यमभार्या चकाराथ व्रतं यामरथं शुभम् । हेमन्ते तत्तु कर्तव्यमाकाशे हरिवल्लभे ॥३०॥ इमानि चैव वाक्यानि ब्रूयादाकाशमास्थिता । स्नात्वा शुचि समाचारा नमस्कृत्य पतिं शुभे ॥ ३१ ॥ चरा-

इन्द्राणीने इस उमाव्रतको विधिके अनुसार किया था रक्त वस्त्र और आमिष भोजन (दिया था) ॥ २४ ॥ पुण्यक विधिमें चौथे दिन फिर दिन और रातका उपवास करे तथा सौ घड़ोंका दान देय२५हे यशस्विनी ! इस उमाव्रतको ही गंगाजीने बताया है इस व्रतमें प्रातःकाल गंगाजीमें स्नान करना अधिक है २६ हे हरि-प्रिये ! गङ्गाजलमें वा दूसरे जलमें माघ मासके शुक्ल पक्षमें स्नान करना गङ्गाव्रत नामक व्रत है और यह सब कामोंको देनेवाला कहा है ॥२७॥ गङ्गाव्रत करने वाली धर्मज्ञ स्त्री हे हरिवल्लभे ! इक्कीस कुलोंको पवित्र करती है ॥ २८ ॥ हे शुभे!गङ्गाके व्रतमें सहस्र घड़ोंका दान देना चाहिये यह सार्वकामिक व्रत दुःखोंसे तारनेवाला और मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है ॥ २९ ॥ हे हरि-वल्लभे ! यमराजकी स्त्रीने यामरथ नामक शुभव्रतको आकाशमें अर्थात् खुले हुए स्थानमें किया था इस व्रतको हेमन्त ऋतुमें करना चाहिये ॥ ३० हे शुभे ! पवित्र आचार वाली स्त्री अपने पतिको प्रणाम कर खुले हुए स्थानमें बैठ कर इन वाक्योंको

न्वहं यामरथं हिमं पृष्ठे न धारये। पतिव्रता जीवपुत्रा भवेयं च पुरोभिका ॥ ३२ ॥ सपत्नीरधितिष्ठेयं पश्येयं चैव मा यमम्। सभर्तृपुत्रा जीवेयं चिरं च स्वयमेव च ।३३॥पतिलोकं च गच्छेयं भवेयं नन्दिनी तथा। सुचैलामृष्टहस्ता च स्वजनेष्टा गुणान्विता एवं कृत्वा ततो विप्रं मधुना स्वस्ति वाचयेत्। तिलैरपि तथा कृष्णैः पायसेन तु भोजयेत् ॥ ३५ ॥ एवं व्रतानि देवीभिः कृतान्यपरवर्णिनि। महादेव्या पुरोक्तानि रुद्रपत्न्या हरिप्रिये ३६ अहं ब्रवीमि तपसा मदीयेन समन्विताः। सर्वा द्रक्ष्यथ पुण्यानि व्रतकानि तथैव च ॥ ३७ ॥ पौराणान्युमया देव्या यानि दृष्टानि वै पुरा। कल्याणगुणयुक्तानि पावनानि शुभानि च ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच। रुक्मिणी व्रतकं चक्रे दृष्ट्वा व्रतकविस्तरम्। उमाया वरदानेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३९ ॥ उमाव्रतेषु सर्वेषु

कहे ॥ ३१ ॥ मैं यामरथ व्रतको करूँ, पीठ पर हिमको धारण न करूँ, मैं पतिव्रता, जीवित पुत्रों वाली और अग्रणीया होऊँ ३२ मैं सपत्नियोंके ऊपर अधिष्ठित रहूँ,यमका दर्शन न करूँ और मैं अपने स्वामी और पुत्रोंके साथ बहुत समय तक सुखपूर्वक जीवित रहूँ ॥ ३३ ॥ मैं पतिलोकको प्राप्त होऊँ, मेरे वस्त्र अच्छे रहें तथा मैं नन्दिनी (प्रिया) रहूँ, मेरा हाथ खुला रहे और मैं इष्टजनोंके गुण युक्त रहूँ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार कहके ब्राह्मणसे स्वस्तिवाचन करावे और काले तिल मधु और दुग्धसे ब्राह्मण को भोजन कराये ॥ ३५ ॥ हे अपरवर्णिनि हरिप्रिये! इस प्रकार रुद्रकी पत्नी महादेवीके कहे हुए व्रत देवियोंने किये हैं ॥ ३६ ॥ मैं कहता हूँ कि-तुम सब मेरे तप (के प्रभाव) से युक्त होकर उमादेवीके प्राचीन कालमें (देखे) करे हुए कल्याणयुक्त पावन शुभ व्रतोंको करोगी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वैशम्पायनजी कहा; कि-उमाके वरदानके कारण रुक्मिणीने दिव्य दृष्टिसे व्रतविस्तारको

वृषदानं तथाधिकम् । रत्नमालाप्रदानं च तथान्नं सार्वकामिकम् ॥४०॥ तथा जाम्बवती चक्रे पुरोमा व्रतकं यथा । ददात्यभ्यधिकं सा तु रत्नवृक्षं मनोहरम् ॥ ४१ ॥ सत्या ददौ तथैवाथ पुरोमाव्रतकं यथा । पीतमभ्यधिकं वासस्तया दत्तमुमाव्रते ॥४२॥रोहिण्याथ च फाल्गुन्या मघया च पुरातने । व्रतानि खलु दत्तानि बहूनि कुलवर्धने ॥४३॥ददौ शतभिषा चैव व्रतकं पुण्यलक्षणम् । येन नक्षत्रमुख्यत्वं जगाम कुरुनन्दन ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि पारिजातहरणे उमाव्रतकथनसमाप्तिः पारिजातहरणकथनसमाप्तिर्नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

जनमेजय उवाच । वैशम्पायन धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन । पारिजातस्य हरणे षट्पुरं परिकीर्तितम् ॥ १ ॥ निवासोऽसुरमुख्यानां दारुणानां तपोधन । तेषां वधं मुनिश्रेष्ठ कीर्तयस्वा-

---

देख कर व्रत किया ३९ उमाके सब व्रतोंमें वृषभका दान रत्नोंकी मालाका दान और सार्वकामिक अन्न (का दान) अधिक अच्छा समझा जाता है ४० जाम्बवतीने उमाव्रतको करके मनोहर रत्नवृक्ष अधिक दिया था ४१ पहिले सत्याने भी इसी प्रकार उमाव्रत किया था और उसने उमाव्रतमें पीला वस्त्र अधिक दिया था ४२ हे कुलवर्धने ! प्राचीन समयमें रोहिणीने फाल्गुनीने मघाने बहुतसे व्रत किये थे ४३ शतभिषाने भी इस पुण्यलक्षण व्रतको किया था, इसी लिये हे कुरुनन्दन ! वह नक्षत्रोंमें मुख्य होगया है ४४ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥

जनमेजयने कहा. कि-हे तपोधन व्यासजीके शिष्य धर्मज्ञ वैशपायनजी!आपने पारिजातके हरणके समय षट् पुरका वर्णन किया था १ हे, तपोधन ! वह दारुण मुख्य २ असुरोंका निवासस्थान है, हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उनका और अंधकका

धकरण च ॥२॥ वैशम्पायन उवाच । त्रिपुरे निहते वीरे रुद्रेणा क्लिष्टकर्मणा । तत्र प्रधाना बहवो बभूवुरसुरोत्तमाः ॥ ३ ॥ शराग्निना न दग्धास्ते रुद्रेण त्रिपुरालयाः । षष्टिः शतसहस्राणि न न्यूनान्यधिकानि च ॥ ४ ॥ ते ज्ञातिवधसंतप्ताश्चक्रुर्वीराः पुरा तपः । जम्बूमार्गे सतामिष्टे महर्षिगणसेविते ॥५॥आदित्याभिमुखा वीराः सहस्राणां शतं समाः । वायुभक्षा नृपश्रेष्ठ स्तुवन्तः पद्मसम्भवम्॥६॥तेषामुदुम्बरं राजन् गण एकः समाश्रितः । वृक्षं तत्रावसन् वीरास्ते कुर्वन्तो महत्तपः ७ कपित्थवृक्षमाश्रित्य केचित्तत्रोषिताः पुरा । मृगालवाटीस्त्वपरे चेरुरुग्रं तथा तपः ॥८॥ वटमूले तथा चेरुस्तपः कौरवनन्दन । अधीयन्तो परं ब्रह्म वटं गत्वासुरात्मजाः ९ तेषां तुष्टः प्रजाकर्ता नरदेव पितामहः । वरं दातुं सुरश्रेष्ठः प्राप्तो धर्मभृतां वरः ॥ १० ॥ वरं वरयतेत्युक्तास्ते

वध वर्णन करिये २ वैशम्पायनजीने कहा, कि-सरलतासे कर्म करनेवाले रुद्रने जब त्रिपुरका नाश कर डाला तब भी बहुतसे प्रधान २ श्रेष्ठ असुर बच गए थे ३ रुद्रने जिन त्रिपुरनिवासियों को बाणकी अग्निसे नहीं जलाया था वे छः लाख थे, न कम थे न अधिक थे ४ उन वीरोंने जाति वालोंके वधसे सन्तप्त होकर महर्षियोंसे सेवित जम्बूमार्गमें तप किया था ५ वे वीर आदित्यकी ओर मुख करके वायुभक्षण करते हुए पद्मयोनि ब्रह्माजीकी एक लाख वर्ष तक स्तुति करते रहे॥६॥उनमेंका एक टोला गूलड़के पेड़के नीचे बैठ गया उन्होंने उस वृक्षके नीचे बैठ कर बड़ाभारी तप किया ॥ ७ ॥ कुछ व्यक्ति कैथके वृक्षका और कुछ मृगालवाटी (वृक्ष) का आश्रय लेकर उग्र तप करने लगे ॥ ८ ॥ हे कौरवनन्दन ! वे असुरपुत्र वटमूलका आश्रय लेकर भी परब्रह्मका अध्ययन करते हुए तप करने लगे ॥९॥हे नरदेव ! तब उनके ऊपर प्रजाको रचने वाले ब्रह्माजी प्रसन्न हो गए और

राजन् पद्मयोनिना । नेषुस्तद्वरदानं तु द्विषतः त्र्यंबकं विभुम् ११
इच्छन्तोपचितिं गन्तुं ज्ञातिनां कुरुनन्दन । तानुवाच ततो ब्रह्मा
सर्वज्ञः कुरुनन्दन ॥ १२ ॥ विश्वस्य जगतः कर्तुः संहर्तुश्च
महात्मनः । कः शक्तोऽपचितिं गन्तुं मास्तु वोऽत्र वृथा श्रमः १३
अनादिमध्यनिधनः सोमो देवो महेश्वरः । तमभ्यर्च्य सुखं स्वर्गे
वस्तुमिच्छन्ति ये सुराः ॥ १४ ॥ तेनेषुस्तत्र केचित्तु दुरात्मानो
महासुराः । अथेषुरपरे राजन्नसुरा भव्यभावनाः ॥१५॥ नेषुर्ये
सुदुरात्मानस्तानुवाच पितामहः । वरयध्वं वरं वीरा रुद्रकोप-
मृतेऽसुराः ॥१६॥ त ऊचुः सर्वदेवानां अवध्याः स्यामहे विभो ।
पुराणि षट् च नो देव भवन्त्वंतर्महीतले ॥१७॥ सर्वकामसमृद्धार्थं

वह श्रेष्ठ तथा देवताओंमें उत्तम ब्रह्माजी उनको वर देनेको आगए ॥ १० ॥ हे राजन् ! उनसे पद्मयोनि ब्रह्माजीने वरदान माँगनेके लिये कहा, परन्तु वह तो त्र्यम्बक विभुसे द्वेष करते थे, अतः उन्होंने वरदान लेना नहीं चाहा ११ हे कुरुनन्दन ! वे रुद्र से द्वेष कर अपनी जाति वालोंसे अनृण होना चाहते थे, हे कुरु नन्दन ! तब उनसे सर्वज्ञ ब्रह्माजीने कहा कि—॥ १२ ॥ सम्पूर्ण जगत्को रचने वाले तथा अखिल जगत्का संहार करने वाले महात्मा रुद्रसे कौन अपचिति (बदला) ले सकता है, अतः तुम इस विषयमें व्यर्थ ही परिश्रम न करो ॥ १३ ॥ उमा सहित महेश्वर देव आदि (जन्म) मध्य और निधन (मृत्यु) रहित हैं, जो देवता हैं वे भी उनकी ही अर्चना कर स्वर्गमें रहना चाहते हैं १४ तब भी वहाँ के कुछ दुरात्मा असुरोंने वर लेना न चाहा, और हे राजन् ! कुछ कल्याणका चिन्तवन करने वाले असुरोंने वर लेना चाहा १५ जो दुरात्मा वर लेना नहीं चाहते थे, उनसे पितामहने कहा, कि–हे वीरों ! तुम रुद्र पर क्रोध करनेके अतिरिक्त वर माँगलो १६ तब उन्होंने कहा, कि–हे विभो !

षट्पुर चास्तु नः प्रभो । वयं च षट्पुरं गत्वा वसेम च सुखं विभो ॥ १८ ॥ रुद्रादुग्रं भयं न स्याद्येन नो ज्ञातयो हताः । निहतं त्रिपुरं दृष्ट्वा भीताः स्म तपसां निधे ॥ १९ ॥ पितामह उवाच । असुरा भवतावध्या देवानां शंकरस्य च । न बाधिष्यथ चेद्विप्रान् सत्पथस्थान् सतां प्रियान् ॥२०॥ विप्रोपघातं मोहाच्चेत् करिष्यथ कथञ्चन । नाशं यास्यथ विप्रा हि जगतः परमा गतिः ॥२१॥ नारायणाद्धि भेतव्यं कुर्वद्भिर्ब्राह्मणाहितम् । सर्वभूतेषु भगवान् हितं धत्ते जनार्दनः ॥ २२ ॥ ते गता असुरा राजन् ब्रह्मणा ये विसर्जिताः । येऽपि भक्ता महादेवमसुरा धर्मचारिणः ॥ २३ ॥ स्वयं हि दर्शनं तेषां ददौ त्रिपुरनाशनः श्वेतं वृषभमारुह्य सोमः सप्रवरः प्रभुः । उवाचेदं च भगवान-

---

हम सब देवताओंसे अवध्य हों और हमारे छः पुर (षट्पुर) पृथ्वीके भीतर हों १७ हे प्रभो ! हमारा षट्पुर सब कामनाओं से समृद्ध हो और हे विभो ! हम षट्पुरमें जाकर सुखपूर्वक निवास करें १८ हमें शंकरसे उग्र भय न मिले, कि-जिन्होंने हमारी जाति वालोंको मार डाला है हे तपोनिधे ! हम त्रिपुरको नष्ट हुआ देखकर डर रहे हैं १९ पितामहने कहा, कि-हे असुरो ! यदि तुम सन्मार्गमें स्थित सज्जनोंके प्रिय ब्राह्मणोंको पीड़ा नहीं दोगे तो तुम शंकरसे और देवताओंसे भी अवध्य रहोगे२० यदि तुम मोहवश कभी ब्राह्मणोंको पीड़ा दोगे,तो नष्ट होजावोगे क्योंकि-ब्राह्मण जगत्की परमगति हैं २१ ब्राह्मणोंका अहित करते समय तुम नारायणसे डरते रहना, क्योंकि-भगवान् जनार्दन सब प्राणियोंका हित चाहते रहते हैं २२ ब्रह्माजीके विसर्जन करने पर वे असुर चले गए और जो धर्मचारी असुर महादेवके भक्त थे २३ उनको त्रिपुरका नाश करनेवाले प्रभु महादेवने उमाके साथ श्वेत बैल पर बैठकर दर्शन दिये, उनके

सुरान् स सतां गतिः ॥ २४ ॥ वैरमुत्सृज्य दम्भं च हिंसां चासुरसत्तमाः । मामेव चाश्रितास्तस्माद्वरं साधु ददामि वः २५ यैर्दीक्षिताः स्थ मुनिभिः सत्क्रियापरमैर्द्विजैः । सह तैर्गम्यतां स्वर्गः प्रीतोऽहं वः सुकर्मणा ॥ २६ ॥ इह ये चैव वत्स्यन्ति तापसा ब्रह्मवादिनः । अपि कापित्थका वृक्षे तेषां लोका यथा मम इह मासान्तपक्षान्तौ यः करिष्यति मानवः । वानप्रस्थे च विधिना पूजयन्मां तपोधन ॥२८॥ वर्षाणां स सहस्रं तु तपसां प्राप्स्यते फलम् । कृत्वा त्रिरात्रं विधिवल्लप्स्यते चेप्सितां गतिम् ॥२९॥ अर्कद्वीपे निवसतो द्विगुणं तद्भविष्यति । न विदेशे च भद्रं वो वरमेतद्ददाम्यहम् ॥ ३० ॥ श्वेतवाहननामानं यश्च मां पूजयिष्यति । सर्वतो भयभितोऽपि गतिं स मम यास्यति ॥ ३१ ॥

साथ गण भी थे और उन सज्जनोंकी गति भगवान् शिवने यह वचन भी कहा, कि-२४ हे असुरसत्तमों ! तुमने वैर हिंसा और दंभको छोड़ मेरा ही आश्रय लिया है इस लिये मैं तुम्हें वर देता हूँ, कि-२५ जिन सत्क्रियामें परायण रहने वाले ब्राह्मण मुनियोंने आपको दीक्षित किया है, उनके साथ तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, मैं तुम्हारे कर्मसे प्रसन्न हूँ २६ जो ब्रह्मवादी तपस्वी यहाँ वृक्षके नीचे बसेंगे उन कापित्थकोंको मेरी समान ही लोक मिलेंगे २७ हे तपोधन ! जो मनुष्य वानप्रस्थ विधिसे यहाँ पर वानप्रस्थ विधिसे अमावस्या और पूर्णिमाके दिन रहेगा २८ वह मनुष्य सहस्र वर्षोंके तपोंके फलको पावेगा और तीन राततक विधानके अनुसार करनेसे ईप्सित गतिको पावेगा अर्कद्वीपमें निवास करने पर दुगना फल होगा, परन्तु विदेशमें तुम्हारा कल्याण नहीं होगा, यह मैं सत्य कहता हूँ ३० जो मुझ श्वेतवाहन नाम वालेकी पूजा करेगा उसका चित्त सब ओर से भयमें पड़ा होगा तब भी मेरी गतिको पावेगा ३१ औदुम्बर

औदुम्बरान्वाटमूलान्द्विजान्कापिटिथकानपि । तथा सृगालवाटीयान् धर्मात्मानो दृढव्रतान् ॥३२॥ मुनींश्च ब्रह्मवादीयान् सविशेषेण ये नराः । पूजयिष्यन्ति सततं ते यास्यन्तीप्सितां गतिं ३३ इत्युक्त्वाथ महादेवो भगवान् श्वेतवाहनः । तैरेव सहितः सर्वैं रुद्रलोकं जगाम वै ॥ ३४ ॥ जम्बूमार्गं गमिष्यामि जम्बूमार्गे वसाम्यहम् । एवं संकल्पमानोपि रुद्रलोके महीयते ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि
षट्पुरवधे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नेव काले तु चतुर्वेदषडंगवित् । ब्राह्मणो याज्ञवल्क्यस्य शिष्यो धर्मगुणान्वितः ॥१॥ ब्रह्मदत्तेति विख्यातो विप्रो वाजसनेयिवान् । अश्वमेधः कृतस्तेन वसुदेवस्य धीमतः ॥ २ ॥ स सम्वत्सरदीक्षायां दीक्षितः षट्पुरालयः । आवर्तायां शुभे तीरे सुनद्या मुनिजुष्टया ॥ ३ ॥ सखा च

वाटमूल कापिटिथक और सृगालवाटीय और दृढ व्रत धर्मवादी ब्रह्मवादी मुनियोंका भी जो मनुष्य विशेषतः पूजन करेंगे वे, अभिलषित गतिको पावेंगे ३२–३३ श्वेतवाहन भगवान् महादेव इस प्रकार कह कर उन सबोंके साथ रुद्रलोकको चले गये ३४ मैं जम्बूमार्गको जाऊँगा और जम्बूमार्गमे वसूँगा ऐसा संकल्प करने वाला पुरुष भी रुद्रलोकमें पूजा पाता है ३५ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ८२

वैशम्पायनजीने कहा कि–चारों वेद छः अंगोंको जाननेवाले ब्रह्मदत्त नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे वे याज्ञवल्क्यके शिष्य और धर्मके गुणोंसे युक्त थे और वाजसनेयी शाखा वाले थे उन्होंने बुद्धिमान् वसुदेवजीको किसी समय अश्वमेध यज्ञ कराया था १–२ उनका घर षट्पुरमें था मुनियोंसे सेवित आवर्तानाम वाली सुन्दर नदीके शुभ तट पर सालभर की पूजाकी उन्होंने

वसुदेवस्य सहाध्यायी द्विजोत्तमः । उपाध्यायश्च कौरव्य चीर-
होता महात्मनः ॥ ४ ॥ वसुदेवस्तत्र यातो देवक्या सहितः
प्रभो । यजमानं षट्पुरस्थं यथा शक्रो बृहस्पतिम् ॥ ५ ॥ ततस्त्रे
ब्रह्मदत्तस्य बह्वन्नं बहुदक्षिणम् । उपासन्ति मुनिश्रेष्ठा महात्मानो
दृढव्रताः ॥ ६ ॥ व्यासोऽहं याज्ञवल्क्यश्च सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ।
धृतिमान् जाबलिश्चैव देवलाद्याश्च भारत ७ श्रद्धयाऽनुरूपया
युक्तं वसुदेवस्य धीमतः । यत्रेप्सितान्ददौ कामान् देवकी धर्म-
चारिणी ॥ ८ ॥ वासुदेवप्रभावेन जगत्स्रष्टुर्महीतले तस्मिन् सत्रे
वर्तमाने दैत्याः षट्पुरवासिनः ॥ ९ ॥ निकुंभाद्याः समागम्य
तमूचुर्वरदर्पिताः । कार्यतां यज्ञभागो नः सोमं पास्यामहे वयम् ।
कन्याश्च ब्रह्मदत्तो नो यजमानः प्रयच्छतु ॥ १० ॥ वद्धयः संत्यस्य

दीक्षा ली थी ३ वह द्विजोत्तम वसुदेवके मित्र और सहपाठी थे और हे कौरव्य ! वह महात्मा वसुदेवके उपाध्याय और अध्वर्यु भी थे ४ हे प्रभो ! जैसे इन्द्र बृहस्पतिके पास जाते हैं इसी प्रकार षट्पुरमे स्थित पूजा करनेवाले ब्रह्मदत्तके पास वसुदेव देवकीको साथ लेकर गये थे ५ श्रेष्ठ २ मुनि और दृढव्रत धारी महात्मा बहुतसे अन्न और दक्षिणावाले यज्ञकी उपासना कर रहे थे ६ हे भरतवंशी राजन् ! बुद्धिमान् वसुदेवकी सम्पत्तिके अनुरूप उस यज्ञकी व्यासजी मैं याज्ञवल्क्य सुमन्तु जैमिनि धैर्यधारी जाबलि और देवल आदि भी उपासना कर रहे थे उस यज्ञमें धर्मचारिणी देवकीने अभिलषित मनोरथ पूर्ण किये थे ७-८ जगत्के रचयिता वासुदेवके प्रभावसे वह यज्ञ पृथ्वीतल में होरहा था उस समय वरदानसे गर्वमें भरे हुए षट्पुरनिवासी निकुंभ आदि दैत्योंने तहाँ आकर कहा, कि-यज्ञमें हमारा भी भाग निकालो, हम सोमपान करेंगे और यज्ञ करने वाला यजमान ब्रह्मदत्त हमें कन्याएँ भी दे ९-१० हमने सुना है, कि-

कन्याश्च रूपवत्यो महात्मनः । आहूय ताः प्रदातव्याः सर्वथैव हि नः श्रुतम् ॥ ११ ॥ रत्नानि च ब्रह्मदत्तो विशिष्टानि ददातु नः । अन्यथा तु न यष्टव्यं वयमाज्ञापयामहे ॥ १२ ॥ एतच्छ्रुत्वा ब्रह्मदत्तस्तानुवाच महासुरान् । यज्ञभागो न विहितः पुराणेऽसुरसत्तमाः ॥ १३ ॥ कथं सत्रे सोमपानं शक्यं दातुं मया हि वः । पृच्छते ह मुनिश्रेष्ठान् वेदभाष्यार्थकोविदान् ॥ १४ ॥ कन्या हि मम या देयास्ताश्च संकल्पिता मया । अन्तर्वेद्यां प्रदातव्याः सदृशानामसंशयम् ॥ १५ ॥ रत्नानि तु प्रयच्छामि सान्त्वेनाहं विचिन्त्यताम् । बलान्नैव प्रदास्यामि देवकीपुत्रमाश्रितः ॥ १६॥ निकुम्भाद्यास्तु रुषिताः पापाः षट्पुरवासिनः । यज्ञवाटं विलुलुपुर्जह्नुः कन्याश्च तास्तथा ॥१७॥ तद्दृष्ट्वा सम्प्रवृत्तां तु दध्या-

---

महात्मा ब्रह्मदत्तके बहुतसी रूपवती कन्याएँ हैं,उन्हें हमें बुला कर हमारे अर्पण कर दे ॥ ११ ॥ और ब्रह्मदत्त हमें श्रेष्ठ रत्न भी देय, अन्यथा वह यज्ञ न करे, ऐसी हम आज्ञा देते हैं १२ इस बातको सुन कर ब्रह्मदत्तने उन बड़े २ असुरोंसे कहा; कि–हे श्रेष्ठ असुरों ! पुराण (श्रुति) में "यज्ञमें तुम्हारा भाग निकालना नहीं लिखा" है ॥ १३ ॥ इस लिये मैं तुम्हें यज्ञमें सोमपान कैसे करा सकता हूँ इस बातको मैंने वेदके भाष्यका अर्थ करनेमें चतुर पुरुषोंसे बूझ लिया है ॥ १४ ॥ और मैंने अपनी दान करने योग्य कन्याओंका संकल्प कर रक्खा है, मैं उनको वेदीके भीतर अपने समान व्यक्तियोंको दूँगा ॥ १५ ॥ और मैं रत्नोंको भी सान्त्वपूर्वक तो देदूँगा,बलपूर्वक नहीं दूँगा,क्योंकि–मुझे देवकीपुत्रका भरोसा है ॥१६॥ (इस बातको सुन कर) षट्पुरमें रहने वाले निकुंभ आदि पापी दैत्य यज्ञवाटको नष्ट भ्रष्ट कर कन्याओंको हरना चाहने लगे ॥१७॥ इस दुर्घटनाको देख कर वसुदेवजीने महात्मा वासुदेव बलदेव और प्रद्युम्नका स्मरण

वानकदुन्दुभिः । वासुदेवं महात्मानं बलभद्रं गदं तथा ॥ १८ ॥
विदितार्थस्ततः कृष्णः प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् । गच्छ कन्यापरि-
त्राणं कुरु पुत्राशु मायया ॥ १९ ॥ यावद्यादवसैन्येन षट्पुरं
याम्यहं प्रभो । स ययौ षट्पुरं वीरः पितुराज्ञाकरस्तदा ॥ २० ॥
निमेषान्तरमात्रेण गत्वा कामो महाबलः । कन्यास्ता मायया
धीमानपजह्रे महाबलः ॥ २१ ॥ मायामयीश्च कृत्वान्या न्यस्त-
वान् रुक्मिणीसुतः । मा भैरिति च धर्मात्मा देवकं प्रत्युवाच ह ॥ २२ ॥
मायामयीस्ततो हृत्वा सुता दैत्या दुरासदाः । षट्पुरं विविशु-
र्दैत्याः परितुष्टा नराधिप ॥ २३ ॥ धर्मं चाप्यभवत्तत्र विधि-
दृष्टेन कर्मणा । महिष्टिं बहुगुणं तदभूच्च नराधिप ॥ २४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राजानस्तत्र भारत । सर्वे निमन्त्रिताः पूर्वं
ब्रह्मदत्तेन धीमता ॥ २५ ॥ जरासन्धो दन्तवक्त्रः शिशुपाल-

किया ॥ १८ ॥ उस समय श्रीकृष्णने उस बातको जान कर प्रद्युम्नसे कहा; कि- हे पुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मायासे कन्याओंकी रक्षा करो ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! तब तक मैं भी षट्पुरमें पहुँच जाऊँगा तब वह पिताकी आज्ञा पालने वाला प्रद्युम्न षट्पुरको चला गया ॥ २० ॥ महाबल प्रद्युम्न पलक मारने मात्रके समय में वहाँ पहुँच गया, फिर उस महाबली प्रद्युम्नने माया करके क्षण भरमें ही उन कन्याओंको हर लिया ॥ २१ ॥ और दूसरी मायामयी कन्याएँ रच कर वहाँ धर दीं फिर धर्मात्मा रुक्मिणी-पुत्रने देवकसे कहा, कि- आप डरिये नहीं ॥ २२ ॥ हे राजन ! वे दुरासद दैत्य उन मायामयी कन्याओंको लेकर प्रसन्न होते हुए षट्पुरको चले गए ॥ २३ ॥ हे राजन् ! वहाँ (ब्रह्मदत्तके यहाँ भी) शास्त्रानुसार रीतिसे (यज्ञ) कर्म दक्षिणा रीतिसे होने लगा ॥ २४ ॥ इसी समय वहाँ पर बुद्धिमान ब्रह्मदत्तके द्वारा यज्ञमें निमंत्रित जरासन्ध दन्तवक्त्र शिशुपाल आदिक तथा

स्तथैव च । पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च मालवाः सगणास्तथा ॥२६॥ रुक्मी चैवाहुतिश्चैव नीलो वा धर्म एव च । विन्दानुविंदावा- वन्त्यौ शल्यः शकुनिरेव च ॥ २७ ॥ राजानश्च परे वीरा महा- त्मानो दृढायुधाः । आवासिता नातिदूरे षट्पुरस्य च भारत २८ तान् दृष्ट्वा नारदः श्रीमाननिंदितपदर्निद्विजः । क्षत्रस्य यादवानां च भविष्यति समागमः ॥ २९ ॥अत्र हेतुरहं युद्धे तस्मात्तत् प्रयता- म्यहम् । एवं सञ्चिन्तयित्वाऽथ निकुम्भभवनं गतः ॥ ३० ॥ पूजितः स निकुम्भेन दानवैश्च तथापरे । उपविष्टः स धर्मात्मा निकुम्भमिदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ कथं विरोधं यदुभिः कृत्वा स्वस्थै- रिहास्यते । यो ब्रह्मदत्तः स हरिः स हि तस्य विभुः सखा।३२। शतानि पञ्च भार्याणां ब्रह्मदत्तस्य धीमतः । आनीता वसुदेवस्य सुतस्य प्रियकाम्यया ॥ ३३ ॥ शतद्वयं ब्राह्मणीनां राजन्यानां

धृतराष्ट्रके पुत्र और गणोंसहित मालव राजे भी तहाँ आ पहुँचे ॥ २५ ॥ २६ ॥ रुक्मिणी आहुति नील धर्म, उज्जैनके विंद और अनुविन्द, शल्य शकुनि तथा और भी बहुतसे दृढ़ व्रतधारी महात्मा क्षत्रिय (आये थे) हे भारत ! उनको षट्पुर के समीप ही ठहरा दिया गया ॥ २७ ॥ २८ ॥ उनको देख कर अनिन्दित श्रीमान् नारदजीने विचारा कि-क्षत्रियोंका और यादवोंका समागम अत्र होने वाला है ॥ २९ ॥ परन्तु यहाँ पर युद्ध करानेमें मुझे हेतु बनना चाहिये,इस प्रकार विचार कर वह निकुंभके भवनको चले गए ॥ ३० ॥ तहाँ पर निकुम्भने तथा दूसरे दानवोंने भी उनका सत्कार किया, तदनन्तर बैठनेके उपरान्त उन्होंने निकुम्भसे यह बात कही, कि-॥ ३१ ॥ तुम यादवोंसे विरोध करके यहाँ पर आनन्दसे कैसे बैठे हो, जो ब्रह्मदत्त है वही हरि हैं, क्योंकि वे विभु उनके मित्र हैं ॥३२॥ बुद्धिमान् ब्रह्मदत्तकी पाँचसौ स्त्रियें हैं, उनको वह वसुदेवके

शतं तथा । वैश्यानां शतमेकं च शूद्राणां शतमेव च ॥ ३४ ॥ ताभिः शुश्रूषितो धीमान् दुर्वासा धर्मवित्तमः । तेन तासां वरो दत्तो मुनिना पुण्यकर्मणा ॥ ३५ ॥ एकैकस्तनयो राजन्नेकैका दुहिता तथा । रूपेणानुपमाः सर्वा वरदानेन धीमतः ॥ ३६ ॥ कन्या भवन्ति तनयास्तस्यासुर पुनः पुनः । सङ्गमे सङ्गमे वीर भर्तृभिः शयने सह ॥ ३७ ॥ सर्वपुष्पमयं गन्धं प्रस्रवन्ति वराङ्गनाः । सर्वदा यौवने न्यस्ताः सर्वाश्चैव पतिव्रताः ॥ ३८ ॥ सर्वा गुणैरप्सरसां गीतनृत्यगुणोदयम् । जानन्ति सर्वा दैतेय वरदानेन धीमतः ॥ ३९ ॥ पुत्राश्च रूपसम्पन्नाः शास्त्रार्थकुशलास्तथा । स्वे स्वे स्थिता वर्णधर्मे यथावदनुपूर्वशः ॥ ४० ॥ ताः कन्या भैममुख्यानां दत्ताः प्रायेण धीमता । अवशेषं शतं

पुत्रका प्रिय करनेके लिए लाये थे ॥ ३३ ॥ उनमें दो सौ ब्राह्मणियें हैं, एक सौ क्षत्रियायें हैं, एक सौ वैश्याएँ हैं और सौ शूद्राएँ हैं ॥ ३४ ॥ उन्होंने धर्म जानने वालोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् दुर्वासा ऋषिकी सेवाकी थी, तब उन पुण्यकर्म करने वाले मुनिने उनको वर दिया था, ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! उन बुद्धिमान्के वरदानसे उनके एक एक पुत्र और एक एक अनुपम रूपवती कन्याएँ हुई हैं ॥ ३६ ॥ हे वीर असुर ! उसकी कन्याएँ अपने स्वामियोंके साथ प्रत्येक संगम करते समय रमणीय होजाया करेंगी ॥ ३७ ॥ उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके शरीरमेंसे सब पुष्पोंकी गन्ध निकलती रहती है, वे सर्वदा यौवन वाली और पतिव्रता रहेंगी ॥ ३८ ॥ हे दैतेय ! वे सब उन बुद्धिमान्के वरदानके कारण अप्सराओंके गीत नृत्य आदि गुणोंको जानती हैं ॥ ३९ ॥ और उनके सब पुत्र भी रूपवान् हैं शास्त्रार्थमें कुशल हैं और अपने २ वर्णधर्ममें क्रमपूर्वक स्थित हैं ॥ ४० ॥ उन बुद्धिमान्ने वे कन्याएँ मुख्य भीमवंशियोंको प्रायः देदीं हैं एकसौ

त्वेकं गदानीतं किल त्वया ॥ ४१ ॥ तदर्थे यादवान् वीर योधयिष्यसि सर्वथा । सहायार्थं तु राजानो व्रियन्तां हेतुपूर्वकम् ॥४२ ब्रह्मदत्तसुतार्थं च रत्नानि विविधानि च । दीयन्तां भूमिपालानां सहायार्थं महात्मनाम् ॥ ४३ ॥ आतिथ्यं क्रियतां चैव ये समेष्यन्ति वो नृपाः । एवमुक्ते तथा चक्रुरसुरास्तेऽतिहृष्टवत् ॥४४॥ लब्ध्वा पञ्चशतं कन्या रत्नानि विविधानि च । यथार्हेण नरेन्द्रैस्ता विभक्ता भक्तवत्सलाः ॥४५॥ न ते पाण्डुसुतान् वीरान् वारिता नारदेन ते । निमेषान्तरमात्रेण तत्र गत्वा महात्मना॥४६ तुष्टैस्तैरसुरा युक्ता राजन् भूमिपसत्तमैः । सर्वकामसमृद्धार्थैर्भवद्भिः खगमैः स्वयम् ॥ ४७ ॥ अर्चिताः स्म यथान्यायं क्षत्रं किं वः

कन्याएँ बाकी रही थीं उनको आप ले आये हैं ४१ हे वीर ! उनके लिये आपको यादवोंसे सब प्रकारसे लड़ना पड़ेगा अतः आप किसी निमित्तको निकाल कर उन राजाओंको सहायताके लिये वरण कर लीजिये ॥ ४२ ॥ ब्रह्मदत्तकी पुत्रियोंके लिये आप उन राजाओंकी सहायता कीजिये और सहायता पानेके लिये महात्मा राजाओंको अनेक प्रकारके रत्न दीजिये ॥ ४३ ॥ जो राजे वहाँ पर आवेंगे उनका अतिथिसत्कार करना चाहिये इस प्रकार कहने पर उन असुरोंने प्रसन्न होकर वैसा ही किया ।४४। उन राजाओंने पाँचसौ कन्या और अनेक प्रकारके रत्न पाकर उन भक्तवत्सल कन्याओंको उचित रीतिसे बाँट लिया ४५ पाण्डुपुत्रोंने उन कन्याओंको ग्रहण नहीं किया था क्योंकि-महात्मा नारदजीने निमेष मात्रमें ही वहाँ पहुँच कर उन वीरोंसे मना कर दिया था,४६(यह सब काम निकुंभने किया था) फिर हे राजन् ! उन राजाओंने प्रसन्न होकर असुरोंसे कहा कि-आप आकाशचारी हैं और सब कामनाओंसे समृद्ध हैं तब भी आपने क्षत्रियोंका न्यायानुसार सत्कार किया अतः क्षत्रिय आपको

प्रयच्छतु । त्तत्रं चार्चितपूर्वं हि दिव्यैर्वीरैर्भवद्विधैः ॥ ४८ ॥
निकुम्भोऽथाब्रवीद्धृष्टः त्तत्रं सुररिपुस्तदा । अनुवर्णयित्वा
त्तत्रस्य माहात्म्यं सत्यमेव च ॥ ४६ ॥ युद्ध्यन्तो रिपुभिः सार्धं
भविष्यन्ति नृपोत्तमाः । साहाय्यं दत्तमिच्छामो भवद्भिस्तत्र
सर्वथा ॥ ५० ॥ एवमस्त्विति तानूचुः त्तत्रियाः त्तीणकिल्बिषाः ।
पाण्डवेयान्नृते वीरान् श्रुतार्थान् नारदाद्विभो ॥ ५१ ॥ त्तत्रियाः
सन्निविष्टास्ते युद्धार्थं कुरुनन्दन । पत्न्यस्तु ब्रह्मदत्तस्य यज्ञवाटं
गता अपि ॥५२॥ कृष्णोऽपि सेनया सार्धं प्रययौ षट्पुरं विभुः ।
महादेवस्य वचनमुद्वहन्मनसा नृप ॥ ५३ ॥ स्थापयित्वा द्वार-
वत्यामाहुकं पार्थिवं तदा । स तया सेनया सार्धं पौराणां हित-
काम्यया ॥५४॥ यज्ञवाटस्याविदूरे देवो निविविशे विभुः ॥ देशे

क्या वस्तु दें क्योंकि—आपसे दिव्य वीर पुरुषोंने त्तत्रियोंका प्रथम पूजन किया ४७-४८ उस समय देवताओंके शत्रु निकुंभने प्रसन्न हो कर त्तत्रियोंके सच्चे महात्म्यका वर्णन करते हुए कहा, कि-४६ हे श्रेष्ठ राजाओं! हम जिस समय शत्रुओंसे युद्ध करेंगे उस समय शायद आप उनके साथ हो जाय इस लिये हम आपकी सब प्रकारसे सहायता लेना चाहते हैं ५० हे विभो! उस समय सब पाप-रहित वीर त्तत्रियोंने उनसे एवमस्तु कहा, केवल वीर पाण्डवोंने ही इस बातको स्वीकार नहीं किया, क्योंकि—नारदजीसे उन्होंने सब बात सुन रक्खी थी हे कुरुनन्दन ! (जिस समय) त्तत्रिय युद्ध के लिये तयार होरहे थे और ब्रह्मदत्तकी पत्नियें यज्ञवाटमें पहुँच चुकीं थीं ५१, ५२ हे राजन् ! उसी समय विभु श्रीकृष्ण महा-देवके वचनको मनमें रख कर अपनी सेनाको साथले षट्पुरको चलदिये ५३ वे चलते समय नगर निवासियोंका हित करनेकी इच्छासे द्वारकामें राजा उग्रसेनको स्थापित कर उस सेनाको साथ ले चलदिये थे ५४ तदनन्तर प्रभु श्रीकृष्णने वसुदेवकी प्रेरणासे

गवरकल्याणे वसुदेवप्रचोदितः ॥५५॥ दशगुल्मप्रतिसरं कृत्वा तं विधिवत् प्रभुः । प्रद्युम्नमदने श्रीमान् रक्षार्थं विनियुज्य च ५६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि षट्पुरवधे कृष्णस्य षट्पुरगमने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

वैशम्पायन उवाच । मुहूर्ताभ्युदिते सूर्ये जनचक्षुषि निर्मले । बलः कृष्णः सात्यकिश्च तार्क्ष्यमारुरुहुस्तदा ॥ १ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणा दंशिता युद्धकाङ्क्षिणः । बिल्वोदकेश्वरं देवं नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ॥ २ ॥ आवर्तायां जले स्नात्वा रुद्रेण वरदत्तया । गङ्गायाः कुरुशार्दूल रुद्रवाक्येन पुण्यया । प्रद्युम्नमग्रे सैन्यस्य नियति स्थाप्य मानदः । रक्षार्थं यज्ञवाटस्य पाण्डवान् विनियुज्य च ॥ ४ ॥ शेषां सेनां गुहाद्वारि भगवान् विनियुज्य च । जयन्त-

---

परम कल्याणमय देशमें प्रद्युम्नको परिभ्रमणमें रक्षा करनेको नियुक्त कर दिया और अपनी सेनाकी टोलियोंके लिये जहाँ पर घूमना अनिष्ट नहीं देसकता था तहाँ छावनी डालदी वह स्थान यज्ञवाटके समीप ही था ५५-५६ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ८३

वैशम्पायनजीने कहा; कि—जब सूर्यको उदय हुए मुहूर्त भर बीत गया और मनुष्योंके नेत्र निर्मल होगए, तब बिल्वोदकेश्वर देवको प्रणाम करके बलदेव कृष्ण और सात्यकि युद्धकी आकांक्षासे हाथमें गोहके चमड़ेके दस्ताने और कवच पहन पर गरुड़ पर सवार होगए॥१॥२॥ हे कुरुशार्दूल ! उन्होंने जिसको रुद्रने वर दिया था, ऐसी पुण्यमयी आवर्ता गंगामें रुद्रके वचन से स्नान भी किया था ॥ ३ ॥ उन मान देने वाले श्रीकृष्णने आकाशमें भागमें सेनाके अग्रभागमें प्रद्युम्नको स्थापित कर दिया और यज्ञवाटकी रक्षाके लिए पाण्डवोंको नियुक्त कर दिया ४ बाकी सेनाको भगवान्ने गुहाके द्वारपर नियुक्त कर दिया, फिर सज्जनोंकी गति भगवान्ने जयन्त और भवरका

मथ सस्मार प्रवरं च सतां गतिः ॥ ५ ॥ तावापेततुरेवाथ स्वयं चापश्यतां तथा । विगत्येव नियुक्तौ तौ प्रद्युम्न इव भारत ।६। ततः कृष्णस्य वचनादाहतो रणदुन्दुभिः । जलजा मुरजाश्चैव वाद्यान्ये चापराणि च ॥ ७ ॥ माकरो रचितो व्यूहः साम्बेन च गदेन च । सारणश्चोद्धवश्चैव भोजो वैतरणस्तथा ॥ ८ ॥ अनाधृष्टिश्च धर्मात्मा पृथुविपृथुरेव च । कृतवर्मा च दंष्ट्रश्च निचक्षुररिमर्दनः ॥ ९ ॥ सनत्कुमारो धर्मात्मा चारुदेष्णश्च भारत । अनिरुद्धसहायौ तौ पृष्ठानीकं ररक्षतुः ॥ १० ॥ शेषा यादवसेना तु व्यूहमध्ये व्यवस्थिता । रथैरश्वैर्नरैर्नागैराकुला कुलवर्धन ॥ ११ ॥ षट्पुरादपि निष्क्रान्ता दानवा युद्धदुर्मदाः । आरुह्य मेघनादांश्च गर्दभानपि हस्तिनः ॥ १२ ॥ मकराञ्छिशुमारांश्च द्रुतानपि च भारत । महिषानपि खड्गांश्च उष्ट्रानपि च कच्छपान् ॥१३॥ एतैरेव रथैर्युक्ता विविधायुधपाणयः । किरी-

---

ध्यान किया ५ हे भारत ! तब वे दोनों आगए और उन्होंने प्रद्युम्नकी समान ही अपनेको आकाशमें अर्थात् ऊपरि भागमें नियुक्त हुआ देखा ६ तदनन्तर श्रीकृष्णके वचनसे रणका नगाड़ा बजाया गया और मुरज जलज तथा दूसरे बाजे भी बजाए गए ७ साम्बने और गदने मकरव्यूह रचा, सारण उद्धव भोज वैतरण धर्मात्मा अनाधृष्टि पृथु विपृथु कृतवर्मा दंष्ट्र अरिमर्दन निचक्षु धर्मात्मा सनत्कुमार चारुदेष्ण यह सब अनिरुद्धकी सहायता लेकर सेनाकी पीठकी ओरसे संरक्षण करने लगे ॥ ८-१० ॥ हे कुलवर्धन ! बाकी यादव—सेना रथ घोड़े मनुष्य और हाथियोंको लेकर व्यूहके बीचमें खड़ी हो गई ११ उधर षट्पुरमेंसे भी युद्धदुर्मद दानव मेघकी समान रेंकने वाले गदहों पर हाथियों पर मगरों पर सूँसों पर और हे भरतवंशी राजन् ! शीघ्रगामी भैंसों पर गैंड़ों पर ऊँटों पर

टापीडमुकुटैरङ्गदैरपि मण्डिताः ॥ १४ ॥ नानदमानैर्विविधै-स्तूर्यैर्नेमिस्वनाकुलैः। मध्मायमानैः शंखैश्च महाम्बुदसमस्वनैः१५ तासामसुरसेनानामुद्यतानां जनेश्वर । निकुम्भो निर्ययावग्रे देवानामिव वासवः ॥ १६ ॥ भूमिं द्यां च वव्रधिरे दानवास्ते बलोत्कटाः । नन्दतो विविधान् नादान् क्ष्वेडन्तश्च पुनः पुनः१७ राजसेनापि संयत्ता चेदिराजपुरोगमा । असुराणां सहायार्थं निश्चिता जनमेजय १८ दुर्योधनं भ्रातृशतं चेदिराजानुजाग्रजम् । स्थितं रथैर्नरव्याघ्र गन्धर्वनगरोपमैः ॥ १९ ॥ कठिना नादिनो वीरा द्रुपदस्यन्दनास्तथा । रुक्मी चैवाहृतिश्चैव तस्थतुर्निश्चितौ

और कछुओंपर चढ़ कर निकल आये-१२-१३ ऐसे ऐसे रथोंपर वे अनेकों प्रकारके आयुधोंको लेकर सवार थे, किरीट और आपीड़ मुकुट तथा अंगदोंसे अर्थात् बाजूबन्दोंसे भूषित हो रहे थे ॥ १४ ॥ तहाँ पर रथकी नेमिका और अनेक प्रकारके तूर्यों का वारम्बार नाद हो रहा था और बड़े भारी मेघके समान शब्द करने वाले बड़े २ शंख तहाँ बजाये जा रहे थे ॥१५॥ हे जनेश्वर ! जब वे असुरसेनाएँ इस प्रकार उद्यत हो गईं, उस समय जैसे इन्द्र देवताओंके आगे आवे इसी प्रकार निकुंभ भी उनके आगे आगया ।१६। वे बलमें उत्कट दानव अनेक प्रकार की गर्जना करते हुए और भुजाओं पर थपेड़ा मारते हुए आकाश और भूमिमें फैलने लगे ।१७। हे जनमेजय ! उस समय असुरों की सहायता करनेका जिसने निश्चय किया था ऐसी चेदिराज आदि राजाओंकी सेना भी तयार हो गई ॥१८॥ हे नरव्याघ्र ! उस समय चेदिराजके छोटे भाइयोंसे आगे राजा दुर्योधन अपने सौ भाइयोंके साथ गंधर्वनगरकी समान रथोंमें बैठ कर स्थित होगया ॥ १९ ॥ कठिनतासे नाद करनेवाले वीर द्रुपदके रथ तथा रणका निश्चय करने वाले और रुक्मी और आहृति

रणे । तालवृक्षप्रतीकाशे धुन्वानौ धनुषी शुभे ॥ २० ॥ शल्यश्च
शकुनिश्चोभौ भगदत्तश्च पार्थिवः । जरासन्धस्त्रिगर्तश्च विरा-
टश्च सहोत्तरः ॥ २१ ॥ युद्धार्थमुद्यता वीरा निकुम्भाद्या जयै-
षिणः । युयुत्समाना यदुभिर्देवैरिव महासुराः ॥ २२ ॥ ततो
निकुम्भः समरे शरैराशीविषोपमैः । ममर्द समरे सेनां भैमानां
भीमदर्शनाम् ॥ २३ ॥ सेनापतिरनाधृष्टिर्ममृषे तत्र यादवः ।
ममर्द घोरैर्बाणौघैश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २४ ॥ न रथोऽसुर-
मुख्यस्य ददृशे न च वाजिनः । न ध्वजो न निकुम्भस्तु सर्वो
बाणाभिसम्वृताः ॥ २५ ॥स परीत्य ततो वीरो निकुम्भो मायि-
नाम्वरः । अस्तम्भयदनाधृष्टिं मायया भैमसत्तमम् ॥ २६ ॥
स्तम्भयित्वानयद्वीरं गुहां षट्पुरसंज्ञिताम् । रुध्वा चाभ्यगमद्वीरो

अपने तालके समान शुभ धनुषोंको घुमाते हुए रणमें डटकर खड़े हो गए ॥ २० ॥ शल्य शकुनि राजा भगदत्त जरासंध त्रिगर्त और उत्तरसहित विराट और निकुंभ आदि जीतनेका इच्छावाले वीर, देवताओंसे युद्ध करनेकी इच्छावाले दानवोंकी समान युद्ध करनेके लिए उद्यत होगए ॥ २१ ॥ २२ ॥ तदनन्तर निकुंभने भयंकर दिखाव वाली भीमवंशियोंकी सेनाका समरमें सर्पकी समान बाण छोड़ कर मर्दन करना आरम्भ कर दिया ॥२३॥ अनाधृष्टि नामक यादवसेनापति इस बातको देख कर सहता रहा फिर उसने शिलापर तेज किये हुए विचित्र पूँछड़ी वाले भयंकर बाणोंके समूहसे मर्दन करना आरम्भ कर दिया ।२४। उस समय उस मुख्य असुरके घोड़े रथ ध्वजा आदि कुछ भी दिखाई नहीं देते थे न निकुंभ ही दिखाई देता था सब बाणोंसे ढँक गये थे ॥ २५ ॥ (उस समय माया करने वालोंमें श्रेष्ठ वीर निकुंभने सम्हलनेके उपरान्त भीमवंशियोंमें मुख्य अनाधृष्टिको मायासे स्तम्भित कर दिया ॥ २६ ॥ और

मायाबलमुपाश्रितः ॥२७॥ पुनरेव निकुम्भस्तु कृतवर्माणमाहवे। आनयच्चारुदेष्णं च भोजं वैतरणं तथा ॥ २८ ॥ सनत्कुमारमृत्तं च तथैव निशठोल्मुकौ। बहूंश्चैवापरान् भोजान् मायाबलसमाश्रितः ॥ २९ ॥ न तस्य ददृशे देहो मायाच्छन्नो जनेश्वर। नयतो यादवान् घोरान् गुहां षट्पुरसंज्ञिताम् ॥ ३० ॥ तद्दृष्ट्वा कदनं घोरं भैमानां भयवर्धनः। चुकोप भगवान् कृष्णो बलः सत्यक एव च ॥ ३१ ॥ सविशेषं तथा कामः साम्बश्च परवीरहा। अनिरुद्धश्च दुर्धर्षो भैमाश्च बहवो परे ॥ ३२ ॥ ततः शार्ङ्गायुधः शार्ङ्गं कृत्वा सज्यं नरेश्वर। दानवेषु महत्तेषु तृणेष्विव हुताशनः ॥ ३३ ॥ तं दृष्ट्वा दानवा देवमभिदुद्रुवुरी-

उसको स्तम्भितकरके षट्पुर नाम वाली गुहामें लेगया और उस वीरको तहाँ कैद करके मायाबलके आश्रयसे तहाँ पर फिर आगया ॥ २७ ॥ मायाबलके आश्रयसे लड़नेवाला निकुम्भ फिर युद्धमें आकर कृतवर्मा चारुदेष्ण भोज वैतरण चारुदेष्ण सनत्कुमार ऋत्त निशठ उल्मुक तथा और भी बहुत से वीरोंको (षट्पुरमें) लेगया ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे जनेश्वर! जिस समय वह भयंकर यादवोंको उठाकर षट्पुर नामवाली गुफामें लेजाता था, उस समय मायासे ढके हुए होनेके कारण उसका शरीर नहीं दिखाई देता था ॥ ३० ॥ भीमवंशियोंके भयको बढ़ाने वाली इस भयंकर घटनाको देखकर भगवान् कृष्ण बलदेव सात्यकि प्रद्युम्न और शत्रुवीरनाशक साम्ब अनिरुद्ध तथा दूसरे भी बहुतसे भीमवंशी दुर्धर्ष बड़े क्रोधमें भरगए ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे नरेश्वर! उस समय शार्ङ्ग धनुषके आयुधवाले श्रीकृष्ण शार्ङ्ग धनुषको तयार कर दानवोंमें ऐसे घुसे जैसे तिनुकोंमें अग्नि घुसता है ॥ ३३ ॥ जैसे प्रज्वलित अग्निके ऊपर भुनगे दौड़ते हैं, इसी प्रकार कालपाशसे व्याकुल

शरम् । शलभाः कालपाशार्ताः प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ३४ ॥
समुत्सृज्य शतघ्नीश्च परिघांश्च सहस्रशः । शूलानि चाग्नि-
तुल्यानि प्रदीप्तांश्च परश्वधान् ॥ ३५ ॥ पर्वताग्राणि वृक्षांश्च
घोराश्च विपुलाः शिलाः । उत्क्षिप्य च गजान् मत्तान्रथानपि
हयानपि ॥३६॥ नारायणाग्निस्तान् सर्वान् ददाह प्रहसन्निव ।
बाणार्चिषा महातेजा जगद्धितकरो हरिः ॥ ३७ ॥ शारदं वर्षणं
यद्वत् सेहे धीरो गवां पतिः । तद्वद्यदुवृषः सेहे बाणवर्षमरिंदमः ।
न सेहिरे सुरा बाणान् नारायणधनुरच्युतान् । वर्षं पर्जन्यविहितं
वालुकासेतवो यथा ॥ ३८ ॥ न शेकुः प्रमुखे स्थातुं कृष्णस्या-
सुरसत्तमाः । व्यादितास्यस्य सिंहस्य वृषभा इव भारत ॥४०॥
ते बध्यमानाः कृष्णेन दिवमाचक्रमुस्तदा । जीविताशां वहन्तस्तु

हुए दानव कृष्णको देखकर उनकी ओर झपटे ॥ ३४ ॥ वे सहस्रों तोप और परिघ और अग्निकी समान प्रदीप्त परश्वध, पर्वतके अग्रभाग और भारी २ भयंकर शिलाएँ छोड़ते हुए और मदमत्त हाथी तथा रथोंको और घोड़ोंको हाँकते हुए (नारायणाग्निकी ओर दौड़ने लगे) ॥ ३५) जगत्का हित करनेवाली महातेजस्वी हरि (रूप) नारायणाग्नि बाणोंकी ज्वालासे हँसकर उन सबको भस्म करने लगी ॥ ३७ ॥ धैर्य-धारी बैल जैसे शरद ऋतुकी वर्षाको सहता है, इसी प्रकार अरिंदमन यादवोंमें वृषभकी समान श्रीकृष्ण उनकी बाणवर्षाको सहते रहे ॥ ३८ ॥ परन्तु बालूके पुल जैसे मेघकी वर्षाको सहन नहीं कर सकते इसी प्रकार असुर नारायणके धनुषमेंसे छूटते हुए बाणोंको न झेलसके ॥ ३९ ॥ हे भारत ! जैसे मुख फाड़कर खड़े हुए सिंहके सामने बैल नहीं टिकते हैं, इसी प्रकार वे प्रधान २ असुर भी कृष्णके सामने खड़े न रहसके ४० कृष्णसे पिटते हुए राक्षस नारायणके भयसे पीडित हो जीवन

नारायणभयार्दिताः ॥ ४१ ॥ नानाकाशगतानैन्द्रिर्जयन्तः प्रवरस्तथा । निजघ्नतुः शरैर्घोरैर्ज्वलितार्चिसमैः प्रभो ॥ ४२ ॥ निपेतुरसुराणां तु शिरांसि धरणीतले । तृणराजफलानीव मुक्तानि शिखरात्तरोः ॥ ४३ ॥ निपेतुर्बाहवश्छिन्ना दैत्यानां वसुधातले । कालेनोपहता वीराः पञ्चवक्त्रा इवोरगाः ॥ ४४ ॥ रौक्मिणेयस्ततः सृष्ट्वा घोरां मायामयीं गुहाम् । अदृश्यनिष्क्रमं वीरः क्षत्रं प्रक्षेप्तुमुद्यतः ॥ ४५ ॥ गदेन सह धर्मात्मा सारणेन सुतेन च । साम्बेन चापरैश्चापि पूर्वं ये न प्रवेशिताः ॥ ४६ ॥ प्रमथ्य तरसा कर्णं पतन्तं रणमूर्धनि । जग्राह बलवान् कार्ष्णिः प्रस्फुरन्तं ततस्ततः ॥ ४७ ॥ विनद्य च गुहां वीरो घोरां माया-

की आशासे स्वर्ग (आकाश) में को उछलने लगे ॥४१॥ हे प्रभो ! तहाँ अनेक प्रकारसे आकाशमें पहुँचे हुए राक्षसोंको इन्द्रपुत्र जयन्त और प्रवर प्रदीप्त लपटवाले अग्निकी समान भयंकर बाणोंसे मारने लगे ॥ ४२ ॥ उस समय आकाशमें से असुरोंके शिर पृथिवीमें ऐसे गिरते थे जैसे पर्वतके शिखरसे तरुराज ताड़के फल टूट २ कर गिरतेहों ॥४३॥ दैत्योंकी कटी भुजाएँ पृथिवीमें इस प्रकार गिरने लगीं कि-मानों प्रारब्धसे मारे हुए पाँच फनवाले साँप गिर रहेहों ॥ ४४ ॥ उस समय वीर रुक्मिणीपुत्रने मायाकी एक भयंकर गुफा बनाई, उसका निकलनेका द्वार अदृश्य रक्खा गया था उसमें वह क्षत्रियोंको फैंकनेके लिये उद्यत होगया ॥ ४५ ॥ इस समय जो (निकुम्भकी) गुफामें फँसनेसे वच गए थे वे गद सारण साम्ब और (इनके) पुत्र भी उस धर्मात्माकी (सहायता करनेको उद्यत होगए) ॥ ४६ ॥ उस समय श्रीकृष्णपुत्रने रणके मुहाने पर घूमते हुए कर्ण राजा दुर्योधन विराट द्रुपद शकुनि शल्य नील भीष्म विन्द अनुविन्द तथा जरासंधको तथा त्रिगर्त और

मर्गीं नृप। दुर्योधनं च राजानं विराटद्रुपदावपि ॥४८॥ शकुनिं चैव शल्यं च नीलं चापि नदीसुतम्। विन्दानुविन्दौ राजानौ जरासन्धं च भारत ॥ ४९ ॥ त्रिगर्तान् मालवांश्चैव वासत्यांश्च महाबलान्। धृष्टद्युम्नादिकांश्चैव पाञ्चालानस्त्रकोविदान् ५० तथाहूहतिमुवाचेदं मातुलं रुक्मिमेव च। शिशुपालं च राजानं भगदत्तं च भारत ॥ ५१ ॥ सम्बन्धं च गुरुत्वं च मानयामि नराधिपाः। गुहामिमां घोररूपां यत्र प्रक्षेपयामि वः ॥ ५२ ॥ बिल्वोदकेश्वरेणाहं आज्ञप्तः शूलपाणिना। प्रक्षेप्तव्या नरेन्द्रास्ते गुहायामिति धीमता ॥ ५३ ॥आश्रित्य शाम्बरीं मायां निकुंभेन महात्मना। प्रक्षिप्तान् यादवांश्चैव मोक्षयिष्यामि सर्वथा ॥५४॥ इत्युक्तो शिशुपालस्तु राजा सेनापतिस्तथा। शरैरमर्दत् तान्भैमान् प्रद्युम्नं च विशेषतः ॥ ५५ ॥ बिल्वोदकेश्वरं देवं रौक्मिणेयो

वासन्तीमें रहने वालोंको और अस्त्रचतुर धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंको आव्हुति और मामा रुक्मीको राजा शिशुपालको और भगदत्तको बलपूर्वक पकड़ लिया, फिर हे भरतवंशी राजन्! उसने मायामयी गुफामें गर्जकर इनसबसे कहा, कि-५१ हे राजाओं! मैं तुम्हारे संबंध और बड़प्पनका मान करता हूँ, अतएव मैं तुम्हें, इस मायामयी गुफामें फैंके देता हूँ (और तुमको कष्ट नहीं देता हूँ) ॥ ५२ ॥ शूलपाणि बुद्धिमान् बिल्वोदकेश्वरने मुझे आज्ञा दी थी, कि-तू राजाओंको गुफामें डाल देना ॥ ५३ ॥ और शम्बरासुरकी मायाका आश्रय लेकर महात्मा निकुम्भने जिन यादवोंको कैद कर रक्खा है, उनको भी मैं सब प्रकारसे छुड़ाऊँगा ॥ ५४ ॥ इस प्रकार कहने पर सेनापति राजा शिशुपाल (गुफाके भीतर ही) उन भीष्मवंशियोंको और विशेषत प्रद्युम्नको बाणोंसे ताडित करने लगा ॥ ५५ ॥ उस समय प्रद्युम्न बिल्वोदकेश्वरदेवको प्रणाम

नमस्य च। आरभन्नृपतिं बद्धुं शिशुपालं महाबलम् ॥ ५६ ॥ ततः पाशसहस्राणि गृहाय प्रवरोत्तमः। शैलादिरब्रवीद्वीरं रुक्मिणेयं महाबलम् ॥ ५७ ॥ बिल्वोदकेश्वरो देवः प्राह त्वां यदुनन्दन। सर्वं कुरु तथा रात्र्यां प्रोक्तस्त्वं भो यथा मया ॥५८॥ कन्यार्थं रत्नलुब्धांस्तु बध्वा चेमान्नराधिपान्। पाशैस्त्वमेव मोक्तुं च प्रमाणं यदुनन्दन ॥ ५९ ॥असुरांस्तु महाबाहो निःशेषान्कर्तुमर्हसि। एवमेव च वक्तव्यस्त्वया वीर जनार्दन ॥ ६० ॥ ततः स भगदत्तं च शिशुपालं च भूमिप। आभृतिं चैव रुक्मिं च शेषांश्चान्यान्नराधिपान् ॥ ६१ ॥ बबन्ध हरदत्तैस्तैः पाशैरुत्तमवीर्यधृक्। मायामयीं गुहां चैवमानयत्कुरुनन्दन ॥ ६२ ॥ बध्वा च रौक्मिणेयोथ निःश्वसन्त इवोरगान्। अनिरुद्धं चकाराथ रक्षितारं स्वमात्मजम् ॥ ६३ ॥ तेषां निरवशेषेण बबन्ध यदु-

---

कर महाबली राजा शिशुपालको बाँधनेका आरम्भ करने लगा ५६ उस समय गणोंमें श्रेष्ठ नन्दी सहस्रों पाशोंको (हाथमें) उठाकर महाबली वीर रुक्मिणीपुत्रसे कहने लगा कि—॥ ५७ ॥ हे यदुनन्दन! रात्रिमें बिल्वोदकेश्वर देवने तुमसे जो कुछ कहा है और मैंने जो कुछ कहा है उसी प्रकार करिये ॥ ५८ ॥ हे यदुनन्दन! रत्न और कन्याओंके लोभी इन राजाओंको पाशोंसे बाँधनेके बाद इनको छोड़नेका अधिकार आपको ही होगा ५९ हे महाभुज वीर! तुम जनार्दनसे इस प्रकार कहना, कि—आप असुरोंका पूर्णरीतिसे संहार करिये ॥ ६० ॥ हे कुरुनन्दन! तदनन्तर उत्तम वीर्यको धारण करनेवाले प्रद्युम्नने शिवजीके दिये हुए पाशोंसे भगदत्तको शिशुपालको आभृतिको रुक्मीको तथा दूसरे राजाओंको भी बाँध कर मायामयी गुहामें डाल दिया हे कुरुनन्दन राजन्! इस प्रकार प्रद्युम्नने फुङ्कारें भरते हुए सर्पों की समान उन राजाओंको बाँध कर अपने पुत्र अनिरुद्धको उन

नन्दनः । सेनापतीन् क्षत्रियांश्च कोशाध्यक्षांश्च भारत ॥६४॥
हस्त्यश्वरथवृन्दांश्च चकार च तथात्मसात् । अव्यग्रस्तु ततो
हन्तुमसुरानुद्यतः प्रभो ॥ ६५ ॥ सन्नद्ध एव चोवाच ब्रह्मदत्तं
द्विजोत्तमम् । विस्रब्धं वर्ततां कर्म मा भैः पश्य धनञ्जयम् ६६
न देवेभ्यो नासुरेभ्यो नागेभ्यो द्विजसत्तम । भयं हि विद्यते तस्य
गोप्तारो यस्य पाण्डवाः ॥ ६७ ॥ न चासुरैस्तव सुताः स्पृष्टाः
खल्वपि चेतसा । यज्ञवाटे निरीक्ष्यंतां मायया निहिता मया६८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि
षट्पुरवधे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

वैशम्पायन उवाच । रुद्धेषु भूमिपालेषु सानुगेषु विशांपते ।
आविवेशासुरश्चाथ कश्मलं जनमेजय ॥१॥ दिशः प्रतस्थुस्ते

की देखभालके लिये नियुक्त कर दिया ॥ ६१-६३ ॥ हे भरत-
वंशी राजन्! यदुनन्दन प्रद्युम्नने उनके क्षत्रिय सेनापति और
कोषाध्यक्षोंको भी एक एक करके बाँध लिया ॥ ६४ ॥ और
उनके हाथी घोड़े और रथोंके टोलोंको अपने अधीन कर लिया
तदनन्तर हे प्रभो! वह निश्चिन्त होकर असुरोंको मारनेके लिये
उद्यत होगया ॥ ६५ ॥ उसने तयार होकर श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मदत्त
से कहा, कि-आप विश्वस्त होकर कर्म करे जाइये और धनञ्जय
की ओर देखिये, डरिये मत ॥ ६६ ॥ हे द्विजसत्तम! जिसके
पाण्डव रक्षक होते हैं उसको देवता असुर और नाग भी भयभीत
नहीं करसकते ॥ ६७ ॥ असुरोंने तुम्हारी पुत्रियोंका मनसे भी
स्पर्श नहीं किया है, मैंने उनको मायासे हर कर उनकी धरोहड़की
की समान रक्षाकी है (अब) आप उनको यज्ञवाटमें देखसकते
है ६८ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे राजन् जनमेजय! जब अपने
अनुयायियों सहित सब राजे कैद होगए उस समय असुरोंमें डर

वीरा वध्यमानाः समंततः। कृष्णानन्तप्रभृतिभिर्यदुभिर्युद्धदुर्मदैः॥२॥
निकुम्भस्तानथोवाच रुषितो दानवोत्तमः। भित्वा प्रतिज्ञां किं मोहाद्भयार्ता यात विह्वलाः॥ ३ ॥ हीनप्रतिज्ञा कांल्लोकान् गमिष्यथ पलायिताः। अगत्वाऽपचितिं युद्धे ज्ञातीनां कृतनिश्चयाः॥ ४ ॥ फलं जित्वैव भोक्तव्यं रिपून् समरकर्कशान्। हतेन चापि वस्तव्यं शूरेण त्रिदिवे सुखम्॥५॥पलायित्वा गृहं गत्वा कस्य द्रक्ष्यथ हे सुखम्। दारान् वक्ष्यथ किं चापि धिग्धिक्किं लज्जथ॥ ६ ॥ एवमुक्ता निवृत्तास्ते लज्जमाना नृपासुराः। द्विगुणेन च वेगेन युयुधुर्यदुभिः सह॥ ७ ॥ उत्सवे युद्धशौंडानां नानाप्रहरणैर्नृप। ये यान्ति यज्ञवाटं तं तान्निहन्ति धनञ्जयः। यमौ भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ८ ॥ द्यां

बैठ गया॥ १ ॥ और वे वीर कृष्ण बलराम आदि युद्धदुर्मद यादवोंसे पिटनेके कारण दिशाओंमें चारों ओरको भागने लगे २ उस समय श्रेष्ठ दानव निकुम्भने क्रोधमें भरकर उनसे कहा, कि- तुम डर कर अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ कर मोह वश क्यों भागे जाते हो ३ तुमने अपनी जाति वालोंसे उऋण होनेका निश्चय कर लिया था अब अपनी प्रतिज्ञाको तोड़नेसे (न जाने) तुम्हें कौनसे लोक मिलेंगे ४ समरकर्कश शत्रुओंको जीतकर ही फल भोगनेको मिल सकता है और यदि शूर पुरुष रणमें मारा जाता है तो स्वर्गमें आनन्द करता है ५ अरे! यदि तुम भाग कर घरको चले जाओगे तो क्या सुख पासकोगे और अपनी स्त्रियोंसे भी क्या कहोगे धिक् धिक् क्या तुम लज्जित नहीं होते हो ६ हे राजन्! ऐसी बाते सुन कर वे असुर लजाते हुए लौट पड़े और दुगने वेगसे यादवों से लड़ने लगे ७ हे राजन्! इस प्रकार जब अनेक प्रकारके आयुधोंसे युद्धचतुर [illegible] उत्सव चल रहा था उस समय जो राजे यज्ञवाटकी ओर जाते

प्रयातान्जघानेन्द्रिः प्रवरश्च द्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ अथासुरासृक्तो-याढ्या केशशैवलशाद्वला । चक्रकूर्मरथावर्ता गजशैलानुशो-भिनी ॥ १० ॥ ध्वजकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्क्रुष्टनादिनी । गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी ॥ ११ ॥ असृग्बुद्बुद-फेनाढ्या असिमत्स्यतरंगिणी । सुस्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे ॥ १२ ॥ तान् दृष्ट्वैव निकुम्भस्तु वर्धमानांश्च शात्र-वान् । हतान् सर्वान् सहायांश्च वीर्यादेवोत्पपात ह ॥ १३ ॥ स वारितो जयन्तेन प्रवरेण च भारत । शरैः कुलिशसंकाशैः निकुम्भो रणकर्कशः ॥ १४ ॥ सन्निवृत्याथ दष्टौष्ठः परिघेण दुरासदः । प्रवरं ताडयामास स पपात महीतले ॥१५॥ ऐन्द्रिस्तं

थे उनको धनञ्जय नकुल सहदेव भीमसेन और धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मारडालते थे ८ और जो आकाशको जाते थे उनको इन्द्रपुत्र जयन्त और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ प्रवर मारडालते थे ९ तद-नन्तर असुरोंके रक्तरूपी जलसे भरी हुई केशरूपी सिवारसे डटी हुई पहियोंके टुकड़े और रथके भँवर वाली पर्वत रूपी हाथियोंसे शोभा पाती हुई ध्वज और कुन्तरूपी वृक्षोंसे घिरी हुई पिटते हुए और चीखते हुए मनुष्योंका नाश करती हुई गोविन्दरूपी पर्वतसे निकली हुई डरपोकोंके चित्तका दहलाने वाली रक्तके बुलबुले रूप झागोंसे भरी हुई तलवाररूपी मच्छ और तरङ्गों वाली रक्तकी नदी वर्षा ऋतुमें बहने वाली नदीकी समान बहने लगी १०—१२ निकुम्भ अपने शत्रुओंको बढ़ता हुआ देख कर और अपने सब सहायकोंको मरा हुआ देख कर बलपूर्वक उछला १३ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय जय-न्तने और प्रवरने वज्रकी समान बाणोंसे रणकर्कश निकुम्भको अटकाया १४ उस समय दुरासद निकुम्भ अपने ओठोंको काटता हुआ लौटा और प्रवरके परिघ मारा तब वह भूमिमें गिरपड़ा १५

पतितं भूमौ बाहुभ्यां परिषस्वजे । विदित्वा चैव सप्राणं हित्वा सुरमभिद्रुतः ॥ १६ ॥ अभिद्रुत्य निकुम्भं च निस्त्रिंशेन जघान ह । परिघेणापि दैतेयो जयन्तं समताडयत् ॥१७॥ ततश्च बहुलं गात्रं निकुम्भस्यैन्द्रिराहवे। स चिन्तयामास तदा वध्यमानो महासुरः ॥ १८ ॥ कृष्णेन सह योद्धव्यं वैरिणा ज्ञातिघातिना । आत्मयापि किमात्मानमाहवे शक्रसूनुना । १९॥ एवं स निश्चयं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत । जगाम चैव युद्धार्थं यत्र कृष्णो महाबलः ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वैरावतस्कन्धमास्थितो बलनाशनः । दृष्टुमभ्यागतो युद्धं जहर्षे सह दैवतैः ॥ २१ ॥ साधु साध्विति पुत्रञ्च परितुष्टः स सस्वजे । प्रवरं चापि धर्मात्मा सस्वजे मोहवर्जितम् ॥ २२ ॥ देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्वासवाज्ञया । जय-

उस समय इन्द्रपुत्र जयन्तने भूमिमें पड़ेहुए प्रवरको दोनों भुजाओं से पकड़कर आलिङ्गन किया और उसको प्राणवान् जान कर असुरकी ओर दौड़ा १६ और दौड़ कर निकुम्भको तलवारसे मारा तब उस राक्षसने जयन्तके भी परिघ मारा १७ तदनन्तर इन्द्रपुत्रने निकुम्भके बहुतसे शरीरको छेद डाला उस समय वह युद्धमें पिटता हुआ महाराक्षस विचारने लगा, कि-१८ मुझे तो अपने जातिवालोंका नाश करनेवाले वैरी कृष्णके साथ ही युद्ध करना चाहिये युद्धमें इन्द्रपुत्रके साथ लड़ कर मेरी क्या प्रसिद्धि होगी अर्थात् इसके साथ लड़नेसे मेरी कुछ प्रशंसा नहीं होगी १९ इस प्रकारका विचार करके वह तहाँ ही अन्तर्धान होगया और जहाँ पर महाबली कृष्ण खड़े थे तहाँ पर युद्ध करने के लिये पहुँचगया २० इस बातको देखकर बलदैत्यका नाश करने वाला इन्द्र ऐरावतपर सवार हो युद्ध देखनेके लिये आगया और देवताओं सहित प्रसन्न होने लगा २१ उस समय उसने प्रसन्नता से साधु२ कह अपने पुत्रका आलिङ्गन किया तदनन्तर उस धर्मा-

मानं रणे दृष्ट्वा जयन्तं रणदुर्जयम् ॥ २३ ॥ ददर्शाथ निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम् । अर्जुनेन स्थितं सार्धं यज्ञवाटाविदूरतः ॥ २४ ॥ स नादं सुमहान् कृत्वा पक्षिराजमताडयत् । परिघेण सुघोरेण बलं सत्यकमेव च ॥२५॥ नारायणं चार्जुनं च भीमं चाथ युधिष्ठिरम् । यमौ च वासुदेवं च साम्बं कामं च वीर्यवान् ॥ २६ ॥ युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत । न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ २७ ॥ यदा तु नैवापश्यन्स्तं तदा बिल्वोदकेश्वरम् । दध्यौ देवं हृषीकेशं प्रमथानां गणेश्वरम् ॥ २८ ॥ ततस्ते ददृशुः सर्वे प्रभावादतितेजसः । बिल्वोदकेश्वरस्याशु निकुम्भं मायिनां वरम् ॥ २९ ॥ कैलासशिखराकारं प्रसन्तमिव घिष्ठितम् । आह्वयन्तं रणे कृष्णं वैरिणं

रमाने मोहशून्य गवरको भी आलिंगन किया २३ उस समय रणदुर्जय जयन्तको रणमें जीतता हुआ देखकर इन्द्रकी आज्ञा से देवदुन्दुभियें बजने लगीं ॥२३॥ तदनन्तर रणदुर्जय निकुम्भने अर्जुनके साथ ही श्रीकृष्णको यज्ञवाटके समीप ही खड़े हुए देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर उसने बड़ाभारी शब्द कर भयंकर परिघसे गरुड़ बलदेव सात्यकि श्रीकृष्ण भीम अर्जुन युधिष्ठिर नकुल सहदेव तथा साम्ब और प्रद्युम्नको भी पीटना आरम्भ करदिया ।२६॥२५।हे भरतवंशी राजन् ! इससमय वह फुर्तीला दैत्य मायासे युद्ध कररहा था इस लिये शस्त्रचतुर पुरुषोंकी दृष्टिमें वह नहीं पड़ता था २७ जब यादव उसको न देखसके तब उन्होंने इन्द्रियोंके स्वामी और प्रमथ नामक गणोंके ईश्वर बिल्वोदकेश्वर देवका स्मरण किया२८तब उन्होंने अमिततेजस्वी बिल्वोदकेश्वरके प्रभावसे शीघ्र ही माया करने वालोंमें श्रेष्ठ निकुम्भको देखा ॥ २९ ॥ उसका आकार कैलास पर्वतके शिखरकी समान था वह रणमें अपने जातिवालोंके नाशक

ज्ञातिनाशनम् ॥३०॥ सज्य गाण्डीवमेवाथ पार्थस्तस्य रथेषुभिः । परिघं चैव गात्रेषु विव्याधैनमथासकृत् । ३१ ॥ ते बाणास्तस्य गात्रेषु परिघे च जनाधिप । भग्नाः शिलाशिताः सर्वे निपेतुः कुण्ठिताः क्षितौ ॥ ३२ ॥ विफलानस्त्रयुक्तांस्तान् दृष्ट्वा बाणान् धनञ्जयः । पप्रच्छ केशवं वीरः किमेतदिति भारत ॥ ३३ ॥ पर्वतानपि भिन्दन्ति मम वज्रोपमाः शराः । किमिदं देवकीपुत्र विस्मयोऽत्र महान् मम ॥ ३४ ॥ तमुवाच ततः कृष्णः प्रहसन्निव भारत । महद्भूतं निकुम्भोऽयं कौन्तेय शृणु विस्तरात्३५ पुरा गत्वोत्तरकुरूंस्तपश्चक्रे महासुरः । शतं वर्षसहस्राणां देवशत्रुर्दुरासदः ॥३६॥ अथैनं छन्दयामास वरेण भगवान् हरः । स वव्रे त्रीणि रूपाणि न वध्यानि सुरासुरैः ॥ ३७ ॥ तमुवाच

वैरी कृष्णको रणमें बुला रहा था और उनको ग्रसता हुआसा खड़ा था ॥ ३० ॥ उस समय अर्जुनने अपना गाण्डीव धनुष रथकी ईषा और परिघ उसके शरीरमें वारंवार मारे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! वे शिलापर तेज किये हुए बाण उसके अङ्गोंसे और परिघसे टकराकर टूटकर संकुचित होते हुए गिरपड़े ॥३२॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय धनञ्जयने अपने अस्त्रोंको विफल हुआ देखकर कृष्णसे कहा, कि—यह क्या होरहा है ॥३३॥ हे देवकीपुत्र ! मेरे वज्रकी समान बाण पर्वतोंको भी तोड डालते हैं फिर अब यह क्या होरहा है इसका मुझे बड़ा विस्मय है३४ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय श्रीकृष्णने मुस्कुराते हुए कहा, कि हे कौन्तेय ! यह निकुम्भ अमित पराक्रमी है इस बात को तुम विस्तारसे सुनो ॥ ३५ ॥ पहले इस दुरासद देवशत्रुने उत्तर कुरुमें जाकर तप किया था ३६ उस समय भगवान् हरने उससे वर माँगनेके लिये कहा तब इसने देवता और राक्षसोंसे अवध्य होने वाले तीन देह माँगे थे ३७ उस समय

महादेवो भगवान् वृषभध्वजः । मम वा ब्राह्मणानां वा विष्णो-
र्वाऽप्रियमाचरन् ॥ ३८ ॥ भविष्यसि हरेर्वध्यो न त्वन्यस्य महा-
सुर । ब्रह्मण्योऽहं च विष्णुश्च विप्राणां परमा गतिः ॥ ३९ ॥
स एष सर्वशस्त्राणामवध्यः पाण्डुनन्दन । त्रिदेहोऽतिमायावी
च वरमत्तश्च दानवः ॥ ४० ॥ भानुमत्यापहरणे देहोऽस्यैको
हतो मया । अवध्यं षट्पुरं देहमिदमस्य दुरात्मनः ॥ ४१ ॥
दितिं शुश्रूषति त्वेको देहोऽस्य तपसान्वितः । अन्यस्तु देहो
घोरोऽस्य येनावसति षट्पुरम् ॥ ४२ ॥ एतत्तु सर्वमाख्यातं
निकुम्भचरितं मया त्वरयात्र वधे वीर कथा पश्चाद्भवि-
ष्यति ॥ ४३ ॥ तयोः कथयतोरेव कृष्णयोरसुरस्तदा । गुहां
षट्पुरसंज्ञां तां विवेश रणदुर्जयः ॥४४॥ अन्विष्य तस्य माय-

वृषभध्वज महादेवने उससे कहा था, कि-यदि तुम मेरा ब्राह्मणों का अथवा विष्णुका अप्रिय काम करोगे ३८ तब हे महाअसुर ! तुम विष्णुसे वध्य होजाओगे और कोई तुम्हें न मार सकेगा मैं और विष्णु ब्रह्मण्य हैं तथा ब्राह्मणोंकी परमगति हैं ३९ हे पाण्डुनन्दन ! इसलिये यह दानव सब शस्त्रोंसे अवध्य है तीन देहोंको धारण करनेवाला है अति मान करनेवाला है और यह दानव वरके कारण घमण्डमें भरा रहता है ४० मैंने भानुमतीका हरण करते समय इसके एक देहको नष्ट करदिया था इस दुरात्माका यह षट्पुरका देह अवध्य है ४१ इसका तपोयुक्त एक शरीर दितिकी सेवा कर रहा है और जिस शरीरसे यह षट्पुरमें रहता है यह इसका दूसरा भयंकर शरीर है ४२ इस प्रकार मैंने निकुम्भका सारा चरित्र तुमसे कह दिया परन्तु हे वीर ! अब निकुम्भका वध करनेके लिये शीघ्रता करनी चाहिये बातें फिर होती रहेगी ४३ जब वे दोनों कृष्ण (अर्जुन भी कृष्ण कहलाता था) इस प्रकार बातचीत कररहे उसी समय

षान् विवेश मधुसूदनः । तां षट्पुरगुहां घोरां दुर्धर्षां कुरुनन्दन ॥ ४५ ॥ चन्द्रसूर्यप्रभाहीनां ज्वलन्तीं स्वेन तेजसा । सुखदुःखोष्णशीतानि प्रयच्छन्तीं यथेप्सितम् ॥ ४६ ॥ तत्र प्रविश्य भगवान् अपश्यत जनाधिपान् । युयुधे सह घोरेण निकुम्भेन जनाधिप ॥४७॥ कृष्णस्यानुप्रविष्टास्तु बलाद्या यादवास्तदा । प्रविष्टाश्च तथा सर्वे पाण्डवास्ते महात्मनः ॥४८॥ समेतास्तु प्रविष्टास्ते कृष्णस्यानुमतेन वै । युयुधे स तु कृष्णेन रौक्मिणेयः प्रचोदितः । अनयद्यादवान् सर्वान् यानयं बद्धवान् पुरा ॥ ४९ ॥ ते मुक्ता रौक्मिणेयेन प्राप्ता यत्र जनार्दनः । प्रहृष्टमनसः सर्वे निकुम्भवधकाङ्क्षिणः ॥ ५० ॥ राजानो वीर मुञ्चति पुनः कामं यथाश्रुतम् । मुमोच चाथ तान् वीरो रौक्मि-

वह रणदुर्जय निकुम्भ षट्पुर नामवाली गुफामें घुस गया ४४ हे कुरुनन्दन ! भगवान् मधुसूदन उसके जानेके मार्गको देख कर षट्पुर नामवाली भयङ्कर और दुर्धर्ष गुफामें घुस गए ॥ ४४ ॥ वह चन्द्रमा और सूर्यकी कान्तिसे रहित थी अपनी ही कान्तिसें प्रकाशित हो रही थी और इच्छानुसार दुःख सुख तथा गर्मी सर्दी देती रहती थी ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! तहाँ पर घुस कर भगवान्ने राजाओंको देखा और भयंकर निकुम्भसे युद्ध करने लगे ४७ महात्मा कृष्णके प्रवेश करनेके बाद बलराम आदि यादव और सब पाण्डव भी इकट्ठे हो कर उस गुफामें घुस गए ४८ वे सब कृष्णकी अनुमतिसे ही तहाँ घुसे थे उस समय कृष्णकी प्रेरणासे प्रद्युम्न भी युद्ध कर उन सब यादवोंको लेगये, कि-जिनको निकुम्भने पहले बाँध रखा था ४९ जब रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने उनको छुड़ा दिया तब वे सब मनमें प्रसन्न होते हुए और निकुम्भका वध चाहते हुए जहाँ पर जनार्दन खड़े थे तहाँ पर पहुँच गए ५० प्रतापी रुक्मिणी

योगः गतापवान् ॥ ५१ ॥ अधोमुखमुखाः सर्वे बद्धमौना नरा-धिपाः । लज्जयाऽभिप्लुता वीरास्तस्थुर्नष्टश्रियस्तदा ॥ ५२ ॥ निकुम्भमपि गोविन्दः प्रयतंत जयं प्रति । योधयामास भगवान् घोररूपमरिं हरिः ५३ परिघेणाहतः कृष्णो निकुम्भेन भृशं विभो । गदया चापि कृष्णेन निकुम्भस्ताडितो भृशम् ॥ ५४ ॥ तावुभौ मोहमापन्नौ सुप्रहारहतौ तदा । ततः प्रव्यथितान् दृष्ट्वा पाण्डवांश्चाथ यादवान् ५५ जेपुर्मुनिगणास्तत्र कृष्णस्य हित-काम्यया । तुष्टुवुश्च महात्मानं वेदप्रोक्तैः स्तवैः ॥ ५६ ॥ ततः प्रत्यागतप्राणो भगवान् केशवस्तदा । दानवश्च पुनर्वीराः-वुभौ समरं प्रति ॥ ५७ ॥ वृषभाविव नर्दन्तौ गजाविव च भारत । शालावृकाविव क्रुद्धौ प्रहरन्तौ रणोत्कटौ ॥ ५८ ॥

पुत्र जिस प्रकार वह राजे कहते गए थे, कि-हे वीर ! हमें तुम छुड़ाओ ! हमें तुम छुड़ाओ ! उसी प्रकार वे उनको छुड़ाते हुए चले गए ५१ उस समय सब राजाओंके मुख नीचेको हो रहे थे उनका मौन बँध रहा था और वे लज्जामें डूबते हुए राजे फीके पड़ रहे थे ५२ उस समय हरि गोविन्द भी जयन्तकी ओर चेष्टा करते हुए अपने भयंकर शत्रु निकुम्भसे लड़ने लगे ५३ हे विभो ! उस समय कृष्णने निकुम्भको बहुत पीड़ित किया और निकुम्भ ने भी कृष्णको परिघसे बहुत ही मारा ५४ जब वे दोनों अधिक प्रहार करने पर मोहित होने लगे और पाण्डव तथा यादव भी व्यथित होने लगे तब उनको देख कर मुनि कृष्णके हितकी इच्छासे जप करने लगे और उन महात्माकी वेदोक्त स्तोत्रोंसे स्तुति करनेलगे ५५-५६ तदनन्तर भगवान् केशवमें और दानवमें भी प्राणसे आये और वे दोनों वीर समरमें युद्ध करनेके लिये फिर तयार होगए ५७ हे भरतवंशी राजन ! वे रणोत्कट वृषभ और हाथीकी समान शब्द कर तथा भेड़ियेकी समान क्रोधमें भरकर

अथ कृष्णं तदोवाच नृपं वागशरीरिणी । चक्रेण शमयस्वैनं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ५६ ॥इति होवाच भगवान् देवो बिल्वोदकेश्वरः । धर्मं यशश्च विपुलं प्राप्नुहि त्वं महाबल ॥ ६० ॥ तथेत्युक्त्वा नमस्कृत्वा लोकनाथः सतां गतिः । सुदर्शनं मुमोचाथ चक्रं दैत्यकुलान्तकम् ॥६१॥ तन्निकुम्भस्य चिच्छेद शिरः प्रवरकुण्डलम् । नारायणभुजोत्सृष्टं सूर्यमण्डलवर्चसम् ॥ ६२ ॥ उत्पपात शिरस्तस्य भूमौ ज्वलितकुण्डलम् । मेघमत्तो गिरेः शृङ्गान्मयूर इव भूतले ॥ ६३ ॥ निकुम्भे निहते तस्मिन् देवो बिल्वोदकेश्वरः । तुतोष च नरव्याघ्र जगत्त्रासकरो विभुः ६४ पपात पुष्पवृष्टिश्च शक्रसृष्टा नभस्तलात् । देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुररिनाशने ॥ ६५ ॥ ननन्द च जगत् कृत्स्नं मुनयश्च विशेषतः ।

प्रहार करने लगे ५८ कुछ समयके उपरान्त मनुष्योंके पालक श्रीकृष्णसे आकाशवाणीने कहा, कि-इस देवता और ब्राह्मणों के कंटकको आप चक्रसे शान्त करदीजिये ॥ ५६ ॥ उस समय बिल्वोदकेश्वर देव भगवान्ने कहा;कि-हे महाबल!तुम महान् धर्म और बड़े भारी यशको पाओ ॥ ६० ॥ तब संसारके स्वामी सज्जनोंकी गति श्रीकृष्णने (महादेवको) प्रणाम कर तथास्तु कहनेके उपरान्त दैत्यकुलके यमराज सुदर्शन चक्रको छोड़ा ६१ नारायणकी भुजाओंसे छूटे हुए सूर्यमंडलकी समान तेजस्वी उस चक्रने निकुम्भके श्रेष्ठ कुण्डलों वाले मस्तकको काट डाला ६२ जैसे मेघसे मत्त हुआ मयूर पर्वतके शिखरसे पृथ्वी पर गिरपड़ता है,इसी प्रकार प्रदीप्त कुण्डलों वाला उसका शिर पृथिवीमें गिर पड़ा ॥ ६३ हे नरव्याघ्र ! जगत्को त्रास देने वाले विभु बिल्वोदकेश्वर निकुम्भके मारे जाने पर सन्तुष्ट हुए ॥ ६४ ॥ उस समय इन्द्रने अरिनाशन श्रीकृष्णके ऊपर आकाशमेंसे पुष्पोंकी वर्षाकी देवदुन्दुभियें बजने लगीं ॥ ६५ ॥ उस समय सारा जगत्

दैत्यकन्याश्च भगवान् यदुभ्यः शतशो ददौ ॥६६॥ क्षत्रियाणां च भगवान् सान्त्वयित्वा पुनः पुनः । रत्नानि च विचित्राणि वासांसि प्रवराणि च ॥ ६७ ॥ रथानां वाजियुक्तानां षट्सहस्राणि केशवः । अददत् पाण्डवेभ्यश्च प्रीतात्मा गदपूर्वजः ६८ तदैव चाथ नगरं षट्पुरं पुरवर्धनः । द्विजाय ब्रह्मदत्ताय ददौ तार्क्ष्यवरध्वजः ॥६९॥ सत्रे समाप्ते च तदा शंखचक्रगदाधरः । विसर्जयित्वा तत् क्षत्रं पाण्डवांश्च महाबलः ॥७०॥ त्रिल्वोदकेश्वरस्याथ समाजमकरोत् प्रभुः । मांसरूपसमाकीर्णं बह्वन्नं व्यञ्जनाकुलम् ॥ ७१ ॥ नियुद्धकुशलान् मल्लान् देवो मल्लप्रियस्तदा । योधयित्वा ददौ भूरि वित्तं वस्त्राणि चात्मवान् ७२ मातापितृभ्यां सहितो यदुभिश्च महाबलः । अभिवाद्य ब्रह्मदत्तं ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥ ७३ ॥ स निवेश्य पुरीं रम्यां हृष्टपुष्ट-

आनन्दमें भर गया और मुनि तो परमप्रसन्न हुए; भगवानने भी उस समय सैंकड़ों दैत्यकन्याएँ यादवोंको देदीं ॥ ६६ ॥ और क्षत्रियोंको भी ढाढ़स देकर भगवानने विचित्र रत्न और श्रेष्ठ वस्त्र दिये ॥ ६७ ॥ उस समय प्रसन्नतामें भरे हुए गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने पाण्डवोंको घोड़े जुते हुए छः हजार रथ दिये ६८ और गरुड़जीकी श्रेष्ठ ध्वजाको धारण करने वाले पुरवर्धन श्रीकृष्णने षट्पुर नामक नगर ब्रह्मदत्त ब्राह्मणको देदिया ६९ यज्ञके समाप्त होने पर शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले महाबली प्रभु श्रीकृष्णने क्षत्रियोंको और पाण्डवोंको विदा करने के अनन्तर त्रिल्वोदकेश्वरदेवका उत्सव किया, उसमें अनेक प्रकारके मांस और बहुतसे व्यञ्जन बनाए गए थे॥ ७०-७१ ॥ तदनन्तर मल्लविद्याप्रिय आत्मवान् श्रीकृष्णने कुश्तीमें चतुर मल्लोंकी कुश्ती करवा कर उनको बहुतसा धन और वस्त्र दिए ॥ ७२ ॥ तदनन्तर महाबली श्रीकृष्ण ब्रह्मदत्तको प्रणामकर

जन.कुलम् । पुष्पचित्रपथां वीरो वन्द्यमानो नरैः पथि ॥ ७४ ॥
इमं यः षट्पुरवधं विजयं चक्रपाणिनः । शृणुयाद्वा पठेद्वापि युद्धे
जयमवाप्नुयात् ॥ ७५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ।
व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धश्चाप्यथ बन्धनात् ॥७६॥ इदं पुंस-
वनं प्रोक्तं गर्भाधानं च भारत । श्राद्धेषु पठितं सम्यगक्षय्यकरणं
स्मृतम् ॥ ७७ ॥ इदममरवरस्य भारते प्रथितबलस्य जयं महा-
त्मनः । सततमिदं हि यः पठेन्नरः सुगतिमितो व्रजते गतज्वरः ७८
मणिकनकविचित्रपाणिपादो निरतिशयार्कगुणोऽरिहादिनाथः ।
चतुरुदधिशयश्चतुर्विधात्मा जयति जगत्पुरुषः सहस्रनामा ॥७९॥

अपने माता पिताके साथ द्वारकानगरीको चल दिये ॥ ७३ ॥
जिस समय वीर श्रीकृष्ण हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई नगरीमें घुस
ने लगे उस समय मार्ग मनुष्य उनके ऊपर विचित्र पुष्प (बरसा
कर) उनको प्रणाम करने लगे ॥ ७४ ॥ जोपुरुष इस षट्पुरवध
को और चक्रपाणि श्रीकृष्णके विजयवृत्तान्तको सुनता है वा
पढ़ता है वह युद्धमें विजय पाता है ॥ ७५ ॥ पुत्ररहित पुत्र पाता
है, धनहीन धन पाता है व्याधिग्रस्त रोगी रोगसे छूट जाता है
और बंधनमें पडा हुआ बन्धनसे छूट जाता है ॥ ७६ ॥ यह कथा
पुंसवन और गर्भाधान है अर्थात् इसको सुननेसे पुत्रका गर्भ रहता
है और श्राद्धमें पढ़ने पर यह (श्राद्धको)अक्षय करने वाला
कहा है ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य भारतमें प्रसिद्ध बल वाले श्रेष्ठदेवता
महात्मा कृष्णके इस चरित्रका सर्वदा पाठ करता है वह यहाँसे
चलने पर निश्चिन्त होकर सुगति पाता है ७८ सुवर्ण और मणियों
की समान विचित्र चरण और हस्तवाले सूर्यके गुण (तेज)
को अतिशय करके धारण करनेवाले शत्रुनाशक, आदिनाथ,
चारों समुद्रोंमे शयन करने वाले, चार प्रकारकी मूर्ति वाले और
जिनके सहस्र नाम हैं ऐसे जगत्पुरुषकी जय हो ७९ ॥ ८५ ॥

जनमेजय उवाच । श्रुतोऽयं पट्पुरवधो रम्यो मुनिवरोत्तम । पुरोक्तमन्धकवधं वैशम्पायन कीर्तय ॥१॥ भानुमत्याश्च हरणं निकुम्भस्य वधं तथा । मब्रूहि वदतां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे २ वैशम्पायन उवाच । दितिर्हतेषु पुत्रेषु विष्णुना प्रभविष्णुना । तपसाराधयामास मारीचं कश्यपं पुरा ॥३॥ तपसा कालयुक्तेन तथा शुश्रूषया मुनेः । आनुकूल्येन च तथा माधुर्येण च भारत ४ परितुष्टः कश्यपस्तु तामुवाच तपोधनः । परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे वरं वरय सुव्रते ॥ ५ ॥ दितिरुवाच । हतपुत्रास्मि भगवन् देवै- र्धर्मभृतां वर । अवध्यं पुत्रमिच्छामि देवैरमितविक्रमम् ॥ ६ ॥ कश्यप उवाच । अवध्यस्ते सुतो देवि दाक्षायणि भवेदिति ।

जनमेजयने कहा; कि–हे मुनिवरोत्तम ! यह रमणीय पट्पुर-वध सुन लिया, अब हे वैशंपायनजी ! आप पहिले कहे हुए अन्धकवधका वृत्तान्त सुनाइये ॥ १ ॥ आप भानुमतीका हरण और (भानुमतीके हरणके समय किया गया) निकुंभका वध भी सुनाइये, क्यों कि–हे सज्जन ! मुझे इस बातको सुननेके लिए बड़ा कौतूहल होरहा है ॥२॥ वैशम्पायनजीने कहा; कि–प्रभावशाली विष्णुने जब दितिके पुत्रोंको मार डाला, तब दितिने मरीचपुत्र कश्यपकी तपके द्वारा आराधना की थी। ३ । तपोधन कश्यपमुनि उसके समयोचित तपसे, उसकी सेवासे उसके अनुकूल रहनेसे और उसकी मधुरतासे संतुष्ट हो कर उससे कहने लगे; कि–हे भद्रे ! मैं तुझसे सन्तुष्ट हूँ हे सुव्रते ! अब तू वर माँग ले ॥ ४ ॥ ५ ॥ दितिने कहा; कि–हे धर्म धारियोंमे श्रेष्ठ भगवन् ! देवताओंके कारण मैं निपूती हो गई हूँ अतः मैं देवताओंसे अवध्य अमित पराक्रमी पुत्रको चाहती हूँ ॥६॥ कश्यपजीने कहा; कि–हे कमललोचने दाक्षायणि देवि ! तुम्हारा पुत्र देवदेव रुद्रके अतिरिक्त और (सब) देवताओंसे अवध्य होगा,

देवानां संशयो नात्र कश्चित् कमललोचने ॥ ७ ॥ देवदेवमृते रुद्रं तस्य न प्रभवाम्यहम् । आत्मा ततस्ते पुत्रेण रक्षितव्यो हि सर्वथा ॥८॥ अन्वालभत तां देवीं कश्यपः सत्यवागथ । अंगुल्योदरदेशे तु सा पुत्रं सुषुवे ततः ॥९॥ सहस्रबाहुं कौरव्य सहस्रशिरसं तथा । द्विसहस्रेक्षणं चैव तावच्चरणमेव च ॥ १० ॥ स व्रजत्यन्धवद्यस्मादनन्धोऽपि हि भारत । तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवासिनः॥ ११॥ अवध्योऽस्मीति लोकान् स सर्वान् बाधति भारत । हरत्यपि च रत्नानि सर्वाण्यात्मबलाश्रयात् १२ वासयत्यात्मवीर्येण निगृह्याप्सरसां गणान् । स वेश्मन्यूर्जितोऽत्यर्थं सर्वलोकभयंकरः ॥ १३ ॥ परदारापहरणं पररत्नविलोपनम् । चकार सततं मोहादन्धकः पापनिश्चयः ॥ १४ ॥त्रैलोक्य-

---

इसमें तुम कुछ सन्देह न समझो, क्योंकि रुद्रके ऊपर मेरी शक्ति नहीं चलती है; इस लिए तुम्हारा पुत्र उनसे अपने आपेको सब प्रकारसे बचाएँ रहें ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर सच्ची वाणी बोलने वाले कश्यप उस देवीके पास गए, हे कौरव्य ! तब उस ने अपनी अपनी अंगुलियों उदर (हथेली) में से सहस्र भुजा वाले, सहस्र शिर वाले और दो सहस्र नेत्र और इतने ही चरणों वाले पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ १० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! वह अंधा न होने पर भी अंधेकी समान चलता था, इससे तहाँ के रहने वाले उसे अंधक नामसे पुकारते थे ॥११॥ हे भारत ! वह दैत्य मैं सब लोकोंसे अवध्य हूँ, यह समझकर सबको पीड़ा देने लगा और अपनी आत्माके बलके आश्रयसे सम्पूर्ण रत्नों का हरण करने लगा ॥ १२ ॥ वह अति बली सब लोकोंको भय देने वाला राक्षस अपने वीर्यसे अप्सराओंको पकड़ कर अपने घरमें डालने लगा ॥ १३ ॥ और पापी विचार वाला अन्धक मोहके वशमें हो सदा दूसरेके रत्न और दूसरोंकी स्त्रियों

विजयं कर्तुमुद्यतः स तु भारत । सहायैरसुरैः सार्धं बहुभिः सर्व-
धर्षिभिः ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्रः कश्यपं पितरं ब्रवीत् ।
अन्धकेनेदमारब्धमीदृशं मुनिसत्तम ॥ १६ ॥ आज्ञापय विभो
कार्यमस्माकं समनन्तरम् । यवीयसः कथं नाम सोढव्यं स्यान्मुने
मया ॥ १७ ॥ इष्टपुत्रे प्रहर्तव्यं कथं नाम मया विभो । इहात्र
भवती कुर्यान्मन्युं मयि हते सुते॥१८॥ देवेन्द्रवचनं श्रुत्वा कश्य-
पोथाब्रवीन्मुनिः । वारयिष्यामि देवेन्द्र सर्वथा भद्रमस्तु ते ।१९।
अन्धकं वारयामास दित्या सह तु कश्यपः । त्रैलोक्यविजया-
द्वीरं कृच्छ्रकृच्छ्रेण भारत ॥२०॥ वारितोऽपि स दुष्टात्मा बाध-
त्येव दिवौकसः । तैस्तैरुपायैर्दुष्टात्मा भगध्यन्च तथाऽमरान् २१

को छीनने लगा ॥ १४ ॥ हे भारत ! वह सबको दबाने वाले
बहुतसे सहायक असुरोंको साथमें लेकर त्रिलोकीका विजय करने
के लिए उद्यत होगया ॥ १५ ॥ इस बातको सुन कर भगवान्
इन्द्रने अपने पिता कश्यपसे कहा; कि–हे मुनिसत्तम ! अन्धक
ऐसी (करतूत) करना आरंभ कर दी है ॥ १६ ॥ हे विभो !
अब हमें जो कार्य करना उचित हो वह बताइये, हे मुने ! मैं छोटे
भाईके इस दुर्वृत्तको किस प्रकार सहूँ ॥ १७ ॥ हे विभो ! मैं
इसके ऊपर कैसे प्रहार करूँ, क्योंकि–जब मैं आपकी पूज्या
(दिति) के प्रिय पुत्रको मार डालूँगा, तो वह पुत्रके मारे जाने
से मुझ पर क्रोध करेगी ॥ १८ ॥ देवेन्द्रके वचनको सुन कर
कश्यपमुनिने कहा; कि–हे देवेन्द्र ! मैं उसे सब प्रकारसे रोकूँगा,
तेरा कल्याण हो ।१९। हे भरतवंशी राजन् ! तदनन्तर कश्यप
और दितिने वीर अंधकको त्रिलोकीका विजय करनेके लिए बड़ी
कठिनतासे रोका ॥२०॥ वह दुष्टात्मा रोकने पर भी देवताओं
को पीड़ा देता ही रहा, उस दुष्टात्मासे प्रत्येक उपायसे देव-
ताओंको दिक कर (नन्दन) वनके बगीचे और वृक्षोंको उजा-

बभञ्ज कानने वृक्षानुद्यानानि च दुर्मतिः । उच्चैश्रवःसुतानश्वान् बलादप्यनयद्दिवः ॥ २२ ॥ नागान् दिशागजसुतान् दिव्यानपि च भारत । बलाद्धरति देवानां पश्यतां वरदर्पितः ॥२३॥ देवानाप्ययन्ते तु ये यज्ञैस्तपसा तथा । तेषां चकार विघ्नं स दुष्टात्मा देवसंकटः ॥ २४ ॥ नेजुर्यज्ञैस्त्रयो वर्णास्तेपुश्च न तपांस्यपि । अन्धकस्य भयाद्राजन् यज्ञविघ्नानि कुर्वतः ॥ २५ ॥ तस्येच्छया वाति वायुरादित्यश्च तपत्युत । चन्द्रमा च सनक्षत्रो दृश्यते नैव वा पुनः ॥२६॥ न व्रजन्ति विमानानि विहायसि भयात् प्रभो । अन्धकस्यातिघोरस्य बलदृप्तस्य दुर्मतेः ॥ २७ ॥ निरोंकारवषट्कारं जगद्वीर तथाभवत् । अन्धकस्यातिघोरस्य भयात् कुरुकुलोद्वह ॥ २८ ॥ कुरूंस्तथोत्तरान् पापो द्रावयामास भारत । भद्रा-

---

ड़ना आरंभ कर दिया, वह स्वर्गसे उच्चैश्रवाः घोड़ोंके पुत्रोंको भी बलपूर्वक ले आया ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह वरके कारण घमंड में भरा हुआ दैत्य हे भारत ! देवताओंके सामनेसे ही दिग्गजों के पुत्र दिव्य हाथियोंको बलपूर्वक छीन लाता था ॥ २३ ॥ जो व्यक्ति यज्ञ और तपके द्वारा देवताओंको पुष्ट करते थे, वह दुष्टात्मा देवकण्टक उनके काममें विघ्न डालने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! यज्ञमें विघ्न डालने वाले अंधकके भयसे मनुष्योंने यज्ञोंसे पूजन करना और तप करना भी छोड़ दिया ॥ २५ ॥ उसकी इच्छासे ही वायु चलने लगा सूर्य भी उसकी इच्छासे ही तपने लगा और नक्षत्रों सहित चन्द्रमा उसकी इच्छासे ही दीखता और नहीं दीखता था ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! उस समय बलके कारण उद्धत दुर्मति अंधकके भयसे आकाशमें विमान नहीं चलते थे ॥ २७ ॥ हे कुरुकुलोद्वह ! हे वीर ! अतिभंकर अंधक के भयसे जगत् ओंकार और वषट्कार रहित हो गया २८ हे भरतवंशी राजन् ! उस पापीने कुरु भद्राश्व और केतुमालोंको

श्वान् केतुमालांश्च जम्बुद्वीपांस्तथैव च ॥ २९ ॥ मानयन्ति च तं देवा दानवाश्च दुरासदाः । भूतानि च तथाऽन्यानि समर्थान्यपि सर्वथा ॥३०॥ ऋषयो वध्यमानास्तु समेता ब्रह्मवादिनः । अचिन्तयन्नन्धकस्य वधं धर्मभृताम्वर ॥ ३१ ॥ तेषां बृहस्पतिर्मध्ये धीमानिदमथाब्रवीत् । नास्य रुद्रादृते मृत्युर्विद्यते च कथंचन ॥ ३२ ॥ तथा वरे दीयमाने कश्यपेनापि शब्दितः । नाहं रुद्रात् परित्रातुं शक्त इत्येव धीमतः॥ ३३ ॥ तमुपायं चिन्तयामः शर्वो येन सनातनः । जानीयात् सर्वभूतानि पीड्यमानानि शंकरः ॥ ३४ ॥ विदितार्थो हि भगवानवश्यं जगतः प्रभुः । अश्रुप्रमार्जनं देवः करिष्यति सतां गतिः ॥ ३५ ॥ व्रतं हि देवदेवस्य भवस्य जगतो गुरोः । सन्तोऽसद्भ्यो रक्षितव्या ब्राह्मणास्तु विशेषतः ॥ ३६ ॥ ते वयं नारदं सर्वे प्रयामः शरणं

भगाना आरम्भ कर दिया ॥२९॥ देवता और दुरासद दानव तथा सब प्रकारसे समर्थ प्राणी भी उसका मान करते थे ॥३०॥ हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! तदनन्तर पिटते हुए ब्रह्मवादी ऋषि एकत्रित होकर अन्धकके वधका विचार करने लगे ॥ ३१ ॥ उनके बीचमें बुद्धिमान् बृहस्पतिने कहा, कि—इसकी मृत्यु रुद्रके अतिरिक्त और किसीसे नहीं (लिखी) है ॥ ३२ ॥ क्यों कि—कश्यपने भी वर देते समय यह शब्द कहा था, कि—बुद्धिमान् शिवसे इसको बचानेकी मुझमें शक्ति नहीं है ३३ अब हमें वह उपाय करना चाहिये, जिससे शंकर सब भूतोंको पीड़ा पाते हुए जानें ३४ जगत्के प्रभु भगवान् शंकरको जब सब बातें विदित होंगी, तब वह सज्जनोंकी गति सबके आँसुओंको अवश्य ही पूँछेंगे ॥ ३५ ॥ असज्जनोंसे सज्जनोंकी रक्षा करना और ब्राह्मणोंकी विशेषतः रक्षा करना जगत्के गुरु देवदेव शंकरका व्रत है, ३६ इस लिए अब हम सब ब्राह्मण नारदजीकी शरण लेते हैं, क्योंकि—वह

द्विनम् । उपायं वेत्स्यते तत्र वयस्यो हि भवस्य सः ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिवचः श्रुत्वा सर्वेप्यथ तपोधनाः । तावद्ददृशुराकाशे प्राप्तं देवर्षिसत्तमम् ॥ ३८ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं सत्कृत्य विधिवन्मुनिम् । देवा ऊचुः । देवर्षे भगवन् साधो कैलासं व्रज सत्वरम् ॥ ३९ ॥ विज्ञप्तुमर्हसे देवमन्धकस्य वधे हरम् । त्राणार्थं नारदं प्रोचुस्तांस्तथेति स चोक्तवान् ॥ ४० ॥ ऋषिष्वथ प्रयातेषु तत्कार्यं नारदो मुनिः । विचार्य मनसा विद्वानिति कार्यं स दृष्टवान् ॥४१॥ स देवदेवं भगवान् द्रष्टुं मुनिरथाययौ । मन्दारवनमध्यस्थो यत्र नित्यो वृषध्वजः ॥ ४२ ॥ स तत्र रजनीमेकामुषित्वा मुनिसत्तमः । मन्दाराणां वने रम्ये दयितः शूलपाणिनः आजगाम पुनः स्वर्गं लब्ध्वाऽनुज्ञां वृषध्वजात् । मन्दारपुष्पैः

महात्मा भवके वयस्य (हम उम्र) हैं अतः यह (उनके दर्शनका) उपाय जानते होंगे ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिके वचनको सुन कर सब तपोधनोंने आकाशकी ओर देखा तो उन्होंने आकाशमेंसे नारदजी को आते हुए देखा ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उन्होंने शास्त्रोक्तरीतिसे उन मुनिकी पूजाकी, फिर देवताओंने कहा, कि–हे साधो ! हे देवर्षे ! आप शीघ्रतासे कैलासको जाइये ॥ ३९ ॥ और वहाँ जाकर भगवान् शिवसे अंधकका वध करनेके लिए कहिये, देवताओं ने नारदसे इस प्रकार रक्षा करनेके लिए कहा, तब उन्होंने ऐसा ही (करूँगा) कहा ॥ ४० ॥ ऋषियोंके जाने पर नारद मुनिने अपने मनमें विचारा, कि–यह कार्य इस प्रकार करना चाहिये इस बातका विचार करके वह मुनि जहाँ पर वृषभध्वज सदा रहते हैं उस वनमें देवदेव भगवान् शंकरको देखनेके लिए चले ४१-४२ शिवजीके प्रिय वह मुनिसत्तम रमणीय मन्दर वनमें एक रात्रि रह कर, हे भारत ! मन्दारके पुष्पोंसे भली भाँति बनाई हुई मालाको बाँध वृषभध्वज शंकरसे आज्ञा ले फिर स्वर्गमें आ

सुकृतां मालामादध्य भारत ॥ ४४ ॥ ग्रथितां सविशेषान्तां सर्वगन्धोत्तमोत्तमाम् । सन्तानमाल्यदामं च तैरेव कुसुमैः कृतम् ४५ तच्च कण्ठे समासृज्य महागंधं नराधिपः । आगमावन्धको यत्र दुरात्मा बलदर्पितः ॥ ४६ ॥ अन्धकस्तवगं तं दृष्ट्वा गन्धमाघ्राय गोत्तमम् । सन्तानकानां स्रङ्मालां महागन्धां महामुने ॥ ४७ ॥ कुत्रायं पुष्पजातिर्वा कमनीया तपोधन । गन्धान् वर्णाञ्छुभांस्तान् हि भोः पुष्यति मुहुर्मुहुः । स्वर्गे सन्तानकुसमान्यतिवर्तति सर्वथा ॥ ४८ ॥ कः प्रभुस्तस्य वृक्षस्य शक्यं वा नयितुं मुने । आचक्ष्व यद्यनुग्राह्या वयं ते देवतातिथे ॥ ४९ ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रहसन्निव भारत । आदाय दक्षिणे हस्ते महत्तस्तपसो निधिः ॥ ५० ॥ मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे वीरकामगमं वनम् ।

गए ॥४३॥४४॥हे राजन् ! जहाँ पर दुरात्मा बलदर्पित अंधक रहता था, तहाँ वह अन्त तक विशेषरूपसे गूँथी हुई, सब श्रेष्ठ गंधोंमें भी उत्तम सन्तानमाल्यकी डोरी वाली और सन्तान वृक्ष के फूलोंसे बनाई हुई महागंधवती मालाको कण्ठमें डाल कर पहुँचे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अंधकने उनको देख कर और महागंधवती सन्तानकोंकी मालाके गंधको सूँघ कर (कहा; कि-) हे महामुने ! हे तपोधन ! ऐसे कमनीय पुष्प कहाँ पर हैं, ओ हो ! इनकी गंध और वर्ण तो वार वार पुष्ट सा कर रहा है और यह स्वर्गके सन्तान-वृक्षोंसे भी सब प्रकारसे बढ़े चढ़े हैं ।४७।४८। हे मुने ! इन वृक्षोंका प्रभु कौन है और वह (वृक्ष) यहाँ पर लाया जासकता है, अथवा नहीं ? हे देवतातिथे ! यदि आप हम पर अनुग्रह करना चाहते हों तो हमसे यह बात कहिये ॥ ४९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय तपके निधि मुनिश्रेष्ठ नारदने (उसके हाथको अपने) दाहिने हाथसे पकड़ मुस्करा कर उससे कहा, कि-॥ ५० ॥ हे वीर ! पर्वतश्रेष्ठ मन्दरानल पर इच्छा-

तत्र चैवं विधं पुष्पं भोः सृष्टिः शूलपाणिनः ॥५१॥ न तु तत्र वनं कश्चिदच्छन्देन महात्मनः । प्रवेष्टुं लभते तद्धि रक्षन्ति प्रवरोत्तमाः ॥ ५२ ॥ नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा दुरासदाः । अवध्याः सर्वभूतानां महादेवाभिरक्षिताः ॥ ५३ ॥ नित्यं प्रक्रीडते तत्र सोमः सगणो हरः । मन्दारद्रुमखण्डेषु सर्वात्मा सर्वभावनः ॥ ५४ ॥ तपोविशेषैराराध्य हरं त्रिभुवनेश्वरम् । शक्यं मन्दारपुष्पाणि प्राप्तुं कश्यपवंशज ॥५५॥ स्त्रीरत्नमणिरत्नानि यानि चान्यानि चाप्यथ । कांक्षितानि फलन्ति स्म ते द्रुमा हरवल्लभाः ॥५६॥ न तत्र सूर्यः सोमोऽथ तपत्यतुलविक्रमः । स्वयंप्रभं तरुवनं तद्धो दुःखविवर्जितम् ॥५७॥ तत्र गन्धान् स्रवन्त्यन्ये नीराण्यन्ये महाद्रुमाः । वासांसि विविधान्यन्ये सुगन्धीनि महा-

---

चारी वन है, हे दैत्य ! तहाँ ऐसे पुष्प होते हैं और यह शूलपाणि की रचना है अर्थात् वह इन पुष्पोंके स्वामी हैं ५१। उन महात्माकी इच्छाके विना तहाँ पर कोई प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि—श्रेष्ठ २ गण इस वनकी रक्षा करते रहते हैं ॥ ५२ ॥ उनके पास अनेक प्रकारके आयुध हैं, उनके अनेक प्रकारके भयंकर वेष हैं, वह महादेवसे रक्षित होनेके कारण सब प्राणियोंसे अवध्य हैं ॥ ५३ ॥ सर्वात्मा और सर्वपूजित हर उमाके साथ और अपने गणोंके साथ तहाँ मन्दारके वृक्षके खण्डोंमें सर्वदा क्रीड़ा करते रहते हैं ॥५४॥ हे कश्यपके वंशज ! त्रिभुवनके स्वामी हर की तपसे उपासना करने पर मन्दारके पुष्प मिल सकते हैं ५५ वे शिवके प्यारे वृक्ष मनोवाञ्छित स्त्रीरत्न और मणि तथा रत्नों को पूर्ण करते हैं ॥ ५६ ॥ तहाँ अतुलपराक्रमी चन्द्रमा और सूर्य भी नहीं घुस सकते वह दुःखरहित वन स्वयंप्रभ है ५७ हे महाबल ! तहाँ पर कोई वृक्ष सुगन्धियोंको बहाते रहते हैं, कोई जल बहाते रहते हैं और बहुतसे वृक्ष सुगन्धित वस्त्रोंको देते रहते हैं ५८

बल ॥ ५८ ॥ भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यं तथैव च । तरुभ्यः स्रवते तेभ्यो विविधं मनसेप्सितम् ॥ ५६ ॥ पिपासा वा बुभुक्षा वा ग्लानिश्चिन्तापि वाऽनघ । न मन्दारवने वीर भवतीत्युपशार्यताम् ॥ ६० ॥ न ते वर्णयितुं शक्या गुणा वर्षशतैरपि । गुणा ये तत्र वर्धन्ते स्वर्गाद्बहुगुणोत्तराः ॥ ६१ ॥ अतीव हि जयेल्लोकान् समहेन्द्रान्न संशयः । एकाहमपि यस्तत्र वसेच्च दितिजोत्तम ॥ ६२ ॥ स्वर्गस्यापि हि तत्स्वर्गं सुखानामपि तत् सुखम् । बभूवाजगतः सर्वमिति मे धीयते मनः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि
अन्धकवधे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

वैशम्पायन उवाच । अन्धको नारदवचः श्रुत्वा तत्त्वेन भारत । मन्दरं पर्वतं गन्तुं मनो दध्रे महासुरः ॥ १ ॥ सोऽसुरान् सुमहातेजाः समानीय महाबलः । जगाम मन्दरं क्रुद्धो महादेवालयं

और उन वृक्षोंसे मनचाहा अनेक प्रकारका भक्ष्य भोज्य पेय (पीने योग्य) चोष्य (चूसने योग्य) और लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थ टपकता रहता है ५६ हे निष्पाप वीर ! मन्दारवनमें प्यास भूख ग्लानि और चिन्ता नहीं होती है ६० वहाँ पर स्वर्गके गुण से भी बहुत अधिक गुण वाले जो गुण हैं उन गुणोंका सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जासकता ६१हे दितिके उत्तमपुत्र ! जो व्यक्ति वहाँ एक दिन भी रह जाता है वह इन्द्रसहित सब लोकोंको जीत सकता है ६२ वह स्वर्गका भी स्वर्ग है और सुख का भी सुख है, मेरे मनमें तो यह निश्चय है; कि-वह सब अज अर्थात् उत्पत्तिरहित है ६३ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा; कि-भरतवंशी राजन् ! महाराक्षस अंधकने नारदजीका तत्त्व-वचन सुन कर मनमें मन्दरपर्वत पर जानेका विचार किया ॥ १ ॥ वह महातेजस्वी और महाबली

तदा ॥ २ ॥ तं महाभ्रप्रतिच्छन्नं महौषधिसमाकुलम् । नाना-
सिद्धसमाकीर्णं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३ ॥ चन्दनागुरुवृक्षाढयं
सरलद्रुमसंकुलम् । किन्नरोद्गीतरम्यं च बहुनागकुलाकुलम् ॥४॥
वातोद्धूतैर्वनैः फुल्लैर्नृत्यन्तमिव च क्वचित् । प्रस्रुतैर्धातुभिश्चित्रै-
र्विलिप्तमिव च क्वचित् ॥ ५ ॥ पक्षिस्वनैः सुमधुरैर्नदन्तमिव च
क्वचित् । हंसैः शुचिषदैः कीर्णं सम्पतद्भिरितस्ततः ॥६॥ महा-
बलैश्च महिषैश्चरद्भिर्दैत्यनाशनैः । चन्द्रांशुविमलैः सिंहैर्भूषितं
हेमसंचयम् ॥७॥ मृगराजसमाकीर्णं मृगवृन्दनिषेवितम् । स मन्दरं
गिरिं प्राह रूपिणं बलदर्पितः ८ वेत्सि त्वं हि यथा वध्यो वर-
दानादहं पितुः । मम चैव वशे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥९॥

राक्षस क्रोधमें भर राक्षसोंको साथ ले महादेवके निवासस्थान मन्दराचल पर्वतको चल दिया ।२। बलसे दर्पमें भरे हुए अंधक ने महामेघकी समान ढके हुए, महौषधियोंसे व्याप्त, अनेक प्रकार के सिद्धोंसे घिरे हुए, महर्षियोंसे सेवित, चन्दन और अगर के वृक्षोंके धनी, सालके वृक्षोंसे गछे हुए, किन्नरोंके गानोंसे रम-णीय, बहुतसे नागोंके कुलसे आकुल, और कहीं पर वायुसे हिलोरे लेते हुए खिले हुए बगीचोंसे युक्त और कहीं पर टपकती हुई विचित्र धातुओंसे लिपे हुए, और कहीं पर सुमधुर पक्षियों के शब्दसे नाद करते हुए और कहीं पर इधर उधर गिरते और बैठते हुए पवित्र स्थानों पर बैठने वाले हंसोंसे व्याप्त और कहीं पर दैत्य-नाशक घूमते हुए बड़े २ महिषोंसे व्याप्त, चन्द्रमाकी किरणोंकी समान विमल सिंहोंसे भूषित सुवर्णसञ्चय वाले, मृगराज (सिंहों) से गछे हुए और मृगोंकी टोलियोंसे सेवित रूपधारी मन्दराचल पर्वतसे कहा; कि—॥ ३—८ ॥ तू इस बात को जानता ही है, कि—मैं अपने पिताके वरदानके कारण अव-ध्य हूँ, सारी चराचर त्रिलोकी मेरे वशमें हैं ॥ ९ ॥ हे पर्वत !

प्रतियोद्धुं न मां कश्चिदिच्छत्यपि गिरे भयात् । पारिजातवनं चास्ति तव सानौ महागिरे । सर्वकामप्रदैः पुष्पैर्भूषितं रत्नमुत्तमम् ॥ १० ॥ तदाचक्ष्वोपभोक्ष्यामि तद्वनं तव सानुजम् । किं करिष्यसि क्रुद्धस्त्वं मनो हि त्वरते मम ॥ ११ ॥ त्रातारं नानुपश्यामि मया खल्वर्दितस्य ते । इत्युक्तो मन्दरस्तेन तत्रैवान्तरधीयत ॥ १२ ॥ ततोऽन्धकोऽतिकुपितो वरदानेन दर्पितः । मुमोच नादं सुमहदिदं वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ मया त्वं याच्यमानो यस्मान्न बहु मन्यसे । अहं चूर्णी करोमि त्वां बलं पर्वत पश्य मे ॥१४॥ एवमुक्त्वा गिरेः शृंगमुत्पाट्य बहुयोजनम् निष्पिपेष गिरेस्तस्य शृङ्गेष्वन्यत्र वीर्यवान् ॥ १५ ॥ सह तैरसुरैः सर्वैर्वरदानेन दर्पितः । तं प्रच्छन्ननदीजालं भज्यमानं महागिरिम् १६

मेरे भयसे मेरे सामने कोई लड़ना भी नहीं चाहता, हे महागिरे ! तुम्हारे शिखर पर सब कामनाओंको देने वाले पुष्पोंसे भूषित उत्तम रत्न परिजात हैं ॥ १० ॥ इस लिये तुम मुझे बताओ मैं तुम्हारे शिखर पर उत्पन्न हुए उस वनको भोगना चाहता हूँ, और तुम क्रोधमें भर जाओगे, तो भी मेरा क्या करोगे, क्योंकि-मेरा मन फुर्ती कररहा है ॥ ११ ॥ जब मैं तुझे पीड़ा दूँगा, उस समय मुझे कोई तेरी रक्षा करने वाला नहीं दीखता, मन्दराचल पर्वत इस प्रकार कहने पर तहाँ ही अन्तर्धान होगया १२ तब तो वरदानके कारण दर्पमें भरेहुए अन्धकने क्रोधमें भर कर बड़ी जोरसे गर्जनाकर यह बात कही, कि-॥ १३ ॥ हे पर्वत ! तू मेरे प्रार्थना करने पर भी मेरा कुछ सत्कार नहीं करता, इस लिये मैं तेरा चूरा किये डालता हूँ, तू मेरे बलको देख ॥१४॥ इस प्रकार कहनेके अनन्तर वीर्यवान् पर्वतके अनेक योजनों वाले शिखरको उखाड़ कर उसको दूसरों शिखरोंसे रगड़ने लगा १५ वरदानके कारण उद्धत हुआ वह असुर अपने सब असुरोंके

विदित्वा भगवान् रुद्रश्चकारानुग्रहं गिरेः । सविशेषतरं वीरं गच्छद्विज्ञमृगायुतम् ॥ १७ ॥ नदीजालैर्बहुतरैराचितं चित्रकाननम् । नभश्च्युतैः पुरा यद्वत्तद्वदेव विराजते ॥ १८ ॥ अथ देवप्रभावेन शृङ्गाण्युत्पाटितानि तु । क्षिप्तानि चासुरानेव घ्नन्ति घोराणि भारत ॥ १९ ॥ क्षिप्ता ये मायलायन्ते शृङ्गाणि तु महासुराः । शृङ्गैस्तैस्ते स्म वध्यन्ति पर्वतस्य जनाधिप ॥ २० ॥ ये स्वस्थास्त्वसुरास्तत्र तिष्ठन्ति गिरिसानुषु । शृङ्गैस्ते न स्म वध्यन्ते मन्दरस्य महागिरेः ॥ २१ ॥ ततोऽन्धकस्तदा दृष्ट्वा सेनां तां मर्दितां तथा । रुषितः सुमहानादं नदित्वैवं तदाऽब्रवीत् ॥ २२ ॥ आह्वये तं वनं यस्य युद्धार्थमुपतिष्ठतु । किं त्वयाचलयुद्धेन हता स्म च्छद्मना रणे ॥ २३ ॥ एवमुक्ते त्वन्धकेन वृषभेण महेश्वरः ।

साथ ऐसा करने लगा उस छिदे हुए नदीसमूह वाले पर्वतको टूटता हुआ जान कर महादेवने उस पर्वत पर अनुग्रह किया कि—वह आकाशसे गिरते हुए बहुतसे नदीसमूहोंसे व्याप्त विचित्र कानन वाला होकर पहिलेकी समान दिपने लगा ॥ १६–१८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! महादेवके प्रभाववश राक्षसोंके उखाड़े हुए भयंकर शिखर फैंकने पर उन असुरोंका ही संहार करने लगे १९ हे राजन् ! बड़े २ राक्षस जिन शिखरोंको उखाड़ कर फैंकते थे पर्वतके उनही शिखरोंसे वह मारे जाते थे ॥ २० ॥ और जो पर्वतके शिखरोंपर स्वस्थ होकर बैठे हुए थे वे उस महापर्वतके शिखरोंसे नहीं मरते थे ॥२१॥ उस समय अन्धक अपनी सेना को इस प्रकार कुचली हुई देख कर क्रोधमें भर कर दहाड़ने लगा और कहने लगा कि—॥२२॥ यह जिसका वन है, मैं उसको लड़नेके लिए बुलाता हूँ, अरे ! तूने इस पर्वतसे युद्ध कर छल-पूर्वक हमैं मारा तो क्या मारा ॥ २३ ॥ अंधकके इस प्रकार कहने पर महेश्वरदेव अन्धकको मारनेकी इच्छासे वृषभ पर

सम्प्राप्तः शूलमुद्यम्य देवोऽन्धकजिघांसया ॥२४॥प्रमथानां गणै-
र्धीमान् वृतो वै बहुलोचनः । तथाभूतगणैश्चैव श्रीमान् भूतगणे-
श्वरः ॥२५॥ प्रचकम्पे ततः कृत्स्नं त्रैलोक्यं रुषिते हरे । सिध-
वश्च प्रतिस्रोतः मुहुः प्रज्वलितोदकाः ॥ २६ ॥ जग्मुर्दिशोऽग्नि-
दाहाश्च सर्वे ते हरतेजसा । युयुधुश्च ग्रहाः सर्वे विपरीता अना-
घिप ॥२७॥ चेलुश्च गिरयस्तत्र काले कुरुकुलोद्वह । प्रववर्षाथ
पर्जन्यः सधूमांगारवृष्टयः ॥ २८ ॥ उष्णगाश्चन्द्रगाश्चासीत्
सूर्यः शीतप्रभस्तथा । न ब्रह्म विविदुस्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः२९
वडवा सुषुवुर्गाश्च गावोऽश्वानपि चानघ । पेतुर्वृक्षाश्च मेदिन्या-
मच्छिन्ना भस्मसात् कृता ३० बाधन्ते वृषभा गाश्च गावश्चा-
रुरुहुर्वृषान् । राक्षसा यातुधानाश्च पिशाचाश्चापि सर्वशः ३१

सवार हो शूल उठा कर आगए ॥ २४ ॥(उस समय) उनके तीन नेत्र थे और वह बुद्धिमान् भूतगणेश्वर शंकर भूतोंसे और प्रमथोंके गणोंसे घिर रहे थे ॥ २५ ॥ रुद्रके क्रोधमें भर जाने पर सारी त्रिलोकी काँपने लगी, नदियोंके जल उलटे चलने लगे और उनके जल बार बार जलने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उस समय रुद्रके तेजसे सब दिशाओंमें आग लगने लगी और सब ग्रह विपरीत होकर युद्ध करने लगे ॥२७॥ हे कुरुकुलोद्वह! उस समय पर्वत डगमगाने लगे और मेघ धुएँ और अङ्गार मिली वर्षा बरसाने लगा ॥ २८ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति गर्म होगई और सूर्यकी कान्ति ठण्डी पड़ गई और ब्रह्मवादी मुनि उस समय ब्रह्मको न जान सके ॥ २९ ॥ हे निष्पाप ! घोड़ियें बैलोंको उत्पन्न करने लगीं और गौएँ घोड़ोंको उत्पन्न करने लगीं और वृक्ष न कटने पर भी भस्म होकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥३०॥ उस समय वृषभ गौओंको पीड़ित करने लगे और गौएँ बैलों पर चढ़ने लगीं और राक्षस यातुधान तथा पिशाच भी (पीड़ित

विपरीतं जगद्दृष्ट्वा महादेवस्तथागतम् । मुमोच भगवांश्छूलं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३२ ॥ तत् पपात हरोत्सृष्टमन्धकोरसि दुर्धरम् । भस्मसाच्चाकरोद्रौद्रमन्धकं साधुकण्टकम् ॥ ३३ ॥ ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः । शंकरं तुष्टुवुश्चैव जगच्छत्रौ निबर्हिते ॥ ३४ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह । त्रैलोक्यं निर्वृतं चासीन्नरेन्द्र विगतज्वरम् ॥ ३५ ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । जेपुश्च ब्राह्मणा वेदानीजुश्च क्रतुभिस्तदा ॥ ३६ ॥ ग्रहाः प्रकृतिमापेदुरूहुर्नद्यो यथा पुरा । न जज्वाल जले वह्निराशाः सर्वाः प्रसेदिरे ॥ ३७ ॥ मन्दरः पर्वतश्रेष्ठः पुनरेव रराज ह । श्रिया परमया जुष्टः सर्वतेजःसमुच्छ्रयात् ॥३८॥ रेमे सोऽपि च भगवान् पारिजातवने हरः ।

होने लगे)३१महादेवजीने इसप्रकार जगत्को विपरीत अवस्थामें पड़ा हुआ देखकर अपना अग्निकी समान प्रभावाला शूल छोड़ा वह शिवजीका छोड़ा हुआ दुर्धर शूल अन्धकके हृदयपर पड़ा और साधुओंके काँटे अन्धकको भस्म कर डाला ३३ उस समय सब देवता और तपोधन मुनि शंकरकी स्तुतिकरने लगे उस जगत्के शत्रुके मारे जाने पर देवदुन्दुभियें बजने लगीं, और हे नरेन्द्र! त्रिलोकी चिंतारहित हो आनन्दित होगई॥३४॥३५॥ उस समय देवताओंके गन्धर्व गाना गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और ब्राह्मण वेदका जप करने लगे और यज्ञोंसे पूजन करने लगे३६ उस समय ग्रह प्रकृतिस्थ होगए और नदियें पहलेकी समान बहने लगीं, जलमें अग्निका जलना बन्द होगया, सब दिशाएँ निर्मल होगईं ३७ और पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल भी सब प्रकारसे तेज बढ़ जानेके कारण परमशोभासम्पन्न हो फिर सुशोभित दिखाई देने लगा ३८ (इस प्रकार) प्रभु भगवान् हर देवताओंको भली प्रकार घूमने योग्यकर धर्मपूर्वक रमाके साथ पारिजातवनमें क्रीड़ा

सुमचारान् सुरान् कृत्वा शक्रादीन् भर्गः प्रभुः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवधे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

जनमेजय उवाच । मुनेऽन्धकवधः श्राव्यः श्रुतोऽयं खलु भो मया । शान्तिस्त्रयाणां लोकानां कृता देवेन धीमता ॥ १ ॥ निकुम्भस्य हतं देहं द्वितीयं चक्रपाणिना । यदर्थं च यथा चैव तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥२॥ वैशम्पायन उवाच । श्रद्दधानस्य राजेन्द्र वक्तव्यं भवतोऽनघ । चरितं लोकनाथस्य हरेरमिततेजसः ॥३॥ द्वारवत्यां निवसतो विष्णोरतुलतेजसः । समुद्रयात्रा संप्राप्ता तीर्थे पिंडारके नृप ॥४॥ उग्रसेनो नरपतिर्वसुदेवश्च भारत । निक्षिप्तौ नगराध्यक्षौ शेषाः सर्वे विनिर्गताः ॥ ५ ॥ पृथग्बलः पृथग् धीमांल्लोकनाथो जनार्दनः । गोष्ठ्यां पृथक्कुमाराणां नृदेवामित-तेजसां ॥६॥ गणिकानां सहस्राणि निःसृतानि नराधिप । कुमारैः

करने लगे ॥ ३६ ॥ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥

जनमेजयने कहा, कि–हे मुने ! मैंने अवश्य सुनने योग्य अंधक का वध सुन लिया और बुद्धिमान् महादेवजीने तीनों लोकोंमें शान्ति फैला दी थी (यह भी सुन लिया) १॥ अब आप चक्र-पाणि श्रीकृष्णके द्वारा निकुंभके दूसरे देहका वध जिस प्रकार और जिस लिये हुआ हो उसको कहिये ॥ २ ॥ वैशम्पायनजी ने कहा, कि–हे राजेन्द्र ! हे निष्पाप ! आप (सरीखे) श्रद्धालु पुरुषसे लोकोंके स्वामी अमिततेजस्वी हरिका चरित्र (अवश्य) कहना चाहिये ३हे राजन् ! द्वारकामें निवास करने वाले अमित तेजस्वी विष्णुको पिण्डारक तीर्थके लिए समुद्रयात्रा (करनेका अवसर) आगया ॥ ४ ॥ हे भारत ! राजा उग्रसेन और वसु-देव इन दो नगराध्यक्षोंको छोड़ कर बाकी सब जने चल दिये ५ अमित तेजस्वी कुमारोंकी गोष्ठीमें बुद्धिमान् लोकनाथ जनार्दन

सह वाष्णेयैः रूपवद्भिः स्वलंकृतैः ॥ ७ ॥ दैत्याभिवासं निर्जित्य यदुभिर्दृढविक्रमैः । वेश्या निवेशिता वीर द्वारवत्यां सहस्रशः ८ सामान्यास्ताः कुमाराणां क्रीडानार्यो महात्मनाम् । इच्छाभोग्या गुणैरेव राजन्या वेषयोषितः ॥९॥ स्थितिरेषा हि भैमानां कृता कृष्णेन धीमता । स्त्रीनिमित्तं भवेद्वैरं मा यदूनामिति प्रभो १० रेवत्या चैकया सार्धं बलो रेमेऽनुकूलया । चक्रवाकानुरागेण यदुश्रेष्ठः प्रतापवान् ॥११॥ कादम्बरीपानकलो भूषितो वनमालया । चिक्रीड सागरजले रेवत्या सहितो बलः ॥ १२ ॥ षोडशस्त्रीसहस्राणि जले जलजलोचनः । रमयामास गोविन्दः विश्वरूपेण सर्वदृक् ॥१३॥ अहमिष्टा मया सार्धं जले वसति केशवः । इति

अलग चले और हे राजन! बलदेवजी अलग चले ६ हे राजन्! रूपवान् अलंकृत वृष्णिवंशी कुमारोंके साथ सहस्रों गणिकाएँ निकलीं ॥ ७ ॥ हे वीर! दृढ़पराक्रमी यादवोंने दैत्योंके निवास स्थान समुद्रको जीतनेके अनन्तर द्वारकामें सहस्रों वेश्याएँ बसा दी थीं ॥ ८ ॥ वे क्षत्रियोंकी वेश्याएँ महात्मा कुमारोंके लिए सामान्य क्रीड़ा-नारियें थीं और गुणोंके कारण इच्छा भोग्य थीं ।९। हे प्रभो! बुद्धिमान् श्रीकृष्णने भीमवंशियोंकी स्थिति इस लिये ऐसी कर दी थी, जिससे यादवोंमें स्त्रियोंके लिये वैमनस्य न फैले ॥ १० ॥ यादवोंमें श्रेष्ठ प्रतापी बलदेवजी अपने अनुकूल रहने वाली एक रेवतीके साथ ही चकवेकी समान अनुराग रख कर रमण करते थे ॥ ११ ॥ कादम्बरी (सुरा) का पान करनेसे विकल और वनमालासे विभूषित बलदेवजी रेवती के साथ समुद्रके जलमें क्रीड़ा करने लगे १२ सब ओर देखने वाले कमललोचन अपनी सोलह सहस्र स्त्रियोंके साथ विश्वरूप से अर्थात् सबके साथ अलग २ रूप धारण कर रमण करने लगे ॥१३॥रात्रिमें नारायणको सब स्त्रियें यह मानने लगीं, कि-

ता मेनिरे सर्वा रात्रौ नारायणस्त्रियः ॥ १४ ॥ सर्वाः सुरत-
चिह्नांग्यः सर्वा सुरततर्पिताः । मानमूहुश्च ताः सर्वा गोविन्दे बहु-
मानजम् ॥ १५ ॥ अहमिष्टाऽहमिष्टेति स्निग्धे परिजने तदा ।
नारायणस्त्रियः सर्वा मुदा शशंसिरे शुभाः ॥१६॥ करगद्गिग-
चिन्हानि कुचाभरणानि ताः । दृष्ट्वा दृष्ट्वा जहृषिरे दर्पणे कमले-
क्षणाः ॥ १७ ॥ गोत्रमुद्दिश्य कृष्णस्य जगिरे कृष्णयोषितः ।
पिबन्त्य इव कृष्णस्य नयनैर्वदनाम्बुजम् ॥ १८ ॥ कृष्णार्पितमनो-
दृष्ट्यः कान्ता नारायणस्त्रियः । मनोहरतरा राजन्नभवन्नेकनि-
श्चयाः ॥१९॥ एकार्पितमनोदृष्ट्यो नेर्ष्यां ताश्चक्रिरेंगना । नारा-
यणेन देवेन तर्प्यमाणमनोरथाः ॥ २०॥ शिरांसि गर्वितान्यूहुः
सर्वा निरवशेषतः । वाल्लभ्यं केशवगतं वहन्त्यश्चारुदर्शनाः २१

केशव मेरे साथ जलमें क्रीडा कर रहे हैं,मैं उन्हें बड़ी प्यारी हूँ१४
सबमें सुरतके चिन्ह थे सब सुरतसे तृप्त होगई थी, इस लिए वे
गोविन्दने हमारा बड़ा सत्कार किया है, इस मानमें भर गई१५
नारायणकी शुभ स्त्रियें अपने स्नेही सम्बन्धियोंसे प्रशंसा करने
लगीं, कि- मैं उनकी प्यारी हूँ, मैं उनकी प्यारी हूँ १६ वे कमल-
नेत्रा स्त्रियें दर्पणमें अपने कुचों पर अंगुली और दांतोंके चिन्ह
देख कर प्रसन्न होने लगीं १७ कृष्णकी स्त्रियें अपने नेत्रोंसे
श्रीकृष्णके मुखकमलका पान करती हुई श्रीकृष्णका नाम ले २
कर गाने लगीं१८हे राजन् ! कृष्णमें ही मन और नेत्रोंको लगाने
वाली नारायणकी मनोहर स्त्रियें एक निश्चय वाली होनेसे और
भी मनोहर होगईं १९ नारायण देवने उनके मनोरथोंको पूर्ण
कर दिया था अतः एक पुरुषमें मन और दृष्टिको लगाने पर भी
उन्होंने ईर्षा नहीं की २० रमणीय दीखने वाली वे स्त्रियें केशव
की प्यारी होनेका ध्यान धर अपने शिरोंको पूर्ण गर्वसे हिलाने
लगीं २१ (इस प्रकार) आत्मवान् श्रीकृष्णने निरवरूपसे उन

ताभिस्तु सह चिक्रीड सर्वाभिर्हरिरात्मवान् । विश्वरूपेण विधिना समुद्रे विमले जले ॥ २२ ॥ उवाह सर्वगन्धाढ्यं स्वच्छं वारि महोदधिः । तोयं चालवणं मृष्टं वासुदेवस्य शासनात् ॥२३॥ गुल्फदघ्नं जानुदघ्नमूरुदघ्नमथापि वा । नार्यस्ताः स्तनदघ्नं वा जलं समभिकाङ्क्षितम् ॥२४॥ सिषिचुः केशवं पत्न्यो धीरा इव महोदधिम् । सिषेच ताश्च गोविन्दो मेघः फुल्ललता इव २५ अवलंब्य पराः कण्ठे हरिं हरिणलोचनाः । उपगूह स्त मां वीर पतामीत्यब्रुवन् स्त्रियः ॥ २६ ॥ काश्चित् काष्ठमयैस्तेरुः स्त्रीः सर्वाङ्गशोभनाः । क्रौंचबर्हिणनागानामाकारसदृशैः स्त्रियः॥२७। मकराकृतिभिश्चान्या मीनाभैरपि चापराः । बहुरूपाकृतिधरैः पुप्लुवुश्चापराः स्त्रियः ॥ २८ ॥ स्तनकुम्भैस्तथा तेरुः कुम्भैरिव

सब स्त्रियोंके साथ समुद्रके निर्मल जलमें क्रीड़ा की थी २२ उन वासुदेवकी आज्ञासे समुद्रने अपने जलको सब प्रकारकी सुगन्धों युक्त और अलवण (खारीपनरहित) कर दिया था ॥२३॥ वे स्त्रियें एड़िये तक घुटनों तक, जाँघों तक अथवा स्तनों तक मन चाहे जलमें खड़ी होकर केशवके ऊपर इस प्रकार जल उलीचने लगीं जिस प्रकार नदियें समुद्र पर जल डालती हैं और केशव भी उन पर इस प्रकार जल छिड़कने लगे.जिस प्रकार मेघ पुष्पित लताओं पर जल बरसाता है२४-२५ हरिणकी समान नेत्रोंवाली स्त्रियें श्रीकृष्णके कण्ठमें(हाथ) डाल कर कहने लगीं,कि हेवीर! मैं गिरी जाती हूँ मेरा आलिंगन करो, २६ (उस समय) कुछ सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्रियें मोर क्रौंच और हाथियोंके आकार वाली काठकी नावोंमें सवार हो जल पर तैरने लगीं॥२७॥और दूसरी स्त्रियें मगर और मच्छके आकार वाली तथा और भी अनेक प्रकारके आकारवाली नौकाओं पर चढ़ कर सैर करने लगीं २८ कुछ स्त्रियें श्रीकृष्णको प्रसन्न करती हुई अपने स्तनरूपी कुम्भोंसे

तथापराः । समुद्रसलिले रम्ये हर्षयन्त्यो जनार्दनम् ॥ २९ ॥
रराम सह रुक्मिण्या जले तस्मिन् मुदा युतः। येनैव भार्यायो-
गेन रमतेऽमरसत्तमः ॥ ३० ॥ तत्तदेव हि नाश्चक्रुर्मुदा नारायण-
स्त्रियः । तनुवस्त्रावृतास्तन्व्यो लीलयन्त्यस्तथापराः । चिक्रीडु-
र्वासुदेवस्य जले जलजलोचनाः ॥ ३१ ॥ यस्या यस्यास्तु यो
भावस्तां तां तेनैव केशवः । अनुप्रविश्य भावज्ञो निनायात्मवशं
वशी ॥३२॥ हृषीकेशोऽपि भगवान् हृषीकेशः सनातनः । बभूव
देशकालेन कान्तावशगतः प्रभुः ॥ ३३ ॥ कुलशीलसमोऽस्माकं
योग्योऽयमिति मेनिरे । अंशरूपेण वर्तन्तमंगनास्ता जनार्दनम् ३४
सदा दाक्षिण्ययुक्तं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् । कृष्णां भार्याश्च-
कमिरे भक्त्या च बहु मेनिरे ॥ ३५ ॥ पृथग्गोष्ठ्यः कुमाराणां

समुद्रके जलमें इस प्रकार तैरने लगीं, जिस प्रकार घड़ों पर तैर रही हों २९ उस जलमें श्रीकृष्ण (भी)प्रसन्न होकर रुक्मिणीके साथ रमण कर रहे थे, देवताओंमें श्रेष्ठ कृष्ण जिस २ प्रकार रमण करना चाहते थे नारायणकी स्त्रियें प्रसन्न होकर तिसी तिसी प्रकार करती थीं, कमलकी समान नेत्रों वालीं वासुदेवकी सूक्ष्मवस्त्रधारिणी दूसरी सूक्ष्माङ्गी स्त्रियें क्रीड़ा करके जलमें आनन्द मानने लगीं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ मनुष्योंके चित्तोंके भाव को जानने वाले वशी श्रीकृष्णने जिसका जो भाव था, उसको उसके चित्तमें प्रवेश कर जान लिया फिर उसको उसी भावसे वशमें करने लगे ३२ इन्द्रियोंके स्वामी प्रभु हृषीकेश भी देश और कालको देखकर स्त्रियोंके वशमें होगए ३३ श्रीकृष्णको कुलीन पुरुषोंके योग्य वर्ताव करते देखकर वह स्त्रियें समझने लगीं कि-यह हमारे कुल और शीलके समान ही योग्य हैं ३४ उस समय मुस्कुराकर भाषण करने वाले चतुरतायुक्त श्रीकृष्णको श्रीकृष्ण की भार्याएँ चाहने लगीं और भक्तिपूर्वक उनको बहुत मानने

प्रकाशं स्त्रीगणैः सह। अलंचक्रुर्जलं वीराः सागरस्य गुणाकराः ॥ ३६ ॥ गीतनृत्यविधिज्ञानां तासां स्त्रीणां जनेश्वर। तेजसाप्याहृतानां ते दाक्षिण्यात्तस्थिरे वशे ॥३७॥ शृण्वन्तश्चारुगीतानि तथा स्वभिनयान्यपि। तूर्याण्युत्तमनारीणां मुमुहुर्यदुपुङ्गवाः ॥ ३८ ॥ पञ्चचूडां ततः कृष्णः कौबेर्यश्च वराप्सराः। माहेन्द्रीश्चानयामास विश्वरूपेण हेतुना ॥ ३९ ॥ ताः प्रोवाचाप्रमेयात्मा सांत्वयित्वा जगत्प्रभुः। उत्थापयित्वा प्रणताः कृताञ्जलिपुटास्तथा ॥४०॥ क्रीडायुवत्यो भैमानां प्रविशध्वमशंकिताः मत्प्रियार्थं वरारोहा रमयध्वं च यादवान् ॥ ४१ ॥ दर्शयध्वं गुणान् सर्वान्नृत्यगीतैः रहःसु च। तथाऽभिनययोगेषु वाद्येषु विविधेषु च ४२ एवं कृते विधास्यामि श्रेयो वा मनसेप्सितम्।

लगीं ३५ गुणोंकी खान कुमारोंकी गोष्ठियें भी प्रकाशरूपसे स्त्रियोंको लेकर समुद्रके जलको अलंकृत करने लगीं ३६ हे जनेश्वर! वे तेजपूर्वक लाई हुई गीत और नृत्योंकी विधिको जानने वाली स्त्रियोंकी चतुरतासे उनके वशमें होगए ३७ यादवपुङ्गव उत्तम स्त्रियोंके मनोहर गीतोंको और तूर्योंको सुन कर तथा अभिनयोंको (देख कर) मोहित होगए ३८ कृष्ण विश्वरूप थे अर्थात् जीवोंके नियन्ता थे इस लिये उन्होंने पञ्चचूड़ा अप्सराको कुबेरके यहाँकी तथा इन्द्रके यहाँकी श्रेष्ठ अप्सराओंको भी बुलवा लिया ३९ जगत्के प्रभु अमेयात्मा कृष्णने उन हाथ जोड़ कर प्रणाम करती हुईं अप्सराओंको उठा कर समझाते हुए कहा, कि--॥४०॥ हे वरारोहाओं! तुम मेरा प्रिय करनेके लिये भीमवंशियोंकी क्रीड़ायुवती बन कर उनके पास जाओ और यादवोंको प्रसन्न करो४१तुम नृत्य गीत आदि सब गुणोंको दिखाओ और एकान्तमें अभिनय और अनेक प्रकारके बाजोंके गुणोंको दिखाओ ४२ ऐसा करने पर मैं तुम्हारा मनोवाञ्छित कल्याण

मच्छरीरसमा ह्येते सर्वे निरवशेषतः ४३ शिरसाज्ञां तु ताः सर्वाः प्रतिगृह्य हरेस्तदा । क्रीडायुवत्यो विविशुर्भैमानाप्सरोवराः ४४ ताभिः प्रविश्यमानाभिर्योषिद्भिः स महार्णवः । सौदामिनीभिर्नभसि घनवृन्दमिवाबभौ ॥४५॥ ता जले स्थलवत् स्थित्वा जगुश्चाप्यथ वादयन् । चक्रुश्चाभिनयं सम्यक् स्वर्गनारा इवांगनाः ॥४६ गन्धैर्माल्यैश्च ता दिव्यैर्वस्त्रैश्चायतलोचनाः । हेलाभिर्हावभावैश्च सहर्षैर्भैमनालस ताः ॥४७ । कटाक्षैरिंगितैर्हास्यैः केलिरोषैः प्रसादितैः । मनोनुकूलैर्भैमानां समाजह्रुर्मनांसि ताः ॥४८॥ उत्क्षिप्योत्क्षिप्य चाकाशं वायुस्कन्धान् बहूंश्च तान् । मदिरावशगान् भैमानानयन्ति वराप्सराः ॥ ४९ ॥ कृष्णोऽपि तेषां प्रीत्यर्थं विजह्रे विभाति प्रभुः । सर्वैः षोडशभिः सार्धं स्त्रीसहस्रैर्मुदा-

---

करूँगा, ये सब यादव मेरे शरीरकी समान हैं ॥ ४३ ॥ तब तो क्रीड़ायुवती श्रेष्ठ अप्सरायें श्रीकृष्णकी आज्ञाको शिर पर चढ़ा कर भीमवंशियोंके समीप घुसीं ।४४। हे निष्पाप ! उनके प्रवेश करते ही महासमुद्र इस प्रकार दमक उठा जिस प्रकार बिजलियों से आकाशमण्डल दमक उठता है ४५ वे जलमें स्थलकी समान खड़ी होकर गाने बजाने लगीं फिर स्वर्गकी समान ही समुद्रमें अभिनय करने लगीं ४६ वे विशालनेत्रा स्त्रियें । गन्धोंसे चन्दन से दिव्यवस्त्रोंसे हेलासे और मुस्कुरानेकी भंगियोंसे भीमवंशियों के मनको खेंचने लगीं ॥ ४७ ॥ तथा कटाक्ष, इशारे, हास्य, क्रीड़ाके समयका रोष और भीमवंशियोंके मनके अनुकूल प्रसन्न करने वाले पदार्थोंसे भीमवंशियोंके मनको हरने लगीं ॥ ४८ ॥ श्रेष्ठ अप्सरायें मदिराके वशमें हुए भीमवंशियोंको (आवह प्रवह आदि ऊपरके रमणीय) वायुके आवरणोंमें ले जाकर तथा आकाशमें लेजाकर उनको लौटा लातीं थीं ४९ प्रभु श्रीकृष्ण भी अपनी सोलह सहस्र स्त्रियोंका प्रिय करनेके लिये प्रसन्नता

न्वितः ॥ ५० ॥ प्रभावज्ञास्तु ते वीराः कृष्णस्यामिततेजसः । न जग्मुर्विस्मयं भैमा गांभीर्ये परमेस्थिताः ॥ ५१ ॥ केचिद्रैवतकं गत्वा पुनरायान्ति भारत । गृहाण्यन्ये वनान्यन्ये काङ्क्षितान्यरिमर्दन ॥ ५२ ॥ अपेयः पेयसलिलः सागरश्चाभवत्तदा । आज्ञया लोकनाथस्य विष्णोरतुलतेजसः ॥५३॥ अभावन् स्थलवच्चापि जले जलजलोचनाः । गृह्य हस्ते तथा नार्यो युक्ता मज्जंस्तथापि च॥५४॥भक्ष्यभोज्यानि पेयानि चोष्यं लेह्यन्तथैव च । बहुप्रकारं मनसा ध्याते तेषां भवत्युत ॥ ५५ ॥ अम्लानमाल्यधारिण्यस्ताः स्त्रियस्ताननिंदितान् । रहस्सु रमयांचक्रुः स्वर्गे देवरतानुगाः ॥ ५६ ॥ नौभिर्गृहप्रकाराभिश्चिक्रीडुरपराजिताः । तास्नानुलिप्तमुदिताः सायाह्नेऽन्धकवृष्णयः ॥ ५७ ॥ आयताश्व-

से आकाशमें विहार करने लगे ॥ ५० ॥ भीमवंशी वीर अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे, इस लिये उन्होंने कुछ विस्मय नहीं किया और परम गम्भीर बने रहे ॥ ५१ ॥ हे अरिमर्दन ! बहुतसे व्यक्ति अपने कांक्षित घर वन और रैवत पर्वत पर जाकर भी फिर लौट आते थे ॥ ५२ ॥ अतुल तेजस्वी लोकनाथ विष्णुकी आज्ञासे अपेय जल वाला समुद्र भी पीनेयोग्य जल वाला होगया था ॥ ५३ ॥ वे कमलकी समान नेत्रोंवाली स्त्रियें हाथ पकड़ कर जलमें स्थलकी समान चलने लगती थीं और कभी हाथ पकड़ कर गोता लगाती थीं ॥ ५४ ॥ उनके मनमें चाहते ही अनेक प्रकारका भक्ष्य भोज्य, पीने योग्य और चाटने योग्य पदार्थ आ जाता था ॥ ५५ ॥ विना कुम्हलाई हुई माला को धारण करने वाली वे स्त्रियें स्वर्गमें देवताओंकी क्रीड़ामें तत्पर होनेकी समान अनिन्दित यादवोंको एकान्तमें रमण कराने लगीं ॥५६॥ सायंकालके समय अपराजित अन्धक और वृष्णिवंशी उन उग्र (सुगन्धित) वस्तुओंका अनुलेपन करनेसे प्रसन्न

तुरस्राश्च वृत्ताश्च स्वस्तिकास्तथा । प्रसादा नौषु कौरव्य विहिता विश्वकर्मणा ॥ ५८ ॥ कैलासमन्दरच्छन्दा मेरुच्छन्दास्तथैव च । तथा नानाविहगच्छन्दास्तथेहामृगरूपिणः ॥ ५९ ॥ वैदूर्यतोरणै-श्चित्राश्चित्राभिर्मणिभक्तिभिः । मसारगल्वर्कपयैश्चित्रभक्तिशतै-रपि ॥ ६० ॥ आक्रीडगरुडच्छन्दाश्चित्राः कनकरीतिभिः । क्रौञ्च-च्छन्दा शुकच्छन्दा गजच्छन्दास्तथापरे ॥ ६१ ॥ कर्णधारैर्गृही-तास्ता नावः कार्तस्वरोज्ज्वलाः । सलिलं शोभयामासुः साग-रस्य महोर्मिमत्॥६२॥समुच्छ्रितैः सितैः पोतैर्यानपात्रैस्तथैव च । नौभिश्च झिल्लिकाभिश्च शुशुभे वरुणालयः ६३ पुराण्याकाश-गानीव , गन्धर्वाणामितस्ततः । बभ्रमुः सागरजले भ्रमयानानि

हो घरकी समान बनी हुई श्वेत नावोंमें क्रीड़ा करने लगे ५७ हे कुरुवंशी राजन् ! विश्वकर्माने नौकाओंमें चौड़े, चौकोने, गोल, और स्वस्तिकाकार वाले भवन बना दिये थे ॥ ५८ ॥ कैलास अथवा मन्दराचलकी समान छन्द (यथेष्ट आकार) वाली, तथा मेरुपर्वतकी समान छन्द वाली, तथा अनेक प्रकारके पक्षियोंके रूप वालीं, और ईहामृगोंके रूप वालीं, वैदूर्यके तोरणोंसे और विचित्र मणियोंके जड़ावसे और मरकतमणि चन्द्रकान्त मणियों से बनाए हुए सैंकड़ों चित्रोंसे चित्रित, गरुड़की समान आकार वाली, कनककी कारीगरीसे विचित्र, क्रौंच शुक और हाथीके आकार वाली, मल्लाहोंसे पकड़ी हुई सुवर्णकी समान उज्ज्वल नौकाएँ समुद्रके बड़ी २ लहरों वाले जलको सुशोभित करने लगीं ॥ ५९—६२ ॥ वरुणका स्थान समुद्र (जलमें आखेट करने योग्य क्षुद्रनौकारूप) पोतोंसे, (बड़ी २) नौकाओंसे, और (भवनकी समान बनी हुई नृत्य लीला आदिके योग्य लंबी चौड़ी) झिल्लिका नाम वाली नौकाओंसे शोभा पाने लगा ॥ ६३ ॥ आकाशमें इधर उधर फिरने वाले गंधर्वनगरोंकी समान भ्रम-

सर्वतः ॥ ६४ ॥ नन्दनच्छन्दयुक्तेषु यानपात्रेषु भारत । नन्दन-प्रतिमं सर्वं विहितं विश्वकर्मणा ॥ ६५ ॥ उद्यानानि सभावृक्षाः दीर्घिकाः स्यन्दनानि च । निवेशितानि शिल्पानि तादृशान्येव सर्वथा ॥ ६६ ॥ स्वर्गच्छन्देषु चान्येषु समासात् स्वर्गसन्निभाः । नारायणाज्ञया वीर विहिता विश्वकर्मणा ॥ ६७ ॥ वनेषु रुरुवुर्हृद्यं मधुरं चैव पक्षिणः । मनोहरतरं चैव भैमानामतितेजसाम् ॥ ६८ ॥ देवलोकोद्भवाः श्वेता विलेपुः कोकिलास्तदा । मधुराणि विचित्राणि यदूनां काङ्क्षितानि च ॥ ६९ ॥ चन्द्रांशुसमरूपेषु हर्म्यपृष्ठेषु बर्हिणः । ननृतुर्मधुरारावाः शिखण्डिगणसम्वृताः ॥ ७० ॥ पताका यानपात्राणां सर्वाः पक्षिगणायुताः । भ्रमरैरुपगीताश्च स्रग्दामासक्तवासिभिः ॥ ७१ ॥ नारायणाज्ञया

संशियोंके यान समुद्रके जलमें चारों ओर घूमने लगे ॥ ६४ ॥ विश्वकर्माने नन्दनवनकी समान बनाई हुई नौकाओंमें सब काम नन्दन वनकी समान ही बना दिया था ६५ उनमें बाग बगीचे सभा तरु और बावड़ी तथा रथ आदि शिल्पसे वैसे ही बना दीं थीं ॥ ६६ ॥ हे वीर ! नारायणकी आज्ञासे विश्वकर्माने स्वर्गकी समान बनाई हुई नौकाओंमें संक्षेपसे स्वर्गकी सारी सामग्री रच दीं थीं ॥ ६७ ॥ अतितेजस्वी भीमवंशियोंकी (नौकाओंमें बने हुए) वनोंमें पक्षी हृदयप्रिय मनोहर और मधुर वाणीका उच्चारण करने लगे ६८ देवलोकमें उत्पन्न हुई श्वेत कोयलें यादवोंकी चाहीं हुई विचित्र मधुर आलाप अलापने लगीं ६९ चन्द्रमाके किरणोंकी समान रूप वाले महलकी छतों पर मयूर मधुरतासे कूकने लगे ॥ ७० ॥ यानपात्र नामक नौकाओंकी सम्पूर्ण पक्षियोंसे युक्त ध्वजाएँ मालाकी आसक्तिसे खिचने वाले भौरोंसे व्याप्त होगईं ॥७१॥ नारायणकी आज्ञासे वृक्ष बहुतसे पुष्पोंको बरसाने लगे और ऋतुएँ भी आकाशमें विराजमान हो

वृत्ताः पुष्पाणि मुमुचुर्भृशम् । अनवश्यारूपाणि विहायसि गताः स्तदा ॥७२॥ ववौ मनोहरो वातो रतिखेदहरः सुखः । रजोभिः सर्वपुष्पाणां पृक्तश्चन्दनशैत्यभृत् ॥ ७३ ॥शीतोष्णमिच्छतां तत्र बभूव वसुधापते । वासुदेवप्रसादेन भैमानां क्रीडतां तदा ॥७४॥ न क्षुत्पिपासा न ग्लानिर्न चिंता शोक एव च । आविवेश तदा भैमान् प्रभावाच्चक्रपाणिनः ॥ ७५ ॥ अप्रशान्तमहातूर्या गीत-नृत्योपशोभिताः । बभूवुः सागरक्रीडा भैमानाममितौजसाम् ७६ बहुयोजनविस्तीर्णं समुद्रं सलिलाशयम् । कृत्वा निक्रीडुरिंद्राभा भैमाः कृष्णाभिरक्षिताः ॥ ७७ ॥ परिच्छदस्यानुरूपं यानपात्रं महात्मनः । नारायणस्य देवस्य विहितं विश्वकर्मणा ॥ ७८ ॥ रत्नानि यानि त्रैलोक्ये विशिष्टानि विशाम्पते । कृष्णस्य तानि सर्वाणि यानपात्रेऽतितेजसः ॥७९॥पृथक्पृथङ्निनासादन स्त्रीणां

मनोहर रूपोंको दिखाने लगीं ॥ ७२ ॥ सब पुष्पोंके परागोंसे भरा हुआ और चन्द्रमाकीसी शीतलताको धारण करने वाला मनोहर वायु खेदको बिलकुल दूर करता हुआ चलने लगा ७३ हे राजन्! तहाँ पर क्रीड़ा करने वाले यादवोंको वासुदेवके प्रसाद के कारण गरमी सर्दी चाहने पर ही लगती थीं ॥ ७४ ॥ उस समय चक्रपाणि श्रीकृष्णके प्रभाव-वश भीमवंशियोंमें भूख प्यास भय ग्लानि चिन्ता और शोक न घुस सका ॥७५॥ अतितेजस्वी भीमवंशियोंके समुद्र खेल गति और नृत्योंसे शोभित होगए और उनमें महातूर्य बजने लगे ॥ ७६ ॥ कृष्णसे रक्षित इन्द्रकी समान आभा वाले भीमवंशी जलके आशय समुद्रको कई योजनमें घेर कर क्रीड़ा करने लगे ॥ ७७ ॥ विश्वकर्माने महात्मा नारायण का यान (सोलह सहस्र स्त्रियोंके अर्थात्) परिच्छदके अनुरूप बनाया था ॥ ७८ ॥ हे राजन्! त्रिलोकीमें जितने बढ़िया रत्न हैं वे सब अतितेजस्वी कृष्णकी नौकामें विद्यमान थे ॥ ७९ ॥

कृष्णस्य भारत । मणिवैडूर्यचित्रास्ताः कार्तस्वरविभूषिताः॥८०॥ सर्वर्तुकुसुमाकीर्णाः सर्वगन्धाधिवासिताः । यदुसिंहैः शुभैर्जुष्टाः शकुनैः स्वर्गवासिभिः ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

वैशम्पायन उवाच । रेमे बलश्चन्दनपंकदिग्धः कादम्बरीपानकलः पृथुश्रीः । रक्तेक्षणो रेवतिमाश्रयित्वा प्रलम्बबाहुस्स्खलितः प्रपातः ॥ १ ॥ नीलाम्बुदाभे वसने वसानश्चन्द्रांशुगौरो मदिराविलाक्षः । रराज रामोऽम्बुदमध्यमेत्य सम्पूर्णबिम्बो भगवानिवेन्दुः ॥ २ ॥ चामैककर्णामलकुण्डलश्रीः स्मेरन्मनोज्ञाब्जकृता-

---

हे भरतवंशी राजन् ! कृष्णकी स्त्रियोंके लिए मणि और वैडूर्यसे चित्रित और सुवर्णसे भूषित (निवास) डेरे अलग २ पड़े हुए थे ॥८०॥ उनमें सब ऋतुओंके फूल भर रहे थे और सब प्रकारकी सुगंधित वस्तुओंसे वे बसे हुए थे, स्वर्गवासी शुभ पक्षी उनका सेवन कर रहे थे और यादवोंमें सिंहकी समान यादव उनकी ओर प्रेमपूर्वक देख रहे थे ॥८१॥ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय चन्दनके रसको लगाए हुए, कादम्बरी (सुरा) का पान करनेसे विह्वल, महाशोभावान् लम्बी भुजाओं वाले लाल२ नेत्रों वाले अड़खड़ाते हुए रेवतीका आश्रय कर रमण करने लगे ॥ १ ॥ नीले मेंघोंकी आभाकी समान दो वस्त्रोंको धारण करने वाले और चन्द्रमाकी किरणों की समान आभा वाले तथा मदिरासे गदैले नेत्रों वाले बलराम जी मेंघोंके बीचमें आए हुए पूर्ण बिम्ब वाले चन्द्रमाकी समान प्रतीत होने लगे ॥ २ ॥ एक बायें कानमें निर्मल कुण्डलोंकी शोभा को धारण करने वाले, मनोहर कमलका कर्णफूल पहिरे हुए बल-

वतंसः । तिर्यक्कटाक्षं प्रियया मुमोद रामो मुखं चाप्यभिवीक्ष्य-
माणः ॥ ३ ॥ अथाज्ञया कंसनिकुम्भशत्रोरुदाररूपोऽप्सरसां
गणः सः । दृष्टुं मुदा रेवतिमाजगाम वेलालयं स्वर्गसमान-
मृद्धया ॥ ४ ॥ तां रेवतीं चाप्यथ चापि रामं सर्वा नमस्कृत्य
वरांगयष्ट्यः । वाद्यानुरूपं ननृतुः सुगात्र्यः समन्ततोन्या जगिरे
च सम्यक् ॥५॥ चक्रुस्तथैवाभिनयेन लब्धं यथावदेषां प्रियमर्थ-
युक्तम् । हृद्यानुकूलं च बलस्य तस्य तथाज्ञया रैवतराजपुत्र्याः ६
चक्रुर्हसन्त्यश्च तथैव रासं तद्देशभाषाकृतिवेषयुक्ताः । सहस्त-
तालं ललितं सलीलं वरांगना मङ्गलसम्भृताङ्ग्यः ॥७॥ संकर्षणा-
धोक्षजनन्दनानि संकीर्तयन्त्योऽथ च मङ्गलानि । कंसप्रलम्बादि-
वधं च रम्यं चाणूरघातं च तथैव रंगे ॥ ८ ॥ यशोदया च

देवजी अपनी प्रियाके तिरछे कटाक्षको देख कर मुस्कुराकर प्रसन्न
होने लगे ३ इसके अनन्तर कंस और निकुम्भके शत्रु श्रीकृष्ण
की आज्ञासे महारूपवान् अप्सराओंका समूह रेवतीको देखनेकी
इच्छासे ऋद्धिमें स्वर्गकी समान (बलदेवजीके) समुद्रकी ओर
आया ॥ ४ ॥ सुन्दर मेरुदण्ड वाली वे सब स्त्रियें बलदेव और
रेवतीके पास आ उनको प्रणाम कर बाजों (के बजने) के अनु-
सार नाचने लगीं, दूसरी सुन्दरांगी स्त्रियें भली प्रकार गाने
लगीं ॥ ५ ॥ (आज्ञा पाने पर) इनको प्रसन्न करनेके लिए
वे अपनी शिक्षानुसार रैवतराजकी पुत्री और बलदेवजीके मन
को प्रसन्न करने वाला अभिनय करने लगीं ॥ ६ ॥ मांगलिक
वस्तुओंसे व्याप्त शरीर वालीं वे वरांगनाएँ उनके देशकी भाषा
वेष और कुशलताओंसे युक्त होकर हँसती हुई गाना गानेलगीं ७
वे बलराम और श्रीकृष्णको प्रसन्न करने वाले गीत गाने लगीं,
कंस प्रलम्ब आदिका वध, रंगस्थलमें चाणूरका रमणीय वध;
यशोदाका यशको प्रसिद्ध करना दामोदरका दामोदरत्व, अरिष्ट

प्रथितं यशोथ दामोदरत्वं च जनार्दनस्य । वधं तथारिष्टकधेनु-
काभ्यां व्रजे च वासं शकुनीवधं च ॥ ९ ॥ तथा च भग्नौ यम-
लार्जुनौ तौ सृष्टिं वृकाणामपि वत्सयुक्ताम् । स कालियो नाग-
पतिर्ह्रदे च कृष्णेन दान्तश्च यथा दुरात्मा ॥ १० ॥ शंखह्रदा-
दुद्धरणं च वीर पद्मोत्पलानां मधुसूदनेन । गोवर्धनोऽर्थे च गवां
धृतोऽभूद्यथा च कृष्णेन जनार्दनेन ॥ ११ ॥ कुब्जा यथा गंधक-
पीषिकां च कुब्जत्वहीनां कृतवांश्च कृष्णः । अवामनं वामनकं
च चक्रे कृष्णो यथात्मानमजोऽप्यनिंद्यः ॥ १२ ॥ सौभप्रणाशं च
हलायुधत्वं वधं मुरस्याप्यथ देवशत्रोः । गन्धारकन्ये वहने
नृपाणां रथे तथा योजनमूर्जितानाम् ॥ १३ ॥ ततः सुभद्राहरणे
जयं च युद्धे च बालाहकजम्बुमाले । रत्नप्रवेकं च युधाजितैर्यत्
समाहृतं शक्रसमक्षमासीत् ॥ १४ ॥ एतानि चान्यानि च चारु-

और धेनुकका वध; व्रजमें निवास, शकुनी-पूतना-का वध,
यमल और अर्जुन नामक पेड़ोंका तोडना, बछड़ोंका हरण करने
वाली भेड़ियोंकी सृष्टि; और कृष्णने सर्पपति दुरात्मा कालियका
सरोवरमें जिस प्रकार दमन किया था वह घटना, और हे वीर!
मधुसूदनके द्वारा कमलोंका उद्धार, और गौओंके लिए जनार्दन
कृष्णने जिस प्रकार गोवर्धन पर्वतको धारण किया था, कृष्णने
चन्दन घिसने वाली कुब्जाका जिसप्रकार कूबड़ निकाल दिया था
और अनिंदित अज कृष्णने जिस प्रकार स्वयं बौने न होने पर
भी वामनका रूप धारण किया था, सौभका नाश; हलायुधपना,
देवशत्रु मुरका वध, गन्धारकन्याका हरण करते समय बलवान्
राजाओंका रथमें लगाना, सुभद्राहरणमें विजय, और (पद्म-
पुराणमें प्रसिद्ध)बलाहक और जम्बमालिके युद्धमें विजय और
युद्धमें जीत कर इन्द्रके सामने रत्नप्रवेक (कुण्डलों) का लाना-
इनको तथा और भी बहुतसी प्रीति उत्पन्न करने वाली घटनाओं

रूपो जगुः स्त्रियः प्रीतिकराणि राजन् । संकर्षणाधोक्षजहर्षणानि चित्राणि चानेककथाश्रयाणि ॥१५॥ कादम्बरीपानमदोत्कटस्तु बलः पृथुश्रीः स चुकूर्द रामः । सहस्रतालं मधुरं सपं च सभार्यया रेवतराजपुत्र्या ॥ १६ ॥तं कूर्दमानं मधुसूदनश्च दृष्ट्वा महात्मा च मुदान्वितोऽभूत् । चुकूर्द सत्यासहितो महात्मा हर्षागमार्थं च बलस्य धीमान् ॥ १७ ॥ समुद्रयात्रार्थमथागतश्च चुकूर्द पार्थो नरलोकवीरः । कृष्णेन सार्धं मुदितश्चुकूर्द सुभद्रया चैव वरांगयष्ट्या ॥ १८ ॥ गदश्च धीमानथ सारणश्च प्रद्युम्नसाम्बौ नृप सात्यकिश्च । सत्राजितीसूनुरुदारवीर्यः सुचारुदेष्णश्च सुचारुरूपः ॥ १९ ॥ वीरौ कुमारौ निशठोल्मुकौ च रामात्मजौ वीरतमौ चुकूर्दतुः । अक्रूरसेनापतिशंकरश्च तथा-

---

को वे मनोहर रूपवाली स्त्रियों गाने लगीं, अनेक कथाओंसे भरा हुआ यह विचित्र गाना उन्होंने श्रीकृष्ण और बलरामको प्रसन्न करनेके लिए गाया था ८-१५ तदनन्तर परमशोभासंपन्न और कादम्बरीका पान करनेसे मदमें भरे हुए बलराम अपनी प्रिय रेवतराजकी पुत्रीको साथ ले मधुर और सपतालसे गाना गाने लगे ॥ १६ ॥ महात्मा मधुसूदन बलरामजीको गाते देख कर प्रसन्न हुए फिर बुद्धिमान् कृष्ण बलदेवजीके हर्षको बढ़ानेके लिए सत्यभामाके साथ अपने आप भी गाना गाने लगे ॥ १७ ॥ उस समय समुद्रयात्राके लिए आया हुआ मर्त्यलोकमें वीर पुरुष अर्जुन भी सुन्दर कमर वाली सुभद्राके साथ और कृष्णके साथ गाना गाने लगा ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर बुद्धिमान् गद सारण प्रद्युम्न और साम्ब, सात्राजिती (सत्यभामा) का पुत्र सुन्दर रूप वाला महाबली चारुदेष्ण, बलरामजीके पुत्र महाबली वीर निशठ और उल्मुक तथा अक्रूरका सेनापति शंकर तथा दूसरे भी प्रधान प्रधान भोजवंशी गाने लगे ॥ १९ ॥ २० ॥

परे भीमकुलप्रधानाः ॥ २० ॥ तद्यानपात्रं ववृधे तदानीं कृष्ण-प्रभावेन जनेन्द्रपुत्र । आपूर्णमापूर्णमुदारकीर्ते चुकूर्दयद्भिर्नृप भीममुख्यैः ॥२१॥तौ रासरक्तैरतिकूर्दमानैर्यदुप्रवीरैरमरप्रकाशैः । हर्षान्वितं वीर जगत्तथाभूच्छेमुश्च पापानि जनेन्द्रसूनो ॥२२॥ देवोतिथिस्तत्र च नारदोऽथ प्रियप्रियार्थं मुरकेशिशत्रोः । चुकूर्द मध्ये यदुसत्तमानां जटाकलापाङ्कलितैकदेशः ॥ २३ ॥ रास-प्रणेता मुनिराजपुत्र स एव तत्राभवदप्रमेयः । मध्ये च गत्वा स चुकूर्द भूयो हेलाविकारैः सविडम्बितांगैः ॥ २४ ॥ स सत्य-भामामथ केशवं च पार्थं सुभद्रां च बलं च देवम् । देवीं तथा रेवत-राजपुत्रीं संदृश्य संदृश्य जहास धीमान् ॥ २५ ॥ ता हासयामास सुधैर्ययुक्तास्तैस्तैरुपायैः परिहासशीलः । चेष्टानुकारैर्हसि-

हे जनेद्रपुत्र ! श्रीकृष्णके प्रभावसे गान करने वाले मुख्य मुख्य भीमवंशियोंसे गूँजती हुई नौका आगेको बढ़ने लगीं ॥ २१ ॥ हे वीर ! देवताओंकी समान प्रकाश फैलाने वाले रासमें आसक्त होकर गाना गाते हुए यदुप्रवीरोंसे जगत् भी हर्षमें भर गया और हे राजपुत्र ! पाप भी शान्त होने लगे ॥२२॥ उस समय मुर और केशी दैत्यके नाशक श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिए देवताओंके अतिथि नारदभी यादवोंके बीचमें गाना गाने लगे उस समय जटायें उनके अगों पर बिखरने लगीं ॥ २३ ॥ हे राजपुत्र ! वह अप्रमेय मुनि रासके प्रणेता बन गए और लीलाओंका अनुकरण कर अपने अङ्गोंको चला कर रासके मध्यमें पहुँच गाने लगे२४बुद्धिमान् नारदजी सत्यभामाको केशव को सुभद्राको अर्जुनको और रेवतराजकी पुत्री देवी रेवतीको देख देख कर हँसने लगे ॥ २५ ॥ वह परिहास करनेके स्वभाववाले बुद्धिमान् नारदजी अतिधैर्यधारिणी इन स्त्रियोंको, चेष्टाओंका अनुकरण करके, मुस्कुरानेका अनुकरण करके और लीलाओं

-तानुकारैर्लीलानुकारैरपरैश्च धीमान् ॥ २६ ॥ अभाषितं किंचि-
द्विचोपलक्ष्य नादाति नादान् भगवान् मुमोच । हसन् विहासांश्च
जहास हर्षाद्धास्यागमे कृष्णविनोदनार्थम् ॥ २७ ॥ कृष्णाज्ञया
सातिशयानि तत्र यथानुरूपाणि ददुर्युवत्यः । रत्नानि वस्त्राणि
च रूपवन्ति जगत्प्रधानानि नृदेवसूनो ॥ २८ ॥ माल्यानि च
स्वर्गसमुद्भवानि सन्तानदामान्यतिमुक्तकानि । सर्वर्तुकान्यप्य-
नर्घ्यस्तदानीं ददुर्हरेरिंगितकालतज्ज्ञाः ॥ २६ ॥रासावसाने त्वथ
गृह्य हस्ते महामुनिं नारदमप्रमेयः । पपात कृष्णो भगवान् समुद्रे
सात्राजितिं चार्जुनमेव चाथ ॥ ३० ॥ उवाच चामेयपराक्रमोथ
शैनेयमीषत् प्रहसन् पृथुश्रीः । द्विधा कृतास्मिन् पतताशु भूत्वा
क्रीडा जले नोऽस्तु सहांगनाभिः ॥ ३१ ॥ सरैवतीकोऽस्तु वलो-

की नकल करके इस प्रकार (उन २) अनेक उपायोंसे, हँसाने
लगे ॥ २६ ॥ भगवान् नारदजी (बोलने) गानेकी ओर कुछ
ध्यान देकर बड़ी जोरसे नाद करने लगे और हास्यका अवसर
आने पर कृष्णके विनोदके लिए मसखरेपनकी बात कहकर हर्ष-
पूर्वक हँसने लगे ॥ २७ ॥ हे राजपुत्र!कृष्णकी आज्ञासे युवतियों
ने जगत्में‌के मुख्य २ रत्न रूपवान् वस्त्र अधिकतासे देना आरंभ
कर दिए ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णके इशारे और समयको समझने
वाली स्त्रियोंने (नारदजीको) स्वर्गमें उत्पन्न हुए चन्दन, अति-
मुक्तक और सन्तान वृक्ष तथा सब ऋतुओंमें होने वाले पुष्प
लाकर दिये ॥ २६ ॥ अप्रमेय भगवान् विष्णु रासके अन्तमें
नारद मुनिको हाथसे पकड़ कर सत्यभामाके साथही समुद्रके कूद
पड़े, तदनन्तर महाशोभायमान अमेय पराक्रमी श्रीकृष्णने मुसकरा
कर अर्जुनसे और शिनिवंशी सात्यकिसे कहा, कि—आप सब
भी शीघ्र ही कूद आइये और स्त्रियोंसहित दो भागोंमें बँट कर
जलक्रीड़ा करिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस समुद्रके जलमें मेरे आधे

र्धनेता पुत्रा मदीयाश्च सहार्धभैमाः । भैमार्थमेवाथ बलात्मजाश्च मत्पक्षिणः सन्तु समुद्रतोये ॥ ३२ ॥ आज्ञापयामास ततः समुद्रं कृष्णः स्मितं प्राञ्जलिनं प्रतीतः । सुगन्धतोयो भव मृष्टतोयस्तथा भव ग्राह विवर्जितश्च ॥ ३३ ॥ दृश्या च ते रत्नविभूषिता तु सा वेलिका भूरथ पत्सुखा च । मनोऽनुकूलं च जनस्य यत्तत् प्रयच्छ विज्ञास्यसि मत्प्रभावात् ॥ ३४ ॥ भवस्व पेयोप्यथ चेष्टपेयो जनस्य सर्वस्व मनोऽनुकूलः । वैदूर्यमुक्तामणिहेमचित्रा भवन्तु मत्स्यास्त्वयि सौम्यरूपाः ॥ ३५ ॥ पिबस्व च त्वं कमलोत्पलानि सुगन्धसुस्पर्शरसक्षमाणि । षट्पादजुष्टाणि मनोहराणि कीलालवर्णैश्च समन्वितानि ॥ ३६ ॥ मैरेयमाध्वीकसुरासवानां कुम्भाश्च पूर्णान् स्थपयस्व तोये । जाम्बूनदं पान-

पुत्रोंके और आधे भीमवंशियोंके नेता रेवती और बलदेव बनें, और बाकी बचे हुए आधे भीमवंशी और वसुदेवजीके पुत्र मेरे पक्षमें होजाँय ॥ ३२ ॥ उस समय हाथ जोड़ कर मुसकुराते हुए समुद्रको विश्वस्त हुए श्रीकृष्णने आज्ञा दी; कि—तुम अब सुगंधित और स्वच्छ जल वाले और ग्राहरहित होजाओ ॥ ३३ ॥ तुम मेरे प्रभाववश अपने तटकी भूमिको रत्नोंसे विभूषित दीखने वाली और पैरोंको सुखदेने वाली बनादो और तुम मेरे प्रभाव को जानते हो, इस लिये जो वस्तु मनुष्योंके मनके अनुकूल हों उन सबको दो ॥ ३४ ॥ तुम सबके मनके अनुकूल पीने योग्य और यथेष्ट पीने योग्य जल वाले बन जाओ और तुम्हारे मत्स्य इस समय मोती मणि और वैदूर्य मणि तथा सुवर्णसे चित्रित मनोहर रूप वाले होजाँय ॥ ३५ ॥ और तुम अपने कमलोंको रक्त वर्ण वाले, अच्छी सुगंध, सुन्दर स्पर्श और रसोंसे व्याप्त तथा भौंरोंसे सेवित होनेके कारण मनोहर बना लो ॥ ३६ ॥ तुम मैरेय माध्वी सुरा और आसवोंसे भरे हुए घड़ोंको अपने जलमें

निमित्तमेषां पात्रं पयुर्येषु ददस्व भैमाः ॥ ३७ ॥ पुष्पोच्चयैर्वासितशीततोयो भवाप्रमत्तः खलुतोयराशे । यथा व्यलीकं न भवेद्यदूनां सस्त्रीजनानां कुरु तत्प्रयत्नम् ॥ ३८ ॥ इतीदमुक्त्वा भगवान् समुद्रं ततः प्रचिक्रीड सहार्जुनेन । सिषेच पूर्वं नृप नारदं तु सात्राजिती कृष्णमुखेङ्गितज्ञा ॥३९॥ ततो मदावर्जितचारुदेहः पपात रामः सलिले सलीलम् । साकारमालम्ब्य करं करेण मनोहरां रैवतराजपुत्रीम् ॥ ४० ॥ कृष्णात्मजा ये त्वथ भैममुख्या रामस्य पश्चात् पतिताः समुद्रे । विरागवस्त्राभरणाः प्रहृष्टाः क्रीडाभिरामा मदिराविलाक्षाः ॥ ४१ ॥ शेषास्तु भैमा हरिमप्युपेताः क्रीडाभिरामा निशठोल्मुकाद्याः । विचित्रवस्त्रा-

स्थापित कर दो और जिनमें भीमवंशी पी सकें, ऐसे सुवर्णके पात्र दो ॥ ३७ ॥ तुम अपने शीतल जलको पुष्पोंके ढेरसे बसा लो, और हे जलोंकी राशि समुद्र ! तुम अब सावधान होजाओ, यादवोंके और उनकी स्त्रियोंके साथ अन्याय न हो तैसा प्रयत्न करो ॥३८॥ भगवान् समुद्रसे इस प्रकार कह कर अर्जुनके साथ क्रीड़ा करने लगे, इसी समय कृष्णके मुखके इंगितको जानने वाली सत्राजित् की पुत्री सत्यभामाने नारदजीके ऊपर जल छिड़कना आरंभ कर दिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मदवर्जित होनेके कारण सुन्दर शरीर वाले बलदेवजी रैवतराजकी पुत्री मनोहरा रेवतीके नाचते हुए हाथको अपने हाथसे पकड़ क्रीड़ा करते हुए समुद्रमें कूद पड़े ॥ ४० ॥ भीमवंशियोंमें प्रधान कृष्णके पुत्र बलरामजीके समुद्रमें कूदनेके उपरान्त समुद्रमें कूद पड़े, उस समय उनके वस्त्र रंगरहित (श्वेत) थे और उनके नेत्र मदिराके कारण गड़बड़ होरहे थे, वह क्रीड़ाके लिए आनन्दित होकर प्रसन्न हो रहे थे ४१ बाकी बचे हुए क्रीड़ामें आनन्द मानने वाले विचित्र वस्त्र और आभूषणधारी और सन्तानके चन्दनसे लिपे हुए कंठ

भरणाश्च मत्ताः सन्तानमाल्याहृतकण्ठदेशाः ॥४२॥ वीर्योपपन्नाः कृतचारुचिन्हा विलिप्तगात्रा जलपात्रहस्ताः। गीतानि तद्देशमनोहराणि स्वरोपपन्नान्यथ गायमानाः ॥४३॥ ततः प्रचक्रुर्जलवादितानि नानास्वराणि प्रियवाद्यघोषाः। सहाप्सरोभिस्त्रिदिवालयाभिः कृष्णाज्ञया वेशवधूशतानि ॥ ४४ ॥ आकाशगंगाजलवादनज्ञाः सदा युवत्यो मदनैकचित्ताः। अवादयंस्ता जलदर्दुरांश्च वाद्यानुरूपं जगिरे च हृष्टाः ॥ ४५ ॥ कुशेशयाकोशविशालनेत्राः कुशेशयापीडविभूषिताश्च। कुशेशयानां रविबोधितानां जहुः श्रियं ताः सुरवारमुख्याः ॥ ४६ ॥ स्त्रीवक्त्रचन्द्रैः सकलेन्दुकल्पै रराज राजंच्छतशः समुद्रः। यदृच्छया देवविधानतो वा नभो यथा चन्द्रसहस्रकीर्णम् ॥ ४७ ॥ समुद्र-

वाले मदमत्त निशठ उन्मुक्त आदि कृष्णके पास आगए ॥४२॥ तदनन्तर कृष्णकी आज्ञा होने पर वीर्यवती सुन्दरचिन्हधारिणी, लिपे हुए अंगों वाली हाथमें जलके पात्रोंको धारण किये हुए और उस देशमें मनोहर लगने वाले गीतोंको स्वरसे गाती हुई बाजोंका प्रिय घोष करने वाली सैंकड़ों वधुएँ स्वर्गमें रहने वाली अप्सराओंके साथ अनेक स्वर वाले जलके बाजोंको बजाने लगीं ॥ ४३ ॥४४॥ सर्वदा युवती रहने वालीं और कामदेवमें चित्तको सर्वदा लगाये रखने वालीं आकाशगंगाके जलको बजाने में चतुर स्त्रियें जलदर्दुर नामक बाजोंको बजाने लगीं ॥ ४५ ॥ कमलकी कलिकाओंकीसी विशाल नेत्रों वाली और कमलकी कलियोंसे विभूषित मुकुटवालीं और देवताओंकी समान (दुर्गंधि रहित) मुख वालीं वे स्त्रियें सूर्यसे खिलने वाले कमलोंकी शोभा को धारण करने लगीं ॥४६॥ जैसे प्रारब्धवश सैंकड़ों चन्द्रमाओंसे घिरकर आकाश शोभा पाने लगे तैसे सैंकड़ों पूर्ण चन्द्रमारूपी स्त्रियोंके मुखरूपी चन्द्रमाओंसे समुद्र शोभा पानेलगा ४७

मेघः स रराज राजंच्छतहृदास्त्रीप्रभाभिरामः । सौदामिनी-
भिन्न इवाम्बुनाथो देदीप्यमानो नभसीव मेघः ॥ ४८ ॥ नारा-
यणश्चैव स नारदश्च सिषेच पक्षे कृतचारुचिन्हः । बलं सपक्षं
कृतचारुचिन्हं स चैव पक्षं मधुसूदनस्य ॥ ४९ ॥ हस्तप्रमुक्तै-
र्जलयन्त्रकैश्च महृष्टरूपाः सिषिचुस्तदानीम् । रागोद्धता वारुणि-
पानमत्ताः संकर्षणाधोक्षजदेवपत्न्यः ॥ ५० ॥ आरक्तनेत्रा जल-
मुक्तिसक्ताः स्त्रीणां समक्षं पुरुषायमाणाः । तेनोपरेमुः सुचिरं
च भैमा मानं वहन्तो मदनं मदं च ॥ ५१ ॥ अतिप्रसङ्गं तु
विचिन्त्य कृष्णस्तान् वारयामास रथांगपाणिः । स्वयं निवृत्तो
जलवाद्यशब्दैः स नारदः पार्थसहायवांश्च ॥ ५२ ॥ कृष्णेंगि-
तज्ञा जलयुद्धसंघाद्भैमा निवृत्ता दृढमानिनोऽपि । निरुं तथा नंद-

जैसे आकाशमें अम्बुनाथ मेघ बिजलियोंके कड़कनेसे शोभा पाता
है, इसी प्रकार हे राजन् ! शतहृदा सैकड़ों तालाबरूपी स्त्रियोंकी
प्रभासे मनोहर समुद्र शोभा पाने लगा ॥ ४८ ॥ अपने पक्षमें
सुन्दर चिन्होंको करने वाले नारायण और नारदजी मनोहर
चिन्ह वाले दलपर जल छिड़कने लगे और बलदेवजी मधुसूदन
के पक्ष वालों पर जल छिड़कनेलगे ॥ ४९ ॥ उस समय रागके
कारण उद्धत हुई और वारुणीके पानसे मत्त हुई श्रीकृष्ण और
बलदेवजीकी पत्नियें प्रसन्न होकर हाथोंसे और पिचकारियोंसे
जल छिड़कने लगीं ॥ ५० ॥ जलको फेंकनेमें लगे हुए लाल२
नेत्रों वाले भीमवंशी चिरकालके अनतर स्त्रियोंके सामने पुरुष
बनकर मान मद और मदनको धारण कर उन्मत्त होगए ॥५१॥
हाथमें चक्रको धारण करने वाले कृष्णने बात बढ़ती देखकर
उनको रोकदिया था, और जलके बाजोंका शब्द कर वे अपने
आप भी नारद और पार्थसहित रुकगए ॥५२॥ अतिमानी होने
पर भी यादव कृष्णके इशारेको जानकर जलसंघसे हट गए थे,

काराः प्रियाणां प्रियाश्च तेषां ननृतुः प्रतीताः ॥ ५३ ॥ नृत्यावसाने भगवानुपेन्द्रस्तत्याज धीमानथ तोयसंगान्। उत्तीर्य तोयादनुकूललेपं जग्राह दत्वा मुनिसत्तमाय ॥ ५४ ॥ उपेन्द्रमुत्तीर्णमथाशु दृष्ट्वा भैमा हि ते तत्यजुरेव तोयम् । विविक्तगात्रास्त्वथ यानभूमिं कृष्णाज्ञगा ते ययुरप्रमेयाः ॥ ५५ ॥ यथानुपूर्व्या च यथावयश्च यत्सन्नियोगाश्च तदोपविष्टाः। अन्नानि वीरा बुभुजुः प्रतीताः पपुश्च पेयानि यथानुकूलम् ॥ ५६ ॥ मांसानि पक्वानि फलाम्लकानि चुक्रोत्तरेणाथ च दाडिमेन। निष्टप्तशूलाञ्छकलान् पशूंश्च तत्रोपजह्रुः शुचयोथ सूदाः ॥ ५७ ॥ सुस्विन्नशूल्यान् महिषांश्च बालाञ्शूलान् सविष्टप्तघृतावसिक्तान् । वृक्षाम्लसौवर्चलचुक्रपूर्णान् पौरोगवोक्त्या उपजह्रुरेषाम् ॥ ५८ ॥ पौरोग-

तब उन प्रियपुरुषोंको सर्वदा आनन्द देने वाली उनकी प्रियाएँ विश्वस्त होकर नाचने लगीं ॥ ५३ ॥ नृत्यका अन्त होने पर बुद्धिमान् उपेन्द्र भागवान् जलमेंसे निकल आए और जलमेंसे निकलनेके अनन्तर उन्होंने मुनिसत्तमको उचित चन्दनदे अपने आप भी लगाया ॥५४॥ श्रीकृष्णको जलसे निकला हुआ देख भीमवंशीभी जलमेंसे शीघ्रही निकल आए, तदनन्तर वे पवित्र देह वाले अप्रमेय यादव कृष्णकी आज्ञासे यानभूमिमें चलेगए५५ तदनन्तर वे सब वीर क्रम अवस्था और संबंधके अनुसार तहाँ पर बैठकर निश्चिन्ततासे उचित अन्नको खाने लगे और अपने अनुकूल शरबतोंको पीनेलगे ५६ पके हुए मांस, अम्लतायुक्त फल, जिनपर चूक और आनका रस निचोड़ा गया था, और शूल पर रख कर पकाये हुए मांसके खण्डोंको पवित्र रसोइये लाने लगे ५७ घृतमें डालकर पकाये हुए काला नमकपड़े अम्लवेत और चूकसे भरे हुए शूलोंपर रखकर गरम किये हुए कटरों को रसोइयें रसोइयोंकी रीतिसे परोसने लगे ५८ रसोइयोंकी

वोक्तया विधिना मृगाणां मांसानि सिद्धानि च पीवराणि। नाना-
प्रकाराण्युपजह्रुरेषां मृष्टानि पक्वानि च चुक्रचूतैः ॥ ५९ ॥
पार्श्वानि चान्ये च फलानि तत्र ददुः पशूनां घृतमृक्षितानि।
सामुद्रचूर्णैरवचूर्णितानि चूर्णेन मृष्टेन समारिचेन॥६०॥ समूल-
कैर्दाडिममातुलिंगैः पर्णासहिंग्वार्द्रकभूस्तृणैश्च। तदोपदंशैः सुमु-
खोत्तरैस्ते पानानि हृष्टाः पपुरप्रमेयाः॥ ६१ ॥ कट्वांकशूलैरपि
पक्षिभिश्च घृताम्लसौवर्चलतैलसिक्तैः। मैरेयमाध्वीकसुरास-
वांस्ते पपुः प्रियाभिः परिवार्यमाणाः ॥ ६२ ॥ श्वेतेन युक्ता
नृप शोणितेन भक्ष्यान् सुगन्धाँल्लवणान्वितांश्च। आर्द्रान्
किलादान् घृतपूर्णकांश्च नानाप्रकारानपि खण्डखाद्यान् ॥६३॥
अपानपाश्चोद्धवभोजमिश्राः शाकैश्च यूषैश्च बहुप्रकारैः। पेयैश्च

रीतिसे बनाए हुए मृगोंके अनेक प्रकारके मोटे २ मांसभी आम
(का रस)और चूक डालकर परोसे जानेलगे५९दूसरे रसोइयें घीमें
बनायेहुए पार्श्व देने लगे उनपर समुद्रचूर्ण और पिसीहुई मिर्चे
छिड़की हुई थी६० वे अप्रमेय वीर प्रसन्न होकर मूलक(मूली)
मातुलिंग (बिजौरा नीबू) पर्णास (तुलसी) हींग और भूस्तृण
(भूघास)के बनाए हुए शरबत सुन्दर दीखनेवाले पात्रोंमें पीनेलगे
अपनी प्रियाओंसहित बैठे हुए यादव भी आम्र सौवर्चल और
तेलमें सिके हुए तथा कटुरस वाले काठके शूलोंमें लगे हुए
पक्षियोंके साथ मैरेय माध्वी और आसवोंका पान करने लगे ६२
हे राजन्! वे रक्तसे सने हुए श्वेत (चांदीके वरक) के साथ
काला लवण पड़े हुए सुगन्धित भक्ष्य पदार्थोंको आर्द्रों (खाद्य-
विशेषों) को, भैंसके दुग्धमें बने हुए पदार्थोंको और घीसे भरे
हुए अनेक प्रकारके खण्डखाद्योंको खाने लगे ॥ ६३ ॥ हेराजन्!
मांस आदि पदार्थोंका भक्षण न करने वाले उद्धव भोज मिश्र
(आदि) अनेक प्रकारकी दाल शाक शरबत और दही दूध

दध्ना पयसा च वीराः स्वन्नानि राजन्बुभुजुः प्रहृष्टाः ॥ ६४ ॥ तथारनालांश्च बहुप्रकारान् पपुः सुगन्धानपि पालवीषु । शृतं पयः शर्करया च युक्तं फलप्रकारांश्च बहूंश्च खादन् ६५ तृप्ताः प्रवृत्ताः पुनरेव वीरास्ते भैमप्रमुख्या वनितासहायाः । गीतानि रम्याणि जगुः प्रहृष्टाः कान्ताभिनीतानि मनोहराणि॥६६॥ आज्ञापयामास ततः स तस्यां निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः । छालिक्यगेयं बहुसन्निधानं यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति ॥ ६७ ॥ जग्राह वीणामथ नारदस्तु षड्ग्रामरागादिसमाधियुक्ताम् । झल्लीसकं तु स्वयमेव कृष्णः सर्वंशघोषं नरदेव पार्थः ॥ ६८ ॥ मृदङ्गवाद्यानपरांश्च वाद्यान् वराप्सरास्ता जगृहुः प्रतीताः । आसारितान्ते च ततः प्रतीता रंभोत्थिता साभिनयार्थतज्ज्ञा ॥ ६९ ॥ तयाभिनीते वर-

आदिसे अन्नोंको प्रसन्न होकर खाने लगे ॥ ६४ तथा अनेक प्रकारकी सुगन्धित शिखरिणियोंको तथा बूरा पड़े हुए औटाए दूधको कौड़ियोंके ढाले हुए पात्रोंमें पीने लगे, और अनेक प्रकार के फलोंको खाने लगे ॥ ६५ ॥ मुख्य २ भीमवंशी और उनकी स्त्रियें तृप्त होनेके उपरान्त स्त्रियोंके मनोनीत मनोहर और रमणीय गीतोंको प्रसन्न होकर गाने लगे ॥ ६६ ॥ तदनन्तर भगवान् उपेन्द्रने प्रसन्न होकर उस रातमें जिसको गान्धर्व कहते हैं उस अनेक व्यक्तियोंसे गाने योग्य छालिक्यगेयको गानेकी आज्ञा दी ॥ ६७ ॥ उस समय नारदजीने छः ग्राम वाले रागोंको बजा कर चित्तको एकाग्र करने वाली वीणाको उठा लिया और हे नरदेव ! श्रीकृष्णने बाँसकी घोष करने वाले (मुरली) और झल्लीसक नाम वाले बाजेको उठा लिया और अर्जुनने मृदङ्ग आदि बाजोंको ले लिया और दूसरे बाजोंको अप्सराओंने उठा लिया, इस प्रकार आसारका सब समान ठीक होने पर अभिनय के तत्वको जानने वाली रम्भा उठी ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस श्रेष्ठ

मात्रयष्ट्या तुतोष रामश्च जनार्दनश्च । अथोर्वशी चारुनिशाल-नेत्रा हेमा च राजन्नथ मिश्रकेशी ॥ ७० ॥ तिलोत्तमा चाप्यथ मेनका च एतास्तथान्याश्च हरिप्रियार्थम् । जगुस्तथैवाभिनयं च चक्रुरिष्टैश्च कामैर्मनसोनुकूलैः ॥ ७१ ॥ ता वासुदेवेष्वनु-रक्तचित्ताः स्वगीननृत्याभिनयैरुदारैः । नरेन्द्रसूनो परितोषितेन ताम्बूलयोगाश्च वराप्सरोभिः ॥७२॥ तदागताभिर्नृवगाहनास्तु कृष्णेप्सया मानवयास्तथैव । फलानि गन्धोत्तमवन्ति वीराश्छा-लिक्यगान्धर्वमथाहृतं च ॥७३॥ कृष्णेच्छया च त्रिदिवान्नृदेव अनुग्रहार्थं भुवि मानुषाणाम् । स्थितं च रम्यं हरितेजसेव प्रयोज-नागास स रौक्मिणेयः ॥ ७४ ॥ छालिक्यगान्धर्वमुदारबुद्धिरस्तं-नेव ताम्बूलमथ प्रयुक्तम् । प्रयोजितं पञ्चभिरिन्द्रतुल्यैश्छालिक्य-

---

कमर वालीके अभिनय करने पर श्रीकृष्ण और बलराम प्रसन्न हुए हे राजन् ! तदनन्तर सुन्दर और विशाल नेत्रों वाली उर्वशी हेमा मिश्रकेशी तिलोत्तमा और मेनका तथा दूसरी अप्सराएँ मनके अनुकूल मनोहर गानोंको गाने लगीं और अभिनय करने लगीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥ हे राजपुत्र ! वासुदेवमें चित्तको लगाने वाली उन श्रेष्ठ अप्सराओंने अपने गीत नृत्य और बड़े २ अभि-नय करके (सबको) प्रसन्न किया और यादवोंको पान देकर भी प्रसन्न किया गया ॥ ७२ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ ! कृष्णकी स्वर्गसे आनेवाली अप्सराओंके द्वारा गाना वीरोंने छालिक्य गांधर्व सुना और उत्तम गंध वाले फल पाये ॥ ७३ ॥ हे नरदेव ! प्रद्युम्नने कृष्णकी इच्छासे पृथिवीके मनुष्यों पर अनुग्रह करनेके लिये यह सब रमणीय (गाना) यहाँ होरहा है, इसबातका हरिके तेजकी समान (प्रयोग किया) कहा ७४ इस प्रकार उस उदार बुद्धिने छालिक्य गंधर्वका (वर्णन कर) पान बाँटे, कृष्ण बलदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध और साम्ब इन पाँच

गिष्टं सततं नराणाम् ॥७५॥ शुभावहं वृद्धिकरं प्रशस्तं मंगल्यमेनाथ तथा यशस्यम् । पुण्यं च पुष्ट्यभ्युदयावहं च नारायणस्येष्टमुदारकीर्तेः ॥ ७६ ॥ भरापहं धर्मभरावहं च दुःस्वप्ननाशं परिकीर्त्यमानम् । करोति पापं च तथा विहन्ति शृण्वन् सुरावास गतो नरेन्द्रः ॥ ७७ ॥ छालिक्यगान्धर्वमुदारकीर्तिर्मेने किलैकं दिवसं सहस्रम् । चतुर्युगानां नृप रेवतोथ ततः प्रवृत्ता च कुमारजातिः ॥ ७८ ॥ गान्धर्वजातिश्च तथा परापि दीपाद्यथा दीपशतानि राजन् । विवेद कृष्णश्च स नारदश्च प्रद्युम्नमुख्यैर्नृप भैमसुख्यैः ॥७९॥ विज्ञानमेतद्धि परे यथावदुद्देशमात्राच्च जनास्तु लोके । जानन्ति छालिक्यगुणोदयानां तोयं नदीनामथवा समुद्रे ॥८०॥ ज्ञातुं समर्थो हिमवान् गिरिर्वा फलाग्रतो वा गुण-

---

इन्द्रकी समान व्यक्तियोंके द्वारा जोड़ा हुआ छालिक्य मनुष्योंको सदा इष्ट है ७५ शुभ करने वाला वृद्धि करने वाला प्रशंसनीय, मंगलमय, यश देने वाला पुष्टि और अभ्युदयको देने वाला है और महाकीर्तिवान् नारायणको इष्ट है ७६ यह कीर्तन करने पर भारको दूर कर धर्मके भारको लाता है,और इसको सुननेसे राजाके पाप नष्ट होजाते हैं और वह देवताओंके आवासमें पहुँच जाता है ७७ उदारकीर्ति राजा रेवतको इस छालिक्य गांधर्व गानेको सुननेपर चारों युगोंके सहस्रों दिन एक दिनकी समान बीत गए थे, उस ही छालिक्य गानेसे यह कुमारजाति आदि (गंधर्वोंके भेद) उत्पन्न हुए हैं ७८ हे राजन् ! जैसे दीपकसे अनेक दीपक जलते जाते हैं, इसी प्रकार गंधर्वोंकी जाति फैल गई है, प्रद्युम्न आदि मुख्य २ भीमवंशियोंसे श्रीकृष्णने और नारदजीने इसको जाना है ७९ जैसे नदी वा समुद्रसे (थोड़ासा) जल निकाल लिया जाय, इसीप्रकार संसारके दूसरे मनुष्य इस छालिक्यके गुणोदयको कुछ २ जानते हैं ८० छालिक्यके गुण

तोऽथ वापि । शक्यं न छालिक्यमृते तपोभिः स्थाने विधानान्यथ मूर्च्छनासु ॥८१॥ षड्ग्रामरागेषु च तत्र कार्यं तस्यैकदेशावगमेन राजन् । लेशाभिधानां सुकुमारजातिं निष्ठां सुदुःखेन नराः प्रयांति छालिक्यगान्धर्वगुणोदयेषु ये देवगन्धर्वमहर्षिसंघाः । निष्ठां प्रयांतीत्यवगच्छ बुद्धया छालिक्यमेवं मधुसूदनेन ॥ ८३ ॥ भैमोत्तमानां नरदेव दत्तं लोकस्य चानुग्रहकाम्ययैव । गतं प्रतिष्ठाममरांशगेयं बाला युवानश्च तथैव वृद्धाः ॥ ८४ ॥ क्रीडन्ति भैमाः प्रसवोत्सवेषु पूर्वं तु बाला समुदाहरन्ति । वृद्धाश्च पश्चात् प्रतिमानयन्ति स्थानेषु नित्यं प्रतिमानयन्ति ॥८५॥ मर्त्येषु मर्त्यान् यदवोऽतिवीराः स्ववंशधर्मं समनुस्मरन्तः । पुरातनं धर्मविधानतज्ज्ञाः प्रीतिः प्रमाणं न वयः प्रमाणम् ॥८६॥ प्रीतिप्रमाणानि

और फलको भगवान् हिमवान् पर्वत ही जानता है, तपके बिना छालिक्य नहीं जाना जासकता, हे राजन् ! इसके एक देशको जाननेसे ही षड्ग्राम वाले रागोंका और मूर्च्छनाओंका यथा योग्य प्रयोग किया जासकता है, मनुष्य सुकुमारजातिको गाते हुए बड़ी कठिनतासे छालिक्यके लेशमात्र अंशको पाते हैं ८२ छालिक्य गान्धर्वके गुणोंको देवता महर्षि और गन्धर्व ही पाते हैं, छालिक्य ऐसा है इसबातको विचार कर मधुसूदनने संसार पर अनुग्रह करनेके लिए हे नरदेव ! भीमवंशियोंको दिया था, फिर इस देवताओंके गाने योग्य गानेकी प्रतिष्ठा होने लगी, बालक वृद्ध और युवा जननोत्सवमें क्रीडा करने पर बालक पहिले इसकी प्रशंसा करने लगे, फिर वृद्धभी इसको अच्छा बताने लगे और स्थान २ पर इसकी प्रशंसा करने लगे ॥८३-८५॥ अपने प्राचीन वंशधर्मका स्मरण करते हुए अतिबली यादव मनुष्योंके प्रति प्रीतिको ही प्रमाण मानते थे अवस्थाको प्रमाण नहीं मानते थे ८६ वे दशार्हवंशी मित्रतामें प्रीतिका प्रमाण मानते थे

हि सौहृदानि प्रीतिं पुरस्कृत्य हि ते दशार्हाः । वृष्ण्यंधकाः पुत्र-सुखा बभूवुर्विसर्जिताः केशिविनाशनेन ॥ ८७ ॥ स्वर्गं गता-श्चाप्सरसां समूहाः कृत्वा प्रमाणं मधुकंसशत्रोः । प्रहृष्टरूपस्य सुहृष्टरूपा विनोदिताः केशिनिषूदनेन ॥ ८८ ॥ छ

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमतीहरणे छालिक्यक्रीडावर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

वैशम्पायन उवाच तेषां क्रीडाप्रसक्तानां यदूनां पुण्यकर्मणाम्। छिद्रमासाद्य दुर्बुद्धिर्देवशत्रुर्दुरासदः ॥१॥ कन्यां भानुमतीं नाम भानोर्दुहितरं नृप । जहारात्मवधाकांक्षी निकुम्भो नाम दानवः २ अन्तर्हितो मोहयित्वा यदूनां प्रमदाजनम् । मायावी मायया राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥भ्रातुर्हि वज्रनाभस्य तस्य कन्या प्रभावती । प्रद्युम्नेन हृता वीर वज्रनाभस्तथा हतः ॥४॥ भानो-

---

प्रीतिके कारण वे दशार्ह वृष्णि और अंधक,पुत्रोंकी समान सुख भोगते थे, श्रीकृष्णने ऐसे व्यक्तियोंको अब विदा कर दिया८७ मधु और कंसके शत्रु श्रीकृष्णके वचनको प्रमाण मान कर अप्सराओंकी टोली भी स्वर्गको चलीगई, प्रसन्नतामें रहने वाले केशिनिषूदनने उनको भी प्रसन्न किया था ॥ ८८ ॥ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ८९

वैशम्पायनजीने कहा; कि–हे राजन् ! देवताओंके शत्रु दुरा-सद दुर्बुद्धि और अपना वध चाहने वाले निकुंभ नामक दानव ने पुण्य कर्म करने वाले यादव क्रीड़ा करनेमें लग रहे हैं, इस छिद्रको देख कर भानुनामक यादवकी भानुमती नाम वाली पुत्री को हर लिया ॥ १॥२ ॥ हे राजन् ! वह मायावी राक्षस पहिले वैरका स्मरण कर यादवोंकी स्त्रियोंको मोहमें डाल कर अन्त-र्धान होगया ॥ ३ ॥ उस (दानव) के वज्रनाभ नाम वाले दानवकी प्रभावती नामवाली पुत्री थी, हे वीर ! उसको प्रद्युम्न

रेव तथाऽरण्ये वसत्यवसरेण हि । अस्वाधीने दुराधर्षं छिद्रज्ञो दानवाधमः ॥ ५ ॥ कन्यापुरे महानादः सहसा समुपस्थितः । तस्यां ह्रियंत्यां कन्यायां रुदन्त्यां समितिंजय ॥ ६ ॥ वसुदेवाहुकौ वीरौ दंशितौ निर्गतावुभौ । आर्तनादमुपश्रुत्य भानोः कन्यापुरे तदा ॥ ७ ॥ न दृष्टिगोचरौ तौ तु ददृशातेऽपकारिणम् । तथैव दंशितौ यातौ यत्र कृष्णो महाबलः ॥८॥ श्रुतार्थः स्वं विमानं तदारुरोह जनार्दनः । पार्थेन सहितस्तार्क्ष्यं नागशत्रुमरिंदमः ॥ ९ ॥ रथी त्वमनुगच्छेति संदिश्य मकरध्वजम् । त्वरेति गरुडं वीरः संदिदेश च काश्यपम्॥१०॥वज्रं नगरमायातं निकुम्भं रणदुर्जयम् । पार्थकृष्णौ महात्मानावासदेतुररिंदमौ ११

ने हर लिया था और वज्रनाभको मार डाला था ॥ ४ ॥ वह दानव भानुके (द्वारकामें बने हुए उप) वनमें ही रहता था, (क्रीड़ामें आसक्त होनेके कारण) जब वह घर स्वामीरहित होरहा था, उस समय छिद्रको जानने वाले दुराधर्ष दानवने (भानुकी कन्याको हर लिया) ॥ ५ ॥ हे समितिञ्जय ! उस रोती हुई कन्याका हरण करने पर कन्यापुरमें एक साथ ही द्वन्द पड़ने लगा ॥ ६ ॥ आर्त नादको सुन कर वसुदेव और उग्रसेन ये दोनों वीर कवच पहन कर भानुके कन्यापुरमें गए ॥ ७ ॥ परन्तु जब चारों देखने पर भी उन्हें अपराध करने वाला नहीं दिखाई दिया, तब वे कवच पहिन कर तहाँको चले, जहाँ बलदेव और कृष्ण थे ॥८॥ अरिदमन जनार्दन इस बातको सुनते ही सर्पोंके शत्रु अपने विमान गरुड़ पर सवार होगए और साथ में अर्जुनको भी बैठा लिया ॥ ९ ॥ उन्होंने प्रद्युम्नसे कहा; कि–तुम रथमें बैठ कर चलो, फिर उन वीरने कश्यपपुत्र गरुड़को संदेशा दिया, कि– अब आप फुर्ती करिये ॥ १० ॥ तदनन्तर महात्मा अर्जुन और कृष्ण वज्रनगरमें घुसते हुए रणदुर्जय

प्रद्युम्नश्च महातेजा मायिनां प्रवरो नृप । निकुम्भश्चाथ तान् दृष्ट्वा त्रिशात्मानमथाकरोत् ॥ १२ ॥ तान् सर्वान् योधयामास निकुम्भः प्रहसन्निव । बहुकण्टकगुर्वीभिर्गदाभिरमर्षणः ॥१३॥ सव्येनालंब्य हस्तेन कन्यां भानुमतीं नृप । दक्षिणेनाथ हस्तेन गदया प्राहरत् पुनः ॥ १४ ॥ कन्यार्थं न च कृष्णौ वा कामो वा नृपसत्तम । निर्दयं प्रहरन्ति स्म निकुम्भे च महासुरे ॥ १५ ॥ समर्थास्ते महात्मानः शत्रुं हन्तुं दुरासदाः । निशश्वसुर्नरपते दयाभारावपीडिताः ॥ १६ ॥ श्रेष्ठो धनुष्मतां पार्थः सर्वथा कुशलो युधि । नागोष्ट्रविधिना दैत्यं शरपंक्त्या जघान ह ॥ १७ ॥ ते तु वैतस्तिकैर्बाणैर्विविधान् दानवान् युधि । न कन्यां कलया

निकुंभ दानवके पास पहुँच गए ॥ ११ ॥ हे राजन् ! माया करने वालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी प्रद्युम्न भी (उसके पास पहुँच गया) निकुंभने उनको देख कर अपने तीन शरीर बना लिये १२ तदनन्तर देवताकी समान निकुम्भ मुस्कराया और अनेक काँटों से भरी भारी २ गदाओंसे उन तीनोंके साथ लड़नें लगा १३ वह बायें हाथसे कन्याको पकड़े रख कर सीधे हाथसे गदाका प्रहार करने लगा ॥ १४ ॥ परन्तु हे राजन् ! कन्याके कारण कृष्ण और अर्जुन तथा प्रद्युम्न महाराक्षस निकुम्भ पर निर्दय होकर प्रहार नहीं कर सकते थे ॥ १५ ॥ हे नरपते ! वे दुरासद महात्मा शत्रुको मारनेके लिए समर्थ होने पर भी दयाके भारसे पीड़ित होनेके कारण श्वास लेने लगे ॥ १६ ॥ युद्धमें सर्वथा कुशल धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन सर्पोष्ट्र विधिसे बाणोंसे असुरको ही मारने लगा (नागोष्ट्रविधि—अजगरसे लपेटे हुए उष्ट्रको देखकर जैसे धनुर्धर सर्पको ही मारता है ऊँटको नहीं मारता है, तिस प्रकार अर्जुन कन्यापर आँच न आने देकर राक्षसको ही मारनेलगा)१७हे महीपते ! वे तीनों पुरुष अपनी

युक्त्या शिक्षया च महीपते ॥१८॥ ततः स कन्यया सार्धं तत्रै-
वान्तरधीयत । आसुरीमाश्रितो मायां न च तां वेत्ति कश्चन १९
तं कृष्णो रौक्मिणेयश्च पृष्ठतोऽनुययुस्तदा । हारितः शकुनो
भूत्वा तस्थावथ महासुरः ॥२०॥ तं बाणैः पुनरेवाथ वीरो भूयो
धनञ्जयः । वैतस्तिकैर्मर्मभिद्भिः कन्यां रक्षन्नताडयत् ॥२१॥
स इमां पृथिवीं कृत्स्नां सप्तद्वीपां महासुरः । बभ्रामानुगतश्चैव
तैर्वीरैररिमर्दनः ॥ २२ ॥ गोकर्णस्योपरिष्टात्तु पर्वतस्य महा-
सुरः । पपात वेलां गङ्गायाः पुलिने सह कन्यया ॥ २३ ॥
न देवा नासुराश्चापि लङ्घयन्ति तपोधनाः । गोकर्णं तेजसा गुप्तं
महादेवस्य भारत ॥२४॥एतदन्तरमासाद्य प्रद्युम्नः शीघ्रविक्रमः ।
कन्यां भानुमतीं भैमो जग्राह रणदुर्जयः ॥२५ असुरः सोऽर्दितो

कला युक्ति और शिक्षासे विलस्त भरके बाणोंसे दैत्यको मारने
लगे और कन्यापर आँच नहीं आनेदेते थे १८ तदनन्तर वह
आसुरी मायाका आश्रय लेकर कन्यासहित अन्तर्धान होगया,
परन्तु उस मायाको कोई नहीं जानता था १९ श्रीकृष्ण अर्जुन
प्रद्युम्न भी उसके पीछे २ ही चले तब वह असुर हारित पक्षी
बन कर बैठगया २० तदनन्तर धनञ्जय वीर अर्जुन फिर
कन्याको बचा कर वितस्त नामक मर्मभेदी बाणोंसे राक्षसको
मारने लगा २१ वह अरिमर्दन राक्षस उन वीरोंके पीछे पड़ने
पर इस सात द्वीप वाली पृथिवी पर भागता फिरा २२ तदन-
न्तर वह महाराक्षस गोकर्णपर्वतके ऊपर गङ्गाजीके तटपर रेतीमें
गिर पड़ा २३ हे भरतवंशी राजन् ! महादेवजीके तेजसे रक्षित
गोकर्ण पर्वतको राक्षस देवता और तपोधन भी नहीं लाँघ
सकते २४ इसी बीचमें रणदुर्जय भीमवंशी फुर्तीसे पराक्रम
करने वाले प्रद्युम्नने तहाँ आकर कन्याको छीन लिया २५ हे
राजन् ! इसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस दैत्योंको बाणोंसे

राजन् कृष्णाभ्यां निशितैः शरैः । त्यक्त्वाथोत्तरगोकर्णं निकुंभो दक्षिणां दिशम् । जगाम पृष्ठतो यातौ कृष्णौ तार्क्ष्यगतौ तदा २६ विवेश षट्पुरं चैव ज्ञातीनामालयं तदा । तत्र वीरौ गुहाद्वारि कृष्णौ रात्रौ तदोषतुः ॥२७॥ रौक्मिणेयोऽपि कृष्णेन संदिष्टो द्वारकापुरीम् । अनयद्भानुतनयां प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥२८॥ नयित्वा चाययौ वीरः षट्पुरं दानवाकुलम् । ददर्श च गुहाद्वारि कृष्णौ भीमपराक्रमौ २९ ऊषतुर्द्वारमाक्रम्य षट्पुरस्य महाबलौ कृष्णौ प्रद्युम्नसहितौ निकुम्भवधकांक्षिणौ । ततोऽनन्तरमेतस्माद्बिलाद्दतिबलस्तदा । निर्जगाम बली योद्धुं निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥ तस्य निर्गच्छतस्तस्माद्बिलात् पार्थो विशांपते । रुरोध सर्वतो मार्गं शरैर्गाण्डीवनिःसृतैः ॥ ३२ ॥ सोभि-

घायल किया तब वह दैत्य पीडित हो उत्तरगोकर्णको छोड दक्षिण दिशा की ओर भाग गया, उस समय गरुड पर सवार कृष्ण और अर्जुन भी उसके पीछे २ दौड़े ॥ २६ ॥ उस समय वह दैत्य अपनी जातिवालोंके घर षट्पुरमें घुस गया, तब वीर दोनों कृष्ण रात भर उस गुहाके द्वार पर रहे ॥ २७ ॥ और श्रीकृष्णके आज्ञा देने पर प्रद्युम्न भानुकी पुत्रीको लेकर मनमें प्रसन्न होता हुआ द्वारकापुरीको चला गया ॥ २८ ॥ वह वीर दानवोंके स्थान षट्पुरमें जाकर फिर आया तो उसने गुफाके द्वार पर भयंकरपराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखा ॥२९॥ निकुम्भका वध चाहने वाले महाबली कृष्ण और अर्जुन तथा प्रद्युम्न षट्पुरके द्वारको रोक कर पड़े हुए थे ॥३०॥ इसी समय भयंकर पराक्रमी अतिबली बलवान निकुम्भ लड़नेकी इच्छासे उस बिलमेंसे निकलने लगा ॥३१॥ हे राजन् ! बिलमेंसे निकलना चाहने वाले निकुम्भके मार्गको अर्जुनने गाण्डीवधनुषसे बाण छोड़ कर चारों ओर से रोक दिया ॥ ३२ ॥ तब बल-

सृत्य गदां घोरामुद्यम्य बहुकण्टकाम् । शिरस्यताडयत्पार्थं निकुम्भो बलिनाम्वरः ॥ ३३ ॥ अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः । गदयाभिहते पार्थे रक्तं वमति मुह्यति । हसित्वा सोऽसुरो दृप्तो रौक्मिणेयमताडयत् ॥३४॥ तं प्राङ्मुखमुखं वीरं मायावी मायिनां वरम् । अदृष्टेनाहतो वीरः शिरस्यथ मुमोह सः ॥ ३५ ॥ तथागतौ तु दृष्ट्वा तौ मुह्यमानौ सुताडितौ । अभिदुद्राव गोविन्दो निकुंभं क्रोधमूर्च्छितः ॥३६॥ कौमोदकीं समुद्यम्य गदपूर्वोद्भवो गदाम् । तावन्योन्यं दुराधर्षौ गर्जन्तावभिपेततुः ॥३७॥ ऐरावतगतः शक्रः सर्वैर्देवगणैः सह । ददर्श तन्महायुद्धं घोरं देवासुरं तदा ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा देवान् हृषीकेशश्चित्रैर्युद्धैररिंदमः । इयेष दानवं हंतुं देवानां हितकाम्यया ॥ ३९ ॥

बानोंमें श्रेष्ठ निकुम्भने कूद कर पार्थके मस्तक पर अनेक कांटों वाली भयंकर गदा उठा कर मारी ॥३३॥ उस राक्षसने अदृश्य होकर वीर पार्थके शिर पर प्रहार किया था अतः वह मूर्छित होगए, जब पार्थ गदासे पिट मुखसे रक्त ओककर वेहोश होगए, तब उस उद्धत दैत्यने हँस कर प्रद्युम्नको भी पीटा ॥३४॥ उस मायावी राक्षसने पूर्वकी ओर मुख करके खड़े हुए माया करने वालोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नके शिर पर भी अदृश्य होकर प्रहार किया था, तब वह वीर भी वेहोश होगए ॥३५॥ उन दोनों वीरोंको ताड़ना पाकर मोहित होते देख मुकुन्द क्रोधसे मूर्छित होकर निकुम्भकी ओर दौड़े ।३६। गदसे पहिले उत्पन्न हुए श्रीकृष्ण अपनी कौमोदकीको गदाको उठा कर दौड़े थे, वे दोनों दुराधर्ष दहाड़ते हुए भिड़ गए ॥ ३७ ॥ उस समय ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्र और सब देवता उस महाभयंकर देवासुर संग्रामको देखने लगे ॥३८। अरिदमन श्रीकृष्ण देवताओंको देख उनका प्रिय करनेकी इच्छासे विचित्र युद्ध करके दानवको मारना चाहने

स मण्डलानि चित्राणि दर्शयामास केशवः । कौमोदकीं महा-
बाहुर्लीलयन्युद्धकोविदः ॥ ४० ॥ तथैवासुरमुख्योऽपि गदां
तां बहुकंटकाम् । शिक्षया भ्रमयानोऽथ मंडलानि चचार ह ४१
वृषभाविव गर्जन्तौ बृंहंताविव कुंजरौ । इषितांतरमासाद्य क्रुद्धौ
शालावृकाविव ॥ ४२ ॥ आजघान निकुम्भस्तु गदया गदपूर्व-
जम् । स्पष्टाष्टघण्टया वीर नादं मुक्त्वातिदारुणम् ॥ ४३ ॥
तत्कालमेव कृष्णोऽपि भ्रामयित्वा महागदाम् । निकुम्भमूर्धनि
तदा पातयामास भारत॥ ४४॥ अवष्टभ्य मुहूर्तं तु हरिः कौमोदकीं
गदाम् । तस्थौ जगद्गुरुर्धीमान् मुमोह पतितः क्षितौ ॥ ४५ ॥
हाहाभूतं जगत् सर्वं तत्कालमभवत्तदा । तथागते वासुदेवे नरदेव
महात्मनि ॥ ४६ ॥ आकाशगङ्गातोयेन शीतेन च सुगन्धिना ।
सिषेचामृतमिश्रेण कृष्णं देवेश्वरः स्वयम् ॥ ४७ ॥ नूनमात्मे-

लगे ॥ ३६ ॥ उस समय युद्धचतुर महाभुज श्रीकृष्ण अपनी
कौमोदकी गदाको घुमाकर विचित्र पैंतरे दिखलाने लगे ॥४०॥
इसी प्रकार वह मुख्य असुर भी बहुतसे काँटों वाली उस गदा
को घुमाता हुआ सीखे हुए पैंतरोंको दिखाने लगा ॥ ४१ ॥
बैलोंकी समान रंभाते हुए और हाथियोंकी समान चिंघाड़ते हुए
वे दोनों वीर समीपमें पहुँच कर भेड़ियोंकी समान क्रोधमें भर
गए ॥ ४२ ॥ हे वीर ! उस समय निकुम्भने अति दारुण नाद
करके स्पष्ट आठ घंटों वाली गदाका गदके बड़े भाई श्रीकृष्ण
पर प्रहार किया४३हे भारत ! इसी समय कृष्णने भी महागदा
को घुमा कर निकुम्भ पर प्रहार किया४४उस समय कृष्ण मुहूर्त
भर तक तो कौमोदकी गदाको पकड़ कर खड़े रहे,फिर वह जगद्
गुरु मूर्छित हो पृथ्वीमें गिर पड़े ४५ महात्मा वासुदेवकी ऐसी
दशा होने पर उस समय सारे संसार में हाहाकार मच गया४६
देवेश्वर अपने आप कृष्णके ऊपर अमृत मिले हुए शीतल और

च्छया कृष्णस्तथा चक्रे सुरोत्तमः । को हि शक्तो महात्मानं युद्धे मोहयितुं हरिम् ॥४८॥ कृष्णः प्रत्यागतप्राणश्चक्रमुद्यम्य भारत । प्रतीच्छेति दुरात्मानमुवाच रिपुनाशनः ॥ ४९ ॥ निकुम्भोऽपि अतिमायावी उत्पपात दुरासदः । शरीरं तत् परित्यज्य न तु तं वेत्ति केशवः ॥५०॥ मुमूर्षति मृतो वायमिति मत्वा जनार्दनः । ररक्ष स्मरमाणोथ वीरो वीरव्रतं विभो ॥ ५१ ॥ अथ प्रद्युम्नकौन्तेयावागतौ लब्धचेतनौ । स्थितौ नारायणाभ्याशे निकुम्भवधनिश्चितौ प्रद्युम्नोऽप्यथ मायावी विदितः कृष्णमब्रवीत् । निकुम्भस्तात नास्त्यत्र गतः क्वापि सुदुर्मतिः ॥ ५३ ॥ प्रद्युम्नेनैवमुक्ते तु तन्ननाश कलेवरम् । प्रजहासाथ भगवानर्जुनेन सह प्रभुः ॥ ५४ ॥

सुगन्धित आकाशगङ्गाके जलको छिड़कने लगे ॥ ४७ ॥ देवताओं में कृष्णने ऐसा अपनी इच्छासे ही किया था कि—ऐसा कौन व्यक्ति है, जो युद्धमें कृष्णको मोहित कर सकता है ॥ ४८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! फिर श्रीकृष्णमें जब प्राण आगए तब उन अरिनाशनने अपने चक्रको उठा कर कहा, कि—तू इस दुरात्मा का संहार कर ॥ ४९ ॥ परन्तु निकुम्भ बड़ा मायावी था; इस लिये वह दुरासद राक्षस अपने शरीरको छोड़ कर उड़ा, परन्तु श्रीकृष्ण इस बातको न जान सके ५० हे प्रभो ! यह दैत्य मरना चाह रहा है, वा मर गया है, यह समझ कर वीरव्रतका स्मरण कर उसकी रक्षाकी अर्थात् उस गिरे हुए राक्षसको न मारा ५१ इसी समय प्रद्युम्न और कुन्तीपुत्र अर्जुन भी होश आने पर निकुंभ के वधका निश्चय करके नारायणके समीप आकर खड़े हो गए, ॥ ५२ ॥ प्रद्युम्न भी मायावी थे अत एव उन्होंने सब बात जान कर कृष्णसे कहा, कि हे तात ! निकुम्भ यहाँ नहीं है, वह दुर्मति कहींको चला गया है ॥ ५३ ॥ प्रद्युम्नके इस प्रकार कहते पर वह शरीर नष्ट होगया, उस समय अर्जुन और प्रभु श्रीकृष्ण

तदायुतसहस्राणि निकुम्भानां जनाधिप । ददृशुस्ते ततो वीराः क्षितौ दिवि च सर्वतः ॥ ५५ सहस्राण्येव कृष्णं तु तथा पार्थमरिन्दमः । रौक्मिणेयं तथा वीरं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५६ ॥ पाण्डवस्य धनुः केचित् केचिदस्य महाशरान् । अन्येस्य जगृहुर्हस्तावन्ये पादौ महासुराः ॥ ५७ ॥ एवं ग्रहाय तं वीरमगमंस्ते विहायसि । पार्थानामपि कोटयस्तु गृहीतानां तदाभवन् ॥५८॥ नान्तं ददर्श कृष्णश्च कार्ष्णिश्च रिपुनाशनौ । विच्छिन्दन्तौ शरैर्वीरौ निकुम्भं पार्थवर्जितौ ॥ ५९ ॥ एकैकस्तु द्विधाच्छिन्नो द्विधा भवति भारत । दिव्यज्ञानस्तदा कृष्णो भगवाननुदृष्टवान्॥६०॥ निकुम्भं तत्त्वतश्चापि ददर्श मधुसूदनः । स्रष्टारं सर्वमायानां हर्तारं फाल्गुनस्य च ॥६१॥ स चक्रेण शिरस्तस्य चकर्तासुरसूदनः ।

हँसे ५४ हे राजन् ! इसके अनन्तर उन वीरोंको पृथिवीमें और आकाशमें चारों ओर लाखों निकुम्भ दीखने लगे ॥ ५५ ॥ हे अरिदमन! उसके सहस्रों शरीरोंने अर्जुनको कृष्णको और वीर रुक्मिणीनन्दनको (घेर लिया) यह अद्भुत बात हुई ॥ ५६ ॥ किन्हींने पाण्डवके धनुषको किसीने उसके बड़े २ बाणोंको और बहुतसे दूसरे राक्षसोंने उसके हाथ पैरोंको पकड़ लिया ॥ ५७ ॥ वीर पाण्डवको इस प्रकार पकड़ कर वह आकाशमेंको उड़गए उस समय सैंकड़ों पकड़े हुए अर्जुन (भी) दिखाई देने लगे ५८ अर्जुनसे रहित हुए वीर कृष्ण और प्रद्युम्न बाणोंसे काटने पर भी निकुम्भका अन्त न पासके ५९ हे भारत ! प्रत्येक एक निकुम्भ काटने पर दो होजाता था उस समय भगवान्ने अपनी दिव्य दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न किया ६० उस समय मधुसूदनने सब मायाओंको रचने वाले और पार्थको चुराने वाले निकुम्भ को ठीक २ पहिचान लिया ६१ तब असुरोंका नाश करनेवाले भूत भविष्य और वर्तमानरूप हरिने सब प्राणियोंके सामने चक्र

पश्यतां सर्वभूतानां भूतभव्यभवो हरिः ॥ ६२ ॥ स मुक्त्वा फाल्गुनं राजंश्छिन्ने शिरसि भारत । पपातासुरमुख्योथ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ६३ ॥ अथाकाशगतं पार्थं पतमानं विहायसः । कृष्णवाक्येन जग्राह कार्ष्णिर्विगतधि मानद ॥ ६४ ॥ निकुम्भे पतिते भूमौ समाश्वास्य धनञ्जयम् । जगाम द्वारकां देवः पार्थकामसमन्वितः॥६५॥ समियाय दशार्हाँय द्वारकां मुदितो विभुः । नारदं च महात्मानं ववन्दे यदुनन्दनः ॥ ६६ ॥ नारदोऽथ महातेजा भानुं यादवमब्रवीत् । भानो मा कार्षीर्मन्युं त्वं शृणुतां भैमनन्दन ॥ ६७ ॥ क्रीडन्त्या रैवतोद्याने दुर्वासाः कोपितोऽनघ । स शशाप ततो रोषान्मुनिर्दुहितरं तव ॥ ६८ ॥ अतिदुर्ललितैः कन्या शत्रुहस्तं गमिष्यति । सुमार्थे ते मया सार्धं मुनिभिः स प्रसादितः ॥ ६९ ॥ बाला भवत्वी कन्यागनागस-

---

से उसके शिरको काट डाला ॥ ६२ ॥ हे राजन ! पार्थकी रक्षा होकर शिरके कटने पर वह श्रेष्ठ असुर जड़ कटे हुए पेड़की समान गिर पड़ा ॥ ६३ ॥ हे मानद ! उस समय आकाशसे गिरते हुए पार्थको कृष्णके कहनेसे प्रद्युम्नने थाम लिया ॥ ६४॥ निकुम्भके पृथिवीमें गिरने पर श्रीकृष्ण देव धनञ्जयको समझा बुझाकर अर्जुन और प्रद्युम्नको साथमें ले द्वारकाको चले ६५ प्रसन्न होते हुए दशार्हवंशी विभु यदुनन्दनने द्वारका में पहुँच कर महात्मा नारदको प्रणाम किया ६६ उस समय महातेजस्वी नारदजीने यादव-भानुसे कहा; कि हे भीमनन्दन यादव ! तुम मेरी बातको सुनो, परन्तु (सुनकर) क्रोध न करना ६७ उद्यानमें क्रीड़ा करते समय तुम्हारी पुत्रीने दुर्वासा ऋषिको क्रुद्ध कर दिया था, उस समय उन मुनिने रोषमें भर कर तुम्हारी पुत्रीको शाप दिया था ६८ अतिदुलारके कारण यह कन्या शत्रुके हाथमें पहुँच जावेगी, उस समय ऋषियोंने और

मिमां मुने । शप्तवानसि धर्मज्ञ कथं धर्मभृतांवर । अनुग्रहं विध-त्स्वात्र वयं विज्ञापयामहे ॥ ७० ॥ अस्माभिरेवमुक्तस्तु दुर्वासा भैमनन्दन । उवाचाधोमुखो भूत्वा मुहूर्तं कृपयान्वितः ॥ ७१ ॥ यदवोचमहं वाक्यं तत्तथा न तदन्यथा । रिपुहस्तमवश्यं हि गमि-ष्यति न संशयः ॥७२॥ अदूषिता तु धर्मेण भर्तारमुपलप्स्यति । बहुपुत्रा बहुधना सुभगा च भविष्यति ॥ ७३ ॥ सुगन्धगन्धा च सदा कुमारी च पुनः पुनः । न च शोकमिमं घोरं तन्वङ्गी धार-यिष्यति ॥७४॥ एवं भानुमतीं वीर सहदेवाय दीयताम् । श्रद्-धानः स शूरश्च धर्मशीलश्च पाण्डवः ॥ ७५ ॥ ततो भानुमतीं भानुर्ददौ माद्रीसुताय वै । सहदेवाय धर्मात्मा नारदस्य वचः स्मरन् ॥७६॥ आनीतः सहदेवश्च प्रेषितश्चक्रपाणिना । विवाहे च

मैंने तुम्हारी कन्याके कारण उन मुनिको प्रसन्न किया था ६६ हे मुने ! आपने इस व्रतवती निरपराधा कन्याको कैसे शाप दे दिया, हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ धर्मज्ञ ! अब हम आपसे कहते हैं, कि—आप इस पर अनुग्रह करिये ॥ ७० ॥ हे भैमनन्दन ! हमारे इस प्रकार कहने पर दुर्वासा मुनिने कुछ समय तक नीचेको मुख कर कृपायुक्त होकर यह वचन कहा; कि—॥७१॥ मैंने जो बात कही है, वह अवश्य होगी, यह शत्रुके हाथमें अव-श्य ही पड़ेगी ॥ ७२ ॥ परन्तु दूषित नहीं होगी और स्वामीको पावेगी, और यह बहुतसे पुत्रों वाली धनवती और सौभाग्य-वती होगी ॥७३॥ यह सुगन्धित गंध वाली और बार २ कुमारी होगी और इस तन्वाङ्गी पर कभी घोर कष्ट नहीं पड़ेगा ।७४। हे वीर ! अब तुम भानुमती सहदेवको दे दो, वह पाण्डव शूर-वीर श्रद्धालु और धर्म शील है ॥ ७५ ॥ तब धर्मात्मा भानुने नारदजीके वचनको मान कर माद्रीपुत्र सहदेवको भानुमती देने का विचार किया ।७६। उस समय श्रीकृष्णने सहदेवको बुला

तदा वृत्ते सभार्यः स पुरीं गतः ॥ ७७ ॥ इमं कृष्णस्य विजयं यः पठेच्छृणुयादथ । विजयं सर्वकृत्येषु श्रद्दधानो लभेन्नरः ७८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि भानुमती-हरणे निकुम्भवधो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

जनमेजय उवाच । भानुमत्यापहरणं विजयं केशवस्य च १ क्रीडां च सागरे दिव्यां वृष्णीनाममिततेजसाम् । अश्रौषं परमाश्चर्यं मुने धर्मभृतांम्वर ॥ २ ॥ वज्रनाभवधं प्रोक्तं निकुम्भवध-कीर्तने । तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद्भवतो मुने ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । हन्त ते वर्तयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप । विजयं चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत ॥ ४ ॥ मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः । वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चितः समितिंजयः ५

लिया और उसको (भानुके यहां) भेज दिया, फिर विवाह होने पर वह अपनी भार्याके साथ नगरीको चला गया ॥७७॥ जो पुरुष श्रीकृष्णके इस विजय वृत्तान्तको सुनता है, वह श्रद्धालु पुरुष सब कामोंमें विजय पाता है ॥ ७८ ॥ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥

जनमेजयने कहा; कि-हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ मुने ! मैंने परम अचरजमें डालने वाला भानुमतीका हरण और केशवकी विजय तथा अतितेजस्वी वृष्णिवंशियोंका समुद्रमें दिव्य क्रीड़ा करनाभी सुना ॥ १ ॥ २ ॥ हे मुने ! आपने निकुम्भके वधका कीर्तन करते समय वज्रनाभके वधका वर्णन किया था मुझे उसके सुननेका कौतुहल होरहा है (आशा है) आपकी कृपासे (मैं उसे सुन सकूँगा) ॥ ३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे भरतवंशी राजन् ! मैं तुमसे वज्रनाभके वधका तथा साम्ब और प्रद्युम्नकी विजयका वृत्तान्त कहता हूँ ॥ ४ ॥ हे नरपते ! वज्रनाभ नामवाले समितिंजय महाराक्षसने मेरुपर्वतके शिखर पर बड़ा भारी तप

तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः । वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः ॥ ६ ॥ अवध्यतां सर्वदेवेभ्यो वव्रे दानवसत्तमः । पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम् ॥७॥ स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत । अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥ ८ ॥ शाखानगरमुख्यानां संवाहानां शतानि च । नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥ ९ ॥ तथा तदभवत्तस्य वरदानेन भारत । उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः ॥१०॥ कोटिशो वरलब्धं तमसुराः परिवार्य ते । ऊषुर्वज्रपुरे राजन् संवाहेषु तथैव च ॥ ११ ॥ शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप । हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रवः ॥ १२ ॥ वज्रनाभोथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पितः । पुरेऽस्य चात्मनश्चैव जगद्‌ बाधितुमुद्यतः १३

किया था ५ उसके ऊपर लोकोंके पितामह महातेजस्वी ब्रह्माजी प्रसन्न होगए; तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उससे वर माँगनेके लिए कहा ६ तब उस दानवसत्तमने सब देवताओंसे अवध्यता और संपूर्ण रत्नोंसे भराहुआ वज्रपुर नामक शुभ नगर माँगा ७ और हे भारत ! (यह भी माँगा, कि-) मेरे नगरमें वायु भी स्वच्छंद होकर न घुस सके, और बिना चिंता किए हुए ही मेरे काम सिद्ध हो जाया करें ॥ ८ ॥ और हे जनमेजय ! अपने अप्रमेय नगरके चारों ओर शाखानगरकी समान मुख्य सौ बगीचे माँगे ॥ ९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! ब्रह्माजीके वरदानसे तैसा ही हुआ, और वज्रनाभ नामक राक्षस वज्रनामक नगरमें रहने लगा ॥ १० ॥ हे राजन् ! वर पाने वाले वज्रनाभका आश्रय ले करोडों राक्षस वज्रपुरमें और संवाहोंमें (एक प्रकारके बागोंमें) रहने लगे ॥ ११ ॥ हे राजन् ! (श्रीकृष्ण) देवके शत्रु राक्षस रमणीय मुख्य २ शाखानगरोंमें हृष्ट पुष्ट और प्रसन्न होकर रहने लगे ॥ १२ ॥ तदनन्तर वरदानसे दर्पमें भराहुआ दुरात्मा वज्र-

महेन्द्रमब्रवीद्गत्वा देवलोकं विशाम्पते । अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्यं पाकशासन ॥ १४ ॥ अथवा मे प्रयच्छस्व युद्धं देवगणेश्वर । सामान्यं हि जगत् कृत्स्नं काश्यपानां महात्मनाम् १५ स बृहस्पतिना सार्धं मन्त्रयित्वा महेश्वरः । वज्रनाभं सुरश्रेष्ठः प्रोवाच कुरुवंशज ॥ १६ ॥ सत्रेषु दीक्षितः सौम्यः कश्यपो नः पिता मुनिः । तस्मिन् वृत्ते यथान्याय्यं तथा स हि करिष्यति १७ ततः स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत् । यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यपः ॥ १८ ॥ सत्रे वृत्ते करिष्यामि यथान्याय्यं भविष्यति । त्वं तु वज्रपुरे पुत्र वस गच्छ समाश्रितः ॥ १९ ॥ एवमुक्तो वज्रनाभः स्वमेव नगरं ययौ । महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारशालिनीम् ॥ २० ॥ गत्वा चान्तर्हितो देवो वासु-

नाभ अपने पुरमें जगत्को पीड़ित करनेके लिए उद्यत होगया १३ हे राजन् ! उसने स्वर्गमें जाकर इन्द्रसे कहा, कि–हे पाकशासन ! मैं तीनों लोकोंका शासन करना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ अथवा हे देवगणेश्वर ! आप मेरे साथ युद्ध करिये क्योंकि–सारा जगत् महात्मा कश्यपपुत्रोंके लिए सामान्य (बराबर) ही है ॥ १५ ॥ हे कुरुवंशज ! उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ महेश्वर इन्द्रने बृहस्पतिजी से सलाह लेकर वज्रनाभसे कहा, कि–॥ १६ ॥ हमारे पिता सौम्य कश्यपजी यज्ञमें दीक्षित हैं, यज्ञके निबटने पर वह जैसा उचित समझेंगे वैसा कर लेंगे ॥ १७ ॥ उस समय उस दानव ने अपने पिता कश्यपके पास जाकर देवराजने जिस प्रकार कहा था, उस प्रकार उनसे सब बात कही, तब कश्यपजीने उससे कहा; कि–॥ १८ ॥ यज्ञके निबटने पर मैं उचित कार्य करूँगा (तब तक) हे पुत्र ! तू वज्रपुरमें रह, जा वहाँको जा ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहने पर वज्रनाभ अपने नगरको चला गया, तब इन्द्रदेव द्वारवाली द्वारकापुरीको चले ॥ २० ॥ वहाँ पहुँच इन्द्रने

देवगणथाब्रवीत् । वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दनः ॥२१॥ शौरेरुपस्थितो देव वाजिमेधो महाक्रतुः । तस्मिन् वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वासव ॥२२॥ तत्रोपायं प्रवेशे तु चिन्तयावः सतां गतेः । नानिच्छया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो ॥ २३ ॥ ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृतः । वाजिमेधे च सम्प्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥२४॥ तस्मिन् यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ । चिन्तयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ ॥ २५ ॥ तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा । महर्षींस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥ २६ ॥ तं वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवत् । स वव्रे तु नटो भद्रो वरं देवेश्वरोत्तमः ॥२७॥ देवेन्द्रकृष्णच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदितः । प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान् २८

अन्तर्धान रह कर वासुदेवसे वज्रनाभका वृत्तान्त कहा, तब जनार्दनने उससे कहा; कि, ॥ २१ ॥ हे देव ! इस समय वसुदेवजी का अश्वमेध नामक महायज्ञ होने वाला है, हे इन्द्र ! इस यज्ञके होने पर मैं उस दानव वज्रनाभको मारूँगा ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी की मर्यादा उल्लंघन न करना सज्जनोचित मार्ग है, अतः इस यज्ञके होने पर हम तहां घुसनेका विचार करेंगे, क्योंकि हे प्रभो ! तहाँ (असुरकी) इच्छाके बिना वायु भी प्रवेश नहीं कर सकता २३ उस समय वासुदेवसे सत्कार पाकर देवराज इन्द्र चला गया, हे भरतवंशी राजन् ! फिर वसुदेवका अश्वमेध यज्ञ आगया २४ उस यज्ञके चलते समय देवताओंमें श्रेष्ठ वीर देवराज और अच्युत उस नगरमें घुसनेका विचार करने लगे ॥ २५ ॥ जब वह यज्ञ होरहा था, उस समय भद्रनामा नाम वाले नटने सुन्दर नाट्य करके महर्षियोंको प्रसन्न कर लिया ॥२६॥ उस समय मुनियों ने उससे वर माँगनेके लिए कहा उस समय श्रीकृष्ण और इन्द्र की इच्छाके द्वारा प्रेरित सरस्वतीके कारण उस देवेश्वरकी

नट उवाच । भोज्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिसत्तमाः । सप्तद्वीपां च पृथिवीं विचरेयमिमामहम् ॥ २९ ॥ प्रसिद्धाकाशगमनः शक्तुर्वंश्च विशेषतः । अवध्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जंगमाः । यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमहं खलु । मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा ॥ ३१ ॥ स तूर्यस्तान्हशः स्यां वै जरारोगविवर्जितः । तुष्येयुर्मुनयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥ ३२ ॥ एवमस्त्विति संप्रोक्तो ब्राह्मणैर्नृपते नटः । सप्तद्वीपां वसुमतीं पर्यटत्यमरोपमः ॥ ३३ ॥ पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तरांश्च कुरूंस्तथा । भद्राश्वान् केतुमालांश्च कालाम्रद्वीपमेव च ॥ ३४ ॥ पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारकां यदुपालिताम् । आयाति वरदत्तः स लोकवीरो महानटः ॥ ३५ ॥ ततो हंसान् धार्तराष्ट्रान् देव-

---

समान भद्र नामक नटने अश्वमेधमें आये हुए श्रेष्ठ २ मुनियोंको प्रणाम करके अपने स्वरूपके योग्य वर माँगा था ॥२७॥२८॥ नटने कहा; कि–हे मुनिसत्तमों ! मैं सब द्विजोंका भोज्य होजाऊँ और मैं सात द्वीप वाली पृथ्वी पर विचरण कर सकूँ ॥ २९ ॥ मैं आकाशगमनमें विशेष सिद्ध होजाऊँ, समर्थ होजाऊँ और जितने स्थावर जंगम हैं उन सबसे अवध्य होजाऊँ ॥ ३० ॥ मैं मरे हुए वा जीवित प्राणीके वर्तमान वा भावी उत्पन्न किये हुए जिस २ वेशमें प्रवेश करना चाहूँ, उस २ वेशमें प्रवेश कर मैं शीघ्र ही वैसा होजाऊँ, और मैं वृद्धता और रोगसे मुक्त रहूँ और मुनि तथा दूसरे प्राणी भी मेरे ऊपर सर्वदा सन्तुष्ट रहें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मणोंके इस प्रकार कहने पर वह देव समान नट सात द्वीप वाली पृथ्वी पर विचरण करने लगा ॥ ३३ ॥ वह दानवेन्द्रोंके पुरोंमें उत्तर कुरुओंमें भद्राश्वोंमें केतुमालोंमें और कालाम्रद्वीपमें (विचरता रहता था) ॥३४॥ सम्पूर्ण पर्वणियोंके समय वह लोकवीर वरदान प्राप्त महानट

लोकनिवासिनः । उवाच भगवाञ्छक्रः सान्त्वयित्वा सुरेश्वरः ॥ ३६ ॥
भवन्तो भ्रातरोऽस्माकं काश्यपादेव पक्षिणः । विमानवाहा देवानां
सुकृतीनां तथैव च ॥ ३७ ॥ देवानामस्ति कर्तव्यं कार्यं शत्रु
वधान्वितम् । तत्कर्तव्यं न मन्त्रश्च भेतव्यो वः कथंचन ॥३८॥
न कुर्वतां देवताज्ञामुग्रो दण्डः पतेदपि । सर्वत्राप्रतिषिद्धं वो गमनं
हंससत्तमाः ॥ ३९ ॥ गत्वाप्रवेश्यमन्येषां वज्रनाभपुरोत्तमम् ।
इतोंतःपुरवापीषु च चरध्वमुचितं हि वः ॥४०॥ तस्यातिकन्या-
रत्नं हि त्रैलोक्यातिशयं शुभम् । नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्रा-
भेव प्रभावती ॥ ४१ ॥ वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरा-
नना । हैमवत्या महादेव्याः सकाशादिति नः श्रुतम् ॥ ४२ ॥

यादवोंसे विभूषित द्वारकामें आया करता था ॥ ३५ ॥
इसी समय देवराज सुरेश्वर भगवान् इन्द्रने देवलोकमें रहनेवाले
धार्तराष्ट्र हंसोंको समझा कर कहा, कि–॥ ३६ ॥ आप हमारे
भाई हैं, क्योंकि–पक्षी भी काश्यप (गरुड़) से ही हुए हैं और
आप पुण्यात्मा व्यक्तियोंके और देवताओंके विमानोंको लेजाया
करते हैं ॥ ३७ ॥ शत्रुओंका वध करनेके लिए देवता एक कार्य
को करना चाहते हैं, उस कामको आपको करना चाहिये और
देवताओंका मन्त्र किसी प्रकार नहीं खोलना चाहिये ॥ ३८ ॥
और देवताओंकी आज्ञाका पालन न करनेसे भयंकर दण्ड भी
भुगतना पड़ सकता है, हे श्रेष्ठ हंसों ! तुम्हारा गमन कहीं पर
भी निषिद्ध नहीं है ॥ ३९ ॥ अब तुम जिसमें दूसरे नहीं घुस
सकते ऐसे वज्रनाभपुरमें जाओ और तहाँके अन्तपुरकी बावड़ियों
पर तुम विचरण करो (यह मुझे) उचित लगता है ॥ ४० ॥
उसकी कन्या त्रिलोकीके रत्नोंसे भी बढ़कर है, उसका नाम
प्रभावती है, और वह चन्द्रमाकी आभा–चाँदनी–की समान प्रभा
वाली है ४१ हमने सुना है, कि उसकी माताने उस वराननाके लिए

स्वयम्बरा च सा कन्यां बन्धुभिः स्थापिता सती । आत्मेच्छया पतिं हंसा वरयिष्यति शोभना ॥ ४३ ॥ तद्भवद्भिर्गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः । सद्भूता कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा ४४ यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती । यस्याः सकाशात् सन्देशो नयितव्यः समाधिना ४५ प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्वं तथैव च । स्वबुद्ध्या प्राप्तकालं च संविधेयं हितं मम ४६ नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा ॥ ४७ ॥ तथा तथा गुणा वाच्याः प्रद्युम्नस्य महात्मनः । यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत् स्थितम् ॥ ४८ ॥ वृत्तान्तश्चानुदिवसं प्रदेयो मम सर्वथा । द्वारवत्यां च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयसः ॥ ४९ ॥ तावद्यत्नश्च कर्तव्यः प्रद्युम्नो यावदात्मवित् । पर्यावर्तेद्वरारोहां वज्रनाभसुतां विभुः ॥ ५० ॥ अवध्यास्ते तु देवानां ब्रह्मणो वरदर्पिताः ।

हिमाचलकी पुत्री महादेवीके वरसे पाया है ४२ और (हमने सुना है, कि–) वह शोभना कन्या अपने बांधवोंके द्वारा स्वयंवरके लिए खड़े करने पर अपनी इच्छासे पतिका वरण करने वाली है ४३ इस लिए तुम उसमें महात्मा प्रद्युम्नके शील और अवस्था के सद्गुणोंका वर्णन करो ४४ जब वज्रनाभकी सती पुत्रीका भाव प्रद्युम्न पर अनुरक्त प्रतीत हो तब तुम सावधानीसे उसका संदेश (प्रद्युम्नके पास) ले जाना ४५ फिर प्रद्युम्नका संदेश उस के पास ले आना (इसके अतिरिक्त) समयानुसार अपनी बुद्धिसे मेरा हितही करना ४६ और वहाँ पर मुख और नेत्रोंको सर्वथा प्रसन्न रखना ॥ ४७ ॥ तुम महात्मा प्रद्युम्नके गुणोंका इस प्रकार कीर्त्तन करना, कि प्रभावतीका मन प्रद्युम्नमें लग जाय ४८ इसका वृत्तान्त तुम मुझे प्रतिदिन देते रहना और द्वारकामें मेरे छोटे भाईको समाचार देते रहना ॥ ४९ ॥ जब तक आत्मवान् विभु प्रद्युम्न उस वज्रनाभकी पुत्री वरारोहा कन्याको ग्रहण करने

देवपुत्रैर्हि हन्तव्या प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि ॥५१॥ नटो दत्तवरस्तस्य वेषमास्थाय यादवाः । प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशनाः ॥ ५२ ॥ एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च समयेव हि । प्राप्तकालं विधातव्यमस्माकं प्रियकाम्यया ॥ ५३ ॥ प्रवेशस्तत्र देवानां नास्ति हंसा कथञ्चन। वज्रनाभेप्सिसते तत्र प्रवेशः खलु सर्वथा५४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि
एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते वासववचः श्रुत्वा हंसा वज्रपुरं ययुः । पूर्वोचितं हि गमनं तेषां तत्र जनाधिप ॥ १ ॥ ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिणः । पद्मोत्पलैराद्दतासु काञ्चनैः स्पर्शनक्षमैः ॥ २ ॥ ते वै नन्दतो मधुरं संस्कृतापूर्वभाषिणः । पूर्व-

---

के लिये तयार हो, तब तक तुम यत्न करते रहो ५० ब्रह्माजी के वरदानसे उद्धत ये राक्षस देवताओंसे अवध्य हैं, इसलिये प्रद्युम्न आदि मुख्य २ देवताओंके पुत्रोंसे ये युद्धमें मारे जासकते हैं ॥५१॥ नटको वर मिला हुआ है,वज्रनाभको नष्ट करनेवाले प्रद्युम्न आदि यादव उस नटके (साथ) नटकासा वेष धारण कर चले जावेंगे ॥५२॥ तुम हमारा प्रिय करनेकी इच्छासे इस कार्यको तथा दूसरे भी समयोचित कार्योंको करना ॥ ५३ ॥ तहाँ पर देवता किसी प्रकार नहीं घुस सकते हे हंसो ! तहाँ पर तो वज्रनाभके चाहने पर ही प्रवेश होसकता है ५४ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ छ ॥ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि–इन्द्रके वचनको सुन कर हंस वज्रपुरको चल दिये क्योंकि हे राजन् ! वह तो तहाँ पहिले ही जाना चाह रहे थे ॥१। हे वीर ! वे पक्षी छूने योग्य सुवर्णके कमलोंसे आच्छादित रमणीय बावड़ियों पर उतर गए ॥ २ ॥ वे शुद्ध और अपूर्व भाषण करते हुए नाद करने लगे, वे तहाँ पहिले

मण्गागतास्ते तु विस्मयं जनयन्ति ह ॥३॥ अन्तःपुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीषु ते नृप । इष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिनः ।४।
आलपन्तः सुमधुरं धार्तराष्ट्रा जनेश्वर । स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिदं वचः॥५॥त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषणः।
यदैतेहोत्सवोऽस्माकं भवद्भिरवगम्यते ॥ ६ ॥ आगन्तव्यं जाल पादाः स्वमिदं भवतां गृहम् । विस्रब्धं च प्रवेष्टव्यं त्रिविष्टप-निवासिभिः ॥ ७ ॥ ते तथोक्ताः शकुनयो वज्रनाभेन भारत ।
तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम् ॥ ८ ॥ चक्रुः परिचयं ते च देवकार्यव्यपेक्षया । मानुषालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः ॥ ९ ॥ वंशबद्धाः काश्यपानां सर्वकल्याणभागिनाम् । स्त्रियो रेमुर्विशेषेण शृण्वन्त्यः संगताः कथाः ॥ १० ॥

पहिले आये थे, इसलिये (प्राणियोंको) विस्मित कर रहे थे ३ हे राजन् ! वे अन्तःपुरकी भोगनेयोग्य बावड़ियोंमें विचरने लगे, वे स्वर्गमें रहने वाले हंस वज्रनाभको भी अच्छे लगते थे ॥४॥ हे जनेश्वर! वे धार्तराष्ट्र हंस मधुर वाणीका उच्चारण कर रहे थे. उस समय दितिपुत्र (वज्रनाभने) धार्तराष्ट्रोंसे यह बात कही, कि-॥ ५ ॥ आप सुन्दर भाषण करने वाले पक्षी सर्वदा स्वर्गसे ही प्रेम करते रहते हैं, यदि तुम हमारे यहाँ पर रहना उत्सव (प्रसन्नता देनेवाला) समझो तो ॥६॥ हे हंसो ! तुम यहाँपर आजाओ यह घर आपका ही है,आप स्वर्गके निवासी यहाँ पर विश्वस्त होकर आजाय ॥७॥ हे भारतवंशी राजन् ! जब उन पक्षियोंसे वज्रनाभने इस प्रकार कहा तब वे पक्षी तथास्तु कह कर दानवेन्द्रके घरमें घुस गए ॥८॥ देवताओंके कार्यकी अपेक्षा के कारण तहाँ उन्होंने जान पहिचान कर ली,वे मनुष्यकी समान बोलकर बाँस पर बैठ भिन्न २ प्रकारकी कथाएँ कहने लगे, सब प्रकारके कल्याणोंके भागी काश्यपों (दानवों)की इकट्ठी हुई

विचरंस्ते ततो हंसा ददृशुश्चारुहासिनीम् । प्रभावतीं वरारोहां वज्रनाभसुतां तदा ॥ ११ ॥ हंसाः परिचितां चक्रुस्तां ततश्चारुहासिनीम् । सखीं शुचिमुखीं चक्रे हंसीं राजसुता तदा ॥ १२ ॥ सा तां कदाचित् पप्रच्छ वज्रनाभसुतां तदा । विस्रम्भितां पृथक्सूक्तैराख्यानशतैर्वराम् ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य सुन्दरीं वेद्मि त्वामहं हि प्रभावति । रूपशीलगुणैर्देवि किंचित्वां वक्तुमुत्सहे ॥ १४ ॥ व्यतिक्रामति ते भीरु यौवनं चारुहासिनि । यदतीतं पुनर्नैति गतं स्रोत इवांभसः॥१५॥ कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते । स्त्रीणां जगति कल्याणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१६॥ स्वयंवरे च न्यस्ता त्वं पित्रा सर्वांगशोभने । न च कांश्चिद्वरयसे देवासुर-

स्त्रियें तो उनकी बातोंको सुन कर विशेष आनन्द मानती थीं १० हंसोंने तहाँ पर विचरण करते २ सुन्दर हास्य वाली वज्रनाभ की पुत्री प्रभावतीको देखा ॥ ११ ॥ हंसोंने उस चारुहासिनी को अपनी परिचिता बना लिया, राजपुत्रीने भी शुचिमुखी नाम वाली हंसीको अपनी सखी बना लिया ॥ १२ ॥ उस हंसीने जब उसको सैंकड़ो कहनेमें सुन्दर आख्यान सुनाकर विश्वस्त बना लिया तब एक दिन उसने वज्रनाभकी श्रेष्ठ पुत्रीसे कहा, कि—॥ १३ ॥ हे प्रभावती ! मैं तुमको त्रिलोकसुन्दरी समझती हूँ, हे देवि ! मैं तुम्हारे रूप शील और गुणोंके कारण तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ ।१४। हे चारुहासिनि ! तुम्हारा यौवन बीतता हुआ चला जारहा है, यदि यह यौवन चला, जावेगा तो जलके प्रवाहकी समान पीछेको लौट कर नहीं आवेगा ॥ १५ ॥ हे कल्याणि ! मैं यह बात सत्य कहती हूँ, कि—हे देवि ! इस जगत्में स्त्रियोंके लिए कामभोगकी समान और कोई सुख देने वाली वस्तु नहीं है ॥ १६ ॥ हे सर्वांगशोभने ! तुम्हारे पिता तुमको स्वयंवरमें खड़ा करेंगे तुम (तुम अपनी समान न होनेसे)

कुलोद्भवान् १७ व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे। रूपशौर्यगुणैर्युक्तान् सदृशांस्त्वं कुलस्य हि ॥ १८ ॥ आगतान्नेच्छसे देवि सदृशान् कुलरूपतः। इहागन्ता किमर्थं त्वां प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥ १९ ॥ त्रैलोक्येऽस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा। गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यस्ति वा शुभे ॥ २० ॥ देवेषु देवः सुश्रोणि दानवेषु च दानवः। मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्यः स महाबलः ॥ २१ ॥ यं सदा देवि दृष्ट्वा हि स्रवन्ति जघनानि हि। आपीनानीव धेनूनां स्रोतांसि सरितामिव ॥ २२ ॥ न पूर्णचन्द्रेण मुखं नयने वा कुशेशयैः। उत्सहे नोपमातुं हि मृगेन्द्रेणास्य वा गतिम् ॥ २३ ॥ जगतः सारमुद्धृत्य पुत्रः स विहितः शुभे। कृत्वानङ्गं वरे साङ्गं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २४ ॥ दृष्टेन

देवता और असुरोंके कुलमें उत्पन्न हुए किसी व्यक्तिको न वर सकोगी १७ हे सुश्रोणि ! हे शुभे ! तुम्हारे निषेध करने पर वह लज्जित होकर चले जावेंगे, स्वभाव और शूरताके गुणोंसे युक्त कुल और स्वभावमें समान व्यक्तियोंको हे देवि ! तू नहीं चाहेगी (क्योंकि वे तेरी समान रूपवान् न होंगे और रुक्मिणीका पुत्र प्रद्युम्न तो तेरे लिये यहाँ आवेगा ही क्यों ? ।१८।१९। हे चारुसर्वाङ्गि ! हे शुभे। रूप कुल शूरता और गुणोंमें त्रिलोकीका कोई भी पुरुष उनकी बराबर नहीं है२० हे सुश्रोणि ।वह देवताओंमें देवता दीखते हैं और दानवोंमें दानव दीखते हैं और मनुष्योंमें भी महाबली धर्मात्मा मनुष्य हैं२१ जैसे धेनुओंके स्तन और नदियोंके स्रोत टपकते रहते हैं इसी प्रकार उनको देखते ही स्त्रियोंके जघन गीले होजाया करते हैं२२ मैं उनके मुखकी पूर्ण चन्द्रमासे, नेत्रोंकी कमलोंसे, और गतिकी सिंहकी गतिसे भी उपमा नहीं देसकती २३ हे वरे ! हे शुभे ! प्रभाववान् विष्णुने शरीररहित कामदेवको जगत्की सारी सामग्रियोंसे गढ़ अपने यहाँ पुत्र बना उत्पन्न

शम्बरो बाल्ये येन पापो निबर्हितः । मायाश्च सर्वाः सम्प्राप्ता न च शीलं विनाशितम् ॥२५॥ यान् यान् गुणान् पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि । एषुन्यास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥२६॥ रुच्या वन्हिप्रतीकाशः क्षमया पृथिवीसमः । तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपमः । प्रभावती शुचिमुखीं त्विति होवाच भामिनी ॥ २७ ॥ प्रभावत्युवाच । विष्णुर्मानुषलोकस्थः श्रुतः सुबहुशो मया । पितुः कथयतः सौम्ये नारदस्य च धीमतः २८ शत्रुः किल स दैत्यानां वर्जनीयः सदानघे । कुलानि किल दैत्यानां तेन दग्धानि मानिनि ॥ २९ ॥ प्रदीप्तेन रथांगेन शार्ङ्गेण गदया तथा । शाखानगरदेशेषु वसन्ति किल ये सुराः ॥ ३० ॥ इत्येते

किया है २४बालकपनमें इनको शम्बरासुर हर कर ले गया था, तब इन्होंने उस पापीको मार डाला था और उसमें सारी मायाएँ सीख ली थीं, परन्तु (अपने) शीलको नष्ट न होने दिया था २५ हे सुश्रोणि ! तुम्हारे मनमें जिन २ गुणोंका विचार होगा, वे सब गुण त्रिलोकीमें ढूँढने पर प्रद्युम्नमें ही मिलेंगे२६वह रुचि (कान्ति)में अग्निकी समान हैं, क्षमामें पृथवीकी समान हैं, तेज में सूर्यकी समान हैं और गम्भीरतामें कुण्डेकी समान हैं, तब भामिनी प्रभावतीने शुचिमुखीसे इस प्रकार कहा था २७ प्रभावतीने कहा, कि हे सौम्ये ! मैंने बुद्धिमान् नारदजीकी और अपने पिताकी बातचीतमें अनेक बार सुना है, कि-(आजकल) विष्णु मनुष्यलोकमें रहते हैं २८ परन्तु हे निष्पापे ! वह तो दैत्यों के शत्रु हैं, अतः उन्हें तो त्यागना ही चाहिये, हे मानिनी ! उन्होंने तो प्रदीप्त चक्र, शार्ङ्ग धनुष और गदासे दैत्योंके कुलके कुल भस्म किये हैं फिर भी शाखानगरोंमें जो असुर रहते हैं दानवेन्द्र उनसे जिन (बलवान्) की बातें करता रहता है उस बलवान् के प्रति सब सम्पूर्ण स्त्रियोंका मनोरथ होता ही है अर्थात् वे

दानवेन्द्रेण सन्दिश्यन्ते हि तं प्रति । मनोरथो हि सर्वासां स्त्रीणा-
मेव शुचिस्मिते ॥३१॥ भर्तृद्धि मे पतिकुलं श्रेष्ठं पितृकुलादिति ।
यदि भागाऽभ्युपायः स्यात्तस्येहागमनं प्रति ॥ ३२ ॥ महाननुग्रहो
मे स्यात् कुलं स्यात् पावितं च मे । समर्थनां मे पृष्टा त्वां गच्छस्व
शुचिस्मिते ॥३३॥ प्रद्युम्नः स्याद्यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलो-
द्भवः । अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेगनकरो हरिः ॥ ३४ ॥ असु-
राणां स्त्रियो वृद्धाः कथयन्त्यो मया श्रुताः । प्रद्युम्नस्य तथा
जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ॥ ३५॥ यथा च तेन निहतो बलवान्
कालशम्बरः । हृदि मे वर्तते नित्यं प्रद्युम्नः खलु सत्तमे ।३६।
हेतुः स नास्ति स्यात्तेन यथा मम समागमः । दासीं नवाहं
सख्याहं दूत्ये त्वां न विसर्जये ॥३७॥ पश्यिष्यामि नदीपागं मम

काममूढ़ होनेसे शत्रुओंके भी बलवान पुरुषों पर अनुराग
करने लगती हैं शुचिस्मिते ! स्त्रियें सर्वदा यही चाहा करती
हैं, कि-मेरे पतिका कुल मेरे पिताके कुलसे श्रेष्ठ ही हो,
यदि उनको यहाँ बुलानेका कोई उपाय तू कर सकती हो २६--३२
तो तू मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह करेगी और मेरा कुल भी पवित्र
हो जावेगा, हे पवित्रतामें प्रापण करने वाली ! मैं तुमसे पूछ
रही हूँ तुम कार्यको सिद्ध करनेका ऐसा उपाय बताओ ॥३३॥
जिससे विष्णुकुलमें उत्पन्न हुए प्रद्युम्न मेरे स्वामी होजावें, मैंने
वृद्ध २ दैत्यस्त्रियोंसे सुना है, कि हरि दैत्योंके बड़े भारी वैरी
और उद्विग्न करने वाले हैं और मैंने पहिले प्रद्युम्नका जन्म
वृत्तान्त भी सुना है ।३४॥३५॥और उन्होंने बलवान् कालशम्बर
को जिस प्रकार मारा था (वह बात भी मैंने सुनी है) हे सत्तमे !
मेरे मनमें तो प्रद्युम्न ही सदा बसे रहते हैं ॥ ३६ ॥ क्या कोई
ऐसा उपाय नहीं होसकता, जिससे उनका और मेरा समागम
होसके, हे सखी ! मैं तुमको दूती बना कर भेजती हूँ और मैं

तस्य च सङ्गमे । ततस्तां सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत् ३८ शुचिमुख्युवाच । तत्र दूती गमिष्यामि तवाहं चारुहासिनि । इमां भक्तिं तवोदारां प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते ॥३९॥ तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् । साक्षात् कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनि ॥ ४० ॥ इति मे भाषितं नित्यं स्मरेथाः शुचिलोचने । कथाकुशलतां पित्रे कथयस्वायतेक्षणे ॥४१॥ मम त्वं तत्र मे देवि हितं सम्यक् प्रपत्स्यसे । इत्युक्त्वा सा तथा चक्रे यत्तत्सा तामथाब्रवीत् ॥४२॥ दानवेन्द्रश्च तां हंसीं पप्रच्छान्तःपुरे तदा । प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव ॥ ४३ ॥ तत्त्वं शुचिमुखि ब्रूहि कथां योगगतगा वरे । किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं

तुम्हारी सर्वदा दासी बनी रहूँगी ॥ ३७ ॥ तुम चतुर हो, अतः मेरे और उनके संगम होनेके उपायको बताओ, तब हंसी हँस कर प्रभावतीसे कहने लगी ॥ ३८ ॥ शुचिमुखीने कहा कि—हे चारुहासिनि ! मैं तहाँ पर तुम्हारी दूती बन कर जाऊँगी और हे शुचिस्मिते ! तुम्हारी इस बड़ी भारी भक्तिका तहाँ वर्णन करूँगी ॥ ३९ ॥ और मैं ऐसा ही उपाय करूँगी, जिससे वह तेरे पास आ ही जाँय, हे सुश्रोणि ! हे कामिनि ! तू कामावतार (प्रद्युम्न) के साथ साक्षात्कार कर सकेगी ॥४०॥ हे पवित्र लोचन ! तुम मेरे इस भाषणका सर्वदा स्मरण रखना और हे विशालनेत्रे ! तुम अपने पितासे यह भी कहना कि-(शुचिमुखी) कथा कहनेमें चतुर है ४१ हे देवि ! तहाँ पर भी आप मेरे हित की बातका ध्यान रखना, इस प्रकार कहने पर प्रभावतीने उसकी इच्छानुसार किया ४२ तब दानवेन्द्रने अन्तःपुरमें हंसीसे कहा; कि मुझसे प्रभावतीने कहा है, कि-तुम कथा कहने में कुशल हो ॥ ४३ ॥ हे श्रेष्ठ शुचिमुखी ! अब तुम मुझसे तत्त्वकथाका वर्णन करो, हे उत्तम पक्षिणी ! तुमने जगत्में

जगत्युत्तममनिन्दिते ॥ ४४ ॥ अदृष्टपूर्वमन्यैर्वा योग्या योग्यमनि-न्दिते । सोवाच वज्रनाभन्तु हंसी वर नरोत्तम ॥ ४५ ॥ श्रूयता-मित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्र महाद्युतिम् । दृष्टा मे शाण्डिली नाम साध्वी दानवसत्तम । आश्चर्यं कर्म कुर्वन्ती मेरुपार्श्वे मनस्विनी ४६ सुमनाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता । कथञ्चिद्वरशाण्डिल्याः शैलपुत्र्याः शुभा सखी ॥४७॥ नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरः शुभः । कामरूपी च भोज्यश्च त्रैलोक्ये नित्यसम्मानः ॥ ४८ ॥ कुरून् यात्युत्तरान् वीर कालाम्रद्वीपमेव च । भद्राश्वान् केतुमालांश्च द्वीपानन्यांस्तथानघ ॥४९॥ देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विवि-धानि च । स वेत्ति देवान् नृत्येन विस्मापयति सर्वथा ॥ ५० ॥

कौनसा उत्तम आश्चर्य देखा है ॥ ४४ ॥ हे अनिन्दिते ! तूने जगत्में योग्य अयोग्य दूसरोंका पहिले न देखा हुआ; कौनसा आश्चर्य देखा है ? हे नरवरोत्तम ! उस समय हंसीने वज्रनाभसे कहने लगी ४५ उसने महाकान्तिवान् दानवेन्द्रसे सुनिये, इस प्रकार कह कर उससे कहा, कि-हे दानवसत्तम ! मैंने मेरुपर्वतके पार्श्वमें आश्चर्यजनक कर्म करती हुई शाण्डिली नामवाली साध्वी देखी है ४६ और सब भूतोंके हितमें परायण रहने वाली कौशल्य-वंशी सुमनाको भी देखा है वह शाण्डिलीसे कुछ श्रेष्ठ है और शैलपुत्री पार्वतीकी शुभ सखी है ४७ और मैंने एक नट देखा है, उस शुभको नट वर मिला हुआ है, वह इच्छानुसार रूप धारण कर लेता है वह भोज्य है और त्रिलोकीमें नित्य सत्कार पाता रहता है ॥ ४८ ॥ हे निष्पाप वीर ! वह उत्तर कुरुदेशोंमें कालाम्रद्वीपमें भद्राश्वोंमें, केतुमालोंमें तथा दूसरे द्वीपोंमें भी विचरण करता रहता है ४९ वह देवताओंके और गन्धर्वोंके गीतोंको और नाना प्रकारके नाचोंको जानता है और वह अपने नृत्यसे देवताओंको भी विस्मित कर देता है ५० वज्रनाभने कहा, कि-

वज्रनाभ उवाच । श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम् । चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम् ॥ ५१ ॥ कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पद्मिनन्दिनि । नटे दत्तवरे तस्मिन् संस्तवस्तु न विद्यते ॥ ५२ ॥ हंस्युवाच । सप्तद्वीपान् विचरति नटः स दितिजोत्तम । गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा ॥५३॥ तव चेच्छृणुयाद्वीर सद्भूतं गुणविस्तरम् । नटं तदागतं विद्धि पुरं तव महासुर ॥ ५४ ॥ वज्रनाभ उवाच । उपायः सृजतां हंसि येन हंसि नटः शुभे । आगच्छेन्मम भद्रं ते विषयं पद्मिनंदिनि ॥५५॥तेहंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिताः । देवेन्द्राय च कृष्णाय शंशसुः सर्वमेव तत् । ५६ । अथोक्षजेन प्रद्युम्नो नियुक्तस्तत्र कर्मणि । प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा॥५७ दैवीं मायां समाश्रित्य सन्निधाय हरिर्नटम् । नटवेषेण भैमानां

हे हंसि ! थोड़ा समय हुआ मैंने भी चारण महात्मा और सिद्धों को यह बात कहते हुए सुना था ५१ हे पद्मिनन्दिनि ! मुझे भी इस बातका बड़ा कुतूहल है, परन्तु उस वरदानप्राप्त नटने मेरे गुण नहीं सुने हैं (इसी लिए वह मेरे पास नहीं आया है) ५२ हंसीने कहा, कि-हे दितिजोत्तम ! वह नट सातों द्वीपोंमें घूमता फिरता है वह गुणी मनुष्यको (सुनते ही पहुँच जाता है) वह सर्वथा गुणकार्य है ५३ हे वीर ! यदि वह आपके गुणोंको सुन लेय तो हे महासुर ! आप उसको यहाँ आया हुआ ही समझिये ॥ ५४ ॥ वज्रनाभने कहा, कि-हे शुभे पद्मिनन्दिनि ! तू ऐसा उपाय कर जिससे वह नट मेरे नगरमें आजाय, तब तेरा कल्याण होगा ५५ उन हंसोंको वज्रनाभने (इस) कामके लिए छोड़ दिया, तब उन्होंने देवेन्द्रसे और कृष्णसे यह सब बातें कहीं ५६ तब अधोक्षज श्रीकृष्णने उस कर्ममें वज्रनाभका वध करने केलिए और प्रभावतीका संसर्ग करनेके प्रद्युम्नको नियुक्त कर

प्रेषयामास भारत ॥ ५८ ॥ प्रद्युम्नं नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम् । पारिपार्श्वे गदं वीरमन्यान् भैमांस्तथैव च ५९ वारमुख्या नटीः कृत्वा नर्त्तुर्गसदृशास्तदा । तथैव भद्रं भद्रस्य सहायांश्च तथाविधान् ॥ ५९ ॥ प्रद्युम्नविहितं रम्यं विमानं ते महारथाः । जग्मुरारुह्य कार्यार्थं देवानाममितौजसाम् ॥ ६१॥ एकैकस्य समा रूपे पुरुषाः पुरुषस्य ते । स्त्रीणां च सदृशाः सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिप ६२ ते वज्रनगरस्याथ शाखानगरमुत्तमम् । जग्मुर्दानवसंकीर्णं सुपुरं नाम नामतः ६३

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभवधे भ्कोत्तरे प्रद्युम्नादिगमने द्विनवतितमोऽध्यायः ९२

वैशम्पायन उवाच । तदा सुपुरवासीनामसुराणां नराधिप । ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् १ आतिथ्यं क्रियता-

दिया ५७ उस समय हरिने दैवी मायाका आश्रय लेकर (भद्र नामक) वह नट बनाया, नटका वेष बना कर भीमवंशियोंको भेजने लगे ५८ उन्होंने प्रद्युम्नको नायक, साम्बको विदूषक बना कर और गदको पारिपार्श्वमें (श्रुतिधर) बनाकर तथा दूसरे भीमवंशियोंको वारमुख्या नटी बनाकर भेज दिया, वे सब वेश्याओंकी समान गाना बजाना जानते थे, इस प्रकार उन्होंने कल्याणमय (भद्रवेशधारी) भद्रके सहायकोंको भेजा५९ ६० वे महारथी प्रद्युम्नके रचे हुए रमणीय विमानोंमें चढ़ कर अमित ओज वाले देवताओंका कार्य करनेके लिए चले ६१ वे (भीमवंशी) पुरुष (नटके) एक एक मनुष्यके समान रूप वाले थे वे सब राजे रूपमें स्त्रियोंकी समान भी बन गए ६२ तदनन्तर वे वज्रनगरके शाखानगर दानवोंसे घिरे हुए सुपुर नामक उत्तम नगरको चल दिये ॥ ६३ ॥ बयानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९२॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तब हे राजन् ! वज्रनाभने सुपुर

मेषां बहुरत्नमुपायनम् । वासांसि स विचित्राणि सुखाय जन-रञ्जनम् २ भर्तुराज्ञां समालभ्य तथा चक्रुश्च सर्वशः । पूर्वश्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमजीजनत् ॥३॥ नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा । पर्यायार्थं ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ ४ ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा । स्वपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत् ॥ ५ ॥ रामायणं महाकाव्यमुद्देश्यं नाटकीकृतम् । जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥ ६ ॥ लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्गं महामुनिम् । शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ ॥ ७ ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत । ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथा रूपैर्नटैः कृताः ॥८॥तत्कालजीविनो वृद्धा

नगरमें रहने वाले दैत्योंको आज्ञा दीं, कि-इनको उत्तम घर दो ॥ १ ॥ इनका अतिथिसत्कार करना चाहिये, और इन्हें बहुतसे रत्नोंकी भेंट दो और विचित्र वस्त्र दो और इनको सुखी करनेके लिए जनरञ्जन (मनुष्योंको प्रसन्न करने वाली सामग्री) दो ॥ २ ॥ उन्होंने स्वामीकी आज्ञा पाकर वैसा ही किया; पहिले सुना हुआ भद्र नामक नट आगया, इस बातसे उनको कौतूहल होने लगा ॥ ३ ॥ तब दैत्योंने परमप्रसन्नतासे नटका सत्कार किया और वेष धारण करनेके लिए बहुतसे रत्न दिए ॥ ४ ॥ तब वह वरदत्त (नटका वेष धारण करने वाला) नट नाचने लगा; उससे पुरवासियोंको परमहर्ष होने लगा ॥५॥ (उन्होंने) राक्षसेन्द्र रावणका वध करनेके लिए (जिसमें) अमेय विष्णुके जन्म (का वर्णन है उस) महाकाव्य रामायणका नाटक करना आरम्भ कर दिया ॥ ६ ॥ हे अनघ भारत ! उस समय लोमपाद और दशरथ महाद्युति ऋष्यशृङ्गको और शान्ताको गणिकाओंके साथ लेआए ॥ ७॥ नटोंने हे भारत ! राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न ऋष्यशृङ्ग और शान्ता वैसे ही रूपवाली बना दीं

दानवा विस्मयं गताः । आचचक्षुश्च तेषां वै रूपाणि द्रुतगम्भु-
तम् ॥९॥ संस्काराभिनयौ तेषां प्रस्तावानां च धारणम् । दृष्ट्वा
सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः ॥ १० ॥ ते रक्ता विस्मयं
नेदुरसुराः परया मुदा । उत्थायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुनः
पुनः ॥ ११ ॥ ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च । हारान्
मनोहरांश्चैव हेमवैदूर्यभूषितान् ॥१२॥ पृथगर्थेषु दत्तेषु लोकैस्तु
तुष्टुवुर्नटाः । असुरांश्च मुनींश्चैव गात्रैरभिजनैरपि ॥ १३ ॥
प्रेषितं वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभिः । नटस्य दिव्यरूपस्य
नरेन्द्रागमनं तदा ॥ १४ ॥ पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्रः प्रेषयामास
भारत । आनीयतां वज्रपुरं नटोऽसाविति हर्षितः ॥१५॥ दान-
वेन्द्रवचः श्रुत्वा शाखानगरवासिभिः । नीता वज्रपुरं रम्यं नट-

थीं ॥ ८ ॥ उस (रामावतार) के समयके जीवित वृद्ध दानव उस समय विस्मित होगए, हे राजन् ! उन्होंने उनके ही समान रूप बतलाया ॥ ९ ॥ नटोंके संस्कार (वेषधारण), अभिनय (कामको दिखाना), और पात्रोंके प्रवेश दर्शनको देखकर सब दानव विस्मित होगए ॥ १० ॥ वे असुर उस खेलको देखनेमें अनुरक्त हो परमप्रसन्नतासे गर्जना करने लगे और सन्तुष्ट हो नाटकके बीचमें बारबार उठकर वस्त्र कण्ठी कंकण और सुवर्ण तथा वैदूर्य मणिसे विभूषित मनोहर हार देने लगे ।११।१२। जब प्राणी उन नटोंको भिन्न २ पदार्थ देने लगे तब वे नट प्रसन्न होकर असुर और मुनियोंके शरीर और देशकी प्रशंसा कर स्तुति करने लगे १३ हे नरेन्द्र ! उस समय शाखानगरवासियोंने वज्र-नाभके पास नटके आगमन (का समाचार) भेजा १४ राजाने उसकी पहिले ही प्रशंसा सुन रक्खी थी, हे राजन् ! इस लिए उस दैत्येन्द्रने अतिहर्षित हो समाचार भेजा, कि उस नटको वज्रपुरमें ले आओ १५ दानवेन्द्रके वचनको सुन कर शाखानगर

नटवेषेण यादवाः ॥ १६ ॥ आवासश्च ततो दत्तः सुकृतो विश्वकर्मणा । एष्टव्यं यच्च तत्सर्वं दत्तं शतगुणोत्तरम् ॥ १७ ॥ अथ कालोत्सवं चक्रे वज्रनाभो महासुरः । कारयामास रम्यं च चमूसंघटं महद्धवान् ॥ १८ ॥ ततस्तान् परिविश्रान्तान् प्रेक्षार्थमयमनोदयत् । दत्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबलः ॥ १९ ॥ उपविष्टश्च तान् द्रष्टुं सह ज्ञातिभिरात्मवान् । छन्ने चान्तःपुरं स्थाप्य चक्षुर्दृश्ये नराधिपः ॥ २० ॥ भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा । कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः ॥ २१ ॥ ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम् । तन्त्रीस्वरगणैर्विद्धानतोद्यानन्यवादयन् ॥ २२ ॥ ततस्तु देवगान्धारछालिक्यं श्रवणामृतम् । भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनःश्रोत्रसुखावहम् ॥ २३ ॥ आ-

---

में रहने वाले दैत्य नटवेषधारी यादवोंको रमणीय वज्रपुरमें लिवा गए ॥ १६ ॥ (उस समय दैत्येन्द्रने) उनको विश्वकर्माका बनाया हुआ भवन दिया और चाहने योग्य सब वस्तुएँ भी सौगुणी देदीं १७ तदनन्तर वज्रनाभने महाकाल रुद्रका उत्सव किया, उसने प्रसन्न होकर चमूसाद्को रमणीय बना दिया १८ तब उस महाबली वज्रनाभने सावधानीसे बैठे हुए नटोंको बहुत से रत्न देकर उनसे (खेल) दिखानेके लिए कहा १९ हे राजन् ! उस समय वह आत्मवान् छन्न(चिक पड़े)नेत्रदृश्य स्थानमें अपने अन्तःपुरको बैठा कर आपने आप भी अपने मित्रोंके साथ बैठ गया २० नटवेषधारी भयंकर पराक्रमी भीमवंशी भी अपना कार्य दिखानेके लिए नेपथ्यमें (वेश)बना नृत्यकी तयारी करने लगे २१ वे घन (काँसीका छन्न आदि) ससुषिर (छेददार वेणु आदि) मुरजा (मर्दल) और तन्त्रीके स्वरों वाली (वीणा) को बजाने लगे २२ उस समय भीमवंशियोंकी लाई हुई वारांगनाएँ मन और कानोंको सुख देने वाले सुननेमें अमृतकी समान

गान्धारग्रामरागं गङ्गावतरणं तथा। विद्धमासारितं रम्यं जगि-
रेश्वरसम्पदा ॥ २४ ॥ लयतालसमं श्रुत्वा गंगावतरणं शुभम्।
असुरांस्तोषयामास उत्थायोत्थाय भारत ॥२५॥ नान्दिं च वाद-
यामास प्रद्युम्नो गद एव च। साम्बश्च वीर्यसम्पन्नः कार्यार्थि
नटतां गतः ॥ २६ ॥ नान्द्यन्ते च तदा श्लोकं गंगावतरणाश्रि-
तम्। रौक्मिणेयस्तदोवाच सम्यक्स्वविनयान्वितम् ॥ २७ ॥
रम्भाभिसारं कौवेरं नाटकं ननृतुस्ततः। शूरो रावणरूपेण
रम्भावेषं मनोवती ॥ २८ ॥ नलकूवरस्तु प्रद्युम्नः साम्बस्तस्य
विदूषकः। कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः ॥ २९ ॥
शापश्च दत्तः क्रुद्धेन रावणस्य दुरात्मनः। नलकूवरेण च यथा
रम्भा चाप्यथ सान्त्विता ॥ ३० ॥ एतत्प्रकरणं वीरा ननृतु-

देवगांधार छालिक्यको गाने लगीं २३ तथा गांधार आदि स्वरों
वाले रागको (वसन्त आदि) रागको विद्ध (मिश्रराग) को,
और रमणीय आसारित(मूर्छित) रागको गङ्गावतरण नामक
गीतमें गाने लगीं २४ हे भरतवंशी राजन् !(उस समय प्रद्युम्न)
समान लय ताल वाले गङ्गावतरणको सुन कर उठ २ कर
असुरोंको सन्तुष्ट करने लगा २५ अपना कार्य साधनेके लिये नट
बने हुए प्रद्युम्न गद और वीर्यवान् साम्ब नान्दि नामक बाजेको
बजाने लगे २६ तदनन्तर मंगलपद्योंका पाठ होचुकने पर नम्रता
भरे गङ्गावतरणके श्लोकका उच्चारण किया २७ तदनन्तर वे
रम्भाभिसार नाम वाले कुवेर संम्बधी नाटकको खेलने लगे उस
समय शूरने रावणका रूप धारण किया और मनोवती (वारा-
ङ्गना) ने रम्भाका रूप धारण किया २८ प्रद्युम्न नलकूवर बन
गया, साम्ब उसका विदूषक बन गया, फिर यदुनन्दनोंने माया
से कैलासपर्वतको भी बना लिया २९ नलकूवरने क्रोधमें भर कर
जिस प्रकार रावणको शाप दिया था और रम्भाको जिसप्रकार

यदुनन्दनाः । नारदस्य मुनेः कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥३१॥ पादोद्धारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च । तुष्टुवुर्दानवा वीरा भैमानाममिततेजसाम् ॥३२॥ ते ददुर्वस्त्रमुख्यानि रत्नान्याभरणानि च । हारांस्तरलविद्धांश्च वैडूर्यमणिभूषितान् ॥३३॥ विमानानि विचित्राणि रथांश्चाकाशगामिनः । गजानाकाशगांश्चैव दिव्यनागकुलोद्भवान् ॥ ३४ ॥ चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च । गुरूण्यगुरुमुख्यानि गन्धाढ्यानि च भारत ॥३५॥ चिन्तामणींस्तुदारांश्च चिंतिते सर्वकामदान् । प्रेक्षासु तासु बह्वीषु ददन्तो दानवास्तथा ॥ ३६ ॥ धनरत्नैर्विरहिताः कृताः पुरुषसत्तम । स्त्रियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेश्वर ॥ ३७ ॥ ततो हंसी प्रभावत्याः सखी प्राह प्रभावतीम् । गतास्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिंदिते ॥ ३८ ॥ प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारु-

समझाया था ३० इस प्रकरणको और सर्वज्ञ महात्मा नारद मुनिकी कीर्तिको भीमवंशी नाच कर दिखाने लगे ॥ ३१ ॥ वीरदानव अतितेजस्वी भीमवंशियोंके पैर उठा कर नाचनेसे और अभिनय करनेसे प्रसन्न होगए ॥ ३२ ॥ तब वे बढ़िया २ वस्त्र, रत्न, गहने, (वर्तुलमणि) तरल वैडूर्यमणियोंसे विभूषित विद्ध हार देने लगे ॥३३॥ और विचित्र विमान आकाशगामी रथ और दिव्यकुलमें उत्पन्न हुए आकाशगामी हाथी (देने लगे) ॥ ३४ ॥ और हे भरतवंशी राजन ! वे दिव्य रस वाले शीतल चन्द्रमा और सुगन्धित अगर (देने लगे) ॥ ३५ ॥ वे दानव बहुतसी तमाशा दिखाने वालियोंको सब कामनाओं को पूर्ण करने वालीं बड़ी २ चिन्तामणियें देने लगे ॥ ३६ ॥ हे पुरुषसत्तम जनेश्वर ! (इस प्रकार भैमोंने)मुख्य २ दैत्योंको और उनकी स्त्रियोंको धनरहित कर दिया ॥ ३७ ॥ इसी समय प्रभावतीकी सखी हंसीने प्रभावतीसे कहा, कि–हे अनिन्दिते !

लोचने । भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते ॥ ३९ ॥
तेन हृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने । अथ प्रदोषसमये त्वया
सह समागमे ॥ ४० ॥ तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः ।
न ह्यात्मवति भाषन्ते मिथ्या भैमकुलोद्भवाः ॥ ४१ ॥ ततः
प्रभावती हृष्टा हंसीं तामिदमब्रवीत् । उषितासि मया वासे
स्वप्तुमर्हसि सुन्दरि ॥ ४२ ॥ त्वयाहं सहितावासे द्रष्टुमिच्छामि
केशविम् । निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे ॥४३॥
हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम् । आरुरोह च तद्धर्म्यं
प्रभावत्या विहंगमा ॥ ४४ ॥ विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभा-
वती । सम्विधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम् ॥४५॥ तस्मिन्

मैं भीमवंशियोंसे रक्षित द्वारकापुरीमें गई थी ॥ ३८ ॥ हे सुन्दर-
नयने ! हे शुचिस्मिते ! वहां मैंने प्रद्युम्नको एकान्तमें देख कर
तुम्हारे अनुरागका वर्णन किया था ॥ ३९ ॥ हे कमललोचने !
तब उसने प्रसन्न होकर तुम्हारे साथ समागम करनेके लिए
प्रदोषका समय निश्चित किया है ४० इस लिए हे रुचिरश्रोणि !
आज तुम्हारा प्रियतमसे मिलना होगा, क्योंकि- हे आत्मवति !
भीमवंशमें उत्पन्न हुए पुरुष मिथ्या नहीं बोला करते हैं ॥४१॥
तब तो प्रभावतीने प्रसन्न होकर उस हंसीसे कहा, कि-हे सुन्दरि!
अब तुम मेरे घरमें ही वस कर सोजाओ ॥ ४२ ॥ क्योंकि-
मैं अपने भवनमें तुम्हारे (साथ) सानेही केशवके पुत्रको देखना
चाहती हूँ; हे विहंगमे ! तेरे साथ रहनेसे मैं निःसाध्वस (बेखटके)
होजाऊँगी ॥४३॥ उस समय हंसीने अपनी कमललोचना सखी
की बात मान ली और वह आकाशचारिणी हंसी प्रभावतीके
भवन पर बैठ गई ४४ उस समय विश्वकर्माके बनाए हुए महलकी
छत पर प्रभावतीने प्रद्युम्नके आने योग्य संविधान (उपाय)
किया ४५ उसके उपाय करचुकने पर वायुकी समान चलने वाली

कृते सम्भिशाने कामगानयितुं ययौ । प्रभावतीमनुज्ञाप्य सौ वायुसगा गतौ ॥४६॥ नटवेषधरं कामं गत्वोवाच शुचिस्मिता । अद्य भूयः स भगवन् समयो वर्तते निशि ॥ ४७ ॥ तथेति प्राह तां कामः सा विसृष्टाथ पक्षिणी । अभ्यागता च सा हंसी प्रभावतीमथाब्रवीत् । अभ्येति रौक्मिणेयोऽसावाश्वसायतलोचने ४८ प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददृशे माल्यमात्मवान् । भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः ॥ ४९ ॥ निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा । प्रभावत्यानीयमाने त्रिदिनार्थः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ प्रवेशितं च तन्माल्यं स्त्रीभिर्मधुकरायुतम् । उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद्भ्रमरावृतम् ॥ ५१ ॥ अविदूरे च विन्यस्तं प्रभावत्या जनाधिप । भ्रमरास्ते गताः सौम्य सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते ॥५२॥ स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैर्विहीनतः । कर्णोत्पले प्रभावत्या

हंसी प्रभावतीसे कहकर प्रद्युम्नको बुलानेके लिये चली ।४६। उस शुचिस्मिताने नटवेषधारी प्रद्युम्नके पास जाकर कहा, कि— हे भगवन्! वह समय आज रातको है ॥ ४७ ॥ तब प्रद्युम्नने उससे 'ऐसा ही हो' कहा, तब वह पक्षिणी लौट पड़ी और उस हंसीने आकर प्रभावतीसे कहा, कि—हे विशालनेत्रे! अब रुक्मिणीपुत्र आरहे हैं; तू आश्वस्त हो जा ॥ ४८ ॥ उस समय अरिमर्दन आत्मवान् प्रद्युम्नने माल्य (चन्दन) को जाते हुए देखा उस सुगन्धित माल्य पर भौंरे झूम रहे थे ॥ ४९ ॥ यह माल्य प्रभावतीके लिए जारहा है, इस बातको जान कर प्रतापी प्रद्युम्न भौंरे बन कर उस माल्यसे चिपट गए ॥५०॥ स्त्रियें उस भौंरों वाले माल्यको लेजाने लगीं और उन स्त्रियोंने वह भ्रमर से घिरा हुआ माल्य लाकर प्रभावतीको दे दिया ५१ हे जनाधिप! वह माल्य प्रभावतीके समीप ही रख दिया गया, फिर हे सौम्य! सन्ध्याका समय होने पर और भौंरे चले गए ।५२।

निलिल्ये शनकैरिव ॥ ५३ ॥ ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदतां-वरा । उद्यतं पूर्णचन्द्र सा समीक्ष्यातिमनोहरम् ॥ ५४ ॥ सखि दहति मेंगानि मुखं च परिशुष्यति । औत्सुक्यं हृदि चातीव कोयं व्याधिरनौषधः ॥ ५५ ॥ दृश्यद्द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णो निशाकरः । नवोदितः शीतरश्मिः सख्यं हरति च प्रियः ५६ न दृष्टपूर्वो हि मया श्रुतमात्रेण काङ्क्षितः । अहो धूमयतेङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक्खलु ॥५७॥ कल्पयामि यथा बुद्ध्या यदि नाभ्येति मे प्रियः । कुमुद्वतीगतं मार्गं हा गमिष्याम्यकिंचना । मदनाशीविषेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी ॥५८॥ शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो ह्लादनाः सुखाः । दहन्ति मम गात्राणि किं नु चन्द्रभगस्तयः ॥ ५९ ॥ प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुष्परजो-

---

परन्तु वह श्रेष्ठ भीमवंशी उन सहायकोंसे रहित होकर प्रभावती के कर्णकमलमें धीरे २ लीन होने लगा ५३ तदनन्तर वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभावतीने पूर्ण विम्ब वाले मनोहर चन्द्रमाको उदय होते हुए देखकर हंसीसे कहा, कि—॥५४॥ हे सखि ! मेरा शरीर जला जाता है और मेरा मुख सूखा जाता है तथा मेरे हृदयमें उत्सुकता बढ़ती जाती है, यह बिना औषधिकी कौन व्याधि है ॥ ५५ ॥ यह अभी उदय हुआ शीतल किरणों वाला पूर्ण चन्द्रमा भी दुगुनी उत्सुकता बढ़ा कर मेरे साथकी मित्रताको तोड़ रहा है ५६ मैंने पहिले प्रद्युम्नको देखा नहीं है, मैं तो उनको सुनकर ही चाहने लगी थी, तब भी मेरा शरीर धुमैला (भस्म) हुआ जाता है, अतः स्त्रीस्वभावको धिक्कार है ॥५७॥ यदि मेरे प्रियतम नहीं आवेंगे, तो मैं अपनी बुद्धिसे उनकी (मूर्तिकी) कल्पना करलूँगी हाय ! क्या मेरी गति कुमुद्वतीसी ही होगी हाय हाय ! मुझ मनस्विनीको मदनरूपी सर्पने डस लिया है ॥५८॥ स्वभावसे ही शीतल जगत्को प्रसन्न करने वाली सुखस्वरूप

वहः । दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम् ॥ ६० ॥ ततः संकल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवात्मनः । नावतिष्ठति निर्वीर्यं मनः संकल्पधर्षितम् ॥ ६१ ॥ विमनस्कास्मि मुह्यामि वेपथुर्मे महान् हृदि । चभ्रमीति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुवं क्षयम् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वज्रनाभपुरे प्रद्युम्नगमने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

वैशम्पायन उवाच । आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु । कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह ॥ १ ॥ दैत्येन्द्रतनयां प्राप्तमवगच्छस्व मामिह । षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि ॥ २ ॥ विधेयोस्मि प्रभावत्या यथेष्टं मयि वर्तताम् । इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः ॥ ३ ॥ तद्धर्म्यपृष्ठं प्रभया

चन्द्रमाकी किरणें भी क्या मुझे जलाने लगीं ५९ अनेक पुष्पों को वहाने वाला यह स्वभावसे ही शीतल वायु मेरे शुभशरीरको वारम्वार दावाग्निकी समान भस्मसा कर रहा है ॥ ६० ॥ अब मैं अपने मनको स्थिर करनेका संकल्प करूँ,क्योंकि–संकल्प विकल्पसे दवा हुआ मन निर्वीर्य होजाता है और निश्चल नहीं होता है ६१ अरे रे ! मैं तो अनमनी हुई जाती हूँ; मूर्छित हुई जाती हूँ, और मेरा हृदय बड़ी जोरसे काँप रहा है और मेरी आँखें घमी जाती हैं, हाय ! हाय ! मैं तो नष्ट होजाऊँगी ।६२।

तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—यह बाला सब प्रकार मुझमें आसक्त होचुकी है, यह जान कर प्रद्युम्नने प्रसन्नमनसे हंसीसे यह बात कही, कि–॥ १ ॥ तुम दैत्येन्द्र कन्याको जता दो कि-मैं माल्यमें भौरोंके साथ भौरा वन माल्यमें छिप कर यहाँ आ गया हूँ ॥ २ ॥ मैं प्रभावतीका विधेय (दास) हूँ, वह मुझसे यथेष्ट वर्ताव करे, इस प्रकार कहनेके अनन्तर सुन्दर रूप वाले

द्योतितं तस्य धीमतः । अभिभूता प्रभा चैव राजंश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥ ४ ॥ प्रभावत्यास्तु तं दृष्ट्वा ववृधे कामसागरः । चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्यां सरितां पतिः ॥ ५ ॥ सलज्जाधोमुखी किंचित् किञ्चित्तिर्यगवेक्षणी । प्रभावती तदा तस्थौ निश्चलं कमलेक्षणा ॥ ६ ॥ करेणाधःप्रदेशे तां चारुभूषणभूषिताम् । स्पृष्ट्वोवाच वरारोहां रोमाञ्चिततनुस्ततः ॥ ७ ॥ मनोरथशतैर्लब्धं किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् । अधोमुखं मुखं कृत्वा न मां किंचित् प्रभाषसे ॥ ८ ॥ मणोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने । साध्वसं त्यज्यतां भीरु दासः साध्वनुगृह्यताम् ॥९॥ न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज । याचाम्येषोऽञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकालं निबोध मे ॥ १० ॥ गान्धर्वेण विवाहेन कुरुष्वानुग्रहं मम । देशकालानु-

---

प्रद्युम्नने अपना रूप दिखाया ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उन बुद्धिमान् की प्रभासे वह महलकी छत खिल उठी और चन्द्रमासे उत्पन्न होने वाली शुभ चाँदनी भी फीकी पड़ गई ॥ ४ ॥ प्रद्युम्नको देख कर प्रभावतीका कामसागर, पर्वणीके समय चन्द्रमाके उदय होने पर समुद्रकी समान, बढ़ने लगा ५ उसने लज्जाके कारण अपने मुखको कुछ झुका लिया और कुछ तिरछी दृष्टि करके देखने लगी, फिर वह कमलनेत्रा प्रभावती निश्चल होकर खड़ी होगई ॥ ६ ॥ उस समय प्रद्युम्नने उस सुन्दर भूषण वालीके अधः प्रदेशको अपने हाथसे छूकर अपने शरीरके रोमांचित होने पर उससे कहा; कि—॥ ७ ॥ मैंने तुम्हारे पूर्ण चन्द्रमाकी समान मुखको सैंकड़ों मनोरथ करते २ पाया है तुम उस मुखको नीचे को करके मुझसे बोलती क्यों नहीं हो ॥ ८ ॥ हे वरानने ! तुम अपने मुखकी प्रभाको छिपाओ मत, संकोच छोड़ दो और हे भीरु ! इस दास पर अनुग्रह करो ॥९॥ हे भीरु ! मैं इस समय इस बातको समयोचित नहीं समझता, मैं हाथ जोड़कर तुम्हारी

रूपेण रूपेणाप्रतिमा सती ॥११॥ उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्थं जातवेदसम् । जुहाव समये वीरः पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन् ॥ १२ ॥ जग्राहाथ करं तस्या वराभरणभूषितम् । चक्रे प्रदक्षिणं चैव तं मणिस्थं हुताशनम् ॥ १३ ॥ प्रजज्वाल स तेजस्वी मानयन्नच्युतात्मजम् । भगवान् जगतः साक्षी शुभस्याथाशुभस्य च१४ उद्दिश्य दक्षिणां वीरो विप्राणां यदुनन्दनः। उवाच हंसीं द्वारस्थां तिष्ठावां रक्ष पक्षिणि ॥ १५ ॥ तस्यां प्रणम्य यातायां कामस्तां चारुलोचनाम् । ग्रहाय दक्षिणे हस्ते निनाय शयनोत्तमम् ।१६। ऊरावेवोपवेश्यैनां सान्त्वयित्वा पुनः पुनः । चुचुम्ब शनकैर्गण्डं वासयन्मुखमारुतैः ॥ १७ ॥ ततोऽस्याश्च पपौ वक्त्रमब्जं मधुकरो

प्रार्थना करता हूँ अब तुम समयकी बातको सुनो ॥१०॥ हे अप्रतिम रूप वाली ! तुम देश कालके अनुसार गांधर्व विवाह करके मुझ पर अनुग्रह करो ॥ ११ ॥ तदनन्तर वीर भीमवंशीने अपने मणिमें विराजमान अग्निमें पुष्पोंके द्वारा मंत्र पढ़ कर होम किया ॥१२॥ तदनन्तर प्रद्युम्नने श्रेष्ठ आभूषणोंसे भूषित प्रभावतीके हाथको पकड़ कर मणिमें स्थित अग्निकी प्रदक्षिणा की १३ उस समय जगत्के शुभ और अशुभके साक्षी तेजस्वी भगवान् अग्नि भी अच्युतके पुत्रका मान करनेके लिए प्रज्वलित हो उठे १४ तदनन्तर यदुनन्दनने विप्रोंके निमित्त (मनमें) दक्षिणाका संकल्प किया, फिर हंसीसे कहा; कि-हे पक्षिणि ! तुम हमारी रक्षा करनेके लिए द्वार पर खड़ी रहो ॥ १५ ॥ उसके प्रणाम करके चली जाने पर प्रद्युम्न उस सुन्दरनेत्राको दाहिने हाथसे पकड़ कर बढ़िया पलँग पर ले गए ॥१६॥ तदनन्तर उसे जाँघ पर बैठा वारंवार सान्त्वना दे अपनी मुखकी वायुसे उसके कपोलको सुगन्धित करते हुए उसके कपोलका धीरे धीरे चुम्बन करने लगे ॥१७॥ तदनन्तर रति करनेमें चतुर प्रद्युम्नने उस सुश्रोणी

यथा । आलिलिङ्गे च सुश्रोणीं क्रमेण रतिकोविदः ॥ १८ ॥
अरामयद्रहस्यैनां न चोद्वेजितवांस्तदा । आकृष्टं चरत्यर्थं रति-
कार्यविशारदः । उवास स तया सार्द्धं रमन्क्षणमुतः प्रभुः १६
अरुणोदयकाले च ययौ यत्र नटालयम् । अकामया प्रभावत्या
कथञ्चित्स विसर्जितः २० तामेव मनसा कांतां कान्तरूपां समु-
द्वहन् । त ऊषुर्नटवेषेण कार्यार्थं भैमवंशजाः॥ २१॥प्रतीक्षन्तस्तदा
वाक्यमिन्द्रकेशवयोस्तदा । उद्योगं वज्रनाभस्य त्रैलोक्यविजयं
प्रति ॥ २२ ॥ प्रतीक्षन्तो महात्मानो गुह्यसंरक्षणे रताः । कश्य-
पस्य मुनेः सत्रं यावत्तावन्नराधिप ॥ २३ ॥ देवासुराणां सर्वे-
षामविरोधो महात्मनाम् । त्रैलोक्यविजयार्थाय यततां धर्मचारि-
णाम् २४ एवं कालं प्रतीक्षाणां वसतां तत्र धीमताम् । सम्प्राप्तः

के मुख कमलका भ्रमरकी समान पान करके उसका आलिंगन किया ॥ १८ ॥ फिर उसके साथ एकान्तमें रमण किया, परन्तु उसको उद्विग्न नहीं किया, रतिकार्यचतुर प्रद्युम्नने उससे अप-कृष्ट (धीरे २) काम निकाला १६ अरुणोदयका समय आने पर वह जहाँ पर नटोंका निवास था तहाँको चला, उस समय प्रभावतीने उसको अनिच्छासे भेजा था ॥२०॥ वह उस मनोहर रूप वालीका मनमें ध्यान करता हुआ (चला गया) भीमवंशी कार्यके कारण इन्द्रके और केशवके वचनोंकी प्रतीक्षा करते हुए तहाँ नटके वेषमें रहने लगे हे राजन् ! जब तक कश्यप मुनिका यज्ञ हो तब तक गुप्त बातकी रक्षा करते हुए वे महात्मा वज्रनाभ के त्रिलोकीका विजय करनेकी प्रतीक्षा करते हुए (रहने लगे)२३ त्रिलोकीका विजय करना चाहने वाले महात्मा धर्मात्मा देवता और असुरोंमें (कश्यपके यज्ञ तक) विरोध न हो (इसके लिए वह तहाँ पर रहते थे) ॥२४॥ वे बुद्धिमान् तहाँ पर इस प्रकार समयकी बाट देख रहे थे, कि—सब भूतोंके मनको हरने वाला

प्रावृषो रम्यः सर्वभूतमनोहरः ॥ २५ ॥ अहर्निशं च वृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनोजवाः । शक्रकेशवयोर्हंसाः कुमाराणां महात्मनाम् । रेमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया । रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः ॥ २७ ॥ तैर्हि वज्रपुरं हंसैस्तत्सद्भिर्वासवाज्ञया । व्याप्तं नृप नटांस्तांस्तु न विदुः कालमोहिताः २८ दिवापि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये । तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हंससंघाभिरक्षितः ॥ २९ ॥ मायया स्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये । देहार्धेन तु कौरव्य सिषेवेसौ प्रभावतीम् ॥ ३० ॥ सन्नतिं विनयं शीलं लीलां दाक्ष्यमथार्जवम् । स्पृहयन्त्यसुरा दृष्ट्वा विद्वत्तां च महात्मनाम् ॥ ३१ ॥ रूपं विलासं गन्धं च मञ्जुभाषामथार्यताम् । तासां यादवनारीणां स्पृहयन्त्यसुरस्त्रियः ३२

रमणीय वर्षा काल आगया २५ उधर मनकी समान वेग वाले हंस श्रीकृष्ण और इन्द्रको प्रतिदिन महात्मा कुमारोंका समाचार देते रहते थे ।२६। महातेजस्वी प्रद्युम्न भी धार्तराष्ट्रोंसे रक्षित होकर प्रतिदिन रात्रिमें अपने अनुकूल रहने वाली प्रभावतीसे रमण करने लगा. २७इन्द्रकी आज्ञासे तहाँ रहनेवाले हंसोंने नटोंसे वज्रपुरको व्याप्त कर दिया और कालसे मोहित असुर उनको न जान सके। २८ । हे वीर ! प्रद्युम्न प्रभावतीके घरमें दिन भर भी छिपा रहता था, उस समय हंसोंके झुण्ड उसकी रक्षा करते थे ॥ २९ ॥ मायाके कारण प्रद्युम्नकी छाया नटालयमें दीखा करती थी और हे कौरव्य ! वह आधे देहसे प्रभावतीका सेवन किया करता था ॥ ३० ॥ महात्मा भीमवंशियोंकी सन्तति विनय शील लीला चतुरता सरलता और विद्वत्ताको देख कर असुर उनकी स्पृहा करा करते थे। । ३१ ॥ असुरोंकी स्त्रियें यादवोंकी नारियोंकी मधुर वाणी रूप विलास गन्ध तथा आर्यताकी स्पृहा करने लगीं ॥ ३२ ॥ वज्रनाभका एक

वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुतः । दुहितृद्वयं च नृपतेस्तस्य रूपगुणान्वितम् ॥ ३३ ॥ एका चन्द्रावती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा । प्रभावत्यालयं ते तु व्रजतः खलु नित्यदा ॥ ३४ ॥ ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्तां प्रभावतीम् । परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगतां सतीम् ॥ ३५ ॥ सोवाच मम विद्यास्ति याधीता काङ्क्षितं पतिम् । रत्यर्थमानयत्याशु सौभाग्यं च प्रयच्छति ३६ देवं वा यादवं वापि विवशं सद्य एव हि । साहं रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता ॥ ३७ ॥ दृश्यतां मत्प्रभावेण प्रद्युम्नः सुप्रियो मम । ते दृष्ट्वा विस्मयं याते रूपयौवनसम्पदम् ॥ ३८ ॥ पुनरेवाब्रवीत्ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी । प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिदं वचः ॥ ३९ ॥ देवा धर्मरता नित्यं दम्भशीला महासुराः ।

भाई था वह सुनाभ नामसे प्रसिद्ध था, उस राजाके रूपवती और गुणवाली दो कन्याएँ थीं ॥ ३३ ॥ एकका नाम चन्द्रवती था और दूसरीका नाम गुणवती था, वे दोनों सर्वदा प्रभावती के घर जाती रहतीं थीं ॥ ३४ ॥ उन्होंने तहाँ प्रभावतीको रतिमें आसक्त देखा, फिर उन्होंने अपना विश्वास करने वाली प्रभावती से बूझा ३५ उसने कहा, कि-मेरे पास ऐसी विद्या है जो पढ़ने पर अभिलषित पतिको रमण करानेके लिए बुला देती है और सौभाग्यवती रखती है ३६ वह देवता और दानवको भी शीघ्र ही विवश कर ले आती है, (उसीके प्रभावसे) मैं कान्तिवान् और बुद्धिमान् देवपुत्रके साथ रमण किया करती हूँ ३७ अब तुम मेरे प्रभावसे मेरे परम प्यारे प्रद्युम्नको देखो तदनन्तर वे दोनों रूपकी सम्पत्ति वाले प्रद्युम्नको देख कर विस्मयमें पड़ गईं ३८ उस समय वरारोहा चारुहासिनी प्रभावतीने अपनी उन दोनों बहिनोंसे समयानुकूल बात कही, कि-३९ देवता धर्मसे प्रेम करते हैं और महाराक्षस दम्भी स्वभाव वाले होते हैं, देवता

देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुराः ॥ ४० ॥ देवा सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुराः । धर्मस्तपश्च सत्यं च यत्र यत्र जयो ध्रुवम् ॥४१॥ देवपुत्रौ वरयतां पती विद्यां ददाम्यहम् । उचितौ मत्प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथः ॥ ४२ ॥ तां तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यौ चारुलोचनाम् । परिपप्रच्छ भैमं च कार्यं तत्पतिमानिनी स पितृव्यं गदं वीरं साम्बं चाथाब्रवीत्तदा । रूपान्वितौ सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि ॥ ४४ ॥प्रभावत्युवाच । परितुष्टेन दत्ता मे विद्यादुर्वाससा पुरा । परितुष्टेन सौभाग्यं सदा कन्या त्वमेव च ॥ ४५ ॥ देवदानवगन्धर्वाणां यंध्यास्यसि स ते पतिः । भवितेति मया चैव वीरोयमभिकांक्षितः॥ ४६ ॥ गृह्णीतं तदिमां विद्यां

तपसे अनुराग करते हैं और असुर सुखमें रचे पचे रहते हैं ४० देवता सत्यमें लगे रहते हैं और असुर सदा असत्यसे ही प्रेम करते हैं और जहाँ पर धर्म सत्य और तप होता है तहाँही विजय होती है ४१ इस लिये तुम देवपुत्रोंको पति बना लो, मैं तुमको विद्या-दिए देती हूँ, मेरे प्रभावसे तुम शीघ्र ही अपने योग्य पतियोंको पा जावोगी ४२ तब उस सुन्दरनेत्रासे उन दोनों बहिनोंने प्रसन्न होकर ऐसा करना स्वीकार कर लिया, तदनन्तर पतिका मान रखने वाली प्रभावतीने इस कामको अपने पतिसे कहा ४३ तब उसने अपने चाचा गद और वीर साम्बको बताया, कि-ये दोनों रूपवान् सुशील और रणकर्ममें शूर हैं ४४ वैशम्पायनजी ने कहा, कि-(प्रभावतीने अपनी बहिनोंसे कहा, कि-) दुर्वासा ऋषिने प्रसन्न होने पर मुझे यह विद्या दी थी और उन्होंने मुझ पर प्रसन्न हो कर मुझे सौभाग्य और कन्यात्व (कमनीयत्व) दिया है ४५ (उन्होंने मुझसे कहा था, कि-) तू देवता गन्धर्व और दानवोंमेंसे जिसको चाहेगी वह तेरा पति होजावेगा तब मैंने इन वीरकी इच्छाकी थी ४६ इस लिये यदि तुम इस विद्या

सद्यो वां प्रियसंगमः । ततो जगृहतुर्हृष्टे विद्यां तां भगिनीमुखात् दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्यामभ्यस्य ते शुभे । तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ॥४८॥ प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कार्ष्णिना मायिना नृप । गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यरिविमर्दनौ ॥ ४९ ॥ पाणिं जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ । चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च केशविः ॥ ५० ॥ रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः । मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रभावती-
पाणिग्रहणे चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

वैशम्पायन उवाच । नभो नभस्येव निरीक्ष्य मासि कामस्तदा तोयदवृन्दकीर्णम् । प्रभावतीं चारुविशालनेत्रामुवाच पूर्णेन्दुनिभःशवक्त्रः ॥१॥ तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो न दृश्यते

को ग्रहण कर लोगी तो शीघ्र ही तुम प्रिय पुरुषसे मिल सकोगी ४७ तदनन्तर उन दोनों शुभ कन्याओंने उस विद्याका अभ्यास कर गद और साम्बका स्मरण किया, कि-इतनेमें मायावी कृष्णके पुत्रकी मायासे ढके हुए वे दोनों भीमनन्दन प्रद्युम्नके साथ वहाँ आगए सज्जनोंके प्रिय उन दोनों अरिदमनाने भी गान्धर्व विवाहसे उन कन्याओंके हाथ पकड़े थे; उस समय गदने चन्द्रवतीका हाथ पकड़ा था और साम्बने गुणवतीका हाथ पकड़ा था ४९-५० तदनन्तर वे यदुपुंगव वीर इन्द्र और केशव की आज्ञाकी बाट देखते हुए असुरकन्याओंसे रमण करने लगे ५१ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ९४

वैशम्पायनजीने कहा, कि-पूर्ण चन्द्रमाकी समान खिले हुए मुख वाले प्रद्युम्नने भाद्रपद मासमें आकाशको वादलोंसे घिरा हुआ देख कर सुन्दर और विशाल नेत्रों वाली प्रभावतीसे कहा. कि-१ हे सुन्दर अंगों वाली ! हे सुन्दर अन्तररहित जंघाओं

सुन्दरि चारुबिम्बः । त्वत्केशपाशप्रतिमैर्निरुद्धो बलाहकैश्चारुनिरन्तरोरु ॥ २ ॥ संहृष्टगते सुभ्रु तडिद्घनस्था त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव । मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्तस्त्वद्धारयष्टेः सदृशा वराङ्गि ३ घनप्रदेशेषु बलाकपंक्तिस्त्वद्दन्तपंक्तिप्रतिमा विभान्ति । निमग्नपद्मानि सरित्सु सुभ्रु न भान्ति तोयानि रयाकुलानि ॥४॥ अमी घना वायुवशोपयाता बलाकमालामलचारुदन्ताः । अन्योन्यमभ्याहनि तुंगवृत्ता वनेषु नागा इव शुक्लदन्ताः ॥ ५ ॥ धनुस्त्रिवर्णं वरगात्रि पश्य कृतं तवापांगमिवाननस्थम् । विभूषयन्तं गगनं घनांश्च प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते ॥६॥ घनान् नदन्तः प्रतिनर्दमानान्निरीक्ष्य सुश्रोणि शिखीन्प्रहृष्टान् । समाहृतानुद्धत-

---

वाली ! हे सुन्दरि ! तुम्हारे मुखकी समान आभावाला सुन्दर बिम्बधारी चन्द्रमा तुम्हारे केशपाशरूपी बादलोंसे ढकनेके कारण नहीं दीखता ॥ २ ॥ सुवर्णके सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित तुम मेघोंके मध्यमें विराजमान बिजलीकी समान दीख रही हो, हे वरांगि ! ये बादल गर्ज कर तुम्हारी वरयष्टिकी समान धाराएँ बहा रहे हैं ॥ ३ ॥ बादलोंमें घूमती हुई बगलियोंकी पंक्ति तुम्हारे दांतोंकी पंक्तिकी समान शोभा देरही है, हे सुभ्रु ! नदियोंमें कमलोंको डुबाने वाले वेगवान् जल आकुल होनेके कारण शोभारहित दीख रहे हैं ॥ ४ ॥ और जैसे वनोंमें श्वेत दाँतोंवाले हाथी परस्पर मार पीट करनेके लिये तयार होजाते हैं, इसी प्रकार ये बगलोंकी माला रूप सुन्दर श्वेत दाँतों वाले मेघ वायुके वश हो परस्पर लड़नेको उद्यत हो रहे हैं ५ हे सुन्दपाङ्गि ! तुम मुखमें स्थित अपने अपांगकी समान आकाशको और मेघोंको भूषित करते हुए इस तिरंगे धनुषको देखो, हे कान्ते ! यह कामियोंको हर्षित करने वाला है ॥ ६ ॥ हे सुश्रोणि ! बादलोंको गर्जते हुए देख कर अपनी प्रियाओंको मनोहर लगने वाले नृत्यको मयूर

पिच्छप्रशान्त्रियाभिरामानुपनृत्यमानान ॥ ७ ॥ हर्म्येषु चान्ये शशिपाण्डरेषु राजन्ति सुश्रोणि मयूरसंघाः । मुहूर्त्तशोभामतिचारुरूपां दत्त्वा पतन्तो वलभीपुटेषु ॥ ८ ॥ सक्लिन्नपक्षास्तरुमस्तकेषु मुहूर्तचूडामणितां विधाय । प्रयान्ति भूमिं नवशाद्वलानामाशंकमाना धृतचारुदेहाः ॥ ९ ॥ प्रवाति धारान्तरनिःसृतश्च सुखोऽनिलश्चन्दनपंकशीतः । कदम्बसर्जार्जुनपुष्पभूतं समावहन् गन्धमनङ्गबन्धुम् ॥ १० ॥ रतिश्रमस्वेदविनाशहेतुर्नवोदयानागमने च हेतुः । न मारुतः स्याद्यदि चारुगात्रि न मेघकालो मम वल्लभः स्यात् ॥११॥ एवं निषेपुप्रियसंगमेषु रतावसाने यदुपैति वायुः । रतिश्रमस्वेदहरः सुगन्धी ततः परं किं सुखमस्ति लोके ॥१२॥ जलाप्लुतानीक्ष्य महानदीनां सुगान्ति हंसाः पुलिनानि हृष्टाः ।

आदरपूर्वक हर्षित होकर अपनी पूँछको हिला २ कर कर रहे हैं (उनको देख कर) ॥ ७ ॥ छप्परों पर गिरते हुए मयूर मुहूर्त भरके लिए छप्परोंको परमसुशोभित कर चन्द्रमाकी समान श्वेत अर्थात् चूनेसे पुते हुए महलोंपर विराजमान होरहे हैं ।८। भीगे हुए पंखोंवाले सुन्दर शरीरधारी मयूर वृक्षोंकी चोटियोंपर क्षण भरके लिये चूड़ामणिरूप बनकर नई घास वाली भूमिमें (वृक्षों की समानताकी) आशङ्का करते हुए बैठते हैं ।९। वर्षाके बीच में से निकला हुआ घिसे हुए चन्दनकी समान शीतल कामदेव के बन्धु कदम्ब सर्ज और अर्जुन वृक्षोंके पुष्पोंकी सुगन्धि को बहाता हुआ यह वायु चल रहा है १० रतिके श्रम और पसीने को शान्त करनेवाला तथा नवीन मेघोंको लानेवाला वायु यदि नहीं होता तो हे सुन्दराङ्गि ! तो यह मेघकाल मुझे अच्छा ही नहीं लगता ॥ ११ ॥ इस प्रकारके प्रियसंगमोंमें रतिके अन्तमें रतिके श्रम और पसीनेको शान्त करनेवाला जो सुगन्धित वायु चलता है उससे अधिक सुख इस लोकमें और क्या है ॥१२॥ हे सुन्द-

गताः श्रयं मानसवासलुब्धाः ससारसाः क्रौंचगणानुविद्धाः १३ न भान्ति नद्यो न सरांसि चैव हन्तविषीवायत-चारुनेत्रे । गतेषु हंसेष्वथ सारसेषु रथांगतुल्याह्वयनेषु चैव ॥१४॥ भोगैकदेशेन शुभं शयानं प्रभुं जगन्नाथमुपेंद्रमीशम् । निद्राभ्युपेता वरकालतज्ज्ञा श्रियं प्रणम्योत्तरचारुरूपाम् ॥ १५ ॥ निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे मेघांबराक्रान्तनिशाकरोऽत्र । पद्मागताभः कमलायताक्षि कृष्णस्य वक्त्रानुकृतिं करोति ॥ १६ ॥ कदम्बनीपार्जुनकेतकानां स्रजो प्रभुं कृष्णमुपानयन्ति । पुष्पाणि चान्यान्यृतवः समस्ताः कृष्णात् प्रसादानभिकांक्षमाणाः॥१७॥नागाश्चरन्तो विषदिग्धवक्त्राः स्पृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपान्यान् । पेपीयमानान् भ्रम-

रांगि ! सारस क्रौंच और हंस महानदियोंके रेतीले तटोंको जल में डूबे हुए देख कर मान सरोवरमें बसनेके लोभसे (उड़नेका) परिश्रम कर चले गए हैं१३सारसों और चकवोंकी समान बोली बोलनेवाले हंसोंके चले जाने पर हे सुन्दरनेत्रे ! यह नदी और तालाब शोभारहित होनेसे शोभा नहीं देते ॥ १४ ॥ जगत्के स्वामी इन्द्रके छोटे भाई प्रभु विष्णुको सर्पके एक देशरूप शुभ शयन पर शयन करता हुआ देखकर श्रेष्ठसमयको जाननेवाली निद्रा अतिमनोहर रूपवाली लक्ष्मीको प्रणाम कर भगवान् विष्णु को प्राप्त होगई है (तात्पर्य यह है, कि-भगवान्के सोने पर लक्ष्मी जाग रहीं हैं) ॥१५॥ हे कमलकी समान विशाल नेत्रों वाली ! भगवान् उपेन्द्रके सोजाने पर कमलकी समान निर्मल आभावाला चन्द्रमा मेघ रूपी वस्त्रसे ढका हुआ कृष्णके मुखकी नकलसी कर रहा है ॥ १६ ॥ यह समस्त ऋतुएँ प्रसादवश श्रीकृष्णसे प्रसाद की इच्छा कर कदम्ब नीप अर्जुनके पुष्पोंको और इनकी मालाओं को सर्वदा कृष्णकी ही भेंट करता चाहती हैं ॥ १७ ॥ भ्रमरोंसे पिये जाते हुए पुष्पोंको और वृक्षोंको विषसे सने हुए

र्जनानां कौतूहलं ते जनयन्त्यतीव ॥१८॥ तोयातिभारात्म्बुद-वृन्दनद्धं नभः पतिष्यन्तमिवाभिवीक्ष्य । निपानगम्भीरमभिन्नवृष्टं मनोहरं चारुमुखस्तनोरु ॥ १९ ॥ बलाकमालाकुलमाल्यदाम्ना निरीक्ष्य रम्यं घनवृन्दमेतत् । सस्यानि भूमावभिवर्षमाणां जग-द्धितार्थं विमलाङ्गयष्टे ॥ २० ॥ जलावलम्ब्याम्बुदवृन्दकर्षी घनै-र्घनान्योधयतीव वायुः । प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्थान् गजान् गजैः स्वैरिव वीर्यदृप्तान् ॥ २१ ॥ अभीप्सितम्भो विसृजन्ति मेघाः पूतं पवित्रं पवनैः सुगन्धि । हर्षावहं चातकबर्हिणानां वराण्डजानां जलदप्रियाणाम् ॥ २२ ॥ प्लवंगमः षोडशपत्त्रशायी विरौति गोष्ठः सह कामिनीभिः । अचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा यथा

मुख वाले घूमते हुए साँप छू कर मनुष्योंको अति विस्मित कर रहे हैं ॥१८॥ जलके बड़े भारी भार और बादलोंके झुंडोंसे गुथा हुआ आकाश तुम्हारे सुन्दर मुख स्तन और जंघाओंको देखकर पशुओंके जल पीनेके मनोहर स्थानको वर्षासे अभिन्न करता हुआ सा गिरना चाहता है१९ हे निर्मल अंगयष्टिवाली जगत्का हित करनेके लिये भूमिमें धान्योंको बरसाते हुए बगलियोंकी मालारूप पुष्पोंकी मालासे रमणीय इन बादलोंके झुंडोंको देखकर, जिसकी आज्ञा चलती होती है ऐसा राजा वनमें रहने वाले वीर्यसे उद्धत जंगली हाथियोंको जैसे अपने हाथियोंसे लड़ाता है इसीप्रकार यह जलको अवलम्बन देने वाले मेघोंके झुण्डोंको खेंचने वाला वायु बादलोंसे बादलोंको लड़ा रहा है२१यह मेघ चातक और मोरोंको और मेघोंको प्रिय समझने वाले श्रेष्ठ पक्षियोंको हर्षदेनेवाले पवनोंसे सुगंधित और पवित्र आकाशके जलको बरसा रहे हैं२२ वर्षा ऋतुके सोलह पत्तोंमें शयन करने वाला गोष्ठ (की समान दृष्टिसे घबड़ाया हुआ) मेंढक अपनी स्त्रियोंके साथ इस प्रकार शब्द कर रहा है जिस प्रकार कोई सत्य और धर्मको प्रिय समझने

सुशिष्यैः परिवार्यमाणः ॥ २३ ॥ गुणो महांस्तोयदकालजोयं प्रबुद्धमेघस्वनभीषिता यत् । परिष्वजन्तः परिवर्द्धयन्ति विनापि शय्यासमयं प्रियाणाम् ॥ २४ ॥ दोषोयमेकः सलिलागमस्य मां गत्युदारान्वयनर्खशीले । न दृश्यते यत्तव वक्त्रतुल्यो घनग्रहग्रस्त-तनुः शशांकः ॥ २५ ॥ यद्दृश्यते भीरु यदा शशांको घनांतरस्थो जगतः प्रदीपः । तदानुपश्यन्ति जनाः प्रहृष्टा बन्धुं प्रवासादिव सन्निवृत्तम् ॥२६॥ विलापसाक्षी प्रियहीनितानां संदृश्यते भीरु यदा शशांकः । नेत्रोत्सवः प्रोषितकामुकानां दृष्ट्वैव कान्तं भव तीत्यवैमि ॥ २७ ॥ नेत्रोत्सवः कान्तसमागतानां दावाग्नितुल्यः प्रियहीनितानाम् । तेनैव देहेन वराङ्गनानां चन्द्रोपि तावत् प्रिय-

---

वाला ब्राह्मण अपने शिष्योंसे घिर कर ऋचाओंका पाठ कररहा हो ॥ २३ ॥ वर्षाकालका यह बड़ा भारी गुण है, कि-वह जगा कर मेघोंके स्वरसे डरा देता है और शय्या-समयके विना भी कामिनियें आलिङ्गन कर प्रियपुरुषोंके कामको बढ़ा देती हैं॥२४॥ हे प्रशंसनीय कुल अवस्था और शील वाली ! मुझे वर्षाऋतुमें एक यही दोष लगता है, कि-तुम्हारे मुखकी समान चन्द्रमा बादलरूपी ग्रहोंसे ग्रस्त होनेके कारण नहीं दीखता है ॥ २५ ॥ हे भीरु ! मेघोंके बीचमें विराजमान जगत्का दीपक चन्द्रमा जब दीख जाता है तब उसको देख कर मनुष्य इस प्रकार प्रसन्न होते हैं, कि-जिस प्रकार प्रवाससे लौटे हुए बन्धुको देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ २६ ॥ हे भीरु ! प्रियोंसे हीन व्यक्तियोंके विलापका साक्षी जिस समय दीखता है मैं समझता हूँ उस समय मनुष्योंके नेत्र इस प्रकार खिल जाते हैं जिस प्रकार परदेशमें रहने वाले कामुकोंके मन प्रियपुरुषोंको देख कर खिल उठते हैं ॥ २७ ॥ एक ही देहधारी चन्द्रमा स्वामीके पास रहने वाली स्त्रियोंके नेत्रोंको खिला देता है और प्रियतमरहित स्त्रियोंके लिये दावाग्निकी

चिरियंश्च ॥ २८ ॥ विनापि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते यतः प्रभा चन्द्रगभस्तिगौरी । गुणा गुणाश्चन्द्रमसो न वेद्मि यतस्ततोहं प्रशशंसमिष्ये ॥ २९ ॥ अवाप यो ब्राह्मणराज्यमीड्यो दुरापमन्यैः सुकृतैस्तपोभिः । गायन्ति विप्रा पवमानसंज्ञं समागताः पर्वणि चाप्युदारम् ॥ ३० ॥ पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मा पुरूरवा यस्य सुतो नृदेवः । प्राणाग्निरीड्योग्निसजीजनद्यो नष्टं शमीगर्भभवं भवात्मा ॥ ३१ ॥ तथैव पश्चाच्चकमे महात्मा पुरोर्वशीमप्सरसां वरिष्ठाम् । पीतः पुरा योमृतगर्भदेहो मुनिप्रवीरैर्वरगात्रि घोरैः ॥ ३२ नृपः कुशाग्र्यः पुनरेव यश्च धीमानतोग्निर्दिवि पूज्यते च । आयुश्च वंशे नहुषश्च यस्य यो देवराजत्वमवाप वीरः ॥ ३३ ॥ देवाति-

---

समान होता है इस प्रकार चन्द्रमा स्त्रियोंको प्रिय भी लगता है और अप्रिय भी लगता है २८ हे चन्द्रमाकी किरणोंकी समान गौर वर्णवाली! तुम्हारे पिताके घरमें चन्द्रमाके विनाभी (तुम्हारी) प्रभा फैलती रहती है इस लिये मैं इन गुणोंको चन्द्रमाके गुण नहीं समझकर उसकी अधिक प्रशंसा नहीं कर सकता ॥ २९ ॥ और पुण्यात्माओंको तपसे भी दुष्प्राप्य ब्राह्मणोंका राज्य जिन्होंने पाया है और यज्ञके समय इकट्ठे हुए ब्राह्मण दाता पवमान संज्ञक जिन सोमकी स्तुति करते हैं ३० श्रेष्ठ और वीर्यसम्पन्न राजा पुरूरवा जिनका पुत्र है ऐसे बुधके पिता प्राणाग्निस्वरूप, पूजनीय जिन शमीके गर्भमें उत्पन्न हुए अग्निको जिन भवात्मा अर्थात् रुद्रके शिर पर स्थित रहनेवालेने उत्पन्न किया है ३१ जिन महात्माने पीछे हो अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीकी इच्छाकी थी और हे सुन्दराङ्गि! भयंकर मुनि पहले जिनके अमृतमय सारे देहको पीगए थे और जिसके वंशमें उत्पन्न हुआ बुद्धिमान् राजा आयु यज्ञोंकी परम्परासे अग्निस्वरूप होकर स्वर्गमें पूजा पाता

देवो भगवान् प्रसूतो वंशे हरिर्यत्र जगत्प्रणेता । भीमः प्रवीरः सुरकार्यहेतोर्यः सुभ्रु दक्षस्य वृतः सुताभिः ॥ ३४ ॥ बभूव राजाथ वसुश्च यस्य वंशे महात्मा शशिवंशदीपः । यश्चक्रवर्तित्वमवाप वीरः स्वैः कर्मभिः शक्रसमप्रभावः ॥ ३५ ॥ यदुश्च राजा शशिवंशमुख्यो योऽवापमह्यामधिराजभावम् । भोजाः कुले यस्य नराधिपस्य वीराः प्रसूताः सुरराजतुल्याः ॥ ३६ ॥ न कूटकृद्यस्य नृपोस्ति वंशे न नास्तिको नैष्कृतिकोपि वाथ । अश्रद्दधानोप्यथ वा कदर्यः शौर्येण वा वारिरुहाक्षिहीनः ॥ ३७ ॥ वंशे वधूस्त्वं कमलायताक्षि श्लाघ्या गुणानामतिपात्रभूता । कुरु प्रणामं शिखराग्रदन्ति तस्य स्वमीशस्य सतां प्रियस्य ॥ ३८ ॥ नारायण-

---

है और जिसके वंशमें उत्पन्न हुए वीर नहुषने देवराजपन पाया है ३३ और जिसके वंशमें हे सुभ्रु ! दक्षकी कन्याओंसे घिरेहुए जगत्को रचने वाले देवेश्वर भगवान् देवताओंका कार्य करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं ॥ ३४ ॥ शशिवंशका दीपकरूप महात्मा राजा वसु जिसके वंशमें उत्पन्न हुआ है और उस इन्द्रकी समान प्रभाव वाले वीर वसुने अपने कर्मोंसे चक्रवर्तीपना पाया है ३५ शशिवंशमें मुख्य राजा यदुने पृथ्वीमें अधिराज पद पाया था, उस नराधिपके कुलमें देवेन्द्रकी समान भोज उत्पन्न हुए हैं ३६ उसके वंशमें कपटका वर्ताव करने वाला, नास्तिक कायर छली और कमलकी समान नेत्रोंसे रहित कोई राजा नहीं हुआ है ३७ हे कमलकी समान विशाल नेत्रों वाली ! ऐसे श्लाघनीय गुणों वाले राजाओंके कुलोंमें तू योग्य वधू हुई है, हे शिखरके अग्रभागकी समान दांत वाली ! तू उन सज्जनोंके प्रिय ईश(विष्णु) को प्रणाम कर॥३८॥ हे देवि ! नारायण, अपनेसे अपने आप उत्पन्न हुए, त्रिलोकीके स्वामी, गरुड़ध्वज, अपने श्वसुर पुरु-

यात्मभवायनाय लोकायनाय त्रिदशायनाय । खगेन्द्रकेतोः पुरु-
षोत्तमाय कुरु प्रणामं स्वसुराय देवि ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रद्युम्न-
भाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

वैशम्पायन उवाच । सत्रावसाने च मुनेः कश्यपस्यातितेजसः ।
जग्मुर्देवासुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमाः ॥ १ ॥ वज्रनाभोपि
निर्वृत्ते सत्रे कश्यपमभ्यगात् त्रैलोक्यविजयाकांक्षी तमुवाचाथ
कश्यपः ॥ २ ॥ वज्रनाभ निबोध त्वं श्रोतव्यं यदि चेन्मम । वस
वज्रपुरे पुत्र स्वजनेन समावृतः ॥ ३ ॥ तपसाभ्यधिकः शक्रः
शक्तश्चैव स्वभावतः । ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ठः श्रेष्ठतमो गुणैः ॥ ४
राजा कृत्स्नस्य जगतः पात्रभूतः सतां गतिः । सम्प्राप्तो लोकराज्यं
स सर्वभूतहिते रतः ॥ ५ ॥ नव शक्यस्त्वया जेतुं वज्रनाभ विह-
न्यसे । अहिंसा त्वं कृतकृतवान् न चिराद्विनशिष्यसि ॥ ६ ॥ वज्र

षोत्तमको तू प्रणाम कर ३६ पिचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा; कि—अतितेजस्वी मुनि कश्यपके यज्ञके
समाप्त होने पर अमित पराक्रमी देवता और असुर अपने अपने
स्थानोंको चले गए ॥ १ ॥ यज्ञके समाप्त होने पर त्रिलोकीका
विजय करना चाहने वाला वज्रनाभ कश्यपके पास गया, तब
कश्यपने उससे कहा; कि—॥ २ ॥ हे वज्रनाभ ! यदि तू मेरे कथन
को सुनने योग्य समझता हो तो तू अपने मनुष्योंसे घिर कर
वज्रपुरमें ही रहता रह ॥ ३ ॥ इन्द्र तुझसे तपमें अधिक है, स्व-
भावसे ही समर्थ है ब्राह्मणभक्त है, कृतज्ञ है और गुणोंसे ज्येष्ठ
है ॥ ४ ॥ वह सब भूतोंका राजा, सज्जनोंकी गति है; वह पात्र-
रूप है, इसी लिए वह सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहने वाले
को त्रिलोकीका राज्य मिला है ॥ ५ ॥ वह तेरे जीतनेमें नहीं
आसकता; (ऐसा करनेसे) हे वज्रनाभ ! तू मारा जायेगा,

नाभश्च तद्वाक्यं नाभिनन्दति भारत । कालपाशपरीतांगो मर्तुकाम इवौषधम् ७ अभिवाद्य स दुर्बुद्धिः कश्यपं लोकभावनम् । त्रैलोक्यविजयारम्भे मतिं चक्रे दुरासदः ॥ ८ ॥ ज्ञातियोधान् समानीय मित्राणि सुबहूनि च । गतस्थे स्वर्गमेवाग्रे विजिगीषन् विशाम्पते ॥ ९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवौ कृष्णेन्द्रौ च महाबलौ । प्रेषयामासतुर्हंसान् वज्रनाभवधं प्रति ॥ १० ॥ समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुमुख्याः महाबलाः । मन्त्रयित्वा महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तथा ॥ ११ ॥ वज्रनाभोऽद्य हन्तव्यः प्रद्युम्नेनेत्यसंशयम् । तयोर्दुहितरो भार्या भक्त्या ताः सर्वभावनाः ॥ १२ ॥ सर्वाः सगर्भास्ताश्चैव किं नु कार्यमनन्तरम् । प्राप्तः प्रसवकालश्च तासां नातिचिरादिव ॥ १३ ॥ सम्मन्त्रयित्वैतदर्थं हंसानूचुः-

---

साँप पर पैर मारनेसे तू शीघ्र ही नष्ट होजावेगा ६ जैसे मरना चाहने वाला रोगी औषधि नहीं खाता है, इसी प्रकार कालके पाशमें फँसे हुए वज्रनाभने भी उनकी बात नहीं मानी ॥ ७ ॥ तदनन्तर उस दुर्बुद्धि और दुरासद वज्रनाभने कश्यपजीको प्रणाम कर त्रिलोकीको विजय करनेका उद्योग आरम्भ किया ॥ ८ ॥ हे राजन ! उसने अपनी जाति वाले योधाओंको और बहुतसे मित्रोंको बुला कर जीतनेकी इच्छासे स्वर्गको प्रस्थान करदिया ९ इसी समय महाबली कृष्ण और इन्द्रने वज्रनाभका वध करनेके लिए हंसोंको भेजा ॥ १० ॥ हंसोंको आया हुआ सुनकर यादवों में मुख्य महाबली महात्मा आपसमें बातचीत करते हुए चिन्ता करने लगे, कि—। ११ ॥ आज प्रद्युम्नको वज्रनाभका वध अवश्य करना चाहिये, परन्तु इन दोनोंकी पुत्रियें हमारी भार्याएँ हैं और वे सबका कल्याण चाहा करती हैं ॥१२॥ वे सब गर्भवती हैं और उनका प्रसवकाल समीप आलगा है, अतः अब क्या करना चाहिये ॥ १३ ॥ इस बातकी सलाह करके उन महाबल-

महाबला: । आदध्येयमर्थवत्कृत्स्नं शक्रकेशवयोस्तदा ॥ १४ ॥
हंसैर्गत्वा तदाख्यातं देवयोस्तद्यथातथम् । ताभ्यां हंसास्तु संदिष्टा
न भेतव्यमिति प्रभो ॥ १५ ॥ उत्पत्स्यन्ति गुणैः श्लाघ्याः पुत्राः
वः कामरूपिणः । गर्भस्था सर्ववेदांश्च साङ्गान् वेत्स्यन्त्यनिंदिताः
तथा चानागतं सर्वशास्त्राणि विविधानि च । सद्य एव युवानश्च
भविष्यन्ति सुपण्डिताः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा गता हंसाः पुन-
र्वज्रपुरं विभो । शशंसुश्चैव भैमानां शक्रकेशवभाषितम् ॥१८॥
प्रभावती तदा पुत्रं सुषुवे सदृशं पितुः । सद्योयौवनसम्प्राप्तं सर्व-
ज्ञत्वं च भारत ॥१९॥ मासमात्रेण सुषुवे देवी चन्द्रवती नृप ।
चन्द्रप्रभमिति ख्यातं तनयं सदृशं पितुः ॥ २० ॥ सद्यश्च यौवनं

वालोंने हंसोंसे कहा;कि-यह सारी प्रयोजन भरी बात तुम्हें इंद्र और उपेन्द्रसे कहनी चाहिये ॥१४॥ हंसोंने जाकर वह सब बात उन दोनों देवताओंसे यथार्थ रीतिसे कह दी, हे प्रभो ! तब उन दोनोंने हंसोंको सन्देश दिया;कि-"तुम डरो मत ॥१५॥ तुम्हारे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले गुणोंसे प्रशंसा पाने वाले पुत्र उत्पन्न होवेंगे, और वे अनिन्दित पुत्र गर्भमें ही अङ्गोंसहित वेदोंको जान जावेंगे ॥ १६ ॥ तथा सारी भविष्यकी बातके और सब प्रकारके शास्त्रोंके ज्ञाता होजावेंगे और वे पण्डित तत्काल ही तरुण होजावेंगे ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकार कहने पर वे हंस वज्रपुरको चले गए और उन्होंने भीमवंशियोंसे कृष्णकी कही हुई सब बातें कहीं ॥ १८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तदनन्तर प्रभावतीने पुत्रको उत्पन्न किया; वह अपने पिताकी समान था, तत्काल ही युवावस्थाको प्राप्त होगया था और सर्वज्ञ था १९ हे राजन् ! फिर महीनेभरमें ही देवी चन्द्रवतीने पुत्रको उत्पन्न किया, वह चन्द्रप्रभ नामसे प्रसिद्ध हुआ और पिताकी समान हुआ ॥ २० ॥ इसी प्रकार अनिन्दिता गुणवतीने भी गुणवान्

मासं सर्वज्ञत्वं च भारत । गुणवत्यपि पुत्रं च गुणवन्तमनिंदिता २१ युवानावथ सञ्जातौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ । इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन संवृत्तौ युद्धवर्धनौ ॥२२॥ हर्म्यपृष्ठे वर्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दनाः । इन्द्रोपेन्द्रेच्छया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम् ॥ २३ ॥ निवेदिताश्च सम्भ्रान्तैर्दैत्यैराकाशरक्षिभिः । वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टप जयैषिणे ॥२४॥ वधाय सर्वे गृह्यन्तां ममैते गृहधर्षकाः । इत्युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुरः ॥ २५ ॥ ततः सैन्यं समाज्ञप्तमसुरेन्द्रेण धीमता । आवारयामास दिशः सर्वाः कुरुकुलोद्वह २६ गृह्यन्तामाशु वध्यन्तामिति वाचस्ततस्ततः । उच्चेरुरसुरेन्द्रस्य शासनादरिशासिनः ॥ २७ ॥ यच्छ्रुत्वा व्यथितास्तेषां मातरः

नामक पुत्रको उत्पन्न किया था, वह भी तत्काल ही तरुण हो गया था और सर्वज्ञ था ॥ २१ ॥ वे दोनों (चन्द्रप्रभ और गुणवान्) इन्द्र और उपेन्द्रके प्रसादसे तत्कालही युवा होगए और सकल अस्त्रोंमें कुशल हो युद्धके बढ़ाने वाले होगए थे ॥ २२ ॥ (दैत्योंने) उन यदुनन्दनोंको महलकी छत्त पर बढ़ते हुए देख लिया, यह देखना इन्द्र और उपेन्द्रकी ही इच्छावश हुआ था और किसी प्रकार नहीं हुआ था, इस बातका निश्चय रखना चाहिये २३ यह बात संभ्रान्त होकर आकाशकी रक्षा करने वाले दैत्योंने जाकर स्वर्गको जीतना चाहने वाले वीर वज्रनाभसे कहदी २४ उस समय दैत्योंके स्वामी महादानव वज्रनाभने कहा, कि—मेरे घरका अपमान करने वाले इन सबको मारनेके लिए पकड़ लो ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलोद्वह ! उस समय बुद्धिमान् असुरेन्द्रकी आज्ञा होने पर सेनाने सब दिशाओंको घेर लिया ॥२६॥ असुरराजकी आज्ञा होने पर शत्रुओंका शासन करनेके लिये नियुक्त दैत्य पकड़लो और मार डालो आदि बातें चारों ओर कहने लगे ॥ २७ ॥ इस बातको सुन कर पुत्रोंसे स्नेह करने वाली

पुत्रवत्सलाः । रुरुदुस्ता रुदन्त्यश्च प्रद्युम्नः प्रहसन् ब्रवीत् ।२८।
मा भैष्ट जीवमानेषु स्थितेष्वस्मासु सर्वथा । किं नो दैत्या करिष्यन्ति सर्वथा भद्रमस्तु वः ॥ २६ ॥ प्रभावतीमथोवाच प्रद्युम्नो विलवां स्थिताम् । पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तव ॥३०॥ भ्रातरश्चैव ते देवि ज्ञातयश्च तथापरे । एते पूज्याश्च मान्याश्च तवार्थे खलु सर्वथा ॥ ३१ ॥ भगिन्यौ पृच्छ भद्रं ते कालोऽयं खलु दारुणः । मरणं सहमानानां युध्यतां विजयो ध्रुवम् ॥३२॥दानवेन्द्रादयो ह्येते योत्स्यन्तेऽस्मद्वधैषिणः । किमत्र कार्यमस्माभिः सर्वैश्चक्रान्तरस्थितैः ॥ ३३ ॥ प्रभावती रुदन्ती तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् । शिरस्यञ्जलिमाधाय जानुभ्यां पतिता क्षितौ ॥ ३४ ॥ गृहाण शस्त्रमात्मानं रक्ष शत्रुनिबर्हण । जीवन्

माताएँ व्यथित होकर रोने लगीं, तब उन रोने वाली स्त्रियोंसे प्रद्युम्नने मुस्कुरा कर कहा, कि-॥ २८ ॥ हमारे जीते रहने तक तुम जरा भी न डरो, दैत्य हमारा क्या कर सकते हैं? तुम्हारा सब प्रकार कल्याण ही होगा ॥ २६ ॥ उस समय (चिन्तामें) डूबती हुई प्रभावतीसे प्रद्युम्नने कहा, कि-तुम्हारे चाचा और तुम्हारे पिता हाथमें गदा लिए हुए खड़े हैं ॥ ३० ॥ हे देवि! तुम्हारे भाई और दूसरे जाति वाले भी (खड़े हैं) वे सर्वथा तुम्हारे माननीय और पूज्य हैं ॥ ३१ ॥ हे भद्रे! तुम अपनी बहिनोंसे भी सब बातें बूझलो, क्योंकि-यह समय बड़ा दारुण है, क्योंकि-(शस्त्रोंका प्रहार) सहन कर लड़ने वाले पुरुषोंकी जीत वा मृत्यु अवश्य ही होती है ॥ ३२ ॥ ये दानवेन्द्र आदि युद्ध करेंगे और ये हमारा वध करना चाहते हैं, परन्तु हम सब दूसरोंके राज्यमें पड़े हुए हैं, अतः अब क्या करें? ॥ ३३ ॥ उस समय प्रभावती रोनेलगी और उसने शिर झुका हाथ जोड़ पृथिवीमें घुटनोंको टेक कर प्रद्युम्नसे यह बात कही, कि-३४

पुत्रांश्च दारांश्च द्रष्टासि यदुनन्दन ॥३५॥ आर्यां नृवर वैदर्भीमनिरुद्धं च मानद । स्मृत्वैतन्मोचयात्मानं व्यसनादरिमर्दन ३६ दुर्वाससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता । वैधव्यरहिता हृष्टा जीवत्पुत्रा भविष्यसि ॥ ३७ ॥ एष मे हृदयाश्वासो भविता न तदन्यथा । सूर्याग्नितेजसो वाक्यं मुनेरिंद्रानुजात्मज ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वाथासिमादाय सुपस्पृष्ट्वा मनस्विनी । प्रददौ रौक्मिणेयाय जयस्वेति वरम्वरा ॥ ३९ ॥ स तं जग्राह धर्मात्मा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । प्रणम्य शिरसा दत्तं प्रियया भक्तियुक्तया ॥ ४० ॥ चन्द्रवत्यपि निस्त्रिंशं गदाय प्रददौ मुदा । तदा गुणवती चैव साम्बायासिं महात्मने ॥ ४१ ॥ हंसकेतुमथोवाच प्रद्युम्नः प्रणतं

हे शत्रुनिबर्हण ! आप शस्त्रको ग्रहण कर अपनी रक्षा करिये, हे यदुनन्दन ! यदि आप जीवित रहेंगे तो (बहुतसे) पुत्र और स्त्रियोंको देख सकेंगे ॥ ३५ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ अरिमर्दन ! आप पूज्या वैदर्भीका और अनिरुद्धका स्मरण कर इस आपत्तिसे अपना प्राण छुड़ानेका यत्न करिये ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् दुर्वासा मुनिने मुझे वर दिया था, कि-तू वैधव्यरहित होगी, तेरे पुत्र जीवित रहेंगे, और तू प्रसन्न रहेगी ॥३७॥ हे इन्द्रके छोटे भाई के पुत्र ! मेरे मनमें विश्वास है, कि-सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी मुनिकी यह बात सत्य होगी; झूँठ नहीं होगी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कहनेके अनन्तर वरका वरण करनेवाली मनस्विनी प्रभावतीने तलवारको पकड़ा और उसका भली प्रकार स्पर्श कर वह तलवार जीतो कहकर प्रद्युम्नको देदी ॥३९॥ धर्मात्मा प्रद्युम्नने शिर झुका कर प्रणाम कर देती हुई अपनी प्रियासे वह तलवार मनमें प्रसन्न होकर लेली ॥४०॥ तदनन्तर चन्द्रवतीने भी प्रसन्न होकर गदको तलवार दी और गुणवतीने भी महात्मा साम्बको तलवार दी ॥४१॥ उस समय प्रणाम करते

प्रभुः । इहैव साम्बसहितो युध्यस्व सह यादवैः ॥४२॥ आकाशे दिक्षु सर्वासु योत्स्याम्यहमरिंदम । इत्युक्त्वाथ रथं चक्रे मायया मायिनाम्वरः ॥ ४३ ॥ सहस्रशिरसं नागं कृत्वा सारथिमात्मवान् । अनन्तभोगं कौरव्य सर्वनागोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥ स तेन रथमुख्येन हर्षयन् वै प्रभावतीम् । चचारासुरसैन्येषु तृणेष्विव हुताशनः ॥ ४५ ॥शरैराशीविषाख्यैरर्धचन्द्रानुकान्तिभिः । भेदमेर्गाधिनैश्चैव ततर्द दितिसम्भवान् ॥ ४६ ॥ असुराश्च रणे मत्ताः कार्ष्णिं शस्त्रैरितस्ततः । जघ्नुः कमलपत्राक्षं परं निश्चयमास्थिताः ॥ ४७ ॥ चिच्छेद बाहून्केषांचित् केयूरवलयोज्ज्वलान् । सकुण्डलानि केषांचिच्छिरांस्यपि च चिच्छिदे ॥ ४८ ॥

हुए हंसकेतुसे प्रभु प्रद्युम्नने कहा, कि–तुम यादवोंको और साम्ब को साथमें लेकर यहाँ ही युद्ध करो ॥ ४२ ॥ और हे अरिदमन ! मैं आकाशमें और सब दिशाओंमें युद्ध कर लूँगा, इस प्रकार कहकर माया करने वालोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नने मायासे रथको बना लिया ॥ ४३ ॥ हे कौरव्य ! आत्मवान् प्रद्युम्नने सहस्र फनों वाले सर्पको रचकर उस अनन्तके शरीरधारी सर्पको अपना सारथि बना लिया ॥४४॥ वह उस मुख्य रथसे प्रभावतीको हर्षित करता हुआ असुरसेनाके बीचमें, तिनुकोंमें विचरण करने वाले अग्निकी समान, असुर सेनाओंमें घूमने लगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर प्रद्युम्नने आधे चन्द्रमाकी समान कांति वाले सर्पकी समान सूक्ष्म अग्रभाग वाले और शरीरमें घुस जाने वाले बाणों से असुरोंको पीड़ित करना आरम्भ कर दिया॥४६॥रणमें मत्त हुए असुर भी बड़ा पक्का निश्चय कर कमलपत्रकी समान नेत्रोंवाले कृष्णपुत्र पर चारों ओरसे बाणोंकी बौछार करने लगे । ४७ । तब प्रद्युम्नने बहुतसे पुरुषोंकी बाजूबन्द और वलोंमे विभूषित भुजाओंको काट डाला और किन्हींके कुण्डलयुक्त मस्तकोंको

क्षुरच्छिन्नैः शिरोभिश्च कायैश्च शकलैरपि । असुराणां मही
कीर्णा प्रद्युम्नेनातितेजसा ॥ ४९ ॥ देवेश्वरो देवगणैः सहितः
समितिंजयः । ददर्श मुदितो युद्धं भैमानां दितिजैः सह ॥ ५० ॥
ये गदं चैव साम्बं च दैत्याः समभिदुद्रुवुः । ते ययुर्निधनं सर्वे
यादांसीव महोदधौ ॥ ५१ ॥ विषमं तु तदा युद्धं दृष्ट्वा देवपति-
र्हरिः । गदाय प्रेषयामास स्वं रथं हरिवाहनः ॥ ५२ ॥ दिदेश
मातलिसुतं यन्तारं च सुवर्चसम् । साम्बायैरावणं नागं प्रेषया-
मास चेश्वरः ॥ ५३ ॥ जयन्तं रौक्मिणेयस्य सहायमददाद्विभुः ।
ऐरावणमधिष्ठातुं प्रवरं स नियुक्तवान् ॥ ५४ ॥ देवपुत्रद्विजौ
वीरावप्रमेयपराक्रमौ । अनुज्ञाप्य सुराध्यक्षं ब्रह्माणं लोकभाव-
नम् ॥५५॥ तं मातलिसुतं चैव गजमैरावणं तदा । देवः प्रेषित-

छेद डाला ॥ ४८ ॥ अति तेजस्वी प्रद्युम्नने क्षुरोंसे काटे हुए
शिरोंसे और उनके शरीरके टुकड़ोंसे पृथिवीको व्याप्त कर दिया
उस समय देवता और समितिञ्जय इन्द्र भी भीमवंशियोंके और
राक्षसोंके युद्धको प्रसन्न होकर देखने लगे ॥ ५० ॥ जो दैत्य
गद और साम्ब पर झपट कर गए थे, वे समुद्रमें लीन होने
वाले जलचर पक्षियोंकी समान मर गए ॥ ५१ ॥ देवताओंके
स्वामी हरिवाहन इन्द्रने उस विषम युद्धको देख कर अपना रथ
गदके लिये भेज दिया ॥ ५२ ॥ और मातलिके पुत्र सुवर्चाको
रथवान् बनाकर भेज दिया इसीप्रकार साम्बके लिए भी ईश्वर
इन्द्रने ऐरावत हाथीको भेज दिया ॥ ५३ ॥ फिर विभु इन्द्रने
रुक्मिणीपुत्रकी सहायता करनेके लिए जयन्तको (भेज) दिया
और उसने ऐरावत हाथी (में हाथीवान्के स्थान) पर अधिष्ठित
होनेके लिए प्रवरको नियुक्त कर दिया ॥ ५४ ॥ देवताओंके
अध्यक्ष लोकपूजित ब्रह्माजीसे आज्ञा लेकर अप्रमेय पराक्रमी वे
दोनों वीर देवपुत्र और ब्राह्मण (चल दिए) ॥ ५५ ॥ श्रेष्ठ

घाञ्छको विधिज्ञो वरकर्मसु ॥५६॥ क्षीणस्य तपो वध्यो यदूनामेष दुर्मतिः। प्रविशन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु तथेऽप्सतम् ॥५७॥ प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्रासौ हर्म्ये महावलौ। असुरांश्वरगालौघै-र्विक्राम्यन्तौ प्रणशयतुः ॥ ५८ ॥ गदं कार्ष्णिरुवाच दुर्वारो रणदुर्जयः। उपेन्द्रानुज शक्रेण रथोयं प्रेषितस्तव॥ ५९ ॥ हरियुक्तो मातलिसुतो यन्ता चायं महाबलः। प्रवराधिष्ठितश्चायं साम्बस्यैरावणो गजः ॥ ६० ॥ अद्योपहारो रुद्रस्य द्वारकायां महाबलः। श्व एष्यति हृषीकेशस्तस्मिन्वृत्तेऽच्युतानुज ॥६१॥ तस्याज्ञया वधिष्यामो वज्रनाभं सबान्धवम्। अभ्युत्थानकृतं पापं त्रिविष्टपजयं प्रति ॥६२॥ करिष्यामि विधानं च नृप शक्रं सुता-

कर्ममें विधिको जाननेवाले देवराज इन्द्रने मातलिके पुत्रको और ऐरावत हाथीको (यह कह कर) भेजा था कि–॥५६॥ "अब इस दुर्मतिका तप क्षीण होगया अब यह यादवोंके हाथसे मारा जावेगा अब (इसके नगरमें) सब प्राणी इच्छानुसार घुसे चले जारहे हैं, ॥ ५७ ॥ उस समय महाबली प्रद्युम्न और जयन्त महल पर पहुँच बाणोंसे असुरोंको छा पराक्रमपूर्वक उनका नाश करने लगे ॥ ५८ ॥ उस समय रणमें दुर्जय दुर्वार प्रद्युम्नने गदसे कहा, कि–हे कृष्णके अनुज ! इन्द्रने आपके लिए यह रथ भेजा है ॥ ५९ ॥ इसमें घोडे जुत रहे हैं और यह महाबली मातलिका पुत्र इसका सारथि है और जिस पर प्रवर बैठा हुआ है, यह ऐरावत हाथी साम्बके लिए है ॥ ६० ॥ हे अच्युतके अनुज ! आज द्वारकामें रुद्रकी महापूजा होगी, उसके पूर्ण होने पर महाबली हृषीकेश कल यहाँ आवेंगे ॥६१॥ उनकी आज्ञासे हम स्वर्गको जीतनेका उद्योग करनेवाले बान्धवोंसहित इस पापी वज्रनाभको मार डालेंगे ६२ और मैं ऐसी युक्ति करूँगा, जिससे यह पुत्रसहित इन्द्रको न जीत सके, परन्तु मेरा विचार है,

न्वितम् । विजेष्यत्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मतिः ।६३। कलत्ररक्षणं कार्यं सर्वोपायैर्नरैर्बुधैः । कलत्रधर्षणं लोके मरणादतिरिच्यते ६४ एवं सन्दिश्य भैमः स गदसाम्बौ महाबलः । प्रद्युम्नकोट्यः ससृजे मायया दिव्यरूपया ६५ तमश्च नाशयामास दैत्यसृष्टं दुरासदम् । जहृषे देवराजश्च तं दृष्ट्वा रिपुमर्दनम् ॥ ६६ ॥ ददृशुः सर्वभूतानि कार्ष्णिं सर्वेषु शत्रुषु । अन्तरात्मनि वर्तन्तं क्षेत्रज्ञमिव तं विदुः ॥ ६७ ॥ एवं व्यतीता रजनी रौक्मिणेयस्य युध्यतः । असुराणां त्रिभागश्च निहतश्चातितेजसा ॥६८॥ यावद्वियोधयामास कार्ष्णिर्दैत्यान् रणाजिरे । सन्ध्योपास्ता जयन्तेन तावद्विष्णुपदीजले ॥ ६९ ॥ अयोधयज्जयन्तश्च यावद्दैत्यान् महाबलः । तावदाकाशगंगायां भैमः सन्ध्यामुपास्तवान् ॥७०॥

कि-इस समय प्रमाद नहीं करना चाहिये ।।६३।। विद्वान् पुरुषों को सब उपायोंसे स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये,संसारमें स्त्रियों का तिरस्कार होना मरणसे भी अधिक माना जाता है । ६४। भीमवंशी महाबली प्रद्युम्नने गद और साम्बको इस प्रकार संदेशा देकर अपनी दिव्य मायासे करोड़ों प्रद्युम्न बना डाले६५ और दैत्योंके रचे हुए दुरासद अन्धकारका भी नाश करडाला तब रिपुमर्दन प्रद्युम्नको देख कर देवराज प्रसन्न होने लगे ६६ सब प्राणी प्रद्युम्नको सब शत्रुओंमें (घूमता हुआ) देखनेलगे तब उन्होंने उसको अन्तरात्मामें वर्तमान क्षेत्रज्ञ समझा ।।६७।। रुक्मिणीनन्दनको इस प्रकार युद्ध करते २ रात बीत गई (अब तक) अतितेजस्वी प्रद्युम्नने असुरोंके तीन हिस्से मार डाले थे जब तक कृष्णपुत्र रणांगणमें दैत्योंको लड़ाते रहे, तब तक जयन्तने विष्णुपदी (गङ्गा) के जलमें संध्या करली ६८ ६९ फिर जब तक भीमवंशीने गङ्गाजीके जलमें सन्ध्या की तब तक महाबली जयन्त भी योधाओंसे युद्ध करता रहा ७० छियानवेवाँ

वैशम्पायन उवाच । जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्त्ताभ्युदिते रवौ। प्रादुरासीद्धरिर्दैत्यस्तार्क्ष्येणोरगशत्रुणा ॥१॥ हंसवायुमनोभिश्च सुशीघ्र तरगः खगः । तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन ॥२॥ समेत्य च यथान्यायं कृष्णो वासवसन्निधौ । पाञ्चजन्यं हरिर्दध्मौ दैत्यानां भयवर्धनम् ॥ ३ ॥ तं श्रुत्वाभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नः परवीरहा । वज्रनाभं जहीत्युक्तः केशवेन त्वरेति च॥४॥ तार्क्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदितः। चकार स तथा वीरः प्रणिपत्य सुरोत्तमौ ॥५॥ स मनोरंहसा वीर तार्क्ष्येणाशु ययौ नृप । अभ्यासं वज्रनाभस्य महाद्वंद्वस्य भारत ॥ ६ ॥ ततस्तार्क्ष्यगतो वीरस्ततर्द रणमूर्धनि । वज्रनाभं स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दितः ॥ ७ ॥ तेन तार्क्ष्यगतेनैव गदया कृष्णसूनुना । उरस्य-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-मुहूर्त भरमें जगत्‌के नेत्र सूर्यके उदय होने पर हरि सर्पोंके शत्रु गरुड़ पर बैठ कर प्रकट होगए १ हे कुरुनन्दन ! हंस वायु और मनसे भी शीघ्र चलने वाले गरुड़ आकाशमें इन्द्रके पास जाकर खड़े होगए ॥ २ ॥ कृष्णने इन्द्रके पास पहुँच उनसे उचितरीतिसे मिल दैत्योंके भयको बढ़ाने वाले पाञ्चजन्य नामक शङ्खको बजाया ॥३॥ शंखके शब्दको सुन कर शत्रुओंके वीरोंका नाश करने वाला प्रद्युम्न तहाँ आगया, उस समय केशवने उससे कहा; कि-तुम वज्रनाभको फुर्तीसे मारो ४ फिर उससे कहा, कि-तुम गरुड़ पर चढ़ कर तहाँ जाओ, तब उस वीरने उन दोनों देवोत्तमोंको प्रणाम कर तैसा ही किया ५ हे वीर भरतवंशी राजन् ! वह मन और वायुकी समान वेगवाले गरुड़ पर सवार हो घोर युद्ध मचाने वाले वज्रनाभके पास शीघ्रतासे चला ॥ ६ ॥ तदनन्तर गरुड़ पर सवार सब प्रकारके अस्त्रोंमें कुशल अनिन्दित वीर प्रद्युम्न रणके मुहाने पर स्थित होकर वज्रनाभको पीड़ित करने लगा ॥७॥ गरुड़ पर बैठे हुए

ऽभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना ॥८॥ स तेनाभिहतो वीरो दैत्यो मोहवशं गतः । चक्षार च भृशं रक्तं बभूमैव गतासुवत् ॥९॥ आश्वसेत्यथ तं कार्ष्णिरुवाच रणदुर्जयः । लब्धसंज्ञः स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् ॥ १० ॥ साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् । प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबल ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा महानादं मुक्त्वा मेघशतोपमम् । गदां मुमोच वेगेन स घंटां बहुकण्टकाम् ॥१२॥ तथा ललाटेऽभिहितः प्रद्युम्नो गदया नृप । उद्वमन् रुधिरं भूरि मुमोह यदुनन्दनः ॥ १३ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः पाञ्चजन्यं जलोद्भवम् । दध्मावाश्वासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशनः ॥ १४ ॥ तं पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्तं

कृष्णके पुत्र महात्मा प्रद्युम्नने (गरुड़परसे) ही वीर वज्रनाभ की छातीमें गदासे प्रहार किया ॥ ८ ॥ वह वीर दैत्य गदासे पिटने पर मूर्छित होगया और मरे हुए की समान मुखमेंसे बहुत सा खून ओकने लगा और चकराने लगा ॥९॥ उस समय रण-दुर्जय प्रद्युम्नने उससे कहा; कि-तू विश्राम लेले, उस वीरने साव-धान होकर प्रद्युम्नसे यह कहा, कि-॥१०॥ हे यादव ! (आप अपने) वीर्यके कारण साधु (धन्यवादके पात्र) हैं, आप मेरे प्रशंसनीय शत्रु हैं, परन्तु हे महाबल ! अब यह बदलेमें प्रहार करनेका समय है, अतः आप स्थिर होजाइये ।११। इस प्रकार कहनेके अनन्तर वज्रनाभने सैंकड़ों मेघोंकी समान महानाद कर के अनेक घण्टियों वाली और (लोहेके) काँटों वाली गदा वेग से मारी ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस गदाके शिरमें लगनेसे यदु-नन्दन प्रद्युम्न मुखमेंसे बहुतसा रक्त ओकते हुए मूर्छित होने लगे ॥ १३ ॥ उसको देख कर शत्रुनाशक भगवान् कृष्णने पुत्र को आश्वासन देनेके लिये जलमेंसे उत्पन्न हुए पाञ्चजन्य नामक शंखको बजाया ॥ १४ ॥ उस महाबलीको पाञ्चजन्यके शब्दसे

महाबलम् । दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ ॥ १५ ॥ तस्य चक्रं करे यातं कृष्णच्छन्देन भारत । क्षुरनेमिसहस्रारं दैत्यसंघकुलान्तकम् ॥ १६ ॥ तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत । नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने ॥ १७ ॥ वज्रनाभस्य तत्कायादुच्चकर्त शिरस्तदा । नारायणसुतोन्मुक्तं दैत्यानामनुपश्यताम् ॥ १८ ॥ गदः सुनाभमवधीच्चलमानं रणाजिरे । हर्म्यपृष्ठे जिघांसन्तं रणदृप्तं भयानकम् ॥ १९ ॥ साम्बः समरमध्यस्थानसुरानरिमर्दनः । निनाय निशितैर्बाणैः प्रेताधिपपरिग्रहम् ॥ २० ॥ निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे । जगाम षट्पुरं वीरो नारायणभयार्दितः ॥२१॥ निबर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे । अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुरं तदा ॥२२॥

आश्वस्त हुआ देख कर मनुष्य प्रसन्न होने लगे और केशव और इन्द्र तो विशेष प्रसन्न होने लगे ॥ १५ ॥ हे भारत ! उस समय कृष्णकी इच्छासे दैत्योंके संघका अन्त करनेवाला छुर और नेमिकी सहस्रों आर वाला (सुदर्शन) चक्र प्रद्युम्नके हाथमें पहुँच गया ॥ १६ ॥ हे भरतवंशी राजन ! तब अच्युत कृष्णके पुत्रने देवताओंके स्वामी महात्मा केशवको प्रणाम कर असुरका नाश करनेके लिये उस चक्रको फैंका ॥१७॥ नारायणके पुत्रके फैंके हुए चक्रने दैत्योंके सामने ही वज्रनाभके शिरको शरीरसे अलग कर दिया ॥१८॥ इसी समय गदने भी महलकी छतपर अपने को मारना चाहने वाले रणमें उद्धत और रणांगणमें चेष्टा करते हुए भयानक सुनाभको मार डाला ॥ १९ ॥ अरिमर्दन साम्ब भी रणके बीचमें खड़े हुए असुरोंको तेजबाणोंसे प्रेतोंके स्वामी के कुटुम्बमेंको भेजने लगा ॥ २० ॥ महादैत्य वीरवर वज्रनाभ के मारे जाने पर वीर निकुंभ नारायणके भयसे पीड़ित होकर षट्पुरको चला गया ॥ २१ ॥ देवताओंके शत्रु महाराक्षस वज्र-

लब्धप्रशमनं चैव चक्रतुः सुरसत्तमौ । सांत्वयामासतुश्चैव बाल-वृद्धं भयार्दितम् ॥ २३ ॥ इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ । आयत्यां च तदात्वे च बृहस्पतिमतानुगौ ॥ २४ ॥ वज्रनाभस्य तद्राज्यं चतुर्धा चक्रतुर्नृप । विजयस्य चतुर्भागं जयन्त-तनयस्य तौ ॥ २५ ॥ प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च । चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भागं जनेश्वर ॥ २६ ॥ कोट्यश्चतस्रो ग्रामाणामधिकास्ता विशाम्पते । शाखापुरसहस्रञ्च च स्फीतं वज्रपुरोपमम् । चतुर्धा चक्रतुस्तत्र संहृष्टौ शक्रकेशवौ ॥ २७ ॥ कंबलाजिनवासांसि रत्नानि विविधानि च । चतुर्धा चक्रतुर्वीरौ वीर वासवकेशवौ ॥२८॥ ततोभिषिक्तास्ते वीरा राजानो वास-

नाभके मारे जानेपर महात्मा दोनों हरि वज्रनाभपुरमें उतर आए (हरि इन्द्रको भी कहते हैं और विष्णुको भी कहते हैं) ॥२२॥ उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ (इन्द्र और उपेंद्र शत्रुके पराजयसे) प्राप्तहुए (दुःखको) शान्त करने लगे और भयभीत हुए बालक तथा वृद्धोंको ढाढस देने लगे २३ महाबली महात्मा इन्द्र और उपेन्द्रने मन्त्रणा करनेके अनन्तर भविष्यकालके लिए और वर्तमानके लिए वृहस्पतिके मतका अनुसरण किया २४ हे राजन् ! उन्होंने वज्रनाभके राज्यको चार भागोंमें बाँट दिया, चौथा भाग जयन्तके लड़के विजयको देदिया २५ चौथाई भाग प्रद्युम्न (के पुत्र) को देदिया और रुक्मिणीके पुत्र साम्बके पुत्रकोभी चौथाई भाग दिया और हे जनेश्वर ! (गदके पुत्र) चन्द्रप्रभको भी चौथाई भाग दिया ॥२६॥ हे राजन् ! ये चार करोड़ ग्राम थे, सहस्र शाखापुर थे ये सब वज्रपुरकी समान विस्तृत थे इस सब को केशवने और इन्द्रने प्रसन्न होकर चार भागोंमें बाँट दिया २७ हे वीर ! वीर वासव (इन्द्र) और केशवने कम्बल, चर्म, वस्त्र और नाना प्रकारके रत्नोंको भी चार भागोंमें बाँट लिया २८

वाज्ञया । देवदुन्दुभिवाद्येन नृप विष्णुपदीजलैः ॥ २९ ॥ स्वयं शक्रेण देवेन केशवेन च धीमता । ऋषिवंशे महात्मानः शक्र-माधवनन्दनाः ॥३०॥ विजयस्य गतिर्द्दैव गतिर्वियति धीमतः । मातुलेन गुणेनापि माधवानां महात्मनाम् ॥ ३१ ॥ अभिषिच्य जयन्तन्तु वासवो भगवन् ब्रवीत् । त्वयैते वीर संरक्ष्या राजानः समितिञ्जयाः ॥ ३२ ॥ मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ । अवध्याः सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाज्ञया ॥ ३३ ॥ गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति । त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमा-भिरक्षिताम् ॥ ३४ ॥ दिशागजसुतान् नागान् हयांश्चोच्चैःश्रवो-न्वयान् । इच्छयैषां प्रयच्छस्व रथांस्त्वष्टृकृतानपि ॥ ३५ ॥ गजा-

हे राजन् ! तदनन्तर उन वीर राजाओंका इन्द्रकी आज्ञासे देवताओंकी दुन्दुभियोंको बजा कर गङ्गाके जलसे अभिषेक किया गया २९ ऋषियोंके संघके समीप इन्द्र और माधवको आनन्दित करने वाले (पुत्रों) का बुद्धिमान् इन्द्रने और केशव ने अपने आप अभिषेक किया था ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् विजयकी आकाशगति तो स्वभावसे ही सिद्ध थी और महात्मा माधवों की आकाशगति भी (राक्षसोंके घेवते होने कारण) सिद्ध ही थी,(अर्थात् ये चारों आकाशमें उड़ सकते थे)३१ हे भगवन् ! अभिषेक करनेके अनन्तर इन्द्रने जयन्तसे कहा, कि-हे वीर ! तुम इन समितिञ्जय राजाओंकी रक्षा करते रहना हे निष्पाप ! मेरे वंशको चलानेवाला एक, और तीनों केशवके वंशको चलानेवाले मेरी आज्ञासे ये सब प्राणियोंसे अवध्य होजावेंगे ३३ ये स्वर्गमें आजासकेंगे और ये भीमवंशियोंसे रक्षित रमणीय द्वारकापुरीमें भी आजासकेंगे ३४ तुम अपनी इच्छानुसार इन्हें दिग्गजोंके पुत्र हस्ती और उच्चैःश्रवाके वंशके घोड़े और त्वष्टाके बनाए हुए रथ दो ३५ गद और साम्बको ऐरावत हाथीके पुत्र शत्रु-

गौरावणसुतौ शत्रुञ्जयरिपुञ्जयौ । ययच्छाकाशगौ वीरौ साम्बस्य च गदस्य च ॥ ३६ ॥ आकाशेन पुरीं यातु द्वारकां भैमरक्षिताम् । आयातौ च सुतौ द्रष्टुं यथेष्टं भैमनन्दनौ ३७ इति संदिश्य भगवान् देवराजः पुरन्दरः । जगाम भगवान् स्वर्गं द्वारकामपि केशवः ॥ ३८ ॥ षण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च । साम्बश्च द्वारकां याता रूढे राज्ये महाबलाः ॥ ३९ ॥ अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे । तिष्ठन्ति च जगद्यावत्स्थास्यंत्यमरसन्निभ ४० निवृत्ते मौशले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु । गदप्रद्युम्नसाम्बास्ते गता वज्रपुरं विभो४१ततः प्रोष्य पुनर्यांति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः । प्रसादेन च कृष्णस्य लोककर्तुर्जनेश्वर ॥ ४२ ॥ प्रद्युम्नोत्तरमेतत्ते नृदेव कथितं मया । धन्यं यशस्यमायुष्यं शत्रुनाशनमेव च ॥ ४३ ॥ पुत्रपौत्रा विवर्धन्ते

ञ्जय और रिपुञ्जय नामके आकाशचारी हाथी देदो ३६ जिससे ये भैमनन्दन आकाशसे द्वारकापुरीको जावे और अपने पुत्रोंको द्वारकासे देखनेके लिए इच्छानुसार आवें ३७ देवराज भगवान् पुरन्दर इस प्रकार सन्देश देकर स्वर्गको चले गए और केशव भी द्वारकाको चले गए ३८ गद और प्रद्युम्न तहाँ छः महीने तक रहे और साम्ब भी राज्यके दृढ़ होने पर द्वारकाको चले गए ३९ हे देवोपम ! वे राज्य मेरुके उत्तरप्रदेशमें आज कल भी तिसी प्रकार स्थित हैं, और जब तक जगत् रहेगा ऐसे ही रहेंगे ४० मौसल युद्ध होने पर जब वृष्णिवंशी स्वर्गको चले गए हे विभो ! तब गद प्रद्युम्न और साम्ब द्वारकापुरीको चले गए हे जनेश्वर ! वे लोककर्ता कृष्णके प्रसादसे तहाँ रह कर अपने शुभ कर्मोंसे स्वर्गमें चले जाया करते थे ४२ हे नरदेव ! मैंने तुमसे यह प्रद्युम्नका उत्कर्ष कहा, ये धन देने वाला, आयु देने वाला और शत्रुओंका नाश करने वाला है ४३ द्वैपायनके वच-

आरोग्यधनसम्पदः । यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा ४४

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि दक्षनागवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ददर्शाथ पुरीं कृष्णो द्वारकां गरुडे स्थितः । देवसद्मप्रतीकाशां सम्पतात् प्रतिनादिताम् । १ । मणि-पर्वतयन्त्राणि तथा क्रीडागृहाणि च । उद्यानवनमुख्यानि वलभी-चत्वराणि च ॥ २ ॥ सम्प्राप्ते तु तदा कृष्णे पुरीं देवकिनन्दने । विश्वकर्माणमाहूय देवराजोऽब्रवीदिदम् ३ प्रियमिच्छसि चेत्कर्तुं मह्यं शिल्पमतां वर । कृष्णप्रियार्थं भूयस्त्वं प्रकुरुष्व मनो-हराम् ॥ ४ ॥ उद्यानशतसम्बाधां द्वारकां स्वर्गसम्मिताम् । कुरुष्व विबुधश्रेष्ठ यथा मम पुरी तथा ॥ ५ ॥ यत्किं-चित् त्रिषु लोकेषु रत्नभूतं प्रपश्यसि । तेन संयुज्यतां क्षिप्रं पुरी द्वारवती त्वया ॥ ६ ॥ कृष्णो हि सुरकार्येषु सर्वेषु सततो-

---

नानुसार पुत्र पौत्र आरोग्य और धनसंपत्ति बढ़ती है और वह पुरुष विपुल यशको पाता है ।४४। सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर गरुड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्णने चारों ओरसे गुञ्जारती हुई देवभवनकी समान द्वारकापुरीको देखा १ मणिपर्वतोंके यन्त्र क्रीड़ागृह और मुख्य मुख्य उद्यान और वलभी (गोपालोंके भवन) के आँगनोंको भी (देखा) २ देवकीनन्दन कृष्णके द्वारका पुरीमें पहुँचने पर देवराजने विश्वकर्माको बुला कर यह कहा, कि-३ हे शिल्पियों में श्रेष्ठ ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो कृष्णका प्रिय करनेके लिये द्वारकाको फिर मनोहर बनाओ ४ हे देवश्रेष्ठ ! तुम स्वर्गकी समान द्वारकाको सैकड़ों बगीचोंसे छाकर मेरी पुरी की समान बनादो। ५ तुमने तीनों लोकोंमें जिन रत्नोंको देखा हो उन सबसे तुम द्वारवती पुरीको शीघ्र ही भर दो। ६ देवताओं

स्थितः । संग्रामान् घोररूपांश्च विगाहति महाबलः । तामिन्द्रवचनाद्गत्वा विश्वकर्मा पुरीं ततः ७ अलंचक्रे समन्ताद्वै यथेन्द्रस्यामरावती । तां ददर्श दशार्हाणामीश्वरः पक्षिवाहनः । विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरभिप्रायैरलंकृताम् ॥८॥ तां तदा द्वारकां दृष्ट्वा प्रभुर्नारायणो विभुः । हृष्टः सर्वार्थसम्पन्नः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ९ ॥ सोऽपश्यद्वृक्षखण्डांश्च रम्यान् दृष्टिमनोहरान् । द्वारकां प्रति दाशार्हश्चित्रितान् विश्वकर्मणा ॥ १० ॥ पद्मखण्डाकुलाभिश्च हंससेवितवारिभिः । गंगासिन्धुप्रकाशाभिः परिखाभिर्वृतां पुरीम् प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन राजता । चयमूर्ध्नि निविष्टेन द्यां यथैवाभ्रमालया ॥ १२ ॥ काननैर्नन्दनप्रख्यैस्तथा चैत्ररथोपमैः । बभौ चारुपरिक्षिप्ता द्वारका द्यौरिवाम्बुदैः ॥१३॥ बभौ रैवतकः

के कार्यके लिये कृष्ण सदा उद्यत रहते हैं और यह महाबली भयंकर संग्रामोंको किया करते हैं इन्द्रके वचनसे विश्वकर्माने उस पुरीमें जाकर उस पुरीको चारों ओरसे इन्द्रकी अमरावती पुरी समान सजा दिया, पक्षीकी सवारी करने वाले दशार्होंके स्वामी ने विश्वकर्माके दिव्य अभिप्रायोंसे अलंकृत पुरीको देखा ७–८ उस समय द्वारकाको देख कर नारायण प्रभु प्रसन्न होगए और सर्वार्थसम्पन्न हो प्रसन्नतासे द्वारकामें घुसे ९ तहाँ पर दाशार्हने विश्वकर्माके चित्रित किये हुए नेत्र और मनको लुभाने वाले रमणीय वृक्षोंको देखा ॥ १० ॥ तथा उन्होंने पद्मोंके समूहसे गछी हुई, हंसोंसे सेवित जलवाली गंगा और सिन्धु नदीकी समान प्रकाशित परिखाओंसे घिरी हुई पुरीको (देखा) ॥ ११ ॥ जैसे आकाश बादलोंकी मालासे शोभा पाता है, इसी प्रकार उन्हों ने अट्टालिकाओंके मस्तक तक चले गए सूर्यकी समान तेजस्वी सुवर्णकी समान वर्ण वाले परकोटेसे (सुशोभित द्वारकापुरीको देखा ॥ १२ ॥ नन्दनवन और चैत्ररथ वनकी समान बगीचोंसे

शैलो रम्यसानुगुहाजिरः। पूर्वस्यां दिशि लक्ष्मीवान् मणिकांचन-
तोरणः ॥ १४ ॥ दक्षिणस्यां लताविष्टः पञ्चवर्णो विराजते।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशः पश्चिमायां तथाऽक्षयः ॥ १५ ॥ उत्तरां दिश-
मत्यर्थं विभूषयति वेणुमान्। मन्दराद्रिप्रतीकाशः पाण्डुरः पार्थि-
वर्षभ ॥१६॥ चित्रकं पञ्चवर्णं च पाञ्चजन्यं वनं महत्। सर्वर्तुक-
वनं चैव भाति रैवतकं प्रति ॥ १७ ॥ लतावेष्टितपर्यन्तं मेरुप्रभ-
वनं महत्। भाति भानुवनं चैव पुष्पकं च महद्वनम् ॥ १८ ॥
अक्षकैर्बीजकैश्चैव मन्दारैश्चोपशोभितम्। शतावर्तवनं चैव कर-
वीराकरं तथा ॥१९॥ भाति चैत्ररथं चैव नन्दनं च वनं महत्।
रमणं भावनं चैव वेणुमद्वै समन्ततः ॥ २० ॥ वैदूर्यपत्रैर्जलजे-

गढी हुई द्वारका मेघोंसे डटे हुए आकाशकी समान दीखती थी १३
मनोहर शिखर गुहा और प्राङ्गण (बीचकी समतल भूमि) वाला
रमणीय रैवत पर्वत शोभा पारहा था उस शोभामय पर्वतके पूर्व
की ओर मणि और सुवर्णके तोरण थे अर्थात् पूर्वकी ओर उस
में मणि और सुवर्णसे जटित घाटियें थीं ॥ १४ ॥ उसके दक्षिण
की ओर वेलोंसे भरा हुआ पञ्चवर्ण (नामक बाग) शोभा दे
रहा था और पश्चिम दिशाकी ओर इन्द्र-धनुषकी समान अक्षय
(नामक बाग शोभा देरहा था) ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! उत्तर
दिशाकी ओर मन्दराचलकी समान श्वेत वेणुमान् पर्वत अति-
शोभा देरहा था ॥ १६ ॥ रैवतक पर्वत पर चित्रक बाग पञ्च-
वर्ण बाग और बड़ाभारी पाञ्च-जन्य बाग तथा सर्वर्तुक बाग
शोभा देरहा था ॥१७॥ अन्त तक वेलोंसे गछे हुए मेरुपर्वतसे
भी अधिक कान्ति वाले भानुवन और पुष्पकवन भी तहाँ शोभा
देरहे थे १८ तहाँ अक्ष (रुद्राक्ष) बीजक और मन्दारोंसे सुशो-
भित शतावर्त बाग और करवीर बाग भी था १९ तहाँ चैत्ररथ
और बड़ाभारी नन्दन नामक बाग भी शोभा देरहा था और

स्तदा मन्दाकिनी नदी । भाति पुष्करिणी रम्या पूर्वस्यां दिशि भारत ॥२१॥ सानवो भूषितास्तत्र केशवस्य प्रियैषिभिः ॥ बहुभिर्देवगन्धर्वैश्चोदितैर्विश्वकर्मणा ॥२२॥ महानदी द्वारवती पञ्चाशाद्भिर्महामुखैः । प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्ततः ॥२३॥ अप्रमेयां महोत्सेधामगाधपरिखायुताम् । प्राकारवरसम्पन्नां सुधापाण्डुरलेपनाम् ॥ २४ ॥ तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्हेमजालैश्च भूषिताम् । आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥ २५ ॥ अष्टौ रथसहस्राणि नगरे किंकिणीकिनाम् । समुच्छ्रितपताकानि यथा देवपुरे तथा ॥ २६ ॥ अष्टयोजनविस्तीर्णामचलां द्वादशायताम् । द्विगुणोपनिवेशां च ददर्श द्वारकां पुरीम् ॥ २७ ॥ अष्टमार्गमहा-

---

प्रशंसनीय रमणीय वेणुमान् बाग भी तहाँ शोभा देरहा था २० हे भारत ! (द्वारकाकी) पूर्व दिशामें सुवर्णके पत्र वाले कमलों वाली रमणीय मन्दाकिनी नदी शोभा पारही थी २१ केशवका प्रिय करना चाहने वाले बहुतसे देवता और गन्धर्वोंने विश्वकर्मा के प्रेरणा करने पर उसके कँगूरोंको सजा दिया था २२ पवित्र-सलिला महानदी मन्दाकिनी पचासों महामुख (बड़ी २ धारों) से चारों ओरसे पवित्र करती हुई द्वारकामें घुसी २३ अप्रमेय बड़े २ भवनों वाली, अगाध खाई वाली, श्रेष्ठ परकोटेसे सम्पन्न सुधा और पाण्डुरकी समान वर्ण वाली, तीक्ष्ण यन्त्र तोप और सुवर्णकी जालियोंसे और लोहेके बड़े २ चक्रोंसे विभूषित द्वारका को (गोविन्दने) देखा २४ घुघुँरू वाले और ऊपर लगी हुई पताका वाले आठ हजार रथ जैसे देवपुरमें खड़े हों तैसे द्वारका में खड़े हुए थे २५ श्रीकृष्णने देखा कि—द्वारका बत्तीस कोस चौड़ी और अड़तालीस कोस लम्बी होगई है और उसके उपनिवेश (शाखानगर) इससे दुगुने लम्बे चौड़े हैं २७ आठ मार्गकी बड़ी भारी गली वाली, सोलह बड़े बड़े चौकों वाली और एक

रथ्यां महाषोडशचत्वराम् । एकमार्गपरिक्षिप्तां साक्षादुशनसा कृताम् २८ स्त्रियोपि यस्यां युद्धेरन् किमु वृष्णिमहारथाः । व्यूहानामुत्तमा मार्गाः सप्त चैव महापथाः ॥ २९ ॥ तत्र वै विहिताः साक्षाद्विविधा विश्वकर्मणा । तस्मिन् पुरवरश्रेष्ठे दाशार्हाणां यशस्विनाम् ॥३०॥ वेश्मानि जहृषे दृष्ट्वा ततो देवकिनन्दनः । कांचनैर्मणिसोपानैरुपेतानि नृहर्षणैः॥३१॥भीमघोषमहाघोषैः प्रासादवरचत्वरैः । समुच्छ्रितपताकानि पारिप्लववनानि च ॥ ३२ ॥ काञ्चनाग्राणि भास्वन्ति प्रासादशिखराणि च । गृहाणि रमणीयानि मेरुकूटनिभानि च ॥ ३३ ॥ पाण्डुपाण्डुरमृङ्गैश्च शात-

---

मार्ग वाली साक्षात् शुक्राचार्यकी समान बनाई हुई (द्वारकाको) कृष्णने देखा (अर्थात् घरोंकी पाँच पंक्तियोंकी चार गलिएँ होती हैं ये दोनों ओर बन कर बीचमें सड़क रखने पर आठ होजाती हैं, प्रत्येक गलीमें दो चौक थे इस प्रकार तहाँ सोलह चौक थे, और सड़ककी संधि अलग थी इस प्रकार प्रत्येक गलीकी तीन तीन सन्धिएँ थीं और सड़क बीचमें एक ही थी) ॥ २८ ॥ उसमें तो स्त्रियें भी लड़ सकतीं थी, फिर वृष्णिवंशी महारथियों की तो बात ही क्या ? उसमें व्यूहोंके उत्तम मार्ग (छावनिए) बनाए गए थे और सात महामार्ग (बड़ी २ छावनी) बनाए गए थे ॥ २९ ॥ इस प्रकार विश्वकर्माने यशस्वी दाशार्ह वंशियोंके श्रेष्ठ नगरमें अनेक प्रकारके काम बनाए थे ॥३०॥ देवकीनन्दन सुवर्णके बने हुए और मणियोंकी सीढ़ियों वाले तथा मनुष्योंको हर्षित करने वाले घरोंको देख कर प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥ उनमें ऊँची २ अटारियें और आँगन थे और उनमें (मनुष्योंके कारण) बड़ा घोष होरहा था, ऊँची २ ध्वजावाले सरोवरों वाले बाग, और सुवर्णके अग्रभाग वाले महलोंके प्रकाशवान् शिखर, और मेरुपर्वतकी समान रमणीय घर (आदि कृष्णने देखे) ३२ ३३

कुम्भपरिष्कृतैः । रम्यसानुगृहैः शृङ्गैर्विचित्रैरिव पर्वतैः ॥३४॥
पञ्चवर्णैः सुवर्णैश्च पुष्पवृष्टिसमप्रभैः । पर्जन्यतुल्यनिर्घोषैर्नाना-
रूपैरिवाद्रिभिः ॥ ३५ ॥ दावाग्निज्वलितप्रख्यैर्निर्मितैर्विश्व-
कर्मणा । आश्लिषद्भिरिवाकाशमतिचन्द्रार्कभास्वरैः ॥ ३६ ॥
तैर्दाशार्हैर्महाभागैर्बभासे तद्वनद्रुमैः । वासुदेवेन्द्रपर्जन्यैर्गृहमेघै-
रलंकृता ॥३७॥ददृशे द्वारका चारु मेघैर्द्यौरिव सम्वृता । साक्षा-
द्भगवतो वेश्म विहितं विश्वकर्मणा ॥३८॥ ददृशे वासुदेवस्य चतु-
र्योजनमायतम् । तावदेव च विस्तीर्णमप्रमेयं महाधनम् ॥ ३९ ॥
प्रासादवरसम्पन्नैर्युक्तं जगति पर्वतैः । यच्चकार महाभागस्त्वष्टा
वासवनोदितः ॥४०॥ प्रासादं चैव हेमाभं सर्वभूतमनोहरम् ४१

सुवर्ण चढ़े हुए अति श्वेत शिखरों वाले और विचित्र शिखरों वाले पर्वतोंकी समान रमणीय कँगूरों वाले घरोंसे ॥३४॥ पँच-रंगे अच्छे रंग वाले और पुष्पवृष्टिकी समान कान्ति वाले, पर्वतों की समान अनेक प्रकारके (मनुष्योंके कारण) मेघकी समान गरजते हुए ३५ विश्वकर्माके द्वारा प्रदीप्त अग्निकी समान बनाए हुए, गगनचुम्बी (घरोंसे और) चन्द्रमा और सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी महाभाग दाशार्होंसे और बगीचोंके वृक्षोंसे (वह द्वारका) दमकने लगी, वासुदेवरूपी इन्द्रमेघोंसे और घररूपी मेघोंसे अलं-कृत द्वारका सुन्दर मेघोंसे घिरे हुए आकाशकी समान शोभा पाने लगी, विश्वकर्माने अपने आपही भगवान्का घर बनाया ३६-३८ वासुदेवका घर सोलह कोस चौड़ा दीखता था और इतना ही लम्बा था, अप्रमेय था और उसमें बहुत धन था ॥ ३९ ॥ उस में श्रेष्ठ २ भवन बन रहे थे और क्रीड़ा करनेके लिए टीले बन रहे थे, इन्द्रकी प्रेरणासे महाभाग विश्वकर्माने यह सब बनाया था ॥४०॥ विश्वकर्माने रुक्मिणीका काञ्चन नामक भवन मेरु-पर्वत शिखरकी समान ऊँचा बनाया, वह सब प्राणियोंको मनो-

मेरोरिव गिरेः शृङ्गमुच्छ्रितं काञ्चनं महत् । रुक्मिण्याः प्रवरं वासं विहितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥ सत्यभामा पुनर्वेश्म यदाऽवसत पाण्डुरम् । विचित्रमणिसोपानं तद्विदुर्भोगवन्निति ॥४३॥ विमलादित्यवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् । व्यक्तसञ्जवनोद्देशो यश्चतुर्दिङ्महाध्वजः ॥ ४४ ॥ स च प्रासादमुख्योथ जाम्बवत्या विभूषितः । प्रभयाभ्यभवत् सर्वांस्तानन्यान् भास्करो यथा ४५ उद्यद्भास्करवर्णाभस्तयोरन्तरमाश्रितः । विश्वकर्मकृतो दिव्यः कैलासशिखरोपमः ॥ ४६ ॥ जाम्बूनद इवादीप्तः प्रदीप्तज्वलनो यथा । सागरप्रतिमोत्तिष्ठन्मेरुरित्यभिविश्रुतः ॥ ४७ ॥ तस्मिन् गान्धारराजस्य दुहिता कुलशालिनी । गान्धारी भरतश्रेष्ठ केशवेन निवेशिता ॥ ४८ ॥ पद्मकूल इति ख्यातं पद्मवर्णं महा-

---

हर लगता था और उस भवनकी कान्ति सुवर्णकी समान थी ॥ ४१॥४२॥ फिर सत्यभामाका पाण्डुर वर्ण वाला भवन बनाया उसमें विचित्र मणियोंकी सीढ़ियें बनी हुई थीं उसको भोगवान् भवन कहते थे४३एक विमल सूर्यकी समान झंडियोंसे अलंकृत व्यक्तसञ्जवन भवन था, उसमें नित्य नई २ बातें होती रहती थीं और उसमें चारों दिशाओंमें बड़ी २ ध्वजाएँ लग रही थीं ।४४। वह शोभायमान मुख्य घर जाम्बवतीके लिए बनाया गया, वह सूर्यकी समान भवन अपनी कान्तिसे दूसरे भवनोंकी कान्तिको फीकी कर रहा था ॥ ४५ ॥ उदय होते हुए सूर्यकी समान कान्तिवाला विश्वकर्माका बनाया हुआ कैलासके शिखर की समान वह दिव्य भवन उन दोनों भवनोंके बीचमें खड़ा था ४६ सुवर्ण और प्रदीप्त अग्निकी समान और उछलते हुए समुद्रकी समान उठा हुआ मेरु नामक प्रसिद्ध भवन बना था ॥ ४७ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! उसमें केशवने गांधारराजकी पुत्री कुलवती गांधारी (सत्या) को बसाया ।४८। मीणाका सुवर्णकी समान

प्रभम् । सुभीमाया महाकूटं वासं सुरुचिरप्रभम् ॥ ४९ ॥ सूर्यप्रभस्तु प्रासादः सर्वकामगुणैर्युतः । लक्ष्मणाया नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टः शार्ङ्गधन्वना ॥ ५० ॥ वैदूर्यमणिवर्णाभः प्रासादो हरितप्रभः । यं विदुः सर्वभूतानि परमित्येव भारत ॥ ५१ ॥ वासन्तं मित्रविन्दाया देवर्षिगणपूजितम् । महिष्या वासुदेवस्य भूषणं तेषु वेश्मसु ॥ ५२ ॥ तत्र प्रासादमुख्यो वै विहितो विश्वकर्मणा । अतीव रम्यरम्योऽसौऽधिष्ठितः पर्वतो यथा ॥ ५३ ॥ सुत्रार्ताया निवासं तं प्रशस्तं सर्वदैवतैः । महिष्या वासुदेवस्य केतुमानिति विश्रुतः ॥ ५४ ॥ तत्र प्रासादमुख्यो वै यं त्वष्टा विदधे स्वयम् । योजनायतविष्कम्भः सर्वरत्नमयः शुभः ॥ ५५ ॥ स श्रीमान् विरजा नाम व्यराजत्तत्र सुप्रभः । उपस्थानगृहं यत्र केशवस्य

वर्ण माला और सुन्दर प्रभावाला और बड़े २ कँगूरों वाला भवन पद्मकूल नामसे प्रसिद्ध था ॥ ४९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! शार्ङ्ग धनुषको धारण करने वाले भगवान्ने लक्ष्मणाको सब इष्ट गुणों से युक्त सूर्यप्रभ नामक भवन दिया ॥ ५० ॥ हे भारत ! वैदूर्य मणिके वर्णकी समान आभा वाला हरी प्रभावाला (एक भवन वना हुआ था) उसको सब " पर भवन " कहते थे ॥ ५१ ॥ वह देवता और ऋषियोंसे पूजित भवन मित्रविन्दाको भवन था वासुदेवकी रानीका वह भवन भवनोंमें भूषणरूप था ॥ ५२ ॥ विश्वकर्माने तहाँ पर एक मुख्य भवन बनाया था, वह अतीव रमणीय भवन पर्वतकी समान अधिष्ठित था ॥ ५३ ॥ वह सब देवताओंसे पूजनीय वासुदेवकी महिषी सुत्रार्ताका भवन केतुमान् नामसे प्रसिद्ध था और तहाँ पर विश्वकर्माने अपने आप जिस मुख्य भवनको बनाया था, वह सब रत्नोंसे रमणीय था और चार कोस चौड़े विष्कम्भ वाला था ॥ ५५ ॥ वह सुन्दर प्रभा वाला भवन विरजा नाम (से प्रसिद्ध था) उस घरमें

महात्मनः ॥ ५६ ॥ तस्मिन् सुविहिताः सर्वे रुक्मदण्डाः पताकिनः । सदने वासुदेवस्य मार्गसञ्जननध्वजाः ॥५७॥ रत्नजालानि दिव्यानि तत्रैव च निवेशिताः । आहृत्य यदुसिंहेन वैजयन्तोऽचलो महान् ॥ ५८ ॥ हंसकूटस्य यच्छृङ्गमिन्द्रद्युम्नसरः प्रति । षष्टितालसमुत्सेधमर्धयोजनमायतम् ॥ ५९ ॥ सकिन्नरमहानागं तदप्यमिततेजसा । पश्यतां सर्वभूतानामानीतं लोकविश्रुतम् ६० आदित्यपथगं यत्तु मेरोः शिखरमुत्तमम् । पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः ॥ ६१ ॥ जाम्बूनदमयं दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तदप्युत्पाट्य कृष्णार्थमानीतं विश्वकर्मणा ॥६२॥ भ्राजमानमतीवाग्र्यं सर्वौषधिसमन्वितम् । तदिन्द्रवचनात्त्वष्टा कार्यहेतोः समानयत् ॥ ६३ ॥ पारिजातश्च तत्रैव केशवेनाहृतः स्वयम् ६४

महात्मा केशव उपासना किया करते थे ।५६। उसमें सब सुवर्ण के दण्डे वाली पताका लगाई गई थीं, और वासुदेवके भवनमें मार्गको बताने वाली ध्वजाएँ लगी हुई थीं ॥ ५७ ॥ और तहाँ पर दिव्य रत्नोंकी जालिएँ लगाई गई थीं, यदुसिंहने तहाँ पर बड़े भारी वैजयन्त अचलको लाकर धर दिया था ५८ इन्द्रद्युम्न सरोवर पर जो साठ ताल ऊँचा और आधा कोस चौड़ा हेमकूट का शिखर था ५९ किन्नर और महानागोंसे सेवित उस संसार-प्रसिद्ध शिखरको भी सब प्राणियोंके सामने अमित-तेजस्वी (विश्वकर्मा) उठा लाए ६० आदित्यमार्गमें जो सैंकड़ों कमल और सुवर्णके विमानोंसे विभूषित मेरुका सुवर्णमय उत्तम शिखर है उस त्रिलोकीमें प्रसिद्ध शिखरको भी विश्वकर्मा श्रीकृष्णके लिए उखाड़ लाये ।६१।६२। उसका अग्रभाग अतीव शोभा पारहा था और वह सब औषधियोंसे युक्त था उसको विश्वकर्मा इन्द्रके कहने से उखाड़ लाये थे ६३ तहाँहीसे केशव पारिजातको उखाड़ लाये थे, जब वह उसको लारहे थे तब उन अद्भुत कर्म करने वालेका

नीयमाने तु तत्रासीद्युद्धमद्भुतकर्मणः। कृष्णस्य येऽभ्यरक्षंस्तु देवाः पादपमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ पुण्डरीकशतैर्जुष्टं विमानैश्च हिरण्मयैः। विहिता वासुदेवार्थं रत्नपुष्पफलद्रुमाः ॥ ६६ ॥ पद्मखण्डजलोपेता रत्नसौगन्धिकोत्पलाः। मणिहेमप्लवाकीर्णाः पुष्करिण्यः सरांसि च ॥ ६७ ॥ तासां परमकूलानि शोभयन्ति महाद्रुमाः। शालास्ताला कदम्बाश्च शतशाखाश्च रौहिणाः॥६८॥ ये च हैमवता वृक्षा ये च मेरुरुहास्तथा। आहृत्य यदुसिंहार्थं विहिता विश्वकर्मणा ॥६९॥ रक्तपीतारुणश्यामाः श्वेतपुष्पाश्च पादपाः। सर्वर्तुफलसम्पन्नास्तेषु काननसन्धिषु ॥ ७० ॥ समकूलजलोपेताः शान्तशर्करवालुकाः। तस्मिन् पुरवरे नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदाः ॥७१॥ पुष्पाकुलजलोपेता नानाद्रुमलताकुलाः।

उस उत्तम वृक्षके रक्षक देवताओंसे युद्ध हुआ था॥ ६४ ॥ ६५ ॥ उस वृक्षकी सैंकड़ों सुवर्णके विमान और कमल सेवा करते रहते थे, विश्वकर्माने वासुदेवके लिये रत्नोंके पुष्प और फल वाले वृक्ष और सुवर्णके कमलोंके जल वाली, सौगन्धिक कमलों वाली और सुवर्ण तथा मणियोंकी नावोंसे भरी हुई बावड़ियें और सरोवर भी (बना दिये थे)॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उनके तटोंको शाल ताल कदम्ब शतशाख और रौहिणके वृक्ष सुशोभित कररहे थे ।६८। जो वृक्ष हिमवान् पर्वत पर हैं और जो वृक्ष मेरु पर्वत पर उत्पन्न होते हैं उन सबको विश्वकर्मा वहाँसे हरिके लिये उखाड़ लाए६९ वहाँ पर बागोंकी सन्धियोंमें लाल पीले अरुण और श्याम वर्णके तथा श्वेत पुष्पवाले वृक्ष थे उनमें सब ऋतुओंमें फल आते रहते थे ॥ ७० ॥ उस श्रेष्ठ नगरमें समान तट और जलवाली और शान्त वालुकावाली और निर्मल जलवाले कुण्डोंवाली नदियें थीं ७१ वहाँ पर दूसरी नदियें,पुष्पोंसे आकुल जल वालीं तथा अनेक प्रकारके वृक्ष और लताओंसे गछी हुईं और सुवर्णकी

अपराश्चाभवन्नद्यो हेमशर्करवालुकाः ॥७२॥ मत्तबर्हिणसंघैश्च कोकिलैश्च सदामदैः॥बभूवुः परमोपेतास्तस्यां पुर्यां च पादपाः७३ तत्रैव गजयूथानि पुरे गोमहिषास्तथा निवासश्च कृतस्तत्र नराह-मृगपक्षिभिः ॥ ७४ ॥ पुर्यां तस्यां तु रम्यायां प्राकारो वै हिर-ण्मयः । व्यक्तः किष्कुशतोत्सेधो विहितो विश्वकर्मणा ७५ अतीव रम्यः सोथासीद्वेष्टितः पर्वतो यथा । ते च ते च महाशैलाः सरि-तश्च सरांसि च । परिक्षिप्तानि भौमेन वनान्युपवनानि च ७६

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाविशेष-निर्माणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमालोकयानः स द्वारकां वृषभेक्षणः । अपश्यत् स्वगृहं कृष्णः प्रासादशतशोभितम् ॥१॥ मणिस्तम्भ-सहस्राणामयुतैर्वितं शतैः । तौरणैर्ज्वलनप्रख्यैर्मणिविद्रुमराजतैः २

रेतीवाली थीं ॥ ७२ ॥ उस नगरीमेंके वृक्ष मदमें भरे हुए मोरों से और सर्वदा मदमत्त रहने वाली कोकिलाओंसे बहुत ही अधिक छाए रहते थे ॥७३॥ वहाँ पर हाथियोंके झुण्ड और गौओं तथा भैंसोंके झुण्ड भी रहते थे तथा उस नगरमें सूअर हिरन और पक्षियोंने तो अड्डा ही बनालिया था ॥ ७४ ॥ उस रमणीय पुरीमें सुवर्णका परकोटा था उसको विश्वकर्माने सौ हाथ ऊँचा बनाया था ॥ ७५ ॥ वह पर्वतसे लिपटाहुआ परकोटा अति-रमणीय प्रतीत होता था विश्वकर्माने ही यह सब महापर्वत नदी तालाब और बाग बगीचे बनाए थे ॥७६॥ अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥ छ छ छ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि वृषभकी समान नेत्रोंवाले कृष्णने इसप्रकार द्वारकाको देखते २ सैंकड़ों भवनोंसे सुशोभित अपने घरको भी देखा॥ १ ॥ उनमें मणियोंके एक लाख खम्भे लग रहे थे और मणि मूँगे और चाँदीके अग्निकी समान सैंकड़ों

तत्र तत्र प्रभासद्भिश्चित्रकाञ्चनवेदिकैः । प्रासादस्तत्र सुमहान्कृष्णोपस्थानिकोऽभवत् ॥ ३ ॥ स्फाटिकस्तम्भविस्तृतो विस्तीर्णः सर्वकाञ्चनः । पद्माकुलजलोपेता रक्तसौगन्धिकोत्पलाः ॥ ४ ॥ मणिहेमनिभाश्चित्रा रत्नसोपानभूषिताः । मत्तबर्हिणजुष्टाश्च कोकिलैश्च सदामदैः ॥ ५ ॥ बभूवुः परमोपेता वाप्यश्च विकचोत्पलाः । विश्वकर्मकृतः शैलः प्राकारस्तस्य वेश्मनः॥६॥ व्यक्तकिष्कुशतोत्सेधः परिखापरिवेष्टितः । तद्गृहं वृष्णिसिंहस्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥७॥ महेन्द्रसदृशं वेश्म समन्तादर्धयोजनम् । तत्रस्थं पाण्डुरं शौरिर्मूर्ध्न्यतिष्ठद्गरुत्मतः ॥ ८ ॥ प्रीतः शंखमुपाध्मासीद् द्विषतां रोमहर्षणम् । तस्य शंखस्य शब्देन सागरश्चुक्षुभे भृशम् । ररास च नभः कृत्स्नं तच्चित्रमभवत्तदा ॥ ९ ॥

तोरणोंसे वह स्थान शोभा पारहा था ॥ २ ॥ इधर उधर प्रकाश करतीहुई विचित्र सुवर्णकी वेदियोंके कारण वह कृष्णके उपस्थान का घर बहुत लम्बा चौड़ा लग रहा था ॥३॥ वह स्फाटिक मणि के स्तम्भोंसे घिराहुआ था सब सुवर्णका ही बना हुआ था उनकी बावड़ियें कमलभरे जलवाली और लाल सौगन्धिक कमलोंवालीं थीं उनकी सीढ़ियें मणि और सुवर्णकी समान रत्नोंसे विभूषित थी और वह मदमत्त मयूर और सर्वदा मदमत्त रहनेवाली कोकिलाओंसे विभूषित थीं विश्वकर्माका बनाया हुआ गिरि उस घर का परकोटा था ॥ ४ ॥ ६ ॥ वह सौ हाथ ऊँचा स्पष्ट प्रतीत होता था और खाइयोंसे घिरा हुआ था इसप्रकार विश्वकर्माने वृष्णिसिंह श्रीकृष्णके घरको इन्द्रके भवनकी समान बनाया था वह चारों ओरसे दो दो कोस था वहाँ पर स्थित पाण्डुरवर्ण वाले भवनमें कृष्ण गरुड़जीके मस्तक पर सवार होगए ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब उन्होंने प्रसन्न होकर शत्रुओंको रोमाञ्चित करनेवाला शंख बजाया उस शंखके शब्दसे समुद्र अतीव क्षुब्ध होने लगा और

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं संश्रुत्य कुकुरान्धकाः । विशोकाः समपद्यन्त गरुडस्य च दर्शनात् ॥ १० ॥ शंखचक्रगदापाणिं गरुडस्योपरि स्थितम् । दृष्ट्वा जहृषिरे पौरा भास्करोपमतेजसम् ॥ ११ ॥ ततस्तूर्यप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः । जज्ञिरे सिंहनादाश्च सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥१२॥ ततस्ते सर्वदाशार्हाः सर्वे च कुकुरान्धकाः । प्रीयमाणाः समाजग्मुरालोक्य मधुसूदनम् ॥१३॥ वासुदेवं पुरस्कृत्य शंखतूर्यरवैः सह । उग्रसेनो ययौ राजा वसुदेवनिवेशनम् ॥ १४ ॥ आनन्दिनी पर्यचरत् स्वेषु वेश्मसु देवकी । रोहिणी च यशोदा च आहुकस्य च याः स्त्रियः ॥ १५ ॥ ततः कृष्णः सुपर्णेन स्वं निवेशनमभ्यगात् । चचार च यथोद्देशमीश्वरानुचरो हरिः ॥१६॥ अवतीर्य गृहद्वारि कृष्णस्तु यदुनंदनः ।

सारा आकाश भी प्रतिध्वनि करने लगा यह एक अद्भुत बात हुई ॥९॥ कुकुर और अन्धकवंशी पांचजन्यके शब्दको सुनकर और गरुडका दर्शन करके शोक-रहित होगए१०शंख चक्र और गदाको हाथमें धारण करनेवाले और सूर्यकी समान तेजस्वी कृष्णको गरुड़ पर बैठा हुआ देखकर नगरनिवासी प्रसन्न होने लगे ॥११॥ तदनन्तर तूर्योंके नाद नगाड़ोंके बड़ेभारी शब्द और सब पुरवासियोंके सिंहनाद होनेलगे ॥ १२ ॥ उस समय मधुसूदनको देखकर सब दाशार्ह और सब कुकुर तथा अन्धक प्रसन्न होते हुए आने लगे १३राजा उग्रसेन श्रीकृष्णको आगे कर शंख और तूर्योंकी ध्वनिके साथ वसुदेवजीके घरको चला१४उस समय आनन्दिनी देवकी रोहिणी यशोदा और आहुककी स्त्रियें भी अपने २ घरोंमें विचरण करनेलगीं १५ तदनन्तर श्रीकृष्ण गरुड़ पर बैठ अपने घर पर पहुँच गए फिर इन्द्र आदि अनुचर जिनके ईश्वर हैं ऐसे हरि इच्छानुसार घूमनेलगे१६यदुनन्दन और यादवों में श्रेष्ठ कृष्णने अपने घरके द्वार पर उतरनेके पीछे यादवोंकी यथो.

यथार्ह पूजयामास यादवान् यादवर्षभः ॥ १७ ॥ रामाहुकगदा-
क्रूरप्रद्युम्नादिभिरर्चितः। प्रविवेश गृहं शौरिरादाय मणिपर्वतम् १८
तं च शक्रस्य दयितं पारिजातं महाद्रुमम्। प्रवेशयामास गृहं प्र-
द्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥ १९ ॥ तेऽन्योन्यं ददृशुर्वीरा देहवन्धान-
मानुषान्। पारिजातप्रभावेण ततो मुमुदिरे जनाः ॥ २० ॥ तैः
स्तूयमानो गोविन्दः प्रहृष्टैर्यादवर्षभैः। प्रविवेश गृहं श्रीमान् वि-
हितं विश्वकर्मणा ॥२१॥ ततोऽन्तःपुरमध्ये तं सशृङ्गमणिपर्वतम्।
निवेशयदमेयात्मा वृष्णिभिः सहितोऽच्युतः॥ २२ ॥ तं च दिव्यं
द्रुमश्रेष्ठं पारिजातममित्रजित्। अर्चयित्वाभ्यग्रमिष्टे देशे न्यवे-
शयत् ॥ २३ ॥ अनुज्ञाप्य ततो ज्ञातीन् केशवः परवीरहा। ताः
स्त्रियः पूजयामास संहृता नरकेण याः ॥ २४ ॥ वस्त्रैराभरणैं-

चित पूजाकी॥१७॥बलराम उग्रसेन गद अक्रूर और प्रद्युम्न आदि
से पूजा पाते हुए कृष्ण मणिपर्वतको लेकर अपने घरमें घुसे १८
रुक्मिणीका पुत्र प्रद्युम्न इन्द्रके प्यारे महावृक्ष पारिजातको घरमें
लेगया ॥ १९ ॥ उन दोनों वीरोंने पारिजातके प्रभावसे अपने
देहवन्धनोंको अमानुष देखा तदनन्तर पारिजातके प्रभावसे मनुष्य
भी प्रसन्न होने लगे ॥ २० ॥ हर्षमें भरे हुए श्रेष्ठ २ यादवोंसे
स्तुतिपाते हुए गोविन्द विश्वकर्माके रचे हुए घरमें घुसे ॥२१॥
तदनन्तर अमेयात्मा अच्युत विष्णुने वृष्णियोंके साथ आकर
अन्तःपुरके मध्यमें शिखरसहित मणिपर्वतको स्थापित कर दिया
और शत्रुओंको जीतनेवाले उस पूजनीय दिव्य वृक्ष पारिजातकी
पूजा करके उस अभ्यग्र वृक्षको उसके इष्टस्थानमें धरदिया २२-२३
तदनन्तर शत्रुओंके वीरोंका नाश करनेवाले केशवने अपनी,जाति
वालोंको जताकर नरकासुर जिनको विनादूषित लिये ले आया
था उन स्त्रियोंकी पूजाकी ॥ २४ ॥ वसुदेवने और देवकी
रोहिणी तथा रेवती और आहुकने उन स्त्रियोंको दिव्य वस्त्र

दिव्यैर्दासीभिर्धनसञ्चयैः । हारैश्चन्द्रांशुसंकाशैर्मणिभिश्च महा-
प्रभैः ॥२५॥ पूर्वमभ्यर्चिताश्चत्र वसुदेवेन ताः स्त्रियः । देवक्या
सह रोहिण्या रेवत्या चाहुकेन च ॥२६॥ सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां
सौभाग्येनाभवत्तदा । कुटुम्बस्येश्वरी त्वासीद्रुक्मिणी भीष्मका-
त्मजा ॥ २७ ॥ तासां यथार्हं हर्म्याणि प्रासादशिखराणि च ।
आदिदेश गृहान् कृष्णः परिबर्हांश्च पुष्कलान् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकाप्रवेशने
नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः सम्पूज्य गरुडं वासुदेवोऽनुमान्य
च । सखित्वलोपगृह्यैनमनुजज्ञे गृहं प्रति ॥ १ ॥ सोऽनुज्ञातो हि
सत्कृत्य प्रणम्य च जनार्दनम् । ऊर्ध्वमाचक्रमे पक्षी यथेष्टं गगने-
चरः ॥ २ ॥ सपक्षवातसंक्षुब्धं समुद्रं मकरालयम् । कृत्वा वेगेन
महता ययौ पूर्वमहोदधिम् ॥ ३ ॥ कृत्यकाले उपस्थास्य इत्युक्त्वा

गहने दासी-धन समूह चन्द्रमाकी किरणोंकी समान हार और
महाकान्तिमान् मणियोंसे पहले पूजाकी उस समय सत्यभामा
स्त्रियोंमें उत्तम सौभाग्यवती थी और भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी
कुटुम्बकी ईश्वरी बनगई थी ॥ २७ ॥ कृष्णने उनके लिये उचित
घर भवन शिखर और बहुतसे पारिबर्ह दिये थे २८ निन्यानवेवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर वासुदेवने गरुड़जीकी
पूजाकी और उनका मित्रकी समान सत्कार कर उनको घरजाने
की आज्ञादी ॥ १ ॥ कृष्णकी आज्ञा पाने पर वह पक्षी कृष्णका
सत्कार कर और उनको प्रणाम कर आकाशचारी होनेके कारण
आकाशमें इच्छानुसार ऊपरको उड़े ॥ २ ॥ वह मगरोंके निवास-
स्थान समुद्रको अपने पंखोंकी वायुसे क्षुब्ध करके बड़े वेगके साथ
पूर्वसमुद्रकी ओर चले ॥ ३ ॥ मैं समयके ऊपर आऊँगा यह कह

गरुडे गते। कृष्णो ददर्श पितरं वृद्धमानकदुन्दुभिम् ॥ ४॥ उग्रसेनं च राजानं बलदेवं च सात्यकिम्। काश्यं सान्दीपनिञ्चैव ब्राह्मणाग्र्यं तथैव च ॥ ५ ॥ अन्यांश्च वृद्धान् वृष्णीनां तांश्च भोजान्धकांस्तथा। रत्नमंवेक्षैर्दाशार्हान् वीर्यलब्धैस्तथार्चयत् ।६। हता ब्रह्मद्विषः सर्वे जयन्त्यन्धकवृष्णयः। रणात् प्रतिनिवृत्तोऽगमत्तो मधुसूदनः ॥७॥ इति चत्वररथ्यासु द्वारवत्यां सुपूजितः। चाक्रिको घोषयामास पुरुषो मृष्टकुण्डलः ॥ ८ ॥ ततः सांदीपनिं पूर्वमभिगम्य जनार्दनः। ववन्दे वृष्णिनृपतिमाहुकं विनयान्वितः तथा हि परिपूर्णाक्षमानन्दागतचेतसम्। ववन्दे सह रामेण पितरं वासवानुजः ॥१०॥ उपगम्य तथा शेषान् सत्कृत्य च यथार्हतः। सर्वेषां नाम जग्राह दशार्हाणामधोक्षजः ॥ ११ ॥ ततः सर्वाणि

कर जब गरुड़जी चलेगए तब कृष्णने अपने वृद्ध पिता वसुदेवजी का दर्शन किया ॥ ४ ॥ उन्होंने राजा उग्रसेन बलदेव सात्यकि काश्यप सान्दीपिनि तथा श्रेष्ठ २ ब्राह्मण भोजवंशी अन्धकवंशी वृष्णिवंशी और दाशार्हवंशी वृद्धोंका वीर्यसे पाई हुए रत्नकी पिटारियोंको देकर सत्कार किया ॥ ५ ॥ ६ ॥ तपे हुए कुण्डलों को पहिरने वाला राजाकी आज्ञाको कहने वाला चाक्रिक भली प्रकार पूजा पाकर द्वारकाके चौराहे और गलियोंमें ढँढोरा पीट ने लगा, कि—सब ब्रह्मद्वेषी मारे गए, और वृष्णि तथा अन्धकवंशियोंकी जीत हुई है और यह मधुसूदन रणमेंसे अक्षत लौट आए हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर जनार्दनने पहले सन्दीपिनीके पास जाकर उनको प्रणाम किया फिर वृष्णियोंके राजा आहुक को विनयपूर्वक प्रणाम किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर इन्द्रके छोटे भाई कृष्णने बलदेवजीके साथ २ आनन्दसे भरे हुए चित्त वाले और परिपूर्णनेत्र वाले अपने पिताको प्रणाम किया ॥ १० ॥ तदनन्तर माधवने बाकी सबके पास जाकरभी उनका यथोचित सत्कार

द्विरदानि सर्वरत्नमयानि च । आसनाग्र्याणि विविशुः कृष्णेन्द्र मु-
खास्तदा ॥ १२ ॥ ततस्तद्धनमक्षय्यं किङ्करैर्यत् समाहृतम् । तत्
सभायामानयामासुः पुरुषाः कृष्णशासनात् ॥१३॥ ततः सम्मान-
यामास दाशार्हांश्च यदूत्तमः । सर्वान्दुन्दुभिशब्देन पूजयित्वा ज-
नार्दनः १४॥ नानासनवतीं रम्यां मणिविद्रुमतोरणाम् । सभां
सर्वदशार्हास्ते विविशुः कृष्णशासनात् ।१५। ततः पुरुषसिंहैस्तै
र्यदुभिः सर्वतो वृता । सर्वार्थगुणसम्पन्ना सा सभा भरतर्षभ ।
शुशुभेऽभ्यधिकं शुभ्रा सिंहैर्गिरिगुहा यथा ॥ १६ ॥ रामेण सह
गोविन्दः काञ्चनं महदासनम् । उग्रसेनं पुरस्कृत्य भोजवृष्णि-
पुरस्कृतः ॥१७॥ तत्रोपविष्टस्तान् वीरान् यथा प्रीतिर्यथा वयः ।
समाभाष्य यदुश्रेष्ठानुवाच पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ १००

किया तदनन्तर अधोक्षजने सब दाशार्होंके नाम लिये ॥ ११ ॥
तदनन्तर कृष्ण आदि सर्वरत्नमय दिव्य और श्रेष्ठ आसनोंपर
बैठ गए ॥ १२ ॥ तदनन्तर जिस अक्षयधनको श्रीकृष्ण किंकरों
से उठवाकर ले आए थे उसको कृष्णकी आज्ञासे पुरुष सभामें
ले आए ॥ १३ ॥ तब यादवोंमें श्रेष्ठ जनार्दनने नगाड़ोंके शब्द
से सबकी पूजा कर सबका सन्मान किया १४ तदनन्तर कृष्ण
की आज्ञासे वे सब दाशार्ह आसन वाली और मणिमूंगोंके तोरणों
वाली रमणीय सभामें बैठ गए ॥ १५ ॥ तदनन्तर हे भरतर्षभ !
पुरुषसिंह यादवोंसे चारों ओरसे घिरी हुई सम्पूर्ण प्रयोजन और
गुणोंसे सम्पन्न वह सभा सिंहोंसे व्याप्त शुभ्र गिरिगुहाकी समान
अधिक शोभा पाने लगी१६गोविन्दने भी बलरामके साथ सुवर्ण
के एक बड़े भारी आसन पर बैठ गए उनके आगे उग्रसेन बैठे
हुए थे और उनको भोजवंशी और वृष्णिवंशियोंके आगे बैठा
रखा था १७ तहाँ पर प्रीति और अवस्थाके अनुसार बैठे हुए
यदुश्रेष्ठ वीरोंको सम्बोधित करके श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच । भवतां पुण्यकीर्तीनां तपोबलसमाधिभिः। अपध्यानाच्च पापात्मा भौमः स नरको हतः ॥ १ ॥ मोचितं बन्धनाद् गुप्तं कन्यान्तः-पुरसत्तमम् । मणिपर्वतमुत्पाट्य शिखरं चैतदाहृतम् ॥२॥ अयं धनौघः सुमहान् किंकरैराहृतो मम । ईशा भवन्तो द्रव्यस्य तावुक्त्वा विरराम ह ॥३॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भोजवृष्ण्यन्धका वचः । जहृषुर्हृष्टरोमाणः पूजयन्तो जनार्दनम् ४ ऊचुश्चैनं नृवीरास्ते कृतांजलिपुटास्ततः । नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दने ॥ ५ ॥ यत्कृत्वा दुष्करं कर्म देवैरपि दुरासदम् । लालये स्वजनान्भोगै रत्नैश्च स्वयमर्जितैः ॥ ६ ॥ ततः सर्वदशार्हाणामाहुकस्य च याः स्त्रियः । प्रीयमाणाः समाजग्मुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥ दे[illegible]सप्तमा देव्यो रोहिणी च शुभा-

श्रीकृष्णने कहा, कि-पुण्यमयी कीर्ति वाले आपके तप बल और समाधिसे तथा अशुभ चिन्तवन करकेसे भूमिपुत्र पापात्मा नरक मारा गया १ और छिपा हुआ कन्याओंका उत्तम अन्तःपुर भी बन्धनसे छूट गया और मणि-पर्वतको उखाडकर उस का यह शिखर भी यहाँ आगया ॥ २ ॥ इस बड़े भारी धनको मेरे किङ्कर ले आए हैं इस सब धनके आप स्वामी हैं इस प्रकार कहकर वासुदेव चुप होगए ।३। भोज वृष्णि और अन्धक वासुदेवके इस वचनको सुनकर रोमांचित हो जनार्दनकी पूजा करते हुए हँसने लगे ॥४॥ और उन वीरोंने हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण से कहा, कि-हे महाभुज देवकीनन्दन ! आपमें ऐसा होना कुछ विचित्र बात नहीं है ॥ ५ ॥ कि-आप देवताओंसे भी दुरासद कर्म करके अपने आप इकट्ठे किये हुए रत्नोंसे और भोगोंसे अपने मनुष्योंको लाड़ लड़ा रहे हैं ॥ ६ ॥ उस समय दशार्हवंशियोंकी और उग्रसेनकी जो स्त्रियें थी, वे सब प्रसन्न होती हुई श्रीकृष्ण का दर्शन करनेके लिए आई ॥ ७ ॥ जिनमें देवकी सातवीं थीं

तना । ददृशुः कृष्णमासीनं रामं चैव महाभुजम् ॥ ८ ॥ तौ तु पूर्वमतिक्रम्य रोहिणीमभिवाद्य च । अभिवादयतो देवीं देवकीं रामकेशवौ ॥९॥ सा ताभ्यामृषभाक्षाभ्यां पुत्राभ्यां शुशुभेऽम्बिका । अदितिर्देवमातेव मित्रेण वरुणेन च ॥ १० ॥ ततः प्राप्ता नराग्र्यौ तु तस्याः सा दुहिता तदा । एकानंशेति यामाहुर्नरा यां कामरूपिणीम् ॥ ११ ॥ यथा क्षणमुहूर्ताभ्यां यथा जज्ञे सुरेश्वरः । यत्कृते सगणं कंसं जघान पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥ सा कन्या वदृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता । पुत्रवत् पाल्यमाना वै वासुदेवाज्ञया तदा ॥ १३ ॥ एकानंशेति यामाहुरुत्पन्नां मानवा भुवि । योगकन्यां दुराधर्षां रक्षार्थं केशवस्य ह ॥१४॥ यां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः । देववद्दिव्यपुरुषः कृष्णः संरक्षितो यया

ऐसी देवियें और शुभमुखी रोहिणी महाभुज राम कृष्णको बैठा हुआ देखने लगीं ॥८॥ राम और कृष्णने पहिले (सब स्त्रियों को) लांघ कर रोहिणीको प्रणाम किया, फिर उन्होंने देवी देवकी को प्रणाम किया ॥ ९ ॥ वह माता अपने वृषभकी समान नेत्रों वाले दोनों पुत्रोंसे, मित्र (सूर्य) और वरुणसे शोभा पाने वाली देवमाता अदितिकी समान शोभा पाने लगी ॥ १० ॥ तदनन्तर देवकीकी वह पुत्री उन नरश्रेष्ठोंके समीप आई, जिसको मनुष्य अंशरहित एक और इच्छानुसार रूप धारण करने वाली कहते हैं ११ जिसके संकेत और समयके अनुसार सुरेश्वर (कृष्ण) उत्पन्न हुए थे और जिसके कारण कृष्णने कंसको और उसके अनुयायियोंको मार डाला था ॥१२॥ वह कन्या वृष्णिओंके घर में सत्कार पाती हुई वासुदेवकी आज्ञासे पुत्रकी समान पाली जाती हुई बढ़ने लगी थी ॥ १३ ॥ मनुष्य जिस दुराधर्ष योगकन्याको वासुदेवकी रक्षा करने वाली पूर्ण अंशसे पृथ्वीमें उत्पन्न हुई बताते हैं ॥१४॥ जिसकी सब मनस्वी यादव पूजा करते हैं और

तां च तत्रोपसंगम्य प्रियामिव सखीं स्वसाम् । दक्षिणेन करा-
ग्रेण परिजग्राह माधवः ॥१६॥ तथैव रामोऽतिबलः संपरिष्वज्य
भामिनीम् । मूर्ध्न्युपाघ्राय सव्येन प्रतिजग्राह पाणिना ॥ १७ ॥
ददृशुस्ताः स्त्रियो मध्ये भगिनीं रामकृष्णयोः । रुक्मपद्मव्यग्र-
करां श्रियं पद्मालयामिव ॥ १८ ॥ तथाक्षतमहावृष्ट्या पुष्पैश्च
विविधैः शुभैः । अवकीर्य च लाजैस्ताः स्त्रियो जग्मुर्यथालयम् १९
ततस्ते यादवाः सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् । उपोपविविशुः प्रीताः
प्रशंसन्तोऽद्भुतं कृतम् ॥ २० ॥ पूज्यमानो महाबाहुः पौराणां
रतिवर्धनः । विरराज महाकीर्तिर्देवैरिव स तैः सह॥२१॥समा-
सीनेषु सर्वेषु यादवेषु जनार्दनम् । नियोगात् त्रिदशेंद्रस्य नारदो-
ऽभ्यागमत् सभाम् ॥ २२ ॥ सोथ सम्पूजितः पूज्यः शूरैस्तैर्यदु-

जिसने दिव्य पुरुष कृष्णकी देवताकी समान रक्षाकी है ॥१५॥
माधवने उस अपनी प्रिय सखीकी समान बहनसे मिल कर उस
को दाहिने हाथसे पकड़ लिया ॥ १६ ॥ इसी प्रकार अतिबल-
वान् रामने भी उस पूजनीयासे मिल कर उसके शिरको सूँघ
उसको बाये हाथसे पकड़ लिया ।१७। उस समय स्त्रियोंने राम
और कृष्णके बीचमें उनकी बहिनको सुवर्ण और पद्मसे व्यग्र हाथ
वाली पद्मालया लक्ष्मीकी समान देखा १८ तदनन्तर वे स्त्रियें
अनेक प्रकारके पुष्प और शुभ अक्षत उन पर छिड़क कर तथा
उन पर खीलोंकी बखेर कर अपने २ घरोंको चली गईं ॥१९॥
तदनन्तर वे सब यादव जनार्दनकी पूजा करते हुए और उनके
अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न होकर बैठ गए ॥२०॥
नगरनिवासियोंके आनन्दको बढ़ाने वाले महाकीर्ति श्रीकृष्ण उन
सबसे पूजा पाकर देवता-स्वरूप यादवोंसे शोभा पाने लगे २१
सब यादवोंके बैठे जाने पर देवताओंके इन्द्रकी आज्ञासे नारदजी
सभामें जनार्दनके पास आये ॥ २२ ॥ उस समय शूर यादवोंने

भुजङ्गैः । करं संस्पृश्य स हरेर्विवेश परमासने ॥ २३ ॥ सुखोप-
विष्टस्तान् वृष्णीनुपविष्टाननुवाच ह । संप्राप्तं शक्रवचनाज्जानीध्वं
मां नरर्षभाः ॥ २४ ॥ शृणुध्वं राजशार्दूलाः कृष्णस्यास्य परा-
क्रमम् । यानि कर्माणि कृतवान् बाल्यात् प्रभृति केशवः ॥२५॥
उग्रसेनसुतः कंसः सर्वान्निर्मथ्य यादवान् । राज्यं जग्राह दुर्बुद्धि-
र्बध्वा पितरमाहुकम् ॥ २६ ॥ समाश्रित्य जरासन्धं श्वसुरं कुल-
पांसनः । भोजवृष्ण्यन्धकान् सर्वानवमन्यत दुर्मतिः ॥२७॥ ज्ञाति-
कार्यं चिकीर्षुस्तु वसुदेवः प्रतापवान् । उग्रसेनस्य रक्षार्थं स्वपुत्रं
पर्यरक्षत ॥ २८ ॥ स गोपैः सह धर्मात्मा मथुरोपवने स्थितः ।
अत्यद्भुतानि कर्माणि श्रूयते महदद्भुतम् । उत्तानेन शयानेन शक-

उनकी पूजा की, तदनन्तर पूजनीय नारद श्रीकृष्णके हाथको पकड़ कर श्रेष्ठ आसन पर बैठ गए ॥२३॥ सुखपूर्वक बैठे हुए नारदजीने बैठे हुए वृष्णिवंशियोंसे कहा, कि-हे नरर्षभो ! तुम मुझे इन्द्रके वचनसे आया हुआ जानो ।२४। हे राजशार्दूलो ! केशवने बालरूपसे जो काम किये हैं, कृष्णके उन पराक्रमोंको तुम सुनो ॥ २५ ॥ उग्रसेनके पुत्र दुर्बुद्धि कंसने सब यादवोंका तिरस्कार कर अपने पिता आहुकको बाँध कर राज्य छीन लिया था ॥ २६ ॥ वह कुलकलंक दुर्मति अपने श्वसुर जरासंधका आश्रय ले सारे भोज वृष्णि और अंधकोंका तिरस्कार करने लगा था ॥ २७ ॥ उस समय जातिका कार्य करना चाहने वाले प्रतापी वसुदेवने उग्रसेनकी रक्षा करनेके लिए अपने पुत्रकी रक्षा की थी ॥ २८ ॥ उस समय धर्मात्मा मधुसूदनने गोपोंके साथ मथुरामें रहकर अतिअद्भुत कर्म किये थे ॥ २९ ॥ शूरसेन इस अद्भुत बातको प्रत्यक्ष सुनते हैं, कि-शकटका नाश करनेकी चेष्टा करनेवाले श्रीकृष्णने उत्तान (ऊपरको पैर करके) शयन कर पक्षीका वेष धारण करने वाली भयंकर राक्षसी

टान्तरचारिणा । राक्षसी निहता रौद्रा शकुनीवेषधारिणी ।३०।
पूतना नाम घोरा सा महाकाया महाबला । विषदिग्धं स्तनं रौद्रं
प्रयच्छन्ती जनार्दने ॥ ३१ ॥ ददृशुर्निहतां तां ते राक्षसीं वन-
गोचराः । पुनर्जातोऽयमित्याहुरुक्तस्तस्मादधोक्षजः ॥३२॥अत्य-
द्भुतमिदं चासीद्यच्छिशुः पुरुषोत्तमः । पादाङ्गुष्ठेन शकटं क्रीड-
मानो व्यलोडयत् ॥ ३३ ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धो विप्रकुर्वन्
कुमारकम् । बभञ्जार्जुनवृक्षौ द्वौ ख्यातो दामोदरस्तदा ॥ ३४ ॥
कालियश्च महानागो दुराधर्षो महाबलः । क्रीडता वासुदेवेन
निर्जितो यमुनाह्रदे ॥ ३५ ॥ अक्रूरस्य समक्षं च यन्नागभवने
विभुः । पूज्यमानं तदा नागैर्दिव्यं वपुरधारयत् ॥ ३६ ॥ शीत-
वातार्दिता गाश्च दृष्ट्वा कृष्णेन धीमता । धृतो गोवर्धनः शैलः

सीको मार डाला था ३० उस भयंकर राक्षसीका नाम पूतना
था उसका शरीर बहुत बड़ा था और उसमें बल भी बहुत था,
वह अपना विषसे सना हुआ स्तन जनार्दनको पिला रही थी३१
वनमें चलने वालोंने जब (उस) राक्षसीको मरा हुआ देखा,
तब वे कहने लगे, कि-यह अधोक्षज फिर उत्पन्न हुए हैं ।३२।
यह भी अति अद्भुत बात हुई थी कि-इन पुरुषोत्तमने बालक होने
पर भी क्रीड़ा करते २ पैरके अँगूठेसेगाड़ीको तोड़ डाला था३३
इन्होंने रस्सीसे उलूखलमें बँधने पर अपनी कुमारताका(तिरस्कार)
कर अर्जुनके दो पेड़ोंको तोड़ डाला था, इससे वे दामोदर नाम
से प्रसिद्ध हुए हैं ३४ इन खेलते हुए वासुदेवने यमुना ह्रदमें दुरा-
धर्ष महाबली महानाग कालिय सर्पका दमन किया था ।३५। इन
विभुने अक्रूरके सामने नागभवनमें सर्पोंसे पूजा पाते हुए दिव्य
शरीर धारण किया था ३६ गौओंको शीत और वायुसे पीड़ा
पाती हुई देख कर इन महात्मा बुद्धिमान् कृष्णने गोवर्धन पर्वत
को सात रात तक उठाया था ३७ बालक वासुदेवने (यह सब

सप्तरात्रं महात्मना ॥ ३७ ॥ शिशुना वासुदेवेन गवां त्राणार्थ-मिच्छताम् ॥ ३८ ॥ तथोऽक्षदुष्टोतिबलो महाकायो नरान्तकृत् । गोपतिर्वासुदेवेन हतोऽरिष्टो महासुरः ॥ ३९ ॥ धेनुकः स महा-कायः दानवः सुमहाबलः । निहतो वासुदेवेन गवां त्राणाय दुर्मतिः सुनामानममित्रघ्नः सर्वसैन्यपुरस्कृतम् । वृकैर्विद्रावयामास गृहीतं समुपस्थितम् ॥ ४१ ॥ रौहिणेयेन संगम्य वने विचरता पुनः । गोपवेषधरेणैव कंसस्य भयमाहितम् ॥४२॥तथा च नगनः शौरि-र्दृष्ट्वा युद्धबलं हयम् । मग्रहं भोजराजस्य जघान पुरुषोत्तमः ४३ प्रलम्बश्च महाबाहो रौहिणेयेन धीमता । दानवो मुष्टिनैकेन कंसा-मात्यो निपातितः ॥४४॥ एतौ हि वसुदेवस्य पुत्रौ सुरसुतोपमौ। ववृधाते महावीर्यौ ब्रह्मगार्ग्येण संस्कृतौ ॥ ४५ ॥ जन्मप्रभृति चाप्येतौ गार्ग्येण परमर्षिणा।याथातथ्येन विज्ञाय संस्कारमति-

काम) रक्षा चाहने वाली गौओंके लिए (किया था) ३८ इसी प्रकार वासुदेवने बड़े भारी शरीरवाले,मनुष्योंका अन्त करनेवाले गोपति दुष्ट बैल अरिष्ट नामक महाराक्षसको मार डाला था और इन वासुदेवने गौओंकी रक्षा करनेके लिये महाबलीमहाकाय धेनुक नामक राक्षसको मार डाला था ४० इन्होंने सारी सेनाको लेकर खड़े हुए अमित्रनाशन सुनामाको भेड़ियोंसे भगादिया था ४१ फिर इन्होंने गोपवेशमें बलरामके साथ वनमें भ्रमण कर कंसको भयभीत किया था४२और इन शौरि पुरुषोत्तमने कंसके सहायक घोड़ेको देखकर उसको मार डाला था ४३ हे महाभुज ! बुद्धि-मान् बलरामने कंसके मन्त्री प्रलम्ब दानवको एक मुट्ठीका घूँसा मार कर मार डाला था ४४ वसुदेवके यह महावीर्य देवपुत्रोंकी समान पुत्र ब्राह्मण गार्ग्यके संस्कार करने पर बढ़ने लगे थे ४५ परमर्षि गार्ग्यने इन दोनोंके जातकर्म आदि संस्कार यथार्थरीतिसे जानकर किये थे ४६ जब ये दोनों नरश्रेष्ठ यौवनसुखमें वर्तमान

प्रादितौ ॥ ४६ ॥ यदा त्विमौ नरश्रेष्ठौ स्थितौ यौवनसम्मुखे । सिंहशावाविवोदीर्णौ मत्तौ हैमवतौ यथा ॥ ४७ ॥ ततो मनांसि गोपीनां हरमाणौ महाबलौ । आस्तां गोष्ठचरौ वीरौ देवपुत्रोपमद्युती ॥ ४८ ॥ एतौ जये वा युद्धे वा क्रीड़ासु विविधासु च । नन्दगोपस्य गोपाला न शेकुः प्रसमीक्षितुम् ॥ ४६ ॥ व्यूढोरस्कौ महाबाहू शालस्कन्धाविवोद्गतौ । श्रुत्वाऽसौ व्यथितः कंसो मंत्रिभिःसहितोऽभवत् ॥ ५० ॥ नाशकच्च यदा कंसो गृहीतुं बलकेशवौ निजग्राह ततः क्रोधाद्वसुदेवं सबान्धवम् ॥ ५१ ॥ सहोग्रसेनेन तदा चोरवद्गाढयन्धनम् । कालं महान्तमनयत् कृच्छ्रमानकदुन्दुभिः कंसस्तु पितरं बद्ध्वा शूरसेनान् शशास ह । जरासन्धं समाश्रित्य तथैवाहुकृतिभीष्मकौ ॥ ५३ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य मथुरायां महोत्सवम् । पिनाकिनं समुद्दिश्य चक्रे कंसो नराधिपः ॥५४॥

होकर सिंहके शावकों (बच्चों) की समान और हिमाचलके मत्त हाथियोंकी समान बड़े होगए ४७ तब ये देवपुत्रोंकी समान समान कान्तिवाले गोष्ठचर महाबली गोपियोंके मनको हरने लगे ४८ नन्दगोपके गोपाल जयमें युद्धमें और अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंमें इनकी ओर देख भी नहीं सकते थे ।४६। भरी हुई छाती वाले महाभुज और सालके लट्ठेकी समान ऊँचे इन दोनों को सुन कर कंस व्यथित होगया और उसने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की ५० जब कंस बलदेव और कृष्णको न पकड़ सका तब उसने क्रोधमें भर कर वसुदेवको और उनके बान्धवोंको पकड़ लिया ५१ उसने उग्रसेनको भी चोरकी समान दृढ़तासे बाँध लिया उस समय आनकदुन्दुभि-वसुदेवने कष्टके साथ बहुतसा समय बिताया था ५२ कंस भी भीष्मक आहुकृति और जरासन्धका आश्रय ले अपने पिता कंसको बाँधकर शूरसेन देशका शासन करनेलगा ५३ कुछ समय बीतने पर राजा कंसने महादेवजीके निमित्त मथुरामें

तत्र मल्लाः समाजग्मुर्नानादेश्या विशाम्पते । नर्तना गायनाश्चैव कुशला नृत्यकर्मसु ॥ ५५ ॥ ततः कंसो महातेजा रंगवाटं महाधनम् । कुशलैः कारयामास शिल्पिभिः साधुनिष्ठितैः ॥ ५६ ॥ तत्र मञ्चसहस्राणि पौरजानपदैर्जनैः । समाकीर्णानि दृश्यन्ते ज्योतींषि गगने यथा ॥ ५७ ॥ भोजराजः श्रिया जुष्टं रङ्गवाटं महर्द्धिमत् । आरुरोह ततः कंसो विमानं सुकृती यथा ॥ ५८ ॥ रङ्गवाटे गजं मत्तं प्रभूतायुधकल्पितम् । शूरैरधिष्ठितः कंसः स्थापयामास वीर्यवान् ॥ ५९ ॥ यदा हि स महातेजा रामकृष्णौ समागतौ । शुश्राव पुरुषव्याघ्रौ सूर्याचन्द्रमसाविव ॥६०॥ तदाप्रभृति यत्नोऽभूद्रक्षां प्रति नराधिप । न च शिश्ये सुखं रात्रौ रामकृष्णौ विचिन्तयन् ॥ ६१ ॥ श्रुत्वा तु रामः कृष्णश्च तं

महोत्सव किया ॥५४॥ हे विशाम्पते ! तहाँ पर अनेक देशोंके मल्ल आए थे और नृत्यकर्ममें कुशल नर्तक और गायक भी तहाँ आए थे ।५५। तदनन्तर महातेजस्वी कंसने बड़ा धन लगवाकर चतुर शिल्पियोंसे रंगवाट बनवाया था ५६ जिस प्रकार आकाश में नक्षत्र दीखते हैं,इसीप्रकार तहाँ पर पुरवासी और ग्रामवासी मनुष्योंसे घिरेहुए सहस्रों मञ्च दीखते थे५७जिस प्रकार पुण्यात्मा पुरुष विमान पर चढ़ता है, इसी प्रकार कंस भोजराजकी लक्ष्मी से युक्त ऋद्धिसम्पन्न रंगवाटमें कंस आया ५८ शूरोंसे सेवित वीर्यवान् कंसने अनेक प्रकारके आयुधोंसे सजाये हुए मदमत्त हाथीको रंगवाटमें खड़ा कर दिया था ५९ महातेजस्वी कंसने जिस समय सूर्य और चन्द्रमाकी समान पुरुषव्याघ्र राम और कृष्णको, आये हुए सुना ६० हे राजन् ! तबसे वह अपनी रक्षा का यत्न करने लगा, वह राम और कृष्णका विचार कर रात्रि में सुखपूर्वक सो भी न सका ६१ राम और कृष्ण उस उत्तम समाजको सुन कर उस समाजमें, गोष्ठमें घुसने वाले वीर शार्दूलों

समाजमनुत्तमम् । उभौ विविशतुर्वीरौ शार्दूलौ गोव्रजं यथा ६२ ततः प्रवेशे संरुद्धौ रक्षिभिः पुरुषर्षभौ । हत्वा कुवलयापीडं ससादिनमरिन्दमौ । अवमृद्य दुराधर्षौ रङ्गं विविशतुस्तदा ॥ ६३ ॥ चाणूरान्ध्रौ विनिष्पष्य केशवेन बलेन च । औग्रसेनिः सुदुष्टात्मा सानुजो विनिपातितः ॥ ६४ ॥ यत्कृतं यदुसिंहेन देवैरपि सुदुष्करम् । कर्म तत्केशवादन्यः कर्तुमर्हति कः पुमान् ॥ ६५ ॥ यदि नाधिगतं पूर्वैः प्रल्हादबलिशम्बरैः । तदिदं प्रापितं वित्तं शौरिणा भवतां कृते ६६ एतेन मुरुमाक्रम्य दैत्यं पञ्चजनं तथा । निष्क्रम्य शैलसंघातान्निसुन्दः सगणो हतः ॥ ६७ ॥ नरकश्च हतो भौमः कुण्डले चाहृते शुभे । प्राप्तं च दिवि देवेषु केशवेन महद्यशः ६८ वीतशोकभयाबाधा कृष्णबाहुबलाश्रयाः । यजध्वं विविधैर्यज्ञै-

---

की समान घुसने लगे ॥ ६२ ॥ प्रवेश करते समय रक्षकोंने उन को रोका तब इन दोनोंने कुवलयापीडको और उसके सवारको मार डाला, तदनन्तर ये दोनों दुराधर्ष अरिदमन पुरुषर्षभ रङ्गवाटमें पहुँच गए थे ॥ ६३ ॥ तदनन्तर केशवने और बलदेवने चाणूर और अन्ध्रकको मार कर उग्रसेनके दुष्टात्मा पुत्र कंसको और उसके भाइयोंको भी मार गिराया ॥ ६४ ॥ यदुसिंह केशव ने जो दुष्कर कर्म किया है उसको केशवके अतिरिक्त और कौन पुरुष कर सकता है ॥ ६५ ॥ जिस धनको पहिले प्रल्हाद बलि और शम्बर भी नहीं पासके थे उस धनको कृष्ण आपके लिए लेआये हैं ॥ ६६ ॥ इन्होंने मुरु और पञ्चजन दैत्यको दबा कर वहाँसे हट पर्वतके शिखरकी समान आभा वाले निसुन्दको और उसके गणोंको मार डाला था ॥ ६७ ॥ इन्होंने भूमिपुत्र नरकासुरको मार डाला था और (अदितिके) शुभकुण्डल लौटा लिये थे इस प्रकार इन केशवने स्वर्गमें देवताओंके बीचमेंभी बड़ा यश पाया है ॥ ६८ ॥ हे यादवो ! कृष्णके भुजबलका आश्रय पाने

र्यादवा वीतमत्सराः ॥ ६९ ॥ देवानां सुमहत् कार्यं कृतं कृष्णेन श्रीमता । प्रियमावेदयाम्येष भवतां भद्रमस्तु वः ॥ ७० ॥ यदिष्टं वो यदुश्रेष्ठाः कर्तास्मि तदतन्द्रितः।भवतामस्मि यूयं च मम युष्मास्वहं स्थितः ॥७१॥ इति सम्बोधयन् कृष्णमब्रवीत्पाकशासनः। स मां प्रैषीत् सुरश्रेष्ठ प्रीतस्तुष्टास्तथा वयम् ॥ ७२ ॥ यत्र धीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र सन्नतिः । सन्नतिर्धीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

नारद उवाच । सादिता मौरवाः पाशा निसुन्दनरकौ हतौ । कृतः क्षेम्यः पुनः पन्था पुरं प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १ ॥ शौरिणा

के कारण तुम्हारे ऊपर शोक और भय नहीं पड़ सकता अतः हे यादवो ! तुम वीतराग होकर अनेक प्रकारके यज्ञोंको करो। ६९ बुद्धिमान् कृष्णने देवताओंका बड़ा भारी कार्य किया, यह प्रिय समाचार मैंने तुम्हें सुना दिया तुम्हारा कल्याण हो ॥ ७० ॥ पाकशासन इन्द्रने कृष्णको सम्बोधित (प्रसन्न) करते हुए कहा है,कि–हे यादवो ! तुमको जो कार्य इष्ट होगा उस सबको मैं अतन्द्रित होकर करूँगा. तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ, मैं तुममें ही स्थित हूँ, प्रसन्न हुए सुरश्रेष्ठ इन्द्रने मुझे (यह कह कर) यहाँ भेजा था, और हम भी आपसे प्रसन्न हुए हैं ७१–७२ जहाँ पर बुद्धि होती है, वहाँ लक्ष्मी रहती है और जहाँ लक्ष्मी होती है तहाँ सन्नति रहती है सन्नति बुद्धि और लक्ष्मी महात्मा कृष्णमें सर्वदा रहती हैं ७३ एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त १०१

नारदजीने कहा; कि–इन्होंने मुरुके पाशोंको नष्ट कर दिया है और निसुन्दासुर तथा नरकासुरको मार डाला है और प्राग्ज्योतिषपुरका मार्ग पहिलेकी समान फिर निष्कण्टक कर दिया है १

पृथिवीपालास्त्रासिताः स्पर्द्धिनो रणे । धनुषश्च निनादेन पाञ्च-जन्यस्वनेन च ॥२॥ मेघप्रख्यैरथानीकैर्दाक्षिणात्यैः सुरक्षितम् । रुक्मिणं युधि निर्जित्य महाबलपराक्रमम् । रुक्मिणीमाजहाराशु केशवो वृष्णिपुङ्गवः॥३॥ ततः पर्जन्यघोषेण रथेनादित्यवर्चसा । अवाप्य महिषीं भोज्यां शंखचक्रगदासिभृत् जारूथ्यामाहृतिः क्राथः शिशुपालश्च निर्जितः । वक्रश्च सह सैन्येन शतधन्वाथ निर्जितः॥५ इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद्यवनश्च कसेरुमान् । हतः सौभपतिः श्रीमान् शाल्वश्च दृढधन्वना ॥ ६ ॥ पर्वतानां सहस्रं च चक्रेण पुरुषो-त्तमः । विकीर्य पुण्डरीकाक्षो द्युमत्सेनं व्यपोथयत् ॥ ७ ॥ महेंद्र-शिखरे चैव निमेषान्तरचारिणौ । जघान पुरुषव्याघ्रौ रावण-स्यानितश्चरौ ॥ ८ ॥ इरावत्यां महाभोजावग्निसूर्यसमौ युधि ।

इन कृष्णने रणमें स्पर्धा करने वाले राजाओंको धनुषके शब्दसे और पाञ्चजन्यके स्वरसे डरा दिया है ॥ २ ॥ वृष्णिपुङ्गव केशव मेघों की समान दक्षिणी रथसेनाओंसे सुरक्षित बड़ी भारी सेना वाले पराक्रमी रुक्मीको युद्धमें जीत कर रुक्मिणीको शीघ्र ही ले आये हैं ।३। शंख चक्र और गदा तथा तलवारको धारण करने वाले कृष्णने भोजवंशी रानीको पाकर सूर्यकी समान तेजस्वी और मेघकी समान शब्द करनेवाले रथसे जारूथीमें आहृति क्राथ और शिशुपालको जीत लिया था और सेनासहित वक्र और शतधन्वा को भी जीत लिया था ॥४॥५॥ इन्होंने कोपमें भर कर इन्द्रद्युम्न यवन और कसेरुमान्को भी मार डाला था इसी प्रकार इन दृढ़-धनुषधारीने सौभके स्वामी श्रीमान् शाल्वको मार डाला था ६ इन पुरुषोत्तम पुण्डरीकाक्षने सहस्रों पर्वतोंको चक्रसे विदीर्ण कर द्युमत्सेनको मसल डाला था ॥ ७ ॥ इन शार्ङ्गधनुषधारी कृष्ण ने महेन्द्रपर्वत सरीखी इरावती नगरीमें रावणके आसपास फिरने वाले युद्धमें अग्नि और सूर्यकी समान भोजवंशियोंमें उदार पुरुष-

गोपतिस्तालकेतुश्च निहतौ शार्ङ्गधन्वना ॥ ९ ॥ अक्षप्रपातने चैव डिम्भो हंसश्च दानवौ । उभौ तावपि कृष्णेन सानुगौ विनिपातितौ ॥ १० ॥ दग्धा वाराणसी चैव केशवेन महात्मना । सराष्ट्रः सानुबन्धश्च काशीनामधिपो हतः ॥ ११ ॥ विजित्य च यमं संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः । अथेन्द्रसेनिरानीतः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥१२॥ सहितः सर्वयादोभिः सगरेषु महाबलः । गत्वा लोहितकूटं च कृष्णेन वरुणो जितः ॥ १३ ॥ महेन्द्रभवने याता देवैर्गुप्तो महात्मभिः । अचिन्तयित्वा देवेन्द्रं पारिजातद्रुमो हृतः॥ १४ पाण्ड्यं पौण्ड्रं कलिङ्गं च मात्स्यं चैव जनार्दनः । जघान सहितान् सर्वान् वङ्गराजं तथैव च ॥ १५ ॥ एवं चैकशतं हत्वा रणे राज्ञां महात्मनाम् । गान्धारीमानयद्वीरो महिषीं प्रियदर्शनाम् १६

व्याघ्र, गोपति और तालकेतुको मार डाला है ॥ ८ ॥ ९ ॥ तथा इन कृष्णने आँख मीचने-मात्रके समयमें हंस और डिम्भ नाम वाले दानवोंको उनके अनुचरों-सहित मार डाला था ॥ १० ॥ और इन महात्मा केशवने वाराणसीको भस्म कर दिया था और राष्ट्र तथा उसकी सामग्री—सहित काशियोंके स्वामीको मार डाला था और इन अद्भुत कर्म करने वाले कृष्णने यमको भी युद्धमें नमी हुई गाँठ वाले बाणोंसे जीत कर इन्द्रसेनाके पुत्रको ला दिया था ॥ ११ ॥ १२ ॥ और कृष्णने लोहित- कूटमें जाकर जलचर जीवों सहित महाबली वरुणको भी जीत लिया था ।१३। और इन्होंने इन्द्रके भवनमें जाकर महात्मा देवताओंसे रक्षित परिजात वृक्षको इन्द्रकी भी परवाह न कर ले लिया था ॥ १४ ॥ जनार्दनने पाण्ड्य पौण्ड्र कलिंग और मत्स्यराज इन सब एकत्रित हुओंको और वंगराजको भी मार डाला था ॥ १५ ॥ एक सौ महात्मा राजाओंको युद्धमें मार कर ये वीर प्रियदर्शना रानी गांधारीको लाये हैं ॥१६॥ इन विभु मधुसूदनने कुन्तीके सन्मुख

तथा गाण्डीवधन्वानं क्रीडन्तं मधुसूदनः। जिगाय भरतश्रेष्ठ कुन्त्याः प्रमुखतो विभुः ॥ १७ ॥ द्रोणं द्रौणिं कृतं कर्णं भीष्मं चैव सुयोधनम् । चक्रानुयानैः प्रहरणे जिगाय पुरुषोत्तमः ॥१८॥ बभ्रोश्च प्रियमन्विच्छन् शंखचक्रगदासिभृत् । सौवीरराजस्य सुतां प्रसह्य हृतवान्प्रभुः ॥ १९ ॥ पर्यस्तां पृथिवीं कृत्स्नां साश्वां सरथकुञ्जराम् । वेणुदारिकृते यत्नाज्जिगाय पुरुषोत्तमः ॥२०॥ अवाप्य तपसो वीर्यं बलमोजश्च माधवः । पूर्वदेहे महाराय बलेस्त्रिभुवनं हरिः ॥२१॥ वज्राशनिगदाखड्गैस्त्रासयद्भिश्च दानवैः । यस्य नाधिगतो मृत्युः पुरं प्राग्ज्योतिषं गतिं ॥ २२ ॥ अभिभूतश्च कृष्णेन सगणः सुमहाबलः । बलेः पुत्रो महावीर्यो बाणो द्रविणवत्तरः ॥२३॥पीठं तथा महाबाहुः कंसामात्यं जनार्दनः । पैठिकं चासिलोमानं निजघान महाबलः ॥ २४ ॥ जम्भमैरावणं चापि

क्रीड़ा करते हुए भरतश्रेष्ठ अर्जुनके द्वारा चक्रसे चलने वाले यान (रथों) के संग्राममें द्रोण अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्ण भीष्म और दुर्योधनको भी जीत लिया है ॥ १७॥१८ ॥ बभ्रुका प्रिय चाह कर इन शंख चक्र गदा और तलवार धारण करने वाले प्रभुने सौवीर-राजकी पुत्रीका बलपूर्वक हरण किया था ॥ १९ ॥ इन पुरुषोत्तमने वेणुदारिके कारण यत्न करके हाथी रथ और घोड़ों से व्याप्त सारी भूमिको जीत लिया था ॥ २० ॥ इन मधुवंशी हरिने पूर्व जन्ममें तपसे वीर्य बल और ओजको पाकर बलि दैत्य से तीनों लोकोंको छीन लिया है ॥ २१ ॥ पहिले प्राग्ज्योतिषपुरमें दानव वज्र अशनि गदा और खड्गसे भी मार कर जिसका वध न कर सके थे उस बलिके पुत्र महावीर्य महाधनवान् बाणासुरका और उसके अनुचरोंका भी वासुदेवने तिरस्कार किया था २३ और इन महाबली वासुदेवने कंसके मंत्री महाभुज पीठको पैठिकको और असिलोमाको भी मार डाला था और इन

विरूपं च महायशाः । जघान पुरुषव्याघ्रो दैत्यं मानुषरूपिणम् २५
तथा नागपतिं तोये कालीयं च महौजसम् । निर्जित्य पुण्डरी-
काक्षः प्रेषयामास सागरम् ॥२६॥ संजीवयामास मृतं पुत्रं सांदी-
पनेस्तथा । निर्जित्य पुरुषव्याघ्रो यमं वैवस्वतं हरिः ॥ २७ ॥
एवमेष महाबाहुः शास्ता तेषां दुरात्मनाम् । देवांश्च ब्राह्मणां-
श्चैव ये द्विषन्ति सदा नृप ॥ २८ ॥ निहत्य नरकं भौममाहृत्य
मणिकुण्डले । देवमातुर्ददौ चैव प्रीत्यर्थं वज्रपाणिनः ॥ २९ ॥
एवं च देवदैत्यानां सुराणां च महायशाः । भयाभयकरः कृष्णः
सर्वलोककरो विभुः ॥३०॥ संस्थाप्य धर्मान् मर्त्येषु यज्ञैरिष्ट्वाप्त-
दक्षिणैः । कृत्वा देवार्थममितं संख्यानं प्रतिपत्स्यते ॥ ३१ ॥ कृष्णो
भोगवतीं रम्यामृषिकान्तां महायशाः । द्वारकामात्मसात् कृत्वा
समुद्रं गमयिष्यति ॥ ३२ ॥ बहुरत्नसमाकीर्णां चैत्ययूपशताकि-

महायस्वी पुरुषव्याघ्रने जम्भासुरको ऐरावतको विरूपको और मनुष्यका रूप धारण करनेवाले राक्षसको भी मार डाला था २५ और इन पुण्डरीकाक्षने जलमें बड़े भारी सर्प कालिय नागको जीत कर उसे समुद्रमें भेज दिया है २६ इन पुरुषव्याघ्र हरिने यमराजको जीत कर साऩ्दीपनिके मरे हुए पुत्रको जीवित कर दिया था २७ हे नृप ! इस प्रकार देवता और ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वाले दुरात्माओंको यह महाभुज सदा दण्ड देते रहते हैं २८ इन्होंने वज्रपाणि इन्द्रकी प्रीतिके कारण भूमिके पुत्र नरकासुरको मार कर मणिजटित कुण्डल लाकर देवमाता अदितिको देदिए थे २९ सब लोकोंको रचने वाले महायशस्वी विभु कृष्ण इस प्रकार देवता दैत्य और असुरोंको भय तथा अभय दिया करते हैं ३० यह वासुदेव मनुष्योंमें धर्मको स्थापित करके और पूर्ण दक्षिणा वाले यज्ञ करके देवताओंका बड़ा भारी कार्य कर वैकुण्ठको चले जावेंगे ३१ महायशस्वी वासुदेव ऋषियोंकी प्यारी

ताम् । द्वारकां वरुणावासं प्रवेश्यति सकाननाम् ॥ ३२ ॥ तां
सूर्यसदनप्रख्यां मतज्ञः शार्ङ्गधन्वनः । विसृष्टां वासुदेवेन सागरः
प्लावयिष्यति ॥३४॥ सुरासुरमनुष्येषु नासीन्न भविता क्वचित् ।
य इमामावसेत् कश्चिदन्यो वै मधुसूदनात् ॥३५॥ एवमेष दशा-
र्हाणां विधाय विधिमुत्तमम् । विष्णुर्नारायणः सोमः सूर्यश्च
भविता स्वयम् ॥३६॥ अप्रमेयस्त्वचिंत्यश्च यथाकामचरो वशी ।
मोदत्येष सदा भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव ॥ ३७ ॥ न प्रमातुं महा-
बाहुः शक्योऽयं मधुसूदनः । परं ह्यपरमेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते
श्रुतोयमेवं शतशस्तथा शतसहस्रशः । अन्तो हि कर्मणामस्य दृष्ट-
पूर्वो न केनचित् ॥३९॥ एवमेतानि कर्माणि शिशुमध्यगतस्तदा ।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः संकर्षणसहायवान् ॥ ४० ॥ इत्युवाच

भोगवती द्वारकाको अपनी समान करके समुद्रमें चले जावेंगे ३२
यह वासुदेव अनेक रत्नोंसे घिरी हुई चैत्यके सैंकड़ों यूपोंसे
चिन्हित, बगीचों वाली द्वारकाको वरुणके आवासस्थान समुद्रमें
डुबा देंगे ॥ ३३ ॥ वासुदेवके मतको जाननेवाला समुद्र वासुदेव
की छोड़ी हुई सूर्यके भवनकी समान द्वारकाको डुबा देगा ३४
मधुसूदनके अतिरिक्त देवता और दैत्योंमें भी ऐसा कोई न हुआ
और न होगा जो इस पुरीमें वस सके ३५ दशार्होंके लिए उत्तम
विधानका विधान करके यह विष्णु अपने आपही नारायण, सोम
और सूर्य हो जावेंगे ३६ जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता है इसी
प्रकार यह इच्छानुसार विचरण करने वाले अप्रमेय अचिन्त्यात्मा
वशी वासुदेव प्राणियोंसे सदा क्रीड़ा करते रहते हैं ३७ इन महा-
भुज मधुसूदनका पार पाना कठिन है, इन विश्वरूपसे पर और
अपर कुछ नहीं है ३८ इनको इस प्रकार सैंकड़ों और लाखों
बार सुना है, परन्तु इनके कर्मोंका पार किसीने नहीं पाया है ३९
इस प्रकार बालकोंके बीचमें इन वासुदेवने बलदेवजीकी सहायता

पुरा व्यासस्तपोवीर्येण चक्षुषा महायोगी महाबुद्धिः सर्वप्रत्यक्ष-
दर्शिवान् ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच । इति संस्तूय गोविन्दं
महेन्द्रवचनान्मुनिः । यदुभिः पूजितः सर्वैर्नारदस्त्रिदिवं ययौ४२
ततस्तद्वसु गोविन्दो दिदेशान्धकवृष्णिषु । यथार्हं पुण्डरीकाक्षो
विधिवन्मधुसूदनः ॥ ४३ ॥ यादवाश्च धनं प्राप्य विधिवद्भूरि गुरु-
दक्षिणैः । यज्ञैरिष्ट्वा महात्मानो द्वारकामावसन् पुरीम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदवाक्यं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

जनमेजय उवाच । बह्वीनां स्त्रीसहस्राणामष्टौ भार्याः प्रकीर्तिताः ।
तासामपत्यान्यष्टानां भगवन् प्रब्रवीतु मे ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ।
अष्टौ महिष्यः पुत्रिण्य इति प्राधान्यतः स्मृताः । सर्वा वीरप्रजा-
श्चैव तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ २ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा च देवी

लेकर (अनेक) कर्म किये हैं ४० व्यासजीने अपने तपोमयनेत्र
से यह यह सब बातें पहिलेही कह दी थीं, क्योंकि-वे महायोगी
महाबुद्धि और सबको प्रत्यक्ष देखने वाले हैं ४१ वैशम्पायनजी
ने कहा, कि-नारदमुनि इन्द्रके कहनेसे गोविन्दकी स्तुति करके
यादवोंसे सत्कार पाकर स्वर्गको चले गए ४२ तदनन्तर कमल
की समान नेत्रों वाले मधुसूदन गोविन्दने वह सब धन अन्धक
और वृष्णियोंको उचित रीतिसे बाँट दिया ४३ महात्मा यादव
भी धन पाकर बड़ी २ दक्षिणा वाले यज्ञ कर द्वारकामें रहने
लगे ४४ एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥

जनमेजयने कहा; कि-हे भगवन् ! आपने अनेक सहस्र स्त्रियों
मेंसे भगवान्की आठ स्त्रियोंका वर्णन किया है, उन आठोंकी
सन्तानका मुझसे वर्णन करिये १ वैशम्पायनजीने कहा; कि-
आठ रानियें विशेषतः पुत्रिणी कहलाती हैं, उन सबकी प्रजा
वीर थी उन सन्तानोंको तुम सुनो ॥ २ ॥ रुक्मिणी सत्यभामा

नाग्नजिती तथा॥सुदत्ता च तथा शैब्या लक्ष्मणा चारुहासिनी३
मित्रविन्दा च कालिन्दी जाम्बवत्यथ पौरवी । सुभीमा च तथा
माद्री रुक्मिणीतनयान् शृणु ॥४॥प्रद्युम्नः प्रथमं जज्ञे शम्बरांत-
करः शुभः । द्वितीयश्चारुदेष्णश्च वृष्णिसिंहो महारथः ॥ ५ ॥
चारुभद्रश्चारुगर्भः सुदेष्णो द्रुम एव च । सुषेणश्चारुदेष्णश्च चारु-
विन्दश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥ चारुबाहुः कनीयांश्च कन्या चारुमती
तथा । जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भीमरथस्तथा ॥ ७ ॥ रोहितो
दीप्तिमांश्चैव ताम्रजाक्षो जलान्तकः । भानुर्भीमनिका चैव ताम्र-
पर्णी जलन्धमाः ॥ ८ ॥ चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्व-
जात् । जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः ॥ ९ ॥
मित्रवन्मित्रविन्दश्च मित्रवत्यपि चांगना । मित्रबाहुः सुनीथश्च
नाग्नजित्याः प्रजाः शृणु ॥ १० ॥ भद्रकारो भद्रविंदा कन्या भद्र-

---

देवी नाग्नजिती सुदत्ता शैब्या चारुहासिनी- लक्ष्मणा मित्रविन्दा
कालिन्दी जाम्बवती-पौरवी सुभीमा-माद्री(उसमें अब) रुक्मिणी
के पुत्रोंको तुम सुनो ॥ ३-४ ॥ प्रथम पुत्र शम्बरका नाश करने
वाला प्रद्युम्न हुआ और दूसरा वृष्णिसिंह महारथी चारुदेष्ण
हुआ ॥ ५ ॥ और चारुभद्र चारुगर्भ सुदेष्ण द्रुम वीर्यवान् चारु-
विन्द (दूसरा) चारुदेष्ण सबसे छोटा चारुबाहु और चारु-
मती नामवाली कन्या(उत्पन्न हुई थी) सत्यभामामें भानु भीम-
रथ रोहित दीप्तिमान् ताम्रजाक्ष और जलान्तक उत्पन्न हुए और
इनकी भानु भीमनिका ताम्रपर्णी और जलन्धमा नाम वाली
चार बहिनें उत्पन्न हुईं थीं, गरुडध्वज श्रीकृष्णसे जाम्बवतीके
सभाको सुशोभित करने वाला साम्ब नामक पुत्र हुआ ६—९
और मित्रवान् मित्रविन्द मित्रबाहु सुनीथ (नामक पुत्र) और
मित्रवती नाम वाली कन्या(उत्पन्न हुई) अब आप नग्नजित्की
पुत्रीके सन्तानोंको सुनो ॥१०॥ भद्रकार, भद्रविन्द और भद्रवती

वती तथा। सुदत्तायां तु शैब्यायां संग्रामजिदजायत ॥ ११ ॥
सत्यजित्सेनजिच्चैव तथा शूरः सपत्नजित्। सुभीमायाः सुतो
माद्र्या वृकाश्वो वृकनिर्वृतिः ॥ १२ ॥कुमारो वृकदीप्तिश्च लक्ष्म-
णायाः प्रजाः शृणु। गात्रवान् गात्रगुप्तश्च गात्रविन्दश्च वीर्य-
वान् ॥ १३ ॥ जज्ञिरे गात्रवत्या च भगिन्यानुजया सह। अश्रु-
तश्च सुतो जज्ञे कालिन्द्या श्रुतसंमतः ॥ १४ ॥ अश्रुतं श्रुत-
सेनायै ददौ मधुसूदनः। तं ददाय हृषीकेशस्तां भार्यां मुदितो-
ऽब्रवीत् ॥ १५ ॥ एष वामुभयोरस्तु दायादः शाश्वतीः समाः।
बृहत्यां तु गदस्याहुः शैब्यायामंगदं सुतम् ॥१६॥ उत्पन्नं कुमुदं
चैव श्वेतं श्वेता तथाङ्गना। अगावहः सुमित्रश्च शुचिश्चित्ररथ-
स्तथा ॥ १७ ॥ चित्रसेनः सुदेवायाश्चित्रा चित्रवती तथा। वन-
स्तम्बश्च जज्ञाते सुतस्तम्बवनश्च ह ॥ १८ ॥ निवासनो वन-

नाम वाली कन्या (उसके थी) शैब्या-सुभीमा के संग्रामजित् नामक पुत्र हुआ ॥ ११ ॥ और सत्यजित् सेनजित् और शूर सपत्नजित् भी उसके पुत्र थे; मद्रदेशकी सुभीमाके वृकाश्व वृक-निर्वृत्ति कुमार और वृकदीप्ति नामक पुत्र थे अब आप लक्ष्मणा की सन्तानको सुनिये, गात्रवान् गात्रगुप्त वीर्यवान्-गात्रविन्द ये अपनी छोटी बहिन गात्रवतीके साथ उत्पन्न हुए थे, कालिन्दीके श्रुतसम्मत अश्रुत नामक पुत्र हुआ ॥ १२-१४ ॥ मधुसूदनने अश्रुत श्रुतसेनाको दे दिया अपनी भार्याको श्रुतसेन नामक पुत्र देकर केशवने उस भार्यासे प्रसन्न होते हुए कहा, कि-॥ १५ ॥ ये पुत्र हम दोनोंका बहुत समय तक उत्तराधिकारी रहेगा, कहते हैं कि-शिविवंशी बृहन्तीमें अङ्गद नामक पुत्र हुआ था ॥ १६ ॥ और कुमुद श्वेत अगावह सुमित्र शुचि चित्ररथ चित्रसेन और श्वेत नाम वाली पुत्री भी हुई थी, सुदेवाके विचित्र चित्रवती नाम वाली पुत्री और वनस्तम्ब और स्तम्बवन नामक पुत्र हुए

स्तम्बः कन्या स्तम्बवती तथा । उपसन्नश्च शङ्कुश्च वज्रांशुः क्षिप एव च ॥ १९ ॥ कौशिक्यां श्रुतसोमायां यौधिष्ठिर्यां युधिष्ठिरः । कापाली गरुडश्चैव जज्ञाते चित्रयोधिनौ ॥ २० ॥ एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोध मे । दशायुतं समाख्याता वासुदेवस्य ते सुताः ॥ २१ ॥ अयुतानि तथा चाष्टौ शूरा रणविशारदाः । जनार्दनस्य प्रसवः कीर्तितोयं तथा मया । प्रद्युम्नस्य सुतो जज्ञे वैदर्भ्यां राजसत्तम । अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञे स मृगकेतनः ॥२३॥ रेवत्यां बलदेवस्य जज्ञाते निशठोल्मुकौ । भ्रातरौ देवसंकाशावुभौ पुरुषसत्तमौ ॥२४॥ सुतनुश्च सुतारा च शौरेरास्तां परिग्रहः । पौंड्रकः कपिलश्चैव वसुदेवस्य तौ सुतौ ।२५। तारायां कपिलो जज्ञे पौंड्रश्च सुतनोः सुतः । तयोर्नृपोऽभवत्

थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ और कुशिकवंशी श्रुतसोमामें निवासन वनस्तम्ब उपसन्न शंकु वज्रांशु क्षिप और स्तम्बवती नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी, और युधिष्ठिरवंश वाली स्त्रीमें कापाली नाम वाली पुत्री और विचित्र युद्ध करने वाले युधिष्ठिर और गरुड़ नामक पुत्र हुए थे ॥ १९ ॥ २० ॥ इस प्रकार वासुदेवके सहस्रों पुत्र आप समझिये, मैंने आपसे कहा है, कि—वासुदेवके एक लाख अस्सी हजार रणविशारद शूर पुत्र थे इस प्रकार मैंने तुमसे जनार्दनकी सन्तानका वर्णन कर दिया ॥२१॥२२॥ हे राजसत्तम ! प्रद्युम्नके वैदर्भीसे अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ, वह रणमें किसीसे नहीं रुकता था और उसकी ध्वजा मृगसे चिन्हित थी ॥ २३ ॥ बलदेवके रेवतीमें निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र हुए, वे दोनों भाई देवताकी समान थे और पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे ॥ २४ ॥ वसुदेवकी सुतनु और सुतारा नाम वाली स्त्रियें थीं (उनसे) वसुदेवके पौण्ड्र और कपिल नामक पुत्र हुए थे उनमें पौण्ड्र राजा हुआ और कपिल वनको चला गया था २५

पौंड्र: कपिलश्च वनं ययौ ॥ २६ ॥ तुर्यां समभवद्वीरो वसु-
देवान्महाबलः । जरा नाम निषादानां प्रभुः सर्वधनुष्मताम् २७
काश्यां सुपार्श्वं तनयं लेभे साम्बात्तरस्विनम् । सानुर्जज्ञेऽनिरु-
द्धस्य वज्रः सानोरजायत ॥ २८ ॥ वज्राज्जज्ञे प्रतिरथः सुचारु-
स्तस्य चात्मजः । अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्
शिनेस्तु सत्यवाग्जज्ञे सत्यकश्च महारथः।सत्यकस्यात्मजः शूरो
युयुधानस्त्वजायत ॥३०॥ असङ्गो युयुधानस्य मणिस्तस्याभवत्
सुतः । मणेर्युगन्धरः पुत्र इति वंशः समाप्यते ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृष्णिवंशानु-
कीर्तने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

जनमेजय उवाच । य एष भवता पूर्वं शम्बरघ्नेत्युदाहृतः ।
प्रद्युम्नः स कथं जघ्ने शम्बरं तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥ वैशम्पायन

तारासे कपिल उत्पन्न हुआ था और पौण्ड्र सुतनुका पुत्र था वसुदेवके चौथी (शूद्रा) स्त्रीसे जरा नामक महाबली पुत्र हुआ था और सकल धनुषधारी निषादोंका स्वामी था ॥२६॥२७॥ काशीके साम्बसे सुपार्श्व नामक फुर्तीला पुत्र हुआ था, अनिरुद्ध के सानुनामक सुत हुआ, सानुके वज्र हुआ ।२८। वज्रसे प्रति-रथ हुआ, उसका पुत्र सुचारु हुआ, छोटे वृष्णिनन्दन अनिमित्त से शिनि उत्पन्न हुआ था ॥ २९ ॥ शिनिके सत्य बोलने वाला महारथी सत्यक हुआ सत्यकके शूरवीर युयुधान नामक पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ युयुधानके असंग हुआ, उसका पुत्र मणि हुआ, मणिके युगन्धर नामक पुत्र हुआ, इस प्रकार वंश समाप्त होता है ॥ ३१ ॥ एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥

जनमेजयने कहा, कि—आपने पहिले जिस शम्बर दैत्यका नाश करने वाले प्रद्युम्नका वर्णन किया, उन प्रद्युम्नने शम्बरको किस प्रकार मारा था, उसका मुझसे वर्णन करिये ॥१॥ वैशम्पायन

उवाच । रुक्मिण्यां वासुदेवस्य लक्ष्म्यां कामो धृतव्रतः । शम्बरान्तकरो जज्ञे प्रद्युम्नः कामदर्शनः । सनत्कुमार इति यः पुराणे परिगीयते ॥ २ ॥ तं सप्तरात्रे सम्पूर्णे निशीथे सूतिकागृहात् । जहार कृष्णस्य सुतं शिशुं नै कालशम्बरः ॥ ३ ॥ विदितं तस्य कृष्णस्य देवमायानुवर्तिनः । ततो न निगृहीतः स दानवो युद्धदुर्मदः ॥४॥ स मृत्युना परीतायुर्मायया प्रजहार तम् । दोर्भ्यामुत्क्षिप्य नगरं स्वं निनाय महासुरः ॥५॥ अनपत्या तु तस्यासीद्भार्या रूपगुणान्विता।नाम्ना मायावती नाम मायेव शुभदर्शना॥६॥ ददौ तं वासुदेवस्य पुत्रं पुत्रमिवात्मजम् । तस्या महिष्या मायिन्या दानवः कालचोदितः॥७॥ मायावती तु तं दृष्ट्वा संप्रहृष्टतनूरुहा।

जीने कहा; कि-वासुदेवकी लक्ष्मी (की अवतार) रुक्मिणीमें व्रतधारी मनोहर दीखने वाले कामदेव प्रद्युम्न (नामसे) उत्पन्न हुए थे, उन्होंने शम्बरको मारा था ये पुराणोंमें सनत्कुमार भी कहाते हैं ।२। कृष्णके उन बालक पुत्रको सात रात्रि पूर्ण होने पर कालशम्बर रातमें सूतिकागृहसे हर कर ले गया ॥३॥ देवमाया जिनका अनुवर्तन करती हैं, उन कृष्णको सब बात विदित थी, इसी लिये उन्होंने इस युद्धदुर्मद दानवको नहीं पकड़ा था मृत्यु जिसकी आयुको समाप्त कर रही थी उस कालशम्बरने कुमारको मायासे हर लिया, फिर वह महाराक्षस अपनी दोनों भुजाओं पर उसको धर कर अपने नगरको चला गया ।४।५। उसकी रूप और गुणवती मायावती नाम वाली स्त्री थी, वह सन्तान रहित थी और माया की समान शुभदर्शना थी (यह स्त्री रतिकी प्रतिच्छाया थी यह बात आगे स्पष्ट होगी) ॥ ६ ॥ कालसे प्रेरित उस दानवने उस मायावती रानीको वासुदेवके पुत्रको अपने पुत्रकी समान दे दिया ।।७।। उसको देख कर मायावतीके रोम रोम खिल गए, और वह परम प्रसन्न होकर उस

हर्षेण महता युक्ता पुनः पुनरुदैक्षत ॥ ८ ॥ अथ तस्य निरीक्षन्त्याः स्मृतिः प्रादुर्बभूव ह । अयं स मम कान्तोऽभूत् स्मृत्वैवं चान्वचिंतयत् ॥ ९ ॥ अयं स नाथो भर्ता मे यस्यार्थेहं दिवानिशम् । चिन्ताशोकार्णवे मग्ना न विन्दामि रतिं क्वचित् ।१०। अयं भगवता पूर्वं देवदेवेन शूलिना । खेदितेन कृतोऽनङ्गो दृष्टो जात्यन्तरे मया ॥११॥कथमस्य स्तनं दास्ये मातृभावेन जानती । भर्तुर्भार्या त्वहं भूत्वा वक्ष्ये वा पुत्र इत्युत ॥१२॥ एवं संचिन्त्य मनसा धात्र्यास्तं सा समर्पयत् । रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत् ॥ १३ ॥ धात्र्याः सकाशात् स च तां शृण्वन्रुक्मिणिनन्दनः । मायावतीमविज्ञानान्मेने स्वामेव मातरम् ॥ १४ ॥ सा च तं वर्धयामास काष्णिं कमललोचनम् । मायाश्चास्मै ददौ सर्वा दानवीः काममोहिता ॥ १५ ॥स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः काम-

---

को बार बार देखने लगी ॥ ८ ॥ देखते देखते उसको यह याद आगई, कि-यह तो मेरे स्वामी थे, इस बातका स्मरण आने पर वह विचारने लगी, कि- ९ मेरे यह वही स्वामी और नाथ हैं,जिनके लिये मैं रात दिन चिन्तारूपी समुद्रमें डूबी रहती हूँ और कहीं पर आनन्द नहीं पाती हूँ ॥ १० ॥ पहिले इन्होंने महादेवजीको खिन्न किया था, तब उन देवदेव शूलधारीने इन को अनङ्ग कर दिया था अब मैंने इनको दूसरे देहमें देखा है ११ मैं जान बूझ कर मातृभावसे इनके मुखमें स्तन कैसे देसकती हूँ और इन स्वामीकी भार्या होकर मैं इनको पुत्र कैसे कहूँगी १२ मनमें इस प्रकारका विचार करके उसने प्रद्युम्नको धायको सौंप दिया और उसे रसायनोंका प्रयोग कर शीघ्र ही बढ़ाने लगी १३ वह रुक्मिणीनन्दन अज्ञानवश और धाईसे सुननेके कारण मायावतीको ही अपनी माता मानता था १४ और वह कमललोचन कृष्णके पुत्रका पालन करने लगी, उस काममोहिताने उसको

दर्शनः । चिकीर्षितज्ञो नारीणां सर्वास्त्रविधिपारगः ॥ १६ ॥ तं सा मायावती कान्तं कामयामास कामिनी । इङ्गितैश्चापि वीक्षंती प्रालोभयत सस्मिता । प्रसज्जन्तीं तु तां देवीं बभाषे चारुहासिनीम् ॥१७॥ प्रद्युम्न उवाच । मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा । अहो दुष्टस्वभावासि स्त्रीत्वे चपलमानसा ॥ १८ ॥ या पुत्रभावमुत्सृज्य मयि लोभात् प्रवर्तसे । न तु तेऽहं सुतः सौम्ये कोयं शीलविपर्ययः ॥१९॥ तत्त्वमिच्छाम्यहं देवि कथितं कोन्वयं विधिः । विद्युत्सम्पातचपलः स्वभावः खलु योषिताम् ॥ २० ॥ या नरेषु प्रसज्जन्ते नगाग्रेषु घना इव । यदि तेऽहं सुतः सौम्ये यदि वा नात्मजः शुभे ॥ २१ ॥कथितं तत्त्वमिच्छामि किमिदं ते

सब दानवी मायाएँ भी सिखा दीं ॥ १५ ॥ जब वह कामदर्शन प्रद्युम्न युवा होगया तब वह स्त्रियोंकी कामनाओंको जानने लगा और अस्त्रोंकी सम्पूर्ण विधियोंमें पारंगत होगया ॥ १६ ॥ वह कामिनी मायावती उस मनोहर पुरुषको चाहने लगी और वह इशारे कर तथा मुस्करा कर और देख देख कर उसको लुभाना चाहने लगी, इस प्रकारकी चेष्टा करने वाली उस चारुहासिनीसे प्रद्युम्नने कहा ॥१७॥ प्रद्युम्न बोले,कि–तुम माताके भावको छोड़ कर ऐसा व्यवहार कैसे कर रही हो ? अहो ! तुम्हारा स्वभाव बड़ा दुष्ट है, स्त्री होनेके कारण तुम्हारा मन चपल है १८ तुम पुत्रभावको छोड़ कर मेरे साथ लोभका बर्ताव कर रही हो,क्या मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ ? हे सौम्ये ! यह शीलविपर्यय कैसा ? ॥ १९ ॥ मैं तत्त्व बातको सुनना चाहता हूँ हे देवि!यह कौनसी विधि है, स्त्रियोंका स्वभाव बिजलीके चमकने की समान चपल होता है ॥ २० ॥ कि वे मनुष्योंसे इस प्रकार प्रेम करने लगती हैं, जिस प्रकार पर्वतोंके शिखरोंसे बादल लिपट जाते हैं, हे सौम्ये ! यदि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँ अथवा हे

चिकीर्षितम् । एवमुक्ता तु सा भीरुः कामेन व्यथितेन्द्रिया २२
प्रियं प्रोवाच वचनं विविक्ते केशवात्मजम् । न त्वं मम सुतः कांत
नापि ते शम्बरः पिता ॥ २३ ॥रूपवानसि विक्रान्तस्त्वं जात्या
वृष्णिनन्दनः । पुत्रस्त्वं वासुदेवस्य रुक्मिण्यानन्दवर्धनः॥२४॥
दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोपवाहितः । सूतिकागारमध्यात्त्वं
शिशुरुत्तानशायितः ॥ २५ ॥ मम भर्त्रा हृतोसि त्वं बलवीर्य-
प्रवर्तिना । पितुस्ते वासुदेवस्य धर्षयित्वा गृहं महत् ॥२६॥पाक-
शासनकल्पस्य हृतस्त्वं शम्बरेण ह । सा च ते करुणं माता त्वां
बालमनुशोचती ॥ २७ ॥ अत्यर्थं तप्यते वीर विवत्सा सौरभी
यथा । सोऽपि शक्रादपि महान् पिता ते गरुडध्वजः ॥ २८ ॥
इह त्वां नाभिजानाति बालमेवोपवाहितम् । कान्त वृष्णिकुमार-

शुभे ! तुम्हारा पुत्र न होऊँ २१ तब भी तत्त्व बातको सुनना चाहता हूँ, तुम्हारी यह क्या चेष्टा है इस प्रकार कहने पर वह काम से व्यथित इन्द्रियों वाली भीरु स्त्रीने २२ कृष्णके पुत्रसे एकान्त में प्रिय वचन कहा, कि–हे कांत ! तुम मेरे पुत्र नहीं हो और शम्बर भी तुम्हारा पिता नहीं है २३ आप रूपवान् हैं विक्रमी हैं और आपका जन्म वृष्णिवंशमें हुआ है, आप वासुदेवके पुत्र हैं और रुक्मिणीके आनन्दको बढ़ाने वाले हैं २४ जन्म होनेके अनन्तर सातवें दिन ही जब आप सूतिका गृहमें ऊपरको टाँग करके लेटे हुए थे तब ही आपको हर लिया गया था २५ बल और वीर्यके प्रवर्तक मेरे स्वामीने आपके पिता वासुदेवके भवन का अपमान कर आपको हर लिया था २६ शम्बरने इन्द्रकी समान आपके पिताके घरसे आपको उड़ा लिया था, हे वीर ! जैसे बछड़े रहित गौ परम सन्तप्त होती है, ऐसे ही आप बालक का शोक करती हुई आपकी माता भी सन्ताप पा रही हैं, आप के पिता गरुड़ध्वज इन्द्रसे भी बड़े हैं २७–२८ आप बालक यहाँ

स्त्वं न हि त्वं शम्बरात्मजः ॥ २९ ॥ वीर नैतां विधा पुत्रान् दानवा जनयन्ति हि । अतोऽहं कामया म त्वां न हि त्वं जनितो मया ॥३०॥ रूपं ते सौम्य पश्यन्ती सीदामि हृदि दुर्बला । यन्मे व्यवसितं कान्त यत्तु मे हृदि वर्तते ॥३१॥ तन्मे मनसि वार्ष्णेय प्रतिसन्धातुमर्हसि,एष ते कथितः सर्वः सद्भावस्त्वयि यो मम३२ यथा न मम पुत्रस्त्वं न पुत्रः शम्बरस्य च । श्रुत्वैवमखिलं सर्वं मायावत्याः प्रभाषितम् ॥ ३३ ॥चक्रायुधात्मजः क्रुद्धः शम्बरं स समाह्वयत् । सर्वमायास्वभिज्ञोसौ नाम विश्राव्य चात्मनः ।३४। अहो दानव दुष्टात्मन् केशवस्यात्मजं शिशुम् । हरते निर्भयश्चैव भयमद्य करोम्यहम् ॥ ३५ ॥ कथं नौ क्रोधमागच्छेद्वध्यते वा कथं मया । प्रथमं किं करिष्यामि येन कुप्यति मन्दधीः ॥३६॥अस्ति

पर हैं, इस बातको वे नहीं जानते हैं, हे कान्त ! आप वृष्णि-कुमार हैं, शम्बरके पुत्र नहीं हैं २९हे वीर ! ऐसे पुत्रोंको दानव उत्पन्न नहीं करते हैं, मैंने आपको उत्पन्न नहीं किया है इस लिये मैं आपकी इच्छा करती हूँ ॥ ३० ॥ हे सौम्य ! मैं आपके रूपको देख कर हृदयमें कष्ट पा रही हूँ क्योंकि-मैं दुर्बल हूँ, हे कान्त ! जो मेरी चेष्टा हैं और जो मेरे मनकी बात हैं ३१ हे वार्ष्णेय ! वह मेरे मनमें है आप उसको पूर्ण करिये, तुम्हारे ऊपर मेरा जो सद्भाव है, वह सब मैंने तुमसे कहदिया॥ ३२ ॥ तुम जिस प्रकार मेरे पुत्र नहीं हो इसी प्रकार शम्बरके भी पुत्र नहीं हो मायावती की इन सब बातोंको सुनकर ॥ ३३ ॥ चक्रके आयुधको धारण करने वाले श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न क्रोधमें भरगए वह सब मायाओं को जानते थे उन्होंने अपना नाम सुना कर शम्बरको पुकारा ३४ अहो ! यह दुष्टात्मा दानव केशवके बालक पुत्रको निर्भय होकर हर लाया था अब मैं इसको भयभीत करूँगा ॥ ३५ ॥ इसको किस प्रकार क्रोध आवेगा और यह मुझसे किस प्रकार मारा

आस्य ध्वजं चित्रं सिंहकेतुविभूषितम्। तोरणं गृहमासाद्य उच्छ्रितं मेरुशृङ्गवत् ॥ ३७ ॥ एतदुन्मथ्य पातिष्ये भल्लेन निशितेन वै। ध्वजच्छेदं विदित्वाथ शम्बरो निष्क्रमिष्यति ॥३८॥ ततो युद्धेन हत्वाऽसौ गन्तास्मि द्वारकां प्रति। इत्युक्त्वा सज्जमाचक्रे सशरं चापमोजसा ॥३९॥ चिच्छेद ध्वजरत्नं तु शम्बरस्य महाभुजः। तच्छ्रुत्वा तु ध्वजच्छेदं प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ४० ॥ क्रुद्धस्त्वाज्ञापयामास पुत्रान् वै कालशम्बरः। जिघांसध्वं महावीरा रौक्मिणेयं त्वरान्विता ॥४१॥ नैनं वै द्रष्टुमिच्छामि मम विप्रियकारकम्। श्रुत्वा तु शम्बराद्वाक्यं सुतास्ते शम्बरस्य ह॥४२॥ संनद्धा निर्ययुर्हृष्टाः प्रद्युम्नवधकांक्षया। चित्रसेनोऽतिसेनश्च विष्वक्सेनो गदस्तथा॥४३॥ श्रुतसेनः सुषेणस्तु सोमसेनो मनस्तथा। सेनानीः

जाय और मैं ऐसा पहले कौनसा काम करूँ जिससे यह मन्दबुद्धि क्रोधमें भरजाय ॥ ३६ ॥ इसकी सिंहके चित्रसे विभूषित विचित्र-ध्वजा है वह मेरु पर्वतके समान ऊँची है मैं इसके घरमें जाकर इसके तोरणको तोड़डालूँगा और इसकी ध्वजाको भल्लसे काट कर गिरा दूँगा तब ध्वजाका टूटना सुन कर शम्बर निकल आवेगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब मैं इसको युद्धमें मारकर द्वारकामें चला जाऊँगा इस प्रकार कहकर उन्होंने बलपूर्वक अपने धनुष पर बाणको साधा ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उन महाभुजने शम्बरके ध्वजरत्नको काट डाला महात्मा प्रद्युम्नने ध्वजाको काट डाला है इस बातको सुन कर ॥ ४० ॥ कालशम्बरने क्रोधमें भर कर अपने पुत्रोंको आज्ञा दी, कि-हे महावीरो! तुम फुर्तीके साथ इस रुक्मिणीके लड़केको मार डालो ॥ ४१ ॥ मैं इस अपना बुरा चाहने वालेको देखना नहीं चाहता शम्बरसे इस बातको सुनकर शम्बरके पुत्र प्रद्युम्नका वध करनेकी इच्छासे तयार होकर प्रसन्न होते हुए निकले चित्रसेन, अतिसेन, विश्वक्सेन, गद, श्रुतसेन,

सैन्यहन्ता च सेनाहा सैनिकस्तथा ॥ ४४ ॥ सेनस्कन्धोतिसेनश्च सेनको जनकः सुनः । सकालो विकलः शान्तः स शान्तान्तकरो विभुः ॥ ४५ ॥ कुम्भकेतुः सुदंष्ट्रश्च केशिरित्येवमादयः । चक्रतोमरशूलानि पट्टिशानि परश्वधान् ॥४६॥ गृहीत्वा निर्ययुर्हृष्टा मन्युना परमाप्लुता । आह्वयन्तममित्रं वै तस्थुः संग्राममूर्धनि ४७ प्रद्युम्नस्तु महाबाहू रथमारुह्य सत्वरम् । निर्ययौ चापमादाय संग्रामाभिमुखस्तदा ॥ ४८ ॥ ततः प्रवृत्तं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् । शम्बरस्य तु पुत्राणां केशवस्य च सूनुना ॥ ४९ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः समहोरगचारणाः । देवराजं पुरस्कृत्य विमानाग्रेषु विष्ठिताः ॥ ५० ॥ नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहा हूहूश्च गायनाः । अप्सरोभिः परिवृताः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥ ५१ ॥ देवराजप्रतीहारो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम् । शशंस देवराजाय वज्रिणे तद्विचेष्टितम् ॥५२॥ शम्बरस्य शतं पुत्रा एकः कृष्णस्य चात्मजः । बहूनां

सुषेण, सोमसेन तथा मन, सेनानी, सैन्यहन्ता, सेनाहा, सैनिक, सेनस्कन्ध; अतिसेन, सेनक, जनक, सुन; सकाल, विकल, शान्त, विभु-शान्तान्तकर, कुम्भकेतु, सुदंष्ट्र और केशि आदि चक्र तोमर शूल पटे और फरसोंको लेकर प्रसन्न होते हुए निकल पड़े और संग्रामके मुहाने पर पहुँच परमक्रोधमें भर शत्रुको बुलाने लगे ४७ उस समय महाभुज प्रद्युम्न शीघ्रतासे रथ पर सवार होगया और धनुषको लेकर संग्रामकी ओर चल दिया ॥ ४८ ॥ उस समय शम्बरके पुत्रोंका केशवके लड़केके साथ रोंगटे खड़े करने वाला तुमुल युद्ध चलने लगा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर देवता गंधर्व बड़े २ सर्प और चारण देवराजको आगे कर उत्तम १ विमानोंमें तहाँ आकर बैठ गए ॥ ५० ॥ नारद तुम्बुरु हाहा हूहू यह सब गाने वाले अप्सराओंको साथमें ले तहाँ आकर खड़े हो गए ॥५१॥ उस समय देवराजका द्वारपाल गंधर्व वज्रधारी देवराजसे इस

युद्ध्यतामेष कथं विजयणात्नुगात् ॥५३॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य प्रहस्य वलसूदनः। उवाच वचनं चेदं शृणु योऽस्य पराक्रमः ५४ कामोऽयं पूर्वदेहे तु हरकोपाग्निना हतः। रत्या प्रसादितो देवः कामपत्न्या त्रिलोचनः। परितुष्टेन देवेन वरमस्याः प्रदीयत ५५ विष्णुर्मानुषदेहस्तु द्वारकायां भविष्यति।तस्य पुत्रत्वमस्यैव भवि-ष्यति न संशयः ॥५६॥ अनङ्ग इति विख्यातस्त्रैलोक्ये तु महा-यशाः। तत्रोत्पन्नो महातेजाः शम्बरं घातयिष्यति ॥५७॥ सप्ताहे जातमात्रे तु रुक्मिण्याः क्रोडसंस्थितम्। आस्थाय शम्बरो मायां प्रद्युम्नमपनेष्यति ॥ ५८ ॥ तद्गच्छ शम्बरगृहं भार्या मायावती भव। मायारूपपतिच्छन्ना शम्बरं मोहयिष्यसि ॥ ५९ ॥ तत्र

अर्जुन कार्यका वर्णन करने लगा ॥ ५२ ॥ कि-शम्बरके सौ लड़के हैं और कृष्णके पुत्र एक ही हैं इस बहुतोंके साथ युद्ध करने वालेको किस प्रकार विजय मिलेगी ॥ ५३ ॥ उसकी बात को सुन कर वलदैत्यका नाश करने वाले इन्द्रने हँस कर कहा, कि-इसमें जो पराक्रम है तुम उसको सुनो ॥ ५४ ॥ यह पहिले देहमें कामदेव था और शिवजीके क्रोधकी अग्निसे मारा गया था उस समय कामकी पत्नी रतिने तीन नेत्रवाले महादेवजीको प्रसन्न होकर वरदान दिया था, कि-॥ ५५ ॥ द्वारकामें विष्णु मनुष्य का देह धारण करेंगे तव यह उनका पुत्र वनेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ यह महायशस्वी त्रिलोकीमें अनङ्गनामसे प्रसिद्ध होगा और द्वारकामें उत्पन्न होनेके अनन्तर यह महातेजस्वी शंबर को मार डालेगा ॥५७॥ जब इसको उत्पन्न हुए सात ही दिन वीतेंगे तब शम्बर मायाका आश्रय लेकर रुक्मिणीकी गोदीमें पड़े हुए प्रद्युम्नको उठा कर ले जायेगा ॥ ५८ ॥ इस लिये तू शम्बरके घरको जा और उसकी मायावती नाम वाली भार्या अर्थात् भरण करने योग्य दासी वन और मायासे ढकी हुई

त्वमात्मनः कान्तं बालरूपं निवर्धय । प्राप्तयौवनदेहस्तु शम्वरं निहनिष्यति ॥६०॥ ततस्त्वया सहानंगो द्वारकां वै गमिष्यति । रमिष्यति त्वया सार्धं शैलपुत्र्या यथा ह्यहम् ॥ ६१ ॥ एवमादिश्य देवेशो जगाम पुरुषोत्तमः।कैलासं मेरुसंकाशं सिद्धचारणसेवितम् ॥६२॥ कामपत्नी प्रणम्याथ देवदेवमुमापतिम् । जगाम शम्वरगृहं कालस्यान्तं प्रतीक्षती ॥६३॥ एवमेष महाबाहुः शंवरं निहनिष्यति । सहपुत्रेण प्रद्युम्नो हन्ता तस्य दुरात्मनः ॥६४॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्वरवधे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रवृद्धं युद्धं तु तुमुलं लोमहर्षणम् । शम्वरस्य तु पुत्राणां रुक्मिण्या नन्दनस्य च ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धा महादैत्याः शरशक्तिपरश्वधान् । चक्रतोमरकुन्तानि भुशुण्डीमुश-

---

शम्वरको मोहमें डालती रही ॥ ५९ ॥ तहाँ पर तू अपने बालरूपधारी स्वामीको पालती रहना जब उसके शरीरमें यौवन आ जाएगा तब वह शम्वरको मार डालेगा ॥६०॥ तदनन्तर अनङ्ग तुम्हारे साथ द्वारकाको चला जाएगा और जिस प्रकार मैं शैलपुत्रीसे रमण करता हूँ इसी प्रकार यह तुम्हारे साथ रमण करेगा देवताओंके ईश पुरुषोत्तम शिव सिद्ध और चारणोंसे सेवित मेरुपर्वतकी समान कैलाश पर्वत पर चले गए ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ तदनन्तर कामकी पत्नी भी उमाके स्वामी देवदेव शिवको प्रणाम करके समयका अन्त देखती हुई शम्वरके घरको चली गई ६३ इस प्रकार यह महाभुज शम्वरको मार डालेंगे प्रद्युम्न इस दुरात्माको और इसके पुत्रोंके भी मारडालेंगे ॥६४॥ एक सौ चारवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि–तदनन्तर शम्वरके पुत्रोंका और रुक्मिणीनन्दनका रोंगटे खड़े करने वाला युद्ध चलने लगा ।१।

लानि च ॥२॥ युगपत्पातयन्ति स्म प्रद्युम्नोपरि वेगिताः। कार्ष्णाय-निस्तु संक्रुद्धः सर्वास्त्रधनुपरच्युतैः ॥३॥ एकैकं पञ्चभिः क्रुद्धश्चिच्छेद रणमूर्धनि। पुनरेवासुराः क्रुद्धाः सर्वे ते कृतनिश्चयाः॥४ ससृजुः शरजालानि प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया। ततः प्रकुपितोऽनंगो धनुरादाय सत्वरः॥५॥ शम्बरस्य जघानाशु दश पुत्रान् महौजसः। ततोपरेण भल्लेन कुपितः केशवात्मजः॥ ६ ॥चिच्छेदाशु शिरस्तस्य चित्रसेनस्य वीर्यवान्। ततस्ते हतशेषास्तु समेत्य समयुध्यत शरवर्षं विमुञ्चन्तो ह्यभ्यधावञ्जिघांसितुम्। ततः सन्धायबाणांस्ते विमुञ्चन्तो रणोत्सुकाः॥ ८॥ क्रीडन्निव महातेजाः शिरांस्येषामपातयत्। निहत्य समरे सर्वाञ्छतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ६ ॥ प्रद्युम्नः समराकाङ्क्षी तस्थौ संग्राममूर्धनि। हतं पुत्रशतं श्रुत्वा

तदनन्तर महादैत्य क्रोधमें भरकर बाण शक्ति फरसे चक्र तोमर कुन्त भुशुण्डि और मूसलोंको प्रद्युम्नके ऊपर एक साथ फेंकनेलगे तदनन्तर कृष्णके पुत्र भी क्रोधमें भर गए और उन्होंने रणके मुहाने पर खड़े होकर सब चीजोंको छोड़ने वाले धनुपसे पाँच २ बाण छोड़ कर एक २ को वींधा तब तो वे सब निश्चय करनेवाले राक्षस क्रोधमें फिर भर गए ॥२-४॥ और प्रद्युम्नका वध करने की इच्छासे बाणोंका जाल बरसाने लगे तब तो प्रद्युम्न क्रोधमें भर गया और उसने धनुषको उठा कर ।५। शम्बरके दश महाबली पुत्रोंको मार डाला तदनन्तर दूसरे भल्लसे क्रोधमें भरेहुए कृष्णके वीर्यवान् पुत्रने चित्रसेके मस्तकको काटडाला तदनन्तर मरनेसे बाकी बचे हुए राक्षस इकट्ठे होकर युद्ध करने लगे ॥७॥ और वे रणोत्सुक दानव प्रद्युम्नको मारना चाह कर बाणोंकी वर्षा बरसाते हुए दौड़े और बाणोंको चढ़ा २ कर छोड़ने लगे८ तदनन्तर खेलते हुएसे महातेजस्वी प्रद्युम्नने उनके शिरोंको गिरा दिया इसप्रकार समरमें सौ उत्तम धनुप धारियोंको मारकर गिरा

शंबरः क्रोधमादधे१०सूतं संचोदयामास रथं मे संप्रयोजय। राज्ञो वाक्यं निशम्याथ प्रणम्य शिरसा भुवि ॥११॥ ससैन्यं नोदयामास रथं स सुसमाहितम्।युक्तमृष्यसहस्रेण सर्पराजसकेतनम्१२ शार्दूलचर्मसंविष्टं किंकणीजालमालिनम्।ईहामृगगणाकीर्णं पंक्तिभक्तिविराजितम् ॥ १३ ॥ ताराचित्रपिनद्धांगं स्वर्णकूबरभूषितम्। सुपताकमहोच्छ्रायं मृगराजोग्रकेतनम् १४ सुविभक्तवरूथं च लोहेषावज्रकूबरम्। मदोदग्रशिखरं चारुचामरभूषितम् १५ नक्षत्रमालापिहितं हेमदण्डसमाहितम्। विराजमानं श्रीमन्तमारोहच्छम्बरो रथम् ॥ १६ ॥ काञ्चनं चित्रसन्नाहं धनुर्गृह्य शरांस्तथा। प्रस्थितः समराकांक्षी मृत्युना परिचोदितः ॥ १७ ॥

दिया समर चाहने वाले प्रद्युम्न रणके मुहाने पर खड़े हो गए, सौ पुत्रोंको मरा हुआ सुन कर शम्बरने क्रोध किया ।९।१०। और सूतको प्रेरणाकी कि-मेरे रथको जोड़ राजाके वचनको सुनकर सूतने पृथिवीमें मस्तकको टेककर प्रणाम किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर उसने भलीप्रकार ठीक किये हुए रथको और सेनाको चलाया उस रथमें सहस्र ऋष्य (एक प्रकारके मृग) जुत रहे थे और सर्पराजकी ध्वजा लग रही थी ॥ १२ ॥ वह शेरकी खाल से ढका हुआ था, और उसमें घुँघुरुओंकी माला पड़ी हुई थी, उसकी दश चित्रित पंक्तियोंमें छोटे २ पशु पक्षियोंके चिन्ह बन रहे थे ॥ १३ ॥ उसके अवयवोंमें तारोंके चित्र बन रहे थे और उसका कूबर सुवर्णसे मढ़ रहा था ॥ १४ ॥ उसका वरूथ अच्छी प्रकार विभक्त था, उसकी ईषा-जुसरी लोहेकी थी और कूबर रत्नोंका था ॥१५॥ऐसे नक्षत्रमालाओंसे चित्रित सुवर्णका दण्डा लगे हुए शोभासम्पन्न रथ पर शम्बर चढ़ गया १६ मृत्युका खदेड़ा हुआ शंबर सुवर्णके विचित्र कवच और धनुष बाणको लेकर समर करनेकी इच्छासे चल दिया ॥ १७ ॥ वह बड़ी

चतुर्भिः सचिवैः सार्धं सैन्येन महता वृतः । दुर्धरः केतुमाली च शत्रुहन्ता प्रमर्दनः ॥ १८ ॥ एतैः परिवृतोऽपार्गैर्युयुत्सुः प्रस्थितो रणे । दशनागसहस्राणि रथानां द्वे शते तथा ॥ १९ ॥ हयानां चाष्टसाहस्रैः प्रयुतैश्च पदातिनाम् । एतैः परिवृतो योधैः शम्बरः प्रययौ तदा ॥ २० ॥ प्रयातस्य तु संग्रामे उत्पाता बहवोऽभवन् । गृध्रचक्राकुलं व्योम सन्ध्याकाराभ्रनादितम् ॥ २१ ॥ गर्जन्ति परुषं मेघाः सनिर्घातास्तदा नृप । शिवा विनेदुरशिवं सैन्यं संक्षयन्महत् ॥२२॥ध्वजाग्रेऽपतद् गृध्रः काङ्क्षन् वै दानवासृजम् । रथाग्रे पतितश्चास्य कबन्धो भुवि दृश्यते॥ २३ ॥ चीची कूचीति चासन्ति शम्बरस्य रथोपरि । स्वर्भानुग्रस्त आदित्यः परिधैः परिवेष्टितः ॥२४॥ स्फुरते नयनं चास्य सव्यं भयनिवेदनम् । बाहुः

भारी सेनासे घिर कर अपने दुर्धर केतुमाली शत्रुहन्ता और प्रमर्दन नाम वाले चार मंत्रियोंको साथमें लेकर युद्ध करनेकी इच्छासे रणभूमिको चल दिया; दश हजार हाथी, दो सहस्र रथ आठ हजार घोड़े और एक लाख पैदल इन सब योधाओं को लेकर शम्बर चल दियो ॥ १९ ॥ २० ॥ जिस समय उसने संग्रामको पयान किया उस समय बहुतसे उत्पात होने लगे, आकाश गीध और चक्र नामक पक्षियोंसे व्याप्त होगया संध्या के आकार (रक्त वर्ण) वाला बादल गड़गड़ाने लगा ॥ २१ ॥ और हे राजन् ! उस समय मेघ वज्र गिराते हुए क्रूर गर्जना करने लगे और बड़ी भारी सेनाको कालके अधीन होनेकी सूचना देती हुई गीदड़ियें अशुभ शब्द करने लगीं ॥२२॥ और राक्षसके रक्तको चाहता हुआ गृध्र उसकी ध्वजाके अग्रभाग पर गिरा और उसके रथके आगे पृथिवीमें कबध पड़ा हुआ दिखाई दिया ॥२३॥ और पक्षी शम्बरके रथके ऊपर चीचो कूची शब्द करने लगे; सूर्यको राहुने ग्रस लिया और परिघोंने घेर लिया२४

प्रकम्पते सव्यः प्रस्खलन् रथवाजिनः ॥२५॥ ध्वाङ्क्षो मूर्धिन निपतितः शम्बरस्य सुरारिणः । ववर्ष रुधिरं देवः शर्करांगार-मिश्रितम् ॥२६॥ उल्कापातसहस्राणि निपेतू रणमूर्द्धनि । प्रतोदो न्यपतद्धस्तात् सारथेर्हययायिनः २७ एतानचिन्तयित्वा तु उत्पातान् समुपस्थितान् । प्रययौ शम्बरः क्रुद्धः प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया ।२८। भेरीमृदङ्गशङ्खानां पणवानकदुन्दुभेः । युगपन्नाद्यमानानां पृथिवी समकम्पत ॥ २९ ॥ तेन शब्देन महता संत्रस्ता मृगपक्षिणः । समन्ताद् दुद्रुवुस्तस्माद्भयविक्लवचेतसः ॥३०॥ रणमध्ये स्थितः कार्ष्णिश्चिन्तयन्निधनं रिपोः । सैन्यैः परिवृतोऽसङ्ख्यैर्युद्धाय कृत-निश्चयः॥३१॥ क्रुद्धः शरसहस्रेण प्रद्युम्नं समताडयत् । संप्राप्तां-श्चैव तान् बाणांश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नो धनु-

उसका भयकी सूचना देने वाला बायाँ नेत्र फड़कने लगा, बाईं भुजा फड़कने लगी और रथके घोड़े गिरने लगे ।२५ देवताओं के शत्रु शम्बरके मस्तक पर कौआ बैठ गया और मेघ रेता और अँगारे मिला हुआ रक्त बरसाने लगा ॥ २६ ॥ रणके मोखरे पर सहस्रों उल्काएँ गिरने लगीं और घोड़े चलाने वाले सारथी के हाथसे कोड़ा गिर पड़ा ॥ २७ ॥ इन होते हुए सब उत्पातों का विचार न करके क्रोधमें भरा हुआ शम्बर प्रद्युम्नके वधकी इच्छासे क्रोधमें भरकर चला २८ एक साथ बजाई जाती हुई भेरी मृदंग शंख और पणव तथा नगाड़ों और दुन्दुभियोंके शब्दसे पृथ्वी काँपने लगी ॥ २९ ॥ इस शब्दके कारण भयसे घबड़ाये हुए चित्त वाले पशु पक्षी चारों ओर दौड़ने लगे ॥ ३० ॥ उस समय प्रद्युम्न शत्रुको मारनेका विचार करते हुए रणमें खड़े थे; उन्होंने असंख्य सेनाओंसे घिर कर (भी) युद्धका ही निश्चय रक्खा ॥ ३१ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए शम्बरने प्रद्युम्नको सहस्रों बाणोंसे ताडित किया, तब प्रद्युम्नने उन आते हुए बाणों

रादाय शरवर्षं मुमोच ह । तस्मिन सैन्ये न कोऽप्यस्ति यो न विद्धः शरेण वै ॥ ३३ ॥ प्रद्युम्नशरपातेन तत् सैन्यं विमुखी कृतम् । शम्बरस्य तथाभ्यासे स्थितं संहृत्य भीतवत् ॥ ३४ ॥ स्वबलं विद्रुतं दृष्ट्वा शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः । आज्ञापयामास तदा सचिवान् दानवेश्वरः ॥ ३५ ॥ गच्छध्वं मन्नियोगेन प्रहरध्वं रिपोः सुतम् । नोपेक्षणीयः शत्रुर्वै वध्यतां क्षिप्रमेव वै ॥ ३६ ॥ उपेक्षित इव व्याधिः शरीरं नाशयेद् ध्रुवम् । तदेव दुर्गतिः पापो वध्यतां मन्त्रियेऽप्यथा ॥ ३७ ॥ ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः शिरसा गृह्य शासनम् । शरवर्षं विमुञ्चन्तस्त्वरिता नोदयन्रथान् ॥ ३८ ॥ तान् दृष्ट्वा धावतः संख्ये क्रुद्धो मकरकेतनः । चापमुद्यम्य संभ्रान्तस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥३९॥ दुर्द्धरं पंचविंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।

की सिद्धहस्त पुरुषकी समान काट डाला ॥३२॥ फिर प्रद्युम्न ने जो धनुष उठा कर बाणोंकी वर्षाकी तो सेनामें ऐसा कोई न बचा जो प्रद्युम्नके बाणोंसे घायल न हुआ हो ॥३३॥ प्रद्युम्नके बाणोंसे वह सेना विमुख होगई और शम्बरके पासकी सेना भी डरी हुई सी हो (लड़ना) छोड़ कर शम्बरके पास ही खड़ी रही ॥३४॥ अपनी सेनाको भागती हुई देखकर शम्बर क्रोधमें भर गया और उस दानवराजने क्रोधमें भरकर मन्त्रियोंको आज्ञा दी ॥ ३५ ॥ कि-तुम मेरी आज्ञासे बढ़ो और शत्रुके पुत्र पर प्रहार करो,शत्रुकी उपेक्षा न करनी चाहिये इसको शीघ्र ही मार डालो २६ यह लापरवाही करनेसे व्याधिका समान शरीरको नष्ट ही कर डालेगा ३७ तदनन्तर वे मन्त्री क्रोधमें भर गए और शासनको शिर पर धारण कर बाणोंकी वर्षा करते हुए फुर्तीसे रथोंको बढ़ाने लगे । ३८ । उनको युद्धमें दौड़ता हुआ देख कर मकरकेतन-प्रद्युम्न क्रोधमें भर गया तब वह बलवान् चापको तान कर सामने खड़ा होगया ३९ महातेजस्वी प्रद्युम्नने दुर्धर

बिभेद सुमहातेजाः केतुमालिं त्रिषष्टिभिः ॥ ४० ॥ सप्तत्या शत्रु
हन्तारं अशीत्या तु प्रमर्दनम् । बिभेद परमामर्षी रुक्मिण्याः नंदि
वर्धनः ॥ ४१ ॥ ततस्ते सचिवाः क्रुद्धाः प्रद्युम्नं शरवृष्टिभिः ।
एकैकशो बिभेदाजौ षष्टिभिः षष्टिभिः शरैः ॥४२॥ तानप्राप्तान्
शरान् बाणैश्चिच्छेद मकरध्वजः । ततोर्द्धचन्द्रमादाय दुर्द्धरस्य स
सारथिम् ॥ ४३ ॥ जघान पश्यतां राज्ञां सर्वेषां सैनिकस्य वै ।
चतुर्भिरथ नाराचैः सुपर्वैः कंकतेजितैः ॥ ४४ ॥ जघान चतुरः
सोश्वान् दुर्द्धरस्य रथं प्रति । एकेन योक्त्रं छत्रं च ध्वजमेकेन बंधु-
रम् ॥४५॥ षष्ट्या च युगचक्राद्यं चिच्छेद मकरध्वजः । अथा-
परं शरं गृह्य कंकपत्रं सुतेजितम् ॥४६॥ मुमोच हृदये तस्य दुर्द्धर-
स्यान्यजीविनः । स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतप्रभः ॥४७॥

को पचीस बाणोंसे घायल किया और केतु मालीको तरेसठ बाणों
से घायल किया ४० तदनन्तर रुक्मिणीके आनन्दको बढ़ाने वाले
परमक्रोधमें भरे हुए प्रद्युम्नने सत्तर बाणोंसे शत्रुहन्ताको और
बयासी बाणोंसे प्रमर्दनको घायल किया ४१ तदनन्तर वे मन्त्री
क्रोधमें भर कर प्रद्युम्न पर बाणोंकी वृष्टि करने लगे; उनमेंसे
प्रत्येकने प्रद्युम्नके साठ २ बाण मारे ४२ मकरध्वज प्रद्युम्नने उन
बाणोंको आनेसे पहिले ही काट डाला, तदनन्तर उसने सब
राजाओंके और सैनिकोंके सामने सुन्दर गाँठ वाले कंक पक्षीके
पर लगे तेज किये हुए चार बाणोंसे दुर्धरके सारथिको मार
डाला ॥ ४४ ॥ और चार बाणोंसे दुर्धरके चारों घोडोंको भी
मार डाला तदनन्तर मकरध्वजने एक बाणसे उसके जोतको छत्र
को ध्वजाको और एक बाणसे उसके बंधुरको काट डाला और
साठ बाणोंसे उसके जुए और पहियेके चन्द्रको काट डाला, तद-
नन्तर कंकपत्र लगा हुआ दूसरा बाण ले कर दूसरेसे जीवित
रहने वाले दुर्धरके हृदयको फोड डाला वह प्राणरहित, शोभा

निपपात रथोपस्थात् क्षीणपुण्य इव ग्रहः । दुर्द्धरे निहते शूरे दानवे दानवेश्वरः ॥ ४८ ॥ केतुमाली शरव्रातैरभिदुद्राव कृष्णजम् । प्रद्युम्नमथ संक्रुद्धो भ्रुकुटीभीषणाननः ॥४६॥ कृत्वाभ्यधावत् सहसा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । संक्रुद्धः कृष्णसूनुस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५० ॥ पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव यथा घनः । स विद्धो दानवामात्यः प्रद्युम्नेन धनुष्मता ॥५१॥ चक्रमादाय चिक्षेप प्रद्युम्नवधकाङ्क्षया । तं तु प्राप्तं सहस्रारं कृष्णचक्रसमद्युतिम् ५२ निपत्योत्पत्य सहसा सर्वेषामेव पश्यताम् । तेनैव तस्य चिच्छेद केतुमालेः शिरस्तदा ॥५३॥ तद्दृष्ट्वा कर्म विपुलं रौक्मिणेयस्य देवराट् । विस्मयं परमं प्राप्तः सर्वदेवगणैः सह ॥५४॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव पुष्पवर्षैरवाकिरन् । केतुमालिं हतं दृष्ट्वा शत्रुहन्ता

रहित सत्त्व रहित और फीकी कान्ति वाला होकर पुण्य क्षीण हुए ग्रह की समान रथकी बैठक परसे गिर पड़ा। शूरवीर दानव दुर्धरके मारे जाने पर दानवेश्वर केतुमाली क्रोधमें भर भ्रकुटिके कारण मुखको भयंकर कर कृष्णके पुत्र प्रद्युम्न पर बाणोंकी वर्षा बरसाता हुआ दौड़ा ॥४५-४६॥ वह दौड़ कर कहने लगा कि-ठहर ! ठहर ! तब क्रोधमें भरे हुए कृष्णपुत्रने उसको बाणोंसे इस प्रकार छा दिया, जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ मूसल धारोंसे पृथ्वीको छा लेता है धनुषधारी प्रद्युम्नसे घायल होने पर दानवने चक्र उठा लिया और प्रद्युम्नका वध करने की इच्छासे फैंका, कृष्णके चक्रकी समान कान्ति वाले और सहस्र अरे वाले उस चक्रके आने पर प्रद्युम्नने उछलकर और झुक कर उसको पकड़ लिया और उस ही चक्रसे केतुमालीके शिरको काट डाला ॥ ५०-५३ ॥ प्रद्युम्नके इस बड़े भारी कर्मको देख कर देवराज सब देवताओं सहित परम विस्मित हुआ ॥ ५४ ॥ और गंधर्व तथा अप्सरायें पुष्पोंकी

प्रमर्दनः । महाबलसमूहेन प्रद्युम्नमथ दुद्रुवे ।५५। ते गदां मुशलं चक्रं प्रासतोमरसायकान् । भिन्दिपालान् कुठारांश्च भास्वरान् कूटमुद्गरान् ॥५६॥ युगपत् संक्षिपन्ति स्म बधार्थं कृष्णनन्दने । सोऽपि तान्यस्त्रजालानि शस्त्रजालैरनेकधा ॥५७॥ चिच्छेद बहुधा वीरो दर्शयन् पाणिलाघवम् । गजान् सोऽभ्यहनत् क्रुद्धो गजारोहान् सहस्रशः ॥ ५८ ॥ रथान् सारथिभिः सार्द्धं हयांश्चैव ममर्द ह । पतितंस्तान् शरव्रातैर्नाविद्धः कश्चिदीक्ष्यते ॥ ५९ ॥ एवं सर्वाणि सैन्यानि ममन्थ मकरध्वजः । नदीं प्रावर्तयद्घोरां शोणितान्बुतरङ्गिणीम् ॥ ६० ॥ मुक्ताहारोर्मिबहुलां वसामेदोस्थिपंकिनीम् । छत्रद्वीपशरावर्तां रथैः पुलिनमण्डिताम् ॥ ६१ ॥ केयूरकुण्डलाकूर्मां ध्वजमत्स्यविभूषिताम् । नागग्राहवतीं रौद्रीं

बौछार करने लगी केतुमालिको मारा हुआ देख कर शत्रुओंका मारने वाला प्रमर्दन बड़ी भारी सेनाको लेकर प्रद्युम्न पर दौड़ा ॥ ५५ ॥ वे वध करनेकी इच्छासे कृष्णनन्दनके ऊपर गदा मूसल चक्र प्रास तोमर बाण भिन्दिपाल कुठार और प्रकाशवान् कूटमुद्गरोंको एक साथ फेंकने लगे तब वह वीर भी हाथकी सफाई दिखाता हुआ उन अस्त्रजालोंको अपने अस्त्रजालोंसे अनेक प्रकारसे काटने लगा, उसने क्रोधमें भर कर हाथियोंको मार डाला ॥५६-५८॥ और उसने रथोंके साथ सारथियोंको और घोड़ोंको भी गिरा कर मसल डाला उस समय कोई भी व्यक्ति बाणोंके जालोंसे बिना घायल हुआ नहीं दीखता था इस प्रकार मकरध्वजने सारी सेनाओंको मथ डाला, और रक्तके पूर और तरंग वाली भयंकर नदी बहा दी ॥ ६० ॥ उसमें मोतियोंकी हाररूपी बहुतसी लहरें थी और वसा तथा मेद की कीच मच रहीं थी; छत्र तहाँ पर द्वीपसे दीख रहे थे और बाणोंके भ्रमर पड़ रहे थे और रथोंसे उसके पुलिन मण्डित हो रहे

मत्स्यकूर्मविभूषिताम् ॥६२॥ केशशैवलसंछन्नां श्रोणिसूत्रमृणालिकाम्। नराननसुपद्मां च हंसचामरवीजिताम् ॥ ६३ ॥ शिरस्तिमिसमाकीर्णां शोणितौघप्रवर्तिनीम्। नदीं दुस्तरणीं भीमामनंगेन प्रवर्तिताम् ॥६४॥ दुष्प्रेक्ष्यां दुर्गमां रौद्रां हीनतेजःसुदुस्तराम्। शस्त्रग्राहवतीं घोरां यमराष्ट्रविवर्द्धनीम् ॥ ६५ ॥ तत्र रुक्मिसुतः श्रीमान् विलोडयति धन्विनः। शत्रुहन्तारमाश्रित्य शरानभ्यकिरन् बहून् ॥६६॥ शत्रुहन्ता पुनः क्रुद्धो मुमोच शरमुत्तमम्। प्रद्युम्नस्य समासाद्य हृदये निपपात ह ॥ ६७ ॥ स विद्धस्तेन बाणेन प्रद्युम्नो न व्यकम्पत। शक्तिं जग्राह बलवान् शत्रुहन्त्रे मुमूर्षवे ॥ ६८ ॥ सा क्षिप्ता रौक्मिणेयेन शक्तिर्ज्वालाकुला रणे। पपात हृदयं भित्त्वा शक्राशनिसमस्वना ॥ ६९ ॥

थे ६१ केयूर और कुण्डलरूपी कछुए वाली और ध्वजारूपी मत्स्योंसे विभूषित, हाथीरूपी ग्राह वाली, भयङ्कर मत्स्य और कछुओंसे विभूषित केशरूपी सिवारसे ढकी हुई, श्रोणिसूत्र (कमरबन्द) रूपी मृणाल वाली मनुष्योंके मुखरूपी सुन्दर कमलों वाली; हंसरूपी चामरोंसे वीजित, शिररूपी मछलियोंसे घिरी हुई और जलरूपी रक्तके समूहको बहानेवाली अनङ्गसे बहाई भयंकर दुस्तर दुष्प्रेक्ष्य दुर्गम रौद्र और तेजहीनोंके लिए दुष्प्रेक्ष्य, शस्त्ररूपी ग्राह वाली यमराष्ट्रको बढानेवाली दुस्तर प्रद्युम्नने नदी बहा दी ६५ उसमें श्रीमान् रुक्मिणीपुत्र धनुषधारियोंको मथ रहे थे और उस शत्रुहन्ता पर बहुतसे बाणोंको बरसाने लगे ६६ तदनन्तर शत्रुहन्ताने क्रोधमें भर कर फिर उत्तम बाण उठा कर छोड़ा वह प्रद्युम्नके हृदय पर गिरा ६७ उससे विंधने पर भी प्रद्युम्न नहीं कांपा और उन्होंने मुमूर्षु शत्रुहन्ताके लिए शक्ति उठा ली ६८ रुक्मिणीनन्दनकी फैंकी हुई वह ज्वालाओंसे व्याप्त इन्द्रके वज्रकी समान शक्ति उसके हृदयको फोड़ कर गिर पड़ी ६९

स भिन्नहृच्च सूस्तांगो मुक्तमर्मास्थिबन्धनः । पपात रुधिरोद्गारी शत्रुहन्ता महाबलः ७० पतितं शत्रुहन्तारं दृष्ट्वा तस्थौ मपर्दनः । जग्राह मुशलं सोथ वचनं चेदमाददे ॥ ७१ ॥ तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिः करिष्यसि रणप्रियः । मां योधयस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं न भविष्यसि ॥ ७२ ॥ वृष्णिवंशकुले जातः शत्रुरस्मत्पिता तव । पुत्रं हन्तास्म्यहं तस्य ततोसौ निहतो भवेत् ॥ ७३ ॥ मृतेन तेन दुर्बुद्धे सर्वदेवक्षयो भवेत् । दैतेया दानवाः सर्वे मोदन्तां हतशत्रवः ॥ ७४ ॥ हते त्वयि ममास्त्रेण त्वत्समुत्थैश्च शोणितैः । शम्बरस्य तु पुत्राणां करोम्युदकसत्क्रियाम् ॥ ७५ ॥ अद्य सा भीष्मकसुता करुणं विलपिष्यति । निहतं त्वां च श्रुत्वैव यौवनस्थं गतायुषम् ॥ ७६ ॥ स ते पिता चक्रधरो निष्फलाशो भविष्यति । हतं त्वां स विदित्वाथ प्राणांस्त्यक्ष्यति मन्दधीः ॥७७॥

जिसका हृदय फटगया था और अङ्ग थक रहा था और जिसके मर्मस्थल तथा हड्डियोंके बन्धन ढीले पड़ गए ऐसे महाबली शत्रुहन्ताको गिरते देख कर मपर्द खड़ा हुआ और उसने मूसल को पकड़ कर यह बात कही, कि -७१ हे रणप्रिय ! तू इन साधारण व्यक्तियोंसे क्या करेगा ? हे दुर्बुद्धे तू मुझसे लड तो तू नहीं रहेगा ७२ हमारे शत्रु तेरे पिता वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए हैं मैं उनके पुत्रको मार डालूँगा तो मानो उनको ही मार डालूँगा हे दुर्बुद्धे ! उसके मरनेसे सब देवताओंका क्षय होजायगा और सब दैतेय और दानव शत्रुओंके मरनेसे आनन्द करेंगे ७४ अपने अस्त्रसे तेरे मारे जाने पर तुझसे निकलते हुए रक्तसे मैं शम्बर के पुत्रोंका तर्पण करूँगा ७५ आज तुझ तरुण पुरुषको गतायु सुनकर भीष्मककी पुत्री करुणाजनक रीतिसे विलाप करेगी ७६ और तुम्हारे पिता चक्रधरकी आशा आज निष्फल होजायगी

इत्युक्त्वा परिघेणाशु ताडयद्रुक्मिणीसुतम् । ताडितो हि महा-
तेजा रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥ ७८ ॥ दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तस्यैव
रथं मह्यां व्यचूर्णयत् । सोऽवप्लुत्य रथात्तस्मात् पदातिरव तस्थि -
वान् ॥ ७९ ॥ तां गदां गृह्य सहसा रौक्मिणेयमुपाद्रवत् । तथैव
गदया कामः प्रमर्दनमपातयत् ॥ ८० ॥ हतं प्रमर्दनं दैत्यं दृष्ट्वा
सर्वे प्रदुद्रुवुः । न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं सिंहत्रासाद्गजा इव ॥८१॥
सारमेयं यथा दृष्ट्वाऽविगणो वै पलायते । तथा सेना विषीदन्ती
प्रद्युम्नस्य भयार्दिता ॥ ८२ ॥ क्षतजादिग्धवस्त्रा वै मुक्तकेशा
विशोभना । रजस्वलेव युवती सेना समवगृह्यते ॥ ८३ ॥ मदन-
शरविभिन्ना सैनिकानभयपाया युवतिसदृशवेषा साध्वसैः पीड्य-

वह मन्दबुद्धि तुझको मराहुआ जानकर अपने प्राणोंको छोड़
देगा ७७ इस प्रकार कहकर उसने रुक्मिणी-पुत्रके ऊपर परिघ
का प्रहार किया प्रतापी रुक्मिणी-पुत्रने ताडित होने पर उसके
रथको दोनों हाथोंसे उठा कर पृथिवीपर पटक दिया तब वह
उस रथसे कूद कर पैदल ही, खड़ा होगया । ७८ । ७९ । और
गदाको उठाकर रुक्मिणीपुत्रके ऊपर दौड़ा और प्रद्युम्नने उस
गदासे प्रमर्दनको मारडाला ८० प्रमर्दन दैत्यको मराहुआ देख
कर सब राक्षस भागने लगे, और जैसे सिंहके पास हाथी खड़े
नहीं होते इसीप्रकार वह उसके सामने खड़े नहीं होसके ।८१।
जैसे (शिकारी) कुत्तेका देखकर भेड़ें भागने लगती हैं इसी
प्रकार प्रद्युम्नके भयसे पीड़ित हुई सेना विषाद करने लगी ८२
सेना रक्तसे सने हुए वस्त्रवाली खुले हुए केशों वाली रजस्वला
स्त्रीकी समान दीखने लगी ८३ मदनके बाणोंसे पीड़ित हुई
युवतीकी समान वेष धारण करने वाली निर्दयबाणोंसे पीड़ित
समररूपी रति समरको देखना न चाहकर अपने घरको जाता

मांना। रतिसमरमशक्ता वीक्षितुं सोच्छ्वसन्ती स्वगृहमगनकामा-नेच्छते स्थातुमत्र ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरसैन्य-भंगो नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

वैशम्पायन उवाच। शम्बरस्तु ततः क्रुद्धः सूतमाह विशाम्पते। शत्रुसम्मुखतो वीर रथं मे वाहय द्रुतम् ॥१॥ यावदेनं शरैर्हन्मि मम विप्रियकारकम्। ततो भर्तृवचः श्रुत्वा सूतस्तत्प्रियकारकः ॥ २ ॥रथं संचोदयामास चामीकरविभूषितम्। तं दृष्ट्वा रथमायान्तं प्रद्युम्नः फुल्ललोचनः ॥ ३ ॥ सन्दधे चापमादाय शरं कनकभूषितम्। तेनाऽहनत् सुसंक्रुद्धः कोपयन् शम्बरं रणे४ हृदये ताडितस्तेन देवशत्रुः सुविक्लवः। रथशक्तिं समाश्रित्य तस्थौ सोथ विचेतनः ॥ ५ ॥ स चेतनां पुनः प्राप्य धनुरादाय

चाहने लगी और उसने तहाँ खड़े होनेकी इच्छा नहीं की ।८४। एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि–हे राजन्! उस समय क्रोधमें भरे हुए शम्बरने सूतसे कहा, कि–हे वीर! तू मेरे रथको शीघ्रतासे शत्रुके रथके सामने लेचल ॥ १ ॥ मैं इस अपना अप्रिय करने वालेको बाणोंसे मार डालूँगा उस समय स्वामीके वचनको सुन कर उसका प्रिय करना चाहने वाला सूत चामीकरोंसे अर्थात् चमरोंसे विभूषित रथको हाँकने लगा उस रथको आता हुआ देख कर प्रद्युम्नके नेत्र खिल उठे ॥ २ ॥ ३ ॥ उसने धनुषको उठाकर सुवर्णसे विभूषित बाणको चढ़ाया और क्रोधमें भरकर शम्बरको कुपित करनेके लिये वह बाण छोड़ा ।४। उसके हृदय में लगने पर देवशत्रु बहुत घबड़ाया रथके उत्साहकी हेतु ध्वजा का आश्रय करके मूर्छित होगया ॥ ५ ॥ तदनन्तर जब शम्बर को होश आया तब उसने क्रोधमें भरकर धनुष उठा लिया और

शम्बरः । विव्याध कार्ष्णिं कुपितः सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥६॥ तानप्राप्तान् शरान् सोऽथ सप्तभिः सप्तधाच्छिनत्।शम्बरं च जघानाथ सप्तत्या निशितैः शरैः॥७॥ पुनः शरसहस्रेण कंकबर्हिणवाससा । अहनच्छम्बरं क्रोधाद्धाराभिरिव पर्वतम् ॥८॥ सदिशो विदिशश्चैव शरधारा समावृणोत् ॥ ९ ॥ अन्धकारीकृतं व्योम दिनकर्ता न दृश्यते । ततोऽन्धकारमुत्सार्य वैद्युतास्त्रेण शम्बरः १० प्रद्युम्नस्य रथोपस्थे शरवर्षं मुमोच ह । तदस्त्रजालं प्रद्युम्नः शरेणानतपर्वणा ॥११॥ चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम् । हते तस्मिन् महावर्षे शराणां कार्ष्णिना तदा ॥१२॥ द्रुमवर्षं मुमोचाथ मायया कालशम्बरः॥द्रुमवर्षोच्छ्रितं दृष्ट्वा प्रद्युम्नः

प्रद्युम्नके सात तेज बाण मारे ।६। परन्तु प्रद्युम्नने उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहिले सात बाण मार कर उनके सात २ टुकड़े कर दिये और फिर शम्बरके भी सत्तर बाण मारे ॥७॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए प्रद्युम्नने धाराओंसे पर्वतको छानेकी समान, शम्बर पर कंक और मोरके पत्र लगे हुए हजार बाण मारे ॥ ८ ॥ उस समय बाण-धाराओंसे दिशा और विदिशा (कोण) छा गई (फिर भी) प्रद्युम्न बाणधारा बरसा कर दिशा विदिशाओंको छाने लगा ॥९॥ ऐसा करके प्रद्युम्नने आकाश में अंधकार कर दिया, उस समय सूर्यका दीखना वन्द होगया तब तो शम्बरने वैद्युतास्त्रसे अन्धकारको हटा कर ॥ १० ॥ प्रद्युम्नके रथ पर बाणोंकी वर्षा की, हे राजन् ! उस समय प्रद्युम्नने नमी हुई गाँठ वाले बाणसे उस बाण-जालको अनेक प्रकारसे काट कर अपने हाथकी सफाई दिखाई, जब प्रद्युम्नने बाणवर्षाको नष्ट कर डाला ॥ ११॥१२ ॥ तब तो कालशम्बर माया करके वृक्षोंको बर्षाने लगा, वृक्षोंकी बौछारको बढ़ती हुई देखकर प्रद्युम्न क्रोधमें भर गया ॥ १३ ॥ और उसने आग्ने-

क्रोधमूर्च्छितः ॥ १३ ॥ आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ तेन वृक्षानना‌शयत् । भस्मीभूते वृक्षवर्षे शिलासंघातमुत्सृजत् ॥१४॥ प्रद्युम्नस्तं तु वायव्यैः प्रोत्सारयत संयुगे । ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान् ॥ १५ ॥ सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च तरक्षूनृक्षवानरान् । वारणान् वारिदप्रख्यान् हयानुष्ट्रान् विशाम्पते ॥१६॥ मुमोच धनुरायम्य प्रद्युम्नस्य रथोपरि । गन्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वांस्तान् खण्डशस्तदा ॥१७॥ प्रद्युम्नेन तु सा माया हता तां वीक्ष्य शम्बरः। अन्यां मायां मुमोचाथ शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः१८ गजेन्द्रान् भिन्नवदनान् षष्टिहायनयौवनान् । महामात्रोत्तमारूढान् कल्पितान् रणकोविदान् ॥ १६ ॥ तामापतन्तीं मायां तु कार्ष्णिः कमललोचनः । सैंहीं मायां समुत्स्रष्टुं चक्रे बुद्धिं महामनाः ॥ २० ॥ सा सृष्टा सिंहमाया तु रौक्मिणेयेन धीमता ।

यास्त्र छोड़ कर वृक्षोंको नष्ट कर दिया, वृक्षवर्षाके भस्म होने पर शम्बरने पत्थरोंको फैंका ॥१४॥ प्रद्युम्नने उनको वायव्य अस्त्र मार कर रणमेंसे उड़ा दिया, तब तो प्रतापी देवशत्रुने बड़ी भारी माया दिखाई, कि-॥१५॥ वह अपने धनुषको तान कर प्रद्युम्नके रथके ऊपर सिंह व्याघ्र वराह रीछ वानर चीते और मेघोंकी समान हाथी और ऊँटोंको फैंकने लगा, परन्तु प्रद्युम्न ने गान्धर्व अस्त्रसे उस मायाके टुकड़े २ कर डाले ॥१६॥१७॥ इस प्रकार प्रद्युम्नने उस मायाको नष्ट कर दिया, उस मायाको नष्ट हुई देख कर शम्बरने रोषमें भर कर दूसरी माया रची १८ (उस मायासे वह प्रद्युम्नकी ओर) साठ वर्षके युवा खुले हुए मुख वाले हाथियोंको (भेजने लगा, उन पर) चतुर हाथीवान् बैठे हुए थे और वे रणचतुर पुरुषोंसे सजाये हुए (दीखते थे) उस मायाको आती हुई देख कर कमलकी समान नेत्रों वाले महामनस्वी प्रद्युम्नने सैंही माया रचनेका विचार किया१६-२०

माया नागवती नष्टा आदित्येनेव शर्वरी ॥ २१ ॥ निहतां हस्ति-
मायां तु तां समीक्ष्य महासुरः । अन्यां संमोहिनीं मायां सोऽसृज-
द्दानवोत्तमः ॥ २२ ॥ तां दृष्ट्वा मोहिनीं नाम मायां मयविनिर्मि-
ताम् । संज्ञास्त्रेण तु प्रद्युम्नो नाशयामास वीर्यवान् ॥ २३ ॥
शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो हतया मायया तदा । सैंहीं मायां महातेजाः
सोऽसृजद्दानवेश्वरः ॥ २४ ॥ सिंहानापततो दृष्ट्वा रौक्मिणेयः
प्रतापवान् । अस्त्रं गान्धर्वमादाय शरभानसृजत्तदा । तेऽष्टापदा
बलोदग्रा नखदंष्ट्रायुधा रणे ॥२५॥ सिंहान् विद्रावयामासुर्वायु-
र्जलधरानिव । सिंहान् विद्रवतो दृष्ट्वा माययाष्टापदेन वै ॥२६॥
शम्बरश्चिन्तयामास कथमेनं निहन्मि वै । अहो मूर्खस्वभावोऽहं
यन्मया न हतः शिशुः ॥ २७ ॥ प्राप्तयौवनदेहस्तु कृतास्त्रश्चापि

बुद्धिमान् प्रद्युम्नने जब सिंहमाया रची तब हाथियोंकी माया सूर्य
से नष्ट होने वाली रात्रिकी समान नष्ट होगई ।२१। दानवोत्तम
ने हस्ति मायाको नष्ट हुई देख कर मोहिनी नाम वाली दूसरी
माया रची ।२२। उस मायावी दैत्यकी बनाई हुई मोहिनी नाम
वाली मायाको देख कर वीर्यवान् प्रद्युम्नने उसका संज्ञास्त्रसे
नाश कर डाला ॥ २३ ॥ उस मायाके नष्ट होने पर शम्बर रोष
में भर गया और उस दानवोत्तमने सैंही माया रची ॥ २४ ॥
प्रतापी रुक्मिणीनन्दनने सिंहोंको आते देख कर गंधर्व-अस्त्र
उठा कर शरभोंको रचा, उनके आठ पैर थे वे बलवान् थे और
उनके नाखून और डाढ़रूपी शस्त्र थे, वायु जैसे मेघोंको भगाता
है, तैसे वे सिंहोंको भगाने लगे, अष्टापदी मायासे सिंहोंको भागते
देख कर ॥ २५॥२६ ॥ शम्बर विचारने लगा, कि-मैं इसको
कैसे मारूँ, अरे ! मैं बड़ा मूर्ख—स्वभाव हूँ कि-मैंने इसे बालक
पनमें ही न मार डाला ॥ २७ ॥ अब तो यह दुर्मति तरुण हो
गया है और इसने अस्त्र-विद्या भी सीख ली है अब मैं इस

दुर्मतिः। तत्कथं निहनिष्यामि शत्रुं रणशिरःस्थितम् ॥ २८ ॥ माया सा तिष्ठते तीव्रा पन्नगी नाम भीषणा। दत्ता मे देवदेवेन हरेणासुरघातिना ॥२९॥ तां सृजामि महामायामाशीविषसमाकुलाम्। तया दह्येत दुष्टात्मा ह्येष मायामयो बली ॥ ३० ॥ सा सृष्टा पन्नगी माया विषज्वालासमाकुला। तया पन्नगमय्या तु सरथं सहवाजिनम् ॥ ३१ ॥ ससूतं स हि प्रद्युम्नं बबन्ध शरबन्धनैः। बध्यमानं तदा दृष्ट्वा आत्मानं वृष्णिवंशजः ॥ ३२ ॥ मायां सञ्चिन्तयामास सौपर्णीं सर्पनाशिनीम्। सा चिन्तिता महामाया प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ३३ ॥ सुपर्णा विचरन्ति स्म सर्पा नष्टा महाविषाः। भग्नायां सार्पमायायां प्रशंसन्ति सुरासुराः ॥३४॥ साधु वीर महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धनः। यत्त्वया धर्षिता माया तेन स्म परितोषिताः ॥३५॥ हतायां सर्पमायायां

रणके मुहानेपर खड़ेहुएको कैसे मारूँ २८ हाँ मुझे देवदेव असुरघाती महादेवजीने पन्नगी नाम वाली अतितीव्र-माया दी है वह माया मुझमें वर्तमान है २९ उस पन्नगोंसे भरीहुई महामायाको अब मैं रचूँ, उस मायासे यह बली दुष्टात्मा भस्म होजायगा ।३०॥ इस प्रकार उसने विषकी ज्वालाओंसे भरी हुई पन्नगी माया रची, उस पन्नगमयी मायासे वह हाथी रथ और सूतसहित प्रद्युम्न को बाँधने लगा, उस समय वृष्णिनन्दनने अपनेको बँधता हुआ देख कर, सौपर्णी नाम वाली सर्पनाशिनी मायाका विचारकिया, महात्मा प्रद्युम्नके विचार करने पर वह माया प्रकट होगई ३१-३३ उस समय सुपर्ण (गरुड़) विचरने लगे और महाविष सर्प नष्ट होने लगे, सर्पमयी मायाके नष्ट होने पर सुर असुर (प्रद्युम्न की) प्रशंसा करने लगे ॥ ३४ ॥ हे रुक्मिणीके आनन्दको बढ़ाने वाले महाभुज प्रद्युम्न ! साधु२ तुमने मायाको दबा कर हमें प्रसन्न किया है ॥ ३५ ॥ सर्पमायाके नष्ट होने पर शम्बर फिर

शम्बरश्चिन्तयत् पुनः । अस्ति मे कालदण्डाभो मुद्गरो हेमभूषितः ॥ ३६ ॥ तमप्रतिहतं युद्धे देवदानवमानवैः । पुरा यो मम पार्वत्या दत्तः परमतुष्टया ॥ ३७ ॥ गृहाण शम्बरेमं त्वं मुद्गरं हेमभूषितम् । मया सृष्टं स्वदेहे नो तपः परमदुश्चरम् ॥३८॥ मायान्तकरणं नाम सर्वासुरविनाशनम् । अनेन दानवौ रौद्रौ बलिनौ कामरूपिणौ ॥३९॥शुम्भश्चैव निशुम्भश्च सगणौ सूदितौ मया प्राणसंशयमापन्ने त्वया मोच्यः स शत्रवे ॥४०॥ इत्युक्त्वा पार्वती देवी तत्रैवान्तरधीयत । तदहं मुद्गरं श्रेष्ठं मोक्षयिष्यामि शत्रवे ॥४१॥ तस्य विज्ञाय चित्तं तु देवराजोऽभ्यभाषत । गच्छ नारद शीघ्रं त्वं प्रद्युम्नस्य रथं प्रति ॥४२॥ सम्बोधय महाबाहुं पूर्वजातिं च बोधय । वैष्णवास्त्रं प्रयच्छास्मै वधार्थं शम्बरस्य

विचारने लगा, कि-मेरे पास कालदण्डकी समान आभा वाला सुवर्णसे विभूषित मुद्गर है ॥ ३६ ॥ वह युद्धमें देवता दानव और मनुष्यों अप्रतिहत रहता है, पार्वतीने परमसन्तुष्ट होकर उसे मुझे दिया था ॥ ३७ ॥ कि हे शम्बर! तू इस सुवर्णसे विभूषित दण्ड को ग्रहण कर मैंने अपने देहसे परम तप कर इसको रचा है ३८ इसका नाम मायान्तकरण है और यह सब असुरोंको मार सकता है, मैंने इससे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले शुम्भ और निशुम्भ नामक भयंकर राक्षसोंको मारा था, तू इसे प्राणसंकट पड़ने पर शत्रुपर छोड़ना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस प्रकार कह कर पार्वती देवी अन्तर्धान होगई थी अब मैं इस श्रेष्ठ मुद्गरको शत्रु पर छोड़ता हूँ ॥ ४१ ॥ उसके चित्तके अभिप्रायको जान कर देवराजने कहा, कि-हे नारद ! तुम शीघ्रही प्रद्युम्नके रथकी ओर जाओ ॥ ४२ ॥ और उनको सम्बोधित करके इनकी पूर्व-जातिका स्मरण दिलाओ, और शम्बरका वध करनेके लिए इन को वैष्णवास्त्र दो ॥४३॥ और इस असुरमर्दनको अभेद्य कवच

च ॥ ४३ ॥ अभेद्यं कवचं चास्य प्रगच्छासुरसूदने । एवमुक्तो मघवता नारदः ययौ त्वरन् ॥ ४४ ॥ आकाशेऽधिष्ठितोऽवोच-न्मकरध्वजकेतनम् । कुमार पश्य मां प्राप्तं देवगन्धर्वनारदम् ॥ प्रेषितं देवराजेन तव संबोधनाय वै ॥ ४५ ॥ स्मर त्वं पूर्वकं भावं कामदेवोऽसि मानद। हरकोपानलदग्धस्त्वंतेनानङ्ग इहोच्यते ४६ त्वं वृष्णिवंशजातोऽसि रुक्मिण्या गर्भसंभवः । जातोऽसि केशवेन त्वं प्रद्युम्न इति कीर्त्यते ॥ ४७ ॥ आहृत्य शम्बरेण त्वमिहानीतोऽसि मानद । सप्तरात्रे त्वसंपूर्णे सूतिकागारमध्यतः ४८ वधार्थं शम्बरस्य त्वं ह्रियमाणो ह्युपेक्षितः । केशवेन महाबाहो देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४९ ॥ येषा मायावती नाम भार्या वै शंबरस्य तु । रतिं तां विद्धि कल्याणीं तव भार्यां पुरातनीम् ५० तव संरक्षणार्थाय शंवरस्य गृहेऽवसत् । मायां शरीरजां तस्य

हो, इन्द्रके इस प्रकार कहने पर नारदजी त्वराके साथ चले ४४ और आकाशमें स्थित होकर मकरध्वजसे कहने लगे कि-हे कुमार ! तुम मुझ देवता और गन्धर्वोंके प्रिय नारदको आया हुआ देखो, देवराजने तुमको प्रबोधित करनेके लिए भेजा है ४५ तुम पूर्व जन्मका स्मरण करो; हे मानद ! तुम कामदेव हो और शिवजी की कोपाग्निसे भस्म होनेके कारण अनङ्ग कहाते हो ४६ तुम रुक्मिणीके गर्भसे वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए हो, तुम केशवसे उत्पन्न हुए हो और प्रद्युम्न कहे जाते हो ४७ हे मानद ! तुमको सात रात पूर्ण होनेसे पहिले सूतिकागारमेंसे शंबर हर कर यहाँ पर लेआया है ४८ हे महाभुज ! तुम्हारे हरणकी कृष्णने, शंबरके वध के कारण देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए, उपेक्षाकी थी ४९ वह जो शम्बरकी मायावती नामवाली भार्या है, इसको तुम अपनी रतिनामकी प्राचीन भार्या जानो ॥ ५० ॥ यह तुम्हारी रक्षा करने के लिए शंबरके घरमें रहती है, और इस दुरात्माको मोहित

मोहनार्थं दुरात्मनः ॥ ५० ॥ एतेः संपादनार्थाय प्रेषयत्यनिशं तदा । एवं प्रद्युम्न बुध्वा वै तत्र भार्या प्रतिष्ठिता ॥ ५२ ॥ हते त्वं शंबरे वीर वैष्णवास्त्रेण संयुगे । गृह्य मायावतीं भार्यां द्वारकां गन्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥ गृहाण वैष्णवं चास्त्रं कवचं च महाप्रभम् । शक्रेण तव संगृह्य प्रेषितं शत्रुसूदन ॥ ५४ ॥ शृणु मे ह्यपरं वाक्यं क्रियतामविशंकया । अस्य देवरिपोस्तात मुद्गरो नित्यमूर्जितः ॥ ५५ ॥ पार्वत्यां परितुष्टायां दत्तः शत्रु निवर्हणः । अमोघश्चैव संग्रामे देवदानवमानवैः ५६ तदस्त्रप्रतिघातार्थं देवीं त्वं स्मर्तुमर्हसि । स्तव्या चैव नमस्या च महादेवी रणोत्सुकैः ५७ तत्र वै क्रियतां यत्नः संग्रामे रिपुणा सह । इत्युक्त्वा नारदो वाक्यं प्रययौ यत्र वासवः ॥ ५८ ॥ ॥ १०६ ॥

करनेके लिए शरीरसे माया बनाकर उसको उसके पास सदा रमण करनेको भेजती रहती है इस बातको इस प्रकार जानकर कि-यह भार्या इस प्रकार रहती है ॥५२॥ हे वीर ! अब तुम वैष्णवास्त्र से शंबरके मारे जाने पर अपनी मायावती भार्याको लेकर द्वारका को जाना ॥ ५३ ॥ अब आप वैष्णवास्त्रको और महातेजस्वी कवचको ग्रहण करिये, हे शत्रुसूदन ! इन्द्रने इनको आपके लिए एकत्रित करके भेजा है ५४ अब तुम मेरे दूसरे वाक्यको सुनो और उसे निःशंक होकर करना हे तात ! इस देवरिपुके पास सर्वदा बलवान् रहने वाला एक मुद्गर है ॥ ५५ ॥ उस शत्रुओंका नाश करने वाले मुद्गरको इसे पार्वतीने दिया है वह संग्राममें देवता और दानवों पर भी अमोघ रहता है ५६ उस अस्त्रके रोकनेके लिये तुम देवीका स्मरण करना, रणके उत्सुक पुरुषोंको उसकी स्तुति करनी चाहिये और उसको प्रणाम करना चाहिये ५७ और तुम संग्राममें शत्रुके साथ यत्न करना, इस प्रकार बातें कह कर नारदजी जहाँ इन्द्र थे तहाँ चलेगए ५८ एकसौ छवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन उवाच । शम्बरस्तु ततः क्रुद्धो मुद्गरं तं समाददे । मुद्गरे गृह्यमाणे तु द्वादशार्काः समुत्थिताः ॥ १ ॥ पर्वताश्चलिताः सर्वे तथैव वसुधातलम् । उन्मार्गाः सागरा याताः संक्षुब्धाश्चापि देवताः ॥ २ ॥ गृध्रचक्राकुलं व्योम उल्कापातो बभूव ह । ववर्ष रुधिरं देवः परुषं पवनो ववौ ॥ ३ ॥ एवं दृष्ट्वा महोत्पातान् प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः । अवतीर्य रथाद्वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥४॥ देवीं सस्मार मनसा पार्वतीं शंकरप्रियाम् । प्रणम्य शिरसा देवीं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥५॥ प्रद्युम्न उवाच । ओं नमः कात्यायन्यै गिरिशायै नमो नमः।नमस्त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः नमः शत्रुविनाशिन्यै नमो गौर्यै शिवप्रिये । नमस्ये शुम्भमथनीं निशुम्भमथनीमपि ॥ ७ ॥कालरात्रि नमस्तुभ्यं कौमार्यै च नमो

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर रोषमें भरे हुए शंबरने मुद्गर उठा लिया, मुद्गरके पकड़ने पर बारह सूर्य उदय होगए सारे पर्वत और पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्र ऊपरको बहने लगे और देवता भी क्षुब्ध होने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ आकाश गीध और चकवोंसे व्याप्त होगया और उल्कापात होने लगा, मेघ रुधिर बरसाने लगा और रूखा वायु चलने लगा ॥ ३ ॥ इस प्रकार बड़े २ उत्पातोंको देख कर वीर प्रद्युम्न शीघ्रतासे रथ पर से कूद कर हाथ जोड़ कर खड़ा होगया ॥४॥ और मनमें शंकर की प्रिया पार्वती देवीका स्मरण करने लगा और उनको शिर से प्रणाम कर स्तुति करने लगा ॥ ५ ॥ प्रद्युम्नने कहा, कि-ॐ कात्यायनीके लिये प्रणाम है, गिरीशाके लिए प्रणाम है, त्रिलोकीकी मायाके लिए प्रणाम है ॥ ६ ॥ वैरि-विनाशिनीके प्रणाम है गौरीके लिए प्रणाम है, हे शिवप्रिये ! (मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ) मैं शुंभका मथन करने वाली और निशुंभका मथन करने वालीको प्रणाम करता हूँ ॥ ७ ॥ हे कालरात्रि ! आपको

नमः । कान्तारवासिनीं देवीं नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥८॥ विन्ध्यवासिनीं दुर्गघ्नां रणदुर्गां रणप्रियाम् । नमस्यामि महादेवीं जयां च विजयां तथा ॥ ९ ॥ अपराजितां नमस्येऽहमजितां शत्रुनाशिनीम् । घण्टाहस्तां नमस्यामि घण्टामालाकुलां तथा ॥ १० ॥ त्रिशूलिनीं नमस्यामि महिषासुरघातिनीम् । सिंहाननां नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम् ॥ ११ ॥ एकानंशां नमस्यामि गायत्रीं यज्ञसत्कृताम् । सावित्रीं चापि विप्राणां नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥१२॥ रक्ष मां देवि सततं संग्रामे विजयं कुरु । इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा संप्रीतमानसा ॥ १३ ॥ उवाच वचनं देवी सुप्रीतेनान्तरात्मना । पश्य पश्य महाबाहो रुक्मिण्यानन्दवर्धन ॥ १४ ॥ वरं वरय

प्रणाम है, कौमारीके लिए प्रणाम है, मैं हाथ जोड़ कर कान्तारवासिनी देवीको हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ।८। मैं विन्ध्यवासिनी, दुर्गनाशिनी रणदुर्गा रणप्रिया महादेवी जया और विजया (स्वरूपा) को प्रणाम करता हूँ ॥९॥ मैं वैरिनाशिनी अजिता, अपराजिताको प्रणाम करता हूँ तथा मैं हाथमें घण्टा धारण करने वाली और घण्टोंकी मालासे आकुल देवीको प्रणाम करता हूँ॥ १० ॥ महिषासुरका संहार करने वाली त्रिशूलिनी को मैं प्रणाम करता हूँ, सिंहकी श्रेष्ठ ध्वजा वाली सिंहकी समान मुख वाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ मैं यज्ञमें सत्कार पाने वाली पूर्ण कला गायत्रीको प्रणाम करता हूँ मैं विप्रोंकी सावित्रीरूप पार्वतीको हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥१२॥ हे देवि ! तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो और संग्राममें मेरी विजय कराओ, कामके ऐसे वचनोंसे दुर्गा सन्तुष्ट होगई और उसका मन प्रसन्न हुआ ॥१३॥ तब उस देवीने प्रसन्न मनसे यह बात कही; कि—हे रुक्मिणीके आनन्दको बढ़ाने वाले महाभुज ! तू (मेरी ओरको) देख ॥ १४ ॥ हे वत्स ! तू वर माँग ले, क्यों

वत्स त्वममोघं दर्शनं मम । देव्यास्तु वचनं श्रुत्वा रोमाञ्चोद्गतमानसः ॥ १५ ॥ प्रणम्य शिरसो देवीं विज्ञप्तुमुपचक्रमे । यदि त्वं देवि तुष्टासि दीयतां मे यदीप्सितम् ॥ १६ ॥ वरं च वरदे याचे सर्वारिश्वेषु मे जयः । यस्त्वया मुद्गरो दत्तः शम्बरस्यात्मसंभवः ॥१७॥एष मे गात्रमासाद्य मालाः पद्मावती भवेत् । तथास्त्विति च साप्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१८॥ प्रद्युम्नस्तु महातेजास्तुष्टो रथमथारुहत् । मुद्गरं तं गृहीत्वा च शम्बरः क्रोधमूर्च्छितः ॥१९॥ भ्रामयित्वा स चिक्षेप प्रद्युम्नोरसि वीर्यवान् । स गत्वा मदनाभ्याशं माला भूत्वा तु पौष्करा ॥ २० ॥ प्रद्युम्नस्य च कण्ठे तु समासक्ता व्यराजत । नक्षत्राणां तु मालायां यथा परिवृतो विधुः ॥ २१ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च

कि–मेरा दर्शन अमोघ है, देवीके वचनको सुन कर प्रद्युम्नके रोम खड़े होगए और उसका मन खिल उठा ।१५। और उसने देवीको शिरसे प्रणाम कर यह कहना आरम्भ किया, कि–हे देवि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई हैं और मुझे मन चाहा वरदान देना चाहती हैं ॥ १६ ॥ तो हे वर देने वाली ! मैं यह वर मांगता हूँ कि-सब वैरिओंसे मेरी जीत हो और तुमने जो अपना बनाया हुआ मुद्गर शम्बरको दिया है ॥१७॥ यह मेरे शरीर पर लग कर पद्मोंकी माला हो जाय, तब वह तथास्तु कह कर वहाँ ही अन्तर्धान होगई ॥१८॥ महातेजस्वी प्रद्युम्न प्रसन्न होकर रथ पर चढ़ गए तब वीर्यवान शम्बरने क्रोधमें भर कर मुद्गर उठा उसको घुमा कर प्रद्युम्नकी छातीमें मारा, वह मुद्गर प्रद्युम्नके समीप पहुँच पुष्करों (कमलोंकी माला बन प्रद्युम्न के कण्ठमें पड़ गया, तब प्रद्युम्न, नक्षत्रमालासे घिरे हुए चन्द्रमा की समान शोभा पाने लगे ॥१९-२१॥ प्रद्युम्नके पास मुद्गर को पुष्प बना हुआ देखकर देवता गंधर्व और ऋषि तथा सिद्ध

परमर्षयः । साधु साध्विति वाचोभिः पूजयन् केशवात्मजम् २२
सुदूरं पुष्पभूतं तु दृष्ट्वा प्रद्युम्नसन्निधौ । वैष्णवं परमास्त्रं तु
नारदेन यथाहृतम् ॥ २३ ॥ सन्दधे चापमानम्य इदं वचनमब्र-
वीत् । यद्यहं रुक्मिणीपुत्रः केशवस्यात्मजो ह्यहम् ॥ २४ ॥ तेन
सत्येन बाणोऽयं हन्त्विमं शम्बरं रणे । इत्युक्त्वा चापमाकृष्य
सन्धाय च महामनाः ॥ २५ ॥ चिक्षेप शम्बरस्याथ दहँल्लोक-
त्रयं यथा । संक्षिप्तो वृष्णिसिंहेन शरः क्रव्यादमोहनः ॥ २६ ॥
हृदयं शम्बरस्याथ भित्त्वा धरणिमागतः।न चास्य मांसं न स्नायु-
र्नास्थि न त्वङ् न शोणितम्॥ २७ ॥ सर्वं नष्टमसाद्भूतं वैष्ण-
वास्त्रस्य तेजसा । हते दैत्ये महाकाये दानवे शम्बरेऽधमे ।२८।
जहृषुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणाः । उर्वशीमेनकारम्भाविप्र-
चित्तिस्तिलोत्तमाः ॥ २९ ॥ ननृतुर्हृष्टमनसो जगत् स्थावर-

साधु २ कह कर केशवके पुत्रकी प्रशंसा करने लगे उस समय प्रद्युम्नने नारदजीके वचनानुसार परमास्त्र वैष्णवास्त्रको चाप चढ़ा उठा कर चढाया और यह बात कही,कि-यदि मैं रुक्मिणीका पुत्र और केशवका बेटा होऊँ, तो उस सत्यसे यह बाण रणमें शम्बरको मार डाले, महामनस्वी प्रद्युम्नने इस प्रकार कह कर चापको खेंच साध कर शम्बर पर बाण फैंका वृष्णियोंमें सिंह की समान प्रद्युम्नके द्वारा फैंका हुआ राक्षसोंको मोहित करने वाला बाण तीनों लोकोंको जलाता हुआसा शम्बरके हृदयको फोड़ कर पृथ्वीमें घुस गया,उस समय शम्बरका न मांस दिखाई दिया और न स्नायु तथा हड्डियें ही दिखाई दीं और न त्वचा तथा रक्त दिखाई दिया ॥२२-२७॥ वह सब वैष्णवास्त्रके तेज से भस्मसा होगया महाकाय अधम दैत्य शम्बरके मारे जाने पर देवता और गन्धर्व प्रसन्न होने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं उर्वशी मेनका रंभा विप्रचित्ति और तिलोत्तमा भी मनमें प्रसन्न

जङ्गमम् । देवराजस्तु सुप्रीतः सर्वदेवगणैः सह । प्रद्युम्नं पुष्पवर्षेण ह्यभ्यवर्षत् प्रहृष्टवत् ॥ ३० ॥ अथ समरहते तु दैत्यराजे मधुमथनस्य सुतेन वैष्णवास्त्रैः । विगतरिपुभयाः सुराश्च जग्मुर्मकरविभूषणकेतनं स्तुवन्तः ॥ ३१ ॥ स च समरपरिश्रमं वहन् वै नगरमुखं प्रविवेश रौक्मिणेयः । प्रियतम इव कान्तया प्रहृष्टस्त्वरितपदो रतिदर्शनं चकार ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि शम्बरवधो नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

वैशम्पायन उवाच । समाप्तमायो मायज्ञो विक्रान्तः समरेऽव्ययः । अष्टम्यां निहतो युद्धे मायावी कालशम्बरः ॥ १ ॥ तमृत्तवन्ते नगरे निहत्यासुरसत्तमम् । गृह्य मायावतीं देवीमागच्छन्नगरं पितुः ॥२॥ सोऽन्तरिक्षगतो भूत्वा मायावी शीघ्रविक्रमः ।

होती हुई नाचने लगी और स्थावर जंगम जगत् भी (प्रसन्न होगया) उस समय देवराज इन्द्रने और सब देवताओंने प्रसन्न होकर प्रद्युम्न पर पुष्पोंकी बौछार की ॥२८—३०॥ मधु दैत्य को मथने वाले श्रीकृष्णके पुत्रसे वैष्णवास्त्रके द्वारा दैत्यराज शम्बरका बध होने पर देवता वैरिओंके भयसे रहित होजानेके कारण मकरकेतन प्रद्युम्नकी स्तुति करते हुए चले गए ।३१। तब रुक्मिणी—पुत्रने भी स्त्रीसे ग्रहण किये जाने वाले कान्तकी समान समरके परिश्रमको धारण कर नगरके द्वारमें प्रवेश किया, और त्वरासे पैर रख कर रतिका दर्शन किया ॥ ३२ ॥ एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—मायाओंके समाप्त होने पर माया को जानने वाला समरमें अच्युत मायावी कालशम्बर युद्धमें अष्टमी के दिन मारा गया था ॥ १ ॥ प्रद्युम्न ऋत्तवान् नगरमें असुर सत्तमको मार कर मायावती देवीको साथमें ले पिताके नगरको

आजगाम पुरीं रम्यां रञ्जितां तेजसा पितुः । सोऽन्तरिक्षान्नि-पतितः केशवान्तःपुरे शिशुः । मायावत्या सह तया रूपवानिव मन्मथः ॥ ४ ॥ तस्मिंस्तत्रावपतिते महिष्यः केशवस्य याः । विस्मिताश्चैव हृष्टाश्च भीताश्चैवाभवंस्तदा ॥५॥ ततस्तं काम-संकाशं कान्तया सह सङ्गतम् । प्रेक्षन्त्यो हृष्टवदनाः पिबन्त्यो नयनोत्सवम् ॥ ६ ॥ तं क्रीडितमुखं दृष्ट्वा लङ्घमानं पदे पदे । अभवन् स्निग्धसंकल्पाः सर्वास्ताः कृष्णयोषितः ॥७॥ रुक्मिणी चैव तं दृष्ट्वा शोकार्ता पुत्रगृद्धिनी । सपत्नीशतसंकीर्णा सबाष्पा वाक्यमब्रवीत् ॥८॥ यादृक्स्वप्नो मया दृष्टो निशाया यौवने गते । कंसारिणा ममानीय दत्तं साहारपल्लवम् ॥ ९ ॥ शशिरश्मि-प्रतीकाशं मुक्तादामविभूषितम् । केशवेनाऽऽकर्णारोप्य मम कण्ठे

चले ॥ २ ॥ वह फुर्तीसे पराक्रम करने वाले मायाकी प्रद्युम्न आकाशमेंको होकर अपने पिताके तेजसे रञ्जित पुरीमें आगए ३ वह कामदेवकी समान रूपवान् बालक मायावतीके साथ केशव के रनवासमें उतर पड़ा ॥ ४ ॥ प्रद्युम्नके तहाँ उतरने पर केशव की स्त्रियें विस्मित होने लगीं, प्रसन्न होने लगीं और डर भी गईं ॥ ५ ॥ तदनन्तर वे उस स्त्रीके साथ आये हुए कामकी समान नयनोंको प्रसन्न करने वाले बालकको (नेत्रोंसे) पीती हुईसी देखने लगी ॥ ६ ॥ उसको पद २ में मुखको लगीला करते हुए देख कर कृष्णकी सब स्त्रियोंके मनमें उस पर वात्सल्य भावका उदय होगया ॥ ७ ॥ पुत्रको चाहने वाली शोकसे व्याकुल सैंकड़ों सौतोंसे घिरी हुई रुक्मिणीने उसको देख कर गद्गद कण्ठ से यह बात कही, कि-॥ ८ ॥ मैंने रात्रिका यौवन बीतने पर अर्थात् रात्रिके अन्तिम प्रहरमें जैसा स्वप्न देखा था (उसको सुनो) कंसके वैरीने मुझे हारपल्लव लाकर दिया था ॥ ९ ॥ वह सूर्यकी किरणोंकी समान था और मोतियोंकी लाड़ियोंसे

न्गवद्धतत ॥१०॥ श्यामा सुचारुकेशा स्त्री शुक्लाम्बरविभूषिता। पद्महस्ता निरीक्षन्ती प्रविष्टा मम वेश्मनि ॥ ११ ॥ तया पुनरहं गृह्य स्नापिता रुचिराम्बुना । कुशेशयमयीं मालां स्त्री संगृह्याथ पाणिना ॥ १२ ॥ मम मूर्धन्युपाघ्राय दत्ता स्वच्छतया मम । एवं स्वप्नान् कीर्तयन्ती रुक्मिणी हृष्टमानसा ॥ १३ ॥ सखीजनवृता देवी कुमारं वीक्ष्य तं मुहुः । धन्यायाः खल्वयं पुत्रो दीर्घायुः प्रियदर्शनः ॥ १४ ॥ ईदृशः कामसंकाशो यौवने प्रथमे स्थितः । जीव पुत्र त्वया पुत्र का सौभाग्यसमन्विता ॥ १५ ॥ किमर्थं चाम्बुदश्याम सभार्यस्त्वमिहागतः।अस्मिन्वयसि सुव्यक्तं प्रद्युम्नो मम पुत्रकः ॥ १६ ॥ भवेद्यदि न नीतः स्यात् कृतान्तेन बली-

---

विभूषित था; केशवने उसको मेरी गोदीमें रखकर मेरे गलेमें डाल दिया था ॥ १० ॥ (और मैंने देखा, कि-) सुन्दर केशों वाली शुक्लवस्त्रसे विभूषित हाथमें कमल लिए हुए एक श्यामा स्त्री मेरी ओरको देखती हुई मेरे घरमें घुस रही है ॥ ११ ॥ फिर उसने मुझे पकड़ कर रुचिर जलसे स्नान कराया है, तदनन्तर उस स्त्रीने कमलोंकी मालाको हाथसे पकड़ कर मेरे मस्तकको सूँघा फिर वह माला स्वच्छतासे मुझे दे दी रुक्मिणी प्रसन्न होकर इस प्रकार स्वप्नोंका वर्णन करने लगी ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त सखियोंसे घिरी हुई देवी रुक्मिणीने उस कुमार को बार २ देख कर कहा, कि-यह देखनेमें प्यारा लगने वाला दीर्घायु व्यक्ति किसी भाग्यवतीका पुत्र है ॥ १४ ॥ यह तो ऐसा है, मानो प्रशंसनीय यौवन वाला कामदेव ही हो, हे पुत्र ! तू जीता रह; हे पुत्र ! कौनसी स्त्री तुझसे भाग्यवती है ॥ १५ ॥ और हे मेघकी समान श्याम ! तू अपनी स्त्रीसहित यहाँ पर किस लिये आया है, मेरा पुत्र प्रद्युम्न भी यदि उसे बलवान् काल पकड़ कर न ले गया होगा तो इतना ही बड़ा

यसा । व्यक्तं कृष्णकुमारस्त्वं न मिथ्या मम तर्कितम् ॥ १७ ॥
विज्ञातोऽसि मया चिन्हैर्विना चक्रं जनार्दनः । मुखं नारायण-
स्यैव केशाः केशान्त एव च ॥ १८ ॥ ऊरु वक्षो भुजौ तुल्यौ हलिनः
श्वशुरस्य मे। कस्त्वं वृष्णिकुलं सर्वं द्योतयन् वपुषा स्थितः ॥ १९ ॥
अहो नारायणस्येव दिव्या ते परमा तनुः । एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः
सहसा प्रविवेश ह। नारदस्य वचः श्रुत्वा शम्बरस्य वधं प्रति २०
सोऽपश्यत्तं सुतं ज्येष्ठं सिद्धं मन्मथलक्षणैः । स्नुषां मायावतीं
चैव हृष्टचेता जनार्दनः ॥ २१ ॥ कृष्ण उवाच । सोऽब्रवीत्
सहसा देवीं रुक्मिणीं देवतामिव । अयं स देवि सम्प्राप्तः सुत-
श्चापधरस्तव ॥ २२ ॥ अनेन शम्बरं हत्वा मायायुद्धविशारदम् ।

होगा, तू कृष्णका ही कुमार प्रतीत होता है, मेरा सोचना मिथ्या नहीं होगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ तेरे चिन्होंसे मैंने तुझे पहिचान लिया है, तू चक्ररहित जनार्दनकी समान दीखता है, तेरा मुख नारायणकी समान है, और तेरे केश तथा केशान्त नारायणकी समान है १८ तुम्हारी जंघाएँ वक्षःस्थल और भुजाएँ मेरे श्वशुर हली (बलदेव) जीके समान हैं (बड़ा भाई पिताकी समान होता है अतः जेठको भी पतिसे बड़ा होनेके कारण श्वशुर कहा है) अपने शरीरसे सारे वृष्णिकुलको दिपाने वाला तू कौन है ? १९ अहो ! तेरा शरीर तो नारायणके शरीरकी समान दिव्य है, इसी समय श्रीकृष्ण भी नारदजीसे शंबरके वधकी बात सुन कर एक साथ तहाँ आगए २० उस समय कामदेवके लक्षणों से सिद्ध अपने पुत्रको और बहू मायावतीको देख कर जनार्दन का चित्त प्रसन्न होगया २१ कृष्णने कहा, कि–उस समय उन्हों ने सहसा देवताकी समान देवी रुक्मिणीसे कहा, कि–हे देवि ! यह तुम्हारा धनुषधारी पुत्र आगया २२ इसने मायासे युद्ध करने में चतुर शम्बरको मार कर जिससे वह देवताओंको पीड़ित करता

हता मायासुताः सर्वा याभिर्दैवानवाधगत् ॥ २३ ॥ सती चेयं शुभा साध्वी भार्या वै तनयस्य ते । मायावतीति विख्याता शम्बरस्य गृहोषिता ॥ २४ ॥ मा च ते शम्बरस्येयं पत्नीति भवतु व्यथा । मन्मथे तु गते नाशं गते चानंगतां पुरा ॥ २५ ॥ कामपत्नी न कान्तैषा शम्बरस्य रतिर्गिरा । मायारूपेण तं दैत्यं मोहयत्यसकृच्छुभा ॥ २६ ॥ न चैषा तस्य कौमारे वशे तिष्ठति शोभना । आत्ममायामयं कृत्वा रूपं शंबरमाविशत् ॥ २७ ॥ पत्न्येषा मम पुत्रस्य स्नुषा तव वरांगना । लोककांतस्य साहाय्यं करिष्यति मनोमयम् ॥ २८ ॥ प्रवेशयैनां भवने पूज्यां ज्येष्ठां स्नुषां मम । चिरं प्रनष्टं च सुतं भजस्व पुनरागतम् ॥ २९ ॥ वैशंपायन उवाच । श्रुत्वा तु वचनं देवी कृष्णेनोदाहृतं तदा । प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥ अहो धन्य-

रहता था, उन सब मायाओंको भी इसने नष्ट कर डाला है २३ यह सती और साध्वी तुम्हारे पुत्रकी भार्या है और वह शुभा मायावती नामसे प्रसिद्ध है और शम्बरके घरमें रही है २४ परन्तु इसको शम्बरकी भार्या मान कर तू खेद न करना क्योंकि-जब पहिले मन्मथ (काम) नष्ट होकर अनङ्ग होगया था ॥ २५ ॥ यह रति उस कामकी पत्नी है, और यह शम्बरकी पत्नी नहीं है ॥ २६ ॥ यह शोभना कुमारावस्थामें उसके वशमें नहीं रहती थी, यह अपना मायामय रूप बना कर शम्बरके घर रहती थी ॥ २७ ॥ यह मेरे पुत्रकी वधू है और तुम्हारी श्रेष्ठ स्त्री है, यह इस लोककान्तकी इच्छानुसार सहायता करगी ॥ २८ ॥ तू इस मेरी बड़ी पुत्रवधूको घरमें ले और चिरकालसे खोये हुए तथा इस समय फिर आए हुए अपने पुत्रकी सेवा कर ॥२९॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-देवी रुक्मिणीने श्रीकृष्णके कहे हुए वचनको सुन कर परमप्रसन्न हो यह बात कही, कि-॥ ३० ॥

तरास्मीति वीरपुत्रसमागमात् । अद्य मे सफलः कामः पूर्णो मेऽद्य मनोरथः ॥३१॥ चिरप्रनष्टपुत्रस्य दर्शनं प्रियया सह । आगच्छ पुत्रभवनं सभार्यः प्रविवेश ह ॥ ३२ ॥ ततोऽभिवाद्य चरणौ गोविंदं मातरं च ताम् । प्रद्युम्नः पूजयामास हलिनं च महाबलम् ॥ ३३ ॥ उत्थाप्य तं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय वीर्यवान् । प्रद्युम्नं बलिनां श्रेष्ठं केशवः परवीरहा ॥३४॥ स्नुषां चोत्थाप्य तां देवीं रुक्मिणी रुक्मभूषणा । परिष्वज्योपसंगृह्य स्नेहाद्गद्गदभाषिणी ॥ ३५ ॥ समेत्य भुवनं पत्न्या शचीन्द्रमदितिर्यथा । प्रवेशयामास तदा रुक्मिणीसुतमागतम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

मेरा धन्यभाग्य है, वीरपुत्रका समागम होनेसे आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा मनोरथ पूर्ण होगया ॥ ३१ ॥ मुझे बहुत कालसे खोए हुए अपने पुत्रका और उसकी घर वालीका दर्शन हुआ है हे पुत्र ! तुम आओ तदनन्तर प्रद्युम्नने अपनी भार्याके साथ घरमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर प्रद्युम्नने अपनी माताके और गोविन्दके चरणोंमें प्रणाम करके महाबली बलदेवजीकी पूजा की ॥३३॥ तदनन्तर शत्रुओंके वीरोंका नाश करने वाले वीर्यवान् केशवने बलवानोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नको उठाकर उसका अलिङ्गन कर उसके मस्तकको सूँघा ३४ और सुवर्णके आभूषणोंको धारण करनेवाली रुक्मिणीने भी अपनी कान्तिमती वधूको उठाकर उसका आलिङ्गन किया और उसको पकड़कर स्नेहभरी गद्गद वाणीसे बात चीत करने लगी ।३५। जिस प्रकार अदिति इन्द्राणीके स्वामीको भवनमें घुसाती है इसीप्रकार रुक्मिणीने अपने आये हुए पुत्रको मकानमें प्रवेश कराया ३६ एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥

वैशम्पायन उवाच । अत्राश्चर्यात्मकं स्तोत्रमाह्निकं यजतां वर । प्रद्युम्ने द्वारकां प्राप्ते हत्वा तं कालशम्बरम् ॥ १ ॥ बलदेवेन रक्षार्थं प्रोक्तमाह्निकमुच्यते । यज्जप्त्वा तु नृपश्रेष्ठ सायं पूतात्मतां व्रजेत् ॥ २ ॥ कीर्तितं बलदेवेन विष्णुना चैव कीर्तितम् । धर्मकामैश्च मुनिभिऋषिभिश्चापि कीर्तितम् ॥३॥ कर्हिचिद्रुक्मिणीपुत्रो हलिना संयुतो गृहे । उपविष्टः प्रणम्याथ तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ प्रद्युम्न उवाच । कृष्णानुज महाभाग रोहिणीतनयः प्रभो । किंचित् स्तोत्रं मम ब्रूहि यज्जप्त्वा निर्भयोऽभवम् ॥ ५ ॥ श्रीबलदेव उवाच । सुरासुरगुरुर्ब्रह्मा पातु मां जगतः पतिः । अथोंकारवषट्कारौ सावित्री विषयस्त्रयः ॥ ६ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि च्छन्दांस्याथर्वणानि च । चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः ॥ ७ ॥ पुराणमितिहासश्च

वैशम्पायनजीने कहा, कि-यहाँ एक आश्चर्यजनक आह्निक स्तोत्र है. जब प्रद्युम्न कालशम्बरको मार कर द्वारकामें आये थे उस समय बलदेवजीने रक्षा करनेके लिये एक आह्निक कहा था यह बात कही जाती है, कि—हे नृपश्रेष्ठ! उसको जपनेसे मनुष्य सायंकाल में पवित्र होजाता है ॥१॥२॥ बलदेवजीने इसका कीर्तन किया है और विष्णुने भी इसको गाया है और धर्म चाहनेवाले ऋषि और मुनि भी गाया करते हैं ॥ ३ ॥ एक समय रुक्मिणीपुत्र और बलदेवजी घरमें मिल कर बैठे हुए थे उस समय प्रद्युम्न ने उनको प्रणाम कर उनसे बात चीत की ॥४॥ प्रद्युम्नने कहा, कि—कृष्ण जिनके छोटे भाई हैं ऐसे महाभाग हे रोहिणी-नन्दन प्रभो! किसी ऐसे स्तोत्रका वर्णन करिये जिसका जप कर मैं निर्भय होजाऊँ ।५। बलदेवजीने कहा, कि-देवता और असुरों के गुरु तथा जगत्के स्वामी ब्रह्माजी मेरी रक्षा करें और ॐ कार वषट्कार तीन प्रकारकी गायत्री ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और

खिलान्युपखिलानि च । अङ्गान्युपाङ्गानि तथा व्याख्यातानि च पान्तु माम् ॥ ८ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् । इन्द्रियाणि मनो बुद्धिस्तथा सत्वं रजस्तमः ॥९॥ व्यानोदानः समानश्च प्राणोपानश्च पञ्चमः।वायवः सप्त चैवान्ये येष्वायत्तमिदं जगत् ॥ १० ॥ मरीचिरङ्गिरात्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । भृगुर्वसिष्ठो भगवान् पान्तु ते मां महर्षयः ॥११॥ कश्यपाद्याश्च मुनयश्चतुर्दश दिशो दश । नरनारायणौ देवौ सगणौ पान्तु मां सदा ॥ १२ ॥रुद्राश्चैकादश प्रोक्ता आदित्या द्वादशैव तु । अष्टौ च वसवो देवा अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ १३ ॥ ह्रीः श्रीर्लक्ष्मी स्वधा मेधा तुष्टिः पुष्टिः स्मृतिर्धृतिः । अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सिंहिका दैत्यमातरः ॥ १४ ॥ हिमवान् हेमकूटश्च निषधः श्वेतपर्वतः । ऋषभः पारियात्रश्च विन्ध्यो वैडूर्यपर्वतः ॥१५॥

अथर्ववेदके छन्द तथा चारों पूर्ण वेद और उनके विस्तृत रहस्य पुराण इतिहास खिल और उपखिल तथा कहे जाने वाले अंग और उपाङ्ग भी मेरी रक्षा करे ॥६–८॥ पृथिवी वायु आकाश जल और पाँचवाँ तेज इन्द्रिय मन बुद्धि सत्व रज और तम व्यान उदान समान प्राण और पाँचवां अपान और जिनके अधीनमें यह जगत् रहता है वे सात दूसरी वायुएँ मरीचि अङ्गिरा अत्रि पुलस्त्य, पुलह क्रतु, भृगु, और भगवान् वशिष्ठ यह महर्षि मेरी रक्षा करें ॥ ९–११ ॥ कश्यप आदि चौदह मुनि दश दिशाएँ और गणों सहित नरनारायण देव मेरी सदा रक्षा करें ॥१२॥ ग्यारह रुद्र बारह आदित्य और जो आठ वसु कहे हैं तथा जो देवता अश्विनीकुमार कहे हैं ॥ १३ ॥ ह्री, श्री, लक्ष्मी, स्वधा, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, स्मृति धृति और अदिति तथा दिति दनु और सिंहिका नामवाली दैत्योंकी माताएँ हिमाचल हेमकूट निषध और श्वेत पर्वत तथा ऋषभ पारियात्र विंध्य और वैदूर्य

सह्योदयश्च मलयो मेरुमन्दरदर्दुराः । क्रौंचकैलासमैनाकाः पांतु मां धरणीधराः ॥ १६ ॥ शेषश्च वासुकिश्चैव विशालाक्षश्च तक्षकः । एलापत्रः शुक्लवर्णः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ १७ ॥ हस्तिभद्रः पिटरकः कर्कोटकधनञ्जयौ । तथा पूरणकश्चैव नागश्च करवीरकः ॥ १८ ॥ सुमनास्यो दधिमुखस्तथा शृङ्गारपिंडकः । मणिनागश्च भगवांस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १९ ॥ नागराडधिकर्णश्च तथा हारिद्रको परः । एते चान्ये च बहवो ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥२०॥ भूधराः सत्यधर्माणः पान्तु मां भुजगेश्वराः । समुद्राः पान्तु चत्वारो गंगा च सरितां वरा ॥ २१ ॥ सरस्वती चन्द्रभागा शतद्रुर्देविका शिवा । इरावती विपाशा च सरयुर्यमुना तथा २२ कल्माषी च रथोष्मा च बाहुदा च हिरण्यदा । प्लक्षा चेक्षुमती चैव स्रवन्ती च बृहद्रथा२३ख्याता चर्मण्वती चैव पुण्या चैव वधूसरा । एताश्चान्याश्च सरितो याश्चान्या नानुकीर्तिताः उत्तरापथगामिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम् वेणी गोदावरी सीता

पर्वत सह्य उदय मलय, मेरु, मन्दर, दर्दुर तथा क्रौंच कैलास और मैनाकपर्वत मेरी रक्षा करें ॥ १४–१६ ॥ शेष, वासुकि, विशालाक्ष और तक्षक एलापत्र शुक्लवर्ण तथा कम्बल और अश्वतर नामक दोनों सर्प हस्तिभद्र, पिटरक, कर्कोटक, धनञ्जय, पूरण और करवीरक नाग सुमनास्य, दधिमुख तथा शृंगारपिण्डक, और त्रिलोकीमें प्रसिद्ध भगवान् मणिनाग नागराज अधिकर्ण तथा हारिद्रक, ये और जिनका वर्णन नहीं किया है, वे सत्य धर्म वाले पृथ्वीधारी भुजगेश्वर मेरी रक्षा करें तथा नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा सरस्वती चन्द्रभागा शतद्रु देविका शिवा इरावती विपाशा सरयू तथा यमुना, कल्माषी, रथोष्मा बाहुदा हिरण्यदा प्लक्षा इक्षुमती स्रवन्ती बृहद्रथा प्रसिद्ध चर्मण्वती पुण्या वधूसरा ये तथा जिन नदियोंका कीर्तन नहीं किया है वे उत्तराखण्ड

कावेरी कौंकणावती ॥ २५ ॥ कृष्णा वेणा मुक्तिमती तमसा पुण्यवाहिनी । ताम्रपर्णी ज्योतिरथा उत्पलोदुम्बरावती ॥२६॥ नदी वैतरणी पुण्या विदर्भा नर्मदा शुभा । वितस्ता भीमरथ्या च ऐला चैव महानदी ॥ २७ ॥ कालिन्दी गोमती पुण्या नदः शोणश्च विश्रुतः । एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या न तु कीर्तिताः ॥२८॥ दक्षिणापथवाहिन्यः सलिलैः स्नपयन्तु माम् । क्षिप्रा चर्मण्वती पुण्या मही शुभ्रवती तथा ॥ २९ ॥ सिंधुर्वेत्रवती चैव भोजान्ता वनमालिका । पूर्वभद्रा परा भद्रा उर्मिला च परद्रुमा ॥ ३० ॥ ख्याता वेत्रवती चैव चापदासीति विश्रुता । मरुस्थावती कुण्डनदी नदी पुण्या सरस्वती ॥ ३१ ॥ चित्रघ्नी चेन्दुमाला च तथा मधुवती नदी । उमा गुरुनदी चैव तापी च विमलोदका ॥३२॥ विमला विमलोदा च मत्तगंगा पयस्विनी । एताश्चान्याश्च वै नद्यो याश्चान्या नानुकीर्तिताः ॥ ३३ ॥

से बहने वाली मुझे जलसे स्नान करावें, वेणी गोदावरी सीता कावेरी कौंकणावती कृष्णवेणा मुक्तिमती तमसा पुण्यवाहिनी ताम्रपर्णी ज्योतिरथा उत्पला उदुम्बरावती वैतरणी नदी पुण्या विदर्भा शुभा-नर्मदा वितस्ता भीमरथ और महानदी-ऐला कालिन्दी गोमती पुण्या और प्रसिद्ध नद सोन, ये नदियें और जिन नदियोंका कीर्तन नहीं किया है वे दक्षिणापथवाहिनी(दक्षिण में बहनेवाली नदियें मुझे जलोंसे स्नान करावें, क्षिपा चर्मण्वती पुण्या मही तथा शुभ्रवती सिंधु वेत्रवती भोजान्ता वनमालिका पूर्वभद्रा परा भद्रा उर्मिला परद्रुमा प्रसिद्ध-वेत्रवती प्रसिद्ध अपदासी मरुस्थावती कुण्डनदी पुण्यवती-सरस्वती चित्रघ्नी इन्दुमाला मधुमती-नदी उमा गुरुनदी, निर्मल जलवाली-तापी निर्मल जल वाली-विमला मत्तगङ्गा पयस्विनी, ये नदियें और जिनका कीर्तन नहीं किया है वे पश्चिम दिशाकी नदियें मेरा अभिषेक करें, पूर्व

ता मां समभिषिंचन्तु पश्चिमामाश्रिता दिशम् । भागीरथी पुण्य-जला प्राच्यां दिशि समाश्रिता ॥ ३४ ॥ सा तु दहतु मे पापं कीर्तिता शम्भुना धृता । प्रभासं च प्रयागं च नैमिषं पुष्कराणि च ॥ ३५ ॥ गंगातीर्थं कुरुक्षेत्रं श्रीकण्ठं गौतमाश्रमम् । रामा-ह्रदं विनशनं रामतीर्थं तथैव च ॥ ३६ ॥ गंगाद्वारं कनखलं सोमो-यत्र चोत्थितः । कपालमोचनं तीर्थं जम्बूमार्गं च विश्रुतम् ॥ ३७ ॥ सुवर्णविन्दुविख्यातं तथा कनकपिंगलम् । दशाश्वमेधिकं चैव पुण्याश्रमविभूषितम् ॥ ३८ ॥ बदरी चैव विख्याता नरनारा-यणाश्रमः । विख्यातं फल्गुतीर्थं च तीर्थं चन्द्रवटं तथा ॥ ३९ ॥ कोकामुखं पुण्यतमं गंगासागरमेव च । मगधेषु तपोदश्च गंगो-द्भेदश्च विश्रुतः ॥ ४० ॥ तीर्थान्येतानि पुण्यानि सेवितानि महर्षिभिः । सूकरं योगमार्गं च श्वेतद्वीपं तथैव च ॥ ४१ ॥ ब्रह्म-तीर्थं रामतीर्थं वाजिमेध-शतोपमम् । धारासम्पातसंयुक्ता गंगा किल्बिषनाशिनी ॥ ४२ ॥ गंगावैकुण्ठकेदारं सूकरो भेदनं परम् । तं शापमोचनं तीर्थं पुनन्त्वेतानि किल्बिषात् ॥ ४३ ॥ धर्मार्थ-

दिशाकी पवित्र जल वाली भागीरथी वह शंभुकी धारण कीहुई प्रशंसनीय गंगा मेरे पापको भस्म करे प्रभास प्रयाग नैमिष पुष्कर गंगातीर्थ श्रीकण्ठ गौतमाश्रम रामह्रद विनशन तथा रामतीर्थ गंगा-द्वार कनखल और जहाँ उमा सहित शिव प्रकट हुए थे वह तीर्थ, कपालमोचन प्रसिद्ध जम्बूमार्ग प्रसिद्ध सुवर्णविन्दु कनकपिंगल पुण्यमय आश्रमोंसे विभूषित दशाश्वमेध प्रसिद्ध-बदरिकाश्रम नरनारायणाश्रम प्रसिद्ध-फल्गुतीर्थ चन्द्रवट तीर्थ पुण्यतम कोका-मुख गङ्गासागर और मगध देशके प्रसिद्ध तपोद और गङ्गोद्भेद, महर्षियोंसे सेवित पवित्र तीर्थ तथा सूकर योगमार्ग श्वेतद्वीप ब्रह्मतीर्थ सौ अश्वमेधोंकी समान रामतीर्थ और धाराके प्रपात से युक्त कल्बिषनाशिनी गंगा गंगावैकुण्ठकेदार परभेदन सूकर

कामविषयो यशः प्राप्तिः शमो दमः । वरुणेशोऽथ धनदो यमो नियम एव च ॥ ४४ ॥ कालो नयः सन्नतिश्च क्रोधो मोहः क्षमा धृतिः । विद्युतोऽभ्राण्यथौषध्यः प्रमादोन्मादविग्रहाः ॥४५॥ यक्षाः पिशाचगन्धर्वाः किन्नराः सिद्धचारणाः । नक्तंचराः खेचरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः ॥ ४६ ॥ लम्बोदराश्च बलिनः पिंगाक्षा विश्वरूपिणः।मरुतः सह पर्जन्याः कलात्रुटिलवाः क्षणाः नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव ऋतवः शिशिरादयः । मासाहोरात्रयश्चैव सूर्याचन्द्रमसौ तथा ४८आमोदश्च प्रमोदश्च प्रहर्षः शोक एव च। रजस्तमस्तपः सत्वं शुद्धिर्बुद्धिर्धृतिः श्रुतिः४९रुद्राणी भद्रकाली च भद्रा ज्येष्ठा तु वारुणी । भासी च कालिका चैव शांडिली चेति विश्रुता५०आर्या कुहूः सिनीवाली भीमा चित्ररथी रतिः । एकानंशा च कूष्मांडी देवी कात्यायनी च या५१ लोहित्या जनमाता च देवकन्या तु याः स्मृताः । गोनंदा देवपत्नी च मां रक्षतु सबा-

और पापमोचन तीर्थ ये तीर्थ मुझे पापसे छुटावें ॥ १७–४३ ॥ धर्म अर्थ काम विषय यश प्राप्ति शम दम वरुण ईश कुबेर यम नियम काल नीति सन्नति क्रोध मोह क्षमा धृति बिजली बादल ओषधियें प्रमाद उन्माद विग्रह यक्ष पिशाच गन्धर्व किन्नर सिद्ध चारण गन्धर्व रात्रिमें फिरने वाले आकाशमें फिरने वाले डाढ वाले प्रिय शरीर वाले, लम्बे पेट वाले बलवान् पीले नेत्रों वाले विश्वरूप मेघ वायु कला त्रुटि, लव क्षण नक्षत्र ग्रह शिशिर आदि ऋतु मास दिन रात सूर्य तथा चंद्रमा आमोद प्रमोद प्रहर्ष शोक रज तम सत्व शुद्धि बुद्धि धृति श्रुति रुद्राणी भद्रकाली भद्रा ज्येष्ठा वारुणी भासी कालिका और प्रसिद्ध शाण्डिली आर्या कुहू सिनीवाली भीमा चित्ररथी रति पूर्णा कूष्माण्डी देवी कात्यायनी लौहित्या जनमाता और जो देवकन्याएँ कहीं हैं, वे गोनन्दा और देवपत्नी भी मेरी और मेरे बान्धवोंकी रक्षा करें ४४ ५२

धवम् ॥ ५२ ॥ नानाभरणवेषाश्च नानारूपांकितानना: । नाना-देशविचारिण्यो नानाशस्त्रोपशोभिता: ॥५३॥ मेदोमज्जाप्रिया-श्चैव मद्यमांसवसाप्रिया: । मार्जारद्वीपिवक्त्राश्च गजसिंहनिभा-नना: ॥५४॥ कंकवायसगृध्राणां क्रौंचतुल्याननास्तथा । व्याल-यज्ञोपवीताश्च चर्मप्रावरणास्तथा ॥ ५५ ॥ रक्तजोक्षितवक्त्राश्च खरभेरी-समस्वना: । मत्सरा: क्रोधनाश्चैव प्रसादा रुचिरा-लया: ॥५६॥मत्तोन्मत्तप्रमत्ताश्च प्रहरंत्यश्च धिष्ठिता: । पिंगाक्षा: पिंगकेशाश्च ततोन्या लूनमूर्धजा:॥५७ ऊर्ध्वकेश्य: कृष्णकेश्य: श्वेतकेश्यस्तथावरा: । नागायुतबलाश्चैव वायुवेगास्तथा परा:५८ एकहस्ता एकपादा एकाक्षा: पिंगला मता: । बहुपुत्राल्पपुत्रा-श्च द्विपुत्रा: पुत्रमंडिका: ॥ ५९ ॥ मुखमुंडी विडाली च पूतना

अनेक प्रकारके आभरण और वेषोंको धारण करने वाली अनेक रूपोंसे अंकित मुख वाली अनेक देशोंमें विचरने वाली अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे सुशोभित मेद और मज्जाको प्रिय समझने वाली मद्य मांस और वसाको प्रिय समझने वाली, मार्जार और भेड़ियों के समान मुख वाली और तथा सिंहके समान मुख वालीं तथा कंक कौए गीध और क्रौञ्च पक्षीके समान मुख वालीं; सर्पके यज्ञोपवीतको धारण करने वालीं तथा चमड़ेको ओढ़ने वालीं; रक्त छिटके हुए मुख वालीं, गधे और नगाड़ेकी समान शब्द करने वालीं, मत्सर और क्रोध करने वाली, प्रासादा, रुचिरा-लया मत्ता उन्मत्तप्रमत्ता प्रहरन्ती अधिष्ठिता पिङ्गाक्षा पिङ्गकेशा इस के अतिरिक्त कटे हुए बालों वाली काले केशों वालीं श्वेत केशों वालीं अपरा दश सहस्र हाथियोंके समान बल वालीं और वायु की समान वेग वालीं एक हाथ वालीं एक पैर वालीं एक नेत्र वालीं, पिङ्गला, अनेक पुत्रों वालीं, थोड़े पुत्रों वालीं, दो पुत्र वालीं, पुत्रमण्डिका मुखमुण्डी बिडाली पूतना गन्धपूतना शीत-

गर्भपूतना । शीतवातोष्णवेताली रेवती ग्रहसंज्ञिताः ॥६० ॥ प्रियहास्याः प्रियक्रोधाः प्रियवासाः प्रियंवदाः । सुखप्रदाश्चासुखदाः सदा द्विजजनप्रियाः ॥ ६१ ॥नक्तंचराः सुखोदर्काः सदा पर्वणि दारुणाः । मातरो मातृवत्पुत्रं रक्षंतु मम नित्यशः ॥६२॥ पितामहमुखोद्भूता रौद्रा रुद्राङ्गसंभवाः । कुमारस्वेदजाश्चैव ज्वरा वैष्णवादयः ॥६३॥ महाभीमा महावीर्या दर्पोद्धता महाबलाः । क्रोधनाऽक्रोधनाः क्रूराः सुरविग्रहधारिणः ॥ ६४ ॥ नक्तञ्चराः केसरिणो दंष्ट्रिणः प्रियविग्रहाः । लंबोदरा जघनिनः पिंगाक्षा विश्वरूपिणः ॥ ६५ ॥शक्त्यृष्टिशूलपरिघासचर्मासिपाणयः । पिनाकवज्रमुशलखड्गदंडायुधप्रियाः ॥ ६६ ॥ दंडिनः कुंडिनः शूरा जटामुकुटधारिणः । वेदवेदाङ्गकुशला नित्ययज्ञोपवीतिनः ६७

वातोष्णवेताली और रेवती ग्रह नाम वालीं, हास्यको प्रिय समझने वालीं क्रोधको प्रिय समझने वालीं, वस्त्रको प्रिय समझने वालीं, प्रिय बोलने वालीं सुख देने वालीं, असुख देने वालीं, सर्वदा ब्राह्मणोंकी प्यारीं रात्रिमें फिरने वालीं तथा पर्वके समय दारुण बन जानेवालीं माताएँ मेरे पुत्रकी माताकी समान सदा रक्षा करें पितामहके मुखसे उत्पन्न हुए, भयंकर, रुद्रके अङ्गमें उत्पन्न हुए, कुमारके स्वेदसे उत्पन्न हुए तथा वैष्णव आदि ज्वर(इसकी रक्षा करें) ॥५३–६३॥ महाभयंकर महावीर्य, दर्पसे उद्धत, महाबली, क्रोधी, अक्रोधी, क्रूर देवताओंके शरीरोंको धारण करने वाले, रात्रिमें फिरनेवाले केसर वाले डाढ़ वाले प्रिय शरीर वाले लम्बे पेट वाले जघन वाले पीले नेत्रों वाले विश्वरूप और हाथमें शक्ति ऋष्टि शूल परिघ तथा ढाल तलवार धारण करने वाले और पिनाक वज्र मूसल व खड्ग और आयुधोंको प्रिय समझने वाले दण्डधारी कुण्डलधारी शूर जटा और मुकुटको धारण करने वाले; वेद और वेदांगमें कुशल और सर्वदा यज्ञोपवीतको

व्यालापीडाः कुंडलिनो वीराः केयूरधारिणः । नानावसनसंवी-
तास्चित्रमाल्यानुलेपनाः॥६८॥ गजाश्वोष्ट्रमार्जारसिंहव्याघ्रनि-
भाननाः । वराहोलूकगोमायुमृगाखुमहिषाननाः ॥६९॥ वामना
विकटाः कुब्जाः करालालूनमूर्धजाः । सहस्रशतशश्चान्ये सहस्र-
जटधारिणः ॥७०॥ श्वेताः कैलाससंकाशाः केचिद्दिनकरप्रभाः ।
केचिज्जलदवर्णाभा नीलाञ्जनचयोपमाः ॥७१॥ एकपादा द्विपा-
दाश्च तथा द्विशिरसोऽपरे । निर्मांसाः स्थूलजंघाश्च व्यादिता-
स्या भयंकराः ॥ ७२ ॥ वापीतडागकूपेषु समुद्रेषु सरित्सु च ।
श्मशानशैलवृक्षेषु शून्यागारनिवासिनः ॥ ७३ ॥ एते ग्रहाश्च
सततं रक्षन्तु मम सर्वतः । महागणपतिर्नंदी महाकालो महाबलः ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च ज्वरो लोकभयावहो ॥ ७४ ॥ ग्रामणीश्चैव
गोपालो भृंगरीटिर्गणेश्वरः॥ देवश्च वामदेवश्च घंटाकर्णः करं-
धमः ॥७५॥ श्वेतमौदः कपाली च जंभकः शत्रुतापनः । मञ्ज-

को धारण करने वाले, सर्पके मुकुट धारण करने वाले कुण्डल-
धारी केयूरधारी वीर, अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे ढकेहुए विचित्र
चन्दनका लेप करने वाले तथा हाथी घोड़े ऊँट मार्जार सिंह और
व्याघ्रकी समान नेत्र वाले तथा वराह उल्लू गीदड़ मृग और चूहे
तथा भैंसेके समान मुख वाले बौने विकट कुबड़े कराल कटे हुए
केशों वाले सैंकड़ों और सहस्रों जटाधारी, कैलासकी समान श्वेत
सूर्यकी किरणोंकी समान कान्ति वाले मेघोंके वर्णकी समान
आभा वाले, नीले अञ्जनकी समान, एक पैर वाले दो पैर, दो
शिरवाले,मांसरहित,स्थूल जंघा वाले,फटेहुए मुख वाले भयङ्कर,
वापी तड़ाग कूप समुद्र नदी श्मशान पर्वत वृक्ष तथा शून्य स्थानोंमें
रहने वाले,ये सब ग्रह मेरी सर्वदा सब ओरसे रक्षा करें,महागण-
पति नंदी महाबली महाकाल और,लोकोंको भय देनेवाले माहेश्वर
और,वैष्णव नामके ज्वर,ग्रामणी गोपाल गणेश्वर भृङ्गरीटी वाम-

नोन्मज्जनो चोभौ संतापनविलापनौ ॥७६॥ निजघासो घसश्चैव स्थूणाकर्णः प्रशोषणः । उल्कामाली धमधमो ज्वालामाली प्रदर्शनः ॥७७॥ संघट्टनः संकुटनः काष्ठभूतः शिवंकरः । कूष्माण्डः कुम्भमूर्धा च रोचनो वै कृतो ग्रहः ॥७८॥अनिकेतः सुरारिघ्नः शिवश्चाशिव एव च । क्षेमकः पिशिताशी च सुरारिर्हरिलोचनः ॥७९॥ भीमको ग्राहकश्चैव तथैवाग्रमयो ग्रहः । उपग्रहोर्यकश्चैव तथा स्कंदग्रहोपरः ॥ ८० ॥ चपलो समवेतालस्तामसः सुगहाकपिः । हृदयोद्वर्तनश्चैडः कुण्डाशी कंकणप्रियः ॥ ८१ ॥ हरिश्मश्रुर्गरुत्मंतो मनोमारुतरंहसः । पार्वत्या रोषसंभूताः सहस्राणि शतानि च ॥८२॥ शक्तिमंतो द्युतिमंतो ब्रह्मण्याः सत्यसंगराः । सर्वकामापहंतारो द्विषतां च मृधे मृधे ८३ रात्र्यावहनि दुर्गेषु कीर्तिताः सकलैर्गुणैः । तेषां गणानां पतयः सगणाः पांतु मां सदा ॥८४॥ नारदः पर्वतश्चैव गंधर्वाप्सरसां गणाः । पितरः

देव-देव–देव घण्टाकर्ण करन्धम श्वेतमोद कपाली जम्भक शत्रुतापन मज्जन उन्मज्जन तथा सन्तापन और विलापन निजघास घस स्थूणाकर्ण प्रशोषण उल्कामाली धमधम ज्वालामाली प्रदर्शन संघट्टन सङ्कुट्टन काष्ठभूत शिवङ्कर कूष्माण्ड कुम्भमूर्धा रोचन कृत ग्रह अनिकेत सुरारिघ्न शिव तथा अशिव क्षेमक पिशिताशी सुरारि हरिलोचन भीमक ग्राहक तथा अग्रमय ग्रह उपग्रह अर्यक, दूसरा स्कन्द नामक ग्रह चपल समवेताल तामस सुगहाकपि हृदयोद्वर्तन चैड कुण्डाशी कंकणप्रिय,हरी मूछों वाला गरुत्मान् और पार्वती के रोषसे उत्पन्न हुए मन और पवनकी समान वेग वाले शक्तिमान् कान्तिमान् ब्रह्मण्य सत्यप्रतिज्ञ,सब कामनाओंको नष्ट करने वाले और प्रत्येक संग्राममें शत्रुओंको भी मारने वाले और सकल गुणोंसे युक्त रात्रि और दिनमें कीर्तनीय और इन गणोंके गण सहित, स्वामी मेरी सदा रक्षा करें ॥ ६४–८४ ॥ नारद पर्वत

कारणं कार्यमाधयो व्याधयस्तदा ॥ ८५ ॥ अगस्त्यो गालवो गार्ग्यः शक्तिर्धौम्यः पराशरः। कृष्णात्रेयश्च भगवानसितो देवलो बलः ॥ ८६ ॥ बृहस्पतिरुतथ्यश्च मार्कण्डेयः श्रुतश्रवाः। द्वैपायनो विदर्भश्च जैमिनिर्माठरः कठः ॥८७॥ विश्वामित्रो वसिष्ठश्च लोमशश्च महामुनिः। उत्तंकश्चैव रैभ्यश्च पौलोमश्च द्वितस्त्रितः ॥ ८८ ॥ ऋषिर्नौ कालवृत्तीयो मुनिर्मेधातिथिस्तथा। सारस्वतो यवक्रीतः कुशिको गौतमस्तथा ॥८९॥ संवर्त ऋष्यशृङ्गश्च स्वस्त्यात्रेयो विभांडकः। ऋचिको जमदग्निश्च तथौर्वस्तपसां निधिः ॥ ९० ॥ भरद्वाजः स्थूलशिराः काश्यपः पुलहः क्रतुः। बृहदग्निर्हरिश्मश्रुर्विजयः कण्व एव च ॥ ९१ ॥ गौतंडी दीर्घतापाश्च वेदगाथोंशुमाञ्छिवः। अष्टावक्रो दधीचिश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥९२॥ उद्दालकः क्षारपाणिः शृङ्गी गौरमुखस्तथा। अग्निवेश्यः शमीकश्च ममुचुर्मुमुचुस्तथा ॥ ९३ ॥ एते चान्ये च ऋषयो बहवः शंसितव्रताः। मुनयः शंसितात्मानो ये चान्ये

गंधर्व और अप्सराओंके टोले पितर कारण कार्य आधि और व्याधियें अगस्त्य गालव गार्ग्य शक्ति धौम्य पराशर कृष्णात्रेय भगवान् असित देवल बल बृहस्पति उतथ्य मार्कण्डेय श्रुतश्रवा द्वैपायन विदर्भ जैमिनि माठर कठ विश्वामित्र वसिष्ठ और महामुनि लोमश उत्तम रैभ्य पौलोम द्वित त्रित कालवृत्तीय ऋषि मेधातिथि मुनि सारस्वत यवक्रीत कुशिक गौतम सम्वर्त ऋष्यशृङ्ग स्वस्त्यात्रेय विभाण्डक ऋचीक जमदग्नि, तपोनिधि और्व भरद्वाज शूलशिरा कश्यप पुलह क्रतु बृहदग्नि हरिश्मश्रु विजय कण्व गौतण्डी दीर्घतापा वेदगाथ अंशुमान् शिव अष्टावक्र दधीचि तथा श्वेतकेतु उद्दालक क्षारपाणि शृङ्गी तथा गौरमुख अग्निवेश्य शमीक ममुचु मुमुचु ये तथा और बहुतसे प्रशंसित व्रत वाले ऋषि और प्रशंसनीय आत्मा वाले मुनि और जिनका कीर्तन नहीं किया है

नानुकीर्तिताः ॥ ९४ ॥ क्रतवः श्लाघिनः शांताः शांतिं कुर्वंतु मे सदा । त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रैविद्या कौस्तुभो मणिः ॥ ९५ ॥ उच्चैःश्रवा हयः श्रीमान्वैद्यो धन्वंतरिर्हरिः । अमृतं गौः सुपर्णश्च दधिगौराश्च सर्षपाः ॥ ९६ ॥ शुक्लाः सुमनसः कन्याः श्वेतच्छत्रं यवाक्षताः । दूर्वा हिरण्यं गंधाश्च बालव्यजनमेव च ॥९७॥ तथाऽप्रतिहतं चक्रं महोक्षश्चंदनं विषम् । श्वेतो वृषः करी मत्तः सिंहो व्याघ्रो हयो गिरिः ॥९८॥ पृथिवी चोद्धृता लाजा ब्राह्मणा मधुपायसम् । स्वस्तिको वर्धमानश्च नंद्यावर्तः प्रियंगवः । श्रीफलं गोमयं मत्स्यो दुंदुभिः पटहस्वनः ९९ ऋषिपत्न्यश्च कन्याश्च श्रीमद्भद्रासनं धनुः । रोचनारुचकश्चैव नदीनां संगमोदकम् ॥२००॥ सुपर्णाः शतपत्राश्च चकोरा जीवजीवकाः । नंदीमुखो मयूरश्च बद्धमुक्तामणिध्वजाः ॥ १ ॥ आयुधानि प्रशस्तानि कार्यसिद्धिकराणि च । पुण्यं वै विगतक्लेशं श्रीमद्वै मङ्गलान्वितम् ॥२॥ रामेणोदाहृतं पूर्वमायुःश्रीजयकांक्षिणा । य इदं श्रावयेद्विद्वांस्त-

ऐसे यज्ञ करने वाले प्रशंसनीय शान्त व्यक्ति मेरे लिये सदा शांति करें, तीन अग्नि तीन वेद तीन विद्याएँ कौस्तुभ मणि उच्चैःश्रवा अश्व श्रीमान्-धन्वन्तरि वैद्य, हरि अमृत गौ गरुड़ छत्र और अक्षत दूर्वा सुवर्ण गन्ध बालव्यजन तथा अप्रतिहत चक्र महावृषभ श्वेत वृष मत्त हस्ती सिंह व्याघ्र अश्व गिरि उठी हुई पृथ्वी खीलें ब्राह्मण मधु दुग्ध स्वस्तिक वर्धमान नन्द्यावर्त प्रियंगव श्रीफल गोमय मत्स्य दुन्दुभि, पटहस्वन, ऋषिपत्नियें, कन्याएँ श्रीमान् भद्रासन धनुष रोचनारुचक, नदियोंके सङ्गमका जल, सुपर्ण शतपत्र चकोर जीवजीवक नन्दीमुख मयूर मणि मोती बँधी हुई ध्वजाएँ; कार्यको सिद्ध करने वाले प्रशंसनीय आयुध (ये मेरी और मेरे पुत्रकी रक्षा करें) आयु लक्ष्मी और जय चाहने वाले बलराम ने यह पुण्यमय क्लेशरहित (करने वाला) यह स्तोत्र कहा है,

वैव शृणुयान्नरः ॥३॥ मंगलाष्टशतं स्नातो जपन्पर्वणि पर्वणि। वधबंधपरिक्लेशं व्याधिशोकपराभवम् ॥ ४ ॥ न च प्राप्नोति वैक्लव्यं परत्रेह च शर्मदम्। धन्यं यशस्यमायुष्यं पवित्रं वेदसंमितम् ॥ ५ ॥ श्रीमत्स्वर्ग्यं सदा पुण्यमपत्यजननं शिवम्। शुभं क्षेमकरं नृणां मेधाजननमुत्तमम् ॥ ६ ॥सर्वरोगप्रशमनं स्वकीर्तिकुलवर्धनम्। श्रद्दधानो दयोपेतो यः पठेदात्मवान्नरः। सर्वपापविशुद्धात्मा लभते च शुभां गतिम् ॥ १०७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बलदेवान्हिकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

वैशंपायन उवाच। हृते यदैव प्रद्युम्नः शंबरेणात्मघातिना। मासेऽस्मिन्नेव सांबस्तु जांबवत्यामजायत ॥ १ ॥ बाल्यात्प्रभृति

यह स्तोत्र मंगलमय है और शोभामय है, जो विद्वान् इसको सुनता है और सुनाता है ॥८५—१०३॥ और जो पुरुष प्रत्येक पर्वके समय इसके एकसौ आठ पाठोंका जप करता है वह मनुष्य वध बन्धके क्लेशको तथा व्याधि शोक और पराभवको नहीं पाता है और उसे विकलता नहीं होती है, तथा यह स्तोत्र परलोकमें भी कल्याण देने वाला है, यह धन देने वाला यश देने वाला और आयु देने वाला तथा वेदकी समान पवित्र है।१०४-१०५। यह शोभामय (स्तोत्र) स्वर्ग देने वाला पुण्यप्रद और सन्तान को उत्पन्न करने वाला शुभ कल्याण करने वाला और मनुष्यों को बुद्धि देने वाला, सब रोगोंको शान्त करने वाला और अपने कुलको, कीर्तिको बढ़ाने वाला है, जो आत्मवान् पुरुष इसको श्रद्धापूर्वक पढ़ता है, उसकी आत्मा सब पापोंसे छूट जाती है और वह शुभ गति पाता है।१०६।१०७। एकसौ नौवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि—जब आत्मघाती शम्बरने प्रद्युम्न का हरण किया था, उसी मासमें जाम्बवतीसे साम्ब उत्पन्न हुए

रामेण शस्त्रेषु विनियोजितः । रामादनन्तरं चैव मानितः सर्व-वृष्णिभिः ॥ २ ॥ जातमात्रे ततः कृष्णः शुभां तामवसत्पुरीम् । निहतामित्रसामन्तः शक्रोद्याने यथाऽमरः ॥३॥ यादवानां च श्रियं दृष्ट्वा स्वां श्रियं द्वेष्टि वासवः । जनार्दनभयाच्चैव न शान्ति लेभिरे नृपाः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य पुरे वारणसाह्वये । दुर्योधनस्य यज्ञे वै,समीयुः सर्वपार्थिवाः ॥ ५ ॥ ता श्रुत्वा माधवीं लक्ष्मीं सपुत्रं च जनार्दनम् । पुरीं द्वारवतीं चैव निविष्टां सागरान्तरे ॥ ६ ॥ दूतैस्तैः कृतसंधानाः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । श्रियं द्रष्टुं हृषीकेशमाजग्मुः कृष्णमंदिरम् ॥ ७ ॥ दुर्योधनमुखाः सर्वे धृतराष्ट्रवशानुगाः । पांडवप्रमुखाश्चैव धृष्टद्युम्नादयो नृपाः ८ पांड्याश्चोलकलिंगेशा वाह्लीका द्राविडाः खशाः । अक्षौहिणीः

थे ॥ १ ॥ बलरामने बालपनसे ही उसे शस्त्रविद्या सिखाई थी, रामसे (विद्या सीखनेके)अनन्तर सब वृष्णिवंशी उसका सत्कार करने लगे ॥२॥ उसके उत्पन्न होनेके समय कृष्ण द्वारकापुरीमें ही रहते थे, उनके शत्रु और सामन्त मारे गए थे और इन्द्रके उद्यानमें भ्रमण करने वाले देवताकी समान वह द्वारकामें रमण कर रहे थे ३,यादवोंकी लक्ष्मीको देख कर वासव अपनी लक्ष्मी का द्वेष करता था अर्थात् अपनी लक्ष्मीको तुच्छ समझता था और राजे भी जनार्दनके भयसे शान्ति नहीं पाते थे ॥४॥ एक समय दुर्योधनके यज्ञमें वाराणसीपुरीमें सब राजे आये थे ॥५॥ तहाँ पर उन्होंने माधवकी लक्ष्मी, पुत्रसहित जनार्दन और समुद्र के भीतर वर्तमान द्वारका पुरीका वृत्तान्त सुना ॥६॥ तदनन्तर उन्होंने दूतोंसे संधिकी, फिर पृथिवीके सब राजे (कृष्णकी) लक्ष्मीको देखनेके लिए कृष्णमन्दिरको चले।७। दुर्योधन-प्रमुख धृतराष्ट्रके वशमें चलने वाले और पाण्डवप्रमुख धृष्टद्युम्न आदि राजे,पाण्ड्य कलिङ्ग चोल देशोंके स्वामी वाल्हीकद्राविड़ खश ये

गच्छंतो दश चाष्टौ च भूमिपाः ॥९॥ आजग्मुर्यादवपुरीं गोविंद-भुजपालिताम् । ते पर्वतं रैवतकं परिवार्यावनीश्वराः ॥ १० ॥ विविशुर्योजनाख्यासु स्वासु स्वासु च भूमिषु । ततः श्रीमान् हृषी-केशः सह यादवपुङ्गवैः ॥ ११ ॥ समीपं मानवेन्द्राणां निर्ययौ कमलेक्षणः । स तेषां नरदेवानां मध्यस्थो मधुसूदनः ॥ १२ ॥ व्यराजत यदुश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः । स तत्र समुदाचारं यथा स्थानं यथा वयः ॥ १३ ॥ कृत्वा सिंहासने कृष्णः कांचने निष-साद ह । राजानोपि यथा स्थानं निषेदुर्विविधेष्वथ॥१४॥सिंहा-सनेषु चित्रेषु पीठेषु च नराधिपाः । स यादवनरेन्द्राणां समाजः शुशुभे तदा ॥ १५॥ सुराणामसुराणां च सदसि ब्रह्मणो यथा । तेषां चित्राः कथास्तत्र प्रवृत्तास्तत्समागमे । यदूनां पार्थिवानां च केशवस्योपशृण्वतः ॥१६॥ एतस्मिन्नन्तरे वायुर्ववौ मेघरवोपमः ।

राजे अठारह अक्षौहिणियोंको साथमें लेकर गोबिन्दकी भुजाओंसे पालित द्वारकापुरीको चले वे राजे रैवत पर्वत पर पहुँच तहाँ पर चार २ कोसकी भूमि (छावनियों) में टिक गए, तदनन्तर कमलकी समान नेत्रों वाले श्रीमान् हृषीकेश यादवोंको साथमें लेकर मानवेन्द्रोंके पास चले,जिस प्रकार शरदऋतुमें सूर्य प्रकाश फैलाता है, इसी प्रकार नरदेवोंके बीचमें विराजमान यदुश्रेष्ठ मधु-सूदन शोभा पाने लगे उस समय श्रीकृष्ण अवस्था और स्थान के अनुसार राजाओंका सत्कार करके सुवर्णके सिंहासन पर बैठ गए, तब मनुष्योंके स्वामी राजे भी अनेक प्रकारके विचित्र सिंहा-पर बैठ गए, उस समय यादव और राजाओंका समाज इस प्रकार शोभा पाने लगा ॥ ८-१५ ॥ जिस प्रकार ब्रह्माजीकी सभामें देवता और असुरोंका समाज शोभा पाता है, वे राजा और यादव उस समाजमें बैठ कर केशवके सामने विचित्र कथाएँ कहने लगे ॥ १६ ॥ इसी समय मेघकी समान शब्द करने वाला

तुमुलं दुर्दिनं चासीत् सविद्युत्स्तनयित्नुमत् ॥ १७ ॥ तद्दुर्दिनतलं भित्त्वा नारदः प्रत्यदृश्यत । संवेष्टितजटाभारो वीणासक्तेन बाहुना ॥ १८ ॥ स पपात नरेन्द्राणां मध्ये सागरसन्निभः । नारदोऽग्निशिखाकारः श्रीमाञ्छक्रसखो मुनिः ॥ १९ ॥ तस्मिन्निपतिते भूमौ नारदे मुनिपुङ्गवे । तदद्भुतं महामेघं व्यपाकृष्यत दुर्दिनम् ॥ २० ॥ सोऽवगाह्य नरेन्द्राणां मध्ये सागरसन्निभः । आसनस्थं यदुश्रेष्ठमुवाच मुनिरव्ययम् ॥ २१ ॥ आश्चर्यं खलु देवानामेकस्त्वं पुरुषोत्तम । धन्यश्चासि महाबाहो लोके नान्योऽस्ति कश्चन ॥ २२ ॥ एवमुक्तः स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच मुनिं प्रभुः । आश्चर्यश्चैव धन्यश्च दक्षिणाभिः सहेत्यहम् ॥ २३ ॥ एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठः प्राह मध्ये महीभुजाम् । कृष्णपर्याप्तवाक्योऽस्मि गमि-

वायु चलने लगा और तुमुल दुर्दिन होगया और बिजली चमकने लगी तथा कड़कने लगी ॥ १७ ॥ उस दुर्दिनतलको अर्थात् मेघों से घिरे हुए आकाशको भेद कर नारदजी दिखाई दिये, उनके जटाजूट बँध रहा था और भुजामें वीणा थी ॥ १८ ॥ अग्निकी शिखाकी समान आकार वाले इन्द्रके मित्र समुद्रकी समान गंभीर श्रीमान् नारदजी राजाओंके मध्यमें उतरे ॥ १९ ॥ मुनिपुङ्गव नारदजी के भूमिमें उतरने पर वह अद्भुत महामेघ अदृश्य होगया ॥ २० ॥ समुद्रकी समान (गम्भीर) नारदजी राजाओंके बीचमें (चल कर) आसन पर बैठे हुए यादवश्रेष्ठ कृष्णसे कहने लगे २१ हे पुरुषोत्तम ! तुम देवताओंमें एक आश्चर्यस्वरूप हो हे महाभुज ! तुम धन्य हो, तुम्हारे सिवाय लोकमें और कोई नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार कहने पर प्रभु कृष्णने मुस्कुरा कर मुनिको प्रत्युत्तर दिया कि—मैं आश्चर्य और दक्षिणाओंसहित धन्य हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार कहने पर नारद मुनिने राजाओंके बीचमें कहा; कि- हे कृष्ण ! मेरे वाक्यका कार्य होगया, अब मैं जाता हूँ (ऊपर

ण्यागि यथा गतम् ॥ २४ ॥ तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य पार्थिवाः प्राहु-रीश्वरम् । गुह्यं मन्त्रमजानन्तो वचनं नारदेरितम् ॥२५॥ आश्चर्य-मित्यभिहितं धन्योसीति च माधव । दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रत्यु-क्तोपि च नारदे ॥ २६ ॥ किमेतन्नाभिजानीमो दिव्यं मन्त्रपदं महत् । यदि श्राव्यमिदं कृष्ण श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥२७॥ तानु-वाच ततः कृष्णः सर्वान् पार्थिवपुङ्गवान् । श्रोतव्यं नारदस्त्वेष द्विजो वः कथयिष्यति ॥ २८ ॥ ब्रूहि नारद तत्त्वार्थं श्रोतुकामा महीभुजः । यत्त्वयाभिहितं वाक्यं मयानुमतिभाषितम् ॥ २९ ॥ स पीठे काञ्चने शुभ्रे सूपविष्टः स्वलंकृतः । प्रभावं तस्य वन्द्यस्य

के श्लोकमें कूपादि क्रमसे आश्चर्य और धन्यत्वकी कृष्ण परा-काष्ठा हैं यह नारदजीका वचन समझना चाहिये और उसके उत्तरमें वासुदेवका यह वचन समझना चाहिये, कि–जो विपुल दक्षिणा वाले यज्ञोंसे यजन करते हैं वह मेरे आश्चर्यत्व और धन्यत्वको जानते हैं) ॥ २४ ॥ नारदजीको जाते हुए देखकर नारदजीकी गुप्त बातको न समझनेके कारण राजाओंने कृष्ण से कहा, ॥२५॥ कि–हे माधव ! नारदजीने आपको धन्य और आश्चर्य कहा और आपने भी उनको मैं दक्षिणाओंके साथ आश्चर्य और धन्य हूँ यह प्रत्युत्तर दिया ॥ २६ ॥ परन्तु यह कौनसा दिव्य मन्त्र पद हैं इसको हम नहीं समझ सके हे कृष्ण ! यदि यह बात हमारे सुनने योग्य हो, तो हम इसका तत्त्व सुनना चाहते हैं ॥२७॥ उन सब पार्थिवोंसे कृष्णने कहा, कि–यह बात आप के सुनने योग्य है और यह ब्राह्मण नारदजी आपसे उस बातको कहेंगे ॥ २८ ॥ हे नारद ! जो बात तुमने मुझसे कही थी उस बातका तत्त्व कहिये यह राजे उस बातको सुनना चाहते हैं उस समय सुवर्णके बने हुए सिंहासन पर बैठे हुए अलंकृत नारद जीने वन्दनीय प्रभु कृष्णके प्रभावको कहना प्रारम्भ किया,

प्रवक्तुमुपचक्रमे॥३०॥नारद उवाच । श्रूयतां भो नृपश्रेष्ठा यावन्तः स्थ समागताः । अस्य कृष्णस्य महतो यथा पारगहं गतः॥३१॥ अहं कदाचिद्गंगायास्तीरे त्रिषवणातिथिः । चराम्येकः क्षपापाये दृश्यमाने दिवाकरे ॥ ३२ ॥ अपश्यं गिरिकूटाभं कपालद्वयदेहिनम् । क्रोशमण्डलविस्तारं तावद्ध द्विगुणमायतम् ॥ ३३ ॥ चतुश्चरणसुश्लिष्टं क्लिन्नं चैव सपंकिलम् । मम वीणाकृतिं कूर्मं गजचर्मचयोपमम् ॥३४॥ सोऽहं तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रोक्तवाञ्जलचारिणम् । त्वमाश्चर्यशरीरोऽसि कूर्म धन्योऽसि मे मतः॥३५॥ यस्त्वमेवमभेद्याभ्यां कपालाभ्यां समावृतः।तोये चरसि निःशंकः किञ्चिदन्यमचिंतयन् ॥ ३६ ॥स मामुवाचाम्बुचरः कूर्मो मानुषवत् स्वयम् । किमाश्चर्यं मयि मुने धन्यश्चाहं कथं विभो ।३७।

नारदजीने कहा, कि-यहाँ पर आये हुए सब राजे, मैंने इन कृष्णका जिस प्रकार पार पाया है उस बातको सुनो २९-३१ एक समय मैं गंगाजीके तट पर तीन समय स्नान करता हुआ अतिथि-रूपमें रहता था तहाँ मैं एक दिन रात्रि बीतने पर जब सूर्यका उदय होगया तब विचरने लगा ।।३२॥ तहाँ मैंने पर्वत की समान आभा वाला दो कपालोंके देह वाला कोस भरके विस्तार वाला और दो कोस चौड़ा चार चरण वाला भीगा हुआ और कींचमें सना हुआ एक कछुआ देखा,उसका आकार मेरी वीणाकी समान था, और वह हाथीके चमड़ेकी ढेरके समान था ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मैंने उस जलचरको हाथसे छू कर कहा, कि- हे कूर्म ! तुम्हारा शरीर आश्चर्य मय है इस लिए मैं तुम्हें धन्य समझता हूँ ॥ ३५ ।।तुम दोनों इन अभेद्य कपालोंसे विभूषित होकर किसी बातका विचार न कर निःशंक होकर जलमें विचर रहे हो (यह आश्चर्य की बात है) ॥ ३६ ॥ तब उस जलमें फिरने वाले कछुएने मुझसे मनुष्यकी समान कहा,

गंगेयं निम्नगा धन्या किमाश्चर्यमतः परम् । यत्राहमिव सत्त्वानि चरन्त्ययुतशो द्विज ॥ ३८ ॥ सोऽहं कुतूहलाविष्टो नदीं गंगामुपस्थितः । धन्यासि त्वं सरिच्छ्रेष्ठे नित्यमाश्चर्यभूषिता ॥ ३६॥ या त्वमेवं महादेहैः श्वापदैरुपशोभिता । ह्रदिनी सागरं यासि रक्षन्ती तापसालयान् ॥४०॥एवमुक्ता ततो गंगा रूपिणी प्रत्यभाषत । नारदं देवगन्धर्वं शक्रस्य दयितं द्विजम् ॥ ४१ ॥ मामैवं देवगन्धर्व संग्रामकलहप्रिय । नाहं धन्या द्विजश्रेष्ठ नैवाश्चर्योपशोभिता ॥ ४२ ॥ तव सत्ये निविष्टस्य वाक्यं मां प्रतिबोधते । सर्वाश्चर्यकरो लोके धन्यश्चैवार्णवो द्विज ॥ ४३ ॥ यत्राहमिव विस्तीर्णाः शतशो यान्ति निम्नगाः । सोहं त्रिपथगावाक्यं श्रुत्वा-

कि-हे मुने ! मुझमें क्या आश्चर्य है और हे प्रभो ! मैं धन्य किस प्रकार हूँ ॥ ३७ ॥ यह नीचेको बहने वाली गंगा धन्य है इससे अधिक और क्या आश्चर्य होगा हे द्विज ! इसमें मेरी समान लाखों प्राणी विचरते रहते हैं ॥३८॥ तब मैं कौतूहलमें भरकर गंगानदी पर गया(और मैंने उससे कहा कि)हे नदियोंमें श्रेष्ठ! तुम धन्य हो क्योंकि-तुम ऐसे २ महाकाय जीवोंसे विभूषित रह कर सर्वदा आश्चर्यमयी रहती हो,तुममें कुण्ड हैं और तुम तपस्वियोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हुई समुद्रमें जाती हो४०इसप्रकार कहने पर गंगाजीने रूप धारण करके देवताओंके गन्धर्व इन्द्रके प्यारे ब्राह्मण नारदसे कहा,कि-४१हे संग्राम और कलहको प्रिय समझने वाले ! हे देवगन्धर्व!ऐसी बात न(कहिये)हे द्विजश्रेष्ठ ! न मैं धन्य हूँ और न मैं आश्चर्योंसे सुशोभित हूँ ॥ ४२ ॥ सत्य में स्थित रहने वाले आपका वाक्य मुझे स्मरण दिलाता है कि-संसारमें समुद्र धन्य है और सबको आश्चर्यित करने वाला है ४३ कि-जिसमें मेरी समान विस्तृत सैकड़ों नदियें समाई चली जा रही हैं तब मैं गङ्गाजीके वाक्यको सुन कर समुद्रके पास पहुँच

र्णवमुपस्थितः ॥४४॥ आश्चर्यं खलु लोकानां धन्यश्चासि महा-
र्णव । येन खल्वसि योनिस्त्वमंभसां सलिलेश्वरः ॥४५॥स्थाने
त्वां वारिवाहिन्यः सरितो लोकपावनाः । इमाः समधिगच्छन्ति
पत्न्यो लोकनमस्कृताः ॥ ४६ ॥ समुद्रस्त्वेवमुक्तस्तु ततो गाग-
वदद्वचः । स्वजलौघतलं भित्त्वा व्युत्थितः पवनेरितः ॥ ४७ ॥
मा मैवं देवगन्धर्व नास्म्याश्चर्यो द्विजर्षभ । वसुधेयं मुने धन्या
यत्राहमुपरि स्थितः ॥ ४८ ॥ ऋते तु पृथिवीं लोके किमाश्चर्य-
मतः परम् । सोहं सागरवाक्येन क्षितिं क्षितितले स्थितः ॥४९॥
कौतूहलसमाविष्टो ह्यब्रुवं जगतो गतिम् । धरित्रि देहिनां योने
धन्या खल्वसि शोभने ॥ ५० ॥ आश्चर्यं चापि भूतेषु महत्या
क्षमया युते । तेन खल्वसि भूतानां धरणी मनुजारणिः ॥५१॥

गया ॥ ४४ ॥ (और मैंने उससे कहा, कि-) हे समुद्र ! तुम मनुष्योंके लिये आश्चर्य-रूप हो और धन्य हो क्योंकि-तुम जलों के उत्पत्ति-स्थान हो और जलके ईश्वर हो ॥ ४५ ॥ जलको बहाने वाली और संसारको पवित्र करने वाली और संसार जिन को प्रणाम करता है ऐसी आपकी पत्नियें जो आपमें आती हैं यह उचितही है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार कहने पर जलसे प्रेरित समुद्र अपने जलको भेद कर उठा और मुझसे कहने लगा ॥ ४७ ॥ हे देवगन्धर्व ! तुम ऐसी बात न कहो, हे द्विजर्षभ ! मैं आश्चर्य-रूप नहीं हूँ क्योंकि-हे मुने!यह पृथ्वी धन्य है,कि जिसके ऊपर मैं स्थित हूँ ॥ ४८ ॥ इस संसारमें पृथ्वीके अतिरिक्त और क्या आश्चर्य हो सकता है; तब मैं समुद्रके वाक्यसे पृथिवीतलमें पृथिवी के ऊपर खड़ा होगया ॥ ४९ ॥ और कौतूहलमें भर कर जगत् की गति पृथिवीसे कहने लगा, कि-हे धरित्रि ! हे प्राणियोंकी उत्पत्ति-स्थान ! हे शोभने ! तू धन्य है ॥ ५० ॥ और हे बड़ी भारी क्षमासे युक्त पृथिवी तू प्राणियोंमें आश्चर्य स्वरूप है, तुम

क्षमा त्वत्तः प्रसूता च कर्म चाम्बरगामिनाम् । ततो भूः स्तुतिवाक्येन सा मयोक्तेन तेजिता ॥ ५२ ॥ विहाय सहजं धैर्यं प्रत्यक्षा मां प्रभाषत । देवगंधर्व मा मैवं संग्रामकलहप्रिय ॥५३॥ नास्मि धन्या न चाश्चर्या पारक्येयं धृतिर्मम । एते धन्या द्विजश्रेष्ठ पर्वता धारयन्ति माम् ॥५४॥ आश्चर्याणि च दृश्यन्ते एते लोकस्य हेतवः । सोऽहं धरणिवाक्येन पर्वतान्समुपस्थितः ५५ धन्या भवन्तो दृश्यन्ते बह्वाश्चर्याश्च भूधराः। काञ्चनस्याग्र्यरत्नस्य धातूनां च विशेषतः ॥ ५६ ॥ तेन खल्वाकराः सर्वे भवन्तो भुवि शाश्वताः । ते ममैतद्वचः श्रुत्वा पर्वतास्तस्थुषां वराः ५७ ऊचुर्मां सान्त्वयुक्तानि वचांसि वनशोभिताः । ब्रह्मर्षे न वयं

मनुष्योंको धारण करने वाली और मनुष्योंकी उत्पादिका हो ५१ तुमसे क्षमा उत्पन्न हुई है और आकाशगामियोंके कर्म भी तुम पर सिद्ध होते हैं, तब मेरे कहे हुए स्तुतिवाक्योंसे पृथिवी क्षुब्ध हो गई ॥ ५२ ॥ और उसने अपने स्वाभाविक धैर्यको छोड़ कर प्रत्यक्ष हो मुझसे कहा; कि-हे देवगन्धर्व ! हे संग्राम और कलह को प्रिय समझने वाले ! तुम ऐसी बात मत कहो ॥ ५३ ॥ न मैं धन्य हूँ न आश्चर्यस्वरूप हूँ मैं दूसरेके आश्रयसे ही इस सबको धारण कर रही हूँ, हे द्विजश्रेष्ठ! यह पर्वत धन्य हैं येही मुझे धारण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ यह संसारकी स्थितिके कारण हैं और आश्चर्यसे दीख रहे हैं तब मैं पृथिवीके वाक्य सुन कर पर्वतों के पास गया ॥ ५५ ॥ (और उनसे कहा, कि-) आप धन्य हैं आपमें बहुतसे आश्चर्य दीखते हैं आप सुवर्ण, बढ़िया २ रत्न, पृथिवी और अधिकतर धातुओंको धारण करने वाले हैं ॥५६॥ इस लिये आप खानरूप हैं और पृथ्वीमें सर्वदा रहते हैं मेरे इस वचनको सुन कर स्थिर रहने वालोंमें श्रेष्ठ वनोंसे सुशोभित पर्वतों ने मुझे समझाते हुये कहा, कि-हे ब्रह्मर्षे! हम धन्य नहीं हैं और

धन्या नाप्याश्चर्याणि सन्ति नः । ब्रह्मा प्रजापतिर्धन्यः सर्वाश्चर्यः सुरेष्वपि ॥ ५८ ॥ सोऽहं प्रजापतिं गत्वा सर्वप्रभवमव्ययम् । तस्य वाक्यस्य पर्यायपर्याप्तमिव लक्षये ॥ ५९ ॥ सोऽहं पितामहं देवं लोकयोनिं चतुर्मुखम् । स्तोतुं पश्चादुपगतः प्रणतोऽवनताननः ॥ ६० ॥ सोऽहं वाक्यसमाप्त्यर्थं श्रावये पद्मयोनिजम् । आश्चर्यं भगवानेको धन्योऽसि जगतो गुरुः ॥ ६१ ॥ न किञ्चिदन्यत् पश्यामि भूतं यद्भवता समम् । त्वत्तः सर्वमिदं जातं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥६२॥ सदेवदानवा मर्त्या लोकभूतेन्द्रियात्मकाः । भवन्ति सर्वदेवेश दृष्ट्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६३ ॥ तेन खल्वसि देवानां देवदेवः सनातनः । तेषामेवासि यत्स्रष्टा लोकानामादिसम्भवः ॥ ६४ ॥ ततो मां प्राह भगवान् ब्रह्मा लोक-

---

न इसमें कुछ आश्चर्य है, प्रजापति ब्रह्मा धन्य हैं और वह देवताओं में भी परम आश्चर्यस्वरूप हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब मैंने सबोंके उत्पत्ति स्थान अच्युत प्रजापतिके पास जाकर उस वाक्यके पर्याय स्वरूप पूर्णलक्षण उनमें देखे ॥ ५९ ॥ तब मैं संसारके उत्पत्ति-स्थान चार मुखवाले पितामहके पास जा उनको प्रणाम कर मस्तकको झुका कर उनकी स्तुति करने लगा ॥ ६० ॥ तदनन्तर मैंने वाक्य समाप्त करनेके लिए पद्मयोनिको सुनाया, कि-आप एक आश्चर्य-स्वरूप हैं जगत्के गुरु हैं और धन्य हैं मुझे आपकी समान और कोई प्राणी नहीं दीखता, यह सब स्थावर जंगम आपसे ही उत्पन्न हुआ है ॥ ६२ ॥ हे देवेश ! इस सब जगत्को देख कर (मैंने विचारा है कि -) यह सब देव दानव मनुष्य संसार पञ्चभूत इन्द्रिय और आत्माएँ आपसे ही उत्पन्न हुई हैं ॥६३॥ इस लिए आप देवताओंके भी देवता हैं और सनातन हैं आप उनके रचने वाले हैं इस लिये लोकोंसे पहिले उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ तब मुझसे लोकोंके पितामह

पितामहः । धन्याश्चर्याश्रितैर्वाक्यैः किं मां नारद भाषसे॥६५॥ आश्चर्यं परमं वेदा धन्या वेदाश्च नारद । ये लोकान् धारयन्ति स्म वेदास्तत्त्वार्थदर्शिनः ६६ ऋक्सामयजुषां सत्यमथर्वणि च यन्मतम् । तन्मयं विद्धि मां विप्र धृतोऽहं तैर्मया च ते ॥६७॥ पारमेष्ठ्येन वाक्येन नोदितोऽहं स्वयम्भुवा । वेदोपस्थानिकां चक्रे गतिसंस्थानविस्तरात् ॥ ६८ ॥ सोऽहं स्वयम्भूवचनाद्द वेदान्वौ समुपस्थितः । अवोचं तांश्च चतुरो मन्त्रगवचनान्वितान् ॥६९॥ धन्या भवन्तः पुण्याश्च नित्यमाश्चर्यभूषिताः । आधाराश्चैव विप्राणामेवमाह प्रजापतिः ॥ ७० ॥ स्वयम्भुवोपीह परं भवत्सु प्रश्नमागतम् । युष्मत्परतरं नास्ति श्रुत्या वा तपसापि वा ॥ ७१ ॥ प्रत्यूचुस्ते ततो वाक्यं वेदा मामभितः स्थिताः । आश्चर्याश्चैव

भगवान् ब्रह्माजीने कहा, हे नारद ! तुम मुझसे धन्य २ आश्चर्य आश्चर्य आदि क्या बातें कर रहे हो ॥ ६५ ॥ हे नारद ! परम आश्चर्य तो वेद हैं, कि-जो लोकोंको धारण कर रहे हैं वे तत्त्वार्थ दर्शी हैं ॥ ६६ ॥ ऋग्वेद सामवेद और अथर्व वेदमें जो सत्य सिद्धान्त हैं मुझे तुम उनसे ही बना हुआ जानो, हे विप्र ! वे मुझे धारण कर रहे हैं और मैं उनको धारण कर रहा हूँ ६७ परमेष्ठी ब्रह्माजीके वाक्यसे प्रेरित होकर मैं अपनी बुद्धि के विस्तारसे वेदोंका उपस्थान करने लगा ॥ ६८ ॥ इस प्रकार मैं ब्रह्माजीके वचनसे वेदोंके पास पहुँचा और उन मन्त्रोंके भाष्यों से युक्त चारों वेदोंसे कहने लगा, कि-॥ ६९ ॥ आप धन्य हैं पुण्यमय हैं और सर्वदा आश्चर्योंसे विभूषित रहते हैं और प्रजापतिने कहा है, कि आप विप्रोंके आधार हैं ॥७०॥ ब्रह्माजीको भी आपका परम विश्वास है कि-तपमें और श्रुतिमें आपसे अधिक और कोई नहीं है ॥ ७१ ॥ उस समय मेरे चारों ओर खड़े हुए वेदोंने मुझसे कहा, कि आत्मपरायण यज्ञ आश्चर्यस्वरूप और

धन्याश्च यज्ञाश्चात्मपरायणाः ॥७२॥ यज्ञार्थे च वयं सृष्टा धात्रा
येन स्म नारद । तदस्माकं परो यज्ञो न वयं स्ववशे स्थिताः॥७३
स्वयम्भुवः परा वेदा वेदानां क्रतवः पराः । ततोऽहमब्रुवं यज्ञान्
बृहद्भागिः पुरस्कृतान् ॥ ७४ ॥ भो यज्ञाः परमं तेजो युष्मासु
खलु लक्ष्यते । ब्रह्मणाभिहितं वाक्यं यच्च वेदैरुदीरितम् ॥७५॥
आश्चर्यमन्यल्लोकेऽस्मिन् भवद्भ्यो नाभिगम्यते । धन्याः खलु
भवंतो ये द्विजातीनां स्ववंशजाः ॥ ७६ ॥ तेऽपि खल्वग्नयस्तृप्ति
युष्माभिर्यान्ति तर्पिताः । भागैश्च त्रिदिशाः सर्वे मन्त्रैश्चैव
महर्षयः ॥ ७७ ॥ अग्निष्टोमादयो यज्ञा मम वाक्यादनन्तरम् ।
प्रत्यूचुर्मां ततो वाक्यं सर्वे यूपध्वजाः स्थिताः ॥७८॥ आश्चर्य-
शब्दो नास्मासु धन्यशब्दोऽपि वा मुने । आश्चर्यं परमं विष्णुः स
ह्यस्माकं परा गतिः ॥ ७९ ॥ यदाज्यं यमपश्नीतो हुतमग्निषु
पावनम् तत्सर्वं पुण्डरीकाक्षो लोकमूर्तिः प्रयच्छति।सोऽहं विष्णो-

धन्य हैं ॥ ७२ ॥ हे नारद ! धाताने हमें यज्ञोंके लिए रचा है
इससे यज्ञ हमसे पर हैं और हम अपने वशमें स्थित नहीं हैं ७३
वेद स्वयम्भू ब्रह्माजीसे पर (श्रेष्ठ)हैं, यज्ञ वेदोंसे श्रेष्ठ हैं, उस समय
मैंने अनेक मन्त्रोंसे पुरस्कृत वेदोंसे कहा, कि—॥ ७४ ॥ हे यज्ञो !
ब्रह्माजीने और वेदोंने जो बात कही है, उससे तुममें परम तेज
प्रतीत होता है ॥७५॥ इस लोकमें आपके अतिरिक्त और कोई
आश्चर्य नहीं दीखता, आप द्विजातियोंके वंशके हैं, अतः धन्य
हैं ॥७६॥ अग्नियें भी आपके तृप्त करने पर तृप्त होती हैं, आप
के द्वारा भागोंसे देवता और मन्त्रोंसे ऋषि तृप्त होते हैं ॥७७॥
मेरी बातके अनन्तर यूपोंकी ध्वजा वाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंने
मुझसे कहा, कि—॥ ७८ ॥ हे मुने ! आश्चर्य शब्द और धन्य
शब्द हममें चरितार्थ नहीं होसकता, क्योंकि—परम आश्चर्य तो
विष्णु हैं, वही हमारी परम गति हैं ॥७९॥ हम अग्निमें होमे हुए

र्गतिं मेप्सुरिह सम्पतितो भुवि । दृष्टश्चायं मया कृष्णो भवद्भिरिह संवृतः ॥ ८१ ॥ यन्मयाभिहितो ह्येष त्वमाश्चर्यं जनार्दन । धन्यश्चासीति भवतां मध्यस्थो ह्यत्र पार्थिवाः ॥८२॥ प्रत्युक्तोऽहमनेनाद्य वाक्यस्यास्य यदुत्तरम् । दक्षिणाभिः सहेत्येवं पर्याप्तं वचनं मम ॥८३॥ यज्ञानां हि गतिर्विष्णुः सर्वेषां सहदक्षिणः । दक्षिणाभिः सहेत्येवं प्रश्नो मम समाप्तवान् ॥८४॥ कूर्मेणाभिहितं पूर्वं पारंपर्यादिहागतम् । सदक्षिणेऽस्मिन्पुरुषे तद्वाक्यं प्रतिपादितम् ॥८५॥ दक्षिणाभिः सहेत्येवं पर्याप्तं वचनं मम । यज्ञानां च गतिर्विष्णुः सर्वेषां च सदक्षिणः ॥ ८६ ॥ यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति वाक्यस्यास्य विनिर्णयम् । तदेतत्सर्वमाख्यातं साधयामि

जिस पवित्र घृतको खाते हैं, उसको हमैं लोकमूर्ति पुण्डरीकाक्ष ही देते हैं ८० तब मैं विष्णुकी गतिको। पानेके लिए पृथ्वीमें अब आया था, सो मैंने यहाँ पर विष्णुको आपसे घिरा हुआ देखा ८१ और हे राजाओं ! मैंने आपके बीचमें खड़े होकर इनसे जो कहा था, कि-हे जनार्दन ! आप आश्चर्यस्वरूप हैं और धन्य हैं ८२ तब इन्होंने उसका यह उत्तर दिया था, कि-दक्षिणापूर्वक यज्ञ करनेसे,इस वचनका (मेरे आश्चर्यत्व और धन्यत्वका)पता लग सकता है ८३ दक्षिणाओं सहित (यज्ञस्वरूप) विष्णु यज्ञोंकी गति हैं, अत एव इन्होंने दक्षिणाओं सहित यह उत्तर देकर मेरे प्रश्नको समाप्त कर दिया था ॥८४॥ कूर्मने पहिले जिस बातको कहा था,वह बात परम्परासे यहाँ तक पहुँच गई और इन सदक्षिण पुरुषमें वह (आश्चर्यत्व और धन्यत्वकी) बात घट गई ।८५। मेरे वाक्यका यह ठीक उत्तर है, कि-दक्षिणाओं सहित (यज्ञ करनेसे ही विष्णुका रूप समझा जासकता है,विष्णु सब सदक्षिण यज्ञोंकी गति हैं ।८६। आपने मुझसे इस वाक्यका अर्थ निर्णय करनेके लिए कहा था, सो मैंने सब बात आपसे कह दी, अब

यथागतम् ॥ ८७ ॥ नारदे तु गते स्वर्गं सर्वे ते पृथिवीभुजः । विस्मिताः स्वानि राष्ट्राणि जग्मुः सबलवाहनाः ॥ ८८ ॥ जनार्दनोपि सहितो यदुभिः पावकोपमैः । स्वमेव भवनं वीरो विवेश यदुनन्दनः ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि धन्योपाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

जनमेजय उवाच । भूय एव महाबाहोः कृष्णस्य जगतो पतेः। माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि परमं द्विजसत्तम ॥ १ ॥ न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतस्तस्य धीमतः । कर्मणामनुसन्धानं पुराणस्य महात्मनः ॥२॥ वैशम्पायन उवाच । नान्तः शक्यः प्रभावस्य वक्तुं वर्षशतैरपि । गोविन्दस्य महाराज श्रूयतामिदमद्भुतम् ॥३॥ शरतल्पे शयानेन भीष्मेण परिचोदितः । गाण्डीवधन्वा बीभत्सुर्माहात्म्यं केशवस्य यत् ॥४॥ राज्ञां मध्ये महाराज ज्येष्ठं भ्रातर-

मैं अपने कार्यको साधनेके लिये जाता हूँ ८७ नारदजीके स्वर्गको चले जाने पर सब राजे भी परम विस्मित होते हुए अपने २ सेनादलको साथमें लेकर अपने २ नगरोंको चले गए ८८ और यदुनन्दन वीर जनार्दन भी अग्निकी समान यादवोंके साथ अपने घरमें घुसे ८९ एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥११०॥ छ

जनमेजयने कहा, कि—हे द्विजसत्तम ! मैं जगत्के स्वामी महाभुज कृष्णके माहात्म्यको फिर सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ बुद्धिमान् और पुराणपुरुष महात्मा कृष्णके कर्मोंको अनुक्रमसे सुन कर भी मुझे अभी तृप्ति नहीं हुई है ॥ २ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि—हे महाराज ! गोविन्दका प्रभाव सैकड़ों वर्ष कहने पर भी समाप्त नहीं हो सकता, अब तुम एक अद्भुत बात सुनो ३ हे कौरव ! शरशय्या पर सोते हुए भीष्मजीने गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनसे कृष्णका माहात्म्य वर्णन करनेके लिए कहा था,

मब्रवीत् । युधिष्ठिरं जितामित्रमिति तच्छृणु कौरव ॥५॥ अर्जुन उवाच । पुराहं द्वारकां यातः सम्बधीनवलोककः । न्यवसं पूजितस्तत्र भोजवृष्ण्यन्धकोत्तमैः ॥६॥ततः कदाचिद्धर्मात्मा दीक्षितो मधुसूदनः । एकाहेन महाबाहुः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ७ ॥ ततो दीक्षितमासीनमभिगम्य द्विजोत्तमः । कृष्णं विज्ञापयामास त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच । रक्षाधिकारो भवतः परित्रायस्व मां विभो।चतुर्थांशं हि धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्९ वासुदेव उवाच । न भेतव्यं द्विजश्रेष्ठ रक्षामि त्वां कुतो भयम् । ब्रूहि तत्त्वेन भद्रन्ते यद्यपि स्यात् सुदुष्करम् ॥ १० ॥ ब्राह्मण उवाच । जातो जातो महाबाहो पुत्रो मे ह्रियतेऽनघ । त्रयो हृताश्चतुर्थं त्वं कृष्ण रक्षितुमर्हसि ॥११॥ ब्राह्मण्याः सूतिकालोऽद्य

उस समय अर्जुनने राजाओंके मध्यमें शत्रुओंको जीतने वाले अपने बड़े भाई युधिष्ठिरसे कृष्णका जो माहात्म्य कहा था, उस को तुम सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ अर्जुनने कहा था, कि-पहिले मैं सम्बन्धियोंको देखनेकी इच्छासे द्वारकामें गया था, तहाँ पर मैं श्रेष्ठ श्रेष्ठ भोज वृष्णि और अन्धकोंसे सत्कार पाता हुआ रहने लगा ॥ ६ ॥ एक समय धर्मात्मा महाभुज मधुसूदनने एकाह (एक सूक्ति वाले सोमयज्ञ) की शास्त्रोक्तरीतिसे दीक्षा ली ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण दीक्षा लेकर बैठे थे, कि-एक श्रेष्ठ ब्राह्मण आया और वह कृष्णसे त्राहि त्राहि कहने लगा ॥ ८ ॥ ब्राह्मणने कहा, कि-रक्षा करना आपका धर्म है हे विभो ! आप मेरी रक्षा करिये, रक्षा करने वालेको धर्मका चौथाई फल मिलता है ॥ ९ ॥ वासुदेवने कहा, कि-हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा, बताओ, तुम्हें कहाँ भय है, तुम दुष्कर बातको भी ठीक २ बतलाओ १० ब्राह्मणने कहा, कि-हे महाभुज ! मेरा पुत्र उत्पन्न होते ही हर

तत्र रक्षा विधीयताम् । यथा ध्रियेदपत्यं मे तथा कुरु जनार्दन । अर्जुन उवाच । ततो मामाह गोविन्दो दीक्षितोऽहं क्रताविति । रक्षा च ब्राह्मणे कार्या सर्वावस्थागतैरपि ॥ १३ ॥ श्रुत्वाहमेवं कृष्णस्य वचोऽनोचं नराधिप । मां नियोजय गोविन्द रक्षिष्येहं द्विजं भयात् ॥ १४ ॥ इत्युक्तः सस्मितं कृत्वा मामुवाच जनार्दनः । रक्षसीत्येवमुक्तस्तु व्रीडितोस्मि नराधिप ॥ १५ ॥ ततो मां व्रीडितं मत्वा पुनराह जनार्दनः । गम्यतां कौरवश्रेष्ठ शक्यते यदि रक्षितुम् ॥ १६ ॥ त्वत्पुरोगाश्च रक्षन्तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः । ऋते रामं महाबाहुं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥१७॥ ततोऽहं

लिया जाता है, हे निष्पाप ! इस प्रकार मेरे तीन पुत्र नष्ट हो चुके हैं, अब आप चौथेकी रक्षा करिये ११ ब्राह्मणीके प्रसवका समय है, इस लिये आज रक्षा करिये, हे जनार्दन ! जिस प्रकार मेरी सन्तान बच सके वैसा करिये ॥ १२ ॥ अर्जुनने कहा, कि-तदनन्तर गोविन्दने मुझसे कहा, कि-मैं तो यज्ञमें दीक्षित हूँ, परन्तु चाहे हम किसी दशामें हों, ब्राह्मणकी रक्षा तो करनी ही चाहिये ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! कृष्णके ऐसे वचनको सुन कर मैंने कृष्णसे कहा, कि-हे गोविन्द ! आप मुझे इस काममें नियुक्त कर दीजिये, तब मैं तुम्हारी महाभयसे रक्षा करूँगा ॥ १४ ॥ यह बात कहने पर कृष्णने मुझसे मुस्कुरा कर कहा, कि-"तुम रक्षा कर लोगे" तब हे राजन् ! मैं लज्जित होगया ॥ १५ ॥ तब कृष्णने मुझे लज्जित देख कर कहा; कि-हे कौरवश्रेष्ठ ! यदि आप रक्षा कर सकते हो तो जाइये १६ महाभुज प्रद्युम्न और महाबली बलरामके अतिरिक्त सब वृष्णिवंशी और अंधकवंशी महारथियोंके साथ तुम उस बालककी रक्षा कर सकतेहो १७ तब मैं यादवोंकी बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर और उस

वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः। तमग्रतो द्विजं कृत्वा प्रयातः सह सेनया ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

अर्जुन उवाच। मुहूर्तेन वयं ग्रामं तं प्राप्य भरतर्षभ। विश्रांतवाहनाः सर्वे निवासायोपसंस्थिताः ॥१॥ ततो ग्रामस्य मध्येऽहं निविष्टः कुरुनन्दन। समन्ताद्वृष्णिसैन्येन महता परिवारितः २ ततः शकुनयो दीप्ता मृगाश्च क्रूरभाषिणः। दीप्तायां दिशि वासन्तो भयमावेदयन्ति मे ॥ ३ ॥ सन्ध्यारागो जपावर्णो भानुमांश्चैव निष्प्रभः। पपात महती चोल्का पृथिवी चाप्यकम्पत ४ तान् समीक्ष्य महोत्पातान् दारुणाल्लोमहर्षणान्। योगमाज्ञापयं तत्र जनस्योत्सुकचेतसः ॥ ५ ॥ युयुधानपुरोगाश्च वृष्ण्यन्धकमहारथाः। सर्वे युक्तरथाः सज्जाः स्वयं चाहं तथाऽभवम् ॥६॥

ब्राह्मणको आगे करके चला ॥ १८ ॥ एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥

अर्जुनने कहा, कि—हे भरतर्षभ ! हम मुहूर्त भरमें ही उस ग्राम में पहुँच गए और अपने वाहनोंको विश्राम देनेके और निवास करनेके लिए टिक गए १ हे कुरुनन्दन ! उस समय मैं भी ग्रामके बीचमें बड़ी भारी सेनाओंके साथ टिक गया २ उस समय प्रदीप्त पक्षी क्रूरभाषी मृग प्रदीप्त दिशामें शब्द करके मुझे भयकी सूचना देने लगे ३ उस समय संध्याराग जपा वर्णका होगया और सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गई, बड़ी भारी उल्का गिर पड़ी और पृथ्वी काँपने लगी ४ इन लोमर्षण दारुण उत्पातोंको देख कर, मैंने उत्सुक चित्त वाली सेनाको तयार रहनेकी आज्ञा दी ५ युयुधान आदि सब वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी महारथी तयार होकर रथमें बैठ गए और मैं भी बैठ गया ६ आधी रात बीतने पर

गतेऽर्धरात्रसमये ब्राह्मणो भयविक्लवः। उपागम्य भयादस्मा-
निदं वचनमब्रवीत् ॥७॥ कालोऽयं समनुप्राप्तो ब्राह्मण्याः प्रस
वस्य मे। तथा भवन्तस्तिष्ठन्तु न भवेद्वञ्चनं यथा ॥ ८ ॥ मुहूर्ता-
देव चाश्रौषं कृपणं रुदितस्वनम्। तस्य विप्रस्य भवने ह्रियते-
ऽह्रियतेति च ॥ ९ ॥ अथाकाशे पुनर्वाचमश्रौषं वालकस्य वै।
ऊहेति ह्रियमाणस्य न च पश्यामि राक्षसम् ॥१०॥ ततोऽस्माभि-
स्तदा तात शरवर्षैः समन्ततः। विष्टम्भितदिशः सर्वा हृत एव
स वालकः ॥११॥ ब्राह्मणोऽर्तस्वरं कृत्वा हृते तस्मिन् कुमारके।
वाचः सपरुषास्तीव्राः श्रावयामास मां तदा॥१२॥ वृष्णयो हत-
संकल्पास्तथाहं नष्टचेतनः। मामेवं हि विशेषेण ब्राह्मणः प्रत्य-
भाषत ॥१३॥ रक्षिष्यामीति चोक्तं ते न च रक्षितवानसि। शृणु

ब्राह्मण भयसे घबड़ाता हुआ हमारे पास आकर हमसे कहने लगा, कि—७ अब मेरी स्त्रीके प्रसवका समय आगया है, इस लिए आप इस प्रकार तयार हो जावें, जिससे धोका न होजाय ८ क्षण भरमें ही मैंने उस ब्राह्मणके घरमें करुण रीतिसे रोनेका शब्द सुना, कि-बालकको कोई छीने हुए लिये जाता है, अरे वह ले गया ॥ ९ ॥ तदनन्तर मैंने चुराये जाते हुए बालकका आकाशमें शब्द सुना, और मैंने यह भी सुना, कि—अब चेष्टा कर, परन्तु मैं राक्षसको न देख सका ॥ १० ॥ हे तात ! उस समय यह मैंने बाणोंकी बौछार कर सब दिशाओंमें बाणोंका जाल पूर दिया परन्तु तब भी वह बालक चोरी चला ही गया ११ कुमारका हरण होने पर ब्राह्मण रोने लगा और मुझसे कठोर बातें कहने लगा ॥१२॥ तब वृष्णियोंके मनोरथ दब गए और मैं भी मूढ़सा हो गया, उस समय ब्राह्मण मुझसे ही कहने लगा, कि—॥ १३ ॥ तूने कहा था, कि-मैं रक्षा कर लूँगा, फिर भी तू रक्षा न कर सका, इस लिए हे दुर्मते ! तू जिन बातोंको (सुनने)

वाक्यमिदं शेषं यत्त्वमर्हसि दुर्मते ॥१४॥ वृथा त्वं स्पर्धसे नित्यं कृष्णेनामितबुद्धिना। यदि स्यादिह गोविंदो नैतदत्यहितं भवेत्१५ यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् । पापस्यापि तथा मूढ भागं प्राप्नोत्यरक्षिता ॥ १६ ॥ रक्षिष्यामीति चोक्तं च न च शक्तोऽसि रक्षितुम् । मोघं गाण्डीवमेतत्ते मोघं वीर्यं यशश्च ते । अकिञ्चिदुक्त्वा तं विप्रं ततोऽहं प्रस्थितस्तथा । सह वृष्ण्यंधकसुतैर्यत्र कृष्णो महाद्युतिः ॥ १८ ॥ ततो द्वारवतीं गत्वा दृष्ट्वा मधुनिघातिनम्। व्रीडितः शोकसंतप्तो गोविन्देनोपलक्षितः १९ स तु मां व्रीडितं दृष्ट्वा विनिन्दन् कृष्णसन्निधौ । मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ २० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः । यत्र शक्ताः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवनेश्वरः ।

योग्य हैं, उनको सुन ॥ १४ ॥ तू अमितबुद्धि कृष्णसे व्यर्थ ही स्पर्धा किया करता है, यदि गोविन्द यहाँ पर होते तो इस प्रकार मेरा अनिष्ट नहीं होता ॥ १५ ॥ जिस प्रकार रक्षकको धर्मका चौथाई फल मिलता है हे मूढ ! इसी प्रकार रक्षा न करनेवाले को पापका भी चौथाई फल भोगना पड़ता है ॥१६॥ तूने कहा था,कि मैं रक्षा कर लूँगा, फिर भी तू न कर सका अतः तेरा गाण्डीव धनुष व्यर्थ है और तेरा वीर्य भी व्यर्थ है ॥१७॥ तब मैं उस ब्राह्मणसे कुछ भी न कह कर वृष्णि और अंधकवंशियों को साथमें लेकर कृष्णके पास चला ॥ १८ ॥ तब मैं द्वारका पुरीमें जाकर मधु दैत्यका नाश करने वाले कृष्णको देखने लगा उस समय गोविन्दने मुझे लज्जित और शोकसन्तप्त देखा १९ उस समय वह ब्राह्मण मुझे कृष्णके समीप लज्जित होते हुए देख कर मेरी निन्दा करता हुआ कहने लगा; कि मेरी मूर्खताको तो देखो जो मैंने इस क्लीबके वचन पर विश्वास कर लिया था प्रद्युम्न अनिरुद्ध बलराम और केशव भी जहाँ रक्षा नहीं करसकते

धिग्गर्जितं वृथा नादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः । दैवापसृष्टो यो मां-
त्वमनुगच्छति च दुर्मतिः ॥ २२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्या-
मास्थाय वैष्णवीम् । ययौ संयमिनीं वीरो यत्रास्ते भगवान्
यमः ॥ २३ ॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगां पुरीम् । आग्नेयीं
नैर्ऋतीं सौम्यामुदीचीं वारुणीं तथा ॥ २४ ॥ रसातलं नाक-
पृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः । ततोऽलब्ध्वा द्विजसुतमनिस्तीर्ण-
प्रतिश्रवः ॥ २५ ॥ अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रद्युम्नेन निषेधितः ।
दर्शये द्विजसूनुं ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ कीर्तिं त एतां
विपुलां स्थापयिष्यन्ति मानवाः । इति सम्भाष्य मां स्नेहात् स-
माश्वास्य च माधवः ॥२७॥ सान्त्वयित्वा तु तं विप्रमिदं वच-

तहाँ दूसरा कौन रक्षा कर सकता है ? २१ इस अपनी प्रशंसा करने वाले अर्जुनके धनुषको वृथा ही गर्जने को और नादको धिक्कार है, प्रारब्धने ही इस दुर्मतिको मेरे साथ भेज दिया था।२२ जब ब्राह्मण इसप्रकार कहनेलगा, तब मैं वैष्णवी विद्याका आश्रय लेकर भगवान् यमराज जहाँ रहते हैं, तहाँको चल दिया ॥२३॥ फिर मैं ब्राह्मणकी सन्तानका वर्णन करता हुआ इन्द्रपुरीमें पहुँचा, फिर आग्नेयी नैर्ऋति सौम्य उत्तरदिशा तथा वरुणपुरीमें भी पहुँचा २४ फिर भी हाथमें आयुध उठा कर रसातल स्वर्ग तथा दूसरे प्रकाशित स्थानोंमें गया परन्तु जब कहीं परभी ब्राह्मणका पुत्र नहीं मिला, तब मैं प्रतिज्ञामें उत्तीर्ण न होनेके कारण अग्नि में प्रवेश करना चाहने लगा, उस समय कृष्णने और प्रद्युम्नने मुझे रोकते हुए कहा, कि तू अपनी आत्माका तिरस्कार न कर मैं ब्राह्मणपुत्रका तुझे दर्शन करा दूँगा । २५ । २६ । तुम्हारी विपुल कीर्तिको मनुष्य इस लोकमें स्थापित करेंगे, इस प्रकार केशवने मुझसे स्नेहपूर्वक भाषण कर और ढाढस देकर । २७ । ब्राह्मणको भी सान्त्वना देकर यह बात कहा, कि-(मैं सब ठीक

नमब्रवीत् । सुग्रीवं चैव शैब्यं च मेघपुष्पबलाहकौ ॥२८॥ योज-
याश्वानिति तदा दारुकं प्रत्यभाषत । आरोप्य ब्राह्मणं कृष्णो
ह्यारोप्य च दारुकम् ॥ २९ ॥ मामुवाच ततः शौरिः सारथ्यं
क्रियतामिति । ततः समास्थाय रथं कृष्णोहं ब्राह्मणः स च ।
प्रयाताः स्म दिशं सौम्यामुदीचीं कौरवर्षभ ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहा-
त्म्ये कृष्णस्य उदीचीगमने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ११२

अर्जुन उवाच । ततः पर्वतजालानि सरितश्च वनानि च ।
अपश्यं समतिक्रम्य सागरं वरुणालयम् ॥ १ ॥ ततोऽर्घमुदधिः
साक्षादुपनीय जनार्दनम् । स प्राञ्जलिः समुत्थाय किं करोमीति
चाब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रतिगृह्य स तां पूजां तमुवाच जनार्दनः । रथ-
पन्थानमिच्छामि त्वया दत्तं नदीपते ॥३॥ अथाब्रवीत् समुद्रस्तु
प्राञ्जलिर्गरुडध्वजम् । प्रसीद भगवन्नैवमन्योऽप्येवं गमिष्यति ।४।

किये देता हूँ) तदनन्तर उन्होंने दारुकसे कहा कि सुग्रीव शैब्य
मेघपुष्प और बलाहक नामक घोड़ोंको (रथमें) जोतो, तदनन्तर
कृष्णने ब्राह्मणको और दारुकको रथमें बैठा कर मुझसे कहा,
कि—तू सारथीपन कर, हे कौरवर्षभ ! तब मैं कृष्ण और वह
ब्राह्मण उस रथमें बैठकर सौम्य उत्तर दिशाकी ओर चले २८-३०
एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त । ११२ । ❀ ❀

अर्जुनने कहा, कि—तदनन्तर मैंने पर्वत नदी और वनोंको
लाँघ कर वरुणके निवासस्थान समुद्रको देखा १ उस समय समुद्र
प्रत्यक्ष हो अर्घ लाया और जनार्दनसे हाथ जोड़ कर कहने लगा,
कि—मैं क्या करूँ २ जनार्दनने उसकी पूजाको ग्रहण करके कहा,
कि—हे नदीपते ! मैं चाहता हूँ, कि—आप मेरे रथके लिए मार्ग दें ३
समुद्रने हाथ जोड़ कर जनार्दनसे कहा; कि—हे भगवन् ! प्रसन्न
हूजिये, ऐसा होने पर तो दूसरे भी इसी प्रकार चले जाया करेंगे ४

त्वयैव स्थापितः पूर्वमगाधोस्मि जनार्दन । त्वया प्रवर्तिते मार्गे यास्यामि गमनीयताम् ॥ ५ ॥ अन्येप्येतं गमिष्यन्ति राजानो दर्पमोहिताः । एवं सञ्चिन्त्य गोविन्द यत्क्षमं तत् समाचर ।६। वासुदेव उवाच । ब्राह्मणार्थं मदर्थं च कुरु सागर मद्वचः । मद्दते न पुमान् कश्चिदन्यस्त्वां धर्षयिष्यति ॥ ७ ॥ अथाब्रवीत् समुद्रस्तु पुनरेव जनार्दनम् । अभिशापभयाद्भीतो बाढमेवं भविष्यति ।८। शोषयाम्येष मार्गं तं येन त्वं कृष्ण यास्यसि । रथेन सह सूतेन सध्वजेन तु केशव ॥९॥ वासुदेव उवाच । मया दत्तो वरः पूर्वं न शोषं यास्यसीति ह।मानुषास्तेन जानीयुर्विविधान् रत्नसंचयान्। जलं स्तंभय साधो त्वं ततो यास्याम्यहं रथी । न च कश्चित् प्रमाणं ते रत्नानां वेत्स्यते नरः ॥ ११ ॥ सागरेण तथेत्युक्ते

हे जनार्दन ! पहिले तुमने ही मुझे अगाध बना दिया है, अब आप मुझमें मार्ग बना देंगे, तब मैं गमनीय कहाने लगूँगा ५ और दर्पमें भरे हुए दूसरे राजे भी इसी प्रकार जाना चाहेंगे, हे गोविन्द ! इस बातको विचार कर आपको जो उचित जचे वह करिये ६वासुदेवने कहा;कि–हे समुद्र ! तुम ब्राह्मणके लिए और मेरे लिए मेरे वचनको मान लो, मेरे अतिरिक्त और कोई मनुष्य तुम्हारा तिरस्कार न कर सकेगा ॥७॥ उस समय शाप के भयसे डरे हुए समुद्रने जनार्दनसे बहुत अच्छा ऐसा ही होगा, कह दिया ८ हे केशव ! तुम सूत ध्वजा और रथके साथ जिस मार्गसे जाओगे उसे मैं सुखाये देता हूँ ॥ ९ ॥ वासुदेवने कहा, कि–तुम्हारे अनेक प्रकारके रत्नोंको मनुष्य न जान सकें इस लिये मैंने तुम्हें वर दिया था, कि–तू नहीं सूखेगा१०हे साधो ! तुम अपने जलको स्तंभित कर दो तब मैं रथमें बैठ कर चला जाऊँगा और तुममें कितने रत्न हैं, इस बातको भी कोई मनुष्य नहीं जान सकेगा ११ समुद्रके इस प्रकार कहने पर हम स्तंभित

प्रस्थिताः समो जलेन वै । स्तम्भितेन पयो भूमौ मणिवर्णेन भास्वता ॥ १२ ॥ ततोऽर्णवं समुत्तीर्य कुरूनप्युत्तरान् वयम् । क्षणेन समतिक्रान्ता गन्धमादनमेव च ॥ १३ ॥ ततस्तु पर्वताः सप्त केशवं समुपस्थिताः । जयन्तो वैजयन्तश्च नीलो रजतपर्वतः ॥ १४ ॥ महामेरुः स कैलास इन्द्रकूटश्च नामतः । बिभ्राणा वर्णरूपाणि विविधान्यद्भुतानि च ॥ १५ ॥ उपस्थाय च गोविन्दं किं कुर्मेत्यब्रुवंस्तदा । तांश्चैव प्रतिजग्राह विधिवन्मधुसूदनः ॥ १६ ॥ तानुवाच हृषीकेशः प्रणामावनतान् स्थितान् । विवरं गच्छतो मेऽद्य रथमार्गः प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ ते कृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रतिगृह्य च पर्वताः । प्रददुः कामतो मार्गं गच्छन्तो भरतर्षभाः ॥ १८ ॥ तत्रैवान्तर्हिताः सर्वे तदाश्चर्यतरं मम । असक्तश्च रथो याति मेघजालेष्विवांशुमान् ॥ १९ ॥ सप्तद्वीपान् ससिंधूंश्च सप्त सप्त

जल वाले और पृथ्वीमें प्रकाशवान् मणि वाले मार्ग पर चले १२ तदनन्तर समुद्रका उल्लँघन करके हम क्षण भरमें ही उत्तर कुरु और गंधमादन पर्वतको भी लाँघ गए ॥ १३ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकारके वर्ण और रूपोंको धारण करनेवाले जयन्त वैजयन्त नील रजत महामेरु कैलास और इन्द्रकूट नाम वाले सात पर्वत कृष्ण के पास आये और गोविन्दकी पूजा करके कहने लगे, कि-हम क्या करें ? तब कृष्णने उनका शास्त्रोक्तरीतिसे सत्कार किया १६ तदनन्तर उन प्रणाम करके नम्रतासे खड़े हुए पर्वतोंसे हृषीकेश ने कहा, कि-मैं जारहा हूँ, तुम विवर बना कर मेरे रथको मार्ग दो १७ कृष्णके वचनको सुनकर और उसको मान कर हे भरतर्षभ! पर्वतोंने गमन करनेवाले कृष्णको इच्छानुसार मार्ग दिया १८ उस समय सब पर्वत अन्तर्धान होगए, तब मुझे परम आश्चर्य हुआ, तब रथ, मेघोंमें चलने वाले सूर्यकी समान, असक्त होकर चलने लगा १९ फिर सातों द्वीप समुद्र सात पर्वत और लोका-

गिरीनथ । लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥२०॥ ततः कदाचिद्द दुःखेन रथमूहुस्तुरङ्गमाः । पंकभूतं हि तिमिरं स्पर्शाद्विज्ञायते नृप ॥ २१ ॥ अथ पर्वतभूतं तत्तिमिरं समपद्यत । तदासाद्य महाराज निष्प्रयत्ना हयाः स्थिताः ॥ २२ ॥ ततश्चक्रेण गोविन्दः पाटयित्वा तमस्तदा । आकाशं दर्शयामास रथपंथानमुत्तमम् ॥ २३ ॥ निष्क्रम्य तमसस्तस्मादाकाशे दर्शिते तदा । भविष्यामीति संज्ञा मे भयं च विगतं मम ॥ २४ ॥ ततस्तेजः प्रज्वलितमपश्यत तदाम्बरे । सर्वलोकं समाविश्य स्थितं पुरुषविग्रहम् ॥ २५ ॥ तं प्रविष्टो हृषीकेशो दीप्तं तेजोनिधिं तदा । रथ एव स्थितश्चाहं स च ब्राह्मणसत्तमः ॥ २६ ॥ स मुहूर्तात्ततः कृष्णो निश्चक्राम तदा प्रभुः । चतुरो बालकान् गृह्य ब्राह्मणस्यात्मजांस्तदा ॥ २७ ॥ प्रददौ ब्राह्मणायाथ पुत्रान् सर्वान्

लोक पर्वतको लाँघनेके बाद बड़ेभारी अन्धकारमेंको रथ घुसा२० तब घोड़े बड़ी कठिनतासे रथको खेंचने लगे हे राजन् ! छूने पर वहाँका अन्धकार कीचड़सा प्रतीत होता था, इसके उपरान्त वह अन्धकार पर्वतसा होगया, हे महाराज ! तहाँ पहुँच कर तो घोड़े निष्प्रयत्न होकर खड़े होगए २२ तदनन्तर गोविन्दने चक्र से अन्धकारका नाश करके रथके मार्गके लिये उत्तम आकाश प्रकट कर दिया ॥२३॥ उस अन्धकारसे निकल कर आकाशके दीखने पर मुझे यह विचार हुआ कि-अब मैं बच जाऊँगा और मेरा भय दूर होगया २४ तदनन्तर मैंने सबमें व्याप्त पुरुषविग्रहधारी प्रज्वलित तेजको खड़े हुए देखा २५ तदनन्तर मैं और वह श्रेष्ठ ब्राह्मण तो रथमें ही बैठे रहे और हृषीकेश उस प्रदीप्त तेज के खजानेमें घुस गए २६ फिर क्षण भरमें ही प्रभु कृष्ण ब्राह्मण के चारों बालकोंको लेकर तहाँसे निकल आये ।२७। तदनन्तर जनार्दनने ब्राह्मणको सब पुत्र देदिये, उनमें तीन पहिले हरे हुए

जनार्दनः । त्रयः पूर्वं हृता ये च सद्यो जातश्च बालकः ॥ २८ ॥ संहृष्टो ब्राह्मणस्तत्र पुत्रान् दृष्ट्वा पुनः प्रभो । अहं च परमप्रीतो विस्मितश्चाभवं तदा ॥ २९ ॥ ततो वयं पुनः सर्वे ब्राह्मणस्य च ते सुताः । यथा गता निवृत्ताः स्म तथैव भरतर्षभ ॥ ३० ॥ ततः स्म द्वारकां प्राप्ताः क्षणेन नृपसत्तम । असंप्राप्तेऽर्धदिवसे विस्मितोऽहं पुनः पुनः ॥३१॥ सपुत्रं भोजयित्वा तु द्विजं कृष्णो महायशाः । धनेन वर्धयित्वा च गृहं प्रस्थापयत्तदा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये ब्राह्मणपुत्रानयने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११३।

अर्जुन उवाच । ततः कृष्णो भोजयित्वा शतानि सुबहूनि च । विप्राणामृषिकल्पानां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १ ॥ ततः सह मया भुक्त्वा वृष्णिभोजैश्च सर्वदा । विचित्राश्च कथा दिव्याः कथयामास भारत ॥२॥ ततः कथान्ते तत्राहमभिगम्य जनार्दनम् ।

थे और एक तुरतका उत्पन्न हुआ बालक था २८ हे प्रभो ! उस समय अपने बालकोंको देखकर ब्राह्मण प्रसन्न होगया और मैं भी परम प्रसन्न हुआ और विस्मित हुआ २९ हे भरतर्षभ ! इसके उपरान्त हम और ब्राह्मणके सब पुत्र जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार लौट चले ३० हे नृपसत्तम ! उस समय हम क्षण भरमें ही द्वारकापुरीमें पहुँच गए उस समय आधा दिन भी नहीं बीता था तब मैं फिर विस्मयमें पड़ गया ३१ तदनन्तर महायशस्वी कृष्ण ने ब्राह्मणको और उसके पुत्रोंको भोजन कर तथा उसको धन देकर घरको भेज दिया ३२ एकसौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ११३

अर्जुनने कहा, कि-तदनन्तर कृष्ण सैंकड़ों ऋषिकल्प ब्राह्मणोंको भोजन करा कर कृतकृत्य हुए १ हे भारत ! फिर कृष्ण मेरे साथ और वृष्णिवंशी तथा भोजवंशियोंके साथ भोजन करके विचित्र दिव्य कथाएँ कहने लगे २ तदनन्तर बात चीत समाप्त होने पर

अपृच्छं तद्यथावृत्तं कृष्णं गत्वा दृष्टवानहम् ॥ ३ ॥ कथं समुद्रः स्तम्भोदः कृतस्तु कमलेक्षण । पर्वतानां च विवरं कृतं तत्कथमच्युत ॥ ४ ॥ तमस्तच्च कथं घोरं घनं चक्रेण पाटितम् । तच्च महारसं तेजः प्रविष्टोसि कथं च तत् ॥ ५ ॥ किमर्थं तेन ते बालास्तदा चापहृताः प्रभो । यच्च ते दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तत् कथं पुनः ॥६॥ कथं चाल्पेन कालेन कृतं तत्तद्गतागतम् । एतत् सर्वं यथावृत्तमाचक्ष्व मम केशव ॥७॥ वासुदेव उवाच । मद्दर्शनार्थं ते बाला हृतास्तेन महात्मना । विप्रार्थमेष्यते कृष्णो नागच्छेदन्यथेति ह ॥८॥ ब्रह्मतेजोमयं दिव्यं महद्यद्दृष्टवानसि । अहं स भरतश्रेष्ठ मत्तेजस्तत् सनातनम् ॥ ९ ॥ प्रकृतिः सा मम परा

मैं कृष्णके पास गया और मैंने जो बात देखी थी, उसके सम्बंध में कृष्णसे बूझने लगा ३ कि–हे कमलनेत्र ! तुमने समुद्रके जल को किस प्रकार स्तंभित कर दिया था और हे अच्युत ! आप ने पर्वतोंमें विवर भी कैसे कर दिया था ॥ ४ ॥ और आपने उस घोर अन्धकारको अपने चक्रसे किस प्रकार नष्ट कर डाला था ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! उस (तेजोमय पुरुष) ने उन बालकोंको क्यों हर लिया था, और आपने (आनेके समय) उस मार्गको किस प्रकार संक्षिप्त कर दिया था ॥ ६ ॥ और आप थोड़े ही समयमें तहाँ किस प्रकार गए और आये थे हे केशव ! यह सब बातें मुझसे कहिये ॥ ७ ॥ वासुदेवने कहा, कि–उस महात्मा (बड़े भारी जगत्की रक्षाके अंकुर भूत तेज के अभिमानी) ने मेरा दर्शन करनेके लिए उन बालकोंको हर लिया था, (उसने समझा था, कि–)कृष्ण ब्राह्मणके लिए ही आसकते हैं वैसे नहीं आवेंगे८हे भरतश्रेष्ठ ! तुमने ब्रह्म तेजोमय जिस दिव्य महान्का दर्शन किया है वह मैं ही हूँ और वह मेरा सनातन तेज है अर्थात् मैं ऐसे अंकुररूप अनेकों महानोंका फलरूप बीज हूँ)९वह(महत्तत्त्व

व्यक्ताव्यक्ता सनातनी । यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः ॥ १० ॥ सा सांख्यानां गतिः पार्थ योगिनां च तपस्विनाम् । तत्पदं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत् ॥ ११ ॥ मामेव तद्घनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत । समुद्रः स्तब्धतोयोहमहं स्तम्भयिता जलम् ॥१२॥ अहं ते पर्वताः सप्त ये दृष्टा विविधास्तथा । पंकभूतं हि तिमिरं दृष्टवानसि यद्धि तत् ॥ १३ ॥अहं तमोघनीभूतमहमेव च पावकः । अहं च कालो भूतानां धर्मश्चाहं सनातनः ॥ १४ ॥ चन्द्रादित्यौ महाशैलाः सरितश्च सरांसि च । चतस्रश्च दिशः सर्वा ममैवात्मा चतुर्विधः ॥ १५ ॥ चातुर्वर्ण्यं मत्प्रसूतं चातुराश्रम्यमेव च । चातुर्विध्यस्य कर्ताहमिति बुध्यस्व

नाम वाली) मेरी प्रकृति (ज्येष्ठ होनसे अहंकार आदिसे)श्रेष्ठ है, वह (दृश्यांशसे) व्यक्त है और (दृगंशसे) अव्यक्त है, योगवेत्ता उत्तम पुरुष उसमें प्रवेश कर मुक्त होजाते हैं, अर्थात् उस को जानकर चित् जड़ का विवेक (सत्त्वपुरुषान्यताख्याति) होता है१०हे पार्थ!वह सांख्य वालोंकी और तपस्वियों योगियोंकी गति है, वह तत्पद है, वह परब्रह्म सब जगत्का विभाग करता है ११ (जिस प्रकार वह मेरा रूप है,इसी प्रकार और दृश्य भी मेरे रूप हैं,इसी बातको दिखाते हुए कृष्णने कहा कि—हे)भारत ! वह घनीभूत तेज तुम मुझे ही समझो, स्तंभित जलवाला समुद्र भी मैं ही और जलको स्तंभित करने वाला भी मैं ही हूँ ॥ १२ ॥ तुमने जिन अनेक प्रकारके सात पर्वतोंको देखा था और जिस कीचड़से अन्धकारको देखा था वह सब मैं ही हूँ ॥१३ ॥ मैं घनीभूत अंधकार हूँ और मैं ही उसको नष्ट करने वाला हूँ, मैं भूतोंका काल हूँ और सनातन हूँ ॥१४॥ चन्द्रमा सूर्य महापर्वत नदियें सरोवर और और चारों दिशाएँ ये सब मेरे चारों प्रकारके रूप हैं ॥ १५ ॥ चारों वर्ण और चारों आश्रम

भारत ॥ १६ ॥ अर्जुन उवाच । भगवन् सर्वभूतेश वेत्तुमिच्छामि ते प्रभो । पृच्छामि त्वां प्रपन्नोहं नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१७॥ वासुदेव उवाच । ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव तपः सत्यं च भारत । उग्रं बृहत्तमं चैव मत्तस्तद्विद्धि पाण्डव । प्रियस्तेहं महाबाहो प्रियो मेऽसि धनञ्जय ॥ १८ ॥ तेन ते कथयिष्यामि नान्यथा वक्तुमुत्सहे । अहं यजूंषि सामानि ऋचश्चाथर्वणानि च ॥ १९ ॥ ऋषयो देवता यज्ञा मत्तेजो भरतर्षभ । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ २० ॥ चन्द्रादित्यावहोरात्रं पक्षा मासास्तथर्तवः । मुहूर्ताश्च कलाश्चैव क्षणाः सम्वत्सरास्तथा ॥२१॥ मन्त्राश्च विविधाः पार्थ यानि शास्त्राणि कानिचित् विद्याश्च वेदितव्यं च मत्तः प्रादुर्भवन्ति हि २२॥लयं विद्धि कौन्तेय त्वयं

मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं और हे भारत ! मैं चारों विधियोंका कर्ता हूँ ॥१६॥ अर्जुनने कहा, कि-हे सब प्राणियोंके ईश्वर ! मैं आपको जानना चाहता हूँ, हे प्रभो ! मैं आपसे बूझता हूँ, हे पुरुषोत्तम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, ॥ १७ ॥ वासुदेवने कहा, कि-हे पाण्डव ! ब्रह्म ब्राह्मण तप सत्य उग्र (अनेक क्लेशों को देने वाला संसरणशील संसार) बृहत्तम (अतिमहान्) इन सबको तुम मुझसे उत्पन्न हुआ जानो, हे महाभुज ! मैं तुम्हें प्रिय हूँ, और हे धनञ्जय ! तुम मुझे प्रिय हो ॥ १८ ॥ इस लिए मैंने तुमसे यह बात कही है, अन्यथा नहीं कहता, यजुर्वेद, सामवेद ऋग्वेद अथर्ववेद, ऋषि देवता और यज्ञ, पृथिवी वायु आकाश जल और पाँचवी ज्योति ये मेरे तेज हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ चन्द्रमा आदित्य दिन रात पक्ष मास ऋतु मुहूर्त कला क्षण तथा संवत्सर अनेक प्रकारके मन्त्र और शास्त्र तथा विद्याओंको मुझसे ही उत्पन्न हुई जानना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे भारत ! तुम लय और सृष्टिको मन्मय ही जानो, मैं ही सत् (कारण)और

सूष्टि च भारत । सच्चासच्च ममैवात्मा सदसच्चैव यत्परम् ।२३। अर्जुन उवाच । एवमुक्तोस्मि कृष्णेन प्रीयमाणेन वै तदा । तथैव च मनो नित्यमभवन्मे जनार्दने ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुतं च दृष्टञ्च माहात्म्यं केशवस्य मे । यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र भूयांश्चातो जनार्दनः ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा कुरुश्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः । पूजयामास धर्मात्मा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ॥ २६ ॥ विस्मितश्चाभवद्राजा सह सर्वैः सहोदरैः । राजभिश्च समासीनैर्ये तत्रासन् समागताः ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि वासुदेवमाहात्म्ये कृष्णार्जुनभाषणे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

जनमेजय उवाच । भूय एव द्विजश्रेष्ठ यदुसिंहस्य धीमतः । कर्माण्यपरिमेयानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥ श्रूयन्ते विवि:

असत् (कार्य) हूँ और और जो सदसत्से-कार्य कारणसे-पर है अर्थात् शुद्ध ब्रह्म है वह भी मैं ही हूँ और सदसत्स्वरूप भी मैं ही हूँ अर्थात् चिदंशसे असत् और दृश्यांशसे सत् कार्यस्वरूप भी मैं ही हूँ ॥२३॥ अर्जुनने कहा, कि-श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर मुझसे यह बात कही थी और मेरा मन भी जनार्दनके प्रति ऐसा ही होगया है ॥ २४ ॥ मैंने यह केशवका माहात्म्य देखा और सुना है, हे राजेन्द्र ! तुमने मुझसे कृष्णके सम्बन्धमें प्रश्न किया था, परन्तु जनार्दन इससे भी अधिक हैं ॥२५॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि इस बातको सुन कर कौरवोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिरने पुरुषोत्तम गोविन्दकी पूजाकी थी २६ और वह राजा विस्मित भी हुए थे उनके सब भाई और जो तहाँ पर आये हुए राजे बैठे थे, वे भी परम विस्मित हुए थे ॥२७॥ एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११४ ॥ छ छ ॥

जनमेजयने कहा, कि-हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं बुद्धिमान् यदुसिंहके

धानि स्म अद्भुतानि महाद्युतेः । असंख्येयानि दिव्यानि प्रकृतान्यपि सर्वशः ॥ २ ॥ यान्यहं विविधान्यस्य श्रुत्वा प्रीये महामुने । प्रब्रूयाः सर्वशस्तात तानि मे शृण्वतोऽनघ ॥३॥ वैशम्पायन उवाच । बहून्याश्चर्यभूतानि केशवस्य महात्मनः । कथितानि महाबाहो नान्तं शक्यं हि कर्मणाम् ॥ ४ ॥ गन्तुं हि भरतश्रेष्ठ विस्तरेण समन्ततः । अवश्यं हि मया वाच्यं लेशमात्रेण भारत५ विष्णोरमितवीर्यस्य प्रथितोदारकर्मणः । आनुपूर्व्या प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥६॥ द्वारवत्यां निवसता यदुसिंहेन धीमता । राष्ट्राणि नृपमुख्यानां क्षोभितानि महात्मनाम् ॥ ७ ॥ यदूनामन्तरप्रेप्सुर्विचक्रो दानवो हतः । पुरं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनस्तेन महात्मना ॥८॥ समुद्रमध्ये दुष्टात्मा नरको दानवो हतः । वासवं

अपरिमेय कर्मोंको फिर सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ महाकान्तिमान् कृष्णके अनेक प्रकारके दिव्य और अद्भुत असंख्य कर्म सुने जाते हैं ॥ २ ॥ हे महामुने ! कृष्णके जिन विविध चरित्रों को सुनकर मैं प्रसन्न हो सकूँ, हे निष्पाप मुने ! उन चरित्रोंको मैं सुनना चाहता हूँ, आप सुनाइये ॥ ३ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे महाभुज ! मैंने तुमसे कृष्णके बहुतसे आश्चर्यमय कर्मों का वर्णन किया; हे भरतश्रेष्ठ ! उनके कर्म अतिविस्तृत हैं, अतः उनका पार नहीं पाया जासकता, तब भी हे भारत! मैं उन का लेशमात्र वर्णन करूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ मैं प्रसिद्ध और उदार कर्म वाले अमितवीर्य विष्णुके कर्मोंको क्रमशः कहता हूँ, हे राजन् ! अब तुम चित्तको एकाग्र करके सुनो६बुद्धिमान् यदुसिंहने द्वारका में रहते समय मुख्य २ महात्मा राजाओंके राज्योंको क्षुब्ध कर दिया था ।७। उन्होंने यादवोंके छिद्र देखने वाले विचक्र नामक दानवको मार डाला था, फिर उन महात्माने प्राग्ज्योतिषपुरमें जाकर समुद्रके मध्यमें दुष्टात्मा नरक दानवको मार डाला था

च रणे जित्वा पारिजातो हृतो बलात् ॥ ६ ॥ वरुणश्चैव भगवान्निर्जितो लोहिते ह्रदे । दन्तवक्रश्च कारूषो निहतो दक्षिणापथे ॥ १० ॥ शिशुपालस्य सम्पूर्णे किल्बिषैकशते हतः । गत्वा च शोणितपुरं शंकरेणाभिरक्षितः ॥११॥ बलेः सुतो महावीर्यो बाणो बाहुसहस्रभृत्महामृधे महाराज जित्वा जीवन् विसर्जितः निर्जितः पावकश्चैव गिरिमध्ये महात्मना । शाल्वश्च विजितः संख्ये सौभश्च विनिपातितः ॥१३॥विक्षोभ्य सागरं चैव पाञ्चजन्यो वशीकृतः । हयग्रीवश्च निहतो नृपाश्चान्ये महाबलाः १४ जरासन्धस्य निधने मोक्षिताः सर्वपार्थिवाः । रथेन जित्वा नृपतीन् गान्धारतनया हृता॥१५॥ भ्रष्टराज्याश्च शोकार्ताः पांडवाः परिरक्षिताः । दाहितं च वनं घोरं पुरुहूतस्य खाण्डवम् ॥१६॥

और रणमें इन्द्रको जीत कर पारिजातको बलपूर्वक छीन लिया था । ८ । ६ । उन्होंने भगवान् वरुणको लोहितहृदमें जीत लिया था और दक्षिणापथमें दन्तवक्र करूषको मार डाला था ॥१०॥ और सौ गाली पूर्ण होने पर शिशुपालको भी मार डाला था और उन्होंने शोणितपुरमें जाकर शंकरसे रक्षित बलिके महावीर्य पुत्र सहस्र भुजधारी बाणासुरको महायुद्धमें जीत कर उस को जीता हुआ ही छोड़ दिया था ।११।१२। और इन महात्मा ने पर्वतके मध्यमें अग्निको भी जीत लिया था, युद्धमें शाल्वको जीत लिया था और सौभको भी गिरा दिया था ॥१२॥ और समुद्रको क्षुब्ध कर पाञ्चजन्यको वशमें कर लिया था, हयग्रीव को तथा दूसरे महाबली राजाओंको भी मार डाला था ॥१४॥ और जरासन्धके मरने पर सब राजाओंको छुटा दिया था और रथके द्वारा राजाओंको जीत कर गांधारराजकी पुत्रीका हरण कर लिया था ॥१५॥ और राज्यसे भ्रष्ट हुए शोकार्त पाण्डवों की भी इन्होंने रक्षाकी थी और इन्द्रके भयंकर वन खाण्डवनको

गाण्डीवं चाग्निना दत्तमर्जुनायोपपादितम् । दौत्यं च तत्कृतं घोरे विग्रहे जनमेजय १७ अनेन यदुमुख्येन यदुवंशो विवर्धितः । कुन्त्याश्च प्रमुखे प्रोक्ता प्रतिज्ञा पाण्डवान् प्रति ॥१८॥ निवृत्ते भारते युद्धे प्रतिदास्यामि स्वत्सुतान् । मोक्षितश्च महातेजा नृगः शापात् सुदारुणात् ॥१९॥ यवनश्च हतः संख्ये काल इत्यभिविश्रुतः । वानरौ च महावीर्यौ मैंदो द्विविद एव च २० विजितौ युधि दुर्धर्षौ जाम्बवांश्च पराजितः।सान्दीपनेस्तथा पुत्रस्तव चैव पिता तथा ॥ २१ ॥ गतौ वैवस्वतवशं जीवितौ तस्य तेजसा । संग्रामा बहवः प्राप्ता घोरा नरवरक्षयाः २२ निहताश्च नृपाः सर्वे कृत्वा तज्जयमद्भुतम् । जनमेजयास्य युद्धेषु यथा ते वर्णिता मया

भी इन्होंने जलवा दिया था । १६ । और अग्निका दिया हुआ गाण्डीव धनुष भी इन्होंने अर्जुनको देदिया था और हे जनमेजय ! इन्होंने उस भयंकर युद्धमें दूतपना भी किया था १७ इन मुख्य यादवने यादवोंके वंशको बढ़ाया था और कुन्तीके सामने पाण्डवोंके प्रति प्रतिज्ञाकी थी १८ कि-मैं महाभारत युद्धके पूर्ण होनेपर तेरे पुत्र तेरे अर्पण कर दूँगा और महातेजस्वी कृष्ण ने राजा नृगको भयंकर शापसे छुड़ा दिया था १९ काल नाम से प्रसिद्ध यवनको भी इन्होंने युद्धमें मार डाला था और मैन्द तथा द्विविद नाम वाले महावीर्य युद्धमें दुधर्ष वानरोंको भी इन्होंने जीत लिया था और जाम्बवान्का भी पराजय किया था, सान्दीपनिका पुत्र और तुम्हारे पिता जब यमराजके वशमें पड़ गए थे, तो इन्हींके तेजसे जीवित हुए थे, इन्होंने राजाओंका क्षय करने वाले बहुतसे संग्राम किये थे ॥ २२ ॥ हे जनमेजय ! मैंने इनके विजयवृत्तान्तका जिस प्रकार वर्णन किया था, उस प्रकार इन्होंने युद्धमें सब राजाओंको मार कर अद्भुत विजय पाई थी ॥२३॥ एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ छ छ

जनमेजय उवाच । भूय एव महाबाहो यदुसिंहस्य धीमतः । कर्माण्यपरिमेयानि श्रुतानि द्विजसत्तम ॥ १ ॥ त्वत्तः श्रुतवतां श्रेष्ठ वासुदेवस्य धीमतः । यत्त्वया कथितं पूर्वं बाणं प्रति महासुरम् ॥ २ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन । कथं च देवदेवस्य पुत्रत्वमसुरो गतः ॥३॥ योभिगुप्तः स्वयं ब्रह्मन् शंकरेण महात्मना । सहवासं गतेनैव सगणेन गुहेन तु ॥४॥ बलेर्बलवतः पुत्रो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य यः।वृतो बाहुसहस्रेण दिव्यास्त्रशतधारिणा ॥५॥असंख्येयैश्च महाकायैर्महाबलशतैर्वृतः । वासुदेवेन स कथं बाणः संख्ये पराजितः॥६॥ संरम्भश्चैव युद्धार्थी जीवन्मुक्तः कथं च सः । वैशम्पायन उवाच । शृणुष्वावहितो राजन् कृष्णस्यामिततेजसः ॥ ७ ॥ मनुष्यलोके बाणेन यथाऽभू-

---

जनमेजयने कहा, कि-हे द्विजसत्तम ! मैंने आपसे यदुसिंह बुद्धिमान् महाभुज कृष्णके अपरिमेय कर्म फिर सुन लिये ॥ १ ॥ हे शास्त्रज्ञान वालोंमें श्रेष्ठ ! आपने जो महासुर बाणसे बुद्धिमान् वासुदेव के (युद्ध) की जो बातकही ॥ २ ॥ उस बातको मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ, हे तपोधन ! असुर देवदेव (शंकर) का पुत्र क्यों होगया था॥३॥ हे ब्रह्मन् ! महात्मा शंकर स्वयं ही उसकी रक्षा करते थे और वह कार्तिकेयके और उनके गणोंके साथ रहता था ।४। वह बलवान् बलि दैत्यका पुत्र था और सौ भाइयोंमें बड़ा भाई था, उसके दिव्य अस्त्रोंको धारण करने वाली सहस्र भुजाएँ थीं ॥५॥ वह बड़े भारी शरीर वाले असंख्य महाबली (राक्षसों) से घिरा रहता था, ऐसा बाणासुर वासुदेवसे युद्धमें कैसे हार गया॥ ६ ॥ और वह युद्धार्थी और क्रोधी था, तो भी जीवन्मुक्त किस प्रकार था, वैशम्पायनजीने कहा कि-हे राजन् ! अमित तेजस्वी वासुदेवका मृत्युलोकमें बाणासुरके साथ जिस प्रकार महासंग्राम हुआ था,

द्विग्रहो महान् । वासुदेवेन यत्रासौ रुद्रस्कन्दसहायवान् ॥ ८ ॥
बलीपुत्रो रणश्लाघी जित्वा जीवन् विसर्जितः।यथा चास्य वरो
दत्तः शंकरेण महात्मना ॥ ६ ॥ नित्यं सान्निध्यता चैव गाण-
पत्यं तथाक्षयम् । यथा बाणस्य तद्युद्धं जीवन्मुक्तो यथा च सः ।
यथा च देवदेवस्य पुत्रत्वं सोऽसुरो गतः । यदर्थं च महद्युद्धं तत्
सर्वमखिलं शृणु ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा वपुः कुमारस्य क्रीडतश्च महा-
त्मनः । बलिपुत्रो महावीर्यो विस्मयं परमं गतः ॥ १२ ॥ तस्य
बुद्धिः समुत्पन्ना तपश्चर्तुं सुदुष्करम् । रुद्रस्याराधनार्थाय देवस्य
स्यां यथा सुतः ॥ १३ ॥ ततो श्लाघयदात्मानं तपसा श्लाघ्य
चेतसः । देवश्च परमं तोषं जगाम च सहोमया ॥ १४ ॥नील-
कण्ठः परां प्रीतिं गत्वा चाऽऽसुरमब्रवीत् । वरं वरय भद्रन्ते यत्ते

उसको तुम सुनो, इस युद्धमें जिस प्रकार रुद्र और स्कन्दकी सहायता पाने वाले रणश्लाघी बलिके पुत्र बाणासुरको कृष्णने जीता हुआ ही छोड़ दिया था, महात्मा शंकरने बाणासुरको जिस प्रकार वर दिया था ७-६ जिस प्रकार यह सर्वदा शिवके साथ रहता था और इसे जिस प्रकार अक्षय गणपतित्व मिला था और बाणका जिस प्रकार युद्ध हुआ था और वह जिस प्रकार जीता हुआ ही छूटगया था ॥ १० ॥ और जिस प्रकार यह असुर देवदेव शंकरका पुत्र बन गया था और जिस लिये यह बड़ाभारी युद्ध हुआ था, उन सब बातोंको तुम सुनो ॥ ११ ॥ क्रीड़ा करते हुए महात्मा स्कन्दके शरीरको देख कर महावीर्यवान् बलिपुत्र परम विस्मित हुआ ।१२। तब उसने ऐसा दुष्कर तप करना चाहा कि-जिससे मैं दुष्कर तप करके रुद्रका पुत्र बन जाऊँ १३ तदनन्तर उसने (तप करके मैं महातपस्वी हूँ इस प्रकार) अपनी प्रशंसाकी तब उस प्रशंसनीय चित्त वाले पर महादेव और पार्वती परम प्रसन्न हुए १४ तब

मनसि वर्तते ॥ १५ ॥ अथ बाणोऽब्रवीद्वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् । देव्याः पुत्रत्वमिच्छामि त्वया दत्तं त्रिलोचन ॥ १६ ॥ शंकरस्तु तथेत्युक्त्वा रुद्राणीमिदमब्रवीत् । कनीयान् कार्तिकेयस्य पुत्रोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१७॥ यत्रोत्थितो महासेनः सोग्निजो रुधिरे पुरे । तत्रोद्देशे पुरं चास्य भविष्यति न संशयः ॥१८॥ नाम्ना तच्छोणितपुरं भविष्यति पुरोत्तमम् । मयाभिगुप्तं श्रीमन्तं न कश्चित् प्रसहिष्यति ॥१९॥ ततः स निवसन् बाणः पुरे शोणितसाह्वये। राज्यं प्रशासते नित्यं क्षोभयन् सर्वदेवताः ॥ २० ॥ अवतीर्य मदोत्सिक्तो बाणो बाहुसहस्रवान् । अनितयन् देवगणान् युद्धमार्कान्नते सदा ॥ २१ ॥ ध्वजं चास्य ददौ प्रीतः कुमारो ह्यग्नितेजसम् । वाहनं चैव बाणस्य मयूरं दीप्ततेजसम् ॥ २२ ॥ न

नीलकण्ठने परम प्रसन्न हो असुरके पास जा उससे कहा, कि-तेरा कल्याण हो, तेरे मनमें जो बात हो उसका वर माँग ले१५ तब बाणासुरसे देवदेव महेश्वरसे यह वचन कहा, कि-हे त्रिलोचन ! मैं आपके वरसे देवी (उमा) का पुत्र बनना चाहता हूँ १६ तब शंकरने तथास्तु कहकर रुद्राणीसे यह बात कही, कि-तुम इसको कार्तिकेयसे छोटा पुत्र मान कर ग्रहण करो ।१७। अग्निसे उत्पन्न हुए महासेन जिस रुधिरपुरमें उत्पन्न हुए थे, तिस स्थानपर इसका नगर होगा १८ और उस नगरका नाम शोणितपुर होजायगा, मैं उसकी रक्षा किया करूँगा तब कोई भी उस शोभामय नगरको न दबा सकेगा॥ १९ ॥ तदनन्तर बाणासुर शोणितपुर नगरमें रहने लगा और सब देवताओंको त्रास देता हुआ राज्य करने लगा ॥२०॥ मदसे छका हुआ सहस्र भुजाओं वाला बाणासुर राज्य पर आकर देवताओंकी ओर ध्यान देकर उनसे युद्ध करना चाहने लगा ॥२१॥ स्वामि कार्तिकेयने प्रसन्न होकर बाणासुरको अग्निकी समान तेजस्वी ध्वजा दी और प्रदीप्त

देवा न च गन्धर्वा न यक्षा नापि पन्नगाः । तस्य युद्धे व्यतिष्ठंत देवदेवस्य तेजसा ॥२३॥ त्र्यम्बकेनाभिगुप्तश्च दर्पोत्सिक्तो महासुरः । भूयो मृगयते युद्धं शूलिनं सोऽभ्यगच्छत ॥२४॥ स रुद्रमभिगम्याथ प्रणिपत्याभिवाद्य च । बलिसूनुरिदं वाक्यं प्रमथ्य वृषभध्वजम् ॥ २५ ॥ असकृन्निर्जिता देवाः ससाध्याः समरुद्गणाः । मया मद्बलोत्सेकात् ससैन्येन तवाश्रयात् ॥२६॥ इमं देशं समागम्य वसन्ति स्म पुरे सुखम् । ते पराजयसन्त्रस्ता निराशा मत्पराजये ॥ २७ ॥ नाकपृष्ठमुपागम्य निवसन्ति यथा सुखम् । सोऽहं निराशो युद्धस्य जीवितं नाद्य कामये ॥ २८ ॥अयुध्यतो वृथा शेषां बाहूनां धारणं मम । तद् ब्रूहि मम युद्धस्य कच्चिदागमनं भवेत् ॥ २९ ॥ न मे युद्धं विना देव रतिरस्ति प्रसीद मे । ततः

तेज वाला मयूर नामक वाहन भी दिया२२देवदेव शङ्करके तेजके कारण उसके सामने युद्धमें देवता गन्धर्व यक्ष और पन्नग भी नहीं खड़े होते थे॥ २३ ॥ फिर शिवजीसे रक्षित, दर्पसे छका हुआ वह महासुर युद्ध करनेका अवसर ढूंढ़ता हुआ शिवजीके पास गया २४ बलिके पुत्रने रुद्रके पास जाकर उनको (पृथ्वीमें) लोट कर प्रणाम किया, फिर बलिपुत्र बाणासुरने वृषध्वजसे यह बात कही, कि—॥ २५ ॥ आपके आश्रयके कारण गर्व बढ़ जाने पर मैंने सेनाको साथमें लेकर देवता साध्य और मरुद्–गणोंको अनेक बार जीता है॥२६॥ वे पराजयसे सन्त्रस्त होकर और अपने जीतनेसे निराश होकर हमारे नगरमें आकर सुखपूर्वक रहते हैं॥ २७॥ और मुझसे हार जाने पर अभयवचन मिलने पर) स्वर्गमें भी सुखपूर्वक रहते हैं, इस लिए मैं युद्धसे निराश होजानेके कारण जीवित रहना नहीं चाहता॥ २८ ॥ बिना युद्ध करे इन भुजाओंका धारण करना वृथा है, इसलिये बताइये। क्या मुझे अब कभी युद्ध करनेको मिलेगा ? ॥ २९ ॥ हे देव !

महस्य भगवानब्रवीद् वृषभध्वजः ॥ ३० ॥ भविता बाणयुद्धं वै यथा तच्छृणु दानव । ध्वजस्यास्य यदा भङ्गस्तव तात भविष्यति । स्वस्थाने स्थापितस्याथ तदा युद्धं भविष्यति ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्तः प्रहसन् बाणस्तु बहुशो मुदा । प्रसन्नवदनो भूत्वा पादयोः पतितोऽब्रवीत् । दिष्ट्या बाहुसहस्रस्य न वृथा धारणं मम ॥ ३२ ॥ दिष्ट्या सहस्राक्षमहं विजेता पुनराहवे । आनन्देनाश्रुपूर्णाभ्यां नेत्राभ्यामरिमर्दनः । पञ्चाञ्जलिशितैर्देवं पूजयन् पतितो भुवि ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ बाहूनामात्मनः स्वकुलस्य तु । सदृशं प्राप्स्यसे वीर युद्धमप्रतिमं महत् ३४ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्ततो बाणस्त्र्यम्बकेण महात्मना । हर्षेणात्युच्छ्रितः शीघ्रं ननाम वृषभध्वजम् ॥ ३५ ॥ शितिकण्ठ-

---

युद्धके विना मेरा चित्त प्रसन्न नहीं रहता है ! तब भगवान् वृषभध्वजने हँसकर कहा, कि—॥३०॥ हे बाणासुर ! युद्ध जिसप्रकार होगा, उसको तू सुन, हे तात ! तेरे स्थानमें खड़ी हुई ध्वजा जब टूट जावेगी तब युद्ध होगा ॥३१॥ इस प्रकार कहने पर बाणासुर परम हर्षमें भर कर हँसने लगा और मुखको प्रसन्न कर शिवजीके चरणोंमें गिर कर कहने लगा, कि—मेरा सहस्र भुजाओंको धारण करना व्यर्थ न जावेगा, यह अहो भाग्यकी बात है ! और मैं सहस्राक्ष इन्द्रको युद्धमें फिर जीतूँगा यह भी अहो भाग्य है, फिर जिसके नेत्रोंमें आसूँ भर रहे थे ऐसा अरिमर्दन बाणासुर पाँच सौ अञ्जलियोंसे अर्थात् सहस्र हाथोंको जोड़ शिवकी पूजाकर पृथ्वीमें लोट शिवको प्रणाम करने लगा॥३२॥३३॥ ईश्वरने कहा; कि—उठ ! उठ ! हे वीर ! तुझे अपनी भुजाओंके और अपने कुलके अनुरूप अद्भुत युद्ध करनेको मिलेगा ३४ वैशम्पायनजीने कहा; कि-महात्मा त्र्यम्बकके इसप्रकार कहने पर बाणासुरने बड़े भारी हर्षसे अति ऊँचा उछल कर वृषभध्वजको प्रणाम

विसृष्टस्तु बाणः परपुरञ्जयः । ययौ स्वभवनं तत्र यत्र ध्वजगृहं महत् ॥ ३६ ॥ तत्रोपविष्टः प्रहसन्कुम्भाण्डमिदमब्रवीत् । प्रियमावेदयिष्यामि भवतो यन्मनोगतम् ॥ ३७ ॥ इत्येवमुक्तः प्रहसन्बाणमप्रतिमं रणे । मोवाच राजन् किं त्वेतद्वक्तुकामोसि मत्प्रियम् ॥ ३८ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनः प्रहर्षादिव भाषसे । त्वत्तः श्रोतुमिहेच्छामि वरं किं लब्धवानसि ॥३९॥ शितिकण्ठप्रसादेन स्कन्दगोपायनेन च । कच्चित्त्रैलोक्यराज्यं ते दत्तं दिष्टं शूलपाणिना ॥४०॥ अस्य चक्रभयत्रस्ता निवसन्ति जलाशये । कच्चिच्छार्ङ्गगदापाणेः स्थितस्य परमाहवे ॥४१॥ कच्चिदिन्द्रस्तव भयात्पातालमुपयास्यति । कच्चिद्विष्णुपरित्रासं विमोक्ष्यन्ति दितेः सुताः ॥४२॥पातालवासमुत्सृज्य कच्चित्तव बलाश्रयात् । विबुधा-

किया३५नीलकंठ महादेवके विदा करने पर शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाला बाणासुर अपने घरको चला गया और बड़े भारी ध्वजागारमें पहुँचा३६तहाँ पर बैठ कर उसने कुम्भाण्डसे कहा, कि- मैं तुम्हारे मनकी प्रिय बात कहता हूँ ॥३७॥ इस प्रकार कहने पर मन्त्रीने हँस कर अप्रतिम बाणसे कहा, कि- हे राजन् ! आप मुझे प्रिय लगने वाली कौनसी बात कहना चाहते हैं ३८ आप अपने नेत्रोंको हर्षसे प्रफुल्लित कर भाषण कर रहे हैं अतः मैं आपसे सुनना चाहता हूँ, कि-नीलकण्ठके वरसे और स्कन्द की रक्षासे आपने क्या वर पाया है ? क्या शूलपाणिने आपको त्रिलोकीका राज्य दे दिया है ॥३९॥४०॥ विष्णुके भयसे त्रस्त होकर दानव जलाशय (समुद्र) में रहते हैं, क्या युद्धमें खड़े हुए शार्ङ्ग और गदाको हाथमें धारण करनेवाले विष्णुके ऊपर (विजय पानेका आपको वरदान मिल गया है) ॥ ४१ ॥ क्या आपके भयसे इन्द्र पातालको भाग जावेगा और क्या दितिके पुत्र विष्णु के त्राससे छूट जावेंगे ॥४२॥ क्या आपके बलका आश्रय पाने

वासन्निरता भविष्यन्ति महासुराः ॥ ४३ ॥ बलिर्विष्णुपराक्रांतो बद्धस्तव पिता नृप । सलिलौघाद्विनिष्क्रम्य कच्चिद्राज्यमवाप्स्यति दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यस्रग्गन्धलेपनम् । कच्चिद्वैरोचनिं तात द्रक्ष्यामः पितरं तव ॥४५॥कच्चित्त्रिभिः क्रमैः पूर्वं हृताँल्लोकानिमान्प्रभो । पुनः प्रत्यानयिष्यामो जित्वा सर्वान् दिवौकसः ४६ स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं शङ्खस्वनपुरोजवम् । कच्चिन्नारायणं देवं जेष्यामः समितिञ्जयम् ॥ ४७ ॥ कच्चिद्वृषध्वजस्तात प्रसादसुमुखस्तव । यथा ते हृदयोत्कम्पः साश्रुबिन्दुः प्रवर्तते ॥ ४८ ॥ कच्चिदीश्वरतोदेशं कार्तिकेयमतेन च । आप्तवानसि सर्वेषामस्माकं राज्यसम्पदम् ॥ ४९ ॥ इति कुम्भाण्डवचनैश्चोदितः सुसुरोत्तमः । बाणो बाणीगसंसक्तां प्रोवाच वदतां वरः ॥५०॥

से दैत्य पातालमें बसना छोड़ कर देवताओंके आवासस्थल स्वर्ग में बस जावेंगे ? ॥ ४३ ॥ तुम्हारे पिता बलिको विष्णुने जीत लिया था, क्या वह जलमेंसे निकल कर राज्य पा जावेंगे ४४ हे तात ! क्या हम दिव्य चन्दन और वस्त्रधारी और दिव्य गंध का लेपन करने वाले विरोचनपुत्र आपके पिताको देखेंगे ? ४५ हे प्रभो ! क्या हम तीन चरणोंको धर कर छीने हुए तीनों लोकों को सब देवताओंको जीत कर फिर लौटा सकेंगे ॥ ४६ ॥ क्या हम स्निग्ध और गम्भीर घोष वाले शंखके शब्दकी समान सामने वेग वाले समितिञ्जय नारायण देवको जीत सकेंगे ॥ ४७ ॥ हे तात ! क्या वृषभध्वजने आपको वरदान देनेके लिये अच्छा मुख कर लिया था, क्योंकि-जिस प्रकार आपका हृदय काँप रहा है और आँसुओंकी बूँदें आरही हैं(उससे तो यह ही प्रतीत है)४८ क्या शिवके प्रसादसे कार्तिकेयकी सम्मतिके अनुसार हे राजर्षे! आपको हम सबोंकी राज्यसम्पत्ति मिल गई है ।४९। कुम्भाण्ड के वचनसे इस प्रकार प्रेरित हुए असुरसत्तम वक्ताओंमें श्रेष्ठ

बाण उवाच । चिरात्प्रभृति कुम्भाण्ड न युद्धं प्राप्यते मया । ततो मया मुदा पृष्टः शितिकण्ठः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥ युद्धाभिलाषः सुमहान् देव सञ्जायते मम । अपि प्राप्स्याम्यहं युद्धं मनसस्तुष्टि-वर्धनम् ॥५२॥ ततोऽहं देवदेवेन हरेणामित्रघातिना । प्रहस्य सु-चिरं कालमुक्तोऽस्मि वचनं प्रियम् ।प्राप्स्यसे सुमहद्युद्धं त्वं बाणा-प्रतिमं महत् ॥५३॥ मयूरध्वजभङ्गस्ते भविष्यति यदासुर । तदा त्वं प्राप्स्यसे युद्धं सुमहद्दितिनन्दन ॥ ५४ ॥ ततोऽहं परमप्रीतो भगवन्तं वृषध्वजम् । प्रणम्य शिरसा देवं तवाऽन्तिकमुपागतः । इत्येवमुक्तः कुम्भाण्डः प्रोवाच नृपतिं तदा । अहो न शोभनं राजन् यदेवं भाषसे वचः ॥ ५६ ॥एवं कथयतोस्तत्र तयोरन्यो-न्यमुच्छ्रितः । ध्वजः पपात वेगेन शक्राशनिसमाहतः ॥ ५७ ॥

बाणासुरने अस्खलित वाणीका उच्चारण किया ।५०। बाणा-सुरने कहा कि-हे कुम्भाण्ड ! मुझे बहुत समयसे युद्ध करनेको नहीं मिलता इस लिये मैंने प्रतापी शिवसे मुझे अब कब युद्ध करनेको मिलेगा, यह बात बूझी थी ॥ ५१ ॥ मैंने कहा था, कि हे देव ! मुझे युद्ध करनेकी बड़ी भारी इच्छा हो रही है, अत मुझे मेरे मनकी तुष्टिको बढ़ाने वाला युद्ध कब करनेको मिलेगा ॥ ५२ ॥ तब बहुत समयके बाद शत्रुओंका नाश करने वाले देवदेव हरने हँसकर कहा, कि-हे बाण ! तुझे बड़ाभारी अप्रतिम युद्ध करनेको मिलेगा ।५३। हे दितिनन्दन ! हे असुर! जब तेरी मयूरध्वजा टूट जावेगी, तब तुझे बड़ाभारी युद्ध करना पड़ेगा ।५४। तदनन्तर मैं परम प्रसन्न हो भगवान् वृषभध्वजको शिरसे प्रणाम कर तेरे पास चला आरहा हूँ ॥५५॥ इसप्रकार कहने पर कुम्भाण्डने राजासे कहा; कि-हे राजन् ! तुमने ऐसी बात कह कर अच्छा नहीं किया । ५६ । जब वे दोनों परस्पर इसप्रकार बातचीत कर रहे थे इतनेमें ही उसकी ध्वजा इन्द्र के

तं तथा पतितं दृष्ट्वा सोऽसुरो ध्वजमुत्तमम् । महर्षमतुलं लेभे मेने चाहवमागतम् ॥ ५८ ॥ ततश्चकम्पे वसुधा शक्राशनिसमाहता । ननादान्तर्हितो भूमौ वृषदंशो जगर्ज च ॥ ५९ ॥ देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत वासवः । शोणितं शोणितपुरे सर्वतः परमं ततः सूर्यं भित्त्वा महोल्का च पपात धरणीतले । स्वपक्षे चोदितः सूर्यो भरणीं समपीडयत् ॥ ६१ ॥ चैत्यवृक्षेषु सहसा धाराः शतसहस्रशः । शोणितस्यास्रवन्घोरा निपेतुस्तारका भृशम् ॥ ६२ ॥ राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते । लोकक्षयकरे काले निर्घातश्चापतन्महान् ॥ ६३ ॥ दक्षिणां दिशमास्थाय धूमकेतुः स्थितोऽभवत् । अनिशं चाप्यविच्छिन्ना ववुर्वाताः सुदारुणाः ॥ ६४ ॥

वज्रसे टूट कर पृथिवी पर आपड़ी ५७ उस उत्तम ध्वजाको पड़ी हुई देखकर असुरश्रेष्ठने बड़ा आनन्द पाया और युद्धको आया हुआ समझा ।५८। उस समय इन्द्रके वज्रसे आहत हुई पृथिवी काँपने लगी और झन्नाने लगी और बिलाव शब्द करने लगे ५९ और देवताओंके देव इन्द्रभी शोणितपुरमें चारों ओर रक्तकी वर्षा करनेलगे ६० सूर्यमण्डलको भेद कर बड़ीभारी उल्का पृथिवीमें गिरपड़ी और अपने पक्षमें उदय हुआ सूर्य भरणी नक्षत्रको पीड़ित करनेलगा (अर्थात्-देवनक्षत्रमें उदय हुआ सूर्य कृत्तिकामें घुसगया अतः रोहिणी जो बाणासुरका जन्मनक्षत्र था वह और जो छन्नीः सवाँ उसके अभिषेकका भरणी नक्षत्र था ये दोनों नक्षत्र बिधगए अतः उसको देहकी पीड़ा होगी और वह पदसे भ्रष्ट होजायगा, गए,इस बातकी सूचना हो गई) ॥ ६१ ॥ चैत्यके वृक्षोंमेंसे अकस्मात् रक्तकी सहस्रों भयंकर धाराएँ टपकने लगी और तारे अधिकतर टूटने लगे ६२ हे राजन ! पर्वके विनाही राहुने सूर्यको ग्रस लिया और लोकका क्षय करने वाले समयमें बड़ा भारी निर्घात गिर पड़ा ॥ ६३ ॥ दक्षिण दिशाकी ओर पुच्छल तारा उदय

श्वेतलोहितपर्यन्तः कृष्णग्रीवस्तडिद्द्युतिः । त्रिवर्णपरिघो भानुः सन्ध्यारागमथावृणोत् ॥६५॥ वक्रमङ्गारकश्चक्रे कृत्तिकासु भयंकरः । बाणस्य जन्मनक्षत्रं भर्त्सयन्निव सर्वशः ॥६६॥ अनेकशाखश्चैत्यश्च निपपात महीतले । अर्चितः सर्वकन्याभिर्दानवानां महात्मनाम् ॥६७॥ एवं विविधरूपाणि निमित्तानि निशामयन् । बाणो बलमदोन्मत्तो निश्चयं नाधिगच्छति ॥६८॥ विचेतास्त्वभवत् प्राज्ञः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान् । बाणस्य सचिवस्तत्र कीर्तयन् बहुकिल्बिषम् ॥ ६९ ॥ उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्ते न शोभनम् । तव राज्यविनाशाय भविष्यन्ति न संशयः ॥७०॥ वयं चान्ये च सचिवा भृत्या ये च तवानुगाः । नाशं यास्यन्ति न चिरात् सर्वे पार्थिवदुर्नयात् ॥७१॥ यथा शक्रध्वजनरो स्वदर्पात्

होगया और भयंकर वायु अनवच्छिन्न रूपसे चलने लगे ।६४। बिजलीकी समान कान्ति वाले काली ग्रीवावाले, श्वेत और रक्त अन्त वाले तीन वर्ण के परिवेषने संध्याकी समान वर्ण वाले भानु को घेर लिया ६५ मङ्गल कृत्तिका पर (बाणासुरके जन्मनक्षत्र पर)वक्री होगया,इस प्रकार उसने बाणासुरके जन्मनक्षत्रको भली प्रकार पीड़ितकिया ६६ महात्मा दानवोंकी सम्पूर्ण कन्याओंसे पूजित अनेक शाखाओं वाला चैत्य वृक्ष भूमिमें गिरपड़ा ।।६७।। इस प्रकार अनेक प्रकारके निमित्तोंको देख कर बल और मदसे उन्मत्त बाणासुर कुछ निश्चय न कर सका ।६८। उस समय तत्त्व बातोंको देखनेवाला बुद्धिमान जो बाणासुरका मन्त्री था, वह अनेक प्रकारके उत्पातोंको कहता हुआ बेहोशसा होगया ।।६९।। (वह कहने लगा, कि-) यह जो उत्पात दीख रहे हैं,ये शोभन बात को नहीं बताते,ये सब तेरेराज्यको नष्ट करनेके लिए ही होरहे हैं हम और आपके वशमें रहनेवाले दूसरे मंत्री और आपके अनुचर राजाकी दुर्नीतिसे शीघ्रही नष्ट होजायँगे ७१ जिस प्रकार

पतनं भवेत् । बलमाकांक्षतो मोहात्तथा बाणस्य नर्दतः ॥ ७२ ॥ देवदेवप्रसादात्तु त्रैलोक्यविजयं गतः । उत्सेकाद्ध दृश्यते नाशो युद्धाकांक्षी ननर्द ह ॥ ७३ ॥ बाणः प्रीतमनास्त्वेवं पपौ पानमनुत्तमम् । दैत्यदानवनारीभिः सार्द्धमुत्तमविक्रमः ॥ ७४ ॥ कुम्भाण्डश्चिन्तयाविष्टो राजवेश्माभ्ययात्तदा । अचिन्तयच्च तत्त्वार्थं तैस्तैरुत्पातदर्शनैः ॥७५॥ राजा प्रमादी दुर्बुद्धिर्जितकाशी महासुरः । युद्धमेवाभिलषते न दोषान् मन्यते मदात् ॥ ७६ ॥ महोत्पातभयं चैव न तन्मिथ्या भविष्यति । अपीदानीं भवेन्मिथ्या सर्वमुत्पातदर्शनम् ॥७७॥ इह ह्यास्ते त्रिनयनः कार्तिकेयश्च वीर्यवान् । तेनोत्पन्नोऽपि दोषो न कञ्चिद्गच्छेत् पराभवम् ॥ ७८ ॥ उत्पन्नदोषप्रभवः क्षयोऽयं भविता महान् । दोषाणां न भवेन्नाश

इन्द्रध्वजा वृक्षसे गिर पड़ी है; इसीप्रकार बली पुरुषको चाह कर मोहवश गर्जते हुए बाणासुरका गर्वके कारण पतन होजा-गया ७२ देवदेवके प्रसादसे आपने त्रिलोकीको जीत लिया है, परन्तु अति दर्पके कारण आपका नाश ही होगा, तब युद्धको चाहने वाला बाणासुर गर्जने लगा ७३ फिर श्रेष्ठ पराक्रम वाला बाणासुर प्रसन्न होकर प्रसन्न मनसे दैत्य और दानवनारियों के साथ उत्तम शरबत पीने लगा ७४ तब कुम्भाण्ड भी चिन्ता में भर कर राजभवनसे चला गया और उत्पातोंको देख कर तत्त्वबातका विचार करने लगा ॥ ७५ ॥ यह राजा बाणासुर प्रमादी है, जीतकर खिल रहा है बड़ाभारी राक्षस है, इस लिये युद्धको ही चाहता है, मदके कारण दोषको नहीं देखता ७६ यह सब महान् उत्पातोंका भय मिथ्या नहीं होगा, परन्तु अभी यह सब उत्पातदर्शन मिथ्या भी हो सकते हैं ७७ क्योंकि-यहाँ पर त्रिनयन शिव और वीर्यवान् कार्तिकेय रहते हैं, इस लिए अशुभ चिन्ह होने पर भी किसीका पराभव नहीं होसकता ७८

इति मे भीयते मतिः ॥ ७९ ॥ नियतं दोष एवायं भविष्यति न संशयः । दौरात्म्यान्नृपतेरस्य दोषभूता हि दानवाः ॥ ८० ॥ देवदानवसंघानां यः कर्ता भुवनप्रभुः । भगवान् कार्त्तिकेयश्च कृतवाँल्लोहिने पुरे ॥ ८१ ॥ प्राणैः प्रियतरो नित्यं भविष्यति गुहः सदा । तद्विशिष्टश्च बाणोऽपि शिवस्य सततं प्रियः ॥ ८२ ॥ दर्पोत्सेकात्तु नाशाय वरं याचितवान् भवम् । युद्धहेतोः स लुब्धस्तु सर्वथा न भविष्यति ॥८३॥ यदि विष्णुपुरोगानामिन्द्रादीनां दिवौकसाम् । भवित्री ह्यभवत् प्राप्तिर्भवहस्ता कृतं भवेत्८४ एतयोश्च हि को युद्धं कुमारभवयोरिह । शक्तो दातुं समागम्य बाणसाहाय्यकाङ्क्षिणोः ॥८५॥ न च देववचो मिथ्या भविष्यति कदाचन । भविष्यति महद्युद्धं सर्वदैत्यविनाशनम् ॥ ८६ ॥ स

इन चिन्होंसे प्रतीत होता है, कि-बड़ा भारी नाश होगा, क्यों कि-दुश्चिन्होंका नाश नहीं होसकता, यह मेरा विचार है ७९ यह तो अवश्य ही दोष होजायगा, क्यों कि-राजा बाणासुरकी दुरात्मतासे सब दानव दोषीभूत (पापी) होगए हैं ८० जो भुवनोंके स्वामी देव दानवोंके रचनेवाले हैं उन्होंने और भगवान् कार्तिकेयने इसको लोहितपुरमें वसा दिया था ॥ ८१ ॥ स्वामी कार्तिकेय शिवको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं और बाणासुर शिवको कार्तिकेयसे भी अधिक प्रिय है ८२ इसने दर्पके कारण महेश्वरसे युद्धके लिए वर माँगा था, परन्तु अब यह (युद्धका) लोभी सर्वथा नष्ट होजावेगा ८३ क्या यहाँ पर महादेवजीके हाथसे विष्णु आदि स्वर्गवासी देवता यहाँ आजावेंगे ८४ परंतु बाणकी सहायता चाहने वाले कुमार और शिवसे कौन पुरुष युद्ध कर सकता है ? ८५ परन्तु भगवान् शंकरका वचन कभी भी झूठा नहीं होगा, अतः सब दैत्योंको नष्ट करने वाला बड़ा भारी युद्ध अवश्य होगा ८६ तत्त्वदर्शी कुम्भाण्ड इस प्रकार

एवं चिन्तयाविष्टः कुम्भाण्डस्तत्त्वदर्शिवान् । स्वस्तिप्रणिहितां बुद्धिं चकार स महासुरः ॥ ८७ ॥ ये हि देवैर्निरुध्यन्ते पुण्यकर्मभिराहवे । यथा बलिर्नियमितस्तथा ते यान्ति संक्षयम् ॥८८॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

वैशम्पायन उवाच । क्रीडाविहारोपगतः कदाचिद्भवउद्भवः । देव्या सह नदीतीरे रम्ये श्रीमति स प्रभुः । १॥ शतानि तत्राप्सरसां चिक्रीडुश्च समन्ततः । सर्वर्तुकवने रम्ये गन्धर्वपतयस्तथा॥२ कुसुमैः पारिजातस्य पुष्पैः सन्तानकस्य च । गन्धोद्दाममिवाकाशं नदीतीरं तु सर्वशः ॥ ३ ॥ वेणुवीणामृदङ्गैश्च पणवैश्च सहस्रशः । वाद्यमानैः स शुश्राव गीतमप्सरसां तदा ॥ ४ ॥ सूतमागधकल्पैश्च स्तुवन्त्यप्सरसां गणाः । देवदेवं सुवपुषं स्रग्विणं रक्तवाससम् ॥५॥ श्रीमहेशं देवदेवमर्चयन्ति मनोरमम् । ततस्तु

चिन्तातुर होकर कल्याणमय विचार करने लगा ८७ कि-जो पुण्यकर्म करने वाले देवताओंसे युद्ध कर विरोध करते हैं, वे जिस प्रकार बलि बँध गया था, तिसी प्रकार नष्ट होजाते हैं८८

एकसौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥११६॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि एक समय भगवान् शंकर नदीके रमणीय तट पर उमादेवीके साथ क्रीड़ा विहारमें रत होरहे थे।१। तहाँ सर्वर्तुक बागमें सैंकड़ों अप्सरायें और गन्धर्वपति क्रीड़ा कर रहे थे ॥२॥ पारिजातके पुष्पोंकी और सन्तानकके पुष्पोंकी गन्धि से नदीका तट सुगन्ध भरे हुए आकाशकी समान होगया।३। भगवान् सहस्रों वेणु वीणा मृदंग पणवके बजनेके साथ अप्सराओं के गीतको सुनने लगे ।४॥ अप्सराओंके टोले सूत और मागधोंके (साथ गीत गाकर)मालाधारी रक्त वस्त्र वाले सुन्दर शरीर वाले महादेवजी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ और देवदेव श्रीमहेशकी

देव्या रूपेण चित्रलेखा वराप्सराः ॥ ६ ॥ भवं प्रसादयामास देवी च प्राहसत्तदा । प्रसादयन्तीमीशानं प्रहसन्त्यप्सरोगणाः ॥ भवस्य पार्षदा दिव्या नानारूपा महौजसः । देव्या अनुज्ञया सर्वे क्रीडन्ते तत्र तत्र ह ॥८॥ अथ ते पार्षदास्तत्र रहस्ये सुविपश्चितः महादेवस्य रूपेण तच्चिन्हं रूपमास्थिताः ॥९॥ ततो देव्याः सुरूपेण लीलया वदनेन च । देवी प्रहासं मुमुचे ताश्चैवाप्सरसस्तदा । ततः किलकिलाशब्दः प्रादुर्भूतः समन्ततः ॥ १० ॥ महर्षमतुलं लेभे भवः प्रीतमनास्तदा । बाणस्य दुहिता कन्या तत्रोषा नाम भामिनी ॥ ११ ॥ देवं संक्रीडितं दृष्ट्वा देव्या सह नदीगतम् । दीप्यमानं महादेवं द्वादशादित्यतेजसम् ॥ १२ ॥ नानारूपं वपुः कृत्वा देव्या प्रियचिकीर्षया । उपा मनोरथं चक्रे पार्वत्याः स-

अर्चना करने लगीं, तदन्तर श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखा उमाका रूप धारणकर शिवजीको प्रसन्न करने लगी, उस समय पार्वती भी हँसने लगीं जब वह ईशको प्रसन्न करनेलगी तब अप्सरायें हँसने लगीं ॥६॥७॥ देवीकी आज्ञासे अनेक प्रकारके दिव्य रूपोंको धारण करनेवाले महातेजस्वी शिवके दिव्य पार्षद महादेवका रूप धारण कर जहाँ तहाँ क्रीड़ा करने लगे ८ तदनन्तर वे विद्वान् पार्षद महादेवचिन्ह (वृषभ आदि) से युक्त हो कर एकान्त में क्रीड़ा करने लगे ९ तदनन्तर देवीके सुरूप, लीला और मुखको देखकर उमादेवी और अप्सरायें हँसनेलगीं, तबतो चारों ओर किलकिल शब्द होने लगा १० उस समय शिवने अपने मनमें प्रसन्न होकर अतुल आनन्द पाया, तहाँ पर बाणासुरकी पुत्री ऊषा नाम वाली भाविनी (स्त्री) भी थी ११ उसने नदीके तट पर बारह आदित्योंकी समान तेज वाले दीप्यमान महादेवको अनेक प्रकारके रूप धारण करके देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे देवीके साथ क्रीड़ा करते हुए देखा ऊषाने पार्वतीके समीप

न्निभौ तथा ॥ १३ ॥ धन्या हि भर्तृसहिता रमतेऽवं समागता। मनसा त्वथ संकल्पमुषया भाषितं तथा ॥ १४ ॥ विज्ञाय तमभिप्रायमुषायाः पर्वतात्मजा। प्राह देवी ततो वाक्यमुषां हर्षयती शनैः ॥ १५ ॥ उषे त्वं शीघ्रमप्येवं भर्त्रा सह रमिष्यसि । यथा देवो मया सार्धं शंकरः शत्रुनाशनः ॥१६॥ एवमुक्ते ततो देव्या वाक्ये चिन्ताविलेक्षणा । उषा भावं तदा चक्रे भर्त्रा रंस्ये कदा सह ॥१७॥ तदा हैमवती वाक्यं संप्रहस्येदमब्रवीत् । उषे शृणुष्व वाक्यं मे यदा संयोगमेष्यसि ॥ १८ ॥ वैशाखे मासि हर्म्यस्थां द्वादश्यां त्वां दिनक्षये । रमयिष्यति यः स्वप्ने स ते भर्ता भविष्यति ॥ १९ ॥ एवमुक्ता दैत्यसुता कन्यागणसमावृता । अपा-

---

(पतिके पानेका) मनोरथ किया १३ (और वह अपनी सखीके समीप) कहने लगी कि-उमा देवी धन्य हैं जो अपने स्वामी के साथ इस प्रकार रमण करती हैं तब पर्वतपुत्री पार्वतीने ऊषा के मनके संकल्पको जानकर और उसके भाषणको जान कर ऊषाको धीरे २ हर्षितकरके यह वचन कहा कि-१४-१५ हे ऊषे ! जिस प्रकार मेरे साथ शत्रुओंका नाश करने वाले भगवान् शंकर रमण करते हैं इसी प्रकार शीघ्र ही तू अपने भर्ताके साथ रमण करेगी ॥ १६ ॥ देवीके इस प्रकार कहने पर चिन्ताके कारण गदैले नेत्रवाली ऊषा यह विचार करने लगी कि-मैं अपने स्वामीके साथ कब रमण करूँगी ॥ १७ ॥ उस समय हिमवान् की पुत्रीने उससे हँस कर यह बात कही कि-हे ऊषे ! जब तेरा संयोग होगा, तू मेरे उस (जतानेवाले) वाक्यको सुन ॥१८॥ वैशाखके महीनेमें द्वादशीके दिन जब तू अपने मकानमें स्थित होगी उस समय स्वप्नमें जो तेरे साथ रमण करेगा वह तेरा पति होगा ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहने पर कन्याओंसे घिरी हुई दैत्यपुत्री हर्षमें भर कर कूदने लगी और सुखपूर्वक आनन्द

क्रामत हर्षेण रममाणा यथासुखम् ॥ २० ॥ ततः सखीभिर्हा-
स्यन्ती हर्षेणोत्फुल्ललोचना । तालिकासन्निपातैश्च ह्यन्योन्य-
मभ्यवर्तत ॥ २१ ॥ किन्नर्यो यक्षकन्याश्च नानादैत्यकन्यकाः ।
अप्सरोगणकन्याश्च उषायाः सखितां गताः ॥ २२ ॥ उक्ता च
तत्र ताभिश्च भर्ता तव वरानने । भविष्यत्यचिरेणैव देव्या वचन-
कल्पितः ॥ २३ ॥ न हि देव्या वचो मिथ्या भविष्यति कदा-
चन । रूपाभिजनसम्पन्नः पतिस्ते कल्पितस्तया ॥ २४ ॥ उषा
सखीनां तद्वाक्यं प्रतिपूज्य यथाविधि । यत्तन्मनोरथं देव्या भाव-
यन्ती व्यवस्थिता ॥२५॥ ततः क्रीडाविहारं तमनुभूय सहोमया ।
गतेऽहनि ततः सर्वा नार्यस्ताः परमाद्भुताः ॥२६॥ ययुः स्वाना-
लयान् सर्वा देवी चादर्शनं गता । काश्चिदश्वैस्तथा यानैर्गजै-
रन्यास्तथा रथैः ॥ २७ ॥ पुरं प्रविविशुर्हृष्टाः काश्चिदाकाश-

करने लगी २० तदनन्तर वह हर्षसे खिले हुए नेत्र वाली ऊषा सखियोंके साथ हँसने लगी और परस्पर ताली पटका कर कूदने लगी ॥२१॥ किन्नरियें यक्षोंकी कन्याएँ और बहुतसे दैत्योंकी कन्याएँ तथा अप्सराओंकी कन्याएँ भी ऊषाकी सखी बन गई थी २२ उन्होंने भी उससे कहा कि हे वरानने ! देवीके वचनके अनुसार भर्ता तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा ।२३। देवीका वचन कभी मिथ्या न होगा, उन्होंने रूपवान् और कुलीन पति तुम्हारे लिये निर्दिष्ट किया है २४ तदनन्तर ऊषा सखियोंके वाक्यका उचित रीतिसे सत्कार करके सखियोंके, जो तेरा मनोरथ था उसको देवीने देदिया, उसका मनमें विचार करतीहुई खड़ी होगई ।२५। इस प्रकार उमाके साथ क्रीड़ाविहारका अनुभव करते करते दिन बीतजाने पर वे सब परम अद्भुत नारियें अपने २ घरको जाना चाहनेलगीं, उमा देवी भी अन्तर्धान होगई उस समय कुछ अश्वों पर रथों पर तथा दूसरी दूसरी सवारियों पर चलदीं ।२६ २७

मास्थिताः । ततः प्रभृति सा देवी काममोहं गता विभो ॥२८॥
देव्यास्तु वचनं स्मृत्वा संस्मरन्ती पतिं तदा । निद्रां न भजते रात्रौ
न दिवा भोजनं तथा ॥ २९ ॥ स्मरन्ती पतिमात्रं स विललाप
नृपात्मजा । निन्दती शशिनं नाके सेवती न च चन्दनम् ॥३०॥
सा बाला मोहिता राजन् कामेन परिपीडिता । उपचर्यंति तां
सख्यो विज्वरामपि सज्वराम् ॥३१॥ तप्यते हृदयं तस्या लेपितं
चन्दनेन च । कपोले पाण्डिमाचिन्हं नेत्रे जलसमन्वते ॥ ३२ ॥
जृंभणं च तथा स्वापो देहे तस्या व्यवर्धन । पद्मिनीकन्दचूर्णानि
शीतलानि मुहुर्मुहुः ॥३३॥ क्षिपन्ति सख्यो हृदये पीडिते मन्मथा-
थाग्निना । व्यजनानि प्रकुर्वन्ति पृच्छन्ति च पुनः पुनः ॥३४॥

उस समय बहुतसी स्त्रियें प्रसन्न होकर नगरमें घुसीं और कुछ आकाशमेंको चली गईं हे विभो ! उस दिनसे ऊषा देवी कामके मोहमें फँस गई ॥ २८ ॥ देवीके वचनका स्मरण कर अपने पतिका स्मरण कर उसे रात्रिमें निन्द्रा नहीं आती थी और वह दिनमें भोजनभी नहीं करती थी ॥ २९ ॥ वह राजपुत्री पतिका विचार करके विलाप करनेलगी स्वर्गमें (स्थित) चन्द्रमाकी निन्दा करने लगी और उसने चन्दनका सेवन करना छोड़दिया ॥३०॥ हे राजन् ! वह बाला कामसे पीड़ित होकर मुरझाने लगी, वह ज्वररहित थी तब भी उसकी सखियें उसकी ज्वराक्रान्तकीसी सेवा करने लगीं ३१ चन्दनका लेप करनेपर भी उसका हृदय जलता रहता था, उसके कपोलों में पाण्डिमाचिन्ह होगया अर्थात् रक्तकी लाली जाकर सफेदी आने लगी और नेत्र आँसुओंसे भरे रहने लगे ३२ उसके शरीरमें जँभाई और (पैर आदिका) सोना बढ़ने लगा, उसकी सखियें उसके कामाग्निसे सन्तप्त हृदय पर कमलिनियोंके परागके शीतल चूर्णको बार २ डालने लगीं, बार बार पंखा करने लगी और बार २ बूझने लगीं, कि-॥३३॥३४॥

का व्यथा किं शरीरं ते किमिदं तव भामिनी । किं तुभ्यं रोचते-
सुभ्रु तदाख्याहि वरानने ।३५। कस्मादिदं समुत्पन्नं दुःखसाध्यं
मनोरमे । त्वन्मनोनुगतं वाक्यं वदन्त्येतास्तु सारिकाः ॥ ३६ ॥
शुका नीलतमाः सुभ्रु पठन्ति हि पुमानिव । प्रल्हादजननं वाक्यं
किमर्थं नाद्य भाषसे ॥ ३७ ॥ तव तातो महावीरो देवानामपि
दुर्जयः । तस्याग्रे तिष्ठते कोऽपि न भूपौ वरवर्णिनि ॥ ३८ ॥
बलेः पुत्रो महावीरो बाणो हि दुरतिक्रमः । जित्वामरावतीकं च
नगरं शोणिताह्वयम् । यत्र सन्तिष्ठते देवः शूलहस्तो महेश्वरः ३९
पुत्रोयमिति जानीहि गिरिजां योऽब्रवीद्धरः । बाणं प्रति महादेव-
स्तव तातमुपे शृणु ॥ ४० ॥ का व्यथेति मुखे चेदं नासाग्रं च

तुझे क्या कष्ट है ? तेरा शरीर कैसा होरहा है ? हे भामिनी !
तेरी यह क्या (दशा) है ? हे देवि ! तुझे क्या बात अच्छी लगती
है ? हे वरानने ! तू उसका वर्णन कर ३५ हे मनोरमे ! यह कष्ट-
साध्य रोग तुझे कैसे होगया ? ये मैनाएँ तेरे मनके अनुकूल बातें
कर रही हैं ! ३६ हे सुभ्रु ! यह अति नीले वर्ण वाले तोते पुरुष
की समान प्रसन्न करने वाले वचन बोल रहे हैं, तब भी तू क्यों
नहीं बोलती है ३७ हे सुन्दर वर्ण वाली ! तुम्हारे पिता महा-
बलवान् हैं, देवता भी उनको कठिनतासे जीत सकते हैं, उनके
आगे पृथिवीमें (तो) कोई ठहर ही नहीं सकता ३८ (तुम्हारे
पिता) बाणासुर महाबली हैं; दुरतिक्रम हैं, वह अमरावती नगरी
को जीतकर इस शोणितपुर नामक नगरमें रहते हैं, यहाँ पर हाथ
में शूलको धारण करनेवाले महेश्वर देव रहते हैं ३९ हे ऊषे !
सुन ! तुम्हारे पिता बाणासुरके लिये महादेवजीने पार्वतीसे कहा
था, कि-तुम इसे पुत्र समझो ।४०। तुम्हें क्या व्यथा है ? जिस
प्रकार शरद ऋतुमें कमल पर ओसकी बूँदें विराजमान होती हैं
इसी प्रकार तुम्हारे मुख पर बूँदें सुशोभित होरही हैं और तुम्हारा

विराजते । नीहारबिन्दवः पद्मे राजन्ते शारदागमे ॥ ४१ ॥ संपूर्णचन्द्रप्रतिमं मुखं चन्द्रो यथा घने। न शोभते तु विच्छायं किमर्थं कारणं वद ॥ ४२ ॥ श्वासान्मुञ्चसि बाले त्वं न रतिं याति भावतः । गृहाण भोजनं दिव्यं यत्ते मनसि वर्तते ॥४३॥ तांबूलं रोचते पूर्वं तत्किमर्थं न गृह्यते । मिष्टानि यानि वस्तूनि दुर्लभानीतरैर्जनैः ॥४४॥ गृहाण देवि उत्तिष्ठ वद पीडां शरीरजाम् । इति कोलाहलं श्रुत्वा उषावेश्मसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥ दासीभिः कीर्तितं तत्र मातुरग्रे पृथक् पृथक् । राजपुत्री यदा देवि समायाता गृहे सती ॥४६॥ जलक्रीडाविहारात्तु मूकेव परिलक्ष्यते । अतो दासीजना देवि वदामस्त्वां वयं जनाः ॥४७॥ को मोहः किमिदं मौनं कः स्वापो म्लानता कथम् । विचार्य भिषजो देवि दिश्यंतां

नासाग्रभाग (फूल कर) शोभायमान दीख रहा है ॥४१॥ जिस प्रकार चन्द्रमा बादलोंमें (ढकने पर) कान्तिरहित होनेसें शोभा नहीं पाता इसी प्रकार पूर्ण चन्द्रमा सा तेरा मुख भी कान्तिरहित क्यों दीखता है ? इसका कारण बताओ ॥ ४२ ॥ हे बाले ! तू श्वास छोड़ रही है और चित्तसे प्रसन्न नहीं रहती है, जो तेरे मनमेंहो उस दिव्य भोजनको कर ॥ ४३ ॥ पहिले तो तुझै ताम्बूल अच्छे लगते थे अब तू उन्हें क्यों नहीं लेती, दूसरे मनुष्योंको दुर्लभ जो मिष्ट वस्तुएँ तुझै इष्ट हों ॥ ४४ ॥ हे देवि ! उनको तू ग्रहण कर,उठ ! उठ ! और तेरे शरीरमें जो पीड़ा हो उसको बता, ऊषाके घरमें इस प्रकारके कोलाहलको सुन कर ॥ ४५ ॥उसकी मातासे दासियोंने पृथक् २ कहा कि- हे देवि ! जबसे राजपुत्री जलक्रीडाविहार घरसे आई है तबसे गूँगीसी दीखरही है, हे देवि ! इस लिए हम दासियें आपसे कहती हैं ॥४६॥ यह उसे कैसा मोह है, कैसा मौन है, कैसा सोना है और कैसा मुरझाना है, हे देवि ! इस बातको

कष्टशान्तये ।। ४८ ।। शिरीषपुष्पसदृशं यच्छरीरं सुकोमलम् । तत्कथं सहते देवि व्याधिभारं वरानने ।।४९।। इति श्रुत्वा तदा देवी सत्वरा हंसगामिनी । प्राप्य देशमुषा यत्र किमिदं कष्टलक्षणम् ।। ५० ।। पल्लवाकृतिहस्तेन कोमलं तत्करं तदा । स्पृष्ट्वांगुलीरनायासं स्फोटयामास भामिनी ५१ किमस्ति तव कल्याणि का व्यथा तव वर्तते । एते वैद्याः समागत्य पृच्छन्ति भवतीं हितत् ।। ५२ ।।वैद्या ऊचुः । जलक्रीडां गता तत्र राजपुत्री सखीगणैः । पार्वत्याः क्रीडितं तत्र जानीमः श्रमसम्भवम् ।। ५३ ।। श्रमाद्ध ग्लानिः समुत्पन्ना जृम्भणं च पुनः पुनः । स्वापश्च जागतं तेन मा भयं कर्तुमर्हसि । देव्युवाच । हृदये निहितं वैद्याश्चन्दनं हिमसंयुतम् । अपास्याः किमिदं शीघ्रं किमिदं बुद्बुदायते ।।५५।।

विचार कर तुम कष्ट शान्त करनेके लिए वैद्यको भेजो ।।४८।। हे वरानने ! शिरीषके पुष्पकी समान सुकोमल शरीर व्याधिके भारको कैसे सह सकेगा ।।४९।। इस बातको सुन कर यह क्या कष्ट है (कह कर) हंसगामिनी देवी (उषाकी माता) त्वराके साथ जहाँ उषा थी तहाँको चली५०तदनन्तर वह भामिनी पल्लव के आकृति वाले हाथसे उसके कोमल हाथको पकड़ कर उसकी अँगुलियोंको सहलाने लगी ।। ५१ ।। (वह कहने लगी, कि-) ये वैद्य तुमसे बूझ रहे हैं हे कल्याणि ! तुम्हें क्या व्यथा हो रही है, तुम्हें क्या कष्ट हो रहा है, ।।५२।। वैद्योंने कहा, कि-राजपुत्री अपनी सखियोंको साथमें लेकर पार्वतीके खेलमें जल क्रीड़ा करनेको गई थी, हमें प्रतीत होता है, तहाँ पर इसे श्रम पड़ा होगा ।।५३।। श्रमके कारण इसको ग्लानि उत्पन्न होगई है और बार बार जँभाई आती हैं और इसी मकारण इसको नींद आरही है, अतः तुम्हें भय नहीं करना चाहिये ।। ५४ ।। देवीने कहा, कि-हे वैद्यो!मैंने इसके हृदय पर बरफ मिला हुआ चन्दन

अतिदाहो महान् खेदः पिपासा न बुभुक्षते । प्रलाप एव किं तस्यां शास्त्रतो ब्रूत निश्चितम् ॥ ५६ ॥ वैद्या ऊचुः । क्रीडाविहारे मिलिताः स्त्रीजना देवसन्निधौ । रूपेणाप्रतिमा देवी राजपुत्री च भाविनी ॥५७॥ दृष्टिपातः कृतस्ताभिस्तेन पुत्र्यां व्यथा-भवेत् । रक्षामन्त्रैस्तथा पीतैः सर्षपैस्तां कुमारिकाम् ॥ ५८ ॥ पानीयैरभिषेकेण परा शान्तिर्भविष्यति । इत्युक्त्वा भिषजः सर्वे निवृत्ता नृपवेश्मतः ॥५९॥ सूचयन्तः पुनः सर्वे कामाभिप्रायजां व्यथाम् । मातृपृष्टा वरारोहा चिरकालमुवाच सा ॥६०॥ लज्जावती महाभागा मातरं रुदती भृशम् । मातर्न रोचते नित्यं भाषणं न च भोजनम् ॥६१॥न चाप्युत्सवकं मातः सदा हि हृदयं शृणु ।

रक्खा था हे मंत्रियो!शीघ्रतासे यह बुद्बुदसा क्या होरहा है ५५ इसे बड़ा भारी दाह होरहा है, बड़ा खेद होरहा है और इसकी प्यास शान्त नहीं होती और यह इसका प्रलाप कैसा है, इस बातका शास्त्रसे निश्चय करके कहो ॥५६॥ वैद्योंने कहा, कि-महादेवजीके समीप क्रीड़ा विहारमें बहुतसी स्त्रियें आयी थी और यह भाविनी राजपुत्री रूपमें अद्वितीय है ५७ उन (आई हुई) स्त्रियोंने तुम्हारी पुत्रीको नजर लगा दी अब इस कुमारिकाकी रक्षामंत्रोंसे और पीली सरसोंसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ और जल छिड़कनेसे इसको परमशान्ति मिलेगी इस प्रकार कह कर सब वैद्य राजाके घरसे चले गए॥५९॥फिर इसको कामके अभिप्रायकी व्यथा है यह आपसमें कहते हुए चले गए,माताके बूझते रहने पर बहुत समयमें उस वरारोहाने कहा, ॥ ६० ॥ वह लज्जावती महाभागा अपनी मातासे रोकर कहने लगी,कि-हे माता ! मुझे बहुत बोलना और भोजन करना अच्छा नहीं लगता ६१ और सुन ! हे माता ! मेरा हृदय भी सदा उत्साह युक्त नहीं रहता है इस प्रकार कह कर श्रेष्ठ मुख वाली ऊषा चुप

इत्युक्त्वा विरराभाथ छुपा नारी वरानना ६२ सर्वाभिः स्त्रीभि-रारब्धमन्योन्यं मुखवीक्षणम् । लज्जानुकारि नारीणां यौवनं हि भवेदिति ॥ ६३ ॥ इयं च राजकन्या हि भर्तृयोग्या किमुच्यते । पितुः प्रसादान्मातुश्च माप्नुयात् सदृशं वरम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणयुद्धे उषा-विरहो नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

वैशम्पायन उवाच । तत्रस्थाः परमा नार्यश्चित्रेण परमा-द्भुताः । ततो हर्म्ये शयानां तु वैशाखे मासि भाविनीम् ॥ १ ॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य सखीगणवृतां तदा । यथोक्तः पुरुषः स्वप्ने रमयामास तां शुभाम् ॥ २ ॥ विचेष्टमाना रुदती देव्या वचन-चोदिता । सा स्वप्ने रमिता तेन स्त्रीभावं चापि लम्भिता । शोणि-ताक्ता प्ररुदती सहसैवोत्थिता निशि ॥३॥ तां तथा रुदतीं दृष्ट्वा

होगई ॥६२॥ उस समय सब स्त्रियें एक दूसरे का मुख देखने लगीं कि-लज्जा पूर्वक स्त्रियोंका यौवनकाल आरम्भ होता है और यह राजकन्या भी स्वामीके योग्य होगई है-अतः तुम क्या कहती हो; यह पिता माताके प्रसादसे अपने समान वरको पावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ११७

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तहाँ पर श्रेष्ठ स्त्रियें रहती थीं और वह चित्रकलामें परम चतुर थीं, तदनन्तर वह भामिनी वैशाख-मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीकी रात्रिमें अपने भवनमें सोरही थी और उसके पास उसकी सखियें भी थी, इतनेमें ही स्वप्नमें पूर्वोक्त पुरुषने ऊषाके साथ रमणकिया ॥ १ ॥ २ ॥ वह स्वप्नमें चेष्टा करने लगी और रोने लगी तब भी देवीने उससे वचन कह दिया था इसलिये उस पुरुषने स्वप्नमें उसके साथ रमण किया और उसमें स्त्रीभावसम्पन्न करदिया, तब वह रक्तसे सनी हुई स्त्री सहसा रात्रिमें उठ बैठी ३ उसको इसप्रकार रोती हुई देख कर उसकी

सखी भयसमन्विता । चित्रलेखा ततः स्निग्धमुवाच परमाद्भुतम् ४
ऊषे मा भैः किमेवं त्वं रुदती परितप्यसे । बलेः सुतसुता च त्वं प्रख्याता किं भयान्विता ॥ ५ ॥ न भयं विद्यते लोके तव सुभ्रु विशेषतः । अभयं तव वामोरु पिता देवान्तको रणे ॥ ६ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते विषादं मा कृथाः शुभे । नैवंविधेषु वासेषु भयमस्ति वरानने ॥७॥ असकृद्देवसहितः शचीभर्ता सुरेश्वरः । अप्राप्त एव नगरं पित्रा ते मृदितो रणे ॥ ८ ॥ अयं देवसमूहस्य भयदश्च पिता तव । महासुरवरः श्रीमान् बलेः पुत्रो महाबलः ९ एवं साभिहिता सख्या बाणपुत्री यशस्विनी । स्वप्ने रूपं यथा दृष्टं न्यवेदयदनिंदिता ॥१०॥ उषोवाच । एवं सन्धर्षिता साध्वि कथं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ पितरं किं नु वक्ष्यामि देवशत्रुमरिंद-

---

सखी चित्रलेखा डर गई, और उसने स्नेहसे भरा हुआ परम अद्भुत वचन कहा, कि—॥ ४ ॥ हे ऊषे ! तू डर मत ! तू इस प्रकार रोकर क्यों परिताप कर रही है, तू बलिके पुत्रकी प्रसिद्ध पुत्री होकर भी क्यों डर रही है ॥५॥ हे सुभ्रु ! तुझे तो संसार में भय होना ही नहीं चाहिये, हे वामोरु ! तेरा पिता रणमें देवताओंके लिए काल बन जाता है, अतः तुझे तो निर्भय ही रहना चाहिये ॥६॥ उठ ! उठ !! हे शुभे ! हे भद्रे ! तू वृथा ही विषाद न कर, हे वरानने ! ऐसे महलोंमें भयका क्या काम ? ॥ ७ ॥ तुम्हारे पिताने अपने नगरमें न आने पर भी देवताओंसहित इन्द्र को रणमें अनेक बार रगड़ा है ॥८॥ तुम्हारे पिता महान् असुर हैं, बलिके पुत्र हैं, महाबली हैं और यह देवताओंके समूहको भी भयभीत कर देते हैं ॥९॥ सखीके इस प्रकार कहने पर अनिन्दिता यशस्विनी बाणपुत्रीने स्वप्नमें जिस प्रकार (जो) देखा था, वह कह दिया ॥ १० ॥ ऊषाने कहा, कि हे साध्वि ! इस प्रकार धर्षणा पाकर मैं कैसे जीवित रहना चाह सकती हूँ ॥११॥ इस

मम् । एवं सन्दूषणकरी वंशस्यास्य महौजसः ॥१२॥ श्रेयो हि मरणं मह्यं न मे श्रेयोऽद्य जीवितम् । ईप्सितो वा यथा कोऽपि पुरुषो विगतो हि मे ॥ १३ ॥ जाग्रतीव यथा चाहमवस्थेयं कृता मम । निशायां जाग्रतीवाहं नीता केन दशामिमाम्।कथमेवं कृता नाम कन्या जीवितुमुत्सहे ॥१४॥ कुलोपक्रोशनकरी कुलांगारी निराश्रया । जीवितं न स्पृहेन्नारी साध्वीनामग्रतः स्थिता १५ इत्येवं बाष्पपूर्णाक्षी सखीजनवृता तदा । विललाप चिरं कालमुषा कमललोचना ॥१६॥ अनाथवत्तां रुदतीं सख्यः सर्वा विचेतसः । ऊचुरश्रुपरीताक्षीमुषां सर्वाः समागताः ॥१७॥ दुष्टेन मनसा देवि शुभं वा यदि वाऽशुभम् । क्रियते न च ते सुभ्रु

महापराक्रमयुक्त वंशमें इस प्रकार दूषण लगा कर मैं अपने देवताओंके शत्रु अरिंदमन पितासे क्या कहूँगी ? ॥ १२ ॥ मेरा तो मर जाना ही अच्छा है, अब मेरा जीवित रहना अच्छा नहीं है, जिस प्रकार कोई अभिलषित पुरुष आवे तिस प्रकार वह मेरे पास (कैसे आया था) ।१३। उसने तो जागती हुईकी समान (स्वप्नमें) मेरी यह अवस्था कर डाली, क्या मैं रातमें जाग रही थी तब उसने मुझे लेजाकर मेरी ऐसी दशा कर डाली क्या ? हा ! मैं कन्या होने पर भी इस प्रकारकी होकर कैसे जीवित रह सकती हूँ ॥ १४ ॥ साध्वियोंके सामने खड़ी होनेपर कुलको बातें सुनवाने वाली कुलाङ्गारिणी निराश्रया नारी, किस प्रकार, जीवित रहना चाह सकती है १५ सखियोंसे घिरी हुई कमललोचना ऊषा नेत्रोंमें आँसू भर कर इस प्रकार बहुत देर तक विलाप करती रही १६ तब घबड़ा कर आई हुईं, उन सब सखियोंने अनाथकी समान रोती हुई अश्रुओं से श्याम नेत्र वाली ऊषासे कहा, कि–१७ हे देवि ! दूषित मनसे जो शुभ वा अशुभ काम किया जाता है (उसका फल मिलता है) परन्तु हे सुभ्रु ! हे शुभे !

किंचिद् दुष्टं मनः शुभे ॥ १८ ॥ प्रसभं दैवसंयोगाद्यदि भुक्तासि भामिनि। स्वप्नयोगेन कल्याणि व्रतलोपो न विद्यते ॥ १९ ॥ व्यभिचारेण ते देवि नास्ति कश्चिद्व्यतिक्रमः। न च स्वप्नकृतो दोषो मर्त्यलोकेऽस्ति सुन्दरि ॥ २० ॥ एवं विप्रर्षयो देवि धर्मज्ञाः कथयन्ति वै। मनसा चैव वाचा च कर्मणा च विशेषतः। दुष्टा या त्रिभिरेतैस्तु पापा सा प्रोच्यते बुधैः २१ ॥ न च ते दृश्यते भीरु मनः प्रचलितं सदा। कथं त्वं दोषसन्दुष्टा नियता ब्रह्मचारिणी यदि सुप्ता सती साध्वी शुद्धभावा मनस्विनी। इमामवस्थां प्राप्ता त्वं नैव धर्मो विलुप्यते ॥ २३ ॥ यस्या दुष्टं मनः पूर्वं कर्मणा चोपपादितम्। तामाहुरसतीं नाम सती त्वमसि भामिनि॥२४॥ कुलजा रूपसम्पन्ना नियता ब्रह्मचारिणी। इमामवस्थां नीतासि

तुम्हारा मन कुछ दूषित नहीं था (अतः तुम्हें पाप नहीं लग सकता) ॥१८॥ हे भामिनि ! प्रारब्धवश स्वप्नमें किसीने तुम्हें बलपूर्वक भोग लिया तो हे कल्याणि ! उससे तुम्हारे व्रतका लोप नहीं हो सकता ॥१९॥ हे देवि ! तुमने कोई व्यभिचार का काम नहीं किया है, और हे सुन्दरि ! मृत्युलोकमें स्वप्नका कुछ दोष नहीं माना जाता २० हे देवि ! धर्मज्ञ विप्रर्षि कहते हैं, कि-मन वाणी और विशेषतः कर्म-इन तीनोंसे जो दूषित होती है, उसको बुद्धिमान् पुरुष पापिनी कहते हैं ॥ २१ ॥ हे भीरु ! तेरा मन तो कभी चञ्चल नहीं दीखता है,फिर तू दोषदूषित किस प्रकार होसकती है, तू तो ब्रह्मचारिणी ही है २२ तू सती साध्वी मनस्विनी शुद्धभावसे सोई थी, फिर भी यदि तेरी ऐसी अवस्था होगई तो इस प्रकार धर्म लुप्त नहीं होता है ।२३। जिसका मन पहिले दूषित होता है फिर वह वैसा ही कर्म कर लेती है उसको असती कहते हैं, हे भामिनी ! तू तो सती है २४ तू कुलीन है, रूपसम्पन्न है, सर्वदा ब्रह्मचारिणी रहती है, अब तेरी ऐसी

कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २५ ॥ इत्येवमुक्त्वा रुदतीं बाष्पेणावृत-
लोचनाम् । कुम्भाण्डदुहिता वाक्यं परमं त्विदमब्रवीत् ॥ २६ ॥
त्यज शोकं विशालाक्षि अपापा त्वं वरानने । श्रुतं मे यदिदं वाक्यं
याथातथ्येन तच्छृणु॥२७॥उमे यदुक्ता देव्यासि भर्तारं ध्यायती
तदा । समीपे देवदेवस्य स्मर भामिनि तद्वचः ॥ २८ ॥ द्वादश्यां
शुक्लपक्षस्य वैशाखे मासि यो निशि । हर्म्ये शयानां रुदतीं
स्त्रीत्वं समुपनेष्यति ॥ २९ ॥भविता स हि ते भर्ता शूरः शत्रु-
निबर्हणः । इत्युवाच वचो हृष्टा देवी तव मनोगतम् ॥ ३० ॥ न
हि तद्वचनं मिथ्या पार्वत्या यदुदाहृतम् । सा त्वं किमिदमत्यर्थं
रोदिषींदुनिभानने ॥ ३१ ॥ एवमुक्ता तया बाला स्मृत्वा देवी-
वचस्ततः । अभवन्नष्टशोका सा बाणपुत्री शुभेक्षणा ॥ ३२ ॥

अवस्था होगई, हा ! कालको लाँघना बड़ा कठिन है २५ इस प्रकार कहनेपर (भी) रोती हुई नेत्रोंमें आँसू भरती हुई ऊषासे कुम्भाण्डकी पुत्रीने एक और श्रेष्ठ बात कही, कि-२६ हे विशाल नेत्रों वाली तू शोक करना छोड़ दे, हे सुन्दरमुखि ! तू निष्पाप है, मैंने जो बात सुनी है उसको तू ठीक-तरहसे सुन २७ तूने देव-देव (शंकर) के समीप जब स्वामीका चिन्तवन किया था; उस समय उमाने जो वचन कहा था हे भामिनि ! तू उस वचनका स्मरण कर २८-कि "-वैशाखमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीकी रात्रिमें तू अपने घरमें सोरही होगी, तब स्वप्नमें जो पुरुष तेरे रोने पर भी तुझमें स्त्रीत्वधर्म ला देगा २९ वह शत्रुओंको मारने वाला शूर वीर पुरुष ही तेरा स्वामी होगा" देवीने प्रसन्न होकर इस प्रकार तेरे मनकी बात कह दी थी ३० पार्वतीने जो सान्त्वनामय बात कही है, वह मिथ्या नहीं होगी, अतः हे भामिनि ! तू क्यों बहुत रोरही है ३१ जब उस बालासे इस प्रकार कहा तब शुभ नेत्रों वाली बाणपुत्रीका शोक, उमाके वचनकी याद आनेसे, नष्ट

उषोवाच । स्मरामि भामिनि वचो देव्याः क्रीडागते भवे । यथोक्तं सर्वमखिलं प्राप्तं हर्म्यतले मया ॥ ३३ ॥ भर्ता तु मम यद्येष लोकनाथस्य भार्यया । वचादिष्टः स कथं ज्ञेयस्तत्र कार्यं विधीयताम् ॥३४॥ इत्येवमुक्तवचने कुम्भाण्डदुहिता पुनः । व्याजहार यथान्यायमर्थतत्त्वविशारदा ॥ ३५ ॥ न हि तस्य कुलं देवि न कीर्त्तिर्नापि पौरुषम् । कश्चिज्जानाति तत्त्वेन किमिदं त्वं विमुह्यसे ॥ ३६ ॥ अदृष्टश्चाश्रुतश्चैव दृष्टः स्वप्ने च यः शुभे । कथं ज्ञेयो भवेद्भीरु सोस्माभिरतितस्करः ॥ ३७ ॥ येन त्वमसितापांगि मत्तकाशिनि विक्रमात् । रुदती प्रसभं भुक्ता प्रविश्यान्तःपुरं सखि ॥ ३८ ॥ न ह्यसौ प्राकृतः कश्चिद्यः प्रविष्टः प्रसह्य ते । नगरं लोकविख्यातमेकः शत्रुनिबर्हणः ॥३९॥ आदित्या वसवो

होगया ३२ ऊषाने कहा, कि हे भामिनि ! महादेवजीकी क्रीड़ाके समयके देवीके वचनको मैं याद करती हूँ, तो उन्होंने जिस प्रकार कहा था, उसी प्रकार मुझे सब प्राप्त होरहा है ॥३३॥ लोकनाथ शिवकी भार्याने यदि यह भर्ता बना दिये हैं, तो इनसे परिचय किस प्रकार हो ? इस कामको करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस प्रकार कहने पर अर्थतत्त्वविशारदा कुम्भाण्डकी पुत्रीने उससे न्यायानुसार वचन कहा, कि—३५ हे देवि ! उसके कुलको कोई नहीं जानता और उसके पुरुषार्थ वा प्रीतिको भी कोई नहीं जानता फिर हे देवि ! तुम मोहमें क्यों पड़ रही हो ॥ ३६ ॥ जिसको न देखा है, न सुना है, केवल स्वप्नमें ही देखा है, हे भीरु ! उस बड़े भारी चोरको कैसे जाना जासकता है ॥३७॥ हे मत्तकाशिनि ! हे असितापाङ्गि ! हे सखि ! जिसने अन्तःपुरमें घुस कर तुझ रोती हुईके साथ बलपूर्वक समागम किया था ॥३८॥ वह कोई प्राकृत (साधारण) मनुष्य नहीं होगा, जो इस संसारप्रसिद्ध नगरमें घुस कर बलात्कार करसकता है, वह शत्रुनाशक वीर अदि-

रुद्रा अश्विनौ च महौजसौ । न शक्ताः शोणितपुरं प्रवेष्टुं भीम-
विक्रमाः ॥४०॥ सोयमेतैः शतगुणैर्विशिष्टश्चारिसूदनः । प्रविष्टः
शोणितपुरं बाणमाक्रम्य मूर्धनि ॥ ४१ ॥ यस्या नैवंविधो भर्ता
भवेद्युद्धविशारदः । कस्तस्या जीवितेनार्थो भोगैर्वाप्यम्बुजेक्षणे
धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते पतिरीदृशः । प्राप्तो देव्याः प्रसा-
देन कन्दर्पसमविक्रमः ॥ ४३ ॥ इदं तु मत्कार्यतमं शृणु त्वं मन्-
मयेरितम् । विज्ञेयो यस्य पुत्रो वै यन्नामा यत्कुलश्च सः ४४
इत्येवमुक्ते वचने तत्रोषा काममोहिता । उवाच कुम्भाण्डसुतां कथं
ज्ञास्याम्यहं सखि ॥ ४५ ॥ त्वमेव चिन्तय सखि नोत्तरं प्रति-
भाति मे । स्वकार्ये मुह्यते लोको यथा जीवं लभाम्यहम् ॥ ४६ ॥
उषाया वचनं श्रुत्वा रामा वाक्यमिदं पुनः । उवाच रुदतीं चोषां

तीय ही होगा ३९ भयङ्कर पराक्रमी आदित्य वसु रुद्र और महा-
बलवान् अश्विनीकुमार भी शोणितपुरमें नहीं घुस सकते ॥४०॥
फिर भी यह अरिमर्दन बाणासुरके मस्तक पर लात मार कर
शोणितपुरमें घुस आया अतः यह (पूर्वोक्त देवताओंसे भी)
सौगुणा अधिक होगा ॥४१॥ हे कमलनेत्रे ! जिसका ऐसा युद्ध-
विशारद स्वामी न हो उसको जीवनसे और भोगोंसे क्या प्रयो-
जन है ।४२। तूने उमादेवीके प्रसादसे कामदेवकी समान विक्रमी
पुत्र पाया है, अतः तू धन्य है । अनुगृहीत है ।। ॥४३॥ अब जो
मुख्य कार्य है, उसको तू मेरे कहनेसे सुन, 'यह जिसके पुत्र हो,
जो इनका कुल हो" इस बातका पता लगाना चाहिये ॥ ४५ ॥
इस प्रकार बात कहने पर कामसे मोहित हुई ऊषाने कुम्भाण्डकी
पुत्रीसे कहा, कि—हे सखि ! मैं इन बातोंको कैसे जानूँ ॥४५॥
हे सखि ! तू ही इस बातका विचार कर मुझसे तो कुछ उत्तर
नहीं दिया जाता, अपने काममें सब आदमी मोहमें पड़ जाते हैं
इसी प्रकार मेरा जीव भी मोहमें पड़ रहा है ॥ ४६ ॥ ऊषाके

कुम्भाण्डदुहिता सखी ॥ ४७ ॥ कुशला ते विशालाक्षि सर्वथा सन्धिविग्रहे । अप्सरा चित्रलेखा वै क्षिप्रं विज्ञाप्यतां सखि ४८ अस्याः सर्वमशेषेण त्रैलोक्यं विदितं सदा । एवमुक्ता तदैवोषा हर्षेणागतविस्मया ॥ ४९ ॥ तामप्सरसमानाय्य चित्रलेखां सखीं प्रियाम् । कृताञ्जलिपुटा दीना उषा वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥ सा तच्छ्रुत्वा तु वचनमुषायाः परिकीर्तितम् । आश्वासयामास सखी बाणपुत्रीं यशस्विनीम् ॥ ५१ ॥ ततः सा विस्मयाविष्टा वचनं प्राह दुर्वचम् । चित्रलेखामप्सरसं प्रणयार्त्ता सखीमिदम् ॥५२॥ परमं शृणु मे वाक्यं यत्त्वां प्रवदामि भाविनि । भर्तारं यदि मेऽद्य त्वं नानयिष्यसि मत्प्रियम् ॥ ५३ ॥ कान्तं पद्मपलाशाक्षं मत्त-

---

वचनको सुन कर कुम्भाण्डकी पुत्री ऊषाकी सखी रामाने रोती हुई ऊषासे यह बात फिर कही, कि-(कुम्भाण्डकी पुत्रीका नाम रामा था, वह चित्रलेखाके अंशसे उत्पन्न हुई थी, अतः उसे पहिले चित्रलेखा भी कहा है) ॥ ४७ ॥ हे विशालाक्षी सखि ! सन्धि और विग्रहमें सब प्रकारसे चतुर चित्रलेखा नामवाली अप्सरा को इस बातकी सूचना देनी चाहिये॥४८॥ त्रिलोकीकी सब बातें उसको पूर्ण रीतिसे विदित हैं, इस प्रकार कहने पर ऊषाको हर्ष के कारण विस्मय होने लगा ४९ और उसने अपनी प्यारी सखी चित्रलेखा अप्सराको बुलवा लिया, तदनन्तर ऊषाने दोनों हाथ जोड़ दीन होकर (चित्रलेखासे) बात कही ॥५०॥ ऊषाकी कही हुई बातको सुनकर ऊषाकी वहनेली चित्रलेखाने यशस्विनी बाण-पुत्रीको धीरज दिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर विस्मयमें भरीहुई ऊषा ने प्रणय (प्रेम) वश आई हुई चित्रलेखा अप्सरासे यह कठिन से कहने योग्य बात कही, कि—॥ ५२ ॥ हे भामिनि ! मैं तुझसे जो बड़ी बात कहती हूँ, उसको तू सुन. हे तनुमध्यमे ! यदि तू पद्मपत्रकी समान नेत्र वाले; मतवाले हाथीकी समान चलने वाले

मातङ्गगामिनम् । त्यक्ष्याम्यहं ततः प्राणानचिरात्तनुमध्यमे ५४
चित्रलेखाब्रवीद्वाक्यमुषां हर्षयती शनैः । नैषोर्थः शक्यतेस्माभिर्ज्ञातुं भामिनि सुव्रते ॥५५॥ न कुलेन न वर्णेन न शीलेन न रूपतः । न देशतश्च विज्ञातः स हि चोरो मया सखि ॥५६॥ किं तु कर्तुं यथाशक्यं बुद्धिपूर्वं मया सखि । प्राप्तं च शृणु मे वाक्यं यथाकाममवाप्स्यसि ॥५७॥ देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । ये विशिष्टाः प्रभावेण रूपेणाभिजनेन च ॥ ५८ ॥ यथाप्रभावं तान् सर्वानालिखिष्याम्यहं सखि । मनुष्यलोके ये चापि प्रवरा लोकविश्रुताः ॥ ५९ ॥ सप्तरात्रेण ते भीरु दर्शयिष्यामि तानहम् । ततो विज्ञाय पादस्थं भर्तारं प्रतिपत्स्यसे ॥ ६० ॥ सा चित्रलेखया प्रोक्ता उषाहितचिकीर्षया । क्रियतामेवमित्याह चित्रलेखां सखीं प्रियाम् ॥ ६१ ॥ततः कुशलहस्तत्वाद्यथालेख्यं सम-

मेरी प्यारे स्वामीको मेरे पास न लावेगी तो हे तनुमध्यमे ! मैं आज अपने प्राणोंको त्याग दूँगी ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तब चित्रलेखाने ऊषाको हर्षित करते हुए धीरेसे यह बात कही कि-हे सुव्रते ! यद्यपि हम इस बातको नहीं कर सकतीं ॥५५॥ क्योंकि-हे सखी मैं इस चोरके कुल वर्ण शील रूप और देशको नहीं जानती किन्तु हे सखि ! मैं उसमें यथाशक्ति बुद्धि लड़ाऊँगी अब जिसप्रकार तेरा मनोरथ पूर्ण होगा, उस समयोचितबातको तू सुन देव दानव यक्ष गन्धर्व सर्प और राक्षसोंमें जो प्रभाव रूप और देशमें श्रेष्ठ हैं उनको और मनुष्य लोकमें (इनके अतिरिक्त और जो) श्रेष्ठ व्यक्ति हैं उनको भी अपने प्रभावके अनुसारमें सात रातमें लिख दिखाऊँगी, तब तू पाद (तसवीर खींचनेके कागज) पर अपने भर्ताको पासकेगी ॥५८-६०॥ ऊषाके हित की इच्छा से चित्रलेखाके इस प्रकार कहने पर उसने अपनी प्यारी सखी चित्रलेखासे कहा; कि-हाँ ऐसा ही करो ॥ ६१ ॥ इस प्रकार

तवः । इत्युक्त्वा समरात्रेण कृत्वा लेख्यगतांस्तु तान् ॥ ६२ ॥ चित्रपट्टगतान् मुख्यानानयामास शोभना । ततःप्रास्तीर्य पट्टं सा चित्रलेखा स्वयंकृतम् ॥ ६३ ॥ उषायै दर्शयामास सखीनां तु विशेषतः । एते देवेषु ये मुख्यास्तथा दानववंशजाः ॥६४॥ किंनरोरगयक्षाणां राक्षसानां समन्ततः । गन्धर्वासुरदैत्यानां ये चान्ये भोगिनः स्मृताः ॥ ६५ ॥ मनुष्याणां च सर्वेषां ये विशिष्टतमा नराः । तानेतान् पश्य सर्वास्त्वं यथैव लिखितान् मया ॥६६॥ यस्ते भर्ता यथारूपो मयाभिलिखितः सखि । तं त्वं प्रत्यभिजानीहि स्वप्ने यं दृष्टवत्यसि ॥ ६७ ॥ ततः क्रमेण सर्वांस्तान् दृष्ट्वा सा मत्तकाशिनी । देवदानवगन्धर्वविद्याधरगणानथ । अतीत्य च यदून् सर्वान् ददर्श यदुनन्दनम् ॥ ६८ ॥ तत्रानिरुद्धं दृष्ट्वा सा विस्मयोत्फुल्ललोचना । उवाच चित्रलेखां तामयं चौरः स वै

कहने पर वह हस्तकुशल होनेसे सात रातमें मुख्य २ व्यक्तियों के चित्र कागजों पर खींच लाई तदनन्तर चित्रलेखा अपने बनाये हुए चित्रोंके पत्तनमको खोल कर ऊषाको और उसकी सखियों को दिखाने लगी. (उसने कहा, कि-) जो देवताओंमें मुख्य २ व्यक्ति हैं और जो दानवोंके वंशमें उत्पन्न हुए मुख्य व्यक्ति हैं किंनर सर्प यक्ष राक्षस दैत्य और असुरोंमें भी जो भोगवान् कहलाते हैं और जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं,उन सब मेरे लिखे हुओंको तू देख६२-६६हेसखि ! तेरा स्वामी जैसे रूपवाला होगा,उसको मैंने इसमें चित्रित कर दिया होगा, अतः तूने स्वप्नमें जिसको देखा हो, उसको पहिचानले ६७,तदन्तर वह मत्तहोनेसे खिलने वाली ऊषा उन सबके चित्रोंको देखनेलगी, उस समय उसने देव दानव गन्धर्व विद्याधरगण और सब यादवोंके चित्र देखने के अनन्तर यदुनन्दन अनिरुद्धको देखा ॥६८॥ अनिरुद्धको देख कर ऊषाके नेत्र हर्षसे खिलगए और उसने कहा; कि-हे हे सखि!

सखि ॥ ६९ ॥ येनाहं दूषिता पूर्वं स्वप्ने हर्म्यगता सती । सोऽयं विज्ञातरूपो मे कुतोऽयं रतितस्करः ॥ ७० ॥ चित्रलेखे वदस्वैनं तत्त्वतो मम शोभने । कुलशीलाभिजननो नाम किं चास्य भामिनि। ततः पश्चाद्विशास्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥ ७१ ॥ चित्रलेखोवाच । अयं त्रैलोक्यनाथस्य नप्ता कृष्णस्य धीमतः । भर्ता तव विशालाक्षि प्रद्युम्निर्भीमविक्रमः ॥ ७२ ॥ न ह्यस्ति त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्य पराक्रमे । उत्पाट्य पर्वतानेष पर्वतैरेव शातयेत् ॥ ७३ ॥ धन्यास्यनुगृहीतासि यस्यास्ते यदुपुङ्गवः । त्र्यक्षपत्न्या समादिष्टः सदृशः सज्जनः पतिः ॥७४॥ उषोवाच । त्वमेवात्र विशालाक्षि योग्या भव वरानने । न शक्या हि गतिश्चान्या अगत्या मे गतिर्भव ॥७५॥ अन्तरिक्षचरा च त्वं योगिनी काम-

---

वह चोर यह रहा ॥ ६९ ॥ इसने मुझे अपने भवनमें स्वप्न में दूषित किया था, इस लिये मैंने इसके रूपको पहिचान लिया, पता यह रतितस्कर कहाँ रहता है ॥७०॥ हे शोभने चित्रलेखे ! इनकी ठीक २ बात मुझे बताओ, हे भामिनि ! इनका नाम क्या है ? कुल कैसा है?और इनका कुटुम्ब कैसा है, इन सब बातोंका वर्णन करो ॥ ७१ ॥ चित्रलेखाने कहा, कि–हे विशालाक्षि ! यह तुम्हारे स्वामी, त्रिलोकीके स्वामी बुद्धिमान् कृष्णके पोते हैं और यह भयंकर पराक्रमी तुम्हारे स्वामी प्रद्युम्नके लड़के हैं॥७२ त्रिलोकीमें इनके समान कोई पराक्रमी नहीं हैं वह पर्वतोंको उठा कर पर्वतोंको भी तोड़ सकते हैं ॥ ७३ ॥ तू धन्य है ! अनुगृहीत है ! क्योंकि-त्रिलोचन शिवकी पत्नीने तुझे ऐसा तेरी समान सज्जन स्वामी दिया है;॥७४॥ ऊषाने कहा कि–हे विशालाक्षि! हे वरानने!इस कामको करनेके योग्य तू ही है,मेरी और कोई गति नहीं है,तू मुझ अगतिकी गति बन७५तू अन्तरिक्षमें विचरनेवाली है, योगिनी है, और तू इच्छानुसार रूप धारण कर सकती है

रूपिणी । उपायस्यास्य कुशला निप्रमानय मे प्रियम् ॥ ७६ ॥ उपायश्चिन्त्यतां भीरु संगमार्थं प्रिये सुखम् । सिद्धार्था संनिवर्तस्व तेनोपायेन सुन्दरि ॥ ७७ ॥ भवेदापत्सु यन्मित्रं तन्मित्रं शस्यते बुधैः । कामार्ता चास्मि सुश्रोणि भव मे प्राणधारिणी ॥ ७८ ॥ यद्येनं मे विशालाक्षि भर्तारममरोपमम् । अद्य नानयसि क्षिप्रं प्राणांस्त्यक्ष्याम्यहं शुभे ७९ उषाया वचनं श्रुत्वा चित्रलेखाब्रवीद्वचः । श्रोतुमर्हसि कल्याणि वचनं मे शुचिस्मिते ॥ ८० ॥ यथा बाणस्य नगरी रक्ष्यते देवि सर्वशः । द्वारकापि तथा भीरु दुराधर्षा सुरैरपि ॥८१॥ अयस्मयप्रतिच्छन्ना गुप्तद्वारा च सा पुरी । गुप्ता वृष्णिकुमारैश्च तथा द्वारकवासिभिः ॥ ८२ ॥ प्रान्ते सलिलसंयुक्ता विहिता विश्वकर्मणा । रक्ष्यते पुरुषैर्घोरैः पद्मनाभस्य

अतः तू इस उपायमें भी कुशल(अवश्य)होगी,अतः तू मेरे प्रियको शीघ्र लेआना ७६ हे भीरू ! अब तू प्रियतमसे सुख पानेका उपाय विचार और ऐसा उपाय विचार, जिससे उपायसे हे सुन्दरी ! तू कामको सिद्ध करकेही लौटे ॥ ७७ ॥ बुद्धिमान् पुरुष उस मित्रकी प्रशंसा करते हैं, जो समय पर मित्रता दिखावे हे सुश्रोणि ! मैं कामार्त होरही हूँ तू मेरे प्राण बचा ७८ हे विशालाक्षि ! यदि तू मेरे देवताकी समान स्वामीको नहीं लावेगी तो हे शुभे ! मैं अपने प्राणोंको छोड़ दूँगी ॥ ७९ ॥ ऊषाके वचनको सुनकर चित्रलेखाने कहा, कि—हे शुचिस्मिते हे कल्याणि ! तू मेरे वचनको सुन ॥ ८० ॥ हे देवि ! जिस प्रकार बाणासुर की नगरीकी चारों ओर से रक्षाकी जाती है, हे भीरू ! इसी प्रकार द्वारका भी रक्षा होती है, देवता भी उसको धर्षित नहीं कर सकते ॥ ८१ ॥ वह पत्थरोंके परकोटोंसे ढक रही है, उसके द्वारकी वृष्णिकुमार और द्वारकावासी रक्षा करते रहते हैं ८२ वह समुद्रकी परिखा वाली है, और विश्वकर्माकी बनाई हुई है

शासनात् ॥ ८३ ॥ शैलप्राकारपरिखा दुर्गमार्गप्रवेशिनी । सप्त-
प्राकाररचिता पर्वतैर्धातुमण्डितैः ॥ ८४ ॥ न च शक्यमविज्ञातैः
प्रवेष्टुं द्वारकापुरीम् । आत्मानं मां च रक्षस्व पितरं च विशेषतः
उपोवाच । तत्र योगप्रभावेण शक्यं तत्र प्रवेशनम् । किं मे बहु-
विलापेन श्रूयतां सखि कारणम् ॥८६॥ अनिरुद्धस्य वदनं पूर्ण-
चन्द्रसमप्रभम् । यद्यहं तन्न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ८७
दूतमासाद्य कार्याणां सिद्धिर्भवति भामिनि । तस्माद्दौत्येन मे गच्छ
जीवन्तीं मां यदीच्छसि ॥ ८८ ॥ यदि त्वं मे विजानासि सख्यं
प्रेम्णा च भाषितम् । क्षिप्रमानय मे कान्तं तवास्मि शरणं गता
जीवितस्य हि सन्देहः क्षयं चैव कुलस्य च । कामार्ता हि न
पश्यन्ति कामिन्यो मदविक्लवाः ॥ ९० ॥ प्रयत्नो युज्यते कार्ये-

और पद्मनाभ विष्णुकी आज्ञासे घोर पुरुष उसकी रक्षा करते हैं
उसका परकोटा पर्वतका है और उसकी खाई भी पत्थरकी बनी
हुई है और दुर्ग (कठिन) मार्गसे उसमें घुसा जा सकता है और
धातुमण्डित पर्वतोंके सात परकोटोंसे वह रची हुई है ॥ ८४ ॥
अनजान पुरुष द्वारकामें नहीं घुस सकते अतः तू अपनेको और
मुझे बचा विशेष कर अपने पिताकी रक्षा कर ॥ ८५ ॥ ऊषाने
कहा, कि-तू योगके प्रभावसे वहाँ घुस सकती है, हे सखि!
मेरे बहुत विलाप करनेसे क्या, हे सखि! तू बातको सुन ८६
यदि मैं पूर्ण चन्द्रमाकी समान प्रभावाले अनिरुद्धके मुखको नहीं
देखूँगी तो यमराजके घरको चली जाऊँगी॥८७॥ हे भामिनी!
दूतोंको पानेसे कामकी सिद्धि होजाती है इस लिए यदि तू मुझे
जीवित देखना चाहती है तो मेरी दूती बनकर जा॥८८॥ यदि
तू मेरे प्रेमपूर्वक बोलनेको और मेरे मित्र भावको समझती हो तो
मेरे स्वामीको शीघ्र ही लिवाला मैं तेरी शरणागत हूँ ॥ ८९ ॥
जीवनका सन्देह हो वा कुलका नाश होता हो इसको मदसे विह्वल

ष्विति शास्त्रनिदर्शनम् ॥ ६१ ॥ त्वं च शक्ता विशालाक्षि द्वारकायाः प्रवेशने । संस्तुतासि मया भीरु कुरु मे प्रियदर्शनम् ६२ चित्रलेखोवाच । सर्वथा संस्तुता तेहं वाक्यैरमृतसोदरैः । कारिता च समुद्योगं प्रियैः कान्तैश्च भाषितैः ॥ ६३ ॥ एषा गच्छाम्यहं भीरु क्षिप्रं वै द्वारकां पुरीम् । भर्त्तारमानयाम्यद्य तव वृष्णिकुलोद्भवम् । अनिरुद्धं महाबाहुं प्रविश्य द्वारकां पुरीम् ॥६४॥ सा वचस्तथ्यमशिवं दानवानां भयावहम् । उक्त्वा चान्तर्हिता क्षिप्रं चित्रलेखा मनोजवा ॥६५॥ सखिभिः सहिता ह्युषा चिन्तयन्ती तु सा स्थिता । तृतीये तु मुहूर्ते सा नष्टा बाणपुरात्तदा ॥६६॥ सखीप्रियं चिकीर्षन्ती पूजयन्ति तपोधनान् । क्षणेन समनुप्राप्ता द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥६७॥ कैलासशिखराकारैः प्रासादैरुप-

---

कामातं स्त्रियें नहीं देखती हैं ६० कामका प्रयत्न करना चाहिये यह शास्त्रकी आज्ञा है ।६१। हे विशालाक्षी ! तू द्वारकामें प्रवेश कर सकती है हे भीरु ! मैंने तेरी स्तुति की है अतः तू मुझे मेरे प्रियतमका दर्शन करादे ९२ चित्रलेखाने कहा, कि-तूने अमृतकी समान वाक्योंसे मेरी भलीप्रकार स्तुति की प्रिय तथा मनोहर भाषण करके मुझे उद्योग करनेके लिये उद्यत करदिया है ६३ हे भीरु ! मैं द्वारकापुरीको शीघ्र ही जा रही हूँ और द्वारकापुरीमें घुसकर वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुए तेरे भर्ता महाभुज अनिरुद्धको शीघ्रही ले आऊँगी ॥ ६४ ॥ मनकी समान वेग वाली चित्रलेखा इस प्रकार दानवोंका अकल्याण करनेवाले भयानक और सच्चे वचनको कहकर शीघ्रही अन्तर्धान होगई ।६५। और ऊषा अपनी सखियोंके साथ विचार करती हुई तहाँ ही रह गई तीसरे मुहूर्तमें चित्रलेखा बाणपुरसे चलीगई थी ॥ ६६ ॥ अपनी सखीका प्रिय चाहनेवाली चित्रलेखा तपोधनोंका पूजन करती हुई क्षणभरमें ही कृष्णसे पालित द्वारकापुरीमें पहुँच

शोभिताम् । ददर्श द्वारकां रम्यां दिवि तारामिव स्थिताम् ।६८।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अनिरुद्धानयार्थं चित्रलेखायाः द्वारकागमनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ द्वारवतीं प्राप्य स्थिता सा भवनांतिके। प्रवृत्तिहरणार्थाय चित्रलेखा व्यचिंतयत् ॥ १ ॥ अथ चिन्तयती सा तु बुद्धिबुद्ध्यर्थनिश्चयम् । अपश्यन्नारदं तत्र ध्यायन्तमुदके मुनिम् ॥ २ ॥ तं दृष्ट्वा चित्रलेखा तु हर्षेणोत्फुल्ललोचना । उपसृत्याभिवाद्याथ तत्रैवाधोमुखी स्थिता ॥ ३ ॥ नारदस्त्वाशिषं दत्त्वा चित्रलेखामथाब्रवीत् । किमर्थमिह सम्प्राप्ता श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ देवर्षिमथ तं दिव्यं नारदं लोकपूजितम् । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा चित्रलेखा त्वथाब्रवीत् ॥ ५ ॥ भगवन् श्रूयतां वाक्यं दौत्येनाहमिहागता । अनिरुद्धं मुने नेतुं यदर्थं च शृणुष्व

गई ॥ ६७ ॥ उसने कैलासके शिखरकी समान आकारवाले महलोंमे सुशोभित रमणीय द्वारकाको आकाशमें स्थित तारेकी समान देखा ६८ एकसौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर द्वारकापुरीमें पहुँच कर वह (कृष्णके) भवनके पास खड़ी होगई और (श्रीकृष्णको इस बातका समाचार देनेकी चिन्ता करने लगी ।१। वह अपनी बुद्धिसे इस बातका विचार कर रही थी उतनेमें ही उसने नारदमुनिको जलमें ध्यान करते हुए देखा ।।२।।-उनको देखकर हर्षके कारण चित्रलेखाके नेत्र खिल गए और वह उनके पास पहुँच नीचेको मुख करके खड़ी होगई ३ तब नारदजीने उसको आशीर्वाद देकर बूझा, कि- तू किस लिये आई है, उस बातको मैं भली भाँति सुनना चाहता हूँ ४ उस समय चित्रलेखाने दोनों हाथ जोड़ कर लोकपूजित-देवर्षि नारदजीसे कहा, कि-५ हे मुने ! हे भग-

मे ॥ ६ ॥ नगरे शोणितपुरे बाणो नाम महासुरः । तस्य कन्या वरारोहा नाम्नोषेति च विश्रुता ॥ ७ ॥ भगवन् सानुरक्ता च प्राद्युम्निं पुरुषोत्तमम् । देव्या वरविसर्गेण तस्या भर्ता विनिर्मितः तं च नेतुं समायाता तत्र सिद्धिं विधत्स्व मे । मया नीतेऽनिरुद्धे तु नगरं शोणिताह्वयम् ॥९॥ प्रवृत्तिः पुण्डरीकाक्षे त्वयाख्येया महामुने । अवश्यं भविता चैव कृष्णेन सह विग्रहः । बाणस्य सुमहान् सङ्ख्ये दिव्यो हि स महासुरः १० न च शक्तोनिरुद्धस्तं युद्धे जेतुं महासुरम् । सहस्रबाहुमायान्तं जयेत् कृष्णो महाभुजः ११ भगवन् सन्निकर्षं ते यदर्थमिहमागता । कथं हि पुण्डरीकाक्षो ज्ञापितस्तदिदं भवेत् ॥१२॥ त्वत्प्रसादाच्च भगवन् न मे कृष्णाद्भयं

वन् ! मैं यहाँ अनिरुद्धको लेनेके लिए दूती बन कर आई हूँ ६ शोणितपुरमें बाण नामक एक बड़ा भारी राक्षस रहता है, उसकी वरारोहा कन्या ऊषा नामसे प्रसिद्ध है ७ हे भगवन् ! वह प्रद्युम्न-पुत्र पुरुषोत्तम अनिरुद्ध पर आसक्त होगई है, उमादेवीने भी उसको उसका स्वामी रच दिया है ।८। उन अनिरुद्धको लेनेके लिए मैं यहाँ आई हूँ, उस कामको सिद्ध करनेका आप उपाय करिये जब मैं शोणितपुरमें अनिरुद्धको ले जाऊँगी ॥ ९ ॥ हे महामुने ! तब आप पुण्डरीकाक्षसे इस बातको कह देना क्यों कि—तहाँ पर कृष्णके साथ बाणासुरका बड़ा भारी युद्ध होगा क्योंकि—बाणासुर बड़ाभारी असुर है १० अनिरुद्ध उस बड़े भारी असुरको युद्धमें नहीं जीत सकना महाभुज श्रीकृष्ण युद्ध में आते हुए सहस्र भुजावाले बाणासुरको युद्धमें जीतसकेंगे ११ हे भगवन् ! मैं आपके पास जिस कारणसे आई थी वह बात यह थी, कि—यह बात पुण्डरीकाक्षको कैसे मालूम हो और उनका युद्ध किसप्रकार हो ॥१२॥ हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मुझे कृष्णसे भय नहीं होसकता क्योंकि-वह तत्त्व बातको जाननेवाले

भवेत् । स हि तत्त्वार्थदृष्टिस्तु अनिरुद्धः कथं ह्रियेत् ॥ १३ ॥
क्रुद्धो हि स महाबाहुस्त्रैलोक्यमपि निर्दहेत् । पौत्रशोकाभिसंतप्तः
शापेन स दहेत माम् ॥ १४ ॥ तत्रोपायं च भगवन् चिन्तितुं वै
त्वमर्हसि । यथा ह्युषा लभेत् कान्तं मम चैवाभयं भवेत् ॥ १५ ॥
इत्येवमुक्तो भगवांश्चित्रलेखां स नारदः । उवाच स शुभं वाक्यं
मा भैस्त्वमभयं शृणु ॥१६॥ त्वयाऽऽनीतेऽनिरुद्धे तु कन्यावेश्म प्रवे-
शिते । यदि युद्धं भवेत्तत्र स्मर्तव्योऽहं शुचिस्मिते ॥ १७ ॥ ममैष
परमः कामो युद्धं द्रष्टुं मनोरमे । तद्ध दृष्ट्वा च महाप्रीतिः मद्रुचिश्च
दृढा भवेत् ॥ १८ ॥ गृह्यतां तामसी विद्या सर्वलोकसंमोहिनी ।
कृतकृत्यस्तु ते देवि एष विद्यां ददाम्यहम् ॥ १९ ॥ एवमुक्ते तु
वचने नारदेन महर्षिणा । तथेति वचनं प्राह चित्रलेखा मनो-

हैं परन्तु अनिरुद्धका हरण किस प्रकार होसकता है ! ॥ १३ ॥
महाभुज श्रीकृष्ण क्रोधमें भरने पर त्रिलोकीको भी भस्म कर
सकते हैं और पौत्रके शोकसे सन्तप्त होकर मुझे शाप भी देस-
कते हैं १४ हे भगवन् ! आप ऐसा उपाय विचारिये जिसप्रकार
ऊषाको तो उसका स्वामी मिलजाय और मुझे भी अभय वचन
मिलजाय १५ इसप्रकार कहने पर भगवान् नारदने चित्रलेखासे
शुभवाक्य कहा, कि-तू डर मत ! और अभय वचनको सुन१६
जब तू अनिरुद्धको लेजाएगी और कन्याके घरमें उसका प्रवेश
करादेगी उस समय यदि युद्ध खड़ा होजाय तो हे शुचिस्मिते !
तू मेरा स्मरण करना १७ हे मनोरमे ! मुझे युद्ध देखने का
बड़ा चाव लगा रहता है उसको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता
होगी और मेरी युद्ध करानेकी प्रवृत्ति भी दृढ़ होजावेगी ।१८।
तू सब लोकको मोहित करने वाली तामसी विद्याको ग्रहण कर
हे देवि ! मैं इस विद्यामें कृतकृत्य हूँ और तुझे यह विद्या देता
हूँ १९ महर्षि नारदके इस प्रकार वचन कहने पर मनकी समान

जवा ॥ २० ॥ अभिवाद्य महात्मानमृषीणां नारदं वरम् । सा जगामानिरुद्धस्य गृहं चैवान्तरिक्षगा ॥२१॥ ततो द्वारवतीमध्ये कामस्य भुवनं शुभम् । तत्समीपेऽनिरुद्धस्य भवनं सा विवेश ह । सौवर्णवेदिकास्तंभं रुक्मवैडूर्यतोरणम् । माल्यदामावसक्तं च पूर्णकुम्भोपशोभितम् ॥ २३ ॥ बर्हिकण्ठनिभग्रीवं प्रासादैरेकसश्रयैः । मणिप्रवालविस्तीर्णं देवगन्धर्वनादितम् ॥ २४ ॥ ददर्श भवनं यत्र प्राद्युम्निरवसत् सुखम् । ततः प्रविश्य सहसा भवनं तस्य तन्महत् ॥ २५ ॥ तत्रानिरुद्धं साऽपश्यच्चित्रलेखा वराप्सराः । मध्ये परमनारीणां तारापतिमिवोदितम् ॥२६॥ क्रीडाविहारे नारीभिः सेव्यमानमितस्ततः । पिबन्तं मधुमाध्वीकं श्रिया परमया युतम् ॥२७॥ वरासनगतंस्तत्र यथा चैडबिलंतथा । वाद्यते

वेगवाली चित्रलेखाने "तथास्तु" कहा २० और वह ऋषियोंमें श्रेष्ठ महात्मा नारदको प्रणाम करके आकाशमेंको उड़कर अनिरुद्धके घरकी ओर चली २१ तदनन्तर वह द्वारकापुरीके मध्य में स्थित प्रद्युम्नके शुभ भवनके समीपमेंके अनिरुद्धके भवनमें घुस गई २२ उसने सुवर्णकी भूमि और सुवर्ण तथा वैदूर्यमणि के तोरणवाले पुष्पोंकी मालाओंसे भरे हुए और पूर्ण कुम्भोंसे सुशोभित २३ और एक सश्रयके कारण अर्थात् एक उठे हुए काष्ठ वा पाषाणके कारण मोरके कंठकी समान ग्रीवावाले मणि और मूँगोंसे भरे हुए देवता और गन्धर्वोंसे गुञ्जारते हुए २४ भवनको देखा तहाँ पर प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्ध सुखपूर्वक बैठेथे तदनन्तर वह अप्सरा उनके उस बड़े भारी भवनमें घुसगई २५ तहाँ पर श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखाने श्रेष्ठ स्त्रियोंके मध्यमें उदय हुए चन्द्रमाकी समान शोभायमान अनिरुद्धको देखा ।२६। क्रीड़ा विहारके समय नारियें उनकी चारों ओरसे सेवा कर रहीं थीं वह मधुको पीरहे थे और परमशोभा सम्पन्न थे २७ कुमारके

समतालं च गीयते मधुरं तथा ॥२८॥ न च तस्य मनस्तत्र तमे-
वार्थमचिन्तयत् । स्त्रियः सर्वगुणोपेता नृत्यन्ते तत्र तत्र वै ॥२९॥
न चास्य मनसस्तुष्टिं चित्रलेखा प्रपश्यति । न चाभिरमते भोगैर्न
चापि मधु सेवते ॥ ३० ॥ व्यक्तमस्य हि तत्स्वप्नो हृदये परि-
वर्तते । इति तत्रैव बुद्ध्या च निश्चिता गतसाध्वसा ॥ ३१ ॥
सा दृष्ट्वा परमस्त्रीणां मध्ये शक्रध्वजोपमम् । चिन्तयाविष्टहृदया
चित्रलेखा मनस्विनी ॥ ३२ ॥ कथं कार्यमिदं कार्यं कथं स्वस्ति
भवेदिति । सान्तर्हिता चिन्तयित्वा चित्रलेखा यशस्विनी ॥३३॥
तामस्याच्छादयामास विद्यया शुभलोचना । ततोऽन्तरिक्षादेवाशु
प्रासादोपर्यधिष्ठिता ॥ ३४ ॥ प्राद्युम्नि वचनं प्राह श्लक्ष्णं मधु-

श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए थे तहाँ पर सम तालसे बाजा बजरहा
था और मधुर गीत गाए जारहे थे २८ परन्तु उसका मन तहाँ
पर नहीं था वह उस ही बातको विचार रहा था (इससे प्रतीत
होता है, कि-जिसप्रकार ऊषाने स्वप्न देखा इसीप्रकार अनि-
रुद्धने भी देखा था) तहाँ पर सर्वगुणसम्पन्न स्त्रियें
जहाँ तहाँ नाच रहीं थीं २९ परन्तु चित्रलेखाने अनिरुद्धके
मनमें सन्तोष नहीं पाया वह भोगोंसे आनन्द नहीं पाता था और
मधुका भी सेवन नहीं कररहा था ।३०। इसलिए उस निष्पापाने
अपनी बुद्धिसे निश्चय किया, कि-इसके हृदयमें वह स्वप्न फिर
ही रहा है ३१ मनस्विनी चित्ररेखाका इन्द्रध्वजकी समान अनि-
रुद्धको श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमें विराजमान देखकर, मन चिन्तासे
भर गया ३२ यशस्विनी चित्ररेखा उससमय तहाँ पर अन्तर्धान
होकर खड़ी हुई थी और यह कार्य किसप्रकार हो और किस
प्रकार कल्याण हो इस बातका विचार कररही थी ३३ तदनन्तर
वह शुभलोचना अन्तरिक्ष परसे उतरकर महल पर खड़ी होगई
और तामसी विद्यासे अनिरुद्धके अतिरिक्त दूसरोंको आच्छादित

रया गिरा। चक्षुर्दत्त्वा तु सा तस्मै कृत्वा चात्मनिदर्शनम् ।३५। विविक्ते सा च वै देशे तं वाक्यमिदमब्रवीत् । अपि ते कुशलं वीर सर्वत्र यदुनन्दन ॥ ३६ ॥ अहस्तावत् प्रदोषो वा कच्चिद्‌ गच्छति ते सुखम् । शृणुष्व त्वं महाबाहो विज्ञप्तिं मे रतीसुत ३७ उषाया मम सख्यास्तु वाक्यं वक्ष्यामि तत्त्वतः । स्वप्ने तु या त्वया दृष्टा स्त्रीभावं चापि भाविता ॥ ३८ ॥ बिभर्ति हृदये यां त्वां तया प्रेषिता त्वहम् । रुदन्ती जृम्भती चैव निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः ॥३९॥ त्वद्दर्शनपरा सौम्य कामिनि परितप्यते । यदि त्वं यास्यसे वीर धारयिष्यति जीवितम् ॥४०। अदर्शनेन मरणं तस्या नास्त्यत्र संशयः । यदि नारीसहस्रन्ते हृदिस्थं यदुनन्दन स्त्रियाः कामयमानायाः कर्तव्या हस्तधारणा त्वं च तस्या वरो-

---

करलिया ।३४। तदनन्तर वह अपने देखनेके लिये अनिरुद्धको नेत्रदेकर मधुर वाणीमें अनिरुद्धसे कहने लगी ३५ उसने एकान्त में अनिरुद्धसे यह बात कही कि—क्या तुम्हारा सर्वत्र कुशल है ३६ क्या तुम्हारा प्रदोष और व्रत सुखपूर्वक बीतता है हे महाभुज रति-पुत्र अनिरुद्ध ! अब तुम मेरी बातको सुनो ३७ मैं अपनी सखी ऊषाके वाक्यको ठीक २ रीतिसे कहती हूँ तुमने जिसको स्वप्न में देखा है और स्त्रीभाव सम्पन्न करदिया ३८ और जो तुम्हें अपने हृदयमें धारण किये रहती है उस ऊषाने मुझे तुम्हारे पास भेजा है वह बारम्बार रोरही है जम्भाई लेरही है और बार बार आहें खींच रही है ३९ हे सौम्य ! वह कामिनी तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे संताप पारही है हे वीर ! यदि तुम वहाँ पर चलोगे तो वह जीती रह सकती है ४० तुम्हारा दर्शन न पानेसे उसका मरण होजावेगा हे यदुनंदन ! तुम्हारे हृदयमें सैंकड़ों स्त्रियें बसती हों ४१ तब भी चाहनेवाली स्त्रीके हाथको पकड़ना ही चाहिये उमा देवीने उसके मनोरथ करने पर तुम्हारे स्वामी होनेका वर देदिया था ४२

त्सर्गे दत्तो देव्या मनोरथः ॥ ४२ ॥ चित्रपट्टं मया दत्तं त्वच्चिह्नं
दृश्य जीवति । सानुक्रोशो यदुश्रेष्ठ भव तस्या मनोरथे ॥४३॥
उषा ते पतते मूर्ध्ना वयं च यदुनन्दन । श्रूयतां चोद्भवस्तस्याः
कुलशीलं च यादृशम् ॥ ४४ ॥ संस्थानं प्रकृतिं चास्याः पितरं
च ब्रवीमि ते । वैरोचनिसुतो वीरो बाणो नाम महासुरः ॥४५॥
स राजा शोणितपुरे तस्य त्वामिच्छते सुता । त्वद्गतगतचित्ता
सा त्वन्मयं चापि जीवितम् ॥ ४६ ॥ मनोरथकृतो भर्ता देव्या
दत्तो न संशयः । त्वत्सङ्गमात् सा सुश्रोणी प्राणान् धारयते
शुभा ॥४७॥ चित्रलेखवचः श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽब्रवीदिदम् । दृष्टा
स्वप्ने मया सा हि तन्मत्तः शृणु शोभने ॥ ४८ ॥ रूपं कान्तिं
मतिं चैव संयोगं रुदितं तथा । एवं सर्वमहोरात्रं सुभागि परि-

मैंने तुम्हारी तसवीर उसको देदी है तुम्हारी मतिमासे अङ्कित उस
चिन्हको देखकर वह जीरही है हे यदुश्रेष्ठ ! आप उसके मनोरथ
को पूर्ण करिये ४३ ऊषा तुम्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करती है
और हे यदुनन्दन ! हम भी तुम्हें प्रणाम करती हैं उसकी उत्पत्ति
कुल और शील जैसा है उसको आप सुनिये ४४ उसका स्थान
उसकी प्रकृति और उसके पिताका भी मैं आपसे वर्णन करती हूँ
विरोचनका पौत्र वीर बाण नामक बड़ाभारी असुर है ४५ वह
शोणितपुरका राजा है उसकी पुत्री तुमको चाहती है उसका चित्त
तुम्हारी ओर लग रहा है और उसका जीवन तुम्हारे ही अधीन
है ४६ उसके मनोरथ करने पर उमादेवीने उसे आपसा स्वामी
दिया था वह शुभ सुश्रोणी आपके साथ समागम होने पर अपने
प्राणोंको धारण करके रह सकेगी ॥४७॥ चित्ररेखाके वचनको
सुनकर अनिरुद्धने उससे यह कहा कि-मैंने उसको स्वप्नमें
देखा था उस बातको हे शोभने ! तुम मुझसे सुनो ४८ मैं उसके
रूप कान्ति बुद्धि संयोग और रोना इन सब बातोंको रात दिन

चिन्तयन् ॥ ४९ ॥ यद्यहं समनुग्राह्यो यदि सख्यं त्वमिच्छसि । नयस्व चित्रलेखे मां द्रष्टुमिच्छाम्यहं प्रियाम् ॥५०॥ कामसन्तापसन्तप्तः प्रियासङ्गमकामतः । एषोञ्जलिर्मया बद्धः सत्यं स्वप्नं कुरुष्व मे ॥ ५१ ॥ ततस्तद्वचनं श्रुत्वा चित्रलेखा वराप्सराः । सफलोद्य मम क्लेशः सख्या मे यत्मयाचितम् ॥५२॥ वैशम्पायन उवाच । ईप्सितं तस्य विज्ञाय अनिरुद्धस्य भामिनी । चित्रलेखा ततस्तुष्टा तथेति च तमब्रवीत् ॥५३॥ हर्म्ये स्त्रीगणमध्यस्थं कृत्वा चान्तर्हितं तदा । उत्पपात गृहीत्वा सा माद्युम्नि युद्धदुर्मदम् ५४ सा तमध्वानमागम्य सिद्धचारणसेवितम् । सहसा शोणितपुरं प्रविवेश मनोजवा ॥५५॥ अदर्शनं तमानीय मायया कामरूपिणी

विचार करता हुआ मोहमें पड़ा रहता हूँ ४९ यदि तुम मुझ पर अनुग्रह करना चाहती हो और यदि तुम मेरी मित्रता चाहती हो तो हे चित्रलेखे ! तुम मुझे ले चलो मैं अपनी प्रियाको देखना चाहता हूँ ।५०। मैं प्रियाका संगम करनेकी इच्छासे कामसे संतप्त होरहा हूँ मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ तू मेरे स्वप्नको सच्चा कर ।५१। तदनन्तर उस वचनको सुनकर श्रेष्ठ अप्सरा चित्रलेखाने(समझा, कि–)मेरी सखीने मुझसे जिस बातकी प्रार्थनाकी थी उसके लिये मेरा परिश्रम करना सफल होगया ५२ वैशम्पायनजीने कहा,कि-भामिनी चित्ररेखा अनिरुद्धके अभिप्रायको जानकर सन्तुष्ट होगई और उसने कहा, कि–बहुत अच्छा ॥५३॥ तदनन्तर चित्रलेखा अपने भवनमें स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए युद्धदुर्मद अनिरुद्धको अन्तर्धान करनेके अनन्तर उनको उठाकर उड़चली ॥५४॥ वह सिद्ध और चारणोंसे सेवित मार्गोंमें पहुँचकर मनके समान वेगवती होने से शीघ्र ही शोणितपुरमें पहुँच गई ॥ ५५ ॥ इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली महाभागा चित्रलेखा अनिरुद्धको प्रच्छन्न रूपसे लाकर जहाँ ऊषा थी तहाँको चलदी ।५६। उसने

अनिरुद्धं महाभागा यत्रोषा तत्र गच्छति ॥ ५६ ॥ उपायाद्दर्शय-
च्चैनं चित्राभरणभूषितम् । चित्राम्बरधरं वीरं रहस्यमररूपिणम्
तत्रोषा विस्मिता दृष्ट्वा हर्म्यस्था सखिसन्निधौ । प्रवेशयामास च
तं तदा सा स्वगृहं ततः ॥५८॥ प्रहर्षोत्फुल्लनयना प्रियं दृष्ट्वा-
र्थकोविदा । सा हर्म्यस्था तमर्घेण यादवं समपूजयत् ॥ ५९ ॥
चित्रलेखां परिष्वज्य प्रियास्थानेष्वयोजयत् । त्वरिता कामिनी
प्राह चित्रलेखां भयातुरा ॥ ६० ॥ सखीदं नौ कथं कार्यं गुह्यं
कार्यविशारदे । गुह्ये कृते भवेत् स्वस्ति प्रकाशे जीवितक्षयः ६१
इत्युक्त्वा त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता । कान्तेन सह संयुक्ता
स्थिता वै भीतभीतवत् ॥ ६२ ॥ चित्रलेखाऽब्रवीद्वाक्यं शृणु त्वं

ऊषाको एकान्तमें विचित्र आभूषणोंसे विभूषित और विचित्र-वस्त्रधारी देवताकी समान रूपवान् वीर अनिरुद्धको दिखाया ५७ सखीके समीपमें अपने भवनमें खड़ी हुई ऊषा अनिरुद्धको देखकर विस्मयमें पड़ गई और उसने अनिरुद्धको अपने घरमें घुसा लिया ॥ ५८ ॥ अर्थचतुर ऊषाके नेत्र अपने प्रियतमको देखकर हर्षके मारे खिल गये तदनन्तर अपने भवनमें बैठी हुई ऊषाने अर्घ देकर यादवकी पूजा की ॥ ५९ ॥ तदनन्तर उसने चित्रलेखासे आलिंगन किया और उससे प्रिय बात करनेके लिये कहा उसके उपरान्त भयसे घबड़ाई हुई कामिनी ऊषाने त्वराके साथ चित्रलेखासे कहा, कि—॥ ६० ॥ हे काम करनेमें चतुर सखी ! इस बातको किस प्रकार छिपाकर रखा जाय इस बातके गुप्त रखने पर ही कल्याण होसकता है प्रकट होनेपर तो प्राणोंका भी नाश होजायगा ॥ ६१ ॥ इसप्रकार कहकर वह फु ीसे अलंकृत होकर छुपे हुए स्थानमें चलीगई और अपने स्वामीके साथ मिलकर डरी हुईकी समान खड़ी होगई ६२ उस समय चित्ररेखाने कहा कि-हे सखि ! तू मेरे निश्चय (विचार) को सुन हे सखि ! पुरुषार्थ-

निश्चयं सखि। कृतं पुरुषकारेण दैवं नाशयते सखि॥ ६३॥ यदि देव्याः प्रसादस्ते ह्यनुकूलो भविष्यति। अद्य मायाकृतं गुह्यं न कश्चिज्ज्ञास्यते नरः॥ ६४॥ सख्या वै एवमुक्ता सा पर्यवस्थितचेतना। एवमेतदिति प्राह सानिरुद्धमिदं वचः॥ ६५॥ दिष्ट्या स्वप्नगतश्चौरो दृश्यते सुभगः पतिः। यत्कृते तु वयं खिन्ना दुर्लभप्रियकाङ्क्षया॥ ६६॥ कच्चित्तव महाबाहो कुशलं सर्वतो गतम्। हृदयं हि मृदु स्त्रीणां तेन पृच्छाम्यहं तव॥ ६७॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा उषायाः श्लक्ष्णमर्थवत्। सोऽप्याह यदुशार्दूलः शुभान्तरतरं वचः॥ ६८॥ हर्षविप्लुतनेत्रायाः पाणिनाश्रु प्रमृज्य च। प्रहस्य सस्मितं प्राह हृदयग्राहकं वचः॥ ६९॥ कुशलं मे वरारोहे सर्वत्र मितभाषिणि। त्वत्प्रसादेन मे देवि प्रियमावेद-

---

पूर्वक किये हुए कामको प्रारब्ध नष्ट कर डालता है ६३ यदि तेरे ऊपर देवीकी प्रसन्नता होगी तब सब तेरे अनुकूल ही रहेगा और इस समय मैंने माया करके जिस कार्यको छुपादिया है उस कामको कोई भी मनुष्य नहीं जान सकेगा ६४ सखीके इसप्रकार कहने पर उसका चित्त सावधान होगया और उसने "एवमस्तु" कहकर अनिरुद्धसे यह बात कही, कि-। ६५। मेरे स्वप्नके चोर सौभाग्यवान् पति आज मुझे दीख रहे हैं यह मेरा अहोभाग्य है आपसे दुर्लभ प्रियतमको पानेकी इच्छासे हम खिन्न रहती थीं॥६६॥ हे महाभुज! आप सब प्रकारसे कुशल तो हैं स्त्रियोंका हृदय कोमल होता है इसलिये मैं आपसे बूझ रही हूँ।६७॥ ऊषाके मधुरता और प्रयोजन भरे वचनको सुनकर यदुशार्दूल अनिरुद्ध भी परमशुभ अक्षरोंवाला वचन कहने लगे।६८॥ उन्होंने हँसकर और मुस्कुराकर हर्षके कारण भरे हुए नेत्रोंवाली ऊषाके आँसुओं को अपने हाथसे पूँछ कर हृदयग्राही वचन कहा, कि-॥ ६९॥ हे मितभाषिणी देवी! हे वरारोहे! तेरी कृपासे मैं कुशल पूर्वक

यामि ते ॥ ७० ॥ अदृष्टपूर्वश्च मया देशोयं शुभदर्शने । निशि स्वप्ने यथा दृष्टः सकृत् कन्यापुरे तथा ॥ ७१ ॥ एवमेवमहं भीरु त्वत्प्रसादादिहागतः । न च तद्रुद्रपत्न्या मे मिथ्या वाक्यं भविष्यति ॥ ७२ ॥ देव्यास्ते प्रीतिमाज्ञाय त्वत्प्रियार्थं च भामिनि । अनुप्राप्तोस्मि चाद्यैव प्रसीद शरणं गतः ॥७३॥ इत्युक्त्वा त्वरमाणा सा गुह्यदेशे स्वलंकृता । कान्तेन सह संयुक्ता स्थिता मे भीतभीतवत् ॥ ७४ ॥ ततश्चोद्वाहधर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः । अन्योन्यं रमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा ॥७५॥ पतिना सानिरुद्धेन मुमुदे तु वराङ्गना । कान्तेन सह संयुक्ता दिव्यवस्त्रानुलेपना ॥ ७६ ॥ रममाणाऽनिरुद्धेन अविज्ञाता सुता तदा । तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ते यदूनामृषभो हि सः ॥७७॥ दिव्यमाल्याम्बर-

हूँ अब मैं तुझसे प्रिय बात कहता हूँ,कि–७० हे शुभदर्शने ! यह देश मेरा पहले देखा हुआ नहीं है मैंने इसको जिसप्रकार रात्रि में सुपनेमें देखा था तिसीप्रकार मैं इसको एक वार कन्यापुरमें देखरहा हूँ ।७१। हे भीरु ! इस प्रकार मैं तेरी कृपासे यहाँ पर आगया हूँ, रुद्रकी पत्नी उमादेवीका वाक्य मिथ्या नहीं होगा७२ हे भामिनि ! तेरी प्रीतिको जानकर तेरा प्रिय करनेके लिये मैं आ गया हूँ अब तू प्रसन्न हो मैं तेरी शरण लेता हूँ । ७३ । इस प्रकार कहनेपर त्वरापूर्वक अलंकृत होकर गुप्तदेशमें बैठी हुई ऊपा अपने कान्तके साथ मिलकर भयभीतकी समान खड़ी होगई ७४ तदनन्तर उन दोनोंने गान्धर्व विवाह करलिया और जिसप्रकार दिनमें चकवाचकवी रहते हैं इसीप्रकार परस्पर रहकर वे रमण करने लगे ॥ ७५ ॥ श्रेष्ठ स्त्री ऊपा अपने पति अनिरुद्धके साथ आनन्द पाने लगी अपने कान्तसे मिलने पर वह दिव्य वस्त्र और दिव्य चन्दनको धारण करती थी ७६ बाणासुरकी पुत्री अनिरुद्धके साथ रमण कर रही है इसको (कोई) नहीं जानता था

धरो दिव्यस्रगनुलेपनः । उषया सह संयुक्तो विज्ञातो बाणरक्षिभिः ॥ ७८ ॥ ततस्तैश्चारपुरुषैर्बाणस्यावेदितं द्रुतम् । यथा दृष्टमशेषेण कन्यायास्तदतिक्रमम् ॥ ७९ ॥ ततः किंकरसैन्यं तु व्यादिष्टं भीमकर्मणा । बलेः पुत्रेण वीरेण बाणेनामित्रघातिना ॥८०॥ गच्छध्वं सहिताः सर्वे हन्यतामेव दुर्मतिः । येन नः कुलचारित्रं दूषितं दूषितात्मना ॥८१॥ उषायां धर्षितायां हि कुलं नो धर्षितं महत् । असम्प्रदत्तां योऽस्माभिः स्वयंग्राहमधर्षयत् ॥ ८२ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमहो धाष्टर्यं च दुर्मतेः । यः पुरं भवनं चेदं प्रविष्टो नः स बालिशः ॥ ८३ ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तां तु किंकरांश्चोदयद्भृशम् एतस्याज्ञां तथो गृह्य सुसन्नद्धा विनिर्ययुः । यत्रानिरुद्धो

एक समय यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्ध दिव्य माला दिव्य वस्त्र धारण कर दिव्यहार और दिव्य चन्दनका लेपन कर ऊषाके साथ बैठा हुआ था (इस बातको) बाणासुरके रक्षकोंने जान लिया।७८। तदनन्तर उन दूतोंने जिसप्रकार कन्याका अतिक्रम देखा था वह सब बात शीघ्रतापूर्वक बाणासुरसे कहदी ।७९। तब शत्रुओंको मारनेवाले,भयंकर कर्म करनेवाले बलिपुत्र वीर बाणासुरने किंकरों की सेनाको आज्ञा दी, कि-॥८०॥ तुम सब इकट्ठे होकर जाओ और जिस दूषित आत्मावालेने हमारे कुलके चरित्रको दूषित कर दिया है उस दुर्मतिको मारडालो ८१ हमारे न देने पर भी ऊषा को अपने आप पकड़कर धर्षित कर दिया इसप्रकार ऊषाके धर्षित होने पर हमारे बड़ेभारी कुलको भी उसने धर्षित करदिया है ८२ जो हमारे नगर और भवनमें घुस आया उस बालिश दुर्मतिके वीर्य धैर्य और धृष्टता पर आश्चर्य होता है ८३ इस प्रकार कहनेके उपरान्त उसने अपने सेवकोंको (तहाँ जानेकी) बहुत प्रेरणाकी, सैनिक बाणासुरकी आज्ञाको ग्रहण करके तयार होकर चलने लगे, वे महाबली राक्षस जहाँ प्रद्युम्नपुत्र था,तहाँको चलदिये ८४

ह्यभवत्तत्रागच्छन्महाबलाः ॥ ८४ ॥ नानाशस्त्रोद्यतकरा नानारूपा भयंकराः । दानवाः समभिक्रुद्धाः प्राद्युम्निवधकाङ्क्षिणः ॥ ८५ ॥ रुरोद तद्बलं दृष्ट्वा बाष्पेणावृतलोचना । प्राद्युम्निवधभीता सा बाणपुत्री यशस्विनी ॥ ८६ ॥ ततस्तु रुदतीं दृष्ट्वा तां सुतां मृगलोचनाम् । हा हा कान्तेति वेपन्तीमनिरुद्धोऽभ्यभाषत ॥ ८७ ॥ अभयं तेस्तु सुश्रोणि मामैस्त्वं हि मयि स्थिते । समयासो हर्षकालस्ते नेहास्ति भयकारणम् ॥ ८८ ॥ कृत्स्नोऽपि यदि बाणस्य भृत्यवर्गो यशस्विनि । आगच्छति न मे चिन्ता भीरु पश्याद्य विक्रमम् ॥ ८९ ॥ तस्य सैन्यस्य निनदं श्रुत्वाभ्यागच्छतस्ततः । सहसैवोत्थितः श्रीमान् प्राद्युम्निः किमिति ब्रुवन् ॥ ९० ॥ अथ सोऽपश्यत बलं नानाप्रहरणोद्यतम् । स्थितं समन्ततस्तत्र परिवार्य

अनेक प्रकारके शस्त्रोंको हाथमें उठाने वाले अनेक प्रकारके भयंकर दानव अनिरुद्धका वध चाह कर क्रोधमें भर गए ॥ ८५ ॥ यशस्विनी बाणपुत्री उस सेनाको देख कर (अनिरुद्धके वध की आशंका) से भयभीत होगई, उसके नेत्रोंमें आँसू भर आए और वह रोने लगी ८६ अनिरुद्धने हा ! हा !! कान्त ! करके काँपती मृगलोचनी बाणासुरकी पुत्रीको रोती हुई देखकर कहा कि–८७ हे सुश्रोणि ! तू निर्भय रह, मेरे होने पर तू डर मत यह तो तेरे आनन्द मनानेका समय है, डरनेकी कुछ बात नहीं है ॥ ८८ ॥ हे यशस्विनि ! यदि बाणासुरका सारा भृत्यदल भी आजायगा, तब भी मुझे कुछ चिन्ता नहीं है, हे भीरु ! तू आज मेरे पराक्रम को देख ॥ ८९ ॥ तदनन्तर उस आती हुई सेनाके नादको सुन कर सहसा श्रीमान् अनिरुद्ध "यह क्या है" कह कर उठ खड़े हुए ॥ ९० ॥ और उन्होंने देखा, कि अनेक प्रकारके शस्त्रोंको उठाये हुए बड़ी भारी सेना उस घरको चारों ओरसे घेर कर खड़ी हुई है ॥ ९१ । तब तो प्रद्युम्नपुत्र जहाँ पर घिरी हुई सेना

गृहं महत् ॥ ६१ ॥ ततोभ्यगच्छत्त्वरितो यत्र तद्वेष्टितं बलम् । क्रुद्धः स्वबलमास्थाय अदशद्दशनच्छदम् ॥ ६२ ॥ ततो योद्धुमुपोढानां बाणेयानां निशम्य तु । सा चित्रलेखास्मरत नारदं देवदर्शनम् ॥६३॥ ततो निमेषमात्रेण संप्राप्तो मुनिपुङ्गवः । स्मृतोथ चित्रलेखायाः पुरं शोणितसाह्वयम् ॥६४॥ अन्तरिक्षे स्थितस्तत्र सोऽनिरुद्धमथाब्रवीत् । मा भयं स्वस्ति ते वीर प्राप्तोऽस्म्यद्य पुरं तव ॥ ६५ ॥ ततस्तत्र नारदं दृष्ट्वा सोऽभिवाद्य महाबलः । प्रहृष्टमानसो भूत्वा युद्धार्थमभिवर्तत ॥ ६६ ॥ ततस्तेषां स्वनं श्रुत्वा सर्वेषामेव गर्जताम् । सहसैवोत्थितः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः ६७ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य संदष्टौष्ठं महाभुजम् । प्रासादाच्चावरोहन्तं भयार्ता विप्रदुद्रुवुः ॥ ६८ ॥ अन्तःपुरद्वारगतं परिघं गृह्य चातु-

खड़ी थीं तहाँको चल दिये और अपने बलको धारण कर क्रोध में भर ओठको काटने लगे ।६२। तब युद्ध करनेके लिये बाहर निकलेहुए बाणासुरके भटोंको देखकर चित्रलेखाने भी देवताकी समान दर्शन वाले नारदजीका स्मरण किया ।६३। चित्रलेखाके स्मरण करते ही निमेषमें ही मुनिपुङ्गव नारदजी शोणित नाम वाले नगरमें आगए ।६४। और अन्तरिक्षमें खड़े हुए वह नारद अनिरुद्धसे कहने लगे, कि—हे वीर ! मैं तेरे नगरमें आगया हूँ अतः तू डर मत, तेरा कल्याण हो, ॥ ६५ ॥ महाबली अनिरुद्ध नारदजीको देख उनको प्रणाम कर मनमें प्रसन्न हो युद्ध करने पर उतर पड़े ॥६६॥ उन सब गर्जने वालोंके शब्दको सुन कर शूर वीर अनिरुद्ध कोड़ेसे पिटने जैसे हाथी उठ बैठता है तिस प्रकार एक साथ उठ खड़ा हुआ था ॥६७। महाभुज अनिरुद्ध को ओठ चबाकर भवनसे उतर कर आते देख राक्षस भयभीत हो भागने लगे ॥६८। अनेक प्रकारके युद्ध करनेमें चतुर अनिरुद्धने उनका वध करनेके लिए महलके द्वारमें रक्खे हुए अतोल

लम् । वधाय तेषां चिक्षेप नानायुद्धविशारदः ॥ ९९ ॥ ते सर्वे बाणवर्षैश्च गदाभिर्मुशलैस्तथा । असिभिः शक्तिभिः शूलैर्निजघ्नू रणगोचरे ॥१००॥ स हन्यमानो नाराचैः परिघैश्च समन्ततः । दानवैः समितिक्रुद्धैः प्रायुध्मिः शस्त्रकोविदैः ॥ १ ॥ नाक्षुभ्यत् सर्वभूतात्मा नदन् मेघ इवोष्णगे । आविध्य परिघं घोरं तेषां मध्ये व्यतिष्ठत । सूर्यो दिवि चरन् मध्ये मेघानामिव सर्वशः दण्डकृष्णाजिनधरो नारदो हृष्टमानसः । साधु साध्विति चै तत्र सोनिरुद्धमभाषत ॥३॥ ते हन्यमाना रौद्रेण परिघेणामितौजसा प्राद्रवन्त भयात् सर्वे मेघा वातेरिता यथा ॥४॥ विद्राव्य दानवान् वीरः परिघेण सुविक्रमः । अनिरुद्धो रणे हृष्टः सिंहनादं ननाद च । घर्मान्ते तोयदो व्योम्नि नदन्निव महास्वनः ॥ ५ ॥

परिघको उठा कर फैंका ॥ ९९ ॥ जब अनिरुद्ध रणमें दीखने लगा, तब वे सब बाणोंकी वर्षा गदा मूसल तलवार शक्ति और शूलोंसे उसको मारने लगे १०० शस्त्रचतुर समितिञ्जय दानव चारों ओरसे अनिरुद्ध पर नाराच और परिघ फैंकने लगे, उन से पिटने पर भी (समष्टच अहंकाररूप अनिरुद्ध नाम वाला) सर्वभूतात्मा क्षुब्ध नहीं हुआ और वर्षाकालके मेघकी समान नाद करने लगा, जैसे स्वर्गमें घूमता हुआ सूर्य मेघोंमें चारों ओर घूमता है, इसी प्रकार वह भी भयंकर परिघको घुमाता हुआ उनमें खड़ा होगया १०१।१०२ उस समय दण्ड और काली मृगछालाको धारण करनेवाले नारदजीका मन प्रसन्न होगया वह अनिरुद्धसे साधु २ कह नाचनेलगे १०३ जैसे वायुके झपाटेसे मेघ तित्तर बित्तर होजाते हैं ऐसे ही अमित तेजस्वी भयंकर परिघसे पिटते दैत्य डर कर भागने लगे ॥ १०४ ॥ श्रेष्ठ पराक्रम वाले वीर अनिरुद्ध परिघसे दानवोंको भगा कर प्रसन्न हो सिंहकी समान गर्जने लगे, और वर्षाऋतुमें गड़गड़ाने वाले मेघसा महाशब्द

तिष्ठध्वमिति चुक्रोश दानवान् युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥ पूर्वमुक्त्वाथ दो-
हनच्चापि सर्वान् शत्रुनिबर्हणः । तेन ते समरे सर्वे हन्यमाना
महात्मना ॥ ७ ॥ यतो बाणस्ततो भीता ययुर्युद्धपराङ्मुखाः ।
ततो बाणसमीपस्थाः श्वसन्तो रुधिरोक्षिताः ॥८॥ न शर्म लेभिरे
दैत्या भयविक्लवचेतसः । मा भैष्ट मा भैष्ट इति राज्ञा ते तेन
चोदिताः ॥ ६ ॥ त्रासमुत्सृज्य चैकस्था युध्यध्वं दानवर्षभाः ।
तानुवाच पुनर्बाणो भयविस्रस्तलोचनान् ॥११०॥ किमिदं लोक-
विख्यातं यश उत्सृज्य दूरतः । भवन्तो यान्ति क्लैब्यं क्लीबा
इव विचेतसः ॥ ११ ॥ कोऽयं यस्य भयत्रस्ता भवन्तो यान्त्य-
नेकशः । कुलापदेशिनः सर्वे नानायुद्धविशारदाः ॥ १२ ॥ भव-
द्भिर्न हि मे कार्यं युद्धसाहाय्यमद्य वै । अब्रवीद्ध्वंसतेत्येवं मत्स-
मीपाच्च नश्यत ॥ १३ ॥ अथ तान्वाग्भिरुग्रभिस्त्रासयन् बहुधा

करके युद्धदुर्मद दानवोंसे कहने लगे, कि—खड़े रहो २ ॥१०६॥
तदनन्तर शत्रुनिबर्हण अनिरुद्ध उनको मारने लगे, उस महात्मासे
समरमें पिटने पर वे दैत्य युद्धसे पराङ्मुख होकर बाणासुरके
पासको भागने लगे, और बाणासुरके पास जाकर रुधिरमें सने
हुए होनेके कारण हाँफने लगे ॥१०७॥१०८॥ और उस राजा
के मत डरो ! मत डरो ! कहने पर भी उन भयभीत चित्त वालों
को शान्ति न मिली ॥ १०६ ॥ फिर बाणासुरने भयसे त्रस्त
नेत्र वाले दानवोंसे कहा, कि तुम डरना छोड़ कर इकट्ठे होकर
लड़ो ॥ ११० ॥ तुम लोकप्रसिद्ध यशको दूरसे त्याग कर मूढ़
नपुंसकोंकी समान क्यों भागे जारहे हो ॥ १११ ॥ जिससे
डर कर तुम भागे जा रहे हो वह कौन है तुम सब कुलीन हो
और अनेक प्रकारके युद्धोंमें चतुर हो ॥१२॥ अब आपसे मुझे
कोई काम नहीं है मुझे तुम्हारी युद्धमें सहायता नहीं चाहिये तुम
नष्ट हो जाओ और मेरे सामनेसे हट जाओ ॥१३॥ इस प्रकार

वती । व्यादिदेश रणे शूरानन्यानयुतशः पुनः ॥१४॥ प्रमथा-
गणभूयिष्ठं व्यादिदेश तस्य निग्रहे । अनीकं सुमहद्रौद्रं नानाप्रहर-
णोद्यतम् ॥ १५ ॥ अथान्तरिक्षे बहुधा विद्युद्भिरिव चाम्बुदैः ।
बाणपाणिभिः समवस्थं संग्रामगोचरैः ॥१६॥ केचित् क्षितिस्थाः
प्राक्रोशन् गजा इव समन्ततः । अन्तरिक्षे व्यराजन्त घनान्ते इव
तोयदाः ॥ १७ ॥ ततस्तत् सुमहत्सैन्यं समेतमभवत् पुनः । तिष्ठ
तिष्ठेति च तदा वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥ १८ ॥ अनिरुद्धो रणे
वीरः स च तानभ्यवर्त्तत । तदाश्चर्यं समभवद्यदेकस्तु समागतः ॥
अयुध्यत महावीर्यैर्दानवैः सह संयुगे । तेषामेव च जग्राह परिघां-
स्तोमरानपि ॥ २० । तैरेव च तदा युद्धे तान् जघान महाबलः ।

वह बलवान् उनको उग्रबाणोंसे तिरस्कृत करके फिर लाखों वीरों को युद्धमें भेजने लगा ॥ १४ ॥ उसने अनिरुद्धका निग्रह करने के लिए नानाभांतिके आयुधोंको उठाने वाली प्रमथ नामके गणों की भयंकर सेना भेजी ॥ १५ ॥ जिस भाँति अन्तरिक्षमें बहुत सी बिजलियें और मेघ इकट्ठे हो जाएं इसी भांति चमकते हुए तेजों वाले बाणधारके सैनिकोंसे अन्तरिक्ष भर गया ॥ १६ ॥ बहुतसे सैनिक पृथ्वी पर खड़े होकर हाथीकी समान चिंघाड़ने लगे और बहुतसे सैनिक ग्रीष्मऋतुके अन्तमें आकाशमें छाए हुए मेघोंकी समान आकाशमें खड़े होकर शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥ इसप्रकार बड़ीभारी सेना फिर इकट्ठी होगई और खड़ा रहो यह बात चारों तरफसे सुनाई आने लगी १८ वीर अनिरुद्ध भी रणमें उनके ऊपर चढ़ा, यह आश्चर्यकी बात थी कि—वह अकेला होनेपर भी उनके ऊपर चढ़ गया था।१९। अनिरुद्ध महाबली दानवोंसे युद्धमें लड़ने लगा और उनके परिघ और तोमरोंको छीनने लगा।२० और उनसे ही उनको मारने लगा तदनन्तर उसने परिघको फेंका फिर उस परिघको पकड़ कर शत्रुनिर्दहण

पुनः परिघमुत्सृज्य प्रगृह्य रणमूर्धनि ॥ २१ ॥ स तेन विचरन् मार्गानेकः शत्रुनिबर्हणः । भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं प्लुतम् ॥ २२ ॥ इति प्रकारान् द्वात्रिंशद्विचरन्नभ्यदृश्यत । एकं सहस्रशश्चात्र ददृशु रणभूमूनि ॥ २३ ॥ क्रीडन्तं बहुधा युद्धे व्यादितास्यमिवान्तकम् । ततस्तेनाभिसन्तप्ता रुधिरौघपरिप्लुताः पुनर्भग्नाः प्राद्रवन्त यत्र बाणो व्यवस्थितः । गजवाजिरथौघैस्ते चैाह्यमानाः समन्ततः ॥२५॥ कृत्वा चार्तस्वरं घोरं दिशो जग्मुर्हतौजसः । एकैकस्योपरि तदा तेऽन्योन्यं भयपीडिताः ॥ २६ ॥ वमन्तः शोणितं जग्मुर्विषादद्विमुखा रणे । न बभूव पुरा देवयुध्यतां तादृशं भयम् ॥ २७ ॥ यादृशं युध्यमानानामनिरुद्धेन संयुगे । केचिद्वमन्तो रुधिरं ह्यपतन् वसुधातले ॥ २८ ॥ दानवा

अनिरुद्ध पैंतरे दिखलाने लगा वह अकेला था तब भी भ्रांत उद्भ्रांत आविद्ध आप्लुत विप्लुत और प्लुत इसप्रकार बत्तीस पैंतरोंको दिखाता हुआ रणभूमिमें विचरने लगा दैत्य रणके मुहाने पर खडेहुए अनिरुद्धको सहस्रों अनिरुद्धोंके रूपमें विचरते हुए देखते थे ।२१।२३। रणमें अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करते हुए अनिरुद्धको वह मुख फाड़ने वाले कालकी समान मानने लगे, तदनन्तर उससे संतप्त हुए और रुधिरसे न्हाते हुए राक्षस जहाँ बाणासुर खड़ा था वहाँ भागगये उनके हाथी घोड़े और रथ उन को लेकर चारों ओर भागने लगे ॥२४ ॥ २५॥ जिनका ओज नष्ट होगया था ऐसे राक्षस भयावना आर्तस्वर करके दिशाओंमें को भागने लगे और भयपीड़ित होनेके कारण दूसरोंपर गिरने लगे २६ वह खून ओकने पर विषादके कारण रणसे विमुख होने लगे अनिरुद्धसे युद्ध करतेहुए दानवोंको जैसा भय लगा था वैसा भय तो उन्हें देवताओंसे रण करने पर भी नहीं लगा था हाथमें गदा और शूलको धारण करने वाले पर्वतके शिखरकी

गिरिशृङ्गाभा गदाशूलासिपाणयः । ते बाणमुत्सृज्य रणे जग्मु-र्भयसमाकुलाः ॥२९॥ विशालमाकाशतलं दानवा निर्जितास्तदा निःशेषभग्नां महतीं दृष्ट्वा तां वाहिनीं तदा ॥३०॥ बाणः क्रोधात् प्रजज्वाल समिद्धोऽग्निरिवाध्वरे । अन्तरिक्षचरो भूत्वा साधुवादी समन्ततः ॥ ३१ ॥ नारदो नृत्यति प्रीतो ह्यनिरुद्धस्य संयुगे । एतस्मिन्नन्तरे चैव बाणः परपकोपनः ॥३२॥ कुम्भाण्डसंगृहीतं तु रथमास्थाय वीर्यवान् । ययौ यत्रानिरुद्धो वै उद्यतासी रथे स्थितः ॥ ३३ ॥ पट्टिशासिगदाशूलमुद्यम्य च परश्वधान् । बभौ बाहुसहस्रेण शक्रो ध्वजशतैरिव ॥ ३४ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्रैश्च बाहुभिः स महाभुजः । नानाप्रहरणोपेतः शुशुभे दानवोत्तमः ३५ सिंहनादं नदन् क्रुद्धो विस्फारितमहाधनुः । अब्रवीत्तिष्ठ तिष्ठेति

समान आभा वाले दानव रक्त ओकर भूमिमें गिरने लगे, भयसे घबड़ाए हुए और हारे हुए दानव रणमें बाणासुरको (अकेला) छोड़कर बड़ेभारी आकाशतलमेंको भागगये, बड़ीभारी सेनाको पूर्णरीतिसे भग्नहुई देख,बाणासुर यज्ञमें प्रदीप्तहुए अग्निकी समान क्रोधसे जलनेलगा। अनिरुद्धके-रणके समय नारदजी आकाशमें घूमकर प्रसन्न हो साधु२ कहकर नाचनेलगे,इसी समय बड़ेभारी क्रोधमें भराहुआ वीर्यवान् बाणासुर कुंभाडके पकड़ेहुए रथमें बैठ गया और जहाँ पर तलवार उठा कर अनिरुद्ध खड़ा था तहाँ परा रथमें बैठ कर चला ॥२७-३३॥ पट्टिश तलवार गदा और शूल तथा परशुओं को उठाकर बाणासुर चल रहा था उस समय सैंकड़ों ध्वजाओंसे शोभापाने वाले इन्द्रकी समान सहस्रभुजाओं के कारण बाणासुर शोभा पाने लगा ॥३४॥ अनेक प्रकार के आयुधोंको धारण करने वाला दानवोत्तम महाभुज बाणासुर गोहके चमड़ेके दस्ताने वाले हाथोंसे शोभा पाने लगा ॥ ३५ ॥ उसने क्रोधमें भर कर बड़े भारी धनुषको तान कर सिंहकी समान

क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३६ ॥ वचनं तस्य संश्रुत्य प्राद्युम्निरपराजितः । बाणस्य वदनं संख्ये समुद्वीक्ष्य ततोऽहसत् ॥ ३७ ॥ किंकिणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् । ऋष्यचर्मावनद्धाङ्गं दशनल्व महारथम् ॥ ३८ ॥ तस्य वाजिसहस्रं तु रथे युक्तं महात्मनः । पुरा देवासुरे युद्धे हिरण्यकशिपोरिव ॥ ३९ ॥ तमापतन्तं ददृशे दानवं यदुपुंगवः । संप्रहृष्टस्ततो युद्धे तेजसा चाप्यपूर्यत ॥ असिचर्मधरो वीरः स्वस्थः संग्रामलालसः । नरसिंहो यथा पूर्वमादिदैत्यवधोद्यतः ॥ ४१ ॥ आपतन्तं ददर्शाथ खड्गचर्मधरं तदा खड्गचर्मधरं तं तु दृष्ट्वा बाणः पदातिनम् ॥ ४२ ॥ महर्षमतुलं लेभे प्राद्युम्निवधकाङ्क्षया । तनुत्रेण विहीनश्च खड्पाणिश्च

गर्जना की, फिर उसने अपने नेत्रोंको क्रोधसे लाल लाल करके कहा, कि-खड़ा रह ! खड़ा रह !! ॥ ३६ ॥ अपराजित अनिरुद्ध ने उसके वचनको सुन कर युद्धमें उसके मुखकी ओर देखा तो हँसने लगे ॥ ३७ ॥ पहिले देवासुर युद्धमें हिरण्यकशिपुके रथ की समान उसका रथ सैकड़ों घूघरुओंसे झनकार रहा था और उस पर रक्तवर्णकी झण्डी वाली ध्वजा लग रही थी. ऋष्य (नीले रंगके बाराह मृग-नीले बारह-सिंगे) के चमड़ेसे वह रथ मढ़ रहा था और वह महारथ दश नल्वका था महात्मा बाणासुरके ऐसे रथमें सहस्र घोड़े जुत रहे थे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यदुपुङ्गव अनिरुद्ध उसको युद्धमें आते हुए देख कर प्रसन्न होने लगे और तेजमें भर गए ॥ ४० ॥ ढाल तलवार धारण करने वाले और संग्रामकी लालसा वाले स्वस्थ अनिरुद्ध आदिदैत्य (हिरण्यकशिपु) का वध करनेको उद्यत नरसिंहकी समान उसका वध करनेके लिए उद्यत होगए ॥ ४१ ॥ बाणासुरने उस ढाल तलवार धारीको आता हुआ देखा, बाणासुर अनिरुद्धको पैदल ही ढाल तलवार धारण कर खड़ा हुआ देख परम प्रसन्न हुआ, जीतने

यादवः ॥ ४३ ॥ अजेय इति तं मत्वा युद्धाय विमुखः स्थितः ।
अनिरुद्धं रणे बाणो जितकाशी महाबलः ॥४४॥ वाचं चोवाच
संक्रुद्धो गृह्यतां हन्यतामिति । वाचं च तु ततस्तस्य श्रुत्वा सायु-
स्मितराहवे ॥ ४५ ॥ बाणस्य तु ततः क्रोधाद्धसमानोऽभ्युदैक्षत ।
उषां भयपरित्रस्तां रुदतीं तत्र भामिनीम् ॥ ४६ ॥ अनिरुद्धः
महस्याथ समाश्वास्य च तां स्थितः । अथ बाणः शरौघाणां
क्षुद्रकाणां समन्ततः ॥ ४७ ॥ चिक्षेप समरे क्रुद्धो ह्यनिरुद्धवधे-
प्सया । अनिरुद्धस्तु चिच्छेद कान्तांस्तस्य पराजयम् ॥४८॥ ववर्ष
शरजालानि क्षुद्रकाणां समन्ततः । बाणोऽनिरुद्धशिरसि काशी-
स्तस्य रणे वधम् ॥ ४९ ॥ ततो बाणसहस्राणि चर्मणा व्यव-
धूय सः । बभौ प्रमुखतस्तस्य स्थितः सूर्य इवोदये ॥ १५० ॥

से दमकने वाला महाबली बाणासुर, यादव कवच रहित और ढालतलवार धारण कररहा था अतः उसे, अजेय मान कर युद्ध करनेके लिए उसके सामने खड़ा होगया ॥ ४२–४४ ॥ और क्रोधमें भर कर कहने लगा, कि–इसको पकड़ लो ! मार डालो !! युद्धमें इस प्रकार कहने वाले बाणासुरकी बातको सुन कर अनि-रुद्ध हँस कर उसकी ओर क्रोधपूर्वक देखने लगे, भयसे त्रस्त हुई रोती हुई भामिनी ऊषाको अनिरुद्ध हँस २ कर ढाढ़स देने के बाद तहाँ आकर खड़े हुए थे उस समय समरमें क्रोधमें भरा हुआ बाणासुर अनिरुद्धको मारनेकी इच्छासे उस पर चारों ओर से क्षुद्रक नामवाले बाणोंकी वर्षा करनेलगा, तब अनिरुद्धने उस के पराजयकी इच्छा कर उसके बाणोंको काट डाला ४५–४८ बाणासुर अनिरुद्धका वध करना चाहता था अतः उसने अनि-रुद्धके शिर पर क्षुद्रक बाणोंकी बौछार कर डाली ॥ ४९ ॥ उन सहस्रों बाणोंको प्रद्युम्नपुत्रने अपनी ढाल पर रोक लिया बाणा-सुरके सामने खड़ाहुआ प्रद्युम्नपुत्र उस समय उदयकालके सूर्यकी

सोऽभिभूय रणे बाणमास्थितो यदुनन्दनः । सिंहमुत्तो दृष्ट्वा गजमेकं यथा वने ॥ ५१ ॥ ततो बाणः स बाणौघैर्मर्मभेदिभिराशुगैः । विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः प्राद्युम्निमपराजितम् ॥५२॥ समाहतस्ततो बाणैः खड्गचर्मधरोऽपतत् । तमापतन्तं निशितैरभ्यघ्नन् सायकैस्तथा ॥५३॥ सोऽतिविद्धो महाबाहुर्बाणैः सन्नतपर्वभिः । क्रोधेनाभिप्रजज्वाल चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ॥ ५४ ॥ रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैर्बाणवर्षैः समाहितः । अभिभूतः सुसंक्रुद्धो ययौ बाणरथं प्रति ॥५५॥ असिभिर्मुशलैः शूलैः पट्टिशैस्तोमरैस्तथा । सोऽतिविद्धः शरौघैश्च प्राद्युम्निर्न व्यकम्पत ॥५६॥ आप्लुत्य सहसा क्रुद्धो रथेषां तस्य सोऽच्छिनत् । जघान चाश्वान् खड्गेन

समान दीखता था ॥ ५० ॥ यदुनन्दन रणमें बाणासुरका तिरस्कार कर इस प्रकार खड़े हो गए, जिस प्रकार वनमें सिंहके सामने हाथी खड़ा हो ॥५१॥ उस समय बाणासुर अपराजित अनिरुद्धको मर्मभेदी तीक्ष्ण बाणोंसे बींधने लगा ॥५२॥ बाणों से पिटने पर अनिरुद्ध ढाल और तलवारको लेकर उसके सामने को दौड़ा तब बाणासुर आते हुए अनिरुद्धको बाणोंसे मारने लगा ॥ ५३ ॥ नमी हुई गाँठों वाले बाणोंसे बहुत ही घायल हुआ महाभुज अनिरुद्ध दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे क्रोधके कारण तमतमा उठा ॥ ५४ ॥ रुधिरसे भीगे हुए अंगों वाला और जिसके बाण गुथ रहे थे ऐसा अनिरुद्ध तिरस्कार पाने पर बाणासुरके रथकी ओर घुसा ही चला गया ॥ ५५ ॥ उस समय प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध तलवार मूसल शूल पटे तोमर और बाणोंके समूहसे बहुत घायल हो जाने पर भी नहीं काँपा ॥ ५६ ॥ क्रोधमें भरे हुए अनिरुद्धने कूद कर बाणासुरके रथकी ईषाको काट डाला और रणके मुहाने पर खड़े हुए बाणासुरके घोड़ोंको तलवारसे मार डाला ॥ ५७ ॥ उस समय युद्ध करनेमें चतुर

बाणस्य रणमूर्धनि ॥५७॥ तं पुनः शरवर्षेण पट्टिशैस्तोमरैरपि ।
च्छादयामास संक्रुद्धो बाणो युद्धविशारदः ॥५८॥ हतोऽयमिति विज्ञाय
प्रणेदुर्दानवा गणाः । ततोऽवप्लुत्य सहसा रथपार्श्वे व्यव-
स्थितः ॥५९॥ शक्तिं बाणस्ततः क्रुद्धो घोररूपां भयानकाम् ।
जग्राह ज्वलितां घोरां घण्टामालाकुलां रणे ॥१६०॥ ज्वलना-
दित्यसंकाशां यमदण्डोग्रदर्शनाम् । मुमोचासङ्गेन महोल्कां
ज्वलितामिव ॥६१॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य जीवितान्तकरीं तदा ।
सोऽभिप्लुत्य तदा शक्तिं जग्राह पुरुषोत्तमः ॥ ६२ ॥ निर्बिभेद
तयाबाणं महाशक्त्या महाबलः । साभित्त्वा तस्य देहं वै प्रावि-
शद्धरणीतलम् ६३ स गाढविद्धो व्यथितो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ।
ततो मूर्च्छाभिभूतं तं कुम्भाण्डो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ उपेक्षसे

बाणासुरने बाण पट्टिश और तोमरोंकी वर्षा करके अनिरुद्धको
फिर छुपा दिया ॥ ५८ ॥ उस समय प्रद्युम्नपुत्रको मरा हुआ
जानकर राक्षस गर्जना करने लगे तब तो अनिरुद्ध एक साथ
उछल कर रथके पास खड़े होगए ॥ ५९ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे
हुए बाणासुरने घूँघुरुओंसे मढी हुई भयंकर रूपवाली प्रज्वलित
शक्तिको उठालिया ॥ ६० ॥ (उषाके सम्बन्धके कारण इसका
वध करने पर मेरी पुत्री विधवा होजावेगी इसका भी विचार न
करके) असंग भावसे प्रदीप्त सूर्यकी समान, यमदण्डकी समान
भयावनी और प्रज्वलित उल्काकी समान वह शक्ति उसने
छोड़ी । ६१ ॥ जीवनका नाश करनेवाली उस शक्तिको आती
हुई देख कर पुरुषोत्तम अनिरुद्धने उछलकर उस शक्तिको पकड़
लिया ॥ ६२ ॥ फिर महाबली अनिरुद्धने उस ही शक्तिसे बाणा-
सुरको भेद डाला, वह शक्ति उसको भेदकर पृथ्वीमें घुसगई ६३
जोरसे बिंधनेसे व्यथाके कारण बाणासुर ध्वजाकी लकड़ीके
सहारे बैठ गया उस समय मूर्छा पाते हुए बाणासुरसे कुम्भाण्ड

दानवेन्द्र त्रिमेवं शत्रुमुद्यतम् । लब्धलक्षो ह्ययं वीरो निर्विकारोद्य दृश्यते ॥६५॥ मायामाश्रित्य युध्यस्व नायं वध्योऽन्यथा भवेत् । आत्मानं मां च रक्षस्व प्रमादात् किमुपेक्षसे ॥ ६६ ॥ वध्यतामयमद्यैव न नः सर्वान् विनाशयेत् । अन्यांश्च शतशो हत्वा उषां नीत्वा व्रजिष्यति ॥ ६७ ॥ कुम्भाण्डवचनैरेवं दानवेन्द्रः प्रणोदितः । वाचं रूक्षामभिक्रुद्धः प्रोवाच वदतां वरः ॥६८॥ एषोऽहमस्य विदधे मृत्युं प्राणहरं रणे । आदास्याम्यहमेतं वै गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६९ ॥ इत्येवमुक्त्वा सरथः सध्वजः साश्वसारथिः । गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१७०॥ मुमोच निशितान् बाणान् छन्नो मायाधरो बली । विज्ञायान्तर्हितं बाणं

ने यह बात कही, कि-॥६४॥ हे दानवेन्द्र ! इस उद्यत हुए शत्रु की तुम उपेक्षा क्यों कर रहे हो लक्ष्यको पाने पर यह वीर इस समय निर्विकार दीखरहा है ॥६५॥ अब आप मायाका आश्रय लेकर इसके साथ युद्ध करिये वैसे यह नहीं मारा जासकेगा, अपनी और मेरीभी रक्षा करिये प्रमादवश आप उपेक्षा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ इसको आप अभी मार डालिये नहीं तो यह हम सबोंको अभी नष्ट करडालेगा और दूसरे भी सैंकड़ों वीरोंको मारकर ऊषाको लेकर चलाजावेगा ६७ कुम्भाण्डके वचनोंसे इस प्रकार प्रेरित हुआ वक्ताओंमें श्रेष्ठ दानवेन्द्र क्रोधमें भरकर रूखी वाणियें कहने लगा ६८ लो रणमें मैं इसकी मृत्यु किये देता हूँ और इसके प्राणोंको हरे लेता हूँ, जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है तैसे ही मैं इसको समाप्त किये देता हूँ ६९ इस प्रकार कहकर रथ ध्वजा और सारथीसहित बाणासुर गन्धर्वनगरकी समान तहाँ ही अन्तर्धान होगया १७० मायाधारी बलवान् बाणासुर अन्तर्धान होकर तेज बाणोंको छोड़ने लगा अपराजित अनिरुद्ध बाणासुरको अन्तर्धान हुआ जानकर ७१ पुरुषार्थसे युक्त होकर

प्राद्युम्निरपराजितः ॥ ७१ ॥ पौरुषेण समायुक्तः संप्रैक्षत दिशो दश । आस्थाय तामसीं विद्यां तदा क्रुद्धो महाबलः ॥ ७२ ॥ मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णाञ्छन्नो मायाधरो बली । प्राद्युम्निर्विशिखैर्बद्धः सर्पभूतैः समन्ततः ॥ ७३ ॥ वेष्टितो बहुधा तस्य देहः पन्नगराशिभिः । स तु वेष्टितसर्वाङ्गो बद्धः प्राद्युम्निराहवे ॥७४॥ निष्प्रयत्नः कृतस्तस्थौ मैनाक इव पर्वतः । ज्वालावलीढवदनैः सर्पभोगैर्विचेष्टितः ॥ ७५ ॥ अभितः पर्वताकारः प्राद्युम्निरभवद्रणे । निष्प्रयत्नगतिश्चापि सर्पवक्त्रमयैः शरैः ॥७६॥ न विव्यथे स भूतात्मा सर्वतः परिवेष्टितः । ततस्तं वाग्भिरुग्राभिः संरब्धः समतर्जयत् ॥७७॥ बाणो ध्वजं समाश्रित्य मोवाचामर्पितो वचः । कुम्भाण्ड वध्यतां शीघ्रमयं वै कुलपांसनः ॥ ७८ ॥ चारित्रं येन मे लोके दूषितं दूषितात्मना । इत्येवमुक्ते वचने कुम्भाण्डो वाक्य-

---

दशों दिशाओंको देखने लगा उधर क्रोधमें भरा हुआ मायाधारी बलवान् दानव तामसी मायाका आश्रय लेकर तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ने लगा, उस समय अनिरुद्ध सर्पबाणोंसे चारों ओरसे बँध गया ७२-७३ उसका देह सर्पराशियोंसे जकड़ गया और सारे अंगके घिर जाने पर प्रद्युम्नपुत्र युद्धमें बन्दी होगया ॥ ७४ ॥ लपलपाती हुई जीभवाले सर्पोंके शरीरोंसे चेष्टारहित हुआ अनिरुद्ध मैनाकपर्वतकी समान निष्प्रयत्न ही खड़ा रह गया ७५ चारों ओरसे घिरा हुआ अनिरुद्ध रणमें पर्वतकी समान दीखने लगा सर्पके मुख वाले बाणोंसे चारों ओरसे घिरने पर प्रयत्न और गतिरहित हुआ भूतात्मा अनिरुद्ध व्यथित नहीं हुआ तदनन्तर क्रोधमें भराहुआ बाणासुर उग्रवाणियोंसे उसे धमकाने लगा ।७६॥७७॥ तदनन्तर बाणासुरने ध्वजाका आश्रय लेकर अमर्प भरा हुआ वचन कहा; कि-इस दूषित आत्माने संसार में मेरे चरित्रको दूषित कर दिया है अतः हे कुम्भाण्ड ! इस

मब्रवीत् ॥७९॥ राजन् वक्ष्याम्यहं किञ्चित्तन्मे शृणु यदीच्छसि । अयं विज्ञायतां कस्य कुतो वायमिहागतः ॥ १८० ॥ केन वायमिहानीतः शक्रतुल्यपराक्रमः । मयायं बहुशो राजन् दृष्टो युध्यन् महारणे ॥ ८१ ॥ क्रीडन्निव च युद्धेषु दृश्यते देवसूनुवत् । बलवान्सत्वसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ८२ ॥ नायं वधकृतं दोषमर्हते दैत्यसत्तम । गान्धर्वेण विवाहेन कन्येयं तव संगता ८३ अदेया ह्यप्रतिग्राह्या अतश्चिन्त्य वधं कुरु । विज्ञाय च वधं वास्य पूजां चास्य करिष्यसि ॥ ८४ ॥ वधे ह्यस्य महान् दोषो रक्षणे सुमहान् गुणः । अयं हि पुरुषोत्कृष्टः सर्वथा मानमर्हति ॥८५॥

कुलपांसनको शीघ्र ही मार डालो इसप्रकार आज्ञा देने पर कुम्भाण्डने यह वचन कहा, कि-॥ ७८ ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! मैं कुछ बात कहता हूँ यदि आप सुनना चाहें तो सुनिये, (पहले) इस बातको जानना चाहिये, कि-यह किसका पुत्र है और कहाँ से यहाँ आया है ॥ १८० ॥ और इस इन्द्रकी समान पराक्रमी को यहाँ पर कौन लाया है, हे राजन् ! जब यह महारणमें रण कर रहा था तब मैंने इसको बहुत देखा था ॥ ८१ ॥ यह रणों में देवपुत्रकी समान क्रीड़ा करता हुआ दीखता था, यह बलवान् है सत्त्वसम्पन्न है, और सर्वशास्त्रविशारद है ॥ ८२ ॥ हे दैत्यसत्तम ! इसलिए यह प्राणान्त दण्डका पात्र नहीं है और गांधर्व विवाहके द्वारा तुम्हारी कन्याने भी इसे वर लिया है ॥८३॥ इसलिये न उसे और किसीको दिया जासकता है न आप ग्रहण कर सकते हैं इस लिये विचार करके इसका वध करिये इसके वधकी बातका विचार करके आपको इसकी पूजा करनी पड़ेगी ॥ ८४ ॥ इसके वध करनेमें बड़ा भारी दोष है और इसकी रक्षा करनेमें बड़ाभारी गुण है यह पुरुषर्षभ सर्वदा मानका ही पात्र है ॥ ८५ ॥ कुल चतुरता, वीर्य और सत्त्वसे

सर्वतो वेष्टिततनुर्न व्यथत्येष भोगिभिः । कुलशौण्डीर्यवीर्यैश्च सत्त्वेन च समन्वितः ॥ ८६ ॥ पश्य राजन् महावीर्यरन्वितः पुरुषोत्तमः । न नो गणयते सर्वान् वधं प्राप्तोप्ययं बली ॥८७॥ यदि मायाप्रभावेण नात्र बद्धो भवेदयम् । सर्वान् सुरगणान् संख्ये योधयेन्नात्र संशयः ॥ ८८ ॥ सर्वसंग्राममार्गज्ञो भवेद्वीर्याधिकस्तव । शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नागभोगैश्च वेष्टितः ॥ ८९ ॥ विशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा न चिन्तयति नः स्थितान् । इमामवस्थां नीतोऽपि स्वबाहुबलमाश्रितः ॥ १९० ॥ न चिन्तयति राजंस्त्वां वीर्यवान् कोऽप्यसौ युवा । सहस्रबाहोः समरे द्विबाहुः समवस्थितः न चिन्तयति ते वीर्यमयं वीर्यमदान्वितः ॥ ९१ ॥ उचितं यदि

सम्पन्न यह पुरुष सर्पोंसे चारों ओरसे शरीरके घिरने पर भी व्यथित नहीं होरहा है ८६ हे राजन् ! देखिये ! यह महावीर्यवान् सर्पोंसे लिपटा हुआ बलवान् पुरुषोत्तम वधका अवसर आने पर भी हम सबोंको कुछ नहीं गिन रहा है ८७ यदि यह मायाके प्रभावसे नहीं बाँधता तो सब देवताओंको भी रणमें लड़ासकता था इसमें कुछ सन्देह नहीं है ८८ यह तुमसे वीर्यमें अधिक होगा और संग्रामकी सारी रीतियोंको जाननेवाला होगा क्योंकि इसके अंग रक्तकी धारसे सन रहे हैं और यह सर्पके शरीरोंसे लिपटा हुआ है ८९ इसकी ऐसी अवस्था करडाली गई है तब भी यह अपने भुजबलका आश्रय लेनेवाला अपनी भ्रुकुटीको टेढ़ी करके हम सब खड़ेहुए व्यक्तियोंको कुछ भी नहीं गिन रहा है९० हे राजन् ! यह आपकी कुछ भी पर्वाह नहीं करता न जाने यह वीर्यवान् युवा कौन है यह दो भुजावाला समरमें आप सहस्र भुजावालेके सामने खड़ा हुआ है तब भी यह वीर्यमदयुक्त पुरुष आपके वीर्यकी पर्वाह नहीं कर रहा है ९१ हे राजन् ! उचित तो यह है आप इस वीर्य और बलसे युक्त पुरुषका पता लगावें, आपकी

ते राजन् ज्ञेयो वीर्यबलान्वितः। कन्या चेयं न चान्यस्य निर्यास्येतेन सङ्गता ॥९२॥ यदि चेष्टतमः कश्चिदयं वंशे महात्मनाम्। ततः पूजामयं वीरः प्राप्स्यते चासुरोत्तमः ॥ ९३ ॥ रक्ष्यतामिति चोक्त्वैव तथास्त्विति च तस्थिवान्। एवमुक्ते तु वचने कुम्भाण्डेन महात्मना ॥ ९४ ॥ तथेत्याह च कुम्भाण्डं बाणः शत्रुनिषूदनः। संरक्षिणस्ततो दत्त्वा अनिरुद्धस्य धीमतः ॥९५॥ ययौ स्वमेव भवनं बलेः पुत्रो महायशाः। संयतं मायया दृष्ट्वा अनिरुद्धं महाबलम् ॥९६॥ ऋषीणां नारदः श्रेष्ठोऽब्रजद्द्वारवतीं प्रति। ततो ह्याकाशमार्गेण मुनिर्द्वारवतीं गतः ॥ ९७ ॥ गते ऋषीणां प्रवरे सोऽनिरुद्धो व्यचिन्तयत्। नष्टोऽयं दानवः क्रूरो युद्धमेष्यत्यसंशयः ॥ ९८ ॥ स गत्वा नारदस्तत्र शंखचक्रगदाधरम्।

कन्या इससे मिल गई है अतः वह दूसरेके साथ नहीं जावेगी ॥ ९२ ॥ यदि यह हमारे चाहे हुए महात्माओंके वंशमें होगा तो यह असुरोत्तम वीर पूजाको पावेगा अर्थात् इसकी पूजा की जासकेगी ९३ महात्मा कुम्भाण्डके इस प्रकार बातचीत करने पर बाणासुर इसकी "रक्षा करो" यह कह कर और "तथास्तु" कह कर खड़ा होगया ९४ तदनन्तर शत्रुनिषूदन बाणासुरने कुम्भाण्डसे कहा, कि-बहुत अच्छा तदनन्तर बुद्धिमान् अनिरुद्धको सिपाहियोंके हवाले करके ९५ बलीका महायशस्वी पुत्र अपने भवनको चला गया, महाबली अनिरुद्धको मायासे बँधा हुआ देख कर ऋषियोंमें श्रेष्ठ मुनि नारदजी आकाशमार्गसे द्वारकाको चल दिये ९६-९७ ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारदजीके चले जाने पर प्रद्युम्नपुत्रने विचारा, कि-अब वह क्रूर दानव नष्ट ही होजायगा (क्योंकि यह श्रीकृष्णके साथ) युद्ध ही करेगा ९८ नारदजी तहाँ जाकर शंख चक्र और गदाको धारण करनेवाले कृष्णसे इस बातको कहेंगे इस बातमें कुछ सन्देह नहीं है ।९९।

ज्ञापयिष्यति तत्त्वेन इममर्थं न संशयः ॥ ९९ ॥ नागैर्विचेष्टितं दृष्ट्वा उषा प्राद्युम्निमातुरा । रुरोद बाष्परुद्धाक्षी तामाह रुदतीं पुनः ॥२००॥ किमिदं रुद्यते भीरु मा भैस्त्वं मृगलोचने । पश्य सुश्रोणि संप्राप्तं मत्कृते मधुसूदनम् ॥ २०१ ॥ यस्य शंखध्वनिं श्रुत्वा बाहुशब्दं बलस्य च । दानवा नाशमेष्यन्ति गर्भाश्चासुरयोषिताम् ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्ताऽनिरुद्धेण उषा विश्रम्भमागता । नृशंसं पितरं चैव शोचते सा सुमध्यमा ।२०३।

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि बाणाऽनिरुद्धयुद्धे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

वैशम्पायन उवाच । यदा बाणपुरे वीरः सोऽनिरुद्धः सहोषया । संनिरुद्धो नरेन्द्रेण बाणेन बलिसूनुना ॥ १ ॥ तदा देवीं कोटवतीं रक्षार्थं शरणं गतः । गृहीतमनिरुद्धेन देव्याः स्तोत्रमिदं

ऊषा नागोंसे लिपटे हुए आतुर अनिरुद्धको देखकर रोने लगी उसके नेत्र आँसुओंसे भर गए फिर अनिरुद्धने उस रोती हुईसे कहा, कि-॥ २०० ॥ तू क्यों रो रही है, हे डरपोक ! हे मृगलोचने ! तू डर मत! हे सुश्रोणि ! तू मेरे लिए मधुसूदनको आया हुआ देखेगी ॥ २०१ ॥ कि—जिनके शंखकी ध्वनिको सुन कर तथा भुजाओंके शब्दको सुन कर दानव नष्ट होजाएँगे और असुरों की स्त्रियोंके गर्भ भी गिर जावेंगे ।२०२। वैशम्पायनजीने कहा, कि—अनिरुद्धके इस प्रकार कहने पर ऊषाको कुछ विश्वास हुआ तदनन्तर वह सुमध्यमा अपने पिताके लिए शोक करनेलगी २०३

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—बलीके पुत्र राजा बाणने जब बाणपुरमें ऊषाके साथ अनिरुद्धको कैद करलिया ॥ १ ॥ उस समय अनिरुद्धने कोटवती देवीकी रक्षा करनेके लिए शरण ली, उस समय अनिरुद्धने देवीका जो स्तोत्र सुना था उसको सुनो

शृणु ॥ २ ॥ अनन्तमक्षयं दिव्यमादिदेवं सनातनम् । नारायणं नमस्कृत्य प्रवरं जगतां प्रभुम् ॥३॥ चण्डीं कात्यायनीं देवीमार्यां लोकनमस्कृताम् । वरदां कीर्तयिष्यामि नामभिर्हरिसंस्तुतैः ॥४॥ ऋषिभिर्दैवतैश्चैव वाक्पुष्पैरर्चितां शुभाम् । तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ ५ ॥ अनिरुद्ध उवाच । महेन्द्रविष्णुभगिनि नमस्यामि हिताय वै । मनसा भावशुद्धेन शुचिः स्तोष्ये कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥ गौतमीं कंसभयदां यशोदानन्दवर्धिनीम् । मेध्यां गोकुलसम्भूतां नन्दगोपस्य नन्दिनीम् ॥ ७ ॥ प्रज्ञां दक्षां शिवां सौम्यां दनुपुत्रविमर्दिनीम् । तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वभूतनमस्कृताम् ॥ ८ ॥ दर्शनीं पूरणीं मायां वह्निसूर्यशशिप्रभाम् । शान्तिं

मैं अनन्त अक्षय दिव्य सनातन आदिदेव जगत्के प्रभु श्रेष्ठ नारायणको नमस्कार करके ॥२॥३॥ और लोकोंसे नमस्कृत आर्या-कात्यायनी वर देनेवाली देवीके ऋषि देवता और विष्णुने जिन नामोंसे स्तुति की थी उन नामोंका कीर्तन करता हूँ मैं सबके देहमें स्थित सब देवताओंसे नमस्कृत वाणीरूपी पुष्पोंसे पूजित शुभ देवीको (प्रणाम करके उसके नामोंका कीर्तन करता हूँ) अनिरुद्धने कहा, कि-हे महेन्द्र और विष्णुकी बहिन ! मैं हितके लिए तुमको प्रणाम करता हूँ और जिसका भाव शुद्ध है ऐसे मनसे पवित्र होकर हाथ जोड़ कर तुम्हारी स्तुति करता हूँ ४-६ गौतमी, कंसको भय देनेवाली, यशोदाके आनन्दको बढ़ानेवाली, पवित्र, गोकुलमें उत्पन्न हुई, नन्दगोपको आनन्द देनेवाली बुद्धिमती, चतुरा, कल्याणस्वरूपा, सौम्या दनुके पुत्रोंको मसलनेवाली, सब प्राणियोंसे नमस्कृत, सबके देहमें स्थित देवीको (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥७॥८॥ दर्शनी, पूरणी, मायास्वरूपा, सूर्य और चन्द्रमाकी समान प्रभावाली शान्तिरूपा, निश्चला, जननी, मोहमें डालने वाली और सुखाने वाली, ऋषि और देवताओंसे सेव-

ध्रुवो च जननीं मोहनीं शोषणीं तथा ॥ ६ ॥ सैव्यां देवैः सर्षिगणैः सर्वदेवनमस्कृताम् । कालीं कात्यायनीं देवीं भयदां भयनाशिनीम् ॥१०॥ कालरात्रिं कामगमां त्रिनेत्रां ब्रह्मचारिणीम् । सौदामिनीं मेघरवां वेतालीं विपुलाननाम् ॥ ११ ॥ यूथस्याद्यां महाभागां शकुनीं रेवतीं तथा । तिथीनां पञ्चमीं षष्ठीं पूर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥१२॥ सप्तविंशति ऋक्षाणि नद्यः सर्वा दिशो दश । नगरोपवनोद्यानद्वाराट्टालकवासिनीम् ॥ १३ ॥ ह्रीं श्रीं गङ्गां च गन्धर्वी योगिनीं योगदां सताम् । कीर्तिमाशां दिशं स्पर्शां नमस्यामि सरस्वतीम् ॥ १४ ॥ वेदानां मातरं चैव सावित्रीं भक्तवत्सलाम् । तपस्विनीं शान्तिकरीमेकानंशां सनातनीम् ॥१५॥ कौटीर्यां मदिरां चण्डामिलां मलयवासिनीम् । भूतधात्रीं भयकरीं

नीय, सब देवताओंसे नमस्कृत भयका नाश करने वाली और भय देने वाली देवी काली कात्यायनी, कालरात्रि, इच्छानुसार चलने वाली; तीन नेत्र वाली, ब्रह्मचारिणी, सौदामनी, मेघकी समान शब्द करनेवाली, वेताली और बड़े मुख वाली (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) ९–११ झुंडमें पहली, महाभागा, शकुनी रेवती, और तिथियोंमें पंचमी षष्ठी; पूर्णमासी, और चतुर्दशी (स्वरूपा देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) ॥१२॥ सत्ताईस नक्षत्र, सब नदियें, दशों, दिशाएँ (इनके स्वरूपवाली,) नगर, उपवन, उद्यान, द्वार और अट्टालिकाओंमें रहनेवाली, (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) श्री, गंगा गंधर्वा, योगनी और सज्जनोंको योग देनेवाली कीर्ति, आशा, दिशा, स्पर्शस्वरूपाको (मैं प्रणाम करता हूँ १४ वेदोंकी माता सावित्री भक्तवत्सला, तपस्विनी, शान्ति देनेवाली, सनातनी पूर्णा (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) १५ कुटीर में रहने वाली, मदिरा, चण्डा, और इला स्वरूपा मलय पर्वतमें रहने वाली, भूतोंको धारण करनेवाली भय देनेवाली, कूष्मांडी,

कूष्माण्डीं कुसुमप्रियाम् ॥ १६ ॥ दारुणीं मदिरावासां विन्ध्य-
कैलासवासिनीम् । वराङ्गनां सिंहरथीं बहुरूपां वृषध्वजाम् ।१७।
दुर्लभां दुर्जयां दुर्गां निशुम्भभयदर्शिनीम् । सुरप्रियां सुरां देवीं
वज्रपाण्यनुजां शिवाम् १८ किरातीं चीरवसनां चौरसेनानमस्कृ-
ताम् । आज्यपां सोमपां सोम्यां सर्वपर्वतवासिनीम् ।१९। निशुंभ-
शुम्भमथनीं गजकुम्भोपमस्तनीम् । जननीं सिद्धसेनस्य सिद्धचा-
रणसेविताम् ॥ २० ॥ चरां कुमारप्रभवां पार्वतीं पर्वतात्मजाम् ।
पञ्चाशद्देवकन्यानां पत्न्यो देवगणस्य च ॥२१॥ कद्रुपुत्रसहस्रस्य

और कुसुमोंको प्रिय समझने वाली (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ दारुणी, मदिरावासा, विंध्य और कैलासपर्वतमें रहनेवाली, सिंहोंके रथवाली, बहुतसे रूपोंवाली वृषभकी ध्वजा धारण करनेवाली, श्रेष्ठ स्त्रीको (मैं प्रणाम करता हूँ) १७ दुर्लभा, दुर्जया, दुर्गा, और निशुम्भको भय दिखाने वाली, देवताओंकी प्यारी, इन्द्रकी छोटी बहिन, कल्याणमयी, सुरा नामवाली(देवी को मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ १८ ॥ किराती, चीरवसना, और और चोरोंकी सेनासे नमस्कृत, घीका पान करने वाली, सोम का पान करनेवाली, सौम्यस्वरूपा, और सब पर्वतोंमें रहनेवाली (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ १९ ॥ निशुम्भ और शुम्भ का मथन करने वाली, हाथीके गण्डस्थलकी समान स्तनवाली, सिद्ध और चारणोंसे सेवित, सिद्धसेनकी अर्थात् कार्त्तिकेयकी माताको (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥ २० ॥ घूमनेवाली, कुमारकी उत्पत्तिस्थानीया, पार्वती, पर्वतकी पुत्री, (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) पचास देवकन्याओंके और देवताओंकी सब पत्निओंके (समीपमें रहने वाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) २१ कद्रूके सहस्र पुत्रोंके पुत्र और पौत्रोंकी जो श्रेष्ठ स्त्रियें हैं (उनके समीप में रहनेवाली) मातृपितृस्वरूपा जगत्की माननीय तथा स्वर्गमें

पुत्रपौत्रवरक्षिणः । माता पिता जगन्मान्या दिवि देवाप्सरोगणैः
ऋषिपत्नीगणानां च यक्षगन्धर्वयोषिताम् । विद्याधराणां नारीषु
साध्वीषु मनुजासु च ॥ २३ ॥ एवमेतासु नारीषु सर्वभूताश्रया
ह्यसि । नमस्कृतासि त्रैलोक्ये किंनरोद्गीतसेविते ॥२४॥ अचिंत्या
ह्यप्रमेयासि यासि सासि नमोस्तु ते । एभिर्नामभिरन्यैश्च कीर्तिता
ह्यसि गौतमि ॥२५॥ त्वत्प्रसादादविघ्नेन क्षिप्रं मुच्येय बन्धनात्
अवेक्षस्व विशालाक्षि पादौ ते शरणं व्रजे ॥ २६ ॥ सर्वेषामेव
बन्धानां मोक्षणं कर्तुमर्हसि । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्याग्नि-
मारुताः ॥ २७ ॥ अश्विनौ वसवश्चैव धाता भूमिर्दशो दश ।
मरुता सह पर्जन्यो धाता भूमिर्दशो दश ॥ २८ ॥ गावो नक्षत्र-
वंशाश्च ग्रहा नद्यो ह्रदास्तथा । सरितः सागराश्चैव नानाविद्या-
धरोरगाः ॥२९॥ तथा नागाः सुपर्वाणो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।

रहनेवाले देवता और अप्सराओंकी मान्या (देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) २२ ऋषिपत्नियोंके और यक्ष तथा गन्धर्वोंकी स्त्रियों के (समीपमें रहनेवाली देवीको मैं प्रणाम करता हूँ) विद्याधरोंकी नारियोंमें और साध्वी मानुषियोंमें इसप्रकार सब नरनारियोंमें आप (वर्तमान रहती हैं) आप सब भूतोंकी आश्रय हैं किन्नरों के गीतोंसे सेवित त्रिलोकीमें आपको प्रणाम कियाजाता है२३ २४ आप अप्रमेय हैं अचिन्त्य हैं, आप जो हो आपको प्रणाम है, हे गौतमि ! इन नामोंसे तथा दूसरे नामोंसे भी आपकी स्तुति की गई है ॥ २५ ॥ आपके प्रसादसे मैं शीघ्र ही बन्धनसे छूट जाऊँ, हे विशालाक्षि ! तुम मेरी ओर देखो; मैं तुम्हारे चरणों को पकड़ कर तुम्हारी शरण लेता हूँ ॥ २६ ॥ आप मेरे सब बंधनोंको छुड़वा दीजिये, देवीके नामोंका कीर्तन करनेसे मैंने ब्रह्मा विष्णु रुद्र चन्द्रमा सूर्य अग्नि पवन अश्विनीकुमार वसु धाता भूमि दशों दिशायें, मरुतोंसहित पर्जन्य, धाता, भूमि गौ नक्षत्र

कृत्स्नं जगदिदं प्रोक्तं देव्या नामानुकीर्तनात् ॥३०॥ देव्यास्तव-मिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः । सा तस्मै सप्तमे मासि वरमग्र्यं प्रयच्छति ॥ ३१ ॥ अष्टादशभुजा देवी दिव्याभरणभूषिता । हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषणा ।३२। कात्यायनी स्तूयसे त्वं वरमग्र्यं प्रयच्छसि । अतः स्तवीमि त्वां देवीं वरदे वामलोचने नमोऽस्तु ते महादेवि सुप्रीता मे सदा भव । प्रयच्छ त्वं वरं ह्यायुः पुष्टिं चैव क्षमां धृतिम् ॥ ३४ ॥ बन्धनस्थो विमुच्येयं सत्यमे-तद्ब्रवेदिति । वैशम्पायन उवाच । एवं स्तुता महादेवी दुर्गा दुर्ग-पराक्रमा ॥ ३५ ॥ सांनिध्यं कल्पयामास अनिरुद्धस्य बन्धने । अनिरुद्धहितार्थाय देवी शरणवत्सला ॥ ३६ ॥ बद्धं बाणपुरे

वंश ग्रह नदी सरोवर नदियें समुद्र अनेक प्रकारके विद्याधर सर्प नाग सुपर्ण गंधर्व और अप्सरायें, इस प्रकार मैंने सब जगत् कह दिया है (अर्थात् देवी ही सबका उपादान-कारण है) २६–३० जो पुरुष सावधान होकर देवीके इस स्तोत्रका पाठ करता है, तो देवी उसे सातवें मासमें श्रेष्ठ वर देती है ॥ ३१ ॥ अठारह भुजाओं वाली, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित, हारसे सुशोभित सर्वांग वाली मुकुटरूपी उज्ज्वल भूषण वाली कात्यायनी तुम स्तुति करने पर श्रेष्ठ वर दिया करती हो, इसी लिए हे वरदे ! हे वामलोचने ! इस लिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ३२–३३ हे महादेवि ! आपको प्रणाम हो, तुम मेरे ऊपर सर्वदा प्रसन्न रहो, तुम मुझे आयु पुष्टि क्षमा और धृतिका वर दो । ३४ ॥ हे देवि ! मैं बंधनमें पड़ा हुआ हूँ (मैं कातरतापूर्वक) सत्य कहता हूँ, कि मैं मुक्त होजाऊँ वैशम्पायनजीने कहा, कि–इस प्रकार स्तुति करने पर भयंकर पराक्रमवाली महादेवी दुर्गा अनिरुद्धके बन्धनके पास आगई, वह देवी शरणवत्सला थी अतः अनिरुद्धके पास आई और बाणपुरमें बँधे हुए वीर अनिरुद्धको (पीड़ासे)

वीरमनिरुद्धं व्यमोक्षयत् । सान्त्वयामास तं वीरमनिरुद्धममर्षणम् पूजयामास तां वीरः सोऽनिरुद्धः प्रतापवान् । प्रसादं दर्शयामास अनिरुद्धस्य बन्धने ॥ ३८ ॥ नागपाशेन बद्धस्य तस्योपाहृत-चेतसः । स्फोटयित्वा कराग्रेण पञ्जरं वज्रसन्निभम् ॥३९॥ रुद्धं बाणपुरे वीरं सानिरुद्धमभाषत । सान्त्वयन्ती वचो देवी प्रसादा-भिमुखी तदा ॥ ४० ॥ श्रीदेव्युवाच । चक्रायुधो मोक्षयिताऽनि-रुद्ध त्वां बन्धनादाशु सहस्व कालम् । छित्वा स बाणस्य सहस्र-बाहुं पुरीं निजां नेष्यति दैत्यसूदनः ॥ ४१ ॥ ततोऽनिरुद्धः पुनरेव देवीं तुष्टाव हृष्टः शशिकान्तवक्त्रः । अनिरुद्ध उवाच । नमोस्तु ते देवि वरप्रदे शिवे नमोस्तु ते देवि सुरारिनाशिनि ४२ नमोस्तु ते कामचरे सदाशिवे नमोस्तु ते सर्वहितैषिणि प्रिये ।

छुड़ा दिया, फिर उसने अमर्षी वीर अनिरुद्धको समझाया ३५-३७ तब प्रतापी वीर अनिरुद्धने देवीकी पूजा की, देवीने बन्धनमें पड़े हुए अनिरुद्ध पर कृपा की थी ॥ ३८ ॥ देवीने नागपाशसे बँधे हुए और ऊषाने जिसके हृदयको हर लिया था उस अनिरुद्ध के वज्रकी समान शरीर पर हाथ फेर कर बाणपुरमें बन्दी पड़े हुए अनिरुद्धसे कहा देवीने प्रसन्न मुख होकर अनिरुद्धको सम-झाते हुए कहा, कि-॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे अनिरुद्ध ! चक्रायुध श्रीकृष्ण तुम्हें शीघ्र ही बन्धन (कैद) से छुड़ावेंगे, समयकी प्रतीक्षा कर दैत्यसूदन श्रीकृष्ण बाणासुरकी सहस्र भुजाओंको काट कर तुम्हें अपनी पुरीको ले जावेंगे ४१ तदनन्तर चन्द्रमा की समान रमणीय मुखवाला अनिरुद्ध देवीकी फिर स्तुति करने लगा, अनिरुद्धने कहा, कि-हे वरदान देने वाली देवि ! आप को प्रणाम है, हे देवताओंके शत्रुओंका नाश करने वाली शिवे ! आपको प्रणाम हो ।४२। हे कामचरे ! आपको नमस्कार है, हे सदाशिवे ! हे सर्वहितैषिणि ! हे प्रिये ! आपको मेरा प्रणाम

नमोस्तु ते भयकरि विद्विषां सदा नमोस्तु ते बन्धनमोक्षकारिणि
ब्रह्माणीन्द्राणि रुद्राणि भूतभव्यभवे शिवे । त्राहि मां सर्वभी-
तिभ्यो नारायणि नमोस्तु ते ॥४४॥ नमोस्तु ते जगन्नाथे प्रिये
दान्ते महाव्रते । भक्तिप्रिये जगन्मातः शैलपुत्रि वसुन्धरे ॥ ४५ ॥
त्राहि मां त्वं विशालाक्षि नारायणि नमोऽस्तु ते । त्रायस्व सर्व-
दुःखेभ्यो दानवानां भयंकरि ॥४६ ॥ रुद्रप्रिये महाभागे भक्ता-
नामार्तिनाशिनि । नमामि शिरसा देवीं बन्धनस्थो विमोक्षितः४७
वैशम्पायन उवाच । आर्यास्तवमिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । बन्धनस्थो विमुच्येत
सत्यं व्यासवचो यथा ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि अनिरुद्धकृत-
आर्यास्तवो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

पहुँचो शत्रुओंसे द्वेष करनेवाली देवीको मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ हे बन्धनमेंसे छुड़ानेवाली ! आपको नमस्कार है ४३ हे ब्रह्माणी! हे इन्द्राणी ! हे भूत भविष्यत् वर्तमान रूप वाली ! हे शिवे ! तुम सब डरोंसे मेरी रक्षा करो, हे नारायणि ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥ ४४ ॥ हे भक्तको प्रिय समझने वाली जगत्की माता शैलपुत्री वसुन्धरे महाव्रते चतुरे ! आपको प्रणाम है ४५ हे विशालाक्षि ! तुम मेरी रक्षा करो, हे नारायणि ! आपको प्रणाम है ! हे दानवोंको भय देने वाली ! सब दुःखोंसे मेरी रक्षा करो ॥४६॥ हे रुद्रकी प्यारी महाभाग्यवती ! हे भक्तोंके दुःखों को नष्ट करनेवाली ! मैं आपको शिरसे प्रणाम करता हूँ, मैं बन्धनमें पड़ा हुआ था, आपने मुझे छुड़ा दिया है ४७ जो पुरुष समाहितचित्तसे इस आर्यास्तवका पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको जाता है, और बन्धनमें पड़ा हुआ पुरुष व्यासजीके सत्य वचनानुसार बन्धनसे छूट जाता है ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततोऽनिरुद्धस्य गृहे रुरुदुः सर्वयोषितः ।
प्रियं नाथमपश्यन्त्यः कुरर्य इव संघशः ॥ १ ॥ अहो धिग्धिगिदं
नाथनाथे कृष्णे व्यवस्थिते । अनाथा इव संत्रस्ता रुदिमो भय-
पीडिताः ॥ २ ॥ यस्येन्द्रप्रमुखा देवाः सादित्याः समरुद्गणाः ।
बाहुच्छायामुपाश्रित्य वसन्ति दिवि देवताः ॥ ३ ॥ तस्योत्पन्न-
मिदं लोके भयदस्य महाभयम् । तस्याऽनिरुद्धः पौत्रस्तु वीरः
केनापि नो हृतः ॥ ४ ॥ अहो नास्ति भयं नूनं तस्य लोके सुदु-
र्मतेः । वासुदेवस्य यः क्रोधमुत्पादयति दुःसहम् । ५॥ व्यादितास्य-
स्यस्य यो मृत्योर्दंष्ट्राग्रे परिवर्तते । स वासुदेवं समरे मोहादभ्यु-
दियाद्रिपुः ६ इदमेवं विधं कृत्वा विप्रियं यदुपुङ्गवे । कथं जीवन्
विमुच्येत साक्षादपि शचीपतिः ॥७॥ हृतनाथाः स्म शोच्याः स्म
वयं नाथं विनाकृताः । वियोगेन नाथस्य कृतान्तवशगाः कृताः

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर अनिरुद्धके घरमें तहाँ की सब स्त्रियें प्रिय नाथ अनिरुद्धको न देख कर कुररीकी समान रोने लगीं ॥ १ ॥ कि-अहो धिक्कार है, हम नाथनाथ कृष्णके होने पर भी त्रस्त तथा भयपीड़ित होकर अनाथकी समान रोरही हैं २ जिसकी भुजाओंकी छायाका आश्रय लेकर स्वर्गमें इन्द्र आदि देवता और आदित्य तथा मरुद्गण रहते हैं ॥३॥ उन भय देने वालेके ऊपर संसारमें यह महाभय आपड़ा है, कि-उनके पौत्र हमारे वीर पतिको किसीने हर लिया ४ जिस व्यक्तिने वासुदेव को दुःसह कोप दिलाया है उस दुर्मतिको क्या इस संसारमें भय नहीं लगा ॥ ५ । जो मुख फाड़े हुए कालकी डाढ़के सामने घूमता है, वह शत्रु ही मोहवश समरमें वासुदेवके सामने जायगा । ६ । यदुपुङ्गव श्रीकृष्णका ऐसा अप्रिय कार्य करके साक्षात् इन्द्र भी किसप्रकार जीवित छूट सकता है ॥ ७ ॥ हमारे स्वामीको छीन लिया गया है, स्वामीसे रहित होनेके कारण हम शोक करने

इत्येवं ता वदन्त्यश्च रुदन्त्यश्च पुनः पुनः । नेत्रजं वारि मुमुचुर-
शिवं परमाङ्गनाः ९ तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नयनानि चकाशिरे ।
सलिलेनाप्लुतानीव पंकजानि जलागमे ॥ १० ॥ तासां मराल-
पत्त्राणि राजयन्ति शुभानि च । रुधिरेणाप्लुतानीव नयनानि
चकाशिरे ॥ ११ ॥ तासां हर्म्यतलस्थानां पूर्ण आसीन्महास्वनः ।
कुररीणामिवाकाशे रुदतीनां सहस्रशः ॥ १२ ॥ तं श्रुत्वा निनदं
घोरमपूर्वं भयमागतम् । उत्पेतुः सहसा स्वेभ्यो गृहेभ्यः पुरुष-
र्षभाः ॥ १३ ॥ कस्मादेषोऽनिरुद्धस्य श्रूयते सुमहास्वनः । गृहे
कृष्णाभिगुप्तानां कुतो नो भयमागतम् ॥ १४ ॥ इत्येवमूचुस्तेऽ-
न्योन्यं स्नेहविक्लवगद्गदाः । अधर्षिता यथा सिंहा गुहाभ्य इव
निःसृताः ॥ १५ ॥ सन्नाहभेरी कृष्णस्य आहता महती तदा ।

योग्य होगई हैं हम अपने स्वामीके वियोगसे मर जावेंगी ।८। वे श्रेष्ठ स्त्रियें इस प्रकार अशिव बातें कहने लगीं, और वारम्वार रोकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं ९ आँसुओंकी बूँदोंसे भरे हुए उनके नेत्र वर्षाकालमें जलमें डूबते हुए कमलोंकी समान चमकने लगे १० उनके शुभ नेत्र हंसोंके रक्तमें सने हुए पंखोंकी समान शोभा देने लगे ॥११॥ आकाशमें रोती हुई सहस्रों कुररियोंकी समान अनिरुद्धभवनमें (रोना पिटाई मचानेवाली) स्त्रियोंका बड़ा भारी शब्द होनेलगा १२ उस भयंकर शब्दको सुनकर अपूर्व भय आया हुआ समझकर पुरुषर्षभ अपने २ घरोंसे एक साथ निकल आये॥१३॥ अनिरुद्धके घरमें यह बड़ा भारी स्वर क्यों सुनाई आरहा है, हम कृष्णसे रक्षित पुरुषों पर कहाँसे भय टूट पड़ा १४ गुहासे निकले हुए अधर्षित सिंहोंकी समान वे हर्षसे गद्गद इस प्रकार आपसमें बातें करने लगे ॥१५॥ तब कृष्ण की तयार होनेकी (सूचना देने वाली) बड़ा भारी भेरी बजने लगी, उसके शब्दसे वे सब आकर उपस्थित होगए ॥१६॥ वे

यस्याः शब्देन ते सर्वे सभागम्य च धिष्ठिताः ॥ १६ ॥ किमेत-
दिति तेऽन्योन्यं समपृच्छत यादवाः । अन्योन्यस्य हि ते सर्वे
यथावृत्तमवेदयन् ॥ १७ ॥ ततस्ते बाष्पपूर्णाक्षाः क्रोधसंरक्तलो-
चनाः । निःश्वसन्तो व्यतिष्ठन्त यादवा युद्धदुर्मदाः ॥ १८ ॥
तूष्णीं भूतेषु सर्वेषु विपथुर्वाक्यमब्रवीत् । कृष्णं प्रहरतां श्रेष्ठं
निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥ किमिदं चिन्तयाविष्टः पुरुषेन्द्र
भवानिह । तव बाहुबलप्राणाः स्वास्थिताः सर्वयादवाः ॥२०॥
भवन्तमाश्रिताः कृष्ण संविभक्ताश्च सर्वशः । तथैव बलवाञ्छ-
क्रस्त्वय्यावेश्य जयाजयौ ॥ २१ ॥ सुखं स्वपति निःशंकः कथं
त्वं चिन्तयान्वितः । शोकसागरमक्षोभ्यं सर्वे ते ज्ञातयो गताः ॥
संमज्जमानानेकस्त्वं समुद्धर महाभुज । किमेवं चिन्तयाविष्टो

यादव यह क्या बात है, इस बातको आपसमें बूझने लगे और
जिस प्रकार बात चीत हुई थी, वह सब बात आपसमें कहने
लगे ॥ १७ ॥ उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे भर गए और
क्रोधसे लाल २ होगए और वे युद्धदुर्मद यादव साँस छोड़ने
लगे ॥ १८ ॥ सबके चुप होने पर बारबार साँस छोड़ते हुए
प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णसे विपथुने यह बात कही,
कि-१९ हे पुरुषेन्द्र ! आप इसप्रकार चिन्तामें क्यों पड़े हुए हैं,
आपके भुजबल पर जीवित रहने वाले सब यादव यहाँ पर बैठे
हुए हैं ॥२०॥ हे कृष्ण ! हम सब विभक्त होने पर भी आपका
ही आश्रय रखते हैं, इसी प्रकार बलवान् इन्द्र भी आप पर ही
जय और पराजयको रख कर ॥ २१ ॥ स्वर्गमें निःशंक होकर
सोता रहता है फिर आप चिन्तामें क्यों पड़े हुए हैं, इससे आप
की जातिके सब पुरुष अक्षोभ्य शोकसागरमें पड़ गए हैं ॥२२॥
हे महाभुज ! उन डूबते हुओंका आप उद्धार करिंगे आप कुछ
भी न बोलकर इस प्रकार चिन्तामें क्यों पड़े हुए हैं ॥२३॥ हे

न किंचिदपि भाषसे ॥२३॥ चिन्तां कर्तुं वृथा देव न त्वमर्हसि माधव । इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु निःश्वस्य सुचिरं बहु ॥ २४ ॥ प्राह वाक्यं स वाक्यज्ञो बृहस्पतिरिव स्वयम् । श्रीकृष्ण उवाच । विपृथो चिन्तयाविष्टो ह्येनत्कार्यमचिन्तयम् ॥ २५ ॥ विचिन्तयन्नहं चास्य कार्यस्य न लभे गतिम् । तथाहं भवताप्युक्तो नोत्तरं विदधे क्वचित् ॥ २६ ॥ दाशार्हगणमध्येहं वदाम्यर्थवतीं गिरम् । शृणुध्वं यादवाः सर्वे यथा चिन्तान्वितो ह्यहम् ॥ २७ ॥ अनिरुद्धे हृते वीरे पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः । अशक्ताः इति मंस्यन्ते सर्वानस्मान् सबान्धवान् ॥ २८ ॥ आहुकश्चैव नो राजा हृतः शाल्वेन नौ पुरा । प्रत्यानीतः स चास्माभिर्युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ २९ ॥ प्रद्युम्नश्चापि नो बालः शम्बरेण हृतो ह्यभूत् । स तं निहत्य समरे प्राप्तो रुक्मिणिनन्दनः ॥३०॥ इदं तु सुमहत्

माधव ! हे देव ! आपको व्यर्थ ही चिन्ता करना उचित नहीं है इसप्रकार कहने पर श्रीकृष्णने चिरकाल तक साँस खैंचा फिर वाक्यको जानने वाले बृहस्पतिकी समान कृष्णने वाक्य कहा ॥२४॥२५॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—हे विप्रथो ! मैं चितामें पड़ कर इस बातको विचार रहा हूँ परन्तु विचारने पर भी मुझे इस बातका कुछ पता नहीं चलता, यही बात आपने कही, अतः कुछ उत्तर न दे सका ॥ २६ ॥ मैं दाशार्होंके मध्यमें प्रयोजन भरी बात कहता हूँ, हे सब यादवो ! मैं जिस लिए चिन्तामें पड़ा हूँ, उस बातको सुनिये ॥ २७ ॥ वीर अनिरुद्धके हरणसे पृथ्वीके सब राजे हमैं और हमारे बान्धवोंको भी असमर्थ समझेंगे ॥ २८ ॥ हमारे राजा आहुकको भी पहिले शाल्व हरकर ले गया था, हमने दारुण युद्ध करके उनको छुड़ा लिया था २९ और हमारे बालक प्रद्युम्नको भी शम्बरने हर लिया था, परन्तु वह रुक्मिणीनन्दन समरमें उसको मार कर हमारे पास (फिर)

कष्टं प्राद्युम्निः क्व प्रवासितः । नैवं विधमहं दोषं न स्मरे मनु-
जर्षभाः ॥३१॥ भस्मना गुण्ठितः पादो येन मे मूर्ध्नि पातितः ।
तस्याहं सानुबन्धस्य हरिष्ये जीवितं रणे ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्ते
कृष्णेन सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् । चाराः कृष्ण प्रणीयन्तामनिरु-
द्धस्य मार्गणे । सपर्वतवनोद्देशां मार्गन्तु वसुधामिमाम् ॥ ३३ ॥
आहुकं प्राह कृष्णस्तु स्मितं कृत्वा वचस्तदा । आभ्यन्तराश्च
बाह्याश्च व्यादिश्यन्तां चरा नृप ॥ ३४ ॥ वैशम्पायन उवाच ।
केशवस्य वचः श्रुत्वा आहुकस्त्वरितोऽब्रवीत् । अन्वेषणेऽनिरु-
द्धस्य स चारान् दिष्टवांस्तदा ॥३५॥ ततश्चारास्तु व्यादिष्टाः
पार्थिवेन यशस्विना । हया रथाश्च व्यादिष्टाः पार्थिवेन महा-
त्मना । अभ्यन्तरं च मार्गध्वं बाह्यतश्च समन्ततः ॥३६॥ वेगु-

आ गया था ॥ ३० ॥ अनिरुद्धको कहाँ बसा दिया गया यह तो बड़े कष्टकी बात है हे सज्जन मनुष्यों ! मैं तो ऐसे दोषका स्मरण भी नहीं कर सकता ॥३१॥ जिसने यह धूलभरा पाँव मेरे ऊपर रखा है मैं उसके अनुयायियों तकके जीवनको रणमें हर लूँगा ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णके इस प्रकार कहने पर सात्यकिने यह बात कही, कि–हे कृष्ण ! अनिरुद्धकी खोज करनेके लिए दूतों को भेजना चाहिये वे पर्वत और वन सहित सारी पृथ्वीको खोजें उस समय राजा उग्रसेनसे श्रीकृष्णने मुस्कुराकर कहा, कि–हे राजन् ! अब प्रकट और गुप्त दूतोंको भेजना चाहिये ।३३।३४। वैशम्पायनजीने कहा, कि–केशवकी बातको सुन कर उग्रसेनने त्वराके साथ (बहुत अच्छा) कहा, तदनन्तर वह अनिरुद्धको ढूँढ़नेके लिए दूतोंको आज्ञा देने लगा ॥ ३५ ॥ यशस्वी राजाने दूतोंको आज्ञा दी और उस महात्मा राजाने घुड़सवार और रथ-सवारोंको भी आज्ञा दी, कि–तुम भीतर बाहर चारों ओर खोज करो ॥ ३६ ॥ तुम फुर्तीके साथ घोड़ों पर सवार हो लताओंसे

मन्तं लताविष्टं तथा रैवतकं गिरिम् । ऋक्षवन्तं गिरिं चैव मार्गध्वं त्वरिता हयैः ॥ ३७ ॥ एकैकं तत्र चोद्यानं मार्गध्वं काननानि च । यातव्यं चापि निःशंकमुद्यानानि समन्ततः ॥ ३८ ॥ हयानां च सहस्राणि रथानां चाप्यनेकशः । आरुह्य त्वरिता सर्वे मार्गध्वं यदुनन्दनम् ॥३९॥ सेनापतिरनाधृष्टिरिदं वचनमब्रवीत् । कृष्णमक्लिष्टकर्माणमच्युतं भीतभीतवत् ॥ ४० ॥ शृणु कृष्ण वचो मह्यं रोचते यदि ते प्रभो । चिरात् प्रभृति मे वक्तुं भवतां जायते मतिः ॥४१॥ असिलोमा पुलोमा च निसुन्दनरकौ हतौ । सौभः शाल्वश्च निहतो मैंदो द्विविद एव च ॥ ४२ ॥ हयग्रीवश्च सुमहान् सानुबन्धस्त्वया हतः । तादृशे विग्रहे वृत्ते देवहेतोः सुदारुणे सर्वाण्येतानि कर्माणि निःशेषाणि रणे रणे । कृतवानसि गोविंद

घिरे हुए वेणुमान् वन रैवतपर्वत और ऋक्षवान् पर्वत पर भी ढूढ़ो ॥ ३७ ॥ तहाँ पर तुम एक २ बगीचेको और एक २ वन को ढूढना और चारों ओरके बगीचोंमें निःशंकः हो कर जाना तुम सहस्रों घोड़ों पर और बहुतसे रथों पर चढ़ कर फुर्तीके साथ यदुनन्दनको ढूँढ़ो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सेनापति अनाधृष्टि सरलता से कर्म करने वाले अच्युत श्रीकृष्णसे डरता २ यह कहने लगा, कि-हे प्रभो ! हे कृष्ण ! यदि आपको अच्छी लगे तो मेरी बात सुनिये मैं बहुत समयसे उस बातके कहनेका विचार कर रहा था ॥४०॥४१॥ आपने असिलोमा, पुलोमा और निसुन्द तथा नरकको मार डाला था, सौभदेशके स्वामी राजा शाल्वको भी आपने मार डाला था तथा मैन्द और द्विविदको मार डाला था आपने देवताओंके निमित्त दारुण युद्ध होने पर अनुबंध सहित बड़े भारी राक्षस हयग्रीवको मार डाला था ॥४२॥४३॥ आप ने रणमें इन सब कर्मोंको पूर्ण रीतिसे किया है हे गोविन्द ! उस समय आपका कोई पार्ष्णिग्राह भी नहीं था ॥४४॥ हे कृष्ण !

पार्ष्णिग्राहश्च नास्ति ते ॥४४॥ इदं कर्म त्वया कृष्ण सानुबन्धं महत् कृतम् । पारिजातस्य हरणे यत् कृतं कर्म दुष्करम् ॥४५॥ तत्र शक्रस्त्वया कृष्ण ऐरावतशिरोगतः । निर्जितो बाहुवीर्येण त्वया युद्धविशारदः ॥ ४६ ॥ तेन वैरं त्वया सार्धं कर्तव्यं नात्र संशयः । वैरानुबन्धश्च महांस्तेन कार्यस्त्वया सह ॥४७॥ तत्रानिरुद्धहरणं कृतं मघवता स्वयम् । न ह्यन्यस्य भवेच्छक्तिर्वैरनिर्यातनं प्रति ॥४८॥ इत्येवमुक्ते वचने कृष्णो नाग इव श्वसन् । उवाच वचनं धीमाननाधृष्टिं महाबलम् ॥ ४९ ॥ सेनानीस्तात मा मैवं न देवाः क्षुद्रकर्मिणः । नाकृतज्ञा न च क्लीबा नाबलिप्ता न बालिशाः ॥ ५० ॥ देवतार्थं च मे यत्नो महान् दानवसंक्षये । तेषां प्रियार्थं च रणे हन्मि दृप्तान महाबलान् ॥५१॥ तत्परस्तन्-

---

तुमने यह भी बड़ा भारी कर्म किया था, जो परिजातके हरणमें दुष्कर कर्म किया ॥४५॥ हे कृष्ण ! तहाँ पर तुमने अपने भुजवीर्यसे ऐरावतके शिर पर बैठे हुए युद्धविशारद इन्द्रको जीत लिया था ॥ ४६ ॥ इस लिए वह आपसे अवश्य ही वैर करेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है और आपके साथ उसको बड़े भारी वैरका कार्य करना चाहिये ॥४७॥ इस लिए अपने आप इन्द्र ने ही अनिरुद्धका हरण किया है, वैरका बदला लेनेकी और किसीकी शक्ति नहीं है इस प्रकार वचन कहने पर बुद्धिमान् श्रीकृष्णने सर्पकी समान श्वास खेंच कर महाबली अनाधृष्टिसे वचन कहा, कि—॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे तात सेनापति ! ऐसी बात नहीं है, देवता क्षुद्र कर्म करने वाले नहीं होते हैं, अकृतज्ञ नहीं होते हैं हीज भी नहीं होते हैं न प्रमादी होते हैं न मूर्ख होते हैं देवताओंके लिये ही मैं दानवोंका नाश करनेमें परम यत्नपूर्वक लगा रहता हूँ और उनका प्रिय करनेके लिए ही मैं अद्भुत महाबली दानवोंको युद्धमें मारता रहता हूँ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मैं उन

मनाश्चास्मि तद्भक्तस्तत्प्रिये रतः । कथं पापं करिष्यन्ति विज्ञा-
यैतांविधं हि माम् ॥ ५२ ॥ अक्षुद्राः सत्यवन्तश्च नित्यं भक्ता-
नुकम्पिनः । तेभ्यो न विद्यते पापं बालिशत्वात् प्रभाषसे ॥५३॥
कदाचिदिह पुंश्चल्या अनिरुद्धो हृतो भवेत् । देवेषु समहेन्द्रेषु
नैतत् कर्म विभीयते ॥ ५४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं चिन्त-
यमानस्य कृष्णस्याद्भुतकर्मणः । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ततोऽक्रू-
रोऽब्रवीद्वचः ॥५५॥ मधुरं श्लक्ष्णया वाचा अर्थवाक्यविशारदः
यच्छक्रस्य प्रभो कार्यं तदस्माकं विनिश्चितम् ॥ ५६ ॥ अस्माकं
चापि यत्कार्यं तद्धि कार्यं शचीपतेः । संरक्ष्याश्च वयं देवैरस्मा-
भिश्चापि देवताः । देवतार्थे वयं चापि मानुषत्वमुपागताः ५७
एवमक्रूरवचनैश्चोदितो मधुसूदनः । स्निग्धगम्भीरया वाचा पुनः

में ही परायण रहता हूँ मेरा मन उनमें ही लगा रहता है मैं उन का भक्त हूँ और उनका प्रिय करनेमें लगा रहता हूँ मुझको इस प्रकारका जान कर वे पापाचरण कैसे करेंगे ॥ ५२ ॥ देवता क्षुद्रतारहित सत्ववान् और सर्वदा भक्तों पर कृपा करने वाले होते हैं उनमें ऐसा पाप नहीं रह सकता तुम तो मूर्खतासे भाषण कर रहे हो ॥ ५३ ॥ किसी पुंश्चली (पुरुषोंमें मनको विचलित करनेवाली स्त्री) ने अनिरुद्धको हर लिया होगा इन्द्र-सहित देवताओंसे तो यह काम हो नहीं सकता ५४ वैशम्पायनजी ने कहा, कि-इस प्रकार विचारते हुए अद्भुत कार्य करने वाले कृष्णके वचनको सुन कर प्रयोजन और वाक्यमें चतुर अक्रूरने मधुर वाणीसे मधुरतापूर्वक वचन कहा, कि-हे प्रभो ! इन्द्रका जो कार्य है उसको हम जानते हैं ॥ ५६ ॥ हमारा जो कार्य है वही कार्य शचीपति इन्द्रका है, देवताओंको हमारी रक्षा करनी चाहिये और हमें भी देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये और हम भी देवताओंके लिये ही मनुष्य बने हैं ॥ ५७ ॥ अक्रूरके वचनोंसे

कृष्णोऽभ्यभाषत ५८ नार्या देवैर्न गंधर्वैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः । प्रद्यु-म्नपुत्रोपहृतः पुंश्चल्यास्तु महायशाः ५९ मायाविदग्धाः पुंश्चल्यो दैत्यदानवयोषितः । ताभिर्हृतो न सन्देहो नान्यतो विद्यते भयम् वैशम्पायन उवाच । इत्येवमुक्ते वचने कृष्णेन तु महात्मना । अथादृश्यत तत्त्वेन यदूनां दूतमण्डलम् ॥६१॥ हर्षयन् स तु स सर्वेषां सूतमागधवन्दिनाम् । मधुरः श्रूयते घोषो माधवस्य निवे-शने ॥ ६२ ॥ ते चराः सर्वतः सर्वे सभाद्वारमुपागताः । शनै-र्गद्गदया वाचा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ६३ ॥ उद्यानानि गुहाः शैला सभा नद्यः सरांसि च । एकैकं शतशो राजन् मार्गितं न च दृश्यते ॥ ६४ ॥ अन्ये कृष्णं चरा राजन्नुपागम्य तदाऽब्रुवन् ।

इस प्रकार प्रेरित हुए मधुसूदन श्रीकृष्ण स्निग्ध गम्भीर वाणी से फिर कहने लगे, कि–५८ महायशस्वी प्रद्युम्नपुत्र न देवताओं के द्वारा हरे गए हैं न गन्धर्वोंके द्वारा हरे गए हैं न यक्षोंके द्वारा हरे गए हैं और न राक्षसोंके द्वारा हरे गए हैं इनको तो पुंश्चली उड़ा कर लेगयी है ॥५९॥ मायामें चतुर दैत्य और दानवोंकी स्त्रियें पुंश्चली हैं निःसन्देह उन्होंने ही अनिरुद्धको हर लिया है दूसरेसे भय नहीं होसकता ॥ ६० ॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-महात्मा कृष्णके इसप्रकार कहने पर यादवोंका दूतमण्डल तत्त्व-बातको जान कर आता हुआ दीखा ॥ ६१ ॥ उस समय माधव के घरमें (सबको) हर्षित करता हुआ सूत मागध और बन्दियों का मधुर घोष सुनाई दिया ॥ ६२ ॥ सब ओरसे दूत सभाके द्वार पर आगए और गद्गद वाणीमें धीरेसे इस बातको कहने लगे, कि–॥ ६३ ॥ हे राजन् ! बाग, गुहा, पर्वत, सभा, नदियें और सरोवर इनमेंसे प्रत्येकमें हमने सैंकड़ों बार ढूँढ़ा परन्तु (अनिरुद्ध) नहीं दीखा ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! दूसरे दूत आकर श्रीकृष्णसे कहनेलगे, कि हमने सब देश देखे परन्तु अनिरुद्ध कहीं

सर्वो नो विदिता देशाः प्राद्युम्निर्न च दृश्यते ॥ ६५ ॥ यदन्यत् संविधातव्यं विधानं यदुनन्दन । तदाज्ञापय नः क्षिप्रमनिरुद्धस्य मार्गणे ॥ ६६ ॥ ततस्ते दीनमनसः सर्वे बाष्पाकुलेक्षणाः । अन्योन्यमभ्यभाषन्त किमतः कार्यमुत्तमम् ॥६७॥ सन्दष्टोष्ठपुटाः केचित् केचिद्बाष्पाकुलेक्षणाः । केचिद्द् भ्रुकुटिमास्थाय चिन्तयन्त्यर्थसिद्धये ॥ ६८ ॥ एवं चिन्तयतां तेषां बह्वर्थमभिभाषितम् । अनिरुद्धः कुतश्चेति संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ ६९ ॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्ते यादवा जातमन्यवः । तां निशां विमनस्कास्ते गमयेयुः कथञ्चन । अनिरुद्धो हृतश्चेति पुनः पुनररिंदम ॥ ७० ॥ एवं च ब्रुवतां तेषां प्रभाता रजनी तदा । ततस्तूर्यनिनादैश्च शंखानां च महास्वनैः प्रबोधनं महाबाहोः कृष्णस्याक्रियतालये ॥ ७१ ॥ प्रभाते विमले जातेप्रादुर्भूते दिवाकरेऽप्रविवेश सभां राजन् नारदः

नहीं दीखा ६५ हे यदुन्दन ! प्रद्युम्नको ढूँढ़नेके लिये और जो बात करनी हो उसकी हमें शीघ्र ही आज्ञा दीजिये ६६ तदनन्तर उन, यादवोंका मन दीन होगया सबके नेत्रोंमें आँसू भर आए और आपसमें कहने लगे, कि-अब क्या कार्य करना चाहिये ६७ कोई अपने ओठोंको काटने लगे किन्हीके नेत्र आँसुओंसे भरगए और कोई भ्रकुटीको टेढ़ी करके अर्थसिद्धिके लिये चिन्ता करने लगे ६८ इस प्रकार विचार करके उन्होंने बहुतसा प्रयोजनभरा भाषण किया, अनिरुद्ध कहाँ चला गया इस बातका उन्हें बड़ा भारी संभ्रम होने लगा ६९ क्रोधमें भरे हुए यादव एक दूसरेको देखने लगे, और उन्होंने मनमें उदास होकर किसी प्रकार वह रात्रि बिताई हे अरिन्दम ! अनिरुद्ध हर लिया गया इस बातको बारम्बार कहते हुए ही रात्रि बीत कर प्रातः काल होगया तदनन्तर श्रीकृष्णके घरमें तूर्योंका नाद करके और शंखोंका बड़ा भारी शब्द करके महाभुज कृष्णको जगाया जाने लगा ७०-७१

प्रहसन्निव ॥ ७२ ॥ दृष्ट्वा तु यादवान् सर्वान् कृष्णेन सह संगतान् । ततः स जयशब्देन माधवं प्रत्यपूजयत् ॥ ७३ ॥ अथाभ्युत्थाय विमनाः कृष्णः समितिदुर्जयः । मधुपर्कं च गां चैव नारदाय ददौ प्रभुः ॥ ७४ ॥ सोपविश्यासने शुभ्रे सर्वास्तरणसंवृते । सुखासीनो यथान्यायमुवाचेदं वचोऽर्थवत् ॥७५॥ नारद उवाच । किमेवं चिन्तयाविष्टाः निःसङ्गा गतमानसाः । उत्साहहीनाः सर्वे वौ क्लीबा इव समासते ॥ ७६ ॥ इत्येवमुक्ते वचने नारदेन महात्मना । वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं श्रूयतां भगवन्निदम् ७७ अनिरुद्धो हृतो ब्रह्मन् केनापि निशि सुव्रत । यस्यार्थे सर्व एवाऽस्म चिन्तयाविष्टचेतसः ॥ ७८ ॥ एष ते यदि वृत्तान्तः श्रुतो दृष्टोपि वा मुने । भगवन् कथ्यतां साधु प्रियमेतन्ममानघ ॥७९॥ इत्येवमुक्ते वचने केशवेन महात्मना । प्रहस्यैतद्वचः प्राह श्रूयतां

जब निर्मल प्रभात होकर सूर्य निकल आए हे राजन् ! तब हँसते हुए नारदजीने सभामें प्रवेश किया ७२ कृष्णके साथ सब यादवों को बैठा हुआ देखकर नारदजीने जय २ करके माधवकी पूजाकी तदनन्तर समितिदुर्जय प्रभु कृष्ण उदास मनसे उठे और नारद जीको मधुपर्क तथा गौदी ॥ ७४ ॥ नारदजी बिछौने बिछे हुए शुभ्र आसन पर बैठ गए फिर सुखपूर्वक बैठनेके बाद वह प्रयोजन भरा हुआ यह उचित वचन कहने लगे ॥७५॥ नारद जीने कहा, कि-आप इस प्रकार चिन्तामें भरे हुए निःसङ्गसे उत्साहहीन और क्लीवसे होकर क्यों बैठे हुए हैं ।७६। महात्मा नारदके इस प्रकार कहने पर वासुदेवने यह कहा, कि-सुनिये हे सुव्रत ब्रह्मन् ! रातमें किसीने अनिरुद्धको हर लिया है इसी कारणसे हम सबोंका मन चिन्तामें भर रहा है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ हे मुने ! यदि यह बात आपने देखी वा सुनी हो तो हे निष्पाप ! आप इस बातको कहिये यह बात मुझे प्रिय है ॥ ७९ ॥

मधुसूदन ॥ ८० ॥ निवृत्तं सुमहद्युद्धं देवासुरसमं महत् । अनिरुद्धस्य चैकस्य बाणस्यापि महामृधे ॥ ८१ ॥ उषा नाम सुता तस्य बाणस्याप्रतिमौजसः । तस्यार्थे चित्रलेखा वै जहाराशु तमप्सराः ॥ ८२ ॥ उभयोरपि तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् । प्रद्युम्निबाणयोः संख्ये बलिवासवयोरिव ॥ ८३ ॥ अस्माभिश्चापि तद्युद्धं दृष्टं सुमहदद्भुतम् । अनिरुद्धो भयात्तेन संयुगेष्वनिवर्तिना ॥ ८४ ॥ बाणेन मायामास्थाय बद्धो नागैर्महाबलः । व्यादिष्टस्तु वधस्तस्य बाणेन गरुडध्वज ॥ ८५ ॥ तं निवारितवान् मन्त्री कुम्भाण्डो नाम तस्य ह । कुमारस्यानिरुद्धस्य तेनासक्तेन संयुगे ॥८६॥ बाणेन मायामास्थाय सर्पैर्नियमनं कृतम् । उत्तिष्ठतु भवान् शीघ्रं यशसे विजयाय च ॥ ८७ ॥ नायं संरक्षितुं कालः

महात्मा केशवके इसप्रकार वचन कहने पर नारदजीने यह वचन कहा, कि-हे मधुसूदन! सुनिये८०इकले अनिरुद्धका और बाणासुरका देवासुर संग्रामकी समान बड़ा भारी युद्ध हुआ है । ८१ । अप्रतिम ओजस्वी बाणासुरकी ऊषा नाम वाली पुत्री है उसके लिये चित्रलेखा नामवाली अप्सराने अनिरुद्धको हरलिया है८२ प्रद्युम्नपुत्रका और बाणासुरका बलि और इन्द्रके दारुण युद्धकी समान बड़ाभारी युद्ध हुआ था ८३ हमने भी वह अद्भुत युद्ध देखा था युद्धमेंसे पीछेको न हटने वाले बाणासुरने अनिरुद्धके डरसे युद्धमें मायाका आश्रय लेकर सर्पोंके द्वारा महाबली अनिरुद्धको बाँध लिया था, हे गरुड़ध्वज ! फिर बाणासुरने उसके वधकी आज्ञा दी ॥ ८४॥८५॥ तब उसको कुम्भाण्ड नामवाले मन्त्रीने रोका था बाणासुर जब असक्त होगया था तब उसने मायाका आश्रय लेकर कुमार अनिरुद्धको सर्पोंसे बाँध लिया था इसलिये आप यश पानेके लिये और विजय पानेके लिये शीघ्र ही उठिये ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ हे तात! जय चाहने वालोंके लिये यह

प्राणास्तात जयैषिणाम् । प्राणैः किंचिद्धृतैर्वीरो धैर्यमालम्ब्य तिष्ठति ॥ ८८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्येवमुक्ते वचने वासुदेवः प्रतापवान् । यात्रिकान् वै संभारानाज्ञापयत वीर्यवान् ॥८९॥ ततश्चन्दनपूर्णेन लाजैश्चैव समन्ततः । निर्ययौ स महाबाहुः कीर्यमाणो जनार्दनः ॥९०॥ नारद उवाच । स्मरणं वैनतेयस्य कर्तुमर्हसि माधव । न ह्यन्येन तदध्वानं शक्यं गन्तुं महाभुज ९१ आकर्णय तमध्वानं गन्तव्यमतिदुर्जयम् । एकादशसहस्राणि योजनानां जनार्दन ॥ ९२ ॥ तदितः शोणितपुरं यात्प्रद्युम्निर्गतः सांप्रतम् । मनोजवो महावीर्यो वैनतेयः प्रतापवान् ॥ ९३ ॥ सगरुडस्त्व गोविन्द स हि त्वां तत्र नेष्यति । एतेन मुहूर्तेन बाणं संदर्शयिष्यति ॥९४॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा

प्राणोंको बचानेका समय नहीं है वीर अनिरुद्धके प्राण कुछ ही बाकी रहे हैं वह धैर्य धारण कर बैठा हुआ है ८८ वैशम्पायनजी ने कहा, कि-इस प्रकार कहने पर वीर्यवान् प्रतापी वासुदेवने यात्राके लिये सामान तयार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८९ ॥ तदनन्तर महाबाहु जनार्दन चन्दनसे भरी हुई खीलोंकी चारों ओर से बौछार पाते हुए (पुरीमेंसे) चल दिये ॥ ९० ॥ नारदजी ने कहा, कि हे माधव ! इस समय आपको गरुड़जीका स्मरण करना चाहिये हे महाभुज ! उस मार्गको दूसरा तय नहीं कर सकता ॥ ९१ ॥ आप जिस मार्गमें जाना चाहते हैं उस अतिदुर्जय मार्गको सुनिये इस समय जहाँ पर अनिरुद्ध है वह शोणितपुर हे जनार्दन ! यहाँसे चौवालीस हजार कोस है गरुड़जी मन की समान वेगवाले हैं महावीर्य हैं और प्रतापी हैं ९२ ॥ ९३ हे गोविन्द ! आप गरुड़जीको बुलाइये वह ही आपको तहाँ लेजावेंगे वह एक मुहूर्तभरमें ही आपको बाणासुरको दिखादेंगे ९४ वैशम्पायनजीने कहा, कि-नारदजीके वचनको सुनकर श्रीकृष्ण

संस्मार गरुडं तदा। स कृष्णपार्श्वमागम्य प्राञ्जलिर्गरुडः स्थितः ९५ प्रणम्याथ वचः प्राह वैनतेयो महाबलः। वासुदेवं महात्मानं श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ ९६ ॥ गरुड उवाच । पद्मनाभ महाबाहो किमर्थं संस्मृतो ह्यहम्। कृत्यन्ते यदिहात्रास्ति श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ९७ ॥ कस्य पक्षपरिक्षेपैर्नाशयामि पुरीं प्रभो । प्रभावात्तव गोविन्द को न विद्याद्बलं मम ॥ ९८ ॥ गदावेगं च ते वीर चक्राग्निं च महाभुज। नावबुध्यति मूढात्मा को दर्पान्नाशमेष्यति ॥९९॥ हलं सिंहमुखं कस्य वनमाली नियोक्ष्यति । कस्य देहस्तु निर्भिन्नो मेदिनीं यास्यति प्रभो॥१००॥ कस्य शंखरवैः प्राणान् मोहयिष्यसि माधव । कोयं सपरिवारोद्य यास्यते यमसादनम् ॥ १ ॥ एवमुक्ते तु वचने वैनतेयेन धीमता । वासुदेवो

ने गरुड़जीका स्मरण किया उस समय गरुड़जी श्रीकृष्णके पास आ हाथ जोड़ कर खड़े होगए फिर महाबली गरुड़जी प्रणाम करके महात्मा वासुदेवसे मधुरवाणीमें मधुर वचन कहने लगे ९६ गरुड़जीने कहा, कि-हे महाभुज पद्मनाभ ! आपने मेरा किसलिये स्मरण किया है जो आपका कार्य हो उसको मैं तत्वपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥९७॥ हे प्रभो! मैं अपने पङ्खोंको फेंककर किसकी नगरीको नष्ट कर डालूँ हे गोविन्द ! आपके प्रभावसे मेरे बलको कौन नहीं जानता है ॥ ९८ ॥ हे वीर ! आपकी गदाके वेगको तथा हे महाभुज!आपके चक्रकी अग्निको न जाननेवाला कौनसा मूढ़ आज दर्पवश नष्ट होना चाहता है ॥ ९९ ॥ आज वनमाली सिंहमुख हलको किसके ऊपर मारेंगे हे प्रभो ! आज किसका देह छिद भिद कर पृथिवी पर गिरेगा ॥ १०० ॥ हे माधव ! आप शंखोंके शब्दसे किसके प्राणोंको मोहित करेंगे आज कौन अपने परिवारके साथ यमसदनको जावेगा ॥१०१॥ हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! बुद्धिमान् गरुड़जीके इसप्रकार कहने पर वासुदेवने जो

वचः प्राह शृणु त्वं वदतां वर ॥ २ ॥ बलेः पुत्रेण बाणेन माद्यु-
म्निरपराजितः । उषायाः कारणे बद्धो नगरे शोणिताह्वये । अनि-
रुद्धस्तु कामार्तो बद्धो नागैर्विषोल्बणैः ॥ ३ ॥ तस्य मोक्षार्थमा-
हूतो मया त्वं पतगेश्वर । तव वेगे समो नास्ति पक्षिणां प्रवरो
भवान् । अशक्यं च तदध्वानं गन्तुमन्येन काश्यप ॥ ४ ॥ तत्र
प्रापय मां शीघ्रं यत्र माद्युम्निरावसत् । वैदर्भी तु स्नुषा वीर
रुदती पुत्रगृद्धिनी ॥ ५ ॥ त्वत्प्रसादाद्भवत्येषा पुत्रेण सह भा-
मिनी । अमृतं तु हृतं पूर्वं त्वया पन्नगनाशन ॥ ६ ॥ मया सह
समागम्य तस्मिन् काले महाभुज । अभवन्मे ध्वजश्चैव त्वद्भक्ताः
सर्ववृष्णयः । सखित्वं मानयस्वाद्य भक्तिं च पतगेश्वर ॥ ७ ॥
तव वेगसमो नास्ति पक्षिणो न च ते समाः । सुपर्ण सुकृतेन

बात कही थी उसको आप सुनिये १०२ बलिके पुत्र बाणासुरने शोणितपुरमें ऊषाके कारण अपराजित अनिरुद्धको कैद कर लिया है और कामार्त अनिरुद्ध तीव्र विषवाले सर्पोंसे बँधाहुआ है १०३ हे पक्षिराज ! उसको छुड़ानेके लिये मैंने तुम्हें बुलाया है आपकी समान वेगवान् कोई नहीं है आप पक्षियोंमें श्रेष्ठ हैं हे काश्यप ! दूसरा उस मार्गमें नहीं जासकता १०४ जहाँ पर अनिरुद्ध है तहाँ पर तुम मुझे शीघ्र ही पहुँचादो, हे वीर ! पुत्रको चाहने वाली तुम्हारी पुत्रवधू वैदर्भी रोरही है (रुक्मीकी पुत्री अनिरुद्धकी माताको श्रीकृष्णने गरुड़जीको अपना भाई समझकर प्रद्युम्नकी भार्या होनेके कारण पुत्रवधू बताया है) ॥ १०५ ॥ आपके प्रसादसे यह भामनी अपने पुत्रके साथ लौटेगी हे सर्पोंको भक्षण करने वाले ! तुमने पहली पहल मेरे साथ रह कर अमृत हर लिया था हे महाभुज ! उस समय तुम मेरे ध्वजा बने थे सब वृष्णिवंशी आपके भक्त हैं हे पन्नगेश्वर ! आप मित्रता और भक्तिका सत्कार करिये।६॥७।

र्त्तां शपे पन्नगनाशने ॥ ८ ॥ दासीभावं गता माता मोक्षितैका-
किना पुरा । पक्षविक्षेपमाश्रित्य हता बाधा त्वया पुरा ॥ ६ ॥
भवान् सुरगणान् सर्वान् पृष्ठमारोप्य विक्रमात् । गच्छ मे ह्यग-
मान् देशान् विजयश्च तवाश्रयात् ॥ ११० ॥ गुरुत्वान्मेरुतुल्य-
स्त्वं लघुत्वात् पवनोपमः । भूते भव्ये भविष्ये च न ते तुल्योऽस्ति
विक्रमे ॥ ११ ॥ सत्यसन्ध महाभाग वैनतेय महाद्युते । अनि-
रुद्धेक्षणेनाद्य साहाय्यमुपकल्प्यताम् ॥ १२ ॥ गरुड उवाच । अत्य-
द्भुतमिदं वाक्यं तव कृष्ण महाभुज । त्वत्प्रसादाच्च विजयः सर्व-
त्रैव महाभुज ॥ १३ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि संस्तवान्मधुसू-
दन । स्तोतव्यस्त्वं मया कृष्ण स्तौषि मां त्वं महाभुज ॥ १४ ॥

तुम्हारे वेगकी समान कोई नहीं है पक्षी भी तुम्हारे बराबर नहीं हैं हे पन्नगासन गरुड़ ! मैं तुम्हें पुण्यकी शपथ दिलाता हूँ ८ आपने पहले दासीभावमें पड़ी हुई अपनी माताको अकेले अपने आप ही पङ्खोंके फेंकनेका आश्रय लेकर छुड़ा दिया था और उसकी बाधाको नष्ट कर दिया था ।१०६। आप अपने पराक्रम से सब देवताओंको अपनी पीठ पर सवार करके जिन देशोंमें मैं नहीं जासकता हूँ उन देशोंमें चलिये अब तुम्हारे ही हाथ विजय है ॥ ११० ॥ तुम भारीपनमें मेरुपर्वतकी समान हो और हलके होनेसे पवनकी समान हो भूत भविष्य और वर्तमान काल में भी आपकी समान पराक्रममें कोई नहीं हो सकता ॥१११॥ हे महाभाग सत्यप्रतिज्ञ! और महाकान्तिमान् गरुड! आप अनिरुद्धको देखनेमें आज सहायता करिये ॥ ११२ ॥ गरुडजीने कहा, कि-हे महाभुज ! आपका यह कहना अति अद्भुत है हे महाभुज ! आपकी कृपासे ही हमारी सर्वत्र विजय होती है हे मधुसूदन ! आपकी स्तुति करनेसे मैं धन्य और अनुगृहीत होगया हूँ मुझे आपकी स्तुति करनी चाहिये थी तब भी

वेदाध्यक्षः सुराध्यक्षः सर्वकामप्रदो भवान्। अमोघदर्शनस्त्वं हि वरार्थीनां वरप्रदः ॥१५॥ चतुर्भुजश्चतुर्मूर्तिश्चातुर्होत्रप्रवर्तकः। चातुराश्रम्यहोता च चतुर्नेता महाकविः ॥ १६ ॥ धनुर्धरश्चक्रधरो भवान् शंखधरो महान्। भवान् पूर्वेषु देहेषु ख्यातो भूगिश्वरः प्रभो ॥ १७ ॥ लांगली मुशली चक्री देवकीतनयो भवान्। चाणूरमथनश्चैव गोप्रियः कंसहा भवान् ॥ १८ ॥ गोवर्धनधरश्चैव मल्लारिर्मल्लभावनः। मल्लप्रियो महामल्लो महापुरुष इत्यपि ॥ १९ ॥ विप्रप्रियो विप्रहितो विप्रज्ञो विप्रभावनः। ब्रह्मण्यश्च वरेण्यश्च भवान् दामोदरः स्मृतः। प्रलम्बमथनश्चैव केशिहा दानवान्तकः ॥ १२० ॥ असिलोम्नश्च हन्ता च तथा

हे महाभुज ! आप मेरी स्तुति कर रहे हैं ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ आप वेदोंके अध्यक्ष हैं देवताओंके अध्यक्ष हैं और सब कामनाओंको देनेवाले हैं आपका दर्शन अमोघ है और वर माँगनेवालोंको वरदेने वाले हैं ॥ १५ ॥ आप चतुर्भुज हैं और (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामक) चार मूर्तिवाले हैं चातुर्होत्रके प्रवर्तक हैं चातुराश्रम्यके होता है चार प्रकारके पुरुषार्थोंको प्राप्त करानेवाले हैं और महाकवि हैं ॥ १६ ॥ धनुषधारी हैं चक्रधर हैं शंखधारी हैं और महान् हैं और हे प्रभो ! आप पूर्वजन्मोंमें भूगिश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं ॥१७॥ आप लांगल मूसल और चक्रको धारण करनेवाले हैं और आप देवकीपुत्र हैं आप चाणूरको मथनेवाले गौओंके प्रिय और कंसको मारनेवाले हैं ॥१८॥ आप गोवर्धनको धारण करनेवाले मल्लोंके शत्रु और मल्लोंके प्रिय हैं मल्लोंका कल्याण चाहनेवाले हैं महामल्ल और महापुरुष हैं १९ ब्राह्मणोंके प्रिय ब्राह्मणोंका हित करनेवाले विप्रोंको जाननेवाले और विप्रोंका कल्याण चाहनेवाले ब्रह्मण्य और वरेण्य हैं आप प्रलम्बका मथन करनेवाले केशी दैत्यका नाश करनेवाले दानवों

रावणनाशनः । विभीषणस्य भगवान् राज्यदो वालिनाशनः२१
सुग्रीवराज्यदाता त्वं बलिराज्यापहारकः। रत्नहर्ता महारत्नं समुद्रोदरसम्भवः ॥ २२ ॥ वरुणश्च भवान् ख्यातो भवांश्च सरिदुद्भवः। भवान् खड्गधरो धन्वी धनुर्धरवरो महान् ॥ २३ ॥
दाशार्ह इति विख्यातो महाधन्वा धनुःप्रियः। गोविन्द इति विख्यात उदधिस्त्वं च सुव्रत ॥२४॥ आकाशश्च तपश्चैव समुद्रमथनो भवान्। भवान् स्वर्गो बहुफलो भवान् स्वर्गचरो महान्२५
त्वमेव च महामेघो बीजनिष्पत्तिरेव च। त्रैलोक्यमथनस्त्वं च क्रोधलोभमनोरथाः ॥ २६ ॥ भवान् कामप्रदश्चैव कामः सर्वधनुर्धरः। संवर्तो वर्तनश्चैव प्रलयो निलयो महान् ॥ २७ ॥
हिरण्यगर्भो रूपज्ञो रूपवान् मधुसूदनः। ईशस्त्वं च महादेव

के यमराज और दामोदर नामसे प्रसिद्ध हैं ॥२०॥ आप असिलोमाके मारने वाले और रावणको नष्ट करनेवाले हैं आप विभीषणको राज्य देनेवाले और बालिको नष्ट करनेवाले हैं ॥२१॥
सुग्रीवको राज्य देनेवाले, बलिके राज्यको छीननेवाले रत्नोंको ग्रहण करनेवाले महारत्नस्वरूप और समुद्रोदरसम्भव अर्थात् धन्वन्तरि हैं ॥२२॥ आप वरुण नामसे प्रसिद्ध हैं और नदियोंके उत्पत्तिस्थान अर्थात् मेरु हैं आप खड्गधारी धनुषधारी और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा बड़े पुरुष हैं ॥ २३ ॥ आप दाशार्ह नामसे प्रसिद्ध हैं धनुषको प्रिय समझनेवाले और महाधनुर्धर हैं हे सुव्रत ! आप गोविन्द और समुद्ररूपसे प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ आप आकाश और तप हैं तथा समुद्रको मथनेवाले हैं आप स्वर्गस्वरूप अनेक फल देनेवाले और स्वर्गमें विचरण करनेवाले हैं ॥२५॥
आप महामेघ बीजोंकी निष्पत्ति और त्रिलोकीमें विचरण करनेवाले हैं आप क्रोध लोभ और मनोरथस्वरूप हैं २६ आप कामनाओंको देनेवाले कामस्वरूप, सर्वधनुर्धर, संवर्त, प्रलय; वर्तन

असंख्येयगुणान्वितः ॥ २८ ॥ स्तोतुमिच्छसि मां देव तात ? यस्त्वं यदूत्तम । चक्षुषा ये त्वया घोराः प्राणिनो हि निरीक्षिताः ॥ २९ ॥ हतास्ते यमदण्डेन तिर्यङ्निरयगामिनः। ये त्वया परमप्रीत्या प्राणिनो वै निरीक्षिताः ॥ ३० इह च प्रेत्य ते सर्वे सर्वथा स्वर्गगामिनः । एष तेऽहं महाबाहो वशगः शासने स्थितः ॥ ३१ ॥ जवस्थानं ततः कृत्वा गरुडः प्राह केशवम् । अयमस्मि स्थितो वीर आरुहस्व महाबल ॥ ३२ ॥ ततः कण्ठे परिष्वज्य माधवो गरुडं ततः । सखे शत्रुविनाशाय अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३३ ॥ दत्त्वार्घं परया प्रीत्या शंखचक्रगदासिभृत् । आरुरोह महाबाहुः सुपर्णं पुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्य पार्श्वमागम्य दर्पादेवास्थितोऽभवत् । कृष्णः केशः

और नित्य हैं ॥ २७ ॥ आप हिरण्यगर्भ रूपको जाननेवाले, रूपवान् मधुसूदन तथा ईश हैं और असंख्य गुणोंसे युक्त महादेव हैं ॥ २८ ॥ हे यादवोंमें उत्तम ! आप स्तुति करने योग्य हैं हे देव ! फिर भी आप मेरी स्तुति करना चाहते हैं आपने जिन भयंकर प्राणियोंको अपनी (भयंकर) दृष्टिसे देखते हैं वे यमदण्डसे मारे जाते हैं और पक्षीकी योनि तथा नरकमें पड़ते हैं और जिन प्राणियोंको आपने परमप्रीतिसे देखा है वे सब प्रकारसे स्वर्गमें जावेंगे, हे महाभुज ! मैं आपके वशमें हूँ और आपकी आज्ञा बजानेके लिये आपके सामने खड़ा हूँ ॥ २९ ॥ ३१ ॥ उस समय गरुड़ने प्रस्थान करनेकी चेष्टा करके केशवसे कहा, कि-हे वीर ! हे महाबल ! मैं खड़ा हूँ आप मुझ पर सवार हूजिये ३२ तदनन्तर माधवने गरुड़से गले मिल कर (कहा, कि-)हे सखे शत्रुओंका विनाश करनेके लिये इस अर्घको आप ग्रहण करिये ३३ शंख चक्र गदा और तलवारको धारण करनेवाले, महाभुज श्रीकृष्ण अर्घ देकर परमप्रेमके साथ गरुड़जी पर सवार होगए ३४

प्रवलदो विष्णुः कृष्णश्च वर्णतः ॥ ३५ ॥ चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्बाहुश्च तुर्वेदषडङ्गवित् । श्रीवत्साङ्कोऽरविन्दाक्ष ऊर्ध्वरोमा मृदुत्वचः ३६ समांगुलिः समनखो रक्तांगुलिनखान्तरः । स्निग्धगम्भीनिर्घोषो वृत्तबाहुर्महाभुजः ॥ ३७ ॥ आजानुबाहुस्ताम्रास्यः सिंहविस्पष्टविक्रमः । सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानः प्रकाशते ॥ ३८ ॥ यः प्रक्षुर्याति विश्वात्मा भूतानां भावनो विभुः । यस्याष्टगुणमैश्वर्यं ददौ प्रीतः प्रजापतिः । प्रजापतीनां साध्यानां त्रिदशानां च शाश्वतः ॥३९॥ स्तूयमानः स्तवैर्दिव्यैः सूतमागधबन्दिभिः । ऋषभिश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ १४० ॥ संविधानमथाज्ञाप्य द्वारकायां महाबलः । गमनाय मतिं चक्रे वासुदेवः प्रताप-

कृष्णके पीछे हर्षमें पड़कर काले केशवाले बलदेवजी भी बैठ गए विष्णु वर्णमें काले थे और श्रेष्ठ बलपको धारण कररहे थे ३५ उनकी चार डाढ़ें थीं चार भुजाएँ थीं वह चारों वेद और छहों अङ्गोंको जाननेवाले थे उनके श्रीवत्सका चिन्ह था और नेत्र कमल की समान थे उनके रुएँ ऊपरको खड़े हुए थे और खाल मुलायम थी ॥ ३३ ॥ उनकी अंगुलियें सम थीं नाखून सम थे अंगुलियें लाल २ थीं और नखोंके भीतरका भाग भी लाल २ था उनका स्वर स्निग्ध और गम्भीर था भुजाएँ गोल थीं और बड़ी बड़ी थीं ३७ तथा घुटनोंतक लटकती थीं मुख ताँबेकी समान था और सिंहकी समान स्पष्टरीतिसे कदम२ चलते थे और सहस्रों सूर्योंकी समान दिपकर प्रकाशित होरहे थे ॥३८॥ प्राणियोंका कल्याण चाहनेवाले जो विश्वात्मा विभु प्रकाशित होते रहते हैं और प्रजापतिने प्रसन्न होकर जिनको आठ गुण वाला ऐश्वर्य दिया है, जो प्रजापति साध्य और देवताओंमें भी शाश्वत हैं ३९ ऐसे महाबली प्रतापी वासुदेव वेदवेदांगमें पारंगत महाभाग ऋषियों से और सूतमागध बंदियोंसे स्तुति पातेहुए द्वारकाकी रक्षा

वान् ॥ ४१ ॥ आस्थितो गरुडं देवस्तस्य चानु हलायुधः । पृष्ठ-
तोनु बलस्यापि प्रद्युम्नः शत्रुकर्षणः ॥४२॥ जय बाणं महाबाहो
ये चास्यानुगता रणे । न हि ते प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो महा-
मृधे ॥ ४३ ॥ प्रसादे ते ध्रुवा लक्ष्मीर्विजयश्च पराक्रमे । विजे-
ष्यसि रणे शत्रुं दैत्येन्द्रं सह सैनिकम् ॥ ४४ ॥ सिद्धचारण-
संघानां महर्षीणां च सर्वशः । शृण्वन् वाचोन्तरिक्षे वै प्रययौ
केशवो रणे ॥ १४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णप्रयाणं
नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्तूर्यनिनादैश्च शंखानां च महास्वनैः ।
वन्दिमागधसूतानां स्तवैश्चापि सहस्रशः ॥ १ ॥ सतून्मुखैर्जया-
शीर्भिः स्तूयमानो हि मानवैः । अभार रूपं सोमार्कशुक्राणां

की आज्ञा देकर चलनेका विचार करनेलगे १४०।१४१ भगवान्
गरुड़के ऊपर चढ़ गए उनके पीछे बलदेवजी चढ़ गए और बल-
देवजीके पीछे शत्रुओंको खैंचने वाले प्रद्युम्न भी बैठ गए १४२
उस समय केशव सिद्ध चारण और महर्षियोंके संघकी (निम्न
लिखित) बातोंको अन्तरिक्षमें सुनते हुए चलने लगे, कि—हे
महाभुज कृष्ण ! आप बाणासुरको जीतिये और जो उसके पीछे
रणमें आवें उनको भी जीतिये, महायुद्धमें आपके ही सामने कोई
भी खड़ा नहीं होसकता, आपके प्रसादमें निश्चय लक्ष्मी रहती है
और पराक्रममें विजय रहती है आप रणमें दैत्येन्द्रको उसके सैनि-
कोंके साथ जीत सकेंगे ॥ १४३—१४५ ॥ एक सौ इकीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—तदनन्तर तूर्योंके निनाद और
शंखोंके बड़े भारी शब्द और वन्दी मागध तथा सूतोंके स्तोत्र
और जयके आशीर्वादोंसे स्तुति पाते हुए श्रीकृष्णने चन्द्रमा सूर्य

मतिर्मं तदा ॥२॥ अतीव शुशुभे रूपं व्योम्नि तस्योत्पतिष्यतः। वैनतेयस्य भद्रं ते बृंहितं हरितेजसा ॥३॥ अथाष्टबाहुः कृष्णस्तु पर्वताकारसन्निभः। विबभौ पुण्डरीकाक्षो विकाङ्क्षन् बाणसंक्षयम् ॥ ४ ॥ असिचक्रगदाबाणा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः। चर्म शार्ङ्गं तथा चापं शंखं चैवास्य वामतः ॥५॥ शीर्षाणां वै सहस्रं तु विहितं शार्ङ्गधन्वना। सहस्रं चैव कायानां वहन् संकर्षणस्तदा ॥६॥ श्वेतप्रहरणोऽधृष्यः कैलास इव शृङ्गवान्। प्रस्थितो गरुडेनाथ उद्यन्निव दिवाकरः ॥ ७ ॥ सनत्कुमारस्य वपुः प्रादुरासीन्महात्मनः। प्रद्युम्नस्य महाबाहोः संग्रामे विक्रमिष्यतः ८ स पक्षबलविक्षेपैर्विधुन्वन् पर्वतान् बहून्। जगाम मार्गं बलवान् वातस्य प्रतिषेधयन् ॥ ९ ॥ अथ वायोरतिगतिमास्थाय गरुड-

और शुक्रकी समान रूपको धारण कर लिया ॥ १।२ ॥ उस समय आकाशमें उड़ते हुए भगवान्के तेजसे बढ़े हुए गरुड़जीका रूप आकाशमें परम शोभित दीखने लगा ।३। उस समय आठ भुजा वाले पर्वताकार पुण्डरीकाक्ष बाणासुरका क्षय चाहते हुए शोभा पाने लगे ॥४॥ उनके वाईं ओर चक्र तलवार गदा और बाण रखे हुए थे और ढाल शार्ङ्ग धनुष तथा शंख बाईं ओर रखा हुआ था ५ शार्ङ्ग धनुषको धारण करनेवालेने उस समय सहस्र शिर बना लिए थे और संकर्षणने सहस्र शरीरोंको धारण कर लिया था ६ श्वेत आयुधवाले बलदेवजी अधृष्य कैलासपर्वत की समान प्रतीत होते थे गरुड़के ऊपर (बैठे हुए) बलदेवजी उदय होते हुए सूर्यकी समान प्रतीत होते थे ७ संग्राममें पराक्रम करने वाले महाभुज प्रद्युम्नका उस समय सनत्कुमार-शरीर प्रकट होगया ८ बलवान् गरुड़जी अपने बलवान् पंखोंको फेंकते हुए वायुके मार्गको रोकते हुए और बहुतसे पर्वतोंको कँपाते हुए चलने लगे ९ तदनन्तर गरुड़जी वायुकी बड़ी भारी गतिको धारण

स्तदा । सिद्धचारणसंघानां शुभं मार्गमवातरत् ॥ १० ॥ अथ रामोऽब्रवीद्वाक्यं कृष्णममतिमं रणे । स्वाभिः प्रभाभिर्हीनाः स्म कृष्ण कस्मादपूर्ववत् ॥ ११ ॥ सर्वे कनकवर्णाभाः संवृत्ताः स्म न संशयः । किमिदं ब्रूहि नस्तत्वं किं मेरोः पार्श्वगा वयम् ॥१२॥ श्रीभगवानुवाच । मन्ये च बाणस्य नगराभ्यासस्थमरिन्दम । रक्षार्थं तस्य निर्गतो वह्निरेष स्थितो ज्वलन् ॥ १३ ॥ अग्नेराहवनीयस्य प्रभया स्म समाहताः । तेन नो वर्णवैरूप्यमिदं जातं हलायुध ॥ श्रीराम उवाच । यदि स्म सन्निकर्षस्था यदि निष्प्रभतां गताः । तद्विधत्स्व स्वयं बुद्ध्या यदत्रानन्तरं हितम् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच । कुरुष्व वैनतेय त्वं यच्च कार्यमनन्तरम् । त्वया विधाने विहिते करिष्याम्यहमुत्तमम् ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । एत-

कर सिद्ध चारणोंके शुभ मार्गमें आगए १० उस समय बलरामजी ने रणमें अप्रतिम श्रीकृष्णसे यह वाक्य कहा, कि-हे कृष्ण ! हम अपनी प्रभासे हीन क्यों होगए हैं ? ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था ११ हम सब सुवर्णकी समान आभावाले होगए हैं यह क्या है ? इसका तत्व हमसे कहिये, क्या हम मेरुपर्वतके समीपमें आगएहैं १२ श्रीभगवान् ने कहा, कि-हे अरिदमन ! मैं समझता हूँ, कि-हम बाणासुर के नगरके समीप आगए हैं नगरकी रक्षा करनेके लिये यह प्रदीप्त अग्नि निकल कर खड़ा होगया है १३ हम आहवनीय अग्निकी प्रभासे समाहत होरहे हैं, हे हलायुध ! इससे हमारा वर्ण बिगड़ गया है १४ बलरामजीने कहा; कि-यदि हम इसके पासमें होनेपर ही निष्प्रभ होगए हैं तोअब जो हितकारी बात हो उसको अपनी बुद्धिसे सोच कर करिये १५ श्रीभगवान् ने कहा, कि-हे वैनतेय ! अब जो कार्य करना चाहिये उसको करिये आपके उपाय करने पर मैं जिस कार्यको उत्तम समझूँगा उसे करूँगा १६ वैशम्पायनजीने कहा, कि इच्छानुसार रूप धारण

श्रुत्वा तु गरुडो वासुदेवस्य भाषणम् । चक्रे मुखसहस्रं हि कामरूपी महाबलः ॥१७॥ गङ्गामुपागमत्तूर्णं वैनतेयो महाबलः । आप्लुत्याकाशगङ्गायामपीय सलिलं बहु ॥ १८ ॥ प्रववर्षोपरिगतो वैनतेयः प्रतापवान् । तेनाग्निं शमयामास बुद्धिमान् विनतात्मजः ॥ १९ ॥ अग्निराहवनीयस्तु ततः शान्तिमुपागमत् । तं दृष्ट्वाहवनीयं तु शान्तमाकाशगङ्गया । परमं विस्मयं गत्वा सुपर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥ अथोवीर्यमथाग्निं तु यो दहेद्युगसंक्षये २१ अप्रमाणानां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः । कृष्णः संकर्षणश्चैव प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥ २२ ॥ ततः प्रशान्ते दहने सम्पतस्थे स पक्षिराट् । स्वपक्षबलविक्षेपं कुर्वन् घोरं महास्वनम् ॥ २३ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयं तत्र रुद्रस्यानुचराग्नयः । आस्थिता गरुडं ह्येते

करनेवाले महाबली गरुड़जीने वासुदेवके इस भाषणको सुनकर सहस्र मुख बना लिये ॥१७॥ फिर महाबली गरुड़जी शीघ्रतासे गङ्गाजी पर पहुँचे और उन्होंने आकाशगङ्गामें कूदकर बहुतसा जल पीलिया १८ फिर प्रतापी गरुड़जी ऊपर चढ़कर वर्षा बरसानेलगे इसप्रकार बुद्धिमान् विनतानन्दनने उस जलसे अग्निको शान्त कर दिया१९तब आहवनीय अग्नि शान्त होगया आहवनीय अग्निको आकाशगङ्गासे शान्तहुआ देखकर कृष्ण संकर्षण और महाबली प्रद्युम्न परम विस्मित हुए तब सुपर्णने वाक्य कहा, कि-अहो ! अग्निका वीर्य ऐसा है कि-वह प्रलयकालमें सबको भस्म करता है परन्तु मेरा विचारहै, कि-कृष्ण संकर्षण और महाबली प्रद्युम्न यह तीनों तीनों लोकोंके लिए पर्याप्त हैं । २०-२२ । तदनन्तर अग्निके शान्त होने पर पक्षिराज गरुड़ अपने पंखोंको बलपूर्वक फटफटा बड़ाभारी भयंकर स्वर करते हुए चलने लगे ।२३। इस को देखकर रुद्रकी अनुचर अग्नियें विस्मित होने लगीं "अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले गरुड़पर बैठे हुए ये यहाँ पर

-नानारूपा भयावहाः ॥ २४ ॥ किमर्थमिह सम्प्राप्ताः के चामीमे
जनास्त्रयः । निश्चयं नाधिगच्छन्ति ते गिरिव्रजवन्हयः ॥ २५ ॥
प्रावर्तयंश्च संग्रामं तैस्त्रिभिः सह यादवैः । तेषां युद्धप्रसक्तानां
स नादः सुमहानभूत् ॥ २६ ॥ तं च श्रुत्वा महानादं सिंहाना-
मिव गर्जताम् । अथाङ्गिराः स्वपुरुषं प्रेषयामास बुद्धिमान् ।२७।
यत्र तद्वर्तते युद्धं तत्र गच्छस्व मा चिरम् । दृष्ट्वा तत्सर्वमागच्छ
इत्युक्तः प्रस्थितस्त्वरन् ॥२८। तथेत्युक्त्वा स तद्युद्धं वर्तमान-
मवैक्षत । अग्नीनां वासुदेवेन संसक्तानां महामृधे ॥ २९ ॥ ते
जातवेदसः सर्वे कल्माषः कुसुमस्तथा । दहनः शोषणश्चैव तप-
नश्च महाबलः ॥ ३० ॥ स्वाहाकारस्य विषये प्रख्याताः पञ्च-
वन्हयः । अथापरे महाभागाः स्वैरनीकैर्व्यवस्थिताः ॥ ३१ ॥
पिठरः पतगः स्वर्णः श्वागाधो भ्राज एव च । स्वधाकाराश्रयाः

क्यों आए हैं और ये तीनों कौन हैं" गिरिव्रजकी अग्नियें इस
बातका कुछ निश्चय न करसकीं ॥ २५ ॥ और वे तीनों यादवों
के साथ संग्राम करनेलगीं तब उन युद्ध करनेवालोंका बड़ाभारी
शब्द होने लगा २६ दहाड़नेवाले सिंहोंकी समान उस महानाद
को सुनकर बुद्धिमान् अंगिरा अपने पुरुषको तहाँ भेजने लगे२७
(उससे कहा, कि-) जहां पर यह युद्ध होरहा है तहाँ पर तू जा
देर मतकर और सब बातको देखकर आ,इसभाँति कहने पर वह
त्वराके साथ चलने लगा २८ बहुत अच्छा कहनेके बाद उसने
होता हुआ युद्ध देखा उस महायुद्धमें अग्नि और वासुदेव संलग्न
होरहे थे २९ कल्माष कुसुम, दहन, शोषण, महाबल-तपन यह
स्वाहाकारके विषयमें प्रसिद्ध पाँच अग्नियें और दूसरी महाभाग
अग्नियें भी अपनी सेनाओंके साथ तहाँ डट रहीं थीं ।३०।३१।
पिठर, पतग, स्वर्ण, श्वागाध तथा भ्राज स्वधाकारके आश्रयसे
रहनेवाली ये पाँच अग्नियें भी तहां लड़ रहीं थी ।३२। महा-

पङ्क्त अयुध्यंस्तेऽपि चाग्नयः ॥ ३२ ॥ ज्योतिष्टोमविभागौ च वषट्काराश्रयौ पुनः । द्वावग्नी समयुध्येते महात्मानौ महाद्युती आग्नेयं रथमास्थाय शरमुद्यम्य भास्वरम् । तयोर्मध्येऽङ्गिराश्चैव महर्षिर्विबभौ रणे ॥३४॥ स्थितमाङ्गिरसं दृष्ट्वा विमुंचन्तं शितान् शरान् । कृष्णः प्रोवाच संक्रुद्धः स्मयन्निव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ तिष्ठध्वमग्नयः सर्वे एष वो विदधे भयम् । ममास्त्रतेजसा दग्धा दिशो यास्यथ विद्रुताः । अथाङ्गिरास्त्रिशूलेन दीप्तेन समधावत ३६ आददान इव क्रोधात् कृष्णप्राणान् महामृधे । त्रिशूलं तस्य दीप्तं तु चिच्छेद परमेषुभिः । अर्धचन्द्रैस्तथा तीक्ष्णैर्यमार्कदहनप्रभैः ३७ स्थूणाकर्णेन बाणेन दीप्तेन स महामनाः । विव्याधान्तकतुल्येन वक्षस्यङ्गिरसं ततः ॥३८॥ रुधिरौघप्लुतैर्गात्रैरंगिरा विह्वलन्निव ।

कान्तिमान् महात्मा ज्योतिष्टोम और विभाग नामक वषट्कारके आश्रयसे रहनेवाली दो अग्नियें भी तहाँ युद्ध करने लगीं ३३ महर्षि अंगिरा (मुख्य अग्नि) आग्नेय रथमें बैठकर प्रकाशवान् बाणको उठा उन दोनों अग्नियोंके मध्यमें शोभा पाने लगे ३४ तीक्ष्णबाणोंको छोड़ते हुए अंगिराको खड़े हुए देखकर क्रोध भरे हुए कृष्णसे बारम्बार मुस्कुरा कर कहने लगे, कि—॥३५॥ हे सब अग्नियो ! तुम सब खड़ी रहो मैं यह तुम्हारे ऊपर भय डालता हूँ तुम मेरे अस्त्रके तेजसे जब झुलसोगी, तो दिशाओंमें को भाग जाओगी उस समय अंगिरा क्रोध करके महायुद्धमें कृष्णके प्राणोंको पकड़ते हुएसे प्रदीप्त शूलको लेते हुए दौड़े तब श्रीकृष्णने यम सूर्य और अग्निकी समान प्रभावाले अति तीक्ष्ण अर्धचन्द्राकार श्रेष्ठ बाणोंसे उस त्रिशूलको काट डाला॥३६।३७। तदनन्तर महामना श्रीकृष्णने यमराजकी समान स्थूणाकर्ण नामक प्रदीप्त बाणसे अङ्गिराके वक्षःस्थलको वेध डाला ॥३८॥ रुधिरकी धाराओंसे भीगते हुए अङ्गोंके कारण अंगिरा विह्वल

विमुक्तभगात्रः सहसा पपात धरणीतले ॥ ३६ ॥ शेषास्ततोऽग्नयः सर्वे चत्वारो ब्रह्मणः सुताः । आधावन्तस्तदा शीघ्रं बाणस्य पुरमन्तिकात् ॥४०॥ अथागमत्ततः कृष्णो यत्र बाणपुरं ततः । अथ बाणपुरं दृष्ट्वा दूरात् प्रोवाच नारदः ॥४१॥ एतत्तच्छोणित-पुरं कृष्ण पश्य महाभुज । अत्र रुद्रो महातेजा रुद्राण्या सहितोऽवसत् ॥ ४२ ॥ गुहश्च बाणगुप्त्यर्थं सततं क्षेमकारणात् । नारदस्य वचः श्रुत्वा कृष्णस्त्विदमथाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ क्षणं चिन्तयतामत्र श्रूयतां च महामुने । यदि चावतरेद्रुद्रो बाणसंरक्षणं प्रति ॥ ४४ ॥ शक्तितो वयमप्यत्र सह योत्स्यामु येन वै । एवं विवदतोस्तत्र कृष्णनारदयोस्तदा ॥ ४५ ॥ प्राप्ता निमेषमात्रेण शीघ्रगा गरुडेन ते । ततः शंखं समादध्माय वदने पुष्करेक्षणः४६

होगए और शरीरके स्तब्ध होजानेके कारण पृथिवीमें सहसा गिर पड़े ॥ ३६ ॥ तदनन्तर बाकी बचे हुए ब्रह्माजीके पुत्र चारों अग्नि बाणपुरमेंको शीघ्रतासे भाग गए ॥ ४० ॥ तब तो कृष्ण जहाँ बाणपुर था तहाँको चलने लगे नारदजीने दूरसे ही बाणपुरको देखकर कहा, कि-४१ हे महाभुज कृष्ण! देखिये ! यह शोणितपुर है यहाँ पर महातेजस्वी कृष्ण रुद्राणी के साथ रहते हैं ४२ और बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये स्वामी कार्तिकेय भी यहाँ रहते हैं नारदजीके वचनको सुनकर कृष्णने यह बात कही कि -४३ हे महामुने ! आप मेरी बातको सुने और क्षण भर विचार करें, यदि बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये भगवान् शंकर आजाएँगे ४४ तो हम भी उनके साथ यहाँ शक्तिके अनुसार लड़ेंगे नारद और कृष्ण इस प्रकार कह सुनरहे थे ४५ कि-क्षणमात्रमें गरुड़ पर शीघ्रतासे चलकर तहाँ पर पहुँच गए, तदनन्तर कमलकी समान नेत्र वाले श्रीकृष्णने अपने मुखसे शंख लगाया ४६ मेघ जैसे चन्द्रमाको उगलता है इसी प्रकार वायुवेग

वायुवेगसमुद्धूतो मेघश्चंद्रमिवोद्गिरन् । ततः प्रध्माप्य तं शंखं भयमुत्पाद्य वीर्यवान् ॥४७॥ प्रविवेश पुरं कृष्णो बाणस्याद्भुतकर्मणः । ततः शङ्खप्रणादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥४८॥ बाणानीकानि सहसा सन्नह्यन्त समन्ततः । ततः किंकरसैन्यं तु व्यादिष्टं समरे भयात् ॥ ४९ ॥ कोटिशश्चापि बहुशो दीप्तप्रहरणास्तदा । तदसंख्येयमेकस्थं महाभ्रघनसन्निभम् ॥५०॥ नीलाञ्जनचयप्रख्यमप्रमेयमथाक्षयम् । दीप्तप्रहरणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥ प्रमाथगुणमुख्याश्च अयुध्यन् कृष्णमव्ययम् । सर्वतस्तैः प्रदीप्तास्यैः सार्चिष्मद्भिरिवाग्निभिः ॥५२॥ अभ्युपेत्य तदात्युग्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः । पीयते रुधिरं तेषां चतुर्णामपि संयुगे ॥ ५३ ॥ तद्बलं तु समासाद्य बलभद्रो महाबलः । प्रोवाच वचनं तत्र पश्यस्व बलनाशनम् ॥५४॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो विधत्स्वैषां महद्भयम् ।

से समुद्भूत हुए वीर्यवान् कृष्ण (दानवों) को भय उत्पन्न करते हुए शंखको बजानेलगे ४७ अद्भुत कर्म करने वाले कृष्ण बाणासुरके घरमें घुमने लगे तदनन्तर शंखोंके नादसे और भेरियोंके बड़े भारी शब्दसे बाणासुरकी सेना तयार होने लगी, तदनन्तर (बाणासुरने) भयके कारण सेनाको रणमें जानेकी आज्ञा दी ॥४८॥४९॥ उसमें चमकते हुए आयुधवाले करोड़ों योधा थे एक जगह खड़े हुए उन असङ्ख्य योधाओंका दल घनी घनघटा की समान प्रतीत होता था और काले अंजनके ढेरकी समान लगता था वह अप्रमेय था और अक्षय प्रतीत होता था, चमकते हुए आयुध वाले सब दैत्य दानव और राक्षस और मुख्य २ प्रमाथगण अव्यय कृष्णसे युद्ध करने लगे लपटोंवाले अग्नियों की समान चमकते हुए मुखवाले यक्ष राक्षस किन्नर युद्धमें उन चारोंके रक्तको पीने लगे ॥ ५०–५३ ॥ महाबली बलभद्र उनके बलको जान कर अपने बलको नष्ट होता हुआ देख कर

इति सञ्चोदितः कृष्णो बलभद्रेण धीमता ॥ ५५ ॥ तेषां वधार्थमाग्नेयं जग्राह पुरुषोत्तमः । अस्त्रमस्त्रविदां श्रेष्ठो यमान्तकसमप्रभः । प्रविधूयासुरगणान् क्रव्यादानस्त्रतेजसा ॥ ५६ ॥ मययौ त्वरया युक्तो यत्र दृश्येत तद्‌बलम् । शूलपट्टिशशक्त्यृष्टिपिनाकपरिघायुधम् ॥ ५७ ॥ प्रमाथगणभूयिष्ठं बलं तदभवत् क्षितौ । शैलमेघप्रतीकाशैर्नानारूपैर्भयानकैः । वाहनैः संघशः सर्वे योधास्तत्रावतस्थिरे ॥ ५८ ॥ वातोद्धूतैरिव घनैर्विप्रकीर्णैरिवाचलैः । शुशुभे तत्र बहुलैरनीकैर्दृढधन्विभिः । मुसलैरसिभिः शूलैर्गदाभिः परिघैस्तथा ॥ ५९ ॥ अबाधं तदसंख्येयं शुशुभे सर्वतो बलम् । ततः संकर्षणो देवमुवाच मधुसूदनम् ॥६०॥ कृष्ण कृष्ण महा-

---

यह वचन कहने लगे ॥ ५४ ॥ हे महाभुज कृष्ण ! इनको अच्छी प्रकारसे दण्ड दीजिये बुद्धिमान् बलभद्रके इसप्रकार कहनेसे यमराजकी समान प्रभा वाले अस्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने उनका वध करनेके लिये आग्नेय अस्त्रको ग्रहणकिया और अपने अस्त्रके तेजसे कच्चे मांसका भक्षण करनेवाले राक्षसों को कँपाते हुए त्वराके साथ तहाँको चले जहाँ पर शूल पट्टिश शक्ति ऋष्टि पिनाक और परिघ आदि आयुधोंको धारण करने वाले तथा जिनमें बहुतसे प्रमाथ थे, ऐसी सेना जहाँ पृथिवी पर खड़ी हुई दीख रही थी, वहाँ पर सब योधा टोली बाँध कर पर्वत और मेघकी समान विशाल अनेक प्रकारके भयानकरूप वाले वाहनों पर बैठे हुए थे ॥ ५५-५८ मूसल, तलवार, शूल, गदा और परिघ तथा दृढ धनुषधारी बहुतसी सेनाओंसे वह स्थान वायुसे उड़ते हुए बादलोंकी समान और फैलते हुए पर्वतोंकी समान शोभा पाने लगा। ।५६। वह असङ्ख्य तथा जिसको पीड़ा न दी जासके ऐसा सेनादल चारों ओरसे शोभा पाने लगा तदनन्तर बलदेवजी मधुसूदनदेवसे कहने लगे, कि-॥६०॥ कृष्ण !

बाहो यदेतद्द दृश्यते बलम् । एतैः सह रणे योद्धुमिच्छामि पुरुषोत्तम ॥६१॥ श्रीकृष्ण उवाच । ममाप्येषैव सञ्जाता बुद्धिरित्यब्रवीच्च तम् । एभिः सह रणे योद्धुमिच्छेयं योधसत्तमैः ॥६२॥ युद्धयतः प्राङ्मुखस्यास्तु सुपर्णो नौ ममाग्रतः । सव्यपार्श्वे तु प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणे भवान् । रक्षितव्यमथान्योन्यमस्मिन् घोरे महामृधे ॥६३॥ वैशम्पायन उवाच । एवं ब्रुवन्तस्तेन्योन्यमधिरूढाः खगोत्तमम् । गिरिशृङ्गनिभैर्घोरैर्गदामुसललाङ्गलैः ६४ युध्यतो रौहिणेयस्य रौद्रं रूपमभूत्तदा युगान्ते सर्वभूतानां कालस्येव दिधक्षतः ॥ ६५ ॥ आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेनावपोथयत् । चचारातिबलो रामो युद्धमार्गविशारदः ॥ ६६ ॥ प्रद्युम्नः शरजालैस्तान समन्तात् पर्यवारयत् । दानवान् पुरुषव्याघ्रो युध्य-

---

कृष्ण ! हे महाभुज ! हे पुरुषोत्तम ! जो यह सेना दीख रही है मैं इसके योधाओंके साथ रणमें युद्ध करना चाहता हूँ ॥६१॥ श्रीकृष्ण कहने लगे,(श्रीकृष्णने ,बलदेवजीसे कहा, कि—मेरा भी यही विचार है मैं भी इन श्रेष्ठ योधाओंके साथ रणमें जूझना चाहता हूँ ॥ ६२ ॥ जब मैं पूर्वकी ओर मुख करके युद्ध करूँ तब गरुड़जी मेरे आगे हों बाईं ओर प्रद्युम्न और दाहिनी ओर आप रहें और इस महाघोर युद्धमें एक दूसरेकी रक्षा करें ।६३। वैशम्पायनजीने कहा, कि- इसप्रकार परस्पर बात चीत करते हुए वे सब पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़जी पर सवार होगए पर्वतके शिखरकी समान भयंकर गदा, मूसल और लांगलसे युद्ध करनेवाले बलदेवजीका रूप प्रलयके समय सब प्राणियोंको भस्म करने वाले कालकी समान भयंकर होगया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ युद्ध करनेमें चतुर अति बली बलरामजी युद्धमें घूमने लगे और योधाओंको लांगलसे खींचकर मूसलसे कुचलने लगे ६६ महाबली पुरुषव्याघ्र प्रद्युम्न युद्ध करते हुए दानवोंको बाणोंके जालोंसे रोकने लगे ६७

गानान् महाबलः ॥६७॥ स्निग्धाञ्जनचयप्रख्यः शंखचक्रगदा-
धरः । प्रध्माप्य बहुशः शंखमयुध्यत जनार्दनः ॥६८॥पक्षप्रहार-
निहता नखतुण्डाग्रदारिताः । नीता वैवस्वतपुरं वैनतेयेन धीमता
तैर्हन्यमानं दैत्यानामनीकं भीमविक्रमम् । अभज्यत तदा संख्ये
बाणवर्षसमाहतम् ॥७०॥ मथ्यमानेष्वनीकेषु त्रातुकामः समभ्य-
यात् । ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः ॥७१॥भस्म-
प्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः । नदन् मेघसहस्रेण तुल्यो
निर्घातनिःस्वनः ॥ ७२ ॥ निःश्वसन् जृम्भमाणश्च निद्रान्वित-
तनुर्भृशम् । नेत्राभ्यामाकुलं वक्त्रं मुहुः कुर्वन्भ्रमन् मुहुः ॥ ७३ ॥
संहृष्टरोमा ग्लानाक्षो भग्नचित्त इव श्वसन् । हलायुधमभिक्रुद्धः

चिकने अंजनके ढेरकी समान शंख चक्र और गदाको धारण करने वाले श्रीकृष्ण अनेक वार शङ्खको बजाकर युद्ध करने लगे बुद्धिमान् गरुड़जीने (बहुतसे)राक्षसोंको अपने पंखोंके प्रहारसे मार कर और नाखूनोंसे विदीर्ण करके यमराजकी नगरीको भेज दिया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उन वीरोंसे पिटता हुआ भयंकर पराक्रम करने वाला दैत्योंका सेनादल बाणोंकी वर्षासे घायल होकर युद्धसे भागने लगा ॥ ७० ॥ सेनाओंमें भग्गी पड़ने पर उनको बचानेकी इच्छासे तहाँ पर ज्वर आया उसके तीन पैर थे और तीन शिर थे छः भुजाएँ थीं नौ नेत्र थे ७१ वह धूलका प्रहार करता था और वह शिवजीका ज्वर यमराजकी समान था, सहस्र मेघोंकी समान गड़गड़ा रहा था और उल्कापातकी समान शब्द कर रहा था ॥ ७२ ॥ वह सांस ले रहा था जंभाई ले रहा था और उसका शरीर निद्रासे भररहा था वह अपने नेत्रोंसे अपने मुखको व्याकुल बना रहा था और वारम्बार घूम रहा था ७३ उसके रोम हर्षमें भर रहे थे उसके नेत्र उदास होरहे थे और वह टूटे हुए चित्त वाले पुरुषकी समान श्वास ले रहा था उसने क्रोध

साक्षेपमिदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ किमेवं बलमत्तोसि न मां पश्यसि संयुगे । तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् मोक्ष्यसे रणमूर्धनि ॥ ७५ ॥ इत्येवमुक्त्वा प्रहसन् हलायुधमुपाद्रवत् । युगान्ताग्निनिभैर्घोरैर्मुष्टिभिर्जनयन् भयम् ॥७६॥ चरतस्तत्र संग्रामे मण्डलानि सहस्रशः । रौहिणेयस्य शीघ्रेण नावस्थानमदृश्यत॥७७॥तस्य भस्म तदाक्षिप्तं ज्वरेणाप्रतिमौजसा । शैघ्रयाद्वक्षो निपतितं शरीरे पर्वतोपमे ॥७८॥ तद्भस्म वक्षसस्तस्य मेरोः शिखरमागमत् । प्रदीप्तं पतितं तत्र गिरिशृङ्गं व्यदारयत् ॥ ७९ ॥ शेषेण वापि जज्वाल भस्मना कृष्णपूर्वजः । निःश्वसन् जृम्भमाणश्च निद्रान्विततनुर्भृशम्॥८०॥नेत्रयोराकुलत्वं च मुहुः कुर्वन् भ्रमंस्तथा । संहृष्टरोमा

में भरकर बलदेवजीसे आक्षेपके साथ यह बात कही, कि–७४ तू इस प्रकार बलसे क्यों मत्त हो रहा है क्या तू मुझे युद्धमें नहीं देखता खड़ा रह ! खड़ा रह ! मैं तुझे रणके मुहाने पर जीता हुआ नहीं छोड़ूँगा ॥ ७५ ॥ इस प्रकार कहनेके उपरान्त वह ज्वर हँसा और अपनी प्रलयकालकी अग्निकी समान भयंकर मुष्ठियोंसे भय उपजाता हुआ बलदेवजीके ऊपर दौड़ा ॥ ७६ ॥ उस समय सहस्रों मंडलोंको संग्राममें दिखाते हुए बलदेवजीका शीघ्रताके कारण कोई छिद्र दिखाई नहीं देता था ॥७७॥ अप्रतिम ओज वाले ज्वरने उनके ऊपर शीघ्रतासे भस्म फेंकी वह उनके पर्वतकी समान शरीरमें वक्षः स्थल पर पड़ी ॥७८॥ फिर वह भस्म उनके वक्षः स्थलसे मेरु पर्वतके शिखर पर पहुँची और उसने प्रदीप्तरूपसे गिर कर पहाड़के शिखरको तोड़ डाला ७९ जो भस्म बलदेवजीके वक्षःस्थलमें लगी हुई रहगई थी उस भस्म से वह जलने लगे सांस खेंचने लगे जंभाई लेने लगे और उन का शरीर सोने लगा८०उनके नेत्रोंमें आकुलता प्रतीत होनेलगी और वह वारम्वार भ्रम करने लगे उनके रोम खिलने लगे नेत्र

ग्लानाङ्गः क्षिप्तचित इव श्वसन्। ततो हलधरो भग्नः कृष्ण-
माह विचेतनः। कृष्ण कृष्ण महाबाहो मतीतोऽस्म्यभयं कुरु ८२
दह्यामि सर्वतस्तात कथं शान्तिर्भवेन्मम। इत्येवमुक्ते वचने बले-
नामिततेजसा ॥ ८३ ॥ प्रहस्य वचनं प्राह कृष्णः प्रहरतां वरः।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा परिष्वक्तो हलायुधः ॥ ८४ ॥ कृष्णेन
परमस्नेहात्ततो दाहात् प्रमुच्यत। मोक्षयित्वा बलं तत्र दाहात्तु
मधुसूदनः ॥ ८५ ॥ प्रोवाच परमक्रुद्धो वासुदेवो ज्वरं तदा।
श्रीभगवानुवाच। एह्येहि ज्वर युध्यस्व या ते शक्तिर्महामृधे ८६
यच्च ते पौरुषं सर्वं तद्दर्शयतु नो भवान्। सव्येतराभ्यां बाहु-
भ्यामेवमुक्तो ज्वरस्तदा ८७ निक्षेपैनं महद्भस्म ज्वालागर्भं महाबलः।
ततः प्रदीप्तगात्रस्तु मुहूर्तमभवत्प्रभुः ॥ ८८ ॥ कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः

भारी होनेलगे, और वह बावलेकी समान श्वास लेने लगे ८१ तब
तो हलधर उदास होगए और उन्होंने अपने मनसे कृष्णसे कहा,
कि–कृष्ण! कृष्ण! हे महाभुज कृष्ण! अब तो मैं मराजाता
हूँ आप मुझे अभय करिये ॥ ८२ ॥ हे तात! मैं चारों ओरसे
जल रहा हूँ मुझे किस प्रकार शान्ति मिले, अमित तेजस्वी बल-
देवके इस प्रकार वचन कहने पर ॥ ८३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें
श्रेष्ठ श्रीकृष्णने हँस कर यह बात कही, कि–तुम डरो मत! इस
प्रकार कहनेके उपरान्त उन्होंने बलदेवजीका आलिंगन किया ८४
कृष्णने परमप्रेमसे उनका आलिंगन किया तब उनका दाह जाता
रहा। मधुसूदनने बलदेवजीको दाहसे छुड़ा दिया तदनन्तर क्रोधमें
भरे हुए वासुदेव ज्वरसे कहने लगे, भगवान्ने कहा, कि–हे ज्वर!
आ! आ! तेरी जितनी शक्ति हो उससे तू मेरे साथ युद्धकर
तुझमें जितना पुरुषार्थ हो उस सबको हमें दिखा, जब श्रीकृष्णने
दाहिनी और बाईं भुजासे ज्वरसे इस प्रकार कहा ॥ ८५–८७ ॥
तब महाबली ज्वरने ज्वाला भरी हुई भस्म श्रीकृष्णके ऊपर

शर्मं चाग्निर्गतस्ततः । ततस्तैर्भुजगागारैर्बाहुभिस्तु त्रिभिस्तदा ।
जघान कृष्णं ग्रीवायां मुष्टिनैकेन चोरसि । स संप्रहारस्तुमुल-
स्तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ६० ॥ ज्वरस्य तु महायुद्धे कृष्णस्य तु
तु महौजसः । पर्वतेषु पतन्तीनामशनीनामिव स्वनः ॥ ६१ ॥
कृष्णज्वरभुजाघातैर्युद्धमासीत् सुदारुणम् । नैवमेवं प्रहर्तव्यमिति
तत्र महास्वनः । मुहूर्तमभवद्युद्धमन्योन्यं तु महात्मनोः ॥ ६२ ॥
ततो ज्वरं कनकविचित्रभूषणं न्यपीडयद्भुजवलयेन संयुगे । जग-
त्त्रयं समुपनयन् जगत्पतिः शरीरधृग्गगनचरं महामृधे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि कृष्णज्वरयुद्धे
द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

फेंकी तब तो क्षण भरके लिए प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ प्रभु श्रीकृष्णका शरीर जलता हुआ सा दिखाई दिया तदनन्तर वह अग्नि शान्त होगई तदनन्तर उस ज्वरने जिनमें सर्प लिपट रहे थे ऐसी अपनी तीन भुजाओंसे श्रीकृष्णके कण्ठको पकड़ लिया और एक हाथसे उनके वक्षःस्थलमें एक घूँसा मारा तदनन्तर उस महायुद्धमें महातेजस्वी कृष्ण और ज्वर इन दोनों पुरुषसिंहों का तुमुल युद्ध होने लगा उस समय उन दोनोंके प्रहारका शब्द पर्वत पर पड़ते हुए वज्रोंकी समान होने लगा ॥ ८८–६१ ॥ कृष्ण और ज्वरकी भुजाओंके आघातसे तहाँ पर दारुण युद्ध होने लगा, तहाँ पर यह बड़ाभारी शब्द हुआ, कि–इस प्रकार प्रहार नहीं करना चाहिये, इस प्रकार उन दोनों महात्माओंमें मुहूर्त भर तक युद्ध हुआ ॥ ६२ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण सुवर्णके विचित्र आभूषणोंको धारण करने वाले ज्वरको अपनी भुजाके कंकणसे पीड़ित करने लगे . जगत्पति श्रीकृष्ण जगत्का क्षय करने वाले और महायुद्धमें शरीर धारण कर आए हुए आकाश-चारी ज्वरको पीड़ित करने लगे॥ ६३ ॥ ॥ १२२ ॥

वैशम्पायन उवाच । मृतमित्यभिविज्ञाय ज्वरं शत्रुनिषूदनः । कृष्णो भुजबलाभ्यां तु चिक्षेपाथ महीतले ॥ १ ॥ मुक्तगात्रः स बाहुभ्यां कृष्णदेहं विवेश ह । अमुक्त्वा विग्रहं तस्य कृष्णस्याप्रतिमौजसः॥२॥स ह्याविष्टस्तदा तेन ज्वरेणाप्रतिमौजसा । कृष्णः स्खलन्निव मुहुः क्षितौ गाढं व्यवर्तत ॥३॥ जृम्भते श्वसते चैव वल्गते च पुनः पुनः।रोमांचोत्थितगात्रश्च निद्रया चाभिभूयते ४ ततः स्थैर्यं समालम्ब्य कृष्णः पुरपुरञ्जयः । विकुर्वति महायोगी जृम्भमाणः पुनः पुनः ॥ ५ ॥ ज्वराभिभूतमात्मानं विज्ञाय पुरुषोत्तमः । सोऽसृजज्ज्वरमन्यं तु पूर्वज्वरविनाशनम् ॥ ६ ॥ घोरं वैष्णवमत्युग्रं सर्वप्राणिभयंकरम् । संसृष्टवान् स तेजस्वी तं ज्वरं भीमविक्रमम्॥७॥ज्वरः कृष्णविसृष्टस्तु गृहीत्वा तं ज्वरं बलात् ।

वैशम्पायनजीने कहा, कि-शत्रुओंको पीड़ित करने वाले श्रीकृष्णने ज्वरको मरा हुआ जान कर अपनी भुजाओंके बल से उसे पृथ्वीतलमें फेंक दिया ॥ १ ॥ श्रीकृष्णकी भुजाओंसे जब उसका शरीर छूट गया तब भी उसने अमित तेजस्वी श्रीकृष्ण के शरीरको नहीं छोड़ा और वह श्रीकृष्णके शरीरमें घुसगया २ तब अप्रतिम ओजवाले ज्वरने श्रीकृष्णको घेर लिया कृष्ण वार २ स्खलित होने लगे और भूमिमें गिरने लगे ॥३॥ जंभाई लेने लगे श्वास लेने लगे वार २ कुछका कुछ कहने लगे उनके शरीरमें रोमाञ्च उठने लगा और वह निद्रासे तिरस्कृत होनेलगे ४ तदनन्तर शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले महायोगी श्रीकृष्ण स्थिर होकर वारम्वार जम्भाई ले विकार दिखाने लगे ।५। पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने अपने आपेको ज्वरसे पीड़ित समझकर उस ज्वरका नाश करनेवाला दूसरा ज्वर रचा ॥ ६ ॥ तेजस्वी श्रीकृष्णने भयंकर पराक्रमी और सब प्राणियोंको भय देने वाले अति उग्र वैष्णव नामके ज्वरको रचा ॥ ७ ॥ कृष्णके छोड़े हुए ज्वरने उस

कृष्णाय हृष्टः प्रायच्छत्तां जग्राह ततो हरिः ॥ ८ ॥ ततस्तं परम-
क्रुद्धो वासुदेवो महाबलः । स्वगात्रात् स्वज्वरेणैव निष्क्रामयत
वीर्यवान् ॥ ९ ॥आविध्य भूतले चैनं शतधा कर्तुमुद्यतः । व्या-
घोषत ज्वरस्तत्र भोः परित्रातुमर्हसि ॥१०॥आविध्यमाने तस्मिं-
स्तु कृष्णेनामिततेजसा । अशरीरा ततो वाणी ह्यन्तरिक्षादभा-
षत ॥ ११ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्धन । मा
वधीर्ज्वरमेनं तु रक्षणीयस्त्वयानघ ॥ १२ ॥ इत्येवमुक्ते वचने तं
मुमोच हरिः स्वयम् । भूतभव्यभविष्यस्य जगतः परमो गुरुः१३
कृष्णस्य पादयोर्मूर्ध्ना शरणं सोऽगमज्ज्वरः । एवं मुक्तो हृषीकेशं
ज्वरो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १४ ॥ शृणुष्व मम गोविन्द विज्ञाप्यं

ज्वरको बलपूर्वक पकड़ लिया और प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उस को ग्रहण करलिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए महाबली वीर्यवान् वासुदेवने अपने ज्वरसे उस ज्वरको अपने शरीरमेंसे निकाला ॥ ९ ॥ और उस ज्वरको घुमा कर पृथ्वीतलमें पटक उसके सैंकड़ों टुकड़े करनेको उद्यत होगए तब त्रस्त होता हुआ ज्वर चिल्लाने लगा, कि—हे प्रभो ! आप मेरी रक्षा करिये १० जब अमिततेजस्वी श्रीकृष्ण उस ज्वरको घुमा रहे थे तब अन्त-रिक्षमेंसे आकाशवाणी कहने लगी, कि—॥ ११ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभुज ! हे यादवोंके आनन्दको बढ़ानेवाले!आप इस ज्वरको न मारिये हे निष्पाप !इसकी तो आपको रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार कहने पर हरिने उसको छोड़दिया वह बीते हुए वर्तमान और होनेवाले जगत्के परमगुरु हैं ।१३। तदनन्तर वह बुखार श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें अपना मस्तक रख कर उनकी शरण लेना चाहने लगा और इस प्रकार छूटा हुआ बुखार श्रीकृष्णसे यह बात कहने लगा, कि—॥ १४॥ हे यदुनन्दन ! हे गोविन्द ! मैं जिस बातको जताना चाहता हूँ

यदुनन्दन । यो मे मनोरथो देव तं त्वं कुरु महाभुज ॥ १५ ॥
अहमेको ज्वरस्तात नान्यो लोके ज्वरो भवेत् । त्वत्प्रसादाद्धि
देवेश वरमेनं वृणोम्यहम् ॥१६॥ देव उवाच । एवं भवतु भद्रन्ते
यथा त्वं ज्वर कांक्षसे । वरार्थिनां वरो देयो भवांश्च शरणं गतः
एक एव ज्वरो लोके भवानस्तु यथा पुरा । योयं मया ज्वरः
सृष्टो मय्येवैष प्रलीयताम् ॥१८॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्ते
तु वचने ज्वरं प्रति महायशाः । कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठः पुनर्वाक्य-
मुवाच ह ॥ १९ ॥ वासुदेव उवाच । शृणुष्व ज्वर सन्देशं यथा
लोके चरिष्यसि । सर्वजातिषु विश्रब्धं यथा स्थावरजङ्गमे ।२०।
त्रिधा विभज्य चात्मानं मत्प्रियं यदि कांक्षसे । चतुष्पादान् भजै-
केन द्वितीयेन च स्थावरान् ॥२१॥ तृतीयो यश्च ते भागो मानु-

उसको आप सुनिये हे महाभुजदेव ! जो मेरा मनोरथ है उस
को आप पूर्ण करिये ॥ १५ ॥ हे तात ! मैं ही एक ज्वर
रहूँ संसारमें और कोई दूसरा बुखार न हो हे देवेश ! आप
की कृपासे मैं इस वरको मांगना चाहता हूँ ॥ १६ ॥ भगवानने
कहा, कि-" तथास्तु " तेरा कल्याण हो हे बुखार ! तू जैसा
चाहता है तैसा ही हो वर माँगने वालोंको वर देना चाहिये और
तुम भी शरणमें आ गए हो ॥ १७ ॥ संसारमें एक ही बुखार
रहे पहलेकी समान एक आप ही रहे, और जिस ज्वरको मैंने
रचा है वह मुझमें ही लीन हो जाए ॥ १८ ॥ वैशम्पायनजीने
कहा, कि-इस प्रकार बातचीत होने पर प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ
महायशस्वी श्रीकृष्णने ज्वरसे फिर यह बात कही, कि—१९
वासुदेव कहने लगे हे बुखार ! तू स्थावर जङ्गमकी सब जातियों
में जिस प्रकार विश्वस्त होकर घूम सकेगा उस संदेशको सुन २०
यदि तू मेरा प्रिय करना चाहता है तो अपने शरीरको तीन भागों
में बाँट अर्थात् अपने तीन शरीर बना, एक शरीरसे चार पैर

षेपूपपत्स्यते । त्रिधा भूतं वपुः कृत्वा पक्षिषु त्वं भव ज्वर २२
चतुर्थो यस्तृतीयस्य भविष्यति स ते ध्रुवम् । एकान्तरस्तृतीयस्तु
स वै चातुर्थिको ज्वरः ॥ २३ ॥ मानुषेष्वपि भेदेन वस त्वं ग-
विभज्य वै । जातिष्वथावशेषासु निवस त्वं शृणुष्व मे ॥ २४ ॥
वृक्षेषु कीटरूपेण तथा संकोचपत्रकः । पाण्डुपत्रश्च विख्यातः फले-
ष्वातुर्यमेव च ॥२५॥ अपां तु नीलिका विद्याच्छिखोद्भेदेन बर्हि-
णाम् । पद्मिन्यादौ हिमो भूत्वा पृथिव्यामपि चोषरः ॥ २६ ॥
गैरिकः पर्वतेष्वेव मत्प्रसादाद्भविष्यसि । गोष्वपस्मारको भूत्वा
खोरकश्च भविष्यसि ॥ २७ ॥ एवं त्वं बहुरूपेण भविष्यसि

वालोंका सेवन कर दूसरे शरीरसे स्थावरोंको भोग ।२१। और
जो तेरा तीसरा शरीर है उसका मनुष्योंके ऊपर प्रयोग करना
उचित है हे बुखार ! तू अपने शरीरको तीन प्रकारका करके इस
प्रकार २२ और तेरे तीसरे शरीका जो चौथा हिस्सा है उससे
तू पक्षियोंके ऊपर प्रहार करना जिसमें एक दिन बीचमें पड़ता
है वह तिजारी बुखार भी तू ही हो, और जिसमें तीन दिन
बीचमें पड़ते है ऐसा चातुर्थिक बुखार भी तूही होगा ।२२।२३।
तू मनुष्योंमें भी अपने शरीरके भेद करके निवास कर और अव-
शिष्ट योनियोंमें भी निवास कर और मेरी बातको भी तू सुन २४
तू वृक्षोंमें कीटरूप होकर निवास कर और पत्तोंको सकोड़ने वाला
तथा पत्तोंको सफेद करने वाला होकर निवास कर और फलों
में आतुर्यरूप होकर निवास कर ॥ २५ ॥ और जलोंमें नीलमा
रूप होकर निवास कर और मोरोंमें उनकी शिखाका गिरना बन
कर निवास कर और कमलिनी आदिमें पाला बन कर निवास
कर और पृथ्वीमें कल्लड़ बनकर निवास कर ॥ २६ ॥ और तू
मेरे प्रसादसे पर्वतोंमें गैरिक (गेरु) होजावेगा और गौओंमें
अपस्मारक (भूतावेश) और खोरख (चरण रोग) होवेगा २७

महीतले । दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि प्राणिनां प्रशमेष्यसि ॥२८॥ ऋते देवमनुष्यांस्त्वां नान्यस्तु विसहिष्यति । वैशम्पायन उवाच । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा ज्वरो हृष्टमना अभूत् ॥ २९ ॥ प्रोवाच वचनं किंचित् प्रणमित्वा कृताञ्जलिः । ज्वर उवाच । सर्वजाति-प्रभुत्वेन कृतो धन्योऽस्मि माधव ॥ ३० ॥ भूयश्च ते वचः कर्तु-मिच्छामि पुरुषर्षभ । तदाज्ञापय गोविन्द किं करोमि महाभुज ३१ अहमसुरकुलप्रमाथिना त्रिपुरहरेण हरेण निर्मितः । रणशिरसि विनिर्जितस्त्वया प्रभुरसि देव तवास्मि किंकरः ॥ ३२ ॥ धन्यो-स्म्यनुग्रहीतोऽस्मि यत्त्वया मत्प्रियं कृतम् । आज्ञापय प्रियं किं ते चक्रायुध करोम्यहम् ॥३३॥ वैशम्पायन उवाच । ज्वरस्य वचनं

इस प्रकार तू पृथ्वीमें अनेक रूपोंसे विचरण करेगा और छू कर तथा दर्शन देकर प्राणियोंको मारडाला करेगा ॥ २८ ॥ देवता और मनुष्योंके अतिरिक्त और कोई तुझे नहीं सह सकेगा, वैशं-पायनजीने कहा, कि--श्रीकृष्णके वचनको सुनकर ज्वरका चित्त प्रसन्न होगया ॥ २९ ॥ और वह हाथ जोड़ कर प्रणाम करके कुछ कहने लगा, बुखारने कहा, कि हे माधव ! आपने मुझे सब जातियोंका स्वामी बना दिया अतः मैं धन्य होगया ॥३०॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अब मैं आपकी कुछ आज्ञा पालन करना चाहता हूँ हे गोविन्द ! उसकी आप आज्ञा दीजिये हे महाभुज ! मैं क्या करूँ ॥३१॥ राक्षसोंके कुलका नाश करने वाले त्रिपुरको हरने वाले भगवान् हरने मुझे रचा है और आपने मुझे रणके मुहाने पर जीत लिया अतः आप मेरे प्रभु होगए और हे देव ! मैं आप का किंकर होगया हूँ ॥३२॥ आपने जो मेरा प्रिय कार्य किया इससे मैं धन्य और अनुग्रहीत होगया हूँ आज्ञा दीजिये हे चक्रा-युध ! मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूँ ॥ ३३ ॥ वैशम्पायनजी कहने लगे; कि-बुखारके वचनको सुनकर वासुदेवने सब बात

श्रुत्वा वासुदेवोऽब्रवीद्वचः । अभिसन्धि शृणुष्वाद्य यन्त्वां वक्ष्यामि निश्चयात् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच । महाहवे तव मम च द्वयोरिमं पराक्रमं भुजबलकेवलास्त्रयोः । प्रणम्य मामेकमनाः पठेत्तु यः स वै भवेज्ज्वरविगतज्वरो नरः ॥ ३५ ॥ त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिरा नवलोचनः । स मे प्रीतः सुखं दद्यात् सर्वामयपतिर्ज्वरः ॥ ३६ ॥ आद्यन्तवन्तः कवयः पुराणाः सूक्ष्मा बृहन्तोप्यनुशासितारः । सर्वान् ज्वरान् घ्नन्तु ममानिरुद्धप्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवाः ॥३७॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु कृष्णेन ज्वरः साक्षान्महात्मना । प्रोवाच यदुशार्दूलमेवमेतद्भविष्यति ३८ वरं लब्ध्वा ज्वरो हृष्टः कृष्णाच्च समयं पुनः । प्रणम्य शिरसा कृष्णमपक्रान्तस्ततो रणात् ॥ ३९ ॥

कही कि–मैं जिस बातका निश्चय करके कहता हूँ मेरी उस बात को तुम सुनो ॥३४॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि–जो व्यक्ति एकाग्र चित्तसे मुझे प्रणाम करके जिसमें भुजाका बल ही अस्त्र है ऐसे इस महायुद्धमें हुए हमारे और तुम्हारे दोनोंके पराक्रमको पढ़े वह पुरुष बुखारसे छूट जाया करे। ३५॥ (उस समय निम्नलिखित अर्थ वाले मंत्रको पढ़ना चाहिये)तीन पैर वाला भस्मका प्रहार करनेवाला तीन शिर वाला नौ नेत्र वाला सब रोगोंका स्वामी बुखार प्रसन्न होकर मुझे सुख देय ॥ ३६ ॥ आदि अन्तवाले चतुर, प्राचीन, सूक्ष्म, महान् तथा शासन करने वाले अनिरुद्ध प्रद्युम्न बलदेव और वासुदेव यह मेरे सब बुखारोंको नष्ट करें ३७ वैशम्पायनजीने कहा, कि–महात्मा श्रीकृष्णने प्रत्यक्ष होकर ज्वर से इस प्रकार कहा,तब यादवोंमें सिंहकी समान श्रीकृष्णसे ज्वर ने कहा, कि- ऐसा ही होगा ।३८। वरको पाकर बुखार प्रसन्न होगया था फिर उसने वासुदेवसे प्रतिज्ञा की फिर वह वासुदेव को शिर झुका प्रणाम कर रणमेंसे भाग गया ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्ते त्वरिताः सर्वे त्रयस्त्रय इवा-
ग्नयः । वैनतेयमथारुह्य युध्यमाना रणे स्थिताः ॥१॥ततः सर्वा-
ण्यनीकानि बाणवर्षैरवाकिरन् । अर्दयन वैनतेयस्था नदन्तोऽति-
बलाद्रणे ॥ २ ॥ चक्रलाङ्गलपातैश्च बाणवर्षैश्च पीडितम् । सं-
चुकोप महानीकं दानवानां दुरासदम् ॥३॥ कक्षेऽग्निरिव संवृद्धः
शुष्केन्धनसमीरितः । कृष्णबाणाग्निरुद्धूतो वृद्धिं परमां गतः
दानवानां सहस्राणि तस्मिन् समरमूर्धनि । युगान्ताग्निरिवार्चि-
ष्मान्दह्यमानो व्यराजत ॥ ५ ॥ तां दीप्यमानां महतीं नानाप्रह-
रणार्दिताम् । सेनां बाणः समासाद्य वारयन् वाक्यमब्रवीत् ६
लाघवं समुपागम्य किमर्थं भयविह्वलाः । दैत्यवंशसमुत्पन्नाः
पलायध्वं महाहवात् ॥ ७ ॥ कचचासिगदाप्रासखड्गचर्मपरश्व-

वैशम्पायनजीने कहा, कि-तदनन्तर तीनों अग्नियोंकी समान वे तीनों फुर्तीके साथ गरुड़ पर सवार होकर रणमें युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ तदनन्तर उन्होंने सब सेनाको बाणोंकी वर्षा करके छादिया, गरुड़जी पर बैठे हुए (वे सब) बलपूर्वक नाद करके राक्षसोंको पीड़ित करने लगे ॥ २ ॥ सुदर्शन चक्र और लांगल के गिरनेसे तथा बाणोंकी वर्षासे पीड़ित होने पर दुरासद दानवों की बड़ीभारी सेना कोपमें भरगई ॥ ३ ॥ सूखे ईंधनसे प्रेरित घासफूसमें पड़े हुए अग्निकी समान बढ़ा हुआ कृष्णका बाणाग्नि कम्पित होकर बहुत बढ़गया वह लपटोंवाला बाणाग्नि रणके मुहाने पर सहस्रों दानवोंको भस्म कर प्रलयकालकी अग्निकी समान शोभा पाने लगा ॥ ५ ॥ अनेकप्रकारके बाणोंसे पीड़ित होती हुई उस जलती हुई बड़ीभारी सेनाके पास बाणासुर पहुँचा और उसने उसको रोकते हुए कहा, कि ६ तुम फुर्तीले होने पर भी भयके कारण क्यों घबड़ारहे हो (अरे!) तुम दैत्यवंशमें उत्पन्न होने पर भी महायुद्धसे भागे जारहे हो तुम आकाशचारी हो तब

धान् । उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति किं भवन्तोन्तरिक्षगाः ॥ ८ ॥ स्वजातिं चैव भावं च हरसंसर्गमेव च । मानयद्भिर्न गन्तव्यमेषोह्यहमवस्थितः ॥ ९ ॥ एवमुच्चरितं वाक्यं शृण्वन्तस्तदचिंतयन् । अपक्रामन्त ते सर्वे दानवा भयमोहिताः ॥ १० ॥ प्रमाथगणशेषं तु तदनीकमतिष्ठत । भग्नावशेषं युद्धाय पुनश्चक्रे मनस्तदा ११ कुम्भाण्डो नाम बाणस्य सखामात्यश्च वीर्यवान् । भग्नं स्वबलमालोक्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ एष बाणः स्थितो युद्धे शंकरोयं गुहस्तथा । किमर्थं बलमुत्सृज्य भवन्तो यान्ति मोहिताः॥ प्राणांस्त्यक्त्वा पलायन्ते सर्वे दानवपुङ्गवाः ॥१३॥ एवं कुम्भाण्डवाक्यं ते शृण्वन्तो भयविह्वलाः । एकान्ते भयवित्रस्ताः सर्वे

भी युद्धमें कवच तलवार गदा पास खड्ग ढाल और फरसोंको त्याग त्याग कर क्यों भागे जारहे हो ॥ ८ ॥ तुम्हें अपनी जाति अपने भाव और महादेवके संसर्गका मान करके जाना नहीं चाहिये लो ! मैं यहाँ खड़ा हूँ ।९। इसप्रकार कहे हुए वाक्यको सुनकर भी उस बातका कुछ भी विचार न कर भयसे मोहित हुए सब दानव भागने लगे ।।१०।। उस समय उस सेनामेंसे केवल प्रमाथ ही तहाँ खड़े रह गए भागनेसे बची हुई बाकी सेनाको साथमें लेकर बाणासुरने फिर युद्ध करनेका विचारकिया ११ कुम्भाण्ड नामवाला वीर्यवान् असुर बाणासुरका मित्र और मन्त्री था वह अपनी सेनाको भागती हुई देखकर यह बात कहने लगा, कि-१२ युद्धमें यह बाणासुर खड़े हुए हैं और भगवान् शंकर तथा स्वामी कार्तिकेय भी खड़े हुए हैं फिर तुम किस कारणसे अपने बलका का (भरोसा) छोड़कर भयसे मोहित हो भागे जाते हो सब दानवपुङ्गव तो रणमें प्राण छोड़नेके बाद ही (परलोकको) भागते हैं ।।१३।। वे भयविह्वल राक्षस कुम्भाण्डके वाक्यको इसप्रकार सुनकर भयभीत होकर दशों दिशों दिशाओंमेंको ही भागने लगे

गान्ति दिशो दिश ॥ १४ ॥ भग्नं बलं ततो दृष्ट्वा कृष्णेनामित-तेजसा । संरक्तनयनः स्थाणुर्युद्धाय पर्यवर्तत ॥ १५ ॥ बाणसं-रक्षणं कर्तुं रथमास्थाय सुप्रभम् । देवः कुमारश्च तथा रथेनाग्नि-समेन वै ॥ १६ ॥ नन्दीश्वरसमायुक्तं रथमास्थाय वीर्यवान् । सन्दष्टौष्ठपुटो रुद्रः प्राधावत यतो हरिः ॥१७॥ पिबन्निव तदा-काशं सिंहयुक्तो महास्वनः । रथो भाति घनोन्मुक्तः पौर्णमास्यां यथा शशी ॥१८॥ ततो गणसहस्रैस्तु नानारूपैर्भयावहैः । नद-द्भिर्विविधान् नादान् रथो देवस्य शोभयन् ॥१९॥ केचित् सिंह-मुखास्तत्र तथा व्याघ्रमुखाः परे । नागाश्वोष्ट्रमुखास्तत्र शरैर्भृशनि-पीडिताः ॥ २० ॥ व्यालयज्ञोपवीताश्च केचित्तत्र महाबलाः ।

अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके द्वारा सेनाको भग्न हुई देख कर भग-वान् शंकरके नेत्र क्रोधसे लाल लाल होगए और वह युद्ध करने के लिये उतर आए ।१४। बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये शिव और कार्तिकेय अग्निकी समान सुन्दर प्रभावाले रथमें बैठ कर (वहाँ युद्ध करनेके लिये आए थे) ॥ १५ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् शिव नन्दीसे जुते हुए रथमें बैठकर अपने दोनों ओठोंको दबा जिधर श्रीकृष्ण थे उधर दौड़ गए ॥ १७ ॥ सिंहोंसे जुता हुआ और और आकाशको पीतासा हुआ महादेवजीका बड़ा भारी शब्द करनेवाला रथ पौर्णमासीके दिन बादलोंसे छूटे हुए चन्द्रमाकी समान प्रकाशित होने लगा १८ तदनन्तर अनेक प्रकारके रूपों को धारण करनेवाले भयंकर सहस्रों गण जिसके चारों ओर अनेक प्रकारका नाद कररहे थे वह महादेवजीका रथ (दिशाओं को) सुशोभित करने लगा १९ वहाँ पर सिंहकी समान मुखवाले तथा व्याघ्रकी समान मुखवाले तथा हाथी घोड़े और ऊँटकी समान मुखवाले शिवजीके गण अतिपीड़ित हो काँपने लगे २० उनमें बहुतसे सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले थे और बहुतसे

खरोष्ट्रगजवक्त्राश्च अश्वग्रीवाश्च संस्थिताः ॥ २१ ॥ छागमार्जारवक्त्राश्च मेषवक्त्रास्तथापरे । चीरिणः शिखिनश्चान्ये जटिलोर्ध्वशिरोरुहाः ॥ २२ ॥ लग्नाः परिपतन्ति स्म शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः । केचित् सौम्यमुखास्तत्र दिव्यैः शस्त्रैरलंकृताः॥२३॥ नानापुष्पकृतापीडा नानाप्रहरणायुधाः।वामना विकटाश्चैव सिंहव्याघ्रपरिच्छदाः ॥ २४ ॥ रुधिरार्द्रैर्महावक्त्रैर्महादंष्ट्रा बलिप्रियाः । देवं सम्परिवार्याथ महाशत्रुप्रमर्दनम् ॥२५॥ लीलायमानास्तिष्ठंति संग्रामाभिमुखोन्मुखाः । ततो दिव्यं रथं दृष्ट्वा रुद्रस्याक्लिष्टकर्मणः कृष्णो गरुडमास्थाय ययौ रुद्राय संयुगे । वैनतेयस्थमास्यन्तमायान्तमग्रणीं हरिम् ॥ २७ ॥ विव्याध कुपितो बाणैर्नाराचानां

महाबली गधे ऊँट और घोड़ेकी समान मुखवाले थे और बहुत से घोड़ेकी समान गर्दनवाले गण तहां खड़े हुए थे ॥२१॥ बकरे और बिलावकी समान मुखवाले मेंढ़ेकी समान मुखवाले चीथड़ोंको पहिरनेवाले चोटीवाले जटावाले और खड़े हुए केशों वाले गण शंख और दुंदुभियोंके स्वरसे एक दूसरेसे चिपट कर गिरने लगे उनमें बहुतसे सौम्य मुखवाले थे और बहुतसे दिव्य अस्त्रोंसे अलंकृत थे। २२ । २३ । बहुतसे अनेकप्रकारके पुष्पोंका मुकुट धारण कर रहे थे और बहुतसे अनेकप्रकारसे प्रहार करने वाले आयुधोंको धारण कर रहे थे बोने विकट और सिंह तथा व्याघ्रके चर्मको ओढ़नेवाले बड़ी २ डाढ़ों वाले बलिदानको प्रिय समझनेवाले गण अपने रक्तसे गीले महामुखोंको ले बड़े भारी शत्रुको भी मसलने वाले महादेवजीको घेर कर संग्रामके लिये उन्मुख हो खेलसा करते हुए तहाँ खड़े थे, तब तो सरलतासे कर्म करनेवाले रुद्रके दिव्यरथको देख कर ॥ २३ ॥ २६ ॥ कृष्णजी गरुड़ पर बैठ कर युद्धमें रुद्रके पासको चले, गरुड़ पर बैठ कर बाणोंको फेंकतेहुए अग्रणीय हर जब बढ़नेलगे २७ तब क्रोधमें

शतेन सः । स शरैरर्दितस्तेन हरेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २८ ॥ हरि-
र्जग्राह कुपितो ह्यस्त्रं पार्जन्यमुत्तमम् । प्रचचाल ततो भूमिर्विष्णु-
रुद्रप्रपीडिता ॥२९॥ नागाश्चोर्ध्वमुखास्तत्र विचेलुरतिपीडिताः ।
पर्वताः पतितास्तत्र जलधाराभिराप्लुताः ॥ ३० ॥ केचिन्मुमुचिरे
तत्र शिखराणि समन्ततः । दिशश्च प्रदिशश्चैव भूमिराकाशमेव
च ॥ ३१ ॥ प्रदीप्तानीव दृश्यन्ते स्थाणुकृष्णसमागमात् । सम-
न्ततश्च निर्घाताः पतन्ति धरणीतले ॥ ३२ ॥ शिवाश्चैवा-
शिवान् नादान् नदन्ते भीमदर्शनाः । वासवश्चानदन् घोरं रुधिरं
साप्यवर्षत ॥३३॥ उल्का च बाणसैन्यस्य पुच्छेनाहत्य तिष्ठति ।
प्रववौ मारुतश्चापि ज्योतींष्याकुलतामियुः ॥ ३४ ॥ प्रभाहीना-

भरे हुए महादेवजीने उनको नाराच नामके सौ बाणोंसे घायल किया सरलतासे कर्म करने वाले शिवके बाणोंसे पीड़ित हुए हरि ने क्रोधमें भरकर श्रेष्ठ अस्त्र पार्जन्यको उठा लिया;तब तो पृथिवी विष्णु और रुद्रसे पीड़ित होतीहुई काँपने लगी । २८ । २९ । तहाँ पर पीड़ा पाकर हाथी ऊपरको मुख करके विचलित होने लगे और तहाँके पर्वत जलधाराओंसे आप्लुत होकर गिरने लगे ३० बहुतसे पर्वत अपने शिखरोंको गिराने लगे- शिव और जनार्दन के समागमके समय दिशा, विदिशा, भूमि और आकाश जलते हुएसे दीखने लगे और पृथ्वी पर चारों ओर उल्काएँ गिरने लगीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ भयंकर आकृति वाली गीदड़ियें अशिव (अकल्याणकारी) शब्दोंको करने लगीं, और इन्द्र भी भयंकर गर्जना कर पृथ्वीतलमें भयंकर रक्तकी वर्षा करने लगा ॥३३॥ और उल्का बाणासुरकी सेनाके पीछे गिरी वायु चलने लगा और नक्षत्र व्याकुल होने लगे ॥ ३४ ॥ औषधियें प्रभारहित होगईं और आकाशचारियोंने आकाशमें विचरण करना बन्द कर दिया, इसी समय त्रिपुरनाशकको मोहमें पड़ता हुआ देख कर ब्रह्माजी

स्तथौषध्यो न चरन्त्यन्तरिक्षगाः । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्वृतः ॥३५॥ त्रिपुरातंकं मुञ्चन्तं ज्ञात्वा रुद्रमुपागमत् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षा विद्याधरास्तथा । सिद्धचारणसंघाश्च पश्यन्तोऽथ दिवि स्थिताः । ततः पार्जन्यमस्त्रं तत् क्षिप्तं रुद्राय विष्णुना ययौ ज्वलन्नथ तदा यतो रुद्रो रथे स्थितः । ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥३८॥ निपेतुः सर्वतो दिग्भ्यो यतो हररथः स्थितः । अथाग्नेयं महारौद्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ३९ ॥ मुमोच रुषितो रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् । ततो विशीर्णदेहास्ते चत्वारोऽपि समन्ततः ॥४०॥ नादृश्यन्त शरैश्छन्ना दह्यमानाश्च वन्हिना । सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्व एवासुरोत्तमाः ॥ ४१ ॥ हतोयमिति विज्ञाय आग्नेयास्त्रेण वै तदा । ततस्तद्विसहित्वाजौ ह्यस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥४२॥ जग्राह वारुणं सोऽस्त्रं वासुदेवः प्रतापवान् ।

सब देवताओंको साथमें लेकर रुद्रके पास पहुँचे, गन्धर्व अप्सरा यक्ष विद्याधर और सिद्ध चारणोंके संघ भी आकाशमें खड़े हो गए, तदनन्तर विष्णुने रुद्रके ऊपर पार्जन्य अस्त्र फैंका ३५-३७ वह प्रदीप्त अस्त्र जहाँ रुद्रका रथ खड़ा था, तहाँको चला, उस समय जहाँ पर शिवका रथ था तहाँ पर दिशा और विदिशाओंमें से शिवके रथ पर नमी हुई गाँठ वाले सहस्रों बाण पड़ने लगे, तदनन्तर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रुद्रने क्रोधमें भर कर महाभयंकर आग्नेय अस्त्र फैंका, यह एक अचरजकीसी बात हुई, तब तो उन चारोंका शरीर चारों ओरसे विशीर्ण होगया ॥ ३८–४० ॥ और वह अग्निसे जलनेके कारण और अस्त्रोंसे ढकनेके कारण अदृश्य होगए, तब सब असुरसत्तम श्रीकृष्णको आग्नेय अस्त्रसे मरा हुआ जान कर सिंहनाद करने लगे, अस्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ प्रतापी वासुदेवने युद्धमें उस अस्त्रको झेल कर वारुणास्त्रको उठा लिया, जब वासुदेवने अतितेजस्वी वारुणास्त्रको फैंका ४१-४३

प्रयुक्ते वासुदेवेन वारुणास्त्रेऽतितेजसि ॥ ४३ ॥ आग्नेयं प्रशमं यातमस्त्रं वारुणतेजसा । तस्मिन् प्रतिहते त्वस्त्रे वासुदेवेन संयुगे पैशाचं राक्षसं रौद्रं तथैवांगिरसम्भवम् । मुमोचास्त्राणि चत्वारि युगान्ताग्निनिभानि वै ॥४५॥ वायव्यमथ सावित्रं वासवं मोहनं तथा । अस्त्राणां वारणार्थाय वासुदेवो व्यमुञ्चत ४६ अस्त्रैश्चतुर्भिश्चत्वारि वारयित्वाशु माधवः । मुमोच वैष्णवं सोऽस्त्रं व्यादितास्यान्तकोपमम् ॥ ४७ ॥ वैष्णवास्त्रे प्रयुक्ते तु सर्व एवासुरोत्तमाः । भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः ॥४८॥ दिशः सर्वाः प्राद्रवन्त भयमोहेन विक्लवाः । प्रमाथगणभूयिष्ठे दीर्णे सैन्ये महासुरः ॥ ४९ ॥ निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन् । भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्यैश्च सुमहाबलैः । वृतो महारथी वीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः ॥ ५० ॥ वैशम्पायन उवाच । जगैरन

तब वारुणास्त्रके तेजसे आग्नेयास्त्र शान्त हो गया, जब युद्धमें वासुदेवने उस अस्त्रको शान्त कर दिया ।४४। तब (महादेवने) प्रलयकालकी अग्निकी समान-पैशाच राक्षस रौद्र और अंगिरसम्भव नामक चार अस्त्र छोड़े ॥ ४५ ॥ तब वासुदेवने भी उन अस्त्रोंको हटानेके लिए वायव्य सावित्र वासव और मोहन नामक चार बाण छोड़े ।४६। इसप्रकार माधव चार अस्त्रोंसे चारों अस्त्रों को रोक कर, मुख फाड़ने वाले कालकी समान वैष्णवास्त्रको छोड़ने लगे ४७ वैष्णवास्त्रके प्रयोग करते ही सब असुरसत्तम, भूत और यक्षोंके गण तथा बाणासुरकी सब सेना भयसे घबड़ा कर चारों दिशाओंमेंको भागने लगी जिसमें बहुतसे प्रमाथगण थे, ऐसी सेना जब भाग गई, तब महाराक्षस बाणासुर भयंकर आयुधधारी महाबली, महारथी, राक्षसोंसे देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी समान घिर कर, युद्ध करनेके लिए अभिमुख होकर फुर्ती से चल पड़ा ॥४८-५०॥ वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय

होमैश्च तथौषधीभिर्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः । स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ॥५१॥ बलेः सुतो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन् विराजते तेन तथा ... सूर्यो बहुकिंकिणीकः परार्ध्य... रत्नाचित्रः ॥ ५२ ॥ सहस्र-चन्द्रायुततारकश्च रथो महानग्निरिवावभाति । तमास्थितो दानव-संगृहीतं महाध्वजं कार्मुकधृक् स बाणः ॥ ५३ ॥ उद्वर्तयिष्यन् यदुपुङ्गवानामतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम् । स मन्युमान् वीररथौ-घसंकुलो विनिर्ययौ तान् प्रतिदैत्यसागरः ॥ ५४ ॥ वातप्रवृद्धस्तु तरङ्गसंकुलो यथार्णवो लोकविनाशनाय । भीमानि संत्रासकरै-र्वपुर्भिस्तान्यग्रतो भान्ति बलानि तस्य ॥५५॥ महारथान्युच्छ्रित-

महात्मा जब होम और औषधियोंसे (बाणासुरका) स्वस्तिवाचन करने लगे, उस समय बलिका पुत्र बाणासुर उनको वस्त्र शुभ गौएँ फल पुष्प और सिक्कोंका दान करता हुआ धनेश (वरुण) की समान प्रतीत होता था, सहस्र सूर्यों (की फुल्लियों) वाला, बहुतसे घूँघुरुओं वाला और बहुमूल्य सुवर्ण और रत्नोंसे चित्रित और चन्द्रमाकी सहस्र फुल्लियोंवाला, आयुध तथा तारोंकी फुल्लियों) वाला बड़ा भारी रथ अग्निकी समान शोभा पाने लगा, धनुषधारी बाणासुर राक्षसोंसे पकड़े हुए उस महाध्वज रथ पर बैठ गया ॥५१॥५३॥ उसने यदुपुंगवोंको डरानेके लिए भयंकर रूप धारण कर लिया, क्रोधमें भरा हुआ वीर और रथों के ओघसे भराहुआ दैत्यसागर उन चारोंकी ओरको चला ५४ वायुसे हिलोड़े लेताहुआ लहरोंसे भराहुआ समुद्र जिस प्रकार संसारका नाश करनेके लिये चले(इसीप्रकार वह दैत्यसागर चला) बाणासुरकी सेनाओंके अग्रभाग त्रास देनेवाले शरीरोंसे भयंकर प्रतीत होते थे ५५ जिसमें धनुषोंको उठानेवाले महारथ थे ऐसे सेनादल पर्वतोंवाले वनोंकी समान दीखते थे इसप्रकार संग्रामका

कार्मुकानि सपर्वतानीव वनानि राजन् । विनिःसृतः सागरतोऽभ्यासादत्यद्भुतश्चाहवदुष्टकामः ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुद्रकृष्णयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

वैशम्पायन उवाच । अंधकारिकृते लोके गदाते चक्रके तथा । न नन्दी नापि च रथो न रुद्रः मत्यदृश्यत ॥ १ ॥ द्विगुणं दीप्तदेहस्तु रोषेण च बलेन च । त्रिपुरान्तकरो बाणं जग्राह स चतुर्मुखम् ॥२॥ सन्दधत् कार्मुके चैव मोक्तुकामस्त्रिलोचनः । निज्ञातो वासुदेवेन चित्तज्ञेन महात्मना ॥ ३ ॥ जृम्भणं नाम सोऽप्यस्त्रं जग्राह पुरुषोत्तमः । हरं संजृम्भयामास क्षिप्रकारी महाबलः ॥४॥ सशरः सधनुश्चैव हरस्तेनाशु जृम्भितः । संज्ञां न लेभे भगवान् विजेताऽसुररक्षसाम् । सशरं सधनुष्कं च दृष्ट्वात्मानं विजृम्भितम्

दूषित मनोरथ करनेवाला अति अद्भुत बाणासुर समुद्रके जलके समीपके स्थानसे चलदिया था ॥ ५६ ॥ एकसो चौवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा, कि—जब संसारमें अन्धकार फैल गया और भगवान् शंकर प्रदीप्त होनेलगे तब नन्दी रथ इत्यादि कुछ भी नहीं दीखता था १ तो रोष और बलके कारण जिनका शरीर दुगुना चमक रहा था उन त्रिपुरका नाश करनेवाले शिवने चार मुखवाले बाणको उठा लिया २ फिर त्रिलोचनने उसको धनुष पर चढा कर छोड़ना चाहा, चित्तके भावोंको जाननेवाले महात्मा वासुदेवने इस बातको जान लिया ३ तदनन्तर पुरुषोत्तमने जृंभण नामके अस्त्रको उठालिया और फुर्तीले महाबली वासुदेव हरको जृंभित करना चाहने लगे ॥४॥ तब तो उस बाणसे धनुष और बाणधारी शिवजी जंभाई लेने लगे, और असुर तथा राक्षस विजेता भगवान् शिवका होश ठिकाने न रह सका आत्मस्व-

बलोन्मत्तोथ बाणोसौ शर्वं चोदयतेऽसकृत् । ततो ननाद भूतात्मा स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ ६ ॥ प्रध्मापयामास तदा कृष्णः शंखं महाबलः । पाञ्चजन्यस्य घोषेण शार्ङ्गविस्फूर्जितेन च ॥७॥ देवं विजृम्भितं दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र रुद्रस्य पार्षदा रणे ॥ ८ ॥ मायायुद्धं समाश्रित्य प्रद्युम्नं पर्यवारयन् । सर्वांस्तु निद्रावशगान् कृत्वा मकरकेतुमान् ॥९॥ दानवान् नाशयत्तत्र शरजालेन वीर्यवान् । प्रमाथगणभूयिष्ठांस्तत्र तत्र महाबलान् ।१०। ततस्तु जृम्भमाणस्य देवस्याक्लिष्टकर्मणः । ज्वालाः प्रादुरभूद्वक्त्रादहतीव दिशो दश ॥ ११ ॥ ततस्तु धरणी देवी पीडयमाना महात्मभिः । ब्रह्माणं विश्वधातारं वेपमानाभ्युपागमत् ॥१२॥ पृथिव्युवाच । देवदेव महाबाहो पीडयामि परमौ-

---

रूप (शिवको धनुष और बाण सहित जंभाई लेतेहुए देखकर) ५ बलसे भरा हुआ बाणासुर शिवजीको वार २ ।६।प्रेरित करने लगा, तब भूतात्मा (कृष्ण) स्निग्ध और गम्भीर वाणीमें गर्जने लगे ६ तदनन्तर महाबली कृष्ण शंखको बजाने लगे, पाञ्चजन्य के घोषसे और शार्ङ्ग धनुषके कड़ाकेसे शिवको जंभाई-लेते हुए देखकर सब प्राणी भयभीत होनेलगे इसी समय शिवके पार्षदोंने माया युद्धका आश्रय लेकर रणमें प्रद्युम्नको घेर लिया मकरकी ध्वजावाले वीर्यवान् प्रद्युम्न जिनमें बहुतसे प्रमाथ भर रहे थे ऐसे महाबली दानवोंको निद्रित करके जहाँ तहाँ बाणोंके जालसे मारने लगे । ७ । १० । तदनन्तर सरलतासे कर्म करने वाले जंभाई लेतेहुए महादेवजीके मुखमेंसे दशों दिशाओंको भस्म करती हुई ज्वाला प्रकट हुई ॥११॥ तदनन्तर पृथिवीदेवी महात्माओंसे पीड़ा पाने लगी और काँपती २ विश्वको रचनेवाले ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँची १२ पृथिवीने कहा, कि-हे महाभुज देव देव ! मैं बड़े-भारी ओज (भार) से पीड़ा पारही हूँ मैं श्रीकृष्ण और

जसा । कृष्णरुद्रभराक्रान्ता भविष्यैकार्णवा पुनः ॥१३॥ अवि-
षह्यमिमं भारं चिन्तयस्व पितामह । लघ्वीभूता यथा देव धारयेयं
चराचरम् ॥ १४ ॥ ततस्तु काश्यपीं देवीं प्रत्युवाच पितामहः ।
मुहूर्तं धारयात्मानमाशु लघ्वी भविष्यसि । १५ ॥ वैशम्पायन
उवाच । दृष्ट्वा तु भगवान् ब्रह्मा रुद्रं वचनमब्रवीत् । सृष्टो महा-
सुरवधः किं भूयः परिरक्ष्यसे ॥१६॥ न च युद्धं महाबाहो तव
कृष्णेन रोचते । न च बुध्यसि कृष्णं त्वमात्मानं तु द्विधा कृतम्
ततः शरीरयोगाद्धि भगवानव्ययः प्रभुः । प्रविश्य पश्यते कृत्स्नां-
स्त्रींल्लोकान् सचराचरान् ॥१८॥ प्रविश्य योगं योगात्मा वरां-
स्ताननुचिन्तयन् । द्वारवत्यां यदुक्तं च तदनुस्मृत्य सर्वशः । जगाद
नोत्तरं किंचिन्निवृत्तोऽसौऽभवत्तदा ॥ १९ ॥ आत्मानं कृष्णयो-

रुद्रके भारसे दब कर फिर एक समुद्रमयी ही होजाऊँगी ।१३।
हे पितामह! आप मेरे इस न सहे जाने वाले भारकी ओर ध्यान
दीजिये और हे देव ! (इस बातका विचार करिये) जिसप्रकार
मैं हलकी होकर चराचरको धारण करसकूँ ॥१४॥ तब काश्यपी
देवीको ब्रह्माजीने उत्तर दिया, कि–तू अपनी आत्माको क्षणभर
तक धारण करे तो शीघ्र ही हलकी होजावेगी १५ वैशम्पायनजी
ने कहा, कि–भगवान् ब्रह्माजीने सोच यह वचन कहा,
कि–आपने ही बड़े २ राक्षसोंका वध रचा है फिर आप इनकी
रक्षा क्यों कर रहे हैं ॥१६॥ हे महाभुज ! तुम्हारा कृष्णके साथ
लड़ना अच्छा नहीं लगता तुम एक आत्मा दो शरीर बने हुए क्या
कृष्णको नहीं पहिचानते हो ? तदनन्तर वह प्रभु भगवान्
शिव शरीरमें स्थितियोगके द्वारा उसमें प्रवेश करके अर्थात् ध्यान
धर कर चराचर त्रिलोकीको देखने लगे १८ योगात्मा शिवने
योगमें घुस कर द्वारकामें जिन वचनोंको कहा था उन सब वरों
का चिन्तवन करके कुछ भी उत्तर न देसके और युद्धसे निवृत्त

निरस्थं पश्यते ह्येकयोनिजम् । ततो निःसृत्य रुद्रस्तु न्यस्तवादोऽभवन्मृधे ॥ २० ॥ ब्रह्माणं चाब्रवीद्रुद्रो न योत्स्ये भगवन्निति । कृष्णेन सह संग्रामे लघ्वी भवतु मेदिनी ॥ २१ ॥ ततः कृष्णोथ रुद्रश्च परिष्वज्य परस्परम् । परां प्रीतिमुपागम्य संग्रामादपजग्मतुः ॥२२॥ न च तौ पश्यते कश्चिद्योगिनौ योगमागतौ । एकौ ब्रह्म तथा कृत्वा पश्यँल्लोकान् पितामहः ॥२३॥ उवाचैतत् समुद्दिश्य मार्कण्डेयं सनारदम् । पार्श्वस्थं परिपप्रच्छ ज्ञात्वा तौ दीर्घदर्शिनम् ॥२४॥ पितामह उवाच । मन्दरस्य गिरेः पार्श्वे नलिन्यां भवकेशवौ । रात्रौ स्वप्नान्तरे ब्रह्मन् मया दृष्टौ हराच्युतौ २५

होगए१६(कृष्णयोनिस्थ) फलकी समान कृष्णके योनि अर्थात् कारण भूमिस्थानीय शुद्ध परब्रह्म कृष्णकी और अपनीभी शुद्ध ब्रह्मके एक अंगभावको एक साथ देख कर अर्थात् दोनोंके एक कारणको देख कर स्वरूपगात्माके साथ अपना विरोध होना असंभव समझ कर रुद्रने योग समाधिसे)निकलनेके बाद युद्धमें वाद करना छोड़ दिया ॥२०॥ फिर रुद्रने ब्रह्माजीसे कहा, कि-हे भगवन् ! मैं कृष्णके साथ युद्ध नहीं करूँगा अब पृथवी हलकी होजाय ॥ २१ ॥ तदनन्तर कृष्ण और रुद्रने परस्पर आलिंगन किया फिर वे परम प्रसन्न होकर संग्रामसे चले गए२२योगका साधन करनेवाले एक स्वरूप इन दोनों योगियकों कोई नहीं देख सकता लोकपितामह ब्रह्माने योगको धारण कर इस बातको देखा था॥२३॥ और इस बातको लक्ष्यमें रखकर उन्होंने पासमें बैठे हुए नारदजीको और मार्कण्डेयजीको दीर्घदर्शी जान कर उनसे यह बात बूझी ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने रात्रिमें स्वप्नमें मन्दराचलके समीप कमलिनीके भीतर शिव और केशवको देखा था जहाँ मैंने शिवजीके विष्णुके रूपमें देखा था और विष्णु के शिवके रूपमें देखा था ॥ २५ ॥ शिवको हाथमें शंख चक्र

हरं च हरिरूपेण हरिं च हरलिङ्गिणम् । शंखचक्रगदापाणिं पीता-
म्बरधरं हरम् ॥ २६ ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मधरं हरिम् ।
गरुडस्थं चापि हरं हरिं च वृषभध्वजम् ॥ २७ ॥ विस्मयो मे
महान् ब्रह्मन् दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् । एतदाचक्ष्व भगवन् याथा-
तथ्येन सुव्रत ॥ २८ ॥ मार्कण्डेय उवाच । शिवाय विष्णुरूपाय
विष्णवे शिवरूपिणे।यथान्तरं न पश्यामि तेन तौ दिशतः शिवम्
अनादिमध्यनिधनमेतदक्षरमव्ययम् । तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरि-
हरात्मकम् ॥ ३० ॥ यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स
पितामहः । एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥ ३१ ॥
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः । अर्धनारीश्वरास्ते तु
व्रतं तीव्रं समास्थिताः ॥ ३२ ॥ यथा जले जलं क्षिप्तं जलमेव तु

और गदाको धारण किये हुए तथा पीताम्बर ओढ़े हुए देखा
था ॥२६॥ और विष्णुको व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए और त्रिशूल तथा
पट्टिशको धारण कियेहुए देखा था, शिवजी गरुड़ पर चढ़ रहे
थे और विष्णु वृषभकी ध्वजाको धारण कररहे थे २७ हे ब्रह्मन् !
इस परम अद्भुत बातको देखकर मुझे बड़ाभारी विस्मय होरहा
है,हे सुव्रत भगवन्‌!इसको ठीक २ रीतिसे कहिये२८मार्कण्डेयजी
ने कहा, कि-विष्णुरूप शिवके लिये और शिवरूप विष्णुके लिये
(प्रणाम है) मैं उनमें भेद नहीं देखता हूँ इस कारण वह मेरा
कल्याण करें २९आदि मध्य और अन्त रहित अक्षर अव्यय इस
हरिहरात्मक रूपको मैं तुमसे कहता हूँ जो विष्णु हैं वह रुद्र हैं जो
रुद्र हैं वह पितामह हैं, मूर्ति (आत्मा) एक है और रुद्र विष्णु
पितामह तीन देव हैं ३१ यह वर देने वाले हैं लोक रचनेवाले हैं
लोकके स्वामी और स्वयम्भु हैं, और यह अर्धनारीश्वर तीनों
देव तीव्र व्रतमें परायण रहते हैं ।३२॥ जिस प्रकार जल जलमें
फेंकने पर जल ही होजाता है इसी प्रकार रुद्रमें प्रविष्ट हुए

तु तद्भवेत् । रुद्रं विष्णुः प्रविष्टस्तु तथा रुद्रमयो भवेत् ॥ ३३ ॥ अग्निमग्निः प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत् । तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत् ॥ ३४ ॥ रुद्रमग्निमयं विद्याद्विष्णुः सोमात्मकः स्मृतः । अग्नीषोमात्मकं चैव जगत् स्थावरजङ्गमम् ३५ कर्त्तारौ चापहर्त्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु । जगतः शुभकर्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरौ ॥ ३६ ॥ कर्तृकारणकर्त्तारौ कर्तृकारणकारकौ। भूतभव्यभवौ देवौ नारायणमहेश्वरौ ॥३७॥ एते चैव प्रवर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च । एतत् परतरं गुह्यं कथितं ते पितामह यश्चैनं पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयान्नरः । प्राप्नोति परमं स्थानं विष्णुरुद्रप्रसादजम् ॥ ३८ ॥ देवौ हरिहरौ स्तोष्ये ब्रह्मणा सह

विष्णु रुद्रमय ही होजाते हैं ॥३३॥ अग्निमें प्रविष्ट हुआ अग्नि जिस प्रकार अग्नि होजाता है इसीप्रकार विष्णुमें प्रविष्ट हुए रुद्र विष्णुमय हो जाते हैं ३४ रुद्रको अग्निमय जाने विष्णु सोमात्मक कहलाते हैं, यह स्थावर जंगमात्मक जगत् अग्नीषोमात्मक अर्थात् भोक्तृभोग्यात्मक हैं ॥३५॥ यह दोनों स्थावर और चरजगत्के कर्त्ता और नाश करनेवाले हैं जगत्का कल्याण करनेवाले हैं प्रभाववान् और महेश्वर हैं ३६ कर्त्ता (हिरण्यगर्भ और कारण (महाभूतों) के रचनेवाले हैं और उनके कारक भी हैं अर्थात् उनसे कर्म कराने वाले भी हैं यह दोनों नारायण और महेश्वर देव भूत भविष्य और वर्तमान रूप हैं ॥३७॥ ये (ब्रह्मा विष्णु और रुद्र मेघरूपसे) वर्षा करते हैं (वायुरूपसे) बहते हैं (सूर्यरूपसे प्रकाशित होते हैं और यह रचना करते हैं हे पितामह ! यह आपसे (देवता-त्रयात्मक) परमगुप्त बात कहदी ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य इसका सर्वदा पाठ करता है और जो मनुष्य इसको सर्वदा सुनता है वह पुरुष विष्णु और रुद्रके प्रसादसे मिलनेवाले परम स्थानको पाता है ॥ ३९ ॥ मैं ब्रह्माजीके साथ

संगतौ । पतौ च परमौ देवौ जगतः प्रभवाप्ययौ ॥४०॥ रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः । एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः ॥ ४१ ॥ न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः । तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा । नमो रुद्राय कृष्णाय नमः संहतचारिणे ॥४२॥ नमः षडर्धनेत्राय द्विनेत्राय वै नमः । नमः पिंगलनेत्राय पद्मनेत्राय वै नमः ॥ ४३ ॥ नमः कुमारगुरवे प्रद्युम्नगुरवे नमः । नमो धरणीधराय गङ्गाधराय वै नमः॥४४॥ नमो मयूरपिच्छाय नमः केयूरधारिणे । नमः कपालमालाय वनमालाय वै नमः ॥ ४५ ॥ नमस्त्रिशूलहस्ताय चक्रहस्ताय वै नमः । नमः कनकदण्डाय नमस्ते ब्रह्मदण्डिने ।४६। नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे । नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः ॥ ४७ ॥ नमः खट्वाङ्गधाराय नमो मुशलधारिणे ।

मिले हुए हरि और हरदेवकी स्तुति करता हूं यह दोनों परमदेव जगत्की उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हैं विष्णु रुद्रसे श्रेष्ठ हैं और शिव विष्णुसे श्रेष्ठ हैं यह एक ही सर्वदा संसारमें विचरण करते हैं ४० शंकरके बिना विष्णु नहीं रह सकते और केशवके बिना शिव नहीं रह सकते क्योंकि यह रुद्र और उपेन्द्र पहले एक ही थे, मिलकर विचरण करनेवाले कृष्णके लिये प्रणाम है रुद्रके लिए प्रणाम है ४२ छः के आधे तीन नेत्रवालेके लिये प्रणाम है दो नेत्रवालेके लिये प्रणाम है पीले नेत्र वालेके लिए प्रणाम है ४३ स्कन्दके पिताको नमस्कार है, प्रद्युम्नके पिताको प्रणाम है पृथ्वी-धारीको प्रणाम है, गंगाधारीको प्रणाम है ४४ मयूरपुच्छके लिये प्रणाम है केयूरधारीके लिये प्रणाम है कपालमालीको प्रणाम है वनमालीको प्रणाम है ४५ त्रिशूलहस्तको प्रणाम है चक्रहस्तको प्रणाम है कनकदण्ड को प्रणाम है ब्रह्मदण्डीको प्रणाम है ४६ चमड़ा ओढ़नेवालेको प्रणाम है पीतवस्त्र पहिरनेवालेको प्रणाम है

नमो भस्मांगरागाय नमः कृष्णांगधारिणे ॥ ४८ ॥ नमः श्मशानवासाय नमः सागरवासिने । नमो वृषभवाहाय नमो गरुड़वाहिने ॥ ४९ ॥ नमस्त्वनेकरूपाय भवरूपाय वै नमः । नमः प्रलयकर्त्रे च नमस्त्रैलोक्यधारिणे ॥ ५० ॥ नमोस्तु सौम्यरूपाय नमो भैरवरूपिणे । विरूपाक्षाय देवाय नमः सौम्येक्षणाय च । दक्षयज्ञविनाशाय बलेर्नियमनाय च । नमः पर्वतवासाय नमः सागरवासिने ॥५२॥ नमः सुररिपुघ्नाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः । नमोस्तु नरकघ्नाय नमः कामाङ्गनाशिने ॥ ५३ ॥ नमस्त्वन्धकनाशाय नमः कैटभनाशिने । नमः सहस्रहस्ताय नमोऽसंख्येयबाहवे ॥ ५४ ॥ नमः सहस्रशीर्षाय बहुशीर्षाय वै नमः । दामोदराय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः ॥ ५५ ॥ नमस्ते भगवन्विष्णो

लक्ष्मीपतिको प्रणाम है उमाके स्वामीको नमस्कार है ४७ खट्वाङ्गधारीको प्रणाम है मूसलधारीको नमस्कार है भस्मांगरागको प्रणाम है कृष्णाङ्ग-धारीको प्रणाम है ॥४८। श्मशानमें रहनेवालेको नमस्कार है समुद्रमें रहनेवालेको प्रणाम है वृषभकी सवारीवालेको नमस्कार है गरुड़की सवारीवालेको प्रणाम है ४९ अनेक रूपवाले को प्रणाम है भवरूपको प्रणाम है प्रलय करनेवालेको प्रणाम है त्रिलोकीके धारण करने वालेको प्रणाम है ५० सौम्यरूपवालेको प्रणाम है भैरवरूपको प्रणाम है विरूपाक्षको प्रणाम है सौम्य नेत्रवालेको प्रणाम है ५१ दक्षके यज्ञका नाश करने वाले बलिको बाँधनेवाले पर्वतवासी और सागरवासीको प्रणाम है ५२ देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवालेको और त्रिपुरका नाश करनेवालेको प्रणाम है नरकासुरका नाशकरनेवालेको प्रणाम है और कामदेवके शरीरको नष्ट करने वालेको प्रणाम है अन्धकासुरके नाशकको प्रणाम है कैटभहन्ताको प्रणाम है सहस्र हाथवालेको नमस्कार है असंख्य भुजावालेको प्रणाम है ॥५४॥ सहस्र मस्त-

नमस्ते भगवञ्छिव । नमस्ते भगवते देव नमस्ते देवपूजित ।५६। नमस्ते कर्मणां कर्म नमोऽमितपराक्रम । हृषीकेश नमस्तेऽस्तु स्वर्णकेश नमोऽस्तु ते ॥५७॥ इमं स्तवं यो रुद्रस्य विष्णोश्चैव महात्मनः । समेत्य ऋषिभिः सर्वैं स्तुतौ स्तोत्रैर्महर्षिभिः ॥ ५८ ॥ व्यासेन वेदविदुषा नारदेन च धीमता । भारद्वाजेन गर्गेण विश्वामित्रेण वै तथा ॥५९ ॥ अगस्त्येन पुलस्त्येन धौम्येन तु महात्मना । य इदं पठते नित्यं स्तोत्रं हरिहरात्मकम् ॥६०॥ अरोगो बलवांश्चैव जायते नात्र संशयः । श्रियं च लभते नित्यं न च स्वर्गान्निवर्तते ॥ ६१ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् । गुर्विणी शृणुते या तु वरं पुत्रं प्रसूयते ॥ ६२ ॥ राक्ष-

क वालेको प्रणाम है दामोदर देवके लिए प्रणाम है ॥ ५५ ॥ हे भगवन् विष्णो ! आपको प्रणाम है हे भगवन् शिव ! आपको प्रणाम है हे भगवन् देव ! आपको प्रणाम है हे देवपूजित ! आपको प्रणाम है ॥५६॥ कर्मोंके कर्मको प्रणाम है अमित पराक्रम आपको प्रणाम है हृषीकेशको प्रणाम हो स्वर्णकेशको प्रणाम हो ॥५७॥ महात्मा रुद्र और विष्णुके इस स्तोत्रको (जो पढ़ता है उसकी सद्गति होती है) सब महर्षियोंने और देवताओंने इकट्ठे होकर इन दोनोंकी स्तुति की है ॥ ५८ ॥ वेदके विद्वान् व्यासजीने बुद्धिमान् नारदने भारद्वाजने गर्गने और विश्वामित्रने अगस्त्यने पुलस्त्यने और महात्मा धौम्यने भी (इन दोनोंकी स्तुति की है) जो इस हरिहरात्मक स्तोत्रका नित्य पाठ करता है वह अरोग और बलवान् होजाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है वह सर्वदा लक्ष्मीको पाता है और स्वर्गसे नहीं लौटता है ५९-६१ पुत्र-रहित पुत्रको पाता है कन्या सत्पतिको पाती है और जो गर्भिणी स्त्री इसको पढ़ती है, वह सत्पुत्रको उत्पन्न करती है ६२ जहाँ पर यह स्तोत्र पढ़ा जाता है तहाँ पर राक्षस पिशाच और

साश्च पिशाचाश्च विघ्नानि च विनायकाः । भयं तत्र न कुर्वंति यत्रायं पठ्यते स्तवः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि हरिहरात्मक-स्तवो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

जनमेजय उवाच । अपयाते ततो देवे कृष्णे चैव महात्मनि । पुनश्चासीत् कथं युद्धं परेषां लोमहर्षणम् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच । कुम्भाण्डसंगृहीते तु रथे तिष्ठन्गुहस्तदा । अभिदुद्राव कृष्णं च बलं प्रद्युम्नमेव च ॥२॥ ततः,शरशतैरुग्रैस्तान् विव्याध रणे गुहः । अमर्षरोषसंक्रुद्धः कुमारः प्रवरो नदन् ॥३॥ शर-संवृतगात्रास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः । शोणितौघप्लुतैर्गात्रैः प्राक्रु-ध्यन्त गुहं ततः ॥ ४ ॥ ततस्ते युद्धमार्गज्ञास्त्रयस्त्रिभिरनुत्तमैः । वायव्याग्नेयपार्जन्यैर्बिभिदुर्दीप्ततेजसः ॥५॥ शैलवारुणसावित्रै-

---

विनायक भी विघ्न नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥ एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥

जनमेजयने कहा, कि–भगवान् शंकर और कृष्णके युद्धसे निवृत्त होने पर दूसरोंके रोमटोंको खड़ा करने वाला युद्ध फिर किस प्रकार हुआ था ।१। वैशम्पायनजीने कहा, कि तदनन्तर जिसको कुभांड पकड़ रहा उस रथ पर स्वामी कार्तिकेय बैठ गए और कृष्ण प्रद्युम्न और बलदेवजीकी ओर दौड़े ॥ २ ॥ तद-नन्तर स्वामी कार्तिकेय रणमें सैंकड़ों भयंकर अस्त्रोंसे उन्हें बींधने लगे फिर क्रोधमें भरे हुए श्रेष्ठ कुमार गर्जने लगे ॥ ३ ॥ बाणोंसे जिनका शरीर गुंथ रहा था ऐसे वे तीनों तीन अग्नियों की समान अपने रक्तमें सने हुए शरीरोंके द्वारा स्वामी कार्तिकेय से लड़ने लगे ॥४॥ तदनन्तर युद्धके मार्गको जानने वाले प्रदीप्त तेजस्वी प्रद्युम्न बलदेव और वासुदेव ये तीनों वायव्य आग्नेय और पार्जन्य नामक तीन श्रेष्ठ अस्त्रोंसे वेधना चाहने लगे ।५।

...कृतान् स विव्याध कोपवान् । तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥६॥ शरौघानस्त्रमायाभिर्ग्रसन्ति स्म महात्मनः । यदा यदा गुहः क्रुद्धः प्रज्वलन्निव तेजसा ॥ ७ ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम कालकल्पं दुरासदम् । सन्दष्टोष्टपुटः संख्ये जग्राह पावकः प्रभुः॥८ प्रयुक्ते ब्रह्मशिरसि सहस्रांशुसमप्रभे । उग्रे परमदुर्धर्षे लोकक्षय-करे तथा ॥ ९ ॥ हाहाभूतेषु सर्वेषु प्रधावत्सु समन्ततः । केशवः केशिमथनश्चक्रं जग्राह वीर्यवान् ॥ १० ॥ सर्वेषामस्त्रवीर्याणां वारणं धारणं तथा। चक्रमप्रतिचक्रस्य लोके ख्यातं महात्मनः॥११ अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तेन निष्प्रभं कृतमोजसा । घनैरिवातपापाये सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १२ ॥ ततो निष्प्रभतां याते नष्टवीर्ये महा-

---

तब तो कोपमें भरे हुए कार्तिकेय शैल, वारुण और सावित्र नामक अस्त्रोंसे उन तीनोंको बींधने लगे तदनन्तर (वे तीनों) प्रदीप्त बाण वाले और चमकते हुए धनुषको धारण करने वाले महात्मा स्कन्दके बाणोंको अपनी अस्त्र मायासे ग्रस लेते थे उस समय स्वामी-कार्तिकेय कभी २ क्रोधमें भर कर तेजसे जलनेसे लगते थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनन्तर प्रभु अग्निकुमारने अपने दोनों ओठों को दाब कर कालकी समान दुरासद्द ब्रह्मशिर नामक अस्त्रको उठा लिया ॥ ८ ॥ संसारका क्षय करने वाले सूर्यकी समान प्रभावान् परम दुर्धर्ष उग्र ब्रह्मशिर अस्त्रका प्रयोग करने पर ९ जब सब प्राणी हाहाकार करके चारों ओरको भागने लगे तब केशी दैत्यका नाश करने वाले वीर्यवान् केशवने अपने चक्रको उठा लिया ॥ १० ॥ जिनकी आज्ञा संसारमें कहीं नहीं रुकती थी ऐसे महात्मा विष्णुका प्रसिद्ध चक्र सब अस्त्रोंके वीर्यको नष्ट करने वाला और सब अस्त्रोंको हराने वाला था ॥११॥ जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु बीतनेके अनन्तर मेघ सूर्य मण्डलको निष्प्रभ कर डालते हैं इसी प्रकार उस अस्त्रने ब्रह्मशिर नामक अस्त्रको

जसि । तस्मिन् ब्रह्मशिरस्यस्त्रे क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥ गुहः प्रजज्वाल रणे हविषेवाग्निरुल्बणः । शत्रुघ्नीं ज्वलितां दिव्यां शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ॥१४॥ तां प्रदीप्तां महोल्काभां युगान्ताग्निसमप्रभाम् । घण्टामालाकुलां दिव्यां चिक्षेप रुषितो गुहः१५ ननाद बलवच्चापि नादं शत्रुभयंकरम् । सा च क्षिप्ता तदा तेन ब्रह्मण्येन महात्मना ॥ १६ ॥ जृम्भमाणेव गगने संप्रदीप्तमुखी तदा । अधावत महाशक्तिः कृष्णस्य वधकांक्षिणी ॥ १७ ॥ भृशं विषण्णः शक्रोऽपि सर्वामरगणैर्वृतः। शक्तिं प्रज्वलितां दृष्ट्वा दग्धः कृष्णेति चाब्रवीत् ॥ १८ ॥ तां समीपमनुप्राप्तां महाशक्तिं

बलपूर्वक फीका कर दिया ॥ १२ ॥ प्रकार उस अस्त्रने ब्रह्म शिर नामक अस्त्रको बलपूर्वक फीका कर दिया जब ब्रह्मशिर अस्त्रका वीर्य नष्ट होगया और वह महाबलवान् अस्त्र फीका पड़ गया तब तो स्वामी कार्तिकेयके नेत्र क्रोधके मारे लाल लाल हो गए ॥ १३ ॥ फिर स्वामी कार्तिकेय हवि पड़नेसे बढ़े हुए अग्निकी समान रणमें प्रज्वलित होने लगे और उन्होंने शत्रुओं का नाश करने वाली सुवर्णकी दमकती हुई शक्ति उठाली १४ उस जलती हुई उल्काकी समान आभावाली और प्रलयकालके अग्निकी समान प्रभावाली घंटोंकी मालाओंसे आकुल दिव्य शक्तिको क्रोधमें भरे हुए कार्तिकेयने फेंक दिया ॥ १५ ॥ और बलपूर्वक शत्रुओंको डरानेके लिये नाद करने लगे ब्रह्मण्य महात्माके द्वारा फेंकी हुई वह शक्ति ॥ १६॥ आकाशमें जंभाई सी लेती हुई चली वह कृष्णका वध चाहनेवाली महाशक्ति अपने मुखको प्रदीप्त करके दौड़ी ॥ १७॥ उस समय सब देवताओंसे घिरा हुआ इन्द्र भी बहुत खिन्न होगया और शक्तिको प्रज्वलित होती हुई देख कर कहने लगा कि—कृष्ण भस्म होजावेंगे ।१८। परन्तु महायुद्धमें जब वह शक्ति श्रीकृष्णके पास आई तब श्रीकृष्ण

महामृधे । हुंकारेणैव निर्भर्त्स्य पातयामास भूतले ॥१९॥ पातितायां महाशक्त्यां साधु साध्विति सर्वशः । सिंहनादं ततश्चक्रुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥२०॥ ततो देवेषु नर्दत्सु वासुदेवः प्रतापवान् । पुनश्चक्रं स जग्राह दैत्यान्तकरणं रणे ॥२१॥ व्याविध्यमाने चक्रे तु कृष्णेनाप्रतिमौजसा । कुमाररक्षणार्थाय बिभ्रती सुतनुं तदा ॥ २२ ॥ दिग्वासा देववचनात् प्रविष्टा तत्र कोटवी । लम्बमाना महाभागा भागो देव्यास्तथाष्टमः ॥२३॥ चित्रा कनकशक्तिस्तु सा च नग्ना स्थितान्तरे । अथान्तरात् कुमारस्य देवीं दृष्ट्वा महाभुजः पराङ्मुखस्ततो वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच । अपगच्छापगच्छ त्वं धिक्त्वामिति वचोऽब्रवीत् । किमेवं कुरुषे विघ्नं निश्चितस्य वधं प्रति ॥ २५ ॥ वैशम्पायन

ने हुँकार शब्दसे उसका तिरस्कार करके उसको भूमिमें गिरा दिया ॥ १९ ॥ महाशक्तिके गिराने पर सब देवता और इन्द्र चारों ओरसे साधु २ का सिंहनाद करने लगे ।२०। जब देवता गर्जने लगे उस समय प्रतापी वासुदेवने दैत्योंका अन्त करनेवाले चक्रको फिर उठा लिया ॥ २१ ॥ अप्रतिम ओजवाले श्रीकृष्ण जब चक्रको घुमा रहे थे इतनेमें ही कुमारकी रक्षा करनेके लिये लम्बमाना कोटवी देवी सुन्दर शरीरको धारण कर तहाँ आई वह शिवजीके वचनसे कुमारकी रक्षा करनेके लिये तहाँ नङ्गी ही घुस आई थी और वह पार्वतीदेवीके अष्टमांशसे उत्पन्न हुई थी॥ २२ ॥ २३ ॥ सुवर्णकी विचित्र शक्ति (और कुमारके) बीचमें वह नङ्गी आकर खड़ी होगई, महाभुज कृष्णने कुमारके बीचमें देवीको खड़ी हुई देख कर अपना मुख फेर लिया, फिर वह मधुसूदन कहने लगे २४ श्रीभगवान्ने कहा, कि–अरी भाग! भाग ! तुझे धिक्कार है, जिसका मैंने वध करना निश्चित कर लिया है उसके वधमें तू इस प्रकार क्यों विघ्न डालती है ॥२५॥ वैशं-

उवाच । श्रुत्वैवं वचनं तस्य कोटवी तु तदा प्रभो । नैव वासः समाधत्त कुमारपरिरक्षणात् ॥२६॥ श्रीभगवानुवाच । अपवाह्य गुहं शीघ्रमपयाहि रणाजिरात् । स्वस्ति ह्येवं भवेदस्य योत्स्यते योत्स्यता मया ॥ २७ ॥ तां च दृष्ट्वा स्थितां देवो हरिः संग्राममूर्द्धनि । संजहार ततश्चक्रं भगवान् वासवानुजः ॥ २८ ॥ एवं कृते तु कृष्णेन देवदेवेन धीमता । अपवाह्य गुहं देवी हरसान्निध्यमागमत् ॥२९॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव वर्तमाने महाभये । कुमारे रक्षिते देव्या बाणस्तं देशमागमो ॥ ३० ॥ अपयान्तं गुहं दृष्ट्वा मुक्तं कृष्णेन संयुगात् । बाणश्चिन्तयते तत्र स्वयं योत्स्यामि माधवम् ॥३१॥ वैशम्पायन उवाच । भूतयक्षगणाश्चैव बाणानीकं च सर्वशः । दिशः प्रदुद्रुवुः सर्वे भयमोहितलोचनाः ॥ ३२ ॥

पायनजीने कहा, कि-हे विभो ! कोटवीने श्रीकृष्णके वचनको सुन कर भी कुमारकी रक्षाके कारण वस्त्र नहीं पहिरा, । २६ । फिर भगवान् कहने लगे, कि तू गुहको लेकर रणाङ्गणमेंसे शीघ्र ही भाग जा, इस प्रकार ही इसकी कुशल होसकेगी, नहीं तो यह मुझसे युद्ध करेगा, तो मैं भी इससे युद्ध करता रहूँगा ॥ २७ ॥ उसको संग्रामके मुहाने पर खड़ी हुई देख कर इन्द्रके अनुज भगवान् कृष्णने अपने चक्रका संहार करलिया २८ देवदेव बुद्धिमान् कृष्णने जब ऐसा कर लिया, तब देवी कोटवी तहाँसे गुह को लेकर शिवजीके पास पहुँच गई २९ देवीके द्वारा कुमारकी रक्षा होने पर तहाँ बड़ा भारी भय फैलने लगा इसी समय बाणासुर तहाँ पर आगया ३० कृष्णसे छूटकर कार्तिकेयको भागता हुआ देखकर बाण विचारने लगा, कि-मैं कृष्णसे स्वयं ही युद्ध करूँगा ३१ वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय भयके कारण जिनके नेत्र घबड़ा उठे थे, वे भूत और यक्ष बाणासुरकी सेनामें चारों ओरसे भाग रहे थे ॥ ३२ ॥ बहुतसी प्रमाथोंकी सेनाके

प्रमाथगणभूयिष्ठे सैन्ये दीर्णे महासुरः। निर्जगाम ततो बाणो युद्धायाभिमुखस्त्वरन् ॥ ३३ ॥ भीमप्रहरणैर्घोरैर्दैत्येन्द्रैः सुमहारथैः। महाबलैर्महावीरैर्वज्रीव सुरसत्तमैः ॥ ३४ ॥ पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तस्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः। जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिर्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः ॥ ३५ ॥ ततस्तूर्यप्रणादैश्च भेरीणां तु महास्वनैः। सिंहनादैश्च दैत्यानां बाणः कृष्णमभिद्रवत् ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वा बाणं तु निर्यातं युद्धायैव व्यवस्थितम्। आरुह्य गरुडं कृष्णो बाणायाभिमुखो ययौ ॥ ३७ ॥ आयान्तमथ तं दृष्ट्वा यदूनामृषभं रणे। वैनतेयमथारूढ कृष्णमप्रतिमौजसम् ॥ ३८ ॥ अथ बाणस्तु तं दृष्ट्वा प्रमुखे प्रत्युपस्थितम्। उवाच वचनं क्रुद्धो वासुदेवं तरस्विनम् ॥ ३९ ॥ बाण उवाच। तिष्ठ तिष्ठ न मेऽद्य त्वं जीवन्प्रतिगमिष्यसि। द्वारकां द्वारकस्थांश्च सुहृदो

भाग जाने पर भी बाणासुर त्वराके साथ बढ़ता ही चला गया ३३ जिस प्रकार श्रेष्ठ देवताओंसे इन्द्र घिरा होता है इसी प्रकार वह भी उस समय भयंकर प्रहार वाले महारथी भयंकर दैत्येन्द्रोंसे घिर रहा था ३४ तदनन्तर पुरोहित शत्रुका वध हो यह कहकर और दूसरे शास्त्र तथा आचारमें प्रवीण पुरुष मंत्र तथा औषधियोंसे महात्मा बाणासुरका स्वस्तिवाचन करने लगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर तूर्योंके नादके भेरियोंके महाशब्दसे और दैत्योंके सिंहनादके साथ बाणासुर कृष्णकी ओर दौड़ने लगा ॥ ३६ ॥ बाणासुरको निकल कर युद्ध करनेके लिये आते देखकर कृष्ण गरुड़ पर सवार हो उसके सामने युद्ध करनेको चले ३७ फिर उसने अप्रतिम ओजवाले यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णको गरुड़ पर चढ़ आतेहुए देखा ॥ ३८ ॥ तदनन्तर फुर्तीले वासुदेवको अपने सामने खड़ा हुआ देखकर बाणासुर क्रोध भरकर कहने लगा बाणासुरने कहा, कि–खड़ा रह! खड़ा रह! तू आज मेरे सामने

दृक्ष्यसे न च ॥ ४० ॥ सुवर्णवर्णान्वृक्षाग्रानद्य द्रक्ष्यसि माधव । मयाभिभूतः समरे मुमूर्षुः कालनोदितः ॥४१॥ अद्य बाहुसहस्रेण कथमष्टभुजो रणे । मया सह समागम्य योत्स्यसे गरुडध्वज ४२ अद्य त्वं वै मया युद्धे निर्जितः सह बान्धवैः । द्वारकां शोणितपुरे निहतः संस्मरिष्यसि ॥ ४३ ॥ नानाप्रहरणोपेतं नानांगदविभूषितम् । अद्य बाहुसहस्रं मे कोटिभूतं निशामय ॥ ४४ ॥ गर्जतस्तस्य वाक्यौघा जलौघा इव सिन्धुतः । निश्चरन्ति महाघोरा वातोद्धूता इवोर्मयः ४५ रोषपर्याकुले चैव नेत्रे तस्य बभूवतुः । जगद्दिधक्षन्निव खे महासूर्य इवोदितः ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदस्तस्य बाणस्यात्यूर्जितं वचः । जहास सुमहाहासं भिदन्निव

से जीता हुआ न जा सकेगा और द्वारका तथा द्वारकामें स्थित अपने मित्रोंको भी न देख सकेगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तुझे काल खचेड़ लाया है तू मराऊ हो रहा है हे माधव ! मुझसे तिरस्कार पाकर आज तू सुवर्णके रंगवाले वृक्षोंके अग्रभागको देखेगा ४१ हे गरुड़ध्वज ! तू आठ भुजावाला है फिर मुझ सहस्र भुजावाले के साथ रणमें भेंटा होनेपर कैसे लड़सकेगा ४२ आज मैं युद्धमें तुझे और तेरे बान्धवोंको जीत लूँगा तब तू शोणितपुरमें घायल होकर द्वारकाका स्मरण करेगा ॥४३॥ अनेक प्रकारके आयुधों से युक्त बहुतसे बाजूबन्दोंसे विभूषित मेरी सहस्र भुजाओंको तू करोड़ भुजाओंकी समान देख ४४ जैसे समुद्रोंसे वायुसे हिलती हुई लहरोंवाले भयंकर जलके समूह निकलते हैं तिसीप्रकार गर्जना करने वाले बाणासुर (के मुख) से वाक्योंके समूह निकलरहे थे ४५ उसके नेत्र रोषसे व्याकुल होगए, और वह जगत्को भस्म करनेकी इच्छासे आकाशमें उदय हुए महासूर्यकी समान प्रतीत होने लगा ४६ नारदजी बाणासुरके इस बड़ेभारी वचनको सुन कर आकाशतलको भेदते हुएसे बड़ी जोरसे हँसने लगे ॥४७॥

नभस्तलम् ॥ ४७ ॥ योगपट्टमुपाश्रित्य तस्थौ युद्धदिदृक्षया । कौतूहलोत्फुल्लदृशः कुर्वन्पर्यटते मुनिः ॥ ४८ ॥ कृष्ण उवाच । बाण किं गर्ज्जसे मोहाच्छूराणां नास्ति गर्जितम् । एह्येहि युध्यस्व रणे किं वृथा गर्जितेन ते ॥ ४९ ॥ यदि युद्धानि वचनैः सिद्धेयुर्दितिनन्दन । भवानेव जये नित्यं बह्वबद्धं प्रजल्पति ॥ ५० ॥ एह्येहि जय मां बाण जितो वा वसुधातले । चिरायानाङ्मुखोदीनः पतितः शेष्यसेऽसुरैः ॥ ५१ ॥ इत्येवमुक्त्वा बाणं तु मर्मभेदिभिराशुगैः । निर्बिभेद तदा कृष्णस्तपोवीर्यमहाशरैः ॥५२॥ विनिर्भिन्नस्तु कृष्णेन मार्गणैर्मर्मभेदिभिः । स्मयन्बाणस्ततः कृष्णं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५३ ॥ ज्वलद्भिरिव संयुक्तं तस्मिन् युद्धे सुदारुणे । ततः परिघनिस्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः ॥५४॥ मुशलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास केशवम् । स तु बाहुसहस्रेण गर्वितो

और योगका आश्रय लेकर युद्धको देखनेकी इच्छासे खड़े होगए और वह जिनके नेत्र कौतूहलके कारण खिल रहे थे ऐसे मुनि तहाँ पर घूमने लगे ४८ श्रीकृष्णने कहा, कि—हे बाण ! तू मोहवश गर्जना क्यों कररहा है शूर पुरुषोंमें गर्जना नहीं होती है आ ! आ !! युद्ध कर रणमें तेरे वृथा गर्जनेसे क्या लाभ है ४९ हे दितिनन्दन ! क्या युद्ध वचनोंसे सिद्ध होजाते हैं ? तुम जयके विषयमें बहुतसी असम्बद्ध बातें कर रहे हो ५० हे बाणासुर ! आ ! आ !! और मुझे जीत अथवा मुझसे हारकर पृथ्वीतलमें नीचेको मुखकर अपने असुरोंके सहित सोजा ॥५१॥ श्रीकृष्ण बाणासुरसे इसप्रकार कह कर उसको शीघ्र जाने वाले अमोघ बाणोंसे मारनेलगे ॥५२॥ कृष्णके द्वारा मर्मभेदी बाणोंसे विंधा हुआ बाणासुर मुस्कुराकर श्रीकृष्णको बाणोंसे छानेलगा ।५३। तदनन्तर सहस्र भुजाओंके कारण गर्वमें भरा हुआ दैत्यसत्तम जलते हुए बाणोंसे संयुक्त श्रीकृष्णको दारुण युद्धमें परिघ तल-

दैत्यसत्तमः ॥ ५५ ॥ योधयामास समरे द्विबाहुमथ लीलया ।
लाघवात्तस्य कृष्णस्य बलिसूनू रुषान्वितः ॥५६॥ ततोस्त्रं परमं
दिव्यं तपसा निर्मितं महत् । यदप्रतिहतं युद्धे सर्वामित्रविना-
शनम् ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणा विहितं दिव्यं तन्मुमोच दितेः सुतः ।
तस्मिन्मुक्ते दिशः सर्वास्तमः पिहितमण्डलाः ॥ ५८ ॥ प्रादुरा-
सन्सहस्राणि सुघोराणि च सर्वशः । तमसा संवृते लोके न प्राज्ञा-
यत किंचन ५९ साधु साध्विति बाणं तु पूजयन्ति स्म दानवाः ।
हाहा धिगिति देवानां श्रूयते वागुदीरिता ॥ ६० ॥ ततोस्त्रबल-
वेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः । घोररूपा महाघोरा निपेतुर्बाण-
वृष्टयः ॥ ६१ ॥ नैव वाताः प्रवायन्ति न मेघो संचरन्ति च ।
अस्त्रे विसृष्टे बाणेन दह्यमाने च केशवे ॥ ६२ ॥ ततोस्त्रं सुमहा-

---

वार गदा तोमर शक्ति मूसल और पट्टिशोंसे छाने लगा ५४-५५
इस प्रकार बाणासुर दो भुजावाले श्रीकृष्णको खेलताहुआ सा
लड़ानेलगा परन्तु फिर भी कृष्णके फुर्तीलेपनसे बलिका पुत्र
बाणासुर क्रोधमें भर गया ५६, और दितिके पुत्रने ब्रह्माजीके
रचेहुए सब शत्रुओंके नाशक युद्धमें अप्रतिहत,तपसे रचे हुए बड़े
भारी श्रेष्ठ दिव्य अस्त्रको छोड़ा उस अस्त्रके छोड़ने पर सब
दिशाओंके मण्डल अन्धकारसे ढक गए । ५७ । ५८ । और तहाँ
पर चारों ओरसे सहस्रों भयंकर (आकार) प्रकट होने लगे,संसार
के अन्धकारसे भरजानेके कारण कुछ जाननेमें नहीं आसका उस
समय दानव साधु,साधु,कह कर बाणासुरकी पूजा करने लगे
और देवताओंकी कही हुई यह वाणी सुनाई आने लगी, कि-
हा ! हा !! धिक्कार है! धिक्कार है !! ६० तदनन्तर अस्त्रके बल
के वेगसे लपटों वाली दारुण महाघोर बाणोंवृष्टियें होने लगी६१
उस समय जलते हुए बाणासुरके केशवके ऊपर अस्त्र छोड़ने पर
वायुका चलना बन्द होगया और मेघोंने भी घूमना छोड़ दिया६२

वेगं जग्राह मधुसूदनः । पार्जन्यं नाम भगवान् कालान्तकनिभं रणे ॥६३॥ ततो वितिमिरे लोके शराग्निः प्रशमं गतः । दानवा मोघसंकल्पाः सर्वभूतस्तदा भृशम् ॥ ६४ ॥ दानवास्त्रं प्रशान्तं तु पर्ज्जन्यास्त्रेऽभिमन्त्रिते । ततो देवगणाः सर्वे नदन्ति च हसन्ति च ॥ ६५ ॥ हते शस्त्रे महाराज दैतेयः क्रोधमूर्छितः । भूयः संछादयामास केशवं गरुडे स्थितम् ॥ ६६ ॥ मुशलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास केशवम् । तस्य तां तरसा सर्वां बाणवृष्टिं समुद्यताम् ॥ ६७ ॥ प्रहसन् वारयामास केशवं शत्रुसूदनः । केशवस्य तु बाणेन वर्त्तमाने महाद्रवे ॥ ६८ ॥ तस्य शार्ङ्गविनिर्मुक्तैः शरैरशनिसंनिभैः । तिलशस्तद्रथं चक्रे साश्वध्वजपताकिनम् ॥६९॥ चिच्छेद कवचं कायान्मुकुटं च महाप्रभम् । कार्मुकं च महातेजा

तदनन्तर भगवान् मधुसूदनने रणमें कालकी समान महावेगवान् पार्जन्य अस्त्रको उठा लिया ।६३। तब तो संसारमेंसे अन्धकार जातारहा और बाणाग्नि शान्त होगई और सब दानवोंके संकल्प भी व्यर्थ होगए६४जब पार्जन्यास्त्रके अभिमंत्रित होनेपर दानवास्त्र शान्त होगया तो सब देवता आनन्दित होने लगे और हँसने लगे ६५ हे महाराज शस्त्रके नष्ट होजाने पर बाणासुर मूर्छित होगया और गरुड़ पर बैठे हुए केशवको (बाणोंसे) फिर छाना चाहने लगा ६६ और मूसल तथा पट्टोंसे केशवको पाटने लगा शत्रुसूदन श्रीकृष्णने उस आती हुई बाणवृष्टिको वेगपूर्वक दूर करदिया जब केशव और बाणका महायुद्ध होरहा था उस समय केशवने अपने शार्ङ्गधनुषसे वज्रकी समान बाणोंको छोड़कर बाणासुरके रथके घोड़ोंके ध्वजाके और झण्डियोंके तिलकी समान टुकड़े कर डाले । ६७ । ६९ । और उसके शरीर परसे कवच को काट कर (पृथ्वीमें गिरादिया) तथा उसके महाकान्तिमान् मुकुटको धनुषको और हाथके मौजोंको भी काट डाला फिर

हस्तावापं च केशवः ॥ ७० ॥ विव्याध चैनमुरसि नाराचेन स्मयन्निव । स मर्माभिहतः संख्ये मुमोहाल्पचेतनः ॥७१॥ तं दृष्ट्वा मूर्छितं बाणं प्रहारपरिपीडितम् । प्रासादवरशृङ्गस्थो नारदो मुनिपुङ्गवः ॥ ७२ ॥ उत्थायापश्यत तदा कक्ष्यास्फोटनतत्परः । वादयानो नखांश्चैव दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ ७३ ॥ अहो मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । दृष्टं मे यदिदं चित्रं दामोदरपराक्रमम् ॥७४॥ जय बाणं महाबाहो दैतेयं देवकिल्बिषम् । यदर्थमवतीर्णोसि तत्कर्म सफली कुरु ॥ ७५ ॥ एवं स्तुत्वा तदा देवं बाणैः खं द्योतयन् शितैः । इतस्ततः सम्पतद्भिर्नारदो व्यचरद्रणे ॥ ७६ ॥प्रयुध्येतां ध्वजौ तत्र तावन्योन्यमभिद्रुतौ । युद्धं त्वभूद्वाहनयोरुभयोर्देवदैत्ययोः ॥७७॥ गरुडस्य च संग्रामो मयू-

महातेजस्वी केशवने मुस्कुराकर उसकी छातीमें बाण मारा मर्ममें चोट लगनेसे अल्पचेतनावाला हुआ बाणासुर युद्धमें मूर्छित हो गया । ७० । ७१ । प्रहारसे पीड़ित होकर बाणासुरको मूर्छित हुआ देख महलके श्रेष्ठ कँगूरे पर बैठे हुए नारदजी उठ कर उसे देखने लगे और अपनी बगलोंको बजाने लगे और अपने नाखूनोंको भी बजाने लगे और बहुत अच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ कहने लगे । ७३ । मैंने दामोदरका विचित्र पराक्रम देखा अतः मेरा जन्म सफल होगया और मेरा जीवन सुजीवन होगया ७४ हे महाभुजकृष्ण ! आप देवकिल्बिष दानव बाणासुरको जीतिये और जिस कार्यके लिये आपने अवतार लिया है उस कामको सफल करिये ॥ ७५ ॥ इस प्रकार केशवकी स्तुति करके नारदजी इधर उधर गिरते हुए तेज बाणोंसे आकाशको प्रकाशित कर रणमें घूमने लगे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर इधर उधर दौड़ती हुई ध्वजा युद्ध करने लगीं, तदनन्तर केशव और बाणासुरके वाहन गरुड़ और बुद्धिमान् मयूरका पंख और चोंचके प्रहारसे तथा चरण

रस्य च धीमतः । पक्षतुण्डमहारैस्तु चरणास्यनखैस्तथा ॥७८॥ अन्योन्यं जघ्नतुः क्रुद्धौ मयूरगरुडावुभौ । वैनतेयस्ततः क्रुद्धो मयूरं दीप्ततेजसम् ॥ ७९ ॥ जग्राह शिरसि क्षिप्रं तुण्डेनाभिपतंस्तदा । उत्क्षिप्य चैव पक्षाभ्यां निजघान महाबलः ॥८०॥ पद्भ्यां पार्श्वाभिघाताभ्यां कृत्वा घातान्यनेकशः । आकृष्य चैनं तरसा विकृष्य च महाबलः ॥८१॥ निःसंज्ञं पातयामास गगनादिव भास्करम् । मयूरे पतिते तस्मिन् पपातातिबलो भुवि ८२ बाणः समरसंविग्नश्चिन्तयन् कार्यमात्मनः । मयातिबलमत्तेन न कृतं सुहृदां वचः ॥ ८३ ॥ पश्यतां देवदैत्यानां प्राप्तोस्म्यापदमुत्तमाम् । तं दीनमनसं ज्ञात्वा रणे बाणं सुविक्लवम् ॥ ८४ ॥ चिन्तयन्भगवान् रुद्रो बाणरक्षणमातुरः । ततो नन्दीं महादेवः प्राह

और मुखके प्रहारसे युद्ध होने लगा ॥ ७७ ॥ ७८ क्रोधमें भरे हुए मयूर और गरुड़ आपसमें प्रहार करने लगे तदनन्तर गरुड़जी ने क्रोधमें भरकर दीप्ततेज वाले मयूरके शिरमें पंख और तुण्डका प्रहार किया और फिर महाबली गरुड़ने अपने पङ्खोंसे मयूरको उठाकर मारना आरम्भ करदिया८० फिर पैर और पसलियोंसे अनेक प्रहार करके महाबली गरुड़जी उसको बलपूर्वक खैंच कर आकाशमेंको उड़े ॥ ८१ ॥ फिर जिसप्रकार आकाशमेंसे सूर्यको गिराया जाय इसप्रकार मूर्छित मयूरको नीचेको गिरा दिया मयूर के गिरने पर अतिबली बाणासुर पृथ्वीमें गिर पड़ा ८२ समरसे घबड़ाया हुआ बाणासुर उस समय विचार करने लगा; कि मैंने बलमें मदमत्त होनेके कारण मित्रोंका वचन नहीं माना था॥८३॥ इस लिए देवता और दैत्योंके सामने ही मुझ पर बड़ी भारी आपत्ति पड़ रही है बाणासुरको रणमें घबड़ाया हुआ और मन को हलका करता हुआ जान कर ।८४॥ भगवान् रुद्र विचार करने लगे और बाणासुरकी रक्षा करनेके लिए आतुर हुए महा-

गम्भीरया गिरा ॥८५॥ नन्दिकेश्वर याहि त्वं यतो बाणो रणे स्थितः। रथेनानेन दिव्येन सिंहयुक्तेन भास्वता ॥ ८६ ॥ बाणे संयोजयाशु त्वगलं युद्धाय वानघ। प्रमाथगणमध्येऽहं स्थास्यामि न हि मे मनः ॥ ८७ ॥योद्धुं वितरते ह्यत्र बाणं संरक्ष्य गम्यताम्। तथेत्युक्त्वा ततो नन्दी रथेन रथिनां वरः ॥ ८८ ॥ यतो बाणस्ततो गत्वा बाणमाह शनैरिदम्। दैत्याशु रथमातिष्ठ शीघ्रमेहि महाबलः ॥ ८९ ॥ ततो युध्यस्व कृष्णं त्वं दानवान्तकरं रणे। आरुरोह रथं बाणो महादेवस्य धीमतः ॥ ९० ॥आरूढः स तु बाणश्च तं रथं ब्रह्मनिर्मितम्। तं स्यन्दनमधिष्ठाय भवस्यामिततेजसः ॥ ९१ ॥ प्रादुश्चक्रे महारौद्रमस्त्रं सर्वास्त्रघातनम्। दीप्तं ब्रह्मशिरो नाम बाणः क्रुद्धोऽतिवीर्यवान्॥९२॥ प्रदीप्ते

देवने गंभीर वाणीमें नन्दीसे कहा, कि–।८५। हे नन्दिकेश्वर ! रणमें जहाँ पर बाणासुर खड़ा हुआ है तहाँ पर तुम इस सिंह जुड़े हुए प्रकाशमान रथमें बैठ कर जाओ ॥ ८६ ॥ और उसको बाणके पास ले जाओ हे अनघ ! अथवा युद्ध करनेसे रोक दो, मैं इस समय प्रमार्थोंके बीचमें हूँ परन्तु मेरा मन नहीं लगता ८७ और युद्ध करना चाहता है अब तुम बाणकी रक्षा करनेके लिए युद्धस्थलको जाओ तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ नन्दीने तथास्तु कहा, और तहाँ पर रथके द्वारा पहुँच कर बाणासुरसे धीरेसे कहने लगे; कि–हे दैत्य ! तू इस रथ पर बैठ ! हे महाबल ! शीघ्र ही आ ! ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ और फिर रणमें दानवोंका अन्त करने वाले कृष्णसे लड़ तब बाणासुर बुद्धिमान् शंकरके रथ पर चढ़ने लगा ॥ ९० ॥ बाणासुर ब्रह्माजीके रचे हुए उस रथ पर बैठ गया अमित तेजस्वी शिवके रथ पर बैठनेके अनन्तर क्रोधमें भरे हुए अतिबलवान् बाणासुरने सब अस्त्रोंको नष्ट करने वाले महाभयंकर ब्रह्मशिर नामक प्रदीप्त अस्त्रको प्रकट किया

ब्रह्मशिरसि लोकः क्षोभमुपागमत् । लोकसंरक्षणार्थं वा तत्सृष्टं पद्मयोनिना ॥ ६३ ॥ तच्चक्रेण निहत्यास्त्रं प्राह कृष्णस्तरस्विनम् । लोके प्रख्यातयशसं बाणमप्रतिमं रणे ६४। कथितानि क्व ते तात बाण किं न निकत्थसे । अयमस्मि स्थितो युद्धे युध्यस्व पुरुषो भव । कार्तवीर्यार्जुनो नाम पूर्वं बाहुसहस्रवान् ।६५। महाबलः स रामेण द्विबाहुः समरे कृतः । तथा तवापि दर्पोऽयं बाहूनां वीर्यसम्भवः ॥६६॥एष ते दर्पशमनं करोमि रणमूर्धनि । यावत्ते दर्पशमनं करोम्यद्य स्वबाहुना ॥ ६७ ॥ तिष्ठेदानीं न मेऽद्य त्वं मोक्ष्यसे रणमूर्धनि । अथ तद् दुर्लभं दृष्ट्वा युद्धं परमदारुणम् ॥ ६८ ॥तत्र देवासुरसमे युद्धे नृत्यति नारदः । निर्जिताश्च गणाः सर्वे प्रद्युम्नेन महात्मना ॥ ६९ ॥ निक्षिप्तवादा

ब्रह्मशिर अस्त्रके प्रदीप्त होने पर मनुष्य क्षुब्ध होने लगे ब्रह्माजी ने उसको संसारकी रक्षा करनेके लिए ही रचा था ।६१-६३। श्रीकृष्ण उस अस्त्रको बाणसे नष्ट करके संसारमें प्रसिद्ध यश वाले रणमें अप्रतिम तरस्वी बाणासुरसे कहने लगे, कि-६४। हे बाणासुर ! अब तेरी बातें कहाँ गई हे तात ! अब तू बड़बड़ क्यों नहीं करता है, मैं खड़ा हुआ हूँ अब तू युद्ध कर और पुरुष बन पहले एक कार्तवीर्य अर्जुन नाम वाला राजा था उसके सहस्र भुजाएँ थीं उस महाबलीको समरमें परशुरामजीने दो भुजावाला कर दिया था इसी प्रकार तेरे भी भुजाओंके कारण उत्पन्न हुए दर्पको (मैं नष्ट कर दूँगा) ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ मैं रणके मुहाने पर तेरे दर्पको नष्ट करता हूँ जब तक अपनी भुजासे मैं तेरे दर्प को शान्त करूँ तब तू रणमें खड़ा रह।आज मैं तुझे रणके मुहाने पर नहीं छोड़ूँगा इस परम दारुण दुर्लभ युद्धको देख कर॥६८॥ नारदजी उस देवासुर संग्रामकी समान युद्धमें नाचने लगे उधर महात्मा प्रद्युम्नने भी सब गणोंको जीत लिया ॥ ६९ ॥ तब वे

युद्धस्य देवदेवं गताः पुनः । स तच्चक्रं सहस्रारं नदन् मेघ इवोष्णगे ॥ १०० ॥ जग्राह कृष्णस्त्वरितो बाणान्तकरणं रणे । तेजो यज्ज्योतिषां चैव तेजो वज्राशनेस्तथा ॥ १ ॥ सुरेशस्य च यत्तेजस्तच्चक्रे पर्यवस्थितम् । त्रेताग्नेश्चैव यत्तेजो यच्च वै ब्रह्मचारिणाम् ॥ २ ॥ ऋषीणां च ततो ज्ञानं तच्चक्रे समवस्थितम् । पतिव्रतानां यत्तेजः प्राणाश्च मृगपक्षिणाम् ॥ ३ ॥ यच्च चक्रधरेष्वस्ति तच्चक्रे सन्निवेशितम् । नागराक्षसयक्षाणां गंधर्वाप्सरसामपि ॥४॥ त्रैलोक्यस्य च यत्प्राणं सर्वं चक्रे व्यवस्थितम् । तेजसा तेन संयुक्तं ज्वलन्निव च भास्करः ॥ ५ ॥ वपुषा तेज आधत्ते बाणस्य प्रमुखे स्थितम् । ज्ञात्वातितेजसा चक्रं कृष्णेनाभ्युदितं रणे ॥६॥ अप्रमेयं ह्यविहितं रुद्राणी चाब्रवीच्छिवम् ।

युद्ध करनेकी बातोंको छोड़ कर देवदेव शिवके पास फिर भाग गए तदनन्तर फुर्ती करना चाहने वाले श्रीकृष्णने वर्षाकाल के मेघकी समान शब्द करके सहस्र अरे वाले चक्रको बाणासुर का अन्त करनेके लिए उठा लिया; नक्षत्रोंका जो तेज है और जो वज्र तथा अशनिका तेज है ॥ १००॥१०१ ॥ और देवेन्द्र का जो तेज है वह तेज चक्रमें स्थापित था त्रेताग्निका जो तेज है और ब्रह्मचारियोंमें जो तेज है ॥ १०२ ॥ ऋषियोंका जो ज्ञान है वह सब चक्रमें स्थित था, पतिव्रताओंका जो तेज है पशुपक्षियोंका जो प्राणबल है १०३ ॥ और चक्रधारण करने वालोंमें जो कुछ है वह सब चक्रमें रख दिया था सर्प राक्षस यक्ष गन्धर्व तथा अप्सराओंका तथा त्रिलोकीका जो प्राणबल है वह सब चक्रमें स्थापित था उस तेजसे सयुक्त हुआ बाणासुरके सामने खड़ा हुआ वह चक्र अपने शरीरसे प्रकाशित होते हुए सूर्यकी समान तेजको धारण कर रहा था अतितेजस्वी कृष्णके द्वारा अप्रमेय और कहीं नष्ट न होने वाले चक्रको उठाया हुआ जान

अजेयमेतत्त्रैलोक्ये चक्रं कृष्णेन धार्यते ॥७॥ बाणं त्रायस्व देव त्वं यावच्चक्रं न मुञ्चति । ततस्त्र्यक्षो वचः श्रुत्वा देवीं लम्बा-मथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ गच्छैहि लम्बे शीघ्रं त्वं बाणसंरक्षणं प्रति । ततो योगं समाधाय अदृश्या हिमवत्सुता॥९॥कृष्णस्यैकस्य तद्रूपं दर्शयत् पार्श्वमागता । चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा भगवन्तं रणाजिरे १० अन्तर्धानमुपागम्य त्यक्त्वा सा वाससी पुनः । परित्राणाय बाणस्य विजयाधिष्ठिता ततः ॥११॥ प्रमुखे वासुदेवस्य दिग्वासा कोटवी स्थिता । तां दृष्ट्वाथ पुनः माप्तां देवीं रुद्रस्य सम्मताम् ॥ १२ ॥ लम्बां द्वितीयां तिष्ठन्तीं कृष्णो वचनमब्रवीत् । भूयः साऽपर्णता-प्राप्तां दिग्वस्त्रावस्थिता रणे ॥१३॥ बाणत्राणाय ॥ हन्मि बाणं

कर रुद्राणीने शिवसे कहा, कि श्रीकृष्ण इस त्रिलोकीमें अजेय चक्रको उठा रहे हैं ॥१०४-१०७॥ हे देव ! जब तक यह चक्र को न छोड़े उससे पहिले ही आप बाणासुरकी रक्षा कर लीजिये इस वचनको सुन कर तीन नेत्र वाले महादेवजीने लम्बा देवीसे कहा, कि-॥ १०८ ॥ हे लम्बे ! तू बाणासुरकी रक्षा करनेके लिए शीघ्र ही जा, तदनन्तर हिमवानकी पुत्री योगका आश्रय लेकर अदृश्य होगई ॥ १०९ ॥ फिर वह कृष्णके पास जाकर अपना एक (लम्बा नाम वाला रूप दिखाने लगी रणाङ्गणमें भगवान् वासुदेवको चक्र उठाता हुआ देख कर ॥ ११० ॥ वह अन्तर्धान होगई फिर उसने अपने वस्त्रको त्याग दिया और बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये तहाँ पर फिर खड़ी होगई १११ (कोटवी लम्बाका ही उपनाम है) फिर वह कोटवी नङ्गी होकर वासुदेवके सामने खड़ी होगई रुद्रकी माननीय। उस देवीको श्रीकृष्णने फिर आया हुआ देखा ॥ ११२ ॥ श्रीकृष्ण लम्बा को दूसरी बार खड़ी हुई देख कर कुछ कहने लगे, तब उसके नेत्र अमर्षके कारण लालताल होगए और वह बाणकी रक्षा करनेके

न संशयः । एवमुक्ता तु कृष्णेन भूयो देव्यब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥ जाने त्वां सर्वभूतानां स्रष्टारं पुरुषोत्तमम् । महाभागं महादेवमनन्तं नीलमव्ययम् ॥ १५ ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं लोकानामादिसंभवम् । नार्हसे देव हन्तुं वै बाणमप्रतिमं रणे । १६॥ प्रयच्छ ह्यभयं बाणे जीवपुत्री त्वमेव च । मया दत्तवरो ह्येष भूयश्च परिरक्ष्यते ॥ १७ । न मे मिथ्यां समुद्योगं कर्तुमर्हसि माधव । एवमुक्ते तु वचने देव्या पुरपुञ्जयः ॥१८। कृष्णः प्रभाषते वाक्यं शृणु सत्यं तु भामिनि । बाणो बाहुसहस्रेण नदते दर्पमाश्रितः॥ एतेषां छेदनं त्वद्य कर्तव्यं नात्र संशयः । द्विबाहुना च बाणेन जीवपुत्री भविष्यसि ॥ २० ॥ आसुरं दर्पमाश्रित्य न च मां सं-

लिये रणमें नङ्गी ही खड़ी रही "मैं बाणको अवश्य मारडालूँगा" श्रीकृष्णके इस प्रकार कहने पर वह देवी फिर कहने लगी, कि—॥ ११३ ॥ ११४ ॥ मैं आपको सब भूतोंको रचने वाले पुरुषोत्तम महाभाग महादेव अनन्त नील अव्यय पद्मनाभ हृषीकेश और लोकोंके आदि कारण जानती हूँ हे देव!आपको रणमें अद्वितीय बाणासुरका वध नहीं करना चाहिये ११५–११६ आप बाणासुरको अभय दीजिये आपने मुझे वर दिया था, कि–तू जीवित पुत्रवाली रह अब उसकी फिर रक्षा करिगे ॥ ११७ ॥ हे माधव ! आप मेरे उद्योगको व्यर्थ न करना (लम्बा और कोटवी एक ही नाम है यह पार्वतीके अंशसे उत्पन्न हुई है और इसने बाणासुरकी माताका भी अवतार धारण किया था) उस देवीके इस प्रकार कहने पर शत्रुओंके पुरोंको जीतने वाले श्रीकृष्ण कहने लगे, कि–हे भामिनी ! तू मेरे सत्य वचनको सुन यह बाणासुर सहस्र भुजाओंके कारण घमण्डमें भरा रहता है ११८-११९ इस लिये इनको तो अवश्य ही काटा जावेगा, हाँ दो भुजावाले बाणासुरसे तू जीवित पुत्र वाली रह सकेगी १२०

अग्निष्यति । एवमुक्ते तु वचने कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २१ ॥
प्रोवाच देवी बाणोयं देवदत्तो भवेदिति । अथ तां कार्तिकेयस्य
मातरं सोभिभाष्य वै ॥ २२ । प्रोवाच बाणं समरे वदतां प्रवरः
प्रभुः । युध्यतां युध्यतां संख्ये भवतां कोटवी स्थिता ॥ २३ ॥
अशक्तानामिव रणे धिग्बाण तव पौरुषम् । एवमुक्त्वा ततः कृष्ण-
स्तच्चक्रं परमात्मवान् ॥ २४ ॥निमीलिताक्षो व्यसृजद्बाणं प्रति
महाबलः । तेजसाग्रस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थावरजङ्गमाः ॥२५॥
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे । तमप्रतिमकर्माणं
समानं सूर्यवर्चसा ॥ २६ ॥ चक्रमुद्यम्य समरे कोपदीप्तो गदा-
धरः । स मुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा २७ चिच्छेद
बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः परमौजसा । अलातचक्रवत्तूर्णं भ्राम्यमाणं

यह आसुरभावके कारण मेरा आश्रय नहीं लेगा सरलतासे
कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके इसप्रकार वचन कहने पर ॥ १२१ ॥
देवी कहने लगी, कि–यह बाणासुर आपका दियाहुआ ही बचा
रहे इस प्रकार कार्तिकेयकी मातासे भाषण करनेके अनन्तर १२२
वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने समरमें बाणासुरसे कहा, कि–अरे !
लड़ ! लड़ !! तेरी माता कोटवीखड़ी हुई है ॥ १२३ ॥ अशक्त
पुरुषोंकी समान तू रणमें (खड़ा हुआ) है अतः हे बाण ! तेरे
पुरुषार्थको धिक्कार है ! इसप्रकार कहनेके अनन्तर परमात्मवान्
महाबली श्रीकृष्णने बाणकी ओर उस चक्रको फेंकदिया, उस
चक्रके फेंकनेसे स्थावर जंगमात्मक सब लोक मोहमें पड़जाते
हैं ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ और महायुद्धमें कच्चे मांसका भक्षण करने
वाले प्राणी तृप्त होजाते हैं, उस अद्वितीय कर्म करने वाले सूर्यकी
समान तेजस्वी चक्रको गदाधरने कोपमें भर कर उठा लिया था
फिर श्रीधर अपने तेजसे दानवके तेजका हरण करके उसकी
भुजाओंको अपने चक्रसे बलपूर्वक काटने लगे थे उस समय वह

रणाजिरे ॥ २८ ॥ क्षिप्तं तु वासुदेवेन बाणस्य रणमूर्धनि । विष्णुचक्रं भ्रमत्याशु शैघ्र्याद्रूपं न दृश्यते ॥२९॥ तस्य बाहुसहस्रस्य पर्यायेण पुनः पुनः । बाणस्यच्छेदनं चक्रे तच्चक्रं रणमूर्धनि ॥ ३० ॥ कृत्वा द्विबाहुं तं बाणं छिन्नशाखमिव द्रुमम् । पुनः कराग्रे कृष्णस्य चक्रं प्राप्तं सुदर्शनम् ॥३१॥ वैशम्पायन उवाच । कृतकृत्ये तु संप्राप्ते चक्रे दैत्यनिपातने । स्रवता तेन कायेन शोणितौघपरिप्लुतम् ॥३२॥ अभवत् पर्वताकारच्छिन्नबाहुर्महासुरः । असृग्मत्तश्च विविधान् नादान् मुञ्चन् घनो यथा तस्य नादेन महता केशवो रिपुसूदनः । चक्रं भूयः क्षेप्तुकामः बाणनाशार्थमुद्यतः । तमुपेत्य महादेवः कुमारसहितोऽब्रवीत् ३४

चक्र रणाङ्गणमें बरैंटीकी समान शीघ्रतासे घूमता हुआ चला था ॥ १२६ ॥ १२८ ॥ बाणासुरके रणमें वासुदेवका फेंका हुआ विष्णुचक्र इतनी शीघ्रतासे घूम रहा था, कि—उसका रूप दिखाई नहीं पड़ता था ॥ १२९ ॥ वह चक्र रणके मुहाने पर वारम्बार घूम कर बाणासुरकी सहस्र भुजाओं (मेंसे एक २) को काटने लगा ॥ १३० ॥ शाखा कटे हुए वृक्षकी समान बाणासुरको दो भुजा वाला करके सुदर्शन चक्र श्रीकृष्णके हाथमें आगया १३१ वैशम्पायनजीने कहा, कि—दैत्योंको गिरानेवाला जब वह चक्र कामको करके श्रीकृष्णके पास पहुँचगया उससमय वह रक्तमें भराहुआ था और उसमेंसे रक्त टपक रहा था १३२ उस समय जिसकी भुजाएँ कटगई हैं ऐसा बाणासुर पर्वतकी समान दीखने लगा रक्तसे मत्त हुआ बाणासुर तब भी मेघकी समान अनेक प्रकारके शब्द करने लगा ॥ १३३ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले केशव उसके बड़े भारी नाद करने पर उसका नाश करनेके लिये चक्र फेंकनेको तयार होगये उससमय महादेव और स्कन्द उनके पास आकर उनसे कहने लगे ।१३४। शिवने कहा, कि-हे महा-

ईश्वर उवाच । कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वां पुरुषोत्तमम् ।
मधुकैटभहन्तारं देवदेवं सनातनम् ॥ ३५ ॥ लोकानां त्वं गति-
र्देव त्वत्प्रसूतमिदं जगत् । अजेयस्त्वं त्रिभिर्लोकैः ससुरासुर-
पन्नगैः ॥ ३६ ॥ तस्मात् संहर दिव्यं त्वमिदं चक्रं समुद्यतम् ।
अनिवार्यमसंहार्यं रणे शत्रुभयंकरम् ॥ ३७ ॥ बाणस्याभयमेतत्
दत्तं मया केशिनिषूदन । तन्मे न स्याद्वृथा वाक्यमतस्त्वां क्षा-
मयाम्यहम् ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । जीवतां देव बाणोऽयमे-
तच्चक्रं निवर्तितम् । मान्यस्त्वं देवदेवानामसुराणां च सर्वशः ३९
नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि यत्कार्यं ते महेश्वर । न तावत्क्रियते तस्मा-
न्मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वा महादेवं कृष्णस्तूर्णं महा-
मनाः । जगाम तत्र यत्रास्ते प्राद्युम्निः सायकार्दितः ॥ ४१ ॥

सुन कृष्ण ! मैं आपको जानता हूँ; कि आप पुरुषोत्तम तथा मधु-
कैटभका नाश करने वाले और सनातन देवदेव ! हैं ॥१३५॥
हे देव ! आप लोकोंकी गति हैं यह सब जगत् आपसे ही उत्पन्न
हुआ है देवता असुर और पन्नगसहित तीनों लोक भी आपको
नहीं जीत सकते १३६ इस लिए आप जिसका निवारण और
संहार नहीं कियाजासकता तथा जो रणमें शत्रुओंको भय देने
वाला है उस उठाएहुए दिव्यचक्रको आप धर दीजिये ॥१३७॥
हे केशनिषूदन ! मैंने इस बाणासुरको अभयदान देदिया है वह
मेरा वाक्य व्यर्थ न जाय इसलिये मैं आपसे (इसपर) क्षमा
कराना चाहता हूँ १३८ श्रीकृष्णने कहा, कि-हे देव ! मैंने अपने
चक्रको हटा लिया अब यह बाण जीता रहे हे देव ! आप देव-
ताओंके और असुरोंके भी सर्वथा मान्य हैं १३९ आपको प्रणाम
हो अब मैं जाता हूँ हे महेश्वर ! मैं (बाणरूपरूपी) जो कार्य
है उसको नहीं करता इसलिये अब आप मुझे अनुज्ञा दीजिये
महादेवजीसे इसप्रकार कहकर महामनस्वी कृष्ण शीघ्रतासे वहाँ

गते कृष्णे ततो नन्दी बाणमाह वचः शुभम्।गच्छ बाण प्रसन्नस्य देवदेवस्य चाग्रतः ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा नन्दिवाक्यं तु बाणोऽगच्छत शीघ्रगः । छिन्नबाहुं ततो बाणं दृष्ट्वा नन्दी प्रतापवान् ॥४३॥ आपवाह्य रथेनैनं यतो देवस्ततो ययौ । ततो नन्दी पुनर्बाणं प्राणुवाचोत्तरं वचः ॥ ४४ ॥ बाण बाण प्रनृत्यस्व श्रेयस्तव भविष्यति । एष देवो महादेवः प्रसादसुमुखस्तव ॥ ४५ ॥ शोणितौघप्लुतैर्गात्रैर्नन्दिवाक्यप्रचोदितः। जीवितार्थी ततो बाणः प्रमुखे शंकरस्य गौ ॥ ४६ ॥ अनृत्यद्भयसंविग्नो दानवः स विचेतनः । तं दृष्ट्वा च प्रनृत्यन्तं भयोद्विग्नं पुनः पुनः ॥ ४७ ॥ नन्दिवाक्यप्रचोदितं भक्तानुग्रहकृद्भवः । करुणावशमापन्नो महादेवोऽब्रवी-

थे। चले- जहाँ पर बाणोंसे घिरा हुआ अनिरुद्ध था ॥ १४१ ॥ श्रीकृष्णके चले जाने पर नन्दीने बाणासुरसे यह शुभ वचन कहा, कि हे बाणासुर ! तू प्रसन्नतामें भरे हुए देवदेव शिवके पास जा ॥ १४२ ॥ नन्दीके इस वाक्यको सुनकर शीघ्रतासे चलने वाला बाणासुर (शिवजीके पास) जाने लगा उस समय प्रतापवान् नन्दी कटी हुई भुजा वाले बाणासुरको देख कर ॥ १४३ ॥ उसको रथमें बैठाल कर शिवजीके पासको ले चले तदनन्तर नन्दी फिर बाणासुरसे कहने लगे, कि-१४४ हे बाणासुर ! तू नाच, तो अब तेरा कल्याण होगा इस समय महादेवजीका मुख तुझ पर प्रसन्न होनेसे अच्छा दीख रहा है नन्दीके कहनेसे अपने जीवनको चाहने वाला बाणासुर उसके अंग प्रत्यङ्ग रक्तमें सन रहे थे तब भी शिवजीके सामने नाचने लगा, क्यों कि-उस समय वह डर कर अचेतनसा दीख रहा था भयसे उद्विग्न होकर, उसको नन्दीके वाक्यसे वेगके साथ वारम्वार नाचता हुआ देख कर भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले महादेवको उसके ऊपर करुणा आगई और वह कहने लगे,

द्रुचः ॥ ४८ ॥ ईश्वर उवाच । वरं वृणीष्व बाण त्वं मनसा यदभीप्ससि । प्रसादसुमुखस्येहं प्रियोऽसि मम दानव ॥ ४९ ॥ बाण उवाच । अजरश्चामरश्चैव भवेयं सततं विभो । एष मे प्रथमो देव वरोस्तु यदि मन्यसे ॥१५०॥ देव उवाच । तुल्योसि दैवतैर्बाण न मृत्युस्तव विद्यते । अथापरं वृणीष्वाद्य अनुग्राह्योऽसि मे सदा ॥ ५१ ॥ बाण उवाच । यथाहं शोणितैर्दिग्धो भृशार्तो व्रणपीडितः । भक्तानां नृत्यतां देव पुत्रजन्म भवेद्धव ॥ ५२ ॥ श्रीहर उवाच । निराहाराः क्षमावन्तः सत्यार्जवसमाहिताः । मद्भक्ता येऽपि नृत्यन्ति तेषामेवं भविष्यति ॥५३॥ तृतीयं त्वमथो बाण वरं वर मनोगतम् । तद्विनाशयापि ते पुत्र सफलोऽस्तु भवानिह ॥५४॥ बाण उवाच । चक्रताडनजा घोरा रुजा तीव्रा हि

कि—॥ १४५-१४८ ॥ शिवने कहा, कि—हे बाण ! तेरे मनमें जो इच्छा हो उस वरको तू माँग ले हे दानव ! तू मुझे प्रिय है अतः मेरा मुख तुझे वर देनेके लिए प्रसन्न हो रहा है ।१४९। बाणासुरने कहा, कि—हे विभो ! मैं सर्वदा अजर और अमर रहूँ यदि आप इस बातको समझें तो यह मेरा पहला वर है महादेवजीने कहा, कि—हे बाणासुर ! तू तो देवताओंकी बराबर है तेरी मृत्यु कहाँसे आई अब तू दूसरे वारको माँग, क्योंकि—मैं तुझपर सर्वदा अनुग्रह करना चाहता हूँ ॥ १५१ ॥ बाणासुर ने कहाकि—हे देव ! जिस प्रकार मैं घावसे बहुत ही पीड़ा पारहा हूँ और रक्तसे सन रहा हूँ हे देव ! जो इस प्रकार नृत्य करें उनके यहाँ पुत्रका जन्म हुआ करे ॥ १५२ ॥ महादेवजीने कहा, कि—सत्य और सरलतामें लगे हुए जो क्षमावान् और मेरे भक्त निराहार रहकर नृत्य करेंगे उनके यहाँ ऐसा ही होगा ॥१५३॥ हे बाणासुर ! अब तू अपने मन चाहे तीसरे वरको माँग ले हे पुत्र ! वह वर मैं तुझे दूँगा, तेरा मनोरथ सफल हो १५४

मेऽनघ । वरेणासौ तृतीयेन शान्तिं गच्छतु मे भव ५५ श्रीरुद्र उवाच । एवं भवतु भद्रं ते न रुजा प्रभविष्यति । अक्षतं तव गात्रं तु स्वस्थावस्थं भविष्यति ॥५६॥ चतुर्थं ते वरं दद्मि वृणीष्व यदि कांक्षसि । न तेऽहं विमुखस्तात प्रसादसुमुखो ह्यहम् ॥५७॥ बाण उवाच । प्रमाथगणवंशस्य प्रथमः स्यामहं विभो । महाकाल इति ख्यातिं गच्छेयं शाश्वतीः समाः ॥५८॥ वैशम्पायन उवाच । एवं भविष्यतीत्याह बाणं देवो महेश्वरः । दिव्यरूपोऽक्षतो गात्रैर्नीरुजस्तु ममाश्रयात् ॥ ५६ ॥ ममातिसर्गाद्बाण त्वं भव चैवाकुतोभयः । भूयस्ते पञ्चमं दद्मि प्रख्यातबलपौरुषम् । पुनर्वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥६०॥ बाण उवाच । वैरूप्यमङ्गजं यन्मे मा भूदेव कदाचन । द्विबाहुरपि मे देहो न विरूपो

बाणासुरने कहा, कि-हे निष्पाप ! चक्रकी ताड़नाके कारण मुझे भयंकर पीड़ा होरही है हे भव!तीसरे वरसे मेरी यह पीड़ा शान्त होजाय १५५ रुद्रने कहा, कि-"ऐसा ही हो" अब तुझे पीड़ा नहीं व्यापेगी तेरा शरीर अक्षत होजावेगा और तू स्वस्थ हो जावेगा १५६ मैं तुझे चौथा वर देना चाहता हूँ यदि तेरी इच्छा हो तो माँगले हे तात ! मैं तुझसे विमुख नहीं हूँ तुझे वर देनेके लिये मेरा मुख प्रसन्न होरहा है १५७ बाणासुरने कहा कि—हे विभो ! मैं प्रमाथोंके वंशमें मुख्य होजाऊँ और सैंकड़ों वर्ष तक महाकाल प्रसिद्ध रहूँ १५८ वैशम्पायनजीने कहा, कि-तब महेश्वर देवने बाणासुरसे कहा, कि-'ऐसा ही होगा" तू मेरा आश्रय लेनेसे दिव्य रूपवाला अक्षत और पीड़ा रहित हो जावेगा १५६ हे बाणासुर ! मेरे वरसे तू अकुतोभय होजा तेरा बल और पुरुषार्थ प्रसिद्ध है इसलिये मैं तुझे पाँचवाँ वर देना चाहता हूँ इस लिये जो तेरे मनमें बात हो उस वरको तू फिर माँगले १६० बाणासुरने कहा, कि-मेरे अङ्गमें जो विरूपता आ

भवेऽत्र व ॥ ६१ ॥ श्रीहर उवाच । भविता सर्वमेतत्ते यथेच्छसि महासुर । भवत्वेवं न चादेयं भक्तानां विद्यते मम ॥ ६२ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततोऽब्रवीन्महादेवो बाणं दियनगमान्तिके । एवं भविष्यते सर्वं यत्त्वया समुदाहृतम् ॥ ६३ ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्त्रिनेत्रो गणसंवृतः । पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि ऊषाहरणे बाणासुरवरप्रदानं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२६

वैशम्पायन उवाच । एवं वरान् बहु प्राप्य बाणः प्रीतमनोऽभवत् । जगाम सह रुद्रेण महाकालत्वमागतः ॥ १ ॥ वासुदेवोपि बहुधा नारदं पर्यपृच्छत । क्वानिरुद्धोऽस्ति भगवन् संयतो नागबन्धनैः ॥ २ ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन स्नेहक्लिन्नं हि मे मनः ।

गई है वह न रहे हे देव ! मेरा दो भुजावाला स्वरूप भी विरूप न रहे ॥ ६१ ॥ श्रीमहादेवने कहा, कि– हे महाअसुर ! तू जिस प्रकार चाहता है वैसा ही सब होजायगा ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसे मैं अपने भक्तको न देसकूँ ॥६२॥ वैशम्पायनजीने कहा कि–तदनन्तर पासमें खड़े हुए महादेवजीने बाणासुरसे (फिर) कहा, कि--जो बात तूने कही है वह सब ऐसे ही होगी ॥ ६३ ॥ इसप्रकार कहकर अपने गणोंसे घिरेहुए भगवान् शंकर सब भूतों के सामने तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥१६४॥ एकसौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥ छ छ

वैशम्पायनजीने कहा, कि–इसप्रकार बहुतसे वरोंको पाकर बाणासुरका मन प्रसन्न होगया और वह महाकालपनेको पाकर भगवान् शंकरके पास चलागया॥१॥ उधर वासुदेव भी नारदसे बार२ बूझने लगे हे भगवन्!नागबन्धनोंसे भरा हुआ अनिरुद्ध कहाँ है मैं इस बातको यथार्थरीतिसे सुनना चाहता हूँ क्योंकि-- मेरा मन स्नेहार्द्र होरहा है वीर अनिरुद्धके पिटनेसे द्वारकापुरी

अनिरुद्धे हते वीरे क्षुभिता द्वारका पुरी ॥ ३ ॥ शीघ्रं मोक्षयि-
ष्यामो यदर्थं वयमागताः । अद्य तं नष्टशत्रुं वै द्रष्टुमिच्छामहे
वयम् ॥४॥ स प्रदेशस्तु भगवन् विदितस्तत्र सुव्रत । एवमुक्तस्तु
कृष्णेन नारदः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥ कन्यापुरे कुमारोऽसौ बद्धो
नागैश्च माधव । एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रं चित्रलेखा ऽभ्युपस्थिता ६
बाणस्योत्तमशर्वस्य दैत्येन्द्रस्य महात्मनः । इदमन्तः पुरं देव
प्रविशस्व यथासुखम् ॥ ७ ॥ ततः प्रविष्टास्ते सर्वे ह्यनिरुद्धस्य
मोक्षणे । बलः सुपर्णः कृष्णस्तु प्रद्युम्नो नारदस्तथा ॥८॥ ततो
दृष्ट्वैव गरुडं येऽनिरुद्धशरीरगाः । शररूपा महासर्पा वेष्टयित्वा
तनुं स्थिताः ॥९॥ ते सर्वे सहसा देहात्तस्य निःसृत्य भोगिनः ॥
क्षितिं समभिवर्तित्वा प्रकृत्यावस्थिताः शराः ॥१०॥ दृष्टः स्पृष्टश्च
कृष्णेन सोऽनिरुद्धो महायशाः । स्थितः प्रीतमना भूत्वा प्राञ्जलि-

क्षुब्ध होगई है ॥ २॥ ३ ॥ हम जिसके लिये यहाँ आए हैं उस
अनिरुद्धको हम शीघ्र ही छुड़ाना चाहते हैं आज जिसके शत्रु
नष्ट होगए हैं उस अनिरुद्धको हम देखना चाहते हैं ४ हे सुव्रत
भगवन् ! वह देश आपको मालूम है भगवान् कृष्णके इसप्रकार
कहने पर नारदजी उत्तर देने लगे कि-५हे माधव! कुमार अनि-
रुद्ध कन्यापुरमें नागोंसे बँधा पड़ा है,इसी बीचमें वहाँ चित्ररेखा
शीघ्र ही आकर उपस्थित होगई ॥६॥ (और कहने लगी कि-)
शिवजीको उत्तम माननेवाले दैत्येन्द्र महात्मा बाणासुरका अन्तः-
पुर यह रहा, हे देव ! आप इसमें सुखपूर्वक प्रवेश करिये ॥७॥
तदनन्तर बलदेव गरुड कृष्ण प्रद्युम्न और नारद यह सब अनि-
को छुड़ानेके लिये वहाँ पर घुसे ॥ ८ ॥ तदनन्तर जो बाणरूप
महासर्प अनिरुद्धके शरीरको घेर कर बैठे हुए थे ये गरुड़को
देखते ही उसके देहमेंसे सहसा निकल कर पृथ्वीमें आगए और
अपनी प्रकृतिमें स्थिर होगए९—१० कृष्णने अनिरुद्धको देखा

वाक्यमब्रवीत् ॥११॥ देव देव सदा युद्धे जेता त्वमसि केशव । न शक्तः प्रमुखे स्थातुं साक्षादपि शतक्रतुः ॥ १२ ॥ ततो महा-बलं देवं बलभद्रं यशस्विनम् । अभिवादयते हृष्टः सोऽनिरुद्धो महामनाः ॥ १३ ॥ माधवं च महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिः । खगोत्तमं महावीर्यं सुपर्णमभिवाद्य च ॥ १४ ॥ ततो मकरकेतुं च चित्रबाणधरं प्रभुम् । पितरं सोऽभ्युपागम्य प्रद्युम्नमभिवादयत् सखीगणयुता चैव सा चोषा भवने स्थिता । बलं चातिबलं चैव वासुदेवं सदुर्जयम् ॥ १६ ॥ असंख्यातगतिं चैव सुपर्णमभिवाद्य च । पुष्पबाणधरं चैव लज्जमानाऽभ्यवादयत् ॥ १७ ॥ ततः शक्रस्य वचनान्नारदः परमद्युतिः । वासुदेवसमीपं स प्रहसन् पुनरागतः ॥ १८ ॥ वर्धापयति तं देवं गोविन्दं शत्रुसूदनम् ।

और उसे छुआ तब महायशस्वी अनिरुद्ध मनमें प्रसन्न हो हाथ जोड़ कर कहने लगा कि---११ हे देवदेव केशव ! आप युद्धमें सर्वदा जीतते ही रहते हैं आपके सामने साक्षात् इन्द्र भी खड़ा नहीं होसकता ॥ १२ ॥ तदनन्तर महामनस्वी अनिरुद्ध प्रसन्न होकर महाबली यशस्वी बलभद्रको प्रणाम करने लगा ॥ १३ ॥ तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर महात्मा केशवको प्रणाम किया फिर वह महावीर्य पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़को प्रणाम कर ॥ १४ ॥ मकरकी ध्वजावाले अपने पिता प्रद्युम्नके पास जाकर उनको प्रणाम करने लगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर भवनमें स्थित सखियोंसे घिरी हुई ऊषाने भी अतिबली बलदेवजी सुदुर्जय वासुदेव और असंख्यात गति गरुडजीको भी प्रणाम करके पुष्पोंके बाणको धारण करनेवाले प्रद्युम्नको भी लजातेर प्रणाम किया १६-१७ तदनन्तर इन्द्रके वचनसे परमकान्तिमान् नारदजी केशवके समीप हँसते २ फिर आगए ॥१८॥ और वैरियोंको कष्ट देनेवाले गोविंद देवको बधाई देने लगे, कि-हे गोविन्द ! आप प्रारब्धवश अनि-

दिष्ट्या वर्धसि गोविन्द अनिरुद्धसमागमात् ॥ १९ ॥ ततोऽनिरुद्धसहिता नारदं प्रणताः स्थिताः । आशीर्भिर्वर्धयित्वा च देवर्षिः कृष्णमब्रवीत् ॥ २० ॥ अनिरुद्धस्य वीर्याख्यो विवाहः क्रियतां विभो । जम्बूलमालिकां द्रष्टुं श्रद्धा हि मम जायते २१ ततः प्रहसिताः सर्वे नारदस्य वचःश्रवात् । कृष्णः प्रोवाच भगवन् क्रियतामाशु मा चिरम् ॥२२॥एतस्मिन्नन्तरे तात कुम्भांडः समुपस्थितः । वैवाहिकांस्तु सम्भारान् गृह्य कृष्णं नमस्य तु२३ कुम्भाण्ड उवाच । कृष्ण कृष्ण महाबाहो भव त्वमभयप्रदः । शरणागतोऽस्मि देवेश प्रसीदेर्षोंजलिस्तव ॥२४॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वं प्रागेव चाच्युतः । अभयं यच्छते तस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥ २५ ॥ कुम्भाण्ड मन्त्रिणां श्रेष्ठ प्रीतोस्मि तव सुव्रत।

रुद्धका समागम करके बढ़रहे हैं ॥१९॥तदनन्तर अनिरुद्धसहित (वे तीनों जने)नारदजीके सामने नम्र होकर बैठ गए तब देवर्षि नारदने आशीर्वादोंसे उनको बढ़ावा देकर श्रीकृष्णसे कहाकि-२० कि—हे विभो ! अनिरुद्धका वीर्याख्य नामवाला विवाह करना चाहिये इससमय मुझे जम्बूलमालिका देखनेकी श्रद्धा होरही है (वरपक्षकी स्त्रियोंके उपहासकी वचनावलीको जम्बूलमालिका कहते हैं)।२१। तदनन्तर नारदजीके वचनको सुनकर सब हँसने लगे तब कृष्णने कहा,कि—हे भगवन्!यहाँ पर विलम्ब ही क्या है जल्दी ही इस बातको करिये ॥ २२ ॥ इसी बीचमें तहाँ पर कुम्भांड भी तहाँ पर आगया और उसने विवाहकी सामग्रियोंको लाकर श्रीकृष्णको प्रणाम किया ॥२३॥ कुम्भाण्डने कहा, कि-हे महाभुज कृष्ण ! आप मुझे अभय दीजिये मैं आपका शरणागत हूँ हे देवेश ! आप प्रसन्न हूजिये मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णने नारदजीकी बात सुनली थी इस लिये वह महात्मा कुम्भाण्डको पहले ही अभय देना चाहते थे । २५ ।

सुकृतं ते विजानामि राष्ट्रिकोऽस्तु भवानिह । सुज्ञातिपन्नः सम्मुखो निवृत्तोऽस्तु भवानिह ॥ २६ ॥ राज्यं च ते मया दत्तं चिरञ्जीव ममाश्रयात् । एवं दत्त्वा राज्यमस्मै कुम्भाण्डाय महात्मने ॥ २७ ॥ विवाहमकरोत्तस्यानिरुद्धस्य जनार्दनः । ततस्तु भगवान् वह्नि-स्तत्र स्वयमुपस्थितः ॥ २८ ॥ स विवाहोऽनिरुद्धस्य नक्षत्रे च शुभेऽभवत् । ततोऽप्सरोगणश्चैव कौतुकं कर्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ स्नातस्त्वलंकृतस्तत्र सोऽनिरुद्धः स्वभार्यया । ततः स्निग्धैः शुभैर्वाक्यै-र्गन्धर्वाश्च जगुस्तदा ॥ ३० ॥ नृत्यन्त्यप्सरसश्चैव विवाहमुप-शोभयन् । ततो निर्वर्त्तयित्वा तु विवाहं शत्रुसूदनः ॥ ३१ ॥ अनि-रुद्धस्य सुप्रज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः । आमन्त्र्य वरदं तत्र रुद्रं देव-नमस्कृतम् ॥ ३२ ॥ चकार गमने बुद्धिं कृष्णः परपुरञ्जयः ।

(श्रीकृष्णने कहा, कि-) हे मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ कुम्भाण्ड! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, हे सुव्रत! मैं तुम्हारे सुकार्यको जानता हूँ अब तुम यहाँ के राजा बन जाओ अपने जातिवालोंके साथ सुखी रहो । २६ । मैंने तुम्हें राज देदिया अब तुम मेरा आश्रय लेकर चिरकाल तक जीवित रहो इस प्रकार महात्मा कुम्भाण्डको राज्य देकर २७ जनार्दन अनिरुद्धका विवाह करने लगे तहाँ पर भगवान् अग्नि अपने आप आए थे ॥ २८ ॥ तदनन्तर अनिरुद्धका विवाह शुभ नक्षत्रमें हुआ तदनन्तर अप्सराएँ कौतुक करनेको उद्यत होगईं २९ जिस समय अनिरुद्धने अपनी भार्याके साथ स्नान करके अलंकार पहिरे उस समय गन्धर्व प्रेमभरे शुभ वाक्योंसे गान करने लगे ३० और अप्सराएँ विवाहको शोभित करती हुईं नाचने लगीं शत्रु-सूदन श्रीकृष्ण इस प्रकार अनिरुद्धके विवाहसे निवृत्त होगए फिर सब देवताओंसे घिरे हुए शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले बुद्धिमान् कृष्णने देवताओंसे नमस्कृत वर देनेवाले शिवको आमन्त्रित करके चलनेका विचार किया शत्रुनिषूदन श्रीकृष्ण

द्वारकाभिमुखं कृष्णं ज्ञात्वा शत्रुनिषूदनम् ॥ ३३ ॥ कुम्भाण्डो वचनं प्राह प्राञ्जलिर्मधुसूदनम् । बाणस्य गावस्तिष्ठन्ति हस्ते तु वरुणस्य गौ ॥ ३४ ॥ यासामसृतकल्पं गौ क्षीरं क्षरति माधव । तत्पीत्वातिबलश्चैव नरो भवति दुर्जयः ॥ ३५ ॥ कुम्भाण्डेनैवमाख्याते हरिः प्रीतमनास्तदा । गमनाय मतिं चक्रे गन्तव्यमिति निश्चयम् ॥३६॥ ततस्तु भगवान् ब्रह्मा वर्धाप्य स तु केशवम् । जगाम ब्रह्मलोकं स वृतः स्वभवनालये ॥ ३७ ॥ इन्द्रो मरुद्गणैर्युतो द्वारकाभिमुखो ययौ । यतः कृष्णस्ततः सर्वे गच्छन्ति जयकाङ्क्षिणः ॥३८॥ वाहनेन मयूरेण सखीभिः परिवारिता । द्वारकाभिमुखी भूत्वा देव्या प्रस्थापिता ययौ । ततो बलश्च कृष्णश्च प्रद्युम्नश्च महाबलः ॥३९॥ आरूढवन्तो गरुडमनिरुद्धश्च वीर्यवान् । प्रस्थितश्च स तेजस्वी गरुडः पततां वरः ॥ ४० ॥ उन-

---

द्वारकाको जाना चाहते हैं इस बातको जान कर ॥ ३१-३३ ॥ कुम्भाण्ड हाथ जोड़ कर श्रीकृष्णसे कहने लगा, कि-बाणासुर की गौएँ वरुणके यहाँ रहती हैं ॥ ३४ ॥ हे माधव ! उनका दूध अमृतकी समान होता है उस दूधको पीकर मनुष्य अतिबली और दुर्जय होजाते हैं ॥३५॥ कुम्भाण्डके इसप्रकार कहनेपर श्रीकृष्ण का मन प्रसन्न होगया और उन्होंने चलनेका विचार किया ३६ तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने भी केशवको बधाई दी और अपने भवनमें रहने वाले व्यक्तियोंके साथ ब्रह्मलोकको चले गए ३७ मरुतों सहित इन्द्र द्वारकाकी ओरको चलदिया वे सब जय चाहने वाले जिधर कृष्ण थे उधरको ही चलने लगे ॥ ३८ ॥ और उमादेवीकी विदाकी हुई ऊषा भी अपनी सखियोंसे घिरकर मयूर नामक वाहन पर द्वारकाको चली तदनन्तर बलदेव कृष्ण और महाबली प्रद्युम्न और वीर्यवान् अनिरुद्ध गरुड़ पर सवार होगए तब पक्षियोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी गरुड़जी भी चल दिये ॥ ३९॥४०॥

मूलयंस्तरुगणान् कम्पयंश्चापि मेदिनीम् । आकुलाश्च दिशः सर्वा रेणुध्वस्तमिवाम्बरम् ॥ ४१ ॥ गरुडे संप्रयातेऽभून्मन्दरश्मिर्दिवा- करः । ततस्ते दीर्घमध्वानं प्रययुः पुरुषर्षभाः ॥ ४२ ॥ आरुह्य गरुडं सर्वे जित्वा बाणं महौजसम् । ततोंवरतलस्थास्ते वारुणीं दिशमास्थिताः ॥ ४३ ॥ अपश्यन्त महात्मानो गावो दिव्यपयः- प्रदाः । वेलावनविचारिण्यो नानावर्णाः सहस्रशः ॥ ४४ ॥ अव- ज्ञाय तदा रूपं कुम्भाण्डवचनाश्रगात् । कृष्णः प्रहरतां श्रेष्ठस्त- त्वतोर्थविशारदः ॥ ४५ ॥ निशम्य बाणगावस्तु तासु चक्रे मन- स्तदा । आस्थितो गरुडं प्राह स तु लोकादिरव्ययः ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच । वैनतेय प्रयाहि त्वं यत्र बाणस्य गोधनम् । यासां पीत्वा किल क्षीरममृतत्वमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ आह मां

(वह मार्गमें) वृक्षोंको उखाड़ते हुए जाते थे और पृथ्वीको कँपाते जाते थे सब दिशाओंको व्याकुल करते हुए चल रहे थे और आकाशको धूलसे भरते हुए चलरहे थे ४१ गरुड़जीके चलने पर सूर्यकी किरणें मन्द पड़ गईं इसप्रकार वह पुरुषर्षभ लम्बे मार्गको तय करने लगे महाओजस्वी बाणासुरको जीतकर गरुड़पर चढ़ने के बाद आकाश तलमें पहुँचे हुए वे सब वरुणकी दिशामें पहुँच गए ४३ और उन महात्माने समुद्र तटके वनमें घूमने वाली अनेक प्रकारके वर्णवाली दिव्य दूध देने वाली सहस्रों गौओंको तहाँ देखा ॥ ४४ ॥ तदनन्तर प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ अर्थविशा- रद श्रीकृष्णने कुम्भाण्डके वचनोंसे उन गौओंके रूपको जान लिया ॥ ४५ ॥ बाणकी गौओंको देख कर उन्होंने उन पर अपना मन डाला और गरुड़ पर बैठे हुए संसारके उत्पत्तिस्थान अव्यय कृष्ण कहने लगे ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-हे गरुड़ ! जिन गौओंके दूधको पीकर मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त होजाता है बाणा- सुरका ऐसा गोधन जहाँ पर है तहाँको आप चलिये ॥ ४७ ॥

सत्यभामा च बाणगावो ममानय। यासां पीत्वा किल क्षीरं न जीर्यन्ति महासुराः ॥ ४८ ॥ विजराश्च जरां त्यक्त्वा भवन्ति किल जन्तवः। ता आनयस्व भद्रन्ते यदि धर्मो न लुप्यते ॥४९॥ अथवा कार्यलोपो वै मैव तासु मनः कृथाः। इति मामब्रवीत् सत्या ताश्चैता विदिता मम ॥ ५० ॥ गरुड उवाच । दृश्यन्ते गाव एतास्ता दृष्ट्वा गां वरुणालयम्। विशन्ति सहसा सर्वा कार्यमत्र विधीयताम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा चैव गरुडः पक्षवातेन सागरम्। सहसा क्षोभयित्वा च विवेश वरुणालयम् ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वा जवेन गरुडं प्राप्तं वै वरुणालयम्। वारुणाश्च गणाः सर्वे विभ्रांताः प्राचलंस्तदा ॥५३॥ ततस्तु वारुणं सैन्यमभिज्ञातुं सुदुर्जयम्। प्रमुखे वासुदेवस्य नानाप्रहरणोद्यतम्। तद्युद्धमभवद्घोरं वारुणैः

सत्यभामाने भी मुझसे कहा, था कि-"जिन गौओंके दूधको पीकर महाराक्षस वृद्ध नहीं होते हैं उन बाणासुरकी गौओंको मेरे लिए लेते आना ॥ ४८ ॥ और जिनको पीकर प्राणी जरा को त्याग देते हैं उन गौओंको यदि आपका धर्म लुप्त न हो तो लेते आइयेगा ॥ ४९ ॥ और काम बिगड़ता हो तो आप उनकी ओर मन न डुलाना" इस प्रकार मुझसे सत्याने कहा था सो गौएँ अब मुझे दीख रही हैं ॥ ५० ॥ गरुड़जीने कहा, कि-यह गौएँ मुझे देख कर समुद्रमेंको सहसा घुसी जाती हैं अतः इस का उपाय करना चाहिये ॥ ५१ ॥ इस बातको कह कर गरुड़ जी अपने पंखोंकी वायुसे समुद्रको क्षुब्ध कर वरुणालयमें घुसने लगे ॥ ५२ ॥ गरुड़जीको वेगपूर्वक वरुणालयमें आते हुए देख वरुणदेवताके सब गण भ्रान्त होकर विचलित होगए। ५३। तदनन्तर वरुणकी दुर्जय सेनाको नानाप्रकारके अस्त्र उठा कर वासुदेवके सामने खड़े होकर युद्ध करनेकी आज्ञा हुई, तब सर्पों के शत्रु गरुड़जीके साथ वरुणके गणोंका भयंकर युद्ध होने लगा

पन्नगारिणा ॥५४॥ तेषामापततां संख्ये वारुणानां सहस्रशः।
भग्नं बलमनाधृष्यं केशवेन महात्मना ॥ ५५ ॥ ततस्ते भग्नका
यान्ति तमेव वरुणालयम् । षष्टिं रथसहस्राणि षष्टिं रथशतानि
च ॥ ५६ ॥वारुणानि च युद्धानि दीप्तशस्त्राणि संयुगे। तद्बलं
बलिभिः शूरैर्बलदेवजनार्दनैः॥ ५७ ॥ प्रद्युम्नेनानिरुद्धेन गरु-
डेन च सर्वशः। शरौघैर्विविधैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानं समन्ततः ५८
ततो भग्नं बलं दृष्ट्वा कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । वरुणस्तत्र संक्रुद्धो
निर्ययौ यत्र केशवः॥५९॥ऋषिभिर्देवगन्धर्वैस्तथैवाप्सरसां गणैः।
संस्तूयमानो बहुधा वरुणः प्रत्यदृश्यत ॥ ६० ॥ छत्रेण ध्रियः-
माणेन पाण्डुरेण वपुष्मता । सलिलस्राविणा श्रेष्ठं चापमुद्यम्य
धिष्ठितः ॥६१॥ अपां पतिरतिक्रुद्धः पुत्रपौत्रबलान्वितः । आह्व-
यन्निव युद्धाय विस्फारितमहाधनुः ॥६२॥ स तु प्रध्मापयच्छङ्खं

महात्मा केशवने युद्धमें आने वाले वरुणके सहस्रों सैनिकोंके
आते हुए दुराधर सेनादलको भंग कर दिया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥
तदनन्तर वे सब वरुणालयको लौट गए वरुणकी छियासठहजार
युद्धके रथोंवाली सेनाको शूरवीर बलदेव जनार्दन प्रद्युम्न अनि-
रुद्ध और बलवान् गरुड़ चारों ओरसे अनेक प्रकारके बाण मार
कर पीटने लगे ॥ ५६-५८ ॥ तब सरलतासे कर्म करने वाले
श्रीकृष्णके द्वारा अपनी सेनामें भग्गी पड़ी हुई देख कर
वरुण क्रोधमें भर कर श्रीकृष्णके पासको चला ॥ ५९ ॥ उस
समय ऋषि देवता गन्धर्व तथा अप्सराओंसे स्तुति किया जाता
हुआ वरुण दिखाई दिया ॥ ६० ॥ उसके ऊपर छत्र लग रहा
था उसका शरीर श्वेत था और उसमेंसे जल टपक रहा था
ऐसा वरुण धनुषको तान कर खड़ा हो गया ॥६१॥ पुत्र पौत्रों
से घिरा हुआ जलोंका स्वामी वरुण उस समय बड़े भारी क्रोध
में भर रहा था और धनुषको तान कर श्रीकृष्णको बुलाता सा

वरुणः समधावत । हरिं हर इव क्रुद्धो बाणजालैः समावृणोत् ।
ततः प्रध्माप्य जलजं पाञ्चजन्यं जनार्दनः । बाणजालैर्दिशः सर्वा-
स्ततश्चक्रे महाबलः ॥ ६४ ॥ ततः शरौघैर्विमलैर्वरुणः पीडितो
रणे । स्मयन्निव ततः कृष्णं वरुणः प्रत्ययुध्यत ॥६५॥ ततोऽस्त्रं
वैष्णवं घोरमभिमन्त्र्याहवे स्थितः । वासुदेवोऽब्रवीद्वाक्यं प्रमुखे
तस्य धीमतः ॥ ६६ ॥ इदमस्त्रं महाघोरं वैष्णवं शत्रुसूदनम् ।
मयोद्यतं वधार्थं ते तिष्ठेदानीं स्थिरो भव ॥६७॥ततोऽस्त्रं वरुणो
देवो ह्यस्त्रं वैष्णवमुद्यतः । वारुणास्त्रेण संयोज्य विननाद महा-
बलः ॥ ६८ ॥ तस्यास्त्रे विततास्त्वापो वरुणस्य विनिःसृताः ।
वैष्णवास्त्रस्य शमने वर्तते समितिंजयः ॥ ६९ ॥ आपस्तु वारु-

दे रहा था ॥ ६२ ॥ऐसे वरुणने शंख बजाया और दौड़ने लगा और जिस प्रकार क्रोधमें भरे हुए महादेव (यज्ञपुरुष) बिष्णु के पीछे दौड़े थे तिस प्रकार दौड़ कर उनको बाणजालोंसे ढकने लगा ॥६३॥ तब तो महाबली जनार्दनने भी जलमें उत्पन्न हुए पाँचजन्य शंखको बजा कर बाणोंके जालोंसे सब दिशाओंको पूर दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर निर्मल बाणोंसे रणमें पीड़ित हुआ वरुण मुस्कुरा कर श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा ६५ तब युद्धमें खड़े हुए वासुदेवने भयंकर वैष्णवास्त्रको अभिमन्त्रित करके बुद्धिमान् वरुणसे यह बात कही कि-॥६६॥ मैंने तेरा वध करने के लिए शत्रुओंको कष्ट देने वाले इस महा घोर वैष्णवास्त्रको उठा लिया है अब तू स्थिर होकर खड़ा होजा । ६७ तदनन्तर वरुणदेव वैष्णवास्त्रका नाश करनेके लिए उद्यत होगया और अपने अस्त्रको वारुणास्त्रसे संयुक्त करके महाबली वरुण गर्जना करने लगा ॥६८॥ तब उसके अस्त्रमेंसे जलकी विस्तृत धाराएँ निकलने लगीं इस प्रकार समितिञ्जय वरुण वैष्णवास्त्रको शांत करनेका उद्योग करने लगा ॥ ६९ ॥ वरुणके बार २ फेंकें हुए

णास्तत्र त्रिशा त्रिमा ज्वलन्ति वै ।. दह्यन्ते वारुणास्तत्र ततोऽस्त्रे ज्वलिते पुनः ॥ ७० ॥ वैष्णवे तु महावीर्ये दिशो भीता विदुद्रुवुः । तद्वलं ज्वलितं दृष्ट्वा वरुणः कृष्णमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ स्मरस्व प्रकृतिं पूर्वमव्यक्तां व्यक्तलक्षणाम् । तमो जहि महाभाग तमसा मुह्यसे कथम् ॥ ७२ ॥ सत्वस्थो नित्यमासीस्त्वं योगीश्वर महामते । पञ्चभूताश्रयान् दोषानहंकारं च वर्जय ॥ ७३ ॥ या या ते वैष्णवी मूर्तिस्तस्या ज्येष्ठो ह्यहं तव । ज्येष्ठभावेन मान्यं तु किं मां त्वं दग्धुमिच्छसि७४नाग्निर्विक्रमते ह्यग्नौ त्यज कोपं युधां वर । त्वयि न प्रभविष्यामि जगतः प्रभवो ह्यसि ७५ पूर्वं हि या त्वया सृष्टा प्रकृतिर्विकृतात्मिका । धर्मिणी बीजभावेन

जल प्रज्वलित होने लगे महावीर्यवान् वैष्णवास्त्रके प्रज्वलित होने पर वरुणके गण जलने लगे और डर करके दिशाओंमेंको भागने लगे, वरुणने जलते हुए अस्त्रको देख कर कृष्णसे कहा, कि-आप अपनी व्यक्त अव्यक्त लक्षणवाली पूर्वप्रकृतिका स्मरण करिये हे महाभाग ! आप तमोगुणका नाश करिये आप तमोगुण का नाश करिये आप तमोगुणसे क्यों मोहित हो रहे हैं ७०-७२ हे योगीश्वर ! हे महामुने ! आप तो नित्यसत्त्वस्थ हैं, आप पंचभूतोंमें रहने वाले दोषोंको और अहंकारको त्याग दीजिये ७३ तुम्हारी जो २ वैष्णवी मूर्ति हुई हैं उस २ मूर्तिमें मैं आपका बड़ा हुआ हूँ, मैं आपका ज्येष्ठभावसे मान्य हूँ फिर भी आप मुझे क्यों जलाना चाहते हैं ।७४। अग्निके ऊपर अग्नि पराक्रम नहीं करती है इस लिए हे योधाओंमें श्रेष्ठ ! आप कोपको त्याग दीजिये, आप जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं अतः मैं आप पर प्रभाव जमाना नहीं चाहता ॥ ७५ ॥ आपने पहले प्रकृति अर्थात् माया और विकृति अर्थात् महदादि कार्यस्वरूप प्रकृतिको आपने ही रचा है वह बीजभावसे परिणामधर्मिणी है वह फिर पूर्वभावका

पूर्वधर्म समाश्रिता ॥७६॥ आग्नेयं वैष्णवं सौम्यं प्रकृत्यैवेदमा-
दितः । त्वया सृष्टं जगदिदं स कथं मयि वर्तते ॥ ७७ ॥ अजेयः
शाश्वतो देवः स्वयंभूर्भूतभावनः । अक्षरं च क्षरं चैव भावाभावौ
महाद्युते ॥७८॥रक्ष्य मां रक्षणीयोऽहं त्वयानघ नमोस्तु ते । आदि-
कर्तासि लोकानां त्वयैतद्बहुलीकृतम् ॥ ७९ ॥ विक्रीडसि महा-
देव बालः क्रीडनकैरिव । नाप्यहं प्रकृतिद्वेषी नाहं प्रकृतिदूषकः॥८०
प्रकृतिर्या विकारेषु वर्तते पुरुषर्षभ । तस्या विकारशमने वर्तसे
त्वं महाद्युते ॥८१॥विकारो वा विकाराणां विकाराय न तेऽनघ।
तानधर्मविदो मन्दान् भवान् विकुरुते सदा ॥ ८२ ॥ इदं प्रकृति-

आश्रय लेलेती है ॥ ७६ ॥ आग्नेय वैष्णव सौम्य इन सबको प्रकृतिके द्वारा आपने ही रचा है अत एव यह मुझमें किसप्रकार रहसकते हैं ॥ ७७ ॥ आप अजेय हैं शाश्वत देव हैं अपने आप उत्पन्न हुए हैं अक्षर और क्षर स्वरूप हैं हे महाद्युते ! भाव और अभाव दोनों ही हैं ॥ ७८ ॥ मैं रक्षा करने योग्य हूँ आप मेरी रक्षा करिये हे अनघ ! आपको प्रणाम है आप संसारके आदि-कर्ता हैं और आपने ही इसको फैला दिया है ॥ ७९ ॥ हे महा-देव ! आप बालकके खिलौनोंसे क्रीडा करनेकी समान क्रीडा कर रहे हैं मैं प्रकृतिद्वेषी नहीं हूँ (यहाँ श्रीकृष्णरूप कारणको प्रकृति कहा है) और मैं प्रकृतिदूषक भी नहीं हूं ८० (अहंकार आदि) विकारोंमें जो (पूर्ववासना लोभ द्वेष आदि रूपवाली) प्रकृति रहती है हे महाद्युते पुरुषर्षभ ! उसके (हिंसादिरूप) विकारका शान्त करनेके लिये आप उद्योग कर रहे हैं ८१ आपके विकार (क्रोध आदि) हे निष्पाप ! विकारोंके अर्थात् दुष्टोंके विकारोंको नाश करनेके लिये होते हैं आप उन अधर्मवेत्ता मन्दपुरुषोंके ऊपर सर्वदा विकार करते हैं(तात्पर्य यह है, कि-सर्वात्मा होनेके कारण आप किसी पर भी क्रोध नहीं कर सकते तथापि क्रोधी पुरुष

जैर्दोषैस्तमसा मुह्यते यदा । रजसा चापि संस्पृष्टा तदा मोहः प्रवर्तते ॥ ८३ ॥ परावरज्ञः सर्वज्ञ ऐश्वर्ये विधिनास्थितः । किं मोहयसि नः सर्वान् प्रजापतिरिव स्वयम् ॥ ८४ ॥ वरुणेनैवमुक्तस्तु कृष्णो लोकपरायणः । भावज्ञः सर्वकर्त्तारस्ततः प्रीतमना ह्यभूत् ॥८५॥ इत्येवमुक्तः कृष्णस्तु प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् श्रीकृष्ण उवाच । गावः प्रयच्छ मे वीर शान्त्यर्थं भीमविक्रम॥८६ इत्येवमुक्ते कृष्णेन वाक्यं वाक्यविशारदः । वरुणो ह्यब्रवीद्भूयः शृणु मे मधुसूदन ॥ ८७ ॥ वरुण उवाच । बाणेन सार्धं समयो मया देव कृतः पुरा । कथं च समयं कृत्वा कुर्या विफलमन्यथा । त्वमेव वेद सर्वस्य यथा समयभेदकः । चारित्रं दुष्यते तेन न च

अपने दोषसे ही आपको क्रोधवाला देखते हैं) ॥ ८२ ॥ यह जगत् प्रकृतिके दोषोंके कारण जब देहको आत्मा माननारूप अज्ञानसे मोहित होजाता है और जब वह रजोगुणसे युक्त होता है तब उसको (यह मेरा होजाय) ऐसा मोह होने लगता है ८३ आप परावरको जानने वाले हैं सर्वज्ञ हैं ऐश्वर्यमें स्थित हैं फिर हम सबको प्रजापतिकी समान मोहमें क्यों डाल रहे हैं॥८४॥ वरुणके इस प्रकार कहने पर चित्तोंके भावको जाननेवाले सब की रचना करने वाले लोक परायण श्रीकृष्ण मनमें प्रसन्न हो गए ॥ ८५ ॥ और इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्ण हँसकर यह बात कहने लगे, श्रीकृष्णने कहा, कि–हे भयंकर पराक्रम करने वाले वीर ! तुम शान्ति स्थापित करने के लिये गौएँ देदे॥ ८६ ॥ श्रीकृष्णके इसप्रकार कहने पर वाक्यविशारद वरुण फिर कहने लगा कि हे मधुसूदन सुनो॥८७वरुणने कहा, कि -हे देव मैंने पहले बाणासुरके साथ प्रतिज्ञा की थी अब मैं उसको किसप्रकार निष्फल कर सकता हूँ॥८८आप ही इस सब बातको सोचलें, कि–प्रतिज्ञाको तोड़नेवाला कैसा होता है प्रतिज्ञा को तोड़नेसे उसका चरित्र दूषित

सद्भिः प्रशस्यते ॥८९॥ धर्मभाग्भिरो नित्यं वर्ज्यते मधुसूदन। न च लोकानवाप्नोति पापः समयभेदकः ॥ ९० ॥ प्रसीद धर्मलोपश्च माऽभून्मे मधुसूदन। न मां समयभेदेन योक्तुमर्हसि माधव जीवन्नाहं प्रदास्यामि गावो वै वृषभेक्षण। हत्वा नयस्व मां गाव एष मे समयः पुरा ॥ ९२ ॥ एतच्च मे समाख्यातं समयं मधुसूदन। सत्यमेव महाबाहो न मिथ्या तु सुरेश्वर ॥ ९३ ॥ यद्येहत्वाऽहमनुग्राह्यो रक्ष मां मधुसूदन। अथ वा गोषु निर्बन्धो हत्वा नय महाभुज ॥ ९४ ॥ वैशम्पायन उवाच । वरुणेनैवमुक्तस्तु यदूनां वंशवर्द्धनः। अभेद्यं समयं मत्वा न्यस्तवादो गवां प्रति ९५ स प्रहस्य ततो वाक्यं व्याजहारार्थकोविदः। तस्मान्मुक्तोसि

होजाता है और सज्जन उसकी प्रसंशा नहीं करते हैं८९ हे मधुसूदन! धर्मात्मा पुरुष उसे सर्वदा त्यागते रहते हैं, और प्रतिज्ञाको तोड़ने वाला पापी पुरुष पुण्य लोकोंको भी नहीं पाता है ९० हे मधुसूदन! मेरे धर्मका लोप न हो इस लिये आप प्रसन्न हूजिये हे माधव! आप मुझे प्रतिज्ञा भङ्ग करनेके लिए बाधित न कीजिए, हे वृषभेक्षण! अपने जीतेजी तो मैं गौओंको नहीं दूँगा, आप मुझे मार कर गौओंको लेजाइये-यही मैंने पहले प्रतिज्ञा की है ९१-९२ हे मधुसूदन! यह मैंने अपनी प्रतिज्ञा आप से कह दी है महाभुज सुरेश्वर! यह प्रतिज्ञा सत्य ही होगी मिथ्या नहीं होगी ९३ हे मधुसूदन! यदि आप मेरी रक्षा करना चाहते हैं तो मेरी रक्षा करिये हे महाभुज! आपको गौओंसे बहुत प्रेम हो तो मुझे मारकर इन्हें लेजाइये ॥९४॥ वैशंपायनजीने कहा, कि-वरुणके इस प्रकार कहने पर यादवोंके वंशको बढ़ाने वाले कृष्णने प्रतिज्ञा को अभेद्य जान कर गौओंके लिए वाद विवाद करना छोड़ दिया॥९५॥ तदनन्तर अर्थ चतुर श्रीकृष्ण हँस कर यह बात कहने लगे, कि-तुमने बाणासुरसे प्रतिज्ञा की है इस लिए मैं तुमको

यद्येवं बाणेन समयः कृतः ॥ ९६ ॥ प्रसृतैर्मधुरैर्वाक्यैस्तत्त्वार्थ-मधुभाषितैः । कथं पापं करिष्यामि वरुण त्वय्यहं प्रभो । गच्छ मुक्तोसि वरुण सत्यसन्धोसि नो भवान् ॥ ९७ ॥ त्वत्प्रियार्थं मया मुक्ता बाणगावो न संशयः । ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां च महास्वनैः ॥९८॥ अर्घमादाय वरुणः केशवं प्रत्यपूजयत् । केशवोऽर्घं तदा गृह्य वरुणाद्यदुनन्दनः ॥ ९९ ॥ बलं चापूजयद्देवः कुशलीव समाहितः।वरुणायाभयं दत्त्वा वासुदेवः प्रतापवान्१०० द्वारकां प्रस्थितः शौरिः शचीपतिसहायवान् । तत्र देवाः समरुतः ससाध्याः सिद्धचारणाः ॥ १ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नराश्चा-न्तरिक्षगाः । अनुगच्छन्ति भूतेशं सर्वभूतादिमव्ययम् ॥ २ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ यक्षराक्षसाः । विद्याधरगणाश्चैव

छोड़ता हूँ ॥ ९६ ॥ (तदनन्तर कृष्णने) तत्त्व भरे हुए मधुर वाक्योंसे (वरुणसे कहा, कि–) हे प्रभो वरुण ! मैं तुम्हारे साथ पापमय व्यवहार कैसे करसकता हूँ हे वरुण! जाओ मैंने तुमको छोड़ दिया तुम्हारी प्रतिज्ञा सत्य रहे ।९७। तुम्हारा प्रिय करनेके लिए मैं बाणासुरकी गौओंको छोड़ता हूँ तदनन्तर वरुणने अर्घ लिया और तूर्योंका निनाद करा कर तथा भेरियोंका बड़ा भारी शब्द करा कर श्रीकृष्णको पूजा करने लगा तब यदुनन्दन श्रीकृष्णने उस अर्घको ग्रहण कर लिया ॥ ९८ ९९ ॥ तदनन्तर चतुर पुरुषकी समान सावधान रहने वाले वरुणने बलदेवजी की भी पूजा की, तदनन्तर प्रतापी वासुदेव वरुण को अभय देकर इन्द्रको साथमें ले द्वारकापुरीमें चले उस समय देवता मरुत साध्य सिद्ध चारण गन्धर्व अप्सराएँ और अन्तरिक्षचारी किन्नर यह सब सब भूतोंके आदि कारण अव्यय श्रीकृष्णके पीछे २ चलते थे ॥ १०० ॥ १०२ ॥ यश और विजयके साथ प्रस्थान करते श्रीकृष्णके पीछे आदित्य वसु रुद्र अश्विनी कुमार यक्ष

ये चान्ये सिद्धचारणाः । गच्छन्तमनुगच्छन्ति यशसा विजयेन तं ॥३॥ नारदश्च महाभागः प्रस्थितो द्वारकां प्रति । तुष्टो बाणजयं दृष्ट्वा वरुणं च कलिप्रियः ॥४॥ कैलासशिखरप्रख्यैः प्रसादैः कन्दरैः शुभैः । दूरान्निशम्य मधुहा द्वारकां द्वारमालिनीम् ।५। पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं चक्रे चक्रगदाधरः । संज्ञां प्रयच्छन्ने देवो द्वारकापुरवासिनाम् ॥ ६ ॥ देवानुयाननिर्घोषं पांचजन्यस्य निःस्वनम् । श्रुत्वा द्वारवतीं सर्वे प्रहर्षमतुलं गताः ॥७॥ पूर्णकुम्भैश्च लाजैश्च बहु विन्यस्तविस्तरैः । द्वारोपशोभितां कृत्वा सर्वां द्वारवतीं पुरीम् ॥८॥ सुश्लिष्टरथ्यां सश्रीकां बहुरत्नोपशोभिताम् । विप्राश्चार्घं समादाय यथैव कुलनैगमाः ॥ ९ ॥ जयशब्दैश्च विविधैः पूजयन्ति स्म माधवम् । वैनतेये समासीनं नीलाञ्जनच-

राक्षस विद्याधर और सिद्ध भी चलरहे थे ॥ १०३ ॥ जिनको कलह प्यारी है ऐसे नारदजी भी बाणासुरके जीतनेको और वरुणको देखकर प्रसन्न होतेहुए द्वारकापुरीको चले ॥ १०४ ॥ मधुदैत्यका नाश करनेवाले चक्र और गदाको धारण करनेवाले श्रीकृष्णने कैलासके शिखरकी समान, भवनोंवाली शुभ कन्दरा वाली, और द्वारोंकी मालावाली द्वारकाको दूरसे ही देखकर पांचजन्यका शब्द किया इसप्रकार श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको अपने आनेकी सूचना देने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ जिसके पीछे देवताओंके विमानोंका घोष हो रहा था ऐसे पांचजन्यके शब्दको सुनकर सब द्वारकावासियोंको परम हर्षहुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने स्थान २ पर जलभरे हुए घड़े रखवा कर खीलोंकी वर्षा करवा कर मार्गों को साफ करवाकर सारी द्वारकापुरीके द्वारोंको सुशोभित करदिया ॥८॥ उसकी गलियोंको साफ करवा दिया और द्वारका को रत्नोंसे सुशोभित करदिया तदनन्तर कुलपुरोहितोंकी समान ब्राह्मण अर्घ लेकर चले ॥ ९ ॥ और अनेक प्रकारके जयजय-

योपमम् ॥ ११० ॥ ववन्दिरे तदा कृष्णं श्रिया परमया युतम् ।
तमानुपूर्व्या वर्गाश्च पूजयन्ति महाबलम् ॥११॥ अनन्तं केशि-
हन्तारं श्रेष्ठिपूर्वाश्च श्रेणयः । ऋषिभिर्देवगन्धर्वैश्चारणैश्च समं-
ततः ॥ १२ ॥ स्तूयते पुण्डरीकाक्षो द्वारकोपवने स्थितः । तदा-
श्चर्यमपश्यन्त दाशार्हगणसत्तमाः ॥ १३ ॥ महर्षिमतुलं प्राप्ता
दृष्ट्वा कृष्णं महाभुजम् । बाणं जित्वा महादेवमायान्तं पुरुषोत्त-
मम् ॥ १४ ॥ द्वारकावासिनां वाचश्चरन्ति बहुधा तदा । प्राप्ते
कृष्णे महाभागे यादवानां महारथे ॥ १५ ॥गत्वा च दूरमध्वानं
सुपर्णो द्रुतमागतः । धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मो येषां नो जगतः
पिता ॥ १६ ॥ रक्षिता चैव गोप्ता च दीर्घबाहुर्महाभुजः । वैन-
तेयं समारुह्य जित्वा बाणं सुदुर्जयम् ॥ १७॥ प्राप्तोऽयं पुण्डरी-
काक्षो मनांस्याल्हादयन्निव । एवं कथयतामेव द्वारकावासिनां

कार करके माधवकी पूजा करने लगे, नीले अञ्जनके ढेरकी समान परमशोभा युक्त गरुड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्णकी यादव वन्दना करने लगे तदनन्तर बनिये आदि केशीका नाश करनेवाले महाबली अनन्तकी क्रमपूर्वक पूजा करनेलगे, द्वारकाके वनमें खड़े हुए दाशार्हवंशी महाभुज श्रीकृष्णको देखकर देवता ऋषि गन्धर्व इस आश्चर्यको देखकर परम प्रसन्न होनेलगे बाणासुर को जीतकर आए हुए पुरुषोत्तमको देख कर द्वारकावासी प्रसन्न होने लगे ॥ १०-१४ ॥ उस समय यादवोंके महारथी श्रीकृष्णके आने पर द्वारकावासी अनेकप्रकारकी बातें कहने लगे. कि-॥१५॥ यह गरुड़ बहुत दूर जाकर शीघ्रही लौट आए जगत् के पिता महाभुज दीर्घबाहु गोविन्द हमारे रक्षक हैं अतः हम धन्य हैं और अनुगृहीत हैं यह पुण्डरीकाक्ष कठिनतासे जीतनेवाले बाणासुरको जीत गरुड़ पर बैठ कर हमारे मनको प्रसन्न करते हुए फिर यहाँ पर आगए हैं द्वारकावासी इसप्रकार कह रहे थे इसी

तदा ॥ १८ ॥ वासुदेवगृहं देवा विविशुस्ते महारथाः । अवतीर्य सुपर्णात्तु वासुदेवो बलस्तदा ॥ १९ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च गृहान् प्रविविशुस्तदा । ततो देवविमानानि संचरन्ति तदा दिवम् १२० अवस्थितानि दृश्यन्ते नानारूपाणि सर्वशः । हंसर्षभमृगैर्नागै र्वाजिसारसबर्हिणैः । भास्वन्ति तानि दृश्यन्ते विमानानि सहस्रशः ॥ २१ ॥ अथ कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं कुमारांस्तान् सहस्रशः । प्रद्युम्नादीन् समस्तांस्तु श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ २२ ॥ एते रुद्रास्तथादित्या वसवोथाश्विनावपि । साध्या देवास्तथाऽन्ये च वन्दध्वं च यथाक्रमम् ॥ २३ ॥ सहस्राक्षं महाभागं दानवानां भयंकरम् । वन्दध्वं सहिताः शक्रं सगणं नागवाहनम् ॥ २४ ॥ सप्तर्षयो महाभागा भृग्वाङ्गिरसमाश्रिताः । ऋषयश्च महात्मानो वन्दध्वं च यथासुखम् ॥ २५ ॥ एते चक्रधराश्चैव तानवन्दत

समय महारथी देवताओंने वासुदेवके घरमें प्रवेश किया तदनन्तर प्रद्युम्न अनिरुद्ध और वासुदेव तथा बलराम गरुड़से उतर कर अपने घरोंमें घुसे उस समय देवताओंके विमान आकाशमें घूम रहे थे अनेक प्रकारके रूप वाले हंस, बैल, मृग, हाथी, घोड़े, सारस और मोरोंसे जुते हुए सहस्रों प्रकाशमान् विमान तहाँ पर खड़े हुए दीखते थे तदनन्तर श्रीकृष्णने मधुर वाणीमें प्रद्युम्न आदि समस्त कुमारोंसे कहा, कि-२२ इन रुद्र आदित्य वसु अश्विनी-कुमार तथा साध्य देवताओंको तुम क्रमशः प्रणाम करो ॥२३॥ सहस्र नेत्रवाले और ऐरावत हाथी वाले महाभाग इन्द्रको और उनके गणोंको भी तुम प्रणाम करो ॥२४॥ यह महाभाग सप्तर्षि भृगु और अंगिरा आदि का आश्रय लेकर खड़े हुए हैं इनको तुम सुखपूर्वक प्रणाम करो ॥ २५ ॥ समुद्र सरोवर और चक्र-धर मेरे प्रेमके कारण यहाँ आये हैं तुम इन सबको प्रणाम करो दिशा दिशाओंके कोने और वासुकी आदि महाबलवान् नाग

सर्वशः । सागराश्च ह्रदाश्चैव मत्प्रियार्थमिहागताः ॥ २६ ॥ दिशश्च विदिशश्चैव वन्दध्वं च यथाक्रमम् । वासुकिप्रमुखाश्चैव नागा वै सुमहाबलाः ॥ २७ ॥ गावश्च मत्प्रियार्थं वो, वन्दध्वं च यथाक्रमम् । ज्योतींषि सह नक्षत्रैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥२८॥ आगता मत्प्रियार्थं वो वन्दध्वं च यथाक्रमम् वासुदेववचः श्रुत्वा कुमाराः प्रणताः स्थिताः ॥ २९ ॥ यथाक्रमेण सर्वेषां देवतानां महात्मनाम् । सर्वान् दिवौकसो दृष्ट्वा पौरा विस्मयमागताः॥३० पूजार्थमथ सम्भारान् प्रगृह्य द्रुतमागताः । अहो सुमहदाश्चर्यं वासुदेवस्य संश्रयात् ॥३१॥ प्राप्यते यदिहास्माभिरिति वाचश्च-रन्त्युत । ततश्चन्दनचूर्णैश्च गन्धपुष्पैश्च सर्वशः ॥ ३२ ॥ किरन्ति पौराः सर्वांस्तान् पूजयन्तो दिवौकसः । लाजैः प्रणामै-र्धूपैश्च वाद्यध्वनियमैस्तथा ॥ ३३ ॥ द्वारकावासिनः सर्वे पूज-

---

(यह सब मेरे प्रेमके कारण यहाँ आए हैं) तुम इन सबको क्रमा-नुसार प्रणाम करो २६ गौएँ भी मेरा प्रिय करनेके लिये आई हैं उनको भी क्रमशः प्रणाम करो नक्षत्र यक्ष राक्षस और किन्नरों को साथमें लेकर ज्योतियें भी मेरे प्रेमके कारण यहाँ आई हैं उनको भी तुम क्रमानुसार प्रणाम करो, वासुदेवके वचनको सुन कर कुमार सब महात्मा देवताओंके सामने खड़े होकर प्रणाम करने लगे और नम्र होकर खड़े होगए सब देवताओंको देख कर पुरवासी विस्मित होने लगे ॥ १२८–१३० ॥ और पूजाके लिए शीघ्र ही सामग्री ले आये और कहने लगे कि–वासुदेवका आश्रय लेनेसे हमें यह बड़ा भारी आश्चर्य देखनेको मिल रहा है, पुरवासी चन्दनके चूरेकी और पुष्पोंकी वर्षा करके सब देवताओंकी पूजा करने लगे. सब द्वारकावासी खीले बखेर कर प्रणाम करके धूप करके बाजोंकी ध्वनि करके देवताओंकी पूजा करने लगे. महाभाग्यवान् इन्द्रने आहुक (उग्रसेन) वासुदेव यदु-

यान्ति दिवौकसः। आहुकं वासुदेवं च साम्बं च यदुनन्दनम् ३४ सात्यकिं चोल्मुकं चैव विपृथुं च महाबलम् । अक्रूरं च महाभागं तथा निशठमेव च ॥३५॥ एतान् परिष्वज्य तदा मूर्ध्नि चाघ्राय वासवः । अथ शक्रो महाभागः समक्षं यदुमण्डले ॥ ३६ ॥ स्तुवन्तं केशिहन्तारं तत्रोवाचोत्तरं वचः॥सात्वतः सात्वतामेव सर्वेषां यदुनन्दनम् ॥३७॥ मोक्षयित्वा रणे चैव यशसा पौरुषेण च । महादेवस्य मिषतो गुहस्य च महात्मनः ॥ ३८ ॥ एष बाणं रणे जित्वा द्वारकां पुनरागतः । सहस्रबाहोर्बाहूनां कृत्वा द्वयमनुत्तमम् ॥३९॥ स्थापयित्वा द्विबाहुस्ते गामीयं स्वपुरं हरिः । यदर्थं जन्म कृष्णस्य मानुषेषु महात्मनः ॥ १४० ॥ तदप्यवसितं कार्यं नष्टशोका वयं कृताः । पिबतां मधुमाध्वीकं भवतां प्रीतिपूर्वकम् । कालो यास्यत्यविरसं विषयेष्वेव त्यज्यताम् । बहूनां संश्रयात् सर्वे वयमस्य महात्मनः ॥ ४२ ॥ प्रणष्टशोका रंस्यामः सर्व एव

नन्दन साम्ब सात्यकि उल्मुक महाबली विपृथु महाभाग अक्रूर तथा निशठको आलिंगन किया और उसके मस्तकको भी सूँघने लगा फिर यादवोंके मण्डलके सामने स्तुति पाते हुए केशिनाशन श्रीकृष्णसे उत्तरमय वचन कहने लगा श्रीकृष्ण सात्वितवंशियों में मुख्य हैं इन्होंने महादेव और महात्मा कार्तिकेयके सामने अपने यश और पुरुषार्थसे छुड़ाया है ॥१३१॥१३८॥ यह बाणासुरको रणमें जीतकर और उस सहस्र भुजावालेकी दो श्रेष्ठभुजाओंको ही शेष रख कर फिर द्वारकामें ही आगये हैं, महात्मा केशवका जिसलिये मनुष्योंका जन्म हुआ है ॥ १४० ॥ वह कार्यभी पूर्ण होगया और हमारा शोक नष्ट होगया है अब हम प्रसन्नतापूर्वक आपके दिये हुए मधु माध्वीकको पियेंगे ॥१४१॥ अब तुम्हारा समय श्रीकृष्णके सामने ही बीतेगा, विषयोंमें प्रेम न करना चाहिये हम इन महात्माकी भुजाओंके आश्रयसे शोक रहित होकर सुख

यथासुखम् । एवं स्तुत्वा सहस्राक्षो केशवं दानवान्तकम् ॥४३॥ आपृच्छ्य तं महाभागः सर्वदेवगणैर्वृतः । ततः पुनः परिष्वज्य कृष्णं लोकनमस्कृतम् । पुरन्दरो दिवं यातः सह देवमरुद्गणैः ४४ ऋषयश्च महात्मानो जयाशीर्भिर्महौजसम् । यथा गतं पुनर्याता यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ४५ ॥ पुरन्दरे दिवं याते पद्मनाभो महाबलः । अपृच्छत महाभागः सर्वान् कुशलमव्ययम् ॥४६॥ ततः किलकिलाशब्दं निर्वदन्तः सहस्रशः । गच्छन्ति कौमुदीं द्रष्टुं सोऽनघः प्रीयते सदा ॥ ४७ ॥ द्वारकां प्राप्य कृष्णस्तु रेमे यदुगणैः सह । विविधान् सर्वकामार्थान् श्रिया परमया युतः १४८

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारकायां गमने सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथाहुको महाबाहुः कृष्णं प्राह महा-

पूर्वक रमण करेंगे इस प्रकार दानवोंका अन्तकरने वाले केशवकी स्तुति करके सब देवताओंसे घिरे हुए महाभाग इन्द्रने जिनको संसार नमस्कार करता है ऐसे श्रीकृष्णको फिर आलिंगन किया और देवता तथा मरुतोंको साथमें लेकर स्वर्गको चलागया४२-४४ महात्मा ऋषि भी परम बलवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करके चले गए और यक्ष राक्षस तथा किन्नर भी जिस प्रकार आए थे चले गए इन्द्रके स्वर्गको चले जाने पर महाभाग महाबली पद्मनाभ सबसे कुशल पूँछनेलगे ।१४६। तदनन्तर आश्चर्य है २ इसप्रकार सैंकड़ों पुरुषोंके मुखसे वाणी निकलने लगी, मनुष्य कृष्णकी मुखकी प्रभाको देखने आते थे अतः निष्पाप वासुदेव उनकी भक्तिसे प्रसन्न होने लगे ॥ १४७ ॥ द्वारिकामें आने पर परम शोभा सम्पन्न वासुदेव यादवोंके साथ अनेक प्रकारकी कामनाओं को भोगने लगे ॥ १४८ ॥ एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायनजीने कहा, कि-उस समय जिनके नेत्र हर्षसे खिल

स्तुतिः । हर्षोत्फुल्लनयनः श्रूयतां यदुनन्दनः ॥१॥ एवं गतेऽनिरुद्धस्य क्रियतां महदुत्सवः । क्षेमात् गृहागतं दृष्ट्वा सेव्यमानाः सहासते ॥ २ ॥ उषापि च महाभागा सखीभिः परिवारिता । रमते परया प्रीत्या चानिरुद्धेन संगता ॥ ३ ॥ कुम्भाण्डदुहिता रामा उषायाः सखिमण्डले । प्रवेश्यतां महाभागा सौन्दर्यां वर्द्धयत्युत ॥ ४ ॥ साम्बाय दीयतां रामा कुम्भाण्डदुहिता शुभा । शेषाश्च कन्या नयन्तां कुमाराणां यथाक्रमम् ॥ ५ ॥ वर्तते सोत्सवस्तत्र अनिरुद्धस्य वेश्मनि । गृहे श्रीधन्वनश्चैव शुभस्तत्र प्रवर्तते ॥६॥ वादयन्ति पुरे तत्र नार्यो मदवशं गताः । नृत्यन्ते चाप्सरस्तत्र गायन्ति च तथापराः ॥७॥ काश्चित् प्रमुदितास्तत्र काश्चिदन्योन्यमब्रुवन् । नानावर्णाम्बरधराः क्रीडमानास्ततस्ततः अभियान्ति ततोन्योन्यं काश्चिन्मदवशात् स्वगम् । क्रीडन्ति का-

रहे थे ऐसे महाप्रभु उग्रसेन श्रीकृष्णसे कहने लगे हे यदुनन्दन ! सुनिये ॥१॥ अनिरुद्धको क्षेमपूर्वक लौटता हुआ देख कर सब यादव अप्सराओंके साथ बैठे हुए हैं अतः इस दशामें अनिरुद्ध के निमित्त महोत्सव करना चाहिये ॥ २ ॥ सखियोंसे घिरी हुई महाभागा ऊषा भी अनिरुद्धके साथ परम प्रेमपूर्वक क्रीड़ा कर रही है ॥ ३ ॥ कुंभाण्डकी पुत्री रामाको ऊषाके सखीमण्डलमें रखना चाहिये महाभागा सौन्दर्यों उनकी प्रशंसा कर रही है ४ कुम्भाण्डकी पुत्री शुभा रामाको साम्ब के अर्पण कर देना चाहिये और बाकी कन्याएँ भी कुमारों को दे दो ॥ ५ ॥ (इस प्रकार उग्रसेनके कहनेके अनन्तर) श्रीधन्वा और अनिरुद्धके घरमें उत्सव होने लगा ६ तहाँ पर मदसे भरी हुई नारियें बाजे बजाने लगीं कुछ स्त्रियें तहाँ पर नाचने लगीं कुछ गाने लगीं ७ कुछ प्रसन्न होने लगीं कुछ आपसमें बात चीत करनेलगीं बहुतसी स्त्रियें अनेक प्रकारके वस्त्र पहिनकर क्रीडा करनेलगीं८

शिवदर्शैस्तु हर्षादुत्फुल्ललोचनाः ॥९॥ मायूरं रथमारुह्य सखीभिः परिवारिता । उषा संप्रेषिता देव्या रुद्राण्या प्रतिगृह्यताम् ।१०। इयं चैव कुलश्लाघ्या नाम्नोषा सुन्दरी वरा । बाणपुत्री तव वधूः प्रतिगृह्णीष्व भामिनीम् ॥ ११ ॥ ततः प्रतिगृहीता सा स्त्रीभिराचारमङ्गलैः । प्रवेशिता च सा वेश्म अनिरुद्धस्य शोभना ॥१२॥ देवकी रोहिणी चैव रुक्मिण्यथ विदर्भजा । दृष्ट्वाऽनिरुद्धं रोदन्त्यः स्नेहहर्षसमन्विताः ॥ १३ ॥ रेवती रुक्मिणी चैव गृहमुख्यं प्रवेशयत् । वधूर्द्वसि दिष्ट्या त्वमनिरुद्धस्य दर्शनात् ॥१४॥ ततस्तूर्यप्रणादैस्ता वरनार्यः शुभाननाः । क्रियामारेभिरे कर्तुमुषा च गृहसंस्थिता ॥१५॥ ततो हर्म्यतलस्था सा वृष्णिपुङ्गवसंस्थिता ।

मदके वशमें होकर बहुतसी स्त्रियें दूसरी स्त्रियोंके पास जाने लगीं और बहुतसी स्त्रियें, कि जिनके नेत्र हर्षके कारण खिल रहे थे वे फाँसे खेलने लगी ९ (उस समय श्रीकृष्ण स्त्रियोंसे कहने लगे कि-) रुद्राणीने जिस ऊषाको सन्तुष्ट किया है ऐसी सखियोंसे घिरी हुई और मयूर पर बैठी हुई ऊषाको ग्रहण करो ॥१०॥ हे भामिनि ! प्रशंसनीय कुलवाली बाणकी पुत्री सुन्दरी ऊषा तुम्हारी पुत्रवधू है इसको ग्रहण करो ॥११॥ तदनन्तर स्त्रियोंने अपने कुलके आचार करके और मंगलमय गीत गाकर उसको घर में लिया फिर उस शोभनाको अनिरुद्धके घरमें प्रवेश कराया ॥१२ तदनन्तर देवकी रोहणी और रुक्मिणी तथा विदर्भकी पुत्री अनिरुद्धको देख कर हर्ष और स्नेहमें भर कर रोने लगीं ॥ १३ ॥ रेवती और रुक्मिणी (ऊषाको) मुख्य घरमें लेगईं (और कहने लगीं) हे वधू ! अनिरुद्धका दर्शन करनेसे तू बड़ी भाग्यवती प्रतीत होती है ॥ १४ तदनन्तर वह शुभ मुख वाली स्त्रियें तुरहियोंको बजाकर अपनी क्रियाको आरंभ करनेलगीं उस समय ऊषा घरमें बैठी हुई थी वृष्णिपुंगवके साथ रहनेवाली श्रेष्ठ मुख

रमते सर्वसद्दृशैरूपभोगैर्वरानना ॥ १६ ॥ चित्रलेखा च सुश्रोणि अप्सरारूपधारिणी । आपृष्ट्वा च सखीवर्गमुषां च त्रिदिवं गता ॥ गतासु तासु सर्वासु सखीष्वसुरसुन्दरी । मायावत्या गृहं नीता प्रथमं सा निमन्त्रिता ॥ १८ ॥ सा तु प्रद्युम्नगृहिणी स्नुषां दृष्ट्वा सुमध्यमा । वासोभिरन्नपानैश्च पूजयामास सुन्दरीम् ॥ १९ ॥ ततः क्रमेण सर्वास्ता वधूमूषां यदुस्त्रियः । आचारमनुपश्यन्त्यः स्वधर्ममुपचक्रिरे ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच । एतत्ते सर्वमाख्यातं मया कुरुकुलोद्वह । यथा बाणो जितः संख्ये जीवन्मुक्तश्च विष्णुना ॥ २१ ॥ द्वारकायां ततः कृष्णो रेमे यदुगणैर्वृतः । अन्वशासन्महीं कृत्स्नां परया संयुतो मुदा ॥ २२ ॥ एवमेषोऽवतीर्णो वै पृथिवीं पृथिवीपते । विष्णुर्यदुकुलश्रेष्ठो वासुदेवेति विश्रुतः २३

वाली ऊषा महलमें रहकर सब ऐश्वर्योंको भोगनेलगी १५।१६ अप्सराका रूप धारण करने वाली सुश्रोणि चित्रलेखा भी सखियोंसे और ऊषासे बूझ कर स्वर्गको चली गई ॥ १७ ॥ जब सब सखियें चली गईं तब उस असुर सुन्दरीको मायावतीने निमन्त्रण देकर पहिले अपने घरमें बुलाया १८ सुन्दर कमर वाली प्रद्युम्नकी स्त्रीने अपनी पुत्र वधूको देख कर वस्त्र अन्न पान आदिसे उस सुन्दरीका सत्कार किया १९ तदनन्तर कुलाचारको देखने वाली सब यादवस्त्रियोंने भी वधू ऊषाका सत्कार करके अपने धर्मका पालन किया २० वैशम्पायनजीने कहा, कि-हे कुरुकुलोद्वह ! जिसप्रकार श्रीकृष्णने युद्धमें बाणासुरको जीत कर जीताहुआ ही छोड़ दिया था वह सब बात मैंने तुमसे कह दी २१ तदनन्तर यादवोंसे घिरे हुए श्रीकृष्ण द्वारकामें आनन्द करने लगे और आनन्द पूर्वक सारी पृथ्वीका शासन करने लगे २२ हे पृथ्वीपते ! इस भांति विष्णुने पृथिवीमें अवतार लिया था और वह यदुकुलमें श्रेष्ठ वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुये थे २३

एतैश्च कारणैः श्रीमान् वसुदेवकुले प्रभुः । जातो वृष्णिषु देवक्यां यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २४ ॥ निवृत्ते नारदप्रश्ने मयाऽऽख्यातं समासतः । श्रुतास्ते विस्तराः सर्वे ये पूर्वं जनमेजय ॥ २५ ॥ विष्णोस्तु माथुरे कल्पे यत्र ते संशयो महान् । वासुदेवगतिश्चैव सा मया समुदाहृता ॥ २६ ॥ आश्चर्यं चैव नान्यद्धि कृष्ण-श्चाश्चर्य-संनिधिः । सर्वेष्वाश्चर्यकल्पेषु नास्त्याश्चर्यमवै-ष्णम् ॥ २७ ॥ एष धन्यो हि धन्यानां धन्यकृद्धन्यभावनः । देवेषु तु सदैत्येषु नास्ति धन्यतरोऽच्युतात् ॥ २८ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा । गगनं भूर्दिशश्चैव सलिलं ज्योतिरेव च ॥२९॥ एष धाता विधाता च संहर्ता चैव नित्यशः सत्यं धर्मस्तपश्चैव ब्रह्मा चैव पितामहः ॥ ३० ॥ अनन्तश्चैव

तुमने मुझसे जो बात बूझी थी सो विष्णु इन कारणोंसे वृष्णि वंशमें वसुदेवके कुलमें देवकीसे उत्पन्न हुये थे २४ नारदजीके प्रश्न करने पर मैंने संक्षेपपूर्वक जो बात कही थी, हे राजा जनमे-जय ! उस सबको आपने विस्तारपूर्वक सुन लिया २५ तुम्हें इस बातका बड़ा सन्देह था कि-श्रीकृष्णने मथुरामें क्यों जन्म लिया था, सो तुमसे मैंने वासुदेवकी सारी गति कह दी २६ वासुदेवसे बढकर और कोई आश्चर्य नहीं है, वासुदेव आश्चर्योंके खजाने हैं सब आश्चर्यकी बातोंमें कोई ऐसा आश्चर्य नहीं है जिसमें विष्णु का प्रवेश न हो २७ यह श्रीकृष्ण धन्य हैं और धन्योंको भी धन्य करने वाले हैं तथा धन्यभावन हैं देवता तथा दैत्योंमें श्रीकृष्ण से अधिक और कोई धन्य नहीं है (श्रुतिमें लिखा है कि-"एष ह्येवानन्दयाति यही सबको आनन्दित करते हैं अर्थात् धन्य करते हैं) २८ आदित्य वसु रुद्र अश्विनीकुमार मरुत् आकाश भूमि दिशायें जल और ज्योति धाता तथा विधाता और संहर्ता यह सब श्रीकृष्ण ही हैं अर्थात् यह सब इनहीसे उत्पन्न हुए हैं, सत्य

नागानां रुद्राणां शंकरः स्मृतः । जङ्गमाजङ्गमं चैव जगन्नारायणोद्भवम् ॥ ३१ ॥ एतस्माच्च जगत् सर्वं प्रसूयेत जनार्दनात् । जगच्चैव सर्वं देवेशे तं नमस्कुरु भारत ॥ ३२ ॥ पूज्यश्च सततं सर्वैर्देवैरेष सनातनः । इत्युक्तं बाणयुद्धं ते माहात्म्यं केशवस्य तु ॥ ३३ ॥ वंशप्रतिष्ठामतुलां श्रवणादेव लप्स्यसे । ये चेदं धारयिष्यन्ति बाणयुद्धमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥ केशवस्य च माहात्म्यं नाधर्मस्तान् भजिष्यति । एषा ते वैष्णवी चर्या मया कार्त्स्न्येन कीर्तिता ॥ ३५ ॥ पृच्छतस्तात यज्ञेऽस्मिन्निवृत्ते जनमेजय । आश्चर्यपर्वनिखिलं यो हीदं धारयेन्नृप ॥ ३६ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति । कल्यमुत्थाय यो नित्यं कीर्तयेत् सुसमाहितः ॥ ३७ ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च । ब्राह्मणः

धर्म पितामह ब्रह्मा और तप भी (यह ही हैं) २९।३० यह नागोंमें शेषनाग और रुद्रोंमें शंकर कहलाते हैं सब चराचर जगत् नारायणसे ही उत्पन्न हुआ है ॥३१॥ इन जनार्दनसे ही सब जगत् उत्पन्न होता है और सब जगत् इन देवेशमें ही रहता है हे भारत ! तू इनको प्रणाम कर ॥३२॥ यह सनातन पुरुष देवताओंके सदा पूज्य हैं इस प्रकार तुमसे बाणासुरका युद्ध और केशवका माहात्म्य कह दिया ३३ इसको सुननेसे तेरे वंशको अतुल प्रतिष्ठा मिलेगी जो इस परम सुन्दर श्रेष्ठ बाणासुरके युद्धको और केशव के माहात्म्यको (अपने मनमें) धारण करेंगे अधर्म उनका सेवन नहीं करेगा हे तात जनमेजय ! इस यज्ञके निवृत्त होने पर तुम्हारे पूछनेपर तुमसे वैष्णवी चर्या कहदी हे नृप ! जो इस सारे आश्चर्य पर्वको (मनमें) धारणा करता है ॥ ३४ ॥ ३६ ॥ वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोकमें जाता है, जो पुरुष प्रातःकाल उठकर सावधानीके साथ इसका पाठ करता है ३७ उसको इस लोकमें और परलोकमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती (इसका जानने वाला)

सर्ववेदी स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥३८॥ वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः कामानवाप्नुयात् । नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चिद्दीर्घमायुर्लभेत सः ॥३९॥ सौतिरुवाच । इति पारीक्षितो राजा वैशम्पायनभाषितम् । श्रुतवानवलो भूत्वा हरिवंशं द्विजोत्तमाः ॥४०॥ एवं शौनक संक्षेपाद्विस्तरेण तथैव च । प्रोक्ता वै सर्ववंशास्ते किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४१ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासक्यां देवेषु तु संदर्शितेषु हरिवंशे विष्णुपर्वणि उषाहरणसमाप्तिकथनं नाम अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

ब्राह्मण सब वेदोंका जानने वाला होजाता है-क्षत्रियको विजय मिलती है वैश्य धनसंपन्न होजाता है और शूद्र सब कामनाओंको पाता है उसको किसी अशुभ फलकी प्राप्ति नहीं होती और वह बड़ी आयु पाता है ३९ सौतिने कहा कि-हे द्विजोत्तमो ! परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीके कहे हुए हरिवंशपर्वको अनवल होकर सुना था ।४० । हे शौनक ! इस प्रकार तुमसे भी संक्षेप तथा विस्तारके साथ सब वंश कहदिये अब तुम क्या सुनना चाहते हो ॥४१॥ एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२८ ॥

इति श्रीमहाभारतके हरिवंशान्तर्गत विष्णुपर्वका मुरादाबाद-निवासी भारद्वाजगोत्र गौडवंश्य ऋ० कु० प० रामस्वरूपात्मज ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माद्वारा गोविन्दसूरितनूज प० नीलकण्ठकृत संस्कृत टीकाके अनुकूल सम्पादित हिन्दी भाषानुवाद समाप्त.